महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

वर्ष ३ संख्या ९

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, आषाढ़ २०१५, जुलाई १९५८ { संख्या ९ पूर्ण संख्या ३३

मोक्षके आश्रय मुकुन्द

योऽशिशुः शिशुरूपेण भाति भक्तकृते हरिः ।
स पीतवासः श्रीकान्तो नितान्तरससागरः ॥
अभिरामो घनश्यामो वामदेवादिवन्दितः ।
नन्दनन्दन आनन्दो मुकुन्दो मोक्षगोचरः ॥

जो शिशु न होकर भी भक्तोंके लिये शिशु (बालमुकुन्द) रूपसे सदा प्रकाशित होते हैं, वे वामदेव आदि मुनियोंसे वन्दित, अनन्त रस-सिन्धु, श्रीवल्लभ, पीताम्बरधारी, नयनाभिराम, घनश्याम, आनन्दस्वरूप नन्दनन्दन मुकुन्द ही मोक्षके आश्रय हैं ।

श्रीहरिः

विषय-सूची (आश्रमवासिकपर्व)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२१	धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियोंकी चिन्ता	६४२५
२२	माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेनासहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान	६४२६
२३	सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना	६४२८
२४	पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना	६४२९
२५	संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना	६४३०
२६	धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश	६४३२
२७	युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन	६४३५
२८	महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना	६४३७
	(पुत्रदर्शनपर्व)	
२९	धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध	६४३९
३०	कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना	६४४२
३१	व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना	६४४४
३२	व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डव-वीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना	६४४५
३३	परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर राग-द्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा	६४४७
३४	मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है ? जनमेजयकी इस शंकाका वैशम्पायनद्वारा समाधान	६४४९
३५	व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना	६४५१
३६	व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना	६४५२
	(नारदागमनपर्व)	
३७	नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक	६४५६
३८	नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन	६४५९
३९	राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना	६४६१

चित्र-सूची

१—महाभारत लेखन ··· (तिरंगा) मुख-पृष्ठ

२—विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश ··· (एकरंगा) ६४२५

३—व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डव-पक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन ··· ( ) ६४४६

४—(४ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (मौसलपर्व)

१—युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा ... ६४६३
२—द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना ६४६५
३—कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार ६४६७
४—दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन ... ६४७०
५—अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना ६४७४
६—द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत ६४७५
७—वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना ... ६४७७
८—अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत ... ६४८१

चित्र-सूची

१—साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप ... (एकरंगा) ६४६३
२—बलरामजीका परमधाम-गमन ... (तिरंगा) ६४७२
३—वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं ... (एकरंगा) ६४७६
४—(६ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (महाप्रस्थानिकपर्व)

१—वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान ६४८५
२—मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना ... ६४८८
३—युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना तथा सदेह स्वर्गमें जाना ... ६४९०

चित्र-सूची

१—अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं (सादा) ... ६४८५
२—(२ लाइन चित्र फरमोंमें)

विषय-सूची (स्वर्गारोहणपर्व)

१—स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत ... ६४९३
२—देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना ... ६४९५
३—इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना ६४९९
४—युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना ६५०२
५—भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य ६५०४
१—महाभारतश्रवणविधिः ६५०९
२—महाभारत-माहात्म्य ... ६५१७
३—सम्पूर्ण महाभारतकी श्लोक-संख्या (अनुष्टुप् छन्दके अनुसार) ... ६५२०
४—महाभारतके सब पर्वोंके प्रत्येक अध्यायकी पूरी विषयसूची ... १
५—महाभारतकी नामानुक्रमणिका संक्षिप्त परिचयसहित १

चित्र-सूची

१—युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग (तिरंगा) ६४९३
२—देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना (एकरंगा) ६४९७
३—(१ लाइन चित्र फरमेंमें)

विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश

एकविंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियोंकी चिन्ता

वैशम्पायन उवाच

वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः ।
बभूवुः पाण्डवा राजन् मातृशोकेन चान्विताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कौरवराज धृतराष्ट्रके वनमें चले जानेपर पाण्डव दुःख और शोकसे संतप्त रहने लगे । माताके विछोहका शोक उनके हृदयको दग्ध किये देता था ॥ १ ॥

तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम् ।
कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति ॥ २ ॥

इसी प्रकार समस्त पुरवासी मनुष्य भी राजा धृतराष्ट्रके लिये निरन्तर शोकमग्न रहते थे तथा ब्राह्मणलोग सदा उन वृद्ध नरेशके विषयमें वहाँ इस प्रकार चर्चा किया करते थे ॥ २ ॥

कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने ।
गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम् ॥ ३ ॥

'हाय ! हमारे बूढ़े महाराज उस निर्जन वनमें कैसे रहते होंगे ? महाभागा गान्धारी तथा कुन्तिभोजकुमारी पृथा देवी भी किस तरह वहाँ दिन बिताती होंगी ? ॥ ३ ॥

सुखार्हः स हि राजर्षिरसुखी तद् वनं महत् ।
किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः ॥ ४ ॥

'जिनके सारे पुत्र मारे गये, वे प्रज्ञाचक्षु राजर्षि धृतराष्ट्र सुख भोगनेके योग्य होकर भी उस विशाल वनमें जाकर किस अवस्थामें दुःखके दिन बिताते होंगे ? ॥ ४ ॥

सुदुष्कृतं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती ।
राज्यश्रियं परित्यज्य वनं सा समरोचयत् ॥ ५ ॥

'कुन्तीदेवीने तो बड़ा ही दुष्कर कर्म किया । अपने पुत्रोंके दर्शनसे वञ्चित हो राज्यलक्ष्मीको ठुकराकर उन्होंने वनमें रहना पसंद किया है ॥ ५ ॥

विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान् ।
स च गावल्गणिर्धीमान् भर्तृपिण्डानुपालकः ॥ ६ ॥

'अपने भाईकी सेवामें लगे रहनेवाले मनस्वी विदुरजी किस अवस्थामें होंगे ? अपने स्वामीके शरीरकी रक्षा करनेवाले बुद्धिमान् संजय भी कैसे होंगे ?' ॥ ६ ॥

आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः ।
तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ ७ ॥

बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक समस्त पुरवासी चिन्ता और शोकसे पीड़ित हो जहाँ-तहाँ एक दूसरेसे मिलकर उपर्युक्त बातें ही किया करते थे ॥ ७ ॥

पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।
शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे ॥ ८ ॥

समस्त पाण्डव तो निरन्तर अत्यन्त शोकमें ही डूबे रहते थे । वे अपनी बूढ़ी माताके लिये इतने चिन्तित हो गये कि अधिक कालतक नगरमें नहीं रह सके ॥ ८ ॥

तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरम् ।
गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिम् ॥ ९ ॥
नैषां बभूव सम्प्रीतिस्तान् विचिन्तयतां तदा ।
न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च ॥ १० ॥

जिनके पुत्र मारे गये थे, उन बूढ़े ताऊ महाराज धृतराष्ट्रकी, महाभागा गान्धारीकी और परम बुद्धिमान् विदुरकी अधिक चिन्ता करनेके कारण उन्हें कभी चैन नहीं पड़ती थी । न तो राजकाजमें उनका मन लगता था न स्त्रियोंमें । वेदाध्ययनमें भी उनकी रुचि नहीं होती थी ॥ ९-१० ॥

परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम् ।
तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

राजा धृतराष्ट्रको याद करके वे अत्यन्त खिन्न एवं विरक्त हो उठते थे । भाई-बन्धुओंके उस भयंकर वधका उन्हें बारंबार स्मरण हो आता था ॥ ११ ॥

अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि ।
कर्णस्य च महाबाहो संग्रामेष्वपलायिनः ॥ १२ ॥

महाबाहु जनमेजय ! युद्धके मुहानेपर जो बालक अभिमन्युका अन्यायपूर्वक विनाश किया गया, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले कर्णका (परिचय न होनेसे) जो वध किया गया—इन घटनाओंको याद करके वे बेचैन हो जाते थे ॥ १२ ॥

तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि ।
वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ १३ ॥

इसी प्रकार द्रौपदीके पुत्रों तथा अन्यान्य सुहृदोंके वधकी बात याद करके उनके मनकी सारी प्रसन्नता भाग जाती थी ॥ १३ ॥

हतप्रवीरां पृथिवीं हतरत्नां च भारत ।
सदैव चिन्तयन्तस्ते न शर्म चोपलेभिरे ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! जिसके प्रमुख वीर मारे गये तथा रत्नोंका अपहरण हो गया, उस पृथ्वीकी दुर्दशाका सदैव चिन्तन करते हुए पाण्डव कभी थोड़ी देरके लिये भी शान्ति नहीं पाते थे ॥ १४ ॥

द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी।
नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत् ॥ १५ ॥

जिनके बेटे मारे गये थे, वे द्रुपदकुमारी कृष्णा और भाविनी सुभद्रा दोनों देवियाँ निरन्तर अप्रसन्न और हर्ष-शून्य-सी होकर चुपचाप बैठी रहती थीं ॥ १५ ॥

वैराट्यास्तनयं दृष्ट्वा पितरं ते परिक्षितम्।
धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः ॥ १६ ॥

जनमेजय! उन दिनों तुम्हारे पूर्व पितामह पाण्डव उत्तराके पुत्र और तुम्हारे पिता परीक्षित्को देखकर ही अपने प्राणोंको धारण करते थे ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेनासहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः।
स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी माताको आनन्द प्रदान करनेवाले वे पुरुषसिंह वीर पाण्डव इस प्रकार माताकी याद करते हुए अत्यन्त दुखी हो गये थे ॥ १ ॥

ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन्।
ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे ॥ २ ॥
प्रविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन।
सम्भाष्यमाणा अपि ते न किंचित् प्रत्यपूजयन् ॥ ३ ॥

जो पहले प्रतिदिन राजकीय कार्योंमें निरन्तर आसक्त रहते थे, वे ही उन दिनों नगरमें कहीं कोई राजकाज नहीं करते थे। मानो उनके हृदयमें शोकने घर बना लिया था। वे किसी भी वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होते थे। किसीके बातचीत करनेपर भी वे उस बातकी ओर न तो ध्यान देते और न उसकी सराहना करते थे ॥ २-३ ॥

ते स्म वीरा दुराधर्षा गाम्भीर्ये सागरोपमाः।
शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ४ ॥

समुद्रके समान गाम्भीर्यशाली दुर्धर्ष वीर पाण्डव उन दिनों शोकसे सुध-बुध खो जानेके कारण अचेत-से हो गये थे ॥ ४ ॥

अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः।
कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा ॥ ५ ॥

तदनन्तर एक दिन पाण्डव अपनी माताके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'हाय! मेरी माता कुन्ती अत्यन्त दुबली हो गयी होंगी। वे उन बूढ़े पति-पत्नी गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवा कैसे निभाती होंगी? ॥ ५ ॥

कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः।
पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते ॥ ६ ॥

'शिकारी जन्तुओंसे भरे हुए उस जंगलमें आश्रयहीन एवं पुत्ररहित राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ अकेले कैसे रहते होंगे? ॥ ६ ॥

सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा।
पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ७ ॥

'जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, वे महाभागा गान्धारी देवी, उस निर्जन वनमें अपने अन्धे और बूढ़े पतिका अनुसरण कैसे करती होंगी? ॥ ७ ॥

एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत् तदा।
गमने चाभवद् बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ८ ॥

इस प्रकार बात करते-करते उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो गयी और उन्होंने धृतराष्ट्रके दर्शनकी इच्छासे वनमें जानेका विचार कर लिया ॥ ८ ॥

सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति ॥ ९ ॥

उस समय सहदेवने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके कहा—'भैया, मुझे ऐसा दिखायी देता है कि आपका हृदय तपोवनमें जानेके लिये उत्सुक है—यह बड़े हर्षकी बात है ॥ ९ ॥

न हि त्वां गौरवेणाहमशकं वक्तुमञ्जसा।
गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम् ॥ १० ॥

'राजेन्द्र! मैं आपके गौरवका ख्याल करके संकोचवश वहाँ जानेकी बात स्पष्टरूपसे कह नहीं पाता था। आज सौभाग्यवश वह अवसर अपने आप उपस्थित हो गया ॥ १० ॥

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं
वर्तयन्तीं तपस्विनीम्।

जटिलां तापसीं वृद्धां कुशकाशपरिक्षताम् ॥ ११ ॥

'मेरा अहोभाग्य कि मैं तपस्यामें लगी हुई माता कुन्तीका दर्शन करूँगा। उनके सिरके बाल जटारूपमें परिणत हो गये होंगे! वे तपस्विनी बूढ़ी माता कुश और काशके आसनोंपर शयन करनेके कारण क्षतविक्षत हो रही होंगी ॥ ११ ॥

प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभागिनीम् ।
कदा तु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिताम् ॥ १२ ॥

'जो महलों और अट्टालिकाओंमें पलकर बड़ी हुई हैं, अत्यन्त सुखकी भागिनी रही हैं, वे ही माता कुन्ती अब थककर अत्यन्त दुःख उठाती होंगी! मुझे कब उनके दर्शन होंगे? ॥ १२ ॥

अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ ।
कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने ॥ १३ ॥

'भरतश्रेष्ठ! मनुष्योंकी गतियाँ निश्चय ही अनित्य होती हैं, जिनमें पड़कर राजकुमारी कुन्ती सुखोंसे वञ्चित हो वनमें निवास करती हैं' ॥ १३ ॥

सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा ।
उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १४ ॥

सहदेवकी बात सुनकर नारियोंमें श्रेष्ठ महारानी द्रौपदी राजाका सत्कार करके उन्हें प्रसन्न करती हुई बोली—॥१४॥

कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा ।
जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप ॥ १५ ॥

'नरेश्वर! मैं अपनी सास कुन्तीदेवीका दर्शन कब करूँगी? क्या वे अबतक जीवित होंगी? यदि वे जीवित हों तो आज उनका दर्शन पाकर मुझे असीम प्रसन्नता होगी॥१५॥

एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे ते रमतां मनः ।
योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योजयिष्यसि ॥१६॥

'राजेन्द्र! आपकी बुद्धि सदा ऐसी ही बनी रहे। आपका मन धर्ममें ही रमता रहे; क्योंकि आज आप हमलोगोंको माता कुन्तीका दर्शन कराकर परम कल्याणकी भागिनी बनायेंगे ॥ १६ ॥

अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन् वधूजनम् ।
काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च ॥ १७ ॥

'राजन्! आपको विदित हो कि अन्तःपुरकी सभी बहुएँ वनमें जानेके लिये पैर आगे बढ़ाये खड़ी हैं। वे सब-की-सब कुन्ती, गान्धारी तथा ससुरजीके दर्शन करना चाहती हैं' ॥ १७ ॥

इत्युक्तः स नृपो देव्या द्रौपद्या भरतर्षभ ।
सेनाध्यक्षान् समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह ॥ १८ ॥

'भरतभूषण! द्रौपदीदेवीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने समस्त सेनापतियोंको बुलाकर कहा—॥ १८ ॥

निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम् ।
द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ १९ ॥

'तुमलोग बहुत-से रथ और हाथी-घोड़ोंसे सुसज्जित सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दो। मैं वनवासी महाराज धृतराष्ट्रके दर्शन करनेके लिये चलूँगा' ॥ १९ ॥

स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद् राजा यानानि विविधानि मे ।
सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः ॥ २० ॥

इसके बाद राजाने रनिवासके अध्यक्षोंको आज्ञा दी—'तुम सब लोग हमारे लिये भाँति-भाँतिके वाहन और पालकियोंको हजारोंकी संख्यामें तैयार करो ॥ २० ॥

शकटापणवेशाश्च कोशः शिल्पिन एव च ।
निर्यान्तु कोषपालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१ ॥

'आवश्यक सामानोंसे लदे हुए छकड़े, बाजार, दुकानें, खजाना, कारीगर और कोषाध्यक्ष—ये सब कुरुक्षेत्रके आश्रमकी ओर रवाना हो जायँ ॥ २१ ॥

यश्च पौरजनः कश्चिद् द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् ।
अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः ॥ २२ ॥

'नगरवासियोंमेंसे जो कोई भी महाराजका दर्शन करना चाहता हो, उसे बेरोक-टोक सुविधापूर्वक सुरक्षितरूपसे चलने दिया जाय ॥ २२ ॥

सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वं चैव महानसम् ।
विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम ॥ २३ ॥

'पाकशालाके अध्यक्ष और रसोइये भोजन बनानेके सब सामानों तथा भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंको मेरे छकड़ोंपर लादकर ले चलें ॥ २३ ॥

प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम् ।
क्रियतां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च ॥ २४ ॥

'नगरमें यह घोषणा करा दी जाय कि 'कल सबेरे यात्रा की जायगी; इसलिये चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' मार्गमें हमलोगोंके ठहरनेके लिये आज ही कई तरहके डेरे तैयार कर दिये जायँ ॥ २४ ॥

एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सहपाण्डवः ।
श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २५ ॥

राजन्! इस प्रकार आज्ञा देकर सबेरा होते ही अपने भाई पाण्डवोंसहित राजा युधिष्ठिरने स्त्री और बूढ़ोंको आगे करके नगरसे प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

स बहिर्दिवसानेव जनौघं परिपालयन् ।

न्यवसन्नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद् वनं प्रति ॥ २६ ॥

बाहर जाकर पुरवासी मनुष्योंकी प्रतीक्षा करते हुए वे पाँच दिनोंतक एक ही स्थानपर टिके रहे। फिर सबको साथ लेकर वनमें गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरयात्रायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिरकी वनको यात्राविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना

वैशम्पायन उवाच

आज्ञापयामास ततः सेनां भरतसत्तमः।
अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भरतकुलभूषण राजा युधिष्ठिरने लोकपालोंके समान पराक्रमी अर्जुन आदि वीरोंद्वारा सुरक्षित अपनी सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत्।
क्रोशतां सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति ॥ २ ॥

'चलनेको तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' इस प्रकार उनका प्रेमपूर्ण आदेश प्राप्त होते ही घुड़सवार सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे, 'सवारियोंको जोतो, जोतो!' इस तरहकी घोषणा करनेसे वहाँ महान् कोलाहल मच गया ॥ २ ॥

केचिद् यानैर्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्महाजवैः।
काञ्चनैश्च रथैः केचिज्ज्वलितज्वलनोपमैः ॥ ३ ॥

कुछ लोग पालकियोंपर सवार होकर चले और कुछ लोग महान् वेगशाली घोड़ोंद्वारा यात्रा करने लगे। कितने ही मनुष्य प्रज्वलित अग्निके समान चमकीले सुवर्णमय रथोंपर आरूढ़ होकर वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ३ ॥

गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदुष्ट्रैर्नराधिप।
पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४ ॥

नरेश्वर! कुछ लोग गजराजोंपर सवार थे और कुछ ऊँटोंपर। कितने ही बघनखों और भालोंसे युद्ध करनेवाले वीर पैदल ही चल रहे थे ॥ ४ ॥

पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा।
अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः ॥ ५ ॥

नगर और जनपदके लोग भी राजा धृतराष्ट्रको देखनेकी इच्छासे नाना प्रकारके वाहनोंद्वारा कुरुराज युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ५ ॥

स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः।
सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति ॥ ६ ॥

राजा युधिष्ठिरके आदेशसे सेनापति कृपाचार्य भी सेनाको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये ॥ ६ ॥

ततो द्विजैः परिवृतः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ७ ॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
रथानीकेन महता निर्जगाम कुरूद्वहः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंसे घिरे हुए कुरुराज युधिष्ठिर बहुसंख्यक सूत, मागध और वन्दीजनोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए मस्तकपर श्वेत छत्र धारण किये विशाल रथसेनाके साथ वहाँसे चले ॥ ७-८ ॥

गजैश्चाचलसंकाशैर्भीमकर्मा वृकोदरः।
सज्जयन्त्रायुधोपेतैः प्रययौ पवनात्मजः ॥ ९ ॥

भयंकर पराक्रम करनेवाले पवनपुत्र भीमसेन पर्वताकार गजराजोंकी सेनाके साथ जा रहे थे। उन गजराजोंकी पीठपर अनेकानेक यन्त्र और आयुध सुसज्जित किये गये थे ॥ ९ ॥

माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहौ सुसंवृतौ।
जग्मतुः शीघ्रगमनौ संनद्धकवचध्वजौ ॥ १० ॥

माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी घोड़ोंपर सवार थे और घुड़सवारोंसे ही घिरे हुए शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उन्होंने अपने शरीरमें कवच और घोड़ोंकी पीठपर ध्वज बाँध रक्खे थे ॥ १० ॥

अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा।
वशी श्वेतैर्हयैर्युक्तैर्दिव्येनान्वगमन्नृपम् ॥ ११ ॥

महातेजस्वी जितेन्द्रिय अर्जुन श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य रथपर आरूढ़ हो राजा युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ११ ॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिबिकायुताः।
स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु ॥ १२ ॥

द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी शिबिकाओंमें बैठकर दीन-दुखियोंको असंख्य धन बाँटती हुई जा रही थीं। रनिवासके अध्यक्ष सब ओरसे उनकी रक्षा कर रहे थे ॥ १२ ॥

समृद्धरथहस्त्यश्वं वेणुवीणानुनादितम्।
शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत् तदा भरतर्षभ ॥ १३ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें रथ, हाथी और घोड़ोंकी अधिकता

थी। उसमें कहीं वंशी बजती थी और कहीं वीणा। भरतश्रेष्ठ! इन वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होनेके कारण वह पाण्डव-सेना उस समय बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १३ ॥

नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशाम्पते।
वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १४ ॥

प्रजानाथ! वे कुरुश्रेष्ठ वीर नदियोंके रमणीय तटों तथा अनेक सरोवरोंपर पड़ाव डालते हुए क्रमशः आगे बढ़ते गये ॥ १४ ॥

युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः।
युधिष्ठिरस्य वचनात् पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५ ॥

महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य मुनि युधिष्ठिरके आदेशसे हस्तिनापुरमें ही रहकर राजधानीकी रक्षा करते थे ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत्।
क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम् ॥ १६ ॥

उधर राजा युधिष्ठिर क्रमशः आगे बढ़ते हुए परम पावन यमुना नदीको पार करके कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥ १६ ॥

स ददर्शाश्रमं दूराद् राजर्षेस्तस्य धीमतः।
शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव ह ॥ १७ ॥

कुरुनन्दन! वहाँ पहुँचकर उन्होंने दूरसे ही बुद्धिमान् राजर्षि शतयूप तथा धृतराष्ट्रके आश्रमको देखा ॥ १७ ॥

ततः प्रमुदितः सर्वो जनस्तद् वनमञ्जसा।
विवेश सुमहानादैरापूर्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

भरतभूषण! इससे उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस वनमें महान् कोलाहल फैलाते हुए अनायास ही प्रवेश किया ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्राश्रमगमने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रके आश्रमपर गमनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः।
अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वे समस्त पाण्डव दूरसे ही अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और पैदल चलकर बड़ी विनयके साथ राजाके आश्रमपर आये ॥ १ ॥

स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः।
स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा ॥ २ ॥

साथ आये हुए समस्त सैनिक, राज्यके निवासी मनुष्य तथा कुरुवंशके प्रधान पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी पैदल ही आश्रमतक गयीं ॥ २ ॥

आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः।
शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३ ॥
ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः।
पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रका वह पवित्र आश्रम मनुष्योंसे सूना था। उसमें सब ओर मृगोंके झुंड विचर रहे थे और केलेका सुन्दर उद्यान उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता था। पाण्डव लोग ज्यों ही उस आश्रममें पहुँचे त्यों ही वहाँ नियमपूर्वक व्रतोंका पालन करनेवाले बहुत-से तपस्वी कौतूहलवश वहाँ पधारे हुए पाण्डवोंको देखनेके लिये आ गये ॥ ३-४ ॥

तानपृच्छत् ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत्।
पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने उन सबको प्रणाम करके नेत्रोंमें आँसू भरकर उन सबसे पूछा—'मुनिवरो! कौरववंशका पालन करनेवाले हमारे ज्येष्ठ पिता इस समय कहाँ गये हैं?' ॥ ५ ॥

ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम्।
पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥ ६ ॥

उन्होंने उत्तर दिया—'प्रभो! वे यमुनामें स्नान करने, फूल लाने और पानीका घड़ा भरनेके लिये गये हुए हैं' ॥ ६ ॥

तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा।
ददृशुश्चाविदूरे तान् सर्वानथ पदातयः ॥ ७ ॥

यह सुनकर उन्हींके बताये हुए मार्गसे वे सब-के-सब पैदल ही यमुनातटकी ओर चल दिये। कुछ ही दूर जानेपर उन्होंने उन सब लोगोंको वहाँसे आते देखा ॥ ७ ॥

ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकाङ्क्षिणः।
सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद् यत्र सा पृथा ॥ ८ ॥
सुस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः पादावुपस्पृशन्।

फिर तो समस्त पाण्डव अपने ताऊके दर्शनकी इच्छासे

बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़े। बुद्धिमान् सहदेव तो बड़े वेगसे दौड़े और जहाँ कुन्ती थी, वहाँ पहुँचकर माताके दोनों चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ८½ ॥

सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं सुतम् ॥ ९ ॥
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम्।
गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् ॥ १० ॥
अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम्।
नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११ ॥

कुन्तीने भी जब अपने प्यारे पुत्र सहदेवको देखा तो उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उन्होंने दोनों हाथोंसे पुत्रको उठाकर छातीसे लगा लिया और गान्धारीसे कहा—'दीदी! सहदेव आपकी सेवामें उपस्थित है'। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुलको देखकर कुन्तीदेवी बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर चलीं ॥ ९–११ ॥

सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः।
कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन् भुवि ॥ १२ ॥

वे आगे-आगे चलती थीं और उन पुत्रहीन दम्पतिको अपने साथ खींचे लाती थीं। उन्हें देखते ही पाण्डव उनके चरणोंमें पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः।
प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥ १३ ॥

महामना बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने बोलनेके स्वरसे और स्पर्शसे पाण्डवोंको पहचानकर उन सबको आश्वासन दिया ॥ १३ ॥

ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम्।
उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् अपने नेत्रोंके आँसू पोंछकर महात्मा पाण्डवोंने गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीको विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ १४ ॥

सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा।
पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥ १५ ॥

इसके बाद मातासे बार-बार सान्त्वना पाकर जब पाण्डव कुछ स्वस्थ एवं सचेत हुए तब उन्होंने उन सबके हाथसे जलके भरे हुए कलश स्वयं ले लिये ॥ १५ ॥

तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा।
पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर उन पुरुषसिंहोंकी स्त्रियों तथा अन्तःपुरकी दूसरी स्त्रियोंने और नगर एवं जनपदके लोगोंने भी क्रमशः राजा धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥ १६ ॥

निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः।
युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत् ॥ १७ ॥

उस समय स्वयं राजा युधिष्ठिरने एक-एक व्यक्तिका नाम और गोत्र बताकर परिचय दिया और परिचय पाकर धृतराष्ट्रने उन सबका वाणीद्वारा सत्कार किया ॥ १७ ॥

स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः।
राजाऽऽत्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ १८ ॥

उन सबसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्र अपने नेत्रोंसे हर्षके आँसू बहाने लगे। उस समय उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो मैं पहलेकी ही भाँति हस्तिनापुरके राजमहलमें बैठा हूँ ॥ १८ ॥

अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः।
गान्धार्या सहितो धीमान् कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् द्रौपदी आदि बहुओंने गान्धारी और कुन्तीसहित बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उन्होंने भी उन सबको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया ॥ १९ ॥

ततश्चाश्रममागच्छत् सिद्धचारणसेवितम्।
दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २० ॥

इसके बाद वे सबके साथ सिद्ध और चारणोंसे सेवित अपने आश्रमपर आये। उस समय उनका आश्रम तारोंसे व्याप्त हुए आकाशकी भाँति दर्शकोंसे भरा था ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरादिधृतराष्ट्रसमागमे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रसे मिलनविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरतर्षभ।
राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १ ॥
तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः।
द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा

धृतराष्ट्र सुन्दर कमलके-से नेत्रोंवाले पुरुषसिंह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ आश्रममें विराजमान हुए, उस समय वहाँ अनेक देशोंसे आये हुए महाभाग तपस्वीगण कुरुराज पाण्डुके पुत्र—विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवोंको देखनेके लिये पहलेसे उपस्थित थे ॥ १-२ ॥

तेऽब्रुवञ्ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः ।
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ३ ॥

उन्होंने पूछा—'हमलोग यह जानना चाहते हैं कि यहाँ आये हुए लोगोंमें महाराज युधिष्ठिर कौन हैं ? भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदीदेवी कौन हैं ?' ॥ ३ ॥

तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वांस्तानभिनामतः ।
संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः ॥ ४ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर सूत संजयने उन सबके नाम बताकर पाण्डवों, द्रौपदी तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंका इस प्रकार परिचय दिया ॥ ४ ॥

संजय उवाच

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-
स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः ।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ ५ ॥

संजय बोले—ये जो विशुद्ध सुवर्णके समान गोरे और सबसे बड़े हैं, देखनेमें महान् सिंहके समान जान पड़ते हैं, जिनकी नासिका नुकीली तथा नेत्र बड़े-बड़े और कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हैं, ये कुरुराज युधिष्ठिर हैं ॥ ५ ॥

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।
पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहु-
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम् ॥ ६ ॥

जो मतवाले गजराजके समान चलनेवाले, तपाये हुए सुवर्णके समान विशुद्ध गौरवर्ण तथा मोटे और चौड़े कन्धेवाले हैं, जिनकी भुजाएँ मोटी और बड़ी-बड़ी हैं, ये ही भीमसेन हैं। आप लोग इन्हें अच्छी तरह देख लें, देख लें ॥

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपाभः ।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७ ॥

इनके बगलमें जो ये महाधनुर्धर और श्याम रंगके नवयुवक दिखायी देते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान ऊँचे हैं, जो हाथियोंके यूथपति गजराजके समान प्रतीत होते हैं और हाथीके ही समान मस्तानी चालसे चलते हैं, ये कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले वीरवर अर्जुन हैं ॥ ७ ॥

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ ८ ॥

कुन्तीके पास जो ये दो श्रेष्ठ पुरुष बैठे दिखायी देते हैं, ये एक ही साथ उत्पन्न हुए नकुल और सहदेव हैं। ये दोनों भाई भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शोभा पाते हैं। रूप, बल और शीलमें इन दोनोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ८ ॥

इयं पुनः पद्मदलायताक्षी
मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती ।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ ९ ॥

ये जो किंचित् मध्यम वयका स्पर्श करती हुई, नील कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली एवं नील उत्पलकी-सी श्यामकान्तिसे सुशोभित होनेवाली सुन्दरी मूर्तिमती लक्ष्मी तथा देवताओंकी देवी-सी जान पड़ती हैं, ये ही महारानी द्रुपदकुमारी कृष्णा हैं ॥ ९ ॥

अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी ।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १० ॥

विप्रवरो ! इनके बगलमें जो ये सुवर्णसे भी उत्तम कान्तिवाली देवी चन्द्रमाकी मूर्तिमती प्रभा-सी विराजमान हो रही हैं और सब स्त्रियोंके बीचमें बैठी हैं, ये अनुपम प्रभावशाली चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा हैं ॥ १० ॥

इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी
पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या ।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या
यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः ॥ ११ ॥

ये जो विशुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान गौर वर्णवाली सुन्दरी देवी बैठी हैं, ये नागराजकन्या उलूपी हैं तथा जिनकी अङ्गकान्ति नूतन मधूक-पुष्पोंके समान प्रतीत होती है, ये राजकुमारी चित्राङ्गदा हैं। ये दोनों भी अर्जुनकी ही पत्नियाँ हैं ॥ ११ ॥

इयं स्वसा राजचमूपतेश्च
प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा ।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो
वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ १२ ॥

ये जो इन्दीवरके समान श्यामवर्णवाली राजमहिला विराजमान हैं, भीमसेनकी श्रेष्ठ पत्नी हैं। ये उस राजसेनापति

एवं नरेशकी बहन हैं, जो सदा भगवान् श्रीकृष्णसे टक्कर लेनेका हौसला रखता था ॥ १२ ॥

इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य
सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य ।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य
भार्या मता चम्पकदामगौरी ॥ १३ ॥

साथ ही यह जो चम्पाकी मालाके समान गौरवर्णवाली सुन्दरी बैठी हुई है, यह सुविख्यात मगधनरेश जरासंधकी पुत्री एवं माद्रीके छोटे पुत्र सहदेवकी भार्या है ॥ १३ ॥

इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु
यैषा परासन्नमहीतले च ।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य
ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी ॥ १४ ॥

इसके पास जो नीलकमलके समान श्याम रंगवाली महिला है, वह कमलनयनी सुन्दरी माद्रीके ज्येष्ठ पुत्र नकुलकी पत्नी है ॥ १४ ॥

इयं तु निष्टप्तसुवर्णगौरी
राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा ।
भार्याभिमन्योर्निहतो रणे यो
द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १५ ॥

यह जो तपाये हुए कुन्दनके समान कान्तिवाली तरुणी गोदमें बालक लिये बैठी है, यह राजा विराटकी पुत्री उत्तरा है । यह उस वीर अभिमन्युकी धर्मपत्नी है, जो महाभारत-युद्धमें रथपर बैठे हुए द्रोणाचार्य आदि अनेक महारथियोंद्वारा रथहीन कर दिया जानेपर मारा गया था ॥ १५ ॥

एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः ।
राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः
स्नुषा नृवीराहतपुत्रनाथाः ॥ १६ ॥

इन सबके सिवा ये जितनी स्त्रियाँ सफेद चादर ओढ़े बैठी हुई हैं, जिनकी माँगोंमें सिन्दूर नहीं है, ये सब दुर्योधन आदि सौ भाइयोंकी पत्नियाँ और इन बूढ़े महाराजकी सौ पुत्रवधुएँ हैं । इनके पति और पुत्र रणमें नरवीरोंद्वारा मारे गये हैं ॥ १६ ॥

एता यथामुख्यमुदाहृता वो
ब्राह्मण्यभावादृजुबुद्धिसत्त्वाः ।
सर्वा भवद्भिः परिपृच्छ्यमाना
नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः ॥ १७ ॥

ब्राह्मणत्वके प्रभावसे सरल बुद्धि और विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियो ! आपने सबका परिचय पूछा था; इसलिये मैंने इनमेंसे मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंका परिचय दे दिया है । ये सभी राजपत्नियाँ विशुद्ध हृदयवाली हैं ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यः
समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः ।
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं
गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १८ ॥

इस प्रकार संजयके मुखसे सबका परिचय पाकर जब सभी तपस्वी अपनी-अपनी कुटियामें चले गये, तब कुरुकुलके वृद्ध एवं श्रेष्ठ पुरुष राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार उन नरदेव-कुमारोंसे मिलकर उस समय सबका कुशल-मङ्गल पूछने लगे ॥

योधेषु वाप्याश्रममण्डलं तं
मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम् ।
स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे
यथार्हतस्तान् कुशलान्यपृच्छत् ॥ १९ ॥

पाण्डवोंके सैनिकोंने आश्रममण्डलकी सीमाको छोड़कर कुछ दूरपर समस्त वाहनोंको खोल दिया और वहीं पड़ाव डाल दिया तथा स्त्री, वृद्ध और बालकोंका समुदाय छावनीमें सुखपूर्वक विश्राम लेने लगा । उस समय राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंसे मिलकर उनका कुशल-समाचार पूछने लगे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि ऋषीन् प्रति युधिष्ठिरादिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें ऋषियोंके प्रति युधिष्ठिर आदिका परिचयविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित् त्वं कुशली ह्यसि ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—महाबाहो युधिष्ठिर ! तुम नगर तथा जनपदकी समस्त प्रजाओं और भाइयोंसहित कुशलसे तो हो न ? ॥ १ ॥

ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित् तेऽपि निरामयाः ।
सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप ॥ २ ॥

नरेश्वर ! जो तुम्हारे आश्रित रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, वे मन्त्री, भृत्यवर्ग और गुरुजन भी सुखी और स्वस्थ तो हैं न ? ॥ २ ॥

कच्चित् तेऽपि निरातङ्का वसन्ति विषये तव ।
कच्चिद् वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ॥ ३ ॥

क्या वे भी तुम्हारे राज्यमें निर्भय होकर रहते हैं ? क्या तुम प्राचीन राजर्षियोंसे सेवित पुरानी रीति-नीतिका पालन करते हो ? ॥ ३ ॥

कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते ।
अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः ॥ ४ ॥

क्या तुम्हारा खजाना न्यायमार्गका उल्लङ्घन किये बिना ही भरा जाता है । क्या तुम शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषोंके प्रति यथायोग्य बर्ताव करते हो ? ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि ।
कच्चित् ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! क्या तुम ब्राह्मणोंको माफी जमीन देकर उनपर यथोचित दृष्टि रखते हो ? क्या तुम्हारे शील-स्वभावसे वे संतुष्ट रहते हैं ? ॥ ५ ॥

शत्रवोऽपि कुतः पौरा भृत्या वा स्वजनोऽपि वा ।
कच्चिद् यजसि राजेन्द्र श्रद्धावान् पितृदेवताः ॥ ६ ॥

राजेन्द्र ! पुरवासी स्वजनों और सेवकोंकी तो बात ही क्या है, क्या शत्रु भी तुम्हारे बर्तावसे संतुष्ट रहते हैं ? क्या तुम श्रद्धापूर्वक देवताओं और पितरोंका यजन करते हो ? ॥

अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्चसि भारत ।
कच्चिन्नयपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ॥ ७ ॥
क्षत्रिया वैश्यवर्गा वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः ।

भारत ! क्या तुम अन्न और जलके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करते हो ? क्या तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कुटुम्बीजन न्यायमार्गका अवलम्बन करते हुए अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं ? ॥ ७½ ॥

कच्चित् स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते ॥ ८ ॥
जामयः पूजिताः कच्चित् तव गेहे नरर्षभ ।

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारे राज्यमें स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंको दुःख तो नहीं भोगना पड़ता ? वे जीविकाके लिये भीख तो नहीं माँगते हैं ? तुम्हारे घरमें सौभाग्यवती बहू-बेटियोंका आदर-सत्कार तो होता है न ? ॥ ८½ ॥

कच्चिद् राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम् ॥ ९ ॥
यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति ।

महाराज ! राजर्षियोंका यह वंश तुम-जैसे राजाको पाकर यथोचित प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है न ? इसे यशसे वञ्चित होकर अपयशका भागी तो नहीं होना पड़ता है ? ॥ ९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत ॥ १० ॥
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्रके इस प्रकार कुशल-समाचार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल न्याय-वेत्ता राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ १०½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कच्चित् ते वर्धते राजंस्तपो दमशमौ च ते ॥ ११ ॥
अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतक्लमा ।
अथास्याः सफलो राजन् वनवासो भविष्यति॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! (मेरे यहाँ सब कुशल है) आपके तप, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न ? ये मेरी माता कुन्ती आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें क्लेशका अनुभव तो नहीं करतीं ? क्या इनका वनवास सफल होगा ? ॥ ११-१२ ॥

इयं च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्वकर्शिता ।
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति ॥ १३ ॥
हतान् पुत्रान् महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान् ।
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान् पापकृतः सदा ॥ १४ ॥

ये मेरी बड़ी माता गान्धारीदेवी सर्दी, हवा और रास्ता चलनेके परिश्रमसे कष्ट पाकर अत्यन्त दुबली हो गयी हैं और घोर तपस्यामें लगी हुई हैं । ये देवी युद्धमें मारे गये अपने क्षत्रिय-धर्मपरायण महापराक्रमी पुत्रोंके लिये कभी शोक तो नहीं करतीं ? और हम अपराधियोंका कभी कोई अनिष्ट तो नहीं सोचती हैं ? ॥ १३-१४ ॥

क्व चासौ विदुरो राजन् नेमं पश्यामहे वयम् ।
सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थिरः ॥ १५ ॥

राजन् ! ये संजय तो कुशलपूर्वक स्थिरभावसे तपस्यामें लगे हुए हैं न ? इस समय विदुरजी कहाँ हैं ? इन्हें हमलोग नहीं देख पा रहे हैं ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् ।
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर धृतराष्ट्रने उनसे कहा—'बेटा ! विदुरजी कुशलपूर्वक हैं । वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं ॥ १६ ॥

वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसन्ततः ।
कदाचिद् दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन् कानने क्वचित् ॥

'वे निरन्तर उपवास करते और वायु पीकर रहते हैं, इसलिये अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । उनके सारे शरीरमें व्याप्त हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं । इस सूने वनमें ब्राह्मणोंको कभी-कभी कहीं उनके दर्शन हो जाया करते हैं' ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः ।

दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो वनरेणुसमुक्षितः ॥ १८ ॥
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः ।
निवर्तमानः सहसा राजन् दृष्ट्वाऽऽश्रमं प्रति ॥ १९ ॥

राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी कृशकाय विदुरजी दूरसे आते दिखायी दिये। वे दिगम्बर (वस्त्रहीन) थे। उनके सारे शरीरमें मैल जमी हुई थी। वे वनमें उड़ती हुई धूलोंसे नहा गये थे। राजा युधिष्ठिरको उनके आनेकी सूचना दी गयी। राजन्! विदुरजी उस आश्रमकी ओर देखकर सहसा पीछेकी ओर लौट पड़े ॥ १८-१९ ॥

तमन्वधावन्नृपतिरेक एव युधिष्ठिरः ।
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं कचित् कचित् ॥२०॥
भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिरः ।
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥ २१ ॥

यह देख राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े। विदुरजी कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। जब वे एक घोर वनमें प्रवेश करने लगे, तब राजा युधिष्ठिर यत्नपूर्वक उनकी ओर दौड़े और इस प्रकार कहने लगे—'ओ विदुरजी! मैं आपका परमप्रिय राजा युधिष्ठिर आपके दर्शनके लिये आया हूँ' ॥ २०-२१ ॥

ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः ।
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कंचित्तत्र वनान्तरे ॥ २२ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी वनके भीतर एक परम पवित्र एकान्त प्रदेशमें किसी वृक्षका सहारा लेकर खड़े हो गये ॥ २२ ॥

तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् ।
अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे। उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था, इतनेहीसे उनके जीवित होनेकी सूचना मिलती थी। परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने उन महाबुद्धिमान् विदुरको पहचान लिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः ।
विदुरस्य श्रवे राजा तं च प्रत्यभ्यपूजयत् ॥ २४ ॥

'मैं युधिष्ठिर हूँ' ऐसा कहकर वे उनके आगे खड़े हो गये। यह बात उन्होंने उतनी ही दूरसे कही थी, जहाँसे विदुरजी सुन सकें; फिर पास जाकर राजाने उनका बड़ा सत्कार किया ॥ २४ ॥

ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत ।
संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः ॥ २५ ॥

तदनन्तर महात्मा विदुरजी राजा युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। वे अपनी दृष्टिको उनकी दृष्टिसे जोड़कर एकाग्र हो गये ॥ २५ ॥

विवेश विदुरो धीमान् गात्रैर्गात्राणि चैव ह ।
प्राणान् प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् विदुर अपने शरीरको युधिष्ठिरके शरीरमें, प्राणोंको प्राणोंमें और इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें स्थापित करके उनके भीतर समा गये ॥ २६ ॥

स योगबलमास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् ।
विदुरो धर्मराजस्य तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ २७ ॥

उस समय विदुरजी तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्होंने योगबलका आश्रय लेकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥

विदुरस्य शरीरं तु तथैव स्तब्धलोचनम् ।
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् ॥ २८ ॥

राजाने देखा, विदुरजीका शरीर पूर्ववत् वृक्षके सहारे खड़ा है। उनकी आँखें अब भी उसी तरह निर्निमेष हैं, किंतु अब उनके शरीरमें चेतना नहीं रह गयी है ॥ २८ ॥

बलवन्तं तथाऽऽत्मानं मेने बहुगुणं तदा ।
धर्मराजो महातेजास्तच्च सस्मार पाण्डवः ॥ २९ ॥
पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान् स विशाम्पते ।
योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा ॥ ३० ॥

इसके विपरीत उन्होंने अपनेमें विशेष बल और अधिक गुणोंका अनुमान किया। प्रजानाथ! इसके बाद महातेजस्वी पाण्डुपुत्र विद्यावान् धर्मराज युधिष्ठिरने अपने समस्त पुरातन स्वरूपका स्मरण किया। (मैं और विदुरजी एक ही धर्मके अंशसे प्रकट हुए थे, इस बातका अनुभव किया)। इतना

ही नहीं, उन महातेजस्वी नरेशने व्यासजीके बताये हुए योगधर्मका भी स्मरण कर लिया ॥ २९-३० ॥

धर्मराजश्च तत्रैव संचस्कारयिषुस्तदा ।
दग्धुकामोऽभवद् विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३१ ॥
भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद् विदुरसंज्ञकम् ।
कलेवरमिहैवं ते धर्म एष सनातनः ॥ ३२ ॥
लोकाः सान्तानिका नाम भविष्यन्त्यस्य भारत ।
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैष शोच्यः परंतप ॥ ३३ ॥

अब विद्वान् धर्मराजने वहीं विदुरके शरीरका दाह-संस्कार करनेका विचार किया। इतनेहीमें आकाशवाणी हुई—'राजन् ! शत्रुसंतापी भरतनन्दन ! इस विदुर नामक शरीरका यहाँ दाह-संस्कार करना उचित नहीं है; क्योंकि वे संन्यास-धर्मका पालन करते थे। यहाँ उनका दाह न करना ही तुम्हारे लिये सनातन धर्म है। विदुरजीको सान्तानिक नामक लोकोंकी प्राप्ति होगी; अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ३१-३३ ॥

इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्य ततः पुनः ।
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

आकाशवाणीद्वारा ऐसी बात कही जानेपर धर्मराज युधिष्ठिर फिर वहाँसे लौट गये और राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्होंने वे सारी बातें उनसे बतायीं ॥ ३४ ॥

ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा ।
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत् ।
आपो मूलं फलं चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥

विदुरजीके देहत्यागका यह अद्भुत समाचार सुनकर तेजस्वी राजा धृतराष्ट्र तथा भीमसेन आदि सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद राजाने प्रसन्न होकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा ! अब तुम मेरे दिये हुए इस फल-मूल और जलको ग्रहण करो ॥ ३५-३६ ॥

यदन्नो हि नरो राजंस्तदन्नोऽस्यातिथिः स्मृतः ।
इत्युक्तः स तथेत्येवं प्राह धर्मात्मजो नृपम् ॥ ३७ ॥
फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः ।
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः ।
तां रात्रिमवसन् सर्वे फलमूलजलाशनाः ॥ ३८ ॥

'राजन् ! मनुष्य जिन वस्तुओंका स्वयं उपयोग करता है, उन्हीं वस्तुओंसे वह अतिथिका भी सत्कार करे—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है।' उनके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उनके दिये हुए फल-मूलका भाइयोंसहित भोजन किया। तदनन्तर उन सब लोगोंने फल-मूल और जलका ही आहार करके वृक्षोंके नीचे ही रहनेका निश्चय कर वहीं वह रात्रि व्यतीत की ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरनिर्याणे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें विदुरका देहत्यागविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन

वैशम्पायन उवाच

ततस्तु राजन्नेतेषामाश्रमे पुण्यकर्मणाम् ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर उस आश्रमपर निवास करनेवाले इन समस्त पुण्यकर्मा मनुष्योंकी नक्षत्र-मालाओंसे सुशोभित वह मङ्गलमयी रात्रि सकुशल व्यतीत हुई ॥ १ ॥

ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः ।
विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २ ॥

उस समय उन लोगोंमें विचित्र पदों और नाना श्रुतियोंसे युक्त धर्म और अर्थसम्बन्धी चर्चाएँ होती रहीं ॥ २ ॥

पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुपुस्तदा ।
उत्सृज्य तु महार्हाणि शयनानि नराधिप ॥ ३ ॥

नरेश्वर ! पाण्डवलोग बहुमूल्य शय्याओंको छोड़कर अपनी माताके चारों ओर धरतीपर ही सोये थे ॥ ३ ॥

यदाहारोऽभवद् राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।
तदाहारा नृवीरास्ते न्यवसंस्तां निशां तदा ॥ ४ ॥

महामनस्वी राजा धृतराष्ट्रने जिस वस्तुका आहार किया था, उसी वस्तुका आहार उस रातमें उन नरवीर पाण्डवोंने भी किया था ॥ ४ ॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ।
भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम् ॥ ५ ॥
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः ।
यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६ ॥

महा

रात बीत जानेपर पूर्वाह्नकालिक नैत्यिक नियम पूरे करके राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले भाइयों, अन्तःपुरकी स्त्रियों, सेवकों और पुरोहितोंके साथ सुखपूर्वक भिन्न-भिन्न स्थानोंमें घूम-फिरकर मुनियोंके आश्रम देखे ॥ ५-६ ॥

ददर्श तत्र वेदीश्च सम्प्रज्वलितपावकाः ।
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपस्थिताः ॥ ७ ॥
वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि ।
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः ॥ ८ ॥

उन्होंने देखा, वहाँ आश्रमोंमें यज्ञकी वेदियाँ बनी हैं, जिनपर अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं। मुनिलोग स्नान करके उन वेदियोंके पास बैठे हैं और अग्निमें आहुति दे रहे हैं। वनके फूलों और घृतकी आहुतिसे उठे हुए धूमोंसे भी उन वेदियोंकी शोभा हो रही है। वहाँ निरन्तर वेदध्वनि होनेके कारण मानो वे वेदियाँ वेदमय शरीरसे संयुक्त जान पड़ती थीं। मुनियोंके समुदाय सदा उनसे सम्पर्क बनाये रखते थे ॥ ७-८ ॥

मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः ।
अशङ्कितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥ ९ ॥

प्रभो! उन आश्रमोंमें जहाँ-तहाँ मृगोंके झुंड निर्भय एवं शान्तचित्त होकर आरामसे बैठे थे। पक्षियोंके समुदाय निःशङ्क होकर उच्च स्वरसे कलरव करते थे ॥ ९ ॥

केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः ।
कोकिलानां कुहुरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः ॥ १० ॥
प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिदलंकृतम् ।
फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितम् ॥ ११ ॥

मोरोंके मधुर केकारव, दात्यूह नामक पक्षियोंके कल-कूजन और कोयलोंकी कुहू-कुहू ध्वनि हो रही थी। उनके शब्द बड़े ही सुखद तथा कानों और मनको हर लेनेवाले थे। कहीं-कहीं स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके वेद-मन्त्रोंका गम्भीर घोष गूँज रहा था और इन सबके कारण उन आश्रमोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी एवं वह आश्रम फल-मूलका आहार करनेवाले महापुरुषोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ १०-११ ॥

ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् ।
कलशान् काञ्चनान् राजंस्तथैवौदुम्बरानपि ॥ १२ ॥
अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक् स्रुवं च महीपतिः ।
कमण्डलूंश्च स्थालीश्च पिठराणि च भारत ॥ १३ ॥
भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप ।
यद् यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम् ॥१४॥

राजन्! उस समय राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके लिये लाये हुए सोने और ताँबेके कलश, मृगचर्म, कम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डलु, बटलोई, कड़ाही, अन्यान्य लोहेके बने हुए पात्र तथा और भी भाँति-भाँतिके बर्तन बाँटे। जो जितना और जो-जो बर्तन चाहता था, उसको उतना ही और वही बर्तन दिया जाता था। दूसरा भी आवश्यक पात्र दे दिया जाता था ॥ १२-१४ ॥

एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् ।
वसु विश्राण्य तत् सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १५ ॥

इस प्रकार धर्मात्मा राजा पृथ्वीपति युधिष्ठिर आश्रमोंमें घूम-घूमकर वह सारा धन बाँटनेके पश्चात् धृतराष्ट्रके आश्रमपर लौट आये ॥ १५ ॥

कृताह्निकं च राजानं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६ ॥
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत् प्रणतां स्थिताम् ।
कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम् ॥ १७ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि राजा धृतराष्ट्र नित्य कर्म करके गान्धारीके साथ शान्त भावसे बैठे हुए हैं और उनसे थोड़ी ही दूरपर शिष्टाचारका पालन करनेवाली माता कुन्ती शिष्याकी भाँति विनीत भावसे खड़ी है ॥ १६-१७ ॥

स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः ।
निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो बृस्यामुपविवेश ह ॥ १८ ॥

युधिष्ठिरने अपना नाम सुनाकर राजा धृतराष्ट्रका प्रणामपूर्वक पूजन किया और 'बैठो' यह आज्ञा मिलनेपर वे कुशके आसनपर बैठ गये ॥ १८ ॥

भीमसेनादयश्चैव पाण्डवा भरतर्षभ ।
अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाज्ञया ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! भीमसेन आदि पाण्डव भी राजाके चरण छूकर प्रणाम करनेके पश्चात उनकी आज्ञासे बैठ गये ॥१९॥

स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः ।
बिभ्रद् ब्राह्मीं श्रियं दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः ॥ २० ॥

उनसे घिरे हुए कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे उज्ज्वल ब्रह्मतेज धारण करनेवाले बृहस्पति देवताओंसे घिरे हुए सुशोभित होते हैं ॥ २० ॥

तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः ।
शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१ ॥

वे सब लोग इस प्रकार बैठे ही थे कि कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप आदि महर्षि वहाँ आ पहुँचे ॥ २१ ॥

व्यासश्च भगवान् विप्रो देवर्षिगणसेवितः ।
वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास पार्थिवम् ॥ २२ ॥

देवर्षियोंसे सेवित महातेजस्वी विप्रवर भगवान् व्यासने भी शिष्योंसहित आकर राजाको दर्शन दिया ॥ २२ ॥

ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनादयश्चैव प्रत्युत्थायाभ्यवादयन् ॥२३॥

उस समय कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र, पराक्रमी कुन्तीकुमार युधिष्ठिर तथा भीमसेन आदिने उठकर समागत महर्षियोंको प्रणाम किया ॥ २३ ॥

समागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः ।
धृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४ ॥

तदनन्तर शतयूप आदिसे घिरे हुए नवागत महर्षि व्यास राजा धृतराष्ट्रसे बोले—'बैठ जाओ' ॥ २४ ॥

वरं तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम् ।
प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम् ॥ २५ ॥

इसके बाद व्यासजी स्वयं एक सुन्दर कुशासनपर, जो काले मृगचर्मसे आच्छादित तथा उन्हींके लिये बिछाया गया था, विराजमान हुए ॥ २५ ॥

ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः ।
द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६ ॥

फिर व्यासजीकी आज्ञासे अन्य सब महातेजस्वी श्रेष्ठ द्विजगण चारों ओर बिछे हुए कुशासनोंपर बैठ गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासागमने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासका आगमनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना

वैशम्पायन उवाच

ततः समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महात्मा पाण्डवोंके बैठ जानेपर सत्यवतीनन्दन व्यासने इस प्रकार पूछा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो कच्चित् ते वर्धते तपः ।
कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २ ॥

'महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है न ? नरेश्वर ! वनवासमें तुम्हारा मन तो लगता है न ? ॥ २ ॥

कच्चिद्धृदि न ते शोको राजन् पुत्रविनाशजः ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि सुप्रसन्नानि तेऽनघ ॥ ३ ॥

'राजन् ! अब कभी तुम्हारे मनमें अपने पुत्रोंके मारे जानेका शोक तो नहीं होता ? निष्पाप नरेश ! तुम्हारी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल तो हो गयी हैं न ? ॥ ३ ॥

कच्चिद् बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् ।
कच्चिद् वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ॥ ४ ॥

'क्या तुम अपनी बुद्धिको दृढ़ करके वनवासके कठोर नियमोंका पालन करते हो ? बहू गान्धारी कभी शोकके वशीभूत तो नहीं होती ? ॥ ४ ॥

महाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी ।
आगमापायतत्त्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति ॥ ५ ॥

'गान्धारी बड़ी बुद्धिमती और महाविदुषी है। यह देवी धर्म और अर्थको समझनेवाली तथा जन्म-मरणके तत्त्वको जाननेवाली है। इसे तो कभी शोक नहीं होता है ॥ '

कच्चित् कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषत्यनहंकृता ।
या परित्यज्य स्वं पुत्रं गुरुशुश्रूषणे रता ॥

'राजन् ! जो अपने पुत्रोंको त्यागकर गुरुजनोंकी सेवामें लगी हुई है, वह कुन्ती क्या अहंकारशून्य होकर तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करती है ? ॥ ६ ॥

कच्चिद् धर्मसुतो राजा त्वया प्रत्यभिनन्दितः ।
भीमार्जुनयमाश्चैव कच्चिदेतेऽपि सान्त्विताः ॥ ७ ॥

'क्या तुमने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया है ? भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको भी धीरज बँधाया है ? ॥ ७ ॥

कच्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान् कच्चित् ते निर्मलं मनः ।
कच्चिच्च शुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप ॥

'नरेश्वर ! क्या इन्हें देखकर तुम प्रसन्न होते हो ? क्या इनकी ओरसे तुम्हारे मनकी मैल दूर हो गयी है ? क्या ज्ञान-सम्पन्न होनेके कारण तुम्हारे हृदयका भाव शुद्ध हो गया है ? ॥ ८ ॥

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥ ९ ॥

'महाराज ! भरतनन्दन ! किसीसे वैर न रखना, सत्य बोलना और क्रोधको सर्वथा त्याग देना—ये तीन गुण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ९ ॥

कच्चित् ते न च मोहोऽस्ति वनवासेन भारत ।
स्ववशे वन्यमन्नं वा उपवासोऽपि वा भवेत् ॥ १० ॥

'भारत ! वनमें उत्पन्न हुआ अन्न तुम्हारे वशमें रहे

अथवा तुम्हें उपवास करना पड़े, सभी दशाओंमें वनवाससे तुम्हें मोह तो नहीं होता है ? ॥ १० ॥

विदितं चापि राजेन्द्र विदुरस्य महात्मनः ।
गमनं विधिनानेन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११ ॥

'राजेन्द्र ! महात्मा विदुरके, जो साक्षात् महामना धर्मके स्वरूप थे, इस विधिसे परलोकगमनका समाचार तो तुम्हें ज्ञात हुआ ही होगा ॥ ११ ॥

माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः ।
महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः ॥ १२ ॥

'माण्डव्यमुनिके शापसे धर्म ही विदुररूपमें अवतीर्ण हुए थे । वे परम बुद्धिमान्, महान् योगी, महात्मा और महामनस्वी थे ॥ १२ ॥

बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु च ।
न तथा बुद्धिसम्पन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥

'देवताओंमें बृहस्पति और असुरोंमें शुक्राचार्य भी वैसे बुद्धिमान् नहीं हैं, जैसे पुरुषप्रवर विदुर थे ॥ १३ ॥

तपोबलव्ययं कृत्वा सुचिरात् सम्भृतं तदा ।
माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः ॥ १४ ॥

'माण्डव्य ऋषिने चिरकालसे संचित किये हुए तपोबलका क्षय करके सनातन धर्मदेवको (शाप देकर) पराभूत किया था ॥ १४ ॥

नियोगाद् ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च ।
वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः ॥ १५ ॥

'मैंने पूर्वकालमें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपने तपोबलसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र (भार्या) में उस परम बुद्धिमान् विदुरको उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः ।
धारणान्मनसा ध्यानाद् यं धर्मं कवयो विदुः ॥ १६ ॥

'महाराज ! तुम्हारे भाई विदुर देवताओंके भी देवता सनातन धर्म थे । मनके द्वारा धर्मका धारण और ध्यान किया जाता है, इसलिये विद्वान् पुरुष उन्हें धर्मके नामसे जानते हैं ॥ १६ ॥

सत्येन संवर्धयति यो दमेन शमेन च ।
अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः ॥ १७ ॥

'जो सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, अहिंसा और दानके रूपमें सेवित होनेपर जगत्के अभ्युदयका साधक होता है, वह सनातनधर्म विदुरसे भिन्न नहीं है ॥ १७ ॥

येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ १८ ॥

'जिस अमित बुद्धिमान् और प्राज्ञ देवताने योगबलसे कुरुराज युधिष्ठिरको जन्म दिया था, वह धर्म विदुरका ही स्वरूप है ॥ १८ ॥

यथा वह्निर्यथा वायुर्यथाऽऽपः पृथिवी यथा ।
यथाऽऽकाशं तथा धर्म इह चामुत्र च स्थितः ॥ १९ ॥

'जैसे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी सत्ता इहलोक और परलोकमें भी है, उसी प्रकार धर्म भी उभय लोकमें व्याप्त है ॥ १९ ॥

सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम् ।
दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्तकल्मषैः ॥ २० ॥

'राजेन्द्र ! धर्मकी सर्वत्र गति है तथा वह सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है । जिनके समस्त पाप धुल गये हैं, वे सिद्ध पुरुष तथा देवताओंके देवता ही धर्मका साक्षात्कार करते हैं ॥ २० ॥

यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः ।
स एष राजन् दृश्यस्ते पाण्डवः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ २१ ॥

'जिन्हें धर्म कहते हैं वे ही विदुर थे और जो विदुर थे, वे ही ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर हैं, जो इस समय तुम्हारे सामने दासकी भाँति खड़े हैं ॥ २१ ॥

प्रविष्टः स महात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः ।
दृष्ट्वा महात्मा कौन्तेयं महायोगबलान्वितः ॥ २२ ॥

'महान् योगबलसे सम्पन्न और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे भाई महात्मा विदुर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सामने देखकर इन्हींके शरीरमें प्रविष्ट हो गये हैं ॥ २२ ॥

त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये न चिराद् भरतर्षभ ।
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक ॥ २३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अब तुम्हें भी मैं शीघ्र ही कल्याणका भागी बनाऊँगा । बेटा ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि इस समय मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण करनेके लिये आया हूँ ॥ २३ ॥

न कृतं यैः पुरा कैश्चित् कर्म लोके महर्षिभिः ।
आश्चर्यभूतं तपसः फलं तद् दर्शयामि वः ॥ २४ ॥

'पूर्वकालके किन्हीं महर्षियोंने संसारमें अबतक जो चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं किया था, वह भी आज मैं कर दिखाऊँगा । आज मैं तुम्हें अपनी तपस्याका आश्चर्यजनक फल दिखलाता हूँ ॥ २४ ॥

किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुमभीप्सितम् ।
द्रष्टुं स्प्रष्टुमथ श्रोतुं तत्कर्ताऽस्मि तवानघ ॥ २५ ॥

'निष्पाप महीपाल ! बताओ, तुम मुझसे कौन-सी अभीष्ट वस्तु पाना चाहते हो ? किसको देखने, सुनने अथवा स्पर्श करनेकी तुम्हारी इच्छा है ? मैं उसे पूर्ण करूँगा' ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासवाक्यविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

(पुत्रदर्शनपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध

जनमेजय उवाच

वनवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे महीपतौ ।
सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते ॥ १ ॥
विदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते ।
वसत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले ॥ २ ॥
यत् तदाश्चर्यमिति वै करिष्यामीत्युवाच ह ।
व्यासः परमतेजस्वी महर्षिस्तद् वदस्व मे ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! जब अपनी धर्मपत्नी गान्धारी और बहू कुन्तीके साथ नृपश्रेष्ठ पृथ्वीपति धृतराष्ट्र वनवासके लिये चले गये, विदुरजी सिद्धिको प्राप्त होकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और समस्त पाण्डव आश्रममण्डलमें निवास करने लगे; उस समय परम तेजस्वी व्यासजीने जो यह कहा था कि 'मैं आश्चर्यजनक घटना प्रकट करूँगा' वह किस प्रकार हुई ? यह मुझे बताइये ? ॥

वनवासे च कौरव्यः कियन्तं कालमच्युतः ।
युधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत् सजनस्तदा ॥ ४ ॥

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर कितने दिनोंतक सब लोगोंके साथ वनमें रहे थे ? ॥

किमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन् प्रभो ।
सान्तःपुरा महात्मान इति तद् ब्रूहि मेऽनघ ॥ ५ ॥

प्रभो ! निष्पाप मुने ! सैनिकों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वे महात्मा पाण्डव क्या आहार करके वहाँ निवास करते थे ? ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तेऽनुज्ञातास्तदा राजन् कुरुराजेन पाण्डवाः ।
विविधान्यन्नपानानि विश्राम्यानुभवन्ति ते ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कुरुराज धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको नाना प्रकारके अन्न-पान ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी थी; अतः वे वहाँ विश्राम पाकर सभी तरहके उत्तम भोजन करते थे ॥ ६ ॥

मासमेकं विजह्रुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने ।
अथ तत्रागमद् व्यासो यथोक्तं ते मयानघ ॥ ७ ॥

वे सेनाओं तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वहाँ एक मासतक वनमें विहार करते रहे । अनघ ! इसी बीचमें जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है, वहाँ व्यासजीका आगमन हुआ ॥

तथा च तेषां सर्वेषां कथाभिर्नृपसंनिधौ ।
व्यासमन्वासयतां राजन्नाजग्मुर्मुनयो परे ॥ ८ ॥

राजन् ! राजा धृतराष्ट्रके समीप व्यासजीके पीछे बैठे हुए उन सबलोगोंमें जब उपर्युक्त बातें होती रहीं, उसी समय वहाँ दूसरे-दूसरे मुनि भी आये ॥ ८ ॥

नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ।
विश्वावसुस्तुम्बुरुश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९ ॥

भारत ! उनमें नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु तथा चित्रसेन भी थे ॥ ९ ॥

तेषामपि यथान्यायं पूजां चक्रे महातपाः ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रकी आज्ञासे महातपस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने उन सबकी भी यथोचित पूजा की ॥ १० ॥

निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात् ।
आसनेषु च पुण्येषु बर्हिणेषु वरेषु च ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरसे पूजा ग्रहण करके वे सब-के-सब मोरपंखके बने हुए पवित्र एवं श्रेष्ठ आसनोंपर विराजमान हुए ॥ ११॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः ।
पाण्डुपुत्रैः परिवृतो निषसाद कुरूद्वह ॥ १२ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उन सबके बैठ जानेपर पाण्डवोंसे घिरे हुए परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र बैठे ॥ १२ ॥

गान्धारी चैव कुन्ती च द्रौपदी सात्वती तथा ।
स्त्रियश्चान्यास्तथान्याभिः सहोपविविशुस्ततः ॥ १३ ॥

गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियाँ अन्य स्त्रियोंके साथ आसपास ही एक साथ बैठ गयीं ॥१३॥

तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन् नृप ।
ऋषीणां च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! उस समय उन लोगोंमें धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली दिव्य कथाएँ होने लगीं । प्राचीन ऋषियों तथा देवताओं और असुरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली चर्चाएँ छिड़ गयीं ॥

ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद् वचः ॥ १५ ॥
प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।

बातचीतके अन्तमें सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं और वक्ताओंमें

श्रेष्ठ महातेजस्वी महर्षि व्यासजीने प्रसन्न होकर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रसे पुनः वही बात कही ॥ १५½ ॥

विदितं मम राजेन्द्र यत् ते हृदि विवक्षितम् ॥ १६ ॥
दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै ।

'राजेन्द्र ! तुम्हारे हृदयमें जो कहनेकी इच्छा हो रही है, उसे मैं जानता हूँ । तुम निरन्तर अपने मरे हुए पुत्रोंके शोकसे जलते रहते हो ॥ १६½ ॥

गान्धार्याश्चैव यद् दुःखं हृदि तिष्ठति नित्यदा ॥ १७ ॥
कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम् ।

'महाराज ! गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी जो दुःख सदा बना रहता है, वह भी मुझे ज्ञात है ॥ १७½ ॥

यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् ॥ १८ ॥
सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम ।

'श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेका जो दुःसह दुःख हृदयमें धारण करती है, वह भी मुझसे अज्ञात नहीं है ॥ १८½ ॥

श्रुत्वा समागममिमं सर्वेषां वस्तुतो नृप ॥ १९ ॥
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तः कौरवनन्दन ।

'कौरवनन्दन ! नरेश्वर ! वास्तवमें तुम सब लोगोंका यह समागम सुनकर तुम्हारे मानसिक संदेहोंका निवारण करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ १९½ ॥

इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चेमे महर्षयः ॥ २० ॥
पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसम्भृतम् ।

'ये देवता, गन्धर्व और महर्षि सब लोग आज मेरी चिरसंचित तपस्याका प्रभाव देखें ॥ २०½ ॥

तदुच्यतां महाप्राज्ञ कं कामं प्रददामि ते ॥ २१ ॥
प्रवणोऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसः फलम् ।

'महाप्राज्ञ नरेश ! बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा अभीष्ट मनोरथ प्रदान करूँ ? आज मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर देनेको तैयार हूँ । तुम मेरी तपस्याका फल देखो' ॥ २१½ ॥

एवमुक्तः स राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २२ ॥
मुहूर्तमिव संचिन्त्य वचनायोपचक्रमे ।

अमित बुद्धिमान् महर्षि व्यासके ऐसा कहनेपर महाराज धृतराष्ट्रने दो घड़ीतक विचार करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ २२½ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतश्च सफलं जीवितं च मे ॥ २३ ॥
यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह साधुभिः ।

'भगवन् ! आज मैं धन्य हूँ, आपलोगोंकी कृपाका पात्र हूँ तथा मेरा यह जीवन भी सफल है; क्योंकि आज यहाँ आप-जैसे साधु-महात्माओंका समागम मुझे प्राप्त हुआ है २३½

अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः ॥ २४ ॥
ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत् समेतोऽहं तपोधनाः ।

'तपोधनो ! आप ब्रह्मतुल्य महात्माओंका जो संग मुझे प्राप्त हुआ उससे मैं समझता हूँ कि यहाँ अपने लिये अभीष्ट गति मुझे प्राप्त हो गयी ॥ २४½ ॥

दर्शनादेव भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥
विद्यते न भयं चापि परलोकान्ममानघाः ।

'इसमें संदेह नहीं कि मैं आपलोगोंके दर्शनमात्रसे पवित्र हो गया । निष्पाप महर्षियो ! अब मुझे परलोकसे कोई भय नहीं है ॥ २५½ ॥

किं तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ २६ ॥
दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः पुत्रगृद्धिनः ।

'परंतु अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले उस मन्दमति दुर्योधनके अन्यायोंसे जो मेरे सारे पुत्र मारे गये हैं, उन्हें पुत्रोंमें आसक्त रहनेवाला मैं सदा याद करता हूँ; इसलिये मेरे मनमें बड़ा दुःख होता है ॥ २६½ ॥

अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना ॥ २७ ॥
घातिता पृथिवी येन सहया सनरद्विपा ।

पापपूर्ण विचार रखनेवाले उस दुर्योधनने निरपराध पाण्डवोंको सताया तथा घोड़ों, मनुष्यों और हाथियोंसहित इस सारी पृथ्वीके वीरोंका विनाश करा डाला ॥ २७½ ॥

राजानश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ॥ २८ ॥
आगम्य मम पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः ।

अनेक देशोंके स्वामी महामनस्वी नरेश मेरे पुत्रकी सहायताके लिये आकर सब-के-सब मृत्युके अधीन हो गये ॥

ये ते पितॄंश्च दारांश्च प्राणांश्च मनसः प्रियान् ॥ २९ ॥
परित्यज्य गताः शूराः प्रेतराजनिवेशनम् ।

वे सब शूरवीर भूपाल अपने पिताओं, पत्नियों, प्राणों और मनको प्रिय लगनेवाले भोगोंका परित्याग करके यमलोकको चले गये ॥ २९½ ॥

का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन् मित्रार्थे ये हता मृधे ॥ ३० ॥
तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि ।

'ब्रह्मन् ! जो मित्रके लिये युद्धमें मारे गये उन राजाओंकी क्या गति हुई होगी ? तथा जो रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हुए हैं, उन मेरे पुत्रों और पौत्रोंको किस गतिकी प्राप्ति हुई होगी ? ॥ ३०½ ॥

दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम् ॥ ३१ ॥
भीष्मं शान्तनवं वृद्धं द्रोणं च द्विजसत्तमम् ।

'महाबली शान्तनुनन्दन भीष्म तथा वृद्ध ब्राह्मणप्रवर द्रोणाचार्यका वध कराकर मेरे मनको बारंबार दुःसह संताप प्राप्त होता है ॥ ३१½ ॥

मम पुत्रेण मूढेन पापेनाकृतबुद्धिना ॥ ३२ ॥
क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता ।

'अपवित्र बुद्धिवाले मेरे पापी एवं मूर्ख पुत्रने समस्त भूमण्डलके राज्यका लोभ करके अपने दीप्तिमान् कुलका विनाश कर डाला ॥ ३२½ ॥

एतत् सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम् ॥ ३३ ॥
न शान्तिमधिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः ।
इति मे चिन्तयानस्य पितः शान्तिर्न विद्यते ॥ ३४ ॥

'ये सारी बातें याद करके मैं दिन-रात जलता रहता हूँ। दुःख और शोकसे पीड़ित होनेके कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती है। पिताजी ! इन्हीं चिन्ताओंमें पड़े-पड़े मुझे कभी शान्ति नहीं प्राप्त होती' ॥ ३३-३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा विविधं तस्य राजर्षेः परिदेवितम् ।
पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजर्षि धृतराष्ट्रका वह भाँति-भाँतिसे विलाप सुनकर गान्धारीका शोक फिरसे नया-सा हो गया ॥ ३५ ॥

कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च ।
तासां च वरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥ ३६ ॥

कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा कुरुराजकी उन सुन्दरी बहुओंका शोक भी फिरसे उमड़ आया ॥ ३६ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत् ।
श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ॥ ३७ ॥

आँखोंपर पट्टी बाँधे गान्धारी देवी श्वशुरके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं और पुत्रशोकसे संतप्त होकर इस प्रकार बोलीं ॥ ३७ ॥

षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुङ्गव ।
अस्य राज्ञो हतान् पुत्राञ्शोचतो न शमो विभो ॥ ३८ ॥

मुनिवर ! प्रभो ! इन महाराजको अपने मरे हुए पुत्रोंके लिये शोक करते आज सोलह वर्ष बीत गये; किंतु अबतक इन्हें शान्ति नहीं मिली ॥ ३८ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टो निःश्वसन् ह्येष भूमिपः ।
न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ॥ ३९ ॥

'महामुने ! ये भूमिपाल धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे संतप्त हो सदा लम्बी साँस खींचते और आहें भरते रहते हैं। इन्हें रात-भर कभी नींद नहीं आती ॥ ३९ ॥

लोकानन्यान् समर्थोऽसि स्रष्टुं सर्वांस्तपोबलात् ।
किमु लोकान्तरगतान् राज्ञो दर्शयितुं सुतान् ॥ ४० ॥

'आप अपने तपोबलसे इन सब लोकोंकी दूसरी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, फिर लोकान्तरमें गये हुए पुत्रोंको एक बार राजासे मिला देना आपके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ४० ॥

इयं च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम् ।
शोचत्यतीव सर्वासां स्नुषाणां दयिता स्नुषा ॥ ४१ ॥

'यह द्रुपदकुमारी कृष्णा मुझे अपनी समस्त पुत्र-वधुओंमें सबसे अधिक प्रिय है। इस बेचारीके भाई-बन्धु और पुत्र सभी मारे गये हैं; जिससे यह अत्यन्त शोकमग्न रहा करती है॥

तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
सौभद्रवधसंतप्ता भृशं शोचति भामिनी ॥ ४२ ॥

'सदा मङ्गलमय वचन बोलनेवाली श्रीकृष्णकी बहिन भामिनी सुभद्रा सर्वदा अपने पुत्र अभिमन्युके वधसे संतप्त हो निरन्तर शोकमें ही डूबी रहती है ॥ ४२ ॥

इयं च भूरिश्रवसो भार्या परमसम्मता ।
भर्तृव्यसनशोकार्ता भृशं शोचति भामिनी ॥ ४३ ॥
यस्यास्तु श्वशुरो धीमान् बाह्लिकः स कुरूद्वहः ।
निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ॥ ४४ ॥

'ये भूरिश्रवाकी परमप्यारी पत्नी बैठी है, जो पतिकी मृत्युके शोकसे व्याकुल हो अत्यन्त दुःखमें मग्न रहती है। इसके बुद्धिमान् श्वशुर कुरुश्रेष्ठ बाह्लिक भी मारे गये हैं। भूरिश्रवाके पिता सोमदत्त भी अपने पिताके साथ ही उस महासमरमें वीरगतिको प्राप्त हुए थे ॥ ४३—४४ ॥

श्रीमतोऽस्य महाबुद्धेः संग्रामेष्वपलायिनः ।
पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद् रणाजिरे ॥ ४५ ॥
तस्य भार्याशतमिदं दुःखशोकसमाहतम् ।
पुनः पुनर्वर्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च ॥ ४६ ॥
तेनारम्भेण महता मामुपास्ते महामुने ।

'आपके पुत्र, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले, परम बुद्धिमान् जो ये श्रीमान् महाराज हैं, इनके जो सौ पुत्र समराङ्गणमें मारे गये थे, उनकी ये सौ स्त्रियाँ बैठी हैं। ये मेरी बहुएँ दुःख और शोकके आघात सहन करती हुई मेरे और महाराजके भी शोकको बारंबार बढ़ा रही हैं। महामुने ! ये सब-की-सब शोकके महान् आवेगसे रोती हुई मुझे ही घेरकर बैठी रहती हैं ॥

ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः ॥ ४७ ॥
सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो ।

'प्रभो ! जो मेरे महामनस्वी श्वशुर शूरवीर महारथी सोमदत्त आदि मारे गये हैं, उन्हें कौन-सी गति प्राप्त हुई है ?॥

तव प्रसादाद् भगवन् विशोकोऽयं महीपतिः ॥ ४८ ॥
यथा स्याद् भविता चाहं कुन्ती चेयं वधूस्तव ।

'भगवन् ! आपके प्रसादसे ये महाराज, मैं और आपकी बहू कुन्ती—ये सब-के-सब जैसे भी शोकरहित हो जायँ, ऐसी कृपा कीजिये ॥ ४८½ ॥

इत्युक्तवत्यां गान्धार्यां कुन्ती व्रतकृशानना ॥ ४९ ॥
प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्मारादित्यसंनिभम् ।

जब गान्धारीने इस प्रकार कहा, तब व्रतसे दुर्बल मुखवाली कुन्तीने गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी पुत्र कर्णका स्मरण किया ॥ ४९½ ॥

तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ॥ ५० ॥
अपश्यद् दुःखितां देवीं मातरं सव्यसाचिनः ।

दूरतककी देखने-सुनने और समझनेवाले वरदायक ऋषि व्यासने अर्जुनकी माता कुन्तीदेवीको दुःखमें डूबी हुई देखा ॥ ५०½ ॥

तामुवाच ततो व्यासो यत् ते कार्यं विवक्षितम् ॥ ५१ ॥
तद् ब्रूहि त्वं महाभागे यत् ते मनसि वर्तते ।

तब भगवान् व्यासने उनसे कहा—'महाभागे ! तुम्हें किसी कार्यके लिये यदि कुछ कहनेकी इच्छा हो, तुम्हारे मनमें यदि कोई बात उठी हो, तो उसे कहो ॥ ५१½ ॥

श्वशुराय ततः कुन्ती प्रणम्य शिरसा तदा ॥ ५२ ॥
उवाच वाक्यं सव्रीडा विवृण्वाना पुरातनम् ॥ ५३ ॥

तब कुन्तीने मस्तक झुकाकर श्वशुरको प्रणाम किया और लज्जित हो प्राचीन गुप्त रहस्यको प्रकट करते हुए कहा ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि धृतराष्ट्रादिकृतप्रार्थने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिकी की हुई प्रार्थना-विषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना

कुन्त्युवाच

भगवञ्श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम् ।
स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम ॥ १ ॥

कुन्ती बोली—भगवन् ! आप मेरे श्वशुर हैं, मेरे देवताके भी देवता हैं; अतः मेरे लिये देवताओंसे भी बढ़कर हैं (आज मैं आपके सामने अपने जीवनका एक गुप्त रहस्य प्रकट करती हूँ) । मेरी यह सच्ची बात सुनिये ॥ १ ॥

तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः ।
भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २ ॥

एक समयकी बात है, परम क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा मेरे पिताके यहाँ भिक्षाके लिये आये थे । मैंने उन्हें अपने द्वारा की गयी सेवाओंसे संतुष्ट कर लिया ॥ २ ॥

शौचेन त्वागसस्त्यागैः शुद्धेन मनसा तथा ।
कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यन्न कदाचन ॥ ३ ॥

मैं शौचाचारका पालन करती, अपराधसे बची रहती और शुद्ध हृदयसे उनकी आराधना करती थी । क्रोधके बड़े-से-बड़े कारण उपस्थित होनेपर भी मैंने कभी उनपर क्रोध नहीं किया ॥ ३ ॥

स प्रीतो वरदो मेऽभूत् कृतकृत्यो महामुनिः ।
अवश्यं ते गृहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद् वचः ॥ ४ ॥

इससे वे वरदायक महामुनि मुझपर बहुत प्रसन्न हुए । जब उनका कार्य पूरा हो गया तब वे बोले—'तुम्हें मेरा दिया हुआ वरदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा' ॥ ४ ॥

ततः शापभयाद् विप्रमवोचं पुनरेव तम् ।
एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मे द्विजः ॥ ५ ॥

उनकी बात सुनकर मैंने शापके भयसे पुनः उन ब्रह्मर्षिसे कहा—'भगवन् ! ऐसा ही हो ।' तब वे ब्राह्मणदेवता फिर मुझसे बोले—॥ ५ ॥

धर्मस्य जननी भद्रे भवित्री त्वं शुभानने ।
वशे स्थास्यन्ति ते देवा यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६ ॥

'भद्रे ! तुम धर्मकी जननी होओगी । शुभानने ! तुम जिन देवताओंका आवाहन करोगी वे तुम्हारे वशमें हो जायँगे ।'

इत्युक्त्वान्तर्हितो विप्रस्ततोऽहं विस्मिताभवम् ।
न च सर्वास्ववस्थासु स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७ ॥

यों कहकर वे ब्रह्मर्षि अन्तर्धान हो गये । उस समय मैं वहाँ आश्चर्यसे चकित हो गयी । किसी भी अवस्थामें उनकी बात मुझे भूलती नहीं थी ॥ ७ ॥

अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती ।
संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवानिशम् ॥ ८ ॥

एक दिन जब मैं अपने महलकी छतपर खड़ी थी, उगते हुए सूर्यपर मेरी दृष्टि पड़ी । महर्षि दुर्वासाके वचनोंका स्मरण करके मैं दिन-रात सूर्यदेवको चाहने लगी ॥ ८ ॥

स्थिताऽहं बालभावेन तत्र दोषमबुद्ध्यती ।
अथ देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोऽभवत् ॥ ९ ॥

उस समय मैं बाल-स्वभावसे युक्त थी । सूर्यदेवके आगमनसे किस दोषकी प्राप्ति होगी, इसे मैं नहीं समझ सकी ।

इधर मेरे आवाहन करते ही भगवान् सूर्य पास आकर खड़े हो गये ॥ ९ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च।
तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमत् स माम्॥ १०॥

वे अपने दो शरीर बनाकर एकसे आकाशमें रहकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करने लगे और दूसरेसे पृथ्वीपर मेरे पास आ गये ॥ १० ॥

स मामुवाच वेपन्तीं वरं मत्तो वृणीष्व ह।
गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसावदम्॥ ११॥

मैं उन्हें देखते ही काँपने लगी। वे बोले—'देवि! मुझसे कोई वर माँगो।' तब मैंने सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'कृपया यहाँसे चले जाइये।'

स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाऽऽह्वानं न मे क्षमम्।
धक्ष्यामि त्वां च विप्रं च येन दत्तो वरस्तव॥ १२॥

तब उन प्रचण्डरश्मि सूर्यने मुझसे कहा—'मेरा आवाहन व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम कोई-न-कोई वर अवश्य माँग लो अन्यथा मैं तुमको और जिसने तुम्हें वर दिया है, उस ब्राह्मणको भी भस्म कर डालूँगा' ॥ १२ ॥

तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम्।
पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रवम्॥ १३॥
ततो मां तेजसाऽऽविश्य मोहयित्वा च भानुमान्।
उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्यगमद् दिवम्॥ १४॥

तब मैं उन निरपराध ब्राह्मणको शापसे बचाती हुई बोली—'देव! मुझे आपके समान पुत्र प्राप्त हो।' इतना कहते ही सूर्यदेव मुझे मोहित करके अपने तेजके द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् बोले—'तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर वे आकाशमें चले गये ॥

ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी।
गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम्॥ १५॥

तबसे मैं इस वृत्तान्तको पिताजीसे छिपाये रखनेके लिये महलके भीतर ही रहने लगी और जब गुप्तरूपसे बालक उत्पन्न हुआ तो उसे मैंने पानीमें बहा दिया। वही मेरा पुत्र कर्ण था॥

नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात् पुनरेव तु।
कन्याहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः॥ १६॥

विप्रवर! उसके जन्मके बाद पुनः उन्हीं भगवान् सूर्यकी कृपासे मैं कन्याभावको प्राप्त हो गयी। जैसा कि उन महर्षिने कहा था, वैसा ही हुआ ॥ १६ ॥

स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः।
तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव॥ १७॥

ब्रह्मर्षे! मुझ मूढ़ नारीने अपने पुत्रको पहचान लिया तो भी उसकी उपेक्षा कर दी। यह भूल मुझे शोकाग्निसे दग्ध करती रहती है। आपको तो यह बात अच्छी तरह ज्ञात ही है ॥ १७ ॥

यदि पापमपापं वा तवैतद् विवृतं मया।
तन्मे दहन्तं भगवन् व्यपनेतुं त्वमर्हसि॥ १८॥

भगवन्! मेरा यह कार्य पाप हो या पुण्य, मैंने इसे आपके सामने प्रकट कर दिया। आप मेरे उस दाहक शोकको दूर कर दें ॥ १८ ॥

यच्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ।
तं चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम॥ १९॥

निष्पाप मुनिश्रेष्ठ! इन महाराजके हृदयमें जो बात है, वह भी आपको विदित ही है। ये अपने मनोरथको आज ही प्राप्त करें, ऐसी कृपा कीजिये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो वेदविदां वरः।
साधु सर्वमिदं भाव्यमेवमेतद् यथाऽऽत्थ माम्॥ २०॥

कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि व्यासने कहा—'बेटी! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है, ऐसी ही होनहार थी ॥ २० ॥

अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि।
देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै॥ २१॥

'इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है; क्योंकि उस समय तुम अभी कुमारी बालिका थी। देवतालोग अणिमा आदि ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हैं; अतः दूसरेके शरीरोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥

सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये।
वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात् संघर्षेणेति पञ्चधा॥ २२॥

'बहुत-से ऐसे देवसमुदाय हैं, जो संकल्प, वचन, दृष्टि, स्पर्श तथा समागम—इन पाँचों प्रकारोंसे पुत्र उत्पन्न करते हैं॥

मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण हि न दुष्यति।
इति कुन्ति विजानीहि व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ २३॥

'कुन्ती! देवधर्मके द्वारा मनुष्यधर्म दूषित नहीं होता, इस बातको जान लो। अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २३ ॥

सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्॥ २४॥

'बलवानोंका सब कुछ ठीक या लाभदायक है। बलवानोंका सारा कार्य पवित्र है। बलवानोंका सब कुछ धर्म है और बलवानोंके लिये सारी वस्तुएं अपनी हैं' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि व्यासकुन्तीसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें व्यास और कुन्तीका संवादविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना

व्यास उवाच

भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि पुत्रान् भ्रातॄन् सखींस्तथा।
वधूश्च पतिभिः सार्धं निशि सुप्तोत्थिता इव ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—भद्रे गान्धारि ! आज रातमें तुम अपने पुत्रों, भाइयों और उनके मित्रोंको देखोगी। तुम्हारी वधुएँ तुम्हें पतियोंके साथ-साथ सोकर उठी हुई-सी दिखायी देंगी ॥ १ ॥

कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी।
द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ २ ॥

कुन्ती कर्णको, सुभद्रा अभिमन्युको तथा द्रौपदी पाँचों पुत्रोंको, पिताको और भाइयोंको भी देखेगी

पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम।
यदास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥ ३

जब राजा धृतराष्ट्रने, तुमने और कुन्तीने भी मुझे इसके लिये प्रेरित किया था, उससे पहले ही मेरे हृदयमें यह (मृत व्यक्तियोंके दर्शन करानेका) निश्चय हो गया था ॥ ३ ॥

न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः।
क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधनं गताः ॥ ४ ॥

तुम्हें क्षत्रिय-धर्मपरायण होकर तदनुसार ही वीरगतिको प्राप्त हुए उन समस्त महामनस्वी, नरश्रेष्ठ वीरोंके लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

भवितव्यमवश्यं तत् सुरकार्यमनिन्दिते।
अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागा महीतलम् ॥ ५ ॥

सती-साध्वी देवि ! यह देवताओंका कार्य था और इसी रूपमें अवश्य होनेवाला था; इसलिये सभी देवताओंके अंश इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे ॥ ५ ॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः।
तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धा देवर्षयोऽपि च ॥ ६ ॥
देवाश्च दानवाश्चैव तथा देवर्षयोऽमलाः।
त एते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७ ॥

गन्धर्व, अप्सरा, पिशाच, गुह्यक, राक्षस, पुण्यजन, सिद्ध, देवर्षि, देवता, दानव तथा निर्मल देवर्षिगण—ये सभी यहाँ अवतार लेकर कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें वधको प्राप्त हुए हैं॥

गन्धर्वराजो यो धीमान् धृतराष्ट्र इति श्रुतः।
स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥ ८ ॥

गन्धर्वोंके लोकमें जो बुद्धिमान् गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके नामसे विख्यात हैं, वे ही मनुष्यलोकमें तुम्हारे पति धृतराष्ट्रके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ८ ॥

पाण्डुं मरुद्गणाद् विद्धि विशिष्टतममच्युतम्।
धर्मस्यांशोऽभवत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः॥ ९ ॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले राजा पाण्डुको तुम मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठतम समझो। विदुर धर्मके अंश थे। राजा युधिष्ठिर भी धर्मके ही अंश हैं ॥ ९ ॥

कलिं दुर्योधनं विद्धि शकुनिं द्वापरं तथा।
दुःशासनादीन् विद्धि त्वं राक्षसाञ्शुभदर्शने ॥ १० ॥

दुर्योधनको कलियुग समझो और शकुनिको द्वापर। शुभदर्शने ! अपने दुःशासन आदि पुत्रोंको राक्षस जानो ॥

मरुद्गणाद् भीमसेनं बलवन्तमरिंदमम्
विद्धि त्वं तु नरमृषिमिमं पार्थं धनंजयम् ॥ ११ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले बलवान् भीमसेनको मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न मानो। इन कुन्तीपुत्र धनंजयको तुम पुरातन ऋषि 'नर' समझो ॥ ११ ॥

नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजौ तथा।
यः स वैरार्थमुद्भूतः संघर्षजननस्तथा।
तं कर्णं विद्धि कल्याणि भास्करं शुभदर्शने ॥ १२ ॥
यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः।
स सोम इह सौभद्रो योगादेवाभवद् द्विधा ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं। नकुल और सहदेव दोनोंको अश्विनीकुमार समझो। कल्याणि ! जो केवल वैर बढ़ानेके लिये उत्पन्न हुआ था और कौरव-पाण्डवोंमें संघर्ष पैदा करानेवाला था, उस कर्णको सूर्य समझो। जिस पाण्डवपुत्रको छः महारथियोंने मिलकर मारा था, उस सुभद्राकुमार अभिमन्युके रूपमें साक्षात् चन्द्रमा ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। वे अपने योगबलसे दो रूपोंमें प्रकट हो गये थे (एक रूपसे चन्द्रलोकमें रहते थे और दूसरेसे भूतलपर) ॥ १२-१३ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमादित्यं तपतां वरम्।
लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णं च शोभने ॥ १४ ॥

शोभने ! तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यदेव अपने शरीरके दो भाग करके एकसे सम्पूर्ण लोकोंको ताप देते रहे और दूसरे भागसे कर्णके रूपमें अवतीर्ण हुए। इस तरह कर्णको तुम सूर्यरूप जानो ॥ १४ ॥

द्रौपद्या सह सम्भूतं धृष्टद्युम्नं च पावकात्।
अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम् ॥ १५ ॥

तुम्हें यह भी ज्ञात होना चाहिये कि जो द्रौपदीके साथ अग्निसे प्रकट हुआ था, वह धृष्टद्युम्न अग्निका शुभ अंश था और शिखण्डीके रूपमें एक राक्षसने अवतार लिया था ॥ १५ ॥

द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिं च रुद्रजम् ।
भीष्मं च विद्धि गाङ्गेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यको बृहस्पतिका और अश्वत्थामाको रुद्रका अंश जानो । गङ्गापुत्र भीष्मको मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण हुआ एक वसु समझो ॥ १६ ॥

एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि ।
ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १७ ॥

महाप्राज्ञे ! शोभने ! इस प्रकार ये देवता कार्यवश मानव-शरीरमें जन्म ले अपना काम पूरा कर लेनेपर पुनः स्वर्गलोकको चले गये हैं ॥ १७ ॥

यच्च वै हृदि सर्वेषां दुःखमेतच्चिरं स्थितम् ।
तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृतान्द् भयात् ॥ १८ ॥

तुम सब लोगोंके हृदयमें इनके लिये पारलौकिक भयके कारण जो चिरकालसे दुःख भरा हुआ है, उसे आज दूर कर दूँगा ॥ १८ ॥

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति ।
तत्र द्रक्ष्यथ तान् सर्वान् ये हतास्तत्र संयुगे ॥ १९ ॥

इस समय तुम सब लोग गङ्गाजीके तटपर चलो । वहीं सबको समराङ्गणमें मारे गये अपने सभी सम्बन्धियोंके दर्शन होंगे ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति व्यासस्य वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा ।
महता सिंहनादेन गङ्गामभिमुखो ययौ ॥ २० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि व्यासका यह वचन सुनकर सब लोग महान् सिंहनाद करते हुए प्रसन्नतापूर्वक गङ्गातटकी ओर चल दिये ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ सह पाण्डवैः ।
सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः ॥ २१ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों, पाण्डवों, मुनिवरों तथा वहाँ आये हुए गन्धर्वोंके साथ गङ्गाजीके समीप गये ॥ २१ ॥

ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः ।
निवासमकरोत् सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥ २२ ॥

क्रमशः वह सारा जनसमुद्र गङ्गातटपर जा पहुँचा और सब लोग अपनी-अपनी रुचि तथा सुख-सुविधाके अनुसार जहाँ-तहाँ ठहर गये ॥ २२ ॥

राजा च पाण्डवैः सार्धमिष्टे देशे सहानुगः ।
निवासमकरोद् धीमान् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र स्त्रियों और वृद्धोंको आगे करके पाण्डवों तथा सेवकोंके साथ वहाँ अभीष्ट स्थानमें ठहरे ॥ २३ ॥

जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं यथा ।
निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतान् नृपान् ॥ २४ ॥

मृत राजाओंको देखनेकी इच्छासे सभी लोग वहाँ रात होनेकी प्रतीक्षा करते रहे; अतः वह दिन उनके लिये सौ वर्षोंके समान जान पड़ा तो भी वह धीरे-धीरे बीत ही गया ॥ २४ ॥

अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद् रविः ।
ततः कृताभिषेकास्ते नैशं कर्म समाचरन् ॥ २५ ॥

तदनन्तर सूर्यदेव परम पवित्र अस्ताचलको जा पहुँचे । उस समय सब लोग स्नान करके सायंकालोचित संध्यावन्दन आदि कर्म करने लगे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि गङ्गातीरगमने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें सबका गङ्गातीरपर गमनविषयक एकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डववीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

ततो निशायां प्राप्तायां कृतसायाह्निकक्रियाः ।
व्यासमभ्यगमन् सर्वे ये तत्रासन् समागताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर जब रात होनेको आयी, तब जो लोग वहाँ आये थे, वे सब सायंकालोचित नित्य-नियम पूर्ण करके भगवान् व्यासके समीप गये ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा ।
शुचिरेकमना सार्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ।
गान्धार्या सह नार्यस्तु सहिताः समुपाविशन् ।
पौरजानपदश्चापि जनः सर्वो यथावयः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंसहित धर्मात्मा धृतराष्ट्र पवित्र एवं एकाग्रचित्त हो उन ऋषियोंके साथ व्यासजीके निकट जा बैठे । कुरुकुलकी सारी स्त्रियाँ एक साथ हो गान्धारीके समीप बैठ

गयीं तथा नगर और जनपदके निवासी भी अवस्थाके अनुसार यथास्थान विराजमान हो गये ॥ २-३ ॥

ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं भागीरथीजलम् ।
अवगाह्याजुहावाथ सर्वान् लोकान् महामुनिः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी महामुनि व्यासजीने भागीरथीके पवित्र जलमें प्रवेश करके पाण्डव तथा कौरवपक्षके सब लोगोंका आवाहन किया ॥ ४ ॥

पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः ।
राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥ ५ ॥

पाण्डवों तथा कौरवोंके पक्षमें जो नाना देशोंके निवासी महाभाग नरेश योद्धा बनकर आये थे, उन सबका व्यासजीने आह्वान किया ॥ ५ ॥

ततः सुतुमुलः शब्दो जलान्ते जनमेजय ।
प्रादुरासीद् यथापूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६ ॥

जनमेजय ! तदनन्तर जलके भीतरसे कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका पहले-जैसा ही भयङ्कर शब्द प्रकट होने लगा ॥ ६ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
ससैन्याः सलिलात् तस्मात् समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥

फिर तो भीष्म-द्रोण आदि समस्त राजा अपनी सेनाओंके साथ सहस्रोंकी संख्यामें उस जलसे बाहर निकलने लगे ॥ ७ ॥

विराटद्रुपदौ चैव सहपुत्रौ ससैनिकौ ।
द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ८ ॥

पुत्रों और सैनिकोंसहित विराट और द्रुपद पानीसे बाहर आये । द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु तथा राक्षस घटोत्कच—ये सभी जलसे प्रकट हो गये ॥ ८ ॥

कर्णदुर्योधनौ चैव शकुनिश्च महारथः ।
दुःशासनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ ९ ॥
जारासंधिर्भगदत्तो जलसंधश्च वीर्यवान् ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः ॥ १० ॥
लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ११ ॥
अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
बाह्लिकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः ॥ १२ ॥
एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद् ये न कीर्तिताः ।
सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः ॥ १३ ॥

कर्ण, दुर्योधन, महारथी, शकुनि, धृतराष्ट्रके पुत्र महाबली दुःशासन आदि, जरासन्धकुमार सहदेव, भगदत्त, पराक्रमी जलसन्ध, भूरिश्रवा, शल, शल्य, भाइयोंसहित वृषसेन, राजकुमार लक्ष्मण, धृष्टद्युम्नके पुत्र, शिखण्डीके सभी पुत्र, भाइयोंसहित धृष्टकेतु, अचल, वृषक, राक्षस अलायुध, राजा बाह्लिक, सोमदत्त और चेकितान—ये तथा दूसरे बहुत-से क्षत्रियवीर, जो संख्यामें अधिक होनेके कारण नाम लेकर नहीं बताये गये हैं, सभी देदीप्यमान शरीर धारण करके उस जलसे प्रकट हुए ॥ ९-१३॥

यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनम् ।
तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः ॥ १४ ॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः ।
निर्वैरा निरहंकारा विगतक्रोधमत्सराः ॥ १५ ॥

जिस वीरका जैसा वेष, जैसी ध्वजा और जैसा वाहन था, वह उसीसे युक्त दिखायी दिया । वहाँ प्रकट हुए सभी नरेश दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे । सबके कानोंमें चमकीले कुण्डल शोभा पाते थे । उस समय वे वैर, अहंकार, क्रोध और मात्सर्य छोड़ चुके थे ॥ १४-१५ ॥

गन्धर्वैरुपगीयन्तः स्तूयमानाश्च वन्दिभिः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चाप्सरसां गणैः ॥ १६ ॥

गन्धर्व उनके गुण गाते और बन्दीजन स्तुति करते थे । उन सबने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खे थे और सभी अप्सराओंसे घिरे हुए थे ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्यं चक्षुर्नराधिप ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात् तपोबलात् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! उस समय सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासने प्रसन्न होकर अपने तपोबलसे धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किये ॥ १७ ॥

व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डव-पक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन

दिव्यज्ञानबलोपेता गान्धारी च यशस्विनी ।
ददर्श पुत्रांस्तान् सर्वान् ये चान्येऽपि मृधे हताः ॥ १८ ॥

यशस्विनी गान्धारी भी दिव्य ज्ञानबलसे सम्पन्न हो गयी थीं। उन दोनोंने युद्धमें मारे गये अपने पुत्रों तथा अन्य सब सम्बन्धियोंको देखा ॥ १८ ॥

तदद्भुतमचिन्त्यं च सुमहल्लोमहर्षणम् ।
विस्मितः स जनः सर्वो ददर्शानिमिषेक्षणः ॥ १९ ॥

वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो एकटक दृष्टिसे उस अद्भुत, अचिन्त्य एवं अत्यन्त रोमाञ्चकारी दृश्यको देख रहे थे ॥ १९ ॥

तदुत्सवमहोदग्रं हृष्टनारीनराकुलम् ।
आश्चर्यभूतं ददृशे चित्रं पटगतं यथा ॥ २० ॥

वह हर्षोत्फुल्ल नर-नारियोंसे भरा हुआ महान् आश्चर्यजनक उत्सव कपड़ेपर अङ्कित किये गये चित्रकी भाँति दिखायी देता था ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रस्तु तान् सर्वान् पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात् तस्य वै मुनेः ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा धृतराष्ट्र मुनिवर व्यासकी कृपासे मिले हुए दिव्य नेत्रोंद्वारा अपने समस्त पुत्रों और सम्बन्धियोंको देखते हुए आनन्दमग्न हो गये ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि भीष्मादिदर्शने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें भीष्म आदिका दर्शनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर रागद्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पुरुषश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम् ।
विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १ ॥
विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम् ।
संहृष्टमनसः सर्वे देवलोक इवामराः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—क्रोध और मात्सर्यसे रहित तथा पापशून्य हुए वे सभी श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मर्षियोंकी बनायी हुई उत्तम प्रणालीका आश्रय ले एक-दूसरेसे प्रेमपूर्वक मिले। उस समय देवलोकमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति उन सबके मनमें हर्षोल्लास छा रहा था ॥ १-२ ॥

पुत्रः पित्रा च मात्रा च भार्याश्च पतिभिः सह ।
भ्रात्रा भ्राता सखा चैव सख्या राजन् समागताः ॥ ३ ॥

राजन् ! पुत्र पिता-माताके साथ, स्त्री पतिके साथ, भाई भाईके साथ और मित्र मित्रके साथ मिले ॥ ३ ॥

पाण्डवास्तु महेष्वासं कर्णं सौभद्रमेव च ।
सम्प्रहर्षात् समाजग्मुर्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ४ ॥

पाण्डव महाधनुर्धर कर्ण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सबके साथ अत्यन्त हर्षपूर्वक मिले ॥

ततस्ते प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः ।
समेत्य पृथिवीपाल सौहृदे च स्थिता भवन् ॥ ५ ॥

भूपाल ! तत्पश्चात् सब पाण्डवोंने कर्णसे प्रसन्नतापूर्वक मिलकर उनके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव किया ॥ ५ ॥

परस्परं समागम्य योधास्ते भरतर्षभ ।
मुनेः प्रसादात् ते ह्येवं क्षत्रिया नष्टमन्यवः ॥ ६ ॥
असौहृदं परित्यज्य सौहृदे पर्यवस्थिताः ।

भरतभूषण ! वे समस्त योद्धा एक-दूसरेसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रकार मुनिकी कृपासे वे सभी क्षत्रिय अपने क्रोधको भुलाकर शत्रुभाव छोड़कर परस्पर सौहार्द स्थापित करके मिले ॥ ६½ ॥

एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैः सह ॥ ७ ॥
पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च पार्थिवाः ।

इस तरह वे सब पुरुषसिंह कौरव तथा अन्य नरेश गुरुजनों, बान्धवों और पुत्रोंके साथ मिले ॥ ७½ ॥

तां रात्रिमखिलामेवं विहृत्य प्रीतमानसाः ॥ ८ ॥
मेनिरे परितोषेण नृपाः स्वर्गसदो यथा ।

सारी रात एक-दूसरेके साथ घूमने-फिरनेके कारण उन सबके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। स्वर्गवासियोंके समान ही उन्हें वहाँ परम संतोषका अनुभव हुआ ॥ ८½ ॥

नात्र शोको भयं त्रासो नारतिर्नायशोऽभवत् ॥ ९ ॥
परस्परं समागम्य योधानां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! एक-दूसरेसे मिलकर उन योद्धाओंके मनमें शोक, भय, त्रास, उद्वेग और अपयशको स्थान नहीं मिला ॥

समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः ॥ १० ॥
मुदं परमिकां प्राप्य नार्यो दुःखमथात्यजन् ।

वहाँ आयी हुई स्त्रियाँ अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुईं । उनका सारा दुःख दूर हो गया ॥ १०½ ॥

एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः ॥ ११ ॥
आमन्त्र्यान्योन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतम् ।

वे वीर और उनकी वे तरुणी स्त्रियाँ एक रात साथ-साथ विहार करके अन्तमें एक-दूसरेकी अनुमति ले परस्पर गले मिलकर जैसे आये थे, उसी प्रकार चले जानेको उद्यत हुए ॥

ततो विसर्जयामास लोकांस्तान् मुनिपुङ्गवः ॥ १२ ॥
क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन् ।
अवगाह्य महात्मानः पुण्यां भागीरथीं नदीम् ॥ १३ ॥
सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि वेश्मानि भेजिरे ।

तब मुनिवर व्यासजीने उन सब लोगोंका विसर्जन कर दिया और वे महामना नरेश एक ही क्षणमें सबके देखते-देखते पुण्यसलिला भागीरथीमें गोता लगाकर अदृश्य हो गये । रथों और ध्वजाओंसहित अपने-अपने लोकोंमें चले गये ॥

देवलोकं ययुः केचित् केचिद् ब्रह्मसदस्तथा ॥ १४ ॥
केचिच्च वारुणं लोकं केचित् कौबेरमाप्नुवन् ।
ततो वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन्नृपाः ॥ १५ ॥

कोई देवलोकमें गये, कोई ब्रह्मलोकमें, कुछ वरुणलोकमें पधारे और कुछ कुबेरके लोकमें । कितने ही नरेश भगवान् सूर्यके लोकमें चले गये ॥ १४-१५ ॥

राक्षसानां पिशाचानां केचिच्चाप्युत्तरान् कुरून् ।
विचित्रगतयः सर्वे यानवाप्यामरैः सह ॥ १६ ॥
आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सपदानुगाः ।

कितने ही राक्षसों और पिशाचोंके लोकोंमें चले गये और कितने ही उत्तरकुरुमें जा पहुँचे । इस प्रकार सबको विचित्र-विचित्र गतियोंकी प्राप्ति हुई थी और वे महामना वहींसे देवताओंके साथ अपने-अपने वाहनों और अनुचरोंसहित आये थे ॥ १६½ ॥

गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः ॥ १७ ॥
धर्मशीलो महातेजाः कुरूणां हितकृत् तथा ।
ततः प्रोवाच ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ १८ ॥

या याः पतिकृतान् लोका-
निच्छन्ति परमस्त्रियः ।
ता जाह्नवीजलं क्षिप्र-
मवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १९ ॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्रद्दधाना वराङ्गनाः ।
श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवीजलम् ॥ २० ॥

उन सबके अदृश्य हो जानेपर कौरवोंके हितकारी महातेजस्वी धर्मशील महामुनि व्यासजीने जलमें खड़े-खड़े उन सब विधवा क्षत्राणियोंसे कहा—'देवियो ! तुम लोगोंमेंसे जो-जो सती-साध्वी स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके लोकको जाना चाहती हों, वे आलस्य त्यागकर तुरंत गङ्गाजीके जलमें गोता लगावें ।' उनकी बात सुनकर उनमें श्रद्धा रखनेवाली वे सती स्त्रियाँ अपने श्वशुर धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले गङ्गाजीके जलमें समा गयीं ॥ १७-२० ॥

विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।
समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशाम्पते ॥ २१ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ वे सभी साध्वी स्त्रियाँ मनुष्य-शरीरसे छुटकारा पाकर अपने-अपने पतिके साथ जा मिलीं ॥ २१ ॥

एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः पतिव्रताः ।
प्रविश्य क्षत्रिया मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार क्रमशः वे सभी शीलवती पतिव्रता क्षत्राणियाँ इस शरीरसे मुक्त हो पतिलोकको चली गयीं ॥ २२ ॥

दिव्यरूपसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा यथाऽऽसां पतयस्तथा ॥ २३ ॥

जैसे उनके पति थे, उसी प्रकार वे भी दिव्यरूपसे सम्पन्न हो गयीं । दिव्य आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाने लगे तथा उन्होंने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर लिये ॥

ताः शीलगुणसम्पन्ना विमानस्था गतक्लमाः ।
सर्वाः सर्वगुणोपेताः स्वस्थानं प्रतिपेदिरे ॥ २४ ॥

शील और सद्गुणसे सम्पन्न हुई वे सभी क्षत्रियबालाएँ समस्त सद्गुणोंसे अलंकृत हो विमानपर बैठकर अपने-अपने योग्य स्थानको चली गयीं । उनका सारा कष्ट दूर हो गया ॥

यस्य यस्य तु यः कामस्तस्मिन् काले बभूव ह ।
तं तं विसृष्टवान् व्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥ २५ ॥

उस समय जिसके-जिसके मनमें जो-जो कामना उत्पन्न हुई, धर्मवत्सल वरदायक भगवान् व्यासने वह सब पूर्ण की ॥

तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः ।
जहृषुर्मुदिताश्चासन् नानादेशगता अपि ॥ २६ ॥

संग्राममें मरे हुए राजाओंके पुनरागमनका वृत्तान्त सुनकर भिन्न-भिन्न देशके मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ ॥ २६ ॥

प्रियैः समागमं तेषां यः सम्यक् शृणुयान्नरः ।
प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य चैव सः ॥ २७ ॥

जो मनुष्य कौरव-पाण्डवोंके प्रियजन समागमका यह

वृत्तान्त भलीभाँति सुनेगा, उसे इहलोक और परलोकमें भी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥

इष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।
यश्चैतच्छ्रावयेद् विद्वान् विदुषो धर्मवित्तमः ॥ २८ ॥
स यशः प्राप्नुयाल्लोके परत्र च शुभां गतिम् ।

इतना ही नहीं, उसे अनायास ही इष्ट बन्धुओंसे मिलन होगा तथा कोई दुःख-शोक नहीं सतावेगा । धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ जो विद्वान् विद्वानोंको यह प्रसङ्ग सुनायेगा, वह इस लोकमें यश और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करेगा ॥ २८½ ॥

स्वाध्याययुक्ता मनुजास्तपोयुक्ताश्च भारत ॥ २९ ॥
साध्वाचारा दमोपेता दाननिर्धूतकल्मषाः ।
ऋजवः शुचयः शान्ता हिंसानृतविवर्जिताः ॥ ३० ॥
आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च धृतिमन्तश्च मानवाः ।
श्रुत्वाऽऽश्चर्यमिदं पर्व ह्यवाप्स्यन्ति परां गतिम् ॥ ३१ ॥

भारत ! जो मनुष्य स्वाध्यायपरायण, तपस्वी, सदाचारी, जितेन्द्रिय, दानके द्वारा पापरहित, सरल, शुद्ध, शान्त, हिंसा और असत्यसे दूर, आस्तिक, श्रद्धालु और धैर्यवान् हैं, वे इस आश्चर्यजनक पर्वको सुनकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे ।२९-३१।

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि स्त्रीणां स्वस्वपतिलोकगमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें स्त्रियोंका अपने-अपने पतिके लोकमें गमनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है, जनमेजयकी इस शङ्काका वैशम्पायनद्वारा समाधान

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान् हृष्टोऽभूज्जनमेजयः ।
पितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १ ॥

सौति कहते हैं—अपने समस्त पितामहोंके इस प्रकार परलोकसे आने और जानेका वृत्तान्त सुनकर विद्वान् राजा जनमेजय बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

अब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति ।
कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २ ॥

प्रसन्न होकर वे पुनरागमनके विषयमें संदेह करते हुए बोले—'भला, जिन्होंने अपने शरीरका परित्याग कर दिया है, उन पुरुषोंका उसी रूपमें दर्शन कैसे हो सकता है ?' ॥

इत्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो व्यासशिष्यः प्रतापवान् ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रतापी व्यासशिष्य विप्रवर वैशम्पायनने उन राजा जनमेजयसे कहा ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः ।
कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—नरेश्वर ! यह सिद्धान्त है कि समस्त कर्मोंका फल भोग किये बिना उनका नाश नहीं होता, जीवात्माको जो शरीर और नाना प्रकारकी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब कर्मजनित ही हैं ॥ ४ ॥

महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।
तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यताम् ॥ ५ ॥

भूतनाथ भगवान्‌के आश्रयसे पाँचों महाभूत हमारे शरीरोंकी अपेक्षा नित्य हैं । उन नित्य महाभूतोंका अनित्य शरीरोंके साथ संसार-दशामें नित्य संयोग है । अनित्य शरीरोंका नाश होनेपर इन नित्य महाभूतोंका उनसे वियोगमात्र होता है, विनाश नहीं ॥ ५ ॥

अनायासकृतं कर्म सत्यः श्रेष्ठः फलागमः ।
आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्नुते ॥ ६ ॥

कर्तृत्व-अभिमानके बिना अनायास किये जानेवाले कर्मका जो फल प्राप्त होता है, वह सत्य और श्रेष्ठ है अर्थात् मुक्तिदायक है । कर्तृत्व-अभिमान और परिश्रमपूर्वक किये हुए कर्मोंसे बँधा हुआ जीवात्मा सुख-दुःखका उपभोग करता है ॥

अविनाश्यस्तथायुक्तः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।
भूतानामात्मको भावो यथासौ न वियुज्यते ॥ ७ ॥

क्षेत्रज्ञ इस प्रकार कर्मोंसे संयुक्त होकर भी वास्तवमें अविनाशी ही है, यह निश्चित है । किंतु भूतोंके साथ तादात्म्य-भाव स्वीकार कर लेनेके कारण वह ज्ञानके बिना उनसे अलग नहीं हो पाता ॥ ७ ॥

यावन्न क्षीयते कर्म तावत् तस्य स्वरूपता ।
क्षीणकर्मा नरो लोके रूपान्यत्वं नियच्छति ॥ ८ ॥

जबतक शरीरके प्रारब्ध कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक उस जीवकी उस शरीरसे एकरूपता रहती है । जब कर्मोंका

क्षय हो जाता है, तब वह दूसरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

नानाभावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहताः ।
भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानताम् ॥ ९ ॥

भूत-इन्द्रिय आदि नाना प्रकारके पदार्थ शरीरको पाकर एकत्वको प्राप्त हो गये हैं। जो देह आदिको आत्मासे पृथक् जानते हैं, उन योगियोंके लिये वे सारे पदार्थ नित्य आत्मस्वरूप हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अश्वमेधे श्रुतिश्चेयमश्वसंज्ञपनं प्रति ।
लोकान्तरगता नित्यं प्राणा नित्यं शरीरिणाम् ॥ १० ॥

अश्वमेध यज्ञमें जब अश्वका वध किया जाता है, उस समय जो 'सूर्यं ते चक्षुः वातं प्राणः (तुम्हारे नेत्र सूर्यको और प्राण वायुको प्राप्त हों)' इत्यादि मन्त्र पढ़े जाते हैं, उनसे यह सूचित होता है कि देहधारियोंके प्राण—इन्द्रियाँ निश्चितरूपसे सर्वदा लोकान्तरमें स्थित होती हैं। (अतः परलोकमें गये हुए जीवोंका वैसे ही रूपसे इस लोकमें पुनः प्रकट हो जाना असम्भव नहीं है)॥१० ॥

अहं हितं वदाम्येतत् प्रियं चेत् तव पार्थिव ।
देवयाना हि पन्थानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे ॥ ११ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हें प्रिय लगे तो मैं तुम्हारे हितकी बात बताता हूँ। यज्ञ आरम्भ करते समय तुमने देवयान-मार्गोंकी बात सुनी होगी। वे ही तुम्हारे योग्य हैं ॥ ११ ॥

आहृतो यत्र यज्ञस्ते तत्र देवा हितास्तव ।
यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः ॥ १२ ॥

जब तुमने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, तभीसे देवतालोग तुम्हारे हितैषी सुहृद् हो गये। जब इस प्रकार देवता मित्रभावसे युक्त होते हैं, तब वे जीवोंको लोकान्तरकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होनेके कारण उनपर अनुग्रह करके उन्हें अभीष्ट लोकोंकी प्राप्ति करा देते हैं ॥ १२ ॥

गतिमन्तश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्त्युत ।
नित्येऽस्मिन् पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि पूरुषः ॥ १३ ॥
अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः ।
वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः ॥ १४ ॥

इसलिये नित्य जीव यज्ञोंद्वारा देवताओंकी आराधना करके लोकान्तरमें जानेकी शक्ति पाते हैं। जो यज्ञ नहीं करते, वे वैसे नहीं हो पाते। यह पाञ्चभौतिक वर्ग नित्य है और आत्मा भी नित्य है। ऐसी दशामें जो मनुष्य उस आत्माका अनेक प्रकारके देहोंसे सम्बन्ध तथा उनके जन्म और नाशसे आत्माका भी जन्म और नाश समझता है, उसकी बुद्धि व्यर्थ है। इसी प्रकार किसीसे किसीका वियोग हो जानेपर जो अत्यन्त शोक करता है, वह भी मेरे मतमें बालक ही है ॥ १३-१४ ॥

वियोगे दोषदर्शी यः संयोगं स विसर्जयेत् ।
असङ्गे सङ्गमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम् ॥ १५ ॥

जो वियोगमें दोष देखता है, वह संयोगका त्याग कर दे, क्योंकि असंग आत्मामें संगम या संयोग नहीं है। जो उसमें संयोगका आरोप करता है, उसीको इस भूतलपर वियोगका दुःख सहना पड़ता है ॥ १५ ॥

परापरज्ञस्त्वपरो नाभिमानादुदीरितः ।
अपरज्ञः परां बुद्धिं ज्ञात्वा मोहाद् विमुच्यते ॥ १६ ॥

दूसरा जो अपने-परायेके ज्ञानमें ही उलझा रहता है, वह अभिमानसे ऊपर नहीं उठ पाता। जो किसीके लिये पराया नहीं है, उस परमात्माको जाननेवाला पुरुष उत्तम बुद्धिको पाकर मोहसे मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता ॥ १७ ॥

वह मुक्त पुरुष अव्यक्तसे ही प्रकट हुआ था और पुनः अव्यक्तमें ही लीन हो गया। न मैं उसे जानता हूँ* न वह मुझे †। (फिर तुम भी वैसे ही बन्धनमुक्त क्यों न हो गये ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं।) मुझमें वैराग्य नहीं है (पर वैराग्य ही मोक्षका मुख्य साधन है।) ॥ १७ ॥

येन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः ।
तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्नुते ।
मानसं मनसाऽऽप्नोति शरीरं च शरीरवान् ॥ १८ ॥

यह पराधीन जीव जिस-जिस शरीरसे कर्म करता है, उस-उस शरीरसे उसका फल अवश्य भोगता है। मानस कर्मका फल मनसे और शारीरिक कर्मका फल शरीर धारण करके भोगता है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयं प्रति वैशम्पायनवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके प्रति वैशम्पायनका वाक्यविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

* क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं रहा।

† क्योंकि उसके लिये मुझे जाननेका कोई कारण नहीं रहा।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना

वैशम्पायन उवाच

अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान् दर्शनं प्रतिलब्धवान्।
ऋषेः प्रसादात् पुत्राणां स्वरूपाणां कुरूद्वह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रने पहले कभी अपने पुत्रोंको नहीं देखा था, परंतु महर्षि व्यासके प्रसादसे उन्होंने उनके स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लिया ॥ १ ॥

स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदं तथा।
अवाप्तवान्नरश्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च ॥ २ ॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात्।
धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चैव तपस्विनम् ॥ ३ ॥

उन नरश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने राजधर्म, ब्रह्मविद्या तथा बुद्धिका यथार्थ निश्चय भी पा लिया था। महाज्ञानी विदुरने तो अपने तपोबलसे सिद्धि प्राप्त की थी; परंतु धृतराष्ट्रने तपस्वी व्यासका आश्रय लेकर सिद्धिलाभ किया था ॥ २-३ ॥

जनमेजय उवाच

ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत् पितरं यदि।
तद्रूपवेषवयसं श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ४ ॥
प्रियं मे स्यात् कृतार्थश्च स्यामहं कृतनिश्चयः।
प्रसादादृषिमुख्यस्य मम कामः समृध्यताम् ॥ ५ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! यदि वरदायक भगवान् व्यास मुझे भी मेरे पिताका उसी रूप, वेश और अवस्थामें दर्शन करा दें तो मैं आपकी बतायी हुई सारी बातोंपर विश्वास कर सकता हूँ। उस अवस्थामें मैं कृतार्थ होकर दृढ़ निश्चयको प्राप्त हो जाऊँगा। इससे मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सिद्ध होगा। आज मुनिश्रेष्ठ, व्यासजीके प्रसादसे मेरी इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिये ॥ ४-५ ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तवचने तस्मिन् नृपे व्यासः प्रतापवान्।
प्रसादमकरोद् धीमानानयच्च परीक्षितम् ॥ ६ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार कहनेपर परम प्रतापी बुद्धिमान् महर्षि व्यासने उनपर भी कृपा की। उन्होंने राजा परीक्षित्को उस यज्ञभूमिमें बुला दिया ॥ ६ ॥

ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः।
श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ॥ ७ ॥

स्वर्गसे उसी रूप और अवस्थामें, आये हुए अपने तेजस्वी पिता राजा परीक्षित्का भूपाल जनमेजयने दर्शन किया ॥ ७ ॥

शमीकं च महात्मानं पुत्रं तं चास्य शृङ्गिणम्।
अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८ ॥

उनके साथ ही महात्मा शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी-ऋषि भी थे। राजा परीक्षित्के जो मन्त्री थे, उनका भी जनमेजयने दर्शन किया ॥ ८ ॥

ततः सोऽवभृथे राजा मुदितो जनमेजयः।
पितरं स्नापयामास स्वयं सस्नौ च पार्थिवः ॥ ९ ॥
(परीक्षिदपि तत्रैव बभूव स तिरोहितः।)

तदनन्तर राजा जनमेजयने प्रसन्न होकर यज्ञान्तस्नानके समय पहले अपने पिताको नहलाया; फिर स्वयं स्नान किया। फिर राजा परीक्षित् वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ९ ॥

स्नात्वा स नृपतिर्विप्रमास्तीकमिदमब्रवीत्।
यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुसुतं तदा ॥ १० ॥

स्नान करके उन नरेशने यायावरकुलमें उत्पन्न जरत्कारुकुमार आस्तीक मुनिसे इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः।
यद्द्यायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥ ११ ॥

'आस्तीकजी ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, मेरा यह यज्ञ नाना प्रकारके आश्चर्योंका केन्द्र हो रहा है; क्योंकि आज मेरे शोकोंका नाश करनेवाले ये पिताजी भी यहाँ उपस्थित हो गये थे' ॥ ११ ॥

आस्तीक उवाच

ऋषिर्द्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः।
यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥ १२ ॥

आस्तीक बोले—कुरुकुलश्रेष्ठ ! राजन् ! जिसके यज्ञमें तपस्याकी निधि पुरातन ऋषि महर्षि द्वैपायन व्यास विराजमान हों, उसकी तो दोनों लोकोंमें विजय है ॥ १२ ॥

श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन।
सर्पाश्च भस्मसान्नीता गताश्च पदवीं पितुः ॥ १३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुमने यह विचित्र उपाख्यान सुना। तुम्हारे शत्रु सर्पगण भस्म होकर तुम्हारे पिताकी ही पदवीको पहुँच गये ॥ १३ ॥

कथंचित् तक्षको मुक्तः सत्यत्वात् तव पार्थिव।
ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिर्दृष्टा महात्मनः ॥ १४ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हारी सत्यपरायणताके कारण किसी तरह तक्षकके प्राण बच गये हैं। तुमने समस्त ऋषियोंकी

पूजा की और महात्मा व्यासकी कहाँतक पहुँच है, इसे प्रत्यक्ष देख लिया ॥ १४ ॥

प्राप्तः सुविपुलो धर्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् ।
विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५ ॥

इस पापनाशक कथाको सुनकर तुम्हें महान् धर्मकी प्राप्ति हुई है। उदार हृदयवाले संतोंके दर्शनसे तुम्हारे हृदयकी गाँठ खुल गयी—तुम्हारा सारा संशय दूर हो गया॥१५॥

ये च पक्षधरा धर्मे सद्वृत्तरुचयश्च ये ।
यान् दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्या नमस्क्रिया ॥ १६ ॥

जो लोग धर्मके पक्षपाती हैं, जो सदाचारके पालनमें रुचि रखते हैं तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन महात्माओंको अब तुम्हें नमस्कार करना चाहिये ॥ १६ ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात् स राजा जनमेजयः ।
पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥

सौति कहते हैं—शौनक ! विप्रवर आस्तीकके मुखसे यह बात सुनकर राजा जनमेजयने उन महर्षि व्यासका बार-बार पूजन और सत्कार किया ॥ १७ ॥

पप्रच्छ तमृषिं चापि वैशम्पायनमच्युतम् ।
कथावशेषं धर्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८ ॥

साधुशिरोमणे ! तत्पश्चात् उन धर्मज्ञ नरेशने धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले महर्षि वैशम्पायनसे पुनः धृतराष्ट्रके वनवासकी अवशिष्ट कथा पूछी ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयस्य स्वपितृदर्शने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके द्वारा अपने पिताका दर्शनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना

जनमेजय उवाच

दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान् सानुबन्धान् जनाधिपः ।
धृतराष्ट्रः किमकरोद् राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरने परलोकसे आये हुए पुत्रों, पौत्रों तथा सगे-सम्बन्धियोंके दर्शन करके क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पुत्राणां दर्शनं नृप ।
वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—नरेश्वर ! मरे हुए पुत्रोंका दर्शन एक महान् आश्चर्यकी घटना थी। उसे देखकर राजर्षि धृतराष्ट्रका दुःख-शोक दूर हो गया। वे फिर अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २ ॥

इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः ।
प्रतिजग्मुर्यथाकामं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३ ॥

दूसरे सब लोग तथा महर्षिगण धृतराष्ट्रकी अनुमति ले अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले गये ॥ ३ ॥

पाण्डवास्तु महात्मानो लघुभूयिष्ठसैनिकाः ।
पुनर्जग्मुर्महात्मानं सदारास्तं महीपतिम् ॥ ४ ॥

महात्मा पाण्डव छोटे-बड़े सैनिकों और अपनी स्त्रियोंके साथ पुनः महामना राजा धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे गये ॥ ४ ॥

तत्राश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ५ ॥

उस समय लोकपूजित बुद्धिमान् सत्यवतीनन्दन ब्रह्मर्षि व्यास भी उस आश्रमपर गये तथा इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन ।
श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥
श्रद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम् ।
धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः ॥ ७ ॥
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ।

'कौरवनन्दन महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुमने श्रद्धा और कुलमें बढ़े-चढ़े, वेद-वेदाङ्गवेत्ता, ज्ञानवृद्ध, पुण्यकर्मा एवं धर्मज्ञ प्राचीन महर्षियोंके मुखसे नाना प्रकारकी कथाएँ सुनी हैं; अतः अपने मनसे शोकको निकाल दो; क्योंकि विद्वान् पुरुष प्रारब्धके विधानमें दुःख नहीं मानते हैं ॥ ६-७½ ॥

श्रुतं देवरहस्यं ते नारदाद् देवदर्शनात् ॥ ८ ॥
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् ।
यथा दृष्टास्त्वया पुत्रास्तथा कामविहारिणः ॥ ९ ॥

'तुमने देवदर्शी नारद मुनिसे देवताओंका गुप्त रहस्य

भी सुन लिया है। वे सब वीर क्षत्रिय धर्मके अनुसार शास्त्रोंसे पवित्र हुई शुभ गतिको प्राप्त हुए हैं। जैसा कि तुमने देखा है, तुम्हारे सभी पुत्र इच्छानुसार विहार करनेवाले स्वर्गवासी हुए हैं ॥ ८-९ ॥

युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥ १० ॥

'ये बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर अपने समस्त भाइयों, घरकी स्त्रियों और सुहृदोंके साथ स्वयं तुम्हारी सेवामें लगे हुए हैं ॥ १० ॥

विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम्।
मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ॥ ११ ॥

'अब इन्हें विदा कर दो। ये जायँ और अपने राज्यका काम सँभालें। इन लोगोंको वनमें रहते एक महीनेसे अधिक हो गया ॥ ११ ॥

एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप।
बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद् राज्यं नाम कुरूद्वह ॥ १२ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! नरेश्वर! राज्यके बहुत-से शत्रु होते हैं; अतः इसकी सदा ही यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये' ॥ १२ ॥

इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा।
युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अनुपम तेजस्वी व्यासजीके ऐसा कहनेपर प्रवचनकुशल कुरुराज धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १३॥

अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह।
त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते ॥ १४ ॥

'अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने भाइयोंसहित मेरी बात सुनो। भूपाल! तुम्हारे प्रसादसे अब हमलोगोंको किसी प्रकारका शोक कष्ट नहीं दे रहा है ॥ १४ ॥

रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये।
नाथेनानुगतो विद्वन् प्रियेषु परिवर्तिना ॥ १५ ॥
प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि।
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ १६ ॥

'बेटा! तुम्हारे साथ रहकर तथा तुम-जैसे रक्षकसे सुरक्षित होकर मैं उसी तरह आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ, जैसे पहले हस्तिनापुरमें करता था। विद्वन्! प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहनेवाले तुम्हारे द्वारा मुझे पुत्रका फल प्राप्त हो गया। तुमपर मेरा बहुत प्रेम है। महाबाहो! पुत्र! मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं है; अतः तुम राजधानीको जाओ, अब विलम्ब न करो ॥ १५-१६ ॥

भवन्तं चेह सम्प्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते।
तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः ॥ १७ ॥

'तुमको यहाँ देखकर मेरी तपस्यामें बाधा पड़ रही है। यह शरीर तपस्यामें लगा दिया था, परंतु तुम्हें देखकर फिर इसकी रक्षा करने लगा ॥ १७ ॥

मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने।
मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्तयिष्यतः ॥ १८ ॥

बेटा! मेरी ही तरह तुम्हारी ये दोनों माताएँ भी व्रत-धारणपूर्वक सूखे पत्ते चबाकर रहा करती हैं। अब ये अधिक दिनोंतक जीवन धारण नहीं कर सकतीं ॥ १८ ॥

दुर्योधनप्रभृतयो दृष्टा लोकान्तरं गताः।
व्यासस्य तपसो वीर्याद् भवतश्च समागमात् ॥ १९ ॥
प्रयोजनं च निर्वृत्तं जीवितस्य ममानघ।
उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ २० ॥

'तुम्हारे समागम और व्यासजीके तपोबलसे मुझे अपने परलोकवासी पुत्र दुर्योधन आदिके दर्शन हो गये; इसलिये मेरे जीवित रहनेका प्रयोजन पूरा हो गया। अनघ! अब मैं कठोर तपस्यामें संलग्न होऊँगा। तुम इसके लिये मुझे अनुमति दे दो ॥ १९-२० ॥

त्वय्यद्य पिण्डः कीर्तिश्च कुलं चेदं प्रतिष्ठितम्।
श्वो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ २१ ॥

'महाबाहो! आजसे पितरोंके पिण्डका, सुयशका और इस कुलका भार भी तुम्हारे ही ऊपर है। पुत्र! आज या कल अवश्य चले जाओ; विलम्ब न करना ॥ २१ ॥

राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ।
संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता विभो ॥ २२ ॥

'भरतश्रेष्ठ! प्रभो! तुमने राजनीति बहुत बार सुनी है; अतः तुम्हें संदेश देने लायक कोई बात मुझे नहीं दिखायी देती। तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तवचनं तं तु नृपो राजानमब्रवीत्।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा धृतराष्ट्रने वैसी बात कही, तब युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार कहा—'धर्मके ज्ञाता महाराज! आप मेरा परित्याग न करें, क्योंकि मैं सर्वथा निरपराध हूँ ॥ २३ ॥

कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा।
भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः ॥ २४ ॥

'मेरे ये सब भाई और सेवक इच्छा हो तो चले जायँ; किंतु मैं नियम और व्रतका पालन करता हुआ आपकी तथा इन दोनों माताओंकी सेवा करूँगा ॥ २४ ॥

तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च ।
त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे ॥ २५ ॥
गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत् पूजिता वयम् ।
राजा यदाह तत् कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥ २६ ॥

यह सुनकर गान्धारीने कहा—'बेटा ! ऐसी बात न कहो । मैं जो कहती हूँ उसे सुनो । यह सारा कुरुकुल तुम्हारे ही अधीन है । मेरे श्वशुरका पिण्ड भी तुमपर ही अवलम्बित है; अतः पुत्र ! तुम जाओ, तुमने हमारे लिये जितना किया है, वही बहुत है । तुम्हारे द्वारा हमलोगोंका स्वागत-सत्कार भलीभाँति हो चुका है । इस समय महाराज जो आज्ञा दे रहे हैं, वही करो; क्योंकि पिताका वचन मानना तुम्हारा कर्तव्य है' ॥ २५-२६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत ।
स्नेहबाष्पाकुले नेत्रे प्रमृज्य रुदतीं वचः ॥ २७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! गान्धारीके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने अपने आँसूभरे नेत्रोंको पोंछकर रोती हुई कुन्तीसे कहा—॥ २७ ॥

विसर्जयति मां राजा गान्धारी च यशस्विनी ।
भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि दुःखितः ॥ २८ ॥

'माँ ! राजा और यशस्विनी गान्धारीदेवी मुझे घर लौटनेकी आज्ञा दे रही हैं; किंतु मेरा मन आपमें लगा हुआ है । जानेका नाम सुनकर ही मैं बहुत दुखी हो जाता हूँ । ऐसी दशामें मैं कैसे जा सकूँगा ? ॥ २८ ॥

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ २९ ॥

'धर्मचारिणि ! मैं आपकी तपस्यामें विघ्न डालना नहीं चाहता; क्योंकि तपसे बढ़कर कुछ नहीं है । (निष्काम भावपूर्वक) तपस्यासे परब्रह्म परमात्माकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥

ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा ।
तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा ॥ ३० ॥

'रानी माँ ! अब मेरा मन भी पहलेकी तरह राजकाजमें नहीं लगता है । हर तरहसे तपस्या करनेको ही जी चाहता है॥

शून्येयं च मही कृत्स्ना न मे प्रीतिकरी शुभे ।
बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा ॥ ३१ ॥

'शुभे ! यह सारी पृथ्वी मेरे लिये सूनी हो गयी है; अतः इससे मुझे प्रसन्नता नहीं होती । हमारे सगे-सम्बन्धी नष्ट हो गये; अब हमारे पास पहलेकी तरह सैन्यबल भी नहीं है ॥

पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रावशेषिताः ।
न तेषां कुलकर्तारं कंचित् पश्याम्यहं शुभे ॥ ३२ ॥

'पाञ्चालोंका तो सर्वथा नाश ही हो गया । उनकी कथामात्र शेष रह गयी है । शुभे ! अब मुझे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो उनके वंशको चलानेवाला हो ॥ ३२ ॥

सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे ।
अवशिष्टाश्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ॥ ३३ ॥

'प्रायः द्रोणाचार्यने ही सबको समराङ्गणमें भस्म कर डाला था । जो थोड़े-से बच गये थे, उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रातको सोते समय मार डाला ॥ ३३ ॥

चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः ।
केवलं वृष्णिचक्रं च वासुदेवपरिग्रहात् ॥ ३४ ॥

'हमारे सम्बन्धी चेदि और मत्स्यदेशके लोग भी जैसे पहले देखे गये थे, वैसे ही अब नहीं रहे । केवल भगवान् श्रीकृष्णके आश्रयमें वृष्णिवंशी वीरोंका समुदाय अबतक सुरक्षित है ॥

यद् दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नार्थहेतुतः ।
शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्शनम् ॥ ३५ ॥
अविषह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः ।

'उसे ही देखकर अब मैं केवल धर्मसम्पादनकी इच्छासे यहाँ रहना चाहता हूँ, धनके लिये नहीं । तुम हम सब लोगोंकी ओर कल्याणमयी दृष्टिसे देखो; क्योंकि तुम्हारा दर्शन हमलोगोंके लिये अब दुर्लभ हो जायगा । कारण कि राजा धृतराष्ट्र अब बड़ी कठोर और असह्य तपस्या आरम्भ करेंगे॥'

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः ।

यह सुनकर योद्धाओंके स्वामी महाबाहु सहदेव अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले ॥

नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥
प्रतियातु भवान् क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं विभो ।
इहैव शोषयिष्यामि तपसेदं कलेवरम् ॥ ३८ ॥
पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञो मात्रोस्तथानयोः ।

'भरतश्रेष्ठ ! मुझमें माताजीको छोड़कर जानेका साहस नहीं है । प्रभो ! आप शीघ्र लौट जायँ । मैं यहीं रहकर तपस्या करूँगा और तपके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगा । मैं यहाँ महाराज और इन दोनों माताओंके चरणोंकी सेवामें ही अनुरक्त रहना चाहता हूँ' ॥ ३७-३८½ ॥

तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम् ॥ ३९ ॥
गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम ।
आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः ॥ ४० ॥

यह सुनकर कुन्तीने महाबाहु सहदेवको छातीसे लगा

लिया और कहा—'बेटा ! ऐसा न कहो। तुम मेरी बात मानो और चले जाओ। पुत्रो ! तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों और तुम सदा स्वस्थ रहो ॥ ३९-४० ॥

उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते।
त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ॥ ४१ ॥
तस्मात् पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं च नः प्रभो।

'तुम लोगोंके रहनेसे हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न पड़ेगा। मैं तुम्हारे स्नेहपाशमें बँधकर उत्तम तपस्यासे गिर जाऊँगी, अतः सामर्थ्यशाली पुत्र ! चले जाओ। अब हमलोगोंकी आयु बहुत थोड़ी रह गयी है' ॥ ४१½ ॥

एवं संस्तम्भितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ॥ ४२ ॥
सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः।

राजेन्द्र ! इस तरह अनेक प्रकारकी बातें कहकर कुन्तीने सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरके मनको धीरज बँधाया ॥ ४२½ ॥

ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन्।

माता तथा धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाकर कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंने कुरुकुलतिलक धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उनसे विदा लेनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ ४३½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

राज्यं प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः ॥ ४४ ॥
अनुज्ञातास्त्वया राजन् गमिष्यामो विकल्मषाः।

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! आपके आशीर्वादसे आनन्दित होकर हमलोग कुशलपूर्वक राजधानीको लौट जायँगे। राजन् ! इसके लिये आप हमें आज्ञा दें। आपकी आज्ञा पाकर हम पापरहित हो यहाँसे यात्रा करेंगे ॥ ४४½ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना ॥ ४५ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम्।

महात्मा धर्मराजके ऐसा कहनेपर राजर्षि धृतराष्ट्रने कुरुनन्दन युधिष्ठिरका अभिनन्दन करके उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ४५½ ॥

भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः ॥ ४६ ॥
स चास्य सम्यङ्मेधावी प्रत्यपद्यत वीर्यवान्।

इसके बाद राजा धृतराष्ट्रने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको सान्त्वना दी। बुद्धिमान् एवं पराक्रमी भीमसेनने भी उनकी बातोंको यथार्थरूपसे ग्रहण किया—हृदयसे स्वीकार किया ॥

अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च।
गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः ॥ ४८ ॥
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम्।
चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥ ४९ ॥
पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम्।

तदनन्तर धृतराष्ट्रने अर्जुन और पुरुषप्रवर नकुल-सहदेवको छातीसे लगा उनका अभिनन्दन करके विदा किया। इसके बाद उन पाण्डवोंने गान्धारीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ली। फिर माता कुन्तीने उन्हें हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। जैसे बछड़े अपनी माताका दूध पीनेसे रोके जानेपर बार-बार उसकी ओर देखते हुए उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार पाण्डवोंने राजा तथा माताकी ओर बार-बार देखते हुए उन नरेशकी परिक्रमा की ॥ ४७—४९½ ॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ५० ॥
न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः।
श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः ॥ ५१ ॥
संदिष्टाश्चेति कर्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह।

द्रौपदी आदि समस्त कौरवस्त्रियोंने अपने श्वशुरको न्यायपूर्वक प्रणाम किया। फिर दोनों सासुओंने उन्हें गलेसे लगाकर आशीर्वाद दे जानेकी आज्ञा दी और उन्हें उनके कर्तव्यका उपदेश भी दिया। तत्पश्चात् वे अपने पतियोंके साथ चली गयीं ॥ ५०-५१½ ॥

ततः प्रजज्ञे निनदः सूतानां युज्यतामिति ॥ ५२ ॥
उष्ट्राणां क्रोशतां चापि हयानां हेषतामपि।
ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः।

नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात् सबान्धवः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर सारथियोंने 'रथ जोतो, रथ जोतो' की पुकार मचायी। फिर ऊँटोंके चिग्घाड़ने और घोड़ोंके हिनहिनानेकी आवाज हुई। इसके बाद अपने घरकी स्त्रियों, भाइयों और सैनिकोंके साथ राजा युधिष्ठिर पुनः हस्तिनापुर नगरको लौट आये ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि युधिष्ठिरप्रत्यागमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें युधिष्ठिरका प्रत्यागमनविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

(नारदागमनपर्व)

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक

वैशम्पायन उवाच

द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया।
देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डवोंको तपोवनसे आये जब दो वर्ष व्यतीत हो गये, तब एक दिन देवर्षि नारद दैवेच्छासे घूमते-घामते राजा युधिष्ठिरके यहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः ॥ २ ॥

महाबाहु कुरुराज युधिष्ठिरने नारदजीकी पूजा करके उन्हें आसनपर बिठाया। जब वे आसनपर बैठकर थोड़ी देर विश्राम कर चुके, तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार पूछा ॥ २ ॥

चिरात्तु नानुपश्यामि भगवन्तमुपस्थितम्।
कच्चित् ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम्॥ ३ ॥

'भगवन्! इधर दीर्घकालसे मैं आपकी उपस्थिति यहाँ नहीं देखता हूँ। ब्रह्मन्! कुशल तो है न? अथवा आपको शुभकी ही प्राप्ति होती है न? ॥ ३ ॥

के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते।
तद् ब्रूहि द्विजमुख्य त्वं त्वं ह्यस्माकं परा गतिः॥ ४ ॥

'विप्रवर! इस समय आपने किन-किन देशोंका निरीक्षण किया है? बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? क्योंकि आप हमलोगोंकी परम गति हैं' ॥ ४ ॥

नारद उवाच

चिरदृष्टोऽसि मेत्येवमागतोऽहं तपोवनात्।
परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा—नरेश्वर! बहुत दिन पहले मैंने तुम्हें देखा था, इसीलिये मैं तपोवनसे सीधे यहाँ चला आ रहा हूँ। रास्तेमें मैंने बहुत-से तीर्थों और गङ्गाजीका भी दर्शन किया है ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः।
धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! गङ्गाके किनारे रहनेवाले मनुष्य मेरे पास आकर कहा करते हैं कि महामनस्वी महाराज धृतराष्ट्र इन दिनों बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः।
गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः ॥ ७ ॥

क्या आपने भी उन्हें देखा है? वे कुरुश्रेष्ठ वहाँ कुशलसे तो हैं न? गान्धारी, कुन्ती तथा सूतपुत्र संजय भी सकुशल हैं न? ॥ ७ ॥

कथं च वर्तते चाद्य पिता मम स पार्थिवः।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः ॥ ८ ॥

आजकल मेरे ताऊ राजा धृतराष्ट्र कैसे रहते हैं? भगवन्! यदि आपने उन्हें देखा हो तो मैं उनका समाचार सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नारद उवाच

स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम्।
यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—महाराज! मैंने उस तपोवनमें जो कुछ देखा और सुना है, वह सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बतला रहा हूँ। तुम स्थिरचित्त होकर सुनो ॥ ९ ॥

वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन।
कुरुक्षेत्रात् पिता तुभ्यं गङ्गाद्वारं ययौ नृप ॥ १० ॥

गान्धार्या सहितो धीमान् वध्वा कुन्त्या समन्वितः।
संजयेन च सूतेन साग्निहोत्रः सयाजकः ॥ ११ ॥

कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले नरेश ! जब तुमलोग वनसे लौट आये, तब तुम्हारे बुद्धिमान् ताऊ राजा धृतराष्ट्र गान्धारी, बहू कुन्ती, सूत सञ्जय, अग्निहोत्र और पुरोहितके साथ कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) को चले गये १०-११

आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः।
वीटां मुखे समाधाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः॥ १२ ॥

वहाँ जाकर तपस्याके धनी तुम्हारे ताऊने कठोर तपस्या आरम्भ की। वे मुँहमें पत्थरका टुकड़ा रखकर वायुका आहार करते और मौन रहते थे ॥ १२ ॥

वने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः।
त्वगस्थिमात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः ॥ १३ ॥

उस वनमें जितने ऋषि रहते थे, वे लोग उनका विशेष सम्मान करने लगे। महातपस्वी धृतराष्ट्रके शरीरपर चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था। उस अवस्थामें उन्होंने छः महीने व्यतीत किये ॥ १३ ॥

गान्धारी तु जलाहारा कुन्ती मासोपवासिनी।
संजयः षष्ठभुक्तेन वर्तयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत ! गान्धारी केवल जल पीकर रहने लगीं। कुन्ती-देवी एक महीनेतक उपवास करके एक दिन भोजन करती थीं और संजय छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके तीसरे दिन संध्याको आहार ग्रहण करते थे ॥ १४॥

अग्नींस्तु याजकास्तत्र जुहुवुर्विधिवत् प्रभो।
दृश्यतोऽदृश्यतश्चैव वने तस्मिन् नृपस्य वै ॥ १५ ॥

प्रभो ! राजा धृतराष्ट्र उस वनमें कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण वहाँ उनके द्वारा स्थापित की हुई अग्निमें विधिवत् हवन करते रहते थे १५

अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः।
ते चापि सहिते देव्यौ संजयश्च तमन्वयुः ॥ १६ ॥

अब राजाका कोई निश्चित स्थान नहीं रह गया। वे वन-में सब ओर विचरते रहते थे। गान्धारी और कुन्ती ये दोनों देवियाँ साथ रहकर राजाके पीछे-पीछे लगी रहती थीं। संजय भी उन्हींका अनुसरण करते थे ॥ १६ ॥

संजयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च।
गान्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता ॥ १७ ॥

ऊँची-नीची भूमि आ जानेपर संजय ही राजा धृतराष्ट्रको चलाते थे और अनिन्दिता सती-साध्वी कुन्ती गान्धारीके लिये नेत्र बनी हुई थीं ॥ १७ ॥

ततः कदाचिद् गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः।
गङ्गायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर एक दिनकी बात है, बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ धृत-राष्ट्रने गङ्गाके कछारमें जाकर उनके जलमें डुबकी लगायी और स्नानके पश्चात् वे अपने आश्रमकी ओर चल पड़े ॥१८॥

अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान्।
ददाह तद् वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः ॥ १९ ॥

इतनेहीमें वहाँ बड़े जोरकी हवा चली। जिससे उस वनमें बड़ी भारी दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने चारों ओरसे उस सारे वनको जलाना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

दह्यत्सु मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समन्ततः।
वराहाणां च यूथेषु संश्रयत्सु जलाशयान् ॥ २० ॥

सब ओर मृगोंके झुंड और सर्प दग्ध होने लगे। वनैले सूअर भाग-भागकर जलाशयोंकी शरण लेने लगे ॥ २० ॥

समाविद्धे वने तस्मिन् प्राप्ते व्यसन उत्तमे।
निराहारतया राजन् मन्दप्राणविचेष्टितः ॥ २१ ॥
असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते।

राजन् ! सारा वन आगसे घिर गया और उन लोगोंपर बड़ा भारी संकट आ गया। उपवास करनेसे प्राणशक्ति क्षीण हो जानेके कारण राजा धृतराष्ट्र वहाँसे भागनेमें असमर्थ थे, तुम्हारी दोनों माताएँ भी अत्यन्त दुर्बल हो गयी थीं; अतः वे भी भागनेमें असमर्थ थीं ॥ २१½ ॥

ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात् ॥ २२ ॥
इदमाह ततः सूतं संजयं जयतां वरः।

तदनन्तर विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने उस अग्निको निकट आती जान सूत संजयसे इस प्रकार कहा— ॥ २२½ ॥

गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित् ॥ २३ ॥
वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम्।

'संजय ! तुम किसी ऐसे स्थानमें भाग जाओ, जहाँ यह दावाग्नि तुम्हें कदापि जला न सके। हमलोग तो अब यहीं अपनेको अग्निमें होम कर परम गति प्राप्त करेंगे' ॥ २३½ ॥

तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः ॥ २४ ॥
राजन् मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना।
न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः ॥ २५ ॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ संजयने अत्यन्त उद्विग्न होकर कहा—'राजन् ! इस लौकिक अग्निसे आपकी मृत्यु होना ठीक नहीं है, (आपके शरीरका दाह-संस्कार तो आहवनीय अग्निमें होना चाहिये।) किंतु इस समय इस दावानलसे छुटकारा पानेका कोई उपाय भी मुझे नहीं दिखायी देता २४-२५

यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति।
इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः ॥ २६ ॥

'अब इसके बाद क्या करना चाहिये—यह बतानेकी

कृपा करें ।' संजयके ऐसा कहनेपर राजाने फिर कहा—॥२६॥

नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात् स्वयम् ।
जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणम् ॥ २७ ॥
तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय मा चिरम् ।

'संजय ! हमलोग स्वयं गृहस्थाश्रमका परित्याग करके चले आये हैं, अतः हमारे लिये इस तरहकी मृत्यु अनिष्टकारक नहीं हो सकती । जल, अग्नि तथा वायुके संयोगसे अथवा उपवास करके प्राण त्यागना तपस्वियोंके लिये प्रशंसनीय माना गया है; इसलिये अब तुम शीघ्र यहाँसे चले जाओ । विलम्ब न करो' ॥ २७½ ॥

इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तथा ॥ २८ ॥
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत् तदा ।

संजयसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने मनको एकाग्र किया और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ वे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ २८½ ॥

संजयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ २९ ॥
उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो ।

उन्हें उस अवस्थामें देख मेधावी संजयने उनकी परिक्रमा की और कहा—'महाराज ! अब अपनेको योगयुक्त कीजिये ॥ २९½ ॥

ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद् वचः ॥ ३० ॥
सन्निरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा ।

महर्षि व्यासके पुत्र मनीषी राजा धृतराष्ट्रने संजयकी वह बात मान ली । वे इन्द्रियसमुदायको रोककर काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट हो गये ॥ ३०½ ॥

गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव ॥ ३१ ॥
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव ।
संजयस्तु महामात्रस्तस्माद् दावादमुच्यत ॥ ३२ ॥

इसके बाद महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता कुन्ती तथा तुम्हारे ताऊ राजा धृतराष्ट्र—ये तीनों ही दावाग्निमें जलकर भस्म हो गये; परंतु महामात्य संजय उस दावाग्निसे जीवित बच गये हैं ॥ ३१-३२ ॥

गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः ।
स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ॥ ३३ ॥
प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम् ।

मैंने संजयको गङ्गातटपर तापसोंसे घिरा देखा है । बुद्धिमान् और तेजस्वी संजय तापसोंको यह सब समाचार बताकर उनसे विदा ले हिमालयपर्वतपर चले गये ॥ ३३½ ॥

एवं स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ॥ ३४ ॥
गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! इस प्रकार महामनस्वी कुरुराज धृतराष्ट्र तथा तुम्हारी दोनों माताएँ गान्धारी और कुन्ती मृत्युको प्राप्त हो गयीं ॥ ३४½ ॥

यदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ॥ ३५ ॥
तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत ।

भरतनन्दन ! वनमें घूमते समय अकस्मात् राजा धृतराष्ट्र तथा उन देवियोंके मृत शरीर मेरी दृष्टिमें पड़े थे ॥ ३५½ ॥

ततस्तपोवने तस्मिन् समाजग्मुस्तपोधनाः ॥ ३६ ॥
श्रुत्वा राज्ञस्तदा निष्ठां न त्वशोचन् गतीश्च ते ।

तदनन्तर राजाकी मृत्युका समाचार सुनकर बहुत-से तपोधन उस तपोवनमें आये । उन्होंने उनके लिये कोई शोक नहीं किया; क्योंकि उन तीनोंकी सद्गतिके विषयमें उनके मनमें संशय नहीं था ॥ ३६½ ॥

तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत् पुरुषसत्तम ॥ ३७ ॥
यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव ।

पुरुषप्रवर पाण्डव ! जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्र तथा उन दोनों देवियोंका दाह हुआ है, यह सारा समाचार मैंने वहीं सुना था ॥ ३७½ ॥

न शोचितव्यं राजेन्द्र स्वतः स पृथिवीपतिः ॥ ३८ ॥
प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते ।

राजेन्द्र ! राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और तुम्हारी माता कुन्ती—तीनोंने स्वतः अग्निसंयोग प्राप्त किया था; अतः उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ॥ ३८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ३९ ॥
निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रका यह परलोकगमनका समाचार सुनकर उन सभी महामना पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ ॥ ३९½ ॥

अन्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत्॥ ४० ॥
पौराणां च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम्।

महाराज ! उनके अन्तःपुरमें उस समय महान् आर्तनाद होने लगा। राजाकी वैसी गति सुनकर पुरवासियोंमें भी हाहाकार मच गया ॥ ४०½ ॥

अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः॥ ४१ ॥
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन् मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः।

'अहो ! धिक्कार है !' इस प्रकार अपनी निन्दा करके राजा युधिष्ठिर बहुत दुखी हो गये तथा दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर अपनी माताको याद करके फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ४१½ ॥

भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते॥ ४२ ॥
अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः।
प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम्॥ ४३ ॥

भीमसेन आदि सभी भाई रोने लगे। महाराज ! कुन्तीकी वैसी दशा सुनकर अन्तःपुरमें भी रोने-बिलखनेका महान् शब्द सुनायी देने लगा ॥ ४२-४३ ॥

तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम्।
अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीम्॥ ४४ ॥

पुत्रहीन बूढ़े राजा धृतराष्ट्र तथा तपस्विनी गान्धारीदेवीको इस प्रकार दग्ध हुई सुनकर सब लोग बारंबार शोक करने लगे ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे धैर्यादाधाय भारत।
निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ ४५ ॥

भरतनन्दन ! दो घड़ी बाद जब रोने-धोनेकी आवाज बंद हुई, तब धर्मराज युधिष्ठिर धैर्यपूर्वक अपने आँसू पोंछकर नारदजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि दावाग्निना धृतराष्ट्रादिदाहे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निसे दाहविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन

युधिष्ठिर उवाच

तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्ततः।
अनाथस्येव निधनं तिष्ठत्स्वस्मासु बन्धुषु॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! हम-जैसे बन्धु-बान्धवोंके रहते हुए भी कठोर तपस्यामें लगे हुए महामना धृतराष्ट्रकी अनाथके समान मृत्यु हुई, यह कितने दुःखकी बात है ?॥ १॥

दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन् पुरुषाणां मतिर्मम।
यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! मेरा तो ऐसा मत है कि मनुष्योंकी गतिका ठीक-ठीक ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है; जब कि विचित्रवीर्यकुमार धृतराष्ट्रको इस तरह दावानलसे दग्ध होकर मरना पड़ा ॥२॥

यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद् बाहुशालिनः।
नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना॥ ३ ॥

जिन बाहुबलशाली नरेशके सौ पुत्र थे, जो स्वयं भी दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे, वे ही दावानलसे जलकर मरे हैं, यह कितने दुःखकी बात है ? ॥ ३ ॥

यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः।
तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम्॥ ४ ॥

पूर्वकालमें सुन्दरी स्त्रियाँ जिन्हें सब ओरसे ताड़के पंखोंद्वारा हवा करती थीं, उन्हें दावानलसे दग्ध हो जानेपर गीधोंने अपनी पाँखोंसे हवा की है ॥ ४ ॥

सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते।
धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः॥ ५ ॥

जो बहुमूल्य शय्यापर सोते थे और जिन्हें सूत तथा मागधोंके समुदाय मधुर गीतोंद्वारा जगाया करते थे, वे ही महाराज मुझ पापीकी करतूतोंसे पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ५ ॥

न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्।
पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम्॥ ६ ॥

मुझे पुत्रहीना यशस्विनी गान्धारीके लिये उतना शोक

नहीं है, क्योंकि वे पातिव्रत्य-धर्मका पालन करती थीं; अतः पतिलोकमें गयी हैं ॥ ६ ॥

पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत् ।
उत्सृज्य सुमहद् दीप्तं वनवासमरोचयत् ॥ ७ ॥

मैं तो उन माता कुन्तीके लिये ही अधिक शोक करता हूँ, जिन्होंने पुत्रोंके समृद्धिशाली एवं परम समुज्ज्वल ऐश्वर्यको ठुकराकर वनमें रहना पसंद किया था ॥ ७ ॥

धिग् राज्यमिदमस्माकं धिग् बलं धिक् पराक्रमम् ।
क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम् ॥ ८ ॥

हमारे इस राज्यको धिक्कार है, बल और पराक्रमको धिक्कार है तथा इस क्षत्रिय-धर्मको भी धिक्कार है ! जिससे आज हमलोग मृतकतुल्य जीवन बिता रहे हैं ॥ ८ ॥

सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम ।
यत् समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत् ॥ ९ ॥

विप्रवर ! कालकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, जिससे प्रेरित होकर माता कुन्तीने राज्य त्यागकर वनमें ही रहना ठीक समझा ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च ।
अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन् ॥ १० ॥

युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुनकी माता अनाथकी भाँति कैसे जल गयी, यह सोचकर मैं मोहित हो जाता हूँ ॥

वृथा संतर्पितो वह्निः खाण्डवे सव्यसाचिना ।
उपकारमजानन् स कृतघ्न इति मे मतिः ॥ ११ ॥

सव्यसाची अर्जुनने जो खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, वह व्यर्थ हो गया । वे उस उपकारको याद न रखनेके कारण कृतघ्न हैं—ऐसी मेरी धारणा है ॥ ११ ॥

यत्रादहत् स भगवान् मातरं सव्यसाचिनः ।
कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः ॥ १२ ॥
धिगग्निं धिक् च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसंधताम् ।

जो एक दिन ब्राह्मणका वेश बनाकर अर्जुनसे भीख माँगने आये थे, उन्हीं भगवान् अग्निदेवने अर्जुनकी माँको जलाकर भस्म कर दिया । अग्निदेवको धिक्कार है ! अर्जुनकी जो सुप्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञता है, उसको भी धिक्कार है ! ॥ १२½ ॥

इदं कष्टतरं चान्यद् भगवन् प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥
वृथाग्निना समायोगो यद्भूत् पृथिवीपतेः ।

भगवन् ! राजा धृतराष्ट्रके शरीरको जो व्यर्थ (लौकिक) अग्निका संयोग प्राप्त हुआ, यह दूसरी अत्यन्त कष्ट देनेवाली बात जान पड़ती है ॥ १३½ ॥

तथा तपस्विनस्तस्य राजर्षेः कौरवस्य ह ॥ १४ ॥
कथमेवंविधो मृत्युः प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ।

जिन्होंने पहले इस पृथ्वीका शासन करके अन्तमें वैसी कठोर तपस्याका आश्रय लिया था, उन कुरुवंशी राजर्षिको ऐसी मृत्यु क्यों प्राप्त हुई ? ॥ १४½ ॥

तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने ॥ १५ ॥
वृथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्राप्तः पिता मम ।

हाय, उस महान् वनमें मन्त्रोंसे पवित्र हुई अग्नियोंके रहते हुए भी मेरे ताऊ लौकिक अग्निसे दग्ध होकर क्यों मृत्युको प्राप्त हुए ? ॥ १५½ ॥

मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता ॥ १६ ॥
हा तात ! धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये ।

मैं तो समझता हूँ कि अत्यन्त दुर्बल हो जानेके कारण जिनके शरीरमें फैली हुई नस-नाड़ियाँतक स्पष्ट दिखायी देती थीं, वे मेरी माता कुन्ती अग्निका महान् भय उपस्थित होनेपर 'हा तात ! हा धर्मराज !' कहकर कातर पुकार मचाने लगी होंगी ॥ १६½ ॥

भीम पर्याप्नुहि भयादिति चैवाभिवाशती ॥ १७ ॥
समन्ततः परिक्षिप्ता माताभून्मे दवाग्निना ।

'भीमसेन ! इस भयसे मुझे बचाओ' ऐसा कहकर चारों ओर चीखती-चिल्लाती हुई मेरी माताको दावानलने जलाकर भस्म कर दिया होगा ॥ १७½ ॥

सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु ॥ १८ ॥
न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः ।

सहदेव मेरी माताको अपने सभी पुत्रोंसे अधिक प्रिय था; परंतु वह वीर माद्रीकुमार भी माको उस संकटसे बचा न सका ॥ १८½ ॥

तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्गय परस्परम् ॥ १९ ॥
पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता भूतानीव युगक्षये ।

यह सुनकर समस्त पाण्डव एक दूसरेको हृदयसे लगाकर रोने लगे । जैसे प्रलयकालमें पाँचों भूत पीडित हो जाते हैं, उसी प्रकार उस समय पाँचों पाण्डव दुःखसे आतुर हो उठे ॥

तेषां तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदितस्वनः ॥ २० ॥
प्रासादाभोगसंरुद्धे अन्वरौत्सीत् स रोदसी ॥ २१ ॥

वहाँ रोदन करते हुए उन पुरुषप्रवर पाण्डवोंके रोनेका शब्द महलके विस्तारसे अवरुद्ध हुए भूतल और आकाशमें गूँजने लगा ॥ २०-२१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि युधिष्ठिरविलापे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें युधिष्ठिरका विलापविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना

नारद उवाच

नासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं मया।
वैचित्रवीर्यो नृपतिस्तत् ते वक्ष्यामि सुव्रत ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश ! विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रका दाह व्यर्थ (लौकिक) अग्निमें नहीं हुआ है। इस विषयमें मैंने वहाँ जैसा सुना था, वह सब तुम्हें बताऊँगा ॥ १ ॥

वनं प्रविशतानेन वायुभक्षेण धीमता।
अग्नयः कारयित्वेष्टिमुत्सृष्टा इति नः श्रुतम् ॥ २ ॥

हमारे सुननेमें आया है कि वायु पीकर रहनेवाले वे बुद्धिमान् नरेश जब घने वनमें प्रवेश करने लगे, उस समय उन्होंने याजकोंद्वारा इष्टि कराकर तीनों अग्नियोंको वहीं त्याग दिया ॥ २ ॥

याजकास्तु ततस्तस्य तानग्नीन्निर्जने वने।
समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उनकी उन अग्नियोंको उसी निर्जन वनमें छोड़कर उनके याजकगण इच्छानुसार अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३ ॥

स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत् किल।
तेन तद् वनमादीप्तमिति ते तापसाब्रुवन् ॥ ४ ॥

कहते हैं, वहीं अग्नि बढ़कर उस वनमें सब ओर फैल गयी और उसीने उस सारे वनको भस्मसात् कर दिया—यह बात मुझसे वहाँके तापसोंने बतायी थी ॥ ४ ॥

स राजा जाह्नवीतीरे यथा ते कथितं मया।
तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरतर्षभ ॥ ५

भरतश्रेष्ठ ! वे राजा गङ्गाके तटपर, जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है, उस अपनी ही अग्निसे दग्ध हुए हैं ॥ ५ ॥

एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ।
ये ते भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

निष्पाप नरेश ! गङ्गाजीके तटपर मुझे जिनके दर्शन हुए थे, उन मुनियोंने मुझसे ऐसा ही बताया था ॥ ६ ॥

एवं स्वेनाग्निना राजा समायुक्तो महीपते।
मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः स परमां गतिम् ॥ ७ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र अपनी ही अग्निसे दाहको प्राप्त हुए हैं, तुम उन नरेशके लिये शोक न करो। वे परम उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

गुरुशुश्रूषया चैव जननी ते जनाधिप।
प्राप्ता सुमहतीं सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ॥ ८ ॥

जनेश्वर ! तुम्हारी माता कुन्तीदेवी गुरुजनोंकी सेवाके प्रभावसे बहुत बड़ी सिद्धिको प्राप्त हुई हैं, इस विषयमें मुझे कोई संदेह नहीं है ॥ ८ ॥

कर्तुमर्हसि राजेन्द्र तेषां त्वमुदकक्रियाम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरेतदत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! अब अपने सब भाइयोंके साथ जाकर तुम्हें उन तीनोंके लिये जलाञ्जलि देनी चाहिये। इस समय यहाँ इसी कर्तव्यका पालन करना चाहिये ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः।
निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः ॥ १० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब पाण्डव-धुरन्धर पृथ्वीपाल नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्त्रियोंके साथ नगरसे बाहर निकले ॥ १० ॥

पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः।
गङ्गां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥ ११ ॥

उनके साथ राजभक्तिको सामने रखनेवाले पुरवासी और जनपदनिवासी भी थे। वे सब एकवस्त्र धारण करके गङ्गाजीके समीप गये ॥ ११ ॥

ततोऽवगाह्य सलिले सर्वे ते नरपुङ्गवाः।
युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ १२ ॥

उन सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने गङ्गाजीके जलमें स्नान करके युयुत्सुको आगे रखते हुए महात्मा धृतराष्ट्रके लिये जलाञ्जलि दी ॥ १२ ॥

गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः।
शौचं निर्वर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद् बहिः ॥ १३ ॥

फिर विधिपूर्वक नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए गान्धारी और कुन्तीके लिये भी उन्होंने जल-दान किया। तत्पश्चात् शौचसम्पादन या अशौचनिवृत्तिके लिये प्रयत्न करते हुए वे सब लोग नगरसे बाहर ही ठहर गये ॥ १३ ॥

प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः।
गङ्गाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥
तत्रैव तेषां कृत्यानि गङ्गाद्वारेऽन्वशात् तदा।
कर्तव्यानीति पुरुषान् दत्तदेयान्महीपतिः ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरने जहाँ राजा धृतराष्ट्र दग्ध हुए थे, उस स्थानपर भी हरद्वारमें विधि-विधानके जाननेवाले विश्वासपात्र मनुष्योंको भेजा और वहीं उनके श्राद्धकर्म करनेकी आज्ञा दी। फिर उन भूपालने उन पुरुषोंको दानमें देनेयोग्य नाना प्रकारकी वस्तुएँ अर्पित कीं ॥ १४-१५ ॥

द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः ।
ददौ श्राद्धानि विधिवद् दक्षिणावन्ति पाण्डवः ॥ १६ ॥

शौच-सम्पादनके लिये दशाह आदि कर्म कर लेनेके पश्चात् पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने बारहवें दिन धृतराष्ट्र आदिके उद्देश्यसे विधिवत् श्राद्ध किया तथा उन श्राद्धोंमें ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः ।
रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः ॥ १७ ॥
गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक् पृथक् ।
संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके लिये पृथक्-पृथक् उनके नाम ले-लेकर सोना, चाँदी, गौ तथा बहुमूल्य शय्याएँ प्रदान कीं तथा परम उत्तम दान दिया ॥ १७-१८ ॥

यो यदिच्छति यावच्च तावत् स लभते नरः ।
शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम् ॥ १९ ॥
यानमाच्छादनं भोगान् दासीश्च समलंकृताः ।
ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः ॥ २० ॥

उस समय जो मनुष्य जिस वस्तुको जितनी मात्रामें लेना चाहता, वह उस वस्तुको उतनी ही मात्रामें प्राप्त कर लेता था। राजा युधिष्ठिरने अपनी उन दोनों माताओंके उद्देश्यसे शय्या, भोजन, सवारी, मणि, रत्न, धन, वाहन, वस्त्र, नाना प्रकारके भोग तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दासियाँ प्रदान कीं ॥ १९-२० ॥

ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः ।
प्रविवेश पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार अनेक बार श्राद्धके दान देकर पृथ्वीपाल राजा युधिष्ठिरने हस्तिनापुरनामक नगरमें प्रवेश किया ॥

ते चापि राजवचनात् पुरुषा ये गताभवन् ।
संकल्प्य तेषां कुल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः ॥ २२ ॥
माल्यैर्गन्धैश्च विविधैरर्चयित्वा यथाविधि ।
कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः ॥ २३ ॥

जो लोग राजाकी आज्ञासे हरद्वारमें भेजे गये थे, वे उन तीनोंकी हड्डियोंको संचित करके वहाँसे फिर गङ्गाजीके तटपर गये। फिर भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा की। पूजा करके उन सबको गङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया। इसके बाद हस्तिनापुरमें लौटकर उन्होंने यह सब समाचार राजाको कह सुनाया ॥ २२-२३ ॥

समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
नारदोऽप्यगमद् राजन् परमर्षिर्यथेप्सितम् ॥ २४ ॥

राजन्! तदनन्तर देवर्षि नारदजी धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन देकर अभीष्ट स्थानको चले गये ॥ २४ ॥

एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च ॥ २५ ॥
हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा ।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च ॥ २६ ॥

इस प्रकार जिनके पुत्र रणभूमिमें मारे गये थे, उन राजा धृतराष्ट्रने अपने जाति-भाई, सम्बन्धी, मित्र, बन्धु और स्वजनोंके निमित्त सदा दान देते हुए (युद्ध समाप्त होनेके बाद) पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर नगरमें व्यतीत किये थे और तीन वर्ष वनमें तपस्या करते हुए बिताये थे ॥ २६ ॥

युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा ।
धारयामास तद् राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः ॥ २७ ॥

जिनके बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये थे, वे राजा युधिष्ठिर मनमें अधिक प्रसन्न न रहते हुए किसी प्रकार राज्यका भार सँभालने लगे ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि श्राद्धदाने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें श्राद्धदानविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

आश्रमवासिकपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	१०६१	(३४)	४६॥।	११०७॥।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१॥	×	×	१॥

आश्रमवासिकपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—११०९।

साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

मौसलपर्व

प्रथमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियोंके शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महाभारत-युद्धके पश्चात् जब छत्तीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तब कौरवनन्दन राजा युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे ॥

ववुर्वाताश्च निर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः।
अपसव्यानि शकुना मण्डलानि प्रचक्रिरे॥ २॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ बालू और कंकड़ बरसानेवाली प्रचण्ड आँधी चलने लगी । पक्षी दाहिनी ओर मण्डल बनाकर उड़ते दिखायी देने लगे ॥ २ ॥

प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः।
उल्काश्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रापतन् गगनाद् भुवि॥ ३॥

बड़ी-बड़ी नदियाँ बालूके भीतर छिपकर बहने लगीं । दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित हो गयीं । आकाशसे पृथ्वीपर अङ्गार बरसानेवाली उल्काएँ गिरने लगीं ॥ ३ ॥

आदित्यो रजसा राजन् समवच्छन्नमण्डलः।
विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत॥ ४॥

राजन् ! सूर्यमण्डल धूलसे आच्छन्न हो गया था । उदय-कालमें सूर्य तेजोहीन प्रतीत होते थे और उनका मण्डल प्रति-दिन अनेक कबन्धों (बिना सिरके धड़ों) से युक्त दिखायी देता था ॥ ४ ॥

परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाश्चन्द्रसूर्ययोः।
त्रिवर्णाः श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः॥ ५॥

चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके चारों ओर भयानक घेरे दृष्टिगोचर होते थे । उन घेरोंमें तीन रंग प्रतीत होते थे । उनका किनारेका भाग काला एवं रूखा होता था । बीचमें भस्मके समान धूसर रंग दीखता था और भीतरी किनारेकी कान्ति अरुणवर्णकी दृष्टिगोचर होती थी ॥ ५ ॥

एते चान्ये च बहव उत्पाता भयशंसिनः।
दृश्यन्ते बहवो राजन् हृदयोद्वेगकारकाः॥ ६॥

राजन् ! ये तथा और भी बहुत-से भयसूचक उत्पात दिखायी देने लगे, जो हृदयको उद्विग्न कर देनेवाले थे ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः।
शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम्॥ ७॥
विमुक्तं वासुदेवं च श्रुत्वा रामं च पाण्डवः।
समानीयाब्रवीद् भ्रातॄन् किं करिष्याम इत्युत॥ ८॥

इसके थोड़े ही दिनों बाद कुरुराज युधिष्ठिरने यह समाचार सुना कि मूसलको निमित्त बनाकर आपसमें महान् युद्ध हुआ है; जिसमें समस्त वृष्णिवंशियोंका संहार हो गया । केवल भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही उस विनाशसे बचे हुए हैं । यह सब सुनकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने समस्त भाइयोंको बुलाया और पूछा—'अब हमें क्या करना चाहिये ?'॥

परस्परं समासाद्य ब्रह्मदण्डबलात् कृतान्।
वृष्णीन् विनष्टांस्ते श्रुत्वा व्यथिताः पाण्डवाभवन्॥ ९॥
निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम्।
वीरा न श्रद्दधुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः॥ १०॥

ब्राह्मणोंके शापके बलसे विवश हो आपसमें लड़-भिड़कर

सारे वृष्णिवंशी विनष्ट हो गये। यह बात सुनकर पाण्डवोंको बड़ी वेदना हुई। भगवान् श्रीकृष्णका वध तो समुद्रको सोख लेनेके समान असम्भव था; अतः उन वीरोंने भगवान् श्रीकृष्णके विनाशकी बातपर विश्वास नहीं किया ॥ ९-१० ॥

मौसलं ते समाश्रित्य दुःखशोकसमन्विताः ।
विषण्णा हतसंकल्पाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ११ ॥

इस मौसलकाण्डकी बातको लेकर सारे पाण्डव दुःख-शोकमें डूब गये। उनके मनमें विषाद छा गया और वे हताश हो मन मारकर बैठ गये ॥ ११ ॥

जनमेजय उवाच

कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह ।
पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव महारथाः ॥ १२ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते वृष्णियोंसहित अन्धक तथा महारथी भोजवंशी क्षत्रिय कैसे नष्ट हो गये? ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान् ।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाभारतयुद्धके बाद छत्तीसवें वर्ष वृष्णिवंशियोंमें महान् अन्यायपूर्ण कलह आरम्भ हो गया। उसमें कालसे प्रेरित होकर उन्होंने एक-दूसरेको मूसलों (अरों) से मार डाला ॥ १३ ॥

जनमेजय उवाच

केनानुशप्तास्ते वीराः क्षयं वृष्ण्यन्धका गताः ।
भोजाश्च द्विजवर्य त्वं विस्तरेण वदस्व मे ॥ १४ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! वृष्णि, अन्धक तथा भोजवंशके उन वीरोंको किसने शाप दिया था, जिससे उनका संहार हो गया? आप यह प्रसङ्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम् ।
सारणप्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकां गतान् ॥ १५ ॥
ते तान् साम्बं पुरस्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा ।
अब्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! एक समयकी बात है, महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपस्याके धनी नारदजी द्वारकामें गये हुए थे। उस समय दैवके मारे हुए सारण आदि वीर साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित करके उनके पास ले गये। उन सबने उन मुनियोंका दर्शन किया और इस प्रकार पूछा— ॥ १५-१६ ॥

इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः ।
ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति ॥ १७ ॥

'महर्षियो! यह स्त्री अमित तेजस्वी बभ्रुकी पत्नी है। बभ्रुके मनमें पुत्रकी बड़ी लालसा है। आपलोग ऋषि हैं; अतः अच्छी तरह सोचकर बतावें, इसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा? ॥ १७ ॥

इत्युक्तास्ते तदा राजन् विप्रलम्भप्रधर्षिताः ।
प्रत्यब्रुवंस्तान् मुनयो यत् तच्छृणु नराधिप ॥ १८ ॥

राजन्! नरेश्वर! ऐसी बात कहकर उन यादवोंने जब ऋषियोंको धोखा दिया और इस प्रकार उनका तिरस्कार किया, तब उन्होंने उन बालकोंको जो उत्तर दिया, उसे सुनो ॥ १८ ॥

वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम् ।
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति ॥ १९ ॥
येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः ।
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ ॥ २० ॥
समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः ।
जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्स्यति ॥ २१ ॥
इत्यब्रुवन्त ते राजन् प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः ।
मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम् ॥ २२ ॥

राजन्! उन दुर्बुद्धि बालकोंके वञ्चनापूर्ण बर्तावसे वे सभी महर्षि कुपित हो उठे। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे एक-दूसरेकी ओर देखकर इस प्रकार बोले—'क्रूर, क्रोधी और दुराचारी यादवकुमारो! भगवान् श्रीकृष्णका यह पुत्र साम्ब एक भयंकर लोहेका मूसल उत्पन्न करेगा, जो वृष्णि और अन्धकवंशके विनाशका कारण होगा। उसीसे तुम

लोग बलराम और श्रीकृष्णके सिवा अपने शेष समस्त कुलका संहार कर डालोगे। हलधारी श्रीमान् बलरामजी स्वयं ही अपने शरीरको त्यागकर समुद्रमें चले जायँगे और महात्मा श्रीकृष्ण जब भूतलपर सो रहे होंगे, उस समय जरा नामक व्याध उन्हें अपने बाणोंसे बींध डालेगा ॥ १९-२२ ॥

तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः।
अथाब्रवीत् तदा वृष्णीञ्श्रुत्वैवं मधुसूदनः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वे मुनि भगवान् श्रीकृष्णके पास चले गये। (वहाँ उन्होंने उनसे सारी बातें कह सुनायीं।) यह सब सुनकर भगवान् मधुसूदनने वृष्णिवंशियोंसे कहा—॥ २३ ॥

अन्तज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान्।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुरं तदा ॥ २४ ॥

'ऋषियोंने जैसा कहा है, वैसा ही होगा।' बुद्धिमान् श्रीकृष्ण सबके अन्तको जाननेवाले हैं। उन्होंने उपर्युक्त बात कहकर नगरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

कृतान्तमन्यथा नैच्छत् कर्तुं स जगतः प्रभुः।
श्वोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै ॥ २५ ॥

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं तथापि यदुवंशियोंपर आनेवाले उस कालको उन्होंने पलटनेकी इच्छा नहीं की। दूसरे दिन सबेरा होते ही साम्बने उस मूसलको जन्म दिया ॥ २५ ॥

येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात् कृताः।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत् ॥ २६ ॥

वह वही मूसल था, जिसने वृष्णि और अन्धककुलके समस्त पुरुषोंको भस्मसात् कर दिया। वृष्णि और अन्धक-वंशके वीरोंका विनाश करनेके लिये वह महान् यमदूतके ही तुल्य था ॥ २६ ॥

असूत शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन्।
विषण्णरूपस्तद् राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् ॥ २७ ॥

जब साम्बने उस शापजनित भयंकर मूसलको पैदा किया, तब यदुवंशियोंने उसे ले जाकर राजा उग्रसेनको दे दिया। उसे देखते ही राजाके मनमें विषाद छा गया। उन्होंने उस मूसलको कुटवाकर अत्यन्त महीन चूर्ण करा दिया ॥

तच्चूर्णं सागरे चापि प्राक्षिपन् पुरुषा नृप।
अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य ते ॥ २८ ॥
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः।
अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह ॥ २९ ॥
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः।

नरेश्वर! राजाकी आज्ञासे उनके सेवकोंने उस लोहचूर्ण-को समुद्रमें फेंक दिया। फिर उग्रसेन, भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और महामना बभ्रुके आदेशसे राजपुरुषोंने नगरमें यह घोषणा करा दी कि 'आजसे समस्त वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी क्षत्रियोंके यहाँ कोई भी नगरनिवासी मदिरा न तैयार करें ॥ २८-२९½ ॥

यश्च नोऽविदितं कुर्यात् पेयं कश्चिन्नरः क्वचित् ॥ ३० ॥
जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः।

'जो मनुष्य कहीं भी हमलोगोंसे छिपकर कोई नशीली पीनेकी वस्तु तैयार करेगा, वह स्वयं वह अपराध करके जीते-जी अपने भाई-बन्धुओंसहित शूलीपर चढ़ा दिया जायगा' ॥

ततो राजभयात् सर्वे नियमं चक्रिरे तदा।
नराः शासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ३१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले बलरामजीका यह शासन समझकर सब लोगोंने राजाके भयसे यह नियम बना लिया कि 'आजसे न तो मदिरा बनाना है न पीना' ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि मुसलोत्पत्तौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें मुसलकी उत्पत्तिविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

एवं प्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैः सह।
कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग अपने ऊपर आनेवाले संकटका निवारण करनेके लिये भाँति-भाँतिके प्रयत्न कर रहे थे और उधर काल प्रतिदिन सबके घरोंमें चक्कर लगाया करता था ॥ १ ॥

करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः।
गृहाण्यावेक्ष्य वृष्णीनां नादृश्यत कश्चित् क्वचित् ॥ २ ॥

उसका स्वरूप विकराल और वेष विकट था। उसके शरीरका रंग काला और पीला था। वह मूँड़ मुड़ाये हुए पुरुषके रूपमें वृष्णिवंशियोंके घरोंमें प्रवेश करके सबको देखता और कभी-कभी अदृश्य हो जाता था ॥ २ ॥

तमघ्नन्त महेष्वासाः शरैः शतसहस्रशः।

न चाशक्यत वेद्धुं स सर्वभूतात्ययस्तदा ॥ ३ ॥

उसे देखनेपर बड़े-बड़े धनुर्धर वीर उसके ऊपर लाखों बाणोंका प्रहार करते थे; परंतु सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाले उस कालको वे वेध नहीं पाते थे ॥ ३ ॥

उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिने दिने ।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो लोमहर्षणाः ॥ ४ ॥

अब प्रतिदिन अनेक बार भयंकर आँधी उठने लगी, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाली थी। उससे वृष्णियों और अन्धकोंके विनाशकी सूचना मिल रही थी ॥ ४ ॥

विवृद्धमूषिका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा ।
केशा नखाश्च सुप्तानामद्यन्ते मूषिकैर्निशि ॥ ५ ॥

चूहे इतने बढ़ गये थे कि वे सड़कोंपर छाये रहते थे। मिट्टीके बरतनोंमें छेद कर देते थे तथा रातमें सोये हुए मनुष्योंके केश और नख कुतरकर खा जाया करते थे ॥ ५ ॥

चीचीकूचीति वाशन्ति सारिका वृष्णिवेश्मसु ।
नोपशाम्यति शब्दश्च स दिवारात्रमेव हि ॥ ६ ॥

वृष्णिवंशियोंके घरोंमें मैनाएँ दिन-रात चें-चें किया करती थी। उनकी आवाज कभी एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती थी ॥ ६ ॥

अन्वकुर्वन्नुलूकानां सारसा विरुतं तथा ।
अजाः शिवानां विरुतमन्वकुर्वत भारत ॥ ७ ॥

भारत! सारस उल्लुओंकी और बकरे गीदड़ोंकी बोलीकी नकल करने लगे ॥ ७ ॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।
वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ॥ ८ ॥

कालकी प्रेरणासे वृष्णियों और अन्धकोंके घरोंमें सफेद पंख और लाल पैरोंवाले कबूतर घूमने लगे ॥ ८ ॥

व्यजायन्त खरा गोषु करभाऽश्वतरीषु च ।
शुनीष्वपि बिडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ॥ ९ ॥

गौओंके पेटसे गदहे, खच्चरियोंसे हाथी, कुतियोंसे बिलाव और नेवलियोंके गर्भसे चूहे पैदा होने लगे ॥ ९ ॥

नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा ।
प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितॄन् देवांस्तथैव च ॥ १० ॥

उन दिनों वृष्णिवंशी खुल्लमखुल्ला पाप करते और उसके लिये लज्जित नहीं होते थे। वे ब्राह्मणों, देवताओं और पितरोंसे भी द्वेष रखने लगे ॥ १० ॥

गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ ।
पत्न्यः पतीनुच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ ११ ॥

इतना ही नहीं, वे गुरुजनोंका भी अपमान करते थे। केवल बलराम और श्रीकृष्णका ही तिरस्कार नहीं करते थे। पत्नियाँ पतियोंको और पति अपनी पत्नियोंको धोखा देने लगे ॥ ११ ॥

विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्तते ।
नीललोहितमञ्जिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् ॥ १२ ॥

अग्निदेव प्रज्वलित होकर अपनी लपटोंको वामावर्त घुमाते थे। उनसे कभी नीले रंगकी, कभी रक्त वर्णकी और कभी मजीठके रंगकी पृथक्-पृथक् लपटें निकलती थीं॥ १२॥

उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः ।
व्यदृश्यतासकृत् पुम्भिः कबन्धैः परिवारितः ॥ १३ ॥

उस नगरीमें रहनेवाले लोगोंको उदय और अस्तके समय सूर्यदेव प्रतिदिन बारंबार कबन्धोंसे घिरे दिखायी देते थे ॥ १३ ॥

महानसेषु सिद्धेषु संस्कृतेऽतीव भारत ।
आहार्यमाणे कृमयो व्यदृश्यन्त सहस्रशः ॥ १४ ॥

अच्छी तरह छौंक-बघारकर जो रसोइयाँ तैयार की जाती थीं, उन्हें परोसकर जब लोग भोजनके लिये बैठते थे, तब उनमें हजारों कीड़े दिखायी देने लगते थे ॥ १४ ॥

पुण्याहे वाच्यमाने तु जपत्सु च महात्मसु ।
अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन ॥ १५ ॥

जब पुण्याहवाचन किया जाता और महात्मा पुरुष जप करने लगते थे, उस समय कुछ लोगोंके दौड़नेकी आवाज सुनायी देती थी; परंतु कोई दिखायी नहीं देता था ॥ १५ ॥

परस्परं च नक्षत्रं हन्यमानं पुनः पुनः ।
ग्रहैरपश्यन् सर्वे ते नात्मनस्तु कथंचन ॥ १६ ॥

सब लोग बारंबार यह देखते थे कि नक्षत्र आपसमें तथा ग्रहोंके साथ भी टकरा जाते हैं, परंतु कोई भी किसी तरह अपने नक्षत्रको नहीं देख पाता था ॥ १६ ॥

नदन्तं पाञ्चजन्यं च वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
समन्तात् पर्यवाशन्त रासभा दारुणस्वराः ॥ १७ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य शङ्ख बजता था, तब वृष्णियों और अन्धकोंके घरके आसपास चारों ओर भयंकर स्वरवाले गदहे रेंकने लगते थे ॥ १७ ॥

एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम् ।
त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इस तरह कालका उलट-फेर प्राप्त हुआ देख और त्रयोदशी तिथिको अमावास्याका संयोग जान भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंसे कहा—॥ १८ ॥

चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः ।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ १९ ॥

'वीरो! इस समय राहुने फिर चतुर्दशीको ही अमावास्या

बना दिया है। महाभारतयुद्धके समय जैसा योग था वैसा ही आज भी है। यह सब हमलोगोंके विनाशका सूचक है' ॥ १९ ॥

विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः ॥ २० ॥

इस प्रकार समयका विचार करते हुए केशिहन्ता श्रीकृष्णने जब उसका विशेष चिन्तन किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि महाभारतयुद्धके बाद यह छत्तीसवाँ वर्ष आ पहुँचा ॥ २० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी हतबान्धवा।
यदनुव्याजहारार्ता तदिदं समुपागमत् ॥ २१ ॥

वे बोले—'बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रशोकसे संतप्त हुई गान्धारी देवीने अत्यन्त व्यथित होकर हमारे कुलके लिये जो शाप दिया था, उसके सफल होनेका यह समय आ गया है ॥ २१ ॥

इदं च तदनुप्राप्तमब्रवीद् यद् युधिष्ठिरः।
पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान् सुदारुणान् ॥ २२ ॥

'पूर्वकालमें कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ जब व्यूहबद्ध होकर आमने-सामने खड़ी हुईं, उस समय भयानक उत्पातोंको देखकर युधिष्ठिरने जो कुछ कहा था, वैसा ही लक्षण इस समय भी उपस्थित है' ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षुः सत्यमेव तत्।
आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिंदमः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णने गान्धारीके उस कथनको सत्य करनेकी इच्छासे यदुवंशियोंको उस समय तीर्थयात्राके लिये आज्ञा दी ॥ २३ ॥

अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात्।
तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे राजकीय पुरुषोंने उस पुरीमें यह घोषणा कर दी कि 'पुरुषप्रवर यादवो! तुम्हें समुद्रमें ही तीर्थयात्राके लिये चलना चाहिये। अर्थात् सबको प्रभासक्षेत्रमें उपस्थित होना चाहिये' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि उत्पातदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें उत्पातदर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार

वैशम्पायन उवाच

काली स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्वारकाके लोग रातको स्वप्नोंमें देखते थे कि एक काले रंगकी स्त्री अपने सफेद दाँतोंको दिखा-दिखाकर हँसती हुई आयी है और घरोंमें प्रवेश करके स्त्रियोंका सौभाग्य-चिह्न लूटती हुई सारी द्वारकामें दौड़ लगा रही है ॥ १ ॥

अग्निहोत्रनिकेतेषु वास्तुमध्येषु वेश्मसु।
वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रगृहोंमें जिनके मध्यभागमें वास्तुकी पूजा-प्रतिष्ठा हुई है, ऐसे घरोंमें भयंकर गृध्र आकर वृष्णि और अन्धक-वंशके मनुष्योंको पकड़-पकड़कर खा रहे हैं। यह भी स्वप्नमें दिखायी देता था ॥ २ ॥

अलंकाराश्च छत्रं च ध्वजाश्च कवचानि च।
ह्रियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः ॥ ३ ॥

अत्यन्त भयानक राक्षस उनके आभूषण, छत्र, ध्वजा और कवच चुराकर भागते देखे जाते थे ॥ ३ ॥

तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभमयोमयम्।
दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा ॥ ४ ॥

जिसकी नाभिमें वज्र लगा हुआ था, जो सब-का-सब लोहेका ही बना था, वह अग्निदेवका दिया हुआ श्रीविष्णुका चक्र वृष्णिवंशियोंके देखते-देखते दिव्य लोकमें चला गया ॥ ४ ॥

युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं
हया हरन् पश्यतो दारुकस्य।
ते सागरस्योपरिष्टादवर्तन्
मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः ॥ ५ ॥

भगवान्‌का जो सूर्यके समान तेजस्वी और जुता हुआ दिव्य रथ था, उसे दारुकके देखते-देखते घोड़े उड़ा ले गये। वे मनके समान वेगशाली चारों श्रेष्ठ घोड़े समुद्रके जलके ऊपर-ऊपरसे ही चले गये ॥ ५ ॥

तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ
सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम्।
उच्चैर्जह्रुरप्सरसो दिवानिशं
वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ६ ॥

बलराम और श्रीकृष्ण जिनकी सदा पूजा करते थे, उन ताल और गरुड़के चिह्नसे युक्त दोनों विशाल ध्वजोंको अप्सराएँ ऊँचे उठा ले गयीं और दिन-रात लोगोंसे यह बात कहने लगीं कि 'अब तुमलोग तीर्थयात्राके लिये निकलो' ॥ ६ ॥

ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन् नरर्षभाः ॥ ७ ॥

तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ वृष्णि और अन्धक महारथियोंने अपनी स्त्रियोंके साथ उस समय तीर्थयात्रा करनेका विचार किया। अब उनमें द्वारका छोड़कर अन्यत्र जानेकी इच्छा हो गयी थी ॥ ७ ॥

ततो भोज्यं च भक्ष्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः ।
बहु नानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः ॥ ८ ॥

तब अन्धकों और वृष्णियोंने नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पेय, मद्य और भाँति-भाँतिके मांस तैयार कराये ॥ ८ ॥

ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद् बहिः ।
यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ९ ॥

इसके बाद सैनिकोंके समुदाय, जो शोभासम्पन्न और प्रचण्ड तेजस्वी थे, रथ, घोड़े और हाथियोंपर सवार होकर नगरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

ततः प्रभासे न्यवसन् यथोद्दिष्टं यथागृहम् ।
प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा ॥ १० ॥

उस समय स्त्रियोंसहित समस्त यदुवंशी प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अपने-अपने अनुकूल घरोंमें ठहर गये। उनके साथ खाने-पीनेकी बहुत-सी सामग्री थी ॥ १० ॥

निविष्टांस्तान् निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित् ।
जगामामन्त्र्य तान् वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ ११ ॥

परमार्थ-ज्ञानमें कुशल और योगवेत्ता उद्धवजीने देखा कि समस्त वीर यदुवंशी समुद्रतटपर डेरा डाले बैठे हैं। तब वे उन सबसे पूछकर— विदा लेकर वहाँसे चल दिये ॥ ११ ॥

तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिम् ।
जानन् विनाशं वृष्णीनां नैच्छद् वारयितुं हरिः ॥ १२ ॥

महात्मा उद्धव भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर प्रणाम करके जब वहाँसे प्रस्थित हुए, तब श्रीकृष्णने उन्हें वहाँ रोकनेकी इच्छा नहीं की; क्योंकि वे जानते थे कि यहाँ ठहरे हुए वृष्णिवंशियोंका विनाश होनेवाला है ॥ १२ ॥

ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ १३ ॥

कालसे घिरे हुए वृष्णि और अन्धक महारथियोंने देखा कि उद्धव अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके यहाँसे चले जा रहे हैं ॥ १३ ॥

ब्राह्मणार्थेषु यत् सिद्धमन्नं तेषां महात्मनाम् ।
तद् वानरेभ्यः प्रददुः सुरागन्धसमन्वितम् ॥ १४ ॥

उन महामनस्वी यादवोंके यहाँ ब्राह्मणोंको जिमानेके लिये जो अन्न तैयार किया गया था, उसमें मदिरा मिलाकर उसकी गन्धसे युक्त हुए उस भोजनको उन्होंने वानरोंको बाँट दिया॥

ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम् ।
अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर वहाँ सैकड़ों प्रकारके बाजे बजने लगे। सब ओर नटों और नर्तकोंका नृत्य होने लगा। इस प्रकार प्रभास क्षेत्रमें प्रचण्ड तेजस्वी यादवोंका वह महापान आरम्भ हुआ ॥

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा ।
अपिबद् युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णके पास ही कृतवर्मासहित बलराम, सात्यकि, गद और बभ्रु पीने लगे ॥ १६ ॥

ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः ।
अब्रवीत् कृतवर्माणमवहास्यावमन्य च ॥ १७ ॥

पीते-पीते सात्यकि मदसे उन्मत्त हो उठे और यादवोंकी उस सभामें कृतवर्माका उपहास तथा अपमान करते हुए इस प्रकार बोले—॥ १७ ॥

कः क्षत्रियोऽहन्यमानः सुप्तान् हन्यान्मृतानिव ।
तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत् त्वया कृतम् ॥ १८ ॥

'हार्दिक्य! तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा क्षत्रिय होगा, जो अपने ऊपर आघात न होते हुए भी रातमें मुर्दोंके समान अचेत पड़े हुए मनुष्योंकी हत्या करेगा। तूने जो अन्याय किया है, उसे यदुवंशी कभी क्षमा नहीं करेंगे' ॥ १८ ॥

इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः ।
प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च ॥ १९ ॥

सात्यकिके ऐसा कहनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने कृतवर्माका तिरस्कार करके सात्यकिके उपर्युक्त वचनकी प्रशंसा एवं अनुमोदन किया ॥ १९ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् ।
निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥ २० ॥

यह सुनकर कृतवर्मा अत्यन्त कुपित हो उठा और बायें हाथसे अंगुलिका इशारा करके सात्यकिका अपमान करता हुआ बोला—॥ २० ॥

भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया ।
वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २१ ॥

'अरे! युद्धमें भूरिश्रवाकी बाँह कट गयी थी और वे मरणान्त उपवासका निश्चय करके पृथ्वीपर बैठ गये थे, उस अवस्थामें तूने वीर कहलाकर भी उनकी क्रूरतापूर्ण हत्या क्यों की?' ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
तिर्यक्सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान् ॥ २२ ॥

कृतवर्माकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको क्रोध आ गया। उन्होंने रोषपूर्ण टेढ़ी दृष्टिसे उसकी ओर देखा ॥ २२ ॥

मणिः स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् ।
तां कथां श्रावयामास सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २३ ॥

उस समय सात्यकिने मधुसूदनको सत्राजित्के पास जो स्यमन्तकमणि थी, उसकी कथा कह सुनायी (अर्थात् यह

बताया कि कृतवर्माने ही मणिके लोभसे सत्राजित्का वध करवाया था) ॥ २३ ॥

तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्कमगमद् रुदती तदा ।
सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥ २४ ॥

यह सुनकर सत्यभामाके क्रोधकी सीमा न रही । वह श्रीकृष्णका क्रोध बढ़ाती और रोती हुई उनके अङ्कमें चली गयी ॥ २४ ॥

तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ २५ ॥
एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे ।
सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा ।
समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥ २७ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकि उठे और इस प्रकार बोले—'सुमध्यमे ! यह देखो, मैं द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके, धृष्टद्युम्नके और शिखण्डीके मार्गपर चलता हूँ, अर्थात् उनके मारनेका बदला लेता हूँ और सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस पापी दुरात्मा कृतवर्माने द्रोणपुत्रका सहायक बनकर रातमें सोते समय उन वीरोंका वध किया था, आज उसकी भी आयु और यशका अन्त हो गया' ॥ २५–२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः ।
अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर कुपित हुए सात्यकिने श्रीकृष्णके पाससे दौड़कर तलवारसे कृतवर्माका सिर काट लिया ॥ २८ ॥

तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः ।
अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा ॥ २९ ॥

फिर वे दूसरे-दूसरे लोगोंका भी सब ओर घूमकर वध करने लगे । यह देख भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेके लिये दौड़े ॥

एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः ।
भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ३० ॥

महाराज ! इतनेहीमें कालकी प्रेरणासे भोज और अन्धक-वंशके समस्त वीरोंने एकमत होकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः ।
न चुक्रोध महातेजा जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ३१ ॥

उन्हें कुपित होकर तुरंत धावा करते देख महातेजस्वी श्रीकृष्ण कालके उलट-फेरको जाननेके कारण कुपित नहीं हुए॥

ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताः कालधर्मणा ।
युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३२ ॥

वे सब-के-सब मदिरापानजनित मदके आवेशसे उन्मत्त हो उठे थे । इधर कालधर्मा मृत्यु भी उन्हें प्रेरित कर रहा था । इसलिये वे जूठे बरतनोंसे सात्यकिपर आघात करने लगे ॥ ३२॥

हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः ।
तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम् ॥ ३३ ॥

जब सात्यकि इस प्रकार मारे जाने लगे, तब क्रोधमें भरे हुए रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उन्हें संकटसे बचानेके लिये स्वयं उनके और आक्रमणकारियोंके बीचमें कूद पड़े ॥ ३३ ॥

स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह ।
व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ ॥ ३४ ॥

प्रद्युम्न भोजोंसे भिड़ गये और सात्यकि अन्धकोंके साथ जूझने लगे । अपनी भुजाओंके बलसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर बड़े परिश्रमके साथ विरोधियोंका सामना करते रहे॥

बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः ।
हतं दृष्ट्वा च शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः ॥ ३५ ॥
एरकाणां ततो मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः ।

परंतु विपक्षियोंकी संख्या बहुत अधिक थी; इसलिये वे दोनों श्रीकृष्णके देखते-देखते उनके हाथसे मार डाले गये । सात्यकि तथा अपने पुत्रको मारा गया देख यदुनन्दन श्रीकृष्ण-ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका उखाड़ ली ॥ ३५½ ॥

तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम् ॥ ३६ ॥
जघान कृष्णस्तांस्तेन ये ये प्रमुखतोऽभवन् ।

उनके हाथमें आते ही वह घास वज्रके समान भयंकर लोहेका मूसल बन गयी । फिर तो जो-जो सामने आये, उन सबको श्रीकृष्णने उसीसे मार गिराया ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा ॥ ३७ ॥
जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः ।

उस समय कालसे प्रेरित हुए अन्धक, भोज, शिनि और वृष्णिवंशके लोगोंने उस भीषण मारकाटमें उन्हीं मूसलोंसे एक-दूसरेको मारना आरम्भ किया ॥ ३७½ ॥

यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप ॥ ३८ ॥
वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो ।

नरेश्वर ! उनमेंसे जो कोई भी क्रोधमें आकर एरका नामक घास लेता, उसीके हाथमें वह वज्रके समान दिखायी देने लगती थी ॥ ३८½ ॥

तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ॥ ३९ ॥
ब्रह्मदण्डकृतं सर्वमिति तद् विद्धि पार्थिव ।

पृथ्वीनाथ ! एक साधारण तिनका भी मूसल होकर दिखायी देता था; यह सब ब्राह्मणोंके शापका ही प्रभाव समझो॥

अविध्यान् विध्यते राजन् प्रक्षिपन्ति स्म यत् तृणम् ॥
तद् वज्रभूतं मुसलं व्यदृश्यत तदा दृढम् ।

राजन् ! वे जिस किसी भी तृणका प्रहार करते, वह अभेद्य वस्तुका भी भेदन कर डालता था और वज्रमय मूसलके समान सुदृढ़ दिखायी देता था ॥ ४०½ ॥

अवधीत् पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत ॥ ४१ ॥
मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम् ।
पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उस मूसलसे पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला । जैसे पतिंगे आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कुकुर और अन्धकवंशके लोग परस्पर जूझते हुए एक दूसरेपर मतवाले होकर टूटते थे ॥ ४१-४२ ॥

नासीत् पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित् ।
तत्रापश्यन्महाबाहुर्जानन् कालस्य पर्ययम् ॥ ४३ ॥
मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः ।

वहाँ मारे जानेवाले किसी योद्धाके मनमें वहाँसे भाग जानेका विचार नहीं होता था । कालचक्रके इस परिवर्तनको जानते हुए महाबाहु मधुसूदन वहाँ चुपचाप सब कुछ देखते रहे और मूसलका सहारा लेकर खड़े रहे ॥ ४३½ ॥

साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः ॥ ४४ ॥
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत ।

भारत ! श्रीकृष्ण जब अपने पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण और प्रद्युम्नको तथा पोते अनिरुद्धको भी मारा गया देखा, तब उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी ॥ ४४½ ॥

गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः ॥ ४५ ॥
स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ।

अपने छोटे भाई गदको रणशय्यापर पड़ा देख वे अत्यन्त रोषसे आगबबूला हो उठे; फिर तो शार्ङ्गधनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णने उस समय शेष बचे हुए समस्त यादवोंका संहार कर डाला ॥ ४५½ ॥

तन्निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरंजयः ॥ ४६ ॥
दारुकश्चैव दाशार्हमूचतुर्यन्निबोध तत् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले महातेजस्वी बभ्रु और दारुकने उस समय यादवोंका संहार करते हुए श्रीकृष्णसे जो कुछ कहा, उसे सुनो—॥ ४६½ ॥

भगवन् निहताः सर्वे त्वया भूयिष्ठशो नराः ।
रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः ॥ ४७ ॥

'भगवन् ! अब सबका विनाश हो गया । इनमेंसे अधिकांश तो आपके हाथों मारे गये हैं । अब बलरामजीका पता लगाइये । अब हम तीनों उधर ही चलें, जिधर बलरामजी गये हैं' ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि कृतवर्मादीनां परस्परहनने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका संहारविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन

वैशम्पायन उवाच

ततो ययुर्दारुकः केशवश्च
बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः ।
अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं
वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दारुक, बभ्रु और भगवान् श्रीकृष्ण तीनों ही बलरामजीके चरणचिह्न देखते हुए वहाँसे चल दिये । थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अनन्त पराक्रमी बलरामजीको एक वृक्षके नीचे विराजमान देखा, जो एकान्तमें बैठकर ध्यान कर रहे थे ॥ १ ॥

ततः समासाद्य महानुभावं
कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत् ।

गत्वा कुरून् सर्वमिमं महान्तं
पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम् ॥ २ ॥

उन महानुभावके पास पहुँचकर श्रीकृष्णने तत्काल दारुकको आज्ञा दी कि 'तुम शीघ्र ही कुरुदेशकी राजधानी हस्तिनापुरमें जाकर अर्जुनको यादवोंके इस महासंहारका सारा समाचार कह सुनाओ ॥ २ ॥

ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु
श्रुत्वा मृतान् यादवान् ब्रह्मशापात्।
इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन
कुरूंस्तदा दारुको नष्टचेताः ॥ ३ ॥

'ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशियोंकी मृत्युका समाचार पाकर अर्जुन शीघ्र ही द्वारका चले आवें।' श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दारुक रथपर सवार हो तत्काल कुरुदेशको चला गया। वह भी इस महान् शोकसे अचेत सा हो रहा था ॥

गते दारुके केशवोऽथ
दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम् ।
स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं
नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥ ४ ॥

दारुकके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने निकट खड़े हुए बभ्रुसे कहा—'आप स्त्रियोंकी रक्षाके लिये शीघ्र ही द्वारकाको चले जाइये। कहीं ऐसा न हो कि डाकू धनकी लालचसे उनकी हत्या कर डालें' ॥ ४ ॥

स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो
मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च ।
तं विश्रान्तं संनिधौ केशवस्य
दुरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद् वै
कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य ।
ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह
कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर बभ्रु वहाँसे प्रस्थित हुए। वे मदिराके मदसे आतुर थे ही, भाई-बन्धुओंके वधसे भी अत्यन्त शोकपीड़ित थे। वे श्रीकृष्णके निकट अभी विश्राम कर ही रहे थे कि ब्राह्मणोंके शापके प्रभावसे उत्पन्न हुआ एक महान् दुर्धर्ष मूसल किसी व्याधके बाणसे लगा हुआ सहसा उनके ऊपर आकर गिरा। उसने तुरंत ही उनके प्राण ले लिये। बभ्रुको मारा गया देख उग्र तेजस्वी श्रीकृष्णने अपने बड़े भाईसे कहा—॥ ५-६ ॥

इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम
यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि ।
ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य
जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ॥ ७ ॥

'भैया बलराम! आप यहीं रहकर मेरी प्रतीक्षा करें। जबतक मैं स्त्रियोंको कुटुम्बी जनोंके संरक्षणमें सौंप आता हूँ।' यों कहकर श्रीकृष्ण द्वारिकापुरीमें गये और वहाँ अपने पिता वसुदेवजीसे बोले—॥ ७ ॥

स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा
धनंजयस्यागमनं प्रतीक्षन् ।
रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-
मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥ ८ ॥

'तात! आप अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए हमारे कुलकी समस्त स्त्रियोंकी रक्षा करें। इस समय बलरामजी मेरी राह देखते हुए वनके भीतर बैठे हैं। मैं आज ही वहाँ जाकर उनसे मिलूँगा ॥ ८ ॥

दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां
राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम् ।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां
पुरीमिमामशक द्रष्टुमद्य

'मैंने इस समय यह यदुवंशियोंका विनाश देखा है और पूर्वकालमें कुरुकुलके श्रेष्ठ राजाओंका भी संहार देख चुका हूँ। अब मैं उन यादव वीरोंके बिना उनकी इस पुरीको देखनेमें भी असमर्थ हूँ ॥ ९ ॥

तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे
रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य ।
इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ
संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम ॥ १० ॥

'अब मुझे क्या करना है, यह सुन लीजिये। वनमें जाकर मैं बलरामजीके साथ तपस्या करूँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने

अपने सिरसे पिताके चरणोंका स्पर्श किया । फिर वे भगवान् श्रीकृष्ण वहाँसे तुरंत चल दिये ॥ १० ॥

ततो महान् निनदः प्रादुरासीत्
सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य ।
अथाब्रवीत् केशवः संनिवर्त्य
शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥ ११ ॥

इतनेहीमें उस नगरकी स्त्रियों और बालकोंके रोनेका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ा । विलाप करती हुई उन युवतियोंके करुणक्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण पुनः लौट आये और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—॥ ११ ॥

पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची
स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः ।
ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श
रामं वने स्थितमेकं विविक्ते ॥ १२ ॥

'देखिये ! नरश्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही इस नगरमें आनेवाले हैं । वे तुम्हें संकटसे बचायेंगे ।' यह कहकर वे चले गये । वहाँ जाकर श्रीकृष्णने वनके एकान्त प्रदेशमें बैठे हुए बलरामजीका दर्शन किया ॥ १२ ॥

अथापश्यद् योगयुक्तस्य तस्य
नागं मुखान्निःसरन्तं महान्तम् ।
श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो
महार्णवो येन महानुभावः ॥ १३ ॥

बलरामजी योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे । श्रीकृष्णने उनके मुखसे एक श्वेत वर्णके विशालकाय सर्पको निकलते देखा । उनसे देखा जाता हुआ वह महानुभाव नाग जिस ओर महासागर था, उसी मार्गपर चल दिया ॥ १३ ॥

सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा
रक्ताननः स्वां तनुं तां विमुच्य ।
सम्यक् च तं सागरः प्रत्यगृह्णा-
न्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १४ ॥

वह अपने पूर्व शरीरको त्यागकर इस रूपमें प्रकट हुआ था । उसके सहस्रों मस्तक थे । उसका विशाल शरीर पर्वतके विस्तार-सा जान पड़ता था । उसके मुखकी कान्ति लाल रंगकी थी । समुद्रने स्वयं प्रकट होकर उस नागका—साक्षात् भगवान् अनन्तका भलीभाँति स्वागत किया । दिव्य नागों और पवित्र सरिताओंने भी उनका सत्कार किया ॥ १४ ॥

कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च
पृथुश्रवा अरुणः कुञ्जरश्च ।
मिश्री शङ्खः कुमुदः पुण्डरीक-
स्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥ १५ ॥
ह्रादः क्राथः शितिकण्ठोग्रतेजा-
स्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ ।
नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः
स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ॥ १६ ॥

राजन् ! कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, महामना धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिषण्ड, नागप्रवर दुर्मुख, अम्बरीष और स्वयं राजा वरुणने भी उनका स्वागत किया ॥ १५-१६ ॥

प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्दं-
स्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः ।
ततो गते भ्रातरि वासुदेवो
जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ॥ १७ ॥
वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो
भूमौ चाथ संविवेशाग्र्यतेजाः ।
सर्वं तेन प्राक्तदा वित्तमासीद्
गान्धार्या यद् वाक्यमुक्तः स पूर्वम् ॥ १८ ॥

उपर्युक्त सब लोगोंने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, स्वागतपूर्वक अभिनन्दन किया और अर्घ्य-पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न की । भाई बलरामके परम धाम पधारनेके पश्चात् सम्पूर्ण गतियोंको जाननेवाले दिव्यदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण कुछ सोचते-विचारते हुए उस सूने वनमें विचरने लगे । फिर वे श्रेष्ठ तेजवाले भगवान् पृथ्वीपर बैठ गये । सबसे पहले उन्होंने वहाँ उस समय उन सारी बातोंको स्मरण किया, जिन्हें पूर्वकालमें गान्धारी देवीने कहा था ॥ १७-१८ ॥

बलरामजीका परमधाम-गमन

दुर्वाससा पायसोच्छिष्टलिप्ते
यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार वाक्यम् ।
स चिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं
कुरुक्षयं चैव महानुभावः ॥ १९ ॥

जूठी खीरको शरीरमें लगानेके समय दुर्वासाने जो बात कही थी, उसका भी उन्हें स्मरण हो आया । फिर वे महानुभाव श्रीकृष्ण अन्धक, वृष्णि और कुरुकुलके विनाशकी बात सोचने लगे ॥ १९ ॥

मेने ततः संक्रमणस्य कालं
ततश्चकारेन्द्रियसंनिरोधम् ।
तथा च लोकत्रयपालनार्थ-
मात्रेयवाक्यप्रतिपालनाय ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षा तथा दुर्वासाके वचनका पालन करनेके लिये अपने परम धाम पधारनेका उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझा तथा इसी उद्देश्यसे अपनी सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियोंका निरोध किया ॥ २० ॥

देवोऽपि सन् देहविमोक्षहेतो-
र्निमित्तमैच्छत् सकलार्थतत्त्ववित् ।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देवता हैं । तो भी उस समय उन्होंने देहमोक्ष या ऐहलौकिक लीलाका संवरण करनेके लिये किसी निमित्तके प्राप्त होनेकी इच्छा की । फिर वे मन, वाणी और इन्द्रियोंका निरोध करके महायोग (समाधि) का आश्रय ले पृथ्वीपर लेट गये ॥२१॥

जराथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥ २२ ॥
जराविध्यत् पादतले त्वरावां-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।
अथापश्यत् पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २३ ॥

उसी समय जरानामक एक भयंकर व्याध मृगोंको मार ले जानेकी इच्छासे उस स्थानपर आया । उस समय श्रीकृष्ण योगयुक्त होकर सो रहे थे । मृगोंमें आसक्त हुए उस व्याधने श्रीकृष्णको भी मृग ही समझा और बड़ी उतावलीके साथ बाण मारकर उनके पैरके तलवेमें घाव कर दिया । फिर उस मृगको पकड़नेके लिये जब वह निकट आया, तब योगमें स्थित, चार भुजावाले, पीताम्बरधारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णपर उसकी दृष्टि पड़ी ॥ २२-२३ ॥

मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शंकितात्मा ।
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥ २४ ॥

अब तो जरा अपनेको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत डर गया । उसने भगवान् श्रीकृष्णके दोनों पैर पकड़ लिये । तब महात्मा श्रीकृष्णने उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्तिसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोकमें (अपने परमधामको) चले गये ॥ २४ ॥

दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च
रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे ।
प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा
गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ २५ ॥

अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध, अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर भगवान्का स्वागत किया ॥

ततो राजन् भगवानुग्रतेजा
नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।
योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या
स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् ॥ २६ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् जगत्की उत्पत्तिके कारणरूप, उग्रतेजस्वी, अविनाशी, योगाचार्य महात्मा भगवान् नारायण अपनी प्रभासे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने अप्रमेयधामको प्राप्त हो गये ॥ २६ ॥

ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः
समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।
गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः
सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥ २७ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ गन्धर्वों, सुन्दरी अप्सराओं, सिद्धों और साध्योंद्वारा विनीत भावसे पूजित हो देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसे भी मिले ॥२७॥

तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राजन्
मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः
प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥ २८ ॥

राजन् ! देवताओंने भगवान्का अभिनन्दन किया । श्रेष्ठ महर्षियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओंद्वारा उनकी पूजा की । गन्धर्व स्तुति करते हुए खड़े रहे तथा इन्द्रने भी प्रेमवश उनका अभिनन्दन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि श्रीकृष्णस्य स्वलोकगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें श्रीकृष्णका परमधामगमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

ऽध्यायः

अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना

वैशम्पायन उवाच

दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्।
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दारुकने भी कुरुदेशमें जाकर महारथी कुन्तीकुमारोंका दर्शन किया और उन्हें यह बताया कि समस्त वृष्णिवंशी मौसलयुद्धमें एक दूसरेके द्वारा मार डाले गये ॥ १ ॥

श्रुत्वा विनष्टान् वार्ष्णेयान् सभोजान्धककौकुरान्।
पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥ २ ॥

वृष्णि, भोज, अन्धक और कुकुरवंशके वीरोंका विनाश हुआ सुनकर समस्त पाण्डव शोकसे संतप्त हो उठे । वे मन-ही-मन संत्रस्त हो गये ॥ २ ॥

ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा ।
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णके प्रिय सखा अर्जुन अपने भाइयोंसे पूछकर मामासे मिलनेके लिये चल दिये और बोले—'ऐसा नहीं हुआ होगा (समस्त यदुवंशियोंका एक साथ विनाश असम्भव है)' ॥ ३ ॥

स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो ।
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम् ॥ ४ ॥

प्रभो ! दारुकके साथ वृष्णियोंके निवासस्थानपर पहुँचकर वीर अर्जुनने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्रीकी भाँति श्रीहीन हो गयी है ॥ ४ ॥

याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुराभवन्।
तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ॥ ५ ॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः ।

पूर्वकालमें लोकनाथ श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण जो सबसे अधिक सनाथा थीं, वे ही भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार अनाथा स्त्रियाँ अर्जुनको रक्षकके रूपमें आया देख उच्चस्वरसे करुणक्रन्दन करने लगीं ॥ ५½ ॥

तासामासीन्महान् नादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम् ॥ ६ ॥
तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः ।
हीनाः कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत् सोऽभिवीक्षितुम् ॥ ७ ॥

वहाँ पधारे हुए अर्जुनको देखते ही उन स्त्रियोंका आर्तनाद बहुत बढ़ गया । उन सबपर दृष्टि पड़ते ही अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये । पुत्रों और श्रीकृष्णसे हीन हुई उन अनाथ अबलाओंकी ओर उनसे देखा नहीं गया ॥६-७॥

स तां वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम् ।
वादित्ररथघोषौघां वेश्मतीर्थमहाह्रदाम् ॥ ८ ॥
रत्नशैवलसंघाता वज्रप्राकारमालिनीम् ।
रथ्यास्रोतोजलावर्ता चत्वरस्तिमितह्रदाम् ॥ ९ ॥
रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकां सरितं तदा ।
कालपाशग्रहां भीमां नदीं वैतरणीमिव ॥ १० ॥
ददर्श वासविर्धीमान् विहीनां वृष्णिपुङ्गवैः ।
गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा ॥ ११ ॥

द्वारकापुरी एक नदीके समान थी । वृष्णि और अन्धक वंशके लोग उसके भीतर जलके समान थे । घोड़े मछलीके समान थे । रथ नावका काम करते थे । वाद्योंकी ध्वनि और रथकी घरघराहट मानो उस नदीके बहते हुए जलका कलकल नाद थी । लोगोंके घर ही तीर्थ एवं बड़े-बड़े जलाशय थे । रत्नोंकी राशि ही वहा सेवारसमूहके समान शोभा पाती थी । वज्र नामक मणिकी बनी हुई चहारदीवारी ही उसकी तटपंक्ति थी । सड़कें और गलियाँ उसमें जलके सोते और भँवरें थीं, चौराहे मानो उसके स्थिर जलवाले तालाब थे । बलराम और श्रीकृष्ण उसके भीतर दो बड़े-बड़े ग्राह थे । कालपाश ही उसमें मगर और घड़ियालके समान था । ऐसी द्वारकारूपी नदीको बुद्धिमान् अर्जुनने वृष्णिवीरोंसे रहित हो जानेके कारण वैतरणीके समान भयानक देखा । वह शिशिरकालकी कमलिनीके समान श्रीहीन तथा आनन्दशून्य जान पड़ती थी ॥ ८–११ ॥

तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः ।
सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले ॥ १२ ॥

वैसी द्वारकाको और उन श्रीकृष्णकी पत्नियोंको देखकर अर्जुन आँसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

सात्राजिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशाम्पते ।
अभिपत्य प्ररुरुदुः परिवार्य धनंजयम् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! तब सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा तथा रुक्मिणी आदि रानियाँ वहाँ दौड़ी आयीं और अर्जुनको घेरकर उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ १३ ॥

ततस्तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योपवेश्य च ।
अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ १४ ॥

तदनन्तर अर्जुनको उठाकर उन्होंने सोनेकी चौकीपर बिठाया और उन महात्माको घेरकर बिना कुछ बोले उनके पास बैठ गयीं ॥ १४ ॥

ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः ।

आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात्॥ १५ ॥

उस समय अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनकी कथा कही और उन रानियोंको आश्वासन देकर वे अपने मामासे मिलनेके लिये गये ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनागमने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनका आगमनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम् ।
पुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुङ्गवः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मामाके महलमें पहुँचकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने देखा कि वीर महात्मा वसुदेवजी पुत्रशोकसे दुःखी होकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं ॥ १ ॥

तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! चौड़ी छाती और विशाल भुजावाले कुन्तीकुमार अर्जुन अपने शोकाकुल मामाकी वह दशा देखकर अत्यन्त संतप्त हो उठे । उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होंने मामाके दोनों पैर पकड़ लिये ॥ २ ॥

तस्य मूर्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः ।
स्वस्रीयस्य महाबाहुर्न शशाक च शत्रुहन् ॥ ३ ॥

शत्रुघाती नरेश ! महाबाहु आनकदुन्दुभि (वसुदेव) ने चाहा कि मैं अपने भानजे अर्जुनका मस्तक सूँघ लूँ; परंतु असमर्थतावश वे ऐसा न कर सके ॥ ३ ॥

समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः ।
रुदन् पुत्रान् स्मरन् सर्वान् विललाप सुविह्वलः॥ ४ ॥
भ्रातॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् ससखीनपि ।

महाबाहु बूढ़े वसुदेवजीने अपनी दोनों भुजाओंसे अर्जुनको खींचकर छातीसे लगा लिया और अपने समस्त पुत्रोंका स्मरण करके रोने लगे । फिर भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों और मित्रोंकी भी याद करके अत्यन्त व्याकुल हो वे विलाप करने लगे ॥

वसुदेव उवाच

यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन ॥ ५ ॥
तान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः ।

वसुदेव बोले— अर्जुन ! जिन वीरोंने सैकड़ों दैत्यों तथा राजाओंपर विजय पायी थी, उन्हें आज यहाँ मैं नहीं देख पा रहा हूँ तो भी मेरे प्राण नहीं निकलते । जान पड़ता है, मेरे लिये मृत्यु दुर्लभ है ॥ ५½ ॥

यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा ॥ ६ ॥
तयोरपनयात् पार्थ वृष्णयो निधनं गताः ।

अर्जुन ! जो तुम्हारे प्रिय शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे, उन्हीं दोनों (सात्यकि और प्रद्युम्न) के अन्यायसे समस्त वृष्णिवंशी मृत्युको प्राप्त हो गये हैं ॥ ६½ ॥

यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन् कत्थसे च यौ ।
तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ ॥ ८ ॥
तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनंजय ।

कुरुश्रेष्ठ धनंजय ! वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें जिन दोको ही अतिरथी माना जाता था तथा तुम भी चर्चा चलाकर जिनकी प्रशंसाके गीत गाते थे, वे श्रीकृष्णके प्रीतिभाजन प्रद्युम्न और सात्यकि ही इस समय वृष्णिवंशियोंके विनाशके प्रमुख कारण बने हैं ॥ ७-८½ ॥

न तु गर्हामि शैनेयं हार्दिक्यं चाहमर्जुन ॥ ९ ॥
अक्रूरं रौक्मिणेयं च शापो ह्येवात्र कारणम् ।

अथवा अर्जुन ! इस विषयमें मैं सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर और प्रद्युम्नकी निन्दा नहीं करूँगा। वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही यादवोंके इस सर्वनाशका प्रधान कारण है ॥ ९½ ॥

केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः ॥ १० ॥
विदेहावकरोत् पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम् ।
नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ॥ ११ ॥
गान्धारान् काशिराजं च मरुभूमौ च पार्थिवान् ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२ ॥
सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः ।

कुन्तीनन्दन ! जिन जगदीश्वरने पराक्रम प्रकट करके केशी और कंसको देह-बन्धनसे मुक्त कर दिया। बलका घमंड रखनेवाले चेदिराज शिशुपाल, निषादपुत्र एकलव्य, कलिङ्ग-राज, मगधनिवासी क्षत्रिय, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमि के राजाओंको भी यमलोक भेज दिया था, जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय प्रान्तके नरेशोंका भी संहार कर डाला था, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंकी अनीतिके कारण प्राप्त हुए इस संकटकी उपेक्षा कर दी ॥ १०–१२½ ॥

त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥ १३ ॥
गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम् ।
प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥ १४ ॥

तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको पापके सम्पर्कसे रहित, सनातन, अच्युत परमेश्वररूपसे जानते हैं। वे ही सर्वव्यापी अधोक्षज अपने कुटुम्बी जनोंके इस विनाश-को चुपचाप देखते रहे ॥ १३-१४ ॥

समुपेक्षितवान् नित्यं स्वयं स मम पुत्रकः ।
गान्धार्या वचनं यत् तदृषीणां च परंतप ॥ १५ ॥
तन्नूनमन्यथा कर्तुं नैच्छत् स जगतः प्रभुः ।

परंतप अर्जुन ! मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए वे जगदीश्वर गान्धारी तथा महर्षियोंके शापको पलटना नहीं चाहते थे, इसीलिये उन्होंने सदा ही इस संकटकी उपेक्षा की ॥ १५½ ॥

प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परंतप ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा ।

परंतप ! तुम्हारा पौत्र परीक्षित् अश्वत्थामाद्वारा मार डाला गया था तो भी श्रीकृष्णके तेजसे वह जीवित हो गया। यह तो तुमलोगोंकी आँखों-देखी घटना है ॥ १६½ ॥

इमांस्तु नैच्छत् स्वाञ्ज्ञातीन् रक्षितुं च सखा तव ॥ १७ ॥
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा ।
शयानान् निहतान् दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् ॥ १८ ॥

इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखाने अपने इन भाई-बन्धुओंको प्राणसंकटसे बचानेकी इच्छा नहीं की। जब पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र सभी एक दूसरेके हाथसे मरकर धराशायी हो गये, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर श्रीकृष्ण मेरे पास आये और इस प्रकार बोले— ॥ १७-१८ ॥

सम्प्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ ।
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम् ॥ १९ ॥
आख्येयं तस्य यद् वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत् ।

'पुरुषप्रवर पिताजी ! आज इस कुलका संहार हो गया। अर्जुन द्वारकापुरीमें आनेवाले हैं। आनेपर उनसे वृष्णिवंशियोंके इस महान् विनाशका वृत्तान्त कहियेगा ॥ १९½ ॥

स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो ॥ २० ॥
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽस्ति विचारणा ।

'प्रभो ! अर्जुनके पास संदेश भी पहुँचा होगा। वे महा-तेजस्वी कुन्तीकुमार यदुवंशियोंके विनाशका यह समाचार सुनकर शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचेंगे। इस विषयमें मेरा कोई अन्यथा विचार नहीं है ॥ २०½ ॥

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ॥ २१ ॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव ।

'जो मैं हूँ उसे अर्जुन समझिये, जो अर्जुन हैं वह मैं ही हूँ। माधव ! अर्जुन जो कुछ भी कहें वैसा ही आपलोगोंको करना चाहिये। इस बातको अच्छी तरह समझ लें ॥ २१½ ॥

स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च ॥ २२ ॥
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम् ।

'जिन स्त्रियोंका प्रसवकाल समीप हो, उनपर और छोटे बालकोंपर अर्जुन विशेषरूपसे ध्यान देंगे और वे ही आपका और्ध्वदेहिक संस्कार भी करेंगे ॥ २२½ ॥

इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनंजये ॥ २३ ॥
प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति ।

'अर्जुनके चले जानेपर चहारदीवारी और अट्टालिकाओं-सहित इस नगरीको समुद्र तत्काल डुबो देगा ॥ २३½ ॥

अहं देशे तु कस्मिंश्चित् पुण्ये नियममास्थितः ॥ २४ ॥
कालं काङ्क्षे सद्य एव रामेण सह धीमता ।

'मैं किसी पवित्र स्थानमें रहकर शौच-संतोषादि नियमोंका आश्रय ले बुद्धिमान् बलरामजीके साथ शीघ्र ही कालकी प्रतीक्षा करूँगा' ॥ २४½ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ॥ २५ ॥
हित्वा मां बालकैः सार्धं दिशं काममप्यगात् प्रभुः ।

ऐसा कहकर अचिन्त्य पराक्रमी प्रभावशाली श्रीकृष्ण बालकोंके साथ मुझे यहीं छोड़कर किसी अज्ञात दिशाको चले गये हैं ॥ २५½ ॥

सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन् भ्रातरौ तव ॥ २६ ॥
घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्शितः ।
न भोक्ष्ये न च जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव ॥ २७ ॥

तबसे मैं तुम्हारे दोनों भाई महात्मा बलराम और श्रीकृष्णका तथा कुटुम्बीजनोंके इस घोर संहारका चिन्तन करके शोकसे गलता जा रहा हूँ। मुझसे भोजन नहीं किय

वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे हैं

जाता। अब मैं न तो भोजन करूँगा और न इस जीवनको ही रक्खूँगा। पाण्डुनन्दन! सौभाग्यकी बात है कि तुम यहाँ आ गये ॥ २६-२७ ॥

यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत् सर्वमखिलं कुरु।
एतत् ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव हि ॥
इष्टान् प्राणानहं हीमांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २८ ॥

पार्थ! श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, वह सब करो। यह राज्य, ये स्त्रियाँ और ये रत्न—सब तुम्हारे अधीन हैं। शत्रुसूदन! अब मैं निश्चिन्त होकर अपने इन प्यारे प्राणोंका परित्याग करूँगा ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनवसुदेवसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुन और वसुदेवका संवादविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परंतप।
दुर्मना दीनवदनो वसुदेवमुवाच ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—परंतप! अपने मामा वसुदेवजीके ऐसा कहनेपर अर्जुन मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। उनका मुख मलिन हो गया। वे वसुदेवजीसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल।
विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्यामीह कथंचन ॥ २ ॥

'मामाजी! वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अपने भाइयोंसे हीन हुई यह पृथ्वी मुझसे अब किसी तरह देखी नहीं जा सकेगी ॥ २ ॥

राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः।
नकुलो याज्ञसेनी च षडेकमनसो वयम् ॥ ३ ॥

'राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, पाण्डव सहदेव, नकुल, द्रौपदी तथा मैं—ये छः व्यक्ति एक ही हृदय रखते हैं (इनमेंसे कोई भी अब यहाँ रहना नहीं चाहेगा) ॥ ३ ॥

राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्तते ध्रुवम्।
तमिमं विद्धि सम्प्राप्तं कालं कालविदां वर ॥ ४ ॥

'राजा युधिष्ठिरके भी परलोक-गमनका समय निश्चय ही आ गया है। कालज्ञोंमें श्रेष्ठ मामाजी! यह वही काल प्राप्त हुआ है—ऐसा समझें ॥ ४ ॥

सर्वथा वृष्णिदारास्तु बालं वृद्धं तथैव च।
नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थमरिंदम ॥ ५ ॥

'शत्रुदमन! अब मैं वृष्णिवंशकी स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको अपने साथ ले जाकर इन्द्रप्रस्थ पहुँचाऊँगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनंजयः।
अमात्यान् वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम् ॥

मामासे यों कहकर अर्जुनने दारुकसे कहा—'अब मैं वृष्णिवंशी वीरोंके मन्त्रियोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ' ॥ ६ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां यादवीं सभाम्।
प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुन यादव महारथियोंके लिये शोक करते हुए यादवोंकी सुधर्मा नामक सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा।
ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ एक सिंहासनपर बैठे हुए अर्जुनके पास मन्त्री आदि समस्त प्रकृतिवर्गके लोग तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण आये और उन्हें सब ओरसे घेरकर पास ही बैठ गये ॥ ८ ॥

तान् दीनमनसः सर्वान् विमूढान् गतचेतसः।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा ॥ ९ ॥

उन सबके मनमें दीनता छा गयी थी। सभी किंकर्तव्य-विमूढ एवं अचेत हो रहे थे। अर्जुनकी दशा तो उनसे भी अधिक दयनीय थी। वे उन सभासदोंसे समयोचित वचन बोले—॥ ९ ॥

शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम्।
इदं तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १० ॥
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च।
वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे भविष्यति ॥ ११ ॥

'मन्त्रियो! मैं वृष्णि और अन्धकवंशके लोगोंको अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा; क्योंकि समुद्र अब इस सारे नगरको डुबो देगा; अतः तुमलोग तरह-तरहके वाहन और रत्न लेकर तैयार हो जाओ। इन्द्रप्रस्थमें चलनेपर ये श्रीकृष्ण-पौत्र वज्र तुमलोगोंके राजा बनाये जायँगे ॥ १०-११ ॥

सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमल उद्गते।
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम् ॥ १२ ॥

'आजके सातवें दिन निर्मल सूर्योदय होते ही हम सब

लोग इस नगरसे बाहर हो जायँगे। इसलिये सब लोग शीघ्र तैयार हो जाओ; विलम्ब न करो'॥ १२॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा।
सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्ध्यर्थं समुत्सुकाः॥ १३॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर समस्त मन्त्रियोंने अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर शीघ्र ही तैयारी आरम्भ कर दी॥ १३॥

तां रात्रिमवसत् पार्थः केशवस्य निवेशने।
महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः॥ १४॥

अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही उस रातको निवास किया। वे वहाँ पहुँचते ही सहसा महान् शोक और मोहमें डूब गये॥ १४॥

श्वोभूतेऽथ ततः शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान्।
युक्त्वाऽऽत्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्तमाम्॥ १५॥

सवेरा होते ही महातेजस्वी शूरनन्दन प्रतापी वसुदेवजीने अपने चित्तको परमात्मामें लगाकर योगके द्वारा उत्तम गति प्राप्त की॥ १५॥

ततः शब्दो महानासीद् वसुदेवनिवेशने।
दारुणः क्रोशतीनां च रुदतीनां च योषिताम्॥ १६॥

फिर तो वसुदेवजीके महलमें बड़ा भारी कुहराम मचा। रोती-चिल्लाती हुई स्त्रियोंका आर्तनाद बड़ा भयंकर प्रतीत होता था॥ १६॥

प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्रजः।
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः॥ १७॥

उन सबके बाल खुले हुए थे। उन्होंने आभूषण और मालाएँ तोड़कर फेंक दी थीं और वे सारी स्त्रियाँ अपने हाथोंसे छाती पीटती हुई करुणाजनक विलाप कर रही थीं॥ १७॥

तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा।
अन्वारोहन्त च तदा भर्तारं योषितां वराः॥ १८॥

युवतियोंमें श्रेष्ठ देवकी, भद्रा, रोहिणी तथा मदिरा—ये सब-की-सब अपने पतिके साथ चितापर आरूढ़ होनेको उद्यत हो गयीं॥ १८॥

ततः शौरिं नृयुक्तेन बहुमूल्येन भारत।
यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत् तदा॥ १९॥

भारत! तदनन्तर अर्जुनने एक बहुमूल्य विमान सजाकर उसपर वसुदेवजीके शवको सुलाया और मनुष्योंके कंधोंपर उठवाकर वे उसे नगरसे बाहर ले गये॥ १९॥

तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमन्विताः।
द्वारकावासिनः सर्वे पौरजानपदा हिताः॥ २०॥

उस समय समस्त द्वारकावासी तथा आनर्त जनपदके लोग जो यादवोंके हितैषी थे, वहाँ दुःख-शोकमें मग्न होकर वसुदेवजीके शवके पीछे-पीछे गये॥ २०॥

तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः।
पुरस्तात् तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः॥ २१॥

उनकी अरथीके आगे-आगे अश्वमेध-यज्ञमें उपयोग किया हुआ छत्र तथा अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्नि लिये याजक ब्राह्मण चल रहे थे॥ २१॥

अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः।
स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः॥ २२॥

वीर वसुदेवजीकी पत्नियाँ वस्त्र और आभूषणोंसे सज-धजकर हजारों पुत्र-वधुओं तथा अन्य स्त्रियोंके साथ अपने पतिकी अरथीके पीछे-पीछे जा रही थीं॥ २२॥

यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः।
तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे॥ २३॥

महात्मा वसुदेवजीको अपने जीवनकालमें जो स्थान विशेष प्रिय था, वहीं ले जाकर अर्जुन आदिने उनका पितृ-मेधकर्म (दाह-संस्कार) किया॥ २३॥

तं चिताग्निगतं वीरं शूरपुत्रं वराङ्गनाः।
ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः॥ २४॥

चिताकी प्रज्वलित अग्निमें सोये हुए वीर शूरपुत्र वसुदेवजीके साथ उनकी पूर्वोक्त चारों पत्नियाँ भी चितापर जा बैठीं और उन्हींके साथ भस्म हो पतिलोकको प्राप्त हुईं॥ २४॥

तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वितं पाण्डुनन्दनः।
अदाहयच्चन्दनैश्च गन्धैरुच्चावचैरपि॥ २५॥

चारों पत्नियोंसे संयुक्त हुए वसुदेवजीके शवका पाण्डुनन्दन अर्जुनने चन्दनकी लकड़ियों तथा नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंद्वारा दाह किया॥ २५॥

ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः।
सामगानां च निर्घोषो नराणां रुदतामपि॥ २६॥

उस समय प्रज्वलित अग्निका चट-चट शब्द, सामगान करनेवाले ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणका गम्भीर घोष तथा रोते हुए मनुष्योंका आर्तनाद एक साथ ही प्रकट हुआ॥ २६॥

ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धककुमारकाः।
सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः॥ २७॥

इसके बाद वज्र आदि वृष्णि और अन्धकवंशके कुमारों तथा स्त्रियोंने महात्मा वसुदेवजीको जलाञ्जलि दी॥ २७॥

अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः।
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ॥ २८॥

भरतश्रेष्ठ! अर्जुनने कभी धर्मका लोप नहीं किया था। वह धर्मकृत्य पूर्ण कराकर अर्जुन उस स्थानपर गये जहाँ वृष्णियोंका संहार हुआ था॥ २८॥

स तान् दृष्ट्वा निपतितान् कदने भृशदुःखितः।
बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार ह॥ २९॥

यथा प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः ।
ये हता ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥ ३० ॥

उस भीषण मारकाटमें मरकर धराशायी हुए यादवोंको देखकर कुरुकुलनन्दन अर्जुनको बड़ा भारी दुःख हुआ। उन्होंने ब्रह्मशापके कारण एरकासे उत्पन्न हुए मूसलोंद्वारा मारे गये यदुवंशी वीरोंके बड़े-छोटेके क्रमसे सारे समयोचित कार्य (अन्त्येष्टि कर्म) सम्पन्न किये ॥ २९-३० ॥

ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः ।
अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विश्वस्त पुरुषोंद्वारा बलराम तथा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दोनोंके शरीरोंकी खोज कराकर अर्जुनने उनका भी दाह-संस्कार किया ॥ ३१ ॥

स तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।
सप्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः ॥ ३२ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन उन सबके प्रेतकर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करके तुरंत रथपर आरूढ़ हो सातवें दिन द्वारकासे चल दिये ॥ ३२ ॥

अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि ।
स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्शिताः ॥ ३३ ॥
अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम् ।

उनके साथ घोड़े, बैल, गधे और ऊँटोंसे जुते हुए रथोंपर बैठकर शोकसे दुर्बल हुई वृष्णिवंशी वीरोंकी पत्नियाँ रोती हुई चलीं। उन सबने पाण्डुपुत्र महात्मा अर्जुनका अनुगमन किया ॥ ३३½ ॥

भृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये ॥ ३४ ॥
वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा ।
ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ ३५ ॥

अर्जुनकी आज्ञासे अन्धकों और वृष्णियोंके नौकर, घुड़सवार, रथी तथा नगर और प्रान्तके लोग बूढ़े और बालकोंसे युक्त विधवा स्त्रियोंको चारों ओरसे घेरकर चलने लगे ॥ ३४-३५ ॥

कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा ।
सपादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः ॥ ३६ ॥

हाथी-सवार पर्वताकार हाथियोंद्वारा गुप्तरूपसे अस्त्र-शस्त्र धारण किये यात्रा करने लगे। उनके साथ हाथियोंके पादरक्षक भी थे ॥ ३६ ॥

पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः ॥ ३७ ॥
दश षट् च सहस्राणि वासुदेवावरोधनम् ।
पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

अन्धक और वृष्णिवंशके समस्त बालक अर्जुनके प्रति श्रद्धा रखनेवाले थे। वे तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, महाधनी शूद्र और भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ—ये सब-की-सब बुद्धिमान् श्रीकृष्णके पौत्र वज्रको आगे करके चल रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथानि निर्ययुः ॥ ३९ ॥
तत्सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमत् ।
उवाह रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरंजयः ॥ ४० ॥

भोज, वृष्णि और अन्धक कुलकी अनाथ स्त्रियोंकी संख्या कई हजारों, लाखों और अर्बुदोंतक पहुँच गयी थी। वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकलीं। वृष्णियोंका वह महान् समृद्धिशाली मण्डल महासागरके समान जान पड़ता था। शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उसे अपने साथ लेकर चले ॥ ३९-४० ॥

निर्याते तु जने तस्मिन् सागरो मकरालयः ।
द्वारकां रत्नसम्पूर्णां जलेनाप्लावयत् तदा ॥ ४१ ॥

उस जनसमुदायके निकलते ही मगरों और घड़ियालोंके निवासस्थान समुद्रने रत्नोंसे भरी-पूरी द्वारका नगरीको जलसे डुबो दिया ॥ ४१ ॥

यद् यद्धि पुरुषव्याघ्रो भूमेस्तस्या व्यमुञ्चत ।
तत् तत् सम्प्लावयामास सलिलेन स सागरः ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह अर्जुनने उस नगरका जो-जो भाग छोड़ा, उसे समुद्रने अपने जलसे आप्लावित कर दिया ॥ ४२ ॥

तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः ।
तूर्णात् तूर्णतरं जग्मुरहो दैवमिति ब्रुवन् ॥ ४३ ॥

यह अद्भुत दृश्य देखकर द्वारकावासी मनुष्य बड़ी तेजीसे चलने लगे। उस समय उनके मुखसे बारंबार यही निकलता था कि 'दैवकी लीला विचित्र है' ॥ ४३ ॥

काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च ।
निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनंजयः ॥ ४४ ॥

अर्जुन रमणीय काननों, पर्वतों और नदियोंके तटपर निवास करते हुए वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले जा रहे थे ॥ ४४ ॥

स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् ।
देशे गोपशुधान्याढ्ये निवासमकरोत् प्रभुः ॥ ४५ ॥

चलते-चलते बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली अर्जुनने अत्यन्त समृद्धिशाली पञ्चनद देशमें पहुँचकर जो गौ, पशु तथा धन-धान्यसे सम्पन्न था, ऐसे प्रदेशमें पड़ाव डाला ॥ ४५ ॥

ततो लोभः समभवद् दस्यूनां निहतेश्वराः ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥ ४६ ॥

भरतनन्दन ! एकमात्र अर्जुनके संरक्षणमें ले जायी जाती हुई इतनी अनाथ स्त्रियोंको देखकर वहाँ रहनेवाले लुटेरोंके मनमें लोभ पैदा हुआ ॥ ४६ ॥

ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्याशुभदर्शनाः ॥ ४७ ॥

लोभसे उनके चित्तकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी । उन अशुभदर्शी पापाचारी आभीरोंने परस्पर मिलकर सलाह की ॥

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी वृद्धबालं हतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्चेमे हतौजसः ॥ ४८ ॥

'भाइयो ! देखो, यह अकेला धनुर्धर अर्जुन और ये हतोत्साह सैनिक हमलोगोंको लाँघकर बूढ़ों और बालकोंके इस अनाथ समुदायको लिये जा रहे हैं (अतः इनपर आक्रमण करना चाहिये)' ॥ ४८ ॥

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः ।
अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ॥ ४९ ॥

ऐसा निश्चय करके लूटका माल उड़ानेवाले वे लट्ठधारी लुटेरे वृष्णिवंशियोंके उस समुदायपर हजारोंकी संख्यामें टूट पड़े ॥ ४९ ॥

महता सिंहनादेन त्रासयन्तः पृथग्जनम् ।
अभिपेतुर्वधार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ॥ ५० ॥

समयके उलट-फेरसे प्रेरणा पाकर वे लुटेरे उन सबके वधके लिये उतारू हो अपने महान् सिंहनादसे साधारण लोगोंको डराते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ५० ॥

ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः ।
उवाच तान् महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ॥ ५१ ॥

आक्रमणकारियोंको पीछेकी ओरसे धावा करते देख कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन सेवकोंसहित सहसा लौट पड़े और उनसे हँसते हुए-से बोले—॥ ५१ ॥

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि जीवितुमिच्छथ ।
इदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ॥ ५२ ॥

'धर्मको न जाननेवाले पापियो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ; नहीं तो मेरे द्वारा मारे जाकर या मेरे बाणोंसे विदीर्ण होकर इस समय तुम बड़े शोकमें पड़ जाओगे' ॥ ५२ ॥

तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्थीकृत्य तद्वचः ।
अभिपेतुर्जनं मूढा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

वीरवर अर्जुनके ऐसा कहनेपर उनकी बातोंकी अवहेलना करके वे मूर्ख अहीर उनके बारंबार मना करनेपर भी उस जनसमुदायपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् ।
आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथंचन ॥ ५४ ॥

तब अर्जुनने अपने दिव्य एवं कभी जीर्ण न होनेवाले विशाल धनुष गाण्डीवको चढ़ाना आरम्भ किया और बड़े प्रयत्नसे किसी तरह उसे चढ़ा दिया ॥ ५४ ॥

चकार सज्जं कृच्छ्रेण सम्भ्रमे तुमुले सति ।
चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ ५५ ॥

भयङ्कर मारकाट छिड़नेपर बड़ी कठिनाईसे उन्होंने धनुषपर प्रत्यञ्चा तो चढ़ा दी; परंतु जब वे अपने अस्त्र-शस्त्रोंका चिन्तन करने लगे, तब उन्हें उनकी याद बिल्कुल नहीं आयी ॥ ५५ ॥

वैकृतं तन्महद् दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथा युधि ।
दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद् व्रीडितोऽभवत् ॥ ५६ ॥

युद्धके अवसरपर अपने बाहुबलमें यह महान् विकार आया देख और महान् दिव्यास्त्रोंका विस्मरण हुआ जान वे लज्जित हो गये ॥ ५६ ॥

वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयोधिनः ।
न शेकुरावर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनम् ॥ ५७ ॥

हाथी, घोड़े और रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले समस्त वृष्णिसैनिक भी उन डाकुओंके हाथमें पड़े हुए अपने मनुष्योंको लौटा न सके ॥ ५७ ॥

कलत्रस्य बहुत्वाद्धि सम्पतत्सु ततस्ततः ।
प्रयत्नमकरोत् पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५८ ॥

उस समुदायमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत थी; इसलिये डाकू कई ओरसे उनपर धावा करने लगे तो भी अर्जुन उनकी रक्षाका यथासाध्य प्रयत्न करते रहे ॥ ५८ ॥

मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥ ५९ ॥

सब योद्धाओंके देखते-देखते वे डाकू उन सुन्दरी स्त्रियोंको चारों ओरसे खींच-खींचकर ले जाने लगे । दूसरी स्त्रियाँ उनके स्पर्शके भयसे उनकी इच्छाके अनुसार चुपचाप उनके साथ चली गयीं ॥ ५९ ॥

ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनंजयः ।
जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः ॥ ६० ॥

तब कुन्तीकुमार अर्जुन उद्विग्न होकर सहस्रों वृष्णि-सैनिकोंको साथ ले गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उन लुटेरोंके प्राण लेने लगे ॥ ६० ॥

क्षणेन तस्य ते राजन् क्षयं जग्मुरजिह्मगाः ।
अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः ॥ ६१ ॥

राजन् ! अर्जुनके सीधे जानेवाले बाण क्षणभरमें क्षीण हो गये । जो रक्तभोगी बाण पहले अक्षय थे, वे ही उस समय सर्वथा क्षयको प्राप्त हो गये ॥ ६१ ॥

स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः ।
धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत् पाकशासनिः ॥ ६२ ॥

बाणोंके समाप्त हो जानेपर दुःख और शोकके आघात सहते हुए इन्द्रकुमार अर्जुन धनुषकी नोकसे ही उन डाकुओंका वध करने लगे ॥ ६२ ॥

प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः ॥ ६३ ॥

जनमेजय ! अर्जुन देखते ही रह गये और वे म्लेच्छ डाकू सब ओरसे वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लूट ले गये ॥ ६३ ॥

धनंजयस्तु दैवं तन्मनसाऽचिन्तयत् प्रभुः ।
दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ६४ ॥

प्रभावशाली अर्जुनने मन-ही-मन इसे दैवका विधान समझा और दुःख-शोकमें डूबकर वे लंबी साँस लेने लगे ॥

अस्त्राणां च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात् ।
धनुषश्चाविधेयत्वाच्छराणां संक्षयेण च ॥ ६५ ॥
बभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनुचिन्तयन् ।

अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान लुप्त हो गया । भुजाओंका बल भी घट गया । धनुष भी काबूके बाहर हो गया और अक्षय बाणोंका भी क्षय हो गया । इन सब बातोंसे अर्जुनका मन उदास हो गया । वे इन सब घटनाओंको दैवका विधान मानने लगे ॥ ६५½ ॥

न्यवर्तत ततो राजन् नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! तदनन्तर अर्जुन युद्धसे निवृत्त हो गये और बोले—'यह अस्त्रज्ञान आदि कुछ भी नित्य नहीं है' ॥६६॥

ततः शेषं समादाय कलत्रस्य महामतिः ।
हृतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६७ ॥

फिर अपहरणसे बची हुई स्त्रियों और जिनका अधिक भाग लूट लिया गया था, ऐसे बचे-खुचे रत्नोंको साथ लेकर परम बुद्धिमान् अर्जुन कुरुक्षेत्रमें उतरे ॥ ६७ ॥

एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम् ।
न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनंजयः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार अपहरणसे बची हुई वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको ले आकर कुरुनन्दन अर्जुनने उनको जहाँ-तहाँ बसा दिया ॥

हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरे मार्तिकावते ।
भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः ॥ ६९ ॥

कृतवर्माके पुत्रको और भोजराजके परिवारकी अपहरणसे बची हुई स्त्रियोंको नरश्रेष्ठ अर्जुनने मार्तिकावत नगरमें बसा दिया ॥ ६९ ॥

ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः ।
वीरैर्विहीनान् सर्वांस्ताञ्शक्रप्रस्थे न्यवेशयत् ॥ ७० ॥

तत्पश्चात् वीरविहीन समस्त वृद्धों, बालकों तथा अन्य स्त्रियोंको साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँका निवासी बना दिया ॥ ७० ॥

यौयुधानिं सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम् ।
न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥ ७१ ॥

धर्मात्मा अर्जुनने सात्यकिके प्रिय पुत्र यौयुधानिको सरस्वतीके तटवर्ती देशका अधिकारी एवं निवासी बना दिया और वृद्धों तथा बालकोंको उसके साथ कर दिया ॥ ७१ ॥

इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा ।
वज्रेणाक्रूरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ७२ ॥

इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दे दिया । अक्रूरजीकी स्त्रियाँ वज्रके बहुत रोकनेपर भी वनमें तपस्या करनेके लिये चली गयीं ॥ ७२ ॥

रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि ।
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ ७३ ॥

रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती तथा जाम्बवती देवीने पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें प्रवेश किया ॥७३॥

सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य सम्मताः ।
वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये कृतनिश्चयाः ॥ ७४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयीं ॥ ७४ ॥

द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमभ्ययुः ।
यथार्हं संविभज्यैनान् वज्रे पर्यददज्जयः ॥ ७५ ॥

जो-जो द्वारकावासी मनुष्य पार्थके साथ आये थे, उन सबका यथायोग्य विभाग करके अर्जुनने उन्हें वज्रको सौंप दिया ॥ ७५ ॥

स तत् कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७६ ॥

इस प्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए महर्षि व्यासके आश्रमपर गये और वहाँ बैठे हुए महर्षिका उन्होंने दर्शन किया ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि वृष्णिकलत्राद्यानयने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें अर्जुनद्वारा वृष्णिवंशकी स्त्रियों और बालकोंका आनयनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः ।
ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सत्यवादी व्यासजीके आश्रममें प्रवेश करके अर्जुनने देखा कि सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यास एकान्तमें बैठे हुए हैं ॥ १ ॥

स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम् ।
अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत् ततः ॥ २ ॥

महान् व्रतधारी तथा धर्मके ज्ञाता व्यासजीके पास पहुँचकर 'मैं अर्जुन हूँ' ऐसा कहते हुए धनंजयने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे उनके पास ही खड़े हो गये ॥

स्वागतं तेऽस्त्विति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः।
आस्यतामिति होवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः ॥ ३ ॥

उस समय प्रसन्नचित्त हुए महामुनि सत्यवतीनन्दन व्यासने अर्जुनसे कहा—'बेटा! तुम्हारा स्वागत है; आओ यहाँ बैठो' ॥ ३ ॥

तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थं व्यासोऽब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥

अर्जुनका मन अशान्त था। वे बारंबार लंबी साँस खींच रहे थे। उनका चित्त खिन्न एवं विरक्त हो चुका था। उन्हें इस अवस्थामें देखकर व्यासजीने पूछा—॥ ४ ॥

नखकेशदशाकुम्भवारिणा किं समुक्षितः।
आवीरजानुगमनं ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ॥ ५ ॥

'पार्थ! क्या तुमने नख, बाल अथवा अधोवस्त्र (धोती) की कोर पड़ जानेसे अशुद्ध हुए घड़ेके जलसे स्नान कर लिया है? अथवा तुमने रजस्वला स्त्रीसे समागम या किसी ब्राह्मणका वध तो नहीं किया है? ॥ ५ ॥

युद्धे पराजितो वासि गतश्रीरिव लक्ष्यसे।
न त्वां प्रभिन्नं जानामि किमिदं भरतर्षभ ॥ ६ ॥
श्रोतव्यं चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि।

'कहीं तुम युद्धमें परास्त तो नहीं हो गये? क्योंकि श्रीहीन-से दिखायी देते हो। भरतश्रेष्ठ! तुम कभी पराजित हुए हो—यह मैं नहीं जानता; फिर तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है? पार्थ! यदि मेरे सुननेयोग्य हो तो अपनी इस मलिनताका कारण मुझे शीघ्र बताओ' ॥ ६½ ॥

अर्जुन उवाच

यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पङ्कजलोचनः ॥ ७ ॥
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः।

अर्जुनने कहा—भगवन्! जिनका सुन्दर विग्रह मेघके समान श्याम था और जिनके नेत्र विशाल कमलदलके समान शोभा पाते थे, वे श्रीमान् भगवान् कृष्ण बलरामजीके साथ देहत्याग करके अपने परमधामको पधार गये ॥ ७½ ॥

(तद्वाक्यस्पर्शनालोकसुखं त्वमृतसंनिभम्।
संस्मृत्य देवदेवस्य प्रमुह्याम्यमृतात्मनः ॥)

देवताओंके भी देवता, अमृतस्वरूप श्रीकृष्णके मधुर वचनोंको सुनने, उनके श्रीअङ्गोंका स्पर्श करने और उन्हें देखनेका जो अमृतके समान सुख था, उसे बार-बार याद करके मैं अपनी सुध-बुध खो बैठता हूँ ॥

मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ॥ ८ ॥
बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः।

ब्राह्मणोंके शापसे मौसलयुद्धमें वृष्णिवंशी वीरोंका विनाश हो गया। बड़े-बड़े वीरोंका अन्त कर देनेवाला वह रोमाञ्चकारी संग्राम प्रभासक्षेत्रमें घटित हुआ था ॥ ८½ ॥

एते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ॥ ९ ॥
भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि।

ब्रह्मन्! भोज, वृष्णि और अन्धकवंशके ये महामनस्वी शूरवीर सिंहके समान दर्पशाली और महान् बलवान् थे; परंतु वे गृहयुद्धमें एक दूसरेके द्वारा मार डाले गये ॥ ९½ ॥

गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥ १० ॥
त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम्।

जो गदा, परिघ और शक्तियोंकी मार सह सकते थे, वे परिघके समान सुदृढ़ बाहोंवाले यदुवंशी एरका नामक तृणविशेषके द्वारा मारे गये—यह समयका उलट-फेर तो देखिये ॥

हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ॥ ११ ॥
निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम्।

अपने बाहुबलसे शोभा पानेवाले पाँच लाख वीर आपसमें ही लड़-भिड़कर मर मिटे ॥ ११½ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि विनाशममितौजसाम् ॥ १२ ॥
चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः।
शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ॥ १३ ॥
नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च।
अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १४ ॥

उन अमित तेजस्वी वीरोंके विनाशका दुःख मुझसे किसी तरह सहा नहीं जाता। मैं बार-बार उस दुःखसे व्यथित हो जाता हूँ। यशस्वी श्रीकृष्ण और यदुवंशियोंके परलोकगमनकी बात सोचकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो समुद्र सूख गया, पर्वत हिलने लगे, आकाश फट पड़ा और

अग्निके स्वभावमें शीतलता आ गयी। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्ण भी मृत्युके अधीन हुए होंगे—यह बात विश्वासके योग्य नहीं है। मैं इसे नहीं मानता॥ १२–१४॥

न चेह स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविनाकृतः।
इतः कष्टतरं चान्यच्छृणु तद् वै तपोधन॥ १५॥

फिर भी श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। मैं इस संसारमें उनके बिना नहीं रहना चाहता। तपोधन! इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। आप इसे सुनिये॥ १५॥

मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः।
पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्रशः॥ १६॥
आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः।

जब मैं उस घटनाका चिन्तन करता हूँ, तब बारंबार मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। ब्रह्मन्! पंजाबके अहीरोंने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते वृष्णिवंशकी हजारों स्त्रियोंका अपहरण कर लिया॥ १६½॥

धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य पूरणे॥ १७॥
यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाभवत्।

मैंने धनुष लेकर उनका सामना करना चाहा, परंतु मैं उसे चढ़ा न सका। मेरी भुजाओंमें पहले-जैसा बल था वैसा अब नहीं रहा॥ १७½॥

अस्त्राणि मे प्रणष्टानि विविधानि महामुने॥ १८॥
शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः।

महामुने! मेरा नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी बाण सब ओर जाकर क्षणभरमें नष्ट हो गये॥

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शङ्खचक्रगदाधरः॥ १९॥
चतुर्भुजः पीतवासाः श्यामः पद्मदलेक्षणः।
यश्च याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः॥ २०॥
प्रदहन् रिपुसैन्यानि न पश्याम्यहमच्युतम्।

जिनका स्वरूप अप्रमेय है, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले हैं, जो महातेजस्वी प्रभु शत्रुओंकी सेनाओंको भस्म करते हुए मेरे रथके आगे-आगे चलते थे, उन्हीं भगवान् अच्युतको अब मैं नहीं देख पाता हूँ॥

येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा॥ २१॥
शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाच्च नाशयम्।
तमपश्यन् विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम॥ २२॥

साधुशिरोमणे! जो पहले स्वयं ही अपने तेजसे शत्रु-सेनाओंको दग्ध कर देते थे, उसके बाद मैं गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उन शत्रुओंका नाश करता था, उन्हीं भगवान्‌को आज न देखनेके कारण मैं विषादमें डूबा हुआ हूँ। मुझे चक्कर-सा आ रहा है॥ २१-२२॥

परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च।
(देवकीनन्दनं देवं वासुदेवमजं प्रभुम्।)
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे॥ २३॥

मेरे चित्तमें निर्वेद छा गया है। मुझे शान्ति नहीं मिलती है। मैं देवस्वरूप, अजन्मा, भगवान् देवकीनन्दन वासुदेव वीर जनार्दनके बिना अब जीवित रहना नहीं चाहता॥२३॥

श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः।
प्रणष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः॥ २४॥
उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम।

सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये, यह बात सुनते ही मुझे सम्पूर्ण दिशाओंका ज्ञान भूल जाता है। मेरे भी जाति-भाइयोंका नाश तो पहले ही हो गया था, अब मेरा पराक्रम भी नष्ट हो गया; अतः शून्यहृदय होकर इधर-उधर दौड़ लगा रहा हूँ। संतोंमें श्रेष्ठ महर्षे! आप कृपा करके मुझे यह उपदेश दें कि मेरा कल्याण कैसे होगा?॥ २४½॥

व्यास उवाच

(देवांशा देवदेवेन सम्मतास्ते गताः सह।
धर्मव्यवस्थारक्षार्थं देवेन समुपेक्षिताः॥)

व्यासजी बोले—कुन्तीकुमार! वे समस्त यदुवंशी देवताओंके अंश थे। वे देवाधिदेव श्रीकृष्णके साथ ही यहाँ आये थे और साथ ही चले गये। उनके रहनेसे धर्मकी मर्यादा-के भङ्ग होनेका डर था; अतः भगवान श्रीकृष्णने धर्म-व्यवस्था-की रक्षाके लिये उन मरते हुए यादवोंकी उपेक्षा कर दी॥

ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः॥ २५॥
विनष्टाः कुरुशार्दूल न ताञ्शोचितुमर्हसि।
भवितव्यं तथा तच्च दिष्टमेतन्महात्मनाम्॥ २६॥

कुरुश्रेष्ठ! वृष्णि और अन्धकवंशके महारथी ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध होकर नष्ट हुए हैं; अतः तुम उनके लिये शोक न करो। उन महामनस्वी वीरोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी। उनका प्रारब्ध ही वैसा बन गया था॥ २५-२६॥

उपेक्षितं च कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितुम्।
त्रैलोक्यमपि गोविन्दः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम्॥ २७॥
प्रसहेदन्यथाकर्तुं कुतः शापं महात्मनाम्।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण उनके संकटको टाल सकते थे तथापि उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी। श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंकी गतिको पलट सकते हैं, फिर उन महामनस्वी वीरोंको प्राप्त हुए शापको पलट देना उनके लिये कौन बड़ी बात थी॥ २७½॥

(स्त्रियश्च ताः पुरा शप्ताः प्रहासकुपितेन वै।
अष्टावक्रेण मुनिना तदर्थं त्वद्बलक्षयः॥)

(तुम्हारे देखते-देखते स्त्रियोंका जो अपहरण हुआ है, उसमें भी देवताओंका एक रहस्य है।) वे स्त्रियाँ पूर्वजन्ममें अप्सराएँ थीं। उन्होंने अष्टावक्र मुनिके रूपका उपहास किया था। मुनिने शाप दिया था (कि 'तुमलोग मानवी हो जाओ और दस्युओंके हाथमें पड़नेपर तुम्हारा इस शापसे उद्धार

होगा ।') इसीलिये तुम्हारे बलका क्षय हुआ (जिससे वे डाकुओंके हाथमें पड़कर उस शापसे छुटकारा पा जायँ), (अब वे अपना पूर्वरूप और स्थान पा चुकी हैं, अतः उनके लिये भी शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है)॥

रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ॥ २८ ॥
तव स्नेहात् पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः ।

जो स्नेहवश तुम्हारे रथके आगे चलते थे (सारथिका काम करते थे), वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि चतुर्भुज नारायण थे ॥ २८½ ॥

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ॥ २९ ॥
मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम् ।

वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण इस पृथ्वीका भार उतारकर शरीर त्याग अपने उत्तम परमधामको जा पहुँचे हैं ॥ २९½॥

त्वयापीह महत् कर्म देवानां पुरुषर्षभ ॥ ३० ॥
कृतं भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज ।

पुरुषप्रवर ! महाबाहो ! तुमने भी भीमसेन और नकुल-सहदेवकी सहायतासे देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है ॥

कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान् कुरुपुङ्गव ॥ ३१ ॥
गमनं प्राप्तकालं व इदं श्रेयस्करं विभो ।

कुरुश्रेष्ठ ! मैं समझता हूँ कि अब तुमलोगोंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है । तुम्हें सब प्रकारसे सफलता प्राप्त हो चुकी है । प्रभो ! अब तुम्हारे परलोकगमनका समय आया है और यही तुमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है ॥ ३१½ ॥

एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ॥ ३२ ॥
भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये ।

भरतनन्दन ! जब उद्भवका समय आता है, तब इसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है, तब इन सबका नाश हो जाता है ॥ ३२½ ॥

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय ॥ ३३ ॥
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ।

धनंजय ! काल ही इन सबकी जड़ है । संसारकी उत्पत्तिका बीज भी काल ही है और काल ही फिर अकस्मात् सबका संहार कर देता है ॥ ३३½ ॥

स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः ॥ ३४ ॥
स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः ।

वही बलवान् होकर फिर दुर्बल हो जाता है और वही एक समय दूसरोंका शासक होकर कालान्तरमें स्वयं दूसरोंका आज्ञापालक हो जाता है ॥ ३४½ ॥

कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ॥ ३५ ॥
पुनरेष्यन्ति ते हस्ते यदा कालो भविष्यति ।

तुम्हारे अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोजन भी पूरा हो गया है, इसलिये वे जैसे मिले थे, वैसे ही चले गये । जब उपयुक्त समय होगा, तब वे फिर तुम्हारे हाथमें आयेंगे ॥ ३५½ ॥

कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ॥ ३६ ॥
एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ ।

भारत ! अब तुमलोगोंके उत्तम गति प्राप्त करनेका समय उपस्थित है । भरतश्रेष्ठ ! मुझे इसीमें तुमलोगोंका परम कल्याण जान पड़ता है ॥ ३६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतद् वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥ ३७ ॥
अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनका तत्त्व समझकर अर्जुन उनकी आज्ञा ले हस्तिनापुरको चले गये ॥ ३७½ ॥

प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम् ।
आचष्ट तद् यथावृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति ॥ ३८ ॥

नगरमें प्रवेश करके वीर अर्जुन युधिष्ठिरसे मिले और वृष्णि तथा अन्धकवंशका यथावत् समाचार उन्होंने कह सुनाया ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि व्यासार्जुनसंवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत मौसलपर्वमें व्यास और अर्जुनका संवादविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४१½ श्लोक हैं)

मौसलपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२६०	(३०)	४१।	३०१।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	३॥			३॥

मौसलपर्वकी कुल श्लोक-संख्या ३०४॥।

अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

महाप्रस्थानिकपर्व

प्रथमोऽध्यायः

वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

एवं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम्।
पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवं गते॥ १॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके वीरोंमें मूसलयुद्ध होनेका समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके पश्चात् पाण्डवोंने क्या किया? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत्।
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत्॥ २॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कुरुराज युधिष्ठिरने जब इस प्रकार वृष्णिवंशियोंके महान् संहारका समाचार सुना, तब महाप्रस्थानका निश्चय करके अर्जुनसे कहा—॥२॥

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते।
कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि॥ ३॥

'महामते! काल ही सम्पूर्ण भूतोंको पका रहा है—विनाशकी ओर ले जा रहा है। अब मैं कालके बन्धनको स्वीकार करता हूँ। तुम भी इसकी ओर दृष्टिपात करो'॥ ३॥

इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः काल इति ब्रुवन्।
अन्वपद्यत तद् वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः॥ ४॥

भाईके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने 'काल तो काल ही है, इसे टाला नहीं जा सकता' ऐसा कहकर अपने बुद्धिमान् बड़े भाईके कथनका अनुमोदन किया॥ ४॥

अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा।
अन्वपद्यन्त तद् वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना॥ ५॥

अर्जुनका विचार जानकर भीमसेन और नकुल-सहदेवने भी उनकी कही हुई बातका अनुमोदन किया॥ ५॥

ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः॥ ६॥

तत्पश्चात् धर्मकी इच्छासे राज्य छोड़कर जानेवाले युधिष्ठिरने वैश्यापुत्र युयुत्सुको बुलाकर उन्हींको सम्पूर्ण राज्यकी देख-भालका भार सौंप दिया॥ ६॥

अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद् राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः॥ ७॥

फिर अपने राज्यपर राजा परीक्षित्‌का अभिषेक करके पाण्डवोंके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरने दुःखसे आर्त होकर सुभद्रासे कहा—॥ ७॥

एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह॥ ८॥

'बेटी! यह तुम्हारे पुत्रका पुत्र परीक्षित् कुरुदेश तथा कौरवोंका राजा होगा और यादवोंमें जो लोग बच गये हैं; उनका राजा श्रीकृष्ण-पौत्र वज्रको बनाया गया है॥ ८॥

परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः॥ ९॥

'परीक्षित् हस्तिनापुरमें राज्य करेंगे और यदुवंशी वज्र इन्द्रप्रस्थमें। तुम्हें राजा वज्रकी भी रक्षा करनी चाहिये और अपने मनको कभी अधर्मकी ओर नहीं जाने देना चाहिये'॥ ९॥

इत्युक्त्वा धर्मराजः स वासुदेवस्य धीमतः।
मातुलस्य च वृद्धस्य रामादीनां तथैव च॥ १०॥
भ्रातृभिः सह धर्मात्मा कृत्वोदकमतन्द्रितः।
श्राद्धान्युद्दिश्य सर्वेषां चकार विधिवत् तदा॥ ११॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित आलस्य छोड़कर बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण, बूढ़े मामा वसुदेव तथा बलराम आदिके लिये जलाञ्जलि दी और उन सबके उद्देश्यसे विधिपूर्वक श्राद्ध किया॥ १०-११॥

द्वैपायनं नारदं च मार्कण्डेयं तपोधनम्।
भारद्वाजं याज्ञवल्क्यं हरिमुद्दिश्य यत्नवान् ॥ १२ ॥
अभोजयत् स्वादु भोज्यं कीर्तयित्वा च शार्ङ्गिणम्।
ददौ रत्नानि वासांसि ग्रामानश्वान् रथांस्तथा ॥१३ ॥
स्त्रियश्च द्विजमुख्येभ्यस्तदा शतसहस्रशः ।

प्रयत्नशील युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे द्वैपायन व्यास, देवर्षि नारद, तपोधन मार्कण्डेय, भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनिको सुस्वादु भोजन कराया। भगवान्का नाम कीर्तन करके उन्होंने उत्तम ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, ग्राम, घोड़े और रथ प्रदान किये। बहुत-से ब्राह्मणशिरोमणियोंको लाखों कुमारी कन्याएँ दीं ॥ १२-१३½॥

कृपमभ्यर्च्य च गुरुमथ पौरपुरस्कृतम् ॥ १४ ॥
शिष्यं परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः ।

तत्पश्चात् गुरुवर कृपाचार्यकी पूजा करके पुरवासियों-सहित परीक्षित्को शिष्यभावसे उनकी सेवामें सौंप दिया ॥ १४½॥

ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः ।

इसके बाद समस्त प्रकृतियों (प्रजा-मन्त्री आदि) को बुलाकर राजर्षि युधिष्ठिरने, वे जो कुछ करना चाहते थे अपना वह सारा विचार उनसे कह सुनाया ॥ १५½ ॥

ते श्रुत्वैव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः ॥ १६ ॥
भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः ।
नैवं कर्तव्यमिति ते तदोचुस्तं जनाधिपम् ॥ १७ ॥

उनकी वह बात सुनते ही नगर और जनपदके लोग मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने उस प्रस्तावका स्वागत नहीं किया। वे सब राजासे एक साथ बोले, 'आपको ऐसा नहीं करना चाहिये (आप हमें छोड़कर कहीं न जायँ)' ॥ १६-१७ ॥

न च राजा तथाकार्षीत् कालपर्यायधर्मवित् ।

परंतु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर कालके उलट-फेरके अनुसार जो धर्म या कर्तव्य प्राप्त था, उसे जानते थे; अतः उन्होंने प्रजाके कथनानुसार कार्य नहीं किया ॥ १७½ ॥

ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपदं जनम् ॥ १८ ॥
गमनाय मतिं चक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा।

उन धर्मात्मा नरेशने नगर और जनपदके लोगोंको समझा-बुझाकर उनकी अनुमति प्राप्त कर ली। फिर उन्होंने और उनके भाइयोंने सब कुछ त्यागकर महाप्रस्थान करनेका ही निश्चय किया ॥ १८½ ॥

ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १९ ॥
उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत ।
भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ २० ॥
तथैव जगृहुः सर्वे वल्कलानि नराधिप ।

इसके बाद कुरुकुलरत्न धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने अङ्गोंसे आभूषण उतारकर वल्कलवस्त्र धारण कर लिया। नरेश्वर ! फिर भीमसेन अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी देवी—इन सबने भी उसी प्रकार वल्कल धारण किये ॥ १९-२०½ ॥

विधिवत् कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ ॥ २१ ॥
समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन् प्रतस्थुर्नरपुङ्गवाः ।

भरतश्रेष्ठ ! इसके बाद ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक उत्सर्ग-कालिक इष्टि करवाकर उन सभी नरश्रेष्ठ पाण्डवोंने अग्नियोंका जलमें विसर्जन कर दिया और स्वयं वे महायात्राके लिये प्रस्थित हुए ॥ २१½ ॥

ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान् ॥ २२ ॥
प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान् पुरा द्यूतजितान् यथा ।
हर्षोऽभवच्च सर्वेषां भ्रातॄणां गमनं प्रति ॥ २३ ॥

पहले जूएमें परास्त होकर पाण्डवलोग जिस प्रकार वनमें गये थे, उसी प्रकार उस दिन द्रौपदीसहित उन नरोत्तम पाण्डवोंको इस प्रकार जाते देख नगरकी सभी स्त्रियाँ रोने लगीं। परंतु उन सभी भाइयोंको इस यात्रासे महान् हर्ष हुआ ॥ २२-२३ ॥

युधिष्ठिरमतं ज्ञात्वा वृष्णिक्षयमवेक्ष्य च ।
भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरका अभिप्राय जान और वृष्णिवंशियोंका संहार देखकर पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदी और एक कुत्ता—ये सब साथ-साथ चले ॥ २४ ॥

आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात् ।
पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तःपुरैस्तथा ॥ २५ ॥
न चैनमशकत् कश्चिन्निवर्तस्वेति भाषितुम् ।

उन छहोंको साथ लेकर सातवें राजा युधिष्ठिर जब हस्तिनापुरसे बाहर निकले, तब नगरनिवासी प्रजा और अन्तः-पुरकी स्त्रियाँ उन्हें बहुत दूरतक पहुँचाने गयीं; किंतु कोई भी मनुष्य राजा युधिष्ठिरसे यह नहीं कह सका कि आप लौट चलिये ॥ २५½ ॥

न्यवर्तन्त ततः सर्वे नरा नगरवासिनः ॥ २६ ॥
कृपप्रभृतयश्चैव युयुत्सुं पर्यवारयन् ।

धीरे-धीरे समस्त पुरवासी और कृपाचार्य आदि युयुत्सुको घेरकर उनके साथ ही लौट आये ॥ २६½ ॥

विवेश गङ्गां कौरव्य उलूपी भुजगात्मजा ॥ २७ ॥
चित्राङ्गदा ययौ चापि मणिपूरपुरं प्रति ।
शिष्टाः परिक्षितं त्वन्या मातरः पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

जनमेजय ! नागराजकी कन्या उलूपी उसी समय गङ्गाजीमें समा गयी। चित्राङ्गदा मणिपूर नगरमें चली गयी। तथा शेष माताएँ परीक्षित्को घेरे हुए पीछे लौट आयीं ॥ २७-२८ ॥

पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी ।
कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः ॥ २९ ॥

कुरुनन्दन ! तदनन्तर महात्मा पाण्डव और यशस्विनी द्रौपदीदेवी सब-के-सब उपवासका व्रत लेकर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके चल दिये ॥ २९ ॥

योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः ।
अभिजग्मुर्बहून् देशान् सरितः सागरांस्तथा ॥ ३० ॥

वे सब-के-सब योगयुक्त महात्मा तथा त्यागधर्मका पालन करनेवाले थे । उन्होंने अनेक देशों, नदियों और समुद्रोंकी यात्रा की ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरो ययावग्रे भीमस्तु तदनन्तरम् ।
अर्जुनस्तस्य चान्वेव यमौ चापि यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

आगे-आगे युधिष्ठिर चलते थे । उनके पीछे भीमसेन थे । भीमसेनके भी पीछे अर्जुन थे और उनके भी पीछे क्रमशः नकुल और सहदेव चल रहे थे ॥ ३१ ॥

पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा ।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा ययौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन सबके पीछे सुन्दर शरीरवाली, श्यामवर्णा, कमलदललोचना, युवतियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी चल रही थीं ॥ ३२ ॥

श्वा चैवानुययावेकः प्रस्थितान् पाण्डवान् वनम् ।
क्रमेण ते ययुर्वीरा लौहित्यं सलिलार्णवम् ॥ ३३ ॥

वनको प्रस्थित हुए पाण्डवोंके पीछे एक कुत्ता भी चला जा रहा था । क्रमशः चलते हुए वे वीर पाण्डव लालसागरके तटपर जा पहुँचे ॥ ३३ ॥

गाण्डीवं तु धनुर्दिव्यं न मुमोच धनंजयः ।
रत्नलोभान्महाराज ते चाक्षय्ये महेषुधी ॥ ३४ ॥

महाराज ! अर्जुनने दिव्यरत्नके लोभसे अभीतक अपने दिव्य गाण्डीव धनुष तथा दोनों अक्षय तूणीरोंका परित्याग नहीं किया था ॥

अग्निं ते ददृशुस्तत्र स्थितं शैलमिवाग्रतः ।
मार्गमावृत्य तिष्ठन्तं साक्षात्पुरुषविग्रहम् ॥ ३५ ॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने पर्वतकी भाँति मार्ग रोककर सामने खड़े हुए पुरुषरूपधारी साक्षात् अग्निदेवको देखा ॥ ३५ ॥

ततो देवः स सप्तार्चिः पाण्डवानिदमब्रवीत् ।
भो भोः पाण्डुसुता वीराः पावकं मां निबोधत ॥ ३६ ॥

तब सात प्रकारकी ज्वालारूप जिह्वाओंसे सुशोभित होनेवाले उन अग्निदेवने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—'वीर पाण्डुकुमारो ! मुझे अग्नि समझो ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो भीमसेन परंतप ।
अर्जुनाश्विसुतौ वीरौ निबोधत वचो मम ॥ ३७ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! शत्रुसंतापी भीमसेन ! अर्जुन ! और वीर अश्विनीकुमारो ! तुम सब लोग मेरी इस बातपर ध्यान दो ॥ ३७ ॥

अहमग्निः कुरुश्रेष्ठा मया दग्धं च खाण्डवम् ।
अर्जुनस्य प्रभावेण तथा नारायणस्य च ॥ ३८ ॥

'कुरुश्रेष्ठ वीरो ! मैं अग्नि हूँ । मैंने ही अर्जुन तथा नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे खाण्डववनको जलाया था ॥ ३८ ॥

अयं वः फाल्गुनो भ्राता गाण्डीवं परमायुधम् ।
परित्यज्य वनं यातु नानेनार्थोऽस्ति कश्चन ॥ ३९ ॥

'तुम्हारे भाई अर्जुनको चाहिये कि ये इस उत्तम आयुध गाण्डीव धनुषको त्यागकर वनमें जायँ । अब इन्हें इसकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ३९ ॥

चक्ररत्नं तु यत् कृष्णे स्थितमासीन्महात्मनि ।
गतं तच्च पुनर्हस्ते कालेनैष्यति तस्य ह ॥ ४० ॥

'पहले जो चक्ररत्न महात्मा श्रीकृष्णके हाथमें था, वह चला गया । वह पुनः समय आनेपर उनके हाथमें जायगा ॥ ४० ॥

वरुणादाहृतं पूर्वं मयैतत् पार्थकारणात् ।
गाण्डीवं धनुषां श्रेष्ठं वरुणायैव दीयताम् ॥ ४१ ॥

'यह गाण्डीव धनुष सब प्रकारके धनुषोंमें श्रेष्ठ है । इसे पहले मैं अर्जुनके लिये ही वरुणसे माँगकर ले आया था । अब पुनः इसे वरुणको वापस कर देना चाहिये' ॥ ४१ ॥

ततस्ते भ्रातरः सर्वे धनंजयमचोदयन् ।
स जले प्राक्षिपच्चैतत्तथाक्षय्ये महेषुधी ॥ ४२ ॥

यह सुनकर उन सब भाइयोंने अर्जुनको वह धनुष त्याग देनेके लिये कहा । तब अर्जुनने वह धनुष और दोनों अक्षय तरकस पानीमें फेंक दिये ॥ ४२ ॥

ततोऽग्निर्भरतश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ।
ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्ते दक्षिणामुखाः ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके बाद अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये और पाण्डववीर वहाँसे दक्षिणाभिमुख होकर चल दिये ॥ ४३ ॥

ततस्ते तूत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः ।
जग्मुर्भरतशार्दूल दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ॥ ४४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर वे लवणसमुद्रके उत्तर तटपर होते हुए दक्षिण-पश्चिमदिशाकी ओर अग्रसर होने लगे ॥ ४४ ॥

ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते ।

ददृशुर्द्वारकां चापि सागरेण परिप्लुताम् ॥ ४५ ॥
उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरतसत्तमाः ।
प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः ॥ ४६ ॥

इसके बाद वे केवल पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये । आगे जाकर उन्होंने समुद्रमें डूबी हुई द्वारकापुरीको देखा । फिर योगधर्ममें स्थित हुए भरतभूषण पाण्डवोंने वहाँसे लौटकर पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी करनेकी इच्छासे उत्तर दिशाकी ओर यात्रा की ॥ ४५-४६ ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः ।
ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मनको संयममें रखकर उत्तर दिशाका आश्रय लेनेवाले योगयुक्त पाण्डवोंने मार्गमें महापर्वत हिमालयका दर्शन किया ॥ १ ॥

तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम् ।
अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम् ॥ २ ॥

उसे भी लाँघकर जब वे आगे बढ़े, तब उन्हें बालूका समुद्र दिखायी दिया । साथ ही उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि मेरुका दर्शन किया ॥ २ ॥

तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम् ।
याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥ ३ ॥

सब पाण्डव योगधर्ममें स्थित हो बड़ी शीघ्रतासे चल रहे थे । उनमेंसे द्रुपदकुमारी कृष्णाका मन योगसे विचलित हो गया; अतः वह लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३ ॥
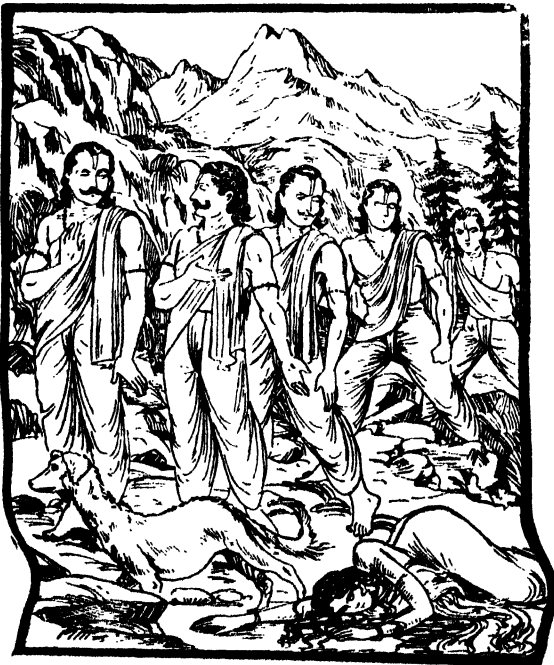
तां तु प्रपतितां दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
उवाच धर्मराजानं याज्ञसेनीमवेक्ष्य ह ॥ ४ ॥

उसे नीचे गिरी देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—॥

नाधर्मश्चरितः कश्चिद् राजपुत्र्या परंतप ।
कारणं किं नु तद् ब्रूहि यत् कृष्णा पतिता भुवि ॥ ५ ॥

'परंतप ! राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था । फिर बताइये, कौन-सा कारण है, जिससे वह नीचे गिर गयी ?' ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये ।
तस्यैतत् फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरने कहा—पुरुषप्रवर ! उसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था; आज यह उसीका फल भोग रही है ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वानवेक्ष्यैनां ययौ भरतसत्तमः ।
समाधाय मनो धीमान् धर्मात्मा पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर उसकी ओर देखे बिना ही भरतभूषण नरश्रेष्ठ बुद्धिमान् धर्मात्मा युधिष्ठिर मनको एकाग्र करके आगे बढ़ गये ॥ ७ ॥

सहदेवस्ततो विद्वान् निपपात महीतले ।
तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ॥ ८ ॥

थोड़ी देर बाद विद्वान् सहदेव भी धरतीपर गिर पड़े । उन्हें भी गिरा देख भीमसेनने राजासे पूछा—॥ ८ ॥

योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः ।
सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ॥ ९ ॥

'भैया ! जो सदा हमलोगोंकी सेवा किया करता था और जिसमें अहंकारका नाम भी नहीं था, यह माद्रीनन्दन सहदेव किस दोषके कारण धराशायी हुआ है ?' ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन ।
तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः ॥ १० ॥

युधिष्ठिरने कहा—यह राजकुमार सहदेव किसीको

अपने-जैसा विद्वान् या बुद्धिमान् नहीं समझता था; अतः इसी दोषसे इसका पतन हुआ है ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा ।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर सहदेवको भी छोड़कर शेष भाइयों और एक कुत्तेके साथ कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आगे बढ़ गये ॥ ११ ॥

कृष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवम् ।
आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह ॥ १२ ॥

कृष्णा और पाण्डव सहदेवको गिरे देख शोकसे आर्त हो बन्धुप्रेमी शूरवीर नकुल भी गिर पड़े ॥ १२ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे नकुले चारुदर्शने ।
पुनरेव तदा भीमो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मनोहर दिखायी देनेवाले वीर नकुलके धराशायी होनेपर भीमसेनने पुनः राजा युधिष्ठिरसे यह प्रश्न किया—॥ १३ ॥

योऽयमक्षतधर्मात्मा भ्राता वचनकारकः ।
रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि ॥ १४ ॥

'भैया ! संसारमें जिसके रूपकी समानता करनेवाला कोई नहीं था तो भी जिसने कभी अपने धर्ममें त्रुटि नहीं आने दी तथा जो सदा हमलोगोंकी आज्ञाका पालन करता था, वह हमारा प्रियबन्धु नकुल क्यों पृथ्वीपर गिरा है ?' ॥ १४ ॥

इत्युक्तो भीमसेनेन प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।
नकुलं प्रति धर्मात्मा सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ १५ ॥

भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिरने नकुलके विषयमें इस प्रकार उत्तर दिया—॥

रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम् ।
अधिकश्चाहमेवैक इत्यस्य मनसि स्थितम् ॥ १६ ॥
नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर ।
यस्य यद् विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते ॥ १७ ॥

'भीमसेन ! नकुलकी दृष्टि सदा ऐसी रही है कि रूपमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है । इसके मनमें यही बात बैठी रहती थी कि 'एकमात्र मैं ही सबसे अधिक रूपवान् हूँ ।' इसीलिये नकुल नीचे गिरा है । तुम आओ । वीर ! जिसकी जैसी करनी है, वह उसका फल अवश्य भोगता है ॥१६-१७॥

तांस्तु प्रपतितान् दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
पपात शोकसन्तप्तस्ततो नु परवीरहा ॥ १८ ॥

द्रौपदी तथा नकुल और सहदेव तीनों गिर गये, यह देखकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुन शोकसे संतप्त हो स्वयं भी गिर पड़े ॥ १८ ॥

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे पतिते शक्रतेजसि ।
म्रियमाणे दुराधर्षे भीमो राजानमब्रवीत् ॥ १९ ॥

इन्द्रके समान तेजस्वी दुर्धर्ष वीर पुरुषसिंह अर्जुन जब पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग करने लगे, उस समय भीमसेनने राजा युधिष्ठिरसे पूछा ॥ १९ ॥

अनृतं न स्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः ।
अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ॥ २० ॥

'भैया ! महात्मा अर्जुन कभी परिहासमें भी झूठ बोले हों—ऐसा मुझे याद नहीं आता ! फिर यह किस कर्मका फल है, जिससे इन्हें पृथ्वीपर गिरना पड़ा ?' ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच

एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत् ।
न च तत् कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी शूरताका अभिमान था । इन्होंने कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको भस्म कर डालूँगा'; किंतु ऐसा किया नहीं; इसीसे आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है ॥ २१ ॥

अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः ।
तथा चैतन्न तु तथा कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥

अर्जुनने सम्पूर्ण धनुर्धरोंका अपमान भी किया था; अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसा नहीं करना चाहिये ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा भीमोऽथ निपपात ह ।
पतितश्चाब्रवीद् भीमो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये । इतनेहीमें भीमसेन भी गिर पड़े । गिरनेके साथ ही भीमने धर्मराज युधिष्ठिरको पुकारकर पूछा—॥

भो भो राजन्नवेक्षस्व पतितोऽहं प्रियस्तव ।
किं निमित्तं च पतनं ब्रूहि मे यदि वेत्थ ह ॥ २४ ॥

'राजन् ! जरा मेरी ओर तो देखिये, मैं आपका प्रिय भीमसेन यहाँ गिर पड़ा हूँ । यदि जानते हों तो बताइये, मेरे इस पतनका क्या कारण है ?' ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकत्थसे ।
अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन ! तुम बहुत खाते थे और दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलकी डींग हाँका करते थे; इसीसे तुम्हें भी धराशायी होना पड़ा है ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानवलोकयन् ।
श्वाप्येकोऽनुययौ यस्ते बहुशः कीर्तितो मया ॥ २६ ॥

यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये । एक कुत्ता भी बराबर उनका अनुसरण करता रहा, जिसकी चर्चा मैंने तुमसे अनेक बार की है ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि द्रौपद्यादिपतने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें द्रौपदी आदिका पतनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना तथा सदेह स्वर्गमें जाना

वैशम्पायन उवाच

ततः सन्नादयञ्शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः ।
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर आकाश और पृथ्वीको सब ओरसे प्रतिध्वनित करते हुए देवराज इन्द्र रथके साथ युधिष्ठिरके पास आ पहुँचे और उनसे बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम इस रथपर सवार हो जाओ' ॥ १ ॥

स भ्रातॄन् पतितान् दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तः सहस्राक्षमिदं वचः ॥ २ ॥

अपने भाइयोंको धराशायी हुआ देख धर्मराज युधिष्ठिर शोकसे संतप्त हो इन्द्रसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छेयुस्ते मया सह ।
न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर ॥ ३ ॥

'देवेश्वर ! मेरे भाई मार्गमें गिरे पड़े हैं । वे भी मेरे साथ चलें, इसकी व्यवस्था कीजिये; क्योंकि मैं भाइयोंके बिना स्वर्गमें जाना नहीं चाहता ॥ ३ ॥

सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरंदर ।
सास्माभिः सह गच्छेत तद् भवाननुमन्यताम् ॥ ४ ॥

'पुरन्दर ! राजकुमारी द्रौपदी सुकुमारी है । वह सुख पानेके योग्य है । वह भी हमलोगोंके साथ चले, इसकी अनुमति दीजिये' ॥ ४ ॥

शक्र उवाच

भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान् ।
कृष्णया सहितान् सर्वान् मा शुचो भरतर्षभ ॥ ५ ॥

इन्द्रने कहा—भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच गये हैं । उनके साथ द्रौपदी भी है । वहाँ चलनेपर वे सब तुम्हें मिलेंगे ॥ ५ ॥

निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ ।
अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गे गन्ता न संशयः ॥ ६ ॥

भरतभूषण ! वे मानवशरीरका परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं; किंतु तुम इसी शरीरसे वहाँ चलोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह ।
स गच्छेत मया सार्धमानृशंस्या हि मे मतिः ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर बोले—भूत और वर्तमानके स्वामी देवराज ! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है । इसने सदा ही मेरा साथ दिया है; अतः यह भी मेरे साथ चले—ऐसी आज्ञा दीजिये; क्योंकि मेरी बुद्धिमें निष्ठुरताका अभाव है ॥ ७ ॥

शक्र उवाच

अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजन्
श्रियं कृत्स्नां महतीं चैव सिद्धिम् ।
संप्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ ८ ॥

इन्द्रने कहा—राजन् ! तुम्हें अमरता, मेरी समानता, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है, साथ ही तुम्हें स्वर्गीय सुख भी उपलब्ध हुए हैं; अतः इस कुत्तेको छोड़ो और मेरे साथ चलो । इसमें कोई कठोरता नहीं है ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र
शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य ।
मा मे श्रिया सङ्गमनं तयास्तु
यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम् ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर बोले—सहस्रनेत्रधारी देवराज ! किसी आर्यपुरुषके द्वारा निम्नश्रेणीका काम होना अत्यन्त कठिन है । मुझे ऐसी लक्ष्मीकी प्राप्ति कभी न हो, जिसके लिये भक्तजनका त्याग करना पड़े ॥ ९ ॥

इन्द्र उवाच

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्य-
मिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति ।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ १० ॥

इन्द्रने कहा—धर्मराज ! कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है । उनके यज्ञ करने और कुआँ, बावड़ी आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामक राक्षस हर लेते हैं; इसलिये सोच-विचारकर काम करो । छोड़ दो इस कुत्तेको । ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच

भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं
तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन ।
तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्य
त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर बोले—महेन्द्र ! भक्तका त्याग करनेसे जो पाप होता है, उसका अन्त कभी नहीं होता—ऐसा महात्मा पुरुष कहते हैं । संसारमें भक्तका त्याग ब्रह्महत्याके समान माना गया है; अतः मैं अपने सुखके लिये कभी किसी तरह भी आज इस कुत्तेका त्याग नहीं करूँगा ॥ ११ ॥

भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्तं
प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम्।
प्राणत्यागादप्यहं नैव मोक्तुं
यतेयं वै नित्यमेतद् व्रतं मे ॥ १२ ॥

जो डरा हुआ हो, भक्त हो, मेरा दूसरा कोई सहारा है—ऐसा कहते हुए आर्तभावसे शरणमें आया हो, नी रक्षामें असमर्थ—दुर्बल हो और अपने प्राण बचाना ता हो, ऐसे पुरुषको प्राण जानेपर भी मैं नहीं छोड़ ता; यह मेरा सदाका व्रत है ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच

शुना दृष्टं क्रोधवशा हरन्ति
यद्दत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च ।
तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व
शुनस्त्यागाद् प्राप्स्यसे देवलोकम् ॥ १३॥

इन्द्रने कहा—वीरवर ! मनुष्य जो कुछ दान, यज्ञ, ध्याय और हवन आदि पुण्यकर्म करता है, उसपर यदि ेकी दृष्टि भी पड़ जाय तो उसके फलको क्रोधवश नामक स हर ले जाते हैं; इसलिये इस कुत्तेका त्याग कर दो । ेको त्याग देनेसे ही तुम देवलोकमें पहुँच सकोगे ॥ १३ ॥

त्यक्त्वा भ्रातॄन् दयितां चापि कृष्णां
प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर ।
श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु
त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य॥ १४ ॥

वीर ! तुमने अपने भाइयों तथा प्यारी पत्नी द्रौपदीका त्याग करके अपने किये हुए पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप देव-कको प्राप्त किया है । फिर तुम इस कुत्तेको क्यों नहीं त्याग ? सब कुछ छोड़कर अब कुत्तेके मोहमें कैसे पड़ गये ॥

युधिष्ठिर उवाच

न विद्यते संधिरथापि विग्रहो
मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा ।
न ते मया जीवयितुं हि शक्या-
स्ततस्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम् ॥ १५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! संसारमें यह निश्चित त है कि मरे हुए मनुष्योंके साथ न तो किसीका मेल होता , न विरोध ही। द्रौपदी तथा अपने भाइयोंको जीवित करना रे वशकी बात नहीं है; अतः मर जानेपर मैंने उनका त्याग िया है, जीवितावस्थामें नहीं ॥ १५ ॥

भीतिप्रदानं शरणागतस्य
स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः ।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र
भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे ॥ १६ ॥

शरणमें आये हुएको भय देना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन लूटना और मित्रोंके साथ द्रोह करना—ये चार अधर्म एक ओर और भक्तका त्याग दूसरी ओर हो तो मेरी समझमें यह अकेला ही उन चारोंके बराबर है ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तद् धर्मराजस्य वचो निशम्य
धर्मस्वरूपी भगवानुवाच ।
युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं
श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तवसम्प्रयुक्तैः ॥१७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरका यह कथन सुनकर कुत्तेका रूप धारण करके आये हुए धर्मस्वरूपी भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और राजा युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए मधुर वचनोंद्वारा उनसे इस प्रकार बोले—॥

धर्मराज उवाच

अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया ।
अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ १८ ॥

साक्षात् धर्मराजने कहा—राजेन्द्र ! भरतनन्दन ! तुम अपने सदाचार, बुद्धि तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति होने-वाली इस दयाके कारण वास्तवमें सुयोग्य पिताके उत्तम कुलमें उत्पन्न सिद्ध हो रहे हो ॥ १८ ॥

पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः ।
पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः ॥ १९ ॥

बेटा ! पूर्वकालमें द्वैतवनके भीतर रहते समय भी एक बार मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी; जब कि तुम्हारे सभी भाई पानी लानेके लिये उद्योग करते हुए मारे गये थे ॥ १९ ॥

भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ ।
मात्रोः साम्यमभीप्सन् वै नकुलं जीवमिच्छसि ॥ २० ॥

उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओंमें समानताकी इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुन-को छोड़ केवल नकुलको जीवित करना चाहा था ॥ २० ॥

अयं श्वा भक्त इत्येवं त्यक्तो देवरथस्त्वया ।
तस्मात् स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिपः ॥ २१ ॥

इस समय भी 'यह कुत्ता मेरा भक्त है' ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्रके भी रथका परित्याग कर दिया है; अतः स्वर्गलोकमें तुम्हारे समान दूसरा कोई राजा नहीं है ॥ २१ ॥

अतस्तवाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत ।
प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम् ॥ २२ ॥

भारत ! भरतश्रेष्ठ ! यही कारण है कि तुम्हें अपने इसी शरीरसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई है । तुम परम उत्तम दिव्य गतिको पा गये हो ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो धर्मश्च शक्रश्च मरुतश्चाश्विनावपि ।
देवा देवर्षयश्चैव रथमारोप्य पाण्डवम् ॥ २३ ॥
प्रययुः स्वैर्विमानैस्ते सिद्धाः कामविहारिणः ।
सर्वे विरजसः पुण्याः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मिणः ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—यों कहकर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवता तथा देवर्षियोंने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको रथपर बिठाकर अपने-अपने विमानोंद्वारा स्वर्ग-लोकको प्रस्थान किया । वे सब-के-सब इच्छानुसार

विचरनेवाले, रजोगुणशून्य पुण्यात्मा, पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मवाले तथा सिद्ध थे ॥ २३-२४ ॥

स तं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्वहः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ २५ ॥

कुरुकुलतिलक राजा युधिष्ठिर उस रथमें बैठकर अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करते हुए तीव्र गतिसे ऊपरकी ओर जाने लगे ॥ २५ ॥

ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित् ।
उवाचोच्चैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपाः ॥ २६ ॥

उस समय सम्पूर्ण लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाले, बोलनेमें कुशल तथा महान् तपस्वी देवर्षि नारदजीने देवमण्डलमें स्थित हो उच्च स्वरसे कहा ॥ २६ ॥

येऽपि राजर्षयः सर्वे ते चापि समुपस्थिताः ।
कीर्तिं प्रच्छाद्य तेषां वै कुरुराजोऽधितिष्ठति ॥ २७ ॥

'जितने राजर्षि स्वर्गमें आये हैं, वे सभी यहाँ उपस्थित हैं, किंतु कुरुराज युधिष्ठिर अपने सुयशसे उन सबकी कीर्तिको आच्छादित करके विराजमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥

लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसम्पदा ।
स्वशरीरेण सम्प्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात् ॥ २८ ॥

'अपने यश, तेज और सदाचाररूप सम्पत्तिसे तीनों लोकोंको आवृत करके अपने भौतिक शरीरसे स्वर्गलोकमें आनेका सौभाग्य पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके सिवा और किसी-राजाको प्राप्त हुआ हो, ऐसा हमने कभी नहीं सुना है ॥२८॥

तेजांसि यानि दृष्टानि भूमिष्ठेन त्वया विभो ।
वेश्मानि भुवि देवानां पश्यामूनि सहस्रशः ॥ २९ ॥

'प्रभो ! युधिष्ठिर ! पृथ्वीपर रहते हुए तुमने आकाशमें नक्षत्र और ताराओंके रूपमें जितने तेज देखे हैं, वे इन देवताओंके सहस्रों लोक हैं; इनकी ओर देखो' ॥ २९ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ।
देवानामन्त्र्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान् ॥ ३० ॥

नारदजीकी बात सुनकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने देवताओं तथा अपने पक्षके राजाओंकी अनुमति लेकर कहा—॥

शुभं वा यदि वा पापं भ्रातृणां स्थानमद्य मे ।
तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान्न कामये ॥ ३१ ॥

'देवेश्वर ! मेरे भाइयोंको शुभ या अशुभ जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ । उसके सिवा दूसरे लोकोंमें जानेकी मेरी इच्छा नहीं है' ॥ ३१ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराजः पुरंदरः ।
आनृशंस्यसमायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ३२ ॥

राजाकी बात सुनकर देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरसे कोमल वाणीमें कहा ॥ ३२ ॥

स्थानेऽस्मिन् वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जिते शुभैः ।
किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि ॥ ३३ ॥

'महाराज ! तुम अपने शुभ कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए इस स्वर्गलोकमें निवास करो । मनुष्यलोकके स्नेहपाशको क्यों अभीतक खींचे ला रहे हो ? ॥ ३३ ॥

सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ।
नैव ते भ्रातरः स्थानं सम्प्राप्ताः कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥

'कुरुनन्दन ! तुम्हें वह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है जिसे दूसरा मनुष्य कभी और कहीं नहीं पा सका । तुम्हारे भाई ऐसा स्थान नहीं पा सके हैं ॥ ३४ ॥

अद्यापि मानुषो भावः स्पृशते त्वां नराधिप ।
स्वर्गोऽयं पश्य देवर्षीन् सिद्धांश्च त्रिदिवालयान् ॥ ३५ ॥

'नरेश्वर ! क्या अब भी मानवभाव तुम्हारा स्पर्श कर रहा है ? राजन् ! यह स्वर्गलोक है । इन स्वर्गवासी देवर्षियों तथा सिद्धोंका दर्शन करो' ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरस्तु देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम् ।
पुनरेवाब्रवीद् धीमानिदं वचनमर्थवत् ॥ ३६ ॥

ऐसी बात कहते हुए ऐश्वर्यशाली देवराजसे बुद्धिमान् युधिष्ठिरने पुनः यह अर्थयुक्त वचन कहा—॥ ३६ ॥

तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण ।
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र ते भ्रातरो गताः ॥ ३७ ॥
यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता ।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम ॥ ३८ ॥

त्यसूदन ! अपने भाइयोंके बिना मुझे यहाँ रहनेका उत्साह नहीं होता; अतः मैं वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे भाई गये हैं तथा जहाँ ऊँचे कदवाली, श्यामवर्णा, बुद्धिमती सत्त्वगुणसम्पन्ना एवं युवतियोंमें श्रेष्ठ मेरी द्रौपदी गयी है ॥

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि युधिष्ठिरस्वर्गारोहे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत महाप्रस्थानिकपर्वमें युधिष्ठिरका स्वर्गारोहणविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

महाप्रस्थानिकपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	१०१	(१०)	१३॥	११४॥
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	×	×		

महाप्रस्थानिकपर्वकी कुल श्लोक संख्या ११४॥

युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

स्वर्गारोहणपर्व

प्रथमोऽध्यायः

स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

जनमेजय उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे॥ १॥

जनमेजयने पूछा—मुने! मेरे पूर्वपितामह पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र स्वर्गलोकमें पहुँचकर किन किन स्थानोंको प्राप्त हुए?॥ १॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वविच्चासि मे मतः।
महर्षिणाभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा॥ २॥

मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। आप अद्भुतकर्मा महर्षि व्यासकी आज्ञा पाकर सर्वज्ञ हो गये हैं—ऐसा मेरा विश्वास है॥ २॥

वैशम्पायन उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः।
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! जहाँ तीनों लोकोंका अन्तर्भाव है, उस स्वर्गमें पहुँचकर तुम्हारे पूर्वपितामह युधिष्ठिर आदिने जो कुछ किया, वह बताया जाता है, सुनो॥ ३॥

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने॥ ४॥
भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभिसंवृतम्।
देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः॥ ५॥

स्वर्गलोकमें पहुँचकर धर्मराज युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधन स्वर्गीय शोभासे सम्पन्न हो तेजस्वी देवताओं तथा पुण्यकर्मा साध्यगणोंके साथ एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर वीरोचित शोभासे संयुक्त हो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा है॥ ४-५॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः।
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने॥ ६॥

दुर्योधनको ऐसी अवस्थामें देख उसे मिली हुई शोभा और सम्पत्तिका अवलोकन कर राजा युधिष्ठिर अमर्षसे भर गये और सहसा दूसरी ओर लौट पड़े॥ ६॥

ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान् वै नाहं दुर्योधनेन वै।
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना॥ ७॥
यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा।
हतास्माभिः प्रसह्याजौ क्लिष्टैः पूर्वं महावने॥ ८॥
द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी।
पर्याकृष्टानवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसंनिधौ॥ ९॥

फिर उच्चस्वरसे उन सब लोगोंसे बोले—'देवताओ! जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका हठपूर्वक युद्धमें संहार कर डाला और सारी पृथ्वी उजाड़ डाली, जिसने पहले हमलोगोंको महान् वनमें भारी क्लेश पहुँचाया था तथा जो निर्दोष अङ्गोंवाली हमारी धर्मपरायणा पत्नी पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको भरी सभामें गुरुजनोंके समीप घसीट लाया था, उस लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन-

के साथ रहकर मैं इन पुण्यलोकोंको पानेकी इच्छा नहीं रखता ॥ ७–९ ॥

अस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम् ।
तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥ १० ॥

'देवगण ! मैं दुर्योधनको देखना भी नहीं चाहता; मेरी तो वहीं जानेकी इच्छा है, जहाँ मेरे भाई हैं' ॥ १० ॥

नैवमित्यब्रवीत् तं तु नारदः प्रहसन्निव ।
स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति ॥ ११ ॥

यह सुनकर नारदजी उनसे हँसते हुए-से बोले, 'नहीं-नहीं, ऐसा न कहो; स्वर्गमें निवास करनेपर पहलेका वैर-विरोध शान्त हो जाता है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो मैवं वोचः कथंचन ।
दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें राजा दुर्योधनके प्रति किसी तरह ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये । मेरी इस बातको ध्यान देकर सुनो ॥ १२ ॥

एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह ।
सद्भिश्च राजप्रवरैर्य इमे स्वर्गवासिनः ॥ १३ ॥

'ये राजा दुर्योधन देवताओंसहित उन श्रेष्ठ नरेशोंद्वारा भी पूजित एवं सम्मानित होते हैं, जो कि ये चिरकालसे स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ १३ ॥

वीरलोकगतिः प्राप्ता युद्धे हुत्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः ॥ १४ ॥
स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् ।
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः ॥ १५ ॥

'इन्होंने युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर वीरोंकी गति पायी है । जिन्होंने युद्धमें देवतुल्य तेजस्वी तुम समस्त भाइयोंका डटकर सामना किया है, जो पृथ्वीपति दुर्योधन महान् भयके समय भी निर्भय बने रहे, उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार यह स्थान प्राप्त किया है ॥ १४-१५ ॥

न तन्मनसि कर्तव्यं पुत्र यद् द्यूतकारितम् ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १६ ॥

'वत्स ! इनके द्वारा जूएमें जो अपराध हुआ है, उसे अब तुम्हें मनमें नहीं लाना चाहिये । द्रौपदीको भी इनसे जो क्लेश प्राप्त हुआ है, इसे अब तुम्हें भुला देना चाहिये ॥ १६ ॥

ये चान्येऽपि परिक्लेशा युष्माकं ज्ञातिकारिताः ।
संग्रामेष्वथ वान्यत्र न तान् संस्मर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

'तुम लोगोंको अपने भाई-बन्धुओंसे युद्धमें या अन्यत्र और भी जो कष्ट उठाने पड़े हैं, उन सबको यहाँ याद रखना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ १७ ॥

समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ १८ ॥

'अब तुम राजा दुर्योधनके साथ न्यायपूर्वक मिलो । नरेश्वर ! यह स्वर्गलोक है, यहाँ पहलेके वैर-विरोध नहीं रहते हैं' ॥ १८ ॥

नारदेनैवमुक्तस्तु कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄन् पप्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १९ ॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंका पता पूछा और यह बात कही— ॥ १९ ॥

यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः ।
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवीसुहृदां द्रुहः ॥ २० ॥
यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सनरद्विपा ।
वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः ॥ २१ ॥
ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः ।
सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥ २२ ॥
तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम् ।
कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम् ॥ २३ ॥

देवर्षे ! जिसके कारण घोड़े, हाथी और मनुष्योंसहित सारी पृथ्वी नष्ट हो गयी, जिसके वैरका बदला लेनेकी इच्छासे हमें भी क्रोधकी आगमें जलना पड़ा, जो धर्मका नाम भी नहीं जानता था, जिसने जीवनभर भूमण्डलके समस्त सुहृदोंके साथ द्रोह ही किया है, उस पापी दुर्योधनको यदि ये सनातन वीरलोक प्राप्त हुए हैं तो जो वे वीर, महात्मा, महान् व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ विश्वविख्यात शूर और सत्यवादी मेरे भाई हैं, उन्हें इस समय कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं ? मैं उनको देखना चाहता हूँ । कुन्तीके सत्यप्रतिज्ञ पुत्र महात्मा कर्णसे भी मिलना चाहता हूँ ॥ २०–२३ ॥

धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।
ये च शस्त्रैर्वधं प्राप्ताः क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २४ ॥
क्व नु ते पार्थिवा ब्रह्मन्नैतान् पश्यामि नारद ।
विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥ २५ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद ॥ २६ ॥

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको भी देखना चाहता हूँ ! ब्रह्मन् ! नारदजी ! जो भूपाल क्षत्रिय-धर्मके अनुसार शस्त्रोंद्वारा वधको प्राप्त हुए हैं, वे कहाँ हैं ? मैं इन राजाओंको यहाँ नहीं देखता हूँ ।

मैं इन समस्त राजाओंसे मिलना चाहता हूँ। विराट, द्रुपद धृष्टकेतु आदि पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी, द्रौपदीके सभी पुत्रों तथा दुर्धर्ष वीर अभिमन्युको भी मैं देखना चाहता हूँ'' ॥ २४–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि स्वर्गे नारदयुधिष्ठिरसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरका संवादविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना

युधिष्ठिर उवाच

नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम्।
भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—देवताओ ! मैं यहाँ अमित-तेजस्वी राधानन्दन कर्णको क्यों नहीं देख रहा हूँ ? दोनों भाई महामनस्वी युधामन्यु और उत्तमौजा कहाँ हैं ? वे भी नहीं दिखायी देते ॥ १ ॥

जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नौ महारथाः।
राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २ ॥
क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः।
तैरप्ययं जितो लोकः कच्चित् पुरुषसत्तमैः ॥ ३ ॥

जिन महारथियोंने समराग्निमें अपने शरीरोंकी आहुति दे दी, जो राजा और राजकुमार रणभूमिमें मेरे लिये मारे गये, वे सिंहके समान पराक्रमी समस्त महारथी वीर कहाँ हैं ? क्या उन पुरुषप्रवर वीरोंने भी इस स्वर्गलोकपर विजय पायी है ? ॥ २-३ ॥

यदि लोकानिमान् प्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः।
स्थितं वित्त हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

देवताओ ! यदि वे सम्पूर्ण महारथी इन लोकोंमें आये हैं तो आप समझ लें कि मैं उन महात्माओंके साथ रहूँगा ॥४॥

कच्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः।
न तैरहं विना रंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ॥ ५ ॥

परंतु यदि उन नरेशोंने यह शुभ एवं अक्षयलोक नहीं प्राप्त किया है तो मैं उन जाति-भाइयोंके बिना यहाँ नहीं रहूँगा ॥ ५ ॥

मातुर्हि वचनं श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि।
कर्णस्य क्रियतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ॥ ६ ॥

युद्धके बाद जब मैं अपने मृत सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि दे रहा था, उस समय मेरी माता कुन्तीने कहा था, 'बेटा ! कर्णको भी जलाञ्जलि देना।' माताकी यह बात सुनकर मुझे मालूम हुआ कि महात्मा कर्ण मेरे ही भाई थे। तबसे मुझे उनके लिये बड़ा दुःख होता है ॥ ६ ॥

इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः।
यन्मातुः सदृशौ पादौ तस्याहममितात्मनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वैव तौ नानुगतः कर्णं परबलार्दनम्।
न ह्यस्मान् कर्णसहितान् जयेच्छक्रोऽपि संयुगे॥ ८ ॥

देवताओ ! यह सोचकर तो मैं और भी पश्चात्ताप करता रहता हूँ कि 'महामना कर्णके दोनों चरणोंको माता कुन्तीके चरणोंके समान देखकर भी मैं क्यों नहीं शत्रुदलमर्दन कर्णका अनुगामी हो गया ?' यदि कर्ण हमारे साथ होते तो हमें इन्द्र भी युद्धमें परास्त नहीं कर सकते ॥ ७-८ ॥

तमहं यत्र तत्रस्थं द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम्।
अविज्ञातो मया योऽसौ घातितः सव्यसाचिना ॥ ९ ॥

ये सूर्यनन्दन कर्ण जहाँ कहीं भी हों, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ; जिन्हें न जाननेके कारण मैंने अर्जुन-द्वारा उनका वध करवा दिया ॥ ९ ॥

भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम।
अर्जुनं चेन्द्रसंकाशं यमौ चैव यमोपमौ ॥ १० ॥
द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम्।
न चेह स्थातुमिच्छामि सत्यमेवं ब्रवीमि वः ॥ ११ ॥

मैं अपने प्राणोंसे भी प्रियतम भयंकर पराक्रमी भाई भीमसेनको, इन्द्रतुल्य तेजस्वी अर्जुनको, यमराजके समान अजेय नकुल-सहदेवको तथा धर्मपरायणा देवी द्रौपदीको भी देखना चाहता हूँ। यहाँ रहनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं आप लोगोंसे यह सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥ १२ ॥

सुरश्रेष्ठगण ! अपने भाइयोंसे अलग रहकर इस स्वर्गसे भी मुझे क्या लेना है ? जहाँ मेरे भाई हैं, वही मेरा स्वर्ग है । उनके बिना मैं इस लोकको स्वर्ग नहीं मानता ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र मा चिरम् ।
प्रिये हि तव वर्तामो देवराजस्य शासनात् ॥ १३ ॥

देवता बोले—वत्स ! यदि उन लोगोंमें तुम्हारी श्रद्धा है, तो चलो, विलम्ब न करो । हमलोग देवराजकी आज्ञासे सर्वथा तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन् ।
युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप ॥ १४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय ! युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी—'तुम युधिष्ठिरको इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ' ॥ १४ ॥

ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः ।
सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तब कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ-साथ उस स्थानकी ओर चले, जहाँ वे पुरुषप्रवर भीमसेन आदि थे ॥ १५ ॥

अग्रतो देवदूतश्च ययौ राजा च पृष्ठतः ।
पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥ १६ ॥

आगे-आगे देवदूत जा रहा था और पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर । दोनों ऐसे दुर्गम मार्गपर जा पहुँचे, जो बहुत ही अशुभ था । पापाचारी मनुष्य ही यातना भोगनेके लिये उसपर आते-जाते थे ॥ १६ ॥

तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम् ।
युक्तं पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् ॥ १७ ॥

वहाँ घोर अन्धकार छा रहा था । केश, सेवार और घास इन्हींसे वह मार्ग भरा हुआ था । वह पापियोंके ही योग्य था । वहाँ दुर्गन्ध फैल रही थी । मांस और रक्तकी कीच जमी हुई थी ॥ १७ ॥

दंशोत्पातकभल्लूकमक्षिकामशकावृतम् ।
इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १८ ॥

उस रास्तेपर डाँस, मच्छर, मक्खी, उत्पाती जीवजन्तु और भालू आदि फैले हुए थे । इधर-उधर सब ओर सड़े मुर्दे पड़े हुए थे ॥ १८ ॥

अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम् ।
ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १९ ॥

हड्डियाँ और केश चारों ओर फैले हुए थे । कृमि और कीटोंसे वह मार्ग भरा हुआ था । उसे चारों ओरसे जलती आगने घेर रक्खा था ॥ १९ ॥

अयोमुखैश्च काकाद्यैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् ।
सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥ २० ॥

लोहेकी-सी चोंचवाले कौए और गीध आदि पक्षी मँडरा रहे थे । सूईके समान चुभते हुए मुखोंवाले और विन्ध्यपर्वतके समान विशालकाय प्रेत वहाँ सब ओर घूम रहे थे ॥ २० ॥

मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः ।
निकृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः ॥ २१ ॥

वहाँ यत्र-तत्र बहुत-से मुर्दे बिखरे पड़े थे, उनमेंसे किसीके शरीरसे रुधिर और मेद बहते थे, किसीके बाहु, ऊरु, पेट और हाथ-पैर कट गये थे ॥ २१ ॥

स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम् ।
जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥ २२ ॥

धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन बहुत चिन्ता करते हुए उसी मार्गके बीचसे होकर निकले, जहाँ सड़े मुर्दोंकी बदबू फैल रही थी और अमङ्गलकारी बीभत्स दृश्य दिखायी

देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना

देता था। वह भयंकर मार्ग रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २२ ॥

ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम्।
असिपत्रवनं चैव निशितं क्षुरसंवृतम् ॥ २३ ॥

आगे जाकर उन्होंने देखा, खौलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसके पार जाना बहुत ही कठिन है। दूसरी ओर तीखी तलवारों या छूरोंके-से पत्तोंसे परिपूर्ण तेज धारवाला असिपत्र नामक वन है ॥ २३ ॥

करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक्।
लोहकुम्भीश्च तैलस्य क्काथ्यमानाः समन्ततः ॥ २४ ॥

कहीं गरम-गरम बालू बिछी है तो कहीं तपाये हुए लोहेकी बड़ी-बड़ी चट्टानें रक्खी गयी हैं। चारों ओर लोहेके कलशोंमें तेल खौलाया जा रहा है ॥ २४ ॥

कूटशाल्मलिकं चापि दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम्।
ददर्श चापि कौन्तेयो यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ २५ ॥

जहाँ-तहाँ पैने काँटोंसे भरे हुए सेमलके वृक्ष हैं, जिनको हाथसे छूना भी कठिन है। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने यह भी देखा कि वहाँ पापाचारी जीवोंको बड़ी कठोर यातनाएँ दी जा रही हैं ॥ २५ ॥

स तं दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह।
कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम् ॥ २६ ॥
क्व च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि।
देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २७ ॥

वहाँकी दुर्गन्धका अनुभव करके उन्होंने देवदूतसे पूछा—'भैया! ऐसे रास्तेपर अभी हमलोगोंको कितनी दूर और चलना है? तथा मेरे वे भाई कहाँ हैं? यह तुम्हें मुझे बता देना चाहिये। देवताओंका यह कौन-सा देश है, इस बातको मैं जानना चाहता हूँ' ॥ २६-२७ ॥

स संनिववृते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम्।
देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद् गमनं तव ॥ २८ ॥

धर्मराजकी यह बात सुनकर देवदूत लौट पड़ा और बोला—'बस, यहींतक आपको आना था ॥ २८ ॥

निवर्तितव्यो हि मया तथास्म्युक्तो दिवौकसैः।
यदि श्रान्तोऽसि राजेन्द्र त्वमथागन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

'महाराज! देवताओंने मुझसे कहा है कि जब युधिष्ठिर थक जायँ, तब उन्हें वापस लौटा लाना; अतः अब मुझे आपको लौटा ले चलना है। यदि आप थक गये हों तो मेरे साथ आइये' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्च्छितः।
निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ ३० ॥

भरतनन्दन! युधिष्ठिर वहाँकी दुर्गन्धसे घबरा गये थे। उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी थी। इसलिये उन्होंने मनमें लौट जानेका ही निश्चय किया और उस निश्चयके अनुसार वे लौट पड़े ॥ ३० ॥

स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः।
शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ ३१ ॥

दुःख और शोकसे पीड़ित हुए धर्मात्मा युधिष्ठिर ज्यों ही वहाँसे लौटने लगे, त्यों ही उन्हें चारों ओरसे पुकारनेवाले आर्त मनुष्योंकी दीन वाणी सुनायी पड़ी— ॥ ३१ ॥

भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव।
अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ३२ ॥

'हे धर्मनन्दन! हे राजर्षे! हे पवित्र कुलमें उत्पन्न पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! आप हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये दो घड़ीतक यहीं ठहरिये ॥ ३२ ॥

आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः।
तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत् ॥ ३३ ॥

'आप दुर्धर्ष महापुरुषके आते ही परम पवित्र हवा चलने लगी है। तात! वह हवा आपके शरीरकी सुगन्ध लेकर आ रही है, जिससे हमलोगोंको बड़ा सुख मिला है ॥ ३३ ॥

ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ।
सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥ ३४ ॥

'पुरुषप्रवर! कुन्तीकुमार! नृपश्रेष्ठ! आज दीर्घकालके पश्चात् आपका दर्शन पाकर हम सुखका अनुभव करेंगे ॥ ३४ ॥

संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्तमपि भारत।
त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान् न बाधते ॥ ३५ ॥

'महाबाहु भरतनन्दन! हो सके तो दो घड़ी भी ठहर जाइये। कुरुनन्दन! आपके रहनेसे यहाँकी यातना हमें कष्ट नहीं दे रही है' ॥ ३५ ॥

एवं बहुविधा वाचः कृपणा वेदनावताम्।
तस्मिन् देशे स शुश्राव समन्ताद् वदतां नृप ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वहाँ कष्ट पानेवाले दुखी प्राणियोंके भाँति-भाँतिके दीन वचन उस प्रदेशमें उन्हें चारों ओरसे सुनायी देने लगे ॥ ३६ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा दयावान् दीनभाषिणाम् ।
अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

दीनतापूर्ण वचन कहनेवाले उन प्राणियोंकी बातें सुनकर दयालु राजा युधिष्ठिर वहाँ खड़े हो गये । उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा, 'अहो ! इन बेचारोंको बड़ा कष्ट है' ॥ ३७ ॥

स ता गिरः पुरस्ताद् वै श्रुतपूर्वाः पुनः पुनः ।
ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पाण्डवः ॥ ३८ ॥

महान् कष्ट और दुःखमें पड़े हुए प्राणियोंकी वे ही पहलेकी सुनी हुई करुणाजनक बातें सामनेकी ओरसे बारंबार उनके कानोंमें पड़ने लगीं तो भी वे पाण्डुकुमार उन्हें पहचान न सके ॥ ३८ ॥

अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ ॥ ३९

उनकी वे बातें पूर्णरूपसे न समझकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पूछा—'आपलोग कौन हैं और किस लिये यहाँ रहते हैं ?' ॥ ३९ ॥

इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे ।
कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो ॥ ४० ॥
नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ।
द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ ४१ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब चारों ओरसे बोलने लगे—'प्रभो ! मैं कर्ण हूँ । मैं भीमसेन हूँ । मैं अर्जुन हूँ । मैं नकुल हूँ । मैं सहदेव हूँ । मैं धृष्टद्युम्न हूँ । मैं द्रौपदी हूँ और हमलोग द्रौपदीके पुत्र हैं ।' इस प्रकार वे सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर अपना-अपना नाम बताने लगे ॥ ४०-४१ ॥

ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप ।
ततो विममृशे राजा किं न्विदं दैवकारितम् ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! उस देशके अनुरूप उन बातोंको सुनकर राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन विचार करने लगे 'कि दैवका यह कैसा विधान है ॥ ४२ ॥

किं तु तत् कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः ।
कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥ ४३ ॥
य इमे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे ।
नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम् ॥ ४४ ॥

'मेरे इन महामना भाइयोंने, कर्णने, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अथवा स्वयं सुमध्यमा द्रौपदीने भी कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे ये लोग इस दुर्गन्धपूर्ण भयंकर स्थानमें निवास करते हैं । इन समस्त पुण्यात्मा पुरुषोंने कभी कोई पाप किया था, इसे मैं नहीं जानता ॥ ४३-४४ ॥

किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः ।
तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥ ४५ ॥

'धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन कौन-सा पुण्यकर्म करके अपने समस्त पापी सेवकोंके साथ वैसी अद्भुत शोभा और सम्पत्तिसे संयुक्त हुआ है ? ॥ ४५ ॥

महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः ।
कस्येदानीं विकारोऽयं य इमे नरकं गताः ॥ ४६ ॥

'वह तो यहाँ अत्यन्त सम्मानित होकर महेन्द्रके समान राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हुआ है । इधर यह किस कर्मका फल है कि ये मेरे सगे-सम्बन्धी नरकमें पड़े हुए हैं ? ॥ ४६ ॥

सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः ।
क्षत्रधर्मरताः सन्तो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ ४७ ॥

'मेरे भाई सम्पूर्ण धर्मके ज्ञाता, शूरवीर, सत्यवादी तथा शास्त्रके अनुकूल चलनेवाले थे । इन्होंने क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहकर बड़े-बड़े यज्ञ किये और बहुत-सी दक्षिणाएँ दी हैं (तथापि इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई) ? ॥ ४७ ॥

किं नु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये ।
अहो चित्तविकारोऽयं स्याद् वा मे चित्तविभ्रमः॥ ४८ ॥

'क्या मैं सोता हूँ या जागता हूँ ? मुझे चेत है या नहीं ? अहो ! यह मेरे चित्तका विकार तो नहीं है अथवा हो सकता है यह मेरे मनका भ्रम हो' ॥ ४८ ॥

एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः ।
दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥

दुःख और शोकके आवेशसे युक्त हो राजा युधिष्ठिर इस तरह नाना प्रकारसे विचार करने लगे । उस समय उनकी सारी इन्द्रियाँ चिन्तासे व्याकुल हो गयी थीं ॥ ४९ ॥

क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः ।
देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ ५० ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें तीव्र रोष जाग उठा। वे देवताओं और धर्मको कोसने लगे ॥ ५० ॥

स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह।
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥ ५१ ॥
न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम्।
मत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२ ॥

उन्होंने वहाँकी दुःसह दुर्गन्धसे संतप्त होकर देवदूतसे कहा—'तुम जिनके दूत हो, उनके पास लौट जाओ। मैं वहाँ नहीं चलूँगा। यहीं ठहर गया हूँ, अपने मालिकोंको इसकी सूचना दे देना। यहाँ ठहरनेका कारण यह है कि मेरे निकट रहनेसे यहाँ मेरे इन दुखी भाई-बन्धुओंको सुख मिलता है' ॥ ५१-५२ ॥

इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता।
जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान् पाण्डुपुत्रके ऐसा कहनेपर देवदूत उस समय उस स्थानको चला गया, जहाँ सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले देवराज इन्द्र विराजमान थे ॥ ५३ ॥

निवेदयामास च तद् धर्मराजचिकीर्षितम्।
यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४ ॥

नरेश्वर! दूतने वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं और यह भी निवेदन कर दिया कि वे क्या करना चाहते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरनरकदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरको नरकका दर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना

वैशम्पायन उवाच

स्थिते मुहूर्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीकुमार धर्मराज युधिष्ठिरको उस स्थानपर खड़े हुए अभी दो ही घड़ी बीतने पायी थी कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

स च विग्रहवान् धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम्।
तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

साक्षात् धर्म भी शरीर धारण करके राजासे मिलनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे कुरुराज युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥

तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु।
समागतेषु देवेषु व्यगमत् तत् तमो नृप ॥ ३ ॥

राजन्! जिनके कुल और कर्म पवित्र हैं, उन तेजस्वी शरीर-वाले देवताओंके आते ही वहाँका सारा अन्धकार दूर हो गया ॥

नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मिणाम्।
नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४ ॥
लोहकुम्भ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः।

वहाँ पापकर्मी पुरुषोंको जो यातनाएँ दी जाती थीं, वे सहसा अदृश्य हो गयीं। न वैतरणी नदी रह गयी, न कूट-शाल्मलि वृक्ष। लोहेके कुम्भ और लोहमयी भयंकर तप्त शिलाएँ भी नहीं दिखायी देती थीं ॥ ४½ ॥

विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ॥ ५ ॥
ददर्श राजा कौरव्यस्तान्यदृश्यानि चाभवन्।
ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ ६ ॥
ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत।

कुरुकुलनन्दन राजा युधिष्ठिरने वहाँ चारों ओर जो विकृत शरीर देखे थे, वे सभी अदृश्य हो गये। तदनन्तर वहाँ पावन सुगन्ध लेकर बहनेवाली पवित्र सुखदायिनी वायु चलने लगी। भारत! देवताओंके समीप बहती हुई वह वायु अत्यन्त शीतल प्रतीत होती थी ॥ ५-६½ ॥

मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ॥ ७ ॥
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या ये चान्येऽपि दिवौकसः।
सर्वे तत्र समाजग्मुः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८ ॥
यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत्।

इन्द्रके साथ मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, अन्यान्य देवलोकवासी सिद्ध और महर्षि सभी उस स्थानपर आये, जहाँ महातेजस्वी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ७-८½ ॥

ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ॥ ९ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।

तदनन्तर उत्तम शोभासे सम्पन्न देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—॥ ९½ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ १० ॥
एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृतमेतावता विभो ।
सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ ११ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें अक्षयलोक प्राप्त हुए हैं। पुरुषसिंह ! प्रभो ! अबतक जो हुआ सो हुआ । अब अधिक कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है । आओ हमारे साथ चलो । महाबाहो ! तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है । साथ ही अक्षयलोकोंकी भी प्राप्ति हुई है ॥ १०-११ ॥

न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम ।
अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥ १२ ॥

'तात ! तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है, इसके लिये क्रोध न करना । मेरी यह बात सुनो । समस्त राजाओंको निश्चय ही नरक देखना पड़ता है ॥ १२ ॥

शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ ।
यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेव सः ॥ १३ ॥

'पुरुषप्रवर ! मनुष्यके जीवनमें शुभ और अशुभ कर्मोंकी दो राशियाँ सञ्चित होती हैं । जो पहले ही शुभ कर्म भोग लेता है, उसे पीछे नरकमें ही जाना पड़ता है ॥ १३ ॥

पूर्वं नरकभाग् यस्तु पश्चात् स्वर्गमुपैति सः ।
भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ १४ ॥

'परंतु जो पहले नरक भोग लेता है, वह पीछे स्वर्गमें जाता है । जिसके पास पापकर्मोंका संग्रह अधिक है, वह पहले ही स्वर्ग भोग लेता है ॥ १४ ॥

तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोऽर्थिना नृप ।
व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति ॥ १५ ॥
व्याजेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव ।

'नरेश्वर ! मैंने तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे तुम्हें पहले ही इस प्रकार नरकका दर्शन करानेके लिये यहाँ भेज दिया है । राजन् ! तुमने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके विषयमें छलसे काम लेकर द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसलिये तुम्हें भी छलसे ही नरक दिखलाया गया है ॥

यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा ॥ १६ ॥
द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ।

'जैसे तुम यहाँ लाये गये थे, उसी प्रकार भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रुपदकुमारी कृष्णा—ये सभी छलसे नरकके निकट लाये गये थे ॥ १६½ ॥

आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥ १७ ॥
स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे ।
सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान् पश्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

'पुरुषसिंह ! आओ, वे सभी पापसे मुक्त हो गये हैं । भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पक्षके जो-जो राजा युद्धमें मारे गये हैं, वे सभी स्वर्गलोकमें आ पहुँचे हैं । चलो, उनका दर्शन करो ॥ १७-१८ ॥

कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे ॥ १९ ॥

'तुम जिनके लिये सदा संतप्त रहते हो, वे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण भी परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९ ॥

तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो ।
स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥ २० ॥

'प्रभो ! नरश्रेष्ठ ! महाबाहो ! तुम पुरुषसिंह सूर्यकुमार कर्णका दर्शन करो । वे अपने स्थानमें स्थित हैं । तुम उनके लिये शोक त्याग दो ॥ २० ॥

भ्रातॄंश्चान्यांस्तथा पश्य स्वपक्ष्यांश्चैव पार्थिवान् ।
स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २१ ॥

'अपने दूसरे भाइयोंको तथा पाण्डवपक्षके अन्यान्य राजाओंको भी देखो । वे सब अपने-अपने योग्य स्थानको प्राप्त हुए हैं । उन सबकी सद्गतिके विषयमें अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २१ ॥

कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतःप्रभृति कौरव ।
विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः ॥ २२ ॥

'कुरुनन्दन ! पहले कष्टका अनुभव करके अबसे तुम

मेरे साथ रहकर रोग-शोकसे रहित हो स्वच्छन्द विहार करो ॥

कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम् ।
दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पार्थिव ॥ २३ ॥

'तात ! महाबाहु ! पृथ्वीनाथ ! अपने किये हुए पुण्य-कर्मोंका, तपस्यासे जीते हुए लोकोंका और दानोंका फल भोगो ॥ २३ ॥

अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि ।
उपसेवन्तु कल्याण्यो विरजोऽम्बरभूषणाः ॥ २४ ॥

'आजसे देव, गन्धर्व तथा कल्याणस्वरूपा दिव्य अप्सराएँ स्वच्छ वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो स्वर्गलोकमें तुम्हारी सेवा करें ॥ २४ ॥

राजसूयजिताँल्लोकानश्वमेधाभिवर्धितान् ।
प्राप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च महाफलम् ॥ २५ ॥

'महाबाहो ! राजसूय यज्ञद्वारा जीते हुए तथा अश्वमेध यज्ञद्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए पुण्य लोकोंको प्राप्त करो और अपने तपके महान् फलको भोगो ॥ २५ ॥

उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर ।
हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ २६ ॥

'कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! तुम्हें प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक राजा हरिश्चन्द्रके लोकोंकी भाँति सब राजाओंके लोकोंसे ऊपर हैं; जिनमें तुम विचरण करोगे ॥ २६ ॥

मान्धाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा भगीरथः ।
दौष्यन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि ॥ २७ ॥

'जहाँ राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्यन्त-कुमार भरत गये हैं, उन्हीं लोकोंमें तुम भी विहार करोगे ॥

एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी ।
आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥ २८ ॥

'पार्थ ! ये तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला देवनदी आकाशगङ्गा हैं । राजेन्द्र ! इनके जलमें गोता लगाकर तुम दिव्य लोकोंमें जा सकोगे ॥ २८ ॥

अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो विगमिष्यति ।
गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥ २९ ॥

'मन्दाकिनीके इस पवित्र जलमें स्नान कर लेनेपर तुम्हारा मानव-स्वभाव दूर हो जायगा । तुम शोक, संताप और वैरभावसे छुटकारा पा जाओगे' ॥ २९ ॥

एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् ।
धर्मो विग्रहवान् साक्षादुवाच सुतमात्मनः ॥ ३० ॥

देवराज इन्द्र जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय शरीर धारण करके आये हुए साक्षात् धर्मने अपने पुत्र कौरवराज युधिष्ठिरसे कहा— ॥ ३० ॥

भो भो राजन् महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि तव पुत्रक ।
मद्भक्त्या सत्यवाक्यैश्च क्षमया च दमेन च ॥ ३१ ॥

'महाप्राज्ञ नरेश ! मेरे पुत्र ! तुम्हारे धर्मविषयक अनुराग, सत्यभाषण, क्षमा और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ३१ ॥

एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया ।
न शक्यसे चालयितुं स्वभावात् पार्थ हेतुनः ॥ ३२ ॥

'राजन् ! यह मैंने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । पार्थ ! किसी भी युक्तिसे कोई तुम्हें अपने स्वभावसे विचलित नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

पूर्वं परीक्षितो हि त्वं प्रश्नाद् द्वैतवने मया ।
अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ॥ ३३ ॥

'द्वैतवनमें अरणिकाष्ठका अपहरण करनेके पश्चात् जब यक्षके रूपमें मैंने तुमसे कई प्रश्न किये थे, वह मेरे द्वारा तुम्हारी पहली परीक्षा थी । उसमें तुम भलीभाँति उत्तीर्ण हो गये ॥ ३३ ॥

सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्या तत्र भारत ।
श्वरूपधारिणा तत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ॥ ३४ ॥

'भारत ! फिर द्रौपदीसहित तुम्हारे सभी भाइयोंकी मृत्यु हो जानेपर कुत्तेका रूप धारण करके मैंने दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । उसमें भी तुम सफल हुए ॥ ३४ ॥

इदं तृतीयं भ्रातॄणामर्थे यत् स्थातुमिच्छसि ।
विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः ॥ ३५ ॥

'अब यह तुम्हारी परीक्षाका तीसरा अवसर था; किंतु इस बार भी तुम अपने सुखकी परवा न करके भाइयोंके हितके लिये नरकमें रहना चाहते थे, अतः महाभाग ! तुम हर तरहसे शुद्ध प्रमाणित हुए । तुममें पापका नाम भी नहीं है; अतः सुखी होओ ॥ ३५ ॥

न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशाम्पते ।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! प्रजानाथ ! तुम्हारे भाई नरकमें रहनेके योग्य

नहीं हैं। तुमने जो उन्हें नरक भोगते देखा है, वह देवराज इन्द्रद्वारा प्रकट की हुई माया थी ॥ ३६ ॥

अवश्यं नरकास्तात द्रष्टव्याः सर्वराजभिः।
ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्तं दुःखमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

'तात ! समस्त राजाओंको नरकका दर्शन अवश्य करना पड़ता है; इसलिये तुमने दो घड़ीतक यह महान् दुःख प्राप्त किया है ॥ ३७ ॥

न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ।
कर्णो वा सत्यवाक् शूरो नरकार्हाश्चिरं नृप ॥ ३८ ॥

'नरेश्वर ! सव्यसाची अर्जुन, भीमसेन, पुरुषप्रवर नकुल-सहदेव अथवा सत्यवादी शूरवीर कर्ण—इनमेंसे कोई भी चिरकालतक नरकमें रहनेके योग्य नहीं है ॥ ३८ ॥

न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा कथंचन।
एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोकगाम् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! राजकुमारी कृष्णा भी किसी तरह नरकमें जानेयोग्य नहीं है। आओ, त्रिभुवनगामिनी गङ्गाजीका दर्शन करो' ॥ ३९ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः।
जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः ॥ ४० ॥
गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम्।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥ ४१ ॥

जनमेजय ! धर्मके यों कहनेपर तुम्हारे पूर्वपितामह राजर्षि युधिष्ठिरने धर्म तथा समस्त स्वर्गवासी देवताओंके साथ जाकर मुनिजनवन्दित परमपावन पुण्यसलिला देवनदी गङ्गाजीमें स्नान किया। स्नान करके राजाने तत्काल अपने मानवशरीरको त्याग दिया ॥ ४०-४१ ॥

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन् समाप्लुतः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् दिव्यदेह धारण करके धर्मराज युधिष्ठिर वैर-भावसे रहित हो गये। मन्दाकिनीके शीतल जलमें स्नान करते ही उनका सारा संताप दूर हो गया ॥ ४२ ॥

ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
धर्मेण सहितो धीमान् स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ४३ ॥
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शूरा विगतमन्यवः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् देवताओंसे घिरे हुए बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिर महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए धर्मके साथ उस स्थानको गये, जहाँ वे पुरुषसिंह शूरवीर पाण्डव और धृतराष्ट्रपुत्र क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानोंपर रहते थे ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरतनुत्यागे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरका देहत्यागविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्षिमरुद्गणैः।
स्तूयमानो ययौ तत्र यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और मरुद्गणोंके मुँहसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर क्रमशः उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ वे कुरुश्रेष्ठ भीमसेन और अर्जुन आदि विराजमान थे ॥

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषान्वितम्।
तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनैव सूचितम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने ब्राह्मविग्रहसे सम्पन्न हैं। पहलेके देखे गये सादृश्यसे ही वे पहचाने जाते हैं ॥ २ ॥

दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम्।
चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥ ३ ॥

उनके श्रीविग्रहसे अद्भुत दीप्ति छिटक रही है। चक्र आदि दिव्य एवं भयंकर अस्त्र-शस्त्र दिव्य पुरुषविग्रह धारण करके उनकी सेवामें उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा ।
तथास्वरूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम् ॥ ४ ॥

अत्यन्त तेजस्वी वीरवर अर्जुन भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए हैं । कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भगवान् मधुसूदनका उसी स्वरूपमें दर्शन किया ॥ ४ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य युधिष्ठिरम् ।
यथावत् प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ ॥ ५ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन और श्रीकृष्ण देवताओंद्वारा पूजित थे । इन दोनोंने युधिष्ठिरको उपस्थित देख उनका यथावत् सम्मान किया ॥ ५ ॥

अपरस्मिन्नथोद्देशे कर्णं शस्त्रभृतां वरम् ।
द्वादशादित्यसहितं ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ६ ॥

इसके बाद दूसरी ओर दृष्टि डालनेपर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णको देखा, जो बारह आदित्योंके साथ (तेजोमय स्वरूप धारण किये) विराजमान थे॥

अथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं विभुम् ।
भीमसेनमथापश्यत् तेनैव वपुषान्वितम् ॥ ७ ॥
वायोर्मूर्तिमतः पार्श्वे दिव्यमूर्तिसमन्वितम् ।
श्रिया परमया युक्तं सिद्धिं परमिकां गतम् ॥ ८ ॥

फिर दूसरे स्थानमें उन्होंने दिव्यरूपधारी भीमसेनको देखा, जो पहलेहीके समान शरीर धारण किये मूर्तिमान् वायुदेवताके पास बैठे थे । उन्हें सब ओरसे मरुद्गणोंने घेर रखा था । वे उत्तम कान्तिसे सुशोभित एवं उत्कृष्ट सिद्धिको प्राप्त थे ॥ ७-८ ॥

अश्विनोस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा ।
नकुलं सहदेवं च ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ९ ॥

कुरुनन्दन युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको अश्विनीकुमारोंके स्थानमें विराजमान देखा, जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहे थे ॥ ९ ॥

तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम् ।
वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम् ॥ १० ॥

तदनन्तर उन्होंने कमलोंकी मालासे अलंकृत पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको देखा, जो अपने तेजस्वी स्वरूपसे स्वर्गलोकको अभिभूत करके विराज रही थीं । उनकी दिव्य कान्ति सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित हो रही थी ॥ १० ॥

अखिलं सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद् युधिष्ठिरः ।
ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट् ॥ ११ ॥

राजा युधिष्ठिरने इन सबके विषयमें सहसा प्रश्न करनेका विचार किया । तब देवराज भगवान् इन्द्र स्वयं ही उन्हें सबका परिचय देने लगे—॥ ११ ॥

श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता ।
अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर ॥ १२ ॥

'युधिष्ठिर ! ये जो लोककमनीय विग्रहसे युक्त पवित्र गन्धवाली देवी दिखायी दे रही हैं, साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं । ये ही तुम्हारे लिये मनुष्यलोकमें जाकर अयोनिसम्भूता द्रौपदीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं ॥ १२ ॥

रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना ।
द्रुपदस्य कुले जाता भवद्भिश्चोपजीविता ॥ १३ ॥

'स्वयं भगवान् शंकरने तुमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये इन्हें प्रकट किया था और ये ही द्रुपदके कुलमें जन्म धारणकर तुम सब भाइयोंके द्वारा अनुगृहीत हुई थीं ॥ १३ ॥

एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः ।
द्रौपद्यास्तनया राजन् युष्माकममितौजसः ॥ १४ ॥

'राजन् ! ये जो अग्निके समान तेजस्वी और महान् सौभाग्यशाली पाँच गन्धर्व दिखायी देते हैं, ये ही तुमलोगोंके वीर्यसे उत्पन्न हुए द्रौपदीके अनन्त बलशाली पुत्र हुए थे ॥ १४ ॥

पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः ॥ १५ ॥

'इन मनीषी गन्धर्वराज धृतराष्ट्रका दर्शन करो और इन्हींको अपने पिताका बड़ा भाई समझो ॥ १५ ॥

अयं ते पूर्वजो भ्राता कौन्तेयः पावकद्युतिः ।
सूतपुत्राग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः ॥ १६ ॥

'ये रहे तुम्हारे बड़े भाई कुन्तीकुमार कर्ण, जो अग्नितुल्य तेजसे प्रकाशित हो रहे हैं । ये ही सूतपुत्रोंके श्रेष्ठ अग्रज थे और ये ही राधापुत्रके नामसे विख्यात हुए थे ॥ १६ ॥

आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभम् ।

'इन पुरुषप्रवर कर्णका दर्शन करो, ये आदित्योंके साथ जा रहे हैं ॥ १६½ ॥

साध्यानामथ देवानां विश्वेषां मरुतामपि ॥ १७ ॥
गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान् ।
सात्यकिप्रमुखान् वीरान् भोजांश्चैव महाबलान्॥ १८॥

'राजेन्द्र ! उधर वृष्णि और अन्धककुलके सात्यकि आदि वीर महारथियों और महान् बलशाली भोजोंको देखो ! वे साध्यों, विश्वेदेवों तथा मरुद्गणोंमें विराजमान हैं ॥ १७-१८ ॥

सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम् ।
अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १९ ॥

'इधर किसीसे परास्त न होनेवाले महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दृष्टि डालो । यह चन्द्रमाके साथ इन्हींके समान कान्ति धारण किये बैठा है ॥ १९ ॥

एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च संगतः ।
विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥ २० ॥

'ये महाधनुर्धर राजा पाण्डु हैं, जो कुन्ती और माद्री दोनोंके साथ हैं । ये तुम्हारे पिता पाण्डु विमानद्वारा सदा मेरे पास आया करते हैं ॥ २० ॥

वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम् ।
द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥ २१ ॥

'शान्तनुनन्दन राजा भीष्मका दर्शन करो, ये वसुओंके साथ विराज रहे हैं । द्रोणाचार्य बृहस्पतिके साथ हैं । अपने इन गुरुदेवको अच्छी तरह देख लो ॥ २१ ॥

एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव ।
गन्धर्वसहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ २२ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे पक्षके दूसरे भूपाल योद्धा गन्धर्वों, यक्षों तथा पुण्यजनोंके साथ जा रहे हैं ॥ २२ ॥

गुह्यकानां गतिं चापि केचित् प्राप्ता नराधिपाः ।
त्यक्त्वा देहं जितः स्वर्गः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ २३ ॥

'किन्हीं-किन्हीं राजाओंको गुह्यकोंकी गति प्राप्त हुई है । ये सब युद्धमें शरीर त्यागकर अपनी पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं' ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें द्रौपदी आदिका अपने-अपने स्थानमें गमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः ।
विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १ ॥
धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित् ।
दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २ ॥
कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः ।
घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ३ ॥
ये चान्ये कीर्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्तयः ।
स्वर्गे कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म और द्रोण, राजा धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शंख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, राजा सत्यजित्, दुर्योधनके पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्र, राजा जयद्रथ तथा घटोत्कच आदि तथा दूसरे जो नरेश यहाँ नहीं बताये गये हैं और जिनका नाम लेकर यहाँ वर्णन किया गया है, वे सभी तेजस्वी शरीर धारण करनेवाले वीर राजा स्वर्गलोकमें कितने समयतक एक साथ रहे ? यह मुझे बताइये ॥ १–४ ॥

आहोस्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम ।
अन्ते वा कर्मणां कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः ॥ ५ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! क्या उन्हें वहाँ सनातन स्थानकी प्राप्ति हुई थी ? अथवा कर्मोंका अन्त होनेपर वे पुरुषश्रेष्ठ किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम ।
तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६ ॥

विप्रवर ! मैं आपके मुखसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप अपनी उद्दीप्त तपस्यासे सब कुछ देखते हैं ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना ।
व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा व्यासकी आज्ञा ले ब्रह्मर्षि वैशम्पायनने राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

न शक्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप ।
प्रकृतिं किं नु सम्यक्ते पृच्छैषा सम्प्रयोजिता ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! कर्मोंका भोग समाप्त हो जानेपर सभी लोग अपनी प्रकृति (मूल कारण) को ही नहीं प्राप्त हो जाते हैं; (कोई-कोई ही अपने कारणमें विलीन होता है) यदि पूछो, क्या मेरा प्रश्न असंगत है ? तो इसका उत्तर यह है कि जो प्रकृतिको प्राप्त नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे तुम्हारा यह प्रश्न सर्वथा ठीक है ॥ ८ ॥

शृणु गुह्यमिदं राजन् देवानां भरतर्षभ ।
यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ॥ ९ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! यह देवताओंका गूढ़ रहस्य है। इस विषयमें दिव्य नेत्रवाले, महातेजस्वी, प्रतापी मुनि व्यासजीने जो कहा है, उसे बताता हूँ; सुनो— ॥ ९ ॥

मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः।
अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम्॥ १०॥
तेनोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम्।
वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः॥ ११॥

कुरुनन्दन! जो सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाले, अगाध बुद्धिसम्पन्न एवं सर्वज्ञ हैं, उन महान् व्रतधारी, पुरातन मुनि, पराशरनन्दन व्यासजीने तो मुझसे यही कहा है कि 'वे सभी वीर कर्मभोगके पश्चात् अन्ततोगत्वा अपने मूल स्वरूपमें ही मिल गये थे। महातेजस्वी, परम कान्तिमान् भीष्म वसुओंके स्वरूपमें ही प्रविष्ट हो गये' ॥ १०-११ ॥

अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ।
बृहस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्याङ्गिरसां वरम्॥ १२॥

भरतभूषण! यही कारण है कि वसु आठ ही देखे जाते हैं (अन्यथा भीष्मजीको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य द्रोणने आङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान्।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम्॥ १३॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा मरुद्गणोंमें मिल गया। प्रद्युम्न जैसे आये थे, उसी तरह सनत्कुमारके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥

धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान् प्राप दुरासदान्।
धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी॥ १४॥

धृतराष्ट्रने धनाध्यक्ष कुबेरके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया। उनके साथ यशस्विनी गान्धारी देवी भी थीं ॥ १४ ॥

पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ।
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः॥ १५॥
निशठाक्रूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विदूरथः।
भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः॥ १६॥
कंसश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च।
उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः॥ १७॥
विश्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः।

राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ महेन्द्रके भवनमें चले गये। राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव और अपने भाई शङ्खके साथ नरश्रेष्ठ उत्तर— ये सभी सत्पुरुष विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये ॥ १५—१७½ ॥

वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान्॥ १८॥
सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
स युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥ १९॥
विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।

चन्द्रमाके महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र जो वर्चा हैं, वे ही पुरुषसिंह अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सका था। उन धर्मात्मा महारथी अभिमन्युने अपना कार्य पूरा करके चन्द्रमामें ही प्रवेश किया ॥ १८-१९½ ॥

आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभः॥ २०॥
द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम्।

पुरुषप्रवर कर्ण जो अर्जुनके द्वारा मारे गये थे, सूर्यमें प्रविष्ट हुए। शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥ २०½ ॥

धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः॥ २१॥
ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः।

धृतराष्ट्रके सभी पुत्र स्वर्गभोगके पश्चात् मूलतः बलोन्मत्त यातुधान (राक्षस) थे। वे समृद्धिशाली महामनस्वी क्षत्रिय होकर युद्धमें शस्त्रोंके आघातसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें गये थे॥

धर्ममेवाविशन् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः॥ २२॥
अनन्तो भगवान् देवः प्रविवेश रसातलम्।
पितामहनियोगाद् वै यो योगाद् गामधारयत्॥ २३॥

विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मके ही स्वरूपमें प्रवेश किया। बलरामजी साक्षात् भगवान् अनन्तदेवके अवतार थे। वे रसातलमें अपने स्थानको चले गये। ये वे ही अनन्तदेव हैं, जिन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर योगबलसे इस पृथ्वीको धारण कर रखा है ॥ २२-२३ ॥

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह॥ २४॥

वे जो नारायण नामसे प्रसिद्ध सनातन देवाधिदेव हैं, उन्हींके अंश वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण थे, जो अवतारका कार्य पूरा करके पुनः अपने स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥ २४ ॥

षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय॥ २५॥

जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उन्होंने अवसर पाकर सरस्वती नदीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये ॥ २५ ॥

तत्र त्यक्त्वा शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः।
ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन्॥ २६॥

वहाँ देहत्याग करनेके पश्चात् वे सब-की-सब पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचीं और अप्सराएँ होकर पुनः भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हो गयीं ॥ २६ ॥

हतास्तस्मिन् महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः।
घटोत्कचादयश्चैव देवान् यक्षांश्च भेजिरे॥ २७॥

इस प्रकार उस महाभारत नामक महायुद्धमें जो-जो वीर महारथी घटोत्कच आदि मारे गये थे, वे देवताओं और यक्षों-के लोकोंमें गये ॥ २७ ॥

दुर्योधनसहायाश्च राक्षसाः परिकीर्तिताः ।
प्राप्तास्ते क्रमशो राजन् सर्वलोकाननुत्तमान् ॥ २८ ॥

राजन् ! जो दुर्योधनके सहायक थे, वे सब-के-सब राक्षस बताये गये हैं । उन्हें क्रमशः सभी उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई॥

भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः ।
वरुणस्य तथा लोकान् विविशुः पुरुषर्षभाः ॥ २९ ॥

वे श्रेष्ठ पुरुष क्रमशः देवराज इन्द्रके, बुद्धिमान् कुबेरके तथा वरुण देवताके लोकोंमें गये ॥ २९ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते ।
कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ ३० ॥

महातेजस्वी भरतनन्दन ! यह सारा प्रसंग—कौरवों और पाण्डवोंका सम्पूर्ण चरित्र तुम्हें विस्तारके साथ बताया गया ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः स राजा जनमेजयः ।
विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३१ ॥

सौति कहते हैं—विप्रवरो ! यज्ञकर्मके बीचमें जो अवसर प्राप्त होते थे, उन्हींमें यह महाभारतका आख्यान सुनकर राजा जनमेजयको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥

ततः समापयामासुः कर्म तत् तस्य याजकाः ।
आस्तीकश्चाभवत् प्रीतः परिमोक्ष्य भुजङ्गमान्॥ ३२ ॥

तदनन्तर उनके पुरोहितोंने उस यज्ञकर्मको समाप्त कराया । सर्पोंको प्राणसंकटसे छुटकारा दिलाकर आस्तीक मुनिको भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३२ ॥

ततो द्विजातीन् सर्वांस्तान् दक्षिणाभिरतोषयत्।
पूजिताश्चापि ते राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतम् ॥ ३३ ॥

राजाने यज्ञकर्ममें सम्मिलित हुए समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा वे ब्राह्मण भी राजासे यथोचित सम्मान पाकर जैसे आये थे उसी तरह अपने घरको लौट गये॥

विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः ।
ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयम् ॥ ३४ ॥

उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजा जनमेजय भी तक्षशिलासे फिर हस्तिनापुरको चले आये ॥ ३४ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्तितम् ।
व्यासाज्ञया समाख्यातं सर्पसत्रे नृपस्य हि ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यासजीकी आज्ञासे मुनिवर वैशम्पायनजीने जो इतिहास सुनाया था तथा मैंने अपने पिता सूतजीसे जिसका ज्ञान प्राप्त किया था, वह सारा-का-सारा मैंने आपलोगोंके समक्ष यह वर्णन किया है ॥३५॥

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम् ।
कृष्णेन मुनिना विप्र निर्मितं सत्यवादिना ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन् ! सत्यवादी मुनि व्यासजीके द्वारा निर्मित यह पुण्यमय इतिहास परम पवित्र एवं बहुत उत्तम है ॥ ३६ ॥

सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता ।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना ॥ ३७ ॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा ।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३८ ॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ ३९ ॥

सर्वज्ञ, विधिविधानके ज्ञाता, धर्मज्ञ, साधु, इन्द्रियातीत ज्ञानसे सम्पन्न, शुद्ध, तपके प्रभावसे पवित्र अन्तःकरणवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न, सांख्य एवं योगके विद्वान् तथा अनेक शास्त्रोंके पारदर्शी मुनिवर व्यासजीने दिव्य दृष्टिसे देखकर महात्मा पाण्डवों तथा अन्य प्रचुर धनसम्पन्न महातेजस्वी राजाओंकी कीर्तिका प्रसार करनेके लिये इस इतिहासकी रचना की है ॥ ३७—३९ ॥

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४० ॥

जो विद्वान् प्रत्येक पर्वपर सदा इसे दूसरोंको सुनाता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं । उसका स्वर्गपर अधिकार हो जाता है तथा वह ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य बन जाता है ॥ ४० ॥

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः ।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति ॥ ४१ ॥

जो एकाग्रचित्त होकर इस सम्पूर्ण 'कार्ष्ण वेद'[1] का श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४१ ॥

यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४२ ॥

जो श्राद्धकर्ममें ब्राह्मणोंको निकटसे महाभारतका थोड़ा-सा अंश भी सुना देता है, उसका दिया हुआ अन्नपान अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा ।
महाभारतमाख्याय पश्चात् संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मनसे दिनभरमें जो पाप करता है, वह सायंकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

यद् रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः ।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण रात्रिके समय स्त्रियोंके समुदायसे घिरकर जो पाप करता है, वह प्रातःकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४४ ॥

भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते ।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।

---

१. श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके द्वारा प्रकट होनेके कारण 'कृष्णादागतः कार्ष्णः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार यह उपाख्यान 'कार्ष्णवेद' के नामसे प्रसिद्ध है

निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

इस ग्रन्थमें भरतवंशियोंके महान् जन्मकर्मका वर्णन है, इसलिये इसे महाभारत कहते हैं। महान् और भारी होनेके कारण भी इसका नाम महाभारत हुआ है। जो महाभारतकी इस व्युत्पत्तिको जानता और समझता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम् ॥ ४६ ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥ ४७ ॥

अठारह पुराणोंके निर्माता और वेदविद्याके महासागर महात्मा व्यास मुनिका यह सिंहनाद सुनो। वे कहते हैं—'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अङ्गोंसहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर, यह अकेला ही उन सबके बराबर है' ॥ ४६-४७ ॥

त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः ॥ ४८ ॥

मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें इस सम्पूर्ण महाभारतको पूर्ण किया था ॥ ४८ ॥

आकर्ण्य भक्त्या सततं जयाख्यं भारतं महत्।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा॥ ४९ ॥

जो जय नामक इस महाभारत इतिहासको सदा भक्तिपूर्वक सुनता रहता है, उसके यहाँ श्री, कीर्ति और विद्या तीनों साथ-साथ रहती हैं ॥ ४९ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है ॥ ५० ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ५१ ॥

मोक्षकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणको, राज्य चाहनेवाले क्षत्रियको तथा उत्तम पुत्रकी इच्छा रखनेवाली गर्भिणी स्त्रीको भी इस जय नामक इतिहासका श्रवण करना चाहिये ।५१।

स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम् ॥ ५२ ॥

महाभारतका श्रवण या पाठ करनेवाला मनुष्य यदि स्वर्गकी इच्छा करे तो उसे स्वर्ग मिलता है और युद्धमें विजय पाना चाहे तो विजय मिलती है। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको महाभारतके श्रवणसे सुयोग्य पुत्र या परम सौभाग्यशालिनी कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ॥ ५३ ॥

नित्यसिद्ध मोक्षस्वरूप भगवान् कृष्णद्वैपायनने धर्मकी कामनासे इस महाभारतसंदर्भकी रचना की है ॥ ५३ ॥

षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
त्रिंशच्छतसहस्राणि देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५४ ॥
पित्र्ये पञ्चदशं ज्ञेयं यक्षलोके चतुर्दश।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रभाषितम् ॥ ५५ ॥

उन्होंने पहले साठ लाख श्लोकोंकी महाभारतसंहिता बनायी थी। उसमें तीस लाख श्लोकोंकी संहिताका देवलोकमें प्रचार हुआ। पंद्रह लाखकी दूसरी संहिता पितृलोकमें प्रचलित हुई। चौदह लाख श्लोकोंकी तीसरी संहिताका यक्षलोकमें आदर हुआ तथा एक लाख श्लोकोंकी चौथी संहिता मनुष्योंमें प्रचारित हुई ॥ ५४-५५ ॥

नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन्।
रक्षोयक्षाञ्छुको मर्त्यान् वैशम्पायन एव तु ॥ ५६ ॥

देवताओंको देवर्षि नारदने, पितरोंको असित देवलने, यक्ष और राक्षसोंको शुकदेवजीने और मनुष्योंको वैशम्पायनजीने ही पहले-पहल महाभारत-संहिता सुनायी है ॥ ५६ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ५७ ॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥ ५८ ॥

शौनकजी ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको आगे करके गम्भीर अर्थसे परिपूर्ण और वेदकी समानता करनेवाले इस व्यासप्रणीत पवित्र इतिहासका श्रवण करता है, वह इस जगत्में सारे मनोवाञ्छित भोगों और उत्तम कीर्तिको पाकर परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है ॥ ५७-५८ ॥

भारताध्ययनात् पुण्यादपि पादमधीयतः।
श्रद्धया परया भक्त्या श्राव्यते चापि येन तु ॥ ५९ ॥

जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ महाभारतके एक अंशको भी सुनता या दूसरोंको सुनाता है, उसे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और उसीके प्रभावसे उसे उत्तम सिद्धि मिल जाती है ॥ ५९ ॥

य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम्।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ ६० ॥

जिन भगवान् वेदव्यासने इस पवित्र संहिताको प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था (वे महाभारतके सारभूत उपदेशका इस प्रकार वर्णन करते हैं—) 'मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों

स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे ॥ ६० ॥

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ६१ ॥

'अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके मन-पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ॥ ६१ ॥

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ६२ ॥

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता । धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते ॥ ६२ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ ६३ ॥

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे । धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य' ॥ ६३ ॥

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६४ ॥

यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रसिद्ध है । जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ६४ ॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ ६५ ॥

जैसे ऐश्वर्यशाली समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नोंकी निधि कहे गये हैं, उसी प्रकार महाभारत भी नाना प्रकारके उपदेशमय रत्नोंका भण्डार कहलाता है ॥ ६५ ॥

कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्छ्रावयित्वार्थमश्नुते ।
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः ।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः॥ ६६ ॥

जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनके द्वारा प्रसिद्ध किये गये इस महाभारतरूप पञ्चम वेदको सुनाता है, उसे अर्थकी प्राप्ति होती है । जो एकाग्रचित्त होकर इस भारत-उपाख्यानका पाठ करता है, वह मोक्षरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है; इस विषय-में मुझे संशय नहीं है ॥ ६६ ॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ ६७ ॥

जो वेदव्यासजीके मुखसे निकले हुए इस अप्रमेय (अतुलनीय), पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी और कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, उसे पुष्करतीर्थके जल-में गोता लगानेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ६७ ॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥ ६८॥

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको सौ गौएँ दान देता है और जो महाभारतकथाका प्रतिदिन श्रवणमात्र करता है, इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां स्वर्गारोहणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतनामक व्यासनिर्मित शतसाहस्री संहिताके स्वर्गारोहणपर्वमें पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

स्वर्गारोहणपर्वं सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२१४॥	(३)	४=	२१८॥=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	×	×	×	

स्वर्गारोहणपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—२१८॥=

श्रीमहाभारत सम्पूर्णम्

महाभारतश्रवणविधिः

माहात्म्य, कथा सुननेकी विधि और उसका फल

जनमेजय उवाच

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥
देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि।
वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद् वदस्व मे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वानोंको किस विधिसे महाभारतका श्रवण करना चाहिये? इसके सुननेसे क्या फल होता है? इसकी पारणाके समय किन-किन देवताओंका पूजन करना चाहिये? भगवन्! प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर क्या दान देना चाहिये? और इस कथाका वाचक कैसा होना चाहिये! यह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात्।
श्रुताद् भवति राजेन्द्र यत् त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र! महाभारत सुननेकी जो विधि है और उसके श्रवणसे जो फल होता है, जिसके विषयमें तुमने मुझसे जिज्ञासा प्रकट की है, वह सब बता रहा हूँ; सुनो ॥ ३ ॥

दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥

भूपाल! स्वर्गके देवता भगवान्‌की लीलामें सहायता करनेके लिये पृथ्वीपर आये थे और इस कार्यको पूरा करके वे पुनः स्वर्गमें जा पहुँचे ॥ ४ ॥

हन्त यत् ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः।
ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले ॥ ५ ॥

अब मैं इस भूतलपर ऋषियों और देवताओंके प्रादुर्भावके विषयमें प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें जो कुछ बताता हूँ, उसे एकाग्र-चित्त होकर सुनो ॥ ५ ॥

अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥ ६ ॥
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा।
सिद्धा धर्मः स्वयम्भूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥ ७ ॥
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यहाँ महाभारतमें रुद्र, साध्य, सनातन विश्वेदेव, सूर्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू ब्रह्मा, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, अप्सराओंके समुदाय, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, सम्पूर्ण चराचर जगत्, देवता और असुर—ये सब-के-सब एकत्र हुए देखे जाते हैं ॥ ६-९ ॥

तेषां श्रुत्वा प्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात्।
कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥ १० ॥

मनुष्य घोर पातक करनेपर भी उन सबकी प्रतिष्ठा सुनकर तथा प्रतिदिन उनके नाम और कर्मोंका कीर्तन करता हुआ उससे तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥
तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम्।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥ १२ ॥
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।

मनुष्य अपने मनको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे शुद्ध हो महाभारतमें वर्णित इस इतिहासको क्रमशः यथावत् रूपसे सुनकर इसे समाप्त करनेके पश्चात् इनमें मारे गये प्रमुख वीरोंके लिये श्राद्ध करे। भारत! भरतभूषण! महाभारत सुनकर श्रोता अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे नाना प्रकारके रत्न आदि बड़े-बड़े दान दे ॥ ११-१२½ ॥

गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥ १३ ॥
सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च।
भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥ १४ ॥
वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥
यद् यद् गृहे वरं किंचिद् यद् यदस्ति महद् वसु।
तत् तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः॥ १६ ॥

गौएँ, काँसीके दुग्धपात्र, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और सम्पूर्ण मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त कन्याएँ, नाना प्रकारके

यान, विचित्र भवन, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, वाहन, घोड़े, मतवाले हाथी, शय्या, शिविकाएँ, सजे-सजाये रथ तथा घरमें जो कोई भी श्रेष्ठ वस्तु और महान् धन हो, वह सब ब्राह्मणोंको देने चाहिये। स्त्री-पुत्रोंसहित अपने शरीरको भी उनकी सेवामें लगा देना चाहिये ॥ १३-१६ ॥

श्रद्धया परया युक्तं क्रमशस्तस्य पारगः।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥ १७ ॥

पूर्ण श्रद्धाके साथ क्रमशः कथा सुनते हुए उसे अन्ततक पूर्णरूपसे श्रवण करना चाहिये। यथाशक्ति श्रवणके लिये उद्यत रहकर मनको प्रसन्न रखे। हृदयमें हर्षसे उल्लसित हो मनमें संशय या तर्क-वितर्क न करे ॥ १७ ॥

सत्यार्जवरतो दान्तः शुचिः शौचसमन्वितः।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिध्यति तच्छृणु ॥ १८ ॥

सत्य और सरलताके सेवनमें संलग्न रहे। इन्द्रियोंका दमन करे, शुद्ध एवं शौचाचारसे सम्पन्न रहे। श्रद्धालु बना रहे और क्रोधको काबूमें रखे। ऐसे श्रोताको जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, वह बताता हूँ; सुनो ॥ १८ ॥

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दानमानगृहीतश्च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥

जो बाहर-भीतरसे पवित्र, शीलवान्, सदाचारी, शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्वज्ञ, श्रद्धालु, दोषदृष्टिसे रहित, रूपवान्, सौभाग्यशाली, मनको वशमें रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हो, ऐसे विद्वान् पुरुषको दान और मानसे अनुगृहीत करके वाचक बनाना चाहिये ॥ १९-२० ॥

अविलम्बमनायस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम्।
असंसक्ताक्षरपदं स्वरभावसमन्वितम् ॥ २१ ॥

कथावाचकको न तो बहुत रुक-रुककर कथा बाँचनी चाहिये और न बहुत जल्दी ही। आरामके साथ धीरगतिसे अक्षरों और पदोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उच्चस्वरसे कथा बाँचनी चाहिये। मीठे स्वरसे भावार्थ समझाकर कथा कहनी चाहिये ॥ २१ ॥

त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम्।
वाचयेद् वाचकः स्वस्थः स्वासीनः सुसमाहितः ॥ २२ ॥

तिरसठ अक्षरोंका उनके आठों स्थानोंसे ठीक-ठीक उच्चारण करे। कथा सुनाते समय वाचकके लिये स्वस्थ और एकाग्रचित्त होना आवश्यक है। उसके लिये आसन ऐसा होना चाहिये, जिसपर वह सुखपूर्वक बैठ सके ॥ २२ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥ २३ ॥

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्श्रुत्वा भारत भारतम्।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥ २४ ॥

राजन्! भरतनन्दन! नियमपरायण पवित्र श्रोता ऐसे वाचकसे महाभारतकी कथा सुनकर श्रवणका पूरा-पूरा फल पाता है ॥ २४ ॥

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयन्।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥
अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत्।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य प्रथम पारणके समय ब्राह्मणोंको अभीष्ट वस्तुएँ देकर तृप्त करता है, वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। उसे अप्सराओंसे भरा हुआ विमान प्राप्त होता है और वह प्रसन्नतापूर्वक एकाग्रचित्त हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है ॥ २५-२६ ॥

द्वितीयं पारणं प्राप्य सोऽतिरात्रफलं लभेत्।
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७ ॥

जो मनुष्य दूसरा पारण पूरा करता है, उसे अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है। वह सर्वरत्नमय दिव्य विमानपर आरूढ़ होता है ॥ २७ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥

वह दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करता, दिव्य चन्दनसे चर्चित एवं दिव्य सुगन्धसे वासित होता और दिव्य अङ्गद धारण करके सदा देवलोकमें सम्मानित होता है ॥ २८ ॥

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत्।

वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥ २९ ॥

तीसरा पारण पूरा करनेपर मनुष्य द्वादशाहयज्ञका फल पाता है और देवताओंके तुल्य तेजस्वी होकर हजारों वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ २९ ॥

चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥
विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥

चौथे पारणमें वाजपेय-यज्ञका और पाँचवेंमें उससे दूना फल प्राप्त होता है । वह पुरुष उदयकालके सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है और वहाँ इन्द्रभवनमें दस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है ॥ ३०-३१ ॥

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥
परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥
सर्वाँल्लोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः ।

छठे पारणमें इससे दूना और सातवेंमें तिगुना फल मिलता है । वह मनुष्य अप्सराओंसे भरे हुए और इच्छानुसार चलनेवाले, कैलासशिखरकी भाँति उज्ज्वल, वैदूर्यमणिकी वेदियोंसे विभूषित, नाना प्रकारसे सुसज्जित तथा मणियों और मूँगोंसे अलंकृत विमानपर बैठकर दूसरे सूर्यकी भाँति सम्पूर्ण लोकोंमें विचरता है ॥ ३२-३३½ ॥

अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥

आठवें पारणमें मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है । वह मनके समान वेगशाली और चन्द्रमाकी किरणोंके समान रंगवाले श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए चन्द्रोदयतुल्य रमणीय विमानपर आरूढ़ होता है ॥ ३४-३५ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रात् कान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥
अङ्के परमनारीणां सुखसुप्तो विबुध्यते ।

चन्द्रमासे भी अधिक कमनीय मुखोंद्वारा सुशोभित होनेवाली सुन्दरी दिव्याङ्गनाएँ उसकी सेवामें रहती हैं तथा सुरसुन्दरियोंके अङ्कमें सुखसे सोया हुआ वह पुरुष उन्हींकी मेखलाओंके खन-खन शब्दों और नूपुरोंकी मधुर झनकारोंसे जगाया जाता है ॥ ३६½ ॥

नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥
काञ्चनस्तम्भनिर्यूहवैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥
सेवितं चाप्सरःसङ्घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनरूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥

भारत ! नवाँ पारण पूर्ण होनेपर श्रोताको यज्ञोंके राजा अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । वह सोनेके खंभों और छज्जोंसे सुशोभित, वैदूर्यमणिकी बनी हुई वेदियोंसे विभूषित, चारों ओरसे जाम्बूनदमय दिव्य वातायनोंसे अलंकृत, स्वर्गवासी गन्धर्वों एवं अप्सराओंसे सेवित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होता हुआ स्वर्गमें दूसरे देवताकी भाँति देवताओंके साथ आनन्द भोगता है । उसके अङ्गोंमें दिव्य माला एवं दिव्य वस्त्र शोभा पाते हैं तथा वह दिव्य चन्दनसे चर्चित होता है ॥ ३७-४० ॥

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४१ ॥
रत्नवेदिकसम्बाधं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥
गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिश्च शोभितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥

दसवाँ पारण पूरा होनेपर ब्राह्मणोंको प्रणाम करनेके पश्चात् श्रोताको पुण्यनिकेतन विमान अनायास ही प्राप्त हो जाता है । उसमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी होती हैं और उनसे मधुर ध्वनि फैलती रहती है । बहुत-सी ध्वजा-पताकाएँ उस विमानकी शोभा बढ़ाती हैं । उसमें जगह-जगह रत्नमय चबूतरे बने होते हैं । वैदूर्यमणिका बना हुआ फाटक लगा होता है । सब ओरसे सोनेकी जालीद्वारा वह विमान घिरा होता है । उसके छज्जोंके नीचे मूँगे जड़े होते हैं । संगीत-कुशल गन्धर्वों और अप्सराओंसे उस विमानकी शोभा और बढ़ जाती है ॥ ४१-४३ ॥

मुकुटेनाग्निवर्णेन जाम्बूनदविभूषिणा ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥ ४४ ॥

दिव्याँल्लोकान् विचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः॥४५॥

उसपर बैठा हुआ पुण्यात्मा पुरुष अग्नितुल्य तेजस्वी मुकुटसे अलंकृत तथा जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित होता है। उसका शरीर दिव्य चन्दनसे चर्चित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित होता है। दिव्य भोगोंसे सम्पन्न हो वह दिव्य लोकोंमें विचरता है और देवताओंकी कृपासे उत्कृष्ट शोभा-सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है॥ ४४-४५॥

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिम्॥ ४६॥
पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते।

इस प्रकार बहुत वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है। तदनन्तर इक्कीस हजार वर्षोंतक गन्धर्वोंके साथ इन्द्रकी रमणीय नगरीमें रहकर देवेन्द्रके साथ ही वहाँका सुख भोगता है॥ ४६½॥

दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च॥ ४७॥
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा।

दिव्य रथों और विमानोंपर आरूढ़ हो नाना प्रकारके लोकोंमें विचरता और दिव्य नारियोंसे घिरा हुआ देवताकी भाँति वहाँ निवास करता है॥ ४७½॥

ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा॥ ४८॥
शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम्।

राजन्! इसके बाद वह सूर्य, चन्द्रमा, शिव तथा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ४८½॥

एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा॥ ४९॥
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम।

महाराज! ठीक ऐसी ही बात है। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे गुरुका कथन है कि महाभारतकी इस महिमा और फलपर श्रद्धा रखनी चाहिये॥ ४९½॥

वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद् यदिच्छति॥ ५०॥
हस्त्यश्वरथयानानि वाहनानि विशेषतः।

वाचकको उसके मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब देनी चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पालकी तथा दूसरे-दूसरे वाहन विशेषरूपसे देने चाहिये॥ ५०½॥

कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथा परम्॥ ५१॥
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः।
देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ ५२॥

कड़े, कुण्डल, यज्ञोपवीत, विचित्र वस्त्र और विशेषतः गन्ध अर्पित करके वाचककी देवताके समान पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला श्रोता भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ५१-५२॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते।
वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि॥ ५३॥
जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ।
धर्मं वृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप॥ ५४॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! महाभारतकी कथा प्रारम्भ हो जानेपर प्रत्येक पर्वमें क्षत्रियोंकी जाति, देश, सत्यता, माहात्म्य, धर्म और वृत्तिको जानकर ब्राह्मणोंको जो-जो वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिये, अब उनका वर्णन करूँगा॥ ५३-५४॥

स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्यं प्रवर्तिते।
समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद् द्विजान्॥ ५५॥

पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कथावाचनका कार्य प्रारम्भ करावे। फिर पर्व समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंकी पूजा करे॥ ५५॥

आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम्।
विधिवद् भोजयेद् राजन् मधु पायसमुत्तमम्॥ ५६॥

राजन्! आदिपर्वकी कथाके समय वाचकको नूतन वस्त्र पहनाकर चन्दन आदिसे उसकी पूजा करे और विधिपूर्वक उसे मीठी एवं उत्तम खीर भोजन करावे॥५६॥

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा।
आस्तीके भोजयेद् राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम्॥५७॥

राजन्! तत्पश्चात् आस्तीकपर्वकी कथाके समय ब्राह्मणोंको मधु और घीसे युक्त खीर भोजन करावे। उस भोजनमें फल-मूलकी अधिकता होनी चाहिये। फिर गुड़ और भात दान करे॥ ५७॥

अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ५८ ॥

राजेन्द्र ! सभापर्व आरम्भ होनेपर ब्राह्मणोंको पूओं, कचौड़ियों और मिठाइयोंके साथ खीर भोजन कराये ॥ ५८ ॥

आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ।
अरणीपर्व चासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥

वनपर्वमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फल-मूलोंद्वारा तृप्त करे । अरणीपर्वमें पहुँचकर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे॥५९॥

तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

इतना ही नहीं, जिनको खानेसे तृप्ति हो सके, ऐसे उत्तम-उत्तम जंगली मूल-फल और सभी अभीष्ट गुणोंसे सम्पन्न अन्न ब्राह्मणोंको दान करे ॥ ६० ॥

विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ६१ ॥
भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् ।

भरतश्रेष्ठ ! विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे तथा उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको चन्दन और फूलोंकी मालासे अलंकृत करके उन्हें सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन कराये ॥६१½॥

भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम् ॥ ६२॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् ।

राजेन्द्र ! भीष्मपर्वमें उत्तम सवारी देकर अच्छी तरह छौंक-बघारकर तैयार किया हुआ सभी उत्तम गुणोंसे युक्त भोजन दान करे ॥ ६२½ ॥

द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ॥ ६३ ॥
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ।

राजेन्द्र ! द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको परम उत्तम भोजन कराये और उन्हें धनुष, बाण तथा उत्तम खड्ग प्रदान करे ॥ ६३½ ॥

कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ६४ ॥
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग् दद्यात् संयतमानसः ।

कर्णपर्वमें भी ब्राह्मणोंको अच्छे ढंगसे तैयार किया हुआ सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे और अपने मनको वशमें रक्खे ॥ ६४½ ॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ॥ ६५ ॥
अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ।

राजेन्द्र ! शल्यपर्वमें मिठाई, गुड़, भात, पूआ तथा तृप्तिकारक फल आदिके साथ सब प्रकारके उत्तम अन्न दान करे ॥ ६५½ ॥

गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ।

गदापर्वमें भी मूँग मिलाये हुए चावलका दान करे । स्त्रीपर्वमें रत्नोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करे ॥ ६६½ ॥

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत् पुनः ॥ ६७ ॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् ।

ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाया हुआ भात जिमाये । फिर अच्छी तरह संस्कार किये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नका दान करे ॥ ६७½ ॥

शान्तिपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥६८ ॥
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ।

शान्तिपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये । आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचनेपर सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे ॥ ६८½ ॥

तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ६९ ॥
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ।

आश्रमवासिकपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये । मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न, चन्दन, माला और अनुलेपनका दान करे ॥ ६९½ ॥

महाप्रास्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ७० ॥
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ।

इसी प्रकार महाप्रस्थानिकपर्वमें भी समस्त वाञ्छनीय गुणोंसे युक्त अन्न आदिका दान करे । स्वर्गारोहणपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य खिलाये ॥ ७०½ ॥

हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान् ॥ ७१ ॥
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

हरिवंशकी समाप्ति होनेपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वर्णमुद्रासहित एक गौ ब्राह्मणको दान दे ॥ ७१½ ॥

तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ॥ ७२ ॥
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः ।

सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ ७३॥

पृथ्वीनाथ ! यदि श्रोता दरिद्र हो तो उसे भी आधी दक्षिणाके साथ गोदान अवश्य करना चाहिये। प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर विद्वान् पुरुष सुवर्णसहित पुस्तक वाचकको समर्पित करे ॥ ७२-७३ ॥

हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत्।
पारणे पारणे राजन् यथावद् भरतर्षभ ॥ ७४॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! हरिवंशपर्वमें भी प्रत्येक पारणके समय ब्राह्मणोंको यथावत् रूपसे खीर भोजन कराये ॥ ७४ ॥

समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृताः ॥ ७५ ॥
शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ।
अर्चयेत यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥
संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः सुसमाहितः।
भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त हो सब पर्वोंकी संहिताओंको समाप्त करके शास्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह उन्हें रेशमी वस्त्रोंमें लपेटकर किसी उत्तम स्थानमें रक्खे और स्वयं स्नान आदिसे पवित्र हो श्वेत वस्त्र, फूलकी माला तथा आभूषण धारण करके चन्दन-माला आदि उपचारोंसे उन संहिता-पुस्तकोंकी पृथक्-पृथक् विधिवत् पूजा करे। पूजाके समय चित्तको एकाग्र एवं शुद्ध रक्खे । भाँति-भाँतिके उत्तम भक्ष्य, भोजन, पेय, माल्य तथा अन्य कमनीय वस्तुएँ भेंटके रूपमें चढ़ाये ॥ ७५–७७ ॥

हिरण्यं च सुवर्णं च दक्षिणामथ दापयेत्।
सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥

इसके बाद हिरण्य एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे। मनको वशमें रखकर सभी पुस्तकोंपर तीन-तीन पल सोना चढ़ाना चाहिये ॥ ७८ ॥

तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम्।
यद् यदेवात्मनोऽभीष्टं तत् तद् देयं द्विजातये ॥ ७९॥

इतना न हो सके तो सबपर डेढ़-डेढ़ पल सोना चढ़ाये और यह भी सम्भव न हो तो पौन-पौन पल चढ़ाये; परंतु धन रहते हुए कंजूसी नहीं करनी चाहिये। जो-जो वस्तु अपनेको प्रिय लगती हो, वही-वही ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये ॥ ७९ ॥

सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः।
देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८० ॥

कथावाचक अपना गुरु होता है, अतः उसके प्रति भक्तिभाव रखते हुए उसे सर्वथा संतुष्ट करना चाहिये। उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् नर-नारायणका कीर्तन करना चाहिये ॥ ८० ॥

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान्।
तर्पयेद् विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८१ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चन्दन और माला आदिसे विभूषित करके उन्हें नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ और भाँति-भाँतिके छोटे-बड़े आवश्यक पदार्थ देकर संतुष्ट करे ॥ ८१ ॥

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८२ ॥

ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है तथा प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणकी पूजा करनेसे श्रौत यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः।
भविष्यं श्रावयेद् विद्वान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कथावाचकको विद्वान् होना चाहिये और प्रत्येक अक्षर, पद तथा स्वरका सुस्पष्ट उच्चारण करते हुए उसे महाभारत या हरिवंशके भविष्यपर्वकी कथा सुनानी चाहिये ॥ ८३ ॥

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् सम्प्रदापयेत्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८४ ॥

भरतभूषण ! सम्पूर्ण कथाकी समाप्ति होनेके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर उन्हें यथोचित दान देना चाहिये। फिर वाचकको भी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये। इसके बाद उसे दान-मानसे संतुष्ट करना उचित है ॥ ८४ ॥

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८५ ॥

कथावाचकके संतुष्ट होनेपर ही परम उत्तम एवं मङ्गलमयी प्रीति प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर श्रोताके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ८५ ॥

ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ।

सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च पृथग्विधैः ॥ ८६ ॥

इसलिये भरतश्रेष्ठ ! साधुस्वभावके श्रोताओंको चाहिये कि वे न्यायपूर्वक ब्राह्मणोंका वरण करें तथा उनकी विभिन्न प्रकारकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करते हुए उनका यथोचित पूजन करें ॥ ८६ ॥

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर ।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८७ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ नरेश्वर ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, उसके अनुसार यह मैंने महाभारतके सुनने तथा उसका पारायण करनेकी विधि बतलायी है । तुम्हें इसपर श्रद्धा करनी चाहिये ॥ ८७ ॥

भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम ।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ८८ ॥

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! अपने परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाले श्रोताको महाभारतको सुनने तथा इसका पारायण करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥ ८८ ॥

भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ८९ ॥

प्रतिदिन महाभारत सुने । नित्यप्रति महाभारतका पाठ करे । जिसके घरमें महाभारत ग्रन्थ मौजूद है, विजय उसके हाथमें है ॥ ८९ ॥

भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ॥ ९० ॥

महाभारत परम पवित्र ग्रन्थ है । इसमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं । देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं। महाभारत परमपदस्वरूप है ॥ ९० ॥

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत् ॥ ९१॥

भरतश्रेष्ठ ! महाभारत सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है । महाभारतसे मोक्ष प्राप्त होता है । यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ ॥ ९१ ॥

महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् ।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन् नावसीदति ॥९२ ॥

महाभारत नामक इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता ॥ ९२ ॥

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥९३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वेद, रामायण तथा पवित्र महाभारतके आदि, मध्य एवं अन्तमें सर्वत्र भगवान् श्रीहरिका ही गान किया जाता है ॥ ९३ ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः ।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९४ ॥

जहाँ भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओं तथा सनातन श्रुतियोंका समावेश है, उस महाभारतका इस जगत्में परम-पदकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अवश्य श्रवण करना चाहिये ॥ ९४ ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम् ।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९५ ॥

यह महाभारत परम पवित्र है । यह धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाला है तथा यह समस्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है । अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको इसका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९५ ॥

कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९६ ॥

महाभारतके श्रवणसे शरीर, वाणी और मनके द्वारा संचित किये हुए सारे पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार ॥ ९६ ॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत् ।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥ ९७ ॥

अठारह पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वह सारा फल वैष्णव पुरुषको अकेले महाभारतके श्रवणसे मिल जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९७ ॥

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः ।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ९८ ॥

स्त्रियाँ हों या पुरुष, सभी इसके श्रवणसे भगवान् विष्णुके धामको चले जाते हैं । पुत्रकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके यशस्वरूप इस महाभारतका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९८ ॥

दक्षिणा चात्र देया वै निष्कपञ्चसुवर्णकम् ।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥ ९९ ॥

शास्त्रोक्त फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि

वह महाभारत-श्रवणके पश्चात् वाचकको यथाशक्ति सोनेके पाँच सिक्के दक्षिणाके रूपमें दान करे ॥ ९९ ॥

स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंवृताम् ।
वाचकाय च दद्याद्धि आत्मनः श्रेय इच्छता ॥१००॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि वह कपिला गौके सींगोंमें सोना मढ़ाकर उसे वस्त्रसे आच्छादित करके बछड़ेसहित वाचकको दान दे ॥ १०० ॥

अलङ्कारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद् धनं चैव विशेषतः ॥१०१॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके सिवा कथावाचकके लिये दोनों हाथोंके कड़े, कानोंके कुण्डल और विशेषतः धन प्रदान करे ॥१०१॥

भूमिदानं समादद्याद् वाचकाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०२॥

नरेश्वर ! वाचकके लिये भूमिदान तो अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि भूमिदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा ॥ १०२ ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ १०३॥

जो मनुष्य सदा महाभारतको सुनता अथवा सुनाता रहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके धामको जाता है ॥ १०३ ॥

पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् ।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१०४॥

भरतश्रेष्ठ ! वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीमें समस्त पितरोंका, अपना तथा अपनी स्त्री और पुत्रका भी उद्धार कर देता है ॥ १०४ ॥

दशांशश्चैव होमोऽपि कर्तव्योऽत्र नराधिप ।
इदं मया तवाग्रे च प्रोक्तं सर्वं नरर्षभ ॥१०५॥

नरेश्वर ! महाभारत सुननेके बाद उसके लिये दशांश होम भी करना आवश्यक है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां हरिवंशोक्तभारतश्रवणविधावध्यायः समाप्तः ॥

इस प्रकार व्यासनिर्मित श्रीमहाभारत शतसाहस्री संहितामें हरिवंशोक्त भारतश्रवणविधिविषयक अध्याय पूरा हुआ ॥
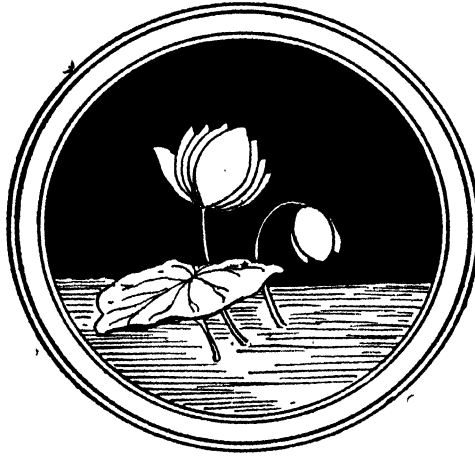
महाभारत-माहात्म्य

पाराशर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानककेसरं हरिकथासंबोधनाबोधितम्।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा ॥
भूयाद् भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥

पराशरके पुत्र महर्षि व्यासकी वाणीरूपी सरोवरमें उदित यह महाभारतरूपी अमल कमल, जो गीतार्थरूपी तीव्र सुगन्धसे युक्त, नानाप्रकारके आख्यानरूपी केसरसे सम्पन्न तथा हरिकथारूपी सूर्यतापमे प्रफुल्लित है, सज्जनरूपी भ्रमर इस लोकमें जिसके रसका निरन्तर प्रमुदित होकर पान किया करते हैं और जो कलिकालके पापरूपी मलका नाश करनेवाला है, सदा हमारा कल्याण करनेवाला हो ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥

जिसमें भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओंका वर्णन है और जिसमें कल्याणमयी श्रुतियोंका सार दिया गया है, इस लोकमें परमपदकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको उस महाभारतका श्रवण करना चाहिये। अष्टादश पुराणोंके रचयिता और वेद (-ज्ञान) के महान् समुद्र महात्मा श्रीव्यासदेवका यह सिंहनाद है कि 'तुम नित्य महाभारतका श्रवण करो ॥'

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥
भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
सम्प्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे ॥

अपरिमितबुद्धि भगवान् व्यासदेवके द्वारा कथित यह महाभारत पवित्र धर्मशास्त्र है, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र है और सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी है। हे भरतश्रेष्ठ! महाभारत समस्त शास्त्रोंका शिरोमणि है, इसीसे सम्प्रति विद्वान् लोग इसका पठन-श्रवण करते हैं और आगे भी करेंगे ॥

योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
कुरूणां प्रथितं वंशं कीर्तयन् सततं शुचिः।
वंशमाप्नोति विपुलं लोके पूज्यतमो भवेत् ॥

जो ब्राह्मण नियमित व्रतका पालन करता हुआ वर्षाऋतुके चार महीनोंमें पवित्र भारतका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुरुष शुद्ध होकर कुरुके प्रसिद्ध वंशका सदा कीर्तन करता है, उसके वंशका विपुल विस्तार होता है और लोकमें वह पूज्यतम बन जाता है ॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥

दीर्घदृष्टि तथा मोक्षरूप भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने केवल धर्मकी कामनासे ही इस महाभारतको रचा है। हे भरतर्षभ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो कुछ इस (महाभारत) में कहा गया है, वही अन्य शास्त्रोंमें भी कहा गया है। जो इसमें नहीं कहा गया, वह कहीं नहीं कहा गया है ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥

यह महाभारत परम पवित्र है, धर्मके लिये प्रमाणरूप है, समस्त गुणोंसे सम्पन्न है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको इसे अवश्य सुनना चाहिये। क्योंकि, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, वैसे ही इस महाभारतसे तन, वचन और मनसे किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥

य इदं मानवो लोके पुण्यार्थे ब्राह्मणाञ्छुचीन्।
श्रावयेत महापुण्यं तस्य धर्मः सनातनः ॥
महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन्नावसीदति ॥

जो मनुष्य महान् पवित्र इस इतिहासको पुण्यार्थ पवित्र ब्राह्मणोंको श्रवण कराता है, वह सनातन धर्मको प्राप्त होता है। महाभारतके आख्यान, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण तथा भगवान् केशव—इनका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी दुखी नहीं होता ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान्।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥

जो मनुष्य निरन्तर श्रीमहाभारत सुनता है या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-पदको प्राप्त होता है; इतना ही नहीं, वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीके समस्त पितरोंका तथा पुत्र और पत्नीसहित अपना भी उद्धार करता है ॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महान् गिरिः।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥
न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः।
यां श्रुत्वैव महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते ॥

जैसे समुद्र तथा महापर्वत सुमेरु दोनों रत्ननिधिके नामसे विख्यात हैं, वैसे ही यह महाभारत भी रत्नोंका भंडार कहा गया है। मनुष्यको इस महान् पवित्र इतिहासके पढ़ने-सुननेसे जैसी तुष्टि प्राप्त होती है, वैसी स्वर्गमें जानेसे भी नहीं प्राप्त होती ॥

शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च।
सर्वं संत्यजति क्षिप्रं य इदं शृणुयान्नरः ॥
भरतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम्।
नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः ॥

जो मनुष्य इस महाभारतको पढ़ता-सुनता है, वह शरीर, वाणी तथा मनसे किये हुए सब पापोंका निःशेषरूपसे त्याग कर देता है। अर्थात् उसके ये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य दोषबुद्धिका त्याग करके भरतवंशियोंके महान् जीवनकी बातोंको पढ़ते-सुनते हैं, उनको यहाँ व्याधिका भी भय नहीं रहता, फिर परलोकका भय तो रहता ही कहाँसे?

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
श्राव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम्॥
य इदं भारतं राजन् वाचकाय प्रयच्छति।
तेन सर्वा मही दत्ता भवेत् सागरमेखला॥

यह महाभारत वेदसदृश (पञ्चम वेद) है, उत्तम है, साथ ही पवित्र भी है, श्रवण करने योग्य है, कानोंको सुख देनेवाला है, पवित्र शीलको बढ़ानेवाला है। अतएव हे राजन्! जो मनुष्य यह भारत ग्रन्थ पढ़नेवालेको दान करता है, उसको समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है।

अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्॥
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अठारहों पुराण, समस्त धर्मशास्त्र, अङ्गोंसहित वेद—इन सबकी बराबरी अकेला महाभारत कर सकता है। क्योंकि यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और रहस्यरूपी असाधारण भारसे युक्त है, इसीसे इसे महाभारत कहा जाता है। जो पुरुष 'महाभारत' शब्दके इस अर्थको जानता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता॥
स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम्॥

'जय' नामक यह इतिहास मोक्षकी इच्छा रखनेवाले, ब्राह्मण, राजा और गर्भवती स्त्रियोंको तो अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे स्वर्गकी इच्छा करनेवालेको स्वर्ग, जयकी इच्छावालेको जय और गर्भवती स्त्रीको पुत्र या बड़े भाग्यवाली कन्या प्राप्त होती है।

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥

वेदको जाननेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणको कोई सुवर्णसे मँढ़े सींगोंवाली सौ गौदान दे, और दूसरा कोई निरन्तर महाभारतकी कथा सुने तो इन दोनोंको समान फलकी प्राप्ति होती है।

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति॥
पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः।
भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते॥

व्यासदेवरचित इस (पञ्चम) वेदरूप महाभारतका जो समाहितचित्तसे आद्योपान्त श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर, इस इतिहासको सुननेवाले पुत्र माता-पिताके सेवकोन्मुख, तथा सेवक अपने स्वामीका प्रिय कार्य करनेवाले बन जाते हैं। इसमें महान् भरतवंशियोंकी जीवन-कथाका वर्णन है, इससे भी इसको महाभारत कहते हैं।

देवा राजर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मर्षयस्तथा।
कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानः कीर्त्यते केशवस्तथा॥
भगवांश्चापि देवेशो यत्र देवी च कीर्त्यते।
अनेकजननो यत्र कार्तिकेयस्य सम्भवः॥

इस महाभारतमें पवित्र देवताओं, राजर्षियों और पुण्यस्वरूप ब्रह्मर्षियोंका वर्णन है; इसमें भगवान् केशवके चरित्रोंका कीर्तन है, इसमें भगवान् महादेव तथा देवी-पार्वतीका वर्णन है। और इसमें अनेक माताओंवाले कार्तिकेयके जन्मका भी वर्णन है।

ब्राह्मणानां गवां चैव माहात्म्यं यत्र कीर्त्यते।
सर्वं श्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा॥

फिर इस इतिहासमें ब्राह्मणों तथा गौओंका माहात्म्य बतलाया गया है। और यह समस्त श्रुतियोंका समूहरूप है। अतः धर्मबुद्धि मनुष्योंको इसे पढ़ना-सुनना चाहिये। विजयकी इच्छा करनेवालोंको यह 'जय' नामक इतिहास अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाता है, जैसे राहुके ग्रहणसे चन्द्रमा मुक्त हो जाता है।

अस्मिन्नर्थश्च कामश्च निखिलेनोपदेक्ष्यते।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी॥
भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥

इस महान् पवित्र इतिहासमें अर्थ और कामका ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण उपदेश है कि जिससे इसे पढ़ने-सुननेवालेकी बुद्धि परमात्मामें परिनिष्ठित हो जाती है। अतएव महाभारतका श्रवण-कीर्तन सदा करना चाहिये। जिसके घर महाभारतका श्रवण-कीर्तन होता है, उसके विजय तो हस्तगत ही है।

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम्।
कृष्णेन मुनिना विप्रनिर्मितं सत्यवादिना॥
सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम्।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सत्यवादी, सर्वज्ञ, शास्त्रविधिके ज्ञाता, धर्मज्ञानयुक्त संत, अतीन्द्रियज्ञानी, पवित्र, तपस्याके द्वारा शुद्धचित्त, ऐश्वर्यवान्, सांख्ययोगी, योगनिष्ठ तथा अनेक

शास्त्रोंके ज्ञाता तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं। उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टिसे देखकर ही महात्मा पाण्डव तथा अन्यान्य महान् तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली क्षत्रियोंकी कीर्तिको जगत्‌में प्रसिद्ध किया है। उन्हींने 'इतिहास' नामसे प्रसिद्ध इस पुण्यमय पवित्र महाभारतकी रचना की है, इसीसे यह ऐसा उत्तम हुआ है।

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः॥

अठारह पुराणोंके श्रवणसे जो फल होता है, वही फल महाभारतके श्रवणसे वैष्णवोंको प्राप्त होता है—इसमें संदेह नहीं है। स्त्री और पुरुष इस महाभारतके श्रवणसे वैष्णव पदको प्राप्त कर सकते हैं। पुत्रकी इच्छावाली स्त्रियोंको तो भगवान् विष्णुकी कीर्तिरूप महाभारत अवश्य सुनना चाहिये।

नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि।
निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात्॥
शृण्वञ्छ्राद्धः पुण्यशीलः श्रावयंश्चेदमद्भुतम्।
नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥

धर्मकी कामनावाले मनुष्यको यह सम्पूर्ण इतिहास सुनना चाहिये, इससे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और पुण्यस्वभाव होकर इस अद्भुत इतिहासका श्रवण करता है या कराता है, वह राजसूय और अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः॥
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा।
तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम्॥

शक्तिशाली श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव पवित्रताके साथ तीन वर्ष लगातार लगे रहकर इसकी प्रारम्भसे रचना करके पूर्ण-मनोरथ हुए थे। महर्षि व्यासने तप और नियम धारण करके इसकी रचना की थी। अतएव ब्राह्मणोंको भी नियमयुक्त होकर ही इसका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये।

महीं विजयते राजा शत्रूंश्चापि पराजयेत्।
इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत्॥
महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा।
वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम्॥

इस इतिहासके सुननेसे राजा पृथ्वीपर विजय प्राप्त करता तथा शत्रुओंको पराजित करता है। उसे श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति और महान् कल्याण होता है। यह इतिहास राजरानियोंको अपने युवराजके साथ बार-बार सुनना चाहिये। इससे वीर पुत्रका जन्म होता है अथवा राज्यभागिनी कन्या होती है।

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते॥

जो विद्वान् पुरुष सदा प्रत्येक पर्वपर इसका श्रवण कराता है, वह पापरहित और स्वर्गविजयी होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंको इसका एक पाद भी श्रवण कराता है, उसके पितृगण अक्षय अन्नपानको प्राप्त करते हैं।

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥

हे शौनक! जो मनुष्य व्यासजीके द्वारा कथित महान् अर्थमय और वेदतुल्य इस पवित्र इतिहासका श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा श्रवण करता है, वह इस लोकमें सब मनोरथोंको और कीर्तिको प्राप्त करता है और अन्तमें परमसिद्धि मोक्षको प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं है।

श्रावयेद् ब्राह्मणाञ्छ्राद्धे यश्चैनं पादमन्ततः।
अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपावर्तेत् पितॄनिह॥
भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम्॥

जो मनुष्य श्राद्धके अन्तमें इसका कम-से-कम एक पाद भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसका श्राद्ध उसके पितृगणको अक्षय होकर प्राप्त होता है। महाभारत परमपुण्यदायक है, इसमें विविध कथाएँ हैं, देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं; क्योंकि महाभारतसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत्॥
एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा।
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम॥

हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि महाभारत सभी शास्त्रोंमें उत्तम है, और उसके श्रवण-कीर्तनसे मोक्षकी प्राप्ति होती है—यह मैं तुमसे यथार्थ कहता हूँ। हे महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, वह ऐसा ही है; यहाँ कोई विचार-वितर्क नहीं करना है। मेरे गुरुने भी मुझसे यही कहा है कि महाभारतपर मनुष्यको श्रद्धावान् होना चाहिये।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥
भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता॥

हे भरतर्षभ! वेद, रामायण और पवित्र महाभारत—इन सबमें आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका ही कीर्तन किया गया है। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उत्तम श्रेय—मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक पुरुषको महाभारतका श्रवण और पारायण करनेमें सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये।

सम्पूर्ण महाभारतकी श्लोक-संख्या (अनुष्टुप् छन्दके अनुसार)

	उत्तरभारतीय पाठ	दाक्षिणात्य पाठ	उवाच	कुल
आदिपर्व	८८९०	७३६॥	१०६०	१०६८६॥
सभापर्व	२८१३=	१२४३।=	३८४	४४४०॥
वनपर्व	१२१८८।।।=	८७॥	६८७	१२९६३।=
विराटपर्व	२४०८॥	२८२॥	३२४	३०१५
उद्योगपर्व	७०५६।।।≡	७६−	५७४	७७०७
भीष्मपर्व	६०२२।−	७७॥≡	२६७	६३६७
द्रोणपर्व	९७८०।−	१३६।।।=	४४८	१०३६५≡
कर्णपर्व	५३४०।−	१६४	२२९	५७३३।−
शल्यपर्व	३६८९=	४८।।।=	१६६	३९०४
सौप्तिकपर्व	८०९।।।	१	४४	८५४।।।
स्त्रीपर्व	८२८।।।=	१	६०	८८९।।।=
शान्तिपर्व	१४२७१॥≡	४५३।।।=	११३९	१५८६४॥−
अनुशासनपर्व	७८४०।≡	१९७०॥	११२१	१०९३१।।।≡
आश्वमेधिकपर्व	२९१७।।।≡	१२९९।=	४०३	४६२०।−
आश्रमवासिकपर्व	११०७।।।	१॥	७८	११८७।
मौसलपर्व	३०१।	३॥	१६	३२०।।।
महाप्रस्थानिकपर्व	११४।।।	×	२२	१३६।।।
स्वर्गारोहणपर्व	२१८॥=	×	११	२२९॥=
कुल संख्या	**८६६००॥−**	**६५८४=**	**७०३३**	**१००२१७॥≡**

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारतके सब पर्वोंके प्रत्येक अध्यायकी पूरी विषयसूची

आदिपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(अनुक्रमणिकापर्व)	
१–	ग्रन्थका उपक्रम, ग्रन्थमें कहे हुए अधिकांश विषयोंकी संक्षिप्त सूची तथा इसके पाठकी महिमा	१
	(पर्वसंग्रहपर्व)	
२–	समन्तपञ्चक क्षेत्रका वर्णन, अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण, महाभारतमें वर्णित पर्वों और उनके संक्षिप्त विषयोंका संग्रह तथा महाभारतके श्रवण एवं पठनका फल ··· ···	२३
	(पौष्यपर्व)	
३–	जनमेजयको सरमाका शाप, जनमेजयद्वारा सोमश्रवाका पुरोहितके पदपर वरण, आरुणि, उपमन्यु, वेद और उत्तङ्ककी गुरुभक्ति तथा उत्तङ्कका सर्पयज्ञके लिये जनमेजयको प्रोत्साहन देना ··· ···	४६
	(पौलोमपर्व)	
४–	कथा-प्रवेश ··· ···	६२
५–	भृगुके आश्रमपर पुलोमा दानवका आगमन और उसकी अग्निदेवके साथ बातचीत ···	६३
६–	महर्षि च्यवनका जन्म, उनके तेजसे पुलोमा राक्षसका भस्म होना तथा भृगुका अग्निदेवको शाप देना ··· ···	६५
७–	शापसे कुपित हुए अग्निदेवका अदृश्य होना और ब्रह्माजीका उनके शापको संकुचित करके उन्हें प्रसन्न करना ··· ···	६६
८–	प्रमद्वराका जन्म, रुरुके साथ उसका वाग्दान तथा विवाहके पहले ही साँपके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु ··· ···	६९
९–	रुरुकी आधी आयुसे प्रमद्वराका जीवित होना, रुरुके साथ उसका विवाह, रुरुका सर्पोंको मारनेका निश्चय तथा रुरु-डुण्डुभ-संवाद ···	७०
१०–	रुरु मुनि और डुण्डुभका संवाद ···	७२
११–	डुण्डुभकी आत्मकथा तथा उसके द्वारा रुरुको अहिंसाका उपदेश ··· ···	७३
१२–	जनमेजयके सर्पसत्रके विषयमें रुरुकी जिज्ञासा और पिताद्वारा उसकी पूर्ति ···	७४
	(आस्तीकपर्व)	
१३–	जरत्कारुका अपने पितरोंके अनुरोधसे विवाहके लिये उद्यत होना ··· ···	७५
१४–	जरत्कारुद्वारा वासुकिकी बहिनका पाणिग्रहण ···	७७
१५–	आस्तीकका जन्म तथा मातृशापसे सर्पसत्रमें नष्ट होनेवाले नागवंशकी उनके द्वारा रक्षा ···	७८
१६–	कद्रू और विनताको कश्यपजीके वरदानसे अभीष्ट पुत्रोंकी प्राप्ति ··· ···	७९
१७–	मेरु पर्वतपर अमृतके लिये विचार करनेवाले देवताओंको भगवान् नारायणका समुद्र-मन्थनके लिये आदेश ··· ···	८०
१८–	देवताओं और दैत्योंद्वारा अमृतके लिये समुद्रका मन्थन, अनेक रत्नोंके साथ अमृतकी उत्पत्ति और भगवान्का मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंके हाथसे अमृत ले लेना ··· ···	८१
१९–	देवताओंका अमृतपान, देवासुर-संग्राम तथा देवताओंकी विजय ··· ···	८५
२०–	कद्रू और विनताकी होड़, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप एवं ब्रह्माजीद्वारा उसका अनुमोदन ···	८७
२१–	समुद्रका विस्तारसे वर्णन ··· ···	८८
२२–	नागोंद्वारा उच्चैःश्रवाकी पूँछको काली बनाना; कद्रू और विनताका समुद्रको देखते हुए आगे बढ़ना ··· ···	९०
२३–	पराजित विनताका कद्रूकी दासी होना, गरुडकी उत्पत्ति तथा देवताओंद्वारा उनकी स्तुति ···	९१
२४–	गरुडके द्वारा अपने तेज और शरीरका संकोच तथा सूर्यके क्रोधजनित तीव्र तेजकी शान्तिके लिये अरुणका उनके रथपर स्थित होना ···	९३
२५–	सूर्यके तापसे मूर्च्छित हुए सर्पोंकी रक्षाके लिये कद्रूद्वारा इन्द्रदेवकी स्तुति ··· ···	९५
२६–	इन्द्रद्वारा की हुई वर्षासे सर्पोंकी प्रसन्नता ···	९६
२७–	रामणीयक द्वीपके मनोरम वनका वर्णन तथा गरुडका दास्यभावसे छूटनेके लिये सर्पोंसे उपाय पूछना ··· ···	९७
२८–	गरुडका अमृतके लिये जाना और अपनी माताकी आज्ञाके अनुसार निषादोंका भक्षण करना ···	९८
२९–	कश्यपजीका गरुडको हाथी और कछुएके पूर्वजन्मकी कथा सुनाना, गरुडका उन दोनोंको पकड़कर एक दिव्य वटवृक्षकी शाखापर ले जाना और उस शाखाका टूटना ··· ···	१००

३०–गरुडका कश्यपजीसे मिलना, उनकी प्रार्थनासे वालखिल्य ऋषियोंका शाखा छोड़कर तपके लिये प्रस्थान और गरुडका निर्जन पर्वतपर उस शाखाको छोड़ना ··· ··· १०३

३१–इन्द्रके द्वारा वालखिल्योंका अपमान और उनकी तपस्याके प्रभावसे अरुण-गरुडकी उत्पत्ति ··· १०६

३२–गरुडका देवताओंके साथ युद्ध और देवताओंकी पराजय ··· ··· १०९

३३–गरुडका अमृत लेकर लौटना, मार्गमें भगवान् विष्णुसे वर पाना एवं उनपर इन्द्रके द्वारा वज्र-प्रहार ··· ··· ११०

३४–इन्द्र और गरुडकी मित्रता, गरुडका अमृत लेकर नागोंके पास आना और विनताको दासीभावसे छुड़ाना तथा इन्द्रद्वारा अमृतका अपहरण ११२

३५–मुख्य-मुख्य नागोंके नाम ··· ··· ११४

३६–शेषनागकी तपस्या, ब्रह्माजीसे वर-प्राप्ति तथा पृथ्वीको सिरपर धारण करना ··· ११५

३७–माताके शापसे बचनेके लिये वासुकि आदि नागोंका परस्पर परामर्श ··· ··· ११७

३८–वासुकिकी बहिन जरत्कारुका जरत्कारु मुनिके साथ विवाह करनेका निश्चय ··· १२०

३९–ब्रह्माजीकी आज्ञासे वासुकिका जरत्कारु मुनिके साथ अपनी बहिनको ब्याहनेके लिये प्रयत्नशील होना ··· ··· १२१

४०–जरत्कारुकी तपस्या, राजा परीक्षित्का उपाख्यान तथा राजाके द्वारा मुनिके कंधेपर मृतक साँप रखनेके कारण दुखी हुए कृशका शृङ्गीको उत्तेजित करना ··· ··· १२२

४१–शृङ्गी ऋषिका राजा परीक्षित्को शाप देना और शमीकका अपने पुत्रको शान्त करते हुए शापको अनुचित बताना ··· ··· १२४

४२–शमीकका अपने पुत्रको समझाना और गौरमुखको राजा परीक्षित्के पास भेजना, राजाद्वारा आत्मरक्षाकी व्यवस्था तथा तक्षक नाग और काश्यपकी बातचीत ··· ··· १२७

४३–तक्षकका धन देकर काश्यपको लौटा देना और छलसे राजा परीक्षित्के समीप पहुँचकर उन्हें डँसना १२९

४४–जनमेजयका राज्याभिषेक और विवाह ··· १३२

४५–जरत्कारुको अपने पितरोंका दर्शन और उनसे वार्तालाप ··· ··· १३३

४६–जरत्कारुका शर्तके साथ विवाहके लिये उद्यत होना और नागराज वासुकिका जरत्कारु नामकी कन्याको लेकर आना ··· ··· १३५

४७–जरत्कारु मुनिका नागकन्याके साथ विवाह, नागकन्या जरत्कारुद्वारा पतिसेवा तथा पतिका उसे त्याग कर तपस्याके लिये गमन ··· १३७

४८–वासुकि नागकी चिन्ता, बहिनद्वारा उसका निवारण तथा आस्तीकका जन्म एवं विद्याध्ययन १४०

४९–राजा परीक्षित्के धर्ममय आचार तथा उत्तम गुणोंका वर्णन, राजाका शिकारके लिये जाना और उनके द्वारा शमीक मुनिका तिरस्कार ··· १४१

५०–शृङ्गी ऋषिका परीक्षित्को शाप, तक्षकका काश्यपको लौटाकर छलसे परीक्षित्को डँसना और पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जनमेजयकी तक्षकसे बदला लेनेकी प्रतिज्ञा ··· १४४

५१–जनमेजयके सर्पयज्ञका उपक्रम ··· १४७

५२–सर्पसत्रका आरम्भ और उसमें सर्पोंका विनाश १४८

५३–सर्पयज्ञके ऋत्विजोंकी नामावली, सर्पोंका भयंकर विनाश, तक्षकका इन्द्रकी शरणमें जाना तथा वासुकिका अपनी बहिनसे आस्तीकको यज्ञमें भेजनेके लिये कहना ··· ··· १४९

५४–माताकी आज्ञासे मामाको सान्त्वना देकर आस्तीकका सर्पयज्ञमें जाना ··· ··· १५१

५५–आस्तीकके द्वारा यजमान, यज्ञ, ऋत्विज, सदस्यगण और अग्निदेवकी स्तुति-प्रशंसा ··· १५३

५६–राजाका आस्तीकको वर देनेके लिये तैयार होना, तक्षक नागकी व्याकुलता तथा आस्तीकका वर माँगना ··· ··· १५५

५७–सर्पयज्ञमें दग्ध हुए प्रधान-प्रधान सर्पोंके नाम ··· १५८

५८–यज्ञकी समाप्ति एवं आस्तीकका सर्पोंसे वर प्राप्त करना ··· ··· १५९

(अंशावतरणपर्व)

५९–महाभारतका उपक्रम ··· ··· १६२

६०–जनमेजयके यज्ञमें व्यासजीका आगमन, सत्कार तथा राजाकी प्रार्थनासे व्यासजीका वैशम्पायनजीसे महाभारत-कथा सुनानेके लिये कहना ··· १६२

६१–कौरव-पाण्डवोंमें फूट और युद्ध होनेके वृत्तान्तका सूत्ररूपमें निर्देश ··· ··· १६४

६२–महाभारतकी महत्ता ··· ··· १६७

६३–राजा उपरिचरका चरित्र तथा सत्यवती, व्यासादि प्रमुख पात्रोंकी संक्षिप्त जन्म-कथा ··· १७२

६४–ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्रिय-वंशकी उत्पत्ति और वृद्धि तथा उस समयके धार्मिक राज्यका वर्णन; असुरोंका जन्म और उनके भारसे पीड़ित पृथ्वीका ब्रह्माजीकी शरणमें जाना तथा ब्रह्माजीका देवताओंको अपने अंशसे पृथ्वीपर जन्म लेनेका आदेश ··· ··· ··· १८०

आदि सभा वनप विरा उद्यो भीष्म द्रोणप कर्णप शल्यप सौप्ति स्त्रीपर्व शान्ति अनुशा आश्वमे आश्रम मौसल महाप्रस्थ स्वर्गारो
कुल संख्य

(सम्भवपर्व)

६५-मरीचि आदि महर्षियों तथा अदिति आदि दक्ष-कन्याओंके वंशका विवरण ... १८३

६६-महर्षियों तथा कश्यप पत्नियोंकी संतान परम्पराका वर्णन १८७

६७-देवता और दैत्य आदिके अंशावतारोंका दिग्दर्शन १९१

६८-राजा दुष्यन्तकी अद्भुत शक्ति तथा राज्यशासन की क्षमताका वर्णन २०१

६९-दुष्यन्तका शिकारके लिये वनमें जाना और विविध हिंसक वन-जन्तुओंका वध करना ... २०२

७०-तपोवन और कण्वके आश्रमका वर्णन तथा राजा दुष्यन्तका उस आश्रममें प्रवेश ... २०४

७१-राजा दुष्यन्तका शकुन्तलाके साथ वार्तालाप, शकुन्तलाके द्वारा अपने जन्मका कारण बतलाना तथा उसी प्रसङ्गमें विश्वामित्रकी तपस्यासे इन्द्र-का चिन्तित होकर मेनकाको मुनिका तपोभंग करनेके लिये भेजना २०७

७२-मेनका-विश्वामित्र-मिलन, कन्याकी उत्पत्ति, शकुन्त पक्षियोंके द्वारा उसकी रक्षा और कण्वका उसे अपने आश्रमपर लाकर शकुन्तला नाम रखकर पालन करना ... २११

७३-शकुन्तला और दुष्यन्तका गान्धर्व विवाह और महर्षि कण्वके द्वारा उसका अनुमोदन ... २१३

७४-शकुन्तलाके पुत्रका जन्म, उसकी अद्भुत शक्ति, पुत्रसहित शकुन्तलाका दुष्यन्तके यहाँ जाना, दुष्यन्त-शकुन्तला-संवाद, आकाशवाणीद्वारा शकुन्तलाकी शुद्धिका समर्थन और भरतका राज्याभिषेक २१७

७५-दक्ष, वैवस्वत मनु तथा उनके पुत्रोंकी उत्पत्ति, पुरूरवा, नहुष और ययातिके चरित्रोंका संक्षेपसे वर्णन २३१

७६-कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानी-की सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहने-के पश्चात् मृतसंजीविनी विद्या प्राप्त करना ... २३५

७७-देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना २४१

७८-देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यजीके साथ वार्तालाप २४३

७९-शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष २४६

८०-शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना ... २४८

८१-सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वन-विहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीकी उनके साथ बातचीत तथा विवाह ... २५१

८२-ययातिसे देवयानीको पुत्रप्राप्ति; ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्तमिलन और उनसे एक पुत्र-का जन्म २५४

८३-देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानी-का रूठकर पिताके पास जाना, शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना ... २५६

८४-ययातिका अपने पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर अपने पुत्र पूरुको जरावस्था देकर उनकी युवावस्था लेना तथा उन्हें वर-प्रदान करना २६०

८५-राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना ... २६३

८६-वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति २६६

८७-इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना ... २६७

८८-ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना २६८

८९-ययाति और अष्टकका संवाद ... २७०

९०-अष्टक और ययातिका संवाद ... २७३

९१-ययाति और अष्टकका आश्रमधर्म-सम्बन्धी संवाद २७६

९२-अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना ... २७८

९३-राजा ययातिका वसुमान् और शिबिके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना ... २८०

९४-पूरुवंशका वर्णन २८४

९५-दक्ष प्रजापतिसे लेकर पूरुवंश, भरतवंश एवं पाण्डुवंशकी परम्पराका वर्णन ... २८८

९६-महाभिषको ब्रह्माजीका शाप तथा शापग्रस्त वसुओंके साथ गङ्गाकी बातचीत ... २९५

९७-राजा प्रतीपका गङ्गाको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना और शान्तनुका जन्म, राज्याभिषेक तथा गङ्गासे मिलना २९६

९८-शान्तनु और गङ्गाका कुछ शर्तोंके साथ सम्बन्ध, वसुओंका जन्म और शापसे उद्धार तथा भीष्मकी उत्पत्ति २९९

महाभारत

९९—महर्षि वसिष्ठद्वारा वसुओंको शाप प्राप्त होनेकी कथा ३०१
१००—शान्तनुके रूप, गुण और सदाचारकी प्रशंसा, गङ्गाजीके द्वारा सुशिक्षित पुत्रकी प्राप्ति तथा देवव्रतकी भीष्म-प्रतिज्ञा ··· ··· ३०४
१०१—सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्यकी उत्पत्ति, शान्तनु और चित्राङ्गदका निधन तथा विचित्रवीर्यका राज्याभिषेक ··· ३१३
१०२—भीष्मके द्वारा स्वयंवरसे काशिराजकी कन्याओंका हरण, युद्धमें सब राजाओं तथा शाल्वकी पराजय, अम्बिका और अम्बालिकाके साथ विचित्रवीर्यका विवाह तथा निधन ··· ३१४
१०३—सत्यवतीका भीष्मसे राज्य ग्रहण और संतानोत्पादनके लिये आग्रह तथा भीष्मके द्वारा अपनी प्रतिज्ञा बतलाते हुए उसकी अस्वीकृति ३१९
१०४—भीष्मकी सम्मतिसे सत्यवतीद्वारा व्यासका आवाहन और व्यासजीका माताकी आज्ञासे कुरुवंशकी वृद्धिके लिये विचित्रवीर्यकी पत्नियोंके गर्भसे संतानोत्पादन करनेकी स्वीकृति देना ··· ३२१
१०५—व्यासजीके द्वारा विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति ··· ३२५
१०६—महर्षि माण्डव्यका शूलीपर चढ़ाया जाना ··· ३२७
१०७—माण्डव्यका धर्मराजको शाप देना ··· ३२८
१०८—धृतराष्ट्र आदिके जन्म तथा भीष्मजीके धर्मपूर्ण शासनसे कुरुदेशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिका दिग्दर्शन ३३०
१०९—राजा धृतराष्ट्रका विवाह ··· ··· ३३२
११०—कुन्तीको दुर्वासासे मन्त्रकी प्राप्ति, सूर्यदेवका आवाहन तथा उनके संयोगसे कर्णका जन्म एवं कर्णके द्वारा इन्द्रको कवच और कुण्डलोंका दान ३३३
१११—कुन्तीद्वारा स्वयंवरमें पाण्डुका वरण और उनके साथ विवाह ··· ··· ३३६
११२—माद्रीके साथ पाण्डुका विवाह तथा राजा पाण्डुकी दिग्विजय ··· ··· ३३७
११३—राजा पाण्डुका पत्नियोंसहित वनमें निवास तथा विदुरका विवाह ··· ··· ३४०
११४—धृतराष्ट्रके गान्धारीसे एक सौ पुत्र तथा एक कन्याकी तथा सेवा करनेवाली वैश्यजातीय युवतीसे युयुत्सु नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति ··· ३४१
११५—दुःशलाके जन्मकी कथा ··· ··· ३४४
११६—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी नामावली ··· ३४६
११७—राजा पाण्डुके द्वारा मृगरूपधारी मुनिका वध तथा उनसे शापकी प्राप्ति ··· ··· ३४७
११८—पाण्डुका अनुताप, संन्यास लेनेका निश्चय तथा पत्नियोंके अनुरोधसे वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश ··· ··· ३५०
११९—पाण्डुका कुन्तीको पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेका आदेश ··· ··· ३५३
१२०—कुन्तीका पाण्डुको व्युषिताश्वके मृत शरीरसे उसकी पतिव्रता पत्नी भद्राके द्वारा पुत्र-प्राप्तिका कथन ··· ··· ३५६
१२१—पाण्डुका कुन्तीको समझाना और कुन्तीका पतिकी आज्ञासे पुत्रोत्पत्तिके लिये धर्मदेवताका आवाहन करनेके लिये उद्यत होना ··· ३५९
१२२—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनकी उत्पत्ति ··· ३६१
१२३—नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति तथा पाण्डुपुत्रोंके नामकरण-संस्कार ··· ··· ३६६
१२४—राजा पाण्डुकी मृत्यु और माद्रीका उनके साथ चितारोहण ··· ··· ३७०
१२५—ऋषियोंका कुन्ती और पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुर जाना और उन्हें भीष्म आदिके हाथों सौंपना ··· ··· ३७५
१२६—पाण्डु और माद्रीकी अस्थियोंका दाह-संस्कार तथा भाई-बन्धुओंद्वारा उनके लिये जलाञ्जलिदान ··· ··· ३७७
१२७—पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंकी बालक्रीडा, दुर्योधनका भीमसेनको विष खिलाना तथा गङ्गामें ढकेलना और भीमका नागलोकमें पहुँचकर आठ कुण्डोंके दिव्य रसका पान करना ··· ३७९
१२८—भीमसेनके न आनेसे कुन्ती आदिकी चिन्ता, नागलोकसे भीमसेनका आगमन तथा उनके प्रति दुर्योधनकी कुचेष्टा ··· ··· ३८४
१२९—कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामाकी उत्पत्ति तथा द्रोणको परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रकी प्राप्तिकी कथा ३८७
१३०—द्रोणका द्रुपदसे तिरस्कृत हो हस्तिनापुरमें आना, राजकुमारोंसे उनकी भेंट, उनकी बीटा और अँगूठीको कुएँमेंसे निकालना एवं भीष्मका उन्हें अपने यहाँ सम्मानपूर्वक रखना ··· ३९१
१३१—द्रोणाचार्यद्वारा राजकुमारोंकी शिक्षा, एकलव्यकी गुरुभक्ति तथा आचार्यद्वारा शिष्योंकी परीक्षा ३९७
१३२—अर्जुनके द्वारा लक्ष्यवेध, द्रोणका ग्राहसे छुटकारा और अर्जुनको ब्रह्मशिर नामक अस्त्रकी प्राप्ति ४०२
१३३—राजकुमारोंका रङ्गभूमिमें अस्त्र-कौशल दिखाना ४०४
१३४—भीमसेन, दुर्योधन तथा अर्जुनके द्वारा अस्त्र-कौशलका प्रदर्शन ··· ··· ४०७
१३५—कर्णका रङ्गभूमिमें प्रवेश तथा राज्याभिषेक ··· ४०९
१३६—भीमसेनके द्वारा कर्णका तिरस्कार और दुर्योधनद्वारा उसका सम्मान ··· ४१३

१३७–द्रोणका शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाना, अर्जुनका द्रुपदको बंदी बनाकर लाना और द्रोणद्वारा द्रुपदको आधा राज्य देकर मुक्त कर देना ४१५
१३८–युधिष्ठिरका युवराजपदपर अभिषेक, पाण्डवोंके शौर्य, कीर्ति और बलके विस्तारसे धृतराष्ट्रको चिन्ता ··· ··· ४२०
१३९–कणिकका धृतराष्ट्रको कूटनीतिका उपदेश ··· ४२२

(जतुगृहपर्व)

१४०–पाण्डवोंके प्रति पुरवासियोंका अनुराग देखकर दुर्योधनकी चिन्ता ··· ··· ४२९
१४१–दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे पाण्डवोंको वारणावत भेज देनेका प्रस्ताव ··· ··· ४३२
१४२–धृतराष्ट्रके आदेशसे पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा ४३४
१४३–दुर्योधनके आदेशसे पुरोचनका वारणावत नगरमें लाक्षागृह बनाना ··· ··· ४३५
१४४–पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा तथा उनको विदुरका गुप्त उपदेश ··· ··· ४३६
१४५–वारणावतमें पाण्डवोंका स्वागत, पुरोचनका सत्कारपूर्वक उन्हें ठहराना, लाक्षागृहमें निवासकी व्यवस्था और युधिष्ठिर एवं भीमसेनकी बातचीत ४३९
१४६–विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा लाक्षागृहमें सुरंगका निर्माण ··· ··· ४४१
१४७–लाक्षागृहका दाह और पाण्डवोंका सुरंगके रास्ते निकल जाना ··· ··· ४४३
१४८–विदुरजीके भेजे हुए नाविकका पाण्डवोंको गङ्गाजीके पार उतारना ··· ··· ४४५
१४९–धृतराष्ट्र आदिके द्वारा पाण्डवोंके लिये शोकप्रकाश एवं जलाञ्जलि-दान तथा पाण्डवोंका वनमें प्रवेश ४४६
१५०–माता कुन्तीके लिये भीमसेनका जल ले आना, माता और भाइयोंको भूमिपर सोये देखकर भीमका विषाद एवं दुर्योधनके प्रति उनका क्रोध ४४९

(हिडिम्बवधपर्व)

१५१–हिडिम्बके भेजनेसे हिडिम्बा राक्षसीका पाण्डवोंके पास आना और भीमसेनसे उसका वार्तालाप ··· ४५२
१५२–हिडिम्बका आना, हिडिम्बाका उससे भयभीत होना और भीम तथा हिडिम्बासुरका युद्ध ··· ४५५
१५३–हिडिम्बाका कुन्ती आदिसे अपना मनोभाव प्रकट करना तथा भीमसेनके द्वारा हिडिम्बासुरका वध ४५९
१५४–युधिष्ठिरका भीमसेनको हिडिम्बाके वधसे रोकना, हिडिम्बाकी भीमसेनके लिये प्रार्थना, भीमसेन और हिडिम्बाका मिलन तथा घटोत्कचकी उत्पत्ति ··· ४६१
१५५–पाण्डवोंको व्यासजीका दर्शन और उनका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश ··· ··· ४६७

(बकवधपर्व)

१५६–ब्राह्मणपरिवारका कष्ट दूर करनेके लिये कुन्तीकी भीमसेनसे बातचीत तथा ब्राह्मणके चिन्तापूर्ण उद्गार ··· ··· ४६९
१५७–ब्राह्मणीका स्वयं मरनेके लिये उद्यत होकर पतिसे जीवित रहनेके लिये अनुरोध करना ··· ४७२
१५८–ब्राह्मण-कन्याके त्याग और विवेकपूर्ण वचन तथा कुन्तीका उन सबके पास जाना ··· ४७५
१५९–कुन्तीके पूछनेपर ब्राह्मणका उनसे अपने दुःखका कारण बताना ··· ··· ४७६
१६०–कुन्ती और ब्राह्मणकी बातचीत ··· ४७८
१६१–भीमसेनको राक्षसके पास भेजनेके विषयमें युधिष्ठिर और कुन्तीकी बातचीत ··· ४७९
१६२–भीमसेनका भोजन-सामग्री लेकर बकासुरके पास जाना और स्वयं भोजन करना तथा युद्ध करके उसे मार गिराना ··· ··· ४८१
१६३–बकासुरके वधसे राक्षसोंका भयभीत होकर पलायन और नगरनिवासियोंकी प्रसन्नता ··· ४८३

(चैत्ररथपर्व)

१६४–पाण्डवोंका एक ब्राह्मणसे विचित्र कथाएँ सुनना ४८५
१६५–द्रोणके द्वारा द्रुपदके अपमानित होनेका वृत्तान्त ४८६
१६६–द्रुपदके यज्ञसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदीकी उत्पत्ति ४८८
१६७–कुन्तीकी अपने पुत्रोंसे पूछकर पञ्चालदेशमें जानेकी तैयारी ··· ··· ४९४
१६८–व्यासजीका पाण्डवोंसे द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाना ··· ··· ४९५
१६९–पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और अर्जुनके द्वारा चित्ररथ गन्धर्वकी पराजय एवं उन दोनोंकी मित्रता ४९६
१७०–सूर्यकन्या तपतीको देखकर राजा संवरणका मोहित होना ··· ··· ५०२
१७१–तपती और संवरणकी बातचीत ··· ५०५
१७२–वसिष्ठजीकी सहायतासे राजा संवरणको तपतीकी प्राप्ति ··· ··· ५०७
१७३–गन्धर्वका वसिष्ठजीकी महत्ता बताते हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको पुरोहित बनानेके लिये आग्रह करना ५१०
१७४–वसिष्ठजीके अद्भुत क्षमा-बलके आगे विश्वामित्रजीका पराभव ··· ··· ५११
१७५–शक्तिके शापसे कल्माषपादका राक्षस होना, विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसद्वारा वसिष्ठके पुत्रोंका भक्षण और वसिष्ठका शोक ··· ५१६
१७६–कल्माषपादका शापसे उद्धार और वसिष्ठजीके द्वारा उन्हें अश्मक नामक पुत्रकी प्राप्ति ··· ५१९
१७७–शक्तिपुत्र पराशरका जन्म और पिताकी मृत्युका हाल सुनकर कुपित हुए पराशरको शान्त करनेके लिये वसिष्ठजीका उन्हें और्वोपाख्यान सुनाना ५२१

१७८—पितरोंद्वारा और्वके क्रोधका निवारण ··· ५२४
१७९—और्व और पितरोंकी बातचीत तथा और्वका अपनी क्रोधाग्निको बड़वानलरूपसे समुद्रमें त्यागना ५२६
१८०—पुलस्त्य आदि महर्षियोंके समझानेसे पराशरजीके द्वारा राक्षससत्रकी समाप्ति ··· ५२८
१८१—राजा कल्माषपादको ब्राह्मणी आङ्गिरसीका शाप ५२९
१८२—पाण्डवोंका धौम्यको अपना पुरोहित बनाना ··· ५३१

(स्वयंवरपर्व)

१८३—पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और मार्गमें ब्राह्मणोंसे बातचीत ··· ··· ५३२
१८४—पाण्डवोंका द्रुपदकी राजधानीमें जाकर कुम्हारके यहाँ रहना, स्वयंवरसभाका वर्णन तथा धृष्टद्युम्नकी घोषणा ··· ··· ५३४
१८५—धृष्टद्युम्नका द्रौपदीके स्वयंवरमें आये हुए राजाओंका परिचय देना ··· ५३७
१८६—राजाओंका लक्ष्यवेधके लिये उद्योग और असफल होना ··· ··· ५३८
१८७—अर्जुनका लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको प्राप्त करना ५४१
१८८—द्रुपदको मारनेके लिये उद्यत हुए राजाओंका सामना करनेके लिये भीम और अर्जुनका उद्यत होना और उनके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णका बलरामजीसे वार्तालाप ··· ५४४
१८९—अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कर्ण तथा शल्यकी पराजय और द्रौपदीसहित भीम-अर्जुनका अपने डेरेपर जाना ··· ५४६
१९०—कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिरकी बातचीत, पाँचों पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ विवाहका विचार तथा बलराम और श्रीकृष्णकी पाण्डवोंसे भेंट ··· ५४९
१९१—धृष्टद्युम्नका गुप्तरूपसे वहाँकी सब हाल देखकर राजा द्रुपदके पास आना तथा द्रौपदीके विषयमें द्रुपदका प्रश्न ··· ··· ५५२

(वैवाहिकपर्व)

१९२—धृष्टद्युम्नके द्वारा द्रौपदी तथा पाण्डवोंका हाल सुनकर राजा द्रुपदका उनके पास पुरोहितको भेजना तथा पुरोहित और युधिष्ठिरकी बातचीत ५५४
१९३—पाण्डवों और कुन्तीका द्रुपदके घरमें जाकर सम्मानित होना और राजा द्रुपदद्वारा पाण्डवों-के शील-स्वभावकी परीक्षा ··· ५५७
१९४—द्रुपद और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा व्यासजी-का आगमन ··· ··· ५५९
१९५—व्यासजीके सामने द्रौपदीका पाँच पुरुषोंसे विवाह होनेके विषयमें द्रुपद, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरका अपने-अपने विचार व्यक्त करना ५६२
१९६—व्यासजीका द्रुपदको पाण्डवों तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर दिव्य दृष्टि देना और द्रुपदका उनकी दिव्य रूपोंकी झाँकी करना ··· ५६४
१९७—द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह ··· ५६९
१९८—कुन्तीका द्रौपदीको उपदेश और आशीर्वाद तथा भगवान् श्रीकृष्णका पाण्डवोंके लिये उपहार भेजना ··· ··· ५७१

(विदुरागमनराज्यलम्भपर्व)

१९९—पाण्डवोंके विवाहसे दुर्योधन आदिकी चिन्ता, धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति प्रेमका दिखावा और दुर्योधनकी कुमन्त्रणा ··· ··· ५७२
२००—धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, शत्रुओंको वशमें करनेके उपाय ··· ··· ५७७
२०१—पाण्डवोंको पराक्रमसे दबानेके लिये कर्ण-की सम्मति ··· ··· ५७९
२०२—भीष्मकी दुर्योधनसे पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सलाह ··· ··· ५८०
२०३—द्रोणाचार्यकी पाण्डवोंको उपहार भेजने और बुलानेकी सम्मति तथा कर्णके द्वारा उनकी सम्मतिका विरोध करनेपर द्रोणाचार्यकी फटकार ५८२
२०४—विदुरजीकी सम्मति—द्रोण और भीष्मके वचनों-का ही समर्थन ··· ··· ५८४
२०५—धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरका द्रुपदके यहाँ जाना और पाण्डवोंको हस्तिनापुर भेजनेका प्रस्ताव करना ··· ··· ५८६
२०६—पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगरका निर्माण करना एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका द्वारकाके लिये प्रस्थान ··· ··· ५८८
२०७—पाण्डवोंके यहाँ नारदजीका आगमन और उनमें फूट न हो इसके लिये कुछ नियम बनानेके लिये प्रेरणा करके सुन्द और उपसुन्दकी कथा-को प्रस्तावित करना ··· ··· ५९७
२०८—सुन्द-उपसुन्दकी तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उन्हें वर प्राप्त होना और दैत्योंके यहाँ आनन्दोत्सव ६००
२०९—सुन्द और उपसुन्दद्वारा क्रूरतापूर्ण कर्मोंसे त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करना ··· ६०२
२१०—तिलोत्तमाकी उत्पत्ति, उसके रूपका आकर्षण तथा सुन्दोपसुन्दको मोहित करनेके लिये उसका प्रस्थान ··· ··· ६०४
२११—तिलोत्तमापर मोहित होकर सुन्द-उपसुन्दका आपसमें लड़ना और मारा जाना एवं तिलोत्तमा-को ब्रह्माजीद्वारा वर-प्राप्ति तथा पाण्डवोंका द्रौपदीके विषयमें नियम-निर्धारण ··· ६०६

(अर्जुनवनवासपर्व)

२१२-अर्जुनके द्वारा ब्राह्मणके गोधनकी रक्षाके लिये नियमभङ्ग और वनकी ओर प्रस्थान ... ६०८
२१३-अर्जुनका गङ्गाद्वारमें ठहरना और वहाँ उनका उलूपीके साथ मिलन ६११
२१४-अर्जुनका पूर्वदिशाके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मणिपूरमें जाकर चित्राङ्गदाका पाणिग्रहण करके उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न करना ... ६१३
२१५-अर्जुनके द्वारा वर्गा अप्सराका ग्राहयोनिसे उद्धार तथा वर्गाकी आत्मकथाका आरम्भ ... ६१५
२१६-वर्गाकी प्रार्थनासे अर्जुनका शेष चारों अप्सराओंको भी शापमुक्त करके मणिपूर जाना और चित्राङ्गदासे मिलकर गोकर्ण तीर्थको प्रस्थान करना ६१७
२१७-अर्जुनका प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णसे मिलना और उन्हींके साथ उनका रैवतक पर्वत एवं द्वारकापुरीमें आना ६१९

(सुभद्राहरणपर्व)

२१८-रैवतक पर्वतके उत्सवमें अर्जुनका सुभद्रापर आसक्त होना और श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिरकी अनुमतिसे उसे हर ले जानेका निश्चय करना ६२१
२१९-यादवोंकी युद्धके लिये तैयारी और अर्जुनके प्रति बलरामजीके क्रोधपूर्ण उद्गार ... ६२२

(हरणाहरणपर्व)

२२०-द्वारकामें अर्जुन और सुभद्राका विवाह, अर्जुनके इन्द्रप्रस्थ पहुँचनेपर श्रीकृष्ण आदिका दहेज लेकर वहाँ जाना, द्रौपदीके पुत्र एवं अभिमन्युके जन्म संस्कार और शिक्षा ... ६२५

(खाण्डवदाहपर्व)

२२१-युधिष्ठिरके राज्यकी विशेषता, कृष्ण और अर्जुनका खाण्डववनमें जाना तथा उन दोनोंके पास ब्राह्मण-वेषधारी अग्निदेवका आगमन ... ६३१
२२२-अग्निदेवका खाण्डववनको जलानेके लिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सहायताकी याचना करना, अग्निदेव उस वनको क्यों जलाना चाहते थे, इसे बतानेके प्रसङ्गमें राजा श्वेतकिकी कथा ... ६३४
२२३-अर्जुनका अग्निकी प्रार्थना स्वीकार करके उनसे दिव्य धनुष एवं रथ आदि माँगना ... ६३९
२२४-अग्निदेवका अर्जुन और श्रीकृष्णको दिव्य धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और चक्र आदि प्रदान करना तथा उन दोनोंकी सहायतासे खाण्डववन-को जलाना ६४०
२२५-खाण्डववनमें जलते हुए प्राणियोंकी दुर्दशा और इन्द्रके द्वारा जल बरसाकर आग बुझानेकी चेष्टा ६४३
२२६-देवताओं आदिके साथ श्रीकृष्ण और अर्जुनका युद्ध ६४५

(मयदर्शनपर्व)

२२७-देवताओंकी पराजय, खाण्डववनका विनाश और मयासुरकी रक्षा ६४८
२२८-शार्ङ्गकोपाख्यान—मन्दपाल मुनिके द्वारा जरिता शार्ङ्गिकासे पुत्रोंकी उत्पत्ति और उन्हें बचानेके लिये मुनिका अग्निदेवकी स्तुति करना ... ६५१
२२९-जरिताका अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये चिन्तित होकर विलाप करना ६५४
२३०-जरिता और उसके बच्चोंका संवाद ... ६५५
२३१-शार्ङ्गकोंके स्तवनसे प्रसन्न होकर अग्निदेवका उन्हें अभय देना ६५७
२३२-मन्दपालका अपने बाल-बच्चोंसे मिलना ... ६५९
२३३-इन्द्रदेवका श्रीकृष्ण और अर्जुनको वरदान तथा श्रीकृष्ण, अर्जुन और मयासुरका अग्निसे विदा लेकर एक साथ यमुनातटपर बैठना ... ६६१

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१-नमस्कार ... १
२-अवतारके लिये प्रार्थना ... १८३
३-सिंह-बाघोंमें बालक भरत २०१
४-कुमार भीमसेनका साँपोंपर कोप ... ३८३
५-एकलव्यकी गुरु-दक्षिणा ३९७
६-द्रौपदी-स्वयंवर ५४१
७-प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका मिलन ... ५९७

(सादा)

८–उग्रश्रवाजीके द्वारा महाभारतकी कथा … ६३

९–रुरुके दर्शनसे सहस्रपाद ऋषिकी सर्पयोनिसे मुक्ति … … ७२

१०–भगवान् विष्णुने चक्रसे राहुका सिर काट दिया … … ८५

११–ब्रह्माजीने शेषजीको वरदान तथा पृथ्वी धारण करनेकी आज्ञा दी … ११६

१२–जरत्कारु ऋषिने पत्नीका परित्याग कर दिया … … १३९

१३–आस्तीकने तक्षकको अग्नि-कुण्डमें गिरनेसे रोक दिया … १५९

१४–शुक्राचार्य और कच … … २३६

१५–ययातिका पतन … … २६९

१६–देवव्रत (भीष्म) की भीषण प्रतिज्ञा … ३१२

१७–अणिमाण्डव्य ऋषि शूलीपर … ३२९

१८–शतशृङ्ग पर्वतपर पाण्डुका तप .. ३५३

१९–बालक भीमके शरीरकी चोटसे चट्टान टूट गयी … ३६२

२०–सुरंगद्वारा मातासहित पाण्डवोंका लाक्षागृहसे निकलना … … ४४४

२१–भीम अपने चारों भाइयोंको तथा माताको उठाकर ले चले … ४४४

२२–हिडिम्ब-वध … … ४६१

२३–भीमसेन और घटोत्कच … … ४६१

२४–पाण्डवोंकी व्यासजीसे भेंट … … ४६७

२५–धृष्टद्युम्नकी घोषणा … … ४६७

२६–कुन्तीद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिको सान्त्वना … … ४७९

२७–बकासुरपर भीमका प्रहार … … ४७९

२८–विश्वामित्रकी सेनापर नन्दिनीका कोप … … ५१४

२९–पाण्डव, द्रुपद और व्यासजीमें बातचीत … … ५६७

३०–व्यासजीद्वारा पाण्डवोंके पूर्व-जन्मके वृत्तान्तका वर्णन … … ५६७

३१–सुन्द और उपसुन्दका अत्याचार … ६०७

३२–तिलोत्तमाके लिये सुन्द और उपसुन्दका युद्ध … … ६०७

३३–सुभद्राका कुन्ती और द्रौपदकी सेवामें उपस्थित होना … … ६२७

३४–श्रीकृष्ण और अर्जुनका देवताओं से युद्ध … … … ६४९

३५–अर्जुन और श्रीकृष्णको इन्द्रका वरदान … … … ६४९

३६–(६५ इकरंगे लाइन चित्र फरमोंमें)

श्रीहरिः

सभापर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

(सभाक्रियापर्व)

१—भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार मयासुर-द्वारा सभाभवन बनानेकी तैयारी ... ६६५
२—श्रीकृष्णकी द्वारका-यात्रा ... ६६७
३—मयासुरका भीमसेन और अर्जुनको गदा और शङ्ख लाकर देना तथा उसके द्वारा अद्भुत सभाका निर्माण ... ६६९
४—मयद्वारा निर्मित सभाभवनमें धर्मराज युधिष्ठिरका प्रवेश तथा सभामें स्थित महर्षियों और राजाओं आदिका वर्णन ... ६७२

(लोकपालसभाख्यानपर्व)

५—नारदजीका युधिष्ठिरकी सभामें आगमन और प्रश्नके रूपमें युधिष्ठिरको शिक्षा देना ... ६७५
६—युधिष्ठिरकी दिव्य सभाओंके विषयमें जिज्ञासा ६८५
७—इन्द्रसभाका वर्णन ... ६८७
८—यमराजकी सभाका वर्णन ... ६८९
९—वरुणकी सभाका वर्णन ... ६९१
१०—कुबेरकी सभाका वर्णन ... ६९३
११—ब्रह्माजीकी सभाका वर्णन ... ६९५
१२—राजा हरिश्चन्द्रका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके प्रति राजा पाण्डुका संदेश ... ६९९

(राजसूयारम्भपर्व)

१३—युधिष्ठिरका राजसूयविषयक संकल्प और उसके विषयमें भाइयों, मन्त्रियों, मुनियों तथा श्रीकृष्णसे सलाह लेना ... ७०२
१४—श्रीकृष्णकी राजसूययज्ञके लिये सम्मति ... ७०६
१५—जरासंधके विषयमें राजा युधिष्ठिर, भीम और श्रीकृष्णकी बातचीत ... ७११
१६—जरासंधको जीतनेके विषयमें युधिष्ठिरके उत्साहहीन होनेपर अर्जुनका उत्साहपूर्ण उद्गार ... ७१३
१७—श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी बातका अनुमोदन तथा युधिष्ठिरको जरासंधकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाना ... ७१४
१८—जरा राक्षसीका अपना परिचय देना और उसीके नामपर बालकका नामकरण होना ... ७१९
१९—चण्डकौशिक मुनिके द्वारा जरासंधका भविष्य-कथन तथा पिताके द्वारा उसका राज्याभिषेक करके वनमें जाना ... ७२०

(जरासंधवधपर्व)

२०—युधिष्ठिरके अनुमोदन करनेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनकी मगध-यात्रा ... ७२२
२१—श्रीकृष्णद्वारा मगधकी राजधानीकी प्रशंसा, चैत्यक पर्वतशिखर और नगाड़ोंको तोड़-फोड़कर तीनोंका नगर एवं राजभवनमें प्रवेश तथा श्रीकृष्ण और जरासंधका संवाद ... ७२४
२२—जरासंध और श्रीकृष्णका संवाद तथा जरासंधकी युद्धके लिये तैयारी एवं जरासंधका श्रीकृष्णके साथ वैर होनेके कारणका वर्णन ... ७२८
२३—जरासंधका भीमसेनके साथ युद्ध करनेका निश्चय, भीम और जरासंधका भयानक युद्ध तथा जरासंधकी थकावट ... ७३३
२४—भीमके द्वारा जरासंधका वध, बंदी राजाओंकी मुक्ति, श्रीकृष्ण आदिका भेंट लेकर इन्द्रप्रस्थमें आना और वहाँसे श्रीकृष्णका द्वारका जाना ... ७३६

(दिग्विजयपर्व)

२५—अर्जुन आदि चारों भाइयोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा ... ७४१
२६—अर्जुनके द्वारा अनेक देशों, राजाओं तथा भगदत्तकी पराजय ... ७४३
२७—अर्जुनका अनेक पर्वतीय देशोंपर विजय पाना ७४४
२८—किम्पुरुष, हाटक तथा उत्तरकुरुपर विजय प्राप्त करके अर्जुनका इन्द्रप्रस्थ लौटना ... ७४६
२९—भीमसेनका पूर्वदिशाको जीतनेके लिये प्रस्थान और विभिन्न देशोंपर विजय पाना ... ७५१
३०—भीमका पूर्वदिशाके अनेक देशों तथा राजाओंको जीतकर भारी धन-सम्पत्तिके साथ इन्द्रप्रस्थमें लौटना ... ७५२
३१—सहदेवके द्वारा दक्षिण दिशाकी विजय ... ७५४
३२—नकुलके द्वारा पश्चिम दिशाकी विजय ... ७६५

(राजसूयपर्व)

३३—युधिष्ठिरके शासनकी विशेषता, श्रीकृष्णकी आज्ञासे युधिष्ठिरका राजसूययज्ञकी दीक्षा लेना तथा राजाओं, ब्राह्मणों एवं सगे-सम्बन्धियोंको बुलानेके लिये निमन्त्रण भेजना ... ७६६

३४—युधिष्ठिरके यज्ञमें सब देशके राजाओं, कौरवों तथा यादवोंका आगमन और उन सबके भोजन-विश्राम आदिकी सुव्यवस्था ... ७७०

३५—राजसूययज्ञका वर्णन ... ७७२

(अर्घाभिहरणपर्व)

३६—राजसूययज्ञमें ब्राह्मणों तथा राजाओंका समागम, श्रीनारदजीके द्वारा श्रीकृष्ण-महिमाका वर्णन और भीष्मजीकी अनुमतिसे श्रीकृष्णकी अग्रपूजा ७७४

३७—शिशुपालके आक्षेपपूर्ण वचन ... ७७६

३८—युधिष्ठिरका शिशुपालको समझाना और भीष्मजीका उसके आक्षेपोंका उत्तर देना ... ७७९

३९—सहदेवकी राजाओंको चुनौती तथा क्षुब्ध हुए शिशुपाल आदि नरेशोंका युद्धके लिये उद्यत होना ८२६

(शिशुपालवधपर्व)

४०—युधिष्ठिरकी चिन्ता और भीष्मजीका उन्हें सान्त्वना देना ८२८

४१—शिशुपालद्वारा भीष्मकी निन्दा ... ८२९

४२—शिशुपालकी बातोंपर भीमसेनका क्रोध और भीष्मजीका उन्हें शान्त करना ... ८३२

४३—भीष्मजीके द्वारा शिशुपालके जन्मके वृत्तान्तका वर्णन ८३३

४४—भीष्मकी बातोंसे चिढ़े हुए शिशुपालका उन्हें फटकारना तथा भीष्मका श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये समस्त राजाओंको चुनौती देना ... ८३५

४५—श्रीकृष्णके द्वारा शिशुपालका वध, राजसूययज्ञकी समाप्ति तथा सभी ब्राह्मणों, राजाओं और श्रीकृष्णका स्वदेश-गमन ८३८

(द्यूतपर्व)

४६—व्यासजीकी भविष्यवाणीसे युधिष्ठिरकी चिन्ता और समत्वपूर्ण बर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा ... ८४५

४७—दुर्योधनका मयनिर्मित सभाभवनको देखना और पग-पगपर भ्रमके कारण उपहासका पात्र बनना तथा युधिष्ठिरके वैभवको देखकर उसका चिन्तित होना ८४७

४८—पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये शकुनि और दुर्योधनकी बातचीत ८५०

४९—धृतराष्ट्रके पूछनेपर दुर्योधनका अपनी चिन्ता बताना और द्यूतके लिये धृतराष्ट्रसे अनुरोध करना एवं धृतराष्ट्रका विदुरको इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश ८५२

५०—दुर्योधनका धृतराष्ट्रको अपने दुःख और चिन्ताका कारण बताना ८५७

५१—युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधनद्वारा वर्णन ८५९

५२—युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधनद्वारा वर्णन ८६३

५३—दुर्योधनद्वारा युधिष्ठिरके अभिषेकका वर्णन ... ८६६

५४—धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना ... ८६८

५५—दुर्योधनका धृतराष्ट्रको उकसाना ... ८६९

५६—धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, द्यूतक्रीडाके लिये सभानिर्माण और धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको बुलानेके लिये विदुरको आज्ञा देना ... ८७१

५७—विदुर और धृतराष्ट्रकी बातचीत .. ८७३

५८—विदुर और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें जाकर सबसे मिलना ... ८७४

५९—जूएके अनौचित्यके सम्बन्धमें युधिष्ठिर और शकुनिका संवाद ८७८

६०—द्यूतक्रीड़ाका आरम्भ ८८०

६१—जूएमें शकुनिके छलसे प्रत्येक दाँवपर युधिष्ठिरकी हार ८८१

६२—धृतराष्ट्रको विदुरकी चेतावनी ... ८८४

६३—विदुरजीके द्वारा जूएका घोर विरोध ... ८८५

६४—दुर्योधनका विदुरको फटकारना और विदुरका उसे चेतावनी देना ८८६

६५—युधिष्ठिरका धन, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदीसहित अपनेको भी हारना ८८९

६६—विदुरका दुर्योधनको फटकारना ... ८९२

६७—प्रातिकामीके बुलानेसे न आनेपर दुःशासनका सभामें द्रौपदीको केश पकड़कर घसीटकर लाना एवं सभासदोंसे द्रौपदीका प्रश्न ८९४

६८—भीमसेनका क्रोध एवं अर्जुनका उन्हें शान्त करना, विकर्णकी धर्मसङ्गत बातका कर्णके द्वारा विरोध, द्रौपदीका चीरहरण एवं भगवान्‌द्वारा उसकी लज्जा-रक्षा तथा विदुरके द्वारा प्रह्लादका उदाहरण देकर सभासदोंको विरोधके लिये प्रेरित करना ८९९

६९–द्रौपदीका चेतावनीयुक्त विलाप एवं भीष्मका वचन ९०६
७०–दुर्योधनके छल-कपटयुक्त वचन और भीमसेनका रोषपूर्ण उद्गार ९०८
७१–कर्ण और दुर्योधनके वचन, भीमसेनकी प्रतिज्ञा, विदुरकी चेतावनी और द्रौपदीको धृतराष्ट्रसे वर-प्राप्ति ९०९
७२–शत्रुओंको मारनेके लिये उद्यत हुए भीमको युधिष्ठिरका शान्त करना ९१३
७३–धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको सारा धन लौटाकर एवं समझा-बुझाकर इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश देना ९१४

(अनुद्यूतपर्व)

७४–दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे अर्जुनकी वीरता बतलाकर पुनः द्यूतक्रीडाके लिये पाण्डवोंको बुलानेका अनुरोध और उनकी स्वीकृति ... ९१६
७५–गान्धारीकी धृतराष्ट्रको चेतावनी और धृतराष्ट्रका अस्वीकार करना ९२२
७६–सबके मना करनेपर भी धृतराष्ट्रकी आज्ञासे युधिष्ठिरका पुनः जूआ खेलना और हारना ... ९२३
७७–दुःशासनद्वारा पाण्डवोंका उपहास एवं भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी शत्रुओंको मारनेके लिये भीषण प्रतिज्ञा ... ९२५
७८–युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिसे विदा लेना, विदुरका कुन्तीको अपने यहाँ रखनेका प्रस्ताव और पाण्डवोंको धर्मपूर्वक रहनेका उपदेश देना ९२९
७९–द्रौपदीका कुन्तीसे विदा लेना तथा कुन्तीका विलाप एवं नगरके नर-नारियोंका शोकातुर होना ... ९३०
८०–वनगमनके समय पाण्डवोंकी चेष्टा और प्रजाजनोंकी शोकातुरताके विषयमें धृतराष्ट्र तथा विदुरका संवाद और शरणागत कौरवोंको द्रोणाचार्यका आश्वासन ९३५
८१–धृतराष्ट्रकी चिन्ता और उनका संजयके साथ वार्तालाप ९४०

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–श्रीकृष्णका मयासुरसे सभानिर्माणके लिये प्रस्ताव ६६५
२–वृन्दावनमें श्रीकृष्ण ... ७९७

(सादा)

३–पाण्डवोंद्वारा देवर्षि नारदका पूजन ... ६७६
४–जरासंधके भवनमें श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ७२६
५–भीमसेन और जरासंधका युद्ध ... ७२६
६–भीष्मका युधिष्ठिरको श्रीकृष्णकी महिमा बताना ७७७
७–शिशुपालका युद्धके लिये उद्योग · ७७७
८–भूमिका भगवान्‌को अदितिके कुण्डल देना · ८०८
९–शिशुपालके वधके लिये भगवान्‌का हाथमें चक्र ग्रहण करना ... ८४०
१०–दुर्योधनका स्थलके भ्रमसे जलमें गिरना ८४०
११–द्यूत-क्रीडामें युधिष्ठिरकी पराजय · ८९२
१२–दुःशासनका द्रौपदीके केश पकड़कर खींचना · ८९२
१३–द्रौपदी-चीर-हरण · ९०३
१४–गान्धारीका धृतराष्ट्रको समझाना · ९२२
१५–(४३ इकरंगे लाइन चित्र फरमोंमें)

(सभापर्व सम्पूर्ण)

श्रीहरिः

वनपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(अरण्यपर्व)	
१	पाण्डवोंका वनगमन, पुरवासियोंद्वारा उनका अनुगमन और युधिष्ठिरके अनुरोध करनेपर उनमेंसे बहुतोंका लौटना तथा पाण्डवोंका प्रमाणकोटितीर्थमें रात्रिवास ··· ···	९४५
२	धनके दोष, अतिथि-सत्कारकी महत्ता तथा कल्याणके उपायोंके विषयमें धर्मराज युधिष्ठिरसे ब्राह्मणों तथा शौनकजीकी बातचीत ··· ···	९४९
३	युधिष्ठिरके द्वारा अन्नके लिये भगवान् सूर्यकी उपासना और उनसे अक्षयपात्रकी प्राप्ति ···	९५५
४	विदुरजीका धृतराष्ट्रको हितकी सलाह देना और धृतराष्ट्रका रुष्ट होकर महलमें चला जाना ···	९६१
५	पाण्डवोंका काम्यकवनमें प्रवेश और विदुरजीका वहाँ जाकर उनसे मिलना और बातचीत करना	९६३
६	धृतराष्ट्रका संजयको भेजकर विदुरको वनसे बुलवाना और उनसे क्षमा-प्रार्थना ···	९६६
७	दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्णकी सलाह, पाण्डवोंका वध करनेके लिये उनका वनमें जानेकी तैयारी तथा व्यासजीका आकर उनको रोकना	९६८
८	व्यासजीका धृतराष्ट्रसे दुर्योधनके अन्यायको रोकनेके लिये अनुरोध ··· ···	९६९
९	व्यासजीके द्वारा सुरभि और इन्द्रके उपाख्यानका वर्णन तथा उनका पाण्डवोंके प्रति दया दिखलाना	९७०
१०	व्यासजीका जाना, मैत्रेयजीका धृतराष्ट्र और दुर्योधनसे पाण्डवोंके प्रति सद्भावका अनुरोध तथा दुर्योधनके अशिष्ट व्यवहारसे रुष्ट होकर उसे शाप देना ··· ···	९७२
	(किर्मीरवधपर्व)	
११	भीमसेनके द्वारा किर्मीरके वधकी कथा	९७५
	(अर्जुनाभिगमनपर्व)	
१२	अर्जुन और द्रौपदीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति, द्रौपदीका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने प्रति किये गये अपमान और दुःखका वर्णन और भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन एवं धृष्टद्युम्नका उसे आश्वासन देना	९८०
१३	श्रीकृष्णका जूएके दोष बताते हुए पाण्डवोंपर आयी हुई विपत्तिमें अपनी अनुपस्थितिको कारण मानना ··· ··· ···	९८९
१४	द्यूतके समय न पहुँचनेमें श्रीकृष्णके द्वारा शाल्वके साथ युद्ध करने और सौभविमानसहित उसे नष्ट करनेका संक्षिप्त वर्णन ··· ···	९९०
१५	सौभ-नाशकी विस्तृत कथाके प्रसङ्गमें द्वारकामें युद्धसम्बन्धी रक्षात्मक तैयारियोंका वर्णन ···	९९२
१६	शाल्वकी विशाल सेनाके आक्रमणका यादवसेनाद्वारा प्रतिरोध, साम्बद्वारा क्षेमवृद्धिकी पराजय, वेगवान्‌का वध तथा चारुदेष्णद्वारा विविन्ध्यदैत्यका वध एवं प्रद्युम्नद्वारा सेनाको आश्वासन ···	९९४
१७	प्रद्युम्न और शाल्वका घोर युद्ध ···	९९७
१८	मूर्च्छावस्थामें सारथिके द्वारा रणभूमिसे बाहर लाये जानेपर प्रद्युम्नका अनुताप और इसके लिये सारथिको उपालम्भ देना ···	९९८
१९	प्रद्युम्नके द्वारा शाल्वकी पराजय ···	१००१
२०	श्रीकृष्ण और शाल्वका भीषण युद्ध ···	१००३
२१	श्रीकृष्णका शाल्वकी मायासे मोहित होकर पुनः सजग होना ··· ···	१००५
२२	शाल्ववधोपाख्यानकी समाप्ति और युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा अन्य सब राजाओंका अपने-अपने नगरको प्रस्थान ···	१००७
२३	पाण्डवोंका द्वैतवनमें जानेके लिये उद्यत होना और प्रजावर्गकी व्याकुलता ···	१०११
२४	पाण्डवोंका द्वैतवनमें जाना ···	१०१३
२५	महर्षि मार्कण्डेयका पाण्डवोंको धर्मका आदेश देकर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान ···	१०१५
२६	दल्भपुत्र बकका युधिष्ठिरको ब्राह्मणोंका महत्त्व बतलाना ··· ···	१०१७
२७	द्रौपदीका युधिष्ठिरसे उनके शत्रुविषयक क्रोधको उभाड़नेके लिये संतापपूर्ण वचन ···	१०१९
२८	द्रौपदीद्वारा प्रह्लाद-बलि-संवादका वर्णन—तेज और क्षमाके अवसर ··· ···	१०२२
२९	युधिष्ठिरके द्वारा क्रोधकी निन्दा और क्षमाभावकी विशेष प्रशंसा ··· ···	१०२४
३०	दुःखसे मोहित द्रौपदीका युधिष्ठिरकी बुद्धि, धर्म एवं ईश्वरके न्यायपर आक्षेप ···	१०२८
३१	युधिष्ठिरद्वारा द्रौपदीके आक्षेपका समाधान तथा ईश्वर, धर्म और महापुरुषोंके आदरसे लाभ और अनादरसे हानि ···	१०३१

३२–द्रौपदीका पुरुषार्थको प्रधान मानकर पुरुषार्थ करनेके लिये जोर देना ··· ··· १०३४
३३–भीमसेनका पुरुषार्थकी प्रशंसा करना और युधिष्ठिरको उत्तेजित करते हुए क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध छेड़नेका अनुरोध ··· १०३८
३४–धर्म और नीतिकी बात कहते हुए युधिष्ठिरकी अपनी प्रतिज्ञाके पालनरूप धर्मपर ही डटे रहनेकी घोषणा ··· ··· १०४४
३५–दुःखित भीमसेनका युधिष्ठिरको युद्धके लिये उत्साहित करना ··· ··· १०४७
३६–युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाना, व्यासजीका आगमन और युधिष्ठिरको प्रतिस्मृतिविद्या-प्रदान तथा पाण्डवोंका पुनः काम्यकवनगमन १०४९
३७–अर्जुनका सब भाई आदिसे मिलकर इन्द्रकील पर्वतपर जाना एवं इन्द्रका दर्शन करना ··· १०५२

(कैरातपर्व)

३८–अर्जुनकी उग्र तपस्या और उसके विषयमें ऋषियोंका भगवान् शङ्करके साथ वार्तालाप ··· १०५६
३९–भगवान् शङ्कर और अर्जुनका युद्ध, अर्जुनपर उनका प्रसन्न होना एवं अर्जुनके द्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति ··· ··· १०५९
४०–भगवान् शङ्करका अर्जुनको वरदान देकर अपने धामको प्रस्थान ··· १०६५
४१–अर्जुनके पास दिक्पालोंका आगमन एवं उन्हें दिव्यास्त्र-प्रदान तथा इन्द्रका उन्हें स्वर्गमें चलनेका आदेश देना ··· १०६७

(इन्द्रलोकाभिगमनपर्व)

४२–अर्जुनका हिमालयसे विदा होकर मातलिके साथ स्वर्गलोकको प्रस्थान ··· १०७०
४३–अर्जुनद्वारा देवराज इन्द्रका दर्शन तथा इन्द्र-सभामें उनका स्वागत ··· १०७३
४४–अर्जुनको अस्त्र और सङ्गीतकी शिक्षा ··· १०७५
४५–चित्रसेन और उर्वशीका वार्तालाप ··· १०७६
४६–उर्वशीका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास जाना और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देकर लौट आना ··· १०७७
४७–लोमश मुनिका स्वर्गमें इन्द्र और अर्जुनसे मिलकर उनका संदेश ले काम्यकवनमें आना ··· १०८२
४८–दुःखित धृतराष्ट्रका संजयके सम्मुख अपने पुत्रोंके लिये चिन्ता करना ··· १०८४
४९–संजयके द्वारा धृतराष्ट्रकी बातोंका अनुमोदन और धृतराष्ट्रका संताप ··· १०८६
५०–वनमें पाण्डवोंका आहार ··· १०८७
५१–संजयका धृतराष्ट्रके प्रति श्रीकृष्णादिके द्वारा की हुई दुर्योधनादिके वधकी प्रतिज्ञाका वृत्तान्त सुनाना ··· ··· १०८८

(नलोपाख्यानपर्व)

५२–भीमसेन-युधिष्ठिर-संवाद, बृहदश्वका आगमन तथा युधिष्ठिरके पूछनेपर बृहदश्वके द्वारा नलोपाख्यानकी प्रस्तावना ··· १०९१
५३–नल-दमयन्तीके गुणोंका वर्णन, उनका परस्पर अनुराग और हंसका दमयन्ती और नलको एक दूसरेके संदेश सुनाना ··· १०९५
५४–स्वर्गमें नारद और इन्द्रकी बातचीत, दमयन्तीके स्वयंवरके लिये राजाओं तथा लोकपालोंका प्रस्थान ··· ··· १०९८
५५–नलका दूत बनकर राजमहलमें जाना और दमयन्तीको देवताओंका संदेश सुनाना ··· ११००
५६–नलका दमयन्तीसे वार्तालाप करना और लौटकर देवताओंको उसका संदेश सुनाना ··· ११०२
५७–स्वयंवरमें दमयन्तीद्वारा नलका वरण, देवताओंका नलको वर देना, देवताओं और राजाओंका प्रस्थान, नल-दमयन्तीका विवाह एवं नलका यज्ञानुष्ठान और संतानोत्पादन ··· ११०४
५८–देवताओंके द्वारा नलके गुणोंका गान और उनके निषेध करनेपर भी नलके विरुद्ध कलियुगका कोप ··· ११०८
५९–नलमें कलियुगका प्रवेश एवं नल और पुष्करकी द्यूतक्रीडा, प्रजा और दमयन्तीके निवारण करनेपर भी राजाका द्यूतसे निवृत्त नहीं होना ११०९
६०–दुःखित दमयन्तीका वार्ष्णेयके द्वारा कुमार-कुमारीको कुण्डिनपुर भेजना ··· १११०
६१–नलका जूएमें हारकर दमयन्तीके साथ वनको जाना और पक्षियोंद्वारा आपद्ग्रस्त नलके वस्त्रका अपहरण ··· ११९२
६२–राजा नलकी चिन्ता और दमयन्तीको अकेली सोती छोड़कर उनका अन्यत्र प्रस्थान ··· १११५
६३–दमयन्तीका विलाप तथा अजगर एवं व्याधसे उसके प्राण एवं सतीत्वकी रक्षा तथा दमयन्तीके पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे व्याधका विनाश ··· १११७
६४–दमयन्तीका विलाप और प्रलाप, तपस्वियोंद्वारा दमयन्तीको आश्वासन तथा उसकी व्यापारियोंके दलसे भेंट ··· ··· ११२०

६५–जंगली हाथियोंद्वारा व्यापारियोंके दलका सर्वनाश तथा दुःखित दमयन्तीका चेदिराजके भवनमें सुखपूर्वक निवास ··· ११२८
६६–राजा नलके द्वारा दावानलसे कर्कोटक नागकी रक्षा तथा नागद्वारा नलको आश्वासन ··· ११३४
६७–राजा नलका ऋतुपर्णके यहाँ अश्वाध्यक्षके पदपर नियुक्त होना और वहाँ दमयन्तीके लिये निरन्तर चिन्तित रहना तथा उनकी जीवलसे बातचीत ··· ··· ११३६
६८–विदर्भराजका नल-दमयन्तीकी खोजके लिये ब्राह्मणोंको भेजना, सुदेव ब्राह्मणका चेदिराजके भवनमें जाकर मन-ही-मन दमयन्तीके गुणोंका चिन्तन और उससे भेंट करना ··· ११३७
६९–दमयन्तीका अपने पिताके यहाँ जाना और वहाँसे नलको ढूँढ़नेके लिये अपना संदेश देकर ब्राह्मणोंको भेजना ··· ··· ११४०
७०–पर्णादका दमयन्तीसे बाहुकरूपधारी नलका समाचार बताना और दमयन्तीका ऋतुपर्णके यहाँ सुदेव नामक ब्राह्मणको स्वयंवरका संदेश देकर भेजना ··· ··· ११४४
७१–राजा ऋतुपर्णका विदर्भदेशको प्रस्थान, राजा नलके विषयमें वार्ष्णेयका विचार और बाहुककी अद्भुत अश्वसंचालन-कलासे वार्ष्णेय और ऋतुपर्णका प्रभावित होना ··· ११४६
७२–ऋतुपर्णके उत्तरीय वस्त्र गिरने और बहेड़ेके वृक्षके फलोंको गिननेके विषयमें नलके साथ ऋतुपर्णकी बातचीत, ऋतुपर्णसे नलको द्यूतविद्याके रहस्यकी प्राप्ति और उनके शरीरसे कलियुगका निकलना ··· ··· ११४९
७३–ऋतुपर्णका कुण्डिनपुरमें प्रवेश, दमयन्तीका विचार तथा भीमके द्वारा ऋतुपर्णका स्वागत ११५२
७४–बाहुक-केशिनी-संवाद ··· ··· ११५४
७५–दमयन्तीके आदेशसे केशिनीद्वारा बाहुककी परीक्षा तथा बाहुकका अपने लड़के-लड़कियोंको देखकर उनसे प्रेम करना ··· ११५७
७६–दमयन्ती और बाहुककी बातचीत, नलका प्राकट्य और नल-दमयन्ती-मिलन ··· ११५९
७७–नलके प्रकट होनेपर विदर्भनगरमें महान् उत्सवका आयोजन, ऋतुपर्णके साथ नलका वार्तालाप और ऋतुपर्णका नलसे अश्वविद्या सीखकर अयोध्या जाना ··· ··· ११६३
७८–राजा नलका पुष्करको जूएमें हराना और उसको राजधानीमें भेजकर अपने नगरमें प्रवेश करना ११६५
७९–राजा नलके आख्यानके कीर्तनका महत्त्व, बृहदश्व मुनिका युधिष्ठिरको आश्वासन देना तथा द्यूतविद्या और अश्वविद्याका रहस्य बताकर जाना ११६७

(तीर्थयात्रापर्व)

८०–अर्जुनके लिये द्रौपदीसहित पाण्डवोंकी चिन्ता ११६९
८१–युधिष्ठिरके पास देवर्षि नारदका आगमन और तीर्थयात्राके फलके सम्बन्धमें पूछनेपर नारदजीद्वारा भीष्म-पुलस्त्य-संवादकी प्रस्तावना ··· ११७१
८२–भीष्मजीके पूछनेपर पुलस्त्यजीका उन्हें विभिन्न तीर्थोंकी यात्राका माहात्म्य बताना ··· ११७३
८३–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित अनेक तीर्थोंकी महत्ताका वर्णन ··· ··· ११८१
८४–नाना प्रकारके तीर्थोंकी महिमा ··· ११९३
८५–गङ्गासागर, अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग आदि विभिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन और गङ्गाका माहात्म्य ··· ··· १२०२
८६–युधिष्ठिरका धौम्य मुनिसे पुण्य तपोवन, आश्रम एवं नदी आदिके विषयमें पूछना ··· १२१०
८७–धौम्यद्वारा पूर्वदिशाके तीर्थोंका वर्णन ··· १२११
८८–धौम्यमुनिके द्वारा दक्षिणदिशावर्ती तीर्थोंका वर्णन १२१३
८९–धौम्यद्वारा पश्चिमदिशाके तीर्थोंका वर्णन ··· १२१५
९०–धौम्यद्वारा उत्तर दिशाके तीर्थोंका वर्णन ··· १२१६
९१–महर्षि लोमशका आगमन और युधिष्ठिरसे अर्जुनके पाशुपत आदि दिव्यास्त्रोंकी प्राप्तिका वर्णन तथा इन्द्रका संदेश सुनाना ··· १२१९
९२–महर्षि लोमशके मुखसे इन्द्र और अर्जुनका संदेश सुनकर युधिष्ठिरका प्रसन्न होना और तीर्थयात्राके लिये उद्यत हो अपने अधिक साथियोंको विदा करना ··· १२२१
९३–ऋषियोंको नमस्कार करके पाण्डवोंका तीर्थयात्राके लिये विदा होना ··· १२२३
९४–देवताओं और धर्मात्मा राजाओंका उदाहरण देकर महर्षि लोमशका युधिष्ठिरको अधर्मसे हानि बताना और तीर्थयात्राजनित पुण्यकी महिमाका वर्णन करते हुए आश्वासन देना १२२५
९५–पाण्डवोंका नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें जाकर प्रयाग तथा गया तीर्थमें जाना और गय राजाके महान् यज्ञोंकी महिमा सुनाना ··· १२२६
९६–इल्वल और वातापिका वर्णन, महर्षि अगस्त्यका पितरोंके उद्धारके लिये विवाह करनेका विचार तथा विदर्भराजका महर्षि अगस्त्यसे एक कन्या पाना ··· ··· १२२८

९७—महर्षि अगस्त्यका लोपामुद्रासे विवाह, गङ्गाद्वारमें तपस्या एवं पत्नीकी इच्छासे धन-संग्रहके लिये प्रस्थान ··· ··· १२३१
९८—धन प्राप्त करनेके लिये अगस्त्यका श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व और त्रसदस्यु आदिके पास जाना ··· १२३३
९९—अगस्त्यजीका इल्वलके यहाँ धनके लिये जाना, वातापि तथा इल्वलका वध, लोपामुद्रा-को पुत्रकी प्राप्ति तथा श्रीरामके द्वारा हरे हुए तेजकी परशुरामको तीर्थस्नानद्वारा पुनः प्राप्ति १२३४
१००—वृत्रासुरसे त्रस्त देवताओंको महर्षि दधीचका अस्थिदान एवं वज्रका निर्माण ··· १२४०
१०१—वृत्रासुरका वध और असुरोंकी भयंकर मन्त्रणा १२४२
१०२—कालेयोंद्वारा तपस्वियों, मुनियों और ब्रह्मचारियों आदिका संहार तथा देवताओंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति ··· ··· १२४४
१०३—भगवान् विष्णुके आदेशसे देवताओंका महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर जाकर उनकी स्तुति करना १२४५
१०४—अगस्त्यजीका विन्ध्यपर्वतको बढ़नेसे रोकना और देवताओंके साथ सागर-तटपर जाना ··· १२४७
१०५—अगस्त्यजीके द्वारा समुद्रपान और देवताओं-का कालेय दैत्योंका वध करके ब्रह्माजीसे समुद्रको पुनः भरनेका उपाय पूछना ··· १२४९
१०६—राजा सगरका संतानके लिये तपस्या करना और शिवजीके द्वारा वरदान पाना ··· १२५१
१०७—सगरके पुत्रोंकी उत्पत्ति, साठ हजार सगर-पुत्रोंका कपिलकी क्रोधाग्निसे भस्म होना, असमञ्जसका परित्याग, अंशुमान्‌के प्रयत्नसे सगरके यज्ञकी पूर्ति, अंशुमान्‌से दिलीपको और दिलीपसे भगीरथको राज्यकी प्राप्ति ··· १२५३
१०८—भगीरथका हिमालयपर तपस्याद्वारा गङ्गा और महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे वर प्राप्त करना १२५७
१०९—पृथ्वीपर गङ्गाजीके उतरने और समुद्रको जल-से भरनेका विवरण तथा सगरपुत्रोंका उद्धार १२५९
११०—नन्दा तथा कौशिकीका माहात्म्य, ऋष्यशृङ्ग मुनिका उपाख्यान और उनको अपने राज्यमें लानेके लिये राजा लोमपादका प्रयत्न ··· १२६१
१११—वेश्याका ऋष्यशृङ्गको लुभाना और विभाण्डक मुनिका आश्रमपर आकर अपने पुत्रकी चिन्ताका कारण पूछना ··· १२६५
११२—ऋष्यशृङ्गका पिताको अपनी चिन्ताका कारण बताते हुए ब्रह्मचारीरूपधारी वेश्याके स्वरूप और आचरणका वर्णन ··· ··· १२६७
११३—ऋष्यशृङ्गका अङ्गराज लोमपादके यहाँ जाना, राजाका उन्हें अपनी कन्या देना, राजाद्वारा विभाण्डक मुनिका सत्कार तथा उनपर मुनि-का प्रसन्न होना ··· ··· १२६९
११४—युधिष्ठिरका कौशिकी, गङ्गासागर एवं वैतरणी नदी होते हुए महेन्द्रपर्वतपर गमन ··· १२७२
११५—अकृतव्रणके द्वारा युधिष्ठिरसे परशुरामजीके उपाख्यानके प्रसङ्गमें ऋचीक मुनिका गाधि-कन्याके साथ विवाह और भृगुऋषिकी कृपासे जमदग्निकी उत्पत्तिका वर्णन ··· १२७५
११६—पिताकी आज्ञासे परशुरामजीका अपनी माता-का मस्तक काटना और उन्हींके वरदानसे पुनः जिलाना, परशुरामजीद्वारा कार्तवीर्य अर्जुनका वध और उसके पुत्रोंद्वारा जमदग्नि मुनिकी हत्या ··· ··· १२७८
११७—परशुरामजीका पिताके लिये विलाप और पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय करना एवं महाराज युधिष्ठिरके द्वारा परशुरामजीका पूजन १२८१
११८—युधिष्ठिरका विभिन्न तीर्थोंमें होते हुए प्रभास-क्षेत्रमें पहुँचकर तपस्यामें प्रवृत्त होना और यादवोंका पाण्डवोंसे मिलना ··· १२८२
११९—प्रभासतीर्थमें बलरामजीके पाण्डवोंके प्रति सहानुभूतिसूचक दुःखपूर्ण उद्गार ··· १२८५
१२०—सात्यकिके शौर्यपूर्ण उद्गार तथा युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका अनुमोदन एवं पाण्डवों-का पयोष्णी नदीके तटपर निवास ··· १२८७
१२१—राजा गयके यज्ञकी प्रशंसा, पयोष्णी, वैदूर्य पर्वत और नर्मदाके माहात्म्य तथा च्यवन-सुकन्याके चरित्रका आरम्भ ··· १२९१
१२२—महर्षि च्यवनको सुकन्याकी प्राप्ति ··· १२९३
१२३—अश्विनीकुमारोंकी कृपासे महर्षि च्यवनको सुन्दर रूप और युवावस्थाकी प्राप्ति ··· १२९५
१२४—शर्यातिके यज्ञमें च्यवनका इन्द्रपर कोप करके वज्रको स्तम्भित करना और उसे मारनेके लिये मदासुरको उत्पन्न करना ··· १२९७
१२५—अश्विनीकुमारोंका यज्ञमें भाग स्वीकार कर लेनेपर इन्द्रका संकटमुक्त होना तथा लोमशजीके द्वारा अन्यान्य तीर्थोंके महत्त्वका वर्णन ··· १२९९
१२६—राजा मान्धाताकी उत्पत्ति और संक्षिप्त चरित्र १३०१
१२७—सोमक और जन्तुका उपाख्यान ··· १३०४
१२८—सोमकको सौ पुत्रोंकी प्राप्ति तथा सोमक और पुरोहितका समानरूपसे नरक और पुण्यलोकों-का उपभोग करना ··· ··· १३०६

१२९—कुरुक्षेत्रके द्वारभूत प्लक्षप्रस्रवणनामक यमुना-तीर्थ एवं सरस्वतीतीर्थकी महिमा ··· ··· १३०७
१३०—विभिन्न तीर्थोंकी महिमा और राजा उशीनर-की कथाका आरम्भ ··· ··· १३०९
१३१—राजा उशीनरद्वारा बाजको अपने शरीरका मांस देकर शरणमें आये हुए कबूतरके प्राणोंकी रक्षा करना ··· ··· १३११
१३२—अष्टावक्रके जन्मका वृत्तान्त और उनका राजा जनकके दरबारमें जाना ··· ··· १३१३
१३३—अष्टावक्रका द्वारपाल तथा राजा जनकसे वार्तालाप ··· ··· १३१६
१३४—बन्दी और अष्टावक्रका शास्त्रार्थ, बन्दीकी पराजय तथा समङ्गामें स्नानसे अष्टावक्रके अङ्गोंका सीधा होना ··· ··· १३२०
१३५—कर्दमिलक्षेत्र आदि तीर्थोंकी महिमा, रैभ्य एवं भरद्वाजपुत्र यवक्रीत मुनिकी कथा तथा ऋषियोंका अनिष्ट करनेके कारण मेधावीकी मृत्यु ··· ··· १३२६
१३६—यवक्रीतका रैभ्यमुनिकी पुत्रवधूके साथ व्यभिचार और रैभ्यमुनिके क्रोधसे उत्पन्न राक्षसके द्वारा उसकी मृत्यु ··· १३३०
१३७—भरद्वाजका पुत्रशोकसे विलाप करना, रैभ्य-मुनिको शाप देना एवं स्वयं अग्निमें प्रवेश करना ··· ··· १३३१
१३८—अर्वावसुकी तपस्याके प्रभावसे परावसुका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना और रैभ्य, भरद्वाज तथा यवक्रीत आदिका पुनर्जीवित होना ··· १३३३
१३९—पाण्डवोंकी उत्तराखण्ड-यात्रा और लोमशजी-द्वारा उसकी दुर्गमताका कथन ··· १३३५
१४०—भीमसेनका उत्साह तथा पाण्डवोंका कुलिन्द-राज सुबाहुके राज्यमें होते हुए गन्धमादन और हिमालय पर्वतको प्रस्थान ··· १३३७
१४१—युधिष्ठिरका भीमसेनसे अर्जुनको न देखनेके कारण मानसिक चिन्ता प्रकट करना एवं उनके गुणोंका स्मरण करते हुए गन्धमादन पर्वतपर जानेका दृढ़ निश्चय करना ··· १३३९
१४२—पाण्डवोंद्वारा गङ्गाजीकी वन्दना, लोमशजीका नरकासुरके वध और भगवान् वाराहद्वारा वसुधाके उद्धारकी कथा कहना ··· १३४१
१४३—गन्धमादनकी यात्राके समय पाण्डवोंका आँधी-पानीसे सामना ··· ··· १३४५
१४४—द्रौपदीकी मूर्छा, पाण्डवोंके उपचारसे उसका सचेत होना तथा भीमसेनके स्मरण करनेपर घटोत्कचका आगमन ··· ··· १३४७
१४५—घटोत्कच और उसके साथियोंकी सहायतासे पाण्डवोंका गन्धमादन पर्वत एवं बदरिकाश्रममें प्रवेश तथा बदरीवृक्ष, नरनारायणाश्रम और गङ्गाका वर्णन ··· ··· १३४९
१४६—भीमसेनका सौगन्धिक कमल लानेके लिये जाना और कदली वनमें उनकी हनुमान्‌जी-से भेंट ··· ··· १३५३
१४७—श्रीहनुमान् और भीमसेनका संवाद ··· १३५९
१४८—हनुमान्‌जीका भीमसेनको संक्षेपसे श्रीरामका चरित्र सुनाना ··· ··· १३६२
१४९—हनुमान्‌जीके द्वारा चारों युगोंके धर्मोंका वर्णन ··· ··· १३६३
१५०—हनुमान्‌जीके द्वारा भीमसेनको अपने विशाल रूपका प्रदर्शन और चारों वर्णोंके धर्मोंका प्रतिपादन ··· ··· १३६६
१५१—हनुमान्‌जीका भीमसेनको आश्वासन और विदा देकर अन्तर्धान होना ··· १३७०
१५२—भीमसेनका सौगन्धिक वनमें पहुँचना ··· १३७२
१५३—क्रोधवश नामक राक्षसोंका भीमसेनसे सरोवर-के निकट आनेका कारण पूछना ··· १३७३
१५४—भीमसेनके द्वारा क्रोधवश नामक राक्षसोंकी पराजय और द्रौपदीके लिये सौगन्धिक कमलोंका संग्रह करना ··· ··· १३७४
१५५—भयंकर उत्पात देखकर युधिष्ठिर आदिकी चिन्ता और सबका गन्धमादन पर्वतपर सौगन्धिकवनमें भीमसेनके पास पहुँचना ··· १३७६
१५६—पाण्डवोंका आकाशवाणीके आदेशसे पुनः नरनारायणाश्रममें लौटना ··· १३७९

(जटासुरवधपर्व)

१५७—जटासुरके द्वारा द्रौपदीसहित युधिष्ठिर, नकुल, सहदेवका हरण तथा भीमसेनद्वारा जटासुर-का वध ··· ··· १३८०

(यक्षयुद्धपर्व)

१५८—नर-नारायण-आश्रमसे वृषपर्वाके यहाँ होते हुए राजर्षि आर्ष्टिषेणके आश्रमपर जाना ··· १३८५
१५९—प्रश्नके रूपमें आर्ष्टिषेणका युधिष्ठिरके प्रति उपदेश १३९३

१६०–पाण्डवोंका आर्ष्टिषेणके आश्रमपर निवास, द्रौपदीके अनुरोधसे भीमसेनका पर्वतके शिखरपर जाना और यक्षों तथा राक्षसोंसे युद्ध करके मणिमान्‌का वध करना ··· ··· १३९५
१६१–कुबेरका गन्धमादन पर्वतपर आगमन और युधिष्ठिरसे उनकी भेंट ··· ··· १४००
१६२–कुबेरका युधिष्ठिर आदिको उपदेश और सान्त्वना देकर अपने भवनको प्रस्थान ··· १४०४
१६३–धौम्यका युधिष्ठिरको मेरु पर्वत तथा उसके शिखरोंपर स्थित ब्रह्मा, विष्णु आदिके स्थानोंका लक्ष्य कराना और सूर्य-चन्द्रमाकी गति एवं प्रभावका वर्णन ··· ··· १४०७
१६४–पाण्डवोंकी अर्जुनके लिये उत्कण्ठा और अर्जुनका आगमन १४१०

(निवातकवचयुद्धपर्व)

१६५–अर्जुनका गन्धमादनपर्वतपर आकर अपने भाइयोंसे मिलना ··· ··· १४१२
१६६–इन्द्रका पाण्डवोंके पास आना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर स्वर्गको लौटना १४१३
१६७–अर्जुनके द्वारा अपनी तपस्यायात्राके वृत्तान्तका वर्णन, भगवान् शिवके साथ संग्राम और पाशुपतास्त्र-प्राप्तिकी कथा··· १४१५
१६८–अर्जुनद्वारा स्वर्गलोकमें अपनी अस्त्रशिक्षा और निवातकवच दानवोंके साथ युद्धकी तैयारीका कथन ··· ··· १४१९
१६९–अर्जुनका पातालमें प्रवेश और निवातकवचोंके साथ युद्धारम्भ ··· ··· १४२५
१७०–अर्जुन और निवातकवचोंका युद्ध ··· १४२६
१७१–दानवोंके मायामय युद्धका वर्णन ··· १४२८
१७२–निवातकवचोंका संहार ··· १४३०
१७३–अर्जुनद्वारा हिरण्यपुरवासी पौलोम तथा कालकेयोंका वध और इन्द्रद्वारा अर्जुनका अभिनन्दन ··· ··· १४३३
१७४–अर्जुनके मुखसे यात्राका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरद्वारा उनका अभिनन्दन और दिव्यास्त्रदर्शनकी इच्छा प्रकट करना ··· १४३८
१७५–नारद आदिका अर्जुनको दिव्यास्त्रोंके प्रदर्शनसे रोकना ··· ··· १४३९

(आजगरपर्व)

१७६–भीमसेनकी युधिष्ठिरसे बातचीत और पाण्डवोंका गन्धमादनसे प्रस्थान ··· १४४१
१७७–पाण्डवोंका गन्धमादनसे बदरिकाश्रम, सुबाहुनगर और विशाखयूप वनमें होते हुए सरस्वती-तटवर्ती द्वैतवनमें प्रवेश ··· १४४३
१७८–महाबली भीमसेनका हिंसक पशुओंको मारना और अजगरद्वारा पकड़ा जाना ... १४४६
१७९–भीमसेन और सर्परूपधारी नहुषकी बातचीत, भीमसेनकी चिन्ता तथा युधिष्ठिरद्वारा भीमकी खोज ··· ··· १४४८
१८०–युधिष्ठिरका भीमसेनके पास पहुँचना और सर्परूपधारी नहुषके प्रश्नोंका उत्तर देना ··· १४५२
१८१–युधिष्ठिरद्वारा अपने प्रश्नोंका उचित उत्तर पाकर संतुष्ट हुए सर्परूपधारी नहुषका भीमसेनको छोड़ देना तथा युधिष्ठिरके साथ वार्तालाप करनेके प्रभावसे सर्पयोनिसे मुक्त होकर स्वर्ग जाना ··· ··· १४५५

(मार्कण्डेयसमास्यापर्व)

१८२–वर्षा और शरद्-ऋतुका वर्णन एवं युधिष्ठिर आदिका पुनः द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश १४५९
१८३–काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास भगवान् श्रीकृष्ण, मुनिवर मार्कण्डेय तथा नारदजीका आगमन एवं युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीके द्वारा कर्मफल-भोगका विवेचन ··· १४६०
१८४–तपस्वी तथा स्वधर्मपरायण ब्राह्मणोंका माहात्म्य १४६९
१८५–ब्राह्मणकी महिमाके विषयमें अत्रिमुनि तथा राजा पृथुकी प्रशंसा ··· ··· १४७१
१८६–तार्क्ष्यमुनि और सरस्वतीका संवाद ··· १४७३
१८७–वैवस्वत मनुका चरित्र तथा मत्स्यावतारकी कथा ··· ··· १४७७
१८८–चारों युगोंकी वर्ष-संख्या एवं कलियुगके प्रभावका वर्णन, प्रलयकालका दृश्य और मार्कण्डेयजीको बालमुकुन्दजीके दर्शन, मार्कण्डेयजीका भगवान्‌के उदरमें प्रवेशकर ब्रह्माण्डदर्शन करना और फिर बाहर निकलकर उनसे वार्तालाप करना ··· १४८१
१८९–भगवान् बालमुकुन्दका मार्कण्डेयको अपने स्वरूपका परिचय देना तथा मार्कण्डेयद्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका प्रतिपादन और पाण्डवोंका श्रीकृष्णकी शरणमें जाना ··· १४९०
१९०–युगान्तकालिक कलियुगके समयके बर्तावका तथा कल्कि-अवतारका वर्णन ··· १४९४
१९१–भगवान् कल्कीके द्वारा सत्ययुगकी स्थापना और मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश १५००

१९२—इक्ष्वाकुवंशी परीक्षित्‌का मण्डूकराजकी कन्यासे विवाह, शल और दलके चरित्र तथा वामदेव मुनिकी महत्ता ··· ··· १५०२
१९३—इन्द्र और बक मुनिका संवाद ··· १५०९
१९४—क्षत्रिय राजाओंका महत्त्व—सुहोत्र और शिबिकी प्रशंसा ··· ··· १५१२
१९५—राजा ययातिद्वारा ब्राह्मणको सहस्र गौओंका दान ··· ··· १५१३
१९६—सेदुक और वृषदर्भका चरित्र ··· १५१४
१९७—इन्द्र और अग्निद्वारा राजा शिबिकी परीक्षा १५१५
१९८—देवर्षि नारदद्वारा शिबिकी महत्ताका पतिपादन १५१८
१९९—राजा इन्द्रद्युम्न तथा अन्य चिरजीवी प्राणियों-की कथा ··· ··· १५२१
२००—निन्दित दान, निन्दित जन्म, योग्य दानपात्र, श्राद्धमें ग्राह्य और अग्राह्य ब्राह्मण, दानपात्रके लक्षण, अतिथि-सत्कार, विविध दानोंका महत्त्व, वाणीकी शुद्धि, गायत्री-जप, चित्तशुद्धि तथा इन्द्रियनिग्रह आदि विविध विषयोंका वर्णन ··· ··· १५२३
२०१ उत्तङ्ककी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌का उन्हें वरदान देना तथा इक्ष्वाकुवंशी राजा कुवलाश्वका धुन्धुमार नाम पड़नेका कारण बताना ··· ··· १५३२
२०२ उत्तङ्कका राजा बृहदश्वसे धुन्धुका वध करनेके लिये आग्रह ··· ··· १५३५
२०३—ब्रह्माजीकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुके द्वारा मधु-कैटभका वध ··· ··· १५३७
२०४—धुन्धुकी तपस्या और वरप्राप्ति, कुवलाश्वद्वारा धुन्धुका वध और देवताओंका कुवलाश्वको वर देना ··· १५३९
२०५—पतिव्रता स्त्री तथा पिता-माताकी सेवाका माहात्म्य ··· ··· १५४२
२०६—कौशिक ब्राह्मण और पतिव्रताके उपाख्यानके अन्तर्गत ब्राह्मणोंके धर्मका वर्णन ··· १५४४
२०७—कौशिकका धर्मव्याधके पास जाना, धर्मव्याध-के द्वारा पतिव्रतासे प्रेषित जान लेनेपर कौशिकको आश्चर्य होना, धर्मव्याधके द्वारा वर्णधर्मका वर्णन, जनकराज्यकी प्रशंसा और शिष्टाचारका वर्णन १५४८
२०८—धर्मव्याधद्वारा हिंसा और अहिंसाका विवेचन १५५५
२०९—धर्मकी सूक्ष्मता, शुभाशुभ कर्म और उनके फल तथा ब्रह्मकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन १५५७
२१०—विषयसेवनसे हानि, सत्सङ्गसे लाभ और ब्राह्मी विद्याका वर्णन ··· ··· १५६१
२११—पञ्चमहाभूतोंके गुणोंका और इन्द्रियनिग्रहका वर्णन ··· ··· १५६३
२१२—तीनों गुणोंके स्वरूप और फलका वर्णन ··· १५६५
२१३—प्राणवायुकी स्थितिका वर्णन तथा परमात्म-साक्षात्कारके उपाय ··· ··· १५६६
२१४—माता-पिताकी सेवाका दिग्दर्शन ··· १५७०
२१५—धर्मव्याधका कौशिक ब्राह्मणको माता-पिताकी सेवाका उपदेश देकर अपने पूर्वजन्मकी कथा कहते हुए व्याध होनेका कारण बताना ··· १५७२
२१६—कौशिक-धर्मव्याध-संवादका उपसंहार तथा कौशिकका अपने घरको प्रस्थान ··· १५७४
२१७—अग्निका अङ्गिराको अपना प्रथम पुत्र स्वीकार करना तथा अङ्गिरासे बृहस्पतिकी उत्पत्ति ··· १५७७
२१८—अङ्गिराकी संततिका वर्णन ··· १५७९
२१९—बृहस्पतिकी संततिका वर्णन ··· १५७९
२२०—पाञ्चजन्य अग्निकी उत्पत्ति तथा उसकी संततिका वर्णन ··· ··· १५८१
२२१—अग्निस्वरूप तप और भानु (मनुकी) संतति-का वर्णन ··· ··· १५८३
२२२—सह नामक अग्निका जलमें प्रवेश और अथर्वा अङ्गिराद्वारा पुनः उनका प्राकट्य ··· १५८६
२२३—इन्द्रके द्वारा केशीके हाथसे देवसेनाका उद्धार १५८८
२२४—इन्द्रका देवसेनाके साथ ब्रह्माजीके पास तथा ब्रह्मर्षियोंके आश्रमपर जाना, अग्निका मोह और वनगमन ··· ··· १५८९
२२५—स्वाहाका मुनिपत्नियोंके रूपोंमें अग्निके साथ समागम, स्कन्दकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा क्रौञ्च आदि पर्वतोंका विदारण १५९३
२२६—विश्वामित्रका स्कन्दके जातकर्मादि तेरह संस्कार करना और विश्वामित्रके समझानेपर भी ऋषियोंका अपनी पत्नियोंको स्वीकार न करना तथा अग्निदेव आदिके द्वारा बालक स्कन्दकी रक्षा करना ··· १५९५
२२७—पराजित होकर शरणमें आये हुए इन्द्रसहित देवताओंको स्कन्दका अभयदान ··· १५९८
२२८—स्कन्दके पार्षदोंका वर्णन १५९९

२२९–स्कन्दका इन्द्रके साथ वार्तालाप, देवसेनापति-के पदपर अभिषेक तथा देवसेनाके साथ उनका विवाह १६००
२३०–कृत्तिकाओंको नक्षत्रमण्डलमें स्थानकी प्राप्ति तथा मनुष्योंको कष्ट देनेवाले विविध ग्रहोंका वर्णन १६०४
२३१–स्कन्दद्वारा स्वाहादेवीका सत्कार, रुद्रदेवके साथ स्कन्द और देवताओंकी भद्रवट-यात्रा, देवासुर-संग्राम, महिषासुर-वध तथा स्कन्दकी प्रशंसा १६०९
२३२–कार्तिकेयके प्रसिद्ध नामोंका वर्णन तथा उनका स्तवन १६१६

(द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व)

२३३–द्रौपदीका सत्यभामाको सती स्त्रीके कर्तव्यकी शिक्षा देना १६१८
२३४–पतिदेवको अनुकूल करनेका उपाय–पतिकी अनन्यभावसे सेवा १६२३
२३५–सत्यभामाका द्रौपदीको आश्वासन देकर श्रीकृष्णके साथ द्वारिकाको प्रस्थान १६२४

(घोषयात्रापर्व)

२३६–पाण्डवोंका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका खेद और चिन्तापूर्ण उद्गार १६२६
२३७–शकुनि और कर्णका दुर्योधनकी प्रशंसा करते हुए उसे वनमें पाण्डवोंके पास चलनेके लिये उभाड़ना १६२९
२३८–दुर्योधनके द्वारा कर्ण और शकुनिकी मन्त्रणा स्वीकार करना तथा कर्ण आदिका घोषयात्रा-को निमित्त बनाकर द्वैतवनमें जानेके लिये धृतराष्ट्रसे आज्ञा लेने जाना ... १६३१
२३९–कर्ण आदिके द्वारा द्वैतवनमें जानेका प्रस्ताव, राजा धृतराष्ट्रकी अस्वीकृति, शकुनिका समझाना, धृतराष्ट्रका अनुमति देना तथा दुर्योधनका प्रस्थान १६३३
२४०–दुर्योधनका सेनासहित वनमें जाकर गौओंकी देखभाल करना और उसके सैनिकों एवं गन्धर्वोंमें परस्पर कटु संवाद ... १६३५
२४१–कौरवोंका गन्धर्वोंके साथ युद्ध और कर्णकी पराजय १६३८
२४२–गन्धर्वोंद्वारा दुर्योधन आदिकी पराजय और उनका अपहरण १६४०
२४३–युधिष्ठिरका भीमसेनको गन्धर्वोंके हाथसे कौरवोंको छुड़ानेका आदेश और इसके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा १६४२
२४४–पाण्डवोंका गन्धर्वोंके साथ युद्ध ... १६४४
२४५–पाण्डवोंके द्वारा गन्धर्वोंकी पराजय ... १६४६
२४६–चित्रसेन, अर्जुन तथा युधिष्ठिरका संवाद और दुर्योधनका छुटकारा १६४८
२४७–सेनासहित दुर्योधनका मार्गमें ठहरना और कर्णके द्वारा उसका अभिनन्दन ... १६५०
२४८–दुर्योधनका कर्णको अपनी पराजयका समाचार बताना १६५१
२४९–दुर्योधनका कर्णसे अपनी ग्लानिका वर्णन करते हुए आमरण अनशनका निश्चय, दुःशासनको राजा बननेका आदेश, दुःशासनका दुःख और कर्णका दुर्योधनको समझाना ... १६५३
२५०–कर्णके समझानेपर भी दुर्योधनका आमरण अनशन करनेका ही निश्चय ... १६५६
२५१–शकुनिके समझानेपर भी दुर्योधनको प्रायोप-वेशनसे विचलित होते न देखकर दैत्योंका कृत्याद्वारा उसे रसातलमें बुलाना ... १६५७
२५२–दानवोंका दुर्योधनको समझाना और कर्णके अनुरोध करनेपर दुर्योधनका अनशन त्याग करके हस्तिनापुरको प्रस्थान ... १६५९
२५३–भीष्मका कर्णकी निन्दा करते हुए दुर्योधन-को पाण्डवोंसे संधि करनेका परामर्श देना, कर्णके क्षोभपूर्ण वचन और दिग्विजयके लिये प्रस्थान १६६३
२५४–कर्णके द्वारा सारी पृथ्वीपर दिग्विजय और हस्तिनापुरमें उसका सत्कार ... १६६५
२५५–कर्ण और पुरोहितकी सलाहसे दुर्योधनकी वैष्णवयज्ञके लिये तैयारी ... १६६७
२५६–दुर्योधनके यज्ञका आरम्भ एवं समाप्ति १६६९
२५७–दुर्योधनके यज्ञके विषयमें लोगोंका मत, कर्ण-द्वारा अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरकी चिन्ता तथा दुर्योधनकी शासननीति ... १६७१

(मृगस्वप्नोद्भवपर्व)

२५८–पाण्डवोंका काम्यकवनमें गमन ... १६७३

(व्रीहिद्रौणिकपर्व)

२५९–युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका पाण्डवोंके पास आगमन और दानकी महत्ताका प्रतिपादन १६७४

२६०–दुर्वासाद्वारा महर्षि मुद्गलके दानधर्म एवं धैर्यकी परीक्षा तथा मुद्गलका देवदूतसे कुछ प्रश्न करना १६७७
२६१–देवदूतद्वारा स्वर्गलोकके गुण-दोषोंका तथा दोषरहित विष्णुधामका वर्णन सुनकर मुद्गलका देवदूतको लौटा देना एवं व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अपने आश्रमको लौट जाना १६८०

(द्रौपदीहरणपर्व)

२६२–दुर्योधनका महर्षि दुर्वासाको आतिथ्यसत्कारसे संतुष्ट करके उन्हें युधिष्ठिरके पास भेजकर प्रसन्न होना १६८४
२६३–दुर्वासाका पाण्डवोंके आश्रमपर असमयमें आतिथ्यके लिये जाना, द्रौपदीके द्वारा स्मरण किये जानेपर भगवान्‌का प्रकट होना तथा पाण्डवोंको दुर्वासाके भयसे मुक्त करना और उनको आश्वासन देकर द्वारका जाना ... १६८६
२६४–जयद्रथका द्रौपदीको देखकर मोहित होना और उसके पास कोटिकास्यको भेजना १६८९
२६५–कोटिकास्यका द्रौपदीसे जयद्रथ और उसके साथियोंका परिचय देते हुए उसका भी परिचय पूछना १६९१
२६६–द्रौपदीका कोटिकास्यको उत्तर ... १६९२
२६७–जयद्रथ और द्रौपदीका संवाद ... १६९३
२६८–द्रौपदीका जयद्रथको फटकारना और जयद्रथ-द्वारा उसका अपहरण ... १६९५
२६९–पाण्डवोंका आश्रमपर लौटना और धात्रेयिका-से द्रौपदीहरणका वृत्तान्त जानकर जयद्रथका पीछा करना ... १६९८
२७०–द्रौपदीद्वारा जयद्रथके सामने पाण्डवोंके पराक्रमका वर्णन १७०१
२७१–पाण्डवोंद्वारा जयद्रथकी सेनाका संहार, जयद्रथका पलायन, द्रौपदी तथा नकुल-सहदेवके साथ युधिष्ठिरका आश्रमपर लौटना तथा भीम और अर्जुनका वनमें जयद्रथका पीछा करना १७०४

(जयद्रथविमोक्षणपर्व)

२७२–भीमद्वारा बंदी होकर जयद्रथका युधिष्ठिरके सामने उपस्थित होना, उनकी आज्ञासे छूट-कर उसका गङ्गाद्वारमें तप करके भगवान् शिवसे वरदान पाना तथा भगवान् शिवद्वारा *अर्जुनके सहायक भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन* १७०८

(रामोपाख्यानपर्व)

२७३–अपनी दुरवस्थासे दुखी हुए युधिष्ठिरका मार्कण्डेय मुनिसे प्रश्न करना ... १७१४
२७४–श्रीराम आदिका जन्म तथा कुबेरकी उत्पत्ति और उन्हें ऐश्वर्यकी प्राप्ति ... १७१५
२७५–रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखाकी उत्पत्ति, तपस्या और वर-प्राप्ति तथा कुबेरका रावणको शाप देना ... १७१६
२७६–देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाकर रावणके अत्याचारसे बचानेके लिये प्रार्थना करना तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका रीछ और वानरयोनिमें संतान उत्पन्न करना एवं दुन्दुभी गन्धर्वीका मन्थरा बनकर आना ... १७१९
२७७–श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी, रामवन-गमन, भरतकी चित्रकूटयात्रा, रामके द्वारा खर-दूषण आदि राक्षसोंका नाश तथा रावण-का मारीचके पास जाना १७२१
२७८–मृगरूपधारी मारीचका वध तथा सीताका अपहरण १७२५
२७९–रावणद्वारा जटायुका वध, श्रीरामद्वारा उसका अन्त्येष्टि-संस्कार, कबन्धका वध तथा उसके दिव्यस्वरूपसे वार्तालाप ... १७२९
२८०–राम और सुग्रीवकी मित्रता, वाली और सुग्रीवका युद्ध, श्रीरामके द्वारा वालीका वध तथा लङ्काकी अशोकवाटिकामें राक्षसियोंद्वारा डरायी हुई सीताको त्रिजटाका आश्वासन ... १७३३
२८१–रावण और सीताका संवाद १७३८
२८२–श्रीरामका सुग्रीवपर कोप, सुग्रीवका सीताकी खोजमें वानरोंको भेजना तथा श्रीहनुमान्जी-का लौटकर अपनी लङ्कायात्राका वृत्तान्त निवेदन करना १७४०
२८३–वानर-सेनाका संगठन, सेतुका निर्माण, विभीषणका अभिषेक और लङ्काकी सीमामें सेनाका प्रवेश तथा अंगदको रावणके पास दूत बनाकर भेजना १७४५
२८४–अंगदका रावणके पास जाकर रामका संदेश सुनाकर लौटना तथा राक्षसों और वानरोंका *घोर संग्राम* १७४९

२८५–श्रीराम और रावणकी सेनाओंका द्वन्द्व-युद्ध १७५२
२८६–प्रहस्त और धूम्राक्षके वधसे दुखी हुए रावणका कुम्भकर्णको जगाना और उसे युद्धमें भेजना १७५४
२८७–कुम्भकर्ण, वज्रवेग और प्रमाथीका वध ... १७५६
२८८–इन्द्रजित्का मायामय युद्ध तथा श्रीराम और लक्ष्मणकी मूर्छा ... १७५८
२८९–श्रीराम-लक्ष्मणका सचेत होकर कुबेरके भेजे हुए अभिमन्त्रित जलसे प्रमुख वानरोंसहित अपने नेत्र धोना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजित्का वध एवं सीताको मारनेके लिये उद्यत हुए रावणका अविन्ध्यके द्वारा निवारण करना १७६०
२९०–राम और रावणका युद्ध तथा रावणका वध १७६२
२९१–श्रीरामका सीताके प्रति संदेह, देवताओंद्वारा सीताकी शुद्धिका समर्थन, श्रीरामका दल-बलसहित लङ्कासे प्रस्थान एवं किष्किन्धा होते हुए अयोध्यामें पहुँचकर भरतसे मिलना तथा राज्यपर अभिषिक्त होना ... १७६५
२९२–मार्कण्डेयजीके द्वारा राजा युधिष्ठिरको आश्वासन १७७०

(पतिव्रतामाहात्म्यपर्व)

२९३–राजा अश्वपतिको देवी सावित्रीके वरदानसे सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति तथा सावित्रीका पतिवरणके लिये विभिन्न देशोंमें भ्रमण १७७१
२९४–सावित्रीका सत्यवान्के साथ विवाह करनेका दृढ़ निश्चय १७७४
२९५–सत्यवान् और सावित्रीका विवाह तथा सावित्रीका अपनी सेवाओंद्वारा सबको संतुष्ट करना १७७७
२९६–सावित्रीकी व्रतचर्या तथा सास-ससुर और पतिकी आज्ञा लेकर सत्यवान्के साथ उसका वनमें जाना १७७९
२९७–सावित्री और यमका संवाद, यमराजका संतुष्ट होकर सावित्रीको अनेक वरदान देते हुए मरे हुए सत्यवान्को भी जीवित कर देना तथा सत्यवान् और सावित्रीका वार्तालाप एवं आश्रमकी ओर प्रस्थान ... १७८२
२९८–पत्नीसहित राजा द्युमत्सेनकी सत्यवान्के लिये चिन्ता, ऋषियोंका उन्हें आश्वासन देना, सावित्री और सत्यवान्का आगमन तथा सावित्रीद्वारा विलम्बसे आनेके कारणपर प्रकाश डालते हुए वर-प्राप्तिका विवरण बताना ... १७९३
२९९–शाल्वदेशकी प्रजाके अनुरोधसे महाराज द्युमत्सेनका राज्याभिषेक कराना तथा सावित्रीको सौ पुत्रों और सौ भाइयोंकी प्राप्ति ... १७९६

(कुण्डलाहरणपर्व)

३००–सूर्यका स्वप्नमें कर्णको दर्शन देकर उसे इन्द्रको कुण्डल और कवच न देनेके लिये सचेत करना तथा कर्णका आग्रहपूर्वक कुण्डल और कवच देनेका ही निश्चय रखना १७९८
३०१–सूर्यका कर्णको समझाते हुए उसे इन्द्रको कुण्डल न देनेका आदेश देना ... १८००
३०२–सूर्य-कर्ण-संवाद, सूर्यकी आज्ञाके अनुसार कर्णका इन्द्रसे शक्ति लेकर ही उन्हें कुण्डल और कवच देनेका निश्चय ... १८०२
३०३–कुन्तिभोजके यहाँ महर्षि दुर्वासाका आगमन तथा राजाका उनकी सेवाके लिये पृथाको आवश्यक उपदेश देना ... १८०४
३०४–कुन्तीका पितासे वार्तालाप और ब्राह्मणकी परिचर्या १८०६
३०५–कुन्तीकी सेवासे संतुष्ट होकर तपस्वी ब्राह्मणका उसको मन्त्रका उपदेश देना ... १८०७
३०६–कुन्तीके द्वारा सूर्यदेवताका आवाहन तथा कुन्ती-सूर्य-संवाद १८०९
३०७–सूर्यद्वारा कुन्तीके उदरमें गर्भस्थापन ... १८११
३०८–कर्णका जन्म, कुन्तीका उसे पिटारीमें रखकर जलमें बहा देना और विलाप करना ... १८१३
३०९–अधिरथ सूत तथा उसकी पत्नी राधाको बालक कर्णकी प्राप्ति, राधाके द्वारा उसका पालन, हस्तिनापुरमें उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा कर्णके पास इन्द्रका आगमन ... १८१५
३१०–इन्द्रका कर्णको अमोघ-शक्ति देकर बदलेमें उसके कवच-कुण्डल लेना ... १८१७

(आरणेयपर्व)

३११–ब्राह्मणकी अरणि एवं मन्थन-काष्ठका पता लगानेके लिये पाण्डवोंका मृगके पीछे दौड़ना और दुखी होना १८२०

३१२–पानी लानेके लिये गये हुए नकुल आदि चार भाइयोंका सरोवरके तटपर अचेत होकर गिरना ··· ··· १८२२
३१३–यक्ष और युधिष्ठिरका प्रश्नोत्तर तथा युधिष्ठिरके उत्तरसे संतुष्ट हुए यक्षका चारों भाइयोंके जीवित होनेका वरदान देना ··· १८२५
३१४–यक्षका चारों भाइयोंको जिलाकर धर्मके रूपमें प्रकट हो युधिष्ठिरको वरदान देना ··· १८३५
३१५–अज्ञातवासके लिये अनुमति लेते समय शोकाकुल हुए युधिष्ठिरको महर्षि धौम्यका समझाना, भीमसेनका उत्साह देना तथा आश्रमसे दूर जाकर पाण्डवोंका परस्पर परामर्शके लिये बैठना ··· १८३७

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–पाण्डवोंका वनगमन ··· ··· ९४५
२–उर्वशीका अर्जुनको शाप देना ··· १०८१
३–नलका अपने पूर्वरूपमें प्रकट होकर दमयन्तीसे मिलना ··· ११६२
४–भगवान् शिवका आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको अपने सिरपर धारण करना ··· ११९३
५–जमदग्निका परशुरामसे कार्तवीर्य-अर्जुनका अपराध बताना ··· १२८०
६–महाप्रलयके समय भगवान् मत्स्यके सींगमें बँधी हुई मनु और सप्तर्षियों-सहित नौका ··· ··· १३९३
७–मार्कण्डेय मुनिको अक्षयवटकी शाखा-पर बालमुकुन्दका दर्शन ··· ··· १४८७
८–इन्द्रके द्वारा देवसेनाका स्कन्दको समर्पण ··· ··· १५९३
९–सागके एक पत्तेसे विश्वकी तृप्ति ··· १६८७

(सादा)

१०–भगवान् सूर्यका युधिष्ठिरको अक्षयपात्र देना ··· ··· ९६०
११–श्रीकृष्णके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन ··· ९९७
१२–द्रौपदी और भीमसेनका युधिष्ठिरसे संवाद ··· १०२८
१३–अर्जुनकी तपस्या ··· ··· १०६१
१४–अर्जुनका किरातवेषधारी भगवान् शिवपर बाण चलाना ··· १०६१
१५–नलकी पहचानके लिये दमयन्तीकी लोकपालोंसे प्रार्थना ··· ··· ११०५
१६–सती दमयन्तीके तेजसे पापी व्याधका विनाश ··· ··· ११२०
१७–भगवान् शङ्करका मङ्कणक मुनिको नृत्य करनेसे रोकना ··· ११८८
१८–देवताओंद्वारा वृत्रासुरके वधके लिये दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना ··· १२४१
१९–देवराज इन्द्रका वज्रके प्रहारसे वृत्रासुरका वध करना ··· ··· १२४१
२०–महर्षि कपिलकी क्रोधाग्निमें सगर-पुत्रोंका भस्म होना ··· ··· १२५५
२१–महर्षि अगस्त्यका समुद्र-पान ··· १२५५
२२–भगवान् परशुरामद्वारा सहस्रार्जुनका वध ··· १२८५
२३–प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंकी यादवोंसे भेंट ··· १२८५
२४–सुकन्याकी अश्विनीकुमारोंसे अपने पतिको बतला देनेकी प्रार्थना ··· १२९६
२५–राजा शिबिका कबूतरकी रक्षाके लिये बाजको अपने शरीरका मांस काटकर देना ··· १३१३
२६–द्रौपदीका भीमसेनको सौगन्धिक पुष्प भेंट करके वैसे ही और पुष्प लानेका आग्रह ··· १३५३
२७–स्वर्गसे लौटकर अर्जुन धर्मराजको प्रणाम कर रहे हैं ··· ··· १४१२

२८—वनमें पाण्डवोंसे श्रीकृष्ण-सत्यभामाका मिलना १४६१
२९—तार्क्ष्यको सरस्वतीका उपदेश ··· १४७५
३०—तपस्वीके वेशमें मण्डूकराजका राजाको आश्वासन ··· ··· १५०४
३१—ययातिसे ब्राह्मणकी याचना ··· १५०४
३२—भगवान् विष्णुके द्वारा मधुकैटभका जाँघोंपर वध ··· ··· १५३९
३३—माता-पिताके भक्त धर्मव्याध और कौशिक ब्राह्मण ··· ··· १५७०
३४—कार्तिकेयके द्वारा महिषासुरका वध ··· १६१५
३५—द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद ··· ··· १६१९
३६—अर्जुन-चित्रसेन-युद्ध ··· ··· १६४७
३७—पाण्डवोंके पास दुर्योधनका दूत ··· १६८३
३८—मुद्गलका स्वर्ग जानेसे इन्कार ··· १६८३
३९—सीताजीका रावणको फटकारना ··· १७४०
४०—हनुमान्‌जीकी श्रीसीताजीसे भेंट ··· १७४०
४१—यम-सावित्री ··· ··· १७८३
४२—इन्द्रका शक्ति-दान ··· ··· १७९३
४३—युधिष्ठिर और बगुलारूपधारी यक्ष ··· १७९३
४४—(१८४ लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥
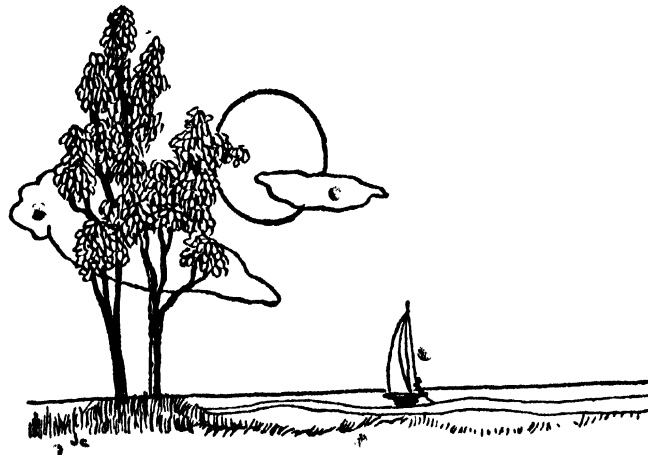
विराटपर्व

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

(पाण्डवप्रवेशपर्व)

१–विराटनगरमें अज्ञातवास करनेके लिये पाण्डवोंकी गुप्त मन्त्रणा तथा युधिष्ठिरके द्वारा अपने भावी कार्यक्रमका दिग्दर्शन ... १८४१
२–भीमसेन और अर्जुनद्वारा विराटनगरमें किये जानेवाले अपने अनुकूल कार्योंका निर्देश १८४३
३–नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीद्वारा अपने-अपने भावी कर्तव्योंका दिग्दर्शन ... १८४६
४–धौम्यका पाण्डवोंको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना और सबका अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको जाना १८४८
५–पाण्डवोंका विराटनगरके समीप पहुँचकर श्मशानमें एक शमीवृक्षपर अपने अस्त्र-शस्त्र रखना १८५३
६–युधिष्ठिरद्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति और देवीका प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन्हें वर देना ... १८५५
७–युधिष्ठिरका राजसभामें जाकर विराटसे मिलना और वहाँ आदरपूर्वक निवास पाना ... १८५८
८–भीमसेनका राजा विराटकी सभामें प्रवेश और राजाके द्वारा आश्वासन पाना ... १८६१
९–द्रौपदीका सैरन्ध्रीके वेशमें विराटके रनिवासमें जाकर रानी सुदेष्णासे वार्तालाप करना और वहाँ निवास पाना १८६३
१०–सहदेवका राजा विराटके साथ वार्तालाप और गौओंकी देख-भालके लिये उनकी नियुक्ति १८६६
११–अर्जुनका राजा विराटसे मिलना और राजाके द्वारा कन्याओंको नृत्य आदिकी शिक्षा देनेके लिये उनकी नियुक्त करना ... १८६८
१२–नकुलका विराटके अश्वोंकी देख-रेखमें नियुक्त होना १८७०

(समयपालनपर्व)

१३–भीमसेनके द्वारा जीमूत नामक विश्वविख्यात मल्लका वध १८७२

(कीचकवधपर्व)

१४–कीचकका द्रौपदीपर आसक्त हो उससे प्रणय-याचना करना और द्रौपदीका उसे फटकारना १८७६
१५–रानी सुदेष्णाका द्रौपदीको कीचकके घर भेजना १८८१
१६–कीचकद्वारा द्रौपदीका अपमान ... १८८५
१७–द्रौपदीका भीमसेनके समीप जाना ... १८९५
१८–द्रौपदीका भीमसेनके प्रति अपने दुःखके उद्गार प्रकट करना ... १८९६
१९–पाण्डवोंके दुःखसे दुःखित द्रौपदीका भीमसेनके सम्मुख विलाप १८९९
२०–द्रौपदीद्वारा भीमसेनसे अपना दुःख निवेदन करना १९०३
२१–भीमसेन और द्रौपदीका संवाद ... १९०५
२२–कीचक और भीमसेनका युद्ध तथा कीचकवध १९०९
२३–उपकीचकोंका सैरन्ध्रीको बाँधकर श्मशानभूमिमें ले जाना और भीमसेनका उन सबको मारकर सैरन्ध्रीको छुड़ाना १९१५
२४–द्रौपदीका राजमहलमें लौटकर आना और बृहन्नला एवं सुदेष्णासे उसकी बातचीत १९१८

(गोहरणपर्व)

२५–दुर्योधनके पास उसके गुप्तचरोंका आना और उनका पाण्डवोंके विषयमें कुछ पता न लगा—यह बताकर कीचकवधका वृत्तान्त सुनाना १९२१
२६–दुर्योधनका सभासदोंसे पाण्डवोंका पता लगानेके लिये परामर्श तथा इस विषयमें कर्ण और दुःशासनकी सम्मति १९२३
२७–आचार्य द्रोणकी सम्मति ... १९२४
२८–युधिष्ठिरकी महिमा कहते हुए भीष्मकी पाण्डवोंके अन्वेषणके विषयमें सम्मति ... १९२५
२९–कृपाचार्यकी सम्मति और दुर्योधनका निश्चय १९२८
३०–सुशर्माके प्रस्तावके अनुसार त्रिगर्तों और कौरवोंका मत्स्यदेशपर धावा ... १९३०
३१–चारों पाण्डवोंसहित राजा विराटकी सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान १९३२
३२–मत्स्य तथा त्रिगर्तदेशीय सेनाओंका परस्पर युद्ध १९३५
३३–सुशर्माका विराटको पकड़कर ले जाना, पाण्डवोंके प्रयत्नसे उनका छुटकारा, भीमद्वारा सुशर्माका निग्रह और युधिष्ठिरका अनुग्रह करके उसे छोड़ देना १९३८
३४–राजा विराटद्वारा पाण्डवोंका सम्मान, युधिष्ठिरद्वारा राजाका अभिनन्दन तथा विराटनगरमें राजाकी विजय-घोषणा ... १९४२
३५–कौरवोंद्वारा उत्तर दिशाकी ओरसे आकर विराटकी गौओंका अपहरण और गोपाध्यक्षका उत्तरकुमारको युद्धके लिये उत्साह दिलाना १९४४
३६–उत्तरका अपने लिये सारथि ढूँढ़नेका प्रस्ताव, अर्जुनकी सम्मतिसे द्रौपदीका बृहन्नलाको सारथि बनानेके लिये सुझाव देना ... १९४६
३७–बृहन्नलाको सारथि बनाकर राजकुमार उत्तरका रणभूमिकी ओर प्रस्थान ... १९४८
३८–उत्तरकुमारका भय और अर्जुनका उसे आश्वासन देकर रथपर चढ़ाना १९५१
३९–द्रोणाचार्यद्वारा अर्जुनके अलौकिक पराक्रमकी प्रशंसा १९५५

४०–अर्जुनका उत्तरको शमीवृक्षसे अस्त्र उतारनेके लिये आदेश ··· ··· १९५७
४१–उत्तरका अर्जुनके आदेशके अनुसार शमीवृक्षसे पाण्डवोंके दिव्य धनुष आदि उतारना ··· १९५८
४२–उत्तरका बृहन्नलासे पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्रोंके विषयमें प्रश्न करना ··· ··· १९५९
४३–बृहन्नलाद्वारा उत्तरको पाण्डवोंके आयुधोंका परिचय कराना ··· ··· १९६०
४४–अर्जुनका उत्तरकुमारसे अपना और अपने भाइयोंका यथार्थ परिचय देना ··· १९६२
४५–अर्जुनद्वारा युद्धकी तैयारी, अस्त्र-शस्त्रोंका स्मरण, उनसे वार्तालाप तथा उत्तरके भयका निवारण ··· ··· १९६४
४६–उत्तरके रथपर अर्जुनको ध्वजकी प्राप्ति, अर्जुनका शङ्खनाद और द्रोणाचार्यका कौरवोंसे उत्पातसूचक अपशकुनोंका वर्णन ··· १९६७
४७–दुर्योधनके द्वारा युद्धका निश्चय तथा कर्णकी उक्ति ··· ··· १९७०
४८–कर्णकी आत्मप्रशंसापूर्ण अहंकारोक्ति ··· १९७२
४९–कृपाचार्यका कर्णको फटकारते हुए युद्धके विषयमें अपना विचार बताना ··· १९७४
५०–अश्वत्थामाके उद्गार ··· ··· १९७६
५१–भीष्मजीके द्वारा सेनामें शान्ति और एकता बनाये रखनेकी चेष्टा तथा द्रोणाचार्यके द्वारा दुर्योधनकी रक्षाके लिये प्रयत्न ··· १९७८
५२–पितामह भीष्मकी सम्मति ··· १९८०
५३–अर्जुनका दुर्योधनकी सेनापर आक्रमण करके गौओंको लौटा लेना ··· ··· १९८२
५४–अर्जुनका कर्णपर आक्रमण, विकर्णकी पराजय, शत्रुंतप और संग्रामजित्‌का वध, कर्ण और अर्जुनका युद्ध तथा कर्णका पलायन ··· १९८४
५५–अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका संहार और उत्तरका उनके रथको कृपाचार्यके पास ले जाना ··· १९८८
५६–अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये देवताओंका आकाशमें विमानोंपर आगमन ··· १९९३
५७–कृपाचार्य और अर्जुनका युद्ध तथा कौरवपक्षके सैनिकोंद्वारा कृपाचार्यको हटा ले जाना ··· १९९४
५८–अर्जुनका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और आचार्यका पलायन ··· ··· १९९७
५९–अश्वत्थामाके साथ अर्जुनका युद्ध ··· २००२
६०–अर्जुन और कर्णका संवाद तथा कर्णका अर्जुनसे हारकर भागना ··· ··· २००४
६१–अर्जुनका उत्तरकुमारको आश्वासन तथा अर्जुनसे दुःशासन आदिकी पराजय ··· २००६
६२–अर्जुनका सब योद्धाओं और महारथियोंके साथ युद्ध ··· ··· २००९
६३–अर्जुनपर समस्त कौरवपक्षीय महारथियोंका आक्रमण और सबका युद्धभूमिसे पीठ दिखाकर भागना ··· ··· २०११
६४–अर्जुन और भीष्मका अद्भुत युद्ध तथा मूर्छित भीष्मका सारथिद्वारा रणभूमिसे हटाया जाना २०१२
६५–अर्जुन और दुर्योधनका युद्ध, विकर्ण आदि योद्धाओंसहित दुर्योधनका युद्धके मैदानसे भागना २०१५
६६–अर्जुनके द्वारा समस्त कौरवदलकी पराजय तथा कौरवोंका स्वदेशको प्रस्थान ··· २०१७
६७–विजयी अर्जुन और उत्तरका राजधानीकी ओर प्रस्थान ··· ··· २०२१
६८–राजा विराटकी उत्तरके विषयमें चिन्ता, विजयी उत्तरका नगरमें प्रवेश, प्रजाओंद्वारा उनका स्वागत, विराटद्वारा युधिष्ठिरका तिरस्कार और क्षमा-प्रार्थना एवं उत्तरसे युद्धका समाचार पूछना २०२३
६९–राजा विराट और उत्तरकी विजयके विषयमें बातचीत ··· ··· २०२९

(वैवाहिकपर्व)

७०–अर्जुनका राजा विराटको महाराज युधिष्ठिरका परिचय देना ··· ··· २०३०
७१–विराटको अन्य पाण्डवोंका भी परिचय प्राप्त होना तथा विराटके द्वारा युधिष्ठिरको राज्य समर्पण करके अर्जुनके साथ उत्तराके विवाहका प्रस्ताव करना ··· ··· २०३२
७२–अर्जुनका अपनी पुत्रवधूके रूपमें उत्तराको ग्रहण करना एवं अभिमन्यु और उत्तराका विवाह ··· २०३५

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–भीमसेन और द्रौपदी ··· ··· १९०७
२–कीचक-वध ··· ··· १९०७
३–कौरवोंद्वारा विराटकी गायोंका हरण ··· १९४४

(सादा)

४–युधिष्ठिरद्वारा देवीकी स्तुति ··· १८५६
५–विराटके यहाँ पाण्डव ··· १८६२
६–विराटकी राजसभामें कीचकद्वारा सैरन्ध्रीका अपमान ··· ··· १८८६
७–पाण्डवोंके अन्वेषणके विषयमें भीष्मकी सम्मति १९२६
८–सुशर्मापर भीमसेनका प्रहार ··· १९२६
९–अर्जुनका शङ्खनाद ··· ··· १९६७
१०–(३० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

उद्योगपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

(सैन्योद्योगपर्व)

१–राजा विराटकी सभामें भगवान् श्रीकृष्णका भाषण २०३९
२–बलरामजीका भाषण २०४२
३–सात्यकिके वीरोचित उद्गार २०४३
४–राजा द्रुपदकी सम्मति २०४५
५–भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकागमन, विराट और द्रुपदके संदेशसे राजाओंका पाण्डवपक्षकी ओरसे युद्धके लिये आगमन २०४७
६–द्रुपदका पुरोहितको दौत्यकर्मके लिये अनुमति देना तथा पुरोहितका हस्तिनापुरको प्रस्थान ... २०४८
७–श्रीकृष्णका दुर्योधन तथा अर्जुन दोनोंको सहायता देना २०५०
८–शल्यका दुर्योधनके सत्कारसे प्रसन्न हो उसे वर देना और युधिष्ठिरसे मिलकर उन्हें आश्वासन देना २०५३
९–इन्द्रके द्वारा त्रिशिराका वध, वृत्रासुरकी उत्पत्ति, उसके साथ इन्द्रका युद्ध तथा देवताओंकी पराजय २०५७
१०–इन्द्रसहित देवताओंका भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और इन्द्रका उनके आज्ञानुसार वृत्रासुरसे संधि करके अवसर पाकर उसे मारना एवं ब्रह्महत्याके भयसे जलमें छिपना ... २०६२
११–देवताओं तथा ऋषियोंके अनुरोधसे राजा नहुषका इन्द्रके पदपर अभिषिक्त होना एवं काम-भोगमें आसक्त होना और चिन्तामें पड़ी हुई इन्द्राणीको बृहस्पतिका आश्वासन ... २०६६
१२–देवता-नहुष-संवाद, बृहस्पतिके द्वारा इन्द्राणीकी रक्षा तथा इन्द्राणीका नहुषके पास कुछ समयकी अवधि माँगनेके लिये जाना ... २०६८
१३–नहुषका इन्द्राणीको कुछ कालकी अवधि देना, इन्द्रका ब्रह्महत्यासे उद्धार तथा शचीद्वारा रात्रिदेवीकी उपासना ... २०७१
१४–उपश्रुति देवीकी सहायतासे इन्द्राणीकी इन्द्रसे भेंट २०७३
१५–इन्द्रकी आज्ञासे इन्द्राणीके अनुरोधपर नहुषका ऋषियोंको अपना वाहन बनाना तथा बृहस्पति और अग्निका संवाद ... २०७४
१६–बृहस्पतिद्वारा अग्नि और इन्द्रका स्तवन तथा बृहस्पति एवं लोकपालोंकी इन्द्रसे बातचीत ... २०७७
१७–अगस्त्यजीका इन्द्रसे नहुषके पतनका वृत्तान्त बताना २०८०
१८–इन्द्रका स्वर्गमें जाकर अपने राज्यका पालन करना, शल्यका युधिष्ठिरको आश्वासन देना और उनसे विदा लेकर दुर्योधनके यहाँ जाना २०८२
१९–युधिष्ठिर और दुर्योधनके यहाँ सहायताके लिये आयी हुई सेनाओंका संक्षिप्त विवरण ... २०८३

(संजययानपर्व)

२०–द्रुपदके पुरोहितका कौरवसभामें भाषण ... २०८६
२१–भीष्मके द्वारा द्रुपदके पुरोहितकी बातका समर्थन करते हुए अर्जुनकी प्रशंसा करना, इसके विरुद्ध कर्णके आक्षेपपूर्ण वचन तथा धृतराष्ट्रद्वारा भीष्मकी बातका समर्थन करते हुए दूतको सम्मानित करके विदा करना ... २०८७
२२–धृतराष्ट्रका संजयसे पाण्डवोंके प्रभाव-प्रतिभाका वर्णन करते हुए उसे संदेश देकर पाण्डवोंके पास भेजना २०८९
२३–संजयका युधिष्ठिरसे मिलकर उनकी कुशल पूछना एवं युधिष्ठिरका संजयसे कौरवपक्षका कुशल-समाचार पूछते हुए उससे सारगर्भित प्रश्न करना ... २०९४
२४–संजयका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उन्हें राजा धृतराष्ट्रका संदेश सुनानेकी प्रतिज्ञा करना ... २०९७
२५–संजयका युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रका संदेश सुनाना एवं अपनी ओरसे भी शान्तिके लिये प्रार्थना करना २०९८
२६–युधिष्ठिरका संजयको इन्द्रप्रस्थ लौटानेसे ही शान्ति होना सम्भव बतलाना ... २१००
२७–संजयका युधिष्ठिरको युद्धमें दोषकी सम्भावना बतलाकर उन्हें युद्धसे उपरत करनेका प्रयत्न करना २१०३
२८–संजयको युधिष्ठिरका उत्तर ... २१०६
२९–संजयकी बातोंका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीकृष्णका उसे धृतराष्ट्रके लिये चेतावनी देना ... २१०८
३०–संजयकी विदाई तथा युधिष्ठिरका संदेश ... २११५
३१–युधिष्ठिरका मुख्य-मुख्य कुरुवंशियोंके प्रति संदेश ... २१२०
३२–अर्जुनद्वारा कौरवोंके लिये संदेश देना, संजयका हस्तिनापुर जा धृतराष्ट्रसे मिलकर उन्हें युधिष्ठिरका कुशल-समाचार कहकर धृतराष्ट्रके कार्यकी निन्दा करना ... २१२२

(प्रजागरपर्व)

३३–धृतराष्ट्र-विदुर-संवाद ... २१२६
३४–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीके नीतियुक्त वचन ... २१३६

३५–विदुरके द्वारा केशिनीके लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन करते हुए धृतराष्ट्रको धर्मोपदेश ··· २१४२
३६–दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादका उल्लेख करके महाकुलीन लोगोंका लक्षण बतलाते हुए विदुरका धृतराष्ट्रको समझाना ··· २१४८
३७–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका हितोपदेश ··· २१५४
३८–विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश ··· २१६०
३९–धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश २१६३
४०–धर्मकी महत्ताका प्रतिपादन तथा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धर्मका संक्षिप्त वर्णन ··· २१६९

(सनत्सुजातपर्व)

४१–विदुरजीके द्वारा स्मरण करनेपर आये हुए सनत्सुजात ऋषिसे धृतराष्ट्रको उपदेश देनेके लिये उनकी प्रार्थना ··· ··· २१७२
४२–सनत्सुजातजीके द्वारा धृतराष्ट्रके विविध प्रश्नोंका उत्तर ··· ··· २१७३
४३–ब्रह्मज्ञानमें उपयोगी मौन, तप, त्याग, अप्रमाद एवं दम आदिके लक्षण तथा मदादि दोषोंका निरूपण ··· ··· २१७८
४४–ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मका निरूपण ··· २१८३
४५–गुण-दोषोंके लक्षणोंका वर्णन और ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन ··· ··· २१८६
४६–परमात्माके स्वरूपका वर्णन और योगीजनोंके द्वारा उनके साक्षात्कारका प्रतिपादन ··· २१८८

(यानसंधिपर्व)

४७–पाण्डवोंके यहाँसे लौटे हुए संजयका कौरवसभामें आगमन ··· ··· २१९३
४८–संजयका कौरवसभामें अर्जुनका संदेश सुनाना २१९४
४९–भीष्मका दुर्योधनको संधिके लिये समझाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना एवं कर्णपर आक्षेप करना, कर्णकी आत्मप्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसका पुनः उपहास एवं द्रोणाचार्यद्वारा भीष्मजीके कथनका अनुमोदन ··· ··· २२०६
५०–संजयद्वारा युधिष्ठिरके प्रधान सहायकोंका वर्णन २२१०
५१–भीमसेनके पराक्रमसे डरे हुए धृतराष्ट्रका विलाप २२१४
५२–धृतराष्ट्रद्वारा अर्जुनसे प्राप्त होनेवाले भयका वर्णन ··· ··· २२१८
५३–कौरवसभामें धृतराष्ट्रका युद्धसे भय दिखाकर शान्तिके लिये प्रस्ताव करना ··· २२२०
५४–संजयका धृतराष्ट्रको उनके दोष बताते हुए दुर्योधनपर शासन करनेकी सलाह देना ··· २२२१
५५–धृतराष्ट्रको धैर्य देते हुए दुर्योधनद्वारा अपने उत्कर्ष और पाण्डवोंके अपकर्षका वर्णन ··· २२२३
५६–संजयद्वारा अर्जुनके ध्वज एवं अश्वोंका तथा युधिष्ठिर आदिके घोड़ोंका वर्णन ··· २२२७
५७–संजयद्वारा पाण्डवोंकी युद्धविषयक तैयारीका वर्णन, धृतराष्ट्रका विलाप, दुर्योधनद्वारा अपनी प्रबलताका प्रतिपादन, धृतराष्ट्रका उसपर अविश्वास तथा संजयद्वारा धृष्टद्युम्नकी शक्ति एवं संदेशका कथन ··· २२२९
५८–धृतराष्ट्रका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना, दुर्योधनका अहंकारपूर्वक पाण्डवोंसे युद्ध करनेका ही निश्चय तथा धृतराष्ट्रका अन्य योद्धाओंको युद्धसे भय दिखाना ··· २२३३
५९–संजयका धृतराष्ट्रके पूछनेपर उन्हें श्रीकृष्ण और अर्जुनके अन्तःपुरमें कहे हुए संदेश सुनाना ··· ··· २२३६
६०–धृतराष्ट्रके द्वारा कौरव-पाण्डवोंकी शक्तिका तुलनात्मक वर्णन ··· ··· २२३८
६१–दुर्योधनद्वारा आत्मप्रशंसा ··· २२४०
६२–कर्णकी आत्मप्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसपर आक्षेप, कर्णका सभा त्यागकर जाना और भीष्मका उसके प्रति पुनः आक्षेपयुक्त वचन कहना ··· ··· २२४२
६३–दुर्योधनद्वारा अपने पक्षकी प्रबलताका वर्णन करना और विदुरका दमकी महिमा बताना २२४४
६४–विदुरका कौटुम्बिक कलहसे हानि बताते हुए धृतराष्ट्रको संधिकी सलाह देना ··· २२४६
६५–धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना ··· २२४८
६६–संजयका धृतराष्ट्रको अर्जुनका संदेश सुनाना २२५०
६७–धृतराष्ट्रके पास व्यास और गान्धारीका आगमन तथा व्यासजीका संजयको श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें कुछ कहनेका आदेश २२५१
६८–संजयका धृतराष्ट्रको भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा बतलाना ··· ··· २२५२
६९–संजयका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्ण-प्राप्ति एवं तत्त्वज्ञानका साधन बताना ··· २२५३
७०–भगवान् श्रीकृष्णके विभिन्न नामोंकी व्युत्पत्तियोंका कथन ··· ··· २२५५
७१–धृतराष्ट्रके द्वारा भगवद्-गुणगान ··· २२५७

(भगवद्यानपर्व)

७२–युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे अपना अभिप्राय निवेदन करना, श्रीकृष्णका शान्तिदूत बनकर कौरवसभामें जानेके लिये उद्यत होना और इस विषयमें उन दोनोंका वार्तालाप ··· २२५८
७३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको युद्धके लिये प्रोत्साहन देना ··· ··· २२६५

७४–भीमसेनका शान्तिविषयक प्रस्ताव ··· २२६८
७५–श्रीकृष्णका भीमसेनको उत्तेजित करना ··· २२७०
७६–भीमसेनका उत्तर ··· ··· २२७२
७७–श्रीकृष्णका भीमसेनको आश्वासन देना ··· २२७३
७८–अर्जुनका कथन ··· ··· २२७५
७९–श्रीकृष्णका अर्जुनको उत्तर देना ··· २२७६
८०–नकुलका निवेदन ··· ··· २२७८
८१–युद्धके लिये सहदेव तथा सात्यकिकी सम्मति और समस्त योद्धाओंका समर्थन ··· २२७९
८२–द्रौपदीका श्रीकृष्णसे अपना दुःख सुनाना और श्रीकृष्णका उसे आश्वासन देना ··· २२८०
८३–श्रीकृष्णका हस्तिनापुरको प्रस्थान, युधिष्ठिरका माता कुन्ती एवं कौरवोंके लिये संदेश तथा श्रीकृष्णको मार्गमें दिव्य महर्षियोंका दर्शन २२८३
८४–मार्गके शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन तथा मार्गमें लोगोंद्वारा सत्कार पाते हुए श्रीकृष्णका वृकस्थल पहुँचकर वहाँ विश्राम करना २२८९
८५–दुर्योधनका धृतराष्ट्र आदिकी अनुमतिसे श्रीकृष्णके स्वागत-सत्कारके लिये मार्गमें विश्राम-स्थान बनवाना ··· ··· २२९१
८६–धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी अगवानी करके उन्हें भेंट देने एवं दुःशासनके महलमें ठहरानेका विचार प्रकट करना ··· २२९३
८७–विदुरका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करनेके लिये समझाना ··· २२९४
८८–दुर्योधनका श्रीकृष्णके विषयमें अपने विचार कहना एवं उसकी कुमन्त्रणासे कुपित हो भीष्मजीका सभासे उठ जाना ··· २२९५
८९–श्रीकृष्णका स्वागत, धृतराष्ट्र तथा विदुरके घरोंपर उनका आतिथ्य ··· २२९७
९०–श्रीकृष्णका कुन्तीके समीप जाना एवं युधिष्ठिरका कुशल-समाचार पूछकर अपने दुःखोंका स्मरण करके विलाप करती हुई कुन्तीको आश्वासन देना ··· २३००
९१–श्रीकृष्णका दुर्योधनके घर जाना एवं उसके निमन्त्रणको अस्वीकार करके विदुरजीके घरपर भोजन करना ··· ··· २३०७
९२–विदुरजीका धृतराष्ट्रपुत्रोंकी दुर्भावना बताकर श्रीकृष्णको उनके कौरवसभामें जानेका अनौचित्य बतलाना ··· ··· २३१०
९३–श्रीकृष्णका कौरव-पाण्डवोंमें संधिस्थापनके प्रयत्नका औचित्य बताना ··· २३१२
९४–दुर्योधन एवं शकुनिके द्वारा बुलाये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णका रथपर बैठकर प्रस्थान एवं कौरवसभामें प्रवेश और स्वागतके पश्चात् आसनग्रहण ··· ··· २३१४
९५–कौरवसभामें श्रीकृष्णका प्रभावशाली भाषण २३१९
९६–परशुरामजीका दम्भोद्भवकी कथाद्वारा नर-नारायणस्वरूप अर्जुन और श्रीकृष्णका महत्त्व वर्णन करना ··· ··· २३२३
९७–कण्व मुनिका दुर्योधनको संधिके लिये समझाते हुए मातलिका उपाख्यान आरम्भ करना ··· २३२७
९८–मातलिका अपनी पुत्रीके लिये वर खोजनेके निमित्त नारदजीके साथ वरुणलोकमें भ्रमण करते हुए अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखना २३२९
९९–नारदजीके द्वारा पाताललोकका प्रदर्शन ··· २३३१
१००–हिरण्यपुरका दिग्दर्शन और वर्णन ··· २३३२
१०१–गरुडलोक तथा गरुडकी संतानोंका वर्णन ··· २३३४
१०२–सुरभि और उसकी संतानोंके साथ रसातलके सुखका वर्णन ··· ··· २३३५
१०३–नागलोकके नागोंका वर्णन और मातलिका नागकुमार सुमुखके साथ अपनी कन्याको ब्याहनेका निश्चय ··· ··· २३३६
१०४–नारदजीका नागराज आर्यकके सम्मुख सुमुखके साथ मातलिकी कन्याके विवाहका प्रस्ताव एवं मातलिका नारदजी, सुमुख एवं आर्यकके साथ इन्द्रके पास आकर उनके द्वारा सुमुखको दीर्घायु प्रदान कराना तथा सुमुख-गुणकेशी-विवाह ··· ··· २३३८
१०५–भगवान् विष्णुके द्वारा गरुडका गर्वभञ्जन तथा दुर्योधनद्वारा कण्वमुनिके उपदेशकी अवहेलना ··· ··· २३४०
१०६–नारदजीका दुर्योधनको समझाते हुए धर्मराजके द्वारा विश्वामित्रजीकी परीक्षा तथा गालवके विश्वामित्रसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये हठका वर्णन ··· ··· २३४३
१०७–गालवकी चिन्ता और गरुड़का आकर उन्हें आश्वासन देना ··· ··· २३४५
१०८–गरुड़का गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना २३४६
१०९–दक्षिण दिशाका वर्णन ··· २३४८
११०–पश्चिम दिशाका वर्णन ··· २३४९
१११–उत्तर दिशाका वर्णन ··· २३५१
११२–गरुडकी पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गालवका उनके वेगसे व्याकुल होना २३५३
११३–ऋषभ पर्वतके शिखरपर महर्षि गालव और गरुडकी तपस्विनी शाण्डिलीसे भेंट तथा गरुड और गालवका गुरुदक्षिणा चुकानेके विषयमें परस्पर विचार ··· २३५४
११४–गरुड और गालवका राजा ययातिके यहाँ जाकर गुरुको देनेके लिये श्यामकर्ण घोड़ोंकी याचना करना ··· ··· २३५६

११५–राजा ययातिका गालवको अपनी कन्या देना और गालवका उसे लेकर अयोध्या-नरेशके यहाँ जाना ··· ··· २३५८
११६–हर्यश्वका दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर ययाति-कन्याके गर्भसे वसुमना नामक पुत्र उत्पन्न करना और गालवका इस कन्याके साथ वहाँसे प्रस्थान ··· ··· २३५९
११७–दिवोदासका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न करना ··· २३६१
११८–उशीनरका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे शिवि नामक पुत्र उत्पन्न करना, गालवका उस कन्याको साथ लेकर जाना और मार्गमें गरुड़का दर्शन करना ··· ··· २३६२
११९–गालवका छः सौ घोड़ोंके साथ माधवीको विश्वामित्रजीकी सेवामें देना और उनके द्वारा उसके गर्भसे अष्टक नामक पुत्रकी उत्पत्ति होनेके बाद उस कन्याको ययातिके यहाँ लौटा देना ··· ··· २३६४
१२०–माधवीका वनमें जाकर तप करना तथा ययातिका स्वर्गमें जाकर सुखभोगके पश्चात् मोहवश तेजोहीन होना ··· ··· २३६५
१२१–ययातिका स्वर्गलोकसे पतन और उनके दौहित्रों, पुत्री तथा गालव मुनिका उन्हें पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचानेके लिये अपना-अपना पुण्य देनेके लिये उद्यत होना ··· २३६७
१२२–सत्सङ्ग एवं दौहित्रोंके पुण्यदानसे ययातिका पुनः स्वर्गारोहण ··· ··· २३६९
१२३–स्वर्गलोकमें ययातिका स्वागत, ययातिके पूछनेपर ब्रह्माजीका अभिमानको ही पतनका कारण बताना तथा नारदजीका दुर्योधनको समझाना ··· ··· २३७०
१२४–धृतराष्ट्रके अनुरोधसे भगवान् श्रीकृष्णका दुर्योधनको समझाना ··· ··· २३७२
१२५–भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना ··· ··· २३७७
१२६–भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको पुनः समझाना २३७९
१२७–श्रीकृष्णको दुर्योधनका उत्तर, उसका पाण्डवोंको राज्य न देनेका निश्चय ··· २३८०
१२८–श्रीकृष्णका दुर्योधनको फटकारना और उसे कुपित होकर सभासे जाते देख उसे कैद करनेकी सलाह देना ··· ··· २३८२
१२९–धृतराष्ट्रका गान्धारीको बुलाना और उसका दुर्योधनको समझाना ··· ··· २३८५
१३०–दुर्योधनके षड्यन्त्रका सात्यकिद्वारा भंडाफोड़, श्रीकृष्णकी सिंहगर्जना तथा धृतराष्ट्र और विदुरका दुर्योधनको पुनः समझाना २३८९
१३१–भगवान् श्रीकृष्णका विश्वरूप दर्शन कराकर कौरवसभासे प्रस्थान ··· २३९३
१३२–श्रीकृष्णके पूछनेपर कुन्तीका उन्हें पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश देना ··· २३९५
१३३–कुन्तीके द्वारा विदुलोपाख्यानका आरम्भ, विदुलाका रणभूमिसे भागकर आये हुए अपने पुत्रको कड़ी फटकार देकर पुनः युद्धके लिये उत्साहित करना ··· २३९८
१३४–विदुलाका अपने पुत्रको युद्धके लिये उत्साहित करना ··· ··· २४०१
१३५–विदुला और उसके पुत्रका संवाद—विदुलाके द्वारा कार्यमें सफलता प्राप्त करने तथा शत्रुवशीकरणके उपायोंका निर्देश ··· २४०४
१३६–विदुलाके उपदेशसे उसके पुत्रका युद्धके लिये उद्यत होना ··· ··· २४०७
१३७–कुन्तीका पाण्डवोंके लिये संदेश देना और श्रीकृष्णका उनसे विदा लेकर उपप्लव्य नगरमें जाना ··· ··· २४०९
१३८–भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको समझाना २४११
१३९–भीष्मसे वार्तालाप आरम्भ करके द्रोणाचार्यका दुर्योधनको पुनः संधिके लिये समझाना ··· २४१३
१४०–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको पाण्डवपक्षमें आ जानेके लिये समझाना ··· २४१५
१४१–कर्णका दुर्योधनके पक्षमें रहनेके निश्चित विचारका प्रतिपादन करते हुए समरयज्ञके रूपकका वर्णन करना ··· २४१६
१४२–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णसे पाण्डवपक्षकी निश्चित विजयका प्रतिपादन ··· २४२०
१४३–कर्णके द्वारा पाण्डवोंकी विजय और कौरवोंकी पराजय सूचित करनेवाले लक्षणों एवं अपने स्वप्नका वर्णन ··· ··· २४२१
१४४–विदुरकी बात सुनकर युद्धके भावी दुष्परिणामसे व्यथित हुई कुन्तीका बहुत सोच-विचारके बाद कर्णके पास जाना ··· २४२५
१४५–कुन्तीका कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताकर उससे पाण्डवपक्षमें मिल जानेका अनुरोध २४२७
१४६–कर्णका कुन्तीको उत्तर तथा अर्जुनको छोड़कर शेष चारों पाण्डवोंको न मारनेकी प्रतिज्ञा ··· २४२८
१४७–युधिष्ठिरके पूछनेपर श्रीकृष्णका कौरव-सभामें व्यक्त किये हुए भीष्मजीके वचन सुनाना २४३०
१४८–द्रोणाचार्य, विदुर तथा गान्धारीके युक्तियुक्त एवं महत्त्वपूर्ण वचनोंका भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कथन ··· ··· २४३३

१४९–दुर्योधनके प्रति धृतराष्ट्रके युक्तिसंगत वचन–पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये आदेश ··· २४३६
१५०–श्रीकृष्णका कौरवोंके प्रति साम, दान और भेदनीतिके प्रयोगकी असफलता बताकर दण्डके प्रयोगपर जोर देना ··· २४३८

(सैन्यनिर्याणपर्व)

१५१–पाण्डवपक्षके सेनापतिका चुनाव तथा पाण्डवसेनाका कुरुक्षेत्रमें प्रवेश २४३९
१५२–कुरुक्षेत्रमें पाण्डवसेनाका पड़ाव तथा शिविर-निर्माण ··· २४४४
१५३–दुर्योधनका सेनाको सुसज्जित होने और शिविर निर्माण करनेके लिये आज्ञा देना तथा सैनिकोंकी रणयात्राके लिये तैयारी २४४५
१५४–युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने समयोचित कर्तव्यके विषयमें पूछना, भगवान्का युद्धको ही कर्तव्य बताना तथा इस विषयमें युधिष्ठिरका संताप और अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका समर्थन ··· २४४७
१५५–दुर्योधनके द्वारा सेनाओंका विभाजन और पृथक्-पृथक् अक्षौहिणियोंके सेनापतियोंका अभिषेक ··· ··· २४४९
१५६–दुर्योधनके द्वारा भीष्मजीका प्रधान-सेनापतिके पदपर अभिषेक और कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर शिविर-निर्माण ··· ··· २४५१
१५७–युधिष्ठिरके द्वारा अपने सेनापतियोंका अभिषेक, यदुवंशियोंसहित बलरामजीका आगमन तथा पाण्डवोंसे विदा लेकर उनका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान ··· २४५४
१५८–रुक्मीका सहायता देनेके लिये आना; परंतु पाण्डव और कौरव दोनों पक्षोंके द्वारा कोरा उत्तर पाकर लौट जाना ··· २४५६
१५९–धृतराष्ट्र और संजयका संवाद ··· २४५९

(उलूकदूतागमनपर्व)

१६०–दुर्योधनका उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना और उनसे कहनेके लिये संदेश देना २४६०
१६१–पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचकर उलूकका भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना ··· २४६८
१६२–पाण्डवपक्षकी ओरसे दुर्योधनको उसके संदेशका उत्तर ··· ··· २४७१
१६३–पाँचों पाण्डवों, विराट, द्रुपद, शिखण्डी और धृष्टद्युम्नका संदेश लेकर उलूकका लौटना और उलूककी बात सुनकर दुर्योधनका सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश देना ·· ··· २४७५
१६४–पाण्डवसेनाका युद्धके मैदानमें जाना और धृष्टद्युम्नके द्वारा योद्धाओंकी अपने-अपने योग्य विपक्षियोंके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्ति २४७८

(रथातिरथसंख्यानपर्व)

१६५–दुर्योधनके पूछनेपर भीष्मका कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका परिचय देना ··· २४७९
१६६–कौरवपक्षके रथियोंका परिचय ··· २४८१
१६७–कौरवपक्षके रथी, महारथी और अतिरथियोंका वर्णन ··· ··· २४८३
१६८–कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका वर्णन, कर्ण और भीष्मका रोषपूर्वक संवाद तथा दुर्योधनद्वारा उसका निवारण ··· २४८५
१६९–पाण्डवपक्षके रथी आदिका एवं उनकी महिमाका वर्णन ··· ··· २४८८
१७०–पाण्डवपक्षके रथियों और महारथियोंका वर्णन तथा विराट और द्रुपदकी प्रशंसा ··· २४८९
१७१–पाण्डवपक्षके रथी, महारथी एवं अतिरथी आदिका वर्णन ··· ··· २४९०
१७२–भीष्मका पाण्डवपक्षके अतिरथी वीरोंका वर्णन करते हुए शिखण्डी और पाण्डवोंका वध न करनेका कथन ··· २४९२

(अम्बोपाख्यानपर्व)

१७३–अम्बोपाख्यानका आरम्भ—भीष्मजीके द्वारा काशिराजकी कन्याओंका अपहरण ··· २४९३
१७४–अम्बाका शाल्वराजके प्रति अनुराग प्रकट करके उनके पास जानेके लिये भीष्मसे आज्ञा माँगना ··· ··· २४९५
१७५–अम्बाका शाल्वके यहाँ जाना और उससे परित्यक्त होकर तापसोंके आश्रममें आना, वहाँ शैखावत्य और अम्बाका संवाद ··· २४९५
१७६–तापसोंके आश्रममें राजर्षि होत्रवाहन और अकृतव्रणका आगमन तथा उनसे अम्बाकी बातचीत ··· ··· २४९८
१७७–अकृतव्रण और परशुरामजीकी अम्बासे बातचीत ··· ··· २५०२
१७८–अम्बा और परशुरामजीका संवाद, अकृतव्रणकी सलाह, परशुराम और भीष्मकी रोषपूर्ण बातचीत तथा उन दोनोंका युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें उतरना ··· २५०४
१७९–संकल्पनिर्मित रथपर आरूढ़ परशुरामजीके साथ भीष्मका युद्ध प्रारम्भ करना ··· २५१०
१८०–भीष्म और परशुरामका घोर युद्ध ··· २५१२
१८१–भीष्म और परशुरामका युद्ध ··· २५१५
१८२–भीष्म और परशुरामका युद्ध ··· २५१६

१८३–भीष्मको अष्टवसुओंसे प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्ति २५१८
१८४–भीष्म तथा परशुरामजीका एक दूसरेपर शक्ति और ब्रह्मास्त्रका प्रयोग ··· २५१९
१८५–देवताओंके मना करनेसे भीष्मका प्रस्वापनास्त्रको प्रयोगमें न लाना तथा पितर, देवता और गङ्गाके आग्रहसे भीष्म और परशुरामके युद्धकी समाप्ति · २५२०
१८६–अम्बाकी कठोर तपस्या · २५२३
१८७–अम्बाका द्वितीय जन्ममें पुनः तप करना और महादेवजीसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति तथा उसका चिताकी आगमें प्रवेश ··· २५२५
१८८–अम्बाका राजा द्रुपदके यहाँ कन्याके रूपमें जन्म, राजा तथा रानीका उसे पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके उसका नाम शिखण्डी रखना ··· २५२६
१८९–शिखण्डीका विवाह तथा उसके स्त्री होनेका समाचार पाकर उसके श्वशुर दशार्णराजका महान् कोप ·· २५२८
१९०–हिरण्यवर्माके आक्रमणके भयसे घबराये हुए द्रुपदका अपनी महारानीसे संकटनिवारणका उपाय पूछना ··· ··· २५२९
१९१–द्रुपदपत्नीका उत्तर, द्रुपदके द्वारा नगररक्षाकी व्यवस्था और देवाराधन तथा शिखण्डिनीका वनमें जाकर स्थूणाकर्ण नामक यक्षसे अपने दुःखनिवारणके लिये प्रार्थना करना ··· २५३०
१९२–शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्ति, द्रुपद और हिरण्यवर्माकी प्रसन्नता, स्थूणाकर्णको कुबेरका शाप तथा भीष्मका शिखण्डीको न मारनेका निश्चय २५३२
१९३–दुर्योधनके पूछनेपर भीष्म आदिके द्वारा अपनी-अपनी शक्तिका वर्णन २५३७
१९४–अर्जुनके द्वारा अपनी, अपने सहायकोंकी तथा युधिष्ठिरकी भी शक्तिका परिचय देना २५३८
१९५–कौरवसेनाका रणके लिये प्रस्थान ··· २५३९
१९६–पाण्डवसेनाका युद्धके लिये प्रस्थान ··· २५४१

चित्र-सूची

(रंगीन)

१–विराटकी राजसभामें श्रीकृष्णका भाषण ··· ··· २०३९
२–संजयकी श्रीकृष्ण एवं पाण्डवोंसे भेंट ··· २०९८
३–द्रौपदीका श्रीकृष्णसे खुले केशोंकी बात याद रखनेका अनुरोध ··· २१९३
४–हस्तिनापुरके मार्गमें ऋषियोंका आकर श्रीकृष्णसे मिलना ··· ··· २२८७
५–कौरवसभामें विराट् रूप ··· ··· २३९३

(सादा)

६–दुर्योधन और अर्जुनका श्रीकृष्णसे युद्धके लिये सहायता माँगना ··· ··· २०५०
७–नहुषका स्वर्गसे पतन ··· ··· २०८०
८–आकाशचारी भगवान् सूर्यदेव ··· २१०९
९–विदुर और धृतराष्ट्र ··· ··· २१२६
१०–प्रह्लादजीका न्याय ··· ··· २१४५
११–आत्रेय मुनि और साध्यगण ··· २१४५
१२–श्रीसनत्सुजात और महाराज धृतराष्ट्र ··· २१७३
१३–धृतराष्ट्रकी सभामें संजय पाण्डवोंका संदेश सुना रहे हैं ··· २२१६
१४–भीमसेनका बल बखानते हुए धृतराष्ट्रका विलाप ··· २२१६
१५–धृतराष्ट्रके द्वारा श्रीकृष्णका स्वागत २२९९
१६–श्रीकृष्णका कौरव-सभामें प्रवेश २३१७
१७–गोमाता सुरभि २३३५
१८–भगवान् विष्णुके द्वारा गरुड़का गर्वनाश ··· २३३५
१९–ययातिका स्वर्गारोहण ··· २३७०
२०–दुर्योधनको गान्धारीकी फटकार २३८६
२१–भगवान् श्रीकृष्ण कर्णको समझा रहे २४१५
२२–पाण्डवोंके डेरेमें बलरामजी २४५५
२३–पाण्डवोंकी विशाल सेना ··· २४७८
२४–भीष्म-दुर्योधन-संवाद ··· २४८०
२५–पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न ··· २४९०
२६–भीष्म और परशुरामके युद्धमें नारदजी-द्वारा बीच-बचाव ·· २५२१
२७–(६० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

भीष्मपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व)	
१	कुरुक्षेत्रमें उभय पक्षके सैनिकोंकी स्थिति तथा युद्धके नियमोंका निर्माण ...	२५४३
२	वेदव्यासजीके द्वारा संजयको दिव्य दृष्टिका दान तथा भयसूचक उत्पातोंका वर्णन ...	२५४५
३	व्यासजीके द्वारा अमङ्गलसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णन ...	२५४७
४	धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयके द्वारा भूमिके महत्त्वका वर्णन	२५५३
५	पञ्चमहाभूतों तथा सुदर्शनद्वीपका संक्षिप्त वर्णन	२५५५
६	सुदर्शनके वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि, गङ्गानदी तथा शशाकृतिका वर्णन	२५५६
७	उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान्‌का वर्णन	२५५९
८	रमणक, हिरण्यक, शृङ्गवान् पर्वत तथा ऐरावतवर्षका वर्णन	२५६१
९	भारतवर्षकी नदियों, देशों तथा जनपदोंके नाम और भूमिका महत्त्व ...	२५६३
१०	भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण	२५६६
	(भूमिपर्व)	
११	शाकद्वीपका वर्णन ...	२५६७
१२	कुश, क्रौञ्च और पुष्कर आदि द्वीपोंका तथा राहु, सूर्य एवं चन्द्रमाके प्रमाणका वर्णन	२५७०
	(श्रीमद्भगवद्गीतापर्व)	
१३	संजयका युद्धभूमिसे लौटकर धृतराष्ट्रको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाना ...	२५७३
१४	धृतराष्ट्रका विलाप करते हुए भीष्मजीके मारे जानेकी घटनाको विस्तारपूर्वक जाननेके लिये संजयसे प्रश्न करना ...	२५७४
१५	संजयका युद्धके वृत्तान्तका वर्णन आरम्भ करना—दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये समुचित व्यवस्था करनेका आदेश	२५७९
१६	दुर्योधनकी सेनाका वर्णन ...	२५८०
१७	कौरवमहारथियोंका युद्धके लिये आगे बढ़ना तथा उनके व्यूह, वाहन और ध्वज आदिका वर्णन	२५८२
१८	कौरवसेनाका कोलाहल तथा भीष्मके रक्षकोंका वर्णन	२५८५
१९	व्यूहनिर्माणके विषयमें युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा वज्रव्यूहकी रचना, भीमसेनकी अध्यक्षतामें सेनाका आगे बढ़ना	२५८६
२०	दोनों सेनाओंकी स्थिति तथा कौरवसेनाका अभियान	२५८९
२१	कौरवसेनाको देखकर युधिष्ठिरका विषाद करना और 'श्रीकृष्णकी कृपासे ही विजय होती है' यह कहकर अर्जुनका उन्हें आश्वासन देना	२५९१
२२	युधिष्ठिरकी रणयात्रा, अर्जुन और भीमसेनकी प्रशंसा तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे कौरवसेनाको मारनेके लिये कहना	२५९२
२३	अर्जुनके द्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति, वरप्राप्ति और अर्जुनकृत दुर्गास्तवनके पाठकी महिमा	२५९४
२४	सैनिकोंके हर्ष और उत्साहके विषयमें धृतराष्ट्र और संजयका संवाद	२५९६
२५	(श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रथमोऽध्यायः) दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान वीरों एवं शङ्खध्वनिका वर्णन तथा स्वजनवधके पापसे भयभीत हुए अर्जुनका विषाद ...	२५९७
२६	(श्रीमद्भगवद्गीतायां द्वितीयोऽध्यायः) अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए भगवान्‌के द्वारा नित्यानित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोग, कर्मयोग एवं स्थितप्रज्ञकी स्थिति और महिमाका प्रतिपादन ...	२६०१
२७	(श्रीमद्भगवद्गीतायां तृतीयोऽध्यायः) ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनोंके अनुसार कर्तव्य कर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन एवं स्वधर्मपालनकी महिमा तथा कामनिरोधके उपायका वर्णन ...	२६१२

२८–(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्थोऽध्यायः)
सगुण भगवान्‌के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग तथा योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञानकी महिमाका वर्णन ··· २६२३

२९–(श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चमोऽध्यायः)
सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन ··· २६३६

३०–(श्रीमद्भगवद्गीतायां षष्ठोऽध्यायः)
निष्काम कर्मयोगका प्रतिपादन करते हुए आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा तथा मनोनिग्रहपूर्वक ध्यानयोग एवं योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन ··· २६४५

३१–(श्रीमद्भगवद्गीतायां सप्तमोऽध्यायः)
ज्ञान-विज्ञान, भगवान्‌की व्यापकता, अन्य देवताओंकी उपासना एवं भगवान्‌को प्रभावसहित न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमाका कथन ··· २६५८

३२–(श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टमोऽध्यायः)
ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्तियोग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गोंका प्रतिपादन ··· २६६५

३३–(श्रीमद्भगवद्गीतायां नवमोऽध्यायः)
ज्ञान, विज्ञान और जगत्‌की उत्पत्तिका, आसुरी और दैवी सम्पदावालोंका, प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका, सकाम-निष्काम उपासनाका एवं भगवद्-भक्तिकी महिमाका वर्णन ··· २६७५

३४–(श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः)
भगवान्‌की विभूति और योगशक्तिका तथा प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका पुनः वर्णन ··· २६९१

३५–(श्रीमद्भगवद्गीतायामेकादशोऽध्यायः)
विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, भगवान् और संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन, अर्जुनद्वारा भगवान्‌के विश्वरूपका देखा जाना, भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना, भगवान्‌द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके दर्शनकी महिमा और केवल अनन्यभक्तिसे ही भगवान्‌की प्राप्तिका कथन २७०८

३६–(श्रीमद्भगवद्गीतायां द्वादशोऽध्यायः)
साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय तथा भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन ··· २७२७

३७–(श्रीमद्भगवद्गीतायां त्रयोदशोऽध्यायः)
ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति-पुरुषका वर्णन ··· ··· ··· २७३९

३८–(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्दशोऽध्यायः)
ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्‌की उत्पत्तिका, सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंका, भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं गुणतीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन ··· ··· २७५२

३९–(श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चदशोऽध्यायः)
संसारवृक्षका, भगवत्प्राप्तिके उपायका, जीवात्माका, प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका एवं क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तमके तत्त्वका वर्णन २७६२

४०–(श्रीमद्भगवद्गीतायां षोडशोऽध्यायः)
फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन तथा शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्रके अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा २७६९

४१–(श्रीमद्भगवद्गीतायां सप्तदशोऽध्यायः)
श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद तथा ॐ, तत्, सत्‌के प्रयोगकी व्याख्या २७७५

४२–(श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टादशोऽध्यायः)
त्यागका, सांख्यसिद्धान्तका, फलसहित वर्णधर्मका, उपासनासहित ज्ञाननिष्ठाका, भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका एवं गीताके माहात्म्यका वर्णन ··· ··· ··· २७८४

(भीष्मवधपर्व)

४३–गीताका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरका भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यसे अनुमति लेकर युद्धके लिये तैयार होना ··· ··· २८१३
४४–कौरव-पाण्डवोंके प्रथम दिनके युद्धका आरम्भ २८२१
४५–उभयपक्षके सैनिकोंका द्वन्द्व-युद्ध ··· २८२३

६–कौरव-पाण्डवसेनाका घमासान युद्ध ··· २८२८
७–भीष्मके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध, शल्यके द्वारा उत्तरकुमारका वध और श्वेतका पराक्रम ··· ··· २८३१
८–श्वेतका महाभयंकर पराक्रम और भीष्मके द्वारा उसका वध ··· ··· २८३६
९–शङ्खका युद्ध, भीष्मका प्रचण्ड पराक्रम तथा प्रथम दिनके युद्धकी समाप्ति ··· २८४३
५०–युधिष्ठिरकी चिन्ता, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा आश्वासन, धृष्टद्युम्नका उत्साह तथा द्वितीय दिनके युद्धके लिये क्रौञ्चारुण व्यूहका निर्माण २८४६
५१–कौरव-सेनाकी व्यूह-रचना तथा दोनों दलोंमें शङ्खध्वनि और सिंहनाद ··· २८५०
५२–भीष्म और अर्जुनका युद्ध ··· २८५२
५३–धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका युद्ध ··· २८५७
५४–भीमसेनका कलिंगों और निषादोंसे युद्ध, भीमसेनके द्वारा शक्रदेव, भानुमान् और केतुमान्का वध तथा उनके बहुत-से सैनिकोंका संहार ··· ··· २८५९
५५–अभिमन्यु और अर्जुनका पराक्रम तथा दूसरे दिनके युद्धकी समाप्ति ··· ··· २८६७
५६–तीसरे दिन—कौरव-पाण्डवोंकी व्यूह-रचना तथा युद्धका आरम्भ ··· ··· २८७०
५७–उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध ··· २८७१
५८–पाण्डव-वीरोंका पराक्रम, कौरव-सेनामें भगदड़ तथा दुर्योधन और भीष्मका संवाद ··· २८७४
५९–भीष्मका पराक्रम, श्रीकृष्णका भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना, अर्जुनकी प्रतिज्ञा और उनके द्वारा कौरवसेनाकी पराजय, तृतीय दिवसके युद्धकी समाप्ति ··· २८७७
६०–चौथे दिन—दोनों सेनाओंका व्यूहनिर्माण तथा भीष्म और अर्जुनका द्वैरथ-युद्ध ··· २८८८
६१–अभिमन्युका पराक्रम और धृष्टद्युम्नद्वारा शलके पुत्रका वध ··· ··· २८९१
६२–धृष्टद्युम्न और शल्य आदि दोनों पक्षके वीरोंका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार २८९३
६३–युद्धस्थलमें प्रचण्ड पराक्रमकारी भीमसेनका भीष्मके साथ युद्ध तथा सात्यकि और भूरिश्रवाकी मुठभेड़ ··· ··· २८९७
६४–भीमसेन और घटोत्कचका पराक्रम, कौरवोंकी पराजय तथा चौथे दिनके युद्धकी समाप्ति ··· २९००
६५–धृतराष्ट्र-संजय-संवादके प्रसङ्गमें दुर्योधनके द्वारा पाण्डवोंकी विजयका कारण पूछनेपर भीष्मका ब्रह्माजीके द्वारा की हुई भगवत्-स्तुतिका कथन २९०५
६६–नारायणावतार श्रीकृष्ण एवं नरावतार अर्जुनकी महिमाका प्रतिपादन ··· २९१०
६७–भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा ··· २९१३
६८–ब्रह्मभूतस्तोत्र तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महत्ता ··· ··· २९१५
६९–कौरवोंद्वारा मकरव्यूह तथा पाण्डवोंद्वारा श्येनव्यूहका निर्माण एवं पाँचवें दिनके युद्धका आरम्भ ··· ··· २९१६
७०–भीष्म और भीमसेनका घमासान युद्ध ··· २९१८
७१–भीष्म, अर्जुन आदि योद्धाओंका घमासान युद्ध २९२०
७२–दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध ··· २९२३
७३–विराट-भीष्म, अश्वत्थामा-अर्जुन, दुर्योधन-भीमसेन तथा अभिमन्यु और लक्ष्मणके द्वन्द्वयुद्ध ··· ··· २९२५
७४–सात्यकि और भूरिश्रवाका युद्ध, भूरिश्रवाद्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध, अर्जुनका पराक्रम तथा पाँचवें दिनके युद्धका उपसंहार ··· २९२८
७५–छठे दिनके युद्धका आरम्भ, पाण्डव तथा कौरवसेनाका क्रमशः मकरव्यूह एवं क्रौञ्चव्यूह बनाकर युद्धमें प्रवृत्त होना ··· २९३१
७६–धृतराष्ट्रकी चिन्ता ··· ··· २९३३
७७–भीमसेन, धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका पराक्रम २९३५
७८–उभय पक्षकी सेनाओंका संकुलयुद्ध ··· २९४०
७९–भीमसेनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय, अभिमन्यु और द्रौपदीपुत्रोंका धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध तथा छठे दिनके युद्धकी समाप्ति ··· २९४३
८०–भीष्मद्वारा दुर्योधनको आश्वासन तथा सातवें दिनके युद्धके लिये कौरवसेनाका प्रस्थान ··· २९४७
८१–सातवें दिनके युद्धमें कौरव-पाण्डव-सेनाओंका मण्डल और वज्रव्यूह बनाकर भीषण संघर्ष २९४९
८२–श्रीकृष्ण और अर्जुनसे डरकर कौरव-सेनामें भगदड़, द्रोणाचार्य और विराटका युद्ध, विराट-पुत्र शङ्खका वध, शिखण्डी और अश्वत्थामाका युद्ध, सात्यकिके द्वारा अलम्बुषकी पराजय, धृष्टद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी हार तथा भीमसेन और कृतवर्माका युद्ध ··· ··· २९५२
८३–इरावान्के द्वारा विन्द और अनुविन्दकी पराजय, भगदत्तसे घटोत्कचका हारना तथा मद्रराजपर नकुल और सहदेवकी विजय ··· २९५६

८४–युधिष्ठिरसे राजा श्रुतायुका पराजित होना, युद्धमें चेकितान और कृपाचार्यका मूर्छित होना, भूरिश्रवासे धृष्टकेतुका और अभिमन्युसे चित्रसेन आदिका पराजित होना एवं सुशर्मा आदिसे अर्जुनका युद्धारम्भ ··· ··· २९६०
८५–अर्जुनका पराक्रम, पाण्डवोंका भीष्मपर आक्रमण, युधिष्ठिरका शिखण्डीको उपालम्भ और भीमका पुरुषार्थ ··· ··· २९६४
८६–भीष्म और युधिष्ठिरका युद्ध, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके साथ विन्द और अनुविन्दका संग्राम, द्रोण आदिका पराक्रम और सातवें दिनके युद्धकी समाप्ति ··· ··· २९६८
८७–आठवें दिन व्यूहबद्ध कौरव-पाण्डव-सेनाओंकी रणयात्रा और उनका परस्पर घमासान युद्ध २९७२
८८–भीष्मका पराक्रम, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध तथा दुर्योधन और भीष्मकी युद्धविषयक बातचीत ··· ··· २९७४
८९–कौरव-पाण्डव-सेनाका घमासान युद्ध और भयानक जनसंहार ··· ··· २९७७
९०–इरावान्‌के द्वारा शकुनिके भाइयोंका तथा राक्षस अलम्बुषके द्वारा इरावान्‌का वध ··· २९८०
९१–घटोत्कच और दुर्योधनका भयानक युद्ध ··· २९८५
९२–घटोत्कचका दुर्योधन एवं द्रोण आदि प्रमुख वीरोंके साथ भयंकर युद्ध ··· २९८७
९३–घटोत्कचकी रक्षाके लिये आये हुए भीम आदि शूरवीरोंके साथ कौरवोंका युद्ध और उनका पलायन ··· ··· २९९०
९४–दुर्योधन और भीमसेनका एवं अश्वत्थामा और राजा नीलका युद्ध तथा घटोत्कचकी मायासे मोहित होकर कौरवसेनाका पलायन ··· २९९३
९५–दुर्योधनके अनुरोध और भीष्मजीकी आज्ञासे भगदत्तका घटोत्कच, भीमसेन और पाण्डव-सेनाके साथ घोर युद्ध ··· २९९६
९६–इरावान्‌के वधसे अर्जुनका दुःखपूर्ण उद्गार, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके नौ पुत्रोंका वध, अभिमन्यु और अम्बष्ठका युद्ध, युद्धकी भयानक स्थितिका वर्णन तथा आठवें दिनके युद्धका उपसंहार ··· ··· ३००१
९७–दुर्योधनका अपने मन्त्रियोंसे सलाह करके भीष्म-से पाण्डवोंको मारने अथवा कर्णको युद्धके लिये आज्ञा देनेका अनुरोध करना ··· ३००७
९८–भीष्मका दुर्योधनको अर्जुनका पराक्रम बताना और भयंकर युद्धके लिये प्रतिज्ञा करना तथा प्रातःकाल दुर्योधनके द्वारा भीष्मकी रक्षाकी व्यवस्था ··· ··· ३००९
९९–नवें दिनके युद्धके लिये उभयपक्षकी सेनाओं-की व्यूहरचना और उनके घमासान युद्धका आरम्भ तथा विनाशसूचक उत्पातोंका वर्णन ३०१३
१००–द्रौपदीके पाँचों पुत्रों और अभिमन्युका राक्षस अलम्बुषके साथ घोर युद्ध एवं अभिमन्युके द्वारा नष्ट होती हुई कौरवसेनाका युद्धभूमिसे पलायन ··· ··· ३०१५
१०१–अभिमन्युके द्वारा अलम्बुषकी पराजय, अर्जुनके साथ भीष्मका तथा कृपाचार्य, अश्वत्थामा और द्रोणाचार्यके साथ सात्यकिका युद्ध ··· ··· ··· ३०१८
१०२–द्रोणाचार्य और सुशर्माके साथ अर्जुनका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार ३०२२
१०३–उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और रक्तमयी रणनदीका वर्णन ··· ३०२४
१०४–अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय, कौरव-पाण्डव सैनिकोंका घोर युद्ध, अभिमन्युसे चित्रसेनकी, द्रोणसे द्रुपदकी और भीमसेनसे बाह्लीककी पराजय तथा सात्यकि और भीष्म-का युद्ध ··· ··· ३०२७
१०५–दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये आदेश, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवके द्वारा शकुनिकी घुड़सवार-सेनाकी पराजय तथा शल्यके साथ उन सबका युद्ध ··· ३०३०
१०६–भीष्मके द्वारा पराजित पाण्डवसेनाका पलायन और भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको अर्जुनका रोकना ··· ३०३२
१०७–नवें दिनके युद्धकी समाप्ति, रातमें पाण्डवोंकी गुप्त मन्त्रणा तथा श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंका भीष्मसे मिलकर उनके वधका उपाय जानना ३०३८

१०८–दसवें दिन उभयपक्षकी सेनाका रणके लिये प्रस्थान तथा भीष्म और शिखण्डीका समागम एवं अर्जुनका शिखण्डीको भीष्मका वध करनेके लिये उत्साहित करना ··· ३०४५
१०९–भीष्म और दुर्योधनका संवाद तथा भीष्मके द्वारा लाखों सैनिकोंका संहार ··· ३०४९
११०–अर्जुनके प्रोत्साहनसे शिखण्डीका भीष्मपर आक्रमण और दोनों सेनाओंके प्रमुख वीरोंका परस्पर युद्ध तथा दुःशासनका अर्जुनके साथ घोर युद्ध ··· ··· ३०५१
१११–कौरव-पाण्डवपक्षके प्रमुख महारथियोंके द्वन्द्व युद्धका वर्णन ··· ··· ३०५४
११२–द्रोणाचार्यका अश्वत्थामाको अशुभ शकुनोंकी सूचना देते हुए उसे भीष्मकी रक्षाके लिये धृष्टद्युम्नसे युद्ध करनेका आदेश देना ··· ३०५८
११३–कौरवपक्षके दस प्रमुख महारथियोंके साथ अकेले घोर युद्ध करते हुए भीमसेनका अद्भुत पराक्रम ··· ··· ३०६१
११४–कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंके साथ युद्धमें भीमसेन और अर्जुनका अद्भुत पुरुषार्थ ··· ३०६४
११५–भीष्मके आदेशसे युधिष्ठिरका उनपर आक्रमण तथा कौरव-पाण्डव-सैनिकोंका भीषण युद्ध ३०६७
११६–कौरव-पाण्डव-महारथियोंके द्वन्द्वयुद्धका वर्णन तथा भीष्मका पराक्रम ··· ३०६९
११७–उभय पक्षकी सेनाओंका युद्ध, दुःशासनका पराक्रम तथा अर्जुनके द्वारा भीष्मका मूर्च्छित होना ··· ··· ३०७४
११८–भीष्मका अद्भुत पराक्रम करते हुए पाण्डव-सेनाका भीषण संहार ··· ३०७८
११९–कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी अर्जुनका भीष्मको रथसे गिराना, शरशय्यापर स्थित भीष्मके समीप हंसरूप-धारी ऋषियोंका आगमन एवं उनके कथन-से भीष्मका उत्तरायणकी प्रतीक्षा करते हुए प्राण धारण करना ··· ··· ३०८२
१२०–भीष्मजीकी महत्ता तथा अर्जुनके द्वारा भीष्म-को तकिया देना एवं उभय पक्षकी सेनाओं-का अपने शिविरमें जाना और श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद ··· ··· ३०८९
१२१–अर्जुनका दिव्य जल प्रकट करके भीष्मजीकी प्यास बुझाना तथा भीष्मजीका अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको संधिके लिये समझाना ··· ··· ३०९३
१२२–भीष्म और कर्णका रहस्यमय संवाद ··· ३०९७

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–संजयको दिव्य दृष्टि ··· २५४६
२–द्रोणाचार्यके प्रति दुर्योधन-का सैन्य प्रदर्शन ··· २५९७
३–देवताओं और मनुष्योंको प्रजापतिकी शिक्षा ··· २६१४
४–सूर्यके प्रति नारायणका उपदेश २६२३
५–समदर्शिता ··· २६४०
६–सबमें भगवद्-दर्शन ··· २६५३
७–अर्थार्थी भक्त ध्रुव ··· २६६१
८–आर्तभक्त द्रौपदी ··· २६६२
९–ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ··· २६६८
१०–भक्तोंके द्वारा प्रेमसे दिये हुए पत्र, पुष्प, फल, जल आदिको भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट होकर ग्रहण करते हैं ··· ··· ··· २६८६
११–पुण्यात्मा ब्राह्मण सुतीक्ष्ण ··· २६८९
१२–राजर्षि अम्बरीष ··· ··· २६८९
१३–भगवान्‌की प्रह्लाद आदि तीन विभूतियाँ ··· ··· २७०४
१४–भगवान् विष्णु ··· ··· २७२४
१५–भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ विजय, विभूति, नीति और श्री ··· ··· २८१२
१६–भीष्मपितामहपर भगवान् श्रीकृष्ण-की कृपा ··· ··· २८१३

१७–भीष्म और अर्जुनका युद्ध ··· २८९०
१८–भीष्मपितामहकी सेवामें श्रीकृष्णसहित पाण्डव ··· ··· ३०१३

(सादा)

१९–शरणागत अर्जुन ··· ··· २६०१
२०–पञ्च महायज्ञ ··· ··· २६१५
२१–अर्जुनके प्रति भगवान्‌का विराट्‌रूप-प्रदर्शन ··· ··· २७१२
२२–भगवान्‌के द्वारा भक्तका संसारसागरसे उद्धार ··· ··· २७२९
२३–चार अवस्था ··· ··· २७४२
२४–संसार-वृक्ष ··· ··· २७६२
२५–मोह-नाश ··· ··· २८११
२६–श्रीकृष्ण एवं भाइयोंसहित युधिष्ठिरका भीष्मको प्रणाम करके उनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना ··· २८१५
२७–भीमसेन और भीष्मका युद्ध ··· २९२०
२८–अभिमन्युका युद्ध-कौशल ··· २९२७
२९–भीमसेनके बाणसे मूर्च्छित दुर्योधन ··· २९४४
३०–अर्जुनका व्यूहबद्ध कौरव-सेनाकी ओर श्रीकृष्णका ध्यान आकृष्ट करना ··· २९५१
३१–आकाशमें स्थित हुए घटोत्कचकी गर्जना और दुर्योधनके साथ उसका युद्ध ··· २९९१
३२–भीष्मजीका शिखण्डीसे युद्ध न करनेकी इच्छा प्रकट करना ··· ··· ३०४८
३३–अर्जुनका बाणद्वारा पृथ्वीसे जल प्रकट करके भीष्मजीको पिलाना ··· ३०९५
३४–(२० लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

द्रोणपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(द्रोणाभिषेकपर्व)	
१	भीष्मजीके धराशायी होनेसे कौरवोंका शोक तथा उनके द्वारा कर्णका स्मरण	३१०१
२	कर्णकी रणयात्रा	३१०५
३	भीष्मजीके प्रति कर्णका कथन	३१०९
४	भीष्मजीका कर्णको प्रोत्साहन देकर युद्धके लिये भेजना तथा कर्णके आगमनसे कौरवोंका हर्षोल्लास	३१११
५	कर्णका दुर्योधनके समक्ष सेनापति-पदके लिये द्रोणाचार्यका नाम प्रस्तावित करना	३११२
६	दुर्योधनका द्रोणाचार्यसे सेनापति होनेके लिये प्रार्थना करना	३११४
७	द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक, कौरव-पाण्डव-सेनाओंका युद्ध और द्रोणका पराक्रम	३११५
८	द्रोणाचार्यके पराक्रम और वधका संक्षिप्त समाचार	३११८
९	द्रोणाचार्यकी मृत्युका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका शोक करना	३१२१
१०	राजा धृतराष्ट्रका शोकसे व्याकुल होना और संजयसे युद्धविषयक प्रश्न	३१२४
११	धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी संक्षिप्त लीलाओंका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना	३१२९
१२	दुर्योधनका वर माँगना और द्रोणाचार्यका युधिष्ठिरको अर्जुनकी अनुपस्थितिमें जीवित पकड़ लानेकी प्रतिज्ञा करना	३१३२
१३	अर्जुनका युधिष्ठिरको आश्वासन देना तथा युद्धमें द्रोणाचार्यका पराक्रम	३१३४
१४	द्रोणका पराक्रम, कौरव-पाण्डव वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध, रणनदीका वर्णन तथा अभिमन्युकी वीरता	३१३६
१५	शल्यके साथ भीमसेनका युद्ध तथा शल्यकी पराजय	३१४२
१६	वृषसेनका पराक्रम, कौरव-पाण्डव वीरोंका तुमुलयुद्ध, द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डवपक्षके अनेक वीरोंका वध तथा अर्जुनकी विजय	३१४४
	(संशप्तकवधपर्व)	
१७	सुशर्मा आदि संशप्तक वीरोंकी प्रतिज्ञा तथा अर्जुनका युद्धके लिये उनके निकट जाना	३१४८
१८	संशप्तक-सेनाओंके साथ अर्जुनका युद्ध और सुधन्वाका वध	३१५१
१९	संशप्तक-गणोंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध	३१५४
२०	द्रोणाचार्यके द्वारा गरुड़व्यूहका निर्माण, युधिष्ठिरका भय, धृष्टद्युम्नका आश्वासन, धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका युद्ध तथा संकुल-युद्धमें गजसेनाका संहार	३१५६
२१	द्रोणाचार्यके द्वारा सत्यजित्, शतानीक, दृढसेन, क्षेम, वसुदान तथा पाञ्चालराजकुमार आदिका वध और पाण्डव-सेनाकी पराजय	३१६०
२२	द्रोणके युद्धके विषयमें दुर्योधन और कर्णका संवाद	३१६४
२३	पाण्डव-सेनाके महारथियोंके रथ, घोड़े, ध्वज तथा धनुषोंका विवरण	३१६६
२४	धृतराष्ट्रका अपना खेद प्रकाशित करते हुए युद्धके समाचार पूछना	३१७३
२५	कौरव-पाण्डव-सैनिकोंके द्वन्द्व-युद्ध	३१७४
२६	भीमसेनका भगदत्तके हाथीके साथ युद्ध, हाथी और भगदत्तका भयानक पराक्रम	३१७९
२७	अर्जुनका संशप्तक-सेनाके साथ भयंकर युद्ध और उसके अधिकांश भागका वध	३१८३
२८	संशप्तकोंका संहार करके अर्जुनका कौरव-सेनापर आक्रमण तथा भगदत्त और उनके हाथीका पराक्रम	३१८५
२९	अर्जुन और भगदत्तका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भगदत्तके वैष्णवास्त्रसे अर्जुनकी रक्षा तथा अर्जुनद्वारा हाथीसहित भगदत्तका वध	३१८७
३०	अर्जुनके द्वारा वृषक और अचलका वध, शकुनिकी माया और उसकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन	३१९१
३१	कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध तथा अश्वत्थामाके द्वारा राजा नीलका वध	३१९४

३२—कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध, भीमसेनका कौरव महारथियोंके साथ संग्राम, भयंकर संहार, पाण्डवोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, अर्जुन और कर्णका युद्ध, कर्णके भाइयोंका वध तथा कर्ण और सात्यकिका संग्राम ३१९५

(अभिमन्युवधपर्व)

३३—दुर्योधनका उपालम्भ, द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा और अभिमन्युवधके वृत्तान्तका संक्षेपसे वर्णन ३२०१

३४—संजयके द्वारा अभिमन्युकी प्रशंसा, द्रोणाचार्य-द्वारा चक्रव्यूहका निर्माण ··· ३२०३

३५—युधिष्ठिर और अभिमन्युका संवाद तथा व्यूह-भेदनके लिये अभिमन्युकी प्रतिज्ञा ··· ३२०४

३६—अभिमन्युका उत्साह तथा उसके द्वारा कौरवों-की चतुरङ्गिणी सेनाका संहार ··· ३२०७

३७—अभिमन्युका पराक्रम, उसके द्वारा अश्मक-पुत्रका वध, शल्यका मूर्च्छित होना और कौरव-सेनाका पलायन ··· ३२१०

३८—अभिमन्युके द्वारा शल्यके भाईका वध तथा द्रोणाचार्यकी रथसेनाका पलायन ··· ३२१३

३९—द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा तथा दुर्योधनके आदेशसे दुःशासनका अभिमन्युके साथ युद्ध आरम्भ करना ··· ३२१४

४०—अभिमन्युके द्वारा दुःशासन और कर्णकी पराजय ··· ··· ३२१६

४१—अभिमन्युके द्वारा कर्णके भाईका वध तथा कौरवसेनाका संहार और पलायन ··· ३२१९

४२—अभिमन्युके पीछे जानेवाले पाण्डवोंको जयद्रथका वरके प्रभावसे रोक देना ··· ३२२०

४३—पाण्डवोंके साथ जयद्रथका युद्ध और व्यूहद्वार-को रोक रखना ··· ··· ३२२२

४४—अभिमन्युका पराक्रम और उसके द्वारा वसातीय आदि अनेक योद्धाओंका वध ··· ३२२४

४५—अभिमन्युके द्वारा सत्यश्रवा, क्षत्रियसमूह, रुक्मरथ तथा उसके मित्रगणों और सैकड़ों राजकुमारोंका वध और दुर्योधनकी पराजय ··· ३२२५

४६—अभिमन्युके द्वारा लक्ष्मण तथा क्राथपुत्रका वध और सेनासहित छः महारथियोंका पलायन ३२२७

४७—अभिमन्युका पराक्रम, छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उसके द्वारा वृन्दारक तथा दस हजार अन्य राजाओंके सहित कोसलनरेश बृहद्बलका वध ··· ३२२९

४८—अभिमन्युद्वारा अश्वकेतु, भोज और कर्णके मन्त्री आदिका वध एवं छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उन महारथियोंद्वारा अभिमन्युके धनुष, रथ, ढाल और तलवारका नाश ··· ··· ३२३१

४९—अभिमन्युका कालिकेय, वसाति और कैकय रथियोंको मार डालना एवं छः महारथियोंके सहयोगसे अभिमन्युका वध और भागती हुई अपनी सेनाको युधिष्ठिरका आश्वासन देना ··· ··· ··· ३२३४

५०—तीसरे (तेरहवें) दिनके युद्धकी समाप्तिपर सेनाका शिविरको प्रस्थान एवं रणभूमिका वर्णन ··· ··· ३२३७

५१—युधिष्ठिरका विलाप ··· ··· ३२३८

५२—विलाप करते हुए युधिष्ठिरके पास व्यासजी-का आगमन और अकम्पन-नारद-संवादकी प्रस्तावना करते हुए मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसंग आरम्भ करना ··· ··· ३२४०

५३—शंकर और ब्रह्माका संवाद, मृत्युकी उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजाके संहारका कार्य सौंपा जाना ··· ··· ३२४३

५४—मृत्युकी घोर तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उसे वरकी प्राप्ति तथा नारद-अकम्पन-संवादका उपसंहार ··· ··· ३२४५

५५—षोडशराजकीयोपाख्यानका आरम्भ, नारदजी-की कृपासे राजा सृञ्जयको पुत्रकी प्राप्ति, दस्युओं-द्वारा उसका वध तथा पुत्रशोकसंतप्त सृञ्जयको नारदजीका मरुत्तका चरित्र सुनाना ··· ३२४९

५६—राजा सुहोत्रकी दानशीलता ··· ३२५३

५७—राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त ··· ३२५४

५८—राजा शिबिके यज्ञ और दानकी महत्ता ··· ३२५५

५९—भगवान् श्रीरामका चरित्र ··· ३२५६

६०—राजा भगीरथका चरित्र ··· ३२५९

६१—राजा दिलीपका उत्कर्ष ··· ३२६०

६२—राजा मान्धाताकी महत्ता ··· ३२६१

६३—राजा ययातिका उपाख्यान ··· ३२६३

६४—राजा अम्बरीषका चरित्र ··· ३२६४

६५—राजा शशबिन्दुका चरित्र ··· ३२६५

६६—राजा गयका चरित्र ··· ··· ३२६६

६७—राजा रन्तिदेवकी महत्ता ··· ··· ३२६८

६८—राजा भरतका चरित्र ··· ··· ३२६९

६९—राजा पृथुका चरित्र ··· ··· ३२७१

७०—परशुरामजीका चरित्र ··· ··· ३२७३

७१–नारदजीका सृञ्जयके पुत्रको जीवित करना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अन्तर्धान होना ··· ··· ३२७५

(प्रतिज्ञापर्व)

७२–अभिमन्युकी मृत्युके कारण अर्जुनका विषाद और क्रोध ··· ··· ३२७७
७३–युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनकी जयद्रथको मारनेके लिये शपथपूर्ण प्रतिज्ञा ··· ··· ३२८३
७४–जयद्रथका भय तथा दुर्योधन और द्रोणाचार्यका उसे आश्वासन देना ··· ३२८७
७५–श्रीकृष्णका अर्जुनको कौरवोंके जयद्रथकी रक्षाविषयक उद्योगका समाचार बताना ··· ३२८९
७६–अर्जुनके वीरोचित वचन ··· ३२९१
७७–नाना प्रकारके अशुभसूचक उत्पात, कौरवसेनामें भय और श्रीकृष्णका अपनी बहिन सुभद्राको आश्वासन देना ··· ३२९३
७८–सुभद्राका विलाप और श्रीकृष्णका सबको आश्वासन ··· ··· ३२९५
७९–श्रीकृष्णका अर्जुनकी विजयके लिये रात्रिमें भगवान् शिवका पूजन करवाना, जागते हुए पाण्डव सैनिकोंकी अर्जुनके लिये शुभाशंसा तथा अर्जुनकी सफलताके लिये श्रीकृष्णके दारुकके प्रति उत्साहभरे वचन ३२९८
८०–अर्जुनका स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शिवजीके समीप जाना और उनकी स्तुति करना ··· ··· ३३०१
८१–अर्जुनको स्वप्नमें ही पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति ३३०५
८२–युधिष्ठिरका प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंको दान देना, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासनपर बैठना और वहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना ··· ··· ३३०७
८३–अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना और श्रीकृष्णका उन्हें आश्वासन देना ··· ३३०९
८४–युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद, अर्जुनका स्वप्न सुनकर समस्त सुहृदोंकी प्रसन्नता, सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ रथपर बैठकर अर्जुनकी रण-यात्रा तथा अर्जुनके कहनेसे सात्यकिका युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये जाना ··· ३३११

(जयद्रथवधपर्व)

८५–धृतराष्ट्रका विलाप ··· ··· ३३१४
८६–संजयका धृतराष्ट्रको उपालम्भ ··· ३३१७
८७–कौरव-सैनिकोंका उत्साह तथा आचार्य द्रोणके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण ··· ३३१९
८८–कौरव-सेनाके लिये अपशकुन, दुर्मर्षणका अर्जुनसे लड़नेका उत्साह तथा अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश एवं शङ्खनाद ··· ३३२१
८९–अर्जुनके द्वारा दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार और समस्त सैनिकोंका पलायन ··· ३३२३
९०–अर्जुनके बाणोंसे हताहत होकर सेनासहित दुःशासनका पलायन ··· ··· ३३२५
९१–अर्जुन और द्रोणाचार्यका वार्तालाप तथा युद्ध एवं द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़े हुए अर्जुनका कौरवसैनिकोंद्वारा प्रतिरोध ··· ३३२७
९२–अर्जुनका द्रोणाचार्य और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए कौरव-सेनामें प्रवेश तथा श्रुतायुधका अपनी गदासे और सुदक्षिणका अर्जुनद्वारा वध ··· ··· ३३३०
९३–अर्जुनद्वारा श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक और अम्बष्ठ आदिका वध ··· ··· ३३३५
९४–दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर द्रोणाचार्यका उसके शरीरमें दिव्य कवच बाँधकर उसीको अर्जुनके साथ युद्धके लिये भेजना ··· ३३३९
९५–द्रोण और धृष्टद्युम्नका भीषण संग्राम तथा उभय पक्षके प्रमुख वीरोंका परस्पर संकुल युद्ध ··· ३३४४
९६–दोनों पक्षोंके प्रधान वीरोंका द्वन्द्व-युद्ध ··· ३३४७
९७–द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिद्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा ··· ··· ३३४९
९८–द्रोणाचार्य और सात्यकिका अद्भुत युद्ध ··· ३३५२
९९–अर्जुनके द्वारा तीव्रगतिसे कौरवसेनामें प्रवेश, विन्द और अनुविन्दका वध तथा अद्भुत जलाशयका निर्माण ··· ··· ३३५५
१००–श्रीकृष्णके द्वारा अश्वपरिचर्या तथा खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हुए अश्वोंद्वारा अर्जुनका पुनः शत्रुसेनापर आक्रमण करते हुए जयद्रथकी ओर बढ़ना ··· ··· ३३६०
१०१–श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़ा देख कौरव-सैनिकोंकी निराशा तथा दुर्योधनका युद्धके लिये आना ··· ··· ३३६३

१०२–श्रीकृष्णका अर्जुनकी प्रशंसापूर्वक उसे प्रोत्साहन देना, अर्जुन और दुर्योधनका एक दूसरेके सम्मुख आना, कौरव-सैनिकोंका भय तथा दुर्योधनका अर्जुनको ललकारना ··· ३३६५
१०३–दुर्योधन और अर्जुनका युद्ध तथा दुर्योधनकी पराजय ··· ··· ३३६८
१०४–अर्जुनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध ३३७१
१०५–अर्जुन तथा कौरव महारथियोंके ध्वजोंका वर्णन और नौ महारथियोंके साथ अकेले अर्जुनका युद्ध ··· ··· ३३७३
१०६–द्रोण और उनकी सेनाके साथ पाण्डवसेनाका द्वन्द्व-युद्ध तथा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय रथ-भंग हो जानेपर युधिष्ठिरका पलायन ३३७६
१०७–कौरव-सेनाके क्षेमधूर्ति, वीरधन्वा, निरमित्र तथा व्याघ्रदत्तका वध और दुर्मुख एवं विकर्णकी पराजय ··· ··· ३३७९
१०८–द्रौपदी-पुत्रोंके द्वारा सोमदत्तकुमार शलका वध तथा भीमसेनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय ३३८१
१०९–घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध और पाण्डव-सेनामें हर्ष-ध्वनि ··· ··· ३३८४
११०–द्रोणाचार्य और सात्यकिका युद्ध तथा युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उसे अर्जुनकी सहायताके लिये कौरव-सेनामें प्रवेश करनेका आदेश ३३८७
१११–सात्यकि और युधिष्ठिरका संवाद ··· ३३९३
११२–सात्यकिकी अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और सम्मानपूर्वक विदा होकर उनका प्रस्थान तथा साथ आते हुए भीमको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटा देना ··· ··· ३३९६
११३–सात्यकिका द्रोण और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए काम्बोजोंकी सेनाके पास पहुँचना ३४०१
११४–धृतराष्ट्रका विषादयुक्त वचन, संजयका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना, कृतवर्माका भीमसेन और शिखण्डीके साथ युद्ध तथा पाण्डव-सेनाकी पराजय ··· ··· ३४०६
११५–सात्यकिके द्वारा कृतवर्माकी पराजय, त्रिगर्तोंकी गजसेनाका संहार और जलसंधका वध ३४१३
११६–सात्यकिका पराक्रम तथा दुर्योधन और कृतवर्माकी पुनः पराजय ··· ३४१७
११७–सात्यकि और द्रोणाचार्यका युद्ध, द्रोणकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन ·· ३४१९
११८–सात्यकिद्वारा सुदर्शनका वध ··· ३४२२
११९–सात्यकि और उनके सारथिका संवाद तथा सात्यकिद्वारा काम्बोजों और यवन आदिकी सेनाकी पराजय ··· ३४२४
१२०–सात्यकिद्वारा दुर्योधनकी सेनाका संहार तथा भाइयोंसहित दुर्योधनका पलायन ३४२७
१२१–सात्यकिके द्वारा पाषाणयोधी म्लेच्छोंकी सेनाका संहार और दुःशासनका सेनासहित पलायन ··· ३४३०
१२२–द्रोणाचार्यका दुःशासनको फटकारना और द्रोणाचार्यके द्वारा वीरकेतु आदि पाञ्चालोंका वध एवं उनका धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध, द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना, धृष्टद्युम्नका पलायन, आचार्यकी विजय ३४३४
१२३–सात्यकिका घोर युद्ध और दुःशासनकी पराजय ··· ··· ३४३९
१२४–कौरव-पाण्डव-सेनाका घोर युद्ध तथा पाण्डवोंके साथ दुर्योधनका संग्राम ··· ३४४१
१२५–द्रोणाचार्यके द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासंधपुत्र सहदेव तथा धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध और चेकितानकी पराजय ३४४४
१२६–युधिष्ठिरका चिन्तित होकर भीमसेनको अर्जुन और सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजना ३४४९
१२७–भीमसेनका कौरवसेनामें प्रवेश, द्रोणाचार्यके सारथिसहित रथका चूर्ण कर देना तथा उनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वध, अवशिष्ट पुत्रोंसहित सेनाका पलायन ३४५२
१२८–भीमसेनका द्रोणाचार्य और अन्य कौरव-योद्धाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यके रथको आठ बार फेंक देना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीप पहुँचकर गर्जना करना तथा युधिष्ठिरका प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी बातें सोचना ··· ··· ३४५७
१२९–भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय ३४६१
१३०–दुर्योधनका द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना, द्रोणाचार्यका उसे द्यूतका परिणाम दिखाकर युद्धके लिये वापस भेजना और उसके साथ युधामन्यु तथा उत्तमौजाका युद्ध ··· ३४६३
१३१–भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय ··· ३४६६
१३२–भीमसेन और कर्णका घोर युद्ध ··· ३४७०
१३३–भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णके सारथिसहित रथका विनाश तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध ··· ··· ३४७२

१३४–भीमसेन और कर्णका युद्ध, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखका वध तथा कर्णका पलायन ··· ३४७५
१३५–धृतराष्ट्रका खेदपूर्वक भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा करना तथा भीमके द्वारा दुर्मर्षण आदि धृतराष्ट्रके पाँच पुत्रोंका वध ··· ··· ३४७८
१३६–भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णका पलायन, धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध तथा भीमका पराक्रम ··· ··· ३४८०
१३७–भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा दुर्योधनके सात भाइयोंका वध ··· ··· ३४८३
१३८–भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध ··· ३४८६
१३९–भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध, पहले भीमकी और पीछे कर्णकी विजय, उसके बाद अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर कर्ण और अश्वत्थामाका पलायन ··· ३४८८
१४०–सात्यकिद्वारा राजा अलम्बुषका और दुःशासनके घोड़ोंका वध ··· ३४९६
१४१–सात्यकिका अद्भुत पराक्रम, श्रीकृष्णका अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना और अर्जुनकी चिन्ता ··· ३४९८
१४२–भूरिश्रवा और सात्यकिका रोषपूर्वक सम्भाषण और युद्ध तथा सात्यकिका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए भूरिश्रवाकी भुजाका अर्जुनद्वारा उच्छेद ··· ३५०१
१४३–भूरिश्रवाका अर्जुनको उपालम्भ देना, अर्जुनका उत्तर और आमरण अनशनके लिये बैठे हुए भूरिश्रवाका सात्यकिके द्वारा वध ··· ३५०६
१४४–सात्यकिके भूरिश्रवाद्वारा अपमानित होनेका कारण तथा वृष्णिवंशी वीरोंकी प्रशंसा ··· ३५११
१४५–अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण, कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत, कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध और कर्णकी पराजय तथा सब योद्धाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध ··· ३५१३
१४६–अर्जुनका अद्भुत पराक्रम और सिन्धुराज जयद्रथका वध ··· ··· ३५२०
१४७–अर्जुनके बाणोंसे कृपाचार्यका मूर्च्छित होना, अर्जुनका खेद तथा कर्ण और सात्यकिका युद्ध एवं कर्णकी पराजय ··· ३५२९
१४८–अर्जुनका कर्णको फटकारना और वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको बधाई देकर उन्हें रणभूमिका भयानक दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना ··· ३५३४
१४९–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विजयका समाचार सुनाना और युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा अर्जुन, भीम एवं सात्यकिका अभिनन्दन ३५३९
१५०–व्याकुल हुए दुर्योधनका खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना ··· ३५४३
१५१–द्रोणाचार्यका दुर्योधनको उत्तर और युद्धके लिये प्रस्थान ··· ··· ३५४५
१५२–दुर्योधन और कर्णकी बातचीत तथा पुनः युद्धका आरम्भ ··· ··· ३५४८

(घटोत्कचवधपर्व)

१५३–कौरव-पाण्डव-सेनाका युद्ध, दुर्योधन और युधिष्ठिरका संग्राम तथा दुर्योधनकी पराजय ३५५०
१५४–रात्रियुद्धमें पाण्डव-सैनिकोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण और द्रोणाचार्यद्वारा उनका संहार ३५५४
१५५–द्रोणाचार्यद्वारा शिबिका वध तथा भीमसेनद्वारा घुस्से और थप्पड़से कलिङ्गराजकुमारका एवं ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदका वध ··· ३५५६
१५६–सोमदत्त और सात्यकिका युद्ध, सोमदत्तकी पराजय, घटोत्कच और अश्वत्थामाका युद्ध और अश्वत्थामाद्वारा घटोत्कचके पुत्रका, एक अक्षौहिणी राक्षस-सेनाका तथा द्रुपदपुत्रोंका वध एवं पाण्डव-सेनाकी पराजय ··· ३५५९
१५७–सोमदत्तकी मूर्छा, भीमके द्वारा बाह्लीकका वध, धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और शकुनिके सात रथियों एवं पाँच भाइयोंका संहार तथा द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरके युद्धमें युधिष्ठिरकी विजय ··· ··· ३५७१
१५८–दुर्योधन और कर्णकी बातचीत, कृपाचार्यद्वारा कर्णको फटकारना तथा कर्णद्वारा कृपाचार्यका अपमान ··· ३५७४
१५९–अश्वत्थामाका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना, दुर्योधनका उसे मनाना, पाण्डवों और पाञ्चालोंका कर्णपर आक्रमण, कर्णका पराक्रम, अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय तथा दुर्योधनका अश्वत्थामासे पाञ्चालोंके वधके लिये अनुरोध ··· ··· ३५७९
१६०–अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना ३५८५
१६१–भीमसेन और अर्जुनका आक्रमण और कौरव-सेनाका पलायन ··· ३५८८

१६२–सात्यकिद्वारा सोमदत्तका वध, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यसे दूर रहनेका आदेश ३५९०

१६३–कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रदीपों (मशालों) का प्रकाश ··· ३५९३

१६४–दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध और दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश ३५९७

१६५–दोनों सेनाओंका युद्ध और कृतवर्माद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय ··· ··· ३५९९

१६६–सात्यकिके द्वारा भूरिका वध, घटोत्कच और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा भीमके साथ दुर्योधनका युद्ध एवं दुर्योधनका पलायन ३६०२

१६७–कर्णके द्वारा सहदेवकी पराजय, शल्यके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय तथा अर्जुनसे पराजित होकर अलम्बुषका पलायन ··· ··· ३६०६

१६८–शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी और वृषसेनके द्वारा द्रुपदकी पराजय तथा प्रतिविन्ध्य एवं दुःशासनका युद्ध ··· ··· ३६०९

१६९–नकुलके द्वारा शकुनिकी पराजय तथा शिखण्डी और कृपाचार्यका घोर युद्ध ३६१३

१७०–धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यका युद्ध, धृष्टद्युम्नद्वारा द्रुमसेनका वध, सात्यकि और कर्णका युद्ध, कर्णकी दुर्योधनको सलाह तथा शकुनिका पाण्डवसेनापर आक्रमण ··· ३६१६

१७१–सात्यकिसे दुर्योधनकी, अर्जुनसे शकुनि और उलूककी तथा धृष्टद्युम्नसे कौरवसेनाकी पराजय ३६२०

१७२–दुर्योधनके उपालम्भसे द्रोणाचार्य और कर्णका घोर युद्ध, पाण्डवसेनाका पलायन, भीमसेनका सेनाको लौटाकर लाना और अर्जुनसहित भीमसेनका कौरवोंपर आक्रमण करना ··· ३६२३

१७३–कर्णद्वारा धृष्टद्युम्न एवं पाञ्चालोंकी पराजय, युधिष्ठिरकी घबराहट तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका घटोत्कचको प्रोत्साहन देकर कर्णके साथ युद्धके लिये भेजना ३६२६

१७४–घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध ··· ३६३०

१७५–घटोत्कच और उसके रथ आदिके स्वरूपका वर्णन तथा कर्ण और घटोत्कचका घोर संग्राम ३६३३

१७६–अलायुधका युद्धस्थलमें प्रवेश तथा उसके स्वरूप और रथ आदिका वर्णन ··· ३६४१

१७७–भीमसेन और अलायुधका घोर युद्ध ··· ३६४३

१७८–दोनों सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध और घटोत्कचके द्वारा अलायुधका वध एवं दुर्योधनका पश्चात्ताप ··· ··· ३६४६

१७९–घटोत्कचका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा चलायी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिसे उसका वध ३६४८

१८०–घटोत्कचके वधसे पाण्डवोंका शोक तथा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उसका कारण ३६५५

१८१–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वध करनेका कारण बताना ३६५७

१८२–कर्णने अर्जुनपर शक्ति क्यों नहीं छोड़ी, इसके उत्तरमें संजयका धृतराष्ट्रसे और श्रीकृष्णका सात्यकिसे रहस्ययुक्त कथन ··· ३६५९

१८३–धृतराष्ट्रका पश्चात्ताप, संजयका उत्तर एवं राजा युधिष्ठिरका शोक और भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासद्वारा उसका निवारण ··· ··· ३६६३

(द्रोणवधपर्व)

१८४–निद्रासे व्याकुल हुए उभयपक्षके सैनिकोंका अर्जुनके कहनेसे सो जाना और चन्द्रोदयके बाद पुनः उठकर युद्धमें लग जाना ··· ३६६७

१८५–दुर्योधनका उपालम्भ और द्रोणाचार्यका व्यंगपूर्ण उत्तर ··· ··· ३६७१

१८६–पाण्डव-वीरोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, द्रुपदके पौत्रों तथा द्रुपद एवं विराट् आदिका वध, धृष्टद्युम्नकी प्रतिज्ञा और दोनों दलोंमें घमासान युद्ध ··· ··· ३६७४

१८७–युद्धस्थलकी भीषण अवस्थाका वर्णन और नकुलके द्वारा दुर्योधनकी पराजय ··· ३६७८

१८८–दुःशासन और सहदेवका, कर्ण और भीमसेनका तथा द्रोणाचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध ··· ··· ३६८१

१८९–धृष्टद्युम्नका दुःशासनको हराकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण, नकुल-सहदेवद्वारा उनकी रक्षा, दुर्योधन तथा सात्यकिका संवाद तथा युद्ध, कर्ण और भीमसेनका संग्राम और अर्जुनका कौरवोंपर आक्रमण ··· ··· ३६८५

१९०–द्रोणाचार्यका घोर कर्म, ऋषियोंका द्रोणको अस्त्र त्यागनेका आदेश तथा अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर द्रोणका जीवनसे निराश होना ३६८९

१९१–द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिकी शूरवीरता और प्रशंसा ··· ३६९३

१९२–उभयपक्षके श्रेष्ठ महारथियोंका परस्पर युद्ध, धृष्टद्युम्नका आक्रमण, द्रोणाचार्यका अस्त्र त्यागकर योग-धारणाके द्वारा ब्रह्मलोक-गमन और धृष्टद्युम्नद्वारा उनके मस्तकका उच्छेद ३६९७

(नारायणास्त्र-मोक्षपर्व)

१९३–कौरव-सैनिकों तथा सेनापतियोंका भागना, अश्वत्थामाके पूछनेपर कृपाचार्यका उसे द्रोण-वधका वृत्तान्त सुनाना ... ३७०३

१९४–धृतराष्ट्रका प्रश्न ३७०७

१९५–अश्वत्थामाके क्रोधपूर्ण उद्गार और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्राकट्य ... ३७०८

१९६–कौरवसेनाका सिंहनाद सुनकर युधिष्ठिरका अर्जुनसे कारण पूछना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाके क्रोध एवं गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन ३७१२

१९७–भीमसेनके वीरोचित उद्गार और धृष्टद्युम्नके द्वारा अपने कृत्यका समर्थन ... ३७१५

१९८–सात्यकि और धृष्टद्युम्नका परस्पर क्रोधपूर्वक वाग्बाणोंसे लड़ना तथा भीमसेन, सहदेव और श्रीकृष्ण एवं युधिष्ठिरके प्रयत्नसे उनका निवारण ३७१८

१९९–अश्वत्थामाके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग, राजा युधिष्ठिरका खेद, भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए उपायसे सैनिकोंकी रक्षा, भीमसेनका वीरोचित उद्गार और उनपर उस अस्त्रका प्रबल आक्रमण ... ३७२३

२००–श्रीकृष्णका भीमसेनको रथसे उतारकर नारायणास्त्रको शान्त करना, अश्वत्थामाका उसके पुनःप्रयोगमें अपनी असमर्थता बताना तथा अश्वत्थामाद्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय, सात्यकिका दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और वृषसेन—इन छः महारथियोंको भगा देना। फिर अश्वत्थामाद्वारा मालव, पौरव और चेदिदेशके युवराजका वध एवं भीम और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा पाण्डवसेनाका पलायन ३७२७

२०१–अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रके प्रयोगसे एक अक्षौहिणी पाण्डवसेनाका संहार, श्रीकृष्ण और अर्जुनपर उस अस्त्रका प्रभाव न होनेसे चिन्तित हुए अश्वत्थामाको व्यासजीका शिव और श्रीकृष्णकी महिमा बताना ... ३७३६

२०२–व्यासजीका अर्जुनसे भगवान् शिवकी महिमा बताना तथा द्रोणपर्वके पाठ और श्रवणका फल ३७४४

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–सेनापति द्रोणाचार्य ३१०१

२–श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके अश्वोंकी परिचर्या ३२१३

३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन ... ३३११

४–अर्जुनका जयद्रथके मस्तकको काटकर समन्त-पञ्चक क्षेत्रसे बाहर फेंकना ... ३४१३

५–जयद्रथवधके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलना ... ३५३९

६–व्यासजी अर्जुनको शङ्करजीकी महिमा कह रहे हैं ३६१३

(सादा)

७–दुर्योधनद्वारा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक ... ३११५

८–अर्जुनके द्वारा भगदत्तका वध ... ३१९०

९–चक्रव्यूह ३२०४

१०–अभिमन्युके द्वारा कौरव-सेनाके प्रमुख वीरोंका संहार ३२०८

११–अभिमन्युपर अनेक महारथियोंद्वारा एक साथ प्रहार ३२३३

१२–रुद्रदेवका ब्रह्माजीसे उनके क्रोधकी शान्तिके लिये वर माँगना ... ३२४३

१३—अर्जुनका जयद्रथवधके लिये प्रतिज्ञा करना ··· ··· ३२८४
१४—अर्जुनका स्वप्नदर्शन ··· ··· ३३०२
१५—श्रीकृष्ण और अर्जुनका दुर्मर्षणकी गजसेनामें प्रवेश ··· ··· ३३२३
१६—घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध ··· ३३८६
१७—सात्यकिका कौरव-सेनामें प्रवेश और युद्ध ··· ··· ३४२४
१८—भीमसेनके द्वारा द्रोणाचार्यके रथको दूर फेंकनेका उपक्रम ··· ··· ३४५८
१९—भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय ··· ३४७०
२०—भीमसेनका कर्णके रथपर हाथीकी लाश फेंकना ··· ··· ३४९३
२१—जयद्रथके कटे हुए मस्तकका उसके पिताकी गोदमें गिरना ··· ··· ३५२८
२२—घटोत्कचका रथ ··· ··· ३५६३
२३—घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेकी प्रेरणा ··· ··· ३६२९
२४—घटोत्कचने गिरते समय कौरवोंकी एक अक्षौहिणी सेना पीस डाली ··· ३६५४
२५—द्रोणाचार्यका ध्यानावस्थामें देह-त्याग एवं तेजस्वी-स्वरूपसे ऊर्ध्वलोक-गमन ··· ३७००
२६—अश्वत्थामाके द्वारा पाण्डव-सेनापर नारायणास्त्रका प्रयोग ··· ··· ३७२४
२७—अश्वत्थामाके द्वारा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग एवं उसके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार ··· ३७३७
२८—वेदव्यासजीका अश्वत्थामाको आश्वासन ··· ३७४०
२९—(७५ लाइन चित्र फरमोंमें)

श्रीहरिः

कर्णपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१–कर्णवधका संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर जनमेजयका वैशम्पायनजीसे उसे विस्तारपूर्वक कहनेका अनुरोध	... ..	३७५७
२–धृतराष्ट्र और संजयका संवाद	...	३७५८
३–दुर्योधनके द्वारा सेनाको आश्वासन देना तथा सेनापति कर्णके युद्ध और वधका संक्षिप्त वृत्तान्त	... ...	३७६०
४–धृतराष्ट्रका शोक और समस्त स्त्रियोंकी व्याकुलता		३७६२
५–संजयका धृतराष्ट्रको कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना	...	३७६३
६–कौरवोंद्वारा मारे गये प्रधान-प्रधान पाण्डव पक्षके वीरोंका परिचय	...	३७६६
७–कौरव-पक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन और धृतराष्ट्रकी मूर्च्छा	... ...	३७६९
८–धृतराष्ट्रका विलाप	... ...	३७७१
९–धृतराष्ट्रका संजयसे विलाप करते हुए कर्णवधका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त पूछना	...	३७७३
१०–कर्णको सेनापति बनानेके लिये अश्वत्थामाका प्रस्ताव और सेनापतिके पदपर उसका अभिषेक		३७७९
११–कर्णके सेनापतित्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान और मकरव्यूहका निर्माण तथा पाण्डव-सेनाके अर्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना और युद्धका आरम्भ	... ...	३७८३
१२–दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और भीमसेनके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध	... ...	३७८५
१३–दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध तथा सात्यकिके द्वारा विन्द और अनुविन्दका वध	...	३७८९
१४–द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्यद्वारा क्रमशः चित्रसेन एवं चित्रका वध, कौरवसेनाका पलायन तथा अश्वत्थामाका भीमसेनपर आक्रमण		३७९१
१५–अश्वत्थामा और भीमसेनका अद्भुत युद्ध तथा दोनोंका मूर्च्छित हो जाना	...	३७९४
१६–अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ अद्भुत युद्ध	... ...	३७९६
१७–अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय	...	३८००
१८–अर्जुनके द्वारा हाथियोंसहित दण्डधार और दण्ड आदिका वध तथा उनकी सेनाका पलायन		३८०३
१९–अर्जुनके द्वारा संशप्तक सेनाका संहार, श्रीकृष्णका अर्जुनको युद्धस्थलका दृश्य दिखाते हुए उनके पराक्रमकी प्रशंसा करना तथा पाण्ड्यनरेशका कौरवसेनाके साथ युद्धारम्भ	...	३८०५
२०–अश्वत्थामाके द्वारा पाण्ड्यनरेशका वध	...	३८०९
२१–कौरव-पाण्डव-दलोंका भयंकर घमासान युद्ध	...	३८१३
२२–पाण्डवसेनापर भयानक गज-सेनाका आक्रमण, पाण्डवोंद्वारा पुण्ड्रकी पराजय तथा बङ्गराज और अङ्गराजका वध, गज-सेनाका विनाश और पलायन	.. ...	३८१५
२३–सहदेवके द्वारा दुःशासनकी पराजय	...	३८१७
२४–नकुल और कर्णका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और पाञ्चाल-सेनाका संहार		३८१९
२५–युयुत्सु और उलूकका युद्ध, युयुत्सुका पलायन, शतानीक और धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माका तथा सुतसोम और शकुनिका घोर युद्ध एवं शकुनि-द्वारा पाण्डवसेनाका विनाश	...	३८२३
२६–कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्नका भय तथा कृतवर्माके द्वारा शिखण्डीकी पराजय	...	३८२६
२७–अर्जुनद्वारा राजा श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियोंका वध एवं संशप्तक-सेनाका संहार	... ...	३८२९
२८–युधिष्ठिर और दुर्योधनका युद्ध, दुर्योधनकी पराजय तथा उभय पक्षकी सेनाओंका अमर्यादित भयंकर संग्राम	... ...	३८३१
२९–युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय	...	३८३४
३०–सात्यकि और कर्णका युद्ध तथा अर्जुनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार और पाण्डवोंकी विजय	...	३८३६
३१–रात्रिमें कौरवोंकी मन्त्रणा, धृतराष्ट्रके द्वारा दैवकी प्रबलताका प्रतिपादन, संजयद्वारा धृतराष्ट्रपर दोषारोप तथा कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत	... ...	३८४०
३२–दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना और शल्यका इस विषयमें घोर विरोध करना, पुनः श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसे स्वीकार कर लेना	...	३८४४

३३–दुर्योधनका शल्यसे त्रिपुरोंकी उत्पत्तिका वर्णन, त्रिपुरोंसे भयभीत इन्द्र आदि देवताओंका ब्रह्माजीके साथ भगवान् शङ्करके पास जाकर उनकी स्तुति करना ··· ··· ३८४९
३४–दुर्योधनका शल्यको शिवके विचित्र रथका विवरण सुनाना और शिवजीद्वारा त्रिपुर-वधका उपाख्यान सुनाना एवं परशुरामजीके द्वारा कर्णको दिव्य अस्त्र मिलनेकी बात कहना ··· ३८५३
३५–शल्य और दुर्योधनका वार्तालाप, कर्णका सारथि होनेके लिये शल्यकी स्वीकृति ··· ३८६३
३६–कर्णका युद्धके लिये प्रस्थान और शल्यसे उसकी बातचीत ··· ··· ३८६६
३७–कौरवसेनामें अपशकुन, कर्णकी आत्मप्रशंसा, शल्यके द्वारा उसका उपहास और अर्जुनके बल-पराक्रमका वर्णन ··· ··· ३८६९
३८–कर्णके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतानेवालेको नाना प्रकारकी भोगसामग्री और इच्छानुसार धन देनेकी घोषणा ··· ३८७३
३९–शल्यका कर्णके प्रति अत्यन्त आक्षेपपूर्ण वचन कहना ··· ··· ३८७५
४०–कर्णका शल्यको फटकारते हुए मद्रदेशके निवासियोंकी निन्दा करना एवं उसे मार डालनेकी धमकी देना ··· ··· ३८७७
४१–राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनकी शरणमें जानेकी सलाह देना ··· ··· ३८८१
४२–कर्णका श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावको स्वीकार करते हुए अभिमानपूर्वक शल्यको फटकारना और उनसे अपनेको परशुरामजीद्वारा और ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुए शापोंकी कथा सुनाना ३८८७
४३–कर्णका आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना ··· ३८९२
४४–कर्णके द्वारा मद्र आदि बाहीक देशवासियोंकी निन्दा ··· ··· ··· ३८९२
४५–कर्णका मद्र आदि बाहीकनिवासियोंके दोष बताना, शल्यका उत्तर देना और दुर्योधनका दोनोंको शान्त करना ··· ··· ३८९५
४६–कौरव-सेनाकी व्यूहरचना, युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका आक्रमण, शल्यके द्वारा पाण्डव-सेनाके प्रमुख वीरोंका वर्णन तथा अर्जुनकी प्रशंसा ··· ३८९९
४७–कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर युद्ध तथा अर्जुन और कर्णका पराक्रम ··· ३९०५
४८–कर्णके द्वारा बहुत-से योद्धाओंसहित पाण्डव-सेनाका संहार, भीमसेनके द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध, नकुल और सात्यकिके साथ वृषसेनका युद्ध तथा कर्णका राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण ··· ३९०७
४९–कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्च्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय और तिरस्कार तथा पाण्डवोंके हजारों योद्धाओंका वध और रक्त-नदीका वर्णन तथा पाण्डव-महारथियोंद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस और उसका पलायन ··· ३९११
५०–कर्ण और भीमसेनका युद्ध तथा कर्णका पलायन ३९१८
५१–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके छः पुत्रोंका वध, भीम और कर्णका युद्ध, भीमके द्वारा गजसेना, रथसेना और घुड़सवारोंका संहार तथा उभयपक्षकी सेनाओंका घोर युद्ध ··· ३९२२
५२–दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और कौरव-सेनाका व्यथित होना ··· ··· ३९२७
५३–अर्जुनद्वारा दस हजार संशप्तक योद्धाओं और उनकी सेनाका संहार ··· ३९२९
५४–कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय और सुकेतुका वध तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्माका परास्त होना ··· ··· ३९३२
५५–अश्वत्थामाका घोर युद्ध, सात्यकिके सारथिका वध एवं युधिष्ठिरका अश्वत्थामाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाना ··· ··· ३९३५
५६–नकुल-सहदेवके साथ दुर्योधनका युद्ध, धृष्टद्युम्नसे दुर्योधनकी पराजय, कर्णद्वारा पाञ्चाल-सेनासहित योद्धाओंका संहार, भीमसेनद्वारा कौरव-योद्धाओंका सेनासहित विनाश, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका वध तथा अश्वत्थामाका अर्जुनके साथ घोर युद्ध करके पराजित होना ··· ३९३७
५७–दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन देना और अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा ··· ··· ३९४६
५८–अर्जुनका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरके पास चलनेका आग्रह तथा श्रीकृष्णका उन्हें युद्ध-भूमि दिखाते और वहाँका समाचार बताते हुए रथको आगे बढ़ाना ३९४७
५९–धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण तथा अर्जुनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा और अश्वत्थामाकी पराजय ··· ३९५०
६०–श्रीकृष्णका अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये अर्जुनको उत्साहित करना तथा भीमसेनके दुष्कर पराक्रमका वर्णन करना ३९५४

६१–कर्णद्वारा शिखण्डीकी पराजय, धृष्टद्युम्न और दुःशासनका तथा वृषसेन और नकुलका युद्ध, सहदेवद्वारा उलूककी तथा सात्यकिद्वारा शकुनिकी पराजय, कृपाचार्यद्वारा युधामन्युकी एवं कृतवर्माद्वारा उत्तमौजाकी पराजय तथा भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी पराजय, गजसेनाका संहार और पलायन ३९६०
६२–युधिष्ठिरपर कौरव-सैनिकोंका आक्रमण ... ३९६५
६३–कर्णद्वारा नकुल-सहदेवसहित युधिष्ठिरकी पराजय एवं पीड़ित होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करना ३९६७
६४–अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कौरवसेनामें भगदड़ एवं दुर्योधनसे प्रेरित कर्णद्वारा भार्गवास्त्रसे पाञ्चालोंका संहार ३९६९
६५–भीमसेनको युद्धका भार सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरके पास जाना ... ३९७४
६६–युधिष्ठिरका अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना ३९७६
६७–अर्जुनका युधिष्ठिरसे अबतक कर्णको न मार सकनेका कारण बताते हुए उसे मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना ३९७९
६८–युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन ३९८१
६९–युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णका बलाक व्याध और कौशिक मुनिकी कथा सुनाते हुए धर्मका तत्त्व बताकर समझाना ३९८५
७०–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञा-भङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर संतुष्ट करना ... ३९९१
७१–अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश, अर्जुन और युधिष्ठिरका प्रसन्नतापूर्वक मिलन एवं अर्जुनद्वारा कर्णवधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरका आशीर्वाद ... ३९९७
७२–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी रणयात्रा, मार्गमें शुभ शकुन तथा श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रोत्साहन देना ३९९९
७३–भीष्म और द्रोणके पराक्रमका वर्णन करते हुए अर्जुनके बलकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णका कर्ण और दुर्योधनके अन्यायकी याद दिलाकर अर्जुनको कर्णवधके लिये उत्तेजित करना ... ४००२
७४–अर्जुनके वीरोचित उद्गार ... ४००९
७५–दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध तथा सुषेणका वध ४०१३
७६–भीमसेनका अपने सारथि विशोकसे संवाद ४०१४
७७–अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार तथा भीमसेनसे शकुनिकी पराजय एवं दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-पुत्रोंका सेनासहित भागकर कर्णका आश्रय लेना ... ४०१८
७८–कर्णके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार और पलायन ४०२३
७९–अर्जुनका कौरव-सेनाको विनाश करके खूनकी नदी बहा देना और अपना रथ कर्णके पास ले चलनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका विध्वंस ४०२७
८०–अर्जुनका कौरव-सेनाको नष्ट करके आगे बढ़ना ४०३४
८१–अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरववीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम ... ४०३६
८२–सात्यकिके द्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध, कर्णका पराक्रम और दुःशासन एवं भीमसेनका युद्ध ४०४०
८३–भीमद्वारा दुःशासनका रक्तपान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार ४०४४
८४–धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना तथा नकुल और वृषसेनका युद्ध ४०४९
८५–कौरववीरोंद्वारा कुलिन्दराजके पुत्रों और हाथियोंका संहार तथा अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध ४०५२
८६–कर्णके साथ युद्ध करनेके विषयमें श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनका कर्णके सामने उपस्थित होना ४०५६
८७–कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ-युद्धमें समागम, उनकी जय-पराजयके सम्बन्धमें सब प्राणियोंका संशय, ब्रह्मा और महादेवजीद्वारा अर्जुनकी विजय-घोषणा तथा कर्णकी शल्यसे और अर्जुनकी श्रीकृष्णसे वार्ता ... ४०५८
८८–अर्जुनद्वारा कौरव-सेनाका संहार, अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव और दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति ... ४०६५
८९–कर्ण और अर्जुनका भयंकर युद्ध और कौरववीरोंका पलायन ४०६९

९०–अर्जुन और कर्णका घोर युद्ध, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा कर्णका अपना पहिया पृथ्वीमें फँस जानेपर अर्जुनसे बाण न चलानेके लिये अनुरोध करना ··· ··· ४०७९
९१–भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको चेतावनी देना और कर्णका वध ··· ··· ४०८९
९२–कौरवोंका शोक, भीम आदि पाण्डवोंका हर्ष, कौरव-सेनाका पलायन और दुःखित शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना ··· ४०९४
९३–भीमसेनद्वारा पच्चीस हजार पैदल सैनिकोंका वध, अर्जुनद्वारा रथसेनाका विध्वंस, कौरवसेनाका पलायन और दुर्योधनका उसे रोकनेके लिये विफल प्रयास ··· ४०९६
९४–शल्यके द्वारा रणभूमिका दिग्दर्शन, कौरव-सेनाका पलायन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका शिबिरकी ओर गमन ··· ··· ४१००
९५–कौरव-सेनाका शिबिरकी ओर पलायन और शिबिरोंमें प्रवेश ··· ··· ४१०५
९६–युधिष्ठिरका रणभूमिमें कर्णको मारा गया देखकर प्रसन्न हो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करना, धृतराष्ट्रका शोकमग्न होना तथा कर्णपर्वके श्रवणकी महिमा ··· ४१०६

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–कर्ण और अर्जुनका युद्ध ··· ··· ३७५७
२–त्रिपुर-विनाशके लिये देवताओं-द्वारा शङ्करजीकी स्तुति ··· ··· ३८१३
३–श्रीकृष्ण आगे जाते हुए युधिष्ठिरको देखनेके लिये अर्जुनसे कह रहे हैं ··· ··· ३९५०
४–भगवान्के द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा ··· ··· ४०१३

(सादा)

५–अर्जुनके द्वारा मित्रसेनका शिरश्छेद ··· ··· ३८३०
६–दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना ··· ३८४५
७–शल्य कर्णको हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर अपमानित कर रहे हैं ··· ··· ३८८५
८–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों एवं कौरवयोद्धाओंका संहार ··· ··· ३९२३
९–अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार ··· ३९४३
१०–धर्मराजके चरणोंमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन प्रणाम कर रहे हैं ··· ३९७५
११–कर्णद्वारा पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको उठानेका प्रयत्न ··· ··· ४०८८
१२–कर्णवध ··· ··· ४०९३
१३–(१६ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

शल्यपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	संजयके मुखसे शल्य और दुर्योधनके वधका वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्रका मूर्च्छित होना और सचेत होनेपर उन्हें विदुरका आश्वासन देना	४१११
२	राजा धृतराष्ट्रका विलाप करना और संजयसे युद्धका वृत्तान्त पूछना	४११४
३	कर्णके मारे जानेपर पाण्डवोंके भयसे कौरव-सेनाका पलायन, सामना करनेवाले पच्चीस हजार पैदलोंका भीमसेनद्वारा वध तथा दुर्योधनका अपने सैनिकोंको समझा-बुझाकर पुनः पाण्डवोंके साथ युद्धमें लगाना	४११८
४	कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना	४१२२
५	दुर्योधनका कृपाचार्यको उत्तर देते हुए संधि स्वीकार न करके युद्धका ही निश्चय करना ...	४१२५
६	दुर्योधनके पूछनेपर अश्वत्थामाका शल्यको सेनापति बनानेके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनका शल्यसे अनुरोध और शल्यद्वारा उसकी स्वीकृति	४१२८
७	राजा शल्यके वीरोचित उद्गार तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यवधके लिये उत्साहित करना	४१३०
८	उभय-पक्षकी सेनाओंका समराङ्गणमें उपस्थित होना एवं बची हुई दोनों सेनाओंकी संख्याका वर्णन	४१३२
९	उभय-पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और कौरव-सेनाका पलायन	४१३५
१०	नकुलद्वारा कर्णके तीन पुत्रोंका वध तथा उभय पक्षकी सेनाओंका भयानक युद्ध ...	४१३८
११	शल्यका पराक्रम, कौरव-पाण्डव योद्धाओंके द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनके द्वारा शल्यकी पराजय	४१४२
१२	भीमसेन और शल्यका भयानक गदायुद्ध तथा युधिष्ठिरके साथ शल्यका युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका और युधिष्ठिरद्वारा चन्द्रसेन एवं द्रुमसेनका वध, पुनः युधिष्ठिर और माद्री-पुत्रोंके साथ शल्यका युद्ध ...	४१४५
१३	मद्रराज शल्यका अद्भुत पराक्रम ...	४१४९
१४	अर्जुन और अश्वत्थामाका युद्ध तथा पाञ्चाल वीर सुरथका वध	४१५१
१५	दुर्योधन और धृष्टद्युम्नका एवं अर्जुन और अश्वत्थामाका तथा शल्यके साथ नकुल और सात्यकि आदिका घोर संग्राम ...	४१५४
१६	पाण्डव-सैनिकों और कौरव-सैनिकोंका द्वन्द्व-युद्ध, भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी तथा युधिष्ठिर-द्वारा शल्यकी पराजय	४१५६
१७	भीमसेनद्वारा राजा शल्यके घोड़े और सारथिका तथा युधिष्ठिरद्वारा राजा शल्य और उनके भाईका वध एवं कृतवर्माकी पराजय ...	४१६०
१८	मद्रराजके अनुचरोंका वध और कौरव-सेनाका पलायन	४१६७
१९	पाण्डव-सैनिकोंका आपसमें बातचीत करते हुए पाण्डवोंकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा करना तथा कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना ...	४१६९
२०	धृष्टद्युम्नद्वारा राजा शाल्वके हाथीका और सात्यकिद्वारा राजा शाल्वका वध ...	४१७३
२१	सात्यकिद्वारा क्षेमधूर्तिका वध, कृतवर्माका युद्ध और उसकी पराजय एवं कौरव-सेनाका पलायन	४१७६
२२	दुर्योधनका पराक्रम और उभयपक्षकी सेनाओं-का घोर संग्राम	४१७८
२३	कौरव-पक्षके सात सौ रथियोंका वध, उभय-पक्षकी सेनाओंका मर्यादाशून्य घोर संग्राम तथा शकुनिका कूट युद्ध और उसकी पराजय ...	४१८०
२४	श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनद्वारा दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा और रथियोंकी सेनाका संहार	४१८५
२५	अर्जुन और भीमसेनद्वारा कौरवोंकी रथसेना एवं गजसेनाका संहार, अश्वत्थामा आदिके द्वारा दुर्योधनकी खोज, कौरव-सेनाका पलायन तथा सात्यकिद्वारा संजयका पकड़ा जाना	४१८९

२६–भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका और बहुत-सी चतुरङ्गिणी सेनाका वध ... ४१९३
२७–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों और सेनासहित सुशर्माका वध तथा भीमके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका अन्त ... ४१९५
२८–सहदेवके द्वारा उलूक और शकुनिका वध एवं बची हुई सेनासहित दुर्योधनका पलायन ... ४१९८

(ह्रदप्रवेशपर्व)

२९–बची हुई समस्त कौरव-सेनाका वध, संजयका कैदसे छूटना, दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश तथा युयुत्सुका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुरमें जाना ४२०२

(गदापर्व)

३०–अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यका सरोवर-पर जाकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके विषयमें बातचीत करना, व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना ... ४२०८
३१–पाण्डवोंका द्वैपायनसरोवरपर जाना, वहाँ युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी बातचीत तथा तालाबमें छिपे हुए दुर्योधनके साथ युधिष्ठिरका संवाद ४२१२
३२–युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका तालाबसे बाहर होकर किसी एक पाण्डवके साथ गदायुद्धके लिये तैयार होना ४२१६
३३–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको फटकारना, भीमसेनकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध ... ४२२१
३४–बलरामजीका आगमन और स्वागत तथा भीमसेन और दुर्योधनके युद्धका आरम्भ ... ४२२४
३५–बलदेवजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभासक्षेत्रके प्रभावका वर्णनके प्रसंगमें चन्द्रमाके शाप-मोचनकी कथा ४२२५
३६–उदपानतीर्थकी उत्पत्तिकी तथा त्रित मुनि-के कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा ... ४२३०
३७–विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, गर्गस्रोत, शङ्ख, द्वैतवन तथा नैमिषेय आदि तीर्थोंमें होते हुए बलभद्रजीका सप्त सारस्वततीर्थमें प्रवेश ... ४२३३
३८–सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति, महिमा और मङ्कणक मुनिका चरित्र ४२३७
३९–औशनस एवं कपालमोचनतीर्थकी माहात्म्यकथा तथा रुषङ्गुके आश्रम पृथूदक तीर्थकी महिमा ४२४०
४०–आर्ष्टिषेण एवं विश्वामित्रकी तपस्या तथा वरप्राप्ति ४२४२
४१–अवाकीर्ण और यायात तीर्थकी महिमाके प्रसंग-में दाल्भ्यकी कथा और ययातिके यज्ञका वर्णन ४२४४
४२–वसिष्ठापवाह तीर्थकी उत्पत्तिके प्रसंगमें विश्वामित्र-का क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता ... ४२४७
४३–ऋषियोंके प्रयत्नसे सरस्वतीके शापकी निवृत्ति, जलकी शुद्धि तथा अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे राक्षसों और इन्द्रका संकटमोचन ... ४२४९
४४–कुमार कार्तिकेयका प्राकट्य और उनके अभिषेककी तैयारी ४२५२
४५–स्कन्दका अभिषेक और उनके महापार्षदोंके नाम, रूप आदिका वर्णन ... ४२५५
४६–मातृकाओंका परिचय तथा स्कन्ददेवकी रण-यात्रा और उनके द्वारा तारकासुर, महिषासुर आदि दैत्योंका सेनासहित संहार ... ४२६०
४७–वरुणका अभिषेक तथा अग्नितीर्थ, ब्रह्मयोनि और कुबेरतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग ... ४२६६
४८–बदरपाचनतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रुतावती और अरुन्धतीके तपकी कथा ... ४२६८
४९–इन्द्रतीर्थ, रामतीर्थ, यमुनातीर्थ और आदित्य-तीर्थकी महिमा ४२७१
५०–आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें असित देवल तथा जैगीषव्य मुनिका चरित्र ... ४२७३
५१–सारस्वततीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें दधीच ऋषि और सारस्वत मुनिके चरित्रका वर्णन ... ४२७६
५२–वृद्धकन्याका चरित्र, शृङ्गवान्‌के साथ उसका विवाह और स्वर्गगमन तथा उस तीर्थका माहात्म्य ४२७९
५३–ऋषियोंद्वारा कुरुक्षेत्रकी सीमा और महिमाका वर्णन ४२८१

५४–प्लक्षप्रस्रवण आदि तीर्थों तथा सरस्वतीकी महिमा एवं नारदजीसे कौरवोंके विनाश और भीम तथा दुर्योधनके युद्धका समाचार सुनकर बलरामजीका उसे देखनेके लिये जाना ··· ४२८३
५५–बलरामजीकी सलाहसे सबका कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चकतीर्थमें जाना और वहाँ भीम तथा दुर्योधनमें गदायुद्धकी तैयारी ··· ४२८५
५६–दुर्योधनके लिये अपशकुन, भीमसेनका उत्साह तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्धके पश्चात् गदायुद्धका आरम्भ ··· ··· ४२८८
५७–भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध ··· ४२९१
५८–श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनके संकेतके अनुसार भीमसेनका गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़कर उसे धराशायी करना एवं भीषण उत्पातोंका प्रकट होना ··· ··· ४२९५
५९–भीमसेनके द्वारा दुर्योधनका तिरस्कार, युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाकर अन्यायसे रोकना और दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए खेद प्रकट करना ··· ··· ४२९९
६०–क्रोधमें भरे हुए बलरामको श्रीकृष्णका समझाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत ··· ४३०१
६१–पाण्डव-सैनिकोंद्वारा भीमकी स्तुति, श्रीकृष्णका दुर्योधनपर आक्षेप, दुर्योधनका उत्तर तथा श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डवोंका समाधान एवं शङ्खध्वनि ··· ··· ४३०४
६२–पाण्डवोंका कौरवशिबिरमें पहुँचना, अर्जुनके रथका दग्ध होना और पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजना ··· ४३०९
६३–युधिष्ठिरकी प्रेरणासे श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको आश्वासन दे पुनः पाण्डवोंके पास लौट आना ··· ४३१२
६४–दुर्योधनका संजयके सम्मुख विलाप और वाहकोंद्वारा अपने साथियोंको संदेश भेजना ··· ४३१७
६५–दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक ··· ४३२०

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–युधिष्ठिरकी ललकारपर दुर्योधनका पानीसे बाहर निकल आना ··· ··· ४१११
२–मित्रावरुणके आश्रममें बलरामजीकी देवर्षि नारदजीसे भेंट ··· ··· ४२२१

(सादा)

३–शल्यका कौरवोंके सेनापति-पदपर अभिषेक ४१३०
४–युधिष्ठिरद्वारा शल्यपर शक्तिका घातक प्रहार ४१६४
५–श्रीकृष्ण दुर्योधनकी ओर संकेत करते हुए उसे मारनेके लिये अर्जुनको प्रेरित कर रहे हैं ४१९५
६–विश्रामके लिये सरोवरमें छिपे हुए दुर्योधन ··· ४२७५
७–पाण्डवोंद्वारा बलरामजीकी पूजा ··· ४२२४
८–दुर्योधन और भीमका गदायुद्ध ··· ४२९१
९–युद्धके अन्तमें अर्जुनके रथका दाह ··· ४३१०

श्रीहरिः

सौप्तिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम, कौओंपर उल्लूका आक्रमण देख अश्वत्थामाके मनमें क्रूर संकल्पका उदय तथा अपने दोनों साथियोंसे उसका सलाह पूछना	४३२३
२	कृपाचार्यका अश्वत्थामाको दैवकी प्रबलता बताते हुए कर्तव्यके विषयमें सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी प्रेरणा देना	४३२७
३	अश्वत्थामाका कृपाचार्य और कृतवर्माको उत्तर देते हुए उन्हें अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना	४३२९
४	कृपाचार्यका कल प्रातःकाल युद्ध करनेकी सलाह देना और अश्वत्थामाका इसी रात्रिमें सोते हुओंको मारनेका आग्रह प्रकट करना	४३३१
५	अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवाद तथा तीनोंका पाण्डवोंके शिबिरकी ओर प्रस्थान	४३३४
६	अश्वत्थामाका शिबिरद्वारपर एक अद्भुत पुरुषको देखकर उसपर अस्त्रोंका प्रहार करना और अस्त्रोंके अभावमें चिन्तित हो भगवान् शिवकी शरणमें जाना	४३३६
७	अश्वत्थामाद्वारा शिवकी स्तुति, उसके सामने एक अग्निवेदी तथा भूतगणोंका प्राकट्य और उसका आत्मसमर्पण करके भगवान् शिवसे खड्ग प्राप्त करना	४३३८
८	अश्वत्थामाके द्वारा रात्रिमें सोये हुए पाञ्चाल आदि समस्त वीरोंका संहार तथा फाटकसे निकलकर भागते हुए योद्धाओंका कृतवर्मा और कृपाचार्यद्वारा वध	४३४२
९	दुर्योधनकी दशा देखकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाका विलाप तथा उनके मुखसे पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त जानकर दुर्योधनका प्रसन्न होकर प्राणत्याग करना	४३५१
	(ऐषीकपर्व)	
१०	धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे पुत्रों और पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरका विलाप, द्रौपदीको बुलानेके लिये नकुलको भेजना, सुहृदोंके साथ शिबिरमें जाना तथा मारे हुए पुत्रादिको देखकर भाईसहित शोकातुर होना	४३५५
११	युधिष्ठिरका शोकमें व्याकुल होना, द्रौपदीका विलाप तथा द्रोणकुमारके वधके लिये आग्रह, भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये प्रस्थान	४३५८
१२	श्रीकृष्णका अश्वत्थामाकी चपलता एवं क्रूरताके प्रसंगमें सुदर्शनचक्र माँगनेकी बात सुनाते हुए उससे भीमसेनकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना	४३६०
१३	श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिरका भीमसेनके पीछे जाना, भीमका गङ्गातटपर पहुँचकर अश्वत्थामाको ललकारना और अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग	४३६२
१४	अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण करनेके लिये अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग एवं वेदव्यासजी और देवर्षि नारदका प्रकट होना	४३६३
१५	वेदव्यासजीकी आज्ञासे अर्जुनके द्वारा अपने अस्त्रका उपसंहार तथा अश्वत्थामाका अपनी मणि देकर पाण्डवोंके गर्भोंपर दिव्यास्त्र छोड़ना	४३६५
१६	श्रीकृष्णसे शाप पाकर अश्वत्थामाका वनको प्रस्थान तथा पाण्डवोंका मणि देकर द्रौपदीको शान्त करना	४३६७
१७	अपने समस्त पुत्रों और सैनिकोंके मारे जानेके विषयमें युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे पूछना और उत्तरमें श्रीकृष्णके द्वारा महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन	४३६९
१८	महादेवजीके कोपसे देवता, यज्ञ और जगत्की दुरवस्था तथा उनके प्रसादसे सबका स्वस्थ होना	४३७१

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–भीमसेन अश्वत्थामासे प्राप्त हुई मणि द्रौपदीको दे रहे हैं ... ४३२३

(सादा)

२–अश्वत्थामा एवं अर्जुनके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रोंको शान्त करनेके लिये नारदजी और व्यासजीका आगमन ... ४३६४

* श्रीहरिः *

स्त्रीपर्व

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

(जलप्रदानिकपर्व)

१—धृतराष्ट्रका विलाप और संजयका उनको सान्त्वना देना ४३७३

२—विदुरजीका राजा धृतराष्ट्रको समझाकर उनको शोकका त्याग करनेके लिये कहना ... ४३७६

३—विदुरजीका शरीरकी अनित्यता बताते हुए धृतराष्ट्रको शोक त्यागनेके लिये कहना ... ४३७८

४—दुःखमय संसारके गहन स्वरूपका वर्णन और उससे छूटनेका उपाय ४३७९

५—गहन वनके दृष्टान्तसे संसारके भयंकर स्वरूपका वर्णन ४३८१

६—संसाररूपी वनके रूपकका स्पष्टीकरण ... ४३८२

७—संसारचक्रका वर्णन और रथके रूपकसे संयम और ज्ञान आदिको मुक्तिका उपाय बताना ... ४३८३

८—व्यासजीका संहारको अवश्यम्भावी बताकर धृतराष्ट्रको समझाना ४३८५

९—धृतराष्ट्रका शोकातुर हो जाना और विदुरजीका उन्हें पुनः शोक-निवारणके लिये उपदेश ... ४३८८

१०—स्त्रियों और प्रजाके लोगोंके सहित राजा धृतराष्ट्रका रणभूमिमें जानेके लिये नगरसे बाहर निकलना ४३८९

११—राजा धृतराष्ट्रसे कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माकी भेंट और कृपाचार्यका कौरव-पाण्डवोंकी सेनाके विनाशकी सूचना देना ... ४३९१

१२—पाण्डवोंका धृतराष्ट्रसे मिलना, धृतराष्ट्रके द्वारा भीमकी लोहमयी प्रतिमाका भङ्ग होना और शोक करनेपर श्रीकृष्णका उन्हें समझाना ... ४३९२

१३—श्रीकृष्णका धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना और धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको हृदयसे लगाना ४३९४

१४—पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुई गान्धारीको व्यासजीका समझाना ... ४३९५

१५—भीमसेनका गान्धारीको अपनी सफाई देते हुए उनसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अपना अपराध स्वीकार करना, गान्धारीके दृष्टिपातसे युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना, अर्जुनका भयभीत होकर श्रीकृष्णके पीछे छिप जाना, पाण्डवोंका अपनी मातासे मिलना, द्रौपदीका विलाप, कुन्तीका आश्वासन तथा गान्धारीका उन दोनोंको धीरज बँधाना ... ४३९६

(स्त्रीविलापपर्व)

१६—वेदव्यासजीके वरदानसे दिव्य दृष्टिसम्पन्न हुई गान्धारीका युद्धस्थलमें मारे गये योद्धाओं तथा रोती हुई बहुओंको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ४३९९

१७—दुर्योधन तथा उसके पास रोती हुई पुत्रवधूको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ४४०२

१८—अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ... ४४०४

१९—विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति तथा दुःसहको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ४४०६

२०—गान्धारीद्वारा श्रीकृष्णके प्रति उत्तरा और विराट-कुलकी स्त्रियोंके शोक एवं विलापका वर्णन ... ४४०७

२१—गान्धारीके द्वारा कर्णको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन ४४०९

२२—अपनी-अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए अवन्ती-नरेश और जयद्रथको देखकर तथा दुःशलापर दृष्टिपात करके गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप ४४१०

२३—शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख गान्धारीका विलाप ... ४४१२

२४—भूरिश्रवाके पास उसकी पत्नियोंका विलाप, उन सबको तथा शकुनिको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख शोकोद्गार ... ४४१४

२५—अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर गान्धारीका शोकातुर होकर विलाप करना और क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णको यदुवंशविनाशविषयक शाप देना ४४१६

(श्राद्धपर्व)

२६—प्राप्त अनुस्मृति विद्या और दिव्य दृष्टिके प्रभावसे युधिष्ठिरका महाभारत-युद्धमें मारे गये लोगोंकी संख्या और गतिका वर्णन तथा युधिष्ठिरकी आज्ञासे सबका दाह-संस्कार ... ४४२०

२७—सभी स्त्री-पुरुषोंका अपने मरे हुए सम्बन्धियों-को जलाञ्जलि देना, कुन्तीका अपने गर्भसे कर्णके जन्म होनेका रहस्य प्रकट करना तथा युधिष्ठिरका कर्णके लिये शोक प्रकट करते हुए उनका प्रेतकृत्य सम्पन्न करना और स्त्रियोंके मनमें रहस्यकी बात न छिपनेका शाप देना ··· ४४२२

चित्र-सूची

(सादा)

१—व्यासजी गान्धारीको समझा रहे हैं ··· ४३९५

२—युद्धमें काम आये हुए वीरोंको उनके सम्बन्धियोंद्वारा जलदान ··· ४४२२

॥ श्रीहरिः ॥

शान्तिपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(राजधर्मानुशासनपर्व)	
१	युधिष्ठिरके पास नारद आदि महर्षियोंका आगमन और युधिष्ठिरका कर्णके साथ अपना सम्बन्ध बताते हुए कर्णको शाप मिलनेका वृत्तान्त पूछना	४४२५
२	नारदजीका कर्णको शाप प्राप्त होनेका प्रसङ्ग सुनाना	४४२८
३	कर्णको ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति और परशुरामजीका शाप	४४३०
४	कर्णकी सहायतासे समागत राजाओंको पराजित करके दुर्योधनद्वारा स्वयंवरसे कलिङ्गराजकी कन्याका अपहरण ...	४४३२
५	कर्णके बल और पराक्रमका वर्णन, उसके द्वारा जरासंधकी पराजय और जरासंधका कर्णको अङ्गदेशमें मालिनी नगरीका राज्य प्रदान करना	४४३३
६	युधिष्ठिरकी चिन्ता, कुन्तीका उन्हें समझाना और स्त्रियोंको युधिष्ठिरका शाप ...	४४३४
७	युधिष्ठिरका अर्जुनसे आन्तरिक खेद प्रकट करते हुए अपने लिये राज्य छोड़कर वनमें चले जानेका प्रस्ताव करना ...	४४३५
८	अर्जुनका युधिष्ठिरके मतका निराकरण करते हुए उन्हें धनकी महत्ता बताना और राजधर्मके पालनके लिये जोर देते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये प्रेरित करना ...	४४३८
९	युधिष्ठिरका वानप्रस्थ एवं संन्यासीके अनुसार जीवन व्यतीत करनेका निश्चय ...	४४४१
१०	भीमसेनका राजाके लिये संन्यासका विरोध करते हुए अपने कर्तव्यके ही पालनपर जोर देना	४४४३
११	अर्जुनका पक्षिरूपधारी इन्द्र और ऋषिबालकोंके संवादका उल्लेखपूर्वक गृहस्थ-धर्मके पालनपर जोर देना ...	४४४५
१२	नकुलका गृहस्थ-धर्मकी प्रशंसा करते हुए राजा युधिष्ठिरको समझाना ...	४४४७
१३	सहदेवका युधिष्ठिरको ममता और आसक्तिसे रहित होकर राज्य करनेकी सलाह देना ...	४४५०
१४	द्रौपदीका युधिष्ठिरको राजदण्डधारणपूर्वक पृथ्वीका शासन करनेके लिये प्रेरित करना ...	४४५१
१५	अर्जुनके द्वारा राजदण्डकी महत्ताका वर्णन ...	४४५४
१६	भीमसेनका राजाको भुक्त दुःखोंकी स्मृति कराते हुए मोह छोड़कर मनको काबूमें करके राज्य-शासन और यज्ञके लिये प्रेरित करना ...	४४५७
१७	युधिष्ठिरद्वारा भीमकी बातका विरोध करते हुए मुनिवृत्तिकी और ज्ञानी महात्माओंकी प्रशंसा ...	४४५९
१८	अर्जुनका राजा जनक और उनकी रानीका दृष्टान्त देते हुए युधिष्ठिरको संन्यास ग्रहण करनेसे रोकना ...	४४६१
१९	युधिष्ठिरद्वारा अपने मतकी यथार्थताका प्रतिपादन	४४६४
२०	मुनिवर देवस्थानका राजा युधिष्ठिरको यज्ञानुष्ठानके लिये प्रेरित करना ...	४४६६
२१	देवस्थान मुनिके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति उत्तम धर्मका और यज्ञादि करनेका उपदेश ...	४४६७
२२	क्षत्रियधर्मकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनका पुनः राजा युधिष्ठिरको समझाना ...	४४६८
२३	व्यासजीका शङ्ख और लिखितकी कथा सुनाते हुए राजा सुद्युम्नके दण्डधर्मपालनका महत्त्व सुनाकर युधिष्ठिरको राजधर्ममें ही दृढ़ रहनेकी आज्ञा देना ...	४४६९
२४	व्यासजीका युधिष्ठिरको राजा हयग्रीवका चरित्र सुनाकर उन्हें राजोचित कर्तव्यका पालन करनेके लिये जोर देना ...	४४७२
२५	सेनजित्के उपदेशयुक्त उद्गारोंका उल्लेख करके व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ...	४४७५
२६	युधिष्ठिरके द्वारा धनके त्यागकी ही महत्ताका प्रतिपादन ...	४४७८
२७	युधिष्ठिरको शोकवश शरीर त्याग देनेके लिये उद्यत देख व्यासजीका उन्हें उससे निवारण करके समझाना ...	४४८०
२८	अश्मा ऋषि और जनकके संवादद्वारा प्रारब्धकी प्रबलता बतलाते हुए व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ...	४४८२
२९	श्रीकृष्णके द्वारा नारद-सृंजय-संवादके रूपमें सोलह राजाओंका उपाख्यान संक्षेपमें सुनाकर युधिष्ठिरके शोकनिवारणका प्रयत्न ...	४४८६
३०	महर्षि नारद और पर्वतका उपाख्यान ...	४४९६
३१	सुवर्णष्ठीवीके जन्म, मृत्यु और पुनर्जीवनका वृत्तान्त ...	४४९९
३२	व्यासजीका अनेक युक्तियोंसे राजा युधिष्ठिरको समझाना ...	४५०२

३३—व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाते हुए कालकी प्रबलता बताकर देवासुर-संग्राममें उदाहरणसे धर्मद्रोहियोंके दमनका औचित्य सिद्ध करना और प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता बताना ··· ४५०४
३४—जिन कर्मोंके करने और न करनेसे कर्ता प्रायश्चित्तका भागी होता और नहीं होता उनका विवेचन ··· ··· ४५०७
३५—पापकर्मके प्रायश्चित्तोंका वर्णन ··· ४५०९
३६—स्वायम्भुव मनुके कथनानुसार धर्मका स्वरूप, पापसे शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त, अभक्ष्य वस्तुओंका वर्णन तथा दानके अधिकारी एवं अनधिकारीका विवेचन ··· ४५१२
३७—व्यासजी तथा भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महाराज युधिष्ठिरका नगरमें प्रवेश ··· ४५१६
३८—नगर-प्रवेशके समय पुरवासियों तथा ब्राह्मणोंद्वारा राजा युधिष्ठिरका सत्कार और उनपर आक्षेप करनेवाले चार्वाकका ब्राह्मणोंद्वारा वध ४५१९
३९—चार्वाकको प्राप्त हुए वर आदिका श्रीकृष्णद्वारा वर्णन ··· ··· ४५२१
४०—युधिष्ठिरका राज्याभिषेक ··· ४५२२
४१—राजा युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रके अधीन रहकर राज्यकी व्यवस्थाके लिये भाइयों तथा अन्य लोगोंको विभिन्न कार्योंपर नियुक्त करना ··· ४५२४
४२—राजा युधिष्ठिर तथा धृतराष्ट्रका युद्धमें मारे गये सगे सम्बन्धियों तथा अन्य राजाओंके लिये श्राद्धकर्म करना ··· ··· ४५२५
४३—युधिष्ठिरद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति ४५२६
४४—महाराज युधिष्ठिरके दिये हुए विभिन्न भवनोंमें भीमसेन आदि सब भाइयोंका प्रवेश और विश्राम ४५२७
४५—युधिष्ठिरके द्वारा ब्राह्मणों तथा आश्रितोंका सत्कार एवं दान और श्रीकृष्णके पास जाकर उनकी स्तुति करते हुए कृतज्ञता-प्रकाशन ··· ४५२८
४६—युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवाद, श्रीकृष्णद्वारा भीष्मकी प्रशंसा और युधिष्ठिरको उनके पास चलनेका आदेश ··· ··· ४५३०
४७—भीष्मद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति—भीष्मस्तवराज ··· ··· ४५३२
४८—परशुरामजीद्वारा होनेवाले क्षत्रियसंहारके विषयमें राजा युधिष्ठिरका प्रश्न ··· ४५४१
४९—परशुरामजीके उपाख्यानमें क्षत्रियोंके विनाश और पुनः उत्पन्न होनेकी कथा ··· ४५४२
५०—श्रीकृष्णद्वारा भीष्मजीके गुण-प्रभावका सविस्तर वर्णन ··· ··· ४५४८
५१—भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका भीष्मकी प्रशंसा करते हुए उन्हें युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश करनेका आदेश ··· ४५५०
५२—भीष्मका अपनी असमर्थता प्रकट करना, भगवान्‌का उन्हें वर देना तथा ऋषियों एवं पाण्डवोंका दूसरे दिन आनेका संकेत करके वहाँसे विदा होकर अपने-अपने स्थानोंको जाना ४५५२
५३—भगवान् श्रीकृष्णकी प्रातश्चर्या, सात्यकिद्वारा उनका संदेश पाकर भाइयोंसहित युधिष्ठिरका उन्हींके साथ कुरुक्षेत्रमें पधारना ··· ४५५४
५४—भगवान् श्रीकृष्ण और भीष्मजीकी बातचीत ··· ४५५६
५५—भीष्मका युधिष्ठिरके गुण-कथनपूर्वक उनको प्रश्न करनेका आदेश देना, श्रीकृष्णका उनके लज्जित और भयभीत होनेका कारण बताना और भीष्मका आश्वासन पाकर युधिष्ठिरका उनके समीप जाना ··· ··· ४५५८
५६—युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा राजधर्मका वर्णन, राजाके लिये पुरुषार्थ और सत्यकी आवश्यकता, ब्राह्मणोंकी अदण्डनीयता तथा राजाकी परिहासशीलता और मृदुतासे प्रकट होनेवाले दोष ··· ··· ४५६०
५७—राजाके धर्मानुकूल नीतिपूर्ण बर्तावका वर्णन ··· ४५६४
५८—भीष्मद्वारा राज्यरक्षाके साधनोंका वर्णन तथा संध्याके समय युधिष्ठिर आदिका विदा होना और रास्तेमें स्नान-संध्यादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर हस्तिनापुरमें प्रवेश ··· ४५६७
५९—ब्रह्माजीके नीतिशास्त्रका तथा राजा पृथुके चरित्रका वर्णन ··· ··· ४५६९
६०—वर्णधर्मका वर्णन ··· ··· ४५७८
६१—आश्रमधर्मका वर्णन ··· ··· ४५८२
६२—ब्राह्मणधर्म और कर्तव्यपालनका महत्त्व ··· ४५८४
६३—वर्णाश्रमधर्मका वर्णन तथा राजधर्मकी श्रेष्ठता ४५८५
६४—राजधर्मकी श्रेष्ठताका वर्णन और इस विषयमें इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाताका संवाद ४५८७
६५—इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाताका संवाद ४५९०
६६—राजधर्मके पालनसे चारों आश्रमोंके धर्मका फल मिलनेका कथन ··· ··· ४५९२
६७—राष्ट्रकी रक्षा और उन्नतिके लिये राजाकी आवश्यकताका प्रतिपादन ··· ४५९५
६८—वसुमना और बृहस्पतिके संवादमें राजाके न होनेसे प्रजाकी हानि और होनेसे लाभका वर्णन ४५९७
६९—राजाके प्रधान कर्तव्योंका तथा दण्डनीतिके द्वारा युगोंके निर्माणका वर्णन ··· ४६०१

७०—राजाको इहलोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति करानेवाले छत्तीस गुणोंका वर्णन ··· ४६०८
७१—धर्मपूर्वक प्रजाका पालन ही राजाका महान् धर्म है, इसका प्रतिपादन ··· ४६०९
७२—राजाके लिये सदाचारी विद्वान् पुरोहितकी आवश्यकता तथा प्रजापालनका महत्त्व ··· ४६१२
७३—विद्वान् सदाचारी पुरोहितकी आवश्यकता तथा ब्राह्मण और क्षत्रियमें मेल रहनेसे लाभ-विषयक राजा पुरूरवाका उपाख्यान ··· ४६१३
७४—ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे लाभका प्रतिपादन करनेवाला मुचुकुन्दका उपाख्यान ··· ४६१७
७५—राजाके कर्तव्यका वर्णन, युधिष्ठिरका राज्यसे विरक्त होना एव भीष्मजीका पुनः राज्यकी महिमा सुनाना ··· ··· ४६१८
७६—उत्तम-अधम ब्राह्मणोंके साथ राजाका बर्ताव ··· ४६२१
७७—केकयराजा तथा राक्षसका उपाख्यान और केकयराज्यकी श्रेष्ठताका विस्तृत वर्णन ··· ४६२२
७८—आपत्तिकालमें ब्राह्मणके लिये वैश्यवृत्तिसे निर्वाह करनेकी छूट तथा लुटेरोंसे अपनी और दूसरोंकी रक्षा करनेके लिये सभी जातियोंको शस्त्रधारण करनेका अधिकार एवं रक्षकको सम्मानका पात्र स्वीकार करना ··· ४६२५
७९—ऋत्विजोंके लक्षण, यज्ञ और दक्षिणाका महत्त्व तथा तपकी श्रेष्ठता ··· ··· ४६२८
८०—राजाके लिये मित्र और अमित्रकी पहचान तथा उन सबके साथ नीतिपूर्ण बर्तावका और मन्त्रीके लक्षणोंका वर्णन ··· ४६२९
८१—कुटुम्बीजनोंमें दलबंदी होनेपर उस कुलके प्रधान पुरुषको क्या करना चाहिये ? इसके विषयमें श्रीकृष्ण और नारदजीका संवाद ··· ४६३२
८२—मन्त्रियोंकी परीक्षाके विषयमें तथा राजा और राजकीय मनुष्योंसे सतर्क रहनेके विषयमें कालकवृक्षीय मुनिका उपाख्यान ··· ४६३५
८३—सभासद् आदिके लक्षण, गुप्त सलाह सुननेके अधिकारी और अनधिकारी तथा गुप्त-मन्त्रणाकी विधि एवं स्थानका निर्देश ··· ४६४०
८४—इन्द्र और बृहस्पतिके संवादमें सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन बोलनेका महत्त्व ··· ४६४३
८५—राजाकी व्यावहारिक नीति, मन्त्रिमण्डलका संघटन, दण्डका औचित्य तथा दूत, द्वारपाल, शिरोरक्षक, मन्त्री और सेनापतिके गुण ··· ४६४४
८६—राजाके निवासयोग्य नगर एवं दुर्गका वर्णन, उसके लिये प्रजापालनसम्बन्धी व्यवहार तथा तपस्वीजनोंके समादरका निर्देश ··· ४६४७
८७—राष्ट्रकी रक्षा तथा वृद्धिके उपाय ··· ४६४९
८८—प्रजासे कर लेने तथा कोश संग्रह करनेका प्रकार ४६५२
८९—राजाके कर्तव्यका वर्णन ··· ४६५४
९०—उतथ्यका मान्धाताको उपदेश—राजाके लिये धर्मपालनकी आवश्यकता ··· ४६५६
९१—उतथ्यके उपदेशमें धर्माचरणका महत्त्व और राजाके धर्मका वर्णन ··· ··· ४६५९
९२—राजाके धर्मपूर्वक आचारके विषयमें वामदेवजीका वसुमनाको उपदेश ··· ४६६३
९३—वामदेवजीके द्वारा राजोचित बर्तावका वर्णन ४६६४
९४—वामदेवके उपदेशमें राजा और राज्यके लिये हितकर बर्ताव ·· ··· ४६६७
९५—विजयाभिलाषी राजाके धर्मानुकूल बर्ताव तथा युद्धनीतिका वर्णन ··· ··· ४६६८
९६—राजाके छलरहित धर्मयुक्त बर्तावकी प्रशंसा ४६६९
९७—शूरवीर क्षत्रियोंके कर्तव्यका तथा उनकी आत्मशुद्धि और सद्गतिका वर्णन ··· ४६७१
९८—इन्द्र और अम्बरीषके संवादमें नदी और यज्ञके रूपकोंका वर्णन तथा समरभूमिमें जूझते हुए मारे जानेवाले शूरवीरोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्तिका कथन ··· ४६७३
९९—शूरवीरोंको स्वर्ग और कायरोंको नरककी प्राप्तिके विषयमें मिथिलेश्वर जनकका इतिहास ४६७८
१००—सैन्यसंचालनकी रीति-नीतिका वर्णन ··· ४६७९
१०१—भिन्न-भिन्न देशके योद्धाओंके स्वभाव, रूप, बल, आचरण और लक्षणोंका वर्णन ··· ४६८३
१०२—विजयसूचक शुभाशुभ लक्षणोंका तथा उत्साही और बलवान् सैनिकोंका वर्णन एवं राजाको युद्धसम्बन्धी नीतिका निर्देश ··· ४६८४
१०३—शत्रुको वशमें करनेके लिये राजाको किस नीतिसे काम लेना चाहिये और दुष्टोंको कैसे पहचानना चाहिये—इसके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद ·· ४६८७
१०४—राज्य, खजाना और सेना आदिसे वञ्चित हुए असहाय क्षेमदर्शी राजाके प्रति कालकवृक्षीय मुनिका वैराग्यपूर्ण उपदेश ४६९१
१०५—कालकवृक्षीय मुनिके द्वारा गये हुए राज्यकी प्राप्तिके लिये विभिन्न उपायोंका वर्णन ··· ४६९५
१०६—कालकवृक्षीय मुनिका विदेहराज तथा कोसलराजकुमारमें मेल कराना और विदेहराजका कोसलराजको अपना जामाता बना लेना ४६९७
१०७—गणतन्त्र राज्यका वर्णन और उसकी नीति ··· ४६९९
१०८—माता-पिता तथा गुरुकी सेवाका महत्त्व ··· ४७०२

१०९–सत्य-असत्यका विवेचन, धर्मका लक्षण तथा व्यावहारिक नीतिका वर्णन ... ४७०४
११०–सदाचार और ईश्वरभक्ति आदिको दुःखोंसे छूटनेका उपाय बताना ४७०६
१११–मनुष्यके स्वभावकी पहचान बतानेवाली बाघ और सियारकी कथा ४७०९
११२–एक तपस्वी ऊँटके आलस्यका कुपरिणाम और राजाका कर्तव्य ४७१५
११३–शक्तिशाली शत्रुके सामने बेंतकी भाँति नत-मस्तक होनेका उपदेश—सरिताओं और समुद्रका संवाद ४७१६
११४–दुष्ट मनुष्यद्वारा की हुई निन्दाको सह लेनेसे लाभ ४७१७
११५–राजा तथा राजसेवकोंके आवश्यक गुण ... ४७१९
११६–सज्जनोंके चरित्रके विषयमें दृष्टान्तरूपसे एक महर्षि और कुत्तेकी कथा ... ४७२०
११७–कुत्तेका शरभकी योनिमें जाकर महर्षिके शापसे पुनः कुत्ता हो जाना ... ४७२२
११८–राजाके सेवक, सचिव तथा सेनापति आदि और राजाके उत्तम गुणोंका वर्णन एवं उनसे लाभ ४७२४
११९–सेवकोंको उनके योग्य स्थानपर नियुक्त करने, कुलीन और सत्पुरुषोंका संग्रह करने, कोष बढ़ाने तथा सबकी देखभाल करनेके लिये राजाको प्रेरणा ४७२६
१२०–राजधर्मका साररूपमें वर्णन ... ४७२८
१२१–दण्डके स्वरूप, नाम, लक्षण, प्रभाव और प्रयोगका वर्णन ४७३२
१२२–दण्डकी उत्पत्ति तथा उसके क्षत्रियोंके हाथमें आनेकी परम्पराका वर्णन ... ४७३६
१२३–त्रिवर्गका विचार तथा पापके कारण पदच्युत हुए राजाके पुनरुत्थानके विषयमें आङ्गिरिष्ठ और कामन्दकका संवाद ४७३९
१२४–इन्द्र और प्रह्लादकी कथा–शीलका प्रभाव, शीलके अभावमें धर्म, सत्य, सदाचार, बल और लक्ष्मीके न रहनेका वर्णन ... ४७४१
१२५–युधिष्ठिरका आशाविषयक प्रश्न–उत्तरमें राजा सुमित्र और ऋषभनामक ऋषिके इतिहासका आरम्भ, उसमें राजा सुमित्रका एक मृगके पीछे दौड़ना ४७४६
१२६–राजा सुमित्रका मृगकी खोज करते हुए तपस्वी मुनियोंके आश्रमपर पहुँचना और उनसे आशाके विषयमें प्रश्न करना ... ४७४७
१२७–ऋषभका राजा सुमित्रको वीरद्युम्न और तनु मुनिका वृत्तान्त सुनाना ... ४७४८
१२८–तनु मुनिका राजा वीरद्युम्नको आशाके स्वरूपका परिचय देना और ऋषभके उपदेशसे सुमित्रका आशाको त्याग देना ... ४७५०
१२९–यम और गौतमका संवाद ... ४७५२
१३०–आपत्तिके समय राजाका धर्म ... ४७५३

(आपद्धर्मपर्व)

१३१–आपत्तिग्रस्त राजाके कर्तव्यका वर्णन ... ४७५६
१३२–ब्राह्मणों और श्रेष्ठ राजाओंके धर्मका वर्णन तथा धर्मकी गतिको सूक्ष्म बताना ... ४७५८
१३३–राजाके लिये कोशसंग्रहकी आवश्यकता, मर्यादाकी स्थापना और अमर्यादित दस्यु-वृत्तिकी निन्दा ४७५९
१३४–बलकी महत्ता और पापसे छूटनेका प्रायश्चित्त ४७६१
१३५–मर्यादाका पालन करने-करानेवाले कायव्य-नामक दस्युकी सद्गतिका वर्णन ... ४७६२
१३६–राजा किसका धन ले और किसका न ले तथा किसके साथ कैसा बर्ताव करे—इसका विचार ४७६४
१३७–आनेवाले संकटसे सावधान रहनेके लिये दूरदर्शी, तत्कालज्ञ और दीर्घसूत्री—इन तीन मत्स्योंका दृष्टान्त ४७६५
१३८–शत्रुओंसे घिरे हुए राजाके कर्तव्यके विषयमें बिडाल और चूहेका आख्यान ... ४७६६
१३९–शत्रुसे सदा सावधान रहनेके विषयमें राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़ियाका संवाद ... ४७८०
१४०–भारद्वाज कणिकका सौराष्ट्रदेशके राजाको कूटनीतिका उपदेश ४७८७
१४१–'ब्राह्मण भयंकर संकटकालमें किस तरह जीवन-निर्वाह करे' इस विषयमें विश्वामित्र मुनि और चाण्डालका संवाद ... ४७९३
१४२–आपत्कालमें राजाके धर्मका निश्चय तथा उत्तम ब्राह्मणोंके सेवनका आदेश ... ४८००
१४३–शरणागतकी रक्षा करनेके विषयमें एक बहेलिये और कपोत-कपोतीका प्रसङ्ग, सर्दीसे पीड़ित हुए बहेलियेका एक वृक्षके नीचे जाकर सोना ४८०३
१४४–कबूतरद्वारा अपनी भार्याका गुणगान तथा पतिव्रता स्त्रीकी प्रशंसा ४८०५
१४५–कबूतरीका कबूतरसे शरणागत व्याधकी सेवाके लिये प्रार्थना ४८०६
१४६–कबूतरके द्वारा अतिथि-सत्कार और अपने शरीरका बहेलियेके लिये परित्याग ... ४८०७
१४७–बहेलियेका वैराग्य ४८०९
१४८–कबूतरीका विलाप और अग्निमें प्रवेश तथा उन दोनोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति ... ४८०९

१४९—बहेलियेको स्वर्गलोककी प्राप्ति ... ४८१०
१५०—इन्द्रोत मुनिका राजा जनमेजयको फटकारना ४८११
१५१—ब्रह्महत्याके अपराधी जनमेजयका इन्द्रोत मुनिकी शरणमें जाना और इन्द्रोत मुनिका उससे ब्राह्मणद्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा कराकर उसे शरण देना ४८१३
१५२—इन्द्रोतका जनमेजयको धर्मोपदेश करके उनसे अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान कराना तथा निष्पाप राजाका पुनः अपने राज्यमें प्रवेश ४८१४
१५३—मृतककी पुनर्जीवन-प्राप्तिके विषयमें एक ब्राह्मण बालकके जीवित होनेकी कथामें गीध और सियारकी बुद्धिमत्ता ... ४८१७
१५४—नारदजीका सेमल-वृक्षसे प्रशंसापूर्वक प्रश्न ... ४८२५
१५५—नारदजीका सेमलवृक्षको उसका अहंकार देखकर फटकारना ४८२६
१५६—नारदजीकी बात सुनकर वायुका सेमलको धमकाना और सेमलका वायुको तिरस्कृत करके विचारमग्न होना ... ४८२७
१५७—सेमलका हार स्वीकार करना तथा बलवान्के साथ वैर न करनेका उपदेश ... ४८२८
१५८—समस्त अनर्थोंका कारण लोभको बताकर उससे होनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन तथा श्रेष्ठ महापुरुषोंके लक्षण ४८२९
१५९—अज्ञान और लोभको एक दूसरेका कारण बताकर दोनोंकी एकता करना और दोनोंको ही समस्त दोषोंका कारण सिद्ध करना ... ४८३२
१६०—मन और इन्द्रियोंके संयमरूप दमका माहात्म्य ४८३३
१६१—तपकी महिमा ४८३५
१६२—सत्यके लक्षण, स्वरूप और महिमाका वर्णन ४८३६
१६३—काम, क्रोध आदि तेरह दोषोंका निरूपण और उनके नाशका उपाय ... ४८३८
१६४—नृशंस अर्थात् अत्यन्त नीच पुरुषके लक्षण ४८३९
१६५—नाना प्रकारके पापों और उनके प्रायश्चित्तोंका वर्णन ४८४०
१६६—खड्गकी उत्पत्ति और प्राप्तिकी परम्पराकी महिमाका वर्णन ४८४६
१६७—धर्म, अर्थ और कामके विषयमें विदुर तथा पाण्डवोंके पृथक्-पृथक् विचार तथा अन्तमें युधिष्ठिरका निर्णय ४८५१
१६८—मित्र बनाने एवं न बनानेयोग्य पुरुषोंके लक्षण तथा कृतघ्न गौतमकी कथाका आरम्भ ४८५५
१६९—गौतमका समुद्रकी ओर प्रस्थान और संध्याके समय एक दिव्य बक पक्षीके घरपर अतिथि होना ४८५८
१७०—गौतमका राजधर्माद्वारा आतिथ्य-सत्कार और उसका राक्षसराज विरूपाक्षके भवनमें प्रवेश ४८६०
१७१—गौतमका राक्षसराजके यहाँसे सुवर्णराशि लेकर लौटना और अपने मित्र बकके वधका घृणित विचार मनमें लाना ४८६१
१७२—कृतघ्न गौतमद्वारा मित्र राजधर्माका वध तथा राक्षसोंद्वारा उसकी हत्या और कृतघ्नके मांसको अभक्ष्य बताना ४८६३
१७३—राजधर्मा और गौतमका पुनः जीवित होना ४८६५

(मोक्षधर्मपर्व)

१७४—शोकाकुल चित्तकी शान्तिके लिये राजा सेनजित् और ब्राह्मणके संवादका वर्णन ... ४८६७
१७५—अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है, इस विषयमें पिताके प्रति पुत्रद्वारा ज्ञानका उपदेश ४८७१
१७६—त्यागकी महिमाके विषयमें शम्पाक ब्राह्मणका उपदेश ४८७४
१७७—मङ्कि-गीता—धनकी तृष्णासे दुःख और उसकी कामनाके त्यागसे परम सुखकी प्राप्ति ... ४८७६
१७८—जनककी उक्ति तथा राजा नहुषके प्रश्नोंके उत्तरमें बोध्यगीता ४८८०
१७९—प्रह्लाद और अवधूतका संवाद—आजगरवृत्तिकी प्रशंसा ४८८१
१८०—सद्बुद्धिका आश्रय लेकर आत्महत्यादि पापकर्मसे निवृत्त होनेके सम्बन्धमें काश्यप ब्राह्मण और इन्द्रका संवाद ४८८४
१८१—शुभाशुभ कर्मोंका परिणाम कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका पतिपादन ... ४८८७
१८२—भरद्वाज और भृगुके संवादमें जगत्की उत्पत्तिका और विभिन्न तत्त्वोंका वर्णन ... ४८८९
१८३—आकाशसे अन्य चार स्थूल भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन ४८९१
१८४—पञ्चमहाभूतोंके गुणका विस्तारपूर्वक वर्णन ४८९३
१८५—शरीरके भीतर जठरानल तथा प्राण-अपान आदि-वायुओंकी स्थिति आदिका वर्णन ... ४८९६
१८६—जीवकी सत्तापर नाना प्रकारकी युक्तियोंसे शङ्का उपस्थित करना ४८९७
१८७—जीवकी सत्ता तथा नित्यताको युक्तियोंसे सिद्ध करना ४८९८
१८८—वर्णविभागपूर्वक मनुष्योंकी और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन ... ४९०१
१८९—चारों वर्णोंके अलग-अलग कर्मोंका और सदाचारका वर्णन तथा वैराग्यसे परब्रह्मकी प्राप्ति ४९०२

१९०–सत्यकी महिमा, असत्यके दोष तथा लोक और परलोकके सुख-दुःखका विवेचन ... ४९०३
१९१–ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य-आश्रमोंके धर्मका वर्णन ४९०५
१९२–वानप्रस्थ और संन्यास-धर्मोंका वर्णन तथा हिमालयके उत्तर पार्श्वमें स्थित उत्कृष्ट लोककी विलक्षणता एवं महत्ताका प्रतिपादन, भृगु-भरद्वाज संवादका उपसंहार ४९०७
१९३–शिष्टाचारका फलसहित वर्णन, पापको छिपानेसे हानि और धर्मकी प्रशंसा ... ४९१०
१९४–अध्यात्मज्ञानका निरूपण ... ४९१३
१९५–ध्यानयोगका वर्णन ४९१७
१९६–जपयज्ञके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न, उसके उत्तरमें जप और ध्यानकी महिमा और उसका फल ४९१९
१९७–जापकमें दोष आनेके कारण उसे नरककी प्राप्ति ४९२०
१९८–परमधामके अधिकारी जापकके लिये देवलोक भी नरकतुल्य हैं—इसका प्रतिपादन ... ४९२२
१९९–जापकको सावित्रीका वरदान, उसके पास धर्म, यम और काल आदिका आगमन, राजा इक्ष्वाकु और जापक ब्राह्मणका संवाद, सत्यकी महिमा तथा जापककी परमगतिका वर्णन ... ४९२३
२००–जापक ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकुकी उत्तम गतिका वर्णन तथा जापकको मिलनेवाले फलकी उत्कृष्टता ४९३२
२०१–बृहस्पतिके प्रश्नके उत्तरमें मनुद्वारा कामनाओंके त्यागकी एवं ज्ञानकी प्रशंसा तथा परमात्मतत्त्वका निरूपण ... ४९३४
२०२–आत्मतत्त्वका और बुद्धि आदि प्राकृत पदार्थोंका विवेचन तथा उसके साक्षात्कारका उपाय ४९३७
२०३–शरीर, इन्द्रिय और मन-बुद्धिसे अतिरिक्त आत्माकी नित्य-सत्ताका प्रतिपादन ... ४९४०
२०४–आत्मा एवं परमात्माके साक्षात्कारका उपाय तथा महत्त्व ४९४२
२०५–परब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ... ४९४३
२०६–परमात्मतत्त्वका निरूपण, मनु-बृहस्पति-संवादकी समाप्ति ४९४५
२०७–श्रीकृष्णसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका तथा उनकी महिमाका कथन ... ४९४८
२०८–ब्रह्माके पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियोंके वंशका तथा प्रत्येक दिशामें निवास करनेवाले महर्षियोंका वर्णन ४९५१
२०९–भगवान् विष्णुका वराहरूपमें प्रकट होकर देवताओंकी रक्षा और दानवोंका विनाश कर देना तथा नारदको अनुस्मृतिस्तोत्रका उपदेश और नारदद्वारा भगवान्की स्तुति ... ४९५४
२१०–गुरु-शिष्यके संवादका उल्लेख करते हुए श्रीकृष्ण-सम्बन्धी अध्यात्मतत्त्वका वर्णन ... ४९६२
२११–संसारचक्र और जीवात्माकी स्थितिका वर्णन ४९६५
२१२–निषिद्ध आचरणके त्याग, सत्त्व, रज और तमके कार्य एवं परिणामका तथा सत्त्वगुणके सेवनका उपदेश ४९६६
२१३–जीवोत्पत्तिका वर्णन करते हुए दोषों और बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये विषयासक्तिके त्यागका उपदेश ४९६८
२१४–ब्रह्मचर्य तथा वैराग्यसे मुक्ति ... ४९७०
२१५–आसक्ति छोड़कर सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेका उपदेश ... ४९७२
२१६–स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें मनकी स्थिति तथा गुणातीत ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ... ४९७४
२१७–सच्चिदानन्दघन परमात्मा, दृश्यवर्ग, प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा)—उन चारोंके ज्ञानसे मुक्तिका कथन तथा परमात्मप्राप्तिके अन्य साधनोंका भी वर्णन ४९७६
२१८–राजा जनकके दरबारमें पञ्चशिखका आगमन और उनके द्वारा नास्तिक मतोंके निराकरणपूर्वक शरीरसे भिन्न आत्माकी नित्य-सत्ताका प्रतिपादन ... ४९७९
२१९–पञ्चशिखके द्वारा मोक्षतत्त्वका विवेचन एवं भगवान् विष्णुद्वारा मिथिलानरेश जनकवंशी जनदेवकी परीक्षा और उनके लिये वर-प्रदान ४९८३
२२०–श्वेतकेतु और सुवर्चलाका विवाह, दोनों पति-पत्नीका अध्यात्मविषयक संवाद तथा गार्हस्थ्यधर्मका पालन करते हुए ही उनका परमात्माको प्राप्त होना एवं दमकी महिमाका वर्णन ४९८८
२२१–व्रत, तप, उपवास, ब्रह्मचर्य तथा अतिथिसेवा आदिका विवेचन तथा यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करनेवालेको परम उत्तम गतिकी प्राप्तिका कथन ४९९७
२२२–सनत्कुमारजीका ऋषियोंको भगवत्स्वरूपका उपदेश देना ४९९८
२२३–इन्द्र और बलिका संवाद—इन्द्रके आक्षेपयुक्त वचनोंका बलिके द्वारा कठोर प्रत्युत्तर ५००४

२२४—बलि और इन्द्रका संवाद, बलिके द्वारा कालकी प्रबलताका प्रतिपादन करते हुए इन्द्रको फटकारना ··· ··· ५००६
२२५—इन्द्र और लक्ष्मीका संवाद, बलिको त्यागकर आयी हुई लक्ष्मीकी इन्द्रके द्वारा प्रतिष्ठा ··· ५०१०
२२६—इन्द्र और नमुचिका संवाद ··· ··· ५०१४
२२७—इन्द्र और बलिका संवाद, काल और प्रारब्धकी महिमाका वर्णन ··· ··· ५०१६
२२८—दैत्योंको त्यागकर इन्द्रके पास लक्ष्मीदेवीका आना तथा किन सद्गुणोंके होनेपर लक्ष्मी आती हैं और किन दुर्गुणोंके होनेपर वे त्यागकर चली जाती हैं, इस बातको विस्तारपूर्वक बताना ··· ··· ५०२५
२२९—जैगीषव्यका असित-देवलको समत्वबुद्धिका उपदेश ··· ··· ५०३१
२३०—श्रीकृष्ण और उग्रसेनका संवाद—नारदजीकी लोकप्रियताके हेतुभूत गुणोंका वर्णन ··· ५०३३
२३१—शुकदेवजीका प्रश्न और व्यासजीका उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कालका स्वरूप बताना ··· ··· ५०३५
२३२—व्यासजीका शुकदेवको सृष्टिके उत्पत्ति-क्रम तथा युगधर्मोंका उपदेश ··· ५०३७
२३३—ब्राह्मप्रलय एवं महाप्रलयका वर्णन ··· ५०४०
२३४—ब्राह्मणोंका कर्तव्य और उन्हें दान देनेकी महिमाका वर्णन ··· ··· ५०४१
२३५—ब्राह्मणके कर्तव्यका प्रतिपादन करते हुए कालरूप नदको पार करनेका उपाय बतलाना ५०४४
२३६—ध्यानके सहायक योग, उनके फल और सात प्रकारकी धारणाओंका वर्णन तथा सांख्य एवं योगके अनुसार ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति ··· ५०४६
२३७—सृष्टिके समस्त कार्योंमें बुद्धिकी प्रधानता और प्राणियोंकी श्रेष्ठताके तारतम्यका वर्णन ··· ५०४९
२३८—नाना प्रकारके भूतोंकी समीक्षापूर्वक कर्मतत्त्वका विवेचन, युगधर्मका वर्णन एवं कालका महत्त्व ५०५१
२३९—ज्ञानका साधन और उसकी महिमा ··· ५०५३
२४०—योगसे परमात्माकी प्राप्तिका वर्णन ··· ५०५५
२४१—कर्म और ज्ञानका अन्तर तथा ब्रह्म-प्राप्तिके उपायका वर्णन ··· ··· ५०५८
२४२—आश्रमधर्मकी प्रस्तावना करते हुए ब्रह्मचर्य-आश्रमका वर्णन ··· ··· ५०५९
२४३—ब्राह्मणोंके उपलक्षणसे गार्हस्थ्य-धर्मका वर्णन ५०६१
२४४—वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म और महिमाका वर्णन ··· ··· ५०६३
२४५—संन्यासीके आचरण और ज्ञानवान् संन्यासीकी प्रशंसा ··· ··· ५०६६
२४६—परमात्माकी श्रेष्ठता, उसके दर्शनका उपाय तथा इस ज्ञानमय उपदेशके पात्रका निर्णय ५०६९
२४७—महाभूतादि तत्त्वोंका विवेचन ··· ५०७१
२४८—बुद्धिकी श्रेष्ठता और प्रकृति-पुरुष-विवेक ··· ५०७२
२४९—ज्ञानके साधन तथा ज्ञानीके लक्षण और महिमा ··· ··· ५०७४
२५०—परमात्माकी प्राप्तिका साधन, संसार-नदीका वर्णन और ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति ··· ५०७५
२५१—ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणके लक्षण और परब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय ··· ··· ५०७७
२५२—शरीरमें पञ्चभूतोंके कार्य और गुणोंकी पहचान ५०७९
२५३—स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरसे भिन्न जीवात्माका और परमात्माका योगके द्वारा साक्षात्कार करनेका प्रकार ··· ··· ५०८०
२५४—कामरूपी अद्भुत वृक्षका तथा उसे काटकर मुक्ति प्राप्त करनेके उपायका और शरीररूपी नगरका वर्णन ··· ··· ५०८१
२५५—पञ्चभूतोंके तथा मन और बुद्धिके गुणोंका विस्तृत वर्णन ··· ··· ५०८२
२५६—युधिष्ठिरका मृत्युविषयक प्रश्न, नारदजीका राजा अकम्पनसे मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाते हुए ब्रह्माजीकी रोषाग्निसे प्रजाके दग्ध होनेका वर्णन ··· ··· ५०८३
२५७—महादेवजीकी प्रार्थनासे ब्रह्माजीके द्वारा अपनी रोषाग्निका उपसंहार तथा मृत्युकी उत्पत्ति ··· ··· ५०८५
२५८—मृत्युकी घोर तपस्या और प्रजापतिकी आज्ञासे उसका प्राणियोंके संहारका कार्य स्वीकार करना ··· ··· ··· ५०८६
२५९—धर्माधर्मके स्वरूपका निर्णय ··· ५०८९
२६०—युधिष्ठिरका धर्मकी प्रामाणिकतापर संदेह उपस्थित करना ··· ··· ५०९१
२६१—जाजलिकी घोर तपस्या, सिरपर जटाओंमें पक्षियोंके घोंसला बनानेसे उनका अभिमान और आकाशवाणीकी प्रेरणासे उनका तुलाधार वैश्यके पास जाना ··· ··· ५०९३
२६२—जाजलि और तुलाधारका धर्मके विषयमें संवाद ५०९६
२६३—जाजलिको तुलाधारका आत्मयज्ञविषयक धर्मका उपदेश ··· ··· ५१००
२६४—जाजलिको पक्षियोंका उपदेश ··· ५१०३

२६५–राजा विचख्नुके द्वारा अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा ५१०५
२६६–महर्षि गौतम और चिरकारीका उपाख्यान—दीर्घकालतक सोच-विचारकर कार्य करनेकी प्रशंसा ··· ··· ५१०६
२६७–द्युमत्सेन और सत्यवान्‌का संवाद—अहिंसा-पूर्वक राज्यशासनकी श्रेष्ठताका कथन ··· ५११२
२६८–स्यूमरश्मि और कपिलका संवाद–स्यूमरश्मिके द्वारा यज्ञकी अवश्यकर्तव्यताका निरूपण ··· ५११५
२६९–प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गके विषयमें स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद ··· ··· ५११७
२७०–स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद–चारों आश्रमोंमें उत्तम साधनोंके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका कथन ५१२३
२७१–धन और काम-भोगोंकी अपेक्षा धर्म और तपस्याका उत्कर्ष सूचित करनेवाली ब्राह्मण और कुण्डधार मेघकी कथा ··· ५१२६
२७२–यज्ञमें हिंसाकी निन्दा और अहिंसाकी प्रशंसा ५१३०
२७३–धर्म, अधर्म, वैराग्य और मोक्षके विषयमें युधिष्ठिरके चार प्रश्न और उनका उत्तर ··· ५१३२
२७४–मोक्षके साधनका वर्णन ··· ५१३३
२७५–जीवात्माके देहाभिमानसे मुक्त होनेके विषयमें नारद और असित देवलका संवाद ··· ५१३५
२७६–तृष्णाके परित्यागके विषयमें माण्डव्य मुनि और जनकका संवाद ··· ··· ५१३७
२७७–शरीर और संसारकी अनित्यता तथा आत्म-कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके कर्तव्यका निर्देश—पिता-पुत्रका संवाद ··· ५१३८
२७८–हारीत मुनिके द्वारा प्रतिपादित संन्यासीके स्वभाव, आचरण और धर्मोंका वर्णन ··· ५१४२
२७९–ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय तथा उस विषयमें वृत्र-शुक्र-संवादका आरम्भ ··· ५१४३
२८०–वृत्रासुरको सनत्कुमारका अध्यात्मविषयक उपदेश देना और उसकी परम गति तथा भीष्मद्वारा युधिष्ठिरकी शङ्काका निवारण ५१४६
२८१–इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धका वर्णन ··· ५१५३
२८२–वृत्रासुरका वध और उससे प्रकट हुई ब्रह्म-हत्याका ब्रह्माजीके द्वारा चार स्थानोंमें विभाजन ५१५५
२८३–शिवजीद्वारा दक्षयज्ञका भंग और उनके क्रोधसे ज्वरकी उत्पत्ति तथा उसके विविध रूप ··· ५१६०
२८४–पार्वतीके रोष एवं खेदका निवारण करनेके लिये भगवान् शिवके द्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्ष-द्वारा किये हुए शिवसहस्रनामस्तोत्रसे संतुष्ट होकर महादेवजीका उन्हें वरदान देना तथा इस स्तोत्रकी महिमा ··· ··· ५१६४
२८५–अध्यात्मज्ञानका और उसके फलका वर्णन ५१७८
२८६–समङ्गके द्वारा नारदजीसे अपनी शोकहीन स्थितिका वर्णन ··· ··· ५१८२
२८७–नारदजीका गालवमुनिको श्रेयका उपदेश ५१८३
२८८–अरिष्टनेमिका राजा सगरको वैराग्योत्पादक मोक्षविषयक उपदेश ··· ··· ५१८८
२८९–भृगुपुत्र उशनाका चरित्र और उन्हें शुक्र नामकी प्राप्ति ··· ··· ५१९१
२९०–पराशरगीताका आरम्भ—पराशरमुनिका राजा जनकको कल्याणकी प्राप्तिके साधनका उपदेश ··· ··· ५१९४
२९१–पराशरगीता—कर्मफलकी अनिवार्यता तथा पुण्यकर्मसे लाभ ··· ··· ५१९६
२९२–पराशरगीता—धर्मोपार्जित धनकी श्रेष्ठता, अतिथि-सत्कारका महत्त्व, पाँच प्रकारके ऋणोंसे छूटनेकी विधि, भगवत्स्तवनकी महिमा एवं सदाचार तथा गुरुजनोंकी सेवासे महान् लाभ ··· ··· ५१९८
२९३–पराशरगीता—शूद्रके लिये सेवावृत्तिकी प्रधानता, सत्सङ्गकी महिमा और चारों वर्णोंके धर्मपालनका महत्त्व ··· ५२००
२९४–पराशरगीता—ब्राह्मण और शूद्रकी जीविका, निन्दनीय कर्मोंके त्यागकी आज्ञा, मनुष्योंमें आसुरभावकी उत्पत्ति और भगवान् शिवके द्वारा उसका निवारण तथा स्वधर्मके अनुसार कर्तव्यपालनका आदेश ··· ५२०२
२९५–पराशरगीता—विषयासक्त मनुष्यका पतन, तपोबलकी श्रेष्ठता तथा दृढ़तापूर्वक स्वधर्म-पालनका आदेश ··· ··· ५२०४
२९६–पराशरगीता–वर्णविशेषकी उत्पत्तिका रहस्य, तपोबलसे उत्कृष्ट वर्णकी प्राप्ति, विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्म, सत्कर्मकी श्रेष्ठता तथा हिंसारहित धर्मका वर्णन ··· ५२०७
२९७–पराशरगीता–नाना प्रकारके धर्म और कर्तव्योंका उपदेश ··· ··· ५२०९
२९८–पराशरगीताका उपसंहार—राजा जनकके विविध प्रश्नोंका उत्तर ··· ··· ५२१३
२९९–हंसगीता–हंसरूपधारी ब्रह्माका साध्यगणोंको उपदेश ··· ··· ५२१६
३००–सांख्य और योगका अन्तर बतलाते हुए योगमार्गके स्वरूप, साधन, फल और प्रभाव-का वर्णन ··· ··· ५२२०

३०१–सांख्ययोगके अनुसार साधन और उसके फलका वर्णन ··· ··· ५२२५
३०२–वसिष्ठ और करालजनकका संवाद—क्षर और अक्षरतत्त्वका निरूपण और इनके ज्ञानसे मुक्ति ५२३२
३०३–प्रकृति-संसर्गके कारण जीवका अपनेको नाना प्रकारके कर्मोंका कर्ता और भोक्ता मानना एवं नाना योनियोंमें बारंबार जन्म ग्रहण करना ५२३५
३०४–प्रकृतिके संसर्गदोषसे जीवका पतन ··· ५२३९
३०५–क्षर-अक्षर एवं प्रकृति-पुरुषके विषयमें राजा जनककी शङ्का और उसका वसिष्ठजीद्वारा उत्तर ५२४०
३०६–योग और सांख्यके स्वरूपका वर्णन तथा आत्मज्ञानसे मुक्ति ··· ५२४२
३०७–विद्या-अविद्या, अक्षर और क्षर तथा प्रकृति और पुरुषके स्वरूपका एवं विवेकीके उद्गारका वर्णन ··· ··· ५२४६
३०८–क्षर-अक्षर और परमात्मतत्त्वका वर्णन, जीवके नानात्व और एकत्वका दृष्टान्त, उपदेशके अधिकारी और अनधिकारी तथा इस ज्ञानकी परम्पराको बताते हुए वसिष्ठ-करालजनक-संवादका उपसंहार ··· ··· ५२४९
३०९–जनकवंशी वसुमान्‌को एक मुनिका धर्म-विषयक उपदेश ··· ··· ५२५३
३१०–याज्ञवल्क्यका राजा जनकको उपदेश—सांख्यमतके अनुसार चौबीस तत्त्वों और नौ प्रकारके सर्गोंका निरूपण ··· ५२५५
३११–अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, मन और विषयोंकी कालसंख्याका एवं सृष्टिका वर्णन तथा इन्द्रियोंमें मनकी प्रधानताका प्रतिपादन ५२५७
३१२–संहारक्रमका वर्णन ··· ··· ५२५८
३१३–अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा सात्त्विक, राजस और तामस भावोंके लक्षण ५२५९
३१४–सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिके मनुष्योंकी गतिका वर्णन तथा राजा जनकके प्रश्न ५२६१
३१५–प्रकृति-पुरुषका विवेक और उसका फल ··· ५२६२
३१६–योगका वर्णन और उसके साधनसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति ··· ··· ५२६४
३१७–विभिन्न अङ्गोंसे प्राणोंके उत्क्रमणका फल तथा मृत्युसूचक लक्षणोंका वर्णन और मृत्युको जीतनेका उपाय ··· ५२६६
३१८–याज्ञवल्क्यद्वारा अपनेको सूर्यसे वेदज्ञानकी प्राप्तिका प्रसङ्ग सुनाना, विश्वावसुको जीवात्मा और परमात्माकी एकताके ज्ञानका उपदेश देकर उसका फल मुक्ति बताना तथा जनकको उपदेश देकर विदा होना ··· ५२६७
३१९–जरा-मृत्युका उल्लङ्घन करनेके विषयमें पञ्चशिख और राजा जनकका संवाद ··· ५२७५
३२०–राजा जनककी परीक्षा करनेके लिये आयी हुई सुलभाका उनके शरीरमें प्रवेश करना, राजा जनकका उसपर दोषारोपण करना एवं सुलभाका युक्तियोंद्वारा निराकरण करते हुए राजा जनकको अज्ञानी बताना ··· ५२७६
३२१–व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको वैराग्य और धर्मपूर्ण उपदेश देते हुए सावधान करना ५२८९
३२२–शुभाशुभ कर्मोंका परिणाम कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका प्रतिपादन ··· ५२९६
३२३–व्यासजीकी पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या और भगवान् शङ्करसे वर-प्राप्ति ··· ५२९८
३२४–शुकदेवजीकी उत्पत्ति और उनके यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन एवं समावर्तन संस्कारका वृत्तान्त ५२९९
३२५–पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीका मिथिलामें जाना और वहाँ उनका द्वारपाल, मन्त्री और युवती स्त्रियोंके द्वारा सत्कृत होनेके उपरान्त ध्यानमें स्थित हो जाना ··· ··· ५३०१
३२६–राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका पूजन तथा उनके प्रश्नका समाधान करते हुए ब्रह्मचर्याश्रममें परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद अन्य तीनों आश्रमोंकी अनावश्यकताका प्रतिपादन करना तथा मुक्त पुरुषके लक्षणोंका वर्णन ··· ५३०४
३२७–शुकदेवजीका पिताके पास लौट आना तथा व्यासजीका अपने शिष्योंको स्वाध्यायकी विधि बताना ··· ··· ५३०८
३२८–शिष्योंके जानेके बाद व्यासजीके पास नारदजीका आगमन और व्यासजीको वेदपाठके लिये प्रेरित करना तथा व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना ··· ५३११
३२९–शुकदेवजीको नारदजीका वैराग्य और ज्ञानका उपदेश ··· ··· ५३१५
३३०–शुकदेवको नारदजीका सदाचार और अध्यात्मविषयक उपदेश ··· ५३१८
३३१–नारदजीका शुकदेवको कर्मफल-प्राप्तिमें परतन्त्रताविषयक उपदेश तथा शुकदेवजीका सूर्यलोकमें जानेका निश्चय ··· ५३२१
३३२–शुकदेवजीकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन ··· ५३२५
३३३–शुकदेवजीकी परमपद-प्राप्ति तथा पुत्र-शोकसे व्याकुल व्यासजीको महादेवजीका आश्वासन देना ५३२७

३३४—बदरिकाश्रममें नारदजीके पूछनेपर भगवान्-नारायणका परमदेव परमात्माको ही सर्वश्रेष्ठ पूजनीय बताना ··· ··· ५३२९
३३५—नारदजीका श्वेतद्वीपदर्शन, वहाँके निवासियों-के स्वरूपका वर्णन, राजा उपरिचरका चरित्र तथा पाञ्चरात्रकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग ··· ५३३२
३३६—राजा उपरिचरके यज्ञमें भगवान्पर बृहस्पति-का क्रोधित होना, एकत आदि मुनियोंका बृहस्पतिसे श्वेतद्वीप एवं भगवान्की महिमा-का वर्णन करके उनको शान्त करना ··· ५३३६
३३७—यज्ञमें आहुतिके लिये अजका अर्थ अन्न है बकरा नहीं—इस बातको जानते हुए भी पक्षपात करनेके कारण राजा उपरिचरके अधःपतनकी और भगवत्-कृपासे उनके पुनरुत्थानकी कथा ··· ··· ५३४०
३३८—नारदजीका दो सौ नामोंद्वारा भगवान्की स्तुति करना ··· ··· ५३४३
३३९—श्वेतद्वीपमें नारदजीको भगवान्का दर्शन, भगवान्का वासुदेव-सङ्कर्षण आदि अपने व्यूहस्वरूपोंका परिचय कराना और भविष्यमें होनेवाले अवतारोंके कार्योंकी सूचना देना और इस कथाके श्रवण-पठनका माहात्म्य ··· ५३४५
३४०—व्यासजीका अपने शिष्योंको भगवान्द्वारा ब्रह्मादि देवताओंसे कहे हुए प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप धर्मके उपदेशका रहस्य बताना ··· ५३५४
३४१—भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने प्रभावका वर्णन करते हुए अपने नामोंकी व्युत्पत्ति एवं माहात्म्य बताना ··· ··· ५३६२
३४२—सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन, ब्राह्मणोंकी महिमा बतानेवाली अनेक प्रकार-की संक्षिप्त कथाओंका उल्लेख, भगवन्नामोंके हेतु तथा रुद्रके साथ होनेवाले युद्धमें नारायणकी विजय ··· ··· ५३६५
३४३—जनमेजयका प्रश्न, देवर्षि नारदका श्वेतद्वीपसे लौटकर नर-नारायणके पास जाना और उनके पूछनेपर उनसे वहाँके महत्त्वपूर्ण दृश्यका वर्णन करना ··· ··· ५३७८
३४४—नर-नारायणका नारदजीकी प्रशंसा करते हुए उन्हें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य बतलाना ५३८२
३४५—भगवान् वराहके द्वारा पितरोंके पूजनकी मर्यादाका स्थापित होना ··· ५३८४
३४६—नारायणकी महिमासम्बन्धी उपाख्यानका उपसंहार ··· ··· ५३८६
३४७—हयग्रीव-अवतारकी कथा, वेदोंका उद्धार, मधुकैटभ-वध तथा नारायणकी महिमाका वर्णन ५३८८
३४८—सात्वत-धर्मकी उपदेश-परम्परा तथा भगवान्के प्रति ऐकान्तिक भावकी महिमा ··· ५३९४
३४९—व्यासजीका सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् नारायणके अंशसे सरस्वती-पुत्र अपान्तरतमाके रूपमें जन्म होनेकी और उनके प्रभावकी कथा ५४००
३५०—वैजयन्त पर्वतपर ब्रह्मा और रुद्रका मिलन एवं ब्रह्माजीद्वारा परम पुरुष नारायणकी महिमाका वर्णन ··· ··· ५४०५
३५१—ब्रह्मा और रुद्रके संवादमें नारायणकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन ··· ५४०७
३५२—नारदके द्वारा इन्द्रको उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणकी कथा सुनानेका उपक्रम ··· ५४०९
३५३—महापद्मपुरमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके सदाचारका वर्णन और उसके घरपर अतिथिका आगमन ५४१०
३५४—अतिथिद्वारा स्वर्गके विभिन्न मार्गोंका कथन ५४११
३५५—अतिथिद्वारा नागराज पद्मनाभके सदाचार और सद्गुणोंका वर्णन तथा ब्राह्मणको उसके पास जानेके लिये प्रेरणा ··· ··· ५४१२
३५६—अतिथिके वचनोंसे संतुष्ट होकर ब्राह्मणका उसके कथनानुसार नागराजके घरकी ओर प्रस्थान ५४१३
३५७—नागपत्नीके द्वारा ब्राह्मणका सत्कार और वार्तालापके बाद ब्राह्मणके द्वारा नागराजके आगमनकी प्रतीक्षा ··· ··· ५४१४
३५८—नागराजके दर्शनके लिये ब्राह्मणकी तपस्या तथा नागराजके परिवारवालोंका भोजनके लिये ब्राह्मणसे आग्रह करना ··· ५४१५
३५९—नागराजका घर लौटना, पत्नीके साथ उनकी धर्मविषयक बातचीत तथा पत्नीका उनसे ब्राह्मणको दर्शन देनेके लिये अनुरोध ५४१७
३६०—पत्नीके धर्मयुक्त वचनोंसे नागराजके अभिमान एवं रोषका नाश और उनका ब्राह्मणको दर्शन देनेके लिये उद्यत होना ··· ५४१८
३६१—नागराज और ब्राह्मणका परस्पर मिलन तथा बातचीत ··· ··· ५४१९
३६२—नागराजका ब्राह्मणके पूछनेपर सूर्यमण्डलकी आश्चर्यजनक घटनाओंको सुनाना ··· ५४२१
३६३—उञ्छ एवं शीलवृत्तिसे सिद्ध हुए पुरुषकी दिव्य गति ··· ··· ५४२२
३६४—ब्राह्मणका नागराजसे बातचीत करके और उञ्छव्रतके पालनका निश्चय करके अपने घरको जानेके लिये नागराजसे विदा माँगना ५४२३
३६५—नागराजसे विदा ले ब्राह्मणका च्यवन मुनिसे उञ्छवृत्तिकी दीक्षा लेकर साधनपरायण होना और इस कथाकी परम्पराका वर्णन ५४२४

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–शोकाकुल युधिष्ठिरकी देवर्षि नारदके द्वारा सान्त्वना ··· ··· ४४२५
२–महाभारतकी समाप्तिपर महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें प्रवेश ··· ४५१८
३–इन्द्रकी ब्राह्मणवेषमें दैत्यराज प्रह्लादसे भेंट ··· ४६२५
४–कपोतके द्वारा व्याधका आतिथ्य-सत्कार ··· ४८०८
५–भगवान् नारायणके नाभि-कमलसे लोकपितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति ··· ४८२५
६–कौशिक ब्राह्मणको सावित्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन ··· ··· ४९२३
७–श्रीकृष्णकी उग्रसेनसे भेंट ··· ५०२५
८–वैश्य तुलाधारके द्वारा मुनि जाजलिका सत्कार ··· ··· ५०९७
९–नारदजीको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन ··· ५२२५
१०–भगवान् हयग्रीव वेदोंको रसातलसे लाकर ब्रह्माजीको लौटा रहे हैं ··· ५३९१

(सादा)

११–सुवर्णमय पक्षीके रूपमें देवराज इन्द्रका संन्यासी बने हुए ब्राह्मण-बालकोंको उपदेश ··· ··· ४४४६
१२–स्वयं श्रीकृष्ण शोकमग्न युधिष्ठिर-को समझा रहे हैं ··· ··· ४४८७
१३–ध्यानमग्न श्रीकृष्णसे युधिष्ठिर प्रश्न कर रहे हैं ··· ··· ४५३०
१४–भगवान् श्रीकृष्णका देवर्षि नारद एवं पाण्डवोंको लेकर शरशय्या-स्थित भीष्मके निकट गमन ·· ४५५६
१५–राजासे हीन प्रजाकी ब्रह्माजीसे राजाके लिये प्रार्थना ··· ·· ४५७१
१६–राजा वेनके बाहु-मन्थनसे महाराज पृथुका प्राकट्य ·· ४५७६
१७–राजा क्षेमदर्शी और कालकवृक्षीय मुनि ·· ४६३६
१८–राजर्षि जनक अपने सैनिकोंको स्वर्ग और नरककी बात कह रहे हैं ·· ४६७८
१९–कालकवृक्षीय मुनि राजा जनकका राजकुमार क्षेमदर्शीके साथ मेल करा रहे हैं ··· ·· ४६९८
२०–समुद्र देवताका मूर्तिमती नदियोंके साथ संवाद ··· ··· ४७१६
२१–चूहेकी सहायताके फलस्वरूप चाण्डाल-के जालसे बिलावकी मुक्ति ··· ··· ४७७४
२२–मरे हुए ब्राह्मण-बालकपर तथा गीध एवं गीदड़पर शङ्करजीकी कृपा ··· ४८२४
२३–काश्यप ब्राह्मणके प्रति गीदड़के रूपमें इन्द्रका उपदेश ··· ··· ४८८४
२४–इन्द्रको पहचाननेपर काश्यपद्वारा उनकी पूजा ··· ··· ४८८४
२५–महर्षि भृगुके साथ भरद्वाज मुनिका प्रश्नोत्तर ··· ··· ४८८९
२६–जापक ब्राह्मण एवं महाराज इक्ष्वाकुकी ऊर्ध्वगति ··· ··· ४९३३
२७–प्रजापति मनु एवं महर्षि बृहस्पतिका संवाद ··· ··· ४९३४
२८–भगवान् वराहकी ऋषियोंद्वारा स्तुति ··· ४९५६
२९–महर्षि पञ्चशिखका महाराज जनकको उपदेश ··· ··· ४९८०
३०–देवर्षि एवं देवराजको भगवती लक्ष्मीका दर्शन ··· ··· ५०२६
३१–मुनि जाजलिकी तपस्या ··· ५०९४
३२–चिरकारी शस्त्र त्यागकर अपने पिताको प्रणाम कर रहे हैं ··· ५१११
३३–सनकादि महर्षियोंकी शुक्राचार्य एवं वृत्रासुरसे भेंट ··· ··· ५१४६
३४–दक्षके यज्ञमें शिवजीका प्राकट्य ··· ५१६८
३५–साध्यगणोंको हंसरूपमें ब्रह्माजीका उपदेश ··· ··· ५२१७
३६–महर्षि वशिष्ठका राजा कराल जनकको उपदेश ··· ··· ५२३३
३७–महर्षि याज्ञवल्क्यके स्मरणसे देवी सरस्वतीका प्राकट्य ··· ··· ५२६८
३८–राजा जनकके द्वारपर शुकदेवजी ··· ५३०३
३९–राजा जनकके द्वारपर शुकदेवजीका पूजन ··· ··· ५३०४
४०–शुकदेवजीको नारदजीका उपदेश ··· ५३१५
४१–नर-नारायणका नारदजीके साथ संवाद ··· ५३३१
४३–(१६ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

अनुशासनपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(दान-धर्म-पर्व)	
१	युधिष्ठिरको सान्त्वना देनेके लिये भीष्मजीके द्वारा गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका वर्णन ···	५४२५
२	प्रजापति मनुके वंशका वर्णन, अग्निपुत्र सुदर्शनका अतिथि-सत्काररूपी धर्मके पालनसे मृत्युपर विजय पाना ···	५४३१
३	विश्वामित्रको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कैसे हुई—इस विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न ···	५४३८
४	आजमीढके वंशका वर्णन तथा विश्वामित्रके जन्मकी कथा और उनके पुत्रोंके नाम ···	५४३९
५	स्वामिभक्त एवं दयालु पुरुषकी श्रेष्ठता बतानेके लिये इन्द्र और तोतेके संवादका उल्लेख ···	५४४३
६	दैवकी अपेक्षा पुरुषार्थकी श्रेष्ठताका वर्णन ···	५४४५
७	कर्मोंके फलका वर्णन ···	५४४८
८	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी महिमा ···	५४५१
९	ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा करके न देने तथा उसके धनका अपहरण करनेसे दोषकी प्राप्तिके विषयमें सियार और वानरके संवादका उल्लेख एवं ब्राह्मणोंको दान देनेकी महिमा ···	५४५३
१०	अनधिकारीको उपदेश देनेसे हानिके विषयमें एक शूद्र और तपस्वी ब्राह्मणकी कथा ···	५४५५
११	लक्ष्मीके निवास करने और न करने योग्य पुरुष, स्त्री और स्थानोंका वर्णन ···	५४५९
१२	कृतघ्नकी गति और प्रायश्चित्तका वर्णन तथा स्त्री-पुरुषके संयोगमें स्त्रीको ही अधिक सुख होनेके सम्बन्धमें भंगास्वनका उपाख्यान ···	५४६२
१३	शरीर, वाणी और मनसे होनेवाले पापोंके परित्यागका उपदेश ···	५४६७
१४	भीष्मजीकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे महादेवजीके माहात्म्यकी कथामें उपमन्युद्वारा महादेवजीकी स्तुति-प्रार्थना, उनके दर्शन और वरदान पानेका तथा अपनेको दर्शन प्राप्त होनेका कथन ···	५४८०
१५	शिव और पार्वतीका श्रीकृष्णको वरदान और उपमन्युके द्वारा महादेवजीकी महिमा ···	५५०७
१६	उपमन्यु-श्रीकृष्ण-संवाद—महात्मा तण्डिद्वारा की गयी महादेवजीकी स्तुति, प्रार्थना और उसका फल ···	५५०८
१७	शिवसहस्रनामस्तोत्र और उसके पाठका फल	५५१३
१८	शिवसहस्रनामके पाठकी महिमा तथा ऋषियोंका भगवान् शङ्करकी कृपासे अभीष्ट सिद्धि होनेके विषयमें अपना-अपना अनुभव सुनाना और श्रीकृष्णके द्वारा भगवान् शिवजीकी महिमाका वर्णन ···	५५२९
१९	अष्टावक्र मुनिका वदान्य ऋषिके कहनेसे उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान, मार्गमें कुबेरके द्वारा उनका स्वागत तथा स्त्रीरूपधारिणी उत्तर दिशाके साथ उनका संवाद ···	५५३४
२०	अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवाद ···	५५४०
२१	अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवाद, अष्टावक्रका अपने घर लौटकर वदान्य ऋषिकी कन्याके साथ विवाह करना ···	५५४२
२२	युधिष्ठिरके विविध धर्मयुक्त प्रश्नोंका उत्तर तथा श्राद्ध और दानके उत्तम पात्रोंका लक्षण ···	५५४४
२३	देवता और पितरोंके कार्यमें निमन्त्रण देने योग्य पात्रों तथा नरकगामी और स्वर्गगामी मनुष्योंके लक्षणोंका वर्णन ···	५५५१
२४	ब्रह्महत्याके समान पापोंका निरूपण ···	५५५८
२५	विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन ···	५५५९
२६	श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन ···	५५६३
२७	ब्राह्मणत्वके लिये तपस्या करनेवाले मतङ्गकी इन्द्रसे बातचीत ···	५५७१
२८	ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका आग्रह छोड़कर दूसरा वर माँगनेके लिये इन्द्रका मतङ्गको समझाना	५५७३
२९	मतङ्गकी तपस्या और इन्द्रका उसे वरदान देना	५५७५
३०	वीतहव्यके पुत्रोंसे काशी-नरेशोंका घोर युद्ध, प्रतर्दनद्वारा उनका वध और राजा वीतहव्यको भृगुके कथनसे ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेकी कथा ···	५५७७
३१	नारदजीके द्वारा पूजनीय पुरुषोंके लक्षण तथा उनके आदर-सत्कार और पूजनसे प्राप्त होनेवाले लाभका वर्णन ···	५५८१
३२	राजर्षि वृषदर्भ (या उशीनर) के द्वारा शरणागत कपोतकी रक्षा तथा उस पुण्यके प्रभावसे अक्षयलोककी प्राप्ति ···	५५८४
३३	ब्राह्मणके महत्त्वका वर्णन ···	५५८७
३४	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी प्रशंसा ···	५५८९

३५–ब्रह्माजीके द्वारा ब्राह्मणोंकी महत्ताका वर्णन ... ५५९१
३६–ब्राह्मणकी प्रशंसाके विषयमें इन्द्र और शम्बरासुरका संवाद ५५९३
३७–दान-पात्रकी परीक्षा ५५९५
३८–पञ्चचूड़ा अप्सराका नारदजीसे स्त्रियोंके दोषोंका वर्णन करना ५५९७
३९–स्त्रियोंकी रक्षाके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न ... ५५९९
४०–भृगुवंशी विपुलके द्वारा योगबलसे गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश करके उसकी रक्षा करना ... ५६०१
४१–विपुलका देवराज इन्द्रसे गुरुपत्नीको बचाना और गुरुसे वरदान प्राप्त करना ... ५६०५
४२–विपुलका गुरुकी आज्ञासे दिव्य पुष्प लाकर उन्हें देना और अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मका स्मरण करना ५६०८
४३–देवशर्माका विपुलको निर्दोष बताकर समझाना और भीष्मका युधिष्ठिरको स्त्रियोंकी रक्षाके लिये आदेश देना ५६१०
४४–कन्या-विवाहके सम्बन्धमें पात्रविषयक विभिन्न विचार ५६१२
४५–कन्याके विवाहका तथा कन्या और दौहित्र आदिके उत्तराधिकारका विचार ... ५६१७
४६–स्त्रियोंके वस्त्राभूषणोंसे सत्कार करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन ५६१९
४७–ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दायभाग-विधिका वर्णन ५६२०
४८–वर्णसंकर संतानोंकी उत्पत्तिका विस्तारसे वर्णन ५६२५
४९–नाना प्रकारके पुत्रोंका वर्णन ... ५६२९
५०–गौओंकी महिमाके प्रसङ्गमें च्यवन मुनिके उपाख्यानका आरम्भ, मुनिका मत्स्योंके साथ जालमें फँसकर जलसे बाहर आना ... ५६३१
५१–राजा नहुषका एक गौके मोलपर च्यवन मुनिको खरीदना, मुनिके द्वारा गौओंका माहात्म्य-कथन तथा मत्स्यों और मल्लाहोंकी सद्गति ... ५६३३
५२–राजा कुशिक और उनकी रानीके द्वारा महर्षि च्यवनकी सेवा ५६३७
५३–च्यवन मुनिके द्वारा राजा-रानीके धैर्यकी परीक्षा और उनकी सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देना ५६३९
५४–महर्षि च्यवनके प्रभावसे राजा कुशिक और उनकी रानीको अनेक आश्चर्यमय दृश्योंका दर्शन एवं च्यवन मुनिका प्रसन्न होकर राजाको वर माँगनेके लिये कहना ... ५६४४
५५–च्यवनका कुशिकके पूछनेपर उनके घरमें अपने निवासका कारण बताना और उन्हें वरदान देना ५६४७
५६–च्यवन ऋषिका भृगुवंशी और कुशिकवंशियोंके सम्बन्धका कारण बताकर तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान ५६४९
५७–विविध प्रकारके तप और दानोंका फल ... ५६५१
५८–जलाशय बनानेका तथा बगीचे लगानेका फल ५६५४
५९–भीष्मद्वारा उत्तम दान तथा उत्तम ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए उनके सत्कारका उपदेश ५६५६
६०–श्रेष्ठ, अयाचक, धर्मात्मा, निर्धन एवं गुणवान्को दान देनेका विशेष फल ... ५६५९
६१–राजाके लिये यज्ञ, दान और ब्राह्मण आदि प्रजाकी रक्षाका उपदेश ५६६१
६२–सब दानोंसे बढ़कर भूमिदानका महत्त्व तथा उसीके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद ५६६३
६३–अन्नदानका विशेष माहात्म्य ... ५६७०
६४–विभिन्न नक्षत्रोंके योगमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंके दानका माहात्म्य ५६७३
६५–सुवर्ण और जल आदि विभिन्न वस्तुओंके दानकी महिमा ५६७६
६६–जूता, शकट, तिल, भूमि, गौ और अन्नके दानका माहात्म्य ५६७७
६७–अन्न और जलके दानकी महिमा ... ५६८१
६८–तिल, जल, दीप तथा रत्न आदिके दानका माहात्म्य—धर्मराज और ब्राह्मणका संवाद ... ५६८२
६९–गोदानकी महिमा तथा गौओं और ब्राह्मणोंकी रक्षासे पुण्यकी प्राप्ति ५६८५
७०–ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे होनेवाली हानिके विषयमें दृष्टान्तके रूपमें राजा नृगका उपाख्यान ५६८७
७१–पिताके शापसे नाचिकेतका यमराजके पास जाना और यमराजका नाचिकेतको गोदानकी महिमा बताना ५६८९
७२–गौओंके लोक और गोदानविषयक युधिष्ठिर और इन्द्रके प्रश्न ५६९५
७३–ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गोदानकी महिमा बताना ५६९५
७४–दूसरोंकी गायको चुराकर देने या बेचनेसे दोष, गोहत्याके भयंकर परिणाम तथा गोदान एवं सुवर्ण-दक्षिणाका माहात्म्य ... ५७००
७५–व्रत, नियम, दम, सत्य, ब्रह्मचर्य, माता-पिता, गुरु आदिकी सेवाकी महत्ता ... ५७०१
७६–गोदानकी विधि, गौओंसे प्रार्थना, गौओंके निष्क्रय और गोदान करनेवाले नरेशोंके नाम ५७०४

७७–कपिला गौओंकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन ५७०७
७८–वसिष्ठका सौदासको गोदानकी विधि एवं महिमा बताना ··· ··· ५७१०
७९–गौओंको तपस्याद्वारा अभीष्ट वरकी प्राप्ति तथा उनके दानकी महिमा, विभिन्न प्रकारके गौओंके दानसे विभिन्न उत्तम लोकोंमें गमनका कथन ५७१२
८०–गौओं तथा गोदानकी महिमा ··· ५७१४
८१–गौओंका माहात्म्य तथा व्यासजीके द्वारा शुकदेवसे गौओंकी, गोलोककी और गोदानकी महत्ताका वर्णन ··· ··· ५७१५
८२–लक्ष्मी और गौओंका संवाद तथा लक्ष्मीकी प्रार्थनापर गौओंके द्वारा गोबर और गोमूत्रमें लक्ष्मीको निवासके लिये स्थान दिया जाना ··· ५७१८
८३–ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गौओंका उत्कर्ष बताना और गौओंको वरदान देना ··· ५७२०
८४–भीष्मजीका अपने पिता शान्तनुके हाथमें पिण्ड न देकर कुशपर देना, सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानकी महिमाके सम्बन्धमें वसिष्ठ और परशुरामका संवाद, पार्वतीका देवताओंको शाप, तारकासुरसे डरे हुए देवताओंका ब्रह्माजीकी शरणमें जाना ··· ··· ५७२४
८५–ब्रह्माजीका देवताओंको आश्वासन, अग्निकी खोज, अग्निके द्वारा स्थापित किये हुए शिवके तेजसे संतप्त हो गङ्गाका उसे मेरुपर्वतपर छोड़ना, कार्तिकेय और सुवर्णकी उत्पत्ति, वरुणरूपधारी महादेवजीके यज्ञमें अग्निसे ही प्रजापतियों और सुवर्णका प्रादुर्भाव, कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध ५७२९
८६–कार्तिकेयकी उत्पत्ति, पालन-पोषण और उनका देवसेनापति-पदपर अभिषेक, उनके द्वारा तारकासुरका वध ··· ··· ५७४०
८७–विविध तिथियोंमें श्राद्ध करनेका फल ··· ५७४२
८८–श्राद्धमें पितरोंके तृप्तिविषयका वर्णन ··· ५७४४
८९–विभिन्न नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेका फल ··· ५७४४
९०–श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा, पंक्तिदूषक और पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका वर्णन, श्राद्धमें लाख मूर्ख ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी अपेक्षा एक वेदवेत्ताको भोजन करानेकी श्रेष्ठताका कथन ··· ५७४६
९१–शोकातुर निमिका पुत्रके निमित्त पिण्डदान तथा श्राद्धके विषयमें निमिको महर्षि अत्रिका उपदेश, विश्वेदेवोंके नाम एवं श्राद्धमें त्याज्य वस्तुओंका वर्णन ··· ··· ५७५०
९२–पितर और देवताओंका श्राद्धान्नसे अजीर्ण होकर ब्रह्माजीके पास जाना और अग्निके द्वारा अजीर्णका निवारण, श्राद्धसे तृप्त हुए पितरोंका आशीर्वाद ··· ··· ५७५३
९३–गृहस्थके धर्मोंका रहस्य, प्रतिग्रहके दोष बतानेके लिये वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथा, भिक्षुरूपधारी इन्द्रके द्वारा कृत्याका वध करके सप्तर्षियोंकी रक्षा तथा कमलोंकी चोरीके विषयमें शपथ खानेके बहानेसे धर्मपालनका संकेत ··· ५७५४
९४–ब्रह्मसर तीर्थमें अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंकी धर्मोपदेशपूर्ण शपथ तथा धर्मज्ञानके उद्देश्यसे चुराये हुए कमलोंका वापस देना ··· ··· ५७६६
९५–छत्र और उपानह्‌की उत्पत्ति एवं दानविषयक युधिष्ठिरका प्रश्न तथा सूर्यकी प्रचण्ड धूपसे रेणुकाका मस्तक और पैरोंके संतप्त होनेपर जमदग्निका सूर्यपर कुपित होना और विप्ररूपधारी सूर्यसे वार्तालाप ··· ··· ५७७१
९६–छत्र और उपानह्‌की उत्पत्ति एवं दानकी प्रशंसा ५७७३
९७–गृहस्थधर्म, पञ्चयज्ञ-कर्मके विषयमें पृथ्वीदेवी और भगवान् श्रीकृष्णका संवाद ··· ५७८६
९८–तपस्वी सुवर्ण और मनुका संवाद—पुष्प, धूप, दीप और उपहारके दानका माहात्म्य ५७८८
९९–नहुषका ऋषियोंपर अत्याचार तथा उसके प्रतीकारके लिये महर्षि भृगु और अगस्त्यकी बातचीत ··· ·· ५७९२
१००–नहुषका पतन, शतक्रतुका इन्द्रपदपर पुनः अभिषेक तथा दीपदानकी महिमा ··· ५७९५
१०१–ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेसे प्राप्त होनेवाले दोषके विषयमें क्षत्रिय और चाण्डालका संवाद तथा ब्रह्मस्वकी रक्षामें प्राणोत्सर्ग करनेसे चाण्डालको मोक्षकी प्राप्ति ··· ५७९७
१०२–भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न लोकोंकी प्राप्ति बतानेके लिये धृतराष्ट्ररूपधारी इन्द्र और गौतम ब्राह्मणके संवादका उल्लेख ··· ५८००
१०३–ब्रह्माजी और भगीरथका संवाद, यज्ञ, तप, दान आदिसे भी अनशन व्रतकी विशेष महिमा ५८०६
१०४–आयुकी वृद्धि और क्षय करनेवाले शुभाशुभ कर्मोंके वर्णनसे गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंका विस्तारपूर्वक निरूपण ··· ··· ५८१०
१०५–बड़े और छोटे भाईके पारस्परिक बर्ताव तथा माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनोंके गौरवका वर्णन ··· ··· ५८२३

१०६–मास, पक्ष एवं तिथिसम्बन्धी विभिन्न व्रतोपवासके फलका वर्णन ··· ४८२५
१०७–दरिद्रोंके लिये यज्ञतुल्य फल देनेवाले उपवास-व्रत और उसके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन ४८२९
१०८–मानस तथा पार्थिव तीर्थकी महत्ता ··· ४८३८
१०९–प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको उपवास और भगवान् विष्णुकी पूजा करनेका विशेष माहात्म्य ··· ··· ४८३९
११०–रूप-सौन्दर्य और लोकप्रियताकी प्राप्तिके लिये मार्गशीर्षमासमें चन्द्र-व्रत करनेका प्रतिपादन ··· ··· ४८४१
१११–बृहस्पतिका युधिष्ठिरसे प्राणियोंके जन्मके प्रकारका और नानाविध पापोंके फलस्वरूप नरकादिकी प्राप्ति एवं तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेनेका वर्णन ··· ··· ४८४१
११२–पापसे छूटनेके उपाय तथा अन्न-दानकी विशेष महिमा ··· ··· ४८५०
११३–बृहस्पतिजीका युधिष्ठिरको अहिंसा एवं धर्मकी महिमा बताकर स्वर्गलोकको प्रस्थान ··· ४८५२
११४–हिंसा और मांसभक्षणकी घोर निन्दा ··· ४८५३
११५–मद्य और मांसके भक्षणमें महान् दोष, उनके त्यागकी महिमा एवं त्यागमें परम लाभका प्रतिपादन ··· ··· ४८५५
११६–मांस न खानेसे लाभ और अहिंसाधर्मकी प्रशंसा ··· ··· ४८६०
११७–शुभ कर्मसे एक कीड़ेको पूर्व-जन्मकी स्मृति होना और कीट-योनिमें भी मृत्युका भय एवं सुखकी अनुभूति बताकर कीड़ेका अपने कल्याणका उपाय पूछना ··· ४८६२
११८–कीड़ेका क्रमशः क्षत्रिययोनिमें जन्म लेकर व्यासजीका दर्शन करना और व्यासजीका उसे ब्राह्मण होने तथा स्वर्गसुख और अक्षय सुखकी प्राप्ति होनेका वरदान देना ··· ४८६४
११९–कीड़ेका ब्राह्मणयोनिमें जन्म लेकर, ब्रह्मलोकमें जाकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त करना ··· ४८६६
१२०–व्यास और मैत्रेयका संवाद—दानकी प्रशंसा और कर्मका रहस्य ··· ··· ४८६७
१२१–व्यास-मैत्रेय-संवाद—विद्वान् एवं सदाचारी ब्राह्मणको अन्नदानकी प्रशंसा ··· ४८६९
१२२–व्यास-मैत्रेय-संवाद—तपकी प्रशंसा तथा गृहस्थके उत्तम कर्तव्यका निर्देश ··· ४८७१
१२३–शाण्डिली और सुमनाका संवाद—पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्यका वर्णन ··· ४८७३
१२४–नारदका पुण्डरीकको भगवान् नारायणकी आराधनाका उपदेश तथा उन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति, सामगुणकी प्रशंसा, ब्राह्मणका राक्षसके सफेद और दुर्बल होनेका कारण बताना ··· ४८७४
१२५–श्राद्धके विषयमें देवदूत और पितरोंका, पापोंसे छूटनेके विषयमें महर्षि विद्युत्प्रभ और इन्द्रका, धर्मके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका तथा वृषोत्सर्ग आदिके विषयमें देवताओं, ऋषियों और पितरोंका संवाद ··· ४८८०
१२६–विष्णु, बलदेव, देवगण, धर्म, अग्नि, विश्वामित्र, गोसमुदाय और ब्रह्माजीके द्वारा धर्मके गूढ़ रहस्यका वर्णन ··· ४८८६
१२७–अग्नि, लक्ष्मी, अङ्गिरा, गार्ग्य, धौम्य तथा जमदग्निके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन ··· ४८८९
१२८–वायुके द्वारा धर्माधर्मके रहस्यका वर्णन ·· ४८९१
१२९–लोमशद्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन ·· ४८९१
१३०–अरुन्धती, धर्मराज और चित्रगुप्तद्वारा धर्मसम्बन्धी रहस्यका वर्णन ··· ४८९३
१३१–प्रमथगणोंके द्वारा धर्माधर्मसम्बन्धी रहस्यका कथन ··· ··· ४८९५
१३२–दिग्गजोंका धर्मसम्बन्धी रहस्य एवं प्रभाव ··· ४८९६
१३३–महादेवजीका धर्मसम्बन्धी रहस्य ४८९७
१३४–स्कन्ददेवका धर्मसम्बन्धी रहस्य तथा भगवान् विष्णु और भीष्मजीके द्वारा माहात्म्यका वर्णन ··· ··· ४८९८
१३५–जिनका अन्न ग्रहण करनेयोग्य है और जिनका ग्रहण करने योग्य नहीं है, उन मनुष्योंका वर्णन ··· ··· ४९००
१३६–दान लेने और अनुचित भोजन करनेका प्रायश्चित्त ··· ··· ४९०१
१३७–दानसे स्वर्गलोकमें जानेवाले राजाओंका वर्णन ४९०३
१३८–पाँच प्रकारके दानोंका वर्णन ··· ४९०५
१३९–तपस्वी श्रीकृष्णके पास ऋषियोंका आना, उनका प्रभाव देखना और उनसे वार्तालाप करना ४९०६
१४०–नारदजीके द्वारा हिमालय पर्वतपर भूतगणोंके सहित शिवजीकी शोभाका विस्तृत वर्णन, पार्वतीका आगमन, शिवजीकी दोनों आँखोंको अपने हाथोंसे बंद करना और तीसरे नेत्रका प्रकट होना, हिमालयका भस्म होना और पुनः प्राकृत अवस्थामें हो जाना तथा शिव-पार्वतीके धर्मविषयक संवादकी उत्थापना ··· ४९१०
१४१–शिव-पार्वतीका धर्मविषयक संवाद—वर्णाश्रम-धर्मसम्बन्धी आचार एवं प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप धर्मका निरूपण ··· ··· ४९१४

१४२—उमा-महेश्वर-संवाद, वानप्रस्थ धर्म तथा उसके पालनकी विधि और महिमा ... ५९२८
१४३—ब्राह्मणादि वर्णोंकी प्राप्तिमें मनुष्यके शुभाशुभ कर्मोंकी प्रधानताका प्रतिपादन ... ५९३५
१४४—बन्धन-मुक्ति, स्वर्ग, नरक एवं दीर्घायु और अल्पायु प्रदान करनेवाले शरीर, वाणी और मनद्वारा किये जानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन ५९३९
१४५—स्वर्ग और नरक तथा उत्तम और अधम कुलमें जन्मकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंका वर्णन ... ५९४३
१. राजधर्मका वर्णन ५९४७
२. योद्धाओंके धर्मका वर्णन तथा रणयज्ञमें प्राणोत्सर्गकी महिमा ... ५९५१
३. संक्षेपसे राजधर्मका वर्णन ... ५९५३
४. अहिंसाकी और इन्द्रियसंयमकी प्रशंसा तथा दैवकी प्रधानता .. ५९५५
५. त्रिवर्गका निरूपण तथा कल्याणकारी आचार-व्यवहारका वर्णन ... ५९५५
६. विविध प्रकारके कर्मफलोंका वर्णन ... ५९५९
७. अन्धत्व और पङ्गुत्व आदि नाना प्रकारके दोषों और रोगोंके कारणभूत दुष्कर्मों-का वर्णन ५९६४
८. उमा-महेश्वर-संवादमें कितने ही महत्त्वपूर्ण विषयोंका विवेचन ५९६९
९. प्राणियोंके चार भेदोंका निरूपण, पूर्व-जन्मकी स्मृतिका रहस्य, मरकर फिर लौटनेमें कारण स्वप्नदर्शन, दैव और पुरुषार्थ तथा पुनर्जन्मका विवेचन ... ५९७६
१०. यमलोक तथा वहाँके मार्गोंका वर्णन, पापियोंकी नरकयातनाओं तथा कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें उनके जन्मका उल्लेख ५९८०
११. शुभाशुभ मानस आदि तीन प्रकारके कर्मोंका स्वरूप और उनके फलका एवं मद्यसेवनके दोषोंका वर्णन, आहार-शुद्धि, मांस-भक्षणसे दोष, मांस न खानेसे लाभ, जीवदयाके महत्त्व, गुरुपूजाकी विधि, उपवास-विधि, ब्रह्मचर्य-पालन, तीर्थचर्चा, सर्वसाधारण द्रव्यके दानसे पुण्य, अन्न, सुवर्ण, गौ, भूमि, कन्या और विद्यादानका माहात्म्य, पुण्य-तम देश, काल, दिये हुए दान और धर्म-की निष्फलता, विविध प्रकारके दान, लौकिक-वैदिक यज्ञ तथा देवताओंकी पूजा-का निरूपण ५९८६
१२. श्राद्ध-विधान आदिका वर्णन, दानकी त्रिविधतासे उसके फलकी भी त्रिविधता-का उल्लेख, दानके पाँच फल, नाना प्रकारके धर्म और उनके फलोंका प्रतिपादन ६००१
१३. प्राणियोंकी शुभ और अशुभ गतिका निश्चय करानेवाले लक्षणोंका वर्णन, मृत्युके दो भेद और यत्नसाध्य मृत्युके चार भेदोंका कथन, कर्तव्यपालनपूर्वक शरीर-त्यागका महान् फल और काम-क्रोध आदिद्वारा देह-त्याग करनेसे नरककी प्राप्ति ६००५
१४. मोक्षधर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन, मोक्ष-साधक ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय और मोक्षकी प्राप्तिमें वैराग्यकी प्रधानता ... ६००८
१५. सांख्यज्ञानका प्रतिपादन करते हुए अव्यक्तादि चौबीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति आदिका वर्णन ६०१३
१६. योगधर्मका प्रतिपादनपूर्वक उसके फलका वर्णन ... ६०१६
१७. पाशुपत योगका वर्णन तथा शिवलिङ्ग-पूजनका माहात्म्य ६०१९
१४६—पार्वतीजीके द्वारा स्त्री-धर्मका वर्णन ... ६०२१
१४७—वंशपरम्पराका कथन और भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन ६०२५
१४८—भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन और भीष्मजीका युधिष्ठिरको राज्य करनेके लिये आदेश देना ६०२८
१४९—श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ... ६०३३
१५०—जपने योग्य मन्त्र और सबेरे-शाम कीर्तन करनेयोग्य देवता, ऋषियों और राजाओंके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन-माहात्म्य तथा गायत्री-जपका फल ६०५०
१५१—ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन ... ६०५५
१५२—कार्तवीर्य अर्जुनको दत्तात्रेयजीसे चार वरदान प्राप्त होनेका एवं उनमें अभिमानकी उत्पत्तिका वर्णन तथा ब्राह्मणोंकी महिमाके विषयमें कार्तवीर्य अर्जुन और वायुदेवताके संवादका उल्लेख ६०५७
१५३—वायुद्वारा उदाहरणसहित ब्राह्मणोंकी महत्ताका वर्णन ६०५९
१५४—ब्राह्मणशिरोमणि उतथ्यके प्रभावका वर्णन ... ६०६०
१५५—ब्रह्मर्षि अगस्त्य और वसिष्ठके प्रभावका वर्णन ६०६२
१५६—अत्रि और च्यवन ऋषिके प्रभावका वर्णन ६०६४

१५७—कपनामक दानवोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार जमा लेनेपर ब्राह्मणोंका कपोंको भस्म कर देना, वायुदेव और कार्तवीर्य अर्जुनके संवादका उपसंहार ६०६६
१५८—भीष्मजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन ६०६८
१५९—श्रीकृष्णका प्रद्युम्नको ब्राह्मणोंकी महिमा बताते हुए दुर्वासाके चरित्रका वर्णन करना और यह सारा प्रसङ्ग युधिष्ठिरको सुनाना ... ६०७३
१६०—श्रीकृष्णद्वारा भगवान् शङ्करके माहात्म्यका वर्णन ६०७७
१६१—भगवान् शङ्करके माहात्म्यका वर्णन ... ६०८०
१६२—धर्मके विषयमें आगम-प्रमाणकी श्रेष्ठता, धर्माधर्मके फल, साधु-असाधुके लक्षण तथा शिष्टाचारका निरूपण ... ६०८१
१६३—युधिष्ठिरका विद्या, बल और बुद्धिकी अपेक्षा भाग्यकी प्रधानता बताना और भीष्मजीद्वारा उसका उत्तर ६०८६
१६४—भीष्मका शुभाशुभ कर्मोंको ही सुख-दुःखकी प्राप्तिमें कारण बताते हुए धर्मके अनुष्ठानपर जोर देना ६०८७
१६५—नित्य स्मरणीय देवता, नदी, पर्वत, ऋषि और राजाओंके नाम-कीर्तनका माहात्म्य ... ६०८८
१६६—भीष्मकी अनुमति पाकर युधिष्ठिरका सपरिवार हस्तिनापुरको प्रस्थान ६०९१

(भीष्मस्वर्गारोहणपर्व)

१६७—भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारकी सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदिका उनके पास जाना और भीष्मका श्रीकृष्ण आदिसे देह-त्यागकी अनुमति लेते हुए धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरको कर्तव्यका उपदेश देना ६०९३
१६८—भीष्मजीका प्राणत्याग, धृतराष्ट्र आदिके द्वारा उनका दाह-संस्कार, कौरवोंका गङ्गाके जलसे भीष्मको जलाञ्जलि देना, गङ्गाजीका प्रकट होकर पुत्रके लिये शोक करना और श्रीकृष्णका उन्हें समझाना ६०९६

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१—देवाधिदेव भगवान् शङ्कर ... ५४२५
२—दण्ड-मेखलाधारी भगवान् श्रीकृष्णको शिव-पार्वतीके दर्शन ५५०४
३—ब्रह्माजीका गौओंको वरदान ... ५६२५
४—राजा नृगका गिरगिटकी योनिसे उद्धार ... ५६८७
५—शिव-पार्वती ५८२५
६—पार्वतीजी भगवान् शंकरको शरीरधारिणी समस्त नदियोंका परिचय दे रही हैं ... ६०२२
७—पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ... ६०३३

(सादा)

८—वृद्धा गौतमीकी आदर्श क्षमा ... ५४३१
९—धर्मात्मा शुक और इन्द्रकी बात-चीत ... ५४४४
१०—महर्षि वशिष्ठका ब्रह्माजीके साथ प्रश्नोत्तर ... ५४४५
११—भगवान् श्रीकृष्ण एवं विभिन्न महर्षियोंका युधिष्ठिरको उपदेश ५५२९
१२—भयभीत कबूतर महाराज शिबिकी गोदमें ५५८४
१३—पृथ्वी और श्रीकृष्णका संवाद ... ५५९१
१४—जालके साथ नदीमेंसे निकाले गये महर्षि च्यवन ५६३३
१५—महर्षि च्यवनका मूल्याङ्कन ... ५६३५
१६—इन्द्रका ब्रह्माजीके साथ गौओंके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर ५६९५
१७—महर्षि वशिष्ठका राजा सौदाससे गौओंका माहात्म्य-कथन ५७१०
१८—भगवती लक्ष्मीकी गौओंसे आश्रयके लिये प्रार्थना ५७१९
१९—गृहस्थ-धर्मके सम्बन्धमें श्रीकृष्णका पृथ्वीके साथ संवाद ५७८६
२०—बृहस्पतिजीका युधिष्ठिरको उपदेश ... ५८४२
२१—देवलोकमें पतिव्रता शाण्डिली और सुमनाकी बात-चीत ५८७३
२२—सामनीतिकी विजय ५८७७
२३—इन्द्रका भगवान् विष्णुके साथ प्रश्नोत्तर ... ५८८६
२४—भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या ... ५९०७
२५—भगवान् शंकर श्रीकृष्णका माहात्म्य कह रहे हैं ६०२५
२६—भगवान् दत्तात्रेयकी कार्तवीर्यपर कृपा ... ६०५७
२७—शरशय्यापर पड़े भीष्मकी युधिष्ठिरसे बातचीत ६०९३
२८—श्रीकृष्ण और व्यासजीके द्वारा पुत्र-शोकाकुला गङ्गाजीको सान्त्वना ... ६०९८
२९—(१७ लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

आश्वमेधिकपर्व

अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या

(अश्वमेधपर्व)

१–युधिष्ठिरका शोकमग्न होकर गिरना और धृतराष्ट्रका उन्हें समझाना ६०९९
२–श्रीकृष्ण और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना ६१००
३–व्यासजीका युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञके लिये धनकी प्राप्तिका उपाय बताते हुए संवर्त और मरुत्तका प्रसङ्ग उपस्थित करना ... ६१०२
४–मरुत्तके पूर्वजोंका परिचय देते हुए व्यासजीके द्वारा उनके गुण, प्रभाव एवं यज्ञका दिग्दर्शन ६१०३
५–इन्द्रकी प्रेरणासे बृहस्पतिजीका मनुष्यको यज्ञ न करानेकी प्रतिज्ञा करना ... ६१०५
६–नारदजीकी आज्ञासे मरुत्तका उनकी बतायी हुई युक्तिके अनुसार संवर्तसे भेंट करना ... ६१०७
७–संवर्त और मरुत्तकी बातचीत, मरुत्तके विशेष आग्रहपर संवर्तका यज्ञ करानेकी स्वीकृति देना ६११०
८–संवर्तका मरुत्तको सुवर्णकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी नाममयी स्तुतिका उपदेश और धनकी प्राप्ति तथा मरुत्तकी सम्पत्तिसे बृहस्पतिका चिन्तित होना ... ६११२
९–बृहस्पतिका इन्द्रसे अपनी चिन्ताका कारण बताना, इन्द्रकी आज्ञासे अग्निदेवका मरुत्तके पास उनका संदेश लेकर जाना और संवर्तके भयसे पुनः लौटकर इन्द्रसे ब्रह्मबलकी श्रेष्ठता बताना ६११५
१०–इन्द्रका गन्धर्वराजको भेजकर मरुत्तको भय दिखाना और संवर्तका मन्त्र-बलसे इन्द्रसहित सब देवताओंको बुलाकर मरुत्तका यज्ञ पूर्ण करना ६११९
११–श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको इन्द्रद्वारा शरीरस्थ वृत्रासुरका संहार करनेका इतिहास सुनाकर समझाना ६१२३
१२–भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको मनपर विजय करनेके लिये आदेश ६१२५
१३–श्रीकृष्णद्वारा ममताके त्यागका महत्त्व, काम-गीताका उल्लेख और युधिष्ठिरको यज्ञके लिये प्रेरणा करना ६१२६
१४–ऋषियोंका अन्तर्धान होना, भीष्म आदिका श्राद्ध करके युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरमें जाना तथा युधिष्ठिरके धर्म-राज्यका वर्णन ... ६१२८

अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या

१५–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनसे द्वारका जानेका प्रस्ताव करना ६१३१

(अनुगीतापर्व)

१६–अर्जुनका श्रीकृष्णसे गीताका विषय पूछना और श्रीकृष्णका अर्जुनसे सिद्ध, महर्षि एवं काश्यपका संवाद सुनाना ... ६१३३
१७–काश्यपके प्रश्नोंके उत्तरमें सिद्ध महात्माद्वारा जीवकी विविध गतियोंका वर्णन ... ६१३६
१८–जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्म-फलकी अनिवार्यता तथा संसारसे तरनेके उपायका वर्णन ६१३९
१९–गुरु-शिष्यके संवादमें मोक्ष-प्राप्तिके उपायका वर्णन ६१४२
२०–ब्राह्मणगीता—एक ब्राह्मणका अपनी पत्नीसे ज्ञानयज्ञका उपदेश करना ... ६१४६
२१–दस होताओंसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञका वर्णन तथा मन और वाणीकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन ६१४८
२२–मन-बुद्धि और इन्द्रियरूप सप्त होताओंका, यज्ञ तथा मन-इन्द्रिय-संवादका वर्णन ... ६१५०
२३–प्राण, अपान आदिका संवाद और ब्रह्माजीका सबकी श्रेष्ठता बतलाना ६१५३
२४–देवर्षि नारद और देवमतका संवाद एवं उदानके उत्कृष्ट रूपका वर्णन ... ६१५५
२५–चातुर्होम यज्ञका वर्णन ६१५६
२६–अन्तर्यामीकी प्रधानता ६१५७
२७–अध्यात्मविषयक महान् वनका वर्णन ... ६१५९
२८–ज्ञानी पुरुषकी स्थिति तथा अध्वर्यु और यतिका संवाद ६१६१
२९–परशुरामजीके द्वारा क्षत्रिय-कुलका संहार ... ६१६३
३०–अलर्कके ध्यान-योगका उदाहरण देकर पितामहोंका परशुरामजीको समझाना और परशुरामजीका तपस्याके द्वारा सिद्धि प्राप्त करना ६१६५
३१–राजा अम्बरीषकी गायी हुई आध्यात्मिक स्वराज्यविषयक गाथा ६१६८
३२–ब्राह्मण-रूपधारी धर्म और जनकका ममत्वत्याग-विषयक संवाद ६१६९
३३–ब्राह्मणका पत्नीके प्रति अपने ज्ञाननिष्ठ स्वरूप-का परिचय देना ६१७१

३४–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा ब्राह्मण, ब्राह्मणी और क्षेत्रज्ञका रहस्य बतलाते हुए ब्राह्मण-गीताका उपसंहार ६१७२
३५–श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनसे मोक्ष-धर्मका वर्णन—गुरु और शिष्यके संवादमें ब्रह्मा और महर्षियोंके प्रश्नोत्तर ६१७३
३६–ब्रह्माजीके द्वारा तमोगुणका, उसके कार्यका और फलका वर्णन ६१७६
३७–रजोगुणके कार्यका वर्णन और उसके जाननेका फल ६१७९
३८–सत्त्वगुणके कार्यका वर्णन और उसके जानने-का फल ६१८०
३९–सत्त्व आदि गुणोंका और प्रकृतिके नामोंका वर्णन ६१८१
४०–महत्तत्त्वके नाम और परमात्मतत्त्वको जाननेकी महिमा ६१८३
४१–अहंकारकी उत्पत्ति और उसके स्वरूपका वर्णन ६१८४
४२–अहंकारसे पञ्च महाभूतों और इन्द्रियोंकी सृष्टि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा निवृत्तिमार्गका उपदेश ... ६१८४
४३–चराचर प्राणियोंके अधिपतियोंका, धर्म आदिके लक्षणोंका और विषयोंकी अनुभूतिके साधनों-का वर्णन तथा क्षेत्रज्ञकी विलक्षणता ... ६१८८
४४–सब पदार्थोंके आदि-अन्तका और ज्ञानकी नित्यताका वर्णन ६१९१
४५–देहरूपी कालचक्रका तथा गृहस्थ और ब्राह्मणके धर्मका कथन ६१९३
४६–ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीके धर्मका वर्णन ६१९४
४७–मुक्तिके साधनोंका, देहरूपी वृक्षका तथा ज्ञान-खड्गसे उसे काटनेका वर्णन ... ६१९८
४८–आत्मा और परमात्माके स्वरूपका विवेचन ६२००
४९–धर्मका निर्णय जाननेके लिये ऋषियोंका प्रश्न ६२०१
५०–सत्त्व और पुरुषकी भिन्नता, बुद्धिमान्‌की प्रशंसा, पञ्चभूतोंके गुणोंका विस्तार और परमात्माकी श्रेष्ठताका वर्णन ६२०२
५१–तपस्याका प्रभाव, आत्माका स्वरूप और उसके ज्ञानकी महिमा तथा अनुगीताका उपसंहार ६२०६
५२–श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ हस्तिनापुर जाना और वहाँ सबसे मिलकर युधिष्ठिरकी आज्ञा ले सुभद्राके साथ द्वारकाको प्रस्थान करना ... ६२०९
५३–मार्गमें श्रीकृष्णसे कौरवोंके विनाशकी बात सुनकर उत्तङ्कमुनिका कुपित होना और श्रीकृष्णका उन्हें शान्त करना ... ६२१३
५४–भगवान् श्रीकृष्णका उत्तङ्कसे अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करना तथा दुर्योधनके अपराधको कौरवोंके विनाशका कारण बतलाना ... ६२१५
५५–श्रीकृष्णका उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना और मरुदेशमें जल प्राप्त होनेका वरदान देना ६२१७
५६–उत्तङ्ककी गुरुभक्तिका वर्णन, गुरुपुत्रीके साथ उत्तङ्कका विवाह, गुरुपत्नीकी आज्ञासे दिव्यकुण्डल लानेके लिये उत्तङ्कका राजा सौदासके पास जाना ६२२०
५७–उत्तङ्कका सौदाससे उनकी रानीके कुण्डल माँगना और सौदासके कहनेसे रानी मदयन्तीके पास जाना ६२२२
५८–कुण्डल लेकर उत्तङ्कका लौटना, मार्गमें उन कुण्डलोंका अपहरण होना तथा इन्द्र और अग्निदेवकी कृपासे फिर उन्हें पाकर गुरु-पत्नीको देना ६२२५
५९–भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकामें जाकर रैवतक पर्वतपर महोत्सवमें सम्मिलित होना और सबसे मिलना ... ६२२९
६०–वसुदेवजीके पूछनेपर श्रीकृष्णका उन्हें महाभारत-युद्धका वृत्तान्त संक्षेपसे सुनाना .. ६२३१
६१–श्रीकृष्णका सुभद्राके कहनेसे वसुदेवजीको अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनाना ... ६२३३
६२–वसुदेव आदि यादवोंका अभिमन्युके निमित्त श्राद्ध करना तथा व्यासजीका उत्तरा और अर्जुनको समझाकर युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा देना ६२३६
६३–युधिष्ठिरका अपने भाइयोंके साथ परामर्श करके सबको साथ ले धन ले आनेके लिये प्रस्थान करना ६२३७
६४–पाण्डवोंका हिमालयपर पहुँचकर वहाँ पड़ाव डालना और रातमें उपवासपूर्वक निवास करना ६२४०
६५–ब्राह्मणोंकी आज्ञासे भगवान् शिव और उनके पार्षद आदिकी पूजा करके युधिष्ठिरका उस धनराशिको खुदवाकर अपने साथ ले जाना ... ६२४१
६६–श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें आगमन और उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये कुन्तीकी उनसे प्रार्थना ६२४३
६७–परीक्षित्‌को जिलानेके लिये सुभद्राकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना ६२४५
६८–श्रीकृष्णका प्रसूतिकागृहमें प्रवेश, उत्तराका विलाप और अपने पुत्रको जीवित करनेके लिये प्रार्थना ६२४

६९–उत्तराका विलाप और भगवान् श्रीकृष्णका उसके मृत बालकको जीवन-दान देना ··· ६२४८
७०–श्रीकृष्णद्वारा राजा परीक्षित्‌का नामकरण तथा पाण्डवोंका हस्तिनापुरके समीप आगमन ··· ६२४९
७१–भगवान् श्रीकृष्ण और उनके साथियोंद्वारा पाण्डवोंका स्वागत, पाण्डवोंका नगरमें आकर सबसे मिलना और व्यासजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको यज्ञके लिये आज्ञा देना ··· ६२५१
७२–व्यासजीकी आज्ञासे अश्वकी रक्षाके लिये अर्जुनकी, राज्य और नगरकी रक्षाके लिये भीमसेन और नकुलकी तथा कुटुम्ब-पालनके लिये सहदेवकी नियुक्ति ··· ··· ६२५२
७३–सेनासहित अर्जुनके द्वारा अश्वका अनुसरण ··· ६२५४
७४–अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय ··· ६२५६
७५–अर्जुनका प्राग्ज्यौतिषपुरके राजा वज्रदत्तके साथ युद्ध ··· ··· ६२५८
७६–अर्जुनके द्वारा वज्रदत्तकी पराजय ··· ६२६०
७७–अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध ··· ६२६२
७८–अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध और दुःशलाके अनुरोधसे उसकी समाप्ति ··· ६२६४
७९–अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध एवं अर्जुनकी मृत्यु ··· ··· ६२६७
८०–चित्राङ्गदाका विलाप, मूर्च्छासे जगनेपर बभ्रुवाहनका शोकोद्गार और उलूपीके प्रयत्नसे संजीवनीमणिके द्वारा अर्जुनका पुनः जीवित होना ··· ··· ६२७०
८१–उलूपीका अर्जुनके पूछनेपर अपने आगमनका कारण एवं अर्जुनकी पराजयका रहस्य बताना, पुत्र और पत्नीसे विदा लेकर पार्थका पुनः अश्वके पीछे जाना ··· ६२७४
८२–मगधराज मेघसन्धिकी पराजय ··· ६२७६
८३–दक्षिण और पश्चिम समुद्रके तटवर्ती देशोंमें होते हुए अश्वका द्वारका, पञ्चनद एवं गान्धार देशमें प्रवेश ··· ··· ६२७८
८४–शकुनिपुत्रकी पराजय ··· ··· ६२८०
८५–यज्ञभूमिकी तैयारी, नाना देशोंसे आये हुए राजाओंका यज्ञकी सजावट और आयोजन देखना ··· ··· ६२८१
८६–राजा युधिष्ठिरका भीमसेनको राजाओंकी पूजा करनेका आदेश और श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना ··· ६२८४
८७–अर्जुनके विषयमें श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरकी बातचीत, अर्जुनका हस्तिनापुरमें जाना तथा उलूपी और चित्राङ्गदाके साथ बभ्रुवाहनका आगमन ··· ··· ६२८५
८८–उलूपी और चित्राङ्गदाके सहित बभ्रुवाहनका रत्न-आभूषण आदिसे सत्कार तथा अश्वमेधयज्ञका आरम्भ ··· ··· ६२८७
८९–युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना और राजाओंको भेंट देकर विदा करना ··· ६२९०
९०–युधिष्ठिरके यज्ञमें एक नेवलेका उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके द्वारा किये गये सेरभर सत्तूदानकी महिमा उस अश्वमेधयज्ञसे भी बढ़कर बतलाना ६२९३
९१–हिंसामिश्रित यज्ञ और धर्मकी निन्दा ··· ६३०१
९२–महर्षि अगस्त्यके यज्ञकी कथा ··· ६३०३

(वैष्णवधर्मपर्व)

१. युधिष्ठिरका वैष्णवधर्मविषयक प्रश्न और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा धर्मका तथा अपनी महिमाका वर्णन ··· ··· ६३०७
२. चारों वर्णोंके कर्म और उनके फलोंका वर्णन तथा धर्मकी वृद्धि और पापके क्षय होनेका उपाय ६३१०
३. व्यर्थ जन्म, दान और जीवनका वर्णन, सात्त्विक दानोंका लक्षण, दानका योग्य पात्र और ब्राह्मणकी महिमा ··· ··· ६३१३
४. बीज और योनिकी शुद्धि तथा गायत्री-जपकी और ब्राह्मणोंकी महिमाका और उनके तिरस्कारके भयानक फलका वर्णन ··· ६३१८
५. यमलोकके मार्गका कष्ट और उससे बचनेके उपाय ··· ··· ६३२१
६. जल-दान, अन्नदान और अतिथि-सत्कारका माहात्म्य ··· ··· ६३२६
७. भूमिदान, तिलदान और उत्तम ब्राह्मणकी महिमा ··· ··· ६३३०
८. अनेक प्रकारके दानोंकी महिमा ··· ६३३४
९. पञ्चमहायज्ञ, विधिवत् स्नान और उसके अङ्ग-भूत कर्म, भगवान्‌के प्रिय पुष्प तथा भगवद्भक्तोंका वर्णन ··· ··· ६३३७
१०. कपिला गौका तथा उसके दानका माहात्म्य और कपिला गौके दस भेद ··· ६३४४
११. कपिला गौमें देवताओंके निवासस्थानका तथा उसके माहात्म्यका, अयोग्य ब्राह्मणका, नरकमें ले जानेवाले पापोंका तथा स्वर्गमें ले जानेवाले पुण्योंका वर्णन ··· ··· ६३४७

१२. ब्रह्महत्याके समान पापका, अन्नदानकी प्रशंसा-का, जिनका अन्न वर्जनीय है, उन पापियोंका, दानके फलका और धर्मकी प्रशंसाका वर्णन ६३५१
१३. धर्म और शौचके लक्षण, संन्यासी और अतिथिके सत्कारके उपदेश, शिष्टाचार, दानपात्र ब्राह्मण तथा अन्नदानकी प्रशंसा ··· ६३५३
१४. भोजनकी विधि, गौओंको घास डालनेका विधान और तिलका माहात्म्य तथा ब्राह्मणके लिये तिल और गन्ना पेरनेका निषेध ··· ६३५६
१५. आपद्धर्म, श्रेष्ठ और निन्द्य ब्राह्मण, श्राद्धका उत्तम काल और मानव-धर्म-सारका वर्णन ··· ६३५८
१६. अग्निके स्वरूपमें अग्निहोत्रकी विधि तथा उसके माहात्म्यका वर्णन ··· ६३६२
१७. चान्द्रायणव्रतकी विधि, प्रायश्चित्तरूपमें उसके करनेका विधान तथा महिमाका वर्णन ६३६६
१८. सर्वहितकारी धर्मका वर्णन, द्वादशीव्रतका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके द्वारा भगवान्‌की स्तुति ··· ··· ६३६९
१९. विषुवयोग और ग्रहण आदिमें दानकी महिमा, पीपलका महत्त्व, तीर्थभूत गुणोंकी प्रशंसा और उत्तम प्रायश्चित्त ··· ··· ६३७२
२०. उत्तम और अधम ब्राह्मणोंके लक्षण, भक्त, गौ और पीपलकी महिमा ··· ६३७६
२१. भगवान्‌के उपदेशका उपसंहार और द्वारका-गमन ··· ··· ६३७८

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१—अर्जुनका भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रश्नोत्तर ··· ६१३४
२—भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा उत्तराके मृत बालकको जिलानेकी प्रतिज्ञा ६२२५
३—सर्वदेवमयी गो-माता ··· ६३४८

(सादा)

४—महाराज मरुत्तकी देवर्षिसे भेंट ६१०९
५—महाराज मरुत्तका संवर्त मुनिसे संवाद ६१०९
६—ब्रह्माजीका ऋषियोंको उपदेश ६२०२
७—उत्तङ्क मुनिकी श्रीकृष्णसे विश्व-रूप दिखानेके लिये प्रार्थना ६२१७
८—महारानी मदयन्तीका उत्तङ्कको कुण्डल-दान ··· ··· ६२२९
९—उत्तङ्कका गुरुपत्नीको कुण्डल-अर्पण ··· ६२२९
१०—भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिता-माता आदिको महाभारतका वृत्तान्त सुना रहे हैं ··· ६२३१
११—अश्वमेधयज्ञके लिये छोड़े हुए घोड़ेका अर्जुनके द्वारा अनुगमन ··· ६२५५
१२—अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहनको छातीसे लगा रहे हैं ··· ··· ६२७४
१३—महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें एक नेवलेका आगमन ··· ··· ६२९३
१४—महर्षि अगस्त्यकी यज्ञके समय प्रतिज्ञा ··· ६३०४
१५—(२० लाइन चित्र फरमोंमें)

* श्रीहरिः *

आश्रमवासिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(आश्रमवासपर्व)	
१	भाइयोंसहित युधिष्ठिर तथा कुन्ती आदि देवियोंके द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा ···	६३८३
२	पाण्डवोंका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव ··· ··· ···	६३८५
३	राजा धृतराष्ट्रका गान्धारीके साथ वनमें जानेके लिये उद्योग एवं युधिष्ठिरसे अनुमति देनेके लिये अनुरोध तथा युधिष्ठिर और कुन्ती आदिका दुखी होना ··· ···	६३८७
४	व्यासजीके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना ···	६३९३
५	धृतराष्ट्रके द्वारा युधिष्ठिरको राजनीतिका उपदेश	६३९४
६	धृतराष्ट्रद्वारा राजनीतिका उपदेश ···	६३९८
७	युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके द्वारा राजनीतिका उपदेश	६३९९
८	धृतराष्ट्रका कुरुजाङ्गल देशकी प्रजासे वनमें जानेके लिये आज्ञा माँगना ···	६४०१
९	प्रजाजनोंसे धृतराष्ट्रकी क्षमा-प्रार्थना ···	६४०३
१०	प्रजाकी ओरसे साम्बनामक ब्राह्मणका धृतराष्ट्रको सान्त्वनापूर्ण उत्तर देना ···	६४०४
११	धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा युधिष्ठिरसे श्राद्धके लिये धन माँगना, अर्जुनकी सहमति और भीमसेनका विरोध ··· ···	६४०८
१२	अर्जुनका भीमको समझाना और युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना ··· ···	६४१०
१३	विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरका उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना ··· ···	६४११
१४	राजा धृतराष्ट्रके द्वारा मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध एवं विशाल दान-यज्ञका अनुष्ठान ···	६४१२
१५	गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका वनको प्रस्थान ···	६४१३
१६	धृतराष्ट्रका पुरवासियोंको लौटाना और पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना ··· ···	६४१५
१७	कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर	६४१७
१८	पाण्डवोंका स्त्रियोंसहित निराश लौटना, कुन्ती-सहित गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका मार्गमें गङ्गा-तटपर निवास करना ···	६४१९
१९	धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटपर निवास करके वहाँसे कुरुक्षेत्रमें जाना और शतयूपके आश्रमपर निवास करना ··· ···	६४२१
२०	नारदजीका प्राचीन राजर्षियोंकी तपःसिद्धिका दृष्टान्त देकर धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना तथा शतयूपके पूछनेपर धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गतिका भी वर्णन करना ···	६४२२
२१	धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियों-की चिन्ता ··· ··· ···	६४२५
२२	माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेना-सहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान ···	६४२६
२३	सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना ··· ···	६४२८
२४	पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना ···	६४२९
२५	संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना ···	६४३०
२६	धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश ···	६४३२
२७	युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन ···	६४३५
२८	महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना ··· ··· ···	६४३७
	(पुत्रदर्शनपर्व)	
२९	धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध ···	६४३९
३०	कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना ···	६४४२
३१	व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना ··· ···	६४४४

३२–व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डववीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना ··· ·· ··· ६४४५
३३–परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर राग-द्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा ··· ··· ६४४७
३४–मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है ? जनमेजयकी इस शङ्काका वैशम्पायनद्वारा समाधान ··· ६४४९
३५–व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना ··· ··· ६४५१
३६–व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना ··· ··· ६४५२

(नारदागमनपर्व)

३७–नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक ··· ६४५६
३८–नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन ··· ··· ··· ६४५९
३९–राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना ··· ६४६१

चित्र-सूची

(सादा)

१–विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश ··· ··· ६४२५
२–व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डवपक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन ··· ६४४६
३–(९ लाइन चित्र फरमोंमें)

॥ श्रीहरिः ॥

मौसलपर्व

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या
१—युधिष्ठिरका अपशकुन देखना, यादवोंके विनाशका समाचार सुनना, द्वारकामें ऋषियों-के शापवश साम्बके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति तथा मदिराके निषेधकी कठोर आज्ञा ···	६४६३
२—द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आदेश देना ··· ···	६४६५
३—कृतवर्मा आदि समस्त यादवोंका परस्पर संहार	६४६७
४—दारुकका अर्जुनको सूचना देनेके लिये हस्तिनापुर जाना, बभ्रुका देहावसान एवं बलराम और श्रीकृष्णका परमधाम-गमन ···	६४७०
५—अर्जुनका द्वारकामें आना और द्वारका तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंकी दशा देखकर दुखी होना	६४७४
६—द्वारकामें अर्जुन और वसुदेवजीकी बातचीत	६४७५
७—वसुदेवजी तथा मौसल युद्धमें मरे हुए यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार करके अर्जुनका द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंको अपने साथ ले जाना, समुद्रका द्वारकाको डुबो देना और मार्गमें अर्जुनपर डाकुओंका आक्रमण, अवशिष्ट यादवोंको अपनी राजधानीमें बसा देना ···	६४७७
८—अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत ···	६४८१

चित्र-सूची

१—बलरामजीका परमधाम-गमन ··· ··· ···	(तिरंगा)	६४७२
२—साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप ··· ···	(सादा)	६४६३
३—वसुदेवजी अर्जुनको यादव-विनाशका वृत्तान्त और श्रीकृष्णका संदेश सुना रहे ···	(,,)	६४७६
४—(६ लाइन चित्र फरमोंमें)		

महाप्रस्थानिकपर्व

१—वृष्णिवंशियोंका श्राद्ध करके प्रजाजनोंकी अनुमति ले द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान	६४८५
२—मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना ···	६४८८
३—युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्म आदिके साथ वार्तालाप, युधिष्ठिरका अपने धर्ममें दृढ़ रहना तथा सदेह स्वर्गमें जाना ···	६४९०

चित्र-सूची

१—अग्निकी प्रेरणासे अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसको जलमें डाल रहे हैं (सादा) ···	६४८५
२—(२ लाइन चित्र फरमोंमें)	

स्वर्गारोहणपर्व

१—स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत ···	६४९३
२—देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना ···	६४९५
३—इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना ··· ···	६४९९
४—युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना	६५०२
५—भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य ··· ···	६५०४
१—महाभारत श्रवणविधिः ···	६५०९
२—महाभारत-माहात्म्य ··· ···	६५१७

चित्र-सूची

१—युधिष्ठिरका अपने आश्रित कुत्तेके लिये त्याग ···	(तिरंगा)	६४९३
२—देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना ···	(सादा)	६४९७
३—(१ लाइन चित्र फरमेमें)		

श्रीहरिः

महाभारतकी नामानुक्रमणिका संक्षिप्त परिचयसहित

अ

अंश–कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न बारह आदित्यों-मेंसे एक (**आदि० ६५ । १५**) । ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (**आदि० १२३ । ६६**) । खाण्डव-वन-दाहके युद्धमें इन्द्रकी ओरसे युद्धके लिये इनका आगमन (**आदि० २२६ । ३५**) । इनके द्वारा स्कन्दको पाँच पार्षद प्रदान किये गये (**शल्य० ४५ । ३४**) । शान्तिपर्वके २०८ वें अध्यायमें तथा अनुशासनपर्वके ८६ और १५१ वें अध्यायोंमें भी इनका नाम आया है ।

अंशावतरणपर्व–आदिपर्वके अध्याय ५९ से ६४ तकके विषयका नाम ।

अंशुमाली–सूर्यका एक नाम (सभा० ११ । १८) ।

अंशुमान् (१) सगरके पौत्र तथा असमञ्जसके पुत्र । इनके प्रयत्नसे यज्ञकी पूर्ति (**अनु० १०७ । ६१**) । इनपर महात्मा कपिलकी कृपा (**अनु० १०७ । ५६–५८**)। इनका राज्याभिषेक (**अनु० १०७ । ६४**)। इनका अपने पुत्र दिलीपको राज्य देकर स्वर्गगमन (**अनु० १०७ । ६६**) । (२) द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे हुए एक राजाका नाम (**आदि० १८५ । ११**) । (३) एक विश्वेदेवका नाम (**अनु० ९१ । ३२**) । (४) भोजराज अंशुमान्, जो द्रोणाचार्यद्वारा मारे गये थे । इनकी चर्चा कर्णपर्व अध्याय ६ श्लोक १४ में आयी है ।

अकम्पन–सत्ययुगका एक राजा । नारदजीके साथ उसका संवाद (**द्रोण० ५२ । २६**) । नारदजीके उपदेशसे उसका शोकरहित होना (**द्रोण० ५४ । ५२; शान्ति० २५६ । ७ से २५८ अ० तक**) ।

अकर्कर–एक नागका नाम (**आदि० ३५ । १६**) ।

अकूपार–इन्द्रद्युम्न सरोवरमें रहनेवाला एक चिरजीवी कच्छप (**वन० १९९ । ८**) । इसने इन्द्रद्युम्नकी लुप्त कीर्तिका भूमिपर प्रसार किया था ।

अकृतव्रण–परशुरामजीके प्रिय शिष्य और सखा । इनके द्वारा युधिष्ठिरसे परशुरामोपाख्यानका वर्णन (**वन० ११५ से ११७ अ० तक**) । इनका श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें उनसे भेंट करना (**उद्योग० ८३ । ६४ के बाद**)। होत्रवाहनको परशुरामजीके आगमनकी सूचना देना और अम्बाका परिचय पूछना (**उद्योग० १७६ । ४१—४३**) । अम्बाको भीष्मसे ही बदला लेनेकी सलाह देना (**उद्योग० १७७ । १२**) । परशुरामजीको भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये कहना (**उद्योग० १७८ । १५**) । भीष्मके साथ युद्धमें परशुरामजीका सारथ्य करना (**उद्योग० १७९ । ९**) । बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास आये हुए ऋषियोंमें एक ये भी थे (**अनु० २६ । ८**) ।

अकृतश्रम–वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक मुनि (**शान्ति० २४४ । १७**) ।

अक्रूर–यदुवंशान्तर्गत सात्वतवंशीय श्वफल्कके पुत्र, जिन्हें दानपति भी कहते हैं । ये वृष्णिवीरोंके सेनापति थे (**आदि० २२० । २९**) । (इनकी माताका नाम 'गान्दिनी' और पत्नीका नाम 'सुतनु' था, वह आहुककी पुत्री थी—पुराणान्तरसे) द्रौपदीके स्वयंवरमें इनका आगमन (**आदि० १८५ । १८**) । सुभद्राहरणके समय रैवतक पर्वतपर होनेवाले उत्सवमें ये भी थे (**आदि० २१८ । १०**)। सुभद्राके लिये श्रीकृष्णके साथ दहेज लेकर गये थे (**आदि० २२० । २९**) । ये उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहके अवसरपर आये थे (**विराट० ७२ । २२**) । अक्रूर और आहुकमें बड़ा वैर था और ये दोनों श्रीकृष्ण-को अपने विरोधीका पक्षपाती समझकर उनसे मन-ही-मन असंतुष्ट रहते थे । इससे श्रीकृष्णको बड़ी चिन्ता थी (**शान्ति० ८१ । ९–११**) । सभापर्वके ४, वनपर्व-के १८, ५१; मौसलपर्वके ६ तथा स्वर्गारोहणपर्वके ५ वें अध्यायोंमें भी इनका नाम आया है । ये विश्वेदेवोंमें मिल गये थे ।

अक्रोधन–पूरुवंशी अयुतनायीके पुत्र । इनकी माता थी पृथुश्रवाकी पुत्री कामा । इनकी पत्नी थी कलिङ्गराजकुमारी करम्भा । इनके पुत्रका नाम 'देवातिथि' था (**आदि० ९५ । २१**) ।

अक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५८**) ।

अक्षप्रपतन–आनर्त देशके अन्तर्गत एक स्थान, जहाँ श्री-कृष्णने गोपति और तालकेतु नामक असुरोंको मारा था (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ पृष्ठ ८२४**) ।

अक्षमाला (**अरुन्धती**)–वसिष्ठकी पत्नी (**उद्योग० ११७ । ११**) । (देखिये अरुन्धती)

अक्षयवट–गयाके अन्तर्गत एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ । (**वन० ८४ । ८३; ९५ । १४**) । (**कहते हैं, यहाँ अक्षय-वटवृक्ष है, जिसका प्रलयकालमें क्षय नहीं होता ।**)

अक्षर–अक्षर पुरुष (**भीष्म० ३९ । १६**) ।

अक्षीण–महर्षि विश्वामित्रके पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५०**) ।

अक्षौहिणी–परिगणित संख्यावाले रथों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाका नाम (**विशेष परिचय देखिये आदि० २ । २२ से २६ तक**) ।

अगस्त्य–मित्रावरुणके पुत्र एक ब्रह्मर्षि, जिन्हें 'कुम्भज' भी कहते हैं (**शान्ति० ३४२ । ५१**) । इन्होंने यज्ञविघ्नकारी पशुओंपर आक्रमण करके उन्हें मार भगाया था (**आदि० ११७ । १४**) । इनके द्वारा अग्निवेशको धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त हुई थी (**आदि० १३८ । ९**) । इनका पितरोंके उद्धारार्थ विवाह करनेका विचार (**वन० ९६ । १९**) । इन्होंने अपनी पत्नी बनानेकी इच्छासे अपने ही द्वारा रची गयी एक दिव्य स्त्रीको तपस्वी विदर्भराजके यहाँ उनकी पुत्री-रूपसे दे दिया था (**वन० ९६ । २१**) । विदर्भ-राजकुमारी लोपामुद्रासे इनका विवाह (**वन० ९७ । ७**) । इनकी गङ्गाद्वारमें पत्नीसहित तपस्या (**वन० ९७ । ११**) । लोपामुद्रासे प्रेरित होकर इनका धन-संग्रहके लिये प्रस्थान (**वन० ९७ । २५**) । इनका श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व तथा त्रसद्दस्युसे धन माँगना (**वन० ९८ । ४, ९, १५**) । इनके द्वारा वातापिका भक्षण (**वन० ९९ । ६**) । इनकी इल्वलसे धनकी याचना (**वन० ९९ । १२**) । इनका लोपामुद्राके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करना (**वन० ९९ । २५**) । देवताओंद्वारा इनकी स्तुति (**वन० १०३ । १५–१८**) । इनका विन्ध्यपर्वतको बढ़नेसे रोकना (**वन० १०४ । १२-१३**) । इनके द्वारा समुद्रका शोषण (**वन० १०५ । ३–६**) । इनसे राक्षस मणिमान् तथा कुबेरको शाप प्राप्त होना (**वन० १६१ । ६०–६२**) । इनका इन्द्रसे नहुषके पतनका वृत्तान्त सुनाना (**उद्योग० अध्याय १७**) । इनके द्वारा वानप्रस्थाश्रमका पालन (**शान्ति० २४४ । १६**) । इनके शापसे नहुषका पतन (**शान्ति० ३४२ । ५१**) । कमलोंकी चोरी हो जानेपर इनका सारगर्भित प्रवचन (**अनु० ९४ । ९–१३**) । नहुषके अत्याचारके विषयमें भृगुजीसे इनका वार्तालाप (**अनु० ९९ । १६–२१**) । नहुषके द्वारा इनका रथमें जोता जाना (**अनु० १०० । १८-१९**) । वायुद्वारा इनके प्रभावका वर्णन—इनके क्रोधसे दग्ध होकर दानवोंका अन्तरिक्षसे गिरना (**अनु० ११५ । १–१३**) । अगस्त्यजीके द्वारा द्वादशवार्षिक यज्ञका अनुष्ठान और उसमें इनकी तपस्याका अद्भुत प्रभाव (**आश्व० अ० ९२**) ।

अगस्त्यतीर्थ–दक्षिण समुद्रके समीपवर्ती तीर्थ । पाँच नारी-तीर्थोंमें एक (**आदि० २१५ । ३**) । यहाँ तीर्थयात्राके अवसरपर अर्जुनका आगमन और ब्राह्मणके शापसे ग्राह बनकर रहनेवाली अप्सरा (वर्गाकी सखी) का अर्जुन-द्वारा उद्धार (**आदि० २१६ । २१**) । (वन० ८८ । १३ तथा ११८ । ४) में भी इस तीर्थका नाम आया है ।

अगस्त्यपर्वत– (१) मद्रास प्रान्तके तिनेवली जिलेका अगस्त्यकूट नामक पर्वत, जो ताम्रपर्णी नदीका उद्गमस्थान है (—हिंदी महाभारतका परिशिष्ट पृष्ठ १) । (२) किसी-किसीके मतमें यह कालंजर पर्वतका उपपर्वत है ।

अगस्त्यवट–हिमालयके पासका एक पुण्यक्षेत्र । तीर्थयात्रा-के अवसरपर यहाँ अर्जुनका आगमन हुआ था (**आदि० २१४ । २**) ।

अगस्त्यसरोवर (आगस्त्यसर)—पूर्वोक्त अगस्त्यतीर्थका ही नाम अगस्त्यसरोवर है (**वन० ८२ । ४४**) तथा (**वन० ८८ । १३**) । विशेष परिचयके लिये देखिये अगस्त्यतीर्थ ।

अगस्त्याश्रम–(१) पञ्चवटीके पासका एक पुण्यक्षेत्र, जो नासिकसे २४ मील दक्षिणपूर्वकी ओर है । इसे आजकल 'अगस्तिपुरी' कहते हैं (**वन० ८७ । २०; ९६ । १**) (२) प्रयागके अन्तर्गत एक तीर्थविशेष 'अगस्त्याश्रम' है । महाभारत, वनपर्वमें इसीका वर्णन जान पड़ता है । यहीं लोमशके साथ युधिष्ठिर पधारे थे (**वन० ८७ । २०; ९६ । १**) ।

अग्नि–पाँच महाभूतोंमेंसे एक तथा उसके अभिमानी देवता । ये भगवान्के मुखसे उत्पन्न हैं । भृगुपत्नी पुलोमाके सम्बन्धमें इनका निर्णय देना (**वन० ५ । ३१–३४**) । महर्षि भृगुने इनको सर्वभक्षी होनेका शाप दिया (**वन० ६ । १४**) । झूठी गवाही देने तथा सत्य बात न बोलनेपर सात पीढ़ियों-तकके नाश होनेके सम्बन्धमें इनका वचन (**वन० ७ । ३-४**) । भृगुके शापसे कुपित होकर इनका अन्तर्धान होना एवं ब्रह्माजीका इनको आश्वासन देना (**वन० ७ । १२–२५**) । राजा श्वेतकिके द्वादशवर्षीय यज्ञमें निरन्तर घृतपान करनेसे इनको अजीर्णताका रोग होना (**वन० २२२ । ६७**) । अपने अजीर्णको मिटानेके लिये इनकी ब्रह्माजीसे प्रार्थना (**वन० २२२ । ६९**) । खाण्डववन जलानेके लिये इनको ब्रह्माका आदेश (**वन० २२२ । ७७**) । खाण्डववनको जलानेके कार्यमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसे प्रार्थना करनेके लिये इनको ब्रह्माजीकी प्रेरणा (**वन० २२३ । १०**) । खाण्डववनको दग्ध करनेमें सहायताके लिये इनकी श्रीकृष्ण और अर्जुनसे प्रार्थना (**वन० २२२ । १०**) । गाण्डीव धनुष, चक्र एवं दिव्यरथके लिये इनकी वरुणसे प्रार्थना (**वन० २२४ । ४**) । इन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस तथा दिव्य रथ प्रदान किये और श्रीकृष्णको सुदर्शनचक्र दिया (**आदि० २२४ । १४**) । इनके द्वारा खाण्डववनका

दाह (आदि० २२४ । ३४–३७)। मन्दपालद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २२८ । २३)। शार्ङ्गकोंद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २३१ में)। इनके द्वारा सहदेवके विरुद्ध राजा नीलकी सहायता तथा सहदेवसैनिकोंका जलना (सभा० ३१ । २३-२४)। माहिष्मतीनरेश नीलकी पुत्री सुदर्शनाकी ओर इनका आकृष्ट होना (सभा० ३१ । २७)। इनका ब्राह्मणरूपसे जाकर सुदर्शनाके प्रति काम-भाव प्रकट करना और राजा नीलद्वारा इनपर शासन (सभा० ३१ । ३१)। नीलद्वारा इनको अपनी कन्या सुदर्शनाका दान (सभा० ३१ । ३३)। राजा नीलपर अग्निकी कृपा। राजाको वर माँगनेके लिये प्रेरित करना। राजाका अग्निदेवसे अपनी सेनाके लिये अभयदान माँगना (वन० ३१ । ३४-३५)। माहिष्मतीकी स्त्रियोंको अग्निदेवका वरदान (वन० ३१ । ३८)। सहदेवद्वारा अग्निदेवकी स्तुति (सभा० ३१ । ४१–४९)। अग्निदेवकी आज्ञासे नीलद्वारा सहदेवका सत्कार (सभा० ३१ । ५८-५९)। इन्होंने बाणासुरकी राजधानीकी रक्षा की (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। दमयन्ती-स्वयंवरमें राजा नलको वर प्रदान किया (वन० ५७ । ३६½)। ये कबूतर बनकर राजा उशीनरकी गोदमें छिपे (वन० १३० । २४ और १९७। ३)। इन्होंने राजा उशीनरको अपना परिचय तथा वर दिया (वन० १९७ । २५–२८)। महर्षि अङ्गिराको अपना प्रथम पुत्र स्वीकार किया (वन० २१७ । १८)। महनामक अग्निसे अद्भुत नामक अग्निकी उत्पत्ति (वन० २२२ । १)। सप्तर्षियोंकी पत्नियोंपर मोहित होकर ये वनमें चले गये (वन० २२४ । ३३–३८)। इन्होंने स्कन्दकी रक्षा की (वन० २२६ । २९)। सीताजीकी शुद्धिका समर्थन किया (वन० २९१ । २८)। अर्जुनने अस्त्रप्राप्तिके लिये अग्निदेवका आश्रय लिया था (विराट० ४५ । ४०)। इन्द्रकी खोजके लिये बृहस्पतिके साथ अग्निका संवाद (उद्योग० १५ । २८ से ३४ तक)। उन्होंने बृहस्पतिको इन्द्रका पता बताया (उद्योग० १६ । १२)। ब्रह्माजीके रोषसे प्रकट हुए अग्निदेवके द्वारा चराचर जगत्‌का दाह (द्रोण० ५२ । ४१)। स्कन्दको पार्षद प्रदान किया (शल्य० ४५ । ३३)। कार्तवीर्य अर्जुनसे भिक्षा माँगकर उसकी सहायतासे अग्निने ग्राम, वन एवं पर्वतोंके साथ आपव मुनिका आश्रम भी जलाया (शान्ति० ४९ । ३८ से ४१ तक)। ब्रह्माके कहनेसे इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक चतुर्थांश स्वीकार किया (शान्ति० २८२ । ३५)। इन्होंने मेढकों, हाथियों और तोतोंको शाप दिया (अनु० ८५ । २८, ३६, ४०)। देवताओंको आश्वासन दिया (अनु० ८५ । ५०)। गङ्गाजीके गर्भमें शिवजीका वीर्य स्थापित किया (अनु० ८५ । ५६)। प्रजापतियोंको अपनी संतान माना (अनु० ८५ । ११८)। कार्तिकेयको बकरा दिया (अनु० ८६ । २४)। पितरों और देवोंके अजीर्ण-निवारणका उपाय बतलाया (अनु० ९२ । १०)। इन्द्रादि देवताओंके समक्ष धर्मके रहस्यका वर्णन किया (अनु० १२६ । २९–३४; १२७ । १–५)। ये इन्द्रका संदेश लेकर मरुत्तके पास गये (आश्व० ९ । १४-१५)। इन्होंने मरुत्तका उत्तर इन्द्रको सुनाया (आश्व० ९ । २२–२३)। ब्रह्मबलकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया (आश्व० ९ । ३१–३७)। कुण्डलोंका अपहरण हो जानेपर नागलोकमें गये हुए उत्तङ्कको अश्वरूपधारी अग्निदेवने सहायता दी, नागोंको क्षुब्ध करके कुण्डल लौटानेको विवश कर दिया (आश्व० ५८ । ४१–५५ तथा आदि० ३ । १५१–१५४)। इन्होंने महाप्रस्थानके समय अर्जुनसे गाण्डीव धनुष वापस लिया (महाप्रस्थान० १ । ३५–४३)।

अग्निकन्यापुर–अग्निपुरतीर्थमें स्नान करनेसे मिलनेवाला पुण्यलोक (किसी-किसीके मतमें यह भी एक तीर्थ है) (अनु० २५ । ४३)।

अग्नितीर्थ–सरस्वतीके तटका एक प्रसिद्ध तीर्थ, जिसमें अग्निदेव शमीके गर्भमें छिपे थे (वन० ८३ । १३८), (शल्य० ४७ । १९–२१)।

अग्निधारातीर्थ–एक पवित्र तीर्थका नाम। (कोई-कोई इस तीर्थको गौतमवनके समीप बताते हैं) (वन० ८४ । १४६)।

अग्निपुर–एक तीर्थका नाम (किन्हींके मतमें इन्दौर राज्यमें नर्मदाके दक्षिणतटपर स्थित महेश्वर नामक स्थान) (अनु० २५ । ४३)।

अग्निमान्–अग्निविशेष (सूतिका-गृहकी अग्निका अग्निहोत्रकी अग्निसे स्पर्श हो जानेपर प्रायश्चित्तके लिये अष्टाकपाल पुरोडाशकी आहुति इसी अग्निमें दी जाती है।) (वन० २२१ । ३१)।

अग्निवेश–ये अग्निके पुत्र थे, इन्होंने भरद्वाजसे आग्नेयास्त्र प्राप्त किया था। ये द्रोणाचार्य एवं द्रुपदके अस्त्रविद्यागुरु थे (आदि० १२९ । ३९-४०)। अगस्त्यद्वारा इनको धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त हुई थी (आदि० १३८ । ९)।

अग्निवेश्य–(१) अग्निवेशका ही दूसरा नाम अग्निवेश्य है। युधिष्ठिरका आदर करनेवाले ब्रह्मर्षियोंमें इनका भी नाम आया है (वन० २६ । २३)। (२) भारतका एक प्राचीन जनपद (भीष्म० ५० । ५२)।

अग्निशिरतीर्थ–यमुना-तटवर्ती तीर्थविशेष, जहाँ सृंजयपुत्र सहदेवने यज्ञ किया था (वन० ९० । ५–७)।

अग्नीषोम–(१) अग्नि और सोम नामक देवता, जो एक साथ रहकर हविष्य ग्रहण करते हैं **(सभा० ७ । २१)**। (२) अग्नि और सोमके लिये दी जानेवाली आहुति **(अनु० ९७ । १०)** । (३) मनु (या भानु) नामक अग्निकी तीसरी पत्नी निशाके गर्भसे उत्पन्न अग्नि और सोम नामक दो पुत्र, ये दोनों अग्निस्वरूप हैं **(वन० २२१ । १५)**।

अग्निष्वात्त–सात पितरोंमें एक **(सभा० ११ । ४५-४६)**।

अग्रणी–भानु या मनुकी तीसरी पत्नी निशाके गर्भसे उत्पन्न पाँचवाँ पुत्र । मनुष्य जिनके द्वारा सब भूतोंको अन्नका अग्रभाग अर्पण करते हैं, वे 'अग्रणी' नामक अग्नि हैं **(वन० २२१ । १५, २२)** ।

अग्रयायी–राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, इसका दूसरा नाम 'अनुयायी' भी है **(आदि० ११६ । ११)**।

अग्रह–चातुर्मास्य यज्ञोंमें नित्यविहित आग्नेय आदि आठ हविष्योंके उद्भवस्थान 'अग्रह' नामक अग्नि, ये भानु या मनुकी 'सुप्रजा' और 'बृहद्भासा' नामक पत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले छः पुत्रोंमेंसे पाँचवें हैं **(वन० २२१ । ९—१४)**।

अघमर्षण–वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक ऋषि **(शान्ति० २४४ । १६)**।

अङ्ग–(१) एक प्राचीन जनपदका नाम । दुर्योधनने कर्णको अङ्गदेशके राज्यपर अभिषिक्त किया **(आदि० १३५ । ३८)** । (बिहारप्रान्तमें भागलपुर और मुंगेर जिलेके आस-पासका प्रदेश, जिसकी राजधानी चम्पापुरी थी । कहीं-कहीं इसका विस्तार वैद्यनाथधामसे लेकर भुवनेश्वरतक लिखा है—हिन्दी शब्दसागर) । कर्ण यहींका राजा बनाया गया था । तीर्थयात्राके अवसरपर अर्जुनका यहाँ आगमन हुआ था **(आदि० २१४ । ९-१०)** । (२) अङ्गदेशीय क्षत्रिय अथवा प्रजावर्ग । अङ्गदेशवासियोंने राजसूययज्ञके अवसर-पर युधिष्ठिरको भेंट अर्पण किया था **(सभा० ५२ । १६)** । अङ्गदेशीय योद्धा श्रीकृष्णद्वारा पराजित हुए थे **(द्रोण० ११ । १५)** । अङ्गदेशवासियोंपर परशुरामजीकी विजय **(द्रोण० ७० । १२)** । अङ्गों-पर कर्णकी विजय **(कर्ण० ८ । १९)** । अङ्गदेशीय वीरोंने सोलहवें दिनके युद्धमें अर्जुनपर चढ़ाई की थी **(कर्ण० १७ । १२)** । अङ्गदेशीय वीरोंका धृष्टद्युम्न एवं पाञ्चाल-सेनापर आक्रमण **(कर्ण० २२ । २)** । (३) अङ्ग-देशनिवासी म्लेच्छोंका एक सरदार, जो महाभारत-युद्धके बारहवें दिन भीमसेनद्वारा हाथीसहित मारा गया था **(द्रोण० २६ । १४–१७)** । (४) अङ्गराज (म्लेच्छ-सरदार), यह भीमसेनद्वारा मारे गये 'अङ्ग' (अङ्गाधिपति म्लेच्छ) से भिन्न था; यह सोलहवें दिनके युद्धमें नकुलद्वारा मारा गया **(कर्ण० २२ । १८)**। (५) अङ्गराज बृहद्रथ, जिनकी कथा षोडश राजकीयो-पाख्यानमें आयी है **(शान्ति० २९ । ३१)** । (६) मनुके पुत्र अङ्ग, जो अन्तर्धामाके पिता थे **(अनु० १४७ । २३)** । (७) 'अङ्ग' नामसे प्रसिद्ध अङ्गराज, जिनके साथ पृथ्वी स्पर्धा रखती थी **(अनु० १५३ । २)**।

अङ्गद–(१) वानरराज वालीके पुत्र **(वन० ८२ । २८)**। वालीकी पत्नी तारा इनकी माता थी **(वन० २८० । १८)** । इनका सीताजीकी खोजसे लौटकर मधुवनके फल खाना **(वन० २८२ । २७-२८)** । श्रीरामका इन्हें दूत बनाकर रावणके दरबारमें भेजना **(वन० २८३ । ५४)** । लङ्कामें जाकर रावणको श्रीरामका संदेश सुनाना **(वन० २८४ । १०–१६)** । अङ्गदका इन्द्रजित्के साथ घोर युद्ध इनका **(वन० २८८ । १४–१९)** । अङ्गदका साथियोंसहित आगे बढ़कर रावण और उसकी सेनापर आक्रमण **(वन० २९० । ३-४)** । श्रीरामके द्वारा किष्किन्धाके युवराजपदपर इनका अभिषेक **(वन० २९१ । ५९)** । (२) कौरवपक्षका एक वीर योद्धा, जो बारहवें दिनके युद्धमें उत्तमौजासे लड़ा था **(द्रोण० २५ । ३८-३९)** । (३) एक आभूषण-का नाम, जो बाँहमें पहना जाता है ।

अङ्गमलज–भारतवर्षका एक जनपद **(भीष्म० ९ । ५०)** ।

अङ्गार–(१) एक जनपद **(भीष्म० ९ । ६०)** । (२) एक प्राचीन राजा, जो मान्धातासे पराजित हुआ था **(शान्ति० २९ । ८८)** ।

अङ्गारक–(१) सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथका अनुगामी था **(वन० २६५ । १०)** । (२) 'मङ्गल' नामक ग्रह, जो ब्रह्माजीकी सभामें नित्य उपस्थित होते हैं **(सभा० ११ । २९)** । (३) सूर्यके १०८ नामोंमेंसे एक **(वन० ३ । १८)** ।

अङ्गारपर्ण–(१) एक गन्धर्व, जो अर्जुनसे पराजित होकर उनका मित्र बन गया । इसकी पत्नीका नाम 'कुम्भीनसी' था, **(आदि० १६९अ०)** । (देखिये चित्ररथ) (२) गङ्गातटवर्ती एक वन, जो गन्धर्वराज अङ्गारपर्णके अधिकारमें था ।

अङ्गावह–एक वृष्णिवंशी महारथी वीर, जो युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें श्रीबलरामजी आदिके साथ आया था **(सभा० ३४ । १६)** ।

अङ्गिरा–ब्रह्माजीके छः मानस पुत्रोंमेंसे एक **(आदि० ६५ । १०)** । ये ब्रह्माजीके सभासद् हैं **(सभा० ११ । १९)** । इन्हींके पुत्र बृहस्पतिका देवताओंने पौरोहित्यके पदपर वरण किया था **(आदि० ७६ । ६)** । इनकी ब्रह्माजीके वीर्य एवं अङ्गारसे उत्पत्तिका वर्णन **(अनु० ८५ । १०५-१०६)** । इनसे बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त नामक तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई **(आदि० ६६ । ५)** । इन्होंने सूर्यदेवकी रक्षा की है **(वन० ९२ । ६)** । ये अलकनन्दा नामक गङ्गाके तटपर नित्य स्वाध्याय, जप

आदि करते हैं (वन० १४२ । ६) । अग्निदेवने अङ्गिराको अपना प्रथम पुत्र स्वीकार किया (वन० २१७ । ८–१८) । इनकी पत्नी सुभासे होनेवाली संतति-बृहत्कीर्ति आदि पुत्र और भानुमती आदि कन्याओंका वर्णन (वन० २१८ । १–८) । इन्हें इन्द्रदेवतासे वरकी प्राप्ति हुई (उद्योग० १८ । ५–७) । इन्होंने द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहा था (द्रोण० १९० । ३४–४०) । गौतमके पूछनेपर तीर्थोंका महत्त्व बताया (अनु० २५ । ७–७१) । अगस्त्यजीके समक्ष स्वयं कमलोंकी चोरी न करनेके विषयमें शपथ करना (अनु० ९४ । २०) । इनके द्वारा भीष्मजीसे अनशनव्रतकी महिमाका वर्णन (अनु०१०६ । ११–१६) । धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२७ । ८) । समुद्रके जलका पान (अनु० १५३ । ३) । अग्निको शाप (अनु० १५३ । ८) । इन्होंने राजा अविक्षित्का यज्ञ कराया (आश्व० ४ । २२) ।

अचल–(१) कौरवपक्षका रथी वीर, जो गान्धारराज सुबलका पुत्र और शकुनिका भाई था (उद्योग० १६८ । १) । यह युधिष्ठिरका राजसूययज्ञ देखनेके लिये गया था (सभा० ३४ । ७) । इसका अपने भाई वृषकके साथ ही अर्जुनद्वारा वध हुआ (द्रोण० ३० । ११) । व्यासजीने एक रातके लिये जिन मृतात्माओंको जीवित अवस्थामें बुलाया था, उनमें यह भी था (आश्रम० ३२।१२) । (२) स्कन्दका एक पार्षद (शल्य० ४५।७४) । (३) विष्णुसहस्रनाममें आया हुआ भगवान्‌का एक नाम (अनु० १४९।९२) ।

अचला–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

अच्युत–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (भीष्म० २५।२१) । (अपनी महिमा या स्वरूपसे अथवा धर्मसे कभी च्युत न होनेके कारण भगवान्‌को 'अच्युत' कहते हैं । इस यौगिक अर्थमें यह नाम युधिष्ठिर आदिके लिये भी विशेषरूपसे प्रयुक्त हुआ है ।)

अच्युतस्थल–वर्णसंकरजातीय अन्त्यजोंका निवासस्थान एक प्राचीन ग्राम (वन० १२९ । ९) ।

अच्युतायु–कौरवपक्षीय एक वीर, श्रुतायुका भाई, अच्युतायु और श्रुतायु—दोनोंका अर्जुनद्वारा वध हुआ (द्रोण० ९३ । ७–२४) ।

अज–(१) इक्ष्वाकुवंशी नरेश, महाराज दशरथके पिता (वन० २७४ । ६) । (२) प्राचीन ऋषियोंका एक समुदाय, इन्हें स्वाध्यायद्वारा स्वर्गप्राप्ति हुई (शान्ति० २६ । ७) । (३) महाराज जह्नुके पुत्र, बलाकाश्वके पिता (शान्ति० ४९ । ३) । (४) एक राजा जिन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया (अनु० ११५ । ६६) । (किन्हींका मत है कि ये महाराज दशरथके पिता ही थे ।) (५) अजन्मा (भीष्म० २८ । ६) । (६) सूर्य (वन० ३ । १६) । (७) शिव (आश्व० ८ । २१) । (८) ब्रह्मा (अनु० १५३ । १७) । (९) विष्णु (अनु० १४९ । ६९) । (१०) श्रीकृष्ण (उद्योग० ७० । ८; शान्ति० ३४२ । ७४) । (११) बीज (शान्ति० ३३७ । ४) । (१२) छाग या बकरा (शान्ति० ३३७ । ३) ।

अजक–वृषपर्वा दानवका छोटा भाई, जो शाल्वरूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २४ तथा ६७ । १६) ।

अजगर–एक विशालकाय सर्प, जो पूर्वजन्ममें नहुष था और अगस्त्यके शापसे सर्प होकर नीचे गिरा था । इसीने भीमसेनको पकड़ा था (वन० १७८ । २८, १७९ । १०—२४) । उसका युधिष्ठिरके साथ संवाद (वन० १८० तथा १८१ अ०) ।

अजनाभ–एक पर्वतका नाम (अनु० १६५ । ३२) ।

अजमीढ–(१) महाराज सुहोत्रके द्वारा ऐक्ष्वाकीके गर्भसे उत्पन्न, सोमवंशीय क्षत्रिय; इनके भाइयोंका नाम सुमीढ और पुरुमीढ था, इनके 'धूमिनी', 'नीली' तथा 'केशिनी' नामकी तीन रानियाँ थीं; जिनमें धूमिनीके गर्भसे 'ऋक्ष', नीलीके गर्भसे दुष्यन्त और परमेष्ठी तथा केशिनीके 'जह्नु', 'व्रजन' तथा 'रूपिण' नामके तीन पुत्र हुए थे । (आदि० ९४ । ३०–३२ तथा अनु० ४ । २) । (२) एक सोमवंशी क्षत्रिय राजा, जो सोमवंशी विकुण्ठन तथा दशार्हकुलकी कन्या सुदेवाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; इनकी कैकेयी, गान्धारी, विशाला तथा ऋक्षा नामवाली चार स्त्रियाँ थीं; जिनसे एक सौ चौबीस पुत्र हुए थे (आदि० ९५ । ३५–३७) ।

अजवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५) ।

अजबिन्दु–सुवीरोंके वंशमें उत्पन्न एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १४) ।

अजातशत्रु–युधिष्ठिर (भीष्म० ८५ । १९ तथा सभा० १३ । ९) ।

अजेय–एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३४) ।

अजैकपात्–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । १—३) । ये सुवर्णके रक्षक हैं (उद्योग० ११४ । ४) । ग्यारह रुद्रोंमें इनके नाम अनेक स्थलोंपर आये हैं । यथा—(शान्ति० २०८ । १९) ।

अजोदर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०) ।

अञ्जन–(१) एक पर्वतका नाम (सभा० ७८ । १५) । (२) सुप्रतीकके वंशमें उत्पन्न पातालवासी 'अञ्जन'नामक

हाथी (उद्योग० ९९ । १५) । (३) घटोत्कचके साथी राक्षसकी सवारीमें आया हुआ 'अञ्जन' नामक दिग्गज (भीष्म० ६४ । ५७ तथा द्रोण० ११२ । ३३) ।

अञ्जनपर्वा–घटोत्कचका पुत्र (उद्योग० १९४ । २०) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (द्रोण० १५६ । ८९-९०) ।

अञ्जलिकावेध–गजराजको वशमें करनेकी एक विद्या, इसे भीमसेन जानते थे (द्रोण० २६ । २३) ।

अञ्जलिकाश्रम–एक तीर्थ, इसमें शाकका भोजन करते हुए चीरवस्त्र धारणकर कुछ काल निवास करनेसे कन्याकुमारी तीर्थके दस बार सेवनका फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ५२) ।

अटवीशिखर–एक जनपदका नाम (भीष्म० ९ । ४८) ।

अठिद–दक्षिण दिशाका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६४) ।

अणी–शूलके अग्रभागका नाम । इसको अपने शरीरके भीतर लिये हुए ही विचरनेके कारण माण्डव्य ऋषि 'अणीमाण्डव्य' कहलाने लगे (आदि० १०७ । ८) ।

अणीमाण्डव्य–महर्षि माण्डव्य तथा इनकी तपस्या (आदि० १०६ । २-३) । इनका 'अणीमाण्डव्य' नाम होनेका कारण (आदि० १०७ । ८) । निरपराध होनेपर भी इनको शूलीपर चढ़ाये जानेका दण्ड मिला (आदि० ६३ । ९२ तथा आदि० १०६ । १२) । शूलके अग्रभागपर इनकी तपस्या (आदि० १०६ । १५) । इनकी दयनीय दशासे संतप्त एवं तपस्यासे प्रभावित हो पक्षीरूपधारी महर्षियोंका इनके समीप आगमन (आदि० १०६ । १६) । 'फतिंगोंके पुच्छभागमें सींक घुसेड़नेके फलस्वरूप ही आपको शूलीपर चढ़ाये जानेका दण्ड मिला है'—इस प्रकार धर्मराजद्वारा इनको सम्बोधन (आदि० १०७ । ११) । ब्राह्मणवधकी अत्यधिक भयङ्करताका इनके द्वारा प्रतिपादन (आदि० १०७ । १५) । धर्मराजको शूद्रयोनिमें जन्म लेनेका इनके द्वारा अभिशाप (आदि० १०७ । १६ ; ६३।९६) । 'चौदह वर्षकी आयुतक किये हुए अशुभ कर्मोका फल किसीको नहीं प्राप्त होगा' इस प्रकार इनकी घोषणा (आदि० १०७ । १७) । श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें उनसे जो ऋषि मिले थे, उनमें अणीमाण्डव्य भी थे (देखिये उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनका विदेहराज जनकसे तृष्णाका त्याग करनेके विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० २७६ । ३) । शिव-महिमाके विषयमें युधिष्ठिरको अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ४६—५१½) ।

अणुह–एक प्राचीन राजाका नाम (आदि० १ । २३२) ।

अतिबल–(१) वायुद्वारा स्कन्दको दिया गया एक पार्षद (शल्य० ४५ । ४४) । (२) एक नीतिशास्त्रका ज्ञाता नरेश, जो राज्य पाकर इन्द्रियोंका गुलाम हो गया था । इसके पिताका नाम अनङ्ग था (शान्ति० ५९ । ९२) ।

अतिबाहु–एक गन्धर्व, जो कश्यपकी पत्नी प्राधाका पुत्र था । उसके तीन भाई और हैं—हाहा, हूहू तथा तुम्बुरु (आदि० ६५ । ५१) ।

अतिभीम–'तप' नामधारी पाञ्चजन्य अग्निके पुत्र । पंद्रह उत्तरदेवों अथवा अग्निविनायकोंमेंसे एक (वन० २२० । ११) ।

अतियम–वरुणद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । इसके दूसरे साथीका नाम यम था (शल्य० ४५।४५) ।

अतिरथ–पूरुवंशी राजा मतिनारके तृतीय पुत्र । इनके अन्य तीन भाइयोंके नाम—तंसु, महान् और द्रुह्यु (आदि० ९४ । १४) ।

अतिलोमा–एक असुर, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षि० पृष्ठ ८२५ प्रथम कालम) ।

अतिवर्चा–हिमवान्‌द्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । इसके दूसरे साथीका नाम सुवर्चा था (शल्य० ४५ । ४६) ।

अतिशृङ्ग–विन्ध्याचलद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पाषाणयोधी पार्षदोंमेंसे एक । इसके दूसरे साथीका नाम उच्छृङ्ग था (शल्य० ४५ । ४९-५०) ।

अतिषण्ड–बलरामजीके अनन्त नागका रूप धारण करके परम धाम पधारते समय उनका स्वागत करनेके लिये आये हुए बहुत-से नागोंमेंसे एक (मौसल० ४ । १६) ।

अतिस्थिर–मेरु पर्वतद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम 'स्थिर' था (शल्य० ४५ । ४८) ।

अत्रि–एक ब्रह्मर्षि, जो ब्रह्माजीके मानस पुत्र थे (आदि० ६५ । १० तथा शान्ति०के १६६, २०७, २०८ अध्याय) । ये ब्रह्माजीके सात पुत्रों एवं सात ब्रह्माओंमेंसे एक हैं । इनके वंशमें प्राचीनबर्हि उत्पन्न हुए थे, जो दस प्रचेताओंके पिता थे । अत्रिके दो औरस पुत्र कहे गये हैं—वीर्यवान् राजा [illegible]म और भगवान् अर्यमा (शान्ति० २०८ । ३—[illegible]०) । ये इक्कीस प्रजापतियोंमेंसे एक हैं (शान्ति० ३३४ । ३५) । 'चित्रशिखण्डी' कहे जानेवाले सात ऋषियोंमेंसे भी एक हैं (शान्ति० ३३५ । २७) । सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और प्रतिष्ठाके आधारभूत 'आठ प्रकृति' कहे जानेवाले मरीचि आदि प्रजापतियोंमें भी इनकी गणना की गयी है (शान्ति० ३४० । ३४–३६) । इनकी पत्नीका

नाम अनसूया था (अनु० १४ । ९५) । पराशरका राक्षस-यज्ञ बंद करानेके लिये इनका आगमन (आदि० १८० । ८) । महाराज पृथुके यज्ञमें इनका गौतमसे संवाद (वन० १८५ । १५—२३) । पृथुद्वारा इन्हें धनकी प्राप्ति (वन० १८५ । ३४–३६) । अत्रिके शरीरसे विभिन्न अग्नियोंका प्रादुर्भाव (वन० २२२ । २७–२९) । द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५—४०) । इन्होंने सोमके राजसूय यज्ञमें होताका कार्य किया था (शल्य० ४३ । ४७) । ये देवताओंकी प्रार्थनासे दिनमें सूर्य होकर तपे और रातमें चन्द्रमा बनकर प्रकाशित हुए । इनके तेजसे असुर दग्ध हो गये । इन्होंने सूर्यको तेजस्वी बनाया (अनु० १५६ । ९—१४) । उत्तर दिशाका आश्रय लेकर उन्नति करनेवाले महर्षियोंमें इनका नाम आया है (अनु० १६५ । ४४) । इनके धर्मात्मा पुत्र दुर्वासा पश्चिम दिशामें रहकर अभ्युदयशील होते हैं (अनु० १६५ । ४३) । इन्होंने अपने वंशज निमिको श्राद्धके विषयमें उपदेश दिया था । (अनु० ९१ । २०—४४) । वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४३ के बाद) । इनका अरुन्धतीसे अपनी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६२) । यातुधानीसे नाम-का निर्वचन—अर्थ बताना (अनु० ९३ । ८२) । मृणालकी चोरी नहीं की—इस विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । ११३) । (२) शुक्राचार्यके पुत्र । भयानक कर्मकर्ता (आदि० ६५ । ३७) । (३) भगवान् शिव-का एक नाम (अनु० १७ । ३८) ।

अत्रिभार्या (अनसूया)–ये अत्रिकी ब्रह्मवादिनी पत्नी थीं । एक बार पतिसे रुष्ट हो उनसे अलग होकर ये तीन सौ वर्षोंतक तपस्यामें संलग्न रहीं । उस समय भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर इन्हें पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया था (अनु० १४ । ९५—९८) ।

अथर्वा–(१) एक मुनि, जो छन्द (वेद)के गायक थे (उद्योग० ४३ । ५०) । ये ही अथर्वा अङ्गिराके नामसे प्रसिद्ध हैं । इन्होंने ही जलमें छिपे हुए सहनामक अग्निका पता लगाया (वन० २२२ । ८) । अग्निका अथर्वाको अग्निरूपसे प्रकाशित हो देवताओंके लिये हविष्य पहुँचाने-का आदेश देना । (वन० २२२ । ९) । अग्निके प्राकट्यके लिये देवताओंका अथर्वाकी शरणमें आना और इनकी पूजा करना (वन० २२२ । १८) । अथर्वाका समुद्रको मथकर अग्निका दर्शन एवं सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करना (वन० २२२ । १९) । (२) अथर्ववेद । (३) भगवान् शिव-का एक नाम अथर्वशीर्ष (अनु० १७ । ९१) ।

अदिति–दक्षकी पुत्री, कश्यपकी पत्नी तथा द्वादश आदित्यों-की माता (आदि० ६५ । ११—१६) । नरकासुरद्वारा इनके कुण्डलोंका अपहरण । सत्यभामाजीको इनका वरदान । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा इनको दिव्य कुण्डल एवं बहुमूल्य रत्नोंकी भेंट (उद्योग० ४८ । ८० तथा सभा० ३८ । २९ के बाद) । मैनाकपर्वतके कुक्षिभागमें स्थित विनशन तीर्थके भीतर देवी अदितिने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त साध्य देवताओंके उद्देश्यसे अन्न (ब्रह्मौदन) तैयार किया था (वन० १३५ । ३) । इन्होंने पूरे एक सहस्र वर्षोंतक भगवान् विष्णु (वामन) को गर्भमें धारण किया था (वन० २७२ । ६२) । अदितिके गर्भसे भगवान् विष्णुके सात बार प्रकट होनेकी चर्चा (शान्ति० ४३ । ६) । देवताओंकी विजयके उद्देश्यसे अन्न तैयार करनेवाली अदितिको बुधका शाप; मृत अण्डकी उत्पत्ति तथा उसीसे प्रकट होनेके कारण श्राद्धदेवकी मार्तण्ड नामसे प्रसिद्धि (शान्ति० ३४२ । ५६) । देवी अदितिने एक पैरपर खड़ी रहकर पुत्रके लिये घोर तपस्या की, जिससे भगवान् विष्णु उनके गर्भमें आये (अनु० ८३ । २५-२६) ।

अदृश्यन्ती–महर्षि वसिष्ठकी पुत्रवधू, शक्तिकी पत्नी, पराशरकी माता । वसिष्ठजीको इनके गर्भस्थ बालकके मुखसे वेदाध्ययन करनेका शब्द सुनायी देना, उनके पूछनेपर वंशोच्छेदके भयसे चिन्तित हुए वसिष्ठको इनका अपने गर्भमें स्थित हुए शक्तिके पुत्रकी सूचना देना (आदि० १७६ । ११–१५) । कल्माषपादके भयसे भीत हुई अदृश्यन्तीको वसिष्ठका आश्वासन (आदि० १७६ । २३) । इनके गर्भसे पराशरका जन्म (आदि० १७७ । १) । इनके आदर्श पतिप्रेमकी चर्चा (उद्योग० ११७ । ११) ।

अद्भुत–(१) एक अग्नि, जो मह नामक अग्निके पुत्र हैं; इनकी माताका नाम मुदिता है; ये सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति, आत्मा और भुवनभर्ता हैं; ये ही महाभूतपति, ऐश्वर्य-सम्पन्न, सर्वत्र विचरनेवाले तथा 'गृहपति' नामसे जगत्को पवित्र करनेवाले हैं; इनके पुत्रका नाम भरत है (वन० २२२ । १–६) । अद्भुतकी पत्नीका नाम 'प्रिया' और उसके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले उनके औरस पुत्रका नाम 'विभूरसि' है (वन० २२२ । २६) । (२) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । १०८) ।

अद्रि–एक राजा, जो विष्वगश्वके पुत्र और युवनाश्वके पिता थे (वन० २०२ । ३) ।

अद्रिका–एक अप्सरा, जो ब्रह्माजीके शापसे मछली होकर यमुनाजीमें रहती थी (आदि० ६३ । ५८) । बाजके द्वारा गिराये गये उपरिचर वसुके वीर्यका इसके द्वारा ग्रहण (आदि० ६३ । ५९-६०) । इसके पेटसे

'सत्यवती' नामक कन्या एवं 'मत्स्य' नामक पुत्रकी उत्पत्ति (आदि० ६३ । ६१-६२)। दो संतानोंको उत्पन्न करके इसका शापसे मुक्त होना (आदि०६३ । ६४–६६)। अर्जुनके जन्मके समय अन्य अप्सराओंके साथ अद्रिका भी स्वर्गसे आयी थी (आदि० १२२ । ६१)।

अधर्म–समस्त प्राणियोंका विनाश करनेवाला पाप (पापका अभिमानी पुरुष) और उसकी उत्पत्तिका कारण (आदि० ६६ । ५३)।अधर्मकी पत्नीका नाम निर्ऋति है, इसके तीन 'नैर्ऋत' नामवाले राक्षस पुत्र हैं—भय, महाभय और मृत्यु (आदि० ६६ । ५४-५५)। अधर्मके ही अंशसे सम्पत्तिके पुत्र दर्पका प्रादुर्भाव हुआ (शान्ति० ९० । २७)।

अधिरथ—एक सूत, कर्णका पालक पिता (आदि० ११० । २३; १३६ । १–४)। यह राजा धृतराष्ट्रका मित्र था और इसकी पत्नीका नाम राधा था, वह अनुपम सुन्दरी थी, राधाके कोई संतान नहीं थी, वह पुत्र-प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्नशील रहती थी (वन० ३०९ । १–३)। अधिरथको कर्णकी प्राप्ति (वन० ३०९ । ८-९)।

अधिराज्य–भारतवर्षका एक जनपद (कुछ लोग इसे वर्तमान रीवाँ राज्य मानते हैं) (भीष्म० ९ । ४४)।

अधृष्या–एक नदी (भीष्म० ९ । २४)।

अधोक्षज–श्रीकृष्णका एक नाम, इस नामकी व्युत्पत्ति (उद्योग० ७० । १०; अनु० १४ । ६९)। भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ५७)।

अधःशिरा–एक दिव्य महर्षि, जिन्होंने श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें उनसे भेंट की थी (उद्योग०८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

अनघ–(१) एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आया था (आदि० १२२ । ५५)। (२) एक राजा (सभा० ८ । २१)। (३) एक देश या जनपद (सभा ३० । ९)। (४) स्कन्दका एक नाम (वन० २३२ । ५)। (५) गरुड़की संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२)। (६) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ३८)। (७) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २९)।

अनङ्ग–प्रजापति कर्दमका पुत्र, जो प्रजारक्षक, साधु तथा दण्डनीतिमें निपुण था। इसके पुत्रका नाम अतिबल था (शान्ति० ५९ । ९१-९२)।

अनङ्गा–एक नदी (भीष्म० ९ । ३५)।

अनन्त–(१) कद्रूके ज्येष्ठ पुत्र भगवान् अनन्त (शेषनाग) (आदि० ६५।४१)।भगवान् अनन्त(शेषनाग) सात धरणीधरोंमें एक हैं (अनु० १५० । ६१)। भग अनन्तका ब्रह्माजीके आदेशसे अकेले ही इस सारी पृथ धारण करना (आदि० ३६ । २४)। ब्रह्माजीने अ (शेषनाग) के लिये गरुडको सहायक बना दिया (आ ३६ । २५)। पश्चिम दिशामें नागराज अनन्तके नि स्थानकी चर्चा (उद्योग० ११० । १८)। भग अनन्त (बलराम) का रसातल-प्रवेश (स्वर्गा० ५ । २३ (२) भगवान् सूर्यका नाम (वन० ३ । २४)। (भगवान् श्रीकृष्णका नाम (उद्योग० ७० । १४ (४) स्कन्दके एक सेनापति (शल्य० ४५ । ५७ (५) भगवान् विष्णुका नाम (अनु० १४९ । ८३ (६) भगवान् शिवका नाम (अनु० १७ । १३५

अनन्तविजय–युधिष्ठिरके शङ्खका नाम (भीष्म० १६; शल्य० ६१ । ७१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

अनन्ता–महाराज पूरुके पुत्र जनमेजयकी पत्नी, मधुवं कन्या । इनके गर्भसे जनमेजयद्वारा प्राचिन्वान्का हुआ था (आदि० ९५ । १२)।

अनरकतीर्थ–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे दुर्गति दूर है तथा जहाँ नारायण आदिके साथ ब्रह्मा नित्य नि करते हैं (वन० ८३ । १६८)।

अनरण्य–इक्ष्वाकुवंशके एक प्राचीन नरेश (आदि० २३६)। इन्होंने मांसभक्षणका निषेध किया (अ ११५ । ५९)। ये सायं और प्रातःकाल स्मरण करने राजर्षियोंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ५९)।

अनल–(१) आठ वसुओंमेंसे एक, जो शाण्डिलीके पु (आदि० ६६ । २०)। (२) गरुडकी प्रमुख संतानें एक (उद्योग० १०१ । ९)।

अनला–(१) सुरभिकन्या रोहिणीकी पुत्री। इससे पिण्डा फल देनेवाले सात प्रकारके वृक्षों तथा शुकी नाम कन्याका प्रादुर्भाव हुआ (आदि० ६६ । ६७–६९ (२) नागमाता सुरसाकी पुत्री, जो वनस्पतियों, और लतागुल्मोंकी जननी हुई (आदि० ६६ । के आगे दाक्षिणात्य पाठ)।

अनवद्या–कश्यपकी पत्नी तथा दक्षकी कन्या प्राधाकी पुत्रियोंमेंसे एक (आदि० ६५ । ४५)। स्वर्गकी अप्सरा थी, जो अर्जुनके जन्मकालमें अ अप्सराओंके साथ नृत्यके लिये आयी थी (आदि० १२ ६१)।

अनश्वा–महाराज कुरुके पौत्र तथा विदूरके पुत्र। मधु की कन्या सम्प्रिया इनकी माता थी। इन्होंने मगध कुमारी अमृताके गर्भसे परिक्षित्को जन्म दिया (आ ९५ । ३९–४१)।

अनादि—भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ११४**) ।

अनाधृष्टि—(१) रौद्राश्वद्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न 'ॠचेयु' अथवा 'अन्वग्भानु' का नाम 'अनाधृष्टि' था (**आदि० ९४ । ८–१२**) । (२) सात यादव महारथियोंमेंसे एक (**सभा० १४ । ५८**) । ये उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहके अवसरपर उसकी माता सुभद्राके साथ पधारे थे (**विराट० ७२ । २२**) । कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको घेरकर चलनेवाले अनेक वीरोंमें एक अनाधृष्टि भी थे (**उद्योग० १५१ । ६७**) । ये ही वृद्धक्षेमके पुत्र थे, जिनकी चर्चा धृतराष्ट्रने की है (**द्रोण० १० । ५५**) । इन्हींका वृष्णिवंशी 'वार्धक्षेमि' नामसे उल्लेख हुआ है, जिन्हें कृपाचार्यने द्रोणपर आक्रमण करनेसे रोका था (**द्रोण० २५ । ५१-५२**) ।

अनालम्ब—एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे पुरुषमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (**अनु० २५ । ३२-३३**) ।

अनिकेत—कुबेरकी सभामें उनकी सेवाके लिये सदा उपस्थित रहनेवाले यक्षोंमेंसे एक (**सभा० १० । १८**) ।

अनिमिष—(१) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । १०**) । (२) भगवान् शिवका एक नाम (**अनु० १७ । ४१**) । (३) भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ३६**) ।

अनिरुद्ध—(१) भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र एवं प्रद्युम्नके पुत्र (**आदि० १८५ । १७**) । अनिरुद्धका प्रच्छन्नरूपसे बाणपुत्री उषाके साथ पहुँचकर उसके साथ आनन्दपूर्वक रहना । बाणासुरका अनिरुद्धको कैद करके कष्ट देना । नारदजीके मुखसे अनिरुद्धको बाणासुरके यहाँ बंदी हो कष्टमें पड़ा हुआ सुनकर श्रीकृष्णका बाणनगरपर आक्रमण; अनिरुद्धका उद्धार तथा उषाके साथ द्वारका-आगमन आदि (**सभा० ३८ अध्याय दा० पाठ श्रीकृष्णचरित्रके अन्तर्गत**) । अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा लेते समय ये युधिष्ठिरकी सभामें साम्ब आदिके साथ विराजमान होते थे (**सभा० ४ । ३३–३६**) । अनिरुद्धकी विष्णुरूपता तथा इनके द्वारा ब्रह्माजीकी उत्पत्ति (**भीष्म० ६५ । ७१; शान्ति० ३४० । ३०-३१**) । अनिरुद्ध (विष्णु) के नाभि-कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव (**शान्ति० ३४१ । १५–१७**) । (२) वृष्णिवंशी क्षत्रिय, जो प्रद्युम्नपुत्रसे भिन्न था । इन दोनोंका द्रौपदीके स्वयंवरमें आगमन हुआ था (**आदि० १८५ । १७–२०**) । (३) मांसभक्षणका त्याग करनेवाला एक राजा (**अनु० ११५ । ६०**) । (४) भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ३३**) ।

अनिल— (१) आठ वसुओंमेंसे एक । इनके पिता धर्म और माता श्वासा हैं । इनकी पत्नीका नाम शिवा है और मनोजव एवं अविज्ञातगति नामक दो पुत्र हैं (**आदि० ६६ । १७–२५**) । (२) गरुडकी मुख्य-मुख्य संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । ९**) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (**अनु० १७ । १००**) । (४) भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ३८**) ।

अनीकविदारण—सिंधुराज जयद्रथका भाई (**वन० २६५ । १२**) । अर्जुनद्वारा वध (**वन० २७१ । २७**) ।

अनील—प्रमुख नागोंमेंसे एक (**आदि० ३५ । ७**) ।

अनु—महाराज ययातिके द्वारा शर्मिष्ठासे उत्पन्न तीन पुत्रोंमेंसे एक मझले (**आदि० ७५ । ३३–३५**) । अपनी युवावस्था न देनेके कारण इनको पिताद्वारा जराग्रस्त होने, अग्निहोत्र-त्यागी बनने तथा युवा होते ही इनकी संतानोंके मरनेका अभिशाप (**आदि० ८४ । २५-२६**) ।

अनुकर्मा—एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३२**) ।

अनुक्रमणिकापर्व—आदिपर्वका एक अवान्तरपर्व, पहला अध्याय

अनुगीतापर्व—आश्वमेधिकपर्वके सोलहवें अध्यायसे ९२ तकका एक पर्व ।

अनुगोप्ता—एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३७**) ।

अनुचक्र—प्रजापति त्वष्टाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । इसका दूसरा साथी चक्र था (**शल्य० ४५ ४०**) ।

अनुदात्त (**स्वर**)—(१) पाञ्चजन्य अग्निद्वारा अपनी दोनों भुजाओंसे उत्पन्न किये गये प्राकृत और वैकृत भेदोंवाल 'अनुदात्त' नामक स्वर (**वन० २२० । ५–८**) (२) पाञ्चजन्यद्वारा पितरोंके लिये उत्पन्न किये गये पाँ पुत्रोंमेंसे एक, इसकी उत्पत्ति प्राणके अंशसे हुई (**वन०२२० । ८–१०**) ।

अनुद्यूत—वह जूआ, जो कौरवों और पाण्डवोंने वनवास बाजी लगाकर दूसरी बार खेला था (**सभा० ७ १०–२४**) ।

अनुद्यूतपर्व—सभापर्वके अन्तर्गत अध्याय ७४ से तकका भाग ।

अनुपावृत्त—एक भारतीय जनपदका नाम (**भीष्म० ९ । ४**

अनुमति—एक कलासे रहित अर्थात् चतुर्दशीयुक्त पूर्णिम अधिष्ठात्री देवी (**शल्य० ७५ । १३**) ।

अनुयायी—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६ १०२**) । इसीका दूसरा नाम 'अग्रयायी' है (**आदि० ११ ११**) । भीमसेनके द्वारा मारे जाते समय इसके 'अनुय नामका ही उल्लेख हुआ है (**द्रोण० १५७ । १७–२**

अनुविन्द—(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (अ ६७ । ९४) । घोषयात्राके समय दुर्योधनके साथ ग द्वारा यह भी बंदी बनाया गया था (**वन० २४२** ।

भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६६)। (२) अवन्तीके राजकुमार। विन्दके भाई। ये दोनों भाई प्रतापी सहदेवद्वारा दक्षिण-विजयके समय पराजित हुए थे (सभा० ३१ । १०)। इन दोनों बन्धुओंका एक अक्षौहिणी सेनासहित दुर्योधनकी सहायतामें जाना (उद्योग० १९ । २४-२५)। प्रथम दिनके संग्राममें कुन्तिभोजके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ७२-७५)। अर्जुनपुत्र इरावान्द्वारा पराजित होना (भीष्म० ८३ । १८-२२)। भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३-११४ अध्यायोंमें)। चेकितानके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४८)। विराटके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २०-२१; ९६ । ४-६)। अर्जुनद्वारा इसका वध (द्रोण० ३९९ । २७-२९)। (३) केकयराजकुमार। कौरव-पक्षका योद्धा। सात्यकिद्वारा वध (कर्ण० १३ । २१)।

अनुशासनपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व।

अनुष्णा–एक नदीका नाम (भीष्म० ९ । २४)।

अनुह्राद–हिरण्यकशिपुका तीसरा पुत्र (आदि० ६५ । १८)। यही शिशुपालपुत्र धृष्टकेतुके रूपमें पैदा हुआ था (आदि० ६७ । ७)।

अनूचाना–एक अप्सरा, जिसने अन्य अप्सराओंके साथ आकर अर्जुनके जन्मके अवसरपर नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६१)।

अनूदर–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९९; ११६ । ८)।

अनूप–एक प्राचीन जनपद (सभा० ५१ । २४)। (किसी-किसीके मतमें नीमाड़के लगभग नर्मदा-तटवर्ती प्रदेश, दक्षिण मालवा ही अनूप देश है (हिंदीमहाभारत परिशिष्ट पृष्ठ ५)।

अनूपक–अनूपदेशके निवासी योद्धा (भीष्म० ५० । ४७)।

अनूपपति–समुद्रतटवर्ती अनूपदेशका राजा कार्तवीर्य (वन० ११६ । १९)।

अनूपराज–अनूपदेशके राजा (सभा० ४ । २८)। (कुछ व्याख्याकार 'अनूपराजो दुर्धर्षः' इस वाक्यांशका अर्थ 'अनूपराज दुर्धर्ष' करते हैं अर्थात् अनूपराजका नाम 'दुर्धर्ष' मानते हैं और दूसरे लोग 'दुर्धर्ष' पदको अनूपराजका विशेषण समझते हैं।)

अनेना–(१) पुरूरवाके पुत्र राजा 'आयु'के द्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न पाँचवाँ पुत्र। इसके अन्य चार भाई थे–नहुष, वृद्धशर्मा, रजि तथा गय (आदि० ७५। २४–२६)। (२) इक्ष्वाकुवंशी महाराज ककुत्स्थके पुत्र (वन० २०२ । २)।

अन्तक–चौदह यमोंमेंसे एक। ये पितरोंकी ओरसे पृथ्वीदोहनके समय दोग्धा थे (द्रोण० ६९ । २६)।

अन्तचार–एक प्राचीन भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६८)।

अन्तर्गिरि–हिमालयकी भीतरी शृङ्खलाका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४९)। अर्जुनद्वारा इसपर विजय (सभा० २७ । ३)।

अन्तर्धान–कुबेरका एक अस्त्र (वन० ४१ । ३८)।

अन्तर्धामा–मनुवंशी अङ्गके पुत्र और हविर्धामाके पिता (अनु० १४७ । २३)।

अन्तर्याग–कान-नेत्र आदि दस होताओंद्वारा साध्य आध्यात्मिक यज्ञ (आश्व० अ० २१ से २७ तक)।

अन्तर्वृत्ति–स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाली आन्तरिक वृत्ति (अनु० १४४ । ४—१७ तथा २९—४०)।

अन्तवास–एक प्राचीन देश (सभा० ५१ । १७)।

अन्ध–(१) एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १६)। (२) एक अन्ध हिंसक जीव, जिसने समस्त प्राणियोंके विनाशका वरदान प्राप्त किया था और इसीलिये जिसे ब्रह्माजीने अन्धा बना दिया था। इसे मारकर व्याध स्वर्गलोकका अधिकारी हुआ था (कर्ण० ६९ । ४१—४५)।

अन्धक–(१) यदुकुलमें उत्पन्न अन्धकसे प्रचलित कुलपरम्परामें जन्म लेनेवाले क्षत्रिय। इनके द्वारा अर्जुनका सत्कार (आदि० २१७ । १८-१९)। (२) एक राजा, जिसके पास पाण्डवपक्षकी ओरसे युद्धमें सहायताके लिये निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १२)। (३) एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे पुरुषमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति बतायी गयी है (अनु० २५ । ३२-३३)। (४) एक असुर, जो भगवान् शङ्करद्वारा मारा गया था (अनु० १४ । २१४-२१५)।

अन्धकार–क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १८)।

अन्धकारक–क्रौञ्चद्वीपका एक जनपद (भीष्म० १२ । २२)।

अन्ध्र–(१) दक्षिण भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४९)। (२) अन्ध्रदेशवासी योद्धा (द्रोण० ४ । ८)।

अन्ध्रक (या आन्ध्रक)–(१) अन्ध्रदेशके राजा, जो युधिष्ठिरकी मयनिर्मित सभामें बैठते थे (सभा० ४ । २४)। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये थे (सभा० ३४ । ११)। (२) अन्ध्रदेशवासी मनुष्य अथवा योद्धा। पाण्ड्यनरेशने महाभारत-युद्धमें इन्हें परास्त किया था (कर्ण०

२० । १०-११) । श्रीकृष्णने अर्जुनको अन्ध्र, पुलिन्द आदि देशोंके योद्धाओंको मारनेका उत्साह दिलाया (कर्ण० ७३।१९-२१) । (३) जातिविशेष । दक्षिणभारतीय आन्ध्र-पुलिन्द आदि जातियोंको 'म्लेच्छ' कहा गया है (शान्ति० २०७।४२) ।

अन्यगोचरी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।२७) ।

अन्वग्भानु–मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न रौद्राश्वके पुत्र । इनके दो नाम और मिलते हैं–ऋचेयु तथा अनाधृष्टि (आदि० ९४।८–१२) ।

अपरकाशि–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९।४२) ।

अपरकुन्ति–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९।४३) ।

अपरनन्दा–एक नदी, जिसका दर्शन अर्जुनने किया था (आदि० २१४।६-७) । युधिष्ठिरने भी इसकी यात्रा की (वन० ११०।१) । दैववंश-ऋषिवंशके साथ कीर्तनीय पुण्य नदियोंमें 'अपरनन्दा'का भी नाम आया है (अनु० १६५।२८) ।

अपरम्लेच्छ–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९।६५) ।

अपरवल्लव–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९।६२) ।

अपरसेक–एक मध्य भारतीय जनपद (सभा० ३१।९) ।

अपराजित–(१) एक कश्यपवंशी नाग (आदि० ३५।१३; उद्योग० १०३ । १५) । (२) एक क्षत्रिय राजा । कालेय नामक आठ दैत्योंमेंसे एकके अंशसे उत्पन्न (आदि० ६७ । ४९) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण प्राप्त हुआ (उद्योग० ४।२१) । (३) कौरव धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७।१०१) । भीमसेन-द्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २१-२२) । (४) कुरु-पौत्र जनमेजय कुमार धृतराष्ट्रके कुण्डिक आदि नौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ९४।५०–५९) । (५) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८।२०) । (आदिपर्वके ६६ वें अध्यायमें जो ग्यारह रुद्रोंके नाम मिलते हैं, वे शान्ति-पर्ववाले नामोंसे अधिकांश भिन्न हैं, उनमें 'अपराजित' नहीं है ।) (६) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९।८९) ।

अपरान्त–एक प्राचीन जनपद । दक्षिण भारतका वह प्रदेश जो पश्चिम समुद्रके किनारेपर है । यह प्रदेश पश्चिमी घाटके पश्चिमी समुद्रके तटपर है (भीष्म० ९।४७) । शूर्पारक-क्षेत्रका दूसरा नाम (शान्ति० ४९।६७) ।

अपान्तरतमा–श्रीनारायणके 'भो' शब्दके उच्चारणसे प्रकट हुए एक महात्मा पुरुष । भगवान्‌की वाक् या सरस्वतीसे प्रादुर्भूत होनेके कारण इनका नाम सारस्वत हुआ । ये ही अपान्तरतमाके नामसे विख्यात हुए (शान्ति० ३४९।३८-३९) । ये त्रिकालज्ञ थे । इन्हें वेदोंकी व्याख्याके लिये भगवान्‌ने ऋक्-साम आदि श्रुतियोंके संग्रहका' आदेश दिया (शान्ति० ३४९।४०–४१) । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें इनके द्वारा वेदोंका विभाग हुआ, जिससे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें सभी मन्वन्तरोंमें धर्मप्रवर्तक होनेका आशीर्वाद दिया तथा भविष्यमें वशिष्ठवंशी पराशरके ज्ञानवान्, तपोबलसम्पन्न पुत्ररूपमें अवतीर्ण होनेकी बात बतायी (शान्ति० ३४९।४२–५९) ।

अप्सुजाता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।४) ।

अप्सुहोम्य–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४।१२) ।

अबल–पाञ्चजन्यद्वारा उत्पन्न किये गये पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक (वन० २२०।११) ।

अबन्धुदायाद–कुटुम्बी न होनेपर भी उत्तराधिकारी पुत्र (आदि० ११९।३२) । (छः प्रकारके पुत्र 'अबन्धुदायाद' कहलाते हैं । जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. 'दत्त' (जिसे माता-पिताने स्वयं समर्पित कर दिया हो) । २. क्रीत (जिसे धन आदि देकर खरीद लिया गया हो) । ३. 'कृत्रिम' (जो स्वयं मैं आपका पुत्र हूँ—यों कहकर समीप आया हो) । ४. सहोढ़ (जो कन्या-अवस्थामें ही गर्भवती होकर ब्याही गयी हो, उसके गर्भसे उत्पन्न) । ५. 'ज्ञातिरेता' (अपने कुलका पुत्र) । ६. हीन जातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न । ये कुटुम्बी न होनेपर भी सम्पत्तिके अधिकारी होते हैं; अतः इन्हें 'अबन्धुदायाद' कहते हैं ।

अभय–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७।१०४; ११६।१२) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७।६२) । (२) एक प्राचीन भारतीय जनपद, जिसपर भीमसेनने विजय प्राप्त की (सभा० ३०।९) ।

अभिजित्–(१) दिनका आठवाँ मुहूर्त । मुहूर्तविशेष । इसमें युधिष्ठिरका जन्म (आदि० १२२ । ६) । (२) रोहिणीकी छोटी बहिन । एक नक्षत्र (वन० २३० । ८) । अभिजित् नक्षत्रके योगमें मधु और घृत दान करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति (अनु० ६४ । २७) ।

अभिभू–काशिराजके पुत्र । पाण्डवपक्षके योद्धा (१) (उद्योग० १५१ । ६३) । इनके वसुदानके पुत्रद्वारा मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । २३-२४) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । २६-२७) ।

अभिमन्यु–अर्जुनके द्वारा सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न एक वीर राजकुमार (आदि० ६३ । १२१; २२० । ६५) । ये चन्द्रमाके पुत्र 'वर्चा' के अवतार थे (आदि० ६७ । ११३) । सोलह वर्षतक ही इनका इस भूतलपर रहनेका कारण (आदि० ६७ । ११३–१२५) ।

इनका 'अभिमन्यु' नाम होनेका कारण (आदि० २२० । ६७) । अर्जुनसे इनका समस्त अस्त्र-विद्याओंका अध्ययन (आदि० २२० । ७२) । मातासहित अभिमन्युका मामा श्रीकृष्णके साथ वनसे द्वारकाको जाना (वन० २२ । ४७) । प्रद्युम्नद्वारा अभिमन्युकी अस्त्रशिक्षा (वन० १८३ । २८) । अभिमन्युद्वारा द्रौपदीकुमारोंका गदा और ढाल-तलवारके दाँव-पेंच सिखाना (वन० १८३ । २९) । मातासहित अभिमन्युका उपप्लव्य नगरमें आगमन (विराट० ७२ । २२) । उत्तराके साथ अभिमन्युका विवाह (विराट० ७२ । ३५) । संजयद्वारा इनके पराक्रम और इन्द्रियसंयमका वर्णन (उद्योग० ५० । ४३) । प्रथम दिनके युद्धमें कोसलराज बृहद्बलके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । १४–१७) । भीष्मके साथ भयंकर संग्राम करके उनके ध्वजको काट देना (भीष्म० ४७ । ९–२५) । भीष्मके साथ जूझते हुए श्वेतकी सहायतामें इनका आना (भीष्म० ४८ । १०१) । धृष्टद्युम्नद्वारा निर्मित क्रौञ्च-व्यूहमें स्थान-ग्रहण (भीष्म० ५० । ५०) । भीष्मपर चढ़ाई करते हुए अर्जुनकी सहायता करना (भीष्म० ५२ । ३०; ६० । २३–२५) । दूसरे दिनके संग्राममें लक्ष्मणके साथ युद्ध (भीष्म० ५५ । ८–१३) । अर्जुनद्वारा निर्मित अर्धचन्द्रव्यूहमें स्थान-ग्रहण (भीष्म० ५६ । १६) । गान्धारोंके साथ युद्ध करना (भीष्म० ५८ । ७) । इनका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ६१ । १–११) । शल्यपर आक्रमण तथा हाथीसहित मगधराज (जयत्सेन) का वध (भीष्म० ६२ । १३–४८) तथा (कर्ण० ७३ । २४-२५) । भीमसेनकी सहायता (भीष्म० ६३, ६४, ६९ तथा ९४ अध्याय) । लक्ष्मणके साथ युद्ध और उसे पराजित करना (भीष्म० ७३ । ३१–३७) । कैकयराजकुमारोंका अभिमन्युको आगे करके शत्रुसेनापर आक्रमण (भीष्म० ७७ । ५८–६१) । विकर्णपर विजय (भीष्म० ७८ । २१) । विकर्णपर विजय (भीष्म० ७९ । ३०–३५) । इनके द्वारा चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणकी पराजय (भीष्म० ८४ । ४०–४२) । धृष्टद्युम्नके शृङ्गाटकव्यूहमें स्थान-ग्रहण (भीष्म० ८७ । २१) । भगदत्तके साथ युद्ध (भीष्म० ९५ । ४०) । अम्बष्ठकी पराजय (भीष्म० ९६ । ३९-४०) । अलम्बुषके साथ घोर युद्ध (भीष्म० १०० अध्यायमें) । इनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय (भीष्म० १०१ । २८-२९) । चित्रसेनकी पराजय (भीष्म० १०४ । २२) । सुदक्षिणके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १५) । सुदक्षिणके साथ द्वन्द्वयुद्ध (१११ । १८–२१) । दुर्योधनके साथ युद्ध (भीष्म० ११६ । १–८) । बृहद्बलके साथ युद्ध (भीष्म० ११६ । ३०–३६) । भीष्मपर धावा (भीष्म० ११८ । ४०) । अर्जुनकी रक्षाके लिये युद्ध करना (भीष्म० ११९ । २१) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४७–५२) । पौरवके साथ युद्ध करके उनकी चुटिया पकड़कर पटकना (द्रोण० १४ । ५०–६०) । जयद्रथके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ६४–७४) । शल्यके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ७८–८२) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३३) । इनके वधका संक्षिप्त वर्णन (द्रोण० ३३ । १९–२८) । चक्रव्यूहसे बाहर निकलनेकी असमर्थता प्रकट करना (द्रोण० ३५ । १८-१९) । व्यूहभेदनकी प्रतिज्ञा (द्रोण० ३५ । २४–२८) । चक्रव्यूहमें प्रवेश और कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार (द्रोण० ३६ । १५–४६) । इनके द्वारा अश्मकपुत्रका वध (द्रोण० ३७ । २२-२३) । राजा शल्यको मूर्च्छित करना (द्रोण० ३७ । ३४) । इनके द्वारा शल्यके भाईका वध (द्रोण० ३८ । ५–७) । इनके भयसे कौरव-सेनाका पलायन (द्रोण० ३८ । २३-२४) । द्रोणाचार्यद्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा (द्रोण० ३९ अध्याय) । दुःशासनको फटकारते हुए उसे मूर्च्छित कर देना (द्रोण० ४० । २–१४) । इनके द्वारा कर्णकी पराजय (द्रोण० ४० । ३५-३६) । अभिमन्युद्वारा कर्णके भाईका वध, कौरव-सेनाका संहार तथा भगाया जाना (द्रोण० ४१ अध्याय) । वृषसेनकी पराजय (द्रोण० ४४ । ५) । वसातीयका वध (द्रोण० ४४ । १०) । सत्यश्रवाका वध (द्रोण० ४५ । ३) । शल्यपुत्र रुक्मरथका वध (द्रोण० ४५ । १३) । इनके प्रहारसे पीड़ित दुर्योधनका पलायन (द्रोण० ४५ । ३०) । इनके द्वारा दुर्योधन कुमार लक्ष्मणका वध (द्रोण० ४६ । १२–१७) । इनके द्वारा क्राथपुत्रका वध (द्रोण० ४६ । २५–२७) । अभिमन्युका घोर युद्ध, उनके द्वारा वृन्दारकका वध तथा अश्वत्थामा, कर्ण और बृहद्बल आदिके साथ युद्ध (द्रोण० ४७ । १–२१) । इनके द्वारा कोसलनरेश बृहद्बलका वध (द्रोण० ४७ । २२) । इनका कर्णके साथ युद्ध और उसके छः मन्त्रियोंका वध (द्रोण० ४८ । १–६) । इनके द्वारा मगधराजके पुत्र अश्वकेतुका वध (द्रोण० ४८ । ७) । इनके द्वारा मार्तिकावतकनरेश भोजका वध (द्रोण० ४८ । ८) । इनके द्वारा शल्यकी पराजय (द्रोण० ४८ । १४-१५) । इनके द्वारा शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभासका वध (द्रोण० ४८ । १५-१६) अभिमन्युका शकुनिको घायल करना

(द्रोण० ४८ । १६-१७) । सुबलपुत्र कालकेयको मारना (द्रोण० ४९ । ७) । दुःशासनकुमारकी गदाके प्रहारसे अभिमन्युका प्राणत्याग (द्रोण० ४९ । १३-१४) । इन्हें योगी, तपस्वी, मुनियोंके अक्षयलोककी प्राप्ति (द्रोण० ७१ । १२–१६) । अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌का जन्म (आश्व० ६९ अध्याय) । अभिमन्युवधका वृत्तान्त वसुदेवने श्रीकृष्णके मुखसे सुना (आश्व० ६१ । १५–४२) । अभिमन्युका सोमपुत्र वर्चारूपसे सोममें प्रवेश (स्वर्गा० ५ । १८–२०) । महाभारतमें आये हुए अभिमन्युके नाम—आर्जुनि, सौभद्र, कार्ष्णि, अर्जुनात्मज, अर्जुनावर, फाल्गुनि तथा शक्रात्मजात्मज ।

अभिमन्युवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय ३३ से ७१ तक)

अभिषेचनीय–जिसमें पूजनीय पुरुषोंका अभिषेक—अर्घ्य देकर सम्मान किया जाता है, उस कर्मका नाम 'अभिषेचनीय' है। यह राजसूय यज्ञका अङ्गभूत सोमयाग-विशेष है (सभा० ३६ । १) ।

अभिष्यन्त–महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न । इनके अन्य भाई अश्ववान्, चैत्ररथ, मुनि और जनमेजय। ये अश्ववान्‌से छोटे और चैत्ररथसे बड़े थे (आदि० ९४ । ५०-५१) ।

अभिसारी–एक प्राचीन नगरी, जिसपर दिग्विजयके समय अर्जुनने विजय पायी (सभा० २७ । १९) ।

अभीति–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २७) ।

अभीरू–छठे कालकेयके अंशसे उत्पन्न एक राजर्षि (आदि० ६७ । ५३) ।

अभीषाह–(१) एक प्राचीन जनपद (भीष्म० १८ । १२) । (२) अभीषाह जनपदके निवासी योद्धा (भीष्म० ९३ । २) ।

अभीसार–एक प्राचीन भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ९४) ।

अमध्य–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (शान्ति० ३४२ । ९०) ।

अमरपर्वत–एक प्राचीन स्थान, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ११) ।

अमरह्रद–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १०३) ।

अमरावती–देवराज इन्द्रकी पुरी, जहाँ अर्जुन गये थे (वन० ४२ । ४१; उद्योग० १०३ । १) ।

अमावसु–पुरूरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ७५ । २४) ।

अमाहठ–धृतराष्ट्र नागके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १६) ।

अमितध्वज–एक दानव (शान्ति० २२७ । ५०) ।

अमिताशना–स्कन्धकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

अमितौजा–एक भयंकर पराक्रमी पाञ्चाल क्षत्रिय, जो केतुमान् नामक असुरके अंशसे प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । १२) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १२) । पाण्डव-पक्षके महारथी वीरोंमें इनकी गणना (उद्योग० ७१ । ११) ।

अमूर्तरया–एक प्राचीन नरेश, जिसके पुत्र राजा गय हुए (वन० ९५ । १७) । इन्हें पूरुसे खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६ । ७५) ।

अमृता–मगधदेशकी राजकुमारी, जो अनश्वाकी पत्नी और परिक्षित्‌की माता थी (आदि० ९५ । ४१) ।

अमोघ–(१) बृहस्पतिकुलमें उत्पन्न एक अग्नि (वन० २२० । २४) । (२) भद्रवट-यात्राके समय शंकरजीके दाहिने भागमें चलनेवाला एक यक्ष (वन० २३१ । ३५) । (३) स्कन्दका एक नाम (वन० २३२ । ५) । (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ११४) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २५) ।

अमोघा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २१) ।

अम्बरीष–(१) एक प्राचीन नरेश, जो सूर्यवंशी राजा नाभागके पुत्र थे और जिन्होंने यमुनातटपर यज्ञ किया था (आदि० १ । २२७; भीष्म० ९ । ६ तथा वन० १२९ । २) । दुर्वासाद्वारा अम्बरीषके प्रभावका स्मरण (वन० २६३ । ३३) । सृंजयको समझाते हुए नारदजी-द्वारा इनके चरित्रका कथन (द्रोण० ६४ अध्याय) । अम्बरीषके अधिकारमें पूर्वकालमें यह पृथ्वी थी—इसकी चर्चा (शान्ति० ८ । ३३-३४) । इनके यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । १००–१०४) । अपने सेनापति सुदेवकी अपनेसे उत्कृष्ट गति देखकर उसके विषयमें इनका इन्द्रसे प्रश्न करना (शान्ति० ९८ । ६–११) । रणयज्ञके विषयमें इन्द्रसे प्रश्न (शान्ति० ९८ । १४) । इनके द्वारा ब्राह्मणको ग्यारह अर्बुद गो-दान (शान्ति० २३४ । २३) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (अनु० ९४ । २९) । मांस-भक्षणनिषेधसे परावर-तत्त्वका ज्ञान तथा सर्वभूतात्मताकी प्राप्ति (अनु० ११५ । ५८-५९) । इनके द्वारा ब्राह्मणको राज्य-दान (अनु० १३७ । ८) । जिनके नाम प्रातःसायं कीर्तन करनेयोग्य हैं, उन राजाओंमें इनकी भी गणना

(अनु० १६५ । ५३)। इनकी आध्यात्मिक स्वराज्य-गाथा (आश्व० ३१ । ७–१२)। (२) एक नाग, जो बलरामजीके रसातल-प्रवेशके समय स्वागतार्थ आया था (मौसल० ४ । १६)।

अम्बष्ठ–(१) एक प्राचीन देश, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ७)। (सिन्धदेशके उत्तरका एक प्रजातन्त्र राज्य। यूनानी लेखकोंने उसे 'अम्बस्तई' या 'अम्बस्तनोई' लिखा है—हिंदी महाभारत परिशिष्ट पृष्ठ ७)। (२) कौरवपक्षका एक राजा, जो अम्बष्ठ देशका अधिपति एवं 'श्रुतायु' नामसे प्रसिद्ध था, अभिमन्युद्वारा पराजित हुआ था (भीष्म० ९६ । ३९-४०)। अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा उसका वध (द्रोण० ९३ । ६०—६९)। (३) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जो अम्बष्ठजातिका था। इसने कौरवपक्षीय चेदिराजके साथ युद्ध करके उसे धराशायी किया था (द्रोण० २५ । ४९-५०)।

अम्बा–काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री (आदि० १०२ । ६०)। भीष्मद्वारा विचित्रवीर्यके लिये इसका अपहरण (आदि० १०२ । ५७ तथा सभा० ४१ । २३)। शाल्वके प्रति अपनी अनुरक्ति दिखाकर उनके साथ अपने विवाहके लिये इसकी भीष्मसे प्रार्थना (आदि० १०२ । ६१-६२)। भीष्मद्वारा इसको शाल्वके समीप जानेकी अनुमति दी गयी (आदि० १०२ । ६४)। अम्बाका शाल्वके प्रति अनुराग दिखाकर उनके पास जानेके लिये भीष्मसे आज्ञा माँगना (उद्योग० १७४ । ५–१०)। शाल्वराजसे अपनी धर्मपत्नी बनानेके लिये उसका अनुरोध (उद्योग० १७५ । ११–१८)। शाल्वसे परित्यक्त होनेपर भीष्मसे बदला लेनेका विचार (उद्योग० १७५ । २६–३५)। शैखावत्य मुनिके आश्रममें जाकर उनसे अपना दुःख सुनाना (उद्योग० १७५ । ३८–४४)। तापसोंके समझानेपर भी तपस्या करनेका ही अपना निश्चय बतलाना (उद्योग० १७६ । १२–१४)। परशुरामजीसे भीष्मको मार डालनेका अनुरोध करना (उद्योग० १७७ । ३५–४२; १७८ । ५–७)। भीष्मके वधके लिये अम्बाकी कठोर तपस्या (उद्योग० १८६ । १९–२९)। गङ्गाद्वारा नदी होनेके शापसे वत्स देशमें नदी होना (उद्योग० १८६ । ३१–४०)। दूसरे जन्ममें तपस्या करके महादेवजीसे उसकी वर-प्राप्ति (उद्योग० १८७ । १–१५)। चिताकी आगमें प्रवेश (उद्योग० १८७ । १९)। द्रुपदके यहाँ कन्यारूपमें जन्म और 'शिखण्डी' नाम पड़ना (उद्योग० १८८ । ७–१९)।

अम्बाजन्म–एक तीर्थ, जिसका सम्बन्ध नारदजीसे है; वहाँ मरनेवालेको नारदजीकी कृपासे परम उत्तम लोक प्राप्त होते हैं (वन० ८३ । ८१)।

अम्बालिका–काशिराजकी पुत्री, विचित्रवीर्यकी द्वितीय पत्नी (आदि० ९५ । ५१)। इनकी माताका नाम 'कौसल्या' था। इनके गर्भसे व्यासद्वारा पाण्डुकी उत्पत्ति (आदि० १०५ । २१)। व्यासके भयंकररूपसे घबराकर पाण्डुवर्णकी-सी हो जानेके कारण इनके गर्भसे पाण्डुवर्णके ही पुत्रका जन्म होना (आदि० १०५ । १८)। पाण्डुके निधनपर इनकी मूर्च्छा (आदि० १२६ । २४)।

अम्बिका–(१) काशिराजकी पुत्री, विचित्रवीर्यकी पत्नी और धृतराष्ट्रकी माता। अम्बिकाकी माताका नाम 'कौसल्या' (आदि० ९५ । ५१)। विचित्रवीर्यके साथ अम्बिका-अम्बालिकाका पाणिग्रहण (आदि० १०२ । ६५)। वंशरक्षाके हेतु इन दोनों बहिनोंको व्यासद्वारा पुत्रोत्पादनके लिये सत्यवतीका आदेश (आदि० १०४ । ५१ से १०५ । १५ तक)। व्यासजीके द्वारा इनके गर्भसे धृतराष्ट्रका जन्म (आदि० १०५ । १३)। व्यासजीके भयानक रूपसे भयभीत होकर आँखें बंद करनेके कारण इनके पुत्रका जन्मान्ध होना (आदि० १०५ । १०)। सत्यवतीद्वारा इनको पुनः व्यासके साथ समागमके लिये आज्ञा और इनका अस्वीकार (आदि० १०५ । २३)। इनके द्वारा अपनी दासीको छलपूर्वक व्यासजीके पास भेजना और उस दासीके गर्भसे विदुरका जन्म (आदि० १०५ । २८)। पाण्डुका दोनों माताओंको अपने बाहुबलसे जीते हुए धनकी भेंट अर्पण करना (आदि० ११३ । १)। सत्यवतीके साथ इन दोनों बहिनोंका तपोवनमें जाकर प्राणविसर्जन (आदि० १२७ । १३)। (२) एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मके अवसरपर नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२ । ६२)। (३) एक देवी, स्कन्दमाता पार्वती, इनके नामस्मरणसे पापका नाश होता है (अनु० १५० । २८-२९)।

अम्बुमती–एक नदी एवं उत्तम तीर्थ (वन० ८३ । ५६)।

अम्बुवाहिनी–एक नदी, जिसका जल तटवर्ती मनुष्य पीते हैं (भीष्म० ९ । २७)। यह प्रातः-सायं स्मरण करने योग्य नदी है (अनु० १६५ । २०)।

अम्बुवीच–मगधनरेशोंमेंसे एक। इनके मन्त्रीका नाम 'महाकर्णि' था (आदि० २०३ । १७–१९)।

अम्बोपाख्यान–उद्योगपर्वका अन्तिम अवान्तर पर्व, जो अध्याय १७३ से १९६ तक है।

अम्भोरुह–महर्षि विश्वामित्रके पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९)।

अयःशङ्कु–एक महादैत्य, जो केकयदेशके एक राजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १०) ।

अयःशिरा–कश्यप-पत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २३) । यही केकयदेशके एक राजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुआ (आदि० ६७ । १०) ।

अयति–राजा नहुषके पुत्र । ययातिके भाई (आदि० ७५ । ३०) ।

अयवाह–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) ।

अयुतनायी–एक पूरुवंशीय क्षत्रिय, जो राजा महाभौमके पुत्र थे । उनकी माताका नाम 'सुयज्ञा', पत्नीका नाम 'कामा' तथा पुत्रका नाम 'अक्रोधन' था । अयुत (दस हजार) पुरुषमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे इनका नाम 'अयुतनायी' हुआ (आदि० ९५ । १९–२१) ।

अयोध्या–सुप्रसिद्ध अयोध्यापुरी, जो इक्ष्वाकुवंशी राजाओंकी राजधानी थी और जहाँ मुनिवर वसिष्ठजी राजा कल्माषपादके यहाँ पधारे थे । (आदि० १७६ । ३५-३६) अयोध्याके धर्मज्ञ नरेश महाबली दीर्घयज्ञको भीमसेनने कोमलतापूर्ण बर्तावसे वशमें कर लिया था (सभा० ३० । २) । भगवान् श्रीराम सीताजीसे विवाह करके अपनी पुरी अयोध्यामें आये (सभा० ३८ । २९ के बाद पृष्ठ ७९४ दाक्षि० पाठ) । वनपर्वके ६० । २४; ६६ । २१; ७० । १८; ७१ । २४; ७४ । १७; ९९ । ४१; १४८ । १५; १५२ । ३; २०२ । १; २९१ । ६० में तथा उद्योगपर्वके ११५ । १८ में भी अयोध्याका नाम आया है ।

अयोबाहु (अयोभुज)–राजा धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९८) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । १९) ।

अरट्ट–एक देश, जहाँके योद्धाओंको साथ ले द्रोणके मारे जानेपर कृतवर्मा भागा था (द्रोण० १९३ । १३) ।

अरण्यपर्व–वनपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय १ से अध्याय १० तक)

अरन्तुक–कुरुक्षेत्रकी एक सीमाका निर्धारण करनेवाला अरन्तुक नामक द्वारपाल (वन० ८३ । ५२) । कुबेर-सम्बन्धी यह तीर्थ सरस्वती नदीमें स्थित है । यहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (शल्य० ५३ । २४) ।

अरालि–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

अरिमेजय–एक वृष्णिवंशी योद्धा (द्रोण० ११ । २८) ।

अरिष्ट–एक वृषभरूपधारी असुर, जिसे पशुओंके हितकी कामनासे भगवान् श्रीकृष्णने मारा था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ ८०१) ।

अरिष्टनेमा–कश्यपपुत्र 'अरिष्टनेमि' नामक मुनि (वन० १८४ । ८) ।

अरिष्टनेमि–(१) विनताके छः पुत्रोंमेंसे एक । इनके अन्य भाइयोंके नाम ये हैं—तार्क्ष्य, गरुड, अरुण, आरुणि, वारुणि (आदि० ६५ । ४०) । परपुरञ्जयका इनके आश्रमपर जाना (वन० १८४ । ८) । इनके द्वारा ब्राह्मणोंके महत्त्वका वर्णन (वन० १८४ । १७–२२) । राजा सगरको मोक्षविषयक उपदेश (शान्ति० २८८ । ५–४६) । (२) महर्षि कश्यपका दूसरा नाम (शान्ति० २०८ । ८) । (३) यमराजकी सभामें बैठनेवाले एक राजा (सभा० ८ । ९) । (४) विराटनगरमें अज्ञातवासके समय सहदेवका कल्पित नाम (विराट० १० । ५) । (५) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (उद्योग० ७१ । ५) ।

अरिष्टसेन–कौरवपक्षका एक राजा (शल्य० ६ । ३) ।

अरिष्टा–गन्धर्वराज हंसकी माता (आदि० ६७ । ८३) ।

अरिह–(१) एक सोमवंशी क्षत्रिय, जो पूरुवंशीय अवाचीनद्वारा उसकी पत्नी विदर्भराजकुमारी मर्यादाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । इसकी पत्नी अङ्गराजकुमारीके गर्भसे महाभौम नामक पुत्र हुआ (आदि० ९५ । १८-१९) । (२) एक सोमवंशीय राजा, जो देवातिथिके द्वारा विदेहराजकुमारी मर्यादाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । यह मर्यादा अवाचीनकी पत्नीसे भिन्न थी । इस अरिहकी पत्नी अङ्गराजकुमारी सुदेवा थी और इसके पुत्रका नाम 'ऋक्ष' था (आदि० ९५ । २३-२४) ।

अरुज–राक्षसोंका दल (वन० २८५ । २) ।

अरुण–(१) विनताके पुत्र, पिताका नाम कश्यप । सूर्यके सारथि । इनकी उत्पत्तिका प्रसंग, इनका अपनी माताको शाप देना और उस शापसे छूटनेका उपाय भी बताना (आदि० १६ । १६–२३) । इनका सूर्यके क्रोधजनित तीव्र तेजकी शान्तिके लिये उनके रथपर स्थित होना (आदि० २४ । १५–२०) । इनके द्वारा कुपित हुए सूर्यका सारथ्य (आदि० १६ । २२-२३) । इनका श्येनीके गर्भसे सम्पाती और जटायुको जन्म देना (आदि० ६६ । ७०) । इनके द्वारा स्कन्दको अपने पुत्र ताम्रचूडका दान (शल्य० ४६ । ५१ तथा अनु० ८६ । २२) । (२) प्राचीन ऋषियोंका एक समुदाय, जिन्हें स्वाध्यायद्वारा स्वर्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० २६ । ७) । (३) अरुण नामक एक नाग, जो परमधाम पधारनेके समय बलरामजीके स्वागतमें आया था (मौसल० ४ । १५) ।

अरुणा–(१) एक अप्सरा, जो कश्यप-पत्नी प्राधाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ५०) । (२) 'अरुणा' नामवाली एक नदी, जो सरस्वती नदीमें मिली है (वन० ८३ । १५) ।

अरुणासंगम–अरुणा और सरस्वतीके संगमका पवित्र तीर्थ (शल्य० ४३ । ३०—४३) ।

अरुन्धती (अक्षमाला)–(१) महर्षि वसिष्ठकी पत्नी (आदि० १९८ । ६ तथा उद्योग० ११७ । ११) । वसिष्ठजीके चरित्रपर संदेह करनेके कारण इनकी कान्तिमें मलिनता (आदि० २३२ । २७–२९) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती हैं (सभा० ११ । ४०) । अरुन्धतीसहित वसिष्ठने उज्जानक सरोवरके तटपर तपस्याद्वारा शान्ति प्राप्त की (वन० १३० । १७) । अरुन्धतीकी तपस्या और पतिसेवाके प्रभावसे स्वाहा उनका रूप धारण न कर सकी (वन० २२५ । १४-१५) । सप्तर्षियोंने केवल देवी अरुन्धतीको छोड़कर अन्य छः मुनिपत्नियोंको अपने यहाँसे निकाल दिया था (वन० २२६ । ८) । शिवजी द्वारा इनके तपकी परीक्षा और इन्हें वरदान (शल्य० ४८ । ३८–५४) । वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४५) । यातुधानीसे अपने नामका निर्वचन कहना (अनु० ९३ । ९६) । मृणालकी चोरीके विषयमें इनका शपथ खाना (९३ । १२७-१२८) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । ३८) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १३० । ३–११) । देवताओंद्वारा अरुन्धतीकी प्रशंसा तथा ब्रह्माजीका उन्हें वर देना (अनु० १३० । १२-१३) ।

अरुन्धतीवट–एक तीर्थ, इसके समीपवर्ती सामुद्रक तीर्थमें स्नान और तीन रात ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक उपवास करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ४१) ।

अरूपा–दक्षकन्या प्राधाकी एक पुत्री (आदि० ६५ । ४६)

अर्क–(१) दिवके पुत्र अर्क, जो विवस्वान्‌के ही स्वरूप हैं (आदि० १ । ४२) । (२) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३६) । (३) एक दानवराज, जो राजर्षि ऋषिकरूपसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३२-३३) ।

अर्कज–बलीह-कुलका एक राजा (उद्योग० ७४ । १४) ।

अर्कपर्ण–कश्यप-पत्नी 'मुनि'के गर्भसे उत्पन्न एक देवगन्धर्व (आदि० ६५ । ४३) ।

अर्घाभिहरणपर्व–सभापर्वके एक अवान्तर पर्वका नाम (अध्याय ३६ से ३९ तक) ।

अर्चिष्मत्–पितरोंका एक गण (शान्ति० २६९ । १५) ।

अर्चिष्मती–महर्षि अङ्गिराकी चौथी पुत्री (वन० २१८ । ६) ।

अर्जुन–(१) ये नरस्वरूप हैं (आदि० १ । १) । इनको धर्ममय विशाल वृक्षका तना कहा गया है (आदि० १ । ११०) । ये पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र हैं । इन्द्रके द्वारा कुन्तीके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई है (आदि० ६३ । ११६) । ये इन्द्रके अंशसे प्रकट हुए हैं (आदि० ६७ । १११) । फाल्गुन मास तथा दोनों फाल्गुनीके संधिकालमें इनकी उत्पत्ति हुई, इसीसे इनका नाम 'फाल्गुन' हुआ (आदि० १२२ । ३५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । आकाशवाणीद्वारा इनकी जन्मकालमें प्रशंसा (आदि० १२२ । ३८–४६) । इनके जन्मोत्सवपर समस्त देवताओं, गन्धर्वों, आदित्यों, रुद्रों, वसुओं, नागों तथा ऋषियोंका शुभागमन और प्रमुख अप्सराओंद्वारा नृत्य-गान (आदि० १२२ । ५०—७४) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनका नामकरण-संस्कार (आदि० १२३ । २०) । वसुदेवके पुरोहित काश्यपके द्वारा इनके उपनयनादि-संस्कार । राजर्षि शुकसे इनके द्वारा धनुर्वेदका अध्ययन । (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे श्रुतकीर्तिका जन्म (आदि० ९५ । ७५) । सुभद्राके गर्भसे अभिमन्युकी उत्पत्ति (आदि० ९५ । ७८) । कृपाचार्यसे इन (पाण्डवों) का अध्ययन (आदि० १२९ । २३) । अर्जुन आदिका द्रोणाचार्यकी शिष्यतामें अध्ययन (आदि० १३१ । ४) । अर्जुनद्वारा गुरुके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा (आदि० १३१ । ७) । आचार्यका अर्जुनको हृदयसे लगाकर उनके प्रति हार्दिक स्नेह प्रकट करना । इनकी अध्ययननिष्ठा तथा सर्वाधिक योग्यता (आदि० १३१ । १३-१४) । इनसे कर्णकी स्पर्धा (आदि० १३१ । १२) । अर्जुन अनुपम प्रतिभाशाली हैं—ऐसी द्रोणाचार्यकी धारणा (आदि० १३१ । १५) । ये अपनी गुरुभक्ति तथा अस्त्रोंके अभ्यासकी लगनके कारण गुरुके विशेष प्रिय हुए (आदि० १३१ । २०) । इनके द्वारा रात्रिमें धनुर्विद्याका अभ्यास (आदि० १३१ । २५) । इनको अद्वितीय धनुर्धर बनानेके लिये द्रोणाचार्यका आश्वासन (आदि० १३१ । २७) । एकलव्यकी धनुर्विद्यासे इनकी चिन्ता और द्रोणसे इनका उलाहना (आदि० १३१ । ४८-४९) । समस्त युद्ध-विद्याओंमें इनकी कुशलता (आदि० १३१ । ६३) । ये सर्वश्रेष्ठ अस्त्राभ्यासी और गुरुभक्त थे (आदि० १३१ । ६४) । द्रोणाचार्यद्वारा इनकी लक्ष्यवेधके विषयमें परीक्षा तथा इनके द्वारा गीधके मस्तकका छेदन (आदि० १३२ । १—९) । द्रोणाचार्यपर आक्रमण करनेवाले ग्राहका इनके द्वारा वध (आदि० १३२ । १७) । द्रोणाचार्यद्वारा प्रसन्न होकर इनको 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्रका दान (आदि० १३२ । १८) । रङ्गभूमिमें इनके अद्भुत

रजि० सं० ए० ८५४

एक आवश्यक निवेदन

गीताप्रेसके मुद्रक-प्रकाशक श्रीघनश्यामदासजी जालानका गत २४ मईको भगवती जाह्नवीके पवित्र तटपर गीताभवन, ऋषिकेशमें देहावसान हो गया। उनके स्थानपर गोविन्द-भवन-कार्यालय-ट्रस्टबोर्डने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको गीताप्रेस एवं मासिक पत्रोंके मुद्रक-प्रकाशक-पदका भार दिया है।

अभीतक कोई-कोई सज्जन श्रीघनश्यामदासजी जालानके व्यक्तिगत नामसे गीताप्रेस, मासिक कल्याण, कल्याण-कल्पतरु या महाभारतसे सम्बन्धित रुपये मनीआर्डरद्वारा भेज देते हैं, जो डाकविभागके नियमानुसार वापिस लौट जाते हैं। अतः सविनय निवेदन है कि कोई सज्जन किसी भी अधिकारीके व्यक्तिगत नामसे रुपये न भेजकर उस-उस विभागके "व्यवस्थापक" शब्दको लिखकर भेजनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

हिन्दी अनुवाद

गीता

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, श्रावण २०१५, अगस्त १९५८ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ३४

श्रीनन्दनन्दनकी शरण

सर्वेश्वरं सकलदुःखहरं रमेशं
वृन्दावनेशमखिलज्ञमुदारमूर्तिम् ।
श्रीनन्दनन्दनमखण्डसुखैकराशिं
सद्भक्तवत्सलमहं शरणं प्रपद्ये ॥

जो सबके सम्पूर्ण दुःखोंको हर लेनेवाले और भगवती लक्ष्मीके स्वामी हैं, वृन्दावनके अधीश्वर हैं, स्वरूपसे ही उदार हैं तथा अनन्त सुखकी एकमात्र राशि हैं, उन सर्वज्ञ, सर्वेश्वर तथा सद्भक्तवत्सल श्रीनन्दनन्दनकी मैं शरण लेता हूँ ।

श्रीहरिः

महाभारतके पाठकोंकी सेवामें नम्र निवेदन

इस दसवीं संख्यामें 'महाभारतकी नामानुक्रमणिका संक्षिप्त परिचयसहित' के साथ-साथ कुछ लेख भी दिये जा रहे हैं, इससे महाभारतके महत्त्वपूर्ण विषयों तथा पात्रोंका पाठकोंको विशेष परिचय प्राप्त होगा तथा 'अनुक्रमणिका' में रस प्राप्त न करनेवाले पाठकोंको संतोष भी रहेगा। आगामी दो अङ्कों (११ वीं तथा १२ वीं संख्या) में भी इसी प्रकार 'अनुक्रमणिका' तथा 'लेख' दोनों ही रहेंगे। दोनोंकी फार्मसंख्या तथा पृष्ठसंख्या अलग-अलग रहेगी। आशा है इससे पाठकोंको प्रसन्नता ही होगी। —सम्पादक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—महाभारतके प्रधान पात्र ···	३
१. भीष्मपितामह ···	३
२. धर्मराज युधिष्ठिर ···	६
३. महाबली भीमसेन ···	११
४. श्रीकृष्णसखा अर्जुन ···	१४
५. महावीर युवक अभिमन्यु ···	२१
६. भगवान् वेदव्यास ···	२२
७. गुरु द्रोणाचार्य ···	२४
८. महात्मा विदुर ···	२७
९. दिव्यदृष्टि संजय ···	३१
१०. वीर सात्यकि ···	३३
११. कुरुराज धृतराष्ट्र ···	३५
१२. राजा दुर्योधन ···	३७
१३. महावीर कर्ण ···	३९
१४. पतिभक्ता गान्धारी ···	४१
१५. माँ कुन्तीदेवी ···	४४
१६. देवी द्रौपदी ···	४७
२—महाभारतके महानायक (आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्० ए०) ···	५१
३—महाभारतपर स्वर्गीय विद्वान् श्रीचिन्तामणि राव वैद्यके कुछ विचार ···	५८
४—द्रौपदीके पाँच पति थे या एक ? (पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्याभूषण) ···	६७
५—नामानुक्रमणिका, क्रमशः गताङ्कसे आगे,	(पृष्ठ १७ से १३६ तक)

चित्र-सूची

चित्र	रंग	पृष्ठ
१—महाभारत-लेखन	(तिरंगा)	मुख-पृष्ठ
२—धर्मराज युधिष्ठिर	(,,) ···	३
३—महाबली भीमसेन	(एकरंगा) ···	११
४—भगवान् वेदव्यास	(,,) ···	२२
५—माँ कुन्ती	(,,) ···	४४
६—देवी द्रौपदी	(एकरंगा) ···	४९
७—शरणागत अर्जुन	(तिरंगा) ···	ना० १७
८—माद्रीपुत्र नकुल	(एकरंगा) ···	ना० ४८
९—माद्रीपुत्र सहदेव	(,,) ···	ना० ९६

वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)

धर्मराज युधिष्ठिर

महाभारतके प्रधान पात्र

[महाभारतके सोलह प्रधान पात्रोंका संक्षिप्त परिचय इस लेखमें दिया गया है। भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर, कृष्णसखा अर्जुन, भगवान् वेदव्यास, महात्मा विदुर, दिव्यचक्षु संजय, पतिभक्ता गान्धारी, कुन्तीदेवी, देवी द्रौपदीका परिचय श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका लिखा हुआ है और शेष सात पात्रोंका परिचय पं० श्रीगौरीशंकर-जी द्विवेदी महोदयने लिखा है।

—सम्पादक]

भीष्मपितामह

महात्मा भीष्म प्रसिद्ध कुरुवंशी महाराज शान्तनुके पुत्र थे। ये गङ्गादेवीसे उत्पन्न हुए थे। वसु नामक देवताओंमें 'द्यौ' नामके नवम वसु ही महर्षि वशिष्ठके शापसे भीष्मके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने कुमारावस्थामें ही साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन तथा अस्त्रोंका अभ्यास कर लिया था। अस्त्रोंका अभ्यास करते हुए इन्होंने एक बार अपने बाणोंके प्रभावसे गङ्गाकी धाराको रोक ही दिया था। इन्हें बचपनमें लोग देवव्रत कहते थे।

एक दिन राजर्षि शान्तनु वनमें विचर रहे थे। उनकी दृष्टि एक सुन्दरी कैवर्तराजकी कन्यापर पड़ी, जिसका नाम सत्यवती था और उसपर वे आसक्त हो गये। उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। सत्यवती थी तो एक राजकन्या, परंतु वह कैवर्तराजके घर पली थी। उसके पिता कैवर्तराजने उसके विवाहके लिये राजाके सामने यह शर्त रक्खी कि उसके गर्भसे जो पुत्र हो, वही राजका अधिकारी हो। राजाने उसकी यह शर्त मंजूर नहीं की; परंतु वे उस कन्याको भी न भुला सके। वे उसीको पानेकी चिन्तामें उदास रहने लगे। देवव्रतको जब उनकी उदासीका कारण ज्ञात हुआ तो वे स्वयं कैवर्तराजके पास गये और उससे अपने पिताके लिये कन्याकी याचना की। उन्होंने उसकी शर्त मंजूर करते हुए सबके सामने यह प्रतिज्ञा की कि 'इसके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा।' परन्तु कैवर्तराजको इतनेपर भी संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि देवव्रतका वचन तो कभी अन्यथा नहीं होनेका, परंतु इनका पुत्र राज्यका अधिकारी हो सकता है। बुद्धिमान् देवव्रत उसका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने उसी समय यह दूसरी कठिन प्रतिज्ञा की कि 'मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा।' कुमार देवव्रतकी इस भीषण-प्रतिज्ञाको सुनकर देवताओंने पुष्पवर्षा की और तभीसे इन्हें लोग 'भीष्म' कहने लगे। भीष्मने सत्यवतीको ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। भीष्मका यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पुत्रको इच्छा-मृत्युका वरदान दिया। इस प्रकार भीष्मने जीवनके आरम्भमें ही पिताकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये संसारके सामने अलौकिक त्यागका आदर्श स्थापित किया। जिस राज्यके लिये उनकी दो ही पीढ़ी बाद उन्हींके बेटों-पोतोंमें तथा उन्हींकी मौजूदगीमें भीषण संहारकारी महायुद्ध हुआ, उसी राज्यको उन्होंने बात-की-बातमें अपने पिताकी एक मामूली-सी इच्छापर न्यौछावर कर दिया। जिन कामिनी-काञ्चनके लिये संसारके इतिहासमें न जाने कितनी बार खून-खराबा हुआ है और राज्य-के-राज्य ध्वंस हो गये हैं, उनका सदाके लिये तृणवत् परित्याग कर उन्होंने एक विरक्त महात्माका-सा आचरण किया। धन्य पितृभक्ति!

सत्यवतीके गर्भसे महाराज शान्तनुके दो पुत्र हुए। बड़ेका नाम था चित्राङ्गद और छोटेका विचित्रवीर्य। अभी चित्राङ्गद जवान नहीं हो पाये थे कि राजा शान्तनु इस लोकसे चल बसे। चित्राङ्गद राजा हुए, परंतु वे कुछ ही दिन बाद गन्धर्वोंके साथ युद्धमें मारे गये। विचित्रवीर्य भी अभी बालक ही थे, अतः वे भीष्मकी देख-रेखमें राज्यका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद भीष्मको विचित्रवीर्यके विवाहकी चिन्ता हुई। उन्हीं दिनों काशीनरेशकी तीन कन्याओंका स्वयंवर होने जा रहा था। भीष्म अकेले ही रथपर सवार हो काशी पहुँचे। इन्होंने अपने भाईके लिये बलपूर्वक कन्याओंको हरकर अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें हस्तिनापुर ले चले। इसपर स्वयंवरके लिये एकत्र हुए सभी राजालोग इनपर टूट पड़े, परंतु उनकी एक भी न चली। इन्होंने अकेले ही सबको परास्त कर दिया और कन्याओंको लाकर विचित्रवीर्यके सुपुर्द कर दिया। उस समय संसारको इनके अलौकिक पराक्रम तथा अस्त्रकौशलका प्रथम बार परिचय मिला।

भीष्म काशिराजकी तीन कन्याओंको हरकर ले आये थे। उनमें सबसे बड़ी कन्या अम्बा मन-ही-मन राजा शाल्वको वर चुकी थी। भीष्मको जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अम्बाको वहाँसे विदा कर दिया और शेष दो कन्याओंका विचित्रवीर्यसे विवाह कर दिया। परंतु विचित्रवीर्य अधिक दिन जीवित न रहे। विवाहके कुछ ही वर्ष बाद वे क्षयरोगके शिकार हो इस संसारसे चल बसे। उनके कोई संतान न थी। फलतः कुरुवंशके उच्छेदका प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। भीष्म चाहते तो वे आसानीसे राज्यपर अधिकार कर सकते थे। प्रजा उनके अनुकूल थी ही। वंशरक्षाके लिये विवाह करनेमें भी अब उनके सामने कोई अड़चन नहीं थी। परन्तु बड़े-से-बड़ा प्रलोभन तथा आवश्यकता भी भीष्मको अपने

वचनसे नहीं डिगा सकती थी। सत्यवतीके पितासे की हुई प्रतिज्ञाको दुहराते हुए एक समय उन्होंने कहा था—'मैं त्रिलोकीका राज्य, ब्रह्माका पद और इन दोनोंसे अधिक मोक्षका भी परित्याग कर सकता हूँ, पर सत्यका त्याग नहीं कर सकता। पाँचों भूत अपने-अपने गुणोंको त्याग दें, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे; और तो क्या, स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें; परंतु मैं अपनी सत्यप्रतिज्ञा छोड़नेका विचार भी नहीं कर सकता।' प्रतिज्ञाका पालन हो तो ऐसा हो।

इधर, अम्बाको शाल्वने स्वीकार नहीं किया। वह न इधरकी रही, न उधरकी। लज्जाके मारे वह पिताके घर भी न जा सकी। अपनी इस दुर्दशाका कारण भीष्मको समझकर वह उन्हें मन-ही-मन कोसने लगी और उनसे बदला लेनेका उपाय सोचने लगी। अपने नाना राजर्षि होत्रवाहनकी सलाहसे वह जमदग्निनन्दन परशुरामकी शरणमें गयी और उनसे अपने दुःखका कारण निवेदन किया। भीष्मने परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी थी। उन्होंने भीष्मको कुरुक्षेत्रमें बुलाकर कहा कि 'इस कन्याका बलपूर्वक स्पर्श करके तुमने इसे दूषित कर दिया है; इसीलिये शाल्वने इसे स्वीकार नहीं किया। अतः अब तुम्हींको इसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना होगा।' भीष्मने उनकी बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'इस कन्याने ही मुझसे कहा था कि मैं शाल्वकी हो चुकी हूँ। ऐसी हालतमें मैं उसे कैसे रख सकता था। जिसका दूसरे पुरुषपर प्रेम है, उसे कोई धार्मिक पुरुष कैसे रख सकता है। अब तो परशुराम आगबबूला हो गये। उन्होंने कहा—'भीष्म! तुम जानते नहीं कि मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर दिया था?' भीष्मने कहा—'गुरुजी! उस समय भीष्म पैदा नहीं हुए थे।' यह सुनकर उन्होंने भीष्मको युद्धके लिये ललकारा। भीष्मने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली। फिर तो गुरु-शिष्यमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। तेईस दिनतक लगातार युद्ध होता रहा। परंतु किसीने भी हार नहीं मानी। अन्तमें देवताओंने तथा मुनियोंने बीचमें पड़कर युद्ध बंद करा दिया। इस प्रकार भीष्मने परशुरामकी बात भी न मानकर अपने सत्यकी रक्षा की तथा अपने अद्भुत पराक्रमसे परशुराम-जैसे अद्वितीय धनुर्धरके भी छक्के छुड़ा दिये। सत्यप्रतिज्ञा और वीरताकी पराकाष्ठा हो गयी।

भगवान् वासुदेव जब कौरवसभामें सन्धिका प्रस्ताव लेकर गये और सभामें अपना वक्तव्य सुनाया तो भीष्मजीने दुर्योधनको समझाते हुए कहा था कि, 'श्रीकृष्ण हम सबके सुहृद् हैं, हमारा कल्याण चाहते हैं, अतएव अभिमान छोड़ कर इनकी बात माननी चाहिये। हे तात! यदि महापुरुष श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो कदापि तुम्हारा कल्याण होगा और न तुम सुख प्राप्त कर सकोगे।' * यही न भीष्मने दुर्योधनको बारंबार सत्यका उपदेश दि बराबर पाण्डवोंसे मिल-जुलकर रहनेके लिये कहा; पर दुर्योधनने उनकी एक न मानी और अन्तमें दुर्योधन हठधर्मीसे महाभारतका युद्ध आरम्भ हुआ।

महाभारत-युद्धमें कौरवपक्षके सर्वश्रेष्ठ योद्धा भीष्म थे। अतएव कौरवदलके प्रथम सेनानायक होनेका गौरव इ को प्राप्त हुआ। पाण्डव एवं कौरव दोनोंके पितामह हो नाते इनका दोनोंसे ही समान प्रेम एवं सहानुभूति थी त ये दोनोंका ही समानरूपमें हित चाहते थे। फिर भी, जानकर कि धर्म एवं न्याय पाण्डवोंके ही पक्षमें है, ये पाण्ड साथ विशेष सहानुभूति रखते थे और हृदयसे उनकी वि चाहते थे; परन्तु हृदयसे पाण्डवोंके पक्षपाती होनेपर इन्होंने युद्धमें कभी पाण्डवोंके साथ रियायत नहीं और प्राणपणसे उन्हें जीतनेकी चेष्टा की।

भीष्मका यह ढंग महाभारतकारको नहीं रुचा। इस भीष्मके मुखसे कहलाया—

> अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
> इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

---

* अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि॥
(उद्योग० १२५।

भगवान् श्रीकृष्णने जब सन्धिका प्रस्ताव किया, तो भी उसे स्वीकार करनेके लिये दुर्योधनको बहुतेरा समझाया, पर न माना। तब पितामह अत्यन्त खिन्न होकर बोले—

> शुश्रूषमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम्।
> प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम्॥
> (उद्योग० १३९।

'सदा सेवा करनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले, सत्यव धर्मात्मा युधिष्ठिरके विरुद्ध मुझे युद्ध करना पड़ेगा, इससे ब दुःखकी बात और क्या हो सकती है।'

भीष्म जानते थे कि वासुदेव श्रीकृष्ण स्वयं नारायण ही और वे सन्धिका प्रयास करने आये हैं। दुर्योधन उनकी बा उपेक्षा कर रहा है, अतः इसका सर्वनाश निश्चित है। उद्योग ४९वें अध्यायमें पहले ही भीष्मने दुर्योधनको यह रहस्य बतलाय कि अर्जुन और श्रीकृष्ण नर-नारायणके अवतार हैं। अ दुर्योधनका विपरीत हठ करके श्रीकृष्णके वचनकी अवज्ञा क सर्वनाशका कारण था, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु दुर्योध सर्वनाशको सामने देखते हुए भीष्मको पाण्डवोंके विरुद्ध करना बहुत दुःखदायी जान पड़ा।

'पुरुष अर्थका दास हैं, पर अर्थ किसीका दास नहीं है। हे महाराज! यह सत्य है। कौरवोंने मुझे अर्थसे बाँध लिया है।'

युद्धके अठारह दिनोंमेंसे दस दिनोंतक अकेले भीष्मने कौरवोंका सेनानायकत्व किया और इस बीचमें पाण्डव-पक्षकी बहुत-सी सेनाका संहार कर डाला। वृद्ध होते हुए भी युद्धमें इन्होंने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि दो बार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनकी रक्षाके लिये शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा होते हुए भी इनके मुकाबलेमें खड़ा होना पड़ा। अर्जुनका बल क्षीण होते देख एक बार तो वे चक्र लेकर इसके सामने दौड़े और दूसरी बार चाबुक लेकर उन्होंने भीष्मको ललकारा और इस प्रकार एक भक्तके प्राणोंकी रक्षा करते हुए दूसरे भक्तके गौरवको बढ़ाकर अपनी उभयतोमुखी भक्तवत्सलताका परिचय दिया। पश्चात् भीष्म रणकर्कश होकर पाण्डव सेनाका संहार करने लगे। उस समयका वर्णन करते हुए सञ्जय कहते हैं कि, 'अन्तमें पाण्डवोंने जब देखा कि भीष्मके रहते कौरवोंपर विजय पाना असम्भव-सा है, तब उन्होंने स्वयं पितामहसे उनकी मृत्युका उपाय पूछा और उन्होंने दया करके बताया कि 'द्रुपदकुमार शिखण्डी स्त्रीरूपमें जन्मा था; इसलिये यद्यपि वह अब पुरुषके रूपमें बदल गया है, फिर भी मेरी दृष्टिमें वह स्त्री ही है। ऐसी दशामें उसपर मैं शस्त्र नहीं उठा सकता। वह यदि मेरे सामने युद्ध करने आयेगा तो मैं शस्त्र नहीं चलाऊँगा। उस समय मुझे अर्जुन मार सकता है।' क्षत्रिय धर्मके पालन और वीरताका उदाहरण इससे बढ़कर क्या होगा?

जिस समय युद्धमें मर्माहत होकर भीष्म धराशायी हुए, उस समय उनका रोम-रोम बाणोंसे बिंध गया था। उन्हीं बाणोंपर वे सो गये, धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। उस समय सूर्य दक्षिणायनमें थे। दक्षिणायनको देहत्यागके लिये उपयुक्त काल न समझकर वे अयन-परिवर्तनके समयतक उसी शरशय्यापर पड़े रहे; क्योंकि पिताके वरदानसे मृत्यु उनके अधीन थी। भीष्मजीके गिरते ही उस दिन युद्ध बंद हो गया। कौरव तथा पाण्डव वीर भीष्मजीको घेरकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। भीष्मजीका सारा शरीर बाणोंपर तुला हुआ था, केवल उनका सिर नीचे लटक रहा था। उसके लिये उन्होंने कोई सहारा माँगा। लोगोंने उत्तमोत्तम तकिये लाकर उनके सामने रख दिये, परंतु उन्हें वे पसंद नहीं आये। तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—'बेटा! तुम क्षत्रियधर्मको जानते हो, तुम मेरे अनुरूप तकिया लाकर दो।' अर्जुन उन वीरशिरोमणिके अभिप्रायको समझ गये। वीरोंके इशारे वीर ही समझ सकते हैं। उन्होंने बाण मारकर भीष्मजीके मस्तकको ऊँचा कर दिया, उन बाणोंपर उनका मस्तक टिक गया। इधर दुर्योधनने बाण निकालनेमें कुशल वैद्योंको भीष्मजीकी चिकित्साके लिये बुलवाया, परन्तु पितामहने उन सबको सम्मानपूर्वक लौटा दिया। उस वीरगतिको पाकर उन्होंने चिकित्सा कराना अपना अपमान समझा। सब लोग उनकी असाधारण धर्मनिष्ठा और साहस देखकर दंग रह गये। उस समय भी युद्ध बंद कराने तथा दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापन करानेकी इन्होंने पूरी चेष्टा की; परंतु उसमें ये सफल नहीं हुए। दैवका ऐसा ही विधान था। उसे कौन टाल सकता था।'

बाणोंकी असह्य वेदनासे भीष्मजीका गला सूख रहा था, उनका सारा शरीर जल रहा था। उन्होंने पीनेके लिये पानी माँगा। लोगोंने झारियोंमें भरकर शीतल और सुगन्धित जल उनके सामने उपस्थित किया। भीष्मने उसे लौटा दिया। उन्होंने कहा कि 'पहले भोगे हुए मानवीय भोगोंको अब मैं स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय मैं शरशय्यापर पड़ा हूँ।' तब उन्होंने अर्जुनको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो।' अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर अपने भाथेमेंसे एक दमकता हुआ बाण निकाला और उसे पर्जन्यास्त्रसे संयोजितकर भीष्मके बगल-वाली जमीनपर मारा। उसी समय सबके देखते-देखते पृथ्वीमेंसे दिव्य जलकी एक धारा निकली और वह ठीक भीष्मजीके मुखपर गिरने लगी। उस अमृतके समान जलको पीकर भीष्मजी तृप्त हो गये और अर्जुनके उस कर्मकी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसी समयसे भीष्मजीने अन्न जलका त्याग कर दिया और फिर जितने दिन वे जीवित रहे, बाणोंकी मर्मान्तक पीड़ाके साथ-साथ भूख-प्यासकी असह्य वेदना भी सहते रहे। इस प्रकार उन्होंने वीरताके साथ-साथ धैर्य एवं सहन-शक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी।

महामना भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी, आदर्श पितृभक्त, आदर्श सत्यप्रतिज्ञ एवं आदर्श वीर ही नहीं थे, वे शास्त्रोंके महान् ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वरके तत्त्वको जाननेवाले एवं महान् भगवद्भक्त भी थे। उनके अगाध ज्ञानकी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसा की और यहाँतक कह दिया कि 'आपके इस लोकसे चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है' इत्यादि। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा एवं शक्तिसे इन्होंने युधिष्ठिरको लगातार कई दिनोंतक वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्धधर्म, दान-धर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उपदेश दिया, जो महाभारतके शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्वमें संगृहीत है। साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए तथा धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज युधिष्ठिरकी धर्म-विषयक शङ्काओंका निवारण करना भीष्मका ही काम था। इनका उपदेश सुननेके लिये व्यास आदि महर्षि भी उपस्थित हुए थे।

भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्य एवं प्रभावका ज्ञान जैसा भीष्मको था, वैसा उस समय बहुत कम लोगोंको था। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनको इन्होंने कई बार श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी थी। राजसूय यज्ञमें जब महाराज युधिष्ठिरने पितामहसे पूछा कि यहाँ सबसे पहले किसको अर्घ्य निवेदन करना चाहिये, तब भीष्मजीने उत्तर दिया—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः॥

(सभा० ३६। २८, २९)

ये भगवान् श्रीकृष्ण इन सब राजाओंके बीचमें अपने तेज, बल और पराक्रमके द्वारा इस प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रोंमें सूर्यनारायण। जैसे अन्धकारपूर्ण स्थान सूर्यके उदयसे आभासित होता है, जैसे निर्वात स्थान पवनके झोंकेसे आह्लादित हो उठता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा हमारी यह सभा आभासित और आह्लादित हो रही है।

भीष्मजीके इस कथनके उपरान्त श्रीकृष्णकी सर्वप्रथम पूजा की गयी। इसपर शिशुपाल बिगड़ गया, तब भीष्मजीने उसको फटकारते हुए कहा—

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम्।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते॥
अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि।
न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा॥
न हि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः॥
तस्मात्सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान्।
एवं वक्तुं न चार्हसि त्वं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी॥

(सभा० ३८। ६, ८, ९, ११)

'इस शिशुपालको सान्त्वना देना या समझाना-बुझाना ठीक नहीं है, जो सम्पूर्ण जगत्में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी अग्रपूजामें असम्मति प्रकट करता है। राजाओंकी इस सभामें एक भी राजा ऐसा नहीं दिखलायी देता जो युद्धमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णके तेजसे परास्त न हुआ हो। महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे ही लिये परम पूजनीय नहीं हैं। ये तो तीनों लोकोंमें अभिवन्दनीय हैं। श्रीकृष्णने संग्राममें अनेकों क्षत्रियशिरोमणि राजाओंको परास्त किया है। यह सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः वासुदेव श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित है।' बाणशय्या-पर पड़े-पड़े भीष्म भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते रहते थे। इन्होंने भरी सभामें श्रीकृष्णकी महिमा गायी थी और उन्हें साक्षात् ईश्वर बतलाया था।

श्रीकृष्ण जब अर्जुनकी ओरसे चक्र लेकर इनके सामने दौड़े तो इन्होंने उनके हाथसे मरनेमें अपना गौरव समझ शास्त्रोंके द्वारा ही उनकी पूजा करनेके लिये उनका आवाहन किया। इन्होंने युधिष्ठिरको भगवान् विष्णुका जो सहस्रनाम-स्तोत्र सुनाया, उससे इनकी भगवद्भक्ति तथा भगवत्तत्त्वका ज्ञान टपका पड़ता है।* इनकी भक्तिका ही यह फल था कि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अन्त समयमें इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान, सदाचार—जिस ओरसे भी हम भीष्मके चरित्रपर दृष्टि डालते हैं, उसी ओरसे हम उसे आदर्श पाते हैं। भीष्मकी कोटिके महापुरुष संसारके इतिहासमें बिरले ही पाये जाते हैं। यद्यपि भीष्म अपुत्र ही मरे, फिर भी सारे त्रैवर्णिक हिंदू आजतक पितरोंका तर्पण करते समय इन्हें जल देते हैं। यह गौरव भारतके इतिहासमें और किसी भी मनुष्यको प्राप्त नहीं है। इसीलिये सारा जगत् आज भी इन्हें पितामहके नामसे पुकारता है। भीष्मकी-सी अपुत्रता बड़े-बड़े पुत्रवानोंके लिये भी ईर्ष्याकी वस्तु है।

धर्मराज युधिष्ठिर

महाराज युधिष्ठिर भी भीष्मकी ही भाँति अत्यन्त उच्च कोटिके महापुरुष थे। ये साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। इसीसे लोग इन्हें धर्मराजके नामसे पुकारते थे। इनमें धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता, दयालुता और अविचल प्रेम आदि अनेकों लोकोत्तर गुण थे। ये अपने शील, सदाचार तथा विचारशीलताके कारण बचपनमें ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। जब ये बहुत छोटे थे, तभी इनके पिता महात्मा पाण्डु स्वर्गवासी हो गये। तभीसे ये अपने ताऊ धृतराष्ट्रको ही पिताके तुल्य मानकर उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी किसी भी आज्ञाको टालते न थे। परंतु धृतराष्ट्र अपने कुटिल स्वभावके कारण इनके गुणोंकी प्रशंसा सुन-सुनकर मन-ही-मन इनसे कुढ़ने लगे। उनका पुत्र दुर्योधन चाहता था कि किसी तरह पाण्डव कुछ दिनके लिये हस्तिनापुरसे हट जायँ तो उनकी अनुपस्थितिमें उनके पैतृक अधिकारको छीनकर स्वयं राजा बन बैठूँ। उसने अपने अंधे एवं प्रज्ञाहीन पिताको पट्टी पढ़ाकर इसके लिये राजी कर लिया। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको बुलाकर उन्हें मेला देखनेके बहाने वारणावत भेजनेका प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने उनकी आज्ञा समझकर उसपर कोई आपत्ति नहीं की और चुपचाप अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों भाई वारणावत चले गये। इन्हें जला डालनेके लिये वहाँ दुर्योधनने

* आज भी उस विष्णुसहस्रनामका भक्तोंमें बड़ा आदर है। भगवान् शंकराचार्यने गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्रोंकी भाँति उसपर भी [illegible] किया है।

एक लाक्षाभवन तैयार कराया था। उसीमें इन्हें रहनेकी आज्ञा हुई। परंतु पाण्डवोंको इसका सुराग लग गया और—चाचा विदुरकी सहायतासे ये लोग वहाँसे किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भागे और जंगलकी शरण ली। पीछेसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंने इन्हें मरा समझकर हस्तिनापुरके राज्यपर चुपचाप अधिकार कर लिया।

कुछ दिनोंके बाद द्रौपदीके स्वयंवरमें जब पाण्डवोंका रहस्य खुला, तब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यह पता लगा कि पाण्डव अभी जीवित हैं। तब तो धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलवा लिया और अपने पुत्रोंके साथ उनका झगड़ा मिटा देनेके लिये आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहनेका प्रस्ताव उनके सामने रक्खा। युधिष्ठिरने उनकी यह आज्ञा भी स्वीकार कर ली और वे अपने भाइयोंके साथ खाण्डवप्रस्थमें रहने लगे। वहाँ इन्होंने अपनी एक अलग राजधानी बसा ली, जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। वहाँ इन्होंने एक राजसूय यज्ञ किया, जिसमें बड़े-बड़े राजाओंने आकर इन्हें बहुमूल्य उपहार दिये और इन्हें अपना सम्राट् स्वीकार किया।

परंतु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने वहाँ भी इन्हें नहीं रहने दिया। दुर्योधन इनके वैभवको देखकर जलने लगा। उसने एक विशाल सभाभवन तैयार कराके पाण्डवोंको जुएके लिये आमन्त्रित किया। जुएको बुरा समझते हुए भी धृतराष्ट्रकी आज्ञा मानकर युधिष्ठिरने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वहाँ दुर्योधनके मामा शकुनिकी कपटभरी चालोंमें अपना सर्वस्व हार बैठे। यहाँतक कि भरी सभामें राजरानी द्रौपदीकी बड़ी भारी फजीहत की गयी। फिर भी धृतराष्ट्रके प्रति युधिष्ठिरका वही भाव बना रहा। धृतराष्ट्रने भी उन्हें उनका सारा धन और राज्य लौटा दिया और उन्हें वापस इन्द्रप्रस्थ भेज दिया। परंतु दुर्योधनको यह सहन नहीं हुआ। उसने धृतराष्ट्रको समझा-बुझाकर इस बातके लिये राजी कर लिया कि पाण्डवोंको दूत भेजकर फिरसे बुलाया जाय और उनसे वनवासकी शर्तपर पुनः जुआ खेला जाय। युधिष्ठिर जुएका दुष्परिणाम एक बार देख चुके थे तथा कौरवोंकी नीयतका भी पता उन्हें चल गया था। फिर भी अपने ताऊकी आज्ञाको वे टाल नहीं सके और बीचमेंसे ही लौट आये। अबकी बार भी युधिष्ठिर ही हारे और फलतः उन्हें सब कुछ छोड़कर अपने भाइयों तथा राजरानी द्रौपदीके साथ बारह वर्षके वनवास तथा एक वर्षके अज्ञात-वासके लिये जाना पड़ा। ताऊके आज्ञापालनरूप धर्मके निर्वाहके लिये उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया!

महाराज युधिष्ठिर बड़े ही धर्मभीरु एवं सहनशील थे। वे सब प्रकारकी हानि सह सकते थे, परंतु धर्मकी हानि उन्हें सह्य नहीं थी। प्रथम बार जुएमें जब वे अपने चारों भाइयोंको तथा अपने-आपको एवं द्रौपदीतकको हार गये और कौरवलोग भरी सभामें द्रौपदीका तिरस्कार करने लगे, उस समय भी धर्मपाशसे बँधे रहनेके कारण उन्होंने चूँतक नहीं किया और चुपचाप सब कुछ सह लिया। कोई सामान्य मनुष्य भी अपनी आँखोंके सामने अपनी स्त्रीकी इस प्रकार दुर्दशा होते नहीं देख सकता। उन्हींके भयसे उनके भाई भी कुछ नहीं बोले और मन मसोसकर रह गये। ये लोग चाहते तो बलपूर्वक उस अमानुषी अत्याचारको रोक सकते थे। परंतु यही सोचकर कि धर्मराज द्रौपदीको स्वेच्छासे दाँवपर रखकर हार गये हैं, ये लोग चुप रहे। जिस द्रौपदीको इनके सामने कोई आँख उठाकर भी देख लेता तो उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते, उसी द्रौपदीकी दुर्दशा इन्हों-ने अपनी आँखोंसे देखकर भी उसका प्रतिकार नहीं किया। युधिष्ठिर यह भी जानते थे कि शकुनिने उन्हें कपटपूर्वक जीता है, फिर भी उन्होंने अपनी ओरसे धर्मका त्याग करना उचित नहीं समझा। उन्होंने सब कुछ सहकर भी सत्य और धर्मकी रक्षा की। धर्मप्रेम और सहनशीलताका इससे बड़ा उदाहरण जगत्में शायद ही कहीं मिले।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार भी जुएमें हार गये और वनमें जाने लगे, उस समय हस्तिनापुरकी प्रजाको बड़ा दुःख हुआ। सब लोग कौरवोंको कोसने लगे और नगरवासी बहुत बड़ी संख्यामें अपने घर-परिवारको छोड़कर इनके साथ चलनेके लिये इनके पीछे हो लिये। उस समय भी धर्मराजने कौरवोंके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा और सब लोगोंको किसी प्रकार समझा-बुझाकर लौटाया। फिर भी बहुत-से ब्राह्मण जबर्दस्ती इनके साथ हो लिये। उस समय धर्मराजको यह चिन्ता हुई कि 'इतने ब्राह्मण मेरे साथ चल रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी?' इन्हें अपने कष्टोंकी तनिक भी परवा नहीं थी, परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकते थे। अन्तमें इन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके उनसे एक ऐसा पात्र प्राप्त किया, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता। उसीसे ये वनमें रहते हुए भी अतिथि-ब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे स्वयं भोजन करते। वनवासके कष्ट भोगते हुए भी इन्होंने आतिथ्य-धर्मका यथोचित पालन किया। महाराज युधिष्ठिरके इसी धर्मप्रेमसे आकर्षित होकर बड़े-बड़े महर्षि इनके वनवासके समय इनके पास आकर रहते और यज्ञादि नाना प्रकारके धर्मानुष्ठान करते।

महाराज युधिष्ठिर अजातशत्रुके नामसे प्रसिद्ध थे। उनका वास्तवमें किसीके साथ वैर नहीं था। शत्रुओंके प्रति भी उनके हृदयमें सदा सद्भाव ही रहता था। शत्रु भी उनकी दृष्टिमें सेवा और सहानुभूतिके ही पात्र थे। अपकार

करनेवालेका भी उपकार करना—यही तो संतका सबसे बड़ा लक्षण है । 'उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥'—गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह उक्ति महाराज युधिष्ठिरमें पूरी तरह चरितार्थ होती थी । एक बारकी बात है—जब पाण्डव द्वैतवनमें थे, घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वनवासी पाण्डवोंको अपने वैभवसे जलानेके पापपूर्ण उद्देश्यसे उस वनमें पहुँचा, वहाँ जलक्रीडाके विचारसे वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा, जहाँ महाराज युधिष्ठिर कुटी बनाकर रहते थे । सरोवरको गन्धर्वोंने पहलेसे ही घेर रक्खा था । उनके साथ दुर्योधनकी मुठभेड़ हो गयी । बस, दोनों ओरसे बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया । विजय गन्धर्वोंकी ओर रही । उन लोगोंने रानियोंसहित दुर्योधनको कैद कर लिया । जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंको आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग जाकर बलपूर्वक राजा दुर्योधनको छुड़ा लाओ । माना कि ये लोग हमारे शत्रु हैं, परंतु इस समय विपत्तिमें हैं । इस समय इनके अपराधोंको भुलाकर इनकी सहायता करना ही हमारा धर्म है । शत्रु हैं तो क्या आखिर हैं तो हमारे भाई ही । हमारे रहते दूसरे लोग इनकी दुर्दशा करें, यह हमलोग कैसे देख सकते हैं ।' भीमसेनको समझाते हुए उन्होंने कहा कि 'भाई-बन्धुओंमें मतभेद और झगड़े होते ही रहते हैं इससे आत्मीयता नहीं चली जाती ।' बस, फिर क्या था । अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और दुर्योधनको भाइयों तथा रानियोंसहित उनके चंगुलसे छुड़ा लिया । दुर्योधनकी दुरभिसन्धिको जानकर देवराज इन्द्रने ही दुर्योधनको बाँध ले आनेके लिये गन्धर्वोंको भेजा था । महाराज युधिष्ठिरके विशाल हृदयको देखकर वे सब दंग रह गये । धन्य अजातशत्रुता !

एक समयकी बात है, द्रौपदीको आश्रममें अकेली छोड़कर पाण्डव वनमें चले गये थे । पीछेसे दुर्योधनका बहनोई सिन्धुराज जयद्रथ उधर आ निकला । द्रौपदीके अनुपम रूपलावण्यको देखकर उसका मन बिगड़ गया । उसने द्रौपदीके सामने अपना पापपूर्ण प्रस्ताव रक्खा, किंतु द्रौपदीने उसे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया । तब तो उसने द्रौपदीको खींचकर जबर्दस्ती अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें ले भागा । पीछेसे पाण्डवोंको जब जयद्रथकी शैतानीका पता लगा तो उन्होंने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे जा दबाया । पाण्डवोंने बात-की-बातमें उसकी सारी सेनाओंको तहस-नहस कर डाला । पापी जयद्रथने भयभीत होकर द्रौपदीको रथसे नीचे उतार दिया और स्वयं प्राण बचाकर भागा । भीमसेनने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे पकड़कर धर्मराजके सामने ला उपस्थित किया । धर्मराजने उसे सम्बन्धी समझकर दयापूर्वक छोड़ दिया और इस प्रकार अपनी अद्भुत क्षमाशीलता एवं दयालुताका परिचय दिया ।

महाराज युधिष्ठिर बड़े भारी बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और धर्मज्ञ तो थे ही; उनमें समता भी अद्भुत थी । एक समयकी बात है—जिस वनमें पाण्डवलोग रहते थे, वहाँ एक ब्राह्मणके अरणिसहित मन्थनकाष्ठसे, जो किसी वृक्षकी शाखापर टँगा हुआ था, एक हरिन अपना सींग खुजलाने लगा । वह काष्ठ उसके सींगमें फँस गया । हिरन उसे लेकर भागा । मन्थनकाष्ठके न रहनेसे अग्निहोत्रमें बाधा आती देख ब्राह्मण पाण्डवोंके पास आया और उनसे वह मन्थनकाष्ठ ला देनेकी प्रार्थना की । धर्मराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयोंको साथ लेकर मृगके पीछे भागे, परंतु वह देखते-देखते उनकी आँखोंसे ओझल हो गया । पाण्डव बहुत थक गये थे । प्यास उन्हें अलग सता रही थी । धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल पानीकी तलाशमें गये । थोड़ी ही दूरपर उन्हें एक सुन्दर जलाशय मिला । उसके समीप जाकर ज्यों ही वे जल लेनेके लिये झुके कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी—'पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो तब जल पीना ।' परंतु नकुलको बड़ी प्यास लगी थी । उन्होंने आकाशवाणीकी कोई परवा नहीं की । फलतः पानी पीते ही वे निर्जीव होकर जमीनपर लोट गये । पीछेसे धर्मराजने क्रमशः सहदेव, अर्जुन और भीमसेनको भेजा; परंतु उन तीनोंकी भी वही दशा हुई । अन्तमें धर्मराज स्वयं उस तालाबपर पहुँचे । उन्होंने भी वही आवाज सुनी और साथ ही अपने चारों भाइयोंको निश्चेष्ट होकर जमीनपर पड़े देखा । इतनेमें ही उन्हें एक विशालकाय यक्ष दीख पड़ा । उसने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही जल पीनेके कारण तुम्हारे भाइयोंकी यह दशा हुई है । यदि तुम भी ऐसी अनधिकार चेष्टा करोगे तो मारे जाओगे ।' युधिष्ठिर उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेको तैयार हो गये । यक्षने जो-जो प्रश्न युधिष्ठिरसे किये, उन सबका समुचित उत्तर देकर युधिष्ठिरने यक्षका अच्छी तरह समाधान कर दिया । इनके उत्तरोंसे प्रसन्न होकर यक्ष बोला—'राजन् ! अपने भाइयोंमेंसे जिस-किसीको तुम जिलाना चाहो, उसे मैं जीवित कर दूँ ।' धर्मराजने नकुलको जीवित देखना चाहा । कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि 'मेरे पिताके दो भार्याएँ थीं—कुन्ती और माद्री । मेरी दृष्टिमें वे दोनों समान हैं । मैं चाहता हूँ कि वे दोनों पुत्रवती बनी रहें । कुन्तीका पुत्र तो मैं मौजूद हूँ ही; मैं चाहता-हूँ कि माद्रीका भी एक पुत्र बना रहे । इसीलिये मैंने भीम और अर्जुनको छोड़कर उसे जिलानेकी प्रार्थना

की है।' युधिष्ठिरकी बुद्धिमत्ता तथा धर्ममत्ताकी परीक्षाके लिये स्वयं धर्मने ही यह लीला की थी। उनकी इस अद्भुत समताको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना परिचय देकर चारों भाइयोंको जीवित कर दिया। धर्मने उन्हें यह भी कहा कि 'मैं ही मृग बनकर उस ब्राह्मणके मन्थनकाष्ठको ले गया था; लो, यह मन्थनकाष्ठ तुम्हारे सामने है।' युधिष्ठिरने वह मन्थनकाष्ठ उस ब्राह्मणको ले जाकर दे दिया।

युधिष्ठिरको भगवान् श्रीकृष्णमें बड़ी आस्था थी। श्रीकृष्ण उनके ममेरे भाई थे और उम्रमें छोटे थे। अतएव उनमें पारस्परिक आत्मीयता और प्रेमका होना स्वाभाविक था। परंतु युधिष्ठिर श्रीकृष्णपर बड़ा भरोसा रखते थे। जब भगवान् वासुदेव दूत बनकर कौरव-सभामें जा रहे थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरने कहा था—

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम्।
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित् सुहृत्॥
(उद्योग० ७२। ७८)

'श्रीकृष्ण! तुम्हारे समान हमारा प्रिय, हितचिन्तक, सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाला तथा सब प्रकारके निश्चयका ज्ञाता दूसरा सुहृद् कौन है?'

अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान् वेत्थ भाषितुम्।
यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः॥
(उद्योग० ७२। ९२)

'श्रीकृष्ण! तुम हमको जानते हो, कौरवोंको जानते हो, हम दोनोंके स्वार्थको जानते हो, बातचीत करना भी जानते हो। अतएव जिस बातसे हमारा हित हो, वह दुर्योधनको समझाओ।'

यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि 'दुर्योधन' के स्थानमें 'सुयोधन' शब्दका प्रयोग करना सौजन्यको अभिव्यक्त करता है। 'अस्मत्' शब्द कौरव और पाण्डव दोनोंका बोधक है तथा इससे महाराज युधिष्ठिरकी सदाशयताका पता लगता है।

महाराज युधिष्ठिर दुर्गाके भक्त थे। विराटपर्वके छठे अध्यायमें उनके द्वारा की गयी दुर्गाकी स्तुति है। दुर्गाजीने प्रकट होकर उनको वरदान दिया था कि अज्ञातवासमें विराटनगरमें रहते हुए कोई उनको पहचान न सकेगा।

युधिष्ठिर जैसे सदाचारसम्पन्न थे वैसे ही विनयी भी थे। वे समयोचित व्यवहारमें बड़े कुशल थे, गुरुजनोंकी मान-मर्यादाका सदा ध्यान रखते थे। कठिन-से-कठिन समयमें भी वे शिष्टाचारकी मर्यादाको नहीं भूलते थे। महाभारत-युद्धके आरम्भमें जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये संनद्ध खड़ी थीं, उस समय इन्होंने सबसे पहले शत्रुसेनाके बीचमें जाकर पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं कृप तथा मामा शल्यके चरणोंमें प्रणाम किया और आशीर्वाद माँगा। उनके इस विनयपूर्ण एवं शिष्टजनोचित व्यवहारसे वे सभी गुरुजन बड़े प्रसन्न हुए और उनकी हृदयसे विजय-कामना की। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके इस आदर्श व्यवहारका अनुमोदन किया।

युधिष्ठिरकी सत्यवादिता तो जगद्विख्यात थी। सब कोई जानते थे कि युधिष्ठिर भय अथवा लोभवश कभी असत्य नहीं बोलते। उनकी सत्यवादिताका ही फल था कि उनके रथके पहिये सदा पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे रहा करते थे। जीवनमें केवल एक बार इन्होंने असत्य भाषण किया। इन्होंने द्रोणाचार्यके सामने अश्वत्थामा हाथीके मारे जानेके बहाने झूठ-मूठ यह कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' इसी एक बारकी सत्यच्युतिके फलस्वरूप इनके रथके पहिये पृथ्वीमें सटकर चलने लगे और इन्हें मुहूर्तभरके लिये कल्पित नरकका दृश्य भी देखना पड़ा।

युधिष्ठिरकी उदारता भी अलौकिक थी। जब कौरवोंने किसी प्रकार भी इनका राज्य लौटाना मंजूर नहीं किया तो इन्होंने केवल पाँच गाँव लेकर संतोष करना स्वीकार कर लिया और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्योधनको यह कहला भेजा कि 'यदि वह हमें हमारे इच्छानुसार केवल पाँच गाँव देना मंजूर कर ले तो हम युद्ध नहीं करेंगे।' परंतु दुर्योधनने इन्हें सूईकी नोकके बराबर जमीन देना भी स्वीकार नहीं किया। तब इन्हें बाध्य होकर युद्ध छेड़ना पड़ा। इतना ही नहीं, जब दुर्योधनकी सारी सेना मर-खप गयी और वह स्वयं एक तालाबमें जाकर छिप रहा, उस समय इन्होंने उसके पास जाकर उसे अन्तिम बार युद्धके लिये ललकारते हुए यहाँतक कह दिया कि 'हममेंसे जिस-किसीके साथ तुम युद्ध कर सकते हो। हममेंसे किसी एकपर भी तुम द्वन्द्वयुद्धमें विजय पा लोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा।' भला, इस प्रकारकी शर्त कोई दूसरा कर सकता है। जिस दुर्योधनका गदायुद्धमें भीमसेन भी, जो पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान् एवं गदायुद्धमें प्रवीण थे, मुकाबला करते हिचकते थे, उसके साथ यह शर्त कर लेना कि 'हममेंसे किसी एकको तुम हरा दोगे तो राज्य तुम्हारा हो जायगा' युधिष्ठिर-जैसे महानुभावका ही काम था। अन्तमें भीमसेनके साथ उसका युद्ध होना निश्चित हुआ और भीमसेनके द्वारा वह मारा गया।

इतना ही नहीं, युद्ध-समाप्तिके बाद जब युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो गया और धृतराष्ट्र-गान्धारी इन्हींके पास रहने लगे, उस समय इन्होंने उनके साथ ऐसा सुन्दर बर्ताव किया कि उन्हें अपने पुत्रोंकी मृत्युका दुःख भूल गया। इन्होंने दोनोंको इतना सुख पहुँचाया, जितना उन्हें अपने

पुत्रोंसे भी नहीं मिला था। ये सारा राज-काज उन्हींसे पूछ-पूछकर करते थे और राज-काज करते हुए भी इनकी सेवाके लिये बराबर समय निकाला करते थे। तथा इनकी माता कुन्ती सम्राज्ञी द्रौपदी तथा अपनी अन्य बहुओंके साथ देवी गान्धारी-की सेवा किया करती थीं। ये इस बातका सदा ध्यान रखते थे कि उनके सामने कभी कोई ऐसी बात न हो, जिससे उनका पुत्र-शोक उमड़ पड़े। अन्तमें जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने अपनी शेष आयु वनमें बितानेका निश्चय किया, उस समय युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ और ये स्वयं उनके साथ वन जानेको तैयार हो गये। बड़ी कठिनतासे व्यासजी-ने आकर इन्हें समझाया, तब कहीं ये धृतराष्ट्र-गान्धारीको वन भेजनेपर राजी हुए। फिर भी कुन्तीदेवी तो अपनी जेठ-जेठानीके साथ ही गयीं और अन्त समयतक उनकी सेवा-में रहीं और उनके साथ ही प्राण-त्याग भी किया। वन जाने-से पहले धृतराष्ट्रने अपने मृत पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंका विधिपूर्वक अन्तिम बार श्राद्ध करना चाहा और उन्हींके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको अपरिमित दान देना चाहा। युधिष्ठिरको जब इनकी इच्छा मालूम हुई तो इन्होंने विदुर-जीके द्वारा यह कहलाया कि 'अर्जुनसहित मेरा प्राणपर्यन्त सर्वस्व आपके अर्पण है।' एवं उनकी इच्छासे भी अधिक खुले हाथों खर्च करनेका प्रबन्ध कर दिया। फिर तो धृतराष्ट्र-ने बड़े विधि-विधानसे अपने सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको भरपूर दान दिया। उस समय महाराज युधिष्ठिर-ने धृतराष्ट्रके आज्ञानुसार धन और रत्नोंकी नदी-सी बहा दी। जिसके लिये सौकी आज्ञा हुई, उसे हजार दिया गया। जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनको जाने लगे, उस समय पाण्डवलोग अपनी रानियोंके साथ पैदल ही बड़ी दूरतक उन्हें पहुँचाने गये। जिन धृतराष्ट्रकी बदौलत पाण्डवोंको भारी-भारी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा, जिनके कारण उन्हें अपने पैतृक अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा और कितनी बार वनवासके कष्ट उठाने पड़े, जिनकी उपस्थितिमें उनके पुत्रों-ने सती-शिरोमणि द्रौपदीका भरी सभामें घोर अपमान किया और जिन्होंने उन्हें दर-दरका भिखारी बना दिया और पाँच गाँवतक देना मंजूर नहीं किया—जिसके फलस्वरूप दोनों ओरसे इतना भीषण नरसंहार हुआ—उन्हीं धृतराष्ट्रके प्रति इतना निश्छल प्रेम-भाव रखना और अन्ततक उन्हें सुख पहुँचानेकी पूरी चेष्टा करना युधिष्ठिर-जैसी महान् आत्माका ही काम था। वैरीके प्रति ऐसा सद्व्यवहार जगत्के इतिहास-में कम ही देखनेको मिलेगा।

महाराज युधिष्ठिरकी शरणागतवत्सलता तथा प्रेम तो और भी विलक्षण था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमन तथा यादवोंके संहारकी बात जब इन्होंने सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने सोचा कि 'जब हमारे परम आत्मीय तथा हितू श्रीकृष्ण ही इस धरातलपर न रहे, जिनकी बदौलत हमने सब कुछ पाया था, तो फिर हमारे लिये यह राज्य-सुख किस कामका और इस जीवनको ही रखनेसे क्या प्रयोजन। श्रीकृष्णकी बात तो अलग रही, वे तो पाण्डवोंके जीवन-प्राण एवं सर्वस्व ही थे। उनके ऊपर तो उनका सब कुछ निर्भर था। कौरवोंके विनाशपर ही उन्हें इतना दुःख हुआ था कि विजय तथा राज्यप्राप्तिके उपलक्ष्यमें हर्ष मनानेके बदले वे सब कुछ छोड़कर वन जानेको तैयार हो गये थे। बड़ी कठिनतासे भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यास आदिने उन्हें समझा-बुझाकर राज्याभिषेकके लिये तैयार किया था। भीष्मपितामहने भी धर्मका उपदेश देकर इनका शोक दूर करनेकी चेष्टा की, तथा भीष्मजीकी आज्ञा मानकर इन्होंने राज्य भी किया; परंतु स्वजनवधसे होनेवाली ग्लानि इनके चित्तसे सर्वथा दूर नहीं हुई। अब श्रीकृष्णके परमधाम-गमनकी बात सुनकर तो इन्होंने वन जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अर्जुनके पौत्र कुमार परीक्षित्को राजगद्दीपर बिठाकर तथा कृपाचार्य एवं धृतराष्ट्रपुत्र युयुत्सुको उनकी देखभालमें नियुक्त कर वे अपने चारों भाई तथा द्रौपदीको साथ लेकर हस्तिनापुरसे चल पड़े। पृथ्वी-प्रदक्षिणाके उद्देश्यसे कई देशोंमें घूमते हुए वे हिमालयको पारकर मेरुपर्वतकी ओर बढ़ रहे थे। रास्तेमें देवी द्रौपदी तथा इनके चारों भाई एक-एक करके क्रमशः गिरते गये। इनके गिरनेकी भी परवा न कर युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। इतनेमें ही स्वयं देवराज इन्द्र रथपर चढ़कर इन्हें लेनेके लिये आये और इन्हें रथपर चढ़ जानेको कहा। युधिष्ठिरने अपने भाइयों तथा पतिप्राणा देवी द्रौपदीके बिना अकेले रथपर बैठना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रके यह विश्वास दिलानेपर कि 'वे लोग तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं,' इन्होंने रथपर चढ़ना स्वीकार किया। परंतु इनके साथ एक कुत्ता भी था, जो शुरूसे ही इनके साथ चल रहा था। युधिष्ठिरने चाहा कि वह कुत्ता भी उनके साथ चले। इन्द्रके आपत्ति करनेपर इन्होंने उनसे साफ कह दिया कि 'इस स्वामिभक्त कुत्तेको छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग जानेके लिये तैयार नहीं हूँ।' यह कुत्ता और कोई नहीं था, स्वयं धर्म ही युधिष्ठिरकी परीक्षाके लिये उनके साथ हो लिये थे। युधिष्ठिरकी इस अनुपम शरणागतवत्सलताको देखकर वे अपने असली रूपमें प्रकट हो गये और युधिष्ठिरको रथमें बिठाकर इन्द्र एवं अन्य देवताओं तथा देवर्षियोंके साथ ऊपरके लोकोंमें चले गये। उस समय देवर्षि नारदने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि महाराज युधिष्ठिरसे पहले कोई भौतिक शरीरसे स्वर्ग गया हो ऐसा सुननेमें नहीं आया। ऊपर जाते हुए युधिष्ठिरने नक्षत्रों एवं तारोंको देवताओंके लोकोंके रूपमें देखा। फिर भी देवराज इन्द्रसे उन्होंने यही कहा कि 'जहाँ मेरे भाई-बन्धु

महाबली भीमसेन

तथा देवी द्रौपदी हों, वहीं मुझे ले चलिये; वहीं जानेपर मुझे शान्ति मिलेगी, अन्यत्र नहीं । जहाँ मेरे भाई नहीं हैं, वह स्वर्ग भी मेरे किस कामका !' धन्य बन्धु-प्रेम !

आगे जाकर जब देवराज इन्द्रकी मायासे इन्हें नरकका दृश्य दिखायी पड़ा और वहाँ इन्होंने अपने भाइयोंके कराहने एवं रोनेकी आवाज सुनी, साथ ही इन्होंने लोगोंको यह कहते भी सुना कि 'महाराज ! थोड़ा रुक जाइये, आपके यहाँ रहनेसे हमें नरककी पीड़ा नहीं सताती', तब तो ये वहीं रुक गये और जो देवदूत उन्हें वहाँ ले आया था, उससे इन्होंने कहा कि 'हम तो यहीं रहेंगे; जब हमारे रहनेसे यहाँके जीवोंको सुख मिलता है तो यह नरक ही हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर है ।' धन्य दयालुता !

थोड़ी ही देर बाद वह दृश्य गायब हो गया और वहाँ इन्द्र, धर्म आदि देवता आ पहुँचे । वे सब इनके इस सुन्दर भावसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बतलाया कि 'तुमने छलसे गुरु द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसीलिये तुम्हें छलसे नरकका दृश्य दिखाया गया । तुम्हारे सब भाई दिव्यलोकमें पहुँच गये हैं ।' इसके बाद युधिष्ठिर भगवान्‌के परमधाममें गये और वहाँ इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके उसी रूपमें दर्शन किये, जिस रूपमें वे पहले उन्हें मर्त्यलोकमें देखते आये थे । वहीं उन्होंने श्रीकृष्णकी परिचर्या करते हुए अर्जुनको भी देखा । अपने भाइयों तथा देवी द्रौपदीको भी उन्होंने दूसरे-दूसरे स्थानोंमें देखा । अन्तमें वे अपने पिता धर्मके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । इस प्रकार युधिष्ठिरने अपने धर्मके बलसे दुर्लभ गति पायी ।

युधिष्ठिरकी पवित्रताका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहाँका वातावरण अत्यन्त पवित्र हो जाता था । जिस समय पाण्डव अज्ञातरूपसे राजा विराटके यहाँ रह रहे थे, उस समय कौरवोंने इनका पता लगाना चाहा । उसी प्रसङ्गमें भीष्मपितामहने, जो पाण्डवोंके प्रभावको भलीभाँति जानते थे, उन्हें बतलाया कि 'राजा युधिष्ठिर जिस नगर या राष्ट्रमें होंगे, वहाँकी जनता भी दानशील, प्रियवादिनी, जितेन्द्रिय और लज्जाशील होगी । जहाँ वे रहते होंगे, वहाँके लोग संयमी, सत्यपरायण तथा धर्ममें तत्पर होंगे; उनमें ईर्ष्या, अभिमान, मत्सर आदि दोष नहीं होंगे । वहाँ हर समय वेदध्वनि होती होगी, यज्ञ होते होंगे, ठीक समयपर वर्षा होती होगी, वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण तथा सब प्रकारके भयों एवं उपद्रवोंसे शून्य होगी, वहाँ गायें अधिक एवं हृष्ट-पुष्ट होंगी' इत्यादि । यही नहीं, हम ऊपर देख ही चुके हैं कि उनकी संनिधिसे नरकके प्राणियोंतकको सुख-शान्ति मिलती थी । राजा नहुषने, जिन्हें महर्षि अगस्त्यके शापसे अजगरकी योनि प्राप्त हुई थी और जिन्होंने उसी रूपमें भीमसेनको अपने चंगुलमें फँसा लिया था, युधिष्ठिरके दर्शन तथा उनके साथ सम्भाषण करने मात्रसे अजगरकी योनिसे छूटकर पुनः स्वर्ग प्राप्त किया । ऐसे पुण्यश्लोक युधिष्ठिरके पावन चरित्रका जितना ही मनन किया जायगा, उतनी ही पवित्रता प्राप्त होगी ।

'धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन ।'

महाबली भीमसेन

महाभारतके प्रमुख पात्रोंमें भीमसेन भी अपने ढंगके अद्वितीय योद्धा थे । परम पराक्रमी भीमसेनका जन्म वायुदेवसे हुआ था । अतएव वे देवपुत्र थे । वायुदेवके अवतार थे । उनके जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी कि यह कुमार समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ होगा । वस्तुतः शारीरिक बलमें भीमसेन अपने युगके सर्वश्रेष्ठ योद्धा हुए । बचपनमें वे दौड़ने, खेल-कूद करने, खान-पान तथा नाना प्रकारकी बालक्रीडाओंमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका मानमर्दन किया करते थे । परंतु ऐसा वह बालस्वभावके कारण ही करते थे, धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे उन्हें द्वेष न था । किंतु उनकी ये बालक्रीडाएँ दुर्योधनको बहुत खलतीं । वे बराबर भीमसेनका अनिष्ट सोचा करते थे । एक दिन दुर्योधनने सोचा कि भीमको किसी प्रकार धोखेसे गङ्गामें डुबो दें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनको कैद करके निष्कण्टक राज्य करें । इस दुरभिसन्धिको पूरा करनेकी उन्होंने सारी योजना बना डाली, तथा जलक्रीडाके लिये पाण्डवोंको साथ लेकर गङ्गा-तटपर गये । उन्होंने भोजनमें कालकूट विष मिलाकर पर्याप्त मात्रामें भीमसेनको खिला दिया । भीमसेनपर धीरे-धीरे विषका प्रभाव बढ़ने लगा और वे अचेत होने लगे । तब दुर्योधनने उनको वृक्षकी लताओंसे बाँधा, और गङ्गाजीके ऊँचे तटसे जलमें ढकेल दिया । भीमसेन बेहोशीकी दशामें जलमें डूबकर नागलोकमें जा पहुँचे । वहाँ नागोंने उनको खूब डँसा, जिससे कालकूट विषका प्रभाव नष्ट हो गया । तब भीमसेन होशमें आ गये और अपने बन्धनको तोड़कर सर्पोंको मारने लगे । सर्प भयके मारे नागराज वासुकिके पास गये और उनसे भीमसेनकी शिकायत की । तब नागराज वासुकि और नागराज आर्यक दोनों भीमसेनको देखनेके लिये चले । आर्यक पृथाके पिता शूरसेनके नाना थे । उन्होंने अपने दौहित्रके दौहित्र भीमसेनको पहचानकर छातीसे लगा लिया । नागराज वासुकि भी भीमसेनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि 'इनका कौन-सा प्रिय कार्य किया जाय?' आर्यकने कहा—'नागराज ! यदि आप संतुष्ट हैं तो इस बालकको उस कुण्डका अमृत-रस पिलाइये, जिससे एक हजार हाथियोंका बल प्राप्त होता है ।'

तब नागोंने भीमसेनके लिये स्वस्तिवाचन किया । उसके बाद वे उस कुण्डका रस पीने लगे और एक-एक करके आठ कुण्डोंका रस पी लिया और तत्पश्चात् नागोंकी दी हुई दिव्य शय्यापर सो गये । आठ दिनके बाद जब वह रस पच गया, तब वे जगे । उस समय उनको अपरिमित बल प्राप्त हो गया था । उनको जगा हुआ देखकर नागोंने आश्वासन देते हुए कहा—

यत् ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसम्भृतः ।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यति ॥

'हे महाबाहो ! तुमने जो यह शक्तिपूर्ण रस पीया है, इसके कारण तुम्हारा बल दस हजार हाथियोंके बराबर होगा, और तुम युद्धमें अजेय हो जाओगे ।'

× × ×

भीमसेनमें अपरिमित बल हो जानेके पश्चात् गर्वका बढ़ जाना स्वाभाविक था । अब वे और अधिक धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये दुःखदायी बन गये । जब दुर्योधनने कर्णको अङ्गराजका राजा बनाया और उसी अवसरपर उसके पिता अधिरथने वहाँ पहुँचकर 'बेटा, बेटा' पुकारते हुए आनन्दसे कर्णको हृदयसे लगाया, तो भीमसेनसे रहा न गया । वे अर्जुनके साथ युद्धके लिये तैयार कर्णसे कह उठे—'अरे सूतपुत्र ! तू तो अर्जुनके हाथसे मरने योग्य भी नहीं है । तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथमें लेनी चाहिये; क्योंकि यही तेरे कुलके अनुरूप है ।'

भीमसेनकी यह विशेषता थी कि ये जहाँ कहीं अन्याय होता देखते, वहाँ उसके प्रतिकारके लिये तुरंत तैयार हो जाते थे । परंतु वे अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके बड़े आज्ञाकारी थे । कोई भी काम उनकी मर्जीके बिना नहीं करते । दस हजार हाथियोंका बल रखते हुए भी भीमसेन अपने बड़े भाईके इशारेपर नाचते थे । जब कोई बड़ा काम आ जाता, जिसको पूरा करनेके लिये बलकी आवश्यकता होती, वहाँ भीमसेन तैयार रहते थे । कौरवोंके अत्याचारोंको ये इसलिये सह लेते थे कि ऐसी ही उनके बड़े भाईकी मर्जी थी । महाबलवान् होनेके कारण भीमसेन अपनी माता और भाइयोंके बहुत काम आते थे । वारणावतके लाक्षागृहसे निकलनेके बाद घने जंगलमें इनकी जब हिडिम्ब राक्षससे मुठभेड़ हुई तो भीमसेनने ही उसे पछाड़कर मार डाला ।

इसी प्रकार एकचक्रा नगरीमें जब पाण्डवलोग एक ब्राह्मणके घर रहते थे, उस समय पाँचों भाई भिक्षाटन करके भिक्षान्न लाकर माताको समर्पित करके उनकी आज्ञासे बाँटकर भोजन करते थे । एक दिन चारों भाई भीमसेनको माताके पास छोड़कर भिक्षाके लिये चले गये । उस दिन उस ब्राह्मणके घरमें रोना-पीटना मच गया । यह सुनकर भीमसेनने माता कुन्तीसे कहा—

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् ।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥
(आदिपर्व १५६।१६)

'माँ ! पहले यह पता लगाओ कि इस ब्राह्मणको क्या दुःख है, और वह कैसे प्राप्त हुआ है । जान लेनेपर अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी उसको दूर करनेकी चेष्टा करूँगा ।' भीमसेनके इस वाक्यसे उनकी पर-दुःखकातरता, ब्राह्मणके प्रति भक्ति-भावना आदिका उज्ज्वल प्रमाण मिलता है । पश्चात् माताकी आज्ञासे भीमसेनने वनमें जाकर बकासुरका वध करके उस ब्राह्मण-परिवारकी विपत्ति दूर की, तथा साथ ही उस राज्यके निवासियोंके कष्टको सदाके लिये दूर कर दिया । इस प्रकार अपने जीवनको खतरेमें डालकर भी दूसरोंका कल्याण करना भीमसेनका सहज स्वभाव था । बकासुरके मरनेके बाद वहाँ राक्षसोंकी बाधा सदाके लिये दूर हो गयी ।

भीमसेनमें युद्धप्रियता पहले दर्जेकी थी । ये सीधे युद्धके द्वारा न्यायका समर्थन करना चाहते थे, अन्यायके विरुद्ध तत्काल कमर कसकर तैयार हो जाते थे । क्षात्रधर्मकी मूर्ति थे । अकारण किसीको संताप देनेवाले नहीं थे, और न किसीका वध ही करते थे । द्रौपदीके स्वयंवरके अवसरपर ब्राह्मणवेषधारी भीमसेनने मल्लयुद्धमें जब शल्यको पछाड़ दिया और जानसे नहीं मारा तो दर्शकगण देखकर आश्चर्य करने लगे ।

तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः ।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद् बलिनं बली ॥
(आदि० १८९ । २९)

वहाँ ब्राह्मणलोग भीमसेनके इस अपूर्व पराक्रम और शल्यके ऊपर प्रदर्शित उनकी उदारताको देखकर हँसने लगे ।

द्रौपदीके साथ छेड़खानी करनेवाले कीचक तथा उसके परिवारके एक सौ महाबली कीचकोंका वध करके भीमसेनने विराटकी प्रजाको उनके अत्याचारसे मुक्त किया था ।

भीमसेन वीरताकी प्रतिमूर्ति थे । जब उनसे कभी यह कहा जाता कि इस दुष्कर कार्यको भीम ही कर सकते हैं तो उनके उत्साहका ठिकाना नहीं रहता । उनके इस अपूर्व उत्साहको देखकर बहुधा युधिष्ठिरको आशङ्का हो जाती थी । इसी कारण जब जरासंधका वध भीमसेन करेंगे, यह प्रस्ताव भगवान् श्रीकृष्णने किया तो युधिष्ठिर जरासंधकी अजेय सैन्यशक्तिका विचार करके शङ्कित हो उठे । तब भीमसेन उत्साहप्रद तथा नीतिगर्भित वचन बोले—

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति ।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति ॥

(सभापर्व १५ । ११)

अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम् ।
जयेत्सम्यक् प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान् ॥

(१५ । १२)

'महाराज ! जो राजा उद्योग नहीं करता तथा दुर्बल होकर भी बिना उपाय किये बलवान्से भिड़ जाता है, वे दोनों वल्मीकके समान सहज ही नष्ट हो जाते हैं । परंतु जो आलस्य छोड़कर उत्तम युक्ति और नीतिसे काम लेता है, वह दुर्बल होनेपर भी बलवान् शत्रुको जीत लेता है, और अपना कल्याणसाधन करता है ।' भीमसेनकी इस युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि वे केवल अद्भुत वीर और योद्धा ही नहीं थे, बल्कि नीतिशास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता थे । अतएव भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे मगधमें भीमसेन और जरासंधका मल्लयुद्ध शुरू हो गया । अन्तमें भगवान्ने एक सरकंडा लेकर उसे चीरकर दोनों ओर फेंकते हुए भीमसेनको उसी प्रकार करनेका संकेत दिया । भीमसेनने संकेत पा जरासंधकी दोनों टाँगें पकड़ लीं और उसे दो हिस्सोंमें चीरकर विपरीत दिशाओंमें फेंककर मार डाला । इस प्रकार भारतके उस कालके सबसे शक्तिशाली राजा जरासंधका नाश भीमसेनके ही द्वारा हुआ ।

भीमसेनकी नीतिज्ञताका पता उस समय चलता है, जब भगवान् श्रीकृष्ण संधिका प्रस्ताव लेकर कौरव-सभाके लिये प्रस्थान करते हैं । भीमसेन कहते हैं, 'हे मधुसूदन ! कौरवोंके बीचमें आप ऐसी बातें करें जिनसे शान्ति स्थापित हो जाय । दुर्योधन स्वभावसे ही दुरात्मा है, दुराग्रही है । वह मर जायगा, पर झुकेगा नहीं । अतएव आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल और मधुर वाणीमें धीरे-धीरे कहें । आपका कथन धर्म और अर्थसे युक्त तथा कल्याणकारी हो । उसमें तनिक भी उग्रता न आने पावे । साथ ही यह भी ध्यान रक्खें कि आपकी अधिकांश बातें उसकी रुचिके अनुकूल हों । श्रीकृष्ण ! आप वहाँ बूढ़े पितामह भीष्मजी तथा अन्य सभासदोंको ऐसा करनेके लिये कहें, जिससे हम सब भाइयोंमें सौहार्द बना रहे, और दुर्योधन भी शान्त हो जाय ।'—शान्तिप्रियताके भावोंसे भरे हुए इन शब्दोंसे भीमसेनके हृदयकी विशालताका सहज ही अनुमान हो जाता है । अन्तमें अपने कथनको समाप्त करते हुए वे कहते हैं—

अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥

(उद्योग० ७४ । २३)

'मैं इस प्रकार शान्ति स्थापनकी बात कह रहा हूँ । युधिष्ठिर भी शान्तिकी ही प्रशंसा करते हैं, और अर्जुन भी युद्धके इच्छुक नहीं हैं; क्योंकि अर्जुनके हृदयमें बड़ी दया भरी हुई है ।' इस वचनसे स्पष्ट हो जाता है कि भीमसेन जितने अधिक शक्तिसम्पन्न पुरुष थे, उतनी ही अधिक उनके हृदयमें दया भरी थी ।

द्रौपदीके चीरहरणके प्रसङ्गमें कौरव सभामें दुःशासनके दुष्कृत्यको देखकर महाराज युधिष्ठिरके वहाँ रहते ही आपेसे बाहर होकर भीमसेनने सब कौरवोंको युद्धमें मार डालने तथा दुःशासनको मारकर उसके वक्षःस्थलको फाड़कर रक्त पान करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली । और इस प्रतिज्ञाको उन्होंने पूरा किया ।

भीमसेनमें वीरत्वका गर्व था । इसलिये कभी कभी वे उद्धत भी हो जाते थे । महाभारतके युद्धमें जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग किया तो भगवान् श्रीकृष्णने सबको कह दिया कि इस दिव्यास्त्रसे बचनेका एकमात्र यही उपाय है कि हाथसे हथियार डालकर अपने वाहनोंसे नीचे उतर जाओ । भगवान् वासुदेवकी इस बातको सुन सब लोगोंने तदनुसार आचरण किया, परंतु भीमसेन न माने । वे अर्जुन और श्रीकृष्णकी अवहेलना करके आगे बढ़े । नारायणास्त्रके सामने धृष्टता करना महा अनर्थप्रद है, यह सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनको बलपूर्वक रथसे उतारा ।

धृतराष्ट्रके मुखसे भीमसेनके गुणोंका वर्णन ध्यान देने योग्य है—

नहि तस्य महाबाहो शक्रप्रतिमतेजसः ।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि ॥
अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।
महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद् भीममाहवे ॥
येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ।
कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यति ॥

(उद्योगपर्व अ० ५१)

'महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी है । मैं अपनी सेनामें किसीको नहीं देखता, जो युद्धमें उसका सामना कर सके । वह अस्त्रविद्यामें द्रोण और अर्जुनके समान, वेगमें वायुके समान और क्रोधमें महेश्वरके तुल्य है । ऐसे भीमको युद्धमें कौन मार सकता है ? जिसने पूर्वकालमें भयङ्कर बलशाली यक्ष-राक्षसोंका वध किया है, युद्धमें उसका वेग कोई मनुष्य कैसे सहन कर सकता है ।' धृतराष्ट्रका कथन सर्वथा सत्य है । भीमसेन अद्वितीय योद्धा थे, और महाभारतके युद्धमें उन्होंने खूब पराक्रम दिखलाया । अन्तमें दुर्योधनको मल्लयुद्धमें पछाड़कर पाण्डवोंके लिये उन्होंने विजयश्री प्राप्त की ।

श्रीकृष्णसखा अर्जुन

अर्जुन साक्षात् नर-ऋषिके अवतार थे। ये भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, सखा एवं प्रेमी थे तथा उनके हाथके एक उत्तम यन्त्र थे। इनको निमित्त बनाकर भगवान्ने महाभारत-युद्धमें बड़े-बड़े योद्धाओंका संहार किया और इस प्रकार अपने अवतारके अन्यतम उद्देश्य भूभारहरणको सिद्ध किया। इस बातको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके विश्व-रूपदर्शनके प्रसङ्गमें यह कहते हुए स्वीकार किया है कि 'ये सब तुम्हारे शत्रु मेरेद्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं, तुम्हें इनके वधमें केवल निमित्त बनना होगा' (११ । ३३)। इनकी भक्ति तथा मित्रताको भी भगवान्ने गीतामें ही 'भक्तोऽसि मे सखा चेति,' 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' आदि शब्दोंमें स्वीकार किया है। जिसे स्वयं भगवान् अपना भक्त और प्यारा मानें और उद्घोषित करें, उसके भक्त होनेमें दूसरे किसी प्रमाणकी क्या आवश्यकता है। गीताके अन्तमें 'करिष्ये वचनं तव' यह कहकर अर्जुनने स्वयं भगवान्के हाथका यन्त्र बननेकी प्रतिज्ञा की है और महाभारतके अनुशीलनसे इस बातका पर्याप्त प्रमाण भी मिलता है कि उन्होंने अन्ततक इस प्रतिज्ञाका भलीभाँति निर्वाह किया। गीतासे ही इस बातका भी प्रमाण मिलता है कि ये भगवान्को अपना सखा मानते थे और उनके साथ बराबरीका नाता भी रखते थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन अनेकों बार भिन्न-भिन्न अवसरोंपर एवं भिन्न-भिन्न स्थानोंमें महीनों साथ रहे थे और ऐसे अवसरोंपर स्वाभाविक ही उनका उठना-बैठना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सोना-लेटना साथ ही होता था और ऐसी स्थितिमें उनमें परस्पर किसी प्रकारका संकोच नहीं रह गया था। दोनोंका एक-दूसरेके साथ खुला व्यवहार था, अभिन्नहृदयता थी। दोनोंका एक-दूसरेके अन्तःपुरमें भी निःसंकोच आना-जाना, उठना-बैठना होता था, एक दूसरेसे किसी प्रकारका पर्दा नहीं था। इन दोनोंमें कैसा प्रेम था, इसका वर्णन संजयने धृतराष्ट्रको पाण्डवोंका संदेश कहते समय सुनाया था। युद्धके पूर्व जब संजय कौरवोंका संदेश लेकर उपप्लव्यमें पाण्डवोंके पास गये, उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको उन्होंने किस अवस्थामें देखा, इसका वर्णन करते हुए संजय कहते हैं—'महाराज! आपका संदेश सुनानेके लिये मैं अर्जुनके अन्तःपुरमें गया। उस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं' इत्यादि।

× × ×

जब पाण्डव जुएकी शर्तके अनुसार वनमें चले जाते हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आते हैं। उस समय वे अर्जुनके साथ अपनी अभिन्नताका उल्लेख करते हुए कहते हैं—'अर्जुन! तुम एकमात्र मेरे हो और मैं एकमात्र तुम्हारा हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे हैं और जो तुम्हारे हैं, वे मेरे हैं। जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो तुम्हारा प्रेमी है, वह मेरा प्रेमी है। तुम नर हो और मैं नारायण। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, हम दोनों एक हैं।' अर्जुन श्रीकृष्णको कितने प्रिय थे तथा दोनोंमें कैसी अभिन्नता थी—इसका प्रमाण महाभारतकी कई घटनाओंसे मिलता है। जब अर्जुन अपने वनवासके समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण उनका समाचार पाते ही उनसे मिलनेके लिये द्वारकासे प्रभासक्षेत्रको जाते हैं और वहाँसे उन्हें रैवतक पर्वतपर ले आकर कई दिन उनके साथ वहीं बिताते हैं। रैवतक पर्वतसे दोनों द्वारका चले आते हैं और द्वारकामें अर्जुन श्रीकृष्णके ही महलोंमें कई दिनोंतक उनके प्रिय अतिथिके रूपमें रहते हैं और रातको दोनों साथ सोते हैं। वहाँ जब श्रीकृष्णको पता चलता है कि अर्जुन उनकी बहिन सुभद्रासे विवाह करना चाहते हैं तो वे उनके बिना पूछे ही इसके लिये अनुमति दे देते हैं और उसे हरकर ले जानेकी युक्ति भी बतला देते हैं। इतना ही नहीं, अपना रथ और हथियार भी उन्हें दे देते हैं। एवं सुभद्राहरण हो जानेके बाद जब बलरामजी इसका विरोध करते हैं तो वे उन्हें समझा-बुझाकर मना लेते हैं और वहीं द्वारकामें सुभद्राका पाणिग्रहण हो जाता है। यही नहीं, खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रसे यह वरदान माँगते हैं कि उनकी अर्जुनके साथ मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय। खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें ही अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नताका एक और प्रमाण मिलता है। खाण्डववनके भयङ्कर अग्निकाण्डमेंसे मय दानव निकल भागनेकी चेष्टा कर रहा था। अग्निदेव मूर्तिमान् होकर उसे जला डालनेके लिये उसके पीछे दौड़ रहे थे। उनकी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना चक्र लिये उसे मारनेको प्रस्तुत थे। मय दानवने अपने बचनेका कोई उपाय न देखकर अर्जुनकी शरण ली और अर्जुनने उसे अभयदान दे दिया। अब तो श्रीकृष्णने भी अपना चक्र वापस ले लिया और अग्निदेवने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया। मय दानवके प्राण बच गये। मय दानवने इस उपकारके बदलेमें अर्जुनकी कुछ सेवा करनी चाही। अर्जुनने कहा—'तुम श्रीकृष्णकी सेवा कर दो, इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।' मय दानव बड़ा निपुण शिल्पी था। श्रीकृष्णने उससे महाराज युधिष्ठिरके लिये एक बड़ा सुन्दर सभाभवन तैयार करवाया। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्ण सदा एक दूसरेका प्रिय करते रहते थे।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनको प्यार करते थे, उसी प्रकार अर्जुन भी श्रीकृष्णको अपना परम आत्मीय एवं हितू समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी एक

अरब नारायणी सेनाको न लेकर अकेले और निहत्थे श्रीकृष्ण-को ही सहायकके रूपमें वरण किया । जहाँ भगवान् एवं उनके ऐश्वर्यका मुकाबला होता है, वहाँ सच्चे भक्त ऐश्वर्यको त्यागकर भगवान्का ही वरण करते हैं । श्रीकृष्णने भी उनके प्रेमके वशीभूत होकर युद्धमें उनका सारथ्य करना स्वीकार किया । अर्जुन साथ-ही-साथ अपने जीवनरूप रथकी बागडोर भी उन्हींके हाथोंमें सौंपकर सदाके लिये निश्चिन्त हो गये । फिर तो अर्जुनकी विजय और रक्षा—योग और क्षेम—दोनोंकी चिन्ता सर्वसमर्थ श्रीकृष्णके कंधोंपर चली गयी । उनकी तो यह प्रतिज्ञा ही ठहरी कि जो कोई अनन्यभावसे उनका चिन्तन करते हुए अपनी सारी चिन्ताएँ उन्हींपर डाल देते हैं, उनके योगक्षेमका भार वे अपने कंधोंपर ले लेते हैं । कोई भी अपना भार उनके ऊपर डालकर देख ले ।

बस, फिर क्या था । अब तो अर्जुनको जिताने और भीष्म-जैसे दुर्दान्त पराक्रमी वीरोंसे उनकी रक्षा करनेका सारा भार श्रीकृष्णपर आ गया । वैसे विजय तो पाण्डवोंकी पहलेसे ही निश्चित थी; क्योंकि धर्म उनके साथ था । जिस ओर धर्म, उस ओर श्रीकृष्ण और जिस ओर श्रीकृष्ण उस ओर विजय—यह तो सदाका नियम है । फिर तो युद्धके प्रारम्भमें शत्रुओंको पराजित करनेके लिये अर्जुनसे रणचण्डीका आवाहन एवं स्तवन कराना तथा प्रत्यक्ष दर्शन कराके विजयके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त कराना, भगवद्गीताके उपदेश तथा विश्वरूपदर्शनके द्वारा उनके मोहका निरास करना, युद्धमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञाकी परवा न कर भीष्मकी प्रचण्ड बाणवर्षाको रोकनेमें असमर्थ अर्जुनकी प्राणरक्षाके लिये एक बार चक्र लेकर तथा दूसरी बार चाबुक लेकर भीष्मके सामने दौड़ना, भगदत्तके छोड़े हुए सर्वसंहारक वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर ले लेना, रथको पैरोंसे दबाकर कर्णके छोड़े हुए सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना तथा अस्त्रोंसे जले हुए अर्जुनके रथको अपने संकल्पके द्वारा कायम रखना आदि अनेकों लीलाएँ श्रीकृष्णने अर्जुनके योगक्षेमके निर्वाहके लिये कीं ।

× × ×

भीष्मको पाण्डवोंसे लड़ते-लड़ते नौ दिन हो गये थे । फिर भी उनके पराक्रममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आ पायी थी । प्रतिदिन वे पाण्डव-पक्षके हजारों वीरोंका संहार कर रहे थे । उनपर विजय पानेका पाण्डवोंको कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था । महाराज युधिष्ठिरने बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें सारी परिस्थिति अपनी नौकाके कर्णधार श्रीकृष्णके सामने रक्खी । श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति असाधारण प्रेम प्रकट होता है । साथ ही अर्जुनके सम्बन्धमें उनकी कैसी ऊँची धारणा थी, इसका भी पता लगता है । श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज ! आप बिल्कुल चिन्ता न करें । भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको विजय दिखायी देती हो तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ । आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीरका मांस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं । अर्जुनने उपप्लव्यमें सबके सामने भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरहसे रक्षा करनी है । जिस कामके लिये अर्जुन मुझे आज्ञा दें, उसे मुझे अवश्य करना चाहिये । अथवा भीष्मको मारना अर्जुनके लिये कौन बड़ी बात है । राजन् ! यदि अर्जुन तैयार हो जायँ तो वे असम्भव कार्य भी कर सकते हैं । दैत्य एवं दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायँ तो अर्जुन उन्हें भी परास्त कर सकते हैं; फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है ।' सच है, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ भगवान् जिसके रक्षक एवं सहायक हों, वह क्या नहीं कर सकता ।

× × ×

पुत्रशोकमें पीड़ित अर्जुन अभिमन्युकी मृत्युका प्रधान कारण जयद्रथको समझकर दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले जयद्रथको मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर बैठते हैं और साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि 'ऐसा न कर सका तो मैं स्वयं जलती हुई आगमें कूद पड़ूँगा ।' 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इस वचनके अनुसार अर्जुनकी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका भार भी श्रीकृष्णपर आ पड़ा था । अर्जुन तो उनके भरोसे निश्चिन्त थे । इधर कौरवोंकी ओरसे जयद्रथको बचानेकी पूरी चेष्टा हो रही थी । उसी दिन श्रीकृष्ण आधी रातके समय ही जाग पड़े और सारथि दारुकको बुलाकर कहने लगे—'दारुक ! मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु—कोई भी अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है । इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता । ऐसा हो ही नहीं सकता । कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायगी कि मैं अर्जुनका मित्र हूँ । जो उनसे द्वेष रखता है, वह मेरा भी द्वेषी है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है । तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है । मेरा विश्वास है कि अर्जुन कल जिस-जिस वीरको मारनेका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ अवश्य उनकी विजय होगी ।' भला, ऐसे मित्रवत्सल प्रभु जिसके लिये इस प्रकार उद्यत हों, उसकी विजयमें क्या संदेह हो सकता है । दूसरे दिन श्रीकृष्णकी बतायी हुई युक्तिसे जयद्रथको मारकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और सारे संसारने देखा कि श्रीकृष्णकी कृपासे अर्जुनका बाल भी बाँका नहीं हुआ ।

× × ×

कर्ण अर्जुनके साथ शुरूसे ही ईर्ष्या रखता था । दोनों एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे । भीष्मके मरणके बाद भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनके लिये सबसे अधिक भय कर्णसे ही था ।

उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक अमोघ शक्ति थी, जिसे उसने अर्जुनको मारनेके लिये ही रख छोड़ा था। उस शक्तिके बलपर वह अर्जुनको मरा हुआ ही समझता था। उसका प्रयोग एक ही बार हो सकता था। कर्णको उस शक्तिसे हीन करनेके लिये भगवान्‌ने उसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचसे भिड़ा दिया। उसने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि कर्णके प्राणों-पर बन आयी। वह उसके प्रहारोंको नहीं सह सका। उसने बाध्य होकर वह इन्द्रदत्त शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी और उसने घटोत्कचका काम तमाम कर दिया। घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंके शिविरमें शोक छा गया। सबकी आँखों-से आँसुओंकी धारा बहने लगी। परंतु इस घटनासे श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। वे हर्षसे झूमकर नाचने लगे। उन्होंने अर्जुनको गले लगाकर उनकी पीठ ठोंकी और बारंबार गर्जना की। अर्जुनने उनके बेमौके इस प्रकार आनन्द मनानेका रहस्य जानना चाहा; क्योंकि वे जानते थे कि भगवान्‌की कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती। इसके उत्तर-में श्रीकृष्णने जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति अगाध प्रेम झलकता है। उन्होंने कहा—'अर्जुन! आज सचमुच मेरे लिये बड़े ही आनन्दका अवसर है। कारण जानना चाहते हो? सुनो। तुम समझते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है; अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहते उसके मुकाबलेमें ठहर सकता।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैंने तुम्हारे ही हितके लिये जरासंध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला। वे लोग यदि पहले न मारे गये होते, तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते। हमलोगोंसे द्वेष रखनेके कारण वे लोग अवश्य ही कौरवोंका पक्ष लेते और दुर्योधनका सहारा पाकर वे समस्त भूमण्डलको जीत लेते। उनके समान देव-द्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है।' इसी प्रसङ्गपर उन्होंने सात्यकिसे यह भी कहा कि 'कौरवपक्षके सब लोग कर्णको यही सलाह दिया करते थे कि वह अर्जुनके सिवा किसी दूसरेपर शक्तिका प्रयोग न करे और वह भी इसी विचारमें रहता था; परंतु मैं ही उसे मोहमें डाल देता था। यही कारण है कि उसने अर्जुनपर शक्तिका प्रहार नहीं किया। सात्यके! अर्जुनके लिये वह शक्ति मृत्युरूप है—यह सोच-सोचकर मुझे रातों नींद नहीं आती थी। आज वह घटोत्कचपर पड़नेसे व्यर्थ हो गयी—यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुँहसे छूट गये। मैं अर्जुनकी रक्षा करना जितना आवश्यक समझता हूँ, उतनी अपने माता-पिता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो, तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर जी उठे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। इसीलिये इस रात्रिमें मैंने राक्षस घटोत्कचको ही कर्णसे लड़नेके लिये भेजा था; उसके सिवा दूसरा कोई कर्णको नहीं दबा सकता था।' भगवान्‌के इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन भगवान्‌को कितने प्रिय थे और उनकी वे कितनी सँभाल रखते थे। जो अपनेको भगवान्‌के हाथका यन्त्र बना देता है, उसकी भगवान् इसी प्रकार सँभाल रखते हैं और उसका बाल भी बाँका नहीं होने देते। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुकी शरणको छोड़कर जो और-और सहारे ढूँढ़ते रहते हैं, उनके समान मूर्ख कौन होगा।

× × ×

द्रोणाचार्यके वधसे अमर्षित होकर वीर अश्वत्थामाने पाण्डवोंके प्रति आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी वर्षा होने लगी और सेनामें चारों ओर आग फैल गयी। अर्जुन अकेले एक अक्षौहिणी सेना लेकर अश्वत्थामाका मुकाबला कर रहे थे। उस अस्त्रके प्रभावसे उनकी सारी सेना इस प्रकार दग्ध हो गयी कि उसका नाम-निशानतक मिट गया; परंतु श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरपर आँचतक नहीं आयी। इन दोनों महापुरुषोंको अस्त्रके प्रभावसे मुक्त देखकर अश्वत्थामा चकित और चिन्तित हो गया, अपने हाथका धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहता हुआ रणभूमिसे भाग चला। इतनेमें ही उसे व्यासजी दिखायी दिये। उसने उन्हें प्रणाम किया और उस सर्वसंहारी अस्त्रका श्रीकृष्ण और अर्जुनपर कुछ भी प्रभाव न पड़नेका कारण पूछा। तब व्यासजीने उसे बताया कि 'श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं और अर्जुन नरके अवतार हैं। इनका प्रभाव भी नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्म-मर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं।' व्यासजीकी इन बातोंको सुनकर अश्वत्थामाकी शङ्का दूर हो गयी और उसकी अर्जुन और श्रीकृष्णमें महत्त्व-बुद्धि हो गयी। व्यासजीके इन वचनोंसे भी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता सिद्ध होती है।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके तो कृपापात्र थे ही, भगवान् शङ्करकी भी उनपर बड़ी कृपा थी। युद्धमें शत्रु-सेनाका संहार करते समय वे देखते थे कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष उनके आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही उनके शत्रुओंका नाश करते थे, किंतु लोग समझते थे कि यह अर्जुनका कार्य है। वे त्रिशूल धारण किये रहते थे और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वेदव्यासजीसे बात होनेपर उन्होंने अर्जुनको बताया कि वे भगवान् शङ्कर ही थे। जिसपर श्रीकृष्णकी कृपा हो, उसपर और सब लोग भी कृपा करें—

इसमें आश्चर्य ही क्या है। 'जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करहिं सब कोई ॥' अस्तु;

भगवान्के परम भक्त एवं कृपापात्र होनेके साथ-साथ अर्जुनमें और भी बहुत गुण थे। क्यों न हो, सूर्यके साथ सूर्यरश्मियोंकी तरह भक्तिके साथ-साथ दैवी गुण तो आनुषङ्गिकरूपसे रहते ही हैं। ये बड़े धीर, वीर, इन्द्रिय-जयी, दयालु, कोमलस्वभाव एवं सत्य-प्रतिज्ञ थे। इनमें दैवीगुण जन्मसे ही मौजूद थे, इस बातको गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने 'सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि' कहकर स्वीकार किया है। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने इनकी माताको सम्बोधन करके कहा था—'कुन्ती! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन एवं भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी एवं इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारा यश बढ़ायेगा। जैसे विष्णुने अपनी माता अदितिको प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा।' यह आकाशवाणी केवल कुन्तीने ही नहीं, सब लोगोंने सुनी थी। इससे ऋषि-मुनि, देवता और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, पुष्पवर्षा होने लगी। इस प्रकार इनके जन्मके समयसे ही इनकी अलौकिकता प्रकट होने लगी थी। जब ये कुछ बड़े हुए तो इनके भाइयों तथा दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-कुमारोंके साथ-साथ इनकी शिक्षा-दीक्षाका भार पहले कृपाचार्य-को, और पीछे द्रोणाचार्यको सौंपा गया। सूतपुत्रके नामसे प्रसिद्ध कर्ण भी इन्हींके साथ शिक्षा पाते थे। द्रोणाचार्यके सभी शिष्योंमें रण शिक्षा, बाहुबल और उद्योग की दृष्टिसे तथा समस्त शस्त्रोंके प्रयोग, लाघवता और सफाईमें अर्जुन ही सबसे बढ़े-चढ़े थे। ये द्रोणाचार्यकी सेवा भी बहुत करते थे। इनकी सेवा, लगन और बुद्धिसे प्रसन्न होकर द्रोणाचार्यने एक दिन इनसे कहा था कि 'बेटा! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि संसारमें तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो।' द्रोणाचार्य-जैसे सिद्ध गुरुकी प्रतिज्ञा क्या कभी असत्य हो सकती है? अर्जुन वास्तवमें संसारके अद्वितीय धनुर्धर निकले।

जब पाण्डव एवं कौरव-राजकुमार अस्त्रविद्याका अभ्यास पूरा कर चुके और गुरुदक्षिणा देनेका अवसर आया, उस समय गुरु द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंसे कहा—'तुमलोग पाञ्चालराज द्रुपदको युद्धमें पकड़कर ला दो, यही मेरे लिये सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी।' सबने प्रसन्नतासे गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो रथपर सवार होकर द्रुपद-नगरपर चढ़ाई कर दी। वहाँ पहुँचनेपर पाञ्चालराजने अपने भाइयोंके साथ इनका मुकाबला किया। पहले अकेले कौरवोंने ही इनपर धावा किया था। परंतु उन्हें पाञ्चालराजसे हारकर लौटना पड़ा। अन्तमें अर्जुनने भीम और नकुल-सहदेवको साथ लेकर द्रुपदपर आक्रमण किया। बात-की-बातमें अर्जुनने द्रुपदको धर दबाया और उन्हें पकड़कर द्रोणाचार्यके सामने खड़ा कर दिया। इस प्रकार अर्जुनके पराक्रमकी सर्वत्र धाक जम गयी।

पाण्डव द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार पाकर एकचक्रा नगरीसे द्रुपदनगरकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उनकी गन्धर्वोंसे मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और उनके राजा अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) को पकड़ लिया। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गयी। द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनने वह काम करके दिखला दिया, जिसे उपस्थित राजाओंमेंसे कोई भी नहीं कर सका था। दुर्योधन, शाल्व, शिशुपाल, जरासंध एवं शल्य आदि अनेकों महाबली राजाओं तथा राजकुमारोंने वहाँपर रक्खे हुए धनुषको उठाकर चढ़ानेकी चेष्टा की, परंतु सभी असफल रहे। अर्जुनने बात की बातमें उसे उठाकर उसपर रोदा चढ़ा दिया और लोगोंके देखते-देखते लक्ष्यको भी बेध दिया। उस समय अर्जुन ब्राह्मणोंके वेषमें अपनेको छिपाये हुए थे। अतः उन्हें ब्राह्मण समझकर समस्त राजाओंने मिलकर उनका पराभव करना चाहा। परंतु वे अर्जुन और भीमका बाल भी बाँका न कर सके। उस समय अर्जुन और कर्णका बाणयुद्ध और भीम एवं शल्यका गदायुद्ध हुआ। परंतु अर्जुन और भीमके सामने उनके दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियोंको नीचा देखना पड़ा।

खाण्डवदाहके समय भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखलाया था। जब अग्निदेवताने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे खाण्डववनको जलाना प्रारम्भ किया, उस समय उसकी गरमीसे मारे देवता त्रस्त हो देवराज इन्द्रके पास गये। तब इन्द्रकी आज्ञासे दल-के-दल मेघ उस प्रचण्ड अग्निको शान्त करनेके लिये जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे बाणोंके द्वारा जलकी धाराओंको आकाशमें ही रोक दिया और पृथ्वीपर नहीं गिरने दिया। इन्द्रने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे अर्जुनको उत्तर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण और अर्जुनने मिलकर अपने चक्र और तीखे बाणोंके द्वारा देवताओंकी सारी सेनाको तहस-नहस कर डाला। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना कालरूप प्रकट कर दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषको देखकर दंग रह गये। अन्तमें इन्द्रको सम्बोधन करके यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम अर्जुन और श्रीकृष्णको युद्धमें किसी प्रकार भी नहीं जीत सकोगे। ये साक्षात् नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये सबके लिये अजेय हैं। तुम देवताओंको लेकर यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी शोभा है।' आकाशवाणी सुनकर देवराज अपनी सेनाके साथ लौट पड़े और अग्निने देखते-देखते उस विशाल

वनको भस्म कर दिया। अर्जुनकी सेवासे प्रसन्न होकर अग्निने उन्हें दिव्य अस्त्र दिये। इन्द्रने भी उनके अस्त्र-कौशलसे प्रसन्न होकर उन्हें समय आनेपर अस्त्र देनेकी प्रतिज्ञा की तथा अग्निकी प्रार्थनापर वरुणदेवने उन्हें अक्षय तरकस, गाण्डीव धनुष और वानर-चिह्नयुक्त ध्वजासे मण्डित रथ युद्धसे पहले ही दे दिया था।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे, उस समय एक दिन महर्षि वेदव्यासजी उनके पास आये और युधिष्ठिरको एकान्तमें ले जाकर उन्होंने समझाया कि 'अर्जुन नारायणका सहचर महातपस्वी नर है। इसे कोई जीत नहीं सकता, यह अच्युतस्वरूप है। यह तपस्या एवं पराक्रमके द्वारा देवताओंके दर्शनकी योग्यता रखता है। इसलिये तुम इसको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये भगवान् शङ्कर, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और धर्मराजके पास भेजो। यह उनसे अस्त्र प्राप्त करके बड़ा पराक्रम करेगा और तुम्हारा खोया हुआ राज्य वापस ला देगा।' युधिष्ठिरने वेदव्यासजीकी आज्ञा मानकर अर्जुनको उन्हीं महर्षिकी दी हुई मन्त्र-विद्या सिखाकर इन्द्रके दर्शनके लिये इन्द्रकील पर्वतपर भेज दिया। वहाँ पहुँचनेपर एक तपस्वीके रूपमें इन्हें इन्द्रके दर्शन हुए। इन्द्रने इन्हें स्वर्गके भोगों एवं ऐश्वर्यका प्रलोभन दिया, परंतु इन्होंने सब कुछ छोड़कर उनसे अस्त्रविद्या सीखनेका ही आग्रह किया। इन्द्रने कहा—"पहले तुम तपद्वारा भगवान् शङ्करके दर्शन प्राप्त करो। उनके दर्शनसे सिद्ध होकर तुम स्वर्गमें आना, तब मैं तुम्हें सारे दिव्य अस्त्र दे दूँगा।' अर्जुन मनस्वी तो थे ही। वे तुरंत ही कठोर तपस्यामें लग गये। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर एक भीलके रूपमें इनके सामने प्रकट हुए। एक जंगली सूअरको लेकर दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया। वे बोले—'अर्जुन! तुम्हारे अनुपम कर्मसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे-जैसा धीर-वीर क्षत्रिय दूसरा नहीं है। तुम तेज और बलमें मेरे ही समान हो। तुम सनातन ऋषि हो। तुम्हें मैं दिव्य ज्ञान देता हूँ, तुम देवताओं-को भी जीत सकोगे।' इसके बाद भगवान् शङ्करने अर्जुनको देवी पार्वतीके सहित अपने असली रूपमें दर्शन देकर विधिपूर्वक पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दी। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवकी कृपा प्राप्तकर वे स्वर्ग जानेकी बात सोच रहे थे कि इतनेमें ही वरुण, कुबेर, यम एवं देवराज—ये चारों लोकपाल वहाँ आकर उपस्थित हुए। यम, वरुण और कुबेरने क्रमशः उन्हें दण्ड, पाश एवं अन्तर्धान नामक अस्त्र दिये और इन्द्र उन्हें स्वर्गमें आनेपर अस्त्र देनेको कह गये। इसके बाद इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर अर्जुन स्वर्गलोकमें गये और वहाँ पाँच वर्ष रहकर इन्होंने अस्त्रज्ञान प्राप्त किया और साथ-ही-साथ चित्रसेन गन्धर्वसे गान्धर्वविद्या सीखी। इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखकर जब अर्जुन सब प्रकारके अस्त्रोंके चलानेमें निपुण हो गये, तब देवराजने उनसे निवातकवच नामक दानवोंका वध करनेके लिये कहा। ये समुद्रके भीतर एक दुर्गम स्थानमें रहते थे। इनकी संख्या तीन करोड़ बतायी जाती थी। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते थे। अर्जुनने अकेले ही जाकर उन सबका संहार कर डाला। इतना ही नहीं, निवातकवचोंको मारकर लौटते समय उनका कालिकेय एवं पौलोम नामक दैत्योंसे युद्ध हुआ और उनका भी अर्जुनने सफाया कर डाला। इस प्रकार इन्द्रका प्रिय कार्य करके तथा इन्द्रपुरीमें कुछ दिन और रहकर अर्जुन वापस अपने भाइयोंके पास चले आये।

स्वर्गसे लौटकर वनमें तथा एक वर्ष अज्ञातरूपसे विराट-नगरमें रहते हुए भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखाया। वनमें इन्होंने दुर्योधनादिको छुड़ानेके लिये गन्धर्वोंसे युद्ध किया, जिसका उल्लेख युधिष्ठिरके प्रसङ्गमें किया जा चुका है। इसके बाद जब वनवासके बारह वर्ष पूरे हो गये और पाण्डवलोग एक वर्षके अज्ञातवासकी शर्त पूरी करनेके लिये विराटके यहाँ रहने लगे, उस समय इन लोगोंका पता लगानेके लिये दुर्योधनने विराटनगरपर चढ़ाई की। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि सभी प्रधान-प्रधान वीर उनके साथ थे। ये लोग राजा विराटकी साठ हजार गौओंको घेरकर ले चले। तब विराट-कुमार उत्तर बृहन्नला बने हुए अर्जुनको सारथि बनाकर उन्हें रोकनेके लिये गये। कौरवोंकी विशाल सेनाको देखते ही उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये, वह रथसे उतरकर भागने लगा। बृहन्नला (अर्जुन) ने उसे पकड़कर समझाया और उसे सारथि बनाकर स्वयं युद्ध करने चले। इन्होंने बारी-बारीसे कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और दुर्योधनको पराजित किया और भीष्मको भी मूर्छित कर दिया। इसके बाद भीष्म, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य—ये सभी महारथी एक साथ अर्जुनपर टूट पड़े और उन्होंने इन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुनने अपने बाणोंकी झड़ीसे सबके छक्के छुड़ा दिये। अन्तमें उन्होंने सम्मोहन नामके अस्त्रको प्रकट किया, जिससे सारे-के-सारे कौरव वीर अचेतन हो गये, उनके हाथोंसे शस्त्र गिर पड़े। उस समय अर्जुन चाहते तो इन सबको आसानीसे मार सकते थे, परंतु वे इन सब बातोंसे ऊपर थे। होशमें आनेपर भीष्मकी सलाहसे कौरवोंने गौओंको छोड़कर लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा। अर्जुन विजयघोष करते हुए नगरमें चले आये। इस प्रकार अर्जुनने विराटकी गौओंके साथ-साथ उनकी मान-मर्यादाकी भी रक्षा करके अपने आश्रयदाताका ऋण कई गुने रूपमें चुका दिया। धन्य स्वामिभक्ति !

महाभारत-युद्धके तो अर्जुन एक प्रधान पात्र थे ही। पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान सेनानायक यही थे। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हींका सारथि बनना स्वीकार किया था तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि अजेय योद्धाओंसे टक्कर लेना इन्हींका काम था। ये लोग सभी इनका लोहा मानते थे। इन्होंने जयद्रथ-वधके दिन जो अद्भुत पराक्रम एवं अस्त्रकौशल दिखलाया, वह तो इन्हींके योग्य था। इनकी भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर उस दिन कौरवोंने जयद्रथको सारी सेनाके पीछे खड़ा किया था। कई अक्षौहिणी सेनाके बीचमेंसे रास्ता काटते हुए अर्जुन बड़ी मुस्तैदी एवं अदम्य उत्साहके साथ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। शत्रु-सेनाके हजारों वीर और हाथी-घोड़े उनके अमोघ बाणोंके शिकार बन चुके थे। वे रथसे एक कोसतकके शत्रुओंका सफाया करते जाते थे। इतनेमें शाम होनेको आ गयी। इनके घोड़े बाणोंके लगनेसे बहुत व्यथित हो गये थे और अधिक परिश्रमके कारण थक भी गये थे। भूख-प्यास उन्हें अलग सता रही थी। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप घोड़ोंको खोलकर इनके बाण निकाल दीजिये। तबतक मैं कौरवोंकी सारी सेनाको रोके रहूँगा।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे उतर पड़े और बड़ी सावधानीसे धनुष लेकर अविचल भावसे खड़े हो गये, उस समय इन्हें पराजित करनेका अच्छा मौका देखकर शत्रुसेनाके वीरोंने एक साथ इन्हें घेर लिया और तरह-तरहके बाणों एवं शस्त्रोंसे ढक दिया; किंतु वीर अर्जुनने उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे रोककर बदलेमें उन सभीको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। इधर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'घोड़े प्याससे व्याकुल हो रहे हैं; किंतु पासमें कोई जलाशय नहीं है।' इसपर अर्जुनने तुरंत ही अस्त्रद्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीने योग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। इतना ही नहीं, उस सरोवरके ऊपर उन्होंने एक बाणोंका घर बना दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग दाँतोंतले अँगुली दबाने और वाह-वाह करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनको पीछे नहीं हटा सके। इस बीचमें श्रीकृष्णने फुर्तीसे घोड़ोंके बाण निकालकर उन्हें नहलाया, मालिश की, जल पिलाया और घास खिलाकर तथा जमीनपर लिटाकर उन्हें फिरसे रथमें जोत लिया। अर्जुन जब जयद्रथके पास पहुँचे तो इनपर आठ महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया और दुर्योधनने अपने बहनोईकी रक्षाके उद्देश्यसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुन उन सबका मुकाबला करते हुए आगे बढ़ते ही गये। इनके वेगको कोई रोक नहीं सका। इन्होंने श्रीकृष्णकी कृपासे सूर्यास्त होते-होते जयद्रथको अपने वज्रतुल्य बाणोंका शिकार बना लिया और श्रीकृष्णके कथनानुसार इस कौशलसे उसके मस्तकको काटा कि वह कुरुक्षेत्रसे बाहर जाकर उसके पिताकी गोदमें गिरा। इस प्रकार श्रीकृष्णकी सहायतासे सूर्यास्तसे पहले-पहले अर्जुनने जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

× × ×

अर्जुन जगद्विजयी वीर और अद्वितीय धनुर्धर तो थे ही; वे बड़े भारी सत्यप्रतिज्ञ, सदाचारी, धर्मात्मा एवं इन्द्रियजयी भी थे। पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। ब्राह्मणने आकर पाण्डवोंके सामने पुकार की। अर्जुनने ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी और उन्हें गौओंको छुड़ाकर लानेका वचन दिया। परंतु उनके शस्त्र उस घरमें थे, जहाँ उनके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे। पाँचों भाइयोंमें पहलेसे ही यह शर्त हो चुकी थी कि 'जिस समय द्रौपदी एक भाईके पास एकान्तमें रहे, उस समय दूसरा कोई भाई यदि उनके कमरेमें चला जाय तो वह बारह वर्षके लिये निर्वासित कर दिया जाय।' अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। यदि ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा नहीं की जाती तो क्षत्रिय-धर्मसे च्युत होते हैं और उसके लिये शस्त्र लेने कमरेमें जाते हैं तो नियमभंग होता है। अन्तमें अर्जुनने नियमभंग करके भी ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा करनेका ही निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'नियमभंगके कारण मुझे कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करके अपराधियोंको दण्ड देना मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' धन्य धर्मप्रेम !

अर्जुन चुपचाप युधिष्ठिरके कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये और उसी समय लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा लाये। वहाँसे लौटकर उन्होंने अपने बड़े भाईसे नियमभंगके प्रायश्चित्तरूपमें वन जानेकी आज्ञा माँगी। युधिष्ठिरने उन्हें समझाया कि 'बड़ा भाई अपनी स्त्रीके पास बैठा हो, उस समय छोटे भाईका उसके पास चला जाना अपराध नहीं है। यदि कोई अपराध हुआ भी हो तो वह मेरे प्रति हुआ है और मैं उसे स्वेच्छासे क्षमा करता हूँ। फिर तुमने धर्मके लिये ही तो नियमभंग किया है, इसलिये भी तुम्हें वन जानेकी आवश्यकता नहीं है।' अर्जुनके लिये नियमभंगके प्रायश्चित्तसे बचनेका यह अच्छा मौका था। और कोई होता तो इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देता। आजकल तो कानूनके शिकंजेसे बचनेके लिये कानूनका ही आश्रय लेना बिल्कुल जायज समझा जाता है, परंतु अर्जुन बहाना लेकर दण्डसे बचना नहीं जानते थे। उन्होंने युधिष्ठिरके समझानेपर भी सत्यकी रक्षाके लिये नियमका पालन आवश्यक समझा और

वनवासकी दीक्षा लेकर वहाँसे चल पड़े ! धन्य सत्यप्रतिज्ञता और नियम-पालनकी तत्परता !

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्रविद्या तथा गान्धर्व-विद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा । उस दिन सभामें इन्द्रने अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था । उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी । वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर अर्जुनके पास गयी । अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसंकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये । उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बंद कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया । उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी । उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी । उसने खुल्लमखुल्ला अर्जुनके प्रति कामभाव प्रकट किया । अब तो अर्जुन मारे संकोचके धरतीमें गड़-से गये । उन्होंने अपने हाथोंसे दोनों कान मूँद लिये और बोले—'माता ! यह क्या कह रही हो ? देवि ! निस्संदेह तुम मेरी गुरुपत्नीके समान हो । देवसभामें मैंने तुम्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा अवश्य था; परंतु मेरे मनमें कोई बुरा भाव नहीं था । मैं यही सोच रहा था कि पूरुवंशकी यही माता हैं । इसीसे मैं तुमको देख रहा था । देवि ! मेरे सम्बन्धमें और कोई बात तुम्हें सोचनी ही नहीं चाहिये । तुम मेरे लिये बड़ोंकी बड़ी और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो । जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्रपत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पूरुवंशकी जननी होनेके नाते मेरी पूजनीया माता हो । मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।'* अब तो उर्वशी क्रोधके मारे आगबबूला हो गयी । उसने अर्जुनको शाप दिया—'मैं इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी थी; परंतु तुमने मेरे प्रेमको ठुकरा दिया । इसलिये जाओ, तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें नचनियाँ होकर रहना पड़ेगा और लोग तुम्हें हिजड़ा कहकर पुकारेंगे ।' अर्जुनने उर्वशीके शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया, परंतु धर्मका त्याग नहीं किया । एकान्तमें स्वेच्छासे आयी हुई उर्वशी-जैसी अनुपम सुन्दरीका परित्याग करना अर्जुनका ही काम था । धन्य इन्द्रियजय ! जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्जुनको बुलाकर उनकी पीठ ठोंकी और कहा—'बेटा ! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर तुम्हारी माता धन्य हुई । तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया । अब तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो । उर्वशीने जो शाप तुम्हें दिया है, वह तुम्हारे लिये वरदानका काम करेगा । तेरहवें वर्षमें जब तुम अज्ञातवास करोगे, उस समय यह शाप तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा । इसके बाद तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी ।' सच है—'धर्मो रक्षति रक्षितः ।'

× × ×

विराटनगरमें अज्ञातवासकी अवधि पूरी हो जानेपर जब पाण्डवोंने अपनेको राजा विराटके सामने प्रकट किया, उस समय राजा विराटने कृतज्ञतावश अपनी कन्या उत्तराकुमारीका अर्जुनसे विवाह करना चाहा । परंतु अर्जुनने उनके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा—'राजन् ! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने भी पुत्रीके रूपमें ही देखता आया हूँ । उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है । मैं उसके सामने नाचता था और संगीतका जानकार भी हूँ । इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है परंतु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है । वह वयस्का हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है । अतः आपको या किसी औरको हम दोनोंके प्रति अनुचित संदेह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ । ऐसा करनेसे ही हम दोनोंका चरित्र शुद्ध समझा जायगा ।' अर्जुनके इस पवित्र भावकी सब लोगोंने प्रशंसा की और उत्तरा अभिमन्युको ब्याह दी गयी । अर्जुन-जैसे महान् इन्द्रियजयी ही इस प्रकार युवती कन्याके साथ एक वर्षतक घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर भी अपनेको अछूता रख सके और उसका भाव भी इनके प्रति बिगड़ा नहीं । वयस्क छात्रों तथा छात्राओंके शिक्षकोंको इससे शिक्षा लेनी चाहिये ।

× × ×

जब अश्वत्थामा रात्रिमें सोये हुए पाण्डवोंके पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न आदिको मारकर स्वयं गङ्गातटपर जा बैठा, तब पीछेसे उसके क्रूर कर्मका संवाद पाकर भीमसेन और अर्जुन उससे बदला लेनेके लिये उसकी तलाशमें गये । भीम और अर्जुनको आते देख अश्वत्थामा बहुत डर गया और इनके हाथोंसे बचनेका और कोई उपाय न देख उसने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । देखते-देखते वहाँ प्रलयकालकी-सी अग्नि उत्पन्न हो गयी और वह चारों ओर फैलने लगी । उसे शान्त करनेके लिये अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया; क्योंकि ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही शान्त किया जा सकता था । दोनों अस्त्रोंके आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको बड़ा भय मालूम होने लगा । यह भयंकर काण्ड देखकर देवर्षि नारद और महर्षि व्यास दोनों वहाँ एक साथ पधारे और दोनों वीरोंको शान्त करने लगे । इन दोनों महापुरुषोंके कहनेसे अर्जुनने तो तुरंत अपना दिव्य अस्त्र लौटा लिया । उन्होंने उसे छोड़ा

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे ।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी ॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि ।
त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया ॥
(महा० वन० ४६ । ४६-४७)

ही था अश्वत्थामाके अस्त्रको शान्त करनेके लिये ही। उस अस्त्रका ऐसा प्रभाव था कि उसे एक बार छोड़ देनेपर सहसा उसे लौटाना अत्यन्त कठिन था। केवल ब्रह्मचारी ही उसे लौटा सकता था। अश्वत्थामाने भी उन दोनों महापुरुषोंको देखकर उसे लौटानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह संयमी न होनेके कारण उसे लौटा न सका। अन्तमें व्यासजीके कहनेसे उसने उस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ दिया और वह बालक मरा हुआ निकला; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे फिरसे जिला दिया। इस प्रकार अर्जुनमें शूरवीरता, अस्त्रज्ञान और इन्द्रियजय—इन तीनों गुणोंका अद्भुत सम्मिश्रण था।

अर्जुनका जीवन एक दिव्य जीवन था। उनके चरित्र-परहम जितना ही विचार करते हैं, उतना ही हमें वह आदर्श एवं शिक्षाओंसे पूर्ण प्रतीत होता है।

महावीर युवक अभिमन्यु

अर्जुनका पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु महाभारत महाकाव्यका एक अपूर्व पात्र है। यह भगवान् श्रीकृष्णका भानजा अर्जुनके समान ही महान् धनुर्धर था। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको समान प्रिय था। महाराज युधिष्ठिरके साथ अन्य चारों भाई भी उसको बहुत अधिक प्यार करते थे। पाण्डवोंके अज्ञातवासके पश्चात् ही अभिमन्युका ब्याह महाराजा विराटकी पुत्री उत्तराके साथ बड़ी धूम-धामसे हुआ था। अर्जुनने उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करते समय महाराजा विराटसे कहा था—

स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम्॥
स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षात् देवशिशुर्यथा।
दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः॥

(विराट ०७२। ७। ८)

अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते।
जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव॥

(७२। ९)

'राजन्! आपकी पुत्री उत्तराको मैं पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करता हूँ। मेरा पुत्र अभिमन्यु भगवान् वासुदेवका भानजा और देखनेमें साक्षात् देवकुमार-सा है। चक्रधारी श्रीकृष्णको वह अति प्रिय है। तथा वह सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें कुशल है। महाराज! मेरा वह महाबली पुत्र अभिमन्यु आपकी पुत्रीका उपयुक्त पति तथा आपका सुयोग्य जामाता बनने योग्य है।'

इस सम्बन्धसे महाराज विराट कृतकृत्य हो गये। परंतु इसके बाद ही विराटकी सभामें महाभारतके युद्धकी भूमिका शुरू हो गयी।

महायुद्धमें जब द्रोणाचार्य कौरवसेनाके सेनाध्यक्ष बने और अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके व्यूहके द्वारपर स्वयं डट गये तो पाण्डवोंके सामने एक विकट प्रश्न आ उपस्थित हो गया। उस समय अर्जुन संशप्तकोंसे युद्ध कर रहे थे, और द्रोणके व्यूहको तोड़नेवाला अर्जुनकुमार अभिमन्युके सिवा कोई दूसरा न था। वह व्यूह तोड़कर भीतर तो घुस सकता था, परंतु शत्रुसैन्यके भीतरसे बाहर आनेकी कला उसे मालूम न थी। भीमसेन उसका अनुगमन करनेवाले थे और उनके पीछे धृष्टद्युम्न और सात्यकि तथा पाञ्चाल, कैकय, मत्स्यादि सैनिकोंका दल घुसनेवाला था। परंतु भगवान् शङ्करका वर प्राप्त करनेके कारण जयद्रथ उस दिन अजेय बन गया था, उसने किसीको भी अभिमन्युके पीछे नहीं जाने दिया। अभिमन्यु अकेला ही कौरवोंकी महासेनामें घुसकर वहाँ प्रलयका दृश्य उपस्थित कर बड़े-बड़े महारथियोंके छक्के छुड़ाने लगा।

द्रोणपर्वके ३४ वें अध्यायमें संजयने श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी प्रशंसा करते हुए अन्तमें धृतराष्ट्रसे कहा था कि—

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसंचयाः॥

(द्रोण० ३४। ८)

युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः॥
धनंजयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च।
विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च॥

(द्रोण० ३४। ९-१०)

महात्मा संजयने संक्षेपमें अभिमन्युके गुणोंका दिग्दर्शन कराया है। 'श्रीकृष्णमें तथा पाण्डवोंमें जो श्रेष्ठ गुण हैं, वे सारे गुण संचित होकर एकत्र अभिमन्युमें देखे जाते हैं। वह वीर्यमें युधिष्ठिरके समान है, आचारमें श्रीकृष्णके समान है, भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके समान कर्मठ है, विद्या, पराक्रम और रूपमें अर्जुनके समान है, तथा विनयमें सहदेव और नकुलके समान है।'

इस प्रकारके सर्व गुणोंसे युक्त वीर बालक अभिमन्युने कौरवोंकी महती सेनामें रथ, गज और पैदल—सेनाके तीनों अङ्गोंको इस प्रकार मथ डाला मानो स्वयं विष्णु भगवान् असुर सैन्यका संहार करनेपर तुल गये हों। अभिमन्युके शस्त्रसंघातसे कौरवसेनामें हाहाकार मच गया। धृतराष्ट्रने अभिमन्युके पराक्रमका संवाद सुनकर कहा था—

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत्॥

(द्रोण ३९। १)

'हे संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनकी महती सेनाको वीर बालक सुभद्राकुमार अभिमन्युने तहस-नहस करके तितर-बितर कर दिया, यह सुनकर मेरा हृदय लज्जा और आनन्दसे द्विविधामें पड़ जाता है ।' धन्य है महाभाग धृतराष्ट्र ! अपने पौत्र अर्जुनकुमार अभिमन्युकी वीरताको सुनकर आप हर्षित हो उठते हैं, यह आपके उत्कृष्ट क्षात्र-धर्म और विशुद्ध आत्मीयताका द्योतक है, और लज्जित इसलिये होते हैं कि इतनी बड़ी और शक्तिशाली हमारे पुत्रोंकी कौरवसेना, एक बालकके सामने नहीं टिक सकी !

उस युद्धमें अभिमन्युके अद्भुत पराक्रमको देखकर गुरु द्रोणसे नहीं रहा गया, वे बोल उठे—

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥
नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥

(द्रोण० ३९ । ११, १३)

'यह पृथापुत्रोंका प्रसिद्ध युवक सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने सब सुहृज्जनोंको तथा राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करता हुआ कौरव-सेनाके भीतर घुसता जा रहा है । इस युद्धमें इसके समान् धनुर्धर मैं किसी दूसरेको नहीं मानता । यह चाहे तो इस सेनाका संहार कर सकता है । पर यह ऐसा चाहता क्यों नहीं है ?'

दुर्योधन अभिमन्युके पराक्रमको देखकर दंग हो गया, परंतु करता क्या ? आचार्य द्रोणकी आलोचना करते हुए कहने लगा । कर्ण ! यह अर्जुनका मूढ़ पुत्र द्रोणके द्वारा रक्षित होकर अपनेको बड़ा पराक्रमशाली समझ रहा है । ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण तो उच्चकोटिके धनुर्धरोंके आचार्य हैं, अपने शिष्यका पुत्र समझकर इसे छोड़ रहे हैं ।' परंतु दुर्योधनके उकसानेपर भी कौरवसेनाके महारथी एक-एक करके अभिमन्युसे हार खाने लगे । उसकी युद्ध-कलाकी कुशलताका वर्णन गुरु द्रोणने द्रोणपर्वके ४८ वें अध्यायमें किया है । जिसे सुनकर कौरवोंका पक्षपाती कर्ण भी बोल उठा—

स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणा ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।

(द्रोण० ४८ । २५)

'अभिमन्युके द्वारा पीड़ित होकर, मुझे युद्धभूमिसे भागना नहीं चाहिये, इसी विचारसे मैं ठहरा हूँ । तेजस्वी सुभद्राकुमारके बाण परम दारुण हैं, आज उसके अग्निके समान तेज और भयंकर बाण मेरे हृदयको छलनी कर रहे हैं ।'

द्रोणाचार्यने कर्णकी इस बातका समर्थन करते हुए कहा कि 'जबतक इसके हाथमें धनुषबाण है, तबतक इसको देवता और असुरोंके समूह भी नहीं जीत सकते । इसलिये इसको रथ और धनुषसे रहित कर दो ।

सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ।
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ॥

(द्रोण० ४८ । ३०-३१)

तत्पश्चात् महाभारतके युद्धका सबसे बड़ा अन्याय सामने आया । एक वीर बालकके विरुद्ध छः महारथी योद्धाओंने चारों ओरसे बाण-वर्षा करके उसको धनुर्विहीन कर दिया, रथविहीन कर दिया । उसे निहत्था करके आघात करते गये, और अन्तमें उसे मार डाला ।

महात्मा संजय कहते हैं कि—

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥

(द्रोण० ४९ । २२)

'द्रोण, कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंने अकेले अभिमन्युको मार डाला, मेरे विचारसे यह धर्मविरुद्ध है ।' परंतु वे कौरव महारथी युद्धमें अभिमन्युसे संत्रस्त होकर ही इस धर्मविरुद्ध कार्यपर उतारू हुए थे । अभिमन्युकी अद्भुत वीरताका यह एक स्पष्ट प्रमाण है । अभिमन्युके इस युद्धकी विशिष्टताके कारण द्रोणपर्वके अन्तर्गत ३३ वें अध्यायसे लेकर ७० वें अध्यायतकका अवान्तर भाग अभिमन्यु-वधके नामसे अभिहित हुआ है, इस पर्वमें अभिमन्युकी वीरताका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जो महाभारतके युद्धमें विशेषरूपसे दर्शनीय है । इसीसे भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बहिन सुभद्राको सान्त्वना देते हुए कहा था—

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥

(द्रोण० ७७ । २१)

'बहिन ! 'शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मकी शोभा बढ़ाकर संत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली वह गति पायी है, जिसको हमलोग तथा इस संसारके सभी शस्त्रधारी क्षत्रिय प्राप्त करना चाहते हैं ।'

भगवान् वेदव्यास

भगवान् वेदव्यास महर्षि पराशरके पुत्र थे । ये कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री सत्यवतीके गर्भसे जन्मे थे । व्यासजी एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे । ये एक महान् कारक पुरुष थे । इन्होंने लोगोंकी धारणाशक्तिको क्षीण होते देख वेदोंके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार विभाग किये और एक-एक संहिता अपने एक-एक शिष्यको पढ़ा दी । एक-एक संहिताकी फिर अनेकों शाखा-प्रशाखाएँ हुईं । इस प्रकार इन्हींके प्रयत्नसे वैदिक वाङ्मयका बहुविध

भगवान् वेदव्यास

विस्तार हुआ। व्यास कहते हैं विस्तारको; क्योंकि वेदोंका विस्तार इन्हींसे हुआ, इसलिये ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म एक द्वीपके अंदर हुआ था और इनका वर्ण श्याम था, इसलिये इन्हें लोग कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण इनका एक नाम बादरायण भी है। अठारह पुराण एवं महाभारतकी रचना इन्हींके द्वारा हुई और संक्षेपमें उपनिषदोंका तत्त्व समझानेके लिये इन्होंने ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण किया, जिसपर भिन्न-भिन्न आचार्योंने भिन्न-भिन्न भाष्योंकी रचना कर अपना-अपना अलग मत स्थापित किया। व्यासस्मृतिके नामसे इनका रचा हुआ एक स्मृतिग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय एवं हिंदू-संस्कृतिपर व्यासजीका बहुत बड़ा ऋण है। श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सनातन धर्मके व्यासजी एक प्रधान व्याख्याता कहे जा सकते हैं। इनके उपकारसे हिंदू-जाति कदापि उऋण नहीं हो सकती। जबतक हिंदू-जाति और भारतीय संस्कृति जीवित है, तबतक इतिहासमें व्यासजीका नाम अमर रहेगा। ये जगत्के एक महान् पथप्रदर्शक और शिक्षक कहे जा सकते हैं। इसीसे इन्हें जगद्गुरु कहलानेका गौरव प्राप्त है। गुरुपूर्णिमा (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) के दिन प्रत्येक आस्तिक हिंदू गृहस्थ इनकी पूजा करता है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम रत्न भी संसारको व्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ। इन्होंने ही भगवान् श्रीकृष्णके उस अमर उपदेशको अपनी महाभारतसंहितामें ग्रथितकर उसे संसारके लिये सुलभ बना दिया।

महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी एवं इच्छागति हैं। वे प्रत्येकके मनकी बात जान लेते हैं और इच्छा करते ही जहाँ जाना चाहें वहीं पहुँच जाते हैं। ये जन्मते ही अपनी माताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चल दिये। जाते समय ये मातासे कह गये कि 'जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता जान पड़े, तुम मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास चला आऊँगा।'

जब पाण्डव विदुरजीकी बतायी हुई युक्तिका अनुसरण कर लाक्षाभवनसे निकल भागे और एकचक्रा नगरीमें जाकर रहने लगे, उन दिनों व्यासजी उनके पास उनसे मिलनेके लिये आये और प्रसङ्गवश उन्होंने उन्हें द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर यह बताया कि 'वह कन्या तुम्हीं लोगोंके लिये पहलेसे निश्चित है।' इस बातको सुनकर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता एवं उत्सुकता हुई। और वे द्रुपदकुमारीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये पाञ्चालनगरकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर जब अर्जुनने स्वयंवरकी शर्त पूरी करके द्रौपदीको जीत लिया और माता कुन्तीकी आज्ञासे पाँचों भाइयोंने उससे विवाह करना चाहा, तब राजा द्रुपदने इसपर आपत्ति की। उसी समय व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने द्रुपदको द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाँचों भाइयोंके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये राजी कर लिया।

महाराज युधिष्ठिरने जब इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ किया, उस समय भी वेदव्यासजी यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये अपनी शिष्यमण्डलीके साथ पधारे थे। यज्ञ समाप्त होनेपर वे विदा होनेके लिये युधिष्ठिरके पास आये और बातों-ही-बातोंमें उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'आजसे तेरह वर्ष बाद क्षत्रियोंका महासंहार होगा, जिसमें दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे।'

× × ×

पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर तथा उन्हें बारह वर्षोंकी लंबी अवधिके लिये वन भेजकर भी दुर्योधनको संतोष नहीं हुआ। वह पाण्डवोंको वनमें ही मार डालनेकी घात सोचने लगा। अपने मामा शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनसे सलाह करके उसने चुपचाप पाण्डवोंपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और सब लोग शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित रथोंपर सवार होकर वनकी ओर चल पड़े। व्यासजीको अपनी दिव्य दृष्टिसे उनकी इस दुरभिसन्धिका पता लग गया। वे तुरंत उनके पास आये और उन्हें इस घोर दुष्कर्मसे निवृत्त किया। इसके बाद उन्होंने धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें समझाया कि 'तुमने जुएमें हराकर पाण्डवोंको वनमें भेज दिया, यह अच्छा नहीं किया, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम यदि अपना तथा अपने पुत्रोंका हित चाहते हो तो अब भी सँभल जाओ, भला! यह कैसी बात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके लोभसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है। मैं कहे देता हूँ कि अपने इस लाड़ले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि उसने पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की, तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि तुम अपने पुत्रकी द्वेष-बुद्धि मिटानेकी चेष्टा नहीं करोगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी सम्मति तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें जाकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है पाण्डवोंके सत्सङ्गसे उसका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव जाग्रत् हो जाय। परंतु यह बात है बहुत कठिन; क्योंकि जन्मगत स्वभावका बदल जाना सहज नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो अपने पुत्रसे कहो कि वह पाण्डवोंके साथ मेल कर ले।' व्यासजीने धृतराष्ट्रसे यह भी कहा कि 'थोड़ी ही देरमें महर्षि मैत्रेयजी यहाँ आनेवाले हैं। वे तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंसे मेल कर लेनेका उपदेश देंगे। वे जैसा कहें, बिना सोचे-विचारे तुम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये। यदि उनकी बात नहीं मानोगे तो वे क्रोधवश शाप दे देंगे।' परंतु दुष्ट दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी और फलतः उसे महर्षि मैत्रेयका कोपभाजन बनना पड़ा।

× × ×

व्यासजी त्रिकालदर्शी तो थे ही, उनका सामर्थ्य भी

अद्भुत था। जब पाण्डव लोग वनमें रहते थे, उस समय इन्होंने एक दिन उनके पास जाकर युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनको प्रतिस्मृति-विद्याका उपदेश दिया, जिससे उनमें देवदर्शनकी योग्यता आ गयी। इतना ही नहीं, इन्होंने संजयको दिव्य दृष्टि दे दी, जिसके प्रभावसे उन्हें युद्धकी सारी बातोंका ही ज्ञान ही नहीं हुआ; उनमें भगवान्‌के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूपके देवदुर्लभ दर्शनकी योग्यता भी आ गयी और वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे भगवद्गीताके दिव्य उपदेशका भी श्रवण कर सके, जिसे अर्जुनके सिवा और कोई भी नहीं सुन पाया था। जिस दिव्य-दृष्टिके प्रभावसे संजयमें इतनी बड़ी योग्यता आ गयी, उस दिव्यदृष्टिके प्रदान करनेवाले महर्षि वेदव्यासमें कितना सामर्थ्य होगा—हमलोग इसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे साक्षात् भगवान् नारायणकी कला ही जो ठहरे।

× × ×

एक बार, जब धृतराष्ट्र और गान्धारी वनमें रहते थे और महाराज युधिष्ठिर भी अपने परिवारके साथ उनसे मिलनेके लिये गये थे, व्यासजी वहाँ आये और यह देखकर कि धृतराष्ट्र और गान्धारीका पुत्रशोक अभीतक दूर नहीं हुआ है और कुन्ती भी अपने पुत्रोंके वियोगसे दुखी है, इन्होंने धृतराष्ट्रसे वर माँगनेको कहा। राजा धृतराष्ट्रने उनसे यह जानना चाहा कि 'महाभारत-युद्धमें उनके जिन कुटुम्बियों और मित्रोंका नाश हुआ है, उनकी क्या गति हुई होगी ? साथ ही उन्होंने व्यासजीसे उन्हें एक बार दिखला देनेकी प्रार्थना की। व्यासजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए गान्धारीसे कहा कि 'आज रातको ही तुम सब लोग अपने मृत बन्धुओंको उसी प्रकार देखोगे, जैसे कोई सोकर उठे हुए मनुष्योंको देखे। सायंकालका नित्यकृत्य करके व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग गङ्गातटपर एकत्रित हुए। व्यासजीने गङ्गाजीके पवित्र जलमें घुसकर पाण्डव एवं कौरवपक्षके योद्धाओंको, जो युद्धमें मर गये थे, आवाज दी। उसी समय जलमें वैसा ही कोलाहल सुनायी दिया, जैसा कौरव-पाण्डवोंकी सेनाओंके एकत्र होनेपर कुरुक्षेत्रके मैदानमें सुन पड़ा था। इसके बाद भीष्म और द्रोणको आगे करके वे सब राजा और राजकुमार, जिन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की थी, सहसा जलमेंसे बाहर निकल आये। युद्धके समय जिस वीरका जैसा वेष था, जैसी ध्वजा थी, जो वाहन थे, वे सब ज्यों-के-त्यों वहाँ दिखायी दिये। वे दिव्य वस्त्र और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए थे, सबने चमकते हुए कुण्डल पहन रक्खे थे और सबके शरीर दिव्य प्रभासे चम-चम कर रहे थे। सब-के-सब निर्वैर, निरभिमान, क्रोधरहित और डाहसे शून्य प्रतीत हुए थे। गन्धर्व उनका यश गा रहे थे और बंदीजन स्तुति कर रहे थे। उस समय व्यासजीने धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र दे दिये, जिनसे वे उन सारे योद्धाओंको अच्छी तरह देख सके। वह दृश्य अद्भुत, अचिन्त्य और रोमाञ्चकारी था। सब लोगोंने निर्निमेष नेत्रोंसे उस दृश्यको देखा। इसके बाद सब आये हुए योद्धा अपने-अपने सम्बन्धियोंसे क्रोध और वैर छोड़कर मिले। इस प्रकार रातभर प्रेमियोंका वह समागम जारी रहा। इसके बाद वे सब लोग जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार भागीरथीके जलमें प्रवेश करके अपने-अपने लोकोंमें चले गये। उस समय वेदव्यासजीने जिन स्त्रियोंके पति वीरगतिको प्राप्त हुए थे, उनको सम्बोधन करके कहा कि 'आपमेंसे जो कोई अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हों, उन्हें गङ्गाजीके जलमें गोता लगाना चाहिये।' उनके इस वचनको सुनकर बहुत-सी स्त्रियाँ जलमें घुस गयीं और मनुष्यदेहको छोड़कर अपने-अपने पतिके लोकमें चली गयीं। उनके पति जिस प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर आये थे, उसी प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंको धारणकर तथा विमानोंमें बैठकर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंमें पहुँच गयीं।

इधर राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके मुखसे जब यह अद्भुत वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने भी अपने स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित्‌के दर्शन करने चाहे। व्यासजी वहाँ मौजूद ही थे। उन्होंने राजाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय राजा परीक्षित्‌को वहाँ बुला दिया। जनमेजयने यज्ञान्त-स्नानके अवसरपर अपने साथ अपने पिताको भी स्नान कराया और इसके बाद परीक्षित् वहाँसे चले गये। इस प्रकार महर्षि वेदव्यासजीने अपने अलौकिक सामर्थ्यका प्रकाश किया। महर्षि वेदव्यास वास्तवमें एक अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष थे। महाभारतके रचयिता उन महर्षिके पुनीत चरणोंमें मस्तक नवाकर हम अपने इस लेखको समाप्त करते हैं।

गुरु द्रोणाचार्य

आचार्य द्रोण भरद्वाज मुनिके पुत्र थे। महर्षि भरद्वाज अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने महर्षि अग्निवेशको आग्नेय अस्त्रकी शिक्षा दी थी। अग्निवेश मुनिने अपने गुरुपुत्र द्रोणको आग्नेय नामक महान् अस्त्रकी शिक्षा दी थी। पाञ्चाल देशके राजाका पुत्र द्रुपद भी द्रोणके साथ भरद्वाज मुनिके आश्रममें विद्याध्ययन करता था।

कुछ दिनोंके बाद जब भरद्वाज मुनिका शरीरान्त हो गया तो द्रोण उसी आश्रममें रहकर तपस्या करने लगे। वे वेद-वेदाङ्गोंमें पारङ्गत तो थे ही, तपस्याके द्वारा अतितेजस्वी हो गये और उनका यश चारों ओर फैल गया। द्रोणाचार्यका ब्याह शरद्वान् मुनिकी पुत्री कृपीसे हुआ था, जो कृपाचार्यकी बहिन थी। कृपीसे द्रोणको एक पुत्र

उत्पन्न हुआ, जो अश्वत्थामाके नामसे अमर हो गया है।

उस समय सर्वज्ञ तथा समस्त शस्त्रास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी महेन्द्र पर्वतपर तप करते थे। द्रोणने यह सुनकर कि, परशुरामजीके पास सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है और वे ब्राह्मणोंको सर्वस्व दान करना चाहते हैं, अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँ गये और उनके चरणोंकी वन्दना करके उनसे प्रयोग, रहस्य तथा संहारविधि-सहित सारे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही रहस्य और व्रतके साथ समस्त धनुर्वेदका उपदेश भी प्राप्त किया।

तत्पश्चात् द्रोण अपने मित्र द्रुपदके पास गये। द्रुपद उस समय पाञ्चाल-नरेश थे। द्रोणने द्रुपदसे कहा—"राजन्! मैं आपका बालसखा हूँ, आपसे मिलने आया हूँ।" मित्र द्रोणके इस प्रकार प्रेमपूर्वक कहनेपर भी द्रुपदको यह बात सह्य न हुई। ऐश्वर्यके मदमें उन्मत्त होकर द्रुपद कहने लगे—"तुम मूढ़ हो। उन पुरानी लड़कपनकी बातोंको अब भी ढो रहे हो। अब उसको मनसे निकाल दो—

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते॥

'सच तो यह है कि दरिद्र मनुष्य धनवान्का, मूर्ख विद्वान्का तथा कायर शूरवीरका सखा नहीं हो सकता। अतएव पहलेकी मित्रताका क्या भरोसा करते हो?'

द्रुपदकी यह बात सुनकर द्रोण क्रोधसे जल उठे और' बिना कुछ कहे, वहाँसे उठकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये।* वहाँ जाकर कृपाचार्यके घर ठहरे। द्रोणको वहाँ कोई दूसरा नहीं जानता था।

एक दिन कौरव-पाण्डव, सभी वीरकुमार हस्तिनापुरके बाहर गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। दैवात् गुल्ली कुएँमें गिर गयी। राजकुमारोंका खेल बंद हो गया। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करें? इतनेमें एक ब्राह्मणको उधरसे जाते देखकर राजकुमारोंने उनको पकड़ा और गुल्ली कुएँसे निकाल देनेका आग्रह करने लगे। वह ब्राह्मण स्वयं द्रोण थे।

द्रोणने मुट्ठीभर सींकोंको लेकर अभिमन्त्रित करके उसमें बलका संचार किया और एक सींकसे गुल्लीको बींध दिया; उसके बाद उस सींकको दूसरी सींकसे, दूसरीको तीसरीसे—इस प्रकार करते हुए सींकोंकी रस्सी बना दी, और उन लड़कोंने उसे पकड़कर गुल्ली निकाल ली। यह अद्भुत कर्म देखकर राजकुमारोंके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। इसके बाद राजकुमारोंने एक अँगूठी कुएँमें डाल दी और द्रोणाचार्यको उसे निकालनेके लिये कहा। द्रोणने उस अँगूठीको भी उसी प्रकार सींकके बाणोंसे बींधकर कुएँसे बाहर निकाल दिया और उन आश्चर्यचकित कुमारोंके हाथमें उसे दे दिया, परंतु वह स्वयं तनिक भी विस्मित न हुए। तब राजकुमार बोले—

अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते।
कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे॥
(आदि० १३०। १४)

'ब्रह्मन्! हम आपको प्रणाम करते हैं। यह अद्भुत अस्त्रकौशल और किसीमें नहीं है। आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं, हम जानना चाहते हैं, बताइये—हम आपकी क्या सेवा करें?'

द्रोणने उत्तर दिया—'मेरे रूप और गुणोंकी बात भीष्मसे जाकर कहो, वही तुमलोगोंको मेरा परिचय बता देंगे।'

राजकुमारोंने जाकर भीष्मजीसे सब बातें कह सुनायीं। भीष्मजीने तुरंत समझ लिया कि द्रोणाचार्यके सिवा यह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। राजकुमारोंके साथ आकर भीष्मने द्रोणका स्वागत किया और उनको आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित करके राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षाका कार्य सौंप दिया। उस समय भीष्मने द्रोणकी अभ्यर्थना जिन शब्दोंमें की थी उससे उस युगके वीर क्षत्रियोंकी ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति-भावनाका अच्छा निदर्शन प्राप्त होता है—

कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम्।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव॥
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन्कृतं तदिति चिन्त्यताम्।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः॥
(आदि० १३०। ७८-७९)

'हे ब्रह्मन्! कुरुवंशका जो धन है तथा राष्ट्रोंके सहित जो यह राज्य है, इसके आप ही परम राजा हैं, और सभी कुरुवंशी आपके सेवक हैं। आपको जिस वस्तुकी इच्छा होगी, उसको आप प्राप्त हुआ ही समझिये। हे विप्रर्षे! आपने बड़ी कृपा की, बड़े भाग्यसे प्राप्त हुए।' उस समय कुरुवंशके राजकुमारोंके लिये गुरु-रूपमें वरण करके भीष्मने द्रोणको बहुत धन प्रदान किया,

---

* इस अपमानसे द्रोणके मनमें वैर बँध गया। और आगे चलकर जब कौरव-पाण्डव-कुमारोंको धनुर्वेदकी शिक्षा दे चुके तब गुरुदक्षिणामें द्रुपदको पराजित करके पकड़ लानेके लिये कुमारोंसे कहा, और स्वयं सब शिष्योंको सेनासहित लेकर पाञ्चाल देशपर चढ़ाई कर दी। कर्णसहित कौरवोंको तो हार खानी पड़ी, परंतु अर्जुनने भीम तथा सहदेव और नकुलको साथ लेकर युद्ध करके पाञ्चालोंको पराजित करके द्रुपदको पकड़कर द्रोणके सामने उपस्थित कर दिया। द्रोणने द्रुपदके साथ मित्रवत् व्यवहार किया, और कहा कि भागीरथीके दक्षिण आप राज्य करें और उत्तरमें मैं राज्य करूँगा। मुझे आप अपना पूर्ववत् सखा समझें।

और रहनेके लिये धन-धान्यसे भरपूर सुन्दर गृहकी व्यवस्था कर दी।

तत्पश्चात् द्रोणाचार्य राजकुमारोंको शिक्षा देने लगे। द्रुपदद्वारा किये गये अपमानको वे नहीं भूले। एक दिन उन्होंने राजकुमारोंसे कहा कि, "मेरे हृदयमें एक आकाङ्क्षा है, जो मुझे सदा चिन्तित रखती है, उसकी पूर्ति शस्त्रास्त्रके द्वारा हो सकती है। क्या तुममें कोई मेरे इस कार्यको सिद्ध कर सकता है?"—यह सुनकर सब राजकुमार चुप हो गये। केवल अर्जुनने आगे बढ़कर कहा—'गुरुदेव! मैं आपको उस आकाङ्क्षाको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।'—द्रोणाचार्य अर्जुनके इस उत्तरको सुनकर हर्षित हो उठे। उन्होंने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् अर्जुनके प्रति आचार्यकी विशेष प्रीति हो गयी और वह आजीवन बनी रही। अर्जुन भी आचार्यके प्रति सबसे अधिक भक्तिभावपूर्ण थे। आचार्यने प्रीतिपूर्वक नाना प्रकारके दिव्य और मानुष शस्त्रास्त्रोंकी शिक्षा राजकुमारोंको दी। गुरु द्रोणकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। धीरे-धीरे वृष्णि, अन्धक तथा अन्यान्य देशोंके युवक उनकी सेवामें शस्त्रास्त्र-ज्ञान प्राप्त करने आये। गुरु द्रोणकी कृपा तथा अपनी सेवा और लगनके कारण अर्जुन सब राजकुमारोंमें अग्रगण्य हो गये।

एक बार गुरु द्रोण अपने शिष्योंके साथ वनमें जा रहे थे। राजकुमारोंके साथ एक कुत्ता भी था। राजकुमार मृगयाके लिये वनमें आगे बढ़े, कुत्ता आगे-आगे जा रहा था। अचानक कुत्ता वापस आता दिखायी दिया। राजकुमारोंने देखा कि उसका मुँह बाणोंसे भर गया है। यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि भला यह दूसरा कौन धनुर्धर है जो इतना लघुहस्त है। आचार्य द्रोणके साथ-साथ सब राजकुमार कुत्तेके पीछे-पीछे आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर देखते क्या हैं कि एक भीलकुमार आचार्य द्रोणकी प्रतिमा खड़ी करके उसकी विधिवत् पुष्पादिके द्वारा पूजा कर रहा है। आचार्यने उसे देखते ही पहचान लिया कि वह भीलकुमार एकलव्य है, जिसको भील होनेके कारण आचार्यने शिष्य बनानेसे इन्कार कर दिया था।

आचार्यको देखते ही एकलव्य दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। द्रोणाचार्य नहीं चाहते थे कि उनके प्रिय शिष्य अर्जुनसे बढ़कर कोई दूसरा धनुर्धर हो, इसलिये जब एकलव्यने कहा कि, 'भगवन्! मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ'—तब द्रोणाचार्यने उससे गुरुदक्षिणामें दाहिने हाथका अँगूठा माँगा। और एकलव्यने प्रसन्नचित्तसे अँगूठा काटकर गुरुके चरणोंमें रख दिया तथा विश्वमें अक्षय कीर्ति प्राप्त की।

द्रोणाचार्य स्वभावतः अपने शिष्यों—कौरवों और पाण्डवों, दोनोंका हित चाहते थे। अतएव पाण्डवोंके साथ किये जानेवाले कौरवोंके अत्याचारको वे पसंद नहीं करते थे। लाक्षागृहकी दुर्घटनाके बाद जब पाण्डवोंका द्रुपदकी राजसभामें द्रौपदीकी प्राप्तिका समाचार हस्तिनापुरमें पहुँचा, तब भीष्मने कहा कि, 'मेरे लिये जैसे पाण्डुके पुत्र हैं, वैसे कौरव हैं। उनको बुलाकर आधा राज्य प्रदान कर देना चाहिये।" इसपर द्रोणाचार्यने कहा था कि—

ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः॥

(आदि० २०३।२)

'हे राजन्! मेरा भी यही विचार है जो महात्मा भीष्मका है। और सनातन धर्म भी यही है कि पाण्डवोंको आधा राज्य दे देना चाहिये।'

द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुनकी, जब अवसर आता, प्रशंसा किये बिना नहीं चूकते थे। आचार्यके मुखसे अर्जुनकी प्रशंसा कर्णको प्रायः असह्य हो उठती थी। पाण्डवोंके अज्ञातवासके बाद गोहरणपर्वमें जब विराटकी गायोंको हाँक ले जानेके लिये कौरव-सेना पहुँची तो आचार्य द्रोण 'एष वीरः महेष्वासः सर्व-शस्त्रभृतां वरः' इत्यादि वाक्योंसे अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, तब कर्ण बोला—

सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे।
न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च॥

(विराट० ३९।१४)

'आप तो सदा अर्जुनके गुणोंका वर्णन करके हमारा अनादर करते रहते हैं, और अर्जुन मेरी और दुर्योधनकी बराबरी नहीं कर सकता।'

इस अवसरपर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे इस प्रकार आचार्य द्रोणका परिचय दिया है—

दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः।
सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान्॥
बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये।
वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च॥
ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष।
धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन् नित्यं प्रतिष्ठितः॥
क्षमा दमश्च सत्यं च आनृशंस्यमथार्जवम्।
एते चान्ये च बहवो यस्मिन् नित्यं द्विजे गुणाः॥
तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे॥

(विराट० ५८।५—८½)

"भरद्वाज ऋषिके पुत्र आचार्य द्रोण दीर्घबाहु हैं; महातेजस्वी हैं, बलवान् और रूपवान् हैं, सब लोकोंमें विक्रान्त और प्रतापी हैं, बुद्धिमें शुक्राचार्य और नीतिमें बृहस्पतिके तुल्य हैं, चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, ब्रह्मचर्य-व्रती हैं, संहार सहित

सारे दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, सारा धनुर्वेद उनके भीतर प्रतिष्ठित है। क्षमा, दम, सत्य, सौजन्य, सरलता—तथा इसी प्रकारके बहुतसे गुण जिस ब्राह्मणमें नित्य विद्यमान रहते हैं, उस महाभाग आचार्य द्रोणसे मैं युद्ध करना चाहता हूँ।'—अर्जुनकी इस उक्तिसे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु द्रोण गुणोंके सिन्धु थे। उन्होंने जब रथपर अर्जुनको युद्धके लिये उद्यत देखा तो भीष्मसे कहा कि 'पाण्डव राज्यसे वञ्चित कर दिये गये हैं, इसलिये आज तपस्याके द्वारा दुर्धर्ष अर्जुन दुर्योधनको क्षमा नहीं कर सकता। अतः हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह दुर्योधनके पास न पहुँच सके।' अर्जुन उनका प्रिय शिष्य था तथापि आचार्य द्रोण दुर्योधनका अनिष्ट नहीं देख सकते थे। यह उनकी हृदयकी विशालताका द्योतक है।

आचार्य द्रोण भीष्मपितामहकी बातोंका सदा ही समर्थन करते थे; क्योंकि भीष्मकी नीति कौरव और पाण्डवोंमें मेल करानेकी थी, वह गृहयुद्ध पसंद नहीं करते थे। आचार्य द्रोणकी भी यही नीति थी; क्योंकि कौरव और पाण्डव, दोनों ही उनके शिष्य थे। और वे दोनोंका ही कल्याण चाहते थे। कर्ण जब डींग हाँककर पाण्डवोंके विरुद्ध दुर्योधनको बढ़ावा देता था तो भीष्म उसको फटकारते और पाण्डवोंकी शक्तिका बखान करके उनसे संधि करनेका परामर्श कौरवोंको देते। ऐसे अवसरोंपर आचार्य द्रोण बराबर भीष्मका समर्थन करते थे। इसका फल यह हुआ कि दुर्योधन कर्णको तो अपना पक्षपाती, पर भीष्म और द्रोणको पाण्डवोंका पक्षपाती समझता था; परंतु पक्षपातका दोषारोपण मिथ्या था। वे तो दोनोंका ही कल्याण चाहते थे।

वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण जब संधिकार्यमें सफल न हुए, दुरात्मा दुर्योधनने उनकी शुभ सम्मतिकी पूर्ण उपेक्षा कर दी, और युद्ध होना निश्चय हो गया तो बड़े दुःखसे आचार्य द्रोणने कहा—

अश्वत्थाम्नि यथापुत्रे भूयो मम धनंजये।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे॥
तं च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनंजयम्।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥
(उद्योग० १३९। ४-५)

'हे राजन्! अश्वत्थामाके समान ही अर्जुनमें मेरी अतिशय प्रीति है। अर्जुन मेरा बड़ा सत्कार करता है और अत्यन्त नम्र रहता है। वह अर्जुन मुझे पुत्रसे भी प्रिय है। क्षात्र धर्मका पालन करनेके लिये उसके विरुद्ध भी मैं युद्ध करूँगा, धिक्कार है इस क्षत्रजीविकाको!'

पश्चात् महाभारतके युद्धमें अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर आचार्य द्रोण द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नके द्वारा मारे गये।

महात्मा विदुर

महात्मा विदुर साक्षात् धर्मके अवतार थे। माण्डव्य ऋषिके शापसे इन्हें शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ा। ये महाराज विचित्रवीर्यकी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ये धृतराष्ट्र और पाण्डुके एक प्रकारसे सगे भाई ही थे। ये बड़े ही बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, विद्वान्, सदाचारी एवं भगवद्भक्त थे। इन्हीं गुणोंके कारण सब लोग इनका बड़ा सम्मान करते थे। ये बड़े निर्भीक एवं सत्यवादी थे तथा धृतराष्ट्र आदिको बड़ी नेक सलाह दिया करते थे। ये धृतराष्ट्रके मन्त्री भी थे। दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा था और उसके जन्मके समय अनेक अमङ्गलसूचक उत्पात भी हुए। यह सब देखकर इन्होंने ब्राह्मणोंके साथ राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा, इसलिये इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है। इसके जीवित रहनेपर आपको दुःख उठाना पड़ेगा। शास्त्रोंकी आज्ञा है कि कुलके लिये एक मनुष्यका, ग्रामके लिये कुलका, देशके लिये एक ग्रामका और आत्माके लिये सारी पृथ्वीका परित्याग कर देना चाहिये।' धृतराष्ट्रने मोहवश विदुरकी बात नहीं मानी। फलतः उन्हें दुर्योधनके कारण जीवनभर दुःख उठाना पड़ा और अपने जीते-जी कुलका नाश देखना पड़ा। महात्माओंकी हितभरी वाणीपर ध्यान न देनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है!

जब दुर्योधन पाण्डवोंपर अत्याचार करने लगा तो इनकी सहानुभूति स्वाभाविक ही पाण्डवोंके प्रति हो गयी; क्योंकि एक तो वे पितृहीन थे और दूसरे धर्मात्मा थे। ये प्रत्यक्षरूपमें तथा गुप्तरूपसे भी बराबर उनकी रक्षा एवं सहायता करते रहते थे। धर्मात्माओंके प्रति धर्मकी सहानुभूति होनी ही चाहिये और विदुर सक्षात् धर्मके अवतार थे। ये जानते थे कि पाण्डवोंपर चाहे कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न आवें, अन्तमें विजय उनकी ही होगी—'यतो धर्मस्ततो जयः।' इन्हें यह भी मालूम था कि पाण्डव सब दीर्घायु हैं, अतः उन्हें कोई मार नहीं सकता। इसीलिये जब दुर्योधनने खेल-ही-खेलमें भीमसेनको विष खिलाकर गङ्गाजीमें बहा दिया और उनके घर न लौटनेपर माता कुन्तीको चिन्ताके साथ-साथ दुर्योधनकी ओरसे अनिष्टकी भी आशङ्का हुई तो इन्होंने जाकर उन्हें समझाया कि 'इस समय चुप साध लेना ही अच्छा है। दुर्योधनके प्रति आशङ्का प्रकट करना खतरेसे खाली नहीं है। इससे वह और चिढ़ जायगा, जिससे तुम्हारे दूसरे पुत्रोंपर भी आपत्ति आ सकती है। भीमसेन मर नहीं सकता, वह शीघ्र ही लौट आयेगा।' कुन्तीने विदुरजीकी

नीतिपूर्ण सलाह मान ली । उनकी बात बिल्कुल यथार्थ निकली । भीमसेन कुछ ही दिनों बाद जीते-जागते लौट आये ।

लाक्षाभवनसे बेदाग बचकर निकल भागनेकी युक्ति भी पाण्डवोंको विदुरने ही बतायी थी। ये नीतिज्ञ होनेके साथ-साथ कई भाषाओंके भी जानकार थे। जिस समय पाण्डव लोग वारणावत जा रहे थे, उसी समय इन्होंने म्लेच्छ-भाषामें युधिष्ठिरको उनपर आनेवाली विपत्तिकी सूचना दे दी और साथ ही उससे बचनेका उपाय भी समझा दिया। इतना ही नहीं, इन्होंने पहलेसे ही एक सुरंग खोदनेवालेको लाक्षाभवनमेंसे निकल भागनेके लिये सुरंग खोदनेको कह दिया था। उसने गुप्तरूपसे जमीनके भीतर-ही-भीतर जंगलमें जानेका एक रास्ता बना दिया। लाक्षाभवनमें आग लगाकर पाण्डवलोग माता कुन्तीके साथ उसी रास्तेसे निरापद बाहर निकल आये। गङ्गातटपर इनके पार होनेके लिये विदुरजीने नाविकके साथ एक नौका भी पहलेसे ही तैयार रख छोड़ी थी। उसीसे ये लोग गङ्गापार हो गये। इस प्रकार विदुरजीने बुद्धिमानी एवं नीतिमत्तासे पाण्डवोंके प्राण बचा लिये, दुर्योधन आदिको पता भी न लगने दिया। उन लोगोंने यही समझा कि पाण्डव अपनी माताके साथ लाक्षाभवनमें जलकर मर गये। सर्वत्र केवल शारीरिक बल अथवा अस्त्रबल ही काम नहीं देता। आत्मरक्षाके लिये नीतिबलकी भी आवश्यकता होती है। महात्मा विदुर धर्म एवं शास्त्रज्ञानके साथ-साथ नीतिके भी खजाने थे।

विदुरजी जिस प्रकार पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति और प्रेम रखते थे, उसी प्रकार अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके प्रति भी स्नेह और आत्मीयता रखते थे। उनके हितका ये सदा ध्यान रखते थे और उन्हें बराबर अच्छी सलाह दिया करते थे। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' इस सिद्धान्तके अनुसार अवश्य ही इनकी बातें सत्य एवं हितपूर्ण होनेपर भी दुर्योधनादिको कड़वी लगती थीं। इसीलिये दुर्योधन एवं उसके साथी सदा ही इनसे असंतुष्ट रहते थे। परंतु ये उनकी अप्रसन्नताकी कुछ भी परवा न कर सदा ही उसकी मङ्गल-कामना किया करते थे। और उसे कुमार्गसे हटानेकी अनवरत चेष्टा करते रहते थे। धृतराष्ट्र भी अपने दुरात्मा पुत्रके प्रभावमें होनेके कारण यद्यपि हर समय इनकी बातपर अमल नहीं कर पाते थे और इसीलिये कष्ट भी पाते थे, फिर भी उनका इनपर बहुत अधिक विश्वास था। वे इन्हें बुद्धिमान्, दूरदर्शी एवं अपना परम हितचिन्तक मानते थे और बहुधा इनसे सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करते थे। पाण्डवोंके साथ व्यवहार करते समय तो वे खास तौरपर इनकी सलाह लिया करते थे। वे जानते थे कि पाण्डवोंके सम्बन्धमें इनकी सलाह पक्षपातशून्य होगी। अस्तु।

जब मामा शकुनिकी सलाहसे दुष्टबुद्धि दुर्योधन पाण्डवोंके साथ जुआ खेलनेका प्रस्ताव लेकर अपने पिताके पास पहुँचा तो उन्होंने नियमानुसार विदुरजीको सलाहके लिये बुलाया। उसकी बात न माननेपर दुर्योधनने उन्हें प्राण त्याग देनेका भय दिखलाया; परंतु उन्होंने उसे स्पष्ट कह दिया कि 'विदुरजीसे सलाह लिये बिना मैं तुम्हें जुआ खेलनेकी आज्ञा कदापि नहीं दे सकता।' दुर्योधनका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर विदुरजीने समझ लिया कि अब कलियुग आनेवाला है। इन्होंने उस प्रस्तावका घोर विरोध किया और अपने बड़े भाईको समझाया कि 'जुआ खेलनेसे आपके पुत्रों और भतीजोंमें वैर-विरोध ही बढ़ेगा, उनमेंसे किसीका भी हित नहीं होगा। इसलिये द्यूतका आयोजन न करना ही अच्छा है। इसीमें दोनों ओरका मङ्गल है।' धृतराष्ट्रने विदुरजी एवं उनके मतकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको बहुत समझाया, परंतु उसने इनकी एक न मानी। वह तो जुएमें हराकर पाण्डवोंको नीचा दिखानेपर तुला हुआ था। उससे पाण्डवोंका अतुल वैभव देखा नहीं जाता था। दुर्योधनको किसी तरह न मानते देखकर अन्तमें धृतराष्ट्रने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और विदुरजीके द्वारा ही पाण्डवोंको इन्द्रप्रस्थसे बुलवा भेजा। यद्यपि विदुरजीको यह बात अच्छी नहीं लगी, फिर भी बड़े भाईकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना इन्होंने ठीक नहीं समझा।

पाण्डवोंके पास जाकर विदुरजीने उन्हें सारी बात कह सुनायी। महाराज युधिष्ठिरने भी जुएको अच्छा न समझते हुए भी अपने ताऊकी आज्ञा मानकर दुर्योधनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जुएके समय भी इन्होंने जुएकी बुराइयाँ बताते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आप अब भी सँभल जाइये, दुर्योधनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना छोड़ दीजिये और कुलको सर्वनाशसे बचाइये। पाण्डवोंसे विरोध करके उन्हें अपना शत्रु न बनाइये।' पाण्डवोंके वनमें चले जानेपर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ी चिन्ता और जलन हुई। उन्होंने विदुरजीको बुलाकर अपने मनकी व्यथा सुनायी और उनसे यह जानना चाहा कि 'अब हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिससे प्रजा हमपर संतुष्ट रहे और पाण्डव भी क्रोधित होकर हमारी कोई हानि न कर सकें।' इसपर विदुरजीने उन्हें समझाया कि 'राजन्! अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों फलोंकी प्राप्ति धर्मसे ही होती है। राज्यकी जड़ है धर्म; अतः आप धर्ममें स्थित होकर पाण्डवोंकी और अपने पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आपके पुत्रोंने शकुनिकी सलाहसे

भरी सभामें धर्मका तिरस्कार किया है; क्योंकि सत्यसन्ध युधिष्ठिरको कपटद्यूतमें हराकर उन्होंने उनका सर्वस्व छीन लिया है, यह बड़ा अधर्म हुआ है। इसके निवारणका मेरी दृष्टिमें एक ही उपाय है, वैसा करनेसे आपका पुत्र पाप और कलङ्कसे छूटकर प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। वह उपाय यह है कि आपने पाण्डवोंका जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें लौटा दिया जाय। राजाका यह परम धर्म है कि वह अपने ही हकमें संतुष्ट रहे, दूसरेका हक न चाहे। जो उपाय मैंने बतलाया है, उससे आपका लाञ्छन छूट जायगा, भाई-भाईमें फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी न होगा। यदि आपके पुत्रोंका तनिक भी सौभाग्य शेष रह गया हो तो शीघ्र-से-शीघ्र यह काम कर डालना चाहिये। यदि आप मोहवश ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंशका नाश हो जायगा। यदि आपका पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ले, तब तो ठीक है; अन्यथा परिवार और प्रजाके सुखके लिये उस कुलकलङ्क और दुरात्माको कैद करके युधिष्ठिरको राज-सिंहासनपर बैठा दीजिये। युधिष्ठिरके चित्तमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है, इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करें। दुःशासन भरी सभामें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा-याचना करे। और तो क्या कहूँ; बस, इतना करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे।'

विदुरजीकी यह मन्त्रणा कितनी सच्ची, हितपूर्ण, धर्मयुक्त और निर्भीक थी। परंतु जिस प्रकार मरणासन्नको ओषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार धृतराष्ट्रको विदुरजीकी यह सलाह पसंद नहीं आयी। वे विदुरजीपर खीझ गये और बोले—'विदुर! अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है; तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ। मैं देखता हूँ कि तुम बार-बार पाण्डवोंका ही पक्ष लेते हो। भला, मैं उनके लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ दूँ?' विदुरजीने देखा, अब कौरव-कुलका नाश अवश्यम्भावी है; इसलिये ये चुपचाप उठकर वहाँसे चल दिये और तुरंत रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास काम्यकवनमें चले गये। वहाँ पहुँचकर इन्होंने पाण्डवोंको हस्तिनापुरसे चले आनेका कारण बतलाया और उन्हें प्रसङ्गवश बड़े कामकी बातें कहीं। इधर जब धृतराष्ट्रको विदुरजीके पाण्डवोंके पास चले जानेकी बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि विदुरकी सहायता और सलाह पाकर तो पाण्डव और भी बलवान् हो जायँगे! तब तो उन्होंने तुरंत संजयको भेजकर विदुरजीको बुलवा भेजा। विदुरजी तो सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। उनके मनमें धृतराष्ट्रके प्रति तनिक भी रोष नहीं था। बड़े भाईकी आज्ञा पाकर जिस प्रकार वे हस्तिनापुरसे चले आये थे, उसी प्रकार इस बार लौट जानेकी आज्ञा पाकर वे वापस उनके पास लौट गये। वहाँ जाकर इन्होंने धृतराष्ट्रसे कहा कि 'मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं; फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें स्वाभाविक ही उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे चित्तमें आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं है।' बात सचमुच ऐसी ही थी। धृतराष्ट्रने भी इनसे अपने अनुचित व्यवहार-के लिये क्षमा माँगी। विदुरजी पूर्ववत् ही धृतराष्ट्रके पास रहकर उनकी सेवा करने लगे।

एक समय धृतराष्ट्रको रातमें नींद नहीं आयी। तब उन्होंने रातमें ही विदुरजीको बुलाकर उनसे शान्तिका उपाय पूछा। उस समय विदुरजीने धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिका जो सुन्दर उपदेश दिया, वह विदुरनीतिके नामसे उद्योगपर्वके ३३ से ४० तक आठ अध्यायोंमें संगृहीत है। वह स्वतन्त्ररूपसे अध्ययन और मनन करनेकी चीज है। महाभारताङ्कके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ५४६ से ५६२ तक उसका अविकल अनुवाद छापा गया था।

विदुरजीके भाषणको सुनकर धृतराष्ट्रकी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने उनके मुखसे और भी कुछ सुनना चाहा। उन्होंने कहा—'राजन्! मुझे जो कुछ सुनाना था, वह मैं आपको सुना चुका, अब ब्रह्माजीके पुत्र सनत्सुजात नामक जो सनातन ऋषि हैं, वे ही आपको तत्त्वविषयक उपदेश करेंगे। तत्त्वोपदेश करनेका मुझे अधिकार नहीं है; क्योंकि मेरा जन्म शूद्राके गर्भसे हुआ है।' यह कहकर उन्होंने उसी समय महर्षि सनत्सुजातका स्मरण किया और वे तुरंत वहाँ उपस्थित हो गये। सनत्सुजातजीने राजा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए परमात्माके स्वरूप तथा उनके साक्षात्कारके विषयमें बड़ा सुन्दर विवेचन किया। इस प्रकार विदुरजीने स्वयं तो धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिकी बात सुनायी ही, सनत्सुजात जैसे सिद्ध-योगी एवं परमर्षिद्वारा उन्हें तत्त्वका उपदेश कराकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया। विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके लिये जो कुछ भी चेष्टा होती थी, वह उनके कल्याणके लिये ही होती थी। महात्माओंका जीवन ही दूसरोंके कल्याणके लिये ही होता है। यद्यपि विदुरजी तत्त्वज्ञानी थे, फिर भी शूद्र होनेके नाते उन्होंने स्वयं उपदेश न देकर सनातन मर्यादाकी रक्षा की और इस प्रकार जगत्को अपने आचरणके द्वारा यह उपदेश दिया कि ज्ञानीके लिये भी शास्त्रमर्यादाकी रक्षा आवश्यक है। सनत्सुजातजीका यह उपदेश 'सनत्सुजातीय'के नामसे उद्योगपर्वके ही ४१ से ४६ तक छः अध्यायोंमें संगृहीत है। इसका भाषान्तर भी महाभारताङ्कके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ५७० से ५८१ तक अविकलरूपसे छापा गया था। पाठकोंको वहाँ तथा महाभारतमें उसे पूरा देखना चाहिये।

विदुरजी ज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी होनेके साथ-साथ अनन्य भगवद्भक्त भी थे। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें

निश्छल प्रीति थी । भगवान् श्रीकृष्ण भी इन्हें बहुत मानते थे। वे जब पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये, उस समय वे राजा धृतराष्ट्र एवं उनके सभासदोंसे मिलकर सीधे विदुरजीके यहाँ पहुँचे और उनका आतिथ्य स्वीकार किया। इसके बाद वे अपनी बूआ कुन्तीसे मिले। इतना ही नहीं, दुर्योधनके यहाँ जानेपर जब दुर्योधनने सम्बन्धी होनेके नाते श्रीकृष्णसे भोजनके लिये प्रार्थना की तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और पुनः विदुरके यहाँ चले आये। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक आदि कई सम्भावित लोग उनसे मिलने आये और उन सबने श्रीकृष्णसे अपने यहाँ चलकर आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना की; परन्तु श्रीकृष्णने सम्मानपूर्वक सबको विदा कर दिया और उस दिन विदुरके यहाँ ही पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन किया। इस घटनासे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि विदुरका श्रीकृष्णके प्रति कैसा अनुराग था। श्रीकृष्णका तो विरद ही ठहरा—

> **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।**
> **तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥**
> (गीता ९ । २६)

—प्रेमशून्य बड़ी-बड़ी तैयारियाँ और राजसी ठाट-बाट उन्हें आकर्षित नहीं कर सकते, किन्तु प्रेमके रससे परिप्लुत रूखा-सूखा भोजन भी उनकी तृप्तिके लिये पर्याप्त होता है।

भोजनके बाद रात्रिमें भी श्रीकृष्ण विदुरके यहाँ ही रहे और सारी रात उन्हें बातें करते बीत गयी। सबेरे नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीकृष्ण कौरवोंकी सभामें चले गये। वहाँ जब दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़कर कैद करनेका दुःसाहसपूर्ण विचार किया, उस समय विदुरजीने श्रीकृष्णके बल एवं महिमाका वर्णन करते हुए उसे यह बतलाया कि 'ये साक्षात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ईश्वर हैं; यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे अग्निमें गिरकर पतंगा नष्ट हो जाता है।' इसके बाद जब भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वरूप प्रकट किया, उस समय सब लोगोंने भयभीत होकर अपने-अपने नेत्र मूँद लिये। केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और उपस्थित ऋषिलोग ही उनका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्ने इन सबको दिव्यदृष्टि दे दी थी। थोड़ी ही देर बाद अपनी इस लीलाको समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण वापस उपप्लव्यकी ओर चले गये, जहाँसे वे आये थे। विदुरजी भी और लोगोंके साथ कुछ दूरतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये और फिर उनसे विदा लेकर वापस चले आये।

श्रीकृष्णके असफल लौट जानेपर दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर दोनों दल कुरुक्षेत्रके मैदानपर एकत्रित हुए और अठारह दिनोंमें ही अठारह अक्षौहिणी सेना घासकी तरह कट गयी। राजा धृतराष्ट्र अपने सौ-के-सौ पुत्रों तथा पौत्रोंका विनाश हो जानेसे बड़े दुखी हुए। उस समय विदुरजीने मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करते हुए यह बतलाया कि युद्धमें मारे जानेवालोंकी तो बड़ी उत्तम गति होती है; अतः उनके लिये तो शोक करना ही नहीं चाहिये।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'जितनी बार प्राणी जन्म लेता है, उतनी ही बार वह अलग-अलग व्यक्तियोंसे सम्बन्ध जोड़ता है और मृत्युके बाद वे सारे सम्बन्ध स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं। इसलिये भी मरे हुए सम्बन्धियोंके लिये शोक करना बुद्धिमानी नहीं है। फिर सुख-दुःखसे सम्बन्ध रखनेवाली संयोग-वियोग आदि जितनी भी घटनाएँ होती हैं, वे सब अपने ही द्वारा किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फलरूपमें प्राप्त होती हैं और कर्मफल सभी प्राणियोंको भोगना ही पड़ता है।' इसके बाद विदुरजी-ने संसारकी अनित्यता, निःसारता और परिवर्तनशीलता, जन्म और मृत्युके क्लेश, जीवका अविवेक, मृत्युकी दृष्टिसे सबकी समानता तथा धर्मके आचरणका महत्त्व बतलाते हुए संसारके दुःखोंसे छूटनेके उपायोंका दिग्दर्शन कराया।

युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो जानेके बाद जब धृतराष्ट्र पाण्डवोंके पास रहने लगे, तब विदुरजी भी धृतराष्ट्रके समीप रहकर उन्हें धर्मचर्चा सुनाया करते थे। वहाँसे जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने वन जानेका निश्चय किया तो ये भी उनके साथ हो लिये। वहाँ जाकर विदुरजीने घोर तपस्याका व्रत ले लिया। वे निराहार रहकर निर्जन वनमें एकान्तवास करने लगे। शून्य वनमें कभी-कभी लोगोंको दर्शन हो जाया करता था। कुछ दिनों बाद जब महाराज युधिष्ठिर अपने समस्त परिवार एवं सेनाको साथ लेकर वनमें अपने ताऊ-ताई तथा माता कुन्तीसे मिलने आये और वहाँ विदुरजीको न देखकर उनके विषयमें राजा धृतराष्ट्रसे पूछने लगे, उसी समय उन्हें विदुरजी दूरपर दिखायी दिये। वे सिरपर जटा धारण किये हुए थे, मुखमें पत्थर दबाये थे और दिगम्बर वेश बनाये हुए थे। उनके धूलिधूसरित दुर्बल शरीरपर नसें उभर आयी थीं, मैल जम गया था। वे आश्रमकी ओर देखकर लौटे जा रहे थे। युधिष्ठिर उनसे मिलनेके लिये उनके पीछे दौड़े और जोर-जोरसे अपना नाम बताकर उन्हें पुकारने लगे। घोर जंगलमें पहुँचकर विदुरजी एक वृक्षका सहारा लेकर स्थिर भावसे खड़े हो गये। राजा युधिष्ठिरने देखा कि विदुरजीका शरीर अस्थिपञ्जरमात्र रह गया है, वे बड़ी कठिनतासे पहचाने जाते थे। युधिष्ठिरने उनके सामने जाकर उनकी पूजा की, विदुरजी समाधिस्थ होकर निर्निमेष

दृष्टिसे युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे। इसके बाद वे योगबलसे अपने अङ्गोंको युधिष्ठिरके अङ्गोंमें, इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें तथा प्राणोंको प्राणोंमें मिलाकर उनके शरीरमें प्रवेश कर गये। उनका शरीर निर्जीव होकर उसी भाँति वृक्षके सहारे खड़ा रह गया। इस प्रकार साक्षात् धर्मके अवतार महात्मा विदुर धर्ममय जीवन बिताकर अन्तमें धर्ममूर्ति महाराज युधिष्ठिरके ही शरीरमें प्रवेश कर गये। बोलो धर्मकी जय!

दिव्यदृष्टि संजय

संजय महाराज धृतराष्ट्रके मन्त्री थे। ये जातिके सूत थे। ये बड़े स्वामिभक्त, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ थे। ये सत्यवादी एवं निर्भीक भी थे। ये धृतराष्ट्रको बड़ी अच्छी सलाह देते थे। और उनके हितकी दृष्टिसे कभी-कभी कड़ी बातें भी कह दिया करते थे। इन्होंने अन्ततक धृतराष्ट्रका साथ दिया। ये महर्षि वेदव्यासके कृपापात्र तथा अर्जुन एवं भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी थे। ये दुर्योधनके अत्याचारोंका बड़े जोरोंसे प्रतिवाद करते थे और उनका समर्थन होनेपर धृतराष्ट्रको भी फटकार दिया करते थे। जब पाण्डव दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे थे, उस समय इन्होंने पाण्डवोंके साथ दुर्योधनके अनुचित बर्तावकी बड़ी कड़ी आलोचना करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज! अब यह निश्चित है कि आपके कुलका तो नाश होगा ही, निरीह प्रजा भी न बचेगी। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुरजीने आपके पुत्रको बहुत मना किया; फिर भी उस निर्लज्जने पाण्डवोंकी प्रिय पत्नी धर्मपरायणा द्रौपदीको सभामें बुलवाकर अपमानित किया। विनाशकाल समीप आनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है, अन्याय भी न्यायके समान दीखने लगता है। आपके पुत्रोंने अयोनिजा, पतिपरायणा, अग्नि-वेदीसे उत्पन्न सुन्दरी द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित कर भयङ्कर युद्धको न्योता दिया है। ऐसा निन्दनीय कर्म दुष्ट दुर्योधनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।' क्या कोई निर्भीक-से-निर्भीक मन्त्री राजाके सामने युवराजके प्रति इतनी कड़ी किन्तु सच्ची बात कह सकता है? शास्त्रोंमें भी कहा है—'अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः।' धृतराष्ट्रने संजयकी बातका अनुमोदन करते हुए अपनी कमजोरीको स्वीकार किया, जिसके कारण वे दुर्योधनके उस अत्याचारको रोक नहीं सके थे।

संजय सामनीतिके बड़े पक्षपाती थे। इन्होंने युद्धको रोकनेकी बहुत चेष्टा की और दोनों ही पक्षोंको युद्धकी बुराइयाँ बतलाकर तथा आपसकी फूटके दुष्परिणामकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बहुत समझाया। पाण्डवोंने तो इनकी बात मान ली; परन्तु दुर्योधनने इनके सन्धिके प्रस्तावको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया, जिससे युद्ध करना अनिवार्य हो गया। दैवका विधान ऐसा ही था। कौरवोंके पक्षमें भीष्म, द्रोण, विदुर और संजयका मत प्रायः एक होता था, क्योंकि ये चारों ही धर्मके पक्षपाती थे और हृदयसे पाण्डवोंके साथ सहानुभूति रखते थे। ये चारों ही राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंकी अप्रसन्नताकी तनिक भी परवा न कर उन्हें सच्ची बात कहनेमें कभी नहीं हिचकते थे और सच्ची बात प्रायः कड़वी होती ही है।

जब धृतराष्ट्रने अपनी ओरसे पाण्डवोंके साथ बात-चीत करनेके लिये संजयको उपप्लव्यमें भेजा, तब संजयने जाकर पाण्डवोंकी सच्ची प्रशंसा करते हुए उन्हें युद्धसे विरत होनेकी ही सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'युद्धसे अर्थ और धर्म कुछ भी नहीं सधनेका। सन्धि ही शान्तिका सर्वोत्तम उपाय है और राजा धृतराष्ट्र भी शान्ति ही चाहते हैं, युद्ध नहीं।' श्रीकृष्ण और अर्जुनके विशेष कृपापात्र होनेके नाते इन्हें यह पूरा विश्वास था कि ये लोग मेरी बातको कभी नहीं टालेंगे। अर्जुनके सम्बन्धमें तो इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'अर्जुन तो मेरे माँगनेपर अपने प्राणतक दे सकते हैं।' इससे यह बात सिद्ध होती है कि संजय अर्जुन और श्रीकृष्णके अनन्य प्रेमी थे। युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे संजयकी बातका समर्थन किया, परन्तु उन्होंने सन्धिकी यही शर्त रक्खी कि उन्हें इन्द्रप्रस्थका राज्य लौटा दिया जाय। भगवान् श्रीकृष्णने भी धर्मराजका समर्थन किया और संजय युधिष्ठिरका सन्देश लेकर वापस हस्तिनापुर चले आये। धृतराष्ट्रके पास जाकर पहले तो इन्होंने एकान्तमें उन्हें खूब फटकारा और पीछे सबके सामने पाण्डवोंका धर्मयुक्त सन्देश सुनाकर उनकी युद्धकी तैयारी तथा पाण्डव-पक्षके वीरोंके बलका विशदरूपसे वर्णन किया। साथ ही इन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नता सिद्ध करते हुए उन्हें बतलाया कि दोनों एक दूसरेके साथ कैसे घुले-मिले हैं। इन्होंने कहा कि 'जिस समय मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिलने गया, उस समय वे दोनों अन्तःपुरमें थे। वे जिस महलमें थे, वहाँ अभिमन्यु और नकुल-सहदेवतकका प्रवेश नहीं था। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके पैर द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं।' संजयके इस वर्णनसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता तो सिद्ध होती ही है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि संजय श्रीकृष्ण और अर्जुनके अनन्य प्रेमी थे। जिस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेवका भी प्रवेश नहीं था और जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी पटरानियोंके साथ एकान्तमें बिल्कुल निःसंकोचभावसे बैठे थे, वहाँ संजयका बेरोक-टोक चले जाना और उनकी एकान्त-

गोष्ठीमें सम्मिलित होना इस बातको सिद्ध करता है कि इनका भी श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ बहुत खुला व्यवहार था ।

संजय भगवान्के प्रेमी तो थे ही, इन्हें भगवान्के स्वरूपका भी पूरा ज्ञान था । इन्होंने आगे चलकर महर्षि वेदव्यास, देवी गान्धारी तथा महात्मा विदुरके सामने राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी और उन्हें सारे लोकोंका स्वामी बतलाया । इसपर धृतराष्ट्रने उनसे पूछा कि 'श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं—इस बातको तुमने कैसे जान लिया और मैं उन्हें इस रूपमें क्यों नहीं पहचान सका ?' इसके उत्तरमें संजयने वेदव्यासजीके सामने इस बातको स्वीकार किया कि 'मैंने ज्ञानदृष्टिसे ही श्रीकृष्णको पहचाना है, बिना ज्ञानके कोई उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता । इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैं कभी कपटका आश्रय नहीं लेता, किसी मिथ्या धर्मका आचरण नहीं करता तथा ध्यानयोगके द्वारा मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। इसीलिये मुझे श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया है ।' इसके बाद स्वयं वेदव्यासजीने संजयकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा कि 'इसे पुराणपुरुष श्रीकृष्णके स्वरूपका पूरा ज्ञान है, अतः यदि तुम इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त कर देगा ।' संजयके ज्ञानी होनेका इससे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा । इसके बाद धृतराष्ट्रने संजयसे पूछा—'भैया ! मुझे कोई ऐसा निर्भय मार्ग बताओ, जिसपर चलकर मैं भी भगवान् श्रीकृष्णको जान सकूँ और उनका परमपद पा सकूँ ।' संजयने उन्हें बताया कि 'इन्द्रियोंको जीते बिना कोई श्रीकृष्णको नहीं पा सकता और इन्द्रियाँ भोगोंके त्यागसे ही जीती जा सकती हैं । प्रमाद, हिंसा और भोग—इन तीनोंका त्याग ही ज्ञानका साधन है । इन्हींके त्यागसे परम पदकी प्राप्ति सम्भव है ।' अन्तमें संजयने भगवान् श्रीकृष्णके कुछ नामोंकी बड़ी सुन्दर व्याख्या करके धृतराष्ट्रको सुनायी । इससे संजयके शास्त्रज्ञानका भी पता लगता है ।

जब दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ पूरी हो चुकीं और दोनों पक्षोंकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रमें जा डटीं, उस समय महर्षि वेदव्यासजीने संजयको दिव्यदृष्टिका वरदान देते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन् ! यह संजय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा । सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी ऐसी बात न होगी, जो इससे छिपी रहे । यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा । सामनेकी अथवा परोक्षकी, दिनमें होनेवाली या रातमें होनेवाली तथा मनमें सोची हुई बात भी इसे मालूम हो जायगी । इतना ही नहीं, शस्त्र इसे काट नहीं सकेंगे, परिश्रमसे इसे थकान नहीं मालूम होगी और युद्धसे यह जीता-जागता निकल आयेगा ।'

बस, उसी समयसे भगवान् वेदव्यासकी कृपासे संजयकी दिव्यदृष्टि हो गयी । वे वहीं बैठे युद्धकी सारी बातें प्रत्यक्षकी भाँति जान लेते थे और उन्हें ज्यों-की-त्यों महाराज धृतराष्ट्रको सुना देते थे । कोसोंके विस्तारवाले कुरुक्षेत्रके मैदानमें जहाँ अठारह अक्षौहिणियाँ आपसमें जूझ रही थीं । कौन वीर कहाँ किस समय किससे लड़ रहा है, वह किस समय किसपर कितने और कौन-कौन-से अस्त्रोंका प्रयोग करता है, कितनी बार कितने पैंतरे बदलता है और किस प्रकार किस कौशलसे शत्रुका वार बचाता है, उसका कैसा रूप है और कैसा वाहन है—ये सब बातें वे एक ही जगह बैठे जान लेते थे । भगवद्गीताका उपदेश भी जिस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको दिया, वह सब इन्होंने अपने कानोंसे सुना (गीता १८ । ७४-७५) । केवल सुना ही नहीं, उपदेश देते समय श्रीकृष्णकी जैसी मुखमुद्रा थी, जो भावभंगी थी तथा जो उनका रूप था, वह इन्हें प्रत्यक्षकी भाँति ही दिखायी देता था । इतना ही नहीं, जिस समय भगवान्ने अर्जुनको अपना विश्वरूप दिखलाया, जिसे अर्जुनके सिवा और किसीने पहले नहीं देखा था और जिसके सम्बन्धमें स्वयं भगवान्ने उनसे कहा कि 'वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, दानसे, क्रियाओंसे तथा उग्र तपस्याओंसे भी कोई दूसरा इस रूपका दर्शन नहीं कर सकता (गीता ११ । ४८), उस समय संजयने भी उस रूपको उसी प्रकार देखा जिस प्रकार अर्जुन देख रहे थे । इसके बाद जब भगवान्ने अपने विश्वरूपको समेटकर अर्जुनको चतुर्भुजरूपमें दर्शन दिया, जिसका दर्शन भगवान्ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ बताया है तथा जिसके सम्बन्धमें उन्होंने बताया कि तप, दान और यज्ञसे भी उसका दर्शन नहीं प्राप्त किया जा सकता (गीता ११ । ५३), तब उसी दिव्य झाँकीका दर्शन महाभाग संजयको भी हस्तिनापुरमें बैठे ही प्राप्त हो गया । उसी प्रसङ्गमें भगवान्ने अर्जुनको यह भी बताया कि 'केवल अनन्यभक्तिसे ही मेरे इस रूपका दर्शन सम्भव है ।' (गीता ११ । ५४), इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संजयको भी भगवान्की वह अनन्यभक्ति प्राप्त थी, जिसके कारण उन्हें भगवान्की उस दिव्य झाँकीका दर्शन हो सका । गीता सुननेके बाद भी उस रूपकी स्मृति संजयके लिये एक अलौकिक आनन्दकी सामग्री हो गयी । उन्होंने स्वयं अपनी उस उल्लासपूर्ण स्थितिका वर्णन करते हुए कहा है—

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥

(गीता १८ । ७६-७७)

इससे यह सिद्ध होता है कि उनका श्रीकृष्ण और अर्जुनमें जो श्रद्धा-प्रेम था वह विवेकपूर्वक था; क्योंकि वे उनके यथार्थ प्रभावको भी जानते थे। उन्होंने युद्धके पूर्व ही उनकी विजय घोषित करते हुए कह दिया था कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(गीता १८। ७८)

युद्ध-समाप्तिके बाद कुछ दिन महाराज युधिष्ठिरके पास रहकर जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनकी ओर जाने लगे तो संजय भी उनके साथ हो लिये। वहाँ भी इन्होंने अपने स्वामीकी सब प्रकारसे सेवा की। और जब उन्हें देवी गान्धारी और कुन्तीके सहित दावाग्निने घेर लिया तो ये उन्हींकी आज्ञासे वनवासी मुनियोंको उनके शरीर-त्यागकी बात कहनेके लिये उन्हें छोड़कर आश्रममें चले आये और वहाँसे हिमालयकी ओर चले गये। इस प्रकार संजयका जीवन भी एक महान् जीवन था। उनके जीवनसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य चाहे किसी भी वर्ण अथवा जातिका क्यों न हो, भगवान्‌की कृपासे वह कुछ-का-कुछ बन सकता है।

वीर सात्यकि

जिस वृष्णिकुलमें भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ था, सात्यकि उसी कुलके एक रत्न थे। महाभारतके युद्धके अन्तमें जीवित रहनेवाले पाण्डवपक्षके आठ वीरोंमें एक सात्यकि भी थे। सात्यकिने अर्जुनसे युद्धविद्याकी शिक्षा ग्रहणकी थी, ये भगवान् श्रीकृष्णके समान ही पाण्डवोंके प्रिय तथा हित-चिन्तक थे। ये बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। पाण्डवोंके अज्ञात वनवासके बाद जब विराटकी राजसभामें युद्ध या शान्तिके प्रश्नपर भाषण चल रहे थे, उस समय सात्यकिने जो व्याख्यान दिया था, उससे उनके व्यक्तित्वपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ये कहते हैं कि, 'यदि भाइयोंसहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने घरपर जूआ खेलते होते और कौरव वहाँ जाकर हरा देते तो उनकी धर्मपूर्वक जीत कही जाती। परन्तु उन्होंने क्षत्रिय-धर्ममें लीन रहनेवाले युधिष्ठिरको बुलाकर छल और कपटसे हराया है। वे भीष्म, द्रोण और विदुरके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पाण्डवोंको उनका पैतृक धन वापस नहीं कर रहे हैं। मैं तो रणभूमिमें तेज बाणोंसे पछाड़कर उनको बलात् रास्तेपर लाकर श्रीमान् युधिष्ठिरके चरणोंमें नत कराऊँगा, अन्यथा मन्त्रियोंके सहित उनको यमलोककी यात्रा करनी पड़ेगी।'

सात्यकि भगवान् श्रीकृष्णके समान ही सर्वतोभावेन पाण्डवोंके थे, और उनकी वाणी वीरता और ओजसे पूर्ण होती थी। वे बड़े ही नीतिज्ञ थे। उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वे आगे कहते हैं—

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम्॥
(उद्योग० ४। २०)

'आततायी शत्रुको मारनेसे कुछ भी अधर्म नहीं होगा। शत्रुसे याचना करना अधर्म है और अपमानजनक है। तथा—

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि॥
(उद्योग० ४। ५)

'पापात्मा दुर्योधनके प्रति जो मृदु वचन बोलता है, वह मानो गधेके प्रति कोमलतापूर्ण व्यवहार करता है और गायोंके प्रति कठोर।'—इससे स्पष्ट हो जाता है कि सात्यकि सच्चे अर्थमें वीर थे, उनकी वीरतापूर्ण वाणी उनके अनुरूप ही थी। वे बड़े ही चतुर तथा गूढ़ इङ्गितज्ञ थे। इसी कारण जान पड़ता है, भगवान् श्रीकृष्णने कौरवसभामें सन्धि-दूतके रूपमें जाते समय इनको अपने साथ ले लिया था। सात्यकिकी गणना महाभारतकालीन श्रेष्ठ वीरोंमें होती थी। वे असाधारण पुरुष थे। विदुरने धृतराष्ट्रको चेतावनी देते हुए कहा था—

येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः॥
(आदि० २०४। ८०)

'जिनके पक्षमें बलराम हैं, जिनके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं, तथा वीरप्रवर सात्यकि जिनकी ओर हैं, उन पाण्डवोंके लिये युद्धमें क्या अजेय है?'—जान पड़ता है कि इस कारणसे भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ सात्यकि गये थे। जब कौरव-सभामें कर्ण, शकुनि तथा दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़नेकी मन्त्रणा की तो—

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्।
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुध्यत सात्यकिः॥
(उद्योग० १३०। ९)

उन पापियों, दुरात्माओंकी उस पापचेष्टाको इङ्गितज्ञ, कवि, सात्यकि शीघ्र ही ताड़ गये। और कृतवर्मासे बोले कि, 'शीघ्र ही सेनाको सभाद्वारके सामने व्यूहाकारमें सन्नद्ध करो, तबतक मैं श्रीकृष्णसे इनके अभिप्रायको व्यक्त करता हूँ।' व्यासजीने सात्यकिकी उस समयकी गतिविधिका अत्यन्त स्वाभाविक चित्र खींचा है। कहते हैं—

स प्रविष्टः सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव।
आचष्टे तमभिप्रायं केशवाय महात्मने॥
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत॥१३॥
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव।
धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम्॥१४॥

मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन ।
पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥१५॥
धर्षिता काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ।
इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला तथा जडाः ॥१६॥

'जैसे गिरि-गुफामें सिंह निधड़क प्रवेश करता है, उसी प्रकार निर्भयतापूर्वक सात्यकिने सभामें प्रवेश करके उनका अभिप्राय श्रीकृष्णको बतलाया, और मुसकराते हुए, धृतराष्ट्र तथा विदुरसे उनके आश्रयको प्रकट करते हुए कहा कि ये अल्प बुद्धिवाले लोग धर्म, अर्थ और कामकी दृष्टिसे सज्जनोंके लिये निन्दनीय कर्म करनेकी इच्छा कर रहे हैं, परंतु इसमें ये कदापि सफल न होंगे। काम, क्रोध, लोभ और मोहके वशमें होकर ये पापात्मा लोग पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णको पकड़ना चाहते हैं। वस्त्रसे प्रज्वलित अग्निको पकड़नेकी इच्छा करनेवाले मूर्खके समान जड़ हैं, इनको समझ नहीं है।' वीरश्रेष्ठ सात्यकिने दुर्योधन और उसके सारे मित्रोंकी कुमन्त्रणाका भण्डाफोड़ कर उन्हें समयसे पहले ही विफल कर दिया।

महाभारतके युद्धमें वीरप्रवर सात्यकिके पाण्डवपक्षमें आ जानेपर पाण्डवोंकी सैन्य-शक्तिमें अपूर्व वृद्धि हो गयी। वीराग्रगण्य सात्यकि भय क्या वस्तु है—यह जानते ही नहीं थे। द्रोणपर्वके ११० वें अध्यायमें धर्मराज युधिष्ठिरने सात्यकिसे कहा है कि, 'हे तात ! द्वैतवनमें अर्जुनने मुझसे कहा था—'महान् स्कन्धवाले विशाल वक्षःस्थल, बड़ी-बड़ी भुजाएँ, महाबली, महावीर्यवान्, महारथी सात्यकि मेरे शिष्य और मेरे सखा हैं। मैं उनके लिये प्रिय हूँ, और वे मेरे प्रिय हैं। वे मेरे सहायक हैं, वे कौरवोंको मथ देंगे। हे राजेन्द्र ! मेरे हितार्थ यदि स्वयं केशव तैयार हों, बलरामजी, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न वृष्णिसेनाके साथ गद, सारण और साम्ब सहायताके लिये सन्नद्ध हों तो भी मैं सत्यपराक्रम, नरव्याघ्र सात्यकिको सहायक बनाऊँगा; क्योंकि उनके समान मेरा कोई दूसरा नहीं है—

तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः॥
(द्रो० ११० । ६१)

—यह तो सात्यकिके विषयमें अर्जुनका अभिप्राय है। स्वयं धर्मराज इसी अध्यायमें अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥
(द्रो० ११० । ४३, ४५, ४८)

'हे शिनिपुङ्गव सात्यकि ! खूब विचारनेपर भी सब योद्धाओंमें तुमसे अधिक सुहृद् मैं किसीको नहीं पाता। जैसे श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके हितमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार हे वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! तुम भी पाण्डवोंके हितमें सदा लगे रहते हो। तुम सत्यव्रती, शूरवीर, मित्रोंके भयको दूर करनेवाले हो तथा हे वीर ! तुम अपने कर्मोंके द्वारा सत्यवक्ताके रूपमें संसारमें प्रसिद्ध हो।'

पाण्डवपक्षमें सात्यकिका क्या स्थान है, अर्जुन तथा धर्मराजके उपर्युक्त वाक्योंसे इसका पता चल जाता है। वस्तुतः महाभारतमें सात्यकिका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल है। द्रोणपर्वके १४७ वें अध्यायमें युद्धमें सात्यकिके पराक्रमका वर्णन करते हुए अन्तमें सञ्जयने धृतराष्ट्रसे कहा है—

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः ।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः ।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥
(१४७ । ७६।७७)

'हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान ही सात्यकि भी शत्रुओंके लिये सन्तापकारक है। उसने हँसते-हँसते आपकी सारी सेनाको परास्त कर दिया है। मेरे विचारसे संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके बाद तीसरा वीर पुरुष सात्यकि ही है। इनके कोटिका कोई चौथा धनुर्धर नहीं है।'

सात्यकिकी युद्धकलाका निदर्शन महाभारतमें अनेकों स्थलोंपर प्राप्त होता है। वे भीमसेनके समान निर्भयतापूर्वक युद्ध करते हैं, कभी युद्धसे व्याकुल होकर पीठ नहीं दिखलाते और अपने बाणोंके आघातसे कौरवसेनाके बड़े-बड़े महारथियोंको निश्चेष्ट कर देते हैं। जयद्रथवधके अवसर-पर जब वे कौरवसेनाको परास्त करते हुए, अर्जुनके समीप पहुँचते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे प्रसन्न होकर सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए द्रोणपर्वके १४१ वें अध्यायमें उनका अभिनन्दन करते हैं। वहाँ १५ से २६ वें श्लोकतक 'आयाति सात्यकि, अभ्येति सात्यकि' प्रत्येक श्लोकोंमें प्रयोग करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। उस समय कौरव-सेनासे भयानक युद्ध करते-करते सात्यकि थकसे गये थे, उसी अवस्थामें भूरिश्रवाने अपनी सारी शक्तिसे आक्रमण कर दिया। पश्चात् भूरिश्रवाने हाथमें तलवार लेकर श्रान्त सात्यकिकी शिखा पकड़ ली। तब भगवान् वासुदेवने कहा—'अर्जुन ! देखो, सात्यकिको युद्धमें थका देखकर

भूरिश्रवा तलवारसे उसका सिर काटनेके लिये उद्यत है, बचाओ।' भगवान‌्के मुँहसे यह शब्द निकलते ही अर्जुनने एक बाणसे भूरिश्रवाका वह हाथ काट डाला और इस प्रकार अपने शिष्यकी रक्षा की। सात्यकिके ऊपर सारी महाभारतमें यही एक विपद् आयी थी। वह सर्वत्र वीरता-पूर्वक लड़ते हुए अन्ततक जीवित रहे।

कुरुराज धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। उनको कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान था, परंतु वे कानके कच्चे थे। राज्यकार्यमें भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और कृपाचार्यसे सलाह लेते थे तथा पाण्डवोंके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार सलाह लेते थे। कभी-कभी वे पाण्डवोंके लिये भी अनुकूल हो जाते थे, परंतु जब वे दुर्योधनको कोई दुष्कृत्य करनेपर तुला हुआ देखते, तो उनका हृदय पुत्रमोहसे अन्धा हो जाता था और वे कर्तव्याकर्तव्यको भूल जाते थे। ऐसी हालतमें विदुर आदि-के सलाहकी उपेक्षा करके दुर्योधनका ही समर्थन करते थे। ऊपर-ऊपरसे तो पाण्डवोंके सम्बन्धमें वे ठीक-ठीक बोलते थे, परंतु उनके हृदयसे सारे राज्यको आत्मसात् करनेकी वासना दूर नहीं होती थी। अतएव वे न्यायकी परवा न करके दुर्योधन-के अनुकूल वर्तने लगते थे। कभी-कभी मोहके वश होकर दुर्योधनके दुष्कर्ममें भी सम्मति दे देते थे। और जब उसका कुफल उनको भोगना पड़ता तो वे अपने तटस्थ होनेका दिखावा करते थे। उदाहरणार्थ, जब पाण्डव लोग तेरह वर्षके वनवासमें द्वैतवनमें ठहरे हुए थे, उस समय उनको परेशान करनेके उद्देश्यसे कर्ण-शकुनि आदिकी सम्मतिसे दुर्योधन वहाँ जानेके लिये प्रस्तुत हुए। परंतु जब वह धृतराष्ट्रसे आज्ञा माँगनेके लिये गये तो उन्होंने वहाँ जानेकी अनुमति न दी और कहा, 'वहाँ पाण्डव ठहरे हुए हैं और वे छलपूर्वक हराये गये हैं तथा वनमें रहकर महान् कष्ट भोग रहे हैं। वे तपःशक्तिसम्पन्न हो रहे हैं। ऐसी अवस्थामें तुम लोग वहाँ जाकर अहंकार और दर्पके वशीभूत होकर कोई अपराध कर बैठोगे तो वे तुमको नष्ट किये बिना न छोड़ेंगे।' परंतु जब शकुनिने उनको उलटा-सीधा समझाया तो उनकी बुद्धि बदल गयी और वे राजी हो गये। यदि सर्वसंहारक महान् अनर्थका हेतु धृतराष्ट्रको मानें तो इसमें कोई गलती न होगी; क्योंकि भीष्म, विदुर आदिका उपदेश मानकर यदि पहलेसे ही वे दुर्योधनको काबूमें रखते, तो पाण्डवोंके साथ अन्याय न हो पाता और महायुद्धकी नौबत न आती। परंतु पुत्र-स्नेह तथा राजलोभके वशवर्ती होकर वे ऐसा नहीं कर सके। वे विवेक-शून्य हो जाते थे। बीच-बीचमें ऐसे प्रसङ्ग भी आते थे जब उनके हृदयमें पाण्डवोंके प्रति ममता उत्पन्न होती थी; परंतु वह ममत्व देरतक नहीं टिकता था।

गुण-अवगुणका विचार छोड़कर पुत्रके ऊपर अन्ध-वात्सल्यभाव रखनेवाले पिताकी जो गति होती है, वही गति धृतराष्ट्रकी हुई। उन्होंने अपने सामने ही सौ पुत्रोंकी अति भयंकर मृत्यु देखी। सौ पुत्रोंके पिता होकर भी मरते समय अपुत्र ही मरे।

दुर्योधन प्रत्यक्ष ही पाण्डवोंके प्रति ईर्ष्याका भाव रखते थे, परंतु धृतराष्ट्र परोक्षतः पाण्डवोंसे जलते रहते थे। पाण्डवोंके बढ़ते हुए बल और ऐश्वर्यको वे सह नहीं सकते थे। परंतु साथ ही पाण्डवोंसे वे डरते भी थे; क्योंकि पाण्डव बलशाली थे। पाण्डवोंकी कीर्ति बढ़ती देखकर दुर्योधनने अपने मामा शकुनिकी रायसे पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिये बुलाना चाहा और धृतराष्ट्रसे इसके लिये आज्ञा माँगी तो धृतराष्ट्रने बिना कुछ सोचे-समझे अपनी राय दे दी। उस समय विदुरने जुआ खेलनेके दोषोंको जब बतलाया तो धृतराष्ट्रने कहा, 'विदुर! यहाँ मैं, भीष्म तथा ये सब लोग हैं, और दैवने ही द्यूतका निर्माण किया है, इसलिये हम इसमें कुछ नहीं कर सकते। इस व्यवसायकी निन्दा करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये इसमें मैं दैवको ही बलवान् मानता हूँ, उसीके द्वारा यह सब कुछ हो रहा है।' धृतराष्ट्र अधिकतर दैवका ही अवलम्बन करते थे। उनकी मान्यता थी कि जो कुछ अनिष्ट होता है, वह दैवसे ही होता है। और इस मान्यताके कारण वे दुर्योधनको अनिष्ट कार्यों-से रोक नहीं सकते थे। द्यूतके समय जब युधिष्ठिरने द्रौपदी-को दावपर रक्खा, तब सारी सभा स्तब्ध हो गयी। राजा लोग बड़े शोकमें पड़ गये। भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य पसीने-पसीने हो गये। विदुर दोनों हाथोंसे सिर थामकर बैठ गये। परंतु धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार पूछने लगे, 'कौन जीता, कौन जीता?' धृतराष्ट्रके लिये इससे बढ़कर निन्दनीय बात और क्या हो सकती थी?

धृतराष्ट्रमें अपार बल था। वृद्धावस्था होनेपर भी भीमसेनकी लोहेकी मूर्तिको कुचल डालनेकी शक्ति धृतराष्ट्रमें थी। संजय उनको जैसे-जैसे युद्धकी बात सुनाते थे, वैसे-वैसे युवक योद्धाके समान धृतराष्ट्रका वीररक्त उछलता था। वे पाण्डवोंका अनिष्ट सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न होते थे तथा कौरव-पक्षका अनिष्ट सुनकर उद्विग्न हो जाते थे। धृतराष्ट्र यदि अन्धे न होते तो शायद महाभारतके युद्धमें वे पूरा-पूरा भाग लेते और भीष्मके समान धृतराष्ट्र भी पाण्डवोंके विरुद्ध पूर्णबलसे युद्ध करते। धृतराष्ट्र भीमसेनसे बहुत डरते थे। वे स्वयं संजयसे कहते हैं—

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णञ्च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः ॥

(उद्योग० ५१ । ३)

'हे तात ! सिंहसे डरे हुए दूसरे पशुकी भाँति मैं भीमसेनसे भयभीत हो रातभर गरम-गरम लंबी साँसें लेता हुआ जागता रहता हूँ ।' इस भयका कारण निश्चय ही द्यूतसभामें भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा थी, जिसमें उसने कहा था कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मार डालूँगा और दुःशासनका रक्त पान करूँगा और धृतराष्ट्रका वह भय सच निकला । भीमसेनने एक-एक करके उनके सभी पुत्रोंको मार डाला ।

परंतु यह सब कुछ होते हुए भी हम धृतराष्ट्रमें मानवताके उत्कृष्ट रूपका भी दर्शन करते हैं । जब दुर्योधन पाण्डवोंको वारणावत भेजनेके लिये धृतराष्ट्रसे कहते हैं और उनके अनिष्टके लिये मन्त्रणा करते हैं तो वे स्पष्ट कहते हैं—

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि सम्परिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥

(आदि० १४१ । १६)

'दुर्योधन ! मेरे हृदयमें भी यही बात घूम रही है । परंतु हम लोगोंका यह अभिप्राय पापपूर्ण है, इसलिये मैं खुलकर नहीं कह सकता ।' अपने हृदयके गुण-दोषोंका निरीक्षण करके कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना श्रेष्ठ पुरुषका लक्षण है । फिर उन्होंने युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'युधिष्ठिर अपने पिता पाण्डुके समान ही धर्मपरायण हैं, उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, जगत्प्रसिद्ध हैं । फिर उनको बाप-दादोंके राज्यसे बलात् कैसे वञ्चित किया जा सकता है ?' इस प्रकार धृतराष्ट्रका प्रकृतितः पाण्डवोंके प्रति प्रेमभाव भी लक्षित होता है । द्रौपदीके साथ पाण्डवोंके विवाहका समाचार सुननेके बाद धृतराष्ट्रने 'अहोभाग्य ! अहोभाग्य !!' कहकर आनन्द प्रदर्शित किया और विदुरको भेजकर उनको हस्तिनापुर बुलवाया । पाण्डवोंके आनेपर उनकी आत्मीयता जाग्रत् हुई और उन्होंने कहा कि, 'युधिष्ठिर ! मेरे दुरात्मा पुत्र दम्भ और अहङ्कारसे भरे हैं, मेरा कहना नहीं मानते, सदा अपने स्वार्थसाधनकी बात सोचते रहते हैं । इन दुरात्माओंसे कहीं झगड़ा न हो जाय, इसलिये तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें निवास करो ।' इस प्रकार महाराज धृतराष्ट्रने झगड़ेका अन्त कर दिया । उनका यह कार्य भगवान् श्रीवासुदेवको भी पसंद आ गया और वे बोल उठे—

युक्तमेतन्महाराज कौरवाणां यशस्करम् ।

'महाराज ! आपका यह विचार सर्वथा उत्तम तथा कौरवोंकी यशवृद्धि करनेवाला है ।'

जुआ खेलनेका प्रस्ताव करनेके पहले धृतराष्ट्रने दुर्योधन-को बहुत समझाया और कहा, 'बेटा ! पाण्डवोंसे द्वेष मत करो, क्योंकि द्वेष करनेवाला मनुष्य मृत्युके समान कष्ट पाता है । युधिष्ठिर तुमसे द्वेष नहीं करते और जो उनके मित्र हैं, वे तुम्हारे भी मित्र हैं । दूसरेके धनकी स्पृहा करना अच्छे पुरुषोंका काम नहीं है ।

पाण्डोः पुत्रान् मा द्विषस्वेह राजं-
स्तथैव ते भ्रातृधनं समग्रम् ।
मित्रद्रोहे तात महानधर्मः
पितामहा ये तव तेऽपि तेषाम् ॥

(सभा० ५४ । १०)

'तुम पाण्डवोंसे द्वेष न करो । वे तुम्हारे भाई हैं; भाइयोंका सारा धन तुम्हारा ही है । मित्रद्रोहसे बड़ा अधर्म होता है, तुम्हारे दादे-परदादे जो हैं, उनके भी वे ही हैं ।' इस प्रकार महाराजकी शान्तिप्रियताका पता लगता है । परंतु शकुनिने अपनी दुरभिसन्धिके द्वारा इनकी बुद्धिपर पर्दा डालकर जुएके प्रस्तावका समर्थन करा लिया जो कौरवों-के सर्वनाशका कारण बना ।

जुएमें जब पाण्डव सर्वस्व हार गये और द्रौपदीको दावपर रखना न्यायसङ्गत है या नहीं, इसपर बहस चल रही थी तो धृतराष्ट्रने दुर्योधनको फटकारते हुए कहा था, 'रे मन्दबुद्धि दुर्योधन ! तू तो विनष्ट हो गया ! दुर्विनीत ! तू श्रेष्ठ कुरुवंशियोंकी सभामें अपने ही कुलकी स्त्री तथा विशेषतः पाण्डवोंकी धर्मपत्नी द्रौपदीको लाकर पापकी बातें कर रहा है ।' इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंको विनाशसे बचाकर तत्त्वदर्शी महाराज धृतराष्ट्रने द्रौपदीको सान्त्वना देते हुए कहा—

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥

(सभा० ७१ । २७)

'बहू द्रौपदी ! तुम मेरी पुत्रवधुओंमें सर्वश्रेष्ठ और धर्मपरायणा सती हो । तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वर माँगो ।'—यह सुनकर द्रौपदीने युधिष्ठिरको दासभावसे मुक्त करनेका वर माँगा । पश्चात् नन्दिनी, धर्मचारिणी, कल्याणी आदि शब्दोंसे सम्बोधित करते हुए राजाने दो और वर माँगनेके लिये कहा, परंतु द्रौपदीने केवल एक वर माँगकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको अपने-अपने रथ और धनुष-बाणके साथ दास-भावसे मुक्त करा लिया । यहाँ महाराज धृतराष्ट्रके विवेक और दूरदर्शिता-का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है । वस्तुतः वे महाराज पाण्डुके बड़े भाई थे, इसलिये इस अवसरपर उन्होंने जो कुछ किया, उससे उनकी मर्यादाकी रक्षा हो गयी । परंतु होनी होकर रहती है, पुनः धृतराष्ट्रको उलटा-सीधा

समझाकर दुर्योधनने धर्मराजको जुआ खेलनेके लिये बुलानेको राजी कर लिया। धृतराष्ट्रकी बुद्धि मारी गयी, उनके आमन्त्रणपर धर्मराज जुआ खेलने आये, और वही जुआ सर्वनाशका कारण बना।

जब दूतके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णके पधारनेकी बात विदुरके मुखसे महाराज धृतराष्ट्रने सुनी तो उनका गुणगान करने लगे—

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च॥
(उद्योग० ७१। १)

'संजय! मैं आँखवालोंके भाग्यका अभिलाषी हूँ, जो वासुदेव श्रीकृष्णको समीपमें देखते हैं, जो उत्तम श्रीसम्पन्न विग्रहसे दिशाओं, प्रदिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभायमान हैं।'

सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराण-
मनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम्।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं
परं परेषां शरणं प्रपद्ये॥
(उद्योग० ७१। ६)

'जिनके सहस्रों सिर हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। जो अनन्त कीर्तिमान् हैं, जो सृष्टिके बीजको धारण करते हैं, जो अज हैं, नित्य हैं, परात्पर हैं उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण जाता हूँ।'

महाराज धृतराष्ट्रने द्रोणपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका संक्षेपमें वर्णन करके श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमाका गुणगान किया है। सारी लीलाओंका स्मरण करते हुए राजसभामें भगवान् वासुदेवके रूपका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम संजय।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति॥
यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम्।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम्॥
नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य संजय॥
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद् रथः॥
अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती॥
(द्रो० ११। २४—२६, ३६, ३८)

'हे संजय! भगवान् श्रीकृष्णने मेरी सभामें जो महान् आश्चर्य कर दिखाया था, वह दूसरा कौन कर सकता है? भक्तिसे प्रसन्न होकर मैंने भगवान् श्रीकृष्णके जिस स्वरूपको देखा था, वह आज भी प्रत्यक्षवत् स्मरण हो रहा है। संजय! कोई पराक्रमयुक्त या बुद्धियुक्त अथवा कर्मसे युक्त होकर हृषीकेश श्रीकृष्णका अन्त नहीं पा सकता। जिस रथके हाँकनेवाले श्रीकृष्ण हैं तथा योद्धा अर्जुन हैं, उस रथके सामने कोई शत्रु कैसे टिक सकता है? अर्जुन श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और श्रीकृष्ण अर्जुनकी आत्मा हैं। अर्जुन नित्य विजयी हैं, और श्रीकृष्णमें शाश्वती कीर्ति है।' और मोहवश दुर्योधन श्रीकृष्णको नहीं पहचान रहा है और न अर्जुनको। ये दोनों पूर्वदेव महात्मा नर-नारायण हैं

इस प्रकार भगवद्गुणोंके ज्ञाता धृतराष्ट्र पुत्रके मोहमें पड़कर दुर्योधनके अन्यायोंका निराकरण न करनेके कारण दोषके भागी बने। परंतु अंधे होते हुए भी उन्होंने भगवत्कृपासे राजसभामें भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन किया था, जो सौभाग्य संसारमें विरले ही प्राप्त करते हैं! भगवान्‌ने स्वयं उनको इसके लिये दिव्यदृष्टि प्रदान की थी। महाभारतके अन्तमें कुछ दिन हस्तिनापुरमें रहनेके बाद अन्तमें वनमें जाकर भगवान्‌की आराधनामें उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

राजा दुर्योधन

पाण्डवोंके कट्टर शत्रु तथा कलिके अंशावतार दुर्योधन अंधे धृतराष्ट्रके ज्येष्ठ पुत्र थे। वे राज्यलोभी, अहङ्कारी, ईर्ष्यालु, अयोग्य, महत्त्वाकांक्षासे युक्त, दम्भी, गुरुजनकी आज्ञाकी अवहेलना करनेवाले, अपनी बड़ाई आप करनेवाले और अपनी इच्छाके विरुद्ध वर्तनेवाले, शुभचिन्तकोंको भी शत्रुकी दृष्टिसे देखनेवाले थे। उनमें सद्गुण भी थे। परंतु वे गुण भी दुर्गुणोंका साम्राज्य बढ़ जानेके कारण दूसरोंके लिये संहारकारक ही सिद्ध हुए। वे राजनीतिमें निपुण थे, धन तथा सम्मान प्रदान करके दूसरोंको अपना बना लेनेकी उनमें क्षमता थी और इसी कारणसे उन्होंने भीष्म, द्रोणाचार्य आदि, जो पाण्डवोंको समभावसे देखते थे, उनको भी युद्धमें अपने पक्षमें कर लिया था। केवल साधुपुरुष धर्मावतार विदुरजी उनके धनके लोभमें नहीं फँसे थे। इसी कारण दुर्योधन सदा अपना रहस्य खोल देनेवाले शत्रुके रूपमें ही उनको देखते थे। वे युद्धकालमें भी तटस्थ ही रह गये थे। दुर्योधनने अपने राज्यकालमें प्रजाको तथा माण्डलिक राजाओंको प्रसन्न रक्खा था; परंतु इसका मुख्य हेतु यह था कि, किसी प्रकार असंतुष्ट होकर कोई पाण्डवोंकी ओर न चला जाय। वे भीमसेनको अपना कट्टर शत्रु समझते थे, परंतु उनकी शक्तिके आगे उसकी एक न चलती थी।

दुर्योधनने धनुर्वेदादि शस्त्र-विद्याकी शिक्षा द्रोणाचार्यके पास ग्रहण की थी, इसलिये वे अन्यान्य शस्त्रास्त्रोंके द्वारा भी युद्ध करते थे। परंतु गदायुद्धमें तो वे अत्यन्त ही कुशल थे। वे और भीम दोनोंने ही बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ली थी; परंतु भीमसेनके शारीरिक बलके आगे वे निर्बल बन जाते थे, इसी कारण वे कर्तव्याकर्तव्य भूलकर नृशंस कर्म करने लगते थे। वे दूसरोंका छिद्रान्वेषण करते थे, परंतु अपने छिद्रोंको नहीं देखते थे और जब कोई उनका दोष दिखलाता था, तब वे उसकी अवज्ञा कर बैठते थे। इसी कारण वे आजन्म वैराग्निको शान्त न कर सके। जीवनभर वे पाण्डवोंको अपने सम्राट्पदमें विघ्नरूप मानकर उन्हींका स्वप्न देखते थे और उनका कैसे निर्मूल किया जाय, इसीकी कोशिशमें लगे रहते थे। इस वैरभावकी दीक्षा लेकर उन्होंने इस वैराग्निमें भारतमाताके रत्नरूप पुत्रोंका होम कर दिया और अन्तमें स्वयं भी वीरके समान युद्ध करके सौ भाइयोंके साथ होमे गये और भारतभूमिको निस्तेज कर डाला। दूसरोंका अनिष्ट चाहनेवाले वे अपना या दूसरे किसीका भी इष्ट साधन नहीं कर सके, उलटे आनेवाले युगोंके लिये अपना अपयश छोड़ गये।

दैव श्रेष्ठ है या पुरुषार्थ ?—यह प्रश्न उपस्थित होनेपर दुर्योधनका दृष्टान्त लेना चाहिये। पुरुषार्थके ऊपर पूर्ण विश्वास रखनेवाले और दैवको लेशमात्र भी न माननेवाले दुर्योधनका दैवके द्वारा ही नाश हुआ। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य-जैसे बलवान् महारथी, जो पाण्डवोंके पक्षपाती थे, उनको युद्धमें अपने पक्षमें लेनेका सफल प्रयास दुर्योधनने किया था। उसकी राजनीतिके कारण वृद्ध और सारासारका विवेक रखनेवाले भीष्म-जैसे योद्धा दुर्योधनके अन्यायी पक्षमें अन्ततक रहे और युद्ध करते हुए मरे। जैसे-जैसे दुर्योधन हारते गये, वैसे-वैसे उनको यह लगने लगा कि, 'पुरुषार्थ बेकार है, दैव सर्वथा बलवान् है।'—दुर्योधनके जीवनकी आलोचना करनेपर यह तथ्य सबके सामने आता है।

महाभारत पढ़नेवालोंका पाण्डवोंमें पक्षपात होता है, यदि महाभारतकारने ऐसा जोर न डाला होता तो दुर्योधन कुशल और श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पाण्डवोंको तो वे जन्मसे ही धिक्कारते थे। कर्ण और अर्जुन तथा दुर्योधन और भीम इन दोनोंके बीच बचपनसे ही ईर्ष्या, द्वेष और वैरभाव था। दुर्योधनका द्वेष इस सीमातक पहुँच गया था कि उन्होंने पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी जमीन न देनेका सङ्कल्प कर लिया था।

भीष्म और द्रोणको उन्होंने अपने पक्षमें करके पाण्डवोंके विरुद्ध युद्धमें लगाया था। तथापि दुर्योधनको इनके ऊपर विश्वास न था। उसने कई बार उनको खरी-खोटी सुनाते हुए कहा था कि, 'आपलोगोंका पोषण तो मैं करता हूँ, परंतु आपलोग पाण्डवोंका पक्षपात करके युद्ध करते हैं।' भीष्म और द्रोणाचार्यको दुर्योधनका यह स्वभाव अच्छा नहीं लगता था। दुर्योधन कभी-कभी कर्णकी प्रशंसा करते थे और यह भी कहते थे कि उसके द्वारा वे युद्ध जीतेंगे।

दुर्योधन सद्व्यवहारकी महिमा जाननेवाले तथा बड़े मृदुभाषी थे। उनके सद्व्यवहार तथा मृदुभाषितासे ही माद्रीके भाई शल्यने दुर्योधनके पक्षमें रहना और कर्णका सारथी बनना स्वीकार किया। अश्वत्थामा और कर्णके वाग्-युद्धको इन्होंने अपनी मृदुवाणीसे बंद किया था। उनकी अमृतमयी वाणीसे भूलकर धृतराष्ट्र उनके कार्यमें स्वीकृति दे देते थे। यह दुर्योधनकी राजनीति थी। इसी मृदु भाषणके बलसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी सारी नारायणी सेनाको अपने पक्षमें ले लिया था तथा प्रकारान्तरसे श्रीकृष्णसे युद्धमें शस्त्र ग्रहण न करनेका वचन भी ले लिया था।

दुर्योधनके जीवनमें सबसे जघन्य कृत्य था भरी सभामें पाञ्चालकुमारी द्रौपदीका घोर अपमान। द्रौपदी उस कालमें नारीजगत्का सर्वश्रेष्ठ रत्न थी, उसका अपमान करके दुर्योधनने अपनी मृत्युका—अपने सर्वनाशका बीज बोया था।

दुर्योधन महान् तेजस्वी और शक्तिशाली राजा थे। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि उनके शासनमें थे। महाभारतके महायुद्धमें उनकी सेना भी सर्वथा सुव्यवस्थित और सुदृढ़ तथा महान् थी। यदि पाण्डव-पक्षमें भगवान् श्रीवासुदेव न होते तो पाण्डवोंकी विजय संशयास्पद थी। दुर्योधनमें कार्यक्षमता भी अपूर्व थी। उनका गुप्तचर-विभाग सुव्यवस्थित था, जहाँ-कहीं कौरवोंके विपक्षकी अथवा पाण्डवोंके पक्षकी कोई घटना घटती, दुर्योधनको गुप्तचरोंके द्वारा तुरंत उसकी सूचना मिल जाती थी। और वे चौकन्ने होकर प्रतिविधानके लिये तैयार हो जाते थे। उसके गुप्तचर प्रत्येक राज्योंमें थे। उनका शासन-तन्त्र भी सुव्यवस्थित था, वे प्रजा-पालनमें राजधर्मका अनुसरण करते थे। गो-ब्राह्मणके रक्षक थे। महाविष्णु यज्ञ करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणासे परितुष्ट कर दिया था। यदि पाण्डवोंके प्रति किये गये उनके दुर्व्यवहारोंको अलग करके देखें तो दुर्योधन एक महत्त्वाकांक्षी क्षात्रधर्मके अनुसार प्रजारञ्जन करनेवाले प्रभावशाली सम्राट् थे। उनके राजदरबारमें ब्राह्मणोंको, ऋषि-मुनियोंको यथोचित सत्कार प्राप्त होता था।

जब भगवान् वासुदेव दूतके रूपमें संधिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे और इसका समाचार दुर्योधनको दूतोंके द्वारा प्राप्त हुआ, तो उन्होंने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके आगमनके अवसरपर अपूर्व स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध किया। वृकस्थलमें भगवान् अपने सैन्यके साथ मार्गमें रात्रिके

समय विश्राम करनेवाले थे। अतएव वृकस्थलसे हस्तिनापुर-तक स्थान-स्थानपर रम्य विश्रामस्थल, रत्नजटित सभास्थल, नाना प्रकारके विचित्र आसन, वसन, अन्न-पान, आहार-विहार तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य रत्नोंकी योजना भगवान् श्रीवासुदेवकी प्रसन्नताके लिये की गयी थी। परंतु भगवान् संधि-दूतके रूपमें जा रहे थे, अतएव दुर्योधनके द्वारा आयोजित इन आयोजनोंका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

राजा धृतराष्ट्रके सामने जब विदुरजीने श्रीकृष्णकी महिमा सुनाकर उनका सत्कारपूर्वक आतिथ्य करनेकी बात कही तो कूटनीतिज्ञ दुर्योधनने कहा कि 'श्रीकृष्णके विषयमें विदुरजीने जो कुछ कहा है उसे मैं ठीक मानता हूँ, परंतु जनार्दन पाण्डवोंके प्रति अति अनुरक्त हैं। हे राजन्! बुद्धिमान्को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि क्षत्रियका अनादर हो। मैं जानता हूँ कि विशाललोचन श्रीकृष्ण तीनों लोकोंमें पूज्यतम हैं। तथापि पाण्डव-परायण होनेके कारण श्रीकृष्णको नियन्त्रित करना ही ठीक है। यदि वासुदेव पकड़ लिये गये तो सब कार्य सिद्ध हो जायगा।' दुर्योधनकी इस बातको सुन मन्त्रियोंके सहित धृतराष्ट्र काँप उठे और बोले—'अरे बेटा! ऐसी बात न कहो, यह सनातन धर्म नहीं है। एक तो हृषीकेश दूतके रूपमें आये हैं, दूसरे हमारे सम्बन्धी और प्रियजन हैं, तीसरे कौरवोंके विषयमें उनकी पापबुद्धि नहीं है। फिर भला उनको क्यों बन्धनमें डाला जाय ?'

दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति॥
(उद्योग० ८८। १८)

धृतराष्ट्रकी बात सुनकर भीष्मजी बिगड़ गये और बोले—'धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र मूर्ख है। सुहृद्जन इसे भला सुझाते हैं, और यह बुरा ही सोचता है। यह दुष्ट भगवान् वासुदेवको पकड़नेपर क्षणमात्रमें अपने मन्त्रियोंके साथ नाशको प्राप्त हो जायगा। इस पापी, अधर्मी और मूर्खकी बात मैं नहीं सुनना चाहता'—इतना कहकर असंतुष्ट होकर भीष्मजी वहाँसे उठ गये।

परंतु दुर्योधन महा अहङ्कारी थे, उनको अपने बलका बड़ा अभिमान था। दूसरे, कर्ण उनको सहायक मिल गये थे, जो अपनेको सबसे बड़ा धनुर्धर समझते थे। इन दोनों वीरोंकी विचित्र जोड़ी थी, इसी कारण भगवान् वासुदेवने कर्णको पाण्डवोंके पक्षमें लानेकी चेष्टा की थी। उद्योगपर्वके ६३वें अध्यायमें दुर्योधनने भीष्मपितामहसे रुष्ट होकर यहाँतक कह दिया था कि 'मैं युद्ध आपके भरोसे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक तथा दूसरे राजाओंके भरोसे नहीं करने जा रहा हूँ। मैं कर्ण और भाई दुःशासनको साथ लेकर युद्धमें पाँचों पाण्डवोंको मार डालूँगा, और तब भूरि-भूरि विविध दक्षिणाओंसे युक्त महान् यज्ञोंका अनुष्ठान करके गौओं, अश्वों तथा नाना प्रकारके धनोंसे ब्राह्मणोंको परितृप्त करूँगा।'

दुर्योधन महान् सम्राट् थे, इसमें संदेह नहीं है। परंतु वे बड़े भारी अन्यायी थे, उन्होंने पाण्डवोंको बहुत सताया। पाण्डव लोग धर्मात्मा थे, बलमें भी अद्वितीय थे, परंतु धर्मभीरु थे। युधिष्ठिर तो धर्मराज ही कहलाते थे, और शेष चारों भाई उनके आज्ञानुवर्ती थे। अपनी माता कुन्ती और धर्मपत्नी द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव भगवान् श्रीवासुदेवके परम प्रियजन थे। भगवान् आर्तोंके—असहायोंके सहायक होते हैं। दुर्योधनने विष देकर भीमसेनको मार डालनेकी चेष्टा की, वारणावतके लाक्षागृहमें कुन्तीसहित पाँचों पाण्डवोंको जला डालनेकी चेष्टा की, जुएमें शकुनिकी सहायतासे छल करके पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर पतिव्रता द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित किया, पाण्डवोंको वनवास देकर वन-वन भटकनेके लिये विवश किया। उनके सारे कर्म आततायीपनसे भरे थे। ऐसी अवस्थामें भगवान्का पाण्डव पक्षमें रहना स्वाभाविक था। इन अत्याचारोंके होते हुए भी दुर्योधन असुर नहीं थे, अपनेको क्षात्रधर्मका अनुवर्तन करनेवाला विशुद्ध क्षत्रिय समझते थे। और तदनुसार वर्तनेकी चेष्टा करते थे, इसी कारण भगवान् श्रीवासुदेव दूत बनकर गये कि वह अपनी भूल सुधार ले, पाण्डवोंके प्रति भाइके समान व्यवहार करनेके लिये राजी हो जाय। लेकिन दुर्योधनको अपने बलका बड़ा घमंड था। वे न माने। फलतः महाभारतका महायुद्ध हुआ, जिसमें उनके पक्षके सब राजा अपनी सारी सेनाओंके साथ मारे गये और अन्तमें दुर्योधन गदायुद्धमें भीमके द्वारा मारे गये। कौरवपक्षके केवल कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और युयुत्सु बच रहे।

महावीर कर्ण

कुन्तीकी कुमारावस्थामें सूर्यदेवके द्वारा कर्णकी उत्पत्ति हुई। परंतु लोकापवादके भयसे कुन्तीने उन्हें काष्ठकी पेटीमें सुरक्षित रखकर गङ्गामें बहा दिया था। और अधिरथ नामके सूतकी स्त्री राधाने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा बनाया था। इसी कारण उन्हें सूतपुत्र, राधेय आदि नामोंसे पुकारते थे। वे कौरव-पक्षमें अर्जुनके समान धनुर्धर थे। दुर्योधन अर्जुनके पराक्रमको देखकर बहुत घबराते थे, परंतु परीक्षाके समय जब कर्णने आकर अर्जुनके समान पराक्रम दिखला दिया तो तभीसे उन्होंने कर्णको अपना मित्र बना लिया तथा उनको अङ्गदेशका राजा बनाकर अपनेको निर्भय समझने लगे। कर्णकी सहायतापर पूर्णरूपेण निर्भर होनेके कारण ही दुर्योधनने पाण्डवोंके प्रति अपने वैरभावको अन्ततक शान्त न होने दिया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्मपितामहपर उनको पूरा भरोसा न था। वे इनको उभय-

पक्षीय मानते थे। परंतु कर्णको सर्वथा अपना ही समझते थे; यही नहीं, उनको यह निश्चय हो गया था कि यह अवश्य ही अर्जुनको मार गिरावेगा। कर्ण शूर थे तथा साथ ही कुछ भीरु भी थे। वे गन्धर्वयुद्धमें, गोहरणके युद्धमें तथा महायुद्धमें पराङ्मुख होकर भागते हुए देखे गये थे। **'राधेये शौरभीरुते'**—कर्णमें शौर्य और भीरुता दोनों थी। शौर्य तो क्षत्रिययोनिमें जन्म लेनेके कारण था और भीरुताका कारण था सूतके घरमें उनका पालन-पोषण। परीक्षाके समय कर्णका पराक्रम देखकर युधिष्ठिरके मनमें यह दृढ़ छाप पड़ गयी थी कि कर्णके समान कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है। और यह छाप जबतक कर्ण मरे नहीं, तबतक बनी रही। उनको युद्धमें कर्णसे बहुत डर था, इसी कारण उन्होंने कर्णको बिना मारे आये हुए अर्जुनको बहुत कड़ी बातें सुनायी थीं। कर्ण तपस्वी, दाता और उदार थे। वे नित्य प्रातःकाल गङ्गामें खड़े होकर तबतक जप करते रहते थे जबतक सूर्य ढल न जाय। उस समय उनके पास आकर जो कोई जो कुछ माँगता, उसे वे देते थे। कर्णने कवच और कुण्डल पहने ही जन्म लिया था। वे जबतक उसके साथ रहते तबतक उसकी मृत्यु होनेवाली न थी। अतएव अपने पुत्र अर्जुनको बचानेके लिये साक्षात् इन्द्रने ब्राह्मणका वेष धारण करके कर्णके पास आकर कवच-कुण्डलकी याचना की थी। कर्णने उन्हें पहचान लिया, परंतु अपने व्रतकी रक्षाके लिये उन्होंने कवच और कुण्डल उतारकर इन्द्रको दे दिये। इसपर प्रसन्न होकर इन्द्रने उनको एक अमोघ शक्ति दी, जो एक आदमीको मारनेमें पूर्ण समर्थ थी। कर्णने उस शक्तिके प्रयोगसे घटोत्कचको मारा था। कर्ण कृतज्ञ तथा हठीले थे। श्रीकृष्णने संधिदूतका कार्य करके लौटते समय कर्णको अपने रथमें बैठाकर उन्हें बतलाया कि वे सूतपुत्र नहीं, बल्कि कुन्तीपुत्र हैं। और यह भी कहा कि, 'तुम पाण्डव-पक्षमें आ जाओ तो राज्य तुम्हें ही मिलेगा। परंतु कर्णने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि, 'पाण्डव-पक्षमें आप हैं, इससे जय पाण्डवोंकी ही होगी; परंतु दुर्योधनने मुझको आजतक बहुत मान-सम्मानसे रक्खा है, तथा मेरे ही भरोसे युद्ध खड़ा किया है, ऐसी अवस्थामें यदि मैं उसे छोड़ता हूँ तो यह अन्याय माना जायगा। अतएव मैं ऐसा नहीं कर सकता।' फिर कुन्ती भी वहाँ गङ्गा-तटपर गयी जहाँ कर्ण जप करते थे। और उनके जन्मकी सत्य कथा सुनाकर उसे पाण्डवपक्षमें आनेके लिये कहा। कर्णने उसको भी मार्मिक शब्द सुनाकर अपनी असमर्थता प्रकट की, परंतु उदारतासे यह भी कहा कि 'माँ! या तो अर्जुनसहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे या अर्जुनरहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे। मैं अर्जुनके सिवा तेरे दूसरे पुत्रोंको नहीं मारूँगा।' इस वचनका पालन कर्णने अन्ततक किया। दुर्योधनको न छोड़ना, उनके अडिग व्रत तथा कृतज्ञताका उज्ज्वल दृष्टान्त है। युद्धकी समाप्ति हो जानेपर जलाञ्जलि देते समय कुन्तीने कर्ण किसका पुत्र था, यह रहस्य खोल दिया था। और यह जानकर युधिष्ठिरने जीते-जी ही नहीं, बल्कि स्वर्गमें भी शोक करते हुए उनकी खोज की थी। युधिष्ठिरने जल प्रदान करते समय शोकपूर्वक कहा था कि, 'कर्ण बहुत कुवचन कहते थे, परंतु मेरी माताके समान उनके पैर देखकर मेरा क्रोध शान्त हो जाता था तथा मैं विचारमग्न हो जाता था।' कैसा अदृष्ट बन्धु-प्रेम था! कर्ण दाता, शूर, युद्धकुशल, एकनिष्ठ और उदार थे। इसके साथ-साथ वे अनदेखे, बढ़ावा देनेवाले आत्मप्रशंसक धृष्ट तथा अभिमानी भी थे। इन्हीं दुर्गुणोंके कारण वे अर्जुनसे द्वेष करते थे, और इसीसे वे दुर्योधनके साथ दौड़ जाते थे तथा स्वयं अपकीर्तिके भागी बनते थे। उन्होंने जरासंधको हराया था तथा अकेले ही दिग्विजय किया था। उनका यह कार्य उसके अद्भुत शौर्य तथा शस्त्रास्त्रविद्याके नैपुण्यका सूचक है। महायुद्धमें उन्होंने दो दिन सेनापतिके पदपर रहकर उत्कृष्ट पराक्रम दिखलाया था। अन्तमें ब्राह्मणके शापसे उनका रथचक्र भूमिमें धँस गया और उसको उठानेके लिये वे नीचे उतरे, उसी समय श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उनका सिर काट डाला। वे गौरवर्ण, ऊँचे कदके, प्रचण्ड तेजस्वी तथा प्रभावशाली पुरुष थे। वे दाताके रूपमें अपने पीछे अमरकीर्ति छोड़ गये हैं। साथ ही दुर्योधनके पाप-सम्बन्धसे अपकीर्ति भी छोड़ गये हैं। उनके जीवनमें जो सबसे बड़ी कालिमा है, वह है राजसभामें द्रौपदीके प्रति उनकी अधम वाणी। वहाँ द्रौपदीको उन्होंने वेश्याकी उपमा देते हुए कहा है—

अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।
एकाम्बरधरत्वं वाप्यथ वापि विवस्त्रता॥

(सभा० ६८। ३६)

'इसको सभामें लाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह एकवस्त्रा हो या नंगी हो तो भी यहाँ लायी जा सकती है।' यह निश्चयपूर्वक अधिरथके घरमें प्राप्त निम्नकोटिके संस्कारोंका ही परिणाम था। उच्चकुलमें उत्तम रजवीर्यसे उत्पन्न बुद्धिमान् पुरुष भी कुसङ्गसे कितना गिर जाता है—इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। कर्ण बड़े ही आत्माभिमानी थे। इसी कारण आत्मश्लाघामें वे इतने आगे बढ़ जाते थे कि भीष्म-द्रोण आदि गुरुजनोंके लिये भी असह्य हो जाते। गुरुजन तो पाण्डवोंको अजेय बतलाते थे और दुर्योधनको उनके साथ संधि करके चलनेकी सम्मति देते थे। निश्चय ही उनकी यह सम्मति निष्पक्ष होती थी। और कौरवोंके लिये कल्याणजनक थी। परंतु कर्णके लिये पाण्डवोंकी प्रशंसा असह्य थी। वे सदा उनका पराभव ही चाहते थे।

उनकी डींग हाँकनेकी आदत भी थी, और वह गुरुजनोंको प्रायः अप्रिय हो जाती थी। विराटकी गौओंके अपहरणके अवसरपर उनका डींग मारना सुनकर कृपाचार्यसे नहीं रहा गया। वे बोले—

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे॥

(विराट० ४९। १)

'कर्ण! युद्धके विषयमें तुम्हारा विचार सदा ही अति क्रूर होता है। न तो तुम कार्यकी प्रकृतिको समझते हो, न परिणामको देखते हो।' यहाँ कृपाचार्यने कर्णकी प्रकृतिकी यथावत् आलोचना की है; फिर आगे वे कहते हैं कि 'अर्जुनको जीतना आसान नहीं है। उसने अकेले ही उत्तरकुरु देशपर विजय प्राप्त की, अकेले खाण्डववनको दग्ध कर डाला, अकेले ही पाँच वर्षतक तप करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन किया, अकेले ही सुभद्राका अपहरण करके स्वयं श्रीकृष्णको द्वन्द्व-युद्धके लिये ललकारा, अकेले ही किरातवेषधारी शङ्करसे युद्ध किया इत्यादि अनेकों वीरतापूर्ण कार्य किये। और कर्ण! तुमने अकेले क्या किया?

अश्वत्थामाने भी कहा—

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे॥

(विराट० ५०। १)

'कर्ण! अभी तो हमने न गौओंको जीता, न मत्स्य-देशकी सीमाके बाहर गये और न हस्तिनापुर पहुँचे और तुम व्यर्थ डींग हाँकते हो।' सचमुच वीर पुरुषोंको अपेक्षाकृत अल्पशक्ति रखनेवालोंकी डींग असह्य हो जाती है। इसी कारण भीष्मने उनकी भर्त्सना की थी, और उससे रुष्ट होकर कर्णने प्रण किया था कि 'जबतक भीष्म सेनापति रहेंगे, मैं युद्ध नहीं करूँगा।'

परंतु जब शरशय्यापर भीष्मपितामह लेटे थे, उस समय कर्ण उनके पास गये और गद्गदस्वरसे बोले— 'भीष्म! भीष्म! हे महाबाहो, हे महातेजस्विन्! मैं राधापुत्र कर्ण हूँ, जो सदा ही आपकी आँखोंका काँटा बना रहा।' यह सुनकर भीष्मने आँखें खोलीं और कर्णको एक हाथसे पकड़कर छातीसे लगा लिया, बोले—'कर्ण! तू मुझसे स्पर्धा करता रहा है! यदि तू आज मेरे पास नहीं आता तो निश्चय ही तेरा कल्याण नहीं होता। तू राधापुत्र नहीं, कुन्तीपुत्र है, सूर्यसे उत्पन्न हुआ है। और मैं सत्य कहता हूँ, बेटा! मेरे मनमें तेरे प्रति द्वेष नहीं है। तू जो अकारण ही पाण्डवोंकी निन्दा करता था, इसी कारण मैंने तुझको परुष वाक्य कहे थे। मैं जानता हूँ कि राजा दुर्योधनके द्वारा प्रेरित होकर ही तू ऐसा करता था।

'नीच-आश्रय और ईर्ष्याके कारण तेरी गुणवान् पाण्डवोंमें भी द्वेषबुद्धि देखकर मैंने कौरवसभामें तुझे खरी-खोटी सुनायी थी। मैं यह जानता हूँ कि संसारमें युद्धमें प्रकट हुआ तेरा पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य है। तू तेजस्वी है, शूरवीर है और दानियोंमें श्रेष्ठ है' । इस प्रकार कर्णकी प्रशंसा करते हुए भीष्मने कहा कि 'यदि तू मेरा प्रिय कार्य करना चाहता है तो पाण्डवोंसे मिल जा।' भीष्मके ऐसा कहनेपर भी कर्णने वही उत्तर दिया, जो वे वासुदेव श्रीकृष्णको दे चुके थे—

भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्तुमुत्सहे॥
वसुदेवसुतो यद्वत् पाण्डवाय दृढव्रतः।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः॥
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिणः।

'पितामह! दुर्योधनके दिये ऐश्वर्यका भोग करके मैं मिथ्या आचरण करनेका साहस नहीं कर सकता। जिस प्रकार पाण्डवोंके लिये वासुदेव दृढ़व्रती हैं, उसी प्रकार मैंने अपना तन-धन, स्त्री-पुत्र, यश—सब कुछ दुर्योधनके लिये त्याग दिया है।' अन्तमें चलते समय कर्णने क्षमा-प्रार्थना करते हुए भीष्मसे कहा—

दुरुक्तं विपरीतं वा रभसात् चापलात् तथा।
यन्मयेह कृतं किंचित् तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि॥

'मैंने चपलतावश या उतावलीमें जो कुछ दुर्वचन या विपरीत वचन कहा हो, उसे आप क्षमा करेंगे।'

इस प्रकरणमें कर्णके चरित्रका बड़ा सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। वस्तुतः कर्ण स्वयं देवपुत्र होनेके कारण दिव्य गुणोंसे युक्त थे, परंतु कुसङ्गमें रहनेके कारण उसके दोष उनमें आ जाते थे।

पतिभक्ता गान्धारी

संसारकी पतिव्रता देवियोंमें गान्धारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ये गन्धारराज सुबलकी पुत्री और शकुनिकी बहिन थीं। इन्होंने कुमारी-अवस्थामें ही भगवान् शङ्करकी बड़ी आराधना की और उनसे सौ पुत्रोंका वरदान प्राप्त किया। जब इन्हें मालूम हुआ कि इनका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्रसे होनेवाला है, उसी समयसे इन्होंने अपनी दोनों आँखोंपर पट्टी बाँध ली। इन्होंने सोचा कि जब मेरे पति ही नेत्रसुखसे वञ्चित हैं, तब मुझे संसारको देखनेका क्या अधिकार है। उस समयसे जबतक ये जीवित रहीं, अपने उस दृढ़ निश्चयपर अटल रहीं। पतिके लिये इन्द्रियसुखके त्यागका ऐसा अनूठा उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। इनका यह तप और त्याग अनुपम था, संसारके लिये एक अनोखी वस्तु थी।

ये सदा अपने पतिके अनुकूल रहीं। इन्होंने ससुरालमें आते ही अपने चरित्र और सद्गुणोंसे पति एवं उनके सारे परिवारको मुग्ध कर लिया। धन्य पतिप्रेम !

देवी गान्धारी जैसी पतिव्रता थीं, वैसी ही निर्भीक और न्यायप्रिय भी थीं। ये सदा सत्य, नीति और धर्मका ही पक्ष लेती थीं, अन्यायका कभी समर्थन नहीं करती थीं। इनके पुत्रोंने देवी द्रौपदीके साथ भरी सभामें जो अत्याचार किया था, उसका इनके मनमें बड़ा दुःख था। वे इस बातसे अपने पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं हुईं। जब इनके पति राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रकी बातोंमें आकर दुबारा पाण्डवोंको द्यूतके लिये बुला भेजा, उस समय वे बड़ी दुखी हुईं। इन्होंने जुएका विरोध करते हुए अपने पतिदेवसे कहा—'स्वामी ! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़के समान रोने-चिल्लाने लगा था, इसलिये उसी समय परम ज्ञानी विदुरने कहा था कि इस पुत्रका परित्याग कर दो। मुझे तो वह बात याद करके यही जान पड़ता है कि यह कुरुवंशका नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र ! आप अपने दोषसे सबको विपत्तिमें न डालिये। इन ढीठ मूर्खोंकी हाँ में हाँ न मिलाइये। इस वंशके नाशका कारण मत बनिये। बँधे हुए पुलको मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त हैं और वैर-विरोधसे विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुषके चित्तपर शास्त्रके उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु आप वृद्ध होकर बालकोंकी-सी बात करें—यह अनुचित है। इस समय आप अपने पुत्रतुल्य पाण्डवोंको अपनाये रक्खें। कहीं वे दुखी होकर आपसे विलग न हो जायँ। कुलकलङ्क दुर्योधनको त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने मोहवश उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी, उसीका यह फल है। शान्ति, धर्म और मन्त्रियोंकी सम्मतिसे अपनी विचारशक्तिको सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपके लिये बड़ा दुःखदायी सिद्ध होगा, राजलक्ष्मी क्रूरके हाथमें पड़कर उसीका सत्यानाश कर देती है।' गान्धारीके इन वाक्योंसे धर्म, नीति और निष्पक्षता टपकी पड़ती है। ये दुर्योधनको भी उसकी अनुचित कार्रवाइयोंपर बराबर टोकती रहती थीं, उसकी उद्दण्डताके लिये उसे फटकारती थीं और उसकी अनीतिके भावी दुष्परिणामका भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थीं। पर दुर्योधनके सिरपर काल नाच रहा था, वह उसे इन सबकी हितभरी बातोंपर ध्यान नहीं देने देता था।

पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये और वे भी दुर्योधनको समझाकर हार गये, तब धृतराष्ट्रने देवी गान्धारीको बुलाकर उनसे कहा कि 'अब तुम्हीं अपने पुत्रको समझाओ, वह हमलोगोंमेंसे तो किसीकी भी बात नहीं सुनता।' पतिकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'राजन् ! आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें सबसे अधिक दोषी तो आप ही हैं। आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कारसे भी उसे इस मार्गसे नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्रको बिना कुछ सोचे-समझे राज्यकी बागडोर सौंप दी; उसीका आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घरमें जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा किये चले जा रहे हैं। ऐसा करके तो आप पाण्डवोंकी दृष्टिमें अपने-आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। देखिये, यदि साम या भेदसे ही विपत्ति टाली जा सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंके प्रति दण्डका प्रयोग क्यों करेगा।' गान्धारीकी यह युक्ति कैसी निर्भीक, निष्पक्ष, हितभरी, नीतिपूर्ण और सच्ची थी !

इसके बाद गान्धारीने अपने पुत्रको भी बुलाकर उसे समझाना शुरू किया। वे बोलीं—'बेटा ! मेरी बात सुनो। तुमसे तुम्हारे पिता, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुरजीने जो बात कही है, उसे स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे संधि कर लोगे तो सच मानो, इससे पितामह भीष्मजीकी, तुम्हारे पिताजीकी, मेरी और द्रोणाचार्य आदि हितैषियोंकी तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। बेटा ! राज्यको पाना, बचाना और भोगना अपने हाथकी बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है, वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्यको अर्थसे च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीतकर तो राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। देखो—जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्गमें ही मूर्ख सारथिको मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो वे मनुष्यका नाश करनेके लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ जिसके वशमें हैं और जो सब काम सोच-समझकर करता है, उसके पास चिरकालतक लक्ष्मी बनी रहती है। तात ! तुम्हारे दादा भीष्मजीने और गुरु द्रोणाचार्यजीने जो बात कही है, वह बिल्कुल ठीक है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षोंका हित होगा। वत्स ! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है तो सुख कहाँसे होगा। यदि तुम अपने मन्त्रियोंके सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो न्यायोचित भाग है, वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो तेरह वर्षतक घरसे बाहर रक्खा गया, यह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब संधि करके इसका मार्जन कर दो। तात ! संसारमें लोभ करनेसे किसीकी सम्पत्ति नहीं मिलती।

अतः तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवोंसे संधि कर लो ।' कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था । इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं तथा वे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा भी जानती थीं ।

फिर भी दुष्ट दुर्योधनपर गान्धारीके इस उत्तम उपदेशका कोई असर नहीं हुआ । उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी । परिणाम यह हुआ कि दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं और अठारह दिनोंतक कुरुक्षेत्रके मैदानमें भीषण मार काट हुई । युद्धके दिनोंमें दुर्योधन प्रतिदिन इनसे प्रार्थना करता कि 'माँ ! मैं शत्रुओंके साथ लोहा लेने जा रहा हूँ; आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे युद्धमें मेरा कल्याण हो ।' गान्धारीमें पातिव्रत्यका बड़ा तेज था । वे यदि पुत्रको विजयका आशीर्वाद दे देतीं तो वह अन्यथा न होता । परंतु वे देतीं कैसे ? वे जानती थीं कि दुर्योधन अत्याचारी है । अत्याचारीके हाथोंमें कभी राज्यलक्ष्मी टिक नहीं सकती, इसीलिये वे हर बार यही उत्तर देतीं—'बेटा ! जहाँ धर्म है, वहीं विजय है । विजय चाहते हो तो धर्मका आश्रय लो, अधर्मका परित्याग करो ।' उन्होंने दुर्योधनका कभी पक्ष नहीं लिया । परंतु जब उन्होंने सुना कि मेरे सौ-के-सौ पुत्र मारे गये तो शोकके वेगसे उनका क्रोध उभड़ पड़ा और वे पाण्डवोंको शाप देनेका विचार करने लगीं । भगवान् वेदव्यास तो मनकी बात जान लेते थे । उन्हें जब इस बातका पता लगा,तो उन्होंने गान्धारीके पास आकर उन्हें सान्त्वना दी और उनको असत्-सङ्कल्पसे रोका । उस समय पाण्डव भी वहाँ मौजूद थे ।

गान्धारीने व्यासजीसे कहा—'भगवन् ! पाण्डवोंके प्रति मेरे मनमें द्वेषभाव नहीं है । मैं इनका नाश नहीं चाहती हूँ । पुत्रशोकके कारण बलात् मेरा मन विह्वल हो रहा है । पाण्डवोंकी रक्षा कुन्तीके समान ही मुझे करनी चाहिये । आप जैसे उनकी रक्षा करना चाहते हैं, धृतराष्ट्रके द्वारा भी वे उसी प्रकार रक्षणीय हैं । मैं जानती हूँ कि कुरुवंशका नाश दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनके द्वारा हुआ है; युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेवका इसमें अपराध नहीं है । युद्धमें लड़ते हुए कौरव मारे गये, इसमें कोई दुःखकी बात नहीं है; परंतु महात्मा वासुदेवके सामने गदायुद्धमें बुलाकर युद्ध करते हुए नाभिसे नीचे प्रहार करके भीमने जो दुष्कर्म किया, इसे याद करके मेरा क्रोध बढ़ रहा है ।'

गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेन डरते हुए विनयपूर्वक बोले—'माता ! भयसे मैंने आत्मरक्षाके लिये जो अधर्म या धर्म किया, उसे आप कृपया क्षमा करें । वह तुम्हारा महाबली पुत्र धर्मसे किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सकता था, इसी कारण मैंने वह विषम कृत्य किया । उसने पहले युधिष्ठिरको अधर्मसे ही जीतकर हमको विपत्तिमें डाला था । यह सोचकर ही वह विषम कृत्य मैंने किया । यह वीर्यवान् दुर्योधन अकेला बच गया है, कहीं गदायुद्धमें मुझे मारकर राज्य न ले ले, यह सोचकर ही मैंने वैसा किया । एकवस्त्रा, रजस्वला राजपुत्री पाञ्चालीके साथ उसने जो दुर्व्यवहार किया, वह आपको ज्ञात ही है । उसने जो द्रौपदीके सामने बायीं जङ्घा प्रदर्शित की थी, वह हमारे लिये असह्य था । तुम्हारे पुत्रने उसी समय वध करने योग्य काम किया था, किंतु धर्मराजकी आज्ञा न होनेके कारण वह बच गया था । हे महारानी ! आपके पुत्रने ही महान् वैर करके संकट उपस्थित किया था, उसीके कारण हमको वनमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा, इसीलिये मैंने वैसा कर्म किया ।'

भीमसेनके इस उत्तरको सुनकर गान्धारीने कहा—'हे वृकोदर ! तुम्हारी सारी बातें मैं मानती हूँ, परंतु तुमने जो दुःशासनका रक्तपान किया, वह बड़ा ही निन्दनीय, भयङ्कर और अनार्योंके कर्म जैसा है । यह क्रूर कर्म जो तुमने किया, वह ठीक नहीं था ।' यह सुनकर भीमसेनने कहा—'माता ! दूसरेका खून नहीं पीना चाहिये, अपना खून पीनेकी तो बात ही क्या ? जैसा अपना खून है, वैसा ही भाईका ! माँ ! सोच न करो, सूर्यनारायण साक्षी हैं कि खून मेरे ओठोंके भीतर नहीं गया, केवल दोनों हाथ खूनसे लथपथ थे । हे महारानी, द्रौपदीके केश पकड़कर खींचे जाते समय क्रोधवश होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की थी, उसे पूरा नहीं करता तो धर्म-च्युत होनेके कारण अनन्तकालतक निन्दाका पात्र बनता । आपने पहले अपने पुत्रोंको नहीं सँभाला, अब मुझ अपकार न करनेवालेपर आप क्यों शङ्का करती हैं ?'

गान्धारीने कहा—'तात ! मेरे सौ पुत्रोंमें अल्प अपराधी किसी एक पुत्रको भी तुमने नहीं छोड़ा, जो हमारे बुढ़ापेकी लकड़ी बनता ।

'यदि तुम धर्मका आचरण करते तो मेरे पुत्रोंका वध करनेपर भी मुझे तुमको देखकर दुःख नहीं होता ।'

भीम और गान्धारीके इस वार्तालापसे स्पष्ट हो जाता है कि गान्धारीका हृदय कितना विशाल था, तथा उसमें कितनी धर्मप्रियता थी । परंतु माताका हृदय था, पुत्रोंको कुमार्गी देखकर भी माता पुत्रहीना नहीं रहना चाहती । इसी कारण उसके मनमें बड़ा क्षोभ था । यदि उसका कोई एक भी पुत्र जीता बचा होता तो धर्माचारिणी गान्धारी अपने दुर्योधन आदि कुपुत्रोंके मरनेपर दुखी न होती । अपने सौ पुत्रोंको मारनेवाले भीमसे इस प्रकार नीति और प्रीतियुक्त धर्मकी चर्चा गान्धारी-जैसी सतीके सिवा दूसरी स्त्री नहीं कर सकती ।

माता गान्धारीके मनमें क्षोभ देखकर युधिष्ठिर उनके पास गये और अपनेको धिक्कारते हुए ज्यों ही उनके चरणों-पर गिरने लगे कि गान्धारीकी क्रोधभरी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर महाराज युधिष्ठिरके नखोंपर पड़ी । इससे उनके सुन्दर लाल-लाल नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखकर उनके भाई भी मारे भयके इधर-उधर छिपने लगे । उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने माताके समान पाण्डवोंको धीरज दिया । उपर्युक्त घटनासे गान्धारीके अनुपम पातिव्रत्य-तेजका पता लगता है । अन्तमें गान्धारीने अपना क्रोध श्रीकृष्णपर निकाला । अथवा यों कहना चाहिये कि अन्तर्यामी श्रीकृष्णने ही उनकी मति पलटकर पाण्डवोंको उनके कोपसे बचा लिया और उनका अभिशाप अपने ऊपर ले लिया । देवी गान्धारीने कुरुक्षेत्रमें जाकर जब वहाँका हृदयविद्रावक दृश्य देखा तो वे अपने शोकको सँभाल न सकीं । वे क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णसे बोलीं—'कृष्ण ! पाण्डव और कौरव अपनी फूटके कारण ही नष्ट हुए हैं; किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी अपने सम्बन्धियोंकी उपेक्षा क्यों कर दी ? तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना भी थी । तुम दोनोंको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे । परंतु तुमने जान-बूझकर कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी । इसलिये अब तुम उसका फल भोगो । मैंने पतिकी सेवा करके जो तप संचय किया है, उसीके बलपर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हुए कौरव और पाण्डवोंकी तुमने उपेक्षा कर दी, उसी प्रकार तुम अपने बन्धु-बान्धवोंका भी वध करोगे और स्वयं भी अनाथकी तरह मारे जाओगे । आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ आर्त्तनाद कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोयेंगी ।'

गान्धारीके ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्ण मुसकराये और बोले—'मैं तो जानता था कि यह बात इसी तरह होनेवाली है । शाप देकर तुमने होनीको ही बतलाया है । इसमें संदेह नहीं वृष्णिवंशका नाश दैवी कोपसे ही होगा । इसका नाश भी मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता । मनुष्य क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते । इसलिये ये यदुवंशी आपसके कलहसे ही नष्ट होंगे ।'

देवी गान्धारीके सौ पुत्र मारे गये, एक भी उनमेंसे जीता न बचा, इसके शोकसे वह दुखी थी ही; परंतु जब उसने द्रौपदीको पृथ्वीपर शोकसे परिप्लुत होकर रोते देखा तो उसको अपना दुःख भूल गया, वह द्रौपदीको सान्त्वना देने लगी—'हे पुत्रि ! इस प्रकार शोकार्त न हो । देखो, मैं भी तुम्हारी ही भाँति दुःखिता हूँ । मैं समझती हूँ कि यह जो जनसंहार हुआ है, दैवकी प्रेरणासे हुआ है । यह अवश्य-म्भावी था, विदुरने इसके लिये पहले ही भविष्यद्वाणी की थी । हे कृष्णे ! युद्धमें मरनेवालोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे स्वर्ग चले गये हैं, इसलिये अशोच्य हैं ।

यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति ।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥

(स्त्रीपर्व १५ । ४४)

'जो मेरी हालत है वही तेरी है । हमको कौन आश्वासन देगा । कृष्णे ! मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका विनाश हुआ है ।'—यह आश्वासन देवी गान्धारीके हृदयकी विशालताको व्यक्त करता है ।

युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके बाद देवी गान्धारी कुछ समय-तक उन्हींके पास रहकर अन्तमें अपने पतिके साथ वनमें चली गयीं और वहाँ तपस्वियोंका-सा जीवन बिताकर तपस्वियों-की भाँति ही उन्होंने अपने पतिके साथ दावाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और पतिके साथ ही कुबेरके लोकमें चली गयीं । इस प्रकार पतिपरायणा गान्धारीने इस लोकमें पतिकी सेवा करके परलोकमें भी पतिका सान्निध्य एवं सेवा प्राप्त की—जो प्रत्येक पतिव्रताका अभीष्ट लक्ष्य होता है । प्रत्येक पतिव्रता नारीको गान्धारीके चरित्रका मननकर उससे शिक्षा लेनी चाहिये ।

माँ कुन्तीदेवी

कुन्तीदेवी एक आदर्श महिला थीं । ये महात्मा पाण्डवोंकी माता एवं भगवान् श्रीकृष्णकी बूआ थीं । ये वसुदेवजीकी सगी बहिन थीं तथा राजा कुन्तिभोजको गोद दी गयी थीं । जन्मसे इन्हें लोग पृथाके नामसे पुकारते थे, परंतु राजा कुन्तिभोजके यहाँ इनका लालन-पालन होनेसे ये कुन्तीके नामसे विख्यात हुईं । ये बालकपनसे ही बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशीला एवं भक्तिमती थीं । राजा कुन्तिभोजके यहाँ एक बार एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण अतिथि-रूपमें आये । इनकी सेवाका कार्य बालिका कुन्तीको सौंपा गया । इनकी ब्राह्मणोंमें बड़ी भक्ति थी और अतिथि-सेवामें बड़ी रुचि थी । राजपुत्री पृथा आलस्य और अभिमानको त्यागकर ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तन-मनसे संलग्न हो गयी । उसने शुद्ध मनसे सेवा करके ब्राह्मण देवताको पूर्णतया प्रसन्न कर लिया । ब्राह्मण देवताका व्यवहार बड़ा अटपटा था । कभी वे अनियत समयपर आते, कभी आते ही नहीं और कभी ऐसी चीज खानेको माँगते, जिसका मिलना अत्यन्त कठिन होता । किंतु पृथा उनके सारे काम इस प्रकार कर देती मानो उसने उनके लिये पहलेसे ही तैयारी

माँ कुन्ती

कर रक्खी हो। उसके शीलस्वभाव और संयमसे ब्राह्मणको बड़ा संतोष हुआ। कुन्तीकी यह बचपनकी ब्राह्मण-सेवा उसके लिये बड़ी कल्याणप्रद सिद्ध हुई। और इसीसे उनके जीवनमें संयम, सदाचार, त्याग एवं सेवाभावकी नींव पड़ी। आगे जाकर इन गुणोंका उनके अंदर अद्भुत विकास हुआ।

कुन्तीके अंदर निष्काम भावका विकास भी बचपनसे ही हो गया था। इन्हें बड़ी तत्परता एवं लगनके साथ महात्मा ब्राह्मणकी सेवा करते पूरा एक वर्ष हो गया। इनके सेवामन्त्र-का अनुष्ठान पूरा हुआ। इनकी सेवामें ढूँढ़नेपर भी ब्राह्मण-को कोई त्रुटि नहीं दिखायी दी। तब तो वे इनपर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! मैं तेरी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर माँग ले।' कुन्तीने ब्राह्मणदेवताको बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। श्रीकृष्णकी बूआ और पाण्डवोंकी भावी माताका वह उत्तर सर्वथा अनुरूप था। कुन्तीने कहा—'भगवन्! आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे सब कार्य तो इसीसे सफल हो गये। अब मुझे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।' एक अल्पवयस्क बालिकाके अंदर विलक्षण सेवाभावके साथ-साथ ऐसी निष्कामताका संयोग मणि-काञ्चन-संयोगके समान था। हमारे देशकी बालिकाओं-को कुन्तीके इस आदर्श निष्काम सेवाभावसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अतिथि-सेवा हमारे सामाजिक जीवनका प्राण रही है और उसकी शिक्षा भारतवासियोंको बचपनसे ही मिल जाया करती थी। सच्ची एवं सात्त्विक सेवा वही है, जो प्रसन्नतापूर्वक की जाय—जिसमें भार अथवा उकताहट न प्रतीत हो, और जिसके बदलेमें कुछ न चाहा जाय। आजकलकी सेवामें प्रायः इन दोनों बातोंका अभाव देखा जाता है। प्रसन्नतापूर्वक निष्कामभावसे की हुई सेवा कल्याण-का परम साधन बन जाती है। अस्तु,

जब कुन्तीने ब्राह्मणसे कोई वर नहीं माँगा तो उन्होंने उससे देवताओंके आवाहनका मन्त्र ग्रहण करनेके लिये कहा। वे कुछ-न-कुछ कुन्तीको देकर जाना चाहते थे। अबकी बार ब्राह्मणके अपमानके भयसे वह इन्कार न कर सकी। तब उन्होंने उसे अथर्ववेदके शिरोभागमें आये हुए मन्त्रोंका उपदेश दिया और कहा कि 'इन मन्त्रोंके बलसे तू जिस-जिस देवताका आवाहन करेगी, वही तेरे अधीन हो जायगा।' यों कहकर वे ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। ये ब्राह्मण और कोई नहीं, उग्रतपा महर्षि दुर्वासा थे। इनके दिये हुए मन्त्रोंके प्रभावसे आगे चलकर कुन्तीने धर्म, वायु, इन्द्रका आवाहन करके इनसे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। उसकी सपत्नी माद्रीको अश्विनीकुमारसे दो पुत्र प्राप्त हुए—नकुल और सहदेव।

कुन्तीका विवाह महाराज पाण्डुसे हुआ था। महाराज पाण्डु बड़े ही धर्मात्मा थे। इनके द्वारा एक बार भूलसे मृगरूपधारी किन्दम मुनिकी हिंसा हो गयी। इस घटनासे इनके मनमें बड़ी ग्लानि और निर्वेद हुआ और इन्होंने सब कुछ त्यागकर वनमें रहनेका निश्चय कर लिया। देवी कुन्ती बड़ी पतिभक्ता थीं। ये भी अपने पतिके साथ इन्द्रियोंको वशमें करके तथा कामजन्य सुखको तिलाञ्जलि देकर वनमें रहनेके लिये तैयार हो गयीं। तबसे इन्होंने जीवनपर्यन्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया और संयमपूर्वक रहीं। पतिका स्वर्गवास होनेपर इन्होंने अपने बच्चोंकी रक्षाका भार अपनी छोटी सौत माद्रीको सौंपकर अपने पतिका अनुगमन करनेका विचार किया। परंतु माद्रीने इसका विरोध किया। उसने कहा—'बहिन! मैं अभी युवती हूँ, अतः मैं ही पतिदेवका अनुगमन करूँगी। तुम मेरे बच्चोंकी सँभाल रखना।' कुन्तीने माद्रीकी बात मान ली और अन्ततक उसके पुत्रोंको अपने पुत्रोंसे बढ़कर समझा। सपत्नी एवं उसके पुत्रोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसकी शिक्षा भी हमारी माता-बहिनोंको कुन्तीके जीवनसे लेनी चाहिये। पतिके जीवनकालमें इन्होंने माद्रीके साथ छोटी बहिनका-सा बर्ताव किया और उसके सती होनेके बाद उसके पुत्रोंके प्रति वही भाव रक्खा जो एक साध्वी स्त्रीको रखना चाहिये। सहदेवके प्रति तो उनकी विशेष ममता थी और वह भी इन्हें बहुत अधिक प्यार करता था।

पतिकी मृत्युके बादसे कुन्तीदेवीका जीवन बराबर कष्टमें बीता। परंतु ये बड़ी ही विचारशीला एवं धैर्यवती थीं। अतः इन्होंने कष्टोंकी कुछ भी परवा नहीं की और अन्ततक धर्मपर आरूढ़ रहीं। दुर्योधनके अत्याचारोंको भी ये चुपचाप सहती रहीं। इनका स्वभाव बड़ा ही कोमल और दयालु था। इन्हें अपने कष्टोंकी कोई परवा नहीं थी, परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकती थीं। लाक्षाभवनसे निकलकर जब ये अपने पुत्रोंके साथ एकचक्रा नगरीमें रहने लगी थीं, उन दिनों वहाँकी प्रजापर एक बड़ा भारी संकट था। उस नगरीके पास ही एक बकासुर नामका राक्षस रहता था। उस राक्षसके लिये नगर-वासियोंको प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे पहुँचाने पड़ते थे। जो मनुष्य इन्हें लेकर जाता, उसे भी वह राक्षस खा जाता। वहाँके निवासियोंको बारी-बारीसे यह काम करना पड़ता था। पाण्डवलोग जिस ब्राह्मणके घरमें भिक्षुकोंके रूपमें रहते थे, एक दिन उसके घरसे राक्षसके लिये आदमी भेजने-की बारी आयी। ब्राह्मण-परिवारमें कुहराम मच गया। कुन्तीको जब इस बातका पता लगा तो उनका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने सोचा—'हमलोगोंके रहते ब्राह्मण-परिवारको कष्ट भोगना पड़े, यह हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी। फिर हमारे तो ये आश्रयदाता हैं, इनका प्रत्युपकार हमें किसी-न-किसी रूपमें करना ही चाहिये। अवसर आनेपर

उपकारीका प्रत्युपकार न करना धर्मसे च्युत होना है । जब इनके घरमें हमलोग रह रहे हैं तो इनका दुःख बँटाना हमारा कर्तव्य हो जाता है ।' यों विचारकर कुन्ती ब्राह्मणके घर गयीं । उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ बैठे हैं । वे अपनी स्त्रीसे कह रहे हैं, 'तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो । मैं राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता ।' पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा—'नहीं, मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी । पत्नी-के लिये सबसे बढ़कर सनातन कर्तव्य यही है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी भलाई करे । स्त्रियोंके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे अपने पतिसे पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ । यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे । पुरुषका वध निर्विवाद है और स्त्रीका संदेहग्रस्त, इसलिये मुझे ही उसके पास भेजिये ।' माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली—'आप क्यों रो रहे हैं ? देखिये, धर्मके अनुसार आप दोनों मुझे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे । इसलिये आज ही मुझे छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ? लोग संतान इसीलिये चाहते हैं कि वह हमें दुःखसे बचावे ।' यह सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे; कन्या भी रोये बिना न रह सकी । सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-बालक कहने लगा—'पिताजी ! माताजी ! बहिन ! मत रोओ ।' फिर उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा ।' तब सब लोग हँस पड़े । कुन्ती यह सब देख-सुन रही थीं । वे आगे बढ़कर उनसे बोलीं—'महाराज ! आपके तो एक पुत्र और एक ही कन्या है । मेरे आपकी दयासे पाँच पुत्र हैं । राक्षसको भोजन पहुँचानेके लिये मैं उनमेंसे किसीको भेज दूँगी, आप घबरायें नहीं ।' ब्राह्मणदेवताने कुन्तीदेवीके इस प्रस्तावको सुनते ही अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा—'देवि ! आपका इस प्रकार कहना आपके अनुरूप ही है; परंतु मैं तो अपने लिये अपने अतिथिकी हत्या नहीं करा सकता ।' कुन्तीने उन्हें बतलाया कि 'मैं अपने जिस पुत्रको राक्षसके पास भेजूँगी, वह बड़ा बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है; उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।' इसपर ब्राह्मण राजी हो गये । तब कुन्तीने भीमसेनको उस कामके लिये राक्षसके पास भेज दिया । भला, दूसरोंकी प्राणरक्षाके लिये इस प्रकार अपने हृदयके टुकड़ेका जान-बूझकर कोई माता बलिदान कर सकती है ? कहना न होगा कि कुन्तीके इस आदर्श त्यागके प्रभावसे संसारपर बहुत ही अच्छा असर पड़ा । अतएव सभीको इससे शिक्षा लेनी चाहिये ।

कुन्तीदेवीका सत्यप्रेम भी आदर्श था । ये विनोदमें भी कभी झूठ नहीं बोलती थीं । भूलसे भी इनके मुँहसे जो बात निकल जाती थी, उसका ये जी-जानसे पालन करती थीं । इस प्रकारकी सत्यनिष्ठा इतिहासके पन्ने उलटनेपर भी दूसरी जगह प्रायः नहीं देखनेमें आती । अर्जुन और भीम स्वयंवरमें द्रौपदीको जीतकर जब माताके पास लाये और कहा कि 'माता ! आज हम यह भिक्षा लाये हैं' इन्होंने उन्हें बिना देखे ही कह दिया—'बेटा ! पाँचों भाई मिलकर इसका उपयोग करो ।' जब इन्हें मालूम हुआ कि ये एक कन्या लाये हैं, तब तो ये बड़े असमंजसमें पड़ गयीं । इन्होंने सोचा—'यदि मैं अपनी बात वापस लेती हूँ तो असत्यका दोष लगता है; और यदि अपने पुत्रोंको उसीके अनुसार चलनेके लिये कहती हूँ तो सनातन मर्यादाका लोप होता है ।' पाँच भाइयोंका एक स्त्रीसे विवाह हो—यह पहले कभी नहीं देखा-सुना गया था । ऐसी स्थितिमें कुन्तीदेवी कुछ भी निश्चय न कर सकीं, वे किंकर्तव्यविमूढ हो गयीं । अन्तमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्मति पूछी और उन्होंने भी इन्हें सत्यपर कायम रहनेकी ही सलाह दी । पीछे राजा द्रुपदकी ओरसे आपत्ति होनेपर वेदव्यासजीने द्रौपदीके पूर्वजन्मोंकी कथा कहते हुए उन्हें समझाया कि शङ्करजीके वरदानसे ये पाँचों ही द्रुपदकुमारीका पाणिग्रहण करेंगे । इस प्रकार पाँचोंके साथ द्रुपदकुमारी विधिपूर्वक ब्याह दी गयीं । कुन्तीदेवीकी सत्यनिष्ठाकी विजय हुई । उनके मुखसे हठात् ऐसी ही बात निकली, जो होनेवाली थी । सत्यका दृढ़तापूर्वक आश्रय लेनेपर ऐसा होना किसीके लिये भी असम्भव नहीं है । अस्तु,

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था । पाण्डवोंके वनवास एवं अज्ञातवासके समय ये उनसे अलग हस्तिनापुरमें ही रहीं और वहींसे इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका संदेश भेजा । इन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा—'पुत्रो ! जिस कार्यके लिये क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस कार्यके करनेका समय आ गया है । * इस समय तुमलोग मेरे दूधको न लजाना ।' महाभारत-युद्धके समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध-समाप्तिके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के पदपर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानरहित होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं । यहाँतक कि जब ये दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने लगे, उस समय ये चुपचाप उनके सङ्ग हो लीं और युधिष्ठिर

* एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
(महा० उद्योग० १३६ । ९-१०)

आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुई। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके बाद जब सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुख-भोगको ठुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानीसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ देखनेको मिलता है। हमारी माताओं एवं बहिनोंको कुन्तीदेवीके इस अनुपम त्यागसे शिक्षा लेनी चाहिये।

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें वनसे नगरमें क्यों लायीं?' उस समय कुन्तीदेवीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अङ्कित करने योग्य है। वे बोलीं—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुमलोगोंको युद्धके लिये उकसाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्तसमय-तक उनकी सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलेंगी।

देवी द्रौपदी

देवी द्रौपदी पञ्चालनरेश राजा द्रुपदकी अयोनिजा पुत्री थीं। इनकी उत्पत्ति यज्ञवेदीसे हुई थी। इनका रूप-लावण्य अनुपम था। इनके-जैसी सुन्दरी उस समय पृथ्वी-भरमें कोई नहीं थी। इनके शरीरसे तुरंतके खिले कमलकी-सी गन्ध निकलकर एक कोसतक फैल जाती थी। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने कहा था—'देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये क्षत्रियोंके संहारके उद्देश्यसे इस रमणीरत्नका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवोंको बड़ा भय होगा।' कृष्णवर्णा होनेके कारण लोग इन्हें कृष्णा कहते थे। पूर्वजन्ममें दिये हुए भगवान् शङ्करके वरदानसे इन्हें इस जन्ममें पाँच पति प्राप्त हुए। अकेले अर्जुनके द्वारा स्वयंवरमें जीती जानेपर भी माता कुन्तीकी आज्ञासे इन्हें पाँचों भाइयोंने ब्याहा था।

द्रौपदी आदर्श पत्नी थीं। राजसूय यज्ञसे लौटनेपर दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे कहा था—'राजन्! उस यज्ञमें द्रौपदी पहले स्वयं भोजन न करके इस बातकी देख-भाल करती थी कि कुबड़ों और बौनोंतक सब लोगोंमें कौन खा चुका और किसको भोजन नहीं मिला।' आर्यगृहिणीका यही आदर्श है। आज भी धर्मभीरु कुलाङ्गनाएँ सबको खिलाकर अन्तमें भोजन करती हैं।

द्रौपदी उच्च कोटिकी पतिव्रता एवं भगवद्भक्ता थीं। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अविचल प्रीति थी। ये उन्हें अपना रक्षक, हितू एवं परम आत्मीय तो मानती ही थीं, उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्तामें भी इनका पूर्ण विश्वास था। जब कौरवोंकी सभामें दुष्ट दुःशासनने इन्हें नंगी करना चाहा और सभासदोंमेंसे किसीकी हिम्मत न हुई कि इस अमानुषी अत्याचारको रोके, उस समय अपनी लाज बचानेका कोई दूसरा उपाय न देख इन्होंने अत्यन्त आतुर होकर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ।

(महा० सभा० ६८ । ४१—४४)

'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे गोपीजन-प्रिय श्रीकृष्ण! हे केशव! क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौरवोंके द्वारा अपमानित हो रही हूँ। हे नाथ! हे रमापति! हे व्रजेश! हे संकटोंका नाश करनेवाले जनार्दन! मुझ कौरव-रूपी समुद्रमें डूबती हुई अबलाका उद्धार करो। हे महायोगी हे विश्वात्मा! हे विश्वभावन श्रीकृष्ण! हे श्रीकृष्ण! कौरवोंके बीच विपन्नावस्थाको प्राप्त मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

सच्चे हृदयकी करुण पुकार भगवान् बहुत जल्दी सुनते हैं। श्रीकृष्ण उस समय द्वारकामें थे। वहाँसे वे तुरंत दौड़े आये और धर्मरूपसे द्रौपदीके वस्त्रोंमें छिपकर उनकी लाज बचायी। भगवान्‌की कृपासे द्रौपदीकी साड़ी अनन्तगुना बढ़ गयी। दुःशासन उसे जितना ही खींचता था, उतना ही वह बढ़ती जाती थी। देखते-देखते वहाँ वस्त्रका ढेर लग गया। महाबली दुःशासनकी प्रचण्ड भुजाएँ थक गयीं

परंतु साड़ीका छोर हाथ नहीं आया। उपस्थित सारे समाजने भगवद्भक्ति एवं पातिव्रत्यका अद्भुत चमत्कार देखा। अन्तमें दुःशासन हारकर लज्जित हो बैठ गया। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्तकी लाज रख ली। धन्य भक्तवत्सलता!

एक दिनकी बात है—जब पाण्डवलोग द्रौपदीके साथ काम्यक वनमें रह रहे थे, दुर्योधनके भेजे हुए महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर पाण्डवोंके पास आये। दुर्योधनने जान-बूझकर उन्हें ऐसे समयमें भेजा जब कि सब लोग भोजन करके विश्राम कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिरने अतिथिसेवाके उद्देश्यसे ही भगवान् सूर्यदेवसे एक ऐसा चमत्कारी वर्तन प्राप्त किया था, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता था। लेकिन उसमें शर्त यही थी कि जबतक द्रौपदी भोजन नहीं कर चुकती थीं, तभीतक उस वर्तनमें यह करामात रहती थी। युधिष्ठिरने महर्षिको शिष्यमण्डलीके सहित भोजनके लिये आमन्त्रित किया और दुर्वासाजी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये सबके साथ गङ्गातटपर चले गये।

दुर्वासाजीके साथ दस हजार शिष्योंका एक पूरा-का-पूरा विश्वविद्यालय सा चला करता था। धर्मराजने उन सब को भोजनका निमन्त्रण तो दे दिया और ऋषिने उसे स्वीकार भी कर लिया; परंतु किसीने भी इसका विचार नहीं किया कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हैं, इसलिये सूर्यके दिये हुए वर्तनसे तो उन लोगोंके भोजनकी व्यवस्था हो नहीं सकती थी। द्रौपदी बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। उन्होंने सोचा—'ऋषि यदि बिना भोजन किये वापस लौट जाते हैं तो वे बिना शाप दिये नहीं रहेंगे।' उनका क्रोधी स्वभाव जगद्विख्यात था। द्रौपदीको और कोई उपाय नहीं सूझा। तब उन्होंने मन-ही-मन भक्त-भय-भञ्जन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और इस आपत्तिसे उबारनेकी उनसे इस प्रकार प्रार्थना की—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्त्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते ॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर ॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥

(महा० वन० २६३। ८—१६)

'हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! हे देवकीनन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! हे प्रणत जनके दुःख दूर करनेवाले जगदीश्वर! हे विश्वात्मन्, विश्वके पिता, विश्वका संहार करनेवाले, शरणागत-रक्षक गोपाल! हे प्रभो! तुम अव्यय हो, प्रजापालक हो, परात्पर हो, तुम मन और बुद्धिके प्रेरक हो। हे परमात्मन्! तुझको मेरा प्रणाम! सबके वरण करने योग्य हे वरदाता! हे अनन्त! जिसकी कोई गति नहीं है उसकी गति (सहायक) बनो। हे पुराणपुरुष! हे प्राण, मन, बुद्धि आदिके अगोचर! सबके स्वामी, परम प्रभु! हम तुम्हारी शरणमें हैं। हे शरणागतवत्सल! हे देव! कृपया मुझे बचाओ। हे नीलकमलदलके समान श्यामवदन! कमल पुष्पके गर्भके समान अरुणनयन! हे पीताम्बरधारी! हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे वक्षःस्थलपर कौस्तुभ सुशोभित है। तुम्हीं भूतोंके आदि और अन्त हो, तुम्हीं सबके परम आश्रय हो। तुम परात्पर हो, ज्योतिर्मय विश्वात्मा हो, सब ओर मुँहवाले परमेश्वर हो। ज्ञानीलोग तुमको ही इस जगत्का परम बीज तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंकी निधि बतलाते हैं। हे देवेश! यदि तुम मेरे रक्षक हो तो मुझे समस्त आपदाओंसे भी भय नहीं है। जैसे तुमने पहले कौरवसभामें दुःशासनसे मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम्हीं इस संकटमें मेरा उद्धार कर सकते हो।'

श्रीकृष्ण तो घट-घटकी जाननेवाले हैं। वे तुरंत वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर द्रौपदीके शरीरमें मानो प्राण आ गये, डूबते हुएको मानो सहारा मिल गया। द्रौपदीने संक्षेपमें उन्हें सारी बात सुना दी। श्रीकृष्णने अधीरता प्रदर्शित करते हुए कहा—'और सब बात पीछे होगी, पहले मुझे जल्दी कुछ खानेको दो। मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम जानती नहीं हो मैं कितनी दूरसे हारा-थका आया हूँ।' द्रौपदी लाजके मारे गड़-सी गयीं। उन्होंने रुकते-रुकते कहा—'प्रभो! मैं अभी-अभी खाकर उठी हूँ। अब तो उस बटलोईमें कुछ भी नहीं बचा है।' श्रीकृष्णने कहा—'जरा अपनी बटलोई मुझे दिखाओ तो सही।' कृष्णा बटलोई ले आयीं। श्रीकृष्णने उसे हाथमें लेकर देखा तो उसके गलेमें उन्हें एक सागका पत्ता चिपका हुआ मिला। उन्होंने उसीको मुँहमें डालकर कहा—'इस सागके पत्तेसे सम्पूर्ण जगत्के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तृप्त हो जायँ।' इसके बाद उन्होंने सहदेवसे कहा—'भैया! अब तुम मुनीश्वरोंको भोजनके लिये बुला लाओ।' सहदेवने गङ्गातटपर

देवी द्रौपदी

जाकर देखा तो वहाँ उन्हें कोई नहीं मिला । बात यह हुई कि जिस समय श्रीकृष्णने सागका पत्ता मुँहमें डालकर वह संकल्प, पढ़ा उस समय मुनीश्वरलोग जलमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे । उन्हें अकस्मात् ऐसा अनुभव होने लगा मानो उनका पेट गलेतक अन्नसे भर गया हो । वे सब एक दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे और कहने लगे कि 'अब हमलोग वहाँ जाकर क्या खायेंगे ?' दुर्वासाने चुपचाप भाग जाना ही श्रेयस्कर समझा; क्योंकि वे यह जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीषके यहाँ उनपर जो कुछ बीती थी, उसके बादसे उन्हें भगवद्भक्तोंसे बड़ा डर लगने लगा था । बस, सब लोग वहाँसे चुपचाप भाग निकले । सहदेवको वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंसे उन सबके भाग जानेका समाचार मिला और उन्होंने लौटकर सारी बात धर्मराजसे कह दी । इस प्रकार द्रौपदीकी श्रीकृष्ण-भक्तिसे पाण्डवोंकी एक भारी बला टल गयी। श्रीकृष्णने आकर उन्हें दुर्वासाके कोपसे बचा लिया और इस प्रकार अपनी शरणागतवत्सलताका परिचय दिया ।

× × ×

एक बार वनमें भगवान् श्रीकृष्ण देवी सत्यभामाके साथ पाण्डवोंसे मिलने आये । उस समय बातों-ही-बातोंमें सत्यभामाजीने द्रौपदीसे पूछा—'बहिन ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ । मैं देखती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलवान् पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं; इसका क्या कारण है ? तुम कोई जंतर-मंतर या औषध जानती हो ? अथवा तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्यासे उन्हें वशमें कर रक्खा है ? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे भगवान् श्यामसुन्दर मेरे वशमें हो जायँ ।' देवी द्रौपदीने कहा—'बहिन ! आप श्यामसुन्दरकी पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बात करती हैं । सती-साध्वी स्त्रियाँ जंतर-मंतर आदिसे उतनी ही दूर रहती हैं, जितनी साँप-बिच्छूसे । क्या पतिको जंतर-मंतर आदिसे वशमें किया जा सकता है ? भोली-भाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियाँ ही पतिको वशमें करनेके लिये इस प्रकारके प्रयोग किया करती हैं । ऐसा करके वे अपना तथा अपने पतिका अहित ही करती हैं । ऐसी स्त्रियोंसे सदा दूर रहना चाहिये ।'

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि अपने पतियोंको प्रसन्न रखनेके लिये वे किस प्रकारका आचरण करती थीं । उन्होंने कहा—"बहिन ! मैं अहङ्कार और काम-क्रोधका परित्याग करके बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी और उनकी स्त्रियोंकी सेवा करती हूँ । मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने पतियोंका मन रखती हूँ । मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ, असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, बुरी जगहपर नहीं बैठती, दूषित आचरणके पास भी नहीं फटकती तथा पतियोंके अभिप्रायपूर्ण संकेतका अनुसरण करती हूँ । देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता । अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती । जब-जब मेरे पति घर आते हैं, तब-तब मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ । मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ, सदा सजग रहती हूँ, घरमें अनाजकी रक्षा करती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ । मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंके पास नहीं जाती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ । मैं दरवाजेपर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली अथवा कूड़ा-करकट डालनेकी जगहपर भी अधिक नहीं ठहरती, किंतु सदा ही सत्यभाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ । पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है । जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर चले जाते हैं तो मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए समय बिताती हूँ । मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, मैं भी उससे दूर रहती हूँ । स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ । शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ ।

"सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ । भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारोंपर पकवान बनाना, माननीयोंका आदर करना तथा और भी मेरे लिये जो-जो धर्म विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ, मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ । मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिके अधीन रहना ही है, वही उनका इष्टदेव है । मैं अपने पतियोंसे बढ़कर कभी नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनसे बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती और न कभी सासजीसे वाद-विवाद करती हूँ, तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ । मैं सदा अपने पतियोंसे पहले उठती हूँ तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ । अपनी सासकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ । वस्त्र, आभूषण और भोजनादिमें मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती । पहले महाराज युधिष्ठिरके दस हजार दासियाँ थीं । मुझे उनके नाम, रूप, वस्त्र आदि सबका पता रहता था और इस

बातका भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और उतने ही हाथी चलते थे। उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी और मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी। अन्तःपुरके ग्वालों और गड़रियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख भी मैं ही किया करती थी।

"महाराजकी जो कुछ आय, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे; और मैं सब प्रकारका सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी। मेरे पतियोंका जो अटूट खजाना था, उसका पता भी मुझ एकको ही था। मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती। उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे। मैं सदा ही सबसे पहले उठती और सबसे पीछे सोती थी। सत्यभामाजी! पतियोंको अनुकूल बनानेका मुझे तो यही उपाय मालूम है।" एक आदर्श गृहपत्नीको घरमें किस प्रकार रहना चाहिये—इसकी शिक्षा हमें द्रौपदीके जीवनसे लेनी चाहिये।

× × ×

देवी द्रौपदीमें क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा—दोनोंका अभूतपूर्व सम्मिश्रण था। ये बड़ी बुद्धिमती और विदुषी भी थीं। इनका त्याग भी अद्भुत था। इनके पातिव्रत्यका तो सभी लोग लोहा मानते थे। इन्हें जब दुष्ट दुःशासन बाल खींचते हुए सभामें घसीटकर लाया, उस समय इन्होंने उसे डाँटते हुए अपने पतियोंके कोपका भय दिखलाया और सारे सभासदोंको धिक्कारते हुए द्रोण, भीष्म और विदुर-जैसे सम्मान्य गुरुजनोंको भी उनके चुप बैठे रहनेपर फटकारा। इन्होंने साहसपूर्वक सभासदोंको ललकारकर उनसे न्यायकी माँग की और उन्हें धर्मकी दुहाई देकर यह पूछा कि 'जब महाराज युधिष्ठिरने अपनेको हारकर पीछे मुझे दाँवपर लगाया है, ऐसी हालतमें उनका मुझे दाँवपर लगानेका अधिकार था या नहीं?' सब-के-सब सभासद् चुप रहे। किसीसे द्रौपदीके इस प्रश्नका उत्तर देते नहीं बना। अन्तमें दुर्योधनके भाई विकर्णने उठकर सबसे द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देने और मौन भङ्ग करनेके लिये अनुरोध किया और अपनी ओरसे यह सम्मति प्रकट की कि 'प्रथम तो द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी स्त्री है, अतः अकेले युधिष्ठिरको उन्हें दाँवपर रखनेका कोई अधिकार नहीं था। दूसरे उन्होंने अपनेको हारनेके बाद द्रौपदीको दाँवपर लगाया था, इसलिये भी यह उनकी अनधिकार चेष्टा ही समझी जायगी।' विकर्णकी बात सुनकर विदुरने भी उसका समर्थन किया और अन्य सभासदोंने भी उनकी प्रशंसा की। परंतु कर्णने डाँटते हुए उसे बलपूर्वक बैठा दिया। इस प्रकार भरी सभामें दुःशासनद्वारा घसीटी जाने एवं अपमानित होनेपर भी द्रौपदीकी नैतिक विजय ही हुई। उनकी बुद्धि सर्वोपरि रही। कोई भी उनकी बातका खण्डन नहीं कर सका। अन्तमें विदुरके समझानेपर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको डाँटा और द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिये उनसे वर माँगनेको कहा। इन्होंने वरदानके रूपमें धृतराष्ट्रसे केवल यही माँगा कि मेरे पाँचों पति दासत्वसे मुक्त कर दिये जायँ।' धृतराष्ट्रने कहा—'बेटी! और भी कुछ माँग ले।' उस समय द्रौपदीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह सर्वथा द्रौपदीके अनुरूप ही था। उससे इनकी निर्लोभता एवं धर्मप्रेम स्पष्ट झलकता था। इन्होंने कहा—'महाराज! अधिक लोभ करना ठीक नहीं। और कुछ माँगनेकी मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। मेरे पति स्वयं समर्थ हैं। अब जब वे दासतासे मुक्त हो गये हैं तो बाकी सब कुछ वे स्वयं कर लेंगे।' इस प्रकार द्रौपदीने अपनी बुद्धिमत्ता एवं पातिव्रत्यके बलसे अपने पतियोंको दासतासे मुक्त करा दिया।

द्रौपदीके जिन लंबे-लंबे, काले बालोंका कुछ ही दिन पहले राजसूय यज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय मन्त्रपूत जलसे अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालोंका दुष्ट दुःशासनके द्वारा भरी सभामें खींचा जाना द्रौपदीको कभी नहीं भूला। उस अभूतपूर्व अपमानकी आग उनके हृदयमें सदा ही जला करती थी। इसीलिये जब-जब उनके सामने कौरवोंसे संधि करनेकी बात आयी, तब-तब इन्होंने उसका विरोध ही किया और बराबर अपने अपमानकी याद दिलाकर अपने पतियोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करती रहीं। अन्तमें जब यही तय हुआ कि एक बार कौरवोंको समझा-बुझाकर देख लिया जाय और जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय भी इन्हें अपने अपमानकी बात नहीं भूली और इन्होंने अपने लंबे-लंबे बालोंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण! तुम संधि करने जा रहे हो, सो तो ठीक है। परंतु तुम मेरे केशोंको न भूल जाना।' इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'यदि पाण्डवोंकी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है तो कोई बात नहीं; अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवोंसे संग्राम करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँचों बली पुत्र उनके साथ जूझेंगे।' द्रौपदी वीर क्षत्राणी थी।

× × ×

काम्यकवनमें जब दुष्ट जयद्रथ द्रौपदीको बलपूर्वक ले जानेकी चेष्टा करने लगा, उस समय इन्होंने उसे इतने जोरसे धक्का दिया कि वह कटे हुए पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा। किंतु वह तुरंत ही सँभलकर खड़ा हो गया और इन्हें जबर्दस्ती रथपर बैठाकर ले चला। पीछे जब भीम और

अर्जुन उसे पकड़ लाये और उसकी काफी मरम्मत बना चुके, तब इन्होंने दयापूर्वक उसे छुड़ा दिया। इस प्रकार द्रौपदी क्रोधके साथ-साथ क्षमा करना भी जानती थीं। इनका पातिव्रत्य तेज तो अपूर्व था ही। जिस किसीने इनके साथ छेड़-छाड़ अथवा दुश्चेष्टा की, उसीको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सबकी यही दशा हुई। भला, पतिव्रता-पीड़िता नारीकी हाय किसको नहीं खा लेगी। महाभारत-युद्धमें जो कौरवोंका सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदीका अपमान ही था। द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सुप्तावस्थामें जब अश्वत्थामाने हत्या कर डाली, उस अवसरपर द्रौपदीने द्रोणपुत्रको मारकर उसकी मणि ले आनेके लिये भीमसेनसे कहा। पाण्डवोंमें भीमसेनके पराक्रमपर ही द्रौपदीको अधिक विश्वास था। क्योंकि उसने उनको अनेक बार असाध्य कर्मको भी सम्पादन करते देखा था। भीमसेन अश्वत्थामाको मारनेके लिये गये, परंतु उसको बिना मारे ही व्यासजीके बीच-बचावसे वे मणि लेकर लौटे, और द्रौपदीसे बोले कि, 'देवि! द्रोणपुत्रको ब्राह्मण समझकर मैंने छोड़ दिया, अब उसका केवल शरीरमात्र बचा हुआ है; क्योंकि मणि ले लेनेपर उसका यश समाप्त हो गया। देवि! यह मणि तुम लो।'

द्रौपदीका क्रोध शान्त हो गया। उसने कहा—'अच्छा ही किया जो आपने अश्वत्थामाको छोड़ दिया। वह गुरुपुत्र है, मेरे गुरुके समान है। मणि ले लेनेसे बदला चुक गया। अब इस मणिको महाराज युधिष्ठिर सिरपर धारण करें।' उसके बाद द्रौपदीके कहनेसे गुरुका उच्छिष्ट समझकर युधिष्ठिर उस मणिको सिरपर धारणकर सुशोभित हो उठे। द्रुपदतनया द्रौपदीके उज्ज्वल चरित्रकी यह भी एक अलौकिक घटना है। अपने पाँच पुत्रोंका वध करनेवाले अश्वत्थामाको भी गुरुपुत्र समझकर उसके प्रति गुरु-भाव व्यक्त करना महामहिममयी रानी द्रौपदीका ही काम हो सकता है। ऐसी आदर्श क्षमाशीलता अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिलती।

महाभारतके महानायक

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय एम्० ए०)

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र आज उत्कट समरक्षेत्रके रूपमें परिणत है। जो सुपवित्र भूमि प्राचीन कालमें ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंकी यज्ञस्थलीके रूपमें व्यवहृत होती थी, जहाँ 'आत्मनो, मोक्षार्थं जनताहिताय च' समस्त पार्थिव सम्पत्तिको विश्वप्राण विष्णुकी सेवामें उत्सर्ग करके आर्यसंतान अपने मानवत्वके पूर्णता-सम्पादनका व्रत ग्रहण करते थे, आज उसी पुण्यभूमिमें उन्हींके वंशज लोभ और द्वेष, स्वार्थपरता और परश्रीकातरता, साम्राज्यलिप्सा और भोगवासनाकी प्रेरणासे आत्मविस्मृत होकर जल, स्थल और अन्तरिक्षको भस्मीभूत कर डालनेवाले समरानलमें आत्माहुति देनेके लिये ढेर-के-ढेर चित्र-विचित्र विषपूर्ण मारणास्त्रोंको लेकर इकट्ठे हो रहे हैं। विशाल भारतकी प्रबल क्षात्रशक्ति आसुरी भावोंसे भावित और दम्भ-मोह-मदसे युक्त होकर आज मानो आप ही अपना विनाश करनेको तैयार है। जलमें, स्थलमें, आकाशमें और हवामें जहाँ-तहाँ आग बरसाकर सभी सबको जला डालनेके लिये व्याकुल हैं। मृत्यु देवता बुद्धिपर आरूढ़ होकर सभीको मानो ध्वंसके पथपर ले चले हैं। दूसरेपर मृत्युका प्रहार करने जाकर आज सभी लोग स्वयं उछल-उछलकर मृत्युके कराल गालमें कूदते चले जा रहे हैं। देश, जाति और समाजकी एकता, शान्ति, स्वाधीनता और धर्मानुवर्तिताको अक्षुण्ण और निर्दोष बनाये रखनेके लिये ही भगवान्‌के विधानसे राष्ट्रका उद्भव और क्षात्रशक्तिका अभ्युदय होता है। इसी उद्देश्यसे देशकी ब्राह्मणशक्ति—विज्ञान, दर्शन, धर्म, त्याग और तपस्याकी शक्ति—अपनी साधनाके महान् फलोंको राष्ट्र-शक्तिके हाथोंमें सौंपकर क्षात्रशक्तिको अजेय बनाती है। इसी उद्देश्यसे देशकी वैश्यशक्ति भी क्षात्रशक्तिके सामने सिर झुकाकर उसके आदेशके अनुसार चलती है और देशकी अर्थ-सम्पत्तिको उसके हाथोंमें समर्पण करती है। आज उसी उद्देश्यको सम्पूर्णतया व्यर्थ करनेके लिये, मानवजातिकी एकता और शक्तिको नष्ट कर डालनेके लिये, मनुष्यमात्रकी स्वाधीनताको पददलित करनेके लिये और मानव-जीवनसे धर्मको बाहर निकाल फेंकनेके लिये, बलके घमंडसे चूर मोहग्रस्त क्षत्रिय-वीर राष्ट्रशक्तिका दुरुपयोग करनेमें लगे हैं। राष्ट्रशक्तिके पापलिप्त हो जानेके कारण आज जातिके सैकड़ों टुकड़े हो रहे हैं; समाजमें अत्याचार, अविचार और दुष्ट नीतिका प्रवाह बह रहा है; सङ्घर्ष, प्रतियोगिता और एक दूसरेको गिरानेकी चेष्टामें लगे रहनेके कारण आज मानवजीवनसे आध्यात्मिक आदर्श अन्तर्धान हो गया है, उसका नैतिक बल नष्ट हो चुका है। मानव-जातिकी ब्राह्मणशक्तिने आज आसुरी प्रभावमें पड़कर नित्य नये मारणास्त्रोंके निर्माणमें, अधर्मको धर्मके रूपमें सजाकर सुललित भाषामें उसका अभिनन्दन करनेमें, हिंसा-मन्त्रकी जन-मन-मोहक व्याख्याके प्रचारमें, असुरोंकी असाधारण शक्ति और प्रतिभाकी महिमा गानेमें, एवं मानव-प्राणोंमें विद्वेषकी भयानक आग भड़कानेमें अपनेको लगाकर सनातन आर्यसभ्यताकी जड़ उखाड़नेका मानो व्रत ले लिया है।

भारतके प्राण, विश्वके प्राण, मानवजातिकी अन्तरात्मा मानवजातिपर आसुरीशक्तिके इस आधिपत्यको, मानवमात्रके शरीर-मन-बुद्धिपर अधर्मपरायण राष्ट्रशक्तियोंके इस अत्याचार-को, मानवी साधनापर दम्भ, मोह, हिंसा, घृणा, असत्य और अन्यायके इस प्रभुत्वको मानो सहन करनेमें असमर्थ हो गयी है। पृथ्वीदेवी पापके भारसे पीड़ित होकर उससे छुटकारा पानेके लिये विश्वके प्राणपुरुषके शरणागत हो रही है—उसने अपनी अन्तर्निहित धर्ममयी प्राणशक्तिको जगा दिया है। मानवप्राणकी व्याकुल पुकारसे, माँ वसुन्धराकी अनन्य प्रार्थनासे, मानवसमाजको नवीन रूप प्रदान करनेके लिये असुरोंके द्वारा विध्वस्त की हुई लोभ-मोह-मदसे ग्रसित इस पुण्यभूमिमें स्वयं भगवान् अवतीर्ण हुए और उन्होंने भाँति-भाँतिसे विभक्त, दावानलसे जले हुए मरणोन्मुख भारतवर्षको अखण्ड, अमर, नित्य उज्ज्वल, नित्य प्रशान्त महाभारतके रूप-में प्रतिष्ठित करनेके लिये अपनी भगवती शक्तिको नियुक्त किया।

महामति वेदव्यासप्रणीत महाभारत महाकाव्यके महा-नायक हैं इस महाभारतके प्रतिष्ठाता, विश्वमानव-प्राण-विग्रह स्वयं भगवान् वासुदेव। द्वापरयुगके अन्तमें, कलियुगकी—वर्तमान युगकी सूचनाके समय उन्होंने विशेष उद्देश्यकी सिद्धिके लिये विशेष मूर्ति धारण की थी। भारतकी अखण्डता, भारतीय आत्माकी मुक्ति, भारतीय मानवसमाजके सनातन नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शकी विजय और इस सुमहान् समुज्ज्वल आदर्शके आधारपर भारतीय महाजातिका संगठन—यह था उन लीलामयका जीवन-व्रत, उनके समस्त कर्म और सम्पूर्ण चेष्टाओंका लक्ष्य। उन्होंने चाहा था भारतवर्षको महामानवके महामिलनका क्षेत्र बनाकर समस्त जगत्के सामने इस महामिलनका आदर्श उपस्थित करना। आसुरी प्रति-योगिता और प्रतिद्वन्द्विता—बीभत्स संग्राम और कलह, अनार्यजुष्ट हिंसा, घृणा और भय, दुर्बलपर प्रबलका अत्याचार, अवनतके प्रति उन्नतकी अवज्ञा, सरलचित्त अशिक्षित जनसाधारणके प्रति प्रभुत्वकामी कूटबुद्धि शिक्षित सम्प्रदाय-की प्रवञ्चना और अखण्ड महाजातिसंगठनके प्रतिकूल सभी प्रकारके दोषोंको सभी प्रकारके नर-नारियोंके साधनक्षेत्र तथा चित्तक्षेत्रसे दूर हटाकर उनकी जगह प्रेम और सहानुभूति, सेवा और सहयोग, यज्ञ और त्याग, साम्य और मैत्री, करुणा और मुदिता तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके समन्वय-की नींवपर महाभारतीय सभ्यताका विशाल प्रासाद निर्माण करनेके लिये उन महामानवने अपनी शक्तिको नियोजित किया था।

इस महाभारतके संगठनके लिये उन्होंने विशाल भारतकी सभी जाति, सभी समाज, सभी सम्प्रदाय और सभी राष्ट्रोंको आग्रहके साथ आमन्त्रित किया था। वे चाहते थे भारतकी समस्त शक्तियोंका मिलन; आर्य और अनार्यका, परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रिय शक्तियोंका, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका, वेदवादी और वेदविमुख सम्प्रदायोंका, याज्ञिक और तपस्वियोंका, गृहस्थ और संन्यासियोंका, कर्मी, ज्ञानी और भक्तोंका, शैव, शाक्त और वैष्णवोंका, देवपूजकों, सगुणोपासकों और निर्गुण ब्रह्मके जिज्ञासुओंका—सबका प्राणसे प्राण मिलाकर मिलन; राष्ट्रिय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक—सब प्रकारके मतोंका महासम्मेलन। सभी श्रेणियोंके, सभी भावोंके, सभी स्तरोंके मानव सम्मिलित होकर—समस्त भेदोंमें एक अभेदभूमिका आविष्कार करके सारी विषमताओंके भीतर एक महान् साम्यसूत्रका निर्माण करके, एक महामानवताके आदर्शपर सभी अनुप्राणित हों और इस महामानवताके आदर्शपर ही परिवार, समाज, जाति, राष्ट्र, सम्प्रदाय आदिका संगठन हो—यही था उनका अभिप्राय, यही थी भारतीय प्राणोंकी प्रार्थना और यही थी माँ वसुन्धराकी आकाङ्क्षा।

भारतवर्ष सम्पूर्ण मानवजगत्की आध्यात्मिक केन्द्रभूमि है; इसमें महामिलनका आदर्श सुप्रतिष्ठित हो जानेपर, भारतके कुलधर्म, जातिधर्म, समाजधर्म, साम्प्रदायिक धर्म—भारतीय साधनाके सभी विभाग—इस महामिलनके आदर्शद्वारा सुनियन्त्रित और अनुरञ्जित हो जानेपर पृथ्वीके अन्यान्य देशोंमें यही भावधारा बहने लगेगी; जगत्की प्रत्येक जाति, प्रत्येक समाज और प्रत्येक सम्प्रदाय इसी आदर्शके द्वारा अनुप्राणित हो जायगा; विश्वमानवकी जीवनधारामें एक सुमहान् एकता और कल्याणमयी शान्ति आ विराजेगी—इसी आदर्शको लेकर भारतीय जीवनके एक विकट सङ्कटके समय भारतके और विश्वके प्राणपुरुष मानव-विग्रह धारण करके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। विश्वमानवकी विविध विचित्रताओं-में एक महामिलन-सूत्रका आविष्कार करनेके लिये एक विशिष्ट मानवके रूपमें मानवात्मा भगवान्ने साधकका स्वाँग ग्रहण किया था। उनके विराट् प्राणकी सूक्ष्म अनुभूति, उनकी विशाल बुद्धिकी महान् कल्पनाशक्ति, उनकी अदम्य कर्मशक्ति और असाधारण तपःशक्ति मानवीय उपायोंद्वारा इस महामिलन-सूत्रका आविष्कार करनेमें लग गयी।

अखिलप्रेमामृतसिन्धु सर्वजीवप्राण श्रीभगवान्के प्रकट विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण स्वभावतः ही प्रेमघनमूर्ति थे। मानवमात्र—जीवमात्रके प्रति उनका निर्मल प्रेम था और पूर्ण सहानुभूति थी। उच्च-नीच, धनी-निर्धन, ज्ञानी-मूर्ख—सभीके प्रति उनकी प्रेमस्निग्ध समदृष्टि थी। युद्धमें उनकी कोई रति नहीं थी, किसीके साथ संघर्ष करनेमें उनको

उल्लास नहीं था । सर्वत्र—समस्त विषयोंमें वे प्रेमके पथसे, शान्तिके पथसे, अहिंसा और सत्यके पथसे, अपौरुषेय वेदवाणी और सुनिपुण विचारकी सहायतासे मनुष्यकी अन्तरात्माको जगाकर विश्वमानवके महामिलनका महान् आदर्श प्रचार करनेमें लगे थे। इस आदर्श प्रचारकार्यमें महाभारतके रचयिता वेदव्याख्याता पराशरनन्दन महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासको उन्होंने प्रधान आचार्यके रूपमें प्राप्त किया था। विश्वभारतके गुरुस्थानीय, अशेष शास्त्रार्थदर्शी महामनीषी व्यासदेवकी सहायता वासुदेव श्रीकृष्णके लक्ष्यसाधनमें विशेष उपयोगी सिद्ध हुई थी। आचार्य व्यासदेवने अपने शिष्य-प्रशिष्योंके सहयोगसे भगवान् वासुदेवके आदर्श और भाव-धाराका, जीवन और वाणीका विभिन्न भाषाओंमें, विभिन्न छन्दोंमें, नाना युक्तितर्कोंके द्वारा, प्रामाणिक शास्त्रोंके व्याख्याकौशलके द्वारा आर्य और आर्येतर समाजमें सर्वत्र प्रचार किया था। श्रीकृष्णके द्वारा उपदेश किये हुए सुमहान् आदर्शको केन्द्र बनाकर श्रीकृष्ण और तद्भावभावित कर्मी, ज्ञानी और भक्तोंके जीवनको आधार बनाकर, तदनुकूल शास्त्र, युक्ति और इतिहासका आश्रय लेकर आचार्यप्रवर व्यासदेवने बड़ी ही निपुणताके साथ पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, नैतिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकारकी समस्याओंके सामञ्जस्यपूर्ण समाधानका मार्ग दिखलाया है। इस उद्देश्यसे उन्होंने जिन ग्रन्थोंका निर्माण किया, उनमें महाभारत सर्वश्रेष्ठ है। 'जो, नहिं भारतमें सो नहिं भारतमें' अर्थात् भारतीय साधनाके क्षेत्रमें ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है, ऐसा कोई भी मत और मार्ग नहीं है, ऐसी कोई भी समस्या और समाधान नहीं है, जिसकी महाभारत ग्रन्थमें पूर्ण निपुणताके साथ व्याख्या और आलोचना न हुई हो—इस कहावतमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है। वस्तुतः एकमात्र महाभारत ग्रन्थका अच्छी तरह अध्ययन कर लिया जाय तो भारतीय साधनाके समस्त विभागोंका, महाभारत और महामानवके प्राणोंका, वासुदेव श्रीकृष्णके जीवनादर्श और विश्वमानवके महामिलन-सूत्रका पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। पुराणोंमें व्यासदेव और उनके शिष्य-प्रशिष्योंने महाभारतका ही विचित्र व्याख्यान और विस्तार किया है। महाभारतके प्राणस्थानीय श्रीकृष्णोपदिष्ट श्रीमद्भगवद्गीताके प्रकाशसे ही व्यासदेवने उपनिषदों—अपौरुषेय श्रुतिवाक्योंकी व्याख्या और उनका समन्वय करके ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-विज्ञानकी रचना की है। इन सबके अंदर ही उन्होंने श्रीकृष्णके जीवन, कर्मादर्श, भावादर्श और दार्शनिक सिद्धान्तको चिरस्थायी रूप प्रदान किया है। श्रीकृष्णके द्वारा प्रचारित आदर्शको ही व्यासदेवने सनातन आर्यसाधनाका यथार्थ तात्पर्य बतलाकर प्राचीन शास्त्रोंकी व्याख्या और नये शास्त्रोंका निर्माण किया है। पाराशर कृष्णका इस प्रकार सर्वाङ्गीण समर्थन सर्वजनमान्य अपौरुषेय वेदके समर्थनरूपसे वासुदेव श्रीकृष्णके जीवनव्रतको सार्थक करनेमें विशेष सहायक हुआ था।

आदर्शका प्रचार, सुशिक्षाकी व्यवस्था, जाति और समाजके श्रेष्ठतम मनीषियोंका समर्थन, पुरानेको स्वाभाविक नियमोंके द्वारा नयी धारामें प्रवाहित करनेका कौशल—नवीन आदर्शको देशभरमें सुप्रतिष्ठित करनेके प्रधान उपाय यही हैं। इस प्रकारकी गठनमूलक पद्धतिसे जीवनीशक्तिके सम्यक् विकासमें बाधा देनेवाले सारे कुसंस्कार मिट जाते हैं, प्रतिकूल शक्तियाँ रास्ता छोड़कर अलग खड़ी हो जाती हैं, जाति और समाज मानो कुछ-कुछ अनजानमें ही सभ्यता और संस्कृतिके उच्चतर सोपानपर चढ़ जाते हैं। श्रीकृष्णने अपने विराट् महान् समुदार सार्वभौम आदर्शकी स्थापनाके लिये प्रधानतः इसी प्रकारकी गठनमूलक पद्धतिको अपनाया था। विश्वमानव और विश्वप्रकृतिकी परम ऐक्यभूमि सच्चित्प्रेमानन्दघन भगवान्‌को मानवजीवनका केन्द्र बनाकर, मानवजीवनको भागवतजीवनमें बदल देनेके चरम आदर्शको वास्तविक रूपसे सबके अंदर जगाकर, मनुष्यमात्रके पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, आर्थिक जीवनको—जीवनके सभी विभागोंको भगवत्-केन्द्रिक और भगवत्-सेवामय बनाकर, मानवीय जीवन-साधनाकी सारी धाराओंको एक ही पारमार्थिक लक्ष्यकी ओर बहाकर, मनुष्यके प्रति मनुष्यके सब तरहके हिंसा, घृणा, भय, द्वेष और वैर-भावके सम्बन्धको एक सुन्दर भ्रातृभावके सम्बन्धमें विलीनकर विश्वके प्रत्येक मानवके प्राण-प्राणमें एकता उत्पन्न कर देना, प्राणीमात्रको एक अच्छेद्य प्रेमके सूत्रमें ग्रथित कर देना, सम्पूर्ण जगत्‌में एक सत्य-प्रेम-पवित्रताके राज्यकी प्रतिष्ठा करना—यही था श्रीकृष्णके अपने जीवनसाधनका लक्ष्य; और सहज-से-सहज तथा सुन्दर-से-सुन्दर उपायोंद्वारा इस लक्ष्यको सिद्ध करना, इसी ओर थी उनकी दृष्टि। भारतमें सम्यक् ऐक्यकी स्थापनाके द्वारा विश्वमें ऐक्य-प्रतिष्ठाका पथ प्रस्तुत करना ही उनका आन्तरिक अभिप्राय था। इसके लिये उन्होंने नाना प्रकारके संगठनमूलक उपायोंका ही अवलम्बन किया था, शान्तिके मार्गका ही अनुसन्धान किया था, यथासम्भव प्रेम-मैत्री, सुपरामर्श, सुशिक्षा, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय सौहार्द-स्थापनकी ही चेष्टा उन्होंने सर्वत्र की थी। व्यासदेवने महाभारतमें इन सबका वर्णन किया है। श्रीकृष्णकी मानवीय साधनाओंको केन्द्र बनाकर ही महाभारतकी रचना की गयी है।

परन्तु श्रीकृष्णकी यह सामनीति सर्वत्र सफल नहीं हो सकी। (यह भी उन्हींकी लीला थी।) अहिंसा, प्रेम और

शान्तिके मार्गसे समग्र भारतमें ऐक्यकी प्रतिष्ठा और एक अखण्ड धर्मराज्यकी स्थापनामें प्रबल विघ्न था भारतकी सामरिक शक्ति और असुरबलगर्वित राज्य-सुख-भोगके प्यासे राजाओंकी क्षुद्र स्वार्थबुद्धि। देशके टुकड़े-टुकड़े करके जो लोग विभिन्न प्रदेशोंकी राष्ट्रशक्तिपर अधिकार जमाये बैठे थे, उनमेंसे बहुत-से ऐसे थे, जो सम्पूर्ण देशके नैतिक, आध्यात्मिक और आर्थिक कल्याणकी अपेक्षा अपनी प्रभुत्वरक्षा और ऐश्वर्यवृद्धिके लिये ही अत्यधिक उत्सुक थे। भारतीय महाजातिके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें प्रेमपूर्ण ऐक्य-स्थापनके लिये चेष्टा न करके वे अपनी सामरिक और आर्थिक शक्तिको केवल अपनी प्रधानताकी प्रतिष्ठामें ही लगाते थे। समरकुशल एक महान् सेनाका सङ्गठन करके दिग्विजयके लिये निकलना और दूसरोंके धनको लूटना उन पराक्रमी वीरोंका आदर्श था और इसीके द्वारा उनके नाम, यश और मर्यादाकी भी वृद्धि होती थी। अपने ऐश्वर्य और प्रभुत्वके विस्तारके लिये वे न्याय और धर्मका त्याग करनेमें गौरव समझते थे। इन राज्यलोलुप अर्थलोभी असुरभावापन्न राजाओंका आश्रय पाकर ही जगत्में अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी ग्लानि हुआ करती है।

श्रीकृष्णके प्रेमधर्मकी वाणी, उनका ऐक्य और साम्यका आदर्श, उनकी अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाकी कल्पना, उनका आध्यात्मिक नींवपर राष्ट्र और समाजके प्रासाद-निर्माणका सङ्कल्प इन आसुरभावापन्न परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र-नियन्ताओंको अच्छा नहीं लगा। वे इसे आदरके साथ अपनानेको राजी नहीं हुए। श्रीकृष्णका आदर्श और समाजके समस्त स्तरोंमें उसका प्रचार उनकी स्वार्थदृष्टिमें नितान्त ही विप्लवात्मक था। उनकी धारणा हो गयी कि श्रीकृष्ण हमें हमारी शक्ति और कूटबुद्धिके द्वारा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्य, प्रभुत्व, मान-सम्मान और निग्रहानुग्रहके सामर्थ्य से वञ्चित करके एक विराट् आदर्शके बहाने सारे देशमें अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते हैं। इसलिये वे पहलेसे ही श्रीकृष्णके प्रभावको घटाकर, श्रीकृष्णके आदर्शको देशसे निकाल फेंकनेके लिये कमर कसकर तैयार हो गये। उनकी इन कुचेष्टाओंसे श्रीकृष्णका प्रभाव घटा नहीं, वरं अधिकाधिक बढ़ता गया; और ज्यों-ज्यों वह बढ़ता गया और दल-के-दल लोग उनके अनुगत होकर उनके आदर्शको अपनाने लगे, त्यों-ही-त्यों असुरस्वभाव राजाओंमें भी उनकी शत्रु-संख्या बढ़ने लगी। कुछ वेदवादरत, परन्तु वेदके मर्मसे अनभिज्ञ, स्वार्थलोलुप ब्राह्मण भी असुरस्वभाव राजाओंके पक्षमें होकर श्रीकृष्णके सार्वभौम धर्मके आदर्शको, सुमहान् ऐक्यके आदर्शको, सर्वजीवोंके प्रति प्रेमके आदर्शको और भगवत्-सेवामय जीवनके आदर्शको वेदविरुद्ध और सनातनधर्मसे विपरीत बतलाने लगे। देशमें जो लोग सताये हुए, गिराये हुए, पददलित किये हुए और मान-मर्यादाको खोये हुए थे, वे श्रीकृष्णको परित्राण कर्ता कहकर, पतितपावन मानकर उनकी पूजा करने लगे और जो सतानेवाले थे, ऊँचे पदोंपर स्थित—प्रभाव-प्रतिपत्तिवाले लोग थे, उनमेंसे बहुत-से श्रीकृष्णके द्वेषी होकर उनसे डरने और उनके विरुद्ध आचरण करने लगे।

मानव-समाजमें धर्म, प्रेम, शान्ति और एकताके झंडेको नित्य नूतन और ऊँचा बनाये रखनेके लिये ही क्षात्रशक्तिकी आवश्यकता है। क्षत्रिय राजाओंकी प्रधानता और संग्राम-शक्तिकी रक्षाके लिये ही धर्मके आदर्शको छोड़ देना, ऐक्य-स्थापनके सङ्कल्पको त्याग देना एवं प्रेम और साम्यके प्रचारसे अलग हो जाना तो महान् कापुरुषता है—मनुष्यत्वका अपमान है। वासुदेव श्रीकृष्ण प्रेमघनमूर्ति होनेपर भी इस कापुरुषता-को वरण करना पसंद नहीं करते थे। विरोधी प्रबल शक्तियोंके भयसे या उनके साथ सङ्घर्षकी आशङ्कासे वे आदर्शका त्याग करनेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने जब यह अनुभव किया कि उनके आदर्श-प्रतिष्ठाके पथमें बहुत-से काँटे देश और समाजके साधनक्षेत्रमें अपनी दृढ़ जड़ जमाये फैले हैं, जिनको जड़से उखाड़े बिना लक्ष्यकी सिद्धि नहीं होगी, धर्मराज्यकी स्थापना नहीं होगी, प्रेम और ऐक्यका सर्वत्र प्रचार नहीं किया जा सकेगा, तब उन्होंने सचमुच ही अपनी विप्लव-मूर्ति प्रकट कर दी और अवस्थाके अनुसार क्षात्रभाव तथा दण्डनीतिका अवलम्बन करके वे दुर्वृत्तोंके दमनमें प्रवृत्त हो गये।

मूर्तिमान् प्रेमको आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये योद्धाका स्वाँग धारण करना पड़ा। अहिंसा और सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये उन्हें हिंसा और असत्यके विरुद्ध प्रबल पराक्रमके साथ खड़ा होना पड़ा। न्याय और धर्मकी मर्यादा स्थापन करनेके लिये उनको अन्याय और अधर्मके नाशके हेतु तलवार चलानी पड़ी। दुर्बलों और निरीहोंको बलवानोंके पंजेसे छुड़ानेके लिये उन्हें प्रयोजनानुरूप क्षात्रबलका प्रयोग करना पड़ा। जाति और समाजमें जब अप्रेम और अधर्मका, हिंसा और कलहका, विभेद और विषमताका निर्बाध आधिपत्य फैल जाता है, तब प्रेम और धर्मके अवतारको, अहिंसा और शान्तिके मूर्त्त विग्रहको अभेद और साम्यके स्वरूपको भी कहाँतक कठोरताका अवलम्बन करना पड़ता है—प्रेमघनमूर्त्ति सच्चिदानन्दविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका क्षात्रभावान्वित कर्ममय जीवन इसके लिये एक परम उत्कृष्ट दृष्टान्त है। महाभारत, हरिवंश और पुराणादिमें श्रीकृष्णके जीवनसे इस सम्बन्धकी अनेकों घटनाओंका वर्णन किया गया है। श्रीकृष्णकी सब

जीवोंके प्रति प्रीति, करुणा, सहानुभूति और समदृष्टि थी। उनका महान् ऐक्यका आदर्श था और अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाका अटूट संकल्प था। इसीलिये उनको बहुत-से प्रबल पराक्रान्त असुर-दैत्य-दानवोंके साथ युद्ध करना पड़ा, अनेकों स्वार्थोद्धत मदोन्मत्त सम्राट् उनके शत्रु बने और अनेकों धनी-मानी पण्डितोंके लिये उन्हें भयका स्थान बनना पड़ा। भारतीय सभ्यताको महामानवताकी सुदृढ़ भूमिपर सुप्रतिष्ठित करनेके मार्गमें वे किसी भी विप्लवका सामना करनेके लिये बिना सङ्कोचके तैयार थे। उन्होंने स्वार्थसे अंधी और घमंडसे चूर सब प्रकारकी विद्रोही शक्तियोंको ध्वंस करनेका निश्चय कर लिया था; आवश्यकता होनेपर सब तरहके मित्र-द्रोह, जातिद्रोह, लोकक्षय और करुणक्रन्दनके अंदरसे होकर भी जाति और समाजको आदर्शकी ओर ले जानेमें उनका हृदय नहीं काँपता था; उनके प्रेमार्द्र चित्तमें शोक, ताप, भय, चिन्ता और खेद कभी उत्पन्न ही नहीं होते थे। महा-मानवताके नित्य सत्य विराट् आदर्शकी सुस्थापनाके लिये अपने प्रिय-से-प्रिय असंख्य मनुष्योंके अनित्य क्षणभङ्गुर शरीरोंकी बलि देनेमें भी उनका विशाल हृदय जरा भी संकुचित नहीं होता था। आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये आवश्यक होनेपर वे 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' रूपमें अपनेको प्रकट करते थे।

बहुत-से भागोंमें बँटे हुए भारतको एक महाभारतके रूपमें परिणत करनेके लिये, आर्य और अनार्य, ब्राह्मण और म्लेच्छ, प्रबल और दुर्बल, ज्ञानी और अज्ञानी—सभीके हृदयोंमें एक अद्वितीय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वगुणसम्पन्न निखिलरसामृतसिन्धु अनन्तप्रेमाधार सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी भगवान्‌को प्रतिष्ठित करनेके लिये, सभी लोगोंके साधनजीवन और व्यावहारिक कर्मजीवनको एक विश्वजनीन विश्वमानवताके आदर्शके द्वारा अनुप्राणित करनेके लिये, एक भक्तिमूलक भागवत-योगधर्मके द्वारा सभी श्रेणियोंके, सभी सम्प्रदायोंके और सभी स्तरोंके नर-नारियोंके सब प्रकारके धर्ममत और साधनप्रणालियोंका समन्वय करनेके लिये महामानव श्री-कृष्णने अपनी अनन्य-साधारण संगठन-शक्ति और अनन्य-साधारण क्षात्रवीर्यका समभावसे प्रयोग किया। उनके संगठन-कार्यमें पाराशर-कृष्ण व्यासदेवने जैसे अपनी असामान्य ज्ञानशक्तिके द्वारा सहायता की, वैसे ही उनके मार्गके काँटोंको उखाड़ फेंकनेके कार्यमें उनके एकान्त अनुगत महावीर पाण्डवोंने—विशेषतः पाण्डव-कृष्ण अर्जुनने—उनका बड़ा हाथ बँटाया। भारतके इतिहासमें ययातिपुत्र त्यागवीर पूरु और उनके वंशधरोंका एक प्रधान स्थान था। पूरुकी पितृभक्ति और आत्मबलिदानपर इस वंशकी मर्यादा प्रतिष्ठित थी। भारतमें आर्यसभ्यताके विस्तारकार्यमें अपने तेज, वीर्य और धर्मज्ञानका परिचय देकर उन्होंने क्षात्रसमाजके केन्द्र-स्थानपर अधिकार प्राप्त कर लिया था। असाधारण महा-पुरुषोंने इस वंशमें जन्म ले-लेकर आर्य-संस्कृतिकी उन्नति और अनार्य शक्तिका दमन करके भारतके प्राचीन इतिहासको अलङ्कृत किया था। इस इतिहासप्रसिद्ध पूरुवंशके उपर्युक्त वंशज पाण्डवोंने श्रीकृष्णका आनुगत्य स्वीकार करके और श्रीकृष्णके आदर्शकी स्थापनाके लिये अपनी सारी शक्ति लगाकर श्रीकृष्णके मार्गको बहुत कुछ सुगम और निष्कण्टक बना दिया था। व्यासके ज्ञान और अर्जुनकी शूरताने श्रीकृष्णके मस्तिष्क और भुजाका कार्य किया था।

प्रथितकीर्ति पूरुवंशकी एक शाखाके नेता थे प्रबल पराक्रमी आत्म-गर्वित और दुरभिसन्धिसे प्रेरित दुर्योधन। इन दुर्योधनको केन्द्र बनाकर जब श्रीकृष्णके आदर्शस्थापनके विरोधी पक्षने अपना संगठन आरम्भ किया, तब इसी वंशकी दूसरी शाखाके धर्मवीर पाण्डवोंकी प्रभाववृद्धि और अधिकार-प्रतिष्ठा श्रीकृष्णके आदर्श-प्रचारके लिये अत्यन्त आवश्यक हो गयी। धर्मके लिये, मानवोचित जीवनादर्शके लिये, जाति और समाजके ऐक्य, शान्ति और सर्वाङ्गीण कल्याणके लिये सब प्रकारका क्लेश-सहन और त्याग करनेको पाण्डव सदा ही प्रस्तुत थे। उन्होंने श्रीकृष्णको अपने जीवनके सभी विभागोंमें नेतारूपसे वरण कर लिया था और वे श्रीकृष्णके जीवनव्रतको सफल बनानेके लिये अपने जीवनतकका उत्सर्ग करनेको उत्सुक थे। महाभारतके संगठनके लिये सूक्ष्मदर्शी श्रीकृष्णने केन्द्रीय राष्ट्रशक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा परिचालित न्यायदण्डधारी अमितपराक्रमी पाण्डवोंके हाथोंमें सौंपना आवश्यक समझा था।

न्याय और धर्मकी दृष्टिसे पाण्डव ही कौरव-राज्यके उत्तराधिकारी थे और अपने चरित्रमाधुर्य तथा क्षात्रोचित गुणगरिमासे भी उन्होंने सबके हृदयोंपर अधिकार कर लिया था। इतनेपर भी लड़कपनसे ही उनका दण्ड, यातना और क्लेशकी गोदमें ही लालन-पालन हुआ था। दुर्योधन और उनके कूटबुद्धि बन्धु-बान्धवोंके षड्यन्त्रके कारण वे शैशवसे ही नाना प्रकारके अत्याचारोंसे पीडित और दुःख-कष्टसे जर्जरित थे। जीवनके प्रत्येक विभागमें धर्म, प्रेम, क्षमा और सहिष्णुताके आदर्शको अक्षुण्ण बनाये रखना उनका व्रत था; इसीसे उन्होंने प्रतीकारकी शक्ति रखते हुए भी सब तरहके अत्याचार-अविचार और निर्यातनको प्रसन्न चित्तसे सहन किया था। इस प्रकारकी तपस्याके द्वारा ही उन्होंने लोकसमाजमें श्रीकृष्णके महान् आदर्शकी पताका फहरानेकी योग्यता प्राप्त की थी। स्वयं भाँति-भाँतिके निग्रह, निर्यातन और लाञ्छना

सहकर जाति और समाजके सभी निगृहीत, पीडित, लाञ्छित और पददलित जनसाधारणके प्रतिनिधिरूपमें उन्होंने न्याय और धर्मकी प्रतिष्ठा और सब लोगोंके कल्याणके लिये संग्राम करके प्रतिकूल शक्तियोंके विनाशका नैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया था। भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें जो राजा और क्षत्रियवीर पाण्डवोंके गुणोंपर मुग्ध थे, न्याय और धर्मके पक्षपाती थे और श्रीकृष्णके महान् आदर्शके प्रेमी थे, वे प्रेम और सहानुभूतिके साथ अपनी सारी शक्तिको लेकर उनके साथ आ मिले।

भारतकी राष्ट्रशक्तियाँ कार्यतः दो भागोंमें विभक्त हो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी बनकर सुसज्जित हो गयीं। एक भाग था न्यायके पक्षमें और दूसरा था बुनियादी स्वार्थका पक्षपाती; एक भाग सताये हुए नर-नारियोंका पक्ष करता था, तो दूसरा सतानेवालोंके पक्षमें था; एक ऐक्य और मिलनका पक्षपाती था, तो दूसरा भेद और विरोधका; और एक भाग श्रीकृष्णके महाराष्ट्र, महासमाज, महाधर्म और महाभारत-संगठनका पक्ष करता था तो दूसरा उस नवीन आदर्शके पक्षमें बाधा खड़ी करनेके पक्षमें था। श्रीकृष्णने अपने वंशजोंमें वीर्य-शौर्य जगाकर और उन्हें वीरोचित शिक्षा-दीक्षा देकर दुर्धर्ष क्षात्रशक्तिका सृजन किया। देशके लब्धप्रतिष्ठ क्षत्रिय राजालोग जिनको जरा भी नहीं मानते थे, जिनको किसी प्रकारका उच्चाधिकार और उन्नत शिक्षा-दीक्षा नहीं देते थे, उन्हीं सब अनादृत—अवज्ञात लोगोंको अपने झंडेके नीचे इकट्ठा करके, उन्हें समुन्नत धर्मज्ञान और वीरोचित शिक्षा-दीक्षा प्रदानकर श्रीकृष्णने एक विराट् नारायणी सेनाका संगठन किया। इन सब शक्तियोंका उचितरूपसे संचालन करके महानायक श्रीकृष्ण अपने महाभारत-संगठनकी विरोधी शक्तियोंको प्रयोजनानुसार कठोरताके साथ कुचल डालनेको तैयार हो गये। अर्जुन और भीमकी सामरिक शक्तिसे सहायता लेकर भी उन्होंने कई काँटे उखाड़े। यह शत्रुदमन-कार्य—परिकल्पित धर्मराज्यकी स्थापनाके विघ्नोंके नाशका कार्य—वे ऐसे कौशलके साथ करते कि जिसमें निरीह प्रजाकी स्वच्छ जीवनधारामें जरा भी क्षोभ और अशान्तिका उदय नहीं होता।

आसुरी शक्तिके उत्पीड़नसे मानवात्माको छुटकारा दिलानेके लिये, आसुरी मनोवृत्तिके प्रभावसे मनुष्यकी चिन्ताधारा और कर्मधाराको मुक्त करके उसे धर्मप्रेम और मोक्षके मार्गपर बहानेके लिये, भारतीय सभ्यताको आसुरी आदर्शके आधिपत्यसे छुड़ाकर विश्वमानवताका आदर्श प्रतिष्ठित करनेके लिये भारतके प्राणपुरुष प्रेमधनविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका आदर्शप्रचार और कण्टकोद्धार तथा संगठनलीला और ध्वंसलीला—दोनों एक ही साथ चलने लगे। साधुओंके परित्राण और प्रभाववृद्धि तथा दुष्टोंके पराभव और प्रभावनाशके लिये वे अपनी प्रेमशक्ति और संग्रामशक्ति दोनोंका ही समान व्यवहार करने लगे। ऐक्य और प्रेमकी वाणी, साम्य और सर्वजनीन स्वाधीनताकी वाणी, सत्य और अहिंसाकी वाणी, उदारता और विश्वमानवताकी वाणी असुरभावसे प्रभावित मानवसमाजमें सदा ही विप्लवकी वाणीके रूपमें प्रकट हुआ करती है। बुनियादी स्वार्थ, सुप्रतिष्ठित अन्यायमूलक प्रभुत्व, सङ्घबद्ध असत्य और हिंसा एवं मानप्राप्त दम्भ और परस्वापहरणके विरुद्ध विद्रोहकी घोषणा करके ही यथार्थ धर्मकी वाणी—विश्वमानवके महामिलनकी वाणी मानवजगत्‌में प्रकट हुआ करती है। अतएव श्रीकृष्ण भी महाविप्लवकी वाणी लेकर ही संसारके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीकृष्णकी वाणीका जितना ही प्रचार होने लगा, उनका संगठनकार्य जितना ही अग्रसर होने लगा, सङ्घर्षके कारण भी उतने ही बढ़ने लगे। आसुरी शक्तियाँ उनको और उनके आदर्शको मटियामेट करनेके लिये सङ्घबद्ध होने लगीं, विप्लवका दावानल अधिक-से-अधिक जल उठा। देहराज्यमें विप्लव हुए बिना प्राणोंकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं होती; असुर-राज्यमें विप्लवके बिना दैवादर्शकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं हो सकती; और काम, क्रोध, लोभके राज्यमें विप्लवके बिना भगवान् प्रकट नहीं होते। भारतके और विश्वमानवके प्राणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण इस देशव्यापी विप्लवके लिये प्रस्तुत थे। धर्मकी ग्लानि और अधर्मका प्रादुर्भाव कितना अधिक हो चुका था, इस विप्लवकी व्यापकता और बीभत्सता ही उसका निदर्शन है।

साम, दान, भेद और दण्ड—सभी नीतियोंको अपनाकर व्यासार्जुनकी सहायतासे श्रीकृष्णने अनेकों विरोधी शक्तियोंका दमन किया था, बहुत-से शत्रुओंको मित्र बना लिया था, अनेकों प्रतिकूलाचारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और अनार्य वीरोंको अपने आदर्शका प्रेमी बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। अनेकों परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राजशक्तियोंको विवाहसूत्रमें बाँधकर सामाजिक मैत्रीकी स्थापना की थी। उन्होंने स्वयं भी आर्य, अनार्य, मित्र और शत्रु अनेक वंशोंमें विवाह करके सबमें प्रेमकी प्रतिष्ठा की थी। परंतु इससे उनके संग्रामकी आवश्यकता दूर नहीं हुई। वे ध्वंसलीलाको अपनी कर्मपद्धतिसे अलग नहीं कर पाये।

अन्तमें देशव्यापी विप्लव घनीभूत होकर महाभारतीय महासमरके रूपमें प्रकट हुआ। धार्तराष्ट्र और पाण्डवोंके साम्राज्याधिकारका विवाद तो एक निमित्तमात्र था। श्रीकृष्णके महान् आदर्शकी विरोधी शक्तियाँ, बुनियादी स्वार्थकी पक्षपातिनी राष्ट्रशक्तियाँ दुर्योधनको केन्द्र बनाकर आत्मरक्षाके

लिये इकट्ठी हो गयीं। इधर श्रीकृष्णके आदर्शकी अनुरागिणी शक्तियाँ श्रीकृष्णके द्वारा संचालित पाण्डवोंके पक्षमें सम्मिलित हो गयीं। इस महासमरको अनिवार्य जानकर भी श्रीकृष्णने इसके निवारणके लिये लौकिक साम-उपायसे यथासाध्य चेष्टा की। श्रीकृष्णकी सलाहसे युद्धको बचानेके लिये धर्मराज युधिष्ठिरने दुर्योधनसे पाँचों भाइयोंके लिये केवल पाँच गाँव लेकर ही संतुष्ट होना स्वीकार किया। स्वयं श्रीकृष्ण दूत बनकर शान्तिस्थापनका प्रयत्न करने पधारे। बाल्यावस्थासे लेकर अबतक दुर्योधन और उनके पक्षवालोंने पाण्डवोंपर जो अत्याचार किये थे, उन सभीको क्षमा करनेके लिये तैयार होकर श्रीकृष्णाश्रित पाण्डवोंने महा-मानवताका आदर्श उपस्थित किया। भीमको विष देकर मार डालनेकी चेष्टा, कुन्तीसमेत पाँचों पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला डालनेके षड्यन्त्र, कपट-जूएमें धन-मान-राज्यसुखका अपहरण--यहाँतक कि राजदरबारमें असंख्य राजाओंके सामने राज-कुल-वधू एक-वस्त्रा वीराङ्गना द्रौपदीके केश खींचकर उसे नग्न करनेकी पापपूर्ण चेष्टा--इन सभी अत्याचारोंको देशमें एकता, शान्ति और प्रेमकी प्रतिष्ठाके लिये श्रीकृष्णानुगामी महावीर पाण्डव भुला देनेको राजी हो गये।

परंतु संधिस्थापनके सभी प्रयास व्यर्थ हुए। देशकी नैतिक, राष्ट्रिक और सामाजिक परिस्थिति जब महासमरके उपयुक्त हो उठती है, तब उसे कोई भी निवारण नहीं कर सकता। जबतक यह स्वार्थपरायण दाम्भिक आसुरभावापन्न क्षात्रशक्ति ध्वंस नहीं हो जाती तबतक एकता, शान्ति और प्रेमका आदर्श भगवद्भक्तिपूत विश्वमानवताका आदर्श मानवसमाजमें सुप्रतिष्ठित नहीं हो सकता--मानवात्माकी मुक्ति नहीं हो सकती। कालप्रभाव और भगवान्‌के विधानसे जब आसुरी प्रभावसे मानवात्माकी मुक्तिका समय आता है, तब आसुरी शक्तिका नाश करनेके लिये महासमर अनिवार्य-रूपसे सम्पन्न होता है। लीलामय श्रीकृष्णने इसी नियमको मानकर मानो युद्धके लिये सम्मति प्रदान की थी। इस महा-समरमें परस्पर प्रतिद्वन्द्वी किसी पक्षविशेषका जय-पराजय उनका लक्ष्य नहीं था। एक असुरसङ्घको पराजित और निगृहीत करके दूसरा एक असुरसङ्घ मर्यादा और प्रभुत्वके आसनपर आरूढ़ हो—यह उनकी इच्छा नहीं थी। वे चाहते हैं मानवात्माकी नैतिक और आध्यात्मिक मुक्ति; वे चाहते हैं मानव-समाजमें अधर्मका पराभव और धर्मका अभ्युदय; वे चाहते हैं मानवजातिमें सप्रेम ऐक्यप्रतिष्ठा—साम्य, मैत्री, पवित्रता और आनन्दकी प्रतिष्ठा; और वे चाहते हैं विश्व-जगत्‌में सत्य-शिव-सुन्दरकी सुस्थापना। मानव-प्राणकी यही चाह है। इस आदर्शकी विजय ही उनको अभिप्रेत है। इस आदर्शकी विजय ही मानव-प्राणोंमें स्वाराज्यकी प्रतिष्ठा—भारतप्राणोंमें आत्मप्रतिष्ठा होगी। इस सुमहान् सुमङ्गल आदर्शके विजय-ध्वजको गहरा गाड़नेके लिये ही श्रीकृष्ण विप्लव-तरङ्गमें कूदे थे और भारतकी क्षात्रशक्तिका ध्वंस करनेवाले महासमरका समर्थन करके उन्होंने उसमें योग-दान किया था।

दो दलोंमें बँटी हुई भारतीय राष्ट्रशक्तियाँ एक दूसरेका ध्वंस करनेके लिये सब प्रकारके मारणास्त्रोंसे सुसज्जित होकर तैयार हो गयीं। देशकी शान्तिप्रिय निरीह जनता महासमरकी विभीषिका और अशान्तिकी ज्वालासे बची रहे और आसुर-भावापन्न राजालोग परस्पर अपना ध्वंस कर सकें, इसके लिये युद्धको एक स्थानविशेषमें मर्यादित करके सीमाबद्ध कर दिया गया। कुरुक्षेत्रकी विशाल भूमिमें वे एक दूसरेका मुकाबला करनेके लिये आ डटे। यथासम्भव कम-से-कम समयमें ही महासमरको समाप्त कर देनेकी श्रीकृष्णने बड़े कौशलसे व्यवस्था की। उन्होंने स्वयं इस महासमरके महानायक होनेपर भी किसी पक्षमें अस्त्र धारण न करके अपनी निरपेक्षता प्रकट की; परंतु अर्जुनके सारथि बनकर उनके पक्षमें अपने नैतिक समर्थनकी घोषणा कर दी। दूसरी ओर, अर्जुनके विपक्षमें दुर्योधनको अपनी नारायणी सेना प्रदान करके वस्तुतः अर्जुनके अस्त्रोंसे अपनी सामरिक शक्तिका नाश करनेकी भी व्यवस्था कर दी।

अठारह दिनोंके युद्धमें भारतकी आत्मविस्मृत आसुर-भावापन्न क्षात्रशक्ति प्रायः निर्मूल हो गयी। बचे श्रीकृष्णके विशेष अनुग्रहपात्र, उनकी पताकाका वहन करनेवाले पाँच पाण्डव। और बचे—स्त्री, बालक तथा वृद्ध, जो युद्धमें सम्मिलित ही नहीं हुए थे। प्रायः निःक्षत्रिय भारतवर्षमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको राजचक्रवर्ती-पदपर प्रतिष्ठित किया। क्षात्रशक्तिके या आसुरी शक्तिके श्मशानपर श्रीकृष्णके आदर्शकी प्रतिष्ठा हुई। अखण्ड महाभारतकी नींव पड़ी और नवयुगकी सूचना हुई। व्यासके शिष्यगण महाभारतके नैतिक और आध्यात्मिक सङ्गठनमें लगे रहे। महाभारतके महानायककी यह अनोखी लीला है!

महाभारतपर स्वर्गीय विद्वान् श्रीचिन्तामणि राव वैद्यके कुछ विचार

महाभारत एक महाकाव्य

'वस्तुतः 'महाभारत' शब्दसे ही मनमें विशाल तथा अत्यन्त वैविध्यसे युक्त किसी वस्तुकी भावना आ उपस्थित होती है; परंतु काव्यत्वके दृष्टिकोणसे महाभारतमें विषयोंकी विशालता और विविधताका भान बहुत कम लोगोंको होता है। काव्यरचनाके अनुकूल प्रसङ्ग महाभारतमें इतने क्रमबद्ध तथा वैविध्यसे भरपूर हैं कि अर्वाचीन संस्कृत कवियोंने जिस किसी रसमय प्रसङ्गका वर्णन किया है, उन सबका बीज महाभारतमें मिले बिना नहीं रह सकता। सूतजी स्वयं अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें अभिमानपूर्वक कहते हैं—'एक विशाल वटवृक्षके समान महाभारत सभी अर्वाचीन कवियोंके लिये आश्रय-स्थान है। इस अमरस्रोतसे अनेक कवियोंने सुधा-रसका पान किया है तथा नयी चेतना प्राप्त की है।'

'महाभारतके पृथक्-पृथक् तथा विविधतासे भरे प्रसङ्ग एक ही वार्ताके रूपमें इस प्रकार सुन्दरतासे ग्रथित हुए हैं कि इससे अधिक भव्य और सुयोजित कथानककी कल्पना करना शक्य नहीं है। अनेकों बार मेरे मनमें ऐसा आया है कि महाभारतकी कथा यदि ऐतिहासिक नहीं भी है तो भी इसकी रूप-रेखा जिस कथासे उत्पन्न हुई है उसकी कल्पना शेक्सपियरकी कल्पनाकी अपेक्षा भी अधिक समृद्ध होनी चाहिये। पात्रोंकी विविधता और स्वाभाविकता जितनी शेक्सपियरके नाटकोंमें देखनेमें आती है, उतनी ही महाभारतमें भी दीख पड़ती है; परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि महाभारतमें एक ही कथानकके भीतर इतने अधिक पात्रोंका एकत्र समावेश हो जाता है! शेक्सपियरने अनेकों नाटकोंकी रचना करके जो दिखलाया है, उसे व्यासजीने एक विशाल कथानकके द्वारा प्रदर्शित कर दिया है। कथानकके अङ्ग विशाल होनेपर भी गजराजके अवयवके समान उनकी योजना एक सुबद्ध और सुन्दर शरीरमें हो जाती है।'

'यह तो जानी हुई बात है कि महाभारतके कुछ प्रसङ्गोंके आधारपर परवर्ती संस्कृत कवियोंने महाकाव्यों तथा नाटकोंके लिये अनुकूल विषयोंका चयन किया है। यह भी जानी बात है कि वर्तमान कथाकार इस विशाल ग्रन्थमेंसे कुछ फुटकर प्रसङ्गोंको लेकर उनके द्वारा घंटों-घंटों चलनेवाली कहानियोंकी रचना करते हैं। पर यह जानी बात नहीं है कि महाभारतकी कथा बड़ी और सुगठित है, इतना ही नहीं, बल्कि इसका अभी विशेष विस्तार होनेके लिये अवकाश बना हुआ है। वस्तुतः मुख्य विषय महाभारतके युद्धको कविने अपने मनश्चक्षुके सामने सदा रक्खा है और विस्तार करनेके लालचके अभिवश होकर भी वे कहीं बहुत दूर नहीं भटके हैं।'

'पैरेडाइज लास्ट' और 'महाभारत'—इन दोनोंकी तुलना नहीं की जा सकती; परंतु होमरके 'इलियड'के विषय तथा महाभारतके विषयकी तुलना भलीभाँति की जा सकती है। 'इलियड' जिस प्रकार ग्रीसकी जनताका महाकाव्य था, उसी प्रकार महाभारत भारतीय जनताका महाकाव्य था और अबतक है। भारतीय प्रजासे सम्बन्ध रखनेवाली वंशावली, दन्तकथाएँ तथा प्राचीन तत्त्वज्ञानका महान् संग्रह इस ग्रन्थमें प्राप्त होता है।'

पुरुष-पात्र

'जिस पात्रके उच्च पराक्रम और प्रौढ़ विचार महाभारतमें अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंगसे वर्णित हैं, उस पात्रकी योग्य प्रशंसा करनेके लिये शब्द हमको ढूँढ़े नहीं मिलते। श्रीकृष्णके अतिरिक्त युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कर्ण, द्रौपदी, द्रोण और भीष्मपितामह—ये सभी पात्र महत्ता और नीतिमत्ताके आदर्शके रूपमें परिगणित हुए हैं, और सदा होते रहेंगे। कर्तव्य-पालनार्थ जिन कृत्योंमें आत्म-बलिदानकी आवश्यकता होती है, उनके लिये प्रेरणा-शक्ति इन पात्रोंके द्वारा भारतकी आर्य-प्रजाको सदासे मिलती रही है। दुर्योधन-जैसे पात्रमें भी कुछ और ही प्रताप और सौन्दर्य देखनेमें आता है। उनका अडिग निश्चय, मृत्यु और राज्य-मुकुट—इन दोनोंके मध्यके किसी भी अधकचरे मार्गको न स्वीकार करनेकी उनकी उच्चाभिलाषा—इनका निरूपण कविने अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक ढंगसे किया है। और इसके भीतरसे नये-नये उपदेश अपने-आप निकल आते हैं। पात्रोंके चरित्र-चित्रणके कार्यमें होमर और मिल्टनकी अपेक्षा भी महाभारतके कविकी विशिष्टता स्पष्ट दीख पड़ती है।

स्त्री-पात्र

महाभारतके स्त्री-पात्र भी इलियडके स्त्री-पात्रोंकी अपेक्षा बढ़े-चढ़े दीखते हैं। हेलेन और एण्ड्रोमश भी द्रौपदीकी तुलनामें नहीं आ सकतीं। द्रौपदी-जैसे पात्रद्वारा महाभारतकारने स्त्री-स्वभावकी उच्चताका ऐसा प्रबल उदाहरण हमारे सामने रक्खा है कि इस प्रकारके पात्रकी योग्य प्रशंसा करनेके लिये हमें खोजनेसे भी शब्द नहीं मिलते। द्रौपदी एक साध्वी स्त्री है। आत्मगौरवका भान वह कभी नहीं खोती है। महान्-से-महान् विपत्ति आ पड़नेपर भी वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं होती। वह इतनी पवित्र और निर्दोष है कि जिसकी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता, तथापि उसमें मनुष्यत्व भी है। बहुधा बातचीतके दौरानमें स्त्री-जाति-सुलभ हठ तथा अन्य मनोभाव उसमें दीख पड़ते हैं। बहुधा जिस

बातपर वह अड़ जाती है, उसको स्वीकार करना उसके पतियोंको भी आवश्यक हो जाता है। तथापि वह हल्की नहीं बनती। हेक्टर जिस प्रकार अपनी स्त्रीको घरके धंधेके ही योग्य समझता है, उस प्रकार द्रौपदीको तुच्छ नहीं गिन सकते। वह एक क्षत्रियाणी है। क्षात्र-शौर्य और मनोबल उसके चेहरेपर झलकता रहता है। अरे ! जिस समय कीचक और जयद्रथ-जैसे मनुष्य उसको पकड़कर बलात्कार करनेका प्रयत्न करते हैं, उस समय एक क्षत्रियाणीके लिये शोभनीय जोशसे वह उनको ऐसा धक्का देती है कि वे जमीन पकड़ लेते हैं। अवसरदर्शिता भी उसमें ऐसी है कि वैसी अवसर-दर्शिता यदि पुरुषमें हो तो उसे अभिमान आये विना न रहे। उदाहरणार्थ, स्वयंवरमें धनुष चढ़ानेके लिये कर्ण खड़ा होता है, उस समय 'मैं सूतके साथ ब्याह करना नहीं चाहती'—यह कहते हुए उसको जरा भी देर नहीं लगती। और 'चौपड़ खेलते समय तू दावपर रक्खी गयी है'--यह जब उससे कहा जाता है तो वह ऐसा प्रश्न उठाती है कि जिससे दुर्योधनके दरबारी बड़ी उलझनमें पड़ जाते हैं। सबसे बढ़कर तो, स्वयंवरमें अर्जुनको प्राप्त होकर उस समय गरीब ब्राह्मणके वेषमें खड़े अर्जुनके साथ सुख-दुःखमें सहचारिणी होनेका इसका उदार सङ्कल्प और दीर्घकालतक वनवासमें पाण्डवोंके साथ रहनेकी पूर्ण इच्छा, इन सारे संयोगोंमें हिंदू रमणीके लिये शोभनीय धैर्य और संतोषवृत्ति रखकर एक समान भक्तिपूर्वक पतिके साथ रहनेकी प्रेरणा इसके हृदयमें निरन्तर प्रवाहित होती है।'

'कुन्ती महाभारतकी दूसरी प्रतापशालिनी स्त्रीपात्र हैं। पाण्डव अपनी स्त्रीको लेकर बारह वर्षके लिये वनवासमें जाते हैं, उस समय विदुरके घरमें रहती हुई कुन्ती माताने श्रीकृष्णके द्वारा अपने पुत्रोंको जो संदेश भेजा है वह सचमुच क्षत्रियाणीके ही अनुरूप है, तथा युद्धमें उनको प्रबल उत्साह प्रदान करनेवाला है। 'विजय प्राप्त करो या मृत्युको प्राप्त हो' इस प्रकारकी इच्छा वह अपने पुत्रोंके सामने प्रकट करती है। इस प्रकार वह अपने पुत्रोंको युद्धके लिये उकसाती है, परंतु वह अपने स्वार्थके लिये नहीं। पाण्डवोंको जब विजय प्राप्त होती है और वे राज्यारूढ़ होते हैं तब कुन्ती उनको छोड़कर धृतराष्ट्रके साथ वनमें चली जाती है और उस अंधे जेठकी सेवा करते-करते अन्तमें मृत्युको प्राप्त होती है। वह जब जाती है, उस समय भीम बहुत विनती करते हुए कहते हैं—'तुम हमारे साथ रहो और तुम्हारी शिक्षाके अनुसार चलनेसे हमको जो फल प्राप्त हुआ है, उसको तुम भी हमारे साथ रहकर भोगो।' परंतु वह सुन्दरतापूर्वक उत्तर देती है कि—'मैं अपने पतिके जीवनकालमें बहुत ही भोगैश्वर्य प्राप्त कर चुकी हूँ। अब मुझको भोगकी इच्छा नहीं है। मैंने तुमको युद्ध करनेकी शिक्षा दी, युद्धके लिये मैंने तुमको उकसाया, इसका कारण केवल यही था कि मैं नहीं चाहती थी कि तुम भीख माँगो।' अलग होनेके समयकी ऐसी अन्तिम शिक्षा स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है—

'धर्ममें तुम अपनी बुद्धि रक्खो। सदा उदारचेता बने रहो (धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च)।' सारे महाभारतका सार इस एक पङ्क्तिमें आ जाता है।'

'महाभारतके स्त्री-पात्र साधारण स्त्रियोंकी अपेक्षा बहुत चढ़े-बढ़े हैं; परंतु जो मनुष्यत्वका तत्त्व हमको अन्यत्र देखनेमें आता है वह इनमें भी है। जिस समय अर्जुन अपनी दूसरी स्त्री सुभद्राको इन्द्रप्रस्थमें लाता है, उस समय द्रौपदी एक प्रबल दृष्टान्तके द्वारा अपना ईर्ष्याभाव प्रकट करती है। वह कहती है कि, 'पहली गाँठ चाहे जितनी कड़ी और मजबूत हो; परंतु उसके पीछे जो दूसरी गाँठ आती है उससे वह ढीली पड़े बिना नहीं रहती।' युद्धके मैदानमें कर्णको देखनेके साथ ही कुन्तीको मूर्च्छा आ जाती है। कौरवोंके सामने आक्रमण करनेके लिये उत्तराका भाई जिस समय जाता है उस समय उत्तरा अर्जुनको उसके साथ रहनेके लिये कहती है, और 'मेरे गुड़ियोंके लिये अच्छे-अच्छे वस्त्र चुनकर लेते आना' यह विनती करती है, पर उत्तराके मनमें यह शङ्का भी नहीं आती कि कौरवोंकी बड़ी सेना मेरे भाईको पराजित कर देगी। स्त्रीजातिकी विशुद्धताके सूचक ऐसे-ऐसे प्रसङ्गोंका समावेश कविने अपने ग्रन्थमें किया है, जिसके कारण महाभारतके स्त्री-पात्रोंकी ओर हमारा विशेष प्रेम उत्पन्न होता है।'

देव-पात्र

पुरुष-पात्र और स्त्री-पात्रके अतिरिक्त देव-पात्र भी महाभारतमें आते हैं। ये पात्र सचमुच देवता ही हैं। इलियडके देवता पात्रोंके समान हास्य उत्पन्न नहीं करते। साधारणतः यह कहा जाता है कि, महाकाव्यकी गम्भीर और प्रौढ़ रचनामें हास्यरसके चित्रोंके लिये कुछ भी अवकाश नहीं रहता; तथापि इलियडमें यदि कुछ हास्यरस चित्रण हुआ है तो वह आलिम्पस पर्वतके ऊपरके देवताओंसे सम्बन्ध रखता है। स्वर्गके देवता भूमण्डलपर होनेवाली रचनाके लिये विवाद करते हैं। अति क्षुद्र हेतुसे प्रेरित होकर मनुष्यकी सहायता करनेमें अत्यन्त व्यस्त होकर बर्तते हैं। आश्चर्य तो यह है कि सबसे समर्थ देवता जुपिटर (बृहस्पति) भी कतिपय पक्षपातमें लिप्त अपनी स्त्री ज्यूनोंके हठसे अनेकों बार व्याकुल हो उठते हैं, और कभी-कभी तो अपनी स्त्रीको मार डालनेकी धमकी भी दे बैठते हैं। महाभारतके देवता अनेक दृष्टिसे ग्रीक लोगोंके देवताओंके समान हैं; परंतु कवि कभी उनको उनके उच्च स्थानसे पदभ्रष्ट नहीं करता।

कवितामें बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंगसे कवि इन पात्रोंका प्रवेश कराता है, और इस प्रकार काव्यके पात्रोंकी विविधता-में वृद्धि करता है। मानवीय विषयोंमें व्यासके देवता शायद ही कहीं बीचमें पड़ते हैं, यदि कहीं पड़ते भी हैं तो अपना व्यवहार देवताओं-जैसा ही रखते हैं, स्वार्थी मनुष्योंके-जैसा बर्ताव वे नहीं करते। इसका एक उदाहरण मैं दूँगा। युद्धमें कर्ण अजेय है—ऐसा अर्जुनको न लगे, इसके लिये कर्णके प्राकृतिक कवचको जो उसके जन्मके साथ ही उत्पन्न हुआ था, लेनेके लिये कर्णके पास इन्द्रके जानेका वर्णन आता है। कर्ण ऐसा दानी प्रसिद्ध था, जो ब्राह्मणोंको किसी भी वस्तुके लिये खाली नहीं जाने देता था। इसलिये ब्राह्मणका वेष धारण करके इन्द्र कर्णके पास जाता है और कहता है कि 'तुम अपना कवच मुझको दे दो।' दानी कर्ण इन्द्र-को पहचान लेता है, फिर भी उसको अपना कवच दे देता है। यहाँ 'इन्द्र उस कवचको लेकर अभिमानपूर्वक चलता बना'—ऐसा वर्णन महाभारतमें नहीं दिया है, परंतु देवता-को जैसा शोभता है, वैसे ही बर्तावकी रक्षा करते हुए इसको प्रदर्शित किया गया है। कर्णके ऊपर वह प्रसन्न होता है और देवताके रूपमें कर्णको वरदान माँगनेके लिये कहता है। कर्ण यह वरदान माँगता है कि 'एक मर्त्यके विरुद्ध छोड़ा जा सके, ऐसा एक अमोघ अस्त्र मुझको दो।' पश्चात्, यह अस्त्र शायद अर्जुनके विरुद्ध ही प्रयोग करनेमें न आ जाय, इसकी आशङ्का न करके इन्द्र एक अस्त्र उसको देता है। फिर, अर्जुन स्वर्गमें अथवा इन्द्रके दरबारमें जाता है, वहाँ उसको शिवके दर्शन होते हैं, और शिव उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं। यह विषय, जिसका विस्तार भारविने अपने 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्यमें किया है, महाभारतमें कुछ सुरम्य रेखाचित्रोंके द्वारा चित्रित हुआ है; और इसमें स्वर्गके पात्रोंका बर्ताव मनुष्यों-जैसा नहीं, बल्कि देवताओं-जैसा ही दिखलाया गया है।'

संवाद और भाषण

'व्यासजी अपने पात्रोंको कैसे प्रतिष्ठित करते हैं, उनकी कथा कैसे आगे बढ़ती है, अब इस प्रश्नके ऊपर हम विचार करेंगे। आर्नल्डने महाकाव्य (Epic Poem) का जो लक्षण दिया है, उसमें एक अंशका सारांश यहाँ हम देते हैं। 'संवाद, स्वगत-भाषण और वर्णन—इन तीनोंके मिश्रणके द्वारा महाकाव्यका विकास होता जाता है। महाभारतके ग्रन्थमें जिस प्रकार महाकाव्यके दूसरे लक्षण पुष्ट दीख पड़ते हैं, उसी प्रकार यह लक्षण भी देखनेमें आता है। महाभारतमें संवाद अत्यन्त उत्तम होते हैं। वस्तुतः संवादोंमें ही इस काव्यकी विशेष शक्ति निहित है। इलियड और पैरेडाइज लास्ट (Iliad and Paradise Lost) के समान इस काव्यके सारे भाषण सुयोजित, वक्तृत्वसे भरपूर और जोशीले हैं, तथा पृथक्-पृथक् पात्रोंके मुखसे जो भाषण कराये जाते हैं, वह उन-उन पात्रोंके मुखसे ही शोभा देते हैं। कोई भाषण ऐसा नहीं है, जिसको विस्तारपूर्वक यहाँ लिखा जाय; इसलिये कुछ श्रेष्ठ भाषणोंकी सूचना देकर ही हमको विराम लेना पड़ेगा। आदिपर्वमें धनुर्विद्याके ज्ञानकी परीक्षाके समय दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन और भीम—इन चारोंके बीच चलनेवाला संवाद; सभापर्वमें जिस संवादके अन्तमें श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्र फेंककर शिशुपालका नाश किया था, वह शिशुपाल और भीष्मका संवाद; वनपर्वमें प्रपञ्चके सामने प्रपञ्च करनेकी सलाह जहाँ द्रौपदीके द्वारा दी गयी है; द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिरका संवाद; द्रोणपर्वमें द्रोण जिस समय अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे, उस समय धृष्टद्युम्नने उनका वध किया, तत्पश्चात् सात्यकि, अर्जुन, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर—इन चारोंके बीच चलनेवाला संवाद—ये विशेषरूपसे ध्यान देने योग्य हैं। उभयपक्षके बीच संधि करानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्ण जाते हैं, और कौरवोंके आगे जो भाषण करते हैं, वह साहित्यका एक श्रेष्ठ नमूना है। और यही एक नमूना समर्थ भाषणकी कल्पना करनेकी व्यासकी अद्भुत क्षमताका चित्र पाठकोंके हृदयमें अङ्कित कर देता है। श्रीकृष्णके उत्कृष्ट भाषणका एक दूसरा उदाहरण कर्णपर्वमें प्राप्त होता है; कर्णके साथ लड़नेके लिये अर्जुन आगे बढ़ता है, उस समय अर्जुनको प्रोत्साहन करनेके लिये श्रीकृष्ण जो भाषण करते हैं, वह बहुत ही रम्य और प्रभावोत्पादक है। यह और ऐसे अनेकों भाषण महाभारतके काव्यमें कुछ और ही रमणीयता-की सृष्टि करते हैं, और इस महाकाव्यको मानो नाटक-जैसा बना देते हैं।''

निर्भयता महाभारतके भीतरके भाषणोंका एक विशेष लक्षण है। सामनेके मनुष्यको मुखसे अपने अभिप्रायको हिम्मतसे कह सुनावे, इस प्रकारके निश्छल हृदय तथा प्रामाणिक मनुष्योंके वचन इस ग्रन्थमें व्यक्त किये गये हैं। उदाहरणार्थ, दुर्योधन जब-जब कोई बुरा कर्म करता है, तब-तब विदुर उसको कड़े-से-कड़े शब्दोंमें फटकारनेसे नहीं चूकते। परंतु विदुरके लिये तो कदाचित् यह भी कहा जा सकता है कि उनका पद तथा उनका सम्बन्ध इस प्रकारका था कि वह यदि पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक बोलें तो भी कोई हानि न हो। शकुन्तलाको इस प्रकारकी निर्भयता प्रदान करनेका कोई कारण न था, फिर भी व्यासकी शकुन्तला कालिदासकी शकुन्तलासे इस अर्थमें और ही है। यह ग्राम्यबाला, निश्छलहृदया, हिम्मतवाली तथा सद्गुणके गौरवको समझने-वाली है। भरी सभामें राजा दुष्यन्तने जब यह कहा कि 'मैंने तुझे कहीं देखा ही नहीं, फिर तेरे साथ परिणय कैसे हो गया?' तब उसने उत्तर दिया कि 'सत्यके लिये यदि

तुम्हारे भीतर सम्मान नहीं है तो तुम्हारे-जैसे पुरुषका सङ्ग मुझे नहीं चाहिये। पति या पुत्रकी अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान् वस्तु है।' कालिदासके प्रख्यात नाटककी कुम्हली नायिकाके समान वह मूर्च्छित नहीं होती, परंतु वह रुष्ट होकर राजसभासे चल देती है।'

कर्णपर्वमें शल्य और कर्णका संवाद, महाभारत-के पात्र किस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक बोलते हैं—इसका एक दूसरा उदाहरण है। एक विशेष उपदेश देनेके उद्देश्यसे हंस और कौएकी वार्ता जो कही गयी है, वह बहुत ही सरस तथा पठनीय है। वस्तुतः व्यासजीने अपने पात्रोंके मुखसे नीतिका महान्-से-महान् उपदेश बड़ी सुन्दरतापूर्वक प्रदान कराया है और सत्यता, सरलता, स्वाभिमान, कर्त्तव्यपरायणता, उदारता, आत्मसंयम आदिके आवश्यकतानुसार असंख्य उपदेश और दृष्टान्त इस ग्रन्थमें प्राप्त होते हैं। केवल एक ही सद्गुण—स्वदेशाभिमानके विषयमें इस ग्रन्थमें कहीं भी कुछ कहनेमें नहीं आया है; 'इलियड' के कुछ भाषणोंमें देशाभिमानका जोर पूर्णतः देखनेमें आता है, पर उसका यहाँ पूर्ण अभाव है। इसका एकमात्र कारण यह है कि पश्चिमके देशोंमें राजकीय प्रभुता बढ़ानेके लिये प्रयोजनीय देशाभिमान आदि जिन-जिन सद्गुणोंका विकास हुआ था, वह भारतके आर्य लोगोंमें नहीं हुआ था; अथवा कदाचित् यह भी हो सकता है कि एक ही कुटुम्बके दो पक्षके बीचका युद्ध ही एक ऐसा विषय है कि इसमें स्वदेशा-भिमानके उद्गारके लिये कोई प्रसङ्ग ही नहीं आता।

अब हम स्वगत भाषणको लेते हैं। संस्कृतके कवि नाटकोंके सिवा दूसरी रचनाओंमें स्वगत भाषणोंका कुछ भी उपयोग करते हुए नहीं दीखते। नाटकोंका 'स्वगत' भी बहुत ही संक्षिप्त होता है, और उसमें वक्तृत्वकी सुन्दरता अधिक नहीं देखी जाती। रणभूमिमें घायल होकर पड़ा हुआ दुर्योधन जो विलाप करता है, उसको यदि स्वगत भाषणमें न गिनें तो सारे महाभारतमें एक भी स्वगत भाषण नहीं आता, यह हम कह सकते हैं। मेरे विचारके अनुसार, 'स्वगत भाषण' कुछ अप्राकृतिक वस्तु है। मनुष्य कभी-कभी संक्षिप्त विचार करे तो यह सम्भव हो सकता है; परंतु मनमें विचार चलता हो, उस समय एक अखण्ड और जोशसे भरा हुआ भाषण दिया जाय—यह तो बहुत कम लोगोंसे ही बन सकता है। कदाचित् किसीसे भी नहीं बन सकता, परंतु इस विषयमें हम किसी प्रकारकी चर्चामें उतरना नहीं चाहते। महाभारतमें स्वगत-भाषण बिल्कुल ही नहीं हैं, यह बात नोट करके ही हम संतोष करेंगे।

युद्धके वर्णन

वर्णनके विषयमें महाभारतके कविका सामर्थ्य होमर अथवा मिल्टनके जैसा ही देखनेमें आता है। इनकी बात कहनेकी रीतिमें सदा जोश और स्पष्टता देखनेमें आती है। और इनके वर्णन बहुत ही यथार्थ और प्रौढ़ होते हैं। युद्धका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें तो व्यासकी शक्ति सचमुच ही अद्भुत है। महाभारतके छोटे-छोटे द्वन्द्वयुद्धोंका जो वर्णन दिया गया है, उनके सम्बन्धमें कदाचित् ही कोई यह टीका करना चाहेगा कि इन वर्णनोंमें पुनरुक्तिकी अधिकता है। 'अमुक योद्धाने अपने प्रतिपक्षीके सामने इतने अस्त्र प्रहार किये और उसने बदलेमें इतने अस्त्र प्रहार किये' इस प्रकार द्वन्द्व-युद्धका वर्णन किया गया है। और इसी प्रकारके वर्णन बार-बार आते हैं, इससे पाठकका चित्त स्वभावतः उकताये बिना नहीं रहता। इलियडमें भी इसी प्रकारके वर्णन आते हैं, और उससे भी हमारा जी जरा उकता जाता है। परंतु जिस समय इस प्रकारके अस्त्र ही युद्धके मुख्य साधन थे, और जिस समय रणस्थलमें उभयपक्षके सरदारोंके मध्य द्वन्द्वयुद्ध ही अधिक देखनेमें आते थे, उस समयका पूरा-पूरा विचार भी हमको अपने मनमें रखना चाहिये। महाभारतमें युद्धके जो वर्णन देखनेमें आते हैं, उनमें भी कविने जो विविध प्रकारके चित्र चित्रित किये हैं, तथा जोशीले ढंगसे जो उनका वर्णन किया है, वह सचमुच ही आश्चर्य-जनक है। इलियडके समान महाभारतकी, विशेषतः इसकी युद्धकी कथाओंसे श्रोताओंके हृदयमें शौर्यकी लहरें उठने लगती हैं। और शिवाजीके भीतर जो पराक्रमशीलता आयी थी, वह इस कथाके सुननेसे आयी थी—इस बातको सभी जानते हैं।

दूसरे कतिपय वर्णन

सृष्टि—सौन्दर्यके वर्णनमें महाभारतका काव्य रामायणकी अपेक्षा कुछ उतरता हुआ जान पड़ता है। सारे ग्रन्थमें इस प्रकारके वर्णन बहुत कम ही देखनेमें आते हैं। परंतु वनपर्वमें हिमालयका वर्णन ऐसा हुआ है कि बर्फसे आच्छादित इस भारतके उत्तरी प्रदेशको जिसने अपनी आँखों देखा है, अथवा जिसने इस प्रदेशमें निवास किया है, उसके द्वारा यह वर्णन किया गया है—ऐसा हमको लगता है। पर्वतके ऊपर गिरती हुई हिम-राशिमें पाण्डव और द्रौपदी फँस गये थे, इसका वर्णन इतना सटीक हुआ है कि जैसे वर्तमान कालमें बर्फके तूफानमें बहुधा मेलट्रेन पड़ जाती है और मनुष्योंकी जान चली जाती है तथा उसका समाचार हम समाचारपत्रोंमें पढ़ते हैं, वैसा ही यह वर्णन भी हमको लगता है। परंतु गन्धमादन पर्वतका जो वर्णन दिया गया है, वह यद्यपि बहुत ही सुन्दर और पूर्ण है, तथापि उसमें कुछ विस्तारकी बातें अपनी ओरसे जोड़ी हुई जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, पर्वतको सुशोभित करनेवाले वृक्षोंमें

तालवृक्षका भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकारके कथनके लिये सच्ची वस्तुस्थितिका आधार नहीं है, किंतु कल्पनाका आधार लिया गया है—ऐसा लगता है।'

'मनुष्योंका वर्णन करनेमें महाभारतकी शैली निर्मल और जोशीली जान पड़ती है। स्त्री-सौन्दर्यका वर्णन करनेमें परवर्ती कालके संस्कृत कवियोंके समान विषयपरायणता महाभारतमें नहीं देखनेमें आती। द्यूतक्रीडाके प्रसङ्गमें द्रौपदीको दावपर रखते समय युधिष्ठिरने जो उसका वर्णन किया है, वह इस प्रकारके वर्णनका एक उत्तम नमूना है—

नैव ह्रस्वा न महती न कृशा नातिरोहिणी।
नीलकुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया॥
शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया।
शारदोत्पलसेविन्या रूपेण श्रीसमानया॥
तथैव स्यादानृशंस्यात्तथा स्याद् रूपसम्पदा।
तथा स्याच्छीलसम्पत्त्या यामिच्छेत् पुरुषः स्त्रियम्॥
चरमं संविशति या प्रथमं प्रतिबुध्यते।
आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम्॥
तथैवविधया राजन् पाञ्चाल्याहं सुमध्यमा।
ग्लहं दीव्यामि चार्वङ्ग्या द्रौपद्या हन्त सौबल॥

अर्थात् 'न तो नाटी है और न ऊँची है, न दुबली है और न मोटी, ऐसी काले और कुञ्चित केशवाली द्रौपदीको मैं दावपर रखता हूँ। शरद्ऋतुके कमलपत्रके समान आँखोंवाली, शरद्ऋतुके कमलके समान गन्धवाली, शरद् ऋतुके कमलका सेवन करनेवाली तथा लक्ष्मी-जैसी कान्तिवाली, सौजन्यमें, रूपसम्पत्तिमें और शीलसम्पत्तिमें कोई भी पुरुष जैसी स्त्रीकी इच्छा करता है वैसी, पतिके सो जानेपर जो सोती है और पतिके उठनेके पहले जो उठती है ऐसी, गौ और भेड़ चरानेवालोंसे लेकर समस्त कर्मचारियोंके सारे कार्योंको जानती है, उस पतली कमरवाली और सुन्दर अङ्गोंवाली द्रौपदीको दावपर रखता हूँ।'

'कीचक जैसे विषयासक्त पात्रके मुखसे कविने द्रौपदीके सौन्दर्यकी जो प्रशंसा करायी है, वह भी जैसी दीख पड़ती है, वैसी दूषित नहीं है। बृहन्नलाके वेषमें छिपे अर्जुनका वर्णन दिया गया है, वह भी बहुत ही सुन्दर और सच्चा है। तथा भीष्म और द्रोण—ये दोनों योद्धा युद्धमें जाते हैं एवं आदिपर्वमें दूसरोंके साथ मुकाबलेमें उतरनेकी कर्ण तैयारी करता है, वह वर्णन भी ऐसा ही है। इस सम्बन्धमें उदाहरण-के रूपमें इतना ही लिखना बस होगा।'

भाषा और छन्दरचना

''महाभारतमें प्रयुक्त छन्द और महाभारतकी भाषा, यह एक प्रश्न अब विचारनेके लिये शेष रह गया है। महाभारतका काव्य मुख्यतः अनुष्टुप् छन्दमें रचा गया है। इसमें बहुधा उपजाति छन्दका भी प्रयोग किया गया है। संस्कृत भाषामें महाकाव्यके भीतर इन दो छन्दोंका ही बहुतायतसे प्रयोग किया गया है। जो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, वे सभी अधिकांशमें इन्हीं दो छन्दोंमें रचे गये हैं; और बीचमें किसी-किसी स्थानमें दूसरे छन्द प्रयुक्त हुए हैं। पुराण, उपपुराण तथा काव्यकलाके ग्रन्थ, सभीमें अनुष्टुप् छन्दका उपयोग होनेके कारण इस छन्दका गौरव घट गया है। यह छन्द अतिशय प्रयुक्त हो चुका है तथा सहज है, ऐसा हमको लगता है; परंतु हमें याद रखना चाहिये कि जब समर्थ कवियोंके द्वारा इस छन्दका उपयोग होता है तो इसके प्रताप और सामर्थ्यमें बिल्कुल ही कमी आती नहीं दीख पड़ती। कालिदासने रघुवंश नामक काव्यकी रचना की है, उसका पहला और चौथा सर्ग अनुष्टुप् छन्दमें ही रचा गया है। फिर भी वह अति उत्तम समझा जाता है। एक ह्रस्व और एक दीर्घ, दो अक्षरके पदवाले अंग्रेजी (Iambic) के समान अनुष्टुप् छन्द यद्यपि सारे वीरचरित काव्योंमें और महाकाव्योंमें साधारणतः प्रयुक्त होता है, तथापि अंग्रेजी और संस्कृत इन दोनों भाषाओंमें काव्यके गौरवका आधार इस बातपर निर्भर करता है कि काव्यकी रचना करनेवाला कवि वास्तविक कवि है या तुक्कड़ है।'

महाभारतकी भाषा भी गौरवयुक्त और महाकाव्यको सुशोभित करनेवाली है। इसके तीन मुख्य लक्षण देखनेमें आते हैं—सरलता, प्रौढ़ता और शुद्धता। सरलता और प्रौढ़ता दोनों ही एक साथ देखनेमें आवें, यह तो सचमुच क्वचित् ही बन पाता है। सारे अर्वाचीन महाकाव्योंमें वाणीका गौरव तो देखनेमें आता है, परंतु यह गौरव लानेमें स्पष्टार्थताकी बलि दिये बिना काम नहीं चलता। इन काव्यों-की वाणीका आनन्द हम श्रवणमात्रसे प्राप्त कर पाते हैं, परंतु अर्थ समझनेके पहले प्रत्येक अक्षरपर रुक-रुककर विचार करनेकी जरूरत पड़ती है। महाभारतकी भाषा इस प्रकारकी नहीं है। परवर्तीकालके पुराण इस सरलताके विषयमें कदाचित् महाभारतकी अपेक्षा आगे बढ़ गये हैं, परंतु बहुधा उनमें अशुद्ध भाषा प्रयुक्त हुई है और इन अशुद्ध प्रयोगोंके सम्बन्धमें स्थान-स्थानपर टीकाकारोंने भी 'यह आर्ष प्रयोग है'—ऐसा कहकर जान बचानेकी चेष्टा की है। बात-चीतमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाके ऊपर अधिकार रखनेवाले एक समर्थ लेखककी छाप महाभारतकी भाषाके ऊपर अच्छी तरहसे पड़ी हुई दीख पड़ती है। मिल्टन कविके सम्बन्धमें आर्नल्डने कहा है कि मिल्टनकी भाषा वैषम्ययुक्त होते हुए भी विषयके गौरवके साथ भाषाका गौरव भी घटता बढ़ता जाता है, तथापि इसकी अंग्रेजी शुद्ध और निर्दोष नहीं होती। अंग्रेजी लिखनेमें लैटिन और ग्रीक शब्द, यही क्यों,

लैटिन और ग्रीक वाक्यरचनाको भी ठूँसते जाते हैं। मैं मानता हूँ कि महाभारतकी भाषा जो पैरेडाइज लास्ट (Paradise Lost) की भाषाके समान गौरवयुक्त नहीं है, तथापि शुद्धताकी दृष्टिसे यह भाषा 'पैरेडाइज लास्ट' की अपेक्षा ऊँचे दर्जेकी है।'

"महाभारतकी भाषाका सौन्दर्य समझनेकी जिसकी इच्छा हो, उसे भगवद्गीता बाँचनी चाहिये। गीताके विषयमें स्वयं कविने जो कहा है उसके अनुसार सारे महाभारतका अमृत और सर्वस्व इसमें आ जाता है। महाभारतकी ऊँची-से-ऊँची फिलासफीका उपदेश इसमें निहित है। इतना ही नहीं, बल्कि कविका संस्कृत भाषाके ऊपर कितना अधिकार है—यह भी इस कवितासे भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। वैदिक कालके पीछेके अर्थात् शुद्ध संस्कृत साहित्यके सारे क्षेत्रमें एक भी ग्रन्थ नहीं है, जो भाषाकी सरलतामें, वाणीकी मिठासमें और शैलीकी प्रौढ़ता तथा रुचिरतामें भगवद्गीताकी समानता कर सके। इस श्रेष्ठ गीताके शब्द और वाक्य सचमुच शुद्ध सुवर्णके बने हैं; क्योंकि ये आकृतिमें छोटे, वजनदार और तेजस्वी हैं।'

नीतिके उपदेश

'महाकाव्यमें नीतिके उपदेशोंका समावेश होना ही चाहिये, ऐसी बात नहीं; परंतु महाभारतमेंसे ऐसे अच्छे उपदेश निकाले जा सकते हैं। ये उपदेश सम्पूर्ण विशाल पटमें फैले सारे तन्तुओंको जोड़नेवाले सूत्रके समान हैं। ये उपदेश क्यों हैं, यह तर्क उठानेकी आवश्यकता भी कविने नहीं रहने दी है। कविने स्वयं ही ये उपदेश हमको दिये हैं। प्रत्येक स्थितिमें, चाहे जैसो विपत्तिके प्रसङ्गमें भी धर्मपर आरूढ़ रहे, ऐसे उपदेश महाभारतमें स्थान-स्थानपर दिये गये हैं। 'धर्म' का अर्थ है ईश्वरके प्रति तथा मनुष्यके प्रति अपने सारे कर्तव्य। महाभारतके अन्तमें पाँच श्लोक हैं, उनमें यह उपदेश विशेषरूपसे कथित हुआ है। इन पाँचों श्लोकोंको एकत्र करके इनके लिये 'भारतसावित्री' यह नाम प्रयुक्त हुआ है। एक शास्त्रीजीने मुझे बतलाया था कि 'प्रातःस्मरण' करते समय प्रतिदित प्रातःकाल धर्मात्मा ब्राह्मण इस 'भारतसावित्री' का पाठ करते हैं। उनमेंसे एक श्लोक यहाँ उद्धृत करते हैं—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

'मैं भुजाओंको उठाकर यह घोषित करता हूँ, कोई मेरी बात नहीं सुनता कि जिस धर्मसे अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, उस धर्मका सेवन क्यों नहीं करते।'

क्या पाण्डव काल्पनिक हैं ?

'कुरु और पाञ्चाल, इन दो पड़ोसी आर्यलोगोंमें जो महायुद्ध हुआ था, उस महायुद्धमें भाग लेनेवाले पात्रोंके विषयमें इस प्रकरणमें हम चर्चा करेंगे। साधारणतः इतना तो स्वीकार ही किया जाता है कि 'पड़ोसके दो प्रजाजन पीछे एकत्र होकर एक प्रजाके रूपमें आ गये, उनके बीचके एक प्राचीन युद्धकी घटनाके आधारपर पीछे महाभारतकी रचना हुई है।' परंतु यह युद्ध कब हुआ था, यही नहीं; बल्कि इस युद्धमें भाग लेनेवाले कौन थे, इस सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। वे बर आदिके तर्कोंका अनुसरण करते हुए श्रीदत्त ऐसा मानते हैं कि 'पाण्डवोंको दन्तकथाके कल्पित वीरके रूपमें मानना चाहिये।' क्योंकि महाभारतके जो दूसरे पात्र हैं, उनके विषयमें तत्कालीन वैदिक-साहित्यमें अनेक बार उल्लेख हुआ है, परंतु पाण्डवोंके विषयमें कहीं भी कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। उदाहरणार्थ, परीक्षित्के पुत्र जनमेजयका नाम वैदिक साहित्यमें अनेक बार आता है; परंतु भारतकी लड़ाईके मुख्य योद्धा तथा जनमेजयके प्रपितामह अर्जुनका नाम कहीं भी देखनेमें नहीं आता। ब्राह्मणग्रन्थोंमें अर्जुन शब्द इन्द्रके नामके रूपमें प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। इस हेतुको लेकर, महाभारतमें वर्णित विषयोंका ऐतिहासिक दृष्टिसे सार प्रदान करनेके पहले इस प्रश्नकी चर्चा आवश्यक है कि 'क्या पाण्डव काल्पनिक व्यक्ति हैं ?'

"साधारणतः तो ऐतिहासिक घटनाओंका जहाँ वर्णन हो, उस ग्रन्थमें घटनाविशेष या व्यक्तिविशेषके विषयमें हुए वर्णनके अनुसार इतना ही कह देना पर्याप्त हो जाता है कि अमुक व्यक्ति हो गया है तथा अमुक घटना घट चुकी है। मोज़ेज अथवा रोम्युलस हुए हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें तत्कालीन इतिहास-ग्रन्थ, अथवा तत्कालीन मनुष्योंने यदि इतिहास न लिखा हो तो परम्परासे प्राप्त मान्यताओंके आधारपर रची पुस्तकोंके सिवा किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। तथा दूसरा कोई प्रमाण प्राप्त होना सम्भव भी नहीं होता। अवश्य ही, परम्परासे आनेवाली मान्यताएँ अथवा ऐतिहासिक ग्रन्थ सत्य नहीं हैं, यह यदि प्रमाणित हो जाय अथवा इनके ऊपर भरोसा करना ठीक नहीं, ऐसा कोई दृढ़ तर्क दिया जा सके तो उन मान्यताओं तथा ऐतिहासिक ग्रन्थोंकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करनी चाहिये—यह बात ठीक है। परंतु जहाँ ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ इन मान्यताओं अथवा इन ऐतिहासिक ग्रन्थोंके ऊपर निर्भर न करनेका कोई कारण नहीं दीखता। महाभारतका महाकाव्य कोई उपन्यास नहीं है, बल्कि इसकी रचना इतिहासके रूपमें हुई है। इसलिये जबतक इसके विरुद्ध प्रबल तर्क नहीं आते, तबतक महाभारतके अन्तर्गत वर्णित पाण्डव और उनके शत्रु सचमुच ही हो गये हैं तथा उनके किये गये पराक्रमोंका जो वर्णन प्राप्त है, वह सचमुच ही हुआ है, यही हमको मानना चाहिये।"

"इस निर्णयके विरुद्ध जो विरोधी पक्षके लोग दलील देते हैं, वह बहुधा विचार-विहीन होती है । हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि तत्कालीन अथवा परवर्ती वैदिक साहित्यमें पाण्डवोंके विषयमें कोई उल्लेख नहीं दीख पड़ता, केवल इतनेसे ही कोई अनुमान नहीं निकाला जा सकता । जबतक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि इस प्रकारके साहित्यमें उनका उल्लेख करना आवश्यक ही था, तबतक पाण्डवोंके विषयमें उल्लेखकी बात कोई महत्त्व नहीं रखती । और भी उत्कट उदाहरण लें तो पार-डी-वर्गकी जब लड़ाई हुई थी उस समय सैकड़ों पुस्तकें लिखी गयी थीं और उसके बाद ही लिखी गयीं । परंतु उनमें अधिकांश पुस्तकोंमें लार्ड राबर्ट्स अथवा लार्ड किचनर, जो निःसन्देह आधुनिक समयके महान्-से-महान् वीर पुरुष हुए हैं, इनका नाम बिल्कुल ही नहीं आया है । इसपर यदि हम यह कहें कि ये पुरुष हुए ही नहीं तो इससे बढ़कर मूर्खताकी बात न होगी । मराठों और अफगानोंके बीच पानीपतकी बड़ी लड़ाई हुई; इसके बाद मराठी, अंग्रजी आदि भाषाओंमें अनेकों पुस्तकें लिखी गयीं तथा अनेकों कविताएँ रची गयीं । परंतु प्रत्येक पुस्तक या प्रत्येक कवितामें इस लड़ाईके विषयमें अथवा इसके नेताओंके विषयमें सूचित किये जानेकी आशा करना हास्यास्पद है । पानीपतकी लड़ाईके बाद रची गयी किसी पुस्तकमें यदि सदाशिवराव भाऊ अथवा जंकोजी सिंधियाका नाम बिल्कुल ही देखनेमें न आवे तो इससे यह अनुमान करना कि 'ये लोग हुए ही नहीं थे' भूलसे भरा हुआ माना जायगा । इन प्रबल उदाहरणोंसे यह ज्ञात हो जाता है कि विरोधी पक्षका तर्क कितना हास्यास्पद है । ऊपर जिस पुस्तकोंके विषयमें हमने लिखा है वे पुस्तकें बोअर लोगोंका तथा मराठोंका इतिहास लिखनेके विशेष उद्देश्यसे उस समय या उसके कुछ बाद रची गयी होतीं तो बात दूसरी थी; क्योंकि ऐसे इतिहास-ग्रन्थोंमें तो स्वभावतः इन घटनाओं तथा इनमें भाग लेनेवाले मनुष्योंके विषयमें उल्लेख होना आवश्यक है । अब यह तो जानी हुई बात है कि वैदिक साहित्यमें साधारणतः धर्मानुष्ठानोंकी विधियाँ तथा कभी-कभी तत्त्वज्ञान और अध्यात्मविद्याके सिद्धान्त वर्णित हुए हैं । इनमें ऐतिहासिक विषयोंका उल्लेख कदाचित् ही कहीं है और वह भी उदाहरणके रूपमें दिया गया है । जो घटनाएँ घटी हैं तथा जो मनुष्य हो गये हैं, उनका सबका उल्लेख वैदिक ग्रन्थोंमें किया जाना कभी सम्भव नहीं है । हमारे मन्तव्यके अनुसार तो महाभारतकी लड़ाईके विषयमें अथवा पाण्डवोंके विषयमें इन ग्रन्थोंमें कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, इस आधारपर यह अनुमान लगाना कि लड़ाई हुई ही नहीं अथवा पाण्डव हुए ही नहीं, तार्किक दृष्टिसे सम्भव नहीं है; क्योंकि महाभारतके भीतर जो ऐतिहासिक प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं, उन प्रमाणोंको काटनेवाले प्रबल कारण हमें उपलब्ध नहीं होते ।'

'परंतु इसके सिवा, पाण्डव हुए ही नहीं—इस विचारके विरुद्ध दूसरे भी प्रबल तर्क हैं । अपने ग्रन्थके मूल संस्करणमें श्रीदत्तजीने यह अभिप्राय व्यक्त किया था कि-'महाभारतका युद्ध सचमुच ही हुआ था, परंतु पाण्डव कुछ विशिष्ट सद्गुणोंके मूर्त्तरूप हैं, और कवि-कल्पनाके द्वारा पीछेसे इन पात्रोंकी सृष्टि की गयी थी ।' परंतु महाभारतके भीतर ही पाण्डवोंके जीवनचरित्र-सम्बन्धी कुछ तथ्य हैं, जिनका इस सिद्धान्तके साथ मेल नहीं खाता । उदाहरणार्थ, पाँच भाइयोंके विषयमें यह कहा गया है कि वे एक ही स्त्री (द्रौपदी) को ब्याहे थे । और भारतके आर्योंमें अनेक पतियोंके साथ ब्याह करनेका रिवाज कहीं भी नहीं था । वैदिक-कालके ऋषि ऐसा कहते थे कि 'यज्ञकी एक ही रज्जु अनेकों स्थाणुओंको लपेट नहीं सकती, उसी प्रकार एक ही स्त्री अनेक पुरुषोंको ब्याही नहीं जा सकती ।' यदि उनके मन्तव्यके अनुसार एक ही स्थाणुको यज्ञकी अनेक रज्जुएँ घेर सकती हैं तो एक पुरुषको अनेक स्त्रियाँ भी ब्याही जा सकती हैं । तब सद्गुणके मूर्त्तस्वरूप समझे जानेवाले ये पात्र सद्वृत्तिविषयक आर्य विचारोंके विरुद्ध बर्तते हुए क्यों प्रदर्शित किये गये हैं ? महाभारतमें ही यह बात स्वीकार की गयी है कि इस प्रकारका व्यवहार साधारण न होकर अन्य ही प्रकारका था । और इस व्यवहारके समर्थनमें विभिन्न स्थलोंमें विभिन्न व्याख्याएँ दी गयी हैं, यह भी हमने स्पष्ट देखा है । बल्कि द्रौपदीके प्रति किये गये अपमानका बदला लेनेके लिये युद्धमें दुःशासनको मारकर उसका रुधिर पान करते हुए भीमने इसका वर्णन किया है । यह जंगली बर्ताव भी प्रत्येक मनुष्यकी सद्वृत्तिविषयक सामान्य विचारके विपरीत है, और पिछले समयके कल्पित वीरोंमें कविने इस प्रकारके लक्षणका आरोप किया हो—यह बात मान्य नहीं हो सकती । ऐसे अनेकों छोटे-छोटे प्रसङ्गोंसे हमें ऐसा जान पड़ता है कि पाण्डवलोग कल्पित नहीं हैं, बल्कि सचमुच होनेवाले वीर पुरुष थे । इस सम्बन्धमें कदाचित् यह तर्क उठाया जाय कि जिस समय आर्यलोगोंमें अनेक पतियोंसे ब्याह करनेका रिवाज था, तथा जिस समय मनुष्यका रुधिर-पान करना कोई त्रासदायक बात नहीं मानी जाती थी, उस समयके विचारोंका चित्र इस स्थलपर दिया गया है ।' इस तर्ककी सत्यतामें बहुत संशय है; फिर भी इस तर्कको यदि हम सत्यरूपमें स्वीकार करें तो इतना मानना ही पड़ेगा कि जिस समय ऐसे विचारोंका आस्तित्व था, वह समय सचमुच ही बहुत प्राचीन होना चाहिये । इस तर्कसे 'पाण्डव सचमुच ही हो गये हैं' यह बात स्वीकार करनी पड़ती है—ऐसा न मानें तो भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस बातके स्वीकार करनेकी अपेक्षा कोई अधिक अच्छा परिणाम इससे नहीं निकलता ।'

'इस प्रकरणका सार अब हम संक्षेपमें कहेंगे । घटित

घटनाओंका इतिहास लिखना वैदिक-साहित्यका उद्देश्य नहीं है, इसलिये इन ग्रन्थोंमें पाण्डवोंके विषयमें अथवा महाभारतके युद्धके विषयमें कोई उल्लेख नहीं हुआ तो इससे अनुमान नहीं किया जा सकता कि पाण्डव हुए ही नहीं अथवा महाभारतकी लड़ाई कभी हुई ही नहीं।

'इससे प्रमाणित होता है कि पाण्डव सचमुच हो गये हैं तथा महाभारतके युद्धमें भाग लेनेवाले भी (जनमेजय नहीं) पाण्डव ही थे।'

पाण्डवोंके पूर्वज

'मनुकी पुत्री इला और चन्द्रसे उत्पन्न क्षत्रिय चन्द्रवंशी कहलाते हैं। चन्द्रवंशके सबसे प्रथम राजा पुरूरवा हुए। पुरूरवा तथा उर्वशी नामक स्वर्गकी अप्सराके प्रेमकी कथा ऋग्वेदमें है, और कालिदासने अपने (विक्रमोर्वशी) नामक सुविख्यात नाटककी रचना करके इन दोनोंके प्रेमको अमर कर दिया है। इस वंशके दूसरे प्रसिद्ध राजा ययाति हुए। ययाति और उनकी दो रानियों, देवयानी और शर्मिष्ठाकी कथा महाभारतकी अत्यन्त रसमयी कथाओंमेंसे एक है और यह कथा यहाँ विस्तारपूर्वक देने योग्य है। चन्द्रवंशी क्षत्रिय सिन्धु नदीके उस पार राज्य करते थे, ऐसा ज्ञात होता है। क्योंकि असुरलोगोंके राजा वृषपर्वा (जो ईरानके राजा थे, यह ठीक-ठीक स्वीकार किया जाता है।) का राज्य ययातिके राज्यके समीप था, यह बात इस कथामें कही गयी है। शर्मिष्ठा ईरानके राजा वृषपर्वाकी पुत्री थी और देवयानी उनके गुरु शुक्रकी पुत्री थी। ये दोनों कन्याएँ एक बार वनमें घूमनेके लिये निकल पड़ीं और एक कुएँके पास स्नान करनेके लिये गयीं। उस समय भूलसे उनके वस्त्र अदल-बदल हो गये। ब्राह्मणकी पुत्री गर्वीली थी, वह राजकुमारीको मानो वह उसकी लौंड़ी हो इस प्रकार गाली देने लगी। इसपर राजकुमारी (शर्मिष्ठा) ने चिढ़कर उसको धक्का मारा और वह कुएँमें गिर गयी। अचानक राजा ययाति वहाँ जा पहुँचा और देवयानीकी चीत्कार सुनकर वह कुएँपर पहुँचा और उसको कुएँसे बाहर निकाला। इस उपकारके बदलेमें देवयानीने उससे ब्याह करनेकी अपनी इच्छा प्रकट की, और अपने पिताकी सम्मति लेकर देवयानीने ययातिके साथ ब्याह किया। मेरी सखी (शर्मिष्ठा) ने मेरा अपमान किया है, यह सोचकर देवयानीके हृदयमें वैर साधनेका विचार उठा। उसने दासीका काम करनेके लिये वृषपर्वासे शर्मिष्ठाको माँगा। वृषपर्वाको दूसरा उपाय न सूझा, इसलिये देवयानीकी यह अपमानयुक्त माँग भी उसने स्वीकार कर ली, और जिस लड़कीने अपराध किया था उसको उसने इस दम्पतिके हाथमें सौंप दिया।'

'देवयानीने उस लड़कीको ययातिके राजमहलमें वर्षों रक्खा, परंतु उसको जो उसने दण्ड दिया था वह उसके लिये वरदान हो जायगा, यह विचार देवयानीको स्वप्नमें भी न था। एक दिन वह सोयी थी, अचानक अपने पति-जैसे रूपवाले एक लड़केके आनेसे वह अचानक चौंक उठी। पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि वह लड़का ययातिका था और शर्मिष्ठाके पेटसे पैदा हुआ था। यह समाचार सुनकर उसको बड़ा क्रोध आया और क्रोधमें पिताके पास जाकर पतिके अपराधका बदला लेनेकी प्रार्थना की। शुक्राचार्यने राजाको यह शाप दिया कि, 'जा, तू अकाल वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जा।' इस प्रकार देवयानीने मूर्खतावश अपने शत्रुको हानि उठाने जाकर स्वयं अपना ही नुकसान किया और अन्तमें अपने पिताके पास जाकर प्रार्थना की कि 'इस शापकी उग्रता आप कम करें।' तत्पश्चात् शुक्राचार्यने कहा कि 'यह वृद्धावस्था दूसरा कोई लेनेके लिये तैयार हो तो दी जा सकेगी।' तब ययातिने अपने पुत्रोंसे एक-एक करके कहा कि "तुम मेरी वृद्धावस्था स्वीकार करो।' परंतु पूरुके सिवा किसीने भी इसे स्वीकार न किया। पूरुसे प्राप्त किये यौवनके द्वारा ययातिने अनेकों वर्षोंतक इस जगत्के भोग-विलासका आनन्द उठाया। अन्तमें उसको ऐसा लगा कि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

'कामनाओंके उपभोगसे कामनाका शमन कदापि नहीं होता बल्कि जिस प्रकार घृतादि हविष्यके पड़नेसे अग्नि सुदीप्त होती है उसी प्रकार भोगसे कामना और भी बढ़ती है। इस जगत्का सारा स्वर्ण, सारा अन्न, सारी स्त्रियाँ एक मनुष्यके लिये बस नहीं हो सकतीं, इसलिये इच्छाओंको वशमें रखकर संतोष धारण करना चाहिये।'

ययातिने अपने पुत्र पूरुको बुलाया और उसको उसका यौवन वापस कर दिया और अपना बुढ़ापा उससे वापस लेकर, प्राचीन भारतके प्रतिष्ठित राजाओंके समान अपनी दोनों रानियोंको साथ लेकर वनमें निवास किया। पूरुने पुत्रधर्मका यथार्थ पालन किया था, उसके बदलेमें उसको आशीर्वाद दिया और कहा कि राज्याधिकार पूरुके वंशको ही प्राप्त होगा।

ययातिकी कथासे उत्तम उपदेश प्राप्त होता है, उसके कारण यह कथा बहुत सुन्दर लगती है, परंतु इसके सिवा इतिहासकी दृष्टिसे भी यह कथा बहुत उपयोगी है। पहले तो हमने देखा कि उस समय चन्द्रवंशके आर्य लोग सिन्धुनदीके उस पार बसते थे। दूसरे, उस समय ब्राह्मण-क्षत्रियके बीच ब्याह-सम्बन्ध बिल्कुल साधारण बात थी।

तीसरे, ययातिके यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, पूरु और अनु—ये पाँच पुत्र थे। यदुके वंशज यादव, तुर्वसुके वंशज यवन, द्रुह्युके वंशज भोजलोग, पूरुके वंशज पौरव (जिनका पश्चात् भरत नाम पड़ा) और अनुके वंशज म्लेच्छ लोग थे। इस प्रकार इस कथासे ज्ञात होता है कि ययाति अनेकों जातियोंके पूर्वज थे। इनमें यादव, भोज और पौरव—ये तीन जातियाँ भारतमें प्रविष्ट हुईं। चौथी यवन जाति पश्चिम ओर चली गयी। यहाँ जिन नामोंका उल्लेख हुआ है, उनमें अदल-बदल हुआ हो, यह सम्भव है। कदाचित् अनुके वंशज यवन कहलाये हों। और ईरानियोंके तुरान तथा आधुनिक इतिहासके तुर्क—इन नामोंके साथ तुर्वसु नाम कुछ मिलता-जुलता है, अतएव सम्भव है कि तुर्वसुके वंशज म्लेच्छ कहे गये हों। वृद्धावस्था दूसरेको देनेकी जो बात है, उसको ऐतिहासिक दृष्टिसे इस प्रकारका साधारण रूप दिया जा सकता है:—'राजा ययातिने पर्याप्त वृद्ध होनेपर भी शायद देवयानीके पुत्रोंको राज्याधिकारमें भाग न लेने दिया होगा। ये लड़के अपनी माताके समान ही उद्धत होंगे। उन्होंने राज्याधिकार छोड़नेके लिये कहा होगा तथा उनको यह देखनेमें आया होगा कि यह वृद्ध अभी राज्य करनेमें समर्थ है और राज्याधिकार छोड़नेके लिये तैयार नहीं है, इसलिये उन्होंने उत्पात मचाया होगा। फलतः ययातिने उनको निकाल दिया होगा। और इस काममें उसके पुत्र पूरुने मदद की होगी। पुत्रधर्मका पालन करके अन्तमें उत्तराधिकार-के रूपमें पूरुको अपने पिताका राज्याधिकार प्राप्त हुआ होगा।'

'पूरुके वंशजोंमें पहला प्रसिद्ध राजा दुष्यन्त था। दुष्यन्त और शकुन्तलाकी कथा संस्कृत-काव्यके प्रत्येक पाठकको ज्ञात है; क्योंकि कालिदासके जिस सुन्दर नाटककी महाकवि गेटेने इतनी प्रशंसा की है, वह नाटक इस कथाके आधारपर ही प्रणीत हुआ है, परंतु महाभारतकी शकुन्तला और कालिदासकी शकुन्तलामें बड़ा अन्तर है। कालिदासने शकुन्तलाको एक सुघरी हुई और भीरु स्त्रीके रूपमें चित्रित किया है, परंतु महाभारतकी शकुन्तला ऐसी नहीं है। महाभारतकी शकुन्तलाको नीतिके गौरवका भान था। वह एक विशुद्ध हृदयकी ग्रामीण कन्या थी। अरण्यमें कण्वके आश्रमके सामने राजा दुष्यन्त अकस्मात् आ पहुँचे, उस समय शकुन्तलाके पालक पिता कण्व वहाँ मौजूद न थे। गान्धर्वरीतिसे राजा दुष्यन्तने उसके साथ ब्याह किया। इस विवाहका कोई साक्षी न था। कुछ वर्षोंके बाद अपने पुत्रको साथ लेकर और अरण्यके आश्रमको छोड़कर शकुन्तला अपने पतिकी राजधानीमें गयी। वहाँ भरी सभामें राजा दुष्यन्तने उसके साथ अपने ब्याहकी बात अस्वीकार कर दी, उस समय शकुन्तलाने कहा—'राजाकी अपेक्षा—यही क्यों, पुत्रकी अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान् वस्तु है। और जो मनुष्य सत्यकी उपेक्षा करता है, वह यदि मेरा पति भी हो तो भी उसका सङ्ग मुझे नहीं चाहिये।' राजाने अपनी प्रजाको संतुष्ट करनेके लिये ही यह युक्ति की थी, परंतु 'शकुन्तला सचमुच ही दुष्यन्तकी स्त्री है'—यह आकाशवाणी हुई और राजाने शकुन्तलाको अपनी धर्म-पत्नीके रूपमें स्वीकार किया। नीति-बलसे युक्त कन्याके साथ स्नेह-परिणयके फलस्वरूप भरत नामके संतानकी उत्पत्ति हुई। आगे चलकर वह पूरुवंशका सबसे यशस्वी राजा माना गया। भारतमें गङ्गा-यमुनाके सङ्गमतकके प्रदेशको उसने जीत लिया था तथा वहाँ यज्ञ किया था, ऐसा कहा जाता है। शतपथब्राह्मणके १९ वें काण्डमें एक मन्त्रमें गङ्गा-यमुनाके सङ्गमपर इसके द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ-की प्रशंसा की गयी है। इसके नामपर केवल इसके वंशजोंका ही नहीं, बल्कि सारे देशका नाम पड़ा था और आजतक संस्कृत-साहित्यमें भारतवर्षको 'भरतभूमि' नामसे ही पुकारा गया है।'

'भरतके वंशजोंमें हस्ती नामके एक राजा थे, उन्होंने गङ्गानदीके पश्चिमी किनारेपर हस्तिनापुर बसाया और वह हस्तिनापुर एक नये देशकी राजधानी बना। ऐसा जान पड़ता है कि भरतलोग धीरे-धीरे पंजाबको छोड़कर गङ्गानदीकी ओर बढ़ने लगे और हस्तीके प्रपौत्र कुरुने गङ्गा और यमुनाके दोआबेके ऊपरी भागमें आधुनिक दिल्लीके उत्तर और यमुनानदीके पश्चिमके उपजाऊ मैदानको 'कुरुक्षेत्र' नाम प्रदान किया। कुरुलोग अब बहुत अच्छी स्थितिमें आ गये। उनको तथा गङ्गाके पूर्व और कुछ दक्षिणकी ओर बसनेवाले पञ्चाललोगोंको ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें बहुत ही उन्नत और प्रतापी बतलाया है।'

'इस उपजाऊ तथा समृद्धिमान् भूदेशके ऊपर कुरुवंश-के जिन राजाओंने पीछे राज्य किया, उनकी हम पहले गणना कर चुके हैं। यहाँ इस वंशके विषयमें शन्तनु राजासे प्रारम्भ करके हम आगे चलेंगे। शन्तनु राजाको गङ्गानदीसे भीष्म नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भीष्म महाभारतके एक अत्यन्त ही असाधारण पात्र थे। इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर गङ्गानदीने राजा शन्तनुको त्याग दिया। उसके बाद राजा शन्तनुका प्रेम एक सत्यवती नामकी मत्स्यकन्याके साथ हो गया, परंतु सत्यवतीने कहा—'मेरे जो पुत्र होगा, उसको यदि राज्य देनेका तुम वचन दो तो मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूँगी।' राजा शन्तनु यह शर्त मानकर भीष्मके राज्याधिकारको छीननेके लिये तैयार न थे, परंतु भीष्मने स्वयं ही अपने पिताको उलझनसे

मुक्त किया और अपने राज्याधिकारको त्याग दिया। इतना ही नहीं, बल्कि सत्यवतीको राजासे जो पुत्र उत्पन्न हो, उसके साथ लड़ाई करनेवाली संतान कहीं उत्पन्न न हो जाय, इस उद्देश्यसे स्वयं ब्याह न करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञाका पालन उन्होंने अन्तिम समयतक किया, तथा अपने स्वार्थत्याग और धर्म-बुद्धिके कारण ऐसी उज्ज्वल कीर्ति सम्पादन की कि आजतक भारतके लोग इनके नामका उच्चारण अत्यन्त आदरपूर्वक करते हैं।'

'सत्यवतीसे शन्तनुको दो पुत्र हुए, उनमें एक बचपनमें ही मर गया। कुरुओंके राजाका पद शन्तनुके बाद उनके पुत्र विचित्रवीर्यको मिला। काशिराजकी दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिकाको भीष्मने बलपूर्वक जीता और दोनोंका ब्याह विचित्रवीर्यके साथ करा दिया। तथापि वह पुत्रहीन होकर ही मृत्युको प्राप्त हुए। शन्तनुके साथ ब्याह होनेके पहले ही सत्यवतीको पराशरमुनिसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ था और वह दूसरा कोई नहीं, बल्कि महाभारतके रचयिता तथा वेदोंकी व्यवस्था करनेवाले स्वयं व्यासजी थे।'

'अब भीष्मकी सम्मतिसे सत्यवतीने व्याससे अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्यकी विधवाओंसे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये कहा और इस प्रकार नियोगसे विचित्रवीर्यके धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र हुए। एक दासीके पेटसे व्यासको तीसरा पुत्र विदुर पैदा हुआ। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इस कारण कुछ समयतक पाण्डुने राज्य चलाया। पश्चात् पाण्डुने अरण्यमें निवास किया और वहाँ ही वह मृत्युको प्राप्त हुए। धृतराष्ट्रके विषयमें यह कहा जाता है कि इनकी स्त्री गान्धारी गन्धारके राजाकी पुत्री थी। उससे इनको सौ पुत्र हुए। उनमें दुर्योधन और दुःशासन मुख्य थे। इन्हीं लोगोंने पाण्डवों अथवा पाण्डुके पुत्रोंके साथ महाभारतका युद्ध किया था। राजा पाण्डुसे पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई थी। इस युद्धके तथा अन्यान्य रसमय और हृदय-द्रावक वर्णन महाभारतमें दिये गये हैं।'

द्रौपदीके पाँच पति थे या एक ?

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्याभूषण)

महाभारतमें यह उल्लेख है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी थी। पर इस विषयमें विभिन्न विचारोंके महानुभावोंमें बड़ा मतभेद है। अतएव इस सम्बन्धमें कुछ विवेचन किया जाता है।

कई पाश्चात्त्य संस्कृतिसे प्रभावित, पर हिंदू प्राच्य संस्कृतिसे भी प्रेम रखनेवाले महाशय पाश्चात्त्योंके समक्ष अपनी प्राच्य संस्कृतिको अपने परिष्कृत प्रकारोंसे इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि उन पाश्चात्त्योंकी हमारी पौरस्त्य संस्कृतिपर श्रद्धा बढ़े। पर वे उनके स्वपरिष्कृत प्रकार अमौलिक होनेसे हमारे शास्त्र और इतिहासको सर्वथा विरूप कर दिया करते हैं। हम चाहते हैं कि ऐसे परिष्कार उनमें किये जायँ कि 'साँप भी मर जाय, लाठी भी न टूटे।'

आज हम उन्हीं पाश्चात्त्य संस्कृतिसे प्रभावित महाशयोंका द्रौपदीविषयक आख्यानपर उसके एकपतिकत्वार्थ किया हुआ परिष्कार-प्रकार उपस्थित करते हैं। उसके अनन्तर हम उसपर शास्त्राविरोधपूर्वक उसके एकपतिकत्वका प्रकार लिखेंगे। उन लोगोंका कथन प्रायः यह होता है—

द्रौपदीके एकपतिकत्वका सुन्दर प्रकार

"परमात्मा तथा प्रकृतिकी कृति विचित्र है। प्रकृतिके गुणोंकी विचित्रतासे ही जीवके स्वभावकी विचित्रता भी नैसर्गिक है। अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार सब वैसे-वैसे कार्योंमें व्यापृत हुआ करते हैं। तब किसने, कब, कैसे क्या किया, यह बात बिना आधार किसीके द्वारा सहसा नहीं जानी जा सकती। उसी आधारको प्रामाणिक विद्वान् 'इतिहास' शब्दसे कहा करते हैं। आर्योंका प्राचीनतम पुरावृत्त ऋग्वेदमें मिलता है, उसके बाद 'रामायण', फिर 'महाभारत' में मिलता है—यह सब लोग निर्विवाद मानते ही हैं। परंतु वर्तमान कालमें 'महाभारत' जिस रूपमें उपलब्ध है, उसमें जैसे न माननेयोग्य उपाख्यान वर्णित किये गये हैं, वे सभी आर्योंकी रीति, व्यवहार तथा धर्म आदिमें भारतीयों तथा पाश्चात्त्योंके मनमें संदेह उत्पन्न कर दिया करते हैं। बहुत क्या कहा जाय ! वे—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनु० २। २०)

'पृथिवीमण्डलमें सभी लोग इस ब्रह्मर्षिदेशमें उत्पन्न ब्राह्मणसे अपना-अपना चरित्र सीखें' इस मनुकी उक्तिको भी खण्डित करवा दिया करते हैं।

पाठकगण पहले प्रातःस्मरणीयनामा द्रौपदीके पञ्चपतित्वको ही देखें—पतिव्रता वीराङ्गना द्रौपदी तथा संसारविश्रुत धर्मप्राण पाण्डवोंके चरित्रोंको—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

(महा० १। १९०। २)

इत्यादि पद्यके साधारण अर्थको भी न जाननेवाले लोगोंने दूषित कर दिया है, इसमें विद्वान् ही प्रमाण हैं।

वस्तुतः द्रौपदी अर्जुनकी ही पत्नी थी, अर्जुनने ही स्वयंवरमें लक्ष्य वेधकर प्रतिज्ञानुसार द्रौपदीका वरण किया था। उसने भी अर्जुनको ही जयमालासे अलंकृत किया था। द्रुपदकी इच्छा भी द्रौपदी अर्जुनको ही देनेकी थी, जैसे कि 'महाभारत' में कहा गया है—

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः॥
(१।१८४।८)

'राजा द्रुपदके मनमें सदा यही कामना थी कि मैं पाण्डुनन्दन अर्जुनके साथ द्रौपदीका विवाह करूँ, परंतु वे अपने मनोभावको प्रकट नहीं करते थे।' इसीलिये द्रुपदके मनोरथको जानकर युधिष्ठिरने धनुपसे लक्ष्यको नहीं वेधा, नहीं तो, वे भी समर्थ तथा ज्येष्ठ होनेसे अधिकारी थे। तभी युधिष्ठिरने अर्जुनसे ही द्रौपदीके साथ विवाहार्थ कहा था कि—

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी··· ··············।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः॥
(१।१९०।७)

'अर्जुन! तुमने द्रौपदीको जीता है। तुम अग्नि प्रज्वलित करो और विधिपूर्वक इस राजकन्याका पाणिग्रहण करो।'

'माता कुन्तीके वचनसे द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी बनी—यह बड़ा आश्चर्य है। जब कि माताकी वैसी इच्छा नहीं थी, तब ऐसा होना कैसे संगत हो सकता है? भीमसेन तथा अर्जुनने, द्रौपदीके लिये कुन्तीसे कहा था कि—'मातः! हम भिक्षा लाये हैं,' यह बात भी नहीं घट सकती। द्रौपदीको तो प्रतियोगितामें जीता गया था, भिक्षाकी तरह माँगा नहीं गया था, तब धर्मभीरु तथा सत्यवादी अर्जुन तथा भीमसेन द्रौपदीको झूठ-मूठ 'भिक्षा' कैसे कह सकते थे—यह बात विद्वानोंको सोचनी चाहिये।

'तो इसमें क्या रहस्य है? **'मातृदेवो भव'** यह वैदिक आदेश है। **'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** यह माताका वचन भी अवश्य कर्तव्य है। माताका आदेश यदि पाण्डव न मानें, तब भी प्रत्यवाय है, यदि उसे पालें तो अभूतपूर्व धर्मसंकट है। इधर व्याघ्र है, उधर नदी है। इस उभयतः पाशा-रज्जुने अल्पज्ञ तथा यथार्थताको न जाननेवालोंको मोहमें डाल दिया, जिससे उन्होंने मूल इतिहासमें कई काल्पनिक भाव निविष्ट कर दिये।

'केवल भारतवर्षमें ही स्त्रीका बहुपतित्व निन्दित नहीं, अपि तु अन्य देशोंमें भी निन्दित है। तब युधिष्ठिर आदिमें श्रीव्यासके वाक्योंमें एवं तात्कालिक सामाजिक रीतियोंमें वैसी सम्भावना नहीं हो सकती। तात्कालिक इतिहाससे भी स्त्रीका बहुपतित्व वा पञ्चपतित्व सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मणग्रन्थोंमें स्त्रियोंके बहुपतित्वका निषेध तथा कारणवश पुरुषकी बहुत पत्नियोंका विधान स्पष्ट तथा सहेतुक प्रतिपादित किया गया है। जैसे कि—

'ऋक् च वा इदमग्रे, साम च आस्ताम्, 'सैव' नाम ऋगासीत्, 'अमो' नाम साम। सा वा ऋक् साम उपावदत्-मिथुनं सम्भवाव प्रजात्या इति (शतपथ० ८।१।३।५)

न इत्यब्रवीत् साम, ज्यायान् वा अतो मम महिमा—इति।·····तस्माद् एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्या बहवः सहपतयः। (गोपथ ब्राह्मण ३।२०, ऐतरेय ब्रा० ३।२३)

यहाँपर सामका तीन ऋचाओंसे विवाह-सा बताया गया है, परंतु एक स्त्रीके बहुतपतित्वका निषेध किया गया है।

'तब यह द्रौपदीका पञ्चपतित्वका उपाख्यान सर्वथा काल्पनिक प्रतीत होता है। इसीलिये पाँच इन्द्रोंकी कथाका वर्णन, शिवद्वारा पाँच पतियोंका वर देनारूप उपाख्यान, बहुत पतियोंवाली नालायनी आदिका चरित्ररूप दृष्टान्त, युधिष्ठिर आदिके द्रौपदीसे एक-एक पुत्रका वर्णन किया गया है, पर यह सब अवैयासिक, अभारतीय एवं अधार्मिक है—यह निस्संशय है।

इससे महाभारतीय सारा ही उक्त उपाख्यान असत्य नहीं है, केवल शब्दोंका अर्थ ठीक-ठीक नहीं जाना गया। जैसे आजकल भी कोई अर्थानभिज्ञ व्यक्ति **'स्वसुर्जारः शृणोतु नः'**–(ऋ० द ५५।५), **'स्वसुर्यो जार उच्यते'** (ऋ० ६।५५।४) **'प्रजापतिः स्वदुहितृभ्यां दुराचचार'** ब्राह्मणभाग तथा पुराणोंमें उषा-सूर्यका सभापति-सभासमितिरूप अर्थ न जानते हुए बहिन-उपपति, ब्रह्मा, उसकी लड़की—ऐसा अर्थ करते हुए स्वयं भी भ्रान्त रहते हैं, दूसरोंको भी भ्रममें डालते हैं, वैसे ही—**'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** यहाँपर भी भुज धातु पालनार्थक है, उपभोगार्थक नहीं। 'तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृह-लक्ष्मीकी पालना करो।' यही कुन्तीका अभिप्राय था, जिसे आजकलके लोग नहीं समझ सके। 'भुङ्क्त' पद परस्मैपदका प्रयोग है, परस्मैपदमें पालन-अर्थ होता है, उपभोग नहीं। **'श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः'** (तै० ब्रा० ३।९।४।७) यहाँपर पत्नीसे गृह-लक्ष्मी माना गया है। **'पा रक्षणे'** धातुसे डति प्रत्ययमें निष्पन्न पति, शब्द भी पालनार्थक ही है, तब पाँचों पाण्डवोंने द्रौपदीका पतित्व-पालन स्वीकृत किया और माताका वचन अन्ततक पाला।

कई महोदय **'पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा'** (शतपथ ब्रा० २।६।२।१४) यहाँपर 'पतयः'में बहुवचन देखकर बहुपतित्व मानते हों, यह भी ठीक नहीं। 'आस्था-

स्त्र्यामेकस्मिन् बहुमन्यतरस्याम् (पा० १ । २ । ५८) इस सूत्रसे उक्त स्थलमें 'पति' शब्दमें बहुवचन जात्यभिप्रायसे है, व्यक्त्यभिप्रायसे नहीं। वस्तुतः युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पाँच रूपसे अवस्थित थे। वही एक ही अर्जुन युद्धमें स्थिर होनेसे 'युधिष्ठिर' थे, शत्रुके लिये भयानक होनेसे 'भीम' थे, नियोगसे उत्पन्न होनेसे कुल न होनेके कारण 'नकुल' थे, कृष्ण-सारथि, जो देव थे, उनसे युक्त होनेसे 'सहदेव' थे; द्रौपदीका पति अकेला वीरवर अर्जुन ही था—यह निर्विवाद है, शेष सब रावणके दस सिरोंके समान, वा कुम्भकर्णकी छः मासकी नींदके समान रूपक या काल्पनिक हैं।''

उपर्युक्त प्रकारका परिहार

यह अर्वाचीन विद्वानोंका कथन है। यह कल्पना साधारण लोगोंकी दृष्टिमें द्रौपदीको साध्वी या एकपतिका सिद्ध करनेके लिये है। इसके लिये हम इसकी स्तुति करते हैं, परंतु इसका आधार कल्पनामात्र तथा असत्य है, अतएव यह श्रद्धेय नहीं हो सकती।

यदि 'किसने कब क्या, कैसे किया इत्यादिको जाननेके लिये आधार इतिहास है तो उस विषयमें उसीको पूछना चाहिये; निराधार तथा इतिहासकर्तासे विरुद्ध कल्पना प्रामाणिक कैसे हो सकती है? इतिहासस्थित जो आचरण, वेदादि शास्त्रोंके वचनसे विरुद्ध हो, वह अवश्य ही अनादरयोग्य तथा अनाचरणीय तो हो सकता है, परंतु वेदादिसे विरुद्धता दीखनेपर भी इतिहासमें परिवर्तन करना कहाँतक उपयुक्त हो सकता है? उसी इतिहासमें धर्मप्राण युधिष्ठिरकी द्यूतक्रीड़ा भी देखी गयी है, उसमें **'अक्षैर्मा दीव्यः'** (ऋ० १० । ३४ । १३) यह वेदविरोध भी है। तो क्या वहाँ आलङ्कारिता ही सिद्ध कर दी जाय? ऐसा करनेपर तो इतिहासका रूप ही विरूप हो जायगा, और बड़ी अव्यवस्था हो जायगी। इस प्रकार तो सम्पूर्ण इतिहास ही अलङ्काररूप बन जायगा, जैसा कि कई पाश्चात्त्य और पाश्चात्त्य भावावेशित भारतीय विद्वान् बनाया करते हैं।

वस्तुतः जैसे व्याकरणमें उदाहरण और प्रत्युदाहरण भी हुआ करते हैं, उत्सर्ग और अपवाद भी हुआ करते हैं, वैसे ही वेदके भाष्यरूप पुराणेतिहासमें भी वेदादिके सिद्धान्तों-के उदाहरण-प्रत्युदाहरण तथा उत्सर्ग एवं अपवाद भी हुआ करते हैं। तभी तो 'गौतमधर्मसूत्र' में कहा गया है—**'दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम्। न तु दृष्टोऽर्थो वरो दौर्बल्यात्॥'** (१ । २) इसी प्रकार 'आपस्तम्बधर्मसूत्र'में भी कहा गया है—**'दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम्'** (२ । १३ । ७), **'तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते'** (२ । १३ । ८), **'तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानः सीदत्यवरः'** (२ । १३ । ९)। इतिहास आचरणके लिये सर्वथा आदर्श नहीं है। इसीलिये इतिहास देखकर अपना आचरण नहीं बनाया जा सकता। आचरणका निर्माण तो धर्मशास्त्रका अनुसरण करके ही किया जाता है। इतिहास तो मुख्यतः लोकमें घटी घटनाओं-का वर्णन प्रस्तुत करता है, लोकव्यवहार-व्यवस्था धर्मशास्त्रके अधीन रहा करती है। इसीलिये न्यायदर्शनमें कहा गया है—**यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य (वेदस्य), लोकवृत्तम् इतिहासपुराणस्य। लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः॥ तत्र एकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यते, इति यथाविषयम् एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवत्** इति (४ । १ । ६२)। इसीलिये **'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः'** (मनु० २ । १२) यहाँपर सत्पुरुषोंके आचारको तीसरे पदमें रखा गया है। धर्मलक्षणमें पूर्व पूर्व ही पर-परकी अपेक्षा बलवान् होता है। अतः अर्वाचीन विद्वानोंका यह प्रयास व्यर्थ है। तथापि उनसे उपक्षिप्त विषयपर भी विचार किया जाता है। वे लोग—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।
(१ । १९० । २)

—इस पद्यमें 'भुज्' धातुको परस्मैपद देखकर केवल उसके आधारपर कल्पनाका महल खड़ा करते हैं, परंतु उसका मूल शिथिल है, इसीलिये उस कल्पनाप्रासादको पाठकगण शीघ्र ही गिरता देखेंगे।

उनका अभिप्राय यह है कि—

'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'

यहाँपर **भुङ्क्त** यह परस्मैपद है। **'भुजोऽनवने'** (पा० १ । ३ । ६६) इस पाणिनिके सूत्रसे 'पालन' अर्थमें ही परस्मैपद होता है, खाने तथा उपभोग अर्थमें तो आत्मनेपद होता है। जैसे कि **'वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते'** यहाँपर 'भुज' धातुका आत्मनेपदमें उपभोग अर्थ है। **'ओदनं भुङ्क्ते'** यहाँपर खाना अर्थ है, इस कारण दोनों स्थलोंमें आत्मनेपद हुआ है, परंतु **'महीं भुनक्ति'** इस परस्मैपदमें तो भुज् धातुका पालन अर्थ है, इस प्रकार प्रकृत 'महाभारतके' पद्यमें भी **'भुङ्क्त'** यह परस्मैपदमें लोटके मध्यम पुरुषके बहुवचनका प्रयोग है। तब कुन्तीका यह अभिप्राय था कि 'तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृहलक्ष्मीको 'भुङ्क्त' अर्थात् पालो, उसकी रक्षा करो। यहाँ उपभोग अर्थ नहीं हो सकता, अन्यथा 'भुङ्ग्ध्वम्' इस प्रकार आत्मनेपद होना चाहिये था।

इस आशयपर हम विचार करते हैं। श्रीपाणिनिने अपनी 'अष्टाध्यायी' तथा 'गणपाठ'में उनके सहपाठी श्रीकात्यायनने अपने वार्तिकपाठमें जहाँ-तहाँ व्यास, शुक (४ । ३ । ९७) वासुदेव, अर्जुन (४ । ३ । ९८), युधिष्ठिर (८ । ३ ।

९५), साम्ब, गद, प्रद्युम्न, राम (४ । १ । ९६), अनिरुद्ध, नकुल, सहदेव (४ । १ । ११४) आदि महाभारतीय पात्रोंका नाम ग्रहण किया है। महान् ''महाभारत (६ । २ । ३८) इस अपने सूत्रमें महाभारतका भी स्पष्ट नाम लिया है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदव्यास आदि पाणिनिसे पूर्वकालीन थे। इसके अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरणसे पूर्व भी अन्य व्याकरण थे, यह बात अष्टाध्यायीमें उपलभ्यमान गार्ग्य, शाकटायन आदि नामोंसे जानी जाती है।

इससे स्पष्ट है कि अन्य व्याकरणमें पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग भी सम्भव है। इस प्रकार पाणिनिसे पूर्वकालीन मुनियोंकी पुस्तकोंमें भी अपाणिनीय प्रयोग हो सकते हैं, यह स्वाभाविक है। वे प्रयोग अशुद्ध नहीं माने जाते; किंतु यदि कोई अपाणिनीय प्रयोग पाणिनिसे अनुकूल न दिखायी पड़े तो वहाँ आर्ष मानकर उसका समाधान कर देना पड़ता है। परंतु जहाँ पाणिनिसे पूर्वोत्पन्न किसीके ग्रन्थमें बहुत स्थलोंपर पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग दिखलायी पड़े, तो वहाँ अनुमान करना पड़ता है कि तब पाणिनिसे अन्य कोई व्याकरण रहा हो, जहाँ पाणिनिका वह नियम स्वीकृत न किया गया हो अथवा वहाँ अनियम कर दिया गया हो। इसीलिये श्रीव्यासके लिये माहेन्द्र व्याकरणके अवलम्बनको बतानेवाला एक पद्य प्रसिद्ध है—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पाणिनीय व्याकरणमें पर्याप्त न्यूनता है, यद्यपि उसकी शैली असाधारण है। पाणिनिसे पूर्वकालीन श्रीव्यासने ऐन्द्र-व्याकरणका आश्रय लिया, उसमें इस प्रकारके बहुत-से प्रयोग थे, जो पाणिनिव्याकरणसे सिद्ध नहीं होते, यह उक्त पद्यसे प्रतीत होता है।

फलतः पाणिनिसे पूर्वकालीन श्रीवेदव्यासके बनाये हुए 'महाभारत'में भी पाणिनिके नियमसे विरुद्ध प्रयोग अवश्य हो सकते हैं। जैसे कि—'महाभारत' शान्तिपर्वमें—

ततो मामाह भगवानास्यं स्वं विवृतं कुरु।
विवृतं च ततो मेऽऽस्यं प्रविष्टा च सरस्वती॥
(३१८ । ७)

यहाँ 'मेऽऽस्यम्'का 'मे आस्यम्' यह छन्द है। यहाँपर **'एङः पदान्तादति'** (६ । १ । १०९) इस पाणिनिके सूत्रसे 'मेऽऽस्यम्'की सिद्धि कभी नहीं हो सकती; क्योंकि यहाँपर सामने 'ह्रस्व अकार' इष्ट है, किंतु उक्त पदमें दीर्घ आकार है, इससे स्पष्ट है कि श्रीपाणिनिके पूर्वज श्रीव्यासजीने इस संधिको या तो अन्य व्याकरणसे सिद्ध किया होगा, अथवा निरङ्कुशतावश उससे विरुद्ध प्रयोग किया होगा। इसी प्रकार प्रकृत विषयमें भी जानना चाहिये।

श्रीपाणिनिने 'भुज्' धातुको 'खाने' तथा 'उपभोग' अर्थमें ही आत्मनेपद किया है, 'पालन' अर्थमें तो उसने भुज् धातुको परस्मैपद ही किया है, परंतु पाणिनिसे पूर्वकालीन महाभारतमें तो स्वाभाविकतावश उस नियमकी अवहेलना हो सकती है, इस कारण उसमें भुज्धातुमें खाने तथा उपभोग अर्थमें आत्मनेपद भी हो सकता है, परस्मैपद भी। तो—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

—इसमें जो कि 'भुजोऽनवने' इस पाणिनि-सूत्रके बलसे 'पालन-रक्षण' अर्थ ही किया जाता है, वह ठीक नहीं; क्योंकि पाणिनिसे पूर्वकालीन 'महाभारत'में उस नियमका अनुवर्तन कैसे होगा ?

इसके अतिरिक्त **'छन्दोवत् कवयः कुर्वन्ति'** यह व्याकरणकी परिभाषा भी प्रसिद्ध है। वेदमें उपग्रह (परस्मैपद-आत्मनेपद) का व्यत्यय भी विख्यात ही है, तभी वहाँ कवि श्रीव्यासजीने 'भुङ्ग्ध्वम्'के स्थान 'भुङ्क्त' यह जोड़ दिया है। अन्य बात यह है कि अर्थमें दृष्टि रखनेवालेका शब्दद्दष्टिमें उतना आदर भी नहीं हुआ करता। इतिहास-पुराण 'अर्थप्रधान' प्रसिद्ध है, वेद 'शब्दप्रधान' तथा काव्य 'रस-प्रधान' प्रसिद्ध है। देखिये इसमें 'काव्यप्रकाश'का आरम्भ। इसी कारण अर्थदृष्टि रखनेवाले नैयायिकोंके लिये भी अतिशयोक्तिगर्भित यह प्रवाद प्रसिद्ध है—

'अस्माकूणां नैयायिकेषाम् अर्थरि तात्पर्यम् न तु शब्दरि', 'अस्माकूणामिति कथम् ? गुरूणामिति पथम्। नैयायिकेषामिति कथम् ? सर्वेषामिति पथम् ? शब्दरि कथम् ? छन्दसि इति पथम्। पथम्—इति कथम् ? कथम् इति पथम्।'

फलतः अर्थतात्पर्यवाले 'महाभारत'के वचनमें भी **'सर्वे समेत्य भुङ्क्त'** इसका अर्थ व्याकरणका विरोध होनेपर भी खाने वा उपभोग अर्थात् उपयोगमें हो सकता है।

इसमें अन्य प्रमाण भी हैं। वह यह कि महाभारतकारको जहाँ 'भुज्' धातुका खाना वा उपभोग अर्थ विवक्षित होता है, वे वहाँपर पाणिनिके अनुसार केवल आत्मनेपद नहीं करते, किंतु परस्मैपद भी करते हैं, आत्मनेपद भी जैसे कि—

यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नम्।
(१९४ । ७)

यहाँपर भुज् धातुका परस्मैपद है। 'तदन्नम्' इस अन्न पदकी संनिधिसे कोई भी पुरुष यहाँ 'पालन' अर्थ नहीं कर सकता, किंतु खाना वा उपभोग अर्थ ही करना पड़ेगा।

पाणिनिके अनुसार तो यहाँ 'बुभुजिरे' प्रयोग हो सकता है, परंतु वैसा नहीं है—यह प्रत्यक्ष ही है। इससे हमारी कही बात ठीक सिद्ध हुई। इसी प्रकार '**भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे**' यहाँ परस्मैपद होनेपर भी रक्षण अर्थ नहीं है, किंतु खाना वा उपभोग–उपयोग अर्थ है। इससे स्पष्ट है कि श्रीव्यास-जी खाने वा उपयोग अर्थमें जहाँ-तहाँ आत्मनेपद भी देते हैं, परस्मैपद भी। इससे परस्मैपदमें भी भुज् धातुका भक्षण वा उपभोग अर्थ सम्भव है। इस प्रकारके महाभारतके अन्य भी प्रयोग दिखलाये जा सकते हैं।

हमारे पास केवल यही अमोघ अस्त्र नहीं है कि श्रीव्यास-जी पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग भी करते हैं, प्रत्युत उसमें प्रकरण भी हमारे पक्षका अनुग्राहक है। '**यत्परः शब्दः स शब्दार्थः**' यह न्याय भी प्रसिद्ध है। शब्द जिस उद्देश्यसे प्रयुक्त किया जाता है, वही उसका अर्थ हुआ करता है। तब वहाँ ग्रन्थकारको भी पालन अर्थ इष्ट नहीं है, उस वाक्यका प्रयोग करनेवाली कुन्तीको भी वहाँ पालन अर्थ इष्ट नहीं है, कुन्तीके वाक्यके अर्थको जाननेवाले युधिष्ठिर आदिको भी वहाँ पालन अर्थ इष्ट नहीं है, और फिर 'पालन' अर्थ करनेसे वैसा आशय बतानेवालोंकी कोई इष्ट-सिद्धि भी नहीं है—यह आगेके विवेचनसे सिद्ध हो जायगा।

पूर्वपक्षवाले सज्जन अपने पक्षकी पुष्टिमें—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।
(१९० । २)

इस पाठको तो उद्धृत करते हैं, परंतु उसका पूर्वापर प्रकरण स्पष्टतया नहीं दिखलाते, जिससे अर्थका अनर्थ हो जाता है। अब वह प्रकरण दिखलाया जाता है, जिससे पूर्वपक्ष असिद्ध हो जाता है। आदिपर्वके १९० वें अध्यायका यह प्रथम पद्य है—

गत्वा तु तां भार्गवकर्मशालां पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ।
तां याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ ॥ १ ॥

इसका आशय यह है कि भीमसेन और अर्जुन द्रौपदीको अपने साथ लाकर प्रतिदिनकी तरह कहने लगे कि—मातः! हमलोग भिक्षा लाये हैं। 'प्रतिदिनकी तरह' कहनेका यह आशय है कि—वे प्रतिदिन भिक्षा लाकर कुन्तीको दिया करते थे, जैसे कि—

चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते।
निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि।
(१ । १५६ । ४-५)

पूर्व उद्धृत पद्यके आगे ही यह पद्य है—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।
(१९० । २)

इसका यह अर्थ है कि—कुन्ती कुटीके अंदर थी, उसने भिक्षा लेकर आये हुए पुत्रों–भीम-अर्जुनको नहीं देखा, इस कारण उनके साथ लायी हुई विशिष्ट भिक्षा द्रौपदीको भी नहीं देखा, इसलिये वह सदाकी भाँति भिक्षा जानकर [क्योंकि वह कुन्ती भी उनको भिक्षाके लिये गये हुए और बहुत देर बीत जानेपर भी उनको न आया देखकर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। जैसे कि—

अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्षकालेऽभिगच्छति।
(१८९ । ४४)]

—उनको सदाकी तरह कहने लगी कि तुम सब मिलकर '**भिक्षां भुङ्क्त**' भिक्षाका भोग—खाओ वा उपभोग करो।

क्या यहाँपर कोई मान सकता है कि कुन्तीको यहाँपर प्रतिदिन आनेवाली भिक्षाकी 'रक्षा' अभीष्ट थी? नहीं-नहीं, किंतु भिक्षाका उसको पूर्वकी भाँति उपभोग–उपयोग ही इष्ट था। इसके बाद उक्त पद्यका उत्तरार्ध यह है, जिसे पूर्वपक्षवाले जनताकी दृष्टिमें नहीं लाते—

पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णां कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥
(१९० । २)

इसका यह अर्थ है कि—जब कुन्तीने भिक्षाके रूपमें द्रौपदीको कुटीसे बाहर आकर देखा, तो पछताकर कहने लगी—'हा खेद! मैंने यह क्या कह दिया?' यदि उस कुन्तीको वस्तुतः ही 'भुङ्क्त' का अर्थ पालो अभीष्ट होता, तब उसे पछतानेका क्या अवसर था?

आगे तो इससे भी स्पष्ट कहा है—

साधर्मभीता परिचिन्तयन्ती तां याज्ञसेनीं परमप्रतीताम्।
पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती युधिष्ठिरं वाक्यमुवाच चेदम् ॥
(१९० । ३)

कुन्ती अधर्मके भयसे भीत हो गयी। द्रौपदी बहुत प्रसन्न थी। कुन्ती देवी द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास गयी और उनसे कहा। इस पद्यमें '**सा कुन्ती अधर्मभीता**' यह पद भी 'भुङ्क्त' का 'पालो' यह अर्थ हटा रहा है, अन्यथा वह यदि अपने पुत्रोंको द्रौपदीके पालनार्थ कहना चाहती थी, तब यहाँ 'अधर्म' क्या था? भिक्षाका वा द्रौपदीका सबके द्वारा पालन अधर्म नहीं था। अथवा—यदि कुन्तीको भिक्षाका भी 'रक्षण' इष्ट था, फिर द्रौपदीको देखकर उसका भी 'रक्षण' अर्थ इष्ट था, तो उसे अनृत-भाषणरूप अधर्मसे कोई भय नहीं था; क्योंकि यह एक प्रसिद्ध न्याय है—'**यत्परः शब्दः स शब्दार्थः**' शब्द जिस लक्ष्यसे कहा गया है, वही उसका अर्थ हुआ करता है।

इससे स्पष्ट है कि—कुन्तीको 'भुङ्क्त'का 'संरक्षण'अर्थ

नहीं, किंतु उपभोग-उपयोग अर्थ ही इष्ट था । यदि भिक्षा साधारण होती, तब तो सबके द्वारा उसका उपभोग-उपयोग करनेपर भी कोई अधर्म नहीं था, अपितु धर्म ही था, परंतु जब उस कुन्तीने भिक्षारूपमें द्रौपदीको देखा, तब सोचा कि—यदि इस द्रौपदीका सभी उपभोग-उपयोग करें, अर्थात् सभी उसके पति हो जायँ, तब तो अधर्म ही होगा; क्योंकि सुना जाता है—

'एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्या बहवः सहपतयः ।
(गोपथब्रा० ३ । २०; ऐत० ब्रा० ३ । २३)

यदि मैं (कुन्ती) 'भुङ्क्त' यह भिक्षाके लिये कहकर द्रौपदी-रूप भिक्षाके लिये अन्य प्रयोगको—चाहे वह समान आकारका पर भिन्नार्थक हो—करूँगी, तो असत्यका प्रसंग हो जानेसे अधर्म होगा; क्योंकि 'अर्थभेदसे ही शब्दभेद हुआ करता है । शब्दभेद हो जानेपर दो बार भिन्न-भिन्न बातें हो जानेसे असत्य उपस्थित हो जाता है । इस प्रकार असमंजसमें पड़ी हुई कुन्ती ही 'भुङ्क्त' इस शब्दका उपभोग अर्थ सिद्ध कर रही है—यह अत्यन्त स्पष्ट है ।

इसी कारण आगे उसने युधिष्ठिरके सामने स्वयं अपना प्रमाद स्वीकार किया है । जैसे कि—

इयं तु कन्या द्रुपदस्य राज्ञः तवानुजाभ्यां मयि संनिविष्टा ।
यथोचितं पुत्र मयापि चोक्तं समेत्य भुङ्क्तेति नृप प्रमादात् ॥
(१९० । ४)

कुन्तीने कहा—'युधिष्ठिर ! यह द्रुपदराजकन्या द्रौपदी है । तुम्हारे छोटे भाई भीम और अर्जुनने इसे भिक्षा कहकर मुझे समर्पित किया और मैंने भी भूलसे अनुरूप उत्तर दे दिया कि तुम सब मिलकर इसको उपभोग करो । यहाँपर 'प्रमादात्' यह शब्द 'भुङ्क्त'का उपभोग अर्थ ही कुन्तीको विवक्षित था, 'रक्षण' अर्थ नहीं—यह स्पष्ट कह रहा है; क्योंकि किसी स्त्रीकी रक्षार्थ आज्ञा देना प्रमाद नहीं हो सकता । उपभोग अर्थ होनेपर तो एक स्त्रीके साथ बहुतोंका उपभोग अशास्त्रीय होनेसे उस कुन्तीकी दृष्टिमें प्रमाद स्पष्ट ही है; क्योंकि वह पाण्डवोंके गत जन्मका वृत्त नहीं जानती थीं । इसलिये वह उसे अधर्म जानती हुई युधिष्ठिरको फिर कहने लगी—

मया कथं नानृतमुक्तमद्य भवेत् कुरूणामृषभ ब्रवीहि ।

'कुरुश्रेष्ठ ! बताओ, अब मेरी बात झूठी न हो ।' 'ब्रवीहि' यह प्रयोग भी पाणिनिसे विरुद्ध है—यह बात भी पूर्वपक्षियोंको याद रखनी चाहिये ।—

'पाञ्चालराजस्य सुतामधर्मो न चोपवर्तेत न विभ्रमेच्च ॥
(१९० । ५)

जिससे इस पाञ्चालराजकन्याको न तो पाप लगे, न नीच योनिमें भटकना पड़े । इस कुन्तीके वाक्यसे भी हमारा पक्ष सिद्ध होता है ।

ग्रन्थकारको भी यही उपभोग अर्थ 'भुङ्क्त' का इष्ट है; क्योंकि वह अपने पात्रके द्वारा अपने अभिलषित अर्थको ही कहलवाता है । अथवा ग्रन्थकारका अपना अभिलषित अर्थ हो ही क्या सकता है ? उसे तो इतिहासके सम्पादक होनेसे वही लिखना है जो कि इतिहासमें हो चुका है । 'इति ह आस—इतिहासः' हो चुके हुएका नाम इतिहास होता है । तब वह उसके परिवर्तनमें अधिकारी ही कैसे हो सकता है ? इस प्रकार पूर्व समयमें द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह हुआ, तभी तो इतिहासके सम्पादक श्रीकृष्णद्वैपायनने उसमें ग्रन्थबद्ध किया ।

अब फिर प्रकरणपर आना चाहिये । युधिष्ठिर आदिको भी मातासे कहे हुए 'भुङ्क्त' पदका उपभोग ही अर्थ इष्ट है । इसीलिये युधिष्ठिरने द्रुपदको कहा था—

सर्वेषां महिषी राजन् द्रौपदी नो (—अस्माकं पञ्चानां) भविष्यति ।
एवं प्रव्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशाम्पते ॥
(१९४ । २३)

एष नः समयो राजन् रत्नस्य सहभोजनम् ।
न च तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥
सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम् ।
न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
एवं चैव वदत्यम्बा मम चैतन्मनोगतम् ॥
(१९४ । २५, २९-३०)

'राजन् ! द्रौपदी हम सभी भाइयोंकी पटरानी होगी, मेरी माताने पहले ही हम सब लोगोंको ऐसी ही आज्ञा दे रक्खी है । महाराज ! हमलोगोंमें यह शर्त हो चुकी है कि दानको हम सब बाँटकर एक साथ उपभोग करेंगे । हे राजसत्तम ! हम अपनी उस शर्तको छोड़ना नहीं चाहते । महाराज ! धर्मका स्वरूप अति सूक्ष्म है । हम उसकी गतिको नहीं जानते ।XXमेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं बोलती और मेरी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं लगती । हमारी माताने हमें ऐसा ही करनेकी आज्ञा दी है और मेरे मनमें भी यही उचित जँचता है ।' **'मम चैतन्मनोगतम्'** की व्याख्या **'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'** । (अभिज्ञान-शाकुन्तल १ । २३) इन कालिदासके शब्दोंमें समझना चाहिये ।

इस प्रकार युधिष्ठिरने श्रीव्यासजीको भी कहा था—

गुरोर्हि वचनं प्राहुर्धर्म्यं धर्मज्ञसत्तम ।
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः ॥
(१९५ । १६)

'धर्मज्ञश्रेष्ठ व्यासजी ! गुरुजनोंकी आज्ञाको धर्मसंगत बताया गया है और समस्त गुरुओंमें माता परम गुरु मानी गयी है ।

सा चाप्युक्तवती वाचं भैक्षवद् भुज्यतामिति ।
तस्मादेतदहं मन्ये परं धर्मं द्विजोत्तम ॥
(१९५ । १७)

हमारी उस माताने कहा है कि तुम सब लोग भिक्षाकी भाँति इसका उपभोग करो, अतः द्विजश्रेष्ठ ! हम सबके साथ होनेवाले विवाहको हम परमधर्म मानते हैं ।

यह वचन युधिष्ठिरने जो कहा, उसका कारण यह है कि—**'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया'** (रघुवंश १४ । ४६) **'अमीमांस्या गुरवः'** (चाणक्यसूत्र ४२१) अर्थात् गुरुओंकी बातपर विचार नहीं करना चाहिये । यदि कोई उनकी आज्ञा अनुचित भी है, तो उसका उत्तरदायित्व उनपर होगा, उसका पाप-पुण्य उन्हें ही होगा, हमें नहीं । इसीलिये 'तैत्तिरीयोपनिषद्'में कहा है—**'मातृदेवो भव'** (१ । ११ । १२) ।

इससे पूर्व युधिष्ठिरने जो कि—

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी
त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री ।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह
गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः ॥
(१९० । ७)

अर्जुनको यह कहा था कि द्रौपदीको तुम ही जीत लाये हो, अतः तुम ही इससे विवाह करो, यह कथन अर्जुनकी परीक्षाके लिये हो सकता है । तभी तो अर्जुनने **'मातृदेवो भव'** (तै० १ । ११ । २) इस वैदिक आदेशके अनुसार कहा था कि—

'मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं
कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः ।
भवान् निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥
अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे
पश्चादयं सहदेवस्तरस्वी ।
(१९० । ८-९)

अर्थात् हम सब ही माताकी आज्ञाके अनुसार इसके स्वामी बनेंगे । इस प्रकार अर्जुनकी परीक्षाके समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने भी स्वयं इसका अनुमोदन किया और कहा—

सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा ॥
(१९० । १६)

'कल्याणमयी द्रौपदी हम सब लोगोंकी भार्या बनेगी ।' कुन्तीने भी युधिष्ठिरकी तरह ही श्रीव्यासदेवको कहा—

एवमेतद् यथा प्राह धर्मचारी युधिष्ठिरः ।
अनृतान्मे भयं तीव्रं मुच्येऽहमनृतात् कथम् ॥
(१९५ । १८)

धर्मका आचरण करनेवाले युधिष्ठिरने जैसा कहा है, वह ठीक है । मुझे झूठसे बड़ा भय लगता है । बताइये—मैं झूठसे कैसे बचूँगी । इससे स्पष्ट है कि—'भुङ्क्त' का ग्रन्थकारके मतमें, कुन्तीके मतमें तथा युधिष्ठिर आदिके मतमें समान ही 'उपभोग' अर्थ है । पूर्वपक्षवालोंके अनुसार 'रक्षण' अर्थ माननेपर भी कोई लाभ नहीं, तब तो वह द्रौपदी सब पाण्डवोंसे मिलकर ही संरक्षणीय ही हो जायगी । उसके साथ **'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** इस पूर्वपक्षवालोंसे सम्मत माताकी आज्ञाको सूचित करनेवाले वचनके अनुसार अर्जुन भी विवाह नहीं कर सकेगा । वह भी सारी आयु उसे पाल ही सकता है, न उसका उपयोग कर सकता है, न उससे पुत्र ही उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि कुन्तीका यह आदेश अर्जुनके लिये कुछ विशेषता नहीं बतलाता, किंतु सभीका द्रौपदीके साथ समान ही व्यवहार कहता है ।

अथवा यदि कुन्ती पाण्डवोंको **'भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** (१९३ । २) यह वचन न कहती, तो क्या अर्जुनके साथ विवाही हुई भी उसकी रक्षा सभी भाई न करते ? अवश्य करते । इस कारण पूर्वपक्षवालोंकी यह कल्पना कोई महत्त्व नहीं रखती, अतः उसका यह कल्पना-प्रासाद यहाँ गिर पड़ा है, यह पाठकोंने देखा होगा ।

पूर्वपक्षवालोंने 'तैत्तिरीय'के प्रमाणसे पत्नीको 'गृहलक्ष्मी' बताया है, तब जब उनके मतके अनुसार कुन्ती द्रौपदीको सबकी 'गृहलक्ष्मी' बनाना चाहती है और उसके पालनका आदेश देती है, जब पूर्वपक्षवालोंके अनुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पञ्चभावसे रहते थे, तो वह भी सबकी वास्तविक पत्नी थी, वे भी उसके वास्तविक पति सिद्ध हुए, क्योंकि पूर्वपक्षके अनुसार पाँचोंका पञ्चत्व एक दूसरेमें है ।

जो कि यह कहा जाता है कि कल्पना करनेवालोंने मूलमें स्वसम्मत भाव मिला दिये सो यह बात प्रमाणहीन है, नहीं तो; महाभारतमें अग्निसे प्रकट हुई द्रौपदीको भी कल्पित मान लेना पड़ेगा । द्रौपदीकी तरह अन्य स्त्रियाँ भी कुरुवंशमें उस समय तीन-चार पतियोंवाली क्यों नहीं दिखलायी गयीं ? दुर्योधनकी स्त्री भानुमती भी सौ भाइयोंकी स्त्री क्यों नहीं बतायी गयी ? इससे स्पष्टतया यह 'अपवाद' है ।

इधर पद्यका—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।
(१९० । २)

इसका पूर्वार्ध वास्तविक मानकर—

'पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णां कष्टं मया भाषित-मित्युवाच ।' (१९० । २)

उसके उत्तरार्धको काल्पनिक मानना पूर्वपक्षवालोंका अर्धजरतीय न्यायका अवलम्बन करना है। यदि पूर्वार्ध ही अनालङ्कारिक वा अप्रक्षिप्त वा वास्तविक है, इसीलिये उद्धृत किया जाता है, उसीसे अपने पक्षकी पुष्टि समझी जाती है, तो वह भी हमारे पक्षकी परिपुष्टि करता है—यह बात विज्ञ पाठक देखें।

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।

यही पूर्वपक्षसम्मत पूर्वार्ध है। इसमें **'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ'** ये पद साभिप्राय हैं। कुटीमें होनेसे, और पुत्रों (भीम, अर्जुन) को न देखनेसे ही कुन्तीने उक्त प्रमाद किया, यह बात उक्त पदोंसे सिद्ध होती है, नहीं तो, **'कुटीगता सा' 'पुत्रौ अनवेक्ष्य'** इन पदोंके कहनेकी आवश्यकता ही नहीं थी; क्योंकि इन पदोंके असाभिप्राय होनेसे अपुष्ट दोष उपस्थित हो जाता है। इधर इस पद्यसे पूर्वके पद्यमें प्रतिदिनकी भिक्षाका संकेत किया गया है, उधर इस पद्यमें कुन्तीके कुटीमें होनेसे उसके द्वारा पुत्रोंको न देखना कहा है, तब उस भिक्षाका कुन्तीद्वारा कहे हुए **'भुङ्क्त'** इस पदसे प्रतिदिनकी तरह **'उपभोग'** अर्थ ही अभीष्ट है, 'संरक्षण' अर्थ नहीं। प्रतिदिनकी भिक्षाका 'संरक्षण नहीं होता था, किंतु परस्पर यथाविभाग उपभोग ही किया जाता था।

हाँ, यदि कुन्तीके द्वारा पुत्रोंका अनवेक्षण न होकर अवेक्षण-दर्शन होता, भिक्षाकी विलक्षणताका भी उसे ज्ञान होता, तब कुन्ती अवश्य यह न कहती। अतः 'भुज्' धातु यहाँ 'पालनार्थक है' तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृहलक्ष्मीको पालो, यह कुन्तीका अभिप्राय था, यह पक्ष सिद्ध नहीं हुआ। इसमें उसी पूर्वपक्षवालोंसे उद्धृत, अप्रक्षिप्त तथा अनालङ्कारिक पद्यके **'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ'** इस प्रथम पादमें आये हुए **'कुटीगता' 'अनवेक्ष्य पुत्रौ'** ये ग्रन्थकारके पद प्रमाण हैं।

तात्पर्य यह है कि—यदि कुन्ती कुटीसे बाहर होती, भिक्षाको भी वह देख लेती, तब तो कुन्तीको 'उपभुङ्क्त' वही अर्थ विवक्षित होता, जो पूर्वपक्षवाले करते हैं, पर अब जब कुन्ती कुटीमें है, उसने पुत्रोंके साथकी भिक्षा भी नहीं देखी, तब किसी भी युक्तिसे कुन्तीका वह अभिप्राय कल्पित नहीं हो सकता। उसी कारण पूर्वपक्षवालोंको बलात् इस अभिप्रायको दिखलानेके लिये अर्थ 'करनेके अवसरपर अपने दिये हुए इस पद्यका प्रथमपाद लोकदृष्टिसे छिपाना पड़ जाता है। प्रथमपादके सामने रखनेपर वे अपने कहे हुए उक्त अभिप्रायको कदापि नहीं निकाल सकते। पूर्ण श्लोकके चार पादोंमें उन्हें केवल दूसरा पाद ही अपना अभिप्रेत अर्थ सिद्ध करनेके लिये लोकदृष्टिमें रखना पड़ता है। अब इस पादके शेष तीन पाद कौन-से हैं—यह बताना उनका कर्तव्य रह जाता है।

कई अन्य महाशयोंका यह अभिप्राय है कि—'जब अर्जुनने मत्स्यवेध किया था, तब धर्मसे वह द्रौपदीका पति हो गया, तब युधिष्ठिरका अनुजवधूके साथ सम्बन्ध कैसे युक्त हो सकता है?' इसपर जानना चाहिये—यदि मत्स्यवेधनमात्रसे अर्जुन पति तथा द्रौपदी पत्नी होती, तो उसके बाद विवाहकी आवश्यकता क्यों होती? जैसे कि युधिष्ठिरने कहा था कि "**त्वया जिता पाण्डव याज्ञसेनी**···

प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः ।"
(१९ । ७)

इससे स्पष्ट है कि विवाह ही पति-पत्नीत्वका साधक होता है। वह कुन्तीके पूर्ववचनसे द्रौपदीका सब पाण्डवोंसे भिन्न-भिन्न हुआ, केवल अर्जुनसे ही नहीं हुआ। तब वह पत्नी भी पाँचोंकी हुई, एकमात्र अर्जुनकी नहीं।

एक यह भी प्रश्न सम्भव है कि—'विवाहिता कन्या नहीं रह जाती, तब युधिष्ठिर आदिसे विवाहित हुई, उसका अकन्या होनेसे भी भीम आदिसे विवाह कैसे हुआ?' इसमें यह जानना चाहिये कि यह अपवादस्थल है; क्योंकि—वह विवाहित भी पुनः कन्याभावको प्राप्त कर लेती थी। जैसे कि 'महाभारत'में कहा गया है—

'क्रमेण चानेन नराधिपात्मजाः' (भीमार्जुननकुलसहदेवाः)
वरस्त्रियास्ते जगृहुस्तदा करम् ।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्धनाः ॥
(१ । १९७ । १३)

इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं
जगाद देवर्षिरतीतमानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा
बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥
(१ । १९७ । १४)

क्रमसे कौरववंशकी वृद्धि करनेवाले, उत्तम शोभा धारण-करनेवाले महारथी राजकुमार पाण्डवोंने एक-एक दिन परम-

सुन्दरी द्रौपदीका पाणिग्रहण किया। देवर्षि नारदने वहाँ घटित हुई इस अद्भुत उत्तम और अलौकिक घटनाका वर्णन किया है कि 'सुन्दर कटिप्रदेशवाली महानुभावा द्रौपदी प्रतिबार विवाहके दूसरे दिन कन्याभावको प्राप्त हो जाती थी।'

दिव्यदृष्टि श्रीव्यासजीने अग्निसे उत्पन्न दिव्य कन्या द्रौपदीके कन्यात्वको दिव्यदृष्टिसे देख लिया, अतएव उन्होंने वैसा लिखा। तब इस प्रकार अलौकिक होनेसे द्रौपदीका विवाह सामान्य विवाहका विषय नहीं, अतः यह अपवादस्थल ही जानना चाहिये। न तो यह दूसरेसे अनुकरणीय ही है और न यह प्रथा ही उस समय प्रचलित थी।

यह जो कहा जाता है कि 'कृष्णा तो प्रतियोगितामें जीती गयी थी, भिक्षाकी तरह नहीं माँगी गयी थी। तब धर्मभीरु एवं सत्यवादी अर्जुन अथवा भीम द्रौपदीको 'भिक्षा' शब्दसे कैसे कह सकते थे?' इसपर जानना चाहिये कि क्षत्रिय होनेसे उन्हें भिक्षाका अधिकार ही नहीं था, तब वे भिक्षाके लिये ही कैसे जाते थे? वस्तुतः यहाँ रहस्य यह है कि पाण्डवोंने लाक्षागृहसे अपने-आपको बचाकर तब दुर्योधनको प्रतारित करनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया था। ब्राह्मण-रूपको ही प्रसिद्ध करनेके लिये वे भिक्षाका अभिनय करते थे, जिस किसी भी लायी हुई वस्तुको 'भिक्षा' शब्दसे पुकारा करते थे। इसीलिये 'महाभारत'में कहा है—

तत्र भैक्षं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः।
तान् सम्प्राप्तांस्तथा वीरांज्ज्ञिरे न नराः क्वचित्॥
(१।१८४।७)

वहाँ ब्राह्मणवृत्तिका आश्रय ले वे भिक्षा माँगकर लाते थे। इस प्रकार वहाँ पहुँचे हुए पाण्डववीरोंको कोई भी मनुष्य पहचान न सके। यहाँ स्पष्ट है कि उन्होंने भिक्षाको अपने छिपानेका साधन बनाया था। ब्राह्मणरूपकी प्रसिद्धिमें ही अर्जुन आदिने द्रौपदीको प्राप्त किया था। भार्गवकी कर्मशालामें प्राप्त होकर जनदृष्टिमें अपने-आपको ब्राह्मण परिचायित करनेके लिये ही जैसे वे प्रतिदिन 'हम भिक्षा लाये हैं' यह कहा करते थे, वैसे ही द्रौपदीके लानेके दिन भी कुटीसे बाहर ही उन्होंने ऊँचे स्वरसे 'हम भिक्षा लाये हैं' यह कहा। यह सब कुछ **'चारैः पश्यन्ति राजानः'** इस नीतिसे राजा दुर्योधनकी दृष्टिमें (क्योंकि वे लोग भी वहाँ उपस्थित थे) अपने छिपानेके लिये था। तभी दुःशासनने भी पीछेसे कहा था—

यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद् विन्देत द्रौपदीं न सः।
(२०२।११)

अर्थात् यदि अर्जुनने ब्राह्मणका रूप धारण न किया होता, तब वह द्रौपदीको न पा सकता।

अर्जुन 'धर्मभीरु' तथा सत्यवादी'—ये दो विशेषण अपने पक्षके सिद्ध करनेके लिये ही दिये गये मालूम होते हैं। परंतु अर्जुन आदि इस अपने ब्राह्मणत्वको परिचायित करनेके लिये आपत्कालकी नीतिके अनुसार सर्वत्र असत्य ही बोलते थे। तभी जब ब्राह्मणवेषधारी अर्जुनने लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको जीता था, तब कर्ण आदि-आदि उससे युद्ध करने लगे। उस समय कर्णने उससे पूछा कि—'तुम ब्राह्मण हो वा कोई अन्य?'

तमेवंवादिनं तत्र फाल्गुनः (अर्जुनः) प्रत्यभाषत।
ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वरः।
(१।१९२।२०-२१)

सर्वशस्त्रभृतां वरः। (१।१९०।२०-२१)

यहाँपर बताना चाहिये कि—'धर्मभीरु' और 'सत्यवादी' अर्जुनने अपने आपको ब्राह्मण सत्य कहा वा असत्य?

एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात् कर्णो न्यवर्तत।
ब्राह्मं तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः॥
(१८९।२२-२३)

यह असत्य भाषण अपने ब्राह्मणत्वके परिचायित करनेके लिये दुर्योधनकी दृष्टिमें (क्योंकि वे लोग भी वहाँ उपस्थित थे) अपने-आपको छिपानेके लिये था। जब द्रौपदीको जीत-कर वे घरमें ले गये, तब कुटियासे बाहर ही उन्होंने ऊँचे स्वरसे (क्योंकि कुन्ती उस समय अंदर थी) 'भिक्षा लानेके' शब्दका उच्चारण किया; तब अनुसंधानके लिये आये हुए लोगोंने उन्हें 'भिक्षा' शब्दसे वास्तविक ब्राह्मण माना। सायंकाल वे फिर भिक्षा माँगनेके लिये गये। जैसे कि—

सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी
जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ।
भैक्षं चरित्वा तु युधिष्ठिराय
निवेदयाञ्चक्रुरदीनसत्त्वाः॥
(१।१९१।३)

सन्ध्या होनेपर शत्रुओंको मथ डालनेवाले भीमसेन, अर्जुन और महानुभाव नकुल-सहदेवने भिक्षा लाकर युधिष्ठिर-को निवेदन की। यह सुनकर संदेहमें पड़े हुए द्रुपदने भी उनसे पूछा—

कथं जानीम भवतः क्षत्रियान् ब्राह्मणानुत।
(१।१९४।२

जहाँ इस प्रकरणसे कर्मसे वर्णव्यवस्था हटती है, वहाँ द्रौपदीको 'भिक्षा' शब्दसे कहनेपर भी प्रकाश पड़ता है।

जो यह कहा जाता है कि—'द्रुपद अर्जुनको ही द्रौपदीको देना चाहता था, यही जानकर युधिष्ठिरने लक्ष्यवेध नहीं किया, नहीं तो, वह भी समर्थ था और बड़ा भाई होनेसे अधिकारी भी था, सो यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती, प्रत्युत पूर्वपक्षसे उपस्थापित पद्यसे भी विरुद्ध है। 'महाभारतमें यह संकेत ही नहीं दिया गया कि युधिष्ठिर आदि इस विषयमें द्रुपदकी अभिलाषा जानते थे'—

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः॥
(१। १८४। ८)

इस पद्यके चौथे पादमें तो यह बताया है कि—द्रुपद अपनी उक्त अभिलाषाको किसीके आगे प्रकट नहीं करते थे। यही बात—

अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञो
हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गः।
यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहु-
र्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम्॥
(१। १९२। १९)

इस पद्यमें भी 'हृदि स्थितः' इस पदसे अप्रकट, द्रुपदके हृदयस्थित मनोरथको युधिष्ठिर कैसे जान गये, कर्ण आदि क्यों न जान सके—इस प्रकार यह पद्य उद्धरण करनेवालोंके ही पक्षको ही काट रहा है।

इधर युधिष्ठिरके लिये 'समर्थ' यह पद भी महाभारतसे विरुद्ध है। युधिष्ठिरने जो कि लक्ष्यवेध नहीं किया, उसमें कारण उसका असामर्थ्य ही था। इसलिये श्रीद्रोणाचार्यने भी वैसी सामर्थ्य न होनेसे युधिष्ठिरको इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण कर दिया था। जैसे कि—

नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन्।
(१३१। ७७)।

अर्जुनने जो कि इसमें साहस किया था, उसका कारण उसकी सामर्थ्य थी—यह द्रोणाचार्यकी परीक्षामें १३५ अध्यायमें स्पष्ट है, इस कारण अर्जुनने ही लक्ष्यवेध किया था।

यत् पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्रै
राधेयदुर्योधनशल्यशाल्वैः।
तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः
कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात्॥
(१। १८७। १९)

इस प्रकार जिस धनुषको कर्ण तथा दुर्योधनादि डोरीसे नहीं जोड़ सके, तब उनसे न्यूनशक्तिवाले युधिष्ठिरकी भला उस लक्ष्यभेदमें क्या शक्ति थी?

इधर यह भी जानना चाहिये कि यदि द्रौपदीकी पञ्चपतिकी कथा कल्पनामात्र या असत्य होती, तो असत्यका मूल स्थिर नहीं हुआ करता। उसके लिये 'महाभारत' या अन्य ग्रन्थमें कोई संकेत होता, अथवा कहीं असङ्गति पड़ती, पर कहीं भी असंगति नहीं दीखती। 'प्रत्युत द्रौपदीका पञ्चपतित्व अन्य प्रकरणोंमें कई बार आवृत्ति किया गया है। इस कारण यहाँ अवैयासिकता भी नहीं है। तात्पर्यनिर्णायक लिङ्गोंमें उपक्रम, उपसंहार तथा अभ्यास आदि मुख्य हुआ करते हैं, अभ्यासका अर्थ है पुनः-पुनः आवृत्ति। तो द्रौपदीका पञ्चपतित्व महाभारतमें बहुत बार आवृत्त हुआ है। उसके विवाहके उपक्रममें उसका पञ्चपतित्व बतलाया ही जा चुका है, अब उपसंहारमें भी उसका संकेत देखना चाहिये। (क) महाप्रस्थानमें जब पाण्डव हिमालयकी ओर गये, तब मार्गमें सबसे पूर्व द्रौपदी गिरी। भीमसेनने उसका कारण पूछा '(महाप्रस्थानिकपर्व २। ३-५)। तब युधिष्ठिरने बताया—

पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये।
तस्यैतत्फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम॥
(महा० २। ६)

इसका पक्षपात अर्जुनमें अधिक था—इसलिये गिरी है। यहाँ द्रौपदीका पञ्चपतित्व स्पष्ट है। यदि अर्जुन ही एकमात्र उसका पति होता, पाँचों पाण्डव नहीं, तब उसका अर्जुनमें पक्षपात उचित ही था। पाँचोंकी पत्नी होनेपर तो उसका एकके साथ पक्षपात अनुचित होनेसे गिरना सोपपत्तिक है। तब द्रौपदीका पाँचोंकी पत्नी होना महाभारतके तात्पर्यका विषय सिद्ध हुआ।

इस प्रकार जहाँ उपक्रम-उपसंहारमें उसका पञ्चपतित्व स्पष्ट है, वैसे ही अन्य प्रकरणोंमें भी उसकी बहुत आवृत्ति हुई है। दिङ्मात्र प्रदर्शन किया जाता है। (ख) नारदजीने पाँचों पाण्डवोंको कहा था—

पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी।
यथा वो नात्र भेदः स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्॥
(आदिपर्व २०७। १८)

'यह यशस्विनी पाञ्चाली आप पाँचोंकी एक पत्नी है, जिस प्रकार आपलोगोंमें परस्पर भेद—फूट न हो जाय, वैसी नीति कर लें।' यदि यह पाँचोंकी पत्नी न होती, तो नारदजीका यह कथन व्यर्थ था। (ग)

तै (पाण्डवैः) लब्धा द्रौपदी भार्या द्रुपदश्च सुतैः सह।
सहायः पृथिवीलाभे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥
(सभापर्व ४८ । ४)

'उन पाँचोंने पत्नीरूपमें द्रौपदीको प्राप्त किया है' यह शकुनिने दुर्योधनको पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीके लिये कहा है।

(घ) द्यूतक्रीड़ाके समय शकुनिने युधिष्ठिरको कहा---

अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः।
पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥
(२ । ६५ । ३२)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुनकी पत्नी होती तो शकुनि युधिष्ठिरको द्रौपदीका दाँव लगानेके लिये न कह सकता। युधिष्ठिरके भी उसके पति होनेसे वह उससे स्वेच्छा व्यवहार कर सकता है, तब उसका पञ्चपतित्व स्पष्ट हो गया। महाभारतकी यह प्रसिद्ध घटना कभी आलङ्कारिक नहीं हो सकती।

(ङ) द्रौपदीने जुएमें हारकर दुर्योधनके दास्यसे अपने-आपको छुड़ानेके लिये भीष्म आदिसे पूछा कि 'जब युधिष्ठिर द्यूतमें पहले अपने-आपको हार गये थे, तब उनको मुझे दाँवपर लगानेका क्या अधिकार था ? इसमें आप व्यवस्था दीजिये।' तब श्रीभीष्मने उत्तर दिया कि—

न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥
(२ । ६७ । ४७)

'पति स्वयं पराजित होकर स्त्रीका स्वामी न होनेसे उसे दावमें नहीं लगा सकता, अथवा स्त्री सभी अवस्थाओंमें भर्ता-के अधीन होती है और भर्ता स्वयं पराजित होकर भी स्त्रीमें स्वामित्व होनेसे उसे दाव लगा सकता है—यह मैं धर्मकी सूक्ष्मतावश व्यवस्थापित नहीं कर सकता।' इस भीष्म-वचन-से भी द्रौपदी युधिष्ठिरकी भी स्त्री सिद्ध होती है। तब एकमात्र अर्जुन ही उसका पति 'महाभारत' को इष्ट नहीं।

(च)—

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा
भर्तॄन् कटाक्षैः कुपितानपश्यत्।
सा पाण्डवान् कोपपरीतदेहान्
संदीपयामास कटाक्षपातैः ॥
(२ । ६७ । ४२)

वैशम्पायनके इस वचनमें क्रोधमें भरे हुए द्रौपदीने अपने पतियोंकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखा······। 'सा भर्तॄन् पाण्डवान्' इस पदसे द्रौपदी पाँचोंकी पत्नी ग्रन्थकारको सम्मत सिद्ध होती है।

(छ)—

साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन (युधिष्ठिरेण) कृतः पणः॥
(२ । ६८ । २३)

एतत् सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्।
(२।६८।२४)

विकर्णके इस वचनसे द्रौपदी सब पाण्डवोंकी समान पत्नी सिद्ध होती है।

(ज) कर्णने कहा था—

एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन।
इयं (द्रौपदी) त्वनेक (पञ्च) वशगा बन्धकीति विनिश्चिता ॥
(२ । ६८ । ३५)

अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।
(२ । ६८ । ३६)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुनकी पत्नी होती, पाँचोंकी नहीं, तो कर्णको ऐसी निन्दा करनेका साहस न होता।

(झ) दुर्योधनने द्रौपदीको कहा था—

तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे
भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि
वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम् ॥
(२ । ७० । ३)

न विब्रुवन्त्यार्यसत्त्वा यथावत्
पतींश्च ते समवेक्ष्याल्पभाग्यान्।
(२ । ७० । ६)

यहाँपर तृतीय पद्यमें दुर्योधन द्रौपदीको सम्बोधित करके 'पति' शब्दका सम्बन्ध युधिष्ठिरके साथ करके युधिष्ठिरको उसका ज्येष्ठ पति बताता है और छठे पद्यमें 'ते पतीन्' इससे उसे पाँचोंकी पत्नी बता रहा है। इससे भी प्रकृतकी पुष्टि हो रही है।

(ञ) द्रौपदीने (२ । ७१ । २९-३० पद्यमें) अपनेमें युधिष्ठिरसे उत्पन्न हुए प्रतिविन्ध्य नामक पुत्रकी दासपुत्रता हटानेके लिये धृतराष्ट्रसे वर माँगा, फिर (७१ । ३२ पद्यमें) अवशिष्ट चार पाण्डवोंके दास्य हटानेके लिये दूसरा वर माँगा।

इससे स्पष्ट है कि वह केवल अर्जुनकी स्त्री नहीं थी, अपितु युधिष्ठिर आदि सबकी पत्नी थी।

(ट)—

महाप्राज्ञः सौमकिर्यज्ञसेनः
कन्यां पाञ्चालीं पाण्डवेभ्यः प्रदाय।
अकार्षीद् वै सुकृतं नेह किंचित्
क्लीबाः पार्थाः पतयो याज्ञसेन्याः॥
(२। ७७। १०)

यहाँ द्रौपदीको दुःशासनने पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी बताया है।

(ठ)—

कुन्ती वनवासके गमनके समय द्रौपदीको उपदेश देती है—

वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत्।
स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा॥
(२। ७९। ४)

न त्वां सन्देष्टुमर्हामि भर्तॄन् प्रति शुचिस्मिते।

यहाँके 'भर्तॄन्' इस बहुवचनसे द्रौपदी पाँचोंकी समान पत्नी सिद्ध होती है।

इस प्रकार 'महाभारतमें अन्यत्र भी पुनः-पुनः आवृत्ति-रूप अभ्याससे तथा उपक्रम-उपसंहार आदिसे स्पष्ट हो जाता है कि महाभारतकारको द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी वास्तविक ही पत्नी अभिप्रेत है, एकमात्र अर्जुनकी नहीं। जब पूर्वपक्षानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पञ्चभावसे थे, तब सबकी गृह-लक्ष्मी द्रौपदी भी उनकी वास्तविक पत्नी और वे भी सब उसके वास्तविक पति सिद्ध हुए, अन्यथा यदि पूर्वपक्षप्रोक्त व्युत्पत्तिके अनुसार अर्जुन ही पञ्चपाण्डवात्मक था, तो अर्जुनसे अतिरिक्त चार पाण्डवोंको भी आलङ्कारिक मानना पड़ेगा, पर पूर्वपक्षीको भी यह इष्ट नहीं। वैसे ही वह एक अर्जुनकी ही स्त्री थी, दूसरोंसे केवल 'पालनीय' थी, दूसरे उसके संरक्षक थे, वास्तविक पति नहीं, यह बात सिद्ध न हो सकी। इस कारण प्रत्येकसे द्रौपदीके पाँच पुत्र उत्पन्न होनेका वर्णन भी काल्पनिक सिद्ध नहीं हो सका (१। २२३। ७८–८०–८६)।

इसके अतिरिक्त उस कालके लोग 'नैकस्यै बहवः सह-पतयः' इस सिद्धान्तके भी जाननेवाले थे। यह सिद्धान्त उस समय अपरिचित नहीं था। तभी द्रुपद आदिने स्वयं भी कहा था।

एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन।
नैकस्या बहवः पुंसः।

(यह भी अपाणिनीय प्रयोग है।)

श्रूयन्ते पतयः क्वचित्। (१। १९४। २७)
लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात् ते बुद्धिरीदृशी॥
(१। १९४। २८)

—तथापि धर्मभीरु पाण्डवोंका उसके अनुसरणमें एक कारण है, वह है—

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।
(रघुवंश १४। ४६)

इस अर्थको बतानेवाले 'मातृदेवो भव' इस प्रबल वैदिक आदर्शका पालन। दूसरा कारण यह है कि—पाँचों पाण्डव पूर्वजन्ममें एक थे, तो वहाँ प्रेरणा भी वैसी होनी थी।

जो यह कहा जाता है कि—'शेष सब रावणके दस सिरों-की तरह कुम्भकर्णकी छः मासकी नींदकी तरह रूपक वा काल्पनिक है' इसपर यह जानना चाहिये कि रावणके दस सिर भी वास्तविक थे, तथा कुम्भकर्णकी छः मासकी नींद भी वास्तविक थी, इसपर अन्य किसी निबन्धोंमें विचार होगा। तब द्रौपदीको साध्वी अथवा एक पतिका सिद्ध करनेके लिये बताया गया उपाय कल्पित ही सिद्ध हुआ है, उसमें किसी प्राचीन या अर्वाचीनकी सहमति नहीं। जो कि नियोगसे उत्पन्न होनेसे 'न कुलमस्य' इस व्युत्पत्तिसे अर्जुनको 'नकुल' माना जाता है, यह भी संगत नहीं जान पड़ता। क्या नकुल-का यह नाम इसी कारण था? नियोगसे उत्पन्न भी कुलरहित नहीं हुआ करते। क्या एकमात्र नकुल ही नियोगोत्पन्न थे। यदि सभी, तो सभीको नकुल—कुलरहित क्यों नहीं कहा गया? क्यों क्षत्रिय वा कुरु माना गया। वस्तुतः यहाँ नियोग ही साध्य है, क्योंकि धर्म, इन्द्र, वायु आदि मनुष्य नहीं थे।

अब हम महाभारतके अभिप्रायानुसार द्रौपदीको एक पतिका एवं साध्वी सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, जिसमें न तो कहीं प्रक्षिप्तता बतानी पड़ती है, न आलङ्कारिकता ही और न कहीं असङ्गति ही पड़ती है। विज्ञ पाठकगण अब इस प्रकारकी भी परीक्षा करें।

पूर्वपक्षकी भाँति द्रुपदका भी यही आक्षेप था कि—

'अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम॥
(१९८। ७-८-९)

राजा द्रुपद योगविद्याके तत्त्वज्ञ ही नहीं थे, कुन्ती भी नहीं थी। वहाँपर योगिराज श्रीमान् व्यासजी उपस्थित हो

गये। उन्होंने कुन्तीसे कहा कि—तुमने जो सब पुत्रोंको अज्ञानसे कहा था कि—जो वस्तु तुम लाये हो, उसको 'समेत्य भुङ्क्त' विभक्त करके इकट्ठे उपभुक्त करो, तब एकके साथ द्रौपदीके विवाहमें तुम्हारा कथन अनृत—असत्य हो जायगा और अनृतमें दोष होगा। पर तुम डरो नहीं। तुम अनृतभाषणके दोषसे मुक्त हो जाओगी। क्योंकि—द्रौपदीके साथ पाँच पाण्डवोंका विवाह अनिवार्य है। (१।९५।१९-२०)

इस विषयमें विज्ञ पाठक यह याद रखें कि—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
कुर्याद् योगी बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्।
प्राप्नुयाद् विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥

यह पद्य वेदान्तदर्शन (१ । ३ । २७) शाङ्करभाष्यमें तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी मिलता है। मार्कण्डेयपुराणमें भी कहा है—

योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि। (५ । २५)

'योगदर्शन' में भी कहा है—

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकचित्तम् एकमनेकेषाम्। (४।५)

इन प्रमाणोंमें योगीकी अनेक शरीरोंके बनानेमें तथा उनसे अनेक कार्य करनेमें शक्ति बतायी गयी है। इसके अनुसार कोई पुरुष ब्रह्मचर्याश्रममें पूर्व-प्रारब्धके योगसे योग-सिद्धिको प्राप्त करके अपने एक शरीरके अनेक शरीर बना ले और वह एक उत्तम कन्याके साथ विवाह कर ले, तो उस एकके अनेक शरीरोंके साथ एक कन्याके विवाह करनेपर वह विवाह एक पुरुषके साथ ही सम्पन्न हुआ माना जायगा। वे आपाततः देखनेसे तो अनेक पुरुष हैं, परंतु वास्तवमें वह एक ही पुरुष है। आशा है योगसिद्धि माननेवाले आस्तिकोंको इसमें कोई भी आक्षेपका अवसर न होगा।

आर्य-समाजके स्वामी श्रीदयानन्दजीके लिये उनके जीवनचरित्रमें एक घटना मिलती है। श्रीमद्दयानन्दप्रकाशके अन्तिम प्रकरणमें लिखा है—'उन्हीं श्रीगुरुदत्तने क्या देखा कि एक ओर तो परम धामको पधारनेके लिये प्रभु परमहंस पलंगपर बैठे प्रार्थना कर रहे हैं, और दूसरी ओर वे व्याख्यान देनेके वेशमें सुसज्जित उसी कमरेकी छतके साथ लगे बैठे हैं। इस आत्मयोगके प्रत्यक्ष प्रमाणको पाकर पण्डित महाशय गुरुदत्तका चित्तस्फटिक आस्तिक भावोंकी प्रभासे चमचमा उठा (पृ० ५३०)। जब आजकलके अशक्तिमय समयमें भी यह योगशक्ति मानी जाती है, तो प्राचीनकालके शक्तिमय समयमें योगप्रक्रियाकी उन्नति न हो, ऐसा नहीं माना जा सकता।

यदि एकके अनेक अंश उससे अभिन्न न माने जायँ, तो हमारे एक शरीरमें भी हाथ-पाँव आदि अनेकों अंग हैं, तब उन सबके साथ हो रहा हुआ एक कन्याका विवाह भी अनेकोंके साथ हुआ माना जाय। परंतु ऐसा नहीं है। इसके अनुसार श्रीवेदव्यासने 'महाभारत' के आदिपर्वमें १९ अध्याय-में पञ्च-इन्द्रोपाख्यान सुनाया है, जिसका अभिप्राय यह है कि एक ही इन्द्रदेवने पाँच पाण्डवोंका रूप धारण किया है। उसी इन्द्रकी दिव्यलक्ष्मी दूसरे जन्ममें राजा द्रुपदके घर द्रौपदीके रूपमें प्रकट हुई है। इन्द्रदेव भी पाँच रूपोंमें प्रकट हुए हैं। जब योगी मनुष्य भी पूर्वकथित प्रमाणसे तथा **'योगी खलु ऋद्धौ अणिमादिसिद्धौ प्रादुर्भूतायां विकरणधर्मा (इन्द्रियाणां विशिष्टसामर्थ्यवान्) निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि'** (३ । २ । १९) इस 'न्यायदर्शन' के प्रमाणसे बहुत-से रूप और बहुतसे शरीर बना सकते हैं, तो स्वभावसिद्ध योगी देवताओंके लिये तो क्या कहना ?

यही बात ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीस्वामी शंकराचार्यचरणोंने भी कही है—**'आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।' ' 'इत्येवंजातीयका स्मृतिरपि प्राप्ताणिमाद्यैश्वर्याणां योगिनामपि युगपदनेकशरीरयोगं दर्शयति, किमु वक्तव्यम् आजन्मसिद्धानां देवानाम्। अनेकरूपप्रतिपत्तिसम्भवाच्च एकैका देवता बहुभी रूपैरात्मानं प्रविभज्य' '।**
(१ । ३ । २७)।

इस प्रकार इन्द्रदेवताके विषयमें उसके द्वारा बहुत शरीर धारण करनेके सम्बन्धमें भी जान लेना चाहिये। इसीलिये 'महाभाष्य' में भी इन्द्रदेवताके लिये कहा गया है—

एक इन्द्रो नैकस्मिन् क्रतुशते आहूतो युगपत् सर्वत्र भवति
(१ । २ । ६४)

अर्थात् एक ही इन्द्र सैकड़ों यज्ञोंमें बुलाया जाता हुआ एक दम सर्वत्र होता है। इस प्रकार वेदमें भी इन्द्रके अनेक शरीर धारण करनेका वर्णन आता है। जैसे कि—

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋ० ६ । ४७ । १८)
'रूपं रूपं मघवा इन्द्रः, बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्' (ऋ० ३ । ५३ । ८)

इस प्रकार निरुक्तमें देवताके बहुत रूपधारण दिखलाये हैं—

'महाभाग्याद् देवतायाः' (७ । ४ । ८)

भाग्य अणिमा आदि ऐश्वर्योंका नाम है।

इस प्रकार एक ही इन्द्र पाँच पाण्डवोंके रूपमें था। इन्द्रका अंश अर्जुन है, यह तो सुप्रसिद्ध ही है। उसके इधर दो बड़े भाई हैं, इधर दो छोटे भाई। तो इन्द्र ही युद्धमें स्थिर होनेसे 'युधिष्ठिर' नामवाला हुआ। शत्रुओंके लिये भयानक होनेसे 'भीम' वा भयानक सेनावाला होनेसे 'भीमसेन' हुआ। मनुष्यकुलवाला न होनेसे 'नकुल' हुआ।

इन्द्रज्येष्ठा अस्मान् अवन्तु देवाः (यजुः ३३ । ५०)

इस प्रकार देवोंके सहित होनेसे 'सहदेव' नामका हुआ। युधिष्ठिरका वह 'धर्म' रूपसे, भीमका 'वायुरूपसे', नकुल-सहदेवका 'अश्विनीकुमार' रूपसे उत्पादक हुआ। इसीलिये वेदमें कहा है—

इन्द्रः सर्वा देवताः (शतपथ० ३ । ४ । २ । २)
'इन्द्रो वै सर्वे देवाः' (शत० १३ । २ । ७)

यहाँपर इन्द्रको सर्वदेवमय कहा है। इस प्रकार स्वर्गकी लक्ष्मी द्रौपदीरूपमें संसारमें प्रकट हुई। इस भाँति एक द्रौपदीका विवाह एक ही इन्द्रकी पाँच व्यक्तियोंसे जो हुआ, वह वास्तवमें एक ही इन्द्रसे हुआ। तब द्रौपदीके पातिव्रत्यमें अथवा पाण्डवोंकी धर्मप्राणतामें अथवा उनके चरित्रमें कोई भी त्रुटि नहीं पड़ती, क्योंकि पति वस्तुतः एक है।

इसीलिये मार्कण्डेय पुराणमें भी—

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा।
पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः॥
(४ । ३२)

पाँच पाण्डवोंकी एक ही रानी द्रौपदी कैसे हुई? यह शङ्का करके वहाँ उत्तर दिलवाया गया है—

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम्।
प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च॥
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः।
कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः॥
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत।
शक्रवीर्यार्पितश्चैव जज्ञे पार्थो धनंजयः॥
उत्पन्नौ यमलौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती।
पञ्चधा भगवान् इत्थमवतीर्णः शतक्रतुः॥
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात्।
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित्।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि॥
(५ । २५)

इसका यह भाव है कि योगीश्वर अपने शरीर बहुत बना लिया करते हैं। इन्द्रने भी अपने एक शरीरके कई अंश बना लिये, जिन्हें धर्म, वायु तथा स्वयं इन्द्रने कुन्तीमें तथा अश्विनीकुमारोंने माद्रीमें रखकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेवको उत्पन्न किया।

बात स्पष्ट हो गयी, तब **'नैकस्यै बहवः सहपतयः।'**
(गोपथ० २ । ३ । २०)

यह विरोध सिद्ध नहीं हुआ; क्योंकि वास्तवमें पति एक ही था। व्यावहारिक बाहरी भिन्नतामें उन्होंने जनताके हितार्थ बाहरी नियमोंका भी यथावत् पालन किया। इस प्रकार उक्त विषयमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा है—

पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव।
(१५१ । १)

स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणां सा च पश्चाद् भविष्यति॥ ४॥
अर्जुनाय ददौ राजा कन्यायाश्च स्वयंवरे।
पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाधुना॥ ५॥
तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह।
शम्भोर्वरेण पूर्वं च परत्र मातुराज्ञया॥ ६॥
द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः।
चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः॥
(श्रीकृष्णखण्ड ११५ । ७)

यहाँपर बताया गया है कि इन्द्रके चौदह भेद होते हैं, उनमें पाँच इन्द्रके रूप पाँच पाण्डव बने, स्वर्गकी लक्ष्मी द्रौपदी बनी। पूर्वजन्ममें महादेवके वरके कारण इस जन्ममें माताकी आज्ञासे द्रौपदीके पाँच पाण्डव पति बने। वस्तुतः इन्द्रदेव एक ही थे, द्रौपदी उन्हीं इन्द्रदेवकी स्वर्गकी लक्ष्मी थी। जैसे एक सूर्य मासोंकी उपाधिके भेदसे बारहकी संख्याका माना जाता है, वैसे ही एक इन्द्र चौदह प्रकारका माना जाता है। जैसे एकके अनेक अंश भिन्न-भिन्न नहीं माने जाते, वैसे पाण्डव भी कथनमात्रमें पाँच थे, वस्तुतः एक ही इन्द्र था। इससे द्रौपदी तथा पाण्डवोंके चरित्रमें कोई त्रुटि नहीं आती।

फलतः द्रौपदीको एक पतिका तथा साध्वी सिद्ध करनेका यही वास्तविक प्रकार है। इस प्रकारमें न कहीं प्रक्षिप्तता माननी पड़ती है, न कहीं कोई असङ्गति पड़ती है, न यहाँ बलात् कोई कृत्रिमता करनी पड़ती है। पूर्वपक्षोक्त प्रकारमें तो बहुत स्थलोंमें असंगति जान पड़ती है, बहुत स्थलोंमें 'महाभारत' के इतिहासका रूप परिवर्तित करना पड़ जाता है। जहाँ सर्वथा निर्मूलता हो जाती है। कहीं उस पक्षमें प्रक्षिप्तता वा स्वेच्छामात्रसे आलङ्कारिकता माननी पड़ जाती है। प्रत्युत उस पक्षको स्वीकार करनेमें उसके सिद्ध करनेके लिये दिये गये महाभारतीय पद्य भी उस पक्षसे स्वयं विद्रोह करने लग जाते हैं, तब हमें निर्मूल पक्षके आश्रयणकी क्या आवश्यकता है? द्रौपदीके बाहर देखनेमें पाँच पति थे। पर वस्तुतः वह पाँच रूप बने हुए एक ही इन्द्रकी पत्नी थी। इस विषयमें पाश्चात्त्य संस्कृति प्रभावित पौरस्त्यों तथा शुद्ध पौरस्त्योंके अभिप्रायमें तारतम्यका विश्लेषण अपनी सूक्ष्म बुद्धिद्वारा कर लिया होगा।

शरणागत अर्जुन
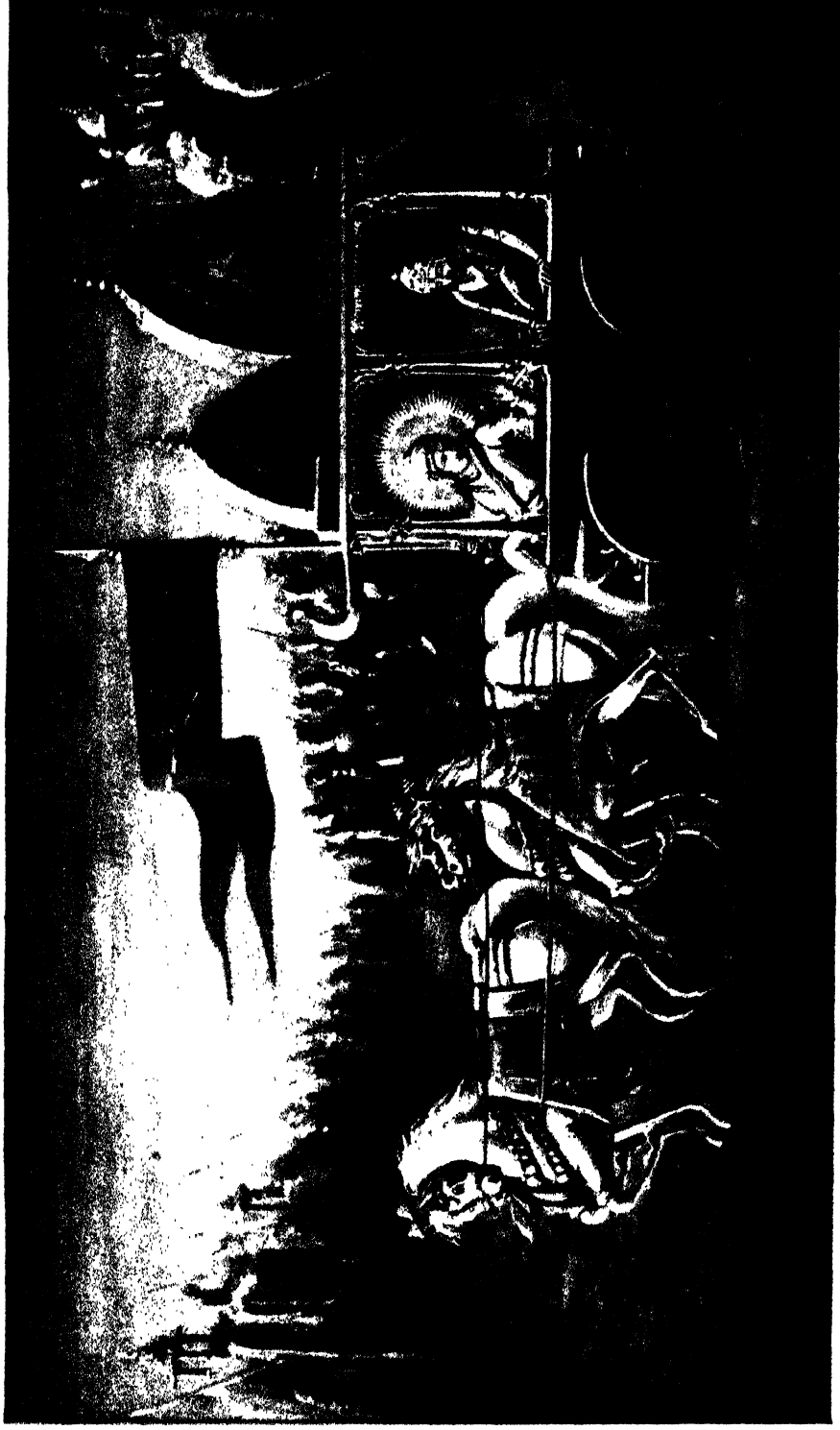
अस्त्रकौशल (आदि० १३४।१८–२५)। रङ्गभूमिमें कर्णको इनकी फटकार (आदि० १३५ । १८) । कर्णसे लड़नेके लिये रङ्गभूमिमें इनका उद्यत होना (आदि० १३५ । २१)। इनके द्वारा मन्त्रियोंसहित द्रुपदकी पराजय और उन्हें बंदी बनाकर द्रोणाचार्यको सौंपना (आदि० १३७ । ६३)। इनका द्रुपदकी 'अहिच्छत्रा' नगरीको जीतकर उसे द्रोणाचार्यको गुरुदक्षिणाके रूपमें देना (आदि० १३७ । ७७) । 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्रकी परम्परा तथा उसके उपयोगका नियम बतलाकर द्रोणाचार्यका अर्जुनको विरोधी होनेपर अपने साथ भी लड़नेके लिये वचनबद्ध करना (आदि० १३८ । ९–१५) । इनके द्वारा यवनराज, सौवीरनरेश विपुल और सुमित्रके वध आदि पराक्रमका धृतराष्ट्रद्वारा चिन्तन (आदि० १३८ । २०–२३) । हिडिम्बके साथ युद्ध होते समय भीमसेनकी सहायताके लिये इनका उद्यत होना (आदि० १५३ । १८-१९) । द्रौपदीको इन्हें समर्पित करनेके लिये द्रुपदका संकल्प तथा लाक्षागृहमें इनकी मृत्यु होनेका समाचार सुनकर द्रुपदका शोक (आदि० १६६ । ५६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ४९३) । चित्ररथ गन्धर्वको इनकी फटकार और इनके द्वारा गङ्गा आदि नदियोंकी महिमा (आदि० १६९।१६–२४)। युद्धमें इनके द्वारा चित्ररथपर आग्नेयास्त्र-का प्रहार और उसकी मूर्छा (आदि० १६९ । ३१–३३)। चित्ररथको इनका जीवन-दान (आदि० १६९ । ३७)। चित्ररथके साथ इनकी मित्रता (आदि० १६९ । ३८–५८)। चित्ररथसे इन्हें 'चाक्षुषी' विद्या एवं दिव्य अश्वोंकी प्राप्ति (आदि० १६९ । ४३–४६) । इनपर चित्ररथके आक्रमणका कारण (आदि० १६९ । ६०) । चित्ररथपर इनकी विजयका कारण (आदि० १६९ । ७१) । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणका पुरोहितरूपमें वरण करनेके लिये इनको चित्ररथकी सलाह (आदि० १६९ । ७४) । चित्ररथ-को इनके द्वारा आग्नेयास्त्रका दान (आदि० १८२ । ३) । पाञ्चाल-यात्राके समय मार्गमें अर्जुन आदि पाण्डवोंसे व्यासजीकी भेंट (आदि० १८४ । २) । द्रुपदनगरमें अर्जुन आदि पाण्डवोंका मातासहित एक कुम्भकारके घरमें ठहरना (आदि० १८४ । ६)। द्रौपदीके स्वयंवरमें इन्हें लक्ष्यवेधके लिये उद्यत देखकर इनके सम्बन्धमें ब्राह्मणोंके ऊहापोह (आदि० १८७ । २–१६) । स्वयंवरमें इनका लक्ष्यवेध और द्रौपदीका इनके गलेमें जयमाला डालना (आदि० १८७ । २१–८७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके साथ ब्राह्मणवेशमें युद्ध करते समय श्रीकृष्णद्वारा बलरामजीको इनका परिचय देना (आदि० १८८ । २०) । स्वयंवरमें इनका युद्ध और इनके द्वारा उसकी पराजय (आदि० १८९ । १०–२२) । द्रौपदीके विषयमें इनकी युधिष्ठिरसे बातचीत (आदि० १९० । ८–१०) । द्रौपदीके साथ इन (पाण्डवों) का विधिपूर्वक विवाह (आदि० १९७ । १३) । ब्राह्मणके गोधनकी रक्षाके लिये इनका आयुधागारमें प्रवेश और वनवास (आदि० २१२ । १९–३५) । हरिद्वारमें उलूपीद्वारा इनका नाग-लोकमें आकर्षण (आदि० २१३ । १३) । इनके द्वारा उलूपीके गर्भसे 'इरावान्' का जन्म (आदि० २१३ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनका मणिपूर जाकर चित्राङ्गदासे विवाह (आदि० २१४ । १५–२६) । इनके द्वारा चित्राङ्गदाके गर्भसे बभ्रुवाहनका जन्म (आदि० २१४ । २७) । इनका दक्षिणके तीर्थोंमें जाना और वर्गा आदि अप्सराओंका ग्राह-योनिसे उद्धार करना (आदि० २१५ एवं २१६ अध्यायोंमें) । पुनः मणिपुरमें आकर इनके द्वारा चित्राङ्गदाको आश्वासन और राजसूय-यज्ञमें आनेका आदेश (आदि० २१६ । २३–३१) । इनका गोकर्णतीर्थकी ओर जाना (आदि० २१६ । ३४)। प्रभास-क्षेत्रमें इनसे श्रीकृष्णकी भेंट (आदि० २१७ । ३-४) । रैवतक पर्वतपर इनका रातभर श्रीकृष्णके साथ विश्राम (आदि० २१७ । ८) । श्रीकृष्णके साथ इनका द्वारका-गमन (आदि० २१७ । १५) । सुभद्राहरणके विषयमें इनके लिये श्रीकृष्णकी सम्मति (आदि० २१८ । २१–२३) । सुभद्रासे विवाहके लिये इनको युधिष्ठिरकी सम्मति (आदि० २१८ । २५) । इनके द्वारा सुभद्राका हरण (आदि० २१९ । ७) । इनसे युद्ध करनेके लिये वृष्णिवंशियोंकी तैयारी (आदि० २१९ । १६–१९) । सुभद्रासे इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० २२० । १३)। पुष्करतीर्थमें इनके द्वारा वनवासके शेष समयका यापन (आदि० २२० । १४) । सुभद्राको गोपीवेशमें सजाकर उसे द्रौपदीके पास इनका भेजना (आदि० २२० । १९)। श्रीकृष्णके साथ इनका यमुनामें जलविहार (आदि० २२१ । १४–२०) । खाण्डववनको जलानेके लिये इनसे ब्राह्मणरूपधारी अग्निकी प्रार्थना (आदि० २२२ । ५–११) । इनका अग्निदेवसे दिव्य धनुष और रथ आदि माँगना (आदि० २२३ । १५–२१) । अग्निका इनको गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस एवं दिव्य रथ देना (आदि० २२४ । ६–१४) । खाण्डव-दाहके समय इन्द्र आदि देवताओंके साथ इनका भयानक युद्ध (आदि० २२६ अ०में) । इनके द्वारा तक्षक नागकी पत्नीका वध (आदि० २२६ । ६–८) । अश्वसेन (नाग) को इनका शाप (आदि० २२६ । ११) । इनसे इन्द्र आदि देवताओंकी पराजय तथा इन्द्रका स्वर्गको लौटना (आदि० २२६ । १३–२३) । मयासुरको इनका अभयदान

(आदि० २२७ । ४४) । इन्द्रद्वारा इन्हें समस्त दिव्यास्त्र प्रदान करनेका आश्वासन (आदि० २३३ । १०–१२) । अर्जुन और मयासुरकी बातचीत (सभा० १ । २–८) । मयासुरद्वारा इनको देवदत्त नामक शङ्खकी भेंट (सभा० ३ । २१) । जरासंधको जीतनेके विषयमें युधिष्ठिरको उत्साह दिलानेके लिये वीरोचित उद्गार (सभा० १६ । ७–१७) । श्रीकृष्ण और भीमसेनके साथ अर्जुनकी मगध-यात्रा (सभा० २० अ०में) । इनका दिग्विजयके लिये प्रस्थान (सभा० २५ । ७) । इनके द्वारा कुलिन्द आदि देशोंपर विजय तथा भगदत्तकी पराजय (सभा० २६ अ०में) । अन्तर्गिरि, उलूकपुर, मोदापुर आदि देशोंपर इनकी विजय (सभा० २७ अ०में) । किम्पुरुष, हाटक तथा उत्तर कुरुपर विजय प्राप्त करके इनका इन्द्रप्रस्थ लौटना (सभा० २८ अ०में) । राजसूयके बाद अर्जुनका द्रुपदको कुछ दूर पहुँचाना (सभा० ४५ । ४८) । कर्ण और उसके अनुगामियोंको तथा समस्त विपक्षियोंको मारनेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा (सभा० ७७ । ३२–३६) । वनयात्राके समय अर्जुनका बालू उड़ाते हुए जानेका रहस्य (सभा० ८० । ५–१५) । इनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन (वन० १२ । ११–४३) । इनके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन (वन० १२ । १३३) । इनका वनमें साथ गये हुए प्रजावर्गको आश्वासन (वन० २३ । १३-१४) । द्वैतवनमें निवास करनेके लिये युधिष्ठिरको इनकी सलाह (वन० २४ । ५–११) । तपके लिये प्रस्थान और इन्द्रकीलपर इनकी इन्द्रसे भेंट, बातचीत तथा इन्हें इन्द्रका वरदान (वन० ३७ । ३७–५८) । इनकी चार मासतक उग्र तपस्या (वन० ३८ । २२–२७) । इनके द्वारा मूक दानवका वध (३९ । ७–१६) । किरातरूपधारी भगवान् शङ्करके साथ इनका युद्ध (वन० ३९ । ३२–६४) । इनके द्वारा शिवजीकी स्तुति (वन० ३९ । ७४–८२) । इनकी पाशुपतास्त्रके लिये महादेवजीकी प्रार्थना (वन० ४० । ८) । इन्हें पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४० । २१) । इन्हें यमद्वारा दण्डास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । २५-२६) । वरुणद्वारा पाश-अस्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । ३१-३२) । कुबेरद्वारा अन्तर्धानास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । ४१) । इन्द्रका इन्हें स्वर्गमें चलनेका आदेश (वन० ४१ । ४३-४४) । अर्जुनके चिन्तन करनेपर मातलिद्वारा इन्द्रके रथका आनयन और उसपर बैठकर इनका स्वर्गलोकके लिये प्रस्थान (वन० ४२ । १०—३१) । स्वर्गलोकमें पहुँचनेपर इनका महान् स्वागत तथा इन्द्रसभामें पहुँचकर इनका इन्द्रदेवसे मिलना (वन० ४३ । ८—१५) । इन्द्रभवनमें इन्हें अस्त्र और संगीतकी शिक्षा (वन० ४४ । ३—११) । अर्जुनके सत्कारके लिये इन्द्रका चित्रसेनद्वारा उर्वशीको संदेश एवं आदेश (वन० ४५ अ०में) । उर्वशीका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास जाना और अपने आनेका कारण बताना (वन० ४६ । २२—३५) । अर्जुनका उर्वशीका प्रस्ताव सुनकर दोनों हाथोंसे आँख बंद कर लेना और इसकी ओर देखनेका कारण बताते हुए उसे 'पूरुवंशकी जननी' कहना, साथ ही उसे अपने लिये कुन्ती, माद्री और शचीका स्थान देना (वन० ४६ । ३६—४७) । उनके अस्वीकार करनेपर उर्वशीका इन्हें शाप देकर लौट आना (वन० ४६ अ०में) । अर्जुनको इन्द्रका आश्वासन (वन० ४६ । ५५–५९) । इनकी युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये महर्षि लोमशसे प्रार्थना (वन० ४७ । ३२-३३) । इन्द्रलोकसे लौटकर इनका गन्धमादन पर्वतपर भाइयोंसे मिलना (वन० १६५ । ४) । इनके द्वारा अपनी तपस्या-यात्रा और पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिका वर्णन (वन० १६७ अ०में) । इनका इन्द्रलोकमें प्राप्त हुई अस्त्रशिक्षा आदिका वृत्तान्त बताना (वन० १६८ अ०में) । निवातकवचोंके साथ अपने युद्धका वर्णन (वन० १६९ अ०से १७२ अ० तक) । अपने द्वारा हिरण्यपुरवासी पौलोमों और कालकेयोंके वधका वृत्तान्त बताना (वन० १७३ अ०में) । इनका भाइयोंको दिव्यास्त्रोंका प्रयोग दिखानेके लिये उद्यत होना (वन० १७५ । ७) । गन्धर्वोंके हाथसे कौरवोंको छुड़ानेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा (वन० २४३ । २१) । अर्जुनका गन्धर्वोंसे दुर्योधनको छोड़नेके लिये कहना और न छोड़नेपर उनके ऊपर बाण बरसाना (वन० २४४ । १२—२१) । इनके द्वारा चित्रसेन गन्धर्वकी पराजय (वन० २४५ । १—२६) । जयद्रथके अनुगामी पाँच सौ पर्वतीय महारथियोंका संहार (वन० २७१ । ८) । सौवीरदेशके बारह राजकुमारोंका वध (वन० २७१ । २७) । शिबि, इक्ष्वाकु, त्रिगर्त और सिन्धुदेशके क्षत्रियोंका विनाश (वन० २७१ । २८) । द्वैतवनमें पानी लानेके लिये जाना और सरोवरपर मूर्च्छित होना (वन० ३१२ । २२–३२) । अर्जुनका युधिष्ठिरको अज्ञातवासके लिये कुछ उपयोगी राज्योंके नाम बताना (विराट० १ । १२-१३) । विराटनगरमें 'बृहन्नला' नामसे रहनेकी बात बताना (विराट० २ । २५–२७) । नपुंसक वेषमें राजा विराटके पास जाना और उनसे अपने यहाँ रखनेके लिये प्रार्थना करना (विराट० ११ । २–९) । बृहन्नलारूपमें इनका द्रौपदीसे अपना मनोगत दुःख प्रकट करना (विराट० २४ । २३—२५) । अपने आप (बृहन्नला) को सारथि बनानेके लिये द्रौपदीद्वारा इनका उत्तरको कहलाना (विराट० ३६ । १०–१३) ।

उत्तरका सारथि बनकर युद्धके लिये प्रस्थान (**विराट० ३७ । २७**) । भयभीत होकर भागते हुए उत्तरको दौड़कर पकड़ना (**विराट० ३८ । ४०**) । उत्तरको समझा-बुझाकर अपना सारथि बनाकर रथपर चढ़ाना (**विराट० ३८ । ४६—५१**) । शमीवृक्षसे अस्त्र उतारनेके लिये उत्तरको आदेश देना (**विराट० ४० । ३**) । उत्तरको पाण्डवोंके दिव्यायुधोंका परिचय देना (**विराट० ४३ अ०में**) । उत्तरकुमारसे अपने भाइयोंका परिचय देना तथा अपने दस नामोंकी पृथक्-पृथक् व्याख्या करना (**विराट० ४४ । १३—२२**) । उत्तरसे अपनी नपुंसकताका कारण बताना (**विराट० ४५ । १३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ १५ तक**) । अपने अस्त्रोंका स्मरण करना और आनेपर उनसे वार्तालाप (**विराट० ४५ । २७-२८**) । इनका शङ्ख बजाना और डरे हुए उत्तरको धीरज देना (**विराट० ४६ । ८—२३**) । बाणोंद्वारा आचार्य द्रोणको प्रणाम करना और युद्धकी आज्ञा माँगना (**विराट० ५३ । ७**) । कौरवसेनापर आक्रमण करके विराटकी गौओंको लौटा लेना (**विराट० ५३ । २४-२५**) । कर्णपर आक्रमण (**विराट० ५४ । ४-५**) । इनके द्वारा विकर्णकी पराजय (**विराट० ५४ । ९-१०**) । राजा शत्रुंतपका वध (**विराट० ५४ । ११—१३**) । कर्णके भाई संग्रामजित्का वध (**विराट० ५४ । १८**) । कर्णकी पराजय (**विराट० ५४ । १९—३६**) । कौरवसेनाका संहार करके उसे खदेड़ देना (**विराट० ५५ । १—३८**) । उत्तरको कौरववीरोंका परिचय देकर कृपाचार्यके पास जाना (**विराट० ५५ । ४१—६०**) । कृपाचार्यको रथहीन और घायल करना (**विराट० ५७ । ३६—३८**) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें घायल करना (**विराट० ५८ अ०में**) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उनके बाणोंको समाप्त कर देना (**विराट० ५९ । १—१५**) । कर्णके साथ पुनः युद्ध और उसे घायल करके खदेड़ना (**विराट० ६० अ०में**) । उत्तरके हतोत्साह होनेपर उसे आश्वासन देकर भीष्मके पास जाना और उनका ध्वज काट गिराना (**विराट० ६१ । १३—३५**) । दुःशासनको घायल करना (**विराट० ६१ । ४०**) । विकर्णको रथसे नीचे गिराना (**विराट० ६१ । ४२**) । दुःसह और विविंशतिको घायल करना (**विराट० ६१ । ४५**) । रणभूमिमें रक्तकी नदी प्रकट कर देना (**विराट० ६२ । १७—२१**) । समस्त कौरव महारथियोंको पराजित करना (**विराट० ६३ । १—१४**) । भीष्मके साथ अद्भुत युद्ध और उन्हें घायल करके युद्धसे विमुख करना (**विराट० ६४ अ० में**) । पुनः उनके द्वारा विकर्णकी पराजय (**विराट० ६५ । १०**) । दुर्योधनकी पराजय (**विराट० ६५ । १३**) । सम्मोहनास्त्रके द्वारा इनका सभी कौरव महारथियोंको मोहित कर देना (**विराट० ६६ । ८—११**) । युद्ध बंद होनेपर इनके द्वारा भीष्म आदि श्रेष्ठ पुरुषोंका अभिवादन एवं सम्मान (**विराट० ६६ । २५-२६**) । दुर्योधनके मुकुटका खण्डन (**विराट० ६६ । २७**) । उत्तरसे अपना रहस्य न खोलनेके लिये कहना (**विराट० ६७ । ९-१०**) । उत्तराको कौरव महारथियोंके वस्त्र देना (**विराट० ६९ । १६**) । विराटको युधिष्ठिरका परिचय देना (**विराट० ७० । ९—२८**) । अन्य चारों पाण्डवों और द्रौपदीका परिचय देना (**विराट० ७१ । ३—१०**) । उत्तरद्वारा अर्जुनके पराक्रमका वर्णन (**विराट० ७१ । १९—२१**) । उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना (**विराट० ७२ । ७**) । युद्ध न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको ही सहायकरूपमें स्वीकार करना (**उद्योग० ७ । २१**) । हस्तिनापुरको लौटते हुए संजयसे कौरवोंको संदेश देना (**उद्योग० ३२ अध्यायके आदिमें दाक्षिणात्य पाठ**) । संजयद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**उद्योग० ५० । २६—२८**) । कौरवोंसे संधिके विषयमें श्रीकृष्णके समक्ष अपने विचार प्रकट करना (**उद्योग० ७८ अ० में**) । आधा राज्य लेकर ही संधि स्वीकार करनेके लिये श्रीकृष्णसे कहना (**उद्योग० ८३ । ५१—५३**) । इनके द्वारा धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति बनानेका प्रस्ताव (**उद्योग० १५१ । १९—२५**) । युद्धके लिये कही गयी श्रीकृष्णकी बातोंका समर्थन (**उद्योग० १५४ । २५-२६**) । अपने पराक्रमका वर्णन करके रुक्मीकी सहायताको अस्वीकार करना (**उद्योग० १५८ । २७—३५**) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर (**उद्योग० १६२ । ३७—४४**) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर (**उद्योग० १६३ । ३—२३**) । युधिष्ठिरके पूछनेपर त्रिलोकीको पलक मारते नष्ट करनेकी अपनी शक्ति बताना (**उद्योग० १९४ । १०-११**) । युधिष्ठिरकी आज्ञासे इनके द्वारा अपनी सेनाका वज्रव्यूह-निर्माण (**भीष्म० १९ । ७**) । 'श्रीकृष्णकी कृपासे विजय होती है' ऐसा कहकर युधिष्ठिरको आश्वासन (**भीष्म० २० । ७—१७**) । इनके द्वारा दुर्गादेवीका स्तवन और वरप्राप्ति (**भीष्म० २३ । ४—१९**) । इनका श्रीकृष्णसे दोनों सेनाओंके बीचमें रथ खड़ा करनेके लिये कहना (**भीष्म० २५ । २१**) । स्वजनोंको देखकर मोहग्रस्त हो युद्धसे खेद, धर्म-नाशका भय और दोष प्रकट करते हुए धनुष त्यागकर बैठ जाना (**भीष्म० २५ । २६—४७**) । किंकर्तव्यविमूढ़ होकर श्रीकृष्णसे अपने कर्तव्यके विषयमें शिक्षा देनेके लिये प्रार्थना करते हुए युद्ध न करनेका निश्चय करके बैठ

जाना (भीष्म० २६ । ४–९) । अर्जुनका भगवान्से गीताके उपदेश सुनना (भीष्म० २६ । ११ से ४२ अ० तक) । अर्जुनका भगवान्से स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षण पूछना (भीष्म० २६ । ५४) । ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठताके विषयमें अर्जुनकी शङ्का (भीष्म० २७ । १-२) । बलात्कारसे पाप करानेमें हेतु क्या है, इस विषयमें इनका प्रश्न (भीष्म० २७ । ३६) । भगवान् श्रीकृष्णका जन्म आधुनिक मानकर अर्जुनका संदेह करना (भीष्म० २८ । ४) । संन्यास और निष्काम कर्मयोगकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न (भीष्म० २९ । १) । योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिके सम्बन्धमें अर्जुनका प्रश्न और संशय-निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना (भीष्म० ३० । ३७–३९) । ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें इनके सात प्रश्न (भीष्म० ३२ । १-२) । अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति और उनके प्रभावका वर्णन करते हुए उनकी विभूतियोंको जाननेकी इच्छा प्रकट करना तथा भगवच्चिन्तनके विषयमें सात प्रश्न करके योगशक्ति और विभूतियोंको विस्तारसे कहनेके लिये प्रार्थना करना (भीष्म० ३४ । १२–१८) । अपने मोहकी निवृत्ति मानते हुए अर्जुनद्वारा भगवद्वचनोंकी प्रशंसा एवं विश्वरूप देखनेकी इच्छा प्रकट करके उस रूपका दर्शन करानेके लिये भगवान्से प्रार्थना (भीष्म०३५ । १–४) । अर्जुनका भगवान्के विश्वरूपका दर्शन और स्तुति करना (भीष्म० ३५ । १५–३१) । भयभीत अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति और चतुर्भुजरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना (३५ । ३५–४६) । साकार-निराकारके उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है, यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न (भीष्म० ३६। १)। गुणातीत पुरुषके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्न (भीष्म० ३८ । २१) । शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे पूजन करनेवाले पुरुषोंकी निष्ठाके विषयमें इनका प्रश्न (भीष्म० ४१ । १) । संन्यास और त्यागका तत्त्व जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न (भीष्म० ४२ । १) । अर्जुन और श्रीकृष्णके प्रभावका कथन (भीष्म० ४२ । ७८) । कवच उतारकर पैदल ही कौरवसेनाकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरसे उधर जानेका कारण पूछना (भीष्म० ४३ । १६) । प्रथम दिनके युद्धमें इनका भीष्मके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ८–११) । भीष्मके साथ घोर युद्ध (भीष्म० ५२ अ०में) । दूसरे दिनके युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए कौरवसेनाको खदेड़ देना (भीष्म० ५५ । १७–३५) । भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको रोककर उनसे कर्तव्य-पालनके लिये प्रतिज्ञा करना (भीष्म० ५९ । १०१–१०३) । इनके द्वारा कौरवसेनाकी पराजय और तीसरे दिनके युद्धकी समाप्ति (भीष्म० ५९ । १११–११२) । भीष्मके साथ द्वैरथ युद्ध (भीष्म० ६० । २५–२९) । भीष्मके साथ घमासान युद्ध (भीष्म० ७१ अ०में) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध (भीष्म० ७३ । ३–१६) । इनके द्वारा त्रिगर्तराज सुशर्माकी पराजय और कौरवसेनामें भगदड़ (भीष्म० ८२ । १) । इनका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ८५ । १–८) । इनके द्वारा रथसेनाका संहार(भीष्म० ८९ । ३५–३८) । इरावान्के वधसे इनके दुःखपूर्ण उद्गार (भीष्म० ९६ । २–१२) । दुर्योधनके प्रति भीष्मद्वारा इनके पराक्रमका वर्णन (भीष्म० ९८ । ४–१५) । द्रोणाचार्य और सुशर्माके साथ युद्ध (भीष्म० १०२ । ६–२३) । इनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय (भीष्म० १०४ । ४–८) । श्रीकृष्णके चेतावनी देनेपर भीष्मके साथ युद्ध (भीष्म० १०६ । ४२–५४) । भीष्मको मारनेके लिये उद्यत श्रीकृष्णसे कर्तव्यपालनके लिये प्रतिज्ञा करना (भीष्म० १०६ । ७०–७५) । भीष्मवधके लिये उद्यत न होना (भीष्म० १०७ । ९१–९५ के बादतक) । श्रीकृष्णके समझानेपर भीष्मवधके लिये उद्यत होना (भीष्म० १०७ । १०३–१०६) । भीष्मवधके लिये शिखण्डीको प्रोत्साहन देना (भीष्म० १०८ । ५२–६०) । इनके भयसे पीड़ित होकर कौरवसेनाका पलायन (भीष्म० १०९ । १३-१४) । दुःशासनके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । २८–४६; १११ । ५७-५८) । इनका अद्भुत पुरुषार्थ (भीष्म० ११४ अ०में) । भगदत्तके साथ अर्जुनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ५६–६०) । भीष्मके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ६२–७८) । भीष्मके साथ घोर युद्ध और उन्हें मूर्छित करना (भीष्म० ११७ । ३५–६४) । दुःशासनके साथ युद्ध (भीष्म० ११७ । १२–१९) । शिखण्डीको आगे करके भीष्मपर आक्रमण (भीष्म० ११८ । ३७–५४) । भीष्मको रथसे गिराना (भीष्म० ११९ । ८७) । बाणशय्यापर सोये हुए भीष्मको तीन बाण मारकर तकिया देना (भीष्म० १२० । ४५) । दिव्यास्त्रद्वारा भीष्मके मुखमें शीतल जलकी धारा गिराना (भीष्म० १२१ । २४-२५) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । १५–२८) । नरस्वरूपमें इनकी महिमाका वर्णन (द्रोण० ११ । ४१-४२) । द्रोणाचार्यद्वारा पकड़े जानेके भयसे भीत युधिष्ठिरको आश्वासन (द्रोण० १३ । ७–१४) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनकी सेनाको पराजित करना (द्रोण० १६ । ४३–५१) । युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सत्यजित्को सौंपना (द्रोण० १७ । ४४) । संशप्तकोंके साथ युद्ध और सुधन्वाका वध (द्रोण० १८ । २२ तथा १९ अ०में) । इनके द्वारा संशप्तकोंका वध (द्रोण० २७ । १८–२६) । सुशर्माके भाईका वध और सुशर्माकी पराजय (द्रोण० २८ । ८–१०) । भगदत्तके साथ युद्ध (द्रोण० २८ । १४–३० से २९ अ० तक) । श्रीकृष्णसे वैष्णवास्त्रका रहस्य पूछना (द्रोण० २९ । २१–२४) । इनके द्वारा भगदत्तके हाथी सुप्रतीकका वध (द्रोण० २९ । ४३) । अर्जुनके द्वारा भगदत्तका वध

(द्रोण० २९ । ४७–५०) । वृषक और अचलका वध (द्रोण० ३०।११) । इनका शकुनिकी मायाका नाश करते हुए उसे परास्त करना (द्रोण० ३० । १५–२८) । कर्णके साथ युद्ध (द्रोण० ३२ । ५२–६२) । इनके द्वारा कर्णके तीन भाइयोंका वध (द्रोण० ३२ । ६०-६१) । अभिमन्युकी मृत्युपर विलाप (द्रोण० ७२ । १९–६५) । भाइयोंपर क्रोध प्रकट करना (द्रोण० ७२ । ७६–८३) । युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर मूर्छित होना (द्रोण० ७३ । १६-१७) । जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा करना (द्रोण० ७३ । २०–४९) । श्रीकृष्णसे जयद्रथवधके विषयमें वीरोचित वचन कहना (द्रोण० ७६ अ० में) । श्रीकृष्णसे पुत्रवधू उत्तरासहित सुभद्राको समझानेके लिये कहना (द्रोण० ७७ । ९-१०) । इनके द्वारा शङ्करजीका निशीथ-पूजन (द्रोण० ७९ । १–४) । (अर्जुनका स्वप्न–) स्वप्नमें श्रीकृष्णका आना और उनकी सम्मतिसे उनके साथ शिवजीके पास जाकर प्रणाम करना (द्रोण० ८० । २–४९) । इनके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (द्रोण० ८० । ५५–६४) । भगवान् शिवसे दिव्यास्त्रकी याचना (द्रोण०८१।३) पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति और श्रीकृष्णसहित शिविरको लौटना (स्वप्नकी समाप्ति) (द्रोण० ८१ । २१–२४) । पाण्डवसभामें अपना स्वप्न सुनाना(द्रोण०८४ । ६)। श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ रणयात्रा (द्रोण०८४ । २१) । सात्यकिको युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपना (द्रोण०८४ । २७–३४) । युद्धके आरम्भमें इनके द्वारा शङ्खनाद (द्रोण० ८८ । २०) । दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार (द्रोण० ८९ अ० में) । इनका दुःशासनके साथ युद्ध और उसका पलायन (द्रोण० ९० अ०में) । इनके द्वारा द्रोणाचार्यका सम्मान (द्रोण० ९१ । ३–६) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें छोड़कर आगे बढ़ना (द्रोण० ९१ । ११–३२; ९२ । ६–१४) । कृतवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । १६–२६)। श्रुतायुधके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । ३५–४३) । काम्बोजराज सुदक्षिणके साथ युद्ध और उसका वध (द्रोण० ९२ । ६१–७१) । श्रुतायु और अच्युतायुके साथ इनका युद्ध और उन दोनोंका वध (द्रोण०९३ । ७–२४) । इनके द्वारा नियुतायु और दीर्घायुका वध (द्रोण०९३ । २९) । म्लेच्छसेनाका संहार (द्रोण० ९३ । ३१–५९) । श्रुतायु और अम्बष्ठके साथ युद्ध और अम्बष्ठका वध (द्रोण० ९३ । ६०–६९) । विन्द-अनुविन्दका वध (द्रोण० ९९ । २५-२९) । संग्रामक्षेत्रमें इनका सरोवर प्रकट करना(द्रोण०९९ ।५९)। रणक्षेत्रमें बाणमय गृहका निर्माण (द्रोण० ९९ । ६२) । श्रीकृष्णके प्रोत्साहन देनेपर दुर्योधनको मारनेके लिये उद्यत होना (द्रोण० १०२ । १९–२१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) दुर्योधनके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (द्रोण० १०३ । २१–३२) । इनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध (द्रोण० १०४ अ०में) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५। ८-९) । इनका नौ महारथियोंके साथ युद्ध (द्रोण० १०५। ३३–३८)। कर्ण और अश्वत्थामाको खदेड़ना(द्रोण० १३९ । ११२–१२१) । सात्यकिको देखकर अर्जुनकी चिन्ता (द्रोण० १४१ । २६–३७) । श्रीकृष्णकी प्रेरणासे भूरिश्रवाकी दाहिनी भुजा काटना (द्रोण० १४२ । ७२) । भूरिश्रवाको उत्तर देना (द्रोण० १४३ ।१६–३२) । इनका सात कौरव महारथियोंके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अ०में)। इनके द्वारा कर्णकी पराजय(द्रोण० १४५ । ८३)। कौरवसेनाका भीषण संहार (द्रोण १४६ अ० में) । इनके द्वारा जयद्रथका सिर काटकर उसे बाणद्वारा उसके पिता वृद्धक्षत्रकी गोदमें डालना (द्रोण० १४६ । १२२–१२७) । कृपाचार्य और अश्वत्थामाको युद्धमें पराजित करना(द्रोण०१४७।९–११) । कृपाचार्यके मूर्च्छित होनेपर विलाप करना (द्रोण० १४७।१३–२७) । भीमसेनको कटुवचन सुनानेके कारण कर्णको फटकारना (द्रोण०१४८ । ८–२२) । कर्णपुत्र वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना (द्रोण०१४८ । १९-२०) । कर्णके साथ युद्ध करके उसे पराजित करना(द्रोण०१५९।६२–६४) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और कौरवसेनाको खदेड़ना (द्रोण० १६१ अ०में) । इनके द्वारा राक्षसराज अलम्बुषकी पराजय(द्रोण०१६७ । ४७) । शकुनि और उलूककी पराजय (द्रोण० १७१ । ३८–४०) । कर्णके पराक्रमसे भयभीत हुए युधिष्ठिरसे प्रेरित हो इनका श्रीकृष्णसे अपना कर्तव्य पूछना (द्रोण० १७३ । २९–३४)। घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश देना(द्रोण० १७३ । ६०–६२) । घटोत्कचवधसे प्रसन्न हुए श्रीकृष्णसे उनकी प्रसन्नताका कारण पूछना (द्रोण० १८० । ६–१०) । जरासंध आदिके वधके विषयमें श्रीकृष्णसे प्रश्न करना (द्रोण० १८१ । १)। उभयपक्षके सैनिकोंको सो जानेके लिये आदेश देना (द्रोण० १८४ । २६–२८) । द्रोणाचार्यके साथ घोर युद्ध करना(द्रोण० १८८ । २४-५३)। श्रीकृष्णसे सात्यकिकी प्रशंसा करना (द्रोण०१९१ । ४८–५३) । अश्वत्थामाके क्रोध और गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन करना (द्रोण०१९६ । २६–५३) । नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणके सामने गाण्डीव रख देनेकी बात कहना (द्रोण० १९९ । ५३) । व्यासजीसे अपने आगे-आगे चलनेवाले त्रिशूलधारी पुरुषके विषयमें प्रश्न करना (द्रोण० २०२ । ४–८) । युधिष्ठिरके आदेशसे अर्धचन्द्रव्यूह बनाकर कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थान (कर्ण० ११ । २८) । अश्वत्थामाके साथ घोर युद्ध और उसे परास्त करना (कर्ण० १६ अ०से १७ वें अ० तक) । इनके द्वारा हाथीसहित दण्डधारका वध (कर्ण० १८ । १३)। इनके द्वारा हाथीसहित दण्डका वध (कर्ण० १८ । १९) । संशप्तकोंका भीषण संहार (कर्ण० १९ । २–२६) ।

सुशर्माके छः भाइयों (सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सौश्रुति और मित्रवर्मा) का वध(कर्ण० २७ । १२–२५) । कौरवसेनाकासंहार (कर्ण० ३० । १५–३६) । युधिष्ठिरके आदेशसे कर्णपर आक्रमण (कर्ण० ४६ । ३७) । इनके द्वारा संशप्तकोंका संहार (कर्ण० ४७ अ०में) । सुशर्माके साथ युद्ध और दस हजार संशप्तकोंका वध (कर्ण० ५३ अ०में) । संशप्तकोंका संहार और सुदक्षिणके भाईका वध (कर्ण० ५६ । १००–११७) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (कर्ण० ५६ । १२१–१४२) । श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरको देखनेके लिये उनके पास चलनेका आग्रह (कर्ण० ५८ । ३–७) । धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके चंगुलसे छुड़ाना और अश्वत्थामाको पराजित करना (कर्ण० ५९ । ५४–६१) । इनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय (कर्ण० ६४ । ३१-३२) । श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिरके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करना (कर्ण० ६५ । १७) । अबतक कर्णके न मारे जानेका कारण युधिष्ठिरसे बतलाते हुए उसके वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण०६७ अ०में) । युधिष्ठिरका वध करनेको उद्यत होना (कर्ण० ६९ । ९–१५) । श्रीकृष्णसे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिका उपाय पूछना (कर्ण० ६९ । ६७–७५) । 'तू' शब्द कहकर युधिष्ठिरको कटुवचन सुनाना (कर्ण० ७० । २–२१) । युधिष्ठिरका अपमान करनेके कारण आत्महत्याके लिये तलवार खींचना (कर्ण० ७० । २३) । युधिष्ठिरसे क्षमायाचना(कर्ण०७० । ३८-३९) । युधिष्ठिरसे कर्ण-वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण० ७० । ४०-४१) । युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणिपात और कर्ण-वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण० ७१ । ३५–३८) । कर्ण-वधके लिये मार्गमें जाते समय चिन्तामग्न होना (कर्ण० ७२ । १६-१७) । श्रीकृष्णसे इनके वीरोचित उद्गार (कर्ण० ७४ अ०में) । इनके द्वारा कौरवसेनाका भीषण संहार (कर्ण० ७७ । ५–२०) । श्रीकृष्णसे कर्णके पास चलनेके लिये कहना (कर्ण० ७९ । ७–१२) । इनके द्वारा कौरवसेनाका विध्वंस (कर्ण० ७९ । ७१–९० से ८० अ० तक; ८१ । ५–२०) । कौरवोंको ललकारते हुए वृषसेनका वध (कर्ण० ८५ । ३७) । युद्धके लिये इनका कर्णके सम्मुख उपस्थित होना (कर्ण० ८६ । २३) । कर्णवधके लिये श्रीकृष्णसे वार्तालाप (कर्ण० ८७ । १०५–११७) । कर्णके साथ इनका द्वैरथ युद्ध (कर्ण० ८९ अ०से ९० अ० तक) । इनके द्वारा राजकुमार सभापतिका वध (कर्ण० ८९ । ६४) । कर्णके सर्पमुख बाणसे इनके किरीटका गिरना (कर्ण० ९० । ३३) । इनके द्वारा कर्णका वध (कर्ण० ९१ । ५०) । रथसेनाका विध्वंस (कर्ण० ९३ । ४२–४६) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध (शल्य० १४ अ०में) । श्रीकृष्णके समक्ष दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा (शल्य० २४ । १६–५०) । कौरवोंकी रथसेनाका संहार (शल्य० २५ । १–१४) । दुर्योधनको मारनेके विषयमें श्रीकृष्णसे वार्तालाप (शल्य० २७ । १३–२७) । सत्यकर्मा, सत्येषु और पैंतालीस पुत्रोंसहित सुशर्माका वध (शल्य० २७ । ३८–४८) । श्रीकृष्णसे भीमसेन और दुर्योधनके बलाबलके विषयमें पूछना (शल्य० ५८ । २) । भीमसेनको अपनी जाँघ ठोंककर संकेत करना (शल्य० ५८ । २१) । युद्धके पश्चात् इनके रथका दग्ध होना (शल्य० ६२ । १३) । श्रीकृष्णसे अपने रथके दग्ध होनेका कारण पूछना (शल्य० ६२ । १६-१७) । अश्वत्थामासे भीमसेनकी रक्षाके लिये श्रीकृष्णके साथ जाना (सौप्तिक० १३ । ६) । अश्वत्थामाका अस्त्र-शान्त करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग (शल्य० १४ । ५-६) । व्यासजीको देखकर अपना अस्त्र लौटा लेना (सौप्तिक० १५ । २–४) गान्धारीके शापके भयसे श्रीकृष्णके पीछे छिपना (स्त्री० १५ । ३१) । धनकी महत्ता दिखाते हुए राजधर्म-पालनके लिये युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ८ अ०में) युधिष्ठिरको समझाते हुए गृहस्थधर्मके पालनपर जोर देना (शान्ति० ११ अ०में) । युधिष्ठिरसे इनके द्वारा राजधर्मकी महत्ताका वर्णन करना (शान्ति० १५ अ०में) । राजा जनक और उनकी रानीका दृष्टान्त देकर युधिष्ठिरको संन्यास लेनेसे रोकना (शान्ति० १८ अ०में) । युधिष्ठिरसे क्षत्रिय-धर्मकी प्रशंसा करना (शान्ति० २२ अ०में) । युधिष्ठिरका शोक दूर करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना करना (शान्ति० २९ । २-३) । अर्जुनको युधिष्ठिरका शत्रुओं तथा दुष्टोंके दमनका कार्य सौंपना (शान्ति० ४१ । १३) । युधिष्ठिरका इन्हें रहनेके लिये दुःशासनका भवन देना (शान्ति० ४४ । ८-९) । युधिष्ठिरके पूछनेपर त्रिवर्गमें अर्थकी प्रधानता बताना (शान्ति० १६७ । ११–२०) । श्रीकृष्णसे उनके नामोंकी व्युत्पत्ति पूछना (शान्ति० ३४१ । ५–७) । श्रीकृष्णसे पुनः गीताका ज्ञान पूछना (आश्व० १६ । ५–७) । श्रीकृष्णसे परब्रह्मके स्वरूपके विषयमें प्रश्न करना (आश्व० ३५ । १) । श्रीकृष्णके प्रति इनके प्रशंसा-सूचक वचन (आश्व० ५२ । ६–२४) । श्रीकृष्णकी द्वारका-यात्राके लिये युधिष्ठिरसे आज्ञा माँगना (आश्व० ५२ । ४२-४३) । व्यासजीके समझानेसे पुत्रशोकसे निवृत्त होकर संतोष-लाभ करना (आश्व० ६२ । १८) । धन लानेके विषयमें पाँचों भाइयोंमें बातचीत; और भाइयोंके साथ जाकर इनका हिमालयसे मरुत्तका धन ले आना (आश्व० ६३ अ०से ६५ अ० तक) । अर्जुनकी

अश्वरक्षाके लिये नियुक्ति (आश्व० ७२ । १६)। सेनासहित अर्जुनका अश्वकी रक्षाके लिये उसके पीछे पीछे पैदल ही जाना (आश्व० ७३ । ७-८)। अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय, सूर्यवर्माकी हार, केतुवर्माका वध, धृतवर्माका घायल होना आदि (आश्व०७४ अ०में)। प्राग्ज्यौतिषपुरमें भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तकी पराजय तथा उसके हाथीका विनाश (आश्व० ७६ । १७–१९)। अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध और दुःशलाके अनुरोधसे उसकी समाप्ति (आश्व० ७७-७८ अ०)। अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध तथा अर्जुनकी मृत्यु (आश्व०७९ अ०में)। उलूपीके प्रयत्नसे संजीवनी मणिके द्वारा अर्जुनका पुनर्जीवन (आश्व० ८० अ०में)। उलूपीसे उसके और चित्राङ्गदाके युद्धस्थलमें आनेका कारण पूछना (आश्व० ८१ । १में)। अर्जुनकी पराजयका रहस्य तथा उलूपी और चित्राङ्गदासे विदा लेकर उनका पुनः अश्वके पीछे जाना (आश्व० ८१ अ०में)। अर्जुनद्वारा मगधराज मेघसंधिकी पराजय (आश्व० ८२ अ०में)। शकुनिपुत्रकी पराजय, शकुनिकी स्त्रीके अनुरोधसे अर्जुनका युद्ध बंद कर देना (आश्व० ८४ अ०में)। श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना (आश्व० ८६ । ९–२१)। अर्जुनके विषयमें श्रीकृष्ण-युधिष्ठिरकी बातचीत, अर्जुनके दूत तथा अर्जुनका हस्तिनापुरमें आना (आश्व० ८७ । १–२२)। धृतराष्ट्रके श्राद्ध और दानके लिये धन माँगनेपर अर्जुनकी सहमति तथा भीमसेनके अस्वीकार करनेपर अर्जुनका उन्हें समझाना (आश्रम० ११-१२ अ०)। यादवोंसहित इनका वनमें जाकर धृतराष्ट्र और माता कुन्ती आदिके दर्शन करना तथा व्यासजीके द्वारा मृत व्यक्तियोंका आवाहन होनेपर उन सबसे मिलना, हस्तिनापुरको लौटना तथा धृतराष्ट्र आदिके दग्ध होनेके समाचारसे दुखी होना और उनके श्राद्ध आदि करना (आश्रम० २३–३९ अ०तक)। अर्जुनका दारुकके साथ द्वारका जाना, श्रीकृष्णपत्नियोंसे मिलना और उन्हें धीरज बँधाकर वसुदेवके पास जाना (मौसल० ५ अ०में)। अर्जुनसे मिलकर वसुदेवका विलाप करना और उनके लिये कहे गये श्रीकृष्णका संदेश सुनाना (मौसल० ६ अ०में)। 'अब पाण्डवोंके भी परलोकगमनका समय आ गया है, हम यहाँके लोगोंको इन्द्रप्रस्थ ले जायँगे'—ऐसा वसुदेवसे कहकर अर्जुनका दारुक तथा मन्त्रियोंको यात्राकी तैयारीके लिये आदेश देना तथा रातमें श्रीकृष्णभवनमें ठहरना (मौसल० ७ । १–१४)। वसुदेवका परलोकवास और अर्जुनद्वारा उनका दाह-संस्कार एवं वृष्णिवंशी कुमारोंद्वारा जलदान (मौसल० ७ । १५–५७)। अर्जुनका यादव-विनाशस्थलमें जाकर छोटे-बड़ेके क्रमसे सबका दाह करना, फिर श्रीकृष्ण-बलरामके शरीरोंका अनुसंधान कराकर उनका भी दाह-संस्कार करना (मौसल० ७ । २८–३१)। अर्जुनका श्रीकृष्णपत्नियों तथा द्वारकावासियोंको लेकर इन्द्रप्रस्थकी ओर प्रस्थान (मौसल० ७ । ३२)। मार्गमें लुटेरोंका आक्रमण और अर्जुन आदिका उनसे स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होना। शेष व्यक्तियोंको लेकर जाना। मार्तिकावतमें कृतवर्माके पुत्रको सरस्वतीके तटपर सात्यकिके पुत्रको उन प्रदेशोंका राजा बनाना और वज्रको इन्द्रप्रस्थमें अभिषिक्त करना (मौसल० ७ । ५१–७२)। अर्जुनका व्यासजीसे बीती बातें बताना और व्यासजीका उन्हें आश्वासन देते हुए पाण्डवोंको महाप्रस्थानके लिये प्रेरित करना (मौसल० ८ अ०में) अर्जुनका भाइयोंसहित महाप्रस्थान और मार्गमें अग्निदेव और भाइयोंके कहनेसे गाण्डीव धनुषको जलमें डाल देना (महाप्रा० १ । १–४२)। मार्गमें अर्जुनका गिरना और युधिष्ठिरका उनके गिरनेका कारण बताना (महाप्रा० २ । १८–२२)। अर्जुनका भगवान् श्रीकृष्णके पार्षदरूपसे दर्शन (स्वर्गा० ४ । ४)।

महाभारतमें आये हुए अर्जुनके नाम—ऐन्द्रि, भारत, भीमानुज, भीमसेनानुज, बीभत्सु, बृहन्नला, शाखामृगध्वज, शक्रज, शक्रनन्दन, शक्रसूनु, शक्रात्मज, शक्रसुत, श्वेताश्व, श्वेतहय, श्वेतवाह, श्वेतवाहन, देवेन्द्रतनय, धनंजय, गाण्डीवभृत्, गाण्डीवधन्वा, गाण्डीवधारी, गाण्डीवी, गुडाकेश, इन्द्ररूप, इन्द्रसुत, इन्द्रात्मज, इन्द्रावरज, जय, जिष्णु, कपिध्वज, कपिकेतन, कपिप्रवर, कपिवरध्वज, कौन्तेय, कौरव, कौरवश्रेष्ठ, कौरव्य, कौरवेय, किरीटभृत्, किरीटमाली, किरीटवान्, किरीटी, कृष्ण, कृष्णसारथि, कुन्तीपुत्र, महेन्द्रसूनु, महेन्द्रात्मज, नर, पाकशासनि, पाण्डव, पाण्डवेय, पाण्डुनन्दन, पार्थ, पौरव, फाल्गुन, प्रभञ्जनसुतानुज, सव्यसाची, सुरसूनु, तापत्य, त्रिदशेश्वरात्मज, वानरध्वज, वानरकेतन, वानरकेतु, वानरवर्यकेतन, वासवज, वासवनन्दन, वासवात्मज, वासवि, विजय आदि।

अर्जुनकी पत्नियोंके नाम—द्रौपदी, उलूपी, चित्राङ्गदा और सुभद्रा।

इनके पुत्रोंके नाम क्रमशः—श्रुतिकीर्ति, इरावान्, बभ्रुवाहन और अभिमन्यु।

(२) हैहयराज कार्तवीर्य, यमसभाके एक सदस्य (सभा० ८ । ११)। (विशेष देखिये कार्तवीर्य) (३) यमसभामें बैठनेवाले एक राजा (सभा० ८ । १७)।

अर्जुनक—एक व्याध; इसका गौतमी, सर्प, मृत्यु और कालके साथ संवाद (अनु० १ । २१-६८)।

अर्जुनवनवासपर्व—आदिपर्वका अवान्तर पर्व अध्याय २१२ से २१७ तक।

अर्जुनाभिगमनपर्व—वनपर्वका अवान्तर पर्व, अध्याय १२ से ३७ तक।

अर्थ—धर्मद्वारा श्रीदेवीसे उत्पन्न (शान्ति० ५९ । १३२)।

अर्धकीलतीर्थ—दर्भीमुनिके द्वारा प्रकट किया हुआ एक तीर्थ (वन० ८३ । १५३)।

अर्बुक–एक देश, जिसे सहदेवने जीता था (**सभा० ३१ । १४**) ।

अर्बुद–(१) गिरिव्रजनिवासी एक नाग (**सभा० २१ । ९**) । (२) आबू पर्वत (**वन० ८२ । ५५**) ।

अर्यमा–बारह आदित्योंमें एक, माता अदिति और पिता कश्यप हैं (**आदि० ६५ । १५; शान्ति० २०८ । १५**) ।

अर्वावसु–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । १०**) । अर्वावसुकी तपस्याद्वारा परावसुकी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति । अर्वावसुद्वारा सूर्यसम्बन्धी रहस्यमय वेदमन्त्रका अनुष्ठान तथा इससे संतुष्ट हुए सूर्यदेवताका अर्वावसुको मनोवाञ्छित वरदान (**वन० १३८ अ० में**) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें इनका श्रीकृष्णसे भेंट करना (**उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षि० पाठ**) । उपरिचरके यज्ञमें इनका सदस्यताग्रहण (**शान्ति० ३३६ । ७**) । ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, लोकस्रष्टा तथा रुद्र आदिके समान प्रभावशाली ऋषियोंमें इनकी गणना (**अनु० १५० । ३०–३२**) ।

अलकनन्दा–देवलोककी गङ्गा । गङ्गाजी जब देवलोकमें विचरण करती हैं, तब इनका नाम अलकनन्दा होता है और जब पितृलोकमें बहती हैं, तब ये वैतरणी कहलाती हैं तथा इस लोकमें आकर इनका नाम गङ्गा होता है (**आदि० १६९ । २२**) । गढ़वाल जिलेकी अलकनन्दा नामवाली नदी—जो विष्णुगङ्गा (धवलगङ्गा या धौली) और सरस्वती नामक छोटी नदियोंकी संयुक्त धारासे बनी है । यह गङ्गाकी सहायक नदी है (**हिंदी महाभारत परिशिष्ट पृष्ठ ६**) ।

अलका–कुबेरकी नगरी और पुष्करिणी (**आदि० ८५ । ९; सभा० १० । ८**) ।

अलम्बतीर्थ–एक दिव्य तीर्थ, जहाँ गरुड़जी कच्छप और हाथीको लेकर गये (**आदि० ३९ । ३९**) ।

अलम्बुष–(१) कौरवपक्षका योद्धा एक महारथी राक्षसराज, जो राक्षस ऋष्यशृङ्गका पुत्र था (**उद्योग० १६७ । ३३; द्रोण० १०६ । १६**) । प्रथम दिनके युद्धमें घटोत्कचके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । ४२–४५**) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (**भीष्म० ८२ । ४४–४५**) । इरावान्‌के साथ युद्ध और इसके द्वारा उनका वध (**भीष्म० ९० । ५६–७६**) । अभिमन्युके साथ युद्ध और द्रौपदीपुत्रोंकी पराजय (**भीष्म० १०० । ३१–५४**) । अभिमन्युद्वारा इसका पराजित होना (**भीष्म० १०१ । २८-२९**) । सात्यकिके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० १११ । १–६**) । घटोत्कचके साथ युद्ध (**द्रोण० १४ । ४६-४७; २५ । ६१-६२**) । कुन्तिभोजके साथ युद्ध (**द्रोण० ९६ । १८–२०**) । भीमसेनके साथ युद्ध (**द्रोण० १०६ । १६-१७**) । भीमसेनके साथ मायामय युद्ध और उनसे परास्त होकर भागना (**द्रोण० १०८ । १३–४२**) । इसका दूसरा नाम 'शालकटंकट' था । यह घटोत्कचद्वारा मारा गया (**द्रोण० १०९ । २२–३१**) । (२) कौरवपक्षका एक श्रेष्ठ राजा, जो सात्यकिद्वारा मारा गया (**द्रोण० १४० । १८**) । (३) एक राक्षसराज, जो अर्जुनसे पराजित हो युद्धका मैदान छोड़कर भाग गया (**द्रोण० १६७ । ३७–४७**) । (४) एक राक्षस, जटासुरका पुत्र; इसका दुर्योधनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना (**द्रोण० १७४ । ६–८**) । घटोत्कचके हाथसे युद्धमें मारा जाना (**द्रोण० १७४ । ३७-३८**) ।

अलम्बुषा–एक अप्सरा, जो महर्षि कश्यप और प्राधाकी पुत्री थी (**आदि० ६५ । ४९**) । इसने अर्जुनके जन्मोत्सवपर अन्य अप्सराओंके साथ आकर नृत्य किया (**आदि० १२२ । ६१**) । इसने महर्षि दधीचिको मोहित किया (**शल्य० ५१ । ७-८**) ।

अलर्क–(१) काशी और करूपके अधिपति । ये बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे (**वन० २५ । १३**) । ये यमराजकी सभाके एक सदस्य हैं (**सभा० ८ । १८**) । इन्होंने राज्य और धनको त्यागकर धर्मका आश्रय लिया, मांस-भक्षणका निषेध किया (**अनु० ११५ । ६४**) । अपनी इन्द्रियोंपर विजय पानेका प्रयत्न और इन्द्रियोंद्वारा उत्तर (**आश्व० ३० । ५–२५**) । ध्यानयोगद्वारा इन्हें परमसिद्धिकी प्राप्ति (**आश्व० ३० । २८-२९**) । (२) एक भयंकर कीट, जिसने कर्णकी जाँघमें काटा था (**शान्ति० ३ । १३**) ।

अलाताक्षी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६।८**) ।

अलायुध–एक राक्षस, जो बकासुरका भाई और कौरवपक्षका योद्धा था। (**द्रोण० ९५ । ४६; १७६ । ६**) । इसका घटोत्कचके साथ युद्ध (**द्रोण० ९६ । २७-२८**) । भीमसेनके साथ युद्ध करनेके लिये इसका दुर्योधनसे आज्ञा माँगना (**द्रोण० १७६ । ६–१०**) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध (**द्रोण० १७७ अ०में**) । घटोत्कचद्वारा वध (**द्रोण० १७८ । ३१**) ।

अलोलुप–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १०३**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**कर्ण० ८४ । ६**) ।

अवगाह–एक वृष्णिवंशी योद्धा (**द्रोण० ११ । २७**) ।

अवन्ती–(अवन्ति) भारतका एक जनपद—मालवप्रदेश तथा उसकी राजधानी उज्जयिनी । (**यह स्थान शिप्रा नदीके तटपर है और सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है**) (**सभा०**

३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०२; भीष्म० ९ । ४३) ।

अवभृथ–यज्ञान्त-स्नान (सभा० ४५ । ४०) ।

अवसान–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८२ । १२८) ।

अवाकीर्ण–सरस्वतीतटवर्ती एक तीर्थ (शल्य० ४१ । १–३०) ।

अवाचीन–पूरुवंशीय राजा जयत्सेनके द्वारा विदर्भकुमारी सुश्रवाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, इनके द्वारा विदर्भराज-कुमारी मर्यादाके गर्भसे 'अरिह' की उत्पत्ति हुई (आदि० ९५ । १७-१८) ।

अविकम्पन–एक प्राचीन नरेश, जिन्हें ज्येष्ठ मुनिसे सात्वत धर्मकी प्राप्ति हुई (शान्ति० ३४८ । ४७) ।

अविक्षित्–(१) एक सम्राट्, महाराज मरुत्तके पिता (द्रोण० ५५ । ३७) । ये अङ्गिराके यजमान थे । इनके अनुपम गुणोंका वर्णन (आश्व० ४ । १७–२२) । (२) कुरुके उनकी पत्नी वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमें जो अश्ववान् थे, उन्हींका दूसरा नाम अविक्षित् भी था (आदि० ९४ । ५०–५२) ।

अविज्ञातगति–'अनिल' नामक वसुके द्वारा शिवाके गर्भसे उत्पन्न पुत्र, इसके भाईका नाम 'मनोजव' था (आदि० ६६ । २५) ।

अविन्ध्य–एक बुद्धिमान् वृद्ध एवं श्रेष्ठ राक्षस, जिसने सीताजीको आश्वासन देनेके लिये अशोकवाटिकामें त्रिजटा-को भेजा था (वन० २८० । ५६-५७) । इसका सीताजीको मारनेके लिये उद्यत हुए रावणको समझाकर रोकना (वन० २८९ । २८–३२) । लङ्का-विजयके पश्चात् सीताजीको लेकर श्रीरामके पास आना (वन० २९१ । ६-७) ।

अविमुक्त–वाराणसीका मध्यभाग—अविमुक्त क्षेत्र; यहाँ प्राणोत्सर्ग करनेवालेको मोक्ष प्राप्त होता है (वन० ८४ । ७८-७९) ।

अव्यय–धृतराष्ट्र-कुलमें उत्पन्न हुआ एक सर्प, जो जनमेजय-के नागयज्ञमें दग्ध हुआ था (आदि० ५७ । १६) ।

अशनि–एक दिव्य महर्षि, जिन्होंने श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें उनसे भेंट की थी (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

अशोक–(१) भीमसेनका सारथि । इसका कलिङ्गराज श्रुतायुके साथ युद्ध करते समय रथहीन भीमके पास रथ पहुँचाना (भीष्म० ५४ । ७०-७१) । (२) एक क्षत्रिय राजा, जो अश्वनाम विख्यात असुरके अंशसे प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । १४) । यही कलिंगराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गया था (शान्ति० ४ । ७) ।

अशोकतीर्थ–शूर्पारक क्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ (वन० ८८ । १३) ।

अशोकवनिका–लङ्कापुरीकी सुप्रसिद्ध अशोकवाटिका, जहाँ सीताजी रखी गयी थीं (वन० २८० । ४१–४२) ।

अश्मक–(१) महाराज कल्माषपादके क्षेत्रज पुत्र । महर्षि वसिष्ठके द्वारा कल्माषपादकी पत्नी मदयन्तीके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई (आदि० १७६ । ४७) । इनका अश्मक नाम होनेका कारण (आदि० १७६ । ४६) । इनके द्वारा 'पौदन्य' नगरका निर्माण (आदि० १७६ । ४७) । (२) (गोदावरी और माहिष्मतीके बीचका) एक देश (भीष्म० ९ । ४४) । (३) अश्मक देशका राजा, पाण्डव-पक्षका योद्धा, जो कर्णद्वारा जीता और बाँधा गया था (कर्ण०) । सम्भवतः इसीने राजा युधिष्ठिरको बछड़ेसहित दस हजार दुधारू गौएँ दी थीं (सभा० ५१ दाक्षिणात्य पाठ) । (४) एक ऋषिका नाम (शान्ति० ४७ । ५) ।

अश्मकी–यादव-वंशमें उत्पन्न एक राजकुमारी, प्राचिन्वान्-की स्त्री । इसके गर्भसे संजात नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई (आदि० ९५ । १३) ।

अश्मकदायाद (अश्मकपुत्र)–एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (द्रोण० ३७ । २२–२३) ।

अश्मपृष्ठ–गयामें स्थित प्रेतशिला तीर्थ । यहाँ पिण्ड देनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है (अनु० २५ । ४२) ।

अश्मा–एक प्राचीन मुनि । प्रारब्धकी प्रबलता बताते हुए इनका जनकके प्रश्नका उत्तर देना (शान्ति० २८ । ५–५७) ।

अश्व–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २४) ।

अश्वकेतु–गान्धारराजका पुत्र, जो कौरवपक्षका योद्धा था और अभिमन्युद्वारा मारा गया था (द्रोण० ४८ । ७) ।

अश्वग्रीव–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २४) ।

अश्वतर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०) । (२) अश्वतर नागसे उपलक्षित प्रयागका एक तीर्थ (वन० ८५ । ७६) ।

अश्वतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जो कन्नौजके पास गङ्गाके तटपर स्थित है (वन० ९५ । ३) । इसके प्राकट्यका वर्णन (अनु० ४ । १७) ।

अश्वत्थामा–(१) कृपीके गर्भसे उत्पन्न द्रोणाचार्यका पुत्र (**आदि० ६३ । १०७; १२९ । ४७**) । इसका जन्म शिव, यम, काम तथा क्रोधके सम्मिलित अंशसे हुआ था (**आदि० ६७ । ७२**) । इसका अश्वत्थामा नाम होनेका कारण (**आदि० १२९ । ४८-४९**) । इसका आटेके पानीको दूध समझकर पीना और प्रसन्न होना (**आदि० १३० । ५४**) । कौरवराजकुमारोंके साथ इसका भी अपने पितासे अध्ययन (**आदि० १३१ अध्याय**) । युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें इसका पदार्पण (**सभा० ३४ । ८**) । कर्ण और दुर्योधनको फटकारते हुए इसका अर्जुनके विषयमें अपना उद्गार प्रकट करना (**विराट० ५० अध्याय**) । अर्जुनके साथ युद्ध और बाणोंसे खाली हो जानेपर इसका उनके समक्ष नीचा देखना (**विराट० ५९ । १–१५**) । दुर्योधनसे दस दिनमें पाण्डवसेनाको नष्ट करनेकी शक्तिका कथन (**उद्योग० १९३ । १९**) । प्रथम दिनके युद्धमें इसका शिखण्डीके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ४५ । ४६–४८**) । दूसरे दिनके युद्धमें शल्य और कृपके साथ रहकर इसका धृष्टद्युम्न और अभिमन्युसे युद्ध करना (**भीष्म० ५५ । २–७**) । अर्जुनके साथ जूझना (**भीष्म० ७३ । ६–१६**) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (**भीष्म० ८२ । ३४–३८**) । अनूप-नरेश नीलकी पराजय (**भीष्म० ९४ । ३५-३६**) । सात्यकिके प्रहारसे इसका मूर्छित होना (**भीष्म० १०१ । ४६-४७**) । विराट और द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ११० । १६**) । विराट और द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० १११ । २२–२७**) । सात्यकिके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ११६ । ९–१२**) । प्रतिविन्ध्यके साथ युद्ध (**द्रोण० २५ । २९–३१**) । इसके द्वारा राजा नीलका वध (**द्रोण० ३१ । २४-२५**) । इसका अभिमन्युको घायल करना (**द्रोण० ३७ । २४–३१**) । इसके ध्वजका वर्णन (**द्रोण० १०५ । १०-११**) । अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होकर अश्वत्थामाका भागना (**द्रोण० १३९ । १२१–१२३**) । अर्जुनके साथ युद्ध (**द्रोण० १४५ अध्याय**) । अर्जुनके साथ युद्ध और इसकी पराजय (**द्रोण० १४७ । ११**) । इसके द्वारा अंजनपर्वाका वध (**द्रोण० १५६ । ८९-९०**) । इसके द्वारा सुरथ, शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वका वध (**द्रोण० १५६ । १८०-१८१**) । इसके द्वारा राजा श्रुताह्वका वध (**द्रोण० १५६ । १८२**) । इसके द्वारा हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका वध (**द्रोण० १५६ । १८३**) । इसके द्वारा कुन्तिभोजके दस पुत्रोंका वध (**द्रोण० १५६ । १८३**) । घटोत्कचके साथ युद्धमें उसे पराजित करना (**द्रोण० १५६ । १८४–१८६**) । इसका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना (**द्रोण० १५९ । ३–९**) । अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उद्यत दुर्योधनको रोकना (**द्रोण० १५९ । ८४-८५**) । दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन (**द्रोण० १६० । २–१७**) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्धमें सेनासहित उसे पराजित करना (**द्रोण० १६० । ४१–५३**) । इसके द्वारा घटोत्कचकी पराजय (**द्रोण० १६६ । १८**) । दुर्योधनसे कौरव सेनाके भागनेका कारण पूछना (**द्रोण० १९३ । २९–३२**) । कृपाचार्यसे अपने पिताके वधका समाचार सुनकर कुपित होना (**द्रोण० १९३ । ६८–७०**) । इसका दुर्योधनके समक्ष क्रोधपूर्ण उद्गार और नारायणास्त्रको प्रकट करना (**द्रोण० १९४ अध्याय**) । दुर्योधनको अपनी प्रतिज्ञा सुनाना (**द्रोण० १९९ । ५–७**) । इसके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग (**द्रोण० १९९ । १५**) । पुनः नारायणास्त्र प्रकट करनेमें अश्वत्थामाका अपनी असमर्थता दिखाना (**द्रोण० २०० । २७–२९**) । धृष्टद्युम्नको परास्त करना (**द्रोण० २०० । ४३-४४**) । इसके द्वारा मालवनरेश सुदर्शनका वध (**द्रोण० २०० । ८३**) । इसके द्वारा पौरव वृद्धक्षत्रका वध (**द्रोण० २०० । ८४**) । इसके द्वारा चेदिदेशके युवराजका वध (**द्रोण० २०० । ८५**) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध और उनको पराजित करना (**द्रोण० २०० । ८७–१२८**) । इसके द्वारा आग्नेयास्त्रका प्रयोग (**द्रोण० २०१ । १६-१७**) । श्रीकृष्ण और अर्जुनको आग्नेयास्त्रसे मुक्त देखकर सब कुछ मिथ्या कहते हुए उसका युद्धस्थलसे भागना (**द्रोण० २०१ । ४५–४७**) । मार्गमें व्यासजीसे भेट और उनसे श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रभाव न होनेका कारण पूछना (**द्रोण० २०१ । ५०–५५**) । कर्णको सेनापति बनानेकी सलाह देना (**कर्ण० १० । १२–१७**) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध और मूर्च्छित होना (**कर्ण० १५ अध्याय**) । अर्जुनके साथ घोर युद्ध और पराजित होना (**कर्ण० अ० १६से १७ अ० तक**) । पाण्ड्यनरेश मलयध्वजका वध (**कर्ण० २० । ४६**) । पाण्डव महारथियोंको परास्त करके युधिष्ठिरको भगा देना (**कर्ण० ५५ अध्याय**) । अर्जुनके साथ युद्धमें पराजित होना (**कर्ण० ५६ । १२१–१४२**) । धृष्टद्युम्नके वधकी प्रतिज्ञा करना (**कर्ण० ५७ । ७–१०**) । धृष्टद्युम्नको परास्त करके उसे जीते-जी खींचना (**कर्ण० ५९ । ३९–५३**) । अर्जुनद्वारा पराजित होना (**कर्ण० ५९ । ६०-६१**) । अर्जुनद्वारा पराजित होना (**कर्ण० ६४ । ३१-३२**) । पाण्डवोंके साथ संधि करनेके लिये दुर्योधनसे अनुरोध (**कर्ण० ८८ । २१–२९**) । दुर्योधनके पूछनेपर सेनापतिके लिये शल्यका नाम प्रस्तावित करना (**शल्य० ६ । १९–**

२१)। अर्जुनके साथ युद्ध (**शल्य० १४ अध्याय**)। इसके द्वारा पाञ्चाल-महारथी सुरथका वध (**शल्य० १४।४३**)। द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनके सामने सोमकोंके वधकी प्रतिज्ञा करना (**शल्य० ३०। १९–२२**)। सेनासहित युधिष्ठिरके वहाँ पहुँचनेपर हट जाना (**शल्य० ३०। ६३**)। दुर्योधनकी अवस्थापर विषाद करना (**शल्य० ६५। १३–२०**)। पाञ्चालोंके वधकी प्रतिज्ञा करना (**शल्य० ६५। ३४–३७**)। सेनापति-पदपर अभिषिक्त हो दुर्योधनको हृदयसे लगाकर युद्धके लिये प्रस्थित होना (**शल्य० ६५। ४४**)। उल्लूका कौवोंपर आक्रमण देखकर इसके मनमें क्रूर संकल्पका उदय होना (**सौप्तिक० १। ४५-५६**)। कृतवर्मा और कृपाचार्यसे सलाह लेना (**सौप्तिक० १। ५९–६९**)। कृतवर्मा और कृपाचार्यको अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना (**सौप्तिक० ३ अध्याय**)। कृपाचार्यके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (**सौप्तिक० ४। २२–३४**)। कृपाचार्यके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (**सौप्तिक० ५। १८–२९**)। कृपाचार्य और कृतवर्माको अपना निश्चय बताना (**सौप्तिक० ५। ३४–३७**)। पाण्डवोंके शिविरद्वारपर एक अद्भुत पुरुषसे युद्ध और शस्त्रोंके अभावमें चिन्तित होकर भगवान् शिवकी शरण लेना (**सौप्तिक० ६ अध्याय**)। इसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (**सौप्तिक० ७। २–१२**)। इसके सामने अग्निवेदी और भूतगणोंका प्राकट्य (**सौप्तिक० ७। १३–१५**)। इसके द्वारा भगवान् शिवको आत्म-समर्पण (**सौप्तिक० ७। ५२**)। भगवान् शिवद्वारा इसे खड्गकी प्राप्ति (**सौप्तिक० ७। ६६**)। इसके द्वारा रातमें सोये हुए पाञ्चालों, सोमकों और द्रौपदी-पुत्रोंका संहार (**सौप्तिक० ८। १७–१३२**)। दुर्योधनकी दशा देखकर विलाप करना (**सौप्तिक० ९। १९–४६**)। दुर्योधनको पाञ्चालों और द्रौपदी-पुत्रोंके मारे जानेकी खबर सुनाना (**सौप्तिक० ९। ४८–५२**)। श्रीकृष्णका इसके द्वारा अपनेसे सुदर्शनचक्र माँगनेकी चर्चा करना (**सौप्तिक० १२ अध्याय**)। पाण्डवोंके वधके लिये ऐषीकास्त्रका प्रयोग (**सौप्तिक० १३। १९–२२**)। व्यासजीसे अपना अस्त्र लौटानेमें अपनी असमर्थता बताना (**सौप्तिक० १५। १३–१८**)। व्यासजीके कहनेसे अपनी मणि अलग रखकर पाण्डवोंके गर्भपर अस्त्र छोड़ना (**सौप्तिक० १५। २८–३५**)। अपने अस्त्रको उत्तराके गर्भपर गिरनेका संकल्प करना (**सौप्तिक० १६। ६-७**)। श्रीकृष्णसे अभिशप्त हो पाण्डवोंको मणि देकर अश्वत्थामा-का वनको प्रस्थान (**सौप्तिक० १६। २०**)। धृतराष्ट्रसे मिलकर इसका व्यासाश्रमकी ओर जाना (**स्त्री०११।२१**)।

महाभारतमें आये हुए अश्वत्थामाके नाम–आचार्य-नन्दन, आचार्यपुत्र, आचार्यसुत, आचार्यतनय, आचार्य-सत्तम, द्रौणि, द्रौणायनि, द्रोणपुत्र, द्रोणसूनु, गुरुपुत्र, गुरुसुत, भारताचार्यपुत्र।

(२) मालवनरेश इन्द्रवर्माका हाथी, जो भीमसेनद्वारा मारा गया था (**द्रोण० १९०। १५**)।

अश्वनदी–कुन्तिभोज देशकी एक नदी, जो चर्मण्वतीमें मिली है। इसीमें कुन्तीने शिशु कर्णको पिटारीमें बंद करके छोड़ा था (**वन० ३०८। २२**)।

अश्वपति–(१) कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६५। २४**)। (२) मद्रदेशके राजा। संतान-प्राप्तिके लिये इनकी तपस्या और सावित्रीकी आराधना (**वन० २९३। १–८**)। इनकी सावित्री देवीसे वर-याचना (**वन० २९३। १४**)। इन्हें सावित्री नामकी कन्या प्राप्त हुई (**वन० २९३। २३**)। इनका सावित्रीको स्वयं वर खोजनेके लिये भेजना (**वन० २९३। ३३**)। नारदजीसे सत्यवान्के गुण-दोषके विषयमें प्रश्न (**वन० २९४। १४**)। राजर्षि द्युमत्सेनसे सावित्रीको पुत्रवधू बनानेके लिये प्रार्थना (**वन० २९५। १०–१२**)। इन्हें मालवीके गर्भसे सौ पुत्रोंकी प्राप्ति (**वन० २९९। १३**)।

अश्वबन्ध–घोड़ोंको वशमें करनेवाला सवार (**विराट० ३।३**)।

अश्वमेध–प्राचीन देश। इस देशके राजाका नाम रोचमान था, जिसे दिग्विजयके समय भीमसेनने बलपूर्वक जीत लिया था (**सभा० २९।८**)।

अश्वमेधदत्त–शतानीककी पत्नी विदेहराजकुमारीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (**आदि० ९५।८६**)।

अश्वमेधपर्व–आश्वमेधिकपर्वका एक अवान्तरपर्व (१—१५ अध्यायतक)।

अश्वरथा–गन्धमादनपर्वतके नीचे आर्ष्टिषेणके आश्रमके पास बहनेवाली एक नदी (**वन० १६०।२१**)।

अश्ववती–तीनों समय स्मरण करनेयोग्य नदियोंमेंसे एक (**अनु० १६५।२५**)।

अश्ववान्–भरतवंशी महाराज कुरुके प्रथम पुत्र। इनकी माताका नाम 'वाहिनी' था। इनका दूसरा नाम 'अविक्षित्' था। इनके परीक्षित्, शबलाश्व, आदिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भयङ्कर तथा जितारि नामके आठ पुत्र थे (**आदि० ९४।५०–५३**)।

अश्वशङ्कु–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (**आदि०६७।१०**)।

अश्वशिरःस्थान–एक पवित्र स्थान, स्वप्नमें शिवजीके पास जाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन यहाँ गये थे (**द्रोण०८०।३२**)।

अश्वशिरा–(१)कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६५।२३**)। (२)नरनारायणाश्रमके पास वैहायसकुण्डपर वेदपाठी भगवान् हयग्रीव (**शान्ति० १२७।३**)।

अश्वसेन–तक्षकनागका पुत्र (आदि० २२६।५)। खाण्डव-वन-दाहके समय इसकी माताका अर्जुनद्वारा वध (आदि० २२६।८)। इन्द्रद्वारा इसकी रक्षा (आदि० २२६।९)। अर्जुनद्वारा इसे आश्रयहीनताका शाप (आदि० २२६।११)। कर्णद्वारा छोड़े गये सर्पमुख बाणमें प्रविष्ट होकर इसका अर्जुनके किरीटको दग्ध करना (कर्ण० ९०।३३)। कर्णद्वारा अस्वीकार किये जानेपर इसका अर्जुनपर आक्रमण (कर्ण० ९०।५०)। श्रीकृष्णद्वारा परिचय पाकर अर्जुन-द्वारा इसका वध (कर्ण० ९०।५४)।

अश्वहृदय–घोड़ोंका हर्ष एवं उत्साह बढ़ानेवाला एक मन्त्र (द्रोण० १६।१८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

अश्वातक–एक देश (भीष्म० ५१।१५)।

अश्विनीकुमार–नासत्य और दस्र नामक दो भाई, जो देवताओंके अन्तर्गत हैं। त्वष्टाकी पुत्री संज्ञाने अश्विनीरूप धारण करके भगवान् सूर्यके अंशसे अन्तरिक्षमें इन्हें उत्पन्न किया। ये संज्ञाकी नाकसे निकले हैं (आदि० ६६। ३५; अनु० १५०। १७-१८)। ये ब्रह्मा आदि अन्य देवताओंके क्रमसे स्वयं भी अण्डसे उत्पन्न हुए (आदि० १।३४)। आयोदधौम्यके शिष्य उपमन्युके द्वारा इनकी स्तुति (आदि० ३।५७–६८)। इनके द्वारा उपमन्युको वरदान (आदि० ३।७३)। इन्होंने माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेवको उत्पन्न किया (आदि०९५।६३)। ये देवताओंके साथ विमानपर बैठकर द्रौपदीका स्वयंवर देखने आये थे (आदि० १८६।६)। खाण्डववन-दाहके समय श्रीकृष्ण-अर्जुनसे युद्धके लिये आये हुए देवताओंमें ये भी थे (आदि० २२६।३३)। इन्होंने सुकन्यासे अपनेको पतिरूपमें वरण करनेका आग्रह करके उसके सतीत्वकी परीक्षा ली (वन० १२३।१०)। अपनेको देवताओंका श्रेष्ठ वैद्य बताया (वन० १२३।१२)। इनके द्वारा च्यवनको यौवनदान तथा सुकन्याद्वारा पतिकी पहचान (वन० १२३।१३–२१)। च्यवन मुनिके प्रभावसे इनका शर्यातिके यज्ञमें सोमपान(वन०अ०१२४से अ०१२५।१०)। इन अश्विनीकुमारोंने मान्धाताको पिताके पेटसे बाहर निकाला (द्रोण० ६२।४)। इनके द्वारा स्कन्दको वर्धन और नन्दन नामक दो पार्षद प्रदान (शल्य० ४५।३८)। इन्हें घीकी आहुति तथा उसके दानसे अधिक प्रसन्नता होती है (अनु० ६५।७)। आश्विनमासमें ब्राह्मणको घी दान करनेवाले पुरुषको अश्विनीकुमार रूप देते हैं (अनु० ६५।१०)। इक्कीस तथा उन्तीस दिनोंपर एक समय भोजन करनेवालोंको अश्विनीकुमारोंके लोककी प्राप्ति होती है (अनु० १०७। ९५, १२६)। कीर्तनीय नामोंमें नाम-निर्देश (अनु० १५०।८१)।

अश्विनीकुमारतीर्थ–जिसमें स्नान करनेसे रूपकी प्राप्ति होती है (वन० ८३।१७)।

अश्विनीतीर्थ–यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है (अनु० २५।२१)।

अष्टक–एक प्राचीन राजर्षि (आदि० ८६। ५)। ये राजा ययातिके दौहित्र थे (आदि० ८९। १३)। अष्टक और राजा ययातिका संवाद (आदि० अ० ८८से९२ अ०)। ययातिकी पुत्री माधवीके गर्भसे विश्वामित्रद्वारा इनकी उत्पत्ति हुई थी (उद्योग० ११९। १८)। इनके द्वारा ययातिको अपने पुण्यफलका दान (उद्योग० १२२।१३-१४)। ययाति एवं शिबि आदि राजाओंके साथ इनका स्वर्गगमन (उद्योग० ९३। १६ के बाद दा० पाठ)। स्वर्ग जाते समय इनके द्वारा शिबिकी श्रेष्ठताके विषयमें ययातिसे प्रश्न (उद्योग० ९३। १७)। देवर्षि नारदद्वारा इनके स्वर्गसे प्रथम गिरनेका वर्णन (वन० १९८। ४-५)। इन्हें महाराज प्रतर्दनद्वारा खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६। ८०)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ (अनु० ९४। ३६)। प्रातः-सायं स्मरण करने योग्य तथा पापनाशक राजाओंमें अष्टककी भी गणना (अनु० १६५। ५६)।

अष्टजिह्व–स्कन्दके सैनिकोंमेंसे एक (शल्य० ४५। ६२)।

अष्टवसु–गणदेवता। धर्मद्वारा दक्षकी विभिन्न कन्याओंसे उत्पन्न। इनकी संख्या आठ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास (आदि० ६६। १७—२०)। पुराणोंमें इनके नामोंके सम्बन्धमें मतभेद पाया जाता है। जैसे विष्णुपुराण-के अनुसार—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास (विष्णु० १। १५)। भागवतके अनुसार—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु (भागवत ६। ६) हरिवंशके अनुसार—आप, धर, ध्रुव, सोम, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास(१।३)। इससे परस्पर कोई विरोध नहीं समझना चाहिये; क्योंकि एक व्यक्तिके अनेक नाम हो सकते हैं और विभिन्न स्थानोंमें उसे अलग-अलग नामोंसे कहा जा सकता है। इन सबका विशेष परिचय उन-उन नामोंमें देखना चाहिये। गङ्गाके गर्भसे शान्तनुद्वारा इन सबका जन्म (आदि० ९८। १२) वसिष्ठके द्वारा इन सबको मनुष्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप (आदि० ९९। ३२)। प्रार्थना करनेपर 'द्यो'के अतिरिक्त इन सबको यथाशीघ्र शापसे मुक्त होनेका वसिष्ठजीद्वारा आश्वासन (आदि० ९९। ३८-३९)। इनके द्वारा परशुरामजीसे युद्ध करते समय भीष्मको प्रस्वापास्त्र-का दान (उद्योग० १८३। ११—१३)। मृत्युके लिये

विचार करते हुए भीष्मके विचारका समर्थन (**भीष्म० ११९ । ३७**)।

अष्टविवाह–ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच—ये आठ विवाह (**आदि० ७३।८-९**)।

अष्टाकपाल–आठ कपालोंद्वारा संस्कारपूर्वक तैयार किया हुआ पुरोडाश (**शान्ति० २२१ । २४**)।

अष्टावक्र–महर्षि कहोडके द्वारा उद्दालककुमारी सुजाताके गर्भसे उत्पन्न एक मुनि। पिताके अध्ययनमें बालकका दोष निकालना (**वन० १३२ । ८—१०**)। इनका राजा जनकके यज्ञमें जाना (**वन० १३२ । २३**)। द्वारपालसे वार्तालाप (**वन० १३३ । ५—१६**) । राजा जनकसे प्रश्नोत्तर (**वन० १३३ । २०—३०**) । बंदीके साथ शास्त्रार्थ करके उसे हराना (**वन० १३४ । १–२१**)। समङ्गामें स्नान करनेसे इनके अङ्गोंका सीधा होना (**वन० १३४।३९**) महर्षि वदान्यसे उनकी कन्या माँगना (**अनु० १९।११**)। वदान्यके कहनेसे इनका उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान (**अनु० १९ । २७**) । कुबेरके भवनमें विश्राम (**अनु० १९ । ४०-४१**) । नारी-रूपधारिणी उत्तर दिशाके साथ संवाद (**अनु० १९ । ७३ से २१ । ११ तक**) । वदान्य ऋषिसे अपना सब समाचार कहना (**अनु० २१ । १५-१६**) । वदान्यकी कन्या सुप्रभाके साथ इनका विवाह (**अनु० २१ । १८**) ।

अष्टावक्रतीर्थ–इसमें तर्पण करके बारह दिनोंतक निराहार रहनेसे नरमेधयज्ञका फल मिलता है (**अनु० २५ । ४१**)।

असमञ्जा–सगर और शैब्यासे उत्पन्न एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, जो प्रजाके बालकोंको सरयू नदीमें फेंक देता था। प्रजाकी आर्त पुकारसे पिघलकर सगरने मन्त्रीद्वारा असमञ्जाको निकलवा दिया (**वन० १०७।४३; शान्ति० ५७ । ७–९**)।

असिक्नी–भारतवर्षके पंजाब प्रान्तकी एक नदी, चन्द्रभागा या चिनाब (**भीष्म० ९ ।२३**) ।

असित–(१) एक राजा (**द्रोण० ६२ । ११; शान्ति० २९ । ८८**) । (२) एक ऋषि (**शान्ति० ४७ । ७**) ।

असितदेवल–एक प्रसिद्ध ऋषि । महाभारतमें अनेक स्थलोंपर इनका नाम आया है । इन्होंने पितरोंको पंद्रह लाख श्लोकवाला महाभारत सुनाया था (**आदि० १ । १०७**) । इन्होंने जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्यता ग्रहण की थी (**आदि० ५३ । ८**) । राजा युधिष्ठिरके अभिषेककालमें व्यास और नारदजी आदिके साथ ये भी उपस्थित थे (**सभा० ५३ । १०**) । इन्होंने अञ्जनपर्वतपर युधिष्ठिरको उपदेश दिया (**सभा० ७८ । १५**) । आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें इनके चरित्रका वर्णन (**शल्य० ५० अध्याय**) । जैगीषव्य मुनिसे समताके विषयमें इनका प्रश्न (**शान्ति० २२९ । ५**) । नारदजीके सृष्टिविषयक प्रश्नका उत्तर (**शान्ति० २७५ । ४–३९**) । शिवमहिमाके विषयमें इनका युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (**अनु० १८ । १७-१८**) ।

असितध्वज–कश्यप और विनताके एक पुत्र, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (**आदि० १२२ । ७३**) ।

असितपर्वत–आनर्तदेशमें नर्मदाके तटपर स्थित एक पर्वत (**वन० ८९ । ११**) ।

असिता–एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आयी थी (**आदि० १२२ । ६३**) ।

असिपत्रवन–एक नरक, जिसके मायामयस्वरूपका युधिष्ठिरको दर्शन कराया गया था (**स्वर्गारोहण० २ । २३**) । यमलोकका असिपत्र नामक वन (**शान्ति० ३२१ । ३२**) ।

असिलोमा–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक(**आदि० ६५।२३**)।

असुरा–कश्यप और प्राधाकी आठ पुत्रियोंमेंसे एक (**आदि० ६५ । ४१**) ।

अस्ताचल–पश्चिम दिशाका एक पर्वत (**उद्योग० ११० । ६**)।

अस्ति–मगधनरेश जरासंधकी पुत्री । कंसकी पत्नी । सहदेवकी बहिन । इसकी दूसरी बहिनका नाम 'प्राप्ति' था । वह भी कंसकी ही पत्नी थी (**सभा० १४ । २९–३२**) ।

अहंयाति–पूरुवंशी राजा संयाति तथा रानी वराङ्गीके पुत्र । इनके द्वारा भानुमतीके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई (**आदि० ९५ । १४-१५**) ।

अह–धर्मपुत्र । आठ वसुओंमेंसे एक । इसकी माताका नाम 'रता' है (**आदि० ६६ । १७–२०**) ।

अहः (या अहन्)–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है (**वन० ८३ । १००**) ।

अहर–कश्यप और दनुके पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६५ ।२५**)।

अहल्या–महर्षि गौतमकी पत्नी । इनका उत्तङ्कसे गुरुदक्षिणाके रूपमें सौदासकी रानीके कुण्डल माँगना (**आश्व० ५६ । २९**) । गौतम ऋषिसे उत्तङ्कके कल्याणके लिये कहना (**आश्व० ५६ । ३४**) । इन्द्रद्वारा इनकी धर्षणा (**शान्ति० ३४२ । २३**) ।

अहल्याह्रद–महर्षि गौतमके तपोवनमें अहल्याह्रद नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको परमगति प्राप्त होती है (**वन० ८४ । १०९**) ।

अहिच्छत्र-उत्तर पाञ्चालवर्ती राज्य । यह द्रोणाचार्यके अधिकारमें था । इसे आचार्य द्रोणने अर्जुनद्वारा द्रुपदको पराजित करके प्राप्त किया था (**आदि० १३७ । ७३-७६**) ।

अहिच्छत्रा-एक प्राचीन नगरी, जो अहिच्छत्र राज्यकी राजधानी थी । अर्जुनने द्रुपदको जीतकर इसे गुरुदक्षिणामें द्रोणाचार्यको दिया था (**आदि० १३७ । ७३-७७**) ।

अहिता-भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी (**भीष्म० ९ । २१**) ।

अहिर्बुध्न्य--ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ये सुवर्णके रक्षक हैं (**उद्योग० ११४ । ४**) । ग्यारह रुद्रोंमें इनके नाम अनेक स्थलोंपर आये हैं जैसे (**शान्ति० २०८ । १९-२०**) ।

अहोवीर्य-वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक मुनि (**शान्ति० १४४ । १७**) ।

आ

आकर्ष--'आकर्ष' नामक देश तथा वहाँके निवासी (**सभा० ३४ । ११**) ।

आकाशजननी-परकोटेमें बने हुए छोटे-छोटे छिद्र, जिसके रास्ते तोपोंसे गोलियाँ छोड़ी जाती हैं (**शान्ति० ६९ । ४३**) ।

आकृति-सुराष्ट्र देशका राजा । कौशिकाचार्य सहदेवद्वारा इनकी पराजय (**सभा० ३१ । ६१**) ।

आकृतीपुत्र-'आकृती' नामवाली माताका पुत्र रुचिपर्वा । पाण्डव-पक्षीय योद्धा, जो भगदत्तके द्वारा मारा गया (**द्रोण० २७ । ५०-५२**) ।

आक्रोश-महोत्थ देशका राजा, जिसे नकुलने जीता था (**सभा० ३२ । ५-६**) ।

आग्निवेश्य-एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने बृहस्पतिसे कवच तथा उसे बाँधनेकी विद्या (मन्त्रयुक्त विधि) प्राप्त की, जो धनुर्वेदके आचार्य और द्रोणाचार्यके गुरु थे (**द्रोण० ९४ । ६७-६८**) ।

आग्रायण-भानु (मनु) नामक अग्निके चौथे पुत्र (**वन० २२१ । १३**) ।

आग्नेय-एक गणतन्त्र राज्य, जिसे कर्णने जीता था (**वन० २५४ । १९-२१**) ।

आङ्गरिष्ठ-प्राचीन नरेश । अपने द्वारा मोहवश पाप हो जानेके कारण उसके प्रायश्चित्तके विषयमें कामन्दक मुनिसे राजाका प्रश्न (**शान्ति० १२३ । १३-१४**) ।

आङ्गिरसी-एक ब्राह्मणकी पतिव्रता पत्नी । राक्षसभावापन्न कल्माषपादद्वारा इसके पतिका भक्षण । इसके द्वारा कल्माषपादको पत्नी-समागम करते ही मृत्यु होने एवं वशिष्ठद्वारा पुत्र प्राप्त होनेका शाप (**आदि० १८१ । १६-२२**) ।

आञ्छ्रिक-विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५४**) ।

आजगर-अजगर वृत्तिसे रहनेवाले एक मुनि, जिनके साथ प्रह्लादका संवाद हुआ था (**शान्ति० १७९ । २**) ।

आजगरपर्व वनपर्वका एक अवान्तरपर्व (**१७६ से १८१ अध्याय तक**) ।

आजगरव्रत-आजगर मुनिद्वारा आचरित अवधूत धर्म (**शान्ति० १७९ । १८-३६**) ।

आजगव-महाराज मान्धाताका धनुष (**वन० १२६ । ३३-३४**) । महाराज पृथुका धनुष (**द्रोण० ६९ । १३**) । अर्जुनके गाण्डीव धनुषका नामान्तर (**द्रोण० १४५ । ९४**) ।

आजमीढ़-अजमीढ़वंशमें उत्पन्न होनेवाले, कौरव-पाण्डव (**आदि० १७२ । ५० के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) ।

आजानेय-घोड़ोंकी एक उत्तम जाति (**वन० २७० । १०**) ।

आञ्जनककुल-गजराजोंकी सेनाका नाम । सात्यकिद्वारा वर्णन (**द्रोण० ११२ । १७-१८**) ।

आटवीपुरी-एक प्राचीन नगर, जिसे माद्रीकुमार सहदेवने जीता था (**सभा० ३१ । ७२**) ।

आडम्बर-धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (**शल्य० ४५ । ३९**) ।

आतक-कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जला था (**आदि० ५७ । १३**) ।

आत्मा-(१) दिवः पुत्र आदि विवस्वान्के पुत्रों या स्वरूपोंमेंसे एक (**आदि० १ । ४२**) (२) नित्य, अविनाशी, एक, शुद्ध-बुद्ध आत्मा एवं परमात्मा(**भीष्म० २६ । ११-३०**) ।

आत्रेय-(१) एक प्राचीन ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य थे (**आदि० ५३ । ८**) । (२) महर्षि वामदेवका शिष्य (**वन० १९२ । ४६**) । (३) भारतवर्षका एक जनपद (**भीष्म० ९ । ६८**) । (४) एक परम प्राचीन महर्षि । इनके द्वारा शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मका उपदेश दिया गया (**अनु० १३७ । ३**) ।

आत्रेयी-एक नदी (**सभा० ९ । २२**) ।

आथर्वण-एक मुनि । स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुन इनके स्थानपर गये थे (**द्रोण० ८० । ३२**) ।

आदित्य-(१) इनकी संख्या बारह है । इनके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम अदिति है । इनमें इन्द्र

सबसे बड़े और विष्णु (वामन) सबसे छोटे हैं (आदि० ६६ । ३६)। (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६)।

आदित्यकेतु–धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०२) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २८)।

आदित्यतीर्थ–सरस्वतीतटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ (शल्य० ४९ । १७) । इसकी विशेष महिमा (शल्य० अध्याय ५०)।

आदित्यपर्वत–हिमालयका एक शिखर, शिवजीका निवास-स्थान (शान्ति० ३२७ । २२)।

आदिपर्व–महाभारतका पहला पर्व ।

आदिराज–पूरुवंशीय महाराज कुरुके पौत्र तथा अविक्षित्के पुत्र (आदि० ९४ । ५२)।

आदिष्टी–जिन्हें गुरुने नियत वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रत पालनका आदेश दिया हो (अनु० २२ । १७)।

आद्यकठ–एक प्राचीन ऋषि, जो राजा उपरिचरके यज्ञके एक सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ९)।

आनन्द–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५)।

आनर्त–एक प्राचीन देश, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २६ । ४)।

आनुशासनिकपर्व–महाभारतका एक पर्व ।

आन्ध्र–दक्षिणका एक देश, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया था (सभा० ३१ । ७१)।

आपगा–नदी एवं तीर्थ, जहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ६८)।

आपद्धर्मपर्व–शान्तिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १३१ से १७३ तक)।

आपव–(१) वसिष्ठ मुनिका नामान्तर (आदि० ९९ । ५)। (२) एक प्राचीन ऋषि । अग्निके साथ आकर कार्तवीर्यद्वारा अपने आश्रमके जलाये जानेपर इनका राजाको शाप देना (शान्ति० ४९ । ४२-४३)।

आपस्तम्ब–एक प्रसिद्ध ऋषि । इनके द्वारा राजा द्युमत्सेनको आश्वासन (वन० २९८ । १८)।

आपूरण–एक प्रमुख नाग, कश्यपका वंशज (आदि० ३५ । ६; उद्योग० १०३ । १०)।

आप्त–एक प्रमुख नाग, कश्यपका वंशज (आदि० ३५ । ८; उद्योग० १०३ । १२)

आभीर–(१) सिन्धु और सरस्वती-तटवर्ती आभीर गणतन्त्रके निवासी, जिन्हें नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ९-१०)। समुद्रतटवर्ती गृहोद्यान तथा सिन्धुके उस पार (आभीर देशमें) निवास करनेवाली आभीर जातिके लोग । ये लोग युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१ । ११–१३)। मार्कण्डेयजीका कहना है कि कलियुगमें आभीर, शक आदि म्लेच्छगण भारतवर्षके विभिन्न भागोंके राजा होंगे (वन० १८८ । ३५-३६)। शूर आभीरगण द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहमें ग्रीवाके स्थानमें खड़े किये गये थे (द्रोण० २० । ६)। शूद्रों और आभीरोंसे द्वेष होनेके कारण विनशनतीर्थमें सरस्वती नदी अदृश्य हो गयी थी (शल्य० ३७ । १-२)। आभीर पहले क्षत्रिय थे । परशुरामजीके भयसे पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये और अपने कर्म छोड़ बैठे; अतः उनकी संतानें शूद्रत्वको प्राप्त हुईं (आश्व० २९ । १६)। इन्हीं आभीरोंने द्वारकावासिनी स्त्रियोंको साथ लेकर जाते हुए अर्जुनपर डाका डाला था (मौसल० ७।४७–६३)। (२) आभीर देश (भीष्म० ९ । ४७-६७)।

आमरथ–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ५४)।

आयाति–नहुषके पुत्र । ययातिके भ्राता (आदि० ७५ । ३०)।

आयु–(१) पुरूरवाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, जिन्होंने स्वर्भानवीके गर्भसे नहुष आदिको जन्म दिया (आदि० ७५ । २४)। इन्हें पुरूरवासे खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७४)। इन्होंने तपोबलसे ही समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त की (शान्ति० २९६ । १५)। इनके द्वारा मांस भक्षणका निषेध (अनु० ११५ । ५९)। (२) एक मण्डूकराज, जो सुन्दरी सुशोभनाका पिता था । इसने इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्को अपनी कन्या अर्पित की थी (वन० १९२ । ३२–३५)। मण्डूकोंको मारनेका आदेश रोकनेके लिये इसकी राजासे प्रार्थना (वन० १९२ । २७)। इसके द्वारा अपनी कन्याको शाप (वन० १९२ । ३५)।

आयोदधौम्य–एक प्रसिद्ध ऋषि । इनके आरुणि, उपमन्यु तथा वेद नामके तीन प्रसिद्ध शिष्य थे (आदि० ३ । २१)। हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें इनका मिलना (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

आरण्येयपर्व–वनपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय ३११ से ३१५ तक)।

आरालिक–मतवाले हाथियोंको वशमें करनेवाला गजशिक्षक (विराट० २ । ९)।

आरुणि–(१) आयोदधौम्य ऋषिके शिष्य । पाञ्चालदेश-निवासी । इनकी गुरुभक्ति, इनको गुरुका आशीर्वाद तथा

इनका उद्दालक नामसे प्रसिद्ध होना (आदि० १ । २२-३२) । (२) धृतराष्ट्र नागके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १९) । (३) कश्यप और विनताके पुत्र (आदि० ६५ । ४०) । (४) एक कौरवपक्षीय महारथी वीर, जिसने शकुनिके साथ होकर अर्जुनपर हमला किया था (द्रोण० १५६ । १२२) ।

आरुषी–मनुकी पुत्री, च्यवन मुनिकी पत्नी । इसके पुत्रका नाम था 'और्व' । ये अपनी माके ऊरुसे प्रकट हुए, अतः 'और्व' कहलाये (आदि० ६६ । ४६) ।

आरोचक–भारतवर्षका एक जनपद और वहाँके निवासी (भीष्म० ५१ । ७) ।

आर्चीक–सैन्धवारण्यसे आगे मनीषी पुरुषोंका निवासभूत एक पर्वत (वन० १२५ । १६) ।

आर्जव–सुबलपुत्र शकुनिका भाई, इरावान्द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । २७-४६) ।

आर्तायनि–ऋतायनके पुत्र शल्य, इनके पूर्वज श्रेष्ठ थे और सदा सत्य ही बोलते थे; इसलिये ये 'आर्तायनि' कहे गये हैं (शल्य० ३२ । ५६) ।

आर्तिमान्–सर्पभय निवारण करनेवाला एक मन्त्र (आदि० ५८ । २३-२६) ।

आर्यक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) । ये शूर-सेनके मातामह थे, इन्होंने भीमको रसपान करानेके लिये वासुकिसे प्रार्थना की (आदि० १२७ । ६४-६८) । अपने पौत्र सुमुखके साथ मातलिकी कन्याके विवाहके प्रसङ्गमें इनकी नारदसे बातचीत (उद्योग० १०४ । १३-१७) ।

आर्या–शिशुकी माता । सप्त मातृकाओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) ।

आर्यावर्त–भारतवर्षका नामान्तर अथवा एक भारतीय प्रदेश (शान्ति० ३२५ । १५) । (स्मृतियोंके अनुसार विन्ध्य तथा हिमालयके बीचका भूभाग आर्यावर्त है ।)

आर्ष्टिषेण–एक राजर्षि, इनके द्वारा युधिष्ठिरको प्रश्नरूपमें उपदेश मिला (वन० १५६ । १६; वन० १५९ अध्याय) । पृथूदक तीर्थमें तप करके इन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (शल्य० ३९ । ३६) । इनकी तपस्याका वर्णन (शल्य० ४० । ३-९) । सरस्वती नदीके लिये इन ऋषिका आशीर्वाद, यहाँ स्नान करनेवालेको अश्वमेधका फल प्राप्त होगा, यहाँ सर्पोंसे भय न होगा तथा थोड़े ही समयतक इस तीर्थके सेवनसे महान् फलकी प्राप्ति होगी (शल्य० ४० । ७-८) ।

आर्ष्टिषेण-आश्रम–एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेवालेको सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है (अनु० २५ । २५) ।

आलम्ब–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १४) ।

आलम्बायन–इन्द्रके सखा, आलम्ब गोत्रीय चारुशीर्ष ही आलम्बायन नामसे प्रसिद्ध हुए हैं (अनु० १८ । ५) ।

आवर्तनन्दा–एक तीर्थ, इसका सेवन करनेवाले पुरुषको नन्दनवनमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है (अनु० २५ । ४५) ।

आवशीर–पूर्वदिशाका एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने दिग्विजयके समय जीता था (वन० २५४ । ९) ।

आवसथ्य–महान् तेजःपुञ्जसे सम्पन्न एक अग्नि (वन० २२१ । ५) ।

आवह-वायुके सात भेदोंमेंसे दूसरा (शान्ति० ३२८ । ३७) ।

आशावह–(१) दिवःपुत्र आदि बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १ । ४२) । (२) एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८५ । १९) ।

आश्रमवासपर्व–आश्रमवासिक पर्वका एक अवान्तरपर्व, (१ से २८ अध्याय तक) ।

आश्रमवासिकपर्व–महाभारतका एक पर्व ।

आश्राव्य–इन्द्रसभामें विराजमान होनेवाले एक मुनि (सभा० ७ । १८) ।

आश्वलायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

आषाढ़–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५९-६३) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण प्राप्त हुआ था (उद्योग० ४ । १७) । (२) एक मासका नाम । आषाढ़ मासमें एक समय भोजन करनेवाला पुत्र और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है (अनु० १०६ । २६) । (३) भगवान् शिवका नाम (अनु० १७ । १२१) । (४) एक नक्षत्रका नाम, पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा । इसमें उपवास करके कुलीन ब्राह्मणको दधि दान करनेवाला पुरुष गोधनसम्पन्न कुलमें जन्म पाता है (अनु० ६४ । २५-२६) ।

आसुरायण–विश्वामित्रके एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५६) ।

आसुरि–एक प्राचीन ऋषि, जो कपिल-सांख्यदर्शनके आचार्य एवं पञ्चशिखके गुरु थे । इन्होंने मुनियोंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया था (शान्ति० २१८ । १०-१४) ।

आस्तीक–एक ऋषि, जो यायावर कुलके जरत्कारु ऋषिके पुत्र थे । इनकी माताका नाम भी जरत्कारु था (आदि०

१३ । १०-११; १५ । ३; ४८ । ९-११) । इनका जन्म (आदि० ४८ । १७) । इनका च्यवन मुनिसे अध्ययन (आदि० ४८ । १८) । 'आस्तीक' नाम होनेका कारण (आदि० ४८ । २०) । नागराज वासुकिके भवनमें इनका पालन (आदि० ४८ । २१) । नागराज वासुकिको इनका आश्वासन (आदि० ५४ । १७–२५) । इनका जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें आगमन (आदि० ५४ । २६-२७) । इनके द्वारा यजमान, ऋत्विज आदिकी स्तुति (आदि० ५५ । १–१६) । इनको राजा जनमेजयका वरदान (आदि० ५६ । १७) । आस्तीकका राजासे 'तुम्हारा यज्ञ बंद हो और इसमें सर्प न गिरने पावें' यह वर माँगना (आदि० ५६ । २१–२६) । इनके द्वारा तक्षककी प्राणरक्षा (आदि० ५८ । १–१०) । अश्वमेध-यज्ञमें सदस्य होनेके लिये जनमेजयद्वारा इनसे प्रार्थना (आदि० ५८ । १५-१६) । 'मेरे आख्यानका पाठ करनेवालोंको सर्पोंसे कोई भय न हो'—ऐसा इनका सर्पोंसे वर माँगना (आदि० ५८ । २१) । आस्तीकका व्यासजीकी महत्ता बताते हुए जनमेजयकी प्रशंसा करना (आश्रम० ३६ । १२–१६) । सर्पोंको संकटसे छुड़ाकर आस्तीकका प्रसन्न होना (स्वर्गा० ५ । ३२) ।

आस्तीकपर्व–महाभारतके आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १३ से ५८ तक) ।

आहुक*–यदुवंशी राजा उग्रसेनका नामान्तर (उद्योग० १२८ । ३८-३९; अनु० १४ । ४१) । इनकी पुत्री 'सुतनु' के साथ अक्रूरका विवाह (सभा० १४ । ३३) । आहुकके सौ पुत्र थे (सभा० १४ । ५६) । आहुक और अक्रूरके पारस्परिक वैरसे श्रीकृष्णकी चिन्ता (शान्ति० ८१ । ८–११) । आहुक (उग्रसेन) के आदेशसे नगरमें यह घोषणा की गयी कि द्वारकामें कोई मदिरा न बनावे; जो नशीली वस्तु तैयार करेगा, उसे शूलीपर चढ़ा दिया जायगा (मौसल० १ । २८–३१) ।

आहुति–(१) एक क्षत्रिय, जो जारूथी नगरीमें श्रीकृष्णसे पराजित हुआ था । इसी नगरीमें शिशुपाल आदिकी भी पराजयका उल्लेख मिलता है । (वन० १२ । ३०) । (२) नारायणका एक नाम (शान्ति० ३३८ । ९२) ।

इ

इक्षुमती–कुरुक्षेत्रमें या उसके निकट बहनेवाली एक नदी, जहाँ तक्षक और अश्वसेन—ये दो नाग रहा करते थे (आदि० ३ । १४१) ।

इक्षुला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । १७) ।

इक्ष्वाकु–(१) वैवस्वत मनुके दस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ७५ । १५; अनु० २ । ५) । एक जापक ब्राह्मणके साथ इनका संवाद (शान्ति० १९९ । ३९–११७) । इनकी सद्गतिका वर्णन (शान्ति० २०० । २६) । इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६६) । इनके सौ पुत्र थे (अनु० २ । ५) । इनके स्वर्गवासके पश्चात् इन्हींके पुत्र शशाद राजा हुए (वन० २०२ । १) । (२) वैवस्वत मनुके प्रपौत्र एवं क्षुपके पुत्र; इनके भी सौ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़ा विंश था (आश्व० ४ । २–५) । इन्हें अपने पिता क्षुपद्वारा खड्गकी प्राप्ति हुई थी (शान्ति० १६६ । ७३) ।

इध्मवाह–दृढस्युका दूसरा नाम, ये अगस्त्यके पुत्र थे । ये इध्म (समिधा) का भार वहन करनेसे 'इध्मवाह' कहलाये (वन० ९९ । २७) ।

इन्द्र–(१) कश्यपसे उनकी पत्नी अदितिके गर्भसे जो बारह आदित्य उत्पन्न हुए, उनमें इन्द्र प्रमुख हैं (आदि० ६५ । १५–१६; ७५ । १०-११) । ये वज्रधारी, वृत्र-हन्ता, पुरंदर तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं (आदि० ३ । १४८-१४९) । देवश्रेष्ठ और सहस्राक्ष हैं (आदि० २५ । ९–१३) । तक्षकद्वारा अपहृत हुए मदयन्तीके कुण्डलोंकी प्राप्ति करानेमें इन्होंने उत्तङ्ककी सहायता की (आदि० ३ । १३१) । उत्तङ्कद्वारा इनकी स्तुति (आदि० ३ । १४६–१४९) । समुद्रमन्थनसे इन्हें ऐरावतकी प्राप्ति हुई (आदि० १८ । ४०) । कद्रूद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २५ । ७–१७) । इनके द्वारा की हुई वर्षासे सर्पोंकी प्रसन्नता (आदि० २६ अ०में) । इनके द्वारा वालखिल्य ऋषियोंका अपमान (आदि० ३१ । १०) । गरुड़के ऊपर इनका वज्रप्रहार और उनसे मित्रता स्थापित करनेकी इच्छा (आदि० ३३ । १८–२५) । इन्द्र और गरुड़की मित्रता (आदि० ३४ । १) । सर्पोंसे छलपूर्वक अमृतका अपहरण (आदि० ३४ । ८–२०) । इन्द्रका तक्षकको आश्वासन (आदि० ५३ । १५–१७) । इनके द्वारा कुन्तीके गर्भसे अर्जुनकी उत्पत्ति (आदि० ६३ । ११६) । इनका ब्राह्मणका रूप धारण करके कर्णसे कवच-कुण्डल माँगना (आदि० ६७ । १४४-१४५) । विश्वामित्रका तप भङ्ग करनेके लिये मेनका अप्सराको भेजना (आदि० ७१ । २१–२६) । वायुका रूप धारण करके इनके द्वारा

* कहीं-कहीं 'आहुक' को उग्रसेनका पिता कहा गया है; परंतु महाभारतमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । इसके विपरीत उद्योग० १२८ । ३८-३९ में आहुक उग्रसेनको एक व्यक्ति बताया गया है ।

जलक्रीड़ा करती हुई देवयानी आदि कन्याओंके वस्त्रोंका सम्मिश्रण (आदि० ७८ । ४) । इनका ययातिके साथ वार्तालाप और उन्हें स्वर्गसे नीचे गिराना (आदि० ८८ । १–५) । पाण्डुद्वारा इन्द्रकी आराधना तथा इन्द्रका उन्हें वरदान (आदि० १२२ । २६-२७) । कुन्तीद्वारा इनका आवाहन तथा इनके द्वारा अर्जुनका जन्म (आदि० १२२ । ३५) । 'जानपदी' नामक अप्सराको भेजकर इनका शरद्वान् ऋषिकी तपस्यामें विघ्न डालना । (आदि० १२९ । ६) । शिवजीद्वारा इनका हिमालयकी गुफामें अवरोध और मनुष्यलोकमें अर्जुनरूपमें जन्म लेनेके लिये इन्हें आदेश (आदि० १९६ । ९–२६) । पाण्डवोंके निवासके लिये खाण्डवप्रस्थमें दिव्यनगरके निर्माणहेतु इनको श्रीकृष्णकी मानसिक प्रेरणा तथा खाण्डवप्रस्थमें दिव्य नगरका निर्माण करनेके लिये इनका विश्वकर्माको आदेश (आदि० २०६।२८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५९३) । तिलोत्तमाके रूपसे मोहित होकर इनका सहस्रनेत्र होना (आदि० २१० । २७) । खाण्डववनकी रक्षाके लिये इनका श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके साथ युद्ध (आदि० २२६ अ० में) । इनके द्वारा तक्षकके पुत्र अश्वसेनकी रक्षा (आदि० २२६ । ९) । अर्जुनद्वारा इनकी पराजय (आदि० २२७ । २३) । श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको इनका वरदान (आदि० २३३। १०–१२) । नारदजीद्वारा इनकी दिव्य सभाका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (सभा० ७ अ० में) । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा इनका मानमर्दन, इनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नामकरण (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०१) । नरकासुरको मारनेके लिये इनकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना (पृष्ठ ८०६ दा० पाठ) । इनका सुरभिसे वार्तालाप (वन० ९ । ६–१६) । इनके द्वारा अर्जुनको दिव्यास्त्र देनेकी स्वीकृति (वन० ३७ । ५७-५८) । इनका अर्जुनको स्वर्गमें चलनेका आदेश (वन० ४१ । ४३–४५) । इनके द्वारा चित्रसेनको अर्जुनके लिये संगीतविद्याकी शिक्षा देनेका आदेश (वन० ४४ । ८) । इनका अर्जुनकी प्रसन्नताके लिये चित्रसेनको उर्वशीके पास भेजना (वन० ४५ । २) । उर्वशीके शाप देनेपर इनके द्वारा अर्जुनको आश्वासन (वन० ४६ । ५५–५८) । इनका नर-नारायणकी महिमा बतलाते हुए लोमश मुनिको युधिष्ठिरके पास संदेश देनेके लिये भेजना (आदि० ४७ । ७–३१) । इनका नलद्वारा दमयन्तीको संदेश देना (वन० ५५ । ६) । इनके द्वारा दमयन्ती-स्वयंवरमें राजा नलको वर-प्रदान (वन० ५७ । ३५-३६) । इनका कलियुगको नलके प्रति अन्याय करनेसे रोकना (वन० ५८ । ११-१२) । इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (वन० १०१ । १४-१५) । इनका महर्षि च्यवनपर वज्र-प्रहार करनेको उद्यत होना (वन० १२४ । १७) । मदासुरसे डरे हुए इन्द्रका अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बनाना (वन० १२५ । २-३) । इनका युवनाश्वकुमार मान्धाताको अँगुली पिलाना (वन० १२६ । ३०; द्रोण० ६२ । ७-८) । इनका बाज बनकर उशीनरसे कबूतरके बराबर तौलकर मांस माँगना (वन० १३१ । २३-२४) । इनके द्वारा राजा उशीनरको वर-प्रदान (वन० १३१ । ३०-३१) । इनका यवक्रीतको वर-प्रदान (वन० १३५ । ४१-४२) । नरकासुरको मारनेके लिये इनकी विष्णुसे प्रार्थना (वन० १४२ । २४) । इनके द्वारा गन्धमादन पर्वतपर युधिष्ठिरको आश्वासन (वन० १६६ । १३-१४) । हिरण्यपुरके विनाशके उपलक्ष्यमें इनके द्वारा अर्जुनका अभिनन्दन (वन० १७३ । ७२–७५) । इनका महर्षि बकसे चिरजीवियोंके सुख-दुःखके विषयमें प्रश्न (वन० १९३ अ० में) । बाजरूपसे राजा शिबिसे वार्तालाप तथा उनसे कबूतरके बराबर मांस माँगना (वन० १९७ । २०) । इनके द्वारा केशी दानवकी पराजय और देवसेनाका उद्धार (वन० २२३ । १५) । देवसेनाके साथ ब्रह्माके पास जाना (वन० २२४ । २१-२२) । स्कन्दद्वारा पराजित होकर इनकी शरणमें जाना (वन० २२७ । १७-१८) । स्कन्दको देवसेनापति-पदपर अभिषिक्त करना (वन० २२९ । २३) । स्कन्दको देवसेनाके साथ पाणिग्रहणके लिये कहना (वन० २२९ । ४८) । रावणके पुत्र इन्द्रजित्से इनकी पराजयकी चर्चा (वन० २८८ । ३) । कर्णसे उसका कवच-कुण्डल माँगना (वन० ३१० । ४) । कर्णको अपनी अमोघ शक्ति देना (वन० ३१० । २३) । त्रिशिराको तपसे डिगानेके लिये अप्सराओंको भेजना (उद्योग० ९ । ९–१२) । इनके द्वारा त्रिशिराका वध (उद्योग० ९ । २२–२४) । त्रिशिराके सिर काटनेके लिये इनके द्वारा बढ़ईको वरदान (उद्योग० ९ । ३७) । त्रिशिराके वधसे लगी हुई ब्रह्महत्याका विभाजन (उद्योग० ९ । ४३ के बाद दाक्षि० पाठ) । इनका वृत्रासुरके मुखसे बाहर निकलना (उद्योग० ९ । ५४) । भगवान् विष्णुके कहनेसे वृत्रासुरके साथ इनकी मैत्री (उद्योग० १० । ३२) । इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (उद्योग० १० । ३९) । इनका ब्रह्महत्याके भयसे जलमें छिपना (उद्योग १० । ४६) । इनके द्वारा ब्रह्महत्याका विभाजन (उद्योग० १३ । १९) । इनका प्रकट होकर पुनः नहुषके भयसे अन्तर्धान होना (उद्योग० १३ । २१-२२) । इनका लोकपालोंको उनका अधिकार प्रदान

करना (उद्योग० १६ । ३१–३४) । अगस्त्यजीसे नहुषके पतनका वृत्तान्त पूछना (उद्योग० १७ । ६) । इनका महर्षि अङ्गिराको वरदान (उद्योग० १८ । ७) । स्वर्गमें आकर इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होना (उद्योग० १८ । ९) । मातलिके जामाता नागकुमार सुमुखको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे दीर्घायु बनाना (उद्योग० १०४ । २८) । शिवद्वारा दिव्यकवचकी प्राप्ति, उससे सुरक्षित होकर इनका वृत्रको मारना तथा मन्त्र और विधिसहित वह कवच अङ्गिराको देना (द्रोण० ९४ । ६४–६६) । इन्द्रके लिये विश्वकर्माद्वारा विजय नामक धनुषका निर्माण तथा इन्द्रका उसे परशुरामको समर्पण करना (कर्ण० ३१ । ४२–४४) । त्रिपुरोंसे भयभीत होकर इनका देवताओंसहित ब्रह्माके पास जाना (कर्ण० ३३ । ३७–४०) । कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ-युद्धमें अर्जुनकी विजयके लिये इनका सूर्यसे विवाद (कर्ण० ८७ । ५७–५९) । इन्द्रके अनुरोधसे ब्रह्मा और शिवजी-के द्वारा अर्जुनकी विजय घोषणा (कर्ण० ८७ । ६८–७३) । नमुचिके वधसे संकटमें पड़े हुए इन्द्रका अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे उद्धार (शल्य० ४३ । ४३–४५) । इनके द्वारा स्कन्दको 'उत्क्रोश' और 'पञ्चक' नामक दो अनुचर-प्रदान (शल्य० ४५ । ३५-३६) । स्कन्दको शक्ति नामक अस्त्र और घण्टाका दान (शल्य० ४६ । ४४-४५) । इनके द्वारा भरद्वाजकन्या श्रुतावतीकी परीक्षा और उसे वर-प्रदान (शल्य० ४८ । २–५८) । इन्द्रतीर्थमें सौ यज्ञ करनेसे इनका 'शतक्रतु' नाम होना (शल्य० ४९ । २–४) । कुरुक्षेत्रकी भूमि जोतते हुए राजर्षि कुरुके साथ इनका संवाद (शल्य० ५३ । ५–१५) । पक्षीरूपसे आकर इनका तपस्वियोंको गृहस्थ-धर्मका उपदेश (शान्ति० ११ । ११—२६) । इनका रन्ति-देवको वरदान (शान्ति० २९ । १२०-१२१) । बृहस्पतिजीसे समस्त प्राणियोंके लिये प्रिय होनेका उपाय पूछना (शान्ति० ८४ । २) । अम्बरीषके पूछनेपर इनका उनके सेनापति सुदेवकी सद्गतिका कारण बनाना (शान्ति० ९८ । ११ के बाद दाक्षि० पाठ से १३ तक) । अम्बरीषके पूछनेपर इन्द्रका उनसे रणयज्ञका वर्णन करना (शान्ति० ९८ । १५—५०) । बृहस्पति-जीसे विजय-प्राप्तिके उपाय पूछना (शान्ति० १०३ । ४-५) । प्रह्लादके पास शीलकी शिक्षाके लिये शिष्य-रूपसे निवास और वररूपसे उसकी प्राप्ति (शान्ति० १२४ । २८—६२) । विरूपाक्षको राजधर्माके शापकी कथा सुनाना (शान्ति० १७३ । ८–१०) । राजधर्माके कहनेसे गौतमको जीवन-दान देना (शान्ति० १७३ । १२-१३) । आत्महत्याके लिये उद्यत काश्यपको सियारके रूपमें प्रकट होकर समझाना (शान्ति० १८० अ० में) । प्रह्लादके साथ इनका ज्ञानविषयक संवाद (शान्ति० २२२ । ९—३७) । ब्रह्मासे बलिका पता पूछना (शान्ति० २२३ । ३–७) । बलिपर आक्षेप (शान्ति० २२३ । १४—२५; शान्ति० २२४ । २–४) । लक्ष्मीके साथ संवाद और उनकी सुप्रतिष्ठा (शान्ति० २२५ । ५—२९) । बलिको जीवित चले जानेकी आज्ञा देना (शान्ति० २२५ । ३३–३६) । नमुचिसे उसके श्रीहीन होनेपर भी दुःखित न होनेका कारण पूछना (शान्ति० २२६ । ३) । राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट होनेपर भी बलिसे शोक न करनेका कारण पूछना (शान्ति० २२७ । १४—१९) । बलिका उत्तर सुनकर उसकी बातोंका समर्थन और उसे अभय-दान (शान्ति० २२७ । ८९—११६) । नारदजीके साथ लक्ष्मीका दर्शन (शान्ति० २२८ । १६–१८) । असुरोंको त्यागकर आनेके विषयमें लक्ष्मीसे प्रश्न (शान्ति० २२८ । २८) । लक्ष्मीको साथ लेकर अमरावतीमें प्रवेश (शान्ति० २२८ । ८९) । इनके द्वारा अपनी पत्नी अहल्याकी धर्षणाकी गौतमद्वारा चर्चा (शान्ति० २६६ । ४७—५१) । इनका वृत्रासुरके साथ युद्ध और मोहित होना (शान्ति० २८१ । १३—२१) । देवताओं और ऋषियोंके प्रोत्साहनसे इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (शान्ति० २८२ । ९) । ब्रह्म-हत्याके भयसे भागना और कमलनालमें छिपना (शान्ति० २८२ । ११–१८) । ब्रह्माद्वारा इन्हें ब्रह्महत्यासे छुटकारा प्राप्त होना (शान्ति० २८२ । ५६) । अहल्यापर बलात्कारके कारण गौतमके शापसे इन्द्रकी दाढ़ी-मूँछ हरी हो गयी और विश्वामित्रके शापसे इन्हें अपना अण्डकोश खो देना पड़ा, जिससे भेड़के अण्डकोश जोड़े गये (शान्ति० ३४२ । २३) । इन्हें दुहरी ब्रह्महत्या लगी (शान्ति० ३४२ । ४२) । नारदजीसे अद्भुत घटनाके विषयमें इनका प्रश्न करना (शान्ति० ३५२ । ७–९) । एक तोतेके साथ संवाद (अनु० ५ । १३–२८) । राजर्षि भङ्गास्वनको स्त्री बना देना (अनु० १२ । ५–१०) । भङ्गास्वनके दो सौ पुत्रों-में फूट डालना (अनु० १२ । २९–३१) । भङ्गास्वनपर प्रसन्न होकर वर देना (अनु० १२ । ४२-४३) । मतङ्ग-को तपस्यासे विरत करनेके प्रसंगमें उसके साथ संवाद (अनु० २७ । २७ से २९ । १२ तक) । मतङ्गको वरदान देना (अनु० २९ । २४-२५) । शम्बरासुरसे व्यवहारके विषयमें प्रश्न (अनु० ३६ । ३) । महर्षि देवशर्माकी पत्नी रुचिको प्रलोभन देना और विपुलद्वारा फटकार पाना (अनु० ४१ । ७–२६) । बृहस्पतिजीसे

उत्तम दानके विषयमें पूछना (अनु० ६२ । ५३) । ब्रह्माजीसे गोलोक और गोदानके विषयमें प्रश्न (अनु० ७२ । ६–१२) । ब्रह्माजीसे दूसरेकी गौका अपहरण करनेके फलके सम्बन्धमें प्रश्न (अनु० ७४ । १) । ब्रह्माजीसे गोलोककी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न (अनु० ८३ । १३-१४) । कार्तिकेयको भेंट समर्पित करना (अनु० ८६ । २५) । अगस्त्यजीको अपना परिचय देकर कमलकी चोरीका कारण बताना (अनु० ९४ । ४७–४९) । मातलिके पूछनेपर सबके वन्दनीय पुरुषका परिचय देना (अनु० ९६ । २२ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ १७८३) । धृतराष्ट्रके रूपमें इनके द्वारा गौतमनामक ब्राह्मणके हाथीका अपहरण कर लिये जानेपर इनके साथ संवाद (अनु० १०२ । ७–६१) । महर्षि विद्युत्प्रभको पापसे छूटनेका उपाय बताना (अनु० १२५ । ४८–५०) । बृहस्पतिजीसे धर्मके विषयमें जिज्ञासा (अनु० १२५ । ५९) । अश्विनीकुमारोंके निमित्त च्यवनके साथ संघर्ष (अनु० १५६ । १६–३१) । पञ्चशिखावाले बालकके रूपमें शिवजीपर वज्र प्रहार करते समय इनकी बाँहका स्तम्भित होना और शिवजीकी कृपासे पुनः इनका संकटमुक्त होना (अनु० १६० । ३३–३६) । बृहस्पतिजीको मरुत्तका यज्ञ करानेसे रोकना (आश्व० ५ । १८–२१) । बृहस्पतिजीसे उनकी चिन्ताका कारण पूछना (आश्व० ९ । १–५) । अग्निको दूत बनाकर मरुत्तके पास संदेश भेजना (आश्व० ९ । ८) । गन्धर्वराज धृतराष्ट्रको दूत बनाकर मरुत्तके पास भेजना (आश्व० १० । २) । मरुत्तपर वज्र-प्रहार करनेको उद्यत होना (आश्व० १० । ८) । मरुत्तके यज्ञमें जाना (आश्व० १० । २०) । यज्ञमण्डपकी व्यवस्था करना (आश्व० १० । २६–३०) । इनके द्वारा शरीरस्थ वृत्रासुरका संहार (आश्व० ११ । १९) । चाण्डालरूपसे उत्तङ्कको अमृत पिलानेके लिये प्रकट होना (आश्व० ५५ । १८-१९) । मुनिके इनकार करनेपर अन्तर्धान होना (आश्व० ५५ । २२) । ब्राह्मणका रूप धारण करके उत्तङ्ककी सहायता करना (आश्व० ५८ । ३२-३३) । उत्तङ्क मुनिके डंडेमें वज्रास्त्रका संयोग करना (आश्व० ५८ । ३५) । इनके द्वारा स्वर्गमें श्रीकृष्णका स्वागत (मौसल० ४ । २८) । इन्द्रका युधिष्ठिरको अपने रथपर बैठकर सदेह स्वर्ग चलनेके लिये कहना और उनके आश्रितवात्सल्यकी परीक्षा करना (महाप्रस्था० ३ । १–२९) । धर्मप्रेरित इन्द्रके द्वारा युधिष्ठिरकी पुनः परीक्षा—देवदूतद्वारा उन्हें मायामय नरकका दर्शन करवाना (स्वर्गा० २ अ०में) ।

महाभारतमें आये हुए इन्द्रके नाम—अदितिनन्दन, आखण्डल, अमरश्रेष्ठ, अमराधिप, अमरराज, अमरेश, अमरेश्वर, अमरेन्द्र, अमरोत्तम, असुरार्दन, असुरसूदन, बलभित्, बलहन्, बलहन्ता, बलजित्, बलनाशन, बलनिषूदन, बलसूदन, बलवृत्रघ्न, बलवृत्रहन्, बलवृत्रनिषूदन, बलवृत्रसूदन, भूतभव्येश, शचीपति, शक्र, शम्बरहन्, शम्बरपाकहन्, शतक्रतु, शतमन्यु, दशशताक्ष, दशशतनयन, दशशतेक्षण, दैत्यनिबर्हण, दैत्यासुरनिबर्हण, दानवशत्रु, दानवघ्न, दानवारि, दानवसूदन, देवश्रेष्ठ, देवदेव, देवाधिप, देवगणेश्वर, देवपति, देवराज, देवराट्, देवेश, देवेन्द्र, हरि, हरिश्मश्रु, हरिहय, हरिमान्, हरिवाहन, ईश्वर, जगदीश्वर, काश्यप, कौशिक, किरीटी, कुशिकोत्तम, लोकत्रयेश, लोकेश्वरेश्वर, मघवा, महेन्द्र, मरुत्पति, मरुत्वान्, मुकुटी, नमुचिघ्न, नमुचिहन्, पाकशासन, पर्जन्य, पुरन्दर, पुरुभूत, पूषानुज, पुष्करेक्षण, सहस्रदृक्, सहस्राक्ष, सहस्रलोचन, सहस्रनयन, सहस्रनेत्र, सर्वदानवसूदन, सर्वदेवेश, सर्वलोकामर, सुरश्रेष्ठ, सुराधिप, सुरगणेश्वर, सुरपति, सुरपुङ्गव, सुरराट्, सुरराज, सुरारिहन्, सुरर्षभ, सुरसत्तम, सुरेश, सुरेश्वर, सुरेन्द्र, सुरोत्तम, त्रैलोक्यपति, त्रैलोक्यराज, त्रिभुवनेश्वर, त्रिदशाधिप, त्रिदशाधिपतिः त्रिदशेश, त्रिदशेश्वर, त्रिदशेन्द्र, त्रिदिवेश्वर, त्रिलोकराज, त्रिलोकेश, वज्रभृत्, वज्रधर, वज्रधारी, वज्रधृक्, वज्रहस्त, वज्रपाणि, वज्रायुध, वज्री, वरद, वासव, विबुधश्रेष्ठ, विबुधाधिप, विबुधाधिपति, विबुधेश्वर, विश्वभुक्, वृषाकपि, वृत्रशत्रु, वृत्रहन्, वृत्रहन्ता, वृत्रनिषूदन ।

(२)पाञ्चजन्यद्वारा बलसे प्रकट किया गया 'इन्द्र' नामक अग्नि (वन० २२० । ७) ।

इन्द्रकील—हिमालय और गन्धमादनसे आगेका एक पर्वत, जिसका अभिमानी देवता कुबेरका उपासक है (सभा० १० । ३२; वन० ३७ । ४२) ।

इन्द्रजित्—राक्षसराज रावणका पुत्र, इसका लक्ष्मणके साथ युद्ध (वन० २८५ । ८) । इसके द्वारा राम-लक्ष्मणका मूर्छित होना (वन० २८८ । २६) । लक्ष्मणद्वारा इसका वध (वन० २८९ । २३) ।

इन्द्रतापन—वरुणकी सभामें उनकी उपासना करनेवाला एक दैत्य (सभा० ८ । १५) ।

इन्द्रतीर्थ—सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ इन्द्रने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था; इसकी विशेष महिमा (शल्य० ४८ । १८; ४९ । २–५) ।

इन्द्रतोया—गन्धमादनपर्वतके निकट बहनेवाली एक नदी, यहाँ स्नान और तीन रात उपवासका फल अश्वमेधका पुण्य (अनु० २५ । ११) ।

इन्द्रदमन—एक प्राचीन नरेश । इनके द्वारा ब्राह्मणको धनदान (शान्ति० २३४ । १८) ।

इन्द्रद्युम्न-(१) एक असुरभावापन्न नरेश, जो श्रीकृष्ण-द्वारा मारा गया (वन० १२ । ३२)। (२) एक महर्षि (वन० २६ । २२) । (३) राजा जनकके पिता (वन० १३३ । ४) । (४) एक प्राचीन राजर्षि, जो कीर्ति लोप होनेसे स्वर्गसे भूतलपर गिरे और एक चिरजीवी कच्छपद्वारा अपनी कीर्तिका बखान सुनकर पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचे थे (वन० १९९ अध्याय)।

इन्द्रद्युम्नसरोवर-(१) गन्धमादन पर्वतके समीपवर्ती सरोवर । यहाँ पत्नियोंसहित पाण्डुका आगमन (आदि० ११८ । ५०) । (२) द्वारकापुरीका एक सरोवर (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ०, पृष्ठ ८१६) ।

इन्द्रद्वीप-एक द्वीपका नाम, जिसे पहले सहस्रबाहुने जीतकर अपने अधिकारमें किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९२) ।

इन्द्रपर्वत-विदेहदेशवर्ती एक पर्वत (सभा० ३० । १५)।

इन्द्रप्रस्थ-पाण्डवोंकी राजधानी (वर्तमान दिल्ली) । विश्वकर्माद्वारा इसका निर्माण । इसका 'इन्द्रप्रस्थ' नाम होनेका कारण (आदि० २०६ । २८ के बाद) । व्यास-द्वारा इसके भूभागका शोधन (आदि० २०६ । २९) । इसका विशद वर्णन (आदि० २०६ । २९ के बाद दा० पा०, पृष्ठ ५९५-२०६ । ४९ तक) । (आदिपर्वके २०७, २१८, २२०, २२१ अध्यायोंमें; सभापर्वके १३, २४, ३२, ७३; वनपर्वके ५१, २३३, २३७; विराटपर्वके १८, ५०; उद्योगपर्वके २६, ५५, ९५; भीष्मपर्वके १२१; शान्तिपर्वके १२४ तथा आश्वमेधिकपर्वके १५ अध्यायोंमें भी 'इन्द्रप्रस्थ'का नाम आया है । मौसलपर्व ७ । ७२ में यह कथा आयी है कि अनिरुद्धके पुत्र वज्रको इन्द्रप्रस्थमें यादवोंका राजा बनाया गया था ।)

इन्द्रमार्ग-एक प्राचीन तीर्थ । यहाँके स्नानका फल स्वर्गकी प्राप्ति (अनु० २५ । ९) ।

इन्द्रलोकाभिगमनपर्व-वनपर्वके अन्तर्गत एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४२ से ५१ तक) ।

इन्द्रवर्मा-मालवनरेश । पाण्डवपक्षके योद्धा । इनके अश्वत्थामा नामक हाथीका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १९० । १५) ।

इन्द्रसेन-(१) सोमवंशीय महाराज अविक्षित्‌के पौत्र एवं परीक्षित्‌के पुत्र (आदि० ९४ । ५५) । (२) पाण्डवोंका सारथि (सभा० ३३ । ३०) । युधिष्ठिर-की आज्ञासे इन्द्रसेनका द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णको बुलानेके लिये जाना और उनसे चलनेका अनुरोध करना (सभा० १३ । ४१-४२) । इसका पाण्डवोंके साथ वन-गमन (वन० १ । ११) । गन्धमादनजाते समय पाण्डवोंका इन्द्रसेनको पुलिन्दराज सुबाहुके यहाँ छोड़ना(वन०१४० । २७)। इसका धात्रेयिकासे द्रौपदीका समाचार पूछना (वन० २६९ । ११-१५) । इन्द्रसेनको द्वारका जानेका आदेश (विराट० ४ । ३)। इन्द्रसेनका द्वारका गमन (विराट० ४ । ५८) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें जाना (विराट० ७२ । २३) । (३) एक कौरवपक्षका योद्धा (द्रोण० १५६ । १२२) ।(४) इन्द्रसेन (और इन्द्रसेना) निषधनरेश नलके पुत्र और पुत्री, इनकी माता दमयन्ती थीं । दमयन्तीद्वारा नलके जुएमें हारनेकी आशङ्का होनेपर वार्ष्णेयसे इन्द्रसेन और इन्द्रसेनाको कुण्डिन-पुर भेजवाना (वन० ६० । १८-२४) । इन दोनोंकी पुनः राजा नलसे भेंट (वन० ७५ । २४) ।

इन्द्रसेना-(१) राजा नलकी पुत्री (देखिये 'इन्द्रसेन और इन्द्रसेना') । (२) नारायणकी कन्या और मुद्गलकी पत्नी, अप्रतिम सुन्दरी होकर भी इसने एक हजार वर्षके बूढ़े पति मुद्गलका अनुसरण किया (वन० ११३ । २४; (विराट० २१ । ११) ।

इन्द्राणी-इन्द्रपत्नी शची (देखिये शची) ।

इन्द्राभ-भरतवंशीय महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके सातवें पुत्र (आदि० ९४ । ५९) ।

इन्द्रोत-शुनकवंशी ऋषि । राजा जनमेजयको फटकारना (शान्ति० १५० । ९-१९)। राजा जनमेजयसे ब्राह्मणोंके प्रति द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा कराकर उन्हें अपनी शरणमें लेना (शान्ति० १५१ । १०-२१) । राजा जनमेजयको धर्मोपदेश करके उनसे अश्वमेध यज्ञ कराना (शान्ति० १५२ अ०में) ।

इरा (१) कुबेरकी सेवामें रहनेवाली अप्सरा (सभा० १० । ११) । (२) ब्रह्माके सभाभवनमें उनकी उपासना करनेवाली एक देवी (सभा० ११ । ३९) ।

इरामा-एक महानदी, जिसे मार्कण्डेयजीने भगवान् बाल-मुकुन्दके उदरमें देखा था (वन० १८८ । १०४)।

इरावती-पञ्चनद प्रदेशकी रावी नदी, जो दिव्यरूप धारण करके अन्य नदियोंके साथ वरुणकी सेवामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । १९) । पार्वतीजीने स्त्रीधर्म वर्णन करनेके सम्बन्धमें जिन नदियोंसे सलाह ली थी, उनमें 'इरावती' भी उपस्थित थी (अनु० १४६ । १८) ।

इरावान्-अर्जुनके द्वारा नागकन्या उलूपीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (आदि० २१३ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । प्रथम दिनके युद्धमें श्रुतायुषके साथ इनका

द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ६९–७१) । इनके द्वारा विन्द और अनुविन्दकी पराजय (भीष्म० ८३ । १८–२२) । इनका युद्ध करके शकुनिके पाँच भाइयोंका वध करना (भीष्म० ९० । २७–४६) । अलम्बुषके साथ युद्ध और उसके द्वारा इनका वध (भीष्म० ९० । ५६–७६) ।

इला–(१) वैवस्वत मनुकी पुत्री, पुरुषरूपमें परिणत होनेपर इनका नाम सुद्युम्न हुआ (आदि० ७५ । १६; अनु० १४७ । २६) । [ये दो बार अपने जीवनमें स्त्री होकर पुरुष हुए थे । पहले तो इन्होंने होताओंके दोषसे कन्या होकर ही जन्म लिया था । बादमें वशिष्ठजीकी कृपासे पुरुष हुए और दुबारा इलावृतखण्डमें जाकर महादेवजीके शापसे स्त्री हुए थे । यह कथा श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें देखना चाहिये ।] इनके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ (फिर ये पुरुष हो गये) । अतः पुरूरवाके पिता और माता दोनों कहे जाते हैं (आदि० ७५ । १८-१९) । इला बुधकी पत्नी और पुरूरवाकी माता थी (अनु० १४७ । २७) । (२) एक नदी, जिसने कार्तिकेयको फल-फूलकी भेंट अर्पित की थी (अनु० ८६ । २४) । इला नदी सम्बन्धी तीर्थमें युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसहित स्नान किया था (वन० १५६ । ८) ।

इलावृतवर्ष–जम्बूद्वीपका मध्यवर्ती भूभाग (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

इलास्पद–एक प्राचीन तीर्थ, इसमें स्नान करनेसे दुर्गतिका निवारण तथा वाजपेय यज्ञका पुण्यफल सुलभ होता है (वन० ८३ । ७७–७८) ।

इलिल–एक पुरुवंशी राजा । सम्राट् दुष्यन्तके पिता (आदि० ७१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनकी भार्याका नाम 'रथन्तर्या' था (आदि० ७४ । १२५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । दुष्यन्तके पिता तथा माताके ये नाम दाक्षिणात्य पाठके अनुसार दिये गये हैं । उदीच्य पाठके अनुसार इनके पिताका नाम 'ईलिन' और माताका नाम 'रथन्तरी' था (आदि० ९४ । १६–१८) ।

इल्वल–मणिमती नगरीका निवासी एक दैत्य (वन० ९६ । ४) । एक ब्राह्मणसे रुष्ट होनेके कारण यह ब्राह्मणद्रोही होकर छलसे ब्राह्मणोंकी हत्या किया करता था (वन० ९६ । ५–१३) । इसका अगस्त्यजीसे 'मैं कितना धन दान करना चाहता हूँ ?' यह पूछना (वन० ९९ । १३) । इसके द्वारा श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व, त्रसदस्यु और अगस्त्यजीको धनका दान (वन० ९९ । १६) । अगस्त्यजीके हुङ्कारसे इसका भस्म होना (वन० ९९ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

इषुपाद–एक दानव । माता 'दनु' । पिता कश्यप (आदि० ६५ । २५) । यही विख्यात पराक्रमी राजा नग्नजित्‌के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २०-२१) ।

ई

ईजिक–एक देश (भीष्म० ९ । ५२) ।

ईरी–यमराजकी सभामें वैवस्वत यमकी उपासना करनेवाले एक सौ 'ईरी' नामवाले नरेश (सभा० ८ । २३) ।

ईलिन–पूरुवंशी महाराज तंसुके पुत्र । इनकी पत्नीका नाम 'रथन्तरी' था । उसके गर्भसे इनके दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु तथा वसु नामक पाँच पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । १६–१८) ।

ईश–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

ईशानाध्युषिततीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसके सेवनसे सहस्र कपिलादान और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ८-९) ।

ईश्वर–(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । ३) । (२) एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्योंमेंसे किसीके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६५) । (३) राजा पूरुके द्वारा पौष्टीके गर्भसे उत्पन्न द्वितीय पुत्र, महारथी (आदि० ९४ । ५) । (४) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३७) ।

उ

उक्थ–(१) परावाणीका उत्पादक एक अग्नि, जिसकी त्रिविध उक्थ-मन्त्रोंद्वारा स्तुति की जाती है (वन० २१९ । २५) । (२) सामवेदका एक विशेष भाग ।

उक्षा–ऋषभकन्दका नाम (वन० १९७ । १७) ।

उग्र–(१) धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ६४ । ३४-३५) । (२) एक यादव राजकुमार, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । १२) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । १००) । (४) प्रजापति कविके पुत्र । (अनु० ८५ । १३३) । (५) एक वर्णसंकर जाति । क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा स्त्रीके संयोगसे उत्पन्न बालक (अनु० १४८ । ७) ।

उग्रक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) ।

उग्रकर्मा–(१) शाल्व देशका राजा, जो भीमसेनके द्वारा मारा गया (**कर्ण० ५ । ४१**) । (२) केकय-राजकुमार विशोकका सेनापति, कर्णद्वारा इसका वध (**कर्ण० ८२ । ४-५**) ।

उग्रतीर्थ–क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे प्रकट हुआ एक क्षत्रिय राजा (**आदि० ६७ । ६५**) ।

उग्रतेजा–(१) भगवान् शिवका एक नाम (**अनु० १७ । ५७**) । (२) एक श्रेष्ठ नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारनेके समय उनके स्वागतके लिये आया था (**मौसल० ४ । १६**) ।

उग्रश्रवा–(१) लोमहर्षणपुत्र; सौति; पौराणिक (**आदि० १ । १**) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १००**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १५७ । १९**) ।

उग्रसेन–(१) महाराज जनमेजयका एक भाई, जिसने अपने अन्य दो भाइयोंके साथ सरमा-पुत्रको मारा था (**आदि० ३ । १-२**) (२) 'मुनि'नामवाली कश्यपकी पत्नीका एक पुत्र, देवगन्धर्व (**आदि० ६५ । ४२**) । यह अर्जुनका जन्मोत्सव देखने गया था (**आदि०१२२ । ५५**) । विराटनगरमें अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये भी इसने पदार्पण किया था (**विराट० ५६ । ११-१२**) । (३) एक राजा, जो 'स्वर्भानु' नामक असुरके अंशसे प्रकट हुआ था (**आदि०६७ । १२-१३**) । (४) (चित्रसेन) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १००**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३७ । २९-३०**) । (५) ये वृष्णिवंशके प्रतापी राजा और राजा कुन्तिभोजके फुफेरे भाई थे (**आदि० ६७ । १३०; २१६ । ८**) । राजा उग्रसेनका दूसरा नाम आहुक था (**उद्योग० १२८ । ३८-३९; अनु० १४ । ४१**) । इनके मन्त्री वसुदेव थे और पुत्र बलवान् कंस; कंस अपने पिता उग्रसेनको कैद करके मन्त्रियोंके साथ इनका राज्य भोगने लगा (**सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१**) । उग्रसेनकी सम्मतिसे श्रीकृष्णने भाइयोंसहित कंसको मारकर पुनः उग्रसेनको ही मथुराके राज्यपर अभिषिक्त किया (**सभा० पृष्ठ ७३२**) । उग्रसेन और वृष्णिवंशको जरासंधसे सदा क्लेश प्राप्त होता था (**सभा० पृष्ठ ७३२**) । शाल्वके चढ़ाई करनेपर उग्रसेनके द्वारा नगरकी सुरक्षा (**वन० १५ । २३**) । श्रीकृष्णसे नारदजीकी पूज्यताके विषयमें प्रश्न (**शान्ति० २३० । ३**) । साम्बके पेटसे पैदा हुआ मुसल उग्रसेनको दिया गया, उसे देखकर ये दुखी हुए और उसे कुटवाकर चूर्ण बनवाकर इन्होंने समुद्रमें फेंकवा दिया, फिर मद्यनिषेधकी आज्ञा जारी की (**मौसल० १ । २७-३०**) । उग्रसेन मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गये थे (**स्वर्गा० ५ । १७-१८**) । (६) सोमवंशीय राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के पुत्र (**आदि० ९४ । ५२-५४**) ।

उग्रायुध–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । ९९**) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । २**) । (२) पाण्डवपक्षीय एक पाञ्चाल योद्धा, कर्णद्वारा घायल (**कर्ण० ५६ । ४४**) । (३) कौरव-पक्षका एक योद्धा, जो पराक्रमी और आदर्श धनुर्धर था, युद्धक्षेत्रमें मारा गया (**शल्य० २ । ३७**) । (४) एक दुर्धर्ष चक्रवर्ती नरेश, जिसे भीष्मजीने किसी समय मारा था (**शान्ति० २७ । १०**) ।

उग्रायुधपुत्र–कौरव-पक्षका एक संशप्तक योद्धा, जिसे अर्जुनने मारा था (**कर्ण० १९ । ७**) ।

उच्चैःश्रवा–(१) समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुआ सर्वश्रेष्ठ अश्व, जो देवलोकमें चला गया (**आदि० १८ । ३३—३७**) । इसके शरीरका रंग कैसा है—इस प्रश्नको लेकर कद्रू एवं विनताका विवाद (**आदि० २० । २ से २३ । ३ तक**) । (२) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र तथा अविक्षित्के छठे पुत्र (**आदि० ९४ । ५३**) ।

उच्छिख–तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (**आदि० ५७ । ९**) ।

उच्छृङ्ग–विन्ध्यद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, इसका दूसरा साथी अतिशृङ्ग था (**शल्य० ४५ । ४९**) ।

उज्जयन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५८**) ।

उज्जयन्त पर्वत–सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) के पिण्डारक क्षेत्रके अन्तर्गत एक महान् सिद्धिदायक पर्वत (**वन० ८८ । २१**) ।

उज्जानक–मानसरोवरसे आगे गन्धमादनके निकट आर्ष्टिषेणके आश्रमके पासका एक तीर्थभूत सरोवर, इसमें स्नान करनेसे पापोंसे छुटकारा मिलता है (**वन० १३० । १७; अनु० २५ । ५५**) ।

उज्जालक–मरुप्रदेशमें स्थित वालुकामय समुद्र (**वन० २०२ । १६**) ।

उण्ड्र (या उड्र)–दक्षिण भारतका एक जनपद, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा जीत लिया था (**सभा० ३१ । ७१**) ।

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें उण्ड्रनिवासी भेंट लेकर आये थे (**वन० ५१ । २२**) ।

उतथ्य–महर्षि अङ्गिराके मध्यम पुत्र (**आदि० ६६ । ५**) । महाराज मान्धाताको राजधर्मके विषयमें इनका उपदेश (**शान्ति० ९० और ९१ अध्यायोंमें**) । सोमकी कन्या भद्राके साथ विवाह (**अनु० १५४ । १२**) । वरुणद्वारा भद्राका अपहरण किये जानेपर इनका सम्पूर्ण जल पी लेना (**अनु० १५४ । २२-२८**) ।

उत्कल–भारतवर्षका एक जनपद (**भीष्म० ९ । ४१**) । कर्णने दुर्योधनके लिये इस देशको जीता था (**द्रोण० ४ । ८**) ।

उत्कोचक–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ महर्षि धौम्य तपस्या करते थे, पाण्डवोंने यहींपर धौम्यमुनिका पुरोहितके रूपमें वरण किया था (**आदि० १८२ । २–६**) ।

उत्क्राथिनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १६**) ।

उत्क्रोश–इन्द्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, इसके दूसरे साथीका नाम पङ्कज था (**शल्य० ४५ । ३५**) ।

उत्तङ्क–(१) आयोदधौम्यके तीसरे शिष्य वेदके शिष्य (**आदि० ३ । ८३**) । इनकी गुरुसेवा (**आदि० ३ । ८५**) । इनके द्वारा गुरुपत्नीकी अवैध आज्ञाका उल्लङ्घन (**आदि० ३ । ८७**) । गुरुपत्नीके कहनेपर इनका राजा पौष्यके यहाँसे कुण्डल लानेके लिये जाना (**आदि० ३ । ९८**) । इनके द्वारा अमृतस्वरूप गोमयका भक्षण (**आदि० ३ । १०१**) । गुरुपत्नीके लिये राजासे कुण्डलकी याचना (**आदि० ३ । १०४**) । क्षत्राणीके अन्तःपुरमें उपस्थित न होनेकी बात बताकर इनका राजाको उपालम्भ देना (**आदि० ३ । १०६**) । फिर आचमन आदिसे शुद्ध होनेपर इनको क्षत्राणीका दर्शन होना और उनसे इनका कुण्डल माँगना (**आदि० ३ । १११**) । इनका राजा पौष्यको अपवित्र अन्न खिलानेके कारण शाप देना (**आदि० ३ । ११६**) । पौष्यद्वारा इनको अनपत्य होनेका शाप (**आदि० ३ । ११७**) । कुण्डल लेकर आते समय इनकी क्षपणकरूपधारी तक्षकसे भेंट तथा उसके द्वारा कुण्डलोंका हरण होना (**आदि० ३ । १२७**) । इनका क्षपणकका पीछा करना एवं क्षपणकका तक्षकरूपमें प्रकट होकर नागलोकमें जाना (**आदि० ३ । १२९-१३०**) । नागलोक जाते समय इनकी सहायताके लिये इन्द्रका वज्रको आदेश देना (**आदि० ३ । १३१**) । नागलोकमें जाकर इनके द्वारा तक्षककी स्तुति (**आदि० ३ । १४०**) । नागलोकमें वस्त्र बुनती हुई दो स्त्रियों तथा चक्र घुमाते हुए छः कुमारों एवं एक दिव्य पुरुषका इन्हें दर्शन होना तथा इनका उनकी स्तुति करना (**आदि० ३ । १४४–१४९**) । इनके द्वारा घोड़ेकी गुदा फूँकनेसे आगकी लपटोंका प्रकट होना एवं आगसे भयभीत होकर तक्षकका कुण्डल देना (**आदि० ३ । १५१–१५२**) । नागलोकमें देखे हुए कुमार आदिके विषयमें इनका गुरुसे पूछना (**आदि० ३ । १६३**) । बैल और उसपर चढ़े हुए पुरुषके सम्बन्धमें इनकी जिज्ञासा (**आदि० ३ । १६५**) । गुरुके द्वारा इनके प्रश्नोंका समाधान (**आदि० ३ । १६६–१६८**) । तक्षकके विनाशहेतु सर्पयज्ञके लिये राजा जनमेजयको सर्पसत्रकी सलाह देना (**आदि० ३ । १७८–१८४**) । (**२**) गौतम ऋषिके शिष्य, द्वारका जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट और उनसे कौरवों-पाण्डवोंका समाचार पूछना (**आश्व० ५३ । ८–१४**) । कुपित होकर इनका श्रीकृष्णको शाप देनेके लिये उद्यत होना (**आश्व० ५३ । २०–२२**) । श्रीकृष्णसे अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करनेके लिये कहना (**आश्व० ५४ । १**) । शापदानसे निवृत्त होकर इनका श्रीकृष्णसे विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना करना (**आश्व० ५५ । १–३**) । श्रीकृष्णसे जलके लिये वरदान माँगना (**आश्व० ५५ । १३**) । श्रीकृष्णका इन्हें उत्तङ्क नामक मेघोंसे जल प्राप्त होनेका वर देना (**आश्व० ५५ । ३५–३७**) । इनकी उत्कृष्ट गुरुभक्ति (**आश्व० ५६ । २–६**) । उत्तङ्कका गुरुके लिये काष्ठका बोझ लाना । उस बोझके साथ गिरी हुई सफेद जटा देखकर वृद्धावस्थाका अनुमान करके इनका रोदन, गुरुपुत्रीका इनके आँसुओंको अपने हाथमें लेना और उसका हाथ जलना, गुरुके पूछनेपर 'घर जानेकी आज्ञा न मिलनेसे ही मुझे दुःख हुआ है' यह बताना तथा गुरुका इन्हें आज्ञा लेकर घर जानेका आदेश देना; उत्तङ्कका 'गुरुदक्षिणा क्या दूँ ?' यह पूछना, गुरुका बिना दक्षिणाके ही संतोष व्यक्त करके उन्हें पुत्री देनेकी इच्छा व्यक्त करना तथा उत्तङ्कका षोडशवर्षीय युवक होकर उसका पाणिग्रहण करना (**आश्व० ५६ । ७–२४**) । इनका गुरुपत्नीसे गुरुदक्षिणा माँगनेका आग्रह और अहल्याका मदयन्तीके कुण्डल माँगना (**आश्व० ५६ । २५–२९**) । कुण्डल लानेके लिये सौदासके पास जाकर उनके साथ इनका वार्तालाप करना (**आश्व० ५७ । ३–१८**) । मदयन्तीको राजाका संदेश सुनाकर कुण्डल माँगना (**आश्व० ५७ । १९**) । राजा सौदाससे रानीके लिये संदेशका प्रमाण माँगना (**आश्व० ५८ । १**) । मदयन्तीको राजाका संदेश सुनाकर कुण्डल प्राप्त करना (**आश्व० ५८ । ३**) । सौदासके साथ

पुनः इनकी बातचीत (आश्व० ५८ । ४–१६) । इनके वृक्षपर चढ़कर बेल तोड़कर गिराते समय कुण्डलोंकी चोरी (आश्व० ५८ । २४–२६) । इनका डंडेसे साँपकी बाँबी खोदना (आश्व० ५८ । २७-२८) । इन्द्रकी सहायतासे नागलोकमें पहुँचना (आश्व० ५८ । ३६–३८) । अश्वरूप अग्निकी सहायतासे कुण्डल प्राप्त करना (आश्व० ५८ । ५६) । गुरुपत्नीको कुण्डल देना (आश्व० ५८ । ५८) । इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुका इन्हें वरदान देना (वन० २०१ । ३०)। इनका अयोध्यानरेश बृहदश्वसे धुन्धुको मारनेके लिये आग्रह करना (वन० २०२ । २२) ।

उत्तमाश्व–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४१) ।

उत्तमौजा–पाण्डवोंका सम्बन्धी । पाञ्चालदेशीय योद्धा (उद्योग० ५७ । ३२) । इनके द्वारा अर्जुनके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा (भीष्म० १५ । १९; भीष्म० १९ । २४; भीष्म० ९८ । ४३) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ८) । अङ्गदके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ३८-३९) । कृतवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । २७–३२) । दुर्योधनके साथ युद्ध करके इनका पराजित होना (द्रोण० १३० । ३०–४३)। कृतवर्मासे इनकी पराजय (कर्ण० ६१ । ५९) । इनके द्वारा कर्णपुत्र सुषेणका वध (कर्ण० ७५ । १३)। अश्वत्थामाद्वारा इनका वध (सौप्तिक० ८ । ३५-३६)। उत्तमौजा आदिका दाह (स्त्री० २६ । ३४) ।

उत्तर–(१) राजा विराटके पुत्र । इनका विराटके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें आना (आदि० १८५ । ८) । इनका दूसरा नाम 'भूमिंजय' था (विराट० ३५ । ९) । इनके पास गोपाध्यक्षका आना और इन्हें युद्धके लिये उत्साहित करना (विराट० ३५ । ९)। इनके द्वारा अपने लिये सारथि ढूँढ़नेका प्रस्ताव (विराट० ३६ । २) । बृहन्नला नामधारी अर्जुनको सारथि बनाकर इनका युद्धके लिये प्रस्थान (विराट० ३७ । २७) । कौरवोंकी सेना देखकर भयभीत हो रथसे कूदकर भागना (विराट० ३८ । २८) । अर्जुनके समझानेपर इनका सारथि बननेको राजी होना (विराट० ३८ । ५१) । शमीवृक्षसे अर्जुनकी आज्ञाके अनुसार पाण्डवोंके दिव्य धनुष आदि उतारना (विराट० ४१ । ८) । बृहन्नलासे पाण्डवोंके अस्त्रोंके विषयमें प्रश्न करना (विराट० ४२ अध्यायमें) । अर्जुनसे उनके दस नामोंके कारण पृथक्-पृथक् पूछना (विराट० ४४ । १०–१२) । अर्जुनको पहचानकर उनकी शरणमें जाना (विराट० ४४ । २४-२५) । अर्जुनसे उनके नपुंसक होनेका कारण पूछना (विराट० ४५ । १२) । घायल होनेसे हतोत्साह होकर अर्जुनसे सारथ्यके लिये अपनी असमर्थता प्रकट करना (विराट० ६१ । ४–१२) । अर्जुनके आदेशसे कौरव महारथियोंके वस्त्र उतार लेना (विराट० ६६ । १५) । बृहन्नलाको सारथि बनाकर इनका नगरकी ओर प्रस्थान (विराट० ६७ । १४) । उत्तरका नगरमें प्रवेश करके पिता तथा कङ्कके चरणोंमें अभिवादन (विराट० ६८ । ५७) । विराटसे युद्धका समाचार बताना (विराट० ६९ । १–११) । पितासे पाण्डवोंका परिचय देना (विराट० ७१ । १३–१७) । अर्जुनका विशेषरूपसे परिचय देना (विराट० ७१ । १८–२१) । प्रथम दिनके युद्धमें वीरबाहुके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ७७) । शल्यपर आक्रमण और उनके द्वारा इनका वध (भीष्म० ४७ । ३६–३९) । स्वर्गमें जाकर इनका विश्वेदेवोंमें प्रवेश (स्वर्गा० ५ । १७-१८)। (२) एक राजा, जो अपने बड़ेका अपमान करनेके कारण नष्ट हो गया (सभा० २२ । २४) । (३) एक अग्नि, तीन दिन अग्निहोत्र छूट जानेपर इन्हें अष्टाकपाल चरुकी आहुति देना कर्तव्य (वन० २२१ । २९) । (४) उत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६५) ।

उत्तर उलूक–उत्तर दिशामें स्थित उलूक देश, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । ११) ।

उत्तर कुरु–जम्बूद्वीपका एक वर्ष (खण्ड), जिसकी सीमातक अर्जुन गये थे और वहाँसे करके रूपमें बहुत धन लाये थे । वह भूमि मनुष्योंके लिये अगम्य है (सभा० २८ । ७–२०) । यह उत्तर कुरुवर्ष नीलगिरिसे दक्षिण तथा मेरुगिरिसे उत्तर है । वहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं । वहाँके वृक्ष फल-फूलसे सम्पन्न हैं, फूल सुगन्धित, फल मधुर और सरस हैं । 'क्षीरी' नामवाले वृक्ष वहाँ षड्रसयुक्त अमृतमय दूध देते हैं । कुछ वृक्ष मनोवाञ्छित फल देते हैं । 'क्षीर'के फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं । वहाँ मणिमयी भूमि और सोनेकी बालुका है । स्वर्गच्युत पुण्यात्मा वहाँ रहते हैं। वहाँके निवासियोंकी आयु ग्यारह हजार वर्षकी होती है । वहाँ भारुण्ड नामक पक्षी होते हैं, जो मृतकोंकी लाशें उठाकर कन्दराओंमें डालते हैं (भीष्म० ७ । २–१३) ।

उत्तर कोसल–एक भारतीय जनपद, जिसे भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । ३) ।

उत्तर ज्योतिष–पश्चिमका एक प्राचीन नगर, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ११) ।

उत्तर दिशा–गरुड़ने गालवके समक्ष उत्तर दिशाका

विस्तारपूर्वक वर्णन किया है (**उद्योग० १११ अध्याय**)। मूर्तिमती उत्तर दिशाके द्वारा अष्टावक्रका स्वागत (**अनु० अध्याय १९ से २१**)।

उत्तरपाञ्चाल–एक जनपद, जहाँ पृषत्‌की मृत्युके बाद द्रुपदको राजा बनाया गया (**आदि० १२९ । ४३**)। आगे चलकर उत्तरपाञ्चाल एवं उसकी राजधानी अहिच्छत्रापर द्रोणका अधिकार हो गया। यह प्रदेश गङ्गाके उत्तर तटपर था (**आदि० १३७ । ७०-७६**)।

उत्तरपारियात्र–एक पर्वत, जहाँ अर्जुनके लिये शुभाशंसा की गयी थी (**वन० ३१३ । ८**)।

उत्तरमानस–एक तीर्थ, यहाँकी यात्रा करनेसे भ्रूणहत्यारा भी पापसे मुक्त हो जाता है (**अनु० २५ । ६०**)।

उत्तरा–मत्स्यनरेशकी कन्या, अभिमन्युकी पत्नी और परीक्षित्‌की माता (**आदि० ९५ । ८३-८४**)। उत्तराकी शिक्षाके लिये अर्जुनने अपनेको रखनेका राजा विराटसे अनुरोध किया। विराटने कहा, तुम उत्तराको नृत्यकी शिक्षा दो। फिर अर्जुनने उत्तराको नृत्य-गीत सिखाना आरम्भ किया (**विराट० ११ । ८-१२**)। उत्तराका बृहन्नलासे उत्तरका सारथि बननेके लिये कहना (**विराट० ३७ । ५-१९**)। बृहन्नलासे गुड़िया बनानेके लिये कौरवोंके वस्त्र माँगना (**विराट० ३७ । २८-२९**)। अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह (**विराट० ७२ । ३५**)। पतिकी मृत्युके शोकसे दुखी होकर मूर्च्छित होना (**द्रोण० ७८ । ३७**)। श्रीकृष्णद्वारा उसे आश्वासन (**द्रोण० ७८ । ४०-४२**)। युद्धस्थलमें अभिमन्युको मरा हुआ देखकर विलाप करना (**स्त्री० २० । ४-२८**)। अभिमन्युके लिये शोक करना और व्यासजीद्वारा इसका समझाया जाना (**आश्व० ६२ । ८-१२**)। वनको जाते हुए धृतराष्ट्रके पीछे कुछ दूरतक जानेवाली स्त्रियोंमें उत्तरा भी थी (**आश्रम० १५ । १०**)।

उत्तरापथ–उत्तर भारत (**शान्ति० २०७ । ४३**)।

उत्तेजनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । ६**)।

उत्पलावन–पंजाबका एक तीर्थ, जहाँ विश्वामित्रने अपने पुत्रके साथ यज्ञ किया था (**वन० ८७ । १५**)। यहाँ स्नानका फल (**अनु० २५ । ३४**)।

उत्पलिनी–नैमिषारण्यके समीप बहनेवाली एक नदी, जिसका दर्शन अर्जुनने किया (**आदि० २१४ । ६**)।

उत्पातक–यहाँ स्नान करके उपवास करनेसे नरमेधके फलकी प्राप्ति होती है (**अनु० २५ । ४१**)।

उत्सवसंकेत–(१) लुटेरोंके दल, जिनपर अर्जुनने विजय प्राप्त की (**सभा० २७ । १६**)। (२) दक्षिण दिशाका एक जनपद (**भीष्म० ९ । ६१**)।

उदपानतीर्थ–सरस्वती नदीके जलमें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, इसकी उत्पत्तिकी कथा (**शल्य० ३६ अध्याय**)।

उदयगिरि–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ एक दिन संध्योपासना करनेसे बारह वर्षोंतक संध्योपासना करनेका फल मिलता है (**वन० ८४ । ९३**)।

उदयाचल–उदयगिरि (**द्रोण० १८४ । ४७**)।

उदरशाण्डिल्य–इन्द्रसभामें विराजमान एक ऋषि (**सभा० ७ । १३**)।

उदराक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६३**)।

उदानवायु–प्राणवायुके पाँच भेदोंमेंसे एक (**वन० २१३ । १२**)।

उदापेक्षी–विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (**अनु० ४ । ५९**)।

उद्दालक–एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य थे (**आदि० ५३ । ७**)। ये ही आयोदधौम्य ऋषिके शिष्य आरुणि पाञ्चाल हैं, जो आगे चलकर उद्दालक नामसे प्रसिद्ध हुए। ये इन्द्रकी सभामें भी उपस्थित होते थे (**सभा० ७ । १२**)। उद्दालकके पुत्रका नाम श्वेतकेतु और कन्याका नाम सुजाता था। उद्दालकने अपनी कन्या सुजाताका ब्याह प्रिय शिष्य कहोडसे किया था, जिसके गर्भसे अष्टावक्रका जन्म हुआ था (**वन० १३२ । १-९**)। उद्दालकके यज्ञमें उनके चिन्तन करनेपर सरस्वती नदीका प्राकट्य हुआ था, उस समय उनकी उस धाराका नाम 'मनोरमा' हुआ था (**शल्य० ३८ । २२-२५**)। इन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतुको ब्राह्मणोंके प्रति उसके कपटपूर्ण व्यवहारके कारण निकाल दिया था (**शान्ति० ५७ । १०**)।

उद्दालकि–प्राचीन ऋषि। नाचिकेतके पिता (**अनु० ७१ । २-३**)। नाचिकेतपर रुष्ट होकर इनका शाप देना (**अनु० ७१ । ७**)। पुत्रशोकसे संतप्त होकर इनका पृथ्वीपर गिरना (**अनु० ७१ । ९**)। मरकर जीवित हुए पुत्रसे उसके विषयमें पूछना (**अनु० ७१ । १३**)।

उद्धव–एक यादव। श्रीकृष्णके सखा एवं मन्त्री। इनका परिचय महाभारतमें इस प्रकार है—उद्धवजी द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (**आदि० १८५ । १८**)। ये रैवतक-पर्वतके उत्सवमें सम्मिलित थे (**आदि० २१८ । ११**)। बृहस्पतिके शिष्य महाबुद्धिमान् उद्धवजी सुभद्राके लिये दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थमें गये थे (**आदि० २२० । ३०**)। शाल्वके चढ़ाई करनेपर इनके द्वारा द्वारका नगरीकी

सुरक्षा (वन० १५ । ९) । वृष्णिवंशियोंसे विदा ले उद्धवजी अपने तेजसे पृथ्वी-आकाशको व्याप्त करते हुए प्रभासक्षेत्रसे अन्यत्र चले गये । वृष्णिकुलके भावी विनाशको जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें वहाँ नहीं रोका (मौसल० ३ । ११-१३) ।

उद्भव–एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । २३) ।

उद्भस–उद्भसदेशीय योद्धा, जिन्हें साथ लेकर नकुल-सहदेव धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहकी बायीं पाँखके स्थानमें खड़े हुए थे (भीष्म० ५० । ५३) ।

उद्भिद्–कुशद्वीपके प्रथम वर्ष (खण्ड) का नाम (भीष्म० १२ । १२) ।

उद्योगपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व ।

उद्रपारक–धृतराष्ट्र नागके कुलमें उत्पन्न एक सर्प, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १७) ।

उद्वह–(१) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा (आदि० ६७ । ६४) । (२) वायुके सात भेदोंमेंसे तीसरा (शान्ति० ३२८ । ४०) ।

उन्माथ–यमराजद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमें एक । दूसरेका नाम प्रमाथ था (शल्य० ४५ । ३०) ।

उन्माद–पार्वतीद्वारा स्कन्दको दिये गये पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ५१) ।

उन्मुच–दक्षिण दिशामें रहनेवाले एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २०८ । २८) ।

उपकीचक–कालेय राक्षसोंके अंशसे उत्पन्न । कीचकके छोटे भाई, कीचकके मारे जानेपर ये द्रौपदीको बाँधकर श्मशानमें ले गये थे । इनकी संख्या १०५ थी, भीमसेन-द्वारा इनका वध (विराट० २३ । ५—२८) ।

उपकृष्णक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

उपगहन–महर्षि विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५६) ।

उपगिरि–उत्तर दिशाका एक पर्वतीय जनपद (सभा० २७ । ३) ।

उपचित्र–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९५) । (भीष्म० ५१ । ८ में भी इसका नाम आया है) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २२) ।

उपजला–एक नदी, जहाँ यज्ञ करके उशीनरने इन्द्रसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त किया था (वन० १३० । ३१) ।

उपत्यक–एक भारतीय जनपद, जो पर्वतकी तराईमें स्थित है (भीष्म० ९ । ५५) ।

उपनन्द–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १९) । (२) नागलोकका एक नाग (उद्योग० १०३ । १२) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) ।

उपप्लव्य–विराट-राज्यका एक उपनगर, जो राजधानीके पास ही था; यहाँ अज्ञातवासके बाद पाण्डवोंने निवास किया था (विराट० ७२ । १४) । (इसका नाम अनेक बार आया है ।)

उपमन्यु–(१) आयोदधौम्य ऋषिके शिष्य (आदि० ३ । २२—३३) । इनकी गुरुभक्ति (आदि० ३ । ३५—४९) । इनका आकके पत्ते खानेसे अन्धा होकर कुएँमें गिरना और गुरुकी आज्ञासे इनके द्वारा अश्विनी-कुमारोंकी स्तुति (आदि० ३ । ५०—६८) । इनको अश्विनीकुमारका वरदान (आदि० ३ । ७३) । इनको गुरुदेवका आशीर्वाद (आदि० ३ । ७६-७७) । (२) सत्ययुगके महायशस्वी ऋषि । व्याघ्रपादके पुत्र । धौम्यके बड़े भाई (अनु० १४ । ११-१२; अनु० १४ । ५५) । इनके आश्रमका वर्णन (अनु० १४ । ४५—६३) । श्रीकृष्णका इन्हें प्रणाम करना और उपमन्युका उन्हें पुत्र-प्राप्तिका विश्वास दिलाते हुए महादेवजीकी आराधनाके लिये कहना एवं शिवजीकी महिमा बताना (अनु० १४ । ६४—११०) । इन्होंने बाल्यकालमें मातासे दूध-भात माँगा, माँने आटा घोलकर दोनों भाइयोंको दूधके नाम-पर दे दिया । फिर इन्होंने पिताके साथ किसी यजमानके यहाँ जाकर दूधका स्वाद चखा और घर आकर माँसे कहा, 'तुमने जो दूध कहकर दिया, वह दूध नहीं था ।' माँने कहा, 'भगवान् शिवकी कृपाके बिना दूध-भात कहाँ ?' उन्होंने पूछा, 'महादेवजी कौन हैं ?' फिर माताने उनकी महिमा बतायी; जिससे वे शिवाराधनामें प्रवृत्त हुए (अनु० १४ । ११५—१६७) । इनकी तपस्या, शिव-भक्ति, स्तुति-प्रार्थना, शिवदर्शन और वरप्राप्ति (अनु० १४ । १६८—३७७) । इनका श्रीकृष्णसे तण्डिद्वारा की गयी शिव-स्तुतिका वर्णन (अनु० १६ अध्यायमें) । इनके द्वारा श्रीकृष्णसे शिवसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन (अनु० १७ अध्यायमें) ।

उपयाज–परम शान्त, ब्रह्माके तुल्य प्रभावशाली, संहिताके स्वाध्यायमें तत्पर, कश्यप गोत्रमें उत्पन्न, सूर्यदेवके भक्त एवं सुयोग्य एक श्रेष्ठ महर्षि, जो याजके छोटे भाई थे (आदि० १६६ । ७—१०) । द्रोणविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये इनसे द्रुपदकी प्रार्थना और एक अर्बुद धेनु-का प्रलोभन (आदि० १६६ । १०—१२) । इनका द्रुपदकी प्रार्थनाको अस्वीकार करना और अपनी अभीष्ट-

सिद्धिके हेतु याजके समीप जानेके लिये उन्हें आदेश देना (आदि० १६६ । ११–२०) । इनके द्वारा याजकी हीन वृत्तिका वर्णन (आदि० १६६ । १५–१९) । द्रोणविनाशक पुत्रेष्टि-यज्ञमें सहयोग देनेके लिये इनको याजकी प्रेरणा (आदि० १६६ । ३२) । (याज और) उपयाजकी तपस्यासे द्रुपदको द्रौपदी एवं धृष्टद्युम्नकी प्राप्ति (सभा० ८० । ४५) ।

उपरिचरवसु–एक प्राचीन पुरुवंशी राजा, जो नित्य धर्म-परायण थे (आदि० ६३ । १) । इन्द्रकी आज्ञासे उन्होंने चेदिदेशका राज्य स्वीकार किया (आदि० ६२ । २) । इन्द्रके द्वारा इनके प्रति चेदिदेशकी प्रशंसा (आदि० ६३ । ८–११) । देवराजद्वारा इन्हें सर्वज्ञ होनेका वरदान (आदि० ६३ । १२) । इनको देवेन्द्रके द्वारा दिव्य विमान, बाँसकी छड़ी एवं वैजयन्तीमालाकी भेंट (आदि० ६३ । १३–१७) । इनका बाँसकी छड़ीको धरतीमें गाड़कर इन्द्रपूजाकी प्रथा चलाना (आदि० ६३ । १८-१९) । हंसका स्वरूप धारण करके इन्द्रका इनकी की हुई पूजा ग्रहण करना एवं अपनी पूजाका महत्त्व बतलाना (आदि० ६३ । २२–२५) । उपरिचरवसुने चेदिदेशमें ही रहकर इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया (आदि० ६३ । २८) । इनके बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुशाम्बु, मावेल्ल तथा यदु नामके पाँच पुत्र थे (आदि० ६३ । ३०-३१) । इनका 'उपरिचर' नाम होनेका कारण (आदि० ६३ । ३४) । इनकी राजधानीके समीप प्रसिद्ध नदी 'शुक्तिमती' बहती थी (आदि० ६३ । ३५) । इनके द्वारा 'कोलाहल' पर्वतपर पैरसे प्रहार (आदि० ६३ । ३६) । इनके द्वारा शुक्तिमतीकी पुत्री 'गिरिका' का पाणिग्रहण (आदि० ६३ । ३९) । पितरोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हिंसक पशुओंको मारनेके हेतु इनका वनमें जाना (आदि० ६३ । ४१-४२) । श्येनपक्षीके द्वारा अपनी पत्नी गिरिकाके लिये इनके द्वारा अपना वीर्य भेजना (आदि० ६३ । ५४) । बाजोंके पारस्परिक युद्धसे इनके वीर्यका यमुनाजीमें गिर जाना (आदि० ६३ । ५८) । यमुनाजीमें गिरे हुए इनके वीर्यसे मत्स्य-रूपधारिणी 'अद्रिका' नामक अप्सराद्वारा 'सत्यवती' एवं 'मत्स्य' राजाका जन्म (आदि० ६३ । ५८–६१) । मछलीके पेटसे उत्पन्न हुए 'मत्स्य' नामक बालकका इनके द्वारा ग्रहण एवं सत्यवतीको मल्लाहके हाथमें सौंपना (आदि० ६३ । ६३–६७) । यमकी सभामें ये विराजमान होते हैं (सभा० ८ । २०) । ये इन्द्रके सखा, नारायणके भक्त, धर्मात्मा, पितृभक्त तथा आलस्यरहित थे, श्रीनारायणदेवके वरसे इन्हें साम्राज्य प्राप्त हुआ था, वे वैष्णवशास्त्रके अनुसार भगवान्का पूजन करते थे, यज्ञशिष्ट अन्नके भोक्ता, सत्यपरायण और अहिंसक थे, इन्होंने सब कुछ भगवान्को समर्पित कर दिया था । इन्हें इन्द्रदेव अपने साथ एक शय्या और आसनपर बिठाते थे (शान्ति० ३३५ । १७–२६) । इनके यज्ञका आरम्भ (शान्ति० ३३६ । ५) । इनके यज्ञकी समाप्ति (शान्ति० ३३६ । ६१) । अजका अर्थ बकरा बतानेके कारण ऋषियोंके शापसे इनका पातालमें प्रवेश (शान्ति० ३३७ । १३–१६) । देवताओंद्वारा इन्हें वर-प्राप्ति (शान्ति० ३३७ । २४–२७) । भगवत्कृपासे गरुडने इन्हें आकाशचारी बनाया (शान्ति० ३३७ । ३७) । इनका ब्रह्मलोकगमन (शान्ति० ३३७ । ३८) ।

उपवेणा–एक नदी, जो अग्निकी जननी मानी जाती है (किसी-किसीके मतमें यह सम्भवतः दक्षिणभारतकी कृष्णवेणा या कृष्णा नामक नदीकी एक शाखा है ।) (वन० २२२ । २४) ।

उपश्रुति–उत्तरायणकी अधिष्ठात्री देवी । इन्होंने ही कमल-नालकी ग्रन्थिमें इन्द्राणीको इन्द्रका दर्शन कराया था (आदि० १६६ । ५६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ४८३) । इनकी सहायतासे शचीकी इन्द्रसे भेंट (उद्योग० १४ । १२-१३) ।

उपसुन्द–निकुम्भ दैत्यका पुत्र । सुन्दका भाई । ये दोनों भयंकर और क्रूर हृदयके थे (आदि० २०८ । २-३) । इन दोनों भाइयोंके पारस्परिक प्रेमका वर्णन (आदि० २०८ । ४–६) । त्रिभुवनपर विजय पानेके लिये विन्ध्य-पर्वतपर इन दोनोंकी उग्र तपस्या (आदि० २०८ । ७) । इनकी तपस्यामें देवताओंका विघ्न डालना (आदि० २०८ । ११) । इन दोनोंको अपने भाईके अतिरिक्त किसी दूसरेसे न मरनेका ब्रह्माजीद्वारा वरदान (आदि० २०८ । २४-२५) । त्रिभुवनमें इन दोनोंके अत्याचार (आदि० २०९ अध्याय) । तिलोत्तमाके कारण इन दोनों भाइयोंकी एक-दूसरेके हाथसे गदायुद्धमें मृत्यु (आदि० २११ । १९) ।

उपावृत्त–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४८) ।

उपेन्द्र–भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ३०) ।

उपेन्द्रा–एक नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २७) ।

उमा–पार्वती देवी (वन० ३७ । ३३) । (विशेष 'पार्वती' शब्द देखिये ।)

उम्लोचा–एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवपर अन्य अप्सराओंके साथ नाचने-गाने आयी थी (आदि० १२२ । ६५) ।

उरग–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९।५४**)।

उरगा–उत्तर भारतकी एक पर्वतीय राजधानी, जहाँके राजा रोचमानको अर्जुनने परास्त किया था (**सभा० २७।१९**)।

उर्वरा–कुबेरभवनकी एक अप्सरा, जिसने अन्य नर्तकियोंके साथ अष्टावक्रके स्वागतमें नृत्य किया था (**अनु० १९। ४४**)।

उर्वशी–(१) एक प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ अप्सरा (**आदि० ७४।६८; वन० ४३।२९**)। उर्वशीके गर्भसे राजा पुरूरवाद्वारा छः पुत्र उत्पन्न हुए–आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु और शतायु (**आदि० ७५। २४-२५**)। यह स्वर्गकी विख्यात ग्यारह अप्सराओंमें ग्यारहवीं है, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवपर गीत गाया था (**आदि० १२२।६६**)। कुबेरकी सभामें नृत्य-गान करनेवाली अप्सराओंमें यह भी है (**सभा० १०।११**) इसकी अर्जुनके पास जानेके लिये चित्रसेनसे बात (**वन० ४५।१४-१६**)। इसका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास पहुँचना (**वन० ४६।१६**)। उर्वशीका अर्जुनके निकट अपने आनेका कारण बताना और अपनी कामविवशता प्रकट करना (**वन० ४६। २२-३५**)। स्वर्गकी अप्सराओंका किसीके साथ पर्दा नहीं है, उनके साथ सम्पर्कसे दोष नहीं होता, ऐसा कहकर उर्वशीका अर्जुनसे समागमके लिये प्रार्थना करना (**वन० ४६। ४२-४४**)। कामनापूर्ति न होनेपर इसके द्वारा अर्जुनको शाप (**वन० ४६।४९-५०**)। शुकदेवजीकी परमपद-प्राप्तिके समय आश्चर्यचकित होना (**शान्ति० ३३२। २१-२४**)। (२) भगीरथके ऊरुपर बैठनेके कारण गङ्गाजीका एक नाम (**द्रोण०६०।६**)।

उर्वशीतीर्थ–एक तीर्थ, जिसकी यात्रा करके मनुष्य इस भूतलपर पूजित होता है (**वन० ८४।१५७**)। यहाँ स्नानका फल (**अनु० २५।४६**)।

उर्वी–पृथ्वीका नाम, यह नाम पड़नेका कारण (**शान्ति० २०८।२८**)।

उलूक–(१) शकुनिका पुत्र (**उद्योग० ५७।२३**)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८२। २२**)। दुर्योधनके कहनेसे पाण्डवोंके शिविरमें जाकर भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना (**उद्योग० १६१ अ० में**)। दुर्योधनको पाण्डवोंके संदेश सुनाना (**उद्योग० १६३।५१-५३**)। प्रथम दिनके युद्धमें चेदिराजके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५। ७८-८०**)। सहदेवका इसपर आक्रमण (**भीष्म० ७२। ५**)। अर्जुनद्वारा इसकी पराजय (**द्रोण० १७१। ४०**)। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (**द्रोण० १९३। १४**)। इसके द्वारा युयुत्सुकी पराजय (**कर्ण० २५।९-११**)। सहदेवद्वारा इसकी पराजय (**कर्ण० ६१।४३-४४**)। नकुलके साथ इसका युद्ध (**शल्य० २२। २८-२९**)। सहदेवके द्वारा इसका वध (**शल्य० २८।३२-३३**)। **महाभारतमें आये हुए इसके नामान्तर**—शाकुनि, कैतव, सौबलसुत और कैतव्य। (२) एक यक्ष (या नाग), जिसके साथ गरुडने युद्ध किया था (**आदि० ३२। १८-१९**)। (३) उत्तरभारतका एक जनपद, जिसके राजा बृहन्तको अर्जुनने परास्त किया था (**सभा०२७। ५**)। (४) एक प्राचीन ऋषि, जो विश्वामित्रके पुत्र हैं (**अनु० ४।५१**)। ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास आये थे (**शान्ति० ४७।११**)।

उलूकदूतागमनपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तरपर्व(**अध्याय १६० से १६४ तक**)।

उलूकाश्रम–एक तीर्थ (**उद्योग० १८६।२६**)।

उलूत–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९।५४**)।

उलूपी–ऐरावत-कुलोत्पन्न कौरव्य नागकी पुत्री (**आदि० २१३।१२**)। इसके द्वारा अर्जुनका हरिद्वारसे नागलोकमें आकर्षण (**आदि० २१३।१३**)। अर्जुनद्वारा इसके गर्भसे इरावान्का जन्म(**आदि० २१३। ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**)। इसका बभ्रुवाहनको अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उत्साहित एवं उत्तेजित करना (**आश्व० ७९।११-१२**)। संजीवन मणिके द्वारा अर्जुनको जिलाना (**आश्व० ८०।५०-५२**)। अर्जुनके पूछनेपर युद्धमें अपने आनेका कारण बताकर उनको मिले हुए शाप और उससे छूटनेका वृत्तान्त बताना तथा उससे विदा लेकर अर्जुनका अश्वके पीछे जाना (**आश्व० ८१ अ० में**)। बभ्रुवाहन और चित्राङ्गदाके साथ इसका हस्तिनापुर आगमन (**आश्व० ८७।२६-२७**)। इसके द्वारा कुन्ती और द्रौपदीके चरण छूना, सुभद्रासे मिलना तथा नाना प्रकारके उपहार पाना (**आश्व० ८८। १-५**)। इसके द्वारा गान्धारीकी सेवा (**आश्रम० १। २३**)। यह प्रजाके साथ प्रतिकूल बर्ताव नहीं करेगी–ऐसा प्रजाजनोंका विश्वास (**आश्रम० १०।४६**)। संजयका ऋषियोंसे इसका परिचय देना (**आश्रम०२५। ११**)। पाण्डवोंके महाप्रस्थानके पश्चात् उलूपीका गङ्गाजीमें प्रवेश (**महाप्र० १।२७**)। **महाभारतमें आये हुए उलूपीके नाम**–भुजगात्मजा, भुजगेन्द्रकन्या, भुजगोत्तमा, कौरवी, कौरव्यदुहिता, कौरव्यकुलनन्दिनी, पन्नगनन्दिनी, पन्नगसुता, पन्नगात्मजा, पन्नगेश्वरकन्या, पन्नगी, उरगात्मजा।

उल्मुक–एक वृष्णिवंशी महारथी राजकुमार, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आया था (सभा० ३४ । १६) । प्रभास-क्षेत्रमें पाण्डवोंसे मिलनेके लिये आये हुए वृष्णिवंशियोंमें उल्मुक भी थे (वन० १२० । १९) । धृतराष्ट्रको युद्धमें उल्मुक आदि वृष्णिवंशी वीरोंके आनेकी सम्भावना-से भय (द्रोण० ११ । २८) ।

उशङ्गव–यमराजकी सभामें बैठनेवाले एक राजा (सभा० ८ । २६) ।

उशना–महर्षि (भृगु) के पुत्र शुक्राचार्य, ये असुरोंके उपाध्याय थे । इनका एक नाम उशना भी है (आदि० ६५ । ३६) । (विशेष देखिये शुक्र ।)

उशीनर–(१) एक वृष्णिवंशी एवं पराक्रमी राजकुमार, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २०) । (२) शिबिदेशके राजा, ये यम-सभाके सदस्य हैं (सभा० ८ । १४) । इनका बाजरूपी इन्द्रको अग्निरूपी कबूतर-की रक्षाके लिये अपना मांस काटकर देना (वन० १३० । २१ से १३१ । २८ तक) । इन्द्र और अग्निद्वारा राजाका अभिनन्दन (वन० १३१ । ३०-३१) । इनका स्वर्गगमन (वन० १३१ । ३२-३३) । इनका गालवको शुल्करूपमें दो सौ घोड़े देकर ययातिकन्या माधवीको स्वीकार करना (उद्योग० ११८ । १५) । इनको महाराज शुनकसे खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७९) । ये शरणागतवत्सल शिबिके पिता थे । माधवीके गर्भसे शिबि नामक पुत्रकी प्राप्ति (उद्योग० ११८ । २०) । इन्हें गोदानसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई (अनु० ७६ । २५) । (३) काशिराज वृषादर्भि, इनकी शरणागतरक्षाके प्रसङ्गमें कबूतर और बाजकी कथा (अनु० ३२ अ०में) । ये उशीनर और वृषादर्भि दोनों नामोंसे विख्यात थे और काशी जनपदके राजा थे (अनु० ३२ । २२-३७) । (४) एक देश, जहाँके निवासी सैनिक अर्जुनके द्वारा मारे गये थे (कर्ण० ५ । ४७) । इस देशके वीर सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें कुशल और बलशाली होते हैं (शान्ति० १०१ । ४) । उशीनर देशके क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे वञ्चित होनेके कारण शूद्र हो गये (अनु० ३३ । २२-२३) ।

उशीरबीज–(१) उत्तराखण्डका एक पर्वत (वन० १३९ । १) । (२) हिमालयके पास उत्तर दिशाका स्थानविशेष, जहाँ महाराज मरुत्तका यज्ञ हुआ था (उद्योग० १११ । २३) ।

उषा–बाणासुरकी पुत्री, इसके साथ गुप्तरूपसे अनिरुद्धका विहार, बाणासुरद्वारा अनिरुद्धका निग्रह तथा श्रीकृष्ण-द्वारा बाणासुरको जीतकर अनिरुद्ध एवं उषाका द्वारका आनयन (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२१ से ८२४ तक) ।

उषङ्गु–(१) पश्चिम दिशामें निवास करनेवाले एक ऋषि (शान्ति० २०८ । ३०) । (२) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । १०५) । (३) यदुवंशी वृजिनीवान्के पुत्र । चित्ररथके पिता (अनु० १४७ । २९) ।

उष्ट्रकर्णिक–दक्षिण भारतका एक जनपद, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया था (सभा० ३१ । ७१) ।

उष्णदेश–क्रौञ्चद्वीपके अन्तर्गत क्रौञ्चपर्वतके निकट मनोनुग देशके बाद स्थित एक देश (भीष्म० १२ । २१) ।

उष्णीगङ्ग–एक प्राचीन तीर्थ (वन० १३५ । ७) ।

उष्णीनाभ–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

ऊ

ऊर्जयोनि–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९) ।

ऊर्णनाभ (सुदर्शन)–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६७) ।

ऊर्णायु–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आया था (आदि० १२२ । ५५) । इसका मेनकाके प्रति अनुराग (उद्योग० ११७ । १६) ।

ऊर्ध्वबाहु–दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले एक ऋषि, जो धर्मराजके ऋत्विज हैं (अनु० १५० । ३४-३५; अनु० १६५ । ४०) ।

ऊर्ध्वभाक्–एक अग्नि, जो बृहस्पतिके पञ्चम पुत्र हैं (वन० २१९ । २०) ।

ऊर्ध्वरेता–एक महर्षि, जो युधिष्ठिरका बड़ा सम्मान करते थे (वन० २६ । २४) ।

ऊर्ध्ववेणीधरा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १८) ।

ऊर्व (और्व)–एक तेजस्वी भृगुवंशी ऋषि, जिन्होंने त्रिलोकीके नाशके लिये एक भयंकर अग्निकी सृष्टि की और उसे समुद्रमें डालकर बुझा दिया । ये च्यवनके पुत्र और ऋचीकके पिता थे (अनु० ५६ । १–७) ।

ऊष्मप–पितरोंका एक गण, जो यमसभामें यमराजकी उपासना करता है (सभा० ८ । ३०) ।

ऊष्मा–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र (वन० २२१ । ४) ।

ऋ

ऋक्ष (१)–महाराज अजमीढके द्वारा धूमिनीके गर्भसे उत्पन्न । इनके पुत्रका नाम संवरण था, जो कुरुवंशमें

प्रसिद्ध राजा हुए हैं (आदि० ९४ । ३१-३४) । (२) पूरुवंशीय राजा अरिहके द्वारा सुदेवाके गर्भसे उत्पन्न । इनकी पत्नीका नाम 'ज्वाला' एवं पुत्रका नाम 'मतिनार' था (आदि० ९५ । २४-२५) ।

ऋक्षदेव-शिखण्डीका पुत्र, इसके घोड़े सफेद और लाल रंगके सम्मिश्रणसे पद्मके समान वर्णवाले थे (द्रोण० २३ । २४-२५) ।

ऋक्षवान्-भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमेंसे एक (भीष्म० ९ । ११; वन० ६१ । २१) ।

ऋक्षा-सोमवंशीय महाराज अजमीढकी पत्नी (आदि० ९५ । ३७) ।

ऋक्षाम्बिका-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।१२)।

ऋचीक-(१)-एक महर्षि, जो भृगुकुमार च्यवनके पुत्र थे (वन० ९९ । ४२) । ये ही कल्पान्तरमें ही और्वके पुत्र हुए, ये जमदग्निके पिता थे (आदि० ६६ । ४५-४७) । इन्होंने शुल्करूपमें महाराज गाधिको देनेके लिये वरुणसे एक हजार अश्वोंकी याचना की थी (वन० ११५ । २६-२७) । इनका सत्यवतीके साथ विवाह (वन० ११५ । २९) । इनका परशुरामको क्षत्रियोंके वधसे रोकना (वन० ११७ । १०; आश्व० २९ । २०) । इनका वरुणसे माँगकर सत्यवतीके शुल्करूपमें गाधिको एक हजार श्यामकर्ण घोड़े देना (उद्योग० ११९ । ५-६) । गाधिपुत्री सत्यवतीके साथ इनका विवाह (शान्ति० ४९ । ७) । इनका पुत्रोत्पत्तिके लिये चरु देना (शान्ति० ४९ । ९) । माताके साथ चरुके उलट-फेर हो जानेपर अपनी पत्नी सत्यवतीके साथ संवाद (शान्ति० ४९ । १८-२८) । विश्वामित्रके जन्मप्रसंगमें पुनः इस कथाका वर्णन (अनु० ४ अ०में) । ऋचीकको शाल्वराज द्युतिमान्से राज्यका दान प्राप्त हुआ था (अनु० १३७ । २३) । (२) विवस्वान्के स्वरूपभूत बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १ । ४२) । (३) सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र (आदि० ९४ । २४) ।

ऋचेयु-पूरुके तीसरे पुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । १०) । अन्वग्भानु तथा अनाधृष्टि भी इन्हींके नाम थे, ये महान् विद्वान् तथा चक्रवर्ती सम्राट् थे, इनके पुत्रका नाम 'मतिनार' था (आदि० ९४ । ११-१३) ।

ऋण-चार प्रकारके ऋण (आदि० ११९ । १७) । इन ऋणोंके निराकरणकी आवश्यकता (आदि० ११९ । १८-२०) ।

ऋत-ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (अनु० १५० । १२) ।

ऋतधामा-भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (शान्ति० ३४२ । ६९) ।

ऋतुपर्ण-अयोध्याके एक राजा, जो इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न तथा द्यूतविद्याके मर्मज्ञ थे और जिनके यहाँ नलका सारथि वार्ष्णेय उनके जूएमें पराजित हो जानेपर जाकर रहने लगा (वन० ६६ । २१-२२; ६० । २५) । इनके द्वारा बाहुक बने हुए राजा नलकी अपने यहाँ अश्वाध्यक्षके पदपर नियुक्ति (वन० ६७ । ५-७) । इनका दमयन्तीके द्वितीय स्वयंवरके लिये विदर्भदेशको प्रस्थान (वन० ७१ । २०) । इनका बाहुककी अश्वसंचालन-कलासे प्रभावित होना (वन० ७१ । २४) । इनकी गणित-विद्याकी अद्भुत शक्ति (वन० ७२ । ७-११) । इनके द्वारा नलको द्यूतहृदयका दान (वन० ७२ । २९) । विदर्भनरेश भीमद्वारा इनका आतिथ्य-सत्कार (वन० ७३ । २०) । इन्हें नलसे अश्वविद्याकी प्राप्ति तथा इनका अयोध्याको लौटना (वन० ७७ । १७-१९) ।

ऋतुस्थला-स्वर्गकी प्रधान ग्यारह अप्सराओंमेंसे एक, जिसने अन्य अप्सराओंके साथ अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें आकर नृत्य और गान किया था (आदि० १२२ । ६५-६६) ।

ऋतेयु पश्चिम दिशानिवासी एक ऋषि, जो वरुणके सात ऋत्विजोंमेंसे एक हैं (अनु० १५० । ३६) ।

ऋत्वा-एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२ । ५७) ।

ऋद्धि-कुबेरकी पत्नी (उद्योग० ११७ । ९) ।

ऋद्धिमान्-एक महानाग, जो गरुड़द्वारा मारा गया था (वन० १६० । १५) ।

ऋभु-ऋभुनामक देवताओंका गण, जो देवताओंद्वारा भी आराधित होता है (वन० २६१ । १९; शान्ति० २०८ । २२; अनु० १३७ । २५) ।

ऋषभ-(१) धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १७) । (२) एक वृषभरूपधारी राक्षस, जो मगधनरेश बृहद्रथद्वारा मारा गया और जिसकी खालसे तीन नगाड़े बनाये गये (सभा० २१ । १६) । (३) एक प्राचीन तपस्वी ऋषि, जो पहले कभी ऋषभकूटपर रहते थे (वन० ११० । ८) । ये ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । २४) । ऋषभमुनिका सुमित्रको आशाके त्यागका उपदेश (शान्ति० १२५ अध्यायसे १२८ तक) । (४) दक्षिण-समुद्रतटवर्ती एक पर्वत, जहाँ गालव और गरुड़को शाण्डिलीका दर्शन हुआ था (उद्योग० ११२ । २२; ११३ । १) । पाण्ड्यदेशवर्ती यह पर्वत एक

पवित्र तीर्थ है, जहाँकी यात्रासे वाजपेय यज्ञके फल और स्वर्गलोक सुलभ होते हैं (वन० ८५ । २१)। (५) एक राजा, जिन्हें भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है (भीष्म० ९ । ७)। (६) एक राजा या राजकुमार, जो द्रोणनिर्मित गरुड-व्यूहके हृदयस्थानमें खड़ा किया गया था (द्रोण० २० । १२)। (७) एक दैत्य या दानव (शान्ति० २२७ । ५१)।

ऋषभकूट-एक पर्वत, जहाँ पहले कभी ऋषभ मुनिने तपस्या की थी (वन० ११० । ८)।

ऋषभतीर्थ-कोसला या अयोध्यामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ उपवास करनेसे सहस्र गोदान और वाजपेय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । १०-११)।

ऋषभद्वीप-सरस्वतीतटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे देवविमान सुलभ होता है (वन० ८४ । १६०)।

ऋषिक-(१) एक राजर्षि, जो दानवोंके सरदार 'अर्क' के अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ३२-३३)। (२) एक उत्तरीय जनपद, जहाँ ऋषिकराजके साथ अर्जुनका भयानक युद्ध हुआ था (सभा० २७ । २५; भीष्म० ९ । ६४)।

ऋषिकुल्या-एक नदी एवं प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान करके पापरहित मानव देवताओं और पितरोंकी पूजा करनेसे ऋषिलोकमें जाता है (वन० ८४ । ४८-४९; भीष्म० ९ । ४७)।

ऋषिगिरि-मगधकी राजधानी गिरिव्रजके समीपवर्ती एक पर्वत, जिसका दूसरा नाम 'मातङ्ग' है (सभा० २१ । २-३)।

ऋष्यमूक-एक पर्वत, जिसके शिखरपर मार्कण्डेयजीने धनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन किया था (वन० २५ । ९)। यहीं हनुमान्‌जी सुग्रीवके साथ रहे (वन० १४७ । ३०)। इसी ऋष्यमूकसे सटा हुआ पम्पासरोवर है (वन० २७९ । ४४)। श्रीराम और लक्ष्मणका ऋष्यमूकपर जाना तथा सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मैत्री (वन० २८० । ९-११)।

ऋष्यशृङ्ग-(१) महर्षि विभाण्डकके पुत्र। मृगीके पेटसे इनकी उत्पत्ति तथा ऋष्यशृङ्ग नाम पड़नेका कारण (वन० ११० । ३७-३९)। ये कश्यपगोत्री थे और तपस्या तथा इन्द्रियसंयमसे ही प्रतिष्ठित हुए थे (शान्ति० २९६ । १४-१६)। महर्षि ऋष्यशृङ्ग ब्रह्मसभामें बैठकर ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ११)। अपने आश्रमपर आयी हुई एक वेश्याको ब्रह्मचारी मुनि समझकर इनके द्वारा उसका आतिथ्य-सत्कार (वन० १११ । १२)। वेश्याको ब्रह्मचारी समझकर इनके द्वारा अपने पितासे उसके स्वरूप और आचरणका वर्णन (वन० ११२ अ०में)। इनका राजा लोमपादके यहाँ जाना (वन० ११३ । ८)। लोमपादपुत्री शान्ताके साथ इनका विवाह (वन० ११३ । ११; शान्ति० २३४ । ३४)। **महाभारतमें आये हुए ऋष्यशृङ्गके नाम**—काश्यप, कश्यपपुत्र और कश्यपात्मज। (२) एक राक्षस, जिसके पुत्रका नाम अलम्बुष था (द्रोण० १०६ । १६)।

ए

एकचक्र-कश्यप और दनुका पुत्र एक विख्यात दानव (आदि० ६५ । २५)।

एकचक्रा-एक प्राचीन नगरी, जहाँ कुन्तीदेवी अपने पाँचों पुत्रोंके साथ कुछ कालतक एक ब्राह्मणके यहाँ ठहरी थीं। पाण्डव यहाँ वेदाभ्यासपरायण ब्रह्मचारी बनकर माताके साथ रहते थे (आदि० ६१ । २६-२७)। भीमने यहीं रहकर बकासुरको मारा था (आदि० ६१ । २९)। एकचक्रा नगरीमें पाण्डवोंके जाने, एक मासतक रहने और भीमद्वारा बकासुरके मारे जानेका विस्तृत वृत्तान्त (आदि० १५५ अध्यायसे १६३ अध्यायतक)।

एकचन्द्रा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३०)।

एकचूडा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ५)।

एकजट-स्कन्दके एक सैनिकका नाम (शल्य० ४५ । ५८)।

एकत-एक प्राचीन महर्षि, जो गौतमके पुत्र थे, इनके दो भाई और थे—द्वित और त्रित। ये तेजस्वी महात्मा थे तो भी एक बार इन्होंने त्रितसे छल किया। इस कथाका वर्णन (शल्य० ३६ अ० में)। ये पश्चिम दिशाका आश्रय लेनेवाले ऋषि हैं (शान्ति० २०८ । ३१)। इन्होंने उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्यता ग्रहण की (शान्ति० ३३६ । ५-६)। ये तीनों भाई भगवान् नारायणके दर्शनके लिये श्वेतद्वीपमें गये थे। (शान्ति० ३३९ । १२)। इन्होंने अपने भाई त्रितको कुएँमें गिराया था (शान्ति० ३४१ । ४६)। बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास ये भी गये थे (अनु० २६ । ७)। ये तीनों भाई वरुणके सात ऋत्विजोंमें हैं और पश्चिम दिशामें रहते हैं (अनु० १५० । ३६; १६५ । ४२)।

एकत्वचा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २४)।

माद्रीपुत्र नकुल

एकपाद—एक जनपद, जहाँके राजा और निवासी मनुष्य युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे और भीड़के कारण दरवाजेपर रोक दिये गये थे (सभा० ५१ । १७) ।

एकपाद्—भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९५) ।

एकरात्रतीर्थ—एक तीर्थ, जहाँ एक रात नियमपूर्वक सत्यवादी होकर रहनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १८२) ।

एकलव्य—(१)निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र । इसका द्रोणाचार्यके पास धनुर्वेदके अध्ययनके लिये आगमन (आदि० १३१ । ३१) । निषादपुत्र होनेके कारण द्रोणद्वारा इसका प्रत्याख्यान (आदि० १३१ । ३२) । आचार्य द्रोणकी मूर्तिमें गुरुभावना करके इसके द्वारा धनुर्विद्याका अभ्यास (आदि० १३१ । ३४) । गुरुभक्तिके कारण इसकी बाणविद्यामें सफलता (आदि० १३१ । ३५) । पाण्डवोंके कुत्तेके मुँहको बाणोंसे भरकर इसका पाण्डवोंको विस्मयमें डालना (आदि० १३१ । ४१) । पाण्डवों तथा कौरवोंद्वारा इसकी प्रशंसा (आदि० १३१ । ४२) । पाण्डवोंके प्रति इसका अपना परिचय देना (आदि० १३१ । ४५) । इसका द्रोणाचार्यको अपने दाहिने हाथका अँगूठा काटकर गुरुदक्षिणाके रूपमें देना (आदि० १३१ । ५८) । द्रोणाचार्यका अर्जुनके हितके लिये इसका अँगूठा कटवाना (द्रोण० १८१ । १७) । श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति उसके पराक्रमका तथा अपने द्वारा इसके वधके कारणका कथन (द्रोण० १८१ । १८–२१) । निषादराज एकलव्यके श्रीकृष्णद्वारा मारे जानेकी चर्चा (उद्योग० ४८ । ७७; मौसल० ६ । ११) । (२) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६३) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । १७) ।

एकलव्यसुत—एकलव्यका पुत्र, जिसने अश्वमेधके अश्वके पीछे जाते हुए अर्जुनके साथ घोर युद्ध किया था । अर्जुनसे पराजित होकर उसने उनका सत्कार किया (आश्व० ८३ । ८–१०) ।

एकशृङ्ग—सात पितरोंमेंसे एक । ये तीन अमूर्त पितरोंके अन्तर्गत हैं । ये सब-के-सब ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४७-४८) ।

एकहंस तीर्थ—एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । २०) ।

एकाक्ष—(१) कश्यप और दनुका पुत्र एक विख्यात दानव (आदि० ६५ । २९) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

एकानङ्गा—यशोदा मैयाकी पुत्री । भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन । यह वही कन्या है, जिसके निमित्तसे श्रीकृष्णने कंसका वध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२०, कालम २) ।

एडी—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १३) ।

एरक—कौरव्य-कुलोत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें जलकर भस्म हो गया (आदि० ५७ । १३) ।

एलापत्र—एक प्रमुख नाग, इसकी माता कद्रू और पिता कश्यप थे । इसके द्वारा माताके शापसे चिन्तित हुए वासुकिको देवताओंके प्रति ब्रह्माजीके द्वारा कहे हुए शापोद्धारके उपायोंका वर्णन (आदि० ३८ । १—१९) ।

(ऐ)

ऐक्ष्वाकी—सम्राट् भुमन्युकी पुत्रवधू एवं सुहोत्रकी पत्नी । महाराज सुहोत्रद्वारा इनके गर्भसे अजमीढ, सुमीढ तथा पुरुमीढ नामक तीन पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । २४–३०) ।

ऐरावत—(१) समुद्रमन्थनके समय प्रकट हुआ एक हाथी, जो इन्द्रके अधिकारमें है (आदि० १८ । ४०) । यह क्रोधवशाकी पुत्री भद्रमनाका पुत्र है और यही देवताओं-का हाथी है (आदि० ६६ । ६२-६३) । (यही पूर्व दिशाका दिग्गज है ।) ऐरावत आदि चार दिग्गज पुष्कर द्वीपमें भी रहते हैं (भीष्म० १२ । ३३) । (२) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ५) । इसके कुलमें उलूपीके पिता कौरव्यका जन्म हुआ था (आदि० २१३ । १८) । कश्यपवंशी नागोंमें इसकी गणना (उद्योग० १०३ । ११) । (३) एक असुर, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षि० पाठ, पृष्ठ ८२५, कालम १) ।

ऐरावतखण्ड—शृङ्गवान् पर्वतसे उत्तर समुद्रके निकटका एक वर्ष (भीष्म० ६ । ३७) । धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका विशेष वर्णन (भीष्म० ८ । १०–१५) ।

ऐल—इलानन्दन पुरूरवा, जो यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १६) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस-सेवन नहीं किया था (अनु० ११५ । ६५) । ये सबेरे और सायंकाल स्मरण करनेयोग्य पुण्यात्मा नरेशोंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ५२) ।

ऐषीक—सौप्तिकपर्वका एक अवान्तर पर्व, अध्याय १० से अध्याय १८ तक ।

(ओ)

ओघरथ—ओघवान्के पुत्र (अनु० २ । १८) ।

ओघवती–(१) एक नदी (भीष्म० ९ । २२)। कुरुक्षेत्रमें वसिष्ठके आवाहन करनेपर प्रकट हुई सरस्वतीका नाम (शल्य० ३८ । २७)। भीष्मजी ओघवतीके तटपर बाणशय्यापर पड़े थे (शान्ति० ५० । ७)। (२) ओघवान्‌की पुत्री (अनु० २ । ३८)। इसका अग्निपुत्र सुदर्शनके साथ विवाह (अनु० २ । ३९) । अतिथि-सत्कारके लिये ब्राह्मणरूपधारी धर्मको आत्मसमर्पण (अनु० २ । ५७)।

ओघवान्–(१) कौरवपक्षका एक योद्धा (कर्ण० ५ ४२)। (२) नृगके पितामह (अनु० २ । ३८)।

ओड्र–एक प्राचीन देश, जहाँके राजा भेंट देनेके लिये युधिष्ठिरके यज्ञमें पधारे थे (सभा० ५१ । २३)।

(औ)

औकथ्य–एक साम (वन० १३४ । ३६)।

औदका–औदका उस स्थानका नाम है, जहाँ नरकासुरने सोलह हजार कन्याओंको कैद कर रक्खा था। नरकासुरका यह अन्तःपुर मणिपर्वतपर बना था। जलकी सुविधासे सम्पन्न होनेके कारण उस स्थानका नाम 'औदका' रक्खा गया था। यह मुर दानवके संरक्षणमें था (सभा० ३८ में दाक्षि० पाठ, पृष्ठ ८०५, कालम १)।

औदुम्बर–उदुम्बर या औदुम्बर देशके क्षत्रिय राजकुमार, जो युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये ते (सभा० ५२ । १३)।

औद्दालक–एक मुनिसेवित तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्य पापमुक्त हो जाता है (वन० ८४ । १६१)।

औरसिक–एक देश, जहाँके योद्धाओंको भगवान् श्रीकृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १६)।

और्व(ऊर्व)–एक ऋषि, जो च्यवन मुनिके द्वारा मनुपुत्री आरुषीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । ये अपनी माताकी जाँघ फाड़कर प्रकट हुए थे (आदि० ६६ । ४६) । इनके पुत्रका नाम ऋचीक था (आदि० ६६ । ४७)। माताकी जाँघसे इनका प्राकट्य (आदि० १७७ । २४)। इनका और्व नाम होनेका कारण (आदि० १७८ । ८) । इनके द्वारा क्षत्रियोंके नेत्रोंकी दृष्टिशक्तिका अपहरण (आदि० १७७ । २५)। अन्धभावको प्राप्त हुए क्षत्रियोंका इनसे नेत्रोंके लिये प्रार्थना और इनका नेत्रदान (आदि० १७८ । ७) । सम्पूर्ण लोकोंके विनाशके लिये इनका संकल्प और प्रयत्न (आदि० १७८ । ९-१०) । पितरोंद्वारा इनके जगद्विनाशक संकल्पका निवारण (आदि० १७८ । १४—२२) । इनके द्वारा अपनी क्रोधाग्निका बड़वानलरूपसे समुद्रमें त्याग (आदि० १७९ । २१)। इनके द्वारा तालजङ्घ-वंशके विनाशकी चर्चा (अनु० १५३ । ११)।

औशनस–एक सरस्वती-तटवर्ती तीर्थ, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी मुनि रहते हैं (वन० ८३ । १३५)। इसका कपालमोचन नाम पड़नेका कारण और माहात्म्य (शल्य० ३९ । ९—२२)।

औशिज–(१) एक प्राचीन राजा, जो देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी थे (आदि० १ । २२६)। (२) एक प्राचीन धर्मज्ञ मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १७)। ये अङ्गिराके पुत्र हैं (शान्ति० २०८ । २७)।

औशीनरि (औशीनर)–उशीनरकुमार शिबि, जो यम-राजकी सभामें बैठनेवाले नरेश हैं (सभा० ८ । १४)।

औशीनरी–उशीनर देशकी एक शूद्रजातीय कन्या, जिसके गर्भसे गौतमने काक्षीवान् आदि पुत्रोंको उत्पन्न किया (सभा० २१ । ५)।

औष्णीक–एक प्राचीन देश, जहाँके राजा भेंट लेकर युधिष्ठिरके यहाँ आये थे (सभा० ५१ । १७) ।

(क)

कंस–(१) मथुराके महाराज उग्रसेनका पुत्र (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इसके रूपमें कालनेमि दानव ही उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६७)। जरासंधकी पुत्री उसकी पत्नी थी, जो इसे राजा बना देनेकी शर्तके साथ मिली थी। मन्त्रियोंद्वारा इसका राज्याभिषेक और इसका अपने पिताको कैद करके स्वयं राज्य भोगना। इसके द्वारा देवकीजीका वसुदेवजीके साथ विवाह । आकाशमें देवदूतकी वाणी सुनकर इसका देवकीको मार डालनेके लिये उद्यत होना। इसके द्वारा देवकीके छः शिशुओंका वध (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१)। कंसका वसुदेवपर कड़ा पहरा। इसके द्वारा वसुदेवकी लायी हुई गोपकन्याको मारनेका प्रयत्न। इसके द्वारा व्रजके गोपोंका सताया जाना (पृष्ठ ७३२) । श्रीकृष्ण-बलभद्रद्वारा सुनामा और मुष्टिकके मारे जानेपर कंसके मनमें भयका आवेश तथा श्रीकृष्णद्वारा कंसका वध (सभा० ३८, पृष्ठ ८०१, कालम २)। कंस अस्त्रज्ञान और बल-पराक्रममें कार्तवीर्यके समान था। इससे समस्त राजाओंको उद्वेग होता था। उसके पास एक करोड़ पैदल सैनिक थे। आठ लाख रथी और उतने ही हाथीसवार थे। बत्तीस लाख घुड़सवारोंकी सेना थी (सभा० ३८, पृष्ठ ८०३) । सभामें विराजमान कंसका श्रीकृष्णके हाथसे मन्त्रियों और परिवारसहित वध

(सभा० अध्याय ३८, दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०४, कालम १) । (२) एक असुर, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया। यह उग्रसेनके पुत्र कंससे भिन्न था (सभा० ३८,पृष्ठ ८२५)।

क–(१) प्रजापति (आदि० १ । ३२) । (२) दक्ष-प्रजापतिका एक नाम (शान्ति० २०८ । ७) । (३) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९१) ।

ककुत्स्थ–इक्ष्वाकुवंशी महाराज शशादके पुत्र, जो अनेनाके पिता थे (वन० २०२ । १-२) ।

कक्ष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९) ।

कक्षक–वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) ।

कक्षसेन–(१) राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । ५४) । ये यम-सभाके सदस्य और सूर्यपुत्र यमके उपासक बताये गये हैं (सभा० ८ । १८) । इनका वसिष्ठको सर्वस्व समर्पण करके स्वर्गलोकगमन (अनु० १३७ । १५) । सायं-प्रातः स्मरण करनेयोग्य पुण्यात्मा नरेशोंमेंसे एक (अनु० १६५ । ५९)। ये न्यायोपार्जित धनके दान और सत्य-भाषणके द्वारा परम सिद्धिको प्राप्त हुए (आश्व० ९१ । ३५-३६) । (२) राजा युधिष्ठिरकी सभामें बैठकर उनकी उपासना करनेवाले एक नरेश (सभा० ४ । २२)।

कक्षसेन-आश्रम–असित नामक पर्वतपर स्थित एक पुण्यदायक आश्रम (वन० ८९ । १२) ।

कक्षीवान्–(१) एक प्राचीन राजा, जो व्युषिताश्व-पत्नी भद्राके पिता थे (आदि० १२० । १७) । (२) एक ऋषि, जो अङ्गिराके पुत्र हैं और पूर्व दिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । २७-२८; अनु० १६५ । ३७-३८) । इन्होंने एकाग्रचित्त हो वेदकी ऋचाओंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उनकी कृपा एवं तपस्यासे सिद्धि प्राप्त की (शान्ति० २९२ । १५–१७) । ये तपस्यासे अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए (शान्ति० २९६ । १४–१६) । ये महेन्द्रके गुरु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और लोकस्रष्टा बताये गये हैं । इनका तेज रुद्र, अग्नि और वसुओंके समान है । ये पृथ्वीपर शुभ कर्म करके देवताओंके साथ आनन्द भोगते हैं । इनका कीर्तन करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है (अनु० १५० । ३०–३३) ।

कक्षेयु–पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (आदि० ९४ । १०) । ये सायं-प्रातः स्मरणीय राजाओंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ६) ।

कङ्क–(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३३) । (२) एक पक्षी, जो सुरसाकी संतान है (आदि० ६६ । ६९) । (३) वृष्णिकुलके सात महारथी वीरोंमेंसे एक (सभा० १४ । ५९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १९) । युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी इसका आना हुआ था (सभा०३४ । १५) । (४) एक जनपद, जहाँके लोग युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५१ । ३०; शान्ति० ६५ । १३) । (५) छद्मवेषी ब्राह्मण, अज्ञातवासके समय युधिष्ठिरका बदला हुआ नाम (विराट० १ । २४; विराट० १८ । २५; विराट० ३१ । २१; विराट० ७० । ४) ।

कङ्कणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १६) ।

कच–देवगुरु बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र (आदि० ७६ । ११) । देवताओंके आग्रह करनेपर इनका संजीवनीविद्या सीखनेके लिये शुक्राचार्यके समीप जाना (आदि० ७६ । १२–१८) । शुक्राचार्यको अपना परिचय देकर एक सहस्र वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-पालनके लिये इनका उनसे अनुमति माँगना (आदि० ७६ । २०) । शुक्राचार्यके द्वारा इनका स्वागत (आदि० ७६ । २१) । इनके द्वारा गुरुकुलमें शुक्राचार्य एवं आचार्यपुत्री देवयानीकी आराधना (आदि० ७६ । २२–२५) । इनकी देवयानीद्वारा एकान्त-परिचर्या (आदि० ७६ । २६) । इनके द्वारा गुरुकी गौओंकी सेवा (आदि० ७६ । २७) । दानवोंका इन्हें मारकर कुत्तों और सियारोंको खिला देना (आदि० ७६ । २९) । इनके वियोगमें देवयानीकी चिन्ता (आदि० ७६ । ३१-३२) । शुक्राचार्यकी संजीवनीके प्रभावसे इनका कुत्तोंके पेट फाड़कर प्रकट होना (आदि० ७६ । ३४) । दानवोंका इन्हें पीसकर समुद्रके जलमें मिला देना (आदि० ७६ । ४१) । देवयानीके पुनः चिन्तित होनेपर शुक्राचार्यके द्वारा इनका पुनः संजीवन (आदि० ७६ । ४२) । दानवोंका इन्हें जलाकर इनकी राखको मदिरामें मिला शुक्राचार्यको पिला देना (आदि० ७६ । ४३) । गुरुके पेटमें मृतसंजीवनी-विद्या सीखकर इनका शुक्राचार्यको जीवित करना (आदि० ७६ । ५८—६२) । इनके द्वारा गुरुकी महिमा एवं उनके अनादरसे हानिका वर्णन (आदि० ७६ । ६३-६४) । देवयानीके आग्रह करनेपर भी इनका उसके साथ विवाह स्वीकार न करना (आदि० ७७ । ६—१५) । इनको देवयानीके द्वारा संजीवनी विद्या सिद्ध न होनेका शाप (आदि० ७७ । १६) । इनके द्वारा देवयानीको ब्राह्मण-जातीय पति न मिलनेका शाप (आदि० ७७ । १९) । स्वर्ग जानेपर इनको देवताओंद्वारा वरदान (आदि० ७७ । २३) । इनसे संजीवनीविद्या पढ़कर देवताओंका कृतार्थ होना (आदि० ७८ । १) । बाण-शय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ९; अनु० २६ । ८) ।

कच्छ–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५६**) ।

कच्छपी–नारदजीकी वीणा (**शल्य० ५४ । १९**) ।

कठ–एक धर्मज्ञ जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । १८**) । राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरने इनका सत्कार किया था (**सभा० ४५ । ३८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८४३**) । ये सर्पदंशनसे मरी हुई प्रमद्वराको देखने आये थे (**आदि० ८ । २५**) ।

कणिक–(१) धृतराष्ट्रका एक मन्त्री, जो कूट राजनीति और अर्थ-शास्त्रका पण्डित तथा उत्तम मन्त्रका ज्ञाता ब्राह्मण था (**आदि० १३९ । २**) । इसके द्वारा धृतराष्ट्रको कूटनीतिका उपदेश (**आदि० १३९ । ५–९२**) । (२) भरद्वाजकुलमें उत्पन्न एक कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण, जिसने सौवीरनरेश शत्रुंजयको कूटनीतिका उपदेश किया था (**शान्ति० १४० अ०**) ।

कण्टकिनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६।१६**) ।

कण्डरीक–एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि, जिनके कुलमें प्रतापी राजा ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुए थे (**शान्ति० ३४२ । १०५**) ।

कण्डु–एक महर्षि, जिनकी पुत्री 'वार्क्षी' ने दस प्रचेताओंके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया था (**आदि० १९५ । १५**) ।

कण्डूति–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १४**) ।

कण्व–(१) कश्यपगोत्रीय प्राचीन महर्षि, जिनका आश्रम मालिनी नदीके तटपर था (**आदि० ७० । २१–२८**) । इनके आश्रमका वर्णन (**आदि० ७० । २४–२९**) । इन्हें मेधातिथिका पुत्र और पूर्व दिशामें रहनेवाला ऋषि बताया गया है (**शान्ति० २०८ । २७; अनु० १५१ । ३१; अनु० १६५ । ३८**) । इनके द्वारा शकुन्तलाका पालन-पोषण एवं नामकरण (**आदि० ७२ । १३–१६**) । शकुन्तलाके गान्धर्व विवाहका समर्थन (**आदि० ७३ । २६-२७**) । इनका शकुन्तलाके प्रति पातिव्रत्य धर्मका उपदेश एवं इसकी महिमाका वर्णन (**आदि० ७४ । ९-१०**) । शकुन्तलाको पतिगृह पहुँचानेके लिये शिष्योंको इनका आदेश (**आदि० ७४ । १०-११**) । इनके द्वारा स्त्रियोंको पिताके घरमें अधिक दिनोंतक रहनेका निषेध (**आदि० ७४ । १२**) । आचार्य बनकर इनके द्वारा राजा भरतके 'गोवितत' नामक अश्वमेध यज्ञका सम्पादन (**आदि० ७४ । १३०**) । इनका दुर्योधनको समझाते हुए मातलिका उपाख्यान सुनाना (**उद्योग० ९७ । १२ से १०५ । ३७ तक**) । इन्हें भरतसे दक्षिणारूपमें जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल प्राप्त हुए थे (**द्रोण० ६८ । ११-१२**) । (२) प्राचीन युगान्तरके एक प्रसिद्ध तपस्वी महामुनि, जिन्हें ब्रह्माजीने वर दिया था (**अनु० १४१ में दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५९१५**) ।

कण्वाश्रम–कण्व मुनिका आश्रम । यह लक्ष्मीद्वारा सेवित तथा लोकपूजित है । यह स्थान धर्मारण्यके अन्तर्गत है । यहाँ प्रवेश करनेमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है (**वन० ८२ । ४५-४६**) । प्रवेणी नदीके उत्तरमार्गमें कण्वका पुण्यमय आश्रम है, जहाँ वरुणस्रोतस् नामक पर्वतपर सूर्यके पार्श्ववर्ती माठर देवताका विजयस्तम्भ सुशोभित है (**वन० ८८ । १०-११**) । (किसी-किसीके मतमें यह स्थान राजपूतानेमें कोटासे चार मील दक्षिण-पूर्व चम्बल नदीके तटपर स्थित है ।)

कथक–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६७**) ।

कदलीवन–सौगन्धिक कमलोंसे भरी हुई कुबेर-पुष्करिणीके तटपर स्थित सुवर्णमय केलोंसे भरा हुआ एक उपवन, जो हनुमान्‌जीका निवासस्थान था (**वन० १४६ । ५८**) ।

कद्रू–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री (**आदि० ६५ । १३**) । यह नागोंकी माता और कश्यपकी पत्नी हैं । कश्यपके वर देनेको उद्यत होनेपर इनके द्वारा उनसे एक हजार नागोंके पुत्ररूपमें पानेकी प्रार्थना (**आदि० १६ । ५–८**) । पाँच सौ वर्षोंके बाद इनको एक हजार पुत्रोंकी प्राप्ति (**आदि० १६ । १५**) । इनके द्वारा अपने पुत्रोंको आज्ञापालन न करनेके कारण शाप (**आदि० २० । ८**) । 'उच्चैःश्रवा घोड़ेका रंग क्या है ?' इस प्रश्नपर कद्रू और विनताका परस्पर विवाद करना । पराजित होनेपर दासी बननेकी शर्त रखना और कद्रूका छलपूर्वक विनताको अपनी दासी बनाना (**आदि० २० । २ से २३ । ४ तक**) । इनके द्वारा अपने पुत्रोंकी सूर्यके तापसे रक्षाके लिये इन्द्रकी स्तुति (**आदि० २५ । ७–१७**) । कद्रूकी प्रमुख संतानोंकी नामावली (**आदि० ३५ अध्याय**) । ये ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी उपासना करती हैं (**सभा० ११ । ४१–४३**) । यह स्कन्दग्रहके रूपमें सूक्ष्म शरीर धारण करके गर्भवती स्त्रियोंके गर्भमें प्रवेश कर जाती और वहाँ उस गर्भको खा जाती हैं । इससे वह गर्भिणी सर्प पैदा करती है (**वन० २३० । ३७-३८**) । इसकी शान्तिका उपाय (**वन० २३० । ४३–४५**) ।

कध्मोर–प्रातः और सायं स्मरण करनेयोग्य एक राजर्षि (**अनु० १६५ । ५३**) ।

कनकध्वज–धृतराष्ट्रका पुत्र (कनकाङ्गद) (**आदि० ११६ । १४**) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि०१८५ । ३**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**भीष्म० ९६ । २६-२७**) ।

कनकाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७४**) ।

कनकाङ्गद (कनकध्वज)–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १०५**) । (देखिये कनकध्वज)

कनकापीड–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६६) ।

कनकायु–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । ९९) । इसका एक नाम करकायु भी था । द्रौपदी-स्वयंवरके अवसरपर इसके इसी नामका उल्लेख है (आदि० १८५ । २) । (इन दोनों नामोंसे भी इसकी मृत्युका उल्लेख नहीं है । सम्भव है, इसका कोई तीसरा नाम भी हो ।)

कनकावती–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ८) ।

कनखल–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । ३०; वन० ९० । २२) । यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । १३) ।

कन्दरा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ९) ।

कन्दर्प–कामदेवका एक नाम (वन० ५३ । २८) ।

कन्यकागुण–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२) ।

कन्याकूप–एक प्राचीन तीर्थ । यहाँ स्नानका फल कीर्तिकी प्राप्ति (अनु० २५ । १९-२०) ।

कन्यातीर्थ–(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ (वन० ८३ । ११२) । (२) पाण्ड्य देशमें दक्षिण समुद्रके तटपर स्थित कन्या या कुमारी नामक तीर्थ; जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल और पापसे छुटकारा मिलता है (वन० ८५ । २३; वन० ८८ । १४; वन० ९५ । ३) ।

कन्याश्रम–एक तीर्थ, जिसमें तीन राततक उपवास करके नियमित भोजन करनेसे स्वर्गीय सुख सुलभ होता है (वन० ८३ । १८९) ।

कन्यासंवेद्यतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसके सेवनसे मनुष्यको प्रजापति मनुका लोक प्राप्त होता है (वन० ८४ । १३६) ।

कन्याह्रद–एक तीर्थ, जिसमें निवास करनेसे देवलोककी प्राप्ति होती है (अनु० २५ । ५३) ।

कप–दानवोंका एक दल । इसका स्वर्गपर अधिकार करना (अनु० १५७ । ४) । ब्राह्मणोंद्वारा इसका संहार (अनु० १५७ । १७-१८) ।

कपट–एक दानव । कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (भीष्म० ६५ । २६) ।

कपालमोचन–कुरुक्षेत्रमें सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जो सब पापोंसे छुड़ानेवाला है (वन० ८३ । १३७; शल्य० ३९ वाँ अध्याय) ।

कपाली–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ये ब्रह्माजीके पौत्र तथा स्थाणुके पुत्र थे (आदि० ६६ । १–३) ।

कपिञ्जल–एक प्रकारके पक्षी, जो मरे हुए त्रिशिराके वेद-पाठी मुखसे उत्पन्न हुए थे (उद्योग० ९ । ४०) ।

कपिञ्जला–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २६) ।

कपिध्वज–अर्जुनका एक नाम (भीष्म० २५ । २०) ।

कपिल–(१) भगवान् श्रीकृष्ण या विष्णुके पुरातन अवतार महर्षि कपिल, जिन्होंने दृष्टिपातमात्रसे सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया था (वन० ४७ । १८-१९; वन० १०७ । ३२-३३) । ये प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं । इनकी माताका नाम देवहूति है । इनका दूसरा नाम 'चक्रधनु' है (उद्योग० १०९ । १७-१८) । शान्ति० ४३ अध्यायमें भी इनकी महिमाका उल्लेख हुआ है । बाणशय्यापर गिरनेके समय भीष्मजीके पास आनेवाले महर्षियोंमें इनका भी नाम आया है (शान्ति० ४७ । ८) । इनका स्यूमरश्मि ऋषिके साथ यज्ञ-विषयक संवाद (शान्ति० २६८ अध्याय) । प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्गके विषयमें उन्हीं ऋषिसे संवाद (शान्ति० २६९ अध्याय) । स्यूमरश्मिसे ब्रह्म-प्राप्तिके सम्बन्धमें बातचीत (शान्ति० २७० अध्याय) । इनका शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरको अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ४-५) । सात धरणीधर ऋषियोंमेंसे एक ये भी हैं (अनु० १५० । ४१) । इनके शापसे सगर-पुत्रोंके दग्ध होनेकी चर्चा (अनु० १५३ । ९) । (२) भगवान् सूर्यका एक नाम (वन० ३ । २४) । (३) एक नागराज, जिनका कपिलतीर्थ प्रसिद्ध है । कपिलके उस तीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र कपिला-दानका फल होता है (वन० ८४ । ३२) । (४) भानु (मनु) नामक अग्निके चतुर्थ पुत्र पूर्वोक्त महर्षि कपिलके ही अवतार या स्वरूप हैं (वन० २२१ । २१) । (५) एक श्रेष्ठ ऋषि, जो शालिहोत्रके पिता थे । इन्होंने उपरिचरके यज्ञकी सदस्यता ग्रहण की थी (शान्ति० ३३६ । ८) । (६) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४।५६) । (७) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ९८) । (८) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७०; वन० १४९ । १०९) ।

कपिलकेदारतीर्थ–कपिलका केदाररूप तीर्थ । इसमें स्नान करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है । उस दुर्लभतीर्थमें जाकर तपस्याद्वारा पाप नष्ट हो जानेसे मनुष्यको अन्तर्धान-विद्याकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । ७२–७४) ।

कपिलतीर्थ–नागराज कपिलका एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सहस्र कपिला-दानका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३२) ।

कपिला–(१) दक्ष प्रजापतिकी पुत्री । कश्यपपत्नी (आदि० ६५ । १२) । (२) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ । यहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ४७-४८) । (३) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म०

९ । २८) । (४) पञ्चशिखकी माता (शान्ति० २१८ । १५) ।

कपिला गाय—इसकी उत्पत्ति तथा दानका वर्णन (अनु० ७७ अ०; अनु० १३० । १९-२०) ।

कपिलावट—एक तीर्थ, यहाँ उपवाससे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३१) ।

कपिलाश्व—महाराज कुवलाश्वके पुत्र । ये तीन भाई धन्धुकी क्रोधाग्निसे बच गये थे । इन्हींसे इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंकी वंश-परम्परा चालू हुई (वन० २०४ । ४०) । ये पृथ्वीके उन प्राचीन शासकोंमेंसे हैं, जो इसे छोड़कर स्वर्गको चले गये (शान्ति० २२७ । ५१) ।

कपिलाह्रद—वाराणसीके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ७८) । यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । २५) ।

कपिस्कन्ध—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

कपोत—गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) ।

कपोत, कपोती और बहेलियेकी कथा—(शान्ति० १४३ अध्यायसे १४९ तक) । कपोतके द्वारा शरणागत अतिथिका सत्कार (शान्ति० १४३ । ४) । बहेलियेको उसके क्रूर-कर्मके कारण सगे-सम्बन्धियोंने भी त्याग दिया था (शान्ति० १४३ । १०–१४) । पक्षियोंके वधसे पत्नीसहित जीविका चलानेवाले उस बहेलियेको एक दिन आँधी-वर्षाके कारण महान् कष्टकी प्राप्ति (शान्ति० १४३ । १८–२५) । सर्दीसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरी हुई एक कपोतीको उठाकर उसने पींजड़ेमें डाल लिया । स्वयं दुखी होकर भी उस पापीने दूसरोंको सताना न छोड़ा (शान्ति० १४३ । २५–२७) । बहेलियेका एक वृक्षके नीचे विश्राम (शान्ति० १४३ । २८–३३) । उसी वृक्षपर रहनेवाले कबूतरद्वारा अपनी प्यारी भार्या कबूतरीका गुणगान तथा पतिव्रता स्त्रीकी प्रशंसा (शान्ति० १४४ । १–१७) । कबूतरीका कबूतरसे शरणागत व्याधकी सेवाके लिये प्रार्थना (शान्ति० १४५ अध्याय) । कबूतरके द्वारा अतिथिसत्कार और अपने शरीरका बहेलियेके लिये परित्याग (शान्ति० १४६ अध्याय) । बहेलियेका वैराग्य (शान्ति० १४७ अध्याय) । कबूतरीका विलाप, अग्निमें प्रवेश तथा उन दोनों कपोतदम्पतिको स्वर्गलोककी प्राप्ति (शान्ति० १४८ अध्याय) । बहेलियेकी तपस्या तथा दावानलमें दग्ध होकर उसका स्वर्गलोकमें जाना । कपोतकी शरणागत-वत्सलता तथा कपोतीके पातिव्रत्यकी अनुकरणीयता । कपोत-कपोतीके इस प्रसंगको श्रवण करनेका फल (शान्ति० १४९ अध्याय) ।

कपोतरोमा—उशीनरकुमार शिबिके पुत्रका नाम । उसका दूसरा नाम 'औद्भिद' था (वन० १९७ । २७-२८) । यमकी सभामें विराजमान होनेवाले नरेशोंमें इनका भी नाम आया है (सभा० ८ । १७) । ये कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गये थे (शान्ति० ४ । ६) ।

कबन्ध—एक राक्षस । भगवान् श्रीरामद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९४ का दूसरा कालम) । इसका लक्ष्मणको पकड़ना (वन० २७९ । ३०) । लक्ष्मणद्वारा इसका मारा जाना (वन० २७९ । ३८-३९) । शापसे मुक्त होनेपर इसका विश्वावसु गन्धर्वके रूपमें प्रकट हो सीताजीका पता बताना (वन० २७९ । ४२-४३) ।

कमठ—(१) युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान कम्बोजराज (सभा० ४ । २२) । (२) एक ऋषि, जिन्होंने तपस्याद्वारा सिद्धि प्राप्त की थी (शान्ति० २९६ । १४–१६) ।

कमला—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ९) ।

कमलाक्ष—(१) कौरवपक्षका एक महारथी योद्धा, जिसे दुर्योधनने अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये शकुनिके साथ भेजा था (द्रोण० १५६ । १२०–१२३) । (२) तारकासुरका पुत्र । त्रिपुरोंमेंसे रजतमयपुरका अधिपति (कर्ण० ३३ । ५) । शिवजीद्वारा तीनों पुरोंका संहार (कर्ण० ३४ । ११४) । अन्यत्रके वर्णनके अनुसार कमलाक्षके अधिकारमें सुवर्णमय पुर था और शिवजीने तीनों पुरोंको दग्ध किया (द्रोण० २०२ । ६४–८३) ।

कमलाक्षी—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६) ।

कम्प—एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गया (स्वर्गा० ५ । १६) ।

कम्पन—एक महाबली नरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । २२) ।

कम्पना—एक सिद्धसेवित नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २५) । इसमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ११६) ।

कम्बल—(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०) । ये वरुणकी सभामें भी विराजमान होते हैं (सभा० ९ । ९) । मातलिके उपाख्यानमें ये कश्यपके वंशज कहे गये हैं (उद्योग० १०३ । ९) । प्रयागतीर्थमें कम्बल नागका स्थान है, जो ब्रह्माजीकी वेदीके अन्तर्गत है (वन० ८५ । ७६-७७) । (२) कुशद्वीपका चौथा वर्ष (भीष्म० १२ । १३) ।

करंजनिलया—वृक्षोंकी माता अनला या वीरुधा, जो करंज नामक वृक्षपर निवास करती है । यह वरदायिनी तथा

प्राणियोंपर कृपा करनेवाली है; अतः पुत्रार्थी मनुष्य करंज वृक्षपर इसके उद्देश्यसे प्रणाम करते हैं (**वन० २३० । ३५–३६**) ।

करक–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६०**) ।

करकर्ष–चेदिराजका भ्राता । शरभका छोटा भाई । इन दोनोंको साथ लेकर वे (चेदिराज) पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये थे (**उद्योग० ५० । ४७**) । इसने युद्धके मैदानमें आगे बढ़कर चेकितानको अपने रथपर बिठाकर उनकी रक्षा की (**भीष्म० ८४ । ३२–३३**) ।

करकाश–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुड-व्यूहमें उसकी ग्रीवाके स्थानमें खड़ा किया गया था (**द्रोण० २० । ६**) ।

करट–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६३**) ।

करतोया–एक तीर्थभूत पवित्र नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करती है (**सभा० ९ । २२**) । यहाँ तीन रात उपवास करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है (**वन० ८५ । ३**) ।

करन्धम–एक इक्ष्वाकुवंशी नरेश, जो खनीनेत्रके पुत्र और अविक्षित्के पिता थे । इनका प्रथम नाम सुवर्चा था । इन्होंने अपने करका धमन करके (हाथको बजाकर) सेना उत्पन्न किया और शत्रुओंको मार भगाया; इसलिये ये करन्धम कहलाये (**आश्व० ४ । २–१९**) । ये यमराजकी सभामें रहकर भगवान् यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १६**) ।

करभ–एक राजा, जो मगधराज जरासन्धके आगे नतमस्तक रहता था (**सभा० १४ । १३**) ।

करभञ्जक–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६९**) ।

करम्भा–कलिङ्गदेशकी राजकुमारी । पूरुवंशी महाराज अक्रोधनकी पत्नी । देवातिथिकी माता (**आदि० ९५ । २२**) ।

करवीर–(१) एक प्रमुख नाग (**आदि ३५ । १२**) । (२) द्वारकाके समीपवर्ती एक वन (**सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८१३, कालम १**) ।

करवीरपुर–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है (**अनु० २५ । ४४**) ।

करहाटक–दक्षिण भारतका एक देश, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही जीता था (**सभा० ३१ । ७०**) ।

कराल–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवके समय आया था (**आदि० १२२ । ५७**) ।

करालजनक–मिथिलाके एक राजा, जिन्होंने वसिष्ठजीसे विविध ज्ञानविषयक प्रश्न किये और उनके सदुपदेश सुने (**शान्ति० ३०२ अध्यायसे ३०८ अध्याय तक**) ।

करालदन्त–इन्द्रकी सभामें विराजनेवाले एक महर्षि, जो वहाँ रहकर इन्द्रकी उपासना करते हैं (**सभा० ७ । १४**) ।

करालाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६१**) ।

करीति–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४४**) ।

करीषक–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५५**) ।

करीषिणी–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । १७, २३**) ।

करूष–(१) एक भारतीय जनपद (आधुनिक विद्वानोंकी धारणाके अनुसार बघेलखण्ड और बुन्देलखण्डका कुछ भाग (**आदि० १२२ । ४०**) । (२) करूषराज, जिसकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली वैशाली भद्राका शिशुपालने अपहरण किया था (**सभा० ४५ । ११**) । (३) एक नरेश, जिन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया (**अनु० ११५ । ६४**) ।

करेणुमती–चेदिनरेश शिशुपालकी पुत्री, नकुलकी पत्नी एवं निरमित्रकी माता (**आदि० ९५ । ७९**) ।

कर्कखण्ड–पूर्वीय भारतका एक जनपद, जिसे कर्णने दुर्योधनके लिये जीता था (**वन० २५४ । ८**) ।

कर्कर–एक प्रमुख नाग (**आदि० ३५ । १६**) ।

कर्कोटक–(१) कश्यप और कद्रूकी संतानोंमें प्रमुख एक नाग (**आदि० ३५ । ५**) । ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें गये थे (**आदि० १२२ । ७१**) । वरुणकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ९ । ९**) । दावानलसे दग्ध होनेके भयसे इनका राजा नलको पुकारना, नलके आने-पर उनसे नारदजीके शापसे अपने स्थावर-तुल्य होनेका हाल कहना, उनका मित्र होना, राजा नलको डँसकर उनका रूप विकृत करना, उन्हें आश्वासन देना तथा पुनः पूर्वरूपमें परिणत होनेके लिये ओढ़नेके निमित्त दो वस्त्र प्रदान करना (**वन० ६६ । २—२५**) । ये शिवजीके रथके घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाये गये थे (**कर्ण० ४ । २९**) । बलरामजीके स्वधामगमनके समय स्वागतके लिये ये भी गये थे (**मौसल० ४ । १५**) । (२) कर्कोटक देश और वहाँके निवासी (**कर्ण० ४४ । ४३**) ।

कर्ण–(१) कुन्तीके गर्भ और सूर्यके अंशसे कवच-कुण्डल-धारी महाबली कर्णकी उत्पत्ति (**आदि० ६३ । ९८; आदि० ११० । १८**) । पहले इसका 'वसुषेण' नाम था; परंतु जब इसने अपने कवच-कुण्डलोंको शरीरसे उधेड़कर इन्द्रको दे दिया, तबसे उसका नाम

'वैकर्तन' हो गया (आदि० ६७ । १४४—१४७) । कुन्तीके द्वारा इसका जलमें परित्याग (आदि० ६७ । १३९; आदि० ११० । २२) । इसे ब्राह्मणके लिये कुछ भी अदेय नहीं था (आदि० ६७ । १४३) । ब्राह्मण-रूपमें याचक होकर आये हुए इन्द्रको इसके द्वारा कवच-कुण्डलका दान एवं प्रसन्न हुए इन्द्रसे इसको 'शक्ति' नामक अमोघ अस्त्रकी प्राप्ति (आदि०६७।१४४–१४६; आदि० ११० । २८-२९) । यह सूर्यदेवका सर्वोत्तम अंश था (आदि० ६७ । १५०) । गङ्गाके प्रवाहमें बहते हुए इस बालक कर्णका अधिरथके हाथमें पहुँचना (आदि० १०० । २३) । अधिरथ तथा उसकी पत्नी राधाका इसको अपना पुत्र बना लेना (आदि० ११० । २३) । इसका 'वसुषेण' नाम होनेका कारण (आदि० ११० । २४) । इसकी सूर्य-भक्ति (आदि० ११० । २५) । इसकी ब्राह्मण-भक्ति (आदि० ११० । २६) । इसका 'कर्ण' और 'वैकर्तन' नाम होनेका कारण (आदि० ११० । ३१) । द्रोणाचार्यके समीप अध्ययनके लिये इसका आगमन (आदि० १३१ । ११) । अध्ययनावस्थामें अर्जुनसे इसकी स्पर्धा (आदि० १३१ । १२) । रङ्गभूमिमें इसकी अर्जुनसे स्पर्धा तथा अस्त्र-कुशलता (आदि० १३५ । ९—१२) । रङ्गभूमिमें दुर्योधनद्वारा इसका सम्मान (आदि० १३५ । १३-१४) । अर्जुनद्वारा इसे रङ्गभूमिमें फटकार (आदि० १३५ । १८) । अर्जुनसे लड़नेके लिये इसका रङ्गभूमिमें उद्यत होना (आदि० १३५ । २०) । रङ्गभूमिमें कृपाचार्यका इससे परिचय पूछना और इसका लज्जित होना (आदि० १३५ । ३४) । दुर्योधनद्वारा इसका अङ्गदेशके राजपदपर अभिषेक (आदि० १३५ । ३८) । इसके द्वारा दुर्योधनको अटल मित्रताका वरदान (आदि० १३५ । ४१) । इसका रङ्गभूमिमें अपने पिता अधिरथ-का अभिवादन (आदि० १३६ । २) । भीमसेनद्वारा इसका तिरस्कार (आदि० १३६ । ६) । द्रुपदसे पराजित होकर इसका पलायन (आदि० १३७ । २४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका आगमन (आदि० १८५ । ४) । स्वयंवरमें लक्ष्यवेधके लिये उद्यत हुए कर्णको देखकर सूतपुत्र होनेके कारण इसका वरण न करनेके सम्बन्धमें द्रौपदीका वचन (आदि० १८६ । २३) । द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनद्वारा इसकी पराजय (आदि० १८९ । २२) । पराक्रमपूर्वक द्रुपदको पराजित कर पाण्डवोंको कैद करनेके लिये इसका दुर्योधनको परामर्श (आदि० २०१ । १—२१) । इसको द्रोणकी फटकार (आदि० २०३ । २६) । राजसूय-दिग्विजयके समय भीमसेनद्वारा इसकी पराजय (सभा० ३० । २०) । युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें रथि-श्रेष्ठ कर्णका आगमन (सभा० ३४ । ७) । यह अङ्ग और वङ्ग देशका राजा था और इसने जरासंधको परास्त किया था (सभा० ४४ । ९–११) । द्यूतके लिये आये हुए राजा युधिष्ठिर कर्णसे भी मिले थे (सभा० ५८ । २३) । द्यूतसभामें कर्ण भी उपस्थित था और द्रौपदीको दावपर लगानेसे बहुत प्रसन्न हुआ था (सभा० ६५ । ४४) । इसके द्वारा विकर्णको फटकारते हुए द्रौपदीके हारे जानेकी घोषणा और द्रौपदी तथा पाण्डवोंके वस्त्र उतार लेनेके लिये दुःशासनको आदेश (सभा० ६८ । २७—३८) । इसका द्रौपदीको दूसरा पति चुन लेनेके लिये कहना और उसे दासी बताना (सभा० ७१ । १—४) । वनमें चलकर पाण्डवोंका वध करनेके लिये दुर्योधनको इसकी सलाह (वन० ७ । १६—२०) । द्वैतवनमें पाण्डवोंके पास चलनेके लिये इसका दुर्योधनको उभाड़ना (वन० २३७ अध्याय) । घोषयात्राका प्रस्ताव बताना (वन० २३८ । १९-२०) । धृतराष्ट्रके आगे घोषयात्राका प्रस्ताव रखना (वन० २३९ । ३–५) । द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा इसकी पराजय (वन० २४१ । ३२) । मार्गमें इसके द्वारा दुर्योधनका अभिनन्दन (वन० २४७ । १०—१५) । दुर्योधनको अनशन न करनेके लिये इसका समझाना (वन० २५० अध्याय) । भीष्मद्वारा इसकी निन्दा, इसके क्षोभपूर्ण वचन और इसका दिग्विजयके लिये प्रस्थान (वन० २५३ अध्याय) । इसके द्वारा समूची पृथ्वीपर दिग्विजय और हस्तिनापुरमें इसका स्वागत (वन० २५४ अध्याय) । कर्णका दुर्योधनको यज्ञके लिये सलाह देना (वन० २५५ अध्याय) । कर्णद्वारा अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा (वन० २५७ । १६-१७) । सूर्यके समझानेपर भी इसका कवच-कुण्डल देनेका ही निश्चय रखना (वन० ३०० । २७—३९) । इन्द्रसे शक्ति लेकर ही उन्हें कवच-कुण्डल देनेका निश्चय (वन० ३०२ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । कर्णका कुन्तीके गर्भसे जन्म, कुन्तीका उसे पिटारीमें रखकर अश्वनदीमें बहा देना तथा अमृतसे प्रकट हुए कवच-कुण्डल धारण करनेके कारण इसका नदीमें जीवित रह सकना (वन० ३०८ । ४—७–२७) । पिटारीमें बंद हुए कर्णका अधिरथ और राधाके हाथमें आना (वन० ३०९ । ५-६) । राधाद्वारा कर्णका विधि-पूर्वक पालन (वन० ३०९ । ११-१२) । इसका 'वसुषेण' और 'वृष' नाम पड़नेका कारण (वन० ३०९ । १३-१४) । हस्तिनापुरमें इसकी शिक्षा और दुर्योधनसे मित्रता (वन० ३०९ । १७-१८) । इन्द्रसे उनकी शक्ति माँगना (वन० ३१० । २१) । इन्द्रको

इसके द्वारा कवच-कुण्डल-दान (वन० ३१० । ३८)। पाण्डवोंका पता लगानेके लिये इसकी पुनः गुप्तचर भेजनेकी सलाह (विराट० २६ । ८—१२)। द्रोणाचार्यकी बातोंपर आक्षेप करते हुए अर्जुनसे युद्ध करनेका ही इसका निश्चय (विराट० ४७ । २१–३४)। इसकी आत्मप्रशंसापूर्ण अहङ्कारोक्ति (विराट० ४८ अध्याय)। अर्जुनपर इसका आक्रमण (विराट० ५४ । १९)। अर्जुनसे पराजित होकर युद्धके मुहानेसे भागना (विराट० ५४ । ३६)। अर्जुनके साथ पुनः युद्ध और पराजित होकर भागना (विराट० ६० । २७)। कर्णके कपड़ोंका उत्तरद्वारा उतारा जाना (विराट० ६५ । १५)। द्रुपदके पुरोहितके कथनका समर्थन करनेवाले भीष्मके वाक्योंपर इसका आक्षेप करना (उद्योग० २१ । ९—१५)। इसकी आत्मप्रशंसा (उद्योग० ४९ । २९—३२; उद्योग० ६२ । २—६)। भीष्मजीके आक्षेप करनेपर इसका अस्त्र त्यागकर सभासे प्रस्थान (उद्योग० ६२ । १३)। दुर्योधनके पक्षमें रहनेका निश्चय बताते हुए श्रीकृष्णसे रणयज्ञके रूपकका वर्णन करना (उद्योग० १४१ अध्याय)। इसके द्वारा श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरकी विजय और दुर्योधनकी पराजयके लक्षणोंका वर्णन (उद्योग० १४३ । २—४५)। कुन्तीको उत्तर देते हुए उनके चार पुत्रोंको न मारनेकी प्रतिज्ञा (उद्योग० १४६ । ४—२३)। भीष्मजीके जीते-जी युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा (उद्योग० १५६ । २५)। भीष्मकी कटु आलोचना (उद्योग० १६८ । ११—२९)। पाँच दिनमें ही पाण्डवसेनाको नष्ट करनेकी अपनी शक्तिका कथन (उद्योग० १९३ । २०)। श्रीकृष्णके समझानेपर दुर्योधनका ही पक्ष ग्रहण करनेका निश्चय (भीष्म० ४३ । ९२)। भीष्मसे शस्त्र डलवा देनेके लिये दुर्योधनको सलाह देना (भीष्म० ९७ । ७—१३)। बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास जाकर इसका उन्हें प्रणाम करना (भीष्म० १२२ । ४-५)। भीष्मके समझानेपर क्षमा-प्रार्थना करते हुए इसका युद्धका ही निश्चय बताना (भीष्म० १२२ । २३—३३)। कौरवोंद्वारा इसका स्मरण (द्रोण० १ । ३३—४७)। भीष्मके लिये शोक प्रकट करते हुए इसका रणके लिये प्रस्थान (द्रोण० २ अध्याय)। भीष्मकी प्रशंसा करते हुए युद्धके लिये उनसे आज्ञा माँगना (द्रोण० ३ अध्याय)। भीष्मकी आज्ञा पाकर कौरवोंकी सेनामें इसका जाना (द्रोण० ४ । १५)। दुर्योधनके पूछनेपर इसका सेनापतिके लिये द्रोणाचार्यका नाम बताना (द्रोण० ५ । १३—२१)। दुर्योधनसे भीमसेनके स्वभावका वर्णन करते हुए द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कहना (द्रोण० २२ । १८—२८)। केकय-

राजकुमारोंके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४२–४४)। अर्जुन, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ३२ । ५२—७०)। इसका अभिमन्युसे पराजित होना (द्रोण० ४० । १७—३६)। इसका द्रोणाचार्यसे अभिमन्युके वधका उपाय पूछना (द्रोण० ४८ । १८)। इसके द्वारा अभिमन्युके धनुष और ढालका काटा जाना (द्रोण० ४८ । ३२—३९)। इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १२–१४)। भीमसेनके साथ युद्धमें इसका पराजित होना (द्रोण० १२९ । ३३)। भीमसेनके साथ इसका युद्ध और पराजित होना (द्रोण० १३१ से १३८ अध्यायतक)। भीमसेनसे बचनेके लिये इसका रथमें दुबक जाना (द्रोण० १३९ । ७६)। भीमसेनको मूर्च्छित करके इसका धनुषकी नोकसे उन्हें दबाना (द्रोण० १३९ । ९१-९२)। भीमसेनको कटुवचन सुनाना (द्रोण० १३९ । ९५—१०९)। अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर इसका दूर हट जाना (द्रोण० १३९ । ११४)। अर्जुनके द्वारा युद्धमें परास्त होना (द्रोण० १४५ । ८३-८४)। दुर्योधनके प्रोत्साहन देनेपर उसे उत्तर देना (द्रोण० १४५ । २५—३३)। सात्यकिके साथ युद्धमें इसकी पराजय (द्रोण० १४७ । ६४-६५)। दुर्योधनद्वारा द्रोणाचार्यपर किये गये दोषारोपणका निराकरण (द्रोण० १५२ । १५—२२)। दुर्योधनसे दैवकी प्रधानताका वर्णन (द्रोण० १५२ । २३–३४)। दुर्योधनको आश्वासन (द्रोण० १५८ । ५–११)। इसके द्वारा कृपाचार्यका अपमान (द्रोण० १५८ । २५–३२; द्रोण० १५८ । ४९—७०)। अर्जुनके साथ युद्धमें इसका पराजित होना (द्रोण० १५९ । ६२–६४)। सहदेवको युद्धमें परास्त करके उनके शरीरमें धनुषकी नोक चुभोकर उन्हें कटु वचन सुनाना (द्रोण० १६७ । २—१८)। सात्यकिके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १७० । ३०—४३)। दुर्योधनको इसकी सलाह (द्रोण० १७० । ४६—६०)। इसके द्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय (द्रोण० १७३ । ७)। घटोत्कचके साथ इसका घोर युद्ध (द्रोण० १७५ अध्याय)। इसके द्वारा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे घटोत्कचका वध (द्रोण० १७९ । ५४–५८)। भीमसेनके साथ युद्ध और उन्हें परास्त करना (द्रोण० १८८ । १०–२२)। भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १८९ । ५०–५५)। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १०)। सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० २०० । ५३)। संजयद्वारा इसके सेनापतित्व तथा मृत्युका वर्णन (कर्ण० १ । १७–२१)। अर्जुनद्वारा इसके पुत्र वृषसेनके

वधकी चर्चा (कर्ण० ५ । २३-२४) । सेनापतिके लिये प्रस्ताव करनेपर दुर्योधनको आश्वासन (कर्ण० १० । ४०-४१) । सेनापति-पदपर अभिषेक (कर्ण० १० । ४३) । इसका कौरव सेनाका मकरव्यूह बनाकर युद्धके लिये प्रस्थान (कर्ण० ११ । १४) । इसके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार (कर्ण० २१ । १८–२४) । भागते हुए नकुलके गलेमें धनुष फँसाकर उन्हें पकड़ना और जीवित छोड़ देना (कर्ण० २४ । ४५–५१) । सात्यकिके साथ इसका युद्ध (कर्ण० ३० अध्याय) । दुर्योधनसे अपनी युद्धसम्बन्धी व्यवस्थाके लिये कहना (कर्ण० ३१ । ३५—६९) । शल्यको सारथि बनाकर युद्धके लिये प्रस्थान (कर्ण० ३६ । २४-२५) । इसकी आत्मप्रशंसा (कर्ण० ३७ । १३—३१) । अर्जुनका पता बतानेवालेको पुरस्कार देनेकी घोषणा (कर्ण० ३८ अध्याय) । शल्यको फटकारते हुए मद्रनिवासियोंकी निन्दा करना और उन्हें मारनेकी धमकी देना (कर्ण० ४० अध्याय) । शल्यको फटकारते हुए अपनेको परशुरामजी तथा एक ब्राह्मणद्वारा प्राप्त शापोंकी बात बताना (कर्ण० ४२ अध्याय) । आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना (कर्ण० ४३ अध्याय) । इसके द्वारा मद्र आदि वाहीक देशवासियोंकी निन्दा करना (कर्ण० ४४ से ४५ अध्यायतक) । इसके द्वारा पाञ्चालोंका संहार (कर्ण० ४६ । २१-२२) । पाण्डव-सेनाका संहार (कर्ण० ४८ । ९–१७) । कर्णपुत्र सुषेण और चित्रसेन-द्वारा पिताके रथके पहियोंकी रक्षा, वृषसेनद्वारा उसके पृष्ठभागकी रक्षा (कर्ण० ४८ । १८-१९) । भीमसेन-द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध (कर्ण० ४८ । २७) । कर्णद्वारा युधिष्ठिरपर आक्रमण (कर्ण० ४८ । ६३) । युधिष्ठिरके साथ युद्धमें इसका मूर्च्छित होना (कर्ण० ४९ । २१) । इसके द्वारा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक चन्द्रदेव और दण्डधारका वध (कर्ण० ४९ । २७) । युधिष्ठिरको परास्त करके उनका तिरस्कार करना (कर्ण० ४९ । ४८–५९) । भीमसेनद्वारा इसकी पराजय (कर्ण० ५० । ४७) । भीमसेनके साथ इसका घोर संग्राम (कर्ण० ५१ से अध्यायतक) । इसके द्वारा पाञ्चाल, चेदि और केकय-वीरोंका भीषण संहार (कर्ण० ५६ । ३८—६९) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (कर्ण० ५९ । ७–१४) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (कर्ण० ६१ । २३) । युधिष्ठिरको घायल करके युद्धसे विमुख कर देना (कर्ण० ६२ । २९–३१) । इसके द्वारा नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरकी भीषण पराजय (कर्ण० ६३ अध्याय) । दुर्योधनकी प्रेरणासे इसका भार्गवास्त्र प्रकट करना (कर्ण० ६४ । ४५) । उत्तमौजाद्वारा कर्णपुत्र सुषेणका वध (कर्ण० ७५ । ९) । इसके द्वारा पाण्डवसेनाका भीषण संहार (कर्ण० ७८ अध्याय) । अर्जुनके पराक्रमके विषयमें शल्यसे वार्तालाप (कर्ण० ७९ । ४९—७०) । अर्जुन और भीमसेनद्वारा खदेड़े हुए धृतराष्ट्र-पुत्रोंको इसका शरण देना (कर्ण० ८१ । ५१) । इसके द्वारा केकयराजकुमार विशोकका वध (कर्ण० ८२ । ३) । केकय-सेनापति उग्रकर्माका वध (कर्ण० ८२ । ५) । सात्यकिद्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध (कर्ण० ८२ । ६) । इसके द्वारा धृष्टद्युम्नके पुत्रका वध (कर्ण० ८२ । ९) । इसका भीमसेनके भयसे भीत होना (कर्ण० ८४ । ७-८) । अर्जुनद्वारा कर्णपुत्र वृषसेनका वध (कर्ण० ८५ । ३६) । शल्यसे वार्तालाप (कर्ण० ८७ । १०१–१०३) । अर्जुन-के साथ द्वैरथ युद्ध (कर्ण० ८९ अध्याय) । कर्णके सर्पमुख बाणसे अर्जुनके किरीटका गिरना (कर्ण० ९० । ३३) । रथका पहिया धँस जानेसे उसे निकालनेके लिये इसका रथसे उतरना और बाण न चलानेके लिये अर्जुन-से अनुरोध करना (कर्ण० ९० । १०५–११६) । अर्जुनद्वारा इसका वध (कर्ण० ९१ । ५०) । कर्णका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३६) । ब्राह्मणद्वारा इसे शाप प्राप्त होनेका प्रसंग (शान्ति० २ । २३–२६) । इसे ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति और परशुरामजीका शाप (शान्ति० ३ अध्याय) । कलिङ्गराजकी कन्याका दुर्योधनद्वारा अपहरण होनेपर इसके द्वारा समस्त राजाओंकी पराजय (शान्ति० ४ । १७-२०) । इसके बल-पराक्रमका वर्णन (कर्ण० ५ अध्याय) । इसके द्वारा जरासंधकी पराजय (कर्ण० ५ । ४) । इसके द्वारा मालिनी और चम्पानगरीकी प्राप्ति (कर्ण० ५ । ६-७) । इसके कुण्डलदानकी चर्चा (अनु० १३७ । ९) । कुन्तीका व्यासजीके सम्मुख कर्णके जन्मप्रसङ्गकी चर्चा और इसे देखनेकी इच्छा व्यक्त करना (आश्रम० ३० अध्याय) । कर्ण सूर्यका अंश था (आश्रम० ३१ । १४) । व्यासजीके आवाहन करनेपर कर्णका भी प्रकट होना (आश्रम० ३२ । ९) । स्वर्गमें जाकर इसका सूर्यदेवमें मिल जाना (स्वर्गा० ५ । २०) ।

महाभारतमें आये हुए कर्णके नाम–आधिरथि, आदित्य-नन्दन, आदित्यतनय, अङ्गराज, अङ्गेश्वर, अर्कपुत्र, भरतर्षभ, गोपुत्र, कौन्तेय, कुन्तीसुत, कुरूद्वह, कुरु-पृतनापति, कुरुवीर, कुरुयोध, पार्थ, पूषात्मज, राधासुत, राधात्मज, राधेय, रविसूनु, सौति, सावित्र, सूर्यज, सूर्य-पुत्र, सूर्यसम्भव, सूत, सूतनन्दन, सूतपुत्र, सूतसूनु, सूतसुत, सूततनय, सूतात्मज, वैकर्तन, वैवस्वत, वसुषेण, वृष । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ३) । भीमसेनद्वारा इसपर आक्रमण

(भीष्म० ७७ । ८) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ७७ । १६) ।

कर्णनिर्वाक–वानप्रस्थधर्मका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुए एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २४४ । १८) ।

कर्णपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

कर्णप्रावरण–(१) प्राचीन कालके मनुष्योंकी एक जाति, जो दक्षिण समुद्रके तटपर रहती थी । सहदेवने इस जातिके लोगोंको परास्त किया था (सभा० ३१ । ६७)। (जो अपने कानोंसे ही अपने शरीरको ढक लें, उन्हें 'कर्णप्रावरण' कहते हैं । प्राचीन कालमें ऐसी जातिके लोग थे, जिनके कान पैरोंतक लटकते थे ।) इस जातिके लोग युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (सभा० ५२।१९)। (२) दक्षिण भारतका एक जनपद । यहाँके योद्धा दुर्योधनकी सेनामें थे (भीष्म० ५१ । १३) ।

कर्णप्रावरणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

कर्णवेष्ट–एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधवश' संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न थे (आदि० ६७ । ६०–६६) । पाण्डवों-की ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १५) ।

कर्णश्रवा–अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करनेवाले एक महर्षि (वन० २६ । २३) ।

कर्णाटक–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९) ।

कर्णिका–ग्यारह विख्यात अप्सराओंमेंसे एक, जिसने अर्जुनके जन्म-समयमें आकर नाच-गान किया था (आदि० १२२ । ६४–६६) ।

कर्णिकारवन–सुमेरु पर्वतके उत्तर भागमें समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरा हुआ एक दिव्य एवं रमणीय वन (भीष्म० ६ । २४) ।

कर्ता–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

कर्दम–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १६) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो ब्रह्मसभामें रहकर ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १९)। इक्कीस प्रजापतियोंमें इनका नाम आया है (शान्ति० २३४ । ३६-३७) । (३) एक राजर्षि, जो विरजाके पौत्र तथा कीर्तिमान्‌के पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम अनंग था (शान्ति० ५९ । ९०-९१) ।

कर्दमिलक्षेत्र–समङ्गाके निकटका एक क्षेत्र, जहाँ राजा भरतका अभिषेक हुआ था (वन० १३५ । १) ।

कर्वट–एक प्राचीन देश, जिसके राजाको भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । २४) ।

कल–पितरोंका एक गण । ये ब्रह्मसभामें रहकर ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४७) ।

कलविङ्क–(१) एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे अनेक तीर्थोंमें स्नानका फल मिलता है (अनु० २५ । ४३) । (२) एक प्रकारका पक्षी, जिसकी उत्पत्ति मरे हुए त्रिशिराके सुरापायी मुखसे हुई (उद्योग० ९ । ४२) ।

कलश–एक कश्यप-वंशी नाग (उद्योग० १०३ । ११) ।

कलशपोतक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) ।

कलशी–एक तीर्थ, जहाँ आचमन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । ८०) ।

कलशोदर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७२) ।

कला–कालपरिमाण (शल्य० ४५ । १५) ।

कलाप–एक महातेजस्वी ऋषि, जिनका राजसूय यज्ञके अन्तमें राजा युधिष्ठिरने पूजन किया (सभा० ४५ । ३८ के बाद दाक्षिणात्यपाठ पृष्ठ ८४३, कालम १) ।

कलि–(१) सोलह देवगन्धर्वोंमेंसे एक । कश्यप-पत्नी 'मुनि' के पुत्र (आदि० ६५ । ४४) । ये अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें भी पधारे थे (आदि० १२२ । ५७)। (२) सत्ययुग आदिके क्रमसे प्रवृत्त होनेवाला चौथा युग (शान्ति० ६९ । ८१–९२) । इसका इन्द्रके साथ संवाद—दमयन्तीने राजा नलको अपना पति चुन लिया—यह इन्द्रसे सुनकर इसका कुपित होना और उसे दण्ड देनेको उद्यत हो जाना (वन० ५८ । ६) । नलके शरीरमें प्रविष्ट होकर उन्हें राज्यसे वञ्चित करनेका संकल्प करना और इसमें इसकी द्वापरसे सहायताके लिये प्रार्थना (वन० ५८ । १३-१६) । इसका राजा नलके शरीरमें प्रवेश (वन० ५९ । ३) । पुष्करको जूआ खेलनेके लिये तैयार करना (वन० ५९ । ४-५) । नलको दुःख देनेवाले (कलियुग) के लिये दमयन्तीका शाप (वन० ६३ । १६-१७) । कर्कोटक नागके विषसे दग्ध हो कलियुगका बड़े दुःखसे नलके शरीरमें रहना (वन० ६६ । १५-१६) । द्यूत-विद्याका रहस्य जाननेके अनन्तर नलके शरीरसे कलियुग-का निकलना और शापाग्निसे मुक्त होना (वन० ७२ । ३०-३१) । कलिका अपने स्वरूपको प्रकट करना और नलका उसे शाप देनेका विचार करना (वन० ७२ । ३२) । भयभीत एवं कम्पित हुए कलियुगका हाथ जोड़कर राजासे क्रोध रोकनेकी प्रार्थना करना, इन्द्रसेन-जननी दमयन्तीके शापसे अपने पीडित होनेकी चर्चा करना, नलकी शरणमें जाना और नलका कीर्तन करने-वालोंको अपनेसे (कलिसे) भय न होनेकी घोषणा करना और डरकर बहेड़ेके वृक्षमें समा जाना (वन० ७२ ।

३०–३८)। कलियुगका सर्वश्रेष्ठ तीर्थ गङ्गा (वन० ८५ । ८९–९१)। कलियुगका मान (वन० १८८ । २६-२७)। कलियुगके अन्तिम भागमें संसारकी स्थिति (वन० १८८ । ३९–६४)। कलियुग एवं युगान्तमें जगत्की परिस्थिति (वन० १९० । ११–८८); कलिके मनुष्योंकी आयु (शान्ति०२३१ । २५)। कलिके युगधर्मका वर्णन (वन० १४९ । ३३–३८; शान्ति०६९ । ९१–९७; शान्तिपर्वके २३१, २३२, २३८ और ३४० आध्यायोंमें भी कलिधर्मका वर्णन आया है)। मार्कण्डेयजीद्वारा उसके प्रभावका वर्णन (वन० १८८ । २५–८५; वन० १९० । ७–९२)। इस कलियुग-का अंश ही कुरुकुलकलङ्क राजा दुर्योधनके रूपसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८७; आश्रम० ३१ । १०)। (३) भगवान् सूर्यका एक नाम (वन० ३ । २०)। (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ७९)।

कलिङ्ग (कालिङ्ग)—(१) दक्षिण भारतका एक प्राचीन देश। तीर्थयात्राके अवसरपर यहाँ अर्जुनका आगमन (आदि० २१४ । ९; भीष्म० ९ । ४६, ६९)। सहदेवने दक्षिण-विजयके समय इसे जीता था (सभा० ३१ । ७१)। इस देशके निवासी युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १८)। तीर्थयात्राके समय युधिष्ठिर यहाँ गये थे (वन० ११४ । ४)। कर्णने दिग्विजयके समय इसे जीता था (वन० २५४ । ८)। सहदेवने दन्तकूरमें कलिङ्गोंको परास्त किया था (उद्योग० २३ । २४)। दन्तकूरमें श्रीकृष्णने कलिङ्गोंका संहार किया था (उद्योग० ४८ । ७६)। सहदेवने इसे जीता था—इसकी चर्चा (उद्योग० ५० । ३१)। कर्णने इस देशको पहले जीता था (द्रोण० ४ । ८)। द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहकी ग्रीवा और पीठके स्थानपर कलिङ्गदेशीय योद्धा स्थित थे (द्रोण० २० । ६–१०)। परशुरामजीके द्वारा इस देशके निवासी परास्त हुए थे (द्रोण० ७० । १२)। कलिङ्गदेशीय योद्धा सात्यकिके साथ लड़े हैं (द्रोण० १४१ । १०-११)। परशुरामजीके डरसे भगे हुए कुछ क्षत्रिय शूद्र हो गये थे—उन्हींमें कलिङ्गोंकी भी गणना है (अनु० ३३ । २२)। (२) कलिङ्ग देशका राजा (सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ)। इसका नाम श्रुतायु था (भीष्म० ५४ । ६८-६९)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १३)। द्रोणनिर्मित व्यूहके दाहिने अङ्गमें स्थित था (द्रोण० ७ । ११)। जयद्रथ-की रक्षामें संलग्न था (द्रोण० ७४ । १७)। भीमसेन-के साथ कलिङ्ग-राजकुमारका युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । २१–२४)। कलिङ्गराज श्रुतायुको आगे करके कलिङ्गवासियोंने भीमसे लड़ाई की और उनके द्वारा वे मारे गये थे (भीष्म० ५४ । ३–४२)। (शेष देखिये श्रुतायु—)। (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४)।

कल्कि—भगवान् विष्णुके भावी दशम अवतार, जो कलियुग-के अन्तमें धर्मके शिथिल हो जानेपर प्रकट होंगे, इनका नाम होगा कल्कि विष्णुयशा (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९६, कालम २; वन० १९० । ९३-९४)। कल्किके स्वरूप और कार्यका वर्णन (वन० १९० । ९३–९७)। इनके द्वारा कलियुगके बाद कृतयुगकी स्थापना (वन० १९१ । १–१४)। भगवान् नारायणका नारदजीसे कल्किको अपना अवतार बताना (शान्ति० ३३९ । १०४)।

कल्माष–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७)। (२) एक उत्तम अश्व, जिसका रंग चितकबरा था। यह अश्व अर्जुनने दिग्विजयके समय हाटकदेशके निकट-वर्ती गन्धर्वनगरसे प्राप्त किया था (सभा० २८ । ६)।

कल्माषपाद–एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, जो ऋतुपर्णके पौत्र एवं सुदासके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम मित्रसह था। सुदासपुत्र होनेसे ये सौदास भी कहलाते थे। इस भूतलपर ये असाधारण तेजसे सम्पन्न थे (आदि० १७५ । १; अनु० ७८ । १–२)। इनका नगरसे निकलकर वनमें मृगयाके लिये जाना, वहाँ इनके द्वारा हिंसक पशुओंका वध (आदि० १७५ । २)। वहाँसे थककर इनका नगरकी ओर लौटना और एक तंग रास्तेपर इनकी शक्ति मुनिसे भेंट (आदि० १७५ । ६–७)। वहाँ मार्ग देनेके प्रश्नको लेकर दोनोंमें विवाद और राजाद्वारा मुनिका तिरस्कार (आदि०१७५ । ८–११)। शक्तिद्वारा इन्हें राक्षस होनेका शाप (आदि० १७५ । १३–१४)। विश्वामित्रकी प्रेरणासे इनके शरीरमें 'किङ्कर' नामक राक्षसका आवेश (आदि० १७५ । २१)। इनके द्वारा रसोइयेको एक तपस्वी ब्राह्मणके भोजनके लिये मनुष्यका मांस देनेकी प्रेरणा (आदि० १७५ । ३१)। ब्राह्मण-द्वारा इन्हें राक्षसस्वभावसे युक्त होनेका शाप (आदि० १७५ । ३५–३६)। इनके द्वारा महर्षि शक्तिका भक्षण (आदि० १७५ । ४०)। विश्वामित्रकी प्रेरणासे इनके द्वारा वशिष्ठके समस्त पुत्रोंका संहार (आदि०१७५।४२)। वशिष्ठपर इनका आक्रमण (आदि० १७९ । १८)। मन्त्रपूत जलसे अभिषिक्त करके वशिष्ठद्वारा इनका उद्धार (आदि० १७६ । २६)। वसिष्ठद्वारा इनको कभी भी ब्राह्मणका अपमान न करनेका आदेश (आदि० १७६ । ३१)। वशिष्ठसे पुत्र प्राप्त करनेके लिये इनकी

प्रार्थना (आदि० १७६ । ३३) । वशिष्ठद्वारा इनकी पत्नीके गर्भसे 'अश्मक' नामक पुत्रका उत्पादन (आदि० १७६ । ४७) । शापग्रस्त-अवस्थामें इनके द्वारा मैथुनके लिये उद्यत हुए ब्राह्मणका भक्षण (आदि० १८१ । १६)। ब्राह्मणपत्नी आङ्गिरसीद्वारा इन्हें अपनी पत्नीके साथ समागम करते ही मृत्यु होने एवं वशिष्ठद्वारा ही पुत्र प्राप्त होनेका शाप (आदि० १८१ । २०) । महर्षि पराशरद्वारा दयावश सौदासकुमार सर्वकर्माकी प्राण-रक्षा (शान्ति० १४९ । ७६–७७) । इनका नाम मित्रसह और इनकी रानीका नाम मदयन्ती था । उसे इन्होंने वशिष्ठकी सेवामें अर्पित की (शान्ति० २३४ । ३०; अनु० १३७ । १८) । इनका वशिष्ठजीसे गौके विषयमें पूछना (अनु० ७८ । ३) । कुण्डलकी याचनाके लिये गये हुए उत्तङ्क मुनिके साथ इनका संवाद (आश्व० ५७ । १–१८; आश्व० ५८ । ४–११) ।

कल्माषी–एक नदी, जिसके आस-पास भ्रमण करते हुए राजा द्रुपद ब्राह्मणोंकी एक बस्तीमें पहुँचे और याज-उपयाजसे मिले थे (आदि० १६६ । ५–६) । इसीके किनारे निवास करनेवाले भृगुजीने युधिष्ठिरको उपदेश देकर अनुगृहीत किया था (सभा० ७८ । १६) । (आचार्य नीलकण्ठने 'कल्माषी' का अर्थ 'कृष्णवर्णा यमुना' किया है ।)

कल्याणी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

कवच–इन्द्रसभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षि० पाठ) । ये पश्चिम दिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । ३०) ।

कवची–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । २–६) ।

कवि–(१) महर्षि भृगुके पुत्र (आदि० ६६ । ४२) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ करना (अनु० ९४ । ३२) । (२) बृहस्पतिके पाँचवें पुत्र एक अग्नि, जो बड़वानलरूपसे समुद्रका जल सोखते हैं । शरीरके भीतर ऊपरकी ओर गतिशील होनेके कारण इन्हें 'उदान' और 'ऊर्ध्वभाक्' भी कहा गया है (वन० २१९ । २०) । (३) वरुणके यज्ञमें ब्रह्माजीके शुक्रका हवन होनेसे जो तीन पुरुष प्रकट हुए उनमेंसे एक । शेष दो भृगु और अङ्गिरा थे । ब्रह्माजीने कविको ही अपना पुत्र स्वीकार किया । इस कविके 'कवि, काव्य' आदि आठ पुत्र हुए जो वारुण कहलाते हैं । ये सभी प्रजापति हैं (अनु० ८५ । १३२–१३४) । (४) ब्रह्मपुत्र कविके पुत्र (अनु० ८५ । १३३) । (५) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१) ।

कशेरक–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी सेवामें संलग्न रहनेवाले बहुसंख्यक यक्षोंमेंसे एक (सभा० १० । १५) ।

कशेरु–'त्वष्टा' प्रजापतिकी एक सुन्दरी पुत्री, जिसे चौदह वर्षकी अवस्थामें नरकासुर हर लाया था । सोलह हजार निन्यानबे अन्य कुमारियोंके साथ इसका भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ विवाह हुआ । इन सब कुमारियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे देवर्षि नारद तथा वायुदेवके भविष्य कथनकी सत्यता बताते हुए उनके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतकृत्य बताया और उनके प्रति अपनी सकामभावना प्रकट की । फिर भगवान्ने इन्हें अपनाया (सभा० ३८ २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४–८११) ।

कशेरुमान् (कसेरुमान्)—एक यवनजातीय असुर, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२४, कालम २; वन० १२ । ३२) ।

कश्यप–(१) एक देवर्षि, ब्रह्मर्षि और प्रजापति, जो मरीचि ऋषिके पुत्र और दक्ष प्रजापतिके जामाता हैं (आदि० ६५ । ११) । ये कद्रू और विनताके पति हैं (आदि० १६ । ६) । ब्रह्माजीने इन्हें सर्पोंपर क्रोध न करनेके लिये कहा और उनका विष उतारनेवाली विद्या प्रदान की (आदि० २० । १४-१५) । कश्यपजीका गरुड़से कुशल पूछना और उनके भोजन माँगनेपर एक हाथी और कछुएको खानेके लिये आदेश देना । विभावसु और सुप्रतीक मुनिके वैर और शापकी कथा सुनाकर उन्हींके हाथी और कछुआ होनेकी बात बताना और उनके विशाल शरीर एवं युद्धका वर्णन करना (आदि० २९ । १३—३२) । तपस्यामें लगे हुए पिता कश्यपका गरुड़को दर्शन (आदि० ३० । ११) । इनका पुत्रकी कामनासे यज्ञ करना (आदि० ३१ । ५) । वालखिल्यों-के प्रसादसे इनका विनताके गर्भसे अरुण और गरुड़को जन्म देकर गरुड़को पक्षियोंके 'इन्द्र' पदपर अभिषिक्त करना (आदि० ३१ । १२—१५) । अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि, कद्रू—ये दक्षकी तेरह कन्याएँ इनकी पत्नियाँ हैं (आदि० ६५ । १२) । इनकी संतानोंका वर्णन (आदि० ६५ । १४—५४) । इनसे देवता और असुर दोनों उत्पन्न हुए (आदि० ६६ । ३४) । इन्होंने ज्येष्ठ पत्नी अदितिके गर्भसे इन्द्र आदि बारह आदित्योंको जन्म दिया (आदि० ७५ । १०) । कश्यप और सुरभिके सहवाससे नन्दिनी नामक गौकी उत्पत्ति (आदि० ९९ । ८—१४) । अर्जुनके जन्म-समयमें उपस्थित हुए सात ऋषियोंमें ये भी थे (आदि० १२२ । ५१) । परशुरामजीका इन्हें समूची पृथ्वी दानमें देना (आदि० १२९ । ६२) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराज-

मान होते हैं (सभा० ११ । १८) । इनका प्रह्लादके पूछनेपर उन्हें प्रश्नका असत्य उत्तर देने या यथार्थ बात जानते हुए भी कुछ उत्तर न देनेके दोष बताना तथा दोनों पक्षोंसे मिले होनेके कारण गवाही न देनेवाले गवाहको प्राप्त हुए दोषका वर्णन करना (सभा० ६८ । ७३-७५) । युधिष्ठिरके साथ तीर्थयात्रा करनेवाले ऋषियोंमें इनका भी नाम आया है (वन० ८५ । ११९) । ब्रह्माजीने यज्ञमें सारी पृथ्वी कश्यपको दान कर दी; इससे पृथ्वीको बड़ा खेद हुआ और वह रसातलको जाने लगी। तब कश्यपजीने अपनी तपस्यासे पृथ्वीको प्रसन्न किया (वन० ११४ । १८—२२) । परशुरामजीका कश्यपको भूमिदान करके स्वयं उनका महेन्द्रपर्वतपर निवास (वन० ११७ । १४) । कश्यपपत्नी अदितिके गर्भसे भगवान्‌का वामन-अवतार (वन० २७२ । ६२) । परशुरामजीसे सम्पूर्ण पृथ्वीको दक्षिणारूपमें लेकर उन्हें पृथ्वीसे बाहर निकल जानेका आदेश देना (द्रोण० ७० । १९-२१) । इनका द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५—४०) । स्कन्दके जन्म-समयमें इनका आगमन (शल्य० ४५ । १०) । परशुरामजीसे दक्षिणारूपमें पृथ्वीका दान लेना (शान्ति० ४९ । ६४) । परशुरामजीको राज्यके बाहर भेजना (शान्ति० ४९ । ६५-६६) । रसातलको जाती हुई पृथ्वीको ऊरुओंके सहारे रोकना (शान्ति० ४९ । ७२) । पुरोहितके विषयमें पुरूरवाको उपदेश (शान्ति० ७३ । ७—३२) । कश्यपजीका दूसरा नाम 'अरिष्टनेमि' भी है (शान्ति० २०८ । ८) । इनका भीष्मको वराह-अवतारकी कथा सुनाना (शान्ति० २०९ । ६) । ये मूलभूत कश्यप-गोत्रके प्रवर्तक हैं (शान्ति० २९६ । १७-१८) । महर्षि कश्यपके अङ्गोंसे तिलकी उत्पत्ति (अनु० ६६ । १०) । इनका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहका दोष बताना (अनु० ९३ । ४०) । अरुन्धतीसे अपने शरीरकी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६५) । यातुधानीसे अपने नामका परिचय देना (अनु० ९३ । ८६) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । ११६-११७) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । १८) । कुबेरके सात गुरुओंमेंसे एक ये भी हैं, ये उत्तर दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, इनके कीर्तनसे कीर्ति और कल्याणकी प्राप्ति होती है (अनु० १५० । ३८-३९) । इनका तपोबलसे पृथ्वीको धारण करना (अनु० १५३ । २) ।

महाभारतमें आये हुए कश्यपजीके नाम—देवर्षि, काश्यप, महर्षि, मारीच, प्रजापति, अरिष्टनेमि आदि ।

(२) एक नाग, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२ । ७१) ।

–महर्षि उद्दालकके शिष्य और जामाता। अष्टावक्रके पिता (वन० १३२ । ३—८) । इनका उद्दालकका शिष्य होकर विनीत भावसे उनकी परिचर्यामें संलग्न रहना । इनके द्वारा की गयी सेवाके महत्त्वको समझकर गुरुका इन्हें शीघ्र ही सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका ज्ञान कराना और अपनी कन्या सुजाताका इनके साथ विवाह कर देना (वन० १३२ । ९) । अपने गर्भस्थ बालकद्वारा अपने अध्ययनकी कटु आलोचना सुनकर इनका उसे आठ अङ्गोंसे वक्र होनेका शाप देना (वन० १३२ । १०-११) । गर्भवती सुजाताका इनसे धनकी याचना करना (वन० १३२ । १५) । इनका जनकके दरबारमें जाना और वहाँ शास्त्रार्थी पण्डित बन्दीसे हारकर जलमें डुबाया जाना (वन० १३२ । १५) । इनका जलसे बाहर आना और अष्टावक्रको समङ्गा नदीमें स्नान करनेका आदेश देना (वन० १३४ । ३२—३९) ।

कहोल—इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक प्राचीन ऋषि (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

काक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४) ।

काकी—(१) ताम्राकी लोक-विख्यात पुत्री । इसने उल्लुओंको जन्म दिया (आदि० ६६ । ५६-५७) । (२) शिशुओंकी सात मातृकाओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) ।

काक्षीवान्—गौतम ऋषिके पुत्र । चण्डकौशिक ऋषिके पिता (सभा० १७ । २२; २१ । ५) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १७) ।

काञ्चन—मेरुद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरा मेघमाली था (शल्य० ४५ । ४७) ।

काञ्चनाक्ष—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

काञ्चनाक्षी—नैमिषारण्यमें बहनेवाली सरस्वतीका नाम (शल्य० ३८ । १९) ।

काञ्ची—(मद्राससे ३७ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित एक नगर, जो प्राचीन समयमें चोल राजाओंकी राजधानी था। इस समय इसे 'काञ्जीवरम्' कहते हैं। यह सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है।) यहाँके योद्धा दुर्योधनकी सेनामें विद्यमान थे (उद्योग० १६१ । २१) ।

कात्यायन- इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (**सभा० ७ । १९**) ।

कानीन-एक प्रकारका बन्धुदायाद पुत्र (**आदि० ११९ । ३३**) । (विवाहसे पहले ही जिस कन्याको इस शर्तपर दिया जाता है कि 'इसके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र मेरा ही पुत्र समझा जायगा ।' उस कन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्रको 'कानीन' कहते हैं—यह नीलकण्ठकी व्याख्या है ।) सर्वसम्मत मत यह है कि नारीकी कन्यावस्थामें (विवाहसे पूर्व) ही जो पुत्र पैदा होता है, वह 'कानीन' कहलाता है । यथा—व्यास, कर्ण, शिवि, अष्टक, प्रतर्दन और वसुमान आदि ।

कान्तारक-एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसके राजाको सहदेवने दक्षिण-विजयके अवसरपर पराजित किया (**सभा० ३१ । १३**) । (वेणा नदीके तटपर स्थित भूभागको ही 'कान्तारक' कहा गया है—ऐसा आधुनिक विचारकोंका मत है ।)

कान्ति-एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४०**) ।

कान्यकुब्ज-गङ्गातटपर बसा हुआ एक प्राचीन नगर, जो राजा गाधिकी राजधानी था (आधुनिक कन्नौज ही प्राचीन कान्यकुब्ज है) । वह राज्य या जनपद भी कान्यकुब्ज नामसे ही विख्यात था (**आदि० १७४ । ३; वन० ११५ । २०**) । यहाँ विश्वामित्रने इन्द्रके साथ सोमपान किया था (**वन० ८७ । १७**) । कान्यकुब्जमें राजा गाधिकी कुमारी पुत्री सत्यवतीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ऋचीक मुनिने राजासे माँगा था (**उद्योग० ११९ । ४**) ।

कान्वशिरा-एक जाति, जो पहले क्षत्रिय थी; किंतु ब्राह्मणोंसे डाह रखनेके कारण नीच भावको प्राप्त हो गयी (**अनु० ३५ । १७**) ।

कापिल-कुशद्वीपका सातवाँ वर्ष (**भीष्म० १२ । १४**) ।

कापी-एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । २४**) ।

काम-(१) धर्मके तीन पुत्रोंमेंसे एक, इनकी पत्नीका नाम रति है (**आदि० ६६ । ३२-३३**) । (२) अनुपम रूपवान् स्वाहापुत्र अग्नि (**वन० २१९ । २३**) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (**अनु० १७ । ४२**) । (४) कामस्वरूप रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न (**अनु० १४८ । २०-२१**) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ४५**) । (६) एक ऋषिका नाम (**अनु० १५० । ४१**) ।

कामचरी-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । २३**) ।

कामठक (**या कामठ**)-धृतराष्ट्र कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (**आदि० ५७ । १६**) ।

काम (**अथवा कामाख्य**) **तीर्थ**-एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है (**वन० ८२ । १०५**) ।

कामदा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । २७**) ।

कामदेव-भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ । ८३**) ।

कामन्दक-एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने आङ्गरिष्ठको राजधर्मका उपदेश दिया था (**शान्ति० १२३ । १५-२५**) ।

कामा-पृथुश्रवाकी पुत्री, जो पूरुवंशी महाराज अयुतनायीकी पत्नी तथा अक्रोधनकी माता थी (**आदि० १७७ । २१**) ।

काम्पिल्य-दक्षिणपाञ्चालका एक नगर, जो द्रुपदकी राजधानी था (**आदि० १३७ । ७३**) । विवाहके पश्चात् शिखण्डीका काम्पिल्य नगरमें आगमन (**उद्योग० १८९ । १३**) । दशार्णराजने एक समय इसके निकट पहुँचकर किसी ब्राह्मणको दूत बनाकर वहाँ भेजा था (**उद्योग० १९२ । १४**) । प्राचीन कालमें यहीं राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे, जिनके यहाँ पूजनी नामक चिड़िया थी (**शान्ति० १३९ । ५**) ।

काम्बोज-(१) पश्चिमोत्तर भारतखण्डका एक जनपद और वहाँके निवासी, जिन्हें अर्जुनने जीता था (**सभा० २७ । २३**) । युधिष्ठिरके रथमें काम्बोजदेशमें उत्पन्न (काबुली) घोड़े जोते गये थे (**सभा० ५३ । ५**) । काम्बोजदेशीय म्लेच्छगण कलियुगमें राजा होंगे—यह भविष्यवाणी (**वन० १८८ । ३६**) । काम्बोज योद्धा दुर्योधनके सैनिक थे (**उद्योग० १६० । १०३**) । महाभारतकालमें इस देशका राजा सुदक्षिण था, जो महारथी माना गया था (**उद्योग० १६६ । १-३**) । भीष्मनिर्मित गरुडव्यूहके पुच्छ-स्थानमें काम्बोज खड़े किये गये थे (**भीष्म० ५६ । ७**) । काम्बोजदेशीय अश्व देखनेयोग्य तथा तोतेकी पाँखके समान रङ्गवाले होते हैं । ऐसे ही घोड़े नकुलके रथमें जुते हुए थे (**द्रोण० २३ । ७**) । काम्बोज आदि कई देशोंके अश्व पूँछ, कान और नेत्रोंको स्थिर करके वेगसे दौड़नेवाले होते हैं (**द्रोण० ३६ । ३६**) । (२) काम्बोजराज सुदक्षिण, जो द्रौपदीस्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । १५**) । जिसके छोटे भाईका अर्जुनद्वारा वध हुआ था (**कर्ण० ५६ । १११**) । यह काम्बोजदेशीय घोड़ोंपर सवार हो युद्धके लिये चला था (**भीष्म० ७१ । १३**) । इसका युद्ध और अर्जुनद्वारा वध (**द्रोण० ९२ । ६१-७१**) । काम्बोजनरेश सुदक्षिणके वधकी चर्चा (**द्रोण०**

९४ । ३०) । सुदक्षिणका पिता भी काम्बोज या काम्बोजराज कहलाता था (द्रोण० ९२ । ६१) । (३) काम्बोज देशका एक प्राचीन नरेश, महाराज धुन्धुमारसे इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६ । ७७)

काम्यकवन–एक वनका नाम, वनवासकालमें पाण्डवोंने यहाँ निवास किया था । यह ऋषि-मुनियोंको बहुत प्रिय था । पाण्डवोंका काम्यकवनमें प्रवेश तथा विदुरजीका वहाँ जाकर उनसे मिलना और बातचीत करना (वन० ५ अ० में) । संजयका काम्यकवनमें जाकर विदुरको बुला ले आना (वन० ६ । ११–१७) । युधिष्ठिर आदिका द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश, काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास भगवान् श्रीकृष्ण, मुनिवर मार्कण्डेय तथा नारदजीका आगमन (वन० १८२-१८३ अ० में) । पाण्डवोंका काम्यकवनमें गमन (वन० २५८ अ० में) ।

काम्या–एक स्वर्गीय अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२ । ६४) ।

कायव्य–एक डाकू, निषादपुत्र, जो क्षत्रिय पिता और निषादजातीय मातासे उत्पन्न हुआ था, इसके सदाचारका वर्णन (शान्ति० १३५ । २—९) । लुटेरोंद्वारा सरदार होनेके लिये प्रार्थना करनेपर उसके द्वारा उन्हें धर्मोपदेश (शान्ति० १३५ । १३–२२) ।

कायशोधन तीर्थ–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ जाने और स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है (वन० ८३ । ४२) ।

कारन्धम–दक्षिण समुद्रके समीपवर्ती तीर्थ (पाँच नारी तीर्थोंमेंसे एक) (आदि० २१५ । ३) । यहाँ शापवश ग्राह बनकर रहनेवाली अप्सरा (वर्गाकी सखी) का अर्जुनद्वारा उद्धार (आदि० २१५ । २१) ।

कारपवन–सरस्वतीनदी-सम्बन्धी एक प्राचीन तीर्थ (शल्य० ५४ । १२) ।

कारस्कर–एक निन्द्य एवं त्याज्य देश, जहाँका धर्म दूषित है (कर्ण० ४४ । ४३) ।

कारीष–महर्षि विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५५) ।

कारूष– (१) वैवस्वत मनुके छठे पुत्र (आदि० ७५ । १६) । (२) एक प्राचीन देश, जहाँका राजा चोर-डाकुओंको मारनेवाला था । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित हुआ था (आदि० १८५ । १६) ।

कार्तवीर्य–हैहयनरेश कृतवीर्यका पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन, इसके प्रभाव तथा अत्याचारका वर्णन (वन० ११५ । १२–१४) । पराक्रमी सहस्रबाहुका अग्निदेवको भिक्षा देना (शान्ति० ४९ । ३८) । आपव मुनिद्वारा इसे शापकी प्राप्ति (शान्ति० ४९ । ४३) । परशुरामद्वारा इसकी भुजाओंका उच्छेद (शान्ति० ४९ । ४८) । इसके वंशका संहार (शान्ति० ४९ । ५२-५३) । इसके द्वारा मांसभक्षणनिषेध (अनु० ११५ । ६०) । इसकी दत्तात्रेयजीसे वरयाचना (अनु० १५२ । ७–१०) । वरप्राप्तिके पश्चात् इसके अहंकारयुक्त वचन—ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (अनु० १५२ । १५–२२) । वायुदेवके कहनेसे इसका ब्राह्मण-की महत्ता स्वीकार करना (अनु० १५७ । २४–२६) । इसका अभिमानवश समुद्रको बाणोंसे आच्छादित करना (आश्व० २९ । ३) । परशुरामजीद्वारा इसका वध (आश्व० २९ । ११) ।

महाभारतमें आये हुए कार्तवीर्य अर्जुनके नाम–अनूपपति, अर्जुन, हैहय, हैहयेन्द्र, हैहयाधिपति, हैहयर्षभ, हैहयश्रेष्ठ आदि ।

कार्तस्वर–एक दैत्य, जो कभी इस पृथ्वीका अधिपति था; किंतु इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२) ।

कार्तिकेय–भगवान् स्कन्दका एक नाम, कृत्तिकाओंने इन्हें स्तन्य-पान कराया, अतः ये कार्तिकेय नामसे प्रसिद्ध हुए (अनु० ८५ । ८१-८२; अनु० ८६ । १३-१४) । (विशेष देखिये स्कन्द)

कार्पासिक–एक प्राचीन देश, जहाँ निवास करनेवाली दासियाँ युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सेवाकार्य करती थीं (सभा० ५१ । ८) ।

कार्ष्णि–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२ । ५६) ।

काल (१)–'ध्रुव' नामक वसुके पुत्र—सबको अपना ग्रास बनानेवाले भगवान् काल (आदि० ६६ । २१) । ये स्कन्दके अभिषेकमें गये थे (शल्य० ४५ । १७) । (२) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १४) ।

कालकक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९) ।

कालकण्ठ–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९) ।

कालकवृक्षीय–एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८) । इनका एक कौएको पिंजड़ेमें बाँधकर साथ लेना और कोसलराज क्षेमदर्शीके सारे राज्यमें वहाँका समाचार जाननेके लिये बारंबार चक्कर लगाना (शान्ति० ८२ । ६-७) । लोगोंको वायसीविद्या सीखनेकी प्रेरणा देते हुए घूम-घूमकर

राजकर्मचारियोंके दुष्कर्मोंको अपनी आँखों देखना (शान्ति० ८२ । ८)। सर्वज्ञ काकके कथनका बहाना लेकर उनका समस्त राजकर्मचारियोंकी चोरीका हाल बताना और राजाको सतत सावधान रहनेके लिये उपदेश देना (शान्ति० ८२ । १२–५७, ६१–६७)। राजा क्षेमदर्शीको इनका वैराग्यपूर्ण उपदेश (शान्ति० १०४ । १२–५४)। राजा क्षेमदर्शीसे राज्यप्राप्तिके विभिन्न उपायोंका वर्णन (शान्ति० १०५ । ५–२५)। क्षेमदर्शीसे संधि करनेके लिये राजा जनकको समझाना (शान्ति० १०६ । ९—१९)।

कालका–महान् असुरकुलकी कन्या, कालकेयों अथवा कालकंजोंकी माता, इसकी अपने पुत्रोंके लिये तपस्या और ब्रह्माजीसे वरयाचना (अनु० १७३ । ७–११)।

कालकाक्ष–एक दैत्य, जिसका गरुडद्वारा वध हुआ था (उद्योग०१०५ । १२)।

कालकीर्ति–मयूरके छोटे भाई सुपर्णनामक असुरके अंशसे उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा (आदि० ६७ । ३७)।

कालकूट–(१) समुद्रसे प्रकट हुआ एक भयानक विष और इसका भगवान् शिवद्वारा पान (आदि० १८ । ४१–४३)। भीमसेनके भोजनमें दुर्योधनद्वारा कालकूट मिलाया गया था (आदि० १२७ । ४५–४८; वन० १२ । ८०)। (२) एक पर्वत, जो पत्नियोंसहित तपस्याके लिये जाते समय राजा पाण्डुको मार्गमें मिला था (आदि० ११८ । ४७-४८)। श्रीकृष्णको इन्द्रप्रस्थसे गिरिव्रज जाते समय मार्गमें कोई कालकूट पर्वत लाँघना पड़ा था (सभा० २० । २६-२७)। यहाँ दुर्योधनकी सेनाका पड़ाव पड़ा था (उद्योग० १९ । ३०)। (३) उत्तराखण्डमें कालकूट पर्वतके आसपासका प्रदेश, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० २६ । ४)।

कालकेय (कालखंज)–(कालका अथवा) कालाके पुत्र, हिरण्यपुरनिवासी दानव। इसका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका संहार (आदि० ६५ । ३५; वन० १७३ । १९–५५; उद्योग० १५८ । ३०; द्रोण० ५१ । १६; कर्ण० ७९ । ६२)। इन सबने वृत्रासुरकी अध्यक्षतामें देवताओंपर चढ़ाई की थी (वन० १०० । ३-४)।

कालकोटि–नैमिषारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ (वन० ९५ । ३)।

कालखंज (कालकंज)–असुरवंशकी कन्या कालकाके पुत्र कालकंज या कालखंज कहे गये हैं, ये ही कालकेय भी हैं, इनकी संख्या लाखोंके लगभग थी, इनकी माताने तपस्या करके इनके लिये एक विशाल हिरण्यपुर नामक नगर ब्रह्माजीसे प्राप्त किया था, जिसमें ये देवताओंसे अवध्य एवं सुरक्षित हो निवास करते थे (वन० १०३ । ७–१३)। ये वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते थे (सभा० ९ । १२)। इनके साथ अर्जुनका युद्ध और उनके द्वारा इन दानवोंका संहार (वन० १७३ अध्याय)। अर्जुनने इन्द्रकी आज्ञासे इनका वध किया था (विराट० ४९ । १०; विराट० ६१ । २५; उद्योग० ४९ । १४)। ये भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न कहे गये हैं (उद्योग० १०० । ५–६)।

कालघट–एक वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ८)।

कालञ्जरगिरि–मेधाविक तीर्थका लोकविख्यात पर्वत, जहाँ देवहृदमें स्नानसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ५६)। इस तीर्थकी महिमाका वर्णन (अनु० २५ । ३५)।

कालतीर्थ–अयोध्याका एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे ग्यारह वृषभदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८५ । ११)।

कालतोयक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४७)।

कालद–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३)।

कालदन्तक (कालदन्त)–वासुकि-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६)।

कालनेमि–एक महाबली दानव, जो इस भूतलपर कंस नामसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६७)।

कालपथ–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५०)।

कालपर्वत–(१) लङ्काके समीप समुद्रतटवर्ती एक पर्वत (वन० २७७ । ५४)। (२) एक पर्वत, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिला था (द्रोण० ८० । ३१)।

कालपृष्ठ–एक नाग, जो त्रिपुरविनाशके समय शिवजीके रथमें जुते हुए घोड़ोंके केसर बाँधनेके लिये रस्सी बनाया गया था (कर्ण० ३४ । २९–३०)।

कालमुख–'कालमुख' नामवाली एक विशेष जातिके लोग, जो मनुष्य और राक्षस दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए थे। सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके समय उन सबपर भी विजय प्राप्त की थी (सभा० ३१ । ६७)।

कालयवन–एक असुरभावापन्न यवन, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४, कालम २; द्रोण० ११ । १६–१८)। यह गर्गाचार्यके

तेजसे उत्पन्न एवं अत्यन्त शक्तिशाली असुर था (शान्ति० ३३९ । ९५) ।

कालरात्रि–मृत्युकी रातकी अधिष्ठात्री, जिसे सौप्तिक-आक्रमणके समय पाण्डवपक्षके योद्धाओंने प्रत्यक्ष देखा था । उसके स्वरूपका वर्णन (सौप्तिक० ८ । ६९–७४) ।

कालवेग–वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) ।

कालशैल–उत्तराखण्डकी एक पर्वतमाला (वन० १३९ । १) ।

काला–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री, कश्यपकी पत्नी, कालकेय नामक असुरोंकी माता (आदि० ६५ । १२, ३४–३५) ।

कालाप–एक धर्मज्ञ जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १८) ।

कालाम्र–भद्राश्ववर्षके शिखरपर स्थित भद्रशालवनमें सुशोभित एक महान् वृक्ष, जो एक योजन ऊँचा है । उसमें सदा फल-फूल लगे रहते हैं । उसका रस पीकर भद्राश्व-वर्षके स्त्री-पुरुष सदा जवान बने रहते हैं और सिद्ध तथा चारण सदा उस वृक्षके आस-पास रहते हैं (भीष्म० ७ । १४–१८) ।

कालिक–पूषाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम 'पाणीतक' था (शल्य० ४५ । ४३–४४) ।

कालिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।१४) ।

कालिकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और तीन रात निवास करनेसे मनुष्य जन्म-मरणके चक्करसे छूट जाता है (अनु० २५ । २४) ।

कालिकासंगम–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मानव सब पापोंसे छूट जाता है (वन० ८४ । १५६) ।

कालिकेय–सुबलका पुत्र, जो अभिमन्युद्वारा निहत हुआ था (द्रोण० ४९ । ७) ।

कालिङ्ग–कलिङ्ग देशका राजा श्रुतायुध, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा० ४ । २६) । इसीका नाम श्रुतायु भी था (सभा० ५१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कालिन्दी–कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुना । ये अन्य सरिताओं-के साथ स्वयं भी वरुणसभामें पदार्पण करती हैं (सभा० ९ । १८) । (विशेष देखिये यमुना) ।

कालिय–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ६) । वृन्दावन-में कदम्बवनके पास जो ह्रद था, उसमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने कालियनागके मस्तकपर नृत्यक्रीडा की और उसे अन्यत्र चले जानेका आदेश दिया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८००, कालम १) ।

काली–वेदव्यासकी माता सत्यवती (आदि० ६० । २) ।

कालीयक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०) ।

कालेय–इसी नामसे प्रसिद्ध दैत्यगण (आदि० ६७ । ४७–५५) । इनके द्वारा वसिष्ठ, च्यवन, भरद्वाज आदि मुनियोंके आश्रमोंपर जाकर ऋषियोंका भक्षण (वन० १०२ । ३–६) । देवताओंद्वारा इनका वध (वन० १०५ । १०) । कुछ कालेय पातालमें भाग गये (वन० १०५ । १२) ।

कालेहिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

कालोदक–एक तीर्थ जहाँ सौ योजन दूरसे आकर नहानेवाले मनुष्यकी भ्रूणहत्या दूर हो जाती है (अनु० २५ । ६०) । इसमें स्नानसे दीर्घायु प्राप्त होती है (शान्ति० १५२ । १२-१३) ।

कावेरी–एक उत्तम तीर्थभूत नदी, जो वरुण-सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । २०) । (यह दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी है । इसके तटपर श्रीरङ्गक्षेत्र, त्रिचनापल्ली तथा कुम्भकोणम् आदि प्रख्यात नगर एवं तीर्थ हैं ।) इसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । २२) ।

काव्य–प्रजापति कविके आठ वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३३) ।

काश–काशके अभिमानी देवता, जो यमकी सभामें धर्म-राजकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ३२) ।

काशि–(१) एक भारतीय जनपद (वर्तमान काशीराज्य तथा वाराणसीमण्डल) । जिसपर पाण्डुने विजय प्राप्त की थी (आदि० ११२ । २९; भीष्म० ९ । ५२) । भीमसेनने काशीमें उस देशके राजाकी कन्या बलन्धराके साथ ब्याह किया (आदि० ९५ । ७७) । भीमसेनने इसपर विजय प्राप्त की (सभा० ३० । ६; उद्योग० ५० । १९) । सहदेवने भी काशिदेशपर विजय पायी थी (उद्योग० ५० । ३१) । इस काशिदेशके महारथी राजा वाराणसीमें रहते थे और पाण्डवपक्षके योद्धा थे (उद्योग० ५० । ४१; उद्योग० १९६ । २) । अर्जुनने भी इस देशको जीतकर अपने वशमें किया था (आदि० १२२ । ४०) । श्रीकृष्णने इस देशको जीता था (द्रोण० ११ । १५) । कर्णने दुर्योधनके लिये इस देशको वशमें किया था (कर्ण० ८ । १९) । काशिदेशपर हर्यश्व राजा हुए, इनके बाद सुदेव, फिर दिवोदास (अनु० ३० ।

१२–१५; उद्योग० ११७ । १) । फिर वृषदर्भ उशीनर भी कभी वहाँके राजा हुए थे (अनु० ३२ । ९) । अम्बा-स्वयंवरके अवसरपर भीष्मने इस देशको जीता था (अनु० ४४ । ३८) । युधिष्ठिरके अश्वमेधका घोड़ा इस देशमें गया था (आश्व० ८३ । ४) । (२) काशीराज्य अथवा जनपदमें रहनेवाले लोग। काशिराज और काशिप्रदेशके योद्धा युधिष्ठिरकी सेनामें थे तथा भीष्मद्वारा मारे और घायल किये गये (भीष्म० १०६ । १८–२०) ।

काशिक–पाण्डवपक्षका एक उदार रथी (उद्योग० १७१ । १५) ।

काशिराज–काशिदेशके राजा, जो 'दीर्घजिह्व' नामक दानवके अंशसे उत्पन्न थे (आदि० ६७ । ४०) । ये युधिष्ठिरके बड़े प्रेमी थे । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें एक अक्षौहिणी सेनाके साथ इनका शुभागमन हुआ था (विराट० ७२ । १६) । ये बड़े पराक्रमी थे और महाभारत-युद्धमें इन्होंने पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण किया था (भीष्म० २५ । ५) ।

काशी–प्रजापति कविके पुत्र । आठ वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३३) ।

काशीपुरी–वाराणसी नगरी, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जलाया था (उद्योग० ४८ । ७६) ।

काशीश्वरतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें अम्बुमती नदीके समीप स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य सब रोगोंसे मुक्त और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । ५७) ।

काश्मीर (काश्मीरक)–एक भारतीय जनपद तथा यहाँके निवासी, दिग्विजयके समय इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । १७; भीष्म० ९ । ५३—६७) । इस देशके निवासी राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ३४ । १२; सभा० ५२ । १४; वन० ५१ । २६) । श्रीकृष्णने भी काश्मीरवासियोंको परास्त किया था (द्रोण० ११ । १६) । परशुरामजीने इन्हें परास्त किया था (द्रोण० ७० । ११) ।

काश्मीरमण्डल–पुण्यमय काश्मीर-प्रदेशका वह स्थान, जहाँ उत्तरके समस्त ऋषि, नहुषकुमार ययाति, अग्नि और काश्यपका संवाद हुआ था (वन० १३० । १०-११) । काश्मीरमण्डलकी चन्द्रभागा (चनाब) और वितस्ता (झेलम) में सात दिन स्नान करनेसे मनुष्य मुनिके समान निर्मल हो जाता है । काश्मीरमण्डलकी जो नदियाँ महानद सिन्धुमें गिरती हैं, उनमें तथा सिन्धुमें स्नान करके मनुष्य मृत्युके पश्चात् स्वर्गगामी होता है (अनु० २५ । ७-८) ।

काश्य–(१) काशीके एक राजा, जो अम्बा, अम्बिका और अम्बालिकाके पिता थे तथा जिनकी उक्त तीनों कन्याओंका भीष्मने अपहरण किया था (आदि० १०२ । ५६, ६४-६५) । (२) काशिराज जो युधिष्ठिरके समय विद्यमान थे और जिन्होंने राजसूय-यज्ञमें युधिष्ठिरके अभिषेकके समय उन्हें धनुष अर्पण किया था (सभा० ५३ । ९) । काश्य तथा अन्य राजाओंके दिये हुए धनको युधिष्ठिर जूएमें हार गये (सभा० ६८ । २) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १९) । काश्यके पुत्रका नाम अभिभू था (उद्योग० १५१ । ६३; भीष्म० ९३ । १३) । उत्तम रथी नरश्रेष्ठ काश्य (या काशिराज) भीष्म और द्रोणके समान पराक्रमी थे (उद्योग० १७१ । २२) । काश्यका नाम 'सेनाविन्दु' और 'क्रोधहन्ता' था (उद्योग० १७१ । २०–२२) । पाण्डव-सेनाके महाधनुर्धर शूरवीरोंमें काश्य (काशिराज) भी हैं । इन्होंने भी सबके साथ शङ्खनाद किया था (भीष्म० २५ । १७) । धृतराष्ट्रपुत्र जयके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ४५) । वसुदानके पुत्रद्वारा काशिराज (कुमार) अभिभूके वधकी चर्चा (कर्ण० ६ । २३–२४) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास पधारे थे (शान्ति० ४७ । १०) ।

काश्यप–(१) एक प्रसिद्ध मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण, जो सर्प-दंशनसे पीड़ित हुए परीक्षित्के प्राण बचानेके लिये आ रहे थे (आदि० ४२ । ३३) । हस्तिनापुर जाते समय इनका मार्गमें तक्षकसे भेंट और तक्षकके डँसनेसे भस्म हुए वृक्षको मन्त्रबलसे पुनः पूर्ववत् हरा-भरा कर देना (आदि० ४२ । ३३ से ४३ । १० तक) । इनका तक्षकसे वार्तालाप करना और उससे यथेष्ट धन पाकर लौट जाना (आदि० ५० । १९–२७) । (२) वसुदेवजीके पुरोहित, जिन्होंने पाण्डवोंके गर्भाधानसे लेकर चूडाकरणतक सारे संस्कार कराये (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनके द्वारा पाण्डुका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न कराया गया (आदि० १२४ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । युधिष्ठिरका आदर करनेवाले ऋषियोंमें ये भी थे (वन० २६ । २३) । सिद्ध महर्षिके साथ इनका संवाद (आश्व० १६ । १९ से आश्व० १९ । ५३ तक) । (३) इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि, जो कश्यपके पुत्र हैं (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । परम धर्मात्मा काश्यपने पृथुके यज्ञमें सदस्यता ग्रहण की थी और अत्रि तथा गौतमके विवादको सभामें उपस्थित किया था (वन० १८५ । २१) । कश्यपपुत्र विभाण्डक, राजधर्मा,

विश्वावसु, इन्द्र, आदित्य, वसु, अन्य देवता तथा कश्यप-कुलमें उत्पन्न समस्त प्रजा काश्यप कही गयी है । (४) कश्यपपुत्र काश्यप नामक अग्नि । यह उन पाँच अग्नियोंमेंसे एक हैं, जिन्होंने तीव्र तपस्या करके पाञ्चजन्यको उत्पन्न किया था (वन० २२० । १–५) । महत्तर नामक अग्नि, जो काश्यपके अंशसे प्रकट हुए थे, वे भी काश्यप कहलाये । इन्हें पाञ्चजन्यने पितरोंके लिये उत्पन्न किया था (वन० २२० । ९) । (५) एक ऋषि-कुमार, जो एक वैश्यके रथके धक्केसे गिरकर आत्महत्या करनेको उद्यत हो गये । शृगालरूपधारी इन्द्रके साथ उनका संवाद (शान्ति० १८० । ६) ।

काश्यपद्वीप–एक द्वीप, जो चन्द्रमामें प्रतिविम्बित खरगोश-की आकृतिमें एक कानके रूपमें दृष्टिगोचर होता है (भीष्म० ६ । ५५) ।

काष्ठा–कालपरिमाण (शल्य० ४५ । १५) ।

किंजप्य–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान और जप करनेसे असीम फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ७९)।

किंदत्तकूप–एक कूपमय तीर्थ, जहाँ सेरभर तिल दान करनेसे मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होता है (वन० ८३ । ९८) ।

किंदम–एक ऋषि, मृगीरूपधारिणी पत्नीके साथ मृगरूप धारण करके मैथुन करते समय इनका पाण्डुके बाणोंसे घायल होना (आदि० ११७ । ६–७) । बाणकी चोट खानेपर इनका मानव-वाणीमें विलाप (वन० ११७ । ८–११) । इनका पाण्डुके साथ संवाद (वन० ११७ । १२–२९) । इनके द्वारा राजा पाण्डुको शाप (वन० ११७ । ३०–३३) । इनका प्राणत्याग (वन० ११७ । ३४) ।

किंदान–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान और दान करनेसे उसका असीम फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ७९) ।

किङ्कर–(१) एक राक्षस, जिसने विश्वामित्रकी प्रेरणासे शापग्रस्त राजा कल्माषपादके शरीरमें प्रवेश किया था (आदि० १७५ । २१) । विश्वामित्रकी प्रेरणासे इसके द्वारा वसिष्ठके समस्त पुत्रोंका संहार (आदि० १७५ । ४१) । (२) राक्षसोंकी एक जाति या वर्ग, जो मयासुरकी आज्ञाके अनुसार आठ हजारकी संख्यामें उपस्थित हो युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभाभवनकी रक्षा करते और उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर उठाकर ले जाते थे (सभा० ३ । २८; सभा० ४८ । ९) । युधिष्ठिरने धन लानेके लिये हिमालयपर जानेके बाद वहाँ किङ्कर नामक राक्षसोंको भेंट पूजा दी थी (आश्व० ६५ । ६) ।

(३) यमराजके दण्डका नाम । वे अन्तकालमें इससे प्राणियोंका संहार करते हैं (कर्ण० ५६ । १२०) ।

किङ्किणीकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे स्वर्गलोक-की प्राप्ति होती है (अनु० २५ । २३) ।

कितव–एक प्राचीन जातिके लोग, जो नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री लेकर राजा युधिष्ठिरके यहाँ आये थे (सभा० ५१ । १२) ।

किन्नर–गन्धर्वविशेष (सभा० १० । १४) ।

किम्पुना–एक तीर्थस्वरूपा पवित्र नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९।२०)।

किम्पुरुष–(१) धवलगिरिसे आगे हिमालयके उत्तर भागमें विद्यमान एक देश, जो द्रुमपुत्रसे सुरक्षित था । इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २८ । १–२) । (२) एक जाति, जो पुलहकी संतान हैं (आदि० ६६ । ८)। किम्पुरुषोंने समुद्रपानका अद्भुत दृश्य देखनेके लिये अगस्त्यजीका अनुसरण किया था (वन० १०४ । २१)। कुबेरके क्रीडास्थलरूप सरोवरकी रक्षामें किम्पुरुष भी तत्पर रहते थे (वन० १५३ । ९) । कुबेर लंका छोड़कर किम्पुरुषोंके साथ गन्धमादनपर आकर रहने लगे (वन० २७५ । ३३) । ये दक्ष-कन्याओंकी संतति हैं (शान्ति० २०७ । २५) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें किम्पुरुष भी थे (आश्व० ८८ । ३७) । (३) जम्बूद्वीपका एक खण्ड, जिसे किम्पुरुषवर्ष एवं हैमवत भी कहते हैं । शुकदेवजी इसे लाँघकर भारतवर्षमें पहुँचे थे (शान्ति० ३२५ । १३–१४) ।

किरात–एक भारतीय जनपद (भीष्म० २ । ५१, ५७) ।

किरीटी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१) ।

किर्मीर–एक राक्षस, जो नरकासुरका भ्राता और काम्यक-वनका रहनेवाला था । इसका भीमसेनसे युद्ध (वन० ११ । ४४–६४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (वन० ११ । ६७) ।

किर्मीरवधपर्व–वनपर्वके एक अवान्तर पर्वका नाम (वन-पर्वका ग्यारहवाँ अध्याय)।

किष्किन्धागुहा–दक्षिण भारतमें धारवाड़ जिलेका एक पर्वतीय स्थान, जहाँ प्राचीन कालमें वानरराज वालि-सुग्रीव रहा करते थे । यहाँ सहदेवने मैन्द और द्विविदको जीता था (सभा० ३१ । १७) । इसी किष्किन्धामें श्रीरामने वालीको मारा और सुग्रीवको वहाँका स्वामी बनाया (वन० २८० । १५–३९) ।

कीचक–मत्स्यनरेश विराटका साला और सेनापति एक महाबली वीर, जो द्रौपदीको देखकर काममोहित हो

गया था (विराट० १४ । ४–१०; विराट० १८ । ७) । यह रानी सुदेष्णाका भाई था (विराट० १५ । ७; विराट० २१ । २९) । यह 'सूतपुत्र' कहा जाता था (विराट० १४ । ४७) । कालेय नामक दैत्योंमें सबसे बड़ा जो 'बाण' था, वही कीचकरूपमें उत्पन्न हुआ था । इसके छोटे भाई भी कालेय ही थे (विराट० १६ अध्यायमें पृष्ठ १८९३) । इसके छोटे भाई एक सौ पाँच थे, जो उपकीचक कहलाते थे । वे सभी भीमसेनके द्वारा मारे गये थे (विराट० २३ । ३२-३३) । सूतराज केकयकी बड़ी रानी मालवीके गर्भसे कीचक और इसके भाई उत्पन्न हुए (विराट० १६ अध्यायमें दा० पाठ, पृष्ठ १८९३) । इसका सुदेष्णासे द्रौपदीका परिचय पूछना (विराट० १४ । ७–२३) । द्रौपदीसे प्रेम-याचना करना (विराट० १४ । ४०–४५) । द्रौपदीको प्राप्त करनेके लिये इसका सुदेष्णासे अनुरोध (विराट० १५ । २) । द्रौपदीका केश पकड़ना और उसे लात मारना (विराट० १६ । १०) । संकेतानुसार द्रौपदीसे मिलनेके लिये इसका रातके समय नृत्यशालामें जाना (विराट० २२ । ४०) । वहीं रातहीमें भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (विराट० २२ । ५२–८२) । इसने अपने जीवनमें त्रिगर्तराज सुशर्माको बारंबार हराया था (विराट० २५ और ३० अध्याय) ।

कीचकवधपर्व–विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १४ से २४ तक) ।

कीटक–क्रोधवशसंज्ञक दैत्योंके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६०) ।

कीर्ति–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री और धर्मराजकी स्त्री (आदि० ६६ । १४) । कीर्तिकी अधिष्ठात्री देवी (वन० ३७ । ३३) ।

कीर्तिधर्मा–युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक क्षत्रिय वीर (द्रोण० १५८ । ३९) ।

कीर्तिमान्–(१) नारायणके मानसिक पुत्र विरजाके आत्मज, जो पाँचों विषयोंसे ऊपर उठकर मोक्षमार्गका अवलम्बन करने लगे (शान्ति० ५९ । ९०) । (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१) ।

कुकुण–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १०) ।

कुकुर–(१) यदुवंशी 'कुकुर' नामक नरेशसे प्रचलित हुई वंशपरम्परा । इस वंशके क्षत्रिय भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार चलकर शत्रुओंको बंदी बनाते और मित्रोंको आनन्दित करते थे (उद्योग० २८ । ११) । कुकुर और अन्धकवंशके लोग मौसल-युद्धमें परस्पर जूझते हुए एक-दूसरेपर मतवाले होकर टूटते थे (मौसल० ३ । ४२) । (२) एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १०) । (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०) ।

कुक्कुटिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (भीष्म० ४६ । १५) ।

कुक्कुर–(१) एक धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १८) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४२) ।

कुक्षि–(१) एक सुप्रसिद्ध दानवराज, जो मेरुगिरिके समान तेजस्वी और विशाल 'पार्वतीय' नामक राजा हुआ (आदि० ६७ । ५६) । (२) रैभ्यका पुत्र, जो शुद्ध, सुव्रत और धर्मात्मा दिक्पाल था (शान्ति० ३४८ । ४२-४३) ।

कुञ्जर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५) । सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथका अनुगामी था (वन० २६५ । १०) । अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २७) ।

कुञ्जल–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६) ।

कुठर–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५) । बलरामजीके नागरूपमें समुद्रकी ओर पधारते समय उनके स्वागतमें यह भी आया था (मौसल० ४ । १५) ।

कुठार–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १५) ।

कुणिगर्ग–एक महायशस्वी और शक्तिशाली ऋषि, जिनकी कन्या व्याह न करके तपस्यामें संलग्न हो वृद्ध हो गयी और अन्तमें अपनी तपस्याका आधा भाग देकर उसने एक ऋषिके साथ अपना विवाह-संस्कार सम्पन्न किया (शल्य० ५२ । ३) ।

कुणिन्द–एक द्विज-मुख्य (ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय नरेश), जिन्होंने राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरको दिव्य शङ्खकी भेंट दी थी (सभा० ५१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कुण्ड–'कुण्ड' नामवाले एक विद्वान् ब्राह्मण ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य हुए थे (आदि० ५३ । ८) ।

कुण्डज (**कुण्डभेदि**)–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । १०५) । भीमसेनद्वारा 'कुण्डभेदि' नामसे इसका वध (भीष्म० ९६ । २६) ।

कुण्डधार–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, भीमसेनद्वारा इसका वध, इसका दूसरा नाम कुण्डोदर था (भीष्म० ८८ । २१) । (२) वरुणकी सभामें उपस्थित होनेवाला

एक नाग (सभा० ९ । ९) । (३) एक मेघ, अपने भक्त ब्राह्मणके लिये यक्षराज मणिभद्रसे इसकी प्रार्थना (शान्ति० २७१ । १९–२०) । ब्राह्मणके लिये धर्मका वरदान दिलाना (शान्ति० २७१ । २४–२६) । तपःसिद्ध हुए ब्राह्मणसे मिलकर अन्तर्धान होना (शान्ति० २७१ । ५२) ।

कुण्डभेदी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६०) ।

कुण्डल–(१) कौरवकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १३) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

कुण्डलाहरणपर्व–वनवासके एक अवान्तर पर्वका नाम (अध्याय ३०० से ३१० तक) ।

कुण्डली–(१) गरुडकी संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २१) । (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, इसका दूसरा नाम 'कुण्डाशी' था (यह नाम आदि० ६७ । ९७ में आया है) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २४) । (४) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ११०) ।

कुण्डारिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५) ।

कुण्डाशी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ११६ । १४) । 'कुण्डली' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २४) ।

कुण्डिक–सोमवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । ५८) ।

कुण्डिन—(१) पूरुवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके पञ्चम पुत्र (आदि० ९४ । ५८) । (२) 'कुण्डिन' नामसे प्रसिद्ध पुर या नगर, जो विदर्भदेशकी राजधानी था (वन० ६०, ७३, ७७ अ० में; उद्योग० १५८ अ० में) ।

कुण्डीविष–एक भारतीय जनपद(भीष्म० ५० । ५०)।

कुण्डीवृष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ५६ । ९) ।

कुण्डोदपर्वत–एक तीर्थभूत पर्वत, जहाँ राजा नलको जल और शान्ति मिली (वन० ८७ । २५) ।

कुण्डोदर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १६) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० (६७ । ९७) । 'कुण्डधार' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २३) । (३) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके छठे पुत्र (आदि० ९४ । ५५) ।

कुतप–श्राद्धमें प्रशस्तकाल (दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका ताप घटने लग जाता है, उस समयका नाम कुतप है । उसमें पितरोंके लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है (आदि० ९३ । १३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । (यह काल बारह बजेके बाद आता है ।)

कुनदीक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

कुन्तल–(१) दक्षिण भारतीय कुन्तल जनपदके निवासी (सभा०३४ । ११; उद्योग० १४० । २६) । कुन्तलदेशीय योद्धा (भीष्म० ५१ । १२; कर्ण० २० । १०) । (२) दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२–५९) ।

कुन्ति–(१) कुन्तिदेशके निवासी राजा और योद्धा (सभा० १४ । २६) । (२) एक भारतीय जनपद (सभा० १४ । २७; भीष्म० ९ । ४०–४३) ।

कुन्तिभोज–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो शूरसेनके फुफेरे भाई थे (आदि० ६७ । १३०) । शूरसेनद्वारा इनके लिये अपनी पुत्री पृथाको गोद देना (आदि० ६७ । १३१) । सहदेवद्वारा दक्षिण-दिग्विजयके समय उनपर आक्रमण और इनका सहर्ष उनके शासनको स्वीकार करना (सभा० ३१ । ६) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १२) । इनका दुर्वासाकी सेवाके लिये अपनी पुत्री कुन्तीको उपदेश (वन० ३०३ । १३–२९) । (२) कुन्तिभोजके पुत्र भी इसी नामसे प्रसिद्ध थे; इनका दूसरा भाई पुरुजित् था । ये दोनों पाण्डवोंके मामा थे (कर्ण० ६ । २२) । महाभारत प्रथम दिनके युद्धमें कुन्तिभोज और इनके पुत्रका विन्द और अनुविन्दके साथ युद्ध (भीष्म० ४५ ।७२–७६) । धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहमें नेत्रके स्थानमें कुन्तिभोज और शैब्य खड़े किये गये थे (भीष्म० ५० । ४७) । मकरव्यूहमें कुन्तिभोज और शतानीक पैरोंके स्थानमें खड़े थे (भीष्म० ७५ । ११) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४६) । अलम्बुषके साथ युद्ध (द्रोण० १६ । १८३) । अश्वत्थामाद्वारा इनके दस पुत्र मारे गये (द्रोण० ९६ । १८–२०) । अर्जुनके मामा कुन्तिभोज और पुरुजित्के द्रोणद्वारा मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । १२) ।

कुन्ती–शूरसेनकी पुत्री, राजा कुन्तिभोजकी (दत्तक) कन्या पृथा (आदि० ६३ । ९८; आदि० १०९ । ५) । ये सिद्धि नामक देवीके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७ । १६०) । शूरसेनद्वारा इनका कुन्तिभोजके लिये गोदरूपमें दान (आदि० ११० । ३) । पिता कुन्तिभोजके घरमें देवताओं तथा अतिथियोंकी पूजा-सत्कारके लिये इनकी नियुक्ति (आदि० ११० । ४) ।

इनके द्वारा महर्षि दुर्वासाकी परिचर्या एवं संतुष्ट हुए महर्षिद्वारा इनको मन्त्रका उपदेश (आदि० ६७ । १३३-१३४; आदि० ११० । ६) । कौतूहलवश इनके द्वारा सूर्यका आवाहन (आदि० ६७ । १३६; आदि० ११० । ८) सूर्यद्वारा इनको अपने साथ समागमके लिये आदेश (आदि० ११० । १३) । इनका सूर्यसे क्षमायाचना करते हुए उनके प्रस्तावको अस्वीकार करना (आदि० ११० । ११–१६) । दोषोंके अस्पर्शका आश्वासन एवं दिव्यपुत्रका प्रलोभन देकर इनके साथ सूर्यका समागम (आदि० ११० । १६–१८) । इनके गर्भसे कर्णका जन्म (आदि० ६७ । १३७; आदि० ११० । १८) । सूर्यदेवका इनको पुनः कन्यात्व प्रदान करना (आदि० ११० । २०) । माता-पिता आदि बान्धवोंके भयसे इनके द्वारा नवजात शिशुका जलमें परित्याग (आदि० ६७ । १३९; आदि० ११० । २२) इनके द्वारा स्वयंवरमें पाण्डुका वरण और पिताद्वारा इनका विधिपूर्वक पाण्डुके साथ विवाह (आदि० १११ । ८-९) । संन्यासके लिये कृतसंकल्प हुए पाण्डुसे वानप्रस्थाश्रममें रहनेके लिये इनका हठ (आदि० ११८ । २७–३०) । इनको किसी श्रेष्ठ पुरुषके सम्पर्कसे पुत्रोत्पादन करनेके लिये पाण्डुका आदेश (आदि० ११९ । ३७) । परपुरुषसे संतानोत्पादनके विषयमें इनका विरोध तथा व्युषिताश्व एवं भद्राका उदाहरण देकर अपने मानसिक संकल्पसे ही पुत्रोत्पादनके लिये पाण्डुसे इनकी प्रार्थना (आदि० १२० । १—३७) । इनका दुर्वासासे प्राप्त हुए मन्त्रकी महिमा बताकर किसी देवताके आवाहनके लिये पाण्डुसे आज्ञा माँगना (आदि० १२१ । १०–१६) । धर्मराजके आवाहनके लिये इनको पाण्डुका आदेश (आदि० १२१ । १७–२०) । इनके द्वारा धर्मका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म (आदि० १२२ । ७) । वायुदेवका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे भीमकी उत्पत्ति (आदि० १२२ । १४) । इन्द्रका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे अर्जुनका जन्म (आदि० १२२ । ३५) । इनके द्वारा तीनसे अधिक संतानोत्पादनका निषेध (आदि० १२२ । ७७-७८) । माद्रीके गर्भसे पुत्रकी उत्पत्तिके लिये इनसे पाण्डुका आग्रह (आदि० १२३ । ९—३४) । इनकी कृपासे माद्रीको पुत्रलाभ (आदि० १२३ । १५-१६) । पाण्डुके निधनपर इनका करुण विलाप (आदि० १२४ । १६–२३) । कुन्तीका मूर्च्छित होकर गिरना, माद्रीके उठानेपर विलाप करना तथा शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १२४ । २२ के बाद दा० पाठ) । पतिके साथ सती होनेके लिये इनका माद्रीसे अनुरोध (आदि० १२४ । २३-२४) । बच्चोंकी रक्षाके हेतु सती न होनेके लिये इनसे माद्रीकी प्रार्थना (आदि० १२४ । २८) । पाण्डवोंके अल्पवयस्क होनेके कारण इनसे सती न होनेके लिये शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंका अनुरोध, पतिके शवके साथ चितारोहणके लिये इनसे माद्रीका आज्ञा माँगना (आदि० १२४ । २८ के बाद दा० पाठ) । माद्रीको सती होनेके लिये इनकी आज्ञा (आदि० १२४ । २९) । ऋषियोंका कुन्ती और पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुर जाना (आदि० १२५ अ०) भीमके नागलोक चले जानेपर इनकी चिन्ता तथा विदुरद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १२८ । ११—१८) । रङ्गभूमिमें कर्ण और अर्जुनके युद्धके लिये उद्यत होनेपर इनकी मूर्च्छा तथा विदुरद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १३५ । २७-२८) । कुन्तीसहित पाण्डवोंकी वारणावतयात्रा (आदि० १४४ अ०) । इनके सहित पाण्डवोंका लाक्षागृहसे निकल जाना (आदि० १४७ अ०) । अधिक थक जानेके कारण माता कुन्तीको भीमसेनका अपनी पीठपर बिठाकर ले जाना (आदि० १४७ । २०-२१) । भीमको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये इनसे हिडिम्बाकी प्रार्थना (आदि० १५४ । ४–१५) । हिडिम्बाकी मनोरथपूर्तिके लिये उनका युधिष्ठिरसे अनुरोध (आदि० १५४ । १५ के बाद दा० पाठ) । कामपीड़ित हिडिम्बाको पुत्रदान करनेके लिये इनका भीमको आदेश (आदि० १५४ । १८ के बाद दा० पाठ) । एकचक्रा नगरीके समीप इनको व्यासका आश्वासन (आदि० १५५ । १२) । इनका ब्राह्मण-परिवारके विषयमें भीमसेनसे वार्तालाप (आदि० १५६ । ११–१५) । ब्राह्मणद्वारा इनसे बकासुरके वृत्तान्तका कथन (आदि० १५९ । २–१७) । ब्राह्मण-परिवारको इनका आश्वासन (आदि० १६० । १–३) । भीमद्वारा बकवध-वृत्तान्तको गुप्त रखनेके लिये इनका ब्राह्मणसे अनुरोध (आदि० १६० । १६-१७) । ब्राह्मण-परिवारको दुःखसे मुक्त करने एवं अत्याचारी बकासुरके विनाशके लिये इनका भीमको आदेश (आदि० १६० । २०) । इनके इस आदेशका युधिष्ठिरद्वारा प्रतिवाद (आदि० १६१ । ५) । युधिष्ठिरके प्रति इनके द्वारा कृतज्ञताकी प्रशंसा (आदि० १६१ । १४) । इनके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति भीमके बाहुबलकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (आदि० १६१ । १५–१८) । इनको पुत्रोंसहित पाञ्चालदेश जानेके लिये आगन्तुक ब्राह्मणकी प्रेरणा (आदि० १६६ । ५६ के बाद दा० पाठ) । पाञ्चालदेश चलनेके लिये इनका युधिष्ठिरको परामर्श

(आदि० १६७ । ८) । इनके द्वारा द्रौपदीरूप भिक्षाका मिलकर उपभोग करनेके लिये पाण्डवोंको उपदेश (आदि० १९० । २) । द्रुपदके रनिवासमें इनका सम्मान (आदि० १९३ । ९) । व्यासजीके पूछनेपर द्रौपदीके विवाहके सम्बन्धमें इनका निर्णय (आदि० १९५ । १८) । इनके द्वारा द्रौपदीको आशीर्वाद एवं शिक्षा (आदि० १९८ । ४) । विदुरका द्रुपदके भवनमें आकर कुन्ती, द्रौपदी तथा पाण्डवोंके लिये नाना प्रकारके रत्न और धन भेंट करना (आदि० २०५ । १४) विदुरजीका महलमें जाकर कुन्तीके चरणोंमें प्रणाम करना । कुन्तीका 'किसी तरह मेरे पुत्रोंके प्राण बचे हैं' ऐसा कहकर दुःख प्रकट करना, विदुरजीको ही उनके जीवनका रक्षक बताकर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और भविष्यमें क्या होगा—इसके लिये शोकाकुल होना । विदुरका उन्हें पुनः आश्वासन देना और उन सबको साथ लेकर हस्तिनापुर जाना (आदि० २०६ । ९ के बाद दा० पाठसहित ११ तक) । गान्धारीका कुन्ती और द्रौपदीको राजा पाण्डुके महलमें ठहरानेके लिये विदुरको आदेश देना (आदि० २०६ । २२ के बाद दाक्षि० पाठ) । इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णका कुन्तीसे जानेके लिये विदा माँगना और कुन्तीका उन्हींको अपना तथा अपने पुत्रोंका रक्षक बताकर सदा सुधि बनाये रखनेके लिये उनसे प्रार्थना करना (आदि० २०६ । ५१ के बाद दा० पाठ) । अर्जुनका सुभद्रासहित आकर माता कुन्तीको प्रणाम करना । कुन्तीका सुभद्राको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघना (आदि० २२० । १४–२१) । विदुरका कुन्तीको अपने घरमें रखनेके लिये पाण्डवोंसे कहना और पाण्डवोंका उनके अनुरोधको स्वीकार करना (सभा० ७८ । ५–८) । द्रौपदीका कुन्तीसे वनगमनके लिये विदा लेना और कुन्तीका उसे आश्वासन देते हुए जानेकी आज्ञा तथा कर्तव्यका उपदेश दे स्वयं भी पुत्रोंके पीछे विलाप करती हुई जाना (सभा० ७९ । १–२९)। विदुरका कुन्तीको आश्वासन देना (सभा०७९ । ३१) । कुन्तीका दुर्वासाकी सेवाके लिये उद्यत होना (वन० ३०४ । १–११) । इनकी सेवासे प्रसन्न होकर दुर्वासाका इन्हें मन्त्र प्रदान करना (वन० ३०५ । २०) । इनके द्वारा सूर्यदेवका आवाहन (वन० ३०६ । ७) । इनकी सूर्यदेवसे कवच-कुण्डलविभूषित पुत्रकी माँग (वन० ३०७ । १७) । इनका नवजात शिशुको पिटारीमें रखकर नदीमें छोड़ देना (वन० ३०८ । २२) । श्रीकृष्णके मिलनेपर उनसे पाण्डवोंका समाचार पूछकर इनका विलाप करना (उद्योग० ९० । ५–९०) । श्रीकृष्णद्वारा पाण्डवोंको उत्साहवर्धक संदेश देना और विदुलोपाख्यान सुनाकर उन्हें युद्धके लिये उत्तेजित करना (उद्योग० १३२ । ५ से उद्योग० १३७ । २३ तक) । विदुरकी बातोंसे चिन्तित होकर इनका कर्णके पास जाना (उद्योग० १४४ । २६) । कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताते हुए उसे पाण्डवपक्षमें मिल जानेके लिये प्रेरित करना (उद्योग० १४५ अध्याय) । कुन्तीका पाण्डवोंसे मिलना और द्रौपदीको आश्वासन देना (स्त्री० १५ । ३३–३८) । कर्णको भी जलाञ्जलि देनेके लिये कहना और पाण्डवोंके सामने कर्णका अपने गर्भसे जन्म लेनेका रहस्य प्रकट करना (स्त्री० २७ । ७–१३) । कर्णके लिये चिन्तित युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ६ । ४–८) । इनके द्वारा अभिमन्युवधके शोकसे पीड़ित सुभद्रा और उत्तराको आश्वासन (आश्व० ६१ । ३३–४०) । इनकी उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना (आश्व० ६६ । १४–२६) । इनके द्वारा गान्धारीकी सेवा (आश्रम० १ । २३-२४) । वनमें जाती हुई गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके साथ इनका भी जाना । ये आगे-आगे गान्धारीका हाथ पकड़े जाती थीं (आश्रम० १५ । १–९) । पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना । युधिष्ठिरका सहदेवका ख्याल रखने, कर्णको याद रखने तथा द्रौपदी एवं भीमसेन आदिका भी प्रिय करनेका आदेश देना (आश्रम० १६ । ७–१६) । युधिष्ठिर आदि पुत्रोंका लौट चलनेके लिये अत्यन्त आग्रह तथा द्रौपदी और सुभद्राका अपने पीछे-पीछे आना देखकर आँसू पोंछती हुई कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर देना (आश्रम० १६ । १७ से १७ अध्यायतक) । धृतराष्ट्र और गान्धारीके समझानेपर भी कुन्तीका न लौटना तथा गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिके साथ उनका गङ्गातटपर निवास (आश्रम० १८ । ४–१६) । वनमें कुन्तीके पास उनके पुत्रोंका आना । कुन्तीका रोते हुए सहदेवको हृदयसे लगा लेना (आश्रम० २४ । ७–१०) । कुन्तीका उन पुत्रहीन दम्पतिको अपने साथ खींचकर लाना (आश्रम० २४ । १२) । कुन्तीका व्यासजीसे कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताकर अपने उस पुत्रके दर्शनकी इच्छा प्रकट करना (आश्रम० २९ । ४९ से ३० । १८ तक) । युधिष्ठिर और सहदेवका कुन्तीसे उनकी सेवाके लिये वनमें रहनेकी इच्छा प्रकट करना और कुन्तीका उन्हें हृदयसे लगाकर तपस्यामें विघ्न न पड़े, इसके लिये लौट जानेका आदेश देना (आश्रम० ३६ । २८–४२) । कुन्तीकी वनमें कठोर तपस्या । एक मासतक उपवास करके एक दिन भोजन करना (आश्रम० ३७ ।

१४) । कुन्तीका ध्यान लगाकर बैठना और दावाग्निमें जलकर भस्म हो जाना (आश्रम० ३७ । ३१–३२) । कुन्तीकी हड्डियोंका गङ्गामें डाला जाना और उनके लिये श्राद्धकार्य सम्पादित होना (आश्रम० ३९ अध्याय) । कुन्ती और माद्री दोनों पत्नियोंके साथ राजा पाण्डुका महेन्द्रभवनमें जाना (स्वर्गा० ५ । १५) ।

कुन्द–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३९) ।

कुन्दापरान्त–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९) ।

कुपट–एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (आदि० ६५ । २६) ।

कुबेर–पुलस्त्यकुमार विश्रवा मुनिके पुत्र, जो राक्षसोंके राजा थे, लङ्कामें निवास करते थे । नरयान (पालकी) पर चढ़नेके कारण 'नरवाहन' तथा राजाओंके भी राजा होनेसे 'राज-राज' कहलाते थे । इनके पिता विश्रवा इनपर कुपित थे । पिताके क्रोधको जानकर इन्होंने उनकी सेवा और प्रसन्नताके लिये तीन राक्षस-कन्याओंको नियुक्त कर दिया था (आदि० २७५ । १–३) । इनकी पत्नीका नाम भद्रा है (आदि० १९८ । ६) । इनका उत्तर दिशामें कैलासपर यक्षों और राक्षसोंके आधिपत्यपर अभिषेक किया गया (वन० १११ । १०-११) । ब्रह्माजीसे वरदान पाकर रावणका कुबेरको जीतना, इन्हें लङ्कासे निष्कासित करना और इनके पुष्पक विमानको छीन लेना । फिर कुबेरद्वारा रावणको शाप (वन० २७५ । ३२–३५) । खाण्डवदाहके समय युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर प्रहार करनेके लिये इन्होंने गदा हाथमें ली थी (आदि० २२६ । ३२) । नारदजीद्वारा इनकी दिव्य सभाका वर्णन (सभा० १० अध्याय) । इनके द्वारा अर्जुनको अन्तर्धानास्त्रका दान (वन० ४१ । ३८) । इनकी गन्धमादनपर पाण्डवोंसे भेंट और युधिष्ठिर तथा भीमसेनको सान्त्वना (वन० १६१ । ४३–५१) । इनका अपनेको अगस्त्यसे शाप मिलनेकी कथाका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (वन० १६१ । ५४–६२) । इनके द्वारा युधिष्ठिर और भीमसेनको उपदेश और सान्त्वना (वन० १६२ अध्याय) । इनका श्रीरामके लिये अभिमन्त्रित जल भेजना (वन० २८९ । ९) । स्थूणाकर्णको स्त्री ही बने रहनेका शाप देना (उद्योग० १९२ । ४५–४७) । यक्षोंके अनुरोधसे उसके शापका अन्त बताना (उद्योग० १९२ । ५०) । कुबेर शुक्राचार्यसे एक चौथाई धन पाकर उसमेंसे सोलहवाँ भाग मनुष्योंके लिये अर्पित करते हैं (भीष्म० ६ । २३) । पृथ्वीदोहनके समय ये दोग्धा थे (द्रोण० ६९ । २४) । कुबेरकी सरस्वतीके तटपर तपस्या, कुबेरतीर्थकी उत्पत्ति तथा कुबेरको अनेक वरोंकी प्राप्ति । कुबेरने वहाँ धनका आधिपत्य, रुद्रदेवके साथ मित्रता, देवत्व, लोकपालत्व, नलकूबर नामक पुत्र तथा पुष्पकविमान प्राप्त किये (शल्य० ४७ । २८–३१) । महाराज मुचुकुन्दके साथ युद्ध और वार्तालाप (शान्ति० ७४ । ४–१८) । उशनाद्वारा अपने धनका अपहरण होनेपर इनका शिवजीकी शरणमें जाना (शान्ति० २८९ । १२) । इनके द्वारा अष्टावक्र मुनिका स्वागत-सत्कार (अनु० १९ । ३७–५०) ।

महाभारतमें आये हुए कुबेरके नाम–अलकाधिप, धनद, धनदेश्वर, धनाधिगोप्ता, धनाधिप, धनाधिपति, धनाध्यक्ष, धनेश्वर, धनपति, धनेश, द्रविणपति, गदाधर, गुह्यकाधिप, गुह्यकाधिपति, कैलासनिलय, नरवाहन, निधिप, पौलस्त्य, राजराज, राजराट्, राक्षसाधिपति, राक्षसेश्वर, वैश्रवण, वित्तगोप्ता, वित्तपति, वित्तेश, यक्षाधिप, यक्षाधिपति, यक्षपति, यक्षप्रवर, यक्षराट्, यक्षराज, यक्षराक्षसभर्ता, यक्षरक्षोधिप इत्यादि ।

कुबेरतीर्थ–सरस्वती नदी-सम्बन्धी एक तीर्थ, इसकी उत्पत्तिका प्रसंग (शल्य० ४७ । २५–३१) ।

कुब्जाम्रक–यात्रामात्रसे सहस्र गोदानका फल और स्वर्ग देनेवाला एक तीर्थ (वन० ८४ । ४०) ।

कुमार–(१) 'अनल' नामक वसुके पुत्र स्कन्द, जिनका जन्मकालमें सरकंडोंके वनमें निवास था (आदि० ६६ । २३) । इनका 'कार्तिकेय' नाम होनेका कारण (आदि० ६६ । २४) । कुमारग्रह अथवा कुमार स्कन्दके पार्षद, जो वज्रका प्रहार होनेपर कुमारके शरीरसे प्रकट हुए थे (वन० २८८ । १) । (२) भारतवर्षका एक पूर्वीय जनपद, जहाँके राजा श्रेणिमान्को दिग्विजयके समय भीमसेनने परास्त किया था (सभा० ३० । १) । यहाँके राजकुमार राजसूययज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १४–१७) । (३) एक प्राचीन राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १४) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका परास्त होना (द्रोण० १६ । २१–२५) । (४) 'सनत्कुमार' अथवा कुमार सनत्सुजात ऋषि, जिन्होंने किसी समय कहा था कि 'मृत्युकी सत्ता है ही नहीं' (उद्योग० ४१ । २) । (५) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) ।

कुमारक–कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १३) ।

कुमारकोटि–एक तीर्थ, जिसके नियमपूर्वक सेवनसे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० २ । ११७)।

कुमारधारा–पितामह सरोवरसे निकली 'कुमारधारा' नामकी एक धारा, जहाँ स्नानसे कृतार्थता प्राप्त होती है (वन० ८४ । १४९)।

कुमारवर्ष–रैवतक पर्वतके पासका वर्ष (भीष्म० ११।२६)।

कुमारी–(१) केकयदेशकी एक राजकुमारी, पूरुवंशीय राजा भीमसेनकी पत्नी, प्रतिश्रवाकी माता (आदि० ९५ । ४३)। (२) स्कन्दके शरीरसे उत्पन्न कुमारी ग्रह । ये कुमारियाँ गर्भस्थ बालकोंका भक्षण करनेवाली हैं (वन० २३०।३१)। (३) धनंजय नागकी भार्या (उद्योग० ११७ । १७)। (४) भारतकी एक नदी, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३६)। (५) शाकद्वीपकी एक नदी (भीष्म० ११ । ३२)।

कुमुद–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५; उद्योग० १०३ । १३; मौसल० ४ । १५)। (२) एक वानर जो वानरराज सुग्रीवका सहायक एवं अनुगामी था (वन० २८९ । ४)। (३) सुप्रतीकके कुलमें उत्पन्न एक गजराज (उद्योग० ९९ । १५)। (४) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१।१२)। (५) कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १०)। (६) धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३९)। (७) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५६)। (८) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७६)।

कुमुदमाली–ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । २५)।

कुमुदाक्ष–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५)।

कुमुदोत्तर–शाकद्वीपका एक वर्ष, जो जलद या मलयके निकट है (भीष्म० ११ । २५)।

कुम्भ–प्रह्लादजीके तीन पुत्रोंमेंसे एक, इसके शेष दो भाई विरोचन और निकुम्भ हैं (आदि० ६५ । १९)।

कुम्भक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

कुम्भकर्ण–राक्षसकन्या पुष्पोत्कटाके दो पुत्रोंमेंसे एक। रावणका सहोदर छोटा भाई। इसके पिता पुलस्त्यकुमार विश्रवा थे (वन० २७५ । १—७)। इसका तप करके ब्रह्मासे नींदका वरदान माँगना (वन० २७५ । २८)। इसका लक्ष्मणद्वारा वध (वन० २८७।१९)।

कुम्भकर्णाश्रम–एक तीर्थ, इसकी यात्रासे भूतलपर सम्मान-लाभ (वन० ८४ । १५७)।

कुम्भयोनि–अर्जुनके जानेपर इन्द्रसभामें नृत्य करनेवाली अप्सराओंमेंसे एक (वन० ४३ । ३०)।

कुम्भरेता–शंयुके प्रथम पुत्र भरद्वाजकी पत्नी वीराके गर्भसे उत्पन्न वीर नामक अग्नि, जिन्हें सोमदेवताके साथ द्वितीय आज्य-भाग प्राप्त होता है। इन्हें 'रथप्रभु' 'रथध्वान' और 'कुम्भरेता' भी कहते हैं (वन० २२० ।९-१०)।

कुम्भवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

कुम्भश्रवा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २६)।

कुम्भाण्डकोदर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९)।

कुम्भिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५)।

कुम्भीनसि–एक मायावी असुर (अनु० ३९ । ७)।

कुम्भीनसी–गन्धर्वराज चित्ररथकी पत्नी, जिसने चित्ररथकी जीवन-रक्षाके लिये युधिष्ठिरसे प्रार्थना की थी (आदि० १६९ । ३५)।

कुरङ्गक्षेत्र–एक तीर्थ, यहाँ स्नान और त्रिरात्र-उपवासका फल (अनु० २५ । १–१२)।

कुरु–(१) सूर्यकन्या तपतीके गर्भसे सम्राट् संवरणद्वारा उत्पन्न (आदि० ९४ । ४८)। इनके द्वारा वाहिनीके गर्भसे अश्ववान्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि एवं जनमेजयका जन्म। इनके नामसे कुरुजाङ्गल देशकी प्रसिद्धि । इनकी तपस्यासे कुरुक्षेत्रका पवित्र होना (आदि० ९४ । ५०-५१)। इनकी दूसरी पत्नी शुभाङ्गीसे विदुरका जन्म (आदि० ९५ । ३९)। कुरुक्षेत्रकी भूमि जोतते हुए इनका इन्द्रके साथ संवाद (शल्य० ५३ । ६–१५)। कुरुक्षेत्रमें इनके यज्ञ करते समय सरस्वती नदी 'सुरेणु' नामसे प्रकट हुई थीं। कुछ व्याख्याकारोंके अनुसार 'ओघवती' नामसे इनका प्राकट्य हुआ था (शल्य० ३८ । २६-२७)। (२) एक श्रद्धा-शम-दमसम्पन्न प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने आये थे (शान्ति० ४७ । ८)।

कुरुक्षेत्र–सरस्वती एवं दृषद्वती नामक नदीका मध्यवर्ती क्षेत्र, इसमें निवासकी महिमा (वन० ८३ । ४, २०४, २०५)। कुरुक्षेत्रमें इक्षुमती नदीके तटपर तक्षक रहता था (आदि० ३ । १३९–१४२)। कुरुने अपनी तपस्यासे इस क्षेत्रको पवित्र बनाया (आदि० ९४ । ५०)। चित्राङ्गद नामक गन्धर्वके साथ युद्ध करके महाराज चित्राङ्गदकी मृत्यु यहीं हुई थी (आदि० १०१ । ८-९)। सुन्द और उपसुन्द सम्पूर्ण दिशाओंको जीतकर कुरुक्षेत्रमें निवास करते थे (आदि० २०९ । २७)। खाण्डवदाहके पहले तक्षक वहाँसे कुरुक्षेत्र चला गया था (आदि० २२६ । ४)। वनयात्राके समय पाण्डवोंका यहाँ आगमन (वन० ५ । १)। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे पाप नाश हो जाता

है (वन० ८३ । १-३, ७-८) । कुरुक्षेत्रकी सीमाके भीतर एक पवित्र स्थानमें मान्धाताने यज्ञ किया था (वन० १२६ । ४५) । मुद्गल नामक जितेन्द्रिय ऋषि, जो उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाते थे, कुरुक्षेत्रमें ही रहते थे (वन० २६० । ३) । भीष्म और परशुरामका युद्ध कुरुक्षेत्रमें ही हुआ था (उद्योग० १७८ । ७२) । कौरव और पाण्डव युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें ही एकत्र हुए और वहीं श्रीकृष्णके मुखसे अर्जुनको गीताका उपदेश प्राप्त हुआ (भीष्म० २५ अध्यायसे ४२ अ० तक) । महाभारत-युद्धका मैदान कुरुक्षेत्र ही था (भीष्मपर्वसे शल्यपर्वतक) । इसी क्षेत्रमें भीष्मजी शरशय्यापर पड़े थे (भीष्म० ११९ । ९२) । कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदी 'ओघवती'के रूपमें प्रकट हुई (शल्य० ३८ । ३-४) । पहले यह समन्तपञ्चक क्षेत्र था । महाराज कुरुके समयसे इसका नाम कुरुक्षेत्र हुआ । इसकी सीमाका निर्धारण तथा महिमा (शल्य० ५३ अ०) । बलरामजी-द्वारा इसकी महिमाका वर्णन (शल्य० ५५ । ६—१०) । भीमसेन और दुर्योधनका युद्ध तथा दुर्योधनका वध भी इसी क्षेत्रमें हुआ (शल्य० ५५ अ० से ५८ अ० तक) । अतिथिसत्कारपरायण अग्निपुत्र सुदर्शन अपनी पत्नी ओघवतीके साथ कुरुक्षेत्रमें ही रहते थे (अनु० २ । ४०) ।

कुरुजाङ्गल अथवा कुरु–भारतवर्षका सुविख्यात जनपद, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी । कुरुके नामसे ही कुरुजाङ्गल देशकी प्रसिद्धि हुई (आदि० ९४ । ४९) । धृतराष्ट्र तथा पाण्डुके जन्मके बाद इस देशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिका वर्णन (आदि० १०८ । १—१६) ।

कुरुतीर्थ–कुरुक्षेत्रमें तैजसतीर्थसे पूर्वभागमें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १६५) ।

कुरुपाञ्चाल–कुरु और पाञ्चाल नामक भारतवर्षके दो जनपद (भीष्म० ९ । ३९) ।

कुरुवर्णक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६) ।

कुरुविन्द–एक भारतीय जनपद तथा वहाँके निवासी (भीष्म० ८७ । ९) ।

कुलत्थ–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६६) ।

कुलधर्म–सनातनकालसे चले आनेवाले कुलाचार (भीष्म० २५ । ४०) ।

कुलपांसन राजा–(उद्योग० ७४ अ० में) ।

कुलम्पुन–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मानव अपने समूचे कुलको पवित्र कर देता है (वन० ८३ । १०४) ।

कुलम्पुना–एक नित्य स्मरणीय नदी (अनु० १६५ । २०) ।

कुलाचल–महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं (भीष्म० ९ । ११) ।

कुलिक–एक प्रमुख नाग, जो कद्रूका पुत्र है (आदि० ६५ । ४१) ।

कुलिन्द–(१) एक प्राचीन राजा (सभा० १४ । २६) । (२) प्राचीन देश (सभा० २६ । ३; भीष्म० ९ । ५५, ६३) ।

कुल्या–एक तीर्थ, यहाँ उपवाससे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ५६) ।

कुवलयापीड–ऐरावत-कुलोत्पन्न कंसका हाथी । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०१, कालम १) ।

कुवलाश्व–इक्ष्वाकुवंशी महाराज बृहदश्वके पुत्र, इनके इक्कीस हजार पुत्र थे (वन० २०२ । ५) । इनका धुन्धुको मारनेके लिये प्रस्थान (वन० २०४ । ११) । इनमें भगवान् विष्णुके तेजका प्रवेश (वन० २०४ । १३) । इनके द्वारा धुन्धुका वध (वन० २०४ । ३२) । इन्हें देवताओंसे वर-प्राप्ति (वन० २०४ । ३६—३८) । इनका धुन्धुमार नाम पड़नेका कारण (वन० २०४ । ४२) ।

कुवीरा–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २७) ।

कुश–एक प्राचीन कालके महर्षि, जो अग्निदेवके समान प्रतापी थे, ये ब्रह्माजीके पुत्र और विश्वामित्रके प्रपितामह थे (आदि० ७४ । ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कुशचीरा–एक नदी, जिसका जल भारतके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २३) ।

कुशद्वीप–सुप्रसिद्ध सात द्वीपोंमेंसे एक । इसका विशेष वर्णन (भीष्म० १२ । ६—१६) ।

कुशधारा–एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २४) ।

कुशनाभ–महर्षि कुशके धर्मात्मा पुत्र, गाधिके पिता और विश्वामित्रके पितामह (आदि० ७४ । ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कुशप्लवन–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और तीन रात निवाससे अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है (वन० ८५ । ३६) ।

कुशल–क्रौञ्चपर्वतके निकटका एक देश (भीष्म० १२ । २१) ।

कुशल्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०) ।

कुशवती–देवलोककी एक नगरी (वन० १६१ । ५४) ।

कुशवान्–मानस-सरोवरके निकटवर्ती, उज्जानक सरोवरका एक ह्रद (वन० १३० । १७-१८) ।

कुशविन्दु—एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५६**) ।

कुशस्तम्ब—एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य स्वर्गमें अप्सराओंद्वारा सेवित होता है (**अनु० २५ । २८**) ।

कुशस्थली—द्वारकापुरीका प्राचीन नाम (**सभा० १४।५०**) ।

कुशाद्य—एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४४**) ।

कुशाम्ब—राजा उपरिचरवसुके तृतीय पुत्र, इनका दूसरा नाम मणिवाहन था (**आदि० ६३ । ३१**) ।

कुशावर्त—एक तीर्थ, यहाँ स्नानका फल (**अनु० २५ । १३**) ।

कुशिक—(१) अजमीढके वंशमें उत्पन्न जह्नुके वंशज वल्लभके पुत्र (**आदि० ९५ । ३३; भीष्म० ९ । ८; अनु० ४ । ५**) । एक स्थानपर इन्हें जह्नुवंशज बलाकाश्वका पुत्र कहा गया है (**शान्ति० ४९ । ३**) । इनकी पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या (**शान्ति० ४९ । ४**) । इन्द्रका पुत्ररूपमें जन्म (**शान्ति० ४९ । ५-६**) । इनके यहाँ च्यवनका आगमन तथा रहनेकी इच्छा बताना (**शान्ति० ५२ । ९-१०**) । भार्यासहित इनके द्वारा च्यवनका सत्कार तथा उन्हें सर्वस्व अर्पण(**शान्ति० ५२ । १३–१८**) । इनका च्यवनको घरमें ले जाकर ठहराना, शय्या आदि देना और सेवाके लिये प्रतिज्ञा करना (**शान्ति० ५२ । २३-२४**) । पत्नीसहित राजाका निराहार रहकर इक्कीस दिनोंतक सोये हुए च्यवनके पैर दबाना (**शान्ति० ५२ । ३४-३५**) । च्यवनके सहसा चले जानेसे इनकी चिन्ता और पुनः उन्हें शय्यापर विराजमान देख आश्चर्य और उनकी आज्ञासे पुनः उतने ही दिनोंतक सोये हुए मुनिकी चरणसेवा (**शान्ति० ५३ । २–७**) । मुनिके प्रतिकूल आचरणसे भी राजा-रानीका क्रोध न करना (**शान्ति० ५३ । ८–२४**) । इन राजदम्पतिका रथमें जुतकर कोड़ोंसे पीटा जाना और अन्तमें मुनिकी कृपासे नवयौवनसम्पन्न एवं स्वस्थ होना (**शान्ति० ५३ । २७–६३**) । च्यवन मुनिके वर माँगनेके लिये कहनेपर संतोष प्रकट करके नगरको वापस आना (**अनु० ५३ । ५९–६५**) । दूसरे दिन मुनिके पास जाकर अद्भुत स्वर्गीय दृश्य देखना (**अनु० ५४ । २–२५**) । रानीसे मुनिकी प्रशंसा करना (**अनु० ५४ । २६–३१**) । च्यवनके वर माँगनेके लिये कहनेपर संतोष प्रकट करना (**अनु० ५४ । ३८–४२**) । च्यवन मुनिसे अपने यहाँ रहनेका कारण और परीक्षाके क्लेशोंके विषयमें पूछना (**अनु० ५५ । २–९**) । च्यवनमुनिसे वर माँगना (**अनु० ५५ । १८; अनु० ५५ । ३५**) । अपने पौत्रके ब्राह्मणत्वके विषयमें पूछना (**अनु० ५५ । ३६-३७**) ।

(२) एक वनवासी ऋषि, जो सर्पविषसे मरी हुई प्रमद्वराको देखनेके लिये गये थे (**आदि० ८ । २५**) । इन्होंने हस्तिनापुरको जाते हुए श्रीकृष्णकी मार्गमें परिक्रमा की थी (**उद्योग० ८३ । २७**) ।

कुशिकाश्रम—कौशीनदीके निकटवर्ती एक तीर्थभूत आश्रमका नाम (**वन० ८४ । १३१**) ।

कुशेशय—कुशद्वीपके छः श्रेष्ठ पर्वतोंमेंसे एक (**भीष्म० १२ । १०-११**) ।

कुसुम—धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (**शल्य० ४५ । ३९**) ।

कुसुम्भि—द्वारकाके समीपवर्ती एक वन (**सभा० ३८ । २९ के बाद पृष्ठ ८१३, कालम १**) ।

कुस्तुम्बुरु—कुबेरकी सभाका एक पिशाच (**सभा० १० । १६**) ।

कुहन—सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथका अनुगामी था (**वन० २६५ । ११**) ।

कुहर—कलिङ्गदेशका एक राजा, जो क्रोधवश नामवाले दैत्योंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६५**) ।

कुहुर—एक कश्यपवंशी नाग (**उद्योग० १०३ । १५**) ।

कुहू—महर्षि अङ्गिराकी आठवीं पुत्री (**वन० २१८ । ८**) । यह स्कन्दके जन्म-समयमें आयी थी (**शल्य० ४५ । १३**) ।

कूर्चामुख—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५३**) ।

कूर्म—एक प्रमुख नाग, जो कद्रूका पुत्र है (**आदि० ६५ । ४१**) ।

कूष्माण्डक—एक प्रमुख नाग (**आदि० ३५ । ११**) ।

कृकणेयु—पूरुके तीसरे पुत्र । रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न दस पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ९४ । १०**) ।

कृत—एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३१**) ।

कृतक्षण—विदेहदेशके एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । २७**) । इन्होंने राजा युधिष्ठिरको चौदह हजार घोड़े भेंटमें दिये थे (**सभा० १५ । ७ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८६१, कालम २**) ।

कृतचेता—एक प्राचीन ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका विशेष आदर करते थे (**वन० २६ । २२**) ।

कृतबन्धु—एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २३८**) ।

कृतयुग—हनुमान्‌जीद्वारा इस युगके धर्मका वर्णन (**वन० १४९ । ११–२५**) । मार्कण्डेयजीद्वारा इसका वर्णन (**वन० १८८ । २२**) । कलियुगके बाद कल्कीद्वारा इसकी स्थापना (**वन० १९१ । १–१४**) ।

कृतवर्मा–यदुकुलके अन्तर्गत भोजवंशी हृदिकका पुत्र, जो भगवान् श्रीकृष्णका अनुरागी एवं आज्ञापालक था (**आदि० ६३ । १०५**) । यह मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ८१**) । इसका द्रौपदीके स्वयंवरमें पदार्पण (**आदि० १८५ । १८**) । यह सुभद्राके लिये उपहार-सामग्री लेकर खाण्डवप्रस्थमें गया था (**आदि० २२० । ३१**) । यह युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (**सभा० ४ । ३०**) । यह वृष्णि-वंशके सात महारथियोंमेंसे एक था (**सभा० १४ । ५८**) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें उपस्थित हुआ था (**विराट० ७२ । २१**) । पाण्डवोंकी ओरसे इसको रणनिमन्त्रण भेजा गया था (**उद्योग० ४ । १२**) । दुर्योधनके माँगनेपर एक अक्षौहिणी सेनाकी सहायता देना (**उद्योग० ७ । ३२**) । इसका सेनासहित दुर्योधन-की सहायतामें जाना (**उद्योग० १९ । १७**) । सात्यकि-के कहनेसे श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये कौरवसभाके द्वारपर उसका सेनासहित डट जाना (**उद्योग० १३० । १०-११**) । यह कौरवपक्षका अतिरथी वीर था (**उद्योग० १६५ । २४**) । प्रथम दिनके युद्धमें इसका सात्यकिके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । १२-१३**) । अभिमन्यु-के हाथों यह घायल हुआ था (**भीष्म० ४७ । १०**) । भीष्मद्वारा निर्मित क्रौञ्चारुणव्यूहमें मस्तककी जगह खड़ा किया गया था (**भीष्म० ७५ । १७**) । भीमसेन-द्वारा इसका पराजित होना (**भीष्म० ८२ । ६१**) । सात्यकिद्वारा इसका घायल होना (**भीष्म० १०४ । १६**) । धृष्टद्युम्नके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११० । ९-१०; भीष्म० १११ । ४०–४४**) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (**भीष्म० ११३, ११४ अध्याय**) । सात्यकिके साथ युद्ध (**द्रोण० १४ । ३५-३६; द्रोण० २५ । ८-९**) । अभिमन्युपर प्रहार और उसके घोड़ोंको मार डालना (**द्रोण० ४८ । ३२**) । अभिमन्युपर आक्रमण करनेवाले छः महारथियोंमें एक यह भी था (**द्रोण० ७३ । १०**) । अर्जुनके साथ युद्ध और उनके प्रहारसे इसका मूर्च्छित होना (**द्रोण० ९२ । १६– २६**) । इसका युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ युद्ध (**द्रोण० ९२ । २७–३२**) । सात्यकिके साथ युद्ध (**द्रोण० ११३ । ४६–५८**) । भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोकना (**द्रोण० ११३ । ६४–६७**) । भीमसेन और शिखण्डी-को परास्त करके इसका पाण्डव-सेनाको खदेड़ना (**द्रोण० ११४ । ५९–१०३**) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (**द्रोण० ११५ । १०-११; द्रोण० ११६ । ४१**) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध और उन्हें परास्त करना (**द्रोण० १६५ । २४–४०**) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थल-से भागना (**द्रोण० १९३ । १३**) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (**द्रोण० २०० । ५३**) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (**कर्ण० २६ । ३६-३७**) । धृष्टद्युम्न-द्वारा इसका मूर्च्छित किया जाना (**कर्ण० ५४ । ४० के बाद दा० पाठ**) । इसके द्वारा उत्तमौजाकी पराजय (**कर्ण० ६१ । ५९**) । भीमसेनके साथ युद्धमें भागना (**शल्य० ११ । ४५–४७**) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (**शल्य० १७ । ७७-७८; शल्य० २१ । २९-३०**) । युधिष्ठिरद्वारा पराजय (**शल्य० १७ । ८७**) । द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनको युद्धके लिये उत्साहित करना (**शल्य० ३० । ९–१४**) । सेनासहित युधिष्ठिर-के पहुँचनेपर इसका वहाँसे हट जाना (**शल्य० ३० । ६३**) । अश्वत्थामाके साथ रातमें सौप्तिक युद्धके लिये जाना (**सौप्तिक० ५ । ३८**) । रातमें शिविरसे भागे हुए योद्धाओंका इसके द्वारा वध (**सौप्तिक० ८ । १०६-१०७**) । पाण्डवोंके शिविरमें इसका आग लगाना (**सौप्तिक० ८ । १०९-११०**) । धृतराष्ट्रको दुर्योधन-के मारे जानेका समाचार बताकर इसका अपने देशकी ओर जाना (**स्त्री० ११ । २१**) । युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णके साथ कृतवर्माका भी आगमन (**आश्व० ६६ । ३-४**) । सात्यकिद्वारा मौसल-युद्धमें इसका वध (**मौसल० ३ । २८**) । स्वर्गमें जानेपर इसका मरुद्गणोंमें प्रवेश (**स्वर्गा० ५ । १३**) ।

महाभारतमें आये हुए कृतवर्माके नाम–आनर्तवासी, भोज, भोजराज, हार्दिक्य, हृदिकसुत, हृदिकात्मज, माधव, सात्वत, वार्ष्णेय, वृष्णि, वृष्णिसिंह आदि ।

कृतवाक्–अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करनेवाले एक महर्षि (**वन० २६ । २४**) ।

कृतवीर्य–(१) सोमवंशी राजा अहंयातिके श्वशुर, भानु-मतीके पिता (**आदि० ९५ । १५**) । (२) भूमण्डल-के एक सुप्रसिद्ध प्राचीन राजा, जो कार्तवीर्यके पिता और वेदज्ञ भृगुवंशियोंके यजमान थे (**आदि० १७७ । ११**) । इनके द्वारा सोमयज्ञ करके भृगुवंशियोंके लिये विपुल धनराशिका दान (**आदि० १७७ । १३**) । ये यमराज-की सभाके एक सदस्य हैं (**सभा० ८ । ९**) । माहिष्मती नगरीका राजा अर्जुन इन्हीं कृतवीर्यका ज्येष्ठ पुत्र था (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९१, कालम २**)।

कृतवेग–एक पुण्यात्मा एवं बहुश्रुत राजर्षि, जो यमसभाको सुशोभित करते हैं (**सभा० ८ । ९**) ।

कृतशौच–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करनेसे पुण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है (**वन० ८३ । २१**) ।

कृतश्रम–युधिष्ठिरकी सभामें बैठनेवाले एक महर्षि (सभा० ४ । १४) । इनको वानप्रस्थधर्मके पालनसे स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई (शान्ति० २४४ । १८) ।

कृति–(१) एक पुण्यात्मा एवं बहुश्रुत राजर्षि, जो यमराजकी सभाको सुशोभित करते हैं (सभा० ८ । ९) । (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) । (३) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २२) ।

कृती–शूकरदेशका एक राजा, जिसने युधिष्ठिरको सौ गजरत्न भेंट किये थे (सभा० ५२ । २५) ।

कृत्तिका–(१) एक तीर्थ, यहाँकी यात्रासे अतिरात्र यागका फल मिलता है (वन० ८४ । ५१) । (२) कृत्तिकाएँ छः हैं, इनका स्कन्दसे अपनेको माता स्वीकार करनेका अनुरोध (वन० २३० । ५) । इन्हें नक्षत्रमण्डलमें स्थानकी प्राप्ति (वन० २३० । ११) । कृत्तिका नक्षत्रमें दान देनेका फल (अनु० ६४ । ५) ।

कृत्तिकाङ्गारक–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है (अनु० २५ । २२–२६) ।

कृत्तिकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके पितरोंका तर्पण और महादेवजीको संतुष्ट करनेवाला पुरुष पापमुक्त हो स्वर्गमें जाता है (अनु० २५ । २५) ।

कृत्या–(१) दैत्योंद्वारा आभिचारिक यज्ञसे उत्पन्न की हुई एक राक्षसी, जो आमरण उपवासके लिये बैठे हुए दुर्योधनको वनसे उठाकर रसातलमें ले गयी थी (वन० २५२ । २१–२९) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १८) ।

कृत्रिम–एक प्रकारका अबन्धुदायादपुत्र ('मैं आपका पुत्र हूँ' यों कहकर जो स्वयं समीप आया हो) (आदि० ११९ । ३४) ।

कृप–एक प्राचीन राजा, जिन्होंने कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६४) ।

कृपाचार्य–किसी समय गौतमगोत्रीय शरद्वान्का वीर्य सरकंडेके समूहपर गिरा और दो भागोंमें बँट गया, उसीसे एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ, कन्याका नाम कृपी हुआ और पुत्र महाबली कृपके नामसे प्रसिद्ध हुआ (आदि० ६३ । १०७) । ये रुद्रगणके अंशावतार और अत्यन्त पुरुषार्थी थे (आदि० ६७ । ७७) । 'जानपदी' नामक अप्सराके दर्शनसे सरकंडेपर स्खलित हुए महर्षि शरद्वान्के दो भागोंमें बँटे हुए वीर्यसे एक पुत्र और एक कन्याकी उत्पत्ति (आदि० १२९ । ६–१४) । वनमें शिकारके लिये आये हुए महाराज शान्तनुका इन्हें देखना और कृपाके वशीभूत हो घर लाकर इनका पालन-पोषण एवं समस्त संस्कार करना (आदि० १२९ । १५–१८) । इनका 'कृप' नाम होनेका कारण (आदि० १२९ । २०) । शरद्वान्का इनको इनके गोत्र आदिका गुप्तरूपसे परिचय देकर समस्त शास्त्रोंका उपदेश करना (आदि० १२९ । २१–२२) । ये धनुर्वेदके परमाचार्य हो गये (आदि० १२९ । २२) । इनसे कौरवों-पाण्डवों तथा यादवोंका धनुर्वेद पढ़ना (आदि० १२९ । २३) । रङ्गभूमिमें अर्जुनपर आक्षेप करते समय इनका कर्णसे उसके कुलका परिचय पूछना (आदि० १३५ । ३२) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित थे (सभा० ३४ । ८) । धनकी देख-रेख और दक्षिणा बाँटनेके कामपर नियुक्त किये गये थे (सभा० ३५ । ७) । इनका पाण्डवोंके अन्वेषणके लिये सलाह देना (विराट० २९ । १–१४) । कर्णको फटकारते हुए युद्धके विषयमें अपना मत प्रकट करना (विराट० ४९ अ० में) । अर्जुनद्वारा घायल होनेपर कौरवोंका इन्हें अन्यत्र हटा ले जाना (विराट० ५७ । ४३) । दुर्योधनसे दो मासमें पाण्डव-सेनाको नष्ट करनेकी अपनी शक्तिका कथन (विराट० १९३ । १९) । युधिष्ठिरको आज्ञा देकर अपनेको अवध्य बताना (भीष्म० ४३ । ७०–७५) । प्रथम दिनके युद्धमें बृहत्क्षत्रके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ५२–५४) । चेकितानद्वारा इनका मूर्च्छित होना (भीष्म० ८४ । ३१) । सात्यकिको घायल करना (भीष्म० १०१ । ४०–४१) । सहदेवके साथ द्वन्द्व-युद्ध करना (भीष्म० ११० । १२–१३; भीष्म० १११ । २८–३३) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३, ११४ अध्याय) । धृष्टकेतुके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३३–३४) । वार्धक्षेमिके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ५१-५२) । अभिमन्युके पार्श्वरक्षकोंका वध कर देना (द्रोण० ४८ । ३२) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १४–१६) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अ०) । अर्जुनके साथ युद्धमें मूर्च्छित होना (द्रोण० १४७ । ९) । कर्णको फटकारना (द्रोण० १५८ । १३–२३; ३३–४७) । अश्वत्थामासे दुर्योधनको अर्जुनके साथ युद्धके लिये जानेसे रोकनेको कहना (द्रोण० १५९ । ७७–८२) । इनके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (द्रोण० १६९ । ३२) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १२) । अश्वत्थामासे द्रोण-वधका समाचार बताना (द्रोण० १९३ । ३७–६७) । सात्यकिद्वारा पराजय (द्रोण० २०० । ५३) । इनके

द्वारा शिखण्डीकी पराजय (कर्ण० ५४ । २३)। चित्रकेतु-पुत्र सुकेतुका वध (कर्ण० ५४ । २८)। युधामन्युको परास्त करना (कर्ण० ६१ । ५५-५६)। इनके द्वारा कुलिन्द-राजकुमारका वध (कर्ण० ८५ । ६)। दुर्योधनको सन्धिके लिये समझाना (शल्य० ४ अ०)। द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनको युद्धके लिये उत्साहित करना (शल्य० ३० । ९-१४)। सेनासहित युधिष्ठिरके पहुँचनेपर वहाँसे हट जाना (शल्य० ३० । ६३)। दुर्योधनके कहनेसे अश्वत्थामाको सेनापति-पदपर अभिषिक्त करना (शल्य० ६५ । ४३)। दैवकी प्रबलता बताते हुए अश्वत्थामाको सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी राय देना (सौप्तिक० २ अ०)। अश्वत्थामाको प्रातःकाल युद्ध करनेके लिये समझाना (सौप्तिक० ४ । १-२०; सौप्तिक० ५ । १-१७)। अश्वत्थामाके साथ रातमें युद्धके लिये जाना (सौप्तिक० ५ । ३८)। इनके द्वारा पाण्डव-शिविरसे भागे हुए योद्धाओंका वध (सौप्तिक० ८ । १०६-१०७)। शिविरमें आग लगाना (सौप्तिक० ८ । १०९-११०)। दुर्योधनकी दशा देखकर विलाप करना (सौप्तिक० ९ । १०-१७)। धृतराष्ट्र और गान्धारीको कौरव-पाण्डवोंके विनाशकी सूचना देना (स्त्री० ११ । ५-१७)। समाचार बताकर हस्तिनापुरकी ओर चला जाना (स्त्री० ११ । २१)। इन्हें द्रोणाचार्यसे खड्ग-विद्या प्राप्त होनेका प्रसंग (शान्ति० १६६ । ८१)। तपस्यासे सिद्धि या प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले लोगोंमें इनका भी नाम है (शान्ति० २९६ । १४)। वनमें जाते समय धृतराष्ट्रका कृपाचार्यको युधिष्ठिरके हाथों सौंपकर अपने साथ जानेसे लौटाना (आश्रम० १६ । ५)। महाप्रस्थानसे पूर्व युधिष्ठिरने कृपाचार्यकी पूजा करके उन्हें परीक्षित्को शिष्यरूपमें सौंपा (महाप्रस्थान० १ । १४-१५)।

महाभारतमें आये हुए कृपाचार्यके नाम–आचार्य, आचार्यसत्तम, भारताचार्य, ब्रह्मर्षि, शारद्वत, शरद्वत्-सुत, गौतम आदि ।

कृपी–शरद्वान् ऋषिकी पुत्री, कृपाचार्यकी बहन, द्रोणाचार्यकी पत्नी और अश्वत्थामाकी माता (आदि० ६३ । १०७-१०८)। शान्तनुद्वारा इनका संवर्धन (पालन-पोषण) एवं समस्त संस्कार (आदि० १२९ । १८)। द्रोणाचार्यका इन्हें धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करना (आदि० १२९ । ४६)। इनका मरे हुए द्रोणाचार्यके लिये रोना (स्त्री० २३ । ३४-३७)।

महाभारतमें आये हुए इनके नाम–शारद्वती, कृपी, गौतमी आदि ।

कृमि–(१) एक क्षत्रियकुल (उद्योग० ७४ । १३)। (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७)।

कृश–(१) शृङ्गीऋषिका एक मित्र, जो धर्मके लिये कष्ट उठानेके कारण सदा कृश ही रहा करता था (आदि० ४० । २७-२८)। इनका शृङ्गीऋषिको उत्तेजित करना (आदि० ४० । २९-३२)। इनका शृङ्गीऋषिको उनके पिताके कंधेपर राजा परीक्षित्द्वारा सर्प डालनेका समाचार सुनाना (आदि० ४१ । ५-९)। (२) ऐरावतकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पयज्ञमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ११)। (३) एक दिव्य महर्षि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ७)।

कृशक–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १५)।

कृशाश्व–यमकी सभामें उपस्थित धर्मराजकी उपासना करनेवाले एक नरेश (सभा० ८ । १७)। ये उत्तर-गोग्रहणके समय अर्जुनका कृपाचार्य एवं अन्य कौरव-वीरोंके साथ होनेवाले युद्धको देखनेके लिये इन्द्रके विमानमें बैठकर आये थे (सभा० ५६ । १०)। इनका प्रातःसायं स्मरण-कीर्तन करनेवाला मनुष्य धर्म-फलका भागी होता है (अनु० १६५ । ४९)।

कृषीवल–इन्द्रकी सभामें बैठकर उनकी उपासना करनेवाले एक प्राचीन महर्षि (सभा० ७ । १३)।

कृष्ण–(१) सत्यवतीनन्दन द्वैपायन व्यास, जिन्हें शरीरका रंग साँवला होनेके कारण लोग 'कृष्ण' भी कहते थे (आदि० १०४ । १५)। (देखिये 'व्यास') (२) एक नाग, जो वरुणसभामें रहकर वरुण देवताकी उपासना करते हैं (सभा० ९ । ८)। (३) अर्जुनका एक नाम (विराट० ४४ । २२)। (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७)। (५) एक महर्षि, जो उत्तरायणके आरम्भमें शर-शय्याशायी भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे (शान्ति० ४७ । १२)। (६) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४५)। (७) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७२)। (८) ये नारायणस्वरूप हैं, इनकी वन्दना करके महाभारतका पाठ करनेका विधान (आदि० १ । मङ्गलाचरण १)। ये 'श्रीकृष्ण' ही धर्ममय वृक्षके मूल हैं (आदि० १ । १११)। विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् विष्णु जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे प्रकट हुए (आदि० ६३ । ९९)। आदि-अन्तसे रहित, सबके आत्मा, अव्यय, अनन्त, अचल, अजन्मा, नारायणस्वरूप, अनादि, सर्वव्यापी, परम पुरुष पूर्णतम परमात्मा ही धर्मकी वृद्धिके लिये अन्धक और वृष्णि-

कुलमें बलराम और श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुए (आदि० ६३ । १००–१०४) । सम्पूर्ण देवताओं एवं इन्द्रका भगवान् श्रीहरिसे अवतार ग्रहण करनेकी प्रार्थना और भगवान्‌की स्वीकृति (आदि० ६४ । ५१–५४) । देवताओंके भी देवता, सनातन पुरुष, नारायणके ही अंशस्वरूप प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए थे (आदि० ६७ । १५१) । अपने श्याम और श्वेत दो प्रकारके केशोंको द्वारमात्र बनाकर सच्चिदानन्दघन नारायणने स्वयं ही अपनेको पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रूपसे प्रकट किया (आदि० १९६ । ३२-३३) । वृष्णिवंशियोंसहित इनका द्रौपदीके स्वयंवरमें आगमन (आदि० १८५ । १६–२०) । इनका स्वयंवरमें आये हुए ब्राह्मणवेषधारी पाण्डवोंको पहचानना और बलरामजीको संकेतसे बताना (आदि० १८६ । ८–१०) । द्रौपदीस्वयंवरमें भीम और अर्जुनके विषयमें इनका बलरामजीसे वार्तालाप (आदि० १८८ । २०–२३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । पाण्डवोंसे मिलनेके लिये बलरामसहित इनका कुम्भकारके घरमें आगमन (आदि० १९० । १८) । द्रौपदीके विवाहके अवसरपर इनके द्वारा पाण्डवोंको विविध उपहारोंकी भेंट (आदि० १९८ । १३–१९) । पाण्डवोंको द्रुपद-नगरसे हस्तिनापुर जानेके लिये इनकी सम्मति (आदि० २०६ । ६) । पाण्डवोंके निवासके लिये दिव्य नगर-निर्माणके हेतु इनकी इन्द्रको प्रेरणा (आदि० २०६ । २८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । प्रभास क्षेत्रमें इनका अर्जुनके साथ मिलन और रैवतक पर्वतपर विश्राम (आदि०२१७ । ३–८) । अर्जुनको सुभद्राहरणके लिये इनकी सम्मति (आदि० २१८ । २३) । सुभद्राहरणसे कुपित हुए वृष्णिवंशियोंको इनकी सान्त्वना (आदि० २२० । १–११) । दहेजरूपमें विपुल धनराशि लेकर इनका इन्द्रप्रस्थ नगरमें आगमन और भेंटसमर्पण (आदि० २२० । २७–५२) । अर्जुनके साथ इनका यमुनाजीमें जल-विहार (आदि० २२१ । १४–२०) । खाण्डववन-दाहके लिये इनसे अग्निकी प्रार्थना (आदि० २२२ । २–११) । अग्निद्वारा इनको दिव्य चक्रका दान (आदि० २२४ । २३) । वरुणद्वारा इनको कौमोदकी गदाकी भेंट (आदि० २२४ । २८) । खाण्डववनदाहके समय इनका इन्द्र आदि देवताओंके साथ युद्ध (आदि० २२६ अध्याय) । अर्जुनके द्वारा अभयदान देनेपर इनका मयासुरको जीवनदान (आदि० २२७ । ४४–४५) । अर्जुनके साथ निरन्तर प्रेम-वृद्धिके लिये इनकी इन्द्रसे वर-याचना (आदि० २३३ । १३) । इनकी मयासुरको सभाभवन-निर्माणके लिये आज्ञा (सभा० १ । १२) । इनकी द्वारकायात्रा (सभा० २ अध्याय) । इन भगवान् वासुदेवने बिन्दुसरोवरपर धर्मपरम्पराकी रक्षाके लिये बहुत वर्षोंतक निरन्तर श्रद्धापूर्वक यज्ञ किया था (सभा० ३ । १६) । युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञके लिये इनकी सम्मति (सभा० १४ अध्याय) । जरासंधके वधके विषयमें इनकी युधिष्ठिर और भीमसेनसे बातचीत (सभा० १५ । १४–२५) । इनके द्वारा अर्जुनकी बातका अनुमोदन और जरासंधकी उत्पत्तिका वर्णन (सभा० १७ अध्याय) । जरासंधवधके लिये भीम और अर्जुनके साथ ब्राह्मण-रूप धारणकर इनकी मगध-यात्रा (सभा० २० अध्याय) । इनके द्वारा मगधकी राजधानीकी प्रशंसा (सभा० २१ । १–११) । इनका जरासंधके साथ संवाद (सभा० २१ । ४९–५४) । निरपराध कैद किये हुए राजाओंको छोड़ देनेके लिये इनकी जरासंधको चेतावनी (सभा० २२ । ७–२६) । जरासंधके वधके लिये इनका भीमको संकेत (सभा० २४ । ५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनके द्वारा जरासंध-पुत्र सहदेवका राज्याभिषेक (सभा० २४ । ४३) । राजसूय यज्ञके उपलक्ष्यमें इनके द्वारा युधिष्ठिरको विपुल धनराशिकी भेंट (सभा० ३३ । १३) । राजसूय यज्ञमें भीष्मके आदेशपर सहदेवद्वारा इनकी अग्रपूजा (सभा० ३६ । ३०) । इनके प्रति शिशुपालके आक्षेपपूर्ण वचन (सभा० ३७ अध्याय) । भीष्मद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (सभा० ३८ । ६–२९) । भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका प्रकृतिपर प्रभाव; अवतारकालमें महर्षियों, देवर्षियों आदिका आगमन तथा इन्द्रद्वारा भगवान्‌से प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९७) । वसुदेवजीका नवजात शिशु श्रीकृष्णको कंसके भयसे गोकुलमें नन्दगोपके घर छिपा देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८) । इनके पदाघातसे दही आदिके मटुकोंसे भरे छकड़ेका उलट जाना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८) । इनके द्वारा पूतनाका वध, यशोदा मैयाका इन्हें ऊखलमें बाँधना, इनके द्वारा यमलार्जुनका उद्धार (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८) । इनकी सात वर्षकी अवस्थामें वेषभूषा, खेल-कूद, मनोरञ्जन और इनके द्वारा वत्स-चारण (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९९) । श्रीकृष्णका अकेले वृन्दावनमें जाना, इनकी शोभा और वन-विहार तथा इनके द्वारा कालिय नागका मानमर्दन एवं अन्यत्र प्रेषण; इनका बलभद्रजीके साथ वन-विहार (सभा० ३८ । पृष्ठ ८००) । इनके द्वारा इन्द्रका मान-भङ्ग और गोवर्धन-धारण । देवेन्द्रद्वारा इनका 'गोविन्द' नामकरण और 'गवेन्द्र' पदपर अभिषेक । इनके द्वारा अरिष्टासुर, केशीनामक दैत्य, आन्ध्रदेशीय मल्ल चाणूर, कंसके सेनापति 'सुनामा' का वध; इनके

द्वारा कंसके मनमें भयका उत्पादन और कुवलयापीडका वध, श्रीकृष्णद्वारा कंसका वध और उग्रसेनका राजाके पदपर अभिषेक (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१; ८०४) । बलरामजीके साथ इनका मथुरामें ही निवास, उज्जयिनीमें सान्दीपनि मुनिके यहाँ इन दोनों भाइयोंका अध्ययनके लिये जाना तथा चौंसठ कलाओंका अध्ययन एवं गुरुसेवा करना, इन्हें बारह दिनोंमें ही गजशिक्षा और अश्वशिक्षाकी प्राप्ति । इनका पुनः धनुर्वेदकी शिक्षाके लिये सान्दीपनिके यहाँ जाना और अवन्तीमें निवास करना; पचास दिन-रातमें ही दस अङ्गोंसे युक्त सुप्रतिष्ठित एवं रहस्यसहित धनुर्वेदका ज्ञान प्राप्त करना; सान्दीपनिपुत्रके मारनेवाले असुरका श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा वध; मरे हुए गुरुपुत्रको यमलोकसे लाकर इनके द्वारा गुरुदक्षिणा तथा ऐश्वर्यका दान (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०२) । चौंसठ कलाओंके नाम ये हैं—१–गीत (गाना), २–वाद्य (बाजा बजाना), ३–नृत्य (नाचना), ४–नाट्य (नाटक करना, अभिनय करना), ५–आलेख्य (चित्रकारी करना), ६–विशेषकच्छेद्य (तिलकके साँचे बनाना), ७–तण्डुल-कुसुमवलिविकार (चावलों और फूलोंका चौक पूरना), ८–पुष्पास्तरण (फूलोंकी सेज रचना तथा बिछाना), ९–दशन-वसनाङ्गराग (दाँतों, कपड़ों और अङ्गोंको रँगना या दाँतोंके लिये मञ्जन-मिस्सी आदि, वस्त्रोंके लिये रंग और रँगनेकी सामग्री तथा अङ्गोंमें लगानेके लिये चन्दन, केसर, मेंहदी, महावर आदि बनाना और उनके बनानेकी विधिका ज्ञान), १०–मणिभूमिका कर्म (ऋतुके अनुकूल घर सजाना), ११–शयनरचना (बिछावन वा पलंग बिछाना), १२–उदकवाद्य (जलतरंग बजाना), १३–उदकघात (पानीके छींटे आदि मारने वा पिचकारी चलाने और गुलाबपाससे काम लेनेकी विद्या), १४–चित्रयोग (अवस्था-परिवर्तन करना अर्थात् नपुंसक करना, जवानको बुड्ढा और बुड्ढेको जवान करना इत्यादि), १५–माल्यग्रन्थ-विकल्प (देवपूजनके लिये या पहननेके लिये माला गूँथना), १६–केश-शेखरा–पीड़-योजन (सिरपर फूलोंसे अनेक प्रकारकी रचना करना या सिरके बालोंमें फूल लगाकर गूँथना), १७–नेपथ्ययोग (देश-कालके अनुसार वस्त्र-आभूषण आदि पहनना), १८–कर्ण-पत्र-भंग (कानोंके लिये कर्णफूल आदि आभूषण बनाना), १९–गन्धयुक्ति (सुगन्धित पदार्थ, जैसे गुलाब, केवड़ा, इत्र, फुलेल आदि बनाना), २०–भूषण-भोजन, २१–इन्द्रजाल, २२–कौचुमारयोग (कुरूपको सुन्दर करना या मुँहमें और शरीरमें मलने आदिके लिये ऐसे उबटन आदि बनाना, जिनसे कुरूप भी सुन्दर हो जाय), २३–हस्तलाघव (हाथकी सफाई, फुर्ती या लाग), २४–चित्रशाका-पूप-भक्ष्यविकार-क्रिया (अनेक प्रकारकी तरकारियाँ; पूप और खानेके पकवान बनाना, सूपकर्म), २५–पान-करसरागासव-भोजन (पीनेके लिये अनेक प्रकारके शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), २६–सूचीकर्म (सीना, पिरोना), २७–सूत्रकर्म (रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागेसे तरह-तरहके बेल-बूटे बनाना), २८–प्रहेलिका (पहेली या बुझौवल कहना और बूझना), २९–प्रतिमाला (अन्त्याक्षरी अर्थात् श्लोकका अन्तिम अक्षर लेकर उसी अक्षरसे आरम्भ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, बैतबाजी), ३०–दुर्वाचकयोग (कठिन पदों या शब्दोंका तात्पर्य निकालना), ३१–पुस्तक-वाचन (उपयुक्त रीतिसे पुस्तक पढ़ना), ३२–नाटिका-ख्यायिका-दर्शन (नाटक देखना या दिखलाना), ३३–काव्य-समस्या-पूर्ति, ३४–पट्टिकावेत्रवाणविकल्प (नेवाड़, बाध या बेंतसे चारपाई आदि बुनना), ३५–तर्क-कर्म (दलील करना या हेतुवाद), ३६–तक्षण (बढ़ई; संगतराश आदिका काम करना), ३७–वास्तुविद्या (घर बनाना; इंजीनियरी), ३८–रूप्यरत्न-परीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातुओं और रत्नोंको परखना), ३९–धातुवाद (कच्ची धातुओंको साफ करना या मिली धातुओंको अलग-अलग करना), ४०–मणिराग-ज्ञान (रत्नोंके रंगोंको जानना), ४१–आकर-ज्ञान (खानोंकी विद्या), ४२–वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षोंका ज्ञान; चिकित्सा और उन्हें रोपने आदिकी विधि), ४३–मेष–कुक्कुट-लावक-युद्धविधि (भेंड़े, मुर्गे, बटेर, बुलबुल आदिको लड़ानेकी विधि), ४४—शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना), ४५—उत्सान (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि दबाना), ४६—केश-मार्जनकौशल(बालोंका मलना और तेल लगाना), ४७–अक्षर-मुष्टिकाकथन (करपलई), ४८—म्लेच्छितकलाविकल्प (म्लेच्छ या विदेशी भाषाओंका जानना), ४९—देशभाषा-ज्ञान (प्राकृतिक बोलियोंको जानना), ५०–पुष्पशकटिका-निमित्तज्ञान (दैवीलक्षण, जैसे बादलकी गरज, बिजलीकी चमक इत्यादि देखकर आगामी घटनाके लिये भविष्यवाणी करना), ५१–यन्त्रमातृका (यन्त्रनिर्माण), ५२—धारण-मातृका (स्मरण बढ़ाना), ५३–सम्पाठ्य (दूसरेको कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना), ५४–मानसी काव्य-क्रिया (दूसरेका अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरंत कविता करना या मनमें काव्य करके शीघ्र कहते जाना), ५५—क्रियाविकल्प (क्रियाके प्रभावको पलटना), ५६—छलितकयोग (छल या ऐय्यारी करना), ५७—अभिधान (कोष-छन्दोज्ञान), ५८—वस्त्रगोपन

(वस्त्रोंकी रक्षा करना), ५९—द्यूतविशेष (जूआ खेलना), ६०—आकर्षण-क्रीड़ा (पासा आदि फेंकना), ६१—बाल-क्रीड़ाकर्म (लड़का खेलाना), ६२—वैनायिकीविद्या-ज्ञान (विनय और शिष्टाचार, इल्मे इख्लाक वो आदाब), ६३—वैजयिकी विद्याज्ञान, ६४—वैतालिकी विद्याज्ञान ॥

—हिंदी शब्दसागरसे

श्रीकृष्णको गदा और परिघके युद्धमें तथा सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें उत्कृष्ट स्थानकी प्राप्ति और समस्त लोकोंमें उनकी ख्याति (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०३) । इनका मथुरा छोड़कर द्वारकामें जाना तथा इनके द्वारा बड़े-बड़े असुरोंका वध (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०४)। भौमासुरको मारनेके लिये इनसे इन्द्रकी प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०६) श्रीकृष्ण-द्वारा नरकासुरको मारकर माता अदितिके कुण्डल ला देनेकी प्रतिज्ञा । इनके द्वारा मुरनामक असुर, निशुम्भ, हयग्रीव, विरूपाक्ष, पञ्चजन तथा नरकासुरका वध (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०७) । भूमिद्वारा इनको कुण्डल-दान (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०८) । मणिपर्वतपर बने हुए नरकासुरके अन्तःपुरमें इनका प्रवेश तथा नरकासुर द्वारा अपहरण करके लायी हुई कन्याओं-की गान्धर्व विवाह करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०८—८१०) । उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीकृष्णका उन्हें द्वारका भेजना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८११) । इनका मणिपर्वतको गरुडपर लादकर बलरामजी और इन्द्रके साथ स्वर्गलोकमें जाना, मेरुपर्वतके मध्यशिखरपर पहुँचकर श्रीकृष्ण द्वारा देवस्थानोंका दर्शन; फिर देवलोकमें जाकर इन्द्र-भवनके निकट इनका गरुड़से उतरना, देवताओंद्वारा इनका स्वागत तथा इनका माता अदितिके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें उनके कुण्डल अर्पित कर देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८११)। देवमाता अदिति और इन्द्रपत्नी शचीद्वारा श्रीकृष्ण एवं सत्यभामाका सत्कार तथा वहाँसे लौटकर इन सबका द्वारकामें आगमन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२) । इनके द्वारा मणिपर्वत (प्राग्ज्योतिषपुर) से लायी गयी धनराशिका वृष्णिवंशियोंमें वितरण (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१८) । इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१९) । शोणितपुरमें इनका शिवजीसे युद्ध और उनकी पराजय (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२३) । इनके द्वारा बाणासुरकी भुजाओंका छेदन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२३) । इनका रुक्मीको भयभीत करना, जारूथीमें आहुति, क्राथ और शिशुपालको पराजित करना, शैव्य, दन्तवक्र तथा शतधन्वाको भी हराना; इन्द्रद्युम्न, कालयवन, कशेरुमान्‌का वध करना । द्युमत्सेनके साथ इनका युद्ध, महाबली गोपति और तालकेतुका इनके द्वारा वध, पाण्ड्य, पौण्ड्र, मत्स्य, कलिङ्ग और अङ्ग आदि अनेक देशोंके राजाओंकी एक साथ ही पराजय (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२४)। इनके द्वारा बभ्रुकी पत्नीका उद्धार; पीठ, कंस, पैठक तथा अतिलोमा नामक असुरोंका वध; जम्भ, ऐरावत, विरूप और शम्बर आदि असुरोंका वध; भोगवतीमें वासुकि नागको जीतकर इनके द्वारा रोहिणीकुमार गदका उद्धार (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२५)। इनकी गोदमें आते ही शिशुपालकी दो भुजाओं तथा तीसरी आँखका विनाश (सभा० ४३ । १८) । 'शिशुपालके सौ अपराध क्षमा कर दूँगा' ऐसा कहकर इनका श्रुतश्रवा (अपनी बुआ) को आश्वासन (सभा० ४३ । २४) । इनके द्वारा शिशुपालका वध (सभा० ४५ । २५) । यज्ञकी समाप्तिपर श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरका अभिनन्दन (सभा० ४५ । ३९—४३) । राजसूय यज्ञमें ऋषियोंसहित श्रीकृष्णने युधिष्ठिरका अभिषेक किया (सभा० ५३ । १५-१६) । द्रौपदीकी लाज रखनेके लिये इनका अव्यक्तरूपसे उसके चीरमें प्रवेश करके उसे बढ़ाना (सभा० ६८ । ४७) । इनके द्वारा रोती हुई द्रौपदीको आश्वासन-प्रदान (वन० १२ । १२८—१३२) । इनका जुएके दोष बताते हुए पाण्डवोंपर आयी हुई विपत्तिमें अपनी अनुपस्थिति-को कारण मानना (वन० १३ अध्याय) । इनके द्वारा शाल्वके साथ युद्ध करने तथा सौभ विमानसहित उसके नष्ट करनेका संक्षिप्त वर्णन (वन० १४ अ० से २२ अध्याय-तक) । इनका शाल्वके साथ भीषण युद्ध (वन० २० अध्याय) । इनका शाल्वकी मायासे मोहित होना (वन० २१ । २२) । श्रीकृष्णद्वारा सौभविमानसहित शाल्वका वध (वन० २२ । ३६-३७) । इनका पाण्डवोंसे सम्मानित हो सुभद्रा और अभिमन्युको साथ लेकर द्वारकाको प्रस्थान (वन० २२ । ४७-४८) । प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंसे भेंट और सात्यकिके वचनोंका इनके द्वारा समर्थन (वन० १२० । २३—२६) । काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास इनका आगमन और इनके द्वारा उन्हें आश्वासन (वन० १८३ । १६—३६) । मार्कण्डेयजीको कथा कहनेके लिये प्रेरित करना (वन० १८३ । ५०) । द्रौपदीके स्मरण करनेपर पाण्डवोंके आश्रममें प्रकट होना, बटलोईमेंसे सागका पत्ता खाकर त्रिलोकीको तृप्त करना (वन० २६३ । १८—२५) । उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहके अवसरपर जाकर युधिष्ठिरको बहुत-सा धन भेंट करना (विराट० ७२ । २४-२५) । राजा विराटकी सभामें कौरवोंके अत्याचार और पाण्डवोंके धर्म-व्यवहारका वर्णन करते हुए किसी सुयोग्य दूतको कौरवोंके यहाँ भेजनेका प्रस्ताव (उद्योग० १ अध्याय) । द्रुपदको कार्यभार सौंपकर इनका द्वारका-को प्रस्थान (उद्योग० ५ । ११) । दुर्योधन और अर्जुन दोनोंकी सहायता करनेके लिये स्वीकृति देना (उद्योग० ७ । १६) । अर्जुनका सारथ्य कर्म स्वीकार करना (उद्योग० ७ । ३८) । संजयको प्रत्युत्तर देते हुए इनके द्वारा कर्मयोगका समर्थन (उद्योग० २९ । ६—१६) । इनके द्वारा वर्णधर्मका निरूपण (उद्योग० २९ । २२—२६) । कौरवोंके अन्यायका उद्घाटन करते

हुए इनका संजयद्वारा धृतराष्ट्रको चेतावनीका संदेश (उद्योग० २९ । ३१–५८)। संजयद्वारा कौरवोंके लिये संदेश देना (उद्योग० ५९ । १८–२९) । शान्ति-स्थापनार्थ कौरवसभामें जानेके लिये उद्यत होना (उद्योग० ७२ । ७९–८१) । कौरवोंके अत्याचारोंका वर्णन करके युधिष्ठिरको युद्धके लिये प्रोत्साहन देना (उद्योग० ७३ अध्याय)। भीमसेनको उत्तेजित करना (उद्योग० ७५ अध्याय) । भीमसेनको आश्वासन देना (उद्योग० ७७ अध्याय) । अर्जुनकी बातोंका उत्तर देना (उद्योग० ७९ अध्याय) । श्रीकृष्णके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन (उद्योग० ८२ । ४४–४९) । सात्यकिसहित रथपर आरूढ़ हो हस्तिनापुरको प्रस्थान (उद्योग० ८३ । २९)। मार्गमें इनका दिव्य महर्षियोंके दर्शन करना (उद्योग० ८३ । ६०) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें वृकस्थलमें विश्राम (उद्योग० ८४ । २०-२१) । श्रीकृष्णका हस्तिना-पुरमें स्वागत (उद्योग० ८९ । ५) । इनका राज-महलमें प्रवेश (उद्योग० ८९ । ११) । विदुरके गृहमें पदार्पण (उद्योग० ८९ । २२) । कुन्तीसे मिलकर उन्हें आश्वासन देना (उद्योग० ९० । ९१–९९)। दुर्योधन-से उसके निमन्त्रणको अस्वीकार करनेका कारण बताना (उद्योग० ९१ । २४–३२) । विदुरके घर इनका भोजन और विश्राम (उद्योग० ९१ । ४१) । विदुरजीसे कौरवसभामें जानेका औचित्य बतलाना (उद्योग० ९३ अध्याय) । श्रीकृष्णका कौरवसभामें प्रवेश (उद्योग० ९४ । ३३) । कौरवसभामें इनका प्रभावशाली भाषण (उद्योग० ९५ अध्याय) । दुर्योधन-को पाण्डवोंसे संधि करनेके लिये समझाना (उद्योग० १२४ । ८–६२) । दुर्योधनको फटकारना (उद्योग० १२८ । २–३१) । कंस और दैत्यदानवोंका दृष्टान्त देते हुए दुर्योधनको कैद करनेकी सलाह देना (उद्योग० १२८ । ५०) । दुर्योधनद्वारा कैद किये जानेकी बात सुनकर इनकी सिंहगर्जना (उद्योग० १३० । २४–२९)। कौरवसभामें इनके विश्वरूपका दर्शन (उद्योग० १३१ । ५–१३) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको अदृश्य नेत्र प्रदान करना (उद्योग० १३१ । १९) । कौरवसभासे प्रस्थान (उद्योग० १३१ । ३७-३८) । कुन्तीके पास जाकर पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश पूछना (उद्योग० १३२ । ४)। कर्णके साथ मन्त्रणा तथा उपप्लव्यनगरको प्रस्थान (उद्योग० १३७ । २९-३०) । कर्णको पाण्डव-पक्षमें आनेके लिये समझाना (उद्योग० १४० । ६–२९)। कर्णसे पाण्डवोंकी निश्चित विजयका प्रतिपादन करते हुए युद्धकी तिथि निर्धारित करना (उद्योग० १४२ । १७–२०) । युधिष्ठिरसे भीष्मके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४७ । १६–४३) । युधिष्ठिरसे द्रोणाचार्यके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । २–१६) । युधिष्ठिरसे विदुरके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । १८–२६) । युधिष्ठिरसे गान्धारीके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । २९–३६) । युधिष्ठिरसे धृत-राष्ट्रके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४९ अध्याय) । कौरवसभामें अपने किये हुए प्रयत्नोंका वर्णन करके दण्डपर ही जोर देना (उद्योग० १५० । १८) । धृष्ट-द्युम्नको प्रधान सेनापति बनानेका समर्थन (उद्योग० १५१ । ४९) । युधिष्ठिरको युद्ध करना ही कर्तव्य बतलाना (उद्योग० १५४ । १५) । दुर्योधनके संदेश-का उत्तर देना (उद्योग० १६२ । ६ उद्योग० १६२ । ५७–६३) । कौरवसेनाको मारनेके लिये अर्जुनको आदेश (भीष्म० २२ । १६) । अर्जुनको दुर्गाकी स्तुति करनेके लिये कहना (भीष्म० २३ । २) । अर्जुनको गीताका उपदेश देना (भीष्म० २६ । ११ से ४२ अध्यायतक) । कुरुक्षेत्रमें इनके द्वारा पाञ्च-जन्य नामक शङ्खका बजाया जाना (भीष्म० २५ । १५) । सांख्ययोगका वर्णन (भीष्म० २६ । ११–३०) । अज्ञानी और ज्ञानवान्के लक्षण तथा रागद्वेषसे रहित होकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा (भीष्म० २७ । २५–३५) । फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञोंका कथन और ज्ञानकी महिमा (भीष्म० २८ । २४–४२) । सांख्ययोगी और निष्काम कर्मयोगीके लक्षण तथा ज्ञानयोगका वर्णन (भीष्म० २९ । ७–२६) । योगभ्रष्ट पुरुषकी गति और ध्यानयोगीकी महिमा (भीष्म० ३० । ३७–४७) । आसुरी स्वभाववालोंकी निन्दा और भगवद्भक्तोंकी प्रशंसा तथा अन्य देवताओंकी उपा-सनाका वर्णन (भीष्म० ३१ । १३–२३) । ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिका वर्णन (भीष्म० ३२ । ३–७)। सकाम और निष्काम उपासनाका फल और निष्काम भगवद्भक्तिकी महिमा (भीष्म० ३३।२०–३४) । श्रीकृष्ण-द्वारा अपनी विभूतियों और योगशक्तिका कथन (भीष्म० ३४ । १९–४२) । इनके द्वारा अपने विश्वरूपका वर्णन और फलसहित अनन्यभक्तिका कथन (भीष्म० ३५ । ५–१८; ५५) । साकार-निराकारके उपासकों और भगवत्प्राप्तिके उपाय तथा भगवत्प्राप्त पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन (भीष्म० ३६ । १–२०) । क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुषका वर्णन (भीष्म० ३७ । १–३४) । सत्, रज और तम तथा भगवत्प्राप्तिके उपाय और गुणातीत पुरुषके लक्षण (भीष्म० ३८ । ५–२७) । जीवात्माके विषय, प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूप तथा क्षर-अक्षर तथा पुरुषोत्तमका वर्णन (भीष्म० ३९ ।

७–२०)। दैवी और आसुरी सम्पदा तथा आसुरी सम्पदावालोंके लक्षण और उनके अधोगतिका वर्णन (भीष्म० ४० । १–२०)। आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद (भीष्म० ४१ । ७–२२)। ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुखके पृथक्-पृथक् भेद (भीष्म० ४२ । १९–४०)। कर्णको पाण्डवोंके पक्षमें आनेके लिये समझाना (भीष्म० ४३।९–९१)। भीष्मके पराक्रमसे चिन्तित हुए युधिष्ठिरको आश्वासन देना (भीष्म० ५० । २६–३०)। चक्र लेकर भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना (भीष्म० ५९ । ८८–८९)। भीष्मद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (भीष्म० ६५। २५ से ६८ अ० तक)। भीष्मको मारनेके लिये अर्जुनको चेतावनी (भीष्म० १०६ । ३३–३७)। चाबुक लेकर भीष्मके वधके लिये दौड़ना (भीष्म० १०६ । ५५–५७)। भीष्मके पराक्रमसे दुःखित युधिष्ठिर-को सान्त्वना देना (भीष्म० १०७ । २६–४०)। भीष्मके पास चलनेके लिये युधिष्ठिरके प्रस्तावकी स्वीकृति (भीष्म० १०७ । ५२–५५)। भीष्म वधके लिये उद्यत न होनेवाले अर्जुनको समझाना (भीष्म० १०७ । ९६–१०२)। भीष्मका वध करनेके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (भीष्म० ११८ । ३५-३६)। भीष्मके मारे जानेपर युधिष्ठिरसे वार्तालाप (भीष्म० १२० । ६६-६७)। धृतराष्ट्रद्वारा इनकी लीलाओंसहित महिमा-का वर्णन (द्रोण० ११ । १–४०)। भगदत्तद्वारा अर्जुनपर चलाये हुए वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर लेना (द्रोण० २९ । १८)। अर्जुनके पूछनेपर वैष्णवास्त्रका रहस्य बताकर भगदत्तको मारनेका आदेश देना (द्रोण० २९ । २५- ३४; ४४-४५)। अभिमन्यु-वधसे दुखी होकर विलाप करते हुए अर्जुनको शान्त करना (द्रोण० ७२ । ६६–७४)। अर्जुनसे जयद्रथकी रक्षाका समाचार बताना (द्रोण० ७५ अ० में)। पुत्रशोकसे दुखी सुभद्राको आश्वासन देना (द्रोण० ७७ । १२–२६)। विलाप करती हुई द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तराको आश्वासन देना (द्रोण० ७८ । ४०–४२)। अर्जुनकी विजयके लिये समयपर रथ तैयार करके लानेके लिये दारुकको आदेश देना (द्रोण० ७९ । २१–४२)। सोते हुए अर्जुनको स्वप्नमें दर्शन देना और उनसे वार्तालाप करके शिवजीके पास ले जाना (द्रोण० ८० । २–४९)। इनके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (द्रोण० ८० । ५५–६४)। जयद्रथ-वधके लिये युधिष्ठिरको आश्वासन (द्रोण० ८३ । २१–२८)। इनके द्वारा शङ्ख बजाया जाना (द्रोण० ८८ । २१)। द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़नेके लिये अर्जुनको प्रेरणा (द्रोण० ९१ । ३०-३१)। घोड़ोंको पिलानेके लिये जल प्रकट करनेके हेतु अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० ९९ । ५८)। इनके द्वारा संग्रामभूमिमें अश्वपरिचर्या (द्रोण० १०० । १०–१६)। अर्जुनको दुर्योधनका वध करनेके लिये प्रोत्साहन (द्रोण० १०२ । १–१८)। दुर्योधनपर बाणोंको विफल होते देख अर्जुनको उपालम्भ (द्रोण० १०३ । ६–१०)। अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना (द्रोण० १४१ । १३–२५)। भूरिश्रवाके चंगुलसे सात्यकिको छुड़ानेके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० १४२ । ६४-६५)। भूरिश्रवाको मुक्त होनेका वरदान (द्रोण० १४३ । ४८)। मायाद्वारा अन्धकारकी सृष्टि करके जयद्रथ-वधके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० १४६ । ६२–७२)। जयद्रथके सिरको उसके पिताकी गोदमें डालनेके लिये कहना और उसका रहस्य बताना (द्रोण० १४६ । १०४–११९)। जयद्रथ-वधके पश्चात् मायारूपी अन्धकारको समेट लेना (द्रोण० १४६ । १३२)। कर्णके साथ अर्जुनको युद्ध करनेसे मना करना (द्रोण० १४७ । ३३–३६)। जयद्रथ-वधके बाद अर्जुनको बधाई देना (द्रोण० १४८ । २५–३२)। अर्जुनको संग्रामका दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना (द्रोण० १४८ । ३६–५९)। जयद्रथ-वधके बाद युधिष्ठिरको विजयका समाचार बताना (द्रोण० १४९ । २)। युधिष्ठिरके क्रोधको ही शत्रु-वधमें कारण बताना (द्रोण० १४९ । ४५–५१)। युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेसे रोकना (द्रोण० १६२ । ४७–५१)। आधी रातके समय कर्णके साथ अर्जुनके युद्धका अनौचित्य बताकर घटोत्कचको भेजनेके लिये अनुमति देना (१७३ । ३५–४१)। घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश देना (द्रोण० १७३ । ४५–५८)। अर्जुनसे भिन्न-भिन्न महारथियोंका सामना करनेके लिये व्यवस्था बताना (द्रोण० १७७ । ३३–३६)। अलायुधका वध करनेके लिये घटोत्कचको प्रेरित करना (द्रोण० १७८ । २-३)। अर्जुनद्वारा घटोत्कचके वधसे प्रसन्नताका कारण पूछे जानेपर कर्णकी प्रशंसा करते हुए अपनी प्रसन्नताका कारण बताना (द्रोण० १८० । ११–३३)। अर्जुनसे जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वधका कारण बताना (द्रोण० १८१ । २–३३)। सात्यकिसे कर्णद्वारा अर्जुनपर शक्ति न छोड़े जानेका कारण बताना (द्रोण० १८२ । ३५–४६)। घटोत्कच-वधसे दुखी युधिष्ठिरको समझाना (द्रोण० १८३ । २४–२६)। द्रोणाचार्यके वधकी युक्ति बताना (द्रोण० १९० । १०–१२)। युधिष्ठिरको छलपूर्वक अश्वत्थामाके मारे जानेकी झूठी बात कहनेको विवश

करना (द्रोण० १९० । ४६-४७) । नारायणास्त्रको शान्त करनेका उपाय बताना (द्रोण० १९९ । ३८–४२) । भीमसेनको रथसे खींचकर नारायणास्त्रको शान्त करना (द्रोण० २०० । १५–१७) । अर्जुनको युद्धस्थलका भीषण दृश्य दिखाना (कर्ण० १९ । २८–५३) । अश्वत्थामाके साथ युद्धमें शिथिल देखकर अर्जुनको चेतावनी देना (कर्ण० ५६ । १३५–१३८) । अर्जुनको युद्ध-भूमिका दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना (कर्ण० ५८ । १०–४१) । अर्जुनसे धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके चंगुलसे छुड़ानेको कहना (कर्ण० ५९ । ४७–४९) । अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये उन्हें उत्साहित करना और भीमसेनके पराक्रमका वर्णन करना (कर्ण० ६० अध्याय) । घायल युधिष्ठिरको देखनेके बहाने अर्जुनको कर्णके पाससे हटा लेना (कर्ण० ६४ । ६६) । अर्जुनके साथ युधिष्ठिरके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करना (कर्ण० ६५ । १७) । युधिष्ठिरके वधसे अर्जुनको रोकनेके प्रसंगमें बलाक व्याध और कौशिक ब्राह्मणकी कथा कहकर समझाना और युधिष्ठिरको 'तू' शब्द कहनेमात्रसे अर्जुनकी प्रतिज्ञा-पूर्ति बताना (कर्ण० ६९ अध्याय) । अर्जुनको आत्महत्यासे बचाना (कर्ण० ७० । २३-२४) । युधिष्ठिरको प्रसन्न करना (कर्ण० ७० । ४९–५५) । अर्जुनको उपदेश (कर्ण० ७१ । ३–१२) । कर्ण-वधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ७२ । १७ से ७३ अध्याय-तक) । कर्ण वधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ८६ । २–१६) । कर्णवधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ८९ । ४३–४८) । कर्णके सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना (कर्ण० ९० । २९–३१) । धर्मकी दुहाई देनेपर कर्णको चेतावनी देना (कर्ण० ९१ । १–१४) । कर्ण-वधका शुभ समाचार सुनानेके लिये अर्जुनसे युधिष्ठिरके पास चलनेको कहना और सैनिकोंको युद्धकी व्यवस्थाका आदेश देना (कर्ण० ९६ । २–११) । युधिष्ठिरके पास पहुँचकर कर्ण-वधका समाचार सुनाना (कर्ण० ९६ । १८–२३) । शल्यका वध करनेके लिये युधिष्ठिरको उत्साहित करना (शल्य० ७ । २५–४१) । अर्जुनसे दुर्योधनको मारनेके लिये कहना (शल्य० २७ । ३–१२) । युधिष्ठिरको क्रियात्मक प्रयोगद्वारा दुर्योधनको मारनेके लिये सलाह देना (शल्य० ३१ । ६–१५) । युधिष्ठिरको फटकारना (शल्य० ३३ । २–१६) । अर्जुनसे भीमसेन और दुर्योधनके बलाबलका वर्णन करके मायाद्वारा दुर्योधनको मारनेकी सलाह देना (शल्य० ५८ । ३–२०) । दुर्योधनके वधसे कुपित बलरामजीको समझाना (शल्य० ६० । १४–२५के बादतक)। भीमसेनद्वारा किये जाते हुए अधर्मपूर्ण बर्तावको आप चुपचाप देखते क्यों हैं ? उन्हें रोकते क्यों नहीं ? यह युधिष्ठिरसे पूछना (शल्य० ६० । ३३–३४) । इनके द्वारा दुर्योधनपर आक्षेप (शल्य० ६१ । १८–२३) । दुर्योधनद्वारा किये गये आक्षेपोंका इनकी ओरसे उत्तर (शल्य० ६१ । ३९–५०) । इनके द्वारा पाण्डवोंका समाधान (शल्य० ६१ । ६१-६९)। इनका अर्जुनको रथसे उतरनेके लिये आदेश देना (शल्य० ६२ । ९-१०) । अर्जुनद्वारा रथके दग्ध होनेका कारण पूछनेपर इनका उत्तर (शल्य० ६२ । १८-१९)। इनके द्वारा युधिष्ठिरका अभिनन्दन (शल्य० ६२ । २१–२७) । युधिष्ठिरके भेजनेसे हस्तिनापुरको जाना (शल्य० ६२ । ४५ शल्य० ६३ । ३४) । धृतराष्ट्रको आश्वासन देना (शल्य० ६३ । ४०–५८) । गान्धारीको प्रबोधन (शल्य० ६३ । ५९–६५)। हस्तिना-पुरसे शिविरको लौटना (शल्य० ६३ । ७८) । अश्वत्थामाकी चपलता और क्रूरताके प्रसङ्गमें सुदर्शनचक्रके माँगनेकी बात सुनाते हुए युधिष्ठिरको उससे भीमसेनकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना (सौप्तिक० १२ अध्याय) । अर्जुन और युधिष्ठिरको साथ लेकर भीमसेनकी रक्षाके लिये जाना (सौप्तिक० १३ । १–९) । अर्जुनको ब्रह्मास्त्र प्रकट करनेका आदेश देना (सौप्तिक० १४ । २-३) । इनके द्वारा अश्वत्थामाको शाप (सौप्तिक० १६ । ८–१६) । महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन (सौप्तिक० १७ । ६–२६) । इनका धृतराष्ट्रको समझाना (स्त्री० १२ । २३–३०) । धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना (स्त्री० १३ । २–११)। गान्धारीद्वारा अपनेको दिये गये शापका समर्थन (स्त्री० २५ । ४८-४९) । गान्धारीको सान्त्वना देना (स्त्री० २६ । १–५) । नारद-संजय-संवादरूपमें षोडशराजकीयोपाख्यान सुनाकर युधिष्ठिर-को समझाना (शान्ति० २९ अध्याय) । युधिष्ठिरके पूछनेपर नारद-पर्वत-उपाख्यान सुनाना (शान्ति० ३० अध्याय) । व्यासजीकी बात माननेके लिये युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ३७ । २१–२५) । युधिष्ठिरसे चार्वाकको प्राप्त हुए वर आदिका वर्णन करना (शान्ति० ३९ अध्याय) । भीष्मकी प्रशंसा और युधिष्ठिरको उनके पास चलनेका आदेश (शान्ति० ४६ । ११–२३) । युधिष्ठिरको परशुरामोपाख्यान सुनाना (शान्ति० ४९ अध्याय) । भीष्मजीके गुण-प्रभावका सविस्तर वर्णन करते हुए उनसे युधिष्ठिरका शोक दूर करनेके लिये कहना (शान्ति० ५० । १३-३८) । भीष्मकी प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिरको धर्मोपदेश करनेका आदेश

(शान्ति० ५१ । १०–१८) । धर्मोपदेशके लिये भीष्मको वरदान (शान्ति० ५२ । १४–२१) । इनकी प्रातश्चर्या (शान्ति० ५३ । १–९) । भीष्मद्वारा ही धर्मोपदेश होनेका कारण बताते हुए उन्हें उपदेश करनेको कहना (शान्ति० ५४ । २५–३९) । भीष्मसे युधिष्ठिरके लज्जित और भयभीत होनेका कारण बताना (शान्ति० ५५ । ११–१३) । जाति-भाइयोंमें फूट न पड़नेके विषयमें नारदजीसे पूछना (शान्ति० ८१ अध्याय) । इन्हींसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन करना (शान्ति० २०७ अध्याय) । उग्रसेनसे नारदजीके गुणोंका वर्णन करना (शान्ति० २३० । ४–२४) । अर्जुनको अपने नामोंकी व्युत्पत्ति बताना (शान्ति० ३४१ । ८–५१) । अर्जुनसे सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन करना (शान्ति० ३४२ । ३–२१) । अर्जुनसे अपने नामोंकी व्याख्या करना (शान्ति० ३४२ ।६७–११६) । युधिष्ठिरसे महादेवजीके माहात्म्यकी कथाके प्रसंगमें उपमन्युकी कथा सुनाना और अपनी तपस्या तथा दर्शन पानेका वृत्तान्त बताना (अनु० १४ अध्याय) । भगवती उमासे आठ वरदान माँगना (अनु० १५ । ६) । उपमन्युके साथ शिवजीके विषयमें वार्तालाप (अनु० १६ अध्याय) । इनके द्वारा भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन (अनु० १८ । ६१–८३) । नारदजीसे पूजनीय पुरुषोंके लक्षण पूछना (अनु० ३१ । २–४) । पृथ्वीसे गृहस्थोंके पापनाशक अनुष्ठानके विषयमें प्रश्न करना (अनु० ३४ । २१) । गिरगिटयोनिसे नृगका उद्धार करना (अनु० ७० । ७) । नृगसे उनकी दुर्गतिका कारण पूछना (अनु० ७० । ८-९) । ब्राह्मणका धन न लेनेके विषयमें घोषणा करना (अनु० ७० । ३१) । पृथ्वी देवीसे गृहस्थधर्मके विषयमें पूछना (अनु० ९७ । ४) । पर्वतको जलाकर पुनः उसे प्रकृतिस्थ करना (अनु० १३९ । १६–२१)। ऋषियोंके पूछनेपर इसका रहस्य बताना (अनु० १३९ । ३०–४४) । भीष्मजीद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (अनु० १५८ अध्याय) । युधिष्ठिरको ब्राह्मणकी महिमा सुनानेके प्रसंगमें प्रद्युम्नके पूछनेपर दुर्वासाका चरित्र कहना (अनु० १५९ अध्याय) । युधिष्ठिरके प्रति शिवजीकी महिमाका वर्णन करना (अनु० १६० अध्याय से १६१ अध्यायतक) । भीष्मको देहत्यागके लिये अनुमति प्रदान करना (अनु० १६७ । ४६-४७) । भीष्मके लिये शोक करती हुई गङ्गाको आश्वासन देना (अनु० १६८ । ३०–३५)। शोकाकुल युधिष्ठिरको समझाना (आश्व० २ । २–८) । युधिष्ठिरको विविध दृष्टान्तोंद्वारा समझाना (आश्व० ११ अ० से १३ अध्यायतक) । अर्जुनसे अपने द्वारका जानेका प्रस्ताव करना (आश्व० १५ । १२–३४) । अर्जुनके पूछनेपर पुनः गीताका ज्ञान सिद्ध महर्षि और काश्यपके संवादरूपसे सुनाना (आश्व० १६ । ९ से १८ अध्याय तक) । पुनः ब्राह्मणगीताके द्वारा ज्ञानोपदेश करना (आश्व० २० अध्यायसे ३४ अध्यायतक) । अर्जुनके प्रति गुरु-शिष्यके संवादरूपमें ब्रह्मा और महर्षियोंके प्रश्नोत्तररूप मोक्षधर्मका वर्णन (आश्व० ३५ अध्यायसे ५१ अध्यायतक) । युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर सुभद्रा और सात्यकिके साथ द्वारकाको प्रस्थान (आश्व० ५२ । ५४–५८) । उत्तङ्क मुनिके पूछनेपर कौरवों-पाण्डवोंका समाचार सुनाना (आश्व० ५३ । १५–१८) । उत्तङ्क मुनिसे अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करना (आश्व० ५४ । २–१९) । उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना (आश्व० ५५ । ४–६) । उत्तङ्क मुनिको दर्शन देकर चाण्डालरूपधारी इन्द्रका रहस्य बताते हुए मरुदेशमें उत्तङ्क नामक मेघोंद्वारा वर्षा होनेका वर देना (आश्व० ५५ । २६–३७) । रैवतक पर्वतपर होनेवाले महोत्सवमें सम्मिलित होना (आश्व० ५९ । ३-४) । उस महोत्सवसे अपने महलमें पधारना (आश्व० ५९ । १६) । वसुदेवजीके पूछनेपर महाभारतयुद्धका वृत्तान्त सुनाना (आश्व० ६० । ६–३६) । वसुदेवजीके पूछनेपर अभिमन्यु-वधका वृत्तान्त सुनाना (आश्व० ६१ । १५–४२) । इनके द्वारा अभिमन्युका श्राद्ध-कर्म (आश्व० ६२ । २–५) । इनका हस्तिनापुरमें आगमन और उत्तराके मृतबालकको जिलानेके लिये कुन्तीकी इनसे प्रार्थना (आश्व० ६६ अध्याय) । उत्तराके मृतबालकको इनके द्वारा जीवनदान (आश्व० ६९ । १६–२४) । उत्तराके उक्त शिशुका नामकरण (आश्व० ७० । ११-१२) । श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञके लिये सम्मति देना (आश्व० ७१ । २३–२६) । श्रीकृष्णका बलराम आदिके साथ आगमन और युधिष्ठिरको अर्जुनका संदेश सुनाना तथा उनके अधिक कष्ट उठानेका कारण बताना (आश्व० ८६। १३–२१) । ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेके सम्बन्धमें युधिष्ठिरको व्यासजीकी आज्ञा माननेके लिये कहना (आश्व० ८९ । १८-१९) । इनका युधिष्ठिरसे विदा लेकर बन्धुओंसहित द्वारकाको लौटना (आश्व० ८९ । ३७-३८) । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरको वैष्णवधर्म-सम्बन्धी विविध विषयोंका उपदेश (आश्व० ९२ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६३०८ से ६३५२ तक) । शापकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णका वृष्णिवंशियोंकी 'ऐसी ही भवितव्यता है' ऐसा कहकर नगरमें प्रवेश करना (मौसल० १ । २३-२४) । मदिरानिर्माण-निषेधकी आज्ञा जारी करना (मौसल० १ । २९–३१) ।

द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आज्ञा देना (**मौसल० २ अध्याय**)। सात्यकि और प्रद्युम्नको मारा हुआ देख श्रीकृष्णका कुपित हो एक मुट्ठी एरका उठाना और भोज तथा अन्धक कुलके प्रमुख योधाओंका संहार करना (**मौसल० ३। ३५-३७**)। साम्ब और गदके मारे जानेपर कुपित हुए श्रीकृष्णद्वारा समस्त यादवोंका संहार (**मौसल० ३। ४४-४७**)। श्रीकृष्णका बलरामजीको एक वृक्षके नीचे ध्यान लगाये बैठे हुए देखना और दारुकको अर्जुनके पास भेजकर संदेश कहलाना (**मौसल० ४। १-३**)। इनका बलरामजीसे अपनी प्रतीक्षाके लिये कहकर स्त्रियोंको कुटुम्बी जनोंके संरक्षणमें सौंपनेके लिये द्वारका जाना और पितासे अर्जुनके आनेतक स्त्रियोंका संरक्षण करनेकी बात कहकर स्वयं तपके लिये बलरामजीके पास जानेका विचार प्रकट करना (**मौसल० ४। ७-१०**)। उनका रोती हुई स्त्रियोंको आश्वासन दे अर्जुनके आनेकी बात बताकर चल देना और वनके एकान्त प्रदेशमें बलरामजीके पास जाकर उनके मुखसे एक विशाल सर्पको निकलकर समुद्रकी ओर जाते देखना (**मौसल० ४। १२-१३**)। बलरामजीके परमधाम-गमनके पश्चात् उनका वनमें विचरना ! बीती बातों और घटनाओंको याद करके उनपर विचार करना। गान्धारी और दुर्वासाके कथनको भी ध्यानमें लाना और परम-धामको जानेके लिये किसी निमित्तकी प्रतीक्षा करते हुए योगयुक्त होकर पृथ्वीपर लेटना, जरानामक व्याधके बाणसे तलुओंमें घाव हो जानेपर अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए ऊर्ध्वलोकको जाना, वहाँ उनका स्वागत होना और इन्द्र आदि देवताओंसे मिलना (**मौसल० ४। १८-२८**)। अर्जुनद्वारा इनके शरीरका दाह-संस्कार होना (**मौसल० ७। ३१**)। दिव्यधाममें इनकी नारायणरूपसे स्थिति (**स्वर्गा० ५। २४-२६**)। इनकी पटरानियोंमेंसे रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती तथा जाम्बवती—इन पाँचोंने पतिलोककी कामनासे अग्निमें प्रवेश किया। सत्यभामा तथा अन्य दो देवियोंने तपस्याका निश्चय करके वनमें प्रवेश किया (**मौसल० ७। ७३-७४**)। शेष सोलह हजार रानियाँ दस्युओंके हाथोंसे छूटकर सरस्वतीके जलमें कूद पड़ीं और स्वर्गमें भगवान्से जा मिलीं (**स्वर्गा० ५। २५**)। (इनकी सभी रानियोंसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण आदि प्रधान हैं।)

महाभारतमें आये हुए कृष्णके नाम—अच्युत, अधिदेव, अधोक्षज, आदिदेव, अज, अमध्य, अनादि, अनादिमध्यपर्यन्त, अनादिनिधन, अनाद्य, अनन्त, अन्धकवृष्णिनाथ, असित, आत्मा, अव्यक्त, अव्यय, भोजराजन्यवर्धन, भूतेश्वर, भूतपति भूतात्मा, भूतेश, चक्रधर, चक्रधारी, चक्रगदाभृत्, चक्रगदाधर, चक्रगदा-पाणि, चक्रपाणि, चक्रायुध, शैब्यसुग्रीववाहन, शम्भु, शङ्ख-चक्रगदाधर, शङ्खचक्रगदाहस्त, शङ्खचक्रगदापाणि, शङ्खचक्रासिपाणि, शार्ङ्गचक्रगदाधर, शार्ङ्गचक्रासिपाणि, शार्ङ्गधनुर्धर, शार्ङ्गधन्वा, शार्ङ्गगदापाणि, शार्ङ्गगदासि-पाणि, शार्ङ्गी, शौरि, शूलभृत्, शूली, दाशार्ह, दशार्ह-भर्ता, दशार्हाधिपति, दाशार्हकुलवर्धन, दाशार्हनन्दन, दाशार्हनाथ, दाशार्हसिंह, दाशार्हवीर, दामोदर, देवदेव, देवदेवेश, देवदेवेश्वर, देवकीमातः, देवकीनन्दन, देवकी-पुत्र, देवकीसुत, देवकीतनय, गदाग्रज, गदपूर्वज, गरुडध्वज, गोपाल, गोपेन्द्र, गोपीजनप्रिय, गोविन्द, हलधरानुज, हरि, हृषीकेश, जनार्दन, कंसकेशिनिषूदन, कंसनिषूदन, कौस्तुभभूषण, केशव, केशिहन्, केशिहन्ता, केशिनिषूदन, केशिसूदन, महाबाहु, पीतवासा, रमानाथ, रामानुज, सङ्कर्षणानुज, सर्वदाशार्हहर्ता, सर्वनागरिपुध्वज, सर्वयादवनन्दन, सत्य, सुपर्णकेतु, ताक्ष्यध्वज, ताक्ष्यलक्षण, त्रैलोक्यनाथ, त्रियुग, वासुदेव, वसुदेवपुत्र, वसुदेवसुत, वसुदेवात्मज, व्रजनाथ, वृष्णिशार्दूल, वृष्णिश्रेष्ठ, वृष्णि-कुलोद्वह, वृष्णिनन्दन, वृष्णिपति, वृष्णिप्रवर, वृष्णिप्रवीर, वृष्णिपुङ्गव, वृष्णिसत्तम, वृष्णिसिंह, वृष्णिजीव, वृष्ण्यन्धकपति, वृष्ण्यन्धकोत्तम, यादव, यादवशार्दूल, यादवश्रेष्ठ, यादवाग्र्य, यादवनन्दन, यादवेश्वर, यदुशार्दूल, यदुश्रेष्ठ, यदूद्वह, यदुकुलश्रेष्ठ, यदुकुलनन्दन, यदु-कुलोद्वह, यदुनन्दन, यदुप्रवीर, यदुपुङ्गव, यदुसुखावह, यदूत्तम, यदुवंशविवर्धन, यदुवर, यदुवीर, यदुवीर-मुख्य, योगेश्वर, योगीश, योगीश्वर, योगी इत्यादि।

कृष्णकर्णी—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६। २४**)।

कृष्णकेश—स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५। ६१**)।

कृष्णद्वैपायन—महर्षि पराशरके पुत्र—सत्यवतीनन्दन व्यास (**आदि० १। १०, ५५**)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे भेंट (**उद्योग० ८३। ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) (विशेष—देखिये व्यास)।

कृष्णपर्वत—कुशद्वीपका एक पर्वत, जो 'गौर' नामक मैनसिलके पर्वतसे पश्चिमभागमें स्थित एवं नारायणको विशेष प्रिय है (**भीष्म० १२। ४**)।

कृष्णवर्त्मा—अग्निदेवका एक नाम, जिसका आस्तीकने जनमेजयके सर्पसत्रमें अग्निकी स्तुति करते हुए उच्चारण किया था (**आदि० ५५। १०**)।

कृष्णवेणा—दक्षिण भारतकी एक पवित्र नदी, जिसके

देवकुण्ड (जातिस्मर ह्रद) में स्नानसे पूर्वजन्मकी स्मृति होती है(सभा० ९ । २०; वन० ८५ । ३७; भीष्म० ९ । २८) । यह अग्निका उत्पत्ति-स्थान है (वन० २२२ । २६) ।

कृष्णा—(१) द्रौपदी, जो यज्ञवेदीसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६३ । ११०) (विशेष—देखिये द्रौपदी) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३३) । (३) दुर्गाजीका एक नाम (विराट० ६ । ९) । (४) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २२) ।

कृष्णात्रेय—एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने तपोबलद्वारा चिकित्साशास्त्र (आयुर्वेद) का सबसे पहले ज्ञान प्राप्त किया (शान्ति० २१० । २१) ।

कृष्णानुभौतिक—एक महर्षि, जो उत्तरायणके आरम्भमें शरशय्याशायी भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे (शान्ति० ४७ । ११) ।

कृष्णौजा—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५) ।

केकय—(१) एक भारतीय जनपद (व्यास और शतलजके बीचका भूभाग) (भीष्म० ९ । ४८) । दशरथपत्नी कैकेयीके पिताका राज्य यहीं था, इसीसे वह कैकेयी कहलाती थी (वन० २७७ । १५) । (२) (कैकय अथवा कैकेय) केकय देशके निवासी या अधिपति, राजा एवं राजकुमार विशेषतः केकयदेशीय पाँच राजकुमार, जो परस्पर भाई थे और पाण्डवपक्षमें सम्मिलित थे (वन० १२० । २६) । इनका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध (द्रोण० २१ । २३–२९) । ये द्रोणाचार्यद्वारा मारे गये थे (स्त्री० २५ । १५) । इनका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३६) । (३) दो केकय-राजकुमार विन्द और अनुविन्द दुर्योधनके पक्षमें थे, जो सात्यकिद्वारा मारे गये थे (कर्ण० १३ । २०–३६) । (४) एक सूतराज, जो इसी (केकय) नामसे विख्यात था । इसकी दो मालव-कन्याएँ पत्नियाँ थीं—बड़ी मालवीसे कीचक-उपकीचक पैदा हुए थे और छोटीसे कैकेयी सुदेष्णाका जन्म हुआ था, जो राजा विराटसे ब्याही गयी थी (विराट० १६ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ १८९३) ।

केतु—(१) एक ग्रह, एक ही राहुके शिरश्छेदसे सिर और धड़ अलग-अलग हो गये थे (आदि० १९ । ६–८) । यह राहुके शरीरका धड़ या पुच्छभाग माना गया है । अर्जुन और कर्णके ध्वजकी उपमा राहु और केतुसे दी गयी है (कर्ण० ८७ । ९२) । (२) एक प्राचीन ऋषि, इन्हें स्वाध्यायद्वारा स्वर्गकी प्राप्ति (शान्ति० २६ । ७) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ३८) ।

केतुमान्—(१) एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (आदि० ६५ । २४) । यही 'अमितौजा' नामक पाञ्चाल क्षत्रिय वीरके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ११) । 'अमितौजा' पाण्डवपक्षका महारथी वीर था । (२) युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होनेवाले एक राजा (सभा० ४ । २७) । कलिङ्गराज श्रुतायुधका मित्र । कौरवपक्षीय योद्धा (भीष्म० १७ । ३२) । भीमसेनके साथ युद्ध और इनके द्वारा इसका वध (भीष्म० ५४ । ७७) । (३) युधिष्ठिरकी सभाको सुशोभित करनेवाले एक नरेश, जो पूर्वोक्त 'केतुमान्' से भिन्न थे (सभा० ४ । ३२) । ये पाण्डवपक्षके योद्धा थे, धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४४) । (४) द्वारकापुरीमें भगवान् श्रीकृष्णके एक प्रासादका नाम, जिसमें भगवान्‌की पत्नी सुदत्ताजी रहती थीं । (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८१५, कालम २) ।

केतुमाल—जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमेंसे एक, जो देवोपम पुरुषों और सुन्दरी स्त्रियोंकी निवासभूमि था, इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । यह द्वीप या वर्ष मेरुपर्वतके पश्चिम भागमें है, यहीं जम्बूखण्ड प्रदेश है, जहाँके निवासी दस हजार वर्षोंकी आयुवाले होते हैं (भीष्म० ६ । १३, ३१-३२) । यहाँके पुरुष सुनहले रंगके और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं । इन्हें कभी रोग-शोक नहीं होता (भीष्म० ६ । ३२-३३) ।

केतुमाला—पश्चिममें जम्बूमार्गके अन्तमें एक तीर्थ (वन० ८९ । १५) ।

केतुवर्मा—एक त्रिगर्तदेशीय राजकुमार, जो त्रिगर्तराज सूर्यवर्माका छोटा भाई था । यह आश्वमेधिक अश्वकी रक्षाके लिये गये हुए अर्जुनके साथ लोहा लेकर उन्हींके हाथों मारा गया (आश्व० ७४ । १४-१५) ।

केतुशृङ्ग—एक प्राचीन नरेश, जो कालके अधीन हो चुके हैं (आदि० १ । २३७) ।

केदार—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, यहाँ स्नानसे पुण्य-की प्राप्ति (वन० ८३ । ७२) ।

केरल—(१) एक म्लेच्छ जाति, वसिष्ठकी 'होमधेनु' नन्दिनीने अपने मुँहके फेनसे केरल, हूण आदि दस प्रकारके म्लेच्छोंकी सृष्टि की (आदि० १७४ । ३८) । (२) एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५८) । वहाँके नरेश और निवासी भी केरल ही कहे गये हैं । सहदेवने केरल देशको दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया और कर देनेको विवश किया (सभा० ३१ ।

७१-७२)। केरल-नरेशने राजा युधिष्ठिरको चन्दन, अगुरु, मोती, वैदूर्य और चित्रक नामक रत्न भेंट किये (**सभा० ५१ । ४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ, ८६१, कालम १**)। कर्णने दिग्विजयके समय यहाँके राजाको जीता और दुर्योधनके लिये 'करद' बनाया था (**वन० २५४ । १५-१६**)।

केवला–एक नगरी, जिसे कर्णने अपनी दिग्विजययात्रामें जीता था (**वन० २५४ । १०-११**)।

केशयन्त्री–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १७**)।

केशव–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । इसकी निरुक्ति (**शान्ति० ३४१ । ४८-४९**)। केशव नाम महाभारतमें अनेक स्थलोंपर प्रयुक्त हुआ है (**यथा–भीष्म० २५ । ३१; २६ । ५४; २७ । १; ३४ । १४; ३५ । ३५, ४२ । ७६ आदि**)।

केशिनी–(१) एक अप्सरा, जो प्राधाके गर्भसे देवर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई है (**आदि० ६५ । ५०**)। (२) महाराज अजमीढ़की तृतीय पत्नी । इनके गर्भसे अजमीढ़द्वारा जह्नु, व्रजन एवं रूपिण नामके तीन पुत्रोंका जन्म हुआ था (**आदि० ९४ । ३२**)। (३) दमयन्तीकी दासी । इसका बाहुक नामधारी नलके साथ संवाद (**वन० ७४ अध्याय**)। इसके द्वारा बाहुककी परीक्षा (**वन० ७५ अध्याय**)। (४) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (**वन० २३१ । ४८**)। (५) एक सुन्दरी कन्या, जिसके लिये विरोचन और सुधन्वामें संवाद हुआ था (**उद्योग० ३५ । ५–१५**)।

केशी–(१) एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (**आदि० ६५ । २३**)। इसीने भगवान् विष्णुके साथ तेरह दिनोंतक युद्ध किया था (**वन० १३४ । २०**)। इसके द्वारा देवसेनाका अपहरण (**वन० २२३ । ९**)। इसका इन्द्रसे पराजित होकर भागना (**वन० २२३ । १५**)। (२) एक दैत्य, जो कंसका अनुगामी था । इसके शरीरमें दस हजार हाथियोंका बल था। यह घोड़ेकी ही आकृतिमें रहता था । कंसकी प्रेरणासे श्रीकृष्णको मारने आया था; परंतु स्वयं ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके हाथों मारा गया (**सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१ कालम १**)। (जिस स्थानपर यह मारा गया, वह वृन्दावनमें आजकल केशीघाटके नामसे विख्यात है ।) श्रीकृष्णने केशीको धर्मपूर्वक मारा था, यह उन्होंने शपथपूर्वक घोषित किया है (**आश्व० ६९ । २३**)। इनके द्वारा केशिवधकी चर्चा (**मौसल० ६ । १०**)।

केसर–शाकद्वीपका एक पर्वत, जहाँकी वायुमें केसरकी सुगन्ध भीनी रहती है (**भीष्म० ११ । २३**)।

केसरी–एक वानरराज, जिनके क्षेत्रभूत अञ्जना देवीके गर्भसे वायुद्वारा हनुमान्‌जीका जन्म हुआ था (**वन० १४७ । २७**)।

कैकेयी–(१) पूरुवंशीय महाराज अजमीढ़की पत्नी (**आदि० ९५ । ३७**)। (२) महाराज दशरथकी पटरानी । भरतकी माता (**वन० २७४ । ८**)। इनका महाराज दशरथसे भरतके लिये राज्य और रामके लिये वनवासका वरदान माँगना (**वन० २७७ । २६**)। इनका भरतको राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना (**वन० २७७ । ३२**)। (३) सूतराज केकयकी छोटी पत्नी मालवीके गर्भसे उत्पन्न सुदेष्णा, जो महाराज विराटकी रानी थी (**विराट० १६ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ १८९३, कालम १**)। (केकयदेशके राजाओंकी सभी कुमारियाँ कैकेयी कही गयी हैं । जैसे सार्वभौमकी पत्नी और जयत्सेनकी माता सुनन्दा (**आदि० ९५ । १६**)। परीक्षित्-पुत्र भीमसेनकी धर्मपत्नी एवं प्रतिश्रवाकी माता कुमारी (**आदि० ९५ । ४३**) इत्यादि ।

कैटभ–(१) एक महान् असुर, जो मधुका भाई एवं सहचर था । इन दोनोंकी उत्पत्ति भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे हुई थी । भगवान्‌ने मिट्टीसे इनकी आकृति बनायी थी । इनकी मूर्तिमें वायुके प्रविष्ट हो जानेसे ये सप्राण हो गये थे । इसके साथीका मधु और इसका कैटभ नाम होनेका कारण (**सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७८३**)। भगवान् विष्णुद्वारा इन दोनोंका वध (**सभा० ३८ । पृष्ठ ७८४**)। मधुसहित कैटभकी उत्पत्तिका वर्णन, नाभिकमलपर भगवत्प्रेरणासे जलकी दो बूँदें पड़ी थीं, जो रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक थीं । भगवान्‌ने उन दोनों बूँदोंकी ओर देखा । एक मधु और दूसरी बूँद कैटभके आकारमें परिणत हुई (**शान्ति० ३४७ । २५-२६**)। भगवान् हयग्रीवद्वारा इनका वध (**शान्ति० ३४७ । ६९-७०**)। (२) एक दानव, जो कभी इस पृथ्वीका अधिपति था; किंतु इसे छोड़कर चल बसा (**शान्ति० २२७ । ५३**)।

कैतव–(१) शकुनिपुत्र उलूक (**आदि० १८५ । २२**)। (२) एक भारतीय जनपद (**भीष्म० १८ । १३**)।

कैरातपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ३८ से ४१ तक**)।

कैलास–एक पर्वत, जो कुबेर तथा भगवान् शिवका निवासस्थान है (**वन० १०९ । १६-१७; वन० १४१ । ११-१२**)। यहाँ श्वेतकिने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये उग्र तपस्या की (**आदि० २२२ । ३६–४०**)। कैलासके उत्तर मैनाक है, जहाँ मयासुरने मणिमय भाण्ड

तैयार करके रक्खा था (सभा० ३ । २-९) । कैलास-पर्वत कुबेरके सभाभवनमें जाकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ११-३३) । व्यासजी कैलासपर गये थे (सभा० ४६ । १७) । राजा सगरने भी अपनी दोनों पत्नियोंके साथ जाकर कैलासपर तपस्या की थी (वन० १०६ । १०) । भगीरथने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये कैलासपर जाकर तप किया (वन० १०८ । २६) । कैलासपर्वत छः योजन ऊँचा है । वहाँ सब देवता आया करते हैं । उसके पास ही विशाला (बदरिकाश्रम) है । कुबेरभवनरूप कैलासपर असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, सुपर्ण, नाग और गन्धर्व रहते हैं (वन० १४१ । ११-१२) । कैलास-शिखरके निकट ही कुबेरकी नलिनी है, जहाँ भीमसेन गये थे (वन० १५३ । १-२) । अन्य पाण्डवोंका भी वहाँ गमन (वन० १५५ । २३) । कैलासपर्वतपर कुबेरको यक्ष और राक्षसोंका राजा बनाया गया था (उद्योग० १११ । ११) । अष्टावक्रजी कैलास होते हुए उत्तर दिशाकी ओर गये । वहाँ कुबेरभवनमें उनका सत्कार हुआ था (अनु० १९ । ३१) । सुरभिने देव-गन्धर्व-सेवित कैलासके सुरम्य शिखरपर तपस्या की (अनु० ८३ । २८-३०) ।

कैलासक (या कैलास)–एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । ११) ।

कैशिक–एक प्राचीन देश, जिसपर विदर्भनरेश भीष्मकने विजय पायी थी (सभा० १४ । २१) ।

कोकनद (१) एक प्राचीन क्षत्रियनरेश, जो दिग्विजयके समय अर्जुनसे भयभीत होकर उनकी शरणमें आया था (सभा० २७ । १८) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) । (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

कोकवक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

कोकामुख–एक तीर्थ, इसमें स्नानसे पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् होती है (वन० ८४ । १५८) ।

कोकिलक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

कोङ्कण–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०)।

कोटरक–एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३। १२)।

कोटरा–(१) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) । (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

कोटिकास्य (कोटिक)–शिबिनरेश सुरथका पुत्र, जिसने वनमें जयद्रथ आदि साथियोंका द्रौपदीको परिचय दिया था (वन० २६५ अध्याय) । भीमसेनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २६) ।

कोटितीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ आचमन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ४९; वन० ८४ । ७७; वन० ८५ । ६१) । यह कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत है (वन० ८३ । १७; वन० ८३ । २००) ।

कोटिश–वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग (आदि० ५७ । ५) ।

कोपवेग–एक महर्षि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६) ।

कोलगिरि–दक्षिण भारतका एक पर्वत—कोलाचल, जहाँके निवासियोंको सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६८) ।

कोलाहल–प्राचीन कालका एक सचेतन पर्वत, जिसने कामवश दिव्यरूपधारिणी शुक्तिमती नदीको रोक लिया था (आदि० ६३ । ३५-३६) । उपरिचर वसुके द्वारा इसपर पैरोंसे प्रहार (आदि० ६३ । ३६) । इसके द्वारा शुक्तिमती नदीके गर्भसे जुड़वीं संतानकी उत्पत्ति (आदि० ६३ । ३७) ।

कोलिक–बिडालोपाख्यानमें आये हुए एक चूहेका नाम (उद्योग० १६० । ३८) ।

कोलिसर्प–एक जाति, जो पहले क्षत्रिय थी; किंतु ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टि न मिलनेसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गयी (अनु० ३३ । २२) ।

कोल्लगिरेय–दक्षिणका एक देश, जिसे अर्जुनने अश्वमेधीय यज्ञकी रक्षाके समय जीता था (आश्व० ८३ । ११) ।

कोशल–कोशलदेशीय क्षत्रिय, जो जरासंधके भयसे दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २७)।

कोषा–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३४) ।

कोष्ठवान्–एक पर्वत, जो अन्य बहुतसे पर्वतोंका अधिपति है (आश्व० ४३ । ५) ।

कोसल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०-४१, ५२) । पूर्वदिग्विजयके समय भीमसेनने उत्तर कोशलको जीता था (सभा० ३० । ३) । दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने दक्षिण कोशलको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० ३१ । १२-१३) । पहले श्रीकृष्णने भी इस जनपदपर विजय पायी थी (द्रोण० २१ । १५) कोशलराज अभिमन्युद्वारा मारा गया था (कर्ण० ५ । २१) । दुर्योधनके लिये कर्णने इस देशको जीता था (कर्ण० ८ । १९) । यहाँका राजा क्षेमदर्शी था (शान्ति० ८२ । ६) । अम्बाके स्वयंवरमें भीष्मने भी

कोसलको जीता था (अनु० ४४ । ३८)। अश्वमेधके घोड़ेके पीछे जाते हुए अर्जुनने इस देशपर विजय पायी थी (आश्व० ८३ । ४)।

कोसला (अयोध्या)–सुप्रसिद्ध पुरी, जहाँ ऋषभतीर्थमें स्नान और त्रिरात्र उपवाससे वाजपेय तथा सहस्र गोदान-का फल मिलता है (वन० ८५ । १०-११)।

कोहल–(१) वेदविद्याके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य थे (आदि० ५३ । ९)। (२) एक ब्राह्मण, जिन्हें राजा भगीरथने एक लाख सवत्सा गौएँ दान की थीं (अनु० १३७ । २७)। (३) उत्तर दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले एक ऋषि, सम्भव है, ये ही जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने हों (अनु० १६५ । ४५)।

कौकुलिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५)।

कौकुहक–दक्षिण भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६०)।

कौणप–वासुकिके कुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो माताके शापसे पीड़ित हो विवशतापूर्वक सर्पसत्रकी आगमें होम किया गया था (आदि० ५७ । ६)।

कौणपासन–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १४)।

कौणिकुत्स्य–एक वनवासी श्रेष्ठ द्विज, जो सर्पदंशनसे मरी हुई प्रमद्वराको देखनेके लिये आये थे (आदि० ८ । २५)।

कौण्डिन्य–एक महर्षि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६)।

कौत्स–एक वृद्ध एवं विद्वान् ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें उद्गाता बनाये गये थे (आदि० ५३ । ६)। इन्हींको राजर्षि भगीरथने अपनी कन्या 'हंसी' का दान किया था; जिससे वे अक्षय लोकको प्राप्त हुए (अनु० १३७ । २६)।

कौमोदकी–भगवान् श्रीकृष्णकी गदा, यह गदा खाण्डव-वन-दाहके अवसरपर वरुणने उन्हें भेंटमें दी थी (आदि० २२४ । २८)।

कौरव–कुरुके पुत्र तथा कुरुकुलमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष 'कौरव' कहलाते हैं। (यद्यपि पाण्डव तथा धृतराष्ट्रपुत्र दोनों ही कौरव कहलाते हैं तथापि पाण्डवोंका पृथक् ग्रहण हो जानेसे 'कौरव' शब्द प्रायः दुर्योधन आदिके लिये ही व्यवहृत होता है; फिर भी पाण्डवोंके लिये भी इस शब्दका प्रयोग हुआ ही है।) इनके द्वारा रङ्गभूमिमें आचार्य और अस्त्रोंके पूजनपूर्वक अस्त्र-कलाप्रदर्शन (आदि० १३३ । २१ के बाद ३५ तक)। द्रुपदके द्वारा इनकी पराजय (आदि० १३७ । २४-२५)। द्रुपदके पाण्डवोंके सम्बन्धी हो जानेपर इनका भयभीत और निराश होना (आदि० १९९ । १४-१५)।

कौरव्य–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १३)।

कौशिक–(१) युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १२)। हस्तिनापुर जाते समय श्रीकृष्णसे मार्गमें उनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)। (२) एक प्राचीन ऋषि जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दा० पाठ) (३) जरासंधका एक मन्त्री, जिसका दूसरा नाम हंस था (सभा० २२ । ३२-३३) (देखिये हंस)। (४) एक तपस्वी ब्राह्मण, इनकी क्रोधभरी दृष्टिसे बगुलीका भस्म होना (वन० २०६ । ५)। इनका पतिव्रतासे वार्तालाप (वन० २०६ । १८)। इनका धर्मव्याधसे विविध धार्मिक विषयोंपर वार्तालाप (वन० २०७ अ० से २१६ तक)। इनका घर लौटकर माता-पिताकी सेवामें तत्पर होना (वन० २१६ । २३)। (५) हैमवतीके प्रियतम पति, कुशिकवंशी विश्वामित्र (वन० ८४ । १४२-१४३; उद्योग० ११७ । १३)। (६) एक सत्यवादी तपस्वी ब्राह्मण, जिसे लुटेरोंको छिपे मनुष्योंका पता बतानेके कारण नरककी प्राप्ति हुई (कर्ण० ६९ । ४६–५२)।

कौशिककुण्ड–एक तीर्थ, यहाँ विश्वामित्रने उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी (वन० ८४ । १४२)।

कौशिकाचार्य–इस पदवीसे विभूषित राजा आकृति (सभा० २१ । ६१-६२)। (देखिये आकृति)

कौशिकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्याने कठोर तप किया (उद्योग० १८६ । २७)।

कौशिकी–(१) एक नदी (अनु० ९४ । ६)। महर्षि विश्वामित्रद्वारा इसका निर्माण (आदि० ७१ । ३०)। (जिसे आजकल 'कोसी' कहते हैं। यह नदी पूर्वी-विहारके कई जिलोंमें बह रही है।) (२) एक पापनाशिनी नदी, इसमें स्नान करनेमात्रसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । १३२; वन० ८७ । १३; भीष्म० ९ । २९)। यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । ३१)।

कौशिकी-अरुणासङ्गम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और त्रिरात्र उपवाससे पाप छूट जाते हैं (वन० ८४ । १५६)।

कौशिकीकच्छ–कोसी नदीका कछार (सभा० ३० । २२)।

कौसल–बकरेके समान मुख धारण करनेवाले स्कन्ददेवका एक नाम (वन० २२८ । ४) ।

कौसल्या–(१) ययातिनन्दन महाराज पूरुकी पत्नी और जनमेजय (प्रवीर) की पत्नी, इनका दूसरा नाम 'पौष्टी' था (आदि० ९५ । १०–११) । (२) काशिराजकी पत्नी तथा अम्बा, अम्बिका एवं अम्बालिका-की माता (आदि० ९५ । ५१) । (३) दशरथ-नन्दन श्रीरामकी माता (वन० २७४ । ७-८) । (४) मिथिलानरेश महाराज जनककी पटरानी, इनका पतिको संन्यास न लेनेके लिये समझाना (शान्ति० १८ । ७–३६) ।

कौस्तुभ–समुद्रसे प्रकट हुई एक मणि जो भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आभूषण बनी (आदि० १८ । ३६) । मणिरत्न कौस्तुभका प्रादुर्भाव (उद्योग० १०२ । १२) ।

क्रतु–ब्रह्माजीके एक मानसपुत्र (आदि० ६५ । १०; आदि० ६६ । ४; शान्ति० १६६ । १६) । बालखिल्य-नामक ऋषि क्रतुके ही पुत्र हैं (आदि० ६६ । ९) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें पधारे थे (आदि० १२२।५२)। पराशरके राक्षस-सत्रमें राक्षसोंकी जीवनरक्षाके लिये गये थे (आदि० १८० । ९) । ये इन्द्र और ब्रह्माजीके सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १७; सभा० ११ । १९) । स्कन्दके जन्मकालमें भी ये पधारे थे (शल्य० ४५ । १०) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म-जीके पास गये थे (शान्ति० ४७ । १०) । इक्कीस प्रजापतियोंमें ये भी हैं (शान्ति० ३३४ । ३५–३७) । सात 'चित्रशिखण्डी' ऋषियोंमें भी क्रतुकी गणना की गयी है (शान्ति० ३३५ । २७) । आठ प्रकृतियोंमें भी इनका स्थान है (शान्ति० ३४० । ३४) । इन्हें शिवभक्तिद्वारा सहस्रों पुत्रोंकी प्राप्ति हुई (अनु० १४ । ८७-८८) । उत्तरायण आरम्भ होनेपर भीष्मजीको देखने-के लिये आये थे (अनु० २६ । ४) । ये महायोगेश्वर माने गये हैं (अनु० ९२ । २१) ।

क्रथ–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६१) । (२) एक प्राचीन देश, जिसपर विदर्भनरेश भीष्मकने विजय पायी थी (सभा० १४ । २१) । (३) एक राजराजेश्वर, जिन्हें भीमसेनने दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० ३० । ७) । (४) एक महर्षि, जिन्होंने शान्ति-दूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । (५) एक कौरव-योद्धा (द्रोण० १२० । १०-११) । (६) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) ।

क्रथन–(१) एक यक्ष, जिसके साथ पक्षिराज गरुड़ने युद्ध किया था (आदि० ३२ । १८) । (२) एक असुर, जो भूतलपर राजा 'सूर्याक्ष' के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५७) । (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ११६ । ११) ।

क्रमजित्–एक क्षत्रियनरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें उनके पास बैठते थे (सभा० ४ । २८) ।

क्रव्याद्–पितरोंका एक गण (शान्ति० २६९ । १५) ।

क्राथ–(१) एक प्रसिद्ध राजा, जो सिंहिकाकुमार राहुके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४०) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८६ ।१५)। जारूथीनगरीमें श्रीकृष्णद्वारा पराजित हुआ था (वन० १२ । ३०) । इसने दुर्योधनकी सेनामें सम्मिलित हो अभिमन्युपर धावा किया था (द्रोण० ३७ । २५) । इसका पुत्र अभिमन्युद्वारा मारा गया (द्रोण० ४६ । २६-२७) । इसके द्वारा कलिङ्गराजकुमारका वध हुआ और पाण्डवपक्षीय, पर्वतीयनरेशद्वारा इसका वध हुआ (कर्ण० ८५ । १५-१६) । (२) पूरुवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके एक पुत्र (आदि० ९४ । ५८) । (३) एक वानर सेनापति (वन० २८३ । १९) । (४) (क्रथन) धृतराष्ट्रका एक पुत्र । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १६) । (५) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) । (६) एक नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारते समय उनके स्वागतके लिये गया था (मौसल०४।१६) ।

क्रिया–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री और धर्मराजकी पत्नी (आदि० ६६ । १४) ।

क्रीत–एक प्रकारका अबन्धुदायाद पुत्र, जिसे धन आदि देकर खरीद लिया गया हो (आदि० ११९ । ३४) ।

क्रूर–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६५) ।

क्रूरा (अथवा क्रोधा)–दक्षप्रजापतिकी पुत्री । कश्यपकी पत्नी (आदि० ६५ । १२-१३; आदि० ६६ । १३) । इस क्रूरा या क्रोधाके क्रूर स्वभाववाले असंख्य पुत्र-पौत्र हैं और यही 'क्रोधवशा' संज्ञक असुरोंकी जननी है (आदि० ६५ । ३२) ।

क्रोध–एक विख्यात दानव, जो काला नामक कश्यपपत्नीका पुत्र था (आदि० ६५ । ३५) ।

क्रोधन–एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । ११) ।

क्रोधना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६) ।

क्रोधवर्द्धन–एक असुर, जो 'दण्डधार' नामक राजाके

रूपमें इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४६)।

क्रोधवश–राक्षसोंके एक गणका नाम। इनकी माता कश्यप-पत्नी क्रोधा या क्रूरा थी (आदि० ६५ । ३२)। ये ही कुबेरके सौगन्धिक कमलोंवाले सरोवर (या नलिनी) की, जिसका नाम अलका था, रक्षा करते थे। भीमसेनने इनके साथ युद्ध करके इन्हें परास्त किया था (वन० १५४ । २०-२१)। इन्होंने धनाध्यक्ष कुबेरको भीमसेनके बल-पराक्रमका वृत्तान्त बताया था (वन० १५४ । २५)। ये रावणकी सेनामें भी सम्मिलित थे (वन० २८५ । २)।

क्रोधशत्रु–एक विख्यात दानव, जो काला नामक कश्यप-पत्नीका पुत्र था (आदि० ६५ । ३५)।

क्रोधहन्ता–(१) कश्यपपत्नी कालाके चार पुत्रोंमेंसे एक प्रसिद्ध दानव (आदि० ६५ । ३५)। इसे वृत्रासुरका छोटा भाई कहा गया है। यही राजा दण्डके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४५)। (२) पाण्डव-पक्षीय राजा सेनाबिन्दुका दूसरा नाम (उद्योग० १७१ । २०)।

क्रोशना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७)।

क्रोष्टा–यदुके पुत्र (अनु० १४७ । २८)।

क्रौञ्च–एक पर्वत, जिसे स्कन्दने विदीर्ण किया था (शल्य० ४६ । ८४)।

क्रौञ्चद्वीप–एक प्रसिद्ध द्वीप, इसका विशेष वर्णन (भीष्म० १२ । १७—२३)।

क्रौञ्चनिषूदन–सरस्वती-सम्बन्धी तीर्थ, जहाँ सरस्वतीमें स्नान करनेसे विमानलाभ होता है (वन० ८४ । १६०)।

क्रौञ्चपदी–एक तीर्थ, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य तीन ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है (अनु० २५ । ४२)।

क्रौञ्चव्यूह–सेनाकी मोर्चाबंदीका वह प्रकार, जिसमें सैनिकोंको क्रौञ्च पक्षीकी आकृतिमें खड़ा किया जाता है। भीष्मद्वारा क्रौञ्चव्यूहकी रचना (भीष्म० ७५ । १५—२२)। युधिष्ठिरद्वारा उक्त व्यूहकी रचना (द्रोण० ७ । २५–२७)।

क्रौञ्चारुणव्यूह–यह भी क्रौञ्चव्यूहका ही नामान्तर है। इसका निर्माण धृष्टद्युम्नने किया था (भीष्म० ५० । ४२—५७)।

क्षत्ता–विदुर (उद्योग० ३३।२,६) (देखिये विदुर)।

क्षत्रंजय–धृष्टद्युम्नका एक वीर पुत्र (द्रोण० १० । ५३)। द्रोणाचार्यद्वारा द्रुपदके तीन पुत्रों (क्षत्रदेव, क्षत्रंजय तथा क्षत्रवर्मा) का वध (द्रोण० १८६ । ३३-३४)।

क्षत्रदेव–शिखण्डीका पुत्र (उद्योग० ५७ । ३२; द्रोण० २३ । ६)। यह एक श्रेष्ठ रथी था (उद्योग० १७१ । १०)। भगदत्तद्वारा इसकी दाहिनी भुजापर गहरा आघात (भीष्म० ९५ । ७३)। इसका लक्ष्मणके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४९)। द्रोणके साथ युद्ध (द्रोण० २१ । ५०, ५६)। इसके रथके घोड़ोंका रंग (द्रोण० २३ । ६)। लक्ष्मणद्वारा इसका वध (कर्ण० ६ । २६-२७)।

क्षत्रधर्मा–धृष्टद्युम्नका पुत्र अर्धरथी (उद्योग० १७१ । ७)। इसके रथके घोड़ोंका रंग (द्रोण० २३ । ५)। द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १२५ । ६६)।

क्षत्रवर्मा–धृष्टद्युम्नका एक वीर पुत्र (द्रोण० १० । ५३)। जयद्रथके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १०–१२)। आचार्य द्रोणद्वारा इसका वध (द्रोण० १८६ । ३४)।

क्षितिकम्पन–स्कन्दका सेनापति (शल्य० ४५ । ५९)।

क्षीरवती–एक पुण्यतीर्थ, वहाँ स्नान करके देवताओंके पूजनमें लगा हुआ मनुष्य वाजपेय-यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । ६८-६९)।

क्षीरसागर (क्षीरनिधि)–इसकी उत्पत्ति (उद्योग० १०२ । ४)। अन्य नामोंद्वारा इसकी चर्चा—क्षीरोद (आदि० २ । ९१; भीष्म० १० । ११; शान्ति० ३३६ । २३; शान्ति० ३४० । ४५; अनु० १४ । २४०)। क्षीरोदधि (शान्ति० ३३६ । २७)।

क्षीरी–उत्तर कुरुवर्षके कुछ वृक्ष, जो सदा षड्विध रसोंसे युक्त अमृतके समान स्वादिष्ट दूध बहाते रहते हैं। उनके फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं (भीष्म० ७ । ४-५)।

क्षुद्रक–एक देश और वहाँके निवासी, ये युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १५)। क्षुद्रकोंको साथ लेकर दुर्योधन शकुनिकी सेनाकी रक्षामें लगा था (भीष्म० ५१ । १६)। क्षुद्रक आदि देशोंके सैनिक भीष्मकी आज्ञाका पालन करते हुए अर्जुनके निकट चले गये (भीष्म० ५९ । ७६)। भीष्मके पीछे द्रोणाचार्यके साथ रहकर क्षुद्रक भी शत्रुओंसे जूझनेके लिये चले थे (भीष्म० ८७ । ७)। परशुरामजीने पहले कभी क्षुद्रकोंका संहार किया था (द्रोण० ७० । ११)। अर्जुनद्वारा क्षुद्रकोंका वध (कर्ण० ५ । ४७)।

क्षुप–(१) एक प्रजापति, जो ब्रह्माजीके द्वारा मस्तकपर धारण किये हुए उनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ब्रह्माजीके छींकनेपर ये उनके मस्तकसे गिर पड़े थे (शान्ति० १२२ । १६—१७)। यही ब्रह्माके यज्ञके ऋत्विज हुए थे (शान्ति० १२२ । १७)। भगवान् रुद्रने इनको समस्त

प्रजाओं तथा धर्मधारियोंका अधिपति बनाया था (**शान्ति० १२२ । ३५**) । (२) शक्तिशाली वैवस्वतमनुके आत्मज महाबाहु प्रसन्धिके पुत्र और इक्ष्वाकुके पिता (**आश्व० ४ । ३**) । ये महाबली राजर्षि यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ८ । १३**) । इन्हें मनुसे खड्गकी प्राप्ति हुई (**शान्ति० १६६ । ७३**) । इन महाराज क्षुपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (**अनु० ११५ । ६७**) ।

क्षुरकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । २५**) ।

क्षेत्र–देहधारियोंका यह शरीर (**भीष्म० ३७ । १**) । क्षेत्रका वर्णन (**भीष्म० ३७ । ५–६**) ।

क्षेत्रज्ञ–इस शरीरको जाननेवाला जीवात्मा । सम्पूर्ण शरीरोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे भगवान् ही विराजमान हैं (**भीष्म० ३७ । १—२**) । क्षेत्रके स्वभाव और प्रभावसहित क्षेत्रज्ञका वर्णन (**भीष्म० ३७ । १९—३३**) ।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान–क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकार-सहित प्रकृति और पुरुषका विभागपूर्ण यथार्थ बोध—यही ज्ञान है (**भीष्म० ३७ । २**) ।

क्षेम–एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६५**) । यह पाण्डव-पक्षीय योद्धा था और द्रोणाचार्यद्वारा मारा गया था (**द्रोण० २१ । ५३**) ।

क्षेमक–(१)कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक नाग (**आदि० ३५ । ११**) । (२) एक प्राचीन राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (**सभा० ४ । २२**) । इसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया था (**उद्योग० ४ । २३**) ।

क्षेमङ्कर–जयद्रथका साथी त्रिगर्तदेशका एक राजा, कोटिकास्यद्वारा द्रौपदीको इसका परिचय (**वन० २६५ । ६-७**) । नकुलके हाथों इसका वध (**वन० २७१ । ७०**) ।

क्षेमदर्शी–कोसलदेशके एक राजा (**शान्ति० ८२ । ६**) । इनके दरबारमें उपस्थित हो कालकवृक्षीय मुनिका इनके मन्त्री आदिके दोष बताना और राजाको उपदेश देना (**शान्ति० ८२ । १२—६७**) । सेना आदिके नष्ट हो जानेपर इनका कालकवृक्षीय मुनिसे धनके अतिरिक्त सुखका उपाय पूछना (**शान्ति० १०४ । ४–१०**) । कालकवृक्षीय मुनिके प्रयत्नसे राजा जनकके साथ इनकी संधि और उनके द्वारा इनका सत्कार और जामाता बनाया जाना (**शान्ति० १०६ । २३–२८**) ।

क्षेमधन्वा–एक कौरवपक्षीय प्रधान रथी, जो दुर्योधनके अग्रगामी सहायकोंमें था (**भीष्म० १७ । २७**) ।

क्षेमधूर्ति–(१)एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६४**) । इसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजे जानेका विचार (**उद्योग०४ । ८**) । यही कुलूतदेशका अधिपति था और कौरवपक्षसे युद्धमें आकर भीमसेनके द्वारा मारा गया था (**कर्ण० १२ । ४४**) । (२) एक कौरव-पक्षका राजा, बृहन्तका सगा भाई, इसका सात्यकिके साथ युद्ध (**द्रोण० २५ । ४७–४८**) । सात्यकिद्वारा इसका वध (**शल्य० २१ । ८**) । (३) कौरव-पक्षका एक योद्धा, पाण्डवपक्षीय बृहत्क्षत्रके साथ इसका युद्ध (**द्रोण० १०६ । ८**) । बृहत्क्षत्रद्वारा इसका वध (**द्रोण० १०७ । ६**) ।

क्षेममूर्ति–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १००**) ।

क्षेमवाह–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६६**) ।

क्षेमवृद्धि–राजा शाल्वका मन्त्री तथा सेनापति । जाम्बवती-कुमार साम्बद्वारा इसकी पराजय (**वन० १६ । ११–१६**) ।

क्षेमशर्मा–कौरव-पक्षीय एक योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुड़-व्यूहके ग्रीवाभागमें खड़ा किया गया था (**द्रोण० २० । ६**) ।

क्षेमा–एक स्वर्गीय अप्सरा, जो अन्य अप्सराओंके साथ अर्जुनके जन्ममहोत्सवपर नृत्य करनेके लिये आयी थी (**आदि० १२२ । ६६**) ।

क्षैमि–क्षेमकुमार सत्यधृति, जिसे चितकबरे, विशालकाय, वशमें किये हुए, सुवर्णकी मालासे विभूषित तथा ऊँचे कदवाले शुभलक्षण अश्वोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया (**द्रोण० २३ । ५८**) ।

(ख)

खग–(१) कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुआ एक नाग (**उद्योग० १०३ । १०**) । (२) भगवान् शिवका एक नाम (**अनु० १७ । ६७**) ।

खगम–पूर्वकालका एक तपोबलसम्पन्न ब्राह्मण, जो सहस्रपाद ऋषिका मित्र था (**आदि० ११ । १**) । इसके शापसे सहस्रपाद ऋषिका 'डुण्डुभ' सर्प होना (**आदि० ११ । २–४**) ।

खट्वाङ्ग–इलविलाके पुत्र महाराज दिलीपका दूसरा नाम (**द्रोण० ६१ । १–१०**) । इन्होंने यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी (**द्रोण० ६१ । २**) । इनके यज्ञोंमें सड़कें सोनेकी बनी थीं । सभा-मण्डप भी

सुवर्णसे ही निर्मित हुआ था (द्रोण० ६१ । १–४)। इनके यशके दिव्य वैभवका वर्णन (द्रोण० ६१ । ५–११)।

खड्ग–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

खड्गी–भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४३)।

खण्डखण्डा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २०)।

खनीनेत्र–सूर्यवंशी विविंशके ज्येष्ठ पुत्र, जो पराक्रमी होने और अकण्टक राज्य पानेपर भी प्रजाके अनुरागभाजन न हो सके। अतः राज्यसे उतार दिये गये (आश्व० ४ । ६—९)।

खर–(१) एक राक्षस, जो विश्रवाका पुत्र एवं शूर्पणखाका सहोदर भाई था। इसकी माताका नाम राका था (वन० २७५ । ४—८)। यह धनुर्विद्यामें विशेष पराक्रमी तथा ब्रह्मद्रोही था (वन० २७५ । १२)। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी तपस्याके समय ये दोनों भाई-बहन उनकी सेवा करते थे (वन० २७५ । १२)। शूर्पणखाके कारण इसका श्रीरामसे बड़ा भारी वैर हो गया (वन० २७७ । ४२)। श्रीरामने तपस्वी जनोंकी रक्षाके लिये खर आदि चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया (सभा० ३८। २९ के बाद, पृष्ठ ७९४)। (२) राक्षसोंका एक दल, जिसने अन्य दलोंके साथ वानर-सेनापर आक्रमण किया था (वन० २८५ । २)।

खरकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २६)।

खरजङ्घा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका(शल्य० ४६ । २२)।

खरी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६)।

खली–(१) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४३)। (२) दानवोंका एक समुदाय, जिसे वशिष्ठजीने अपने तेजसे दग्ध कर दिया (अनु० १५५ । २२)।

खलु–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २८)।

खस–एक देश (द्रोण० १२१ । ४२)।

खाण्डव (वन)–यमुना-तटवर्ती एक वन, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी सहायतासे अग्निदेवने जलाया था इसकी रक्षाके लिये इन्द्रके प्रयत्न। इसके जलानेके समय तक्षककी पत्नीका अर्जुनद्वारा वध (आदि० २२३ अध्यायसे २२५ तक)।

खाण्डवदाहपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २२१ से २२६ तक)।

खाण्डवप्रस्थ–प्राचीन कालका एक नगर, जो पाण्डवोंकी राजधानी थी—इन्द्रप्रस्थ (आदि० ६१ । ३५)। यहीं रहकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे अग्निदेवको तृप्त किया था (आदि० ६१ । ४५)। पूर्वकालमें पुरूरवा, नहुष और ययाति भी यहीं निवास करते थे (आदि० २०६ । २५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। (विशेष देखिये इन्द्रप्रस्थ)।

खाण्डवायन–परशुरामजीकी दी हुई स्वर्णवेदीको खण्ड-खण्ड करके आपसमें बाँटनेवाले ब्राह्मणोंका नाम (वन० ११७ । १३)।

खाशीर–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६८)।

खिल–महाभारतके परिशिष्ट भाग हरिवंशका दूसरा नाम (आदि० २ । ८२-८३; आदि० ३७९-३८०)।

ख्याता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २०)।

(ग)

गगनमूर्धा–कश्यप और दनुके वंशका एक विख्यात दानव (आदि०६५ । २४)। यह पाँच केकय-राजकुमारोंमेंसे एकके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १०)।

गङ्गा–देवनदी। वसुओंकी माता। भीष्मकी जननी। महर्षि वशिष्ठके शाप और इन्द्रके आदेशसे आठ वसुओंका गङ्गाजीके गर्भसे शान्तनुपुत्र होकर जन्म लेना (आदि० ६७ । ७४)। गङ्गाजीका आधिदैविक रूप देवाङ्गनाके तुल्य है, वे उसी रूपसे एक दिन ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हुईं। उस समय वायुके झोंकेसे उनके शरीरका चाँदनीके समान उज्ज्वल वस्त्र सहसा कुछ ऊपरकी ओर उठ गया। उस अवस्थामें उनकी ओर देखनेके कारण महाभिषको ब्रह्माजीके द्वारा मर्त्यलोकमें जन्म लेनेका शाप मिला और इन्हें भी उनके प्रतिकूल आचरण करनेके लिये उनके साथ जानेका संकेत प्राप्त हुआ (आदि० ९६ । ४—८)। महाभिषका चिन्तन करती हुई गङ्गाका वहाँसे जाना और मार्गमें वसुओंसे उनकी उदासीका कारण पूछना (आदि० ९६ । ९–१२)। 'वशिष्ठके शापवश हमें मर्त्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा, वहाँ आप ही हमारी जननी हों' वसुओंकी गङ्गाजीसे प्रार्थना और इनका इस प्रार्थनाको स्वीकार करना (आदि० ९६ । १२—१८)। जन्म लेते ही जलमें फेंक देनेके लिये इनसे वसुओंकी अभ्यर्थना (आदि० ९६ । १९)। शान्तनुको एक पुत्र प्राप्त होनेके लिये इनका वसुओंद्वारा व्यवस्था कराना (आदि० ९६ । २०–२२)। अपना पति बननेके लिये राजा प्रतीपसे इनकी प्रार्थना (आदि० ९७ । ५)। दाहिनी जाँघपर बैठनेके कारण इन्हें पत्नीरूपमें नहीं, पुत्रवधूरूपमें प्रतीपका अङ्गीकार करना (आदि०

९७ । ११) । गङ्गाजीका प्रतीपकी आज्ञाको स्वीकार करना (आदि० ९७ । १२—१५) । राजा शान्तनुका गङ्गाजीके परम सुन्दर दिव्य प्रभासे प्रकाशमान, साक्षात् लक्ष्मीके समान मनोरम, अनिन्द्य सौन्दर्यसे सम्पन्न, दिव्याभरणभूषित, सूक्ष्माम्बर-विलसित तथा कमलोदर-कान्तिसे सुशोभित दिव्य रूपका दर्शन तथा उनके प्रति आकृष्ट हो उनसे अपनी पत्नी बननेके लिये प्रार्थना (आदि० ९७ । २७—३३) । गङ्गाजीका कुछ शर्तोंके साथ उनके अनुरोधको अङ्गीकार करना (आदि० ९८ । १—४) । शान्तनुके द्वारा इनके गर्भसे आठ देवोपम पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० ९८ । १२) । इनके द्वारा नवजात शिशुओंका जलमें प्रक्षेप (आदि० ९८ । १३) । भीष्मका जन्म होनेपर उनके भी वधकी आशङ्कासे इनको शान्तनुकी कड़ी-फटकार (आदि० ९८ । १६) । अपने रहस्यको प्रकट करके इनका शान्तनुको उनके नवजात शिशुओं (वसुओं) का संक्षिप्त परिचय देना (आदि० ९८ । १७—२४) । वसुओंको वशिष्ठद्वारा प्राप्त हुए शापकी बात बताकर और यही एक पुत्र चिरकालतक मानवलोकमें रहेगा, ऐसा कहकर इनके द्वारा शान्तनुके प्रति भीष्मके भावी गुणोंका वर्णन और पालनके लिये उसे साथ लेकर इनका अन्तर्धान हो जाना (आदि० ९९ अ०) । शान्तनुका गङ्गाजीसे अपने पुत्रको दिखानेके लिये कहना और गङ्गाजीका पाल-पोषकर बड़े एवं सुशिक्षित किये हुए उस पुत्रको राजा-के हाथमें सौंप देना (आदि० १०० । ३०—४०) । गङ्गा प्राचीन कालमें हिमालयके स्वर्णशिखरसे निकलीं और सात धाराओंमें विभक्त हो समुद्रमें गिरीं । इन सातोंके नाम हैं—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी । इन धाराओंका जल पीनेवाले पुरुषोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं । ये गङ्गा देवलोक-में अलकनन्दा और पितृलोकमें वैतरणी नाम धारण करती हैं । इस मर्त्यलोकमें इनका नाम 'गङ्गा' है । इनका तीर्थरूपसे वर्णन (वन० ८५ । ८८—९९) । इनका राजा भगीरथको वर देना (वन० १०८ । १५) । इनका भूतलपर गिरना (वन० १०९ । ८) । इनके द्वारा समुद्रका भरा जाना (वन० १०९ । १८) । अग्निकी उत्पत्तिके स्थानभूत नदियोंमें इनकी भी गणना (वन० २२२ । २२) । परशुरामजीसे युद्धके लिये उद्यत भीष्मको डाँटना (उद्योग० १७८ । ८६—८८) । परशुरामजीसे भीष्मके लिये क्षमा माँगना (उद्योग० १७८ । ९२) । परशुरामजीके साथ होनेवाले युद्धमें सारथिके मारे जानेपर भीष्मका सारथ्य करना (उद्योग० १८२ । १६) । इनका अम्बाको नदी होनेका शाप देना (उद्योग० १८६ । ३६) । मेरुपर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत धारवाली विश्वरूपा अपरिमित शक्तिशालिनी भयङ्कर वज्रपातके समान शब्द करने-वाली परम पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित सुभग-स्वरूपा पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा बड़े प्रबल वेगसे सुन्दर चन्द्र-मोह्रद (चन्द्रकुण्ड) में गिरती हैं । गङ्गाद्वारा प्रकट किया हुआ वह ह्रद समुद्रके समान प्रतीत होता है । भगवान् शङ्कर इन्हें एक लाख वर्षतक अपने मस्तकपर धारण किये रहे । ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी गङ्गा पहले हिरण्यशृङ्गके पास विन्दुसरोवरमें प्रविष्ट हुईं । वहींसे उनकी सात धाराएँ विभक्त हुईं । जिनके नाम इस प्रकार हैं—वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बू-नदी, सीतागङ्गा और सिन्धु (भीष्म० ६ । २८—५०) । बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास महर्षियोंको भेजना (भीष्म० ११९ । ९७-९८) । इनका भागीरथी नाम पड़नेका कारण (द्रोण० ६० । ६) । इनके द्वारा स्कन्दको कमण्डलुका दान (शल्य० ४६ । ५०) । समुद्रसे बेंतकी नम्रताका वर्णन (शान्ति० ११३ । ८—११) । इनका जह्नुकी पुत्रीरूपसे प्रसिद्ध होना (अनु० ४ । ३) । गङ्गा-जीमें स्नानका फल (अनु० २५ । ३९) । इनकी महिमाका वर्णन (अनु० २६ । २६—९६) । अग्नि-द्वारा स्थापित किये गये शिवजीके तेजको इनका मेरु पर्वत-पर छोड़ना (अनु० ८५ । ६८) । अग्निसे अपने गर्भके स्वरूप आदिका वर्णन (अनु० ८५ । ७२—७६) । पार्वतीजीसे स्त्रीधर्मका वर्णन करनेके लिये प्रार्थना (अनु० १४६ । २७—३२) । अपने पुत्र भीष्मकी मृत्युपर इनका शोक करना (अनु० १६८ । २३—२८) । भीष्मजीके धराशायी होनेपर वसुओंका गङ्गाजीके तटपर आकर अर्जुनको शाप देनेकी इच्छा प्रकट करना और गङ्गाजीद्वारा उनके इस विचारका अनुमोदन होना (आश्व० ८१ । १२—१५) ।

महाभारतमें आये हुए गङ्गाजीके नाम—आकाशगङ्गा, भगीरथसुता, भागीरथी, शैलराजसुता, शैलसुता, देवनदी, हैमवती, जाह्नवी, जह्नुकन्या, जह्नुसुता, समुद्रमहिषी, त्रिपथगा, त्रिपथगामिनी इत्यादि ।

गङ्गादत्त—राजा शान्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे उत्पन्न कुमार देवव्रत (आदि० ९९ । ४५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । (देखिये भीष्म)

गङ्गाद्वार—जहाँ गङ्गाजी पर्वतमालाओंसे निकलकर समतल भूमि या मैदानमें आती हैं, उस स्थानका नाम गङ्गाद्वार है; इसीको 'हरद्वार' या 'हरिद्वार' कहते हैं । गङ्गाद्वारमें प्रतीपने तपस्या की (आदि० ९७ । १) । यहाँ भरद्वाज

माद्रीपुत्र सहदेव

मुनि रहते थे (आदि० १२९ । ३३)। अर्जुनने यहाँके तीर्थोंकी यात्रा की (आदि० २१३ अध्याय)। गङ्गाद्वार स्वर्गद्वारके समान है, वहाँ एकाग्रचित्त होकर कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । २७; वन० ८९ । १५; वन० ९० । २१)। पत्नीसहित महर्षि अगस्त्यने यहाँ तप किया था (वन० ९७ । ११)। जयद्रथने यहीं आराधना करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया था (वन० २७२ । २४–२६)। दक्ष-प्रजापतिने भी यहीं (कनखलमें) यज्ञ किया था (शल्य० ३८ । २७-२८)। गङ्गाद्वार तथा वहाँके तीर्थविशेष कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखलमें स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है (अनु० २५ । १३)। गङ्गाद्वारमें भीष्मजीने अपने पिताका श्राद्ध किया था, जिसमें पिण्ड लेनेके लिये शान्तनुका हाथ प्रकट हुआ था (अनु० ८४ । ११–१५)। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती गङ्गाद्वारके वनमें दग्ध हुई थीं और वहाँ युधिष्ठिरने उनके लिये श्राद्धकर्म भी कराया था (आश्रम० ३९ । १४–२०)।

गङ्गामहाद्वार–यह वह स्थान है, जहाँ हिमालयके शिखरसे गङ्गाजी उतरती हैं। यह गङ्गोत्तरीसे भी बहुत आगे है। एक सत्यवादी महात्मा धाममुनि उसकी रक्षा करते हैं। उनकी मूर्ति, आकृति तथा संचित तपस्याका परिमाण किसीको ज्ञात नहीं होता। उस गङ्गामहाद्वारसे आगे जानेवाला मनुष्य हिमराशिमें गल जाता है। भगवान् नर-नारायणको छोड़कर दूसरा कोई उस गङ्गामहाद्वारसे आगे कभी नहीं गया (उद्योग० १११ । १६–२०)।

गङ्गा-यमुना-सङ्गम–प्रयागका एक पावन तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे दस अश्वमेध यज्ञका फल मिलता और समस्त कुलका उद्धार हो जाता है (वन० ८४ । ३५; वन० ८५ । ७४–७६)।

गङ्गा-सरस्वती-सङ्गम–प्रयागका एक पवित्र तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता और स्वर्गलोक प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३८)।

गङ्गा-सागर-सङ्गम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे दस अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ गङ्गाके दूसरे पार जाकर स्नान और तीन रात निवास करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (वन०८५।४-५)।

गङ्गाह्रद–यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । ३४)। कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित यौवन तीर्थके अन्तर्गत गङ्गाह्रद नामका कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थोंका वास है। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८३ । १७६; वन० ८३ । २०१)।

गङ्गोद्भेद–एक तीर्थ, जिसमें तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सदाके लिये ब्रह्मीभूत हो जाता है (वन० ८४ । ६५)।

गज–(१) एक महापराक्रमी वानरराज, जो एक अरब सेनाके साथ श्रीरामके पास आये थे (वन० २८३ । ३)। (२) सुबलपुत्र शकुनिका एक छोटा भाई, जिसने अन्य भाइयोंके साथ रहकर पाण्डवसेनाके दुर्जय व्यूहमें प्रवेश किया था (भीष्म० ९० । २७–३०)। इरावान्द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । ४५–४६)।

गजकर्ण–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी सेवा करनेवाला एक यक्ष (सभा० १० । १६)।

गजशिरा–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०)।

गण–सेना-गणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द। तीन गुल्मोंका एक गण होता है (आदि० २ । २१)।

गणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३)।

गणित–एक सनातन विश्वेदेव, कालकी गतिके ज्ञाता (अनु० ९१ । ३६)।

गणेश–व्यासनिर्मित महाभारतको लिपिबद्ध करनेवाले विघ्नेश्वर भगवान् गणनायक (आदि० १ । ७५–७९)।

गण्डक–एक देश, जो गण्डकी नदीके आस-पास बसा हुआ है। इसे भीमसेनने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० २९ । ४)।

गण्डकण्डू–कुबेरकी सभाका एक यक्ष, जो वहाँ धनाध्यक्ष कुबेरकी सेवा करता है (सभा० १० । १५)।

गण्डकी–गङ्गाजीकी सात धाराओंमेंसे एक, गण्डकीका जल पीनेवाले मनुष्य तत्काल पापरहित हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१)। ग्रन्थान्तरोंमें इनके दो नाम और प्रसिद्ध हैं–नारायणी और शालग्रामी। महाभारत (भीष्म० ९ । २५) में तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें इनका हिरण्वती या हिरण्यवती नाम भी उपलब्ध होता है। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने इन्द्रप्रस्थसे गिरिव्रज जाते समय इसे पार किया था (सभा० २० । २७)। गण्डकी नदी सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई है। वहाँ जानेसे तीर्थयात्री अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सूर्य-लोकमें जाता है (वन० ८४ । ११३)। अग्निकी उत्पत्तिकी स्थानभूता नदियोंमें 'गण्डकी' की भी गणना है (वन० २२२ । २२)। हिरण्वती या गण्डकी भारतवर्षकी प्रधान नदियोंमें है (भीष्म० ९।२५)।

गण्डा–सप्तर्षियोंकी सेवा करनेवाली एक दासी (अनु०

९३ । २२)। इसका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताकर उससे भय प्रकट करना (अनु० ९३ । ४६)। इसका यातुधानीसे अपने नामका अभिप्राय बताना (अनु० ९३ । ९८)। मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२९)।

गतिताली–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

गद–भगवान् श्रीकृष्णके अनुज । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें आये थे (आदि० १८५ । १७)। अर्जुन और सुभद्राके लिये दहेज लेकर ये द्वारकासे इन्द्रप्रस्थ आये थे (आदि० २२० । ३२)। श्रीकृष्णके द्वारका जानेपर गदने इनका स्वागत किया और श्रीकृष्णने उन्हें हृदयसे लगाया (सभा० २ । ३५)। युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभाभवनमें प्रवेश करनेके समय गद भी वहाँ उपस्थित थे (सभा० ४ । ३०)। पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ गद भी पधारे थे (सभा० ३४ । १६)। शाल्वके चढ़ाई करनेपर इन्होंने द्वारका नगरीकी रक्षा-व्यवस्थामें सहयोग दिया था (वन० १५ । ९)। युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें श्रीकृष्णके साथ ये भी आये थे (आश्व० ८६ । ५)। मौसल-युद्धमें गदको मारा गया देख भगवान् श्रीकृष्णको विरोधियोंपर बड़ा क्रोध हुआ था (मौसल० ३ । ४५)।

गदापर्व–शल्यपर्वका एक अवान्तर पर्व (शल्य० अध्याय ३० से ६५ तक)।

गदावसान–मथुराका स्थानविशेष । श्रीकृष्णके द्वारा अपने जामाता कंसके मारे जानेपर अत्यन्त कुपित हो मगधराज जरासंधने श्रीकृष्णको मारनेकी नीयतसे निन्यानबे बार अपनी गदा घुमाकर गिरिव्रजसे मथुराकी ओर फेंकी। वह गदा निन्यानबे योजन दूर मथुरामें जाकर गिरी । जिस स्थानपर वह गदा गिरी थी, वह स्थान मथुरामें 'गदावसान' नामसे विख्यात हुआ (सभा० १९ । २२–२५)।

गन्धकाली–सत्यवतीका दूसरा नाम । भीष्मने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे उनके साथ माता सत्यवती या गन्धकालीका विवाह करवाया (आदि० ९५ । ४८)। (देखिये सत्यवती)

गन्धमादन–(१) हिमालयके उत्तरभागमें स्थित बदरिकाश्रमके समीपवर्ती पर्वत । गन्धमादनपर कश्यपजीने तपस्या की (आदि० ३० । १०)। यहीं भगवान् शेषने भी तप किया था (आदि० ३६ । ३)। शतशृङ्गपर्वतपर तपस्याके लिये जाते समय दोनों पत्नियोंसहित पाण्डुका यहाँ आगमन (आदि० ११८ । ४८)। यह गन्धमादन पर्वत दिव्यरूप धारण करके कुबेरकी सभामें रहकर उन भगवान् धनाध्यक्षकी उपासना करता है (सभा० १० । ३२)। नारायणरूपसे भगवान् श्रीकृष्णने यत्र-सायंगृह मुनि होकर दस हजार वर्षोंतक गन्धमादन पर्वतपर निवास किया है (वन० १२ । ११)। तपस्याके लिये जाते समय अर्जुनने हिमवान् तथा गन्धमादन पर्वतको लाँघकर आगेकी यात्रा की थी (वन० ३७ । ४१)। तपोबलसे ही गन्धमादनपर जाना सम्भव है—यह लोमशका वचन (वन० १४० । २२)। गन्धमादनपर विशाला बदरीका वृक्ष और भगवान् नर-नारायणका आश्रम है । वहाँ सदा यक्षलोग निवास करते हैं (वन० १४१ । २२–२४)। पाण्डवोंका गन्धमादनमें प्रवेश और वहाँकी प्राकृतिक स्थितिका वर्णन (वन० १४३ । २–६)। घटोत्कच और उसके साथियोंकी सहायतासे पाण्डवोंका गन्धमादनपर्वतपर पहुँचना (वन० १४५ अ०)। गन्धमादनकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन (वन० १५८ अध्याय)। गन्धमादनपर भीमसेनद्वारा कुबेरके सखा राक्षसप्रवर मणिमान्का वध (वन० १६० । ७६-७७)। अर्जुनका इन्द्रलोकसे लौटकर गन्धमादनपर आना (वन० १६४ अध्याय)। लङ्कासे निर्वासित हुए कुबेरका गन्धमादनपर निवास (वन० २७५ । ३३)। यहाँ नर-नारायणने अवर्णनीय तपस्या की है (उद्योग० ९६ । १५)। (२) गन्धमादन-निवासी एवं गन्धमादन नामसे प्रसिद्ध एक वानर-यूथपति, जो दस खरब वानरोंकी सेना साथ लेकर श्रीरामके समीप आया था (वन० २८३ । ५)। (३) एक राक्षसराज, जो यक्षों, गन्धर्वों और निशाचरोंके साथ कुबेरकी सभामें उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३०-३१)।

गन्धर्वतीर्थ–सरस्वती-तटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ विश्वावसु आदि गन्धर्व नृत्य आदिका आयोजन करते रहते हैं। बलरामजीने इसकी यात्रा की थी (शल्य० ३७ । ९—१३)।

गन्धर्वनगर–(नगर, ग्राम आदिका वह आभास, जो आकाशमें या स्थलमें दृष्टिदोषसे दिखायी पड़ता है । जब गरमीके दिनोंमें मरुभूमि या समुद्रमें वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, उस समय प्रकाशकी गतिके विच्छेदसे दूसरे शहर, गाँव, वृक्ष, नौका आदिका प्रतिबिम्ब आकाशमें पड़ता है और कभी-कभी उस आकाशके प्रतिबिम्बका प्रतिबिम्ब उलटकर पृथ्वीपर पड़ता है, जिससे कभी दूरके गाँव, नगर या तो आकाशमें उलटे टँगे या समीप दिखायी पड़ते हैं । यह दृष्टिदोष वायुकी असमान तहके कारण उस समय होता है, जब नीचेकी

तहकी वायु इतनी जल्दी हल्की हो जाती है कि ऊपरकी वायु और ऊपर नहीं जा सकती । गन्धर्वनगरका फल बृहत्संहितामें लिखा है—हिन्दी-शब्द-सागर) । महर्षियोंके अन्तर्धानको गन्धर्वनगरकी उपमा (आदि० १२५ । ३५) ।

गन्धर्वी–क्रोधवशाकी पुत्री । सुरभिकी कन्या । इससे घोड़ोंकी उत्पत्ति हुई (आदि० ६५ । ६७-६८) ।

गन्धवती–सत्यवतीने पराशरजीसे अपने शरीरके लिये उत्तम सुगन्धका वर माँगा । वर पाकर वह 'गन्धवती' एवं 'योजनगन्धा' नामसे प्रसिद्ध हुई (आदि० ६३ । ८०–८३) । (देखिये सत्यवती) ।

गभस्तिमान् द्वीप–एक द्वीप, जिसे शक्तिशाली सहस्रबाहुने जीता था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९२, कालम १) ।

गय–(१) 'आयु'के द्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न चतुर्थ पुत्र । पुरूरवाके पौत्र (आदि० ७५ । २५) । (२) एक प्राचीन राजा, जो अमूर्तरयाके पुत्र और राजर्षियोंमें श्रेष्ठ थे । शमठद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (वन० ९५ । १८—२९) । ये यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १८) । इन्होंने सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा की और वहाँके पावन जलके स्पर्श तथा महात्माओंके दर्शनसे प्रचुर धन एवं यश लाभ किये थे (वन० ९४ । १८-१९) । इनके यज्ञकी प्रशंसा (वन० १२१ । ३—१३) । विराट-नगरमें गोहरणके समय अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये ये इन्द्रके विमानपर बैठकर आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) । इन्होंने हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी मार्गमें परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । इनपर मान्धाताकी विजय (द्रोण० ६२ । १०) । सृञ्जयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (द्रोण० ६६ अध्याय)। इन्होंने गयामें यज्ञ किया । इनके यज्ञमें आयी हुई सरस्वतीका नाम 'विशाला' है (शल्य० ३८ । २०-२१)। श्रीकृष्णद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । १११—११९) । इनके द्वारा ब्राह्मणको पृथ्वीदान (शान्ति० २३४ । २६) । इन्होंने मांस-भक्षणका निषेध किया था (अनु० ११५ । ५९) । (३) एक परम पुण्यमय श्रेष्ठ पर्वत, जो राजा गयद्वारा सम्मानित हुआ है । वहीं देवर्षिसेवित कल्याणमय ब्रह्मसरोवर है । गयामें जाकर श्राद्ध करनेसे मनुष्यकी बीस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है (वन० ८७ । ८–१०) । (४) एक देश, जिसके भीतर गय पर्वत और गया तीर्थ है । इस देशके लोग राजा युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १६) ।

गयशिर–गया तीर्थके अन्तर्गत जो गय नामक पर्वत है, उसीको गयशिर अथवा गयशीर्ष कहते हैं, वहीं अक्षयवट है (वन० ८७ । ११; वन० ९५ । ९) ।

गयशीर्ष–गयाका ही तीर्थविशेष, जहाँ अक्षयवट है और जहाँ पितरोंके लिये दिया हुआ अन्न अक्षय होता है (वन० ८७ । ११; वन० ९५ । ९) ।

गया–एक परम पावन तीर्थ, जहाँ जाकर ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एकाग्र-चित्त होनेसे मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । ८२; वन० ९५ । ८) ।

गरिष्ठ–एक मुनि, जो इन्द्रसभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १३) ।

गरुड़–कश्यप और विनताके परम तेजस्वी पुत्र, जो भगवान् विष्णुके वाहन और ध्वज हैं (आदि० २३ । १२) । ये समय आनेपर अपनी माताकी सहायताके बिना ही अण्डा फोड़कर बाहर निकल आये । इनमें महान् साहस और बल-पराक्रम था । ये अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते थे । इच्छानुसार रूप धारण करने, चलने, पराक्रम दिखानेमें समर्थ थे । प्रज्वलित अग्निपुञ्जके समान अत्यन्त भयङ्कर जान पड़ते थे । इनकी पिङ्गल-वर्णकी आँखें बिजलीके समान चमकती थीं । ये पैदा होते ही सहसा बढ़कर विशाल हो गये और आकाशमें उड़ चले । देवता इन्हें बड़वानलके समान भीषण देख अग्निदेवकी शरणमें गये । अग्निदेवने बताया कि ये महातेजस्वी विनतानन्दन गरुड़ हैं । ये कश्यपकुमार देवताओंके हितैषी और सर्पोंके संहारक हैं (आदि० २३ । ५—१३) । देवताओंद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २३ । १५—२६) । देवताओंद्वारा स्तुति करनेपर इनका अपने तेजको समेटना (आदि० २३ । २७; आदि० २४ । २) । अपने और माताके दास्यभावसे छूटनेके लिये इनका सर्पोंसे उपाय पूछना (आदि० २७ । १४-१५) । स्वर्ग जाते समय इनके पूछनेपर माताका इनको मार्गका भोजन बतलाना (आदि० २८ । २) । माताका इनके पूछनेपर इन्हें ब्राह्मणकी महिमा बताना और उन्हें न खानेका आदेश देना (आदि० २८ । ३–१२) । स्वर्ग जाते समय इनको माताका आशीर्वाद (आदि० २८ । १४–१६) । निषादोंके साथ एक सस्त्रीक ब्राह्मणका इनके मुँहमें आना, इनका कण्ठ जलना तथा इनके द्वारा उसका परित्याग (आदि० २९ । २–५) । पिता कश्यपका इनको कछुए तथा हाथीके पूर्वजन्मका इतिहास बताकर उन्हें खानेका आदेश देना (आदि० २९ । १३–३२) । इनके द्वारा हाथी, कछुए एवं बालखिल्य

ऋषियोंको लेकर उड़नेकी अद्भुत घटना (आदि० २९। ३७ से ३० । २५)। बालखिल्य मुनियोंद्वारा इनका नामकरण (आदि० ३० । ६-७) । इनके पिताके स्तुति करनेपर बालखिल्य मुनियोंद्वारा उस शाखाका परित्याग (आदि० ३० । १६) । इनके स्वर्गके समीप जानेपर वहाँ अनेक प्रकारके अशुभसूचक उत्पात होना (आदि० ३० । ३२-३८) । भयभीत हुए इन्द्रको बृहस्पतिका अमृतके लिये गरुड़के आनेकी सूचना देना (आदि० ३० । ४०-४२) । अमृत हरण करनेके लिये इनको स्वर्ग आते देख इन्द्रका देवताओंको सावधान करना (आदि० ३० । ४३-४४) । इनकी जन्मकथा तथा इनका पक्षियोंके इन्द्रपदपर अभिषेक (आदि० ३१ । ३४-३५; आदि० ३२ । १-२५) । अपना लघु रूप बनाकर चक्रमें इनका घुसना और अमृतके स्थानमें प्रवेश करना । वहाँ अमृतरक्षक अद्भुत पराक्रमी दो सर्पोंको मारकर इनका अमृतपात्रको लेकर उड़ना (आदि० ३३ । १-११) । मार्गमें इनका भगवान् विष्णुसे उनके ध्वजपर रहने तथा बिना अमृत पिये अजर-अमर होनेका वर पाना एवं उनके लिये भी स्वयं वाहन होनेका वर देना (आदि० ३३ । १२-१६) । इन्द्रके साथ इनका युद्ध और मित्रता (आदि० ३३ । २८ से ३४ । ७) । इन्द्रके कथनानुसार गरुड़के द्वारा नागोंका अमृत-की प्राप्तिसे वञ्चित होना, इन्द्रके मनोरथकी पूर्ति और विनताका दासीभावसे छुटकारा (आदि० ३४ । ८-२०) । इनके कुशोंपर अमृत रखनेसे उनका पवित्र होना (आदि० ३४ । २४) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ५०) । श्रीकृष्णके ध्वजपर गरुड़की स्थिति (सभा० २४ । २२-२५) । इनका ऋद्धिमान् नामक नागको पकड़ना (वन० १६० । १५) । इनकी गर्वपूर्ण आत्मप्रशंसा (उद्योग० १०५ । ३-१७) । भगवान् विष्णुद्वारा इनके गर्वका नाश (उद्योग० १०५ । २२) । इनकी भगवान्से क्षमा-याचना (उद्योग० १०५ । २७-२९) । गुरुदक्षिणा-के लिये चिन्तित हुए गालवको इनका आश्वासन देना (उद्योग० १०७ । १७-१९) । गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १०८ अध्याय) । गालवसे दक्षिण दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १०९ अध्याय) । गालवसे पश्चिम दिशाका वर्णन करना (उद्योग० ११० अध्याय) । गालवसे उत्तर दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १११ अध्याय) । ऋषभ पर्वतपर पंखहीन होना और शाण्डिलीसे क्षमा-याचना करना (उद्योग० ११३ । ८-११) । शाण्डिलीके वरदानसे पंखोंकी प्राप्ति (उद्योग० ११३ । १७) । गालवको धनके लिये राजर्षि ययातिके पास चलनेका परामर्श (उद्योग० ११४ । १-८) । ययातिसे अपने आगमनका प्रयोजन बताना (उद्योग० ११४ । ११-२०) । ययातिकी कन्याके मिलनेपर गालवसे विदा लेना (उद्योग० ११५ । १६) । गालवको गुरुदक्षिणाके लिये छः सौ घोड़े और माधवी-को भी गुरुकी सेवामें समर्पित करनेके लिये सम्मति देना (उद्योग० ११९ । ९-१०) । इनके द्वारा स्कन्दको अपने पुत्र मयूरका दान (शल्य० ४६ । ५१) । श्रीनारायणकी आज्ञासे राजा उपरिचर वसुको पातालसे उठाकर आकाशचारी बनाना (शान्ति० ३३७ । ३७) । ऋषियोंके समाजमें नारायणकी महिमाके विषयमें अपना अनुभव सुनाना (अनु० १३ । दा० पाठ) । इनका कार्तिकेयको मयूर भेंट करना (अनु० ८६ । २१) ।

महाभारतमें आये हुए गरुड़के नाम—अरुणानुज, भुजगारि, गरुत्मान्, काश्यपेय, खगराट्, पक्षिराट्, पक्षिराज, पतगपति, पतगेश्वर, सुपर्ण, तार्क्ष्य, वैनतेय, विनतानन्द-वर्धन, विनतासूनु, विनतासुत, विनतात्मज आदि ।

गरुड़व्यूह—सेनाकी मोर्चाबंदीकी एक विधि, जिसके अनुसार सैनिकोंको गरुड़की आकृतिमें खड़ा किया जाता है (भीष्म० ५६ । २) ।

गर्ग—एक प्राचीन महर्षि । इनका द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेके लिये कहना (द्रोण० १९० । ३५-४०) । महाराज पृथुके दरबारमें ज्यौतिषी होना (शान्ति० ५९ । १११) । महात्मा गर्गने किसी समय गन्धर्वराज विश्वावसुको वेद्य तत्त्वकी नित्यताका उपदेश दिया था (शान्ति० ३१८ । ५९-६३) । शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ३८-३९) ।

गर्गस्रोत—सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ तपस्यासे पवित्र अन्तःकरणवाले वृद्धगर्गने कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर आदि बातोंकी जानकारी की (शल्य० ३७ । १४—१८) ।

गवय—एक महापराक्रमी वानरराज, जो एक अरब सेनाके साथ श्रीरामके समीप पधारे थे (वन० २८३ । ३) ।

गवल्गण—मुनियोंके समान ज्ञानी एवं धर्मात्मा सञ्जयके पिता (आदि० ६३ । ९७) ।

गवाक्ष—(१) एक गोलांगूल (लंगूर) जातिका वानर, जो देखनेमें बड़ा भयङ्कर था । अपने साथ साठ सहस्र कोटि (६ खरब) वानर-सेना लेकर श्रीरामके सामने उपस्थित हुआ (वन० २८३ । ४) । (२) सुबलपुत्र शकुनिका

एक छोटा भाई, जिसने अन्य भाइयोंके साथ रहकर पाण्डव-सेनाके दुर्जय व्यूहमें प्रवेश किया था (भीष्म० ९० । २७—३०) । इरावान्द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । ४५-४६) ।

गवायन—एक यज्ञका नाम (वन० ८४ । १०२) ।

गविष्ठ—दस विख्यात दानवोंमेंसे एक (आदि० ६५ । ३०) । यही राजा द्रुमसेनके रूपमें प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । ३४-३५) ।

गाङ्गेय—(१) गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म (आदि० ९९ । ४७) । गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म (अनु० २६ । २) । (२) गङ्गापुत्र भगवान् स्कन्द (शल्य० ४४ । १६) । (३) गङ्गाजीका जल (वन० ३ । ३५) ।

गाण्डीव—वरुणदेवका एक दिव्य धनुष, जो अग्निदेवके द्वारा अर्जुनको दो अक्षय तरकसोंके साथ प्राप्त हुआ (आदि० ६१ । ४७-४८; उद्योग० १५८ । ६) । अग्निका वरुणसे अर्जुनके लिये गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तरकस और कपिध्वज रथ माँगना तथा वरुणका उनकी माँग स्वीकार करके वे सब वस्तुएँ प्रस्तुत करना (आदि० २२४ । ३—१७) । अर्जुनद्वारा गाण्डीव-ग्रहण (आदि० २२४ । २०) । गाण्डीव धनुष शत्रुओंकी सेनाके लिये कालरूप है । यह सब आयुधोंसे विशाल है । यह अकेला ही एक लाख धनुषोंके समान है । देवताओं, दानवों और गन्धर्वोंने इसका बहुत वर्षोंतक पूजन किया है । इसमें कभी कहीं कोई चोटका चिह्न नहीं आया है । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इसे एक हजार वर्षोंतक धारण किया था । तदनन्तर प्रजापतिने पाँच सौ तीन वर्षोंतक इसे अपने पास रक्खा । फिर इन्द्रने पचासी वर्षोंतक, सोमने पाँच सौ वर्षोंतक तथा राजा वरुणने सौ वर्षोंतक इसे धारण किया था (विराट० ४३ । १०६) । वज्रकी गाँठको 'गाण्डीव' कहा गया है । यह धनुष इसीका बना हुआ है । इसलिये 'गाण्डीव' कहलाता है । जगत्‌का संहार करनेके लिये इसका निर्माण हुआ है । देवतालोग सदा इसकी रक्षा करते हैं (उद्योग० ९८ । १९) । 'गाण्डीव दूसरेको दे दो' ऐसा कहनेवालेका सिर काट लेना यह अर्जुनका उपांशु व्रत था (कर्ण० ६९ । ९-१०) । अग्निदेवके कहनेपर वरुणको वापस देनेके लिये अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसोंको जलमें डाल दिया था (महाप्रस्था० १ । ३६—४२) ।

गाधि—विश्वामित्रके पिता । गाधिके पिताका नाम 'कुशनाभ' था (आदि० ७४ । ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । ये कुशिक (या कुशनाभ) के पुत्र तथा कान्यकुब्ज देशके अधिपति थे (आदि० १७४ । ३) । इनके द्वारा ऋचीक मुनिको अपनी कन्या सत्यवतीका दान (वन० ११५ । २८; शान्ति० ४९ । ७) । तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे इनका ऋचीकके आश्रमपर जाना (शान्ति० ४९ । १३) । कुशिकपुत्र गाधि दीर्घकालतक संतान-हीन थे; अतः संतानकी इच्छासे पुण्य कर्म करनेके लिये वे वनमें रहने लगे । वहाँ सोमयाग करनेसे उन्हें एक कन्या हुई, जिसका नाम सत्यवती था । इसे ऋचीक मुनिने माँगा । तब गाधिने शुल्क लेकर कन्या देनेकी इच्छा प्रकट की और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् तथा श्यामवर्णके एक कर्णवाले एक हजार घोड़े लेकर उन्होंने अपनी कन्या उन ब्रह्मर्षिको दे दी (अनु० ४ । ६—२०) । ये अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यसिंहासनपर बिठाकर स्वर्गलोकको चले गये (शल्य० ४० । १६) ।

गान्धर्व—एक प्रकारका विवाह (आदि० ७३ । ९) । वर और वधू दोनों एक-दूसरेको स्वेच्छासे स्वीकार कर लें, यह गान्धर्व विवाह है । यह विवाह क्षत्रियोंके लिये धर्मानुकूल है (आदि० ७३ । १३) ।

गान्धार—एक प्राचीन देश, आधुनिक मतके अनुसार इसमें सिन्धु और कुनर नदीसे लेकर काबुल नदीतकका प्रदेश और पेशावर तथा मुल्तान सम्मिलित हैं । गान्धारीके पिता सुबल यहींके राजा थे (आदि० १०९ । ११) ।

गान्धारी—(१) पूरुवंशीय महाराज अजमीढ़की द्वितीय पत्नी (आदि० ९५ । ३७) । (२) गान्धारराज सुबलकी पुत्री (आदि० १०९ । ९) । ये मतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७ । १६०) । इन्होंने भगवान् शङ्करकी आराधना करके उनसे अपने लिये सौ पुत्र प्राप्त होनेका वरदान पा लिया था (आदि० १०९ । १०) । पिताद्वारा इनका धृतराष्ट्रके लिये वाग्दान (आदि० १०९ । १२) । गान्धारी पतिव्रत-परायणा थीं । उन्होंने जब सुना कि मेरे भावी पति अंधे हैं और माता-पिता मेरा विवाह उन्हींके साथ करना चाहते हैं, तब रेशमी वस्त्र लेकर उसके कई तह करके उसीसे अपनी आँखें बाँध लीं । उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं सदा पतिके अनुकूल रहूँगी । उनके दोष नहीं देखूँगी (आदि० १०९ । १३—१५) । शकुनिद्वारा इनके विवाह-संस्कारका सम्पादन (आदि० १०९ । १५—१७) । सुन्दरी गान्धारीने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार तथा सद्व्यवहारोंसे समस्त कौरवोंको प्रसन्न कर लिया । अपने सुन्दर बर्तावसे समस्त गुरुजनोंकी प्रसन्नता प्राप्त करके उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पतिपरायणा गान्धारीने कभी दूसरे पुरुषोंका नामतक नहीं लिया (आदि० १०९ । १८—१९) । इनके द्वारा व्यासका सत्कार और उनसे

सौ पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये वर-याचना (आदि० ११४ । ८)। गान्धारीका गर्भ-धारण । कुन्तीके पुत्र होनेका समाचार सुनकर महान् दुःखके कारण अपने उदरपर आघात और इनके गर्भसे एक मांस-पिंडका प्रादुर्भाव (आदि० ११४ । ९–१२) । व्यासजीके आदेशानुसार सौ टुकड़ोंमें विभक्त हुए उस मांस-पिण्डकी रक्षा-व्यवस्था होनेपर उससे सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० ११४ । १७–२२) । पुत्रीके लिये इनका मनोरथ एवं व्यासद्वारा उसकी पूर्ति (आदि० ११५ । ९–१७) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको चेतावनी (सभा० ७५ । २–१०) । इनका दुर्योधन-को समझाना (उद्योग० ६९ । ९–१०) । युद्ध होनेके विषयमें इनका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना (उद्योग० १२९ । १०–१५) । पाण्डवोंको आधा राज्य देकर संधि करनेके लिये दुर्योधनको समझाना (उद्योग० १२९ । १९–५४) । कर्णवधका समाचार सुनकर मूर्छित होकर गिरना (कर्ण० ४ । ५; कर्ण० ९६ । ५५)। श्रीकृष्णके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (शल्य० ६३ । ६६–६८) । पाण्डवोंको शाप देनेकी इच्छा करना (स्त्री० १४ । २) । व्यासजीके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (स्त्री० १४ । १४–२१) । भीमसेनपर कुपित होकर उनसे अन्यायका कारण पूछना (स्त्री० १५ । १२–१४; स्त्री० १५ । २१–२३) । युधिष्ठिरपर कुपित होकर उन्हें पूछना और इनकी तनिक-सी दृष्टि पड़ते ही युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना (स्त्री० १५ । २४–३०) । कुन्ती और द्रौपदीको धीरज देना (स्त्री० १५ । ४१–४४) । युद्धस्थलमें मारे गये स्वजनोंको देखकर श्रीकृष्णके समक्ष विलाप करना (स्त्री० १६ । १८–६०) । दुर्योधनको मरा हुआ देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप करना (स्त्री० १७ । ५–३२) । अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका करुण रोदन (स्त्री० १८ अध्याय) । विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति और दुःसहको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका विलाप (स्त्री० १९ अध्याय) । इनके द्वारा श्रीकृष्णसे उत्तरा और विराट-कुलकी स्त्रियोंके शोक और विलापका वर्णन (स्त्री० २० अध्याय) । कर्णके शवको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन (स्त्री० २१ अध्याय) । अवन्तीनरेश, जयद्रथ तथा दुःशलाको देखकर इनका श्रीकृष्णके सम्मुख शोक प्रकट करना (स्त्री० २२ अध्याय) । शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका विलाप (स्त्री० २३ अध्याय) । भूरिश्रवाकी पत्नियोंका विलाप तथा शकुनिको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका शोकोद्गार (स्त्री० २४ अध्याय) । अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर विलाप करना और कुपित होकर श्रीकृष्णको शाप देना (स्त्री० २५ । १–३६; स्त्री० २५ । ४३–४६) । राजा धृतराष्ट्रके साथ इनका वनको प्रस्थान (आश्रम० १५ । ८–९) । वनमें व्यासजीके समक्ष खड़ी होकर इनका उनसे महाराज धृतराष्ट्र तथा द्रौपदी, सुभद्रा, कुन्ती आदि सभी कुरुकुलकी स्त्रियोंके स्वजनोंके लिये होनेवाले शोकका वर्णन करना और सबको मरे हुए सम्बन्धियोंके दर्शन करानेका प्रस्ताव करना (आश्रम० २९ । ३७–४९) । व्यासजीकी कृपासे इनका राजा धृतराष्ट्र तथा कुरुकुलकी स्त्रियोंके साथ गङ्गाजीसे प्रकट हुए अपने परलोकवासी स्वजनोंके दर्शन करना (आश्रम० ३२ अध्याय) । धृतराष्ट्र और कुन्तीके साथ इनका गङ्गाद्वारके वनमें दावानलसे दग्ध होना (आश्रम० ३७ । ३१–३२) । युधिष्ठिरका इनके लिये जलाञ्जलि देना तथा नाना प्रकार-की वस्तुओंका दान एवं श्राद्ध-कर्म करना (आश्रम० ३९ अध्याय) । 'गान्धारीके शापकी सफलताका अवसर प्राप्त हुआ है'–ऐसी श्रीकृष्णकी मान्यता (मौसल० २ । २१) । धृतराष्ट्रके साथ इनको कुबेरके दुर्लभ लोकोंकी प्राप्ति (स्वर्गा० ५ । १४) । (३) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (वन० २३१ । ४८)।

महाभारतमें आये हुए गान्धारीके नाम–गान्धारराजदुहिता, सौबलेयी, सौबली, सुबलजा, सुबलपुत्री, सुबलात्मजा आदि ।

गायत्री–चौबीस अक्षरोंका एक वैदिक मन्त्र; स्थावर-जङ्गम उन्नीस प्राणी हैं । इनके साथ पाँच महाभूतोंको गिन लेनेपर इनकी संख्या चौबीस हो जाती है । गायत्रीके भी इतने ही अक्षर होते हैं; इसलिये इन चौबीस भूतोंको भी लोकसम्मत गायत्री कहते हैं । जो इस सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमयी गायत्रीको यथार्थरूपसे जानता है वह कभी नष्ट नहीं होता है (भीष्म० ४ । १५–१६) । गायत्री त्रिपुर-विजयके समय महादेवजीके रथके ऊपरी भागकी बन्धन-रज्जु बनी थी (कर्ण० ३४ । ३५) । कन्या गायत्रीने कार्तवीर्य अर्जुनको ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताके विषयमें चेतावनी देते हुए आकाशवाणीद्वारा अपना मन्तव्य प्रकट किया था (अनु० १५२ । १४, २०) ।

गायत्री-स्थान–एक तीर्थस्थान, जहाँ तीन रात निवास करने-वाला सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । २८) ।

गायन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७) ।

गार्ग्य (१)–एक प्राचीन ऋषि, जो देवराज इन्द्रकी सभा-में विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन

(अनु० १२७ । ९–१४) । (२) एक भारतीय जनपद, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १५) ।

गार्दभि–विश्वामित्रके एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४।५९) ।

गार्हपत्य–(१) सात पितरोंमेंसे एक (सभा० ११ । ४६) । (२) एक अग्नि (वन० २२४ । ३५) ।

गालव–युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १५) । ये इन्द्रकी सभामें भी बैठते हैं (सभा० ७ । १०) । गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये इनका गुरु विश्वामित्र-से हठ करना (उद्योग० १०६ । २५) । गुरुदक्षिणाके लिये आठ सौ घोड़े पानेकी चिन्ता (उद्योग० १०७ । ३–१५) । गरुडकी पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गरुडके वेगसे इनका व्याकुल होना (उद्योग० ११२ । ५–१८) । गरुडके साथ धनके लिये ययातिके पास जाना (उद्योग० ११४ । ९) । ययातिकन्या माधवी-को लेकर अयोध्यानरेश हर्यश्वके पास जाना (उद्योग० ११५ । १८) । राजा हर्यश्वसे दो सौ घोड़े शुल्करूपमें लेकर माधवीको एक पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उनके हाथमें सौंपना (उद्योग० ११६ । १५) । पुत्रोत्पत्तिके बाद पुनः माधवीको लेकर इनका दिवोदासके पास जाना (उद्योग० ११६ । २२) । दो सौ घोड़े शुल्करूपमें लेकर माधवीको दिवोदासके हाथमें एक पुत्रकी उत्पत्तिके लिये देना (उद्योग० ११७ । ७) । पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् वहाँसे माधवीको लेकर गालवका उशीनरके पास जाना और उशीनरको माधवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न करनेकी प्रेरणा देते हुए उनसे चार सौ घोड़े माँगना (उद्योग० ११८ । ३–८) । गरुडकी सलाहसे विश्वामित्रको छः सौ घोड़े और माधवीको देकर गुरुदक्षिणा चुकाना (उद्योग० ११८ । १४) । फिर एक पुत्रकी उत्पत्तिके बाद माधवीको राजा ययातिको लौटाकर इनका वनको जाना (उद्योग० ११८ । २४) । स्वर्गसे गिरे हुए ययातिको इनका अपने तपका आठवाँ भाग देना (उद्योग० १२१ । २८) । नारदजीसे श्रेयके विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० २८७ । ५–११) । शिवमहिमा-के विषयमें युधिष्ठिरसे अपना अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ५२–५८) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होने-पर शपथ करना (अनु० ९४ । ३७) । महर्षि गालव विश्वामित्रजीके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक थे (अनु० ४ । ५२) । इनके पुत्रका नाम शृङ्गवान् था, जो एक महर्षि थे और जिन्होंने वृद्धकन्यासे विवाह किया था (शल्य० ५२ । १४-१५) । (२) एक बाभ्रव्यगोत्रीय ऋषि, जो वेदके क्रमविभागके पारङ्गत विद्वान् थे (शान्ति० ३४२ । १०४) ।

गिरिका–शुक्तिमती नदीकी पुत्री, जिनका जन्म कोलाहल पर्वतके द्वारा शुक्तिमतीके गर्भसे हुआ था (आदि० ६३ । ३७) । यही राजा उपरिचर वसुकी पत्नी हुई (आदि० ६३ । ३९) ।

गिरिगह्वर–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४२) ।

गिरिप्रस्थ–निषधदेशका एक पर्वत, जिसके आश्रयमें छिपे रहकर इन्द्रने अपना कार्य सिद्ध किया था (वन० ३१५ । १३) ।

गिरिव्रज–मगधदेशकी प्राचीन राजधानी । जरासंध गिरिव्रज-में ही रहता था । उसके समयमें गिरिव्रजकी जो प्राकृतिक स्थिति थी, उसका वर्णन श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार किया था—यहाँ पशुओंकी अधिकता है, जलकी सदा पूर्ण सुविधा रहती है, रोग-व्याधिका प्रकोप नहीं होता । सुन्दर महलोंसे भरा-पूरा यह नगर बड़ा मनोहर जान पड़ता है । यहाँ विहारोपयोगी विपुल, वराह, वृषभ (ऋषभ), ऋषिगिरि (मातंग) तथा चैत्यक नामक पर्वत हैं । बड़े-बड़े शिखरोंवाले ये पाँचों सुन्दर पर्वत शीतल छायावाले वृक्षोंसे सुशोभित हैं और एक साथ मिलकर एक-दूसरेके शरीरका स्पर्श करते हुए मानो गिरिव्रज नगरकी रक्षा कर रहे हों । यहाँ अर्बुद और शक्रवापी नामवाले दो नाग रहते हैं । स्वस्तिक और मणि नामक नागोंके भी यहाँ उत्तम भवन हैं । यहाँ सदा मेघ समयपर वर्षा करते हैं (सभा० २१ ।१–१०) । यहाँ जरासंधने अपनेद्वारा जीते गये नरेशोंको कैद करके रखा था (सभा० १४ । ६३) । गिरिव्रजसे मथुराकी ओर जरासंधने अपनी गदा फेंकी थी (सभा० १९ । २३-२४) । श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन गिरिव्रजमें गये । भीमने वहाँ जरासंधको मारा और भगवान् श्रीकृष्णने बंदी राजाओंको कैदसे छुड़ाया । फिर भयभीत हो शरणमें आये हुए जरासंधपुत्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया (सभा० २४ अध्याय) । भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जरासंधके पुत्रको 'कर' देनेकी शर्तपर उसके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया (सभा० ३० । १७-१८) । गिरिव्रजमें ही राजर्षि धुन्धुमार देवताओंके वरदानको त्यागकर सोये थे (अनु० ६ । ३९) ।

गीतप्रिया–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

गीता–कुरुक्षेत्रमें युद्धके अवसरपर स्वजनोंके वधकी आशङ्कासे मोहग्रस्त हुए अर्जुनके शोक, चिन्ता और दैन्यका निवारण करके उन्हें कर्तव्य कर्ममें निष्काम भावसे

लगा देनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही 'गीता' (अथवा 'श्रीमद्भगवद्गीता') के नामसे विख्यात है । वेदव्यासजीने गीताके इस प्रसङ्गको भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें अध्याय २५ से ४२ तक लिपिबद्ध किया है । इसमें कुल सात सौ श्लोक हैं । श्रीमद्भगवद्गीताके प्रत्येक अध्यायके विषयोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान वीरों एवं शङ्खध्वनिका वर्णन तथा स्वजन-वधके पापसे भयभीत हुए अर्जुनका विषाद **(भीष्म० २५ अध्याय)** । अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए भगवान्के द्वारा नित्यानित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोग, कर्मयोग एवं स्थितप्रज्ञकी स्थिति और महिमाका प्रतिपादन **(भीष्म० २६ अध्याय)** । ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनोंके अनुसार कर्तव्य कर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन एवं स्वधर्म-पालनकी महिमा तथा कामनिरोधके उपायका वर्णन **(भीष्म० २७ अध्याय)** । सगुण भगवान्के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग तथा योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञानकी महिमाका वर्णन **(भीष्म० २८ अध्याय)** । सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन **(भीष्म० २९ अध्याय)** । निष्काम कर्मयोगका प्रतिपादन करते हुए आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा तथा मनोनिग्रहपूर्वक ध्यानयोग एवं योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन **(भीष्म० ३० अध्याय)** । ज्ञान-विज्ञान, भगवान्की व्यापकता, अन्य देवताओंकी उपासना एवं भगवान्को प्रभावसहित न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमाका कथन **(भीष्म० ३१ अध्याय)** । ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्तियोग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गोंका प्रतिपादन **(भीष्म० ३२ अध्याय)** । ज्ञान-विज्ञान और जगत्की उत्पत्तिका, आसुरी और दैवी सम्पदावालोंका, प्रभावसहित भगवान्के स्वरूपका, सकाम-निष्काम उपासनाका एवं भगवद्भक्तिकी महिमाका वर्णन **(भीष्म० ३३ अध्याय)** । भगवान्की विभूति और योगशक्तिका तथा प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, अर्जुनके पूछनेपर भगवान्द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका पुनः वर्णन **(भीष्म० ३४ अध्याय)** । विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, भगवान् और संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन, अर्जुनद्वारा भगवान्के विश्वरूपका देखा जाना, भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति-प्रार्थना, भगवान्द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके दर्शनकी महिमा और केवल अनन्य भक्तिसे ही भगवान्की प्राप्तिका कथन **(भीष्म० ३५ अध्याय)** । साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय तथा भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन **(भीष्म० ३६ अध्याय)** । ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति-पुरुषका वर्णन **(भीष्म० ३७ अध्याय)** । ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्की उत्पत्तिका, सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंका, भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन **(भीष्म० ३८ अध्याय)** । संसार-वृक्षका, भगवत्प्राप्तिके उपायका, जीवात्माका प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका एवं क्षर-अक्षर और पुरुषोत्तमके तत्त्वका वर्णन **(भीष्म० ३९ अध्याय)** । फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन तथा शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्र-अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा **(भीष्म० ४० अध्याय)** । श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद तथा ॐ, तत्, सत्के प्रयोगकी व्याख्या **(भीष्म० ४१ अध्याय)** । त्यागका, सांख्य-सिद्धान्तका, फलसहित वर्ण-धर्मका, उपासनासहित ज्ञाननिष्ठाका, भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका एवं गीताके माहात्म्यका वर्णन **(भीष्म० ४२ अध्याय)** ।

गुडाकेश—अर्जुनका एक नाम **(आदि० १३८ । ८)** । (निद्राको जीत लेनेके कारण अर्जुनका नाम गुडाकेश हुआ) । (देखिये अर्जुन)

गुणकेशी—इन्द्रके प्रिय सारथि मातलिकी कन्या **(उद्योग० ९७ । १३)** । नागकुमार सुमुखके साथ विवाह हुआ **(उद्योग० १०४ । २९)** ।

गुणमुख्या—स्वर्गकी एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मकालमें अन्य अप्सराओंके साथ नृत्य करने आयी थी **(आदि० १२२ । ६१)** ।

गुणावती—एक नदी, जिसके उत्तर प्रान्तमें परशुरामजीने क्षत्रियोंका संहार किया था **(द्रोण० ७० । ८)** ।

गुणावरा—स्वर्गकी एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मकालमें अन्य अप्सराओंके साथ नृत्य करने आयी थी **(आदि० १२२ । ६१)** ।

गुप्तक—सौवीर देशका राजकुमार, जो जयद्रथका साथी था **(वन० २६५ । १०)** । अर्जुनद्वारा इसका वध **(वन० २७१ । २७)** ।

गुरुभार—गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक **(उद्योग० १०१ । १३)** ।

गुरुस्कन्द—एक पर्वतराज **(आश्व० ४३ । ५)** ।

गुल्म–सेना-गणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द—तीन सेनामुखका एक गुल्म होता है (आदि० २ । २०)।

गुह–एक दक्षिण भारतीय म्लेच्छ जातिका नाम (शान्ति० २०७ । ४२)।

गुह्यक–(१) देवयोनिके अन्तर्गत एक जाति, इस जातिके लोग द्रौपदीका स्वयंवर देखने आये थे (आदि० १८६। ७)। ये कुबेरकी सभाका वहन करते हैं (सभा० १० । ३) । गन्धमादनपर भीमसेनने अपनी गदासे गुह्यकोंको मारा था, (शल्य० ११ । ५५–५७) । महाभारत-युद्धमें मारे गये योद्धाओंमेंसे कुछ लोग गुह्यकोंके लोकोंको प्राप्त हुए (स्वर्गा० ४। २३)(२) एक यक्ष,जो कुबेरकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होता था (सभा० १० । १५) । वह ब्रह्माजीकी सभामें भी उपस्थित होता है (सभा० ११ । ४९) ।

गृत्समद–इन्द्रके प्रिय सखा और बृहस्पतिके समान एक श्रेष्ठ मुनि । शिव-महिमाके विषयमें इनका युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८। १९–२९) । ये वीतहव्य-के पुत्र थे और रूपमें इन्द्रकी समानता करते थे, किसी समय दैत्योंने इन्हें 'इन्द्र' मानकर पकड़ लिया था । इनके पुत्रका नाम सुचेता था (अनु० ३० । ५८-५९) । ऋग्वेदमें महामना गृत्समदकी श्रेष्ठ श्रुति विराजमान है, ब्राह्मणलोग इनका बड़ा सम्मान करते हैं । ये ब्रह्मर्षि गृत्समद बड़े तेजस्वी और ब्रह्मचारी थे (अनु० ३० । ६०-६१) ।

गृध्रकूट–एक पर्वत, जहाँ लंगूरोंने मगधराज बृहद्रथको बचाया था (शान्ति० ४९ । ८२) ।

गृध्रपत्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

गृध्रवट–महादेवजीका स्थान, जहाँ भस्मस्नान कर्तव्य है । वहाँ यात्रा करनेसे ब्राह्मणको व्रतके पालनका पुण्य फल प्राप्त होता है तथा अन्य वर्णवालोंके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं (वन० ८४ । ९१-९२) ।

गृहदेवी–राक्षसी जरा, जिसे ब्रह्माजीने 'गृहदेवी' के नामसे उत्पन्न किया था (सभा० १८ । १-२) । दानवोंके विनाशके लिये इसकी सृष्टि हुई है । यह दिव्यरूप धारण करनेवाली है । जो अपने घरकी दीवारपर अनेक पुत्रोंसे घिरी हुई युवती स्त्रीके रूपमें इसका चित्र अङ्कित करती है, उसके घरमें सदा वृद्धि होती है (सभा० १८ । ३-४) ।

गेरु–एक पर्वतीय धातु (वन० १५८ । ९५) ।

गो (गौ)–महर्षि पुलस्त्यकी भार्याका नाम 'गो' या गौ था । इनके गर्भसे वैश्रवण नामक पुत्र हुआ, जो पिताको छोड़कर पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें रहता था (वन० २७४ । १२) ।

गोकर्ण–(१) एक प्राचीन तीर्थ, जहा पूर्वकालमें भगवान् शेषने तपस्या एवं एकान्तवास किया था (आदि० ३६ । ३) । यह भगवान् शिवका स्थान है, यहाँ तीर्थ-यात्राके प्रसंगमें अर्जुनका आगमन हुआ था (आदि० २१६ । ३४) । यह समुद्रके मध्यमें विद्यमान, त्रिभुवन-विख्यात और अखिल लोकवन्दित तीर्थ है । यहाँ ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन महर्षि और भूत-यक्ष आदि भगवान् शङ्करकी उपासना करते हैं । यहाँ भगवान् शिवकी पूजा करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और गणपति-पद प्राप्त कर लेता है (वन० ८५ । २४–२७) । गोकर्ण तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है । वह पवित्र कल्याणमय और शुभ है । अशुद्ध अन्तःकरणवालोंके लिये यह तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है (वन० ८८ । १५-१६) । (२) यह एक तपोवन है (भीष्म० ६ । ५१) ।

गोकर्णा–कर्णके सर्पमुख बाणमें प्रविष्ट अश्वसेन नागकी माता (कर्ण० ९० । ४२) ।

गोकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५)।

गोकुल–अधिक गौओंके रहनेका स्थान एवं नन्दका गोकुल—जहाँ पले हुए ग्वालोंको सव्यसाची अर्जुनने मारा था (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९९-८००; कर्ण० ५ । ३८) ।

गोतीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ पाण्डवलोग तीर्थयात्रा करते हुए गये थे (वन० ९५ । ३) ।

गोदा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २८) ।

गोदावरी–एक नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २०) । यह दक्षिण भारतके नासिक जिलेमें स्थित त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके समीप ब्रह्मगिरिसे निकलती और समुद्रमें मिलती है । इसमें अगाध जल भरा है । बहुत-से तपस्वी इसका सेवन करते हैं तथा यह सबके लिये कल्याणस्वरूपा है (वन० ८८ । २) । सिद्ध पुरुषोंसे सेवित गोदावरीके तटपर जाकर स्नान करनेसे गोमेध यज्ञका फल मिलता है और वासुकिका लोक प्राप्त होता है (वन० ८५ । ३३; ८८ । २) । राजा युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा करते हुए यहाँ भी आये थे । यह समुद्रगामिनी नदी है (वन० ११८ । ३) । यह अग्निकी उत्पत्तिस्थान है (वन० २२२ । २४) । दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने (पञ्चवटीमें) गोदावरीके तटपर कुछ काल-तक निवास किया था (वन० २७७ । ४१) । भारतवर्ष-की प्रधान नदियोंमें गोदावरीकी गणना है (भीष्म०

९ । १४)। जो जनस्थानमें गोदावरीके जलमें स्नान करके उपवास करता है, वह पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९)।

गोधा–(गोध)–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४२)।

गोनन्द–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४३ । ६५)।

गोपति–(१)कालकेतुका साथी एक राक्षस, जो महेन्द्रके शिखरपर इरावतीके किनारे श्रीकृष्णद्वारा आहत हुआ और अक्षप्रपतनके अन्तर्गत नेमिहंस-पथ नामक स्थानमें मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४)। (२) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपपत्नी मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (वन० ६५ । ४२)। यह अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें आया था (आदि० १२२ । ५५)। (३) शिबिका एक पुत्र, परशुरामजीके क्षत्रियसंहारके बाद वनमें गौओंने इसकी रक्षा की थी। पृथ्वीने कश्यपजीको इसका परिचय दिया था (शान्ति० ४९ । ७८-७९)। (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ११५)। (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९। ६६)।

गोपराष्ट्र–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४४)।

गोपायन–गोपोंकी सेनाका नाम (भीष्म० ७१ । १३)।

गोपालकक्ष–एक पूर्वीय देश, जिसे भीमसेनने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३०। ३; भीष्म० ९ । ५६)।

गोपाली–(१) एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके सम्मानार्थ इन्द्रसभामें नृत्य किया था (वन० ४३ । ३०)। (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका(शल्य० ४६ । ४)।

गोप्रतार–सरयूनदीका उत्तम तीर्थ, जहाँ भृत्य, सेना और वाहनोंसहित भगवान् श्रीराम परमधामको पधारे थे (वन० ८४ । ७०–७३)।

गोभवन–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक पवित्र तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ५०)।

गोमती–एक प्रसिद्ध नदी, गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक, इसका जल पीनेवाले मनुष्योंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१)। यह वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २३)। युधिष्ठिर तीर्थयात्राके प्रसंगसे यहाँ गये थे (वन० ९५ । २)। यह विश्वभुक् नामक अग्निकी पत्नी है (वन० २१९ । १९)। जारूथीमें गोमतीके तटपर दशरथ-नन्दन भगवान् श्रीरामने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे (वन० २५१ । ७०)। यह भारतवर्षकी प्रधान नदियोंमेंसे है (भीष्म० ९ । १८)। दिवोदासकी नगरीका एक छोर गङ्गाके उत्तरतटपर था और दूसरा छोर गोमतीके दक्षिण किनारेतक फैला हुआ था (अनु० ३० । १८)।

गोमतीमन्त्र–एक मन्त्र, जिसे गौओंके बीचमें खड़ा होकर मन-ही-मन जपा जाता है। ऐसा करनेवाला पुरुष शुद्ध एवं निर्मल (पापरहित)हो जाता है। जो तीन रात उपवास करके गोमतीमन्त्रका जप करता है, उसे गौओंका वरदान प्राप्त होता है। इसके जपसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और पतिकी इच्छावाली स्त्रीको मनके अनुकूल पतिकी प्राप्ति होती है (अनु० ८१ । ४२–४५)।

गोमन्त–(१) द्वारकाके निकटका एक श्रेष्ठ पर्वत, (गोमान् या रैवतक) जहाँ जरासंधको पछाड़कर बलरामजीने उसे जीवित छोड़ दिया था; क्योंकि उसकी मृत्यु भीमसेनके हाथसे होनेवाली थी (सभा० २४ । ४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३६)। (२) पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४१)। (३) कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । ८)।

गोमुख–(१) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६३–६६)। (२) इन्द्रसारथि मातलिका पुत्र (उद्योग० १०० । ८)।

गोरथ–मगधकी राजधानी गिरिव्रजके निकटका एक पर्वत (सभा० २० । ३०)।

गोलोक–एक दिव्य सच्चिदानन्दमय लोक, जो समस्त लोकपालोंके लोकोंसे ऊपर है और वहाँ प्रधानतः दिव्य गौओंका निवास है। इसकी समस्त लोकोंसे ऊपर स्थिति क्यों है—इसके कारणका ब्रह्माजीद्वारा प्रतिपादन (अनु० ८३ अध्याय)। गोलोक भगवान् नारायणका ऊपरका ओठ और ब्रह्मलोक नीचेका ओठ है (शान्ति० ३४७ । ५२)।

गोवर्धन–(१) व्रजमण्डलका सुप्रसिद्ध पर्वत, जो भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप माना गया है, इसे 'गिरिराज' कहते हैं। जब इन्द्र व्रजवासियोंको अपनी पूजा न पानेके कारण मिटा देनेके लिये व्रजमें घोर वर्षा करने लगे, उन दिनों भगवान् श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें ही गौओंकी रक्षाके लिये एक सप्ताहतक गोवर्धन पर्वतको अपने हाथपर उठा रक्खा था (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ ८०१; सभा० ४१ । ९; उद्योग० १३० । ४६)। (२) बाह्लीक देशके राजभवनके द्वारपर स्थित एक वटवृक्ष, जो गोवर्धन नामसे प्रसिद्ध था (कर्ण० ४४ । ८)।

गोवासन–(१) शिवि देशके राजा, जिनकी पुत्री देविकाने स्वयंवरमें राजा युधिष्ठिरको अपना पति चुना था

(आदि० ५९ । ७६)। इन्होंने एक सहस्र योद्धाओं-को साथ ले काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रका सामना किया था (द्रोण० ९५ । १८; द्रोण० ९६ । ११)। (२) एक देश, जहाँके निवासी राजा युधिष्ठिरके लिये तीन खरबकी सम्पत्ति लेकर भेंट देनेके निमित्त आये थे, (सभा० ५१ । ५)।

गोविकर्ता–महाबली बैलोंको नाथनेवाला (विराट० २ । ९)।

गोवितत–अश्वमेध-यज्ञका एक भेद, यही यज्ञ कण्वने अपने दौहित्र भरतसे करवाया था (आदि० ७४ । १३०)।

गोविन्द–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, गिरिराज गोवर्धन-को धारण करके गौओं तथा व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके कारण इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नाम रक्खा, 'गवेन्द्र' (गौओंके इन्द्र) पदपर उनका अभिषेक किया (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८०१, कालम १)।

गोविन्दगिरि–क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १९)।

गोव्रज–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६६)।

गोव्रत–गोव्रतधारी पुरुष, जो जहाँ कहीं भी सो लेता है, जिस किसी भी फल-मूल आदिसे भोजनका कार्य चला लेता है तथा वल्कल आदि जिस किसी वस्तुसे शरीरको ढक लेता है, वही यहाँ गोव्रतधारी कहलाता है (उद्योग० ९९ । १४)।

गोशृङ्ग–दक्षिणका एक श्रेष्ठ पर्वत, जिसपर सहदेवने विजय पायी थी (सभा० ३१ । ५)।

गोसव–एक महायज्ञ (वन० ३० । १७)।

गोस्तनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३)।

गोहरणपर्व–विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २५ से ६९ तक)।

गौतम–(१) सप्तर्षियोंमेंसे एक, जो अन्य ऋषियोंके साथ अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५०-५१)। इनके एक पुत्रका नाम शरद्वान् गौतम था, जो सरकण्डोंके साथ उत्पन्न हुए थे (आदि० १२९ । २)। इनके दूसरे पुत्रका नाम चिरकारी था (शान्ति० २६६ । ४)। ये ब्रह्माजीकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । १९)। इनका अत्रि मुनिके साथ संवाद (वन० १८५ । १५—१८)। इनका सत्यवान्के जीवित होनेका विश्वास दिला-कर राजा द्युमत्सेनको आश्वासन देना (वन० २९८ । ११–१३)। सावित्रीसे वनका वृत्तान्त पूछना (वन० २९८ । १३–३५)। द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेके लिये कहना (द्रोण०१९० । ३६–४०)। शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये अन्य मुनियोंके साथ ये भी पधारे थे (शान्ति० ४७ । १०)। इनका पारियात्र पर्वतपर अपने आश्रममें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या करना। इनके यहाँ लोकपाल यमका पदार्पण और इनके द्वारा उनका सत्कार (शान्ति० १२९ । ४—८) । यमके साथ इनकी धर्म-चर्चा (शान्ति० १२९ । ९)। ये उत्तर-दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं (शान्ति० २०८ । ३३)। इनका अपने पुत्र चिरकारीको उसकी माता अहल्याके वधके लिये आदेश देना (शान्ति० २६६ । ७) । वनमें जाकर पत्नी-वधके विषयमें चिन्ता करना (शान्ति० २६६ । ४७—५८)। वनसे लौटनेपर पत्नीको जीवित पाकर इनके द्वारा पुत्रका अभिनन्दन (शान्ति० २६६ । ६७–७१)। इनके शापसे इन्द्रका हरी दाढ़ी-मूँछोंसे युक्त होना (शान्ति० ३४२ । २३) । इनका अङ्गिरासे तीर्थोंके विषयमें प्रश्न (अनु० २५ । ५-६) । राजा वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४२)। अरुन्धतीसे अपने शरीरके मोटे न होनेका कारण बताना (अनु० ९३ । ६७) । यातुधानीके समक्ष अपने नाम-की व्याख्या करना। (अनु० ९३ । ९०)। मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२२-१२३)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । १९) । अहल्यापर बलात्कारके कारण इनका इन्द्रको शाप (अनु० १५३ । ६)। अपने सभी शिष्योंमें उत्तङ्कपर ही इनका अधिक स्नेह और प्रेम होना, उत्तङ्कके इन्द्रिय-संयम, शौच, पुरुषार्थ, क्रियाशीलता और उत्तमोत्तम सेवासे इनका अधिक प्रसन्न होना तथा अधिक प्रेमके कारण ही इनका उत्तङ्क-को घर जानेकी आज्ञा न देना (आश्व० ५६ । ४–६)। इनकी आज्ञासे इनकी पुत्रीका रोते हुए उत्तङ्कके आँसुओं-का अपने हाथोंमें लेना, इनका उत्तङ्कसे उनके मानसिक शोकका कारण पूछना। उनकी घर जानेकी इच्छा जान-कर उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान करना। उनके गुरु-दक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट करनेपर उनकी सेवासे ही अपनेको संतुष्ट बताना और गुरु-दक्षिणा लेनेकी इच्छा न करना, साथ ही उत्तङ्कके षोडशवर्षीय युवक हो जानेपर उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देना (आश्व० ५६ । ११—२४)। इनका अपनी पत्नीसे उत्तङ्कके विषयमें पूछना और वह राक्षस सौदासके यहाँ कुण्डल लाने गया है—यह जानकर पत्नीको उसके वधकी आशङ्का बताकर इस अनुचित आज्ञाके लिये उपालम्भ देना । उत्तङ्ककी रक्षाके लिये अपनी पत्नी अहल्याकी इच्छाका अनुमोदन

करना (आश्व० ५६ । ३२—३५) । गौतमके पुत्र शरद्वान्‌को भी 'गौतम' कहा जाता है (आदि० १२९ । २) तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृप और कन्या कृपीके लिये भी 'गौतम' (आदि० १३० । १४) एवं 'गौतमी' नामका प्रयोग देखा जाता है (आदि० १२९ । ४७)। (२) एक ऋषि, जो अन्य ऋषि-मुनियोंके साथ युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १७) । ये इन्द्रकी सभामें भी उपस्थित होकर देवेन्द्रकी उपासना करते थे (सभा० ७ । १८) । इन्होंने ही गिरिव्रजमें निवास करके उशीनर देशकी शूद्र-जातीय कन्याके गर्भसे काक्षीवान् नामक पुत्र उत्पन्न किया था (सभा०२१ । ३–५) । (३) एक तपस्वी एवं विद्वान् ब्राह्मण मुनि, जो एकत, द्वित और त्रितके पिता थे (शल्य० ३६ । ७९)। (४) एक तपस्वी ब्राह्मण, जिन्होंने अपने हाथीका अपहरण हो जानेपर धृतराष्ट्ररूपधारी इन्द्रके साथ संवाद किया था (अनु० १०२ अध्याय) । (५) मध्यदेशका रहनेवाला एक कृतघ्न ब्राह्मण, जिसका नाम गौतम था, इसका डाकुओंके गाँवमें निवास (शान्ति० १६८ । ३६)। अपने गाँवके एक सदाचारी ब्राह्मणद्वारा फटकारे जानेपर उसके द्वारा समुद्रकी यात्रा (शान्ति० १६९ । १) । वनमें राजधर्मा नामके बकका अतिथि होना (शान्ति० १६९ । १०) । राजधर्माका आतिथ्य स्वीकार करके धनके लिये राक्षसराज विरूपाक्षके पास पहुँचना (शान्ति० १७० । २६) । विरूपाक्षसे वार्तालाप और धन लेकर लौटना (शान्ति० १७१ । २–२८) । राजधर्माको मार डालनेका विचार (शान्ति० १७१ । ३४-३५)। जलती हुई लकड़ियोंद्वारा राजधर्माका वध (शान्ति० १७२ । ३) । राक्षसोंद्वारा इसका वध (शान्ति० १७२ । २३-२४) । इन्द्रद्वारा जीवनदान (शान्ति० १७३ । १२-१३) । इसे देवताओंका शाप (शान्ति० १७३ । १७–१८) ।

गौतमी–(१) द्रोणाचार्यकी भार्या (आदि०१२९।४७)। (देखिये—कृपी) (२) गौतम गोत्रकी एक कन्या जटिला, जिसने सात ऋषियोंसे विवाह किया था (आदि० १९५ । १४) । यह ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती है (सभा० ११ । ४०) । द्रौपदीकी पतिसेवाके विषयमें गौतमी जटिलाका दृष्टान्त (शान्ति० ३८ । ५) । (३) एक ब्राह्मणी । अपने पुत्रकी मृत्युपर इसका व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके साथ संवाद (अनु० १ । २१–३२) । (४) एक नदी (अनु० १६५ । २१) ।

गौर–कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । ४) ।

गौरपृष्ठ–एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१) ।

गौरमुख–शमीक ऋषिके एक शिष्य । इन्होंने गुरुकी आज्ञासे राजा परीक्षित्‌को शृङ्गी ऋषिके शापका समाचार सुनाया (आदि० ४२ । १४–२२) ।

गौरवाहन–एक राजा, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १२) ।

गौरशिरा–एक मुनि, जो इन्द्रकी सभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । ११) ।

गौराश्व–एक राजर्षि, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १८) ।

गौरी–(१) महादेवी पार्वतीका एक नाम (वन० ८४ । १५१) । (२) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (वन० २३१ । ४८) । (३) वरुणकी प्रिय पत्नी (उद्योग० ११७ । ९) । (४) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय जनता पीती है (भीष्म० ९ । २५) ।

गौरीशिखर–एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ, वहाँ स्तनकुण्डमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका तथा देवता-पितरोंका पूजन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । १५१–१५४) ।

ग्रन्थिक–विराटनगरमें अज्ञातवासके समय नकुलका नाम (विराट० ३ । ४) ।

ग्रामणी–भगवान् शिवके एक गण, जिनके नामका शुद्धभावसे कीर्तन करनेवाले मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं (अनु० १५० । २५) ।

ग्रामणीय–ग्रामशासक क्षत्रियोंके वंशज, जिन्हें दिग्विजयके समय नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ९) ।

(घ)

घट–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

घटजानुक–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १३) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

घटोत्कच–हिडिम्बाके गर्भसे भीमसेनद्वारा उत्पन्न एक राक्षस (आदि० १५४ । ३१) । इसका 'घटोत्कच' नाम होनेका कारण (आदि० १५४ । ३८) । आवश्यकता पड़नेपर अपने पितृवर्गों (पाण्डवों) की सेवाके लिये इसका कुन्तीको आश्वासन (आदि० १५४ । ४५) । इन्द्रकी शक्तिका आघात सहन करनेके लिये इन्द्रद्वारा

इसकी सृष्टि (आदि० १५४ । ४६) । सहदेवकी आज्ञासे इसकी लङ्का-यात्रा (सभा० ३१ । ७२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७५९) । इसके द्वारा विभीषणको पाण्डवोंका परिचय (सभा० ३१ । पृष्ठ ७६२) । विभीषणसे कर लाकर इसका सहदेवको देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७६४) । भीमसेनकी आज्ञासे द्रौपदीको कंधेपर चढ़ाकर इसका गन्धमादनकी यात्रा करना (वन० १४५ । ४–८) । इसका दुर्गम मार्गमें पाण्डवोंको पीठपर बिठाकर ले जाना और उन्हें संकटसे पार करना (वन० १७६ । २१) । प्रथम दिनके संग्राममें इसका अलम्बुषके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ४२–४५) । दुर्योधनके साथ युद्ध (भीष्म० ५८ । १४-१५) । भगदत्तके साथ मायायुद्ध छेड़ना और इसके अद्भुत पराक्रमसे पराजित होकर कौरवसेनाका उस दिन युद्ध बंद कर देना (भीष्म० ६४ । ५७–७२) । भगदत्तद्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ८३ । ३०–४०) । दुर्योधनके साथ युद्ध करके उसे प्राण-संशयमें डाल देना (भीष्म० ९१ । १९ से ९२ । ७ तक) । वङ्गनरेशके गजराजको मारकर उसे पराजित करना (भीष्म० ९२ । १२) । इसके द्वारा विकर्णकी पराजय (भीष्म० ९२ । ३६) । इसके द्वारा बृहद्बलकी पराजय (भीष्म० ९२ । ४१) । कौरव महारथियोंके प्रहारसे व्याकुल होकर इसका आकाशमें उड़ना (भीष्म० ९३ । ६) । इसकी आसुरी मायासे कौरवसेनाका पलायन (भीष्म० ९४ । ४१–४७) । दुर्मुखके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १३-१४; भीष्म० १११ । ३७–३९) । धृतराष्ट्रद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ७२-७३) । अलम्बुषके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १४ । ४६-४७) । इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ७५) । अलम्बुषके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ६१-६२) । अलायुधके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । २७-२८) । इसके द्वारा अलम्बुषका वध (द्रोण० १०९ । २८-२९) । अश्वत्थामाके साथ युद्धमें इसके पुत्र अञ्जनपर्वाका उसके द्वारा मारा जाना तथा इसका भी पराजित होना (द्रोण० १५६ । ५६–१८६) । अश्वत्थामाद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १६६ । १५–३८) । श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आज्ञासे इसका कर्णके साथ युद्धके लिये जाना (द्रोण० १७३ । ६३–६५) । घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध (द्रोण० १७४ अध्याय) । इसके रूप तथा रथ आदिका वर्णन और कर्णके साथ मायामय घोर युद्ध (द्रोण० १७५ अ०) । इसके द्वारा अलायुधका वध (द्रोण० १७८ । ३१) । इसका मायामय घोर युद्ध करके कौरव-सेनाका संहार करना (द्रोण० १७९ । २५–४७) । कर्णद्वारा छोड़ी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिके प्रहारसे घटोत्कचका वध (द्रोण० १७९ । ५८) । यह यज्ञों और ब्राह्मणोंसे द्वेष एवं घृणा करता था (द्रोण० १८१ । २६-२७) । व्यासजीके आवाहन करनेपर यह भी गङ्गाजीके जलसे प्रकट हुआ था (आश्रम० ३२ । ८) । यह मृत्युके पश्चात् यक्षों एवं देवताओंमें मिल गया (स्वर्गा० ५ । ३७) ।

महाभारतमें आये हुए घटोत्कचके नाम–भैमसेनि, भैमि, भीमसेनसुत, भीमसेनात्मज, भीमसूनु, भीमसुत, हैडिम्ब, हैडिम्बि, राक्षस, राक्षसाधिप, राक्षसपुङ्गव, राक्षसेश्वर, राक्षसेन्द्र इत्यादि ।

घटोत्कचवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५३ से १८३ तक) ।

घण्टोदर–एक दैत्य या दानव, जो वरुणकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होता है (सभा० ९ । १३४) ।

घण्टाकर्ण–ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे तीसरा । पहला नन्दिसेन, दूसरा लोहिताक्ष और चौथा कुमुदमाली था (शल्य० ४५ । २३-२४) ।

घूर्णिका–शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीकी धाय (आदि० ७८ । २५) ।

घृतपा–घी पीकर रहनेवाले ऋषि, जो ब्रह्माजीकी आज्ञाके अधीन रहकर सनातनधर्मका पालन करते हैं (शान्ति० १६६ । २४) ।

घृतवती–भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २३; भीष्म० ९ । ३१) ।

घृततोय–(अथवा घृतोद) समुद्र—घीका समुद्र (भीष्म० १२ । २) ।

घृताची–एक श्रेष्ठ अप्सरा, जिसके गर्भसे महर्षि प्रमतिद्वारा 'रुरु' का जन्म हुआ था (आदि० ५ । ९) । यह छः प्रधान अप्सराओंमेंसे एक है (आदि० ७४ । ६८) । घृताची उन प्रधान ग्यारह अप्सराओंमेंसे एक है, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें नाचने-गाने आयी थीं (आदि० १२२ । ६५) । इसके दर्शनसे स्खलित हुए भरद्वाज मुनिके वीर्यसे द्रोणाचार्यका जन्म हुआ था (आदि० १२९ । ३५–३८; वन० ४३ । २९) । यह कुबेरसभाकी प्रमुख अप्सरा है (सभा० १० । १०) । इसे देखकर भरद्वाजजीके वीर्यका स्खलन और श्रुतावती नामक कन्याकी उत्पत्ति (शल्य० ३४८ । ६४–६६) । इसके दर्शनसे व्यासजीके वीर्यका स्खलन और शुकदेवजीका जन्म (शान्ति० ३२४ । २–९) । इसने अष्टावक्रके

स्वागत-सत्कारके निमित्त कुबेरसभामें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४४) ।

घृतार्चि–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, जिसकी व्याख्या उन्होंने श्रीमुखसे की है (शान्ति० ३४२ । ८५) ।

घोर–महर्षि अङ्गिराके वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३१) ।

घोरक–पश्चिमोत्तर भारतका एक जनपद, जहाँके लोगोंने राजा युधिष्ठिरको बहुत धन अर्पित किया था (सभा० ५२ । १४) ।

घोषयात्रापर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २३६ से २५७ तक) ।

घ्राणश्रवा–स्कन्दका एक सैनिक एवं पार्षद, जो निरन्तर योगयुक्त रहकर सदा ब्राह्मणोंसे प्रेम रखते हैं (शल्य० ४५ । ५७) ।

(च)

चक्र–(१) नागराज वासुकिसे उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका सुप्रसिद्ध अस्त्र सुदर्शनचक्र, जिसे अग्निदेवने उन्हें प्रदान किया था (आदि० २२४ । २३)। (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) । (४) भगवान् विष्णुद्वारा स्कन्दको दिये गये तीन पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३७) । (५) त्वष्टाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो अनुचरोंमेंसे एक, दूसरेका नाम अनुचक्र था (शल्य० ४५ । ४०) ।

चक्रक–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

चक्रदेव–वृष्णिवंशका एक अतिरथी वीर (सभा० १४ । ५७-५८) ।

चक्रद्वार–एक पर्वत, जो सुलभाके पूर्वजोंके यज्ञोंमें देवराज इन्द्रके सहयोगसे यज्ञवेदीमें ईंटाकी जगह चुना गया था (शान्ति० ३२० । १८५) ।

चक्रधनु–महर्षि कर्दमसे उत्पन्न भगवान् कपिलमुनि ही चक्रधनु कहलाते हैं । ये दक्षिणदिशामें रहते हैं । इन्होंने ही सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया था (उद्योग० १०९ । १७-१८) ।

चक्रधर्मा–विद्याधरोंके अधिपति, जो अपने छोटे भाइयोंके साथ कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् कुबेरकी उपासना करते हैं (सभा० १० । २७) ।

चक्रनेमि–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ५)।

चक्रमन्द–एक नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारते समय उनके स्वागतके लिये आया था (मौसल० ४ । १६) ।

चक्रव्यूह–द्रोणनिर्मित एक सैन्य-व्यूह, जिसका भेदन करना पाण्डव-दलमें केवल अर्जुन जानते थे; अभिमन्यु इसमें प्रवेश करके निकलना नहीं जानता था, अतः उसमें बाहरसे सहायता न पहुँच सकनेके कारण मारा गया; इस व्यूहका निर्माण गाडीके पहियेकी आकृतिमें होता है । इसका वर्णन (द्रोण० ३४ । १३–२४) ।

चक्राति–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) ।

चक्षु–विवस्वान् (सूर्य) के ही बोधक दिवःपुत्र आदि बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १ । ४२) ।

चक्षुर्वर्धनिका–शाकद्वीपकी एक नदी (भीष्म० ११ । ३३) ।

चण्डकौशिक–गौतमपुत्र महात्मा काक्षीवान्के पुत्र (सभा० १७ । २२) । इनकी कृपासे मगधनरेश बृहद्रथको पुत्रकी प्राप्ति हुई; वही जरासंधके नामसे विख्यात हुआ (आदि० १७ । २८–४१) । इनके द्वारा जरासंधका भविष्यकथन (आदि० १९ अध्याय) ।

चण्डतुण्डक–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) ।

चण्डबल–इसी नामसे प्रसिद्ध एक वानर, जो कुम्भकर्णके मुखका ग्रास बन गया था (वन० २८७ । ६) ।

चण्डभार्गव–वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक विद्वान् ब्राह्मण, जो च्यवनमुनिके वंशमें उत्पन्न हुए थे, ये अपने समयके सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी थे और राजा जनमेजयके सर्पयज्ञ-के होता बनाये गये थे (आदि० ५३ । ४-५) ।

चतुरश्व–एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित होकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ११) ।

चतुर्दंष्ट्र–स्कन्दका एक सैनिक अथवा पार्षद, जो ब्राह्मणोंसे प्रेम रखनेवाला है (शल्य० ४५ । ६२) ।

चतुर्वेद–सात पितरोंमेंसे एक (सभा० ११ । ४७) ।

चतुष्कर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

चतुष्पथरता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २७) ।

चत्वरवासिनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

चन्द्र–(१) एक श्रेष्ठ दैत्य, जो चन्द्रमाके समान सुन्दर और चन्द्रवर्मा नामसे विख्यात काम्बोज देशका राजा हुआ (आदि० ६७ । ३१-३२) । (२) चन्द्रमा (आदि० २०९ । २६; वन० ११८ । १२) । (देखिये–चन्द्रमा) ।

चन्द्रक–बिडालोपाख्यानमें वर्णित उल्लूका नाम (**शान्ति० १३८ । ३३**) ।

चन्द्रकुण्ड–(चन्द्रह्रद)–एक ह्रद या कुण्ड, जिसमें मेरुपर्वतसे भागीरथी गङ्गा गिरती हैं (**भीष्म० ६ । २९**) ।

चन्द्रकेतु–कौरवपक्षका एक योद्धा, अभिमन्युद्वारा इसका वध (**द्रोण० ४८ । १५-१६**) ।

चन्द्रतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसकी बहुत-से ऋषिलोग उपासना करते हैं । यहाँ वालखिल्य नामक वैखानस मुनि निवास करते हैं । यहाँ तीन पवित्र शिखर और तीन झरने हैं (**वन० १२५ । १७**) ।

चन्द्रदेव–(१) त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई । अर्जुनद्वारा वध (**कर्ण० २७ । ३–१३**) । (२) पाण्डवपक्षका पाञ्चालयोद्धा । युधिष्ठिरका चक्ररक्षक । कर्णद्वारा इसका वध (**कर्ण० ४९ । २७**) ।

चन्द्रप्रमर्दन–दक्षकन्या सिंहिकाका पुत्र । पिताका नाम कश्यप (**आदि० ६५ । ३१**) ।

चन्द्रभ–स्कन्दका एक सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (**शल्य० ४५ । ७५**) ।

चन्द्रभागा–पञ्चनद प्रदेश (पंजाब) की एक नदी, जिसे आजकल 'चिनाब' कहते हैं (**सभा० ९ । १९**) । इसमें सात दिन स्नान करनेसे मनुष्य मुनिके समान निर्मल हो जाता है (**अनु० २५ । ७**) ।

चन्द्रमा–(१) शीतल किरणोंवाले सोम, जो क्षीरसागरका मन्थन होते समय उससे प्रकट हुए थे (**आदि० १८ । ३४**) । ये अत्रिपुत्र और बुधके पिता हैं (**द्रोण० १४४ । ४**) । इन्हें प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ पत्नीरूपमें प्रदान की थीं (**आदि० ६६ । १३; आदि० ७५ । ९; शल्य० ३५ । ४५**) । सोमके सत्ताईस पत्नियाँ हैं, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात हैं । पवित्र व्रतका पालन करनेवाली वे सोम-पत्नियाँ काल-विभागका ज्ञापन करनेमें नियुक्त हैं । लोक-व्यवहारका निर्वाह करनेके लिये वे सब-की-सब नक्षत्रवाचक नामोंसे युक्त हैं (**आदि० ६६ । १६-१७**) । ये नक्षत्रोंके साथ मेरु पर्वतकी परिक्रमा करते और पर्वसंधिके समय विभिन्न मासोंका विभाग करते रहते हैं । इस प्रकार महामेरुका उल्लङ्घन करके समस्त प्राणियोंका पोषण करते हुए वे पुनः मन्दराचलको चले जाते हैं (**वन० १६३ । ३२-३३**) । चन्द्रमण्डलका व्यास ग्यारह हजार योजन, उनकी परिधिका विस्तार तैंतीस हजार योजन और उनकी मोटाई उनसठ सौ योजन है (**भीष्म० १२ । ४२-४३**) । इनकी सभी पत्नियाँ अनुपम रूपवती थीं; परंतु रोहिणीका सौन्दर्य उन सबसे बढ़कर था, अतः वे अन्य पत्नियोंकी उपेक्षा करके सदा रोहिणीके पास रहने लगे । यह देख दूसरी स्त्रियोंने पिता दक्षसे उनकी शिकायत की । दक्षने समझाते हुए कहा–'तुम्हें सबपर समान भाव रखना चाहिये ।' उनके इस आदेशकी अवहेलना करके सोम पूर्ववत् रोहिणीमें ही आसक्त रहने लगे । इससे कुपित हो दक्षने उनके लिये राजयक्ष्माकी सृष्टि की और वह रोग उनके शरीरमें समा गया । सोम क्षीण हो चले । उनके क्षीण होनेसे ओषधियों और प्रजाका भी क्षय होने लगा । तब देवताओंके अनुरोधसे दक्षने उनके रोगकी निवृत्तिका उपाय बताते हुए कहा-'सोम अपने सब स्त्रियोंके प्रति समान बर्ताव करें और पश्चिम समुद्रमें, जहाँ सरस्वती नदीका संगम हुआ है, वहाँ जाकर स्नान करें । उस तीर्थमें महादेवजीकी आराधनासे इन्हें इनकी पूर्व कान्ति प्राप्त हो जायगी । ये पंद्रह दिन क्षीण होंगे और पंद्रह दिन सदा बढ़ते रहेंगे ।' सोमने अमावास्याको उस तीर्थमें गोता लगाया; इससे उन्हें उनकी शीतल किरणें प्राप्त हो गयीं और वे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करने लगे । वे प्रत्येक अमावास्याको वहाँ स्नान करते हैं (**शल्य० ३५ । ४५–८६**) । इनके द्वारा स्कन्दको मणि और सुमणि नामक पार्षदोंका दान (**शल्य० ४५ । ३२**) । शम्बरासुरके प्रति ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन (**अनु० ३६ । १३–१७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) । इनका कार्तिकेयको भेंड़ा देना (**अनु० ८६ । २३**) । अजीर्ण-निवारणके लिये पितरों और देवताओंको ब्रह्माजीकी शरणमें जानेकी सलाह देना (**अनु० ९२ । ६**) । पूर्णमासी तिथिको चन्द्रोदयके समय ताँबेके बर्तनमें मधुमिश्रित पकवान लेकर जो चन्द्रमाके लिये बलि अर्पण करता है, उसकी दी हुई उस बलिको साध्य, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और वसुदेवता भी ग्रहण करते हैं तथा उससे चन्द्रमा और समुद्रकी भी वृद्धि होती है (**अनु० १३४ । ३–६**) । (२) ये सोम या चन्द्रमा आठ वसुओंमेंसे एक हैं । वसुरूपमें ये धर्मपत्नी मनस्विनीके पुत्र हैं । उनकी मनोहरा नामक पत्नीसे चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं—वर्चा, शिशिर, प्राण और रमण (**आदि० ६६ । १८–२२**) । सोमने अपने पुत्र वर्चाको कुछ शर्तोंके साथ केवल सोलह वर्षोंके लिये देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त भूतलपर भेजा था, जो 'अभिमन्यु' रूपसे अवतीर्ण हुआ था (**आदि० ६७ । १३–१२४**) । (३) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । २९**) ।

चन्द्रवत्स–एक क्षत्रियकुल, जो चन्द्रवत्ससे आरम्भ हुआ था, इसमें 'धारण' नामक 'कुलपांसन' राजकुमार पैदा हुआ था (उद्योग० ७४ । १६) ।

चन्द्रवर्मा–काम्बोजदेशका एक राजा, जो चन्द्रमाके समान सुन्दर था, यह चन्द्रनामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३१-३२) । धृष्टद्युम्नके द्वारा इसका वध (द्रोण० ३२ । ६५) ।

चन्द्रविनाशन–एक महान् असुर, जो भूतलपर 'जानकि' नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ था (आदि० ६७ । ३७-३८) ।

चन्द्रसीता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

चन्द्रसेन–(१) एक राजकुमार, जो बंगालके राजा समुद्रसेनका पुत्र था और द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ११) । यह अपने पिताके साथ ही भीमसेनद्वारा पराजित हुआ था (सभा० ३० । २४) । यह पाण्डव-सेनाका श्रेष्ठ रथी और युधिष्ठिरका सहायक था (उद्योग० १७१ । १९) । चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले समुद्री घोड़े इसके रथमें जुते थे । (द्रोण० २३ । ६०) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (द्रोण० १५६ । १८३) । (२) कौरवपक्षका योद्धा शल्यका चक्ररक्षक, युधिष्ठिरद्वारा इसका वध (शल्य० १२ । ५२) ।

चन्द्रहन्ता–एक दैत्य, जो राजर्षि 'शुनक' के रूपमें इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३७-३८) ।

चन्द्रहर्ता–दक्षकन्या सिंहिकाका पुत्र, पिताका नाम कश्यप (आदि० ६५ । ३१) ।

चन्द्राश्व–इक्ष्वाकुवंशी महाराज कुवलाश्वके पुत्र, ये धुन्धुकी क्रोधाग्निमें दग्ध होनेसे बच गये थे (वन० २०४ । ४०–४२) ।

चन्द्रोदय–राजा विराटका एक भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

चपल–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८) ।

चमसोद्भेद–सुराष्ट्रदेशीय विनशनतीर्थके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ अदृश्य हुई सरस्वतीका दर्शन होता है, यहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ११२; वन० । ८८ । २०; शल्य० ३५ । ८७) ।

चमू–सैन्यगणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द । तीन पृतनाकी एक चमू होती है (आदि० २ । २१) ।

चमूहर–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

चम्पकारण्य (चम्पारन)–एक तीर्थ, जहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८४ । १३३) ।

चम्पा–यहाँ भागीरथीमें तर्पण करनेकी महिमा है (वन० ८५ । १४-१५) । भागीरथी गङ्गाके तटपर अवस्थित एक प्राचीन नगरी, जिसमें त्रेतायुगमें राजा लोमपाद रहते थे (वन० ११३ । १५) । द्वापरमें यहाँ अधिरथ सूतकी राजधानी थी । यहीं गङ्गाजीके जलसे राधाको वह पिटारी मिली, जिसमें शिशु 'कर्ण' बंद था (वन० ३०८ । २६ से वन० ३०९ । ५ तक) । इसपर कर्ण अधिकार करके इसका पालन करता था (शान्ति० ५ । ७) । विपुलका चम्पानगरीको जाना (अनु० ४२ । १६) ।

चर्ममण्डल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४७) ।

चर्मण्वती–एक नदी, जिसे आजकल 'चम्बल' कहते हैं, यह वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २१) । इसके तटपर सहदेवने जम्भकके पुत्रको परास्त किया था (सभा० ३१ । ७) । चर्मण्वती नदीमें स्नान करनेसे राजा रन्तिदेवद्वारा अनुमोदित 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ५४) । अग्निकी उत्पत्तिकी स्थानभूता नदियोंमें इसकी भी गणना है (वन० २२२ । २३) ।

चर्मवान्–सुबलका एक पुत्र, शकुनिका भाई, इरावान्-द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । २७–४६) ।

चाक्षुषी–एक प्रकारकी विद्या, जिसको मनुने सोमको, सोमने विश्वावसुको, विश्वावसुने चित्ररथको और चित्ररथने अर्जुनको दिया था । तीनों लोकोंमें जो भी वस्तुएँ हैं, उनमेंसे जिस वस्तुको आँखसे देखनेकी इच्छा हो, उसे इस विद्याके प्रभावसे कोई भी देख सकता है और जिस रूपमें देखना चाहे, उसी रूपमें देख सकता है (आदि० १६९ । ४३–४५) ।

चाणूर–(१) एक क्षत्रिय नरेश, जो मयनिर्मित सभामें युधिष्ठिरकी सेवामें बैठते थे (सभा० ४ । २६) । (२) एक आन्ध्रदेशीय मल्ल (पहलवान), जो एक महान् असुर था; यह कंसके दरबारमें रहा करता था, भगवान् श्रीकृष्णने इसका वध कर दिया (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१; उद्योग० १३० । ४७) ।

चातुर्मास्य–एक व्रत, जिसका वर्षाके चार महीनोंमें यत्नपूर्वक पालन करना आवश्यक माना जाता है । वीर पाण्डवोंने गयामें चातुर्मास्य व्रत ग्रहण करके वेदादि शास्त्रोंके स्वाध्यायद्वारा भगवान्‌की आराधना की (वन० ९५ । १३-१४) ।

चातुर्वर्ण्य–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको ही चातुर्वर्ण्य कहते हैं, साक्षात् भगवान्ने ही गुणकर्मविभागपूर्वक चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि की है (**भीष्म० २८ । १३; शान्ति० २०७ । ३०–३३**) ।

चान्द्रमसी–बृहस्पतिकी यशस्विनी पत्नी तारा, जो कभी चन्द्रमाके सम्पर्कमें आ जानेके कारण 'चान्द्रमसी' कहलाती थी । इसने छः अग्निस्वरूप पुत्रों और एक 'स्वाहा' नामक पुत्रीको जन्म दिया था (**वन० २१९ । १**) ।

चान्द्रव्रत–रूप-सौन्दर्य, सौभाग्य तथा लोकप्रियताकी प्राप्ति करानेवाला एक व्रत, जो मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल प्रतिपदाको मूल नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग होनेपर आरम्भ किया जाता है, इसका विशेष विधान (**अनु० ११० अध्याय**) ।

चाम्पेय–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५८**) ।

चारु (चारुचित्र)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४**) । भीमसेनद्वारा वध (**द्रोण० १३६ । २०–२२**) ।

चारुदेष्ण–भगवान् श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीके गर्भसे प्रकट (**अनु० १४ । २९**) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इनका आगमन (**आदि० १८५ । १७**) । इनके द्वारा विविन्ध्यका वध (**वन० १६ । २६**) ।

चारुनेत्रा–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् धनदकी सेवा करनेवाली एक अप्सरा (**सभा० १० । १०**) ।

चारुमत्स्य–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५९**) ।

चारुयशा–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (**अनु० १४ । ३३-३४**) ।

चारुवक्त्र–स्कन्दका सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (**शल्य० ४५ । ७१**) ।

चारुवेष–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (**अनु० १४ । ३३-३४**) ।

चारुशीर्ष–एक आलम्बगोत्रीय ऋषि, जो इन्द्रके प्रिय सखा थे; शिव-महिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे इनका अनुभव सुनाना (**अनु० १८ । ५–७**) ।

चारुश्रवा–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (**अनु० १४ । ३३-३४**) ।

चार्वाक–दुर्योधनका मित्र एक राक्षस, जिसने युधिष्ठिरके नगर-प्रवेशके समय संन्यासी-वेषमें आकर उनके प्रति दुर्वचन कहे थे (**शान्ति० ३८ । २२—२७**) । बदरिकाश्रममें इसकी तपस्याका वर्णन (**शान्ति० ३९ । ३**) । इसका ब्रह्माजीसे अपने लिये किसी भी प्राणीसे भय न होनेका वर माँगना और ब्रह्माजीका कुछ संशोधनके साथ उसको वर-प्रदान करना (**शान्ति० ३९ । ४-५**) । ब्राह्मणोंद्वारा इसका वध (**शान्ति० ३८ । ३५**) ।

चाषवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (**शल्य० ४५ । ७६**) ।

चिकुर–नागराज आर्यकके पुत्र एवं सुमुखके पिता, जिन्हें गरुड़ने अपना ग्रास बना लिया था (**उद्योग० १०३ । २४**) ।

चित्र-(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३६ । २०–२२**) । (२) एक गजराज, जिसके साथ स्कन्दने शैशवकालमें क्रीड़ा की थी (**वन० २२५ । २३**) । (३) कौरव-पक्षका एक योद्धा, प्रतिविन्ध्यद्वारा वध (**कर्ण० १४ । ३२-३३**) । (४) चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, कर्णद्वारा वध (**कर्ण० ५६ । ४९**) ।

चित्रक (नामान्तर—चित्र एवं चित्रबाण)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १०५**) । चित्र नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (**द्रोण० १३७ । ३०**) ।

चित्रकुण्डल (दीर्घलोचन)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ११६ । ६**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**भीष्म० ९६ । २७**) । (चित्रकुण्डलकी जगह दीर्घलोचन पाठभेद मिलता है ।)

चित्रकूट–सर्वपापनाशिनी मन्दाकिनीके तटपर अवस्थित एक श्रेष्ठ पर्वत । वहाँ मन्दाकिनीमें स्नान और देवता-पितरोंकी पूजा करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है (**वन० ८५ । ५८**) । वनवासके समय भगवान् श्रीरामने चित्रकूट पर्वतपर निवास किया था (**वन० २७७ । ३८**) । जो चित्रकूट पर्वतपर मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके उपवास करता है, वह पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (**अनु० २५ । २९**) । (यह स्थान उत्तरप्रदेशके बाँदा जिलेमें है) ।

चित्रकेतु–(१) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । १२**) । (२) पाण्डव-पक्षका एक योद्धा । पाञ्चालराजकुमार (**भीष्म० ९५ । ४१**) ।

चित्रगुप्त–धर्मराजके मन्त्री । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (**अनु० १३० । १८—२३**) ।

चित्रचाप (चित्रशरासन या शरासन)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ६**) ।

चित्रदेव–स्कन्दका सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (शल्य० ४५ । ७१) ।

चित्रधर्मा–भूमण्डलका एक नरेश, जिसके रूपमें विरूपाक्ष नाम दैत्य ही उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २२-२३) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १३) ।

चित्रपुष्प–विचित्र पुष्पोंसे भरा हुआ एक वन, जो द्वारकाके पश्चिमवर्ती सुकक्ष नामक रजतपर्वतपर सुशोभित था (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२) ।

चित्रबर्ह–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२) ।

चित्रबाण (**नामान्तर—चित्र या चित्रक**)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३७ । २९) ।

चित्रबाहु (**चित्रायुध**)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ८) । चित्रायुध नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) ।

चित्ररथ–(१) एक देवगन्धर्व, जो पिता कश्यप और माता मुनिका पुत्र था (आदि० ६५ । ४३) । यह अर्जुनके जन्मोत्सवमें गया था (आदि० १२२ । ५६)। यही गन्धर्वराज अङ्गारपर्णके नामसे विख्यात था (आदि० १६९ । ५) । प्रदोषकालमें गङ्गाजीके जलके भीतर अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते समय पाण्डवोंके वहाँ आ जानेसे इसका उनके ऊपर क्रोध प्रकट करना और फटकारना (आदि० १६९ । ५–१५) । गन्धर्वको अर्जुनका मुँहतोड़ उत्तर (आदि० १६९ । १६–२४) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध (आदि० १६९ । २५) । अर्जुनके आग्नेयास्त्रसे इसके रथका दग्ध होना और इसकी मूर्च्छा तथा अर्जुनका इसे युधिष्ठिरके पास घसीट ले जाना (आदि० १६९ । ३१–३३) । इसकी जीवन-रक्षाके लिये युधिष्ठिरसे कुम्भीनसीकी प्रार्थना (आदि० १६९ । ३५) । अर्जुनद्वारा इसको जीवनदान (आदि० १६९ । ३७) । इसका चित्ररथ नाम होनेका कारण तथा अर्जुनके कारण इसका 'दग्धरथ' नाम होना (आदि० १६९ । ४०) । इसके द्वारा विश्वावसुसे अपनेको चाक्षुषी विद्याकी प्राप्तिका कथन और चाक्षुषी विद्याके महत्त्वका वर्णन (आदि० १६९ । ४३–४६) । इसके द्वारा पाण्डवोंको गन्धर्वदेशीय दिव्य अश्वोंका दान और उनकी प्रशंसा (आदि० १६९ । ४८–५४) । इसका अर्जुनको चाक्षुषी विद्या प्रदान करना (आदि० १६९ । ५६) । अर्जुनके साथ इसकी मित्रता (आदि० १६९ । ५८) । इसका पाण्डवोंपर अपने आक्रमण और पराजयका कारण बताना (आदि० १६९ । ६०–७२) । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणको पुरोहितरूपमें वरण करनेके लिये इसकी अर्जुनको प्रेरणा (आदि० १६९ । ७३–८०) । इसका अर्जुनको तपती और संवरणकी कथा सुनाना (आदि० १७० अध्यायसे १७२ तक) । वशिष्ठके साथ विश्वामित्रके वैरका कारण सुनाकर इसके द्वारा वशिष्ठके अद्भुत क्षमाबलका वर्णन (आदि० १७३ अध्यायसे १७४ अध्यायतक) । इसका शक्तिके शापसे राक्षसभावको प्राप्त हुए राजा कल्माषपादके द्वारा विश्वामित्रकी प्रेरणासे वशिष्ठके पुत्रोंके भक्षण एवं वशिष्ठके शोककी कथा सुनाना (आदि० १७५ अध्याय) । इसके द्वारा कल्माषपादके उद्धार और वशिष्ठजीसे उन्हें अश्मक नामक पुत्रकी प्राप्तिका वर्णन (आदि० १७६ अध्याय) । शक्तिपुत्र पराशरके जन्म और पिताकी मृत्युका हाल सुनकर कुपित हुए पराशरको शान्त करनेके लिये वसिष्ठजीके और्वोपाख्यान सुनानेकी कथाका वर्णन (आदि० १७७ अध्यायसे १७८, १७९ अध्यायतक) । पराशरके राक्षससत्रके आरम्भ और समाप्ति तथा कल्माषपादको ब्राह्मणी आङ्गिरसीके शापकी कथा कहना (आदि० १८० अध्यायसे १८१ अध्यायतक) । अर्जुनके पूछनेपर इसका धौम्यको पुरोहित बनानेकी सलाह देना (आदि० १८२ । १-२) । चित्ररथका अर्जुनसे आग्नेयास्त्रको ग्रहण करना (आदि० १८२ । ३) । यह कुबेरकी सभामें रहकर भगवान् धनाध्यक्षकी उपासना करता है (सभा० १० । २६) । इसने राजा युधिष्ठिरको चार सौ दिव्य घोड़े दिये, जो वायुके समान वेगशाली थे (सभा० ५२ । २३) । यह गन्धर्वोंद्वारा पृथ्वीदोहनके समय बछड़ा बना था (द्रोण० ६९ । २५) ।

महाभारतमें आये हुए चित्ररथके नाम–अङ्गारपर्ण, दग्धरथ, गन्धर्व और गन्धर्वराज इत्यादि ।

(२)मार्तिकावत देशका राजा, जिसकी अपनी पत्नीके साथ की हुई जलक्रीडाको रेणुकाने देखा था (वन० ११६ । ७) । (३) एक पाञ्चाल राजकुमार, द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १२२ । ४३–४९) । (४) अङ्गदेशके एक राजा, जो देवशर्माकी पत्नी रुचिकी बहिन प्रभावतीके पति थे (अनु० ४२ । ८) । (५) यदुवंशी उषङ्गुके पुत्र एवं शूरके पिता (अनु० १४७ । २९) ।

चित्ररथा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३४) ।

चित्रलेखा–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके स्वागत-समारोह-

के अवसरपर इन्द्रसभामें नृत्य किया था (वन० ९ । ३४) ।

चित्रवर्मा-(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) । (२) एक पाञ्चाल राजकुमार । राजा द्रुपदने इसे युद्धके लिये निमन्त्रित करनेकी प्रेरणा दी थी (उद्योग० ४ । १३) । चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्ररथ और वीरकेतु—ये चार इसके भाई थे । बड़े भाई वीरकेतुके मारे जानेपर शेष सभी भाई द्रोणाचार्यपर टूट पड़े और उनके द्वारा मारे गये (द्रोण० १२२ । ४३–४९) । यह सुचित्रका पुत्र था (कर्ण० ६ । २७-२८) ।

चित्रवाहन–मणिपूरके नरेश, चित्राङ्गदाके पिता (आदि० २१४ । १५) । पुत्रिका-धर्मकी शर्तपर इनके द्वारा अर्जुनको अपनी कन्याका दान (आदि० २१४ । २५) ।

चित्रवाहा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय जनता पीती है (भीष्म० ९ । १७) ।

चित्रवेगिक–धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १८) ।

चित्रशरासन (शरासन या चित्रचाप)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) ।

चित्रशिखण्डी–पाञ्चरात्रशास्त्रके रचयिता मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ—इन सात ऋषियोंकी संज्ञा (शान्ति० ३३५ । २७) ।

चित्रशिला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३०) ।

चित्रसेन (उग्रसेन)–(१) धृतराष्ट्रके ग्यारह महारथी पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६३ । ११९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ३) । युधिष्ठिरके साथ जूआ खेलनेको उद्यत हुए लोगोंमें यह भी था (सभा० ५८ । १३) । इसका चेकितानके साथ युद्ध (भीष्म० ११० । ८) । भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३ । २) । सुशर्माके साथ संग्राम (भीष्म० ११६ । २७–२९) । भीमके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ३१) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा मारा गया (द्रोण० १३७ । २९-३०) । इसका शतानीकके साथ युद्ध और शतानीकद्वारा इसकी पराजयका वर्णन (द्रोण० १६८ । १–१२) । (यह युद्ध चित्रसेनके जीवनकालका है । अध्याय १३७ में इसके वधका वर्णन हुआ है । इससे पहले जो इन्होंने शतानीकके साथ युद्ध किया था, उसका वर्णन पीछे किया गया है ।) (२) पूरुवंशीय राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के तृतीय पुत्र (आदि० ९४ । ५४) । (३) एक गन्धर्व, जो सत्ताईस सहायक गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ युधिष्ठिरकी सभामें उपस्थित हो उनका मनोरञ्जन करते थे (सभा० ४ । ३७) । ये कुबेरकी सभामें भी उपस्थित होते हैं (सभा० १० । २६) । ये इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । २२) । इनका अर्जुनको संगीत-विद्याकी शिक्षा देना (वन० ४४ । ८-९) । इन्द्रके आदेशसे इनका उर्वशीके पास जाकर उसे अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये कहना (वन० ४५ । ६–१३) । द्वैतवनमें कौरवोंके साथ इनका युद्ध और कर्णको परास्त करना (वन० २४१ अध्याय) । दुर्योधनको बंदी बनाना (वन० २४२ । ६) । अर्जुनद्वारा पराजित होकर इनका अपनेको प्रकट कर देना (वन० २४५ । २७) । इन्द्रसे अर्जुनकी युद्ध-कलाकी प्रशंसा करना (विराट० ६४ । ३८–४३) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें ये भी पधारे थे और यथावसर अपने नृत्य-गीतकी कलाओंद्वारा ब्राह्मणोंका मनोरञ्जन करते थे (आश्व० ८८ । ३९-४०) । धृतराष्ट्रके आश्रमपर नारदजीके साथ ये भी पधारे थे (आश्रम० २९ । ९) । (४) जरासंधका मन्त्री, डिम्भक (सभा० २२ । ३२-३३) । (देखिये—डिम्भक) (५) अभिसारदेशका राजा और कौरव-पक्षका एक योद्धा । श्रुतकर्माद्वारा इसका वध (कर्ण० १४ । १४) । (६) (श्रुतसेन)–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई (कर्ण० २७ । ३–११) । (७) एक पाञ्चाल योद्धा, कर्णद्वारा वध (कर्ण० ४८ । १५) । (८) कर्णका पुत्र, कर्णका चक्ररक्षक (कर्ण० ४८ । १८) । नकुलद्वारा इसका वध (शल्य० १० । १९-२०) । (९) कर्णका भाई, युधामन्युद्वारा इसका वध (कर्ण० ८३ । ३९-४०) । (१०) समुद्रतटवर्ती राज्यके अधिपति एक पाण्डवपक्षीय योद्धा, जो अपने पुत्रके साथ युद्धभूमिमें समुद्रसेनके द्वारा मारा गया (कर्ण० ६ । १५-१६) । (११) एक नाग, जो कर्ण और अर्जुनके युद्धमें अर्जुनकी विजयका समर्थक था (कर्ण० ८७ । ४३) ।

चित्रसेना–(१) कुबेरकी सभामें उपस्थित हो धनदकी उपासना करनेवाली एक अप्सरा (सभा० १० । १०) । अर्जुनके इन्द्रलोकमें जानेपर इसने नृत्य किया था (वन० ४३ । ३०) । (२) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७) । (३) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

चित्रा–एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके सम्मानार्थ कुबेरकी सभामें नृत्य किया था (**अनु० १९ । ४४**) ।

चित्राक्ष–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४**) । भीमसेनद्वारा वध (**द्रोण० १३६ । २०–२२**) ।

चित्राङ्ग (चित्राङ्गद या श्रुतान्तक)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ११६ । ६**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**शल्य० २६ । १०-११**) ।

चित्राङ्गद (चित्राङ्ग)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। 'श्रुतान्तक' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (**शल्य० २६ । १०**) । (२) महाराज शान्तनुके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न एवं विचित्रवीर्यके अग्रज (**आदि० ९५ । ४९-५०; आदि० १०१ । २**) । पिताके स्वर्गवासी होनेपर भीष्मद्वारा इनका राज्याभिषेक (**आदि० १०१ । ५**) । चित्राङ्गद नामक गन्धर्वके साथ इनका भीषण संग्राम और उसके द्वारा इनकी मृत्यु (**आदि० १०१ । ९**) । भीष्मद्वारा इनका अन्त्येष्टि-संस्कार (**आदि० १०१ । ११**) । (३) एक गन्धर्व, जिसके द्वारा शान्तनुपुत्र चित्राङ्गदका वध किया गया (**आदि० १०१ । ९**) । (४) द्रौपदीके स्वयंवरमें आये हुए एक राजा (सम्भव है, ये कलिङ्गराज या दशार्णराजमेंसे कोई रहे हों ।) (**आदि० १८५ । २२**) । (५) कलिङ्गदेशके एक राजा, जिनके यहाँ किसी समय स्वयंवर-महोत्सवमें देश-देशके राजा एकत्र हुए थे (**शान्ति० ४ । २**) । (६) महाबली शत्रुमर्दन दशार्णनरेश, जिनके साथ अश्वमेध-सम्बन्धी अश्वकी रक्षाके समय अर्जुनका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ और ये अर्जुनके अधीन हो गये (**आश्व० ८३ । ५–७**) ।

चित्राङ्गदा–(१) मणिपूरनरेश चित्रवाहनकी पुत्री (**आदि० २१४ । १५**) । नगरमें विचरण करती हुई इस राजकुमारीपर अर्जुनकी दृष्टि पड़ी और वे इसे चाहने लगे (**आदि० २१४ । १६**) । चित्राङ्गदाके पितासे उनका इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये माँगना (**आदि० २१४ । १७**) । अर्जुनद्वारा इसका पाणिग्रहण (**आदि० २१४ । २६**) । इसके गर्भसे अर्जुनद्वारा एक पुत्रका जन्म और अर्जुनका चित्राङ्गदाको हृदयसे लगाकर वहाँसे प्रस्थित हो जाना (**आदि० २१४ । २७**) । इससे मिलनेके लिये अर्जुनका पुनः मणिपूरमें आगमन (**आदि० २१६ । २३**) । मणिपूरसे जाते समय इसको अर्जुनका आश्वासन तथा राजसूय-यज्ञमें आनेका आदेश (**आदि० २१६ । २६—३४**) । बभ्रुवाहन और अर्जुनके युद्धमें दोनोंके धराशायी होनेपर इसका संतप्त हृदयसे समराङ्गणमें आना और पतिदेवकी दशाका निरीक्षण (**आश्व० ७९ । ३७–३९**) । पति-वियोगके शोकसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर गिरना, कुछ देर बाद होशमें आनेपर उलूपीको सामने खड़ी देखना और उसे उपालम्भ देकर उससे अर्जुनके प्राण बचानेका अनुरोध करना (**आश्व० ८० । २—७**) । पतिके निकट जाकर इसका विलाप करना (**आश्व० ८० । ८—११**) । पुनः उलूपीसे पतिको जिलानेके लिये अनुरोध करना (**आश्व० ८० । १२—१७**) । आमरण उपवासका संकल्प लेकर बैठना (**आश्व० ८० । १८**) । चित्राङ्गदाका उलूपी तथा बभ्रुवाहनके साथ हस्तिनापुरमें जाना (**आश्व० ८७ । २६**) । इसका कुन्ती और द्रौपदीके चरणोंका स्पर्श करना और सुभद्रा आदिसे मिलना (**आश्व० ८८ । २-३**) । कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदिका चित्राङ्गदाके लिये विविध रत्नोंकी भेंट देना (**आश्व० ८८ । ३-४**) । इसका दासीकी भाँति गान्धारीकी सेवामें संलग्न होना (**आश्रम० १ । २३-२४**) । वनमें जाते हुए धृतराष्ट्र और गान्धारीके साथ कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंसहित चित्राङ्गदाका भी घरसे बाहर निकलना और रोना (**आश्रम० १५ । १०**) । संजयका आश्रमवासी मुनियोंको कुरुकुलकी स्त्रियोंका परिचय देते समय चित्राङ्गदाकी अङ्गकान्तिको नूतन मधूकपुष्पकी भाँति गौर बताना (**आश्रम० २५ । ११**) । पाण्डवोंके महाप्रस्थानके पश्चात् इसका 'मणिपूर' नामक नगरको जाना (**महाप्रस्थान० १ । १८**) । (२) एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके सम्मानार्थ कुबेरकी सभामें नृत्य किया था (**अनु० १९ । ४४**) ।

चित्रायुध (या चित्रबाहु)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९७**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३६ । २०–२२**) । (२) (दृढायुध) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ११६ । ८**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३७ । २९**) । (३) सिंहपुर-नरेश, जिनकी राजधानी सिंहपुरपर अर्जुनने दिग्विजयके समय आक्रमण किया और उसे युद्धमें जीत लिया (**सभा० २७ । २०**) । (४) चेदिदेशके एक महारथी योद्धा, जो पाण्डव पक्षमें थे । उनके घोड़े लाल और आयुध आदि विचित्र थे (**द्रोण० २३ । ५६—६४**) । कर्णद्वारा इनका वध (**कर्ण० ५६ । ४९**) ।

चित्राश्व–सत्यवान्‌का दूसरा नाम । इन्हें अश्व बहुत प्रिय थे । ये मिट्टीके अश्व बनाया करते थे और चित्रमें अश्व ही अङ्कित करते थे, इसलिये लोग इन्हें 'चित्राश्व' भी कहते थे (**वन० २९४ । १३**) ।

चित्रोपला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । ३४**) ।

चिबुक–नन्दिनी गौद्वारा उत्पादित एक म्लेच्छ जाति (**आदि० १७४ । ३८**) ।

चिरकारी–महर्षि गौतमका एक पुत्र, जो प्रत्येक कार्यपर अधिक देरतक विचार करनेके कारण उसे बहुत देरसे पूर्ण करता था, इसीसे चिरकारी कहलाता था । पिताद्वारा अपनी माताके वधका आदेश पानेपर उसका विचार करना (**शान्ति० २६६ । ३–४३**) । पिताके चरणोंमें नतमस्तक होना (**शान्ति० २६६ । ६०**) । पिताद्वारा उसका अभिनन्दन (**शान्ति० २६६ । ६७**) । पिताके साथ स्वर्गगमन (**शान्ति० २६६ । ७८**) ।

चिरान्तक–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । १३**) ।

चीन–(१) नन्दिनी गौद्वारा उत्पादित एक म्लेच्छ जाति (**आदि० १७४ । ३८**) । (२) एक देश, जहाँके लोग युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (**सभा० ५१ । २३**) ।

चीरक–एक देश या जनपद, जिसे कर्णने जीतकर दुर्योधनके लिये कर देनेवाला बना दिया था (**कर्ण० ८ । १९**) ।

चीरवासा–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६१**) । (२) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् धनाध्यक्षकी सेवा करता है (**सभा० १० । १८**) ।

चीरिणी–एक नदी, जिसके तटपर वैवस्वत मनुने भीगे चीर और जटा धारण किये तपस्या की थी (**वन० १८७ । ६**) ।

चुलुका–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । २०**) ।

चूचुक–दक्षिण भारतकी एक म्लेच्छ जाति (**शान्ति० २०७ । ४२**) ।

चूचुप–दक्षिण भारतका एक जनपद (**उद्योग० १४० । २६**) ।

चेकितान–पाण्डव-पक्षका एक महारथी, जो वृष्णिवंशी यादव था और द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ११; उद्योग० १७१ । १८; भीष्म० ८४ । २०**) । राजा युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभामें प्रवेश करते समय ये भी उनकी सेवामें उपस्थित थे (**सभा० ४ । २७**) । इन्होंने युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें उपस्थित हो अभिषेकके समय उनके लिये तरकस भेंट किया था (**सभा० ५३ । ९**) । प्रथम दिनके संग्राममें सुशर्माके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । ६०–६२**) । कृपाचार्यको मूर्छित करके स्वयं भी उनके द्वारा मूर्छित होना (**भीष्म० ८४ । ३१**) । चित्रसेनके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११० । ८-९; भीष्म० १११ । ५३–५५**) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**द्रोण० १० । ५४**) । अनुविन्दके साथ युद्ध (**द्रोण० १४ । ४८**) । इनके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । ४५**) । द्रोणाचार्यद्वारा इनकी पराजय (**द्रोण० १२५ । ६८–७१**) । दुर्योधनद्वारा इनका वध (**शल्य० १२ । ३१–३३**) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजीके जलसे ये भी प्रकट हुए थे (**आश्रम० ३२ । १२**) । इनके दो नाम और मिलते हैं—सात्वत और वार्ष्णेय ।

चेदि–एक प्राचीन देश, जिसे उपरिचर वसुने जीता था और इसपर शासन किया था (**आदि० ६३ । १-२**) । चेदिदेशकी विशेषता (**आदि० ६३ । ८**) । यहींका राजा शिशुपाल था । नकुलकी पत्नी करेणुमती भी यहींकी राजकुमारी थीं (**आदि० ९५ । ७९**) । शिशुपालकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्र धृष्टकेतुको चेदिदेशका राजा बनाया गया (**सभा० ४५ । ३६**) । राजा नलके समयमें सुबाहु इस देशके राजा थे; जिनके यहाँ दमयन्तीने सुखपूर्वक निवास किया था (**वन० ६५ । ४४–७६**) । चेदिराज धृष्टकेतु एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर पाण्डवोंकी सहायतामें आये थे (**उद्योग० १९ । ७**) । इस देशके क्षत्रिय वीर भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे चलकर शत्रुओंको बंदी बनाते और मित्रोंको आनन्दित करते थे (**उद्योग० २८ । ११**) । भारतके प्रमुख जनपदोंमें 'चेदि'की भी गणना है (**भीष्म० ९ । ४०**) ।

चैत्य–देववृक्ष (**आदि० १५० । ३३**) ।

चैत्यक–मगधकी राजधानी गिरिव्रजके समीपका एक पर्वत, जो मगधवासियोंको अत्यन्त प्रिय था । बृहद्रथ-परिवारके लोग इसकी देवताकी भाँति पूजा किया करते थे (**सभा० २१ । १–५**) ।

चैत्ररथ–(१) एक वन, जहाँ राजा ययातिने 'विश्वाची' अप्सराके साथ रमण किया था (**आदि० ७५ । ४८**) । तपस्याके लिये जाते समय राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ यहाँ आये थे (**आदि० ११८ । ४८**) । द्वारकापुरीका एक वन, जो इसी (चैत्ररथ) नामसे प्रसिद्ध था और ब्रह्माजीके अलौकिक उद्यानकी भाँति शोभा पाता था (**सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२, कालम २**) । (२) भरतवंशीय महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न एक राजकुमार (**आदि० ९४ । ५०**) ।

चैत्ररथपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १६४ से १८२ तक**) ।

—चेदिराज शिशुपाल (आदि० १ । ३१)। चेदिराज धृष्टकेतु, जो धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहके नेत्र-स्थानमें खड़े थे (भीष्म० ५० । ४७)।

चोल—एक देश, जिसकी सेनाओंपर अर्जुनने विजय पायी थी (सभा० २७ । २१)। चोलदेशके नरेशको भी चोल कहा गया है, ये युधिष्ठिरको भेंट देने गये थे (सभा० ५२ । ३५)। दक्षिण भारतका एक जनपद, जहाँके वीर योद्धा धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहकी दाहिनी पाँखका आश्रय लेकर खड़े थे (भीष्म० ९ । ६०; भीष्म० ५० । ५१)। भगवान् श्रीकृष्णने इस देशको जीता था (द्रोण० ११ । १७)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्होंने युद्ध किया (कर्ण० १२ । १५)।

चौर—क्षत्रियोंकी एक प्राचीन जाति, जो ब्राह्मणोंके रोषसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गयी (अनु० ३५ । १७)।

च्यवन—(१) एक सुप्रसिद्ध तपस्वी मुनि, जो महर्षि भृगुके पुत्र थे (आदि० ५ । ८)। इनकी उत्पत्ति-कथा (आदि० ५ । १३ से ६ । ३ तक)। इनका च्यवन नाम पड़नेका कारण तथा इन्हें देखते ही पुलोमा राक्षस-का जलकर भस्म हो जाना (आदि० ६ । ३)। इनके द्वारा सुकन्या नामक पत्नीके गर्भसे प्रमतिका जन्म (आदि० ५ । ९; आदि० ८ । १)। इनसे आस्तीकने अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था (आदि० ४८ । १८)। इनकी भार्या मनुकी पुत्री आरुषी थी, जिससे और्व मुनिका जन्म हुआ था (आदि० ६६ । ४६)। ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २२)। सुकन्याद्वारा इनकी आँखोंके फोड़ दिये जानेपर इनके द्वारा राजा शर्यातिके सैनिकोंका मलावरोध (वन० १२२ । १५—१७)। इन्हें शर्यातिसे सुकन्याकी प्राप्ति होनेपर इनकी प्रसन्नता (वन० १२२ । २६-२७)। रूप, यौवन और पत्नीकी प्राप्तिसे प्रसन्न होकर इनका अश्विनीकुमारों-को सोमपानके अधिकारी बनानेकी प्रतिज्ञा करना (वन० १२३ । २२-२३)। इनके द्वारा इन्द्रकी भुजाओंका स्तम्भन (वन० १२४ । १९; शान्ति० ३४२ । ३४)। इनका अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराना (वन० १२५ । १०)। अभिमन्त्रित जल पी लेनेपर राजा युवनाश्व-को इनका आश्वासन देना (वन० १२६ । १०—२८)। देवव्रत भीष्मका इनसे वेदाङ्गों और वेदोंका अध्ययन (शान्ति० ३७ । ११)। (२) अङ्गिराके वंशज, च्यवन नामक अग्नि (वन० २२० । १)।

च्यवनाश्रम—एक तीर्थ, जिसमें काशिराजकी कन्या अम्बाने स्नान किया (उद्योग० १८६ । २६)।

च्यवन-सरोवर—एक तीर्थ जिसमें पितरोंका तर्पण किया जाता है (वन० १२५ । ११-१२)।

(छ)

छत्रवती—अहिच्छत्रदेशकी राजधानी, अहिच्छत्रा नगरीका दूसरा नाम (आदि० १६५ । २१)।

छन्दोदेव—मतङ्गको इन्द्रके वरदानसे जन्मान्तरमें मिलने-वाला नाम (अनु० २९ । २४)।

छागमुख—बकरेके समान मुख धारण करनेवाले भगवान् स्कन्द, जो अपने पुत्रों और कन्याओंसे घिरकर मातृ-काओंके देखते-देखते युद्धमें अपने पक्षकी रक्षा करते हैं (वन० २२८ । ३-४)।

(ज)

जङ्गारि—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५७)।

जङ्घाबन्धु—एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६)।

जटाधर—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१)।

जटायु—एक गीध, विनतानन्दन अरुणके दूसरे पुत्र, इनकी माताका नाम श्येनी और बड़े भाईका नाम सम्पाति था (आदि० ६६ । ६९-७०)। इनका सीताहरणके समय रावणके साथ युद्ध (वन० २७९ । ३—५)। रावणद्वारा इनकी पाँखोंका काटा जाना (वन० २७९ । ६)। श्रीरामचन्द्रजीको सीताका पता बताकर इनका प्राण त्याग करना (वन० २७९ । २३)। जटायु अपने भाई सम्पातिके साथ सूर्यमण्डल-की ओर उड़े थे। सम्पातिकी पाँखें जल गयीं और इनकी बची रह गयीं—इस प्रसङ्गकी चर्चा (वन० २८५ । ४९-५०)।

जटालिका—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३)।

जटासुर—(१) एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें रहता था (सभा० ४ । २४)। (२) एक राक्षस, जो पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्र तथा द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको लेकर भागा जा रहा था (वन० १५७ । ७—११)। इसका भीमसेनके साथ युद्ध तथा प्राण-त्याग (वन० १५७ । ४८—७०)। इसके पुत्रका नाम अलम्बुष था, जो घटोत्कचके हाथसे मारा गया (द्रोण० १७४ । ७—३७)।

जटासुरवधपर्व—वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५७)।

जटिला—गौतमगोत्रकी कन्या, सात ऋषियोंकी पत्नी

(आदि० १९५ । १४) । हस्तिनापुरकी स्त्रियोंद्वारा द्रौपदीकी पतिसेवाके विषयमें इनका दृष्टान्त (शान्ति० ३८ । ५) ।

जटी—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) ।

जठर—(१) एक वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ८) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४२) ।

जतुगृह—लाक्षागृह, जिसे दुर्योधनने पाण्डवोंके विनाशके लिये वारणावतमें बनवाया था (आदि० ६१ । १७) । पाण्डवोंने इस भवनमें सालभर रहकर इसमें आग लगा दी (आदि० ६१ । २१–२३) । दुष्ट दुर्योधनकी प्रेरणासे पुरोचनद्वारा महात्मा पाण्डवोंके विनाशके लिये लाहका घर बनवाया गया था (आदि० १४३ । ८) । विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा पाण्डवोंने इसमें सुरंगका निर्माण कराया था (आदि० १४६ । १६) । अपने शराबी पाँच पुत्रोंके साथ मदिरा पीकर मत्त होकर एक भीलनीका इस भवनमें आकर सोना (आदि० १४७ । ७) । भीमका इस घरमें आग लगाना (आदि० १४७ । १०) । इसमें जलकर पुरोचनकी मृत्यु (आदि० १४७ । १६) ।

जतुगृहपर्व—आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १४० से १५० तक) ।

जनक—(क) मिथिलाके एक भूतपूर्व राजा, जो अब यमसभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १९) । (ख) युधिष्ठिरके समकालिक मिथिलाके एक राजा, जिसे भीमसेनने दिग्विजयके समय पराजित किया था (सभा० ३० । १३) । (ग) एक विदेहराज जनक, जिनके दरबारमें वन्दीद्वारा शास्त्रार्थमें हारे हुए कहोडको समुद्रमें डलवा दिया गया था (वन० १३२ । १५) । इनका अपनी यज्ञशालामें आये हुए अष्टावक्रसे वार्तालाप (वन० १३३ । २०–३०) । इनका अष्टावक्रको वन्दीसे शास्त्रार्थ करनेका अवसर देना (वन० १३३ । ३०) । हारे हुए वन्दीको अष्टावक्रके इच्छानुसार जलमें डुबानेकी बात स्वीकार करना (वन० १३४ । २९) । कहोडका जनकके सामने प्रकट होकर पुत्रकी प्रशंसा करना (वन० १३४ । ३२–३६) । राजाकी आज्ञासे वन्दीका समुद्रके जलमें प्रवेश (वन० १३४ । ३७) । धर्मव्याधद्वारा कौशिक ब्राह्मणके प्रति जनकके गुणोंका वर्णन (वन० २०७ । ३७–३९) । विदेहराज जनक सीताके पिता थे (वन० २७४ । ९) । इनका राज्य छोड़कर संन्यास ग्रहण करनेका उपक्रम (शान्ति० १८ । ४-५) । इनका अश्मा मुनिसे कुटुम्बी जन और धनका नाश होनेपर क्या करना चाहिये, इस विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० २८ । ४) । जनकका स्वर्ग और नरकका प्रत्यक्ष दर्शन कराकर अपने सैनिकोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करना (शान्ति० ९९ । ४–७) । कालकवृक्षीय मुनिके समझानेपर जनकका क्षेमदर्शीसे संधि करना और उसका सत्कार करके उसके साथ अपनी कन्याका ब्याह कर देना (शान्ति० १०६ । २१–२८) । इनकी विरक्ति (शान्ति० १७८ । २) । महर्षि माण्डव्यके तृष्णाविषयक प्रश्नका जनकद्वारा उत्तर (शान्ति० २७६ अध्याय) । पराशरजीसे कल्याण-प्राप्तिके विषयमें जनकके प्रश्न (शान्ति० २९० । ४) । पराशरजीसे इनके विविध प्रकारके प्रश्न (शान्ति० २९६ । १-२; शान्ति० २९८ । २) । कराल जनकको वसिष्ठका उपदेश (शान्ति० ३०२ अध्यायसे ३०८ अध्याय तक) । वसुमान् जनकको एक मुनिका धर्मविषयक उपदेश (शान्ति० ३०९ अध्याय) । महर्षि याज्ञवल्क्यसे देवरातपुत्र जनकका प्रश्न करना और उनके द्वारा उनके प्रश्नोंका समाधान (शान्ति० ३१० अध्याय से ३१८ अध्याय तक) । जरा-मृत्युके उल्लङ्घनके विषयमें महर्षि पञ्चशिखसे जनदेव जनकका प्रश्न (शान्ति० ३१९ । ५) । धर्मध्वज जनककी परीक्षाके लिये आयी हुई और उनके शरीरमें प्रविष्ट हुई सुलभासे उसपर दोषारोपण करते हुए इनका प्रश्न (शान्ति० ३२० । ७५) । राजा जनकद्वारा शुकदेवजीका पूजन (शान्ति० ३२६ । ३–५) । शुकदेवजीको उनका ज्ञानोपदेश (शान्ति० ३२६ । २२–५१) । जनकने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५) । ब्राह्मणरूपधारी धर्म और जनकका ममत्व-त्यागविषयक संवाद (आश्व० ३२ अध्याय) ।

महाभारतमें आये हुए जनकके नाम—ऐन्द्रद्युम्नि, दैवराति, धर्मध्वज, कराल, करालजनक, मैथिल, मिथिलाधिप, मिथिलाधिपति, मिथिलेश्वर, वैदेह, विदेहराज आदि। (मिथिलाके प्रायः सभी राजा जनक कहलाते थे । प्रस्तुत वर्णनमें अनेक जनकोंके जीवनकी बातें संकलित हुई हैं । नामोंमें भी विभिन्न जनकोंके नाम हैं । यह किसी एक ही जनकका परिचय नहीं है ।) ।

जनदेव—मिथिलानरेश जनक (शान्ति० २१८ । ३) । इन्हें पञ्चशिखका उपदेश (शान्ति० २१८ । २२ से शान्ति० २१९ । ५२ तक) । ब्राह्मणरूपमें विष्णुद्वारा इनकी परीक्षा (शान्ति० २१९ । ५२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इन्हें भगवान् विष्णुका दर्शन और वर-प्राप्ति (शान्ति० २१९ अध्यायकी समाप्तितक) ।

जनमेजय–(१) एक राजर्षि, जो महाराज परीक्षित्के पुत्र थे। इनकी माताका नाम मद्रवती था, इनकी पत्नी वपुष्टमासे शतानीक और शङ्कुकर्ण नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे (आदि० १। ९; आदि० ९५। ८५-८६)। इन्होंने कुरुक्षेत्रमें दीर्घकालतक यज्ञ किया था (आदि० ३। १)। इनके तीन भाई थे–श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन (आदि० ३। १)। सरमाके शाप देनेपर इनका चिन्तित होना (आदि० ३। ११)। इन्होंने सोमश्रवाको पुरोहित बनाया और भाइयोंको उनकी प्रत्येक आज्ञाके पालनका आदेश दिया (आदि० ३। १२–२०)। उनके द्वारा तक्षशिलापर विजय (आदि० ३। २०)। इनका वेदको अपना उपाध्याय बनाना (आदि० ३। ८२)। सर्पयज्ञ करनेके लिये इनको उत्तङ्ककी सलाह (आदि० ३। १८३-१८४)। काशिराज सुवर्णवर्माकी पुत्री वपुष्टमासे इनका विवाह (आदि० ४४। ८-९)। मन्त्रियोंके द्वारा अपने पिताकी मृत्युका विस्तारपूर्वक समाचार सुनकर इनका तक्षकसे बदला लेनेका निश्चय (आदि०५०। ३३–५४)। ऋत्विजोंद्वारा इनको सर्प-सत्र करनेका परामर्श (आदि० ५१। ६-७)। इन्होंने यज्ञकी दीक्षा लेनेसे पहले ही सेवकको यह आदेश दे दिया कि मुझे सूचित किये बिना किसी अपरिचित व्यक्तिको यज्ञमण्डपमें न आने दिया जाय, इनका तक्षकको अग्निकुण्डमें गिरानेके लिये ऋत्विजोंको बारंबार प्रेरणा (आदि० ५६। ४–११)। उनका आस्तीकको वर देना और यज्ञसमाप्तिका वर माँगनेपर उनसे दूसरा वर माँगनेका आग्रह करना (आदि० ५६। १७-२६)। इनके द्वारा यज्ञ बंद करनेकी आज्ञा देकर ऋत्विज आदि सदस्यों और लोहिताक्ष सूत तथा शिल्पीको पुरस्कार (आदि० ५८ अध्याय)। सर्पसत्रमें आये हुए व्यासजीसे इनकी महाभारत-युद्ध-सम्बन्धी वृत्तान्त सुनानेकी प्रार्थना (आदि० ६०। १८-१९)। इनके प्रार्थना करनेपर व्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनजीने इनसे पूरुवंश, भरतवंश एवं कुरुवंशके परिचयपूर्वक सम्पूर्ण पुरातन इतिहास एवं महाभारत युद्धकी कथा सुनायी थी (आदि० ६०। १८–२४)। इनका व्यासजीसे अपने पिताके दर्शन करानेकी प्रार्थना और व्यासजीका परलोकसे उनका आवाहन करके उसी रूप और अवस्थामें जनमेजयको दर्शन कराना, जनमेजयका पहले पिताको अवभृथ-स्नान कराकर स्वयं स्नान करना तथा आस्तीकसे अपने यज्ञको विविध आश्चर्योंका केन्द्र बताना और आस्तीकके कहनेसे महर्षि व्यासका बारंबार पूजन करना। इसके बाद वैशम्पायनजीसे शेष कथा सुनानेके लिये कहना (आश्रम० ३५। ४–१८)। कथा सुनकर तथा यज्ञको समाप्त करके राजाने समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया और सबको विदा करके तक्षशिलासे हस्तिनापुरको चले आये (स्वर्गा० ५। ३३-३४)।

महाभारतमें आये हुए जनमेजयके नाम–भारत, भरतशार्दूल, भरतश्रेष्ठ, भारताग्र्य, भरतर्षभ, भरतसत्तम, कौरव, कौरवशार्दूल, कौरवनन्दन, कौरवेन्द्र, कौरव्य, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलोद्वह, कुरुनन्दन, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गवाग्रज, कुरुसत्तम, पाण्डव, पाण्डवनन्दन, पाण्डवेय, पारिक्षित्, पौरव आदि।

(२) एक परलोकवासी नरेश (आदि० १। २२८)। ये यमराजके सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८। १९)। मान्धाताने इन्हें पराजित किया था (द्रोण० ६२। १०)। इन्होंने तीन ही दिनोंमें विजयी होकर इस भूमण्डलका राज्य प्राप्त किया था (शान्ति० १२४। १६)। ब्राह्मणोंके लिये अपने शरीर और गौका त्याग करके इन्होंने उत्तम लोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४। २४; अनु० १३७। ९)। (३) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्योंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ६२)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४। १६)। यह गदा-युद्धमें कुशल पर्वतीय राजा था। इसे धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखने मारा था (कर्ण० ६। १९-२०)। (४) एक राजा, जो भरतवंशी महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ९४। ५१)। (५) अश्ववान्‌कुमार परीक्षित्‌के वंशमें उत्पन्न एक राजा, जिसके पुत्रका नाम धृतराष्ट्र था (आदि० ९४। ५३–५६)। ये परीक्षित्-वंशीय नरेश, अर्जुनके प्रपौत्र और अभिमन्युके पौत्रसे भिन्न थे (शान्ति० १५०। ३)। ये अनजानमें ब्रह्महत्या कर देनेके कारण प्रजा, ब्राह्मणों और पुरोहितों-द्वारा त्याग दिये गये और दुखी हो वनमें जाकर पुण्यकर्म एवं तपस्या करने लगे। इन्होंने पृथ्वीपर घूम-घूमकर ब्रह्महत्यानिवारणका उपाय पूछा, अन्तमें एक शौनकवंशी इन्द्रोत मुनिकी शरणमें गये (शान्ति० १५०। ४–८)। इन्द्रोतमुनिके फटकारनेपर इन्होंने उनकी ही शरण ग्रहण की (शान्ति० १५१। १–९)। इन्द्रोत मुनिने अश्वमेधयज्ञ कराकर इन्हें पापसे मुक्त किया (शान्ति० १५२। ३९)। (६) महाराज पूरुके पुत्र, इनकी माताका नाम कौसल्या था, इन्हींका दूसरा नाम प्रवीर है, इनके द्वारा मधुवंशकी कन्या अनन्ताके गर्भसे प्राचिन्वान्‌की उत्पत्ति हुई थी (आदि० ९५। ११-१२)। (७) वरुणकी सभामें विराजमान होनेवाला एक नाग (सभा० ९। १०)। (८) नीपवंशका

एक कुलाङ्गार नरेश (उद्योग० १७४ । १३) । (९) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चालदेशीय योद्धा, जो दुर्मुखका पुत्र था, यह युधिष्ठिरका सम्बन्धी एवं सहायक था, इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५१; द्रोण० १५८ ।३९)। इसका कर्णके साथ युद्ध (कर्ण० ४९ । ३५-३७) ।

जनस्थान-दण्डकारण्यका एक भाग, जो गोदावरीके तटपर है और जहाँ त्रेतायुगमें राक्षसोंका समुदाय निवास करता था, यहाँ रहकर देवताओंका कार्य सिद्ध करते हुए श्रीरामने प्रजाजनोंके हितकी कामनासे भयानक कर्म करनेवाले मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसोंका वध किया (सभा० ३८ । दा० पाठ, पृष्ठ ७९४)। यहीं राक्षसराज रावणने मायासे सुवर्णमय मृगका रूप धारण करनेवाले मारीच नामक राक्षसके द्वारा श्रीरामको धोखेमें डालकर इनकी धर्मपत्नी सीताको हर लिया था (वन० १४७ । ३३-३४) । यहाँ रहते समय शूर्पणखाके नाक-कान कटवानेके कारण श्रीरामका जनस्थानवासी राक्षस खरके साथ महान् वैर हो गया (वन० २७७ । ४२) । नरश्रेष्ठ श्रीरामने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था। (द्रोण० ५९ । ३) । जनस्थानमें श्रीरामने जब राक्षसोंके संहारका विचार किया था, उस समय एक राक्षसके सिरको काटकर दूर फेंका, वह महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा और उसकी हड्डी मुनिकी जाँघमें धँस गयी थी (शल्य० ३९ । ९-११) । जनस्थानमें गोदावरीके जलमें स्नान करके उपवास करनेवाला पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९) ।

जनार्दन-भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (वन० १२ । २४) । दस्युजनोंको त्रास देनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णका नाम जनार्दन हुआ है (उद्योग० ७० । ६)। महाभारतमें अनेक स्थलोंपर 'जनार्दन' नामका प्रयोग हुआ है, यथा-(भीष्म० २५ । ३६,३९,४४;भीष्म०२७। १; भीष्म० ३४ । १८; भीष्म० ३५ । ५१) इत्यादि ।

जन्तु-प्रसिद्ध राजा सोमकका पुत्र, जिसके प्रति राजपरिवारकी भारी आसक्ति थी (वन० १२७ । ४-१५) । सौ पुत्रोंकी प्राप्तिके निमित्त जन्तुकी आहुति देकर यज्ञ करनेके लिये ऋत्विजकी सलाह (वन० १२७ । १६-२७) । जन्तुके लिये माताओंका शोक और ऋत्विजोंका इसे काटकर इसकी चर्बियोंकी आहुति देना (वन० १२८ । २-६) । इसका पुनः अपनी माताके गर्भसे जन्म (वन० १२८ । ८) ।

जमदग्नि-एक ब्रह्मर्षि, जो सत्यवती और ऋचीक ऋषिके पुत्र, और्वके पौत्र तथा महर्षि च्यवनके प्रपौत्र थे; ये ऋचीकके सौ पुत्रोंमें बड़े थे । इनके भी चार पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे (आदि० ६६ । ४५-४९) । जमदग्निजी अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५१) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजते हैं (सभा० ११ । २२) । इनका सत्यवतीके गर्भसे जन्म (वन० ११५ । ४३) । इनकी राजा प्रसेनजित्से रेणुकाकी माँग और उसके साथ विवाह (वन० ११६ । २) । इनको अपनी पत्नी रेणुकाके गर्भसे पाँच पुत्रोंकी प्राप्ति (वन० ११६ । ४) । इनका रेणुकाका वध करनेके लिये पुत्रोंको आदेश (वन० ११६ । ११) । माताका वध कर देनेपर परशुरामको इनका वरदान (वन० ११६ । १८) । कार्तवीर्यके पुत्रोंद्वारा इनका वध (वन० ११६ । २८; शान्ति० ४९ । ५०) । द्रोणाचार्यके पास आकर इनका उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५-४०) । इनके जन्मका प्रसंग (शान्ति० ४९ । २९) । इनसे परशुरामका जन्म (शान्ति० ४९ । ३१-३२) । इनका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४४) । अरुन्धतीसे अपने मोटे न होनेका कारण बताना (अनु० ९३ । ६४) । यातुधानीसे अपने नामकी व्याख्या बताना (अनु० ९३ । ९४) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२०-१२१) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । २५) । रेणुकाके पैर और मस्तकके संतप्त होनेसे सूर्यपर कोप करना (अनु० ९५ । १८) । इनका शरणागत सूर्यको अभयदान देना (अनु० ९६ । ८-१२) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२७ । १७-१९) । ये उत्तर दिशाके ऋषि हैं (अनु० १६५ । ४४) । जमदग्निका क्रोधपर विजय (आश्व० ९२ । ४१-४६) ।

महाभारतमें आये हुए जमदग्निके नाम-आर्चीक, भार्गव, भार्गवनन्दन, भृगुशार्दूल, भृगुश्रेष्ठ, भृगूत्तम, ऋचीकपुत्र, ऋचीकतनय आदि ।

जम्बुक-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

जम्बू-मेरुपर्वतके दक्षिण भागमें विद्यमान वृक्षविशेष, जो सदा फल-फूलोंसे भरा रहता है, सिद्ध और चारण उस वृक्षका सेवन करते हैं, उसकी शाखा ऊँचाईमें स्वर्गलोकतक फैली हुई है, उसीके नामपर इस द्वीपको जम्बूद्वीप कहते हैं (सभा० ३८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७४७) ।

जम्बूक-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६) ।

जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व-भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १० तक) ।

जम्बूद्वीप–सात द्वीपोंमेंसे एक (**सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७४७**) । (यह द्वीप समस्त भूमण्डलके मध्यभागमें है ।) इसके विस्तार आदिका वर्णन (**भीष्म० ११ । ५–७**) ।

जम्बूनदी–गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक धाराका नाम (**भीष्म० ६ । ४८**) ।

जम्बूमार्ग–प्राचीन तीर्थ, जो देवताओं, पितरों और ऋषियोंसे सेवित है, वहाँ जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (**वन० ८२ । ४०-४१**) । साधारणभावसे तीन महीनेतक और इन्द्रियसंयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो एक ही दिन जम्बूमार्गमें स्नान करनेसे मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है (**अनु० २५ । ५१**) ।

जम्भ–(१) एक असुर, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने मारा था (**सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२५; द्रोण० ११ । ५**) । (२) एक दैत्य, जिसका शुक्राचार्यने त्याग किया था (**सभा० ६२ । १२**) । इसीका वध इन्द्रने किया था (**शान्ति० ९८ । ४९**) । (३) एक असुर, जो भगवान् विष्णुद्वारा मारा गया था (**वन० १०२ । २४**) । (४) राक्षसोंका एक दल, जो रावणके अधीन था और वानर-सैनिकोंपर धावा बोला था (**वन० २८५ । २**) । (५) पौलोम और कालखंज नामक दानवोंके अन्तर्गत एक दानव, जो नरावतार अर्जुनके द्वारा मारा गया (**उद्योग० ४९ । १४-१५**) ।

जम्भक–एक क्षत्रिय राजा, जो वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णद्वारा दलबलसहित मार डाला गया था, केवल उसका पुत्र ही जीवित बच गया था, जिसे सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके समय जीता था (**सभा० ३१ । ७-८**) ।

जय– (१) महाभारतका नाम (**आदि० १ । १ मङ्गलाचरण; प्रत्येक पर्वका मङ्गलाचरण; आदि० ६२ । २०**) । (२) धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (**आदि० ६३ । ११९**) । इसने गोहरणके समय विराटनगरमें अर्जुनपर धावा किया था (**विराट० ५४ । ७**) । नीलके साथ इसका युद्ध (**द्रोण० २५ । ४५**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३५ । ३६**) । (३) एक देवता, जो मूसल लेकर खाण्डवदाहके समय अर्जुन और श्रीकृष्णके विपक्षमें खड़े हुए थे (**आदि० २२६ । ३४**) । (४) एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १५**) । (५) भगवान् सूर्यका एक नाम (**वन० ३ । २४**) । (६) विराटनगरमें रहते समय युधिष्ठिरका गुप्त नाम (अन्य भाइयोंके गुप्त नाम क्रमशः जयन्त, विजय, जयत्सेन, और जयद्बल थे ।) (**विराट० ५ । ३५**) । जब सूतपुत्र द्रौपदीको श्मशानमें लिये जा रहे थे, तब द्रौपदीने 'जय आदि' गुप्त नामोंसे ही पाण्डवोंको अपनी रक्षाके लिये पुकारा था (**विराट० २३ । १२**) । (७) एक मुहूर्तका नाम (**उद्योग० ६ । १७**) । (८) एक कश्यपवंशी नाग (**उद्योग० १०३ । १६**) । (९) विदुलोपाख्यानका नाम (**उद्योग० १३६ । १८**) । (१०) एक कौरवदलका योद्धा, जो शकुनिका साथी होकर अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये दुर्योधनद्वारा भेजा गया था (**द्रोण० १५६ । ११९–१२३**) । (११) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चाल योद्धा, जो कर्णद्वारा घायल किया गया था (**कर्ण० ५६ । ४४**) । (१२) नागराज वासुकिके द्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदरूप नागोंमेंसे एक नाग, दूसरेका नाम महाजय था (**शल्य० ४५ । ५२**) । (१३) विजय या जीत (**शल्य० ४६ । ६४**) । (१४) भगवान् विष्णुका नाम (**अनु० १४९ । ६७**) ।

जयत्सेन–(१) मगधदेशका एक राजा, जो जरासंधका पुत्र था और कालेय नामक दैत्योंमें सबसे श्रेष्ठ असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ४८**) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ८**) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रणनिमन्त्रण भेजा गया (**उद्योग० ४ । १९**) । एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंके यहाँ इसका आगमन हुआ था (**उद्योग० १९ । ८**) । धृतराष्ट्रपुत्र विजयके साथ इसने युद्ध किया (**द्रोण० २५ । ४५**) । (२) पूरुवंशी सार्वभौमके द्वारा केकयकुमारी सुनन्दाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, इनकी पत्नी विदर्भराजकुमारी सुश्रवा थी और इनके पुत्रका नाम अवाचीन था (**आदि० ९५ । १६-१७**) । (३) विराटनगरमें रहते समय नकुलका गुप्त नाम (**विराट० ५ । ३५; विराट० २३ । १२**) । (४) एक कौरवपक्षका राजा, जो मगधनिवासी जरासंधका पुत्र था । यह एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर दुर्योधनकी सहायताके लिये आया था (**भीष्म० १६ । १६**) । यह अभिमन्युद्वारा मारा गया (**कर्ण० ५ । ३०**) । ('जयत्सेन' नामक दो राजा या राजकुमार हैं, दोनों ही मागध हैं और दोनोंहीके पिताका नाम जरासंध है, परंतु सुप्रसिद्ध राजा जरासंधका पुत्र सहदेव ही पिताके बाद मगधका राजा हुआ था और वह अपने भाई जयत्सेनके साथ पाण्डवपक्षमें ही सम्मिलित हुआ था; अतः यह दूसरा जयत्सेन मगधदेशवासी किसी अन्य जरासंधका पुत्र है, यही मानना

चाहिये ।) (५) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, शतानीकद्वारा इसकी पराजय (**भीष्म० ७९ । ४४-४५**) । भीमसेन-द्वारा इसका वध (**शल्य० २६ । ११-१२**) ।

जयत्सेना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । ६**)।

जयद्बल–विराटनगरमें रहते समय सहदेवका एक गुप्त नाम (**विराट० ५ । ३५; विराट० २३ । १२**) ।

जयद्रथ–(१) सिन्धुनरेश वृद्धक्षत्रका पुत्र, इसकी पत्नीका नाम दुःशला था (**आदि० ६७ । १०९-११०**) । दुःशलाके साथ उसका विवाह (**आदि० ११६ । १७-१८**)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । २१**)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित हुआ था (**सभा० ३४ । ८**) । कौरवसभामें राजा युधिष्ठिरके जुआ खेलते समय यह भी मौजूद था (**सभा० ५८ । २६**) । जयद्रथका विवाहकी इच्छासे शाल्वदेशकी ओर जाते समय साथियोंसहित काम्यकवनमें पहुँचना और द्रौपदी-को देखकर चकित होना, फिर दूषित भावनाका उदय होनेसे उनका परिचय जाननेके लिये कोटिकास्यको उनके पास भेजना (**वन० २६४ । ६–१६**) । द्रौपदीसे इसका अनुचित प्रस्ताव करना (**वन० २६७ । १३–१७**) । द्रौपदीकी इसको कड़ी फटकार (**वन० २६७ । १९-२० और दाक्षिणात्य पाठके श्लोक**) । द्रौपदीका इसको धिक्कारना और फटकारना (**वन० २६८ । २–९**) । इसका द्रौपदीको समझाना (**वन० २६८ । १०–१२**) । पुनः द्रौपदीकी इसे कड़ी फटकार (**वन० २६८ । १३–२२**) । उसका द्रौपदीको पकड़नेकी चेष्टा और उनके धक्के खाकर कटे पेड़की भाँति गिरना, फिर दुबारा उठकर उन्हें पकड़ना और रथपर बैठनेके लिये विवश कर देना (**वन० २६८ । २३–२५**) । धौम्यमुनिका जयद्रथको फटकारना (**वन० २६८ । २६-२७**) । जयद्रथद्वारा अपहृत हुई द्रौपदीके पीछे धौम्य मुनिका जाना (**वन० २६८ । २८**) । युधिष्ठिरके समक्ष धात्रेयिकाद्वारा जयद्रथके अत्याचारका वर्णन (**वन० २६९ । १७–२२**) । पाण्डवोंका जयद्रथको ललकारना (**वन० २६९ । २८**) । द्रौपदीद्वारा जयद्रथके सामने पाण्डवोंके पराक्रम-का वर्णन (**वन० २७० अध्याय**) । पाण्डवोंद्वारा जयद्रथकी सेनाका संहार और जयद्रथका पलायन (**वन० २७१ । १–३३**) । भीम और अर्जुनका जयद्रथका पीछा करना और उसे फटकारना (**वन० २७१ । ५२–५९**) । भीमसेनका जयद्रथको पकड़कर पीटना और अधमरा कर देना, उसका सिर मूड़कर पाँच शिखाएँ रख देना, राजाओंकी सभामें युधिष्ठिरका दास बताकर अपना परिचय देनेके लिये उसे विवश करके बंदी बनाकर रथपर डाल लेना और युधिष्ठिरके सामने उसी दशामें उपस्थित करना (**वन० २७२ । २–१५**) । युधिष्ठिर-का इसे छोड़ देनेका आदेश और युधिष्ठिरकी दासता स्वीकार कर लेनेके कारण इसे छोड़ देनेके लिये द्रौपदीका भी भीमसेनसे अनुरोध (**वन० २७२ । १७-१८**) । जयद्रथका छुटकारा, युधिष्ठिरका उसे उसके पापकर्मके लिये धिक्कारते हुए दासभावसे मुक्त कर देना और उसे सकुशल लौट जानेकी आज्ञा देना (**वन० २७२ । २१–२४**) । जयद्रथका लज्जित हो सीधे गङ्गाद्वारको जाना और तपस्याद्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न करके एक दिनके लिये अर्जुनके सिवा अन्य चार पाण्डवोंको जीत लेनेका वरदान प्राप्त करना (**वन० २७२ । २५–२९**) । इसका सेनासहित दुर्योधनकी सहायतामें आना (**उद्योग० १९ । १९**) । प्रथम दिनके युद्धमें द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ४५ । ५५–५७**) । भीमसेनसे दुर्योधन-की रक्षा करके भीमसेनपर आक्रमण (**भीष्म० ७९ । १७–२०**) । भीमसेनके पुरुषार्थसे इसका किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होना (**भीष्म० ८५ । ३५ के बाद**) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (**भीष्म० ११३ अध्यायसे ११४ अध्यायतक**) । विराटके साथ इसका द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ११६ । ४२–४४**) । अभिमन्युके साथ युद्ध (**द्रोण० १४ । ६४–७४**) । क्षत्रवर्माके साथ युद्ध (**द्रोण० २५ । १०–१२**) । व्यूहद्वारपर पाण्डवोंको रोक देना (**द्रोण० ४२ । ७**) । धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयद्वारा इसको वर-प्राप्तिका वर्णन (**द्रोण० ४२ । १२–२२**) । पाण्डवोंके साथ युद्ध और व्यूहद्वारको रोके रखना (**द्रोण० ४३ अध्याय**) । अर्जुनद्वारा की गयी अपने वधकी प्रतिज्ञा जानकर कौरवोंके सामने अपना भय प्रकट करके वहाँसे चले जानेकी आज्ञा माँगना (**द्रोण० ७४ । ४–१२**) । इसके ध्वजका वर्णन (**द्रोण० १०५ । २०–२२**) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध (**द्रोण० १४५ अध्याय**) । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनका जयद्रथके काटे हुए सिरको समन्त-पञ्चकमें तपस्या करनेवाले इसके पिताकी गोदमें गिराना तथा उनके द्वारा उस सिरके भूमिपर गिरनेसे उनके भी सिरके सौ टुकड़े हो जाना (**द्रोण० १४६।१०४–१३०**)।

महाभारतमें आये हुए जयद्रथके नाम–सैन्धव, सैन्धवक, सौवीर, सौवीरज, सौवीरराज, सिन्धुपति, सिन्धुराज, सिन्धुराट्, सिन्धुसौवीरभर्ता, सुवीर, सुवीरराष्ट्रप, वार्धक्षत्रि आदि ।

(२) एक राजा, जो यमसभामें बैठकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । ३६**) ।

जयद्रथवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ८५ से १५२ तक)।

जयद्रथविमोक्षणपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २७२)।

जयन्त–(१) इन्द्रके पुत्र, इनकी माताका नाम शची था (आदि० ११२ । ३-४) । (२) विराटनगरमें रहते समय भीमसेनका एक गुप्त नाम (विराट० ५ । ३५; विराट०२३ । १२) । (३) एक पाञ्चाल-शिरोमणि महामनस्वी वीर, जो महारथी माना गया था (उद्योग० १७१ । ११) । (४) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । २०) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९८) । (६) बारह आदित्योंमेंसे एक (अनु० १५० । १५) ।

जयन्ती–सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थस्थान, जहाँ सोमतीर्थमें स्नान करके मनुष्य राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है (वन० ८३ । १९) ।

जयप्रिया–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

जयरात–कौरव-पक्षका योद्धा, जो कलिङ्गदेशका राजकुमार था । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । २८) ।

जयसेन–एक मगधदेशीय राजकुमार, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठा करता था (सभा० ४ । २६) ।

जया–दुर्गा देवीका एक नाम (विराट० ६ । १६) ।

जयानीक–(१) द्रुपदपुत्रका एक पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा मारा गया (द्रोण० १५६ । १८१) । (२) विराटके भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

जयावती– स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ४)।

जयाश्व (१)–द्रुपदका एक पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा मारा गया (द्रोण० १५६ । १८१) । (२) विराटके भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

जरत्कारु–(१) यायावरसंज्ञक ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न एक ऊर्ध्वरेता और महान् ऋषि, जो आस्तीकके पिता थे (आदि० १३ । ११; आदि० १५ । २-३) । (यायावर शब्दका अर्थ इसी अध्यायकी टिप्पणीमें देखना चाहिये ।) इनके द्वारा गर्तमें लटके हुए अपने पितरोंका दर्शन तथा उनके आदेशसे विवाह करनेका इनका निश्चय (आदि० १३ । १५–२७) । उनके विवाहकी शर्तें (आदि० १३ । २८–३१) । नागराज वासुकिके द्वारा भिक्षाके रूपमें प्राप्त हुई अपने समान नामवाली कन्यासे इनका विवाह होनेकी कथा (आदि० १४ । २–७) । इनका जरत्कारु नाम होनेका कारण (आदि० ४० । ३-४) । इनकी तपश्चर्याका वर्णन (आदि० ४० । ९) । गर्तमें लटके हुए पितरोंद्वारा इनको अपने दुःखकी कथा सुनाना तथा इनसे इनका परिचय पूछना (आदि० ४५ । ३–३२) । पितरोंको अपना परिचय देकर कुछ शर्तोंके साथ विवाह करनेके लिये इनका उन्हें वचन देना (आदि० ४६ । २–१०) । पत्नीके लिये विचरते हुए इनका कहीं पत्नी प्राप्त न होनेपर उदासीन हो वनमें जोर-जोरसे पुकार लगाना तथा धीरे-धीरे कन्याकी भिक्षा माँगना (आदि० ४६ । १२-१३) । दूतोंद्वारा इनका उद्देश्य जानकर नागराज वासुकिका इनकी समस्त शर्तोंको स्वीकार करके इनके साथ अपनी बहिनका ब्याह कर देना (आदि० ४६ । १९–२३; आदि० ४७ । ५) । पत्नीके साथ इनकी शर्त एवं ऋतुकाल आनेपर उसमें गर्भाधान (आदि० ४७ । ८–१३) । धर्मलोपके भयसे पत्नीके द्वारा जगाये जानेपर इनके द्वारा पत्नीका परित्याग (आदि० ४७। १५–४३) । पुत्रके लिये पत्नीके प्रार्थना करनेपर 'तुम्हारे उदरमें गर्भ है' इस प्रकार पत्नीको इनका आश्वासन (आदि० ४७ । ४२) । (२) नागराज वासुकिकी बहिन, जरत्कारु नामक ऋषिकी पत्नी तथा आस्तीककी माता (आदि० १४ । ६-७) । धर्मलोपके भयसे पतिको जगानेपर पतिके द्वारा इनका परित्याग (आदि० ४७ । १६–४३) । पुत्रके लिये प्रार्थना करनेपर जरत्कारु ऋषिके द्वारा इनको आश्वासन (आदि० ४७ । ४२) । जरत्कारु ऋषिके चले जानेपर मातृ-शापसे चिन्तित हुए वासुकिको इनका आश्वासन (आदि० ४८ । १–१३) । अपने पुत्र आस्तीकको सर्पोंकी रक्षाके लिये इनकी प्रेरणा (आदि० ५४ । ५–१६) ।

जरा–(१) एक राक्षसी, जिसने जरासंधके शरीरके दोनों टुकड़ोंको जोड़ा था (सभा० १७ । ४०) । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने गृहदेवीके नामसे इसकी सृष्टि की थी और इसे दानवोंके विनाशके लिये नियुक्त किया था । जो अपने घरकी दीवारपर इसे अनेक पुत्रोंसहित युवती स्त्रीके रूपमें भक्तिपूर्वक लिखता है—इसका चित्र अङ्कित करता है, उसके घरमें सदा वृद्धि होती है; अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ती है । मगधराज बृहद्रथके घरमें इसकी भलीभाँति पूजा होती थी; अतः उसने प्रसन्न होकर दो टुकड़ोंमें उत्पन्न हुए शिशु जरासंधको जोड़कर बृहद्रथको सुरक्षित रूपसे दे दिया था (सभा० १८ । १–७) । इसका राजा बृहद्रथको अपना परिचय देना (सभा० १८ । १–८) । इसकी मृत्युके कारणका श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके प्रति कथन (द्रोण० १८१ । १२–१४) । (२) 'जरा' नामक एक व्याध, जिसने मृगके भ्रमसे

सोते हुए श्रीकृष्णके एक पैरमें बाण मारा था (**मौसल० ४ । २२-२३**)।

जरायु–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १९**)।

जरासंध–(१) (नामान्तर शत्रुसह)—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १००**)। 'शत्रुसह' नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (**द्रोण० १३७ । ३०**)। (२) विप्रचित्ति नामक दानवके अंशसे उत्पन्न मगधराज बृहद्रथका पुत्र (**सभा० १७ । १२**)। श्रीकृष्ण द्वारा इसकी उत्पत्तिका वर्णन (**सभा० १७ । १२–५१**)। चण्डकौशिक मुनिके द्वारा कृपापूर्वक दिये हुए फलके माताओंद्वारा भक्षण करनेपर उनके गर्भसे इसका जन्म (**सभा० १७ । २९**)। इसका जरासंध नाम होनेका कारण (**सभा० १८ । ११**)। चण्डकौशिक मुनिद्वारा इसके भविष्यका कथन (**सभा० १९ । ४–१५**)। द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका आगमन (**आदि० १८५ । २३**)। स्वयंवरमें धनुष उठाते समय इसका घुटनोंके बल गिरना और लज्जित होकर स्वदेशको लौट जाना (**आदि० १८५ । २७**)। भगवान् श्रीकृष्णका इसके पराक्रमका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (**सभा० १४ । ६२–७०**)। श्रीकृष्णके साथ इसके वैरका कारण (**सभा० १९ । २२**)। श्रीकृष्णको मारनेके लिये इसका मगधसे मथुराको गदाका प्रक्षेप (**सभा० १९ । २३**)। इसका श्रीकृष्णके साथ संवाद (**सभा० २१ । ४२–४७**)। इसके द्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके हेतु नरबलिके लिये नरेशोंका निग्रह (**सभा० २२ । ८**)। भीमसेनके साथ इसका युद्ध (**सभा० २३ । १० से सभा० २४ । ६ तक**)। भीमसेनद्वारा इसकी मृत्यु (**सभा० २४ । ७**)। अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णका इसके वधका कारण बताना (**द्रोण० १८१ । ८–१६**)। कर्णद्वारा पराजित होकर उसे मालिनी नगरी देकर उसके साथ इसके संधि करनेकी चर्चा (**शान्ति० ५ । ६**)।

महाभारतमें आये हुए जरासंधके नाम–बार्हद्रथ, मागध, मगधाधिप, मगधाधिपति, मगधेश्वर आदि । (३) मगधदेशका एक दूसरा क्षत्रिय, जिसका पुत्र जयत्सेन कौरवपक्षका योद्धा था और अभिमन्युद्वारा मारा गया था (**कर्ण० ५ । ३०**)।

जरासंधवधपर्व–सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय २० से २४ तक**)।

जरिता–मन्दपाल ऋषिकी भार्या पक्षिणी (**आदि० २२८ । १६**)। मन्दपालके द्वारा इसके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र–जरितारि, सारिसृक्क, स्तम्बमित्र और द्रोण (**आदि० २२९ । ९**)। खाण्डववनदाहके समय पुत्रोंके लिये इसकी चिन्ता और पुत्रोंद्वारा इसे आत्मरक्षाके हेतु अन्यत्र चले जानेका आदेश (**आदि० २२९ । १२**)। इसका अपने बच्चोंके साथ संवाद (**आदि० २३० अध्याय**)। अग्निदेवकी कृपासे इसके बच्चोंकी रक्षा (**आदि० २३१ अध्याय**)।

जरितारि–पक्षिरूपधारी मन्दपाल ऋषिके द्वारा जरिताके गर्भसे उत्पन्न एक पक्षी मुनि । इनके द्वारा अग्निकी स्तुति । खाण्डववनमें अग्निद्वारा इनको अभयदान (**आदि० २३१ अध्याय**)।

जर्जरानना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १९**)।

जर्तिक–वाहीकोंकी एक जाति, जिसका चरित्र अत्यन्त निन्दित है (**कर्ण० ४४ । १०**)।

जल–जल-तत्त्वके अभिमानी देवता, जो ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ११ । २०**)।

जलद–शाकद्वीपका एक पर्वत, जिसके निकट कुमुदोत्तर वर्ष है (**भीष्म० ११ । २५**)।

जलधार–शाकद्वीपका एक पर्वत (**भीष्म० ११ । १६**)।

जलन्धम–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५७**)।

जलप्रदानिकपर्व–स्त्रीपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १ से १५ तक**)।

जलसंधि–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९४**)। भीमसेनद्वारा इसका वध (**भीष्म० ६४ । ३३**)। (२) कौरव-पक्षका एक महारथी योद्धा (**उद्योग० ६६ । ७**)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें भी गया था (**आदि० १८५ । १२**)। सात्यकिद्वारा इसका वध (**द्रोण० ११५ । ५२-५३**)।

जला–यमुनाकी पार्श्ववर्तिनी एक नदी, जहाँ उशीनरने यज्ञ करके इन्द्रसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त किया था (**वन० १३० । २१**)।

जलेयु–पूरु-पुत्र रौद्राश्वद्वारा मिश्रकेशी अप्सरासे उत्पन्न (**आदि० ९४ । १०**)।

जलेला–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १६**)।

जलेश्वरी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १३**)।

जल्प–एक प्रकारका वाद, जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह-स्थानको लेकर अपने पक्षका मण्डन और विपक्षीके पक्षका खण्डन करता है । इसमें वादीका उद्देश्य तत्त्व-निर्णय नहीं होता; किंतु स्वपक्ष-स्थापन और परपक्ष-खण्डनमात्र होता

है। वादके समान इसमें भी प्रतिज्ञा,हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं (सभा० ३६ । ३)।

जवन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

जह्नु–महाराज अजमीढ़के द्वारा केशिनीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, उनके वंशज कुशिक नामसे प्रसिद्ध हुए (आदि० ९४ । ३२-३३)। इनकी वंशपरम्पराका वर्णन (शान्ति० ४९ । ३—६)। गङ्गाजी इनकी पुत्री-भावको प्राप्त हुईं (अनु० ४ । ३)।

जागुड–एक देश, भारतका एक जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे (वन० ५१ । २५)।

जाङ्गल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६)।

जाजलि–एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने घोर तपस्या की थी (शान्ति० २६१ । ३३—३७)। इनके सिरपर पक्षियोंका अंडा देना (शान्ति० २६१ । २३-२४)। मनमें सिद्ध होनेका अहङ्कार आनेपर आकाशवाणीद्वारा इन्हें तुलाधारके पास जानेका आदेश (शान्ति० २६१ । ४२-४३)। इनका तुलाधारके पास जाना और धर्मोपदेश सुनना (शान्ति० अध्याय २६२ से २६३ तक)। इन्हें पक्षियोंका उपदेश (शान्ति० २६४ । ६—१९)। इनका तुलाधारके साथ परमधामगमन (शान्ति० २६४ । २०-२१)।

जाठर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२)।

जातिस्मर–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्यके शरीर एवं मनकी शुद्धि हो जाती है (वन० ८४ । १२८)।

जातिस्मर कीट–एक कीड़ा, जिसे शुभ कर्मके प्रभावसे अपने पूर्वजन्मोंकी बातोंका स्मरण बना रहा। व्यासजीकी कृपासे उसकी क्रमशः उन्नति और उद्धार (अनु० ११७ अध्यायसे ११९ अध्यायतक)।

जातिस्मरह्रद–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेवाला मनुष्य पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेकी शक्ति पा लेता है (वन० ८५ । ३)।

जानूकर्ण–एक जितेन्द्रिय मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १४)।

जानकि–एक क्षत्रिय राजा, जो चन्द्रविनाशन असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३९)। पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । २०)।

जानपदी–एक अप्सरा, जो इन्द्रकी आज्ञासे शरद्वान्की तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी थी (आदि० १२९ । ६)। इसके दर्शनसे स्खलित हुए शरद्वान्के वीर्यसे कृप एवं कृपीका जन्म (आदि० १२९ । ११–२०)।

जानुजङ्घ–सायं-प्रातः स्मरण करने योग्य एक पुण्यात्मा नरेश (अनु० १६५ । ५९)।

जापक–एक गायत्री-जपपरायण ब्राह्मण । जापकमें दोष आनेके कारण उसे नरककी प्राप्ति (शान्ति० १९७ अध्याय)। परमधामके अधिकारी जापकके लिये देवलोक भी नरकतुल्य है (शान्ति० १९८ अध्याय)। जापकको सावित्रीका वरदान—उसके पास धर्म, यम और काल आदिका आगमन । राजा इक्ष्वाकु और जापक ब्राह्मणका संवाद । सत्यकी महिमा तथा जापककी परम गतिका वर्णन (शान्ति० १९९ अध्याय)। जापक ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकुके उत्तम गतिका वर्णन तथा जापकको मिलनेवाले फलकी उत्कृष्टता (शान्ति० २०० अध्याय)।

जाबालि–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५)।

जाम्बवती–ऋक्षराज जाम्बवान्की पुत्री और भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नी (सभा० ३८ । दा० पाठ, पृष्ठ ८१५)। श्रीकृष्णसे पुत्र-प्राप्तिके लिये इनकी प्रार्थना (अनु० १४ । ३०–३४)। श्रीकृष्णकी तपस्या-यात्राके लिये इनकी मङ्गल-कामना (अनु० १४ । ३६–४०)। श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेपर ये पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें समा गयी थीं (मौसल० ७ । ७३)।

जाम्बवान्–ऋक्षराज, सुग्रीवके मन्त्री (वन० २८० । २३)। ये दस खरब काले रीछोंकी सेना लेकर भगवान् श्रीरामके पास आये थे (वन० २८३ । ८)।

जाम्बूनद–(१) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके पाँचवें पुत्र (आदि० ९४ । ५६)। (२) एक सुवर्णमय पर्वत (मेरु), जहाँसे गङ्गाजीका कल-कल नाद लोमशजीको सुनायी दिया था (वन० १३९ । १६)। (३) उशीरबीज नामक स्थानमें स्थित एक पवित्र सुवर्णमय पर्वत, जहाँ राजा मरुत्तने यज्ञ किया था (उद्योग० १११ । २३)। (४) जम्बूद्वीपकी जम्बूनदीसे उत्पन्न सुवर्ण (भीष्म० ७ । २६)।

जाम्बूनदी–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३०)।

जायाशब्दकी निरुक्ति–पुरुषका अपना आत्मा ही संतानरूपमें स्त्रीके गर्भसे जन्म लेता है (वन० १२ । ७०)।

जारुधि–एक प्राचीन देश (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षि० पाठ)।

जारूथी–एक स्थान या नगर, जहाँ श्रीकृष्णने आहुति, क्राथ, साथियोंसहित शिशुपाल, जरासंध, शैब्य और शतधन्वाको परास्त किया था (वन० १२ । ३०)।

जाह्नवी–गङ्गाजीका एक नाम (जो जह्नुकी पुत्री होनेके कारण प्रसिद्ध हुआ था ।) (आदि० ९९ । ४) ।

जितवती–राजर्षि उशीनरकी सुन्दर रूप और युवावस्थासे सुशोभित पुत्री, जो मनुष्यलोककी सुप्रसिद्ध सुन्दरी थी और द्यो नामक वसुकी पत्नीकी सखी थी (आदि० ९९ । २२–२४) । इसके निमित्त वशिष्ठजीकी नन्दिनी गौका अपहरण करनेके लिये वसुपत्नीकी अपने पतिसे प्रार्थना (आदि० ९९ । २१–२५) । इसके लिये नन्दिनीका अपहरण करनेसे वसुओंको वशिष्ठजीका शाप (आदि० ९९ । ३२) ।

जितात्मा–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१) ।

जितारि–पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं अविक्षित्‌के पुत्र (आदि० ९४ । ५३) ।

जिष्णु–(१) अर्जुनका एक नाम (वन० ४७ । १३) । जिष्णु नामसे अर्जुनके प्रसिद्ध होनेका कारण (विराट० ४४ । २१) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । ये सबको जीतनेके कारण जिष्णु कहलाते हैं (उद्योग० ७० । १३) । (३) पाण्डवपक्षका एक चेदिदेशीय योद्धा, कर्णद्वारा इसका वध (कर्ण० ५६ । ४८) ।

जिष्णुकर्मा–पाण्डवपक्षका एक चेदिदेशीय योद्धा (कर्ण० ५६ । ४८) ।

जीमूत–(१) एक मल्ल (पहलवान), जिसका विराट-नगरमें भीमसेनके साथ मल्ल-युद्ध हुआ और जो उनके द्वारा मारा गया (विराट० १३ । २४–३६) । (२) एक ब्रह्मर्षि, जिनके सामने हिमालयकी वह स्वर्णनिधि प्रकट हुई थी, जिसे जैमूत कहते हैं (उद्योग० १११ । २३) ।

जीवजीवक–पक्षिविशेष (शान्ति० १३९ । ६) ।

जीवल–अयोध्यानरेश ऋतुपर्णका सारथि, इससे बाहुक नामवाले राजा नलका वार्तालाप (वन० ६७ । ११) ।

जृम्भिका–जँभाई, जिसे देवताओंने वृत्रासुरके मुखसे इन्द्रको निकालनेके लिये पैदा किया था (उद्योग० ९ । ५३) ।

जैगीषव्य–ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करनेवाले एक महर्षि (सभा० ११ । २४) । आदित्य तीर्थकी महिमाके प्रसंगमें इनके चरित्रका वर्णन (शल्य० ५० अध्याय) । इनका असितदेवल मुनिको समत्व-बुद्धिका उपदेश (शान्ति० २२९ । ७—२५) । शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे इनका अपना अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ३७) ।

जैत्र–(१) एक रथविशेष, जिसपर आरूढ़ हो राजा हरिश्चन्द्रने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी थी (सभा० १२ । १२) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, भीमसेन-द्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १४) । (३) धृष्टद्युम्नका शङ्ख (शल्य० ६१ । ७१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

जैमिनि–एक ब्रह्मर्षि, जो जनमेजयके सर्पयज्ञमें ब्रह्मा बनाये गये थे (आदि० ५३ । ६) । ये महर्षि व्यासके शिष्य हैं (आदि० ६७ । ८९) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ६) ।

ज्ञानपावनतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और मुनिलोकको जाता है (वन० ८४ । ३) ।

ज्येष्ठ–(१) सामवेदके पारंगत एक प्राचीन ऋषि, जिन्हें बर्हिषद नामक ऋषियोंसे सात्वत धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ था (शान्ति० ३४८ । ४६) । (२) जेठका महीना (अनु० १०९ । ९) ।

ज्येष्ठपुष्कर–एक तीर्थ, (वन० २०० । ६६; अनु० १३० । ७) ।

ज्येष्ठ साम–एक साम, जिसकी उपासनाका व्रत ज्येष्ठमुनि-ने लिया था (शान्ति० ३४८ । ४६) ।

ज्येष्ठस्थान–एक तीर्थ, जहाँ महादेवजीका दर्शन पूजन करनेसे मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है (वन० ८५ । ६२) ।

ज्येष्ठा–एक नक्षत्र, जिसमें ब्राह्मणको सामयिक शाक और मूली दान करनेसे अभीष्ट समृद्धि एवं सद्गतिकी प्राप्ति होती है (अनु० ६४ । २३) । ज्येष्ठानक्षत्रमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक पिण्डदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली होता है तथा प्रभुत्व प्राप्त करता है, चन्द्रव्रतमें ज्येष्ठा नक्षत्रकी चन्द्रमाकी ग्रीवामें स्थिति मानकर उसके द्वारा चन्द्रमाके ग्रीवाभागका चिन्तन करनेका विधान है (अनु० ११० । ७) ।

ज्येष्ठिल–एक तीर्थ, जहाँ जाकर एक रात्रि रहनेसे मानव सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८४ । १३४) ।

ज्येष्ठिला–एक नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २१) ।

ज्योति–(१) 'अहः' नामक वसुके पुत्र (आदि० ६६ । २३) । (२) अग्निद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम ज्वालाजिह्व था (शल्य० ४५ । ३३) ।

ज्योतिक–कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १३) ।

ज्योतिरथा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६) ।

ज्योतिरथ्या–एक नदी, जिसका शोणभद्रसे संगम हुआ है, इस संगममें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है (वन० ८५ । ८) ।

ज्योतिष्क–(१) एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । १५) । (२) सुमेरु पर्वतका एक शिखर (शान्ति० २८३ । ५) ।

ज्योत्स्नाकाली–सोमकी दूसरी पुत्री, सूर्यकी भार्या, ये रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान हैं (उद्योग० ९८ । १३) ।

ज्वर–रोगविशेष, भगवान् शङ्करके स्वेदसे इसकी उत्पत्तिका प्रकार (शान्ति० २८३ । ३७—५५) ।

ज्वाला–तक्षक नागकी पुत्री, जो महाराज ऋक्षकी पत्नी और मतिनारकी माता थी (आदि० ९५ । २५) ।

ज्वालाजिह्व–(१) अग्निद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक; दूसरेका नाम ज्योति था (शल्य० ४५ । ३३) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) ।

(झ)

झल्लि–एक वृष्णिवंशी यादव, जो द्वारकाके सात मुख्य मन्त्रियोंमेंसे एक है (सभा० १४ । ६० के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

झिल्लिक–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९) ।

झिल्ली (अथवा झिल्ली पिण्डारक)–(१) एक वृष्णिवंशी योद्धा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २०) । ये सुभद्राके लिये दहेज लेकर खाण्डवप्रस्थ आये थे (आदि० २२० । ३२) । धृतराष्ट्रद्वारा इनके पराक्रमका वर्णन (द्रोण० ११ । २८) । (२) (या झिल्लिका) झींगुर नामक एक कीड़ा (वन० ६४ । १) ।

(ट)

टिट्टिभ–एक दैत्य या दानव, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होता है (सभा० ९ । १५) ।

(ड)

डम्बर–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम आडम्बर था (शल्य० ४५ । ३९) ।

डिंडिक–बिडालोपाख्यानमें आये हुए एक चूहेका नाम (उद्योग० १६० । ३४) ।

डिम्भक–जरासंधका नीतिशास्त्रविशारद मन्त्री । इसका भ्राता (सभा० १९ । २६) । किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे न मरनेका इसे देवताओंद्वारा वरदान (सभा० १४ । ३७) । भगवान् श्रीकृष्णके साथ जरासंधके सत्रहवीं बारके युद्धमें एक हंस नामका राजा बलरामजीके द्वारा मारा गया था । उसके मारे जानेपर जरासंधके सैनिक चिल्ला-चिल्लाकर 'हंस मारा गया' ऐसा कहने लगे । उसे सुनकर इसे अपने भाईकी मृत्युका भ्रम हुआ और वह उसके वियोगमें यमुनाजीमें कूदकर मर गया (सभा० १४ । ४१-४२) ।

डुण्डुभ–एक सर्प, जिसका रुरुके साथ संवाद हुआ था । ये शापग्रस्त सहस्रपाद ऋषि थे (आदि० ९ । २१ से आदि० १० । ७ तक) । ब्राह्मण मित्रके शापसे इनके सर्प होनेकी कथा (आदि० ११ । १–९) । महर्षि रुरुके दर्शनसे इनका सर्पयोनिसे मुक्त होना (आदि० ११ । १२) । इनके द्वारा अहिंसा-धर्मकी श्रेष्ठताका रुरुके प्रति उपदेश (आदि० ११ । १३–१९) ।

(त)

तंसु–पूरुवंशी राजा मतिनारके पुत्र (आदि० ९४ । १४) । इनके पुत्रका नाम ईलिन था (आदि० ९४ । १६) ।

तक्षक–एक श्रेष्ठ नाग, जो कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न हुआ (आदि० ३५ । ५) । इसके द्वारा क्षपणकका रूप धारण करके उत्तङ्क मुनिके कुण्डलोंका अपहरण (आदि० ३ । १२७; आश्व० ५८ । २५-२६) । राजा परीक्षित्को डसनेके लिये जाते हुए इसकी मार्गमें काश्यप नामक ब्राह्मणसे भेंट और धन देकर इसका उन्हें लौटा देना (आदि० ४२ । ३६ से ४३ । २०; आदि० ५० । १८–२७) । तपस्वी नागोंद्वारा फल आदि भेजकर उस फलके साथ ही इसका छलपूर्वक परीक्षित्के पास पहुँचना और उन्हें डँस लेना (आदि० ४३ । २२–३६; आदि० ५० । २९) । इसका इन्द्रकी शरणमें जाना और इन्द्रद्वारा इसे आश्वासन प्राप्त होना (आदि० ५३ । १४–१७) । आस्तीककी कृपासे जनमेजयके यज्ञमें इसकी रक्षा (आदि० ५८ । ३–७) । यह इन्द्रका मित्र था और सपरिवार खाण्डववनमें रहता था; अतः इसीके लिये इन्द्र सदा खाण्डववनकी रक्षा करते थे । उनके जल बरसा देनेके कारण अग्नि उस वनको जला नहीं पाती थी (आदि० २२२ । ७) । खाण्डववनदाहके अवसरपर इसका कुरुक्षेत्रमें निवास और अर्जुनद्वारा इसकी पत्नीका वध (आदि० २२६ । ४–८) । यह वरुणकी सभाका सदस्य है (सभा० ९ । ८) । नागों-

द्वारा पृथ्वी-दोहनके समय यह बछड़ा बना था (द्रोण० ६९ । २२) । बलरामजीके शेषरूपसे अपने लोकमें पधारते समय यह प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें इनके स्वागतके लिये आया था (मौसल० ४ । १५) ।

तक्षशिला–एक नगरी, जिसे जनमेजयने जीता था (और जहाँ सर्पसत्रका अनुष्ठान एवं महाभारत-कथाका श्रवण किया था) (आदि० ३ । २०) । सर्पसत्र और महाभारत-कथाकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे विदा करके जनमेजय तक्षशिलासे हस्तिनापुरको चले आये (स्वर्गा० ५ । ३१–३५) ।

तङ्गण–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४) ।

तडित्प्रभा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

तण्डि–वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २४४ । १७) । इन्होंने ब्रह्माजीके समक्ष शिव-सहस्रनाम सुनाया था (अनु० १४ । १९) । इनके द्वारा शिवजीकी स्तुति (अनु० १६ । १२–६५) ।

तनय–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४) ।

तनु–एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने राजा वीरद्युम्नको उनके पुत्रके विषयमें कुछ बताया था (शान्ति० १२७ । १८–२२) । राजा वीरद्युम्नको उपदेश (शान्ति० १२८ । ९–२३) ।

तन्तिपाल–विराटनगरमें रहते समय सहदेवका नाम (विराट० ३ । ९) ।

तन्तु–विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५५) ।

तन्दुलिकाश्रम–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८२ । ४३) ।

तप–काश्यप, वासिष्ठ, प्राणक, च्यवन तथा त्रिवर्चा—इन पाँच मुनियोंकी तपस्यासे प्रकट हुआ एक तेजस्वी पुत्र, जो पाँच रंगोंसे युक्त होनेके कारण पाञ्चजन्य नामसे विख्यात हुआ । यह पूर्वोक्त पाँचों ऋषियोंके वंशका प्रवर्तक हुआ । ये पाञ्चजन्य नामक अग्नि ही घोर तपस्याके कारण तप कहलाये । फिर इन्होंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये (वन० २२० अध्याय) ।

तपती–भगवान् सूर्यकी कन्या और संवरणकी पत्नी । इनके गर्भसे अजमीढवंशी संवरणके द्वारा कुरुकी उत्पत्ति हुई (आदि० ९४ । ४८) । सूर्यकन्या तपती सावित्री-देवीकी छोटी बहिन थी । तपस्यामें संलग्न रहनेके कारण यह तीनों लोकोंमें तपती नामसे विख्यात हुई (आदि० १७० । ६-७) । इसके अनुपम सौन्दर्यका वर्णन (आदि० १७० । ८–१०) । 'इसका विवाह किसके साथ किया जाय'—पिताकी यह चिन्ता (आदि० १७० । ११) । सूर्यदेवका संवरणके साथ तपतीके विवाहका विचार (आदि० १७० । १५–२०) । संवरणको तपतीका प्रथम दर्शन और इसके अप्रतिम सौन्दर्यसे उनका मोहित होना (आदि० १७० । २३-२४) । राजाका तपतीसे कुछ प्रश्न करना और तपतीका उन्हें उत्तर दिये बिना ही अदृश्य हो जाना (आदि० १७० । ३५–४२) । राजाको मूर्छित पड़ा देख तपतीका पुनः उन्हें दर्शन और आश्वासन देना । राजाकी इससे प्रणययाचना तथा तपती-का अपनेको पिताकी वशवर्तिनी बताकर उन्हींसे अपना वरण करनेका संवरणको परामर्श देना (आदि० १७१ अध्याय) । वसिष्ठजीका संवरणके लिये सूर्यसे तपतीको माँगना । सूर्यका अपनी कन्याको उनके लिये दे देना और तपतीका वसिष्ठजीके साथ संवरणके पास आना (आदि० १७२ । २२–३०) । एक पर्वतशिखरपर संवरणद्वारा तपतीका विधिवत् पाणिग्रहण किया जाना (आदि० १७२ । ३३) । संवरण और तपतीका बारह वर्षोंतक विहार और तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म (आदि० १७२ । ३४–५०) ।

तपन–एक पाञ्चाल योद्धा, जिसका कर्णद्वारा वध हुआ (कर्ण० ४८ । १५) ।

तम–गृत्समदवंशी श्रवाके पुत्र (अनु० ३० । ६३) ।

तमसा–एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतवर्षके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । ३१) ।

तमोऽन्तकृत्–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

तरन्तुक–कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्धारण करनेवाले तरन्तुक नामक एक यक्ष और उनका स्थान । वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । १५-१६; शल्य० ५३ । २४) ।

तरल–एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने जीता था (कर्ण० ८ । २०) ।

तरुणक–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो सर्पसत्रकी अग्निमें जलकर भस्म हो गया था (आदि० ५७ । १९) ।

ताडकायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५६) ।

ताण्ड्य–एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १२) । इनके द्वारा वानप्रस्थ-धर्मका पालन हुआ था; जिससे ये स्वर्गको प्राप्त हुए (शान्ति०

२४४ । १७)। ये उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ७)।

तापत्य–तपती और संवरणसे उत्पन्न हुए राजा कुरुके वंशमें जन्म ग्रहण करनेवाले सभी कौरव 'तापत्य' कहलाते हैं। इसी अभिप्रायसे चित्ररथ गन्धर्वने अर्जुनको तापत्य कहा था (आदि० १६९ । ७९)। अर्जुनके पूछनेपर उसने तापत्य नामके समर्थनमें तपती और संवरणके मिलनेका प्रसंग सुनाया था (आदि० १७० अध्यायसे १७२ अध्यायतक)।

तापसारण्य–तपस्वी जनोंसे सुशोभित एक तीर्थ या वन (वन० ८७ । २०)।

ताम्रचूडा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १८)।

ताम्रद्वीप–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीतकर अपने अधीन किया था (सभा० ३१ । ६८)।

ताम्रपर्णी–पाण्ड्य देश (दक्षिण भारत) की एक पवित्र नदी, जहाँ मोक्ष पानेके उद्देश्यसे देवताओंने आश्रममें रहकर बड़ी भारी तपस्या की थी (वन० ८८ । १४)।

ताम्रलिप्त–एक प्राचीन राजा, जिसे सहदेवने पूर्व-दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० ३० । २४)।

ताम्रलिप्तक–एक पूर्वोत्तर भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५७)।

ताम्रवती–अग्नियोंकी उत्पत्तिकी स्थानभूता एक नदी (वन० २२२ । २३)।

ताम्रा–(१) काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री तथा शुकी—इन पाँच कन्याओंकी जननी ताम्रादेवी (आदि० ६६ । ५६)। (२) एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९।२८)।

ताम्रारुणतीर्थ–एक तीर्थ, यहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पाता और ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८४ । १५४)।

ताम्रोष्ठ–कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवामें रहनेवाला एक यक्ष (सभा० १० । १६)।

तार–श्रीरामकी सेनाका एक वानर योद्धा, जिसने निखर्वट नामक राक्षसके साथ युद्ध किया (वन० २८५ । ९)।

तारकासुर–एक राक्षस, जो ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्मालीका पिता था (कर्ण० ३३ । ५)। स्कन्द-द्वारा इसका वध (शल्य० ४६ । ७३)। इसके महान् पराक्रमका वर्णन (अनु० ८४ । ७९–८१)।

तारा–(१) वानरराज बालीकी भार्या (वन० २८० । १८–२०)। सुग्रीवसे युद्धके लिये उद्यत हुए पतिको इसका समझाना (वन० २८० । २१–२४)। सुग्रीवको पति बनाना (वन० २८० । ३९)। (२) बृहस्पतिकी पत्नी (उद्योग० ११७ । १३)।

ताराक्ष (या तारकाक्ष)—तारका एक पुत्र, जो त्रिपुरोंमें सुवर्णमय पुरका अधिपति था (कर्ण० ३३।५; कर्ण० १५ । २१)। भगवान् शिवद्वारा इसका वध (कर्ण० ३४ । ११४)।

तार्क्ष्य–(१) कश्यपपत्नी विनताका एक पुत्र (आदि० ६५ । ४०)। (२) एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८)। ये तार्क्ष्य अरिष्टनेमि कहे गये हैं। उन्होंने क्षत्रियोंको यह बताया था कि हमें मृत्युका भय नहीं होता (वन० १८४ । ८–२१)। इनका सरस्वती देवीके साथ धर्मविषयक संवाद हुआ था (वन० १८६ अध्याय)। (३) तार्क्ष्यदेशीय एक क्षत्रिय राजकुमार, जो राजसूय-के समय युधिष्ठिरको भेंटके तौरपर बहुत धन अर्पित कर रहे थे (सभा० ५२ । १५)। (४) भगवान् शिव-का एक नाम (अनु० १७ । ९८)।

तालकेतु–एक असुर, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर इरावतीके किनारे पकड़ा गया और अक्षप्रपतनके समीपवर्ती हंसनेमिपथ नामक स्थानमें मारा गया (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४; वन० १२ । ३४)।

तालचर–भारतवर्षका एक जनपद (उद्योग० १४० । २६)।

तालजङ्घ–(१) एक प्रसिद्ध क्षत्रिय-कुल, जिसे राजा सगरने जीता था (वन० १०६ । ८)। यह वंश शर्यातिवंशी वत्सकुमार सुप्रसिद्ध राजा तालजङ्घसे प्रचलित हुआ था (अनु० ३० । ७)। एक महान् असुर, जो ब्राह्मणोंका सम्मान न करनेके कारण ब्रह्मदण्डसे ही मारा गया (वन० ३०३ । १७; अनु० ३० । ७)।

तालवन–(१) एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीतकर उसे राजा युधिष्ठिरके लिये कर देनेको विवश कर दिया (सभा० ३१ । ७१) । (२) द्वारकाके समीपवर्ती लतावेष्ट पर्वतके चारों ओर सुशोभित होनेवाले तीन वनोंमेंसे एक (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८१३)।

तालाकट–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६५)।

तित्तिर–(१) एक प्रकारका पक्षी, जो मरे हुए त्रिशिराके

भयानक मुखसे उत्पन्न हुए थे (**उद्योग० ९ । ४१**) । (२) एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ५० । ५१**) ।

तित्तिरि–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (**आदि० ३५ । १५**) । (२) युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (**सभा० ४ । १२**) । (३) अश्वोंकी एक जाति, जो तीतरोंकी भाँति चितकबरी होती है (यह अश्व अर्जुनने दिग्विजयके समय गन्धर्व-नगरसे प्राप्त किया था ।) (**सभा० २८ । ६**) ।

तिमि–एक जलजन्तु, जो समुद्रमें ही होता है (**सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) ।

तिमिङ्गिल–एक राजा, जिन्हें दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने अपने अधीन किया था (**सभा० ३१ । ६९**) ।

तिलभार–एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५३**) ।

तिलोत्तमा–एक अप्सरा, जो कश्यपकी 'प्राधा' नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई थी (**आदि० ६५ । ४९**) । अर्जुनके जन्म-समयमें पदार्पण करके इसने वहाँ नृत्य किया था (**आदि० १२२ । ६२**) । ब्रह्माके आदेशसे विश्वकर्मा-द्वारा तीनों लोकोंके दर्शनीय पदार्थोंके सारतत्त्व तथा रत्न-राशिसे इसका निर्माण (**आदि० २१० । ११—१४**) । इसका तिलोत्तमा नाम होनेका कारण (**आदि० २१० । १८**) । इसके रूपसे मोहित होकर भगवान् शिवका चतुर्मुख और इन्द्रका सहस्रनेत्र होना (**आदि० २१० । २८**)। इसको अपनी पत्नी बनानेके लिये ही सुन्द और उप-सुन्दका परस्पर गदायुद्ध करके एक-दूसरेके हाथसे मारा जाना (**आदि० २११ । १९**) । इसको ब्रह्माद्वारा त्रिभुवनमें अव्याहत गतिका वरदान (**आदि० २११ । २३**) । इसके नामकी निरुक्ति (**अनु० १४१ । १**) ।

तीरग्रह–एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५२**) ।

तीर्थकोटि–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेवाले यात्रीको पुण्ड-रीक-यज्ञका फल मिलता है और वह विष्णुलोकको जाता है (**वन० ८४ । १२१**) ।

तीर्थनेमि–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । ७**) ।

तीर्थयात्रापर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ८० से १५६ तक**) ।

तुङ्गकारण्य–एक तीर्थ, जहाँ सारस्वत मुनिने दूसरे ऋषियों-को वेदाध्ययन कराया था (**वन० ८५ । ४६**) ।

तुङ्गवेणा–एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (**भीष्म० ९ । २७**) ।

तुण्ड–(१) एक राक्षस, जिसने वानर-सेनापति नलके साथ युद्ध किया था (**वन० २८५ । ९**) । (२) एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (**उद्योग० ४ । २१**) ।

तुण्डिकेर–एक भारतीय जनपद (**द्रोण० १७ । २०**) ।

तुम्बुरु–(१) एक देवगन्धर्व, जो कश्यप और प्राधाके पुत्र थे (**आदि० ६५ । ५१**) । अर्जुनके जन्मोत्सवपर इनका संगीत हुआ था (**आदि० १२२ । ५४**) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ७ । १४**) । कुबेरकी सभाके भी प्रधान गन्धर्व हैं (**सभा० १० । २६**) । इन्होंने युधिष्ठिरको सौ घोड़े भेंट किये थे (**सभा० ५२ । २४**) । इन्द्रलोकमें अर्जुनके स्वागतके समय ये भी थे (**वन० ४३ । १४**) । पर्वसंधिके समय गन्धमादन पर्वतपर कुबेरकी सेवामें उपस्थित हुए तुम्बुरुके सामगानका स्वर स्पष्ट सुनायी पड़ता है (**वन० १५९ । २९**) । गोग्रहणके अवसरपर कौरवोंके साथ अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये ये स्वयं भी आये थे (**विराट० ५६ । १२**) । युधिष्ठिरके अश्वमेधमें भी ये पधारे थे (**आश्व० ८८ । ३९**) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्या-पर पड़े हुए भीष्मजीको देखने गये थे (**शान्ति० ४७ । ८**) ।

तुर्वसु–ययातिके द्वारा देवयानीके गर्भसे उत्पन्न (**आदि० ७५ । ३५; आदि० ८३ । ९**) । ययातिकी तुर्वसुसे युवावस्थाकी याचना (**आदि० ८४ । १०-११**) । तुर्वसुका उन्हें अपनी युवावस्था देनेसे इनकार करना(**आदि० ७५ । ४३; आदि० ८४ । १२**) । ययातिका तुर्वसुको शाप—'तेरी संतति नष्ट हो जायगी; जिनके आचार और धर्म वर्णसंकरोंके समान हैं, जो प्रतिलोमसंकर जातियोंमें गिने जाते हैं तथा जो कच्चा मांस खानेवाले चाण्डाल आदिकी श्रेणीमें हैं, ऐसे लोगोंका तू राजा होगा, पशुवत् आचरण करनेवाले पापात्मा म्लेच्छोंमें तेरा वास होगा' (**आदि० ८४ । १३–१५**) ।

तुलाधार–एक काशीनिवासी धर्मात्मा वैश्य (**शान्ति० २६१ । ४२-४३**) । इनका अपने पास आये हुए जाजलि मुनिका सत्कार करके उनके आगमनका कारण स्वयं ही बताना (**शान्ति० २६१ । ४६–५१**) । जाजलिको धर्मका उपदेश देना (**शान्ति० २६२ । ५—५५**) । इनके द्वारा जाजलिको आत्मयज्ञविषयक धर्मका उपदेश (**शान्ति० २६३ । ४—४३**) । इन्हें जाजलिके साथ स्वर्गकी प्राप्ति (**शान्ति० २६४ । २०-२१**) ।

तुषार–(१) एक उदीच्य जनपद (कुछ लोगोंके मतमें आधुनिक तुखारिस्तान—आक्सस नदीके आस-पासका प्रदेश ही तुषार है) । यहाँके नरेश युधिष्ठिरके राजसूय

यज्ञमें बुलाये गये थे और आकर रसोई परोसनेका कार्य करते थे (वन० ५१ । २५-२६) । गन्धमादनसे द्वैतवनकी ओर लौटे हुए पाण्डव तुषार देशको पार करके राजा सुबाहुके नगरमें पहुँचे थे (वन० १७७ । १२) । (२) तुषार जनपदके निवासी, जो भीष्मनिर्मित क्रौञ्चव्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर स्थित हुए थे (भीष्म० ७५ । २१) । तुषारवासी म्लेच्छ मान्धाताके राज्यमें निवास करते थे (शान्ति० ६५ । १३) ।

तुहर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१) ।

तुहुण्ड–एक दानव, जो कश्यपके द्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २५) । यही भूतलपर सेनाबिन्दु नामक राजा हुआ था (आदि० ६७ । १९-२०) ।

तृणक–एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित हो वहाँ सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १७) ।

तृणप–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्म-समयमें वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ५६) ।

तृणबिन्दु–(१) काम्यकवनका एक सरोवर, जिसके पास पाण्डवलोग द्वैतवनसे गये थे (वन० २५८ । १३) । (२) काम्यकवनमें रहनेवाले एक ऋषि, जिनकी आज्ञासे पाण्डवोंने द्रौपदीको आश्रममें छोड़कर शिकारके लिये प्रस्थान किया था (वन० २६४ । ५) । ये शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये कुरुक्षेत्रमें गये थे (शान्ति० ४७ । ९) ।

तृणसोमाङ्गिरा–दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले एक ऋषि (अनु० १५० । ३४) ।

तृतीया–एक नदी, जो वरुणसभामें उपस्थित रहकर वरुण-देवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २१) ।

तेजस्वी–पाँच इन्द्रोंमेंसे एक नाम (आदि०१९६।२८-२९)।

तेजेयु–पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९४ । ११) ।

तैजस–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक वरुण देवतासम्बन्धी तीर्थ, जहाँ स्कन्दका देवसेनापतिके पदपर अभिषेक हुआ था (वन० ८३ । १६४) ।

तैत्तिरि–राजा उपरिचर वसुके यज्ञमें सम्मिलित हुए सोलह सदस्योंमेंसे एक (शान्ति० ३३६ । ९) ।

तोमर–एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६९) ।

तोरणस्फाटिक–धृतराष्ट्रके बनवाये हुए सभाभवनका नाम (द्यूतक्रीडाके समय धृतराष्ट्रकी आज्ञासे इस सभाका निर्माण हुआ था । इसमें सुवर्ण तथा वैदूर्यसे जटित एक हजार खम्भे और सौ दरवाजे थे । इसकी लंबाई तथा चौड़ाई दो-दो मीलकी थी ।) (सभा० ५६ । १८) ।

त्रसदस्यु–एक राजर्षि, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ९) । ये भूपालोंमें श्रेष्ठ, इक्ष्वाकुवंशीय और महामनस्वी थे, उनके पिताका नाम पुरुकुत्स था, इनके यहाँ अगस्त्य मुनि, श्रुतर्वा और ब्रध्नश्वका आगमन और इनका राज्यकी सीमापर जाकर उन सबका विधिवत् आदर-सत्कार करना और उनके पधारनेका कारण पूछना (वन० ९८ । १२–१४) । इनका अगस्त्यजीके धन माँगनेपर उनके सामने अपने आय-व्ययका लेखा रखना (वन०९८।१६)। ये प्रातःसायं स्मरण करनेयोग्य नरेशोंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ५५) ।

त्रिककुद्धाम–भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २०) ।

त्रिकूट–लङ्काके पास का एक पर्वत (वन० २७७ । ५४) ।

त्रिगङ्ग–एक तीर्थ, जहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । २९) ।

त्रिगर्त–(१) एक जनपद (भीष्म० ५१ । ७) । वहाँके निवासी और राजा । एकचक्रानगरीकी ओर जाते हुए पाण्डवलोग इस देशसे होकर निकले थे (आदि० १५५ । २) । अर्जुनने उत्तर दिग्विजयके समय इस देशको जीता था । यहाँके नरेश कुन्तीनन्दन अर्जुनकी शरणमें आये थे (सभा० २७ । १८) । नकुलने भी अपनी दिग्विजययात्रामें इस देशको जीता था (सभा० ३२ । ७) । ये लोग युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १४) । एक त्रिगर्तदेशीय वीरने राजा युधिष्ठिरके रथके घोड़ोंको मार डाला, फिर युधिष्ठिर-द्वारा वह स्वयं भी मारा गया (वन० २७१ । १२–१४) । हाथीसहित त्रिगर्तराज सुरथ नकुलद्वारा मारा गया (वन० २७१ । १८–२२) । अर्जुनने त्रिगर्तोंका संहार किया (वन० २७१ । २८) । त्रिगर्त-देशीय योद्धाओं तथा त्रिगर्तराज सुशर्माद्वारा विराटके राज्यपर आक्रमण और उनकी गौओंका अपहरण (विराट० ३० अध्याय) । त्रिगर्तोंके साथ मत्स्यदेशीय वीरोंका युद्ध (विराट० ३२ अध्याय) । त्रिगर्तराज सुशर्माका विराटको पकड़कर ले जाना, भीमद्वारा सुशर्माका निग्रह और युधिष्ठिरका अनुग्रह करके उसे छोड़ देना (विराट० ३३ अध्याय) । पाँच त्रिगर्तोंके साथ युद्ध करनेका काम पाँचों द्रौपदी-पुत्रोंको सौंपा गया (उद्योग० १६४ ।

८)। त्रिगर्तराज पाँच भाई थे और पाँचों उदार रथी थे, इनमें प्रधान सत्यरथ था (उद्योग० १६६ । ९–११)। ये भीष्मनिर्मित गरुड़व्यूहमें मस्तकस्थानपर खड़े किये गये थे (भीष्म० ५६ अध्याय)। अर्जुन और अभिमन्युपर त्रिगर्तोंने धावा किया था (भीष्म० ६१ अध्याय)। नकुलके साथ इनका युद्ध (भीष्म० ७२ अध्याय)। अर्जुनने इनपर वायव्यास्त्र छोड़ा था (भीष्म० १०२ अध्याय)। पहले कर्णने इनको परास्त किया था (द्रोण० ४ अध्याय; कर्ण० ८ अध्याय)। श्रीकृष्णने भी इनपर विजय पायी थी (द्रोण० ११ अध्याय)। सत्यरथ आदि पाँचों भाइयोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'या तो अर्जुनको मारेंगे या मर जायँगे' इसीलिये ये संशप्तक कहलाये (द्रोण० १७ अध्याय; द्रोण० १९ अध्याय)। परशुरामजीने भी कभी त्रिगर्तोंका संहार किया था (द्रोण० ७० अध्याय)। सात्यकिके साथ त्रिगर्तोंका युद्ध (द्रोण० १४१ अध्याय)। युधिष्ठिरके द्वारा त्रिगर्तोंका वध (द्रोण० १५७ अध्याय)। त्रिगर्तोंने अर्जुन और श्रीकृष्णपर धावा किया (शल्य० २७ अध्याय)। अश्वमेधयज्ञके अश्वकी रक्षाके लिये गये हुए अर्जुनद्वारा इन सबकी पराजय (आश्व० ७४ अध्याय)। (२) त्रिगर्त-नामधारी एक राजा, जो यमकी सभामें विराजते हैं (सभा० ८ । २०)।

त्रिजटा–एक राक्षसी, जो अशोकवाटिकामें सीताजीको आश्वासन दिया करती थी । इसने अविन्ध्यका संदेश और अपना स्वप्न सीताजीको सुनाया था (वन० २८० । ५४—७२)। श्रीरामका त्रिजटाको धन आदि देकर संतुष्ट करना (वन० २९१ । ४१)।

त्रित–धर्मपरायण प्रजापति गौतमके तीन पुत्रोंमेंसे एक, उनके दूसरे दो भाई एकत और द्वित थे। तीनों ही मुनि और ब्रह्मवादी थे। इन सबने तपस्याद्वारा ब्रह्मलोकपर विजय पायी थी (शल्य० ३६ । ७–९)। त्रित मुनिके कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा (शल्य० ३६ अध्याय)। ये उपरिचरवसुके यज्ञमें सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ६)। भीष्मजीके महाप्रयाणके समय उन्हें देखने आये हुए महर्षियोंमें ये भी थे (अनु० २६ । ६)। वरुणके सात ऋत्विजोंमेंसे एक ये भी हैं। ये पश्चिमदिशामें निवास करनेवाले ऋषि हैं (अनु० १५० । ३६-३७)।

त्रिदिवा–(१) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७)। (२)एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १८)।

त्रिपाद–एक राक्षस, जिसका स्कन्दद्वारा वध हुआ (शल्य० ४६ । ७५)।

त्रिपुर–मयासुरद्वारा निर्मित असुरोंके तीन पुर या नगर, जो सोने, चाँदी और लोहेके बने हुए थे; इनके स्वामी क्रमशः कमलाक्ष, ताराक्ष और विद्युन्माली थे । भगवान् शंकरने इन तीनों पुरों और वहाँ रहनेवाले असुरोंका नाश किया था (कर्ण० ३३ अध्यायसे ३४ अध्यायतक)।

त्रिपुरा–एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने जीता था (वन० २५४ अध्याय)। कोसलनरेश बृहद्बल त्रिपुराके सैनिकोंके साथ थे (भीष्म० ८७ । ९)।

त्रिपुरी–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसके राजाको सहदेवने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ६०)।

त्रिभाव–गरुड़के प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११)।

त्रिवर्चा (त्रिवर्चक)–अङ्गिराके पुत्र एक ऋषि, जिन्होंने अन्य चार ऋषियोंके साथ तप करके पाञ्चजन्य नामक अग्निस्वरूप पुत्रको जन्म दिया था (वन० २२० । १–५)।

त्रिविष्टप–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ पापनाशिनी वैतरणीमें स्नान करके भगवान् शिवकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है (वन० ८३ । ८४-८५)।

त्रिशङ्कु–एक राजा, जिन्हें गुरुके शापसे हीनावस्थामें पड़े होनेपर भी महातपस्वी विश्वामित्रने स्वर्गलोकमें पहुँचाया था (आदि० ७१ । ३४ और उसके बाद दो श्लोक दा० पाठ)। ये इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुए थे, अयोध्याके राजा थे और विश्वामित्रसे मेल जोल रखते थे। इनकी पत्नी केकय-राजकुमारी सत्यवती थी, इन्हींके पुत्र सत्यप्रतिज्ञ हरिश्चन्द्र थे (सभा० १२ । १० के बाद दा० पाठ)।

त्रिशिरा–ये त्वष्टाके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम विश्वरूप था (उद्योग० ९ । ३)। इनका अप्सराओंके लुभानेपर भी शान्त रहना (उद्योग० ९ । १५-१६)। इन्द्रके वज्र-प्रहारसे इनकी मृत्यु (उद्योग० ९ । २४)।

त्रिशूलखात–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य देह-त्यागके पश्चात् गणपतिपद प्राप्त कर लेता है (वन० ८४ । ११-१२)।

त्रिश्रवण–एक दिव्य महर्षि, जिन्होंने शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें भेंट की थी (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)।

त्रिस्थान–एक तीर्थ, जहाँ एक मासतक निराहार रहकर स्नान करनेसे देवताओंका दर्शन होता है (अनु० २५ । १५)।

त्रिस्रोतसी–एक नदी, जो वरुण-सभामें उपस्थित रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २३) ।

त्रुटि–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

त्रेता–कृतयुग या सत्ययुगके बाद द्वितीय युग । हनुमान्‌जी द्वारा इसके धर्मका वर्णन–त्रेतामें यज्ञकर्मका आरम्भ होता है, धर्मके एक पादका ह्रास हो जाता है और भगवान् विष्णुका वर्ण लाल हो जाता है (वन० १४९ । २३–२६) । मार्कण्डेयजीद्वारा त्रेताका वर्णन । त्रेतायुग तीन हजार दिव्य वर्षोंका है, इसकी संध्या और संध्यांशके भी उतने ही सौ दिव्य वर्ष होते हैं । इस प्रकार यह युग छत्तीस सौ दिव्य वर्षोंका होता है (वन० १८८ । २३) ।

त्रैवलि–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १३) ।

त्र्यक्ष–एक जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके पास भेंट लेकर आये थे । द्वारपर रोक दिये जानेके कारण खड़े थे (सभा० ५१ । १७) ।

त्र्यम्बक–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । १९) ।

त्वष्टा–बारह आदित्योंमेंसे एक । कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६५ । १६) । खाण्डववनके दाहके समय इन्द्रकी ओरसे युद्धके लिये इनका आगमन और अस्त्रके रूपमें पर्वतको उठाना (आदि० २२६ । ३४) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १४) । इनकी पुत्री कशेरुका नरकासुरद्वारा अपहरण (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४-८०५) । प्रजापति त्वष्टा (विश्वकर्मा) के द्वारा वज्रका निर्माण (वन० १०० । २४) । नल नामक वानर इनका पुत्र था (वन० २८३ । ४१) । इन्द्र-द्वारा अपने पुत्र त्रिशिराके मारे जानेसे इनका इन्द्रपर कुपित होना और वृत्रासुरको प्रकट करना (उद्योग० ९ । ४८) । त्वष्टाने अपनी तपस्यासे संतुष्ट हुए शिवजीकी कृपासे वृत्रासुर नामक पुत्र उत्पन्न किया (द्रोण० ९४ । ५४) । इनके द्वारा स्कन्दको चक्र और अनुचक्र नामक दो पार्षद-प्रदान (शल्य० ४५ । ४०) ।

त्वष्टाधर–शुक्राचार्यके रौद्रकर्म करने-करानेवाले दो पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । ३७) ।

(द)

दंश–अलर्क नामक कीड़ेकी योनिमें पड़ा हुआ एक राक्षस, जो परशुरामजीकी दृष्टि पड़ते ही कीट-योनिसे मुक्त हो गया था । परशुरामजीके पूछनेपर उसका अपनी दुर्गति-का कारण बताना (शान्ति० ३ । १४-१५; १९–२३) ।

दक्ष–(१) ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न एक महर्षि, जो महातपस्वी एवं प्रजापति थे । इनकी पत्नी ब्रह्माजीके बाँयें अँगूठेसे उत्पन्न हुई थी । उनके गर्भसे दक्षने पचास कन्याएँ उत्पन्न की थीं (आदि० ६६ । १०-११) । ये ही कल्पान्तरमें दस प्रचेताओंद्वारा मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; अतः प्राचेतस दक्ष कहलाते हैं । इनसे समस्त प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं, इसीसे ये सम्पूर्ण लोकके पितामह हैं (आदि० ७५ । ५) । इनके समान ही गुणशीलवाले इनके एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए । उन्हें नारदजीने मोक्षशास्त्र एवं सांख्यज्ञानका उपदेश दे दिया; जिससे वे विरक्त होकर घरसे निकल गये। तब इन्होंने पुत्रिकाधर्मके अनुसार दौहित्रोंको अपना पुत्र माननेका संकल्प लेकर पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं (आदि० ७५ । ६–८) । इन्होंने इनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको और कालका संचालन करनेमें नियुक्त नक्षत्रस्वरूपा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं (आदि० ७५ । ८) । ये अर्जुनके जन्मकालमें कुन्तीदेवीके स्थानपर गये थे (आदि० १२२ । ५२) । ये भगवान् ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १८) । इन्होंने सरस्वतीके तटपर यज्ञ किया और उस स्थानके लिये एक वर दिया कि यहाँ मरनेवालेको स्वर्ग प्राप्त होगा । वही विनशन तीर्थ है (वन० १३० । २) । ये ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंमें सातवें हैं और मेरुपर्वतपर रहते हैं (वन० १६३ । १४) । इन्होंने सत्ताईस कन्याएँ सोमको ब्याह दी थीं, इनके पति चन्द्रमा केवल 'रोहिणी' को ही प्यार करते थे; अतः अन्य पत्नियोंने पिता दक्षके पास जाकर इस बातकी शिकायत की, तब दक्षने चन्द्रमासे कहा–'सोम ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करो; जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे ।' इसके बाद इन्होंने सब कन्याओंको समझाकर चन्द्रमाके यहाँ भेजा; परंतु सोमने दक्षकी बात नहीं मानी । अपनी पुत्रियोंके मुखसे फिर सोमकी शिकायत सुनकर इन्होंने उन्हें शाप देनेकी धमकी दी । जब चन्द्रमाने फिर उनकी बातकी अवहेलना कर दी, तब इन्होंने रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की और वह सोमके शरीरमें प्रविष्ट हो गया (शल्य० ३५ । ४५–६२) । देवताओंके अनुरोध करनेपर इन्होंने बताया, सोम अपनी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करें और सरस्वती-समुद्र-संगममें स्नान करके महादेवजी-की आराधना करें, तब इस रोगसे मुक्त हो जायँगे । प्रतिमास पंद्रह दिनोंतक ये प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे (शल्य० ३५ । ७३—७७) । गङ्गाद्वारमें इनके आवाहन करनेपर

सरस्वती वहाँ आयी और 'सुरेणु' नामसे विख्यात हुई (शल्य० ३८ । २८-२९)। बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । १०)। इनकी आठ कन्याएँ ब्रह्मर्षियोंको ब्याही गयी थीं, जिनसे अनेक प्रकारके जीव-जन्तु तथा देवता-मनुष्य आदि उत्पन्न हुए (शान्ति० १६६ । १७)। इनका एक नाम 'क' भी है (शान्ति० २०८ । ७)। शिवजीद्वारा इनके यज्ञका विध्वंस (शान्ति० २८३ । ३२—३७)। यज्ञके समय दधीचिके साथ इनका संवाद (शान्ति० २८४ । २०—२२)। यज्ञविध्वंसके बाद इनका शिवजीकी शरणमें जाना (शान्ति० २८४ । ५७)। शिवजीसे क्षमा-प्रार्थना करना (शान्ति० २८४ । ६१—६४)। सहस्रनामद्वारा शिवजीका स्तवन करना (शान्ति० २८४ । ६९—१८०)। इनके द्वारा रुद्रको शाप (शान्ति० ३४२ । २५)। इनके द्वारा चन्द्रमाको शाप। इनकी साठ कन्याओंमें जो अन्तिम दस थीं, वे मनुको ब्याही गयी थीं (शान्ति० ३४२ । ५७)। (२) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२)। (३) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५)।

दक्षिण दिशा–इनका वर्णन (उद्योग० १०९ अध्याय)।

दक्षिण पाञ्चाल–यह दक्षिण पाञ्चाल देश गङ्गाके दक्षिण तटसे लेकर चम्बल नदीतक फैला हुआ था, जहाँके क्षत्रिय जरासंधके भयसे दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २७)। पाञ्चाल एक ही जनपद था, जो गङ्गाके दोनों तटोंपर फैला हुआ था। द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाकर उसे अपने अधीन करके आधा द्रुपदको दे दिया और आधा अपने अधिकारमें रक्खा। जो भाग द्रोणके अधिकारमें था, वह 'उत्तरपाञ्चाल' और जिसके राजा द्रुपद थे, वह 'दक्षिणपाञ्चाल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ (आदि० १३७ अध्याय)।

दक्षिणमल्ल–मल्लराष्ट्र (जिसकी राजधानी कुशीनगर या कुशीनारा थी) का दक्षिणी भाग; इसे भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १२)।

दक्षिण सिन्धु–एक तीर्थ, जो दक्षिण दिशाका समुद्र-रूप ही है, इसमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है और देवविमानपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है (वन० ८२ । ५३-५४)।

दक्षिणाग्नि–पाञ्चजन्यसे उत्पन्न एक घोर पावक (आचार्य नीलकण्ठने इसका नाम 'दक्षिणाग्नि' लिखा है ।) (वन० २२० । ६)।

दक्षिणापथ–दक्षिण भारतका नामान्तर, जिसका परिचय नलने दमयन्तीको दिया था (वन० ६१ । २३)।

दण्ड–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधहन्ता' नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४५)। यह अपने पिता विदण्डके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १२)। दिग्विजयके समय भीमसेनने उसे दण्डधारसहित परास्त किया था (सभा० ३० । १७)। यह मगधदेशके क्षत्रिय राजा दण्डधारका भाई था और अर्जुनद्वारा भाईके मारे जानेपर इसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर धावा किया था, इस युद्धमें अर्जुनने इसका मस्तक काट लिया था (कर्ण० १८ । १६–१९)। (२) एक सूर्यका अनुचर (वन० ३ । ६८)। (३) यमराजका दिव्यास्त्र, जिसका वेग कहीं भी कुण्ठित नहीं होता, इसे यमराजने अर्जुनको प्रदान किया था (वन० ४१ । २६)। (४) चम्पाके निकटका एक तीर्थ, जहाँ गङ्गामें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । १५)। (५) एक चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, जो कर्णद्वारा निहत हुआ था (कर्ण० ५६ । ४९)। (६) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । १०५)।

दण्डक–दक्षिण भारतका एक देश, जो दण्डकारण्यका भूभाग है। इसे सहदेवने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ६६)। दण्डकका विशाल राज्य एक ब्राह्मणने नष्ट कर दिया था (अनु० १५३ । ११)।

दण्डकारण्य–एक तीर्थ और वन, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ४१)। यहीं गोदावरीके तटपर पञ्चवटीमें वनवासके समय श्रीरामजी रहे। यहीं शूर्पणखाको कुरूप किया गया और यहीं खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसोंका वध, मारीचका वध, सीताहरण, जटायुवध आदि घटनाएँ घटित हुईं (वन० २७७ अध्यायसे २७९ अध्यायतक)।

दण्डकेतु–पाण्डवपक्षका एक योद्धा, इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ६८)।

दण्डगौरी–एक स्वर्गीय अप्सरा, जिसने इन्द्रसभामें अर्जुनके स्वागतार्थ नृत्य किया था (वन० ४३ । २९)।

दण्डधार–(१) मगधनिवासी एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधवर्धन' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४६)। भीमसेनने दिग्विजयके समय इसे इसके भाई दण्डसहित जीता था (सभा० ३० । १७)। यह कौरवपक्षका योद्धा था, हाथीपर चढ़कर लड़ता था और भगदत्तके समान पराक्रमी था। इसने जब पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने आकर इसके साथ युद्ध करके इसे मार

त्रिस्रोतसी–एक नदी, जो वरुण-सभामें उपस्थित रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (**सभा० ९ । २३**) ।

त्रुटि–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १७**) ।

त्रेता–कृतयुग या सत्ययुगके बाद द्वितीय युग । हनुमान्‌जी द्वारा इसके धर्मका वर्णन–त्रेतामें यज्ञकर्मका आरम्भ होता है, धर्मके एक पादका ह्रास हो जाता है और भगवान् विष्णुका वर्ण लाल हो जाता है (**वन० १४९ । २३–२६**) । मार्कण्डेयजीद्वारा त्रेताका वर्णन । त्रेतायुग तीन हजार दिव्य वर्षोंका है, इसकी संध्या और संध्यांशके भी उतने ही सौ दिव्य वर्ष होते हैं । इस प्रकार यह युग छत्तीस सौ दिव्य वर्षोंका होता है (**वन० १८८ । २३**) ।

त्रैवलि–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (**सभा० ४ । १३**) ।

त्र्यक्ष–एक जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके पास भेंट लेकर आये थे । द्वारपर रोक दिये जानेके कारण खड़े थे (**सभा० ५१ । १७**) ।

त्र्यम्बक–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (**शान्ति० २०८ । १९**) ।

त्वष्टा–बारह आदित्योंमेंसे एक । कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न (**आदि० ६५ । १६**) । खाण्डववनके दाहके समय इन्द्रकी ओरसे युद्धके लिये इनका आगमन और अस्त्रके रूपमें पर्वतको उठाना (**आदि० २२६ । ३४**) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ७ । १४**) । इनकी पुत्री कशेरुका नरकासुरद्वारा अपहरण (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४-८०५**) । प्रजापति त्वष्टा (विश्वकर्मा) के द्वारा वज्रका निर्माण (**वन० १०० । २४**) । नल नामक वानर इनका पुत्र था (**वन० २८३ । ४१**) । इन्द्र-द्वारा अपने पुत्र त्रिशिराके मारे जानेसे इनका इन्द्रपर कुपित होना और वृत्रासुरको प्रकट करना (**उद्योग० ९ । ४८**) । त्वष्टाने अपनी तपस्यासे संतुष्ट हुए शिवजीकी कृपासे वृत्रासुर नामक पुत्र उत्पन्न किया (**द्रोण० ९४ । ५४**) । इनके द्वारा स्कन्दको चक्र और अनुचक्र नामक दो पार्षद-प्रदान (**शल्य० ४५ । ४०**) ।

त्वष्टाधर–शुक्राचार्यके रौद्रकर्म करने-करानेवाले दो पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६५ । ३७**) ।

(द)

दंश–अलर्क नामक कीड़ेकी योनिमें पड़ा हुआ एक राक्षस, जो परशुरामजीकी दृष्टि पड़ते ही कीट-योनिसे मुक्त हो गया था । परशुरामजीके पूछनेपर उसका अपनी दुर्गति-का कारण बताना (**शान्ति० ३ । १४-१५; १९–२३**) ।

दक्ष–(१) ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न एक महर्षि, जो महातपस्वी एवं प्रजापति थे । इनकी पत्नी ब्रह्माजीके बाँयें अँगूठेसे उत्पन्न हुई थी । उनके गर्भसे दक्षने पचास कन्याएँ उत्पन्न की थीं (**आदि० ६६ । १०-११**) । ये ही कल्पान्तरमें दस प्रचेताओंद्वारा मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; अतः प्राचेतस दक्ष कहलाते हैं । इनसे समस्त प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं, इसीसे ये सम्पूर्ण लोकके पितामह हैं (**आदि० ७५ । ५**) । इनके समान ही गुणशीलवाले इनके एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए । उन्हें नारदजीने मोक्षशास्त्र एवं सांख्यज्ञानका उपदेश दे दिया; जिससे वे विरक्त होकर घरसे निकल गये। तब इन्होंने पुत्रिकाधर्मके अनुसार दौहित्रोंको अपना पुत्र माननेका संकल्प लेकर पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं (**आदि० ७५ । ६–८**) । इन्होंने इनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको और कालका संचालन करनेमें नियुक्त नक्षत्रस्वरूपा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं (**आदि० ७५ । ८**) । ये अर्जुनके जन्मकालमें कुन्तीदेवीके स्थानपर गये थे (**आदि० १२२ । ५२**) । ये भगवान् ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (**सभा० ११ । १८**) । इन्होंने सरस्वतीके तटपर यज्ञ किया और उस स्थानके लिये एक वर दिया कि यहाँ मरनेवालेको स्वर्ग प्राप्त होगा । वही विनशन तीर्थ है (**वन० १३० । २**) । ये ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंमें सातवें हैं और मेरुपर्वतपर रहते हैं (**वन० १६३ । १४**) । इन्होंने सत्ताईस कन्याएँ सोमको ब्याह दी थीं, इनके पति चन्द्रमा केवल 'रोहिणी' को ही प्यार करते थे; अतः अन्य पत्नियोंने पिता दक्षके पास जाकर इस बातकी शिकायत की, तब दक्षने चन्द्रमासे कहा–'सोम ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करो; जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे ।' इसके बाद इन्होंने सब कन्याओंको समझाकर चन्द्रमाके यहाँ भेजा; परंतु सोमने दक्षकी बात नहीं मानी । अपनी पुत्रियोंके मुखसे फिर सोमकी शिकायत सुनकर इन्होंने उन्हें शाप देनेकी धमकी दी । जब चन्द्रमाने फिर उनकी बातकी अवहेलना कर दी, तब इन्होंने रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की और वह सोमके शरीरमें प्रविष्ट हो गया (**शल्य० ३५ । ४५–६२**) । देवताओंके अनुरोध करनेपर इन्होंने बताया, सोम अपनी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करें और सरस्वती-समुद्र-संगममें स्नान करके महादेवजी-की आराधना करें, तब इस रोगसे मुक्त हो जायँगे । प्रतिमास पंद्रह दिनोंतक ये प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे (**शल्य० ३५ । ७३—७७**) । गङ्गाद्वारमें इनके आवाहन करनेपर

सरस्वती वहाँ आयी और 'सुरेणु' नामसे विख्यात हुई (शल्य० ३८ । २८-२९) । बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । १०) । इनकी आठ कन्याएँ ब्रह्मर्षियोंको ब्याही गयी थीं, जिनसे अनेक प्रकारके जीव-जन्तु तथा देवता-मनुष्य आदि उत्पन्न हुए (शान्ति० १६६ । १७) । इनका एक नाम 'क' भी है (शान्ति० २०८ । ७) । शिवजीद्वारा इनके यज्ञका विध्वंस (शान्ति० २८३ । ३२—३७) । यज्ञके समय दधीचिके साथ इनका संवाद (शान्ति० २८४ । २०—२२) । यज्ञविध्वंसके बाद इनका शिवजीकी शरणमें जाना (शान्ति० २८४ । ५७) । शिवजीसे क्षमा-प्रार्थना करना (शान्ति० २८४ । ६१—६४) । सहस्रनामद्वारा शिवजीका स्तवन करना (शान्ति० २८४ । ६९—१८०) । इनके द्वारा रुद्रको शाप (शान्ति० ३४२ । २५) । इनके द्वारा चन्द्रमाको शाप । इनकी साठ कन्याओंमें जो अन्तिम दस थीं, वे मनुको ब्याही गयी थीं (शान्ति० ३४२ । ५७) । (२) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२) । (३) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

दक्षिण दिशा—इसका वर्णन (उद्योग० १०९ अध्याय) ।

दक्षिण पाञ्चाल—यह दक्षिण पाञ्चाल देश गङ्गाके दक्षिण तटसे लेकर चम्बल नदीतक फैला हुआ था, जहाँके क्षत्रिय जरासंधके भयसे दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २७) । पाञ्चाल एक ही जनपद था, जो गङ्गाके दोनों तटोंपर फैला हुआ था । द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाकर उसे अपने अधीन करके आधा द्रुपदको दे दिया और आधा अपने अधिकारमें रक्खा । जो भाग द्रोणके अधिकारमें था, वह 'उत्तरपाञ्चाल' और जिसके राजा द्रुपद थे, वह 'दक्षिणपाञ्चाल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ (आदि० १३७ अध्याय) ।

दक्षिणमल्ल—मल्लराष्ट्र (जिसकी राजधानी कुशीनगर या कुशीनारा थी) का दक्षिणी भाग; इसे भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १२) ।

दक्षिण सिन्धु—एक तीर्थ, जो दक्षिण दिशाका समुद्र-रूप ही है, इसमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अग्नि-होम यज्ञका फल पाता है और देवविमानपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है (वन० ८२ । ५३-५४) ।

दक्षिणाग्नि—पाञ्चजन्यसे उत्पन्न एक घोर पावक (आचार्य नीलकण्ठने इसका नाम 'दक्षिणाग्नि' लिखा है ।) (वन० २२० । ६) ।

दक्षिणापथ—दक्षिण भारतका नामान्तर, जिसका परिचय नलने दमयन्तीको दिया था (वन० ६१ । २३) ।

दण्ड—(१) एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधहन्ता' नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४५) । यह अपने पिता विदण्डके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १२) । दिग्विजयके समय भीमसेनने उसे दण्डधारसहित परास्त किया था (सभा० ३० । १७) । यह मगधदेशके क्षत्रिय राजा दण्डधारका भाई था और अर्जुनद्वारा भाईके मारे जानेपर इसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर धावा किया था, इस युद्धमें अर्जुनने इसका मस्तक काट लिया था (कर्ण० १८ । १६—१९) । (२) एक सूर्यका अनुचर (वन० ३ । ६८) । (३) यमराजका दिव्यास्त्र, जिसका वेग कहीं भी कुण्ठित नहीं होता, इसे यमराजने अर्जुनको प्रदान किया था (वन० ४१ । २६) । (४) चम्पाके निकटका एक तीर्थ, जहाँ गङ्गामें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । १५) । (५) एक चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, जो कर्णद्वारा निहत हुआ था (कर्ण० ५६ । ४९) । (६) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । १०५) ।

दण्डक—दक्षिण भारतका एक देश, जो दण्डकारण्यका भूभाग है । इसे सहदेवने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ६६) । दण्डकका विशाल राज्य एक ब्राह्मणने नष्ट कर दिया था (अनु० १५३ । ११) ।

दण्डकारण्य—एक तीर्थ और वन, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ४१) । यहीं गोदावरीके तटपर पञ्चवटीमें वनवासके समय श्रीरामजी रहे । यहीं शूर्पणखाको कुरूप किया गया और यहीं खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसोंका वध, मारीचका वध, सीताहरण, जटायुवध आदि घटनाएँ घटित हुईं (वन० २७७ अध्यायसे २७९ अध्यायतक) ।

दण्डकेतु—पाण्डवपक्षका एक योद्धा, इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ६८) ।

दण्डगौरी—एक स्वर्गीय अप्सरा, जिसने इन्द्रसभामें अर्जुनके स्वागतार्थ नृत्य किया था (वन० ४३ । २९) ।

दण्डधार—(१) मगधनिवासी एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधवर्धन' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४६) । भीमसेनने दिग्विजयके समय इसे इसके भाई दण्डसहित जीता था (सभा० ३० । १७) । यह कौरवपक्षका योद्धा था, हाथीपर चढ़कर लड़ता था और भगदत्तके समान पराक्रमी था । इसने जब पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने आकर इसके साथ युद्ध करके इसे मार

डाला (कर्ण० ८ । १-१३) । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । ५-६) । (३) एक राजा, जो पाण्डवोंका सहायक था। इसके नामके साथ मणिमान्का भी नाम आता है; अतः इन दोनोंमें कुछ लगाव रहा होगा--ऐसा अनुमान होता है। (सम्भव है, ये दोनों परस्पर पिता-पुत्र, भाई-भाई या मित्र रहे हों।) द्रौपदीके स्वयंवरमें भी दोनोंके नामोंका एक साथ उल्लेख हुआ है (आदि० १८६ । ७)। पाण्डवोंकी ओरसे इनको और मणिमान्को भी रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । २०-२१) । ये दोनों द्रोणाचार्यके द्वारा मारे गये हैं; दोनोंके नामोंका उल्लेख मरणकालमें एक साथ हुआ है (कर्ण० ६ । १३-१४) । (४) एक पाञ्चालयोद्धा, जो पाण्डवपक्षका वीर था। इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५३) । यह युधिष्ठिरका चक्ररक्षक था और कर्णद्वारा मारा गया था (कर्ण० ४९ । २७) ।

दण्डनीति-ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित नीतिशास्त्रमें वर्णित दण्डविधान-विषयक नीतिविद्या (शान्ति० ५९ । ७६-७९) । दण्डनीतिके गुणोंका वर्णन (शान्ति० ६९ । ७५-१०५) ।

दण्डबाहु-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

दण्डी-धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०३) ।

दत्त (या दत्तक)-एक प्रकारका पुत्र, जिसे जन्मदाता माता-पिताने स्वयं समर्पित कर दिया हो । यह छः प्रकारके अबन्धु-दायादोंमेंसे एक है (आदि० ११९ । ३४) ।

दत्तात्मा-एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

दत्तात्रेय-भगवान् विष्णुके अवतार (अत्रिपत्नी अनसूयाके गर्भसे इनका प्राकट्य) । सहस्रबाहु अर्जुनद्वारा इनकी तीव्र आराधना और इनके द्वारा उसे चार दुर्लभ वरदानोंकी प्राप्ति (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९१) । इनके द्वारा साध्योंको उपदेश (उद्योग० ३६ । ४-२१) ।

दत्तामित्र-सौवीरदेशका राजा सुमित्र, जिसका अर्जुनने दमन किया था (आदि० १३८ । २३) ।

दधिमण्डोदक-एक समुद्र, जो घृतोद समुद्रके बाद आता है (भीष्म० १२ । २) ।

दधिमुख-(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ८) । (२) एक वृद्ध एवं पराक्रमी वानर, जो भयंकर वानरोंकी विशाल सेना साथ लेकर श्रीरामके पास आया था (वन० २८३ । ७) ।

दधिवाहन-एक प्राचीन नरेश, जिनका पौत्र महर्षि गौतम-द्वारा गङ्गा-तटपर परशुरामजीके क्षत्रिय-संहारसे बचाया और सुरक्षित रक्खा गया था (शान्ति० ४९ । ८०) ।

दधीच-(१) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक परम पुण्यमय पावन तीर्थ, जहाँ सरस्वतीपुत्र अङ्गिराका जन्म हुआ था । इसमें स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता और सरस्वती-लोककी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १८६-१८८) । (२) महर्षि भृगुके पुत्र, इनके द्वारा वज्रनिर्माणके लिये देवताओंको अस्थिदान (वन० १०० । २१) । सरस्वती नदीके द्वारा इन्हें सारस्वत नामक पुत्रकी प्राप्ति (शल्य० ५१ । १३-१४) । इनके द्वारा सरस्वतीको वरदान (शल्य० ५१ । १७-२४) । देवताओंके द्वारा अस्थिके लिये याचना करनेपर इनका प्राण त्याग करना (शल्य० ५१ । २९-३०) । इनकी अस्थियोंसे वज्र आदि अस्त्रोंका निर्माण (शल्य० ५१ । ३१-३२) । ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि भृगुने तीव्र तपस्यासे भरे हुए लोकमङ्गलकारी विशालकाय एवं तेजस्वी दधीचको उत्पन्न किया था । ऐसा जान पड़ता था मानो सम्पूर्ण जगत्के सारतत्त्वसे उनका निर्माण हुआ हो । ये पर्वतके समान भारी और ऊँचे थे । इन्द्र इनके तेजसे सदा उद्विग्न रहते थे (शल्य० ५१ । ३२-३४) । दक्षयज्ञमें शिवजीका भाग न देखकर कुपित हो दक्ष आदिको इनका चेतावनी देना (शान्ति० २८४ । १२-२१) । देवताओंके कहनेसे प्राण त्याग करना (शान्ति० ३४२ । ४०) ।

दनायु-दक्षप्रजापतिकी पुत्री और महर्षि कश्यपकी पत्नी (आदि० ६५ । १२) । इसके चार पुत्र हुए--विक्षर, बल, वीर और महान् असुर वृत्र (आदि० ६५ । ३३) ।

दनु-दक्ष-प्रजापतिकी पुत्री, महर्षि कश्यपकी पत्नी तथा दानवोंकी माता (आदि० ६५ । १२) । दनुके चौंतीस पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़ा विप्रचित्ति था (आदि० ६५ । २१--३६) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती हैं (सभा० ११ । ३९)।

दन्तवक्त्र (या दन्तवक्र)-एक क्षत्रिय राजा, क्रोधवश-संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न (आदि० ६७ । ६२) । यह करूष देशका अधिपति था (सभा० १४ । १२) । सहदेवने इसे दक्षिण-दिशाकी विजयके समय पराजित किया था (सभा० ३१ । ३) । इसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १६) ।

दम-(१) विदर्भनरेश भीमके पुत्र और दमयन्तीके भाई (वन० ५३ । ९) । (२) एक महर्षि, जो अन्य महर्षियोंके साथ भीष्मजीको देखनेके लिये आये और कथा-वार्ता सुनाकर अन्तर्धान हो गये (अनु० २६ । ७--११) ।

रजि० नं० ए० ८५४

महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

हिन्दी अनुवाद

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, भाद्रपद २०१५, सितम्बर १९५८ { संख्या ११ पूर्ण संख्या ३५

मधुसूदनसे प्रार्थना

यं वेदाः प्रवदन्ति देवनिवहा जाता यतो यद्रता
ब्रह्माद्याः सनकादियोगिभिरहोरात्रं य आस्वाद्यते ।
यं संश्रित्य शरण्यपादकमलं प्रेम्णाञ्जसा संसृते-
र्मुक्ता भ्रान्तिमपोह्य सोऽत्र मधुहा दद्यात्परां मे मतिम् ॥

सम्पूर्ण वेद जिनकी महिमाका प्रतिपादन करते हैं, ब्रह्मा आदि देवताओं-के समुदाय जिनसे उत्पन्न हुए हैं और जिनमें वे सदा अनुरक्त रहते हैं, सनक-सनन्दन आदि योगी दिन-रात ध्यानके द्वारा जिनके सच्चिदानन्दघन रसस्वरूप विग्रहका आस्वादन करते रहते हैं तथा जिनके शरणागतवत्सल चरणारविन्दों-का प्रेमपूर्वक आश्रय ले भक्तजन अपनी भ्रान्तिको दूर भगाकर जन्म-मरणरूप संसार-बन्धनसे अनायास ही मुक्त हो जाते हैं, वे भगवान् मधुसूदन यहाँ मुझे सर्वोत्तम बुद्धि प्रदान करें ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–महाभारत और पाश्चात्य विद्वान् (पं० श्रीगङ्गाशंकरजी मिश्र, एम० ए०)	८१
२–महाभारतमें मानसनिरोध तथा ब्रह्मचर्यकी महिमा (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	८८
३–महाभारतपर कुछ विचार (स्वनामधन्य पं० श्रीकरुणाशंकरजी शास्त्री)	९१
४–श्रीराधाकी वन्दना [कविता] (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	१०८
५–महाभारत-संहिता और उसका रचनाकाल (पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी)	१०९
६–श्रीहरिका आश्रय-ग्रहण [संकलित]	१३५
७–महाभारतके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण	१३६
८–नामानुक्रमणिका, क्रमशः गताङ्कसे आगे	(ना० पृष्ठ १३७ से २१६ तक)

चित्र-सूची

१–महाभारत-लेखन	(तिरंगा)	मुखपृष्ठ
२–गुरु द्रोणाचार्य	(,,)	८१
३–दिव्य-दृष्टि-प्राप्त संजय	(एकरंगा)	१७०
४–महात्मा विदुर	(,,)	१७९
५–भीष्मपितामह	(तिरंगा)	१८६
६–सती गान्धारी	(एकरंगा)	ना० १३७
७–दुःशासन	(,,)	ना० १४२
८–दुर्योधन	(,,)	ना० १४४
९–महाराज धृतराष्ट्र	(,,)	ना० १६६
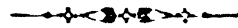
वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)
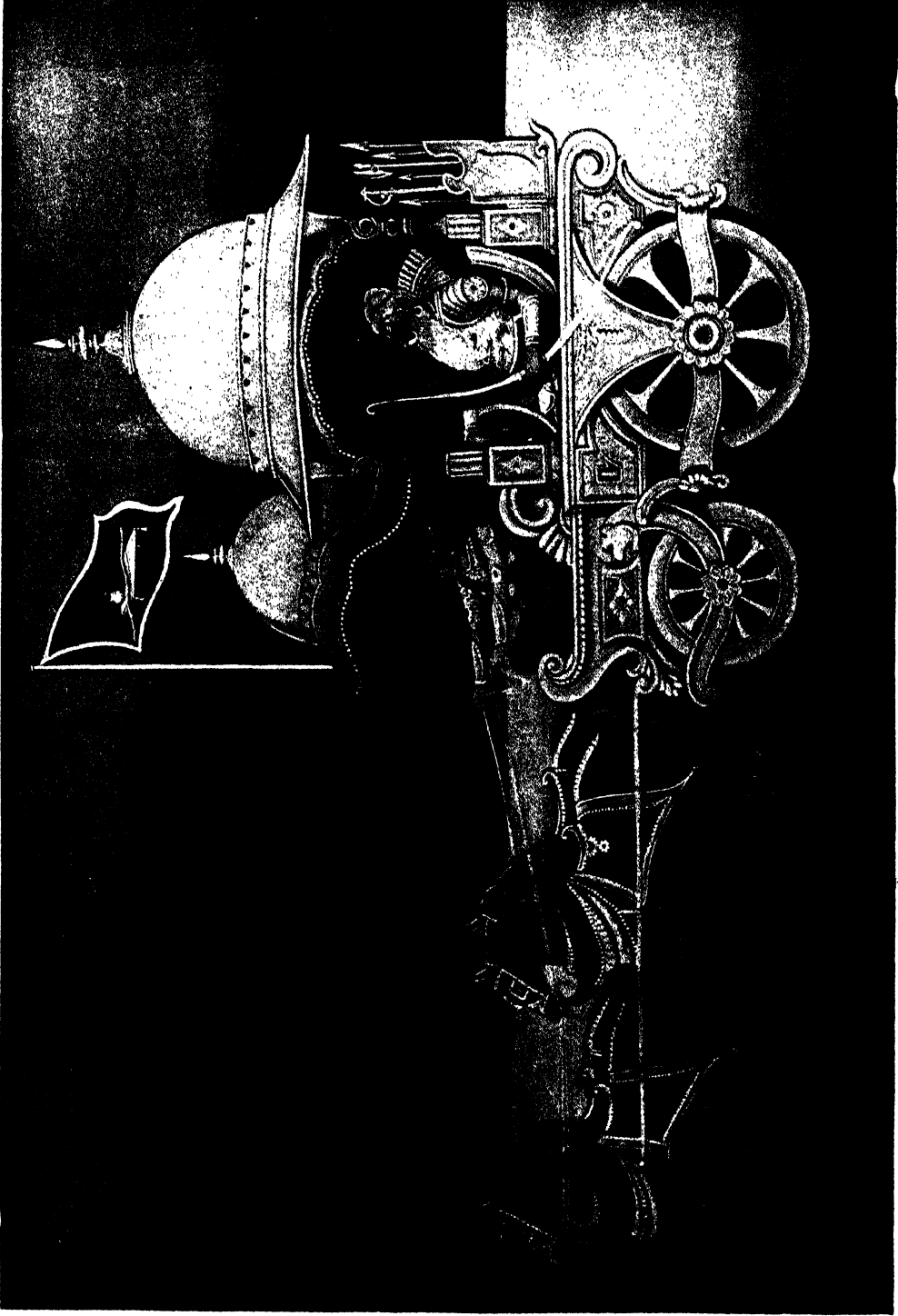
गुरु द्रोणाचार्य

महाभारत और पाश्चात्य विद्वान्

(लेखक--पं० श्रीगङ्गाशंकरजी मिश्र, एम० ए०)

महाभारतके आलोचनात्मक अध्ययनकी ओर सर्व-प्रथम क्रिश्चियन लासेनका ध्यान गया। सन् १८३७ में उन्होंने उसपर विचार करना आरम्भ किया। उनकी 'इण्डियन एंटिक्विटीज़' नामक पुस्तकमें उनके विचार मिलते हैं। उनका कहना है कि "जिस महाभारतको सूतने कहा, वह वास्तवमें मूल पुराण 'भारत'का द्वितीय संस्करण है। 'आश्वलायन गृह्यसूत्र'में 'भारत'के साथ 'महाभारत'का भी उल्लेख मिलता है। आश्वलायन-का समय ३५० वर्ष ईसा पूर्व हो सकता है। इस तरह 'महाभारत'का निर्माणकाल ४६० वर्ष ईसा पूर्वसे अधिक पहले नहीं हो सकता। बादमें वैष्णव आख्यानोंका समावेश उसमें होता रहा। पञ्च पाण्डव वास्तवमें किसी राजनीतिक संघके प्रतिनिधिरूप भिन्न-भिन्न सदस्य थे।" १८५२ से प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् वेबरका ध्यान 'महाभारत'की ओर गया। उनके विचार 'इण्डियन स्टूडियेन्' में मिलते हैं। उनका कहना है कि "ऋग्वेद-की 'नाराशंस्य' गाथाएँ और 'दानस्तुतियाँ' महाभारत-का मूल स्रोत हैं, यज्ञके अवसरोंपर इनका गान होता था। कुरुवंशकी कुछ ऐसी ही गाथाएँ रही होंगी। विस्तार होते-होते उन्हींका 'महाभारत' बन गया। प्रायः ब्राह्मण यह नहीं चाहते थे कि यज्ञके अवसरोंपर क्षत्रियों-का यश-कीर्तन हो। इसलिये वैदिक गाथाओंमें देवताओं-के ही नाम आये हैं, बादमें पुराण-रचयिताओंने उनके स्थानपर मनुष्यके नाम बैठा दिये। 'पाणिनिके समयतक महाभारत नहीं रचा गया था। क्योंकि पाणिनिके युधिष्ठिर, हस्तिनापुर, वासुदेव आदिका उल्लेख करनेपर भी उन्होंने 'महाभारत', 'पाण्डु' अथवा 'पाण्डव' शब्दोंका उल्लेखतक नहीं किया है। 'आश्वलायन' और 'शाङ्खायन' गृह्यसूत्रमें 'भारत' और 'महाभारत'का उल्लेख रहनेपर भी वह अंश प्रक्षिप्त ही समझा जायगा। 'वाजसनेयसंहिता'में इन्द्रको ही 'अर्जुन' कहा गया है। 'यजुर्वेद'की समीक्षा करनेसे ज्ञात होगा कि 'कुरु' और 'पाञ्चाल'में किसी प्रकारका विरोध नहीं था, दोनोंमें गाढ़ी मित्रता थी। 'शतपथ ब्राह्मण' देखनेसे ही जाना जाता है कि परीक्षितके लड़के जनमेजयका चरित्र उस समय भी जनसाधारणके स्मृतिपटपर समुज्ज्वल था। उनके अभ्युदय और अधःपतनको उस समय भी जनसाधारण भूले नहीं थे। समस्त 'महाभारत' तीन अंशोंमें विभक्त है--पहले मूल अंशमें महाभारतका वर्णन, दूसरे अंशमें प्राचीन आख्यान और उपाख्यान-संग्रह तथा तीसरे आधुनिक अंशमें क्षत्रियोंके कर्तव्य, विशेषतः ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताका प्रसङ्ग है। इसी अंशमें शक, यवन, पह्लवादिका उल्लेख देखा जाता है। महासमरका वर्णन ही महाभारतका मूल उद्देश्य है। किंतु इस सम्बन्धमें २० हजारसे अधिक श्लोक नहीं हैं। यह अंश रामायणके मूल अंशके समयकी रचना है। किंतु रामायणका रूपकांश इससे भी बहुत पीछेकी रचना है। वेद, ब्राह्मण और उपनिषदोंमें जिस इतिहासका उल्लेख है, उसी विपुल आख्यायिकाका सार-संग्रह ही महाभारतका दूसरा अंश है।" तीसरे अंशमें पह्लव आदि आधुनिक नामों-का उल्लेख देखकर वेबर साहबने नोल्डको साहबका मतानुसरण करते हुए लिखा है कि "'पार्थिव' शब्दसे पहली शतीमें 'पह्लव' शब्दकी उत्पत्ति हुई। दूसरीसे चौथी शतीके मध्य भारतवासियोंने यह शब्द काममें लिया होगा। कहनेका तात्पर्य यह कि जब मेगस्थिनीजने महाभारतके किसी प्रसङ्गका उल्लेख नहीं किया तथा पहली शतीमें ड्यून क्रिससष्टसने उल्लेख किया, तब यह स्पष्ट है कि ईसाके जन्मसे पहले तीसरीसे पहली शताब्दीके मध्य मूल महाभारत रचा गया होगा तथा इसका तीसरा अंश उससे भी बहुत पीछे ब्राह्मण-धर्मके अभ्युदयके समय अर्थात् तीसरी और चौथी शतीके मध्य रचा गया, इसमें संदेह नहीं।"

सन् १८८४ से एक दूसरे जर्मन विद्वान् लुडविगने 'महाभारत'पर विचार आरम्भ किया। सन् १८९५ में प्रागमें 'यूबेरदाइ मिथिशगुंडलेज दे महाभारत' नामसे

उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने भी वेबरकी तरह 'महाभारत'का मूल वेदोंमें ढूँढ़नेका प्रयत्न किया। परंतु उनका मत वेबरसे भिन्न है। उनका कहना है कि "पाण्डव कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। इस तरह 'महाभारत'को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता। वास्तवमें उसमें देव-देवियोंकी कथाएँ हैं, जिनका बहुत कुछ सम्बन्ध ऋतु-परिवर्तनसे है। 'महाभारत' एक प्रकारसे ऋतु-परिवर्तनका आलंकारिक भाषामें रूपक है। पाण्डुसे अभिप्राय 'पीले सूर्य'का है। धृतराष्ट्रके अंधे होनेका अर्थ है---शक्तिहीन 'शरत्कालीन सूर्य'। गान्धारीका आँखमें पट्टी बाँधना सूर्यका बादलोंमें छिप जाना है। द्रौपदीका 'कृष्णा' नाम पृथ्वीका अनुमान कराता है। सभामें उसका एकवस्त्रा होना पृथ्वीका शीतकालमें शस्यहीन होना सिद्ध करता है।" श्रीकृष्णके काले होनेका कारण लुडविग महोदयको पहले समझमें न आया। उन्होंने बहुत दिमाग लड़ाया, तब उन्हें पता लगा कि 'सम्भवत: वसंतकालीन सूर्यको, जो यज्ञोंमें निरन्तर धुएँसे धुँधला दिखायी देता होगा, श्रीकृष्णका नाम दिया गया होगा।'

इन्हीं दिनों चचा-भतीजे जर्मन विद्वान् हो-ज्मान्‌ने 'महाभारत' का अध्ययन आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप सन् १८९२ में कीलसे चार जिल्दोंमें 'महाभारत एंडसेनटेल' शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। हो-ज्मान्‌को यह समझमें नहीं आ रहा था कि युधिष्ठिर धर्मराज होते हुए भी छली तथा कपटी कैसे हुए। इस परस्पर विरोधकी गुत्थी सुलझानेके लिये उनके दिमागने एक विचित्र बात खोज निकाली। वे लिखते हैं कि "वास्तवमें कौरव ही धर्मभीरु एवं न्यायप्रिय थे। यद्यपि द्यूत उन्होंने छलसे जीता, तथापि युद्धमें सारा छल पाण्डवोंकी ही ओरसे हुआ। इसलिये महाभारतके जितने अंशोंमें कौरवोंकी प्रशंसा है, वे ही प्राचीन हैं और जिनमें पाण्डवोंकी प्रशंसा है, वे सब नवीन हैं। कौरवोंका नाम वेद-ब्राह्मणादिमें भी आता है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। कौरव शैव और पाण्डव वैष्णव थे। इन दोनों सिद्धान्तोंमें बराबर विरोध रहा। शैव-सिद्धान्तका बौद्धधर्मपर अवश्य कुछ प्रभाव जान पड़ता है। इसलिये सम्भव है कौरवोंने बुद्धके कुछ उपदेशोंको अपनाया हो। प्राचीन कालमें सूतोंके संघ रहते थे। इसमें किसी योग्य कविने किसी बौद्ध राजा, सम्भवत: अशोककी प्रशंसामें एक काव्य रच डाला। परंतु जब ब्राह्मणोंद्वारा बौद्धधर्मका पराभव हुआ, तब उन्होंने बहुत हेर-फेर करके इस काव्यको अपने साँचेमें ढाल लिया और कौरवोंकी सारी प्रशंसा पाण्डवोंके, जो उसके रक्षक थे, नाम कर दी। धीरे-धीरे इस महाकाव्यसे बौद्धधर्मका नाम ही उठ गया और यह एक वैष्णवग्रन्थ बन गया। जिस रूपमें 'महाभारत' आज उपलब्ध है, वह ईसवी सन्‌की बारहवीं शताब्दीसे अधिक प्राचीन नहीं हो सकता।"

जर्मन विद्वान् फान श्राडरने भी 'महाभारत'की आलोचना की है। उनका कहना है कि "जिस समय ब्रह्मा सर्वप्रधान देवता समझे जाते थे, उस समय ईसा जन्मसे ५०० वा ४०० वर्ष पहले महाभारतके आदि कविने जन्म ग्रहण किया। वह गायक कुरुभूमिका रहनेवाला था। उन्होंने लोगोंके मुखसे कुरुवंशके पराभव और एक अज्ञातपूर्व जातिके हाथसे उनकी पराजय-कहानी सुनी थी। उसी वियोगान्त घटनाके आधारपर उसने स्वदेशीय वीरोंको क्षात्रधर्मके मूर्तिमान् आदर्श तथा यादववीर कृष्णके साथ पाण्डव, मत्स्य आदि विजातियोंको नीच-कुलोद्भव और अन्यायरूपसे जयकारी बतलाकर चित्रित किया था। वही प्राचीन 'भारत' गान 'आश्वलायन' गृह्यसूत्रमें गाया गया है। उसके बहुत समय बाद जब कृष्णने अवतार लिया, तब पाण्डुवंशियोंकी सहायतासे कृष्णभक्त पुरोहितोंने बुद्धके विरुद्ध कृष्ण या विष्णुको खड़ा किया। उन लोगोंकी चेष्टा सफल हुई। चौथी शताब्दीमें विष्णु ही प्रधान देव हुए। उनके अनुरक्त पुरोहितोंने 'भारतकाव्य'से लेकर उसे बिल्कुल बदल डाला। उनके प्रधान सहायक पाण्डु-वंशधर थे। अतएव आदि 'महाभारत'में जहाँ-जहाँ उनकी अपकीर्तिका वर्णन था, वहाँ-वहाँ उनकी कीर्ति तथा उनके विपक्ष कुरुओंकी निन्दा की गयी। पाण्डुवंश यथार्थमें दाक्षिणात्य-वंशोद्भव होनेपर भी इस समय कुरुवंशकी एक शाखारूपमें माने गये।"

प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर भी इन्हीं दिनों 'महाभारतके' पीछे पड़े थे। सन् १८५९ में उनका 'प्राचीन संस्कृत साहित्यका इतिहास' प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने लासनके मतका कुछ अंशोंमें समर्थन करते हुए लिखा कि "महाभारत किसी एक कविकी कृति कभी नहीं हो सकता। रचयिता अवश्य मनुप्रोक्त धर्मके पक्के अनुयायी ब्राह्मण रहे होंगे। परंतु इसके लीपापोती करनेपर भी पाण्डवोंकी प्राचीन परम्परा जहाँ-तहाँ फूट ही निकलती है। बचपनमें पाण्डवोंकी ब्राह्मण-सम्प्रदायमें शिक्षा हुई। ब्राह्मणोंसे उनका बराबर संसर्ग रहा। पर तब भी पाँचों भाई एक ही स्त्रीसे विवाह कर बैठे। प्रत्यक्ष धर्मविरुद्ध इस घटनापर 'महाभारत'के ब्राह्मण सम्पादकोंने तरह-तरहके रंग चढ़ाये, पर यह दाग नहीं छिप सका। एक और बात है, प्रधानरूपसे केवल पहली ही स्त्री विवाहिता समझी जाती है और पतिके साथ सती होनेका उसे ही अधिकार होता है। परंतु पाण्डुने दो विवाह किये और उनके साथ सती हुई माद्री, न कि पहली स्त्री कुन्ती। यह भी धर्मविरुद्ध ही हुआ। प्राचीन शक, यवन, ट्यूटन आदि जातियोंमें यह प्रथा थी कि जिस स्त्रीके प्रति पतिका सबसे अधिक प्रेम होता था, उसीका पतिकी समाधि-पर वध कर दिया जाता था। यहाँ भी उसीकी झलक दिखायी पड़ रही है।"

डेन्मार्कके डाक्टर सोर्यनसेन वहाँके कोपेनहेगेन् विश्वविद्यालयके अध्यापक थे। सन् १८८३ में इन्हें भी 'महाभारत' के अध्ययनका शौक हुआ; बड़े परिश्रमके साथ कई वर्षोंमें उन्होंने 'महाभारत'में आनेवाले नामोंकी एक बृहद्वर्णानुक्रमणिका(इन्डेक्स)तैयार की, जो उस ग्रन्थके अध्ययनके लिये बड़ी उपयोगी है। डैनिश सरकारकी सहायतासे उनकी मृत्युके बाद इसका प्रकाशन सन् १९२५ में समाप्त हुआ। "महाभारत और भारतीय संस्कृतिमें उसका स्थान" शीर्षक निबन्ध लिखनेके कारण उन्हें 'आचार्य' पदवी मिली थी, उनका भी मत है कि "महाभारतका मूल कोई प्राचीन पौराणिक गाथा ही रही होगी। उसकी एकतासे यह सिद्ध होता है कि उसका रचयिता भी कोई एक ही व्यक्ति रहा होगा।" उसमें परस्पर विरोधी सिद्धान्त, पुनरुक्ति और बिना प्रसङ्गकी बातें नहीं आनी चाहिये; जो ऐसे अंश हैं, उन्हें प्रक्षिप्त समझना चाहिये—इस कसौटीपर कसते हुए विद्वान् लेखकको सात-आठ हजार श्लोकसे अधिक न मिल सके, जिनको उपलब्ध 'महाभारत' का मूल कहा जा सके।

बुहलर भी संस्कृतके अच्छे विद्वान् समझे जाते थे; वे भी जर्मन थे। बंबई प्रान्तके शिक्षा-विभागमें उन्होंने बहुत दिनोंतक काम किया था, कई संस्कृत ग्रन्थोंका उन्होंने जर्मनमें अनुवाद भी किया है। 'बंबई संस्कृत-ग्रन्थमाला' के निकालनेका श्रेय बहुत कुछ उन्हींको प्राप्त है, 'महाभारतके इतिहास' पर उन्होंने भी एक निबन्ध लिखा। संक्षेपमें उनका मत है कि "महाभारत कोई इतिहास या पुराण नहीं है, वास्तवमें वह एक स्मृति या धर्मशास्त्र है।' उनके सुयोग्य शिष्य जोजफ डालमान्ने उनके इस मतकी अपने ग्रन्थमें पूरी व्याख्या की है। १८९५ तथा १८९९ में बर्लिनसे उनके दो ग्रन्थ इस विषयपर प्रकाशित हुए। इसमें दूसरे ग्रन्थ 'जेनेसिस दे महाभारत' (महाभारतका मूल) में उन्होंने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि "कई पीढ़ियोंमें धीरे-धीरे इस महाकाव्यका विकास हुआ और समय-समयपर उसमें आख्यान जुड़ते गये, यह मत भ्रान्त है; वास्तवमें एक ही समयमें एक सम्पादकमण्डलद्वारा इसकी रचना हुई। सब विभिन्न आख्यान एक ही सूत्रमें पिरोये हुए हैं। इस तरह इसकी एकता प्रत्यक्ष है। वे लिखते हैं कि "वास्तविक युद्ध केवल कवि-की कल्पना है; यदि कोई हुआ होता तो उसका ऐतिहासिक प्रमाण मिलता। इसमें तो धर्म और अधर्मका युद्ध दिखलाया गया है, जो बराबर चलता रहता है। इस तरह यह केवल एक रूपक है, जिसमें पाण्डव धर्म और कौरव अधर्मके केवल प्रतिनिधिरूप हैं। पहले दो प्रकारका साहित्य रहा होगा—एक तो प्राचीन राजवंशोंकी पौराणिक गाथाएँ और दूसरे उपदेशपरक कविताएँ। सर्वसाधारणमें धर्म-प्रचारकी दृष्टिसे किसी कविमण्डलने इन दोनों भावोंको एक नवीन काव्यके रूपमें मिला दिया, पौराणिक अंशमें

उन्होंने कौरवोंके पतन और पाञ्चालोंके उत्थानका प्राचीन आख्यान ले लिया और विभिन्न धार्मिक उपदेशोंको स्पष्ट करनेके लिये बीच-बीचमें तरह-तरहके आख्यान जोड़ दिये। धार्मिक उपदेशमें द्रौपदीके पाँच पति अवश्य बाधा डालते हैं; पर यह केवल ऋतुओंका, जैसा कि लुडविग-का मत है, या सम्पत्तिके बँटवारेका रूपक हो सकता है।'' उन्होंने 'महाभारत'की क्रम-पुष्टिकी आलोचना करके दिखलाया है कि ''महाभारतके 'उपाख्यान' अंशका पहले नीतिकथाके रूपमें प्रचार था; किंतु उसमें दूसरे-दूसरे विषयोंका समावेश हो जानेसे वह ऐसा हो गया कि उसमें उपाख्यान-अंशको बाद देकर नीतिकथाको चुन लेना एक प्रकार असम्भव है। पितृहीन पाण्डवोंने दुष्ट दुर्योधनके हाथसे कष्ट पाकर आखिर महासमरमें स्वार्थ-साधन किया। अधर्मद्वारा धर्म-उत्पीडन और पीछे धर्मकी जयघोषणा करना ही नीति-कथाका उद्देश्य है। बादमें इस दृष्टान्तको अलंकारसे सजानेके लिये इसमें बहुत-सी बातें जोड़ दी गयीं। नायक युधिष्ठिर दुर्दशाके मारे कहीं अधीर न हो जायँ, इसलिये किसी कविने नलोपाख्यानकी सृष्टि की। इसी प्रकार किसी कविने गान्धर्व-विधानमें विवाहकी वैधता प्रमाणित करनेके लिये शकुन्तलोपाख्यान एवं आसुर विवाहके उदाहरण-स्वरूप माद्री, लक्ष्मणा, सुभद्रा, अम्बा और अम्बालिकाके हरणका समावेश किया। कदाचित् इसी प्रकार नियोग-प्रचारद्वारा संतानोत्पादनके दृष्टान्तस्वरूप पराशरद्वारा सत्यवतीके, व्यासद्वारा अम्बालिकाके और देवगणद्वारा कुन्ती-माद्रीके पुत्रलाभका विवरण प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त वैष्णव और शैव-धर्मकी प्रधानताकी घोषणा करनेके लिये दार्शनिक तत्त्व और अनेक प्रकारके उपाख्यानोंकी सृष्टि हुई।''

बार्थने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। उनके ग्रन्थ-संग्रहमें 'महाभारत'पर पाश्चात्त्य विद्वानोंके मतोंका अच्छा संकलन मिलता है। फ्रांसीसी विद्वान् सिल्वाँ लेवीने भी, जो प्राच्य विषयोंके अच्छे पण्डित माने जाते हैं, 'भण्डारकर-स्मारक' ग्रन्थके एक निबन्धमें अपना कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि ''कृष्णके अनुयायी क्षत्रिय राजाओंकी शिक्षा-दीक्षाके लिये इसकी रचना हुई थी। इस तरह यह एक नीति या धर्मशास्त्र-का ग्रन्थ है।''

विंटरनिजका 'भारतीय साहित्यका इतिहास' जर्मन-भाषामें सन् १९०७ में प्रागसे प्रकाशित हुआ। इसका श्रीमती केतकरने, जो एक जर्मन महिला हैं, अंग्रेजीमें अनुवाद किया, जो कलकत्ता-विश्वविद्यालयकी ओरसे सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ। यह बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें विंटरनिज लिखते हैं कि भारतयुद्धका ऐतिहासिक मूल सम्भवतः मानना ही पड़ेगा; पर एक साधारण घटना न लेकर आख्यानों तथा विभिन्न विषयोंका एक तूमार खड़ा कर दिया गया। भारतके प्राचीन साहित्यका निर्माण बहुत कुछ ब्राह्मणोंके हाथमें रहा। अथर्ववेदके प्राचीन जादू-टोनेके गीतोंमें उन्होंने अपने उपदेशोंको ऐसा घुसेड़ दिया कि अब उनको पहचानातक नहीं जा सकता। अपने उपदेशोंमें उपनिषदोंके ज्ञानको भी वे घसीट लाये, जो उनके ही बतलाये धर्मके विरुद्ध पड़ता है। वीर-गाथाओंका जैसे-जैसे सर्वसाधारणमें प्रचार बढ़ता गया, ब्राह्मण भी वैसे-ही-वैसे उनको अपने साँचेमें ढालनेके लिये उत्सुक होते गये। इन लौकिक गाथाओंमें अपने धार्मिक उपदेशोंका रंग लानेकी कलामें वे बड़े निपुण थे। इस तरह देव-देवियोंके आख्यानों, ब्राह्मण-सम्प्रदायके उपदेशों, दर्शनों और नीतियोंका 'महाभारत'में समावेश हो गया। समाजपर अपना प्रभुत्व दृढ़ करनेके लिये ब्राह्मणोंने प्राचीन लोकप्रिय गाथाओंका स्वागत किया। ये ब्राह्मण ही थे, जिन्होंने उनमें प्राचीन ऋषि-महर्षियोंके इतिहास भर दिये और यह दिखलाया कि अपने तप और यज्ञोंके बलसे वे केवल मनुष्यको ही नहीं, देवोंको भी प्रभावित कर सकते थे। वर और शापसे जिसको जो चाहे बना देनेकी उनमें सामर्थ्य थी। *यह करतूत विद्वान् वैदिकोंकी नहीं थी; यदि ऐसा होता तो 'महाभारत'में भी यज्ञादि क्रियाकलापकी भरमार होती। वास्तवमें यह करतूत थी पुरोहितोंकी, जो राजदरबारमें सूत-मागधोंकी तरह भरे रहते थे। यहाँ उन्हें वीर-गाथाओंके सुननेका अच्छा अवसर मिलता था। मन्दिरोंके पुजारी भी प्रायः ऐसे ही पुरोहित*

हुआ करते थे। शिव, विष्णु आदिके सम्बन्धमें जो कुछ उन्होंने सुना, उन सबको छन्दोबद्धकर 'महाभारत'में घुसेड़ दिया। जिन प्रदेशोंमें विष्णुकी उपासना बहुत चलती थी, वहाँ ऐसी गाथाओंका प्रचार भी अधिक था; इसलिये उन्होंने 'महाभारत'में प्राधान्य विष्णुके अवतार कृष्णको ही दिया। जब शैव प्रदेशमें भी उसका कुछ प्रचार हुआ, तब उसमें शिवाख्यानोंको भी जोड़ दिया गया। ब्राह्मण पुरोहितोंके अतिरिक्त इन दिनों एक वर्ग और था, जिसका भी तत्कालीन साहित्यके निर्माणमें हाथ था और जनसाधारणपर उसका प्रभाव भी पूरा पड़ता था। उन्होंने अपना एक विशेष साहित्य बना रखा था, जिसमें संसारको मिथ्या बतलाते हुए त्याग और वैराग्यका उपदेश दिया गया था। इन्हें समझानेके लिये उन्होंने पशु-पक्षियों, देव-दानवों, भूत-प्रेतोंकी कितनी ही कहानियाँ गढ़ डाली थीं। यह 'संत-साहित्य' भी अधिकांशरूपसे 'महाभारत'में समा गया।'' वे फिर लिखते हैं कि ''हमलोगोंके लिये, जो एक श्रद्धालु हिंदूकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि साहित्यके आलोचक इतिहासकारकी दृष्टिसे 'महाभारत'को देखते हैं, वह एक 'कलाकी कृति' कभी नहीं हो सकती। यह तो निश्चित है कि उसकी रचना किसी एकने नहीं की और संग्रहकर्ता भी चतुर नहीं था। 'महाभारत' सचमुच एक 'साहित्यिक दानव' है। यदि 'महाभारत'का रचयिता कोई एक ही व्यक्ति माना जायगा, जैसा कि कृष्ण-द्वैपायनको बतलाया जाता है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह एक साथ ही महाकवि और टुच्चा लेखक, एक चतुर साधु और मूर्ख एवं एक सुयोग्य कलाकार तथा पक्का नक्काल रहा होगा। इसके अतिरिक्त यह विचित्र व्यक्ति अत्यन्त परस्परविरोधी धार्मिक भावों और दार्शनिक सिद्धान्तोंमें विश्वास या उनका ज्ञान रखता होगा। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस काव्यके जंगलमें, जिसको साफ करना विद्वानोंने अब आरम्भ किया है, घास-फूस तथा लता-पत्तोंमें छिपे हुए सच्ची कविताके भी कुछ पौधे हैं। साहित्यके इस बेतुके ढेरमें अमर कला और गम्भीर बुद्धिके कुछ रत्न भी चमक रहे हैं।''

अंग्रेजीके विद्वानोंमें सर मानियर विलियम्सका, जिनका संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष प्रसिद्ध है, महाभारतकी ओर ध्यान गया। सन् १८९३ में प्रकाशित 'इण्डियन विज्डम' (भारतीय ज्ञान) नामक पुस्तकमें उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। वे लिखते हैं कि ''ब्राह्मण-सम्प्रदायका अड्डा अवध था, जो रामायणका निर्माणक्षेत्र है; परंतु उससे आगे कुरुपञ्चाल प्रदेशमें इस सम्प्रदायका अधिक प्रचार न था। इसलिये 'महाभारत'में बौद्ध नास्तिकवादकी गन्ध है। उसमें जिस समाजका वर्णन है, वह रामायणवर्णित समाजसे कम सभ्य है। रामायणकी अपेक्षा उसमें वर्णित धर्म-व्यवस्था अधिक लोकप्रिय, उदार तथा व्यापक जान पड़ती है। यह ठीक है कि उसके विष्णुका सम्बन्ध श्रीकृष्णसे है, जैसा कि 'रामायण'में श्रीरामचन्द्रसे। रामायणके नायक श्रीरामचन्द्र हैं; पर 'महाभारत'में श्रीकृष्णको वैसा स्थान प्राप्त नहीं है। उसमें तो उसीके पात्रोंको श्रीकृष्णके ईश्वरत्वमें प्रायः संदेह हो उठता है। पाण्डवोंमें कभी किसीको, तो कभी किसीको प्रधानता प्रदान की गयी है। किसी तरह शिव भी घुस आये, कभी वे कृष्णकी और कभी कृष्ण उनकी पूजा करते हैं। ये सब परस्परविरोधी बातें हैं। 'महाभारत'में वर्तमान हिंदू-धर्मका चित्र मिलता है, जिसमें अद्वैत तथा द्वैतवाद, अध्यात्म तथा भौतिकवाद, नियमोंकी कड़ाई तथा ढिलाई, पुरोहितवादका पक्षपात और उसका विरोध, वर्णभेदकी अनुदारता तथा असहिष्णुता और दर्शनोंके बुद्धिवादको घोट-पीटकर एकमें मिलानेका प्रयत्न किया गया है। यूनानी महाकवि होमरके 'इलियड' और 'ओडेसी' दोनों मिलाकर जितने बड़े काव्य हैं, 'महाभारत' उनसे अठगुना है; परंतु कलाकी दृष्टिसे 'महाभारत'की तुलना उनसे वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे कि दस सिर और बीस भुजा-वाले राक्षस रावणकी तुलना किसी सुन्दर सुडौल यूनानी पाषाण मूर्तिसे नहीं हो सकती। यदि यूनानी काव्यमें सादगी है, तो इस प्राच्य 'महाकाव्य'में भद्दी अतिशयोक्ति। हाँ, यह बात अवश्य है कि रणक्षेत्रमें भारतीय योद्धा यूनानियोंकी अपेक्षा उच्चकोटिकी उदारता, पूर्ण वीरता-का परिचय देते हैं और उनका गार्हस्थ्य-जीवन-चित्र भी अधिक आकर्षक है।'' इस प्रसङ्गमें वे एक जगह लिखते हैं कि 'जब 'रामायण', 'महाभारत' धर्मव्यवस्था

और प्राचीन परम्पराके पवित्र आगार नहीं माने जायँगे, तब भी हमें आशा है कि इसमें प्रदर्शित स्त्री-स्वातन्त्र्यका स्मरण करके भारतका पुरुषसमाज आधुनिक स्त्रियोंको उनकी प्राचीन स्वतन्त्रता प्रदान करेगा, जिसे प्राप्तकर वे ईसाई धर्मका शुभाशीर्वाद ग्रहण कर सकें और हमारे प्राच्य साम्राज्यके लिये वही करें जो उसने यूरोपके लिये किया, अर्थात् वहाँके लोगोंके आचरणको मृदु, शक्तिशाली तथा प्रतिष्ठित बनायें।'' सन् १८९९ में प्रकाशित 'संस्कृत-साहित्यके इतिहास'में मैकडोनेलने जर्मन विद्वान् डालमानके मतका ही समर्थन किया। वे लिखते हैं कि 'यह प्राचीन भागवतोंका धर्म ग्रन्थ है, जैसा कि इसके दूसरे नाम 'कार्ष्ण वेद'से प्रकट है।

सन् १९०१ में 'येल विश्वविद्यालय, अमेरिका'के संस्कृत अध्यापक वाशबर्न हापकिन्सकी पुस्तक 'दि ग्रेट एपिक' (महापुराण) प्रकाशित हुई। उसमें उन्होंने 'महाभारत'में वर्णित विषयोंका बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अन्तमें उन्होंने भी यही निश्चित किया कि ''प्राचीन गाथाओंमें कितने ही उपाख्यान और धर्मोपदेश जोड़-जाड़कर 'भारत'का 'महाभारत' बना दिया गया। प्राचीन गाथाएँ कुरु और पाञ्चालवंशसम्बन्धी हैं; पाण्डव-गाथाएँ भी प्राचीन हैं, पर वे बादकी हैं। 'महाभारत'में दोनोंको मिलानेका प्रयत्न किया गया है। पाण्डुवंशके पुरोहितोंने पाण्डुवंशकी विजयघोषणाके समय उनका गौरव बढ़ानेके लिये ही कुरुवंशको वेदका प्रभावशाली कुरु बतलाया था, और इसी कारण इन्होंने वेदके धृतराष्ट्रको राजा कुरुकी जगह बैठाया है। यथार्थमें वेदोक्त धृतराष्ट्रके बहुत पीछे पाण्डुवंशका अभ्युदय हुआ। इसी प्रकार वे ब्राह्मणोक्त जनमेजयको वर्तमान भारतके नायकका पुत्र बतलानेसे बाज नहीं आये। वे जानते थे कि जो जितने पुराने हैं, उनका उतना ही आदर होता है और जिनका जितना आदर होता है, वे उतना ही उत्तरोत्तर गौरव-प्रकाशक हैं। इस महाकाव्यकी परीक्षा करनेसे ज्ञात होगा कि दो कारणोंसे इस महाकाव्यका आकार बड़ा हो गया। पहला कारण है महाकाव्यके बीच-बीचमें उपाख्यानादिका समावेश और दूसरा अस्वाभाविक रूपमें अभिनव घटनाओंका संयोजन।

मिस्टर ग्रियर्सनके नामसे हम सभी परिचित हैं। सन् १९०८ में 'जर्नल ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी'में प्रकाशित एक लेखमें उन्होंने अपना मत प्रकट किया। उनका कहना है कि ''प्राचीन भारतमें ब्राह्मण-क्षत्रियोंका झगड़ा बराबर चलता रहा। मध्यप्रदेशमें ब्राह्मणोंका जोर था, पर कुरुप्रदेशोंमें अधिक स्वतन्त्रता थी। पञ्चालमें बहुपति-विवाह भी जायज समझा जाता था। पञ्चाल देशके राजा द्रुपदने द्रोणाचार्यका अपमान किया था, जिन्होंने कौरवोंके यहाँ शरण ली। उसी अपमानका बदला चुकानेके लिये कौरव-पाञ्चालोंमें युद्ध हुआ। इस तरह 'महाभारत' कौरव-पाण्डवोंका नहीं, कौरव-पाञ्चालोंका युद्ध था।' सर बेरिडेल कीथने भी भारतीय साहित्यका बहुत अध्ययन किया और उसका एक इतिहास भी लिखा है। उनका कहना है कि 'बहुपति-विवाह'की प्रथासे जान पड़ता है कि पाण्डव मंगोलियन थे, अन्य कई विद्वानोंने भी यही लिखा है। सन् १८९६ में प्रकाशित 'ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्स' (पश्चिमोत्तर प्रान्तकी जातियाँ) नामक ग्रन्थमें कूकने भी ऐसा ही लिखा है और जर्मन विद्वान् मायर्सने 'सेक्सुअल लाइफ इन् एन्शेण्ट इण्डिया' (प्राचीन भारतमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध) नामक पुस्तकमें इसी मतकी पुष्टि की है। सन् १९३५ में विद्वान् हेल्डकी भी एक पुस्तक 'दि महाभारत ऐन ऐन्थ्रालाजिकल्स्टडी' हालैंडसे प्रकाशित हुई। इसमें जाति, कुल, वंश आदिकी प्राचीन परम्पराओंके आधारपर महाभारतका अध्ययन किया गया है, और यह दिखलाया गया है कि पञ्च पाण्डव दुर्योधनादिके चचेरे भाई न थे, भारत-युद्ध वास्तवमें भिन्न-भिन्न जातियोंका द्यूतके कारण युद्ध था। रूसी भाषामें 'महाभारत' का अनुवाद सन् १९४२ से हो रहा था, अब वह पूरा हो गया है। कम्युनिस्ट रूसी विद्वानोंका 'महाभारत'के सम्बन्धमें क्या मत है, यह अभी पढ़नेको नहीं मिला; सम्भवतः उसे शोषक-शोषित युद्धका ही रूप उन्होंने दिया होगा।

जिस महाभारतके लिये कहा गया है कि इस इतिहासरूपी दीपकने अँधेरेको हरकर सम्पूर्ण भुवनरूपी गुहामें उजेला कर दिया; जिसके लिये यह प्रतिज्ञा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो इसमें है, वह

अन्यत्र नहीं और जो इसमें नहीं, वह कहीं भी नहीं,' उसी 'महाभारत'के सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंका ऐसा मत है। उसपर उनका पूरा साहित्य तैयार हो गया। उस बड़े ढेरमेंसे यहाँ कुछ ऐसे विद्वानोंके मत दिये गये हैं, जो संस्कृत-साहित्यमें अपने प्रखर पाण्डित्यके लिये प्रसिद्ध हैं। ऐसे साहित्यको पढ़कर किसीको 'महाभारत'में क्या श्रद्धा रह सकती है ? परंतु हमारे विद्यालयोंमें आजकल यही सब पढ़ाया जाता है। हमारे यहाँके नवीन विद्वानों-पर इसीकी छाप लगी हुई है। रायबहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्यने 'महाभारतमीमांसा'में अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ताका परिचय दिया है। उसमें उन्होंने वेबर, हापकिन्स आदिके कुछ मतोंका अवश्य खण्डन किया है; पर 'महाभारत'की रचनाशैली, उसके निर्माता तथा निर्माण-कालके सम्बन्धमें उनका मत भी पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे मिलता-जुलता है । द्रौपदीके पाँच पतियोंकी कथा वे भी हजम नहीं कर सकते। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं—"एक स्त्रीके अनेक पति करनेकी प्रथा पहले उन चन्द्रवंशी आर्योंमें थी, जो हिमालयसे नये-नये आये थे; द्रौपदीके उदाहरणसे यह बात माननी पड़ती है। आजकल भी हिमालयकी ओर पहाड़ी लोगोंमें जहाँ-तहाँ यह प्रथा जारी है। महाभारतकारके लिये द्रौपदीके पाँच पति होना एक पहेली ही था; और इसका निराकरण करनेके लिये सौतिने 'महाभारत'में दो-तीन कथाएँ मिला दीं।" प्रोफेसर ठडानाने बड़े परिश्रमके साथ पाँच जिल्दोंमें 'मिस्ट्री आफ दि महाभारत' (महाभारतका रहस्य) नामक पुस्तक लिखी है; पर इसमें भी जर्मन विद्वान् डालमानके मतकी छाया स्पष्ट झलक रही है ।

पाश्चात्योंका ध्यान बहुत कुछ प्राचीन ग्रन्थोंकी बहिरङ्ग-परीक्षाकी ओर रहता है। उन्हें किसने लिखा, कब लिखा और कैसे लिखा—इन सब बातोंकी छानबीन बड़े परिश्रम-से की जाती है। यह भी आवश्यक है; क्योंकि प्रत्येक ग्रन्थका देश-कालके साथ सम्बन्ध रहता ही है। पर उस ग्रन्थकी मुख्य शिक्षा क्या है, किस ध्येयसे वह लिखा गया—इस ओर उनका ध्यान नहीं जाता। सन् १९१२में डाक्टर ओटो स्ट्रासकी एक पुस्तक फ्लोरेंससे प्रकाशित ो, जिसका नाम है 'एथिक्स प्राबलम आउस देम महाभारत' अर्थात् (महाभारतकी नैतिक समस्याएँ)। उसमें उन्होंने बहुत कुछ लिखा है और अन्ततः जिस निष्कर्षपर पहुँचे हैं, वह यह है कि 'महाभारतमें रोचक सामग्री तो बहुत है, पर दार्शनिक महत्त्वकी नाम-मात्र ही।'

पाश्चात्योंके विद्याव्यसन, अनुसंधान, उनकी अनोखी सूझ, लगन और धुनकी हम प्रशंसा करते हैं; परंतु जब वे हमारे शास्त्र, इतिहास, पुराणोंकी—जो सर्वथा लौकिक नहीं कहे जा सकते—छान-बीन करने बैठते हैं, तब वे उलटे ही परिणामपर पहुँचते हैं। अनुसंधानकी वेदीपर हमारे इन पवित्र ग्रन्थोंकी छीछालेदर हुई है। क्या कोई मनुष्यकी हड्डी-पसली पीसकर उसके प्राणोंका पता लगा सकता है ? क्या बिना वैसे संस्कारोंके, बिना अधिकार और योग्यताके शास्त्रोंके गूढ़ रहस्योंको समझ सकता है। फिर यह सारा अनुसंधान किसी गूढ़ उद्देश्यसे भी खाली नहीं है, केवल 'ज्ञानके लिये ज्ञानकी उच्च भावनासे यह प्रेरित नहीं है। भारतमें अंग्रेजी शिक्षाके प्रबल प्रचारक लार्ड मैकालेने लिखा है कि हिंदुओंको ईसाई बनानेके लिये हिंदू-धर्मके खण्डनकी आवश्यकता नहीं, पाश्चात्य शिक्षा पाये हुए किसी भी हिंदूको मूर्तिपूजन आदिमें विश्वास नहीं रह जायगा। और तो और, स्वयं मैक्समूलर, जो अपने भारत-प्रेमके लिये प्रसिद्ध हैं, अपनी 'आत्मकथा' में लिखते हैं कि 'वेद-मन्त्र दकियानूसी और निरर्थक हैं। जिस वातावरणमें हम रह रहे हैं, उसमें मँडराते रहनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं। अजायबघरोंमें उन्हें प्रतिष्ठित पद देनेके लिये हम तैयार हैं, परंतु हम कभी अपने जीवनको उनके द्वारा प्रभावित नहीं होने दे सकते।' दूसरी पुस्तक 'चिप्स फ्राम दि जर्मन वर्कशाप'में वे और खुलकर लिखते हैं कि "वेद हिंदू-धर्मकी चाभी हैं; और उनका अच्छा ज्ञान—उनके दृढ़ तथा दुर्बल स्थानोंका ज्ञान धर्मके विद्यार्थियोंके लिये—विशेषतः ऐसे मिशनरियों-के लिये अनिवार्य है, जिन्हें ईसाई बनानेकी उत्कट इच्छा है। ऐसी दशामें यही बात मनमें आयी कि भारतवर्षमें ईसाई-धर्मके प्रचारकोंके कामकी चीज वेदके एक संस्करणसे बढ़कर और कुछ न होगा।" ऐसे वाक्यों-

से इन विद्वानोंके मनके भावोंका पता लगता है। हमारे यहाँके शास्त्रोंका अनुवाद करना, उनपर लंबी-चौड़ी आलोचनाएँ लिखना—इन सबका प्रायः उद्देश्य होता है इनकी पोल खोलकर धार्मिक या राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करना। निष्पक्षताका ढोंग रचनेके लिये बीचमें कहीं-कहीं प्रशंसाके वाक्य भी डाल दिये जाते हैं। 'रामायण', 'महाभारत' आदि हमारे लिये किसी समय जीवित इतिहास थे। बचपनसे हमारे कानोंमें उनकी कहानियाँ पड़ती थीं, खेलोंमें हम उन्हींको खेलते थे, गीतोंमें हम उन्हींको सुनते थे, नाटकोंमें हम उन्हींको देखते थे; पर आजकल हमें बतलाया जा रहा है कि 'ये सब कवियोंकी कोरी कल्पनाएँ हैं।' यदि इतिहासका प्रभाव हमारे जीवनपर नहीं पड़ता तो उससे लाभ ही क्या? गड़े मुर्दे खोदनेमें क्या रखा है? इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने पवित्र ग्रन्थोंके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य विद्वानोंके मतोंसे सदा सावधान रहें।

महाभारतमें मानमनिरोध तथा ब्रह्मचर्यकी महिमा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

वेदोंमें आता है कि ब्रह्मचर्य एवं तपके द्वारा देवताओंने मृत्युपर विजय पायी—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मपाघ्नत।' (अथर्ववेद) छान्दोग्योपनिषद् (२।२३।१) में नैष्ठिक ब्रह्मचारीके अमर होनेकी बात कही गयी है—'ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयो····ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।' दक्षस्मृतिमें इस ब्रह्मचर्यके आठ भेद बतलाये गये हैं, जिसमें स्त्रियोंको स्मरण करना, उनकी बात करना, उनसे हँसी-मजाक करना, उन्हें ध्यानसे देखना, उनसे रहस्यकी बात करना, कामका संकल्प; निश्चय तथा उसका आचरण करना—ये सब सम्मिलित हैं।

ऊपरके इन आठ भेदोंपर ध्यान देनेसे पता लगता है कि मनसे स्त्रीका चिन्तन करना, उनमें भोगबुद्धि करना—यह आठोंमें सम्मिलित है। इसीलिये महाभारतमें स्त्री-चिन्तन या काम-संकल्पको ही प्रधान काम तथा सारी कामनाओंकी जड़ बतलाया गया है। 'मंकी-उपाख्यान'में अत्यन्त विरक्त होकर मंकी कहते हैं—

'काम जानामि ते मूलं संकल्पात् किल जायसे।
संकल्पं न करिष्यामि ततो त्वं न भविष्यसि॥'

(शान्तिपर्व १७७। २५)

इसलिये महाभारतके मोक्षधर्म तथा योगवासिष्ठ आदि वेदान्तग्रन्थोंमें मनकी पूर्ण विश्रान्ति, पूर्ण अन्तःशीतलताको ही वास्तविक ब्रह्मचर्य कहा गया है। 'योगदर्शन'में भी चित्तवृत्तिके रोकनेको ही परम योग कहा गया है (१।१)। गीता (२।५८) तथा भागवतमें भी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन तथा उद्धवसे कहते हैं कि मनको चारों ओरसे समेट लेना, अपने वशमें कर लेना ही परम योग है—'एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः।' (भागवत ११। २०। २१) इसी ग्रन्थमें अन्यत्र कहा गया है कि सभी शास्त्रोंका तात्पर्य मनके निरोधमें ही है और मनके निरोधका भी तात्पर्य भगवान्‌में उसे स्थिर कर देनेमें है; यदि यह न हुआ तो सब परिश्रम व्यर्थ हुआ—'तदन्ता यदि नो योगा सर्व एव श्रमावहाः।' (७। १५)।

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां
क्षेमस्य सम्यग्विमृशेषु हेतुः।
असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि
दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या॥

(४। २२। २१)

महाभारतरूपी महासागरके सर्वश्रेष्ठरत्न गीतामें प्रशान्तमनवाले योगीके सुखको सर्वोत्तम कहा गया है—'प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्' (६।२७)। इस सुखको वहाँ अतीन्द्रिय, बुद्धिग्राह्य तथा आत्यन्तिक कहा है—'सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।' (६।२१)। महाभारत, शान्तिपर्वके व्यास-शुक-संवादमें बतलाया गया है कि मनको अमन कर देनेसे—कहीं भी जानेसे रोक देनेसे जो सुख तथा आनन्द मिलता है, उसे किसी भी दूसरे उपायसे नहीं प्राप्त किया जा सकता—

निष्प्रचारं मनः कृत्वा प्रतिष्ठाप्य च सर्वशः।
यामयं लभते तुष्टिं सा न शक्याऽऽत्मनोऽन्यथा॥

(२५१। १७)

मनके माहात्म्यसे योगवासिष्ठ तो भरा पड़ा है। इस सम्बन्धमें उसके उत्पत्ति-प्रकरणके ४२ तथा ११० अध्याय बड़े ही महत्त्वके हैं। स्थिति-प्रकरणके पैंतीसवें अध्यायमें कहा गया है कि सर्वोपद्रवकारी इस संसाररूपी दुःखकी एकमात्र यही दवा है कि उसका चिन्तन बंद किया जाय—मनको रोका जाय—

संसारस्यास्य दुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः।
उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहः॥
(योगवा० स्थिति० ३५ । २)

अन्तःशीतलचित्तको इस ग्रन्थमें जीवन्मुक्त कहा गया है—

अन्तःशीतलचित्तो हि मुक्त इत्यभिधीयते।
(योगवा० निर्वाण, उत्तरा० १२५ । ३५)

ब्रह्मचर्य-रहस्य

संतोंने प्रायः मनको मतङ्गसे तथा कामको अग्निसे उपमा दी है—कामरूपी अग्निका चिन्तन करते ही यह मन जलने लगता है—

मन करि बिषय अनल बन जरई।
कामाग्निना स च रुषा च सुदुर्भरेण।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घी ते।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।
(मनु० विष्णु० महा० आदि)
रात्रौ न कुरुते निद्रां कामाग्निपरिखेदितः।
(पद्मपुराण, भूमि० ६६ । ११०)
विशालविषयाटवीवलयलग्नदावानल-
प्रसृत्वरशिखावलीविकलितं मदीयं मनः।
(करुणालहरी ५९, भामिनीविलास ४ । १)

मनमें काम आदिकी उत्पत्ति मूर्खको भले ही सरस जान पड़े; किंतु अन्तर्मुख, शान्तिके साधकके लिये तो वह बड़ा ही अशान्तिकर, उद्वेजक, आन्दोलक तथा उपद्रव-सा प्रतीत होता है। इससे स्पष्ट ही मन जलता हुआ जान पड़ता है। इस जलनसे एक प्रकारका आत्मीय ह्रास होता है, जो जीवकी मृत्युका कारण होता है। योगवासिष्ठके भुशुण्डोपाख्यानमें बतलाया गया है कि कामादिसे अनुपहत, प्रशान्तचापल्य, वीतशोक, शान्त एवं स्वस्थ मन होनेके कारण ही उन (काकभुशुण्ड) का महाप्रलयमें भी नाश नहीं होता—

प्रशान्तचापलं वीतशोकं स्वस्थं समाहितम्।
मनो मम मुने शान्तं तेन जीवाम्यनामयः॥
आशापाशविनुन्नायाश्चित्तवृत्तेः समाहितः।
संस्पर्शं न ददाम्यन्तस्तेन जीवाम्यनामयः॥
(योगवा० निर्वाण० पूर्वा० २६ । १६, ३१)

इसीलिये ब्रह्मचर्यको जीवन तथा कामुकताको मरण कहा गया है। इसीलिये परदारचिन्तन तथा संयोगको मनु तथा महर्षि वाल्मीकिने सर्वोपरि पाप तथा सर्वाधिक अनायुष्यकर बतलाया है—

नहीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥
(मनु०)
परदाराभिमर्शात्तु नान्यत् पापतरं महत्।
(वाल्मी० ३ । ३८ । ३९)
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्।
(वाल्मी० ५ । २१ । ९)

वास्तविक स्थिति

नारदपरिव्राजकोपनिषद्, महोपनिषद्, महाभारत शान्तिपर्व, योगवासिष्ठके मुमुक्षु, व्यवहार तथा वैराग्य-प्रकरण एवं पद्मपुराण, भूमिखण्डके ६६ वें अध्यायोंमें विषयोंकी हेयता तथा निस्सारता दिखलायी गयी है। शिवपुराणकी वायवीय संहितामें कहा गया है कि जैसा सुख अपानवायुके छोड़नेमें होता है, विषय-संभोगमें उससे रंचमात्र भी अधिक सुख नहीं है—

यादृशं मन्यते सौख्यं गण्डे पूतिविनिर्गमात्।
तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते॥
(शिवपुराण, वायवीय० २३ । २७)

महाभारतमें बार-बार आता है कि पृथ्वीके सारे अन्न, धन, सोना, पशु तथा उत्तम स्त्रियाँ एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं (अर्थात् भोगोंसे मन तृप्त नहीं हो सकता)—यह सोचकर शान्त हो जाना चाहिये, मनको रोक लेना चाहिये—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
सर्वं नैकस्य पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥
(महा० आदि० ८५ । १३ आदि)

मानसनिरोधका उपाय

मानसनिरोधके उपायोंको बतलाते हुए महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्ममें बतलाया गया है कि जैसे मशकमें

कहीं एक जगह भी छेद हो जानेसे सारा पानी बह जाता है, उसी प्रकार साधककी कोई भी इन्द्रिय यदि विषयमें प्रवृत्त हुई तो उसका शास्त्रीय ज्ञान लुप्त हो जाता है। अतः जैसे मछुआ पहले उस मछलीको पकड़ता है, जो जालको ही काट डालती है, वैसे ही साधकको पहले मनको ही वशमें करना चाहिये। तत्पश्चात् सभी इन्द्रियोंको मनमें, मनको बुद्धिमें और बुद्धिको परमात्मामें लीन कर दे। इस प्रकारके अभ्याससे थोड़े समयमें ही ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है—

जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यदेकं छिद्रमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवते प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्॥
मनस्तु पूर्वमादद्यात् कुमीनमिव मत्स्यहा।
पञ्चेन्द्रियाणि संधाय मनसि स्थापयेद् यतिः।
यदैतान्यवतिष्ठन्ति मनःषष्ठान्यथात्मनि॥
प्रसीदन्ति च संस्थाय तदा ब्रह्म प्रकाशते॥

(महा० शा० २४० । १५-१६, १८-१९)

साधक मनको उद्विग्न कभी न होने दे। जिस उपाय (प्राणायाम, जप, सत्सङ्ग, विचार आदि) से भी चञ्चल मनको रोका जा सके, उसका अभ्यास करे। वह नियमित भोजन करे। क्योंकि मनुष्य सभी इन्द्रियोंको जीतकर भी तबतक जितेन्द्रिय नहीं होता, जबतक रसको जीत नहीं लेता—

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान्।
न जयेत् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे॥

(श्रीमद्भा० ११ । ८ । २१)

साधकको जन-समूहसे साँपकी तरह, मिष्टान्न-भोजनसे नरककी तरह तथा स्त्रीसे मुर्देकी तरह डरना चाहिये—

अहेरिव गणाद् भीतः सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

(म० शा० २४५ । १३)

तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु।

(पार्वतीमङ्गल)

वह सबके प्रति समभाव रखे, सर्वत्र अनासक्त रहे। इस प्रकार स्वस्थ तथा शान्त चित्तवाले योगीको छः महीनेतक सदा ध्यान करनेसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है—

एवं स्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥

(महा० शा० २४० । ३२)

साधक रजोगुणकी वृत्तियोंको रोक रखे। स्त्रियोंकी बात न सुने। मनमें कामविकार उत्पन्न हो जानेपर कृच्छ्रव्रत करे। स्वप्नदोष हो जानेपर जलमें गोता लगाकर अघमर्षणका जप करे। हृदयमें एक मनोवहा नाड़ी है, जो संकल्पमात्रसे शुक्रको सारे शरीरसे खींचकर बाहर निकाल देती है। स्वप्नमें इसीलिये वास्तविक स्त्रीसंसर्ग न होनेपर भी केवल संकल्पके प्रभावसे ही मनोवहा नाड़ी वीर्यको बाहर निकाल देती है—

स्वप्नेऽप्येवं यथाभ्येति मनःसंकल्पजं रजः।
शुक्रं संकल्पजं देहात् सृजत्यस्य मनोवहा॥

(महा० शा० २१४ । २२)

निष्कलङ्क ब्रह्मचर्य पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको स्वप्नके दोषोंको समझकर बहुत कम सोना चाहिये या निद्राका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि स्वप्नमें जीव प्रायः रज या तमसे ही घिरा रहता है। योगाभ्यास तथा विचार करनेसे जागनेमें सहायता मिलती है—

निष्कल्मषं ब्रह्मचर्यमिच्छता चरितुं सदा।
निद्रा सर्वात्मना त्याज्या स्वप्नदोषानवेक्षता॥
स्वप्ने हि रजसा देही तमसा चाभिभूयते।

(महा० शा० २१६ । १-२)

उपसंहार

वस्तुतः ब्रह्मचर्य यथानाम ब्रह्मप्राप्तिका साधन है। गीता तथा कठोपनिषद्में यह बात बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कही गयी है—'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।' श्रीमद्भागवतके गजेन्द्रमोक्षके—

'चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने'

इस कथनका भी यही तात्पर्य है। इस श्लोकमें आये 'अव्रणव्रत' का अर्थ प्रायः सभी टीकाकारोंने 'निश्छिद्र ब्रह्मचर्यव्रत' किया है। शास्त्रोंमें इसकी बड़ी महिमा है। इसीके प्रभावसे हनुमान्, भीष्म आदि इतने मेधावी एवं पराक्रमी होकर सफल व्यक्तित्व लाभ कर सके थे। इसपर 'विष्णुधर्मोत्तर'के ३ । २५८ तथा २ । ८६ आदि कई स्वतन्त्र अध्याय ही हैं। इसमें तो 'यथाभीष्टमवाप्नोति ब्रह्मचर्येण मानवः' (३ । २५८ । ४) से ब्रह्मचर्यको सर्वार्थसाधक बतलाया है। प्राचीन महर्षियों तथा राजर्षियोंकी दीर्घ आयु, तेज तथा सद्गुणशालिताका मूल कारण ब्रह्मचर्य था। इसलिये प्रत्येक द्विजातिको नियमित रूपसे गुरुकुलमें २५ वर्षोंतक इस

व्रतका पालन करना पड़ता था। कई लोग मोक्षकी इच्छासे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाते थे। फलतः राष्ट्रमें सभी प्रकारके सुयोग्य व्यक्ति तथा पदार्थ उपलब्ध होते थे।

पर आजकी तो संतति-नियमनकी योजना ब्रह्मचर्यका खुला उपहास है। इसमें सभी सम्भाव्य उपायोंसे ऐसा प्रयत्न किया जाता है जिसमें संतान न हो, पर इन्द्रिय-तर्पण हो जाय। विधवाविवाह, असवर्णविवाह, युवक-युवतियोंकी सहशिक्षा, समानाधिकारका नाटक, मिलने-जुलनेकी खुली छूट—यह सब भारतीय परम्पराके प्रतिकूल, अवाञ्छनीय वर्णसंकरवर्धक तथा ब्रह्मचर्य-विरोधी विनाशकारी कार्य हैं। इनका भीषण परिणाम भी सामने है। पाश्चात्य राष्ट्रोंके अनुगमनका परिणाम प्रलयको समीप बुला रहा है। जिस भौतिक सुखके लिये हमने अपना आदर्श छोड़ा, वह भी हमसे दूर हो गया। भोजन-वस्त्रके लिये भी लाले पड़ रहे हैं। हजारों स्त्री-पुरुष भूखसे काल-कवलित हो रहे हैं, पर दूसरे लोग निश्चिन्त हैं। बहुत-से लोग तो आज ईर्ष्याको उन्नति मानकर गर्व कर रहे हैं। आज परदाराभिमर्श, भीषण व्यभिचारको भी लोग पाप नहीं मानते। इसे व्यक्तिस्वातन्त्र्य समझा जाता है। यह सब देख-सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है। पर इसका उपाय क्या है? एकमात्र भगवान्‌के चरण ही अब शरण हैं। वे सत्य-संकल्प, सत्यवचा हैं। उनकी धर्मरक्षाकी प्रतिज्ञा कभी असत्य नहीं होगी, इतना ही विश्वास है। यद्यपि आजके युगमें ब्रह्मचर्य तथा धार्मिकता विशुद्ध मूर्खताकी निशानी समझे जाते है तथापि हमारी ईश्वर तथा धर्मपर विश्वास रखनेवाली जनतासे प्रार्थना है कि वह सर्वात्मा प्रभुके शरण होकर धर्म, ब्रह्मचर्य आदिका अनुष्ठान करे। वह समय अब दूर नहीं जब कि एक बार भगवान् इन पापियोंको उचित शिक्षा देकर पुनः धर्मकी संस्थापना करेंगे।

महाभारतपर कुछ विचार*

(लेखक—स्वनामधन्य पं० श्रीकरुणाशङ्करजी शास्त्री)

महाभारतकी महत्ता

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

(महाभारत १। ६२। ५३)

'हे भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जिन-जिन विषयोंका समावेश महाभारतमें हुआ है, वे ही विषय अन्य ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं; और जो विषय इसमें नहीं हैं, वे अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं।'

भारतवर्षमें महाभारत सारस्वत नन्दनवनका धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी विविध फलोंको प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष है, ज्ञानसिन्धुको उल्लसित करनेवाला चन्द्र है, विविध कथारूपी रत्नोंका रत्नाकर है, रस-समूहका रसायन है, धर्मोत्पत्तिका अक्षय क्षेत्र है, आनन्दका उदधि है, महापुरुषोंका अक्षय शरीर है, अज्ञानान्धकारमें निमग्न पुरुषोंको प्रकाश देनेवाला सूर्य है तथा भवाटवीमें भटकनेवालोंके हेतु विश्वसनीय मार्गदर्शक है। इतना ही नहीं, इस ग्रन्थको हम चाहे जितने शुभ विशेषण प्रदान करें, यह उन सबका पात्र है। भारतवर्षकी आर्य-प्रजाको वर्तमान स्थितिमें भी अभिमान करने योग्य, प्राचीन महर्षियोंकी ओरसे शास्त्र-सम्पत्तिका जो अमूल्य उत्तराधिकार प्राप्त है, उसमें महाभारत एक विविध प्रभापुञ्जका प्रसारक हृदयाह्लादक महामणि है। आर्य-जातिके आचार, विचार, व्यवहार और धर्मका रहस्य, अर्थशास्त्र, नियामक कामशास्त्र, वर्णाश्रमके सामान्य धर्म और विशेष धर्म, स्त्री-धर्म, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा आदिके पारस्परिक धर्म, राजनीति, सामान्य नीति, कपट-नीति, युद्ध-कला, युद्ध-समयमें नगर आदिकी व्यवस्था, विविध कौशल, सृष्टि-सौन्दर्य, अध्यात्मज्ञान तथा सर्वनियामक परमेश्वरका निरूपण—इत्यादि सब विषयोंको एक ही ग्रन्थमें देखना हो तो महाभारतको देख लीजिये। इसी हेतुसे एक जनोक्ति प्रसरित है—'यन्न भारते तन्न भारते।' अर्थात् जो महाभारतमें नहीं है, वह भरतखण्डमें भी नहीं है। महाभारत यद्यपि वीररसप्रधान काव्य है, तथापि इसमें अन्य-रसोंकी भी इतनी अधिक रेलपेल है कि इसके किसी भी भागको पढ़ते समय रसिक हृदय उसे छोड़ना नहीं चाहता। सचमुच यह विविध ज्ञानकी समृद्धिसे समृद्ध है, और इसी कारण इसने अपने विभिन्न स्वरूपोंसे विद्वानोंको तथा निरक्षरोंको, नागरिकोंको तथा ग्रामीणोंको, बालकोंको तथा वृद्धोंको और स्त्रियोंको तथा पुरुषोंको अपनी ओर आकर्षित किया है। कदाचित् ही कोई ऐसा स्थान होगा, जहाँ इसके नामको अथवा

---

* गुजराती महाभारतकी भूमिकामें प्रकाशित लेखका कुछ अंश—सम्पादक।

इसके एकाध प्रसङ्गको जाननेवाला कोई न हो। अपने भारतवर्षके लोग इसके प्रति प्रीति और ममता रखें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है; सारे इतिहासवेत्ता पाश्चात्त्य पण्डितोंको भी इस ग्रन्थने ऐसी भूल-भुलैयामें डाला है, जिसके कारण वे लोग इस ग्रन्थके पीछे बहुत मन्थन कर गये हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। एक यूरोपियन पण्डितको किसीने महाभारतकी योग्यताके विषयमें पूछा तो उसने उत्तर दिया—'यह ग्रन्थ इतना उत्कृष्ट है कि मुझे इस भारत (महाभारत) के बदलेमें भारत (भारत देश) मिले, तो भी मैं भारत (ग्रन्थ) को न छोड़ूँ।

महाभारत रहस्य-ज्ञानका भंडार है

महाभारतमें सनत्सुजात, बन्धूपाख्यान, अनुगीता, मोक्ष-धर्म, विष्णुसहस्रनाम आदि पवित्र करनेवाले अनेक रहस्य-ज्ञानके भंडार भरे हैं। इससे भी यह ग्रन्थ महापूज्य है। अजी, दूसरी बातोंको जाने दें और केवल इसके अन्तर्गत भगवद्गीता नामक रहस्यपूर्ण पर्वविभागपर दृष्टिपात करें, तो भी इस ग्रन्थका गौरव सहज ही ध्यानमें आ जायगा। जिसके ऊपर विभिन्न भाषाओंमें अनेकानेक रहस्यभरी टीकाएँ लिखी गयी हैं, लिखी जा रही हैं और लिखी जायँगी, तथापि जिसके रहस्यका पार नहीं है, और न पार लगनेवाला है, जिसके ऊपर अनेकों व्याख्याता वर्षों-वर्षों व्याख्यान दिया करते हैं, तिसपर भी जिसके भीतरसे कोई-न-कोई नया रहस्य निकला ही करता है, जो प्रस्थान-त्रयमेंसे एक प्रस्थान है, शंकराचार्य आदि अनेकों आचार्योंने जिसके ऊपर भाष्य रचे हैं, प्रमाण देनेमें आचार्य लोग जिसका स्मृति नामसे प्रयोग करते हैं, जिसके वाक्य महा-प्रमाणरूप माने जाते हैं, जो ग्रन्थ लाखों मनुष्योंके मनके ऊपर गौरवपूर्ण छाप डाल रहा है, जो कर्म, उपासना और ज्ञानके सच्चे रहस्यको समझाता है और जिसने असंख्य जिज्ञासुओंको अपनी मोहिनी रागिनीमें फँसा रखा है, वह भगवद्गीतारूपी अनुपम ग्रन्थ भी महाभारतरूपी रत्नहारमें मध्यमणिके स्थानपर शोभा देता हुआ महाभारतके गौरवकी सूचना देता है।

मुख्य पर्व और अवान्तर पर्व

महर्षि कृष्ण द्वैपायनने कलिके आरम्भमें देश, काल, धर्म तथा आयुष्य आदिकी गम्भीर स्थितिको देखकर, परम कृपा-पूर्वक सबके कल्याणके लिये इस ग्रन्थका निर्माण किया। इस ग्रन्थको राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें राजाके पूछनेपर महर्षि व्यासकी आज्ञासे वैशम्पायन मुनिने सौ पर्वोंके विभागसे सुनाया था। उसके बाद सूतपुत्र उग्रश्रवाने सौ पर्वोंका अन्तर्गत करके निम्नाङ्कित अठारह पर्वोंके रूपमें नैमिषारण्यवासी शौनक आदि ऋषियोंको इसे सुनाया था—

१– आदिपर्व, २–सभापर्व, ३–वनपर्व, ४–विराटपर्व, ५–उद्योगपर्व, ६–भीष्मपर्व, ७–द्रोणपर्व, ८–कर्णपर्व, ९–शल्यपर्व, १०–सौप्तिकपर्व, ११–स्त्रीपर्व, १२–शान्तिपर्व, १३–अनुशासनपर्व, १४–आश्वमेधिकपर्व, १५–आश्रमवासिकपर्व, १६–मौसलपर्व, १७–महाप्रास्थानिकपर्व और १८–स्वर्गारोहणपर्व।

महाभारतके अवान्तर पर्वोंकी संख्या १०० कही गयी है। वे उपलब्ध छपी प्रतियोंमें इस प्रकार हैं—

१–आदिपर्व (१९)

१–अनुक्रमणिकापर्व
२–पर्वसंग्रहपर्व
३–पौष्यपर्व
४–पौलोमपर्व
५–आस्तीकपर्व
६–अंशावतरणपर्व
७–सम्भवपर्व
८–जतुगृहपर्व
९–हिडिम्ब-वधपर्व
१०–बक-वधपर्व
११–चैत्ररथपर्व
१२–स्वयंवरपर्व
१३–वैवाहिकपर्व
१४–विदुरागमनराज्यलम्भपर्व
१५–अर्जुनवनवासपर्व
१६–सुभद्रा-हरणपर्व
१७–हरणाहरणपर्व
१८–खाण्डवदाहपर्व
१९–मयदर्शनपर्व

२–सभापर्व (१०)

२०–सभा-क्रियापर्व
२१–लोकपालसभाख्यानपर्व
२२–राजसूयारम्भपर्व
२३–जरासंध-वधपर्व
२४–दिग्विजयपर्व
२५–राजसूयपर्व
२६–अर्घाभिहरणपर्व
२७–शिशुपाल-वधपर्व
२८–द्यूतपर्व
२९–अनुद्यूतपर्व

३–वनपर्व (२२)

३०–अरण्यपर्व
३१–किर्मीरवधपर्व
३२–अर्जुनाभिगमनपर्व
३३–कैरातपर्व
३४–इन्द्रलोकाभिगमनपर्व
३५–नलोपाख्यानपर्व
३६–तीर्थयात्रापर्व
३७–जटासुरवधपर्व
३८–यक्षयुद्धपर्व
३९–निवातकवचयुद्धपर्व
४०–आजगरपर्व
४१–मार्कण्डेय-समास्यापर्व
४२–द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद-पर्व
४३–घोषयात्रापर्व
४४–मृगस्वप्नोद्भवपर्व
४५–व्रीहिद्रौणिकपर्व
४६–द्रौपदी-हरणपर्व
४७–जयद्रथविमोक्षणपर्व
४८–रामोपाख्यानपर्व
४९–पतिव्रता-माहात्म्यपर्व
५०–कुण्डलाहरणपर्व
५१–आरणेयपर्व

४–विराटपर्व (५)

५२–पाण्डव-प्रवेशपर्व
५३–समय-पालनपर्व
५४–कीचक-वधपर्व
५५–गोहरणपर्व
५६–वैवाहिकपर्व

५–उद्योगपर्व (१०)

५७–सेनोद्योगपर्व
५८–संजययानपर्व
५९–प्रजागरपर्व
६०–सनत्सुजातपर्व

६१—यानसंधिपर्व
६२—भगवद्यानपर्व
६३—सैन्यनिर्याणपर्व
६४—उलूकदूतागमनपर्व
६५—रथातिरथसंख्यानपर्व
६६—अम्बोपाख्यानपर्व

६—भीष्मपर्व (४)

६७—जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व
६८—भूमिपर्व
६९—श्रीभगवद्गीतापर्व
७०—भीष्म-वधपर्व

७—द्रोणपर्व (८)

७१—द्रोणाभिषेकपर्व
७२—संशप्तक-वधपर्व
७३—अभिमन्युवधपर्व
७४—प्रतिज्ञापर्व
७५—जयद्रथ-वधपर्व
७६—घटोत्कच-वधपर्व
७७—द्रोण-वधपर्व
७८—नारायणास्त्रमोक्षपर्व

८—कर्णपर्व (१)

७९—कर्णपर्व

९—शल्यपर्व (३)

८०—शल्यवधपर्व
८१—ह्रदप्रवेशपर्व
८२—गदापर्व

१०—सौप्तिकपर्व (२)

८३—सौप्तिकपर्व
८४—ऐषीकपर्व

११—स्त्रीपर्व (३)

८५—जलप्रदानिकपर्व
८६—स्त्रीविलापपर्व
८७—श्राद्धपर्व

१२—शान्तिपर्व (३)

८८—राजधर्मानुशासनपर्व
८९—आपद्धर्मपर्व
९०—मोक्षधर्मपर्व

१३—अनुशासनपर्व (२)

९१—दानधर्मपर्व
९२—भीष्मस्वर्गारोहणपर्व

१४—आश्वमेधिकपर्व (२)

९३—आश्वमेधपर्व
९४—अनुगीतापर्व

१५—आश्रमवासिकपर्व (३)

९५—आश्रमवासपर्व
९६—पुत्रदर्शनपर्व
९७—नारदागमनपर्व

१६—मौसलपर्व (१)

९८—मौसलपर्व

१७—महाप्रास्थानिकपर्व (१)

९९—महाप्रस्थानपर्व

१८—स्वर्गारोहणपर्व (१)

१००—स्वर्गारोहणपर्व

इस प्रकार महाभारतमें कुल १०० पर्व होनेके अतिरिक्त [दाक्षिणात्य प्रतिमें आश्वमेधिक पर्वमें वैष्णवधर्मपर्व और है, यों १०१ हो जाते हैं। इसके सिवा] हरिवंशमें निम्न-लिखित ३ पर्व और हैं—

१९—हरिवंशपर्व

१—हरिवंशपर्व
२—विष्णुपर्व
३—भविष्यपर्व

इस तरह यदि हरिवंशपर्वको भी महाभारतके भीतर गिनें तो व्यासोक्त संख्याकी अपेक्षा तीन पर्व बढ़ जाते हैं।

बुद्धिवादियोंका मन्तव्य

कुछ बुद्धिवादी अपनी बुद्धिमें (तर्कमें) न उतरनेवाली प्राचीन इतिहास तथा पुराणोंकी दैवी सामर्थ्यसे पूर्ण कथाओं-की निन्दा करते हैं तथा कुछ लोग उन कथाओंको मानुषी भावमें लानेके लिये उनके रूपक गढ़ने लगे हैं। और कुछ लोग मानते हैं कि चमत्कारप्रिय लोगोंने इन कथाओंको पीछेसे महाभारतमें घुसेड़ दिया है। इन बुद्धिवादियोंके इस प्रकारके मन्तव्योंके कारणोंका तथा उनके सत्यासत्यका थोड़ा विचार करना यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा।

प्रमाण

किसी भी वस्तुकी यथार्थताके ज्ञानके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता होती है। प्रमाण चार प्रकारके होते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। कुछ लोग 'अर्थापत्ति' और 'अनुपपत्ति' नामक दो और प्रमाणोंको मिलाकर छः प्रमाण मानते हैं। इनमें प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन प्रमाण मुख्य हैं, इसलिये यहाँ इन्हींके सम्बन्धमें विचार किया जायगा।

प्रत्यक्ष प्रमाण

नास्तिक चार्वाकमतानुयायी केवल प्रत्यक्ष (इन्द्रिय-जन्य ज्ञान) को ही प्रमाण मानते हैं। वे दूसरे प्रमाणों—अनुमान और शब्दको नहीं मानते। अतएव उन्होंने प्रत्यक्षका अनुसरण करके कुछ सूत्रोंका प्रणयन किया है, जो सूत्र उनके उदयकालमें तदनुयायियोंमें महासूत्र माने जाते थे। उनमें कुछ सूत्र उनका मन्तव्य दिखलाने तथा यह बतलानेके लिये कि पहले भी शास्त्र तथा धर्मके घाती थे, यहाँ दिये जाते हैं—**'न धर्मांश्चरेत्।' 'एष्यत्फलत्वात्।' 'सांशयिकत्वाच्च।' 'वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।'** (कामसूत्र १।२। २५–२९) **'को ह्यबालिशो हस्तगतं परगतं कुर्यात्।'** शास्त्रोक्त धर्मोंका आचरण न करे; क्योंकि उन धर्मोंका आचरण करके पीछे फलकी इच्छा रखनी पड़ती है, अर्थात् तत्काल फल नहीं

मिलता है; तथा वह फल संशयग्रस्त भी है, क्योंकि यदि मोर कल मिलनेवाला हो तो आज हाथमें आया हुआ कबूतर ही श्रेष्ठ है। कौन बुद्धिमान् मनुष्य हाथमें आया हुआ धन दूसरेके हाथमें जाने देता है ?' इत्यादि वाद करके वे स्वयं भ्रममें पड़ते थे, और दूसरोंको भी भ्रममें डालते थे। इतना ही नहीं, बल्कि वे सर्वव्यापक चैतन्यको भी, जो जीवभावसे देहको प्रवर्तित करता है, नहीं मानते थे; परंतु जैसे कत्था, चूना और पानके मिलनेसे लाल रंग होता है, जैसे अन्नादिमें मादकता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन चारोंके योग्य संयोगसे देह, इन्द्रिय आदिकी प्रवृत्ति होती है, इस प्रकार मानते थे।

अनुमान-प्रमाण

उनका यह प्रत्यक्षवाद बहुतोंको अनुकूल न जान पड़ा; क्योंकि उन्होंने विचारा कि यदि देहातिरिक्त चैतन्य न हो तो पुनर्जन्म भी नहीं माना जा सकता, और यदि ऐसी बात है तो तत्काल उत्पन्न हुआ बछड़ा दौड़ने क्यों लगता है ? क्योंकि संस्कारके बिना उसकी यह प्रवृत्ति प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। यों समझकर उन्होंने दूसरा अनुमान नामका प्रमाण स्वीकार किया और उसके द्वारा सिद्ध किया कि 'कोई भी प्रवृत्ति अनुभवपूर्वक होती है'। इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षोपजीवी अनुमान (प्रत्यक्ष है मूल जिसका, अर्थात् प्रथम धूमवाली अग्निको जिसने देखा है, वही पीछे पर्वतपर धूम देखकर पर्वत वह्निमान् है यह अनुमान कर सकता है)—इन दो प्रमाणोंको स्वीकार किया।

शब्द-प्रमाण

परंतु आस्तिकोंकी दृष्टिमें केवल इन दो प्रमाणोंसे ईश्वर और परलोक आदिकी सिद्धि न हुई; क्योंकि जो वस्तु प्रत्यक्ष हो सकती है, उसीका अनुमान किया जा सकता है, अप्रत्यक्ष वस्तुमें अनुमानकी गति नहीं होती। और ईश्वरादि अगोचर भावोंको जाननेकी आवश्यकता तो है ही; क्योंकि शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य प्राप्त होता है, और जड कर्म स्वतन्त्रतापूर्वक फल देनेमें समर्थ नहीं होते। इसलिये उनसे पृथक् सब कर्मोंका संचालन करनेवाला तथा फल प्रदान करनेवाला कोई होना ही चाहिये, ऐसा विचार उपस्थित होता है। भगवान् व्यासजीने ब्रह्मसूत्रमें दिखलाया है—'फलमत उपपत्तेः' (३।२।२८) अर्थात् जीवोंके कर्मफलकी उपपत्ति ईश्वरके द्वारा होती है, केवल कर्मसे फल उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि चैतन्यमय ईश्वरमें ही फलोत्पादकत्व सिद्ध हो सकता है; परंतु जड कर्मका स्वतन्त्रतापूर्वक फलोत्पादकत्व सिद्ध नहीं हो सकता। फिर—

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

—इस श्रुतिमें ईश्वरका कर्माध्यक्षत्व कथित हुआ है, अर्थात् ईश्वर ही कर्मोंके अनुरूप फल देता है। इस फलदाताकी उपासना करने, उसका ज्ञान प्राप्त होनेके पहले प्रथम दोनों प्रमाण स्वतन्त्र रीतिसे उपयोगी नहीं होते; अतएव इनके अतिरिक्त शुभाशुभ कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग-नरक आदि लोक तथा उन नाशवान् लोकोंसे मुक्त होकर अविनाशी पदकी प्राप्तिके साधनका ज्ञान प्रत्यक्ष करनेके लिये उन्होंने शब्द (आगम-शास्त्र) प्रमाणकी आवश्यकताका अनुभव किया। क्योंकि वहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं पहुँच सकते। वे नरकादि लोक हैं, और इसमें शास्त्र ही प्रमाणभूत हैं। जैसे श्रुति भगवती कहती है—

वैवस्वतं संगमनं जनानाम्

पापी लोगोंको यमलोकमें जाना पड़ता है, तथा **'स्मरन्ति च'** (ब्रह्मसूत्र ३।१।१४)—स्मृतिकार भी दुष्कर्मियोंके लिये नरकलोककी प्राप्तिका प्रतिपादन करते हैं। और—

कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च

(ब्रह्मसूत्र ३।१।८)

स्वर्गोद्देश्यसे किये हुए पुण्यका नाश होनेपर पुण्यात्मा यहाँसे जिस मार्गसे स्वर्गलोकमें गया होता है, उसी मार्गसे अथवा अन्य मार्गसे भोगावशिष्ट संचित कर्मोंको लेकर भूलोकमें आता है—इत्यादिसे इहलोक और परलोकके गमनागमन तथा उसके हेतु 'शब्द' प्रमाणद्वारा ही प्राप्त होते हैं। पुनः मुक्तिके लिये भी—

अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम्

(ब्रह्मसूत्र ३।२।२६)

जीव तथा ब्रह्मके अभेद-साक्षात्कारके द्वारा जीवोपाधिभृत अविद्याकी निवृत्तिके उपरान्त शुद्ध जीव अनन्त ब्रह्मके साथ अभिन्न हो जाता है, मिथ्याभूत भेदको त्यागकर अत्यन्त अभेदको प्राप्त होता है। श्रुति भी कहती है—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' अर्थात् ब्रह्मको जो जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' ब्रह्मवेत्ता परमपदको प्राप्त होता है।

शुष्क तर्क अप्रतिष्ठित है

इस प्रकारके परोक्ष भावोंतक प्रत्यक्ष और अनुमान (तर्क) पहुँचते ही नहीं। वहाँ केवल शब्द-प्रमाण ही मुख्य है, इसीसे भगवान् व्यासने कहा है—**'तर्काप्रतिष्ठानात्'** (ब्रह्मसूत्र २।१।११) 'तर्क और अनुमान बहुधा मिथ्या हो जाते हैं, अतएव वे प्रमाणरूप नहीं हैं।' पुनः इसी सूत्रके भाष्यमें भगवान् शंकराचार्य कहते हैं—

इतश्च नागमगम्येऽर्थे केवलेन तर्केण प्रत्यवस्थातव्यम्। यस्मान्निरागमाः पुरुषोत्प्रेक्षामात्रनिबन्धनास्तर्का अप्रतिष्ठिता भवन्ति।

यहाँसे शास्त्रगम्य जो पदार्थ हैं, उनमें केवल तर्कमात्रसे प्रत्यवस्थान नहीं करना चाहिये; क्योंकि आगम (शास्त्र)-

का अनुसरण न करनेवाले तथा केवल पुरुषकी कल्पनासे बँधे हुए तर्क प्रतिष्ठित नहीं होते ।'

बुद्धिगम्य न होनेसे वस्तुस्थिति बदलती नहीं ।

इस प्रकार शास्त्र-प्रमाणको छोड़कर अथवा शास्त्रका मनमाना अर्थ करके जो अपने तर्कबलसे प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें संदेह उत्पन्न करते हैं, उनके ये तर्कजन्य संदेह प्रतिष्ठाके योग्य नहीं । यदि कोई कहे कि 'ऐसी बातें मेरी बुद्धिमें उतरती नहीं, अतएव मैं उन्हें कैसे मानूँ ?' उनको यह जानना चाहिये कि छोटे बालकके सामने कोई अध्यात्म-ज्ञानका उपदेश करे और वह बालककी बुद्धिमें न उतरे तथा वह उसको मिथ्या कहे तो क्या वह अध्यात्मज्ञान मिथ्या हो जायगा ? कदापि नहीं । इससे तो वही उलटा बालबुद्धि-वाला समझा जायगा । बुद्धिमें उतरने या न उतरनेसे किसी प्रकार वस्तुकी स्थिति नहीं बदलती । द्रष्टाके दृष्टिभेदसे यदि वस्तुस्थिति बदलती हो तो रज्जु भी सर्प बन जाय ! और तो क्या, ब्रह्म भी सदाके लिये जगत्-भावको प्राप्त हो जाय । परंतु ऐसा न होकर, इस प्रकारके विवर्त तो द्रष्टाके लिये ही बाधक बन जाते हैं । संशयदृष्टिसे देखनेवाला संशयमें ही डूबता-उतराता रहता है; क्योंकि उसको वस्तु-तत्त्वका ज्ञान न होकर संशय-ज्ञान ही होता रहता है, और ऐसे लोगोंके लिये श्रीकृष्णने कहा है—'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशय-ग्रस्त विनाशको प्राप्त होते हैं—आदर्शसे च्युत हो जाते हैं। यहाँ एक सुप्रसिद्ध दृष्टान्त लीजिये। अपने देशमें जब रेल, तार, मोटर, विद्युत्के यन्त्र, बेतारके तारके द्वारा संदेश-वहन, हवाई-जहाज आदि न थे, उस समय कोई यदि हमको कहता कि यूरोपमें तो खींचनेवालेके बिना ही गाड़ी चलती है, तारके द्वारा संदेश जाता है, बिजलीसे दीपक जलते हैं, आकाशमें विमान उड़ते हैं और बेतारका संदेश आकाशमार्गसे पहुँचता है, तो हम कहते कि ये बातें झूठी हैं; क्योंकि वे हमारे ध्यानमें नहीं जँचतीं ।' क्या हमारे कहनेसे ये बातें झूठी हो जायँगी ? कदापि नहीं । पहले जो बातें हमारी बुद्धिमें नहीं उतरती थीं तथा आश्चर्यजनक जान पड़ती थीं, उन्हीं वस्तुओंको आज हम आश्चर्यरहित होकर इच्छानुसार उपयोगमें लाते हैं । इसका कारण इतना ही है कि इन वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तदनुरूप उद्योग हुआ, इसलिये वे अतर्कित वस्तुएँ भी तर्कमें आयीं और उनका उपयोग भी हुआ ।

इसी प्रकार प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें वर्णित अद्भुत शक्तियोंको जो श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखते, तथा उनको समझने भरकी योग्यता भी नहीं रखते, वे भले ही उनको मिथ्या कहें तथा उनके रूपक रचें; परंतु इससे उन दैवी-शक्तियोंका अस्तित्व मिथ्या नहीं हो जाता । जैसे कोई पर्वतके शिखरके ऊपरसे आकर उस शिखरपर स्थित सुन्दर नगरका वर्णन उस आदमीसे करे, जो वहाँपर चढ़नेमें समर्थ न हो, और वह सुननेवाला असमर्थ मनुष्य उस वर्णनको मिथ्या कहे तो क्या इससे वह वर्णन करनेवाला तथा वह नगर मिथ्या हो जायँगे ? कदापि नहीं । उलटे वह आदमी ही हास्यास्पद हो जायगा । अतएव इससे बचनेके लिये उत्तम मार्ग यही है कि उसको भी किसी उपायसे पर्वतके ऊपर चढ़कर उस नगरको प्रत्यक्ष देख लेना चाहिये । यों करनेपर ही वह प्रत्यक्ष द्रष्टा जो कहता है, वह प्रमाणभूत माना जायगा । उसी प्रकार दैवी शक्तियोंको मिथ्या कहनेवालोंको भी वैसी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये, अथवा वैसी शक्ति प्राप्त न हो तो व्यास आदि महर्षियोंके समान तपोनिष्ठ और ज्ञानपरायण होना चाहिये, जिससे उन महर्षियोंका आशय समझनेकी शक्ति प्राप्त हो । अर्जुनको श्रीहरिका विश्वरूप देखनेके लिये अर्जुनके चर्मचक्षु काम नहीं दे सकते थे, इसी कारण श्रीकृष्ण-ने **'दिव्यं ददामि ते चक्षुः'** कहकर उनको दिव्यदृष्टि प्रदान की थी । इसी प्रकार दैवी शक्तियोंको समझनेके लिये भी दैवी बुद्धि ही उपयोगी होती है, वहाँ मानुषी मन्दबुद्धि तो घबरा जाती है । इसी कारण कहा गया है कि—

> **अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।**
> **नाप्रतिष्ठिततर्केण गम्भीरार्थस्य निश्चयः ॥**

अर्थात् जो अचिन्त्य भाव हैं, उनको तर्कसे सिद्ध न करे, क्योंकि अप्रतिष्ठित तर्कके द्वारा गम्भीर अर्थका निश्चय नहीं होता ।

श्रद्धापूर्वक शास्त्रपरिशीलन करनेसे ही वस्तु-तत्त्व समझ-में आता है ।

उपर्युक्त प्रमाणोंकी योग्यता सम्पादन करनेके लिये यदि अपनी शक्ति न हो तो श्रद्धापूर्वक महर्षिजनप्रोक्त श्रेष्ठ ग्रन्थोंका श्रवण-मनन करे, उनमें भी जो रुचे वह ग्रहण करे, और जो न रुचे, उनको रहने दे; परंतु **'न बुद्धिभेदं जनयेत्'**—इस भगवद्वाक्यको सदा याद रखकर श्रद्धालु लोगोंके हृदयमें शङ्काका बीज न बोये । क्योंकि धार्मिक ग्रन्थोंका मुख्य अवलम्बन श्रद्धा ही है, और श्रद्धालु ही उनके रसको, आनन्दको प्राप्त होता है । बल्कि ऐसे लोगोंको तो इसमें कोई असम्भव बात नहीं जान पड़ती । क्योंकि सर्व-शक्तिमान् ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं; अतएव जहाँ-जहाँ उनकी अधिक-अधिक अभिव्यक्ति होती है, वहाँ-वहाँ अधिक शक्तियों-का ज्ञान हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । ऐसे श्रद्धालु भक्त तो यही कहते हैं—

> **देवस्य मायया स्पृष्टाः ये केचिदसदाश्रिताः ।**
> **भिद्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥**
>
> (उद्धव-वाक्य)

अर्थात् आत्मरूप हरिमें अर्पित मनवाले भक्तकी बुद्धि

ईश्वरकी मायासे सृष्ट तथा मिथ्यावस्तुका आश्रय लेनेवाले पुरुषोंके वाक्यसे भेदको नहीं प्राप्त होती।

महाभारतके तीन संस्करण

कुछ लोग मानते हैं कि महाभारतके तीन संस्करण हुए हैं— पहला व्यासोक्त २४ हजार श्लोकोंका, जिसमें वे निम्नाङ्कित प्रमाण देते हैं—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।

—व्यासने २४ हजार श्लोकोंकी भारतसंहिता रची थी। दूसरा संस्करण था वैशम्पायन और जनमेजयके संवादरूपमें। और तीसरा संस्करण सौति तथा शौनकके संवादरूपमें था, जो आजकल उपलब्ध होकर महाभारतके नामसे पुकारा जाता है। ये पिछले दोनों संस्करण व्यासरचित नहीं हैं। इसमें वे कारण देते हैं कि 'इन पीछेसे हुए संवादोंको व्यासमुनि पहलेसे ही अपने ग्रन्थमें किस प्रकार स्थान दे सकते थे? बल्कि सौतिका संस्करण तो ईस्वी सदीसे २०० वर्ष पूर्व ही तैयार हो गया था, इत्यादि।'

भारतकी चार कृतियाँ

अब इनके मन्तव्यके ऊपर हम विचार करते हैं। इसमें प्रथम 'चतुर्विंशतिसाहस्रीं' श्लोक जिस स्थानमें दिया गया है, उसके आगे-पीछेके श्लोकोंका सम्बन्ध देखिये। आदिपर्वके प्रथम अध्यायमें ये श्लोक इस प्रकार दिये गये हैं—

इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्॥
सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।
ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः॥
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम्।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम्॥
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः।
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्॥
त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम्।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश॥
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम्।
नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन्॥
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः।
अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्॥
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत॥

(१०१-१०९)

(भावार्थ) सौति कहते हैं कि यह पुण्यकर्मवाले लोगोंके उपाख्यानके साथ एक लाख श्लोकोंका उत्तम आदि-भारत है, यह तुम जान लो। व्यासने उपाख्यानरहित २४ हजार श्लोकोंकी भारतसंहिताकी रचना की थी और विद्वान् उसीको भारत कहते हैं। इसके बाद ऋषिने पुनः संक्षेप करके डेढ़ सौ श्लोकोंकी पर्वके साथ वृत्तान्तोंकी एक अनुक्रमणिका रची। द्वैपायनने यह भारत पहले अपने पुत्र शुकदेवको सुनाया। उसके बाद उन समर्थ ऋषिने उसे दूसरे योग्य शिष्योंको सुनाया। फिर महर्षि व्यासने साठ लाख श्लोकोंकी एक दूसरी भारत-संहिता रची। उनमें तीस लाख श्लोकोंको नारदजीने देवलोकमें सुनाया, और वे वहीं रह गये। असित-देवल ऋषिने पितरोंको पंद्रह लाख श्लोक सुनाये; शुकदेवजीने गन्धर्व-यक्ष आदिको चौदह लाख श्लोक सुनाये, और इस मनुष्यलोकमें व्यासके धर्मात्मा तथा समस्त वेदविदोंमें श्रेष्ठ शिष्य वैशम्पायन-को एक लाख श्लोक सुनाये। उस वैशम्पायनोक्त भारतको मैं कहता हूँ। उसको तुम यथार्थतः जान लो।

समन्वय

ऊपर दिये गये श्लोकोंसे विदित हो गया कि महर्षि व्यासने केवल २४ हजार श्लोकोंका भारत नहीं रचा था परंतु उन्होंने लाख श्लोकोंकी, २४ हजार श्लोकोंकी, डेढ़ सौ श्लोकोंकी तथा साठ लाख श्लोकोंकी पृथक्-पृथक् चार भारत-संहिताएँ रची थीं। उनमें साठ लाखवाली भारतसंहितामेंसे हमारे लोकमें केवल एक लाख श्लोक ही रह गये हैं। इससे ५९ लाख श्लोकोंका हमको विचार नहीं करना है। बल्कि उन्होंने जो साठ लाख श्लोक कहे थे, वे भी प्रथम लाख श्लोकोंको मिलाकर ही कहे होंगे। क्योंकि ऐसा न होता तो पूर्वोक्त लाख श्लोक, और ये साठ लाखमेंके लाख श्लोक मिलकर हमारे लोकमें दो लाख श्लोकोंका भारत होना चाहिये, अथवा लाख-लाख श्लोकोंके दो भारत मिलने चाहिये। परंतु वे मिलते नहीं; इससे सिद्ध होता है कि इन लाख श्लोकोंके साथ ही साठ लाख श्लोकवाली भारतसंहिता थी। इनमेंसे एक लाख श्लोक, जो पहले बतला चुके हैं, वे ही हमारे यहाँ रह गये। अब चौबीस हजार श्लोकवाली भारतसंहिताका विचार करें, तो भारत-जैसा बड़ा महल तैयार करनेमें पहले उसका एक सामान्यरूप खड़ा करना पड़ा है, जिस प्रकार कोई बड़ा उपन्यास लिखना होता है तो पहले उसका एक रेखाचित्र बनाना पड़ता है। उसी प्रकार वह केवल भरतवंशी लोगोंके इतिहासके दूसरे आख्यानों तथा उपाख्यानोंसे रहित रचना जान पड़ती है। वह चौबीस हजार श्लोकका भारत भगवान् व्यासके मनमें तैयार हुआ, और उन्होंने भरतवंशियोंके चरित्रके साथ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षप्रतिपादक अनेकों आख्यानों तथा उपाख्यानों आदिको जोड़कर पूरा एक लाख श्लोकका ग्रन्थ तैयार कर दिया और उसीमें २४ हजार श्लोकों-का अन्तर्भाव हो गया। क्योंकि वह चौबीस हजार श्लोकवाला भारत हमारे देखनेमें नहीं आता, तथा उसका किसी ग्रन्थमें वर्णन भी नहीं मिलता। इससे उनका लाख श्लोकोंमें ही

समावेश हो गया जान पड़ता है। तत्पश्चात् इस ग्रन्थका यथार्थ स्वरूप बनाये रखनेके लिये व्यासजीने डेढ़ सौ श्लोकोंका अनुक्रमणिका-अध्याय रचा, और उसको भी प्रथम अध्यायमें मिला दिया। इसलिये आज जो भारत हमें प्राप्त है, उसका स्वरूप तैयार हो गया। इस प्रकार 'चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं' इस उद्धरणका विचार करके हमने देख लिया कि कृष्णद्वैपायन मुनिने केवल चौबीस हजार श्लोकोंका ही ग्रन्थ नहीं रचा था।

व्यासने त्रिकालज्ञतासे महाभारतकी रचना की

अब इस प्रश्नपर विचार करना है कि वैशम्पायन तथा जनमेजयके संवादको और सौति तथा शौनकके संवादको उनके पहले ही व्यासजीने अपने ग्रन्थमें कैसे दे दिया। इस सम्बन्धमें श्रद्धालु जनोंको अधिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि उनको तो व्यास मुनिका स्वरूप समझनेपर यह सब कुछ शक्य जान पड़ता है। अतएव हमें यह देखना चाहिये कि व्यासजीके सम्बन्धमें इतिहास और पुराणोंमें क्या वर्णन आया है। पुराणोंमें व्यासजीको भगवान्‌के अवतारोंमें गिना गया है।

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२१)

'तत्पश्चात् भगवान् सतरहवें अवतारमें पराशरसे सत्यवतीमें उत्पन्न हुए और उन्होंने पुरुषोंको अल्पबुद्धिवाला देखकर वेदवृक्षकी शाखाएँ बनायीं।' पुनः -

जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः।

(श्रीमद्भा० १।४।१४)

'योगी व्यासजी श्रीहरिकी कलाके द्वारा वसुकी कन्या सत्यवतीमें पराशरसे उत्पन्न हुए। 'व्यासो नारायणो हरिः'—व्यासजी स्वयं श्रीहरि नारायण हैं। इस प्रकारके वाक्य पुराणोंमें बहुतायतसे प्राप्त होते हैं। महाभारतमें भी उनके माहात्म्यको सूचित करनेवाले अनेक वाक्य हैं; उनमेंसे यहाँ एक-दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

जातमात्रश्च यः सद्य इष्ट्या देहमवीवृधत्।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान् सेतिहासान् महायशाः॥
विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः॥

(म० भा० १।५०।३–५)

'जिसने उत्पन्न होते ही अपनी इच्छाके अनुसार देह बढ़ा ली, और उस महायशस्वीने स्वयं इतिहास तथा वेदाङ्गोंके सहित सारे वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। पुनः वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ, निरुपाधिक तथा सोपाधिक ब्रह्मको जाननेवाले, त्रिकालज्ञ, सत्य संकल्पवाले तथा पवित्र, ब्रह्मर्षि श्रीव्यासजीने एक वेदको (चातुर्होत्रिक कर्मके लिये) चार विभागोंमें बाँटा।

इस प्रकारके अद्भुत दैवी सामर्थ्यसे युक्त, त्रिकालज्ञ और भगवत्-अवतारस्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने यदि उन संवादोंके होनेके पूर्व ही अपने भविष्य ज्ञानके बलसे उन संवादोंसे युक्त महाभारतकी रचना कर दी तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है? ईश्वरकी शक्तिमें श्रद्धा रखनेवालोंको तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं जान पड़ता, और न संशय ही उत्पन्न होता है; इसलिये उनके लिये इतना कहना भी अनावश्यक है। परंतु अपनेको अनुकूल लगनेवाले वचनोंको प्रामाणिक माननेवालों और प्रतिकूल लगनेवाले वचनोंको 'पीछेसे मिलाया हुआ' कहनेवालों तथा मनुष्य-देह धारण करनेवाले ईश्वरांशमें भी दैवी सामर्थ्यको न माननेवालोंका एक वर्ग है। अतः इनके विचारोंकी छाप कहीं श्रद्धालु हृदयपर पड़कर अनिष्ट उत्पादन न करे, इसलिये इस विषयमें इतनी बात यहाँ लिखी गयी है। इसके सिवा, पूर्वकालके महाविद्वान् टीकाकार स्वयं जिस ग्रन्थकी टीका करते थे, उस ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयोंका समन्वय करनेमें ही अपना पाण्डित्य समझते थे। यदि कहीं उनकी दृष्टिमें कोई महान् अशुद्ध प्रयोग देखनेमें आता था और उसका समन्वय नहीं हो पाता था तो वे मधुर शब्दोंमें उसको 'आर्षोऽयं प्रयोगः' (यह प्रयोग ऋषिकृत है)—इत्यादि कहकर आगे बढ़ते थे। परंतु आजकलके सुधरे हुए ग्रन्थालोचक तो कोई और ही चश्मा लगाकर ग्रन्थोंका अवलोकन करते हैं; अतएव उन्हें प्राचीन ग्रन्थोंमें अनेकों त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं और देखते ही वे ग्रन्थके गौरव, उसके ऊपर लोगोंकी श्रद्धा, ग्रन्थकी योग्यता आदिका विचार न करके अपने संहारास्त्रका प्रयोग कर उसका खण्डन करनेमें ही पिल पड़ते हैं, यद्यपि उनमें एक ग्रन्थ लिखनेकी भी अपनी शक्ति नहीं होती, यह और बात है। ऐसे दोषदर्शी लोगोंसे श्रद्धालु धार्मिक लोगोंको बचाना ही हमारे इस मण्डनका हेतु है।

दूसरे प्रकारसे विचार

अब हम भारतका रचना-काल, व्यासजीकी काव्य-शक्ति, भारतमें वर्णित तत्त्वोंका तथा उनको लिखनेके लिये महासामर्थ्यशाली लेखककी अपेक्षाका विचार करेंगे, जिससे सहज ही समझमें आ जायगा कि व्यासजीने केवल चौबीस हजार श्लोकोंकी ही रचना नहीं की थी, बल्कि सम्पूर्ण महाभारतको रचा था। महाभारतकी रचनाका काल देते हुए वैशम्पायन कहते हैं—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम्॥

(म० भा० १।६२।५२)

'कृष्णद्वैपायन मुनिने नित्य उद्योगपरायण रहकर तीन वर्षमें इस अद्भुत महाभारतके आख्यानकी रचना की।'

पाठक विचार करें कि जिन व्यासजीकी कविता रचने और बोलनेकी शीघ्रता बुद्धिपति श्रीगणेशजीकी प्रवाहमयी लेखनीको भी थका देती थी, उन व्यासजीको केवल २४ हजार श्लोक रचनेमें तीन-तीन वर्ष तथा उसमें भी सतत प्रवृत्तिकी अपेक्षा हो सकती है ? कदापि नहीं । इस एक कारणसे ही सिद्ध होता है कि यह लाख श्लोकोंवाला सम्पूर्ण ग्रन्थ निश्चय व्यासरचित ही है ।

भारत-लेखन-प्रसङ्ग

अब दूसरे कारणका अनुसंधान करनेके लिये यह सारा भारत-लेखन-प्रसङ्ग यहाँ उद्धृत करते हैं—

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् ।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥
तदाख्यानवरिष्ठं स कृत्वा द्वैपायनः प्रभुः ।
कथमध्यापयानीह शिष्यानित्यन्वचिन्तयत् ॥

(म० भा० १ । १ । ५५)

'सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने तपश्चर्या और ब्रह्मचर्यके द्वारा वेदोंका विभाग करके इस पवित्र इतिहासकी रचना की है प्रभु द्वैपायन इस श्रेष्ठ आख्यानकी रचना करके सोचने लगे कि अब मैं यह ग्रन्थ शिष्योंको किस प्रकार पढ़ाऊँ ? व्यासजीके इस विचारको जानकर लोकगुरु ब्रह्माजी स्वयं उनको प्रसन्न करने और लोगोंके हितकी कामनासे वहाँ गये । उनको देखकर सब मुनियोंके बीच स्थित व्यासजी चकित हो उठे, हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा ब्रह्माजीको बैठनेके लिये उन्होंने आसन प्रदान किया । उस उत्तम आसनपर बैठे ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा करके उस आसनके पास स्वयं खड़े हो गये । पश्चात् परमेष्ठी ब्रह्माजीके कहनेसे व्यासजी शुद्ध भावसे मुसकराते हुए प्रसन्न होकर आसनके पास बैठ गये और महातेजस्वी परमेष्ठी ब्रह्माजीसे कहने लगे—'भगवन् ! मैंने सर्वोत्कृष्ट काव्यकी रचना की है । ब्रह्मन् ! इस ग्रन्थमें मैंने वेदोंका रहस्य, वेदाङ्ग, उपनिषद् एवं वेदोंका विस्तार तथा अन्य जो कुछ वेदमें है, वह सब; पुनः इतिहास-पुराण; भूत, भविष्य और वर्तमान कालकी स्थिति; जरा-मृत्यु, भय-व्याधि, अस्तित्व और विनाशका निश्चय; विभिन्न धर्मों तथा आश्रमोंके लक्षण, चारों वर्णोंके धर्म तथा पुराणोंका समग्र तात्पर्य; तप एवं ब्रह्मचर्य; पृथ्वी, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा युगोंका प्रमाण; ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अध्यात्मशास्त्र, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, अन्तर्यामीका माहात्म्य, कर्मानुरूप दिव्य तथा मानुष-जन्म, पवित्र तीर्थ, देश, नदियाँ, पर्वत, वन, समुद्र, दिव्य नगर, दुर्ग तथा व्यूहरचना, विभिन्न कोटिके मनुष्योंकी भाषण-पद्धति, नीतिशास्त्र तथा सर्वव्यापक ब्रह्मका निरूपण भी किया है; परंतु पृथ्वीपर मुझको कोई लेखक नहीं मिलता ।'

ब्रह्माजी बोले—'तुम रहस्य-ज्ञानकी निधि हो, इससे मैं तुमको तपस्वी और श्रेष्ठ मुनियोंकी अपेक्षा भी अतिशय श्रेष्ठ मानता हूँ । जन्मसे लेकर तुम्हारी वेदवादिनी सत्यवाणीको मैं जानता हूँ । तुमने अपने ग्रन्थको काव्य कहा, इसलिये वह 'काव्य' कहलायेगा । जिस प्रकार दूसरे तीनों आश्रम गृहस्थाश्रमसे बढ़कर नहीं होते, उसी प्रकार तुम्हारे इस काव्यसे बढ़कर काव्य करनेकी सामर्थ्य कवियोंमें न होगी । अब हे मुनि ! तुम अपने काव्यको लिखनेके लिये गणपतिका स्मरण करो ।

सौति कहते हैं—इस प्रकार व्यासजीको आदेश देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको चले गये । तत्पश्चात् सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने गणपतिका स्मरण किया । स्मरण करते ही भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाले विघ्नेश्वर गणपतिजी वहाँ आ पहुँचे, जहाँ व्यासजी बैठे थे । हे निष्पाप शौनक ! उनकी विधिवत् पूजा करने तथा बैठनेके बाद व्यासजीने कहा—'हे गणनायक ! मैं मनमें तैयार किये इस भारतको स्वयं बोलता हूँ और आप इसके लेखक बनें ।' यह सुनकर गणपतिने कहा कि 'लिखते-लिखते मेरी लेखनी एक क्षणके लिये भी न रुके, इस प्रकार यदि तुम लिखाओ तो मैं भारतका लेखक बन सकता ।' तब व्यासने उनसे कहा कि 'आप समझे बिना कदापि न लिखें ।' पश्चात् ओम् (अच्छा !) कहकर गणपति लिखने लगे ।

तत्पश्चात् व्यासजी कुतूहलपूर्वक ग्रन्थकी गूढ़ रचना करने लगे । उन श्लोकोंके विषयमें द्वैपायन मुनिने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥

'भारतके आठ हजार आठ सौ श्लोकोंको मैं समझता हूँ और शुक समझते हैं; संजय उन्हें समझते हैं या नहीं, इसमें संशय है ।'

हे मुनि ! उन दृढ़ रचनावाले कूट श्लोकोंमें गूढ़ अर्थ होनेके कारण शब्दादि प्रमाणोंका आश्रय लेनेपर भी आजतक उनके अर्थ स्पष्ट नहीं हुए । अहा ! सर्वज्ञ गणपति भी उन श्लोकोंका विचार करनेके लिये क्षणभर रुक जाते थे, और इस बीचमें व्यासजी अनेकों श्लोकोंकी रचना कर डालते थे ।

तात्पर्य

महाभारतके प्रारम्भमें दिये गये भारत-लेखनके प्रसङ्गसे भी समझमें आ जाता है कि व्यासजीके मनमें निर्मित यह ग्रन्थ बहुत ही बड़ा होना चाहिये । अन्यथा इस प्रकारके समर्थ पुरुषको साधारण छोटा ग्रन्थ लिखनेके लिये लेखककी चिन्ता नहीं करनी पड़ती । न तो ब्रह्माजीको आनेकी

आवश्यकता पड़ती और न श्रीगणेशजीको लेखक ही बनना पड़ता। इसलिये उपर्युक्त सारे संयोगोंको देखते हुए तथा इस ग्रन्थगत विषयोंके गौरवको देखते हुए यह ग्रन्थ बहुत ही बड़ा होना चाहिये। क्योंकि गणपतिको सरसर चलनेवाली लेखनीको सामग्री पहुँचानेके लिये उनको विचारमें फँसाकर व्यासजीने स्थान-स्थानपर कूट श्लोक रचे हैं, जिनकी संख्या वे स्वयं ही आठ हजार आठ सौ बतलाते हैं। अतः यदि चौबीस हजार श्लोकोंकी भारतसंहितामें इतने कूट श्लोक आ जायँ तो वह वज्र-जैसी दुर्भेद्य बन जाय। इस हेतुसे तथा देवाधिदेव गणपतिकी लेखनीको पूरा पड़ने जैसी काव्यरचनाकी शक्ति और ग्रन्थनिर्माणका तीन वर्ष-जितना लंबा समय तथा उसमें सतत प्रवृत्ति—इन सब बातोंको देखनेसे यह निश्चय होता है कि तीन वर्षोंमें तैयार करके गणपतिके द्वारा लिखायी गयी भारत-संहिता चौबीस हजारकी नहीं, बल्कि व्यासकी त्रिकालज्ञताके द्वारा निर्मित सम्पूर्ण महाभारत है।

वैशम्पायन और सौतिने पुस्तकके बिना मौखिक कथन किया है

इस प्रकार व्यासजीकी भविष्यदर्शिताके विचारसे तो यह स्पष्ट हो जाता है और महाभारतका एक ही संस्करण सिद्ध होता है; परंतु यह बात जिनके गले नहीं उतरती, उनके लिये एक और ही विचारसे देखें। पाण्डवोंके अवसानके बाद व्यासजीने भारतकी रचना की तथा वैशम्पायनको जनमेजयके सर्पयज्ञमें पहले-पहल उसे सुनाया था, यह बात निम्नाङ्कित श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाती है—

तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः॥
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्॥
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः।

(म० भा० १।१।९७-९८)

वे (धृतराष्ट्र आदि) उत्पन्न होकर तथा (पुत्र-पौत्रादि रूपसे) वृद्धिको प्राप्त होकर परम गतिको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् महर्षि व्यासने इस मनुष्यलोकमें महाभारत कहा। जनमेजय तथा हजारों ब्राह्मणोंके पूछनेपर व्यासजीने अपने पास बैठे हुए शिष्य वैशम्पायनको भारतकी कथा कहनेकी आज्ञा दी, और यज्ञकर्मके बीच-बीचमें बारंबार प्रेरित होकर वैशम्पायनने सभासदोंके साथ बैठकर भारत श्रवण कराया।

इससे स्पष्ट होता है कि व्यासजीने मानसिक भारत भी पाण्डवोंके स्वधाम-गमनके पश्चात् परीक्षित्के समयमें ही अपने शिष्योंको सुनाया था, और वह भारत जनमेजयके सर्पयज्ञके समय ही लोकमें पहले प्रसिद्ध हुआ। उस समय वैशम्पायनने पुस्तक लेकर बाँची या व्यासजीने उन्हें पुस्तक दी हो, ऐसी कोई बात नहीं है। परंतु इसमें केवल कथन करनेकी आज्ञा ही देखनेमें आती है। फिर वैशम्पायनने आगे कहा है—

शृणु राजन् पुरा सम्यग् मया द्वैपायनाच्छ्रुतम्।

'राजन्! पूर्वकालमें मैंने द्वैपायनसे अच्छी तरह सुना था, उसे तुम सुनो।' इससे मौखिक पाठका सुनाना ही जान पड़ता है, लिखे ग्रन्थका सुनाना नहीं! पुनः भारतका दूसरा व्याख्यान सौतिने शौनकादिके सामने किया। उन्होंने भी कहा है—

कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः।
कथिताश्चापि विधिवद् या वैशम्पायनेन वै॥
श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः॥

(म० भा० १।१।११)

बहूनि संपरिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च।
× × × ×
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा।
× × × ×
दिदृक्षुरागतस्तस्मात्समीपं भवतामिह॥

'कृष्णद्वैपायनके द्वारा कही अतिशय पुण्यजनक विविध कथाएँ जो वैशम्पायनने विधिपूर्वक सुनायी थीं, उन विचित्र अर्थोंवाली महाभारतसम्बन्धी कथाओंको सुनकर मैं अनेकों तीर्थों तथा मन्दिरोंमें घूमता हुआ पहले जहाँ युद्ध हुआ था, उस कुरुक्षेत्रमें गया था। वहाँसे आपके दर्शनकी इच्छासे आपके पास यहाँ आया हूँ।'

यहाँ सौतिने भी 'श्रवण करके आया हूँ'—यह कहा है। ग्रन्थका संकेततक नहीं किया है। 'कृष्णद्वैपायनके द्वारा उक्त तथा वैशम्पायनके द्वारा दुहरायी गयी'—इस वाक्यांशसे यह जान पड़ता है कि उस समय महाभारतको कण्ठस्थ रखकर कहनेका ही व्यवहार प्रचलित था। अब यह ग्रन्थ जिन तीन वर्षकी अवधिमें निर्माण करके गणपतिसे लिखाया गया, वह समय सौतिके मुखसे कथा हो जानेके पीछेका है—यों मान लेनेमें तथा इसीमें श्रीकृष्णद्वैपायन मुनि, वैशम्पायन तथा जनमेजयका सौति तथा नैमिषारण्य-वासियोंके साथ संवाद तथा गणेशजीका लेखन-प्रसङ्ग समाविष्ट है—यह माननेमें भी कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि व्यासजीने जब शिष्योंको भारत सुनाया, उसके बाद थोड़े ही समय बाद वैशम्पायनने जनमेजयके सर्पयज्ञमें कथा कही, और उसके थोड़े ही समय बाद सौतिने नैमिषारण्यनिवासी ऋषियोंको भारतकी कथा सुनायी। वैशम्पायनकी कथा और सौतिकी कथा बहुत समयके अन्तरसे नहीं हुई होगी, ऐसी

हमको ऊपरके श्लोकोंसे जान पड़ती है । बल्कि श्रीमद्भागवत-में शौनकने कहा है—

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥
(१ । १ । २१)

'हम कलियुगको आया हुआ जानकर इस विष्णुक्षेत्रमें दीर्घ-सत्रका प्रारम्भ करके हरिकी कथा श्रवण करनेके लिये सावधान होकर बैठे हैं ।' इससे ज्ञात होता है कि कलिके आरम्भमें ही अर्थात् परीक्षित्‌के समयमें ही ऋषिलोग जब नैमिषारण्यमें बैठे, और जनमेजयके सर्पयज्ञमें भारतकी कथा सुनकर सौतिने वहाँ जाकर जब यह कथा सुनायी; ये दोनों समय भी आस-पास-के ही जान पड़ते हैं । इन दोनों कथाओंके हो जानेके बाद, महाभारत ग्रन्थरूपमें रहे और ब्राह्मणादि वर्णोंके लोग उससे लाभ उठायें—इस इच्छासे श्रीकृष्ण-द्वैपायनने ब्रह्माकी आज्ञासे गणपतिको बुलाकर इस ग्रन्थको लिखाया—यह मान लिया जाय अथवा यों समझ लें कि उन कथाओंके होनेके पूर्व उन्होंने उसे भविष्यदर्शितासे लिखाया हो ।

भारतकी पाँच संहिताओंका भ्रम

कुछ लोग नीचेके श्लोकोंके अनुसार भारतकी पाँच संहिताओंको मानते हैं । वे श्लोक इस प्रकार हैं—

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥
(१ । ६३ । ८९-९०)

वे लोग इन श्लोकोंका इस प्रकार अर्थ करते हैं—'श्रेष्ठ तथा वरदायक प्रभु व्यासजीने चारों वेद और पाँचवाँ वेद महाभारत सुमन्तुको, जैमिनिको, पैलको, अपने पुत्र शुकदेवको तथा वैशम्पायनको पढ़ाया और उन्होंने भारतकी पृथक्-पृथक् संहिताएँ प्रकट कीं ।'

ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं; क्योंकि इनमें एक भी संहिता आज हमको प्राप्त नहीं तथा इनका नाम भी नहीं सुनायी देता । केवल एक जैमिनिकृत पाण्डवाश्वमेध मिलता है (इसमें वर्णित अश्वमेध महाभारतके अश्वमेधकी अपेक्षा अधिक चमत्कारमय है) । परंतु जैमिनिने सारी भारत-संहिता रची थी या नहीं, यह संदेहजनक है । हाँ, एक ऐसी किंवदन्ती भी है कि 'जब व्यासजीने महाभारतकी रचना की, तब जैमिनिजीने एक महाभारत रची थी । उसके तैयार होनेपर उन्होंने उसे अपने गुरु श्रीव्यासजीको दिखलाया । गुरुने चमत्कारविशिष्ट उस महाभारतको देखकर अपने शिष्यसे कहा कि 'या तो मेरा भारत इस जगत्‌में रहेगा या तुम्हारा । परंतु दो भारत नहीं रहने चाहिये ।' तब गुरुभक्त शिष्यने अपने भारतका कुछ अंश छोड़कर शेषको डुबा देना स्वीकार किया, और गुरुकी आज्ञासे उसका केवल अश्वमेधवाला शेष रह गया ।'

इस बातपर कितना विश्वास किया जाय, यह पाठककी इच्छापर छोड़कर हम प्रस्तुत विषयका विचार करते हैं । ऊपर बतलायी हुई कोई भी भारत-संहिता नहीं मिलती । उपर्युक्त अर्थोंकी अपेक्षा पण्डित नीलकण्ठकी टीकामें दिया हुआ अर्थ अधिक सुसंगत जान पड़ता है । टीकाकार कहते हैं—'**भारतस्य मूलभूताः संहिता मन्त्रब्राह्मणरूपा वेदाः ते सुमन्तुप्रभृतिभिः प्रकाशिता इदमस्य मूलमिदमस्य मूलमिति स्पष्टीकृतास्तेन प्रत्यक्षवेदमूलमेतदिति भावः ।**' अर्थात् भारतकी मूलभूत संहिता—मन्त्र-ब्राह्मणरूप वेदोंको सुमन्तु आदिने प्रकाशित किया, अर्थात् इस वस्तुका यह मूल है, इस वस्तुका यह मूल है—इस प्रकार स्पष्ट करके बतला दिया कि भारत प्रत्यक्ष ही वेदमूलक है । भारत वेद-मूलक है, इस सम्बन्धमें टीकारूपसे व्यासके प्रति नारदजीका भागवतमें यह वचन प्रमाण है—

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।

'आपने भारतके बहानेसे वेदोंका अर्थ दिखलाया है ।' इससे भी टीकाकारका अर्थ ही ठीक लगता है । बल्कि इस प्रकार अर्थ करनेसे भारतकी विभिन्न संहिताओंका विचार भी नहीं करना पड़ता ।

ऐतिहासिकतासम्बन्धी शङ्काका समाधान

आर्यावर्तके प्राचीन ग्रन्थोंमें महाभारत और वाल्मीकि-रामायण—इन दो ग्रन्थोंकी ही 'इतिहास' संज्ञा है । प्राचीन ग्रन्थोंमें महाभारतको बारंबार 'इतिहास' नामसे पुकारा गया है । कहीं-कहीं इसके पुराण, काव्य, आख्यान आदि नाम भी व्यवहृत होते देखे जाते हैं । सचमुच ही महाभारत इन सभी नामोंका पात्र है । महाभारतमें व्यासजीने जो विभिन्न तत्त्वोंके पुष्पोंको गूँथा है, उसे देखकर बहुतेरे योरोपीय विद्वानों-को यह संशय होता है कि इसमें कौरव-पाण्डवोंका यथार्थ इतिहास है या ये व्यास मुनिके कल्पित पात्र हैं । इतना ही नहीं, वे यह भी कहते हैं कि कवियोंने पीछेसे कल्पना करके इसे घुसेड़ दिया है । अर्थात् वे महाभारतकी ऐतिहासिकताके विषयमें शङ्का करते हैं ।

उनके इस संशयकी निवृत्तिका यही उत्तर है कि यदि पात्र ऐतिहासिक न होते, केवल कल्पित होते, तो इन पात्रों-को दूसरे ग्रन्थकर्ता अपने ग्रन्थमें शायद ही स्थान देते । परंतु पाण्डवादि पात्र ऐसे हैं कि महाभारतके पश्चात् लिखे गये पुराणों तथा साहित्यके ग्रन्थोंमें भी उनके नाम तथा अनेकानेक वर्णन देखनेमें आते हैं । ज्यौतिषशास्त्रमें भी 'शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ' इत्यादि वाक्य देखनेमें आते हैं । बल्कि सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिके

'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (४। ३ ९८)—इत्यादि सूत्रोंमें भी भारतीय पात्रोंके नाम आते हैं। इनके सिवा पाण्डवोंकी ऐतिहासिकताके लिये दूसरा क्या प्रमाण चाहिये? जो लोग वर्तमान स्कूली इतिहासके जैसा इतिहास देखना चाहते हैं तथा जिनका प्राचीन भारतीय ग्रन्थ-प्रणालीके साथ परिचय नहीं है, वे इस प्रकारके अनेक विषयोंसे पूर्ण रामायण और महाभारत-जैसे ग्रन्थोंकी ऐतिहासिकताके विषयमें संदेह करें तो वह और बात है। संस्कृत-साहित्यमें तो इतिहासका यही स्वरूप है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

अर्थात् जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके उपदेशसे युक्त, तथा पूर्व हो चुकनेवाले वृत्तान्तोंकी कथासे युक्त हो, उसे इतिहास कहेंगे।'

पुराणरूपमें महाभारत

महाभारतको 'पुराण' नाम भी दिया गया है। देखिये १। १। १७—

'द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।'
'इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते॥'
(१। १२)

श्राव्याणामुत्तमं चेदं पुराणं ऋषिसंस्तुतम्।
(१। ६२)

इस प्रकार इसको कितनी बार 'पुराण' कहा गया है। पुराणका लक्षण है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशामन्वन्तराणि च।
वशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

'सृष्टिकी उत्पत्ति, सृष्टिका लय, वंशावली, मन्वन्तर और वंशोंका चरित्र—ये पाँच लक्षण जिनमें हों, वे पुराण कहलाते हैं।' ये लक्षण भी महाभारतमें देखनेमें आते हैं, अतएव इनको पुराण कहनेमें कोई बाधा नहीं है।

महाभारत काव्य

परंतु महाभारतको स्वयं व्यासजीने 'काव्य' नाम प्रदान किया है। देखिये—**कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम-पूजितम्** (१। १। ६१)—'भगवन्! मैंने यह सर्वोत्कृष्ट काव्य रचा है।' ब्रह्माजीने भी कहा है—**त्वया च काव्य-मित्युक्तं तस्मात्काव्यं भविष्यति**। 'तुमने इसको काव्य कहा है, इसलिये यह काव्य कहलायेगा।' साहित्यदर्पणकारने काव्यका सूत्ररूपमें लक्षण किया है—**'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है।' इस लक्षणके अनुसार महाभारत, जो रससे सराबोर है, काव्य या महाकाव्य कहलाये तो इसमें विचारकी कोई बात नहीं।

महाभारतमें साम्प्रदायिक तत्त्व

महाभारतमें शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य, प्रकृति तथा देवोंकी स्तुति, उपासना आदि देखनेमें आती है। यह देखकर कुछ लोग कहते हैं कि इन्हें शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंने यह दिखलानेके लिये पीछेसे मिला दिया है कि महाभारतमें भी अपने सम्प्रदायका मूल है।

अब इस सम्बन्धमें हम इतना ही पूछते हैं कि 'आपने प्राचीन इतिहास अथवा पुराणोंका ऐसा कोई ग्रन्थ देखा है, जिसमें एक ही विषयका वर्णन करके उस महाग्रन्थकी समाप्ति कर दी गयी हो?' उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा। वस्तुतः प्राचीन ग्रन्थोंकी यही पद्धति है। वे सर्वज्ञ महर्षि जानते थे कि, त्रिगुणात्मक सृष्टिमें विभिन्न प्रकृतिके लोग हैं; अतएव उनको यदि एक ब्रह्मकी अथवा एक सात्त्विक देवताकी उपासना करनेके लिये कहेंगे तो इससे उनका मन उसमें नहीं लगेगा। इसलिये विभिन्न गुणोंसे युक्त स्वभाववाले लोगोंकी किसी भी उपासनाके द्वारा परमात्मामें प्रवृत्ति हो, इस उद्देश्यको सामने रखकर उन्होंने विभिन्न रूपोंमें एक ही ईश्वरका वर्णन किया है; परंतु उनका परम तात्पर्य क्रमशः परमात्माकी भक्ति, उनके ज्ञानमें ही परिसमाप्त होता है। और यह मार्ग नया नहीं है, परम्परागत है। कहा है—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

'जैसे आकाशसे गिरा हुआ मेघका जल समुद्रमें जाता है, उसी प्रकार सर्वदेवताओंको किया हुआ नमस्कार केशवको प्राप्त होता है।' श्रीकृष्ण स्वयं ही कहते हैं—**मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।** 'हे पार्थ! मनुष्य किसी-की भी आराधना करता हुआ मेरे ही मार्गका अनुसरण करता है, अर्थात् मेरी ही आराधना करता है। इस उद्देश्य-से ही व्यासादि महर्षियोंने अपने ग्रन्थोंमें अनेक देवी-देवताओं-की आराधनाका वर्णन किया है। इतना ही नहीं, विचारशील तत्त्वान्वेषियोंको सही तात्पर्य समझमें आ जाय—इस उद्देश्यसे जिस ग्रन्थमें विष्णुकी महत्ताका वर्णन किया गया है, उसीमें दूसरी जगह शिवकी महत्ताका भी वर्णन हुआ है। तात्पर्य यह है कि विभिन्न उपाधियोंसे ही भगवत्स्वरूपकी विभिन्नता है। उन उपाधियोंका त्याग करके अभिन्नोपासना ही इसका लक्ष्य है।

प्राचीन महर्षि केवल इतिहास जान लेनेमें ही अपने कर्तव्यकी परिसमाप्ति नहीं मानते थे; क्योंकि वे ऐहिक क्षणिक भावकी अपेक्षा किसी चिरंतन भावको ही अधिक उपकारक समझते थे और इसी कारण वे स्वयं ऐहिक जालमें अधिक आसक्त नहीं होते थे। तब फिर वे दूसरोंको उसमें क्यों फँसाते? कदापि नहीं। उन परम कृपालु ऋषियोंका तो यही

मन्तव्य था कि विभिन्न प्रकृतिवालोंको जैसे रुचे वैसे मुक्त होने, परम श्रेय प्राप्त करनेका मार्ग दिखलायें। इस उद्देश्यसे लिखे गये ग्रन्थोंमें यदि हम केवल ऐतिहासिक तत्त्व ढूँढ़ने जायँ और चाहें कि इसके बिना उसमें और कुछ भी न हो तो यह कहाँतक ठीक है।

बल्कि महर्षि व्यासकी महाभारत-रचनाका कारण दिखलाते हुए वैशम्पायन कहते हैं—

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्ग्यं तथैव च।
कृष्णद्वैपायनेनेदं कृतं पुण्यचिकीर्षुणा॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम्।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥
(१। ६२। २७-२८)

'पुण्य करनेकी इच्छावाले कृष्णद्वैपायन मुनिने महात्मा पाण्डवोंकी तथा दूसरे पुष्कल वैभव और तेजवाले क्षत्रियोंकी कीर्ति जगत्में फैलानेके लिये इस धनप्रद, यशस्कर, आयुष्यवर्धक, पुण्यकारक तथा स्वर्गप्रद महाभारतकी रचना की है।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें भारतकी योग्यता और निर्माणके जो हेतु दिये गये हैं, उनमें दो हेतु स्पष्ट जान पड़ते हैं—एक पुण्य करनेकी इच्छा तथा दूसरी पाण्डवोंकी तथा क्षत्रियोंकी कीर्तिका विस्तार। पुण्य करनेकी इच्छा किसीका वृत्तान्त लिखनेसे कहीं पूरी नहीं होती; बल्कि इतर दीन-दुखी प्राणियोंका उद्धार करनेमें अथवा उसका मार्ग दिखलानेसे होती है। महाभारतमें जितने धर्म, भक्ति या ज्ञानप्रधान विषय आये हैं, उन सबका समावेश इस हेतुके भीतर हो जाता है। पाण्डवोंकी कीर्तिमें ऐतिहासिक हेतु है, और वह हेतु भी 'उन आदर्श पुरुषोंका जीवन लोगोंके सामने रखकर युधिष्ठिर आदिके समान बर्तना चाहिये, दुर्योधन आदिके समान नहीं'—इस महान् उपदेशसे चरितार्थ होता है। तात्पर्य यह कि महर्षियोंके ग्रन्थोंमें केवल इतिहास ही नहीं होता अपितु उनमें परमतत्त्वदर्शक साधन भी गुँथे हुए होते हैं।

कविताके भेदसे कर्त्ताके भेदकी कल्पना

कुछ काव्यसमीक्षक कहते हैं कि 'भारतके श्लोकोंकी रचना विभिन्न प्रकारकी है; इनमें कुछ श्लोक तो सरल बातचीत-जैसे हैं तथा कुछ श्लोक क्लिष्ट हैं। अतएव इस काव्यभेदसे इनके कर्ता भी अलग-अलग होने चाहिये।'

इसका उत्तर यह है कि व्यासजी स्वयं कहते हैं— आठ हजार आठ सौ श्लोकोंको मैं समझता हूँ और शुक समझते हैं, अर्थात् वे श्लोक इतने क्लिष्ट हैं कि इनको दूसरे नहीं समझ सकते। व्यासजीने इस प्रकारके कूट श्लोक क्यों कहे, यह हम पहले भारत-लेखन-प्रसङ्गमें बता चुके हैं। उसके यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। दूसरी बात यह है कि जिस प्रसङ्गकी कविता होती है, उसके लिये अनुकूल संयोग मिलनेपर जैसी कविता बन पाती है, प्रतिकूल संयोगमें वैसी नहीं बन पाती—यह सुकवियोंको ज्ञात है। संयोग-की अनुकूलता और प्रतिकूलता भी कविताके स्वरूपका निर्माण करनेमें योग्य भाग लेती है। व्यासजीका कविता-लेखनका कैसा संयोग था, यह सुविदित ही है। तथापि यह कहे बिना हम नहीं रह सकते कि यह कविता रसात्मक, सरल और भावपूर्ण है। वृत्तोंका फेर-फार तो प्रसङ्गको यथार्थरूपसे दीप्त करनेका एक ढंग है तथा कवि-चातुर्य है; अतएव जो विभिन्न कर्त्ता माननेकी बात है, वह ठीक नहीं है। तथा अनुष्टुप् छन्द लिखनेवाले दूसरे उपजाति आदि छन्द नहीं लिख सकते, यह भी माननेयोग्य नहीं। तात्पर्य यह है कि कविताके भेदसे कर्त्ताके भेदकी कल्पना कोरी कल्पना है।

ग्रन्थ-प्रचारकी शैली

महाभारतमें एक ऐसा श्लोक है—

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते॥
(१। १। ५२)

"कुछ ब्राह्मण 'नारायणं नमस्कृत्य' अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रसे आरम्भ करके, दूसरे कुछ लोग आस्तीकके आख्यानसे आरम्भ करके तथा कुछ लोग उपरिचर वसुके आख्यानसे आरम्भ करके भारतको भलीभाँति पढ़ते हैं।"

इस श्लोकसे कुछ लोग इसको भारतके तीन संस्करणोंका आरम्भ मानते हैं, परंतु इसके द्वारा भारतके तीन संस्करण सिद्ध नहीं होते। इससे तो यह जान पड़ता है कि जब यह ग्रन्थ मौखिक पढ़ा जाता था, तब जिन विद्वान्को जहाँसे उपयुक्त जान पड़ता था, वहींसे वे उसे पढ़ना या व्याख्यान देना प्रारम्भ कर देते थे। यदि दूसरोंके कथनानुसार इसको सौति, वैशम्पायन और व्यासके तीन संस्करणोंका प्रारम्भ मानें तो यह घटित नहीं हो सकता। क्योंकि सौतिने **जनमेजयस्य राजर्षेः**—इस नवें श्लोकसे बोलना प्रारम्भ किया है, वैशम्पायनने ६१ वें अध्यायके **'गुरवे प्राङ् नमस्कृत्य'**—इस आद्यश्लोकसे आरम्भ किया है, और व्यासके आरम्भका तो पता ही नहीं लगता। अथवा मान लीजिये कि उन्होंने **'नारायणं नमस्कृत्य'**—इस आद्य श्लोकसे ही प्रारम्भ किया है, और इससे सारा ग्रन्थ उन्हींका कहा हुआ ठहरता है।

वस्तुतः उस समय ब्राह्मणसमाजमें इस ग्रन्थका किस प्रकार उपयोग होता था, यह दिखलाना ही इसमें हेतु है

और यह बादके श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

विविधं संहिताज्ञानं दीपयन्ति मनीषिणः।
व्याख्यातुं कुशलाः केचिद् ग्रन्थान्धारयितुं परे॥

(१।१।५३)

अर्थात् बुद्धिमान् लोग इस भारतसंहिताके ज्ञानको विविध प्रकारसे प्रकाशित करते हैं, कुछ लोग व्याख्या करनेमें कुशल हैं तो कुछ ग्रन्थको धारण करनेमें—ध्यानमें रखनेमें कुशल हैं।' इससे जान पड़ता है कि उस श्लोकमें उस समयका ग्रन्थ-प्रचार वर्णित है।

भारतमें पुनरुक्ति

महाभारतमें जरत्कारुका आख्यान, परिक्षित्-शापका आख्यान, लाक्षाभवन-दाह आदि कुछ कथाएँ दो बार आती हैं। यद्यपि इनमें संक्षेपका और विस्तारभेद है, तथापि कुछ लोगोंको इनमें पुनरुक्ति तथा पुनरुक्ति करनेवाले दूसरे लेखकोंकी गन्ध आती है। इस सम्बन्धमें ठीक-ठीक समाधान भारतमें पहले ही दे दिया गया है—

विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥

(१।१।५१)

'व्यासजीने इस महान् ज्ञानको विस्तारपूर्वक तथा संक्षेपमें कहा है; क्योंकि लोकमें विद्वानोंको संक्षेपमें तथा विस्तारपूर्वक—दोनों प्रकारसे किसी ज्ञानको धारण कराना इष्ट होता है।' इस हेतुसे ही ये कथाएँ दुहरायी गयी हैं, अन्यान्य कर्त्ताओंके द्वारा बढ़ायी हुई नहीं हैं; क्योंकि यदि उनमें बढ़ानेकी शक्ति होती तो उन विद्वानोंको पुनरुक्तिका भान क्यों नहीं होता और ज्ञात होनेपर वे पहलेकी आख्यायिकाको निकाल बाहर क्यों नहीं कर देते।

कौरव-पाण्डव युद्ध था या कौरव-पाञ्चाल ?

कौरव-पाण्डव-युद्धको कुछ लोग कौरव-पाञ्चाल-युद्ध कहते हैं। इसमें वे कारण यह देते हैं कि दुर्योधन आदि कुरुवंशी थे और पाण्डव भी कुरुवंशी थे, इसलिये 'कौरव' नाममें उन सबका समावेश हो जाता है। यदि वह युद्ध उनके बीच हुआ होता तो यथार्थतया धार्तराष्ट्र और पाण्डवोंका युद्ध कहलाता। बल्कि द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य आदिका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ जितना स्नेह तथा सम्बन्ध था, उतना ही पाण्डवोंके साथ भी था। इस कारण वे दुर्योधनका पक्ष लेकर पाण्डवोंका बिगाड़ करनेके लिये खड़े नहीं होते। अतएव वह युद्ध कौरवों और पाञ्चालोंका था। क्योंकि द्रोणका आश्रय लेकर कौरवोंने द्रुपदको पराजित किया था; इसलिये हो सकता है कि पाञ्चाल लोगोंने हस्तिनापुरपर चढ़ाई की हो और पाण्डवोंने अपने ससुरकी सहायता की हो, इत्यादि।'

इस बातपर अब हम विचार करें। पहले पञ्चालराज द्रुपद और कुरुवंशियोंमें शत्रुता न थी, परंतु द्रोणाचार्य और द्रुपदके बीच मित्रकलहमें शत्रुता हो गयी थी, और इस कारणसे द्रुपदका पराभव करनेके उद्देश्यसे द्रोणाचार्यने गुरुकुलके कुमारोंसे गुरु-दक्षिणामें द्रुपदको बाँधकर अपने सामने लानेकी माँग की थी। कुमारोंने दक्षिणा देना स्वीकार करके द्रोणाचार्यकी अधीनतामें द्रुपदके ऊपर चढ़ाई कर दी। परंतु अन्य कुमार पराजित हो गये, अन्तमें अर्जुनने अपने तीनों भाइयोंको साथ लेकर द्रुपदकी राजधानीपर आक्रमण कर दिया और द्रुपदको पराजित करके तथा बाँधकर द्रोणाचार्यके सामने ला उपस्थित किया। तभीसे द्रुपदका द्रोणाचार्यके प्रति पूर्ण वैरभाव बढ़ गया, और इस कारणसे उन्होंने द्रोणाचार्यको मारनेके लिये अग्निकुण्डसे धृष्टद्युम्नको उत्पन्न किया। इस वृत्तान्तके द्वारा यह जान पड़ता है कि कौरवोंका द्रुपदसे वैर न था, परंतु वे द्रोणाचार्यके साथ थे, और वे भी उदार थे। क्योंकि द्रोणाचार्यने यह जानकर भी कि धृष्टद्युम्न उनको मारनेके लिये उत्पन्न हुआ है, उसे धनुर्वेदकी शिक्षा दी थी। द्रुपदके पराभवमें कुरुवंशी कुमारोंका ही हाथ था, और उसमें भी विशेष करके पाण्डवोंने ही उनको पराजित किया था। अतएव द्रोणाचार्य और पाण्डवोंके बीचमें वैर बढ़ानेकी द्रुपदकी इच्छा हो सकती थी। (क्योंकि द्रुपदका पाण्डवोंके साथ वैर न था, यदि होता तो वह अपनी पुत्रीके लिये अर्जुनको प्राप्त करनेके हेतु स्वयंवरकी प्रतिज्ञा नहीं करते) । पश्चात् पाण्डव तो द्रुपदके जामाता बन गये, किंतु उनका वैर-भाव द्रोणाचार्यके प्रति बना रह गया। अब यदि यह वैर साधनेके लिये पाञ्चालोंने चढ़ाई की होती तो उसके लिये कोई नया भारत रचना पड़ता, अथवा किसी नये व्यासजीके मनमें यह भारत हो तो उसे वे जानें। परंतु महाभारतमें तो जब पाण्डवोंके वनवासके तेरह वर्ष पूरे हो गये, सुलहके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गये और पाण्डव रणभूमिमें युद्ध करने आये, तभी पाञ्चाल अपने जामाताओंकी सहायताके लिये आये और जिस प्रकार दूसरे राजाओंने युद्ध किया, वैसे ही उन्होंने भी युद्ध किया। उसमें जिसने-जिसने जिसको-जिसको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, तथा जिसकी-जिसकी मृत्युमें जो-जो निमित्तभूत थे, उन्होंने उनको-उनको मारा। बल्कि धृष्टद्युम्नको पाण्डवोंने सेनापति बनाया था, उसमें भी कारण यह था कि 'सेनापति किसको बनाया जाय ?' इस प्रकारका विमर्श जब उद्योगपर्वमें हुआ, तब धृष्टद्युम्नकी अधिक योग्यताके विचारसे उनको सेनापति बनानेके लिये बहुमत प्राप्त हुआ, और इसी कारणसे वे सेनापति चुने गये।

इस विचारसे तो यह कौरवों और पाञ्चालोंका युद्ध नहीं सिद्ध होता। अब यह देखना है कि इसको कौरवोंका युद्ध अथवा धार्तराष्ट्रों और पाण्डवोंका युद्ध क्यों नहीं कहा गया ? अपितु इसे कौरव-पाण्डवोंका युद्ध क्यों कहा गया ? यद्यपि सभी

कुरुवंशी थे, इसलिये वे कौरव ही कहलाते थे, फिर भी यह भाई-भाईका युद्ध था, इसलिये 'कौरवोंका युद्ध किसके साथ' यह प्रश्न बना ही रह जाता। इस एक कारणसे, तथा दुर्योधन-के पक्षमें बाह्लीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा, भीष्म आदि बहुतेरे कुरुवंशी युद्ध करनेवाले थे तथा पाण्डवोंकी ओर इस वंशके केवल वे ही थे। इसलिये धार्तराष्ट्र न कहकर एक ओर कौरव और दूसरी ओर कौरव होते हुए भी विशिष्टता व्यक्त करनेके लिये पाण्डव कहनेमें क्या बाधा उपस्थित होती है, जिससे भारतोक्त वस्तुस्थितिका अतिक्रमण करके पाञ्चालोंकी ओर बुद्धि दौड़ानेकी आवश्यकता समझी जाय?

बल्कि भीष्म आदि न्यायी तथा धर्मपरायण थे और उनके लिये धार्तराष्ट्र और पाण्डव समान थे, तथापि उन्होंने किस कारण धार्तराष्ट्रोंका पक्ष लिया—इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उन लोगोंने युद्धके मौकेपर जब युधिष्ठिर उन्हें प्रणाम करनेके लिये आये, उस समय जो वचन कहे थे, वे ही पर्याप्त हैं। उन्होंने कहा था—

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥
(भीष्म० १९। ४१)

'महाराज! पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं—यह सत्य है। मुझको कौरवोंने अर्थसे बाँध लिया है।'

यह बात उनमेंसे प्रत्येकने कही, इससे वे दुर्योधनके पक्षमें क्यों रहे, यह समझमें आ जाता है। उपर्युक्त हेतुओंसे यह युद्ध कौरव-पाञ्चालोंका नहीं, बल्कि कौरव-पाण्डवोंका था—यह ठीक-ठीक समझमें आ जाता है।

महाभारतके विषयमें इस प्रकारकी अनेक शङ्काएँ होती हैं, परंतु उनका इस ग्रन्थके द्वारा ही निराकरण हो जाता है।

वंशावलि

पाण्डव चन्द्रवंशी थे। उनकी वंशावलि महाभारतके आदि-पर्वके ९४ वें ९५ वें अध्यायमें दी गयी है। ९४ वे की अपेक्षा भी ९५ वें अध्यायमें वह विस्तारपूर्वक है। उसमेंसे सीधा वंश चलाने-वाले एक-एक आदमीका नाम लेकर नीचे वंशावलि दी जाती है—

उपर्युक्त दो वंशोंमें चन्द्रवंशकी अगली वंशावली इस प्रकार है—८–नहुष, ९–ययाति, १०–पूरु (इनसे ही पौरव कहलाये) ११–जनमेजय, १२–प्राचिन्वान्, १३–संयाति, १४–अहंयाति, १५–सार्वभौम, १६–जयत्सेन, १७–अवाचीन, १८–अरिह, १९–महाभौम, २०–अयुतनायी, २१–अक्रोधन, २२–देवातिथि, २३–अरिह, २४–ऋक्ष, २५–मतिनार, २६–तंसु, २७, इलिन, २८–दुष्यन्त, २९–भरत (इनके नामपर भारत कहलाता है), ३०–सुमन्यु, ३१–सुहोत्र, ३२–हस्ती (इन्होंने हस्तिनापुर बसाया), ३३–विकुण्ठन, ३४–अजमीढ, ३५–संवरण, ३६–कुरु, ३७–विदुर, ३८–अनश्वा, ३९–परिक्षित्, ४०–भीमसेन, ४१–प्रतिश्रवा, ४२–प्रतीप, ४३–शंतनु, ४४–विचित्रवीर्य, ४५–धृतराष्ट्र तथा पाण्डु, ४६–धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि तथा पाण्डुके युधिष्ठिर आदि पाण्डव। इस प्रकार पाण्डव आदिनारायणसे ४६ वीं पीढ़ीमें आते हैं। परंतु पूर्वके राजा महातपस्वी तथा योगसिद्ध थे, अतएव इस वंशको पाण्डवोंतक आनेमें अनेक युग बीत गये होंगे। उपर्युक्त वैवस्वत मनुका यह २८ वाँ कलियुग चल रहा है।

टीकाकार नीलकण्ठ

महाभारतके अनेकों स्थल बहुत कठिन हैं। उन स्थानोंके श्लोक बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धिको भी भ्रममें डाल देते हैं, और विचारमग्न कर देते हैं। इस प्रकारके कठिन श्लोकरूपी दुर्भेद्य भँवरवाले महाभारतरूपी समुद्रको पार करनेके लिये जैसे-जैसे अधिक टीकाएँ मिलेंगी, वैसे-वैसे अधिक सुगमताका होना स्वाभाविक ही है। महाभारतके ऊपर अनेकों टीकाएँ हुई होंगी। परंतु आजकल पं० नीलकण्ठजीकी 'भारत-भाव-प्रदीप' नामक टीका ही समस्त भारतमें एक अति उत्तम टीकाके रूपमें उपलब्ध है। [प्रसन्नताकी बात है कि हिंदीमें प्रत्येक श्लोकके अनुवादके साथ सारी महाभारत 'गीताप्रेस'के द्वारा प्रकाशित की गयी है।] पण्डित नीलकण्ठने अपनी टीकामें 'रत्नगर्भ' नामक किसी टीकाकारका तथा 'गाणेशी' नामक टीकाका नाम देकर महाभारतके आख्यानोंके तात्पर्य-सूचक श्लोक दिये हैं। इससे ज्ञात होता है कि 'रत्नगर्भ' और 'गणेश' नामके पण्डितोंने भी इस ग्रन्थके ऊपर टीकाएँ की होंगी। पण्डित नीलकण्ठने 'भावदीप' लिखते समय कितना परिश्रम और शोध किया है, यह उनकी महाभारतकी टीकाके आरम्भमें आये हुए दो श्लोकोंसे समझमें आ जाता है। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

बहून् समाहृत्य विभिन्नदेश्यान्
कोशान् विनिश्चित्य च पाठमग्र्यम्।
प्राचां गुरूणामनुसृत्य वाच-
मारभ्यते भारतभावदीपः॥

टीकान्तराणीन्दुरविप्रभाणि
बाह्यार्थरत्नानि चकासयन्तु ।
अन्तर्निगूढार्थचयप्रकाशे
दीपः क्षमो भारतमन्दिरेऽस्मिन् ॥

'विभिन्न देशोंके अनेकों कोषोंको एकत्र करके, मुख्य पाठ निश्चय करके तथा प्राचीन गुरुओंकी वाणीका अनुसरण करके इस 'भारतभावदीप'को प्रारम्भ करते हैं। सूर्य-चन्द्र-जैसी कान्तिवाली दूसरी टीकाएँ बाह्यार्थरूपी रत्नोंको भले ही प्रकाशित करें, परंतु इस भारतमन्दिरमें निहित अत्यन्त गूढ़ अर्थसमूहको प्रकाशित करनेमें यह भारतभावदीप ही समर्थ है।'

इससे यह समझमें आ जाता है कि नीलकण्ठकी टीका बहुत विचारपूर्ण है तथा उनके समयमें दूसरी टीकाएँ भी प्रचलित थीं। पण्डित नीलकण्ठ दक्षिण देशके पण्डित थे, और वे पेशवाओंके समयके राजपण्डित थे—ऐसी किंवदन्ती है। वे श्रीधर स्वामीके बाद हुए थे, यह सभापर्वके ४१ वें अध्यायके प्रथम श्लोककी टीकासे ज्ञात होता है। वे लिखते हैं—'**अतएव श्रीमद्भागवतेऽपि हरिनिन्दाग्रन्थः स्तुतिपरत्वेनैव व्याख्यातः श्रीधरस्वामिभिः**। इस प्रकार श्रीमद्भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामीके उल्लेखसे नीलकण्ठ उनसे पीछे हुए थे, यह स्पष्ट हो जाता है। श्रीधर स्वामीको हुए सम्भवतः चार सौ वर्ष हो गये। उनके बाद नीलकण्ठ हुए हैं। बल्कि भगवद्गीताके दूसरे अध्यायकी समाप्तिमें पण्डित नीलकण्ठ लिखते हैं—**अस्याध्यायस्यार्थः संगृहीतो मधुसूदनश्रीपादैः**। इस प्रकार वे गीताके टीकाकार मधुसूदन सरस्वतीका उल्लेख करते हैं। इससे संदेह नहीं रह जाता कि पण्डित नीलकण्ठ उनके भी पीछे हुए थे। मधुसूदन सरस्वती शाके १६०० में हुए थे, ऐसा माना जाता है। पण्डित नीलकण्ठके पिताका नाम 'गोविन्दसूरिसूनोः' लिखनेके कारण गोविन्द था, यह स्पष्ट ज्ञात होता है। वे चतुर्धर नामक विप्रकुलमें पैदा हुए थे। उनके मुख्य गुरु सर्वशास्त्रनिष्णात लक्ष्मणाचार्य थे, यह उनके पुनः-पुनः कथनके द्वारा ज्ञात होता है। पुनः वे नारायण तथा धीरेश नामके दो विद्वान् पूर्वपुरुषोंको हरि तथा हररूपमें मानकर नमस्कार करते हैं। पण्डित नीलकण्ठ चतुर्धर सर्वशास्त्रोंमें निपुण थे, यह उनकी टीकासे जान पड़ता है। वे वेदान्त तथा मीमांसाके असाधारण पण्डित थे। उनको भूगोल तथा खगोलसम्बन्धी प्राचीन ज्ञान होनेके साथ-साथ अर्वाचीन विचारोंका भी ज्ञान था, यह उनके भीष्मपर्वमें आये हुए भूगोल-वर्णनके प्रसङ्गसे स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने सारे महाभारतपर तथा उसके खिलभाग हरिवंशके ऊपर भी सम्पूर्ण टीका लिखी है। पण्डित नीलकण्ठकी टीका कितनी योग्य है, यह इससे समझ लेनी चाहिये कि जैसे सूर्यके उदय होते ही तारागण अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार पण्डित नीलकण्ठकी टीका प्रकाशित होते ही दूसरी टीकाएँ अदृश्य हो गयीं। इन्होंने टीका लिखनेमें कितना परिश्रम किया है, यह बात इनकी अतिविस्तृत भगवद्गीताकी टीका देखनेसे समझमें आ जाती है। बल्कि अश्विनीकुमारकी स्तुति, म्लेच्छ भाषाके श्लोक, सनत्सुजातका उपदेश, मोक्षधर्म तथा अनुगीता-जैसे कठिन स्थलोंपर यदि यह टीका न होती तो उनमें बहुतेरे श्लोकोंका समझना भी दुष्कर हो जाता। पुनः महाभारतमें बहुतेरे कूट श्लोक हैं, उनमें अतिक्लिष्ट दो श्लोकोंका नमूना यहाँ देते हैं—

नदीज लङ्केशवनारिकेतु-
नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी
जित्वाद्य यं नेष्यति चाद्य गावः ॥
(विराट० ३९ । १०)

गोकर्णा सुमुखी कृतेन इषुणा गोपुत्रसम्प्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम् ।
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम् ॥
(कर्ण० ९० । ४२)

प्रथम श्लोकमें द्रोणाचार्यने अर्जुनका वर्णन करते हुए भीष्मको दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये कहा है, और दूसरे श्लोकमें 'गो' शब्दके विभिन्न अर्थ हैं। उसमें कर्णने अर्जुनके वधके लिये छोड़े हुए बाणसे अर्जुनका केवल मुकुट-छेदन किया है, यह बात कही गयी है। यद्यपि इस प्रकारके कूट श्लोक बहुत नहीं हैं, फिर भी कठिन श्लोक बहुत हैं। यदि टीका न हो तो निस्संदेह उनका अर्थ करना कठिन हो जाता है। पण्डित नीलकण्ठने सहज लगनेके कारण या दूसरे कारणोंसे कुछ श्लोकोंकी टीका नहीं की है, इसलिये उन श्लोकोंके ऊपर व्याख्याता लोग अपने-अपने मनरूपी तुरङ्गको यथेष्ट दौड़ने देते हैं। पण्डित नीलकण्ठ बड़े समर्थ पण्डित थे, इसमें संदेह नहीं; यह बात अनुवादमें उनकी टीकामें दी गयी टिप्पणियोंसे व्यक्त हो जाती है। उन्होंने देवीभागवतके ऊपर भी टीका लिखी है तथा वेदान्तका एक 'वेदान्तक' नामका ग्रन्थ लिखा है। बल्कि ज्यौतिषशास्त्रमें भी 'नीलकण्ठी' नामका ग्रन्थ देखनेमें आता है। सचमुच विद्वद्वर नीलकण्ठ निःस्वार्थतापूर्वक असाधारण श्रम उठाकर सम्पूर्ण महाभारतके ऊपर टीका करके भारतवर्षकी जनताका असीम उपकार कर गये हैं।

सौति ब्राह्मण थे

नैमिषारण्यनिवासी ऋषियोंके सामने महाभारत सुनानेवाले सौति ब्राह्मण थे, यह पं० नीलकण्ठ अपनी आदिपर्वके

चौथे अध्यायकी टीकामें प्रतिपादन करते हैं। उनका यह अभिप्राय है कि **ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः**—'ब्राह्मणीमें क्षत्रियसे उत्पन्न हुआ सूत कहलाता है' इस स्मृतिवाक्यके अनुसार विलोमजन्मा जाति सूत कहलाती है। और ऐसा ही संजय, अधिरथ आदिको समझना चाहिये। उनकी जीविका सारथिके कामसे अथवा प्राचीन राजाओंके शौर्य, औदार्य आदिका वर्णन करके स्वामीको प्रोत्साहन देनेसे चलती थी और इसी कारण वे पौराणिक नामसे पुकारे जाते हैं। उग्रश्रवा तो सौति अर्थात् सूतपुत्र थे, जातिसूत न थे। इस सूतके लिये पुराणान्तरमें कहा गया है—**अग्निकुण्डसमुद्भूत सूत निर्मलमानस**—'हे अग्निकुण्डसे उत्पन्न निर्मल मनवाले सूत!' यह शौनकका वचन है। फिर **अग्निजो रोमहर्षणः**—रोमहर्षण अग्निसे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुए सूतको ब्राह्मणके संकल्पके द्वारा ब्रह्मासनकी योग्यता प्राप्त हुई थी, जैसे अग्निकुण्डसे उत्पन्न धृष्टद्युम्नको संकल्पके बलसे क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ था। बल्कि ब्रह्मासनकी प्राप्ति वैशम्पायन, शान्तनव, मार्कण्डेय आदिके समान तथा उनकी जातिके लोगोंको ही हो सकती है, हीन जातिवालोंको नहीं। तथा महात्मा शौनक आदि भी हीनसे परम रहस्यको ग्रहण नहीं कर सकते। क्योंकि **न हीनतः परमभ्याददीत**—'हीन जातिवालोंसे परम तत्त्व ग्रहण न करे'—यह निषेध है। जो 'नीचसे भी उत्तम विद्या ग्रहण करे'—यह वचन है, वह आपत्कालके लिये ही है। बल्कि सौतिमें ब्राह्मणत्वका संकल्प था, इसीसे बलरामने भी ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके लिये व्रत किया था। रोमहर्षणको जो सूत कहते हैं, वह कथा-वक्ता होनेके कारण ही। जातिसे सूत वे नहीं थे। इससे यह फलित होता है कि पुराण-श्रवणकी इच्छावाले ब्राह्मणसे ही पुराणश्रवण करें, हीनपुरुषसे नहीं। बल्कि पौराणिकका पद भी जातिसूतके लिये नहीं, अपितु पुराणपाठी ब्राह्मणके लिये समझना चाहिये।' इस प्रकार पं० नीलकण्ठने उग्रश्रवा सौतिको ब्राह्मण सिद्ध करनेके लिये तर्क उपस्थित किया है

'नारायणं नमस्कृत्य'—इस श्लोककी पुनरावृत्ति

महाभारतमें **'नारायणं नमस्कृत्य'**—यह श्लोक प्रत्येक पर्वके आरम्भमें प्रयुक्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि इस ग्रन्थमें नरावतार अर्जुन और नारायणावतार श्रीकृष्ण—ये दो मुख्य नायक हैं। महाभारत इन दोनोंके चरित्रोंसे तथा गुणोंसे भरपूर है और वे ही सारे कल्याणके धामस्वरूप हैं। इसी कारण नर-नारायणके प्रति नमस्कारसूचक ये श्लोक बारंबार आरम्भमें दिये गये हैं। बल्कि नर और नारायण (जीव और ईश) दोनों नरोत्तमपदवाच्य ब्रह्मरूप हैं तथा ये प्रत्येक पर्वके मुख्य विषय हैं, यह सूचित करनेके लिये भी यह श्लोक दिया गया है।

जय

उपर्युक्त श्लोकमें इस ग्रन्थका 'जय' नाम दिया गया है। यद्यपि अष्टादशपुराण आदि अनेकों ग्रन्थ 'जय' नामसे पुकारे जाते हैं, फिर भी महाभारत तो 'जय' नामके लिये सहेतुक पात्र है। 'जय' अठारहकी संज्ञा है। वाल्मीकि रामायणके टीकाकार ग्रन्थके श्लोकोंमें घटी-बढ़ी न हो, इसलिये प्रत्येक अध्यायकी टीकाके अन्तमें इस अक्षरजन्य संख्याका उपयोग करते हैं। कौन-सा अक्षर किस संख्याका वाचक है, यह इस श्लोकसे पता चलता है—

कादयोऽङ्काष्टादयोऽङ्काः पाद्याः पञ्च प्रकीर्तिताः।
याद्योऽष्टौ ञनौ पूर्णे विज्ञेयाः स्वरशास्त्रके॥

(समरसार)

क से झ तकके अक्षर क्रमशः १ से ९ तककी संख्याके वाचक हैं, ट से ध तकके अक्षर भी १ से ९ तककी संख्याके वाचक हैं, प से म तकके अक्षर १ से ५ तककी संख्याके वाचक हैं, य से ह तकके आठ अक्षर १ से ८ तककी संख्याके वाचक हैं और ञ तथा न—ये दो पूर्णवाचक हैं, अर्थात् क से १, ख से २—इस प्रकार संख्याके स्थानमें अक्षर लेना चाहिये। लंबी संख्या भी अक्षरोंके द्वारा कही जा सकती है। इस उद्देश्यसे अक्षर-विशेषको एक विशेष संख्या-वाचक माना है। कौन अक्षर किस संख्याका वाचक है, यह नीचेके कोष्ठकद्वारा सुलभतासे जाना जा सकता है।

संख्या	वाचक अक्षर	संख्या	वाचक अक्षर
१	क ट प य	६	च त ष
२	ख ठ फ र	७	छ थ स
३	ग ड ब ल	८	ज द ह
४	घ ढ भ व	९	झ ध
५	ङ ण म श	०	ञ न

इस प्रकारकी गणनाका क्रम जैमिनिसूत्रमें तथा लघु आर्यसिद्धान्तमें भी दिया गया है। उपर्युक्त रीतिसे देखनेपर 'जय' शब्दमें ज ८ की संख्याका वाचक है, और य १ की संख्याका वाचक है। संस्कृतके ग्रन्थोंमें अङ्कोंकी वामगति देखी जाती है। इस प्रकार पहले १ और पीछे ८ लेनेपर १८ की संख्या बनती है। इस जयसूचक १८ का मेल महाभारतमें विशेषरूपसे देखनेमें आता है। महाभारतमें मुख्य पर्व १८ हैं, दोनों पक्षोंकी सेना १८ अक्षौहिणी हैं, उनके बीच १८ दिन युद्ध चला। युद्धके बाद धृतराष्ट्र १८ वर्ष जीते रहे, उसके बाद युधिष्ठिरने १८ वर्ष राज्य किया। इस ग्रन्थमें आयी हुई ज्ञानमयी गीता १८ अध्यायोंकी है, और इस ग्रन्थमें इस मङ्गलाचरण-श्लोककी भी १८ बार आवृत्ति हुई है। बल्कि कथाके सारांशमें भी धर्मकी जय है। इस प्रकार

इस ग्रन्थमें 'जय'का अनुस्यूत प्रयोग देखनेमें आता है। जैसे वाल्मीकि-रामायणके प्रत्येक हजार श्लोकके आरम्भमें गायत्रीके क्रमशः एक-एक अक्षरका प्रयोग हुआ है, और इस प्रकार गायत्रीके २४ अक्षरोंसे युक्त २४ हजार श्लोकोंकी रामायण मोक्षदा गायत्रीरूप है—यह संकेतसे बतलाया गया है, उसी प्रकार इस ग्रन्थमें भी जय (१८) का बारंबार प्रयोग करके सांकेतिक रीतिसे ग्रन्थको जय अर्थात् संसारको जीतनेवाला सूचित किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थका 'जय' नाम अर्थसूचक लगता है।

महाभारत ग्रन्थरत्नोंका रत्नाकर है

महाभारत ग्रन्थ अनेक ग्रन्थोंका रत्नाकर है। इसमेंसे सैकड़ों संस्कृत तथा प्राकृतके ग्रन्थ, एवं फुटकर गद्य-पद्यात्मक लेखरूपी रत्न प्रकट हुए हैं और आगे भी प्रकट होते रहेंगे। संस्कृतमें उत्तम गिने जानेवाले तीन महाकाव्य—किरातार्जुनीय, नैषध और माघकविकृत शिशुपालवध—ये महाभारतकी ही विभूतियाँ हैं। बल्कि चम्पूभारत, नलचम्पू, धनंजयविजय-व्यायोग, वेणीसंहार, प्रचण्डपाण्डव, अभिज्ञानशाकुन्तल, सावित्री-चरित्र, सुभद्राहरण, सौगन्धिकाहरण इत्यादि चम्पू, व्यायोग, नाटक, नाटिका आदि अनेकों ग्रन्थ महाभारतके आधारसे ही रचे गये हैं। भारतकी कथासे प्राकृतमें भी अनेक काव्य रचे गये हैं और आर्यावर्तके निवासी उनको बड़े चावसे गाते हैं। मराठी, बँगला भारतकी विभिन्न भाषाओंमें लेखकों तथा कवियोंने नये-नये भावोंका समावेश करके लोगोंको रसास्वादन करानेके लिये स्वतन्त्र कल्पनाएँ जोड़कर तथा अपनी इच्छाके अनुसार पात्रोंका चरित्र-चित्रण करके स्थान-स्थानपर महाभारतकी विजय-दुन्दुभि बजायी है। यद्यपि उनकी कथा मिश्रित होती है, फिर भी वे भी धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि महाभारत मूल ग्रन्थके लिये लोकमें एक विलक्षण भ्रम फैल गया है, और उस भ्रमके मूलकारण केवल दुर्बल मनके संदेहशील स्त्री-पुरुष हैं। इसलिये मूलग्रन्थकी विशेषताका अनुभव न करनेवाले मनुष्योंको वह भारतकी जिस-किसी कथामें फँसाकर बारंबार बली भीम तथा धनुर्धर अर्जुनका स्मरण कराते हैं, और भारतीय पात्रोंकी तथा महर्षि व्यासकी विजय-पताका फहराते हैं। यह भी प्रशंसनीय है।

महाभारतसम्बन्धी भ्रम

अब हम इस भ्रमके सम्बन्धमें विचार करेंगे। महाभारत ग्रन्थ बहुत ही बड़ा है तथा उसके कितने ही भाग इतने महान् हैं कि उनका व्याख्यान करनेमें बहुत लंबा समय भी कम ही जान पड़ता है। सारे ग्रन्थके साधारण व्याख्यानमें ही लगभग पाँच वर्ष निकल जाते हैं। इस नश्वर जगत्में ऐसी अनश्वरता कहाँसे आ सकती है, जिसमें पाँच वर्षके समयमें कोई आदमी मरे ही नहीं अथवा कोई विपरीत प्रसङ्ग उपस्थित ही न हो? बल्कि उनका उपस्थित होना ही अधिक सम्भव है। इसका फल यह होता है कि वे मनुष्य भी गम्भीर विचार न करके महाभारतकी होनेवाली कथाके ऊपर ही उन दोषोंको मढ़ देते हैं। यदि कहीं महाभारतकी कथा होती है, और इस बीचमें वहाँ कोई अनिष्ट हो जाता है, तो वहाँ वह वहमकी बात चालू हो जाती है! 'भाई! यह तो महाभारतकी, युद्धकी तथा मार-काटकी कथा ही ऐसी है! अमुकके यहाँ महाभारतकी कथा होती थी, और अमुक आदमी मर गया, और अमुकके यहाँ कथा बँचायी गयी तो अमुक विग्रह हो गया!' इस प्रकार सौसे हजार बनती हुई तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाती हुई वहमकी मरीचिका मनुष्योंके दुर्बल हृदयमें घर करके बैठ गयी है और उनके अवरोधसे सबल मनके मनुष्य भी प्रभावित होते देखे जाते हैं। हमने देखा है कि कितने ही मनुष्य उपर्युक्त कारणोंसे महाभारत-श्रवण करनेकी इच्छा मनकी मनमें ही रखकर मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं और मूर्खतावश इस महान् सौभाग्यसे वञ्चित रह जाते हैं। वहम वस्तु ही ऐसी है जो ठूँठको भूत बना देती है और देव-जैसा मनुष्य भी पिशाचवत् दीखने लगता है!

अब यह विचार करना है कि प्रारब्धको बदलने तथा आयुको कम करनेमें कोई कैसे समर्थ होता है। प्रारब्धके लिये तो **प्रारब्धं भोगतो नश्येत्**—यह ध्रुव सिद्धान्त है। छूटे हुए बाणके समान प्रारब्धके भोगको कोई बदल नहीं सकता और इसके लिये जीवन्मुक्त पुरुषका शरीर भी टिका रहता है। अतएव वह निश्चयपूर्वक भोगनेसे ही नष्ट होता है। अब आयुके सम्बन्धमें देखिये। कहा है—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

अर्थात् आयु, करनेके कर्म, धन, विद्या और मरनेका कारण—ये पाँच जीवके लिये गर्भमें रहते ही सिरज दिये जाते हैं।' इस प्रकार जब प्राणी गर्भमें रहता है, तभीसे निर्मित आयु तथा मृत्युके कारण क्या महाभारत सुनने या बाँचनेसे बदल जाते हैं? कदापि नहीं। बल्कि आयुका संगठन श्वास-गणनाके ऊपर है; अतएव कोई शङ्का कर सकता है कि वीररस-प्रधान कथा-श्रवण करनेसे श्वास जल्दी निकलनेके कारण आयु घट जायगी! इसका उत्तर यह है कि महाभारतमें जैसे वीर-रस-प्रधान कथा है, वैसे ही उसमें परम शान्ति देनेवाली कथाएँ भी कम नहीं हैं। अतएव जल्दी-जल्दी निकला हुआ श्वास फिर बहुत धीरे-धीरे चलनेसे समसंख्यामें आ जायगा, और महाभारतके कथन-श्रवणसे मृत्युका प्रसङ्ग नहीं आयेगा। बल्कि महाभारत-श्रवण करनेसे यदि मृत्यु या कोई अन्य अनर्थ होता तो महाभारतको न सुननेवाले लोगोंको सर्वविघ्नोंसे मुक्त होकर अमर हो जाना चाहिये था।

परंतु ऐसा कोई भी देखनेमें नहीं आता। ऐसे बहुत-से मनुष्य हैं, जो महाभारतका नाम भी नहीं जानते पर दुःखमें व्याकुल होते हैं और मरते हैं। इससे प्रत्येकके समझमें आ जायगा कि महाभारतका श्रवण विघ्नकारक नहीं है, बल्कि अपने कर्म ही विघ्न प्रदान करनेमें हेतु हैं। महाभारतका श्रवण-पठन यदि विघ्नकारक होता तो यह ग्रन्थ पूर्णतः लिखा ही न गया होता तथा इसके टीकाकार सम्पूर्ण ग्रन्थके ऊपर टीका भी नहीं लिख सकते। बल्कि सर्वज्ञ भगवान् व्यासजी इस प्रकारके विघ्नकारी ग्रन्थकी रचना ही नहीं करते। वे बड़े ही दयालु थे। उनके ऊपर विश्वास करके भी महाभारतके श्रवण तथा वाचनसे विमुख नहीं होना चाहिये। बड़े-बड़े पण्डित भी महाभारतको ज्ञानका भंडार मानते हैं और शिष्योंको उपदेश देते हैं कि 'महाभारत पढ़े बिना जीवन चरितार्थ नहीं होता, अतएव महाभारत अवश्य पढ़ना चाहिये।' महाभारत अनिष्ट-कारक तो है ही नहीं, प्रत्युत महापुण्यदायक और चतुर्विध पुरुषार्थप्रद है—यह महर्षि व्यासके वचनसे समझा जा सकता है। यहाँ उनका एक श्लोक देकर विशेष माहात्म्य जाननेकी इच्छा करनेवालोंसे इस ग्रन्थके आदिपर्वके पहले और दूसरे अध्यायका अन्त तथा बासठवें अध्यायको देखनेका मैं अनुरोध करता हूँ—

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं नियतात्मभिः॥

'यह महाभारत वेदके तुल्य है, पवित्र है, उत्तम है और धन, यश तथा आयुको देनेवाला है; इसलिये संयमी मनुष्योंसे इसका श्रवण करे।'

तात्पर्य यह है कि महाभारतसम्बन्धी भ्रम सर्वथा मिथ्या हैं। इसलिये चित्तको दृढ़ रखकर तथा यह समझकर कि अवश्यम्भावी बात होकर ही रहती है, इस श्रेष्ठ ग्रन्थसे विमुख न हों। इसके श्रवणसे तो लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक—सभी प्रकारका लाभ-ही-लाभ है।

उपसंहार

आर्यावर्तके सभी ग्रन्थोंमें महाभारत महान् ग्रन्थ है और वह आर्यजातिको हृदयङ्गम हो गया है। कोई भी महत्ता दिखलानी होती है तो लोग दूसरा उदाहरण न देकर महाभारतके दृष्टान्त देते हैं। वस्तुतः अज्ञानान्धकारसे अंधा बनकर संसारमें भटकनेवाले लोगोंकी आँखें ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोलनेके लिये ही व्यासजीने महाभारतकी रचना की है। जैसे सूर्यसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्विध पुरुषार्थके संक्षिप्त और विस्तृत वर्णनवाले महाभारतरूपी सूर्यसे मनुष्योंका अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा भारतरूपी पूर्ण-चन्द्रके द्वारा श्रुति-चन्द्रिकाके प्रकाशसे मनुष्यकी बुद्धिरूपी कुमुदिनीका विकास होता है। इस ग्रन्थकी यह महान् योग्यता है कि अनेकों विद्वान् इस ग्रन्थके एक अंशको लेकर काव्य-रचना करके कवि बन गये हैं, तथा अनेकों व्याख्याता इसके अंश-विशेषका सभामें वर्णन करके वक्ताके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। पूर्वके विद्वान् इस ग्रन्थकी व्याख्या करते थे, अब भी कर रहे हैं। और जबतक यह ग्रन्थ भूमण्डलपर रहेगा, तबतक विद्वान्लोग इस कल्पवृक्षका त्याग न करेंगे। यही भगवान् व्यासकी सफलता है। यही पाण्डवोंका अमरत्व है, और यही ग्रन्थका महान् जय है! अन्तमें महाभारतका यह महावाक्य—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।

—याद करके हम इस लेखका उपसंहार करते हैं। ॐ तत्सत्।

श्रीराधाकी वन्दना

(१)

हरि मुख-चन्दको प्रकाश पूर्ण देने हेतु पुण्य पूर्णमासीकी निशा जो अति प्यारी हैं।
नटवर नागरके नयन-चकोर-हित रहित-कलङ्क जो मयङ्क-कला न्यारी हैं॥
भाव-रस-सिन्धुमें निमग्न जिनके हो सदा होते दिव्य रसके रसिक बनवारी हैं।
काम-कामिनी-सी घन-अङ्क दामिनी-सी उन श्याम भामिनीको अभिवन्दना हमारी है॥

(२)

जिनकी उदार दयादृष्टि कर देती दूर भूरि भक्तजनकी निखिल भवबाधा है।
जिनके प्रबल प्रेम-पाशने ही पास खींच नित्यमुक्तको भी अनायास अहो बाँधा है॥
भरती असीम श्याम-सिन्धुको समोद सदा जिनकी नवल नेह-सरित अगाधा है।
जिनके रकार बिना राधा कृष्ण आधा कृष्ण, राध्या हरिकी वे धन्य धन्य धन्य राधा हैं॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

महाभारत-संहिता और उसका रचनाकाल

(लेखक—पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी) *

निर्हेतुकी कृपा यस्य भ्रान्तानां मार्गदर्शिनी ।
इतिहासान्धकारं स विनाशयतु माधवः ॥

वर्तमानकालमें उपलब्ध दक्षिणपाठ सहित महाभारत-संहिताको आद्योपान्त पढ़नेसे यह प्रतीत होता है कि भगवान् वेदव्यासजीने जिस महाभारत-संहिताको अपने त्रिकालज्ञानके द्वारा तीन वर्षके परिश्रमसे तैयार किया और ब्रह्माजीकी प्रेरणासे श्रीगणेशजीसे लिखवाया, अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको तथा वैशम्पायन आदि शिष्योंको पढ़ाया और जिसका प्रवचन उन्हींकी आज्ञासे महाराज जनमेजयके सर्प-सत्र (यज्ञ) में वैशम्पायन-जीने किया था, वह 'आदि महाभारत' संहिता लक्ष-श्लोकात्मक ही थी और उसीका नाम 'जय इतिहास', 'भारत' और 'महाभारत' है, जय इतिहास, भारत और महाभारत—ये तीनों ही नाम पर्यायवाची हैं; हम भारतवासियोंका पूर्ण विश्वास है कि ये तीनों नाम एक-मात्र श्रीवेदव्यासप्रणीत लक्षश्लोकात्मक प्रचलित महाभारत-संहिताके ही बोधक हैं । हमारा यह विश्वास अन्धविश्वास नहीं; इसके लिये प्रबल प्रमाण हैं, जिनमेंसे प्रथम अन्तः-प्रमाणोंको हम आगे उद्धृत करते हैं—

इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् ॥
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ॥
(आदि० १ । १०१-२)

एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ॥
(आदि० १ । १०७)

अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान् ॥
(आदि० १ । १०८)

तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते ।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम् ॥ †
(आदि० १ । २७३)

इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥
(आदि० ६२ । १४)

मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा ।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ॥
(आदि० ६२ । २०)

तन्महाभारताख्यानं श्रुत्वैव प्रविलीयते ।
भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ॥
(आदि० ६२ । ३९)

पुण्यकर्मा मानवोंके उपाख्यानोंसहित एक लाख श्लोकोंके इस उत्तम ग्रन्थको आद्यभारत (महाभारत) जानना चाहिये ॥ १०१-½ ॥

इस मनुष्यलोकमें एक लाख श्लोकोंका भारत (महाभारत) प्रतिष्ठित है ॥ १०७ ॥

इस मनुष्यलोकमें वैशम्पायनजीने इसका प्रवचन किया है ॥ १०८ ॥

(परंतु जब यह रहस्यसहित चारों वेदोंकी अपेक्षा अधिक भारी निकला), तभीसे संसारमें यह महाभारतके नामसे कहा जाने लगा । सत्यके तराजूपर तौलनेसे यह ग्रन्थ महत्त्व, गौरव अथवा गम्भीरतामें वेदोंसे भी अधिक सिद्ध हुआ है ॥ २७३ ॥

असीम प्रभावशाली सत्यवतीनन्दन व्यासजीने पुण्यात्मा पाण्डवोंकी यह कथा एक लाख श्लोकोंमें कही है ॥ १४ ॥ (इतिहासको श्रवण करके अत्यन्त क्रूर मनुष्य भी) राहुसे छूटे हुए चन्द्रमाकी भाँति सब पापों-से मुक्त हो जाता है । यह 'जय' नामक इतिहास विजयकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अवश्य सुनना चाहिये ॥ २० ॥ (मनुष्य जान या अनजानमें मन अथवा इन्द्रियोंद्वारा जो पाप कर बैठता है) वह सब महाभारतकी कथा सुनते ही नष्ट हो जाता है; इसमें भरतवंशियोंके महान् जन्मवृत्तान्तका वर्णन है, इस लिये इसको 'महाभारत' कहते हैं ॥ ३९ ॥

---

* श्रीद्विवेदीजी ज्यौतिषशास्त्रके वयोवृद्ध प्रकाण्ड विद्वान् हैं । महामना मालवीयजी महाराज आपको बहुत मानते थे । आपने ८० वर्षसे ऊपरकी अवस्थामें इतना अच्छा खोजपूर्ण लेख लिखनेकी कृपा की है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं— —सम्पादक

† इसी श्लोकके अनुरूप स्वर्गारोहण-पर्वके पाँचवें अध्यायका ४५ वाँ श्लोक है ।

त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः ॥
आकर्ण्य भक्त्या सततं जयाख्यं भारतं महत् ।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा ॥
(स्वर्गारोहण० ५ । ४८-४९)

'मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें इस सम्पूर्ण महाभारतको पूर्ण किया था । जो जयनामक इस महाभारत इतिहासको सदा भक्तिपूर्वक सुनता रहता है, उसके यहाँ श्री, कीर्ति और विद्या तीनों साथ-साथ रहती हैं' ॥ ४८-४९ ॥

इन अन्तःप्रमाणोंके अतिरिक्त बहिःप्रमाण भी हमारे विश्वासके पोषक मिलते हैं—जैसे ईसवीय सन् ४४५ के महाराज सर्वनाथके लेखमें तथा ईसवी सन्की प्रथम शताब्दीके ग्रीक पर्यटक डायोन क्रायस्टोस्टोमके लेखमें एक लक्ष श्लोकके महाभारतका प्रमाण मिलता है । यद्यपि ग्रीक पर्यटकने महाभारत नामका उल्लेख नहीं किया, केवल लक्ष श्लोकके हिंदुस्तानी इलियडका उल्लेख किया है, तथापि वह इलियडके समान राष्ट्रिय महाकाव्य हमारी महाभारतसंहिता ही है—ऐसा इतिहासके विद्वानोंका दृढ़ मत है । इतना ही नहीं, इसके विरुद्ध हमको आभ्यन्तर अथवा बाह्य एक भी प्रमाण ऐसा नहीं मिलता, जिससे यह प्रमाणित हो कि महाभारतसंहिता लक्षश्लोकात्मक नहीं—चौबीस हजार श्लोकात्मक है और न आजतक भारतवर्षके किसी भी पुस्तकालयमें लक्षश्लोकात्मकसे पृथक् कोई दूसरी महाभारत-संहिता चौबीस हजार श्लोककी देखी या सुनी गयी है । और न यही प्रमाण मिलता है कि महाभारत-संहिताका रचयिता महर्षि वेदव्यासके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति है ।

ऊपरके प्रमाणोंसे हमारा विश्वास साधार पुष्ट हो जाता है और इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि सम्पूर्ण लक्षश्लोकात्मक महाभारतसंहिता महर्षि वेदव्यास-प्रणीत ही है, इसके कर्ता अन्य कोई विद्वान् नहीं हैं । अवश्य ही जनमेजय-वैशम्पायनसंवादके प्रसङ्गमें तथा सौति-शौनक-संवादके प्रसङ्गमें प्रश्नोत्तररूपसे कुछ विषय ऐसे आ जाते हैं, जिनको लोग वेदव्यासकी रचना न मानकर वैशम्पायन अथवा सौतिकी रचना मानते हैं; किंतु यह उनका भ्रम है । उन प्रसङ्गोंके सारे-के-सारे विषय महर्षि वेदव्यासकी प्रेरणाके ही आधारपर अवलम्बित हैं, अतएव उनको हम महर्षि वेदव्यासकी रचनासे बाह्य नहीं समझते—उसी तरह जिस तरह समस्त पुराणोंमें शुक-परीक्षित्, सूत-शौनक आदिके संवादोंके प्रसङ्गमें आये हुए विषयोंको हम श्रीमद्भागवतादि पुराणोंसे बाह्य अथवा यों कहें कि वेदव्यासकी रचनासे बाह्य नहीं समझते । सारांश यह कि सम्पूर्ण महाभारत जिसको वेदव्यासजीने बनाया और जो अद्यावधि भारतवर्षमें प्रचलित है, उसमें महर्षि वेदव्यासकी रचनाके अतिरिक्त किसी दूसरे विद्वान्की रचनाका कोई अंश नहीं है । अवश्य ही महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १ के श्लोक १०२-३ में—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥

'तदनन्तर व्यासजीने उपाख्यान भागको छोड़कर चौबीस हजार श्लोकोंकी भारत-संहिता बनायी, जिसे विद्वान् पुरुष भारत कहते हैं' इस श्लोकके आधारपर जो विद्वज्जन महर्षि वेदव्यासप्रणीत संहिताको केवल चौबीस हजार श्लोककी मानते हैं और उसका नाम 'भारत' कहते हैं तथा उपाख्यान-भागको सौतिकी रचना और उपाख्यानोंसहित भारतको 'महाभारत' मानते हैं, वे भ्रममें हैं; क्योंकि इस श्लोकके आगे और पीछेके श्लोकोंको पढ़नेसे अर्थात् इस श्लोकके प्रथम १०१½ और इसके बादके श्लोक १०३ और १०४ के देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वेदव्यासजीने लक्षश्लोकात्मक भारत इतिहासकी रचना की है जो आदि भारतके नामसे प्रसिद्ध हुआ । उस भारतमें उपाख्यानके अतिरिक्त चौबीस हजार श्लोक हैं, जिसको 'भारत' कहते हैं और एक अध्याय डेढ़ सौ श्लोकोंका है, जिसमें महर्षिने भारतकी कथाओंकी संक्षिप्त सूची दी है और इस प्रकार २४ हजारमें भारतीय कथा और ७६ हजारमें विविध उपाख्यान और आदिपर्वके प्रथम अध्यायमें ग्रन्थकी सार-सूची है । इन तीनोंको पृथक्-पृथक् मानना और उनके रचयिता भी पृथक्-पृथक्

मानना सर्वथा प्रमाणरहित है। 'आदि भारत' का ही नाम उसकी गुरुता और भरत-वंशकी महत्ताके कारण 'महाभारत' पड़ा। इसकी निरुक्ति महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १, श्लोक २७३ में तथा अध्याय ६२, श्लोक ३९ में स्पष्टरूपसे मिलती है। आधुनिक विद्वानोंमें अनेक विद्वान् महाभारतसंहिताके तीन रूप और उसकी रचना करनेवाले तीन आचार्य मानते हैं—प्रथमका रचयिता महर्षि वेदव्यासको और उनकी संहिताका नाम 'जय', दूसरीके रचयिता वैशम्पायनको और उनकी संहिताका नाम 'भारत', तीसरीके रचयिता सौतिको और उनकी संहिताका नाम 'महाभारत' बतलाते हैं (देखो महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय १)। किंतु उनके अनुमानके अतिरिक्त कथनमें कोई प्रमाण नहीं। अवश्य ही महाभारतके अर्थमें 'जयो नामेतिहासोऽयं' बार-बार कहा गया है किंतु वह शब्द लक्षश्लोकात्मक महाभारतके ही अर्थमें आया है। हाँ, उद्योगपर्वके अध्याय १३३ से १३६ तकको जो विदुलोपाख्यानके नामसे प्रसिद्ध है, कुन्तीदेवीद्वारा जयेतिहास कहा जाता है, जैसा कि १३६ वें अध्यायके १८ वें श्लोकमें कहा गया है—

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।

विदुलोपाख्यान नामसे प्रसिद्ध महाभारतके ये चार अध्याय बड़े ही उदात्त और जयेतिहासके नामसे प्रसिद्ध हैं और यदि हम इस उपाख्यानको, जो संदेशके रूपमें कुन्तीदेवीने श्रीकृष्णके द्वारा अपने पुत्रोंको भेजा था, महाभारत युद्धका बीज मानें और उस बीजका महावृक्ष सम्पूर्ण लक्षश्लोकात्मक महाभारत-संहिताको मानकर उसका भी नाम 'जयेतिहास' मानें तो अनुचित न होगा। सारांश यह कि वर्तमान लक्ष-श्लोकात्मक महाभारत-संहिताके अतिरिक्त कोई दूसरी 'जय' नामकी महाभारत-संहिता व्यासप्रणीत थी, यह अनुमान प्रमाणरहित और मानने योग्य नहीं। यद्यपि प्राचीन लोगोंने अठारहों पुराण, वाल्मीकीय रामायण आदि सभी आर्ष ग्रन्थोंको 'जय' कहा है, तथापि महाभारत-संहितामें केवल लक्षश्लोकात्मक सम्पूर्ण संहिताको ही 'जय' कहा है।

उपलब्ध महाभारत-संहिताके सम्बन्धमें विदेशीय और भारतीय आधुनिक विद्वानोंने बड़े विस्तारके साथ उसके रचयिता और उसकी रचना-कालके ऊपर विचार किया है, और इस विषयमें उनमेंसे प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं कि लक्षश्लोकात्मक 'उपलब्ध' महाभारत-संहिताके रचयिता केवल महर्षि वेदव्यास ही नहीं हैं; इसके रचयिता कम-से-कम तीन महापुरुष हैं—महर्षि वेदव्यास, वैशम्पायन और सूतपुत्र उग्रश्रवा। इसके लिये उन लोगोंने विविध युक्तियाँ दी हैं, और महाभारत-संहिताके भिन्न-भिन्न भागोंको उसके रचयिताके आधारपर भिन्न-भिन्न समयके रचित अथवा संग्रहीत प्रतिपादित किया है। यदि हम उन विद्वानोंके सब मतोंको लिखकर उनकी समालोचना करें तो लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा। अतएव भिन्न-भिन्न विद्वानोंके नाम, उनकी पुस्तकों अथवा लेखों और मतोंका उल्लेख न करके केवल समष्टिरूपसे हम उनके उन विचारोंकी आलोचना करेंगे, जो भारतकी सनातन सभ्यता, इतिहास और ऐतिहासिक कालोंके विरुद्ध हमको प्रतीत होते हैं। सबसे प्रथम हमको यह देखना है कि महर्षि वेदव्यासजीने अपनी संहितामें किन-किन विषयोंका वर्णन किया है और उनके आधार क्या हैं।

महर्षि वेदव्यासजीने स्वयमेव अपनी संहिताका वर्णन ब्रह्माजीसे किया है, जो इस प्रकार है—

उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्॥
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया॥
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम्॥
जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम्॥
चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः॥
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च॥
न्यायशिक्षा चिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यं मानुषसंज्ञितम्।

तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम्।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च ॥
पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः ॥
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते ॥

(आदि० १ । ६१—७०)

परम तेजस्वी व्यासजीने परमेष्ठी ब्रह्माजीसे निवेदन किया—'भगवन् ! मैंने यह सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी रचना की है । ब्रह्मन् ! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके स्थापित कर दिया है । केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अङ्ग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है । इस ग्रन्थमें इतिहास और पुराणोंका मन्थन करके उनका प्रशस्तरूप प्रकट किया गया है । भूत, वर्तमान और भविष्यकालकी इन तीनों संज्ञाओंका भी वर्णन हुआ है । इस ग्रन्थमें बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थोंके सत्यत्व और मिथ्यात्वका विशेषरूपसे निश्चय किया गया है तथा अधिकारी-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्मों एवं आश्रमोंका भी लक्षण बताया गया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके कर्तव्यका विधान तथा पुराणोंका सम्पूर्णमूलत्व भी प्रकट हुआ है । तपस्या एवं ब्रह्मचर्यके स्वरूप, अनुष्ठान एवं फलोंका विवरण, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग —इन सबके परिणाम और प्रमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इनके आध्यात्मिक अभिप्राय और अध्यात्मशास्त्रका इस ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णन किया गया है । न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत शास्त्रका भी इसमें विशद निरूपण है । साथ ही यह भी बतलाया गया है कि देवता, मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्मका कारण क्या है । लोकपावन तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों, वनों और समुद्रका भी इसमें वर्णन किया गया है । दिव्य नगर एवं दुर्गोंके निर्माणका कौशल तथा युद्धकी निपुणताका भी वर्णन है । भिन्न-भिन्न भाषाओं और जातियोंकी जो विशेषताएँ हैं, लोकव्यवहारकी सिद्धिके लिये जो कुछ आवश्यक है तथा और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है । परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीमें इस ग्रन्थको लिख सके, ऐसा कोई नहीं है ॥ ६१-७० ॥

महर्षि वेदव्यासद्वारा दिये गये ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके महाभारत-संहितारूपी महाकाव्यमें समस्त ज्ञान-भंडारका संग्रह किया गया है । महाभारतमें विविध प्राचीन पुराणों और इतिहास-ग्रन्थोंके उपाख्यान संगृहीत किये गये हैं, तथा ऋग्वेदादिके विशिष्ट विषयोंका संग्रह किया गया है; अतएव उन सबकी भाषाओं और छन्दोंमें भिन्नता होना स्वाभाविक है । ऐसी दशामें आधुनिक भाषाविज्ञान-वेत्ताओं-द्वारा भाषा अथवा विविध छन्दोंके आधारपर महाभारत-संहिताके भिन्न-भिन्न भागोंका समय-निरूपण करना और उसीके आधारपर महाभारत-संहिताके वर्तमान स्वरूपकी रचनाका समय-निरूपण करना युक्तिसंगत नहीं है ।

सारांश यह कि लक्षश्लोकात्मक वर्तमान महाभारत-संहिताको महर्षि वेदव्यासजीने अपनी त्रिकाल-दृष्टिसे भूत, वर्तमान और भविष्यके वृत्तान्तोंके रूपमें तीन वर्षके परिश्रमसे एक ही समयमें बनाया है—इसमें संदेह नहीं ।

महाभारत-संहिताका रचनाकाल भी महाभारतमें ही स्पष्ट शब्दोंमें निम्नलिखित श्लोकोंद्वारा बतलाया गया है—

त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ॥
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ॥
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन्महानृषिः ।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् ॥

(आदि० १ । ९५-९८)

'महर्षि वेदव्यासजीने तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी तीन कुरुवंशी पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम

हैं–धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर । इन तीन पुत्रोंको जन्म देकर परमज्ञानी व्यासजी फिर अपने आश्रमपर चले गये । जब वे तीनों पुत्र वृद्ध हो परमगतिको प्राप्त हुए, तब महर्षि व्यासजीने इस मनुष्य-लोकमें महाभारतका प्रवचन किया । महाराज जनमेजय और हजारों ब्राह्मणोंके प्रश्न करनेपर व्यासजीने पास ही बैठे अपने शिष्य वैशम्पायनको आज्ञा दी की तुम इन लोगोंको महाभारत सुनाओ । वैशम्पायन याज्ञिक सदस्योंके साथ ही बैठे थे । अतः जब यज्ञ-कर्मसे बीच-बीचमें अवकाश मिलता, तब यजमान आदिके बार-बार आग्रह करनेपर वे उन्हें महाभारत सुनाया करते थे ॥ ९५–९८½॥

उपर्युक्त श्लोकोंसे यह प्रमाणित होता है कि पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरजीके परमपदको प्राप्त हो जानेके पश्चात् और जनमेजयके सर्प-सत्र (यज्ञ) आरम्भ होनेसे पूर्व महर्षि वेदव्यासजीने महाभारत-संहिताकी रचना की । राजर्षि पाण्डुको परमपद जिस समय प्राप्त हुआ, उस समय महाराज युधिष्ठिरकी अवस्था सोलह वर्षकी थी, जो अर्जुनसे दो वर्ष बड़े थे; क्योंकि अर्जुनके चौदहवें वर्धापन-वर्षके समय माद्रीके संयोगसे पाण्डुकी मृत्यु हुई थी । और विदुरसहित राजर्षि धृतराष्ट्रको परमपदकी प्राप्ति महाभारतयुद्धके समयसे बीसवें वर्षमें होना इस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि आश्रमवासिकपर्व, अध्याय ३, पृष्ठ ६३८७ में लिखा है—

ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः ॥ १२ ॥
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः ।

उस समय उन्हें राजा युधिष्ठिरके आश्रयमें रहते पंद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके थे । पंद्रहवाँ वर्ष बीतनेपर भीमसेनके वाग्बाणोंसे पीड़ित हुए राजा धृतराष्ट्रको खेद एवं वैराग्य हुआ ॥ १२½ ॥

और व्यासजीकी प्रेरणा और युधिष्ठिरकी अनुमतिसे राजर्षि धृतराष्ट्रने महाभारत-युद्धसे सोलहवें वर्ष वनमें प्रवेश किया । वहाँ सम्भवतः एक वर्ष धर्मकृत्य करते हुए उनको जब बीत गया, तब उनके स्थानपर आकर देवर्षि नारदने कहा कि 'राजर्षि धृतराष्ट्रके जीवनके अब तीन वर्ष शेष हैं ।' यथा आश्रमवासिकपर्व, अध्याय २०, श्लोक ३२ में—

तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम् ।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः ॥

—साक्षात् इन्द्रके मुखसे मैंने सुना था कि इन राजा धृतराष्ट्रकी आयुकी जो अन्तिम सीमा है, उसके पूर्ण होनेमें अब केवल तीन वर्ष ही शेष रह गये हैं ।

सारांश यह कि महाभारतयुद्धके पश्चात् बीसवें वर्षमें विदुरके सहित राजर्षि धृतराष्ट्रका परम पद प्राप्त होना सिद्ध होता है । अतएव महाभारत-संहिताकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने महाभारत युद्धके २० वर्ष व्यतीत होनेपर की और राजा जनमेजयके सर्प-सत्र (यज्ञ) में वैशम्पायनजीने उसका प्रवचन किया । महाभारतयुद्धके ३६ वर्ष व्यतीत होनेपर महाराज परीक्षित्का राज्याभिषेक हुआ और राजा परीक्षित्ने ६० वर्षोंतक राज्य किया, जैसा कि महाभारत-संहिता, आदिपर्व, अध्याय ४९, पृष्ठ १४३ में लिखा है—

प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत् ।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन् ॥१७॥

मन्त्रियोंने राजा जनमेजयसे कहा था कि 'तुम्हारे पिताने साठ वर्षपर्यन्त प्रजाका पालन किया था, तदनन्तर हम सबको दुःख देकर उन्होंने विदेह कैवल्य प्राप्त किया था ।'

इसी वचनका पोषक सौप्तिकपर्व, अध्याय १६ में कुन्तीके प्रति भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—

विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः ।
षष्टिवर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति ॥ १४ ॥

'इस प्रकार उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्तकर क्षत्रिय-धर्ममें स्थित हो, परीक्षित् साठ वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन करेगा ।'

इससे यह प्रमाणित होता है कि महाभारतयुद्धके ३६ वर्ष बीतनेपर राजा परीक्षित्का राज्याभिषेक हुआ, और उन्होंने ६० वर्षपर्यन्त राज्य किया । उनके परलोक-वासी होनेपर महाभारतयुद्ध-कालसे ९६ वर्षपर*

* आदिपर्व, अध्याय ४९ के श्लोक २६ में लिखा है—'परिश्रान्तो वयःस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वितः ।' अर्थात् (राजा परीक्षित्) ६० वर्षकी वयमें जरान्वित (मृत्युको प्राप्त)

बहुत छोटी अवस्थामें राजा जनमेजयका राज्याभिषेक हुआ, और वयस्क होनेपर राजा जनमेजयका विवाह हुआ और उसके भी कुछ दिनों बाद महर्षि उत्तङ्ककी प्रेरणासे राजा जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया, जिसमें वैशम्पायनजीने महर्षि वेदव्यासप्रणीत लक्षश्लोकात्मक महाभारत-संहिता सुनायी ।

यदि हम यह मान लें कि राजा जनमेजयने अपने राज्याभिषेकके चौबीस वर्ष बाद सर्पसत्रका आरम्भ किया तो सबसे प्रथम महाभारत-संहिताका प्रवचन वैशम्पायनद्वारा महाभारत-युद्ध-कालसे १२० वर्ष पश्चात् प्रमाणित होता है । उसकी रचना कब हुई, यह तो निश्चित नहीं होता; किंतु महाभारत-संहिताको महर्षि वेदव्यासजीने 'जय' नामका इतिहास और महाकाव्य कहा है, जो महाराज युधिष्ठिरके विजयके उपलक्षमें लिखा गया विविध उपाख्यानोंके सहित भारतीय युद्धका विशद इतिहास है। अतएव यदि हम यह विश्वास करें कि महर्षि वेदव्यासजीने महाराज युधिष्ठिरके राजत्वकालमें ही राजर्षि धृतराष्ट्रके परमपदगामी होनेपर अर्थात् महाभारत युद्धके समयसे २० वर्ष बाद और ३६ वर्षके भीतर किसी समय महाभारत-संहिताकी रचना की तो अनुचित न होगा । क्योंकि महाभारत-संहिता महाराज युधिष्ठिरके विजयका इतिहास है और इस प्रकारके इतिहास प्रायः विजयके पश्चात् तुरंत ही लिखे जाते हैं । अवश्य ही महर्षि वेदव्यासजीने राजर्षि धृतराष्ट्रके जीवितकालमें महाभारत-संहिताकी रचना करना इस कारण उचित नहीं समझा होगा कि महाराज युधिष्ठिर राजर्षि धृतराष्ट्रको साक्षात् पिता मानते थे, और उनका अपने भाइयों और मन्त्रियोंके लिये आदेश था—

यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किंचिद् दुःखमाप्नुयात् ।
इति तानन्वशाद् भ्रातॄन् नित्यमेव युधिष्ठिरः ॥
आनृशंस्यपरो राजा प्रीयमाणो युधिष्ठिरः ।
उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च महीपतिः ॥
मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः ।
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत् ॥
विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः ।

(आश्रमवासिक० १ । २९; २ । ३-४½)

'''बन्धुओ ! तुमलोग ऐसा बर्ताव करो, जिससे अपने पुत्रोंसे बिछुड़े हुए इन राजा धृतराष्ट्रको किंचिन्मात्र भी दुःख न प्राप्त हो ।' राजा युधिष्ठिर बड़े दयालु थे, वे सदा प्रसन्न रहकर अपने भाइयों और मन्त्रियोंसे कहा करते थे कि 'ये राजा धृतराष्ट्र मेरे और आपलोगोंके माननीय हैं। जो इनकी आज्ञाके अधीन रहता है, वही मेरा सुहृद् है । विपरीत आचरण करनेवाला मेरा शत्रु है, वह मेरे दण्डका भागी होगा ।'''

इसके अतिरिक्त इसी महाभारतसंहिता महाकाव्यमें धृतराष्ट्र आदि कौरवोंके दोषोंका विस्तारपूर्वक दिग्दर्शन कराया गया है और पाण्डवोंकी सर्वथा प्रशंसा की गयी है, जैसा कि आदिपर्व, अध्याय १, श्लोक ९९-१०१ में लिखा है—

विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम् ॥
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याः सम्यग् द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम् ॥
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवानृषिः ।

'इस महाभारत ग्रन्थमें व्यासजीने कुरुवंशके विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी उत्तम प्रज्ञा और कुन्तीदेवीके धैर्यका भलीभाँति वर्णन किया है । महर्षि भगवान् व्यासने इसमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके माहात्म्य, पाण्डवोंकी सत्यपरायणता तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन आदिके दुर्व्यवहारोंका स्पष्ट उल्लेख किया है ।' इतना ही नहीं, समस्त महाभारत ग्रन्थमें धृतराष्ट्र तथा दुर्योधनादि कौरवोंके विस्तृत पापाचरणोंका विशद वर्णन है, जो सत्य होनेपर भी महाराज युधिष्ठिरके दयापूर्ण विचारानुसार राजर्षि धृतराष्ट्रके सुनने योग्य नहीं था । अतएव महर्षि वेदव्यासजीने राजर्षि धृतराष्ट्रके जीवनकालमें महाभारत-संहिताकी रचना नहीं की और उनके परमपदगामी होते ही महाराज युधिष्ठिरके राजत्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम जानेके पहले महर्षि वेदव्यासजीने महाभारतकी रचना की—यह हमारा अनुमान असंगत नहीं ।

हुए । यदि यह श्लोक कूट नहीं है तो परीक्षित्‌की मृत्युके बाद महाभारत-युद्धकालसे ६० वर्ष बीतनेपर जनमेजयका राज्याभिषेक प्रमाणित होता है ।

भगवद्गीताका प्रादुर्भाव

महाभारत-संहिताके प्रथम ही भारतीय युद्धारम्भके प्रथम दिन शुक्लादि चान्द्रमासानुसार मार्गशीर्षशुक्ल एकादशीको भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके मध्यमें रथपर बैठे हुए अर्जुनको भगवद्गीताका उपदेश दिया था और १८ वें दिन मार्गशीर्षकृष्ण अमावास्याको महाभारत-युद्धकी समाप्ति हुई थी। मार्गशीर्षका कृष्णपक्ष दो तिथियोंके क्षय हो जानेसे तेरह दिनोंका हुआ था। अतएव मार्गशीर्ष शुक्लके एकादशीसे पूर्णिमातक पाँच दिन और मार्गशीर्ष कृष्णके तेरह दिन मिलाकर १८ दिन हुए थे।

अबतक हमने महाभारत-संहिताके रचना-कालके विषयमें जो कुछ लिखा है, उसमें महाभारत-युद्धकालसे ही वर्ष-गणना की गयी है। अतएव जबतक महाभारत-युद्धकालका निर्णय न हो जाय, तबतक महाभारत-संहिताकी रचना आजसे कितने दिन पूर्व हुई—यह निर्णय नहीं हो सकता। अवश्य ही महाभारत-युद्ध-काल ही एक ऐसा समय है कि जिसको हम भारतके प्राचीन इतिहासका उद्गम-स्थान अथवा भारतके प्राचीन इतिहासकी आधार-शिला कहें तो अनुचित न होगा। पाश्चात्य विद्वान् और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वान् भी प्रत्यक्षरूपसे यूनानी तिथियोंके साथ भारतीय ऐतिहासिक तिथियोंकी समसामयिकता स्थापित करनेकी धुनमें भले ही ई० सन् पूर्व ३२२ को भारतीय ऐतिहासिक तिथिगणनाकी आधारशिला बतलायें; किंतु अप्रत्यक्षरूपसे वे भी महाभारत-युद्धकालके ही आधारपर भारतकी समस्त ऐतिहासिक तिथियोंके समयोंका निर्णय करते हैं। अतएव महाभारत-युद्ध-कालके निर्णीत हो जानेसे भारतकी समस्त प्राचीन और अर्वाचीन ऐतिहासिक तिथियोंका निर्णय सरलता-पूर्वक हो जाना सम्भव है। इसी अभिप्रायसे भारतकी ऐतिहासिक तिथियोंके समय निश्चित करनेके पूर्व हम महाभारत-युद्धकालका निर्णय करनेका प्रयत्न करेंगे। महाभारत-युद्धकालके सम्बन्धमें भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ १६१ में महामहोपाध्याय श्रीओझाजीने लिखा है—

कलियुग-संवत्को भारत-युद्ध-संवत् और युधिष्ठिर-संवत् भी कहते हैं। इस संवत्का विशेष प्रयोग ज्यौतिषके ग्रन्थों तथा पञ्चाङ्गोंमें होता है, तो भी शिला-लेखादिमें भी कभी-कभी इसके दिये हुए वर्ष मिलते हैं। इसका प्रारम्भ ईसवी सन्‌से ३१०२ वर्ष पूर्व दिनाङ्क १८ फरवरीके प्रातःकालसे माना जाता है। चैत्रादि विक्रम-संवत् १९७५ (गत) और शक-संवत् १८४० (गत)के पञ्चाङ्गमें गत-कलि ५०१९ लिखा है। इस हिसाबसे गत विक्रम-संवत्‌में ३०४४, गत शक-संवत्‌में ३१७९ और ईसवी सन्‌में ३१०१ जोड़नेसे गत कलियुग-संवत् (महाभारतयुद्ध-संवत्) आता है। दक्षिणके चालुक्य-वंशी राजा पुलकेशि (दूसरे)के समय एहोलेकी पहाड़ीपरके जैन-मन्दिरके शिलालेखमें भारतयुद्धसे ३७३५ और शकराजाओं (शक-संवत्) के ५५६ वर्ष बीतनेपर उक्त मन्दिरका बनना बतलाया है। उक्त लेखके अनुसार भारतके युद्ध (भारतयुद्ध-संवत्) और शक-संवत्के बीचका अन्तर ३१७९ वर्ष आता है। ठीक यही अन्तर 'कलियुग-संवत्' और 'शक-संवत्' के बीच होना ऊपर बतलाया गया है। अतएव उक्त लेखके अनुसार 'कलियुग-संवत्' और 'भारत-युद्ध-संवत्' एक ही है। भारत-युद्धमें विजय पानेसे राजा युधिष्ठिरको राज्य मिला था, जिससे इस संवत्को 'युधिष्ठिर-संवत्' भी कहते हैं।

पुराणोंमें कलियुगका आरम्भकाल, महाभारत-युद्ध-काल और राजा परीक्षित्का जन्मकाल एक ही माने गये हैं और महाभारत-युद्धकालके लिये सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण महाभारतका निम्नलिखित श्लोक है—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥
(आदि० २। १३)

'कलियुग और द्वापरके मध्यमें समन्तपञ्चक (कुरुक्षेत्र)में कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंका युद्ध हुआ था।'

महाभारत-ग्रन्थके इस प्रमाणसे अधिक पुष्ट प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं; किंतु इस मतको प्राचीन-

कालसे लोग बराबर मानते चले आये हैं, इस बातको प्रमाणित करनेके अभिप्रायसे पुराणोंके और ज्योतिषके भी कुछ प्रमाणोंको दे देना हम उचित समझते हैं। श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय २ में लिखा है—

तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।
ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः॥
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः॥
(२८, ३१)

'प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षि एक सौ वर्ष रहते हैं, वे सप्तर्षि तुम्हारे जन्मकालमें मघानक्षत्रपर थे और आज (तुम्हारे अन्तकालमें) भी मघामें विराजमान हैं। जब सप्तर्षि मघानक्षत्रपर आये हैं, तभी १२०० दिव्य वर्षोंका (चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्षों-वाला) कलियुग प्रवृत्त हुआ है।'

इस पौराणिक वचनसे प्रमाणित होता है कि भारतीय युद्धके समय (परीक्षित्के जन्मकालमें) सप्तर्षि मघानक्षत्रपर थे और वे मघानक्षत्रमें उस समय आये जब कलियुग प्रारम्भ हुआ। और यह बात स्पष्ट ही है कि महाभारत-युद्धकालके कुछ ही महीनेके पश्चात् राजा परीक्षित्का जन्म हुआ था।

वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहिता, अध्याय १३ में लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ॥ ३॥

अर्थात् जिस समय युधिष्ठिर शासन करते थे, उस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर थे, और इसी श्लोककी टीकामें भट्टोत्पलने वृद्धगर्गका वचन दिया है—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥

'कलियुग और द्वापरकी संधि (बीच) में सप्तर्षि पितृदैवत (मघा) नक्षत्रमें स्थित रहे।' इस ज्योतिषके प्रमाणसे भी महाभारत और श्रीमद्भागवतके मतका समर्थन होता है। इतना ही नहीं, शक ४२१में आर्यभट्टने अपने दशगीतिकापादके तीसरे श्लोकमें लिखा है—

काहो मनवो ढ मनुयुग श्ख गतास्ते त मनुयुग छ्ना च।
कल्पादेर्युग पादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम्॥

'कलियुग और भारतीय युद्धसे पूर्व कल्पके आदिसे ये मन्वादि व्यतीत हुए हैं' इस आर्यभट्टके वचनसे भी कलियुगके आरम्भमें महाभारत-युद्धका होना प्रमाणित होता है।

राजा सुधन्वाके दानपत्र (संस्कृत-चन्द्रिका, खण्ड १४, संख्या २, ३) में, राजा सर्वजित्वर्माके दानपत्र (संस्कृत-चन्द्रिका, खण्ड १४, सं० २, ३, पृष्ठ ४, ५) में भी कलियुग-संवत्का वर्णन है और एहोलीके पहाड़ी-परके जैन-मन्दिरके शिलालेखमें भारतयुद्धसे ३७३५ और शक-राजाओं (शक-संवत्)के ५५६ वर्ष बीतनेपर उक्त मन्दिरका बनना बतलाया गया है। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ १६१) इस शिलालेखसे भी 'कलियुग-संवत्' और 'भारतीय-संवत्' एक ही प्रमाणित होते हैं। तथा अविच्छिन्नरूपसे परम्परागत पञ्चाङ्ग-पत्रोंमें भी 'युधिष्ठिर-संवत्' और 'कलियुग-संवत्'की एकताका उदाहरण मिलता है। भारतवर्षके भिन्न-भिन्न राज्योंकी जो राजवंशावलियाँ मिलती हैं, उनसे भी युधिष्ठिर-संवत्का आरम्भ महाभारत-युद्धकाल और राजा परीक्षित्का जन्मकाल कलियुगके आरम्भकालमें ही प्रमाणित होता है।

सारांश यह कि महाभारत, श्रीमद्भागवत, बृहत्संहिता, आर्यभटीय सिद्धान्त, वृद्धगर्गके वचन, पञ्चाङ्गपत्रों, शिला-लेखों एवं दानपत्रों तथा राजवंशावलियोंसे यही प्रमाणित होता है कि भारतकी ऐतिहासिक तिथियोंकी आधार-शिला (महाभारत-युद्धकाल) ई० सन् पूर्व ३१०२ वर्ष ही है।

ऐसे प्रमाणोंके होते हुए किसी भी आस्तिक निष्पक्ष भारतीय विद्वान् तथा साधारण जनके हृदयमें किसी प्रकारका संदेह नहीं हो सकता, किंतु विदेशी जनोंके सम्पर्कसे तथा पराधीनताके कारण परतन्त्र-मस्तिष्क होनेसे उस निश्चित महाभारत-युद्धकालके

विषयमें समय-समयपर जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं, उनका निराकरण करना आवश्यक है।

यद्यपि सबसे प्रथम ज्योतिर्विद् वराहमिहिरके 'सप्तर्षि-चार'में महाराज युधिष्ठिरके शासनकाल और शककालके उल्लेख और उस श्लोककी टीकामें भट्टोत्पलकी कल्पनासे राजतरङ्गिणीकार कवि कल्हणको यह भ्रम हुआ कि शालिवाहन शकारम्भमें युधिष्ठिरका संवत् २५२६ था, अतएव कलि-गताब्द ६५३ में महाराज युधिष्ठिरका होना सिद्ध होता है और इसीके आधारपर कवि कल्हणने अपनी राजतरङ्गिणीमें समस्त प्राचीन राजवंशावलियोंमें ६५३ वर्ष घटाकर लिख डाला, क्योंकि कवि कल्हणके समय शक १०७० तक की समस्त ऐतिहासिक पुस्तकोंमें राजवंशालियोंके लेखकोंने महाभारत-युद्धकालको कलियुगारम्भमें ही मानकर अपनी-अपनी वंशावलियोंके वर्षोंको लिख रखा था, कवि कल्हणके भ्रमसे जन-साधारणके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। सब लोग पञ्चाङ्गों, शिलालेखों आदिमें 'कलियुग-संवत्' और 'युधिष्ठिर-संवत्'को एक ही मानकर लिखते आये। तथापि उनकी 'राजतरङ्गिणी' आज भी उनके भ्रमको अमर बनाये हुए है। किसी विद्वान्ने उसका संशोधन नहीं किया। अस्तु, कल्हणका भ्रम वराहमिहिरके जिस श्लोकके कारण उत्पन्न हुआ, उसका निराकरण वराहमिहिरके उसी श्लोककी भट्टोत्पली टीकामें उद्धृत वृद्धगर्गके वचनसे हो जाता है। वह वचन इस प्रकार है—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।

'कलियुग और द्वापरकी संधिमें सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर थे' और जिस वराहमिहिरके श्लोककी टीकामें यह वृद्धगर्गका वचन उद्धृत है, उसमें लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।

'महाराज युधिष्ठिरके शासनकालमें सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर थे।' अतएव कलियुगारम्भ-काल ही युधिष्ठिर-संवत्का आरम्भकाल सिद्ध होता है, न कि ६५३ कलिगताब्दसे।

अब हम छोटे-मोटे भ्रमोंकी समालोचना करके लेखका कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते और उस महाभ्रमको दूर करनेकी चेष्टा करेंगे, जो पाश्चात्त्य विद्वानोंके द्वारा उत्पन्न किया गया है और संसारभरमें—विशेषकर भारतवर्षके प्रचलित समस्त इतिहास-ग्रन्थोंमें व्याप्त हो रहा है और जिसके कारण महाभारत-युद्धकाल लगभग १७०० वर्ष पीछे हटाया गया है। इस महाभ्रमके जन्मदाता सर विलियम जोन्स और पोषक जेनरल प्रिंसेप, जेनरल बर्किंघम आदि पाश्चात्त्य विद्वान् थे। और यदि हम यह कहें कि विदेशीय शासनके अभिशापसे हमारे देशके बड़े-बड़े विद्वान् जो पाश्चात्त्यविद्यासम्पन्न होकर अपने देशके इतिहासकी पुस्तकोंके जनक थे और हैं, वे भी इस भ्रमके समर्थक ही देखे गये हैं तो अनुचित न होगा। इस महाभ्रमकी मूलभित्ति मेगास्थनीजकी पुस्तकमें लिखित सैंड्राकोटसको मौर्य चन्द्रगुप्त और उसकी राजधानी पालिबोथ्राको पाटलिपुत्र नगर मान लेना है और उसीके समर्थनमें अशोककी धर्मलिपियोंके प्रज्ञापन दूसरे और तेरहवेंमें अन्तियोक आदि पश्चिम भारतके पाँच राज्योंमें यूनान देशके पाँच राजाओंके नामकी कल्पना करना है। इतना ही नहीं, इस भ्रमको अधिक महत्त्व देनेके लिये महाभारत-युद्धकालसे लेकर मौर्य चन्द्रगुप्त अथवा अशोकवर्द्धनके समयतक जितने राजा हुए हैं और जिनकी राजवंशावलियाँ उनके राजत्वकालके सहित हमारे पुराणोंमें स्पष्ट पायी जाती हैं, उन राजवंशावलियोंके राजत्वकालोंके अशुद्ध पाठोंके आधारपर मनमाना अर्थ किया गया है और हमारे देशके धुरन्धर विद्वानोंके द्वारा भी वही अर्थ किया गया है। अतएव इस महाभ्रमके दूरीकरणके लिये हम महाभारत-युद्धकालसे लेकर मौर्य अशोकवर्द्धनके समयतककी राजवंशावलियों और उनके राजत्वकालोंपर विचार करेंगे और यह दिखलायेंगे कि पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानोंसे कहाँ-कहाँ और क्या-क्या भूलें हुई हैं। इसकी परीक्षा करनेके लिये सबसे प्रथम हमको श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार बृहद्रथ-प्रद्योत और शिशुनाक-वंशकी वंशावलियोंमें यह देखना है कि इन पुराणोंमें कहाँ-कहाँ कितना और क्यों अन्तर है, जिनके द्वारा सभी पुराणोंकी एकता हो सकती है।

भारतीय युद्धके पश्चात् मगधकी बृहद्रथ-वंशावली

क्रम-संख्या	संशोधित पाठ		मत्स्यपुराण		वायुपुराण		ब्रह्माण्डपुराण	
	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व काल
१	सोमाधि	५८	सोमाधि	५८	सोमाधि	५८	सोमापि	५८
२	श्रुतश्रवा	६७	श्रुतश्रवा	६४	श्रुतश्रवा	६४	श्रुतश्रवा	६७
३	अयुतायु	३६	अप्रतीपी	३६	अयुतायु	२६	अयुतायु	२६
४	निरमित्र	४०	निरमित्र	४०	निरमित्र	१००	निरमित्र	१००
५	सुक्षत	५६	सुरक्ष	५६	सुकृत	५६	सुक्षत्र	५६
६	बृहत्कर्मा	२३	बृहत्कर्मा	२३	बृहत्कर्मा	२३	बृहत्कर्मा	२३
७	सेनाजित्	५०	सेनाजित्	५०	सेनाजित्	२३	सेनाजित्	२३
८	श्रुतञ्जय	४०	श्रुतञ्जय	४०	श्रुतञ्जय	४०	श्रुतञ्जय	४०
९	विभु	२८	विभु	२८	महाबाहु	३५	रिपुंजय	३५
१०	शुचि	५८	शुचि	६४	शुचि	५८	शुचि	५८
११	क्षेम	२८	क्षेम	२८	क्षेम	२८	क्षेम	२८
१२	सुव्रत	६४	अनुव्रत	६४	सुव्रत	६४	सुव्रत	६४
१३	सुनेत्र	३५	सुनेत्र	३५	धर्मनेत्र	५	धर्मनेत्र	५
१४	निवृत्ति	५८	निर्वृति	५८	नृपति	५८	नृपति	५८
१५	त्रिनेत्र	२८	त्रिनेत्र	२८	सुव्रत	३८	सुश्रम	३८
१६	द्युमत्सेन	५८	द्युमत्सेन	४८	दृढ़सेन	५८	दृढ़सेन	५८
१७	सुमति	३३	महीनेत्र	३३	सुमति	३३	सुमति	३३
१८	अचल	३२	अचल	३२	सुचल	२२	×	×
१९	सुनेत्र	४०	×	×	सुनेत्र	४०	सुनेत्र	४०
२०	सत्यजित्	८३	×	×	सत्यजित्	८३	सत्यजित्	८३
२१	वीरजित्	३५	×	×	वीरजित्	३५	विश्वजित्	३५
२२	अरिञ्जय	५०	रिपुञ्जय	५०	अरिञ्जय	५०	अरिञ्जय	५०
		१०००		८३५		९९७		९७८

उपर्युक्त विवरणके देखनेसे विदित होता है कि मत्स्यपुराण में (अध्याय २७१, श्लोक १९ से २९ तक-के अनुसार) बृहद्रथ-वंशके केवल १९ नाम हैं, ब्रह्माण्डपुराणमें (उ० पा० ३, अध्याय ७४ के अनुसार) २१ नाम हैं और केवल वायुपुराणमें (अध्याय ९९ के अनुसार) २२ नाम हैं; किंतु मत्स्य, ब्रह्माण्ड और वायु—इन तीनों पुराणोंमें राजाओंकी संख्या २२ ही लिखी है। अतएव यह निश्चय ही मानना पड़ेगा कि मत्स्यपुराणमें तीन नाम और ब्रह्माण्डपुराणमें एक नाम लेखककी भूलसे छूट गया है और छूटे हुए नामकी खोज दूसरे पुराणों-की नामावलीसे सरलतासे की जा सकती है। जैसे मत्स्यपुराणमें अट्ठारहवें राजा अचल (सुचल)के और अरिञ्जयके बीचमें सुनेत्र, सत्यजित् और वीरजित् (विश्व-जित्)—ये तीन नाम हैं। अतएव यही निश्चय होता है कि ये तीनों नाम मत्स्यपुराणके लेखककी भूलसे छूट गये हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्डपुराणमें सुमति (महीनेत्र) के पश्चात् सुनेत्र राजाका नाम आ जाता है और मत्स्य-पुराण तथा वायुपुराणमें सुमति और सुनेत्रके बीचमें अट्ठारहवें राजा अचल (सुचल)का नाम है; अतएव यह निश्चय हो जाता है कि ब्रह्माण्डपुराणके लेखककी भूलसे बृहद्रथ-वंशावलीके अट्ठारहवें राजा अचलका नाम छूट गया है। इस प्रकार विचारदृष्टिसे देखनेपर मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणके राजाओंकी नाम-संख्यामें कोई अन्तर नहीं और मत्स्य एवं ब्रह्माण्डपुराणके छूटे हुए

पाठको मिलाकर संशोधित पाठके अनुसार पढ़ना चाहिये।

मत्स्यपुराणके १९ राजाओंके राजत्वकालका योग ८३५ वर्ष है। वायुपुराणके पूरे २२ राजाओंके राजत्वकाल-का योग ९९७ वर्ष है और ब्रह्माण्डपुराणके २१ राजाओंके राजत्वकालका योग ९७८ वर्ष है। यदि ब्रह्माण्डपुराण-के छूटे हुए राजा अचलका राजत्वकाल ९७८ में युक्त कर दें तो पूरे एक सहस्र वर्ष हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि वायुपुराणके दूसरे राजा श्रुतश्रवाके राजत्वकाल ६४ वर्षके स्थानमें ब्रह्माण्डपुराणके पाठके अनुसार ६७ वर्ष मान लें तो वायुपुराणके २२ राजाओंके राजत्वकाल ९९७ में ३ बढ़ जाते हैं और वायुपुराणके राजाओंके राजत्वकालका जोड़ भी पूरे 'एक' सहस्र वर्ष हो जाता है और मत्स्यपुराणके पाठमें जो सुनेत्र, सत्यजित् और वीरजित्के नाम लेखकके प्रमादसे छूट गये हैं, उनके राजत्व-कालमें १५८ को मत्स्यपुराणके १९ राजाओंके राजत्व-काल ८३५ में जोड़ दें और साथ ही नवें राजा विभुके मत्स्यपुराणके राजत्वकाल २८ के स्थानमें वायु और ब्रह्माण्डपुराणके पाठके अनुसार ३५ वर्ष मान लें तो मत्स्यपुराणके मतसे भी ठीक-ठीक २२ राजाओंके राजत्वकालका योग एक सहस्र वर्ष हो जाता है और ऐसा विचारपूर्ण संशोधन हो जानेसे मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्डपुराणके बृहद्रथवंशी राजाओंके नाम २२ और उनके राजत्व-कालके वर्ष पूरे एक सहस्र वर्ष हो जाते हैं, जैसा कि निम्नलिखित पुराणोंमें वर्णित है—

द्वात्रिंशत्तु नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तेषां राज्यं भविष्यति ।
(मत्स्यपु० २७१ । २९-३०)

द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथात् ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।
(वायुपु० ९९ । ३०८-९)

द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथात् ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥
(ब्रह्माण्डपु० उपो० पाद ७४ । १२१-२२)

बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥
(श्रीमद्भा० ९ । २२ । ४९)

इत्येते बार्हद्रथा भूपतयो वर्षसहस्रमेकं भविष्यन्ति ॥
(विष्णुपु० अंश ४ । २३ । १३)

उपर्युक्त पाँचों पुराणोंके वचनोंमें बार्हद्रथ-वंशके समस्त राजाओंका राजत्वकाल एक सहस्र वर्ष ही लिखा है; किंतु राजाओंकी संख्यामें लेखकके प्रमादसे अन्तर हो गया है और यदि मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्डपुराणके श्लोकोंके अपपाठको शुद्ध कर दें तो मत्स्यपुराणमें जो 'द्वात्रिंशति' शब्द व्याकरण-विरुद्ध अशुद्ध है, वह शुद्ध रूपका होगा 'द्वाविंशति' और वायुपुराण 'द्वात्रिंशच्च' के स्थानमें भी 'द्वाविंशति' हो जायगा और ब्रह्माण्ड-पुराणका 'द्वाविंशच्च' यह अशुद्ध पाठ 'द्वाविंशति' हो जायगा और पाँचों पुराणोंके मतसे बार्हद्रथवंशके ठीक-ठीक २२ राजाओंके नाम और उनके राजत्वकालका योग एक सहस्र वर्ष हमारे ऊपर लिखे विवरणके अनुसार प्रमाणित हो जाता है। हमने मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणके शुद्ध पाठके अनुसार ही नाम और राजत्वकाल लिखे हैं।

प्रद्योत-वंशकी राजवंशावली और राजत्वकाल

क्रम-संख्या	मत्स्यपुराण		वायुपुराण		ब्रह्माण्डपुराण		श्रीमद्भागवत		विष्णुपुराण	
	नाम	राजत्व काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व-काल
१	बालक	२३	नरोत्तम	२३	प्रद्योति	२३	प्रद्योत	×	प्रद्योतन	×
२	पालक	२८	पालक	२४	पालक	२४	पालक	×	पालक	×
३	विशाखयूप	५३	विशाखयूप	५०	विशाखयूप	५०	विशाखयूप	×	विशाखयूप	×
४	सूर्यक	२१	अजक	२१	अजक	२१	राजक	×	जयक	×
५	×	×	वर्तिवर्द्धन	२०	नन्दिवर्द्धन	२०	नन्दिवर्द्धन	×	नन्दिवर्द्धन नन्दी	×
योग		१३८		१२५		१३८		१३८		१३८

ऊपरके विवरणको देखनेसे विदित होता है कि प्रद्योत-वंशके राजाओंके नामोंमें और उनके राजत्वकालोंमें कोई महत्त्वका अन्तर नहीं। प्राय: सभी पुराणोंका मत एक है। मत्स्यपुराण (अध्याय २७१, श्लोक १९ से २९

तक के अनुसार) का 'बालक' नाम पुत्रके अर्थमें नहीं और वायुका 'नरोत्तम' वास्तविक नाम नहीं, विशेषण है। ब्रह्माण्डपुराण उपोद० ३ पाद, अध्याय ७४ का 'प्रद्योति' नाम भी वस्तुत: प्रद्योत है। सम्भवत: लेखकके प्रमादसे इकारकी मात्रा लग गयी है और राजत्व-कालमें कोई अन्तर नहीं। अतएव इस वंशके प्रथम राजा प्रद्योतके विषयमें सबका मत एक है। दूसरे राजा 'पालक' के नाम सभी पुराणोंके मतसे एक हैं; किंतु राजत्वकालके विषयमें अन्तर है। मत्स्यपुराणमें राजत्व-काल २८ है और वायु (पुराणके अध्याय ९९ के अनुसार) तथा ब्रह्माण्डपुराणमें २४ वर्ष है। इसमें भी मत्स्यपुराणका पाठ ही लेखकके प्रमादसे अशुद्ध मानना पड़ता है; क्योंकि राजत्वकालके योगमें २४ वर्ष माननेसे ही ठीक होता है। तीसरे राजा 'विशाखयूप'के नाममें भी सभी पुराण एकमत हैं; किंतु इसका राजत्वकाल भी मत्स्यपुराणमें ५३ वर्ष है और शेष पुराणोंमें राजत्वकाल ५० वर्ष है और राजत्वकालके योगके ऊपर विचार करें तो ५० वर्ष ही ठीक बैठता है। अतएव यहाँ भी मत्स्यपुराणके पाठको ही अपपाठ मानना पड़ेगा, जो लेखकके प्रमादसे हो जाना सम्भव है। चौथे राजाके राजत्वकालमें कोई अन्तर नहीं है। सभी पुराणोंके मतसे उसका राजत्वकाल २१ वर्ष ही माना गया है; किंतु नाममें अन्तर है। मत्स्यपुराणमें 'सूर्यक' नाम है, श्रीमद्भागवतमें 'राजक', विष्णुपुराणमें 'जयक,' वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणमें 'अजक' नाम है। यह नामभेद भी लेखकके प्रमादके अतिरिक्त और कुछ नहीं है और इनमेंसे 'राजक' नाम जो श्रीमद्भागवतके पाठमें है, वही हमको शुद्ध प्रतीत होता है; किंतु नाम कोई भी हो, उसका प्रभाव ऐतिहासिक विषयमें कुछ भी नहीं पड़ सकता। पाँचवें राजाका नाम मत्स्यपुराणमें नहीं है और न उसका राजत्व-काल ही। अतएव उसके मतसे इस वंशके राजाओंके राजत्वकालके योगमें हमने शेष चार राजाओंके राजत्व-कालका योग १२५ वर्ष लिखा है, जो वस्तुत: अशुद्ध है। अन्य पुराणोंमें आया हुआ पाँचवें राजाका नाम यदि मत्स्यपुराणके पाँचवें राजाके नामके रूपमें रख दें तो मत्स्यपुराणकी त्रुटि दूर हो जाती है। वायुपुराणमें उसका नाम 'वर्तिवर्द्धन' और शेष सभी पुराणोंमें 'नन्दि-वर्द्धन' है; किंतु 'राजत्वकाल' सभी पुराणोंमें बीस वर्ष माना गया है। अतएव इस राजाके नाममें जो वायु तथा अन्य पुराणोंमें 'वर्ति' और 'नन्दि'के भेदसे अन्तर दिखायी देता है, वह भी लेखकका प्रमाद ही मानना चाहिये। हमारे विचारमें 'नन्दिवर्द्धन' नाम ही शुद्ध प्रतीत होता है। हमने श्रीमद्भागवतके पाठके अनुरूप 'नन्दिवर्द्धन' ही रखा है। विष्णुपुराणमें 'नन्दिवर्द्धन'के बाद एक नाम नन्दी भी लिखा है, जिससे पाँचके स्थानमें प्रद्योतवंशके राजाओंकी संख्या ६ हो जाती है। किंतु विष्णुपुराणमें भी 'पञ्च प्रद्योता:' कहा गया है, अतएव नन्दीको नन्दिवर्द्धनका विशेषण मान लेना उचित प्रतीत होता है। सारांश यह कि प्रद्योत-वंशके राजाओंके पाँच ही नाम सभी पुराणोंके अनुसार प्रमाणित होते हैं और उन सबके राजत्वकालका योग भी सभी पुराणोंके मतसे १३८ वर्ष ही आता है, जैसे पाँचों पुराणोंके निम्नलिखित वचनोंमें कहा गया है—

अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्रद्योताः पञ्च ते सुताः ॥
(वायुपु० ९९ । ३१४)

अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्रद्योताः पञ्च ते नृपाः ॥
(ब्र० पु० उ० पा० ३ । ७४ । १२७)

...... (मत्स्यपुराणमें पाँचवें नामका प्रभाव है)

नन्दिवर्द्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे।
अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १ । ४)

इत्येतेऽष्टत्रिंशदुत्तरमब्दशतं पञ्च प्रद्योताः पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति ॥
(विष्णुपु० अं० ४ । २४ । ८)

ऊपरके पाँचों पुराणोंके अनुसार प्रद्योत-वंशके राजाओंकी संख्या पाँच और उनके राजत्वकालोंका योग १३८ वर्ष ही प्रमाणित होता है, जैसा कि हमने ऊपरके चक्रमें तथा उसके विवरणमें लिखा है। अतएव इसमें हमने संशोधित पाठ पृथक्से नहीं लिखा, संशोधित रूप विवरणके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है।

मत्स्यादि पाँच पुराणोंमें प्रद्योत-वंशके पाँच राजाओं-के पश्चात् शिशुनाक-वंशके दस राजाओंके नाम और उनके राजत्व-कालोंका वर्णन है।

शिशुनाक (शिशुनाग) वंशकी पौराणिक राजवंशावलि इस प्रकार है—

क्रमसंख्या	संशोधित पाठ		मत्स्यपुराण	वायुपुराण		ब्रह्माण्डपुराण		श्रीमद्भागवत		विष्णुपुराण		
	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व-काल	नाम	राजत्व काल
१	शिशुनाक	४०	शिशुनाक	४०	शिशुनाक		शिशुनाक		शिशुनाग	×	शिशुनाग	×
२	काकवर्ण	३६	काकवर्ण	२६	शकवर्ण	३६	काकवर्ण	३६	काकवर्ण	×	काकवर्ण	×
३	क्षेमधर्मा	३०	क्षेमधामा	३६	क्षेमवर्मा	२०	क्षेमधर्मा		क्षेमधर्मा	×	क्षेमवर्मा	×
४	क्षत्रौजा	४०	क्षेमजित्	२४	अजातशत्रु	२५	क्षत्रौजा	४०	क्षेत्रज्ञ	×	क्षत्रौजा	×
५	विन्ध्यसेन	३८	विन्ध्यसेन (दो नाम)	२८	क्षत्रौजा	४०	विधिसार	३८	विधिसार	×	विन्ध्यसार	×
६	अजातशत्रु	२७	अजातशत्रु	२७	विविसार	२८	अजातशत्रु	२५	अजातशत्रु	×	अजातशत्रु	×
७	दर्शक	३५	वंशक	२४	दर्शक	२५	दर्भक	३५	दर्भक	×	दर्भक	×
८	उदयी	३३	उदासी	३३	उदायी	३३	उदयी	३३	अजय	×	उदयाश्व	×
९	नन्दिवर्द्धन	४०	नन्दिवर्द्धन	४०	नन्दिवर्द्धन	४२	नन्दिवर्द्धन	४०	नन्दिवर्द्धन	×	नन्दिवर्द्धन	×
१०	महानन्दी	४३	महानन्दी	४३	महानन्दी	४३	महानन्दी	४३	महानन्दी	×	महानन्दी	×
यो.	१०	३६२	१०	३२१		३३२		३५०		३६०		३६२

शिशुनाक-वंशकी राजवंशावलीमें सामान्य पाठ-भेदोंके अतिरिक्त दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि वायुपुराणके पाठमें लेखककी भूलसे वायुपुराण-के ३१८ वें श्लोकका पूर्वार्ध—

अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः।

—३१७ वें श्लोकके पूर्वार्धके स्थानमें लिखा गया है। अतएव राजवंशावलिमें वायुपुराणके पाठसे अजातशत्रुका नाम छठे स्थानमें चौथा हो गया है, जो समस्त पुराणोंके विरुद्ध और अशुद्ध है। अतएव इस श्लोकार्धको ३१८ वें श्लोकके पूर्वार्धमें स्थान देकर वायुपुराणके अपपाठको शुद्ध कर देना चाहिये। और दूसरी बात है मत्स्यपुराणकी, जिसमें सातवाँ श्लोक—

भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो नृपः।
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति॥

—भूलसे क्षेपकके रूपमें लिख दिया गया है। वस्तुतः यह श्लोक काण्ववंशका है, जो मत्स्यपुराणमें इसी अध्यायका ३२वाँ श्लोक है और इस प्रकार काण्वायन और भूमिमित्र—ये दो नाम बढ़ा दिये गये हैं। इसी कारणसे मत्स्यपुराणके ग्यारहवें श्लोकके उत्तरार्धमें 'दश द्वौ शिशुनाकजाः' पाठ 'दश वै शिशुनाकजाः'के स्थानमें रखना पड़ा है। अतएव मत्स्यपुराणके उक्त सातवें श्लोकको निकाल देना चाहिये और ग्यारहवें श्लोकके उत्तरार्धमें शुद्ध पाठ 'दश वै शिशुनाकजाः' पढ़ना चाहिये। तथा इस पादके प्रथमपादमें 'वै' के स्थानमें 'च' रखकर 'इत्येते भवितारश्च' शुद्ध पाठ पढ़ना चाहिये।

अवश्य ही विष्णुपुराण और वायुपुराणके पाठसे शिशुनाक-वंशी राजाओंके राजत्वकालके योगकी वर्ष-संख्या ३६२ मान लेनेसे राजा परीक्षित्के जन्मसे महापद्म (महानन्द)के अभिषेकतकके वर्ष १५०० होते हैं, जो पुराणोंके वचनोंके पाठानुकूल हैं और मत्स्य, ब्रह्माण्ड तथा श्रीमद्भागवतके पाठसे ३६० वर्ष होते हैं, जिसके मान लेनेसे वह राजत्व-कालोंका योग १४९८ वर्ष होता है, जो किसी भी पुराण-वचनके अनुकूल नहीं। इतना ही नहीं, पुराणोंके श्लोकात्मक वचनोंमें छन्दानुरोधसे भी पाठमें भेद हो सकना सम्भव है; किंतु विष्णु-पुराणके गद्यात्मक वचनमें कोई अशुद्धिकी सम्भावना नहीं। अतएव वही पाठ प्रामाणिक माना गया है।

मत्स्यपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणके अनुसार महाभारत-युद्धकाल अथवा राजा परीक्षित्के जन्मकालसे मगधके बृहद्रथवंशके सोमाधिसे लगाकर अरिञ्जयतक २२ राजाओंका राजत्व-काल एक सहस्र वर्ष, उसके पश्चात् प्रद्योत-वंशके पाँच राजाओंके राजत्वकाल १३८ वर्ष और उसके पश्चात् शिशुनाक वंशके दस राजाओंके राजत्वकाल ३६२

वर्षका वर्णन है। और शिशुनाकवंशके अन्तिम राजा महानन्दीके पश्चात् महापद्म राजा हुआ है। इस प्रकार सभी पुराणोंके मतसे राजा परीक्षित्के जन्मसे महापद्मके अभिषेकतकका समय बार्हद्रथोंके १०००वर्ष, प्रद्योतोंके १३८ वर्ष और शिशुनाकोंके ३६२ वर्ष अर्थात् (१०००+१३८+३६२) कुल १५०० वर्ष होते हैं, जैसा नीचेके पौराणिक वचनोंसे स्पष्ट है—

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परिक्षितः।
एकवर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्॥

(मत्स्यपु० अ० २७३। ३५)

महादेवाभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः।
एकवर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्॥

(वायुपु० अ० ९९। ४०९)

महानन्दाभिषेकान्तं जन्म यावत्परीक्षितः।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्॥

(ब्र० पु०, उ० पा० ३, अ० ७४। २२७)

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम्॥

(श्रीमद्भा० १२। २। २६)

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम्॥

(वि० पु० अं० ४। २४। २४)

उपर्युक्त पुराणोंके वचनोंके देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार समस्त भविष्य राजवंशावलिका वर्णन भिन्न-भिन्न पुराणोंमें किसी एक ही भविष्यपुराणसे लेकर रख दिया गया है, उसी प्रकार यहाँ तीन वंशके राजाओंके राजत्वकालका योगस्वरूप यह वचन भी एक ही स्थानसे लिया गया है और लेखकके प्रमादसे भिन्न-भिन्न पुराणोंमें कुछ शब्दोंमें अपपाठ लिखा गया है। इस श्लोकके पाठका संशोधन इसके वर्णित कालकी मीमांसासे सरलतासे हो जाता है। इस श्लोकमें सभी पुराणोंके पाठसे विदित होता है कि इसमें भारतीय युद्ध-काल (सहदेवके पुत्र सोमाधिके अभिषेक) से अर्थात् राजा परीक्षित्के जन्मकालसे लेकर (शिशुनाक-वंशके राजत्व समाप्त होनेतक) महापद्म (महादेव) नन्दके राज्याभिषेकतकके कालका वर्णन है। हमारे ऊपर लिखे विवरणसे—जिसमें बार्हद्रथ, प्रद्योत और शिशुनाक—इन तीन राजवंशावलियोंके प्रत्येक राजाके राजत्वकाल तथा उन सबके योगका प्रमाणसहित प्रतिपादन है—स्पष्ट हो जाता है कि तीनों राजवंशावलियोंके राजत्वकालका योग १५०० सौ वर्ष होता है और इसी योगका वर्णन उपर्युक्त पाँचों पुराणोंके वचनोंमें कहा गया है। अतएव उक्त पुराणोंके अपपाठका संशोधन इसी आधारपर होना चाहिये कि उसमें वर्णित परीक्षित्के जन्म (महाभारत-युद्धकाल) से महानन्द-पद्मके अभिषेक (शिशुनाकवंशके अन्तिम राजाके अन्तिम समय) तकके—१५०० सौ वर्ष हों। अतएव उपर्युक्त पुराणोंके श्लोकोंका अन्तिम चरण 'ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम्' होना चाहिये—जैसा मत्स्य-पुराणका पाठ है—

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परिक्षितः।
एकवर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम्॥३५॥

इसी प्रकार वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणके उपर्युक्त श्लोकोंके अन्तिम चरणोंमें संशोधन कर देना चाहिये। और ऐसा संशोधन कर देनेसे तीनों वंशावलियोंके विवरणसहित राजत्वकालोंकी वर्ष-संख्या और उनके योग बतलानेवाले उन श्लोकोंकी वर्ष-संख्यामें एकता हो जाती है और अशुद्ध पाठोंके आधारपर महाभारत-युद्धकालसे महानन्दके अभिषेक-तकके वर्षोंमें लगभग ५०० वर्ष घटानेवाले समस्त आधुनिक विद्वानोंके मतोंका निराकरण हो जाता है।

महापद्मनन्दकी वंशावलि

क्रम-संख्या	मत्स्यपुराण		वायुपुराण		ब्रह्माण्डपुराण		विष्णुपुराण		श्रीमद्भागवत	
	नाम	वर्ष	नाम	वर्ष	नाम	वर्ष	नाम	वर्ष	नाम	वर्ष
१	महापद्मनन्द	८८	महापद्मनन्द	२८	महापद्मनन्द	८८	महापद्मनन्द	×	महापद्मनन्द	१००
२	सुमाल्यादि	१२	सहस्राः	१२	सुमाल्यादि ८ लड़के	१२	सुमाल्यादि ८ लड़के	१००	सुमाल्यादि ८ लड़के	

शिशुनाकवंशके पश्चात् महापद्मनन्दके वंशका वर्णन है। मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्डपुराणमें 'महापद्मनन्द' का राजत्वकाल ८८ वर्ष और वायुपुराणमें २८ वर्ष लिखा है, और उसके पश्चात् महापद्मके ८ पुत्रोंका राजत्वकाल समष्टिरूपसे उक्त तीनों पुराणोंमें १२ वर्ष लिखा है, तथा श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणमें महापद्म-नन्द और उसके ८ पुत्रोंका राजत्वकाल समष्टिरूपसे १०० वर्ष दिया गया है। वायुपुराणके पाठसे महापद्मनन्द और उसके ८ पुत्रोंके राजत्वकालका योग केवल चालीस वर्ष होता है और मत्स्यपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणके पाठसे महापद्मनन्द और उसके ८ पुत्रोंके राजत्वकालका योग पूरे १०० वर्ष होते हैं। वायुपुराणके पाठमें अशुद्धि है; मत्स्यपुराण, अध्याय २७२, श्लोक १९ का पाठ है—'अष्टाशीति तु वर्षाणि' और लेखकके प्रमादसे वायुपुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३२४ का पाठ 'अष्टाविंशतिवर्षाणि' है, जो वस्तुतः अशुद्ध है। अष्टाशीतिके स्थानमें अष्टाविंशति लेखकके प्रमादसे लिखा गया है; क्योंकि अन्य पुराणोंके सर्वथा विरुद्ध यह पाठ है। अतएव पाँचों पुराणोंके शुद्ध पाठके अनुसार महापद्मनन्द और उसके आठ पुत्रोंका राजत्वकाल १०० वर्ष ही प्रमाणित होता है। महापद्म-नन्दके पुत्रोंका नाम वायुपुराणमें 'सहस्राः' और अन्य चार पुराणोंमें 'सुमाल्यादि' लिखा है; अतएव यह मान लेना अनुचित न होगा कि सुमाल्यादिका उपनाम 'सहस्राः' है और इस प्रकार महापद्मनन्दके और उसके पुत्रोंके राजत्वकाल और नामोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता।

महानन्दवंशके 'पश्चात्' मौर्यवंशकी वंशावलि पाँचों पुराणोंमें है और मौर्यवंशके राजाओंकी संख्या मत्स्य-पुराण, विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतमें १० और उनके राजत्व-कालोंका योग १३७ वर्ष लिखा है; किंतु वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें राजाओंकी संख्या ९ और उनके राजत्वकालका योग वही १३७ वर्ष दिया गया है। श्रीमद्भागवतमें—

'मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम्।'

—लिखा है; किंतु नामावलिमें केवल ९ नाम दिये गये हैं। जैसे—१. चन्द्रगुप्त, २. भद्रसार, ३. अशोक, ४. कुनाल, ५. बन्धुपालित, ६. इन्द्र-पालित, ७. देववर्मा, ८. शतधर और ९. बृहद्रथ। सम्भवतः नामावलिके लिखते समय श्रीमद्भागवतमें एक नाम छूट गया है और विष्णुपुराणके अनुसार वह छूटा हुआ नाम 'दशरथ' है, जो श्रीमद्भागवतके चौथे नाम सुयशा और पाँचवें 'संगत' नामके बीचमें होना चाहिये। इसी प्रकार वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणमें जो नौ राजाओंके नाम लिखे हैं, उनमें दशरथका नाम यथा-स्थान बढ़ा देनेसे सभी पुराणोंकी राजनामावलिमें सामञ्जस्य होता है; क्योंकि वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें जो नौ राजाओंके नाम दिये हैं, उनके राजत्वकालका योग केवल १२३ वर्ष होता है जो १३७ वर्ष होना चाहिये। और उन दोनों पुराणोंमें 'दशरथ' नाम और उसका राजत्वकाल १४ वर्ष मिला दें तो वह योगसंख्या उन्हीं दोनों पुराणोंकी लिखी हुई योगसंख्या १३७ के समान हो जाती है। मत्स्यपुराणके मौर्यवंशकी नामावलि और उनके राजत्वकालोंमें इतना उलट-पलट और त्रुटियाँ हैं कि उनका विवरण देनेसे कोई लाभ नहीं; किंतु मत्स्यपुराणमें भी मौर्यवंशके राजाओंकी संख्या १० और उनके राजत्वकालोंका योग अन्य पुराणोंके समान ही १३७ वर्ष है।

इस प्रसङ्गमें मौर्यवंशके सभी राजाओंके राजत्वकाल लिखनेकी आवश्यकता नहीं। महाभारत-युद्धकालके निश्चित करनेके लिये हमको केवल तीन ही राजाओंके राजत्वकालोंके विषयमें विचार करना है और वे तीन नाम हैं—चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार (वारिसार—भद्रसार) और अशोकवर्द्धन। वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें चन्द्रगुप्तका राजत्वकाल २४ वर्ष और बिन्दुसार (भद्रसार-वारिसार) का राजत्वकाल २५ वर्ष लिखा है; किंतु अशोकवर्द्धनका राजत्वकाल वायुपुराणमें २६ वर्ष और ब्रह्माण्डपुराणमें ३६ वर्ष लिखा है। उक्त दोनों पुराणोंके दशरथसहित दस राजाओंके राजत्वकालका योग, जो १३७ वर्ष लिखा है, वह योगफल अशोकवर्द्धनके राजत्वकालको २६ वर्ष माननेपर ठीक होता है। यदि अशोकका राजत्वकाल

३६ वर्ष मानें तो दस राजाओंके राजत्वकालोंका योग १४७ वर्ष हो जाता है, जो सभी पुराणोंके लिखित योग-फलके विरुद्ध है। अतएव यह निश्चित हो जाता है कि ब्रह्माण्डपुराणके वचन—'षट्त्रिंशत्तु समा राजा अशोकानां च तृप्तिदः।' इसमें 'त्रिंशत्तु'के स्थानमें 'विंशति' शब्द होना चाहिये। इसी प्रकार वायुपुराणके वचन—'षड्विंशत्तु समा राजा'में 'विंशत्तु' शब्द व्याकरण-विरुद्ध है। उसका भी शुद्धरूप 'षड् विंशतिसमा राजा' होना चाहिये। ऐसा संशोधन कर देनेसे सभी पुराणोंके पाठ शुद्ध और राजाओंके नामोंकी संख्या और उनके राजत्वकालोंके योगमें कोई मतभेद नहीं रह जाता। मौर्यवंशके पश्चात् शुङ्गवंशके दस राजाओं और उनके राजत्वकालोंका योग ११२ वर्ष और शुङ्गवंशके पश्चात् चार कण्व-वंशके नाम और उनके राजत्वकालका योग ४५ वर्ष और उसके पश्चात् ३० आन्ध्रभृत्य राजाओंके राजत्वकालका योग विष्णुपुराणमें ४५६ वर्ष मिलता है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् मगधकी राजवंशावलियों-के राजाओंके शुद्ध नाम और उनके प्रामाणिक राजत्वकालोंके ही आधारपर भारतका प्राचीन ऐतिहासिक समय निश्चित किया जा सकता है और महाभारत-युद्धका समय भी निर्णीत किया जा सकता है। अतएव ऊपरके पौराणिक वचनोंके आधारपर हम उन राज-वंशावलियोंकी नामावलि और प्रत्येक वंशावलिके प्रत्येक राजाके शुद्ध राजत्वकालको निम्नलिखित चक्रद्वारा दिखला रहे हैं, जिसके द्वारा ऐतिहासिक समयोंका ज्ञान सरलताके साथ हो सकता है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् मगध-राजवंशावलियोंका विवरण

वंश-नाम	क्रम-संख्या	राजाका नाम	राजत्व-काल	शासनारम्भ-काल			विवरण
				वर्तमान कलियुग सं० (युधिष्ठिर संवत्)	विक्रमसंवत् पूर्व	ईसवीयसन् पूर्व	
बृहद्रथ-वंश	१	सोमाधि (सोमापि)	५८	१	३०४५	३१०२	
,,	२	श्रुतश्रवा	६७	५९	२९८७	३०४४	
,,	३	अयुतायु (अप्रतीपी)	३६	१२६	२९२०	२९७७	
,,	४	निरमित्र	४०	१६२	२८८४	२९४१	
,,	५	सुक्षत्र (सुकृत्त)	५६	२०२	२८४४	२९०१	
,,	६	बृहत्कर्मा	२३	२५८	२७८८	२८४५	
,,	७	सेनाजित्	५०	२८१	२७६५	२८२२	
,,	८	श्रुतञ्जय	४०	३३१	२७१५	२७७२	
,,	९	विभु (महाबाहु)	२८	३७१	२६७५	२७३२	
,,	१०	शुचि	५८	३९९	२६४७	२७०४	
,,	११	क्षेम	२८	४५७	२५८९	२६४६	
,,	१२	सुव्रत (अनव्रत)	६४	४८५	२५६१	२६१८	
,,	१३	सुनेत्र (धर्मनेत्र)	३५	५४९	२४९७	२५५४	
,,	१४	निर्वृति (नृपति)	५८	५८४	२४६२	२५१९	
,,	१५	त्रिनेत्र (सुश्रम)	२८	६४२	२४०४	२४६१	
,,	१६	द्युमत्सेन (दृढसेन)	५८	६७०	२३७६	२४३३	
,,	१७	सुमति (महीनेत्र)	३३	७२८	२३१८	२३७५	
,,	१८	अचल (सुचल)	३२	७६१	२२८५	२३४२	
,,	१९	सुनेत्र	४०	७९३	२२५३	२३१०	
,,	२०	सत्यजित्	८३	८३३	२२१३	२२७०	
,,	२१	वीरजित् (विश्वजित्)	३५	९१६	२१३०	२१८७	
,,	२२	अरिञ्जय (रिपुञ्जय)	५०	९५१	२०९५	२१५२	

प्रद्योत-वंश	२३	प्रद्योत (नरोत्तम)	२३	१००१	२०४५	२१०२
,,	२४	पालक	२४	१०२४	२०२२	२०७९
,,	२५	विशाखयूप	५०	१०४८	१९९८	२०५५
,,	२६	राजक(अजक,जवक,सूर्यक)	२१	१०९८	१९४८	२००५
,,	२७	नन्दिवर्धन (वर्तिवर्धन)	२०	१११९	१९२७	१९८४
शिशुनाक-वंश	२८	शिशुनाक (शिशुनाग)	४०	११३९	१९०७	१९६४
,,	२९	काकवर्ण (शाकवर्ण)	३६	११७९	१८६७	१९२४
,,	३०	क्षेमधर्मा (क्षेमवर्मा)	३०	१२१५	१८३१	१८८८
,,	३१	क्षत्रौजा (क्षेमजित)	४०	१२४५	१८०१	१८५८
,,	३२	विन्ध्यसेन (विधिसार)	३८	१२८५	१७६१	१८१८
,,	३३	अजातशत्रु	२७	१३२३	१७२३	१७८०
,,	३४	दर्शक (दर्भक)	३५	१३५०	१६९६	१७५३
,,	३५	उदयी (उदासी)	३३	१३८५	१६६१	१७१८
,,	३६	नन्दिवर्द्धन	४०	१४१८	१६२८	१६८५
,,	३७	महानन्दी	४३	१४५८	१५८८	१६४५
महापद्मनन्दवंश	३८	महापद्मनन्द	८८	१५०१	१५४५	१६०२
,,	३९	सुमाल्यादि ८ पुत्र	१२	१५८९	१४५७	१५१४
मौर्य-वंश	४०	चन्द्रगुप्त	२४	१६०१	१४४५	१५०२
,,	४१	बिन्दुसार (वारिसार)	२५	१६२५	१४२१	१४७८
,,	४२	अशोक	२६	१६५०	१३९६	१४५३
,,	४३ से ४९	इसी वंशके ७ राजा और	६२	१६७६	१३७०	१४२७

महाभारत-युद्धके पश्चात् मगध-राजवंशावलियोंका विवरण

वंशनाम	क्रम-संख्या	राजाका नाम	राजत्व-काल	शासनारम्भ काल			विवरण
				वर्तमान कलियुग युधिष्ठिर-संवत्	विक्रम-संवत् पूर्व	ईसवीय सन् पूर्व	
शुंगवंश	५०...५९	पुष्यमित्रादि १०	११२	१७३८	१३०८	१३६५	
कण्ववंश	६०...६३	वसुदेवादि ४	४५	१८५०	११९६	१२५३	
आन्ध्रवंश	६४...९३	बलिपुच्छकादि ३०	४५६	१८९५	११५१	१२०८	
आभीरवंश	९४...१००	आभीर-वंशी ७	×	२३५१	६९५	७५२	

महाभारतयुद्धके पश्चात्की मगधराजवंशावलियोंके राजाओंकी जो निश्चित तिथियोंका विवरण ऊपरके चक्रमें दिया गया है, उसके द्वारा प्राचीन इतिहासके समयोंका सप्रमाण विचार किया जा सकता है। हमने यह प्रथम ही दिखला दिया है कि परीक्षित्के जन्मकालसे महापद्मनन्दके अभिषेकतकका समय १५००सौ वर्ष होता है। अतएव उसके विषयमें कोई संदेह अब शेष नहीं रहा। फिर भी अपने मतके समर्थनमें हम कुछ पुराणोंके वचन नीचे देते हैं कि जिससे लोगोंको हमारा संशोधित पाठ शुद्ध और प्रामाणिक प्रतीत हो।

ब्रह्माण्डपुराण, उपोद्घात पाद ३, अध्याय ७४ में लिखा है—

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्। २३५।
आन्ध्रान्ते च चतुर्विंशे भविष्यति शतं समाः॥२३६॥
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मोत्तरं च यत्।
अन्तरं च शतान्यष्टौ तथा पञ्चाशतं समाः॥२३८॥

अर्थात् राजा परीक्षित्के जन्मकालसे सप्तर्षि १०० वर्षतक मघानक्षत्रमें रहे और आन्ध्रवंशके अन्तमें मघासे २४ वें नक्षत्रपर रहेंगे तथा महापद्मनन्दके अभिषेकसे आन्ध्रवंशके अन्ततकके अन्तरका प्रमाण ८५० वर्ष

कहा गया है। सारांश यह कि परीक्षित्के जन्मकालसे आन्ध्रवंशके अन्तका समय चौबीसवीं शताब्दीका मध्यभाग है, जैसा कि ऊपरके चक्रमें कलियुग-संवत् २३५१ वर्तमान लिखा है, तथा महापद्मनन्दके अभिषेकसे आन्ध्रवंशके अन्तका समय चक्रमें ८५० वर्ष दिया गया है। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि राजा परीक्षित्के जन्मसे महापद्मनन्दके राज्याभिषेकका अन्तर वही पूर्व-निर्णीत १५०० सौ वर्ष ही है। अवश्य ही इस प्रमाणसे विद्वज्जन हमारे निर्णीत समय और संशोधित पाठमें संदेह न करेंगे। ब्रह्माण्डपुराणके समान ही यही बात मत्स्यपुराण, अध्याय २७३, श्लोक ३६, ४३, ४४में और वायुपुराण उत्तरार्धके अध्याय ३७ के श्लोक ४१०, ४११ और ४१६ में भी कही गयी है।

राजा परीक्षित्के जन्मकालसे महापद्मनन्दके अभिषेक-तकके समयके ज्ञापक पाँचों पुराणोंके अशुद्ध पाठोंके समर्थनमें, जिसमें राजा परीक्षित्से महापद्मनन्दके अभिषेक-तकका समय १०१५, १०५० और १११५ वर्षतक वर्णित है, इतिहासके बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानोंने विष्णुपुराण अंश ४, अध्याय २४, श्लोक ११२ को प्रमाण-के रूपमें उद्धृत किया है। जो इस प्रकार है—

प्रयास्यन्ति यदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष गतिवृद्धिं गमिष्यति॥

अर्थात् जिस समय सप्तर्षिगण पूर्वाषाढ़पर जायँगे, उसी समय अर्थात् राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा। उन विद्वानोंका तात्पर्य यह है कि राजा परीक्षित्के जन्मकाल (महाभारत-युद्धकाल) में ही मघामें सप्तर्षि आये और मघासे पूर्वाषाढ़ नक्षत्र ग्यारहवाँ है। एक नक्षत्रमें सप्तर्षि १०० वर्ष रहते हैं। इस हिसाबसे परीक्षित्के जन्मकालसे राजा नन्दके समयतक ११०० वर्ष होते हैं; किंतु यह उनका भ्रम है। इस श्लोकमें आया हुआ 'नन्द' शब्द महापद्मनन्दका वाचक नहीं, वह प्रद्योत-वंशके नन्दिवर्द्धनके लिये कहा गया है; क्योंकि ऐसा न करनेसे समस्त पुराणोंके मतके विरुद्ध इसका अर्थ होगा। अथवा 'नन्द' शब्दको महापद्मनन्द यदि मानें तो **'पूर्वाषाढां महर्षयः'** इसका पाठ मानना पड़ेगा—**'पूभायाश्च महर्षयः'**, जिससे राजा परीक्षित्के जन्मकालसे महापद्मनन्दके राजत्वकालतक १६०० वर्ष होते हैं और सभी पुराणोंका मत एक सिद्ध हो जाता है। अतएव उन विद्वानोंका अभिप्राय इस श्लोकसे भी सिद्ध नहीं होता और पूर्वलिखित प्रमाणोंसे राजा परीक्षित्के जन्मकालसे महापद्मनन्दके अभिषेक-तकका समय पूरे १५०० वर्ष ही सिद्ध होता है।

कुछ विद्वानोंका मत है कि कलियुगारम्भके ३६ वर्ष पूर्व महाभारतका युद्ध हुआ था। क्योंकि महाभारत-युद्धके ३६ वें वर्ष भगवान् श्रीकृष्ण परमधाम पधारे। और विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २४ में लिखा है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे॥११३॥

अर्थात् जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परम-धाम पधारे, उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था; अब तुम कलियुगकी वर्षसंख्या सुनो। किंतु इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि कलियुग आरम्भ हो जानेपर भी पृथ्वीको तबतक वह प्रभावित नहीं कर सका, जबतक भगवान् श्रीकृष्ण परमधाम नहीं पधारे। इसी अभिप्रायको प्रकट करनेवाला विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २४ का निम्नलिखित श्लोक है—

यावत्स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम्।
तावत्पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत्कलिः॥१०९॥

अर्थात् जबतक भगवान् अपने चरणकमलोंसे इस पृथ्वीका स्पर्श करते रहे, तबतक पृथ्वीसे संसर्ग करनेकी कलियुगको हिम्मत न पड़ी।

सारांश यह कि 'कलियुगारम्भकाल' और 'महाभारत-युद्धकाल' पूर्वनिर्णयानुसार एक ही हैं, भिन्न नहीं। और वह है विक्रम-संवत् पूर्व ३०४५ और ईसवी सन् पूर्व ३१०२ का समय।

महाभारत-युद्धकालके पश्चात्की पौराणिक राज-वंशावलियोंके शुद्ध पाठ और राजाओंके राजत्वकालके आधारपर हमने यह दिखला दिया कि महापद्मनन्दका अभिषेककाल वर्तमान कलियुग (युधिष्ठिर)-संवत् १५०१, विक्रम-संवत् पूर्व १५४५ और ईसवी सन् पूर्व १६०२ प्रमाणित होता है तथा मौर्य चन्द्रगुप्तका राजत्वकाल वर्तमान कलियुग (युधिष्ठिर)-संवत् १६०१,

विक्रम-संवत् पूर्व १४४५ और ईसवी सन् पूर्व १५०२ से वर्तमान कलियुग (युधिष्ठिर)-संवत् १६२५, विक्रम-संवत् पूर्व १४२१ और ईसवी सन् पूर्व १४७८ तक तथा मौर्य अशोकका राजत्वकाल वर्तमान कलियुग (युधिष्ठिर)-संवत् १६५०, विक्रम-संवत् पूर्व १३९६ और ईसवी सन् पूर्व १४५३ से २६ वर्षोंतक अर्थात् ईसवीय सन् पूर्व १४२७ तक प्रमाणित होता है। ऐसी दशामें जिस सैंड्राकोटस् (चन्द्रगुप्त) का शासनारम्भ सर विलियम जोन्स आदि पाश्चात्त्य विद्वानोंने ईसवी पूर्व ३२३ वर्षके आसपास माना है, उस सैंड्राकोटस्को मौर्य चन्द्रगुप्त माननेकी चेष्टा करना अप्रामाणिक और हास्यास्पदके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इतना ही नहीं, शिलालेखोंके आधारपर मौर्य अशोकका शासनकाल यूनानके पाँच राजाओंके समसामयिक अर्थात् ईसवीपूर्व २५८ कल्पना करना और शिलालेखोंमें पश्चिम भारतीय राजाओंके यवनादि पञ्च गणराज्योंको यूनानके पाँच राजाओंका नाम पढ़ना, जेनरल प्रिंसेप आदि पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानोंका साहस ही कहा जायगा; उसमें कोई वास्तविकता नहीं। अतएव मौर्य अशोक, मौर्य चन्द्रगुप्त और महापद्मनन्दके शासन-काल और महाभारत-युद्धकालका निर्णय करनेके लिये यद्यपि हमारे लिये सर विलियम जोन्सके वक्तव्य, मेगस्थनीज़के भारत-वर्णन एवं शिलालेखोंके पढ़नेवाले जेनरल प्रिंसेप और जेनरल बर्किंघम् आदि विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानोंके किये हुए अशोकके धर्मलेखोंके अनुवादोंकी आलोचना करना आवश्यक नहीं, तथापि वर्तमानकालमें प्रचलित भारतीय इतिहासोंमें जो इस विषयपर भ्रमपूर्ण लेख पाये जाते हैं, जिनके आधारपर हमारे महाभारत-युद्ध-कालको लगभग १७०० वर्ष पीछे हटाया गया है, उनके निराकरणके लिये हम यह आवश्यक समझते हैं कि मेगस्थनीज़की पुस्तकके आधारपर दिये गये सर विलियम जोन्सके वक्तव्य और शिलालेखों (अशोकके धर्मलेखों) के अनुवादक जेनरल प्रिंसेप आदि पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानोंके बतलाये हुए धर्मलेखोंके अन्वियोक, मग, अन्तेकिन, तुरमय और अलीकसिन्धुर आदि नामोंकी परीक्षा करके यह दिखलायें कि ये सारी-की-सारी व्याख्याएँ केवल कल्पनामात्र हैं, इनमें जरा भी वास्तविकता नहीं है।

सर विलियम जोन्सके वक्तव्यकी परीक्षा

सर विलियम जोन्सने 'एसियाटिक सोसाइटी' कलकत्ताकी स्थापना की, जो भारतीय ऐतिहासिक विषयोंकी खोजके लिये सबसे पहली संस्था है। उसके द्वारा भारतीय इतिहासपर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। उसी सोसाइटीमें २८ फरवरी सन् १७९३ ई० को सर विलियम जोन्सने एक वक्तव्य दिया था, जिसमें उन्होंने यूनानी इतिहास-लेखकोंकी पालिबोथ्रा नगरीको पाटलिपुत्रका और सैंड्राकोटस्को पौराणिक मौर्य चन्द्रगुप्तका अपभ्रंश बतलाया, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र नगरी थी, और यूनानी इतिहासके आधारपर उक्त चन्द्रगुप्त मौर्यका राज्यारोहण-काल ईसवी सन् पूर्व ३२२ वर्ष सिद्ध किया और यह सब सिद्ध किया मेगस्थनीज़के उस पुस्तकके आधारपर, जिसको उसने पाँच वर्षतक सिल्यूकस राजाके राजदूतके रूपमें सैंड्राकोटस्की दरबारमें उसकी राजधानी पालिबोथ्रामें रहकर लिखा था, और जो अब कहीं भी मिलती नहीं। हाँ, उसके छितराये हुए अंशोंके अवतरण अनेक यूनानी इतिहासकारोंकी पुस्तकोंमें पाये जाते हैं, जिनको पाश्चात्त्य विद्वानोंने एकत्रित किया है और जिसका अंग्रेजी अनुवाद स्वान वेक साहबने प्रकाशित किया है। अब हमें देखना यह है कि पालिबोथ्रा नगरीको किसने और कब किस जनपदमें बसाया था, और क्या वह मगधदेशकी राजधानी पाटलिपुत्र नगर है, और क्या सैंड्राकोटस् मौर्यवंशके सम्राट् चन्द्रगुप्तका अपभ्रंश है?

क्या पालिबोथ्रा नगरी मौर्यवंशकी राजधानी थी?

नागरी-प्रचारिणी सभा काशीसे प्रकाशित आचार्य पण्डित रामचन्द्रशुक्लद्वारा अनुवादित मेगस्थनीज़के भारत-भ्रमण (हिंदी) में लिखा है कि 'डायनुशस पश्चिमसे आया·······उसी वंशमें हेराक्लीज़ भी हुआ था, जो साधारण मनुष्योंसे बल-बुद्धिमें बड़ा था और उसने बहुत-सी स्त्रियोंसे विवाह करके बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये····

उसने बहुत-से नगर बसाये, जिनमें सबसे बड़ा और विख्यात नगर पालिबोथ्रा है।' मेगस्थनीज़की पुस्तकका जो अवतरण आरायनने दिया है, उसमें हेराक्लीज़से सैंड्राकोटस्‌तककी १३८ पीढ़ियाँ दी हैं (देखो महाभारत-मीमांसा, पृष्ठ ९१, प्रकरण ४), जिससे यह प्रमाणित होता है कि पालिबोथ्रा नगरी सैंड्राकोटस्‌से १३८ पीढ़ी प्रथम बसी थी। प्रसिद्ध इतिहास-विशारद प्लायनीने लिखा है कि पालिबोथ्र नगर गङ्गा और ईरानावोअसके सङ्गमसे २०० मील ऊपरकी ओर स्थित था (प्लायनी: फ्रैग्मेंटस आफ इण्डिया, पृष्ठ १३०)

एम० डी० आनविल्लेका मत है कि ईरानावोअस यमुना नदी है। अतएव यह सिद्ध होता है कि यमुना और गङ्गाके संगम (प्रयाग) से ऊपरकी ओर २०० मीलपर पालिबोथ्रा नगरी थी। (जोन्सके वक्तव्यमें) आरायनके मतसे गङ्गा और ईरानावोअसका संगम प्रसई (प्रस्सी) जनपदमें था। कर्टियसका मत है कि मेगस्थनीज़का पालिबोथ्र प्रभद्रक (या पारिभद्रक) जनपद है।

ऊपरके विवरणसे प्रमाणित होता है कि पालिबोथ्रा नगरी गङ्गा-यमुनाके संगमसे ऊपरकी ओर २०० मीलपर थी और वह सैंड्राकोट्ससे १३८ पीढ़ी पूर्व हेराक्लीज़द्वारा बसायी गयी। यदि आधुनिक इतिहासवेत्ताओंके मतानुसार हम प्रति पीढ़ी २० वर्षका समय मानें तो सैंड्राकोटस्‌से २७६० वर्ष पूर्व पालिबोथ्राका बसाया जाना प्रमाणित होता है!

दूसरी ओर देखें तो पाटलि-पुत्र नगरको शिशुनाकवंशके आठवें राजा उदायीने अपने अभिषेकसे चौथे वर्षमें बसाया, जैसा कि निम्नलिखित पुराणोंमें लिखा है—
वायुपुराण, अध्याय ९९—

उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः ॥३१८॥
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥३१९॥

अर्थात् (दर्शकका पुत्र) उदायी ३३ वर्षतक राज्य करेगा और वह अपने अभिषेकसे चौथे वर्ष गङ्गाके दक्षिण तटपर कुसुमपुर नामक श्रेष्ठ नगरको बसायेगा।

ब्रह्माण्डपुराण, उपोद्घात पाद ३, अध्याय ७४ का १३२ वाँ श्लोक भी ऊपर लिखे वायुपुराणके अक्षरशः समान ही है। अतएव उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं। सारांश यह कि वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे शिशुनाक-वंशीय आठवें राजा उदायीने अपने राज्याभिषेक (वर्तमान कलियुग-संवत् १३८५, विक्रम-संवत् पूर्व १६६१ और ईसवी सन् पूर्व १७१८) से चौथे वर्ष अर्थात् ईसवी सन् पूर्व १७१५ में कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) को गङ्गाके दक्षिण तटपर बसाया था। इसी प्रकार 'जैन-पुस्तक-परिशिष्ट' पटवनमें भी पाटलिपुत्रको शिशुनाक-वंशके आठवें राजाने बसाया लिखा है; किंतु पालिभाषाके बौद्धग्रन्थ 'महामग्ग सुतनिपात'में लिखा है कि शिशुनाक-वंशके छठे राजा अजातशत्रुने कुसुमपुरको बसाया (देखो 'भारतके प्राचीन नगर' नामक पुस्तक, पृष्ठ ३२)। 'कुसुमपुर', 'पुष्पपुर', 'पाटलिग्राम', 'पाटलिपुत्र' और 'पाटलानगरी' ये सब पर्यायवाची हैं।

ऊपरके विवरणसे यह प्रमाणित होता है कि सर विलियम जोन्सका यह मत कि मेगस्थनीज़लिखित पालिबोथ्रा नगरी पाटलिपुत्रका अपभ्रंश है, सर्वथा निराधार है; क्योंकि मेगस्थनीज़के किसी भी अवतरणमें पालिबोथ्राका मगध-प्रदेशमें होनेका वर्णन नहीं है। उसके विपरीत प्रसई जनपदमें पालिबोथ्राके होनेका प्रमाण मिलता है और पालिबोथ्राके बसाये जानेका समय ईसवी सन् पूर्व ३०८२ वर्षके लगभग होता है। उसके बसानेवालेका नाम हेराक्लीज़ लिखा है। पाटलिपुत्रके बसाये जानेका समय ईसवी सन् पूर्व १७१५ हमने प्रथम ही प्रमाणित कर दिया है और उसके बसानेवालेका नाम पौराणिकमतानुसार शिशुनाकवंशीय आठवाँ राजा उदायी है।

ऐसी दशामें किसी प्रकार भी पालिबोथ्रा पाटलिपुत्रका अपभ्रंश नहीं हो सकता और न पालिबोथ्राका राजा सैंड्राकोटस् पौराणिक मौर्य चन्द्रगुप्त ही हो सकता है। ऊपरके विवरणसे यह प्रमाणित हो जाता है कि मौर्य चन्द्रगुप्तके शासनारम्भ-कालसे ११८० वर्ष पीछे सैंड्राकोटस्‌का शासनारम्भ हुआ। अतएव दोनोंको एक मानना सम्भव नहीं और मेगस्थनीज़का

सैंड्राकोटस् सम्भवतः शूरसेन देशके प्रसई (प्रस्सी) जनपदके प्रभद्र (पारिभद्र) नगरका कोई दूसरा चन्द्रगुप्त अथवा चन्द्रकेतु या इसीसे मिलते-जुलते नामका शासक था। फिर भी जो लोग दोनोंको एक सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं, उनका यह अनुचित साहस है और सैंड्राकोटस्को मौर्य चन्द्रगुप्त मानकर तथा महाभारत-युद्धकालके पश्चात्की बृहद्रथ, प्रद्योत और शिशुनाक-वंशकी वंशावलियोंके राजत्वकालोंके योग बतलानेवाले पाँच पुराणोंके अशुद्ध पाठोंके आधारपर राजा परीक्षितके जन्मकालसे महापद्मनन्दके अभिषेकतकके १५०० वर्षोंको घटाकर १०१५, १०५० अथवा ११९५ मानकर जो विद्वान् महाभारत-युद्धकालको ईसवी सन् पूर्व १३३२ से लगाकर ईसवी सन् पूर्व १४३७ तक मानते हैं, उनको हमारे सप्रमाण विवरणको पढ़कर सर विलियम जोन्सके वक्तव्यके द्वारा उत्पन्न भ्रमको दूरकर यथार्थ मतका अनुसरण करना चाहिये और महाभारत-युद्धकालको ईसवी सन् पूर्व ३१०२ जो समस्त संस्कृत-साहित्यसे प्रमाणित है, सहर्ष स्वीकार करना चाहिये।

तथाकथित अशोकके अभिलेखोंकी परीक्षा

पाश्चात्त्य विद्वानोंने, विशेषकर जेनरल प्रिंसेप और जेनरल कर्निंघमने सर विलियम जोन्सके वक्तव्यके समर्थनमें जिन गुहाभिलेखों, स्तम्भाभिलेखों और शिलाभिलेखोंको खोज निकाला है और उनको बड़े परिश्रमसे पढ़कर यह प्रतिपादित किया है कि ये समस्त अभिलेख महाराज अशोकके हैं और चौदह प्रज्ञापनवाले लेखमें अन्तियोक आदि पाँच नामोंके विषयमें यूनानके भिन्न-भिन्न भागोंके राजाओंके नामोंकी कल्पना की है, तथा उन सब राजाओंके समसामयिक ई० सन् पूर्व २५८ वर्षपर उन प्रज्ञापनोंका अङ्कित होना मानकर अभिलेखोंके लिखानेवाले राजाको 'मौर्य अशोक' प्रतिपादित किया है; और उसीके आधारपर मौर्य अशोकके पितामह मौर्य चन्द्रगुप्तका राजत्व-काल वही लिखा है, जो सर विलियम जोन्सके वक्तव्यके अनुसार मौर्य चन्द्रगुप्तका राजत्व-काल होता है। अतएव हम तथाकथित अशोकके अभिलेखों, विशेषकर चौदह प्रज्ञापनवाले अभिलेखकी परीक्षा करेंगे और यह देखेंगे कि क्या चौदह प्रज्ञापन-वाले अभिलेखमें अन्तियोक आदि पाँच यूनानी राजाओंके नाम हैं?

यद्यपि सर विलियम जोन्सके वक्तव्यकी परीक्षा हो जानेपर और यह प्रमाणित हो जानेपर कि मेगस्थनीजका सैंड्राकोटस् पौराणिक मौर्य चन्द्रगुप्त नहीं है और न पालिबोथा नगरी पाटलिपुत्र है, इस बातकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि सर विलियम जोन्सके वक्तव्यके समर्थक प्रमाणोंकी भी परीक्षा की जाय, तथापि साम्प्रत कालमें तथाकथित अशोकके अभिलेखोंका ऐतिहासिक जगत्में बहुत बड़ा मान है। अतएव हम उन अभिलेखोंकी परीक्षा करके यह दिखलाना चाहते हैं कि अभिलेखोंमें किसी भी यूनानी राजाका नाम नहीं है और पाश्चात्त्य विद्वानोंकी पाँच यूनानी राजाओंवाली कल्पना उसी प्रकारकी कोरी कल्पना है, जिस प्रकार सैंड्राकोटस् और मौर्य चन्द्रगुप्तकी एकतावाली सर विलियम जोन्सकी निराधार कल्पना है। अशोकके धर्मलेखके नामसे प्रख्यात देवानां प्रिय, प्रियदर्शी राजा, देवानां प्रिय अथवा प्रियदर्शी एवं बिना किसी व्यक्तिके नामके द्वारा लिखाये गये जितने धर्मलेख अबतक गुहाओं, स्तम्भों और शिलाओंमें पाये गये हैं, वे धर्मलेख कब लिखे गये—इसका कोई उल्लेख नहीं है; क्योंकि उनमें किसी संवत्सरका उल्लेख नहीं है। केवल इतना उल्लेख है कि यह प्रज्ञापन लिखानेवाले व्यक्तिके अभिषेकसे कितने वर्षपर लिखाया गया। अतएव जबतक लिखानेवाले राजाके अभिषेकके समयका ज्ञान न हो, तबतक अभिलेखोंका समय नहीं जाना जा सकता। पुरातत्त्व-के विशेषज्ञ और इतिहासके धुरन्धर विद्वान् स्वर्गवासी महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका मत है कि किसी लेख या दानपत्रमें निश्चित संवत् न होनेकी दशामें उसकी लिपिके आधारपर ही उसका समय स्थिर करनेका मार्ग निष्कण्टक नहीं है। उसमें पचीस-पचासकी ही नहीं, किंतु कभी-कभी तो सौ-दो-सौ या उससे भी अधिक वर्षोंकी चूक हो जानी सम्भव है—ऐसा मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ, (भारतीय प्रा० लि० माला, भूमिका, पृष्ठ ८) अवश्य

ही प्रथम लघु शिलालेखमें जो २५६ का अङ्क है, उसको बहुत दिनोंतक इतिहासज्ञ विद्वान् बुद्धनिर्वाण संवत् मानते थे और इसका समर्थन 'हिंदी टॉड राजस्थान'के सम्पादक ओझाजीने प्रकरण ६ की टिप्पणी ४४ वीं में किया था; किंतु श्रीपण्डित जनार्दन भट्ट अशोकके धर्मलेख पृष्ठ ७९ की टिप्पणी १२ में लिखते हैं—'किंतु आजकल इस मतका पूरा-पूरा खण्डन हो गया है। ऐसी दशामें धर्मलेखोंका निश्चित समय निरूपण करना सम्भव नहीं।

यद्यपि उपलब्ध समस्त अभिलेख तथाकथित राजा अशोकके हैं और वह राजा अशोक मौर्यवंशी अशोक-वर्द्धन है, यह ज्ञान संदेहरहित नहीं—क्योंकि केवल 'मासकीके खण्ड' प्रथम लघुशिलालेखमें 'अशोकस' ये चार अक्षर मिले हैं। शेष किसी भी धर्मलेखमें अशोकका नाम नहीं आया। इतना ही नहीं, अभिलेखोंमें 'देवानां प्रिय, प्रियदर्शी राजा'की द्विरुक्ति और त्रिरुक्ति तो की गयी है, किंतु 'अशोक' इन तीन अक्षरोंका कहीं उल्लेख नहीं। अतएव इन सब धर्मलेखोंको हम मौर्य अशोकवर्धनके धर्मलेख मान लें, यह युक्तियुक्त नहीं; क्योंकि जिन विषयोंका वर्णन सातवें स्तम्भाभि-लेखमें और दूसरे तथा तेरहवें प्रज्ञापनमें है, ठीक उसी प्रकारका वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसाँगने अपने भारत-वर्णनके प्रसङ्गमें अपने आश्रयदाता राजा हर्षवर्द्धन (शीलादित्य द्वितीय) के विषयमें किया है। (देखिये सर रमेशचन्द्रदत्तकृत 'प्राचीन भारतकी सभ्यता, भाग ४, अध्याय २, पृष्ठ २६।) ऐसी दशामें 'देवानां प्रिय' शब्दोंको, जो बौद्ध राजाओंकी उपाधि थी (देखिये 'अशोककी धर्म-लिपियाँ', पृष्ठ ७ की टिप्पणी १) को राजा हर्ष-वर्द्धनके लिये भी प्रयुक्त मान सकते हैं और दूसरे बौद्ध राजाओंके लिये भी इसी शब्दका प्रयोग धर्मलेखोंमें किया गया हो तो आश्चर्य नहीं। तथापि इस समय इस विवादग्रस्त विषयको हम यहीं छोड़ देते हैं और पाश्चात्त्य विद्वानोंके इस मतको कि सारे-के-सारे धर्मलेख मौर्य राजा अशोकवर्द्धनके हैं मानकर पौराणिक राजवंशावलियोंके राजत्वकालोंके आधारपर विचार करते हैं तो मौर्य अशोकवर्द्धनका राजत्वकाल कलियुगके वर्तमान संवत् १६५०, विक्रम-संवत् पूर्व १३९६ और ईसवी सन् पूर्व १४५३से लगाकर वर्तमान कलियुग संवत् १६७६, विक्रम-संवत् पूर्व १३७० और ईसवी सन् पूर्व १४२७ तक २६ वर्ष होता है। ऐसी दशामें शिलालेखके प्रज्ञापनोंमें यूनानके उन पाँच राजाओंके नाम पढ़ना, जिनके राजत्वकाल ईसवी सन् पूर्व २८५ से लेकर २३९ तक माने गये हैं, सर्वथा भूल है, और उसीके आधारपर उन पाँच यूनानी राजाओंके साथ मौर्य अशोकवर्द्धनकी सम-सामयिकता स्थापित करनेकी चेष्टा करना भी पाश्चात्त्य विद्वानोंका आश्चर्य-जनक साहस है।

यद्यपि उक्त शिलालेखोंके अंतियोकस, तुरमय, अन्तेकिन, मक और अलिकसुंदर—ये पाँच नाम भारतके पश्चिमीय पाँच राज्योंके नाम हैं, जो वारुण भारतके पञ्चगणके नामसे अति प्राचीन कालसे अयोध्याके महाराज सगरके भी पूर्वकालसे प्रसिद्ध हैं, और जो चन्द्रवंशीय क्षत्रिय महाराज ययातिके तुर्वसु आदि तीन पुत्रोंके वंशधर राजाओंके अधिकारमें थे और समयानुसार शासकोंके नाम तथा प्रदेशोंकी प्राकृतिक दशाओं आदिके कारण इन पञ्च गणराज्योंके नामोंमें और सीमाओंमें परिवर्तन होता रहा, तथापि ये यवनादि पञ्च गणराज्य हमारे संस्कृत-साहित्यमें सिन्धु नदीके पश्चिम भारतके मुख्य राज्य माने गये हैं। इन्हींका उल्लेख तथाकथित अशोकके चतुर्दश प्रज्ञापनवाले शिलालेखके दूसरे, पाँचवें और तेरहवें प्रज्ञापनोंमें हैं। इन पाँचों राज्योंके शुद्ध नाम नीचे लिखे अनुसार है—

(१) 'अंतियोकस नाम योन राजा'का शुद्ध रूप है, 'अन्तओकस्यनामके यवनराज्ये।' अर्थात्—अन्त (भारतकी पश्चिम सीमा) में ओक (स्थान) जिसका हो उसका अंतओकस नाम है (अन्ते—पश्चिम सीमान्ते ओकः स्थानं यस्य स अन्तओकः तस्य अन्तओकस्य)। 'योन राजा'का शुद्ध रूप है 'यवनराज्ये'। शिलालेखमें योनराज लिखा गया है, किंतु उसके पढ़नेवालोंने 'योन राजा' गलत पढ़ा है। राजाका जकार दीर्घ नहीं, लघु है। जिस ब्राह्मी लिपिका जकार है, उसमें ज और जामें कोई अन्तर नहीं होता। मध्यकी रेखा थोड़ी बढ़ जानेसे

लघु 'ज' दीर्घ 'जा' हो जाता है, और इसी कारण इसके पढ़नेवालोंने अपनी इष्टसिद्धिके लिये 'ज' को 'जा' पढ़ा है।

(२) *तुरमये*—इसका शुद्धरूप है तूरमये, तूर-पर्वतसमीपवर्ती मय राज्य, जो पुराणप्रसिद्ध त्रिपुर राज्योंमेंसे एक था (देखिये 'इन्द्रविजय,' पृष्ठ ५५) ।

(३) *अंतेकिने*—इसका शुद्धरूप है, अन्तकिन्नरे (अन्त्ये पश्चिमे किन्नरे किन्नरराज्ये) । पश्चिम भारतमें मद्र और गन्धार—ये दोनों महान् देश दो-दो राज्योंमें विभक्त थे, इन्हींमेंसे किन्नर राज्य भी एक था, जिसको 'पश्चिम-किन्नर' कहते होंगे ।

(४) *मक*—इसका शिलालेखमें 'मग' भी रूप है। यह शक राज्यके अर्थमें आया है (मके शके राज्ये) मग और शक एक ही हैं । इसका वर्णन पुराणोंमें है । मगके विषयमें भविष्यपुराणमें लिखा है—

वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यतोऽहं लङ्घितस्त्वया ।
तस्मान्मगः समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥
जरथुस्त्र इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्द्धनः ।
अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः॥

(१३९ । ४३, ४५)

'वेदोक्त विधिके विरुद्ध तेरे द्वारा मैं जो उल्लङ्घित किया गया हूँ—इससे तेरा पुत्र 'मग' नामसे प्रसिद्ध होगा । उसका नाम जरथुस्त्र मग होगा और वह अपने वंशकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा । इसके वंशज अग्निकी उपासना करनेवाले मग (शक) के नामसे प्रसिद्ध होंगे और सोमके उपासक मग (मागध—शाकद्वीपी) ब्राह्मण होंगे (देखिये 'इन्द्रविजय', पृष्ठ ४६)।

सारांश यह कि 'मग' शब्द पश्चिम भारतके वेद-विरोधी अग्नि-उपासक पारसीक नामसे प्रसिद्ध राज्यके अर्थमें आया है ।

(५) *अलिकसुंदरे*—इसका शुद्धरूप 'अलीक सिन्धुरे' है (अलीकाः कृष्णवर्णाः सिन्धुरा हस्तिनो यस्मिन् देशे स अलीकसिन्धुरस्तस्मिन् अलीकसिन्धुरे राज्ये), जिसका अर्थ है—काले हाथियोंका देश, जिसके नाम पश्चिम भारतमें हस्तिग्राम (गजाह्वय) हस्तिनापुर (प्रथम) आदि प्रसिद्ध हैं । अथवा कालसीके तेरहवें प्रज्ञापनका पाठ—'अलिक्यषुदले' को माने तो उसका शुद्धरूप 'अलेख्यसुन्दरे' होगा अर्थात् जिस देशकी सुन्दरता लिखी नहीं जा सकती । वह काश्मीर देश है, जिसको पृथ्वीका स्वर्ग कहा गया है ।

ऊपरके लिखे विवरणसे यह प्रमाणित हो जाता है कि धर्म-लिपियों—अशोकके धर्म-लेखोंमें लिखे हुए—'अंतियोकस नाम यवन राजा' और उसके सामन्त तुरमये, अंतेकिने, मक और अलिकसुंदरे (अलिक्यषुदले) ये पाँचों नाम पश्चिम भारतके पञ्च गणराज्योंके नाम हैं, यूनानके पाँच राजाओंके नहीं । और ये सब नाम सप्तम्यन्त हैं, जैसा इनका संस्कृतरूप होता है—अंतयोक-नामयवनराज्ये, तूरमयराज्ये, अन्तकिन्नरे राज्ये, मग-(मक) राज्ये और अलीकसिन्धुरराज्ये अथवा अलेख्य-सुन्दरराज्ये। और इसी पाठके अनुसार प्रज्ञापनोंका शुद्ध अनुवाद संस्कृत और हिन्दीमें प्रामाणिक होगा । पाश्चात्त्य विद्वानोंने इन पाँच राज्योंको जिन पाँच यूनानी राजाओं-का नाम बतलाया है, उन नामोंके साथ इन राज्यनामों-की सदृशता भी अधिकांशमें नहीं पायी जाती, जैसे—

अंतियोकसको 'एंटिओकस थिओस', सीरिया, बैक्टीरिया आदि पश्चिमी एशियाके देशोंका यूनानी (ग्रीक) राजा कहना ।

तूरमयेको 'टालेमी फिला डेलफस' मिश्रका राजा कहना ।

अंतिकिनेको 'एंटीगोनस गोनटस' मेसोडोनियाका राजा कहना ।

मकको 'मगस' सीरीनीका राजा कहना ।

अलिकसुंदरेको 'एलेकजेंडर' एपिरसका राजा कहना ।

इस प्रकार उक्त शिलालेखोंके समयका कोई निर्णय नहीं हो सकता और न इन शिला-लेखोंके आधारपर महाभारत-युद्धका समय ही निश्चित हो सकता है । पाश्चात्त्य विद्वानोंने इन शिलालेखोंका समय यूनानी राजाओंके राजत्वकालोंकी समसामयिकताके साथ मौर्य अशोकके राजत्वकालका समय निर्धारित किया है और उसके आधारपर महाभारत-युद्धकालको लगभग १७०० वर्ष पीछे हटानेकी चेष्टा की है; पर वह सब निराधार और

कोरी कल्पनामात्र है। पौराणिक राज-वंशावलियों और महाभारत-संहिता आदि संस्कृत-ग्रन्थोंसे प्रमाणित कलियुगारम्भकाल (विक्रम-संवत् पूर्व ३०४५ तथा ईसवी सन् पूर्व ३१०२) ही महाभारत-युद्धकाल और परीक्षित्-जन्मकाल सर्वमान्य हैं।

उपसंहार

महाभारत-संहिताके प्रमाणवचनोंसे हमने यह बात प्रथम ही सिद्ध कर दी है कि महाभारत-युद्धकाल (कलियुगारम्भ) के बीस वर्ष बीतनेपर महाराज धृतराष्ट्रका परलोकवास हुआ। उनके परलोक-वासी होनेके पश्चात् और महाराज जनमेजयके सर्पयज्ञ-के पूर्व महाभारत-संहिताकी रचना हुई। महाराज जनमेजयका अभिषेक कलिगताब्द ६० अथवा ९६ में हुआ। महाभारत-संहिता (आदिपर्व-अध्याय ४९, श्लोक १७ और सौप्तिकपर्व, अध्याय १६, श्लोक १४) में लिखा है कि राजा परीक्षित्ने साठ वर्षोंतक राज्य किया और कलिगताब्द ३६ के बाद उनका शासन आरम्भ हुआ। इसके अनुसार महाराज जनमेजयका अभिषेक कलिगताब्द ९६ वर्ष प्रमाणित होता है। और आदिपर्व अध्याय ४९, श्लोक २६ में लिखा है कि महाराज परीक्षित्का शरीरान्त ६० वर्षकी अवस्थामें हुआ है। महाराज परीक्षित्का जन्मकाल और कलियुगारम्भकाल एक ही हैं। इसके अनुसार राजा जनमेजयका अभिषेक कलिगताब्द ६० में ही प्रमाणित होता है। सम्भवतः यही मत ठीक है, और जिन श्लोकोंमें महाराज परीक्षित्के ६० वर्षतक शासनकी बात कही गयी है, उनका अर्थ है ६० वर्षकी अवस्थातक।

राजा जनमेजयका अभिषेक बहुत थोड़ी अवस्थामें हुआ था। अतएव यदि हम यह मान लें कि अभिषेक-से २४ वर्ष पश्चात् 'सर्पयज्ञ' हुआ तो अनुचित न होगा। इससे यह प्रमाणित होगा कि महाभारत-संहिता-की रचना कलिगताब्द २० वर्षके पश्चात् और कलिगताब्द ८४ वर्षके पूर्व हुई। महाराज युधिष्ठिर कलिगताब्द ३६ में भगवान् श्रीकृष्णके परम-धाम पधारनेके पश्चात् स्वर्गवासी हुए, और यह महाभारत-संहिता महाराज युधिष्ठिरके युद्धमें विजयी होनेके उपलक्ष्यमें 'जयेतिहास'के रूपमें अनेक उपाख्यानोंके सहित रची गयी; अतएव इसकी रचना महाराज युधिष्ठिरके राजत्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही हुई होगी, यह अनुमान करना अनुचित न होगा। जिस राजाका विजय-इतिहास लिखा जाता है, प्रायः उसके शासनकालमें ही लिखा जाता है। अतएव कलिगताब्द २० (महाराज धृतराष्ट्रके स्वर्गवासकाल) के पश्चात् और महाराज युधिष्ठिरके शासनान्त काल (कलिगताब्द ३६) के पूर्व महाभारतकी रचना प्रमाणित होती है। महाभारत-संहिताको व्यासजीने तीन वर्षमें पूर्ण किया और उसको श्रीगणेशजीने एक वर्षमें लिखा हो तो सिद्ध होगा कि कलिगताब्द २४ वर्षके पश्चात् और कलिगताब्द ३६ वर्षके भीतर किसी समय महाभारत-संहिता लिखी जाकर तैयार हुई, और व्यासजीने उसे अपने शिष्योंको पढ़ाया। इस प्रकार महाभारत-संहिताका रचनाकाल विक्रम-संवत्पूर्व ३०८१ और विक्रम-संवत्पूर्व ३०६९ के बीच (ईसवीय सन् पूर्व ३१३८ और ईसवीय सन् ३१२६ के बीच) में ही प्रमाणित होता है। (महाभारत-संहिताको सबसे प्रथम महर्षि वैशम्पायनने कलियुगारम्भसे ८४ वें वर्ष) (विक्रम-संवत् पूर्व ३०६१ और ईसवीय सन् पूर्व ३०१८) में महाराज जनमेजयको सर्पसत्रके अवसरपर सुनाया, यह निश्चय है।

महाभारत-संहिताके रचनाकालके विषयमें आपत्तियाँ—समयबोधक कसौटियाँ

महाभारत-संहिताके रचनाकालके विषयमें पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानोंके विचार भारतीय विचारधारासे सर्वथा भिन्न हैं; हमारी महाभारत-संहिताके ही नहीं, समस्त संस्कृत साहित्य-ग्रन्थोंके रचनाकालके विषयमें उनके मत अतीव विलक्षण हैं। पाश्चात्य विद्वानोंको हमारी सभ्यताकी प्राचीनता खटकती है। वे हमारे अकृत, अपौरुषेय और अनादि ऋग्वेदादि वैदिकसाहित्यकी भी प्राचीनता अधिक-से-अधिक ईसवी सनूपूर्व तीन सहस्र वर्षतक प्रतिपादित करते हैं

और उसके पश्चात्के समस्त संस्कृत-ग्रन्थोंका मनमाना समय निर्धारित करते हैं और यह सब कुछ करते हैं सर विलियम जोन्सके वक्तव्यानुसार पौराणिक मौर्य चन्द्रगुप्त और मेगास्थनीजके सैण्ड्राकोटस्को एक मान तथा यूनानके ऐतिहासिक समयके साथ भारतीय ऐतिहासिक समयकी समसामयिकताकी कल्पना करके, जिसको हमने पूर्व ही प्रमाणोंके द्वारा निराधार सिद्ध कर दिया है। किंतु आधुनिक विद्वानों—विशेषकर पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके अनुयायियोंने बड़े परिश्रम और खोजके साथ संस्कृत-साहित्यके ग्रन्थोंके समय निर्णय करनेमें जो भावाभावके प्रमाण दिये हैं, वे बड़े महत्त्वके और विचारणीय हैं। भावाभावके प्रमाण दो भागोंमें विभक्त हैं—

एक तो किसी ग्रन्थका अथवा उसके रचयिताका नामोल्लेख किसी ग्रन्थमें देखकर, अथवा उस ग्रन्थका नाम और उसके रचयिताका नाम दूसरे किसी ग्रन्थमें देखकर उन दोनों ग्रन्थोंके रचनाकालका पूर्वापरत्व निर्णय करना।

दूसरा, यवनादि जाति अथवा व्यक्तिविशेषके नामों और कामोंके उल्लेखको देखकर अथवा सूर्यादि वारोंके नाम, राशियोंके नाम, नक्षत्रगणनाके क्रम तथा चैत्रादि मासोंके नामोंके भावाभावके आधारपर समयका निर्णय करना।

प्रथम भागमें कोई सार नहीं। महाभारत-संहितामें जिन संस्कृत साहित्य-ग्रन्थोंके नामों और वचनोंको तथा उनके रचयिताओंके नामोंको पाश्चात्त्य विद्वानोंने—विशेष कर हाप्किन्स महोदयने खोज निकाला है, और उसी आधारपर महाभारत-संहिताके रचनाकालका विचार किया है, वह सब सारहीन है; क्योंकि जिन ग्रन्थों अथवा उसके रचयिताओंके नामोंका उल्लेख महाभारत-संहितामें है, उन ग्रन्थों और उनके रचयिताओंका समय जबतक प्रमाणित न हो जाय, तबतक उनके उल्लेखद्वारा महाभारत-संहिताका समय प्रमाणित करना असम्भव है।

दूसरा भाग बड़े महत्त्वका है; किंतु इस विषयमें भी पाश्चात्त्यभावना भारतीयभावनाके सर्वथा विरुद्ध है। पाश्चात्त्य विद्वानोंका मत है कि 'भारतीय ज्योतिर्विज्ञान महास्थूल गणना—वेदाङ्ग-ज्यौतिषकी गणनासे भी स्थूल थी, जिसके अनुसार भीष्मपितामहने तेरह वर्षके सौर मानमें तेरह, वर्ष पाँच महीने और बारह दिनकी व्यवस्था विराटपर्वमें दी थी और सिद्धान्तगणितका ज्ञान हमको यूनानी ज्यौतिषियोंसे हुआ तथा उन्हींसे नक्षत्र-मण्डलके बारह विभाग (राशियोंका विभाग) भी हमने जाना। उसके प्रथम हमारे यहाँ राशिगणना न थी। इतना ही नहीं, हमको सूर्यादि सात वारोंकी जानकारी भी न थी। हमारे यहाँ सप्ताह नहीं, षडहकी गणना होती थी। वारोंका ज्ञान हमको काल्डियावालोंसे हुआ है; अतएव जिन संस्कृत ग्रन्थोंमें, चाहे वे जिस विषयके ग्रन्थ हों, राशियोंके बारह भाग, सूर्यादि वारोंके नाम तथा ज्यौतिषकी सिद्धान्त-गणनाका उल्लेख हो, वे सभी ग्रन्थ ईसवी सन् पूर्व ४०० वर्षसे प्रथमके नहीं हैं। इतना ही नहीं, चैत्रादि मासनामका भी जिन ग्रन्थोंमें उल्लेख हो, वे वेदाङ्ग-ज्यौतिषके पूर्व (और उन्हींके मतसे) ब्राह्मण-ग्रन्थोंके समयके बीचके रचित हैं, उसके पूर्वके नहीं।' पाश्चात्त्य विद्वानोंका यह भी मत है कि 'महाभारतसंहिता, पुराण, पातञ्जल महाभाष्य और जिन ज्यौतिष-ग्रन्थोंमें यवन जातिकी विद्वत्ता, आक्रमणकारिता, वीरता आदिका उल्लेख है, वे सभी ग्रन्थ सिकन्दरके आक्रमण (ईसवी सन् पूर्व ३२३) के पीछेके हैं। अर्थात् यवनोल्लेखवाले कोई भी ग्रन्थ ईसवी सन् पूर्व ५०० वर्षके प्रथमके नहीं हैं।'

इस महत्त्वपूर्ण दूसरे विभागमें दो बातें मुख्यतः विचारणीय हैं—एक तो यह कि 'यवन' शब्द जो महाभारतादि संस्कृत-साहित्यमें आया है, वह किसके लिये आया है? क्या ग्रीक देशके अर्थमें आया है, जो ईसवी सन् पूर्वकी कुछ शताब्दियोंसे यूनानके नामसे प्रख्यात हो रहा है, अथवा महाराज ययातिके पुत्र तुर्वसुके पुत्र यवन राजाओंके अर्थमें आया है, जैसा कि महाभारत-संहिता, आदिपर्व ८५। ३४ में लिखा है—

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः।

'यदुसे यादव हुए और तुर्वसुसे यवन।' ययातिपौत्र यवनके वंशधर यवन नामसे प्रख्यात हुए और उनका राज्य यवनराज्यके नामसे भारतका पश्चिम-सीमान्त प्रदेश था। प्राचीन कालमें अयोध्याधिपति

सूर्यवंशीय राजा बाहुपर जब हैहयादि राजाओंने आक्रमण किया था, तब उस समय ये पञ्चगणाधिपति यवन अपने गणोंके सहित उस आक्रमणमें राजा हैहयके सहायक थे, जैसा कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमः ॥ २॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥ ३॥

(देखिये 'इन्द्रविजय', पृ० ४४)

इन्हीं यवनादि पञ्चगणसहित हैहयादि राजाओंका अयोध्याधिपति राजा बाहुके पुत्र सगरने अपने पिताके शत्रु होनेके कारण जब संहार किया था, तब वशिष्ठजी-के शरणागत यवनादि पञ्चगण धर्मभ्रष्ट, आचारभ्रष्ट, आर्यसंस्कृति-विहीन करके निर्वासित किये गये थे, जैसा कि ब्राह्मपुराणमें लिखा है—

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ १०॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः ।
सर्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः ॥ ११॥

('इन्द्रविजय', पृष्ठ ४४)

इन्हीं यवनादि क्षत्रियापसदोंके विषयमें मनुस्मृति, अध्याय १०, श्लोक ४३ से ४५ तकमें लिखा है कि पाण्ड्य, चोळ, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश—ये क्षत्रिय धीरे-धीरे संस्कारोंके लोप और ब्राह्मणोंसे बहिष्कृत होनेसे वृषलत्व-को प्राप्त हुए, अर्थात् आर्यधर्मसे बहिष्कृत—म्लेच्छ हो गये । इन्हीं मनुस्मृतिलिखित राज्योंका वर्णन तथा-कथित अशोकके प्रज्ञापन दो,पाँच और तेरहमें आया है ।

सारांश यह कि हमारे महाभारत-संहितादि समस्त संस्कृत-साहित्यमें ग्रीकका नाम यूनान बननेके सहस्रों वर्ष पूर्व चन्द्रवंशीय ययातिपौत्र यवनके वंशधर यवन जातिके अर्थमें और यवनदेश उन्हींके यवनराज्यके अर्थमें आया है, न कि यूनानके यूनानियोंके अर्थमें । अतएव पाश्चात्य विद्वानोंका यह मत कि 'साकेत, मथुरा आदिपर यूनानियोंका आक्रमण हुआ था; महाभारतादि ग्रन्थोंमें जिन यवनोंके पराक्रमका वर्णन है, वे यूनानी हैं यह सर्वथा भ्रम है । और इसके आधारपर महाभारत-संहिताका समय निर्धारित करना बादरायण-सम्बन्ध जोड़नेके समान असंगत और अमान्य है । भावाभावका प्रथम भाग भारतीय ज्योतिर्विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है और भारतीय ज्योतिर्विज्ञान काल-गणनाके आधारपर स्थित है । भारतीय वैज्ञानिक काल-गणना ऐसी निर्विकार और निर्विकल्प है कि वह सृष्टिके आदिसे अन्ततक एक समान रहती है ।

विराटपर्वमें राजर्षि भीष्मपितामहके तेरह वर्षकी प्रतिज्ञाके विषयमें व्यवस्थारूप वचनमें कहा गया है कि इस समय तेरह वर्ष पाँच महीने और बारह दिन द्यूत-क्रीड़ाके दिनसे बीत चुके हैं । इस वचनसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय युद्धकालमें भी हमारी वही सनातन कालगणना राष्ट्रमितिके रूपमें मान्य थी, जिसके अनुसार भगवान् श्रीरामचन्द्रने चौदह वर्षका वनवास पूर्ण किया था और उसीके अनुसार पाण्डवोंने तेरह वर्षकी प्रतिज्ञा पूरी की थी । वह गणना है सौर-चान्द्र, जिसका वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ करके चैत्रकृष्ण अमावास्याको पूरा होता है और उसके दिन कम-से-कम ३५४ और अधिक-से-अधिक ३८४ होते हैं । और उसी वर्षके अनुसार कौरवोंके ठीक चौदहवें वर्षके प्रथम दिनमें वेदाङ्ग-ज्योतिषकी गणनाके अनुसार १३ वर्ष, ५ महीने और १२ दिन होते हैं, जैसा कि नीचे लिखे उदाहरणसे प्रकट होगा । यदि द्यूत-क्रीड़ाकी मिति विक्रम संवत् १९९० ज्येष्ठ कृष्ण ८ बुधवारको मान लें तो उस दिन हैं राश्यादि सूर्य १ । ३ । ३० । ४१ और तारीख १७ मई सन् १९३३ ईसवी । और अर्जुनके प्रकट होनेकी मिति विक्रम संवत् २००३, ज्येष्ठ कृष्ण ८, शुक्रवारको मान लें तो उस दिन राश्यादि सूर्य हैं १ । ९ । ५२ । ९ और तारीख १४ मई सन् १९४६ ईसवी । ऐसी दशामें द्यूत-क्रीड़ा और अर्जुनके प्रकट होनेका अन्तर होगा, सौर-चान्द्र मानसे १३ वर्ष और एक दिन (चौदहवें वर्षका पहला दिन) वही सौर-मानसे होगा १३ वर्ष छः दिन (चौदहवें वर्षका छठाँ दिन), अँग्रेजी मानसे होगा १३ वर्ष और सात दिन (चौदहवें वर्षका सातवाँ दिन), वेदाङ्ग-ज्यौतिषके चान्द्रमानसे होगा १३ वर्ष, ५ महीने

और १२ दिन (यही है भीष्मजीकी व्यवस्था) । इस व्यवस्थाके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत-युद्धकालमें सिद्धान्त-ज्यौतिषके अनुसार ही पञ्चाङ्गगणना होती थी; क्योंकि ऊपरका उदाहरण सिद्धान्त-ज्यौतिष गणनाके पञ्चाङ्गद्वारा ही की गयी है और सिद्धान्त-ज्यौतिषकी गणना अहर्गणद्वारा मध्यम सूर्यचन्द्रादि ग्रहोंमें मन्दोच्च, शीघ्रोच्च संस्कार देकर की जाती है, और वह अहर्गण वार-ज्ञानके बिना नहीं बन सकता। अतएव हमारी सनातन काल-गणना सौर-चान्द्र है और उसके लिये सूर्यादि वारका ज्ञान, चैत्रादि मासका ज्ञान और नक्षत्रमण्डलके बारह विभाग-राशियोंका ज्ञान आवश्यक है । बिना इसका ज्ञान हुए सनातन-काल-गणना हो नहीं सकती । हमारे सूर्यादि वार, जिनका प्रमाण 'एको अश्वो वहति सप्तनामा' (ऋग्वेद-संहिता ११६४ ॥ २ ॥)—इस ऋग्वेदके मन्त्रसे लेकर वेदाङ्ग-ज्यौतिष (याजुष ज्यौतिष श्लोक ११) के मासपतिके विचारमें और आज-कलके पञ्चाङ्गोंतकमें अविच्छिन्नरूपसे देखा जाता है तथा इसी प्रकार चैत्रादि मासोंके नामोंका तथा अयन विषुव, षडशीति मुख और पर्व नामसे सूर्यसंक्रान्तियोंका समस्त महाभारत-संहितादिमें वर्णन है । अतएव हमारे ये सूर्यादि वार, चैत्रादि मास, अयनादि १२ सूर्य-संक्रान्तियाँ उसी प्रकार अनादि हैं, जिस प्रकार हमारे ऋग्वेदादि । सुतरां सूर्यादिवारों, चैत्रादि मासों अथवा राशियोंके भावाभावसे किसी संस्कृत-साहित्यके ग्रन्थका समय निरूपण करनेका साहस करना ज्योतिर्विज्ञानसे अनभिज्ञता और असङ्गत है। सारांश यह कि भावाभावके आधारपर महाभारत-संहिताका रचनाकाल निश्चित करनेका आधुनिक विद्वानोंका मार्ग भी सर्वथा भ्रमजनक है और हमारे द्वारा पूर्व-निर्णीत महाभारत-संहिताका समय ही प्रमाणयुक्त और सर्वमान्य है ।

समस्त लेखका निष्कर्ष

(१) 'जय', 'भारत' और 'महाभारत'—ये तीनों पर्यायवाची हैं, और प्रचलित लक्षश्लोकात्मक महाभारत-संहिताके ही नाम हैं ।

(२) प्रचलित महाभारत-संहिताके रचयिता एकमात्र महर्षि वेदव्यास हैं और इसकी रचना आज विक्रम-संवत् २०१५ के प्रारम्भकालके पूर्व ५०३६ और ५०३४ वर्षोंके बीच किसी समय हुई है ।

(३) महाभारत-संहिताकी चूडामणिस्वरूपा श्रीभगवद्गीताका प्रादुर्भाव आज विक्रम-संवत् २०१५ प्रारम्भके पूर्व ५०६० वर्ष ३ महीना और १७ दिनपर हुआ है ।

(४) महाभारत-युद्धकाल, महाराज युधिष्ठिरका राज्याभिषेक और राजा परीक्षित्का जन्मकाल आज विक्रमसंवत् २०१५ के प्रारम्भसे पूर्व ५०६० वर्षकी मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीसे लेकर फाल्गुन कृष्णा अमावास्याके प्रथम कलियुगारम्भकालमें विक्रम-संवत्से पूर्व ३०४५ तथा ईसवी सन्से पूर्व ३१०२ वर्षमें सिद्ध होता है ।

(५) सर विलियम जोन्सके कल्पनाओंके आधारपर पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानोंद्वारा प्रतिपादित महाभारत-युद्धकाल सर्वथा निराधार, प्रमाणरहित और अमान्य है ।

श्रीहरिका आश्रय-ग्रहण

अहो यस्य कृपालेशो वरीवर्त्यखिलोपरि ।
तं हरिं परमानन्दं संश्रये सर्वसिद्धये ॥

अहो ! जिनकी कृपाका लेशमात्र भी सर्वोपरि विराजमान होता है, उन परमानन्दस्वरूप श्रीहरिका मैं सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये आश्रय लेता हूँ ।

महाभारतके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण

भूमिका

महाभारत विश्वका सबसे बड़ा महाकाव्य है। महाकाव्यके सम्पूर्ण लक्षणोंसे पूर्ण अलंकृत होनेके साथ ही यह, नाना प्रकारकी वेदादि विद्याओंके ज्ञानका भंडार, चतुर्विध पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रदान करनेवाला, प्राचीन ऋषियोंकी वाङ्मय-साधनाका सारभूत-रूप यह अलौकिक ग्रन्थ सनातन-धर्मका देदीप्यमान मणि है। जीवलोक और देवलोकके बीच प्राणियोंके आवागमन, कर्मकी गति और उसके विलक्षण प्रभावोंको प्रतिबिम्बित करनेवाला यह अलौकिक दर्पण है। वस्तुतः महाभारतके वैशिष्ट्यकी यथावत् आलोचना करना मानवीय शक्तिके बाहर है। भारतवर्षके महान् राजवंशोंका तथा उनके सम्बन्धोंको लेकर घटी हुई घटनाओंका यह सच्चा इतिहास है। अतएव यह घोषणा की गयी है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥
(महा० स्वर्गा० पर्व०)

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।'

जब इस महाकाव्यकी रचना हो गयी, तब इसके प्रणेता भगवान् वेदव्यासकी अनुमति लेकर ब्रह्मा आदि देवताओं तथा समस्त ऋषियोंने मिलकर सारी वेदमयी ज्ञान-राशिको एक तुलापर तथा दूसरी तुलापर महाभारतको रखकर प्रत्यक्ष देख लिया कि गुरुतामें महाभारत कहीं अधिक श्रेष्ठ है।* श्रीमदानन्दतीर्थ ही भगवत्पाद (श्रीमध्वाचार्य) महाभारत-शब्दकी निरुक्ति करते हुए कहते हैं—

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥†

"महत्ता और भारवत्ता अर्थात् वर्ण्य विषयोंकी गौरव-पूर्णताके कारण यह ग्रन्थ 'महाभारत' कहलाता है। जो इसकी निरुक्तिको यथावत् जानता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।"

'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय'के इस श्लोकमें भगवत्पाद श्रीमद् आनन्दतीर्थने महाभारतके स्वरूपका संकेत प्रदान किया है। वस्तुतः महाभारत लौकिक नहीं, अलौकिक महाकाव्य है और इसके प्रणेता कोई लौकिक कवि नहीं, बल्कि भगवान्‌के अवतार त्रिकालदर्शी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी हैं। अतएव इसकी लौकिक समीक्षा न करके अलौकिकताको हृदयङ्गम करनेसे ही कृतकार्यता प्राप्त हो सकती है। काव्यप्रकाशमें आचार्य मम्मटने जो काव्य-का उद्देश्य—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

—यश, अर्थकी प्राप्ति, व्यवहार-ज्ञान, अमङ्गलका नाश और कान्ताके कोमल उपदेशोंके समान सहज ही परम शान्तिके पथपर प्रवृत्त करना—आदि निर्देश किया है. इस लघु मृद्घटसे मेरे विचारसे महाभारत-जैसे महा-सिन्धुको तौलनेकी चेष्टा करना हास्यास्पद है, यद्यपि अलंकार, ध्वनि, भाव और रसके अमूल्य रत्न इसमें भरे पड़े हैं, जिनके अवलोकनमात्रसे सहृदय जनोंके हृदय तरङ्गायमाण हो जाते हैं। वस्तुतत्त्वकी दृष्टिसे अवलोकन करनेपर इस महाकाव्यके रसका आस्वादन सहजसाध्य हो सकता है, तथा भगवान्‌की अपूर्व कृति और शक्तिमें श्रद्धा और विश्वासकी प्राप्ति होती है।

मङ्गलाचरण

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

इस मङ्गलाचरणमें ही प्रायः महाकवि ग्रन्थके स्वरूप-का साररूपमें संकेत प्रदान करते हैं। भगवान् वेदव्यास नारायणस्वरूप होनेपर भी व्यासरूपमें परम वैष्णव हैं, नारायणके उपासक हैं, अतएव अपने ग्रन्थके आदिमें सर्वप्रथम 'नारायण'को नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात्

---

* भारतं सर्ववेदाश्च तुलामारोपिताः पुरा।
देवैर्ब्रह्मादिभिः सर्वैर्ऋषिभिश्च समन्वितैः॥
व्यासस्यैवाज्ञया तत्र त्वत्यरिच्यत भारतम्॥
(महाभारत-तात्पर्यनिर्णय २। १०)

† (वही २। ११)

'नर'को नमस्कार करते हैं। ये ही 'नर-नारायण' मूल उपास्य देव हैं, और इनका उल्लेख महाभारतमें अनेक स्थानोंमें प्राप्त होता है। उद्योगपर्वके ४९वें अध्यायमें भीष्मपितामह कौरवराज दुर्योधनसे कहते हैं कि "एक समयकी बात है, शुक्राचार्य और बृहस्पति इन्द्रादि देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास गये और प्रणाम करके उनको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। उसी समय पुरातन देवता नर-नारायण ऋषि उधर आ निकले और अपनी कान्तिसे उन सबके तेज और चित्तको मानो अपहरण करते हुए निकल गये। तब बृहस्पतिने विस्मित होकर ब्रह्माजीसे पूछा—'ये कौन हैं, जो आपका अभिनन्दन किये बिना ही चले गये?' ब्रह्माजीने उत्तर दिया—

यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ।
ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्यातीतौ महाबलौ॥
नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ।
ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्त्वपराक्रमौ॥
(महा० उद्यो० ४९। ७८)

'अपने तेजसे देदीप्यमान ये दोनों ऋषि जो पृथिवी और आकाशको अपनी प्रभासे विभासित करते हुए आगे हमलोगोंका अतिक्रमण करके बढ़ गये हैं, नर-नारायण हैं। ये महाशक्तिशाली और पराक्रमशील हैं, और अपने तपोबलसे भूलोकसे ब्रह्मलोकमें आये हैं। इन्होंने देवासुर-संग्राममें इन्द्रकी सहायता की है, जिससे देवताओंने समस्त दैत्यों और दानवोंपर विजय प्राप्त की है।'

वे ही देवताओंके भी आराध्यदेव नर-नारायण अर्जुन और श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेते हैं। ब्रह्माजी आगे चलकर उसी प्रसङ्गमें कहते हैं कि 'ये दोनों नर-नारायण अपने सत्कर्म (तप) के प्रभावसे अक्षय और ध्रुव लोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं। लोक-हितके लिये जब-जब जहाँ-जहाँ युद्धका अवसर आता है, वहाँ-वहाँ अवतरित होते हैं। नर और नारायण एक ही तत्त्वके दो रूप हैं।'

वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ।
नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः॥
अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।
एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः॥
(महा० उद्यो० ४९। १९-२०)

'ये दोनों मिले हुए वीर महारथी श्रीकृष्ण अर्जुन पुरातन देवता नर-नारायण ही हैं, यह सभी जानते हैं। इन्द्रके साथ सारे देवता और असुर भी इस लोकमें इनको परास्त नहीं कर सकते। ये श्रीकृष्ण नारायण और अर्जुन नर माने जाते हैं।'* आगे चलकर पुनः प्रभासतीर्थमें जब श्रीकृष्ण अर्जुनसे मिलते हैं, उस अवसरका वर्णन करते हुए व्यासजी वैशम्पायनके मुखसे इस तथ्यका उद्घाटन करते हैं—

तावन्योन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणावृषी॥
(महा० आदि० २१७। ५)

'वे दोनों प्रिय सखा नर-नारायण (कृष्ण-अर्जुनरूपमें) प्रभास वनमें एक दूसरेको आलिङ्गन करके और कुशल पूछकर एक स्थानपर बैठे।'†

अतएव ग्रन्थकार मङ्गलाचरणमें पहले पूर्वदेव नर-नारायणको नमस्कार करते हैं और तत्पश्चात् नरोत्तम अर्थात् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको नमस्कार करते हैं, जो इस महाकाव्यके नायक हैं तथा नारायणके अवतार हैं। वस्तुतः ये नारायण ऋषिके अवतार नहीं हैं। ये तो स्वयं परायण भगवान् हैं। नारायण ऋषिका भी इनमें

---

* ऊपर पुरातन ऋषिके रूपमें नर-नारायणका उल्लेख हुआ है। अतएव यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि नारायणकी उपासना भगवान् व्यासके युगमें भी पुरातन हो चुकी थी। पञ्चरात्र तन्त्र, जो वैदिकयुगमें प्रचलित थे, नारायणकी उपासनाका विधान करते हैं। अतएव वैष्णवधर्म अति प्राचीन धर्म है, इसको आधुनिक कहकर वर्तमान ऐतिहासिक भारी भूल करते हैं।

† महाभारततात्पर्यप्रकाशमें इसकी तात्त्विक समीक्षा करते हुए श्रीमध्वाचार्य लिखते हैं—

क्षरोपाधितया जीवो नर इत्यभिधीयते।
अक्षरोपाधिको हीशो नारायणपदाभिधः॥
क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टो भगवान् पुरुषोत्तमः।
ज्ञेयो ध्येयः समर्च्योऽत्र नरोत्तमपदाभिधः॥ (पृ० ३)

"क्षर उपाधिसे विशिष्ट जीव 'नर' कहलाता है, अक्षर उपाधिसे विशिष्ट ईश्वर 'नारायण'-पदवाच्य है। तथा क्षर और अक्षरसे उत्कृष्ट भगवान् 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। वे ही ज्ञेय हैं, ध्येय हैं और सर्वथा अर्चनीय हैं। वे ही 'नरोत्तम'-पदवाच्य हैं।

समावेश है। इसीसे ये नारायणके अवतार भी माने जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इसका स्पष्टीकरण है।

'नरोत्तम' शब्दका अर्थ है—नरोंमें उत्तम; और महाभारतके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उस कालमें भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठतम पुरुष थे तथा भीष्म-पितामह, विदुर, पराशर, परशुराम, व्यास, नारद, असित, देवल आदि ऋषि-मुनि, पाण्डव, कुन्ती, कृष्णा आदिको प्रत्यय हो चुका था कि ये स्वयं भगवान् नारायण ही हैं। इसका कारण यह है कि व्यासजीके समान ये लोग भी नारायणके भक्त थे। अतएव व्यासजीने इसको स्पष्ट करनेके लिये ही 'नरोत्तम' शब्द-का व्यवहार करके भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार किया है। जो नरोत्तम है, वही परम नायक हो सकता है; इसलिये इस शब्दका प्रयोग करके महाकविने संकेत कर दिया है कि इस महाकाव्यके नायक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं तथा स्वयं भगवान् होनेके कारण ये ही सर्वथा पूज्य हैं, आराध्य हैं। और महाभारतमें किसी-न-किसी रूपमें इन श्रीकृष्णका ही महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। जगह-जगहपर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण ही सबके मूल, सर्वव्यापी, सर्वातीत, सच्चिदानन्दघन, स्वयंभगवान् परात्पर ब्रह्म हैं।

तत्पश्चात् ग्रन्थकार सरस्वती देवी अर्थात् महाकाव्यके शब्दार्थरूपमें व्यक्त वाग्देवीकी वन्दना करते हैं, और तब 'जय' उच्चारण करनेके लिये कहते हैं। 'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः—जहाँ धर्म है, वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ जय है।' इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारतका सार एक वाक्यमें व्यक्त करते हैं। अतएव 'जय' शब्दसे यहाँ महाकाव्यकी सम्पूर्ण कथासे अभिप्राय है। और साथ ही यह भी ध्वनित होता है कि हम उपर्युक्त देवताओंको नमस्कार करके उनका जय-उच्चारण करें।

नर-नारायणकी जय !
नरोत्तम श्रीकृष्णकी जय !
सरस्वती देवीकी जय !

३. द्वादशाक्षर मन्त्र

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'

पहले कहा जा चुका है कि महाभारत लौकिक महाकाव्य नहीं है; क्योंकि लौकिक महाकाव्यके नायक धीरोदात्त, धीरललित, धीरशान्त तथा धीरोद्धत पुरुष होते हैं। यदि इस दृष्टिसे महाभारतका विश्लेषण करें तो इस प्रकारके अनेकों नायकोंको लेकर यह महाग्रन्थ अनेक विविधरसप्रधान महाकाव्योंके आगारके रूपमें दीख पड़ेगा; परन्तु यह यहाँ अभिप्रेत नहीं है। अतएव हम तात्त्विक दृष्टिसे सम्पूर्ण ग्रन्थको देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इसके पात्र देवगण हैं और नायक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं—जो पुरुष नहीं, 'क्षरसे अतीत' और 'अक्षर कूटस्थसे उत्तम' तथा 'ब्रह्मकी प्रतिष्ठा' पुरुषोत्तम हैं। इस प्रकार यह महाकाव्य वस्तुतः 'देव-काव्य' है, यह सुस्पष्ट हो जाता है। इस महाकाव्यके नायक भगवान् श्रीकृष्ण इस महाब्रह्माण्डके भी नायक हैं। वे जिस प्रकार महाभारतके युद्धका नियन्त्रण करते हुए धर्मपक्षके संस्थापन और अधर्मपक्षके विनाशकी लीला करते हैं, उसी प्रकार विश्व-ब्रह्माण्डमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षमें धर्मकी जय और अधर्मकी पराजयका भी विधान करते हैं। उन महानायकने महाभारतका युद्ध क्यों कराया? नाना प्रकारके दुःखोंसे जर्जरित इस विश्व-व्यापारकी लीलामें उनको क्या रस मिलता है? इत्यादि प्रश्न रहस्यमय हैं, इनका उत्तर वे ही लीलामय जानते हैं। बेचारा अल्पज्ञ जीव इसको क्या समझे! परन्तु एक बात बिल्कुल पक्की है, पाण्डवोंने नारायण-की आराधना की और महाभारतमें वे विजयी हुए और परिणाममें सदाके लिये उन्होंने भगवान्‌को प्राप्त किया। अतएव जीव नारायणकी आराधना करके कृतार्थ हो सकता है। इसी उद्देश्यसे जीवोंके कल्याणकी कामनासे भगवान् कृष्णद्वैपायन मङ्गलाचरणके बाद द्वादशाक्षर मन्त्रका विधान करते हैं और इस मन्त्रके देवता भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण ही इस महाकाव्यके परम नायक हैं, इस बातका प्रकारान्तरसे समर्थन करते हैं।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'

महाभारत-तात्पर्य-प्रकाशकी टीकामें इस मन्त्रपर टिप्पणी करते हुए लिखा गया है—

प्रमेयं भारतस्येति स्वोपास्यं परमं पदम्।
श्रीवासुदेवमानन्दं भगवन्तं सनातनम्॥ २॥

कृष्णं नमस्करोत्यद्धा द्वादशाक्षरविद्यया ।
× × × ×
परा विद्येयमत्रोक्ता द्वादशाक्षररूपिणी ।
तदुपासनया भक्तैः सुलभं हरिदर्शनम् ॥ '१ ॥

'महाभारतके प्रमेय अपने उपास्यदेव, परमपद, आनन्दस्वरूप, सनातन भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णको अब द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा नमस्कार करते हैं । यह द्वादशाक्षररूपी परा विद्या यहाँ कथित हुई है । इसकी उपासनासे भक्तोंको हरिदर्शन सुलभ हो जाता है । तथा,

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा ॥

"ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छहोंकी पूर्णताको 'भग' कहते हैं । ये बिना प्रतिबन्धके जिसमें निरन्तर विद्यमान रहते हैं, उन भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णको नमस्कार ।" इस मन्त्रका यही शब्दार्थ है । अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि सनातन भगवान् वासुदेवका गुण-कीर्तन करनेके उद्देश्यसे ही व्यासजीने इस महाकाव्यकी रचना की है, जिसका पाठ अथवा श्रवण करके मनुष्यके हृदयमें वासुदेव श्रीकृष्णकी भगवत्ताका ज्ञान उदय हो और उनकी उपासना करके वह मानवजीवनको कृतार्थ करता हुआ श्रीभगवच्चरणोंके सांनिध्यको प्राप्त करे ।

उन भगवान् वासुदेवका गुणकीर्तन इस महाकाव्यमें किस रूपमें हुआ है—इसका उत्तर भी द्वादशाक्षर मन्त्रमें स्थित 'भगवते'—इस विशेषण-पदमें निहित है । अर्थात् वासुदेव श्रीकृष्णकी महिमाका कीर्तन कहीं तो ऐश्वर्यरूपमें, कहीं धर्मरूपमें, कहीं यशरूपमें, कहीं श्री, कहीं ज्ञान, और कहीं वैराग्यरूपमें हुआ है । इसके अतिरिक्त वे भक्तवत्सल लीलामय सदा-सर्वदा पाण्डवोंके हित-साधनमें प्रवृत्त देखे जाते हैं । महाभारतकी कथामें इसका निदर्शन कहाँ किस रूपमें हुआ है, इसकी किंचित् आलोचना करना इस निबन्धका विषय है ।

आदिपर्व

आदिपर्वके प्रथमाध्यायमें सौति उग्रश्रवाजी कहते हैं—

भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः ।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च ॥
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम् ।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः ॥
असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते ।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः ॥

(आदि० १ । २५६-५८)

"इस ग्रन्थके मुख्य विषय हैं—स्वयं सनातन परब्रह्मस्वरूप वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण । उन्हींका इसमें संकीर्तन किया गया है । वे ही सत्य, ऋत, पवित्र एवं पुण्य हैं । वे ही शाश्वत परब्रह्म हैं और वे ही अविनाशी सनातन ज्योति हैं । मनीषी पुरुष उन्हींकी दिव्य लीलाओंका संकीर्तन किया करते हैं । उन्हींसे असत्-सत् तथा सदसत्—उभयरूप सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है । उन्हींसे संतति (प्रजा), प्रवृत्ति (कर्तव्य-कर्म), जन्म-मृत्यु तथा पुनर्जन्म होते हैं ।"

फिर सबके प्रादुर्भावके वर्णन-प्रसङ्गमें कहा गया है—

अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
वसुदेवात् तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः ॥
अनादिनिधनो देवः स कर्ता जगतः प्रभुः ।
अव्यक्तमक्षरं ब्रह्म प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ॥

(आदिपर्व ६३ । ९९-१००)

'विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् विष्णु जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके यहाँ देवकीजीके द्वारा प्रकट हुए । वे भगवान् आदि-अन्तसे रहित, परमदेव, सम्पूर्ण जगत्के कर्ता तथा प्रभु हैं । उन्हींको अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्म और त्रिगुणमय प्रधान कहते हैं ।'

आदिपर्वमें पहले-पहल भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन राजा द्रुपदकी राजधानीमें द्रौपदीके स्वयंवरके अवसरपर होते हैं । अर्जुनके लक्ष्यवेध करनेपर द्रौपदी उनके गलेमें जयमाला डालती हैं । कौरवपक्षके लोग युद्धपर उतारू होते हैं । अर्जुन कर्णको परास्त करते हैं, और भीम शल्यको । तत्पश्चात् पाण्डवोंको ब्राह्मण-वेषमें देखकर सारे राजाओंका समूह मिलकर युद्ध करनेकी मन्त्रणा करता है । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पाण्डवोंकी सहायताके उद्देश्यसे राजाओंको समझाना-बुझाना शुरू कर देते हैं और कहते हैं कि इन्होंने

धर्मतः द्रौपदीको प्राप्त किया है, इसलिये आप लोगोंको अकारण उत्तेजित नहीं होना चाहिये। अन्धक और वृष्णिवंशके वीरोंके नेतारूपमें वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उपस्थित थे। भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार धर्मका पक्ष लेते हुए देखकर उन राजाओंकी दाल न गली और युद्धकी बात छोड़कर उन्होंने अपने घरकी राह ली। वस्तुतः स्वयंवरकी प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्यवेध करके अर्जुनने धर्मानुसार ही द्रौपदीको प्राप्त किया था।

इसके बाद महाराज धृतराष्ट्रके बुलानेपर जब पाण्डवलोग अपनी माता कुन्ती तथा देवी द्रौपदीके साथ हस्तिनापुर जाते हैं, तब भगवान् वासुदेव भी अपने भाई बलरामजीको लेकर उनके साथ हो लेते हैं, और वहाँ जाकर भीष्म, द्रोण, विदुर आदिके साथ महाराज धृतराष्ट्रसे परामर्श करते हैं। अन्तमें यह निश्चय होता है कि धर्मतः आधा राज्य पाण्डवोंका है। पाण्डवोंको खाण्डवप्रस्थका राज्य मिलता है। यहाँ भी भगवान्‌को धर्मरूपमें अवस्थित देखकर ही भीष्म-द्रोणादिके पक्षको हम प्रबल होता हुआ देखते हैं। जब महाराज धृतराष्ट्र सहमत होते हैं, तब 'शुभस्य शीघ्रम्'—इस नीतिके अनुसार भगवान् वासुदेव कह उठते हैं—

युक्तमेतन्महाराज कौरवाणां यशस्करम्।
शीघ्रमद्यैव राजेन्द्र यथोक्तं कर्तुमर्हसि॥

'महाराज! आपका यह विचार सर्वथा ठीक है, इससे कुरुवंशका यश बढ़ेगा। आप शीघ्रातिशीघ्र आज ही इस कार्यको सम्पन्न करा दें।' वस्तुतः शुभ कार्यमें देर करनेसे विघ्नोंके उपस्थित होनेकी आशङ्का होती है। अतएव धर्मकार्यमें शीघ्रता करना ही बुद्धिमानी है। महाराज युधिष्ठिरका राज्याभिषेक होता है। तत्पश्चात् भगवान् अपना ऐश्वर्य दिखलाते हैं। खाण्डवप्रस्थमें जानेपर वे इन्द्रको स्मरण करते हैं, इन्द्र उनका अभिप्राय समझकर विश्वकर्माको बुलाते हैं, और भगवान् वासुदेवके पास उसे भेजते हैं। वह खाण्डव-प्रस्थमें आकर भगवान्‌को प्रणाम करके कहता है—भगवन्! क्या आज्ञा है? भगवान् उसे आज्ञा देते हैं—

कुरुष्व कुरुराजाय महेन्द्रपुरसंनिभम्।
इन्द्रेण कृतनामानमिन्द्रप्रस्थं महापुरम्॥

'विश्वकर्मन्! तुम कुरुराज युधिष्ठिरके लिये महेन्द्रपुरीके समान एक महान् नगरीका निर्माण करो। इन्द्रके निश्चयानुसार उसका इन्द्रप्रस्थ नाम होगा।' और भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर विश्वकर्माने नाना प्रकारकी प्रतोली, राजपथ आदिसे खचित, अनेकों वापी-तडागसे सुसज्जित, भाँति-भाँतिके पुष्प-फल आदिसे लदे वृक्षों, उद्यानादिसे सुशोभित तथा चतुर्दिक् प्रकृष्ट प्राकारसे विभूषित एक महान् नगरीका निर्माण किया, जो

विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः।
तत् त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत॥

(महा० आदि० २०६। ३६)

'इन्द्रप्रस्थ नामक नगरी अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम उज्ज्वल भवनोंसे सुशोभित होकर स्वर्गके समान चमक उठी।'

कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिरने वेदज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा मङ्गल अनुष्ठान कराके भगवान् कृष्णद्वैपायन तथा धौम्य मुनिको आगे करके अपने भाइयों तथा श्रीकृष्ण-बलरामके साथ नगरमें प्रवेश किया। शङ्ख और नगारे बज उठे, सहस्रों ब्राह्मण जयघोष करने लगे। यह सब क्या था? भगवान् वासुदेवके ऐश्वर्यकी एक झाँकी थी।

जब सब कार्य सम्पन्न हो गया, तब भगवान् श्रीकृष्ण महारानी कुन्तीके पास गये और बोले—'बुआजी! प्रणाम। अब हम द्वारका जाना चाहते हैं, आज्ञा दीजिये।' कुन्तीदेवीने उत्तर दिया—

त्वया नाथेन गोविन्द दुःखं तीर्णं महत्तरम्।
त्वं हि नाथस्त्वनाथानां दरिद्राणां विशेषतः॥
सर्वदुःखानि शाम्यन्ति तव संदर्शनान्मम।
स्मरस्वैनान् महाप्राज्ञ तेन जीवन्ति पाण्डवाः॥

(महा० आदि० २०६। ५१ के बादका दा० पा०)

'गोविन्द! तुम्हारी सहायतासे ही इस महान् दुःखसागरको मैं पार हो सकी हूँ। प्रभो! तुम अनाथोंके, विशेषतः दीन-दुखियोंके नाथ हो; तुम्हारे दर्शनमात्रसे मेरे सारे दुःख दूर हो जाते हैं। हे महाप्राज्ञ! इन पाण्डवोंको भूलना मत; तुम्हारे शुभचिन्तनसे इनको जीवन प्राप्त होगा।' भगवान्‌की श्री (शोभा) इसीमें है कि वह दीन-दुखियोंका त्राण करते हैं, विपत्तिके साथी

बनते हैं। कुन्तीको उन्होंने उत्तर दिया—'बुआजी! ऐसा ही होगा' और बलरामजी तथा अपने सेवकोंके साथ द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान किया।

× × × ×

दूसरी बार प्रभास तीर्थमें हम भगवान्‌को देखते हैं। बारह वर्षके वनवास-कालमें विभिन्न तीर्थोंका पर्यटन करते हुए अर्जुन जब प्रभास तीर्थमें पहुँचते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्णको गुप्तचरोंके द्वारा इसका समाचार मिलता है और वे अपने चिरसखा अर्जुनसे मिलनेके लिये चल पड़ते हैं। ग्रन्थकारने इस मिलनका बड़ा सजीव चित्र खींचा है—

ततोऽभ्यगच्छत् कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः।
ददृशाते तदान्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ॥
तावन्योन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणावृषी॥
(महा० आदि० २१७। ४-५)

'तब माधव अपने सखा कुन्तीपुत्र अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ गये। उस समय प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनने एक दूसरेको देखा। वहाँ वनमें परस्पर आलिङ्गन करके और कुशल पूछकर वे दोनों प्रिय सखा नर-नारायण ऋषि एक स्थानपर बैठ गये।'

यहाँ दोनोंको एक साथ देखकर ग्रन्थकार याद दिला रहे हैं कि इनको कोई दूसरा न समझो, ये निश्चयपूर्वक प्रिय सखा नर-नारायण ही हैं। ये दोनों दो शरीर, एक प्राण हैं। दोनों सखा बहुत दिनोंपर मिले हैं, परस्पर प्रेमपूर्वक कुशलादि-वार्त्ता हो जानेके बाद वहाँ रैवतक पर्वतपर रातको विश्राम करते हैं। दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अभिनन्दित हो उनके साथ स्वर्णमण्डित रथपर सवार होकर कुन्तीपुत्र अर्जुन द्वारकापुरीको जाते हैं।

वासुदेव श्रीकृष्णके सखा आ रहे हैं, यह समाचार सुनकर द्वारकापुरीमें आनन्द छा गया। उस आनन्दका व्यासजीने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है—

अलंकृता द्वारका तु बभूव जनमेजय।
कुन्तीपुत्रस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि॥
दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः।
नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः॥
अवलोकेषु नारीणां सहस्राणि शतानि च।
भोजवृष्ण्यन्धकानां च समवायो महानभूत्॥
स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः।
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः॥
कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाभिचोदितः।
समानवयसः सर्वानाश्लिष्य च पुनः पुनः॥
कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते।
उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः॥
(महा० आदि० २१७। १६—२१)

'जनमेजय! कुन्तीपुत्रके स्वागतार्थ सारी द्वारका पुरी सजायी गयी थी, उनके अभिनन्दनके लिये गृहोद्यान भी सजाये गये थे। अर्जुनका दर्शन करनेके लिये द्वारकावासी लाखोंकी संख्यामें तत्काल ही राजमार्गपर आ इकट्ठे हो गये थे। जहाँसे कुन्तीनन्दनका दर्शन हो सकता था, ऐसे स्थानोंपर सैकड़ों-हजारों नारियाँ आँख लगाये खड़ी थीं, तथा भोज, वृष्णि और अन्धक लोगोंकी बड़ी भीड़ लगी थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशके लोगोंद्वारा इस प्रकार सत्कृत होकर अर्जुनने वन्दनीय पुरुषोंको प्रणाम किया, और सब लोगोंके द्वारा वे अभिनन्दित हुए। यदुकुलके कुमारोंद्वारा भलीभाँति सत्कार प्राप्तकर अर्जुनने सभी समवयस्क लोगोंको बारंबार आलिङ्गन किया। इसके बाद रत्नों तथा भोज्यपदार्थोंसे भरपूर श्रीकृष्णके रमणीय भवनमें श्रीकृष्णके साथ उन्होंने कई रातें बितायीं।'

× ×

इसके अनन्तर भगवान् वासुदेवके दर्शन खाण्डव-वन-दाहके प्रसङ्गमें होते हैं। नृपश्रेष्ठ राजर्षि श्वेतकिने द्वादश वर्षका यज्ञ किया, महातेजस्वी दुर्वासा ऋषि प्रधान ऋत्विज् थे। उस यज्ञमें निरन्तर घीकी अविच्छिन्न धाराओंसे अग्निदेव परितृप्त हो गये, उन्हें दूसरा हविष्य ग्रहण करनेकी रुचि न रही। इस अरुचिके कारण उनको उदरविकार हो गया और निरन्तर तेज क्षीण होनेके कारण उन्हें घबराहट होने लगी। तब वे ब्रह्माजीके पास गये और उनसे उन्होंने अपने रोगकी दवा पूछी। ब्रह्माजी बोले—

पुरा देवनियोगेन यत् त्वया भस्मसात्कृतम्।
आलयं देवशत्रूणां सुघोरं खाण्डवं वनम्॥

तत्र सर्वाणि सत्त्वानि निवसन्ति विभावसो।
तेषां त्वं मेदसा तृप्तः प्रकृतिस्थो भविष्यसि॥
(आदि० २२२ । ७५-७६)

'पहले देवताओंके आदेशसे तुमने दानवोंके निवासस्थान घोर खाण्डववनको जलाया है। वहाँ इस समय सब प्रकारके जीव-जन्तु रहते हैं। अग्ने! उन्हींके मेदसे तृप्त होकर तुम स्वस्थ हो सकोगे।'

तत्पश्चात् अग्निदेव खाण्डववनको जलाने चले, परंतु हाथियोंने तथा नाग आदि प्राणियोंने जलके द्वारा उनको शमन कर दिया। तब वे फिर ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें अपनी गाथा कह सुनायी। ब्रह्माजीने कहा—तुम कुछ दिन प्रतीक्षा करो—

भविष्यतः सहायौ ते नरनारायणौ तदा।
ताभ्यां त्वं सहितो दावं धक्ष्यसे हव्यवाहन॥
(आदि० २२३ । ४)

'तब हे हव्यवाहन! नर और नारायण तुम्हारे सहायक होंगे। उन दोनोंके साथ रहकर तुम उस वनको जला सकोगे।' कुछ समयके बाद—

सम्भूतौ तौ विदित्वा तु नरनारायणावृषी।
× × ×
अनुस्मृत्य जगामाथ पुनरेव पितामहम्॥
(आदि० २२३ । ५-६)

'नर-नारायणके अवतीर्ण होनेकी बात जानकर अग्निदेव ब्रह्माजीकी बातको स्मरण करके पुनः ब्रह्माजीके पास गये।' ब्रह्माजीने उनसे कहा कि अब वह उपाय सुनो, जिससे तुम खाण्डववनको जला सकोगे—

नरनारायणौ यौ तौ पूर्वदेवौ विभावसो॥
सम्प्राप्तौ मानुषे लोके कार्यार्थं हि दिवौकसाम्॥
अर्जुनं वासुदेवं च यौ तौ लोकोऽभिमन्यते।
तावेतौ सहितावेहि खाण्डवस्य समीपतः॥
(आदि० २२३ । ८-९)

'अग्ने! वे जो नर-नारायण नामके दो पुरातन देवता हैं, देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये मनुष्य-लोकमें अवतरित हुए हैं। उनको लोग अर्जुन और वासुदेवके नामसे जानते हैं; वे दोनों खाण्डववनके पास एक साथ बैठे हुए हैं।' उन दोनोंसे तुम खाण्डववन जलानेमें सहायता प्राप्त करो, तब तुम इन्द्रादि देवताओंसे रक्षित होनेपर भी उस वनको जला डालोगे।

इस प्रकार ब्रह्माजीके आदेशानुसार अग्निदेवने खाण्डववनको जलानेमें अर्जुन और श्रीकृष्णकी सहायता प्राप्त की। उन दोनोंने भयंकर युद्धके द्वारा इन्द्रादि देवताओंको परास्त करके खाण्डववनको जलाकर परितृप्त होनेमें अग्निकी सहायता की।

इस कथाके अवतरणसे भगवान् वासुदेवके दिव्य ऐश्वर्यकी ओर अनायास ही हमारा ध्यान चला जाता है, जो उनकी भगवत्ताका सूचक है। खाण्डववन-दाहके अवसरपर अन्तमें व्यासजीने आकाशवाणीके द्वारा भी इस तथ्यको पूर्णरूपेण घोषित करते हुए कहा है—

वासुदेवार्जुनावेतौ निबोध वचनान्मम।
नरनारायणावेतौ पूर्वदेवौ दिविश्रुतौ॥
भवानप्यभिजानाति यद्वीर्यौ यत्पराक्रमौ।
नैतौ शक्यौ दुराधर्षौ विजेतुमजितौ युधि॥
अपि सर्वेषु लोकेषु पुराणावृषिसत्तमौ।
पूजनीयतमावेतावपि सर्वैः सुरासुरैः॥
यक्षराक्षसगन्धर्वनरकिन्नरपन्नगैः।
तस्मादितः सुरैः सार्द्धं गन्तुमर्हसि वासव॥
(आदि० २२७ । १८–२१)

आकाशवाणी हुई—'हे इन्द्र! मैं कहती हूँ, तुम अर्जुन और वासुदेवको द्युलोकमें प्रसिद्ध पुरातन देवता नर-नारायण समझो। तुम भी इनके वीर्य और पराक्रमको जानते हो। ये अजेय हैं, युद्धमें इनको हराना सम्भव नहीं है। यही नहीं, सारे लोकोंमें ये पुरातन ऋषि सभी देवताओं और असुरों तथा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागोंके द्वारा परम पूजनीय हैं। इसलिये इनसे युद्ध करना छोड़कर तुम देवताओंके साथ यहाँसे प्रस्थान करो।'

यहाँ ग्रन्थकारने आकाशवाणीके द्वारा नर-नारायणकी सर्वशक्तिमत्ताकी घोषणा करके उनके अनुपम ऐश्वर्यको प्रदर्शित किया है। साथ ही इससे यह भी ध्वनित होता है कि उस कालमें नर-नारायण परमोपास्यदेवके रूपमें पूजित होते थे और ये ही महर्षि व्यासके आराध्य-देव थे तथा लोगोंमें इनकी मान्यता सनातन तथा देवाधिदेवके रूपमें प्रचलित थी।

सभापर्व

राजसूय-यज्ञ-प्रसङ्ग

जरासंध-वध

देवर्षि नारदजीने महाराज युधिष्ठिरको राजसूय-यज्ञ करनेकी प्रेरणा प्रदान की। द्वारकासे श्रीकृष्ण आमन्त्रित किये गये। मन्त्रणा होने लगी कि राजसूय-यज्ञ कैसे किया जाय। उस समय मगधका राजा जरासंध बड़ा पराक्रमशाली था, उसको जीते बिना राजसूय-यज्ञ करना सम्भव न था। धर्मराज युधिष्ठिर तो यह सुनते ही मुकरने लगे; परंतु भीमसेनने ताल ठोंकी, बोले—

कृष्णे नयो मयि बलं जयः पार्थे धनंजये।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः॥
त्वद्बुद्धिबलमाश्रित्य सर्वं प्राप्स्यति धर्मराट्।
जयोऽस्माकं हि गोविन्द येषां नाथो भवान् सदा॥

(महा० सभा० १५। १३)

'श्रीकृष्णमें नीति है, मुझमें बल है और अर्जुनमें विजयकी शक्ति है। हम तीनों मिलकर मगधराज जरासंधको वशमें करनेका कार्य उसी प्रकार सिद्ध कर लेंगे जैसे आहवनीयादि तीन अग्नियोंके द्वारा यज्ञकार्य सम्पादन किया जाता है। गोविन्द! तुम्हारी बुद्धिके बलका आश्रय लेकर धर्मराज सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। तुम जिनकी सदा रक्षा करते हो, उन पाण्डवोंकी विजय निश्चित है।'

वासुदेव श्रीकृष्णने कहा—'धर्मराज! जरासंधके मुख्य सहायक हंस और डिम्भक यमुनाजीमें डूब मरे। कंस भी अपने सहायकोंसहित कालके गालमें चला गया। अब जरासंधके नाशका समय आ गया है। राजन्! जरासंधने छियासी प्रतिशत राजाओंको कैद कर लिया है, केवल चौदह प्रतिशत बाकी रह गये हैं। उनको भी बंदी बना लेनेपर वह सब राजाओंकी रुद्रदेवताको बलि देनेवाला है। जो उसके इस कार्यको रोक देगा, वह उज्ज्वल यश प्राप्त करेगा। जो जरासंधको जीत लेगा, वह निश्चय ही सम्राट् होगा। परंतु युद्धमें सब देवता और असुर भी उसे नहीं जीत सकते। अतः मेरी समझमें आता है कि उसे मल्लयुद्धके द्वारा जीतना चाहिये।'

फिर भीमसेनके शब्दोंमें ही भगवान् कहने लगे—

मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः॥

(सभा० २०। ३)

'मुझमें नीति है, भीमसेनमें बल है और अर्जुन हम दोनोंकी रक्षा करनेवाले हैं। अतः जैसे तीन अग्नियाँ यज्ञकी सिद्धि करती हैं, वैसे ही हम तीनों मिलकर जरासंधको पराजित करेंगे।'

पश्चात् ये तीनों महापुरुष जरासंधके यहाँ गये और बात-ही-बातमें श्रीकृष्णने जरासंधको भीमसेनसे मल्लयुद्ध करनेके लिये तैयार कर लिया। दोनोंमें भयानक मल्लयुद्ध होने लगा, भीमसेनकी गर्जना और जरासंधके चीत्कारसे सारी नगरी प्रकम्पित हो उठी। अन्तमें जरासंध मारा गया और श्रीकृष्णने उसके ध्वजा-पताका-मण्डित दिव्यरथको जोत लिया और उसपर भीमसेन और अर्जुनको बिठाकर उस पहाड़ी खोहके पास गये, जहाँ बान्धवस्वरूप सहस्रों राजा कैद थे। भगवान् वासुदेवने उनको मुक्त कर दिया। कैदसे मुक्त उन राजाओंने भगवान् मधुसूदनकी पूजा की और स्तुति करते हुए वे बोले—

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने।
भीमार्जुनबलोपेते धर्मस्य प्रतिपालनम्॥

(सभा० २४। ३२)

'हे महाबाहो! आप देवकीनन्दनके लिये, जो भीम और अर्जुनके बलसे युक्त हैं, इस प्रकार धर्मकी रक्षा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।'

पश्चात् जरासंधके पुत्र सहदेवको मगधके राज-सिंहासनपर अभिषिक्त करके श्रीकृष्णने उसको अपना मित्र बना लिया। भीमसेन और अर्जुनने भी उसका बड़ा सत्कार किया। उसके बाद राजाओंको साथ लेकर वे लोग वहाँसे प्रस्थान करके इन्द्रप्रस्थमें महाराज युधिष्ठिरके यहाँ पहुँचे।

वैशम्पायन कहते हैं—

एवं पुरुषशार्दूलो महाबुद्धिर्जनार्दनः।
पाण्डवैर्घातयामास जरासंधमरिं तदा॥

(सभा० २४। ५३)

'जनमेजय ! इस प्रकार महाबुद्धिमान् पुरुषसिंह जनार्दनने पाण्डवोंके द्वारा अपने शत्रु जरासंधका वध कराया ।' तथा उसके बाद—

ततो गते भगवति कृष्णे देवकिनन्दने ।
जयं लब्ध्वा सुविपुलं राज्ञां दत्त्वाभयं तदा ॥
(सभा० २४ । ५८)

संवर्द्धितं यशो भूयः कर्मणा तेन भारत ।
द्रौपद्याः पाण्डवा राजन् परां प्रीतिमवर्धयन् ॥
(सभा० २४ । ५९)

'देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका चले गये । जरासंधकी कैदसे मुक्त राजाओंको पाण्डवोंने अभयदान दे दिया । मगधराजपर विजयका महान् यश चारों ओर फैल गया । इस प्रकार राजन् ! पाण्डवलोग द्रौपदीकी प्रीतिको बढ़ाने लगे ।'

इस कथासे भगवान् वासुदेवके त्रिकालानपेक्ष अप्रतिहत ज्ञानका अनुमान सहज ही हो जाता है । अन्यथा जरासंध-जैसे महापराक्रमी राजाको, जिसकी सैन्यशक्ति उस समय अजेय थी, इस प्रकार भीमसेनके द्वारा मल्ल-युद्धमें ही मरवानेकी कल्पना कैसे हो सकती थी । दूसरी बात थी उन सहस्रों राजाओंकी मुक्ति की, जो जरासंधके कारागारमें मृत्युकी प्रतीक्षामें भगवान्का चिन्तन कर रहे थे । भला, भगवान्के रहते उन निरप-राधी राजाओंकी हत्या कैसे हो सकती थी । भगवान् दीनवत्सल जो हैं, वे दैन्यको कैसे सहन करते । तीसरी बात थी पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञकी—जो जरासंधके जीते-जी सम्भव न थी । इस प्रकार एक ही जरासंध-वधके द्वारा भगवान्ने अनेक लोककल्याणके कार्य कर डाले ।

शिशुपाल-वध

जरासंधकी मृत्युके पश्चात् पाण्डवोंके सामने जमकर युद्ध करनेवाला कोई दूसरा नहीं रह गया था । अतएव राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ करनेके पूर्व भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने पृथक्-पृथक् अपने सैन्यबलसे पृथ्वीके समस्त राजाओंको परास्त करके महाराज युधिष्ठिरकी सार्वभौम सत्ता स्थापित कर दी । अब राजसूय-यज्ञके लिये वेदज्ञ ब्राह्मणों, सगे-सम्बन्धियों तथा विभिन्न देशके राजाओंको निमन्त्रण भेजा गया । निमन्त्रण पाते ही राजालोग अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिरको अर्पित करनेके लिये बहुमूल्य सामग्री लेकर इन्द्रप्रस्थको चल पड़े । भगवान् वासुदेव भी नाना प्रकारके धन-रत्नोंकी राशि भेंटके लिये लेकर अपनी विशाल सेनाके साथ आ उपस्थित हुए ।

भगवान् कृष्णद्वैपायन बार-बार स्मरण दिलाते हैं कि श्रीकृष्णको दूसरा न समझो । ये वे ही अद्वितीय परमात्मा, सर्वशक्तिमान् नारायण हैं । यहाँ भी आते-आते ही याद दिला दिया । तदनन्तर भगवान्के स्वागत-सत्कार, पारस्परिक कुशल-प्रश्नके बाद महाराज युधिष्ठिर बोले—

त्वत्कृते पृथिवी सर्वा मद्वशे कृष्ण वर्तते ।
धनं च बहु वार्ष्णेय त्वत्प्रसादादुपार्जितम् ॥
सोऽहमिच्छामि तत् सर्वं विधिवद् देवकीसुत ।
उपयोक्तुं द्विजाग्र्येभ्यो हव्यवाहे च माधव ॥
तदहं यष्टुमिच्छामि दाशार्ह सहितस्त्वया ।
अनुजैश्च महाबाहो तन्मानुज्ञातुमर्हसि ॥
(सभा० ३३ । ८-१०)

'कृष्ण ! तुम्हारी कृपासे तुम्हारी सेवाके लिये सारी पृथ्वी मेरे अधीन हो गयी है । वार्ष्णेय ! धन भी मैंने बहुत उपार्जित किया है । देवकीनन्दन ! हे माधव ! वह सारा धन मैं विधिवत् अग्निहोत्र करने तथा ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेमें लगा देना चाहता हूँ । हे दाशार्ह ! हे महाबाहो ! मैं तुम्हारे तथा अपने भाइयोंके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा करता हूँ । इसके लिये मुझे आज्ञा दो ।'

भगवान् वासुदेवकी अनुमति लेकर राजसूय-यज्ञ-की तैयारी होने लगी । यज्ञमण्डप आदिके निर्मित हो जानेके बाद ब्राह्मणोंने ठीक समयपर महाराज युधिष्ठिर-को राजसूय-यज्ञकी दीक्षा दी । और—

दीक्षितः स तु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
जगाम यज्ञायतनं वृतो विप्रैः सहस्रशः ॥
(सभा० ३३ । ४४)

'यज्ञकी दीक्षा लेकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर सहस्रों ब्राह्मणोंसे आवृत हो यज्ञमण्डपमें पधारे ।' तत्पश्चात्, वैशम्पायनजी कहते हैं—

पितामहं गुरुं चैव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः।
अभिवाद्य ततो राजन्निदं वचनमब्रवीत्॥
भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिं दुर्योधनविविंशती।
अस्मिन् यज्ञे भवन्तो मामनुगृह्णन्तु सर्वशः॥
इदं वः सुमहच्चैव यदिहास्ति धनं मम।
प्रणयन्तु भवन्तो मां यथेष्टमभिमन्त्रिताः॥
(सभा० ३५ । १–३)

'हे जनमेजय ! पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोणाचार्यकी अगवानी करके युधिष्ठिरने उनको प्रणाम किया और भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन तथा विविंशतिसे बोले—'आपलोग इस यज्ञमें सब प्रकारसे मुझे अनुगृहीत करें। यहाँ मेरा जो यह विपुल धन है, उसे आपलोग अभिमन्त्रित होकर इस यज्ञमें विधिपूर्वक लगानेकी कृपा करें।' पश्चात् भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यकी देख-रेखमें विभिन्न विभागोंके कार्य विभिन्न लोगोंके सुपुर्द कर दिये गये। यज्ञमें आये ब्राह्मणोंके स्वागत-सत्कारका भार अश्वत्थामाको सौंपा गया, राजाओंसे भेंट स्वीकार करने और रखनेकी व्यवस्था दुर्योधनको सौंपी गयी। इसी प्रकार अन्य कार्योंकी व्यवस्था की गयी। शेष धृतराष्ट्रके पुत्र वहाँ मालिकके समान स्वेच्छानुसार विचरण करने लगे। परंतु—

चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्।
सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम्॥
(३५ । १०)

'भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण सबको संतुष्ट करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंके चरण पखारनेमें स्वयं ही नियुक्त हो गये, जिससे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। चारों ओरसे लोगोंने उनको घेर रखा था।'

अहा ! भगवान्ने राजसूय-यज्ञमें ब्राह्मणोंके चरण पखारनेका काम अपने हाथमें लेकर ब्राह्मणोंकी सेवाको महिमान्वित कर दिया। इससे उन्होंने लोकको यह शिक्षा प्रदान की कि ब्राह्मणोंकी चरण-सेवा गौरवकी वस्तु है, पारलौकिक फल प्रदान करनेवाली है। वैशम्पायनजी कहते हैं कि तदनन्तर—

ततोऽभिषेचनीयेऽह्नि ब्राह्मणा राजभिः सह।
अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्कारार्हा महर्षयः॥
(३६ । १)

'अभिषेचनीय कर्मके दिन राजाओंके साथ-साथ पूजनीय महर्षिगण तथा ब्राह्मणलोगोंने अन्तर्वेदीमें प्रवेश किया।' वहाँ जाकर महाराजा युधिष्ठिरके धन-वैभव और यज्ञविधिको देखकर देवर्षि नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। सहसा उनको स्मरण हो आया और वे सोचने लगे—

साक्षात् स विबुधारिघ्नः क्षत्रे नारायणो विभुः।
प्रतिज्ञां पालयंश्चेमां जातः परपुरंजयः॥
संदिदेश पुरा योऽसौ विबुधान् भूतकृत् स्वयम्।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्तः पुनर्लोकानवाप्स्यथ॥
इति नारायणः शम्भुर्भगवान् भूतभावनः।
आदिश्य विबुधान् सर्वानजायत यदुक्षये॥
क्षितावन्धकवृष्णीनां वंशे वंशभृतां वरः।
परया शुशुभे लक्ष्म्या नक्षत्राणामिवोडुराट्॥
यस्य बाहुबलं सेन्द्राः सुराः सर्व उपासते।
सोऽयं मानुषवन्नाम हरिरास्तेऽरिमर्दनः॥
अहो बत महद्भूतं स्वयंभूर्यदिदं स्वयम्।
आदास्यति पुनः क्षत्रमेवंबलसमन्वितम्॥
इत्येतां नारदश्चिन्तां चिन्तयामास सर्ववित्।
हरिं नारायणं ध्यात्वा यज्ञैरीड्यंतमीश्वरम्॥
तस्मिन् धर्मविदां श्रेष्ठो धर्मराजस्य धीमतः।
महाध्वरे महाबुद्धिस्तस्थौ स बहुमानतः॥
(सभा० ३६—१३-२१)

'अहो ! सर्वव्यापक देवशत्रुविनाशक वैरि-नगर-विजयी साक्षात् भगवान् नारायणने ही तो अपनी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये क्षत्रियकुलमें अवतार ग्रहण किया है। पूर्वकालमें सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक साक्षात् उन्हीं भगवान्ने देवताओंको यह आदेश दिया था कि तुमलोग भूतलपर जन्म-ग्रहण करके अपना अभीष्ट साधन करते हुए आपसमें एक-दूसरेको मारकर फिर देवलोकमें आ जाओगे। कल्याणस्वरूप भूतभावन भगवान् नारायणने सब देवताओंको यह आज्ञा देनेके पश्चात् स्वयं भी यदुकुलमें अवतार लिया। अन्धक और वृष्णियोंके कुलमें वंशधारियोंमें श्रेष्ठ वे ही भगवान् इस पृथ्वीपर प्रकट हो अपनी सर्वोत्तम कान्तिसे उसी प्रकार शोभायमान हैं, जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा सुशोभित होते हैं। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता जिनके बाहुबलकी उपासना करते हैं, वे ही शत्रुमर्दन श्रीहरि यहाँ मनुष्यके समान बैठे हैं। अहो ! ये स्वयम्भू महाविष्णु ऐसे

बलसम्पन्न क्षत्रियसमुदायको पुनः उच्छिन्न करना चाहते हैं ।' सर्वज्ञ नारदजीने इसी पुरातन वृत्तान्तका स्मरण किया और ये भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त यज्ञोंके द्वारा आराधनीय, सर्वेश्वर नारायण हैं —यों समझकर वे धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् देवर्षि मेधावी धर्मराजके उस महायज्ञमें बड़े आदरके साथ बैठे रहे ।

ततो भीष्मोऽब्रवीद् राजन् धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
क्रियतामर्हणं राज्ञां यथार्हमिति भारत ॥
(३६ । २२)

'जब सब लोग यज्ञमण्डपमें आ गये, तब भीष्मजीने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! अब यहाँ पधारे हुए राजाओंकी यथायोग्य पूजा होनी चाहिये ।' परंतु प्रथम पूजाके योग्य कौन हैं; यह प्रश्न सामने आया । धर्मराजने पितामहसे ही यह निर्णय करनेके लिये कहा । भीष्मजी बोले—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः ।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः ॥
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना ।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः ॥
(३६ । २८-२९)

'कुन्तीनन्दन ! मैं तो संसारमें सबसे बढ़कर पूजनीय श्रीकृष्णको मानता हूँ । देखो —वे अपने तेज, बल और पराक्रमके द्वारा समस्त राजाओंके बीचमें उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रोंमें सूर्य आभासित होता है । अन्धकारमय स्थान जैसे सूर्यसे आभासित हो उठता है, निर्वात प्रदेश जैसे वायुके संचारसे आह्लादमय बन जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा यह हमारी सभा आभासित और आह्लादमयी हो रही है । अतएव एकमात्र ये ही अग्रपूजाके लिये योग्य हैं ।' इस प्रकार पितामहकी सम्मति प्राप्तकर प्रतापी सहदेवने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णको विधिपूर्वक प्रथम अर्घ्य प्रदान किया । श्रीकृष्णने शास्त्रीय विधिके अनुसार वह अर्घ्य स्वीकार किया । श्रीकृष्णकी प्रथम पूजा होते देखकर चेदिराज शिशुपाल जल उठा । उसने भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, द्रुपद, वसुदेवजी आदि गुरुजनोंके उपस्थित रहते श्रीकृष्णको प्रथम अर्घ्य देनेका घोर विरोध किया, और अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग करके सभामण्डपसे जाने लगा । तब महाराज युधिष्ठिर उसके पास दौड़े गये, और उसको शान्तिपूर्वक समझानेकी चेष्टा करने लगे—'चेदिराज ! भगवान् श्रीकृष्णको यथार्थरूपसे पितामह भीष्मजी ही जानते हैं, वैसा ज्ञान तुमको नहीं है । तुम्हें इस प्रकार व्यर्थ ही कठोर बातें नहीं कहनी चाहिये ।' इसके बाद भीष्मजीने कहा—

नहि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः ।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः ॥
कृष्णेन हि जिता युद्धे बहवः क्षत्रियर्षभाः ।
जगत् सर्वं च वार्ष्णेये निखिलेन प्रतिष्ठितम् ॥
तस्मात् सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान् ।
एवं वक्तुं न चार्हस्त्वं मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी ॥
ज्ञानवृद्धा मया राजन् बहवः पर्युपासिताः ।
तेषां कथयतां शौरेरहं गुणवतो गुणान् ॥
समागतानामश्रौषं बहून् बहुमतान् सताम् ।
कर्माण्यपि च यान्यस्य जन्मप्रभृति धीमतः ॥
बहुशः कथ्यमानानि नरैर्भूयः श्रुतानि मे ।
न केवलं वयं कामाच्चेदिराज जनार्दनम् ॥
न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथंचन ।
अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम् ॥
यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुञ्ज्महे ।
न च कश्चिदिहास्माभिः सुबालोऽप्यपरीक्षितः ॥
गुणैर्वृद्धानतिक्रम्य हरिरर्च्यतमो मतः ।
ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः ॥
वैश्यानां धान्यधनवाञ्छूद्राणामेव जन्मतः ।
पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ ॥
वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा ।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते ॥
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा ।
संनतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते ॥
तमिमं गुणसम्पन्नमार्यं च पितरं गुरुम् ।
अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तुमर्हथ ॥
ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः ।
सर्वमेतद्धृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः ॥
कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः ।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः ।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः ॥
बुद्धिर्मनो महद् वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या ।
चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥
आदित्यश्चन्द्रमाश्चैव नक्षत्राणि ग्रहाश्च ये ।
दिशश्च विदिशश्चैव सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥

अग्निहोत्रमुखा वेदा गायत्री छन्दसां मुखम्।
राजा मुखं मनुष्याणां नदीनां सागरो मुखम्॥
नक्षत्राणां मुखं चन्द्र आदित्यस्तेजसां मुखम्।
पर्वतानां मुखं मेरुर्गरुडः पततां मुखम्॥
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव यावती जगतो गतिः।
सदेवकेषु लोकेषु भगवान् केशवो मुखम्॥
(सभा० ३८ । ९-२९)

'शिशुपालजी ! महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे लिये ही परम पूजनीय हों, ऐसी बात नहीं है; ये तो तीनों लोकोंके पूजनीय हैं । श्रीकृष्णके द्वारा संग्राममें अनेक क्षत्रियशिरोमणि परास्त हुए हैं । यह सम्पूर्ण जगत् वृष्णिकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्णमें ही पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित है । इसीलिये हम दूसरे वृद्धपुरुषोंके होते हुए भी श्रीकृष्णकी ही पूजा करते हैं, दूसरोंकी नहीं। राजन् ! तुम्हें श्रीकृष्णके प्रति वैसी बातें मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये थीं । उनके प्रति तुम्हें ऐसी बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। मैंने बहुत-से ज्ञानवृद्ध महात्माओं-का सङ्ग किया है । अपने यहाँ पधारे हुए उन संतोंके मुखसे अनन्तगुणशाली भगवान् श्रीकृष्णके असंख्य बहुसम्मत गुणोंका वर्णन सुना है । जन्मकालसे लेकर अबतक इन बुद्धिमान् श्रीकृष्णके जो-जो चरित्र बहुधा बहुतेरे मनुष्योंद्वारा कहे गये हैं, उन सबको मैंने बार-बार सुना है । चेदिराज ! हमलोग किसी कामनासे, अपना सम्बन्धी मानकर अथवा इन्होंने हमारा किसी प्रकारका उपकार किया है, इस दृष्टिसे श्रीकृष्णकी पूजा नहीं कर रहे हैं । हमारी दृष्टि तो यह है कि ये इस भूमण्डलके सभी प्राणियोंको सुख पहुँचानेवाले हैं और बड़े-बड़े संत-महात्माओंने इनकी पूजा की है । हम इनके यश, शौर्य और विजयको भली-भाँति जानकर इनकी पूजा कर रहे हैं । यहाँ बैठे हुए लोगोंमेंसे कोई छोटा-सा बालक भी ऐसा नहीं है, जिसके गुणोंकी हमलोगोंने पूर्णतः परीक्षा न कर ली हो । श्रीकृष्णके गुणोंको ही दृष्टिमें रखते हुए हमने वयोवृद्ध पुरुषोंका उल्लङ्घन करके इनको ही परम पूजनीय माना है। ब्राह्मणोंमें वही पूजनीय समझा जाता है, जो ज्ञानमें बड़ा हो तथा क्षत्रियोंमें वही पूजाके योग्य है, जो बलमें सबसे अधिक हो । वैश्योंमें वही सर्वमान्य है, जो धन-धान्यमें बढ़कर हो, केवल शूद्रोंमें ही जन्मकालको ध्यानमें रखकर जो अवस्थामें बड़ा हो, उसको पूजनीय माना जाता है । श्रीकृष्णके परम पूजनीय होनेमें दोनों ही कारण विद्यमान हैं । इनमें वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञान तो है ही, बल भी सबसे अधिक है । श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कौन संसारके मनुष्योंमें सबसे बढ़कर है ? दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि—ये सभी सद्गुण भगवान् श्रीकृष्णमें नित्य विद्यमान हैं । जो अर्घ्य पानेके सर्वथा योग्य और पूजनीय हैं, उन सकलगुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, पिता और गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी हमलोगोंने पूजा की है, अतः सब राजालोग इसके लिये हमें क्षमा करें । श्रीकृष्ण हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रिय मित्र—सब कुछ हैं । इसीलिये हमने इनकी अग्रपूजा की है ।

'ये भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं । यह सारा चराचर विश्व इन्हीं-के लिये प्रकट हुआ है । ये ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता तथा सम्पूर्ण भूतोंसे परे हैं; अतः भगवान् अच्युत ही सबसे बढ़कर पूजनीय हैं । महत्तत्त्व, अहंकार, मनसहित ग्यारह इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चारों प्रकारके प्राणी, सभी भगवान् श्रीकृष्णमें ही प्रतिष्ठित हैं । सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, दिशाएँ और विदिशाएँ—सब उन्हींमें स्थित हैं। जैसे वेदों-में अग्निहोत्रकर्म, छन्दोंमें गायत्री, मनुष्योंमें राजा, नदियों (जलाशयों) में समुद्र, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, तेजोमय पदार्थोंमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु और पक्षियोंमें गरुड़ श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार देवलोकसहित सम्पूर्ण लोकोंमें ऊपर-नीचे, दाँयें-बायें—जितने भी जगत्के आश्रय हैं, उन सबमें भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रेष्ठ हैं ।

भीष्मजीने फिर राजा युधिष्ठिरसे कहा—

वर्तमानामतीतां च शृणु राजन् युधिष्ठिर।
ईश्वरस्योत्तमस्यैनां कर्मणां गहनां गतिम्॥

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः।
पुरा नारायणो देवः स्वयम्भूः प्रपितामहः॥
सहस्रशीर्षः पुरुषो ध्रुवोऽव्यक्तः सनातनः॥
सहस्राक्षः सहस्रास्यः सहस्रचरणो विभुः।
सहस्रबाहुः साहस्रो देवो नामसहस्रवान्॥
सहस्रमुकुटो देवो विश्वरूपो महाद्युतिः।
अनेकवर्णो देवादिरव्यक्ताद् वै परे स्थितः॥
असृजत् सलिलं पूर्वं स च नारायणः प्रभुः।
ततस्तु भगवांस्तोये ब्रह्माणमसृजत् स्वयम्॥
ब्रह्मा चतुर्मुखो लोकान् सर्वांस्तानसृजत् स्वयम्।
आदिकाले पुरा ह्येवं सर्वलोकस्य चोद्भवः॥
पुराथ प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे।
ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे॥
आभूतसम्प्लवे प्राप्ते प्रलीने प्रकृतौ महान्।
एकस्तिष्ठति सर्वात्मा स तु नारायणः प्रभुः॥
नारायणस्य चाङ्गानि सर्वदैवानि भारत।
शिरस्तस्य दिवं राजन् नाभिः खं चरणौ मही॥
अश्विनौ घ्राणयोर्देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ।
इन्द्रवैश्वानरौ देवौ मुखं तस्य महात्मनः॥
अन्यानि सर्वदैवानि तस्याङ्गानि महात्मनः।
सर्वं व्याप्य हरिस्तस्थौ सूत्रं मणिगणानिव॥
आभूतसम्प्लवान्तेऽथ दृष्ट्वा सर्वं तमोऽन्वितम्।
नारायणो महायोगी सर्वज्ञः परमात्मवान्॥
ब्रह्मभूतस्तदाऽऽत्मानं ब्रह्माणमसृजत् स्वयम्।
सोऽध्यक्षः सर्वभूतानां प्रभूतः प्रभवोऽच्युतः॥
सनत्कुमारं रुद्रं च मनुं चैव तपोधनान्।
सर्वमेवासृजद् ब्रह्मा ततो लोकान् प्रजास्तथा॥
ते च तद् व्यसृजंस्तत्र प्राप्ते काले युधिष्ठिर।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम्॥
कल्पानां बहुकोट्यश्च समतीता हि भारत।
आभूतसम्प्लवाश्चैव बहुकोट्योऽतिचक्रमुः॥
मन्वन्तरयुगेऽजस्रं सकल्पा भूतसम्प्लवा।
चक्रवत् परिवर्तन्ते सर्वं विष्णुमयं जगत्॥
सृष्ट्वा चतुर्मुखं देवं देवो नारायणः प्रभुः।
स लोकानां हितार्थाय क्षीरोदे वसति प्रभुः॥
ब्रह्मा च सर्वदेवानां लोकस्य च पितामहः।
ततो नारायणो देवः सर्वस्य प्रपितामहः॥
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः।
नारायणो जगच्चक्रे प्रभवाप्ययसंहितः॥
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीद् युधिष्ठिर।
ब्रह्माणं शशिसूर्यौ च धर्मं चैवासृजत् स्वयम्॥
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः।
प्रादुर्भावांस्तु वक्ष्यामि दिव्यान् देवगणैर्युतान्॥

सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यवान्।
पूर्णे युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पतिः॥
ब्रह्माणं कपिलं चैव परमेष्ठिनमेव च।
देवान् सप्त ऋषींश्चैव शंकरं च महायशाः॥
सनत्कुमारं भगवान् मनुं चैव प्रजापतिम्।
पुरा चक्रेऽथ देवादीन् प्रदीप्ताग्निसमप्रभः॥
येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टदेवासुरनरे प्रणष्टोरगराक्षसे॥
योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ भ्रातरौ मधुकैटभौ।
हतौ भगवता तेन तयोर्दत्त्वा वृतं वरम्॥
भूमिं बद्ध्वा कृतौ पूर्वं मृन्मयौ द्वौ महासुरौ।
कर्णस्रोतोद्भवौ तौ तु विष्णोस्तस्य महात्मनः॥
महार्णवे प्रस्वपतः शैलराजसमौ स्थितौ।
तौ विवेश स्वयं वायुः ब्रह्मणा साधु चोदितः॥
तौ दिवं छादयित्वा तु ववृधाते महासुरौ।
वायुप्राणौ तु तौ दृष्ट्वा ब्रह्मा पर्यामृशच्छनैः॥
एकं मृदुतरं बुद्ध्वा कठिनं बुध्य चापरम्।
नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः॥
मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभः स्वयम्।
तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलगर्वितौ॥
तौ पुराथ दिवं सर्वां प्राप्तौ राजन् महासुरौ।
प्रच्छाद्याथ दिवं सर्वां चेरतुर्मधुकैटभौ॥
सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुनिर्भयौ।
तौ गतावसुरौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः॥
एकार्णवाम्बुनिचये तत्रैवान्तरधीयत।
स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिदेशात् समुत्थिते॥
आसीदादौ स्वयंजन्म तत् पङ्कजमपङ्कजम्।
पूजयामास वसतिं ब्रह्मा लोकपितामहः॥
तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणचतुर्मुखौ।
बहून् वर्षायुतानप्सु शयानौ न चकम्पतुः॥
अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ।
आजग्मतुस्तौ तं देशं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः॥
तौ दृष्ट्वा लोकनाथस्तु कोपात् संरक्तलोचनः।
उत्पपाताथ शयनात् पद्मनाभो महाद्युतिः॥
तद् युद्धमभवद् घोरं तयोस्तस्य च वै तदा।
एकार्णवे तदा घोरे त्रैलोक्ये जलतां गते॥
तदभूत् तुमुलं युद्धं वर्षसङ्घान् सहस्रशः।
न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः॥
अथ दीर्घस्य कालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ।
ऊचतुः प्रीतमनसौ देवं नारायणं प्रभुम्॥
प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥

हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयाव सुरोत्तम।
यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ ॥
तयोः स वचनं श्रुत्वा तदा नारायणः प्रभुः।
तौ प्रगृह्य मृधे दैत्यौ दोर्भ्यां तौ समपीडयत् ॥
ऊरुभ्यां निधनं चक्रे तावुभौ मधुकैटभौ।
तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्यामेकतां गतौ ॥
मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः।
मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधे तदा ॥
नारायणश्च भगवानसृजद् विविधाः प्रजाः।
दैत्ययोर्मेदसाच्छन्ना सर्वा राजन् वसुन्धरा ॥
तदा प्रभृति कौन्तेय मेदिनीति स्मृता मही।
प्रभावात् पद्मनाभस्य शाश्वती च कृता नृणाम् ॥

(सभा० पृ० ७८१–७८४)

भीष्म बोले—'राजा युधिष्ठिर ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य कर्मोंकी गति बड़ी गहन है। इन्होंने पूर्वकालमें और इस समय भी जो महान् कर्म किये हैं, उन्हें बताता हूँ; सुनो। ये सर्वशक्तिमान् भगवान् अव्यक्त होते हुए भी व्यक्तस्वरूप धारण करके स्थित हैं। पूर्वकालमें ये भगवान् श्रीकृष्ण ही नारायणरूपमें स्थित थे। ये ही स्वयम्भू एवं सम्पूर्ण जगत्के प्रपितामह हैं। इनके सहस्रों मस्तक हैं। ये ही ध्रुव, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष हैं। इनके सहस्रों नेत्र, सहस्रों मुख और सहस्रों चरण हैं। ये सर्वव्यापी परमेश्वर सहस्रों भुजाओं, सहस्रों रूपों और सहस्रों नामोंसे युक्त हैं। इनके मस्तक सहस्रों मुकुटोंसे मण्डित हैं। ये महान् तेजस्वी देवता हैं। सम्पूर्ण विश्व इन्हींका स्वरूप है। इनके अनेक वर्ण हैं। ये देवताओंके भी आदि कारण हैं और अव्यक्त प्रकृतिसे परे (अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें स्थित) हैं। उन्हीं सामर्थ्यवान् भगवान् नारायणने सबसे पहले जलकी सृष्टि की। फिर उस जलमें उन्होंने स्वयं ही ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके चार मुख हैं। उन्होंने स्वयं ही सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि की है। इस प्रकार आदिकालमें समस्त जगत्की उत्पत्ति हुई। फिर प्रलयकाल आनेपर, जैसा कि पहले हुआ था, समस्त स्थावर-जङ्गम सृष्टिका नाश हो जाता है एवं चराचर जगत्का नाश होनेके पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कारण तत्त्वमें लीन हो जाते हैं। और समस्त भूतोंका प्रवाह प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। उस समय एकमात्र सर्वात्मा भगवान् महानारायण शेष रह जाते हैं।

'भरतनन्दन ! भगवान् नारायणके अङ्ग सर्वदेवमय हैं। राजन् ! द्युलोक उनका मस्तक, आकाश नाभि और पृथ्वी चरण स्थानीया है। दोनों अश्विनीकुमार उनकी नासिकाके स्थानपर हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, एवं इन्द्र और अग्नि देवता उन परमात्माके मुख हैं। इसी प्रकार अन्य सब देवता भी उन महात्माके विभिन्न अवयव हैं। जैसे गूँथी हुई मालाकी सभी मणियोंमें एक ही सूत्र व्याप्त रहता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं। प्रलयकालके अन्तमें सबको अन्धकारसे व्याप्त देख सर्वज्ञ परमात्मा ब्रह्मभूत महायोगी नारायणने स्वयं अपने-आपको ही ब्रह्मारूपमें प्रकट किया। इस प्रकार अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, सबकी उत्पत्तिके कारणभूत और सम्पूर्ण भूतोंके अध्यक्ष श्रीहरिने ब्रह्मारूपसे प्रकट हो सनत्कुमार, रुद्र, मनु तथा तपस्वी ऋषि-मुनियोंको उत्पन्न किया। सबकी सृष्टि उन्होंने ही की। उन्हींसे सम्पूर्ण लोकों और प्रजाओंकी उत्पत्ति हुई। युधिष्ठिर ! समय आनेपर उन मनु आदिने भी सृष्टिका विस्तार किया। उन सब महात्माओंसे नाना प्रकारकी सृष्टि प्रकट हुई। इस प्रकार एक ही सनातन ब्रह्म अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हो गया। भरतनन्दन ! अबतक कई करोड़ कल्प बीत चुके हैं और कितने ही करोड़ प्रलयकाल भी गत हो चुके हैं। मन्वन्तर, युग, कल्प और प्रलय—ये निरन्तर चक्रकी भाँति घूमते रहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है। देवाधिदेव भगवान् नारायण चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माकी सृष्टि करके सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये क्षीरसागरमें निवास करते हैं। ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं तथा लोकोंके पितामह हैं, इसलिये ये श्रीनारायणदेव सबके प्रपितामह हैं।

'जो अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त शरीरमें स्थित हैं, सृष्टि और प्रलयकालमें भी जो नित्य विद्यमान रहते हैं, उन्हीं सर्वशक्तिमान् भगवान् नारायणने इस जगत्की रचना की है। युधिष्ठिर ! इन भगवान् श्रीकृष्णने ही नारायणरूपमें स्थित होकर स्वयं ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा और धर्मकी

सृष्टि की है। ये समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं और कार्यवश अनेक रूपोंमें अवतीर्ण होते रहते हैं। इनके सभी अवतार दिव्य हैं और देवगणोंसे संयुक्त भी हैं। मैं उन सबका वर्णन करता हूँ। देवाधिदेव जगदीश्वर महायशस्वी भगवान् श्रीहरि सहस्र युगोंतक शयन करनेके पश्चात् कल्पान्तकी सहस्रयुगात्मक अवधि पूरी होनेपर प्रकट होते और सृष्टिकार्यमें संलग्न हो परमेष्ठी ब्रह्मा, कपिल, देवगणों, सप्तर्षियों तथा शंकरकी उत्पत्ति करते हैं। इसी प्रकार भगवान् श्रीहरि सनत्कुमार, मनु एवं प्रजापतिको भी उत्पन्न करते हैं। पूर्वकालमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी नारायणदेवने ही देवताओं आदिकी सृष्टि की है।

'पहलेकी बात है, प्रलयकालमें समस्त चराचर प्राणी—देवता, असुर, मनुष्य, नाग तथा राक्षस—आदि नष्ट हो चुके थे। उस समय एकार्णव (महासागर) की जल-राशिमें दो अत्यन्त दुर्धर्ष दैत्य रहते थे, जिनके नाम थे मधु और कैटभ। वे दोनों भाई युद्धकी इच्छा रखते थे। उन्हीं भगवान् नारायणने उन्हें मनोवाञ्छित वर देकर उन दोनों दैत्योंका वध किया था। कहते हैं, वे दोनों महान् असुर परमात्मा भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे उत्पन्न हुए थे। पहले भगवान्ने इस पृथ्वीको आबद्ध करके मिट्टीसे उनकी आकृति बनायी थी। वे पर्वतराज हिमालयके समान शरीर लिये महासागरके जलमें सो रहे थे। उस समय ब्रह्माजीकी प्रेरणासे स्वयं वायुदेवने उनके भीतर प्रवेश किया। फिर तो वे दोनों महान् असुर सम्पूर्ण द्युलोकको आच्छादित करके बढ़ने लगे। वायुदेव ही जिनके प्राण थे, उन दोनों असुरोंको देख-कर ब्रह्माजीने धीरे-धीरे उनके शरीरपर हाथ फेरा। एकका शरीर उन्हें अत्यन्त कोमल प्रतीत हुआ और दूसरेका अत्यन्त कठोर। तब जलसे उत्पन्न होनेवाले भगवान् ब्रह्माने उन दोनोंका नामकरण किया। यह जो मृदुल शरीरवाला असुर है, इसका नाम मधु होगा और जिसका शरीर कठोर है, वह कैटभ कहलायेगा। इस प्रकार नाम निश्चित हो जानेपर वे दोनों दैत्य बलसे उन्मत्त होकर सब ओर विचरने लगे। राजन्! सबसे पहले वे दोनों महादैत्य मधु और कैटभ द्युलोकमें पहुँचे और उस सारे लोकको आच्छादित करके सब ओर विचरने लगे। उस समय सारा लोक जलमय हो गया था। उसमें युद्धकी कामनासे अत्यन्त निर्भय होकर आये हुए उन दोनों असुरोंको देखकर लोक-पितामह ब्रह्माजी वहीं एकार्णवरूप जलराशिमें अन्तर्धान हो गये। वे भगवान् पद्मनाभ (विष्णु) की नाभिसे प्रकट हुए कमलमें जा बैठे। वह कमल वहाँ पहले ही स्वयं प्रकट हो गया था। कहनेको तो वह पङ्कज था, परंतु पङ्कसे उसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। लोकपितामह ब्रह्माने अपने निवासके लिये उस कमलको ही पसंद किया और उसकी भूरि-भूरि सराहना की। भगवान् नारायण और ब्रह्मा दोनों ही अनेक सहस्र वर्षोंतक उस जलके भीतर सोते रहे; किंतु कभी तनिक भी कम्पायमान नहीं हुए। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् वे दोनों असुर मधु और कैटभ उसी स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ ब्रह्माजी स्थित थे। उन दोनोंको आया देख महातेजस्वी लोकनाथ भगवान् पद्मनाभ अपनी शय्यासे खड़े हो गये। क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं। फिर तो उन दोनोंके साथ उनका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस भयानक एकार्णवमें, जहाँ त्रिलोकी जलरूप हो गयी थी, सहस्रों वर्षोंतक उनका वह घमासान युद्ध चलता रहा; परंतु उस समय उस युद्धमें उन दोनों दैत्योंको तनिक भी थकावट नहीं होती थी। तत्पश्चात् दीर्घकाल व्यतीत होनेपर वे दोनों रणोन्मत्त दैत्य प्रसन्न होकर सर्वशक्तिमान् भगवान् नारायणसे बोले—'सुरश्रेष्ठ! हम दोनों तुम्हारे युद्ध-कौशलसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम हमारे लिये स्पृहणीय मृत्यु हो। हमें ऐसी जगह मारो, जहाँकी भूमि पानीमें डूबी हुई न हो। तथा मरनेके पश्चात् हम दोनों तुम्हारे पुत्र हों। जो हमें युद्धमें जीत ले, हम उसीके पुत्र हों—ऐसी हमारी इच्छा है।' उनकी बात सुनकर भगवान् नारायणने उन दोनों दैत्योंको युद्धमें पकड़कर उन्हें दोनों हाथोंसे दबाया और मधु तथा कैटभ दोनोंको अपनी जाँघोंपर रखकर मार डाला। मरनेपर उन दोनों-की लाशें जलमें डूबकर एक हो गयीं। जलकी लहरोंसे मथित होकर उन दोनों दैत्योंने जो मेद छोड़ा, उससे

आच्छादित होकर वहाँका जल अदृश्य हो गया । उसी पर भगवान् नारायणने नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि की । राजन् ! कुन्तीकुमार ! उन दोनों दैत्योंके मेदसे सारी वसुधा आच्छादित हो गयी । तभीसे यह मही 'मेदिनी'के नामसे प्रसिद्ध हुई । भगवान् पद्मनाभके प्रभावसे यह मनुष्योंके लिये शाश्वत आधार बन गयी ।

इसके अनन्तर —

आविष्यदजितं कृष्णं भविष्यद्भूतजल्पकः ॥
सर्वसंशयनिर्मोक्ता नारदः सर्वलोकवित् ।
उवाचाखिलभूतानां मध्ये स्पष्टतरं वचः ॥
कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये नराः ।
जीवन्मृतास्तु ते ज्ञेया न सम्भाष्याः कदाचन ॥

(सभा० ३९ । ७-९)

कभी पराजित न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाके ज्ञाता, भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों-कालोंकी बातें बतानेवाले, सब लोगोंके सभी संशयोंका निवारण करनेवाले तथा सम्पूर्ण लोकोंसे परिचित देवर्षि नारद समस्त उपस्थित प्राणियोंके बीच स्पष्ट शब्दोंमें बोले —'जो मानव कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा नहीं करेंगे, वे जीते-जी ही मृतक-तुल्य समझे जायँगे । ऐसे लोगोंसे कभी बातचीत नहीं करनी चाहिये ।'

पितामहकी ये बातें सुनकर शिशुपाल नाना प्रकार-से उनके प्रति भी कुवाक्योंका प्रयोग करके उनका तिरस्कार करने लगा । वह नाना प्रकारकी कटूक्तिरूप बाणोंकी वर्षा करके भीष्मका अपमान करने लगा । तब भीष्मने कहा —

एष तिष्ठति गोविन्दः पूजितोऽस्माभिरच्युतः ।
यस्य वस्त्वरते बुद्धिर्मरणाय स माधवम् ॥
कृष्णमाह्वयतामद्य युद्धे चक्रगदाधरम् ।

(सभा० ४४ । ४१-४२)

'बहुत बातें करनेसे क्या ? ये गोविन्द सामने उपस्थित हैं, जिनकी हमने पूजा की है । अब आप-लोगोंमें जिसकी बुद्धि मृत्युका आलिङ्गन करनेके लिये उतावली हो रही हो, वह चक्र-गदाधारी माधव श्रीकृष्णको युद्धमें ललकारे ।' भीष्मके यह कहनेपर शिशुपाल श्रीकृष्णसे लड़नेके लिये तैयार हो गया । तब श्रीकृष्णने कहा—'राजाओ ! इसकी माताके याचना करनेपर मैंने उसे वर दिया था कि मैं शिशुपालके सौ अपराध क्षमा करूँगा । वे सब अपराध पूरे हो गये हैं, अब मैं सब राजाओंके देखते-देखते इसका वध करूँगा ।' इतना कहकर भगवान् मधुसूदनने सुदर्शन-चक्रका स्मरण किया । चिन्तन करते ही तत्काल चक्र हाथमें आ गया और लोगोंके देखते-देखते क्षणमात्रमें श्रीकृष्णने उस चक्रसे चेदिराजका सिर धड़से अलग कर दिया । तदनन्तर सबने प्रत्यक्ष देखा कि शिशुपालके शरीरसे एक उत्कृष्ट तेज निकलकर ऊपरको उठ रहा है, मानो आकाशसे सूर्य उदित हुआ हो । उस तेजने विश्ववन्दित कमलदललोचन श्रीकृष्णकी वन्दना की और उसी समय उनके भीतर प्रविष्ट हो गया । यों भगवान्ने उसे मारकर तार दिया, अपने अंदर विलीन कर लिया ।

शिशुपालके मारे जानेके बाद महाराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया । भगवान् वासुदेव यज्ञस्वरूप हैं, यज्ञपति हैं, यज्ञके रक्षक हैं । वे मान्योंको मान, पूज्योंको पूजा प्रदान करते हैं । चेदिराज शिशुपाल यज्ञमें विघ्न उपस्थित कर रहा था, देवकार्यमें बाधक बन रहा था, और अहंकारके वशीभूत हो बड़े बूढ़ोंका तिरस्कार कर रहा था; ऐसी दशामें उसका वध करके भगवान् वासुदेवने धर्मकी ही रक्षा की ।

द्रौपदी-वस्त्र-हरण-प्रसङ्ग

युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ और उनकी श्री-समृद्धि देखकर राजा दुर्योधनके हृदयमें ईर्ष्याग्नि धधक उठी । अपने मामा शकुनिकी सहायतासे पाण्डवोंको पराभूत करनेका कुचक्र वह रचने लगा । महाराज युधिष्ठिर द्यूत-क्रीड़ाके लिये आमन्त्रित किये गये । शकुनिने छलसे महाराज युधिष्ठिरका सारा राज्य, पाँचों भाई पाण्डवोंको तथा कृष्णा द्रौपदीको जुएमें दाँवपर रखवाकर जीत लिया । कौरव-सभामें भीष्म-द्रोण आदि वृद्धजनोंके सम्मुख भरी सभामें उसने द्रौपदीको पकड़वा मँगाया और दुःशासनको उसका वस्त्र अपहरणकर नग्नकर देनेका क्रूर आदेश दिया । द्रौपदीने भीष्मादि सभी गुरुजनों-को पुकारा, परंतु दुर्योधनके सामने बोलनेका किसीको

साहस न हुआ। भरी सभामें दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र पकड़कर उसे नग्न करने लगा। जब द्रौपदीने चारों ओर देख लिया कि कोई उसकी सहायता करनेवाला नहीं है, तब वह अनाथ होकर अनाथोंके नाथ श्रीकृष्णको पुकारने लगी—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(सभा० ६८। ४१—४३)

'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपीजन-प्रिय केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे संकटहारी जनार्दन! मैं कौरवरूपी समुद्रमें डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। हे श्रीकृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वात्मन्! हे विश्वभावन गोविन्द! कौरवोंके बीचमें कष्ट पाती हुई मुझ शरणागत अबलाकी रक्षा करो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'हे जनमेजय! इस प्रकार त्रिलोकीके स्वामी हरि श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई द्रौपदी आँचलसे मुँह ढककर रोने लगी। द्रौपदीकी यह पुकार द्वारकामें श्रीकृष्णको सुनायी दी। वह आसन छोड़कर पैदल दौड़ पड़े।

कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः॥

(सभा० ६८। ४६)

'यज्ञसेनकुमारी द्रौपदी अपनी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नामोंको जोर-जोरसे पुकार रही थी। उसी समय धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्णने अव्यक्तरूपसे उसके वस्त्रमें प्रवेश करके नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंके द्वारा उसे आच्छादित कर लिया।' दुःशासन साड़ी खींचता रहा, खींचते-खींचते वह थक गया, सभामें वस्त्रोंका अम्बार लग गया, पर द्रौपदी नग्न न हो सकी। सर्वसमर्थ भगवान्‌ने उसकी लाज बचा ली। यहाँ धर्मरूपमें भगवान् वासुदेवने वस्त्रावतार धारणकर अपनी भगवत्ता प्रकट की। भगवान् चाहे जैसे हों, अपने आर्त्त भक्तोंका त्राण करते हैं—यह शिक्षा इस घटनाके द्वारा भगवान् वासुदेवने जगत्‌को दी।

[वनपर्व]

वनमें श्रीकृष्णका दर्शन

महाराज युधिष्ठिरको दुबारा द्यूतमें फँसाकर शकुनिने पाण्डवोंको तेरह वर्षके लिये वनवास तथा तेरहवें वर्षका अज्ञातवास दे डाला। पाण्डव द्रौपदीको साथ लेकर वनमें चले गये। यह समाचार सुनकर भगवान् वासुदेवको आगे करके पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न तथा चेदिराज धृष्टकेतु कौरवोंकी निन्दा करते हुए वनमें पाण्डवोंसे मिलनेके लिये गये। श्रीकृष्णने कहा—

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः।
दुःशासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम्॥

(१२। ५)

राजाओ! जान पड़ता है कि अब पृथिवी दुर्योधन, कर्ण, दुरात्मा शकुनि और चौथे दुःशासनका रक्तपान करेगी।' भगवान्‌को इस प्रकार आवेशमें देखकर अर्जुनने नारायणके अवतारकी पुरातन कथाका स्मरण कराते हुए कहा—

दश वर्षसहस्राणि यत्र सायंगृहो मुनिः।
व्यचरस्त्वं पुरा कृष्ण पर्वते गन्धमादने॥
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
पुष्करेष्ववसः कृष्ण त्वमपो भक्षयन् पुरा॥
ऊर्ध्वबाहुर्विशालायां बदर्यां मधुसूदन।
अतिष्ठ एकपादेन वायुभक्षः शतं समाः॥
अवकृष्टोत्तरासङ्गः कृशो धमनिसंततः।
आसीः कृष्ण सरस्वत्यां सत्रे द्वादशवार्षिके॥
प्रभासमप्यथासाद्य तीर्थं पुण्यजनोचितम्।
तथा कृष्ण महातेजा दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥
अतिष्ठस्त्वमथैकेन पादेन नियमस्थितः।
लोकप्रवृत्तिहेतुस्त्वमिति व्यासो ममाब्रवीत्॥
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामादिरन्तश्च केशव।
निधानं तपसां कृष्ण यज्ञस्त्वं च सनातनः॥
निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले।
प्रथमोत्पतितं कृष्ण मेध्यमश्वमवासृजः॥

कृत्वा तत् कर्म लोकानामृषभः सर्वलोकजित्।
अवधीस्त्वं रणे सर्वान् समेतान् दैत्यदानवान्॥
ततः सर्वेश्वरत्वं च सम्प्रदाय शचीपतेः।
मानुषेषु महाबाहो प्रादुर्भूतोऽसि केशव॥
स त्वं नारायणो भूत्वा हरिरासीः परंतप।
ब्रह्मा सोमश्च सूर्यश्च धर्मो धाता यमोऽनलः॥
वायुर्वैश्रवणो रुद्रः कालः खं पृथिवी दिशः।
अजश्चराचरगुरुः स्रष्टा त्वं पुरुषोत्तम॥
परायणं देवमूर्धा क्रतुभिर्मधुसूदन।
अयजो भूरितेजा वै कृष्णचैत्ररथे वने॥
शतं शतसहस्राणि सुवर्णस्य जनार्दन।
एकैकस्मिंस्तदा यज्ञे परिपूर्णानि भागशः॥
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन।
त्वं विष्णुरिति विख्यात इन्द्रादवरजो विभुः॥
शिशुर्भूत्वा दिवं खं च पृथिवीं च परंतप।
त्रिभिर्विक्रमणैः कृष्ण क्रान्तवानसि तेजसा॥
सम्प्राप्य दिवमाकाशमादित्यस्यन्दने स्थितः।
अत्यरोचश्च भूतात्मन् भास्करं स्वेन तेजसा॥
प्रादुर्भावसहस्रेषु तेषु तेषु त्वया विभो।
अधर्मरुचयः कृष्ण निहताः शतशोऽसुराः॥
सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ।
कृतः क्षेमः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति॥
जारूथ्यामाहुतिः क्राथः शिशुपालो जनैः सह।
जरासंधश्च शैब्यश्च शतधन्वा च निर्जितः॥
तथा पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा।
अवाप्सीर्महिषीं भोज्यां रणे निर्जित्य रुक्मिणम्॥
इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कसेरुमान्।
हतः सौभपतिः शाल्वस्त्वया सौभं च पातितम्॥
एवमेते युधि हता भूयश्चान्याञ्छृणुष्व ह।
इरावत्यां हतो भोजः कार्तवीर्यसमो युधि॥
गोपतिस्तालकेतुश्च त्वया विनिहतावुभौ।
तां च भोगवतीं पुण्यामृषिकान्तां जनार्दन॥
द्वारकामात्मसात् कृत्वा समुद्रं गमयिष्यसि।
न क्रोधो न च मात्सर्यं नानृतं मधुसूदन।
त्वयि तिष्ठति दाशार्ह न नृशंस्यं कुतोऽनृजु॥
आसीनं चैत्यमध्ये त्वां दीप्यमानं स्वतेजसा।
आगम्य ऋषयः सर्वेऽयाचन्ताभयमच्युत॥
युगान्ते सर्वभूतानि संक्षिप्य मधुसूदन।
आत्मनैवात्मसात् कृत्वा जगदासीः परंतप॥
युगादौ तव वार्ष्णेय नाभिपद्मादजायत।
ब्रह्मा चराचरगुरुर्यस्येदं सकलं जगत्॥
तं हन्तुमुद्यतौ घोरौ दानवौ मधुकैटभौ।
तयोर्व्यतिक्रमं दृष्ट्वा क्रुद्धस्य भवतो हरेः॥
ललाटाज्जातवाञ्छम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
इत्थं तावपि देवेशौ त्वच्छरीरसमुद्भवौ॥
त्वन्नियोगकरावेताविति मे नारदोऽब्रवीत्।
तथा नारायण पुरा क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः॥
इष्टवांस्त्वं महासत्रं कृष्ण चैत्ररथे वने।
नैवं परे नापरे वा करिष्यन्ति कृतानि वा॥
यानि कर्माणि देव त्वं बाल एव महाबलः।
कृतवान् पुण्डरीकाक्ष बलदेवसहायवान्।
कैलासभवने चापि ब्राह्मणैर्न्यवसः सह॥
(वन० १२। ११-४३)

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण! पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर आपने यत्रसायंगृह[1] मुनिके रूपमें दस हजार वर्षोंतक विचरण किया है अर्थात् नारायण ऋषिके रूपमें निवास किया है। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! पूर्वकालमें कभी इस धराधाममें अवतीर्ण हो आपने ग्यारह हजार वर्षोंतक केवल जल पीकर रहते हुए पुष्करतीर्थमें निवास किया है। मधुसूदन! आप विशालापुरीके बदरिकाश्रममें दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये केवल वायुका आहार करते हुए सौ वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे हैं। कृष्ण! आप सरस्वती नदीके तटपर उत्तरीय वस्त्रतकका त्याग करके द्वादशवार्षिक यज्ञ करते समय शरीरसे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। आपके सारे शरीरमें फैली हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं। गोविन्द! आप पुण्यात्मा पुरुषोंके निवासयोग्य प्रभास-तीर्थमें जाकर लोगोंको तपमें प्रवृत्त करनेके लिये शौच-संतोषादि नियमोंमें स्थित हो महातेजस्वी स्वरूपसे एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक एक ही पैरसे खड़े रहे। ये सब बातें मुझसे श्रीव्यासजीने बतायी हैं। केशव! आप क्षेत्रज्ञ (सबके आत्मा), सम्पूर्ण भूतोंके आदि और अन्त, तपस्याके अधिष्ठान, यज्ञ और सनातन पुरुष हैं। आप भूमिपुत्र नरकासुरको मारकर अदितिके दोनों मणिमय कुण्डलोंको ले आये थे। एवं आपने ही सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होनेवाले यज्ञके उपयुक्त घोड़ेकी रचना की थी। सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पानेवाले आप लोकेश्वर प्रभुने वह कर्म करके सामना करनेके लिये आये हुए समस्त

[1]—यत्रसायंगृह मुनि वे होते हैं, जो जहाँ सायंकाल हो जाता है, वहीं घरकी तरह रातभर निवास करते हैं।

दैत्यों और दानवोंका युद्धस्थलमें वध किया। महाबाहु केशव! तदनन्तर शचीपतिको सर्वेश्वर-पद प्रदान करके आप इस समय मनुष्योंमें प्रकट हुए हैं। परंतप! पुरुषोत्तम! आप ही पहले नारायण होकर फिर हरि-रूपमें प्रकट हुए। ब्रह्मा, सोम, सूर्य, धर्म, धाता, यम, अनल, वायु, कुबेर, रुद्र, काल, आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, चराचर-गुरु तथा सृष्टिकर्ता एवं अजन्मा आप ही हैं।

मधुसूदन श्रीकृष्ण! आपने चैत्ररथ वनमें अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। आप सबके उत्तम आश्रय, देवशिरोमणि और महातेजस्वी हैं। जनार्दन! उस समय आपने प्रत्येक यज्ञमें पृथक्-पृथक् पूरी एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणाके रूपमें दीं। यदुनन्दन! आप अदितिके पुत्र तथा इन्द्रके छोटे भाई होकर सर्वव्यापी विष्णुके नामसे विख्यात हैं। परंतप श्रीकृष्ण! आपने वामनावतारके समय छोटे-से बालक होकर भी अपने तेजसे तीन डगोंद्वारा द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूलोक—तीनोंको नाप लिया। भूतात्मन्! आपने सूर्यके रथपर स्थित हो द्युलोक और आकाशमें व्याप्त होकर अपने तेजसे भगवान् भास्करको भी अत्यन्त प्रकाशित किया है। विभो! आपने सहस्रों अवतार धारण किये हैं और उन अवतारोंमें सैकड़ों असुरोंका, जो अधर्ममें रुचि रखनेवाले थे, वध किया है। आपने मुर दैत्यके लोहमय पाश काट दिये, निसुन्द और नरकासुरको मार डाला। और प्राग्ज्योतिषपुरका मार्ग पुनः सकुशल यात्रा करने योग्य बना दिया। भगवन्! आपने जारूथी नगरीमें आहुति, क्राथ, साथियोंसहित शिशुपाल, जरासंध, शैब्य और शतधन्वाको परास्त किया। इसी प्रकार मेघके समान घर्घर शब्द करनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी रथके द्वारा (कुण्डिनपुर जाकर) आपने रुक्मीको युद्धमें जीता और भोजवंशकी कन्या रुक्मिणीको अपनी पटरानीके रूपमें प्राप्त किया। प्रभो! आपने क्रोधसे इन्द्रद्युम्नको मारा और यवनजातीय कसेरुमान् एवं सौभपति शाल्वको भी यमलोक पहुँचा दिया। साथ ही शाल्वके सौभ विमानको भी छिन्न-भिन्न करके धरतीपर गिरा दिया। इस प्रकार इन (पूर्वोक्त) राजाओंको आपने युद्धमें मारा है। अब आपके द्वारा मारे हुए औरोंके भी नाम सुनिये। इरावतीके तटपर आपने कार्तवीर्य अर्जुनके सदृश पराक्रमी भोजको युद्धमें मार गिराया। गोपति और तालकेतु—ये दोनों भी आपके ही हाथसे मारे गये। जनार्दन! भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न तथा ऋषि-मुनियोंकी प्रिय अपने अधीन की हुई पुण्यमयी द्वारका नगरीको आप अन्तमें समुद्रमें विलीन कर देंगे।

मधुसूदन! वास्तवमें आपमें न तो क्रोध है, न डाह है, न असत्य है न निर्दयता ही है। दाशार्ह! फिर आपमें कठोरता तो हो ही कैसे सकती है। अच्युत! महलके मध्यभागमें बैठे और अपने तेजसे उद्भासित हुए आपके पास आकर सम्पूर्ण ऋषियोंने अभयकी याचना की। परंतप मधुसूदन! प्रलयकालमें समस्त भूतोंका संहार करके इस जगत्को स्वयं ही अपने भीतर रखकर आप अकेले ही रहते हैं। वार्ष्णेय! सृष्टिके प्रारम्भकालमें आपके नाभिकमलसे चराचरके पिता ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनका रचा हुआ यह सम्पूर्ण जगत् है। (उसी समय) दो भयंकर दानव मधु और कैटभ उनके प्राण लेनेको उद्यत हो गये। उनका यह अत्याचार देखकर क्रोधमें भरे हुए आप श्रीहरिके ललाटसे भगवान् शंकरका प्रादुर्भाव हुआ, जिनके हाथोंमें त्रिशूल शोभा पा रहा था। उनके तीन नेत्र थे। इस प्रकार वे दोनों देवेश्वर ब्रह्मा और शिव आपके ही शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों आपकी ही आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, यह बात मुझे नारदजीने बतलायी थी। नारायण श्रीकृष्ण! इसी प्रकार पूर्वकालमें चैत्ररथ वनके भीतर आपने प्रचुर दक्षिणाओंसे सम्पन्न अनेक यज्ञों तथा महासत्रका अनुष्ठान किया था। भगवान् पुण्डरीकाक्ष! आप महान् बलवान् हैं। बलदेवजी आपके नित्य सहायक हैं। आपने बचपनमें ही जो-जो महान् कर्म किये हैं, उन्हें पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती पुरुषोंने न तो किया है और न करेंगे। आप ब्राह्मणोंके साथ कुछ कालतक कैलास पर्वतपर भी रहे हैं।

एवमुक्त्वा महात्मानमात्मा कृष्णस्य पाण्डवः।
तूष्णीमासीत् ततः पार्थमित्युवाच जनार्दनः॥
ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु॥

नरस्त्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम्।
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी॥
अनन्यः पार्थ मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च।
नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ॥

(वन० १२ । ४४–४७)

वैशम्पायनजी कहते हैं—श्रीकृष्णके आत्मस्वरूप पाण्डुनन्दन अर्जुन उन महात्मासे यों कहकर चुप हो गये । तब भगवान् जनार्दनने कुन्तीकुमारसे इस प्रकार कहा—'पार्थ ! तुम मेरे ही हो, मैं तुम्हारा ही हूँ । जो मेरे हैं, वे तुम्हारे ही हैं । जो तुमसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है । जो तुम्हारे अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है । दुर्धर्ष वीर ! तुम नर हो और मैं नारायण 'श्रीहरि' हूँ । इस समय हम दोनों नर-नारायण ऋषि ही इस लोकमें आये हैं । कुन्तीकुमार ! तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे पृथक् नहीं हूँ । भरतश्रेष्ठ ! हम दोनोंका भेद जाना नहीं जा सकता ।'

यहाँ पुनः व्यासजीने स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे नर-नारायण-तत्त्वकी एकताको स्पष्ट करा दिया है । अस्तु ! इन लोगोंकी बात चल ही रही थी कि इतनेमें पाञ्चालकुमारी कृष्णा वहाँ आ गयी । वस्तुतः कृष्ण-भक्ता कृष्णाके प्रति कौरवसभामें किये गये दुर्व्यवहारसे भगवान् वासुदेवका हृदय बड़ा ही व्यथित हो गया था । वे बहुत क्षुब्ध थे । द्रौपदीको भगवान् वासुदेवका बहुत बड़ा भरोसा था । श्रीकृष्णमें उसकी अनन्य भक्ति थी । एक सम्राट्की धर्मपत्नी कृष्णाका कौरवोंकी सभामें जो अपमान हुआ था, भरी सभामें जो उसको नग्न करनेकी कुचेष्टा दुःशासनने की थी, दुर्योधन और कर्णने जो अपमानजनक शब्दोंसे उसको तिरस्कृत किया था, उससे उस क्षत्राणीका हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा था । वह केवल सम्राज्ञी ही नहीं थी, शक्तिशाली पाञ्चालराजकी एकलौती कन्या थी, अर्जुन और भीम-जैसे वीरोंकी पत्नी थी, धृष्टद्युम्न-जैसे महाधनुर्धरकी भगिनी थी । श्रीकृष्ण उसके सखा और संरक्षक थे । फिर भी द्रौपदीका इतना भयानक अपमान ! क्या भगवान् वासुदेव इसे सहन कर सकते थे ? आनेवाली घटनाओंसे इस प्रश्नका उत्तर मिल जायगा ।

श्रीकृष्णके सामने आते ही द्रौपदी बोली—

ब्रह्मशंकरशक्राद्यैर्दैववृन्दैः पुनः पुनः।
क्रीडसे त्वं नरव्याघ्र बालः क्रीडनकैरिव॥
द्यौश्च ते शिरसा व्याप्ता पद्भ्यां च पृथिवी प्रभो।
जठरं त इमे लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः॥
विद्यातपोऽभितप्तानां तपसा भावितात्मनाम्।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणामसि सत्तमः॥
राजर्षीणां पुण्यकृतामाहवेष्वनिवर्तिनाम्।
सर्वधर्मोपपन्नानां त्वं गतिः पुरुषर्षभ।
त्वं प्रभुस्त्वं विभुश्च त्वं भूतात्मा त्वं विचेष्टसे॥
लोकपालाश्च लोकाश्च नक्षत्राणि दिशो दश।
नभश्चन्द्रश्च सूर्यश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥
मर्त्यता चैव भूतानाममरत्वं दिवौकसाम्।
त्वयि सर्वं महाबाहो लोककार्यं प्रतिष्ठितम्॥

(वन० १२ । ५४–५९)

द्रौपदीने कहा—प्रभो ! ऋषिलोग प्रजासृष्टिके प्रारम्भकालमें एकमात्र आपको ही सम्पूर्ण जगत्का स्रष्टा एवं प्रजापति कहते हैं । महर्षि असित-देवलने यही कहा है । दुर्द्धर्ष मधुसूदन ! आप ही विष्णु हैं, आप ही यज्ञ हैं, आप ही यजमान हैं और आप ही यजन करने योग्य श्रीहरि हैं, जैसा कि जमदग्निनन्दन परशु-रामका कथन है । पुरुषोत्तम ! महर्षिगण आपको क्षमा और सत्यका स्वरूप कहते हैं । कश्यपजीका कहना है कि सत्यसे प्रकट हुए यज्ञ भी आप ही हैं । भूतभावन भूतेश्वर ! आप साध्यदेवताओं तथा कल्याणकारी रुद्रोंके अधीश्वर हैं । नारदजीने आपके विषयमें यही विचार प्रकट किया है । नरश्रेष्ठ ! जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता है, उसी प्रकार आप ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओंसे बारंबार क्रीड़ा करते रहते हैं । प्रभो ! स्वर्गलोक आपके मस्तकसे और पृथ्वी आपके चरणोंसे व्याप्त है । ये सब लोक आपके उदरस्वरूप हैं । आप सनातन पुरुष हैं । विद्या और तपस्यासे सम्पन्न तथा तपके द्वारा शोधित अन्तःकरणवाले आत्मज्ञानसे तृप्त महर्षियोंमें आप ही परम श्रेष्ठ हैं । पुरुषोत्तम ! युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले, सम्पूर्ण धर्मोंसे सम्पन्न पुण्यात्मा

राजर्षियोंके आप ही प्राप्तव्य हैं । आप ही प्रभु (सबके स्वामी), आप ही विभु (सर्वव्यापी), आप ही समस्त प्राणियोंके रूपमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे हैं । लोक, लोकपाल, नक्षत्र, दसों दिशाएँ, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य—सभी आपमें प्रतिष्ठित हैं । महाबाहो ! भूलोकके प्राणियोंकी मृत्युपरवशता, देवताओंकी अमरता तथा सम्पूर्ण जगत्का कार्य सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित है ।

द्रौपदीने रोते हुए फिर कहा—

सा तेऽहं दुःखमाख्यास्ये प्रणयान्मधुसूदन ।
ईशस्त्वं सर्वभूतानां ये दिव्या ये च मानुषाः ॥
कथं नु भार्या पार्थानां तव कृष्ण सखी विभो ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी सभां कृष्येत मादृशी ॥
स्त्रीधर्मिणी वेपमाना शोणितेन समुक्षिता ।
एकवस्त्रा विकृष्टास्मि दुःखिता कुरुसंसदि ॥
राज्ञां मध्ये सभायां तु रजसातिपरिप्लुता ।
दृष्ट्वा च मां धार्तराष्ट्रा प्राहसन् पापचेतसः ॥
दासीभावेन मां भोक्तुमीषुस्ते मधुसूदन ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेषु च वृष्णिषु ॥
नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात् ॥
(वन० १२ । ६०–६५)

'मधुसूदन ! मैं आपके प्रति प्रेम होनेके कारण आपसे अपना दुःख निवेदन करूँगी; क्योंकि दिव्य और मानवजगत्में जितने भी प्राणी हैं, उन सबके ईश्वर आप ही हैं । भगवान् कृष्ण ! मेरी-जैसी स्त्री, जो कुन्तीपुत्रोंकी पत्नी, आपकी सखी और धृष्टद्युम्न-जैसे वीरकी बहिन हो, क्या किसी तरह सभामें (केश पकड़कर) घसीटकर लायी जा सकती है ? मैं रजस्वला थी, मेरे कपड़ोंपर रक्तके छींटे लगे थे, शरीरपर एक ही वस्त्र था और (लज्जा एवं भयसे) मैं थर-थर काँप रही थी । उस दशामें मुझ दुःखिनी अबलाको कौरवोंकी सभामें घसीटकर लाया गया था । भरी सभामें राजाओंकी मण्डलीके बीच अत्यन्त रजस्राव होनेके कारण मैं रक्तसे भीगी जा रही थी । उस अवस्थामें मुझे देखकर धृतराष्ट्रके पापात्मा पुत्रोंने जोर-जोरसे हँसकर मेरी खिल्ली उड़ायी । मधुसूदन ! पाण्डवों, पाञ्चालों और वृष्णिवंशी वीरोंके जीते-जी धृतराष्ट्रके पुत्रोंने दासीभावसे मेरा उपभोग करनेकी इच्छा प्रकट की । श्रीकृष्ण ! मैं धर्मतः भीष्म और धृतराष्ट्र दोनोंकी पुत्रवधू हूँ, तो भी (उनके सामने ही) बलपूर्वक दासी बनायी गयी ।' द्रौपदी अत्यन्त आर्त हो गयी और फिर बोली—

कचग्रहमनुप्राप्ता सास्मि कृष्ण वरा सती ।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां प्रेक्षतां मधुसूदन ॥
(वन० १२ । १२१)

'हे मधुसूदन ! हे कृष्ण ! मैं श्रेष्ठ और सती-साध्वी होती हुई भी पाँचों पाण्डवोंके देखते-देखते केश पकड़कर घसीटी गयी ।'

—इतना कहकर पाञ्चाली कान्तिमान् तथा कोमल हाथोंसे मुँह ढककर फूट-फूटकर रोने लगी । क्रोधावेशमें बार-बार सिसकती और आँसू पोंछती हुई फिर बोली—

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न च बान्धवाः ।
न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन ॥
(वन० १२ । १२५)

'हे मधुसूदन ! मेरे लिये न पति हैं न पुत्र हैं, न बन्धु हैं न भाई हैं, न पिता हैं और न तुम हो !'

द्रौपदीको इस प्रकार कौरवोंके अपमानसे मर्माहत देखकर भक्तवत्सल भगवान् वासुदेवका हृदय द्रवित हो उठा । वे बोले—'कृष्णे ! तुम्हारे साथ जिन्होंने ऐसा दुर्व्यवहार किया है, उनकी भी स्त्रियाँ अपने पतियोंको अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न, रक्तसे आप्लुत पृथ्वीपर पड़ा देखकर रोयेंगी । शोक न करो, मैं पाण्डवोंके लिये सब कुछ कर सकता हूँ । कृष्णे ! आसमान फट जाय, हिमालय विदीर्ण हो जाय, पृथ्वी टुकड़ी-टुकड़ी हो जाय, समुद्र सूख जाय—पर मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम पुनः महारानी बनोगी ।' अर्जुनने इसका समर्थन करते हुए कहा—'सुभगे ! मत रोओ । भगवान् मधुसूदन जो कह रहे हैं, वह अवश्य होकर रहेगा ।' धृष्टद्युम्नने कहा—'बहिन ! मैं द्रोणको मारूँगा, शिखण्डी भीष्मका वध करेंगे, भीमसेन दुर्योधनको मार गिरायेंगे और अर्जुन कर्णको यमलोक भेज देंगे ।'

—इस प्रकार आगे होनेवाले महाभारतके युद्धके परिणामको भगवान् मधुसूदनने धृष्टद्युम्नके मुखसे कहला

कर अपनी प्रिय सखी कृष्णाके दग्ध हृदयको मानो अमृत-वारिसे सिञ्चित कर दिया। पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'शिशुपालकी मृत्युके बाद उसका भाई शाल्व अपने भाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिये द्वारकापर अपनी महती सेना लेकर चढ़ आया। मैं उसीसे युद्ध करता रहा। वह बड़ा पराक्रमी था, सैन्यशक्ति भी उसकी बढ़ी-चढ़ी थी। इसलिये युद्धमें उसको परास्त करके उसका वध करनेमें बहुत समय लग गया। इस युद्धमें फँसे रहनेके कारण ही मैं हस्तिनापुर न आ सका। नहीं तो निमन्त्रणके बिना भी मैं वहाँ आता और आपको जुआ खेलनेसे रोकता।'

भगवान्के शब्द सुनकर द्रौपदीका चित्त शान्त हो गया।

मार्कण्डेयजीके द्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन

वनमें धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर महामुनि मार्कण्डेयजीने भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका गान करते हुए कहा—

हन्त ते वर्णयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायाव्ययायच॥
अव्यक्ताय सुसूक्ष्माय निर्गुणाय गुणात्मने।
स एष पुरुषव्याघ्र पीतवासा जनार्दनः॥
एष कर्ता विकर्ता च भूतात्मा भूतकृत् प्रभुः।
अचिन्त्यं महदाश्चर्यं पवित्रमिति चोच्यते॥
अनादिनिधनं भूतं विश्वमव्ययमक्षयम्।
एष कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे॥
यद्येष पुरुषो वेद वेदा अपि न तं विदुः।
सर्वमाश्चर्यमेवैतन्निर्वृत्तं राजसत्तम॥
आदितो मनुजव्याघ्र कृत्स्नस्य जगतः क्षये।
(वन० १८८। १७—२१½)

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! मैं स्वयं प्रकट होनेवाले सनातन, अविनाशी, अव्यक्त, अत्यन्त सूक्ष्म, निर्गुण एवं गुणस्वरूप पुराणपुरुषको नमस्कार करके तुम्हें वह कथा (अभी) सुनाता हूँ। पुरुषसिंह! ये जो हमलोगोंके पास बैठे हुए पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन हैं, ये ही संसारकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। ये ही भगवान् समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मा और उनके रचयिता हैं। ये पवित्र, अचिन्त्य एवं महान् आश्चर्यमय तत्त्व कहे जाते हैं। इनका न आदि है न अन्त। ये सर्वभूत-स्वरूप, अव्यय और अक्षय हैं। ये ही सबके कर्ता हैं, इनका कोई कर्ता नहीं है। पुरुषार्थकी प्राप्तिमें भी ये ही कारण हैं। ये अन्तर्यामी आत्मा होनेसे सबको जानते हैं, परंतु इन्हें वेद भी नहीं जानते। नृपशिरोमणे! पुरुषश्रेष्ठ! सम्पूर्ण जगत्का प्रलय होनेके पश्चात् इन आदिभूत परमेश्वरसे ही यह सम्पूर्ण आश्चर्यमय जगत् पुनः उत्पन्न हो जाता है।

तदनन्तर मार्कण्डेयजीने प्राचीन इतिहास सुनाया—

एकार्णवे जले घोरे विचरन् पार्थिवोत्तम।
अपश्यन् सर्वभूतानि वैक्लव्यमगमं ततः॥
ततः सुदीर्घं गत्वाहं प्लवमानो नराधिप।
श्रान्तः क्वचिन्न शरणं लभाम्यहमतन्द्रितः॥
ततः कदाचित् पश्यामि तस्मिन् सलिलसंचये।
न्यग्रोधं सुमहान्तं वै विशालं पृथिवीपते॥
शाखायां तस्य वृक्षस्य विस्तीर्णायां नराधिप।
पर्यङ्के पृथिवीपाल दिव्यास्तरणसंस्तृते॥
उपविष्टं महाराज पद्मेन्दुसदृशाननम्।
फुल्लपद्मविशालाक्षं बालं पश्यामि भारत॥
ततो मे पृथिवीपाल विस्मयः सुमहानभूत्।
कथं त्वयं शिशुः शेते लोके नाशमुपागते॥
तपसा चिन्तयंश्चापि तं शिशुं नोपलक्षये।
भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि नराधिप॥
अतसीपुष्पवर्णाभः श्रीवत्सकृतभूषणः।
साक्षाल्लक्ष्म्या इवावासः स तदा प्रतिभाति मे॥
ततो मामब्रवीद् बालः स पद्मनिभलोचनः।
श्रीवत्सधारी द्युतिमान् वाक्यं श्रुतिसुखावहम्॥
जानामि त्वां परिश्रान्तं ततो विश्रामकाङ्क्षिणम्।
मार्कण्डेय इहास्स्व त्वं यावदिच्छसि भार्गव॥
अभ्यन्तरं शरीरे मे प्रविश्य मुनिसत्तम।
आस्स्व भो विहितो वासः प्रसादस्ते कृतो मया॥
ततो बालेन तेनैवमुक्तस्यासीत् तदा मम।
निर्वेदो जीविते दीर्घे मनुष्यत्वे च भारत॥
ततो बालेन तेनास्यं सहसा विवृतं कृतम्।
तस्याहमवशो वक्त्रे दैवयोगात् प्रवेशितः॥
ततः प्रविष्टस्तत्कुक्षिं सहसा मनुजाधिप।
सराष्ट्रनगराकीर्णां कृत्स्नां पश्यामि मेदिनीम्॥
गङ्गां शतद्रुं सीतां च यमुनामथ कौशिकीम्।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं चन्द्रभागां सरस्वतीम्॥
सिन्धुं चैव विपाशां च नदीं गोदावरीमपि।
वस्वोकसारां नलिनीं नर्मदां चैव भारत॥

नदीं ताम्रां च वेणां च पुण्यतोयां शुभावहाम् ।
सुवेणां कृष्णवेणां च इरामां च महानदीम् ॥
वितस्तां च महाराज कावेरीं च महानदीम् ।
शोणं च पुरुषव्याघ्र विशल्यां किम्पुनामपि ॥
एताश्चान्याश्च नद्योऽहं पृथिव्यां या नरोत्तम ।
परिक्रामन् प्रपश्यामि तस्य कुक्षौ महात्मनः ॥
ततः समुद्रं पश्यामि यादोगणनिषेवितम् ।
रत्नाकरममित्रघ्न पयसो निधिमुत्तमम् ॥
तत्र पश्यामि गगनं चन्द्रसूर्यविराजितम् ।
जाज्वल्यमानं तेजोभिः पावकार्कसमप्रभम् ॥
पश्यामि च महीं राजन् काननैरुपशोभिताम् ।
(सपर्वतवनद्वीपां निमग्नाशतसंकुलाम् ।)
यजन्ते हि तदा राजन् ब्राह्मणा बहुभिर्मखैः ॥
क्षत्रियाश्च प्रवर्तन्ते सर्ववर्णानुरञ्जनैः ।
वैश्याः कृषिं यथान्यायं कारयन्ति नराधिप ॥
शुश्रूषायां च निरता द्विजानां वृषलास्तदा ।
ततः परिपतन् राजंस्तस्य कुक्षौ महात्मनः ॥
हिमवन्तं च पश्यामि हेमकूटं च पर्वतम् ।
निषधं चापि पश्यामि श्वेतं च रजतान्वितम् ॥
पश्यामि च महीपाल पर्वतं गन्धमादनम् ।
मन्दरं मनुजव्याघ नीलं चापि महागिरिम् ॥
पश्यामि च महाराज मेरुं कनकपर्वतम् ।
महेन्द्रं चैव पश्यामि विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् ॥
मलयं चापि पश्यामि पारियात्रं च पर्वतम् ।
एते चान्ये च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः ॥
तस्योदरे मया दृष्टाः सर्वे रत्नविभूषिताः ।
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च पश्यामि मनुजाधिप ॥
पृथिव्यां यानि चान्यानि सत्त्वानि जगतीपते ।
तानि सर्वाण्यहं तत्र पश्यन् पर्यचरं तदा ॥
कुक्षौ तस्य नरव्याघ्र प्रविष्टः संचरन् दिशः ।
शक्रादींश्चापि पश्यामि कृत्स्नान् देवगणानहम् ॥
साध्यान् रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान् गुह्यकान् पितरस्तदा ।
सर्पान् नागान् सुपर्णांश्च वसूनप्यश्विनावपि ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृषींश्चैव महीपते ।
दैत्यदानवसङ्घांश्च नागांश्च मनुजाधिप ॥
सिंहिकातनयांश्चापि ये चान्ये सुरशत्रवः ।
यच्च किंचिन्मया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥
सर्वं पश्याम्यहं राजंस्तस्य कुक्षौ महात्मनः ।
चरमाणः फलाहारः कृत्स्नं जगदिदं विभो ॥
अन्तःशरीरे तस्याहं वर्षाणामधिकं शतम् ।
न च पश्यामि तस्याहं देहस्यान्तं कदाचन ॥
सततं धावमानश्च चिन्तयानो विशाम्पते ।
(भ्रमंस्तत्र महीपाल यदा वर्षगणान् बहून् ।)
आसादयामि नैवान्तं तस्य राजन् महात्मनः ॥
ततस्तमेव शरणं गतोऽस्मि विधिवत् तदा ।
वरेण्यं वरदं देवं मनसा कर्मणैव च ॥
ततोऽहं सहसा राजन् वायुवेगेन निस्सृतः ।
महात्मनो मुखात् तस्य विवृतात् पुरुषोत्तम ॥
ततस्तस्यैव शाखायां न्यग्रोधस्य विशाम्पते ।
आस्ते मनुजशार्दूल कृत्स्नमादाय वै जगत् ॥
तेनैव बालवेषेण श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।
आसीनं तं नरव्याघ्र पश्याम्यमिततेजसम् ॥
ततो मामब्रवीद् बालः स प्रीतः प्रहसन्निव ।
श्रीवत्सधारी द्युतिमान् पीतवासा महाद्युतिः ॥
अपीदानीं शरीरेऽस्मिन् मामके मुनिसत्तम ।
उषितस्त्वं सुविश्रान्तो मार्कण्डेय ब्रवीहि मे ॥
मुहूर्तादथ मे दृष्टिः प्रादुर्भूता पुनर्नवा ।
यया निर्मुक्तमात्मानमपश्यं लब्धचेतसम् ॥
तस्य ताम्रतलौ तात चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
सुजातौ मृदुरक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजितौ ॥
प्रयत्नेन मया मूर्ध्ना गृहीत्वा ह्यभिवन्दितौ ।
दृष्ट्वा परिमितं तस्य प्रभावममितौजसः ॥
विनयेनाञ्जलिं कृत्वा प्रयत्नेनोपगम्य ह ।
दृष्टो मया स भूतात्मा देवः कमललोचनः ॥
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्येदमब्रुवम् ।
ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां चैतां तवोत्तमाम् ॥
आस्येनानुप्रविष्टोऽहं शरीरे भगवंस्तव ।
दृष्टवानखिलान् सर्वान् समस्ताञ्जठरे हि ते ॥
तव देव शरीरस्था देवदानवराक्षसाः ।
यक्षगन्धर्वनागाश्च जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥
त्वत्प्रसादाच्च मे देव स्मृतिर्न परिहीयते ।
द्रुतमन्तःशरीरे ते सततं परिवर्तिनः ॥
निर्गतोऽहमकामस्तु इच्छया ते महाप्रभो ।
इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वाहमनिन्दितम् ॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात् किं भवानवतिष्ठते ।
पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥
किमर्थं च जगत् सर्वं शरीरस्थं तवानघ ।
कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥
एतदिच्छामि देवेश श्रोतुं ब्राह्मणकाम्यया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महद्ध्येतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान् प्रभो ।
इत्युक्तः स मया श्रीमान् देवदेवो महाद्युतिः ।
सान्त्वयन् मामिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥

(वन १८८ । ८८—१४३)

"नृपश्रेष्ठ ! एकार्णवके उस भयंकर जलमें विचरते

हुए जब मैंने किसी भी प्राणीको नहीं देखा, तब मुझे बड़ी व्याकुलता हुई। नरेश्वर ! उस समय आलस्यशून्य होकर सुदीर्घकालतक तैरता हुआ मैं दूर जाकर बहुत थक गया। परंतु कहीं भी मुझे कोई आश्रय नहीं मिला। राजन्! तदनन्तर एक दिन एकार्णवकी उस (अगाध) जलराशिमें मैंने एक बहुत विशाल बरगदका वृक्ष देखा। नराधिप ! उस वृक्षकी चौड़ी शाखापर एक पलंग था, जिसके ऊपर दिव्य बिछौने बिछे हुए थे। महाराज ! उस पलंगपर एक सुन्दर बालक बैठा हुआ दिखायी दिया, जिसका मुख कमलके समान कमनीय शोभा धारण करनेवाला तथा चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था। उसके नेत्र प्रफुल्ल पद्मदलके समान विशाल थे। पृथ्वीनाथ ! उसे देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैं सोचने लगा—'सारे संसारके नष्ट हो जानेपर भी यह बालक यहाँ कैसे सो रहा है ?' नरेश्वर ! मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञाता होनेपर भी तपस्यासे भलीभाँति चिन्तन करता (ध्यान लगाता) रहा; तो भी उस शिशुके विषयमें कुछ न जान सका। उसकी अङ्गकान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्स-चिह्नसे विभूषित था। वह उस समय मुझे साक्षात् लक्ष्मीका निवासस्थान-सा प्रतीत होता था। (मुझे विस्मयमें पड़ा देख) कमलके समान नेत्रवाले उस श्रीवत्सधारी कान्तिमान् बालकने मुझसे इस प्रकार श्रवण-सुखद वचन कहा —

"भृगुवंशी मार्कण्डेय ! मैं जानता हूँ कि तुम बहुत थक गये हो और विश्राम चाहते हो। तुम्हारी जबतक इच्छा हो यहाँ बैठो। मुनिश्रेष्ठ ! मैंने तुमपर कृपा की है। तुम मेरे शरीरके भीतर प्रवेश करके विश्राम करो। वहाँ तुम्हारे रहनेके लिये व्यवस्था की गयी है।' उस बालकके यों कहनेपर उस समय मुझे अपने दीर्घजीवन और मानव-शरीरपर बड़ा खेद और वैराग्य हुआ। तदनन्तर उस बालकने सहसा अपना मुख खोला और मैं दैवयोगसे परवशकी भाँति उसमें प्रवेश कर गया। राजन् ! उसमें प्रवेश करते ही मैं सहसा उस बालकके उदरमें जा पहुँचा। वहाँ मुझे समस्त राष्ट्रों और नगरोंसे भरी हुई यह सारी पृथ्वी दिखायी दी। नरश्रेष्ठ ! फिर तो मैं उस महात्मा बालकके उदरमें घूमने लगा। घूमते हुए मैंने वहाँ गङ्गा, सतलज, सीता, यमुना, कोसी, चम्बल, वेत्रवती, (बेतवा), चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, व्यास, गोदावरी, वस्वोकसारा, नलिनी, नर्मदा, ताम्रपर्णी, वेणा, शुभदायिनी पुण्यतोया, सुवेणा, और ऊँचा कृष्णवेणा, महानदी इरामा, वितस्ता (झेलम), महानदी कावेरी, शोणभद्र, विशल्या तथा किम्पुना—इन सबको तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य नदियाँ हैं, उनको भी देखा। शत्रुसूदन ! इसके बाद जल-जन्तुओंसे भरे हुए अगाध जलके भंडार परम उत्तम रत्नाकर समुद्रको भी देखा। वहीं मुझे चन्द्रमा और सूर्यसे सुशोभित आकाशमण्डल दिखायी दिया, जो अनन्त तेजसे प्रज्वलित तथा अग्नि एवं सूर्यके समान देदीप्यमान था। राजन् ! वहाँकी भूमि विविध काननोंसे सुशोभित, पर्वत, वन और द्वीपोंसे उपलक्षित तथा सैकड़ों सरिताओंसे संयुक्त दिखायी देती थी। ब्राह्मण-लोग नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते थे। नरेश्वर ! क्षत्रिय राजा सब वर्णोंकी प्रजाका अनुरञ्जन करते—सबको सुखी और प्रसन्न रखते थे। वैश्य न्यायपूर्वक खेतीका काम और व्यापार करते थे। शूद्र तीनों द्विजातियोंकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते थे। राजन् ! (यह सब देखते हुए) जब मैं उस महात्मा बालकके उदरमें भ्रमण करता आगे बढ़ा, तब हिमालय, हेमकूट, निषध, रजतयुक्त श्वेतगिरि, गन्धमादन, मन्दराचल, महागिरि नील, सुवर्णमय पर्वत सुमेरु, महेन्द्र, उत्तम विन्ध्यगिरि, मलय तथा पारियात्र पर्वत देखे। ये तथा और भी बहुत-से पर्वत मुझे उस बालकके उदरमें दिखायी दिये। वे सब-के-सब नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित थे। राजन् ! वहाँ घूमते हुए मैंने सिंह, व्याघ्र और वाराह आदि पशु भी देखे। पृथ्वीपते ! भूमण्डलमें जितने प्राणी हैं, उन सबको देखते हुए मैं उस समय उस बालकके उदरमें विचरता रहा। नरश्रेष्ठ ! उस शिशुके उदरमें प्रविष्ट हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भ्रमण करते हुए मुझे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंके भी दर्शन हुए। पृथ्वीपते ! साध्य, रुद्र, आदित्य,

गुह्यक, पितर, सर्प, नाग, सुपर्ण, (आठो)वसु, दोनों अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष तथा ऋषियोंका भी मैंने दर्शन किया । दैत्य-दानव-समूह, नाग, सिंहिकाके पुत्र(राहु आदि) तथा अन्य देवशत्रुओंको भी देखा । राजन् ! इस लोकमें मैंने जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम पदार्थ देखे थे, वे सब मुझे उस महात्माकी कुक्षिमें दृष्टिगोचर हुए । महाराज ! मैं प्रतिदिन फलाहार करता और इस सम्पूर्ण जगत्में घूमता रहता । उस बालकके शरीरके भीतर मैं सौ वर्षसे अधिक कालतक घूमता रहा, तो भी कभी उसके शरीरका अन्त नहीं दिखायी दिया । युधिष्ठिर ! मैं निरन्तर दौड़ लगाता और चिन्तामें पड़ा रहता था । महाराज ! जब बहुत वर्षोंतक भ्रमण करनेपर भी उस महात्माके शरीरका अन्त नहीं मिला, तब मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा उन वरदायक एवं वरेण्य देवताकी ही विधिपूर्वक शरण ली । पुरुषरत्न युधिष्ठिर ! उनकी शरण लेते ही मैं वायुके समान वेगसे उक्त महात्मा बालकके खुले हुए मुखकी राहसे सहसा बाहर निकल आया ।

'नरश्रेष्ठ राजन् ! बाहर आकर देखा कि उसी बरगदकी शाखापर उसी बालवेषसे सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें लेकर श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित वह अमित तेजस्वी बालक (पूर्ववत्) बैठा हुआ है । तब महातेजस्वी पीताम्बरधारी श्रीवत्सभूषित कान्तिमान् उस बालकने प्रसन्न होकर मानो हँसते हुए मुझसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय ! क्या तुम मेरे इस शरीरमें रहकर विश्राम कर चुके? मुझे बताओ।' फिर (तो)दो ही घड़ीमें मुझे एक नवीन दृष्टि प्राप्त हुई, जिससे मैं अपने आपको मायासे मुक्त और सचेत अनुभव करने लगा । तात ! तदनन्तर मैंने कोमल और लाल रंगकी अँगुलियोंसे सुशोभित लाल-लाल तलवेवाले उस बालकके सुन्दर एवं सुप्रतिष्ठित चरणोंको प्रयत्नपूर्वक पकड़कर उन्हें अपने मस्तकसे प्रणाम किया । उस अमित-तेजस्वी शिशुका अनन्त प्रभाव देखकर मैं यत्नपूर्वक उसके समीप गया और विनीतभावसे हाथ जोड़कर सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा उस कमलनयन देवताका दर्शन किया । फिर हाथ जोड़े नमस्कार करके मैंने उससे इस प्रकार कहा—

'देव ! मैं आपको और आपकी इस उत्तम मायाको जानना चाहता हूँ । भगवन् ! मैंने आपके मुखकी राहसे शरीरमें प्रवेश करके आपके उदरमें समस्त सांसारिक पदार्थोंका अवलोकन किया है । देव ! आपके शरीरमें देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नाग तथा समस्त स्थावर-जङ्गमरूप जगत् विद्यमान है । प्रभो ! आपकी कृपासे आपके शरीरके भीतर निरन्तर शीघ्र गतिसे घूमते रहनेपर भी मेरी स्मरणशक्ति नष्ट नहीं हुई है । महाप्रभो ! मैं अपनी अभिलाषा न रहनेपर भी केवल आपकी इच्छासे बाहर निकल आया हूँ । कमलनयन ! आप सर्वगुणसम्पन्न देवताको मैं जानना चाहता हूँ । आप इस सम्पूर्ण जगत्को उदरस्थ करके यहाँ साक्षात् बालकवेषमें क्यों विराजमान हैं ? यह सब बतानेकी कृपा करें । अनघ ! यह सारा संसार आपके शरीरमें किसलिये स्थित है ? शत्रुदमन ! आप कितने समयतक यहाँ इस रूपमें रहेंगे ? देवेश्वर ! कमलनयन ! ब्राह्मणमें जो सहज जिज्ञासा होती है, उससे प्रेरित होकर मैं आपसे ये सब बातें यथार्थरूपमें विस्तारसे सुनना चाहता हूँ । प्रभो ! मैंने जो कुछ देखा है, यह अगाध और अचिन्त्य है ।'

मेरे इस प्रकार पूछनेपर वे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी देवाधिदेव श्रीभगवान् मुझे सान्त्वना देते हुए इस प्रकार बोले—

देव उवाच

कामं देवा अपि न मां विप्र जानन्ति तत्त्वतः ।
त्वत्प्रीत्या तु प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मां चैव शरणं गतः ।
ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद् ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥
अपां नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया ।
तेन नारायणोऽप्युक्तो मम तत् त्वयनं सदा ॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः ।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चाहं सुराधिपः ।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपोऽथ प्रजापतिः ।
अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने ।
द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथापः स्वेदसम्भवाः ॥

सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः।
मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः॥
यजन्ते वेदविदुषो मां देवयजने स्थितम्।
पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषया।
चतुस्समुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम्॥
शेषो भूत्वाहमेवैतां धारयामि वसुन्धराम्।
वाराहं रूपमास्थाय मयेयं जगती पुरा॥
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणासीत् समुद्धृता।
अग्निश्च वडवावक्त्रो भूत्वाहं द्विजसत्तम॥
पिबाम्यपः सदा विद्वंस्ताश्चैवं विसृजाम्यहम्।
ब्रह्मवक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संस्थिता विशः॥
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च।
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वणः॥
मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च।
यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निस्सङ्गा वीतकल्मषाः।
सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते।
अहं संवर्तको वह्निरहं संवर्तकोऽनलः॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः।
तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम।
रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशम्॥
वसनं शयनं चैव विलयं चैव विद्धि मे।
मयैव सुविभक्तास्ते देवकार्यार्थसिद्धये॥
कामं क्रोधं च हर्षं च भयं मोहं तथैव च।
ममैव विद्धि रोमाणि सर्वाण्येतानि सत्तम॥
प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत् कृत्वा कर्म शोभनम्।
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसा चैव जन्तुषु॥
मद्विधानेन विहिता मम देहविहारिणः।
मयाऽऽविभूतविज्ञाना विचेष्टन्ते न कामतः॥
सम्यग् वेदमधीयाना यजन्ते विविधैर्मखैः।
शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः॥
प्राप्तुं न शक्यो यो विद्वन् नरैर्दुष्कृतकर्मभिः।
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः॥
तं मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम्।
सुदुष्प्रापं विमूढानां मार्गं योगैर्निषेवितम्॥
यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः।
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन् यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः॥
तदाहं सम्प्रसूयामि गृहेषु शुभकर्मणाम्।

प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम्॥
सृष्ट्वा देवमनुष्यांस्तु गन्धर्वोरगराक्षसान्।
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया॥
कर्मकाले पुनर्देहमविचिन्त्यं सृजाम्यहम्।
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात्॥
श्वेतः कृतयुगे वर्णः पीतस्त्रेतायुगे मम।
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा॥
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन् काले भवन्ति च।
अन्तकाले च सम्प्राप्ते कालो भूत्वातिदारुणः॥
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम्।
अहं त्रिवर्त्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः॥
आविर्भूः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः।
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मन्नहमरूपकम्॥
शमनं सर्वभूतानां सर्वलोककृतोद्यमम्।
एवं प्रणिहितः सम्यङ् ममात्मा मुनिसत्तम।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन॥
सर्वलोके च मां भक्ता पूजयन्ति च सर्वशः।
यच्च किंचित् त्वया प्राप्तं मयि क्लेशात्मकं द्विज॥
सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ।
यच्च किंचित् त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम्॥
विहितः सर्वथैवासौ ममात्मा भूतभावनः।
अर्धं मम शरीरस्य सर्वलोकपितामहः॥
अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः।
यावद् युगानां विप्रर्षे सहस्रपरिवर्तनात्।
तावत् स्वपिमि विश्वात्मा सर्वभूतानि मोहयन्।
एवं सर्वमहं कालमिहासे मुनिसत्तम॥
अशिशुः शिशुरूपेण यावद् ब्रह्मा न बुध्यते।
मया च दत्तो विप्राग्र्य वरस्ते ब्रह्मरूपिणा॥
असकृत् परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित।
सर्वमेकार्णवं दृष्ट्वा नष्टं स्थावरजङ्गमम्॥
विक्लवोऽसि मया ज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत्।
अभ्यन्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम॥
दृष्ट्वा लोकं समस्तं च विस्मितो नावबुध्यसे।
ततोऽसि वक्त्राद् विप्रर्षे द्रुतं निस्सारितो मया॥
आख्यातस्ते मया चात्मा दुर्ज्ञेयो हि सुरासुरैः।
यावत् स भगवान् ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः॥
तावत् त्वमिह विप्रर्षे विश्रब्धश्चर वै सुखम्॥
ततो विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे।
एकीभूतो हि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम॥
आकाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुं सलिलमेव च।
लोके यच्च भवेच्छेषमिह स्थावरजङ्गमम्॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हितस्तात स देवः परमाद्भुतः।
प्रजाश्चेमाः प्रपश्यामि विचित्रा विविधाः कृताः॥

एवं दृष्टं मया राजंस्तस्मिन् प्राप्ते युगक्षये।
आश्चर्यं भरतश्रेष्ठ सर्वधर्मभृतां वर ॥
यः स देवो मया दृष्टः पुरा पद्मायतेक्षणः।
स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः ॥
अस्यैव वरदानाद्धि स्मृतिर्न प्रजहाति माम्।
दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं मम ॥
स एष कृष्णो वार्ष्णेय पुराणपुरुषो विभुः।
आस्ते हरिरचिन्त्यात्मा क्रीडन्निव महाभुजः ॥
एष धाता विधाता च संहर्ता चैव शाश्वतः।
श्रीवत्सवक्षा गोविन्दः प्रजापतिपतिः प्रभुः ॥
दृष्ट्वेमं वृष्णिप्रवरं स्मृतिर्मामियमागता।
आदिदेवमयं जिष्णुं पुरुषं पीतवाससम् ॥
सर्वेषामेव भूतानां पिता माता च माधवः।
गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यं कौरवर्षभाः ॥
(वन० १८९ । १–५७)

भगवान् बोले—"विप्रवर ! देवता भी मेरे स्वरूपको यथेष्ट और यथार्थरूपसे नहीं जानते । मैं जिस प्रकार इस जगत्की रचना करता हूँ, वह तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हें बताऊँगा । ब्रह्मर्षे ! तुम पितृभक्त हो, मेरी शरणमें आये हो और मैंने महान् ब्रह्मचर्यका पालन किया है । इन्हीं सब कारणोंसे तुम्हें मेरे साक्षात् स्वरूपका दर्शन हुआ । पूर्वकालमें मैंने ही जलका 'नारा' नाम रखा था । वह 'नारा' सदा मेरा अयन (वासस्थान) है, इसलिये मैं 'नारायण' नामसे विख्यात हूँ । मैं नारायण ही सबकी उत्पत्तिका कारण, सनातन और अविनाशी हूँ । द्विजश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि और संहार करनेवाला भी मैं ही हूँ । मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही देवराज इन्द्र हूँ और मैं ही राजा कुबेर तथा प्रेतराज यम हूँ । विप्रवर ! मैं ही शिव, चन्द्रमा, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ हूँ । अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी चरण स्थानीया है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं । द्युलोक मेरा मस्तक है, आकाश और दिशाएँ मेरे कान हैं तथा जल मेरे शरीरके पसीनेसे प्रकट हुआ है । दिशाओंसहित आकाश मेरा शरीर है । वायु मेरे मनमें स्थित है । मैंने पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त सैकड़ों यज्ञोंद्वारा यजन किया है । वेदवेत्ता ब्राह्मण देवयज्ञमें स्थित मुझ यज्ञ पुरुषका यजन करते हैं । पृथ्वीका पालन करनेवाले क्षत्रिय नरेश स्वर्ग-प्राप्तिकी अभिलाषासे इस भूतलपर यज्ञोंद्वारा मेरा यजन करते हैं । इसी प्रकार वैश्य भी स्वर्गलोकपर विजय पानेकी इच्छासे मेरी सेवा-पूजा करते हैं । मैं ही शेषनाग होकर मेरु-मन्दरसे विभूषित तथा चारों समुद्रोंसे घिरी हुई इस वसुन्धराको अपने सिरपर धारण करता हूँ ।

"विप्रवर ! पूर्वकालमें जब यह पृथ्वी जलमें डूब गयी थी, उस समय मैंने ही वाराहरूप धारण करके इसे बलपूर्वक जलसे बाहर निकाला था । विद्वन् ! मैं ही बड़वामुख अग्नि होकर सदा समुद्रके जलको पीता रहता हूँ और फिर उस जलको बरसा देता हूँ । ब्राह्मण मेरा मुख है, क्षत्रिय दोनों भुजाएँ हैं और वैश्य मेरी दोनों जाँघोंके रूपमें स्थित हैं । ये शूद्र मेरे दोनों चरण हैं । मेरी शक्तिसे क्रमशः इनका प्रादुर्भाव हुआ है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये मुझसे ही प्रकट होते और मुझमें ही लीन हो जाते हैं । शान्तिपरायण, संयमी, जिज्ञासु, काम-क्रोध-द्वेषरहित, आसक्तिशून्य, निष्पाप, सात्त्विक, नित्य अहंकारशून्य तथा अध्यात्म-ज्ञानकुशल यति एवं ब्राह्मण सदा मेरा ही चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं । मैं ही संवर्तक (प्रलयका कारण) वह्नि हूँ । मैं ही संवर्तक अनल हूँ । मैं ही संवर्तक सूर्य हूँ और मैं ही संवर्तक वायु हूँ । द्विजश्रेष्ठ ! आकाशमें ये जो तारे दिखायी देते हैं, उन सबको मेरे ही रोमकूप समझो ! रत्नोंके भंडाररूप सम्पूर्ण समुद्र और चारों दिशाओंको मेरे वस्त्र, शय्या और निवासस्थान जानो । मैंने ही देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये उनकी पृथक्-पृथक् रचना की है । साधुशिरोमणे ! काम, क्रोध, हर्ष, भय और मोह—इन सभी विकारोंको मेरी ही रोमावली समझो । ब्रह्मन् ! जिन शुभ कर्मोंके आचरणसे मनुष्यको कल्याणकी प्राप्ति होती है, वे सत्य, दान, उग्र तपस्या और किसी भी प्राणीकी हिंसा न करनेका स्वभाव—ये सब मेरे ही विधानसे निर्मित हुए हैं और मेरे ही शरीरमें विहार करते हैं । मैं समस्त प्राणियोंके ज्ञानको जब प्रकट कर देता हूँ, तभी वे चेष्टाशील होते हैं; अन्यथा अपनी इच्छासे वे कुछ नहीं कर सकते ।

"जो द्विजाति अच्छी तरह वेदोंका अध्ययन करके शान्तचित्त और क्रोधशून्य होकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा

मेरी आराधना करते हैं, उन्हींको मेरी प्राप्ति होती है। विद्वन्! पापकर्मा, लोभी, कृपण, अनार्य और अजितात्मा मनुष्य जिसे कभी नहीं पा सकते, वह महान् फल मुझे ही समझो। मैं ही शुद्ध अन्तःकरणवाले मानवोंको सुलभ होनेवाला योगियोंद्वारा सेवित मार्ग हूँ। मूढ़ मनुष्योंके लिये मैं सर्वथा दुर्लभ हूँ। महर्षे! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ। जब हिंसाप्रेमी दैत्य श्रेष्ठ देवताओंके लिये अवध्य हो जाते हैं तथा भयानक राक्षस जब इस संसारमें उत्पन्न हो अत्याचार करने लगते हैं, तब मैं पुण्यात्मा पुरुषोंके घरोंपर मानवशरीरमें प्रविष्ट होकर प्रकट होता हूँ और उन दैत्यों एवं राक्षसोंका सारा उपद्रव शान्त कर देता हूँ। मैं ही अपनी मायासे देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस तथा स्थावर प्राणियोंकी सृष्टि करके समय आनेपर पुनः उनका संहार कर डालता हूँ। फिर सृष्टि-रचनाके समय मैं अचिन्त्यस्वरूप धारण करता हूँ तथा मर्यादाकी स्थापना एवं रक्षाके लिये मानव-शरीरसे अवतार लेता हूँ। सत्ययुगमें मेरे शरीरका रंग श्वेत, त्रेता-में पीला, द्वापरमें लाल और कलियुगमें काला होता है। उस कलिकालमें तीन चौथाई अधर्म और एक चौथाई धर्म रहता है। प्रलयकाल आनेपर मैं ही अत्यन्त दारुण कालरूप होकर अकेला ही सम्पूर्ण चराचर त्रिलोकीका नाश करता हूँ। मैं तीनों लोकोंमें व्याप्त, सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, सब लोगोंको सुख पहुँचानेवाला, सबकी उत्पत्तिका कारण, सर्वव्यापी, अनन्त, इन्द्रियोंका नियन्ता और महान् विक्रमशाली हूँ। ब्रह्मन्! यह जो सम्पूर्ण भूतोंका संहार करनेवाला और सबको उद्योगशील बनानेवाला अव्यक्त कालचक्र है, इसका संचालन केवल मैं ही करता हूँ।

"मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मेरा स्वरूपभूत आत्मा ही सब प्राणियोंके भीतर भलीभाँति स्थित है। विप्रवर! इतनेपर भी कोई मुझे जानता नहीं। समस्त जगत्में भक्तपुरुष सब प्रकारसे मेरी ही आराधना करते हैं। तुमने मेरे निकट आकर जो कुछ भी क्लेश उठाया है, ब्रह्मन्! वह सब तुम्हारे भावी कल्याण और सुखका साधक है। निष्पाप मुने! लोकमें तुमने स्थावर-जङ्गम जो कुछ भी देखा है, उसके रूपमें सर्वथा मेरा भूत-भावन आत्मा ही प्रकट हुआ है। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मा मेरा आधा अङ्ग हैं। ब्रह्मर्षे! मैं शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाला विश्वात्मा नारायण हूँ; हजार चतुर्युगीके अन्तमें जो प्रलय होता है, वह जबतक रहता है, तब-तक सब प्राणियोंको (महानिद्रारूप मायासे) मोहित करके मैं (जलमें) शयन करता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! यद्यपि मैं बालक नहीं हूँ, तो भी जबतक ब्रह्मा नहीं जागते, तबतक सदा इसी प्रकार बालकरूप धारण करके यहाँ रहता हूँ। विप्रशिरोमणे! तुम ब्रह्मर्षियोंद्वारा पूजित हो, मैंने ही ब्रह्मारूपसे तुम्हारे ऊपर बारबार संतुष्ट हो तुम्हें अभीष्ट वर प्रदान किया है। मैंने समझ लिया था कि तुम सम्पूर्ण चराचर जगत्को नष्ट तथा एकार्णवमें निमग्न हुआ देखकर व्याकुल हो रहे हो। इसीलिये तुम्हें पुनः जगत्का दर्शन कराया है। ब्रह्मर्षे! जब तुम मेरे शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए थे और समस्त संसारको देखकर विस्मय-विमुग्ध हो फिर सचेत नहीं हो पा रहे थे, तब मैंने तुरंत तुम्हें मुखसे बाहर निकाल दिया था।

"ब्रह्मर्षे! इस प्रकार मैंने तुम्हें अपने स्वरूपका उपदेश किया है, जिसका जानना देवता और असुरोंके लिये भी कठिन है। जबतक वे महातपस्वी भगवान् ब्रह्मा जाग न जायँ, तबतक तुम श्रद्धा और विश्वास-पूर्वक सुखसे विचरते रहो। द्विजश्रेष्ठ! सर्वलोकपितामह ब्रह्माके जागनेपर मैं उनसे एकीभूत हो समस्त शरीरोंकी सृष्टि करूँगा। आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु और जलका तथा इस संसारमें जो अन्य चराचर वस्तुएँ शेष रहेंगी, उन सबका निर्माण करूँगा।"

मार्कण्डेयजी कहते जा रहे थे—"तात! युधिष्ठिर! यों कहकर वे परम अद्भुत देवता (भगवान् बालमुकुन्द) अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान होते ही मैंने देखा कि यह नाना प्रकारकी विचित्र प्रजा ज्यों-की-त्यों उत्पन्न हो गयी है। सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतकुल-तिलक युधिष्ठिर! इस प्रकार उस प्रलयकालके आनेपर मुझे यह आश्चर्यजनक अनुभव हुआ था। नरश्रेष्ठ! पुरातन प्रलयके समय मुझे जिन कमल-दल-लोचन देवता भगवान् (बालमुकुन्द)का दर्शन हुआ था, तुम्हारे

सम्बन्धी ये भगवान् श्रीकृष्ण वे ही हैं । कुन्तीनन्दन ! इन्हींके वरदानसे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति भूलती नहीं । मेरी दीर्घकालीन आयु और स्वेच्छा मृत्यु भी इन्हींकी कृपाका प्रसाद है । ये वृष्णिकुलभूषण महाबाहु श्रीकृष्ण ही वे सर्वव्यापी अचिन्त्यस्वरूप, पुराण-पुरुष श्रीहरि हैं (जो पहले मुझे बालरूपमें दिखायी दिये थे) । वे ही यहाँ अवतीर्ण हो भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हुए-से दीख रहे हैं । श्रीवत्सचिह्न जिनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ाता है, वे भगवान् गोविन्द ही इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, सनातन प्रभु और प्रजापतियोंके भी पति हैं । इन आदिदेव स्वरूप, विजयशील, पीताम्बरधारी पुरुषोत्तम वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्णको देखकर मुझे इस पुरातन घटनाकी स्मृति हो आयी । कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवो ! ये माधव ही समस्त प्राणियोंके पिता और माता हैं । ये ही सबको शरण देनेवाले हैं । अतः तुम सब लोग इन्हींकी शरणमें जाओ।

दुर्वासाके कोपसे रक्षा

राजा दुर्योधनने दुरभिसंधिसे दुर्वासाको पाण्डवोंके पास वनमें भेजा । वे उस समय आये, जब द्रौपदी भोजन करके विश्राम कर रही थी । दुर्वासाके साथ दस हजार शिष्य थे । युधिष्ठिरने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया, पूजा की और भोजनके लिये प्रार्थना की । मुनिने कहा—'हमलोग स्नान-संध्या करके आते हैं।' द्रौपदी खा चुकी थी, इसलिये भोजनकी सामग्री मिलना उस दिन सम्भव नहीं था । इसलिये—

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योषितां वरा ॥
चिन्तामवाप परमामन्नहेतोः पतिव्रता ।
सा चिन्तयन्ती च यदा नान्नहेतुमविन्दत ॥
मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंसनिषूदनम् ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन ।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर ।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते ॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव ।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर ॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता ।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण ।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम् ।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम् ।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा ।
तथैव संकटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥

(वन० २६३ । ६½–१६)

उस समय युवतियोंमें श्रेष्ठ पतिव्रता द्रौपदीको अन्नके लिये बड़ी चिन्ता हुई । जब बहुत सोचने-विचारनेके बाद भी उसे अन्न प्राप्तिका कोई उपाय नहीं सूझा, तब वह मन-ही-मन कंसनिकन्दन आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण करने लगी—'हे सच्चिदानन्दस्वरूप ! महाबाहु श्रीकृष्ण ! हे देवकीनन्दन ! हे अविनाशी वासुदेव ! चरणोंमें पड़े हुए दुखियोंका दुःख दूर करनेवाले जगदीश्वर ! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हो । अविनाशी प्रभो ! तुम्हीं इस विश्वकी उत्पत्ति और संहार करनेवाले हो । शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोपाल ! तुम्हीं समस्त प्रजाका पालन करनेवाले परात्पर परमेश्वर हो । आकूति (मन) और चित्ति (बुद्धि) के प्रेरक परमात्मन् ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ । सबके वरण करनेयोग्य वरदाता अनन्त ! जिन्हें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं है, उनकी सहायता करो । पुराणपुरुष ! प्राण और मनकी वृत्तियाँ आदि तुम्हारे पासतक नहीं पहुँच सकतीं । सबके साक्षी परमात्मन् ! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । शरणागतवत्सल देव ! कृपा करके मुझे बचाओ । नील कमलदलके समान श्यामसुन्दर ! कमलपुष्पके भीतरी भागके समान किंचित् लाल नेत्रोंवाले पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण ! तुम्हारे वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिमय आभूषण शोभा पाता है । प्रभो ! तुम्हीं समस्त प्राणियोंके आदि और अन्त हो । तुम्हीं सबके परम आश्रय हो । तुम्हीं परात्पर, ज्योतिर्मय, सर्वात्मा एवं सब ओर मुखवाले परमेश्वर हो । ज्ञानी पुरुष तुम्हें ही इस जगत्का परम बीज और सम्पूर्ण

सम्पदाओंकी निधि बतलाते हैं । देवेश्वर ! यदि तुम मेरे रक्षक हो, तो मुझपर सारी विपत्तियाँ टूट पड़ें, तो भी मुझे उनसे भय नहीं । भगवन् ! पहले कौरवसभामें दुःशासनके हाथसे जैसे तुमने मुझे बचाया था, उसी प्रकार इस वर्तमान संकटसे भी मेरा उद्धार करो ।'

द्रौपदीकी पुकार सुनते ही अचिन्त्यगति देवाधिदेव श्रीकृष्ण सोयी हुई रुक्मिणीको छोड़कर तुरंत वहाँ आ पहुँचे और द्रौपदीकी बटलोईमें लगा हुआ एक जरा-सा सागका पत्ता खाकर द्रौपदीसे बोले—

विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक् ।

— 'इस सागसे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा यज्ञभोक्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि तृप्त और संतुष्ट हों ।' स्वयं भगवान् तो वे थे ही । सशिष्य दुर्वासाजी जलमें उतरकर अघमर्षण कर रहे थे । सबके पेट भर गये तथा एक साथ सबको डकारें आने लगीं । दुर्वासाजी भक्त पाण्डवोंके भयसे शिष्योंको साथ लेकर भाग गये । पाण्डवोंके सिरपर आयी हुई एक बड़ी विपत्ति टल गयी।

× × ×

शिवजीके द्वारा श्रीकृष्ण-महिमा-वर्णन

भीमसेनके द्वारा वनमें पराभूत हो जयद्रथने गङ्गाद्वार (हरद्वार) में जाकर बड़ी भारी तपस्या की । भगवान् शंकरने प्रकट होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा । जयद्रथने रथसहित पाँचों पाण्डवोंको युद्धमें जीतनेका वर माँगा । तब महादेवजी बोले—'ऐसा नहीं हो सकता । पाण्डव अजेय और अवध्य हैं । हाँ, तुम अर्जुनको छोड़कर शेष चार पाण्डवोंको केवल एक दिन आगे बढ़नेसे रोक सकते हो; क्योंकि अर्जुन वे देवेश्वर नर हैं, जिन्होंने भगवान् नारायणके साथ बदरिकाश्रममें तपस्या की थी । तुम तो क्या, सारे लोक मिलकर भी उनको नहीं जीत सकते । उनका सामना करना देवताओंके लिये भी कठिन है । मैंने उनको दिव्य अनुपम पाशुपत-अस्त्र प्रदान किया है तथा अन्यान्य लोकपालोंके द्वारा उनको वज्र आदि महान् अस्त्र प्राप्त हुए हैं ।'

देवदेवो ह्यनन्तात्मा विष्णुः सुरगुरुः प्रभुः ।
प्रधानपुरुषोऽव्यक्तो विश्वात्मा विश्वमूर्तिमान् ॥
युगान्तकाले सम्प्राप्ते कालाग्निर्दहते जगत् ।
सपर्वतार्णवद्वीपं सशैलवनकाननम् ॥
निर्दहन् नागलोकांश्च पातालतलचारिणः ।
अथान्तरिक्षे सुमहन्नानावर्णाः पयोधराः ॥
घोरस्वरा विनदिनस्तडिन्मालावलम्बिनः ।
समुत्तिष्ठन् दिशः सर्वा विवर्षन्तः समन्ततः ॥
ततोऽग्निं नाशयामासुः संवर्ताग्निनियामकाः ।
अक्षमात्रैश्च धाराभिस्तिष्ठन्त्यापूर्य सर्वशः ॥
एकार्णवे तदा तस्मिन्नुपशान्तचराचरे ।
नष्टचन्द्रार्कपवने ग्रहनक्षत्रवर्जिते ॥
चतुर्युगसहस्रान्ते सलिलेनाप्लुता मही ।
ततो नारायणाख्यस्तु सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः स्वप्तुकामस्त्वतीन्द्रियः ।
फणासहस्रविकटं शेषं पर्यङ्कभाजनम् ॥
सहस्रमिव तिग्मांशुसंघातममितद्युतिम् ।
कुन्देन्दुहारगोक्षीरमृणालकुमुदप्रभम् ॥
तत्रासौ भगवान् देवः स्वपञ्जलनिधौ तदा ।
नैशेन तमसा व्याप्तां स्वां रात्रिं कुरुते विभुः ॥
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमपश्यत ।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥
आपो नारास्तत्तनव इत्यपां नाम शुश्रुम ।
अयनं तेन चैवास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥
प्रध्यानसमकालं तु प्रजाहेतोः सनातनः ।
ध्यातमात्रे तु भगवन्नाभ्यां पद्मः समुत्थितः ॥
ततश्चतुर्मुखो ब्रह्मा नाभिपद्माद् विनिःसृतः ।
तत्रोपविष्टः सहसा पद्मे लोकपितामहः ॥
शून्यं दृष्ट्वा जगत् कृत्स्नं मानसानात्मनः समान् ।
ततो मरीचिप्रमुखान् महर्षीनसृजन्नव ॥
तेऽसृजन् सर्वभूतानि त्रसानि स्थावराणि च ।
यक्षराक्षसभूतानि पिशाचोरगमानुषान् ॥
सृज्यते ब्रह्ममूर्तिस्तु रक्षते पौरुषी तनुः ।
रौद्रीभावेन शमयेत् तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः ॥
न श्रुतं ते सिन्धुपते विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
कथ्यमानानि मुनिभिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
जलेन समनुप्राप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
तदा चैकार्णवे तस्मिन्नेकाकाशे प्रभुश्चरन् ॥
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले समन्ततः ।
प्रतिष्ठानाय पृथिवीं मार्गमाणस्तदाभवत् ॥
जले निमग्नां गां दृष्ट्वा चोद्धर्तुं मनसेच्छति ।
किं नु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥
एवं संचिन्त्य मनसा दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
जलक्रीडाभिरुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ॥
कृत्वा वराहवपुषं वाङ्मयं वेदसम्मितम् ।

दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ॥
महापर्वतवर्ष्माभं तीक्ष्णदंष्ट्रं प्रदीप्तिमत् ।
महामेघौघनिर्घोषं नीलजीमूतसंनिभम् ॥
भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः सम्प्राविशत् प्रभुः ।
दंष्ट्रेणैकेन चोद्धृत्य स्वे स्थाने न्यविशन्महीम् ॥
पुनरेव महाबाहुरपूर्वां तनुमाश्रितः ।
नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ॥
दैत्येन्द्रस्य सभां गत्वा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
दैत्यानामादिपुरुषः सुरारिर्दितिनन्दनः ॥
दृष्ट्वा चापूर्वपुरुषं क्रोधात् संरक्तलोचनः ।
शूलोद्यतकरः स्रग्वी हिरण्यकशिपुस्तदा ॥
मेघस्तनितनिर्घोषो नीलाभ्रचयसंनिभः ।
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ॥
समुपेत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण बलीयसा ।
नारसिंहेन वपुषा दारितः करजैर्भृशम् ॥
एवं निहत्य भगवान् दैत्येन्द्रं रिपुघातिनम् ।
भूयोऽन्यः पुण्डरीकाक्षः प्रभुर्लोकहिताय च ॥
कश्यपस्यात्मजः श्रीमानदित्या गर्भधारितः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥
दुर्दिनाम्भोदसदृशो दीप्ताक्षो वामनाकृतिः ।
दण्डी कमण्डलुधरः श्रीवत्सोरसि भूषितः ॥
जटी यज्ञोपवीती च भगवान् बालरूपधृक् ।
यज्ञवाटं गतः श्रीमान् दानवेन्द्रस्य वै तदा ॥
बृहस्पतिसहायोऽसौ प्रविष्टो बलिनो मखे ।
तं दृष्ट्वा वामनतनुं प्रहृष्टो बलिरब्रवीत् ॥
प्रीतोऽस्मि दर्शने विप्र ब्रूहि त्वं किं ददानि ते ।
एवमुक्तस्तु बलिना वामनः प्रत्युवाच ह ॥
स्वस्तीत्युक्त्वा बलिं देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
मेदिनीं दानवपते देहि मे विक्रमत्रयम् ॥
बलिर्ददौ प्रसन्नात्मा विप्रायामिततेजसे ।
ततो दिव्याद्भुततमं रूपं विक्रमतो हरेः ॥
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यो जहाराशु स मेदिनीम् ।
ददौ शक्राय च महीं विष्णुर्देवः सनातनः ॥
एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावः प्रकीर्तितः ।
तेन देवाः प्रादुरासन् वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥
असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणाय च ।
अवतीर्णो मनुष्याणामजायत यदुक्षये ॥
स एवं भगवान् विष्णुः कृष्णेति परिकीर्त्यते ।
अनाद्यन्तमजं देवं प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
यं देवं विदुषो गान्ति तस्य कर्माणि सैन्धव ।
यमाहुरजितं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥
श्रीवत्सधारिणं देवं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रधानः सोऽस्त्रविदुषां तेन कृष्णेन रक्ष्यते
सहायः पुण्डरीकाक्षः श्रीमानतुलविक्रमः ।
समानस्यन्दने पार्थमास्थाय परवीरहा ॥
न शक्यते तेन जेतुं त्रिदशैरपि दुस्सहः ।
कः पुनर्मानुषो भावो रणे पार्थं विजेष्यति ॥
(वन० २७२ । ३१—७६)

'[अब मैं तुम्हें नरस्वरूप अर्जुनके सहायक भगवान् नारायणकी महिमा सुनाता हूँ, सुनो—] भगवान् नारायण देवताओंके भी देवता, अनन्तस्वरूप, सर्वव्यापी, देवगुरु, सर्वसमर्थ, प्रकृति-पुरुषरूप, अव्यक्त, विश्वात्मा एवं विश्व-रूप हैं । प्रलयकाल उपस्थित होनेपर वे भगवान् विष्णु ही कालाग्निरूपसे प्रकट हो पर्वत, समुद्र, द्वीप, शैल, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण जगत्को दग्ध कर देते हैं; फिर पातालतलमें विचरण करनेवाले नागलोकों-को भी वे भस्म कर डालते हैं । कालाग्निद्वारा सब कुछ भस्म हो जानेपर आकाशमें अनेक रंगके महान् मेघोंकी घोर घटा घिर आती है । भयंकर स्वरसे गर्जना करते हुए वे बादल बिजलियोंकी मालाओंसे प्रकाशित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाते और सब ओर वर्षा करने लग जाते हैं । इससे प्रलयकालीन अग्नि बुझ जाती है । संवर्तक अग्निका नियन्त्रण करनेवाले वे महामेघ सर्पोंके समान मोटी धाराओंसे जल गिराते हुए सबको डुबो देते हैं । उस समय (सम्पूर्ण दिशाओंमें पानी भर जानेसे चारों ओर) एकाकार जलमय समुद्र ही दृष्टिगोचर होता है । उस एकार्णवके जलमें समस्त चराचर जगत् नष्ट हो जाता है । चन्द्रमा, सूर्य और वायु भी विलीन हो जाते हैं । ग्रह और नक्षत्रोंका अभाव हो जाता है । एक हजार चतुर्युगी समाप्त होनेपर उपर्युक्त एकार्णवके जलमें यह पृथ्वी डूब जाती है । तत्पश्चात् नारायण नामसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीहरि उस एकार्णवके जलमें शयन करनेके हेतु अपने लिये निशा-कालोचित अन्धकार (तमोगुण) से व्याप्त अपनी स्वरूपभूता महारात्रिका निर्माण करते हैं । उन भगवान्के सहस्रों नेत्र, सहस्रों चरण और सहस्रों मस्तक होते हैं । वे अन्तर्यामी पुरुष इन्द्रियातीत होनेपर भी शयन करनेकी इच्छासे उन शेषनागको अपना पर्यङ्क बनाते हैं, जो सहस्रों फणोंसे विकटाकार दिखायी देते हैं । वे शेषनाग एक सहस्र प्रचण्ड सूर्योंके समूहकी भाँति अनन्त एवं असीम

प्रभा धारण करते हैं। उनकी कान्ति कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा, मुक्ताहार, गोदुग्ध, कमलनाल तथा कुमुद-कुसुमके समान उज्ज्वल होती है। उन्हींकी शय्या बनाकर भगवान् श्रीहरि शयन करते हैं। तत्पश्चात् सृष्टिकालमें सत्त्वगुणका आधिक्य होनेपर भगवान् योगनिद्रासे जाग उठे। जागनेपर उन्हें यह समस्त लोक सूना दिखायी दिया। महर्षिगण भगवान् नारायणके सम्बन्धमें यहाँ इस श्लोकको पढ़ा करते हैं। जल भगवान्का शरीर है, इसीलिये उसका नाम 'नार' सुनते आये हैं। वह नार ही उनका अयन (गृह) है। अथवा उसके साथ एक होकर वे रहते हैं, इसीलिये उन भगवान्को नारायण कहा गया है। तत्पश्चात् प्रजाकी सृष्टिके लिये भगवान्ने संकल्प किया। इस संकल्पके साथ ही भगवान्की नाभिसे सनातन कमल प्रकट हुआ। उस नाभिकमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। उस कमलपर बैठे हुए लोकपितामह ब्रह्माजीने सहसा सम्पूर्ण जगत्को शून्य देखकर अपने मानसपुत्रके रूपमें अपने-ही-जैसे प्रभावशाली मरीचि आदि नौ महर्षियोंको उत्पन्न किया। उन महर्षियोंने स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण भूतोंकी तथा यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, नाग और मनुष्योंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीके रूपसे भगवान् सृष्टि करते हैं। परम पुरुष नारायणरूपसे इसकी रक्षा करते हैं तथा रुद्र-स्वरूपसे सबका संहार करते हैं।

'इस प्रकार प्रजापालक भगवान्की ये तीन अवस्थाएँ हैं। सिन्धुराज! क्या तुमने वेदोंके पारंगत ब्रह्मर्षियोंके मुखसे अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुका चरित्र नहीं सुना है? समस्त भूमण्डल सब ओरसे जलमें डूबा हुआ था। उस समय एकार्णवसे उपलक्षित एकमात्र आकाशमें भगवान् इस प्रकार विचर रहे थे, जैसे वर्षाकालकी रातमें जुगनू सब ओर उड़ता फिरता है। वे पृथ्वीको कहीं स्थिर रूपसे स्थापित करनेके लिये उसकी खोज कर रहे थे। पृथ्वीको जलमें डूबी हुई देख भगवान्ने मन-ही-मन उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की। वे सोचने लगे, 'कौन-सा रूप धारण करके मैं इस जलसे पृथ्वीका उद्धार करूँ?' इस प्रकार मन-ही-मन चिन्तन करके उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखा कि जलमें क्रीडा करनेके योग्य तो वराहरूप है; अतः उन्होंने उसी रूपका स्मरण किया। वेदतुल्य वैदिक वाङ्मय वराहरूप धारण करके भगवान्ने जलके भीतर प्रवेश किया। उनका वह विशाल पर्वताकार शरीर सौ योजन लंबा और दस योजन चौड़ा था। उनकी दाढ़ें बड़ी तीखी थीं। उनका शरीर देदीप्यमान हो रहा था। भगवान्का कण्ठस्वर महान् मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर था। उनकी अङ्गकान्ति नीलजलधरके समान श्याम थी। इस प्रकार यज्ञवाराहरूप धारण करके भगवान्ने जलके भीतर प्रवेश किया और एक ही दाँतसे पृथ्वीको उठाकर उसे अपने स्थानपर स्थापित कर दिया। तदनन्तर महाबाहु भगवान् श्रीहरिने एक अपूर्व शरीर धारण किया, जिसका आधा भाग तो मनुष्यका था और आधा सिंहका।' इस प्रकार नृसिंहरूप धारण करके हाथसे हाथका स्पर्श किये हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी सभामें गये। दैत्योंके आदिपुरुष और देवताओंके शत्रु दितिनन्दन हिरण्यकशिपुने उस अपूर्व पुरुषको देखकर क्रोधसे आँखें लाल कर लीं। उसने एक हाथमें शूल उठा रखा था, उसके गलेमें पुष्पोंकी माला शोभा पा रही थी। उस समय वीर हिरण्यकशिपुने, जिसकी आवाज मेघकी गर्जनाके समान थी, जो नीले मेघोंके समूह-जैसा श्याम था तथा जो दितिके गर्भसे उत्पन्न होकर देवताओंका शत्रु बना हुआ था, भगवान् नृसिंहपर धावा किया। इसी समय अत्यन्त बलवान् मृगेन्द्र-स्वरूप भगवान् नृसिंहने दैत्यके निकट जाकर उसे अपने तीखे नखोंद्वारा बुरी तरह विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार शत्रुघाती दैत्यराज हिरण्यकशिपुका वध करके भगवान् कमलनयन श्रीहरि पुनः सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये अन्यरूपमें प्रकट हुए। उस समय वे कश्यपजीके तेजस्वी पुत्र हुए। अदिति देवीने उन्हें गर्भमें धारण किया था। पूरे एक हजार वर्षतक गर्भमें धारण करनेके पश्चात् अदितिने एक उत्तम बालकको जन्म दिया। वह वर्षाकालके मेघके समान श्यामवर्णका था। उसके नेत्र देदीप्यमान हो रहे थे। वे वामनाकार, दण्ड और कमण्डलु धारण किये तथा वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिह्नसे विभूषित थे। उनके सिरपर जटा थी और गलेमें

यज्ञोपवीत शोभा पा रहा था। उस समय वे बालरूपधारी श्रीमान् भगवान् दानवराज बलिकी यज्ञशालाके समीप गये। बृहस्पतिजीके साथ उन्होंने बलिके यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश हुआ। वामनरूपधारी भगवान्‌को देखकर राजा बलि बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'ब्रह्मन्! आपका दर्शन पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी सेवाके लिये क्या दूँ?' बलिके यों कहनेपर भगवान् वामनने '(आपका) स्वस्ति (कल्याण हो) यह कहकर बलिको आशीर्वाद दिया और मुसकराते हुए कहा—'दानवराज! मुझे तीन पग पृथ्वी दे दीजिये।' बलिने प्रसन्न-चित्तसे उन अमित-तेजस्वी ब्राह्मण देवताको उनकी मुँहमाँगी वस्तु दे दी। तब भूमिको नापते समय श्रीहरिका अत्यन्त अद्भुत दिव्यरूप प्रकट हुआ। उन अक्षोभ्य सनातन विष्णुदेवने तीन पगद्वारा शीघ्र ही सारी वसुधा नाप ली और देवराज इन्द्रको समर्पित कर दी। यह मैंने तुम्हें भगवान्‌के वामनावतारकी बात बतायी है। उन्हींसे देवताओंकी उत्पत्ति हुई है। यह जगत् भी भगवान् विष्णुसे प्रकट होनेके कारण वैष्णव कहलाता है। राजन्! वे ही भगवान् विष्णु दुष्टोंका दमन और धर्मका संरक्षण करनेके लिये मनुष्योंके बीच यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। उन्हींको श्रीकृष्ण कहते हैं। वे अनादि, अनन्त, अजन्मा, दिव्यस्वरूप, सर्वसमर्थ और विश्ववन्दित हैं। सिन्धुराज! विद्वान् पुरुष उन्हीं भगवान्‌की महिमा गाते और उन्हींके पावन चरित्रोंका वर्णन करते हैं। उन्हींको अपराजित, शङ्खचक्रगदाधारी, पीतपट्टाम्बर-विभूषित श्रीवत्सधारी भगवान् श्रीकृष्ण कहा गया है। अस्त्रविद्याके विद्वानोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित हैं। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अतुलपराक्रमी श्रीमान् कमलनयन श्रीकृष्ण एक ही रथपर अर्जुनके समीप बैठकर उनकी सहायता करते हैं। इस कारण अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। उनका वेग सहन करना देवताओंके लिये भी कठिन है; फिर मनुष्य कौन ऐसा है, जो युद्धमें अर्जुनपर विजय प्राप्त कर सके। राजन्! इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। स्वयं देवाधिदेव भगवान् शंकरके श्रीमुखसे भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके सम्बन्धमें इस तत्त्वाख्यानको पढ़कर महाभारतके श्रीकृष्णके विषयमें किसको शङ्का रह सकती है?

[उद्योगपर्व]

विराटकी सभामें श्रीकृष्ण

पाण्डवोंके बारह वर्ष वनवासके और तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवासका बीत गया। अज्ञातवास बीतते ही विराट-नरेशकी कन्या उत्तराका ब्याह अर्जुनके वीर पुत्र अभिमन्युके साथ हुआ। इस विवाहके अवसरपर राजा द्रुपद, सात्यकि, बलरामजी, श्रीकृष्ण तथा पाँचों भाई पाण्डव अपने पुत्रोंके साथ उपस्थित थे। तथा अन्यान्य नृपति-गण जो विराटनरेशके द्वारा उस शुभ अवसरपर आमन्त्रित किये गये थे, वे भी वहाँ बैठे थे। सबके सामने 'पाण्डवोंको राज्य-प्राप्ति कैसे हो' यही प्रश्न था। सब लोग भगवान् श्रीकृष्णका मुँह जोह रहे थे कि वे क्या कहते हैं। अतएव भगवान् वासुदेवने भाषण देना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने बतलाया कि 'किस प्रकार शकुनिने छलपूर्वक जुएके द्वारा युधिष्ठिरको परास्तकर राज्य हड़प लिया। परंतु जुएमें यह शर्त थी कि हारनेवाला बारह वर्ष वनवास और तेरहवें वर्ष अज्ञातवासमें रहनेके बाद अपना राज्य पुनः प्राप्त कर सकता है। अतएव पाण्डवलोगोंको अब शर्तके अनुसार इनका राज्य मिलना चाहिये। पाण्डवोंने बड़ा कष्ट झेलकर वनवासकी अवधि पूरी की है; अब आपलोग ऐसा विचार कीजिये जिसमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधन दोनोंका हित हो। आपलोग ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालिये जो इन कुरुवंशके वीरोंके लिये धर्मानुकूल, न्यायसंगत तथा यश बढ़ानेवाला हो; क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर यदि धर्मके विरुद्ध देवताओंका भी राज्य प्राप्त होता हो तो उसे लेना न चाहेंगे।'

तच्चिन्तयध्वं कुरुपुङ्गवानां
धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च।
अधर्मयुक्तं न च कामयेत
राज्यं सुराणामपि धर्मराजः॥

(उद्योग० १।१४)

'धर्मराजको यदि धर्म और अर्थसे युक्त एक गाँवका भी राज्य मिले तो ये उसको विभूषित करेंगे, और यह तो आप सब राजाओंको विदित ही है कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने किस प्रकार अन्यायपूर्वक पाण्डवोंका पैतृक राज्य हड़प लिया है। उन्होंने धर्मपूर्वक युद्धमें पाण्डवोंको हराकर राज्य नहीं प्राप्त किया है। फिर भी धर्मराज युधिष्ठिर उनकी भलाई ही करना चाहते हैं। इसके विपरीत धृतराष्ट्रके पुत्र निरन्तर पाण्डवोंको सताने और इनका नाश करनेकी ही चेष्टामें रत रहते हैं। यदि धृतराष्ट्रके पुत्र इस प्रकार युद्धकी भावनासे इनको सताते रहेंगे, तो उनके बाध्य करनेपर ये भी युद्ध करके उनको मार डालेंगे। इनको आप अल्पसंख्यक न समझें; युद्धका अवसर आनेपर इनके हितैषी सुहृद् भी अपनी पूरी शक्तिसे इनकी सहायता करेंगे, इसमें संदेह नहीं है। परंतु शत्रुपक्ष क्या चाहता है, यह जाने बिना कोई पक्का निर्णय कैसे किया जा सकता है। कोई धर्मशील, कुलीन, पवित्रात्मा और अप्रमत्त दूत भेजा जाय, जो उनको समझा-बुझाकर, उनके जोश-रोषको शान्त करके पाण्डवोंका आधा राज्य देनेके लिये उनको राजी कर सके।'

विराटकी सभामें भगवान् वासुदेवके इस भाषणको पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी नीति 'धर्मकी नीति' थी। इस भाषणमें भगवान्ने वस्तुस्थितिको कितना स्पष्ट और निष्पक्षभावसे व्यक्त किया है! यद्यपि भगवान् वासुदेव कौरवों और पाण्डवों—दोनोंको शान्तिपूर्वक मेल-जोल रखकर चलते देखना चाहते थे, तथापि उनका यह दृढ़ मत था कि धर्मकी जय होनी चाहिये। अधर्मको पनपने देना वे पसंद नहीं करते थे।

नीतिनिपुण भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

किं तु सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु।
यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च॥
(५।३)

'परंतु कौरवों और पाण्डवोंसे हमारा एक-सा सम्बन्ध है। और पाण्डवों और कौरवों, दोनों ही हमारे साथ यथायोग्य अनुकूल बर्ताव करते हैं।' आप सब राजाओंमें अवस्था तथा विद्या-बुद्धिमें श्रेष्ठ हैं, और इसमें संदेह नहीं कि हम सब आपके शिष्यके समान हैं। अतएव आप पाण्डवोंकी कार्यसिद्धिके लिये जो भी संदेश भेजेंगे, हम सब उसका समर्थन करेंगे। यदि दुर्योधन हमारा प्रस्ताव न स्वीकार करें तो आप दूसरे राजाओंको युद्धका निमन्त्रण भेजकर सबके बाद हमको आमन्त्रित कीजियेगा।'

रण-निमन्त्रण

विराटकी सभाका समाचार गुप्तचरोंके द्वारा प्राप्तकर दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्णसे युद्धमें सहायता माँगनेके लिये द्वारकाके लिये रवाना हुआ, और उधर अर्जुनने भी इसी हेतुसे विराटनगरीसे प्रस्थान किया। दोनों ही आगे-पीछे भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचे। उस समय भगवान् शयनागारमें शयन कर रहे थे। दुर्योधन पहले जाकर भगवान्के सिरहाने बैठ गये और अर्जुन पैरोंकी ओर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। जागनेपर श्रीकृष्णने पहले अर्जुनको देखा। दोनोंका सत्कार कर चुकनेके बाद भगवान्ने दोनोंसे उनके आनेका कारण पूछा। दुर्योधनने हँसकर कहा—'माधव! जो युद्ध होनेवाला है, उसमें आप मुझे सहायता दें।' अर्जुनने कहा—'जनार्दन! मैं भी आपकी सहायता माँगने आया हूँ।' भगवान् बोले—'सुयोधन! तुम पहले आये हो, और मैंने अर्जुनको पहले देखा है। इसलिये मैं दोनोंकी सहायता करूँगा। बालकोंको उनकी अभीष्ट वस्तु पहले मिलनी चाहिये। इसलिये अर्जुन! तुम इन दोनोंमेंसे एक चुन लो। एक ओर तो मैं, और दूसरी ओर मेरी दस करोड़ सैनिकोंकी विशाल नारायणी सेना रहेगी। साथ ही मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई शस्त्र ही धारण करूँगा।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्॥
नारायणममित्रघ्नं कामाज्जातमजं नृषु।
सर्वक्षत्रस्य पुरतो देवदानवयोरपि॥
(७।२१-२२)

'जनमेजय! श्रीकृष्णके इतना कहनेपर अर्जुनने संग्राममें युद्ध न करनेवाले केशवको ही वरण किया—

जो केशव साक्षात् शत्रुहन्ता नारायण हैं और अजन्मा होते हुए भी स्वेच्छासे देवता, दानव और समस्त क्षत्रियोंके सामने मनुष्यरूपमें अवतरित हुए हैं।'

अर्जुनने जब केवल केशवको वरण किया, तब दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और मन-ही-मन अर्जुनको महामूर्ख समझने लगा। परंतु इसका रहस्य उसे ज्ञात न था। वैशम्पायनजीने इसके रहस्यको खोल दिया है। नररूप अर्जुन अपने सखा नारायणको छोड़कर नारायणी-सेना तो क्या त्रिलोकीके अक्षय राज्यको भी वरण नहीं कर सकते थे। जिन नारायणकी इच्छामात्रसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डकी सृष्टि और संहार होता है, उनकी शक्तिके सामने नारायणहीन नारायणी-सेना तो क्या, विश्वका सारा सैन्यबल नगण्य था। अतएव प्रकारान्तरसे वैशम्पायनजीने अर्जुनकी प्रशंसा ही की है। इस कथासे एक और रहस्यकी बात प्रकट होती है। नारायणके पास जो जिस हेतुसे जायगा, उसे वही मिलेगा। नारायणको चाहनेवाला नारायणको प्राप्त करेगा और क्षणभङ्गुर ऐश्वर्यकी कामना करनेवालेको वह क्षणभङ्गुर ऐश्वर्य मिलेगा। भगवान्‌के पास जाकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता।

× × ×

श्रीकृष्ण शान्ति-दूतके रूपमें

जब उभयपक्षमें सैन्य-संग्रह हो रहा था, तब धृतराष्ट्र युद्धकी विभीषिकाका विचार आते ही घबरा उठे, उन्होंने संजयको पाण्डवोंके पास युद्ध न करनेका संदेश लेकर भेजा। संजय वहाँसे वापस आकर पाण्डवोंका संदेश सुनाते हुए कहने लगा—

पादाङ्गुलीरभिप्रेक्षन् प्रयतोऽहं कृताञ्जलिः।
शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः॥
(५९। ३)

"राजन्! नर और नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण)-से आपका संदेश सुनानेके लिये मैं प्रयत्नपूर्वक अपने पैरोंकी उँगलियोंको ही देखता हुआ, हाथ जोड़े उनके अन्तःपुरमें गया।' तत्पश्चात् बातचीतमें प्रवीण भगवान् श्रीकृष्णकी वह वाणी मेरे सुननेमें आयी, जिसका एक-एक अक्षर शिक्षाप्रद था। उन्होंने कौरवोंको यज्ञानुष्ठान कर लेने, ब्राह्मणोंको दक्षिणा देने आदि पुण्यकर्मोंको कर लेनेकी सम्मति दी है; क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर अब आक्रमण करनेके लिये उतावले हो रहे हैं। भगवान् वासुदेवने यह भी कहा है कि "जिस समय कौरव-सभामें द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, मैं हस्तिनापुरसे बहुत दूर था। उस समय कृष्णाने आर्त्तभावसे 'गोविन्द' कहकर जो मुझे पुकारा था, उसका मेरे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है और वह बढ़ता ही जा रहा है, वह मेरे हृदयसे दूर नहीं होता।"

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥
(५९। २२)

—इत्यादि संजयकी उक्तिसे दो प्रमुख तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है। एक तो यह कि संजयको भी विश्वास था कि अर्जुन और श्रीकृष्ण साक्षात् नर-नारायण हैं; दूसरे यह कि भगवान् वासुदेवके हृदयको कौरव-सभामें आर्त्तस्वरसे की हुई कृष्णाकी 'गोविन्द! गोविन्द!!' की पुकार अभीतक व्यथित कर रही है। ग्रन्थकारने इन दो मूल तत्त्वोंको व्यक्त करके धृतराष्ट्रकी मुँदी हुई आँखें खोलनेकी चेष्टा की है।

पुनः आगे चलकर संजय धृतराष्ट्रसे भगवान् वासुदेवके विषयमें निवेदन करते हुए कहते हैं—

पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः।
मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी॥
(६८। ५)

भूयो भूयो हि यद् राजन् पृच्छसे पाण्डवान् प्रति।
सारासारबलं ज्ञातुं तत् समासेन मे शृणु॥
एकतो वा जगत् कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः।
सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः॥
भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम्॥
यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिवं च पुरुषोत्तमः।
विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः॥
स कृत्वा पाण्डवान् सत्रं लोकं सम्मोहयन्निव।
अधर्मनिरतान् मूढान् दग्धुमिच्छति ते सुतान्॥
कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतेऽनिशम्॥

दिव्य-दृष्टि-प्राप्त संजय

कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः।
कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव वर्धनः॥
तेन वञ्चयते लोकान् मायायोगेन केशवः।
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः॥

(उद्योग० ६८। ६–१५)

'जितेन्द्रिय, विशिष्टात्मा, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इच्छामात्रसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकको अपने वशमें कर सकते हैं। राजन्! आप जो बारंबार पाण्डवोंके विषयमें, उनके सार या असारभूत बलको जाननेके लिये मुझसे पूछते रहते हैं, वह सब आप मुझसे संक्षेपमें सुनिये। एक ओर सम्पूर्ण जगत् हो और दूसरी ओर अकेले भगवान् श्रीकृष्ण हों, तो सारभूत बलकी दृष्टिसे वे भगवान् जनार्दन ही सम्पूर्ण जगत्से बढ़कर सिद्ध होंगे। श्रीकृष्ण अपने मानसिक संकल्पमात्रसे इस सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर सकते हैं; परंतु उन्हें भस्म करनेमें यह सारा जगत् भी समर्थ नहीं हो सकता।

'जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता हैं, उसी ओर भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं; और जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। समस्त प्राणियोंके आत्मा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण खेल-सा करते हुए ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकका संचालन करते हैं। वे इस समय समस्त लोकको मोहित-सा करते हुए पाण्डवोंके मिससे आपके अधर्मपरायण मूढ़ पुत्रोंको भस्म कर डालना चाहते हैं। ये भगवान् केशव ही अपनी योगशक्तिसे निरन्तर कालचक्र, संसारचक्र तथा युगचक्रको घुमाते रहते हैं। मैं आपसे यह सच कहता हूँ कि एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही काल, मृत्यु तथा चराचर जगत्के स्वामी एवं शासक हैं। महायोगी श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी एवं ईश्वर होते हुए भी खेतीको बढ़ानेवाले किसानकी भाँति सदा नये-नये कर्मोंका आरम्भ करते रहते हैं। भगवान् केशव अपनी मायाके प्रभावसे सब लोगोंको मोहमें डाले रहते हैं; किंतु जो मनुष्य केवल उन्हींकी शरण ले लेते हैं, वे उनकी मायासे मोहित नहीं होते।'

तदनन्तर व्यासजीने संजयकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—

व्यास उवाच

प्रियोऽसि राजन् कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे।
यस्य ते संजयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते॥
जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम्।
शुश्रूषमाणमेकाग्रं मोक्ष्यते महतो भयात्॥
वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः॥
यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः॥
एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति॥

(उद्योग० ६९। ११–१५)

व्यासजी बोले—'राजा धृतराष्ट्र! मेरी बातोंपर ध्यान दो। वास्तवमें तुम श्रीकृष्णके प्रिय हो; तभी तो तुम्हें संजय-जैसा दूत मिला है, जो तुम्हें कल्याण-साधनमें लगायेगा। यह संजय पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णको जानता है और उनका जो परम तत्त्व है, वह भी इसे ज्ञात है। यदि तुम एकाग्रचित्त होकर इसकी बातें सुनोगे तो यह तुम्हें महान् भयसे मुक्त कर देगा। विचित्रवीर्यकुमार! जो मनुष्य अपने धनसे संतुष्ट नहीं है और काम आदि विविध प्रकारके बन्धनोंसे बँधकर हर्ष और क्रोधके वशीभूत हो रहे हैं, वे काममोहित पुरुष अंधोंके नेतृत्वमें चलनेवाले अंधोंकी भाँति अपने कर्मोंद्वारा प्रेरित होकर बारंबार यमराजके चंगुलमें पड़ते हैं। यह ज्ञानमार्ग एकमात्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। जिसपर मनीषी (ज्ञानी) पुरुष चलते हैं, उस मार्गको देख या जान लेनेपर मनुष्य जन्म-मृत्युरूप संसारको लाँघ जाता है और वह महात्मा पुरुष कभी इस संसारमें आसक्त नहीं होता।'

संजय पुनः धृतराष्ट्रको समझाते हुए बोले—

संजय उवाच

नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम्।
आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्॥
इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम्॥
इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः।
बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः॥

एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् ।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः ॥
अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः ।
आगमाधिगमाद् योगाद् वशी तत्त्वे प्रसीदति ॥
(उद्योग० ६९ । १७–२१)

संजयने कहा—'महाराज ! जिसने अपने मनको वशमें नहीं किया है, वह कभी नित्यसिद्ध परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको नहीं पा सकता । अपनी (सम्पूर्ण) इन्द्रियोंको वशमें किये बिना दूसरा कोई कर्म उन परमात्माकी प्राप्तिका उपाय नहीं हो सकता । विषयोंकी ओर दौड़नेवाली इन्द्रियोंकी भोग-कामनाओंका पूर्ण सावधानीके साथ त्याग कर देना, प्रमादसे दूर रहना तथा किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना—ये तीन निश्चय ही तत्त्व-ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हैं । राजन् ! आप आलस्य छोड़कर इन्द्रियोंके संयममें तत्पर हो जाइये और अपनी बुद्धिको जैसे भी सम्भव हो, नियन्त्रणमें रखिये, जिससे वह अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट न हो । इन्द्रियोंको दृढ़तापूर्वक संयममें रखना चाहिये । विद्वान् ब्राह्मण इसीको ज्ञान मानते हैं । यह ज्ञान ही वह मार्ग है, जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं । राजन् ! मनुष्य अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये बिना भगवान् श्रीकृष्णको नहीं पा सकते । जिसने शास्त्रज्ञान और योगके प्रभावसे अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रक्खा है, वही तत्त्व-ज्ञान पाकर प्रसन्न होता है ।' तदनन्तर संजयने भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र नामोंकी व्युत्पत्ति धृतराष्ट्रको सुनायी—

संजय उवाच

श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम् ।
यावत् तत्राभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥
वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्त्वाद् विष्णुरुच्यते ॥
मौनाद् ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् ।
सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः ॥
कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः ॥
पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ।
तद्भावात् पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः ॥
यतः सत्त्वान्न च्यवते यच्च सत्त्वान्न हीयते ।
सत्त्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभाद् वृषभेक्षणः ॥
न जायते जनित्रायमजस्तस्मादनीकजित् ।
देवानां स्वप्रकाशत्वाद् दमाद् दामोदरो विभुः ॥
हर्षात् सुखात् सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते ।
बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः ॥
अधो न क्षीयते जातु यस्मात् तस्मादधोक्षजः ।
नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥
पूरणात् सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः ।
असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ।
सर्वस्य च सदा ज्ञानात् सर्वमेतं प्रचक्षते ।
सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् ॥
सत्यात् सत्यं तु गोविन्दस्तस्मात् सत्योऽपि नामतः ।
विष्णुर्विक्रमणाद् देवो जयनाज्जिष्णुरुच्यते ॥
शाश्वतत्वादनन्तश्च गोविन्दो वेदनाद् गवाम् ।
अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ॥
एवंविधो धर्मनित्यो भगवान् मधुसूदनः ।
आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥
(उद्योग० ७० । २–१५)

संजयने कहा—"राजन् ! मैंने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके नामोंकी मङ्गलमयी व्युत्पत्ति सुन रखी है, उसमेंसे जितनी मुझे याद है, उतनी कह रहा हूँ । वास्तवमें तो भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंकी पहुँचसे परे हैं । भगवान् समस्त प्राणियोंके निवासस्थान हैं तथा वे सब भूतोंमें वास करते हैं, इसलिये 'वसु' हैं एवं देवताओंकी उत्पत्तिके स्थान होनेसे और समस्त देवता उनमें वास करते हैं, इसलिये उन्हें 'देव' कहा जाता है । अतएव उनका नाम 'वासुदेव' है, यों जानना चाहिये । बृहत् अर्थात् व्यापक होनेके कारण वे ही 'विष्णु' कहलाते हैं । भारत ! मौन, ध्यान और योगसे उनका बोध अथवा साक्षात्कार होता है; इसलिये आप उन्हें 'माधव' समझें । 'मधु' शब्दसे प्रतिपादित पृथ्वी आदि सम्पूर्ण तत्त्वोंके उपादान एवं अधिष्ठान होनेके कारण मधुसूदन श्रीकृष्णको 'मधुहा' कहा गया है । 'कृष्' धातु 'सत्ता' अर्थका वाचक है और 'ण' शब्द 'आनन्द' अर्थका बोध कराता है; इन दोनों भावोंसे युक्त होनेके कारण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए नित्य आनन्दस्वरूप श्रीविष्णु 'कृष्ण' कहलाते हैं । भगवान्के नित्य, अक्षय, अविनाशी एवं परम धामका नाम 'पुण्डरीक' है । उसमें स्थित होकर जो अक्षतभावसे विराजते हैं, वे भगवान् 'पुण्डरीकाक्ष' कहलाते हैं । (अथवा

पुण्डरीक कमलके समान उनके अक्षि—नेत्र हैं, इसलिये उनका नाम पुण्डरीकाक्ष है)। दस्युजनों चोर-डाकुओं-को त्रास (अर्दन या पीड़ा) देनेके कारण वे 'जनार्दन' कहलाते हैं। वे सत्यसे कभी च्युत नहीं होते और न सत्त्वसे अलग ही होते हैं, इसलिये सद्भावके सम्बन्धसे उनका नाम 'सात्वत' है। आर्ष कहते हैं वेदको, उससे भासित होनेके कारण भगवान्का एक नाम 'आर्षभ' है। आर्षभके योगसे ही वे 'वृषभेक्षण' कहलाते हैं (वृषभका अर्थ है वेद, वही ईक्षण-नेत्रके समान उनका ज्ञापक है; इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'वृषभेक्षण' नामकी सिद्धि होती है।) शत्रु-सेनाओंपर विजय पानेवाले ये भगवान् श्रीकृष्ण किसी जन्मदाताके द्वारा जन्म ग्रहण नहीं करते, इसलिये 'अज' कहलाते हैं। देवता स्वयं प्रकाशरूप होते हैं, अतः उत्कृष्टरूपसे प्रकाशित होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण-को 'उदर' कहा गया है और दम (इन्द्रिय-संयम) नामक गुणसे सम्पन्न होनेके कारण उनका नाम 'दाम' है। इस प्रकार दाम और उदर इन दोनों शब्दोंके संयोगसे वे 'दामोदर' कहलाते हैं। वे हर्ष अर्थात सुखसे युक्त होनेके कारण हृषीक हैं और सुख-ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण 'ईश' कहे गये हैं। इस प्रकार वे भगवान् 'हृषीकेश' नाम धारण करते हैं। अपनी दोनों बाहुओंद्वारा भगवान् इन पृथ्वी और आकाशको धारण करते हैं, इसलिये उनका नाम 'महाबाहु' है। श्रीकृष्ण कभी नीचे गिरकर क्षीण नहीं होते, अतः ('अधो न क्षीयते जातु' इस व्युत्पत्तिके अनुसार) 'अधोक्षज' कहलाते हैं। वे नरों (जीवात्माओं) के अयन (आश्रय) हैं, इसलिये वे 'नारायण' भी कहलाते हैं। वे सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा सबके निवास-स्थान हैं, इसलिये 'पुरुष' हैं और सब पुरुषोंमें उत्तम होनेके कारण उनकी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। वे सत् और असत् सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा सर्वदा उन सबका ज्ञान रखते हैं; इसलिये उन्हें 'सर्व' कहते हैं। श्रीकृष्ण सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और सत्य उनमें प्रतिष्ठित है। वे भगवान् गोविन्द सत्यसे भी उत्कृष्ट सत्य हैं। अतः उनका एक नाम 'सत्य' भी है। विक्रमण (वामनावतारमें तीनों लोकोंको आक्रान्त) करनेके कारण वे भगवान् 'विष्णु' कहलाते हैं। वे सबपर विजय पानेसे 'जिष्णु', शाश्वत (नित्य) होनेसे 'अनन्त' तथा गौओं (इन्द्रियों) के ज्ञाता और प्रकाशक होनेके कारण ('गां विन्दति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार) 'गोविन्द' कहलाते हैं। वे अपनी सत्ता-स्फूर्ति देकर असत्यको भी सत्य-सा कर देते हैं और इस प्रकार सारी प्रजाको मोहमें डाल देते हैं। निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन भगवान् मधुसूदनका स्वरूप ऐसा ही है। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण कौरवोंपर कृपा करनेके लिये यहाँ पधारनेवाले हैं।"

भगवान् श्रीकृष्णके नामोंकी महिमा सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च॥
ईरयन्तं भारतीं भारताना-
मभ्यर्चनीयां शंकरीं सृंजयानाम्।
बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिद्यां
परासूनामग्रहणीयरूपाम्॥
समुद्यन्तं सात्वतमेकवीरं
प्रणेतारमृषभं यादवानाम्।
निहन्तारं क्षोभणं शात्रवाणां
मुञ्चन्तं च द्विषतां वै यशांसि॥
द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता
महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम्।
ब्रुवन्तं वाचमनृशंसरूपां
वृष्णिश्रेष्ठं मोहयन्तं मदीयान्॥
ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं
वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम्।
अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं
हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम॥
सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराण-
मनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम्।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं
परं परेषां शरणं प्रपद्ये॥

त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं
देवासुराणामथ नागरक्षसाम्।
नराधिपानां विदुषां प्रधान-
मिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये॥

(उद्योग० ७१। १--७)

धृतराष्ट्र बोले--'संजय ! जो लोग परम उत्तम श्री-अङ्गोंसे सुशोभित तथा दिशा-विदिशाओंको प्रकाशित करते हुए वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निकटसे दर्शन करेंगे, उन सफल नेत्रोंवाले मनुष्योंके सौभाग्यको पानेकी मैं भी अभिलाषा रखता हूँ। भगवान् अत्यन्त मनोहर वाणीमें जो प्रवचन करेंगे, वह भरतवंशियों तथा सृंजयोंके लिये कल्याणकारी तथा आदरणीय होगा। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंके लिये भगवान्की वह वाणी अनिन्द्य और शिरोधार्य होगी; परंतु जो मृत्युके निकट पहुँच चुके हैं, उन्हें वह अग्राह्य प्रतीत होगी। संसारके अद्वितीय वीर, सात्वतकुलके श्रेष्ठ पुरुष, यदुवंशियोंके माननीय नेता, शत्रुपक्षके योद्धाओंको क्षुब्ध करके उनका संहार करनेवाले तथा वैरियोंके यशको बलपूर्वक छीन लेनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ उदित होंगे। (और नेत्रवाले लोग उनका दर्शन करके धन्य हो जायँगे।) महात्मा, शत्रुहन्ता तथा सबके वरण करने योग्य वे वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण यहाँ आकर कृपापूर्ण कोमल वाक्य बोलेंगे और हमारे पक्षवर्ती राजओंको मोहित करेंगे; इस अवस्थामें समस्त कौरव उन्हें देखेंगे। जो अत्यन्त सनातन ऋषि, ज्ञानी, वाणीके समुद्र और प्रयत्नशील साधकोंको कलशके जलकी भाँति सुलभ होनेवाले हैं, जिनके चरण समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाले हैं, सुन्दर पंखोंसे युक्त गरुड़ जिनके स्वरूप हैं, जो प्रजाजनोंके पाप-ताप हर लेनेवाले तथा जगत्के आश्रय हैं, जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो अक्षय कीर्तिसे सुशोभित, बीज एवं वीर्यको धारण करनेवाले, अजन्मा, नित्य तथा परात्पर परमेश्वर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण लेता हूँ। जो तीनों लोकोंका निर्माण करनेवाले हैं, जिन्होंने देवताओं, असुरों, नागों तथा राक्षसोंको भी जन्म दिया है तथा जो ज्ञानी नरेशोंके प्रधान हैं, इन्द्रके छोटे भाई वामन-स्वरूप उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

× × ×

इधर कौरवपक्षमें धृतराष्ट्र भगवान्के गुणानुवादमें रत थे और उधर धर्मराज अपने पक्षके विराट-द्रुपद आदि राजाओंके साथ भगवान् वासुदेवके पास गये और बोले----'श्रीकृष्ण ! धृतराष्ट्र लोभमें डूबे हुए हैं, धर्मको नहीं देखते। मैंने उनसे केवल पाँच गाँव माँगे हैं और इसीपर संधि करनेके लिये हम तैयार हैं, परंतु दुष्टात्मा दुर्योधन इतना भी देनेके लिये तैयार नहीं है।

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम्।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव॥

(७२। ७६)

माधव ! ऐसी स्थितिमें आप हमारे लिये अवसरोचित शीघ्र करनेयोग्य कर्तव्य क्या समझते हैं ? हम क्या करें जिससे अर्थ और धर्मसे वञ्चित न होना पड़े ?'--धर्मराजके यों कहनेपर भगवान् बोले---'राजन् ! मैं दोनों पक्षोंके हितके लिये कौरवोंकी सभामें जाऊँगा।' उसके बाद श्रीकृष्णको शान्ति-स्थापनके निमित्त कौरव-सभामें जाते देखकर युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन और नकुलने शान्ति-स्थापनकी चेष्टा करनेके लिये ही भगवान्से निवेदन किया; परंतु सहदेवने कहा---शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! महाराज युधिष्ठिर जो कुछ कहते हैं, वह सनातन धर्म है; परंतु मैं चाहता हूँ कि आप ऐसा प्रयत्न करें कि युद्ध होकर रहे।'

कथं नु दृष्ट्वा पाञ्चालीं तथा कृष्ण सभागताम्।
अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने॥

(८१। ३)

'श्रीकृष्ण ! पाञ्चालकुमारी द्रौपदीको वैसी दशामें सभाके भीतर लायी देखकर दुर्योधनके प्रति बढ़ा हुआ मेरा क्रोध उसका वध किये बिना कैसे शान्त हो सकता है !' परम वीर सात्यकिने इसका समर्थन किया और उसे सुनकर उपस्थित योद्धा भयंकर सिंहनाद करने लगे।

तत्पश्चात् भगवान् वासुदेव दिव्य रथपर सवार हो सात्यकि और कृतवर्मा तथा अन्यान्य वृष्णिवंशीय वीरों-को साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओर चल पड़े। भगवान्

श्रीकृष्णका रथ हस्तिनापुरकी ओर बड़े वेगसे बढ़ा चला जा रहा था कि श्रीकृष्णने रास्तेके दोनों ओर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान ऋषियोंको खड़े देखा। भगवान् रथ रोककर तुरंत उतर पड़े और महर्षियोंको प्रणाम करके आदरपूर्वक उनसे बोले—

कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद् धर्मः स्वनुष्ठितः।
ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित् तिष्ठन्ति शासने॥
(पितृदेवातिथिभ्यश्च कच्चित् पूजा स्वनिष्ठिता।)
तेभ्यः प्रयुज्य तां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः।
भगवन्तः क्व संसिद्धाः का वीथी भवतामिह॥
किं वा कार्यं भगवतामहं किं करवाणि वः।
केनार्थेनोपसम्प्राप्ता भगवन्तो महीतलम्॥
(एवमुक्ताः केशवेन मुनयः संशितव्रताः।
नारदप्रमुखाः सर्वे प्रत्यनन्दन्त केशवम्॥
अधःशिराः सर्पमाली महर्षिः स हि देवलः।
अर्वावसुः सुजानुश्च मैत्रेयः शुनको बली॥
बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनस्तथा।
आयोदधौम्यो धौम्यश्च अणीमाण्डव्यकौशिकौ॥
दामोष्णीषस्त्रिषवणः पर्णादो घटजानुकः।
मौञ्जायनो वायुभक्षः पाराशर्योऽथ शालिकः॥
शीलवानशनिर्धाता शून्यपालोऽकृतव्रणः।
श्वेतकेतुः कहोलश्च रामश्चैव महातपाः॥
तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम्।
परिष्वज्य च गोविन्दं सुरासुरपतेः सखा॥
देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।
राजर्षयश्च दाशार्ह मानयन्तस्तपस्विनः।
देवासुरस्य द्रष्टारः पुराणस्य महामते॥
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वतः।
सभासदश्च राजानस्त्वां च सत्यं जनार्दनम्॥
एतन्महत् प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव।
धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव॥
त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परंतप।
भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च महामतिः॥
त्वं च यादवशार्दूल सभायां वै समेष्यथ।
तव वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव॥
श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च।
आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम्॥
यात्वविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां सभागतम्।
आसीनमासने दिव्ये बलतेजः समाहितम्॥
(उद्योग० ८३। ६२–७२)

'महात्माओ! सम्पूर्ण लोकोंमें कुशल तो है न? क्या धर्मका अच्छी तरह अनुष्ठान हो रहा है? क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अधीन रहते हैं न? क्या पितरों, देवताओं, अतिथियोंकी पूजा भलीभाँति सम्पन्न हो रही है?' तत्पश्चात् उन महर्षियोंकी पूजा करके भगवान् मधुसूदनने फिर उनसे पूछा—'महात्माओ! आपने कहाँ सिद्धि प्राप्त की है? आपलोगोंका यहाँ कौन-सा मार्ग है? अथवा आपलोगोंका क्या कार्य है? भगवन्! मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ? किस प्रयोजनसे आपलोग इस भूतलपर पधारे हैं?'' श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कठोरव्रत धारण करनेवाले नारद आदि सभी महर्षि उनका अभिनन्दन करने लगे।

(नारदजीके अतिरिक्त जो महर्षि वहाँ उपस्थित थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—) अधःशिरा, सर्पमाली, महर्षि देवल, अर्वावसु, सुजानु, मैत्रेय, शुनक, बली, दल्भपुत्र बक, स्थूलशिरा, पराशरनन्दन श्रीकृष्णद्वैपायन, आयोदधौम्य, धौम्य, अणीमाण्डव्य, कौशिक, दामोष्णीष, त्रिषवण, पर्णाद, घटजानुक, मौञ्जायन, वायुभक्ष, पाराशर्य, शालिक, शीलवान्, अशनि, धाता, शून्यपाल, अकृतव्रण, श्वेतकेतु, कहोल एवं महातपस्वी परशुराम। उस समय देवराज तथा दैत्यराजके भी सखा जमदग्निनन्दन परशुरामने मधुसूदन श्रीकृष्णके पास जाकर उन्हें हृदयसे लगाया और इस प्रकार कहा—

'महामते केशव! जिन्होंने पुरातन देवासुरसंग्रामको भी अपनी आँखोंसे देखा है, वे पुण्यात्मा देवर्षिगण, अनेक शास्त्रोंके विद्वान् ब्रह्मर्षिगण, तथा आपका सम्मान करनेवाले तपस्वी राजर्षिगण सम्पूर्ण दिशाओंसे एकत्र हुए भूमण्डलके क्षत्रियनरेशोंको, सभामें बैठे हुए भूपालोंको तथा सत्यस्वरूप आप भगवान् जनार्दनको देखना चाहते हैं। इस परम दर्शनीय वस्तुका दर्शन करनेके लिये ही हम हस्तिनापुर चल रहे हैं। शत्रुओंको संताप देनेवाले माधव! वहाँ कौरवों तथा अन्य राजाओंकी मण्डलीमें आपके द्वारा कही जानेवाली धर्म और अर्थसे युक्त बातोंको हम सुनना चाहते हैं। यदुकुलसिंह! वहाँ कौरवसभामें भीष्म, द्रोण, आदि प्रमुख

क्योंकि, परम बुद्धिमान् विदुर तथा आप पधारेंगे, गोविन्द ! माधव ! उस सभामें आपके तथा भीष्म आदिके मुखसे जो दिव्य, सत्य एवं हितकर वचन प्रकट होंगे, उन सबको हमलोग सुनना चाहते हैं । महाबाहो ! अब हमलोग आपसे पूछकर विदा ले रहे हैं, पुनः आपका दर्शन करेंगे । वीर ! आपकी यात्रा निर्विघ्न हो । जब सभामें पधारकर आप दिव्य आसनपर बैठे होंगे, उसी समय बल और तेजसे सम्पन्न आपके श्रीअङ्गोंका हम पुनः दर्शन करेंगे ।' दूतोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके पधारनेका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे दुर्योधनसे कहने लगे—

अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥
सत्कृत्याचक्षते चान्ये तथैवान्ये समागताः ।
पृथग्वादाश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥
उपायास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी ।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥
तस्मिन् हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः ।
तस्मिन् धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥
स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः ।
पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ॥
स चेत् तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिंदमः ।
कृष्णात् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥
तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप ।
सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥
(उद्योग० ८५ । ३-९)

'कुरुनन्दन ! एक अद्भुत और अत्यन्त आश्चर्यकी बात सुनायी देती है । घर-घरमें स्त्री-बालक और बूढ़े इसीकी चर्चा करते हैं । जो यहाँके निवासी हैं, वे तथा जो बाहरसे आये हुए हैं, वे भी आदरपूर्वक उसी बातको कहते हैं । चौराहोंपर और सभाओंमें भी पृथक्-पृथक् वही चर्चा चलती है । वह बात यह है कि पाण्डवोंकी ओरसे परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारेंगे । वे मधुसूदन हमलोगोंके माननीय तथा सब प्रकारसे पूजनीय हैं । सम्पूर्ण लोकोंका जीवन उन्हींपर निर्भर है; क्योंकि वे सम्पूर्ण भूतोंके अधीश्वर हैं । उन माधवमें धैर्य, पराक्रम, बुद्धि और तेज—सब कुछ है । उन नरश्रेष्ठ श्रीकृष्णका यहाँ सम्मान होना चाहिये; क्योंकि वे सनातन धर्मस्वरूप हैं । सम्मानित होनेपर वे हमारे लिये सुखदायक सिद्ध होंगे और सम्मानित न होनेपर हमारे दुःखके कारण बन जायँगे । शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यदि हमारे सत्कार-साधनोंसे संतुष्ट हो गये तो हम समस्त राजाओंमें उनसे अपने सारे मनोरथ प्राप्त कर लेंगे । परंतप ! तुम श्रीकृष्णके स्वागत-सत्कारके लिये आजसे ही तैयारी करो । मार्गमें अनेक विश्रामस्थान बनवाओ और उनमें सब प्रकारकी मनोऽनुकूल उपभोग-सामग्री प्रस्तुत करो ।'

कौरवोंने भगवान् वासुदेवके स्वागतमें कोई कोर-कसर नहीं रखी । मार्गमें जगह-जगहपर उनके ठहरनेके लिये राजोचित प्रबन्ध किये गये । परंतु श्रीकृष्णने उसका उपयोग नहीं किया । भगवान् वासुदेवका दर्शन करनेके लिये तथा अगवानी करनेके लिये (दुर्योधनको छोड़कर) धृतराष्ट्रके सभी पुत्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा नागरिकोंका समुद्र उमड़ पड़ा । भगवान् वेदव्यास कहते हैं—

कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम् ।
बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥
न च कश्चिद् गृहे राजन् तदाऽऽसीद् भरतर्षभ ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥
राजमार्गे नरास्तस्मिन् संस्तुवन्त्यवनिं गताः ।
तस्मिन् काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥
(उद्योग० ८९ । ६-८)

श्रीकृष्णके स्वागतार्थ हस्तिनापुर खूब सजाया गया । अनेक प्रकारके रत्नोंसे खचित राजमार्ग भी सुशोभित हो रहा था । भगवान् वासुदेवका दर्शन करनेकी इच्छासे सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सड़कके किनारे आ गये थे, कोई भी घरमें नहीं रह गया था । जब श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश करने लगे, उस समय राजमार्गपर भूमिपर खड़े मनुष्य उनकी स्तुति कर रहे थे ।

कौरवोंका समुचित आतिथ्य स्वीकार करके भगवान् वासुदेव विदुरजीके घर पधारे । वहाँ विदुरसे पाण्डवोंकी गाथा सुनाकर कुन्तीसे मिले । कुन्तीदेवीने जब अपने शक्तिशाली पुत्रोंके बीच रहकर विचरण करनेवाले माधवको देखा, तब उसकी आँखोंसे अश्रुओंकी वर्षा होने लगी । उसने एक-एक करके अपनी सारी

दुःखगाथा तथा कौरवोंके द्वारा पाण्डवोंपर किये गये अत्याचारोंको कह सुनाया, और पूछा—'श्रीकृष्ण ! इस दुःखका अन्त कब होगा ?'

न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः।
प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम्॥
यत् तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता।
अशृणोत् परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः॥
(उद्यो० ९० । ८५,८६)

'श्रीकृष्ण ! राज्य चला गया, इसका मुझे दुःख नहीं; न जूएमें हारनेका दुःख है। मेरे पुत्रोंको वन भेज दिया गया, इसका भी मुझे दुःख नहीं। परंतु जनार्दन ! मेरी उस सुन्दरी बड़ी बहूको जो एक वस्त्रसे सभामें जाना पड़ा और कर्कश वचन सुनने पड़े, उससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ?'

भगवान् वासुदेवने पाण्डवोंका प्रणाम तथा उनकी कुशलताका समाचार कहकर कुन्तीदेवीको सान्त्वना देते हुए कहा कि उनके वीर पुत्र शत्रुओंका संहार करके पुनः चक्रवर्ती-राज्य प्राप्त करेंगे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण कुन्तीकी आज्ञा लेकर दुर्योधनके घर गये। वहाँ कौरवोंके द्वारा निवेदित सुवासित जल, मधुपर्क आदि ग्रहणकर भगवान् एक सुवर्णमय पर्यङ्कपर बैठ गये।

तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम्॥
उपासांचक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह।
(उद्यो० ९१ । १०-११)

'उस पर्यङ्कपर बैठे हुए भगवान् गोविन्द निरभ्र आदित्यके समान प्रदीप्त हो रहे थे। राजाओंके साथ सब कौरव आकर उनके पास बैठ गये।' तब दुर्योधनने वार्ष्णेय श्रीकृष्णको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। भगवान्ने उसके आमन्त्रणको अस्वीकार करते हुए कहा, 'नियमतः दूत अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते हैं। यह दूतका धर्म है, और मैं धर्मत्याग नहीं कर सकता। इसके सिवा राजन् ! पाण्डव तुम्हारे भाई हैं, प्रेमसे रहना चाहते हैं; फिर भी तुम उनसे अकारण द्वेष करते हो।

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥
(९१ । २८)

'जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है; और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे अनुकूल है। तुम मुझको धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ एकप्राण समझो।'

सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः॥
(९१ । ३२)

'तुम्हारा यह सारा अन्न दुरभिसंधिसे भरा हुआ है, अतएव भोजन करने योग्य नहीं है। मेरे मनमें आ रहा है कि केवल विदुरका ही अन्न यहाँ ग्रहण करना चाहिये।'

इतना कहकर भगवान् वासुदेव विदुरके घर ठहरनेके लिये चले गये। उनका दुर्योधनका अन्न ग्रहण करना दौत्यधर्मके विरुद्ध था। दुर्योधनके प्रति कोई द्वेषभाव होनेके कारण उन्होंने ऐसा किया हो—ऐसी बात नहीं थी। विदुर धर्मज्ञ थे, नीतिज्ञ थे और साथ ही धर्माचरणके पक्षपाती थे। इसके सिवा वे कौरवों और पाण्डवों—दोनों पक्षका हित चाहते थे। इसी कारण भगवान्ने कहा—'क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यम्' अर्थात् केवल विदुरका अन्न ही ग्रहण करने योग्य है। भगवान् संधि करानेके उद्देश्यसे आये थे; अतएव जब विदुरजीने उनको वस्तुस्थिति समझायी और उनको कौरव-सभामें जानेसे रोकना चाहा, तब भगवान्ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। वे बोले—'मैं यहाँ दोनों पक्षोंका हित-साधन करनेके लिये आया हूँ; इसके लिये मुझे पूरा प्रयत्न करने दीजिये, जिससे पीछे कोई यह न कहे कि मैं दौत्य-धर्मको पूरा न कर सका।'

अहापयन् पाण्डवार्थं यथाव-
च्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात्॥
(९३ । १९)

'महात्मन् ! यदि मैं पाण्डवोंके स्वार्थका साधन करते हुए कौरवों और पाण्डवोंमें शान्ति स्थापित कर सका तो मुझको तो महान् पुण्य होगा और कौरव मृत्युके पाशसे बच जायँगे।'

दूसरे दिन दुर्योधन आदि श्रीकृष्णके पास आये

और उन्होंने निवेदन किया कि महाराज धृतराष्ट्र सभामें आ गये हैं, तथा भीष्म आदि कौरव एवं अन्य सब राजालोग भी वहाँ उपस्थित हैं, और—

त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवामराः।
(९४ । ९)

'हे गोविन्द ! जैसे स्वर्गमें देवतालोग इन्द्रका आवाहन करते हैं, उसी प्रकार ये लोग आपसे दर्शन देनेकी प्रार्थना करते हैं ।' यह सुनकर भगवान्‌ने परम मधुर सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे उनका अभिनन्दन किया, और रथपर सवार होकर वे कौरव-सभाकी ओर चल दिये । यह खबर बिजलीकी तरह नगरमें फैल गयी, और सारे हस्तिनापुरका बाल-वृद्ध तथा युवा-नर-नारियोंका समूह भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये राजमार्गकी ओर दौड़ पड़ा ।

राजसभामें पहुँचनेपर भगवान् वासुदेवके सत्कारमें सारी सभा उठ खड़ी हो गयी। पश्चात् सब लोग यथायोग्य स्थानोंपर बैठ गये । चिरकालके बाद दशार्हकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्णको देखकर राजाओंके नेत्र परितृप्त ही न होते थे । सभीका मन गोविन्दमें ही लगा था । इतनेमें भगवान् वासुदेव धृतराष्ट्रको सम्बोधन करके गम्भीर स्वरसे बोले—'भरतनन्दन ! मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया हूँ कि क्षत्रिय वीरोंका संहार हुए बिना ही कौरव-पाण्डवोंमें शान्ति स्थापित हो जाय ।' पाण्डवोंने आपको प्रणाम करके यह संदेश भेजा है कि आपकी आज्ञासे उन्होंने भारी दुःख भोगा है । बारह वर्ष निर्जन वनमें वास किया है और तेरहवाँ वर्ष जनसंकुल नगरमें अज्ञात रहकर बिताया है । अब आप अपनी प्रतिज्ञाको याद कीजिये और उनका राज्य उन्हें लौटा दीजिये ।'

राजन् ! आपके पुत्र लोभासक्त हो रहे हैं, उन्हें काबूमें लाइये । शत्रुओंका दमन करनेवाले पाण्डव आपकी सेवाके भी लिये तैयार हैं और युद्धके लिये भी प्रस्तुत हैं; जो आपको हितकर जान पड़े, वही कीजिये ।'

भगवान् वासुदेवके इस कथनका सब राजाओंने हृदयसे आदर किया, पर कोई कुछ कहनेके लिये अग्रसर न हो सका । तब परशुरामजीने, जो उस सभामें उपस्थित थे, बतलाया कि "किस प्रकार प्राचीनकालमें अति दुर्मद दम्भोद्भव नामके राजाने सार्वभौम राज्य करते हुए गन्धमादन पर्वतपर तप करनेवाले नर-नारायण ऋषिको युद्धके लिये ललकारा था । तब महात्मा नरने एक मुट्ठी सींक लेकर उसकी सारी सेनाको हतप्रभ करके छोड़ दिया । अन्तमें राजा दम्भोद्भव उनकी शरणमें गया और दोनों महात्माओंको प्रणाम करके धर्माचरणमें रत होनेकी प्रतिज्ञा लेकर अपनी राजधानीको लौटा ।

सुमहच्चापि तत्कर्म तन्नरेण कृतं पुरा।
ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥
नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥
(९६ । ४०, ४९)

—इस प्रकार पूर्वकालमें महात्मा 'नर'ने वह महान् कर्म किया था । उनसे भी गुणोंमें बहुत श्रेष्ठ 'नारायण' हो गये हैं । महाराज ! वे ही 'नर-नारायण' अर्जुन और श्रीकृष्णको जानो । ये दोनों पुरुषोत्तम और वीरोंमें श्रेष्ठ हैं । इसलिये यदि तुम मेरी बातमें श्रद्धा रखते हो तो जैसे भी हो, पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हारा कुल इस पृथ्वीपर बहुत प्रतिष्ठित है, वह प्रतिष्ठा बनी रहे । तुम्हारा कल्याण हो, इसके लिये अपने वास्तविक स्वार्थका ही विचार करो ।'

इस प्रकार परशुरामजीने तथा उनके पश्चात् कण्वमुनि, देवर्षि नारद, भीष्म, द्रोण, विदुर और श्रीकृष्णके समझानेपर भी दुर्योधनने उनकी एक न सुनी । उसने दर्पसे भरे वचनोंसे सबको निरुत्तर कर दिया । वह बोला—

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥
इति मातङ्गवचनं परीप्सन्ति हितेप्सवः।
धर्माय चैव प्रणमेद् ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥
अचिन्तयन् कंचिदन्यं यावज्जीवं तथाऽऽचरेत्।
एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥
(उद्योग० १२७ । १९-२१)

"प्रसिद्ध नीतिवेत्ता मातङ्गमुनिका वचन है कि 'वीर पुरुष सदा उद्योग ही करे, किसीके सामने झुके नहीं;

महात्मा विदुर

क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषका धर्म है। वीर पुरुष अकालमें ही कालकवलित भले हो जाय, पर कभी किसी शत्रुके सामने सिर न झुकाये।' अतएव अपना हित चाहनेवाले इसी नीतिका अनुसरण करते हैं। इसलिये मेरे-जैसा मनुष्य केवल धर्मके आगे सिर झुका सकता है और ब्राह्मणको ही प्रणाम कर सकता है। किसी भी दूसरेकी परवा न करके जीवन भर ऐसा ही आचरण करता रहे, यही क्षत्रियका धर्म है और यही मेरा भी मत है। जनार्दन! जबतक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं, तबतक हमें और पाण्डवोंको हथियार न उठाकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहिये। केशव! दुर्योधनके जीते-जी पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी भूमि नहीं दी जा सकती।

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥
(उद्यो० १२७। २५)

इसपर भगवान् वासुदेवने दुर्योधनको डाँटा और कहा कि, 'तुम सभामें धर्मकी डींग हाँक रहे हो; परंतु धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ तुमने जो क्रूरकर्म किये हैं, क्या वे क्षत्रियोचित हैं? तुमने वारणावतमें माताके सहित पाण्डवोंको जीते ही जला डालनेका कुचक्र रचा था। तुमने विष देकर, सर्पसे कटाकर और हाथ-पैर बाँधकर जलमें डुबाकर पाण्डवोंको मार डालनेका प्रयत्न किया था। तुमने अपने बड़े भाईकी पत्नीको भरी सभामें बलपूर्वक मँगवाकर उसको नंगी करनेका घृणित प्रयत्न किया था। क्या यही तुम्हारा क्षात्रधर्म है?' दुर्योधन-को इस प्रकार फटकारकर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृप आदिको सम्बोधन करते हुए श्रीकृष्णने नीतियुक्त वचन कहते हुए अपना भाषण समाप्त किया। वे बोले—'आपत्ति-काल उपस्थित होनेपर कुलकी भलाईके लिये एक पुरुषका त्याग कर देना चाहिये। ग्रामके लिये कुलका, जनपदके लिये ग्रामका और आत्म-कल्याणके लिये समस्त भूमण्डलका त्याग कर देना चाहिये। अतएव—

राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ॥
(उद्योग० १२८। ५०)

'हे राजन्! आप दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे संधि कर लें। ऐसा न हो कि आपके कारण समस्त क्षत्रियोंका विनाश हो जाय।'

इधर भगवान् वासुदेव भरी सभामें दुर्योधनको कैद करनेकी बात कह रहे थे, उधर दुर्योधन स्वयं कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदिसे मन्त्रणा करके भगवान् श्रीकृष्णको ही गिरफ्तार करनेका कुचक्र रचने लगा। परंतु सात्यकिने उनकी मन्त्रणाका भेद प्राप्तकर महात्मा विदुरसे इसका रहस्योद्घाटन कर दिया।

दिव्य दर्शन

महात्मा विदुरने उसी सभामें दुर्योधनकी इस कुमन्त्रणाकी भर्त्सना आरम्भ कर दी। उन्होंने कहा—

विदुर उवाच

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम साम्प्रतम्।
सौभद्वारे दानवेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम्॥
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम्।
ग्रहीतुं नाशकच्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥
प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः।
ग्रहीतुं नाशकत् तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥
अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे।
नीत्वा कन्या सहस्राणि उपयेमे यथाविधि॥
निर्मोचने षट् सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः।
ग्रहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥
अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ॥
अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन्॥
जरासंधश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान्।
बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः॥
वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः॥
एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः॥
अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे।
यद् यदिच्छेदयं शौरिस्तत् तत् कुर्यादयत्नतः॥
तं न बुद्ध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम्॥

प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥
(उद्योग० १३० । ४१–५३)

'दुर्योधन ! इस समय मेरी बातपर ध्यान दो । सौभद्वारमें द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक वानरोंका राजा रहता था, जिसने एक दिन पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा करके भगवान् श्रीकृष्णको आच्छादित कर दिया । उसने पराक्रम करके सभी उपायोंसे श्रीकृष्णको पकड़ना चाहा, परंतु इन्हें कभी न पकड़ सका । उन्हीं श्रीकृष्णको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो ? पहलेकी बात है, प्राग्ज्योतिषपुरमें गये हुए श्रीकृष्णको दानवोंसहित नरकासुरने भी वहाँ बंदी बनानेकी चेष्टा की; परंतु वह भी वहाँ सफल न हो सका । उन्हींको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो ? अनेक युगों तथा असंख्य वर्षोंकी आयुवाले नरकासुरको युद्धमें मारकर श्रीकृष्ण उसके यहाँसे सहस्रों राजकन्याओंको (उद्धार करके) ले गये और उन सबके साथ उन्होंने विधिपूर्वक विवाह किया । निर्मोचनमें छः हजार बड़े-बड़े असुरोंको भगवान्‌ने पाशोंमें बाँध लिया । वे असुर भी जिन्हें बंदी न बना सके, उन्हींको तुम बलपूर्वक वशमें करना चाहते हो ?'

'भरतश्रेष्ठ ! इन्होंने बाल्यावस्थामें बकी पूतनाका वध किया था और गौओंकी रक्षाके लिये अपने हाथपर गोवर्धनपर्वतको धारण किया था । अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज केशी और कंस भी लोकहितके विरुद्ध आचरण करनेपर श्रीकृष्णके ही हाथसे मारे गये थे । जरासंध, दन्तवक्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुर भी इन्हींके हाथसे मारे गये हैं तथा अन्य बहुत-से राजाओंका भी इन्होंने ही संहार किया है । अमिततेजस्वी श्रीकृष्णने राजा वरुणपर विजय पायी है । इन्होंने अग्निदेवको भी पराजित किया है और पारिजातहरण करते समय साक्षात् शचीपति इन्द्रको भी जीता है । इन्होंने एकार्णवके जलमें सोते समय मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा था, और दूसरा शरीर धारण करके हयग्रीव नामक राक्षसका भी इन्होंने ही वध किया था । ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है । सबके पुरुषार्थके कारण भी ये ही हैं । ये भगवान् श्रीकृष्ण जो भी चाहें, वह सब अनायास ही कर सकते हैं । अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले इन भगवान् गोविन्दका पराक्रम भयंकर है । तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते । ये क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयानक हैं । ये सत्पुरुषोंद्वारा प्रशंसित एवं तेजकी राशि हैं । अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णका तिरस्कार करनेपर तुम अपने मन्त्रियोंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंग आगमें पड़कर भस्म हो जाता है ।'

विदुरजीके यों कहनेपर भगवान् वासुदेवने मुस्कराते हुए दुर्योधनसे कहा—'अरे मूर्ख ! तुम मोहवश मुझे अकेला मान रहे हो ? यह तुम्हारा अज्ञान है । देखो, सब पाण्डव तथा अन्धक और वृष्णिवंशके वीर यहीं हैं ।' इतना कहकर विपक्षियोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अट्टहास किया और तुरन्त उनके श्रीअङ्गोंसे विद्युत्के समान कान्तिवाले अङ्गुष्ठमात्र आकारके देवता आगकी लपटें छोड़ने लगे । आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस विभिन्न अङ्गोंमें प्रकट हो गये । दाहिनी और बायीं भुजामें अर्जुन और बलराम तथा पृष्ठदेशमें युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव स्थित दीख पड़े । प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा महान् अस्त्र-शस्त्र धारण किये भगवान्‌के अग्रभागमें प्रकट हो गये । शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, हल तथा नन्दक नामक खड्ग—समस्त आयुध श्रीकृष्णकी अनेक भुजाओंमें देदीप्यमान हो उठे । उनके नेत्रोंसे, नासिका-छिद्रोंसे, कानोंसे भयंकर धूमयुक्त आगकी लपटें निकलने लगीं । सारे रोमकूपोंसे सूर्यके समान दिव्य किरणें छिटक उठीं । कृष्णका यह भयंकर रूप देखकर भयसे समस्त राजाओंने आँखें मूँद लीं । द्रोण, भीष्म, विदुर, सञ्जय तथा उपस्थित ऋषिगण इस दिव्यरूपको एकटक हो देखने लगे । उनको भगवान् वासुदेवने दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी । उस सभाभवनमें भगवान् श्रीकृष्णका यह परम आश्चर्यमय रूप देखकर देवता आनन्दसे पुष्प-वर्षा करने लगे और दुन्दुभियाँ बजाने लगे ।

भगवान् वासुदेवने निस्संदेह दौत्यकर्मको पूर्णत: निभाया, कौरवों और पाण्डवोंमें संधि करानेकी पूरी चेष्टा की, अन्तमें अपने पूर्णत: ऐश्वर्यको भी व्यक्त किया; पर दुर्योधनने उनकी एक न मानी और अब निश्चय हो गया कि युद्धसे ही सब कुछ निर्णय होगा। तब भगवान् वासुदेव रथपर सवार होकर कुन्तीसे मिलने गये। कुन्तीने भगवान्से कहा--'केशव! अर्जुनसे कहना कि उसके जन्मके समयमें यह आकाशवाणी मैंने सुनी थी--

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत्।
हत्वा कुरूंश्च संग्रामे वासुदेवसहायवान्॥
(उद्यो० १३७। ४)

'तेरा यह पुत्र भगवान् वासुदेवकी सहायतासे कौरवोंको मारकर इस भूमण्डलको जीत लेगा और इसका यश स्वर्गतक फैल जायगा। क्षत्राणी जिस धर्म-युद्धके लिये पुत्रको जन्म देती है, वह उपयुक्त अवसर अब आ गया है। वीरो! तुम प्राणोंकी बाजी लगाकर अपने पराक्रमसे भूतलका राज्य प्राप्त करके उसका भोग करो। यही मैं तुमसे चाहती हूँ।' रानी कुन्तीका यह संदेश लेकर भगवान् वासुदेव अपने अनुयायियोंके साथ उपप्लव्यनगरमें पाण्डवोंके पास पहुँचे।

× × ×

[भीष्मपर्व--]

जब दोनों पक्षकी सेनाएँ युद्ध-भूमिमें सुसज्जित हो गयीं, तब युधिष्ठिरने भीष्मके द्वारा अभेद्य व्यूहमें अवस्थित कौरव-सेनाको देखा और वे घबरा गये। उन्होंने अर्जुनसे कहा कि 'हमलोग अपनी सेनाओंके साथ प्राण-संकटकी स्थितिमें आ गये हैं। इस महान् व्यूहसे हमारा उद्धार होगा?' अर्जुनने कहा--

त्यक्त्वा धर्मं च लोभं च मोहं चोद्यममास्थिताः।
युद्ध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः॥
गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।
तद् यथा विजयश्चास्य संनतिश्चापरो गुणः॥
अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः॥
(भी० २१। ११,१३--१४)

"देवासुर-संग्राममें भी देवतालोग जब असुरोंके सैन्य बलको देखकर हतोत्साह हो रहे थे, तब ब्रह्माजीने उनसे कहा था--'देवताओ! अधर्म, मोह और लोभ त्यागकर उद्यमका सहारा ले अहंकाररहित होकर युद्ध करो। जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।' राजन्! विजय तो श्रीकृष्णका गुण है, वह श्रीमाधवके पीछे-पीछे चलता है। विजयके समान ही विनय भी उनका गुण है। श्रीगोविन्दका तेज अनन्त है, वे शत्रुओंके समूहमें भी घबराते नहीं। क्योंकि वे सनातन पुरुष हैं।' अत: जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है।"

इस प्रकार नरावतार अर्जुनने युद्धके पूर्व ही विजय-प्राप्तिका समाश्वासन प्रदान किया और इसके द्वारा इस चरम सत्यको उद्घोषित किया कि जो भगवान् वासुदेवकी कृपा प्राप्त कर चुके हैं, उनकी जीवन-नौका कभी मझधारमें नहीं डूबती, उसका पार लगना अवश्यम्भावी है। इसके बाद भगवान् वासुदेवकी आज्ञासे अर्जुनने रथसे नीचे उतरकर दुर्गाजीकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर दुर्गाजी अन्तरिक्षमें प्रकट हो गयीं और बोलीं--

स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव।
नरस्त्वमसि दुर्द्धर्ष नारायणसहायवान्॥

'पाण्डुनन्दन! तुम थोड़े ही समयमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। दुर्द्धर्ष वीर! तुम साक्षात् नर हो और साक्षात् नारायण तुम्हारी सहायता कर रहे हैं।' इतना कहकर वरदायिनी दुर्गाजी तुरंत अन्तर्धान हो गयीं। यहाँ ग्रन्थकारने दुर्गाजीके द्वारा भी नर-नारायणके अवतारके सिद्धान्तका प्रतिपादन करा दिया।

भगवती दुर्गाका वरदान प्राप्तकर अर्जुन रथपर आरूढ़ हुए और भगवान् श्रीकृष्णसे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें ले चलनेके लिये कहा। वहाँ जाकर जब अर्जुनने भीष्मपितामह, गुरु द्रोण तथा अन्यान्य सहस्रों वीरोंको देखा, जो उनके सगे-सम्बन्धी थे और आपसमें लड़कर एक-दूसरेका प्राण लेनेके लिये उद्यत थे, तब उनको मोहने आ घेरा और श्रीकृष्णसे कह दिया--'भगवन्! मैं अपने सगे-सम्बन्धियोंको इहलोकके राज्यके लिये तो क्या, तीन लोकोंका राज्य भी मुझे मिल जाय तो भी न मारूँगा।' अर्जुनके इस

मोहको दूर करनेके लिये योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जिस तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया, वह जगत्-प्रसिद्ध श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित है । इस महान् उपदेशके प्रसङ्गमें भगवान्ने अर्जुनको अपने विराट्रूपका तथा दिव्य-रूपका दर्शन देकर उनके मोहजनित अन्धकारको दूर कर दिया । अर्जुन आत्मस्थ होकर बोल उठे—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥
(भी० ४२ । ७३)

'अच्युत ! मेरा मोह नष्ट हो गया, आपकी कृपासे मैंने स्मृति प्राप्त कर ली; अब मेरा संदेह दूर हो गया है, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा ।'

यह भगवद्गीता संसारके साहित्यका शिरोरत्न है । संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि 'मैंने भगवान् वासुदेव और अर्जुनके इस अद्भुत रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी संवादको सुना, व्यासजीकी कृपासे योगेश्वर साक्षात् श्रीकृष्णके मुखसे इस परमगुह्य योगको सुना । केशव और अर्जुनके इस पुण्यजनक अद्भुत संवादको याद कर-करके मैं बारंबार हर्षित हो रहा हूँ ।' वस्तुतः विश्व-मानवके लिये भगवान् वेदव्यासकी यह बहुत बड़ी देन है, जिनकी कृपासे दिव्यदृष्टि प्राप्तकर धर्मात्मा संजयने श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस अद्भुत संवादको सर्वसाधारणके लिये सुलभ कर दिया ।

श्रीभगवद्गीताके उपदेशमें भगवान्ने स्पष्टरूपमें अपने स्वरूपका व्याख्यान तथा अपने महत्त्वका दिग्दर्शन कराया है । उन्हींके शब्दोंमें उसकी कुछ महत्ताके दर्शन करें—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥
(गीता ४ । ६–१०)

'मैं जन्मरहित और विनाशरहित तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर रहता हुआ ही अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी मायासे प्रकट होता हूँ । भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-ही-तब मैं अपने स्वरूपको प्रकट करता हूँ । साधुपुरुषोंका परित्राण और दुष्कृती मनुष्योंका विनाश तथा धर्मके संस्थापनके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ । अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं । अर्थात् न तो मेरा जन्म कर्मवश होता है, न मेरा शरीर पाञ्चभौतिक है, न मेरे कर्म किसी वासना-कामनासे प्रेरित होते हैं; अतएव वे सब दिव्य हैं । इस प्रकार तत्त्वसे जो पुरुष मेरे जन्म-कर्मके रहस्यको जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता, वह मुझको (भगवान्को) ही प्राप्त होता है ।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(५ । २९)

'मुझको जो पुरुष यज्ञ-तपोंका भोक्ता, समस्त लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सब प्राणियोंका सुहृद् (अहैतुक मित्र) जान लेता है, वह शान्ति प्राप्त करता है ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥
(६ । ४७)

'सम्पूर्ण योगियोंमें मेरे मतसे परमश्रेष्ठ योगी वह है, जो श्रद्धावान् है और मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मेरा भजन करता है ।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥
(७ । ७)

'धनंजय ! मेरे अतिरिक्त किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंकी भाँति मुझमें ही गुँथा हुआ है ।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥
(७ । १५)

'मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है, जो आसुरी स्वभावके आश्रित है, ऐसे नराधम, पापकर्मा मूढ लोग मेरा भजन नहीं करते ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥
(गीता ७। १६–१९)

'भरतश्रेष्ठ अर्जुन! पुण्यकर्मा अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—चार प्रकारके भक्त मुझको भजते हैं। इनमें नित्य मुझमें जुड़ा हुआ अनन्य भक्तिसम्पन्न ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि उस ज्ञानीको (केवल) मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझको अत्यन्त प्रिय है। ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मुझमें युक्तात्मा पुरुष सर्वोत्तम गतिरूप मुझमें ही स्थित है। बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें ज्ञानवान् पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है' इस प्रकार मुझको भजता है; वह महात्मा सुदुर्लभ है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(गीता ८। १४–१६)

'अर्जुन! जो अनन्यचित्त पुरुष नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझमें जुड़े हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। परमसिद्धिको प्राप्त महात्मागण मुझको प्राप्त होकर दुःखके घर अनित्य पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते।'

अर्जुन! ब्रह्मलोकसे लेकर सभी लोक पुनरावर्ती हैं, अर्थात् वहाँसे लौटना पड़ता है; परंतु प्यारे कौन्तेय! मुझको प्राप्त होकर (किसीको) पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥
(गीता ९। ४–५)

'मुझ अव्यक्तस्वरूपके द्वारा यह सब जगत् व्याप्त है; सब प्राणी मुझमें स्थित हैं, मैं उनमें स्थित नहीं हूँ। और वे सब प्राणी भी मुझमें स्थित नहीं हैं—मेरे इस योग-ऐश्वर्यको तुम देखो। प्राणियोंका धारण-पोषण करनेवाला, भूतभावन भी मेरा आत्मा प्राणियोंमें स्थित नहीं है। अर्थात् केवल मैं ही मैं हूँ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥
(गीता ९। १७–१९)

'मैं ही इस सम्पूर्ण जगत्का धाता (धारण करनेवाला), पिता, माता, पितामह हूँ और मैं ही पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी हूँ। मैं ही सबकी गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी (सबके कर्मोंका नित्य द्रष्टा), निवास (सबको स्थान देनेवाला), शरण लेने योग्य, सुहृद्, उत्पत्ति तथा प्रलयरूप, सबका आधार, सबका निधान, अविनाशी बीजरूप हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ, वर्षाको रोकता हूँ, बरसाता हूँ और मैं ही अमृत, मृत्यु, सत् और असत् हूँ। अर्थात् सब कुछ मैं हूँ और सब कुछ मुझसे है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९। २२)

'जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य मुझमें जुड़े हुए भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥
(९। २४)

'सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता तथा प्रभु भी मैं ही हूँ। परंतु लोग मुझको तत्त्वसे भलीभाँति जानते नहीं, इसीसे गिरते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(९। २६)

'यदि कोई भक्त मेरे लिये भक्तिके साथ पत्र, पुष्प, फल या जल भी अर्पण करता है तो उस प्रेमी भक्तका भक्ति-पूर्वक समर्पण किया हुआ वह (पदार्थ) मैं खा लेता हूँ।'

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(९।३०-३१)

'यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभाक् होकर अर्थात् अपनी भक्तिका भाग दूसरेको न देकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माना जाना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह तुरंत ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तुम निश्चयरूपसे सत्य जानो—मेरे भक्तका कभी नाश (तन) नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(९।३२—३४)

'पार्थ! स्त्री, वैश्य, शूद्र—यहाँतक कि पापयोनि (चाण्डालादि) भी, जो मेरे आश्रित होते हैं, परमगतिको प्राप्त करते हैं। फिर पुण्यशील ब्राह्मण और राजर्षि भक्तोंके लिये तो कहना ही क्या है। अतः इस सुखरहित और अनित्य मानव-शरीरको पाकर तुम सदा मेरा ही भजन करो। मुझमें ही मन लगाओ, मेरे ही भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो, मुझको ही नमस्कार करो, इस प्रकार मेरे परायण होकर अपनेको मुझमें जोड़ देनेपर तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।'

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०।२–३)

अर्जुन! मेरी उत्पत्तिको न तो देवता जानते हैं न महर्षिगण ही; क्योंकि मैं ही सब प्रकारसे सारे देवताओं और महर्षियोंका भी आदि (कारण) हूँ। जो मुझको अजन्मा, अनादि तथा लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह मनुष्योंमें असम्मूढ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
(१०।८—१०)

'मैं ही सबका प्रभव (उत्पत्तिका कारण) हूँ, मुझसे ही सब प्रवर्तित होता है। इस प्रकार मानकर भावसमन्वित बुद्धिमान् पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं। मुझमें चित्त लगाये हुए तथा मुझे जीवन अर्पण किये हुए भक्त नित्य-निरन्तर परस्पर मेरा ही बोध कराते हैं, मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और मुझमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मुझमें जुड़े हुए तथा प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको प्राप्त हो जाते हैं।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(१०।४१-४२)

'जो-जो भी विभूतिमान्, श्रीमान् और शक्तिमान् वस्तु है, उस-उसको तुम मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न जानो। अथवा अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तुम्हें क्या प्रयोजन है। इतना ही जान लो कि इस समस्त जगत्को मैं अपने एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(११।५४-५५)

'श्रेष्ठ तपस्वी अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ, जाना जा सकता हूँ

और मुझमें प्रवेश भी पाया जा सकता है । अर्जुन ! जो पुरुष मेरा ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, आसक्तिसे रहित है तथा समस्त प्राणियोंमें वैर-भावसे रहित है, वह मुझीको प्राप्त होता है ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥
(१४ । ३-४)

'अर्जुन ! महद्ब्रह्म (प्रकृति) मेरी योनि है, मैं उसमें गर्भाधान करता हूँ, उससे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है । कौन्तेय ! सब योनियोंमें जितने शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी प्रकृति ही गर्भ धारण करनेवाली योनि है और मैं बीज स्थापन करनेवाला पिता हूँ ।'

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥
(१४ । २७)

'अविनाशी ब्रह्म, अमृत, सनातनधर्म और ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा मैं ही हूँ ।'

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥
(१५ । १८-१९)

''क्योंकि मैं क्षर (प्रकृति) से अतीत तथा अक्षर (ब्रह्म) से उत्तम हूँ, इसीसे लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध हूँ । भारत ! इस प्रकार जो पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सब कुछ जान चुका है और वह सर्वभावसे मुझको ही भजता है ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(१८ । ६५-६६)

'मुझमें मनवाले होओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करनेवाले होओ, मुझको नमस्कार करो, तो मुझको ही प्राप्त होओगे । यह मैं तुम्हारे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम मेरे प्यारे हो । सब धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुमको सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा । तुम सोच मत करो ।'

भीष्मके ऊपर चक्र-अभियान

युद्धके तीसरे दिन जब भीष्मपितामह उग्र रूप धारणकर पाण्डवसेनाका संहार करने लगे, तब अर्जुनके रथको लेकर भगवान् वासुदेव उनके सामने गये । भयानक युद्ध शुरू हो गया । भीष्म पाण्डव-सेनाका संहार करने लगे, भीष्मके भयानक शरोंकी वर्षासे पाण्डवपक्षके सैनिक भागने लगे । सात्यकिने उनको ललकारा, पर वे न लौटे । भीष्मको संग्राममें अधिकाधिक प्रचण्ड होते देखकर भगवान् श्रीकृष्ण सहन न कर सके, वे बोले—

न मे रथी सात्वत कौरवाणां
क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित् ।
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं
प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य ॥
(भीष्म० ५९ । ८५)

'वीर सात्यकि ! आज कौरव-सेनाका कोई भी रथी क्रोधमें भरे हुए मुझ श्रीकृष्णके हाथसे बच नहीं सकता । मैं अपना भयंकर चक्र धारण करके महाव्रती भीष्मका प्राण-हरण करूँगा ।' अहा ! इतना कहकर भक्त-भयहारी भगवान् वासुदेवने अपनी प्रतिज्ञाकी परवा न करके चक्रको आमन्त्रित किया, और उसे धारण करके द्रुतवेगसे, अर्जुनका रथ छोड़कर, भीष्मकी ओर लपके । भगवान्‌के इस रूपका वर्णन करते हुए व्यासजी कहते हैं—

सोऽभिद्रवन् भीष्ममनीकमध्ये
क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ।
व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे
घनो यथा खे तडितावनद्धः ॥
(५९ । ९०)

'शत्रुओंके चित्तको मथ देनेवाले वे श्रीकृष्ण क्रोधित होकर सेनाके बीचमें भीष्मकी ओर झपटे । उस समय उनके शरीरपर फहराता हुआ पीताम्बर इस प्रकार सुशोभित हो उठा, जैसे आकाशमें तडित्‌से विलसित मेघ सुशोभित होता है ।'

उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं
गोविन्दमाजावविमूढचेताः ।
एह्येहि देवेश जगन्निवास
नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ॥
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ
रथोत्तमात् सर्वशरण्य संख्ये ॥
त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण
श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके ।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ
लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥
(भीष्म० ५९ । ९६-९८)

उस समय युद्धस्थलमें भीष्मके चित्तमें तनिक भी मोह नहीं था । वे अनन्त पुरुषार्थशाली भगवान् श्रीकृष्ण-का आह्वान करते हुए बोले—'आइये, आइये, देवेश्वर ! जगन्निवास ! आपको नमस्कार है । हाथमें चक्र लेकर आये हुए माधव ! सबको शरण देनेवाले लोकनाथ ! आज युद्धभूमिमें बलपूर्वक इस उत्तम रथसे मुझे मार गिराइये । श्रीकृष्ण ! आज आपके हाथसे यदि मैं मारा गया तो इहलोक और परलोकमें भी मेरा कल्याण होगा । अन्धक और वृष्णिकुलकी रक्षा करनेवाले वीर ! आपके इस आक्रमणसे तीनों लोकोंमें मेरा गौरव बढ़ गया ।'

अवश्य ही जबतक यह पृथ्वी कायम है, महाभारतकी गाथाके साथ-साथ महाधनुर्धर भीष्मपितामहके ऊपर श्रीकृष्णके चक्राभियानकी यह गाथा उनके गौरवको अक्षुण्ण बनाये रखेगी । भगवान् वासुदेवको इस प्रकार भीष्मकी ओर जाते देख अर्जुन वेगसे उनके पीछे दौड़े और उनके श्रीचरणोंको पकड़कर बोले—'केशव ! क्रोध शमन कीजिये । प्रभो ! आप ही पाण्डवोंकी गति हैं !' भगवान्ने लौटकर पुनः घोड़ोंकी बागडोर सँभाल ली ।

नर-नारायणकी महिमाका प्रतिपादन

महाभारतके युद्धके चतुर्थ दिन दुर्योधन भीष्मपिता-महके पास गया और उसने पूछा कि, 'आप, द्रोणाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा आदि महारथी, जो एक साथ मिलकर त्रिलोकीपर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं, पाण्डवोंके पराक्रमके सामने नहीं टिक रहे हैं !'

तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान् क्षणे क्षणे ॥

'पितामह ! मुझे संशय हो रहा है, मुझको बतलाइये, किसका आश्रय लेकर ये कुन्तीपुत्र क्षण-क्षणमें हमलोगों-पर विजय प्राप्त कर रहे हैं ?' पितामहने कहा—'राजन् ! मेरी बात सुनो । मैंने बार-बार तुमसे कहा है, पर तुम सुन नहीं रहे हो । पाण्डवोंके साथ संधि कर लो, इसीमें तुम्हारा और विश्वका कल्याण है ।' फिर भीष्मजीने ब्रह्माजीके द्वारा की हुई भगवत्स्तुति सुनाते हुए कहा—

"लोकमें ऐसा कोई प्राणी न हुआ है, न है और न होगा, जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् श्री-कृष्णके द्वारा सुरक्षित इन सब पाण्डवोंपर विजय पा सके; तथा देवता, असुर और मनुष्योंमें भी ऐसा कोई नहीं है, जो उन भगवान् श्रीहरिको यथार्थरूपसे जान सके । तात धर्मज्ञ ! पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंने मुझसे जो पुराणप्रतिपादित यथार्थ बातें कही हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो ! पहलेकी बात है, समस्त देवता और महर्षि गन्धमादन पर्वतपर आकर पितामह ब्रह्माजीके पास बैठे । उस समय उनके बीच बैठे हुए प्रजापति ब्रह्माने आकाशमें खड़ा हुआ एक श्रेष्ठ विमान देखा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था । अपने मनको संयममें रखनेवाले ब्रह्माजीने ध्यानसे यथार्थ बात जानकर हाथ जोड़ लिये और प्रसन्नचित्त होकर उन परम पुरुष परमेश्वरको नमस्कार किया । ऋषि तथा देवता ब्रह्माजीको खड़े (और हाथ जोड़े) हुए देख स्वयं भी उस परम अद्भुत तेजका दर्शन करते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो गये । ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परम धर्मज्ञ, जग-त्स्रष्टा ब्रह्माजीने उन तेजोमय परम पुरुषका यथावत् पूजन करके उनकी स्तुति की—'प्रभो ! आप सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित करनेवाले विश्वस्वरूप और विश्वके स्वामी हैं । विश्वमें सब ओर आपकी सेना है । यह विश्व आपका ही कार्य है । आप सबको अपने वशमें रखनेवाले हैं । इसीलिये आपको विश्वेश्वर और वासुदेव कहते हैं । आप योगस्वरूप देवता हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ । विश्वरूप महादेव ! आपकी जय हो; लोकहितमें लगे रहनेवाले परमेश्वर, आपकी जय हो ! सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले योगीश्वर ! आपकी जय हो ।
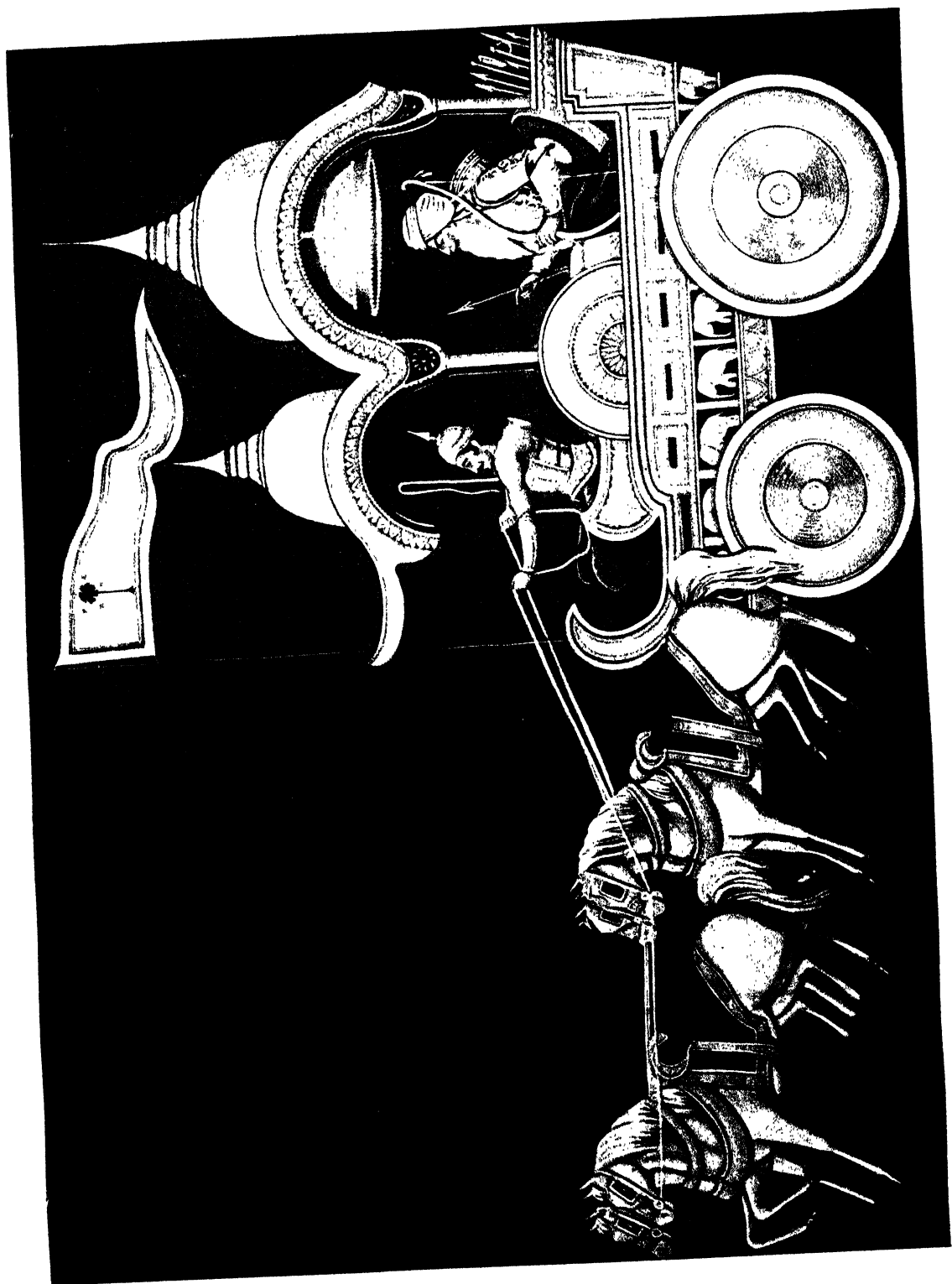
भीष्मपितामह

योगके आदि और अन्त ! आपकी जय हो । आपकी नाभिसे आदि कमलकी उत्पत्ति हुई है, आपके नेत्र विशाल हैं, आप लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं; आपकी जय हो । भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी ! आपकी जय हो । आपका स्वरूप सौम्य है, मैं स्वयम्भू ब्रह्मा आपका पुत्र हूँ । आप असंख्य गुणोंके आधार और सबको शरण देनेवाले हैं, आपकी जय हो । शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नारायण! आपकी महिमाका पार पाना बहुत ही कठिन है । आपकी जय हो । आप समस्त कल्याण-मय गुणोंसे सम्पन्न, विश्वमूर्ति और निरामय हैं; आपकी जय हो । जगत्का अभीष्ट साधन करनेवाले महाबाहु विश्वेश्वर ! आपकी जय हो । आप महान् शेषनाग और महावाराहका रूप धारण करनेवाले हैं, सबके आदि कारण हैं । हरिकेश ! प्रभो ! आपकी जय हो । आप पीताम्बरधारी, दिशाओंके स्वामी, विश्वके आधार, अप्रमेय और अविनाशी हैं । व्यक्त और अव्यक्त—सब आपका ही स्वरूप है । आपके रहनेका स्थान असीम—अनन्त है, आप इन्द्रियोंके नियन्ता हैं । आपके सभी कर्म शुभ-ही-शुभ हैं । आपकी कोई इयत्ता नहीं है । आप आत्मस्वरूपके ज्ञाता, स्वभावतः गम्भीर और भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हैं । आपकी जय हो । ब्रह्मन् ! आप अनन्त बोधस्वरूप हैं, नित्य हैं और सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाले हैं । आपको कुछ करना बाकी नहीं है । आपकी बुद्धि पवित्र है, आप धर्मका तत्त्व जाननेवाले हैं और विजय-प्रदाता हैं । पूर्णयोगस्वरूप परमात्मन् ! आपका स्वरूप गूढ़ होता हुआ भी स्पष्ट है । अबतक जो हो चुका है और जो हो रहा है, सब आपका ही रूप है । आप सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण और लोक-तत्त्वके स्वामी हैं । भूतभावन ! आपकी जय हो । आप स्वयम्भू हैं, आपका सौभाग्य महान् है । आप इस कल्पका संहार करनेवाले एवं विशुद्ध परब्रह्म हैं । ध्यान करनेसे अन्तःकरणमें आपका आविर्भाव होता है, आप जीवमात्र-के प्रियतम परब्रह्म हैं; आपकी जय हो ।' आप स्वभावतः संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त रहते हैं, आप ही सम्पूर्ण कामनाओंके स्वामी परमेश्वर हैं । अमृतकी उत्पत्तिके स्थान, सत्यस्वरूप, मुक्तात्मा और विजय देनेवाले आप ही हैं । देव ! आप ही प्रजापतियोंके भी पति, पद्मनाभ और महाबली हैं । आत्मा और महाभूत भी आप ही हैं। सत्त्वस्वरूप परमेश्वर ! सदा आपकी जय हो। पृथ्वी देवी आपकी चरणस्थानीया हैं, दिशाएँ बाहु हैं और द्युलोक मस्तक है । मैं ब्रह्मा आपका शरीर, देवता अङ्ग-प्रत्यङ्ग और चन्द्रमा तथा सूर्य नेत्र हैं । तप और सत्य आप-का बल है तथा धर्म ही आपका कर्म है । अग्नि आपका तेज, वायु साँस और जल पसीना है । अश्विनीकुमार आपके कान और सरस्वतीदेवी आपकी जिह्वा हैं । वेद आपकी संस्कारनिष्ठा हैं । यह जगत् सदा आपकेही आधार टिका हुआ है । योग-योगीश्वर ! हम न तो आपकी संख्या जानते हैं, न परिमाण । आपके तेज, पराक्रम और बलका भी हमें पता नहीं है । हम यह भी नहीं जानते कि आपका आविर्भाव कैसे होता है । देव ! हम तो आपकी उपासनामें लगे रहते हैं, आपके नियमोंका पालन करते हुए आपके ही शरण हैं । विष्णो ! हम सदा आप परमेश्वर एवं महेश्वरका पूजन ही करते हैं । आपकी ही कृपासे हमने पृथ्वीपर ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े आदिकी सृष्टि की है । पद्मनाभ ! विशाललोचन ! दुःखहारी श्रीकृष्ण ! आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रय और नेता हैं, आप ही संसारके गुरु हैं । देवेश्वर ! आपकी कृपादृष्टि होनेसे ही सब देवता सदा सुखी रहते हैं । देव ! आपके ही प्रसादसे पृथ्वी सदा निर्भय रही है, इसलिये विशाललोचन ! आप पुनः पृथ्वीपर यदुवंशमें अवतार लेकर उसकी कीर्ति बढ़ाइये । प्रभो ! धर्मकी स्थापना, दैत्योंके वध और जगत्की रक्षा-के लिये हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये । वासुदेव ! आप ही पूर्णतम परमेश्वर हैं । आपका जो परम गुह्य यथार्थस्वरूप है, उसीका यहाँ इस रूपमें आपकी कृपासे ही गान किया गया है । श्रीकृष्ण ! आपने आत्माद्वारा स्वयं अपने आपको ही संकर्षणदेवके

रूपमें प्रकट करके अपने ही द्वारा आत्मजस्वरूप प्रद्युम्नकी सृष्टि की है। प्रद्युम्नसे आपने ही उन अनिरुद्धको प्रकट किया है, जिन्हें ज्ञानीजन अविनाशी विष्णुरूपसे जानते हैं। उन विष्णुरूप अनिरुद्धने ही मुझ लोकधाता ब्रह्माकी सृष्टि की है। प्रभो! इस प्रकार आपने ही मेरी सृष्टि की है। आपसे अभिन्न होनेके कारण मैं भी वासुदेवमय हूँ। लोकेश्वर! इसलिये याचना करता हूँ कि आप अपने आपको स्वयं ही (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—) इन चार रूपोंमें विभक्त करके मानव-शरीर ग्रहण कीजिये। वहाँ सब लोगोंके सुखके लिये असुरोंका वध करके धर्म और यशका विस्तार कीजिये। अन्तमें अवतारका उद्देश्य पूर्ण करके आप पुनः अपने पारमार्थिक स्वरूपसे संयुक्त हो जायँगे। अमितपराक्रमी परमेश्वर! संसारमें महर्षि और देवगण एकाग्रचित्त हो उन-उन लीलानुसारी नामोंद्वारा आपके परमात्मस्वरूपका गान करते रहते हैं। सुबाहो! आप वरदायक प्रभुका ही आश्रय लेकर समस्त प्राणिसमुदाय आपमें ही स्थित हैं। ब्राह्मणलोग आपको आदि, मध्य और अन्तसे रहित, किसी सीमाके सम्बन्धसे शून्य (असीम) तथा लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये सेतुस्वरूप बताते हैं।

(भीष्म० अध्याय ६५)

भीष्म उवाच

ततः स भगवान् देवो लोकानामीश्वरेश्वरः।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा॥
विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत् तवेप्सितम्।
तथा तद् भवितेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥
ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाब्रुवन्॥
को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद् विभो।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम्॥
एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाच पितामहः।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान् सर्वान् मधुरया गिरा॥
यत् तत् परं भविष्यं च भवितव्यं च यत्परम्।
भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम्॥
तेनास्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः॥
मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले॥
संग्रामे निहता ये ते दैत्यदानवराक्षसाः।
त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः॥
तेषां वधार्थं भगवान् नरेण सहितो वशी।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले॥
नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती॥
अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी॥
तस्याहमग्रजः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः॥
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित् सुरसत्तमाः।
नावज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः॥
एतत् परमकं गुह्यमेतत् परमकं पदम्।
एतत् परमकं ब्रह्म एतत् परमकं यशः॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतद् वै शाश्वतं महः।
यत् तत् पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च॥
एतत् परमकं तेज एतत् परमकं सुखम्।
एतत् परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा॥
तस्मात् सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चामितविक्रमः।
नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः॥
यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात् स मन्दधीः।
हृषीकेशमवज्ञानात् तमाहुः पुरुषाधमम्॥
योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम्।
अवमन्येद् वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः॥
देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम्।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः॥
किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयंकरम्।
अवजानन् महात्मानं घोरे तमसि मज्जति॥
एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः॥

भीष्म उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् देवान् सर्षिगणान् पुरा।
विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम्॥
ततो देवाः स गन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च।
कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः॥
एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम्।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम्॥
रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः।
व्यासनारदयोश्चापि सकाशाद् भरतर्षभ॥
एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम्।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम्॥
(जानामि भरतश्रेष्ठ कृष्णं नारायणं प्रभुम्।)

यस्य चैवात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः ॥
वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः ।
मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना ॥
मा पाण्डवैः सार्धमिति तत् त्वं मोहान्न बुध्यसे ।
मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चासि तमोवृतः ॥
यस्माद् द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं तं धनंजयम् ।
नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥
तस्माद् ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः ।
सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धात्रीधरो ध्रुवः ॥
यो धारयति लोकांस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः ।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥
राजन् सर्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥
तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनात्ममयेन च ।
धृताः पाण्डुसुता राजञ्जयश्चैषां भविष्यति ॥
श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः ।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥
स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः ।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥
द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन वै ॥
(कृष्णेति नाम्ना विख्यात इमं लोकं स रक्षति ।)

(भीष्म० ६६ । १-४०)

भीष्मजी कहते हैं—दुर्योधन ! तब ब्रह्माजीके स्तवनको सुनकर लोकेश्वरोंके भी परम ईश्वर दिव्यरूपधारी श्रीभगवान्‌ने स्नेहमधुर गम्भीर वाणीमें ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा—'तात ! तुम्हारे मनमें जो कुछ इच्छा है, वह सब मुझे योगबलसे ज्ञात हो गयी है । उसके अनुसार ही सब कार्य होगा ।'—यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । तब देवता, ऋषि और गन्धर्व—सभी बड़े विस्मयमें पड़े । उन सबने अत्यन्त उत्सुक होकर पितामह ब्रह्माजीसे कहा—'प्रभो ! आपने विनयपूर्वक प्रणाम करके श्रेष्ठ वचनोंद्वारा जिनकी स्तुति की है, ये कौन थे ? हम उनके विषयमें सुनना चाहते हैं ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् ब्रह्माने उन समस्त देवताओं, ब्रह्मर्षियों और गन्धर्वोंसे मधुर वाणीमें कहा—''श्रेष्ठ देवताओ ! जो परम तत्त्व हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों जिनके उत्कृष्ट स्वरूप हैं तथा जो इन सबसे विलक्षण हैं, जिन्हें सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा, और सर्वशक्तिमान् प्रभु कहा गया है, जो परम ब्रह्म और परम पदके नामसे विख्यात हैं, उन्हीं परमात्माने मुझे दर्शन देकर मुझसे प्रसन्न हो बात-चीत की है । मैंने उन जगदीश्वरसे सम्पूर्ण जगत्‌पर कृपा करनेके लिये यों प्रार्थना की है कि 'प्रभो ! आप वासुदेव नामसे विख्यात होकर कुछ कालतक मनुष्य लोकमें रहें और असुरोंके वधके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हों । जो-जो दैत्य, दानव तथा राक्षस संग्रामभूमिमें मारे गये थे, वे मनुष्यलोकमें उत्पन्न हुए हैं और अत्यन्त बलवान् होकर जगत्‌के लिये भयंकर बन बैठे हैं । उन सबका वध करनेके लिये सबको वशमें करनेवाले भगवान् नारायण नरके साथ मनुष्य-योनिमें अवतीर्ण होकर भूतलपर विचरेंगे । ऋषियोंमें श्रेष्ठ जो पुरातन महर्षि अमिततेजस्वी नर और नारायण हैं, वे एक साथ मानवलोकमें अवतीर्ण होंगे । युद्धभूमिमें यदि वे विजयके लिये यत्नशील हों तो सम्पूर्ण देवता भी उन्हें परास्त नहीं कर सकते । मूढ़ मनुष्य उन नर-नारायण ऋषिको नहीं जान सकेंगे । सम्पूर्ण जगत्‌का स्वामी मैं ब्रह्मा उन भगवान्‌का ज्येष्ठ पुत्र हूँ । तुम सब लोगोंको उन सर्वलोकमहेश्वर भगवान् वासुदेवकी आराधना करनी चाहिये । सुरश्रेष्ठगण ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन महापराक्रमी भगवान् वासुदेवका 'ये मनुष्य हैं' ऐसा समझकर अनादर नहीं करना चाहिये । ये भगवान् ही परमगुह्य हैं । ये ही परम पद हैं । ये ही परम ब्रह्म हैं । ये ही परम यश हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त एवं सनातन तेज हैं । ये ही पुरुष नामसे कहे जाते हैं; किंतु इनका वास्तविक रूप जाना नहीं जा सकता । ये ही मुझ विश्वस्रष्टाके द्वारा परमसुख, परमतेज और परम सत्य कहे गये हैं । इसलिये 'ये मनुष्य हैं' यों समझकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं तथा संसारके मनुष्योंको अमितपराक्रमी भगवान् वासुदेवकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी इन भगवान् वासुदेवको केवल मनुष्य कहता है, वह मूर्ख है । भगवान्‌की अवहेलना करनेके

कारण उसे नराधम कहा गया है। भगवान् वासुदेव साक्षात् परमात्मा हैं और योगशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण उन्होंने मानवशरीरमें प्रवेश किया है। जो उनकी अवहेलना करता है, उसे ज्ञानी पुरुष तमोगुणी बताते हैं। जो चराचरस्वरूप, श्रीवत्स-चिह्न-भूषित, उत्तम कान्तिसे सम्पन्न भगवान् पद्मनाभको नहीं जानता, उसे विद्वान् पुरुष तमोगुणी कहते हैं। जो किरीट और कौस्तुभमणि धारण करनेवाले तथा मित्रों (भक्तजनों) को अभय देनेवाले हैं, उन परमात्माकी अवहेलना करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें डूबता है। सुरश्रेष्ठगण ! इस प्रकार तात्त्विक वस्तुको समझकर सब लोगोंको लोकेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करना चाहिये।"

भीष्मजी कहते हैं—"दुर्योधन ! देवताओं तथा ऋषियोंसे यों कहकर पूर्वकालमें सर्वभूतात्मा भगवान् ब्रह्माने उन सबको विदा कर दिया। फिर वे अपने लोकको चले गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीकी कही हुई उस परमार्थचर्चाको सुनकर देवता, गन्धर्व, मुनि और अप्सराएँ—ये सभी प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकमें चले गये। तात ! एक समय शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंका एक समाज जुटा हुआ था, जिसमें वे पुरातन भगवान् वासुदेवकी माहात्म्य-कथा कह रहे थे। उन्हींके मुँहसे मैंने ये सब बातें सुनी हैं। भरतश्रेष्ठ ! इसके सिवा जमदग्निनन्दन परशुराम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास, नारदसे भी मैंने यह बात सुनी है। भरत-कुल-भूषण ! इस विषयको सुन और समझकर मैं वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको अविनाशी प्रभु परमात्मा लोकेश्वरेश्वर और सर्वशक्तिमान् नारायण जानता हूँ। सम्पूर्ण जगत्के पिता ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं, वे भगवान् वासुदेव मनुष्योंके लिये आराधनीय तथा पूजनीय कैसे नहीं हैं। तात ! वेदोंके पारंगत विद्वान् महर्षियोंने तथा मैंने तुमको मना किया था कि तुम धनुर्धर भगवान् वासुदेवके साथ विरोध न करो, पाण्डवोंके साथ लोहा न लो; परंतु मोहवश तुमने इन बातोंका कोई मूल्य नहीं समझा। मैं समझता हूँ, तुम कोई क्रूर राक्षस हो; क्योंकि राक्षसोंके ही समान तुम्हारी बुद्धि सदा तमोगुणसे आच्छन्न रहती है। तुम भगवान् गोविन्द तथा पाण्डुनन्दन धनंजयसे द्वेष करते हो। वे दोनों ही नर और नारायणदेव हैं। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य उनसे द्वेष कर सकता है। राजन् ! इसलिये तुम्हें यह बता रहा हूँ कि ये भगवान् श्रीकृष्ण सनातन, अविनाशी, सर्वलोकस्वरूप, नित्य शासक, धरणीधर एवं अविचल हैं। ये चराचर-गुरु भगवान् श्रीहरि तीनों लोकोंको धारण करते हैं। ये ही योद्धा हैं, ये ही विजय हैं और ये ही विजयी हैं। सबके कारणभूत परमेश्वर भी ये ही हैं। राजन् ! ये श्रीहरि सर्वस्वरूप और तम एवं रागसे रहित हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। उनके माहात्म्य-योगसे तथा आत्मस्वरूपयोगसे समस्त पाण्डव सुरक्षित हैं। राजन् ! इसीलिये इनकी विजय होगी। वे पाण्डवोंको सदा कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं, युद्धमें बल देते हैं और भयसे नित्य उनकी रक्षा करते हैं। भारत ! जिनके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, वे सनातन देवता सर्वगुह्यमय कल्याणस्वरूप परमात्मा ही 'वासुदेव' नामसे जानने योग्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुभलक्षणसम्पन्न शूद्र—ये सभी नित्य तत्पर होकर अपने कर्मोंद्वारा इन्हींकी सेवा-पूजा करते हैं। द्वापरयुगके अन्त और कलियुगके आदिमें संकर्षणने श्रीकृष्णोपासनाकी विधिका आश्रय ले इन्हींकी महिमाका गान किया है। ये ही श्रीकृष्ण-नामसे विख्यात होकर इस लोककी रक्षा करते हैं।

"भरतश्रेष्ठ ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वास्तवमें महान् हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। मार्कण्डेयजी भगवान् गोविन्दके विषयमें अत्यन्त अद्भुत बातें कहते हैं। वे भगवान् ही सर्वभूतमय हैं। और वे ही सबके आत्मस्वरूप महात्मा पुरुषोत्तम हैं। सृष्टिके आरम्भमें इन्हीं परमात्माने जल, वायु, तेज—इन तीन भूतों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की थी। सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर इन भगवान् श्रीहरिने पृथ्वी-देवीकी सृष्टि करके जलमें शयन किया। वे महात्मा पुरुषोत्तम

सर्व-तेजोमय देवता योग-शक्तिसे उस जलमें सोये। उन अच्युतने अपने मुखसे अग्निकी, प्राणसे वायुकी तथा मनसे सरस्वती-देवी और वेदोंकी रचना की। इन्होंने ही सर्गके आरम्भमें सम्पूर्ण लोकों तथा ऋषियों-सहित देवताओंकी रचना की थी। ये ही प्रलयके अधिष्ठान और मृत्यु-स्वरूप हैं। प्रजाकी उत्पत्ति और विनाश इन्हींसे होते हैं। ये धर्मज्ञ, वरदाता, सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले तथा धर्मस्वरूप हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव तथा स्वयं सर्व-समर्थ हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी सृष्टि भी पूर्वकालमें इन्हींके द्वारा हुई है। इन जनार्दनने ही दोनों संध्याओं, दसों दिशाओं, आकाश तथा नियमोंकी रचना की है। महात्मा अविनाशी प्रभु गोविन्दने ही ऋषियों तथा तपस्याकी रचना की है। जगत्स्रष्टा प्रजापतिको भी उन्होंने ही उत्पन्न किया है। उन पूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णने पहले सम्पूर्ण भूतोंके अग्रज संकर्षणको प्रकट किया, उनसे सनातन देवाधिदेव नारायणका प्रादुर्भाव हुआ। नारायणकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ। सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके स्थानभूत उस कमलसे पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीसे ये सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंको तथा पर्वतोंसहित इस पृथ्वीको धारण करते हैं, जिन्हें विश्वरूपी अनन्तदेव तथा शेष कहा गया है, उन्हें भी उन परमात्माने ही उत्पन्न किया है। ब्राह्मणलोग ध्यानयोगके द्वारा इन्हीं परम तेजस्वी वासुदेवका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जलशायी नारायणके कानकी मैलसे महान् असुर मधुका प्राकट्य हुआ था। वह मधु बड़े ही उग्रस्वभावका तथा क्रूरकर्मा था। उसने अत्यन्त भयंकर बुद्धिका आश्रय ले रखा था। इसलिये ब्रह्माजीका समादर करते हुए भगवान् पुरुषोत्तमने मधुको मार डाला था। तात! मधुका वध करनेके कारण ही देवता, दानव, मनुष्य तथा ऋषिगण श्रीजनार्दनको 'मधुसूदन' कहते हैं। वे ही भगवान् समय-समयपर वाराह, नृसिंह और वामनके रूपमें प्रकट हुए हैं। ये श्रीहरि ही समस्त प्राणियोंके पिता और माता हैं। इन कमलनयन भगवान्से बढ़कर दूसरा कोई तत्त्व न हुआ है न होगा। राजन्! इन्होंने अपने मुखसे ब्राह्मणों, दोनों भुजाओंसे क्षत्रियों, जङ्घासे वैश्यों और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया है। जो मनुष्य तपस्यामें तत्पर हो संयम-नियमका पालन करते हुए अमावास्या और पूर्णिमाको समस्त देहधारियोंके आश्रय, ब्रह्म एवं योगस्वरूप भगवान् केशवकी आराधना करता है, वह परम पदको प्राप्त कर लेता है। नरेश्वर! सम्पूर्ण लोकोंके पितामह भगवान् श्रीकृष्ण परम तेज हैं। मुनिजन इन्हें हृषीकेश कहते हैं। इस प्रकार इन भगवान् गोविन्दको तुम आचार्य, पिता और गुरु समझो। भगवान् श्रीकृष्ण जिनके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वह अक्षय लोकोंपर विजय पा जाता है। जो मनुष्य भयके समय इन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेता है और सर्वदा इस स्तुतिका पाठ करता है, वह सुखी एवं कल्याणका भागी होता है। जो मानव भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। भगवान् जनार्दन महान् भयमें निमग्न उन मनुष्योंकी सदा रक्षा करते हैं। भरतवंशी नरेश! इस बातको अच्छी तरह समझकर राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण हृदयसे योगोंके स्वामी सर्व-समर्थ, जगदीश्वर एवं महात्मा भगवान् केशवकी शरण ली है।"

(भीष्म० ६७। २–२५)

भीष्मजी कहते हैं—"महाराज दुर्योधन! पूर्वकालमें इस भूतलपर ब्रह्मर्षियों तथा देवताओंने इनका जो ब्रह्मभूत स्तोत्र कहा है, उसे तुम मुझसे सुनो—'प्रभो! आप साध्यगण और देवताओंके भी स्वामी एवं देवदेवेश्वर हैं। आप सम्पूर्ण जगत्के हृदयके भावोंको जाननेवाले हैं। आपके विषयमें नारदजीने ऐसा ही कहा है। मार्कण्डेयजीने आपको भूत, भविष्य और वर्तमानस्वरूप बताया है। वे आपको यज्ञोंका यज्ञ और तपस्याओंका भी सारभूत तप बताया करते हैं। भगवान् भृगुने आपको देवताओंका भी देवता कहा है। विष्णो! आपका रूप अत्यन्त पुरातन और उत्कृष्ट है। प्रभो! आप वसुओंके वासुदेव तथा इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित करनेवाले हैं। देव! आप देवताओंके भी देवता हैं। महर्षि द्वैपायन आपके

विषयमें ऐसा ही कहते हैं। प्रथम प्रजासृष्टिके समय आपको ही दक्षप्रजापति कहा गया है। आप ही सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा हैं—इस प्रकार अङ्गिरा मुनि आपके विषयमें कहते हैं। अव्यक्त (प्रधान) आपके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, व्यक्त महत्तत्त्व आदि कार्यवर्ग आपके मनमें स्थित हैं तथा सम्पूर्ण देवता भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं—ऐसा असित और देवलका कथन है। आपके मस्तकसे द्युलोक और भुजाओंसे भूलोक व्याप्त है। तीनों लोक आपके उदरमें स्थित हैं। आप ही सनातन पुरुष हैं। तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा पुरुष आपको ऐसा ही जानते हैं। आत्मसाक्षात्कारसे तृप्त हुए ज्ञानी महर्षियोंकी दृष्टिमें भी आप सबसे श्रेष्ठ हैं। मधुसूदन! जो सम्पूर्ण धर्मोंमें प्रधान और संग्रामसे कभी पीछे हटनेवाले नहीं हैं, उन उदार राजर्षियोंके परम आश्रय भी आप ही हैं। इस प्रकार सनत्कुमार आदि योगवेत्ता पापापहारी आप भगवान् पुरुषोत्तमकी सदा ही स्तुति और पूजा करते हैं।

तात दुर्योधन! इस तरह विस्तार और संक्षेपसे मैंने तुम्हें भगवान् केशवकी यथार्थ महिमा बतायी है। अब तुम अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका भजन करो।

(भीष्म० ६८ । १–१२)

इसके पश्चात् उन्होंने फिर दुर्योधनसे कहा—

माहात्म्यं ते श्रुतं राजन् केशवस्य महात्मनः॥
नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं पृच्छसे नृप।
यदर्थं नृषु सम्भूतौ नरनारायणावृषी॥
अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ।

(६८ । १४-१५)

"राजन्! तुमको महात्मा केशव तथा नररूप अर्जुनका यथार्थ माहात्म्य बतलाया है; जिसके विषयमें तुमने मुझसे पूछा था, उसे सुन लिया। ऋषि नर-नारायण जिस उद्देश्यसे मनुष्योंमें प्रकट हुए हैं तथा दोनों युद्धमें अपराजित और अवध्य हैं, यह सब तुमने अच्छी तरह सुन लिया। राजन्! वे भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके प्रति प्रीति रखते हैं, अतएव तुम पाण्डवोंसे संधि कर लो।

पृथिवीं भुङ्क्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी।
नर-नारायणौ देवाववज्ञाय नशिष्यसि॥

(६८ । १८)

'उन अपने बलवान् भाइयोंको साथ लेकर पृथिवीका राज्य भोगो। भगवान् नर-नारायणदेवकी अवज्ञा करनेसे तुम्हारा नाश हो जायगा।'

इस प्रकार भीष्मपर्वके प्रारम्भमें अर्जुनके मुखसे धर्मराजको आश्वासन देते हुए कहलाया गया कि जहाँ भगवान् वासुदेवका आश्रय है, वहाँ विजय है; और यहाँ भीष्मपितामहके मुखसे कहलाया गया कि नारायणकी अवज्ञा करके नाशको प्राप्त हो जाओगे। सारांश यह कि जो जीवन नारायणके आश्रित है, वह सफल है तथा जो जीवन नारायण-विमुख है, वह निष्फल है, विनाशोन्मुख है। यही वैष्णवधर्मका चरम सिद्धान्त है।

परंतु जो सांसारिक ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लोभमें पड़ा है, वह भगवदाश्रित नहीं हो सकता। भीष्मके उपदेशका भी दुर्योधनके मनपर कोई प्रभाव न पड़ा और दूसरे दिन दोनों सेनाएँ युद्धक्षेत्रमें एक-दूसरेसे भिड़ गयीं। और अगले चार दिनोंमें भयानक युद्ध चलता रहा।

भीष्मपर पुनः भगवान्‌की कृपा

नवम दिन भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि भीष्मने युधिष्ठिरकी सेनामें प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दिया। तब महाबाहु माधवको यह सह्य नहीं हुआ। वे रथसे कूद पड़े और हाथमें चाबुक लिये ही सिंहनाद करते हुए भीष्मकी ओर वेगसे दौड़े। व्यासजी कहते हैं—

पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः।
शुशुभे विद्रवन् भीष्मं विद्युन्माली यथाम्बुदः॥

(१०६ । ६१)

'रेशमी पीताम्बर धारण किये इन्द्रनीलमणिके सदृश श्यामवर्ण जनार्दन भीष्मकी ओर लपकते हुए इस प्रकार सुशोभित हो उठे, जैसे विद्युन्मालासे अलंकृत श्याम मेघ शोभा पाता है।' भगवान्‌को उस प्रकारसे क्रुद्ध देखकर भीष्मपितामह तनिक भी विचलित न हुए, और बोले—

एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ ।
(भीष्म० १०६ । ६४–६६½)

आइये, आइये कमलनयन ! देवदेव ! आपको नमस्कार है। सात्वतशिरोमणे ! इस महासमरमें आज मुझे मार गिराइये । देव ! निष्पाप श्रीकृष्ण ! आपके द्वारा संग्राममें मारे जानेपर भी संसारमें मेरा सब ओर परम कल्याण ही होगा । गोविन्द ! आज इस युद्धमें मैं तीनों लोकों-द्वारा सम्मानित हो गया । अनघ ! मैं आपका दास हूँ। आप इच्छानुसार मुझपर प्रहार कीजिये ।

बीचमें ही दौड़कर अर्जुनने भगवान् वासुदेवके पैर पकड़ लिये और प्रेमपूर्वक बोले—

निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि ।
यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ।
मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव ॥
(१०६ । ७२)

'महाबाहो ! लौट पड़िये, अपनी प्रतिज्ञाको झूठी न कीजिये । केशव ! आपने जो पहले कहा था कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, उसकी रक्षा कीजिये; नहीं तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे ।'

अहा ! भगवान् कितने शरणागतवत्सल हैं, पाण्डवोंकी रक्षा करते हुए अपनी प्रतिज्ञाको भी भूल जाते हैं । वे अर्जुनके विनय करनेपर फिर लौट आये । उस दिन फिर घोर युद्ध हुआ और भीष्मके बाणोंकी मारसे पाण्डव-सेनाका पर्याप्त संहार हुआ । संध्याके समय शिबिरमें जानेपर वृष्णिवंशी वीरों और पाण्डवोंमें गुप्त मन्त्रणा होने लगी । युधिष्ठिरने कहा—

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥
(१०७ । १३)

'श्रीकृष्ण ! देखो, भयंकर पराक्रमी महात्मा भीष्म हमारी सेनाका उसी प्रकार संहार कर रहे हैं, जैसे हाथी सरकंडोंके जंगलको रौंद डालता है ।' माधव ! जबतक भीष्मजी जीते हैं, तबतक हमारे जीतनेकी कोई आशा नहीं है । वे दिन-प्रति-दिन भयंकर होते जा रहे हैं और हमारी सेनाका अधिकाधिक संहार होता जा रहा है । भीष्मजी अजेय हैं, उनको जीतना कठिन है ।' भगवान् वासुदेव बोले, 'देखो, घबरानेकी बात नहीं है । मैं शस्त्र ग्रहण करूँगा !

हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥
यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रः स न संशयः ।
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥
तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते ॥
(१०७ । २९, ३२—३३)

'यदि अर्जुन भीष्मको मारना नहीं चाहते तो मैं युद्धमें पुरुषश्रेष्ठ भीष्मको ललकारकर कौरवोंके देखते-देखते मार डालूँगा । जो पाण्डवोंका शत्रु है, वह निस्संदेह मेरा शत्रु है; जो आपके सुहृद् हैं, वे मेरे हैं और जो मेरे सुहृद् हैं, वे आपके हैं। राजन् ! आपका भाई अर्जुन मेरा सखा, सम्बन्धी और शिष्य है, मैं अर्जुनके लिये अपना मांस भी काटकर दे दूँगा ।'

(अहा ! बलिहारी भगवान्की इस भक्त-वत्सलतापर !) यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'माधव ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । परंतु मैं आत्म-गौरवके लिये आपको असत्यवादी नहीं बनने दूँगा । आप युद्ध किये बिना ही मेरी सहायता करते रहिये । श्रीकृष्ण ! मेरी भीष्मजीके साथ एक शर्त हो चुकी है । उन्होंने कहा है कि युद्ध तो वे केवल दुर्योधनके लिये करेंगे, परन्तु युद्धमें मुझको परामर्श देंगे । इसलिये जनार्दन ! हमलोग भीष्मके पास जाकर उनके बधका उपाय पूछें । माधव ! यद्यपि वे हमारे पिताके भी पिता और प्रिय हैं, तथापि उन वृद्ध पितामहको भी मैं मारना चाहता हूँ । धिक्कार है इस क्षात्र जीविकाको !' तदनन्तर भगवान् वासुदेवके साथ पाण्डवलोग भीष्मके शिबिरमें गये, और वहाँ जाकर भीष्मके चरणोंमें प्रणाम किया।

उस समय कुरुकुलके पितामहने सबका स्वागत करते हुए कहा, 'पुत्रो ! आज मैं तुम्हारी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला कौन-सा कार्य करूँ ? तुम्हारी माँगको अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी मैं पूरी करूँगा ।' यह सुनकर धर्मराज बोले—"पितामह ! युद्धमें हमारी जीत कैसे हो ? हम राज्य कैसे प्राप्त करें ? प्रभो ! आप हमको अपने वधका उपाय बतलाइये । आपके जीते-जी हम विजयकी आशा नहीं कर सकते ।' पितामहने कहा, 'राजन् ! मेरा यह संकल्प है कि, स्त्रीको सामने देखकर मैं शस्त्र नहीं चला सकता । द्रुपदपुत्र शिखण्डी पहले स्त्री था, उसको आगे करके पाण्डुपुत्र अर्जुन मेरे ऊपर शीघ्रता-पूर्वक चारों ओरसे बाण-प्रहार करते हुए मार डालनेकी चेष्टा करें । इसीसे तुम निश्चयपूर्वक विजय प्राप्त कर सकोगे ।'

यह सब कुछ निश्चय हो जानेपर भी अर्जुन श्रद्धाके वशीभूत होकर भीष्मपर बाणोंका घातक प्रहार न करते यदि भगवान् वासुदेव उसे क्षत्रियधर्मका स्मरण दिलाकर उनके वधके लिये उत्साहित न करते । अतएव भीष्म-वध जो पाण्डवोंकी विजयका मूल कारण था, वह श्रीकृष्णकी प्रेरणासे ही हुआ । भगवान्ने स्पष्ट कह दिया—

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे ।
क्षात्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥
पातयैनं रथात्पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम् ।
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥

"हे विजयी पार्थ ! तुम क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्धमें भीष्मके वधकी पहले प्रतिज्ञा करके अब उन्हें कैसे नहीं मारोगे ? युद्धदुर्मद क्षत्रियप्रवर भीष्मको बिना मारे तुम्हारी विजय नहीं हो सकती ?'

—यह भगवद्वाणी अर्जुनके द्वारा भीष्मवधका कारण बनी । अर्जुनने बाणोंकी वर्षा करके पितामहको रथसे गिराकर शरशय्यापर सुला दिया । तथा बाणोंकी तकिया देकर और शर-सम्पातसे पाताल-गङ्गाकी धारा उत्पन्न करके सोये-सोये उनके मुखमें गङ्गाजल प्रदान करके उनको परितृप्त कर दिया । पितामह उनके इस अद्भुत कर्मसे अत्यन्त हर्षित हो कह उठे—

एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन् नान्यः कश्चन विद्यते ।
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथापि वा ॥
सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनंजयः ।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वेदेह कश्चन ॥

(भीष्मपर्व १२१ । ४०–४२)

'इस संसारमें ऐसा पराक्रम करनेवाला दूसरा कोई नहीं है । आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, प्राजापत्य, धात्र, त्वाष्ट्र, सावित्र और वैवस्वत आदि समस्त दिव्यास्त्रोंको इस सम्पूर्ण मानव-जगत्में एकमात्र अर्जुन अथवा देवकी-नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता ।'

भीष्मजीके इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि उस कालमें आग्नेयादि दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता दो ही थे, वासुदेव श्रीकृष्ण और कुन्तीपुत्र धनंजय । वे दोनों अतिमानव थे, मानवोंमें सर्वश्रेष्ठ नर-नारायण थे ।

द्रोणपर्व

भीष्मके धराशायी होनेके पश्चात् द्रोणपर्वके आरम्भमें धृतराष्ट्र भगवान् वासुदेवके पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए खेद प्रकट करते हैं कि दुर्योधन मोहके वश होकर भगवान् वासुदेवको नहीं पहचान रहा है, वह मृत्युके फंदेमें फँस गया है । धृतराष्ट्रने कहा—

येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥
लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः ।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥

(द्रोण० १० । ७५–७७)

'शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले पुरुषसिंह भगवान् श्रीकृष्ण जिनके आश्रय तथा हित चाहनेवाले हैं, उन कुन्तीकुमारोंकी पराजय कैसे हो सकती है । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्के परम गुरु हैं, समस्त लोकोंके सनातन स्वामी हैं, संग्रामभूमिमें सबकी रक्षा करनेवाले

दिव्यस्वरूप, सामर्थ्यशाली, दिव्य नारायण हैं। मनीषी पुरुष जिनके दिव्य कर्मोंका वर्णन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका अपने मनकी स्थिरताके लिये मैं भक्तिपूर्वक वर्णन करूँगा।'

फिर धृतराष्ट्र कहने लगे—संजय! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य कर्मोंका वर्णन सुनो। भगवान् गोविन्दने जो-जो कार्य किये हैं, वैसा दूसरा कोई पुरुष कदापि नहीं कर सकता। संजय! बाल्यावस्थामें ही, जब वे गोपकुलमें पल रहे थे, महात्मा श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंके बल और पराक्रमको तीनों लोकोंमें विख्यात कर दिया था। यमुनाके तटवर्ती वनमें उच्चैःश्रवाके समान बलशाली और वायुके समान वेगवान् अश्वराज केशी रहता था। उसे श्रीकृष्णने मार डाला। इसी प्रकार एक भयंकर कर्म करनेवाला दानव वहाँ बैलका रूप धारण करके रहता था, जो गौओंके लिये मृत्युके समान प्रकट हुआ था। उसे भी श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें अपने हाथोंसे ही मार डाला। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नरकासुर, जम्भासुर, पीठ नामक महान् असुर और यमराजसदृश मुरका भी संहार किया। इसी प्रकार श्रीकृष्णने पराक्रम करके ही जरासंधके द्वारा सुरक्षित महातेजस्वी कंसको उसके गणोंसहित रंगभूमिमें मार गिराया। शत्रुहन्ता श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले, बलवान्, वेगवान्, पूरी अक्षौहिणी सेनाके अधिपति, भोजराज कंसके मझले भाई शूरसेन-देशके राजा सुनामाको समरमें सेनासहित दग्ध कर डाला। पत्नीसहित श्रीकृष्णने परम क्रोधी ब्रह्मर्षि दुर्वासाकी आराधना की। अतः उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें बहुत-से वर दिये। कमलनयन वीर श्रीकृष्णने स्वयंवरमें गन्धारराजकी पुत्रीको प्राप्त करके समस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह किया। उस समय अच्छी जातिके घोड़ोंकी भाँति श्रीकृष्णके वैवाहिक रथमें जुते हुए वे असहिष्णु राजालोग कोड़ोंकी मारसे घायल कर दिये गये थे। जनार्दन श्रीकृष्णने समग्र अक्षौहिणी सेनाके अधिपति महाबाहु जरासंधको उपायपूर्वक दूसरे योद्धा (भीमसेन) के द्वारा मरवा दिया। बलवान् श्रीकृष्णने राजाओंकी सेनाके अधिपति पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको अग्रपूजनके समय विवाद करनेके कारण पशुकी भाँति मार डाला। तत्पश्चात् माधवने आकाशमें स्थित रहनेवाले सौभ नामक दुर्धर्ष दैत्य-नगरको, जो राजा शाल्वद्वारा सुरक्षित था, समुद्रके बीच पराक्रम करके मार गिराया। उन्होंने रणक्षेत्रमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, काशि, कोसल, वत्स, गर्ग, करूष तथा पौण्ड्र आदि देशोंपर विजय पायी थी। संजय! इसी प्रकार कमलनयन श्रीकृष्णने अवन्ती, दक्षिण प्रान्त, पर्वतीय देश, दशेरक, कश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, कम्बोज, वटधान, चोल, पाण्डव, त्रिगर्त, मालव, अत्यन्त दुर्जय दरद आदि देशोंके योद्धाओंको तथा नाना दिशाओंसे आये हुए खशों, शकों और अनुयायियोंसहित कालयवनको भी जीत लिया। पूर्वकालमें श्रीकृष्णने जल-जन्तुओंसे भरे हुए समुद्रमें प्रवेश करके जलके भीतर निवास करनेवाले वरुण देवताको युद्धमें परास्त किया। इसी प्रकार उन हृषीकेशने पाताल-निवासी पञ्चजन नामक दैत्यको युद्धमें मारकर दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख प्राप्त किया। खाण्डववनमें अर्जुनके साथ अग्निदेवको संतुष्ट करके महाबली श्रीकृष्णने दुर्धर्ष आग्नेय अस्त्र चक्रको प्राप्त किया था। वीर श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो अमरावतीपुरीमें जाकर वहाँके निवासियोंको भयभीत करके महेन्द्र-भवनसे पारिजात वृक्ष उठा ले आये। उनके पराक्रमको इन्द्र अच्छी तरह जानते थे, इसलिये उन्होंने वह सब चुपचाप सह लिया। राजाओंमेंसे किसीको भी मैंने ऐसा नहीं सुना है, जिसे श्रीकृष्णने जीता न हो। संजय! उस दिन मेरी सभामें कमलनयन श्रीकृष्णने जो महान् आश्चर्य प्रकट किया था, उसे इस संसारमें उनके सिवा दूसरा कौन कर सकता है। मैंने प्रसन्न होकर भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णके उस ईश्वरीय रूपका जो दर्शन किया, वह सब मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है। मैंने उन्हें प्रत्यक्षकी भाँति जान लिया था। संजय! बुद्धि और पराक्रमसे युक्त भगवान् हृषीकेशके कर्मोंका अन्त नहीं जाना जा सकता। यदि गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अगावह, अनिरुद्ध, चारु-

देष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, झिल्ली, पराक्रमी बभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक तथा अरिमेजय—ये तथा दूसरे भी बलवान् एवं प्रहारकुशल वृष्णिवंशी योद्धा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर महात्मा केशवके बुलानेपर पाण्डवसेनामें आ जायँ और समरभूमिमें खड़े हो जायँ तो हमारा सारा उद्योग संशयमें पड़ जाय, ऐसा मेरा विश्वास है। वनमाला और हल धारण करनेवाले वीर बलराम कैलासशिखरके समान गौरवर्ण हैं। उनमें दस हजार हाथियोंका बल है। वे भी उसी पक्षमें रहेंगे, जहाँ श्रीकृष्ण हैं। संजय! जिन भगवान् वासुदेवको द्विजगण सबका पिता बताते हैं, क्या वे पाण्डवोंके लिये स्वयं युद्ध करेंगे? तात संजय! जब पाण्डवोंके लिये श्रीकृष्ण कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो जायँ, उस समय वहाँ कोई भी योद्धा उनका सामना करनेको तैयार न होगा। यदि सब कौरव पाण्डवोंको जीत लें तो वृष्णिवंशभूषण भगवान् श्रीकृष्ण उनके हितके लिये अवश्य उत्तम शस्त्र ग्रहण कर लेंगे। उस दशामें पुरुषसिंह महाबाहु श्रीकृष्ण सब राजाओं तथा कौरवोंको रणभूमिमें मारकर सारी पृथ्वी कुन्तीको दे देंगे। जिसके सारथि सम्पूर्ण इन्द्रियों-के नियन्ता श्रीकृष्ण तथा योद्धा अर्जुन हैं, रणभूमिमें उस रथका सामना करनेवाला दूसरा कौन रथ होगा। किसी भी उपायसे कौरवोंकी जय होती नहीं दिखायी देती। इसलिये तुम मुझसे सब समाचार कहो। वह युद्ध किस प्रकार हुआ? अर्जुन श्रीकृष्णके आत्मा हैं और श्रीकृष्ण किरीटधारी अर्जुनके आत्मा हैं। अर्जुनमें विजय नित्य विद्यमान है और श्रीकृष्णमें कीर्तिका सनातन निवास है। अर्जुन सम्पूर्ण लोकोंमें कभी कहीं भी नहीं पराजित हुए हैं। श्रीकृष्णमें असंख्य गुण हैं। यहाँ प्रायः प्रधान गुणोंके नाम लिये गये हैं। दुर्योधन मोहवश सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् केशवको नहीं जानता, वह दैवयोगसे मोहित हो मौतके फंदेमें फँस गया है। यह दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनको नहीं जानता। वे दोनों पूर्वदेवता महात्मा नर और नारायण हैं। (द्रोण० ११ । १—४१)

द्रोणपर्वके प्रारम्भमें सुभद्रानन्दन अभिमन्युने रोमाञ्च-कारी और कौरवसेनाको ध्वस्त करनेवाला अपूर्व युद्ध किया और उससे त्राण पाना कठिन समझकर द्रोण, कर्ण आदि छः महारथियोंने न्याय और नीतिको तिलाञ्जलि देकर उसे मार डाला। इससे पाण्डव-सेनामें कुहराम मच गया और अर्जुन प्रतिज्ञा कर बैठे कि दूसरे दिन सूर्यास्तके पहलेतक यदि मैंने जयद्रथका वध नहीं किया तो स्वयं चिता जलाकर उसमें जल मरूँगा। कारण यह था कि शिवजीके वरदानसे जयद्रथने पाण्डवसेनाके महारथियोंको अभिमन्युकी सहायता करनेसे वञ्चित कर दिया था, इसलिये अभिमन्युके वधका मूलकारण वही था। अतएव अर्जुनकी इस प्रतिज्ञाके कारण कौरवोंके लिये यह युद्ध निर्णयात्मक था। कौरवोंने अपनी सारी शक्ति जयद्रथको बचानेमें लगा दी। द्रोणाचार्यने एक अभेद्य व्यूहकी रचना की और प्रवेशद्वारपर स्वयं डट गये।

उस व्यूहके मुहानेपर खड़े आचार्य द्रोणके पास पहुँचकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे प्रणाम करके कहा—

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम्॥
(९१ । ३)

'भगवन्! आप मेरा कल्याण चिन्तन कीजिये, मुझे आशीर्वाद दीजिये। मैं आपकी कृपासे ही इस दुर्भेद्य सेनामें प्रवेश करना चाहता हूँ।' प्रभो! मैं आपके प्रसादसे ही इस युद्धमें जयद्रथको मारना चाहता हूँ, आप मेरी इस प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णकी नीति अपूर्व है। गुरुजनोंके प्रति विनीतभाव प्रकट करनेसे उनके भीतर स्वभावतः सौम्य वात्सल्यभाव जाग्रत् होता है। युद्ध प्रारम्भ होनेके पूर्व ही गुरु द्रोणके चित्तको कोमल बना देनेका यह उनका सुन्दर उपक्रम था। परंतु गुरु द्रोण अर्जुन-की बात सुनकर मुसकराते हुए बोले—'अर्जुन! किंतु मुझको पराजित किये बिना जयद्रथको मारना सम्भव नहीं है।' इसके बाद तत्काल ही दोनों गुरु-शिष्यमें युद्ध प्रारम्भ हो गया। तब भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'देखो, यहाँ अधिक समय बिताना ठीक नहीं।' तब अर्जुन 'जैसी आपकी आज्ञा' कहकर द्रोणाचार्यकी

परिक्रमा करके लौट पड़े और बाणोंकी वर्षा करके आगे बढ़ गये। यह देखकर द्रोण बोले—'पाण्डुनन्दन! कहाँ चले? तुम तो रणमें शत्रुको पराजित किये बिना कभी लौटते नहीं?' अर्जुनने कहा—

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत्॥
(९१। ३४)

'ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु हैं, शत्रु नहीं। मैं आपके पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूँ। ऐसा कौन है जगत्में, जो युद्धमें आपको पराजित कर सके।' इतना कहकर अर्जुनने आगे बढ़कर कौरव-सेनाका संहार करना शुरू कर दिया। यह देखकर दुर्योधन आचार्यके पास आया और कहने लगा—'आचार्य! आश्चर्य है कि आपके रहते अर्जुन हमारी सेनामें घुस गया, और वहाँ प्रलय-का दृश्य उपस्थित कर रहा है।' द्रोणाचार्य बोले—'राजन्! श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथि हैं और उनके घोड़े भी तेज चलनेवाले हैं। इसलिये थोड़ा भी अवकाश पानेपर अर्जुन तत्काल सेनामें घुस जाते हैं। मैं देखता रह जाता हूँ।' दुर्योधनने कहा—'आचार्य! आप समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं; यदि आपको भी लाँघकर आगे बढ़ गया तो उसे मैं कैसे रोक सकूँगा।'

यह सुनकर द्रोणाचार्यने कहा कि मैं इसका उपाय करता हूँ—

अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः॥
(९४। ३४)

'आज संसारके सारे धनुर्धर भगवान् वासुदेवके सामने ही कुन्तीकुमार अर्जुनको तुम्हारे साथ युद्धमें उलझे रहनेकी अद्भुत घटना देखें।' इतना कहकर उन्होंने दुर्योधन-को एक सुवर्णमय अभेद्य कवचसे विभूषितकर अर्जुनका सामना करनेके लिये भेज दिया। सायंकालतक घोर युद्ध होता रहा, दुर्योधनके अभेद्य कवच बाँधे रहनेके कारण अर्जुन उसे परास्त न कर सका, सारे कौरव महारथियोंके द्वारा सुरक्षित जयद्रथ मर न सका। सूर्य-देव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे, शीघ्रता-पूर्वक भगवान् वासुदेवने अर्जुनसे कहा—'देखो! रण-भूमिमें छः महारथियोंको परास्त किये बिना जयद्रथ मारा नहीं जा सकता। मैं सूर्यदेवको ढँकनेके लिये कोई युक्ति करूँगा, जिससे जयद्रथ अकेला ही सूर्यको अस्त हुआ देखेगा, और वह दुष्ट प्रसन्न होकर तुम्हारे विनाश-के लिये उतावला होकर सामने आ जायगा। उस समय तुम उसके ऊपर घातक प्रहार करना।'

ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति।
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः॥

तब योगी, योगयुक्त और योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण-ने सूर्यको ढँकनेके लिये अन्धकारकी सृष्टि की।' तदनन्तर केवल जयद्रथ सिर उठाकर बारंबार सूर्यनारायण-की ओर देखने लगा। भगवान् वासुदेवने कहा—'अर्जुन! पहचान लो, जयद्रथ सामने है। परंतु उसका सिर जमीनपर न गिरने पाये। कुण्डलसहित इसके मस्तकको काटकर वनमें तपस्या करनेवाले वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरा दो। यदि इसका मस्तक पृथ्वीपर गिरा तो तुम्हारे सिरके भी सौ टुकड़े हो जायँगे। ऐसा ही इसको वरदान मिला है।' भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अर्जुनको भयानक द्विविध विपत्तिसे बचा लिया। अर्जुनने एक ऐसा बाण मारा, जो जयद्रथके सिरको लेकर आकाश-में उड़ता हुआ वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरा, जो वनमें सायं-कालीन संध्या कर रहा था। जैसे ही वह संध्या करके उठा, जयद्रथका सिर जमीनपर गिर पड़ा, और गिरते ही वृद्धक्षत्रके सिरके सौ टुकड़े हो गये। अर्जुन-की प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। भगवान् वासुदेव अपने भक्तोंका संकट हर लेते हैं, उनकी मँझधारमें पड़ी हुई नैयाको पार लगा देते हैं। अर्जुनकी प्रतिज्ञाके कारण पाण्डवोंके ऊपर एक महान् संकटकाल उपस्थित हो गया था। वह भगवान् वासुदेवकी कृपासे ही दूर हुआ, इसमें संदेह नहीं। पाण्डवोंकी सेनामें इस संवादसे आनन्दकी लहर दौड़ गयी। युधिष्ठिर भगवान् वासुदेव-की नाना प्रकारसे स्तुति करते हुए बोले—

'श्रीकृष्ण! गोविन्द! सौभाग्यवश आपके द्वारा सुरक्षित हुए अर्जुनने पापी जयद्रथको मारकर मुझे महान् हर्ष प्रदान किया है। परंतु जिनके आप आश्रय

हैं, उन हमलोगोंके लिये विजय और सौभाग्यकी प्राप्ति अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है। मधुसूदन ! सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कहीं कुछ भी दुष्कर नहीं है। गोविन्द ! हम आपकी कृपासे शत्रुओंपर निश्चय ही विजय पायेंगे। उपेन्द्र ! आप सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय करने और हमारे हित-साधनमें लगे हुए हैं। हमलोगोंने आपका ही आश्रय लेकर शस्त्रोंद्वारा युद्धकी तैयारी की है—ठीक उसी तरह जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेकर युद्धमें असुरोंके वधका उद्योग करते हैं। जनार्दन ! आपकी ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे इस अर्जुनने यह देवताओंके लिये भी असम्भव कर्म कर दिखाया है। श्रीकृष्ण ! बाल्यावस्थासे ही आपने जो बहुत-से अलौकिक, दिव्य एवं महान् कर्म किये हैं, उन्हें जबसे मैंने सुना है, तभीसे यह निश्चितरूपसे जान लिया है कि मेरे शत्रु मारे गये और मैंने भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लिया। शत्रुसूदन ! आपकी कृपासे प्राप्त हुए पराक्रमद्वारा इन्द्र सहस्रों दैत्योंका संहार करके देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। वीर हृषीकेश ! आपके ही प्रसादसे यह स्थावर-जङ्गमरूप जगत् अपनी मर्यादामें स्थित रहकर जप और होम आदि सत्कर्मोंमें संलग्न होता है। महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! पहले यह सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो अन्धकारमें विलीन हो गया था। फिर आपकी ही कृपा-दृष्टिसे यह वर्तमानरूपमें उपलब्ध हुआ है। जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले आप अविनाशी परमात्मा हृषीकेशका दर्शन पा जाते हैं, वे कभी मोहके वशीभूत नहीं होते। आप पुराण-पुरुष, परमदेव, देवताओंके भी देवता, देवगुरु एवं सनातन परमात्मा हैं। जो लोग आपकी शरणमें आ जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। हृषीकेश ! आप आदि-अन्तसे रहित, विश्वविधाता और अविकारी देवता हैं। जो आपके भक्त हैं, वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं। आप परम पुरातन पुरुष हैं। परसे भी पर हैं। आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले पुरुषको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। चारों वेद जिनके यशका गान करते हैं, जो सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं सर्वोत्तम ऐश्वर्य (कल्याण) प्राप्त करूँगा। पुरुषोत्तम ! आप परमेश्वर हैं। पशु, पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं। 'परमेश्वर' कहे जानेवाले इन्द्रादि लोकपालोंके भी स्वामी हैं। सर्वेश्वर ! जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आप ही ईश्वर हैं। आपको नमस्कार है। विशाल नेत्रोंवाले माधव ! आप ईश्वरोंके भी ईश्वर एवं शासक हैं। प्रभो ! आपका अभ्युदय हो। सर्वात्मन् ! आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं। जो अर्जुनके मित्र, अर्जुनके हितैषी और अर्जुनके रक्षक हैं। उन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेकर मनुष्य सुखी हो जाता है। निष्पाप श्रीकृष्ण ! प्राचीन कालके महर्षि मार्कण्डेय आपके चरित्रको जानते हैं। उन मुनिश्रेष्ठने पहले (वनवासके समय) आपके प्रभाव और माहात्म्यका मुझसे वर्णन किया था। असित, देवल, महातपस्वी नारद तथा मेरे पितामह व्यासने आपको ही सर्वोत्तम विधि बताया है। आप ही तेज, आप ही परब्रह्म, आप ही सत्य, आप ही महान् तप, आप ही श्रेय, आप ही उत्तम यश और आप ही जगत्के कारण हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्की सृष्टि की है। और प्रलय-काल आनेपर यह पुनः आपमें ही लीन हो जाता है। जगत्पते ! वेदवेत्ता पुरुष आपको आदि-अन्तसे रहित, दिव्य-स्वरूप, विश्वेश्वर, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त, तथा विश्वतोमुख आदि नामोंसे पुकारते हैं। आपका रहस्य गूढ़ है। आप सबके आदि कारण और इस जगत्के स्वामी हैं। आप ही परमदेव, नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि तथा मुमुक्षुओंके परम आश्रय भगवान् विष्णु भी आप ही हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको देवता भी नहीं जानते। आप ही परम पुराण पुरुष तथा पुराणोंसे भी परे हैं। आपके ऐसे-ऐसे गुणों तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य-कालमें होनेवाले कर्मोंकी गणना करनेवाला इस भूलोकमें या स्वर्गमें भी कोई नहीं है। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम सब लोग आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय हैं। हमें आप सर्वगुणसम्पन्न सुहृद्के रूपमें प्राप्त हुए हैं।' (द्रोण० १४९। ८-३४)

घटोत्कच-वध

द्रोणपर्वमें घटोत्कच-वधकी घटना भगवान् श्रीकृष्ण-की दूरदर्शिता तथा 'कण्टकेनैव कण्टकम्' नीतिका सुन्दर दृष्टान्त है। जयद्रथ-वधके बाद कर्णने युद्धमें महान् उग्ररूप धारण किया। श्रीकृष्ण अर्जुनको उसका सामना करनेसे बचाते थे; क्योंकि उसके पास इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति थी और उसको वह अर्जुनके ऊपर छोड़नेके लिये ही रख हुए था। इसलिये घटोत्कचसे कर्णके मुकाबलेमें खड़ा करनेका विचार निश्चित हुआ और तदनुसार कुन्तीकुमारने उसका आवाहन किया। तत्काल ही वह उपस्थित होकर कवच, धनुष-बाण और खड्ग धारण किये श्रीकृष्ण और अर्जुनको प्रणाम करके श्रीकृष्णसे बोला—'भगवन्! मैं सेवामें उपस्थित हूँ, आज्ञा दीजिये।'

भगवान् वासुदेवने उसको प्रोत्साहन देते हुए कहा—'घटोत्कच! मैंने तुम्हरा इसलिये आवाहन किया है कि यह तुम्हारे पराक्रम दिखानेका समय आ गया है; तुम्हारे बन्धु पाण्डव संकटमें पड़ गये हैं, तुम इनके सहायक बनो। तुम बड़े वीर और शक्तिशाली हो, तुम्हारे पास नाना प्रकारके अमोघ शस्त्र हैं, तथा राक्षसी मायाका भी बल है। देखो, शत्रुपक्षका महान् धनुर्धर कर्ण पाण्डवोंकी सेनाका विनाश कर रहा है, उसकी बाणवर्षासे व्यथित हो पाञ्चाल सैनिक भागे जा रहे हैं। वीरश्रेष्ठ घटोत्कच! तुम अपना प्रबल पराक्रम दिखलाकर शत्रुसेनाका संहार करो और कर्णको मार डालो।' तत्पश्चात् अर्जुनने भी श्रीकृष्णकी बातोंका समर्थन करते हुए कहा—घटोत्कच! मेरी सेनामें तीन ही वीर श्रेष्ठ माने जाते हैं, तुम, महाबाहु सात्यकि तथा पाण्डुनन्दन भीमसेन। इसलिये हे वीर घटोत्कच!

जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान्।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान्॥
(१७३। ६२)

'तुम सात्यकिको सहायक बनाकर रणभूमिमें कर्णको उसी प्रकार मार डालो, जैसे पूर्वकालमें स्कन्दको साथ लेकर इन्द्रने तारकासुरको मारा था।'

भगवान् वासुदेव और अर्जुनकी बात सुनकर परम उत्साहसे आविष्ट होकर घटोत्कचने कहा—'आपलोग जैसा कह रहे हैं, वैसा ही मैं हूँ। आपकी आज्ञासे मैं कर्णका वध करने जा रहा हूँ, परंतु मैं द्रोणाचार्यका भी अच्छी तरह मुकाबला कर सकता हूँ।

अद्य यास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥
(१७३। ६४)

'आज मैं रातमें सूतपुत्र कर्णके साथ वह संग्राम करूँगा जिसकी चर्चा जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक लोग करते रहेंगे।'

इतना कहकर घटोत्कच आवेशमें आकर युद्धभूमिमें अद्भुत पराक्रम दिखाने लगा और राक्षसी मायाके द्वारा उसने ऐसा युद्ध-कौशल दिखलाया, जैसा कभी सुननेमें नहीं आया था। उसने द्रोण और कर्णके रहते कौरव-सेनाका बड़ा संहार किया। कौरव-पक्षके महारथी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। कौरवसेनामें चारों ओर भगदड़, क्रन्दन और चिल्लाहट ही सुन पड़ती थी। घटोत्कचने—

गृहीत्वा त्व महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम्।
उद्यम्य न्यवधीद् भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे॥
(१७५। ३५)

—युद्धभूमिमें भीमकाय राक्षसराज अलम्बुषको पकड़कर और दोनों हाथोंसे ऊपर उठाकर जमीनपर उसी प्रकार दे मारा जैसे विष्णु भगवान्ने मयासुरको पछाड़ा था।' वह कभी जलधाराकी वृष्टि करता, कभी आग बरसाता, कभी पत्थरोंकी वर्षा करता। उसने शत्रुपक्षके महाराक्षस वीर अलायुधको भी मार डाला। अब तो कौरव-सेनामें हड़कम्प मच गया। घटोत्कचकी मायासे त्रस्त होकर सब कौरवोंने कर्णसे कहा—

शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं
नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः॥

'कर्ण! तुम इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे शीघ्र ही इस

राक्षसको मार डालो; देखो, इस राक्षसके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र कौरव नष्ट होते जा रहे हैं ।'

घटोत्कचको कौरव-सेनाका संहार करते देख और अन्य किसी प्रकारसे वध्य न देखकर कर्णने अपनी उस दिव्यशक्तिका प्रयोग करके मार डाला। उसके मरते ही कौरव-सेनामें आनन्दकी लहर दौड़ गयी और पाण्डव-सेनामें शोक छा गया। परंतु भगवान् वासुदेव हर्षमें निमग्न होकर सिंहनाद करने लगे और उन्होंने अर्जुनको छातीसे लगा लिया। वे बोले, 'धनंजय ! कार्तिकेयके समान शक्तिशाली कर्णके सामने खड़ा होनेवाला संसारमें कोई नहीं था। वह यदि दिव्य कवच-कुण्डलसे युक्त होता, अथवा इन्द्रकी दी हुई शक्ति उसके पास होती तो उसको जीतना सम्भव न होता।

दिष्ट्यापनीतकवचो दिष्ट्यापहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे ॥
(१८० । १४)

'भाग्यवश उसका कवच-कुण्डल छिन गया और भाग्यवश उसकी वह अमोघशक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी गयी ।'

सात्यकिने भगवान्‌से पूछा—'प्रभो ! कर्णको उस शक्तिपर विश्वास था, फिर भी उसने उसे अर्जुनके ऊपर क्यों नहीं छोड़ा ?' श्रीकृष्णने कहा—'सात्यकि ! दुर्योधन आदि नित्य गुप्त मन्त्रणा करके कर्णको उकसाते थे कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको अर्जुन-पर ही छोड़ना। परंतु मैं ही राधापुत्र कर्णको मोहित कर देता था, इसी कारण वह अर्जुनपर शक्तिका प्रयोग नहीं कर पाता था।

फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम् ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥
(१८२ । ४१)

'वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युस्वरूप है, इस चिन्तामें अहर्निश डूबे रहनेके कारण न तो मुझे नींद आती थी और न मनमें कभी हर्ष होता था।' इस कारण हे सात्यकि ! अर्जुनको मानो मरकर लौटा हुआ देखकर आज मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

उधर घटोत्कच-वधकी आलोचना करते हुए धृतराष्ट्रने संजयसे कहा कि 'कर्णके पास जब ऐसी अमोघ शक्ति थी, तब उसका प्रयोग उसने अर्जुनपर क्यों नहीं किया ? आश्चर्यकी बात है कि ऐसी अमोघ शक्तिको, जो कौरवोंके विजयका आधार थी, श्रीकृष्णने घटोत्कचके ऊपर प्रयुक्त कराकर दूसरेके लिये निष्फल कर दिया।

'श्रीकृष्णकी नीतिको समझना आसान नहीं है।'

घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं
परो लाभः स भवेत् पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्
तथापि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥
(द्रोण० १८२ । ९)

'उन पुरुषसिंह वासुदेवने यह सोचकर कि घटोत्कच यदि कर्णको मार डालेगा तो पाण्डवोंका बड़ा लाभ होगा, और यदि कर्ण इन्द्रकी दी हुई शक्तिका प्रयोग करके घटो-त्कचको मार देता है, तो भी पाण्डवोंका काम बन जायगा, युद्धमें कर्णके द्वारा घटोत्कचको मरवा दिया। धृतराष्ट्रका यह सोचना ठीक था, परंतु भगवान् वासुदेवकी लीला अपरम्पार है; उनके किस कार्यमें क्या हेतु है, इसको समझना आसान नहीं। यदि कंस, जरासंध, शिशुपाल—जैसे महापराक्रमी वीरोंका भगवान् वासुदेवने सफाया नहीं कर दिया होता तो आज कौरवोंकी शक्ति अजेय हो गयी होती। हाँ, यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि भगवान्‌ने कर्णकी अमोघशक्तिका निशाना घटो-त्कचको ही क्यों बनाया। इसका उत्तर यह है कि भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये किसी-न-किसी बहाने असुरोंका संहार करते रहते हैं। घटोत्कच ब्राह्मणों और यज्ञोंसे द्वेष रखनेवाला तथा धर्मका लोप करनेवाला पापात्मा था, इसी कारण भगवान्‌ने उसे मरवा डाला। श्रीकृष्णने स्वयं कहा था—

यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या महामृधे ।
मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥
(१८१ । २९)

'यदि महायुद्धमें कर्ण अपनी शक्तिसे उसको नहीं मार डालता तो वह भीमसेनका पुत्र घटोत्कच मेरे द्वारा मारा जाता।'

[शेष आगे]

सती गान्धारी

दमघोष—चेदिदेशका एक राजा, जिसका पुत्र शिशुपाल था (आदि० १८६ । ८५) ।

दमन—(१) एक प्राचीन ब्रह्मर्षि (वन० ५३ । ६) । पत्नीसहित विदर्भनरेश भीमद्वारा इनका सत्कार और प्रसन्न हुए मुनिका राजाको एक कन्या तथा तीन पुत्र प्रदान करना (वन० ५३ । ६–८) । (२) विदर्भ-नरेश भीमके पुत्र और दमयन्तीके भाई (वन० ५३ । ९) । (३) पौरवका पुत्र । धृष्टद्युम्नद्वारा इसका वध (भीष्म० ६१ । २०) ।

दमयन्ती—विदर्भनरेश भीमकी पुत्री, जो महर्षि दमनके आशीर्वादसे उत्पन्न हुई थी । इनके तीन भाई थे—दम, दान्त और दमन (वन० ५३ । ९) । इनके प्रति प्रमदावनमें हंसद्वारा नलके गुणोंका वर्णन (वन० ५३ । २७—३०) । इनका देवदूत बनकर आये हुए नलसे वार्तालाप, उनका परिचय पूछना और महलके भीतर उनका आना कैसे सम्भव हुआ, यह जिज्ञासा प्रकट करना (वन० ५५ । २०-२१) । नलके मुखसे देवताओंके वरणका प्रस्ताव सुनकर दमयन्तीका हँसकर नलको अपना पाणिग्रहण करनेके लिये प्रेरित करना और उनके अस्वीकार करनेकी दशामें प्राण त्याग देनेका निश्चय प्रकट करना (वन० ५६ । १—४) । पुनः नलके द्वारा देवताओंके ही वरण करनेका अनुरोध होनेपर शोकाश्रु बहाती हुई दमयन्तीका देवताओंको नमस्कार करके नलको ही वरण करनेकी बात घोषित करना और स्वयंवर-सभामें देवताओंके समक्ष उन्हींको अपना पति चुननेका निश्चय बताना (वन० ५६ । १४—२१) । दमयन्तीका स्वयंवर-सभामें आगमन (वन० ५७ । ८) । स्वयंवर-सभामें नलके रूपमें पाँच व्यक्तियोंको देखकर निषधनरेश नलकी पहचान न होनेसे दमयन्तीका देवताओंकी शरणमें जाना और राजा नलकी प्राप्ति करानेके लिये उनसे प्रार्थना करना (वन० ५७ । ८—२१) । देवताओंकी कृपासे दमयन्तीमें देव-सूचक लक्षणोंके निश्चय करनेकी शक्तिका उत्पन्न होना तथा देवों और मनुष्योंके लक्षणोंपर विचार करके इनका नलको पहचान लेना (वन० ५७ । २४-२५) । इनके द्वारा पतिरूपमें नलका वरण (वन० ५७ । २७-२८) । नलका इनमें अनन्य अनुराग बनाये रखनेका विश्वास दिलाना तथा दमयन्तीद्वारा नलका अभिनन्दन होना (वन० ५७ । ३१–३३) । नलके साथ दमयन्तीका विवाह, नव-दम्पतिका विहार और दमयन्तीके गर्भसे इन्द्रसेन तथा इन्द्रसेनाका जन्म (वन० ५७ । ४०—४६) । इनका राजा नलको जुएसे रोकनेका प्रयास (वन० ६० । ५–७) । पराजयकी सम्भावना होनेपर इनका कुमार-कुमारीको वार्ष्णेयद्वारा पिताके यहाँ भेजना (वन० ६० । १९-२०) । दमयन्तीका पतिके साथ तीन दिनोंतक नगरके समीप केवल जल पीकर रहना और फल-मूलका आहार करते हुए वनमें जाना । पतिके विदर्भका रास्ता बतानेपर शङ्कित होना और उन्हें अपने साथ विदर्भनरेशके यहाँ चलनेके लिये कहना (वन० ६१ । ५—३६) । एक धर्मशालामें दमयन्तीका पतिके साथ सोना और उठनेपर उन्हें न देख उनके लिये विलाप करना (वन० अध्याय ६२ से ६३ । १२ तक) । इन्हें अजगरका निगलना (वन० ६३ । २१) । इनके शापसे व्याधका भस्म होना (वन० ६३ । ३९) । इन्हें तपस्वियोंका आश्वासन (वन० ६४ । ९२—९५) । इनकी व्यापारी-दलसे भेंट तथा उन सबसे बात-चीत (वन० ६४ । ११४—१३२) । जङ्गली हाथियोंके उपद्रवसे क्षतिग्रस्त व्यापारियोंका दमयन्तीको राक्षसी समझकर इसे मारनेका संकल्प करना और दमयन्तीका घने जङ्गलमें भागकर अपनी दशापर विलाप करना (वन० ६५ । २७—३५) । दमयन्तीकी चिन्ता, इनका चेदिराजके नगरमें पहुँचकर उन्मत्ताकी भाँति घूमना और राजमाताद्वारा महलमें बुलवाया जाना (वन० ६५ । ४५—५२) । राजमाता और दमयन्तीकी बातचीत (वन० ६५ । ५३–६६) । राजमातासे शर्त करके दमयन्तीका वहाँ उद्वेगरहित हो निवास करना(वन० ६५ । ६७–७६)। सुदेव ब्राह्मणका चेदि-पुरीमें राजाके पुण्याहवाचनके समय सुनन्दाके साथ खड़ी हुई दमयन्तीको देखना, इनके अनुपम सौन्दर्य तथा अन्य लक्षणोंद्वारा इन्हें पहचानना, इनकी दयनीय दशासे व्यथित होना । इन्हें सान्त्वना देनेके विचारसे इनके पास जाकर अपनेको इनके भाईका मित्र बताना और इनके माता-पिता तथा बच्चोंका कुशल-समाचार निवेदन करना । सुदेवको पहचानकर दमयन्तीका अपने सुहृदोंके समाचार पूछना और फूट-फूटकर रोना । सुनन्दाका दमयन्तीकी इस स्थितिके विषयमें राजमाताको सूचित करना और राजमाताका सुदेवको बुलाकर उनसे दमयन्तीका परिचय पूछना (वन० ६८ अध्याय) । सुदेवका दमयन्तीके विषयमें विस्तारपूर्वक सारी बातें बताना । उसके ललाटमें स्थित कमलके चिह्नकी ओर संकेत करना; राजमाताका उस चिह्नसे अपनी बहिनकी पुत्रीके रूपमें दमयन्तीको पहचानकर रोते-रोते गले लगाना । सुनन्दाका भी रोकर बहिन दमयन्तीको हृदयसे लगाना । दमयन्तीका मौसीसे विदर्भ जानेकी आज्ञा माँगना और उनके द्वारा दी हुई सवारीपर बैठकर संरक्षक सेनाके साथ विदर्भ जाना । वहाँ पिताके घर पहुँचकर मातासे नलके अन्वेषणका

प्रयास करनेके लिये कहना। पिताकी आज्ञासे नलको ढूँढ़नेके लिये जाते हुए ब्राह्मणोंको नलसे कहनेके लिये अपना संदेश बताना और जो उस संदेशका उत्तर दें, उनकी सारी परिस्थिति जानकर उनके विषयमें शीघ्र सूचना देनेके लिये कहना (वन० ६९ अध्याय)। पर्णादका दमयन्तीसे बाहुकरूपधारी नलका समाचार बताना और दमयन्तीका मातासे सलाह करके पिताको सूचित किये बिना गुप्तरूपसे सुदेव नामक ब्राह्मणको राजा ऋतुपर्णके यहाँ कल ही सूर्योदयके बाद होनेवाले अपने स्वयंवरका संदेश देकर भेजना (वन० ७० अध्याय)। नलके विषयमें दमयन्तीके विचार (वन० ७३। ८–१५)। इनके द्वारा बाहुककी परीक्षाके लिये केशिनीका भेजा जाना (वन० ७५। २)। माता-पिताकी आज्ञा लेकर दमयन्तीका बाहुकको अपने महलमें बुलाना और 'महाराज नल मुझे छोड़कर क्यों चले गये ? क्या तुमने उन्हें कहीं देखा है ?' इत्यादि प्रश्न करके अपना दुःख निवेदन करना। बाहुकरूपी नलके नेत्रोंसे आँसू बहना और उनका 'कलियुगसे प्रेरित होकर सब कुछ करना पड़ा है।' ऐसा कहकर दमयन्तीके द्वितीय पति-वरणकी भावनापर कटाक्ष करना, दमयन्तीका शपथपूर्वक अपनी निर्दोषता बताना। वायु देवताका आकाशवाणीद्वारा दमयन्तीकी शुद्धताका समर्थन करना और स्वयंवरको नलकी प्राप्तिका एक उपायमात्र बताना। तत्पश्चात् नलका अपने रूपको प्रकट करना और दमयन्तीके साथ उनका मिलन (वन० ७६ अध्याय)। पुष्करसे अपने राज्यको वापस लेकर नलका दमयन्तीको पुनः अपनी राजधानीमें बुलाना (वन० ७९। १)।

दमी–एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। यहाँ ब्रह्मा आदि देवता भगवान् महेश्वरकी उपासना करते हैं (वन० ८२। ७२)।

दम्भोद्भव–एक सार्वभौम सम्राट् (आदि० १। २३४)। ये महारथी और महापराक्रमी थे। इनका नर-नारायणके साथ युद्ध और उनसे पराजित होना तथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके इनका पुनः अपनी राजधानीमें लौट आना (उद्योग० ९६। ५–३९)।

दरद–(१) बाह्लीक देशके एक राजा, जो सूर्यनामक महान् असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७। ५८)। इन्होंने जन्म लेते ही अपने शरीरके भारसे इस पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया था (सभा० ४४। ८)। (२) एक प्राचीन-देश और वहाँके निवासी। जिसे इस उत्तर दिग्विजयके समय अर्जुनने जीता था (सभा० २७। २३)। दरद देशके लोग राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट ले गये थे (सभा० ५२। १३)। वनवासके समय सुबाहुकी राजधानीमें जाते समय पाण्डवलोग दरद देशमें होकर गये थे (वन० १७७। १२)। पाण्डवोंकी ओरसे जिन्हें रणनिमन्त्रण भेजना आवश्यक समझा गया था, उनमें दरदराजका भी नाम है (उद्योग० ४। १५)। यह पूर्वोत्तर दिशामें स्थित देश है (भीष्म० ९। ६७)। दरददेशीय योद्धा दुर्योधनकी सेनामें सम्मिलित थे (भीष्म० ५१। १६)। भगवान् श्रीकृष्णने कभी इस देशको जीता था (द्रोण० ७०। ११)। दरद-देशीय योद्धाओंका सात्यकिपर आक्रमण और सात्यकिद्वारा इनका संहार (द्रोण० १२१। ४२-४३)। (३) एक जाति, दरदलोग पहले क्षत्रिय थे, परंतु ब्राह्मणोंके साथ ईर्ष्या करनेके कारण शूद्र हो गये (अनु० ३५। १७-१८)।

दरि—धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जलकर भस्म हो गया था (आदि० ५७। १६)।

दर्दुर—एक पर्वत, जिसके अधिष्ठाता देवता कुबेरकी सभामें रहकर भगवान् धनाध्यक्षकी उपासना करते हैं (सभा० १०। ३२)।

दर्भी—एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने कुरुक्षेत्रकी सीमाके भीतर अर्धकील तीर्थ प्रकट किया था, वहाँ उपनयन और उपवास करनेसे मनुष्य कर्मकाण्ड और मन्त्रोंका ज्ञानी ब्राह्मण होता है। दर्भी मुनि वहाँ चार समुद्र भी लाये थे, उनमें स्नान करनेसे चार हजार गोदानका फल मिलता है (वन० ८३। १५४–१५७)।

दर्व—(१) एक क्षत्रिय जाति, इस वंशके श्रेष्ठ क्षत्रिय राजकुमारोंने अजातशत्रु युधिष्ठिरको बहुत धन भेंट किया था (सभा० ५२। १३)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ५४)।

दर्वीसंक्रमण—एक तीर्थ, जहाँकी यात्रा करनेसे तीर्थयात्री अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८४। ४५)।

दर्शक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ५३)।

दल—इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्‌का पुत्र, जिसकी माता मण्डूकराजकी कन्या सुशोभना थी (वन० १९२। ३८)। इनका अपने बड़े भाई शलके मारे जानेपर राज्याभिषेक (वन० १९२। ५९)। इनका महर्षि वामदेवसे वार्तालाप तथा वाम्य अश्वोंको लौटाना (वन० १९२। ६०–७२)।

दल्भ—एक प्राचीन ऋषि, जिनके पुत्र दाल्भ्य नामसे प्रसिद्ध थे (वन० २३। ५)।

दश—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६) ।

दशग्रीव—राक्षसराज दशमुख रावण, जो विश्रवामुनिके द्वारा पुष्पोत्कटाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । इसके सहोदर भाईका नाम था कुम्भकर्ण (वन० २७५ । ७, १०) । यह वरुणकी सभामें विराजमान होकर उनके पास बैठता है (सभा० ९ । १४) ।

दशज्योति—सुभ्राट्के तीन पुत्रोंमेंसे एक (आदि० १ । ४४) ।

दशमालिक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६६) ।

दशरथ—इक्ष्वाकुवंशीय महाराज अजके पुत्र, जो सदा स्वाध्यायमें तत्पर रहनेवाले और पवित्र थे । इनकी माताका नाम इलविला था (वन० २७४ । ६) इनके चार पुत्र थे—श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न (वन० २७४ । ७) । इनके तीन पत्नियाँ थीं—श्रीराममाता कौसल्या, भरतजननी कैकेयी तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता सुमित्रा (वन० २७४ । ८) । इनका श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये सामग्री जुटानेके निमित्त पुरोहितको आदेश (वन० २७७ । १५) । कैकेयीका इन्हें वचनबद्ध करके इनसे श्रीरामके वनवास और भरतके राज्याभिषेकका वर माँगना और इनका दुःखित होकर मौन हो जाना (वन० २७७ । २१–२७) । श्रीरामके वनमें चले जानेपर इनका शरीर-त्याग करना (वन० २७७ । ३०) । रावणपर विजय पानेके बाद श्रीरामके पास इनका आना और राज्यके लिये आदेश देना (वन० २९१ । ३६) । दशरथके घरमें श्रीरामरूपसे अवतीर्ण हुए श्रीविष्णुने दशग्रीव रावणका वध किया था (वन० ३१५ । २०) ।

दशार्ण—एक प्राचीन जनपद (कुछ लोगोंके मतानुसार इसके दो भाग थे—पूर्वी और पश्चिमी । पूर्वीभागमें छत्तीसगढ़का कुछ भाग और पाटन राज्य था तथा पश्चिमी भागमें पूर्वी मालवा और भूपालकी रियासत सम्मिलित थी । हिंदी शब्दसागरके अनुसार विन्ध्यपर्वतके पूर्व-दक्षिणकी ओर स्थित उस प्रदेशका प्राचीन नाम 'दशार्ण' है, जिसके समीप होकर धसान नदी बहती है । 'मेघदूत' से पता चलता है कि विदिशा—आधुनिक भिलसा इसी प्रदेशकी राजधानी थी ।) इस देशपर राजा पाण्डुका आक्रमण और विजय (आदि० ११२ । २५) । भीमसेनने भी इस देशको जीता था (सभा० २९ । ५) । नकुलने भी इसपर आक्रमण करके विजय पायी थी (सभा० ३२ । ७) । प्राचीन कालमें दशार्णदेशके राजा सुदामा थे, इनकी दो पुत्रियाँ थीं, इनमेंसे एक विदर्भनरेश भीमको और दूसरी चेदिराज वीरबाहुको ब्याही गयी थी, भीमकी पुत्री दमयन्ती थी और वीरबाहुकी सुनन्दा । इन दोनोंका ननिहाल दशार्णदेशमें था, दमयन्तीका जन्म भी दशार्णराजके ही घरमें हुआ था (वन० ६९ । १३–१६) । महाभारत युद्धसे पूर्व दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्मा थे, जिनकी पुत्रीका विवाह पुरुषवेशमें रहनेवाली द्रुपदकन्या शिखण्डिनीसे हुआ था । यह रहस्य खुलनेपर दशार्णराजने द्रुपदपर आक्रमण करनेकी तैयारी की, परंतु दैवयोगसे शिखण्डिनी वनमें जाकर शिखण्डीरूपमें परिणित हो गयी और उसके पुरुषत्वका परिचय पाकर दशार्णराज संतुष्ट हो गये (उद्योग० १८९ अध्यायसे १९२ अध्यायतक) । दशार्ण देश दो थे अथवा एक ही देशके दो विभाग थे—ऐसा जान पड़ता है; क्योंकि भीष्मपर्वमें जहाँ भारतीय जनपदोंकी गणना करायी गयी है, वहाँ दो दशार्ण देशोंका उल्लेख देखा जाता है (भीष्म० ९ । ४१-४२) । दशार्ण देशके सैनिक दुर्योधनके पक्षमें थे और द्रोणाचार्यके अनुगामी होकर युद्ध करते थे (भीष्म० ५१ । १२) । युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके समय दशार्ण देशका राज्य चित्राङ्गदके अधिकारमें था, अर्जुनने इनको पराजित किया था (आश्व० ८३ । ५–७) ।

दशार्ह—यदुकुलमें उत्पन्न एक श्रेष्ठ क्षत्रिय, जिनके वंशमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रियोंको दाशार्ह कहते हैं । भगवान् श्रीकृष्णको भी इसीलिये दाशार्ह या दाशार्हपति कहते हैं (सभा० ३८ । दा० पाठ, पृष्ठ ८०९, ८१३, ८१४, ८१८, ८२० और८२५) ।

दशावर—एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १४) ।

दशाश्व—इक्ष्वाकुका दसवाँ पुत्र, जो माहिष्मतीपुरीमें राज्य करता था । इसके पुत्रका नाम मदिराश्व था (अनु० २ । ६) ।

दशाश्वमेध—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८३ । १४) ।

दशाश्वमेधिक—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य उत्तम गति पाता है (वन० ८३ । ६४) ।

दस्र—(नासत्य और) दस्र दोनों अश्विनीकुमारोंके नाम हैं (शान्ति० २०८ । १७) ।

दहति—अंशद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३४) ।

दहदहा—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २०) ।

दहन—(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ब्रह्माजीके पौत्र एवं

स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । ३) । (२) अंशद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३४) ।

दाक्षायणी–दक्षकी कन्या । राजधर्माने अपनी माता सुरभिको दाक्षायणी कहा है (शान्ति० १७० । २) । दाक्षायणी सुरभिने अपने मुखके फेनको राजधर्माकी चितापर गिराया, जिससे वह जी उठा (शान्ति० १७३ । ३) । (इसी तरह अदिति, दिति, दनु आदि सभी दक्ष-कन्याओंको दाक्षायणी समझना चाहिये) ।

दाक्षिणात्य–दक्षिण भारतके निवासी दाक्षिणात्य कहलाते हैं । राजा भीष्मक दाक्षिणात्योंके अधिपति थे (उद्योग० १५८ । २) ।

दानभारि–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ५० । ५२) ।

दान्त–विदर्भनरेश भीमके पुत्र और दमयन्तीके भाई (वन० ५३ । ९) ।

दान्ता–अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अन्य अप्सराओंके साथ अष्टावक्रके स्वागतके लिये नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५) ।

दामचन्द्र–युधिष्ठिरमें अनुराग रखनेवाला उनका एक सम्बन्धी और सहायक राजा, जो बड़ा पराक्रमी था (द्रोण० १५८ । ४०) ।

दामा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ५) ।

दामोदर–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, इस नामकी व्युत्पत्ति (उद्योग० ७० । ८) ।

दामोष्णी–युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होनेवाले एक महर्षि (सभा० ४ । १३) । इन्होंने हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें भेंट की थी (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ) ।

दारद–एक भारतीय जनपद (शल्य० ५० । ५०) ।

दारुक–भगवान् श्रीकृष्णका सारथि, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका जाते समय युधिष्ठिरने दारुकको हटाकर थोड़ी देर स्वयं सारथ्य किया (सभा० २ । १६) । वे दारुकके साथ द्वारका पहुँचे (सभा० २ । ३०) । इसके द्वारा जोतकर लाये हुए गरुडध्वज रथपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थित हुए (सभा० ४५ । ६०) । दारुकके पुत्रने प्रद्युम्नके रथका संचालन किया (वन० १८ । ३, १२, १५, ३०, ३३; वन० १९ । ६, १०, १३) । शाल्वके बाणोंसे दारुकका पीड़ित होना (वन० २१ । ५) । शाल्वका वध करनेके लिये इसका श्रीकृष्णको उत्साहित करना (वन० २२ । २१–२६) । उत्तरने सारथ्य कर्ममें अपनी उपमा श्रीकृष्णके सारथि दारुकसे दी (विराट० ४५ । १६) । इसके सिवा उद्योगपर्वके ८३, ८४, १३१, १३७ अध्यायोंमें; द्रोणपर्वके ८२, ११२ अध्यायोंमें; कर्णपर्वके ७२ अध्यायमें, शान्तिपर्वके ४६, ५३ अध्यायोंमें और आश्वमेधिकके ५२ अध्यायमें भी दारुकका नाम आया है । श्रीकृष्णद्वारा समयपर रथ लानेके लिये आदेश मिलनेपर उसे स्वीकार करना (द्रोण० ७९ । ४३–४४) । भगवान्‌की शङ्खध्वनि सुनकर उनके संदेशका स्मरण करके दारुकका जयद्रथ-वधके पश्चात् रथ लेकर श्रीकृष्णके पास जाना (द्रोण० १४७ । ४५–४६) । सात्यकिके उस रथपर चढ़कर कर्णके साथ युद्ध करते समय इसकी रथ-संचालनकी कुशलता (द्रोण० १४७।५४–५५)। भगवान्‌के रथको दारुकके देखते-देखते दिव्य घोड़े आकाशमें उड़ा ले गये (मौसल० ३ । ५) । दारुकको भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको यादव-संहारकी बात बताने और उन्हें बुलानेके लिये जानेका आदेश देना तथा दारुकका प्रस्थित होना (मौसल० ४ । २-३) । दारुकका कुन्तीपुत्रोंसे मिलकर उनसे यदुवंश-विनाशका समाचार सुनाना और अर्जुनको साथ लेकर द्वारका लौटना (मौसल० ५ । १–५) । अर्जुनका दारुकके प्रति वृष्णिवंशी वीरोंके मन्त्रियोंसे मिलनेकी इच्छा प्रकट करना (मौसल० ७ । ६) ।

दारुण–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) ।

दार्व–दर्वदेशीय अथवा दर्व-जातिमें उत्पन्न क्षत्रिय-नरेश (सभा० २७ । १८) ।

दार्वातिसार–एक म्लेच्छ जाति (द्रोण० ९३ । ४४) ।

दार्वी–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५४) ।

दाल्भ्य–(१) एक महर्षि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । (२) उत्तराखण्डका एक तीर्थभूत आश्रम (वन० ९० । १२) । (३) एक ऋषि, जिन्होंने सत्यवान्‌के जीवित होनेका विश्वास दिलाकर राजा द्युमत्सेनको आश्वासन दिया था (वन० २९८ । १७) ।

दाल्भ्यघोष–उत्तराखण्डका एक तीर्थभूत आश्रम (वन० ९० । १२) ।

दाशराज–सत्यवतीका पालक पिता निषादराज (उच्चैःश्रवा), जिसकी आज्ञासे सत्यवती धर्मार्थ नाव चलाया करती थी (आदि० १०० । ४८) । सत्यवतीके विवाहके लिये शान्तनुसे इसकी शर्त (आदि० १०० । ५६) । अपनी पुत्रीके विवाहके सम्बन्धमें भीष्मके प्रति इसका वक्तव्य (आदि० १०० । ७७–८४) ।

दाशार्णक–दशार्ण देशके निवासी (भीष्म० ५० । ४७) ।

दाशार्ही–दशार्ह-कुलमें उत्पन्न वृष्णिवंशियोंकी सभा तथा दशार्ह-कुलकी कन्या (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०६**) । (दशार्ह-कुलकी कन्या होनेसे ही भुमन्युपत्नी विजया, विकुण्ठनपत्नी सुदेवा, कुरुपत्नी शुभाङ्गी, पाण्डुपत्नी कुन्ती और अर्जुनपत्नी सुभद्रा आदि **दाशार्ही** कही गयी हैं ।)

दारोरक–क्षत्रियोंका एक वर्ग (**भीष्म० ५० । ४७**) ।

दासी–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । ३१**) ।

दिक्–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । १९**) ।

दिग्विजयपर्व–सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय २५ से ३२ तक**) ।

दिति–दक्षप्रजापतिकी पुत्री, महर्षि कश्यपकी पत्नी और दैत्योंकी माता (**आदि० ६५ । १२**) । दितिका एक ही पुत्र जिसका नाम विख्यात हुआ था हिरण्यकशिपु (**आदि० ६५ । १७**) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ११ ३९**) ।

दिलीप–(१) सगरके प्रपौत्र, अंशुमान्के पुत्र और भगीरथके पिता, इनका राज्याभिषेक तथा इनका अपने पुत्रको राज्य देकर वनगमन (**वन० १०७ । ६३–६९**) । श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरके समक्ष इनके चरित्रका वर्णन (**द्रोण० ६१ अध्याय; शान्ति० २९ । ७१–८०**) । ये अनेक बार गोदान करके उसके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हुए थे (**अनु० ७६ । २६**) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (**अनु० ९४ । २३**) । ये मांस-भक्षणका निषेध करनेके कारण सम्पूर्ण भूतोंके आत्मस्वरूप हो गये और इन्हें परावरतत्त्वका ज्ञान हो गया था (**अनु० ११५ । ५८-५९**) । यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १४**) । (२) एक कश्यपवंशी नाग (**उद्योग० १०३ । १५**) ।

दिलीपाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्या अम्बाने कठोर व्रतका आश्रय ले तप किया था (**उद्योग० १८६ । २८**) ।

दिवःपुत्र–विवस्वान्के बोधक या स्वरूपभूत बारह सूर्योंमेंसे एक (**आदि० १ । ४२**) ।

दिवाकर–(१) भगवान् सूर्यका एक नाम (**वन० ११८ । १२**) । (२) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । १४**) ।

दिविरथ–(१) सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र (**आदि० ९४ । २४**) । (२) एक राजा, जो दधिवाहनका पुत्र था । इसका पुत्र महर्षि गौतमद्वारा परशुरामके क्षत्रियसंहारसे बचाया और सुरक्षित रखा गया था (**शान्ति० ४९ । ८०**) ।

दिवोदास–ये काशी जनपदके राजा तथा सुदेव अथवा भीमसेनके पुत्र थे । इनका गालवको दो सौ श्यामकर्ण घोड़े शुल्कमें देकर ययातिकन्या माधवीको एक पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अपनी पत्नी बनाना (**उद्योग० ११७ । १–७**) । पुत्रोत्पत्तिके बाद पुनः गालवको माधवी वापस देना (**उद्योग० ११७ । ८–२१**) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १२**) । ये शत्रुओंके यहाँसे अग्निहोत्र और उसकी सामग्री भी हर लानेके कारण तिरस्कारको प्राप्त हुए (**शान्ति० ९६ । २१**) । इन्होंने इन्द्रकी आज्ञासे वाराणसी नगरी बसायी थी (**अनु० ३० । १६**) । ये अपने शत्रु हैहय-राजकुमारोंसे एक सहस्र दिनोंतक युद्ध करके सेना और वाहनोंके मारे जानेपर भाग निकले और भरद्वाजकी शरणमें गये, वहाँ मुनिने पुत्रेष्टि-यज्ञ करवाया, जिससे इन्हें प्रतर्दन नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई (**अनु० ३० । २०–३०**) । दिवोदासने अपने पुत्र प्रतर्दनको युवराज बनाकर उसे वीतहव्यके पुत्रोंका वध करनेके लिये भेजा था (**अनु० ३० । ३६-३७**) ।

महाभारतमें आये हुए दिवोदासके नाम–भैमसेनि, काशीश, सौदेव, सुदेवतनय आदि ।

दिव्यकट–एक पश्चिम दिशावर्ती नगर, जिसे नकुलने दिग्विजयके समय अपने अधिकारमें कर लिया था (**सभा० ३२ । ११**) ।

दिव्यकर्मकृत्–एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३५**) ।

दिव्यसानु–एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३०**) ।

दिशाचक्षु–गरुड़के प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । १०**) ।

दीप्तकेतु–एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २३७**) ।

दीप्तरोमा–एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३१**) ।

दीप्ताक्ष–एक क्षत्रियकुल, जिसमें पुरूरवा नामक कुलाङ्गार राजा प्रकट हुआ था (**उद्योग० ७४ । १५**) ।

दीप्ति–एक विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३४**) ।

दीप्तोदक–एक तीर्थ, जहाँ देवयुगमें भृगुजीने तपस्या की थी (**वन० ९९ । ६९**) ।

दीर्घ–मगधका एक राजा, जो राजगृहमें पाण्डुके द्वारा मारा गया था (**आदि० ११२ । २७**) ।

दीर्घजिह्व–महर्षि कश्यपद्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न एक दानव (आदि० ६५ । ३०) ।

दीर्घजिह्वा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

दीर्घतमा–एक मुनि, जो देवराज इन्द्रकी सभामें रहकर उन वज्रधारी देवेन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । ११) । ये पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले ऋषि हैं (अनु० १६५ । ४२) ।

दीर्घप्रज्ञ–एक क्षत्रिय नरेश, जो वृषपर्वा नामक प्रसिद्ध दैत्यके अंशसे प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । १६) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजना निश्चित हुआ था (उद्योग० ४ । १२) ।

दीर्घबाहु–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०५) । भीमसेनके द्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २६) ।

दीर्घयज्ञ–अयोध्याके एक राजा, जिन्हें पूर्व-दिग्विजयके समय भीमसेनने कोमलतापूर्ण बर्तावसे ही अपने वशमें कर लिया (सभा० ३० । २) ।

दीर्घरोमा–(दीर्घलोचन) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, (आदि० ११६ । १३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६०) ।

दीर्घलोचन–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २६-२७) । (२) (दीर्घरोमा) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । १३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६०) ।

दीर्घसत्र–एक तीर्थ, जहाँकी यात्रा करनेमात्रसे मनुष्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके समान फल पाता है (वन० ८२ । १०८–११०) ।

दीर्घायु–कलिङ्गराज श्रुतायुका भाई, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (द्रोण० ९४ । २९) ।

दुःशल–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९३) । भीमसेनद्वारा इसकी मृत्यु (द्रोण० १२९ । ३९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

दुःशला–धृतराष्ट्र और गान्धारीकी पुत्री तथा दुर्योधन आदि सौ भाइयोंकी बहिन (आदि० ६७ । १०५) । सिंधुराज जयद्रथकी पत्नी (आदि० ६७ । १०९) । इसके जन्मकी कथा (आदि० ११५ अध्याय) । पिताद्वारा जयद्रथके साथ इसका विवाह (आदि० ११६ । १८) । दुःशलाका विचार करके युधिष्ठिरने द्रौपदीहरणके समय भाइयोंको जयद्रथका वध न करनेकी आज्ञा दी थी (वन० २७१ । ४३) । अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये त्रिगर्तदेशमें गये हुए अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तवीरोंको कष्ट पाते देख दुःशलाका युद्ध बंद करानेके लिये रणभूमिमें अपने शिशु पौत्र सुरथकुमारको लेकर आना और अर्जुनके पूछनेपर उनसे सुरथकी मृत्युका हाल बताना, विलाप करना और पार्थसे शान्ति एवं कृपाकी याचना करना (आश्व० ७८ । २२–४१) । युधिष्ठिरका दुःशलाकी प्रसन्नताके लिये उसके बालक पौत्रको सिंधुदेशके राज्यपर अभिषिक्त करना (आश्व० ८९ । ३५) ।

दुःशासन–धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (आदि० ६३ । ११९) । यह पुलस्त्यकुलके राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८९–९०, ९३; आदि० ११६ । २) । धृतराष्ट्रके चार प्रधान पुत्रोंमें इसे द्वितीय स्थान प्राप्त था (आदि० ९५ । ५७) । यह भाइयोंके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १) युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें यह भोजनकी देखभाल और परोसनेकी व्यवस्थामें नियुक्त था (सभा० ३५ । ५) । इसका द्रौपदीके केश पकड़कर उन्हें बलपूर्वक सभाभवनमें ले आना (सभा० ६७ । ३१) । इसके द्वारा द्रौपदीका चीरहरण (सभा० ६८ । ४०) । द्रौपदीके वस्त्र खींचते समय राजाओंद्वारा इसपर धिक्कारोंकी बौछार (सभा० ६८ । ५६) । इसके द्वारा पाण्डवोंका उपहास (सभा० ७७ । ३—१४) द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा बंदी बनाया जाना (वन० २४२ । ७) । दुर्योधनद्वारा राजा बननेके आदेशपर उसे अस्वीकार करते हुए इसका भाईके दोनों पैर पकड़कर रोना (वन० २४९ । २९–३५) । दुर्योधनके वैष्णव यज्ञमें आनेके लिये पाण्डवोंके पास निमन्त्रण भेजना (वन० २५६ । ८) । गुप्तचरोंको भेजकर पुनः पाण्डवोंका पता लगानेके लिये सलाह देना (विराट० २६ । १४–१८) । विराटनगरके निकट अर्जुनके साथ युद्ध और पराजित होकर उसका भागना (विराट० ६१ । ३६—४०) । कौरव-सभामें दुर्योधनसे इसका अपने आपके, दुर्योधनके और कर्णके कैद होनेकी सम्भावना बताना (उद्योग० १२८ । २३-२४) । प्रथम दिनके संग्राममें नकुलके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । २२–२४) । अर्जुनके साथ द्वन्द्वयुद्ध और उनसे पराजित होना (भीष्म० ११० । २८—४६; भीष्म० १११ । ५७-५८) । अर्जुनके साथ युद्धमें इसका घोर पराक्रम प्रकट करना (भीष्म० ११७ । १२—१९) । दुर्योधनसे अभिमन्युको मार डालनेकी प्रतिज्ञा करके युद्ध प्रारम्भ करना (द्रोण० ३९ । २४—३१) । अभिमन्युद्वारा इसका मूर्च्छित किया जाना (द्रोण० ४० । १३-१४) । अर्जुनके साथ युद्ध करके उनसे पराजित होकर भागना (द्रोण० ९० अध्याय) ।

दुःशासन

सात्यकिके साथ इसका युद्ध (द्रोण० ९६ । १४–१७)। सात्यकिसे पराजित होकर इसका सेनासहित पलायन (द्रोण० १२१ । २९—४६) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १२३ । ३१—३४) । इसके द्वारा प्रतिविन्ध्यकी पराजय (द्रोण० १६८ । ४३) । सहदेवके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा पराजय (द्रोण० १८८ । २—९) । धृष्टद्युम्नद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १८९ । ५) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर इसका युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १५) । सहदेवद्वारा पराजित होना (कर्ण० २३ । १८–२०) । धृष्टद्युम्नको काबूमें कर लेना (कर्ण० ६१ । ३३) । भीमसेनके साथ इसका युद्ध और पाण्डवोंपर आक्षेप (कर्ण० ८२ । ३२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । क्रोधमें भरे भीमसेन और दुःशासनका घोर युद्ध (कर्ण० ८२ । ३३ से कर्ण० ८३ । ७ तक) । भीमसेनकी गदाकी चोटसे धरतीपर गिरकर दुःशासनका छटपटाना, भीमसेनका इसकी छातीपर चढ़कर इससे यह पूछना कि 'तूने किस हाथसे द्रौपदीके केश खींचे थे ।' दुःशासनका रोष और अभिमानके साथ अपनी गजसुण्ड-दण्डके समान मोटी दाहिनी भुजा दिखाकर यह उत्तर देना कि 'मैंने इसी हाथसे द्रौपदीके केश खींचे थे ।' भीमसेनका इसकी उस भुजाको उखाड़कर उसीके द्वारा इसे पीटना और इसकी छाती फाड़कर इसके गरम रक्तको पीना (कर्ण० ८३ । ८–२९) । दुःशासन जिसमें रहता था, वह सुन्दर महल वीरवर अर्जुनको रहनेके लिये दिया गया (शान्ति० ४४ । ८-९) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजलसे इसका भी प्रकट होना (आश्रम० ३२ । ९) । मृत्युके पश्चात् इसे स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई (स्वर्गा० ५ । २१-२२)

महाभारतमें आये हुए दुःशासनके नाम–भारत, भरतश्रेष्ठ, भारतापसद, धृतराष्ट्रज, कौरव, कौरव्य और कुरुशार्दूल आदि ।

दुःसह–धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (आदि० ६३ । ११९; आदि० ६७ । ९३; आदि० ११६ । २) । यह पुलस्त्यकुलके राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८९) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध और पराजित होकर भागना (विराट० ६१ । ४३–४५) । इसका सात्यकिके साथ युद्ध करके घायल होना (द्रोण० ११६ । २—७) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३५ । ३६) ।

दुन्दुभि–एक राक्षस, जिसे भगवान् शङ्करने वर दिया और वे ही इसके विनाशमें भी समर्थ हुए (अनु० १४ । २१४) ।

दुन्दुभिस्वन–कुशद्वीपमें मुनिदेशके बादका देश (भीष्म० १२ । १३) ।

दुन्दुभी–एक गन्धर्वी, जो मन्थरा नामसे प्रसिद्ध कुबड़ी दासी हुई थी, ब्रह्माजीने इसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये भूतलपर जानेका आदेश दिया था (वन० २७६ । ९-१०) ।

दुराधन (दुराधर या दुर्धर)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०१) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३५ । ३६) ।

दुराधर (दुर्धर या दुराधन)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । १०) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३५ । ३६) ।

दुर्ग–किला, दुर्ग छः प्रकारके होते हैं—मरुदुर्ग, जलदुर्ग, पृथ्वीदुर्ग, वनदुर्ग, पर्वतदुर्ग और मनुष्यदुर्ग (सैनिक-शक्तिसे सम्पन्न होना) । इनमें मनुष्यदुर्ग ही प्रधान है (शान्ति० ५६ । ३५) ।

दुर्गशैल–शाकद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० ११ । २३) ।

दुर्गा–(१) त्रिभुवनकी अधीश्वरी देवी दुर्गा । महाराज युधिष्ठिरने विराटनगरमें प्रवेश करते समय जगज्जननी दुर्गाकी स्तुति की और देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर दिया (विराट० ६ अध्याय) । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने महाभारत युद्धके प्रारम्भमें दुर्गादेवीकी स्तुति की और देवीने अन्तरिक्षमें स्थित होकर उन्हें विजयी होनेका वर दिया (भीष्म० २३ । ४—१९) । अर्जुनकृत दुर्गास्तोत्रकी महिमा (भीष्म० २३ । २२–२५) । (२) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३३) ।

दुर्गाल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२) ।

दुर्जय–(१) महर्षि कश्यपद्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न एक दानव (आदि० ६५ । २३) । (२) (दुष्पराजय)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ९) । (देखिये दुष्पराजय) । (३) एक राजा, जिसके लिये पाण्डव-पक्षसे रण-निमन्त्रण भेजनेके लिये द्रुपदने सलाह दी थी (उद्योग० ४ । १६) । (४) इक्ष्वाकुवंशी सुवीरके पुत्र (अनु० २ । ११) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९६) ।

दुर्जया–दुर्जय मणिमती नगरी, जिसे दुर्जया भी कहते हैं (वन० ९६ । १) । (कुछ आधुनिक समीक्षकोंने 'इलोरागुफा' को ही दुर्जया माना है । यह स्थान निजाम राज्यमें दौलताबादसे सात मील और नन्दगाँवसे चालीस मीलपर स्थित है ।)

दुर्धर्ष (दुर्मद)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९४; आदि० ११६ । ३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । ४०) ।

दुर्मद-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि॰ ६७ । ९६; आदि॰ ११६ । ५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण॰ १३५ । ३६) ।

दुर्मर्षण-धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (आदि॰ ६३ । ११९; आदि॰ ६७ । ९५; आदि॰ ११६ । ३) । इसका भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म॰ ११३ अध्याय; द्रोण॰ २५ । ५-७) । अर्जुनसे लड़नेका उत्साह प्रकट करना (द्रोण॰ ८८ । ११-१३) । अर्जुनद्वारा इसकी गज-सेनाका संहार और पलायन (द्रोण॰ ८९ अध्याय) । इसका सात्यकिके साथ युद्ध और उनके द्वारा घायल होना (द्रोण॰ ११६ । ६-८) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण॰ १३५ । ३६) । दुर्मर्षणका सुन्दर महल माद्रीकुमार नकुलको रहनेके लिये दिया गया (शान्ति॰ ४४ । १०-११) ।

दुर्मुख-(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि॰ ६७ । ९३; आदि॰ ११६ । ३) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि॰ १८५ । १) । यह द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा बंदी बनाया गया (वन॰ २४२ । १२) । प्रथम दिनके संग्राममें इसका सहदेवके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म॰ ४५ । २५-२७) । अभिमन्युके द्वारा इसके सारथिका वध (भीष्म॰ ४७ । १२) । इसके द्वारा श्रुतकर्माकी पराजय (भीष्म॰ ७९ । ३५-३८) । अभिमन्युद्वारा पराजित होना (भीष्म॰ ८४ । ४२) । घटोत्कचके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म॰ ११० । १३-१४; भीष्म॰ १११ । ३७-३९) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (द्रोण॰ २० । २६-२९) । पुरुजित्के साथ युद्ध (द्रोण॰२५। ४०-४१) । सहदेवके साथ युद्ध (द्रोण॰ १०६ । १३) । सहदेवद्वारा पराजित होना (द्रोण॰ १०७ । २५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण॰ १३४ । २०-२१) । इसके द्वारा पर्वतीय राजा जनमेजयके वधकी चर्चा (कर्ण॰ ६ । १५- २०) । इसका सुन्दर भवन सहदेवको रहनेके लिये दिया गया था (शान्ति॰४४।१२-१३) । (२) (दुर्मर्षण) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि॰ ६७।९५) । दुर्मर्षण नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य॰२६ । ९-१०) । (३) एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा॰ ४।२१)।(४) एक असुर, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा॰ ९ । १३) । (५) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जो कर्णके वशमें पड़ गया था (कर्ण॰ ७३ । १०४) । (६) एक सर्प, जो स्वधामको पधारते समय बलरामजीके स्वागतके लिये प्रभासक्षेत्रमें आया था (मौसल॰ ४ । १६) ।

दुर्योधन-(१) धृतराष्ट्र और गान्धारीके सौ पुत्रोंमेंसे एक, जो सबसे बड़ा था । यह अपने ग्यारह महारथ भाइयोंमें प्रधान था (आदि॰ ६३ । ११८-१२०) यह कुरुकुलको कलङ्कित करनेवाला, दुर्बुद्धि तथा खोटे विचार रखनेवाला था और कलिके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि॰ ६७ । ८७) । दुर्योधनके द्वारा प्रज्वलित की हुई वैरकी भारी आग असंख्य प्राणियोंके विनाशका कारण बन गयी । इसके सौ भाइयोंकी उत्पत्ति पुलस्त्यकुलके राक्षसोंके अंशसे हुई थी (आदि॰ ६७ । ८८-८९) । इसकी उत्पत्तिकी कथा (आदि॰ ११४ । ९-२५) । इसके जन्म-समयमें प्रकट हुए अमाङ्गलिक अपशकुन (आदि॰ ११४ । २७-२९) । इसके जन्मकालिक अमङ्गलकारी उपद्रवोंको देखकर इसे कुल-संहारक बताते हुए इसे त्याग देनेके लिये धृतराष्ट्रको विदुरकी सलाह (आदि॰ ११४ । ३४-३९) । जिस दिन भीमसेनका जन्म हुआ, उसी दिन दुर्योधनका भी हुआ (आदि॰ १२२ । १९) । इसके द्वारा गङ्गातटवर्ती प्रमाणकोटि तीर्थमें जलक्रीडाका आयोजन और विष खिलाकर बेहोश किये हुए भीमसेनका जलमें प्रक्षेप (आदि॰ १२७ । २७-५४) । इसका भीमसेनके सारथिको उसका गला घोंटकर मार डालना (आदि॰ १२८ । ३६) । भीमसेनके भोजनमें पुनः कालकूट विष डलवानेका कुकृत्य (आदि॰ १२८ । ३७) । इसकी गदायुद्धमें प्रवीणता (आदि॰ १३१ । ६१) । इसका रणभूमिमें अस्त्रकौशल दिखाना (आदि॰ १३३ । ३२-३५) । भीमसेनके साथ गदा युद्ध करते हुए इसका अश्वत्थामाद्वारा निवारण (आदि॰ १३४ । ५) । इसके द्वारा कर्णका राज्याभिषेक (आदि॰ १३५ । ३८) । इसकी कर्णसे अटल मित्रताके लिये याचना (आदि॰ १३५ । ४०) । कर्णका पक्ष लेकर इसका भीमसेन एवं पाण्डवोंपर आक्षेप (आदि॰ १३६ । १०-१८) । द्रुपदद्वारा इसकी पराजय (आदि॰ १३७ । २२ के बाद दा॰ पाठ) । युधिष्ठिरपर प्रजाका अनुराग देखकर इसकी चिन्ता (आदि॰ १४० । २९) । पाण्डवोंको वारणावत भेजनेके विषयमें दुर्योधन और धृतराष्ट्रका संवाद (आदि॰ १४१ । ३-२४) । वारणावतमें लाक्षागृह बनवाने तथा पाण्डवोंको जलानेके लिये इसका पुरोचनको आदेश (आदि॰ १४३ । २-१७) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका कर्ण और भाइयोंसहित उपस्थित होना (आदि॰ १८५ । १०४) । लक्ष्यवेधके लिये धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाते समय इसका झटकेसे उत्तान गिरना और लज्जित हो अपने स्थानपर लौट जाना (आदि॰ १८६ । २८ के बाद) । पाण्डवोंके विनाशके लिये इसके द्वारा धृतराष्ट्रके प्रति विविध उपायोंका कथन (आदि॰ १९९ । २८-३१; आदि॰ २०० । ४-२०) ।

दुर्योधन

पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये इसे भीष्मकी सम्मति (आदि० २०२ । ५-१९) । इसका युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भाइयोंसहित आना (सभा० ३४ । ६) । युधिष्ठिरके लिये आयी हुई भेंट-सामग्रीको ग्रहण करना और सँभाल कर रखना (सभा० ३५ । ९) । सबके विदा हो जानेपर भी युधिष्ठिरकी दिव्यसभामें दुर्योधन और शकुनि कुछ कालतक ठहरे रहे (सभा० ४५ । ३८) । दुर्योधनका मयनिर्मित सभाभवनको देखना और पग-पगपर भ्रमके कारण उपहासका पात्र बनना तथा युधिष्ठिरके वैभवको देखकर इसका चिन्तित होना (सभा० ४७ अध्याय) । पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये इसका शकुनिसे वार्तालाप (सभा० ४८ अध्याय) । इसका धृतराष्ट्रसे अपनी चिन्ताका कारण बताना तथा जुएके लिये अनुरोध करना (सभा० ४९ । १२-३६, ४२; सभा० ५० अध्याय) । इसके द्वारा राजसूययज्ञमें युधिष्ठिरके लिये विभिन्न देशोंसे आयी हुई भेंटोंका धृतराष्ट्रके प्रति वर्णन (सभा० अध्याय ५१ से ५२ तक) । इसके द्वारा युधिष्ठिरके अभिषेकका अपने पिताके प्रति वर्णन (सभा० ५३ अध्याय) । इसका धृतराष्ट्रको उभाड़ना (सभा० अध्याय ५५ से ५६ तक) । जुएके अवसरपर विदुरजीको इसकी फटकार तथा विदुरजीका इसे चेतावनी देना (सभा० ६४ अध्याय) । द्रौपदीको पकड़कर सभाभवनमें लानेके लिये इसका विदुरको आदेश (सभा० ६६ । १) । विदुरका इसे पुनः फटकारना (सभा० ६६ । २-१२) । द्रौपदीको सभाभवनमें लानेके लिये इसका प्रातिकामीको आदेश (सभा० ६७ । २) । द्रौपदीके प्रति इसके छल-कपटयुक्त वचन (सभा० ७० । ३-६; सभा० ७१ । २०) । इसके द्वारा अर्जुनकी वीरताका वर्णन (सभा० ७४ । ६ के बाद) । धृतराष्ट्रसे पुनः जुएके लिये इसका अनुरोध (सभा० ७४ । ७-२३) । पुरवासियोंद्वारा इसकी निन्दा (वन० १ । १३-१७) । विदुरसे काम्यकवनसे लौट आनेपर इसकी चिन्ता (वन० ७ । २-६) । इसे मैत्रेय ऋषिका शाप (वन० १० । ३४) । इसके द्वारा द्वैतवनकी यात्राविषयक कर्ण-शकुनिकी मन्त्रणा स्वीकार करना (वन० २३८ । २-१६) । घोषयात्राके लिये प्रस्थान (वन० २३९ । २३) । गौओंकी देख-भाल करना और इसके सैनिकोंका गन्धर्वोंके साथ संवाद (वन० २४० अध्याय) । दुर्योधन आदि कौरवोंका गन्धर्वोंके साथ युद्ध (वन० २४१ अध्याय) । चित्रसेन आदि गन्धर्वोंद्वारा दुर्योधन आदिकी पराजय तथा चित्रसेनका दुर्योधनको बंदी बनाना (वन० २४२ । ६) । गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ानेके लिये पाण्डवोंके प्रति इसकी पुकार (वन० २४३ । ११ के बाद दा० पाठ) । इसका कर्णसे अपनी पराजयका समाचार बताना (वन० २४८ अध्याय) । कर्णसे अपनी ग्लानिका वर्णन करते हुए दुःशासनको राजा बननेका आदेश (वन० २४९ । १-२७) । इसका आमरण अनशनके लिये बैठना (वन० २५१ । १९-२०) । कृत्याद्वारा इसका रसातलमें पहुँचाया जाना (वन० २५१ । २९) । दानवों तथा कर्णके द्वारा समझाये जानेपर इसका अनशन त्यागकर हस्तिनापुरको प्रस्थान (वन० २५२ अध्याय) । इसके वैष्णव यज्ञका आरम्भ और समाप्ति (वन० अध्याय २५५ से २५६ तक) । इसका महर्षि दुर्वासाको प्रसन्न करके युधिष्ठिरके आश्रमपर जानेके लिये वर माँगना (वन० २६२ । १९-२३) । गुप्तचरोंद्वारा पाण्डवोंका पता न मिलनेपर मन्त्रियोंसे इसका परामर्श करना (विराट० २६ । २-७) । मत्स्यदेशपर चढ़ाई करनेका निश्चय (विराट० २९ । १४ के बाद दा० पाठ) । मत्स्यदेशपर आक्रमण करनेके लिये दुःशासनको आदेश देना (विराट० ३० । २०-२४) । अपने सैनिकोंको उभाड़ते हुए इसका अर्जुनसे युद्ध करनेका ही निश्चय (विराट० ४७ । २-१९) । कर्णकी बातोंसे कुपित हुए आचार्य-वर्गसे इसका क्षमा माँगना (विराट० ५१ । १६) । अर्जुनके साथ युद्ध और उनसे हारकर भागना (विराट० ६५ अध्याय) । श्रीकृष्णसे सहायताके रूपमें नारायणी सेना प्राप्त करना (उद्योग० ७ । २३-२५) । इसका बलरामजीके पास सहायता माँगनेके लिये जाना (उद्योग० ७ । २५) । कृतवर्माके पास सहायता माँगनेके लिये जाना (उद्योग० ७ । ३२) । मार्गमें शल्यका सत्कार करके उनके प्रसन्न होनेपर अपने पक्षमें आनेके लिये उनसे प्रार्थना (उद्योग० ८ । १८) । इसके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका संग्रह (उद्योग० १९ । २७) । धृतराष्ट्रसे अपने पक्षके वीरोंका वर्णन करते हुए अपना उत्कर्ष तथा पाण्डवोंका अपकर्ष बतलाना (उद्योग० ५५ अध्याय) । संजयसे पाण्डवोंके रथ तथा घोड़ोंके विषयमें प्रश्न (उद्योग० ५६ । ६) । धृतराष्ट्रसे अपनी प्रबलताका प्रतिपादन (उद्योग० ५७ । ३६-४२) । युद्धको यज्ञका रूप देकर युद्ध करनेका ही निश्चय करना (उद्योग० ५८ । १०-१८) । धृतराष्ट्रको ढाढ़स बँधानेके लिये आत्मप्रशंसा करना (उद्योग० ६१ अध्याय) । भीष्मजीसे अपने पक्षकी प्रबलता बताना (उद्योग० ६३ । १-८) । श्रीकृष्णके सत्कारके लिये मार्गमें विश्राम-स्थान बनवाना (उद्योग० ८५ । १२-१७) । श्रीकृष्णको कैद करनेका विचार प्रकट करना (उद्योग० ८८ । १३) । अपना निमन्त्रण अस्वीकार कर देनेपर श्रीकृष्णसे उसका कारण पूछना (उद्योग०

९१ । १३–१५) । कण्वका दुर्योधनको मातलीयोपाख्यान सुनाना और संधिके लिये समझाना तथा इसके द्वारा कण्वमुनिके उपदेशकी अवहेलना (उद्योग० ९७ अध्यायसे १०५ अध्यायतक) । कौरवसभामें श्रीकृष्णको उत्तर देते हुए पाण्डवोंको सूईकी नोंक बराबर भी भूमि न देनेका निश्चय करना (उद्योग० १२७ अध्याय) । कैदकी सम्भावनासे इसका कौरवसभासे चला जाना (उद्योग० १२८ । २५–२७) । श्रीकृष्णको कैद करनेका षड्यन्त्र (उद्योग० १३० । ४–८) । रणयात्राके लिये सेनाको आज्ञा देना (उद्योग० १५३ । ८–१७) । इसके द्वारा अपने सेनापतियोंका निर्वाचन और अभिषेक (उद्योग० १५५ । ३१–३३) । इसका भीष्मको प्रधान सेनापतिके पदपर अभिषिक्त करना (उद्योग० १५६ । २६) । रुक्मीकी सहायता लेनेसे इनकार करना (उद्योग० १५८। ३७) । उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना और श्रीकृष्ण, पाण्डव, द्रुपद, विराट, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न आदिको कटुवचनोंद्वारा संदेश कहलाना (उद्योग० १६० अध्याय) । भीष्मसे कौरवपक्षके अतिरथियोंका नाम पूछना (उद्योग० १६५।१२–१६)। भीष्मसे पाण्डवपक्षके अतिरथियोंकी जानकारी प्राप्त करना (उद्योग० १६८ । ३९–४२) । शिखण्डीको न मारनेके विषयमें भीष्मसे इसका प्रश्न (उद्योग० १७३ । १-२) । भीष्मसे शिखण्डीका जन्मवृत्तान्त पूछना (उद्योग० १८८ । १) । अपने पक्षके वीरोंसे उनकी शक्तिके विषयमें पूछना (उद्योग० १९३ । २-७) । कुरुक्षेत्रके मैदानमें चलनेके लिये सेनाको आज्ञा देना (उद्योग० १९५ अध्याय) । भीष्मकी रक्षाके लिये दुःशासनको आदेश (भीष्म० १५ । १२—२०) । इसका मणिमय महान् ध्वज नाग-चिह्नसे विभूषित था (भीष्म० १७ । २५-२६) । युद्धके लिये जाते समय गजारूढ़ दुर्योधन और उसके गजकी छटाका वर्णन (भीष्म० २० । ७-८) । द्रोणाचार्यसे दोनों पक्षोंके प्रधान-प्रधान वीरोंका वर्णन करना (भीष्म० २५ । ७–११) । प्रथम दिनके संग्राममें भीमसेनके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । १९–२१) । भीमसेनके बाणोंसे आहत होकर इसका मूर्च्छित होना (भीष्म० ५८ । १७) । भीष्मको उलाहना देना (भीष्म० ५८ । ३४–४०) । गजसेनाके साथ भीमसेनपर आक्रमण (भीष्म० ६२ । ३५) । भीमसेनके साथ युद्ध करके इन्हें मूर्च्छित कर देना (भीष्म० ६४ । १६–२३) । पाण्डवोंके विशिष्ट पराक्रमके विषयमें भीष्मसे प्रश्न (भीष्म० ६५ । ३१–३४) । भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ७३ । १७–२३) । भीमसेनद्वारा इसका पराजित और मूर्च्छित होना (भीष्म० ७९ । ११—१६) । भीमसेनके पराक्रमसे भयभीत होकर इसकी भीष्मसे प्रार्थना (भीष्म० ८० । ४–६) । धृष्टद्युम्नद्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ८२ । ५३) । भीमसेनद्वारा एक साथ आठ भाइयोंके मारे जानेसे भीष्मके पास जाकर इसका विलाप करना (भीष्म० ८८ । ३७-३८) । घटोत्कचके साथ इसका युद्ध और उसके साथी चार राक्षसोंका इसके द्वारा वध (भीष्म० ९१ । २०-२१) । घटोत्कचके प्रहारसे इसका प्राण-संकटकी स्थितिमें पड़ जाना (भीष्म० ९२ । १४) । इसके प्रहारसे भीमसेनका मूर्च्छित होना (भीष्म० ९४ । ५-६) । घटोत्कचसे पराजित होकर भीष्मसे दुःख प्रकट करना (भीष्म० ९५ । ३–१५) । भीष्मसे पाण्डवोंको मारने अथवा कर्णको युद्धके लिये आज्ञा देनेका अनुरोध करना (भीष्म० ९७ । ३६–४२) । भीष्मकी रक्षाकी व्यवस्थाके लिये दुःशासनको आदेश (भीष्म० ९८ । ३१–४२; भीष्म० १०५ । २–६) । शल्यको युधिष्ठिरको रोकनेके लिये आदेश देना (भीष्म० १०५ । २६–२८) । अपनी सेनाको मारी जाती देख भीष्मसे इसकी प्रार्थना (भीष्म० १०९ । १६–२३) । सात्यकिके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १४; भीष्म० १११ । १४–१८) । अभिमन्युके साथ युद्ध (भीष्म० ११६ । १–८) । इसके द्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन (भीष्म० ११७ । २६–३०) । सेनापतिकी आवश्यकताका वर्णन करते हुए कर्णसे अनुमति लेना (द्रोण० ५ । ५–१२) । द्रोणाचार्यसे सेनापति होनेके लिये प्रार्थना करना (द्रोण० ६ । २–११) । इसके द्वारा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक (द्रोण० ७ । ५) । युधिष्ठिरको जीवित पकड़ लानेके लिये द्रोणाचार्यसे वर माँगना (द्रोण० १२ । ६) । पाण्डवोंकी सेनाको द्रोणाचार्यद्वारा विचलित हुई देख कर्णसे इसका हर्षपूर्ण वार्तालाप (द्रोण० २२ । ११–१७)। द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना (द्रोण० ३३ । ७–९) । अभिमन्युको मारनेके लिये अपने महारथियोंको आदेश देना (द्रोण० ३९ । १६–१९) । अभिमन्युसे युद्ध करनेके लिये कर्णको प्रेरित करना (द्रोण० ४० । २३–२५) । अभिमन्युके प्रहारसे पीड़ित होकर भागना (द्रोण० ४५ । ३०) । अर्जुनके भयसे भीत जयद्रथको इसका आश्वासन (द्रोण० ७४ । १४–२०) । द्रोणाचार्यको उपालम्भ (द्रोण० ९४ । ४–१८) । अर्जुनसे युद्ध करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करना (द्रोण० ९४ । २७–३२) । द्रोणाचार्यद्वारा बाँधे गये दिव्य कवचसे युक्त होकर युद्धके लिये जाना (द्रोण०

९४ । ७३–७५) । अर्जुनको युद्धके लिये ललकारना (द्रोण० १०२ । ३६–३८) । अर्जुनके साथ युद्धमें पराजित होकर भागना (द्रोण० १०३ । ३२) । इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । २६-२८) । सात्यकि-द्वारा इसकी पराजय (द्रोण० ११६ । २४-२५) । सात्यकिसे हारकर भाइयोंसहित भागना (द्रोण० १२० । ४३-४४) । पाण्डवोंके साथ संग्राम (द्रोण० १२४ । ३२–४२) । द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना (द्रोण० १३० । ४–१२) । युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ युद्ध (द्रोण० १३० । ३०–४३) । अर्जुनके वधके लिये कर्णको प्रोत्साहित करना (द्रोण० १४५ । १२–३३) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अध्याय) । जयद्रथवधके बाद खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना (द्रोण० १५० अध्याय) । कर्णसे वार्तालापके प्रसंगमें द्रोणाचार्यपर दोषारोपण (द्रोण० १५२ । २–१४) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध और पराजय (द्रोण० १५३ । २९–३९) । कर्णसे अपनी सेनाकी रक्षाके लिये अनुरोध (द्रोण० १५८ । २–४) । कर्णको मार डालनेके लिये उद्यत हुए अश्वत्थामाको मनाना (द्रोण० १५९ । १३–१५) । अश्वत्थामासे पाञ्चालोंको मारनेके लिये अनुरोध (द्रोण० १५९ । ८६–१००) । पैदल सैनिकोंको प्रदीप जलानेका आदेश (द्रोण० १६३ । १२) । द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश (द्रोण० १६४।२१–३०) । भीमसेनसे युद्ध और पराजित होकर भागना (द्रोण० १६६ । ४३–५८) । कर्णकी सलाहसे शकुनिको पाण्डवोंका वध करनेके लिये भेजना (द्रोण० १७० । ६२–६५) । सात्यकिद्वारा पराजय (द्रोण० १७१ । २३) । द्रोणाचार्य और कर्णको उपालम्भ (द्रोण० १७२ । ३–७) । जटासुरके पुत्र अलम्बुषको घटोत्कचके साथ युद्धके लिये आज्ञा देना (द्रोण० १७४ । ९–११) । कर्णको घटोत्कचके चंगुलसे छुड़ानेके लिये अलायुधको प्रेरित करना (द्रोण० १७७ । ९—१३) । अलायुधके वधसे पश्चात्ताप करना (द्रोण० १७८ । ३६–४०) । द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना (द्रोण० १८५ । २—८; द्रोण० १८५ । २२-२३) । नकुलके साथ युद्ध और उनसे परास्त होना (द्रोण० १८७ । ५०—५५) । सात्यकिके साथ संवाद और युद्ध (द्रोण० १८९ । २३—४८) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्ध-स्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १७) । अश्वत्थामासे द्रोणवधका समाचार सुनानेके लिये कृपाचार्यको आदेश देना (द्रोण० १९३ । ३५) । अश्वत्थामासे पुनः नारायणास्त्र प्रकट करनेको कहना (द्रोण० २०० । २५) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० २०० । ५३) । अपनी सेनाको आश्वासन देना (कर्ण० ३ । ७—१७) । कर्णसे सेनापति बननेके लिये प्रार्थना करना (कर्ण० १० । २८—३७) । कर्णको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त करना (कर्ण० १० । ४३) । युधिष्ठिरके साथ युद्धमें इसकी पराजय (कर्ण० २८ । ७-८; कर्ण० २९ । ३२) । कर्णके कथनानुसार व्यवस्थाके लिये उद्यत होना (कर्ण० ३१ । ७१-७२) । कर्णका सारथ्य करनेके लिये शल्यसे प्रार्थना (कर्ण० ३२ । २—२९) । शल्यके कुपित होकर उठ जानेपर उनकी प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न करना (कर्ण० ३२ । ५४—६२) । शल्यसे त्रिपुरोपाख्यानका वर्णन (कर्ण० ३३ अध्यायसे ३४ । १२१ तक) । इसके द्वारा कर्णको परशुरामद्वारा दिव्यास्त्र-प्राप्तिका वर्णन (कर्ण० ३४ । १२३—१६२) । शल्यको कर्णका सारथि बननेके लिये समझाना (कर्ण० ३५ अध्याय) । नकुल-सहदेवको अपने पराक्रमसे किंकर्तव्यविमूढ़ कर देना (कर्ण० ५६ । ७—१८) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्धमें परास्त होना (कर्ण० ५६ । ३४-३५) । अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन देना (कर्ण० ५७ । २–४) । भीमसेनद्वारा पराजित होना (कर्ण० ६१ । ५३—६२) । कर्णसे अपनी सेनाकी रक्षाके लिये कहना (कर्ण० ६४ । ४०–४२) । इसके द्वारा कुलिन्द-राजकुमारका वध (कर्ण० ८५ । १४) । अश्वत्थामा-द्वारा किये गये संधिके प्रस्तावको न मानना (कर्ण० ८८ । ३०—३३) । कर्णकी मृत्युसे दुखी होना (कर्ण० ९२ । १५) । अपने सैनिकोंको ढाढ़स बँधाना (कर्ण० ९३ । ५२—५९) । संधिके लिये समझाते हुए कृपाचार्यको उत्तर देना और युद्धका ही निश्चय करना (शल्य० ५ अध्याय) । अश्वत्थामाके पास जाकर सेनापतिके पदके लिये पूछना (शल्य० ६ । १७-१८) । शल्यसे सेनापति बननेके लिये प्रार्थना (शल्य० ६ । २५-२६) । शल्यको सेनापति-पदपर अभिषिक्त करना (शल्य० ७ । ६-७) । इसके द्वारा चेकितानका वध (शल्य० १२ । ३१-३२) । भीमसेनद्वारा पराजित होना (शल्य० १६ । ४२–४४) । अपनी सेनाको उत्साहित करना (शल्य० १९ । ५८—६६) । इसका अद्भुत पराक्रम (शल्य० २२ अध्याय) । धृष्टद्युम्नद्वारा पराजित होना (शल्य० २५ । २३) । अकेले भागकर सरोवरमें प्रवेश करना और मायासे उसका पानी बाँध देना (शल्य० २९ । ५४) । कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माके कहनेपर भी युद्धसे उदासीनता प्रकट करना (शल्य० ३० । १४–१८) । जलमें छिपे-छिपे युधिष्ठिरसे वार्तालाप करना (शल्य० ३१ । ३८—५३) । युधिष्ठिरके

ललकारनेपर इसका जलसे बाहर निकलना (शल्य० ३२ । ३३—३९) । कवच आदिसे सुसज्जित होकर इसका किसी एक पाण्डवके साथ युद्धके लिये उद्यत होना (शल्य० ३२ । ६६—७१) । भीमसेनके साथ गदा-युद्धके लिये उद्यत होना (शल्य० ३३ । ५२-५५) । भीमसेनके साथ गदायुद्धके लिये उद्यत होनेपर अपशकुन (शल्य० ५६ । ८—१४) । भीमसेनके कटु वचनोंका उत्तर (शल्य० ५६ । ३८—४१) । भीमसेनके साथ भयङ्कर गदा-युद्ध (शल्य० ५७ अध्याय) । भीमसेनकी गदाकी चोटसे जाँघ टूट जानेपर इसका पृथ्वीपर गिरना (शल्य० ५८ । ४७-४८) । श्रीकृष्णद्वारा किये गये आक्षेपोंका उत्तर देना (शल्य० ६१ । २७—३९) । अपने कार्यपर संतोष प्रकट करना (शल्य० ६१ । ५०—५४) । संजयके सामने विलाप करना (शल्य० ६४ । ७—२९) । संदेशवाहकोंको संदेश देना (शल्य० ६४ । ३०—४०) । अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माके सामने अपने कार्यपर संतोष प्रकट करना (शल्य० ६५ । २३—३१) । अश्वत्थामाको सेनापति बनाना (शल्य० ६५ । ४१) । अश्वत्थामाके कर्मकी प्रशंसा करके प्राण-त्याग करना (सौप्तिक० ९ । ५६-५७) । कर्णकी सहायतासे इसके द्वारा कलिङ्गराजकी कन्याके अपहरणकी चर्चा (शान्ति० ४ । १३) । राजा दुर्योधनका सजा-सजाया भवन वीरवर भीमसेनको रहनेके लिये दिया गया (शान्ति० ४४ । ६-७) । धृतराष्ट्रसे शीलके सम्बन्धमें इसके प्रश्नकी चर्चा (शान्ति० १२४ । १८—६४) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजलसे भाइयोंसहित प्रकट होकर इसका धृतराष्ट्र आदि स्वजनोंसे मिलना (आश्रम० ३२ । ९) । स्वर्गमें राजा दुर्योधन सूर्यके समान तेजस्वी और वीरोचित शोभासे सम्पन्न हो पुण्यकर्मा देवताओंके साथ बैठा था, जिसे युधिष्ठिरने प्रत्यक्ष देखा (स्वर्गा० १ । ४-५) ।

महाभारतमें आये हुए दुर्योधनके नाम—आजमीढ, भारत, भरतशार्दूल, भरतश्रेष्ठ, भारताग्रय, भरतर्षभ, भरतसत्तम, भारतसत्तम, धार्तराष्ट्र, धृतराष्ट्रज, धृतराष्ट्रपुत्र, धृतराष्ट्रसूनु, धृतराष्ट्रसुत, धृतराष्ट्रात्मज, गान्धारि, गान्धारीपुत्र, कौरव, कौरवश्रेष्ठ, कौरवनन्दन, कौरवात्मज, कौरवेन्द्र, कौरव्य, कौरवेय, कुरु, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलाधम, कुरुमुख्य, कुरुनन्दन, कुरुपति, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गव, कुरुराज, कुरुसत्तम, कुरुसिंह, कुरूत्तम, कुरुवर्धन, सुयोधन आदि ।

(२) मनुवंशी सुवीरकुमार दुर्जयके पुत्र (अनु० २ । १३) । उनके द्वारा नर्मदानदीके गर्भसे परम सुन्दरी सुदर्शनानामक कन्याका जन्म (अनु० २ । १९) । इनका अपनी पुत्री सुदर्शनाको अग्निदेवके हाथों सौंपना (अ २ । ३४) ।

दुर्वारण—काम्बोज सैनिकोंका नाम । सात्यकिद्वारा इन वर्णन (द्रोण० ११२ । ४२-४३) ।

दुर्वासा—कठोर व्रतका पालन करनेवाले तथा धर्मके विष अपने निश्चयको सदा गुप्त रखनेवाले एक ब्राह्मण मह जो बड़े ही उग्र स्वभावके थे (आदि० ११० । ४-५) कुन्तीद्वारा इनकी परिचर्या (आदि० ११० । ४) इनके द्वारा कुन्तीको देवताओंके वशीकरण-मन्त्र उपदेश (आदि० ११० । ६) । ये भगवान् शङ्कर अंशभूत श्रेष्ठ द्विज हैं (आदि० २२२ । ५२) । रा श्वेतकिके शतवर्षीय यज्ञका सम्पादन करनेके लिये इन भगवान् शङ्करका आदेश और इनका उस आदेशक शिरोधार्य करना (आदि० २२२ । ५५—५८) । इन द्वारा श्वेतकिके यज्ञका सम्पादन (आदि० २२२ । ५९) ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । ११) । ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २३) । इन्होंने जहाँ भगवान् श्रीकृष्णको वरदान दिया था, वह स्थान वरदानतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ (वन० ८२ । ६३-६४) । इनके द्वारा महर्षि मुद्गलके दान-धर्म आदिकी छः बार परीक्षा (वन० २६० । १२—२१) । इनके द्वारा दुर्योधनको वर-प्रदान (वन० २६२ । २३) । इनका पाण्डवोंके आश्रमपर जाना (वन० २६३ । १-२) । स्नानके लिये गये हुए इनका पूर्ण तृप्तिका अनुभव करनेके कारण पाण्डवोंके यहाँ न जाकर शिष्योंसहित वहींसे पलायन (वन० २६३ । २९) । राजा कुन्तिभोजके यहाँ आगमन और शर्तके साथ निवास (वन० ३०३ । ७-८) । इनके द्वारा कुन्तीको अथर्ववेदीय उपनिषदोंमें प्रसिद्ध मन्त्रका दान (वन० ३०५ । २०) । पत्नीसहित श्रीकृष्णद्वारा दुर्वासाकी आराधना और इनका उन्हें वर देना (द्रोण० ११ । ९) । इनका श्रीकृष्णका आतिथ्य स्वीकार करके उनके क्रोधकी परीक्षा करना (अनु० १५९ । १८—३६) । श्रीकृष्णकी सेवासे प्रसन्न होकर रुक्मिणीसहित उन्हें वर देना तथा श्रीकृष्णने जो इनकी जूठनको अपने पैरमें नहीं लगाया था, उसे अप्रिय कार्य बताना (अनु० १५९ । ३७—४८) । महापराक्रमी भगवान् शिव ही दुर्वासा नामक ब्राह्मण बनकर द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णभवनमें टिके रहे (अनु० १६० । ३७) । कुन्तीद्वारा क्रोधी एवं तपस्वी दुर्वासाकी आराधना और उनके द्वारा कुन्तीको वरकी प्राप्तिके प्रसंगकी चर्चा (आश्रम० ३० । २—६) । मौसलकाण्डमें यदुवंश-विनाशके पश्चात् एक जगह बैठे हुए श्रीकृष्णने दुर्वासाके

उस कथनका स्मरण किया था, जिसे इन्होंने खीरके उच्छिष्ट भागको पैरमें न लगानेके कारण इनसे कहा था (मौसल० ४ । १९)।

दुर्विगाह (दुर्विपह)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । २०) । (देखिये—दुर्विपह)

दुर्विभाग–एक देश, जहाँके उत्तम कुलमें उत्पन्न क्षत्रिय राजकुमारोंने युधिष्ठिरको राजसूययज्ञके अवसरपर बहुत धन अर्पित किया था (सभा० ५२ । ११–१७) ।

दुर्विमोचन-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १६)।

दुर्विरोचन–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६२) ।

दुर्विपह–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, इसका दूसरा नाम दुर्विगाह था (आदि० ११६ । ५) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १) । यह द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा बंदी बनाया गया था (वन० २४२ । १२) । भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । २०) ।

दुलिदुह–एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३३) ।

दुष्कर्ण–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ३) । शतानीकद्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ७९ । ४६–५२) । भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १५५ । ४०) ।

दुष्पराजय (दुर्जय)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ९) । द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा इसका बंदी बनाया जाना (वन० २४२ । १२) । नीलके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३३ । ४१-४२) ।

दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रहर्ष)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १८-१९) ।

दुष्प्रधर्षण–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९४) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १) ।

दुष्यन्त– (१) पूरुवंशके एक सुप्रसिद्ध राजा, चक्रवर्ती सम्राट् (आदि० ६८ । ३) । इनके राज्यकालमें प्रजाजनोंकी धार्मिकताका वर्णन (आदि० ६८ । ६–११) । इनकी भगवान् विष्णुके समान शारीरिक शक्ति, सूर्यतुल्य तेज एवं गदायुद्धकी कुशलता (आदि० ६८ । ११–१३) । इनकी मृगयाका वर्णन (आदि० ६९ । १–३१) । इनका कण्वके मनोहर आश्रममें प्रवेश तथा वहाँकी शोभाका निरीक्षण (आदि० ७० । २४–५१) । कण्वके आश्रममें इनकी शकुन्तलासे भेंट । उसे अपना परिचय देकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करना एवं उससे उसका परिचय पूछना (आदि० ७१ । ३–१३) । शकुन्तलाके कण्वपुत्री कहकर परिचय देनेपर इनका मुनिको ऊर्ध्वरेता बताकर इस बातपर संशय प्रकट करना (आदि० ७१ । १४–१७) । शकुन्तलाका इनसे अपने जन्मका विस्तृत परिचय देना (आदि० ७१ । १८ से ७२ अध्यायतक) । इनका शकुन्तलाको अपनी भार्या बननेके लिये प्रेरित करना और विवाहके आठ भेद बतलाकर उसके साथ गान्धर्वविवाहका समर्थन करना (आदि० ७३ । १–१४) । शकुन्तलाके साथ इनका गान्धर्वविवाह और समागम तथा उसे राजधानीमें शीघ्र बुला लेनेके लिये आश्वासन (आदि० ७३ । १९–२१ और दा० पाठ) । इनके द्वारा शकुन्तलाके गर्भसे भरतकी उत्पत्ति (आदि० ७४ । १-२) । इनका शकुन्तलाको अस्वीकार करना (आदि० ७४ । १९-२०) । शकुन्तलाका इनके प्रति धर्मकी याद दिलाना, असत्यभाषण और अधर्मसे भय बताना तथा पत्नी एवं पुत्रकी महिमा बतलाते हुए पुत्रको अङ्गीकार करनेके लिये रोषपूर्ण अनुरोध करना (आदि० ७४ । २५–७२) । इनके द्वारा शकुन्तलाकी भर्त्सना (आदि० ७४ । ७३–८१) । इनके प्रति शकुन्तलाद्वारा सत्य-धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (आदि० ७४ । १०१–१०७) । आकाशवाणीद्वारा इनके समक्ष शकुन्तलाकी उक्तिका समर्थन करनेपर इनका उसको अङ्गीकार करना (आदि० ७४ । १०९–१२६) । सौ वर्षोंतक राज्य भोगनेके बाद इनका स्वर्गगमन (आदि० ७४ । १२६ के बाद दा० पाठ) । ये ईलिनके पुत्र थे, इनकी माताका नाम रथन्तरी था (आदि० ९४ । १७) । ये यमकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र भगवान् यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १५) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६४) । (२) पूरुवंशी महाराज अजमीढके द्वारा 'नीली' के गर्भसे उत्पन्न, इनके दूसरे भाईका नाम 'परमेष्ठी' था (आदि० ९४ । ३२) । दुष्यन्त और परमेष्ठी सभी पुत्र 'पाञ्चाल' कहलाये (आदि० ९४ । ३३) ।

दूषण–जनस्थाननिवासी एक राक्षस, जो श्रीरामद्वारा मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४, कालम २; वन० २७७ । ४४) ।

दृढ (१)—(दृढवर्मा)- धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**देखिये दृढवर्मा**) ।

दृढ (२) —(दृढक्षत्र) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**देखिये दृढक्षत्र**) ।

दृढक्षत्र (**दृढ**)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७। ९९; आदि० ११६ । ८**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १५७ । १७–१९**) ।

दृढधन्वा-एक पूरुवंशीय क्षत्रिय, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (**आदि० १८५ । १५**) ।

दृढरथ (दृढरथाश्रय)—(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १०४**)। भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १५७ । १७–१९**) । (२) प्रातःसायं स्मरण करनेयोग्य एक नरेश (**अनु० १६५ । ५२**) ।

दृढरथाश्रय (दृढरथ)-धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ११६ । १२**) । (देखिये दृढरथ) ।

दृढवर्मा (**दृढ**)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९९; आदि० ११६ । ८**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १३७ । २०–३०**) ।

दृढव्य-एक महर्षि, जो धर्मराजके सात ऋत्विजोंमेंसे एक हैं, जो सदा दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं (**अनु० १५० । ३४-३५**) ।

दृढव्रत-एक ब्रह्मर्षि, जो सदा दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं (**शान्ति० २०८ । २८-२९**) ।

दृढसंध (**शत्रुञ्जय**)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १००; आदि० ११६ । ९**) । भीमसेनद्वारा शत्रुञ्जय नामसे इसका वध (**द्रोण० १३७ । २०–३०**) ।

दृढसेन-पाण्डवपक्षका एक योद्धा, द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (**द्रोण० २१ । ५२**) ।

दृढस्यु-महर्षि अगस्त्यद्वारा लोपामुद्राके गर्भसे उत्पन्न । ये अपनी माताके गर्भमें सात वर्षोंतक पले और बढ़े थे । सात वर्ष बीतनेपर अपने तेज और प्रभावसे प्रज्वलित हुए ये उदरसे बाहर निकले । दृढस्यु महाविद्वान्, महातेजस्वी और महातपस्वी थे । ये जन्मकालसे ही उपनिषदोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका स्वाध्याय करते-से जान पड़े । बाल्यावस्थासे ही इध्म (समिधा) का भार वहन करनेके कारण इनका नाम 'इध्मवाह' हो गया था (**वन० ९९ । २५–२७**) ।

दृढहस्त-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १०२; आदि० ११६ । १०**) ।

दृढायु-(१) पुरूरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न (**आदि० ७५ । २५**) । (२) एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (**उद्योग० ४ । २३**) । (३) एक ब्रह्मर्षि, जो सदा दक्षिण दिशामें निवास करते हैं (**अनु० १६५ । ४०**) । (दक्षिण दिशावासी ऋषियोंका वर्णन तीन स्थानोंमें आता है । सभी जगहोंके नाम किञ्चित् अन्तरके साथ प्रायः मिलते हैं । इन्हें देखनेसे दृढव्य, दृढव्रत और दृढायु—तीनों नाम एक ही ऋषिके जान पड़ते हैं)

दृढायुध (**चित्रायुध**)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९९; आदि० ११६ । ८**) । चित्रायुध नामसे इसका वध (**द्रोण० १३६ । २०–२२**) ।

दृढाश्व-इक्ष्वाकुवंशीय महाराज कुवलाश्वके पुत्र । ये धुन्धु-राक्षसकी क्रोधाग्निमें दग्ध होनेसे बच गये थे (**वन० २०४ । ४०**) ।

दृढेयु-एक पश्चिम दिशानिवासी ऋषि (**अनु० १५० । ३६**) ।

दृढेषुधि-एक प्राचीन राजा (**आदि० १ । २३८**) ।

दृषद्वती-कुरुक्षेत्रकी दक्षिणी सीमापर स्थित एक नदी, जिसके जलका सेवन वनवासी पाण्डवोंने किया था (**वन० ५ । २**) । इसके तटपर भगवान् शङ्करने युधिष्ठिरको उपदेश दिया था (**सभा० ७८ । १५**) । दृषद्वतीके उत्तर कुरुक्षेत्रमें रहना स्वर्गनिवासके तुल्य है (**वन० ८३ । ४, २०४**) । दृषद्वतीमें स्नान करके देवता-पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य अतिरात्र और अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है (**वन० ८३ । ८७-८८**) ।

दृषद्वान्-पूरुवंशीय राजा संयातिके श्वशुर, इनकी पुत्रीका नाम वराङ्गी था (**आदि० ९५ । १४**) ।

देवक-(१) इन्द्रके समान कान्तिमान् एक नरेश, जो किसी गन्धर्वराजके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७ । ६८**) । ये उग्रसेनके भाई, देवकीके पिता और वसुदेवजीके श्वशुर थे (**सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१**) । इनकी पुत्री देवकीके स्वयंवरमें सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्र हुए थे (**द्रोण० १४४ । ९**) । (२) एक राजा, जिनके यहाँ ब्राह्मणद्वारा शूद्र-जातीय एक कन्या थी, जिसका विदुरजीके साथ विवाह हुआ था (**आदि० ११३ । १२-१३**) । (३) एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण देनेका विचार किया गया था (**उद्योग० ४ । १७**) ।

देवकी-उग्रसेनके भाई देवककी पुत्री, वसुदेवकी पत्नी और भगवान् श्रीकृष्णकी माता (**सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१-७३२**) । इनके स्वयंवरमें [illegible]त्रिय एकत्र हुए थे (**द्रोण० १४४ । ९**) ।

देवकुण्ड (देवह्रद)–(१) एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल और परमसिद्धि पाता है (वन० ८५ । २०) । (२) कृष्णवेणाके जलसे उत्पन्न हुए रमणीय देवकुण्डमें, जिसे 'जातिस्मरह्रद' भी कहते हैं, स्नान करनेसे मनुष्य जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको याद करनेवाला) होता है (वन० ८५ । ३७-३८) ।

देवकूट–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । १४१) ।

देवग्रह–एक कष्टप्रद देव-सम्बन्धी ग्रह, जिसे जागते या सोतेमें देखकर मनुष्य पागल जो जाता है (वन० २३० । ४७) ।

देवदत्त–अर्जुनका दिव्य शङ्ख (सभा० ३ । ८) । यह शङ्ख मयासुरने विन्दुसरोवरसे लाकर अर्जुनको दिया था (सभा० ३ । १०—२१) । श्वेत घोड़ोंसे जुते रथपर बैठे हुए अर्जुनने अपना देवदत्त नामक शङ्ख फूँका (भीष्म० २५ । १४-१५) ।

देवदारुवन–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेका विशेष फल (अनु० २५ । २७) ।

देवदूत–देवताओंका सुविख्यात दूत, जिसका सायं-प्रातः स्मरण करनेसे पाप दूर होता है (अनु० १६५ । १४) । देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी, तुम युधिष्ठिरको इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ (स्वर्गा० २ । १४) । राजा और देवदूत साथ-साथ गये । देवदूत आगे-आगे चला और राजा उसके पीछे-पीछे (स्वर्गा० २ । १५-१६) । युधिष्ठिरके यह पूछनेपर कि अभी कितनी दूर चलना है, देवदूत लौट पड़ा और बोला—'बस, यहींतक आपको आना था' (स्वर्गा० २ । २८) । युधिष्ठिरके लौट जानेकी आज्ञा देनेपर देवदूत लौटकर देवराज इन्द्रके पास चला गया (स्वर्गा० २ । ५१-५३) ।

देवनदी–एक नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । १९) ।

देवपथ–एक तीर्थ, जहाँ जानेसे देवसत्रका पुण्य प्राप्त होता है (वन० ८५ । ४५) ।

देवपुष्करिणी–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेमात्रसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अश्वमेध यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । ११८) ।

देवप्रस्थ–उत्तर दिशाके पर्वतीय देशका एक प्राचीन नगर, जहाँ सेनाविन्दुकी राजधानी थी (सभा० २७ । १३) ।

देवभ्राट्–एक तेजस्वी देवता, जो रविके पुत्र और सुभ्राट्के पिता हैं (आदि० १ । ४२-४३) ।

देवमत–एक प्राचीन महर्षि, जिनका नारदजीके साथ प्राणोंके विषयमें संवाद हुआ (आदि० २४ अध्याय) ।

देवमित्रा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

देवमीढ–ययातिपुत्र यदुके वंशमें विख्यात एक यादव, जो शूरके पिता और वसुदेवके पितामह थे (द्रोण० १४४ । ६) ।

देवयजन–देवताओंका यज्ञस्थान प्रयाग, जहाँ काशिराजकी कन्या अम्बाने कठोर व्रतका आश्रय ले स्नान किया था (उद्योग० १८६ । २७) ।

देवयाजी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) ।

देवयानी–शुक्राचार्यकी प्यारी पुत्री (आदि० ७६ । १५) । विना कचके ही गौओंको लौटकर आयी देख देवयानीके मनमें उनके मारे जानेकी आशङ्का और 'कचके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती' ऐसा कहकर उसका पितासे कचको बुलानेका अनुरोध (आदि० ७६ । २०–३२) । दूसरी बार भी देवयानीके अनुरोधसे शुक्राचार्यद्वारा कचको जीवनदान (आदि० ७६ । ४२) । तीसरी बार पुनः कचको जीवित करनेके लिये देवयानीका आग्रह (आदि० ७६ । ४५—५०) । इसका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध (आदि० ७७ । २–११) । प्रार्थनाके अस्वीकृत होनेपर इसके द्वारा कचको शाप (आदि० ७७ । १७) । कचद्वारा इसको शाप (आदि० ७७ । १९-२०) । इसके द्वारा इसका वस्त्र पहन लेनेके कारण शर्मिष्ठाको फटकार (आदि० ७८ । ८) । शर्मिष्ठाद्वारा भर्त्सनापूर्वक इसका कुएँमें गिराया जाना (आदि० ७८ । ९–१३) । इसकी राजा ययातिसे भेंट, वार्तालाप और राजा ययातिके द्वारा इसका कूपसे उद्धार, कुएँसे निकलनेपर इसके द्वारा राजा ययातिसे अपना पाणिग्रहण करनेके लिये प्रार्थना तथा ब्राह्मणकन्या होनेके कारण ययातिका इसकी प्रार्थनाको अस्वीकार करना (आदि० ७८ । १४–२४) । घूर्णिका नामक धायके द्वारा इसका वृषपर्वाके नगरमें न जानेके लिये अपने पिताको संदेश देना (आदि० ७८ । २५–२७) । शर्मिष्ठाने मेरी पुत्रीको मारा है, यह सुनकर पिताका इसे खोजते हुए वनमें जाना तथा इसे हृदयसे लगाकर सान्त्वना देना (आदि० ७८ । २८–३१) । शर्मिष्ठाके द्वारा किये हुए अपमानका इसके द्वारा अपने पिता शुक्राचार्यके समक्ष वर्णन (आदि० ७८ । ३१–३६) । शुक्राचार्यका इसके समक्ष अपने शक्तिका कथन और इसे सान्त्वना-प्रदान (आदि० ७८ । ३७–४१) । शुक्राचार्यका सहनशीलताकी प्रशंसा करते

हुए इसको आश्वासन देना (आदि० ७९ । १–७)। इसकी दानवोंके बीचमें निवास करनेसे अरुचि, विद्वानोंके लिये धनके लोभमें कटुवचन सहनेकी निन्दा (आदि० ७९ । ८–१३ तथा दाक्षिणात्य पाठ)। शुक्राचार्यका अपनी प्रियपुत्री देवयानीके प्रति किये गये अनुचित बर्तावको असह्य बताना और देवयानीको संतुष्ट करनेके लिये वृषपर्वाको प्रेरित करना (आदि० ८० । ९–१२)। वृषपर्वाके मुहमाँगी वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर एक हजार कन्याओंके साथ शर्मिष्ठाके आजीवन अपनी दासी बनकर रहनेके लिये उसके पिता वृषपर्वासे इसकी माँग (आदि० ८० । १६)। शर्मिष्ठाद्वारा दासीभाव स्वीकार करनेपर नगरमें जानेके लिये इसकी स्वीकृति (आदि० ८० । २६)। सखियोंके साथ वनमें क्रीड़ा करती हुई शर्मिष्ठासेवित देवयानीका ययातिको दर्शन (आदि० ८१ । १–७)। ययातिके पूछनेपर देवयानीका उन्हें शर्मिष्ठासहित अपना परिचय देना और उनसे अपना पति बननेके लिये प्रार्थना करना (आदि० ८१ । ८–१७)। ययातिका ब्राह्मणकी महिमा बताते हुए अपनेको ब्राह्मण कन्यासे विवाहका अनधिकारी बताना और देवयानीके पिताकी आज्ञाके बिना उसे स्वीकार न कर सकनेका निश्चय प्रकट करना (आदि० ८१ । १८–२६)। ययातिके साथ अपने विवाहके लिये इसकी अपने पितासे प्रार्थना (आदि० ८१ । ३०)। पिताद्वारा इसका ययातिको समर्पण (आदि० ८१ । ३४)। इसका ययातिके साथ विधिपूर्वक विवाह एवं पतिगृहगमन (आदि० ८१ । ३६–३८)। देवयानीका विहार और दीर्घकालतक आनन्दोपभोग (आदि० ८२ । १–४)। इसका गर्भ-धारण और प्रथम पुत्रका जन्म (आदि० ८२ । ५)। शर्मिष्ठाकी पुत्र-प्राप्तिसे देवयानीको चिन्ता और किसी श्रेष्ठ ऋषिसे उसे संतानकी प्राप्ति हुई—यह सुनकर इसका क्रोधरहित हो महलमें लौट जाना (आदि० ८३ । १–७)। ययातिद्वारा देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० ८३ । ९; ७५ । ३५)। ययातिसे शर्मिष्ठाको पुत्र हुए हैं, इस रहस्यका बालकोंद्वारा ही भेदन होनेसे देवयानीका शर्मिष्ठाको फटकारना और ययातिपर रुष्ट हो वहाँसे अपने पिताके घर जाना (आदि० ८३ । ११–२६)। इसके द्वारा पितासे ययातिके असद्बर्तावका निवेदन और इसके पिताद्वारा राजाको वृद्ध होनेका शापदान (आदि० ८३ । २८–३१)।

महाभारतमें आये हुए देवयानीके नाम-औशनसी, भार्गवी, शुक्रतनया आदि ।

देवराज-एक राजा, जो यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २६

देवरात-(१) युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान हो एक राजा (सभा० ४ । २६)। (२) विश्वा[मित्रके] ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५०)। वा[स्तवमें] ये ऋचीक (अजीगर्त) के महातपस्वी पुत्र शुनःशे[प थे।] ये एक यज्ञमें पशु बनाकर लाये गये थे। विश्वामि[त्रने] देवताओंको संतुष्ट करके इन्हें छुड़ाया था, इसलि[ये] विश्वामित्रके पुत्रभावको प्राप्त हुए। देवताओंके [देनेसे] इनका नाम देवरात हुआ (अनु० ३ । ६–८)।

देवल-(१) एक सुप्रसिद्ध ऋषि, जो प्रत्यूष नामक व[सुके] पुत्र थे (आदि० ६६ । २६)। (२) एक देववि[द्याके] पारङ्गत ऋषि, जो महर्षि धौम्यके अग्रज थे और जनमेज[यके] सर्पसत्रके सदस्य बनाये गये थे (आदि० ५३ । आदि० १८२ । २)। हस्तिनापुर जाते समय मा[र्गमें] श्रीकृष्णसे इनका मिलना (उद्योग० ८३ । ६४ के ब[ाद] दाक्षिणात्य पाठ)। युद्धके बाद युधिष्ठिरके पास आ[ना] (शान्ति० १ । ४)। अपनी कन्या सुवर्चलाके विवाह[के] विषयमें इनकी चर्चा, अपनी कन्याके स्वयंवरके लि[ये] मुनिकुमारोंको बुलाना तथा अपनी कन्याको श्वेतकेतु[के] हाथमें सौंपना (शान्ति० २२० अ० दाक्षिणात्य पाठ)

देववन-एक पुण्यक्षेत्र, जहाँ बाहुदा और नन्दा नदी बहत[ी] हैं (वन० ८७ । २६)।

देवव्रत-गङ्गाके गर्भसे शान्तनुद्वारा उत्पन्न (आदि० १०० । २१)। (देखिये 'भीष्म')

देवशर्मा-एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बनाये गये थे (आदि० ५३ । ९)। ये महाभाग्यशाली ऋषि थे; इनकी पत्नीका नाम रुचि था, जो इस पृथ्वीपर अद्वितीय सुन्दरी थी (अनु० ४० । १६)। इनका अपने शिष्य विपुलको अपनी पत्नीकी रक्षाका भार सौंपकर यज्ञके लिये जानेको उद्यत होना (अनु० ४० । २२-२३)। विपुलके पूछनेपर उसे इन्द्रका स्वरूप बताना (अनु० ४० । २८–३८)। इनका अपने आश्रमपर लौटना और विपुलको वर देना (अनु० ४१ । २८–३४)। विपुलको दिव्य पुष्प लानेके लिये भेजना (अनु० ४२ । १२)। विपुलको निर्दोष बताकर समझाना (अनु० ४३ । ४—१६)। ये उत्तर दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले ऋषि हैं (अनु० १६५ । ४६)।

देवसत्र-एक यज्ञका नाम (वन० ८४ । ६८)।

देवसम-एक पर्वत, जहाँ अगस्त्यके शिष्यका आश्रम है (वन० ८८ । १७)।

देवसेना-दक्षप्रजापतिकी पुत्री, दैत्यसेनाकी बहिन, जिसका केशी नामक राक्षसद्वारा अपहरण होनेपर इन्द्रद्वारा उद्धार

हुआ था (वन० २२३ । ७—१५)। इसका अपना और अपनी बहिनका परिचय देना तथा इन्द्रके प्रति अपने भावी पतिके लक्षणोंका वर्णन करना (वन० २२४ । १—९) । इसका स्कन्दके साथ विवाह (वन० २२९ । ४८) ।

देवस्थान–एक प्राचीन ऋषि, जो युद्धके बाद युधिष्ठिरके पास आये थे (शान्ति० १ । ४)। इन्होंने युधिष्ठिरको यज्ञानुष्ठानके लिये प्रेरित किया (शान्ति० २० । २–१४) । इन्होंने युधिष्ठिरको उत्तम धर्म और यज्ञानुष्ठानका उपदेश दिया (शान्ति० २१ अध्याय) । इनके तथा अन्य मुनियोंके समझानेसे युधिष्ठिरने मानसिक दुःखको त्याग दिया (शान्ति० ३७ । २७) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ५) । भीष्मका राजधर्मविषयक भाषण सुनकर इन्हें प्रसन्नता हुई (शान्ति० ५८ । २५) । इनके समझाने-बुझानेसे राजर्षि युधिष्ठिरका मन शान्त हुआ और उन्होंने मानसिक शोकजनित दुःख त्याग दिया (आश्व० १४ । २) ।

देवहव्य–एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें रहकर देवेन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दा० पाठ) ।

देवहोत्र–एक ऋषि, जो उपरिचरके यज्ञके सदस्य बनाये गये थे (शान्ति ३३६ । ९) ।

देवह्रद–कालञ्जर पर्वतपर स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ५६) । यहाँके स्नानका विशेष फल (अनु० २५ । ४०) ।

देवातिथि–पूरुवंशीय राजा अक्रोधनके द्वारा कलिङ्गदेशकी राजकुमारी करम्भाके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९५ । २२) । इनकी पत्नीका नाम मर्यादा था, जो विदेहराजकी पुत्री थीं । इनके पुत्रका नाम अरिह था (आदि० ९५ । २३) ।

देवाधिप–एक क्षत्रिय राजा, जो अजेय दैत्य निकुम्भके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २६-२७) ।

देवापि–(१) महाराज प्रतीपके प्रथम पुत्र, शान्तनुके अग्रज, ये धर्माचरणद्वारा कल्याण-प्राप्तिकी इच्छासे वनको चले गये थे । अतः शान्तनु एवं बाह्लीकने ही राज्य प्राप्त किया था (आदि० ९४ । ६१–६२) । धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करनेवाले महाराज प्रतीपके तीन देवोपम पुत्र हुए—देवापि, बाह्लीक और शान्तनु । देवापि सबसे बड़े थे । ये महान् तेजस्वी, धार्मिक, सत्यवादी, पिताकी सेवामें तत्पर, साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित तथा नगर एवं जनपद-निवासियोंके लिये आदरणीय थे । देवापिने बालकोंसे लेकर बूढ़ोंतक सभीके हृदयमें स्थान बना लिया था । ये अपने दोनों छोटे भाइयोंको बहुत प्रिय थे । उन तीनों बन्धुओंमें अच्छे भाईका-सा स्नेहपूर्ण बर्ताव था । देवापि उदार, सत्यप्रतिज्ञ और समस्त प्राणियोंके हितैषी थे; परंतु चर्मरोगसे पीड़ित रहा करते थे । पिता प्रतीपने उनके राज्याभिषेककी तैयारी करायी, परंतु नगर और जनपदके लोगों एवं ब्राह्मणोंने आकर रोक दिया । हीनाङ्ग राजाका देवता अभिनन्दन नहीं करते । इसलिये चर्मरोगके दोषसे ही वे राज्यके अनधिकारी बताये गये । इससे पिताके नेत्रोंमें आँसू भर आया । वे देवापिके लिये दुखी हो गये । देवापि चुपचाप वनमें चले गये । बाह्लीक मामाके घर जाकर रहने लगे । अतः बाह्लीककी अनुमतिसे वह राज्य शान्तनुके अधिकारमें आया (उद्योग० १४९ । १५—२८) । देवापि कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत पृथूदक तीर्थमें तपस्या करके ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे (शल्य० ३९ । ३७) । (२) पाण्डव-पक्षका एक चेदिदेशीय योद्धा, जो कर्णद्वारा निहत हुआ था (कर्ण० ५६ । ४८) ।

देवारण्य–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्या अम्बाने कठोर व्रतका आश्रय ले तप किया था (उद्योग० १८६ । २७) ।

देवावृध–(१) कौरव-पक्षके एक महारथी योद्धा (कर्ण० ८५ । ३) । (२) एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने सोने-का छत्र दान करके अपने देशके प्रजाके साथ स्वर्गलोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४ । २१; अनु० १३७ । ७) ।

देवाह्वय–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३५) ।

देविका–(१) शिबिनरेश गोवासनकी पुत्री, जिसे युधिष्ठिरने स्वयंवरमें प्राप्त किया था । इसके गर्भसे उन्होंने यौधेय नामक पुत्र उत्पन्न किया (आदि० ९५ । ७६) । (२) एक तीर्थ, जहाँ ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति सुनी जाती है । देविकामें स्नान करके भगवान् महेश्वरका पूजन और उन्हें यथाशक्ति चरु निवेदन करके यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । १०२) । यहाँके स्नानका विशेष फल (अनु० २५ । ९) ।

देवी–(१) वरुणकी ज्येष्ठ पत्नी, जिसने बल नामक पुत्र और सुरा नामक कन्याको जन्म दिया था (आदि० ६६ । ५२) । (२) एक स्वर्गीय अप्सरा, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२ । ६२) ।

देवीतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें इस नामके तीन तीर्थ हैं । पहला शंखिनी तीर्थके भीतर है । उसमें स्नान करनेसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । ५१) ।

दूसरा मधुवटीके अन्तर्गत है। वहाँ देवता और पितरोंकी पूजा करके मनुष्य देवीकी आज्ञाके अनुसार सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८३ । ९४)। तीसरा मृगधूम तीर्थके बाद आता है। उसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । १०२)।

देवीस्थान-एक तीर्थ, जहाँ शाकम्भरी देवीका निवास-स्थान है। वहाँ तीन दिनके शाकाहारसे बारह वर्षोंतक शाकाहार करनेका पुण्य-फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । १३)।

दैत्यद्वीप-गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११)।

दैत्यसेना-दक्ष-प्रजापतिकी पुत्री और देवसेनाकी बहिन, जिसे केशी नामक राक्षसने हर लिया था (वन० २२४ । १)।

दैव-एक प्रकारका विवाह (अपने घरपर देवयज्ञ करके यज्ञान्तमें ऋत्विजको अपनी कन्याका दान करना दैव विवाह कहा गया है।) यह विवाह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-इन तीनों वर्णोंमें ही ग्राह्य माना गया है (आदि० ७३ । ८-१०)।

दैवीसम्पत्ति-अभय आदि दिव्य गुणोंकी संज्ञा (भीष्म० ४० । १-३)। दैवीसम्पत्ति संसारसे मोक्ष दिलानेवाली मानी गयी है (भीष्म० ४० । ५)।

दौवालिक-एक देश, जहाँके राजा और निवासी राजसूय-यज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट ले आये थे (सभा० ५२ । १८)।

द्यु-(देखिये-'द्यौ')।

द्युति-एक देवी, इनके द्वारा अर्जुनके संरक्षणकी शुभकामना द्रौपदीने की थी (वन० ३७ । ३३)।

द्युतिमान्-(१) मद्रदेशके एक राजा, जिनकी पुत्री विजयाको सहदेवने स्वयंवरमें प्राप्त किया था (आदि० ९५ । ८०)। (२) शाल्वदेशके एक राजा, जिन्होंने ऋचीकको राज्य प्रदान करके उत्तम लोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४ । ३३; अनु० १३७ । २३)। (३) इक्ष्वाकुवंशीय मदिराश्वके महाभाग, महातेजस्वी, महान् धैर्यशाली और महाबली पुत्र, जिनके पुत्रका नाम सुवीर था (अनु० २ । ९)।

द्युमत्सेन-(१) एक प्राचीन नरेश, जो बलवानोंके आदर्श समझे जाते थे (आदि० १३८ । ५)। ये ही शाल्वदेशके धर्मात्मा राजा और सत्यवान्के पिता थे (वन० २९४ । ७)। महाराज अश्वपतिको सत्यवान्के विवाहके लिये स्वीकृति देना (वन० २९५ । १४)। सत्यवान्के साथ वनमें जानेके लिये सावित्रीकी प्रार्थना स्वीकार करना (वन० २९६ । २७)। इनकी अंधी आँखोंमें देखनेकी शक्तिका आना और इन महाबली नरेशका अपनी पत्नी शैब्याके साथ ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर सत्यवान्को ढूँढ़ना (वन० २९८ । २)। सत्यवान्के वनसे न लौटनेपर इनकी चिन्ता (वन० २९८ । ८)। शाल्वदेशकी प्रजाके अनुरोधसे इनका राज्याभिषेक (वन० २९९ । ११)। सत्यवान्के साथ वार्तालाप (शान्ति० २६७ अध्याय)। (२) एक पर्वतीय राजा जिसके साथ भगवान् श्रीकृष्णने सहस्रों पर्वतोंको विदीर्ण करके युद्ध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२४)। ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । ३१)।

द्यूतपर्व-सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४६ से ७३ तक)।

द्यौ (द्यु)-आठ वसुओंमेंसे एक (आदि० ९९ । १५)। इनके द्वारा नन्दिनीके गुणोंका वर्णन (आदि० ९९ । १९-२०)। नन्दिनी (गौ) के अपहरणके लिये इनसे इनकी पत्नीकी प्रार्थना (आदि० ९९ । २४)। इनके द्वारा नन्दिनीका अपहरण (आदि० ९९ । २८)। वसिष्ठद्वारा इनको दीर्घकालतक मनुष्यलोकमें रहनेका शाप (आदि० ९९ । ३२-३९)।

द्रविड़ (या द्राविड़)-एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे दूतोंद्वारा संदेश देकर ही सहदेवने कर देनेके लिये विवश कर दिया था (सभा० ३१ । ७१)।

द्रविण-धर नामक वसुके पुत्र (आदि० ६६ । २१)।

द्राविड़-एक जाति जो पहले क्षत्रिय थी, किंतु ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे वञ्चित होनेके कारण (स्वधर्मज्ञानशून्य होकर) शूद्रभावको प्राप्त हो गयी (अनु० ३३ । २२-२३)।

द्रुपद-पाञ्चालदेशके राजा यज्ञसेन, जो मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६८)। ये महाराज पृषत्के पुत्र थे (आदि० १२९ । ४१)। भरद्वाजमुनिके आश्रममें द्रोणके साथ इनका खेलना और अध्ययन करना (आदि० १२९ । ४२)। पृषत्की मृत्युके पश्चात् इनका उत्तरपाञ्चालके राज्यपर अभिषेक हुआ (आदि० १२९ । ४३)। इनके यहाँ द्रोणका आना और इन्हें अपना सखा या मित्र कहनेके कारण इनके द्वारा फटकारा जाना (आदि० १३० । १-११)। द्रोणाचार्यद्वारा द्रुपदके अग्निवेशके समीप धनुर्वेदाध्ययनसम्बन्धी वृत्तान्तकी भीष्मके समक्ष चर्चा (आदि० १३० । ४३)। अध्ययनावस्थामें इनके द्वारा द्रोणको दिये गये आश्वासनकी चर्चा (आदि० १३० । ४६-४७)। कौरवोंका आक्रमण सुनकर और उनकी विशाल सेनाको अपनी आँखों देख पाञ्चालराज द्रुपदका भाइयोंसहित निकलना और शत्रुओंपर बाणोंकी बौछार करना (आदि० १३७ । १०-११)।

इनका घोर युद्ध करके कौरवसेनाको पराजित करना (आदि० १३७ । १२–२५) । इनका भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध तथा पराजय । अर्जुनद्वारा इन्हें बंदी बनाकर द्रोणको अर्पण करना (आदि० १३७ । २८–६३) । द्रोणका इन्हें आधा राज्य देकर और मित्र बने रहनेके लिये कहकर छोड़ना और इनका उनके साथ अटूट मैत्रीकी इच्छा प्रकट करना (आदि० १३७ । ७०–७४) इनके द्वारा किये हुए द्रोणके अपमानका एक ब्राह्मण-द्वारा एकचक्रामें पाण्डवोंके प्रति वर्णन (आदि० १६५ । ७–१५) । द्रोणविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये द्रुपदका ऋषियों और ब्राह्मणोंके आश्रमोंमें घूमना तथा ब्रह्मर्षि याज-उपयाजके पास पहुँचकर उपयाज ऋषिसे अपने उद्देश्य-सिद्धिके लिये प्रार्थना एवं उन्हें दस करोड़ धेनुका प्रलोभन देना (आदि० १६६ । १–१२) । उपयाजका उनकी प्रार्थनाको अस्वीकार कर देना (आदि० १६६ । १३) । इनका द्रोणकी महिमा बताकर द्रोणान्तक पुत्रके लिये महर्षि याजसे प्रार्थना करना और उनको एक अर्बुद धेनुका प्रलोभन देना (आदि० १६६ । २२–३१) । इनको यज्ञकुण्डसे 'धृष्टद्युम्न' नामक पुत्र एवं 'कृष्णा' नाम्नी कन्याकी प्राप्ति (आदि० १६६ । ३९–४४) । लाक्षागृहमें पाण्डवोंकी मृत्यु होनेका समाचार सुनकर इनका शोक, अर्जुनके लिये इनकी चिन्ता तथा उन्हींके साथ द्रौपदीका विवाह करनेका इनका संकल्प (आदि० १६६ । ५६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ४९३) । अपने पुरोहितद्वारा उनको पाण्डवोंके जीवित रहनेका आश्वासन और द्रौपदीके स्वयंवरके लिये अनुरोध (आदि० १६६ । दा० पाठ, पृष्ठ ४९३) । द्रुपदने अर्जुन-को ढूँढ़ निकालनेके लिये एक ऐसा दृढ़ धनुष बनवाया था, जिसे दूसरा कोई झुका भी न सके (आदि० १८४ । ८-९) । इनकी स्वयंवरके समय लक्ष्यवेधके लिये घोषणा (आदि० १८४ । ११) । स्वयंवरमें आये हुए राजाओंद्वारा इनपर आक्रमण और पाण्डवोंद्वारा इनकी रक्षा (आदि० १८८ । १२–१४; आदि० १८९ अध्याय) । अर्जुनके साथ कुम्भकारके घर द्रौपदीके चले जानेपर उसके सम्बन्धमें इनकी चिन्ता (आदि० १९१ । १४–१८) । चिन्तित हुए द्रुपदको धृष्टद्युम्नका आश्वासन देना (आदि० १९२ । ३–१३) । पाण्डवोंका परिचय जाननेके लिये इनका अपने पुरोहितको आदेश (आदि० १९२ । १४) । पाण्डवोंका परिचय पानेके लिये इनका युधिष्ठिरसे प्रश्न (आदि० १९५ । २–७) । युधिष्ठिरका द्रुपदको आश्वासन देना, 'द्रौपदीका विवाह किसके साथ हो'—इस प्रश्नको लेकर युधिष्ठिरके साथ इनका वार्तालाप और एक स्त्रीके अनेक पुरुषोंके साथ विवाहका विरोध (आदि० १९४ । ८–३२) । व्यासजीके पूछनेपर द्रौपदीके विवाहके सम्बन्धमें इनकी अपनी सम्मति (आदि० १९५ । ७–९) । पाण्डवों एवं द्रौपदीके पूर्व-जन्मकी कथा सुनाकर व्यासद्वारा इनको दिव्य दृष्टिका दान (आदि० १९६ अध्याय) । इनके द्वारा पाण्डवोंको विपुल धनराशिकी दहेजरूपमें भेंट (आदि० २०६ । ९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । दिग्विजयके समय कर्णद्वारा इनकी पराजय (वन० २५४ । ३) । धौम्य ऋषि पाण्डवोंद्वारा स्थापित अग्निको लेकर उसकी रक्षाके लिये द्रुपदके ही यहाँ भेजे गये थे (विराट० ४ । २-३) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें इनका आगमन (विराट० ७२ । १७) । राजाओंके पास रण-निमन्त्रण भेजनेके लिये इनका प्रस्ताव (उद्योग० ४ । ८—२४) । अपने पुरोहितको दूत बनाकर कौरव-सभामें भेजनेका प्रस्ताव (उद्योग० ४ । २५) । पुरोहितको दौत्य-कर्मके लिये इनका अनुमति देना (उद्योग० ६ । १७) । एक अक्षौहिणी सेना लेकर इनका पाण्डवोंके पास आना (उद्योग० ५७ । ४-५) । ये पाण्डव-सेनाके सात सेनापतियोंमेंसे एकके पदपर अभिषिक्त हुए थे (उद्योग० १५७ । ११-१२) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (उद्योग० १६३ । ४१) । संतान-प्राप्तिके लिये इन्हें महादेवजीसे वर-प्राप्ति (उद्योग० १८७ । ५-६) । हिरण्यवर्माकी चढ़ाईका समाचार पाकर इनका पत्नीसे संकटनिवारणका उपाय पूछना (उद्योग० १९० । १४—२१) । रानीकी सम्मतिसे देवाराधन करना (उद्योग० १९१ । ९) । हिरण्यवर्माको शिखण्डीकी परीक्षाके लिये संदेश देना (उद्योग० १९२ । २७) । शिखण्डीको द्रोणाचार्यके पास भेजकर उनसे धनुर्वेदकी शिक्षा दिलाना (उद्योग० १९२ । ६०) । प्रथम दिनके संग्राममें जयद्रथके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ५५–५७) । द्रोणाचार्यसे पराजित होना (भीष्म० ७७ । ४८; भीष्म० १०४ । २४-२५) । अश्वत्थामाके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११० । १६; भीष्म० १११ । २२–२७) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । २६) । भगदत्तके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४०–४२) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । १२) । इनका बाह्लीकके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १८-१९) । वृषसेनद्वारा इनकी पराजय (द्रोण० १६८ । २४) । द्रोणाचार्यद्वारा इनका वध (द्रोण० १८६ । ४३) । इनका श्राद्धकर्म (शान्ति० ४२ । ५) । व्यासजीके आवाहन करनेपर अन्य परलोकवासी वीरोंके साथ ये भी गङ्गाजीके जलसे प्रकट हुए थे (आश्रम० ३२ । ८) । ये स्वर्गमें जाकर विश्वेदेवोंमें मिल गये (स्वर्गा० ५ । १५) ।

महाभारतमें आये हुए द्रुपदके नाम—धृष्टद्युम्नपिता, पाञ्चाल, पाञ्चालनृप, पाञ्चालपति, पाञ्चालराज, पाञ्चाल्य, पार्षत, पृषदात्मज, सौमकि, यज्ञसेन आदि ।

द्रुम–(१) एक प्राचीन राजा (**आदि० १ । २३३**) । (२) महाभारतकालका एक राजा, जो शिबि नामक दैत्यके अंशसे प्रकट हुआ था (**आदि० ६७ । ८**) । (३) एक किन्नरोंके स्वामी, जो कुबेर-सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (**सभा० १० । २९**) । ये भीष्मकपुत्र रुक्मीके गुरु थे (**उद्योग० १५८ । ३**) । इन्होंने रुक्मीको विजय नामक धनुष दिया था (**उद्योग० १५८ । ८**) ।

द्रुमसेन–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो गविष्ठ नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६६ । ३५**) । यह शल्यका चक्र रक्षक था । युधिष्ठिरद्वारा इसका वध हुआ (**शल्य० १२ । ५३**) । (२) कौरव पक्षका योद्धा, धृष्टद्युम्नद्वारा इसका वध (**द्रोण० १७० । २२**) ।

द्रुह्यु-(१) ययातिके पुत्र, इनकी माताका नाम शर्मिष्ठा था (**आदि० ७५ । ३५; आदि० ८३ । १०**) । पिताद्वारा इनसे यौवनकी याचना तथा इनका पिताको अपनी युवावस्था देनेसे इनकार करना; अतः कुपित हुए पिताद्वारा इनको कभी भी प्रिय मनोरथकी सिद्धि न होने, अति दुर्गम देशोंमें रहने तथा राज्याधिकारसे वञ्चित होकर 'भोज' कहलानेका शाप (**आदि० ८४ । २०–२२**) । (२) पूरुवंशी राजा मतिनारके चार पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ९४ । १४**) ।

द्रोण–(१) गङ्गाद्वारनिवासी महर्षि भरद्वाजके पुत्र, जो बृहस्पतिके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७ । ६९**) । एक दिन भरद्वाज मुनि गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये गये, वहाँ घृताची अप्सरा पहलेसे ही स्नान करके वस्त्र बदल रही थी । उसका वस्त्र खिसक गया था । उस अवस्थामें उसे देखकर मुनिका वीर्य स्खलित हो गया । मुनिने उसे उठाकर एक द्रोण (यज्ञ-कलश) में रख दिया था । उस द्रोणसे उत्पन्न होनेके कारण ही उस बालकका नाम 'द्रोण' हुआ । इन्होंने सम्पूर्ण वेदों और वेदाङ्गोंका अध्ययन किया था (**आदि० १२९ । ३३—३८**) । परशुरामजीसे इनका समस्त अस्त्र-विद्याओंका अध्ययन (**आदि० १२९ । ६६**) । महर्षि अग्निवेशके आश्रममें इनका द्रुपदके साथ अध्ययन (**आदि० १३० । ४०–४२**) । द्रुपदद्वारा इनको छात्रावस्थामें आश्वासन (**आदि० १३० । ४६**) । शरद्वान्‌की पुत्री कृपीसे इनका विवाह (**आदि० १३० । ४९**) । कृपीके गर्भसे इनके द्वारा अश्वत्थामाका जन्म (**आदि० १३० । ५०**) । धनकी याचनाके लिये इनका द्रुपदके यहाँ जाना (**आदि० १३० । ६२**) । द्रुपदद्वारा इनका तिरस्कार (**आदि० १३० । ६४—७३**) । द्रुपदसे तिरस्कृत होकर इनका हस्तिनापुरमें आकर कृपाचार्यके घर गुप्तरूपसे वास करना (**आदि० १३० । ७४**) । इनका कौरव कुमारोंकी वीटा (गुल्ली) एवं अपनी अँगूठीको कुएँमेंसे निकालना (**आदि० १३० । २९**) । कौरव-कुमारोंद्वारा भीष्मके प्रति इनके पराक्रमकी प्रशंसा (**आदि० १३० । ३६**) । भीष्मद्वारा इनका सत्कार एवं कौरव-राजकुमारोंको पढ़ानेके लिये इनसे अनुरोध (**आदि० १३० । ३९—७९**) । इनका अर्जुनके प्रति अधिक वात्सल्य (**आदि० १३१ । ७-८**) । इनके द्वारा कौरवों एवं पाण्डवोंकी शिक्षा (**आदि० १३१ । ९**) । इनके समीप अध्ययनके लिये कर्णका आगमन (**आदि० १३१ । ११**) । ये राजकुमारोंको तो कमण्डलु भर लानेको कहते और अश्वत्थामाको घड़ा भरनेको देते, वह जल्दी घड़ा भरकर आ जाता तो उसे अकेलेमें कोई अस्त्र-संचालनकी उत्तम विधि बताते थे (**आदि० १३१ । १६-१७**) । अर्जुनको अद्वितीय धनुर्धर बनानेके लिये इनका आश्वासन (**आदि० १३१ । २७**) । इनके द्वारा कौरवोंको विविध अस्त्रोंकी शिक्षा (**आदि० १३१ । २९**) । इनकी अनुपम अस्त्र-विद्याको सुनकर सहस्रों राजाओं तथा राजकुमारोंका इनके समीप अध्ययनके लिये आगमन (**आदि० १३१ । ३०**) । इनका धनुर्वेदके अध्ययनके लिये आये हुए निषादपुत्र एकलव्यको पढ़ानेके लिये इनकार करना (**आदि० १३१ । ३२**) । अर्जुनकी प्रसन्नताके लिये इनका एकलव्यसे अँगूठा काटकर गुरुदक्षिणा देनेके लिये कहना (**आदि० १३१ । ५६**) । इनके द्वारा कौरव आदि समस्त छात्रोंकी परीक्षा (**आदि० १३१ । ६९**) । ग्राहद्वारा इनपर आक्रमण और अर्जुनद्वारा ग्राहको मारकर इनका संकटसे उद्धार । इससे संतुष्ट हुए आचार्य द्रोणका अर्जुनको ब्रह्मशिर अस्त्रका दान (**आदि० १३२ । १२–१८**) । राजकुमारोंद्वारा अस्त्रकलाके प्रदर्शनके लिये इनकी धृतराष्ट्रसे अनुमति-याचना (**आदि० १३३ । ३**) । इनके द्वारा राजकुमारोंके अस्त्र-कौशल-प्रदर्शनके लिये विशाल प्रेक्षा-गृह (रङ्ग-भवन) का निर्माण (**आदि० १३३ । ८—१४**) । समस्त दर्शकोंके जुट जानेपर आचार्य द्रोणका अपने पुत्रके साथ प्रेक्षा-गृहमें प्रवेश (**आदि० १३३ । १५—२०**) । द्रोणद्वारा देवपूजन और ब्राह्मणोंसे मङ्गल कार्य-सम्पादन (**आदि० १३३ । २१**) । इन्हें दक्षिणारूपमें सुवर्ण, मणि, रत्न और नाना प्रकारके वस्त्रकी प्राप्ति (**आदि० १३३ । २१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) । राजकुमारोंद्वारा आचार्य द्रोणकी

यथोचित पूजा (**आदि० १३१ । २३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) । इनकी आज्ञासे राजकुमारोंका अस्त्र-कौशल-प्रदर्शन (**आदि० १३३ । २३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) । भीम और दुर्योधनके गदा-युद्धको रोकनेके लिये इनका अश्वत्थामाको आदेश (**आदि० १३४ । ४**) । इनके द्वारा रङ्गभूमिमें अर्जुनकी प्रशंसा और उनकी ओर दर्शकोंकी दृष्टिको आकर्षित करना (**आदि० १३४ । ७**) । आचार्यको प्रणाम करके इनकी आज्ञा ले कर्णद्वारा भी अस्त्र-कौशल-प्रदर्शन (**आदि० १३५ । १२**) । द्रुपदको बंदी बनाकर लानेके लिये इनका शिष्योंको आदेश देना और अर्जुनद्वारा बंदी बनाकर लाये हुए द्रुपदको उनका आधा राज्य देकर उन्हें छोड़ देना (**आदि० १३७ अध्याय**) । ब्रह्मशिर नामक अस्त्रकी परम्परा तथा उसके उपयोगका नियम बतलाकर इनका वह अस्त्र अर्जुनको देना और युद्धभूमिमें विरोधी होनेपर अपने साथ भी लड़नेके लिये उनसे वचन लेना (**आदि० १३८ । ९—१४**) । इनके जन्म, अध्ययन तथा द्रुपदद्वारा प्राप्त हुए तिरस्कारका एकचक्रा नगरीमें ब्राह्मणद्वारा पाण्डवोंके प्रति वर्णन(**आदि० १६५ । १—१५**) । धृष्टद्युम्नको अस्त्र-शिक्षा देनेकी इनकी उदारता (**आदि० १६५ ।५५**) । द्रौपदी तथा पाण्डवोंके लिये उपहार भेजने, द्रौपदीसहित उनको आदर-पूर्वक द्रुपदनगरसे बुलाने एवं उनका आधा राज्य उन्हें दे देनेके लिये इनका धृतराष्ट्रसे अनुरोध (**आदि० २०३ । १—१२**) । कर्णको इनकी फटकार (**आदि० २०३ । २६—२८**) । ये युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे (**सभा० ३४ । ८**) । युधिष्ठिरका आचार्यके चरणोंमें प्रणाम करना और अपने यज्ञमें उनसे अनुग्रह करनेको कहना (**सभा० ३५ । १-२**) । राजसूय-यज्ञमें 'कौन काम हुआ और कौन नहीं हुआ' इसकी देख-रेखका कार्य द्रोण और भीष्मको सौंपा गया था (**सभा० ३५ । ६**) । युधिष्ठिर और शकुनिमें जुएका खेल आरम्भ होनेपर धृतराष्ट्रको आगे करके वहाँ द्रोणाचार्य भी आये थे (**सभा० ६० । २**) । आचार्य द्रोण जुआ खेलना पसंद नहीं करते थे (**वन० ९ । २**) । इनमें चारों अङ्गोंसे पूर्ण धनुर्वेद विद्यमान था (**वन० ३७ । ४**) । पाण्डवोंकी खोजके विषयमें दुर्योधनको इनकी सम्मति (**विराट० २७ अध्याय**) । बृहन्नला-वेषमें युद्धके लिये आते हुए अर्जुनके पराक्रमका इनके द्वारा वर्णन (**विराट० ३९ अध्याय**) । अर्जुनका शङ्खनाद सुनकर उन्हें अर्जुन ही समझकर कौरवोंसे अपशकुनोंका वर्णन (**विराट० ४६ । २४—३१**) । इनके द्वारा दुर्योधनकी रक्षाका प्रयत्न (**विराट० ५१ । १८—२१**) । अर्जुनके साथ इनका युद्ध और घायल होकर पलायन (**विराट० ५८ अध्याय**) । इनके द्वारा भीष्मकी बातोंका अनुमोदन (**उद्योग० ४९ । ४४—४६**) । श्रीकृष्णके कथनका समर्थन करते हुए दुर्योधनको समझाना (**उद्योग० १२५ । १०—१७**) । दुर्योधनको पुनः समझाना (**उद्योग० १२६ अध्याय**) । दुर्योधनको युद्ध न करनेके लिये समझाना (**उद्योग० अध्याय १३८ से १३९ तक**) । भीष्मद्वारा कहे गये कर्णके निन्दासूचक वाक्योंका इनके द्वारा समर्थन (**उद्योग० १६८ । ८-९**) । दुर्योधनके पूछनेपर एक मासमें पाण्डव-सेनाके नाश करनेकी अपनी शक्तिका कथन (**उद्योग० १९३ । १८**) । आचार्य द्रोणके रथ और घोड़ोंका वर्णन (**भीष्म० २० । ११**) । युधिष्ठिरको युद्धकी आज्ञा देकर उनकी शुभकामना करना और उन्हें अपनी मृत्युका उपाय बतलाना (**भीष्म० ४३ । ५३—६६**) । प्रथम दिनके संग्राममें धृष्टद्युम्नके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । ३१—३४**) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्धमें इनका अद्भुत पराक्रम (**भीष्म० ५३ अध्याय**) । द्रुपदपर विजय और अद्भुत पराक्रम प्रकट करना (**भीष्म० ७७ । ४८—६७**) । इनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय (**भीष्म० ७७ । ६९-७०**) । इनके द्वारा विराट-पुत्र शङ्खका वध और विराटकी पराजय (**भीष्म० ८२ । २३-२४**) । भीमसेनके प्रहारसे इनका मूर्च्छित होना (**भीष्म० ९४ । १९**) । अर्जुनके साथ इनका युद्ध (**भीष्म० १०२ । ६—२२**) । इनके द्वारा द्रुपदकी पराजय (**भीष्म० १०४ । २४-२५**) । युधिष्ठिरके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११० । १७; भीष्म० १११ । ५०—५२**) । अश्वत्थामासे अशुभ उत्पातोंका वर्णन और उसे भीष्मकी रक्षाके लिये धृष्टद्युम्नसे युद्ध करनेका आदेश (**भीष्म० ११२ अध्याय**) । धृष्टद्युम्नके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११६।४५—५४**) । भीष्मके गिरनेके बाद प्रधान सेनापतिके पदपर इनका अभिषेक (**द्रोण० ७ । ५**) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (**द्रोण० ७ । ४८—५४**) । इनका अद्भुत पराक्रम और मृत्युकी चर्चा (**द्रोण० ८ । ८—३२**) । युधिष्ठिरको जीवित पकड़नेके लिये दुर्योधनको वर देना (**द्रोण० १२ । २०—२८**) । इनका अद्भुत पराक्रम (**द्रोण० १३ । १९—२९; द्रोण० १४ । १—१९**) । द्रुपदपर आक्रमण (**द्रोण० १४ । २६**) । इनके द्वारा कुमारकी पराजय (**द्रोण० १६ । २५**) । युगन्धरका वध (**द्रोण० १६ । ३१**) । इनके द्वारा व्याघ्रदत्त और सिंहसेनका वध (**द्रोण० १६ । ३७**) । अर्जुनके साथ युद्ध और अपनी सेनाको लौटा लेना (**द्रोण० १६ । ५०-५१**) । दुर्योधनसे अर्जुनको युद्धस्थलसे दूर हटानेके लिये कहना (**द्रोण० १७ । ३—१०**) । इनके द्वारा वकका वध (**द्रोण० २१ ।**

१६) । सत्यजित्‌का वध (द्रोण० २१ । २१) । शतानीकका वध (द्रोण० २१ । २८) । दृढसेनका वध (द्रोण० २१ । ५२) । क्षेमका वध (द्रोण० २१ । ५३) । इनके द्वारा वसुदानका वध (द्रोण० २१ । ५५) । क्षत्रदेवका वध (द्रोण० २१ । ५६) । पाण्डवसेनाको क्षुभित करके धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (द्रोण० ३१ । ८–१८) । इनके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार (द्रोण० ३२ । ४१–४३) । दुर्योधनसे पाण्डवपक्षके किसी महारथीको मारनेकी प्रतिज्ञा (द्रोण० ३३ । १०–१५) । इनके द्वारा चक्रव्यूहका निर्माण (द्रोण० ३४ । १३–२५) । अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा करना (द्रोण० ३९ । ११–१३) । कर्णके पूछनेपर अभिमन्युकी प्रशंसा करते हुए उसके वधका उपाय बतलाना (द्रोण० ४८ । १९–३१) । इनके द्वारा अभिमन्युके तलवारका काटा जाना (द्रोण० ४८ । ३७-३८) । अर्जुनके भयसे भीत जयद्रथको आश्वासन देना (द्रोण० ७४ । २५–३३) । जयद्रथको आश्वासन (द्रोण० ८७ । १५) । इनके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण करके जयद्रथकी रक्षाकी व्यवस्था (द्रोण० ८७ । २२) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० ९१ । ११–२९) । दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर उसे ही अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजना (द्रोण० ९४ । १९–२६) । दिव्य कवचकी उत्पत्तिका प्रसंग बताकर दुर्योधनके शरीरमें कवच बाँधना (द्रोण० ९४ । ३९–६८) । धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध (द्रोण० अध्याय ९५ से ९७ तक) । सात्यकिके साथ घोर संग्राम (द्रोण० ९८ अध्याय) । इनका युधिष्ठिरके साथ युद्ध और उन्हें पराजित करना (द्रोण० १०६ । १८–४७) । इनके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार और सात्यकिका घायल होना (द्रोण० ११० । १—३५) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ११३ । २१–३३) । सात्यकिद्वारा इनकी पराजय (द्रोण० ११७ । ३०) । सात्यकिसे पराजित होकर भागे हुए दुःशासनको फटकारना (द्रोण० १२२ । २—२७) । इनके द्वारा वीरकेतुका वध (द्रोण० १२२ । ४१) । चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथका वध (द्रोण० १२२ । ४८-४९) । धृष्टद्युम्नके प्रहारसे मूर्च्छित होना (द्रोण० १२२ । ५६) । धृष्टद्युम्नपर इनकी विजय (द्रोण० १२२ । ७१-७२) । इनके द्वारा बृहत्क्षत्रका वध (द्रोण० १२५ । २२) । पुत्र-सहित धृष्टकेतुका वध (द्रोण० १२५ । ३९–४१) । जरासंधकुमार सहदेवका वध (द्रोण० १२५ । ४५) । धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध (द्रोण० १२५ । ६६) । चेकितानकी पराजय (द्रोण० १२५ । ६८–७१) । भीमसेनद्वारा इनकी पराजय (द्रोण० १२७ । ५३–५४) । भीमसेनद्वारा आठ बार रथसहित इनका फेंका जाना (द्रोण० १२८ । १८–२१) । दुर्योधनको द्यूतका परिणाम दिखाते हुए युद्धके लिये भेजना (द्रोण० १३० । १३–२४) । दुर्योधनके उपालम्भ देनेपर उसे उत्तर देना (द्रोण० १५१ अध्याय) । पाण्डवसेनापर आक्रमण और उसका संहार (द्रोण० १५४ अध्याय) । इनके द्वारा केकयों, धृष्टद्युम्नके सभी पुत्रों तथा सारथिसहित राजा शिबिका वध (द्रोण० १५५ । १४–१९) । युधिष्ठिरके साथ युद्धमें पराजित होना (द्रोण० १५७ । २८–४३) । अर्जुन और भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १६१ अध्याय) । युधिष्ठिरके साथ युद्धमें मूर्च्छित होना (द्रोण० १६२ । ४९) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (द्रोण० १७० । २–११) । दुर्योधनको अर्जुनकी प्रशंसासे गर्भित उत्तर (द्रोण० १८५ । १० –२०) । दुर्योधनको व्यङ्ग्यपूर्ण उत्तर (द्रोण० १८५ । २४–३७) । इनके द्वारा द्रुपदके तीन पौत्र, द्रुपद और विराटका वध (द्रोण० १८६ । ३३–४३) । इनका अर्जुनके साथ घोर युद्ध (द्रोण० १८८ । २४–५३) । अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर जीवनसे निराश होना (द्रोण० १९० । ५७-५९) । धृष्टद्युम्नके साथ भयंकर युद्ध (द्रोण० १९१ अध्याय) । अस्त्र त्यागकर योगधारणाद्वारा इनका ब्रह्मलोकगमन (द्रोण० १९२ । ४३–५३) । धृष्टद्युम्नद्वारा इनके सिरका काटा जाना (द्रोण० १९२ । ६२-६३) । अश्वत्थामाके जन्मकालमें इनके द्वारा ब्राह्मणोंके लिये एक हजार गौओंका दान किये जानेकी चर्चा (द्रोण० १९६ । २९-३०) । महाराज पृषदश्वसे इन्हें खड्गकी प्राप्तिका प्रसंग (शान्ति० १६६ । ८१) । इनके लिये श्राद्धकर्मका सम्पादन (शान्ति० ४२ । ३) । ये इन्द्रियसंयम और तपसे ही वेदोंके विद्वान् एवं समाजमें प्रतिष्ठित हुए । तपस्याके द्वारा ही ये अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए (शान्ति० २९६ । १५-१६) । व्यासजीके आवाहन करनेपर परलोकवासी कौरव-पाण्डव वीरोंके साथ ये भी गङ्गाजलसे प्रकट हुए थे (आश्रम० ३२ । ७) । ये मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें गये, बृहस्पतिके समीप देखे गये और वहाँ कुछ कालके पश्चात् बृहस्पतिके अंशमें मिल गये (स्वर्गा० ४ । २१; स्वर्गा० ५ । १२) ।

महाभारतमें आये हुए द्रोणाचार्यके नाम—आचार्य, आचार्यमुख्य, भारद्वाज, भरद्वाजसुत, भरद्वाजात्मज, भारताचार्य, शोणाश्व, शोणाश्ववाह, शोणहय, गुरु, रुक्मरथ आदि । (२) मन्दपाल ऋषिके द्वारा जरिता (पक्षिणी) के गर्भसे उत्पन्न चार पुत्रोंमेंसे एक (आदि० २२८ । १७) । द्रोण ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होगा—ऐसा पिताका

इसके विषयमें भविष्य कथन (आदि० २२९ । ९-१०) । इसके द्वारा अग्निदेवकी स्तुति (आदि० २३१ । १५-१९) । अग्निकी कृपाद्वारा खाण्डवदाहसे इसकी भाइयोंसहित रक्षा (आदि० २३१ । २१-२३) ।

द्रोणपर्व-महाभारतका एक मुख्य पर्व ।

द्रोणवधपर्व-द्रोणपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय १८४से १९२ तक) ।

द्रोणशर्मपद-एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेका विशेष फल (अनु० २५ । २८) ।

द्रोणाभिषेकपर्व-द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १६ तक) ।

द्रौपदी-महाराज द्रुपदकी सती-साध्वी पुत्री कृष्णा, जो शची देवीके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७ । १५७) । महर्षि याजद्वारा अग्निमें आहुति डालनेपर यज्ञकुण्डसे कुमार धृष्टद्युम्नके बाद इनका प्राकट्य हुआ । अतः ये धृष्टद्युम्नकी बहिन हुईं (आदि० १६६ । ३९-४४) । इन्हें पाञ्चाली कहा जाता था । इन्हें पाण्डवोंने पत्नीरूपमें प्राप्त किया तथा इनके गर्भसे उनके पाँच पुत्र हुए । युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था (आदि० ९५ । ७५) । इनके अनुपम सौन्दर्यका वर्णन (आदि० १६६ । ४५-४७) । इनके जन्मके समयकी आकाशवाणी—इस कन्याका नाम कृष्णा है । यह समस्त युवतियोंमें श्रेष्ठ एवं सुन्दरी है । क्षत्रियोंका संहार करनेके लिये प्रकट हुई है । यह यथासमय देवताओंका कार्य सिद्ध करेगी । और इसके द्वारा देवताओंको महान् भय प्राप्त होगा (आदि० १६६ । ४८-४९) । ब्राह्मणोंद्वारा इनका नामकरण (आदि० १६६ । ५४) । व्यासजीका द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना—भगवान् शंकरद्वारा इन्हें पाँच पति प्राप्त होनेका वरदान (आदि० १६८ अध्याय) । इनके स्वयंवरमें विभिन्न देशोंसे आये हुए राजाओंका धृष्टद्युम्नद्वारा इनको परिचय-प्रदान (आदि० १८५ अध्याय) । सूतजातिके पुरुषको अपना पति न बनानेके विषयमें इनकी घोषणा (आदि० १८६ । २३) । इनका अर्जुनके गलेमें जयमाला डालना (आदि० १८७ । २५ के बाद दा० पाठ) । अर्जुन और भीमसेनके साथ इनका कुम्भकारके घरमें जाना (आदि० १८९ । ४१४-७) । घर जाकर पाण्डवोंका मातासे द्रौपदीको भिक्षा बताना और माताका बिना देखे ही उसे पाँचोंको उपयोगमें लानेकी आज्ञा देना (आदि० १९० । १-२) । कुम्भकारके घर जानेपर इनके सम्बन्धमें द्रुपदके ऊहापोह और चिन्ता (आदि० १९१ । १४-१८) । व्यासद्वारा द्रुपदको इनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाना और इन्हें स्वर्गलोककी लक्ष्मी बताना (आदि० १९६ अध्याय) । धौम्य मुनिद्वारा क्रमशः प्रत्येक पाण्डवके साथ विधिपूर्वक इनके विवाह-संस्कारका सम्पादन (आदि० १९७ अध्याय) । कुन्तीद्वारा इनको आशीर्वाद तथा शिक्षा (आदि० १९८ । ४-१२) । हस्तिनापुर जाते समय इनको द्रुपदद्वारा दहेज रूपमें विपुलधनराशिकी भेंट (आदि० २०६ । ९ के बाद दा० पाठ) । धृतराष्ट्रकी पुत्रवधुओंद्वारा इनका स्वागत (आदि० २०६ । २२ के बाद दा० पाठ) । सुभद्राके आनेपर इनका अर्जुनके प्रति प्रणयकोप (आदि० २२० । १६-१७) । इनके समीप सुभद्राका गोपीवेषमें आगमन (आदि० २२० । १९) । दुःशासनद्वारा बलपूर्वक केश पकड़कर इनका सभामें लाया जाना (सभा० ६७ । ३१) । भरी सभामें अपने हारे जानेके सम्बन्धमें इनका समस्त सभासदोंसे प्रश्न (सभा० ६७ । ४१-५२) । दुःशासनद्वारा वस्त्र खींचे जानेपर इनका आर्तभावसे भगवान्को पुकारना (सभा० ६८ । ४१-४३) । इनकी लाज बचानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णका स्वयं चीररूप होना और नये-नये चीर प्रकट करना (सभा० ६८ । ४५-४८) । कौरवोंकी सभामें इनका चेतावनीयुक्त विलाप (सभा० ६९ अध्याय) । इनको धृतराष्ट्रसे वरप्राप्ति (सभा० ७१ । २८-३२) । इनका कुन्तीसे वनगमनके लिये विदा लेना (सभा० ७९ । १-२) । किर्मीरकी मायासे भयभीत होकर मूर्च्छित होना (वन० ११ । १६-१८) । इनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा उनसे अपने प्रति किये गये अपमान और दुःखका वर्णन (वन० १२ । ५०-१२७) । युधिष्ठिरका क्रोध उभाड़नेके लिये इनके संतापपूर्ण वचन (वन० २७ अध्याय) । प्रह्लाद-बलि-संवादका वर्णन करके इनका युधिष्ठिरके क्रोधको उभाड़ना (वन० २८ अध्याय) । इनका युधिष्ठिरकी बुद्धि, धर्म एवं ईश्वरके न्यायपर आक्षेप (वन० ३० अध्याय) । युधिष्ठिरको पुरुषार्थ करनेके लिये जोर देना (वन० ३२ अध्याय) । तपके लिये जाते हुए अर्जुनके प्रति इनकी शुभाशंसा (वन० ३७ । २४-३५) । इनकी अर्जुनके लिये चिन्ता (वन० ८० । १२-१५) । गन्धमादनकी यात्रामें इनका मूर्च्छित होना (वन० १४४ । ४) । इनकी भीमसेनसे सौगन्धिक पुष्पोंकी माँग (वन० १४६ । ७) । जटासुरद्वारा इनका हरण और भीमसेनका उसे मारकर इनकी तथा भाइयोंकी रक्षा करना (वन० १५७ अध्याय) । इनका आर्ष्टिषेणके आश्रममें भीमसेनसे उस पर्वतपर रहनेवाले राक्षसोंको मारनेका

अनुरोध (वन० १६० । १२–२४) । सत्यभामासे पतिको अनुकूल बनाये रखनेका उपाय बताना (वन० २३३ । १० से २३४ अध्यायतक) । दुर्वासाके आतिथ्यके लिये चिन्तित होकर श्रीकृष्णकी स्तुति करना (वन० २६३ । ८–१६) । द्रौपदीपर संकट जानकर भक्तवत्सल भगवान्‌का आना और द्रौपदीका उनसे दुर्वासाके आगमन आदिका वृत्तान्त निवेदन करना (वन० २६३ । १७–१९) । श्रीकृष्णका अपनेको भूखा बताकर द्रौपदीसे भोजन माँगना तथा द्रौपदीका लज्जित होकर यह बताना कि खानेके लिये कुछ नहीं बचा है (वन० २६३ । २०-२१) । 'कृष्णे! परिहास न कर । मुझे बटलोई लाकर दिखा' श्रीकृष्णके इस प्रकार आग्रह करनेपर द्रौपदीका बटलोई लाकर उन्हें देना और उसके कण्ठमें लगे हुए तनिकसे शाकको खाकर श्रीकृष्णका द्रौपदीसे यह कहना कि 'इस शाकसे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा यज्ञभोक्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि तृप्त एवं संतुष्ट हों' (वन० २६३ । २२-२५) । जयद्रथद्वारा भेजे हुए कोटिकास्यको उत्तर देना (वन० २६६ अध्याय) । जयद्रथको फटकारना (वन० २६७ । १९; २६८ । २–९) । जयद्रथके सामने पाण्डवोंके पराक्रमका वर्णन (वन० २७० अध्याय) । युधिष्ठिरके पूछनेपर विराट-नगरमें स्वयं सैरन्ध्रीरूपमें रहनेकी बात बताना (विराट० ३ । १८) । सैरन्ध्रीवेषमें इनका विराटपत्नी सुदेष्णासे अपनेको महलमें रखनेका अनुरोध (विराट० ९ । ८) । कीचकको धर्मकी बातें कहकर समझाना (विराट० १४ । ३४–३७) । कीचकको फटकारना (विराट० १४ । ४७–५२) । कीचकके घर सुदेष्णा-के भेजनेसे सुरा लानेके लिये जाना (विराट० १५ । १७) । कीचकके भरी सभामें लात मारनेपर इनका राजा विराटको उलाहना देना और फटकारना (विराट० १६ । १८–१२ के बाद दा० पाठ; विराट० १६ । २१ के बाद दा० पाठ) । सुदेष्णाके पूछनेपर रोनेका कारण बताना (विराट० १६ । ४९) । रातमें भीमसेनके पास जाना (विराट० १७ । ७-८) । भीमसेनसे अपना दुःख बताना और कीचकको मार डालनेके लिये आग्रह करना (विराट० १८ अध्याय) । पाण्डवोंके दुःखसे दुखी होकर भीमसेनके सम्मुख विलाप करना (विराट० १९ अध्याय) । भीमसेनसे अपना दुःख निवेदन करना (विराट० २० अध्याय) । कीचकद्वारा अपनेपर बीती हुई घटनाका भीमसेनसे वर्णन करना और कीचकके वध-के लिये आग्रह करना (विराट० २१ । १८–४८) । कीचकको नृत्यशालामें मिलनेके लिये संकेत देना (विराट० २२ । १६-१७) । उपकीचकोंद्वारा श्मशानमें ले जाये जाते समय पतियोंको पुकारना (विराट० २३ । १२–१४) । बृहन्नलारूपधारी अर्जुनसे मिलना (विराट० २४ । २१) । महलसे निकल जानेके लिये कहनेपर तेरह दिन और रहनेके लिये रानी सुदेष्णासे प्रार्थना करना (विराट० २४ । २९) । उत्तरसे बृहन्नला-रूपधारी अर्जुनको सारथि बनानेका प्रस्ताव करना (विराट० ३६ । १६–१९) । शान्तिदूत बनकर जानेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णसे केशाकर्षणकी याद दिलाते हुए अपना दुःख सुनाना और युद्धकी ही सम्मति देना (उद्योग० ८२ । ४–४१) । विलाप करती हुई सुभद्रा और उत्तराके पास आना तथा शोकसे मूर्च्छित होना (द्रोण० ७८ । ३६–३७) । पुत्रोंके वधका समाचार सुनकर विलाप करना और अश्वत्थामाके वधके लिये आग्रह करना (सौप्तिक० ११ । १०–१५) । भीमसेनको अश्वत्थामाके वधके लिये प्रेरित करना (सौप्तिक० ११ । २२–२७) । भीमसेनके वचनोंसे शान्त होकर युधिष्ठिरको अश्वत्थामाकी मणि धारण करने-को देना (सौप्तिक० १६ । २४) । कुन्तीके पास पहुँचकर विलाप करना (स्त्री० १५ । ३७-३८) । राजदण्ड धारण करनेके लिये युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० १४ अध्याय) । पाण्डवोंके नगरमें प्रवेश करते समय हस्तिना-पुरकी स्त्रियोंद्वारा पाञ्चालीके पतिसेवन, अमोघ पुण्य-कर्म तथा सकल व्रतचर्याकी प्रशंसा (शान्ति० ३८ । ५-६) । सुभद्रा और बलदेवके साथ हस्तिनापुरमें पधारे हुए श्रीकृष्णका द्रौपदी आदिसे मिलना (आश्व० ६७ । ४-५) । श्रीकृष्णके सूतिकागृहमें प्रवेश करते समय द्रौपदीका उत्तराके पास जाकर उसे सूचित करना कि तुम्हारे श्वशुर भगवान् मधुसूदन पधार रहे हैं (आश्व० ६८ । ९) । श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी पिंडलियाँ मोटी बतायी जानेके कारण द्रौपदीने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर तिरछी चितवनसे ईर्ष्यापूर्वक देखा और श्रीकृष्णने द्रौपदीके उस प्रेमपूर्ण उपालम्भको सानन्द ग्रहण किया (आश्व० ८७ । ११) । चित्राङ्गदा और उलूपीका द्रौपदीके चरण छूना और द्रौपदीका अपनी ओरसे उन्हें नाना प्रकारके उपहार देना (आश्व० ८८ । २–४) । श्रीकृष्णका द्रौपदी आदिसे मिलकर द्वारका जानेके लिये रथपर आरूढ़ होना (आश्व० ९२ । वैष्णवधर्म, पृष्ठ ६३८१) । द्रौपदीके द्वारा कुन्ती और गान्धारीकी सेवा (आश्रम० १ । ९) । वनमें जाते हुए धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके पीछे द्रुपदकुमारी कृष्णा आदिका जाना और विलाप करना (आश्रम० १५ । १०-११) । कुन्तीका युधिष्ठिरको बहू द्रौपदीका सदा प्रिय करते रहनेके लिये आदेश देना (आश्रम० १६ । १५) । रोती हुई

सुभद्रासहित द्रौपदीका अपनी सासके पीछे जाना (**आश्रम० १६ । ३०)** । द्रौपदीका युधिष्ठिरसे अपनी सासके दर्शनकी इच्छा प्रकट करना और अन्तःपुरकी सभी स्त्रियोंको कुन्ती एवं गान्धारीके दर्शनके लिये उत्सुक बताना (**आश्रम० २२ । १४–२२**) । द्रौपदी आदिका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रको प्रणाम करना (**आश्रम० २४ । १९**) । संजयका ऋषियोंसे द्रौपदीका परिचय देते समय इन्हें मूर्तिमती लक्ष्मी बताना (**आश्रम० २५ । ९**) । द्रौपदीका अपने पतियोंके साथ महाप्रस्थानके पथपर अग्रसर होना (**महाप्रस्था० १ । १९–२०**) । मार्गमें द्रौपदीका गिरना और भीमसेनके पूछनेपर युधिष्ठिरका इनके पतनका कारण बताना (**महाप्रस्था० २ । ३–६**) । स्वर्गलोकमें युधिष्ठिरका दिव्यकान्तिसे सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित होती हुई द्रौपदीका दर्शन करना और इन्द्रका स्वर्गलोककी लक्ष्मी बताकर इनका और इनके पुत्रोंका परिचय देना (**स्वर्गा० ४ । १०–१४**)।

महाभारतमें आये हुए द्रौपदीके नाम—पाञ्चाली, कृष्णा, याज्ञसेनी, द्रुपदात्मजा, द्रुपदसुता, पाञ्चालराजदुहिता आदि ।

द्रौपदी-सत्यभामासंवादपर्व—वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय २३३ से २३५ तक**) ।

द्रौपदीहरणपर्व—वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय २६२ से २७१ तक**) ।

द्व्यक्ष—एक भारतीय जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट लेकर आये थे (**सभा० ५१ । १७**) ।

द्वादशभुज—स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५७**)।

द्वादशाक्ष—स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५८**) ।

द्वापरयुग—सत्ययुगसे तृतीय युग । हनुमान्‌जीद्वारा इस युगके धर्मका वर्णन (**वन० १४९ । २७–३२**) ।

द्वारका (द्वारवती या द्वारावती)—रैवतक पर्वतसे सुशोभित रमणीय कुशस्थली, जहाँ जरासंधसे वैर हो जानेपर समस्त यादव श्रीकृष्णकी सम्मतिसे एकत्र होकर रहने लगे । कुशस्थली दुर्गकी ऐसी मरम्मत करायी गयी थी कि वह देवताओंके लिये भी दुर्गम हो गया था । उस दुर्गमें रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती थीं । फिर वृष्णिकुलके महारथियोंकी तो बात ही क्या थी । रैवतककी दुर्गमताका विचार करके यदुवंशी वहाँ निर्भय एवं प्रसन्न रहते थे । रैवतक या गोमान दुर्गकी लम्बाई तीन योजनकी है । वहाँ एक-एक योजनपर सेनाओंकी तीन-तीन दलोंकी छावनी थी । प्रत्येक योजनके अन्तमें सौ-सौ द्वार थे, जो सेनाओंद्वारा सुरक्षित थे । वीरोंका पराक्रम ही उस गढ़का प्रधान फाटक था । कम-से-कम अठारह रण-दुर्मद क्षत्रिय वीर उस दुर्गकी सुरक्षामें सदा संलग्न रहते थे । (**सभा० १४ । ५०-५५**) । द्वारका पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका प्रधान निवासस्थान थी । वह अमरावतीपुरीसे भी अधिक रमणीय थी । वहाँ वृष्णिवंशियोंके बैठनेके लिये एक सुन्दर सभा थी, जो दाशार्हीके नामसे प्रसिद्ध थी । उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजन थी । उसमें बलराम और श्रीकृष्ण आदि सभी वृष्णि और अन्धक वंशके लोग बैठते और सम्पूर्ण लोक-जीवनकी रक्षामें दत्तचित्त रहते थे (**सभा० ३८ । पृष्ठ ८०६**) । द्वारकाके रमणीय राजसदन सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान तथा मेरुपर्वतके शिखरोंकी भाँति गगनचुम्बी थे । उन भवनोंसे विभूषित द्वारकापुरीकी रचना साक्षात् विश्वकर्माने की थी । इसके चारों ओर बनी हुई चौड़ी खाइयाँ इसकी शोभा बढ़ाती थीं । यह पुरी ऊँची श्वेत चहारदीवारीसे घिरी थी । वहाँ नन्दनवन, मिश्रकवन, चैत्ररथवन और वैभ्राज नामक वन शोभा देते थे । रमणीय द्वारकापुरीकी पूर्वदिशामें उत्तुङ्ग शिखरोंवाला रैवतकपर्वत उस पुरीका आभूषणरूप जान पड़ता था । दक्षिणमें लतावेष्ट, पश्चिममें सुकक्ष और उत्तरमें वेणुमन्त नामक पर्वत इसकी शोभा बढ़ाते थे । इन पर्वतोंके चारों ओर अनेकानेक मनोहर वन उपवन वहाँकी श्रीवृद्धि करते थे । पुरीकी पूर्वदिशामें एक रमणीय पुष्करिणी थी, जिसका विस्तार सौ धनुष था । महापुरी द्वारका पचास दरवाजोंसे सुशोभित थी । सुन्दर सुन्दर महल और अट्टालिकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं । तीखे यन्त्र, शतघ्नी (तोप), विभिन्न यन्त्रोंके समुदाय और लोहेके बने हुए बड़े-बड़े चक्र उस पुरीकी रक्षाके लिये लगाये गये थे । पुरीका विस्तार छानबे योजन था । उसमें जानेके लिये आठ बड़ी बड़ी सड़कें थीं और सोलह बड़े-बड़े चौराहे शोभा पा रहे थे । शुक्राचार्यकी नीतिके अनुसार उस नगरीका निर्माण किया गया था (**सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२ से ८१७ तक**) । तीर्थयात्राके अवसरपर यहाँ अर्जुन पधारे थे और उनके स्वागतका बहुत ही सुन्दर आयोजन किया गया था । यहींसे उन्होंने सुभद्राका अपहरण किया था (**आदि० अध्याय २१७ से २१९ तक**) । द्वारकापुरीपर शाल्वका आक्रमण और वृष्णिवंशी वीरों तथा भगवान् श्रीकृष्णद्वारा शाल्वराजका सेनासहित संहार करके इस पुरीकी रक्षा (**वन० अध्याय १५ से २२ तक**) । (पुराणान्तरोंके वर्णनके अनुसार मोक्षदायिनी सात पुरियोंमेंसे एक यह भी है । विभिन्न पुराणोंमें इसकी महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है ।) द्वारका और वहाँका पिण्डारक

क्षेत्र परम पावन तीर्थ हैं । इन तीर्थोंकी यात्रा करने-वालोंको नियमसे रहना और नियमित भोजन करना चाहिये । यहाँके पिण्डारक-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको अधिकाधिक सुवर्णकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । ६५) । यहीं राजा नृगका गिरगिटकी योनिसे उद्धार हुआ था (अनु० ७० । ७) । यहीं यदुवंशके विनाशके लिये साम्बके पेटसे मूसल पैदा होनेका शाप ऋषियोंद्वारा प्राप्त हुआ था (मौसल० १ । १९–२१) । श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेपर द्वारकावासी स्त्री-पुरुषोंके द्वारा इस पुरीके खाली कर दिये जानेपर समुद्रने इसे डुबो दिया (मौसल० ७ । ४१-४२) ।

द्वारपालपुर–एक प्राचीन नगर, जिसे नकुलने अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० ३२ । ११-१२) ।

द्वित–एक प्राचीन महर्षि, जो गौतमके पुत्र तथा एकत और त्रितके भाई थे । इनका लोभवश अपने भाई त्रितको कूपमें गिरा छोड़कर एकतके साथ घरको जाना और त्रितके शापसे भेड़िया होकर लंगूरों, रीछों और वानरोंको उत्पन्न करना (शल्य० ३७ अध्याय) । ये पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले ऋषि हैं (शान्ति० २०८ । ३१) । ये प्रजापतिके पुत्र माने गये हैं । इन्हें उपरिचरवसुके यज्ञका सदस्य बनाया गया था (शान्ति० ३३६ । ६) ।

द्विमूर्धा–एक राक्षस, जो असुरोंके पृथ्वीदोहनके समय दोग्धा (दुहनेवाला) बना था (द्रोण० ६९ । २०) ।

द्विविद–किष्किन्धानिवासी एक वानर, जिसके साथ सहदेवने सात दिनोंतक युद्ध किया था तो भी वे उसे हरा न सके (सभा० ३१ । १८-१९) । इसने सहदेवको नाना प्रकारके रत्नोंकी भेंट दी थी (सभा० ३१ । २०) । यह सुग्रीवका मन्त्री था (वन० २८० । २३) । इसके संरक्षणमें रहकर श्रीरामका कार्य करनेके लिये वानर सेनाने कूच किया था (वन० २८३ । १९) । इसने कभी श्रीकृष्णको पकड़नेकी इच्छा रखकर सौभ विमानके द्वारसे इनपर पत्थरोंकी वर्षा की थी (उद्योग० १३० । ४१-४२) ।

दीपक–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११) ।

द्वैतवन–एक वन और सरोवर, यहाँ वनवासके समय पाण्डवोंने निवास किया था (वन० २४ । १३) । यह सरस्वतीके तटपर अवस्थित था (वन० २४ । २०) । तीर्थयात्राके समय बलरामजीने यहाँ पदार्पण किया था (शल्य० ३७ । २७) ।

द्वैपायन(१)–महर्षि पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न मुनिवर वेदव्यास, जो यमुनाके द्वीपमें छोड़ दिये गये, इसलिये द्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए (आदि० ६३ । ८६) । (देखिये व्यास) । (२) कुरुक्षेत्रका एक सरोवर, जिसमें दुर्योधन भागकर छिपा था (शल्य० ३० । ४७) ।

(ध)

धनंजय–(१) एक प्रमुख नाग, जो कश्यप और कद्रूकी संतान है (आदि० ३५ । ५) । यह वरुणकी सभामें उपस्थित हो भगवान् वरुणकी उपासना करता है (सभा० ९ । ९) । यह त्रिपुर-दाहके समय भगवान् शिवके रथमें घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाया गया था (कर्ण० ३४ । २९-३०) । (२) अर्जुनका एक नाम, सम्पूर्ण देशोंको जीतकर कररूपमें धन लेकर धनके ही बीचमें स्थित होनेके कारण अर्जुनका नाम धनंजय हुआ था (विराट० ४४ । १३) । (देखिये अर्जुन) । (३) शिवजीद्वारा स्कन्दको दी हुई असुर-सेनाका नाम (शल्य० ४६ । ४७) ।

धनद–कुबेरकी सभाका एक यक्ष, जो भगवान् कुबेरकी सेवामें संलग्न रहता है (सभा० १० । १५) ।

धनदा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १३) ।

धनी–कप नामक दानवोंका दूत, इसके द्वारा ब्राह्मणोंके पास जाकर कपोंके सदाचारका वर्णन (अनु० १५७ । ८—१४) ।

धनुर्ग्रह (धनुग्रह या धनुधर)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३; आदि० ११६ । ११) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । २–६) ।

धनुर्वक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२) ।

धनुर्वेद–वह शास्त्र, जिसमें धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रोंको चलानेकी विद्याका निरूपण हो, चार पादोंसे युक्त अस्त्र-शस्त्र-विद्या । [भारतवर्षमें इस विद्याके बड़े-बड़े ग्रन्थ थे, जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थमें धनुर्वेदको यजुर्वेदका उपवेद लिखा है । आजकल इस विद्याका वर्णन कुछ ग्रन्थोंमें थोड़ा बहुत मिलता है । जैसे –शुक्रनीति, कामन्दकी नीति, अग्निपुराण, वीर-चिन्तामणि, वृद्धशार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युक्ति-कल्पतरु, नीतिमयूख इत्यादि । 'धनुर्वेद संहिता' नामक एक अलग पुस्तक भी मिलती है, परंतु उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकतामें संदेह है । अग्निपुराणमें ब्रह्मा और महेश्वर इस वेदके आदि प्रकटकर्ता कहे गये हैं । परंतु मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि 'विश्वामित्रने जिस धनुर्वेदका प्रकाश किया था, यजुर्वेदका उपवेद वही है ।' उन्होंने अपने प्रस्थानभेदमें विश्वामित्रकृत इस उपवेदका

कुछ संक्षिप्त ब्यौरा भी दिया है। उसमें चार पाद हैं— दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद। प्रथम दीक्षापादमें धनुर्लक्षण (धनुषके अन्तर्गत सब हथियार लिये गये हैं) और अधिकारियोंका निरूपण है। धनुर्वेदके चार भेद इस प्रकार हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त तथा यन्त्रमुक्त। छोड़े जानेवाले बाण आदिको 'मुक्त' कहते हैं। जिन्हें हाथमें लेकर प्रहार किया जाय, उन खड्ग आदिको 'अमुक्त' कहते हैं। जिस अस्त्रको चलाने और समेटनेकी कला मालूम हो, वह अस्त्र 'मुक्तामुक्त' कहलाता है। अथवा जिसे छोड़नेके बाद फिर ले लिया जाय वह भाला, बरछा आदि मुक्तामुक्त है, जो किसी यन्त्रके सहारे छोड़ा जाय जैसे तोपसे गोला, वह अस्त्र 'यन्त्रमुक्त' कहा गया है। अधिकारीका लक्षण कहकर फिर दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदिका वर्णन है। संग्रहपादमें आचार्यका लक्षण तथा अस्त्र-शस्त्रादिके लक्षणका संग्रह है। तृतीय पादमें सम्प्रदायसिद्ध विशेष-विशेष शस्त्रोंके अभ्यास, मन्त्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं। प्रयोग नामक चतुर्थ पादमें देवार्चन, सिद्धि, अस्त्र-शस्त्रादिके प्रयोगोंका निरूपण है।

शस्त्र, अस्त्र, प्रत्यस्त्र और परमास्त्र—ये भी धनुर्वेदके चार भेद हैं। इसी प्रकार आदान, संधान, विमोक्ष और संहार—इन चार क्रियाओंके भेदसे भी धनुर्वेदके चार भेद होते हैं। वैशम्पायनके अनुसार शार्ङ्गधनुषमें तीन जगह झुकाव होता है; पर वैणव अर्थात् बाँसके धनुषका झुकाव बराबर क्रमसे होता है। शार्ङ्गधनुष साढ़े छः हाथका होता है और अश्वारोहियों तथा गजारोहियोंके कामका होता है। रथी और पैदलके लिये बाँसका ही धनुष ठीक है। अग्निपुराणके अनुसार चार हाथका धनुष उत्तम, साढ़े तीन हाथका मध्यम और तीन हाथका अधम माना गया है। जिस धनुषके बाँसमें नौ गाँठें हों; उसे 'कोदण्ड' कहना चाहिये। प्राचीनकालमें दो डोरियोंकी गुलेल भी होती थी, जिसे 'उपलक्षेपक' कहते थे। डोरी पाटकी और कनिष्ठा अँगुलीके बराबर होनी चाहिये। बाँस छीलकर भी डोरी बनायी जाती है। हिरन या भैंसेकी ताँतकी डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है। (वृद्धशार्ङ्गधर)

बाण दो हाथसे अधिक लंबा और छोटी अँगुलीसे अधिक मोटा न होना चाहिये। शर तीन प्रकारके कहे गये हैं, जिसका अगला भाग मोटा हो, वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो, वह पुरुष जातीय और जो सर्वत्र बराबर हो, वह नपुंसकजातीय कहलाता है। स्त्री जातीय शर बहुत दूरतक जाता है, पुरुषजातीय भिदता खूब है और नपुंसकजातीय निशाना साधनेके लिये अच्छा होता है। बाणके फल अनेक प्रकारके होते हैं; जैसे—आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचन्द्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदन्त, द्विभल्ल, कार्णिक, काकतुण्ड इत्यादि। तीरमें गति सीधी रखनेके लिये पीछे पंखोंका लगाना भी आवश्यक बताया गया है। जो बाण सारा लोहेका होता है, उसे 'नाराच' कहते हैं।

उक्त ग्रन्थमें लक्ष्यभेद, शराकर्षण आदिके सम्बन्धमें बहुत-से नियम बताये गये हैं। रामायण, महाभारत आदिमें शब्दभेदी बाण मारनेतकका उल्लेख है। अन्तिम हिंदूसम्राट् महाराज पृथ्वीराजके सम्बन्धमें भी प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण मारते थे। [—हिंदी-शब्दसागरसे]

शरद्वान् धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् और शिक्षक थे। इनसे कृपाचार्यने धनुर्वेद पढ़ा और अपने शिष्योंको पढ़ाया (आदि० १२९। ३–५, २१, २२, २३)। द्रोणाचार्यने यह विज्ञान परशुरामसे प्राप्त किया और कौरव-पाण्डवोंको इसकी शिक्षा दी (आदि० १२९। ६६; आदि० १३१। ९)। अग्निवेश धनुर्वेदमें अगस्त्यके शिष्य थे (आदि० १३८। ९)। इसे युधिष्ठिरने कौरवदलके भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा एवं कर्णमें ही पूर्णतः प्रतिष्ठित बताया था (वन० ३७। ४)। धनुर्वेदके दस अङ्ग और चार चरण हैं। (शल्य० ६। १४ की टिप्पणी; ४१।२९)। चारों पादोंसे युक्त धनुर्वेद मूर्तिमान् होकर भगवान् स्कन्दकी सेवामें उपस्थित हुआ था (शल्य० ४४। २२)।

धनुष—एक प्राचीन ऋषि, जो उपरिचर वसुके यज्ञके सदस्य बनाये गये थे (शान्ति० ३३६। ७)।

धनुषाक्ष—एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने बालधिऋषिके पुत्र मेधावीका ऋषियोंका अपमान करनेके कारण विनाश कर दिया (वन० १३५। ५०–५३)।

धन्वन्तरि—देवताओंके वैद्य, जो पुराणानुसार समुद्र-मन्थनके समय और सब वस्तुओंके साथ समुद्रसे निकले थे। हरिवंशमें लिखा है कि जब ये समुद्रसे निकले, तब तेजसे दिशाएँ जगमगा उठीं। ये सामने विष्णुको देखकर ठिठक रहे। इसपर विष्णु भगवान्ने इन्हें अब्ज कहकर पुकारा। भगवान्के पुकारनेपर इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि यज्ञमें मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय। विष्णुने कहा, भाग और स्थान तो बँट गये हैं, पर तुम दूसरे जन्ममें विशेष सिद्धि-लाभ करोगे। अणिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भमें ही प्राप्त रहेंगी और तुम सशरीर देवत्व लाभ करोगे। तुम आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करोगे। द्वापरयुगमें काशिराज धन्वने पुत्रके लिये तपस्या और अब्जदेवकी आराधना की। अब्जदेवने धन्वके घर स्वयं अवतार लिया और भरद्वाज ऋषिसे आयुर्वेद-शास्त्रका अध्ययन करके प्रजाको रोगमुक्त किया। भावप्रकाशमें लिखा है कि इन्द्रने आयुर्वेद-शास्त्र सिखाकर धन्वन्तरिको लोकके कल्याणके लिये पृथ्वीपर भेजा। धन्वन्तरि काशीमें

उत्पन्न हुए और ब्रह्माके वरसे काशीके राजा हुए (**हिंदी-शब्द सागरसे**) । (पुराणान्तरोंके कथनानुसार ये भगवान्‌के अवतार हैं ।) समुद्र-मन्थनके समय ये अमृतका कलश हाथमें लेकर प्रकट हुए थे (**आदि० १८ । ३८**) । बलिवैश्वदेवके समय ईशानकोणमें इन्हें बलि देनी चाहिये (**अनु० ९७ । १०–१२**) ।

धमधमा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । २०**) ।

धर-(१) धर्मद्वारा धूम्राके गर्भसे उत्पन्न प्रथम वसु (**आदि० ६६ । १९**) । (२) युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक राजा (**द्रोण० १५८ । ३९**) ।

धर्म–सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाले एक देवता, जो ब्रह्माजीके दाहिने स्तनसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६६ । ३१**) । ये भगवान् सूर्यके भी पुत्र कहे गये हैं (**आदि० ६७ । ८६**) । दक्ष-प्रजापतिकी कीर्ति आदि दस पुत्रियाँ इनकी पत्नी थीं (**आदि० ६६ । १३–१५**) । आठों वसु इनके पुत्र थे (**आदि० ६६ । १७**) । इनके तीन श्रेष्ठ पुत्र हैं--शम, काम और हर्ष (**आदि० ६६ । ३२**) । शूद्रयोनिमें जन्म लेनेके लिये इनको अणीमाण्डव्यका शाप (**आदि० ६३ । ९५-९६**) । इन्हींके अंश विदुर और युधिष्ठिर थे (**आदि० ६७ । ८६, ११०**) । इनके द्वारा कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म (**आदि० १२२ । ७**) । जब द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, उस समय धर्मस्वरूप श्रीकृष्णने अव्यक्त रूपसे उसके वस्त्रमें प्रवेश करके भाँति-भाँतिके सुन्दर वस्त्रोंद्वारा द्रौपदीको आच्छादित कर लिया (**सभा० ६८ । ४६**) । धर्मतीर्थमें इन्होंने तपस्या की थी (**वन० ८४ । १**) । ये धर्मप्रस्थमें सदा निवास करते हैं (**वन० ८४ । ९९**) । वैतरणीके तटपर इन्होंने यज्ञ किया था (**वन० ११४ । ४**) । इनका मृगरूपसे ब्राह्मणका अरणि-काष्ठ लेकर भागना (**वन० ३११ । ९**) । यक्ष-रूपसे नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीमसेनको मूर्च्छित करना (**वन० ३१२ अध्याय**) । युधिष्ठिरके साथ प्रश्नोत्तर (**वन० ३१३ । ४५—१३२**) । युधिष्ठिरके उत्तरसे प्रसन्न होकर इनके द्वारा चारों पाण्डवोंको जीवनदान (**वन० ३१३ । १३३**) । धर्मके पास पहुँचनेके द्वार—अहिंसा, समता, शान्ति, दया और अमत्सर (**वन० ३१४ । ८**) । धर्मरूपमें प्रकट होकर इनका युधिष्ठिरको वरदान देना (**वन० ३१४ । १२—२५**) । वसिष्ठका रूप धारण करके विश्वामित्रकी परीक्षा लेना (**उद्योग० १०६ । ८–१७**) । ब्रह्माजीकी आज्ञासे धर्मने दैत्यों और दानवोंको अपने पाशमें बाँधकर वरुणके अधिकारमें दे दिया (**उद्योग० १२८ । ४५-४६**) । भगवान् नारायणने धर्मके पुत्ररूपसे अवतार लिया था (**द्रोण० २०१ । ५७**) । इन्होंने अपनी पत्नी 'श्री' के गर्भसे अर्थ नामक पुत्र उत्पन्न किया (**शान्ति० ५९ । १३२-१३३**) । ये तनु नामक मुनिके रूपमें उत्पन्न हुए थे (**शान्ति० १२८ । २२-२३**) । जापक ब्राह्मणके साथ इनका संवाद (**शान्ति० १९९ । २०—२८**) । मृगरूपसे सत्य नामक ब्राह्मणकी परीक्षा ली (**शान्ति० २७२ । १७**) । ब्राह्मणरूप धारण करके सुदर्शनकी परीक्षा ली (**अनु० २ । ७९**) । भैंसेके रूपसे महर्षि वत्सनाभकी वर्षासे रक्षा करना (**अनु० १२ अध्याय दाक्षिणात्य पाठ**) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (**अनु० १२६ । २४–२८**) । ब्राह्मणरूपमें राजा जनकसे इनका संवाद और अन्तमें प्रसन्न होकर इनका अपना परिचय देना तथा राजाकी प्रशंसा करना (**आश्व० ३२ अध्याय**) । ब्राह्मणरूप धारण करके इन्होंने ब्राह्मणपरिवारकी परीक्षा ली (**आश्व० ९० अध्याय**) । क्रोधरूपमें जमदग्निकी परीक्षा ली (**आश्व० ९१ । ४२—५२**) । माण्डव्यके शापसे धर्म ही विदुर हुए थे (**आश्रम० २८ । १२**) । धर्म, विदुर और युधिष्ठिरकी एकता (**आश्रम० २८ । २१**) । पाण्डवोंके महाप्रस्थानके समय कुत्तेका रूप धारण करके उनके पीछे-पीछे गये (**महाप्रस्था० ३ । १७**) । विदुर और युधिष्ठिर मृत्युके पश्चात् धर्ममें ही विलीन हुए थे (**स्वर्गा० ५ । २२**) ।

महाभारतमें आये हुए धर्मके नाम—धर्मराज, वृष, यम आदि ।

धर्मतीर्थ—(१) धर्मकी तपस्याका स्थानभूत एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य धर्मशील और एकाग्रचित्त होता है तथा अपने कुलकी सातवीं पीढ़ीतकके लोगोंको पवित्र कर देता है (**वन० ८४ । १**) । (२) एक परम पवित्र ब्रह्मसेवित तीर्थ, जहाँ जाकर स्नान करनेवाला वाजपेय यज्ञका फल पाता है और विमानपर बैठकर पूजित होता है (**वन० ८४ । १६२**) ।

धर्मद—स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७२**) ।

धर्मनेत्र—पूरुवंशीय महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके पुत्र (**आदि० ९४ । ६०**) ।

धर्मप्रस्थ—एक तीर्थ, जहाँ धर्मराजका नित्य निवास है । वहाँ कूपजलसे देवता-पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गलोकको जाता है (**वन० ८४ । ९९**) ।

धर्मव्याध—मिथिलापुरीमें रहनेवाला एक धर्मपरायण व्याध । इसके द्वारा वर्णधर्मका वर्णन (**वन० २०७ । २०–२८**) । शिष्टाचारका वर्णन (**वन० २०७ । ६२–९८**) । हिंसा और अहिंसाका विवेचन (**वन० २०८ अध्याय**) ।

धर्मकर्मविषयक मीमांसा (वन० २०९ अध्याय)। विषयसेवनसे हानि और ब्राह्मीविद्याका वर्णन (वन० २१० अध्याय)। इन्द्रियनिग्रहका वर्णन (वन० २११ अध्याय)। तीनों गुणोंके स्वरूप और फलका निरूपण (वन० २१२ अध्याय)। प्राणवायुकी स्थितिका प्रतिपादन (वन० २१३ अध्याय)। माता पिताकी सेवाका दिग्दर्शन (वन० २१४ अध्याय)। अपने पूर्वजन्मकी कथा (वन० २१५ अध्याय)। कौशिक ब्राह्मणको माता पिताकी सेवाका उपदेश देकर विदा करना (वन० २१६ । ३२)।

धर्मारण्य—(१) एक प्राचीन तीर्थभूत वन, जहाँ प्रवेश करनेमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है (वन० ८२ । ४६)। (२) एक ब्राह्मण, इसका पद्मनाभ नामक नागको अपना परिचय देना (शान्ति० ३६१ । ५)। पद्मनाभसे सूर्यमण्डलकी बात पूछना (शान्ति० ३६२ । १)। उञ्छव्रतका पालन करनेका निश्चय करके इसका नागराजसे विदा माँगना (शान्ति० ३६४ । ७-१०)। च्यवनऋषिसे उञ्छव्रतकी दीक्षा लेना (शान्ति० ३६५ । २)।

धर्मेयु—पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९४ । ११)।

धवलगिरि (या श्वेत पर्वत)—एक पर्वत, जहाँ अर्जुनने अपनी सेनाका पड़ाव डाला था (सभा० २७ । २९)।

धाता—(१) बारह आदित्योंमेंसे एक, इनकी माताका नाम अदिति और पिताका कश्यप है (आदि० ६५ । १५)। खाण्डववन-दाहके समय श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ होनेवाले युद्धमें देवताओंकी ओरसे ये भी पधारे थे (आदि० २२६ । ३४)। इनके द्वारा स्कन्दको पाँच पार्षद प्रदान किये गये थे, जिनके नाम थे—कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर (शल्य० ४५ । ३९)। (२) ब्रह्माजीके पुत्र, इनके दूसरे भाईका नाम विधाता है। दोनों मनुके साथ रहते हैं (आदि० ६६ । ५०)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

धात्रेयिका—द्रौपदीकी दासी, जिसने पाण्डवोंसे जयद्रथद्वारा द्रौपदीके अपहरणका समाचार बताया था (वन० २६९ । १६—२२)।

धाम—श्रीगङ्गा-महाद्वारकी रक्षा करनेवाले मुनि, जो उत्तर दिशामें स्थित हैं (उद्योग० १११ । १७)।

धारण—(१) चन्द्रवत्सकुलमें उत्पन्न एक कुलाङ्गार नरेश (उद्योग० ७४ । १६)। (२) एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । १६)।

धारा—एक तीर्थ, जहाँकी यात्रा सब पापोंसे छुड़ानेवाली है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी शोकमें नहीं पड़ता है (वन० ८४ । २५)।

धिषणा—एक देवी, जिसने स्कन्दके अभिषेकके समय पदार्पण किया था (शल्य० ४५ । १४)।

धीमान्—पुरूरवाके द्वितीय पुत्र (आदि० ७५ । २४)।

धीरोष्णी—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३२)।

धुन्धु—(१) एक राक्षस, जो मधुकैटभका पुत्र था (वन० २०२ । १८)। इसकी तपस्या और वरप्राप्ति (वन० २०४ । २–४)। इसके द्वारा महाराज कुवलाश्वके पुत्रोंका दग्ध होना (वन० २०४ । २६)। राजा कुवलाश्वद्वारा इसका वध (वन० २०४ । ३२)। (२) एक राजा, जिसने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया (अनु० ११५ । ६६)।

धुन्धुमार—सूर्यवंशी महाराज बृहदश्वके पुत्र कुवलाश्व (द्रोण० ९४ । ४२)। इन्हें ऐलविलद्वारा खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६ । ७६)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । २१)। (देखिये कुवलाश्व)।

धुरन्धर—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४१)।

धूतपापा—एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १८)।

धूमपा—पितरों और ऋषियोंका समुदाय। ये लोग दक्षके यज्ञमें पधारे थे (शान्ति० २८४ । ८-९)।

धूमावती—एक पवित्र तीर्थ, जहाँ तीन रात्रि उपवास करनेसे मनोवाञ्छित कामना प्राप्त होती है (वन० ८४ । २२)।

धूमिनी—पूरुवंशी राजा अजमीढ़की रानी, इनके गर्भसे अजमीढ़द्वारा महाराज ऋक्षका जन्म हुआ था (आदि० ९४ । ३२)।

धूमोर्णा-(१) यमराजकी भार्या (वन० ११७ । ९)। (२) महर्षि मार्कण्डेयकी पत्नी (अनु० १४६ । ४)।

धूम्र- (१) एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १७ के बाद दा० पाठ)। (२) स्कन्दका सैनिक (शल्य० ४५ । ६४)।

धूम्रा-दक्षप्रजापतिकी पुत्री और धर्मकी पत्नी, जो ध्रुव तथा धरकी माता है (आदि० ६६ । १९)।

धूम्राक्ष-एक राक्षस, जिसका हनुमान्जीके द्वारा वध हुआ (वन० २८६ । १४)।

धूर्त-एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८)।

धूर्त्तक-कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (**आदि० ५७ । १३**) ।

धृतराष्ट्र—(१) राजा विचित्रवीर्यके क्षेत्रज पुत्र, विचित्रवीर्यकी पत्नी अम्बिकाके गर्भसे व्यासद्वारा उत्पन्न, ये जन्मसे अन्धे थे (**आदि० १ । ९५; आदि० ६३ । ११३; आदि० १०५ । १३**) । भीष्मद्वारा इनका पुत्रवत् पालन एवं इनके उपनयनादि संस्कारोंका सम्पादन(**आदि० १०८ । १७-१८**) । इनकी शारीरिक शक्ति एवं शिक्षा (**आदि० १०८ । १९-२१**) । जन्मान्ध होनेके कारण इनका राज्य-प्राप्तिसे वञ्चित होना (**आदि० १०८ । २५**) । गान्धारीके साथ विवाह (**आदि १०९ । १६**) । इनके द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञका सम्पादन तथा प्रतियज्ञमें लाख-लाख स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणाका दान (**आदि० ११३ । ५**) । इनके द्वारा गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र होनेका वृत्तान्त (**आदि० ११४ । १२—२५**) । दुर्योधनके जन्मकालिक अमङ्गलसूचक लक्षणों या अपशकुनोंको देखकर उसे त्याग देनेके लिये इनको विदुरकी सलाह (**आदि० ११४ । ३४—३९**) । इनके द्वारा वैश्यजातीय स्त्रीके गर्भसे युयुत्सुका जन्म (**आदि०११४ । ४३**) । इनकी पुत्री दुःशलाके जन्मकी कथा (**आदि० ११५ अध्याय**) । इन्होंने अपने सभी पुत्रोंका विवाहसंस्कार कराया (**आदि० ११६ । १७**) । अपनी पुत्री दुःशलाका विवाह सिन्धुराज जयद्रथके साथ किया (**आदि० ११६ । १८**) । पाण्डुके शापग्रस्त होकर वानप्रस्थ लेनेपर इनका शोक (**आदि० ११८ । ४५**) । इनके द्वारा राजोचित ढंगसे पाण्डु तथा माद्रीके अन्त्येष्टि-संस्कार करानेके लिये विदुरको आदेश (**आदि० १२६ । १—३**) । युधिष्ठिरका युवराज-पदपर अभिषेक (**आदि० १३८ । १-२**) । पाण्डवोंकी उन्नति देखकर इनकी चिन्ता और इनके प्रति कणिकद्वारा कूटनीतिका उपदेश (**आदि० १३९ । ३—९२**) । पाण्डवोंको वारणावत जानेके लिये इनका आदेश (**आदि० १४२ । १०**) । वारणावतनिवासियोंका इनको पाण्डवों एवं पुरोचनके जलनेका संदेश देना (**आदि० १४९ । ९**) । पाण्डवोंके लिये इनका मिथ्या विलाप (**आदि० १४९ । १०**) । इनके द्वारा पाण्डवोंको जलाञ्जलि-दान (**आदि० १४९ । १५**) । इनका पाण्डवोंके प्रति प्रेमका दिखावा (**आदि० १९९ । २२ के बादसे २५ तक**) । इनका पाण्डवोंके विषयमें दुर्योधनसे वार्तालाप (**आदि० २०० । १—२०**) । द्रुपदनगरसे बुलाकर पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये इनसे भीष्मका आग्रह (**आदि० २०२ अध्याय**) । द्रौपदी एवं पाण्डवोंके लिये उपहार भेजने, उनको आदरपूर्वक द्रुपदनगरसे बुलाने एवं पाण्डवोंका आधा राज्य दे देनेके लिये इनसे द्रोणाचार्यका अनुरोध (**आदि० २०३ । १—१२**) । पाण्डवोंका पराक्रम बतलाकर उन्हें द्रुपदनगरसे बुलाने एवं उनका आधा राज्य दे देनेके लिये इनसे विदुरकी सलाह (**आदि० २०४ । १५—३०**) । पाण्डवोंको उनकी माता तथा द्रौपदीके साथ ले आनेके लिये इनका विदुरको आदेश (**आदि० २०५ । ४**) । द्रुपदनगरसे आते हुए पाण्डवोंकी अगवानीके लिये इनका कौरवोंको आदेश (**आदि० २०६ । १२**) । इनके द्वारा युधिष्ठिरका आधे राज्यपर अभिषेक और उन्हें भाइयोंसहित खाण्डवप्रस्थमें रहनेका आदेश (**आदि० २०६ । २३ के बाद दा० पाठ**) । ये युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें गये थे (**सभा० ३४ । ५**) । इनका दुर्योधनसे उसकी चिन्ताका कारण पूछना (**सभा० ४९ । ६—११ के बाद दा० पाठ**) । इनका युधिष्ठिरको बुलानेके लिये विदुरको भेजना (**सभा० ४९ । ५५—५९**) । इनका दुर्योधनको वैर-विरोध होनेके कारण जूआ न खेलनेकी सलाह देना (**सभा० ५० । १२**) । पाण्डवोंके साथ विरोध न करनेके लिये इनका दुर्योधनको समझाना (**सभा० ५४ अध्याय**) । इनके द्वारा द्यूतक्रीड़ाकी निन्दा (**सभा० ५६ । १२**) । पाण्डवोंको द्यूतक्रीड़ामें सम्मिलित होनेके लिये बुलानेके हेतु इनका विदुरको आदेश (**सभा० ५६ । २१**) । इनका विदुरके साथ वार्तालाप (**सभा० ५७ अध्याय**) । द्यूतक्रीड़ाके अवसरपर इनको विदुरकी चेतावनी (**सभा० ६३ अध्याय**) । इनका द्रौपदीको वरदान (**सभा० ७१ । ३१—३३**) । इनके द्वारा युधिष्ठिरको सारा धन लौटाकर और आश्वासन दे उन्हें इन्द्रप्रस्थ लौट जानेका आदेश (**सभा० ७३ अध्याय**) । इनकी पुनः जूएके लिये स्वीकृति (**सभा० ७४ । २४**) । इन्हें गान्धारीकी चेतावनी (**सभा० ७५ अध्याय**) । प्रजाके शोकके विषयमें इनका विदुरसे संवाद (**सभा० ८० । ३५के बाद । दा०पाठ**) इनकी चिन्ता तथा संजयसे बातचीत (**सभा० ८१ अध्याय**) । इनके द्वारा विदुरकी सलाहका विरोध (**वन० ४ । १८—२१**) । विदुरको बुलानेके लिये इनका संजयको आदेश (**वन० ६ । ५—१०**) । इनकी विदुरसे क्षमा-प्रार्थना (**वन० ६ । २१**) । इनका पाण्डवोंके विषयमें मैत्रेयजीसे प्रश्न करना (**वन० १० । ९**) । इनका संजयके सम्मुख पुत्रोंके लिये चिन्ता करना (**वन० ४८ अध्याय**) । इनका पाण्डवोंका पराक्रम सुनकर संतप्त होना (**वन० ४९ । १४—२३**) । इनका पाण्डवोंके पराक्रम सुनकर भयभीत होना (**वन० ५१ । ४५-४६**) । पाण्डवोंका समाचार सुनकर इनके खेदयुक्त और चिन्तापूर्ण उद्गार (**वन० २३६ अध्याय**) । इनका दुर्योधन-

महाराज धृतराष्ट्र

को घोषयात्राके लिये अनुमति देना (वन० २३९ । २२)। द्रुपद-पुरोहितको सत्कारके साथ विदा करना (उद्योग० २१ । २१)। संजयसे पाण्डवपक्षके वीरोंका वर्णन करते हुए संजयको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना (उद्योग० २२ अध्याय)। संजयकी बात सुनकर चिन्ताके कारण जागरण और विदुरको बुलवाकर उनसे कल्याणकी बात पूछना (उद्योग० ३३ । ९-११)। इनका संजयसे युधिष्ठिरके सहायकोंके विषयमें प्रश्न (उद्योग० ५० । ९) । भीमसेनके पराक्रमसे डरकर इनका विलाप करना (उद्योग० ५१ अध्याय) । इनके द्वारा अर्जुनके पराक्रमसे प्राप्त होनेवाले भयका वर्णन (उद्योग० ५२ अध्याय) । कौरवसभामें युद्धसे भय दिखाकर शान्तिका प्रस्ताव (उद्योग० ५३ । १४-१५)। पाण्डवोंकी युद्ध-तैयारी सुनकर इनका विलाप (उद्योग० ५७ । २६-३५) । दुर्योधनको पाण्डवोंसे संधि कर लेनेके लिये समझाना (उद्योग० ५८ । २—९) । भीमके पराक्रमका वर्णन करके अपने पक्षके अन्य राजाओंको भय दिखाना (उद्योग० ५८ । १९-२८) । अपने पक्षकी अपेक्षा पाण्डव-पक्षको अधिक शक्तिशाली समझकर दुर्योधनको संधिके लिये समझाना (उद्योग० ६० अध्याय) । इनके द्वारा दुर्योधनको संधिकी सलाह (उद्योग० ६५ अध्याय) । संजयसे दोनों पक्षोंके बला-बलके विषयमें प्रश्न (उद्योग० ६७ । ४-५) । इनके द्वारा श्रीकृष्णका गुणगान (उद्योग० ७१ अध्याय) । श्रीकृष्णके सत्कारके लिये दुर्योधनको आज्ञा देना (उद्योग० ८५ । ७-१०) । विदुरसे श्रीकृष्णकी अगवानी करने, भेंट देने तथा उन्हें दुःशासनके महलमें ठहरानेका विचार प्रकट करना (उद्योग० ८६ अध्याय) । श्रीकृष्णको कैद करनेकी बात सुनकर दुर्योधनका विरोध करना (उद्योग० ८८ । १७-१८) । इनके द्वारा राजमहलमें श्रीकृष्णका आतिथ्य (उद्योग० ८९ । १८-१९) । दुर्योधनको समझानेके लिये श्रीकृष्णसे अनुरोध (उद्योग० १२४ । २-७) । दुर्योधनको समझाना (उद्योग० १२५ । २३-२७) । गान्धारीसे दुर्योधनकी उद्दण्डता बताना (उद्योग० १२९ । ७-८) । श्रीकृष्णको कैद करनेसे दुर्योधनको रोकना (उद्योग० १३० । ३४-३९) । श्रीकृष्णके विश्वरूप-दर्शनके लिये उनसे आँखकी याचना और नेत्र पाकर भगवत्स्वरूप-दर्शनसे कृतार्थ होना (उद्योग० १३१ । १८-२१) । कुरुक्षेत्रमें कौरव-पाण्डवके पड़ाव पड़ जानेपर आगेके समाचारके विषयमें संजयसे पूछना (उद्योग० १५९ । ३) । व्यासजीसे विजयसूचक लक्षणोंके विषयमें पूछना (भीष्म० ३ । ६४) । संजयसे पृथ्वीकी महिमा पूछना (भीष्म० ४ । ३—८) । संजयसे भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनकर इनका विलाप (भीष्म० १४ अध्याय) । संजयसे इनका युद्धका सारा वृत्तान्त सुनना (भीष्मपर्वसे शल्यपर्व तक) अपनी सेनाको मारी जाती सुनकर इनकी चिन्ता (भीष्म० ७६ अध्याय) । द्रोणाचार्यकी मृत्यु सुनकर इनका शोकसे व्याकुल होना (द्रोण० अध्याय ९ से १० तक) । इनके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमाका वर्णन (द्रोण० ११ अध्याय) । अर्जुनकी जयद्रथवधकी प्रतिज्ञापर इनका विलाप करना (द्रोण० ८५ अध्याय) । सात्यकिद्वारा अपनी सेनाका संहार सुनकर विषाद करना (द्रोण० ११४ । १—४६) । इनके द्वारा भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा (द्रोण० १३५ । १—२४) । संजयसे कर्णद्वारा अर्जुनपर शक्ति न छोड़े जानेका कारण पूछना (द्रोण० १८२ । १—१०) । कर्णकी मृत्यु सुनकर शोकाकुल होना (कर्ण० ४ अध्याय) । कर्णकी मृत्यु सुनकर विलाप करना और उसके वधका विस्तृत वर्णन करनेके लिये संजयसे कहना (कर्ण० अध्याय ८ से ९ तक) । कर्णवधका समाचार सुनकर मोहित होना (कर्ण० ९६ । ५४) । शल्य और दुर्योधनके वधका समाचार सुनकर मूर्छित होना (शल्य० १ । ३९-४०) । इनका विलाप करना और युद्धका समाचार पूछना (शल्य० २ अध्याय) । युद्धकी समाप्तिपर इनका विलाप (स्त्री० १ । १०—२१) । व्यासजीसे अपना दुःख बताकर विलाप करना (स्त्री० ८ । ६-११) । संजयकी बात सुनकर इनका मूर्छित होना (स्त्री० ९ । ८) । स्त्रियों और प्रजालोगोंके साथ रण-भूमिमें जानेके लिये नगरसे बाहर निकलना (स्त्री० १० । १६) । भीमसेनकी लोहमयी मूर्तिको तोड़ना (स्त्री० १२ । १७) । पाण्डवोंको हृदयसे लगाना (स्त्री० १३ । १७) । युधिष्ठिरसे मरे हुए लोगोंकी संख्या और गतिके विषयमें प्रश्न करना (स्त्री० २६ । ८, ११, १८) । युधिष्ठिरसे मरे हुए लोगोंके दाह-संस्कार करनेको कहना (स्त्री० २६ । २१-२३) । युद्धमें मारे गये सगे-सम्बन्धियोंका श्राद्ध करना (शान्ति० ४२ । २-३) । दुर्योधनको शीलका उपदेश (शान्ति० १२४ अध्याय) । शोकविह्वल युधिष्ठिरको समझाना (आश्व० १ । ८—२०) । भाइयोंसहित युधिष्ठिर तथा कुन्ती आदि देवियोंके द्वारा गान्धारीसहित धृतराष्ट्रकी सेवा (आश्रम० १ अध्याय) । पाण्डवोंका गान्धारीसहित धृतराष्ट्रके अनुकूल बर्ताव(आश्रम० २ अध्याय)। भीमकी मर्मभेदिनी बातोंसे व्यथित हुए धृतराष्ट्र का गान्धारीसहित वनमें जानेका उद्योग एवं युधिष्ठिरसे अनुमति देनेके लिये अनुरोध (आश्रम० ३ । १—४०) । राजा धृतराष्ट्रका उपवाससे दुर्बल होनेके कारण बोलनेमात्रसे

थककर गान्धारीका सहारा ले अचेत सा होकर लेट जाना, राजा युधिष्ठिरके हाथ फेरनेसे इनका सचेत होना और उनसे पुनः हाथ फेरने और हृदयसे लगानेके लिये कहना (**आश्रम० ३ । ६१–७३**) । इनका युधिष्ठिरको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघना और उनसे तपस्याके लिये पुनः अनुमति माँगना । युधिष्ठिरका इनसे अन्न ग्रहण करनेके लिये कहना और इनका वनमें जानेकी अनुमति दे देनेकी शर्तपर ही भोजन करनेको उद्यत होना (**आश्रम० ३ । ७५–८६**) । व्यासजीके समझानेपर युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेकी अनुमति देना और उनसे भोजन करनेकी प्रार्थना करना (**आश्रम० ४ अध्याय**) । धृतराष्ट्रद्वारा राजा युधिष्ठिरको राजनीतिका उपदेश (**आश्रम० अध्याय ५ से ७ तक**) । धृतराष्ट्रका कुरुजाङ्गलदेशकी प्रजासे वनमें जानेकी आज्ञा माँगना और अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करना (**आश्रम० अध्याय ८ से ९ तक**) । प्रजाकी ओरसे साम्ब नामक ब्राह्मणका धृतराष्ट्रको उत्तर देना (**आश्रम० १० अध्याय**) । धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे श्राद्ध करनेके लिये धन माँगना (**आश्रम० ११ । १–६**) । युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना (**आश्रम० १२ । ४५**) । विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरका उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना (**आश्रम० १३ अध्याय**) । राजा धृतराष्ट्रके द्वारा मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध एवं विशाल दानयज्ञका अनुष्ठान (**आश्रम० १४ अध्याय**) । गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका वनको प्रस्थान, कुन्तीका गान्धारीका हाथ अपने कंधेपर रखकर जाना, पाण्डवों, द्रौपदी आदि स्त्रियों और पुरवासियोंका रोते हुए इनके पीछे-पीछे जाना (**आश्रम० १५ अध्याय**) । राजा धृतराष्ट्रका पुरवासियोंको लौटाना, कृपाचार्य और युयुत्सुको युधिष्ठिरके हाथों सौंपना (**आश्रम० १६ । २–५**) । कुन्तीसहित गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका वनके मार्गमें गङ्गातटपर निवास करना (**आश्रम० १८ । १६–२५**) । धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटसे कुरुक्षेत्रमें जाना और शतयूपके आश्रमपर निवास करना (**आश्रम० १९ अध्याय**) । नारदजीका धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना और इन्हें मिलनेवाली गतिका भी वर्णन करना (**आश्रम० २० अध्याय**) । धृतराष्ट्र आदिके लिये पुरवासियों तथा पाण्डवोंकी चिन्ता (**आश्रम० २१ अध्याय**) । पाण्डवों तथा पुरवासियोंका वनमें जाकर कुन्ती और गान्धारीसहित धृतराष्ट्रके दर्शन करना (**आश्रम० २५ अध्याय**) । धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत (**आश्रम० २६ । १—१७**) । धृतराष्ट्रके पास महर्षि व्यासका आगमन, इनसे कुशल पूछते हुए उनके द्वारा विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन तथा इनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये आदेश प्रदान करना (**आश्रम० २८ अध्याय**) । धृतराष्ट्रका व्यासजीसे अपने मानसिक शोक एवं अशान्तिका वर्णन करना (**आश्रम० २९ । २३–३४**) । व्यासजीका धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय देना तथा उनकी आज्ञासे इन सबका गङ्गातटपर जाना (**आश्रम० ३१ अध्याय**) । व्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर धृतराष्ट्रका गङ्गाजलसे प्रकट हुए अपने पुत्रों और सगे-सम्बन्धियोंका दर्शन करना एवं प्रसन्न होना (**आश्रम० ३२ अध्याय**) । व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना (**आश्रम० ३६ अध्याय**) । कुन्ती, गान्धारीसहित धृतराष्ट्रकी तीव्र तपस्या एवं गङ्गाद्वारके वनमें इनका दावानलसे दग्ध हो जाना (**आश्रम० ३७ । १०–३२**) । धृतराष्ट्र आदिकी हड्डियोंका गङ्गामें प्रवाह तथा इनका श्राद्ध-कर्म (**आश्रम० ३९ अध्याय**) । स्वर्गलोकमें जानेपर गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका धनाध्यक्ष कुबेरके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करना (**स्वर्गा० ५ । १४**) ।

महाभारतमें आये हुए धृतराष्ट्रके नाम—आजमीढ, अम्बिकासुत, आम्बिकेय, भारत, भरतशार्दूल, भरतश्रेष्ठ, भरतर्षभ, भरतसत्तम, कौरव, कौरवश्रेष्ठ, कौरवराज, कौरवेन्द्र, कौरव्य, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलोद्वह, कुरुमुख्य, कुरुनन्दन, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गव, कुरुराज, कुरुसत्तम, कुरुवंशविवर्धन, कुरुवीर, कुरुवृद्ध, कुरुवृद्धवर्य, वैचित्रवीर्य, प्रज्ञाचक्षु आदि ।

(२) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक नाग (**आदि० ३५ । १३**) । यह वरुणकी सभामें उपस्थित होकर उनकी उपासना करता है (**सभा० ९ । ९**) । नागोंद्वारा पृथ्वीके दोहनके समय यह दोग्धा बनाया गया था (**द्रोण० ६९ । २२**) । इसे शिवजीके रथके ईषादण्डमें स्थान दिया गया था (**कर्ण० ३४ । २८**) । बलरामजीके शरीरत्यागके समय उन भगवान् अनन्त नागके स्वागतके लिये यह प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें आया था (**मौसल० ४ । १५**) ।

(३) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपपत्नी मुनिका पुत्र है (**आदि० ६५ । ४२**) । यह अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें आया था (**आदि० १२२ । ५५**) । इसे देवराज इन्द्रने अपना दूत बनाकर मरुत्तके पास यह कहनेके लिये भेजा था कि 'राजन् ! तुम बृहस्पतिको आचार्य बनाओ (संवर्तको नहीं) । अन्यथा तुमपर वज्रका प्रहार करूँगा ।' धृतराष्ट्रने वहाँ जाकर इन्द्रका संदेश सुनाया था (**आश्व० १० । २–८**) गन्धर्वराज धृतराष्ट्र ही भूतलपर धृतराष्ट्रके रूपमें उत्पन्न हुआ था (**स्वर्गा०**

४ । १५) । (४) भरतवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । ५६) । इनके कुण्डिक आदि बारह पुत्र थे (आदि० ९४ । ५८–६०) ।

धृतराष्ट्री–ताम्राकी पुत्री, इसने सभी प्रकारके हंसों, कलहंसों तथा चक्रवाकोंको जन्म दिया था (उद्योग० ८३ । ५६, ५८) ।

धृतवती (या घृतवती)–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २३, ३१) ।

धृतवर्मा–त्रिगर्तराज सूर्यवर्मा और केतुवर्माका भाई, जिसने सूर्यवर्माके पराजित होने और केतुवर्माके मारे जानेपर स्वयं ही आगे बढ़कर अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये आये हुए अर्जुनके साथ लोहा लिया था । इसके द्वारा अर्जुनपर बाणवर्षा । बाण चलानेमें उसके हाथोंकी फुर्ती देखकर अर्जुनद्वारा मन-ही-मन उसकी प्रशंसा, उसके तेजस्वी बाणसे अर्जुनके हाथमें गहरी चोट लगनेके कारण गाण्डीव धनुषका गिर जाना; इससे धृतवर्माका अट्टहास करना, तब रोषमें भरे हुए अर्जुनका बाणोंकी वर्षा करना, धृतवर्माको बचानेके लिये त्रिगर्त योद्धाओंका अर्जुनपर धावा बोलना और अर्जुनद्वारा अठारह त्रैगर्त वीरोंके मारे जानेपर धृतवर्मा आदि सभी त्रिगर्तोंका दास बनकर अर्जुनकी शरणमें आना (आश्व० ७४ । १६—३३) ।

धृतसेन–कौरवपक्षका एक राजा (शल्य० ६ । ३) ।

धृति–(१) दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री, जो धर्मकी पत्नी थीं (आदि० ६६ । १४) । नकुल तथा सहदेवकी माता माद्री इन्हींका अवतार मानी जाती हैं (आदि० ६७ । १६०) । (२) एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०) ।

धृतिमान्-कुशद्वीपका पाँचवाँ वर्ष (खण्ड) (भीष्म० १२ । १३) ।

धृतिमान् (अङ्गिरा)–एक अग्नि, जिनके लिये दर्श तथा पौर्णमास यागोंमें हविष्य-समर्पणका विधान पाया जाता है, उन अग्निदेवका नाम विष्णु है । वे अङ्गिरा-गोत्रीय माने गये हैं और भानुके तीसरे पुत्र हैं (वन० २२१ । १२) ।

धृष्टकेतु–चेदिराज शिशुपालका पुत्र, जो हिरण्यकशिपुके पुत्र अनुह्लादके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ७) । शिशुपालके मारे जानेपर उसके पुत्र धृष्टकेतुको चेदिदेशके राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया गया (सभा० ४५ । ३६) । इसका वनमें पाण्डवोंसे मिलनेके लिये आना (वन० १२ । २) । इसका अपनी बहिन करेणुमतीको लेकर अपनी नगरीको प्रस्थान (वन० २२ । ५०) । इसका पुनः वनमें पाण्डवोंसे भेंट करना (वन० ५१ । १७) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण दिया गया (उद्योग० ४ । ८; उद्योग० ४ । २०) । यह एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंके पास आया (उद्योग० १९ । ७) । संजयद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (उद्योग० ५० । ४४) । युधिष्ठिरकी सेनाके सात सेनापतियोंमेंसे एकके पदपर इसका अभिषेक किया गया था (उद्योग० १५७ । ११–१३) । प्रथम दिनके संग्राममें बाह्लीकके साथ इसका युद्ध (भीष्म० ४५ । ३८—४१) । भूरिश्रवाके साथ इसका युद्ध और पराजय (भीष्म० ८४ । ३९) । पौरवके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । १३—२४) । धृतराष्ट्रद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४३) । कृपाचार्यके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३३-३४) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । २३-२४) । अम्बष्ठके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४९-५०) । इसका वीरधन्वाके साथ युद्ध (द्रोण० १०६ । १०) । इसके द्वारा वीरधन्वाका वध (द्रोण० १०७ । १७) । इसका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा पुत्रसहित इसका वध (द्रोण० १२५ । २३—४१) । व्यासजीके आवाहन करनेपर परलोकवासी कौरव-पाण्डव वीरोंके साथ यह भी गङ्गाजलसे प्रकट हुआ था (आश्रम० ३२ । ११) । स्वर्गलोकमें जाकर यह विश्वेदेवोंमें मिल गया था (स्वर्गा० ५ । १५–१८) ।

महाभारतमें आये हुए धृष्टकेतुके नाम—चैद्य, चेदिज, चेदिप, चेदिपति, चेदिपुङ्गव, चेदिराट्, चेदिराज, शैशुपालि, शिशुपालसुत, शिशुपालात्मज आदि ।

धृष्टद्युम्न–पाञ्चालराज द्रुपदके अग्नितुल्य तेजस्वी पुत्र । यज्ञकर्मका अनुष्ठान होते समय प्रज्वलित अग्निसे धृष्टद्युम्नका प्रादुर्भाव हुआ । ये द्रोणाचार्यका विनाश करनेके लिये धनुष लेकर प्रकट हुए थे । फिर उसी वेदीसे द्रौपदी प्रकट हुई थी; अतः इन्हें उसका 'अग्रज बन्धु' कहा जाता है (आदि० ६३ । १०८–११०) । ये अग्निके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । १२६) । याजने द्रुपदकी रानीको यज्ञका हविष्य ग्रहण करनेके लिये बुलाया । महारानीने शुद्ध होकर आनेकी इच्छा प्रकट की और थोड़ी देरतक महर्षिको प्रतीक्षाके लिये कहा; परंतु याजने कहा—'रानी ! इस हविष्यको याजने तैयार किया और उपयाजने इसका संस्कार किया है; फिर इससे संतानकी उत्पत्तिरूप अभीष्टकी सिद्धि कैसे नहीं होगी ? तुम इसे लेने आओ या न आओ ।' इतना कहकर ज्यों ही याजने उस संस्कारयुक्त हविष्यकी अग्निमें आहुति दी, त्यों ही उस प्रज्वलित अग्निसे ये एक तेजस्वी कुमार-

रूपसे प्रकट हुए (आदि० १६६ । ३६--३९) । इनके अङ्गोंकी कान्ति अग्निकी ज्वालाके समान उद्भासित हो रही थी । इनके मस्तकपर किरीट, अङ्गोंमें उत्तम कवच तथा हाथोंमें खड्ग, बाण और धनुष शोभा पाते थे । ये गर्जना करते हुए एक श्रेष्ठ रथपर जा चढ़े मानो युद्धकी यात्राके लिये जा रहे हों, इससे पाञ्चालोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । ये 'साधु-साधु' कहकर इन्हें शाबाशी देने लगे (आदि० १६६ । ४०-४१) । इनके जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी—'यह कुमार पाञ्चालोंका भय दूर करेगा; द्रोणवधके लिये इसका प्राकट्य हुआ है (आदि० १६६ । ४२-४३) । इनका धृष्टद्युम्न नाम होनेका कारण (आदि० १६६ । ५२) । द्रोणाचार्यद्वारा इनकी शिक्षा (आदि० १६६ । ५५) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इनकी घोषणा (आदि० १८४ । ३५-३६) । इनका द्रौपदीको स्वयंवरमें आये हुए राजाओंका परिचय देना (आदि० १८५ अध्याय) । इनके द्वारा गुप्तरूपसे पाण्डवोंके व्यवहारोंका निरीक्षण (आदि० १९१ । १-१२) । द्रौपदीके सम्बन्धमें चिन्तित हुए द्रुपदको इनका आश्वासन देना (आदि० १९२ । १२) । व्यासजीके पूछनेपर द्रौपदीके विवाहके सम्बन्धमें इनकी सम्मति (आदि० १९५ । १०) । युधिष्ठिरके यहाँसे राजा विराटके विदा होनेपर धृष्टद्युम्न उन्हें पहुँचाने गये थे । (सभा० ४५ । ४७) । दुर्योधनद्वारा इनकी स्थिरताका वर्णन (सभा० ५३ । १९) । इनके द्वारा रोती हुई द्रौपदीको आश्वासन (वन० १२ । १३४-१३५) । इनका द्रौपदीकुमारोंको साथ लेकर अपनी राजधानीको प्रस्थान (वन० २२ । ४९) । इन्होंने काम्यकवनमें जाकर पाण्डवोंसे भेंट की (वन० ५१ । १७) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें इनका आगमन (विराट० ७२ । १८) । संजयद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (उद्योग० ५० । १६) । ये पाण्डवदलके प्रधान सेनापति चुने गये थे (उद्योग० १५७ । १३) । इनका उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (उद्योग० १६३ । ४५—४७) । इनके द्वारा अपने पक्षके महारथियोंको समान प्रतिपक्षीके साथ युद्ध करनेका आदेश और उनका नामनिर्धारण (उद्योग० १६४ । ५—१०) । प्रथम दिनके संग्राममें द्रोणाचार्यके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ३१—३४) । भीष्मके साथ युद्ध (भीष्म० ४७ । ३१) । दूसरे दिनके युद्धके लिये इनके द्वारा क्रौञ्चारुणव्यूहका निर्माण (भीष्म० ५० । ४२—५७) । द्रोणाचार्यके साथ घोर युद्ध (भीष्म० ५३ अध्याय) । कलिङ्गोंसे युद्ध करते समय भीमसेनकी रक्षामें पहुँचना (भीष्म० ५४ । ९९) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध (भीष्म० ६१ । १९) । पौरव-पुत्र दमनका वध (भीष्म० ६१ । २०) । शल्यके पुत्रका वध (भीष्म० ६१ । २९) । शल्यके साथ युद्ध और घायल होना (भीष्म० ६२ । ८—१२) । इनके द्वारा मकरव्यूहका निर्माण (भीष्म० ७५ । ४—१२) । प्रमोहनास्त्रद्वारा धृतराष्ट्र-पुत्रोंपर इनकी विजय (भीष्म० ७७ । ४५) । द्रोणाचार्यद्वारा पराजित होना (भीष्म० ७७ । ६९-७०) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (भीष्म० ८२ । ५३) । विन्द-अनुविन्दके साथ युद्ध (भीष्म० ८६ । ६४-६५) । कृतवर्माके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । ९—१०; भीष्म० १११ । ४०—४४) । भीष्मवधके लिये अपनी सेनाको प्रोत्साहन (भीष्म० ११० । २०—२३) । भीष्मके साथ युद्ध (भीष्म० ११४ । ३९) । द्रोणाचार्यके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ४५—५४; द्रोण० ७ । ४८—५४) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४०—४२, ६०—६२) । सुशर्माके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३७—३९) । द्रोणाचार्यसे भयभीत युधिष्ठिरको आश्वासन (द्रोण० २० । २२-२३) । दुर्मुखके साथ युद्ध (द्रोण० २० । २६—२९) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४) । द्रोणपर आक्रमण (द्रोण० ३१ । १७) । इनके द्वारा चन्द्रवर्मा और निषधराज बृहत्क्षत्रका वध (द्रोण० ३२ । ६५-६६) । द्रोणाचार्यके साथ घोर युद्ध (द्रोण० ९५ तथा ९७ अध्याय) । द्रोणाचार्यको मूर्च्छित करके उनके रथपर चढ़ जाना (द्रोण० १२२ । ५६—५८) । द्रोणाचार्यद्वारा पराजय (द्रोण० १२२ । ७१-७२) । भीमसेनके कहनेसे युधिष्ठिरकी रक्षाका भार स्वीकार करना (द्रोण० १२७ । १०-११) । अश्वत्थामाके साथ युद्धमें पराजित होना (द्रोण० १६० । ४१—५३) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध(द्रोण० १७० । २—१२) । इनके द्वारा द्रुमसेनका वध (द्रोण० १७० । २२) । कौरवसेनाकी पराजय (द्रोण० १७१ । ४९—५२) । कर्णद्वारा पराजित होना (द्रोण० १७३ । ७) । द्रोणाचार्यके वधकी प्रतिज्ञा (द्रोण० १८६ । ४६) । दुःशासनको हराकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण (द्रोण० १८९ । १—६) । द्रोणाचार्यके साथ भयंकर संग्राम (द्रोण० अध्याय १९१ से १९२ । २६—३५ तक) । इनके द्वारा द्रोणाचार्यका सिर काटा जाना (द्रोण० १९२ । ६२—६३) । इनका अर्जुनके समक्ष द्रोणवधरूपी अपने कृत्यका समर्थन करना (द्रोण० १९७ । २४—४४) । सात्यकिके कटुवचनोंका उत्तर देना (द्रोण० १९८ । २५—४५) । अश्वत्थामाद्वारा पराजय (द्रोण० २०० । ४३) । इनके द्वारा गजसेनाका संहार (कर्ण० २२ । २—७) ।

कृपाचार्यसे भयभीत होना (कर्ण० २६ । १६–१८)। कृतवर्माको मूर्च्छित करना (कर्ण० ५४ । ४० के बाद दा० पाठ)। दुर्योधनको युद्धमें परास्त करना (कर्ण० ५६ । ३४-३५)। कर्णके साथ युद्ध (कर्ण० ५९ । ७–१४)। अश्वत्थामाके साथ युद्धमें जीते-जी पकड़ा जाना (कर्ण० ५९ । ३९–५३)। दुःशासनके काबूमें पड़ जाना (कर्ण० ६१ । ३३)। कृपाचार्यके साथ युद्ध (शल्य० ११।३८)। इनके द्वारा शाल्वके हाथीका वध (शल्य० २० । २५)। इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (शल्य० २५। २३)। अश्वत्थामाद्वारा इनका रात्रिमें वध (सौप्तिक० ८ । २६)। इनका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३४)। इनका श्राद्धकर्म (शान्ति० ४२ । ४-५)। स्वर्गमें जाकर ये अग्निके स्वरूपमें मिल गये (स्वर्गा०५ । २१)।

महाभारतमें आये हुए धृष्टद्युम्नके नाम–द्रौपदि, द्रोण-हन्ता, पाञ्चाल, पाञ्चालदायाद, पाञ्चालकुलवर्धन, पाञ्चाल-मुख्य, पाञ्चालपुत्र, पाञ्चालराट, पाञ्चालराज, पाञ्चालतनय, पाञ्चाल्य, पाञ्चाल्यपुत्र, पार्षत, यज्ञसेनसुत, याज्ञसेनि आदि।

धृष्णु–(१) वैवस्वत मनुके द्वितीय पुत्र (आदि० ७५ । १५)। (२) एक प्रजापति, जो कविके पुत्र हैं। इनको शुभलक्षण एवं ब्रह्मज्ञानी माना गया है (अनु० ८५ । १३३)।

धेनुक–(१) एक भयङ्कर दैत्य, जो तालवनमें निवास करता था और गधेका रूप धारण करके रहता था। इसे बलदेवजीने मार गिराया था (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८००, कालम २)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ५० । ५१)।

धेनुकाश्रम–एक तीर्थ, यहाँ मृत्युने तप किया था (द्रोण० ५४ । ८; शान्ति० २५८ । १५)।

धेनुतीर्थ–एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ; वहाँ तिलमयी धेनुका दान करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिलता है और सोम-लोककी प्राप्ति होती है (वन० ८४ । ८७)।

धौतमूलक–चीनोंके कुलमें उत्पन्न हुआ एक कुलाङ्गार नरेश (उद्योग० ७४ । १४)।

धौम्य–(१) उत्कोचक तीर्थमें तपस्या करनेवाले एक महर्षि, देवल ऋषिके अनुज, पाण्डवोंके पुरोहित (आदि० १८२ । २)। पाण्डवोंद्वारा इनका पुरोहितरूपमें वरण (आदि० १८२ । ६)। इन्होंने वेदीपर प्रज्वलित अग्निकी स्थापना करके उसमें मन्त्रोंद्वारा आहुति दी और युधिष्ठिरको बुलाकर कृष्णाके साथ उनका गँठबन्धन कर दिया। उन दोनों दम्पतिका पाणिग्रहण कराकर उनसे अग्निकी परिक्रमा करवायी और अन्य शास्त्रोक्त विधियोंका अनुष्ठान करके उनका विवाह-कार्य सम्पन्न कर दिया। इसी प्रकार क्रमशः सभी पाण्डवोंका विवाह द्रुपदकुमारी कृष्णाके साथ कराया (आदि० १९७ । ११–१४)। इन्होंने पाण्डवोंके पुत्रोंके उपनयनादि संस्कार कराये थे (आदि० २२० । ८७)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ये होता थे (सभा० ३३ । ३५)। इन्होंने युधिष्ठिरका अभिषेक किया (सभा० ५३ । १०)। पाण्डवोंके वनगमनके समय महर्षि धौम्य हाथमें कुशा लेकर उनके आगे-आगे जाते तथा मार्गमें यमसाम और रुद्रसामका गान करते थे (सभा० ८० । ८)। इनकी सूर्योपासना-के लिये युधिष्ठिरको प्रेरणा (वन० ३ । ५–१२)। इनके द्वारा सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन (वन० ३ । १६–१८)। किर्मीरकी मायाका नाश (वन० ११ । २०)। इनके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति तीर्थोंका वर्णन (वन० अध्याय ८७ से ९० तक)। युधिष्ठिरके प्रति ब्रह्मा, विष्णु आदिके स्थानों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन (वन० १६३ अध्याय)। द्रौपदीका अपहरण करनेपर जयद्रथको फटकारना और द्रौपदीकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना (वन० २६८ । २६-२७)। अज्ञातवासके लिये चिन्तित हुए युधिष्ठिरको समझाना (वन० ३१५ । ११–२१)। पाण्डवोंको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना (विराट० ४ । ७–५१)। अज्ञात-वासके लिये यात्रा करते समय पाण्डवोंकी अग्निहोत्र-सम्बन्धी अग्निको प्रज्वलित करके धौम्यने उनकी समृद्धि-वृद्धि, राज्यलाभ तथा भूलोक-विजयके लिये वेद-मन्त्र पढ़कर हवन किया। जब पाण्डव चले गये, तब जपयज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ धौम्यजी उस अग्निहोत्रसम्बन्धी अग्निको साथ लेकर पाञ्चालदेशमें चले गये (विराट० ४ । ५४–५७)। इन्होंने युद्धमें मारे गये पाण्डवपक्षके सगे-सम्बन्धी जनोंका दाहकर्म कराया था (स्त्री० २६ । २४–३०)। युधिष्ठिरद्वारा धार्मिक कार्योंके लिये नियुक्ति (शान्ति० ४१ । १४)। इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२७ । १५-१६)। (२) एक ऋषि, जिन्होंने रातमें सत्यवान्‌के न लौटनेपर उनके पिता राजा द्युमत्सेनको सत्यवान्‌के जीवित होनेका विश्वास दिलाया था (वन० २९८ । १९)। हस्तिनापुरके मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)। ये शिवभक्त उपमन्यु ऋषिके छोटे भाई हैं (अनु० १४ । ११२)।

धौम्र–एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म-जीके पास आये थे (शान्ति० ४७ । ११)।

ध्रुव–(१) धर्मद्वारा धूम्राके गर्भसे उत्पन्न द्वितीय वसु (आदि० ६६ । १९)। (२) नहुषके पुत्र। ययाति-

के भ्राता (आदि० ७५ । ३०) । (३) एक राजा, जो यमसभामें बैठकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १०) । (४) कौरवपक्षका एक योद्धा । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । २७) । (५) युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक राजा (द्रोण० १५८ । ३९) । (६) प्रातःसायं स्मरण करनेयोग्य एक राजा, जो महाराज उत्तानपादके पुत्र थे (अनु० १५० । ७८) ।

ध्रुवक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५) ।

ध्रुवरत्ना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ४) ।

ध्वजवती–सूर्यदेवकी आज्ञासे आकाशमें ठहरनेवाली हरिमेधामुनिकी कन्या (उद्योग० ११० । १३) ।

ध्वजिनी–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

(न)

नकुल–(१) पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र । अश्विनीकुमारोंके द्वारा माद्रीके गर्भसे उत्पन्न दो पुत्रोंमेंसे एक; ये दोनों भाई जुड़वें उत्पन्न हुए थे । दोनों ही सुन्दर तथा गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले थे (आदि० १ । ११४; आदि० ६३ । ११७; आदि० ९५ । ६३) । अनुपम रूपशाली तथा परम मनोहर नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । १११-११२) । इनकी उत्पत्ति तथा शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनका नामकरण-संस्कार (आदि० १२३ । १७–२१) । वसुदेवके पुरोहित काश्यपद्वारा इनके उपनयन आदि संस्कार तथा राजर्षि शुकद्वारा इनका अस्त्रविद्याका अध्ययन और ढाल तलवार चलानेकी कलामें निपुणता प्राप्त करना (आदि० १२३ । ३१ के बाद दा० पाठ) । पाण्डुकी मृत्युके पश्चात् माद्रीका अपने पुत्रों नकुल-सहदेवको कुन्तीके हाथोंमें सौंपकर पतिके साथ चितापर आरूढ़ होना (आदि० १२४ अध्याय) । शतशृङ्ग-निवासी ऋषियोंका पाँचों पाण्डवोंको कुन्तीसहित हस्तिनापुर ले जाना और उन्हें भीष्म आदिके हाथोंमें सौंपना (आदि० १२५ अध्याय) । द्रोणाचार्यका पाण्डवोंको नाना प्रकारके दिव्य एवं मानव अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा देना (आदि० १३१ । ९) । द्रुपदपर आक्रमण करते समय अर्जुनका माद्रीकुमार नकुल और सहदेवको अपना चक्र-रक्षक बनाना (आदि० १३७ । २७) । द्रोणद्वारा सुशिक्षित किये गये नकुल विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेमें कुशल होनेके कारण अपने भाइयोंको बहुत प्रिय थे और अतिरथी कहलाते थे (आदि० १३८ । ३०) । धृतराष्ट्रके आदेशसे कुन्तीसहित पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा, वहाँ उनका स्वागत और लाक्षागृहमें निवास (आदि० अध्याय १४२ से १४५ तक) । लाक्षागृहका दाह और पाण्डवोंका सुरंगके रास्ते निकल जाना, भीमका नकुल-सहदेवको गोदमें लेकर चलना (आदि० १४७ अध्याय) । पाण्डवोंको व्यासजीका दर्शन और उनका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश (आदि० १५५ अध्याय) । पाण्डवोंकी पाञ्चालयात्रा (आदि० १६९ अध्याय) । इनका द्रुपदकी राजधानीमें जाकर कुम्हारके यहाँ रहना (आदि० १८४ अध्याय) । पाँचों पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ विवाहका विचार (आदि० १९० अध्याय) । पाँचों पाण्डवोंका कुन्तीसहित द्रुपदके घरमें जाकर सम्मानित होना (आदि० १९३ अध्याय) । पाँचों भाइयोंका द्रौपदीके साथ विवाह (आदि० १९७ अध्याय) । विदुरके साथ पाण्डवोंका हस्तिना-पुरमें आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगरका निर्माण करना (आदि० २०६ अध्याय) । पाँचों भाइयोंका द्रौपदीके विषयमें नियम-निर्धारण (आदि० २११ अध्याय) । नकुलद्वारा द्रौपदीके गर्भसे शतानीकका जन्म (आदि० २२० । ७९; आदि० ९५ । ७५) । इनका चेदिराजकी कन्या करेणुमतीके साथ विवाह और इनके द्वारा उसके गर्भसे निरमित्रका जन्म (आदि० ९५ । ७९) । इनके द्वारा पश्चिमदिशाके देशोंपर विजय । नकुलके जीतकर लाये हुए खजानेका बोझ दस हजार ऊँट बड़ी कठिनाईसे ढोकर ला सके थे (सभा० ३२ अध्याय) । राजसूय यज्ञके बाद ये गान्धारराज सुबल और उनके पुत्रोंको पहुँचाने गये थे (सभा० ४५ । ४९) । युधिष्ठिरके द्वारा ये जूएके दाँवपर रखे और हारे गये थे (सभा० ६५ । १२) । ये अपने शरीरमें धूल लपेटकर वनकी ओर गये थे (सभा० ८० । १८) । इनकी अर्जुनके लिये चिन्ता (वन० ८० । २३-२६) । जटासुरने इनका अपहरण किया था (वन० १५७ । १०) । इनके द्वारा क्षेमङ्कर, महामुख और सुरथका वध (वन० २७१ । १६–२२) । द्वैतवनमें जल लानेके लिये जाना और सरोवरपर गिरना (वन० ३१२ । ११) । इनका विराट-नगरमें ग्रन्थिक नामसे रहनेकी बात बताना (विराट० ३ । ४) । इनके 'नकुल' नामकी निरुक्ति (विराट० ५ । २५) । राजा विराटके यहाँ रहनेके लिये उनसे प्रार्थना करना (विराट० १२ । ८ के बाद दा० पाठ) । इनका त्रिगर्तोंके साथ युद्ध (विराट० ३३ । ३४) । दूत बनकर जानेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णसे इनका समयोचित कर्तव्य करनेके लिये निवेदन (उद्योग० ८० अध्याय) । द्रुपदको प्रधान सेनापति बनानेके लिये इनका प्रस्ताव (उद्योग० १५१ । १६) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर (उद्योग० १६३ । ३८) । कवच उतारकर कौरवसेनाकी ओर

पैदल ही जाते हुए युधिष्ठिरसे इनका प्रश्न करना (भीष्म० ४३ । १८) । प्रथम दिनके संग्राममें दुःशासनके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५।२२–२४)। शल्यके साथ युद्धमें इनका घायल होना (भीष्म० ८३ । ४५ के बाद दा० पाठ) । इनके द्वारा अश्वसेनाका संहार (भीष्म० ८९ । ३२–३४) । इनका शकुनिके साथ युद्ध (भीष्म० १०५ । ११-१२) । विकर्णके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११० । ११-१२; भीष्म० १११ । ३४–३६) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । २९-३०) । शल्यके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३१-२२) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ७) । शकुनिके साथ इनका युद्ध (भीष्म० ९६ । २१–२५) । विकर्णके साथ इनका युद्ध (द्रोण० १०६ । १२) । इनके द्वारा विकर्णकी पराजय (द्रोण० १०७ । ३०) । इनके द्वारा शकुनिकी पराजय (द्रोण० १६९ । १६) । दुर्योधनको युद्धमें पराजित करना (द्रोण० १८७ । ५०–५५) । धृष्टद्युम्नकी रक्षामें जाना (द्रोण० १८९ । ७) । इनके द्वारा भगदत्तके पुत्रके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । २८) । इनके द्वारा अङ्गराजका वध (कर्ण० २२ । १८) । कर्णसे पराजित हो भागना और उसके द्वारा जीवित छोड़ा जाना (कर्ण० २४ । ४५–५१) । सुषेणके साथ युद्ध (कर्ण० ४८ । ३४–४०) । दुर्योधन-के साथ युद्धमें घायल होना (कर्ण० ५६ । ७—१८) । वृषसेनके साथ युद्ध (कर्ण० ६१ । ३६–३९) । कर्णद्वारा पराजय (कर्ण० ६३ । १३) । वृषसेनके साथ युद्ध (कर्ण० ८४ । १९–३५) । इनके द्वारा कर्णके तीन पुत्रों (चित्रसेन, सत्यसेन और सुषेण) का वध (शल्य० १० । १९–५०) । शल्यके साथ युद्ध (शल्य० अध्याय १३ तथा १५ अध्याय) । युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्रौपदीको बुलानेके लिये जाना (सौप्तिक० १० । २८) । गृहस्थधर्मकी प्रशंसा करते हुए राजा युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० १२ अध्याय) । युधिष्ठिरद्वारा सेनाध्यक्षके पदपर नियुक्ति (शान्ति० ४१ । १२) । युधिष्ठिरद्वारा इन्हें दुर्मर्षणके राजभवनकी प्राप्ति (शान्ति० ४४ । १०–११) । भीष्मजीसे खड्गकी उत्पत्ति आदिके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० १६६ । २–६) । युधिष्ठिरके पूछनेपर इनका त्रिवर्गमें अर्थकी प्रधानता बताना (शान्ति० १६७ । २२–२९) । अश्वमेधयज्ञके समय ये भीमसेनके साथ नगरकी रक्षाके कार्यमें नियुक्त थे (आश्व० ७२ । १९) । कुन्तीका वन जाते समय इन्हें युधिष्ठिरको सौंपना (आश्रम० १६ । १५) । वनमें मिलनेके लिये आये हुए नकुलको देखकर कुन्ती बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़ी थीं (आश्रम० २४ । ११) । संजयका ऋषियोंसे इनका परिचय देना (आश्रम० २५ । ८) । इनकी पत्नीका परिचय देना (आश्रम० २५ । १४) । महाप्रस्थानके पथमें इनका गिरना और भीमसेनके पूछनेपर युधिष्ठिरका इनके पतनका कारण बताना (महाप्र० २ । १२–१७) । स्वर्गमें जानेपर युधिष्ठिरका इन्हें देखनेकी इच्छा प्रकट करना (स्वर्गा० २ । १०) । युधिष्ठिरने नकुल, सहदेवको तेजस्वीरूपमें अश्विनीकुमारोंके स्थानपर विराजमान देखा (स्वर्गा० ४ । ९) । (२) युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञको तुच्छ बतानेवाला एक नेवला (आश्व० ९० अध्याय) ।

नग्नजित्-(१) एक क्षत्रिय राजा, जो 'इषुपाद' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २१) । यह दिग्विजयके समय कर्णद्वारा पराजित हुआ था (वन० २५४ । २१) । यह गान्धारदेशका ही एक राजा था, भगवान् श्रीकृष्णने इसके समस्त पुत्रोंको पराजित किया था (उद्योग० ४८ । ७५) । (२) एक दैत्य, जो प्रह्लादका शिष्य था और भूतलपर राजा 'सुबल' के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६३ । ११) ।

नग्निका-जिसमें ऋतुधर्म (रजोधर्म) का प्राकट्य न हुआ हो, ऐसी कुमारी कन्या (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९३) ।

नदीज एक प्राचीन राजा । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय हुआ था (उद्योग० ४ । १५) ।

नन्द (नन्दक)-(१) धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । ९६; आदि० ११६ । ५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १९) । (२) एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १२) । (३) गोकुल एवं नन्दगाँवमें रहनेवाले गोपोंके राजा (नन्दबाबा), जो भगवान् श्रीकृष्णके पालक पिता थे (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ) । वसुदेवजीने अपने नवजात बालक श्रीहरिको नन्दगोपके घरमें छिपा दिया था । श्रीकृष्ण बहुत वर्षोंतक नन्दगोपके ही घरमें रहे (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८) । नन्दगोपके कुलमें यशोदाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो साक्षात् जगज्जननी दुर्गाका स्वरूप मानी जाती है । युधिष्ठिरने विराटनगरमें जाते समय उसका चिन्तन किया और देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर दिया (विराट० ६ अध्याय) । अर्जुनने दुर्गाकी स्तुति करते समय नन्दगोपके कुलमें उत्पन्न दुर्गास्वरूपा उस कन्याका स्तवन किया और देवीद्वारा उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद प्राप्त हुआ (भीष्म० २३ अध्याय) । (४) युधिष्ठिरकी ध्वजापर बजनेवाले

दो मृदङ्गोंमेंसे एकका नाम, दूसरे मृदङ्गका नाम उपनन्दक था (वन० २७० । ७) । (५) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) । (६) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५) । (७) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ६९) ।

नन्दक–(१) एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । ११) । (२) (नन्द–) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ३) । इसे भीमसेनने गहरी चोट पहुँचायी थी (भीष्म० ६४ । १५) (देखिये नन्द नं० १) । (३) भगवान् श्रीकृष्णका खड्ग (अनु० १४७ । १५) ।

नन्दन–(१) स्वर्गका एक दिव्य वन, जो अप्सराओंसे सेवित है (वन० ४३ । ३) । नन्दनवनमें जानेके अधिकारी—जो सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके जितेन्द्रिय-भावसे आवर्तनन्दा और महानन्दा तीर्थका सेवन करता है, उसकी स्वर्गस्थ नन्दनवनमें अप्सराएँ सेवा करती हैं (अनु० २५ । ४५) । जो लोग नृत्य और गीतमें निपुण हैं, कभी किसीसे याचना नहीं करते तथा सज्जनोंके साथ विचरण करते हैं ऐसे लोगोंके लिये ही यह नन्दनवन है (अनु० १०२ । २४) । (२) अश्विनीकुमारों-द्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम वर्धन था (शल्य० ४५ । ३८) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८) । (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ७६) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ६९) ।

नन्दा–(१) धर्मके तीसरे पुत्र हर्षकी पत्नी (आदि० ६६ । ३३) । (२) (अनुमानतः) नैमिषारण्यके आसपास वहाँसे पूर्व दिशामें स्थित एक नदी, इसके पास ही अपरनन्दा भी है । अर्जुन पूर्व दिशाके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए नन्दा और अपरनन्दाके तटपर आये थे (आदि० २१४ । ६-७) । धौम्यने पूर्व दिशाके तीर्थोंके वर्णनके प्रसङ्गमें युधिष्ठिरके समक्ष इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—कुण्डोद नामक रमणीक पर्वत बहुत फल-मूल और जलसे सम्पन्न है । जहाँ प्यासे हुए निषधनरेश नलको जल और शान्ति उपलब्ध हुई थी, वहीं तपस्वीजनोंसे सुशोभित पवित्र देववन नामक क्षेत्र है । जहाँ पर्वतके शिखरपर बाहुदा और नन्दा नदियाँ बहती हैं (वन० ८७ । २५–२७) । भाइयोंसहित युधिष्ठिरने लोमशजीके साथ नन्दा और अपर-नन्दाकी यात्रा की । वे हेमकूट पर्वतपर आये और वहाँ अद्भुत बातें देखीं । वहाँ हवाके बिना भी बादल उत्पन्न होते और अपने आप हजारों ओले गिरने लगते थे । खिन्न मनुष्य उस पर्वतपर चढ़ नहीं सकते थे । प्रायः प्रतिदिन वहाँ तेज हवा चलती और रोज रोज मेघ वर्षा करता था । सबेरे-शाम उस पर्वतपर अग्निदेव प्रज्वलित दिखायी देते थे । वहाँ मक्खियाँ लोगोंको डंक मारती थीं । यह सब ऋषभ नामक प्राचीन तपस्वी ऋषिके आदेशसे होता है- ऐसा लोमशजीने बताया । नन्दाके तटपर पहले देवतालोग आये थे । उस समय उनके दर्शनकी इच्छासे मनुष्य सहसा वहाँ आ पहुँचे । देवता यह नहीं चाहते थे; अतः उन्होंने उस पर्वतीय प्रदेशको जनसाधारणके लिये दुर्गम बना दिया । तबसे साधारण मनुष्योंके लिये इस ऋषभकूट या हेमकूट पर्वतपर चढ़ना तो दूर रहा, इसे देखना भी कठिन हो गया । जिसने तपस्या नहीं की है, वह इस महान् पर्वतका दर्शन नहीं कर सकता । यहाँ अब भी देवता-ऋषि निवास करते हैं । इसीलिये सायं-प्रातः अग्नि प्रज्वलित होती है । यहाँ नन्दामें गोता लगानेसे मनुष्योंका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है । युधिष्ठिरने वहाँ स्नान करके कौशिकी (कोसी) तीर्थकी यात्रा की थी (वन० ११० । १—२१) । इस तीर्थमें मृत्युने तपस्या की थी (द्रोण० ४५ । २०-२१) ।

नन्दाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्या अम्बाने कठोर व्रतका आश्रय ले स्नान किया था (उद्योग० १८६ । २६) ।

नन्दि–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे (आदि० १२२ । ५६) ।

नन्दिकुण्ड–यहाँ स्नानसे भ्रूणहत्या-जैसे पाप भी निवृत्त हो जाते हैं (अनु० २५ । ६०) ।

नन्दिग्राम–अयोध्या (फैजाबाद) से लगभग चौदह मील दक्षिणका एक ग्राम, जो भरतकुण्डके समीप है । भरतजी यहीं चरणपादुकाका सेवन करते हुए चौदह वर्षोंतक ठहरे रहे (वन० २७७ । ३९) ।

नन्दिनी–(१) कश्यपके द्वारा देवी सुरभिके गर्भसे उत्पन्न एक गौ, जो नन्दिनीके नामसे विख्यात थी (आदि० ९९ । ८) । यह गौ समस्त जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये प्रकट हुई थी और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवालोंमें श्रेष्ठ थी । वरुणपुत्र धर्मात्मा वसिष्ठने इसे अपनी होम-धेनुके रूपमें प्राप्त किया था (आदि० ९९ । ९) । मुनियोंद्वारा सेवित पवित्र एवं रमणीय तापस वनमें यह गौ निर्भय होकर चरती रहती थी । इस नन्दिनी नामक गाय-की शील-सम्पत्ति देखकर एक वसुपत्नी आश्चर्यचकित हो उठी (आदि० ९९ । १०–१४) । वसुपत्नीने अपने पतिको वह गौ दिखायी । वसुने अपनी पत्नीसे उसके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा–'यह उत्तम गौ दिव्य है यह उन्हीं महर्षि वसिष्ठकी धेनु है, जिनका यह तपोवन है

जो मनुष्य इसका दूध पी लेगा, वह दस हजार वर्षोंतक युवावस्थाके साथ जीवित रहेगा' (आदि० ९९ । १५—२०)। द्यो नामक वसुके द्वारा नन्दिनीका अपहरण (आदि० ९९ । २८)। इसका अपहरण करनेके कारण वशिष्ठद्वारा वसुओंको शाप (आदि० ९९ । ३२)। इसके लिये विश्वामित्रकी वशिष्ठसे याचना (आदि० १७४ । १६-१७)। विश्वामित्रद्वारा इसका अपहरण (आदि० १७४ । २२)। अपने विभिन्न अङ्गोंसे हूण, यवन, किरात आदि म्लेच्छोंकी सृष्टि करके इसका विश्वामित्रकी सेनाको पराजित करना (आदि० १७४ । ३२—४३)। इसके द्वारा विश्वामित्रकी सेनाके नष्ट होनेका वर्णन (शल्य० ४० । २१-२२)। (२) एक तीर्थ, जहाँ देवसेवित एक कूप है, वहाँ स्नान करनेसे नरमेध-यज्ञका पूर्ण फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । १५५)।

नन्दिवर्धन—सात्यकिके शङ्खका नाम (शल्य० ६१ । ७१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

नन्दिवेग—एक क्षत्रियवंश, जिसमें 'शम' नामवाला कुलाङ्गार नरेश उत्पन्न हुआ था (उद्योग० ७४ । १७)।

नन्दिसेन—ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे एक, शेष तीन पार्षद—लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण और कुमुदमाली थे (शल्य० ४५ । २४)।

नन्दीश्वर—भगवान् शिवके एक दिव्य पार्षद। ये कुबेरकी सभामें उपस्थित होनेवाले भगवान् शिवके वाहन हैं (सभा० १० । ३४)।

नप्ता—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३७)।

नभकानन—एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९)।

नभोद—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४)।

नमुचि—कश्यपद्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ एक दानव (आदि० ६५ । २२)। इन्द्रद्वारा इसका वध (वन० २५ । १०; वन० २९२ । ४)। रथारूढ़ इन्द्रद्वारा नमुचिकी पराजयकी चर्चा (वन० १६८ । ८१)। इन्द्रद्वारा प्रतिज्ञाभङ्ग करके मारे जानेपर इसके सिरका उनके पीछे लग जाना (शल्य० ४३ । ३७-३८)। अरुणा-सङ्गममें गोता लगानेसे उस मस्तककी सद्गति (शल्य० ४३ । ४५)। इन्द्रके प्रश्नोंका उत्तर (शान्ति० २२६ । ४—२३)।

नर—(१) एक भगवत्स्वरूप देवता, जो भगवान् नारायणके सखा हैं और पाण्डुपुत्र अर्जुनको जिनका अवतार बताया गया है (आदि० १, प्रथम श्लोक मङ्गलाचरण)। दैत्योंको अमृतसे वञ्चित करके जब देवताओंको अमृत पिलाया गया, उस समय होनेवाले देवासुर-संग्राममें नारायणसहित भगवान् नरने देवपक्षकी ओरसे आकर अपने दिव्य धनुषसे असुरोंका संहार किया था। उस महाभयङ्कर संग्राममें भगवान् नरने उत्तम सुवर्णभूषित अग्रभागवाले पंखयुक्त बाणोंद्वारा पर्वत-शिखरोंको विदीर्ण करते हुए समस्त आकाशमार्गको आच्छादित कर दिया। अन्ततोगत्वा वह अमृतकी निधि किरीटधारी भगवान् नरको रक्षाके लिये सौंप दी गयी (आदि० १९ । १९—३१)। द्रौपदीने अपनी लाज बचानेके लिये कौरव-सभामें भगवान् श्रीकृष्ण और नरको पुकारा था (सभा० ६८ । ४६)। ये एक प्राचीन ऋषि हैं। इन्होंने बदरिकाश्रममें अनेक सहस्र वर्षोंतक तप किया है (वन० ४० । १)। इन्द्रद्वारा इनके अवतारका वर्णन (वन० ४७ । १०)। जो बदरिकाश्रममें भगवान् नारायणके साथ रहकर तपस्या करते हैं, वे देवेश्वर नर ही अर्जुन हैं (वन० २७२ । २९)। इनके द्वारा दम्भोद्भवकी पराजय और पराजित हुए दम्भोद्भवको इनका उपदेश (उद्योग० ९६ । ३४—३८)। ग्रीवासे प्राणोंका निष्क्रमण होनेपर मनुष्य मुनियोंमें श्रेष्ठ नरका सांनिध्य प्राप्त करता है (शान्ति० ३१७ । ५)। स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें प्रकट हुए भगवान् वासुदेवके चार अवतारोंमें एक भगवान् नर हैं, जो अपने भाई नारायणके साथ बदरिकाश्रममें जाकर एक सुवर्णमय रथपर आसीन हो तपस्या करते हैं (शान्ति० ३३४ । ९-१०)। नारद और नर-नारायणका संवाद (शान्ति० ३३४ । १३—४५)। भगवान् शङ्करने जो प्रज्वलित त्रिशूल चलाया था, वह दक्ष-यज्ञका विध्वंस करके भगवान् नारायणकी छातीमें आ लगा। तब नारायणने हुंकार किया और वह त्रिशूल लौटकर रुद्रके हाथमें आ पहुँचा। तब रुद्रने नर और नारायणपर आक्रमण किया। नारायणने अपने हाथसे रुद्रका गला दबा दिया, अतः वे नीलकण्ठ हो गये। इसके बाद नरने उनपर सींक चलायी। वह परशु बनकर चली। रुद्रने उसे खण्डित कर दिया। अतः ये 'खण्डपरशु' कहलाये (शान्ति० ३४२ । ११०—११७)। श्वेतद्वीपसे लौटे हुए नारदके साथ श्रीनर-नारायणकी बात-चीत (शान्ति० ३४३ अध्याय)। (२) एक गन्धर्व, जो कुबेरकी सभामें रहकर धनाध्यक्षकी उपासना करते हैं (सभा० १० । १४)। (३) एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०)। (४) एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं छुया था (अनु० ११५ । ६४)।

नरक–(१) दनुका एक पुत्र, जो प्रसिद्ध दानवकुलका प्रवर्तक हुआ (आदि० ६५ । २८) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १२) । इसे इन्द्रने परास्त किया था (वन० १६८ । ८१) । (२) एक जनपद, जहाँके शासक राजा भगदत्त थे (सभा० १४ । १४) । (३) (नरकासुर) एक असुर, जो पृथ्वीका पुत्र होनेके कारण भौम या भौमासुरके नामसे विख्यात था, यह प्राग्ज्योतिषपुरका राजा था । पृथ्वीके भीतर मूर्तिलिङ्गमय इसका निवास था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०४) । इसके द्वारा त्वष्टाकी पुत्री कशेरुको मूर्च्छित करके उसका अपहरण (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०५) । गन्धर्वों, देवताओं और मनुष्योंकी कन्याओं तथा सात अप्सराओंका अपहरण (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०५) । इस तरह सोलह हजार कुमारियोंको एकत्र करके मणिपर्वतपर औदका नामक स्थानमें भौमासुरने कैद कर रक्खा था । मुरके दस पुत्र तथा प्रधान-प्रधान राक्षस उस अन्तःपुरकी रक्षा करते थे । नरकासुरके चार राज्यपाल थे—हयग्रीव, निशुम्भ, पञ्चजन तथा मुर (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०५) । इसने देवमाता अदितिके कुण्डलोंका भी अपहरण किया था । इसके राज्यकी सीमापर मुर दैत्यके बनाये हुए छः हजार पाश लगाये गये थे, जिनके किनारोंके भागोंमें छुरे लगे थे । श्रीकृष्णने इन पाशोंको काटकर और मुरको मार राज्यकी सीमामें प्रवेश किया था । इसके बाद बड़े-बड़े पर्वतोंके चट्टानोंके ढेरसे एक बाड़-सी लगायी गयी थी । इस घेरेका रक्षक निशुम्भ था । इसे भी मारकर श्रीकृष्ण आगे बढ़े थे । औदकाके अन्तर्गत लोहित गङ्गाके बीच विरूपाक्ष तथा पञ्चजन नामसे प्रसिद्ध पाँच भयकर राक्षस उस राज्यके रक्षक थे । उनको भी मारकर श्रीकृष्णको आगे जाना पड़ा । इसके बाद प्राग्ज्योतिषपुर नामक नगर आता था । वहाँ श्रीकृष्णको दैत्योंके साथ विकट युद्ध करना पड़ा । देवासुर-संग्रामका दृश्य छा गया । इस तरह आठ लाख दानवोंको मारकर भगवान् पाताल-गुफामें गये । वहीं नरकासुर रहता था । वहाँ जाकर श्रीकृष्णने कुछ देर युद्ध करनेके बाद चक्रसे उस असुरका मस्तक काट डाला । भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीके उस पुत्रको ब्रह्मद्रोही, लोककण्टक और नराधम बताया (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०७) । भगवान् विष्णुद्वारा इसके वधकी चर्चा (वन० १४२ । २७) । उद्योग-पर्वमें पुनः उस प्रसङ्गका यों वर्णन है—असुरोंका प्राग्ज्योतिषपुर नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर किला था, जो शत्रुओंके लिये अजेय था । वहाँ भूमिपुत्र महाबली नरकासुर निवास करता था । उसने देवमाता अदितिके सुन्दर मणिमय कुण्डल हर लिये थे । देवता उसे युद्धमें पराजित न कर सके । देवताओंने श्रीकृष्णसे उसके वधके लिये प्रार्थना की । श्रीकृष्णने निर्मोचन नगरकी सीमापर जाकर सहसा मुरके छः हजार लोहमय पाश काट दिये । फिर मुरका वध और राक्षस-समुदायका नाश करके उन्होंने निर्मोचन नगरमें प्रवेश किया । वहीं नरकासुरके साथ उनका युद्ध हुआ । श्रीकृष्णके हाथसे वह असुर मारा गया (उद्योग० ४८ । ८०–८४) । पृथ्वी देवीके अनुरोधसे श्रीकृष्णने उसके पुत्र नरकासुरके लिये वैष्णवास्त्र प्रदान किया था । वह अस्त्र नरकासुरके पुत्र भगदत्तको भी पितासे प्राप्त हुआ था (द्रोण० २९ । ३०–३६) ।

नरराष्ट्र–एक देश या राज्य, जिसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६) ।

नरिष्यन्त–वैवस्वत मनुके पुत्र (आदि० ७५ । १५) ।

नर्मदा–दक्षिण भारत (मध्यप्रदेश) की एक प्रसिद्ध नदी, जो अमरकण्टकसे निकलकर भड़ौचके पास खंभातकी खाड़ीमें गिरती है । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । १८) । भाइयोंसहित युधिष्ठिरने नर्मदाकी यात्रा की थी (वन० १२१ । १६)। लोमशने इन्हें बताया—वैदूर्य पर्वतका दर्शन करके नर्मदामें उतरनेसे मनुष्य देवताओंके समान पवित्र लोकोंको प्राप्त कर लेता है । नर्मदातटवर्ती वैदूर्य पर्वतपर सदा त्रेता और द्वापरकी संधिके समान समय रहता है । इसके निकट जाकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । यह शर्यातिके यज्ञका स्थान है । यहीं इन्द्रने अश्विनीकुमारोंके साथ बैठकर सोमपान किया था (वन० १२१ । १९–२१) । यह अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है (वन० २२२ । २४) । यह माहिष्मतीके राजा दुर्योधनकी पत्नी बनी थी । राजाने इसके गर्भसे एक परम सुन्दरी कन्या उत्पन्न की थी, जो नाम और रूप दोनोंसे सुदर्शना थी (अनु० २ । १८-१९) । इसके जलमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य जन्मान्तरमें राजकुमार होता है (अनु० २५ । ५०) । नर्मदाने किसी समय मान्धाताके पुत्र पुरुकुत्सको अपना पति बनाया था (आश्रम० २० । १२-१३) ।

नल–(१) एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्र-सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १७) । (२) एक प्राचीन नरेश, जो युद्धमें पराजित नहीं होते थे (आदि० १ । २२६–२३५) । ये निषधके राजा वीरसेनके पुत्र थे (वन० ५२ । ५६) । बृहदश्वद्वारा इनके गुणोंका वर्णन (वन० ५३ । २–४) । इनका बहुत-से सुवर्णमय पंखोंसे विभूषित हंसोंको देखकर उनमेंसे एकको पकड़ना

(वन० ५३ । १९) । 'आप मुझे छोड़ दें । मैं आपका प्रिय करूँगा । दमयन्तीके समक्ष आपके गुण बताऊँगा; जिससे वह आपके सिवा दूसरेका वरण नहीं करेगी।' हंसके ऐसा कहनेपर नलका उसे छोड़ देना (वन० ५३ । २०–२२) । हंसका दमयन्तीके समक्ष नलके गुणोंका वर्णन और उसका नलके प्रति अनुराग (वन० ५३ । २७–३२; वन० ५४ । १–४) । स्वयंवरका समाचार सुनकर दमयन्तीमें अनुरक्त हुए राजा नलका विदर्भ देशको प्रस्थान (वन० ५४ । २७) । इन्द्र आदि लोकपालोंद्वारा दूत बननेके लिये इनसे अनुरोध (वन० ५४ । ३१) । इनका दूत बनकर दमयन्तीके महलमें जाना और दमयन्तीको देवताओंका वरण करनेके लिये समझाना (वन० ५५ । ११–२५; वन० ५६ । १–१२) । दमयन्तीका नलको ही वरण करनेका निश्चय प्रकट करना और नलका दूतत्व करके लौटकर दमयन्तीका संदेश लोकपालोंको सुनाना (वन० ५६ । १५–३०) । स्वयंवरमें दमयन्ती-द्वारा नलका पतिरूपमें वरण और लोकपालोंद्वारा नलको वरकी प्राप्ति (वन० ५७ । १—३८) । दमयन्तीके साथ विवाह-संस्कार (वन० ५७ । ४१) । नलका नगरको लौटना, प्रजापालन, यज्ञ तथा दमयन्तीके साथ विहार करना, दमयन्तीके गर्भसे इन्हें इन्द्रसेन नामक पुत्र और इन्द्रसेना नामवाली कन्याकी प्राप्ति (वन० ५७ । ४२–४६) । देवताओंद्वारा नलके गुणोंका गान तथा इनपर कलियुगका कोप (वन० ५८ अध्याय) । नलमें कलिका प्रवेश और इनका पुष्करके साथ जूआ खेलना (वन० ५९ अध्याय) । इनका जूएमें हारकर दमयन्तीके साथ वनको प्रस्थान (वन० ६१ । ६) । इनका पक्षियोंको पकड़नेके लिये उनके ऊपर वस्त्र फेंकना (वन० ६१ । १४) । इनका सोती हुई दमयन्तीके आधे वस्त्रको फाड़कर पहनना, उसे वनमें अकेली छोड़कर जाना और पुनः लौटकर विलाप करना (वन० ६२ । १८–२४) । नलका दमयन्तीको सोती छोड़कर बार-बार जाना और लौटना तथा कलिसे आकर्षित हो करुण विलाप करके चल देना (वन० ६२ । २६–२९) । इनके द्वारा कर्कोटक नागकी दावानलसे रक्षा (वन० ६६ । ९) । कर्कोटकका नलको डँसकर उनके रूपको बदल देना और इन्हें आश्वासन देना एवं पहलेके रूपकी प्राप्तिके लिये एक वस्त्र प्रदान करना (वन० ६६ । ११–२६) । इनकी अयोध्यानरेश ऋतुपर्णके यहाँ बाहुक नामसे अश्वाध्यक्ष-पदपर नियुक्ति, इनकी दमयन्तीके लिये चिन्ता तथा जीवलसे वार्ता (वन० ६७ अध्याय) । इनके द्वारा ऋतुपर्णको अच्छे अश्वका परिचय देना (वन० ७१ । १६) । इनकी अश्वसंचालनकी कला (वन० ७१ । २३) । इन्हें ऋतुपर्णद्वारा द्यूतविद्याकी प्राप्ति (वन० ७२ । २९) । इनके शरीरसे कलियुगका निष्क्रमण (वन० ७२ । ३०) । इनका दमयन्तीकी दासी केशिनीसे वार्तालाप (वन० ७४ अध्याय) । दमयन्तीके आदेशसे केशिनीद्वारा बाहुककी परीक्षा, इनकी अपने पुत्र-पुत्रीसे भेंट और उनके प्रति वात्सल्य (वन० ७५ अध्याय) । इनका बाहुकरूपसे दमयन्तीके महलमें जाकर उससे वार्तालाप करना तथा पुनः नलरूपमें प्रकट होना (वन० ७६ । ६—४२) । इनका दमयन्तीसे मिलन (वन० ७६ । ४६) । इनका ऋतुपर्णके साथ वार्तालाप तथा उन्हें अश्वविद्याका दान (वन० ७७ । १०–१७) । इनका पुष्करको जूएमें हराना (वन० ७८ । १९) । इनके द्वारा पुष्करको सान्त्वना (वन० ७८ । २०––२६) । इनके आख्यानके कीर्तनका महत्त्व (वन० ७९ । १०, १५–१७) । ये यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ११) । ये देवराज इन्द्रके विमानमें बैठकर अर्जुन तथा कौरवोंमें होनेवाले युद्धको देखनेके लिये आये थे (विराट० ५६ । १०) । गोदान-महिमाके विषयमें इनका नाम-निर्देश (अनु० ७६ । २५) ।

महाभारतमें आये हुए नलके नाम–नैषध, निषधाधिप, निषधाधिपति, निषधराजेन्द्र, निषधेश्वर, पुण्यश्लोक, वीरसेनसुत आदि ।

(३) एक वानरसेनापति, जो देवशिल्पी विश्वकर्माका पुत्र था (वन० २८३ । ४१) । इसके द्वारा समुद्रपर सौ योजन लंबे और दस योजन चौड़े सेतुका निर्माण (वन० २८२ । ४३–४४) । इसका तुण्ड नामक राक्षससे युद्ध (वन० २८५ । ९) ।

नलकूबर–धनाध्यक्ष कुबेरके पुत्र, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित होते हैं (सभा० १० । १९) । (इनके भाईका नाम मणिग्रीव था) इन्होंने अपनी प्रेयसी रम्भापर बलात्कार करनेके कारण रावणको यह शाप दिया था कि 'तू न चाहनेवाली किसी स्त्रीका स्पर्श नहीं कर सकेगा' (वन० २८० । ५९-६०) ।

नलसेतु–नलद्वारा बनाया हुआ सेतु (वन० २८३ । ४५) ।

नलिनी–गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक धारा (भीष्म० ६ । ४८) ।

नलोपाख्यानपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ५२ से ७९ तक) ।

नवतन्तु–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

नवराष्ट्र—एक देश, जिसे अर्जुनने अज्ञातवासके लिये चुना था (विराट० १ । १३) । (कुछ लोगोंके मतमें बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत भड़ौंच नामक जिलेमें स्थित 'नवसारी' नामक स्थान ही नवराष्ट्र है ।)

नहुष—(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ९) । (२) आयुके द्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ७५ । २५) । इनके पराक्रम और गुणोंका वर्णन (आदि० ७५ । २७-२८) । अपने इन्द्रत्वकालमें इनके द्वारा ऋषियोंके वाहन बनाये जानेकी चर्चा (आदि० ७५ । २९) । इन्होंने तेज, तप, ओज और पराक्रमद्वारा देवताओंको तिरस्कृत करके इन्द्रपदका उपभोग किया था (आदि० ७५ । २९–३०) । इनके पुत्रोंके नाम—यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव थे (आदि० ७५ । ३०–३१) । ये यमराजकी सभामें उपस्थित होते हैं (सभा० ८ । ८) । अजगर-योनिमें पड़े हुए इनके द्वारा भीमसेनका पकड़ा जाना (वन० १७८ । २८) । भीमसेनके पूछनेपर उनसे अपना परिचय देना (वन० १७९ । १०–२४) । युधिष्ठिरके साथ इनके प्रश्नोत्तर (वन० १८० । ६ से १८१ । ४३ तक) । इनका शापमुक्त होकर पुनः स्वर्गगमन (वन० १८१ । ४४) । इन्होंने कभी वैष्णव याज किया था और उससे पवित्र हो स्वर्गलोककी यात्रा की थी (वन० २५७ । ५) । ये इन्द्रके विमानपर बैठकर अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये आये थे (विराट० ५६ । ९) । देवताओंके अनुरोधसे इन्द्र-पदपर इनका अभिषेक (उद्योग० ११ । ९) । शचीको देखकर कामासक्त होना (उद्योग० ११ । १८–१९) । शचीके विषयमें देवताओंको इनका उत्तर (उद्योग० १२ । ६–८) । शचीको कुछ कालकी अवधि देना (उद्योग० १३ । ७) । सप्तर्षियोंको वाहन बनाना (उद्योग० १५ । २२) । महर्षि अगस्त्यद्वारा इन्हें शाप और इनका स्वर्गसे पतन (उद्योग० १७ । १४–१८) । आयुसे खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७४) । इन्हें पापकी प्राप्ति और ऋषियोंद्वारा इनका उद्धार (शान्ति० २६२ । ४८-५०) । इनकी इन्द्रपद-प्राप्तिसे लेकर अन्ततककी कथा (शान्ति० ३४२ । ४४–५२) । च्यवन ऋषिसे उनके मूल्यके विषयमें संवाद और इनका गौके मूल्यपर संतुष्ट करना (अनु० ५१ । ४–२५) । च्यवनद्वारा इन्हें वर-प्राप्ति (अनु० ५१ । ४४) । इन्होंने लाखोंकी संख्यामें गौओंका दान किया था, इससे इन्हें देवदुर्लभ स्थानकी प्राप्ति हुई (अनु० ८१ । ५-६) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (अनु० ९४ । २८) । इनका ऋषियोंपर अत्याचार (अनु० ९९ । १०–१३) । भृगुजीके शापसे इनका स्वर्गसे पतन (अनु० १०० । २५) । मांसभक्षण-निषेधसे इन्हें परावरतत्त्वका ज्ञान (अनु० ११५ । ६०) ।

महाभारतमें आये हुए नहुषका नाम—देवराज, देवराट्, देवेन्द्र, जगत्पति, नाग, नागेन्द्र, सुराधिपति, सुरपति, सुरेश्वर, सुरेन्द्र आदि ।

नाकुल—भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ५० । ५३) ।

नागतीर्थ—(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जिसका सेवन करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और नागलोकमें जाता है (वन० ८३ । १४) । (२) गङ्गाद्वार एवं कनखलके समीप नागराज कपिलका एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्र कपिलादानका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३३) ।

नागदत्त—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०२) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । १९) ।

नागद्वीप—सुदर्शन द्वीपके भीतरका एक द्वीप, जो चन्द्रमण्डल-की शशाकृतिमें कानके रूपमें दीखता है (भीष्म० ६ । ५५) ।

नागधन्वातीर्थ—सरस्वती-तटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ वासुकिका निवासस्थान है । यहीं इनका नागराजके पदपर अभिषेक हुआ था । इस तीर्थका विशेष वर्णन (शल्य० ३७ । ३०–३३) ।

नागपुर—नैमिषारण्यमें गोमती-तटपर स्थित एक नगर, जो पद्मनाभ नामक नागका निवासस्थान था (शान्ति० ३५५ । ३)

नागलोक—नागोंका लोक (उद्योग० ९९ । १) । इस लोकके राजा वासुकि हैं (आदि० १२७ । ६०) । यहाँ एक कुण्ड है, जिसका रस पीनेसे एक व्यक्तिमें एक हजार हाथियोंके समान बल हो जाता है (आदि० १२७ । ६८) । इस लोककी स्थिति भूतलसे हजारों योजन दूर है (आश्व० ५८ । ३२-३३) । यह लोक सहस्रों योजन विस्तृत है । इसके चारों ओर दिव्य परकोटे बने हुए हैं । जो चारों ओर सोनेकी ईंटों और मणि-मुक्ताओंसे अलंकृत हैं । वहाँ स्फटिक मणिकी बनी सीढ़ियोंसे सुशोभित बहुत-सी बावड़ियाँ, निर्मल जलवाली अनेकानेक नदियाँ, नाना प्रकारके पक्षियों-से सुशोभित मनोहर वृक्ष देखनेमें आते हैं । नागलोकका बाहरी दरवाजा सौ योजन लंबा और पाँच योजन चौड़ा है (आश्व० ५८ । ३७–४०) ।

नागशत—एक पर्वत, जहाँ तपस्याके लिये जाते समय दोनों

पत्नियोंसहित राजा पाण्डु पधारे थे (**आदि० ११८ । ४७**)

नागाशी–गरुड़की एक प्रमुख संतान (**उद्योग० १०१ । ९**) ।

नागोद्भेद–जहाँ सरस्वती अदृश्य भावसे रहती हैं। उस विनशन तीर्थके अन्तर्गत एक तीर्थ, जिसमें सरस्वतीके जलका प्रत्यक्ष दर्शन होता है । उसमें स्नान करनेसे नागलोककी प्राप्ति होती है (**वन० ८२।११२**) ।

नाचिक–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५८**) ।

नाचिकेत–एक प्राचीन ऋषि, जो उद्दालकिके पुत्र थे । (**अनु० ७१ । २**) । यज्ञपरायण पिताका नाचिकेतको अपनी सेवामें रहनेकी आज्ञा देना । यज्ञका नियम पूर्ण होनेपर पिताने पुत्र नाचिकेतको नदीतटपर रक्खे हुए फूल, फल और समिधा आदि लानेका आदेश देना । नाचिकेतका नदीतटपर उन वस्तुओंके न मिलनेसे निराश लौटना। भूखसे पीड़ित पिताका रोषवश पुत्रको यमराजके यहाँ जानेकी बात कहना और पिताके इस शापसे नाचिकेतका मृत्युको प्राप्त होना (**अनु० ७१ । २–८**) । पिताका पुत्रके लिये दुखी होकर विलाप करना एवं यमराजके यहाँसे लौटकर नाचिकेतका पुनः जीवित होना (**अनु० ७१ । ९–१२**) । पिताके पूछनेपर नाचिकेतका यमके द्वारा प्राप्त हुए स्वागत-सत्कार तथा वहाँके पुण्यलोक-दर्शनका समाचार बताना (**अनु० ७१ । १३–५६**) ।

नाचीन–एक देश (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ**) ।

नाटकेय–एक देश (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ**) ।

नाडीजङ्घ–(१) इन्द्रद्युम्न-सरोवरपर रहनेवाला एक चिरजीवी बक (**वन० १९९ । ७**) । (२) एक बकराज, जो कश्यपजीका पुत्र और ब्रह्माजीका मित्र था । इसका दूसरा नाम राजधर्मा था । देवकन्याके गर्भसे जन्म लेनेके कारण इसके शरीरकी कान्ति देवताके समान दिखायी देती थी । यह बड़ा विद्वान् और दिव्य तेजसे सम्पन्न था । (**शान्ति० १६९ । १९-२०**) (विशेष देखिये राजधर्मा) ।

नाभाग–वैवस्वतमनुके एक पुत्र (**आदि० ७५ । १५**) । ये यमकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १९**) । इन्होंने समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको जीतकर सत्यके द्वारा उत्तम लोकोंपर विजय पायी थी (**वन० २५ । १२**) । इन्होंने दक्षिणाके रूपमें सारा राष्ट्र ब्राह्मणोंको दे दिया था(**शान्ति० ९६ । २२**)। इन्होंने सात दिनमें पृथ्वीको जीता था । ये शीलवान और दयालु थे । अतः इनके गुणोंपर बिकी हुई पृथ्वी स्वयं इनके पास आयी थी (**शान्ति० १२४। १६-१७**)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (**अनु० ९४ । ३१**) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था । इन्हें मांसभक्षण-निषेधके कारण परावरतत्त्वका ज्ञान हो गया था और अब ये ब्रह्मलोकमें विराज रहे हैं (**अनु० ११५ । ५८–६८**) ।

नाभागारिष्ट–वैवस्वतमनुके पुत्र (**आदि० ७५ । १७**) ।

नारद (१)–एक देवर्षि, जो ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं । ये जनमेजयके सदस्य बने थे (**आदि० ५३ । ८**) । ये ही कालान्तरमें देवगन्धर्व होकर कश्यपद्वारा 'मुनि' के गर्भसे उत्पन्न हुए हैं (**आदि० ६५ । ४४**) । इन्होंने तीस लाख श्लोकोंवाला महाभारत देवताओंको सुनाया था (**आदि० १ । १०६-१०७; स्वर्गा० ५ । ५६**) । इन्होंने दक्षके पुत्रोंको सांख्यज्ञानका उपदेश दिया था, जिससे वे सब-के-सब विरक्त होकर घरसे निकल गये थे (**आदि० ७५ । ७-८**) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें पधारे थे (**आदि० १२२ । ५७**) । द्रौपदीके स्वयंवरमें अन्य गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ गये थे (**आदि० १८६ । ७**) । द्रौपदीके निमित्त पाण्डवोंका आपसमें कोई मतभेद न हो—इस उद्देश्यसे इनका इन्द्रप्रस्थमें आगमन (**आदि० २०७ । ९**) । इनके गुण, प्रभाव एवं रहस्यका विशद वर्णन (**आदि० २०७ । ९ के बाद दा० पाठ**) । इनके द्वारा पाण्डवोंके प्रति सुन्द और उपसुन्दकी कथाका वर्णन करके द्रौपदीके विषयमें परस्पर फूटसे बचनेके लिये कोई नियम बनानेकी प्रेरणा (**आदि० अध्याय २०८ से २११ तक**) । इनका वर्गा आदि शापग्रस्त अप्सराओंको आश्वासन और दक्षिण समुद्रके समीपवर्ती तीर्थोंमें रहनेका आदेश देना (**आदि० २१६ । १७**) । इनके द्वारा युधिष्ठिरको प्रश्नके रूपमें विविध मङ्गलमय उपदेश (**सभा० ५ अध्याय**) । इनके द्वारा इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा ब्रह्माजीकी सभाका वर्णन (**सभा० अध्याय ५ से ११ तक**) । इनका हरिश्चन्द्रकी संक्षिप्त कथा सुनाकर युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ करनेके लिये पाण्डुका संदेश सुनाना (**सभा० १२ । २३–३४**) । बाणासुरद्वारा अनिरुद्धके कैद होनेकी श्रीकृष्णको सूचना देना (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२२, कालम १**) । राजसूययज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय इन्होंने युधिष्ठिरका अभिषेक किया (**सभा० ५३ । १०**) । कौरवोंके विनाशके विषयमें नारदकी भविष्यवाणी (**सभा० ८० । ३३–३५**) । इन्होंने धौम्यको सूर्यके अष्टोत्तरशत नामका उपदेश

दिया था (वन० ३ । ७८) । इनका शाल्वको मारनेके लिये उद्यत प्रद्युम्नके पास आकर देवताओंका संदेश सुनाना (वन० १९ । २२—२४) । इन्द्रलोकमें अर्जुनके स्वागतमें अन्य गन्धर्वोंके साथ ये भी पधारे थे (वन० ४३ । १४) । इनके द्वारा इन्द्रके प्रति दमयन्ती-स्वयंवरकी सूचना (वन० ५४ । २०—२४) । इनका युधिष्ठिरको तीर्थयात्राका प्रसङ्ग सुनाकर अन्तर्धान होना (वन० ८१ । १२ से ८५ अध्यायतक) । राजा सगरको उनके पुत्रोंकी मृत्युका समाचार सुनाना (वन० १०७ । ३३) । अर्जुनको दिव्यास्त्र-प्रदर्शनसे रोकना (वन० १७५ । १८—२३) । काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास इनका आगमन और मार्कण्डेय मुनिसे कथा सुननेका अनुमोदन करना (वन० १८३ । ४७—४९) । सुहोत्र और शिबिमें इनका शिबिको हीं बढ़कर बताना (वन० १९४ । ३—७) । राजा अश्वपतिसे सत्यवान्‌के गुण-दोषका वर्णन करके उनके साथ सावित्रीके विवाहके लिये सम्मति देकर विदा होना (वन० २९४ । ११—३२) । शान्ति-दूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी परिक्रमा करना (उद्योग० ८३ । २७) । पुत्रीके लिये वरकी खोजमें जाते समय मातलिको वरुण-लोकमें ले जाना और वहाँ आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखाना (उद्योग० ९८ अध्याय) । मातलिको पाताल-लोकमें ले जाना (उद्योग० ९९ अध्याय) । मातलिसे हिरण्यपुर-का वर्णन और दिग्दर्शन (उद्योग० १०० अध्याय) । मातलिको गरुडलोकमें ले जाना (उद्योग० १०१ अध्याय) । मातलिसे संतानसहित सुरभि तथा रसातलका वर्णन (उद्योग० १०२ अध्याय) । मातलिसे नागलोकका वर्णन (उद्योग० १०३ अध्याय) । आर्यकके सम्मुख मातलिकी कन्याके विवाहका प्रस्ताव (उद्योग० १०४ । १—७) । दुर्योधनको समझाते हुए धर्मराजद्वारा विश्वामित्र-की परीक्षा और विश्वामित्रको गुरुदक्षिणा देनेके लिये गालवके हठका वर्णन (उद्योग० १०६ अध्यायसे १२३—२२ तक) । भीष्मको परशुरामजीके ऊपर प्रस्वापनास्त्रके प्रयोगसे मना करना (उद्योग० १८५ । ३-४) । पुत्र-शोकसे दुखी अकम्पनको इनके द्वारा सान्त्वना (द्रोण० ५२ । ३७ से द्रोण० ५४ । ४४—५० तक) । राजा सृंजयसे उनकी कन्याको माँगना (द्रोण० ५५ । १२) । महर्षि पर्वतके शापके बदले उन्हें शाप देना (द्रोण० ५५ । १७) । राजा सृंजयको पुत्र-प्राप्तिका वर देना (द्रोण० ५५ । २३ के बाद) । पुत्रशोकसे दुखी सृंजय-को मरुत्तका चरित्र सुनाकर समझाना (द्रोण० ५५ । ३६—५०) । राजा सुहोत्रकी दानशीलताका वर्णन करना (द्रोण० ५६ अध्याय) । पौरवकी दानशीलताका वर्णन (द्रोण० ५७ अध्याय) । शिबिके यज्ञ और दान-की महत्ताका वर्णन (द्रोण० ५८ अध्याय) । श्रीरामके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ५९ अध्याय) । राजा भगी-रथके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६० अध्याय) । महा-राज दिलीपके उत्कर्षका वर्णन (द्रोण० ६१ अध्याय) । मान्धाताकी महत्ताका वर्णन (द्रोण० ६२ अध्याय) । महाराज ययातिका वर्णन (द्रोण० ६३ अध्याय) । राजा अम्बरीषके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६४ अध्याय) । राजा शशबिन्दुके दानका वर्णन (द्रोण० ६५ अध्याय) । राजा गयके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६६ अध्याय) । राजा रन्तिदेवके अतिथिसत्कारका वर्णन (द्रोण० ६७ अध्याय) । राजा भरतके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६८ अध्याय) । राजा पृथुके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६९ अध्याय) । परशुरामजीका चरित्र सुनाना (द्रोण० ७० अध्याय) । सृंजयके मरे हुए पुत्रको जीवित करके उन्हें देना (द्रोण० ७१ । ८) । रणक्षेत्रमें अर्जुनद्वारा बाणोंके प्रहारसे प्रकट किये हुए सरोवरको देखनेके लिये नारदजी वहाँ पधारे थे (द्रोण० ९९ । ६१) । रात्रियुद्धमें कौरव-पाण्डव-सेनाओंमें दीपकका प्रकाश करना (द्रोण० १६३ । १५) । वृद्धकन्याको विवाह करनेके लिये प्रेरित करना (शल्य० ५२ । १२-१३) । बलरामजीसे कौरवोंके विनाश-का समाचार बताना (शल्य० ५४ । २५—३४) । अश्वत्थामा और अर्जुनके ब्रह्मास्त्रको शान्त करनेके लिये प्रकट होना (सौप्तिक० १४ । ११) । युद्धके पश्चात् युधिष्ठिरके पास आकर उनसे कुशल-समाचार पूछना (शान्ति० १ । १०—१२) । युधिष्ठिरसे कर्णको शाप प्राप्त होनेका प्रसंग सुनाना (शान्ति० अध्याय २ से ३ तक) । कर्णके पराक्रमका वर्णन (शान्ति० अध्याय ४ से ५ तक) । इनके द्वारा सृंजयके प्रति कहे हुए षोडश-राजकीयोपाख्यानका श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरके समक्ष वर्णन (शान्ति० २९ अध्याय) । श्रीकृष्णद्वारा पर्वत ऋषिके साथ इनके विचरने और परस्पर शाप आदिका वर्णन (शान्ति० ३० अध्याय) । इनका युधिष्ठिरको सृंजयपुत्र सुव का वृत्तान्त सुनाना (शान्ति० ३१ अध्याय) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये अन्य ऋषियोंके साथ इनका भी जाना (शान्ति० ४७ । ५) । युधिष्ठिर आदिको भीष्मजीसे धर्मविषयक प्रश्नके लिये प्रेरणा देना (शान्ति० ५४ । ८—१०) । जाति-भाइयोंमें फूट न पड़नेके विषयमें श्रीकृष्णके प्रश्नोंका उत्तर (शान्ति० ८१ अध्याय) । सेमलवृक्षकी प्रशंसा (शान्ति० १५४ । १०—३१) । सेमलवृक्षका अहंकार देखकर उसे फटकारना (शान्ति० १५५ । ९—१८) । वायुदेवके

पास जाकर सेमलवृक्षकी बात कहना (शान्ति० १५६ । २–४) । भगवान् विष्णुसे कृपा-याचना (शान्ति० २०७ । ४६ के बाद) । भगवान् विष्णुका स्तवन (शान्ति० २०९ । दाक्षिणात्य पाठ) । इन्द्रके साथ लक्ष्मीका दर्शन (शान्ति० २२८ । ११६) । पुत्रशोकसे दुखी अकम्पनको समझाना (शान्ति० अध्याय २५६ से २५८ तक) । महर्षि असितदेवलसे सृष्टिविषयक प्रश्न (शान्ति० २७५ । ३) । महर्षि समङ्गसे उनकी शोकहीनताका कारण पूछना (शान्ति० २८६ । ३-४) । गालवमुनिको श्रेयका उपदेश देना (शान्ति० २८७ । १२––५९) । व्यासजीके पास आना और उनकी उदासीका कारण पूछना (शान्ति० ३२८ । १२–१५) । व्यासजीको पुत्रके साथ वेदपाठ करनेको कहना (शान्ति० ३२८ । २०-२१) । शुकदेवजीको वैराग्य और ज्ञान आदि विविध विषयोंका उपदेश (शान्ति० अध्याय ३२९ से ३३१ तक) । नर-नारायणके समक्ष सबसे श्रेष्ठ कौन है, इस बातकी जिज्ञासा (शान्ति० ३३४ । २५–२७) । श्वेतद्वीपका दर्शन और वहाँके निवासियोंका वर्णन (शान्ति० ३३५ । ९–१२) । दो सौ नामोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति (शान्ति० ३३८ अध्याय) । श्वेतद्वीपमें भगवान्‌का दर्शन (शान्ति० ३३९ । १—१०) । श्वेतद्वीपसे लौटकर नर-नारायणके पास जाना और उनके समक्ष वहाँके दृश्यका वर्णन करना (शान्ति० ३४३ । ४७–६६) । मार्कण्डेयजीके विविध प्रश्नोंका उत्तर देना (अनु० २२ । दाक्षिणात्य पाठ) । श्रीकृष्णके पूछनेपर पूजनीय पुरुषोंके लक्षण और उनके आदर-सत्कारसे होनेवाले लाभका वर्णन करना (अनु० ३१ । ५–३५) । पञ्चचूड़ा अप्सरासे स्त्रियोंके स्वभावके विषयमें प्रश्न (अनु० ३८ । ६) । भीष्मजीसे अन्नदानकी महिमाका वर्णन (अनु० ६३ । ५––४२) । देवकी देवीको विभिन्न नक्षत्रोंमें विभिन्न वस्तुओंके दानका महत्त्व बताना (अनु० ६४ । ५––३५) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । ३०) । पुण्डरीकको श्रेयके लिये भगवान् नारायणकी आराधनाका उपदेश देना (अनु० १२४ । दाक्षिणात्य पाठ) । इनके द्वारा हिमालय पर्वतपर भूत-गणोंसहित शिवजीकी शोभाका वर्णन (अनु० १४० अध्याय) । संवर्तको पुरोहित बनानेके लिये मरुत्तको सलाह देना (आश्व० ६ । १८-१९) । मरुत्तको संवर्त-का पता बताना (आश्व० ६ । २०–२६) । महर्षि देव-मतके प्रश्नोंका उत्तर देना (आश्व० २४ अध्याय) । युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें इनकी उपस्थिति (आश्व० ८८ । ३९) । नारदजीका प्राचीन ऋषियोंकी तपःसिद्धि-का दृष्टान्त देकर धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना और शतयूपके पूछनेपर धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गतिका वर्णन करना (आश्रम० २० अध्याय) । इनका युधिष्ठिरके समक्ष वनमें कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दावानलसे दग्ध होनेका समाचार बताना (आश्रम० ३७ । १—३८) । धृतराष्ट्र लौकिक अग्निसे नहीं, अपनी ही अग्निसे दग्ध हुए हैं—यह युधिष्ठिरको बताना और उनके लिये जलाञ्जलि प्रदान करनेकी आज्ञा देना (आश्रम० ३९ । १—९) । साम्बके पेटसे मूसल पैदा होनेका शाप देनेवाले ऋषियोंमें ये भी थे (मौसल० १ । १५—२२) । इनके द्वारा युधिष्ठिरकी प्रशंसा (महाप्र० ३ । २६––२९) ।

महाभारतमें आये हुए नारदजीके नाम- ब्रह्मर्षि, देवर्षि, परमेष्ठिज, परमेष्ठी, परमेष्ठिपुत्र और सुरर्षि आदि ।

(२) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५३) ।

नारदागमनपर्व–आश्रमवासिकपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ३७ से ३९ तक) ।

नारदी–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९) ।

नाराच–बाणविशेष (आदि० १३८ । ६) । (सीधे बाणको नाराच कहते हैं । उसका अग्रभाग तीखा होता है ।)

नारायण–भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारभूत धर्मपुत्र नारायण, जो अपने भाई नरके साथ बदरिकाश्रममें सुवर्णमय रथपर बैठकर तपस्या करते हैं । ये स्वायम्भुव मन्वन्तरमें धर्मके यहाँ चार स्वरूपोंमें अवतीर्ण हुए थे— नर, नारायण, हरि और कृष्ण (शान्ति० ३३४ । ९–- १२) । इनका देवताओंको समुद्र-मन्थनका आदेश (आदि० १७ । ११ १३) । मोहिनीरूप धारण करके देवताओंको अमृत पिलाना (आदि० १८ । ४५ ४६ के बाद दा० पाठ) । इनके द्वारा राहुके मस्तकका उच्छेद तथा देवासुर-संग्राममें असुरोंका संहार (आदि० १९ । ५—१०, १९—२४) । इन्होंने गरुड़को अपना वाहन बनाया और ध्वजमें स्थान दिया (आदि० ३३ । १३— १७) । इनके कृष्ण और श्वेत केश श्रीकृष्ण और बलरामके रूपमें प्रकट हुए थे (आदि० १९६ । ३२-३३) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ११ । ५२-५३) । भीष्मद्वारा इनके स्वरूप एवं महिमाका वर्णन तथा इनके द्वारा मधु कैटभ दैत्यके वधके प्रसंगका वर्णन (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८१ से ७८४ तक) । इनके वाराह, नृसिंह

आदि अवतारोंका संक्षेपसे तथा श्रीकृष्णावतारका कुछ विस्तारसे वर्णन (सभा० ३८ । पृष्ठ ७८४ से ८२६ तक) । इन्द्रद्वारा इनके अवतारका वर्णन (वन० ४७ । १०) । इनके द्वारा इन्द्रको सान्त्वना तथा नरकासुरका वध (वन० १४२ । २५–२७) । इनका वाराह अवतार और पृथ्वीका उद्धार (वन० १४५ । ४५–४७) । प्रलयकालमें बालमुकुन्द रूपमें मार्कण्डेयको अपने स्वरूपका परिचय देना (वन०१८९ । १—४९) । इन्होंने कुवलाश्वमें अपने तेजको स्थापित किया (वन० २०४ । ११) । इनके द्वारा स्कन्दको पार्षद-प्रदान (शल्य० ४५ । ३७) । इन्द्ररूपसे मन्धाताको दर्शन दिया (शान्ति० ६४ । १४) । इन्द्ररूप धारण करके राजधर्मके विषयमें मान्धाताके साथ इनका संवाद (शान्ति० ६४ । १६–३०;शान्ति० ६५ अध्याय)। नारदजीके पूछनेपर इनका अपने आराध्य त्रिगुणातीत पुरुष सनातन परमात्माको ही सर्वश्रेष्ठ बताना (शान्ति० ३३४ । २८—४५)। राजा उपरिचरपर कृपा (शान्ति० ३३७ । ३३–३५) । नारदजीको अपने चतुर्व्यूह स्वरूपोंका परिचय कराना (शान्ति० ३३९ । १९—७६) । अपने भावी अवतारोंका वर्णन करना (शान्ति० ३३९ । ७७—१०८) । ब्रह्मादि देवताओंको प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि धर्मोका उपदेश देना (शान्ति० ३४० । ४९—८९) । शिवजीके साथ युद्ध और विजय (शान्ति० ३४२ । ११०–११६) । नारदजीसे वासुदेवजीका माहात्म्य बतलाना (शान्ति० ३४४ अध्याय) । नारदजीसे भगवान् वाराहकृत पितरोंके पूजनकी मर्यादाका वर्णन करना (शान्ति० ३४५ । १२—२८) । इनसे मधु और कैटभकी उत्पत्ति (शान्ति० ३४७ । २४–२६) । ब्रह्माजीद्वारा नारायणकी स्तुति, इनका हयग्रीवरूपसे प्रकट होकर मधु-कैटभद्वारा अपहृत हुए वेदोंको ढूँढ़ लाना और मधु-कैटभके साथ युद्ध करके उन दोनोंके वधद्वारा ब्रह्माजीका शोक दूर करना (शान्ति० ३४७ । ६९–७१) । इनकी महिमाका वर्णन (शान्ति० ३४७ । ८०–९६) । पौष मासमें नारायणके पूजनसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन (अनु० १०९ । ४) । इनके सहस्र नामोंका वर्णन (अनु० १४९ अध्याय) । श्रीकृष्ण इस लोकसे तिरोहित होनेके बाद अपने नारायण-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हुए (स्वर्गा० ५ । २४) ।

महाभारतमें आये हुए नारायणके नाम–कृष्ण, वासुदेव, महापुरुष, विष्णु आदि ।

नारायणस्थान (या शालिग्रामतीर्थ)–एक परम पवित्र तीर्थ, जहाँ भगवान् विष्णु सदा निवास करते हैं । ब्रह्मा आदि देवता,तपोधन ऋषि,आदित्य, वसु तथा रुद्र भी वहाँ रहकर जनार्दनकी उपासना करते हैं, वहाँ भगवान् विष्णु शालग्राम नामसे प्रसिद्ध हैं । (सम्भवतः यह स्थान नैपालराज्यान्तर्गत शालग्रामी या गण्डकीके उद्गमके निकट है । जहाँसे शालग्राम-शिलाका प्राकट्य होता है ।) वहाँ भगवान् विष्णुके समीप यात्रा करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है और विष्णुधाममें जाता है (वन० ८४ । १२५) ।

नारायणाश्रम–एक तीर्थ (वन० १२९ । ६) ।

नारायणास्त्रमोक्षपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १९३ से २०० तक) ।

नारीतीर्थ–प्राचीनकालके पाँच तीर्थ, जिन्हें कुछ कालतक तापसोंने छोड़ रक्खा था । उनके नाम हैं —अगस्त्यतीर्थ, सौभद्रतीर्थ, पौलोमतीर्थ, कारन्धमतीर्थ और भारद्वाज तीर्थ। इन तीर्थोंके समीप अर्जुनका आगमन। उनका सौभद्रतीर्थमें गोता लगाना और शापवश ग्राहरूपमें वहाँ रहनेवाली वर्गानामक अप्सराका उद्धार । वर्गाका अर्जुनको पाँच अप्सराओंको प्राप्त हुए शापकी विस्तृत कथा सुनाना (आदि० २१५ अध्याय) । वर्गाकी प्रार्थनासे अर्जुनद्वारा शेष चार अप्सराओंका उद्धार और उक्त पाँचों तीर्थोंकी नारीतीर्थके नामसे प्रसिद्धि (आदि० २१६ । १–२२) । इन तीर्थोंमें भाइयोंसहित युधिष्ठिरका आगमन, स्नान और गोदान (वन० ११८ । ४–७) ।

नाव्याश्रम–राजा लोमपादद्वारा निर्मित आश्रम । जिस नौकासे उनके राज्यमें ऋष्यश्रृङ्ग आये थे, उसीके नामपर इसका नामकरण हुआ (वन० ११३ । ९) ।

नासत्य–अश्विनीकुमारोंमेंसे एकका नाम (शान्ति० २०८ । १७)।

निकुम्भ–(१) प्रह्लादजीका तृतीय पुत्र (आदि० ६५ । १९)। (२) एक विख्यात दानव (आदि० ६५ । २६) । (३) हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न एक दैत्य, सुन्द-उपसुन्दका पिता (आदि० २०८ । २-३) । (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५६) ।

निखर्वट–एक राक्षस, जिसने तार नामक वानरके साथ युद्ध किया (वन० २८५ । ९) ।

निचन्द्र–एक दानव (आदि० ६५ । २६) ।

निचिता–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १८) ।

नितम्भू–एक दिव्य महर्षि, ये शरशय्यापर पड़े हुए कालकी बाट जोहनेवाले भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ८) ।

निधि–'शङ्ख' नामक निधि, जिसका दान करके राजा

ब्रह्मदत्त परमगतिको प्राप्त हुए थे (अनु० १३७ । १७)।

निबिड–क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १९)।

निमि–(१) एक प्राचीन राजा, विदेह देशके अधिपति (आदि० १ । २३४)। ये यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ९)। इनके द्वारा ब्राह्मणको राज्य-दान (वन० २३४ । २६)। इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५)। (२) अत्रिकुलमें उत्पन्न एक ऋषि, जो दत्तात्रेयके पुत्र थे (अनु० ९१ । ५)। इन्होंने अपने पुत्र श्रीमान्‌को पिण्डदान दिया (अनु० ९१ । १४-१५)। इनके द्वारा स्मरण करनेपर इनके समक्ष वंशप्रवर्तक अत्रिमुनिका प्रकट होना (अनु० ९१ । १८)। (३) विदर्भराजके पुत्र, जिन्होंने महात्मा अगस्त्यको अपनी कन्याका दान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया था (अनु० १३७ । ११)।

निमेष–गरुडकी एक प्रमुख संतान (उद्योग० १०१ । १०)।

नियति–ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करनेवाली एक देवी (सभा० ११ । ४३)।

नियुतायु–श्रुतायुका पुत्र, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (द्रोण० ९४ । २९)।

नियोधक–एक दंगली पहलवानका नाम (विराट० २ । ९)।

निरमित्र–(१) नकुलका पुत्र, इसकी माता करेणुमती थी (आदि० ९५ । ७९)। (२) एक त्रिगर्तराजकुमार, जो सहदेवद्वारा मारा गया था (द्रोण० १०७ । २६)।

निरविन्द–एक पर्वत, यहाँ स्नान और पिण्डदानका फल (अनु० २५ । ४२)।

निरामय–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३७)।

निरामया–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३३)।

निरामर्द–एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३७)।

निर्ऋति–(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । २)। ये अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ६८)। (२) अधर्मकी स्त्री, इससे नैर्ऋत नामवाले तीन भयङ्कर राक्षस उत्पन्न हुए, जिनके नाम हैं–भय, महाभय एवं मृत्यु (आदि० ६६ । ५४-५५)।

निर्मोचन–एक नगर, जो मुरदैत्यकी राजधानी था (उद्योग० ४८ । ८३)।

निवातकवच–दैत्योंका एक दल, इन्द्रद्वारा इनका वर्णन (वन० ४७ । १५)। इनका अर्जुनके साथ युद्ध और संहार (वन० अध्याय १६९ से १७२ तक)।

निवातकवचयुद्धपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १६५ से १७५ तक)।

निशठ–(१) एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो रैवतक पर्वतके उत्सवमें सम्मिलित था (आदि० २१८ । १०)। (हरिवंशके अनुसार यह बलराम और रेवतीका पुत्र है।) यह सुभद्राके लिये दहेज लेकर खाण्डवप्रस्थमें आया था (आदि० २० । ३१)। युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सम्मिलित हुआ था (सभा० ३४ । १६)। उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहमें उपस्थित हुआ था (विराट० ७२ । २२)। अश्वमेध यज्ञमें श्रीकृष्णके साथ निशठका भी आगमन हुआ था (आश्व० ६६ । ४)। यह मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गया था (स्वर्गा० ५ । १६–१८)। (२) एक प्राचीन राजा, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । ११)।

निशा–भानु (मनु) नामक अग्निकी तीसरी भार्या, जिसने रोहिणी नामक कन्या और अग्नि एवं सोम नामक पुत्रको जन्म दिया था। (इसने पाँच अग्निस्वरूप पुत्र और उत्पन्न किये थे—वैश्वानर, विश्वपति, संनिहित, कपिल और अग्रणी।)

निशाकर–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १४)।

निशुम्भ–नरकासुरके चार प्रमुख राज्यपालोंमेंसे एक, जो भूतलसे लेकर देवयानतकका मार्ग रोककर खड़ा रहता था। श्रीकृष्णद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०५)।

निश्चीरा–एक त्रिलोकविख्यात नदी, जिसकी यात्रा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता और यात्री भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। निश्चीरासंगममें दानका फल इन्द्रलोककी प्राप्ति है (वन० ८४ । १३८-१३९)।

निश्च्यवन–बृहस्पतिके दूसरे पुत्र, जो यश, वर्चस् और कान्तिसे कभी च्युत नहीं होते, ये केवल पृथ्वीकी स्तुति करते हैं। निष्पाप, निर्मल, विशुद्ध तथा तेजःपुञ्जसे प्रकाशित हैं। इनके पुत्रका नाम सत्य है (वन० २१९ । १२-१३)।

निषङ्गी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०३)। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । ४–६)।

निषध–(१) भरतवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजय-के चतुर्थ पुत्र, जो धर्म और अर्थमें कुशल तथा समस्त प्राणियोंके हितमें संलग्न रहनेवाले थे (आदि० ९४ । ५६) । (२) एक पर्वत, जो हरिवर्ष और इलावृतवर्षके बीचमें है । अर्जुनने दिग्विजयके समय यहाँके निवासियों-को जीतकर अपने अधीन किया था (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४६) । एक पर्वत, जो हिमवान् और हेमकूटसे भी आगे है । मार्कण्डेयजीने भगवान् बालमुकुन्दके उदरदेशमें इसका दर्शन किया था (वन० १८८ । ११२) । (आधुनिक मतके अनुसार गन्धमादनके पश्चिम और काबुल नदीके उत्तरका पर्वत हिंदूकुश ही 'निषध' है) । (३) प्राचीन देश, जहाँ वीरसेन नामसे प्रसिद्ध राजा राज्य करते थे । इन्हींके पुत्र नल हुए (वन० ५२ । ५५) ।

निषाद–(१) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५१) । (२) वेनकी दाहिनी जाँघसे उत्पन्न एक पुरुष, जो ऋषियोंके निषीद (बैठ जाओ) कहनेसे 'निषाद' कहलाया तथा जिससे वनमें रहनेवाले निषादोंकी उत्पत्ति हुई (शान्ति० ५९ । ९७) ।

निषादनरेश–एक राजा, जो कालेय एवं क्रोधहन्तासंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५०) ।

निष्कुट–एक प्राचीन प्रदेश, जहाँके अधिपतियोंको अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । २९) ।

निष्कुटिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

निष्कृति-एक अग्नि, जो बृहस्पतिके पुत्र हैं और लोगोंको संकटसे निष्कृति (छुटकारा) दिलानेके कारण 'निष्कृति' नामसे प्रसिद्ध हैं (वन० २१९ । १४) ।

निष्ठानक-कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुए एक प्रमुख नागका नाम (आदि० ३५ । ९) ।

निष्ठूरिक–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १२)

निसुन्द–एक दैत्य, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (वन० १२ । २९) ।

नीथ–एक वृष्णिवंशी राजकुमार (वन० १२० । १९) ।

नीप–(१) एक प्राचीन जनपद, जहाँके राजा राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (सभा० ५१ । २४) । (२) एक क्षत्रियवंश, जिसमें जनमेजय नामक कुलाङ्गार राजा प्रकट हुआ था (उद्योग० ७४ । १३) ।

नील–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) । (२) (दुर्योधन) माहिष्मती नगरीके एक राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६१) । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें गये थे (आदि० १८५ । १०) । सहदेवके साथ इनका भीषण युद्ध (सभा० ३१ । २१) । अग्निदेवद्वारा राजा नीलकी सहायता (सभा० ३१ । २३) । इनके द्वारा अग्निदेवको अपनी कन्याका दान (सभा० ३१ । ३३) । अग्निदेवद्वारा राजा नीलकी सेनाको अभय-दान (सभा० ३१ । ३५) । पराजित नीलद्वारा सहदेवका पूजन (सभा० ३१ । ५८-५९) । कर्णने दिग्विजयके समय इन्हें पराजित किया था (वन० २५४ । १५) पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १६) । दुर्योधनकी सहायतामें इनका सेनासहित आगमन (उद्योग० १९ । २३-२४) । दुर्योधनकी सेनामें एक रथियोंकी गणनामें इनका भी नाम था (उद्योग० १६६ । ४) । इन्होंने नर्मदाको भार्या-रूपमें पाकर उसके गर्भसे सुदर्शना नामक कन्या उत्पन्न की, जिसे अग्निदेव चाहने लगे । राजाने इस बातको जानकर वह कन्या उनके साथ ब्याह दी । उससे सुदर्शन नामक पुत्र हुआ (अनु० २ अध्याय) । (३) एक पर्वत, जो उत्तरमें गन्धमादन और मन्दराचलके बाद आता है (वन० १८८ । ११३) । गङ्गाद्वारमें भी एक नील पर्वत है, जहाँ स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य स्वर्गको जाता है (अनु० २५ । १३) । (४) एक वानर-सेनापति, इनके द्वारा दूषणके छोटे भाई प्रमाथीका वध (वन० २८७ । २७) । (५) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जो उदार रथी, सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता और महामनस्वी था (उद्योग० १७१ । १५) । अनूप-देशका राजा, जिसे अश्वत्थामाने मूर्च्छित किया था (भीष्म० ९४ । ३६) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ६५) । दुर्जयके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४५) । अश्वत्थामाद्वारा वध (द्रोण० ३१ । २५) । इसके कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें जानेकी चर्चा (शान्ति० ४ । ६) ।

नीलगिरि–भद्राश्व वर्षकी सीमापर स्थित एक पर्वत, जिसे लाँघनेपर रम्यक वर्ष आता है (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४९) ।

नीला–एक मुख्य नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३१) ।

नीली–महाराज अजमीढ़की द्वितीय पत्नी । इनके गर्भसे दुष्यन्त तथा परमेष्ठीका जन्म हुआ था (आदि० ९४ । ३२) ।

नीवारा—एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय जनता पीती है (भीष्म० ९ । १८) ।

नृग—एक प्रसिद्ध एवं प्राचीन दानी राजा, जो यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । ८) । नृगने वाराहतीर्थमें पयोष्णी नदीके तटपर यज्ञ किया था, जिसमें इन्द्र सोमपान करके मस्त हो गये थे और प्रचुर दक्षिणा पाकर ब्राह्मणलोग भी हर्षोल्लाससे परिपूर्ण हो गये थे (वन० ८८ । ५-६; वन० १२१ । १-२) । इन्हें भारतवर्ष बहुत प्रिय था (भीष्म० ९ । ७–९) । ये शौर्यसे सुयश एवं सम्मानके भागी होकर उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए थे (भीष्म० १७ । ९– १०) । श्रीकृष्ण-द्वारा गिरगिटकी योनिसे उद्धार (अनु० ७० । ७) । श्रीकृष्णके पूछनेपर इनका अपनी आत्मकथा सुनाना (अनु० ७० । १०–२८) । श्रीकृष्णकी आज्ञासे इनका स्वर्गलोकमें गमन (अनु० ७० । २९) । गोदानमहिमाके प्रसंगमें इनका नामनिर्देश (अनु० ७६ । २५) । मांस-भक्षणका निषेध करनेके कारण इनको परावरतत्त्वका ज्ञान (अनु० ११५ । ६०) ।

नृत्यप्रिया—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १०) ।

नृसिंह—भगवान् विष्णुके अवतार । इनके द्वारा हिरण्यकशिपुके वधकी कथा (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८५ से ७८९ तक) ।

नेपाल—हिमालयकी तराईका एक जनपद । कर्णने अपनी दिग्विजयके समय यहाँके राजाको जीता था (वन० २५४ । ७) ।

नेमिहंसपथ—एक स्थान, जो श्रीकृष्णके ही राष्ट्रभूत आनर्तदेशके भीतर अक्षप्रपतनके समीप था । यहीं भगवान् श्रीकृष्णने गोपति एवं तालकेतुका वध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२४)।

नैकपृष्ठ—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४१) ।

नैगमेय—(१) कुमार कार्तिकेयके तृतीय भ्राता । पिताका नाम अनल (आदि० ६६ । २४) । (२) कुमार कार्तिकेयकी चार मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति । दोके नाम थे— शाख और विशाख (शल्य० ४४ । ३७) ।

नैमिष—(इसे नैमिष एवं नैमिषारण्य भी कहा जाता है । आजकल लोग इसे 'नीमसार' कहते हैं । यह स्थान सीतापुर जिलेमें है ।) नैमिषारण्य तीर्थमें शौनकने अपना द्वादश वार्षिक यज्ञ किया था (आदि० १ । १; आदि० ४ । १) । ऋषियोंकी प्रेरणासे सौतिने यहाँ महाभारतकी सम्पूर्ण कथा सुनायी थी (आदि० १ । ९–२५) । इस तीर्थमें देवताओंने यज्ञ किया था (आदि० १९६ । १) । नैमिषारण्यमें आकर अर्जुनने उत्पलिनी (कमल-मण्डित गोमती) नदीका दर्शन किया (आदि० २१४ । ६) । इस सिद्धसेवित पुण्यमय तीर्थमें देवताओंके साथ ब्रह्माजी नित्य निवास करते हैं । नैमिषकी खोज करनेवाले पुरुषका आधा पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है और उस तीर्थमें प्रवेश करते ही वह सारे पापोंसे छुटकारा पा जाता है । वहाँ तीर्थसेवनमें तत्पर हो एक मासतक निवास करना चाहिये । पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी नैमिषमें विद्यमान हैं । जो वहाँ स्नान करके नियम-पालन-पूर्वक नियमित भोजन करता है, वह गोमेध यज्ञका फल पाता और अपने सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है । जो नैमिषमें उपवासपूर्वक प्राणत्याग करता है, वह समस्त पुण्यलोकोंमें आनन्दका अनुभव करता है । नैमिषतीर्थ नित्य पवित्र और पुण्यजनक है । (वन० ८४ । ५९– ६४) । देवर्षिसेवित प्राची दिशामें नैमिष नामक तीर्थ है, जहाँ भिन्न-भिन्न देवताओंके पृथक्-पृथक् पुण्यतीर्थ हैं । वहाँ देवर्षिसेवित परम रमणीय पुण्यमयी गोमती नदी है । देवताओंकी यज्ञभूमि और सूर्यका यज्ञ-पात्र विद्यमान है (वन० ८७ । ६-७) । भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरने नैमिषारण्य तीर्थमें आकर गोमतीके पुण्य तीर्थोंमें स्नान, गोदान एवं धन दान किया (वन० ९५ । १-२) ।

नैमिषकुञ्ज—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जिसका निर्माण नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने किया था । वहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । १०९) ।

नैमिषेय—एक तीर्थ, जहाँ नैमिषारण्यवासी मुनियोंके दर्शनार्थ सरस्वतीकी धारा पश्चिमसे पूर्वको लौट आयी थी । यहाँ सरस्वतीकी धारा पलटनेका विशेष विवरण (शल्य० ३७ । ३५–५७) ।

नैर्ऋत—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५१) ।

नैर्ऋति—एक राक्षस । पृथ्वीके प्राचीन शासकोंमें इसका नाम है (शान्ति० २२७ । ५२) ।

नौकर्णी—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २९)।

नौबन्धन—हिमालयका एक शिखर । यहाँ मत्स्य भगवान्के सींगसे खोलकर सप्तर्षियोंने नौका बाँधी थी (वन० १८७ । ५०) ।

न्यग्रोधतीर्थ—उत्तराखण्डका दृषद्वती-तटवर्ती एक आश्रम (वन० ९० । ११) ।

(प)

पक्षालिका—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १९) ।

पङ्क्तिजित्–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १०)।

पङ्क्तिदिग्धाङ्ग–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८)।

पञ्चक–इन्द्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक। दूसरेका नाम उत्क्रोश था (शल्य० ४५ । ३५)।

पञ्चकर्पट–एक पश्चिम भारतीय जनपद, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ७)।

पञ्चगङ्गा–एक तीर्थ, जहाँ मृत्युने तपस्या की थी (द्रोण० ५४ । २३)।

पञ्चगण–उत्तर दिशाका एक जनपद, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । १२)।

पञ्चचूडा–पाँच जूड़ोंवाली एक अप्सरा (वन० १३४ । १२)। जो शुकदेवजीको परमपदकी प्राप्तिके लिये ऊपरकी ओर जाते देख आश्चर्यचकित हो उठी थी (शान्ति० ३३२ । १९-२०)। इसने नारदजीके समक्ष नारी-स्वभावका वर्णन किया था (अनु० ३८ । ११–३०)।

पञ्चजन–'पञ्चजन' नामसे प्रसिद्ध पाँच असुर, जो नरकासुरके अनुयायी थे। भगवान् श्रीकृष्णने इनका वध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९८)।

पञ्चनद–पश्चिमोत्तर भारतका एक प्रदेश, जिसे आजकल पंजाब कहते हैं; इसे पश्चिम-दिग्विजयके समय नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ११)। इस प्रान्तमें पाँच प्रसिद्ध नदियाँ विपाशा (व्यास), शतद्रू (सतलज), इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चनाब) और वितस्ता (झेलम) बहती हैं। इसलिये इसे पञ्चनद या पञ्जाब कहा गया है।

पञ्चनद–(१) एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पञ्चमहायज्ञोंका फल पाता है (वन० ८२ । ८३)। (२) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ कोटि-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । १६-१७)।

पञ्चमी–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६)।

पञ्चयज्ञा–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । १०-११)।

पञ्चरात्र–एक आगम या शास्त्र, जिसके विशेषज्ञ पञ्चशिख-मुनि बताये गये हैं (शान्ति० २१८ । ११-१२)।

पञ्चवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६)।

पञ्चवटी–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जिसकी यात्रा करके महान् पुण्यसे युक्त हो मनुष्य सत्पुरुषोंके लोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १६२)।

पञ्चवीर्य–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६)।

पञ्चशिख–एक प्राचीन ऋषि, जो कपिलाके पुत्र और आसुरिके शिष्य थे (शान्ति० २१८ । ६)। इनका पञ्चशिख नाम पड़नेका कारण (शान्ति० २१८ । ११-१२)। मिथिलानरेश जनदेवको इनका उपदेश (शान्ति० २१८ । २२ से २१९ । ५२ तक)। जरा-मृत्युकी निवृत्तिके विषयमें जनकको इनका उपदेश (शान्ति० ३१९ । ६–१५)।

पञ्चाल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४१; भीष्म० ९ । ४७)।

पटच्चर–एक भारतीय जनपद और वहाँके निवासी राजा एवं राजकुमार आदि; इस देशके लोग जरासंधके भयसे दक्षिणको भाग गये थे (सभा० १४ । २६)। सहदेवने इन्हें दक्षिणदिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ४)। ये लोग युधिष्ठिरके पक्षमें लड़ने आये थे और उन्हींके साथ क्रौञ्चव्यूहके पृष्ठभागमें खड़े थे (भीष्म० ५० । ४८)।

पटवासक–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १८)।

पटुश–एक राक्षस, जिसने श्रीरामसेनाके पनस नामक वानरके साथ युद्ध किया था (वन० २८५ । ९)।

पण्डितक (**या पण्डित**)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०१)। भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २४-२५)।

पतत्रि–कौरवपक्षका एक योद्धा, इसका भीमसेनद्वारा रथहीन होना (कर्ण० ४८ । ३०)।

पतन–राक्षसों और पिशाचोंके दल (वन० २८५ । १-२)।

पताकी–कौरवदलका एक योद्धा, जिसे साथ लेकर अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये दुर्योधनका शकुनिको आदेश (द्रोण० १५६ । १२२)।

पतिव्रतामाहात्म्यपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २९३ से २९९ तक)।

पत्ति–सेनाका परिमाणविशेष (आदि० २ । १९)।

पत्तोर्ण–एक क्षत्रियनरेश, जो युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १८)।

पथिकृत–एक अग्नि; यदि दर्श और पूर्णमास याग बीचमें ही बंद हो जाय तो इनके लिये अष्टाकपाल पुरोडाश देनेका विधान है (वन० २२१ । ३०)।

पदाति–कुरुकुमार जनमेजयके सातवें पुत्र (आदि० ९४। ५७)।

पद्म (प्रथम)–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न पद्मनामक एक प्रमुख नाग (आदि० ३५। १०)। (२) (द्वितीय) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न पद्मनामका दूसरा नाग (आदि० ३४। १०)। ये दोनों पद्म वरुणकी सभामें उपस्थित होते हैं (सभा० ९। ८)। (३) एक राजा, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८। २१)। (४) एक निधि, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित रहती है (सभा० १०।३९)। (५) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ५६)।

पद्मकूट-भगवान् श्रीकृष्णके एक प्रासादका नाम (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५)। (इस भवनमें भगवान्‌की प्रेयसी श्रीसुप्रभाजी रहती थीं।)

पद्मकेतन–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१। ११)।

पद्मनाभ–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७। ९६) । (२) नैमिषारण्यमें गोमती-तटपर नागपुरमें निवास करनेवाला एक नाग (शान्ति० ३५५। ४)। इसके गुणोंका वर्णन (शान्ति० ३५५। ५—११)। इसका अपनी पत्नीसे धर्मविषयक वार्तालाप (शान्ति० ३५९ अध्याय) । अभिमान और रोष छोड़कर ब्राह्मणको दर्शन देनेके लिये उद्यत होना (शान्ति० ३६१। ८—१२) । ब्राह्मणके पूछनेपर सूर्यमण्डलकी कथा सुनाना (शान्ति० ३६२ अध्याय)।

पद्मसर–एक सरोवर, जहाँ खाण्डवप्रस्थसे गिरिव्रजकी ओर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन पहुँचे थे (सभा० २०। २६)।

पद्मसौगन्धिक–चेदिदेशके पास वनप्रान्तमें स्थित एक कमलमण्डित सरोवर, जहाँ व्यापारियोंके एक दलपर जंगली हाथियोंने आक्रमण किया था (वन० ६५। २–८)।

पद्मावती–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६। ९);

पनस–एक वानर-यूथपति, जो सत्तावन करोड़ सेना साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आया था (वन० २८३। ६)। इसने पटुश नामक राक्षसके साथ युद्ध किया था (वन० २८५। ९)।

पम्पासरोवर-ऋष्यमूक पर्वतके पासका एक सरोवर, जिसके समीप अपने चार मन्त्रियोंके साथ सुवर्ण-मालाधारी वानरराज वालीके भाई सुग्रीव निवास करते थे (वन० २७९। ४४)।

पयस्य–महर्षि अङ्गिराके वारुणसंज्ञक आठ पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५। १३०)।

पयोदा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६। २८)।

पयोष्णी–एक परम पवित्र नदी, जो विन्ध्यपर्वतसे निकलकर दक्षिण दिशाकी ओर बहती है। राजा नलने इसे समुद्रगामिनी बताकर दमयन्तीको इसका और विन्ध्यपर्वतका दर्शन कराया था (वन० ६१। २२)। सरिताओंमें श्रेष्ठ पयोष्णीमें जाकर स्नान एवं देवता-पितरोंका पूजन करनेसे तीर्थसेवीको सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५। ४०)। राजा नृगने पयोष्णीके तटपर उत्तम वाराहतीर्थमें यज्ञ किया था; जिसमें सोम पीकर इन्द्र और दक्षिणा पाकर ब्राह्मण मस्त हो गये थे (वन० ८८। ४–६; वन० १२१। १-२)। पयोष्णीका जल हाथसे उठाया गया हो, धरतीपर पड़ा हो या वायुके वेगसे उछलकर शरीरपर पड़ गया हो, वह जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त किये हुए समस्त पापोंको हर लेता है। यहाँ भगवान् शङ्करका शृङ्गनामक वाद्यविशेष है, जिसके दर्शनसे मनुष्यको शिवधामकी प्राप्ति होती है। इसका माहात्म्य दूसरी सभी नदियोंसे बढ़कर है (वन० ८८। ७–९)। धर्मराज युधिष्ठिर लोमशजी, भाइयों और सेवकोंके साथ विदर्भनरेशद्वारा पूजित उत्तम तीर्थोंवाली पुण्यसलिला पयोष्णीके तटपर गये थे। उसके जलमें यज्ञसम्बन्धी सोमरसका सम्मिश्रण हुआ था। धर्मराजने पयोष्णीके तटपर जाकर उसका जल पीया और वहाँ निवास किया (वन० १२०। ३१–३२)। अमूर्तरयाके पुत्र राजा गयने इसके तटपर सात अश्वमेध यज्ञ करके सोमरसके द्वारा वज्रधारी इन्द्रको संतुष्ट किया था (वन० १२१। ३)। यह भारतकी उन प्रमुख नदियोंमेंसे है, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९। २०)।

पर–(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १। २३४)। (२) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४। ५५)।

परतङ्गण–एक भारतीय जनपद (भीष्म०९। ६४)।

परपुरञ्जय–एक हैहयवंशी राजकुमार, इसके द्वारा हिंसक पशुके धोखेमें एक ऋषिकी हत्या (वन० १८४। ५)। अरिष्टनेमिद्वारा इसके ब्रह्महत्याके भ्रमका निवारण (वन० १८४। १४)।

परमकाम्बोज–पश्चिमोत्तर भारतका एक जनपद, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७। २५)।

परमक्रोधी–एक विश्वेदेव (अनु० ९१। ३२)।

परमेष्ठी–महाराज अजमीढ़के द्वारा नीलीके गर्भसे उत्पन्न द्वितीय पुत्र, इनके सभी पुत्र पाञ्चाल कहलाये (**आदि० ९४ । ३२-३३**) ।

परशुराम–महर्षि जमदग्निके पुत्र, माताका नाम रेणुका, इनके द्वारा समन्तपञ्चक क्षेत्रका निर्माण (**आदि० २ । ४**) । क्षत्रियोंके रुधिरसे पितरोंका तर्पण तथा पितरोंद्वारा इनको वरदान (**आदि० २ । ५-७**) । इन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य किया और अन्तमें महेन्द्र पर्वतपर उत्तम तपस्या की (**आदि० ६४ । ४**) । इनके द्वारा महर्षि कश्यपको समस्त पृथ्वीका दान (**आदि० १२९ । ६२**) । द्रोणको सम्पूर्ण अस्त्रोंकी शिक्षा (**आदि० १२९ । ६६**) । द्रोणको ब्रह्मास्त्रका दान (**आदि० १६५ । १३**) । ये यमसभामें उपस्थित होते हैं (**सभा० ८ । १९**) । इनके द्वारा जम्भासुरके मस्तकका भेदन और शतदुन्दुभि नामक दैत्यका विनाश । इनके द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियोंका विनाश हुआ और सहस्रबाहु अर्जुन मारा गया । शाल्वके साथ इनका भयानक युद्ध, शाल्वके सौभ विमानको नष्ट न कर सकनेके सम्बन्धमें इनके प्रति नग्निका कुमारिकाओंके वचन (**सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ७९२ से ७९५ तक**) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें गये थे और इनके सहित ऋषियोंने युधिष्ठिरका अभिषेक किया (**सभा० ५३ । ११**) । परशुरामजीने भृगुतुङ्ग पर्वतपर युधिष्ठिरको उपदेश दिया था (**सभा० ७८ । १५**) । लोमशजीद्वारा युधिष्ठिरके प्रति इनके चरित्रका वर्णन (**वन० ९९ । ४०–७१**) । पिताकी आज्ञासे इनका अपनी माताका वध करना (**वन० ११६ । १४**) । इनको पिताका वरदान (**वन० ११६ । १८**) । इनके द्वारा कार्तवीर्य अर्जुनका वध (**वन० ११६ । २५**) । कुपित हुए इनका इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करना (**वन० ११७ । ९**) । इनका यज्ञ और कश्यप आदि ब्राह्मणोंको भूमिदान (**वन० ११७ । ११**) । ये कर्णके गुरु थे (**वन० ३०२ । ९**) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें इनका श्रीकृष्णसे मिलना और वार्तालाप करना (**उद्योग० ८३ । ६४ के बादसे ७२ तक**) । कौरवसभामें दम्भोद्भवका उदाहरण देते हुए नर-नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमाका वर्णन (**उद्योग० ९६ अध्याय**) । अम्बाका कार्य करनेके लिये उसे सान्त्वना देना (**उद्योग० १७७ । ३२–३४**) । अम्बाके साथ हस्तिनापुर जाकर भीष्मसे उसे ग्रहण करनेको कहना (**उद्योग० १७८ । ३०**) । भीष्मके अस्वीकार करनेपर उन्हें मार डालनेकी धमकी देना (**उद्योग० १७८ । ३५-३६**) । भीष्मके साथ युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें जाना (**उद्योग० १७८ । ६६**) । इनके संकल्पमय रथका वर्णन (**उद्योग० १७९ । ३-४**) । भीष्मके साथ युद्धारम्भ (**उद्योग० १७९ । १९ से १८५ अध्याय तक**) । देवता, पितर और गङ्गाके आग्रहसे इनका युद्ध बंद करके भीष्मपर संतुष्ट होना (**उद्योग० १८५ । ३६**) । अम्बासे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए जानेके लिये कहना (**उद्योग० १८६ । ३**) । संजयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके चरित्रका वर्णन (**द्रोण० ७० अध्याय**) । शिवसे वरदान पाना और दानवोंका वध करना (**कर्ण० ३४ । १४९–१५५**) । ब्राह्मणरूपधारी कर्णका रहस्य खुल जानेपर इनके द्वारा उसको शाप-दान (**कर्ण० ४ । ९**) । इनके देखनेमात्रसे दंशनामक राक्षसका कीट-योनिसे उद्धार (**शान्ति० ३ । १४**) । कर्णको शाप (**शान्ति० ३ । ३०–३२**) । इनके जन्मका प्रसंग (**शान्ति० ४९ । ३१-३२**) । तपस्याद्वारा महादेवजीसे कुठार प्राप्त करना (**शान्ति० ४९ । ३३**) । हैहयराज अर्जुनकी भुजाओंका छेदन (**शान्ति० ४९ । ४८**) । कार्तवीर्यके वंशका संहार (**शान्ति० ४९ । ५२-५३**) । यज्ञान्तमें सारी पृथ्वी दक्षिणारूपमें कश्यपको दान (**शान्ति० ४९ । ६३-६४**) । शूर्पारक क्षेत्रमें निवास (**शान्ति० ४९ । ६६–६७**) । मुचुकुन्दको कपोत और बहेलियेकी कथा सुनाना (**शान्ति० अध्याय १४३ से १४९ तक**) । इनके द्वारा ब्राह्मणको पृथ्वी-दान (**शान्ति० २३४ । २६**) । शिव-महिमाके विषयमें युधिष्ठिरको अपना अनुभव सुनाना (**अनु० १८ । १२–१५**) । वशिष्ठ आदि ऋषियोंसे अपनी शुद्धिका उपाय पूछना (**अनु० ८४ । ३९-४०**) । इनके द्वारा भूमिदान (**अनु० १३७ । १२**) । कार्तवीर्य अर्जुनका वध (**आश्व० २९ । ११**) । इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार (**आश्व० २९ । १८**) । पितरोंके समझानेसे युद्धसे विरत होना और तपस्याद्वारा परमसिद्धिकी प्राप्ति (**आश्व० ३० अध्याय**) ।

परशुरामकुण्ड–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित और परशुरामद्वारा स्थापित पाँच कुण्ड, जो सुप्रसिद्ध तीर्थ हैं । इनकी उत्पत्ति और महत्ता (**वन० ८३ । २६–३८**) ।

परशुवन–एक नरक (**शान्ति० ३२१ । ३२**) ।

परहा–एक प्राचीन राजा (**आदि० १ । २३८**) ।

परान्त–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४७**) ।

परावसु–एक ऋषि, जो रैभ्य मुनिके पुत्र और अर्वावसुके बड़े भाई थे । हिंसक पशुके धोखेमें इनके द्वारा पिताका वध और उनका अन्त्येष्टि-संस्कार (**वन० १३८ । २—७**) । इनका अपने छोटे भाई अर्वावसुको अपनी की हुई ब्रह्महत्याके निवारणके लिये व्रत करनेकी आज्ञा देना और उनका भाईकी आज्ञाको स्वीकार करना (**वन०**

१२८ । ८–१०) । देवताओंद्वारा बृहद्द्युम्नके यज्ञसे इनका निकलवाया जाना (वन० १३८ । २०) । अर्वावसुके प्रयत्नसे इनका निर्दोष सिद्ध होना (वन० १३८ । २१) । इनके द्वारा परशुरामजीपर आक्षेप (शान्ति० ४९ । ५७–५९) । ये अङ्गिराके वंशज माने जाते हैं (शान्ति० २०८ । २६) । इन्होंने उपरिचरके यज्ञकी सदस्यता स्वीकार की (शान्ति० ३३६ । ७) । ये इन्द्रसभाके सदस्य हैं (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

परावह—वायुके सात भेदोंमेंसे एक । यह सप्तम वायु है । इसके स्वरूप और शक्तिका वर्णन (शान्ति० ३२८ । ५२) ।

पराशर–(१) धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें स्वाहा हो गया (आदि० ५७ । १९) । (२) महर्षि शक्तिके द्वारा अदृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्न एक ऋषि, जो वसिष्ठ मुनिके पौत्र थे (आदि० १७७ । १) । राक्षसभावापन्न कल्माषपादद्वारा इनके पिता शक्तिका वध (आदि० १७५ । ४०) । बारह वर्षोंतक माताके गर्भमें इनका वेदाभ्यास (आदि० १७६ । १५) । इनका 'पराशर' नाम होनेका कारण (आदि० १७७ । ३) । अपनी माताके मुँहसे राक्षस-द्वारा अपने पिताकी मृत्युका समाचार सुनकर सम्पूर्ण जगत्के विनाशके लिये इनका संकल्प (आदि० १७७ । ५–९) । भृगुवंशी और्वकी कथा सुनाकर वशिष्ठद्वारा इनके जगद्विनाशक संकल्पका निवारण (आदि० १७७ । ११ से अध्याय १८० । १ तक) । इनके द्वारा राक्षस-सत्रका अनुष्ठान, पुलस्त्य आदि महर्षियोंद्वारा इनके राक्षस-यज्ञका निवारण (आदि० १८० । ८–११) । सत्यवती-के रूपके प्रति इनका आकर्षण (आदि० ६३ । ७०-७१) । इनका सत्यवतीको योजनगन्धा होनेका वरदान देना (आदि० ६३ । ८०–८२) । इनके द्वारा सत्यवती-के गर्भसे व्यासका जन्म (आदि० ६३ । ८४) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये उनके पास गये थे (शान्ति० ४७ । १०) । इन्होंने दयावश सौदासके पुत्रकी रक्षा की थी (शान्ति० ४९ । ७७) । इनके द्वारा जनकको कल्याण-प्राप्तिके साधनका उपदेश (शान्ति० २९० अध्याय) । शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरको अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ४०–४५) । इनका अपने शिष्योंको विविध ज्ञानपूर्ण उपदेश (अनु० ९६ । २१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५७७४ से ५७८६ तक) । पराशरमतानुसार सावित्री-मन्त्रका वर्णन (अनु० १५० अध्याय) ।

परिक्षित् (परीक्षित्)–(१) कुरुकुमार अविक्षित्के प्रथम पुत्र । इनके कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण तथा भीमसेन नामके छः पुत्र थे । ये सभी धर्म और अर्थके ज्ञाता थे (आदि० ९४ । ५२–५४) । (२) कुरुकुमार अनश्वाके पुत्र । इनकी माताका नाम 'अमृता' था । इनके द्वारा सुयशाके गर्भसे भीमसेनका जन्म हुआ था (आदि० ९५ । ४१-४२) । (३) एक पाण्डुवंशीय सम्राट्, जो सुभद्राकुमार अभिमन्यु और उत्तराके पुत्र थे (आश्व० ६६ अध्याय) । इनके जन्मकालमें भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरमें विद्यमान थे (आश्व० ६६ । ८) । ये ब्रह्मास्त्रसे पीड़ित होनेके कारण चेष्टाहीन शवके रूपमें उत्पन्न हुए; अतः स्वजनोंका हर्ष और शोक बढ़ानेवाले हो गये थे (आश्व० ६६ । ९) । इन्हें जीवित करनेके लिये कुन्तीकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना (आश्व० ६६ । १५–२८) । इन्हें जिलानेके लिये रोती हुई सुभद्राकी श्रीकृष्ण-से प्रार्थना (आश्व० ६७ अध्याय) । श्रीकृष्णका प्रसूतिकागृहमें प्रवेश, उत्तराका विलाप और अपने पुत्रको जीवित करनेके लिये उसकी प्रार्थना (आश्व० ६८ अध्याय) । उत्तराका विलाप और भगवान् श्रीकृष्णका उसके मृत बालकको जीवनदान देना (आश्व० ६९ अध्याय) । श्रीकृष्णद्वारा परीक्षित्का नामकरण । उत्तरा-का इन्हें गोदमें लेकर श्रीकृष्णको प्रणाम करना और श्रीकृष्णका शिशु परीक्षित्के लिये बहुत-से रत्न उपहारमें देना (आश्व० ७० । ९—१२) । इनकी एक मासकी अवस्था होनेपर पाण्डवोंका हिमालयसे धन लेकर आना (आश्व० ७० । १३-१४) । युधिष्ठिरद्वारा परीक्षित्का कुरुदेशके राज्यपर अभिषेक (महाप्रस्थान० १ । ७-८) । कृपाचार्यकी पूजा करके युधिष्ठिरका पुरवासियोंसहित परी-क्षित्को शिष्यभावसे उनकी सेवामें सौंपना (महाप्रस्थान० १ । १४-१५) । इनका माद्रवतीके साथ विवाह और उसके गर्भसे जनमेजय आदिका जन्म (आदि० ९५ । ८५) । इनके तीन पुत्र और थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन (आदि० ३ । १७) । ये अपने प्रपितामह पाण्डुकी भाँति शिकार खेलनेके शौकीन थे (आदि० ४० । १०-११) । इनका एक दिन मृगयाके लिये एक गहन वनमें जाकर एक हिंसक पशुको बींधना और उस पशुका अदृश्य हो जाना (आदि० ४० । १३–१६) । थके-माँदे और प्यासे हुए राजाका शमीक मुनिके आश्रम-पर आना, अपने बाणोंसे बिंधे हुए पशुका पता पूछना और ध्यानस्थ मुनिके उत्तर न देनेपर कुपित हुए नरेशका उनके कंधेपर एक मरा हुआ साँपको डाल देना (आदि० ४० । १७–२१) । राजाके दुर्व्यवहारसे दुखी हुए ऋषिकुमार कृशका शमीकपुत्र शृङ्गीऋषिको उनके विरुद्ध

उत्तेजित करना (आदि० ४० । २७—३२)। शृङ्गी-ऋषिका कृशसे राजा परीक्षित्के दुर्व्यवहारकी बात जानकर उन्हें शाप देना और शमीकका अपने पुत्रको शान्त करते हुए शापको अनुचित बताना (आदि० ४१ अध्याय)। शमीकमुनिके भेजे हुए गौरमुखका राजा परीक्षित्के पास आना और शृङ्गीऋषिके दिये हुए शापकी बात बताकर उनसे आत्मरक्षाके लिये प्रयत्न करनेको कहना (आदि० ४२ । १३—२२)। राजा परीक्षित्का पश्चात्ताप करना, मन्त्रियोंकी सलाहसे एक ही खंभेका ऊँचा महल बनवाना और रक्षाके लिये मन्त्र, औषध आदिकी आवश्यक व्यवस्था करना (आदि० ४२ । २३—३२)। परीक्षित्की रक्षाके लिये आते हुए काश्यपको लौटाकर तक्षकका छलसे परीक्षित्के पास पहुँचकर उन्हें डँस लेना (आदि० ४३ अध्याय)। इनकी मृत्युसे दुखी हुए मन्त्रियोंका रोदन और इनके अल्पवयस्क पुत्र जनमेजयका राज्याभिषेक (आदि० ४४ । १—६)। जनमेजयके मन्त्रियोंद्वारा इनके धर्ममय आचार तथा उत्तम गुणोंका वर्णन (आदि० ४९ । ३–१८)। तक्षकद्वारा इनकी मृत्यु होनेका पुनः वर्णन (आदि० अध्याय ४९ से ५० तक)। व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने परलोकवासी पिता परीक्षित्का दर्शन। उनका अपने पिताको अवभृथ-स्नान कराना। तत्पश्चात् परीक्षित्का अदृश्य हो जाना (आश्रम० ३५ । ६–९)।

महाभारतमें आये हुए परीक्षित्के नाम–अभिमन्युसुत, अभिमन्युज, भरतश्रेष्ठ, किरीटितनयात्मज, कुरुश्रेष्ठ, कुरु-नन्दन, कुरुराज, कुरुवर्धन, पाण्डवेय आदि। (४) अयोध्याके एक इक्ष्वाकुवंशी नरेश (वन० १९२ । ३)। इनका मण्डूकराजकी कन्या सुशोभनासे विवाह (वन० १९२ । १२)। इनके द्वारा सुशोभनाके बावड़ीमें डूब जानेपर मण्डूकोंको मार डालनेका आदेश (वन० १९२ । २२–२४)। मण्डूकराजद्वारा पुनः इन्हें सुशोभनाकी प्राप्ति (वन० १९२ । ३५)। सुशोभनाके गर्भसे इन्हें पुत्रकी प्राप्ति और इनका वनगमन (वन० १९२ । ३८)। (५) एक प्राचीन नरेश, जो कुरुवंशी अभिमन्युपुत्र परीक्षित्से भिन्न थे। इन्द्रोत मुनिद्वारा इनके पुत्र जनमेजयकी ब्रह्महत्याका निवारण (शान्ति० अध्याय १५० से १५१ तक)।

परिघ–(१) अंशद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक। चारके नाम इस प्रकार हैं—वट, भीम, दहति, और दहन। (२) विडालोपाख्यानमें वर्णित व्याधका नाम (शान्ति० १३८ । ११७)।

परिबर्ह–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३)।

परिवह–छठा वायुतत्त्व, इसके स्वरूप और शक्तिका वर्णन (शान्ति० ३२८ । ४८)।

परिव्याध–पश्चिम दिशामें रहनेवाले एक महर्षि (शान्ति० २०८ । ३०)।

परिश्रुत–(१) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०)। (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१)

पर्जन्य–एक देवगन्धर्व, जो कश्यपद्वारा मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६५ । ४४)। ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५६)।

पर्णशाला–यामुनपर्वतकी तलहटीमें बसा हुआ ब्राह्मणोंका एक गाँव, जहाँ शर्मी नामक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे (अनु० ६८ । ४–६)।

पर्णाद–(१) एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १३)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)। (२) एक विदर्भनिवासी ब्राह्मण। इनका बाहुक नामधारी राजा नलका समाचार दमयन्तीसे कहना (वन० ७० । २–१३)। इन्हें दमयन्तीद्वारा पुरस्कार-दान (वन० ७० । १९)। (३) विदर्भनिवासी सत्य नामक ब्राह्मणके यज्ञमें होताका काम करनेवाले ऋषि (शान्ति० २७३ । ८)।

पर्णाशा–पश्चिमोत्तर भारतकी एक नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २१)। (कोई-कोई इसे राजपूतानेके अन्तर्गत 'बनास नदी' मानते हैं, जो चर्मण्वती या चम्बलकी सहायक है।) यह उन प्रमुख नदियोंमेंसे है, जिनका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३१)। इसने वरुणद्वारा श्रुतायुध नामक पुत्रको जन्म दिया और वरुणसे प्रार्थना की कि 'मेरा यह पुत्र शत्रुओंके लिये अवध्य हो।' तब वरुणने कहा कि 'मैं इसके लिये हितकारक वरके रूपमें यह दिव्यास्त्र प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा तुम्हारा यह पुत्र अवध्य होगा' (द्रोण० । ९२ । ४४–४६)।

पर्वण–राक्षसों और पिशाचोंके दल (वन० २८५ । १–२)।

पर्वत–प्राचीन ऋषि या देवर्षि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ८)। (ये और नारद अनेक स्थलोंपर साथ-साथ वर्णित हुए हैं। इन दोनोंको गन्धर्व भी माना जाता है और देवर्षि भी।) पर्वत और नारद द्रौपदीके स्वयंवरके अवसरपर आकाशमें दर्शक बनकर उपस्थित थे (आदि० १८६ । ७)। ये

युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा ४ । १५) । ये इन्द्रसभामें भी रहते हैं (सभा० ७ । १०) । गन्धर्वरूपसे कुबेरकी सभामें भी विराजते हैं (सभा० १० । २६) । ये नारदजीके साथ इन्द्रलोकमें गये थे (वन० ५४ । १४) । काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास जाकर इन्होंने उन्हें शुद्धभावसे तीर्थयात्रा करनेके लिये आज्ञा दी थी (वन० ९१ । १८–२०) । राजा सृंजयकी कन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करना (द्रोण० ५५ । ९–१०) । उस कन्याका नारदजीद्वारा वरण हो जानेसे कुपित हुए इनके द्वारा नारदजीको शाप(द्रोण० ५५ १४)। इनका रात्रियुद्धमें कौरव-पाण्डव-सेनाओंमें दीपकका प्रकाश करना (द्रोण० १६३ । १५) । ये नारदजीके भानजे थे—इन दोनों मुनियोंके उपाख्यानका श्रीकृष्णद्वारा वर्णन (शान्ति० ३० अध्याय) । इनका राजा सृंजयको पुत्रप्राप्तिका वर देना (शान्ति० ३१ । १६–१९) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । ३४) ।

पर्वसंग्रहपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २) ।

पलाला–सात शिशु-माताओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) ।

पलाशवन–एक तीर्थभूत वन, जहाँ जमदग्निने यज्ञ किया था । उस यज्ञमें श्रेष्ठ नदियाँ मूर्तिमती हो अपना अपना जल लेकर उन मुनिश्रेष्ठके पास आयी थीं । उन्होंने वहाँ मधुसे ब्राह्मणोंको तृप्त किया था (वन० ९४ । १६–१९) ।

पलित–विडालोपाख्यानमें वर्णित एक चूहेका नाम(शान्ति० १३८ । २१) । इसका लोमश नामक बिलावके साथ संवाद (शान्ति० १३८ । ३४–१९८) ।

पवनह्रद–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक मरुद्गणतीर्थ । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १०५) ।

पवित्रपाणि–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १५) । ये इन्द्र-सभाके भी सभासद हैं (सभा० ७ । १२) ।

पवित्रा भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके वासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २१) ।

पशु–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६७) ।

पशुदा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २८) ।

पशुभूमि–पशुपतिनाथका निकटवर्ती स्थान (नैपाल) । इस देशपर भीमसेनकी विजय (सभा० ३० । ९) ।

पशुसख–सप्तर्षियोंका सेवक एक शूद्र, जिसकी स्त्रीका नाम गण्डा था (अनु० ९३ । २२) । इसका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४७) । यातुधानीसे अपने नामकी व्याख्या करना (अनु० ९३ । १००) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १३१)।

पश्चिम दिशा–चार दिशाओंमेंसे एक, इसका विशेष वर्णन (उद्योग० ११० अध्याय) ।

पह्लव–(१) एक पश्चिम भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६८) । (२) एक म्लेच्छ जाति, जो नन्दिनी नामक गौकी पूँछसे प्रकट हुई थी (आदि० १७४ । ३६) । नकुलने इस देश और जातिके लोगोंको जीता था (सभा० ३२ । १७) । ये लोग युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें उपहार लाये थे (सभा० ५२ । १५) । ये मान्धाताके राज्यमें निवास करते थे (शान्ति० ६५ । १३-१४) ।

पांशु–एक प्राचीन देश, जहाँसे राजा वसुदानने छब्बीस हाथी, दो हजार घोड़े और अन्य भेंट-सामग्री पाण्डवोंको समर्पित की थी (सभा० ५२ । २७-२८) ।

पाक–एक असुर, जिसे इन्द्रने मारा था (शान्ति० ९८ । ५०) ।

पाखण्ड–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया (सभा० ३१ । ७०) ।

पाञ्चजन्य–(१) रैवतक पर्वतका समीपवर्ती वन, जिसकी बड़ी शोभा होती है (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका शङ्ख (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१८) । शाल्वके साथ युद्ध करते समय श्रीकृष्णद्वारा पाञ्चजन्य शङ्खका बजाया जाना (वन० २० । १३) । कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें भगवान् श्रीकृष्णने अपना पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया था (भीष्म० २५ । १५) । (३) पाँच ऋषियोंके अंशसे उत्पन्न एक अग्नि । इसका दूसरा नाम तप था (वन० २२० । ५, ११) ।

पाञ्चरात्र–एक उत्तम शास्त्र, जिसके जाननेवाले महर्षि राजा उपरिचर वसुके यहाँ रहते थे । इसकी उत्पत्तिका प्रसंग (शान्ति० ३३५ । २५–५५) ।

पाञ्चाल–(१) एक प्राचीन देश । द्रुपद यहींके राजा थे । द्रौपदीको प्राप्त करनेके बाद पाण्डवोंने यहाँ सालभर तक निवास किया था (आदि० ६१ । ३१) । (विशेष देखिये पञ्चाल) (२) एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने वामदेवके बताये हुए ध्यानमार्गसे भगवान्की आराधना करके उन्हींके कृपाप्रसादसे वेदोंका क्रमविभाग प्राप्त किया था (शान्ति० ३४२ । १०२-१०३) ।

पाञ्चाली–राजा द्रुपदकी पुत्री, जो अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुई थी (आदि० १६६ । ४४) । (देखिये—द्रौपदी) ।

पाञ्चाल्य–उत्तराखण्डका एक तीर्थभूत आश्रम (वन० ९० । ११-१२) ।

पाटलावती–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २२) ।

पाणिकूर्च–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६) ।

पाणिखात–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके देवता-पितरोंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम, अतिरात्र और राजसूय यज्ञोंका फल मिलता है (वन० ८३ । ८९) ।

पाणिमान्–एक नाग, जो वरुणकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १०) ।

पाणीतक–पूषाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम कालिक था (शल्य० ४५ । ४३) ।

पाण्डर–ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ११) ।

पाण्डव–पाण्डुके पुत्र । युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—ये पाँचों पाण्डव कहलाते थे । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा पाण्डवोंके नामकरण-संस्कार (आदि० १२३ । १९–२२) । वसुदेवके पुरोहित काश्यपके द्वारा इनके उपनयनादि संस्कार और राजर्षि शुकद्वारा इनका विविध विद्याओंमें पारङ्गत होना (आदि० १२३ । ३१ के बाद, पृष्ठ ३६९) । पाण्डुके निधनपर इनका विलाप (आदि० १२४ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ३७२) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनको हस्तिनापुर पहुँचाकर भीष्म आदि कौरवोंको इनके जन्मोंका वृत्तान्त सुनाना (आदि० १२५ । २२—२८) । कृपाचार्यसे इनका अध्ययन (आदि० १२९ । २३) । द्रोणाचार्यसे इनका अध्ययन (आदि० १३१ । ९) । एकलव्यकी धनुर्विद्यासे इनका विस्मित होना (आदि० १३१ । ४१) । द्रुपदपर इनका आक्रमण और विजय (आदि० १३७ । ३६–६३) । धृतराष्ट्रके आदेशसे पाण्डवोंका वारणावत जाना (आदि० १४२ । ६—१९) । विदुरद्वारा इनको कौरवोंके कुचक्रसे बचनेका संकेत (आदि० १४४ । १९–२६) । वारणावतनिवासियोंद्वारा इनका स्वागत (आदि० १४५ । १—५) । सुरंगद्वारा लाक्षागृहसे निकलकर इनका पलायन (आदि० १४७ । ११—१८) । विदुरजीके भेजे हुए नाविकके द्वारा इनका गङ्गापार होना (आदि० १४८ । १३) । इनको व्यासजीका आश्वासन तथा एक मासतक एकचक्रा नगरीमें ठहरनेका आदेश (आदि० १५५ । ७—१८) । एकचक्रानगरीमें इनका ब्राह्मणके घरमें निवास (आदि० १५६ । २) । उस नगरीमें इनकी भिक्षावृत्ति (आदि० १५६ । ४) । इनके प्रति एक ब्राह्मणद्वारा द्रोण तथा द्रुपदके पारस्परिक विरोधका; धृष्टद्युम्न एवं द्रौपदीके जन्म और उनके स्वयंवरका वर्णन (आदि० अध्याय १६४ से १६६ तक) । इनके विषयमें द्रुपदका शोक (आदि० १६६ । ५६ के बाद) । द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर इनको पञ्चाल देश जानेके लिये व्यासजीकी आज्ञा (आदि० १६८ । ६—१५) । चित्ररथ गन्धर्वद्वारा इनको दिव्य अश्वोंकी प्राप्ति (आदि० १६९ । ४८) । इनका धौम्यके आश्रममें जाना और इनके द्वारा उनका पुरोहितके रूपमें वरण (आदि० १८२ । ६) । इनकी पञ्चालयात्रा (आदि० १८३ अध्याय) । द्रुपदके नगरमें इनका कुम्भकारके घरमें निवास (आदि० १८४ । ६) । ब्राह्मणवेशमें इनका द्रौपदीके स्वयंवरमें प्रवेश (आदि० १८४ । २७) । स्वयंवरमें श्रीकृष्णद्वारा इनका पहचाना जाना (आदि० १८५ । ९) । द्रौपदीरूप भिक्षाका मिलकर उपभोग करनेके लिये इनको माताका आदेश (आदि० १९० । २) । इनसे मिलनेके लिये बलरामसहित श्रीकृष्णका कुम्भकारके घरमें आगमन (आदि० १९० । १८) । धृष्टद्युम्नद्वारा गुप्तरूपसे इनके व्यवहारोंका निरीक्षण (आदि० १९१ । १-२) । द्रुपदद्वारा इनके शीलस्वभावकी परीक्षा (आदि० १९३ । ४—१०) । व्यासद्वारा इनके पूर्वजन्मके दिव्य वृत्तान्तका द्रुपदके प्रति वर्णन (आदि० १९६ अध्याय) । धौम्यमुनिद्वारा इनका क्रमशः द्रौपदीके साथ विधिपूर्वक विवाह (आदि० १९७ अध्याय) । द्रौपदीके विवाहोपलक्षमें इनको श्रीकृष्णद्वारा बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट (आदि० १९८ । १३) । पाण्डवोंके विवाहसे दुर्योधन आदिकी चिन्ता, धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति प्रेमका दिखावा और दुर्योधनकी कुमन्त्रणा (आदि० १९९ अध्याय) । पाण्डवोंको पराक्रमसे दबानेके लिये कर्णकी सम्मति (आदि० २०१ अध्याय) । भीष्मकी दुर्योधनसे पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सलाह(आदि० २०२ अध्याय)। द्रोणाचार्यकी पाण्डवोंको उपहार भेजने और उन्हें बुलानेकी सम्मति (आदि० २०३ । १—१२) । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरका द्रुपदके यहाँ जाकर पाण्डवोंको भेंट देना और उन्हें हस्तिनापुर भेजनेके लिये द्रुपदसे प्रस्ताव करना (आदि० २०५ अध्याय) । पाण्डवोंका हस्तिनापुर आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगरका निर्माण करना (आदि० २०६ । १—५१) । पाण्डवोंके यहाँ नारदजीका आगमन और द्रौपदीको लेकर उनमें फूट न हो—इसके लिये कुछ नियम बनानेकी प्रेरणा देकर सुन्द और उपसुन्दकी कथाको प्रस्तावित करना तथा पाण्डवोंका द्रौपदीके विषयमें नियमनिर्धारण (आदि० अध्याय २०७ से २११

अध्यायतक)। भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारकायात्रा और पाण्डवोंका उन्हें पहुँचाना (सभा० २ अध्याय)। पाण्डवोंका मयनिर्मित सभाभवनमें प्रवेश और निवास (सभा० ४ अध्याय)। नारदजीका पाण्डवोंसे मिलनेके लिये आना और पाण्डवोंद्वारा उनकी पूजा (सभा० ५। १२–१६)। पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये शकुनि और दुर्योधनकी बातचीत (सभा० ४८ अध्याय)। पाण्डवोंकी हस्तिनापुरयात्रा (सभा० ५८। १९—३८)। जूएमें पाण्डवोंकी पराजय (सभा० ६५ अध्याय)। द्रौपदीद्वारा पाण्डवोंकी दास्यभावसे मुक्ति (सभा० ७१। २८–३३)। धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको सारा धन लौटाकर विदा करना (सभा० ७३ अध्याय)। दुर्योधनका पुनः द्यूतक्रीड़ाके लिये पाण्डवोंको बुलानेका अनुरोध और धृतराष्ट्रद्वारा उसकी स्वीकृति (सभा० ७४ अध्याय)। दुःशासनद्वारा पाण्डवोंका उपहास (सभा० ७७। २—१४)। वनगमनके समय पाण्डवोंकी चेष्टाके विषयमें धृतराष्ट्र और विदुरका संवाद (सभा० ८०। १—१८)। पाण्डवोंका वनगमन, पुरवासियोंद्वारा उनका अनुगमन और पाण्डवोंका प्रमाणकोटितीर्थमें रात्रिवास (वन० १ अध्याय)। पाण्डवोंका काम्यकवनमें प्रवेश, विदुरजीका वहाँ जाकर उनसे मिलना और उनसे बातचीत करना (वन० ५ अध्याय)। पाण्डवोंका वध करनेके लिये दुर्योधन आदिकी वनमें जानेकी तैयारी और व्यासजी-का आकर उनको रोकना (वन०अध्याय ७ से ८ तक)। व्यासजीकी पाण्डवोंके प्रति दयाका कारण (वन० ९। २०–२३)। मैत्रेयजीका धृतराष्ट्र और दुर्योधनसे पाण्डवों-के प्रति सद्भाव करनेका अनुरोध (वन० १०। ११—२८)। भोज, वृष्णि और अन्धकवंशके वीरोंसहित श्रीकृष्णका, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नका, चेदिराज धृष्टकेतुका तथा केकय राजकुमारोंका पाण्डवोंसे मिलनेके लिये वनमें आना और इन सबकी बातचीत (वन० अध्याय १२ से २२ तक)। पाण्डवोंका द्वैतवनमें जानेके लिये उद्यत होना और प्रजावर्गका उनके लिये व्याकुल होना (वन० २३ अध्याय)। पाण्डवोंका द्वैतवनमें जाना (वन० २४ अध्याय)। महर्षि मार्कण्डेयका पाण्डवोंको धर्माचरणका आदेश देना (वन० २५ अध्याय)। दल्भ्यपुत्र बकका पाण्डवोंको ब्राह्मणोंकी महिमा बताना (वन० २६ अध्याय)। द्रौपदीसहित पाण्डवोंका परस्पर संवाद तथा उनका पुनः काम्यकवनमें जाना (वन० अध्याय २७ से ३६ तक)। बृहदश्वका पाण्डवों-को नलोपाख्यान सुनाकर युधिष्ठिरको द्यूतविद्या और अश्वविद्याका रहस्य बताना (वन० अध्याय ५२ से ७९ तक)। अर्जुनके लिये द्रौपदीसहित पाण्डवोंकी चिन्ता (वन ८० अध्याय)। नारदजीका पाण्डवोंको तीर्थयात्रा-की महिमा बताना और पुलस्त्यवर्णित तीर्थयात्राका प्रसङ्ग सुनाना (वन० अध्याय ८१ से ८५ तक)। धौम्यद्वारा पाण्डवोंके प्रति विभिन्न दिशाओंके तीर्थोंका वर्णन (वन० अध्याय ८६ से ९० तक)। महर्षि लोमशका स्वर्गसे आकर पाण्डवोंको अर्जुनके समाचार बताना और इन्द्रका संदेश सुनाना (वन० ९१ अध्याय)। पाण्डवोंका अपने अधिक साथियोंको विदा करके लोमशजीके साथ तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान करना (वन० अध्याय ९२ से ९३ तक)। पाण्डवोंका विभिन्न तीर्थोंमें जाना और लोमशजीसे उनके माहात्म्य सुनना (वन० अध्याय ९४ से १३८ तक)। पाण्डवोंकी उत्तरा-खण्डयात्रा (वन० अध्याय १३९ से १४२ तक)। गन्धमादनकी यात्राके समय पाण्डवोंका आँधी-पानीसे सामना और घटोत्कचकी सहायतासे इनका गन्धमादनपर पहुँचना (वन० अध्याय १४३ से १४५ तक)। पाण्डवोंका गन्धमादनमें निवास, सौगन्धिकसरोवर एवं कदलीवनके दर्शन, भीमकी हनुमान्‌जीसे भेंट, जटासुर-वध, वृषपर्वाके यहाँ होते हुए इनका राजर्षि आर्ष्टिषेणके आश्रमपर जाना, कुबेरसे इनकी भेंट तथा धौम्यका इन्हें मेरुपर्वतके शिखरोंपर स्थित ब्रह्मा, विष्णु आदिके स्थानोंका लक्ष्य कराना (वन० अध्याय १४६। से १६३ तक)। पाण्डवोंकी अर्जुनके लिये उत्कण्ठा और अर्जुनका गन्धमादनपर आकर अपने भाइयोंसे मिलना (वन० अध्याय १६४ से १६५ तक)। इन्द्रका पाण्डवोंके पास आना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर लौटना (वन० १६६ अध्याय)। पाण्डवोंका अर्जुनके मुखसे उनकी यात्राका वृत्तान्त सुनना (वन० अध्याय १६७ से १७३ तक)। पाण्डवोंका गन्धमादनसे प्रस्थान और द्वैतवनमें प्रवेश (वन० अध्याय १७४ से १७७ तक)। पाण्डवोंका पुनः द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश और वहाँ इनके पास भगवान् श्रीकृष्ण, मुनिवर मार्कण्डेय तथा नारदजीका आगमन (वन० अध्याय १८२ से १८३ तक)। पाण्डवोंका मार्कण्डेयजीके मुखसे नाना प्रकारके आख्यान और उपदेश सुनना (वन० अध्याय १८४ से २३२ तक)। पाण्डवोंका गन्धर्वोंको परास्त करके दुर्योधन आदिको उनकी कैदसे छुड़ाना (वन० अध्याय २४४ से २४५ तक)। पाण्डवोंका आश्रमपर आकर द्रौपदी हरणका समाचार सुन जयद्रथका पीछा करना (वन० २६९ अध्याय)। द्रौपदीका पाण्डवोंका पराक्रम वर्णन करना (वन० २७० अध्याय)। पाण्डवोंद्वारा जयद्रथकी सेनाका संहार (वन० २७१ अध्याय)। मार्कण्डेयजीका पाण्डवोंको श्रीराम और सावित्रीका

उपाख्यान सुनाना (वन० अध्याय २७४ से २९९ तक)। ब्राह्मणकी अरणि एवं मन्थनकाष्ठका पता लगानेके लिये पाण्डवोंका मृगके पीछे दौड़ना और दुखी होना (वन० ३११ अध्याय)। पानी लानेके लिये गये हुए चार पाण्डवोंका सरोवरके तटपर अचेत होकर गिरना (वन० ३१२ अध्याय)। युधिष्ठिरके उत्तरसे संतुष्ट हुए यक्षका चारों पाण्डवोंके जीवित होनेका वरदान देना और उन सबको जिलाकर उसका धर्मके रूपमें प्रकट हो युधिष्ठिरको वर देना (वन० अध्याय ३१३ से ३१४ तक)। अज्ञातवासके निमित्त पाण्डवोंका परस्पर परामर्शके लिये बैठना (वन० ३१५ अध्याय)। द्रौपदीसहित पाण्डवोंका विराटनगरमें अज्ञातवास तथा उनके द्वारा त्रैगर्तों एवं कौरवोंको पराजित करके विराटके गौओंकी रक्षा (विराट० अध्याय १ से ६८ तक)। अपने घरमें पाण्डवोंका परिचय पाकर राजा विराटके द्वारा उनका सत्कार और इन्हें अपना राज्य समर्पित करके इनकी रुचिके अनुसार उनका अर्जुनकुमार अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह करना (विराट० अध्याय ६९ से ७२ तक)। द्रुपदके संदेशसे राजाओंका पाण्डवपक्षकी ओरसे युद्धके लिये आगमन (उद्योग० ५ अध्याय)। पाण्डवपक्षमें आयी हुई सेनाका संक्षिप्त विवरण (उद्योग० १९। १—१४)। दुर्योधनद्वारा पाण्डवोंके अपकर्षका वर्णन (उद्योग० ५५ अध्याय)। संजयद्वारा पाण्डवोंकी युद्धकी तैयारीका वर्णन (उद्योग० ५७। २–२५)। कुन्तीका विदुलोपाख्यान सुनाकर पाण्डवोंके लिये शौर्यका संदेश देना (उद्योग० अध्याय १३२ से १३७ तक)। पाण्डवपक्षके सेनापतिका चुनाव, पाण्डवसैन्यका कुरुक्षेत्रमें प्रवेश, पड़ाव तथा शिविरनिर्माण (उद्योग० अध्याय १५१ से १५२ तक)। बलरामजीका पाण्डवोंसे विदा लेकर तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान (उद्योग० १५७ अध्याय)। दुर्योधनका उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास संदेश भेजना (उद्योग० १६० अध्याय)। पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचकर उलूकका दुर्योधनके संदेशको सुनाना (उद्योग० १६१ अध्याय)। पाण्डवपक्षकी ओरसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर। पाँचों पाण्डवोंका संदेश लेकर उलूकका लौटना (उद्योग० १६३ अध्याय)। पाण्डवसेनाका युद्धके मैदानमें जाना (उद्योग० १६४ अध्याय)। पाण्डवपक्षके रथी-अतिरथी आदिका वर्णन (उद्योग० अध्याय १६९ से १७२ तक)। पाण्डवसेनाका युद्धके लिये प्रस्थान (उद्योग० १९६ अध्याय)। पाण्डवोंका कौरवों-के साथ युद्ध (भीष्मपर्वसे शल्यपर्वतक)। पाण्डवोंका मणि देकर द्रौपदीको शान्त करना (ऐषीक० १६ अध्याय)। पाण्डवोंका धृतराष्ट्रसे मिलना, धृतराष्ट्रके द्वारा भीमकी लोहमयी प्रतिमाका भङ्ग होना तथा श्रीकृष्णके फटकारनेसे शान्त हुए धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको हृदयसे लगाना (स्त्री० अध्याय १२ से १३ तक)। पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुई गन्धारीको व्यासजीका समझाना (स्त्री० १४ अध्याय)। पाण्डवोंका गान्धारीकी आज्ञा लेकर अपनी मातासे मिलना (स्त्री० १५। ३२–३५)। व्यासजी तथा भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे पाण्डवोंका नगरमें प्रवेश तथा पुरवासियोंद्वारा इनका सत्कार (शान्ति० अध्याय ३७ से ३८ तक)। पाण्डवोंके रहनेके लिये विभिन्न भवनोंका विभाजन (शान्ति० ४४ अध्याय)। युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंका भीष्मजीका उपदेश सुनना (शान्ति० अध्याय ५६ से अनु० १६५ अध्यायतक)। पाण्डवोंका भीष्मजीको जलाञ्जलि देना (अनु० १६८ अध्याय)। पाण्डवोंका हिमालयसे धन लेकर आना (आश्व० अध्याय ६३ से ६५ तक)। पाण्डवोंका हस्तिनापुरके समीप आगमन, श्रीकृष्ण आदिके द्वारा इनका स्वागत तथा इनका नगरमें आकर सबसे मिलना (आश्व० अध्याय ७० से ७१ तक)। पाण्डवोंका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव (आश्रम० अध्याय १से २ तक)। गान्धारी और धृतराष्ट्रके साथ वनको जाती हुई कुन्तीसे घरको लौटनेके लिये पाण्डवोंका अनुरोध और कुन्तीद्वारा उनके अनुरोधका उत्तर (आश्रम० अध्याय १६से१७ तक)। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, इनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना तथा कुन्ती, गान्धारी एवं धृतराष्ट्रके दर्शन करना (आश्रम० अध्याय २१ से २४ तक)। संजयका ऋषियोंसे पाण्डवोंका परिचय देना (आश्रम० २५ अध्याय)। द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान (महाप्र० १ अध्याय)। मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरका प्रत्येकके गिरनेका कारण बताना (महाप्र० २ अध्याय)। पाण्डवोंका स्वर्गमें पहुँचकर धर्म आदि अपने मूल स्वरूपोंमें मिलना (स्वर्गा० ४। २–१३; स्वर्गा० ५। २२)।

पाण्डवप्रवेशपर्व—विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १२ तक)।

पाण्डु—(१) विचित्रवीर्यके क्षेत्रज पुत्र। महर्षि व्यासके द्वारा विचित्रवीर्यपत्नी अम्बालिकाके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६३। ११३; आदि० १०५। २१)। पाण्डुकी वंश-परम्पराका वर्णन (आदि० ९५। ५८–८७)। इनके रंग-रूप तथा पाण्डु नाम होनेका कारण (आदि० १०५। १७–१८)। ये पाण्डवोंके पिता थे (आदि० १०५। २२)। भीष्मद्वारा इनका पालन-पोषण एवं उपनयनादि-संस्कार (आदि० १०८। १७-१८)। इनका अध्ययन

तथा धनुर्विद्यामें इनकी अद्वितीयता (आदि० १०८ । १९–२१) । धृतराष्ट्रके जन्मान्ध होनेके कारण इनका राजपदपर अभिषेक (आदि० १०८ । २५) । कुन्ती-द्वारा स्वयंवरमें इनका वरण और उनके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० १११ । ८-९) । भीष्मके प्रयत्नसे माद्रीके साथ इनका विवाह (आदि० ११२ । १८) । इनकी दिग्विजययात्रा (आदि० ११२ । २१) । दशार्णोंपर इनका पहला आक्रमण और विजय (आदि० ११२ । २५) । इनके द्वारा मगधराज दीर्घका वध (आदि० ११२ । २७) । विदेहवंशी क्षत्रियोंकी पराजय (आदि० ११२ । २८) । काशी, सुह्म तथा पुण्ड्रदेशोंपर इनकी विजय (आदि० ११२ । २९) । विभिन्न देशोंको जीतकर लाये हुए धनसमूहका इनके द्वारा अपने बन्धु बान्धवोंमें वितरण (आदि० ११३ । १-२) । इनके पराक्रमसे धृतराष्ट्रद्वारा सौ अश्वमेधयज्ञोंका अनुष्ठान तथा प्रति यज्ञमें लाख-लाख स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणाका दान (आदि० ११३ । ५) । इनका वनविहार (आदि० ११३ । ७–११) । अपनी मृगीरूपधारिणी पत्नीके साथ मृगरूप धारण करके मैथुन करनेवाले किंदम ऋषिका इनके द्वारा वध (आदि० ११७ । ३४) । इनको मृगरूपधारी किंदम ऋषिका शाप (आदि० ११७ । २७) । महर्षि किंदमकी मृत्युके कारण इनका पश्चात्ताप एवं संन्यास लेकर अवधूतकी तरह रहनेका अपना निश्चय (आदि०११८ । २–२२) । वानप्रस्थाश्रममें रहकर तपस्या करनेके लिये इनसे कुन्तीका हठ (आदि० ११८ । ३०) । वानप्रस्थाश्रममें पालन करनेके लिये इनके कठोर नियम (आदि० ११८ । ३२–३७) । इनके द्वारा अपने तथा पत्नियोंके भूषणोंका ब्राह्मणोंको दान (आदि० ११८ । ३९) । वानप्रस्थ लेनेके विषयमें सेवकोंद्वारा इनका धृतराष्ट्रको संदेश (आदि० ११८ । ४०) । कालकूट, हिमालय, गन्धमादन आदि पर्वतोंको लाँघकर तपस्याके लिये इनका पत्नियोंसहित शतशृङ्गपर्वतपर जाना (आदि० ११८ । ५०) । इनको ब्रह्मलोक जानेके लिये ऋषियोंद्वारा निषेध (आदि० ११९ । १४-१५) । पितृ-ऋणसे उद्धार होनेके लिये इनकी शतशृङ्गनिवासियोंसे प्रार्थना (आदि० ११९ । १५–२३) । ऋषियोंद्वारा इन्हें पुत्रप्राप्तिका आश्वासन (आदि० ११९ । २३–२६) । इनके द्वारा दत्तक आदि पुत्र-भेदोंका विश्लेषण तथा किसी श्रेष्ठ पुरुषसे संतानोत्पादनके लिये कुन्तीको आदेश (आदि० ११९ । २७–३७) । मानसिक संकल्पसे पुत्रोत्पादनके लिये इनसे कुन्तीकी प्रार्थना (आदि० १२० । ३७) । इनके द्वारा ब्राह्मणसे संतानप्राप्तिके लिये पुनः कुन्तीसे आग्रह तथा कुन्तीका दुर्वासासे प्राप्त हुए मन्त्रकी महिमा सुनाकर किसी श्रेष्ठ देवताके आवाहनके लिये इनसे आज्ञा माँगना (आदि० १२१ । १०–१६) । धर्मराजके आवाहनके लिये इनका कुन्तीको आदेश (आदि० १२१ । १७–२०) । बली पुत्रकी कामनासे वायुदेवके आवाहनके लिये कुन्तीको इनकी आज्ञा (आदि० १२२ । १० के बाद दा० पाठ) । इनके द्वारा सर्वोत्तम पुत्र-प्राप्तिके लिये इन्द्रकी आराधना और इन्द्र-द्वारा इनको आश्वासन (आदि० १२२ । २६–२८) । सर्वश्रेष्ठ पुत्रके हेतु इन्द्रके आवाहनके लिये इनकी कुन्ती-को प्रेरणा (आदि० १२२ । ३४) । कुन्तीद्वारा पुत्र-प्राप्तिके लिये इनसे माद्रीकी प्रार्थना (आदि० १२३ । ६) । माद्रीके पुत्रलाभके लिये इनका कुन्तीसे अनुरोध (आदि० १२३ । ९–१४) । माद्रीके साथ समागम करके इनकी असामयिक मृत्यु (आदि० १२४ । १२) । इनके परलोकवासी होनेपर कुन्ती, माद्री तथा पाण्डवोंका विलाप (आदि० १२४ । १७–२२) । इनके आकस्मिक निधनपर शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंको शोकका अनुभव (आदि० १२४ । २२ के बाद दा० पाठ) । काश्यप ऋषिद्वारा इनका अन्त्येष्टि-संस्कार (आदि० १२४ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । कौरवोंद्वारा राजोचित ढंगसे इनका अस्थिदाह (आदि० १२६ । ५–२३) । कौरवोंद्वारा इनको जलाञ्जलि-दान (आदि० १२६ । २८-२९) । इनके देहावसानपर हस्तिना-पुरके नागरिकोंका शोक (आदि० २२७ । ४) । ये यमकी सभामें उपस्थित होते हैं (सभा० ८ । २५) । इन्होंने देवर्षि नारदद्वारा राजसूययज्ञ करनेके लिये युधिष्ठिरको संदेश भेजवाया था (सभा० १२ । २४–२६) । इनका इन्द्रलोकमें निवास (आश्रम० २० । १७) । अपनी दोनों पत्नियों—कुन्ती और माद्रीके साथ इनका इन्द्रभवनमें जाना (स्वर्गारोहण० ५ । १५) ।

महाभारतमें आये हुए पाण्डुके नाम—भारत, भरतर्षभ, भरतसत्तम, कौरव, कौरवनन्दन, कौरवर्षभ, कौरव्य, कौरव्यदायाद, कौसल्यानन्दवर्धन, कुरूद्वह, कुरुकुलोद्वह, कुरुनन्दन, कुरुपति, कुरुप्रवीर, नागपुराधिप, नागपुर-सिंह आदि ।

(२) कुरुकुमार जनमेजयके द्वितीय पुत्र (आदि० ९४ । ५६) ।

पाण्डुर—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

पाण्डुराष्ट्र—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४४) ।

पाण्ड्य—दक्षिण भारतका एक जनपद तथा वहाँके एक राजा, जो कभी श्रीकृष्णद्वारा मारे गये थे (द्रोण० २३ । ६९) । इनके पुत्रका नाम मलयध्वज था । मलयध्वज

अस्त्रविद्यामें पारंगत होकर अपने पिताके वधका बदला लेनेके लिये द्वारकापुरीको विध्वंस करना चाहते थे; परंतु इनके सुहृदोंने इन्हें ऐसा दुःसाहस करनेसे रोक दिया, तबसे वैर छोड़कर ये अपने राज्यका शासन करते थे। महाभारतकालमें ये ही पाण्ड्यदेशके शासक थे (द्रोण० २३। ७०-७२)। ये द्रौपदीके स्वयंवरमें गये थे (आदि० १८६। १६)। ये युधिष्ठिरकी सभामें बैठा करते थे (सभा० ४। २४)। इन्होंने राजसूय यज्ञमें भेंट अर्पण की थी (सभा० ५२। ३५)। ये अपनी सेनाके साथ युधिष्ठिरकी सेवामें आये थे (उद्योग० १९। ९)। इनके रथपर सागरके चिह्नसे युक्त ध्वजा फहराती थी। बलवान् राजा पाण्ड्यने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार करते हुए वैदूर्यमणिकी जालीसे आच्छादित चन्द्रकिरणके समान श्वेत घोड़ोंद्वारा द्रोणाचार्यपर धावा किया था (द्रोण० २३। ७२-७३)। इनका वृषसेनके साथ युद्ध (द्रोण० २५। ५७)। इनका महान् पराक्रम और अश्वत्थामाद्वारा वध (कर्ण० २०। ४६)।

पाताल–नागलोकके नाभिस्थानमें स्थित एक प्रदेश या नगर; इसका नारदजीद्वारा विशेष वर्णन (उद्योग० अध्याय ९९ से १०० तक)।

पापहरा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९। २२)।

पारद–(१) एक प्राचीन जातिका नाम (आधुनिक मतके अनुसार यह उत्तर-बलूचिस्तानकी एक जाति थी)। इस जातिके लोग भाँति-भाँतिकी भेंटें लेकर युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे (सभा० ५१। ५२)। (२) एक देश, जहाँके लोग द्रोणाचार्यके साथ भीष्मजीके पीछे-पीछे चल रहे थे (भीष्म० ८७। ७)।

पारशव–शूद्राके गर्भसे ब्राह्मणद्वारा उत्पन्न बालक। इसीलिये विदुरजी भी पारशव कहलाते थे (आदि० १०८। २५; अनु० ४८। ५)।

पारसिक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ६६)।

पारा–कौशिकी नदीका नामान्तर (आदि० ७१। ३२)।

पारावत–ऐरावतके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७। ११)।

पाराशर्य–एक मुनि, जो व्याससे भिन्न हैं। ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४। १३)। ये ही इन्द्र-सभाके भी सदस्य हैं (सभा० ७। १३)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे भेंट (उद्योग० ८३। ६४ के बाद दा० पाठ)।

पारिजात–(१) समस्त कामनाओंको देनेवाला एक दिव्य वृक्ष, जो समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुआ था (आदि० १८। ३६ के बाद दा० पाठ)। (२) ऐरावतकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७। ११)।

पारिजातक–एक जितात्मा मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४। १४)।

पारिप्लव–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जिसके सेवनसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल मिलता है (वन० ८३। १२)।

पारिभद्रक–कौरव-पक्षके वीर योद्धाओंका एक दल, जो सम्भवतः परिभद्र देशका निवासी था (भीष्म० ५१। ९)।

पारियात्र–एक पर्वत, जिसका अधिष्ठाता चेतन कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १०। ३१)। मार्कण्डेयजीने भगवान् बालमुकुन्दके उदरमें इस पर्वतका दर्शन किया था (वन० १८८। ११५)। यहाँ महर्षि गौतमका महान् आश्रम था (शान्ति० १२९। ४)।

पार्थ–कुन्तीके पुत्रोंका नाम (इन्हें कौन्तेय भी कहते हैं)। इनकी उत्पत्तिकी कथाका दिग्दर्शन (आदि० १। ११४)। (यद्यपि यह शब्द कुन्तीके तीन पुत्रोंका ही मुख्यतया वाचक है तथापि कहीं-कहीं माद्रीकुमार नकुल-सहदेवके लिये भी इसका प्रयोग हुआ है। प्रायः यह युधिष्ठिर तथा अर्जुनके लिये ही प्रयुक्त हुआ है। उद्योग० १४५। ३ में 'पार्थ' नामका प्रयोग कर्णके लिये भी आया है।)

पार्वती–पर्वतराज हिमवान्‌की पुत्री तथा भगवान् शिवकी धर्मपत्नी (आदि० १८६। ४)। ये ब्रह्माजीकी सभामें भी विराजमान होती हैं (सभा० ११। ४१)। द्रौपदी-द्वारा अर्जुनकी रक्षाके लिये देवी उमाका कीर्तन एवं स्मरण (वन० ३७। ३३)। युधिष्ठिरद्वारा इनके दुर्गा-रूपका स्तवन और इनका दर्शन देकर उन्हें अनुगृहीत करना (विराट० ६ अध्याय)। अर्जुनद्वारा इनके दुर्गारूपका स्मरण और स्तवन। इनका प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर देना (भीष्म० २३। ४—१६)। एक समय ये भगवान् शङ्करको, जो पाँच शिखावाले बालकके रूपमें प्रकट हुए थे, गोदमें लेकर आर्यी और देवताओंसे बोलीं, पहचानो यह कौन है ? (द्रोण० २०२। ८४)। इनके द्वारा स्कन्दको पार्षद-प्रदान (शल्य० ४५। ५१-५२)। दक्षयज्ञके विषयमें शिवजीके साथ इनका वार्तालाप (शान्ति० २८३। २३—२९)। दक्षयज्ञमें शिवजीका भाग न देखकर इनकी चिन्ता (शान्ति० २८४। २३)। उशनापर कुपित हुए शिव-

जीको शान्त करना (शान्ति० २८९ । ३५)। श्रीकृष्णको आठ वर देना (अनु० १५ । ७-८)। देवताओंको संतानहीन होनेका शाप देना (अनु० ८४ । ७४-७५)। परिहासवश शिवजीकी दोनों आँखें हाथोंसे बंद करना (अनु० १४० । २६)। शङ्करजीके साथ संवाद (अनु० १४० । ४० से १४५ अध्यायतक)। गङ्गा आदि नदियोंसे स्त्री-धर्मके विषयमें सलाह लेना (अनु० १४६ । २२—२६)। इनके द्वारा स्त्री-धर्मका वर्णन (अनु० १४६ । ३३—५९)। ये मुञ्जवान् पर्वतपर भगवान् शिवके साथ रहती हैं (आश्व० ८ । १—३)।

महाभारतमें आये हुए पार्वतीके नाम—अम्बिका, आर्या, उमा, भीमा, शैलपुत्री, शैलराजसुता, शाकम्भरी, शर्वाणी, देवेशी, देवी, दुर्गा, गौरी, गिरिसुता, गिरिराजात्मजा, काली, महाभीमा, महादेवी, महाकाली, महेश्वरी, माहेश्वरी, पर्वतराजकन्या, रुद्राणी, रुद्रपत्नी, त्रिभुवनेश्वरी आदि।

पार्वतीय (**पर्वतीय**)–(१) महाभारतकालका एक राजा, जो कुक्षि नामक दानवके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५६)। (२) एक भारतीय जनपद और यहाँके निवासी। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपहार लेकर आये थे (सभा० ५२ । ७)। जयद्रथकी सेनामें आये हुए पार्वतीयोंका अर्जुनद्वारा संहार (वन० २७१ । ८)। पार्वतीय योद्धा दुर्योधनकी सेनामें भी थे (उद्योग० ३० । २४)। भारतीय जनपदोंमें पार्वतीयकी गणना (भीष्म० ९ । ५६)। भगवान् श्रीकृष्णने कभी पार्वतीय देशपर विजय पायी थी (द्रोण० ११ । १६)। पार्वतीय योद्धा कौरवदलमें शकुनि और उलूकके साथ रहा करते थे (कर्ण० ४६ । १३)। पाण्डववीरोंद्वारा इनका युद्धमें संहार (शल्य० १ । २७)।

पार्वतेय–एक राजर्षि, जो कपट नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ३०)।

पार्श्वरोम–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६)।

पार्ष्णिक्षेमा–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०)।

पाल–वासुकिके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हुआ था (आदि० ५७ । ५)।

पालिता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३)।

पावक–भरत नामक अग्निके पुत्र, इनका दूसरा नाम 'महान्' था (वन० २१९ । ८)।

पावन–(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ देवता-पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । १७५)। (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०)।

पाश–वरुणके दिव्य अस्त्र, जिनका वेग कोई रोक नहीं सकता (वन० ४१ । २९)।

पाशाशिनी–भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २२)।

पाशिवाट–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४)।

पाशी–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ८)। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । ५-६)।

पाशुपत–भगवान् शङ्करका परम प्रिय, सर्वश्रेष्ठ एवं अनुपम प्रभावशाली दिव्यास्त्र (वन० ४० । १५)। भगवान् शिवद्वारा इसका अर्जुनको उपदेश (वन० ४० । २०)। इसके उग्रस्वरूप तथा प्रभावका वर्णन (अनु० १४ । २५८—२७५)।

पाषाणतीर्थ–एक तीर्थ, जो शूर्पारक क्षेत्रमें जमदग्निकी वेदीपर स्थित है (वन० ८८ । १२)।

पिङ्गतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ आचमन करके ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय मनुष्य सौ कपिलाओंके दानका फल प्राप्त कर लेता है (वन० ८२ । ५७)।

पिङ्गल–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ९)। (२) एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें अध्वर्यु थे (आदि० ५३ । ६)। (३) इस नामके दूसरे ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य थे (आदि० ५३ । ७)। (४) एक यक्षराज, जो भगवान् शिवका सखा है और श्मशानभूमिमें ही (उसकी रक्षाके लिये) निवास करता है। यह सम्पूर्ण जगत्को आनन्द देनेवाला है (वन० २३१ । ५१)।

पिङ्गलक–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १७)।

पिङ्गलराज–श्मशानमें निवास करनेवाला एक यक्षराज, जो भगवान् शिवका सखा है (वन० २३१ । ५१)।

पिङ्गाक्षी–(१) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १८)। (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २१)।

पिच्छल–वासुकिवंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६)।

पिच्छिला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २९)।

पिञ्जरक–कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ६; उद्योग० १०३ । ११) ।

पिञ्जला–भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २७) ।

पिठर–एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १३) ।

पिठरक (पीठरक)–कश्यपवंशी प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १४; उद्योग० १०३ । १४) । यह जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १५) ।

पिण्डसेक्ता–तक्षक-कुलका एक नाग, जो सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ८) ।

पिण्डारक (पिण्डार)–(१) एक कश्यपवंशी प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ११; उद्योग० १०३ । १४) । यह धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न हुआ और जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १७) । (२) सुराष्ट्रदेशमें द्वारकाके निकटका एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे अधिकाधिक सुवर्णकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । ६५) । यह तीर्थ तपस्वीजनोंद्वारा सेवित और कल्याणस्वरूप है (वन० ८८ । २१) । जो मानव पिण्डारक तीर्थमें स्नान करके वहाँ एक रात निवास करता है, वह प्रातःकाल होते ही पवित्र होकर अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है (अनु० २५ । ५७) ।

पितामहसर–एक सरोवर, जो गिरिराज हिमालयके निकट है, इसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । १४८) ।

पितृग्रह–पितृसम्बन्धी ग्रह (वन० २३० । ४८) ।

पिनाक–शिवजीका धनुष (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इसकी उत्पत्तिका वर्णन (अनु० १४१ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५९१५) । भगवान् शंकरके पाणि (हाथ) से आनत होकर (मुड़कर) उनका त्रिशूल धनुषाकार हो गया; अतः उसका नाम पिनाक हुआ (शान्ति० २८९ । १८) ।

पिनाकी–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ये ब्रह्माजीके पौत्र तथा स्थाणुके पुत्र हैं (आदि० ६६ । १-२; शान्ति० २०८ । २०) । अर्जुनके जन्मकालमें ये वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ६८) ।

पिप्पलस्थान–जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक भूभागविशेष (भीष्म० ६ । २) ।

पिप्पलाद–एक प्राचीन ऋषि, शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास आनेवाले ऋषियोंमें ये भी थे (शान्ति० ४७ । ९) ।

पिशङ्ग–धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १७) ।

पिशाच–(१) भूतयोनिविशेष । इनका प्राकट्य अण्डसे हुआ था (आदि० १ । ३५) । ये कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करते हैं (सभा० १० । १६) । ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४९) । गोकर्ण तीर्थमें रहकर शिवजीकी आराधना करते हैं (वन० ८५ । २५) । मरीचि आदि महर्षियोंने पिशाच आदि सब भूतोंकी सृष्टि की थी (वन० २७२ । ४६) । इन्होंने रावणको अपना राजा बनाया था (वन० २७५ । ३८) । पिशाच रक्त पीने और कच्चा मांस खानेवाले होते हैं (द्रोण० ५० । ९—१३) । अलम्बुषके रथमें घोड़ोंकी जगह पिशाच जुते हुए थे (द्रोण० १६७ । ३८) । इन्होंने घटोत्कचके साथ रहकर उसकी सहायता की थी और कर्णपर आक्रमण किया था (द्रोण० १७५ । १०९) । खाण्डववन-दाहके समय अर्जुनने इन्हें जीता था (कर्ण० ३७ । ३७) । अर्जुन और कर्णके युद्धके अवसरपर ये उपस्थित थे (कर्ण० ८७ । ५०) । मुञ्जवान् पर्वतपर तपस्या करते हुए पार्वतीसहित शिवजीकी पिशाच आदि आराधना करते हैं (आश्व० ८ । ५-६) । महाभारतकालमें पिशाचलोग पृथ्वीके राजा होकर उत्पन्न हुए थे (आश्रम० ३१ । ६) । (२) एक यक्षका नाम (सभा० १० । १६) । (३) एक भारतीय जनपद, इस जनपदके योद्धा युधिष्ठिरकी सेनामें क्रौञ्चव्यूहके दाहिने पक्षकी जगह खड़े किये गये थे (भीष्म० ५० । ५०) । दुर्योधनकी सेनामें राजा भगदत्तके साथ पिशाचदेशीय सैनिक थे (भीष्म० ८७ । ८) । श्रीकृष्णने किसी समय पिशाच देशके योद्धाओंको परास्त किया था (द्रोण० ११ । १६) ।

पिशाचग्रह–पिशाचसम्बन्धी ग्रह (वन० २३० । ५२) ।

पीठ–एक असुर, यह श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२५, कालम १; द्रोण० ११ । ५) ।

पुच्छाण्डक–तक्षककुलका एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ८) ।

पुञ्जिकस्थला–दस प्रधान अप्सराओंमेंसे एक । इसने अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें गान किया था (आदि० १२२ । ६४) । यह कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० १० । १०) ।

पुण्डरीक–(१) एक महायज्ञ (सभा० ५ । १००;

वन० ३० । १७) । (२) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । ८३) । (३) कश्यपवंशी एक नाग (उद्योग० १०३ । १३) । (४) एक दिग्गज (द्रोण० १२१ । २५) । (५) एक तीर्थसेवी ब्राह्मण, जिन्होंने नारदजीसे श्रेयके विषयमें प्रश्न किया था । इनको भगवान् नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन और उनके साथ परमधामकी प्राप्ति (अनु० १२४ । दाक्षिणात्य पाठ) ।

पुण्डरीका–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारकर नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६३) ।

पुण्डरीकाक्ष–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, पुण्डरीक—अविनाशी परमधाममें स्थित हो अक्षतभावसे विराजमान होनेसे भगवान्‌को 'पुण्डरीकाक्ष' कहते हैं (अथवा पुण्डरीक—कमलके सदृश अक्षि (नेत्र) धारण करनेके कारण भी वे 'पुण्डरीकाक्ष' कहे गये हैं ।) (उद्योग० ७० । ६) ।

पुण्डरीयक–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

पुण्ड्र–(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३४) । (२) एक प्राचीन देश, जिसे महाराज पाण्डुने जीता था (आदि०११२।२९)।(आधुनिक मान्यताके अनुसार मालदाका जिला, कोसी नदीके पूर्व पूर्णियाका कुछ अंश और दीनाजपुरका कुछ भाग तथा राजशाहीका सम्मिलित भूभाग 'पुण्ड्र' जनपदके अन्तर्गत रहा है ।) पुण्ड्रदेशके निवासी राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट लेकर आये थे । (सभा० ५२ । १६) । कर्णने भी इस देशको दिग्विजयके समय जीता था (कर्ण०८ । १९) । (कहते हैं, पौण्ड्रक वासुदेव इसी देशका राजा था ।) अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके समय अर्जुनने भी इस देशको जीता था (आश्व० ८२ । २९-३०) ।

पुण्ड्रक–एक प्राचीन क्षत्रिय नरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठते थे (सभा० ४ । २४) । ये राजसूय-यज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १८) ।

पुण्य–महर्षि विभाण्डकके आश्रमका नाम (वन० ११० । २३) ।

पुण्यकृत्–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०) ।

पुण्यतोया–एक नदी, जिसे मार्कण्डेयजीने भगवान् बालमुकुन्दके उदरमें भ्रमण करते समय देखा था (वन० १८८ । १०४) ।

पुण्यनामा–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५९) ।

पुत्–एक नरक, जिससे पिताका उद्धार करनेके कारण बेटेको 'पुत्र' कहा जाता है (आदि० ७४ । ३९) ।

पुत्रदर्शनपर्व–आश्रमवासिकपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २९ से ३६ तक) ।

पुत्रिकासुत–पुत्रीका पुत्र, यह भी 'प्रणीत' के समान ही माना गया है (इसे छः प्रकारके बन्धुदायादमेंसे एक समझना चाहिये) (आदि० ११९ । ३३) ।

पुनश्चन्द्रा–एक तीर्थ, जो शूर्पारकक्षेत्रमें जमदग्निकी वेदीपर स्थित है (वन० ८८ । १२) ।

पुरन्दर–(१) देवराज इन्द्रका एक नाम (देखिये इन्द्र) । (२) तप या पाञ्चजन्य नामक अग्निके एक पुत्र । तपके तपस्याजनित महान् फलको प्राप्त करनेके लिये मानो इन्द्र ही 'पुरन्दर' नामसे उनके पुत्र होकर प्रकट हुए (वन० २२१ । ३) ।

पुरमालिनी–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २१) ।

पुरावती–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके वासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २४) ।

पुरिका–एक प्राचीन नगरी, जहाँ पूर्वकालमें पौरिक नामक राजा राज्य करता था (शान्ति० १११ । ३) ।

पुरु–(१) एक प्राचीन क्षत्रियनरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । २७) । (२) एक पर्वत, जहाँ पूर्वकालमें पुरूरवाने यात्रा की थी (वन० ९० । २२) ।

पुरुकुत्स–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र भगवान् यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १३) । ये मान्धाताके पुत्र तथा नर्मदाके पति थे एवं कुरुक्षेत्रके वनमें तपस्या करके सिद्धिको प्राप्त हो स्वर्गलोकमें गये थे (आश्रम० २० । १२-१३) ।

पुरुजित्–एक क्षत्रियनरेश, जो कुन्तिभोजके पुत्र और कुन्तीके भाई थे । इनके दूसरे भाईका नाम कुन्तिभोज था (सभा० १४ । १६-१७; कर्ण० ६ । २२) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४६) । दुर्मुखके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ४०-४१) । द्रोणाचार्यद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । २२-२३) । ये यमराजकी सभामें उनकी उपासना करते थे (सभा० ८ । २०) ।

पुरुमित्र–धृतराष्ट्रके ग्यारह महारथी पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६३ । ११९) जूएके समय यह भी उपस्थित था (सभा० ५८ । १३) । अभिमन्युद्वारा घायल हुआ था (भीष्म० ७३ । २४) । संजयद्वारा जीवित

योद्धाओंकी गणनामें इसका भी नाम था (कर्ण० ७। १४)।

पुरुमीढ–सम्राट् सुहोत्रके तृतीय पुत्र, माताका नाम ऐक्ष्वाकी। इनके दो भाई और थे अजमीढ और सुमीढ (आदि० ९४। ३०)।

पुरुषादक–एक प्राचीन देश (सभा० ५१। १७)।

पुरुषोत्तम–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम। ये सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा सबके निवासस्थान हैं; इसलिये पुरुष हैं। सब पुरुषोंमें उत्तम होनेके कारण पुरुषोत्तम कहलाते हैं (उद्योग० ७०। ११-१२)।

पुरूरवा–(१) ये (चन्द्रपुत्र) बुधके द्वारा इलाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ७५। १८-१९; द्रोण० १४४। ४)। ब्राह्मणोंके प्रति इनका अत्याचार (आदि० ७५। २०-२१)। ब्राह्मणोंद्वारा इनका विनाश (आदि० ७५। २२)। उर्वशीके गर्भसे इनके द्वारा क्रमशः आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु और शतायु नामक छः पुत्रोंका जन्म (आदि० ७५। २४-२५)। इनका वायुदेवसे चारों वर्णोंकी उत्पत्ति तथा ब्राह्मणकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० ७२। ३)। पुरोहितके विषयमें कश्यपजीके साथ इनका संवाद (शान्ति० ७३। ७–३२)। इक्ष्वाकुद्वारा इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई थी और इन्होंने उसे आयुको प्रदान किया था (शान्ति० १६६। ७३-७४)। ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे इनकी स्वर्गप्राप्तिकी चर्चा (अनु० ६। ३१)। गोदान-महिमाके प्रसङ्गमें इनका नामनिर्देश (अनु० ७६। २६)। इन्होंने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया (अनु० ११५। ६५)। (२) दीप्ताक्षवंशका एक कुलपांसन राजा (उद्योग० ७४। १५)।

पुरोचन–यह दुर्योधनका मन्त्री था। दुर्योधनका इसको 'वारणावत' नगरमें लाक्षागृह बनवानेका आदेश देकर भेजना (आदि० १४३। २–१७)। इसके द्वारा लाक्षागृहका निर्माण (आदि० १४३। १९)। इसका पाण्डवोंको अपने डेरेपर लाकर स्वागत-सत्कार करके आदरपूर्वक निवास देना (आदि० १४५। ९-१०)। पाण्डवोंसे उस नये गृह (लाक्षागृह) की चर्चा करके उनको सेवक-सामग्रियोंसहित उसमें (लाक्षागृहमें) लाकर ठहराना (आदि० १४५। ११-१२)। इसका लाक्षागृहमें दग्ध होना (आदि० ६१। २३; आदि० १४९। २)।

पुलस्त्य–ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं (आदि० ६५। १०; वन० २७४। १२)। छः शक्तिशाली महर्षियोंमें इनका भी नाम है (आदि० ६६। ४)। बुद्धिमान् पुलस्त्य मुनिके पुत्र राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हैं (आदि० ६६। ७)। ये अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें भी पधारे थे (आदि० १२२। ५२)। पराशरजीके राक्षस-सत्रमें महर्षियोंके साथ इनका आना और पराशरजीको समझाकर उस सत्रको बंद करनेके लिये कहना (आदि० १८०। ९—२०)। ये इन्द्रकी सभामें बैठते हैं (सभा० ७। १७)। ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११। १९)। इनके द्वारा भीष्मसे विभिन्न तीर्थोंका फलादेशपूर्वक वर्णन (वन० अध्याय ८२ से ८५। १११ तक)। इनकी पत्नीका नाम गौ था। उनके गर्भसे इनके द्वारा वैश्रवण (कुबेर) का जन्म हुआ था (वन० २७४। १२)। इन्होंने अपने आधे शरीरसे विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न किया था (आदि० २७४। १३-१४)। स्कन्दके जन्ममहोत्सवके अवसरपर ये भी पधारे थे (शल्य० ४५। ९)। शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास आये हुए ऋषियोंमें ये भी थे (शान्ति० ४७। १०)। इक्कीस प्रजापतियोंमें भी इनका नाम है (शान्ति० ३३४। ३५)। चित्रशिखण्डी नामवाले सात ऋषियोंमें एक ये भी हैं (शान्ति० ३३५। २९)। ये आठ प्रकृतियोंमेंसे एक हैं (शान्ति० ३४०। ३४-३५)। प्रयाणके समय भीष्मजीके पास ये भी आये थे (अनु० २६। ४)। (महाभारतमें इनके ब्रह्मर्षि, ब्रह्मयोनि और विप्रर्षि आदि नामोंका भी उल्लेख मिलता है।)

पुलह–ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं (आदि० ६५। १०; वन० २७४। १२)। छः शक्तिशाली महर्षियोंमें इनका भी नाम है (आदि० ६६। ४)। पुलहके शरभ, सिंह, किम्पुरुष, व्याघ्र, रीछ, ईहामृग (भेड़िया) जातिके पुत्र हुए (आदि० ६६। ८)। ये अर्जुनके जन्मसमय पधारे थे (आदि० १२२। ५२)। पराशरजीके राक्षससत्रमें महर्षियोंके साथ इनका आगमन (आदि० १८०। ९)। ये इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७। १७)। ब्रह्माजीकी सभामें रहकर ये उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११। १८)। अलकनन्दा गङ्गाके तटपर ये जप और स्वाध्याय करते हैं (वन० १६२। ६)। स्कन्दके जन्ममहोत्सवमें ये भी पधारे थे (शल्य० ४५। ९)। इक्कीस प्रजापतियोंमें एक ये भी हैं (शान्ति० ३३४। ३५)। चित्रशिखण्डी नामक सात ऋषियोंमें भी इनका नाम है (शान्ति० ३३५। २९)। आठ प्रकृतियोंमें इनका नाम है (शान्ति० ३४०। ३४-३५)। प्रयाणके समय

भीष्मजीके पास आये हुए ऋषियोंमें ये भी थे (**अनु० २६ । ४**) ।

पुलिन्द–(१) एक देश तथा वहाँके निवासी । ये वसिष्ठजीकी गौ नन्दिनीके कुपित होनेपर उसके फेनसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० १७४ । ३८**) । भीमसेनने पुलिन्द देशपर धावा करके वहाँके महान् नगर तथा उस देशके राजा सुकुमार और सुमित्रको जीत लिया था (**सभा० २९ । १०**) । सहदेवने भी इस देशके राजा सुकुमार और सुमित्रको वशमें कर लिया था (**सभा० ३१ । ४**) । ये उन म्लेच्छ जातियोंमें हैं, जो कलियुगमें पृथ्वीके शासक होंगे (**वन० १८८ । ३५**) । ये दुर्योधनकी सेनामें आये थे (**उद्योग० १६० । १०३; उद्योग० १६१ । २१**) । यह एक भारतीय जनपद है (**भीष्म० ९ । ३९, ६२**) । इनका पाण्ड्यनरेशके साथ युद्ध हुआ और उनके बाणोंद्वारा मारे गये (**कर्ण० २० । १०—१२**) । इनकी गणना क्षत्रियोंमें थी; परंतु ब्राह्मणोंकी कृपासे वञ्चित होनेके कारण ये शूद्र हो गये (**अनु० ३३ । २२ । २३ ।**) । (२) यह किरातोंका राजा था और युधिष्ठिरकी सभामें बैठता था (**सभा० ४ । २४**) ।

पुलोमा–(१) भृगु ऋषिकी पत्नी (**आदि० ५ । १३**) । पुलोमा नामक राक्षसके द्वारा इनका हरण होना (**आदि० ६ । १**) । इनके गर्भसे च्यवन मुनिका जन्म (**आदि० ६ । २**) । इनकी विस्तृत कथा (**आदि० ५ । १३ से ६ । १३ तक**) । (२) एक राक्षस । इसके द्वारा भृगुपत्नी पुलोमाका हरण होना (**आदि० ५ । १५**) । इसका कुपित हुए च्यवनके तेजसे भस्म होना (**आदि० ६ । ३**) । (३) कश्यप और दनुसे उत्पन्न एक प्रसिद्ध दानव (**आदि० ६५ । २२**) । यह धन-रत्नोंसहित इस पृथ्वीके महान् शासकोंमेंसे एक था (**शान्ति० १२७ । ४९-५०**) । (४) दैत्यकुलकी एक कन्या, जिसके पुत्रोंको 'पौलोम' कहते हैं । इसने और कालकाने भारी तपस्या करके ब्रह्माजीसे यह वर माँगा था कि 'हमारे पुत्रोंका दुःख दूर हो जाय । हमारे पुत्र देवता, राक्षस तथा नागोंके लिये भी अवध्य हों । इनके रहनेके लिये एक सुन्दर नगर होना चाहिये, जो अपने महान् प्रभापुञ्जसे जगमगा रहा हो । वह नगर विमानकी भाँति आकाशमें विचरनेवाला हो और उसमें नाना प्रकारके रत्नोंका संचय रहना चाहिये । देवता आदि उसका विध्वंस न कर सकें (**वन० १७३ । ७–१२**) ।

पुष्कर–(१) क्षेत्र । तीर्थगुरु (**आदि० २२० । १४**) । (यह तीर्थ अजमेरसे छः कोसकी दूरीपर उत्तर दिशामें है । इसके सम्बन्धमें पुराणोंमें ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्माजीने इस स्थानपर यज्ञ किया था । यहाँ ब्रह्माजीका एक मन्दिर है । पद्म और नारदपुराणमें इस तीर्थका बहुत कुछ माहात्म्य मिलता है । पद्मपुराणमें लिखा है कि एक बार पितामह ब्रह्मा हाथमें कमल लिये यज्ञ करनेकी इच्छासे इस सुन्दर पर्वतप्रदेशमें आये और यहाँ कमल उनके हाथसे गिर पड़ा । उसके गिरनेसे ऐसा शब्द हुआ कि सब देवता काँप उठे । जब देवता ब्रह्मासे पूछने लगे, तब ब्रह्माने कहा—'बालकोंका घातक वज्रनाभ असुर रसातलमें तप करता था । वह तुमलोगोंका संहार करनेके लिये यहाँ आना ही चाहता था कि मैंने कमल गिराकर उसे मार डाला । तुमलोगोंकी बड़ी भारी विपत्ति दूर हुई । इस पद्मके गिरनेके कारण इस स्थानका नाम पुष्कर होगा । यह परम पुण्यप्रद महातीर्थ होगा ।' साँचीसे मिले हुए एक शिलालेखसे यह पता लगता है कि ईसासे तीन सौ वर्षसे भी और पहले यह तीर्थस्थान प्रसिद्ध था—(**हिंदी शब्दसागरसे**) । (यहाँ ब्रह्मा, सावित्री, बदरीनारायण और वराहजीके मन्दिर प्रसिद्ध हैं ।) अर्जुनने अपने वनवासका शेष समय यहीं व्यतीत किया था (**आदि० २२० । १४**) । पुलस्त्यजीद्वारा इसका विशेष वर्णन (**वन० ८२ । २०—४०**) । धौम्यद्वारा इसके माहात्म्यका वर्णन (**वन० ८९ । १६–१८**) । पुष्करमें जाकर मृत्युने घोर तप किया था (**द्रोण० ५४ । २६**) । यहाँ ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, जिसमें सरस्वती सुप्रभा नामसे प्रकट हुई थी (**शल्य० ३८ । ५—१४**) । पुष्करमें जाकर दान देना, भोगोंका त्याग करना, शान्तभावसे रहना, तपस्या और तीर्थके जलसे तन-मनको पवित्र करना चाहिये (**शान्ति० २९७ । ३७**) । यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है और अप्सराएँ स्तुति करती हुई जगाती हैं (**अनु० २५ । ९**) । (२) वरुणदेवके प्रिय पुत्र, इनके नेत्र विकसित कमलके समान दर्शनीय हैं; इसीलिये सोमकी पुत्रीने इनका पतिरूपसे वरण किया है (**उद्योग० ९८ । १२**) । (३) ये राजा नलके छोटे भाई थे (**वन० ५२ । ५६**) । इन्हें कलियुगका राजा नलके साथ जूआ खेलनेके लिये आदेश देना (**वन० ५९ । ४**) । इनका राजा नलके साथ जूआ खेलना (**वन० ५९ । ९**) । पुष्करने राजा नलका सर्वस्व जीत लिया था (**वन० ६१ । १**) । इनका राजा नलके साथ पुनः जूआ खेलना और सर्वस्व हारना (**वन० ७८ । ४—२०**) । नलसे क्षमा माँगकर इनका अपनी राजधानीको लौट जाना (**वन० ७८ । २७–**

१९) । (४) एक द्वीप, इसका विशेषरूपसे वर्णन (भीष्म० १२ । २४—३७) । (५) पुष्करद्वीपका एक पर्वत, जो मणियों तथा रत्नोंसे भरा-पूरा है (भीष्म० १२ । २४-२५) ।

पुष्करधारिणी—ये विदर्भनिवासी उञ्छवृत्तिधारी तथा अहिंसापरायण सत्यनामक ब्राह्मणकी धर्मचारिणी पत्नी थीं (शान्ति० २७२ । ३—६) ।

पुष्करिणी—सम्राट् भरतकी पुत्रवधू तथा भुमन्युकी पत्नी । इनके गर्भसे सुहोत्र, दिविरथ, सुहोता, सुहवि, सुयजु और ऋचीक नामक छः पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । २३-२५) ।

पुष्टि—ये दक्षप्रजापतिकी कन्या और धर्मकी पत्नी हैं (आदि० ६६ । १४) । ये ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४२) । इन्द्रलोककी यात्राके समय अर्जुनकी रक्षाके लिये द्रौपदीने इनका स्मरण किया था (वन० ३७ । ३३) ।

पुष्टिमति-भरत नामक अग्निका नामान्तर, ये संतुष्ट होनेपर पुष्टि प्रदान करते हैं, अतः इनका नाम पुष्टिमति है (वन० २२१ । १) ।

पुष्प—कश्यपवंशी एक नाग (उद्योग० १०३ । १३) ।

पुष्पक—(१) कुबेरका एक दिव्य विमान, जो इन्हें ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ था (वन० २७४ । १७) । इसे रावणने उनसे बलपूर्वक छीन लिया था (वन० २७५ । ३४) । कुबेरने रावणको यह शाप दिया था कि यह विमान तेरी सवारीमें नहीं आ सकेगा; जो तेरा वध करेगा, उसीका यह वाहन होगा (वन० २७५ । ३५) । लङ्का-विजयके पश्चात् श्रीरामने पुष्पकविमानकी पूजा करके उसे कुबेरको ही प्रसन्नतापूर्वक लौटा दिया (वन० २९१ । ६९) । (२) द्वारकापुरीके दक्षिणभागमें स्थित लतावेष्ट नामक पर्वतको एक ओरसे घेरकर फैला हुआ एक वन (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३) ।

पुष्पदंष्ट्र—कश्यपवंशी एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १२) ।

पुष्पदन्त—(१) एक दिग्गज (द्रोण० १२१ । २५) । (२) पार्वतीद्वारा कुमारको दिये गये तीन पार्षदोंमेंसे एक, अन्य दोका नाम उन्माद और शङ्कुकर्ण था (शल्य० ४५ । ५१) ।

पुष्परथ—राजर्षि वसुमनाका रथ, यह आकाश, पर्वत और समुद्र आदि दुर्गम स्थानोंमें भी बड़ी सुगमतासे जा सकता था (वन० १९८ । १२-१३) ।

पुष्पवती—इस तीर्थमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है और अपने कुलको पवित्र कर देता है (वन० ८५ । १२) ।

पुष्पवान्—एक राजा, जो कभी समस्त पृथ्वीका शासक था, परंतु कालसे पीड़ित हो इसे छोड़कर परलोकवासी हो गया (शान्ति० २२७ । ५१—५६) ।

पुष्पानन—एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । १७) ।

पुष्पोत्कटा—कुबेरद्वारा विश्रवाकी परिचर्यामें नियुक्त एक सुन्दरी राक्षसकन्या, जो नृत्य-गीतकी कलामें प्रवीण थी । इसीके गर्भसे रावण और कुम्भकर्णका जन्म हुआ था (वन० २७५ । ३—७) ।

पूजनी—काम्पिल्य नगरके राजा ब्रह्मदत्तके भवनमें निवास करनेवाली एक चिड़िया (शान्ति० १३९ । ५) । यह समस्त प्राणियोंकी बोली समझती थी। सर्वज्ञ और सम्पूर्ण तत्त्वोंको जाननेवाली थी (शान्ति० १३९ । ६) । राजकुमारने इसके बच्चेको मार डाला था; अतः इसने भी राजकुमारकी आँखें फोड़ दीं (शान्ति० १३९ । १३-२०) । राजभवनको छोड़कर जाते समय पूजनीका राजा ब्रह्मदत्तके साथ संवाद (शान्ति० १३९ । २१-१११) ।

पूतना—(१) एक राक्षसी, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा मारी गयी थी (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९८) । (२) (पूतनाग्रह)- पूतना नामक राक्षसी, जो बालकोंके लिये ग्रहरूप है । यह स्कन्दके साथ रहनेवाली है (वन० २३० । २७) । यही पूतना स्कन्दकी अनुचरी मातृकाओंमें भी गिनी गयी है (शल्य० ४६ । १६) । ।

पूतिका—एक लता, जो सोमलताके स्थानपर यज्ञमें काम आती है (वन० ३५ । ३३) ।

पूरण—एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास आये थे (शान्ति० ४७ । १२) ।

पूरु—(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३२) । जो राजा ययातिके द्वारा 'शर्मिष्ठा' के गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ७५ । ३५; आदि० ८३ । १०) । (ये पौरववंशके प्रवर्तक आदि पुरुष थे ।) इनके द्वारा अपने पिताको युवावस्थाका दान एवं उनकी वृद्धावस्थाका ग्रहण (आदि० ७५ । ४३-४४; आदि० ८४ । ३४) । इनके द्वारा गुरुजनोंके आज्ञापालनकी महिमाका वर्णन (आदि० ८४ । ३०-३१ के बाद दा० पाठ) । प्रजाके अनुमोदन करनेपर ययातिद्वारा इनका राज्यपर अभिषिक्त होना (आदि० ८५ । ३२) । कौसल्या (पौष्टी) नामक पत्नीके गर्भसे इनके द्वारा जनमेजय (प्रवीर), ईश्वर तथा रौद्राश्वका जन्म एवं इनके वंशका संक्षिप्त वर्णन (आदि०

९४ अध्याय)। इनके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन (आदि० ९५ अध्याय)। ये यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८। ८)। इन्द्रके विमानपर बैठकर अर्जुनका कौरवोंके साथ होनेवाला युद्ध देखनेके लिये आये थे (विराट०५६ । १०)। मान्धाताद्वारा इनकी पराजय (द्रोण० ६२ । १०)। ययातिद्वारा इन्हें खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७४)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । २२)। ये मांसभक्षणका निषेध करके परावर-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर चुके थे (अनु० ११५ । ५९)। (२) अर्जुनका सारथि, जिसे राजसूय यज्ञके लिये अन्नसंग्रहके कामपर जुट जानेका आदेश मिला था (सभा० ३३ । ३०)

पूर्ण–(१) वासुकि-कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ५)। (२) कश्यपकी प्राधा नामवाली पत्नीसे उत्पन्न एक देव-गन्धर्व (आदि०६५ । ४६)।

पूर्णभद्र–एक कश्यपवंशी प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १२)।

पूर्णमुख–धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल गया (आदि० ५७ । १६)।

पूर्णा–पञ्चमी, दशमी तथा पञ्चदशी तिथियोंकी संज्ञा। पूर्णा नामक पञ्चमी तिथिमें युधिष्ठिरका जन्म (आदि० १२२ । ६)।

पूर्णाङ्गद–धृतराष्ट्रवंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्प-सत्रमें स्वाहा हो गया था (आदि० ५७ । १६)।

पूर्णायु–एक देवगन्धर्व, जो कश्यपकी पत्नी प्राधाका पुत्र था (आदि० ६५ । ४६)।

पूर्वचित्ति–एक श्रेष्ठ अप्सरा, जो सर्वश्रेष्ठ छः अप्सराओंमेंसे एक है (आदि० ७४ । ६८)। यह उन दस विख्यात अप्सराओंमेंसे एक है, जिन्होंने अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधार-कर नृत्य और गान किया था (आदि० १२२ । ६५)। स्वर्गमें अर्जुनके स्वागत-समारोहमें इसने नृत्य किया था (वन० ४३ । २९)। मलयपर्वतपर शुकदेवजीकी उत्तम गति देखकर यह आश्चर्यचकित हो उठी थी और इस विषयमें अपना हार्दिक उद्गार प्रकट किया था (शान्ति० ३३२ । २१–२४)।

पूर्वदिशा–चार दिशाओंमेंसे एक, इसका विशेष वर्णन (उद्योग० १०८ अध्याय)।

पूर्वपाली–एक प्राचीन राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १७)।

पूर्वाभिरामा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २२)।

पूषणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य०४६ । २०)।

पूषा–(१) बारह आदित्योंमेंसे एक (आदि० ६५ । १५)। ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ६७)। खाण्डववनके युद्धमें इनका आगमन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर धावा (आदि० २२६ । ३५)। भगवान् शङ्करने इनके दाँत तोड़े थे (द्रोण० २०२ । ४९; सौप्तिक० १८ । १६)। इनके द्वारा स्कन्दको पाणीतक और कालिक नामक दो पार्षदोंका दान (शल्य० ४५ । ४३-४४)। ये घृतदानसे संतुष्ट होते हैं (अनु० ६५ । ७)। (२) सूर्यदेवका एक नाम (वन० ३ । १६)।

पृतना–सेनाका परिमाणविशेष—तीन वाहिनी (आदि० २ । २१)।

पृथा–शूरसेनकी पुत्री, जो संसारकी अनुपम सुन्दरी थी; वसुदेवजीकी बड़ी बहिन थी (आदि० ६७ । १२९)।

पृथाश्व–यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करनेवाला एक प्राचीन नरेश (सभा० ८ । १९)।

पृथु–(१) आठ वसुओंमेंसे एक (आदि० ९९ । ११)। (२) एक वृष्णिवंशी क्षत्रिय, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १८)। यह रैवतक पर्वतके उत्सवमें सम्मिलित हुआ था (आदि० २१८ । १०)। (३) महाराज वेनके पुत्र, प्रथम नरेश। इनके द्वारा अत्रिमुनिको धनदान (वन० १८५ । ८—३५)। संजयको समझाते हुए नारदजी-द्वारा इनके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६९ अध्याय)। श्रीकृष्णद्वारा इनके चरित्रका वर्णन (शान्ति० २९ । १३७—१४४)। इनकी उत्पत्ति और चरित्रका विस्तृत वर्णन (शान्ति० ५९ । ९८—१२८)। ये प्राचीन कालमें पृथ्वीके शासक थे; किंतु कालसे पीड़ित हो पृथ्वीको छोड़कर परलोकवासी हो गये (शान्ति० २२७ । ४९—५६)। इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५)। (४) इक्ष्वाकुवंशी महाराज अनेना-के पुत्र, इनके पुत्रका नाम विष्वगश्व था (वन० २०२ । २-३)।

पृथुलाक्ष–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यम-की उपासना करता है (सभा० ८ । १०)।

पृथुलाश्व–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । २२)।

पृथुवक्त्रा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १९)।

पृथुवेग– एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । १२) ।

पृथुश्रवा–(१) महाभौमकुमार अयुतनायीकी पत्नी कामाके पिता (आदि० ९५ । २०-२१) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १२) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका बड़ा सम्मान करते थे (वन० २६ । २२—२५) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२) । (४) एक नाग, जो बलरामजीके स्वागतार्थ प्रभासक्षेत्रमें आया था (मौसल० ४ । १५) ।

पृथूदक–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक कार्तिकेय-तीर्थ, जिसमें स्नान करनेमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा तीर्थसेवी पुरुषको अश्वमेधयज्ञके फल और स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है । (वन० ८३ । १४१—१४४) । इस तीर्थकी महिमा (शल्य० ३९ । २८–३३) ।

पृथिवीतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ जाकर स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । १३) ।

पृथ्वी–(देखिये भूमि) ।

पृश्नि–एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहा था (द्रोण० १९० । ३४—४०) । इन्होंने स्वाध्यायके द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया था (शान्ति० २६ । ७) ।

पृश्निगर्भ–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, उसकी निरुक्ति—अन्न, वेद, जल और अमृत—इनको पृश्नि कहते हैं । ये सदा भगवान्के गर्भमें रहते हैं, इसलिये इनका नाम पृश्निगर्भ है । इस नामके उच्चारणसे त्रित मुनि कूपसे बाहर हो गये थे (शान्ति० ३४१ । ४५—४७) ।

पृषत–पाञ्चाल देशके एक राजा, जो महर्षि भरद्वाजके मित्र और द्रुपदके पिता थे (आदि० १२९ । ४१) ।

पृषदश्व–एक प्राचीन नरेश, जिन्हें राजा अष्टकद्वारा खड्गकी प्राप्ति हुई थी (शान्ति० १६६ । ८०) । ये यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १३) ।

पृषध्र–(१) वैवस्वत मनुके नवें पुत्र (आदि० ७५ । १६) । ये प्रातः-सायंकालीन कीर्तन करनेयोग्य राजाओंमेंसे एक हैं, इनके कीर्तनसे धर्मका फल प्राप्त होता है (अनु० १६५ । ५८—६०) । इन्होंने कुरुक्षेत्रमें तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया (आश्रम० २० । ११) । (२) द्रुपदका एक पुत्र, जिसका अश्वत्थामाद्वारा वध हुआ था (द्रोण० १५६ । १८३) ।

पैङ्गय–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १७) ।

पैजवन–एक शूद्र, जिसने ऐन्द्राग्न यज्ञकी विधिसे मन्त्रहीन यज्ञ करके उसकी दक्षिणाके रूपमें एक लाख पूर्णपात्र दान किये थे (शान्ति० ६० । ३९) ।

पैठक–एक असुर, जिसका भगवान् श्रीकृष्णद्वारा वध किया गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२५, कालम १) ।

पैल–एक प्राचीन ऋषि, जो व्यासजीके शिष्य थे । इनको व्यासजीने सम्पूर्ण वेदों एवं महाभारतका अध्ययन कराया था (आदि० ६३ । ८९-९०) । ये वसुके पुत्र थे और धौम्य मुनिके साथ युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके होता बने थे (सभा० ३३ । ३५) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास अन्य ऋषियोंके साथ महात्मा पैल भी पधारे थे (शान्ति० ४७ । ६) ।

पैलगर्ग–एक मुनि, जिनके आश्रमपर काशिराजकी कन्या अम्बाने तपस्या की थी (उद्योग० १८६ । २८) ।

पैलगर्गाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्या अम्बाने कठोर व्रतका आश्रय ले स्नान किया था (उद्योग० १८६ । २८) ।

पैशाच–विवाहका एक भेद । जब घरके लोग सोये हों अथवा असावधान हों, उस दशामें कन्याको चुरा लेना पैशाच विवाह है । यह सर्वथा सभी वर्णोंके लिये निषिद्ध है (आदि० ७३ । ९—१२) ।

पोतक–कश्यपवंशीय एक नाग (उद्योग० १०३ । ११) ।

पौण्ड्र–(१) नन्दिनीके पार्श्वभागसे प्रकट हुई एक म्लेच्छ जाति (आदि० १७४ । ३७) । (२) एक देश और वहाँके निवासी राजा आदि; पौण्ड्रदेशके राजा द्रौपदीके स्वयंवरमें आये थे (आदि० १८६ । १५) । इस देशको श्रीकृष्णने पराजित किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८२४, कालम २) । पौण्ड्र देशके लोगोंके राजसूय यज्ञमें आनेकी चर्चा (वन० ५१ । २२) । युधिष्ठिरकी ओरसे उनके साथ ये क्रौञ्च-व्यूहमें खड़े थे (भीष्म० ५० । ४८) । कर्णने इस देशको जीता था (द्रोण० ४ । ८) । श्रीकृष्णने भी इसपर विजय पायी थी (द्रोण० ११ । १५) । मान्धाताके राज्यमें पौण्ड्रजातिके लोग निवास करते थे (शान्ति० ६५ । १४) । पौण्ड्रलोग पहले क्षत्रिय थे, किंतु ब्राह्मणोंके अमर्षसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये (अनु० ३५ । १७-१८) । (३) भीमसेनके शङ्खका नाम । युद्धके आरम्भमें भीमने इस महाशङ्खको बजाया था (भीष्म० २५ । १५) । दुर्योधनके मारे जानेपर भीमकर्मा भीमने

पौण्ड्र नामक महान् शङ्खकी ध्वनि की (शल्य० ६१ । ७१ के बाद दा० पाठ) ।

पौण्ड्रक–पुण्ड्रदेशका राजा वासुदेव, जो वंग, पुण्ड्र आदि अनेक देशोंका शासक था और जरासंधसे मिला हुआ था (सभा० १४ । २०) । राजसूय यज्ञके समय भीमसेनद्वारा इसकी पराजय (सभा० ३० । २२) । यह युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आया था (सभा० ५२ । १८) ।

पौण्ड्रमात्स्यक–एक क्षत्रिय राजा, जो दनायुके पुत्र वीर नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४३) ।

पौदन्य–एक प्राचीन नगर, जिसे सौदासके पुत्र अश्मकने बसाया था (आदि० १७६ । ४७) । (कुछ आधुनिक विचारकोंके मतानुसार गोदावरीके उत्तर तटपर बसा हुआ 'पैथान' नामक नगर ही पौदन्य है ।)

पौनर्भव–छः बन्धु-दायादोंमेंसे एक । दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र (आदि० ११९ । ३३) ।

पौरव– (१) एक राजर्षि, जो शरभ नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । २७-२८) । ये पर्वतीय राजा थे और अर्जुनद्वारा पराजित हुए थे (सभा० २७ । १४-१५) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १४) । दुर्योधनकी सेनामें ये एक महारथी थे (उद्योग० १६८ । १९) । धृष्टकेतुके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११६ । १३-१४) । इन्होंने अभिमन्युके साथ युद्ध किया और अभिमन्युने चुटिया पकड़कर इन्हें घसीटा था (द्रोण० १४ । ५०–६०) । महाभारत-युद्धमें ये अर्जुनद्वारा मारे गये थे, ऐसी चर्चा आयी है (कर्ण० ५ । ३५) । (२) पूरुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले—कौरव-पाण्डव आदि (आदि० १७२ । ५० के बाद दा० पाठ) । (३) अङ्गदेशके एक प्राचीन राजा । नारदजीद्वारा सृञ्जयके समक्ष अश्वमेध यज्ञमें इनके दानका वर्णन (द्रोण० ५७ अध्याय) । (४) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५) ।

पौरवक–क्षत्रियोंकी एक जाति, इस जातिके लोग युधिष्ठिरके साथ क्रौञ्चव्यूहमें खड़े थे (भीष्म० ५० । ४८) ।

पौरिक–पुरिका नगरीका एक राजा, जिसे पापके कारण सियारकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था (शान्ति० १११ । ३-४) ।

पौरोगव–पाकशालाके अध्यक्षकी संज्ञा (विराट० २ । १) ।

पौलस्त्य–पुलस्त्यकुलके राक्षस, जो दुर्योधनके भाइयोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ८९–९०) ।

पौलोम–(१) पुलोमाके पुत्र । हिरण्यपुरके स्वामी । इनका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका संहार (वन० १७२ । १६—५५) । (२) दक्षिण समुद्रके समीपका एक तीर्थ, पाँच नारी तीर्थोंमेंसे एक (आदि० २१५ । ३) । यहाँ ब्राह्मणके शापसे ग्राह बनकर रहनेवाली अप्सरा (वर्गाकी सखी) का अर्जुनद्वारा उद्धार हुआ (आदि० २१६ । २१-२२) ।

पौलोमपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४ से १२ तक) ।

पौलोमी–पुलोमा दानवकी पुत्री, देवराज इन्द्रकी पत्नी और जयन्तकी माता शची (आदि० ११३ । ४) । (देखिये शची)

पौष मास–(बारह महीनोंमेंसे एक, जिस मासकी पूर्णिमाको पुष्य-नक्षत्रका योग होता है, उसे 'पौष' कहते हैं । यह मार्गशीर्षके बाद और माघके पहले पड़ता है ।) पौष मासमें प्रतिदिन एक समय भोजन करनेवाला मनुष्य सौभाग्यशाली, दर्शनीय और यशस्वी होता है (अनु० १०६ । २०) । पौष मासकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नारायणकी पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है (अनु० १०९ । ४) । पौष मासके शुक्लपक्षकी जिस तिथिमें रोहिणी नक्षत्रका योग हो, उस दिनकी रात्रिमें स्नान आदिसे शुद्ध हो एक वस्त्र धारण करके श्रद्धा और एकाग्रतापूर्वक आकाशके नीचे खुले मैदानमें सो जाय और चन्द्रमाकी किरणोंका पान करता रहे । ऐसा करनेसे उसे महान् यज्ञका फल मिलता है (अनु० १२६ । ४८–४९) ।

पौष्टी–राजा पूरुकी पत्नी, इनके गर्भसे पूरुद्वारा प्रवीर, ईश्वर तथा रौद्राश्व नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे (आदि० ९४ । ५) । इनका दूसरा नाम कौसल्या था (आदि० ९५ । ११) ।

पौष्य–एक क्षत्रिय राजा, जिन्होंने आचार्य वेदको पुरोहित बनाया था । इनकी कथा (आदि० ३ । ८२—११७) । इनकी रानीका उत्तङ्क ऋषिको कुण्डल देना (आदि० ३ । १११) । इनके द्वारा उत्तङ्कको संतानहीन होनेका शाप (आदि० ३ । ११७) ।

पौष्यपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (३ अध्याय) ।

प्रकालन–वासुकि-वंशका एक नाग, जो जनमेजयके सर्प-यज्ञमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) ।

प्रकाश–एक भृगुवंशी ब्राह्मण, जो गृत्समदवंशी 'तम' के पुत्र थे (अनु० ३० । ६३) ।

प्रगण्डी–परकोटोंपर रक्षा-सैनिकोंके बैठनेका स्थान (शान्ति० ६९ । ४३) ।

प्रघस–राक्षसों और पिशाचोंके दल (**वन० २८५ । १-२**) ।

प्रघसा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (**शल्य० ४६ । १६**) ।

प्रचेता–प्राचीनबर्हिके दस पुत्र, जो ऋषि एवं प्रजापति हैं, इन्हींसे प्राचेतस दक्षका जन्म हुआ है (**अनु० १४७ । २५**) । इन्होंने कण्डु मुनिकी पुत्री वार्क्षीके साथ विवाह किया था (**आदि० १९५ । १५**) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ७ । १६**) । ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (**सभा० ११ । १८**) । ये स्कन्दके जन्मकालमें उनके पास पधारे थे (**शल्य० ४५ । १०**) ।

प्रजागरपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ३३ से ४० तक**) ।

प्रजागरा–एक अप्सरा, जिसने इन्द्रकी सभामें अर्जुनके स्वागत-समारोहके अवसरपर नाच-गान किया था (**वन० ४३ । ३०**) ।

प्रजापति–(**१**) प्रजाओंके स्रष्टा और पालक देवगुरु ब्रह्मा (**आदि० १ । २९—३३**) । (विशेष देखिये 'ब्रह्मा') । (**२**) महर्षि कश्यप, जिन्होंने वालखिल्योंसे देवराज इन्द्र-पर अनुग्रह करनेके लिये प्रार्थना की थी (**आदि० ३१ । १६—२१**) ।

महाभारतमें प्रजापतियोंके इक्कीस नाम आये हैं— ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम, क्रोध और विक्रीत । ये इक्कीस प्रजापति उसी परमात्मासे उत्पन्न बताये गये हैं तथा उसी परमात्माकी सनातन धर्म-मर्यादाका पालन एवं पूजन करते हैं (**शान्ति० ३३४ । ३५–३७**) ।

प्रजापतिकी उत्तर वेदी–तरन्तुक, अरन्तुक, रामहृद (परशुरामकुण्ड) तथा मचक्रुक—इनके बीचका भू-भाग कुरुक्षेत्र ही प्रजापतिकी उत्तर वेदी है (**शल्य० ५३ । २४**) ।

प्रजापति-वेदी–प्रतिष्ठानपुर (झूसी) सहित प्रयाग, कम्बल और अश्वतर नाग तथा भोगवती तीर्थ–यह ब्रह्माजीकी वेदी है (**वन० ८५ । ७६-७७**) ।

प्रणिधि–वासिष्ठ बृहद्रथके अंशसे उत्पन्न पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र (**वन० २२० । ९**) ।

प्रणीत–छः बन्धुदायादोंमेंसे एक, अपनी पत्नीके गर्भसे किसी महापुरुषके अनुग्रहसे उत्पन्न हुआ पुत्र (**आदि० ११९ । ३३**) ।

प्रतर्दन–काशी जनपदके एक प्राचीन नरेश, जो राजा ययातिके दौहित्र थे (**आदि० ९३ । १३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ २८२**) । ययाति-पुत्री माधवीके गर्भसे काशि-राज दिवोदासके द्वारा इनका जन्म हुआ था (**उद्योग० ११७ । १८; अनु० ३० । ३०**) । स्वर्गसे गिरते हुए राजा ययातिकी इनसे भेंट (**आदि० ८६ । ५-६**) । इनका ययातिके साथ वार्तालाप (**आदि० ९२ । १४—१८ दा० पाठसहित**) । इनके द्वारा ययातिको पुण्यदानका आश्वासन (**आदि० ९२ । १६**) । अष्टक आदि राजाओंके साथ इनका स्वर्गलोकको जाना (**आदि० ९३ । १६ के बाद दा० पाठ**) । देवर्षि नारदद्वारा भविष्यमें इनके स्वर्गसे गिरनेके कारणका वर्णन (**वन० १९८ । ५**) । इनका ययातिको अपना पुण्यफल देना (**उद्योग० १२२ । ६-७**) । पराजित राजाका सारा धन ले जाना (**शान्ति० ९६ । २०**) । महाराज शिबिद्वारा इन्हें खड्गकी प्राप्ति (**शान्ति० १६६ । ८०**) । इनके द्वारा ब्राह्मणको नेत्र-दान (**शान्ति० २३४ । २०**) । इनके द्वारा वीतहव्य-पुत्रोंका वध (**अनु० ३० । ४२-४३**) । वीतहव्यको छोड़ देनेके लिये इनकी भृगुजीसे प्रार्थना (**अनु० ३० । ५०–५२**) । भृगुजीके वचनोंसे संतुष्ट होकर इनका नगरको लौटना (**अनु० ३० । ५४–५६**) । इनका अपने पुत्रको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित करके इस लोकमें अनुपम कीर्ति पाना और परलोकमें अक्षय आनन्द भोगना (**अनु० १३७ । ५**) ।

प्रताप–सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथके रथके पीछे हाथमें ध्वजा लेकर चलता था (**वन० २६५ । १०**) । अर्जुनद्वारा इसका वध (**वन० २७१ । २७**) ।

प्रतिज्ञापर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ७२ से ८४ तक**) ।

प्रतिमत्स्य–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५२**) ।

प्रतिरूप–एक दैत्य, जो कभी समस्त पृथ्वीका शासक था; परंतु कालसे पीड़ित हो इन्हें छोड़कर परलोकवासी हो गया (**शान्ति० २२७ । ५३–५६**) ।

प्रतिविन्ध्य–(**१**) द्रौपदीके गर्भसे युधिष्ठिरद्वारा उत्पन्न (**आदि० ६३ । १२२-१२३; आदि० ९५ । ७५**) । इनका जन्म विश्वेदेवके अंशसे हुआ था (**आदि० ६७ । १२७-१२८**) । इनके नामकी निरुक्ति (**आदि० २२० । ७९–८१**) । प्रथम दिनके संग्राममें शकुनिके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ४५ । ६३–६५**) । अलम्बुषके साथ इनका युद्ध और उससे पराजित होना (**भीष्म० १०० । ३९—४९**) । इनके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । २७**) । अश्वत्थामाके साथ इनका युद्ध (**द्रोण० २५ । २९–३१**) । दुःशासनके साथ इनका युद्ध और पराजित

होना (द्रोण० १६८ । ३४—४३) । राजा चित्रके साथ युद्ध और इनके द्वारा उसका वध (कर्ण० १४ । २०—३३) । रात्रिमें अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उसके द्वारा मारा जाना (सौप्तिक० ८ । ४८—५४) । (महाभारतमें इनके लिये यौधिष्ठिर और यौधिष्ठिरि शब्दका भी प्रयोग हुआ है ।) (२) एक प्रसिद्ध राजा, जो एकचक्र नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । २१-२२) । दिग्विजयके समय अर्जुनने इन्हें परास्त किया था (सभा० २६ । ५) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १३) । ये यमराजकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २४) ।

प्रतिश्रवा—ये परीक्षित्के पुत्र थे, जो महाराज भीमसेनके द्वारा 'कुमारी' के गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके पुत्रका नाम प्रतीप था (आदि० ९५ । ४२–४४) ।

प्रतिष्ठा—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २९) ।

प्रतिष्ठानपुर—प्रयागके भीतरका एक तीर्थ (जिसे आजकल झूसी कहते हैं) । यह प्रजापतिकी वेदीके अन्तर्गत है (वन० ८५ । ७६) । प्रतिष्ठानपुरमें राजा ययातिकी राजधानी थी, जहाँ गालव और गरुड़ गये थे (उद्योग० ११४ । ९) ।

प्रतीच्या—ये महर्षि पुलस्त्यकी पतिव्रता पत्नी थीं (उद्योग० ११७ । १६) ।

प्रतीत—एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३२) ।

प्रतीप—एक कुरुवंशी राजा, जो धृतराष्ट्रके पुत्र थे । आदिपर्व ९४ । ४९—६० के वर्णनके अनुसार कुरुसे इनकी परम्परा इस प्रकार है—कुरु, कुरुके पुत्र अश्ववान् (अविक्षित्), इनके परीक्षित् आदि आठ भाई, इनके कुलमें जनमेजय, जनमेजयसे धृतराष्ट्र और धृतराष्ट्रसे प्रतीप हुए; किंतु आदिपर्व ९५ । ३९—४४ के वर्णनके अनुसार कुरुसे विदूर, विदूरसे अनश्वा, अनश्वासे परीक्षित्, परीक्षित्से भीमसेन, भीमसेनसे प्रतिश्रवा और प्रतिश्रवासे प्रतीपका जन्म हुआ था । इनकी पत्नीका नाम शैब्या-सुनन्दा था; उससे इनके तीन पुत्र हुए देवापि, शान्तनु तथा बाह्लीक (आदि० ९४ । ६१; आदि० ९५ । ४४) । इनके पास मनस्विनी गङ्गा सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे युक्त युवती स्त्रीका रूप धारण करके गयीं और इनके दाहिने ऊरुपर जा बैठीं तथा इनके पूछनेपर उन्होंने इनकी पत्नी बननेकी कामना प्रकट की । तब इन्होंने उनका पुत्रवधूके रूपमें वरण किया (आदि० ९७ । १—१६) । इनका एक दिव्य नारीको पत्नीरूपमें स्वीकार करनेके लिये अपने पुत्र शान्तनुको आदेश देना (आदि० ९७ । २१—२३) । इनका शान्तनुको राज्य देकर वनमें प्रवेश करना (आदि० ९७ । २४) । इनके परलोकवासी होनेकी चर्चा (उद्योग० १४९ । २८) ।

प्रत्यग्रह—ये राजा उपरिचर वसुके द्वितीय पुत्र थे (आदि० ६३ । ३१) ।

प्रत्यङ्ग—एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८) ।

प्रत्यूष—ये धर्मके द्वारा प्रभाताके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनकी गणना वसुओंमें है (आदि०६६ । १७–२०) ।

प्रदाता—एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३२) ।

प्रद्युम्न—ये सनत्कुमारके अंशसे भगवान् श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीके गर्भसे प्रकट हुए थे (आदि०६७ । १५२; सौप्तिक० १२ । ३०–३२) । अर्जुन और सुभद्राके विवाहके उपलक्ष्यमें दहेज लेकर आनेवाले वृष्णिवंशियोंमें ये भी थे (आदि० २२० । ३१) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १६) । शाल्वके पराक्रमसे घबरायी हुई यादवसेनाको इनके द्वारा आश्वासन (वन० १६ । ३०–३२) । इनका शाल्वके साथ घोर युद्ध (वन० १७ अध्याय) । संग्रामभूमिमें इनका मूर्च्छित होना (वन० १७ । २२) । सारथिद्वारा मूर्च्छावस्थामें संग्रामसे हटा ले जानेपर इनका अनुताप और सारथिको उपालम्भ देना (वन० १८ अध्याय) । पुनः शाल्वके साथ युद्ध और उसे मारनेके लिये एक अद्भुत शत्रुनाशक बाणका संधान करना (वन० १९ । १२—१९) । इनके पास नारद और वायुदेवका आकर देवताओंका संदेश सुनाना (वन० १९ । २१—२४) । इनके द्वारा शाल्वकी पराजय (वन० १९ । २६) । इनसे अनिरुद्ध प्रकट हुए थे (भीष्म० ६५ । ७१) । ये महारथी वीर थे (द्रोण० ११० । ५९) । इनके नामकी निरुक्ति (शान्ति० ३३९ । ३७-३८) । ये श्रीकृष्णके तीसरे स्वरूप माने जाते हैं (अनु० १५८ । ३९) । श्रीकृष्णसे ब्राह्मणकी महिमाके विषयमें पूछना (अनु० १५९ । ४—७) । ये युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें हस्तिनापुर आये थे (आश्व० ६६ । ३) । मौसल-युद्धमें इनका भोजोंके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (मौसल० ३ । ३३–३५) । मरणोपरान्त ये सनत्कुमारके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये (स्वर्गा० ५ । १३) ।

प्रद्योत—एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १५) ।

प्रधान—एक प्राचीन राजर्षि, इन्हींके कुलमें सुलभा उत्पन्न हुई थी, जिसके साथ विदेहराज जनकका संवाद हुआ था (शान्ति० ३२० । १८४) ।

प्रबालक–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । १७) ।

प्रबाहु–कौरव-पक्षका एक योद्धा, जिसने अभिमन्युपर बाण-वर्षा की थी (द्रोण० ३७ । २६) ।

प्रभञ्जन–ये मणिपूरनरेश चित्रवाहनके पूर्वज थे, इनके कोई पुत्र नहीं था, अतः इन्होंने उत्तम तपस्या आरम्भ की । उस उग्र तपस्याद्वारा देवाधिदेव महेश्वर संतुष्ट हो गये और उन्होंने राजाको वरदान देते हुए कहा कि तुम्हारे कुलमें एक-एक संतान होती जायगी (आदि० २१४ । १९–२१) ।

प्रभद्रक–पाञ्चालोंका एक क्षत्रिय-दल, जो पाण्डवपक्षमें आया था (उद्योग० ५७ । ३३) । ये प्रायः धृष्टद्युम्न और शिखण्डीका अनुगमन करते थे(भीष्म० १९ । २२; भीष्म० ५६ । १४) । ये अधिकतर शल्यद्वारा मारे गये थे (शल्य० ११ । २४) । रातमें सोते समय अश्वत्थामाद्वारा प्रभद्रकोंका वध हुआ था (सौप्तिक० ८ । ६६) ।

प्रभा–(१) एक देवी, जो ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४१) । (२) अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रजीके स्वागत-समारोहमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५) ।

प्रभाकर–(१) एक कश्यपवंशी प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५) । (२) कुशद्वीपका छठा वर्षखण्ड (भीष्म० १२ । १३) ।

प्रभाता–ये धर्मकी पत्नी थीं और प्रत्यूष तथा प्रभास नामक दो वसु इन्हींके पुत्र थे (आदि० ६६ । १७—२०) ।

प्रभावती–(१) मयदानवके निवासस्थानपर तपस्या करनेवाली एक तपस्विनी, जो सीताजीकी खोजके लिये गये हुए वानरोंसे मिली थी (वन० २८२ । ४१) । (२) ये सूर्यदेवकी पत्नी थीं (उद्योग० ११७ । ८) । (३) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३) । (४) अङ्गराज चित्ररथकी पत्नी, जो देवशर्माकी पत्नी रुचिकी बड़ी बहिन थी (अनु० ४२ । ८) । इसका अपनी बहिन रुचिसे दिव्य पुष्प मँगवा देनेके लिये अनुरोध (अनु० ४२ । १०) ।

प्रभास–(१) ये धर्मके द्वारा प्रभाताके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इनकी गणना वसुओंमें है (आदि० ६६ । १७—२०) । (२) एक प्राचीन तीर्थ (आदि० २१७ । ३) । यह पश्चिम समुद्रतटपर सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) में है, यह देवताओंका तीर्थ है (वन० ८८ । २०) । (इसे सोमतीर्थ भी कहते हैं, सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्गका स्थान यहीं है ।) यहाँ तीर्थ-यात्राके अवसरपर अर्जुनका श्रीकृष्णसे मिलन (आदि० २१७ । ४) । प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णने एक हजार दिव्य वर्षोंतक एक पैरसे खड़े होकर तपस्या की थी (वन० १२ । १५-१६) । यहाँ अग्निदेव निवास करते हैं, इस तीर्थमें स्नान करके संयतचित्त मानव अतिरात्र और अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है (वन० ८२ । ५८—६०) । तीर्थयात्राके समय भाइयोंसहित युधिष्ठिर यहाँ आये थे और इस स्थानपर उन्होंने तपस्या की थी (वन० ११८ । १५—१८) । प्रभास तीर्थ इन्द्रको बहुत प्रिय है, यह पुण्यमय क्षेत्र और पापोंका नाश करनेवाला है (वन० १३० । ७) । इसके प्रभावका विशेषरूपसे वर्णन (शल्य० ३५ । ४१—८२) । यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य विमानपर बैठकर स्वर्गमें जाता है और अप्सराएँ वहाँ स्तुति करती हुई उसे जगाती हैं (अनु० २५ । ९) । यहाँ ही यदुवंशियोंका परस्पर युद्ध करके विनाश हुआ था (मौसल० ३ । १०—४६) । प्रभास तीर्थसे ही बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण परम धाम पधारे थे (मौसल० ४ अध्याय) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९) ।

प्रभु–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

प्रमतक–एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ७) ।

प्रमति (या प्रमिति)–च्यवन ऋषिके पुत्र । इनकी माता-का नाम सुकन्या था (आदि० ५ । ९; आदि० ८ । १) । इनके घृताची अप्सराके गर्भसे रुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (आदि० ८ । २) । इनका रुरुके लिये स्थूलकेश मुनिसे उनकी प्रमद्वरा नामक कन्याको माँगना (आदि० ८ । १५) । इनका रुरुको आस्तीक-पर्वकी कथा सुनाना (आदि० ५८ । ३०-३१) । शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास उनकी मृत्युके समय ये भी पधारे थे (अनु० २६ । ५) । कहीं-कहीं इन्हें वीतहव्यके पुत्र गृत्समदके कुलमें जन्म लेनेवाले वागीन्द्रका पुत्र बताया गया है (अनु० ३० । ५८—६४) ।

प्रमथ–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ११) ।

प्रमथगण–शिवजीके गण, इनके द्वारा धर्माधर्मसम्बन्धी रहस्यका कथन (अनु० १३१ अध्याय) ।

प्रमदावन–राजमहलोंमें रानियोंके विहारके लिये बने हुए उपवन (वन० ५३ । २५) ।

प्रमद्वरा–रुरुकी पत्नी तथा शुनक ऋषिकी माता जो विश्वावसु और मेनकासे उत्पन्न हुई थी । इसकी उत्पत्ति, स्थूल-

केशद्वारा इसके लालन-पालन, नामकरण एवं विवाहकी कथा (आदि० ५ । १०; आदि० ८ । ५-१३) । इसका सर्पसे डँसा जाना (आदि० ८ । १८) । मृत्युको प्राप्त हुई प्रमद्वराका पतिकी आयुसे जीवित होना (आदि० ९ । १५) ।

प्रमाणकोटि–गङ्गाके तटपर स्थित एक तीर्थ, जहाँ प्रमाणकोटि नामसे प्रसिद्ध एक विशाल वट-वृक्ष था । यहीं दुर्योधनने भीमसेनको विष खिलाकर गङ्गाजलमें डाल दिया था (आदि० ६१ । ११; आदि० १२७ । ५४) । यहाँ प्रथम दिन पाण्डवोंका रात्रि-वास (वन० १ । ४१-४२) ।

प्रमाथ–यमराजद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम उन्माथ था (शल्य० ४५ । ३०) ।

प्रमाथी–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । १३) । इसका भीमसेनके साथ युद्ध तथा उनके द्वारा वध (द्रोण० १५७ । १७-१९) । (२) यह दूषण राक्षसका छोटा भाई था (वन० २८६ । २७) । इसका लक्ष्मणके साथ युद्ध करते समय वानर-सेनापति नीलद्वारा मारा जाना (वन० २८७ । २२—२७) । (३) घटोत्कचका साथी एक राक्षस, जिसका दुर्योधनद्वारा वध हुआ था (भीष्म० ९१ । २०-२१) ।

प्रमाथिनी–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारकर नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६३) ।

प्रमुच–दक्षिण दिशामें रहनेवाले एक महर्षि (शान्ति० २०८ । २९) ।

प्रमोद–(१) ऐरावत-कुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ११) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५) ।

प्रम्लोचा–एक प्रमुख अप्सराओंमेंसे एक । वह अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें वहाँ गयी थी (आदि० १२२ । ६५) । यह कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० १० । ११) ।

प्रयाग–गङ्गा और यमुनाके सङ्गमपर स्थित एक विख्यात तीर्थ, वहाँ गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करनेवाला पुरुष दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । ३५) । महर्षियोंद्वारा प्रशंसित प्रयाग-तीर्थमें ब्रह्मा आदि देवता, दिशा, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, लोकसम्मानित पितर, सनत्कुमार आदि महर्षि, अङ्गिरा आदि निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, सूर्य, नदी, समुद्र, गन्धर्व, अप्सरा तथा ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णु निवास करते हैं । वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीचसे गङ्गा बहती हैं । यहाँ यमुना गङ्गाके साथ मिली हैं । गङ्गा-यमुनाका मध्यभाग पृथ्वीका जघन माना गया है । प्रयाग जघनस्थानीय उपस्थ है । प्रतिष्ठानपुर (झूँसी), प्रयाग, कम्बल और अश्वतर नाग तथा भोगवती तीर्थ ब्रह्माजीकी वेदी है । उस तीर्थमें वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं तथा प्रजापतिकी उपासना करते हैं । तपोधन ऋषि, देवता तथा चक्रवर्ती सम्राट् वहाँ यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन करते हैं । इसीलिये तीनों लोकोंमें प्रयागको सब तीर्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ एवं पुण्यतम बताया गया है । इस तीर्थमें जाने अथवा इसका नाम लेनेमात्रसे भी मनुष्य मृत्युकालके भय और पापसे मुक्त हो जाता है (वन० ८५ । ६९—८०) । प्रयागके विश्वविख्यात त्रिवेणी-सङ्गममें स्नान करनेसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है । यह देवताओंद्वारा संस्कार की हुई यज्ञभूमि है । यहाँ दिया हुआ थोड़ा-सा भी दान महान् होता है । प्रयागमें ही साठ करोड़ दस हजार तीर्थोंका निवास है । चारों विद्याओंके ज्ञानसे तथा सत्यभाषणसे जो पुण्य होता है, वह सब गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है । यहाँ वासुकिका भोगवती नामक उत्तम तीर्थ है । जो उसमें स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है । प्रयागमें ही हंसप्रपतन नामक तीर्थ है और वहीं गङ्गाके तटपर दशाश्वमेधिक तीर्थ है । प्रयागमें गङ्गास्नानका महत्त्व सबसे अधिक है (वन० ८५ । ८१—८८) । गङ्गा-यमुनाका पुण्यमय सङ्गम सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है । बड़े-बड़े महर्षि उसका सेवन करते हैं । यहाँ पूर्वकालमें पितामह ब्रह्माजीने यज्ञ किया था । उनके उस प्रकृष्ट यागसे ही इस स्थानका नाम प्रयाग हो गया (वन० ८७ । १८-१९) । पाण्डवोंने देवताओंकी यज्ञभूमि प्रयागमें पहुँचकर यहाँ गङ्गा यमुनाके सङ्गममें स्नान किया और कुछ दिनोंतक वे वहाँ उत्तम तपस्यामें लगे रहे (वन० ९५ । ४-५) । प्रयागराजमें माघमासकी अमावास्याको तीन करोड़ दस हजार तीर्थोंका समागम होता है (अनु० २५ । ३५-३६) ।

प्रयुत–एक देव-गन्धर्व, जो कश्यपद्वारा मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । ४३) ।

प्ररुज–राक्षसों और पिशाचोंका दल (वन० २८५ । १-२) ।

प्रलम्ब–(१) कश्यप और दनुसे उत्पन्न एक प्रसिद्ध दानव (आदि० ६५ । २९) । (२) एक असुर, जिसे श्रीकृष्णके अभिन्नस्वरूप बलरामजीने मारा था (द्रोण० ११ । ५; शल्य० ४७ । १३) ।

प्रवरा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २३) ।

प्रवसु–ये महाराज ईलिनके द्वारा रथन्तरीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इनके चार भाई और थे—दुष्यन्त, शूर, भीम तथा वसु (आदि० ९४ । १७-१८) ।

प्रवह–प्राण, अपान आदि वायुभेदोंमें सातवाँ वायु, जो ऊर्ध्वगामी होता है (शान्ति० ३०१ । २७) । यह धूम और गर्मीसे उत्पन्न हुए बादलोंको इधर-उधर चलाता है और प्रथम मार्गमें प्रवाहित होता है (शान्ति० ३२८ । ३६) ।

प्रवालक–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । १७) ।

प्रवाह–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) ।

प्रवीर–(१) ये पूरुके पुत्र थे । इनकी माताका नाम पौष्टी था । इनके दो भाई और थे—ईश्वर और रौद्राश्व । इनके द्वारा शूरसेनीके गर्भसे मनस्यु नामक पुत्रका जन्म हुआ था (आदि० ९४ । ५-६) । इनका दूसरा नाम जनमेजय था । इन्होंने तीन अश्वमेध यज्ञों और विश्वजित् यज्ञका अनुष्ठान करके वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया था (आदि० ९५ । ११) । (२) एक क्षत्रिय-कुल, जिसमें वृषध्वज नामका कुलाङ्गार राजा उत्पन्न हुआ था (उद्योग० ७४ । १६) ।

प्रवेणी–इस नदीके उत्तर तटपर कण्व मुनिका आश्रम है, जहाँ माठरका विजयस्तम्भ है (वन० ८८ । ११) ।

प्रवेपन–तक्षक-कुलका एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जलकर भस्म हो गया (आदि० ५७ । ९) ।

प्रशमी–अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागत समारोहमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५) ।

प्रशस्ता–एक समुद्रगामिनी पुण्यमयी नदी, जहाँ तीर्थ-यात्राके समय भाइयोंसहित युधिष्ठिर गये थे और वहाँ उन्होंने स्नान, तर्पण, दान आदि किया था (वन० ११८ । २–३) ।

प्रशान्तात्मा–सूर्यदेवका एक नाम (वन० ३ । २७) ।

प्रसन्धि–ये वैवस्वत मनुके पुत्र थे । इनके पुत्रका नाम क्षुप था (आश्व० ४ । २) ।

प्रसुह्म–एक प्राचीन देश, जिसे भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १६) ।

प्रसृत–एक दैत्य, जिसका गरुडद्वारा वध हुआ था (उद्योग० १०५ । १२) ।

प्रसेन–यह कर्णका पुत्र था । सात्यकिद्वारा इसका वध हुआ था (कर्ण० ८२ । ६) ।

प्रसेनजित्–(१) एक राजा, जो महाभौमकी पत्नी सुयज्ञाके पिता थे । इन्होंने एक लाख सवत्सा गौओंका दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया था (आदि० ९५ । २०; शान्ति० २३४ । ३६) । ये यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१) । (२) एक राजा, जो रेणुकाके पिता थे । इनके द्वारा जमदग्निको अपनी पुत्री रेणुकाका दान (वन० ११६ । २) । (किसी-किसीके मतमें सुयज्ञाके पिता और रेणुकाके पिता एक ही हैं) । (३) एक यादव, जो सत्राजित्के भाई थे । ये दोनों भाई जुड़वें पैदा हुए थे और कुबेरोपम सद्गुणोंसे सम्पन्न थे । इनके पास जो स्यमन्तकमणि थी, वह प्रतिदिन प्रचुर सुवर्णराशि झरती रहती थी (सभा० १४ । ६० के बाद दा० पाठ) ।

प्रस्थल–एक अत्यन्त निन्दित देश, जिसका वर्णन कर्णने शल्यके प्रति किया था (कर्ण० ४४ । ४७) ।

प्रस्थला–सुशर्माकी राजधानी (भीष्म० ११३ । ५२) ।

प्रहस्त–रावणके परिवारका एक राक्षस, जिसने विभीषणके साथ युद्ध किया था (वन० २८५ । १४) । विभीषण-द्वारा इसका वध (वन० २८६ । ४) ।

प्रहास–(१) धृतराष्ट्र-वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें स्वाहा हो गया (आदि० ५७ । १६) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८) ।

प्रह्लाद–(१) हिरण्यकशिपुका प्रथम पुत्र । इनकी माताका नाम कयाधु था । इनके तीन पुत्र थे—विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ (आदि० ६५ । १७–१९) । ये वरुणसभामें रहकर वरुणकी उपासना करते हैं (सभा० ९ । १२) । ब्रह्माजीकी सभामें भी उनकी सेवाके लिये उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । १९) । विदुरका इनका दृष्टान्त प्रस्तुत करना (सभा० [illegible] ६६) । इनके द्वारा बलिके प्रति तेज और [illegible]-अवसरका वर्णन (वन० २८ । ६–३३) । विरो[illegible] और सुधन्वाके संवादमें इनका निर्णय (उद्योग० ६५ । ३५-३६) । ब्राह्मण-वेषमें शिष्यरूपसे प्रार्थना करनेपर इनके द्वारा इन्द्रको शीलका दान (शान्ति० १२४ । २८—६२) । उशनाने इन्हें दो गाथाएँ सुनायीं (शान्ति० १३९ । ७०–७२) । इनका एक अवधूतसे आजगर-वृत्तिकी प्रशंसा सुनना (शान्ति० १७९ अध्याय) । इनका इन्द्रके साथ संवाद (शान्ति० २२२ । ९–३५) । ये पृथ्वीके प्रधान शासकोंमेंसे एक हैं (शान्ति० २२७ । ५०) । स्कन्दकी गाड़ी हुई शक्तिके उखाड़नेमें इनका असफल होना (शान्ति० ३२७ । १८-१९) ।

महाभारतमें आये हुए प्रह्लादके नाम—असुराधिप,

असुरेन्द्र, दैतेय, दैत्य, दैत्यपति, दैत्येन्द्र, दानव आदि। (२) बाह्लीकवंशीय एक क्षत्रिय राजा, जो शलभ नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३०-३१) । (३) एक नाग, जो वरुणसभामें उपस्थित हो वरुणकी उपासना करता है (सभा० ९ । १०) । (४) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४६) ।

प्राकृत–एक यज्ञ, जो बारह दिनोंमें सम्पन्न होता है (वन० १३४ । १९) ।

प्राक्कोसल–पूर्वकोसल देश, जो दक्षिण भारतमें पड़ता है। इसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । १३) ।

प्राग्ज्योतिषपुर–एक प्राचीन नगर, जो भौमासुर (नरकासुर)की राजधानी था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०७) । भौमासुरके बाद यहाँके प्रधान राजा भगदत्त हुए थे (सभा० २६ । ७-८) । यह असुरोंका एक अजेय दुर्ग था । पूर्वकालमें यहीं नरकासुर निवास करता था (उद्योग० ४८ । ८०) । भगदत्तके बाद यहाँके राजा वज्रदत्त हुए (आश्व० ७५ । १) ।

प्राङ्नदी–यहाँ जानेसे द्विज कृतार्थ हो इन्द्रलोकमें जाता है (वन० ८४ । १५९) ।

प्राचिन्वान्–महाराज पूरुके पौत्र एवं जनमेजयके पुत्र । इनकी माताका नाम अनन्ता था । इन्होंने उदयाचलसे लेकर सारी प्राची दिशाको एक ही दिनमें जीत लिया था, इसीलिये इनका नाम प्राचिन्वान् हुआ । इनके द्वारा अश्मकीके गर्भसे संयातिका जन्म हुआ (आदि० ९५ । १२-१३) ।

प्राचीनबर्हि–अत्रि-कुलमें उत्पन्न एक ऐश्वर्यशाली नरेश, जो दस प्रचेताओंके पिता थे (शान्ति० २०८ । ६) । ये मनुवंशी हविर्धामाके पुत्र थे । इनसे दस प्रचेता हुए (अनु० १४७ । २४-२५) ।

प्राचेतस–दक्षप्रजापति, दस प्रचेताओंद्वारा वार्क्षी या मारिषाके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ७५ । ५) । (देखिये दक्ष) ।

प्राच्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५८) ।

प्राजापत्य–एक प्रकारका विवाह । वर और कन्या दोनों साथ रहकर धर्माचरण करें, इस बुद्धिसे कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह माना गया है (आदि० ७३ । ८) ।

प्राण–सोम नामक वसुके द्वारा मनोहराके गर्भसे उत्पन्न । ये वर्चाके छोटे भाई थे । इनके दो भाई और थे— शिशिर एवं रमण (आदि० ६६ । २१) ।

प्राणक–प्राण नामक अग्निके पुत्र (वन० २२० । १) ।

प्रातर–कौरव्य-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (आदि० ५७ । १३) ।

प्रातिकामी–दुर्योधनका सारथि (सभा० ६७ । २-३) । इसका द्रौपदीको कौरव-सभामें बुलानेके लिये जाना (सभा० ६७ । ४) । द्रौपदीके साथ इसका संवाद और उनकी कही हुई बातको सभामें आकर कहना (सभा० ६७ । ४-१७) । इसके मारे जानेकी चर्चा (शल्य० ३३ । ४९) ।

प्राधा–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री, एवं कश्यपकी पत्नी । अनवद्या आदि आठ कन्याएँ और दस देवगन्धर्व भी इन्हींकी संतानें हैं । ये हाहा, हूहू, तुम्बुरु और अतिबाहु नामक चार श्रेष्ठ गन्धर्वों तथा अलम्बुषा आदि तेरह कन्याओं–अप्सराओंकी जननी हैं (आदि० ६५ । १२, ४५-५१) ।

प्राप्ति–(१) धर्मपुत्र शमकी भार्या (आदि० ६६ । ३३) । (२) जरासंधकी पुत्री । कंसकी पत्नी और सहदेवकी छोटी बहिन । इसकी दूसरी बहिनका नाम अस्ति था, वह भी कंसकी ही पत्नी थी (सभा० १४ । ३०-३१) ।

प्रावरक (प्रावार)–क्रौञ्चद्वीपका एक देश (भीष्म० १२ । २२) ।

प्रावारकर्ण–हिमालयनिवासी चिरंजीवी एक उलूक (वन० १९९ । ४) ।

प्रावृषेय–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५०) ।

प्रियक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५) ।

प्रियदर्शन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५९) ।

प्रियभृत्य–एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३६) ।

प्रियमाल्यानुलेपन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०) ।

प्रेक्षागृह–उत्सव या नाटक आदिको सुविधापूर्वक देखनेके लिये बनाया गया भवन । राजकुमारोंके अस्त्रकौशलके प्रदर्शनके समय इसे द्रोणाचार्यने शिल्पियोंद्वारा बनवाया था (आदि० १३३ । ११) । इस दिव्यभवनमें गान्धारी, कुन्ती आदि राजरानियोंका अस्त्रकौशल देखनेके लिये आगमन (आदि० १३३ । १५) । वहाँ राजकुमारोंका अस्त्र-कौशल-प्रदर्शन (आदि० अध्याय १३३ से १३५ तक) ।

प्रोषक–एक पश्चिम भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६९) ।

प्रोष्ठ–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

प्लक्षजाता–प्लक्ष (पाकर) की जड़से प्रकट हुई सरस्वती । गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक । इनका जल पीनेसे मनुष्यके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१) ।

प्लक्षप्रस्रवणतीर्थ—एक तीर्थ, यहींसे सरस्वती नदी प्रकट हुई है (शल्य० ५४ । ११)।

प्लक्षवती-एक नदी, जो सायं-प्रातः कीर्तन करने योग्य है (अनु० १६५ । २५)।

प्लक्षावतरण—यमुनाके उद्गमसे सम्बन्ध रखनेवाला एक पुण्यतीर्थ, जो स्वर्गका द्वार है (वन० ९० । ४; वन० १२९ । १३)।

(फ)

फलकक्ष—एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १६)।

फलकीवन—एक तीर्थ, जहाँ देवतालोग सदा निवास करते हैं और अनेक सहस्र वर्षोंतक भारी तपस्यामें लगे रहते हैं (वन० ८३ । ८६-८७)।

फलोदक—एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १६)।

फल्गु—एक नदी और तीर्थ, यहाँ जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त होती है । यहाँ पितरोंके लिये दिया हुआ अन्न अक्षय होता है (वन० ८४ । ९८; वन० ८७ । १२)।

फाल्गुन—(१) अर्जुनका एक नाम । हिमालयके शिखर-पर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें अर्जुनका जन्म हुआ था; इस-लिये इनका एक नाम फाल्गुन भी है (विराट० ४४ । ९, १६)। (२) बारह मासोंमें एक मास । (जिस मासकी पूर्णिमाको पूर्वाफाल्गुनी अथवा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रका योग हो, उसे फाल्गुन मास कहते हैं, जो माघ मासके बाद और चैत्र मासके पूर्व आता है ।) जो फाल्गुन मासको एक समय भोजन करके व्यतीत करता है, वह अपनी स्त्रीको प्रिय होता है और वह उसके अधीन रहती है (अनु० १०६ । २२)। इस मासकी द्वादशी तिथिको उपवासपूर्वक गोविन्दनामसे भगवान्‌की पूजा करनेवाला पुरुष अतिरात्र यज्ञका फल पाता है और मृत्युके पश्चात् सोमलोकमें जाता है (अनु० १०९ । ६)।

(ब)

बदरिका (या बदरी)—सुप्रसिद्ध बदरिकाश्रमतीर्थ, जहाँ पूर्वकालमें नर-नारायणने अनेक बार दस-दस हजार वर्षोंतक तपस्या की थी (वन० ४० । १) । इस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य दीर्घायु पाता और स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८५ । १३)। पाण्डवोंने यहाँकी यात्रा की थी । यहाँ नर-नारायणका आश्रम और 'अलकनन्दा' नामक भागीरथीकी धारा है । यहाँकी प्राकृतिक सुषमाका वर्णन (वन० १४५ अध्याय)।

बदरीपाचन (या बदरपाचन) तीर्थ—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, यहाँ तीन रात उपवास करके बेरका फल खाकर बारह वर्षोंतक रहनेपर मनुष्य वसिष्ठके समान हो जाता है (वन० ८३ । १७९-१८१)।

बदरीवन—एक पुण्यतीर्थ, जिसके निकट विशालापुरी है । यह सब मिलकर बदरिकाश्रम तीर्थ है (वन० ९० । २५)। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन (वन० १४५ । १३-२४)।

बधिर—कश्यपवंशी एक नाग (उद्योग० ७४ । १६)।

बन्धुदायाद—कुटुम्बी होनेसे उत्तराधिकारी पुत्र (आदि० ११९ । ३२-३३)। छः प्रकारके पुत्र बन्धुदायाद कह-लाते हैं; जिनके नाम इस प्रकार है—१. 'स्वयंजात' (जो अपनी विवाहिता पत्नीके गर्भसे अपने ही द्वारा उत्पन्न हो)। २. 'प्रणीत' (जो अपनी पत्नीके गर्भसे किसी उत्तम पुरुषके अनुग्रहसे उत्पन्न हो)। ३. 'पुत्रिकापुत्र' (जो अपनी पुत्रीका पुत्र हो)। ४. 'पौनर्भव' (जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो)। ५. 'कानीन' (विवाहसे पहले ही जिस कन्याको इस शर्तके साथ दिया जाता है कि इसके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र मेरा ही पुत्र समझा जायगा, उस कन्यासे उत्पन्न)। ६. भानजा (बहिनका पुत्र)।

बभ्रु—(१) एक वृष्णिवंशी यादव, जो रैवतक पर्वतके महोत्सवमें सम्मिलित थे (आदि० २१८ । १०)। यदु-वंशियोंके सात प्रधान महारथियोंमें एक ये भी थे। (सभा० १४ । ६० के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। द्वारका जाते समय इन तपस्वी बभ्रुकी पत्नीको शिशुपालने हर लिया था (सभा० ४५ । १०)। इन्होंने भी श्रीकृष्णके पास ही बने हुए पेय पदार्थको पीया था (मौसल० ३ । १६-१७)। व्याधके बाणसे लगे हुए एक मूसलसे इनकी मृत्यु हुई थी (मौसल० ४ । ५-६)। शान्तिपर्वके ८१ । १७ में अक्रूरके लिये भी बभ्रु शब्दका प्रयोग आया है। (२) श्रीकृष्णके कृपापात्र काशीके नरेश । ये श्रीकृष्णकी कृपासे राज्यलक्ष्मीको प्राप्त हुए थे (उद्योग० २८ । १३)। (३) ये मत्स्यनरेश विराटके एक वीर पुत्र थे (उद्योग० ५७ । ३३)। (४) महर्षि विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रों-मेंसे एक (अनु० ४ । ५०)।

बभ्रुमाली—एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ४ । १६)।

बभ्रुवाहन—राजा चित्रवाहनकी पुत्री चित्राङ्गदाके गर्भसे अर्जुनद्वारा उत्पन्न एक वीर राजा (आदि० २१६ । २४)। चित्रवाहनने अर्जुनको अपनी कन्या देनेसे पहले ही यह शर्त रख दी थी कि 'इसके गर्भसे जो एक पुत्र हो,

वह यहीं रहकर इस कुलपरम्पराका प्रवर्तक हो। इस कन्याके विवाहका यही शुल्क आपको देना होगा।' 'तथास्तु' कहकर अर्जुनने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की। पुत्रका जन्म हो जानेपर उसका नाम 'बभ्रुवाहन' रखा गया। उसे देखकर अर्जुनने राजा चित्रवाहनसे कहा—'महाराज! इस बभ्रुवाहनको आप चित्राङ्गदाके शुल्करूपमें ग्रहण कीजिये। इससे मैं आपके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा।' इसके अनुसार ये धर्मतः चित्रवाहनके पुत्र माने गये (आदि० २१४। २४—२६; आदि० २१६। २४-२५)। अपने पिता अर्जुनको मणिपूरके समीप आया जान इनका बहुत-सा धन साथमें लेकर उनके दर्शनके लिये नगरके बाहर निकलना (आश्व० ७९। १)। क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध न करनेके कारण अर्जुनका इन्हें धिक्कारना (आश्व० ७९। ३—७)। उलूपीके प्रोत्साहन देनेपर इनका अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये उद्यत होना और अश्वमेधसम्बन्धी अश्वको पकड़वा लेना (आश्व० ७९। ८—१७)। पिता और पुत्रमें परस्पर अद्भुत युद्ध और बभ्रुवाहनका अर्जुनको मूर्छित करके स्वयं भी मूर्छित होना (आश्व०७९। १८—३७)। मूर्छासे जगनेपर बभ्रुवाहनका विलाप और आमरण अनशनके लिये प्रतिज्ञा करके बैठना (आश्व० ८०। २१—४०)। उलूपीका बभ्रुवाहनको सान्त्वना देकर उनके हाथमें दिव्यमणि प्रदान करना और उसे पिताके वक्षःस्थलपर रखनेके लिये आदेश देना (आश्व० ८०। ४२—५०)। मणिके स्पर्शसे जीवित हुए पिताको बभ्रुवाहनका प्रणाम करना और पिताका पुत्रको गलेसे लगाना (आश्व० ८०। ५१—५६)। अर्जुनका बभ्रुवाहनसे युद्धस्थलमें उलूपी और चित्राङ्गदाके उपस्थित होनेका कारण पूछना और बभ्रुवाहनका उलूपीसे ही पूछनेकी प्रार्थना करना (आश्व० ८०। ५७—६१)। उलूपीसे सब समाचार सुनकर प्रसन्न हुए अर्जुनका बभ्रुवाहनको अपनी दोनों माताओंके साथ युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें आनेके लिये निमन्त्रण देना (आश्व० ८१। १—२४)। पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके बभ्रुवाहनका पितासे नगरमें चलनेके लिये अनुरोध करना और अर्जुनका 'कहीं भी ठहरनेका नियम नहीं है' ऐसा कहकर पुत्रसे सत्कारपूर्वक विदा ले वहाँसे प्रस्थान करना (आश्व० ८१। २६—३२)। अर्जुनका संदेश सुनाते हुए श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे राजा बभ्रुवाहनके भावी आगमनकी चर्चा करना (आश्व० ८६। १८—२०)। माताओंसहित बभ्रुवाहनका कुरुदेशमें आगमन और गुरुजनोंको प्रणाम करके उनका कुन्तीके भवनमें प्रवेश (आश्व० ८७। २६—२८)। माताओंसहित बभ्रुवाहनका कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदिके चरणोंमें प्रणाम करना और उन सबके द्वारा रत्न-आभूषण आदिसे सम्मानित होना (आश्व० ८८। १—५)। अन्तःपुरसे आकर बभ्रुवाहनका राजा धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करना और उन सबके द्वारा धन आदिसे सत्कृत होना। श्रीकृष्णका बभ्रुवाहनको दिव्य अश्वोंसे जुता हुआ सुवर्णमय रथ प्रदान करना (आश्व० ८८। ६—११)। राजा युधिष्ठिरका बभ्रुवाहनको बहुत धन देकर विदा करना (आश्व० ८९। ३४)।

महाभारतमें आये हुए बभ्रुवाहनके नाम-बभ्रुवाह, चित्राङ्गदासुत, चित्राङ्गदात्मज, धनंजयसुत, मणिपूरपति, मणिपूरेश्वर आदि।

बर्बर—एक प्राचीन देश तथा वहाँके निवासी। इनकी गणना उन म्लेच्छ जातियोंमें है, जिनकी उत्पत्ति नन्दिनीके पार्श्वभागसे हुई है (आदि० १७४। ३७)। ये भीमसेनद्वारा पूर्व दिग्विजयके समय जीते गये थे (सभा० ३०। १४)। नकुलने भी पश्चिमदिग्विजयके समय इन्हें जीतकर भेंट वसूल किया था (सभा० ३२। १७)। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१। २३)।

बर्हि—एक देवगन्धर्व। कश्यपके द्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न दस देवगन्धर्वोंमेंसे एक (आदि० ६५। ४६)।

बर्हिषद्—(१) पितरोंका एक दल, जो यमकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८। ३०)। ये मृत व्यक्तिके लिये मन्त्रपाठकी अनुमति प्रदान करते हैं (शान्ति० २६९। १५)। (२) त्रिलोकीको उत्पन्न करनेमें समर्थ पूर्व दिशानिवासी सप्तर्षियोंमें एक ये भी हैं (शान्ति० २०८। २७-२८)। ब्रह्माजीने इन्हें सात्वतधर्मका उपदेश दिया था और इन्होंने ज्येष्ठ नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मणको इस धर्मका उपदेश दिया (शान्ति० ३४८। ४५-४६)।

बल—(१) कश्यपके द्वारा दनायुके गर्भसे उत्पन्न एक असुर। इसके तीन भाई और थे, जिनके नाम हैं—विक्षर, वीर और वृत्र (आदि० ६५। ३३)। यही पाण्ड्यदेशके राजाके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ४२)। इन्द्रद्वारा इसके पराजित होनेकी चर्चा (वन० १६८। ८१)। (२) वरुणके वीर्यसे उनकी ज्येष्ठ पत्नी देवीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६६। ५२)। (३) इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्द्वारा मण्डूकराजकी कन्या सुशोभनाके गर्भसे उत्पन्न। इनके दो भाई और थे—शल और दल (वन० १९२। ३८)। (४) एक वानर, जो कुम्भकर्णके साथ युद्धमें उसका ग्रास बन गया था (वन० २८७। ६)। (५) वायुद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक। दूसरे-

का नाम अतिबल था (शल्य० ४५ । ४४)। (६) एक प्राचीन ऋषि, जो अङ्गिराके पुत्र हैं और पूर्वदिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । २७-२८)। (७) एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०)।

बलद–ये भानु नामक अग्निके प्रथम पुत्र हैं और प्राणियोंको प्राण एवं बल प्रदान करते हैं (शान्ति० २२१ । १०)।

बलदेव (बलराम)–(१) वसुदेव तथा रोहिणीके पुत्र। भगवान् श्रीकृष्णके अग्रज और शेषके अवतार (आदि० ६७ । १५२)। भगवान् नारायणके श्वेत केशसे इनका आविर्भाव हुआ (आदि० १९६ । ३३)। इनके द्वारा भीमको गदायुद्धकी शिक्षा (आदि० १३८ । ४)। द्रौपदीके स्वयंवरमें श्रीकृष्णसहित इनका आगमन (आदि० १८५ । १७)। द्रौपदीस्वयंवरमें इनका भीम और अर्जुनके विषयमें श्रीकृष्णसे वार्तालाप (आदि० १८८ । २४)। पाण्डवोंसे मिलनेके लिये श्रीकृष्णसहित कुम्भकारके घर जाना (आदि० १९० । १–८)। सुभद्राहरणके समय अर्जुनपर इनका कोप (आदि० २१९ । २५—३१)। श्रीकृष्णका इनको शान्त करना (आदि० २२० । १–११)। ये देवकीके गर्भमें थे, परंतु राजा यमने याम्य मायाद्वारा इन्हें रोहिणीके गर्भमें डाल दिया। इस सङ्कर्षणकर्मके कारण इनका 'सङ्कर्षण' और बलकी अधिकता होनेसे 'बलदेव' नाम भी हुआ (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१)। इनके द्वारा धेनुकासुरका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८००)। मुष्टिकका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०१)। सान्दीपनिमुनिके आश्रममें इनका अध्ययन (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०२)। प्रभासक्षेत्रमें इनके पाण्डवोंके प्रति सहानुभूतिसूचक दुःखपूर्ण उद्गार (वन० ११९ । ५—२२)। उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें जाना (विराट० ७२ । २१)। कौरव-पाण्डवोंमें संधिकी कामना रखते हुए इनके द्वारा दूत भेजनेके प्रस्तावका समर्थन (उद्योग० २ अध्याय)। दुर्योधनके सहायता माँगनेपर इनका उसकी तथा अर्जुनकी भी सहायता करनेसे इनकार करना (उद्योग० ७ । २९)। कुरुक्षेत्रके मैदानमें पाण्डवोंके शिविरमें आना (उद्योग० १५७ । १७)। इनका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान करना (उद्योग० १५७ । ३५)। दुर्योधन और भीमसेनके गदायुद्धके प्रारम्भमें इनका आगमन और वहाँ उपस्थित नरेशोंद्वारा सत्कार (शल्य० ३४ अध्याय)। इनकी तीर्थयात्राका वर्णन (शल्य० अध्याय ३५ से ५४ तक)। इनका नारदजीसे कौरवोंके विनाशके विषयमें पूछना (शल्य० ५४ । २४-२५)। भीमसेन और दुर्योधनके गदायुद्धके लिये सबको समन्तपञ्चकमें ले (जाना शल्य० ५५ । ६—१०)। अन्यायसे दुर्योधनके मारे जानेपर इनका कुपित होकर भीमसेनको मारनेके लिये उद्यत होना (शल्य० ६० । ४—१०)। भीमसेनके इस कर्मकी निन्दा करके द्वारकाको प्रस्थान करना (शल्य० ६० । २७—३०)। इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (शल्य० १२६ । १७—१९)। शिवजीद्वारा इनके रूपमें भगवान् अनन्तके भावी अवतार तथा महिमाका कथन (अनु० १४७ । ५४—६०)। इनके द्वारा अभिमन्युका श्राद्ध (आश्व० ६२ । ६)। युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें इनका हस्तिनापुर आना (आश्व० ६६ । ४)। इनके आदेशसे द्वारकापुरीमें मद्यपान निषेधकी आज्ञा जारी होना (मौसल० १ । २९)। समाधि लगाकर बैठे हुए बलरामजीके मुखसे निकलते हुए विशालकाय श्वेत सर्पका श्रीकृष्णद्वारा दर्शन तथा इनके स्वागतके लिये अनेकानेक नागों और सरिताओंका आगमन (मौसल० ४ । १३—१७)। (२) एक महाबली नाग (अनु० १३२ । ८)।

बलन्धरा–ये काशिराजकी कन्या थीं। इनके विवाहका शुल्क बल ही रक्खा गया था अर्थात् यह शर्त थी कि जो अधिक बलवान् हो, वही इनके साथ विवाह कर सकता है। पाण्डुपुत्र भीमसेनने इनके साथ विवाह करके सर्वग नामक पुत्र उत्पन्न किया (आश्व० ९५ । ७७)।

बलबन्धु–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३७)।

बलाक–एक व्याध। इसने एक हिंसक जन्तुको, जिसने समस्त प्राणियोंका अन्त कर देनेके लिये वर प्राप्त किया था और इसी कारण ब्रह्माने उसे अंधा कर दिया था, मार डाला। उस समय इस व्याधके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि हुई और यह विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको चला गया (कर्ण० ६९ । ३९—४५)।

बलाका तीर्थ–गन्धमादनपर्वतके निकटका एक तीर्थ। वहाँ तर्पण करनेवाला पुरुष देवताओंमें कीर्ति पाता है और अपने यशसे प्रकाशित होता है (अनु० २५ । १९)।

बलाकाश्व–ये जह्नुके पौत्र तथा अज (सिन्धुद्वीप) के पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम कुशिक था (शान्ति० ४९ । ३; अनु० ४ । ४)।

बलाकी–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ७) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २) ।

बलाक्ष–एक प्राचीन नरेश, जो विराटके गोग्रहणके समय अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रके विमानपर बैठकर आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) ।

बलानीक–(१) यह द्रुपदका पुत्र था । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध हुआ था (द्रोण० १५६ । १८१) । (२) ये मत्स्यनरेश विराटके भाई थे और पाण्डवपक्षकी ओरसे लड़ने आये थे (द्रोण० १५८ । ४२) ।

बलाहक–(१) एक नाग, जो वरुणसभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । ९) । (२) सिन्धुराज जयद्रथका एक भाई, जो द्रौपदीहरणके समय जयद्रथके साथ आया था (वन० २६५ । १२) । (३) भगवान् श्रीकृष्णके रथका एक अश्व, जो दाहिने पार्श्वमें जोता जाता था (विराट० ४५ । २३; द्रोण० १४७ । ४७) ।

बलि–(१) ये प्रह्लादजीके पौत्र एवं विरोचनके पुत्र थे । इनके पुत्रका नाम बाण था (आदि० ६५ । २०) । इन्द्रलोकपर इनका आक्रमण और विजय प्राप्त करना (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७८९) । इनके द्वारा वामन भगवान्‌को तीन पग भूमि देनेका संकल्प, भगवान् वामनद्वारा इनका बन्धन । इनको पाताललोकमें रहनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९०) । ये वरुणकी सभामें विराजते हैं (सभा० ९ । १२) । इनका प्रह्लादसे क्षमा और तेजविषयक प्रश्न करना (वन० २८ । ३-४) । बलि और वामनसम्बन्धी कथाका संक्षिप्त वर्णन (वन० २७२ । ६३–६९) । विरोचनकुमार बलि बाल्यकालसे ही ब्राह्मणोंपर दोषारोपण करते थे, जिससे राज्यलक्ष्मीने उनका त्याग कर दिया (शान्ति० ९० । २४) । इन्द्रके आक्षेपयुक्त वचनोंका कठोर उत्तर देना (शान्ति० २२३ अध्याय) । कालकी प्रबलता बताते हुए इन्द्रको इनकी फटकार (शान्ति० २२४ अध्याय) । लक्ष्मीसे परित्यक्त होनेपर इन्द्रको चेतावनी देना (शान्ति० २२५ । ३०–३२) । शोक न करनेके विषयमें इन्द्रद्वारा किये गये प्रश्नोंका उत्तर देना (शान्ति० २२७ । २१—८८) । विरोचनकुमार बलिको देवताओंने धर्मपाशमें बाँधकर भगवान् विष्णुके पुरुषार्थसे पातालवासी बना दिया (अनु० ६ । ३५) । जो दोषदृष्टि रखते हुए तथा श्रद्धारहित होकर दान दिया जाता है, उस सारे दानको ब्रह्माजीने असुरराज बलिका भाग निश्चित किया है (अनु० ९० । २०) । पुष्प, धूप और दीपदानके विषयमें शुक्राचार्यसे इनका प्रश्न करना (अनु० ९८ । १५) । (२) एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १०) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें इनकी श्रीकृष्णसे भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

बलिवाक–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १४) ।

बलीह–एक क्षत्रियकुल, जिसमें अर्कज नामक कुलाङ्गार राजा उत्पन्न हुआ था (उद्योग० ७४ । १४) ।

बलोत्कटा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

बल्लव–(१) अज्ञातवासके समय पाण्डुपुत्र भीमसेनका सांकेतिक नाम (विराट० २ । १; विराट० ८–७) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६२) ।

बहिर्गिरि–एक पर्वतीय प्रदेश, जिसे उत्तर-दिग्विजयके समय अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । ३) । इसकी गणना भारतीय जनपदोंमें है (भीष्म० ९ । ५०) ।

बहुदामा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १०) ।

बहुपुत्रिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३) ।

बहुमूलक–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १६) ।

बहुयोजना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ९) ।

बहुरूप–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । १९) ।

बहुल–तालजङ्घ-वंशका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १३) ।

बहुला–(१) एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २७) । (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३) ।

बहुवाद्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५५) ।

बहुाशी–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०२; आदि० ११६ । ११) । यह भीमसेनद्वारा मारा गया था (भीष्म० २८ । २९) ।

बाण–(१) यह असुरराज बलिका विख्यात पुत्र है तथा इसे लोग भगवान् शिवके पार्षद महाकालके नामसे जानते हैं (आदि० ६५ । २०-२१) । इसकी राजधानीका नाम शोणितपुर था । इसने शिवजीकी तीव्र आराधना करके उनसे वरदान प्राप्त किया, जिससे यह देवताओंको सदा

आतङ्कित किये रहता था। इसकी उन्नतिके लिये शुक्राचार्य बराबर प्रयास करते रहते थे (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२१)। इसने अनिरुद्धको कैद कर लिया था। नारदजीद्वारा अनिरुद्धके कैद होनेका समाचार पाकर बलराम तथा प्रद्युम्नसहित श्रीकृष्णने शोणितपुरपर आक्रमण किया। यहाँ शिव, कार्तिकेय, अग्नि आदि देवता इसकी राजधानीकी रक्षा कर रहे थे (सभा० ३८ । २० के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२२)। तब बाणासुरके लिये भगवान् महेश्वरने श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया। तदनन्तर शिवजीको परास्त करके श्रीकृष्ण बाणासुरके समीप पहुँचे और उसके साथ युद्ध आरम्भ किया। भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्धमें चक्रद्वारा इसकी भुजाएँ काट डाली गयीं और यह धरतीपर गिर पड़ा (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२३)। बाणासुर क्रौञ्चपर्वतका आश्रय लेकर देवसमूहोंको कष्ट पहुँचाया करता था। यह देखकर महासेन (स्कन्द) ने इसपर आक्रमण किया और यह भागकर क्रौञ्चपर्वतमें जाकर छिप गया। इसीके कारण स्कन्दने क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण किया था (शल्य० ४६ । ८२–८४)। (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

बातुलि विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५३)।

बाभ्रव्य–एक गोत्रका नाम, गालवमुनि इसी गोत्रमें उत्पन्न हुए थे (शान्ति० ३४२ । १०३)।

बार्हस्पत्य–बृहस्पतिद्वारा संक्षिप्त किया हुआ ब्रह्माजीका नीतिशास्त्र, जो बार्हस्पत्य कहलाता है और इसमें तीन हजार अध्याय हैं (शान्ति० ५९ । ८४)।

बालग्रह–बालकोंका नाश करनेवाला एक ग्रह (शान्ति० १५३ । ३)।

बालधि–एक प्राचीन शक्तिशाली ऋषि, पुत्रप्राप्तिके लिये इन्होंने घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर देवताओंने इन्हें पुत्रोत्पत्तिके लिये वरदान दिया (वन० १३५ । ४५–४७)। वरदानके फलस्वरूप इन्हें मेधावी नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई (वन० १३५ । ४९)। मेधावीने महर्षि धनुषाक्षका अपमान किया, जिससे उन्होंने इसका विनाश कर दिया (वन० १३५ । ५०–५३)। पुत्रके मरनेपर बालधि मुनिका विलाप (वन० १३५ । ५३-५४)।

बालस्वामी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४)।

बाष्कल–यह दितिपुत्र हिरण्यकशिपुका पुत्र था। इसके चार भाई और थे—प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद और शिबि (आदि० ६५ । १७-१८)। यही भगदत्तके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ९)।

बाहु–(१) एक शक्तिशाली राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । २२)। (२) सुन्दरवंशमें उत्पन्न एक कुलनाशक राजा (उद्योग० ७४ । १५)। (३) एक प्राचीन नरेश, जो महाराज सगरके पिता थे (शान्ति० ५७ । ८)। ये प्राचीनकालमें पृथ्वीके शासक थे; परंतु कालसे पीडित हो इसे छोड़कर परलोकवासी हो गये (शान्ति० २२७ । ५१)।

बाहुक–(१) कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें भस्म हो गया था (आदि० ५७ । १३)। (२) राजा नलका एक नाम, —— कि सूत-अवस्थामें वे अयोध्यानरेश ऋतुपर्णके यहाँ थे (वन० ६६ । २०)। (विशेष देखिये- —नल)। (३) एक वृष्णिवंशी वीर, जिसका पराक्रम प्रकट करनेके लिये श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंके सामने सात्यकिने चर्चा की है (वन० १२० । १९)।

बाहुदन्तक–पुरन्दरद्वारा संक्षिप्त किया हुआ ब्रह्माका नीतिशास्त्र, जो दस सहस्र अध्यायोंसे घटकर पाँच हजार अध्यायोंका हो गया (शान्ति० ५९ । ८३)।

बाहुदा–इस तीर्थमें ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एक रात उपवास करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है और देवसत्रका फल पाता है (वन० ८४ । ६७-६८; वन० ८७ । २७; वन० ९५ । ४)। (कुछ आधुनिक विचारक अवधप्रान्तकी धवला या धुमेला नामक नदीको, जो राप्तीकी सहायक है, 'बाहुदा' कहते हैं।) यह उन नदियोंमेंसे एक है, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १४, २९)। इसके तटपर महर्षि शङ्ख और लिखितके आश्रम थे (शान्ति० २३ । १८-१९)। इस नदीमें स्नान करके पितरोंके लिये तर्पणकी चेष्टा करते समय महर्षि लिखितके कटे हुए हाथ नूतन रूपसे फिर उत्पन्न हो गये थे (शान्ति० २३ । ३९-४०)।

बाहुदा-सुयशा–कुरुवंशी परीक्षित्की पत्नी तथा भीमसेनकी माता (आदि० ९५ । ४२)।

बाह्यकर्ण–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ९)।

बाह्यकुण्ड–कश्यपवंशमें उत्पन्न एक नाग (उद्योग० १०३ । १०)।

॥ श्रीहरिः ॥

प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंसे सादर निवेदन

१–'महाभारत' का यह तीसरे वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है। बारहवाँ अङ्क प्रकाशित हो जाने-पर यह वर्ष पूरा हो जायगा। इसके पश्चात् चौथा वर्ष प्रारम्भ होगा जिसमें हरिवंशपुराण तथा जैमिनीय अश्वमेधपर्व देनेका विचार है।

२–विविध प्रकारकी उलझनोंमें पड़े हुए आजके व्यग्र जगत्‌को—आसक्ति-कामना, द्वेष-द्रोह, असंतोष-अशान्ति आदिकी भीषण आगमें झुलसते हुए मानव-प्राणीको 'महाभारत'में प्रकाशित छोटी-बड़ी सच्ची प्रेरणाप्रद घटनाओंके द्वारा वह विचित्र समाधान प्राप्त होता है, जिससे उसकी सारी उलझनें सुलझ जाती हैं और त्याग-वैराग्य, ममता-संतोष तथा आत्मीयता-अनुरागका वह मधुर शीतल सुधा-सलिल-रस-प्रवाह मिलता है, जिससे कामना-वासना तथा असंतोष-अशान्तिकी प्रचण्ड अग्नि सदाके लिये सहज ही शान्त हो जाती है। इसमें एक-एक कथा ऐसी प्रेरणाप्रद होती है कि ध्यानपूर्वक पढ़नेपर जीवनमें सहज ही सुन्दर परिवर्तन हो सकता है।

३–चौथे वर्षमें प्रतिमास कम-से-कम १४४ पृष्ठ तथा १ बहुरंगा और ४ सादे चित्र होंगे।

४–वार्षिक मूल्य डाकखर्चसहित २०) है। यदि किसी कारणवश डाकखर्च बढ़ गया तो वार्षिक मूल्य कुछ बढ़ाया जा सकता है।

५–जिन ग्राहकोंके चंदेके रुपये अङ्क निकलनेतक नहीं मिलेंगे, उनको वी० पी० द्वारा प्रथम अङ्क भेज दिया जायगा।

६–सभी पुराने ग्राहकोंको चौथे वर्ष भी ग्राहक रहना चाहिये, अन्यथा बिना हरिवंशके उनका महाभारत अधूरा रहेगा। यदि किसी विशेष कारणवश किसीको ग्राहक न रहना हो तो कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें ताकि डाकखर्चकी हानि न सहनी पड़े।

७–जिन नये ग्राहकोंको तीनों वर्षोंके अङ्क लेने हों, वे तीन सालका चंदा ६०) भेजनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—'मासिक महाभारत', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

गीताप्रेस गोरखपुर

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

▼ महाभारत ▼

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, आश्विन २०१५, अक्टूबर १९५८ { संख्या १२
पूर्ण संख्या ३६

श्रीकृष्णप्रेमका आश्रय लो

चेतो विहाय सकलां विषयैषणां त्वं
विश्रान्तिभूमिमजरामृतसत्स्वरूपाम् ।
कृष्णे रतिं श्रय परां व्यभिचारशून्यां
नातः परं तव सुखं किमपीह लोके ॥

ऐ मेरे मन ! तू विषय-भोगकी सारी अभिलाषाओंको त्यागकर श्रीकृष्ण-विषयक प्रेम-भक्तिका आश्रय ले । वह उत्तम प्रेमभक्ति व्यभिचार-शून्य (किसी दूसरेके प्रति आसक्तिसे रहित) होनी चाहिये । श्रीकृष्ण-भक्ति सारे पाप-तापसे विश्राम पानेका स्थान है । वह अजर, अमर एवं सत्स्वरूप है । इस संसारमें उससे बढ़कर तेरे लिये दूसरा कोई सुख नहीं है ।

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ-संख्या
१—महाभारतके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण (गताङ्कसे आगे)	···	···	···	२०१
२—महाभारतके जीवनको उन्नत बनानेवाले कुछ शिक्षाप्रद प्रसङ्ग (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)		···	···	२२४
३—सम्पादकका निवेदन और क्षमा-प्रार्थना	···	···	···	२४७
४—नामानुक्रमणिका, क्रमशः गताङ्कसे आगे	···			(ना० पृष्ठ २१७ से ४०८ तक)

चित्र-सूची

१—महाभारत-लेखन	(तिरंगा)	···	···	मुखपृष्ठ
२—वीर वेषमें श्रीकृष्ण	(,,)	···	···	२०१
३—महाराज द्रुपद	(एकरंगा)	···	···	२२५
४—सेनापति कर्ण	(तिरंगा)	···	···	ना० २१७
५—घटोत्कच	(एकरंगा)	···	···	ना० २२९
६—धृष्टद्युम्न	(,,)	···	···	ना० २४९
७—अभिमन्यु	(,,)	···	···	ना० २७३
८—आचार्यपुत्र अश्वत्थामा	(,,)	···	···	ना० ३२१
९—वीरवर सात्यकि	(,,)	···	···	ना० ३७६

वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)

वीर वेषमें श्रीकृष्ण

नारायणास्त्रसे भीमका त्राण

कृपाचार्यके द्वारा अपने पिताके वधका समाचार सुनकर अश्वत्थामा कुपित हो उठा। उसने पाण्डव-सेनाके ऊपर नारायणास्त्रका प्रयोग कर दिया। भगवान् वासुदेवने पाण्डव-सेनाके सैनिकोंको आदेश दे दिया कि नारायणास्त्रसे बचनेका एकमात्र उपाय यही है कि अपने-अपने वाहनोंसे नीचे उतरकर शस्त्र डाल दो। सब लोगोंने ऐसा ही किया, परंतु भीमसेन गरजते हुए आगे बढ़े। उन्होंने अर्जुनको सम्बोधन करते हुए कहा—'तुम गाण्डीवको मत डाल देना, नहीं तो चन्द्रमाके समान तुम्हें कलङ्क लग जायगा।' अर्जुनने कहा—

भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च।
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम्॥
(द्रोण० १९९। ५३)

'भैया भीमसेन! नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मण—इनके सामने गाण्डीवको नीचे डाल दिया जाय, यही मेरा उत्तम व्रत है।' पश्चात् देखते-देखते भीमसेन तथा उनका रथ, घोड़े और सारथि—ये सभी अश्वत्थामाके अस्त्रसे आच्छादित हो आगकी लपटोंके भीतर आते हुए दीख पड़े। संजय कहते हैं—

ततश्चक्रुषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात्॥
(द्रोण० २००। १३)

'तब नर-नारायण अर्थात् अर्जुन और श्रीकृष्णने अपने रथसे उतरकर शीघ्र आगे बढ़कर शस्त्रास्त्रसे युक्त भीमसेनको रथसे नीचे उतार लिया, और तब वह नारायणास्त्र अपने-आप शान्त हो गया।' यहाँ संजयने पुनः 'नर-नारायण' शब्दका प्रयोग किया है। कारण यह है कि यदि भगवान् वासुदेवने उपाय न बताया होता तो अश्वत्थामाके द्वारा प्रयोग किये गये नारायणास्त्रसे सारी पाण्डवसेना नष्ट हो जाती। प्रायः यह देखनेमें आता है कि महाभारतमें जहाँ कहीं भगवत्ता दृष्टिगोचर होती है, वहीं 'नर-नारायण' का स्मरण कराके अर्जुन और भगवान् वासुदेवके देवत्वका ग्रन्थकार स्मरण करा देते हैं। पुनः जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रको विफल होता देखकर पाण्डवसेनापर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया और उस अस्त्रके द्वारा भयानक संहार प्रारम्भ हो गया, तब अर्जुनने उसके शमनके लिये ब्रह्मास्त्र-का प्रयोग किया, जिससे आग्नेयास्त्र शमन हो गया। यह देखकर अश्वत्थामाको बड़ा दुःख हुआ, और रथसे कूदकर 'धिक्कार है! धिक्कार है!' कहता हुआ वह रणभूमिसे भागा। अचानक उसको वहाँ महर्षि व्यास आते हुए दिखलायी दिये। उनको प्रणाम करके द्रोण-पुत्रने गद्गद स्वरसे पूछा—

भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत्।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः॥
(द्रोण० २०१। ५०)

'महर्षे! यह माया है या यदृच्छा, मेरी समझमें नहीं आता। यह अस्त्र मिथ्या कैसे हो गया? मुझसे क्या भूल हो गयी?' मैंने तो सर्वसंहारक अस्त्रका प्रयोग किया था, उससे श्रीकृष्ण और अर्जुन कैसे बच गये?

व्यासजीने अश्वत्थामाके इस प्रश्नका उत्तर देते समय पुनः नर-नारायण-तत्त्वपर प्रकाश डालते हुए कहा—"द्रोणपुत्र! सुनो, हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज आदिदेव, जगन्नाथ, नारायण हैं। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। वे भगवान् किसी कार्यवश धर्मके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। उस सूर्यके समान तेजस्वी नारायणने हिमालय पर्वतपर खड़े होकर दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये ६६ हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर घोर तप किया। उनके तपः-तेजसे द्युलोक और भूलोकके बीचका अन्तरिक्ष देदीप्यमान हो उठा। जब वे उस तपसे साक्षात् ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो गये, तब उनके सामने भगवान् शंकरका आविर्भाव हुआ। भगवान् नारायणने उनकी स्तुति की, उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर शंकरजीने उन्हें वरदान दिया—

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि॥
(द्रोण० २०१। ८०)

न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः।
न कश्चित्त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति॥
(द्रो० २०१। ८०-८२)

'नारायण ! तुम मेरे अनुग्रहसे मनुष्यों, देवताओं तथा गन्धर्वोंमें असीम बल-पराक्रमसे युक्त होओगे। देवता, असुर, नाग, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि समस्त प्राणी युद्धमें तुमको जीत नहीं सकेंगे।

"द्रोणकुमार ! वे ही नारायण श्रीकृष्णके रूपमें अपनी मायासे विचरण कर रहे हैं। तथा नारायणके ही तपसे उत्पन्न महामुनि 'नर' उनके समान ही शक्तिशाली हैं। वे नर ही अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हैं।' इस प्रकार द्रोणपर्वको भी महर्षि वेदव्यासने श्रीमुखद्वारा ही नारायणकी कथासे मण्डित कर दिया है। इसके साथ ही द्रोणपर्वके अध्याय २०२ में शंकरजीकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णित हुई है।

[कर्णपर्व]

कर्णपर्वके सोलहवें अध्यायमें जब अर्जुनने संशप्तकोंका विनाश कर दिया है, तब देवता उनपर सुमन वृष्टि करते हैं और आकाशवाणी होती है—

चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः।
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ॥
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ।
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ॥
(कर्ण० १६ । १८-१९)

'जो सदा चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल तथा सूर्यकी द्युति धारण करते हैं, एक ही रथमें विराजमान वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन ब्रह्मा और शंकरके समान सर्वथा अजेय हैं। ये सर्वभूतोंमें श्रेष्ठ वीर नर-नारायण हैं।' इस अत्यन्त आश्चर्यजनक वाणीको सुनकर भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा बोल दिया। भगवान् वासुदेवने देखा कि अश्वत्थामा निरन्तर आक्रमण करता जा रहा है और अर्जुन उसको गुरुपुत्र समझकर केवल रक्षात्मक युद्ध कर रहा है; तब वे अर्जुनको उत्साहित करते हुए बोले—'पार्थ ! आज मैं अद्भुत बात देख रहा हूँ, आज द्रोणकुमार रणमें तुमसे आगे बढ़ता जा रहा है। क्या तुम्हारे हाथमें गाण्डीव नहीं है ?

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ।
उपेक्षां मा कृथाः पार्थ नायं कालो ह्युपेक्षितुम्॥

'भरतश्रेष्ठ ! यह मेरा गुरु-पुत्र है, इस प्रकार उसको सम्मान देते हुए उसकी उपेक्षा न करो। पार्थ ! यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है।'

अर्जुन नर थे। नरका यह स्वभाव ही है कि वह संसारमें मोहवश होकर कर्तव्यको भूल जाता है। महाभारतके युद्धमें ऐसा अनेक बार देखा गया है कि अर्जुन-जैसा वीर मोहके वश होकर कर्तव्यकी अवहेलना कर बैठता है। कर्तव्यकी अवहेलना करनेसे जीवनमें निश्चयपूर्वक पराजयका सामना करना पड़ता है। परंतु जिसके सखा भगवान् वासुदेव हैं, उसका पराजय कैसे होता। भगवान् जो उसे प्रमादसे मुक्त करते रहते थे। अर्जुनको भी गुरु-पुत्रके मोहमें पड़कर प्रमाद करनेसे भगवान्ने बार-बार मना किया। अन्तमें अर्जुनने आवेशमें आकर अश्वत्थामाको पराजित कर दिया।

बड़ोंकी हत्या तथा आत्महत्याका आदर्श

युधिष्ठिरके ऊपर अचानक कौरव-सेनाके सेनापति कर्णने आक्रमण करके उनको घायल कर दिया, और वे अपने शिविरमें विश्राम करनेके लिये चले गये। उधर संशप्तकोंकी सेनाके साथ युद्ध करते समय अर्जुनको इसका समाचार मिला और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरको देखनेके लिये शिविरमें जानेकी इच्छा प्रकट की। शिविरमें युधिष्ठिर शय्यापर पड़े थे। अङ्ग-अङ्गमें बाणोंके चुभ जानेके कारण उन्हें बड़ी व्यथा हो रही थी। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन एक साथ वहाँ जा पहुँचे। उन दोनोंको आते देखकर युधिष्ठिरको भ्रम हो गया कि अर्जुन कर्णको मारकर आ रहा है और वे प्रसन्न होकर दोनोंकी अभ्यर्थना करने लगे। परंतु जब उनको पता लगा कि अभी कर्ण मारा नहीं गया है, तब वे बोले—

धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
योऽहं वशं सूतपुत्रस्य जातः॥
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः।
(कर्ण० ६८ । २०-२१)

'कृष्ण ! मैं कौरवों, सुहृदों तथा जो लोग युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके बीचमें

आज सूतपुत्र कर्णके अधीन हो गया। मेरे जीवनको धिक्कार है।' और—

धिग् गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य-
मसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते।
धिक् ते केतुं केसरिणः सुतस्य
कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते॥
(कर्ण० ६८। ३०)

'धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव धनुषको, धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके पराक्रमको, धिक्कार है तुम्हारे असंख्य बाणोंको, धिक्कार है हनूमान्‌जीके द्वारा चिह्नित तुम्हारी ध्वजाको तथा धिक्कार है अग्निके द्वारा प्रदत्त तुम्हारे इस रथको।' अर्जुन! यदि तुम कर्णको नहीं मार सकते तो पाण्डव-सेनामें किसी दूसरेको यह अपना गाण्डीव धनुष दे दो।'

युधिष्ठिरके इतना कहते ही अर्जुनने आवेशमें आकर तलवार खींच ली। उन्होंने कहा—'माधव! मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मुझे गाण्डीव दूसरेको देनेकी बात कहेगा, उसका मैं सिर उतार लूँगा।' श्रीकृष्णने कहा—'अरे! तुम यह क्या पागलपन करने जा रहे हो? बड़ोंकी हत्या तलवारसे नहीं होती। उनके मुँहपर उनकी निन्दा—अपमान कर देना ही उनकी हत्या करना है। अतः—

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत॥
(कर्ण० ६९। ८३)

"पार्थ! महाराज युधिष्ठिरको आज 'तुम' कह दो। हे भारत! 'तुम' कहनेसे गुरुजनकी निश्चय ही मौत हो जाती है।"

भगवान् वासुदेवके यों कहनेपर अर्जुन 'तुम' तथा निन्दायुक्त कठोर वाक्य कह-कहकर महाराज युधिष्ठिरकी भर्त्सना करने लगे और इस प्रकार भ्रातृ-वधके महापापसे वे बच गये। परंतु अपने इस व्यवहारसे वे बहुत दुखी हो गये और उनको बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। उन्हें इतनी आत्मग्लानि हुई कि उन्होंने प्रायश्चित्तस्वरूप आत्मघात करनेके लिये फिर तलवार निकाल ली। तब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें फिर समझाकर कहा कि अपने मुँहसे अपने गुण वर्णन करना ही आत्मघात है। अतएव तुम वही करो। अर्जुनने वही किया और यों भगवान्‌ने उनको आत्मघात-से भी बचा लिया पश्चात् उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'कर्णको बिना मारे आज मैं युद्धस्थलसे नहीं लौटूँगा।'

भगवान् वासुदेवकी इस लीलासे यह शिक्षा मिलती है कि गृह-कलह पराजय और विपत्तिका मूल है। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि इसको बढ़ने न दे और चतुराईसे इसको समाप्त कर दे। साथ ही इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि बड़ोंका अपमान ही उनकी हत्या करना है तथा अपने मुँह अपनी बड़ाई करना ही आत्महत्या करना है।

कर्ण-वध

अब कर्ण और अर्जुनका निर्णयात्मक युद्ध प्रारम्भ हो गया। कर्ण वीर और महत्त्वाकाङ्क्षी था; परंतु उस-के सारथि शल्य थे, जो बराबर अर्जुन और श्रीकृष्णकी प्रशंसा करके उसे हतोत्साह करनेकी चेष्टा करते रहते थे; और इधर अर्जुनके सारथि भगवान् वासुदेव बराबर अर्जुनको प्रोत्साहित करते थे तथापि कर्णके प्रहारके सामने अर्जुनके प्रहार हल्के पड़ते थे। समुद्रमें चलने-वाले ज्वार-भाटेके समान उस समय कौरव और पाण्डव-सेनाकी स्थिति हो रही थी। जब कर्ण बाणवर्षा करता, तब कौरवसेना आगे बढ़ती थी और पाण्डवसेना पीछे भागने लगती थी; और जब अर्जुन शर-संधान करता तब पाण्डव-सेना आगे बढ़ती और कौरव-सेना पीछे भागती। इन दोनों महाधनुर्धरोंका युद्ध देखनेके लिये आकाशमें देवतालोग उपस्थित थे। अन्तमें जब कर्णने देखा कि बहुत पराक्रम दिखलानेपर भी युद्धमें वह अर्जुन-को नीचा नहीं दिखा पा रहा है, तब उसने उस सर्पमुख बाणको निकाला, जिसे उसने अर्जुनको मारनेके लिये रख छोड़ा था तथा जिसकी पूजा वह नित्य किया करता था। उस बाणका प्रयोग करते देखकर इन्द्रसहित सारे लोकपाल हाहाकार कर उठे। परंतु—

तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु
त्वरान्वितं सत्वरयैव लीलया।

पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स
प्रावेशयत् पृथिवीं किंचिदेव ॥
(कर्ण० ९० । २९)

ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं
तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ।
अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं
धरावियद्‌द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥
(कर्ण० ९० । ३२)

'उस प्रज्वलित बाणको बड़े वेगसे आते देख भगवान् श्रीकृष्णने युद्धभूमिमें आसानीसे अपने श्रेष्ठ रथ-को पैरसे दबाकर कुछ पृथ्वीमें धँसा दिया । तब इन्द्रका दिया हुआ वह सुदृढ़ किरीट जो भूतल, आकाश, द्युलोक तथा वरुणलोकमें भी प्रसिद्ध था तथा अर्जुनके सिरको विभूषित कर रहा था, उससे वह शर टकरा गया ।' और सूतपुत्र कर्णका प्रयत्न सफल न हुआ । भगवान् वासुदेवकी इस रथ हाँकनेकी कलासे उनका अनुपम कृतित्व सिद्ध होता है । महाभारतकी सारी लड़ाईमें ऐसा कौशल किसी भी पुरुषने कहीं नहीं दिखलाया ।

अन्तमें कर्णका भी अन्तसमय आ गया, उसके रथका पहिया पृथिवीमें धँस गया और उसके रथकी गति रुक गयी । वह उतरकर पहिया उठाने गया । और धर्मकी दुहाई देते हुए उसने अर्जुनको प्रहार न करनेके लिये कहा । तब भगवान् वासुदेवने उसे फटकारना प्रारम्भ किया और कहा कि 'इस समय तुम्हें धर्मकी बात याद आ रही है ? कौरव-सभामें द्रौपदीका अपमान करते समय, युधिष्ठिरको जुएमें धोखा देकर हराते समय, भीमसेनको विष दिलाते समय, पाण्डवोंको लाक्षाभवनमें जलाते समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?' तदनन्तर भगवान्‌के आदेशसे अर्जुनने पहिया उठाते समय ही अञ्जलिक नामक बाणसे कर्णका सिर काट दिया ।

शल्य-पर्व

कर्णके मरनेके बाद शल्य कौरवसेनाके सेनाध्यक्ष बनाये गये । भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको सम्बोधन करते हुए कहा कि 'आप शल्यको साधारण न समझें । वे भीष्म, द्रोण और कर्णके समान या उनसे भी बढ़कर पराक्रमी हैं ।

तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥
(शल्य० ७ । ३३)

'पुरुषसिंह ! आपका पराक्रम सिंहके समान है । आज मैं आपके सिवा किसी दूसरेको नहीं पाता, जो युद्धमें शल्यके सामने लड़ सके ।'

इस प्रकार उत्साहपूर्ण वचनोंसे भगवान्‌ने युधिष्ठिर-को पूर्ण उत्साहसे भर दिया । वस्तुतः शल्य साधारण वीर नहीं थे । इसके सिवा शत्रुपक्षमें दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा-जैसे महाधनुर्धर अभी शेष थे, तथा कौरव-सेनामें ग्यारह हजार रथ, दस हजार सात सौ हाथी, दो लाख घोड़े और तीन करोड़ पैदल थे; परंतु पाण्डव-सेनामें केवल छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दस हजार घोड़े और दो करोड़ पैदल थे । इस प्रकार सैनिक बल कौरवोंका बढ़ा-चढ़ा था । अतएव यह समझकर कि कहीं पाण्डव अपनी विजयको देखकर शिथिलप्रयत्न न हो जायँ, श्रीभगवान्‌ने युधिष्ठिरमें उत्साह भरना आवश्यक समझा । भगवान् वासुदेव बोले—

द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम् ।
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥
(शल्य० ७ । ४०)

'राजन् ! भीष्म, द्रोण और कर्णरूपी महासागर-को पार करके आप अपने गणके साथ कहीं शल्यरूपी गोष्पदमें न डूब जायँ ।' ये मेरे मामा हैं यह सोचकर उनके ऊपर आपको दया नहीं करनी चाहिये । आप क्षत्रियधर्मको देखते हुए मद्रराज शल्यको मार डालें ।'

भगवान् वासुदेवके उत्साहित करनेपर धर्मराज युद्ध-में पूर्ण पराक्रम प्रदर्शित करनेके लिये संनद्ध हो गये । उनको संनद्ध देखकर शेष पाण्डव महारथी भी उत्साहसे भर गये । कौरव तो अब भी अपनी सैन्यशक्तिको पाण्डवोंकी शक्तिकी अपेक्षा बड़ी देखकर पूरी ताकतसे पाण्डवसेनापर आक्रमणकी तैयारीमें थे । भगवान्‌ने युधिष्ठिरमें युद्धके लिये उत्साह भरकर मानो उन्हें विजय-बूटी पिला दी । जब युद्धक्षेत्रमें दोनों सेनाएँ उतरीं, तब पाण्डव कौरवोंकी अपेक्षा कम उत्साहित न थे । बड़ा भयानक युद्ध हुआ, अन्तमें भगवान् वासुदेवके वाक्यको स्मरण

करके युधिष्ठिरने क्रुद्ध होकर एक शक्तिके प्रहारसे शल्यका वध कर डाला और जोशमें आकर वे कौरव-सेनाका संहार करने लगे। कौरवोंकी सेनाका पैर उखड़ गया और पाञ्चाल और पाण्डव उनका पीछा करने लगे।

दुर्योधन-वध

शल्यके वधके उपरान्त दुर्योधन खिन्न होकर द्वैपायन-सरोवरमें जाकर जलस्तम्भन करके जलके भीतर छिप गया। भगवान् वासुदेवके साथ पाण्डव उस सरोवरपर पहुँचे और युधिष्ठिरने उसे युद्धके लिये ललकारा। भीमके साथ गदायुद्धके लिये संनद्ध होकर वह पानीसे बाहर निकला। भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों एक दूसरेपर घातक प्रहार करने लगे। दुर्योधन इस युद्ध-कलामें अद्वितीय था। भगवान्ने अर्जुनसे कहा—

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः।
कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात्॥
भीमसेनस्तु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युद्ध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम्॥
(शल्य० ५८ । ३–४)

'अर्जुन! इन दोनोंको गदायुद्धकी शिक्षा एक-सी मिली है, परंतु भीमसेन बलमें अधिक है और दुर्योधन उसकी अपेक्षा अभ्यास और प्रयत्नमें बढ़ा हुआ है। अतएव भीम धर्मपूर्वक युद्ध करके उसको न जीत सकेगा, वह अन्यायपूर्वक युद्ध करके ही दुर्योधनका वध करे।'

तदनन्तर अर्जुनने भीमसेनके देखते हुए अपनी जङ्घा ठोककर दुर्योधनकी जङ्घापर प्रहार करनेका इशारा किया और भीमसेनने वैसा ही करके उसे पछाड़ दिया। इस प्रकार युद्धका अन्त हो गया और पाण्डव विजयी हुए। भगवान्ने युद्धारम्भके पहले ही कह दिया था—

मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।

'ये शत्रुपक्षके वीर मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। अर्जुन! तू निमित्तमात्र बन जा।' वस्तुतः मारने और जिलानेवाले तो भगवान् वासुदेव ही हैं। उन्होंने ही अर्जुनको प्रोत्साहित करके भीष्मका वध कराया था—

जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम।
× × ×
ज्यायांसमपि चेद् वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमायान्तं हन्याद् घातकमात्मनः।
(भीष्म० १०७ । १००-१०१)

'अर्जुन! तुम मेरी बात सुनो, स्थिर होकर भीष्मको मार डालो। देखो, नीतिकार बृहस्पतिने भी कहा है कि बड़े-से-बड़ा गुरुजन, वृद्ध, सर्वगुणयुक्त पुरुष भी यदि शस्त्र लेकर मारनेके लिये सामने उद्यत हो तो उस आततायीको मार डालना चाहिये।'

भगवान् वासुदेवने ही 'अश्वत्थामा मारा गया'—यह छलयुक्त उद्घोष कराकर द्रोणवधका रास्ता साफ कर दिया। उन्होंने ही अर्जुनसे कहा था —

एको हि योगोऽस्य भवेद् वधाय
छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम्।
कृच्छ्रं प्राप्तं रथचक्रे विमग्ने
हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य॥
(द्रोण० १८० । ३१)

'कर्णके वधका एक ही योग है; छिद्र प्राप्त होनेपर जब वह असावधान हो, उसके रथका चक्र धँस जानेपर वह संकटमें पड़ जाय, तब मेरे संकेतको पाकर तुम उसे मार डालो।' और जब उसके रथका चक्र जमीनमें धँस गया और कर्ण उसको सँभालनेके लिये उतरा, तब श्रीकृष्णने कहा—

छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण
न यावदारोहति वै रथं वृषः॥

'पार्थ! जबतक कर्ण रथपर नहीं चढ़ता, तबतक शरसे इसका सिर काट लो।' और युधिष्ठिरको उत्साहित करते हुए उन्होंने कहा—

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव।
तद् दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम्॥

'राजन्! आपके पास जो तपोबल, क्षात्रबल है, उसे आज युद्धमें प्रदर्शित करके महारथी शल्यको मार डालिये।' इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः मारनेवाले भगवान् वासुदेव ही हैं और जिलानेवाले भी वे ही

हैं। अश्वत्थामाके नारायणास्त्रसे उन्होंने सारी पाण्डव-सेनाकी रक्षा की, कर्णके सर्पमुख बाणसे अर्जुनको बचाया और नाना प्रकारसे महाभारतके युद्धमें स्थान-स्थानपर पाण्डवोंको मृत्युके मुखसे बचानेके लिये विभिन्न नीतियोंका प्रयोग किया। महाभारतको पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि नरके द्वारा युद्धकी प्रगति विजयकी ओर होती है, तथापि मुख्यतः नारायण ही सब कुछ करते हैं। वस्तुतः जो इस अखिल विश्वमें सृष्टि, पालन और संहारकी क्रीडा करता है, उसीके पालन और संहारकी क्रीडाका एकतम दृष्टान्त महाभारत है। और सच्ची बात तो यह है कि विभिन्न प्रकारोंसे सम्पूर्ण महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णकी ही महान् महिमाका गान किया गया है। मानो सारा महाभारत उन्हींके स्तवनसे भरा है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! राज्याभिषेकके पश्चात् राज्य पाकर परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने पवित्र भावसे हाथ जोड़कर कमलनयन दशार्हवंशी श्रीकृष्णसे कहा—"यदुसिंह श्रीकृष्ण! आपकी ही कृपा, नीति, बल, बुद्धि और पराक्रमसे मुझे पुनः अपने बाप-दादोंका यह राज्य प्राप्त हुआ है। शत्रुओंका दमन करनेवाले कमलनयन! आपको बारंबार नमस्कार है। अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले द्विज एकमात्र आपको ही अन्तर्यामी पुरुष एवं उपासना करनेवाले भक्तोंका प्रतिपालक बताते हैं। साथ ही वे नाना प्रकारके नामोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी लीलामयी सृष्टि है। आप इस विश्वके आत्मा हैं। आपसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप ही व्यापक होनेके कारण 'विष्णु', विजयी होनेसे 'जिष्णु', दुःख और पाप हर लेनेसे 'हरि' अपनी ओर आकृष्ट करनेके कारण 'कृष्ण', विकुण्ठ धामके अधिपति होनेसे 'वैकुण्ठ' तथा क्षर-अक्षर पुरुषसे उत्तम होनेके कारण 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। आपको नमस्कार है।

आप पुराणपुरुष परमात्माने ही सात प्रकारसे अदितिके गर्भमें अवतार लिया है। आप ही पृश्निगर्भके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्वान्लोग तीनों युगोंमें प्रकट होनेके कारण आपको 'त्रियुग' कहते हैं। आपकी कीर्ति परम पवित्र है। आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। घृत ही जिसकी ज्वाला है, वह यज्ञपुरुष आप ही हैं। आप ही हंस (विशुद्ध परमात्मा) कहे जाते हैं। त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर और आप एक ही हैं। आप सर्वव्यापी होनेके साथ ही दामोदर (यशोदा मैयाके द्वारा बँध जानेवाले नटवर-नागर) भी हैं। वराह, अग्नि, बृहद्भानु (सूर्य), वृषभ (धर्म), गरुडध्वज, अनीकसाह (शत्रुसेनाका वेग सह सकनेवाले), पुरुष (अन्तर्यामी), शिपिविष्ट (सबके शरीरमें आत्मारूपसे प्रविष्ट) और उरुक्रम (वामन)—ये सभी आपके ही नाम और रूप हैं। सबसे श्रेष्ठ, भयंकर सेनापति, सत्यस्वरूप, अन्नदाता तथा कार्तिकेय भी आप ही हैं। आप स्वयं कभी युद्धसे विचलित न होकर शत्रुओंको पीछे हटा देते हैं। संस्कारसम्पन्न द्विज और संस्कारशून्य वर्णसंकर भी आपके ही स्वरूप हैं। आप भोगोंकी वर्षा करनेवाले वृष (धर्म) हैं। कृष्णधर्म (यज्ञस्वरूप) और सबके आदिकारण आप ही हैं। वृषदर्भ (इन्द्रके दर्पका दलन करनेवाले) और वृषाकपि (हरि-हर) भी आप ही हैं। आप ही सिन्धु (समुद्र), विधर्म (निर्गुण परमात्मा), त्रिककुप् (ऊपर-नीचे और मध्य—ये तीन दिशाएँ), त्रिधामा (सूर्य, चन्द्र और अग्नि—ये त्रिविध तेज) तथा वैकुण्ठधामसे नीचे अवतीर्ण होनेवाले हैं। आप सम्राट्, विराट्, स्वराट् और देवराज इन्द्र हैं। यह संसार आपसे ही प्रकट हुआ है।

आप सर्वत्र व्यापक, नित्य सत्तारूप और निराकार परमात्मा हैं। आप ही कृष्ण (सबको अपनी ओर खींचनेवाले) और कृष्णवर्त्मा (अग्नि) हैं। आपको ही लोग अभीष्ट- साधक, अश्विनीकुमारोंके पिता सूर्य, कपिलमुनि, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़ तथा यज्ञसेन कहते हैं। आप अपने मस्तकपर मोरका पंख धारण करते हैं। आप ही पूर्वकालमें राजा नहुष होकर प्रकट हुए थे। आप सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करनेवाले महेश्वर तथा एक ही पैरसे आकाशको नाप लेनेवाले विराट् हैं। आप ही पुनर्वसु नक्षत्रके रूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। सुबभ्रु (अत्यन्त पिङ्गल वर्ण), रुक्मयज्ञ (सुवर्णकी दक्षिणासे भरपूर यज्ञ), सुषेण (सुन्दर सेनासे सम्पन्न) तथा

दुन्दुभिस्वरूप हैं। आप ही गभस्तिनेमि (कालचक्र), श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारी, ऋभु, विभु, सर्वथा सूक्ष्म और सदाचारस्वरूप कहलाते हैं। आप ही जल-निधि समुद्र, आप ही ब्रह्मा तथा आप ही पवित्र धाम एवं धामके ज्ञाता हैं। केशव! विद्वान् पुरुष आपको ही हिरण्यगर्भ, स्वधा और स्वाहा आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीकृष्ण! आप ही इस जगत्के आदिकारण हैं और आप ही इसके प्रलयस्थान। कल्पके आरम्भमें आप ही इस विश्वकी सृष्टि करते हैं। विश्वके कारण! यह सम्पूर्ण विश्व आपके ही अधीन है। हाथोंमें धनुष, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले परमात्मन्! आपको नमस्कार है।" इस प्रकार जब धर्मराज युधिष्ठिरने सभामें यदुकुलशिरोमणि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की, तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर भरतभूषण ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरका उत्तम वचनोंद्वारा अभिनन्दन किया। जो धर्मराज युधिष्ठिरद्वारा वर्णित भगवान् श्रीकृष्णके इन सौ नामोंका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(शान्तिपर्व ४३ । १–१७)

युधिष्ठिरने भीष्मजीसे कहा—"महाप्राज्ञ पितामह! मैं कमलनयन, अच्युत, सबके कर्ता, नित्यसिद्ध, सर्वव्यापी, सब भूतोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयके स्थान, अपराजित, नारायण, हृषीकेश, गोविन्द, केशव आदि नामोंसे प्रसिद्ध श्रीकृष्णके स्वरूपका तात्त्विक विवेचन सुनना चाहता हूँ।' तब भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! मैंने इस विषयका विवेचन जमदग्निनन्दन परशुराम, देवर्षि नारद तथा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे सुना है। तात! असित, देवल, महातपस्वी वाल्मीकि और महर्षि मार्कण्डेयजी भी इन भगवान् गोविन्दके विषयमें बड़ी अद्भुत बातें कहा करते हैं। भरतश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्ण सबके ईश्वर और प्रभु हैं। श्रुतिमें 'पुरुष एवेदं सर्वम्' (पुरुष—श्रीकृष्ण ही यह सब कुछ हैं) इत्यादि वचनोंद्वारा इन्हीं सर्वव्यापी श्रीकृष्णकी महिमाका नाना प्रकारसे निरूपण किया गया है। महाबाहु युधिष्ठिर! जगत्में ब्राह्मण शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्णके जिन माहात्म्योंको जानते हैं, उन्हें बताता हूँ; सुनो। नरेन्द्र! पुराणवेत्ता पुरुष गोविन्दकी जिन-जिन लीलाओं तथा चरित्रोंका वर्णन करते हैं, उनका मैं यहाँ वर्णन करूँगा। सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा महात्मा पुरुषोत्तमने आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँच महाभूतोंकी रचना की है। सर्वभूतेश्वर, प्रभु, महात्मा पुरुषोत्तमने इस पृथ्वीकी सृष्टि करके जलमें ही अपना निवासस्थान बनाया। उसमें शयन करते हुए सर्वतेजोमय पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने मनसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंके अग्रज तथा आश्रय संकर्षणको उत्पन्न किया, यह हमने सुना है। वे संकर्षण ही समस्त भूतोंको धारण करते हैं तथा वे ही भूत और भविष्यके भी आधार हैं।

उन महाबाहु महात्मा संकर्षणका प्रादुर्भाव होनेके पश्चात् श्रीहरिकी नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जो सूर्यके समान प्रकाशमान था। तात! उस कमलसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंके पितामह देवस्वरूप भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन महाबाहु महात्मा ब्रह्माजीकी भी उत्पत्ति हो जानेपर वहाँ तमोगुणसे मधु नामक महान् असुर प्रकट हुआ, जो असुरोंका पूर्वज था। उसका स्वभाव बड़ा ही उग्र था। वह सदा ही भयानक कर्म करनेवाला था। भयंकर कर्म करनेका निश्चय लेकर आये हुए उस असुरको पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीका हित करनेके लिये मार डाला। तात! उस मधुका वध करनेके कारण ही सम्पूर्ण देवता, दानव और मानव इन सर्वसात्वतशिरोमणि श्रीकृष्णको मधुसूदन कहते हैं।

ब्रह्माजीने सात मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया, जिनमें दक्ष प्रजापति सातवें थे (ये ही सबसे प्रथम उत्पन्न हुए थे)। शेष छः पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु। तात! इन छः पुत्रोंमें सबसे बड़े थे मरीचि। उन्होंने अपने मनसे ही ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कश्यप नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया, जो बड़े ही तेजस्वी हैं। भरतश्रेष्ठ! ब्रह्माजीने दक्षको अपने अँगूठेसे उत्पन्न किया था। वे मरीचिसे भी बड़े थे। इसीलिये प्रजापतिके पदपर दक्ष प्रतिष्ठित हुए। भरतनन्दन! प्रजापति दक्षके पहले तेरह कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें दिति सबसे बड़ी थी। तात! सम्पूर्ण धर्मोंके विशेषज्ञ, पुण्यकीर्ति, महायशस्वी मरीचिनन्दन

कश्यप उन सब कन्याओंके पति हुए। तदनन्तर धर्मके ज्ञाता महाभाग प्रजापति दक्षने दस कन्याएँ और उत्पन्न कीं, जो पूर्वोक्त तेरह कन्याओंसे छोटी थीं। उन सबका विवाह उन्होंने धर्मके साथ कर दिया। भरतनन्दन ! धर्मके वसु, अमित तेजस्वी रुद्र, विश्वेदेव, साध्य तथा मरुद्गण—ये बहुत-से पुत्र हुए। तत्पश्चात् दक्षके अन्य सत्ताईस कन्याएँ हुईं, जो पूर्वोक्त कन्याओंसे भी छोटी थीं। महाभाग सोम उन सबके पति हुए। इन सबके अतिरिक्त भी दक्षके बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिन्होंने गन्धर्वों, अश्वों, पक्षियों, गौओं, किम्पुरुषों, मत्स्यों, उद्भिज्जों और वनस्पतियोंको जन्म दिया। अदितिने देवताओंमें श्रेष्ठ महाबली आदित्योंको उत्पन्न किया। उन आदित्योंमें सर्वव्यापी भगवान् गोविन्द भी वामनरूपसे प्रकट हुए। उनके विक्रमसे अर्थात् विराट्रूप धारणकर तीन पैंडमें त्रिलोकीको नाप लेनेके कारण देवताओंकी श्रीवृद्धि हुई, दानव पराजित हुए तथा दैत्यों और असुरोंकी प्रजा भी पराभवको प्राप्त हुई। दनुने दानवोंको जन्म दिया, जिनमें विप्रचित्ति आदि दानव प्रमुख थे। दिति समस्त असुरों—महान् शक्तिशाली दैत्योंकी जननी हुई।

इन्हीं श्रीमधुसूदनने दिन-रात, ऋतुके अनुसार काल, पूर्वाह्ण तथा अपराह्ण आदि समस्त काल-विभागकी व्यवस्था की। उन्होंने ही अपने मनके संकल्पसे मेघों, स्थावर-जङ्गम-प्राणियों तथा समस्त पदार्थोंसहित महान् तेजसे संयुक्त समूची पृथ्वीकी सृष्टि की। युधिष्ठिर ! तदनन्तर महाभाग श्रीकृष्णने पुनः सैकड़ों श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मुखसे ही उत्पन्न किया। भरतश्रेष्ठ ! इन केशवने सैकड़ों क्षत्रियोंको अपनी दोनों भुजाओंसे सैकड़ों वैश्योंको अपनी जाँघोंसे तथा सैकड़ों शूद्रोंको दोनों पैरोंसे उत्पन्न किया। इस प्रकार इन महातपस्वी श्रीहरिने चारों वर्णोंको उत्पन्न करके स्वयं ही धाताको सम्पूर्ण भूतोंका अध्यक्ष बनाया। वे ही वेदविद्याको धारण करनेवाले अमिततेजस्वी ब्रह्मा हुए। फिर श्रीहरिने भूतों और मातृगणोंके अध्यक्ष विरूपाक्ष (रुद्र) की रचना की। सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा श्रीहरिने पापियोंको दण्ड देनेवाले तथा पितरोंके समवर्ती यमराजको और सम्पूर्ण निधियोंके पालक धनाध्यक्ष कुबेरको उत्पन्न किया। इसी प्रकार उन्होंने जल-जन्तुओंके स्वामी जलेश्वर वरुणकी सृष्टि की। उन्हीं भगवान्ने इन्द्रको सम्पूर्ण देवताओंका अध्यक्ष बनाया। पहले मनुष्योंको जितने दिनोंतक शरीर धारण करनेकी इच्छा होती, उतने दिनोंतक वे जीवित रहते थे। उन्हें यमराजका कोई भय नहीं होता था। भरतश्रेष्ठ ! पहलेके लोगोंमें मैथुन-धर्मकी प्रवृत्ति नहीं हुई थी। इन सबको संकल्पसे ही संतान पैदा होती थी।

तदनन्तर त्रेतायुगका समय आनेपर स्पर्श करनेमात्रसे संतानकी उत्पत्ति होने लगी। नरेश्वर ! उस समयके लोगोंमें भी मैथुन-धर्मका प्रचार नहीं हुआ था। नरेश्वर ! द्वापर युगमें प्रजाके मनमें मैथुन-धर्मका सूत्रपात हुआ। राजन् ! उसी तरह कलियुगमें भी लोग मैथुन-धर्मको प्राप्त होने लगे। तात कुन्तीनन्दन ! ये भगवान् श्रीकृष्ण ही भूतनाथ एवं सबके अध्यक्ष कहे जाते हैं। अब जो नरकका दर्शन करनेवाले हैं, उनका वर्णन करता हूँ; सुनो। नरेश्वर ! दक्षिण भारतमें जन्म लेनेवाले सभी आन्ध्र, गुह, पुलिन्द, शबर, चूचुक और मद्रक—ये सब-के-सब म्लेच्छ हैं। तात ! अब उत्तरभारतमें जन्म लेनेवाले म्लेच्छोंका वर्णन करूँगा। यौन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्बर—ये सब-के-सब पापाचारी होकर इस सारी पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। नरेश्वर ! ये सब-के-सब चाण्डाल, कौए और गीधोंके समान आचार-विचारवाले हैं। ये सत्ययुगमें इस पृथ्वीपर नहीं विचरण करते। भरतश्रेष्ठ ! त्रेतासे वे लोग बढ़ने लगे थे। तदनन्तर त्रेता और द्वापरका महाघोर संध्याकाल उपस्थित होनेपर राजालोग एक-दूसरेसे टक्कर लेकर युद्धमें आसक्त हुए। कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णने इस लोकको उत्पन्न किया है।

(शान्ति० २०७ । ३–४६½)

भीष्मजीने फिर कहा—

तपःस्वरूपो महादेवः कृष्णो देवकिनन्दनः।
तस्य प्रसादाद् दुःखस्य नाशं प्राप्स्यसि मानद॥
एकः कर्ता स कृष्णश्च ज्ञानिनां परमा गतिः।
इदमाश्रित्य देवेन्द्रो देवा रुद्रास्तथाश्विनौ॥
स्वे स्वे पदे विविशिरे भुक्तिमुक्तिविदो जनाः॥

श्रूयतामस्य सद्भावः सम्यग्ज्ञानं यथा तव।
भूतानामन्तरात्मासौ स नित्यपदसंवृतः॥
(पृ० ४९५०)

'सबको मान देनेवाले नरेश ! महान् देवता भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्ण तपस्यारूप ही हैं। उन्हींकी कृपासे तुम्हारे सारे दुःखोंका नाश हो जायगा। एकमात्र जगत्स्रष्टा श्रीकृष्ण ज्ञानियोंकी परम गति हैं। तपस्यारूप इन श्रीकृष्णका आश्रय लेकर देवराज इन्द्र, अन्यान्य देवता, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार तथा भोग और मोक्षके तत्त्वको जाननेवाले महर्षि अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित रहते हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं तथा नित्य वैकुण्ठधाममें अपनी योगमायासे आवृत होकर निवास करते हैं। उनकी सत्ता और महत्ताको तुम श्रवण करो, जिससे तुम्हें श्रीकृष्ण-तत्त्वका ज्ञान हो जाय।'

× × ×

तस्माद् व्रज हृषीकेशं कृष्णं देवकिनन्दनम्॥
एतमाराध्य गोविन्दं गता मुक्तिं महर्षयः।
एष कर्ता विकर्ता च सर्वकारणकारणम्॥
(पृ० ४९५१)

'अतः युधिष्ठिर ! तुम भी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ। इन भगवान् गोविन्दकी आराधना करके कितने ही महर्षि मुक्तिको प्राप्त हो गये हैं। ये ही जगत्के रचयिता, संहारकर्ता और समस्त कारणोंके भी कारण हैं।'

गुरु-शिष्य-संवाद

एक परम मेधावी समाहितचित्त अधिकारी शिष्यके पूछनेपर श्रेष्ठतम विद्वान् परम महर्षि गुरुने कहा—

शृणु शिष्य महाप्राज्ञ ब्रह्मगुह्यमिदं परम्।
अध्यात्मं सर्वविद्यानामागमानां च यद्वसु॥
वासुदेवः परमिदं विश्वस्य ब्रह्मणो मुखम्।
सत्यं ज्ञानमथो यज्ञस्तितिक्षा दम आर्जवम्॥
पुरुषं सनातनं विष्णुं यं तं वेदविदो विदुः।
सर्गप्रलयकर्तारमव्यक्तं ब्रह्म शाश्वतम्॥
तदिदं ब्रह्म वार्ष्णेयमितिहासं शृणुष्व मे।
ब्राह्मणो ब्राह्मणैः श्राव्यो राजन्यः क्षत्रियैस्तथा॥
वैश्यो वैश्यैस्तथा श्राव्यः शूद्रः शूद्रैर्महामनाः।
माहात्म्यं देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः॥
अर्हस्त्वमसि कल्याणं वार्ष्णेयं शृणु यत्परम्।
कालचक्रमनाद्यन्तं भावाभावस्वलक्षणम्॥
त्रैलोक्यं सर्वभूतेशे चक्रवत्परिवर्तते।
यत्तदक्षरमव्यक्तममृतं ब्रह्म शाश्वतम्॥
वदन्ति पुरुषव्याघ्र केशवं पुरुषर्षभम्॥
पितॄन् देवानृषींश्चैव तथा वै यक्षराक्षसान्।
नागासुरमनुष्यांश्च सृजते परमोऽव्ययः॥
(शान्ति० २१०। ८-१५)

'वत्स ! सुनो। महामते ! तुमने जो बात पूछी है, वह वेदोंका उत्तम एवं गूढ़ रहस्य है। यही अध्यात्मतत्त्व है तथा यही समस्त विद्याओं और शास्त्रोंका सर्वस्व है। सम्पूर्ण वेदका मुख जो प्रणव है, वह तथा सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा, इन्द्रिय-संयम, सरलता और परमतत्त्व—यह सब कुछ वासुदेव ही हैं। वेदज्ञ जन उसीको सनातन पुरुष और विष्णु भी मानते हैं। वही संसारकी सृष्टि और प्रलय करनेवाला अव्यक्त एवं सनातन ब्रह्म है। वही ब्रह्म वृष्णि-कुलमें श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुआ है, इस कथाको तुम मुझसे सुनो। ब्राह्मण ब्राह्मणको, क्षत्रिय क्षत्रियको, वैश्य वैश्यको तथा शूद्र महामनस्वी शूद्रको अमिततेजस्वी देवाधिदेव विष्णुका माहात्म्य सुनायें। तुम भी यह सब सुननेके योग्य अधिकारी हो; अतः भगवान् श्रीकृष्णका जो कल्याणमय उत्कृष्ट माहात्म्य है, उसे सुनो। यह सृष्टि-प्रलयरूप जो अनादि, अनन्त कालचक्र है, वह श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। सर्वभूतेश्वर श्रीकृष्णमें ये तीनों लोक चक्रकी भाँति घूम रहे हैं। पुरुषसिंह ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको ही अक्षर, अव्यक्त, अमृत एवं सनातन परब्रह्म कहते हैं। ये अविनाशी परमात्मा श्रीकृष्ण ही पितर, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्य आदिकी रचना करते हैं।'

अर्जुनके द्वारा विनयपूर्वक पूछे जानेपर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रभावका वर्णन करते हुए अपने नामोंकी व्युत्पत्ति और महिमा उन्हें इस प्रकार सुनायी—

'अर्जुन ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, पुराण, ज्यौतिष, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र

तथा आयुर्वेदमें महर्षियोंने मेरे बहुतसे नाम कहे हैं। उनमें कुछ नाम तो गुणोंके अनुसार हैं और कुछ कर्मोंसे हुए हैं। निष्पाप अर्जुन! तुम पहले एकाग्रचित्त होकर मेरे कर्मजनित नामोंकी व्याख्या सुनो। तात! मैं तुमसे उन नामोंकी व्युत्पत्ति कहता हूँ, क्योंकि पूर्वकालसे ही तुम मेरे आधे शरीर माने गये हो। जो समस्त देहधारियोंके उत्कृष्ट आत्मा हैं, उन महायशस्वी, निर्गुण-सगुणरूप विश्वात्मा भगवान् नारायण-देवको नमस्कार है। जिनके प्रसादसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र प्रकट हुए हैं, वे श्रीहरि ही सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं।

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! अठारह गुणोंवाला (प्रीति, प्रकाश, उत्कर्ष, हल्कापन, सुख, कृपणताका अभाव, रोषका अभाव, संतोष, श्रद्धा, क्षमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, सरलता, समता, सत्य तथा दोष-दृष्टिका अभाव—ये सत्त्वके अठारह गुण हैं।) जो सत्त्व है अर्थात् आदिपुरुष है, वही मेरी पराप्रकृति है। पृथ्वी और आकाशकी आत्मस्वरूपा वह योगबलसे समस्त लोकोंको धारण करनेवाली है। वही ऋता (कर्म-फलभूत गतिस्वरूपा), सत्या (त्रिकालाबाधित ब्रह्मरूपा), अमर, अजेय तथा सम्पूर्ण लोकोंकी आत्मा है। उसीसे सृष्टि-प्रलय आदि सम्पूर्ण विकार प्रकट होते हैं। वही तप, यज्ञ और यजमान हैं; वही पुरातन विराट् पुरुष है, उसे ही अनिरुद्ध कहा गया है। उसी-से लोकोंकी सृष्टि और प्रलय होते हैं। जब प्रलयकी रात व्यतीत हुई थी, उस समय उन अमिततेजस्वी अनिरुद्धकी कृपासे एक कमल प्रकट हुआ। कमल-नयन अर्जुन! उसी कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। वे ब्रह्मा भगवान् अनिरुद्धके प्रसादसे ही उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माका दिन बीतनेपर क्रोधके आवेशमें आये हुए उन देवशिरोमणिके ललाटसे उनके पुत्ररूपमें संहारकारी रुद्र प्रकट हुए। ये दोनों श्रेष्ठ देवता—ब्रह्मा और रुद्र क्रमशः भगवान्के प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं तथा उन्हीं-के बताये हुए मार्गका आश्रय ले सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं। समस्त प्राणियोंको वर देनेवाले वे दोनों देवता सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं। (वास्तवमें तो वह सब कुछ भगवान्की इच्छासे ही होता है।)

इनमेंसे संहारकारी रुद्रके कपर्दी (जटा-जूटधारी), जटिल, मुण्ड, श्मशान-गृहका सेवन करनेवाले, उग्र व्रतका आचरण करनेवाले, रुद्र, योगी, परम दारुण, दक्षयज्ञ-विध्वंसक तथा भगनेत्रहारी आदि अनेक नाम हैं। पाण्डुनन्दन! इन भगवान् रुद्रको नारायण-स्वरूप ही जानना चाहिये। पार्थ! प्रत्येक युगमें उन देवाधिदेव महेश्वरकी पूजा करनेसे सर्व-समर्थ भगवान् नारायणकी ही पूजा होती है। पाण्डुकुमार! मैं सम्पूर्ण जगत्का आत्मा हूँ। इसलिये मैं पहले अपने आत्मारूप रुद्रकी ही पूजा करता हूँ। यदि मैं वरदाता भगवान् रुद्रकी पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकरका पूजन नहीं करेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मेरे किये हुए कार्यको प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं। जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रोंद्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओंकी पूजा करनी चाहिये—यह सोचकर ही मैं रुद्रदेवकी पूजा करता हूँ। जो रुद्रको जानता है, वह मुझे जानता है। जो उनका अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है।

कुन्तीनन्दन! रुद्र और नारायण दोनों एक रूप ही हैं, जो दो स्वरूप धारण करके भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंमें स्थित हो संसारमें यज्ञ आदि सब कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। पाण्डवोंको आनन्दित करनेवाले अर्जुन! मुझे दूसरा कोई वर नहीं दे सकता, यही सोचकर मैंने पुत्र-प्राप्तिके लिये स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप पुराण-पुरुष जगदीश्वर रुद्रकी आराधना की थी। विष्णु अपने आत्मस्वरूप रुद्रके सिवा किसी दूसरे देवताको प्रणाम नहीं करते; इसलिये मैं रुद्रका भजन करता हूँ। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा ऋषियों-सहित सम्पूर्ण देवता सुरश्रेष्ठ नारायण-देव श्रीहरिकी अर्चना करते हैं। भरतनन्दन! भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंमें होनेवाले समस्त पुरुषोंके भगवान् विष्णु ही अग्रगण्य हैं; अतः सबको सदा उन्हींकी सेवा-पूजा करनी चाहिये। कुन्तीकुमार! तुम हव्यदाता विष्णुको नमस्कार करो, शरणदाता श्रीहरिको शीश झुकाओ, वरदाता विष्णुकी वन्दना करो तथा हव्यकव्य-

भोक्ता भगवान्को प्रणाम करो ।

तुमने मुझसे सुना है कि आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके मनुष्य मेरे भक्त हैं । इनमें जो एकान्ततः मेरा ही भजन करते हैं, दूसरे देवताओंको अपना आराध्य नहीं मानते हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। निष्काम-भावसे समस्त कर्म करनेवाले उन भक्तोंकी परमगति मैं ही हूँ । जो शेष तीन प्रकारके भक्त हैं, वे फलकी इच्छा रखनेवाले माने गये हैं । अतः वे सभी नीचे गिरनेवाले होते हैं । वे पुण्यभोगके अनन्तर स्वर्गादि लोकोंसे च्युत हो जाते हैं; परंतु ज्ञानी भक्त सर्वश्रेष्ठ फल (भगवत्प्राप्ति) का भागी होता है । ज्ञानी भक्त ब्रह्मा, शिव तथा दूसरे देवताओंकी निष्काम-भावसे सेवा करते हुए भी अन्तमें मुझ परमात्माको ही प्राप्त होते हैं । पार्थ ! यह मैंने तुमसे भक्तोंका अन्तर बतलाया है ।

कुन्तीनन्दन ! तुम और मैं दोनों ही नर-नारायण नामक ऋषि हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये हमने मानव-शरीरमें प्रवेश किया है । भारत ! मैं अध्यात्म-योगोंको जानता हूँ तथा मैं कौन हूँ और कहाँसे आया हूँ—इस बातका भी मुझे ज्ञान है । लौकिक अभ्युदयका साधक प्रवृत्तिधर्म और निःश्रेयस प्रदान करनेवाला निवृत्तिधर्म भी मुझसे अज्ञात नहीं है । एकमात्र मैं सनातन पुरुष ही सम्पूर्ण मनुष्योंका सुविख्यात आश्रयभूत नारायण हूँ ।

''नरसे उत्पन्न होनेके कारण जलको 'नार' कहा गया है । वह नार (जल) पहले मेरा अयन (निवास-स्थान) था; इसीलिये मैं 'नारायण' कहलाता हूँ । (जो सबमें व्याप्त हो अथवा जो किसीका निवास-स्थान हो, उसे 'वासु' कहते हैं ।) मैं ही सूर्यरूप धारण करके अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करता हूँ तथा मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंका वास-स्थान हूँ; इसलिये मेरा नाम 'वासुदेव' है । भारत ! मैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति और उत्पत्तिका स्थान हूँ । पार्थ ! मैंने आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर रखा है । मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है । भरतनन्दन ! समस्त प्राणी अन्तकालमें जिस ब्रह्मको पानेकी इच्छा करते हैं, वह भी मैं ही हूँ । कुन्तीकुमार ! मैं सबका अतिक्रमण करके स्थित हूँ। इन सभी कारणोंसे मेरा नाम 'विष्णु' पड़ा है ।* मनुष्य दम (इन्द्रिय-संयम) के द्वारा सिद्धि पानेकी इच्छा करते हुए मुझे पाना चाहते हैं । तथा दमके द्वारा ही वे पृथ्वी, स्वर्ग एवं मध्यवर्ती लोकोंमें ऊँची स्थिति पानेकी अभिलाषा करते हैं; इसलिये मैं 'दामोदर' कहलाता हूँ (दम एव दामः तेन उदीर्यति—उन्नतिं प्राप्नोति यस्मात् स दामोदरः—यह 'दामोदर' शब्दकी व्युत्पत्ति है ।) अन्न, वेद, जल और अमृतको पृश्नि कहते हैं । ये सदा मेरे गर्भमें रहते हैं, इसलिये मेरा नाम 'पृश्निगर्भ' है । जब त्रित मुनि अपने भाइयोंद्वारा कुएँमें गिरा दिये गये, उस समय ऋषियोंने मुझसे इस प्रकार प्रार्थना की— 'पृश्निगर्भ ! आप एकत और द्वितके द्वारा गिराये हुए त्रितको डूबनेसे बचाइये ।' उस समय मेरे 'पृश्निगर्भ' नामका बारंबार कीर्तन करनेसे ब्रह्माजीके आदि-पुत्र ऋषिप्रवर त्रित उस कुएँसे बाहर हो गये । जगत्को तपानेवाले सूर्यकी तथा अग्नि और चन्द्रमाकी जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे सब मेरा केश कहलाती हैं । उस केशसे युक्त होनेके कारण सर्वज्ञ द्विजश्रेष्ठ मुझे 'केशव' कहते हैं । अर्जुन ! इस प्रकार मेरा 'केशव' नाम सम्पूर्ण देवताओं और महात्मा ऋषियोंके लिये वर-दायक है । अग्नि सोमके साथ संयुक्त हो एक योनिको प्राप्त हुए, इसलिये सम्पूर्ण चराचर जगत् अग्नि-सोममय है । पुराणमें यह कहा गया है कि अग्नि और सोम एकयोनि हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंके मुख अग्नि हैं । एकयोनि होनेके कारण ये एक-दूसरेको आनन्द प्रदान करते और समस्त लोकोंको धारण करते हैं ।

(शान्ति० ३४१ । ८–५१)

भगवान्ने आगे चलकर फिर कहा—

अब मैं अपने नामोंकी व्याख्या करूँगा । तुम एकाग्र-चित्त होकर सुनो । जगत्को मोद और ताप प्रदान

* 'विच्छ गतौ' (तुदादि), 'विच्छ दीप्तौ' (चुरादि), 'विषु सेचने' (भ्वादि), 'विष्लृ व्याप्तौ' (जुहोत्यादि), 'विश प्रवेशने' (तुदादि), 'ष्णु प्रस्रवणे' (अदादि)—इन सभी धातुओंसे 'विष्णु' शब्दकी सिद्धि होती है । अतः गति, दीप्ति, सेचन, व्याप्ति, प्रवेश तथा प्रस्रवण—ये सभी अर्थ 'विष्णु' शब्दमें निहित हैं ।

करनेके कारण चन्द्रमा और सूर्य हर्षदायक होते हैं। पाण्डुनन्दन ! अग्नि और सोमद्वारा किये गये इन कर्मोंद्वारा मैं विश्वभावन वरदायक ईश्वर ही 'हृषीकेश'* कहलाता हूँ, यज्ञमें, 'इळोपहूता सह दिवा' आदि मन्त्रसे आवाहन करनेपर मैं अपना भाग हरण (स्वीकार) करता हूँ, तथा मेरे शरीरका रंग भी हरित (श्याम)है; इसलिये लोग मुझे 'हरि' कहते हैं। प्राणियोंके सारका नाम है धाम और ऋतका अर्थ है सत्य, ऐसा विद्वानोंने विचार किया है। इसीलिये ब्राह्मणोंने तत्काल मेरा नाम 'ऋतधामा' रख दिया था। मैंने पूर्वकालमें नष्ट होकर रसातलमें गयी हुई पृथ्वीको पुनः वराहरूप धारण करके प्राप्त किया था, इसलिये देवताओंने अपनी वाणीद्वारा 'गोविन्द' कहकर मेरी स्तुति की थी (गां विन्दति इति गोविन्दः—जो पृथ्वीको प्राप्त करे, उसका नाम गोविन्द है।) मेरे 'शिपिविष्ट' नामकी व्याख्या इस प्रकार है। रोमहीन प्राणीको 'शिपि' कहते हैं—तथा 'विष्ट'का अर्थ है व्यापक। मैंने निराकाररूपसे समस्त जगत्को व्याप्त कर रखा है, इसलिये मुझे 'शिपिविष्ट' कहते हैं। यास्कमुनिने शान्तचित्त होकर अनेक यज्ञोंमें 'शिपिविष्ट' कहकर मेरी महिमाका गान किया है, अतः मैं इस गुह्य नामको धारण करता हूँ। उदारचेता यास्कमुनिने 'शिपिविष्ट' नामसे मेरी स्तुति करके मेरी ही कृपासे पाताललोकमें नष्ट हुए निरुक्तशास्त्रको पुनः प्राप्त किया था। मैंने न तो पहले कभी जन्म लिया है, न अब जन्म लेता हूँ और न आगे कभी जन्म लूँगा। मैं समस्त प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाला क्षेत्रज्ञ आत्मा हूँ। इसीलिये मेरा नाम 'अज' है। मैंने कभी ओछी या अश्लील बात मुँहसे नहीं निकाली है। सत्यस्वरूपा ब्रह्मपुत्री सरस्वती देवी मेरी वाणी हैं। कुन्तीकुमार ! सत् और असत्को भी मैंने अपने भीतर ही प्रविष्ट कर रखा है; इसलिये मेरे नाभिकमलरूप ब्रह्मलोकमें रहनेवाले ऋषिगण मुझे 'सत्य' कहते हैं। धनंजय ! मैं पहले कभी सत्त्वसे च्युत नहीं हुआ हूँ। सत्त्वको मुझसे ही उत्पन्न हुआ समझो। मेरा वह पुरातन सत्त्व इस अवतारकालमें भी विद्यमान है। सत्त्वके कारण ही मैं पापसे रहित हो निष्कामकर्ममें लगा रहता हूँ। भगवत्प्राप्त पुरुषोंके सात्त्वतज्ञान (पाञ्चरात्रादि वैष्णवतन्त्र) से मेरे स्वरूपका बोध होता है। इन सब कारणोंसे लोग मुझे 'सात्त्वत' कहते हैं।

पृथापुत्र अर्जुन ! मैं काले लोहेका विशाल फाल बनकर इस पृथ्वीको जोतता हूँ तथा मेरे शरीरका रंग भी काला है, इसलिये मैं 'कृष्ण' कहलाता हूँ†। मैंने भूमिको जलके साथ, आकाशको वायुके साथ और वायुको तेजके साथ संयुक्त किया है। इसलिये (विगता कुण्ठा पञ्चानां भूतानां मेलने असामर्थ्यं यस्य सः विकुण्ठः, विकुण्ठ एव वैकुण्ठः—पाँचों भूतोंको मिलानेमें जिनकी शक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती, वे भगवान् वैकुण्ठ हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार) मैं 'वैकुण्ठ' कहलाता हूँ। परम शान्तिमय जो ब्रह्म है, वही परम धर्म कहा गया है। उससे पहले मैं कभी च्युत नहीं हुआ हूँ।' इसलिये लोग मुझे 'अच्युत' कहते हैं। ('अधः' का अर्थ है पृथ्वी, 'अक्ष' का अर्थ है आकाश, और 'ज' का अर्थ है—इनको धारण करनेवाला) पृथ्वी और आकाश दोनों सर्वतोमुखी एवं प्रसिद्ध हैं। उनको अनायास ही धारण करनेके कारण लोग मुझे 'अधोक्षज' कहते हैं। वेदोंके शब्द और अर्थपर विचार करनेवाले वेदवेत्ता विद्वान् प्राग्वंश (यज्ञशालाके एक भाग) में बैठकर अधोक्षज नामसे मेरी महिमाका गान करते हैं। इसलिये भी मेरा नाम 'अधोक्षज' है। जिनके अनुग्रहसे जीव अधोगतिमें पड़कर क्षीण नहीं होता, उन भगवान्को दूसरे लोग इसी व्युत्पत्तिके अनुसार 'अधोक्षज' कहते हैं। महर्षिलोग 'अधोक्षज' शब्दको पृथक्-पृथक् तीन पदोंका एक समुदाय मानते हैं। 'अ' का अर्थ है—लय-स्थान, 'धोक्ष' का अर्थ है पालन-स्थान और 'ज' का अर्थ है—उत्पत्ति-स्थान। उत्पत्ति, स्थिति और लयके स्थान एकमात्र नारायण ही हैं; अतः उन भगवान्

---

* सूर्य और चन्द्रमा ही अग्नि एवं सोम हैं। वे जगत्को हर्ष प्रदान करनेके कारण 'हृषी' कहलाते हैं। वे ही भगवान्के केश अर्थात् किरणें हैं, इसलिये भगवान्का नाम हृषीकेश' है।

† 'कृष्ण' नामकी दूसरी व्युत्पत्ति भी इस प्रकार है—'कृष' नाम है सत्का और 'ण' कहते हैं आनन्दको। इन दोनोंसे उपलक्षित सच्चिदानन्दघन श्यामसुन्दर गोलोकबिहारी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण कहलाते हैं।

नारायणको छोड़कर संसारमें दूसरा कोई 'अधोक्षज' नहीं कहला सकता।

प्राणियोंके प्राणोंकी पुष्टि करनेवाला घृत मेरे स्वरूपभूत अग्निदेवकी अर्चिष् अर्थात् ज्वालाको जगानेवाला है; इसलिये शान्तचित्त वेदज्ञ विद्वानोंने मुझे 'घृतार्चि' कहा है। शरीरमें तीन धातु विख्यात हैं—वात, पित्त और कफ। ये सब-के-सब कर्म-जन्य माने गये हैं। इनके समुदायको 'त्रिधातु' कहते हैं। जीव इन धातुओंके रहनेसे जीवन धारण करते हैं और उनके क्षीण हो जानेपर क्षीण हो जाते हैं। इसलिये आयुर्वेदके विद्वान् मुझे 'त्रिधातु' कहते हैं। भरतनन्दन! भगवान् धर्म सम्पूर्ण लोकोंमें वृषके नामसे विख्यात हैं। वैदिक शब्दार्थ-बोधक कोषमें 'वृष'का अर्थ धर्म बताया गया है; अतः उत्तम धर्मस्वरूप मुझ वासुदेवको 'वृष' समझो। 'कपि' शब्दका अर्थ वराह एवं श्रेष्ठ है और 'वृष' कहते हैं धर्मको। मैं धर्म और श्रेष्ठ वराहरूपधारी हूँ, इसलिये प्रजापति कश्यप मुझे 'वृषाकपि' कहते हैं। मैं जगत्का साक्षी और सर्वव्यापी ईश्वर हूँ। देवता तथा असुर भी मेरे आदि, मध्य और अन्तका कभी पता नहीं पाते; इसलिये मैं 'अनादि', 'अमध्य' और 'अनन्त' कहलाता हूँ। धनंजय! मैं यहाँ पवित्र एवं श्रवण करने योग्य वचनोंको ही सुनता हूँ और पापपूर्ण बातोंको कभी ग्रहण नहीं करता इसलिये मेरा नाम 'शुचिश्रवा' है।

पूर्वकालमें मैंने एक सींगवाले वराहका रूप धारण करके इस पृथ्वीको पानीसे बाहर निकाला और सारे जगत्का आनन्द बढ़ाया; इसलिये मैं 'एकशृङ्ग' कहलाता हूँ। इसी प्रकार वराहरूप धारण करनेपर मेरे शरीरमें तीन ककुद् (ऊँचे स्थान) थे; इसलिये शरीरके मापसे मैं 'त्रिककुद्' नामसे विख्यात हुआ। कपिलमुनि-के द्वारा प्रतिपादित सांख्यशास्त्रका विचार करनेवाले विद्वानोंने जिन्हें विरिञ्च कहा है, वे सर्वलोकस्रष्टा प्रजापति 'विरिञ्च' मैं ही हूँ; क्योंकि मैं ही सबको चेतना प्रदान करता हूँ। तत्त्वका निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्रके आचार्योंने मुझे आदित्य-मण्डलमें स्थित, विद्याशक्तिके साहचर्यसे सम्पन्न सनातन देवता 'कपिल' कहा है। वेदोंमें जिनकी स्तुति की गयी है तथा इस जगत्में योगिजन सदा जिनकी पूजा और स्मरण करते हैं, वह तेजस्वी 'हिरण्यगर्भ' मैं ही हूँ। वेदके विद्वान् मुझे ही इक्कीस हजार ऋचाओंसे युक्त 'ऋग्वेद' और एक हजार शाखाओंवाला 'सामवेद' कहते हैं। आरण्यकोंमें ब्राह्मणलोग मेरा ही गान करते हैं। वे मेरे परम भक्त दुर्लभ हैं। जिस यजुर्वेदकी ५६+८+३७=१०१ शाखाएँ उपलब्ध हैं, उस यजुर्वेदमें भी मेरा ही गान किया गया है। अथर्ववेदी ब्राह्मण मुझे ही कृत्याओं—आभिचारिक प्रयोगोंसे सम्पन्न पञ्चकल्पा-त्मक 'अथर्ववेद' मानते हैं। वेदोंमें जो भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, उन शाखाओंमें जितने गीत हैं तथा उन गीतोंमें स्वर और वर्णके उच्चारणकी जो प्रक्रियाएँ हैं, उन सबको मेरी बनायी हुई ही समझो। कुन्ती-नन्दन! सबको वर देनेवाले जो हयग्रीव प्रकट होते हैं, उनके रूपमें मैं ही अवतीर्ण होता हूँ। मैं ही [illegible] वेद-मन्त्रोंके क्रम-विभाग और अक्षर-विभागका आश्रय हूँ।*

महात्मा पाञ्चालने वामदेवके बताये हुए ध्यान-मार्गसे मेरी आराधना करके मुझ सनातन पुरुषसे ही कृपाप्रसादसे वेदका क्रमविभाग प्राप्त किया था। बाभ्रव्य-गोत्रमें उत्पन्न हुए वे महर्षि गालव भगवान् नारायणसे वर एवं परम उत्तम योग पाकर वेदके क्रम-विभाग एवं शिक्षाका प्रणयन करके सबसे पहले क्रम-विभागके पारंगत विद्वान् हुए थे। [illegible] कुलमें उत्पन्न हुए प्रतापी राजा ब्रह्मदत्तने सात बार जन्म-मृत्यु-सम्बन्धी दुःखोंका बार-बार अनुभव करके उत्तम वैराग्यके कारण शीघ्र ही योगजनित सिद्धि प्राप्त कर लिया था। कुरुश्रेष्ठ! कुन्तीकुमार! पूर्वकालमें किसी कारणवश मैं धर्मके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुआ था; इसीलिये मुझे 'धर्मज' कहा गया है। पहले नर और नारायणने जब धर्ममय रथपर आरूढ़ हो गन्धमादन पर्वतपर अक्षय तप किया था, उसी समय प्रजापति दक्षका यज्ञ

* वेदमन्त्रके दो-दो पदोंका उच्चारण करके पहले-पहले-को छोड़ते जाना और उत्तरोत्तर पदोंको मिलाकर दो-दो पदों-का एक साथ पाठ करते रहना क्रमविभाग कहलाता है। जैसे—'अग्निमीळे पुरोहितम्' इस मन्त्रका क्रमपाठ इस प्रकार है—'अग्निमीले, ईले पुरोहितं, पुरोहितं यज्ञस्य' इत्यादि। अक्षरविभागका अर्थ है पदविभाग—एक-एक पदको अलग-अलग करके पढ़ना। यथा 'अग्निम् ईले पुरोहितम्' इत्यादि।

आरम्भ हुआ। भारत ! उस यज्ञमें दक्षने रुद्रके लिये भाग नहीं दिया था, इसलिये दधीचिके कहनेसे रुद्रदेवने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला। रुद्रने क्रोधपूर्वक अपने प्रज्वलित त्रिशूलका बारंबार प्रयोग किया। वह त्रिशूल दक्षके विस्तृत यज्ञको भस्म करके सहसा बदरिकाश्रममें हम दोनों (नर और नारायण) के निकट आ पहुँचा। पार्थ ! उस समय नारायणकी छातीमें वह त्रिशूल बड़े वेगसे जा लगा। उससे निकलते हुए तेजकी लपेटमें आकर नारायणके केश मूँजके समान रंगवाले हो गये। इससे मेरा नाम 'मुञ्जकेश' हो गया। तब महात्मा नारायणने हुंकार-ध्वनिके द्वारा उस त्रिशूलको पीछे हटा दिया। नारायणके हुंकारसे प्रतिहत होकर वह शंकरजीके हाथमें चला गया। यह देख रुद्र तपस्यामें लगे हुए उन ऋषियोंपर टूट पड़े। तब विश्वात्मा नारायणने अपने हाथसे उन आक्रमणकारी रुद्रदेवका गला पकड़ लिया। इसीसे कण्ठ नीला हो जानेके कारण वे 'नीलकण्ठ' के नामसे प्रसिद्ध हुए। इसी समय रुद्रका विनाश करनेके लिये नरने एक सींक निकाली और उसे मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके शीघ्र ही छोड़ दिया। वह सींक एक बहुत बड़े परशुके रूपमें परिणत हो गयी। नरका चलाया हुआ वह परशु सहसा रुद्रके द्वारा खण्डित कर दिया गया। मेरे परशुका खण्डन हो जानेसे मैं 'खण्डपरशु' कहलाया।

(शान्ति० ३४१ । ६७ से ११६ तक)

[अनुशासनपर्व]

ऋषय ऊचुः

पिनाकिन् भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥

ईश्वर उवाच

पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः ।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुराः ॥
ऋषयो देहसम्भूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः ।
पितामहगृहं साक्षात् सर्वदेवगृहं च सः ॥
सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः ।
संहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च ॥
स हि देववरः साक्षाद् देवनाथः परंतपः ।
सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतोमुखः ॥
परमात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
न तस्मात् परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
सनातनो वै मधुहा गोविन्द इति विश्रुतः ।
स सर्वान् पार्थिवान् संख्ये घातयिष्यति मानदः ॥
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुषं वपुरास्थितः ।
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः ॥
भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः ।
नायकः सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतः ॥
एतस्य देवनाथस्य देवकार्यपरस्य च ।
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ॥
ब्रह्मा वसति गर्भस्थः शरीरे सुखसंस्थितः ।
शर्वः सुखं संश्रितश्च शरीरे सुखसंस्थितः ॥
सर्वाः सुखं संश्रिताश्च शरीरे तस्य देवताः ।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः ।
उत्तमेन स शीलेन दमेन च शमेन च ॥

ऋषियोंकी प्रार्थनापर श्रीशंकरके द्वारा श्रीकृष्णका माहात्म्य-कथन

पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च ।
आरोहेण प्रमाणेन धैर्येणार्जवसम्पदा ॥
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः ।
अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥
योगमायः सहस्राक्षो निरपायो महामनाः ।
वीरो मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥
क्षमावांश्चानहंवादी ब्रह्मण्यो ब्रह्मनायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्राणां नन्दिवर्धनः ॥
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः ।
श्रुतवानर्थसम्पन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित् ।
नीतिज्ञो नीतिसम्पन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥
भवार्थमिह देवानां बुद्ध्या परमया युतः ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः ।
अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः ॥

(अनु० १४७ । १—२३)

ऋषियोंने कहा—भगदेवताके नेत्रोंका विनाश करनेवाले पिनाकधारी विश्ववन्दित भगवान् शंकर ! अब

हम वासुदेव (श्रीकृष्ण) का माहात्म्य सुनना चाहते हैं। महेश्वरने कहा—'मुनिवरो ! भगवान् सनातन पुरुष श्रीकृष्ण ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। वे श्रीहरि जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान श्यामकान्तिसे युक्त हैं। वे बिना बादलके आकाशमें उदित सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनकी भुजाएँ दस हैं। वे महान् तेजस्वी हैं। देव-द्रोहियोंका नाश करनेवाले श्रीवत्सभूषित भगवान् हृषीकेश सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। ब्रह्माजी उनके उदरसे और मैं उनके मस्तकसे प्रकट हुआ हूँ। उनके सिरके केशोंसे नक्षत्रों और ताराओंका प्रादुर्भाव हुआ है। रोमावलियोंसे देवता और असुर प्रकट हुए हैं। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रहसे उत्पन्न हुए हैं। वे श्रीहरि स्वयं ही सम्पूर्ण देवताओंके गृह और ब्रह्माजीके भी निवासस्थान हैं। इस सम्पूर्ण पृथ्वीके स्रष्टा और तीनों लोकोंके स्वामी भी वे ही हैं। वे ही चराचर प्राणियोंका संहार भी करते हैं। वे देवताओंमें श्रेष्ठ, देवताओंके रक्षक, शत्रुओंको संताप देनेवाले, सर्वज्ञ, सबमें ओतप्रोत, सर्वव्यापक तथा सब ओर मुखवाले हैं। वे ही परमात्मा, इन्द्रियोंके प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे ही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

सज्जनोंको आदर देनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत-युद्धमें समस्त राजाओंका संहार करायेंगे। वे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर मानव-शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। उन भगवान् त्रिविक्रम-की शक्ति और सहायताके बिना सम्पूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। संसारमें नेताके बिना देवता अपना कोई भी कार्य करनेमें असमर्थ हैं और ये भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण प्राणियोंके नेता हैं। इसलिये समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। देवताओंकी रक्षा और उनके कार्यसाधनमें संलग्न रहनेवाले वे भगवान् वासुदेव ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही ब्रह्मर्षियोंको सदा शरण देते हैं। ब्रह्माजी उनके शरीरके भीतर अर्थात् उनके गर्भमें बड़े सुखके साथ रहते हैं। सदा रहनेवाला मैं शिव भी उनके श्रीविग्रहके भीतर सुखपूर्वक निवास करता हूँ। सम्पूर्ण देवता उनके श्रीविग्रहमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। उन कमलनयन श्रीहरि अपने गर्भ (वक्षःस्थल) में लक्ष्मीको निवास दे रखा है। लक्ष्मीके साथ ही वे रहते हैं। शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आयुध हैं। उनकी ध्वजामें सम्पूर्ण नागोंके शत्रु गरुड़का चिह्न सुशोभित है। वे उत्तम शील, शम, दम, पराक्रम, वीरता, सुन्दर शरीर, उत्तम दर्शन, सुडौल आकृति, धैर्य, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। सब प्रकारके दिव्य और अद्भुत अस्त्र-शस्त्र उनके पास सदा विद्यमान रहते हैं। वे योगमायासे सम्पन्न और हजारों नेत्रोंवाले हैं। उनका हृदय विशाल है।

वे अविनाशी, वीर, मित्रजनोंके प्रशंसक, ज्ञाति एवं बन्धु-बान्धवोंके प्रेमी, क्षमाशील, अहंकाररहित, ब्राह्मणभक्त, वेदोंका उद्धार करनेवाले, भयातुर पुरुषोंका भय दूर करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले हैं। वे समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले, दीन-दुखियोंके पालनमें तत्पर, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, धनवान्, सर्वभूतवन्दित, शरणमें आये हुए शत्रुओंको भी वर देनेवाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, नीतिमान्, वेदोंके वक्ता और जितेन्द्रिय हैं। परम बुद्धिसे सम्पन्न भगवान् गोविन्द यहाँ देवताओंकी उन्नतिके लिये प्रजापतिके शुभ मार्गपर स्थित हो मनुके धर्म-संस्कृत कुलमें अवतार लेंगे। महात्मा मनुके वंशमें मनुपुत्र अङ्ग नामक राजा होंगे। उनसे अन्तर्धामा नामवाले पुत्रका जन्म होगा।

तं भवन्तः समासाद्य वाङ्माल्यैरर्हणैर्वरैः।
अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्॥
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम्।
द्रष्टव्यस्तेन भगवान् वासुदेवः प्रतापवान्॥
दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा।
पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधनाः॥
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति।
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति॥
यश्च तं मानवे लोके संश्रयिष्यति केशवम्।
तस्य कीर्तिर्जयश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति॥
धर्माणां देशिकः साक्षात् स भविष्यति धर्मभाक्।
धर्मवद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदोद्यतैः॥

धर्म एव परो हि स्यात् तस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ ।
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ॥
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज ह ।
ताः सृष्टास्तेन विभुना पर्वते गन्धमादने ॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसान्विताः ।
तस्मात् स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवाः ॥
दिवि श्रेष्ठो हि भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ।
अर्हितश्चार्हयेन्नित्यं पूजितः प्रतिपूजयेत् ॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत् ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥
एतत् तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं व्रतम् ।
आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः ।
अभयेनानुरूपेण युज्यन्ते तमनुव्रताः ॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा ।
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥
एष वोऽभिहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः ।
तं दृष्ट्वा सर्वशो देवं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम् ।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः ।
समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥
(अनु० १४७ । ३७—५३)

'आपलोग उन्हीं भगवान्‌की शरण लेकर अपनी वाङ्मयी मालाओं तथा श्रेष्ठ पूजनोपचारोंसे सनातन ब्रह्माकी भाँति उनका यथोचित पूजन करें । जो मेरा और पितामह ब्रह्माजीका दर्शन करना चाहता है, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेवका दर्शन करना चाहिये । तपोधनो ! उनका दर्शन हो जानेपर मेरा ही दर्शन हो गया । अथवा उनके दर्शनसे देवेश्वर ब्रह्माजीका दर्शन हो गया—ऐसा समझो । इस विषयमें मुझे कोई विचार नहीं करना है अर्थात् संदेह नहीं है । जिसपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे, उसके ऊपर ब्रह्मा आदि देवताओंका समुदाय प्रसन्न हो जायगा । मानवलोकमें जो भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेगा, उसे कीर्ति, विजय तथा उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होगी । इतना ही नहीं, वह धर्मोंका उपदेश देनेवाला साक्षात् धर्माचार्य एवं धर्मफलका भागी होगा । अतः धर्मात्मा पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा उत्साहित रहकर देवेश्वर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करें । उन सर्वव्यापी परमेश्वरकी पूजा करनेसे परमधर्मकी सिद्धि होगी । वे महान् तेजस्वी देवता हैं । उन पुरुषसिंह श्रीकृष्णने प्रजाका हित करनेकी इच्छासे धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये करोड़ों ऋषियोंकी सृष्टि की है । भगवान्‌के उत्पन्न किये हुए वे सनत्कुमार आदि ऋषि गन्धमादन पर्वतपर सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं । अतः द्विजवरो ! उन प्रवचनकुशल, धर्मज्ञ वासुदेवको सदा प्रणाम करना चाहिये ।

वे भगवान् नारायण हरि देवलोकमें सबसे श्रेष्ठ हैं । जो उनकी वन्दना करता है, उसकी वे भी वन्दना करते हैं । जो उनका आदर करता है, उसका वे भी आदर करते हैं । इसी प्रकार अर्चित होनेपर वे भी अर्चना करते और पूजित या प्रशंसित होनेपर वे भी पूजा या प्रशंसा करते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! जो प्रतिदिन उनका दर्शन करता है, उसकी ओर वे भी कृपादृष्टि करते हैं । जो उनका आश्रय लेता है, उसके हृदयमें वे भी आश्रय लेते हैं तथा जो उनकी पूजा करता है, उसकी वे भी सदा पूजा करते हैं । उन प्रशंसनीय आदि देवता भगवान् महाविष्णुका यह उत्तम व्रत है, जिसका साधु पुरुष सदा आचरण करते आये हैं । वे सनातन देवता हैं, अतः इस त्रिभुवनमें देवता भी सदा उन्हींकी पूजा करते हैं । जो उनके अनन्य भक्त हैं, वे अपने भजनके अनुरूप ही निर्भयपद प्राप्त करते हैं । द्विजोंको चाहिये कि वे मन, वाणी और कर्मसे सदा उन भगवान्‌को प्रणाम करें और यत्नपूर्वक उपासना करके उन देवकीनन्दनका दर्शन करें । मुनिवरो ! यह मैंने आपलोगोंको उत्तम मार्ग बता दिया है । उन भगवान् वासुदेवका सब प्रकारसे दर्शन कर लेनेपर सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंका दर्शन करना हो जायगा । मैं भी महावराहरूप धारण करनेवाले उन सर्वलोकपितामह जगदीश्वरको नित्य प्रणाम करता हूँ । हम सब देवता उनके श्रीविग्रहमें निवास करते हैं । अतः उनका दर्शन करनेसे तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का दर्शन हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।

एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः ।
यद् भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः ॥
(अनु० १४७ । ६२)

तपोधनो ! आपलोगोंपर अनुग्रह करके मैंने भगवान्‌का पवित्र माहात्म्य इसलिये बताया है कि आप प्रयत्नपूर्वक उन यदुकुलतिलक श्रीकृष्णकी पूजा करें ।

भीष्मपितामहके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका कथन

इन श्रीकृष्णका जो स्वरूप है और जो इनका पुरातन बल है, उसे ठीक-ठीक मैं जानता हूँ । कौरवराज ! भगवान् श्रीकृष्ण अप्रमेय हैं, अतः तुम्हारे मनमें संदेह होनेपर ये ही तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे । श्रीकृष्णने ही इस पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है । इन्हींके शरीरसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ है । ये ही भयंकर बलवाले वराहके रूपमें प्रकट हुए थे तथा इन्हीं पुराण-पुरुषने पर्वतों और दिशाओंको उत्पन्न किया है । अन्तरिक्ष, स्वर्ग, चारों दिशाएँ तथा चारों कोण—ये सब भगवान् श्रीकृष्णसे नीचे हैं । इन्हींसे सृष्टिकी परम्परा प्रचलित हुई है तथा इन्होंने ही इस प्राचीन विश्वका निर्माण किया है । कुन्तीनन्दन ! सृष्टिके आरम्भमें इनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ और उसीके भीतर अमित-तेजस्वी ब्रह्माजी स्वतः प्रकट हुए, जिन्होंने उस घोर अन्धकारका नाश किया, जो समुद्रको भी डाँट बताता हुआ सब ओर व्याप्त हो रहा था (अर्थात् जो अगाध और अपार था) । पार्थ ! सत्ययुगमें श्रीकृष्ण सम्पूर्ण धर्मरूपसे विराजमान थे, त्रेतामें पूर्णज्ञान या विवेकरूपमें स्थित थे, द्वापरमें बलरूपसे स्थित हुए और कलियुगमें अधर्मरूपसे इस पृथ्वीपर आयेंगे (अर्थात् उस समय अधर्म ही बलवान् होगा) । इन्होंने ही प्राचीन कालमें दैत्योंका संहार किया और ये ही दैत्यसम्राट् बलिके रूपमें प्रकट हुए । इन भूतभावन प्रभुके ही भूत और भविष्य स्वरूप भी हैं । तथा ये ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाले हैं । जब धर्मका ह्रास होने लगता है, तब ये शुद्ध अन्तःकरणवाले श्रीकृष्ण देवताओं तथा मनुष्योंके कुलमें अवतार लेकर स्वयं धर्ममें स्थित हो उसका आचरण करते हुए उसकी स्थापना तथा पर और अपर लोकोंकी रक्षा करते हैं । कुन्तीनन्दन ! ये त्याज्यवस्तुका त्याग करके, असुरोंका वध करनेके लिये स्वयं कारण बनते हैं । कार्य, अकार्य और कारण—सब इन्हींके स्वरूप हैं । ये नारायणदेव ही भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें किये जानेवाले कर्मरूप हैं । तुम इन्हींको राहु, चन्द्रमा और इन्द्र समझो । श्रीकृष्ण ही विश्वकर्मा, विश्वरूप, विश्वभोक्ता, विश्वविधाता और विश्वविजेता हैं । वे ही एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें रक्तसे भरा खप्पर लिये विकराल रूप धारण करते हैं । अपने नाना प्रकारके कर्मोंसे जगत्‌में विख्यात हुए श्रीकृष्णकी ही सब लोग स्तुति करते हैं । सैकड़ों गन्धर्व, अप्सराएँ तथा देवता सदा इनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं । राक्षस भी इनसे सम्मति लिया करते हैं । एकमात्र ये ही धनके रक्षक और विजयके अभिलाषी हैं । यज्ञमें स्तोतालोग इन्हींकी स्तुति करते हैं । सामगान करनेवाले विद्वान् रथन्तर साममें इन्हींके गुण गाते हैं । वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदके मन्त्रोंसे इन्हींका स्तवन करते हैं और यजुर्वेदी अध्वर्यु यज्ञमें इन्हींको हविष्यका भाग देते हैं । भारत ! इन्होंने ही पूर्वकालमें ब्रह्मरूप पुरातन गुहामें प्रवेश करके इस पृथ्वीका जलमें प्रलय होना देखा है । इन सृष्टिकर्म करनेवाले श्रीकृष्णने दैत्यों, दानवों तथा नागोंको विक्षुब्ध करके इस पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया है। व्रजकी रक्षाके लिये गोवर्द्धन पर्वत उठानेके समय इन्द्र आदि देवताओंने इनकी स्तुति की थी । भरतनन्दन ! ये एकमात्र श्रीकृष्ण ही समस्त पशुओं (जीवों) के अधिपति हैं । इनको नाना प्रकारके भोजन अर्पित किये जाते हैं । युद्धमें ये ही विजय दिलानेवाले माने जाते हैं । पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोक—सभी इन सनातन पुरुष श्रीकृष्णके वशमें रहते हैं । इन्होंने कुम्भमें देवताओं (मित्र और वरुण) का वीर्य स्थापित किया था, जिससे महर्षि वसिष्ठकी

उत्पत्ति हुई बतायी जाती है । ये ही सर्वत्र विचरनेवाले वायु हैं, तीव्रगामी अश्व हैं, सर्वव्यापी हैं, अंशुमाली सूर्य और आदि देवता हैं । इन्होंने ही समस्त असुरोंपर विजय पायी तथा इन्होंने ही अपने तीन पदोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था । ये श्रीकृष्ण सम्पूर्ण देवताओं, पितरों और मनुष्योंके आत्मा हैं । इन्हींको यज्ञवेत्ताओंका यज्ञ कहा गया है । ये ही दिन और रातका विभाग करते हुए सूर्यरूपमें उदित होते हैं । उत्तरायण और दक्षिणायन इन्हींके दो मार्ग हैं । इन्हींके ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलमें पृथ्वीको प्रकाशित करनेवाली किरणें फैलती हैं । वेदवेत्ता ब्राह्मण इन्हींकी सेवा करते हैं और इन्हींके प्रकाशका सहारा लेकर सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं । ये यज्ञकर्ता श्रीकृष्ण प्रत्येक मासमें यज्ञ करते हैं । प्रत्येक यज्ञमें वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हींके गुण गाते हैं । ये ही तीन नाभियों, तीन धामों और सात अश्वोंसे युक्त इस संवत्सर-चक्रको धारण करते हैं । वीर कुन्तीनन्दन ! ये महातेजस्वी और सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले सर्वसिंह श्रीकृष्ण अकेले ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं । तुम इन श्रीकृष्णको ही अन्धकारनाशक सूर्य और समस्त कार्योंका कर्ता समझो । इन्हीं महात्मा वासुदेवने एक बार अग्निस्वरूप होकर खाण्डववनकी सूखी लकड़ियोंमें व्याप्त हो पूर्णतः तृप्तिका अनुभव किया था । ये सर्वव्यापी प्रभु ही राक्षसों और नागोंको जीतकर सबको अग्निमें ही होम देते हैं । इन्होंने ही अर्जुनको श्वेत अश्व प्रदान किया था । इन्होंने ही समस्त अश्वोंकी सृष्टि की थी । ये ही संसाररूपी रथको बाँधनेवाले बन्धन हैं । सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही इस रथके चक्र हैं । ऊर्ध्व, मध्य और अधः—तीन प्रकारकी जिसकी गति है; काल, अदृष्ट, इच्छा और संकल्प—ये चार जिसके घोड़े हैं; सफेद, काला और लाल रंगका—त्रिविध कर्म ही जिसकी नाभि है, वह संसार-रथ इन श्रीकृष्णके ही अधिकारमें है । पाँचों भूतोंके आश्रयरूप श्रीकृष्णने ही आकाशकी सृष्टि की है । इन्होंने ही पृथ्वी, स्वर्गलोक और अन्तरिक्षकी रचना की है, अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी इन हृषीकेशने ही वन और पर्वतोंको उत्पन्न किया है । इन्हीं वासुदेवने वज्रका प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए इन्द्रको मार डालनेकी इच्छासे कितनी ही सरिताओंको लाँघकर उन्हें परास्त किया था । वे ही महेन्द्र-रूप हैं । ब्राह्मण बड़े-बड़े यज्ञोंमें सहस्रों पुरानी ऋचाओं-द्वारा एकमात्र इन्हींकी स्तुति करते हैं । राजन् ! इन श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो अपने घरमें महातेजस्वी दुर्वासाको ठहरा सके । इनको ही अद्वितीय पुरातन ऋषि कहते हैं । ये ही विश्वनिर्माता हैं और अपने स्वरूपसे ही अनेकों पदार्थोंकी सृष्टि करते रहते हैं । ये देवताओंके देवता होकर भी वेदोंका अध्ययन करते और प्राचीन विधियोंका आश्रय लेते हैं । लौकिक और वैदिक कर्मका जो फल है, वह सब श्रीकृष्ण ही हैं, ऐसा विश्वास करो । ये ही सम्पूर्ण लोकोंकी शुक्ल ज्योति हैं तथा तीनों लोक, तीनों लोकपाल, त्रिविध अग्नि, तीनों व्याहृतियाँ और सम्पूर्ण देवता भी ये देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं । संवत्सर, ऋतु, पक्ष, दिन-रात, कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त, लव और क्षण—इन सबको श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो । पार्थ ! चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, अमावास्या, पौर्णमासी, नक्षत्रयोग तथा ऋतु—इन सबकी उत्पत्ति श्रीकृष्णसे ही हुई है । रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि—ये सब-के-सब श्रीकृष्णसे ही प्रकट हुए हैं । विश्वरूप श्रीकृष्ण ही वायुरूप धारण करके संसारको चेष्टा प्रदान करते हैं, अग्निरूप होकर सबको भस्म करते हैं, जलका रूप धारण करके जगत्‌को डुबाते हैं और ब्रह्मा होकर सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं । ये स्वयं वेद्यस्वरूप होकर भी वेदवेद्य तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करते हैं, विधिरूप होकर भी विहित कर्मोंका आश्रय लेते हैं । ये ही धर्म, वेद और बलमें स्थित हैं । तुम यह विश्वास करो कि सारा चराचर जगत् श्रीकृष्णका ही स्वरूप है । ये विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण परम ज्योतिर्मय सूर्यका रूप धारण करके पूर्व दिशामें

प्रकट होते हैं, जिनकी प्रभासे सारा जगत् प्रकाशित होता है। ये समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं। इन्होंने पूर्वकालमें पहले जलकी सृष्टि करके फिर सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया था। ऋतु, नाना प्रकारके उत्पात, अनेकानेक अद्भुत पदार्थ, मेघ, बिजली, ऐरावत और सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्ति इन्हींसे हुई है। तुम इन्हींको समस्त विश्वका आत्मा—विष्णु समझो। ये विश्वके निवासस्थान और निर्गुण हैं। इन्हींको वासुदेव, जीवभूत संकर्षण, प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध कहते हैं। ये आत्मयोनि परमात्मा सबको अपनी आज्ञाके अधीन रखते हैं। कुन्तीकुमार ! ये देवता, असुर, मनुष्य, पितर और तिर्यग्रूपसे पाँच प्रकारके संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा रखकर पञ्चभूतोंसे युक्त जगत्के प्रेरक होकर सबको अपने अधीन रखते हैं। उन्होंने ही क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशकी सृष्टि की है। इन्होंने जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंसे युक्त इस चराचर जगत्की सृष्टि करके चतुर्विध भूत-समुदाय और कर्म—इन पाँचोंकी बीजरूपा भूमिका निर्माण किया। ये ही आकाशस्वरूप बनकर इस पृथ्वीपर प्रचुर जलकी वर्षा करते हैं। राजन् ! इन्होंने ही इस विश्वको उत्पन्न किया है और ये ही आत्मयोनि श्रीकृष्ण अपनी ही शक्तिसे सबको जीवन प्रदान करते हैं। देवता, असुर, मनुष्यलोक, ऋषि, पितर, प्रजा और संक्षेपतः सम्पूर्ण प्राणियोंको इन्हींसे जीवन मिलता है। ये भगवान् भूतनाथ ही सदा विधिपूर्वक समस्त भूतोंकी सृष्टिकी इच्छा रखते हैं। शुभ-अशुभ और स्थावर-जङ्गमरूप यह सारा जगत् श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुआ है, इस बातपर विश्वास करो। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है, यह तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्राणियोंका अन्तकाल आनेपर साक्षात् श्रीकृष्ण ही मृत्युरूप बन जाते हैं। ये धर्मके सनातन रक्षक हैं। जो बात बीत चुकी है तथा जिसका अभी कोई पता नहीं है, वे सब श्रीकृष्णसे ही प्रकट होते हैं—यह निश्चितरूपसे जान लो। तीनों लोकोंमें जो कुछ भी उत्तम, पवित्र तथा शुभ या अशुभ वस्तु है, वह सब अचिन्त्य भगवान् श्रीकृष्णका ही स्वरूप है; श्रीकृष्णसे भिन्न कोई वस्तु है, यह सोचना अपनी विपरीत बुद्धिका ही परिचय देना है। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी ही महिमा है। बल्कि ये इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये ही परम पुरुष अविनाशी नारायण हैं। ये ही स्थावर-जङ्गमरूप जगत्के आदि, मध्य और अन्त हैं तथा संसारमें जन्म लेनेकी इच्छावाले प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण भी ये ही हैं। इन्हींको अविकारी परमात्मा कहते हैं।

(अनु० १५८। ६-४६)

धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर भगवान्के द्वारा अपनी स्वरूप-महिमाका कथन

इदं मे मानुषं जन्म कृतमात्मनि मायया।
धर्मसंस्थापनार्थाय दुष्टानां नाशनाय च॥
मानुष्यं भावमापन्नं ये मां गृह्णन्त्यवज्ञया।
संसारान्तर्हि ते मूढास्तिर्यग्योनिष्वनेकशः॥
ये च मां सर्वभूतस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।
मद्भक्तांस्तान् सदा युक्तान् मत्समीपं नयाम्यहम्॥
मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
मद्भक्तानां तु मानुष्ये सफलं जन्म पाण्डव॥
अपि पापेष्वभिरता मद्भक्ताः पाण्डुनन्दन।
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाम्भसा॥
जन्मान्तरसहस्रेषु तपसा भावितात्मनाम्।
भक्तिरुत्पद्यते तात मनुष्याणां न संशयः॥
यच्च रूपं परं गुह्यं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
न दृश्यते तथा देवैर्मद्भक्तैर्दृश्यते यथा॥
अपरं यच्च मे रूपं प्रादुर्भावेषु दृश्यते।
तदर्चयन्ति सर्वार्थैः सर्वभूतानि पाण्डव॥
कल्पकोटिसहस्रेषु व्यतीतेष्वागतेषु च।
दर्शयामीह तद् रूपं यच्च पश्यन्ति मे सुराः॥
स्थित्युत्पत्त्यप्ययकरं यो मां ज्ञात्वा प्रपद्यते।
अनुगृह्णाम्यहं तं वै संसारान्मोचयामि च॥

अहमादिर्हि देवानां सृष्टा ब्रह्मादयो मया ।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य जगत् सर्वं सृजाम्यहम् ॥
तमोमूलोऽहमव्यक्तो रजोमध्ये प्रतिष्ठितः ।
ऊर्ध्वं सत्त्वं विना लोभं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यतः ॥
मूर्द्धानं मे विद्धि दिवं चन्द्रादित्यौ च लोचने ।
गावोऽग्निर्ब्राह्मणो वक्त्रं मारुतः श्वसनं च मे ॥
दिशो मे बाहवश्चाष्टौ नक्षत्राणि च भूषणम् ।
अन्तरिक्षमुरो विद्धि सर्वभूतावकाशकम् ॥
मार्गौ मेघानिलाभ्यां तु यन्ममोदरमव्ययम् ।
पृथिवीमण्डलं यद् वै द्वीपार्णववनैर्युतम् ॥
सर्वसंधारणोपेतं पादौ मम युधिष्ठिर ।
स्थितो ह्येकगुणः खेऽहं द्विगुणश्चास्मि मारुते ॥
त्रिगुणोऽग्नौ स्थितोऽहं वै सलिले च चतुर्गुणः ।
शब्दाद्या ये गुणाः पञ्च महाभूतेषु पञ्चसु ॥
तन्मात्रासंस्थितः सोऽहं पृथिव्यां पञ्चधा स्थितः ।
अहं सहस्रशीर्षस्तु सहस्रवदनेक्षणः ॥
सहस्रबाहूदरधृक् सहस्रोरुसहस्रपात् ।
धृत्वोर्वीं सर्वतः सम्यगत्यतिष्ठं दशाङ्गुलम् ॥
सर्वभूतात्मभूतस्थः सर्वव्यापी ततोऽस्म्यहम् ।
अचिन्त्योऽहमनन्तोऽहमजरोऽहमजो ह्यहम् ॥
अनाद्योऽहमवध्योऽहमप्रमेयोऽहमव्ययः ।
निर्गुणोऽहं निगूढात्मा निर्द्वन्द्वो निर्ममो नृप ॥
निष्कलो निर्विकारोऽहं निदानममृतस्य तु ।
सुधा चाहं स्वधा चाहं स्वाहा चाहं नराधिप ॥
तेजसा तपसा चाहं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
स्नेहपाशैर्गुणैर्बद्ध्वा धारयाम्यात्ममायया ॥
चातुराश्रमधर्मोऽहं चातुर्होत्रफलाशनः ।
चतुर्मूर्तिश्चतुर्यज्ञश्चतुराश्रमभावनः ॥
संहृत्याहं जगत् सर्वं कृत्वा वै गर्भमात्मनः ।
शयामि दिव्ययोगेन प्रलयेषु युधिष्ठिर ॥
सहस्रयुगपर्यन्तां ब्राह्मीं रात्रिं महार्णवे ।
स्थित्वा सृजामि भूतानि जङ्गमानि स्थिराणि च ॥
कल्पे कल्पे च भूतानि संहरामि सृजामि च ।
न च मां तानि जानन्ति मायया मोहितानि मे ॥
मम चैवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य नित्यशः ।
प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिर्नैवोपलभ्यते ॥
न तदस्ति क्वचिद् राजन् यत्राहं न प्रतिष्ठितः ।
न च तद् विद्यते भूतं मयि यन्न प्रतिष्ठितम् ॥
यावन्मात्रं भवेद् भूतं स्थूलं सूक्ष्ममिदं जगत् ।
जीवभूतो ह्यहं तस्मिंस्तावन्मात्रं प्रतिष्ठितः ॥
किं चात्र बहुनोक्तेन सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
यद् भूतं यद् भविष्यच्च तत् सर्वमहमेव तु ॥
मया सृष्टानि भूतानि मन्मयानि च भारत ।
मामेव न विजानन्ति मायया मोहितानि वै ॥
एवं सर्वं जगदिदं सदेवासुरमानुषम् ।
मत्तः प्रभवते राजन् मय्येव प्रविलीयते ॥

(पृ० ६३०८)

'इस समय धर्मकी स्थापना और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये मैंने अपनी मायासे मानव-शरीरमें अवतार धारण किया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य-शरीरमें ही समझकर मेरी अवहेलना करते हैं, वे मूर्ख हैं और संसारके भीतर बारंबार तिर्यग्योनियोंमें भटकते रहते हैं। इसके विपरीत जो ज्ञानदृष्टिसे मुझे सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित देखते हैं, वे सदा मुझमें मन लगाये रहनेवाले मेरे भक्त हैं; ऐसे भक्तोंको मैं परमधाममें अपने पास बुला लेता हूँ। पाण्डुपुत्र ! मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता, वे निष्पाप होते हैं। मनुष्योंमें उन्हींका जन्म सफल है, जो मेरे भक्त हैं। पाण्डुनन्दन ! पापोंमें अभिरत रहनेवाले मनुष्य भी यदि मेरे भक्त हो जायँ तो वे सारे पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाते हैं, जैसे जलसे कमलका पत्ता निर्लिप्त रहता है। हजारों जन्मोंतक तपस्या करनेसे जब मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब उनमें निस्संदेह भक्तिका उदय होता है। मेरा जो अत्यन्त गोपनीय कूटस्थ, अचल और अविनाशी परस्वरूप है, उसका मेरे भक्तोंको जैसा अनुभव होता है, वैसा देवताओंको भी नहीं होता। पाण्डव ! जो मेरा अपरस्वरूप है, वह अवतार लेनेपर दृष्टिगोचर होता है। संसारके समस्त जीव सब प्रकारके पदार्थोंसे उसकी पूजा करते हैं। बीते हुए तथा आनेवाले हजारों और करोड़ों कल्पोंमें मैं भक्तोंको उसी रूपसे दर्शन देता हूँ, जिस वैष्णव-

रूपको देवगण देखते हैं। जो मनुष्य मुझे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कारण समझकर मेरी शरण लेता है, उसके ऊपर कृपा करके मैं उसे संसार-बन्धनसे मुक्त कर देता हूँ। मैं ही देवताओंका आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओंकी मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करता हूँ। मैं अव्यक्त परमेश्वर ही तमोगुणका आधार, रजोगुणके भीतर स्थित और उत्कृष्ट सत्त्वगुणमें भी व्याप्त हूँ। मुझे लोभ नहीं है। ब्रह्मासे लेकर छोटेसे कीड़ेतक सबमें मैं व्याप्त हो रहा हूँ। द्युलोकको मेरा मस्तक समझो। सूर्य और चन्द्रमा मेरी आँखें हैं। गौ, अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं और वायु मेरी साँस है। आठ दिशाएँ मेरी बाहें, नक्षत्र मेरे आभूषण और सम्पूर्ण भूतोंको अवकाश देनेवाला अन्तरिक्ष मेरा वक्षःस्थल है। बादलों और हवाके चलनेका जो मार्ग है, उसे मेरा अविनाशी उदर समझो। युधिष्ठिर! द्वीप, समुद्र और जंगलोंसे भरा हुआ यह सबको धारण करनेवाला भूमण्डल मेरे दोनों पैरोंके स्थानमें हैं। आकाशमें मैं एक गुणवाला हूँ, वायुमें दो गुणवाला हूँ, अग्निमें तीन गुणवाला हूँ, जलमें चार गुणवाला हूँ और पृथ्वीमें पाँच गुणोंसे स्थित हूँ। वही मैं तन्मात्रारूप पञ्चमहाभूतोंमें शब्दादि पाँच गुणोंसे स्थित हूँ। मेरे हजारों मस्तक, हजारों मुख, हजारों नेत्र, हजारों भुजाएँ, हजारों उदर, हजारों ऊरु और हजारों पैर हैं। मैं पृथ्वीको सब ओरसे धारण करके नाभिसे दस अंगुल ऊँचे सबके हृदयमें विराजमान हूँ। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मारूपसे स्थित हूँ, इसलिये सर्वव्यापी कहलाता हूँ। राजन्! मैं अचिन्त्य, अनन्त, अजर, अजन्मा, अनादि, अवध्य, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण, गुह्यस्वरूप, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्कल, निर्विकार और मोक्षका आदि कारण हूँ। नरेश्वर! सुधा, स्वधा और स्वाहा भी मैं ही हूँ। मैंने ही अपने तेज और तपसे चार प्रकारके प्राणिसमुदायको स्नेहपाशरूप रज्जुसे बाँधकर अपनी मायासे धारण कर रखा है। मैं चारों आश्रमोंका धर्म, चार प्रकारके होताओंसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञका फल भोगनेवाला, चतुर्व्यूह एवं चतुर्यज्ञरूपमें स्थित और चारों आश्रमोंको प्रकट करनेवाला हूँ। युधिष्ठिर! प्रलयकालमें समस्त जगत्का संहार करके उसे अपने उदरमें स्थापित कर दिव्य योगका आश्रय ले मैं एकार्णवके जलमें शयन करता हूँ। एक हजार युगोंतक रहनेवाली ब्रह्माकी रात पूर्ण होनेतक महार्णवमें शयन करनेके पश्चात् मैं (पुनः) स्थावर-जङ्गम प्राणियोंकी सृष्टि करता हूँ। (इस प्रकार) प्रत्येक कल्पमें मेरे द्वारा जीवोंकी सृष्टि और संहारका कार्य होता है, किंतु मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे जीव मुझे नहीं जान पाते। प्रलयकालमें जब दीपकके शान्त होनेकी भाँति समस्त व्यक्त सृष्टि लुप्त हो जाती है, तब खोज करने योग्य मुझ अदृश्यस्वरूपकी गतिका उनको पता नहीं लगता। राजन्! कहीं कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें मेरा निवास न हो तथा कोई ऐसा जीव नहीं है, जो मुझमें स्थित न हो। जो कुछ भी स्थूल-सूक्ष्मरूप यह जगत् हो चुका है और होनेवाला है, उस सबमें उसी प्रकार मैं ही जीवरूपसे स्थित हूँ। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं तुमसे यह सच्ची बात बता रहा हूँ कि भूत और भविष्य जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ। भरतनन्दन! सम्पूर्ण भूत मुझसे ही उत्पन्न होते हैं और मेरे ही स्वरूप हैं। फिर भी वे मेरी मायासे मोहित रहनेके कारण मुझे नहीं जान पाते। राजन्! इस प्रकार देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारका मुझसे ही जन्म और मुझमें ही लय होता है।

भीष्मपितामहने देह-परित्यागके समय प्रार्थना की—

भीष्म उवाच

भगवन् देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत।
त्रिविक्रम नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर॥
वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरुषः सविता विराट्।
जीवभूतोऽनुरूपस्त्वं परमात्मा सनातनः॥
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम नित्यशः।
अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम॥
रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान् येषां परायणम्।
उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं तदा॥
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः॥

संधानस्य परः कालस्त्वेति च पुनः पुनः ।
न च मे तद्वचो मूढः कृतवान् स सुमन्दधीः ।
घातयित्वेह पृथिवीं ततः स निधनं गतः ॥
त्वां तु जानाम्यहं देवं पुराणमृषिसत्तमम् ।
नरेण सहितं देव बदर्यां सुचिरोषितम् ॥
तथा मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः ।
नरनारायणावेतौ सम्भूतौ मनुजेष्विति ॥
स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम् ।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥
(अनु० १६७ । ३७–४५)

भीष्मजी बोले—भगवन् ! देवदेवेश्वर ! देवता और असुर—सभी आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं । अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले नारायणदेव ! आपको नमस्कार है । आप वासुदेव, हिरण्यात्मा, पुरुष, सविता, विराट्, अनुरूप, जीवात्मा और सनातन परमात्मा हैं । कमलनयन श्रीकृष्ण ! पुरुषोत्तम ! वैकुण्ठ ! आप सदा मेरा उद्धार करें । अब मुझे जानेकी आज्ञा दें । प्रभो ! आप ही जिनके परम आश्रय हैं, उन पाण्डवोंकी सदा आपको रक्षा करनी चाहिये । मैंने दुर्बुद्धि एवं मन्द दुर्योधनसे कहा था कि 'जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है; और जहाँ धर्म है, उसी पक्षकी जय होगी ।' इसलिये बेटा दुर्योधन ! तुम भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । यह संधिके लिये बहुत उत्तम अवसर आया है ।' इस प्रकार बार-बार कहनेपर भी उस मन्दबुद्धि मूढ़ने मेरी वह बात नहीं मानी और सारी पृथ्वीके वीरोंका नाश कराकर अन्तमें वह स्वयं भी कालके गालमें चला गया । देव ! मैं आपको जानता हूँ । आप वे ही पुरातन ऋषिश्रेष्ठ नारायण हैं, जो नरके साथ चिरकालतक बदरिकाश्रममें निवास करते रहे हैं । देवर्षि नारद तथा महातपस्वी व्यासजीने भी मुझसे कहा था कि ये श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् भगवान् नारायण और नर हैं, जो मानव-शरीरमें अवतीर्ण हुए हैं । श्रीकृष्ण ! अब आप आज्ञा दीजिये, मैं इस शरीरका परित्याग करूँगा । आपकी आज्ञा मिलनेपर मुझे परम गतिकी प्राप्ति होगी ।

मौसलपर्व

भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके समयका वर्णन इस प्रकार आता है—

देवोऽपि सन् देहविमोक्षहेतो-
र्निमित्तमैच्छत् सकलार्थतत्त्ववित् ।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥
जराथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥
जराविध्यत् पादतले त्वरावां-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।
अथापश्यत् पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥
मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शङ्कितात्मा ।
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥
दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च
रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे ।
प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा
गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥
ततो राजन् भगवानुग्रतेजा
नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।
योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या
स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् ॥
ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः
समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।
गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः
सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥
तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राजन्
मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः
प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥
(मौ० अ० ४ । २१–२८)

'भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देव हैं, तो भी उस समय उन्होंने देहमोक्ष

या ऐहलौकिक लीलाका संवरण करनेके लिये किसी निमित्तके प्राप्त होनेकी इच्छा की। फिर वे मन, वाणी और इन्द्रियोंका निरोध करके महायोग (समाधि) का आश्रय ले पृथ्वीपर लेट गये। उसी समय 'जरा' नामक एक भयंकर व्याध मृगोंको मार ले जानेकी इच्छासे उस स्थानपर आया। उस समय श्रीकृष्ण योगयुक्त होकर लेट रहे थे। मृगोंमें आसक्त हुए उस व्याधने श्रीकृष्णको भी मृग ही समझा और बड़ी उतावलीके साथ बाण मारकर उनके पैरके तलवेमें घाव कर दिया। फिर उस मृगको पकड़नेके लिये वह जब निकट आया, तब योगमें स्थित, चार भुजावाले, पीताम्बरधारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णपर उसकी दृष्टि पड़ी। अब तो जरा अपनेको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत डर गया। उसने भगवान् श्रीकृष्णके दोनों पैर पकड़ लिये। तब महात्मा श्रीकृष्णने उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्तिसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोकमें (अपने परम धाममें) चले गये। अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध तथा अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर भगवान्‌का स्वागत किया। राजन्! तत्पश्चात् जगत्‌की उत्पत्तिके कारणरूप उग्रतेजस्वी, अविनाशी, योगाचार्य महात्मा भगवान् नारायण अपनी प्रभासे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने अप्रमेय धामको प्राप्त हो गये। नरेश्वर! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ गन्धर्वों, सुन्दरी अप्सराओं, सिद्धों और साध्योंद्वारा विनीतभावसे पूजित हो देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसे भी मिले। राजन्! देवताओंने भगवान्‌का अभिनन्दन किया। श्रेष्ठ महर्षियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओंद्वारा उनकी पूजा की। गन्धर्व स्तुति करते हुए खड़े रहे तथा इन्द्रने भी बड़े प्रेमसे उनका अभिनन्दन किया।

अन्तिम निवेदन

उपर्युक्त उद्धरणोंके साथ जब महाभारतपर दृष्टिपात किया जाता है, तब यह स्पष्ट पता लगता है कि इसमें सच्चिदानन्दघन-विग्रह परात्पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा, उनकी भक्तवत्सलता तथा उनकी प्राप्ति तथा प्रीतिके साधनभूत धर्मोंका ही वर्णन है। युधिष्ठिर और दुर्योधन दैवी तथा आसुरी सम्पत्तिके मूर्तिमान् प्रतीक हैं। दैवी सम्पत्ति भगवान्‌के आश्रयमें रहती है। इसलिये दैवी सम्पदासम्पन्न भक्त पुरुषके योगक्षेमका वहन स्वयं भगवान् करते हैं, यह बात महाभारतमें पद-पदपर प्रत्यक्ष दिखलायी देती है। भगवान् श्रीकृष्ण सदा ही पाण्डवोंके साथ रहते हैं और उनके प्रति अपार वत्सलताका व्यवहार करते हैं। अतः हम सबको महाभारतके उपदेशोंसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि—

(१) श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, सारे अवतारोंके मूल अवतारी हैं। सगुण-निर्गुण, सविशेष-निर्विशेष, साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, सर्वमय—सर्वातीत सब उन्हींके रूप हैं। वे सब कुछ हैं।

(२) सब आश्रयोंका त्याग करके एकमात्र उन्हींकी शरण ग्रहण करनी चाहिये।

(३) उनकी शरण ग्रहण करके नित्य उनके अनुकूल आचरणरूप धर्मका सेवन, तथा प्रतिकूल आचरणरूप अधर्मका त्याग करना चाहिये।

(४) धर्मराज युधिष्ठिरका आदर्श सामने रखकर वैसा बननेका प्रयत्न करना चाहिये; दुर्योधनके आदर्शका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

(५) भगवान् श्रीकृष्णकी सहज सुहृदतापर विश्वास करके जीवनको प्रत्येक परिस्थितिमें शान्त, सुखमय बना लेना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके हरिहर-सुभाषितका निम्नलिखित श्लोक लिखकर यह लेख समाप्त किया जाता है—

भारताख्यं सरो भाति व्याससवागमृतैर्वृतम्।
यत्र क्षत्रकुलाब्जेषु हंसीयति हरेर्यशः॥

'व्यासदेवकी वाणीरूपी अमृतसे पूर्ण यह महाभारत नामक सरोवर सुशोभित हो रहा है। इसमें क्षत्रियकुलरूपी कमलसमूहोंमें श्रीकृष्णका उज्ज्वल यश हंसके समान क्रीड़ा कर रहा है।'

महाभारतके जीवनको उन्नत बनानेवाले कुछ शिक्षाप्रद प्रसङ्ग

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाभारतका भारतीय साहित्यमें बहुत उच्च स्थान है। इसे पञ्चम वेद भी कहते हैं। इसका विद्वानोंमें वेदोंका-सा आदर है। इसमें गुरु-भक्ति, माता-पिताकी सेवा, पातिव्रत्यधर्म, तीर्थों और यज्ञ, दान, तप, व्रत, उपवास एवं सेवा आदिका माहात्म्य, वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, श्राद्धधर्म, मोक्षधर्म तथा मोक्ष-प्राप्तिके लिये भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार और निष्काम-कर्म आदिका बहुत ही विशद वर्णन है। श्रीमद्भगवद्गीता-जैसा अनुपम ग्रन्थ, जिसे सारा संसार आदरकी दृष्टिसे देखता है और जिसे हम विश्व-साहित्यका सर्वोत्तम ग्रन्थ कहें तो भी अत्युक्ति न होगी, इस महाभारतमें ही है।* इसलिये ऐसे परमोपयोगी महाभारत ग्रन्थका अध्ययन प्रत्येक माता, बहिन और भाईको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तत्परतासे करना चाहिये।

वैसे तो महाभारतमें अनेक शिक्षाप्रद उपदेश और आख्यान भरे हुए हैं, किंतु यहाँ पाठकोंके लिये महाभारतके साररूपमें कुछ चुने हुए शिक्षाप्रद प्रसङ्ग उपस्थित किये जाते हैं।

मनुष्यके कल्याणमें श्रद्धा ही प्रधान हेतु है। ईश्वर, महात्मा, शास्त्र और माता, पिता, आचार्य आदि गुरु-जनोंके प्रति भक्ति एवं उनके वचनोंमें तथा परलोक और आत्माके अस्तित्वमें विश्वास होना श्रद्धा है। ईश्वर, महात्मा और गुरुजनोंकी आज्ञाका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सकाम-भावसे पालन करनेपर इहलोक और परलोकमें कामनाकी सिद्धि होती है तथा निष्कामभावसे करनेपर परम गतिकी प्राप्ति होती है। इस सम्बन्धमें महाभारतमें कई उदाहरण मिलते हैं। हमलोगोंको उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

गुरुभक्त आरुणि, उपमन्यु और वेद—ये तीनों महर्षि आयोदधौम्यके शिष्य थे। एक दिन गुरुजीने आरुणिको खेतमें क्यारियोंकी टूटी हुई मेड़ बाँधकर जल रोकनेको कहा। गुरुकी आज्ञा पाकर आरुणि खेतमें जाकर मेड़की जगह स्वयं ही लेट गया। उसके बहुत समयतक न लौटनेपर गुरु स्वयं खेतमें गये। जब उन्हें उसके इस प्रयत्नका पता लगा, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कृपापूर्वक आशीर्वाद दिया कि 'तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है, इसलिये तुम कल्याणके भागी होगे एवं सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारी बुद्धिमें स्वतः प्रकाशित हो जायँगे।' इस प्रकार गुरुकी कृपासे उन्हें बिना ही पढ़े सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका ज्ञान होकर कल्याणकी प्राप्ति हो गयी। (महा० आदि० अ० ३)

गुरुभक्त उपमन्युने गुरुकी आज्ञा पाकर भिक्षा और दूधका भी त्याग कर दिया। किंतु एक दिन क्षुधासे पीड़ित हो वे आकके पत्तोंके भक्षणसे अंधे हो जानेपर कुएँमें गिर गये। जब उपमन्यु घर नहीं लौटे, तब महर्षि आयोदधौम्य वनमें गये। जब उन्हें अपने शिष्यके अंधे होकर कुएँमें गिरनेका पता लगा, तब उन्होंने उसे अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनेका आदेश दिया। उनकी स्तुतिसे प्रकट हुए अश्विनीकुमारोंके द्वारा उनको पूए दिये जानेपर भी उन्होंने गुरुजीको निवेदन किये बिना खाना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकारकी गुरुभक्तिकी दृढ़ता देखकर अश्विनीकुमार बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे दाँत सुवर्णमय हो जायँगे, तुम्हारी आँखे ठीक हो जायँगी और तुम कल्याणके भागी होओगे। जब उपमन्युको आँखें मिल गयीं, तब उन्होंने गुरुजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया। गुरुजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'जैसा अश्विनीकुमारोंने कहा है, उसी प्रकार तुम कल्याणके भागी होओगे और तुम्हें सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र स्वतः स्फुरित हो जायँगे।' अतएव उपमन्युको भी गुरुकृपासे समस्त शास्त्रोंका ज्ञान होकर कल्याण प्राप्त हो गया। (महा० आदि० अ० ३)

* महाभारत भीष्मपर्वके अ० २५ से ४२ तक गीता है। 'मासिक महाभारत'के दूसरे वर्षके २ रे अङ्कमें गीताके प्रत्येक श्लोककी प्रधान-प्रधान स्थलोंमें कुछ विस्तृत व्याख्या टिप्पणियोंके रूपमें दी गयी है। यह अङ्क २)में अलग भी मिलता है।

महाराज द्रुपद

आचार्य आयोदधौम्यके एक तीसरे शिष्य थे वेद। वे भी बड़े ही गुरु-भक्त थे। उन्होंने दीर्घ कालतक गुरुजीकी सेवा की। गुरुजी उन्हें बैलकी तरह सदा भारी बोझ ढोनेमें लगाये रखते थे, किंतु वेद सरदी-गरमी तथा भूख-प्यासका कष्ट सहन करते हुए सभी अवस्थाओंमें गुरुके अनुकूल ही रहते थे। इससे गुरुजी उनपर बहुत संतुष्ट हुए। अतः गुरुजीकी कृपासे उन्हें सर्वज्ञता और श्रेयकी प्राप्ति हो गयी। (महा० आदि० अ० ३)

इन्हीं ब्रह्मवेत्ता आचार्य वेदके एक शिष्य थे उत्तङ्क। गुरु-भक्त उत्तङ्कने गुरुजीकी धर्मपूर्वक बड़ी सेवा की। उत्तङ्कने गुरुपत्नीकी आज्ञा पाकर अत्यन्त दुष्कर प्रयत्न-पूर्वक राजा पौष्यकी पत्नीसे दो दिव्य कुण्डल लाकर गुरुपत्नीको गुरु-दक्षिणाके रूपमें दिये। इनके धर्म-मर्यादापूर्वक गुरु-सेवा-व्रतसे प्रसन्न होकर गुरुजीने इनको सम्पूर्णकामनापूर्तिका और कल्याणभागी होनेका आशीर्वाद दिया। (महा० आदि० अ० ३)

उत्तङ्कके चरित्रमें एक और विशेष बात ध्यान देने-योग्य है। जब वे राजा पौष्यके आदेशसे उनकी रानीसे कुण्डल माँगने अन्तःपुरमें गये, तब उन्हें रानीके दर्शन नहीं हुए। वे राजा पौष्यके पास आकर उन्हें उलाहना देने लगे। तब राजा पौष्यने एक क्षण विचार करके उन्हें उत्तर दिया कि आप निश्चय ही जूँठे मुँह हैं। स्मरण तो कीजिये। क्योंकि मेरी स्त्री पतिव्रता होनेके कारण उच्छिष्ट-अपवित्र मनुष्यके द्वारा नहीं देखी जा सकतीं। आप उच्छिष्ट होनेके कारण अपवित्र हैं, इसलिये वे आपकी दृष्टिमें नहीं आ रही हैं।* यह सुनकर उत्तङ्कने विधिपूर्वक आचमन करके पवित्र हो अन्तःपुरमें प्रवेश किया, तब उन्हें रानीका दर्शन हुआ। (महाभारत आदि० अ० ३)

इन्हीं उत्तङ्क ऋषिने गुरुसेवाके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णसे वार्तालाप करके और उनसे अध्यात्मतत्त्व तथा उनके प्रभावको सुनकर भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लिया (महा० आश्वमेधिक० अ० ५४-५५)।

गुरुभक्त एकलव्य भीलने द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर और उसीकी श्रद्धापूर्वक उपासना करके धनुर्विद्याका अभ्यास कर लिया। गुरुभक्तिके प्रभावसे वह धनुर्विद्यामें ऐसा प्रवीण हो गया कि उसने अर्जुनको भी आश्चर्यमें डाल दिया (महा० आदि० अ० १३१)।

महाराज द्रुपदकी भगवान् शिवमें बड़ी ही अनुपम श्रद्धा थी। उन्होंने संतानकी प्राप्तिके लिये घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको संतुष्ट कर लिया (तब भगवान् शंकरने उनको कन्याप्राप्तिका वर दिया। इसपर राजा द्रुपदने) कहा—'भगवन्! मैं पुत्र चाहता हूँ; अतः मुझे कन्या नहीं, पुत्र प्राप्त हो।' इसपर श्रीमहादेवजीने कहा—'राजन्! तुम्हें पहले कन्या प्राप्त होगी, फिर वही पुरुष हो जायगी। मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता।' इस वरदानके फलस्वरूप जब उन्हें कन्या प्राप्त हुई, तब भगवान् शिवके वचनोंपर श्रद्धा होनेके कारण राजा द्रुपदने अपनी लड़कीको लड़का ही घोषित किया और लड़केके समान ही उसके जातकर्मादि संस्कार कराकर पुरुष-जैसा ही 'शिखण्डी' नाम रखा। इतना ही नहीं, उसका विवाह भी दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्माकी पुत्रीके साथ कर दिया। फिर उनकी श्रद्धाके बलसे शिखण्डी समयपर पुरुषत्वको प्राप्त हो गया (महा० उद्योग० १८८-१९२)।

पूर्वजन्ममें एक ऋषिकन्याके रूपमें द्रौपदीने पतिकी प्राप्तिके लिये भगवान् शिवकी बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना की थी। उसने उस समय बड़ी भारी तपस्या की। उससे संतुष्ट हुए शिवजीसे वर माँगते समय उसने पाँच बार पति देनेको कहा था। अतः उसके प्रभावसे उस ऋषिकन्याको दूसरे जन्ममें पाण्डवोंके रूपमें पाँच पति प्राप्त हुए। (महा० आदि० अ० १६८, १९६)।

अपने पिता महर्षि जमदग्निकी आज्ञासे श्रीपरशुरामजीने अपनी माताका, उनके किसी मानस अपराधके कारण सिर काट डाला। इससे महातपस्वी जमदग्नि उनपर बहुत प्रसन्न

---

* स एवमुक्तः पौष्यः क्षणमात्रं विमृश्योत्तङ्कं प्रत्युवाच—'नियतं भवानुच्छिष्टः स्मर तावन्न हि सा क्षत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना शक्या द्रष्टुं पतिव्रतात्वात् सैषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति। (महा० आदि० अ० ३। १०७)

हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। तब परशुरामजी बोले— 'पिताजी ! मेरी माता जीवित हो उठें, उन्हें मेरे द्वारा मारे जानेकी बात याद न रहे और वह मानस-पाप उनका स्पर्श न कर सके तथा मेरे चारों भाई स्वस्थ हो जायँ, युद्धमें मेरा सामना करनेवाला कोई न हो और मैं बड़ी आयु प्राप्त करूँ।' महर्षि जमदग्निने परशुरामजीकी सेवा और आज्ञापालनसे प्रसन्न हो वरदान देकर उनकी वे सभी कामनाएँ पूर्ण कर दीं (महा० वन० अ० ११६)।

इसी प्रकार अपने पिता महर्षि गौतमकी आज्ञा-पालन करनेके लिये चिरकारी तैयार तो हो गया, किंतु देरतक सोच-विचारकर कार्य करनेके कारण वह प्रशंसाका पात्र बन गया और अन्तमें पिताके साथ ही स्वर्गमें चला गया (महा० शान्ति० अ० २६६)।

राजा पूरुने अपने पिता महाराज ययातिकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी युवावस्था उन्हें देकर उनकी वृद्धावस्था स्वयं ले ली। इससे महाराज ययाति प्रसन्न हो गये और पूरुको यह वर देकर कि 'तुम्हारे राज्यमें सारी प्रजा समस्त कामनाओंसे सम्पन्न होगी' उनका राज्याभिषेक कर दिया (महा० आदि० अ० ८४-८५)।

श्रीभीष्मपितामहने अपने पिता राजा शंतनुको सुख पहुँचाने और उनकी सेवा करनेके उद्देश्यसे आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत-पालनकी प्रतिज्ञा करके स्त्रीका और राज्यका भी परित्याग कर दिया। इसके प्रभावसे उन्हें पितासे इच्छामृत्युका वर प्राप्त हुआ (महा० आदि० अ० १००)। वे बड़े ही शूरवीर, सदाचारी और ईश्वर-भक्त थे। उन्होंने अपने भाई विचित्रवीर्यके विवाहके लिये स्वयंवरमें समस्त राजाओंको पराजित करके काशिराजकी तीन कन्याओंका हरण किया और अम्बाके लिये अपने साथ युद्ध करनेवाले अपने गुरु परशुरामजी-को भी युद्धमें छका दिया (महा० उद्योग० अ० १७३ से १८५)। पाण्डव भी इनकी कृपासे ही इनके वधका उपाय जानकर इनको मार सके थे (महा० भीष्म० अ० १०७)। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करके उनको अपनी ओर इतना आकर्षित कर लिया कि भगवान् श्रीकृष्णको भी बदलेमें उनका ध्यान करना पड़ा (महा० शान्ति० अ० ४६)। भीष्म ऐसे सदाचारी, शास्त्रज्ञ और धर्मवेत्ता थे कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनकी प्रशंसा की और कहा कि भीष्म धर्मके प्रचुर भंडार हैं, वे सम्पूर्ण वेदों और इतिहास-पुराणोंमें कथित समस्त धर्मोंके ज्ञाता हैं, धर्मके सम्बन्धमें संदेहग्रस्त विषयोंका समाधान करनेवाला भीष्मके समान दूसरा कोई भूमण्डलमें नहीं है (महा० शान्ति० अ० ५०)। उस समय बाणोंसे बिंधे होनेके कारण पाण्डवों-को उपदेश देनेमें भीष्मने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस-पर भगवान् श्रीकृष्णने उनपर प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया, जिससे वे पीड़ारहित हो गये। साथ ही उनके अन्तः-करणमें सम्पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो गये एवं उनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, दान आदि धर्मों और मोक्ष-धर्मोंका उपदेश देनेकी शक्ति आ गयी (महा० शान्ति० अ० ५२)। उस समय पाण्डवोंके द्वारा मारकर घायल कर दिये जानेपर भी इन्होंने प्राणत्याग न करके रणभूमिमें शरशय्यापर पड़े हुए ही भक्ति, ज्ञान, सदाचार एवं धर्म आदिका ऐसा अनुपम उपदेश दिया, जिससे शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व भरे हुए हैं। इस प्रकार महात्मा भीष्मने पितृभक्ति और ब्रह्मचर्यव्रतके पालनसे शूरवीरता, सदाचार, ईश्वर-भक्ति पाकर अन्तमें उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त की (महा० अनुशासन० १६८)।

महाराज युधिष्ठिरने माता कुन्तीकी ऐसी आज्ञाका भी पूर्णतया पालन किया, जो लोकसे विरुद्ध और कठिन-से-कठिन थी। जब भीमसेन और अर्जुनने मातासे भिक्षा लाने-की बात निवेदन की, तब माता कुन्तीने अनजानमें यह आज्ञा दे दी कि सब भाई मिलकर भिक्षाका उपभोग करो। किंतु जब कुन्तीने उन्हें द्रौपदीको लाये देखा, तब उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा— 'अब मेरी यह बात सत्य कैसे होगी ?' महाराज युधिष्ठिरने उन्हें आश्वासन दिया कि 'आपके वचनको हम सत्य करेंगे। द्रौपदी हम सब भाइयोंकी पत्नी होगी और हम पाँचों ही इसका पाणिग्रहण करेंगे।' इसपर राजा द्रुपदके यहाँ बड़ा वाद-विवाद उपस्थित हो गया। परंतु युधिष्ठिर अपने निश्चयसे नहीं टले। अन्तमें श्रीवेदव्यास-

जी वहाँ अकस्मात् प्रकट हो गये और उन्होंने द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा कहकर और पाण्डवोंके धर्मात्मा होनेका परिचय देकर द्रुपदको समझा दिया एवं उन्हें दिव्य दृष्टि देकर पाण्डवोंके दिव्य रूपोंका दर्शन करा दिया। तब राजा द्रुपदने द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह कर दिया। (महा० आदि० अ० १९० से १९७) माता कुन्तीकी ऐसी कठोर आज्ञाका पालन करनेसे महाराज युधिष्ठिर धर्मराज कहलाये।

धर्मव्याध माता-पिताकी सेवा और आज्ञापालनके प्रभावसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न और बड़ा भारी धर्मज्ञ हो गया था। उसने कौशिक-जैसे महातपस्वी ऋषिको भी धर्मका उपदेश किया, उसने बड़े ही विस्तारसे धर्मके सूक्ष्म रहस्य बतलाये और अन्तमें उनसे यही कहा कि माता-पिताको संतुष्ट न करनेके कारण आपका यह धर्म और व्रत व्यर्थ हो गया है, अतः आप शीघ्र जाकर उन दोनोंको प्रसन्न कीजिये। यह सुनकर कौशिक ऋषिने भी घर जाकर माता-पिताकी सेवा की और वे भी प्रशंसाके पात्र बन गये। (महा० वन० अ० २०७ से २१६)

माता, पिता और गुरुजनोंकी सेवा तथा आज्ञा-पालनकी महिमा और फलका वर्णन करते हुए श्रीभीष्मजीने युधिष्ठिरसे कहा—'तात युधिष्ठिर ! मुझे तो माता-पिता तथा गुरुजनोंकी पूजा ही अधिक महत्त्वकी वस्तु जान पड़ती है। इस लोकमें इनकी सेवा-पूजाके कार्यमें संलग्न होकर मनुष्य महान् यश और श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करता है। भलीभाँति पूजित हुए माता-पिता और गुरुजन जिस कामके लिये आज्ञा दें, वह धर्मके अनुकूल हो या विरुद्ध—उसका पालन करना ही चाहिये। जो उनकी आज्ञाके पालनमें संलग्न है, उसके लिये दूसरे किसी धर्मके आचरणकी आवश्यकता नहीं है। जिस कार्यके लिये वे आज्ञा दें, वही धर्म है—ऐसा धर्मात्माओंका निश्चय है। ये माता-पिता और गुरुजन ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं तथा ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि है, माता दक्षिणाग्नि मानी गयी है और गुरु आहवनीय अग्निका स्वरूप है। लौकिक अग्नियोंसे माता-पिता आदि त्रिविध अग्नियोंका गौरव अधिक है। राजन् ! यदि तुम इनकी सेवामें कोई भूल नहीं करोगे तो तुम तीनों लोकोंको जीत लोगे।'*

जिस प्रकार माता, पिता, गुरुजन और महात्माओंकी सेवा और आज्ञापालनसे मनुष्यका इहलोक और परलोकमें परम हित होता है, उसी प्रकार संध्योपासन, गायत्री-जप और वेद-शास्त्रोंके अध्ययनसे भी मनुष्यका इहलोक और परलोकमें महान् कल्याण होता है।

महातपस्वी जरत्कारु मुनिने इच्छा न रहते हुए भी पितरोंके उद्धारके उद्देश्यसे ही विवाह किया था। वे प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व श्रद्धापूर्वक नियमसे संध्योपासना किया करते थे। उनके प्रभावसे भगवान् सूर्य भी उनके दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करनेके पश्चात् ही अस्ताचलको जाते थे। एक दिनकी बात है, जब वे पत्नीकी गोदमें सोये हुए थे, उनके सोते समय ही सूर्यको अस्ताचल जाते देख, पतिके धर्मका लोप न हो—इसलिये पत्नीने उनको जगा दिया। इसपर उन्होंने उससे कहा—'सुन्दरि ! सूर्यमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं सोता रहूँ और वे अस्त हो जायँ—यह मेरे हृदयमें निश्चय है।† यह कितने भारी प्रभावकी बात है ! (महा० आदि० अ० ४५-४७)।

---

* मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते॥
यच्च तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः।
धर्माधर्मविरुद्धं वा तत् कर्तव्यं युधिष्ठिर॥
न च तैरभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।
यं च तेऽभ्यनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः॥
एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः॥
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी॥
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीँल्लोकांश्च विजेष्यसि।
(महा० शान्ति० अ० १०८। ३-८)

† शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः॥
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते।
(महा० आदि० अ० ४७। २५-२६)

द्वापरयुगके अन्ततक तो यही प्रणाली रही कि प्रातःकाल संध्या-गायत्री करके अपना अन्य कार्य आरम्भ करना और सायंकालके पूर्व अन्य कर्मोंसे निवृत्त होकर संध्योपासन करना। और तो क्या, युद्ध-जैसा कार्य भी बहुत-से सैनिकगण नित्यकर्म करके ही आरम्भ करते थे। अभिमन्यु-जैसे महारथीके मरनेपर जब मरणाशौच लगा हुआ था, तब भी राजा युधिष्ठिर आदिने नित्यकर्मका त्याग नहीं किया, बल्कि विधिपूर्वक गायत्रीजप और अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको दान दिया (महा० द्रोण० अ० ८२)।

सायंकाल होनेपर भी वे अन्य कार्योंको बंद करके संध्योपासन किया करते थे। महाभारत, शान्तिपर्वके ५८ वें अध्यायमें वर्णन आता है कि शरशय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मसे राजधर्मोपदेश सुनते-सुनते जब सायंकाल होने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्ण, कृपाचार्य और राजा युधिष्ठिरने वहाँसे जाकर दृषद्वती नदीमें स्नान, संध्या और गायत्री-जप आदि किया और फिर वे हस्तिनापुर गये।

महर्षि पिप्पलादके पुत्र कौशिक मुनिने एक हजार वर्षोंतक बहुत ही संयम-नियमपूर्वक गायत्रीका जप किया। इससे उनपर सावित्रीदेवी प्रसन्न हो गयीं। कौशिक ब्राह्मणने सावित्रीदेवीको प्रणाम किया और उनके कहनेपर उनसे यही वर माँगा कि मेरा मन सदा गायत्री-जपमें ही लगा रहे और गायत्री-जप करनेकी मेरी इच्छा बराबर बढ़ती रहे। सावित्री देवीने 'तथास्तु' कहकर यह भी वर दिया कि तुम्हें निर्दोष ब्रह्मपदकी प्राप्ति होगी। वे फिर जपमें संलग्न हो गये। उनकी जपमें ऐसी उत्तम निष्ठा देखकर धर्म बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया तथा उन्हें स्वर्गमें चलनेका आग्रह किया; पर उन्होंने शरीर त्यागकर स्वर्ग जाना स्वीकार नहीं किया। तब उनके पास स्वयं यम, काल और मृत्यु आये। इसी समय राजा इक्ष्वाकु भी तीर्थयात्रा करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उन जापक ब्राह्मणको धन-दान ग्रहण करनेका बहुत आग्रह किया। किंतु जापक ब्राह्मणने कहा—'मैं निवृत्तिपरायण ब्राह्मण हूँ, अतः दान नहीं लूँगा। आपको जो अभीष्ट हो, वह मुझसे माँग लें। बताइये, मैं आपको क्या दूँ ?' राजा इक्ष्वाकुने सौ वर्षोंके जपका फल देनेको कहा। जापक ब्राह्मण जपका फल देनेको तैयार हो गये। किंतु राजा इक्ष्वाकुने लेना नहीं चाहा। बहुत देरतक आपसमें वाद-विवाद चलता रहा। अन्तमें धर्मने निर्णय करके आदेश दिया कि आप दोनों ही समान फलके भागी हों। तब गायत्री-जापकने दोनोंके समान फलके भागी होने और साथ-साथ चलनेकी बात स्वीकार कर ली। फिर वे ध्यानस्थ होकर बैठ गये। उस समय उनके ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके एक ज्योति निकली और वह ब्रह्मामें प्रविष्ट हो गयी। राजा इक्ष्वाकु भी उन्हींकी भाँति ब्रह्माजीमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार गायत्रीजपके प्रभावसे उनको सायुज्यमुक्ति होकर ऐसी परम उत्तम गति प्राप्त हुई, जिसे देखनेके लिये वहाँ देवता, लोकपाल, ऋषि-महर्षि, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, ब्रह्मा, शेषनाग और भगवान् विष्णु भी पधारे (महा० शान्ति० अ० १९९-२००)।

जिस प्रकार पुरुष माता, पिता और गुरुकी भक्तिसे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्त करता है, उसी प्रकार स्त्री भी केवल पातिव्रत्य-धर्मके पालनसे ही सब कुछ प्राप्त कर सकती है।

वनपर्वके २०६ वें अध्यायमें एक कथा आती है। एक बड़ी ही साध्वी पतिव्रता स्त्री थी। वह पतिको देवता मानती और उनके विचारके अनुकूल चलती थी। उसका मन कभी परपुरुषकी ओर नहीं जाता था। वह मन, वाणी और क्रियासे पतिके ही परायण थी। वह सर्वभावसे पतिसेवामें ही संलग्न रहती थी। सदाचारका पालन करती, बाहर-भीतरसे पवित्र रहती, घरके काम-काजको कुशलतापूर्वक करती और कुटुम्बके सभी लोगोंका हित चाहती थी। पतिके लिये जो हितकर कार्य जान पड़ता, उसमें वह सदा लगी रहती थी। देवताओंकी पूजा, अतिथियोंके सत्कार, सेवकोंके भरण-पोषण और सास-ससुरकी सेवामें भी सदा तत्पर रहती थी। अपने मन और इन्द्रियोंपर पूर्ण संयम रखती थी।

एक दिनकी बात है, उसके घरपर महातपस्वी कौशिक मुनि, जिनकी क्रोधयुक्त दृष्टि पड़नेसे वृक्षपर बैठी हुई बगुली निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर गयी थी,

भिक्षाके लिये आये। दरवाजेपर पहुँचकर उन्होंने आवाज दी—'भिक्षा दें।' पतिव्रता स्त्री बर्तन माँज रही थी, अतः उसने भीतरसे उत्तर दिया—'ठहरिये, अभी लाती हूँ।' ज्यों ही वह बर्तन साफ करके निवृत्त हुई, त्यों ही भूखसे पीड़ित हुए उसके पति सहसा घरपर आ गये। तब वह पतिकी सेवामें लग गयी। कुछ देर बाद उसे ब्राह्मणको भिक्षा देनेकी बात याद आयी, तब वह अपनी भूलके लिये लज्जित हुई भिक्षा लेकर बाहर निकली। उसे देखकर कौशिकने कहा—'सुन्दरी! तुम्हारा यह कैसा बर्ताव है? तुम्हें इतना विलम्ब करना था तो 'ठहरो' कहकर मुझे रोक क्यों लिया? मुझे जाने क्यों नहीं दिया?' स्त्रीने कहा—'विद्वन्! क्षमा करें। मेरे पतिदेव भूखे और थके हुए घरपर आये थे। मैं उन्हींकी सेवामें लग गयी।' कौशिक बोले—'तुमने पतिको ही सबसे बड़ा बना दिया। क्या तू ब्राह्मणोंके प्रभावको नहीं जानती? वे अग्निके समान तेजस्वी होते हैं। वे चाहें तो पृथ्वीको भी भस्म कर सकते हैं।' पतिव्रताने कहा—'ब्रह्मन्! मैं ब्राह्मणोंके तेज और महत्त्वको जानती हूँ। महात्मा ब्राह्मणोंके क्रोध और कृपा दोनों महान् होते हैं। मेरे द्वारा जो अपराध बन गया है, उसे कृपया क्षमा करें। तपोधन! क्रोध न करें। मैं वह बगुली नहीं हूँ जो आपकी क्रोधभरी दृष्टिसे जल जाऊँगी। मुझे तो पति-सेवासे जो धर्म प्राप्त होता है, वही अधिक पसंद है। मैं साधारणरूपसे ही पतिसेवारूप धर्मका पालन करती हूँ। उसीके प्रभावसे मुझे आपके कारण बगुलीके जलनेकी बात ज्ञात हो गयी है।' यह कहकर पतिव्रता स्त्रीने कौशिक मुनिसे कुछ धर्मकी बातें कहीं और अन्तमें बतलाया कि धर्मका स्वरूप सूक्ष्म होता है। आप भी धर्मज्ञ, स्वाध्यायपरायण और पवित्र हैं; किंतु आपको धर्मका यथार्थ ज्ञान नहीं है। अतः यदि आप परम धर्मको जानना चाहें तो मिथिलापुरीमें धर्मव्याधके पास जाकर पूछिये। और मेरे मुखसे कोई अनुचित बात निकल गयी हो तो स्त्रियोंको अदण्डनीय समझकर मुझे क्षमा कीजिये।' पतिव्रताकी बातें सुनकर कौशिकको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसकी प्रशंसा करते हुए अपने घर लौट गये और फिर धर्मव्याधके पास गये।

हमलोगोंको इस कथापर ध्यान देना चाहिये। पातिव्रत्यका कैसा अद्भुत प्रभाव है! पतिव्रता स्त्रीको पातिव्रत्यके प्रभावसे भूत, भविष्य, वर्तमान—सबका ज्ञान हो जाता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है!

पतिव्रता सावित्रीका आदर्श चरित्र संसारमें प्रसिद्ध ही है। सावित्री मद्रदेशके राजा अश्वपतिकी पुत्री थी। सावित्रीके तेजके कारण जब किसीको भी उससे विवाह करनेका साहस नहीं हुआ, तब राजाने सावित्रीको स्वयं ही अपने गुणोंके अनुरूप वर ढूँढ लेनेको कहा। पिताकी आज्ञासे सावित्रीने अनेक वनों और तीर्थोंमें भ्रमण किया। तीर्थाटन करती हुई वह एक तपोवनमें गयी, वहाँ शाल्व देशके राजा द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्को देखकर उसने मन-ही-मन उनका वरण कर लिया। लौटकर पिताके घर आयी तो उसने पिताके साथ ही श्रीनारदजीको बैठे देखकर उनको प्रणाम किया। श्रीनारदजीके पूछनेपर सावित्रीने बतलाया कि मैंने मन-ही-मन सत्यवान्को पतिरूपमें वरण किया है। तब राजा अश्वपतिने नारदजीसे सत्यवान्के गुणोंके विषयमें पूछा। इसपर नारदजीने कहा—'सत्यवान् बड़ा ही ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, दानी, उदार, प्रियदर्शन, रूपवान्, बलवान्, जितेन्द्रिय, शूरवीर, अदोषदर्शी, लज्जाशील और कान्तिमान् है।' फिर राजाके द्वारा उसके दोष पूछे जानेपर नारदजीने उसमें एक ही दोष बतलाया कि आजसे बारहवाँ महीना पूर्ण होनेपर उसकी मृत्यु हो जायगी, जिससे उसके सारे गुण छिप जायँगे। यह सुनकर राजा अश्वपतिने सावित्रीसे कहा—बेटी! तू कोई दूसरा वर चुन ले; क्योंकि श्रीनारदजीके वचनानुसार सत्यवान्की आयु अब एक सालकी ही है।' इसपर सावित्रीने पितासे स्पष्ट कह दिया—''पिताजी! भाइयोंमें धनका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है तथा श्रेष्ठ दाता 'मैं दूँगा' यह कहकर एक ही बार वचनदान करता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही होती हैं। अतः सत्यवान् चाहे दीर्घायु हों या अल्पायु, गुणवान् हों या गुणहीन, मैंने उनको एक

बार अपना पति चुन लिया। अब मैं दूसरे किसी पुरुषका वरण नहीं कर सकती। पहले मनके द्वारा निश्चय करके फिर वाणीद्वारा कहा जाता है। तत्पश्चात् उसे कार्यरूपमें परिणत किया जाता है, अतः इस विषयमें मेरा मन ही प्रमाण है। *

सावित्रीका निश्चय सुनकर श्रीनारदजीने उसका विवाह सत्यवान्के साथ करनेकी अनुमति दे दी। राजा अश्वपति ब्राह्मणों, ऋत्विजों, पुरोहितोंको और विवाहकी सारी सामग्री तथा सावित्रीको साथ लेकर राजा द्युमत्सेनके आश्रमपर गये। वहाँ उनसे अनुनय-विनय करके सत्यवान्के साथ अपनी पुत्री सावित्रीका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। सावित्री अपने सास-ससुर और पतिकी तन-मनसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करती रही। वह अपनी सेवाओंसे तीनोंको संतुष्ट रखती थी। किंतु श्रीनारदजीके वचनोंका स्मरण उसे सदा बना रहता था। उसने गणना करके एक दिन जान लिया कि आजसे चौथे दिन पतिदेवकी मृत्यु है; तब उसने तीन रातका कठोर व्रत धारण किया। चौथे दिन जब सत्यवान्की मृत्यु होनेवाली थी, वे कंधेपर कुल्हाड़ी रखकर फल-फूल, समिधा आदि लेने वनकी ओर चले, उस समय पतिव्रता सावित्रीने पतिसे अनुनय-विनय करके वनमें साथ चलनेकी अनुमति प्राप्त कर ली; किंतु सत्यवान्ने कहा—'तुम मेरे माता-पितासे पूछ लो, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े।' सावित्रीने सास-ससुरसे भी प्रणामपूर्वक अनुनय-विनय करके पतिके साथ वनमें जानेकी आज्ञा प्राप्त कर ली और पतिके साथ वनमें चली गयी।

वनमें पहुँचकर दोनोंने फल एकत्र करके एक काठकी टोकरी भर ली। इसके बाद जब सत्यवान् लकड़ी काटने लगा, तब उसके सिरमें भयानक पीड़ा होने लगी। सावित्री अपने पतिदेवको गोदमें सुलाकर बैठ गयी। थोड़ी ही देरमें, सत्यवान्का प्राण लेनेके लिये उसने यमराजको आये देखा। सावित्रीके पूछनेपर यमराजने अपना परिचय दे दिया। तब सावित्री बोली—'भगवन्! मैंने तो सुना है कि मनुष्योंको ले जानेके लिये आपके दूत आया करते हैं। यहाँ आप स्वयं कैसे आये?' यमराजने कहा—'यह सत्यवान् धर्मात्मा और गुणोंका समुद्र है। अतः यह मेरे दूतोंद्वारा ले जाये जाने योग्य नहीं है। इसलिये मैं स्वयं आया हूँ।' यह कहकर यमराजने सत्यवान्के शरीरसे जीवको पाशमें बाँधकर निकाल लिया और उसे लेकर वे दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। सत्यवान् निष्प्राण हो गये। यह देख सावित्री दुःखसे आतुर हो यमराजके पीछे-पीछे चल पड़ी। यमराजने कहा—अब तू लौट जा; तुझे जहाँतक आना चाहिये था, वहाँतक तू आ चुकी। सावित्री बोली—जहाँ मेरे पति ले जाये जाते हैं अथवा ये स्वयं जहाँ जा रहे हैं, वहीं मुझे भी जाना चाहिये—यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, पातिव्रत्य-पालन तथा आपकी कृपासे मेरी गति कहीं भी नहीं रुक सकती।'* तत्पश्चात् सावित्रीने संत-महात्माओंके दयालु स्वभाव और गुणोंका वर्णन करके यमराजकी बड़ी प्रशंसा की। इससे यमराजने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। सावित्रीने क्रमशः ये चार वर माँगे—१. मेरे श्वशुरके नेत्र नष्ट हो गये हैं, वे नेत्रयुक्त हो जायँ; २. मेरे श्वशुरका राज्य शत्रुओंने छीन लिया, वह उन्हें वापस मिल जाय; ३. मेरे पिताके सौ पुत्र हों और ४. मेरे भी सौ पुत्र हों।' यमराज वर देकर जाने लगे। फिर भी सावित्रीने पीछा नहीं छोड़ा। तब यमराज बोले—'सावित्री! तू बहुत दूर आ गयी, थक गयी होगी। अतः लौट जा।'

* सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥
(महा० वन० अ० २९४। २६, २७, २८)

* यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः॥
(महा० वन० अ० २९७। २१-२२)

बार अपना पति चुन लिया । अब मैं दूसरे किसी पुरुषका वरण नहीं कर सकती । पहले मनके द्वारा निश्चय करके फिर वाणीद्वारा कहा जाता है । तत्पश्चात् उसे कार्यरूपमें परिणत किया जाता है, अतः इस विषयमें मेरा मन ही प्रमाण है । *

सावित्रीका निश्चय सुनकर श्रीनारदजीने उसका विवाह सत्यवान्‌के साथ करनेकी अनुमति दे दी । राजा अश्वपति ब्राह्मणों, ऋत्विजों, पुरोहितोंको और विवाहकी सारी सामग्री तथा सावित्रीको साथ लेकर राजा द्युमत्सेन-के आश्रमपर गये । वहाँ उनसे अनुनय-विनय करके सत्यवान्‌के साथ अपनी पुत्री सावित्रीका विधिपूर्वक विवाह कर दिया । सावित्री अपने सास-ससुर और पति-की तन-मनसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करती रही । वह अपनी सेवाओंसे तीनोंको संतुष्ट रखती थी । किंतु श्रीनारदजीके वचनोंका स्मरण उसे सदा बना रहता था । उसने गणना करके एक दिन जान लिया कि आजसे चौथे दिन पतिदेवकी मृत्यु है; तब उसने तीन रातका कठोर व्रत धारण किया । चौथे दिन जब सत्यवान्‌की मृत्यु होनेवाली थी, वे कंधेपर कुल्हाड़ी रखकर फल-फूल, समिधा आदि लेने वनकी ओर चले, उस समय पतिव्रता सावित्रीने पतिसे अनुनय-विनय करके वनमें साथ चलनेकी अनुमति प्राप्त कर ली; किंतु सत्यवान्‌ने कहा—'तुम मेरे माता-पितासे पूछ लो, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े ।' सावित्रीने सास-ससुरसे भी प्रणामपूर्वक अनुनय-विनय करके पतिके साथ वनमें जानेकी आज्ञा प्राप्त कर ली और पतिके साथ वनमें चली गयी ।

वनमें पहुँचकर दोनोंने फल एकत्र करके एक काठ-की टोकरी भर ली । इसके बाद जब सत्यवान् लकड़ी काटने लगा, तब उसके सिरमें भयानक पीड़ा होने लगी । सावित्री अपने पतिदेवको गोदमें सुलाकर बैठ गयी । थोड़ी ही देरमें, सत्यवान्‌का प्राण लेनेके लिये उसने यमराजको आये देखा । सावित्रीके पूछनेपर यमराजने अपना परिचय दे दिया । तब सावित्री बोली—'भगवन् ! मैंने तो सुना है कि मनुष्योंको ले जानेके लिये आपके दूत आया करते हैं । यहाँ आप स्वयं कैसे आये ?' यमराजने कहा—'यह सत्यवान् धर्मात्मा और गुणोंका समुद्र है । अतः यह मेरे दूतोंद्वारा ले जाये जाने योग्य नहीं है । इसलिये मैं स्वयं आया हूँ ।' यह कहकर यमराजने सत्यवान्‌के शरीरसे जीवको पाशमें बाँधकर निकाल लिया और उसे लेकर वे दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये । सत्यवान् निष्प्राण हो गये । यह देख सावित्री दुःखसे आतुर हो यमराजके पीछे-पीछे चल पड़ी । यमराजने कहा—अब तू लौट जा; तुझे जहाँतक आना चाहिये था, वहाँतक तू आ चुकी । सावित्री बोली—जहाँ मेरे पति ले जाये जाते हैं अथवा ये स्वयं जहाँ जा रहे हैं, वहीं मुझे भी जाना चाहिये—यही सनातन धर्म है । तपस्या, गुरु-भक्ति, पतिप्रेम, पातिव्रत्य-पालन तथा आपकी कृपासे मेरी गति कहीं भी नहीं रुक सकती ।'* तत्पश्चात् सावित्री-ने संत-महात्माओंके दयालु स्वभाव और गुणोंका वर्णन करके यमराजकी बड़ी प्रशंसा की । इससे यमराजने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा । सावित्रीने क्रमशः ये चार वर माँगे—१. मेरे श्वशुरके नेत्र नष्ट हो गये हैं, वे नेत्रयुक्त हो जायँ; २. मेरे श्वशुरका राज्य शत्रुओंने छीन लिया, वह उन्हें वापस मिल जाय; ३. मेरे पिताके सौ पुत्र हों और ४. मेरे भी सौ पुत्र हों ।' यमराज वर देकर जाने लगे । फिर भी सावित्री-ने पीछा नहीं छोड़ा । तब यमराज बोले—'सावित्री ! तू बहुत दूर आ गयी, थक गयी होगी । अतः लौट जा ।'

---

* सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते ।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥
(महा० वन० अ० २९४ । २६, २७, २८)

* यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च ।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥
(महा० वन० अ० २९७ । २१-२२)

फिर भी सावित्री नहीं लौटी। सावित्री बोली—'महाराज! आपने मुझको सौ पुत्र होनेका वर दिया है, वह मेरे पतिके बिना सफल नहीं हो सकता। अतः मेरे पति सत्यवान् जीवित हो जायँ।' इसपर यमराजने सत्यवान्की चार सौ वर्षकी आयु बढ़ाकर उनको छोड़ दिया। सावित्री सत्यवान्को लेकर आश्रमपर लौट आयी (महा० वन० अ० २९३ से २९७)।

सावित्रीने पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे यमराजको भी जीत लिया और उनसे चार वरदान प्राप्त करके अपने मरे हुए पतिको पुनः प्राप्त कर लिया।

राजा नलकी धर्मपत्नी दमयन्ती बड़ी उच्च कोटि-की पतिव्रता थी। उसने हंसोंके द्वारा राजा नलके गुण सुनकर मन-ही-मन उनको अपना पति वरण कर लिया था। इस कारण उसने इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम—इन देवताओंको भी छोड़कर राजा नलके साथ ही विवाह किया। राजा नल एक दिन लघुशङ्का करनेके पश्चात् केवल हाथ-मुँह धोकर और आचमन करके ही संध्योपासन करने बैठ गये, पैरोंको नहीं धोया। उनमें यह छिद्र देखकर उनके भीतर कलियुग प्रवेश कर गया।* इस कारण राजा नल अपने भाई पुष्करके साथ जूआ खेलनेके समय राज्य आदिको हारने लगे। दमयन्तीके अनुरोध करनेपर भी वे जूएसे निवृत्त नहीं हुए। तब दमयन्तीने निरुपाय होकर अपने पुत्र इन्द्रसेन और पुत्री इन्द्रसेनाको अपने नैहर कुण्डिनपुर भेज दिया। सब कुछ हार जानेपर राजा नल वनमें चले गये। पतिव्रता दमयन्ती भी उनके पीछे हो ली। मार्गमें नलने उसको भी नैहर चली जानेके लिये संकेत किया; किंतु दमयन्ती पतिको छोड़कर बिना बुलाये पिताके घर नहीं गयी। अन्तमें रात्रिके समय वनमें राजा नल दमयन्तीको अकेली छोड़कर आगे चल दिये और राजा ऋतुपर्णके यहाँ पहुँचकर बाहुक नामसे अश्वाध्यक्षका कार्य करने लगे।

इधर पतिके अकेली छोड़कर चले जानेपर दमयन्ती-ने बहुत विलाप किया और वह विरह-व्याकुल हो उन्हें खोजने लगी। खोजते समय वनमें एक अजगरने उसको ग्रस लिया। यह देख एक व्याधने अजगरको मारकर दमयन्तीको उससे छुड़ा दिया। व्याधके पूछने-पर दमयन्तीने उसे अपना परिचय दे दिया। व्याध दमयन्तीके सौन्दर्यको देखकर काममोहित हो गया, वह दमयन्तीसे अपने अनुकूल होनेके लिये बहुत मीठी-मीठी बातें कहने लगा। उसके दूषित मनोभावको जानकर दमयन्ती जोशमें भर गयी और उसने अपने पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे उस अश्लील भाववाले व्याधको शाप दे डाला, जिससे वह जले हुए वृक्षकी भाँति प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

तदनन्तर दमयन्ती चेदिराजके भवनमें जाकर राजमाता अपनी मौसीके यहाँ दासीका कार्य करने लगी; किंतु उसने राजमातासे इस शर्तके साथ रहना स्वीकार किया कि मैं किसीका जूठा नहीं खाऊँगी, किसीके पैर नहीं धोऊँगी और किसी भी दूसरे पुरुष-से किसी तरह भी वार्तालाप नहीं करूँगी।* यदि कोई पुरुष मुझे प्राप्त करना चाहे तो उसे आप प्राण-दण्ड दें। मैं अपने पतिकी खोजके लिये केवल ब्राह्मणोंसे मिल सकती हूँ।' यह शर्त करके वह वहाँ रहने लगी।

उस समय उसकी खोजके लिये उसके पिता भीमके द्वारा भेजे हुए ब्राह्मणोंमेंसे एक सुदेव नामक ब्राह्मणने वहाँ पहुँचकर उससे भेंट की। सुदेवने दमयन्तीको पहचान लिया। उसने दमयन्तीसे उसके वियोगमें उसके माता-पिताके दुःखी होनेका हाल कहा। फिर राजमाताके पूछनेपर सुदेवने दमयन्तीका सारा परिचय कह सुनाया। दमयन्तीको जान लेनेपर राजमाताको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। जब दमयन्तीने पिताके घर जानेकी आज्ञा माँगी, तब उसने दमयन्तीसे ठहरनेके लिये आग्रह किया; किंतु दमयन्ती मौसीसे अनुरोधपूर्वक आज्ञा लेकर माता-पिताके

---

* कृत्वा मूत्रमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्त नैषधः।
अकृत्वा पादयोः शौचं तत्रैनं कलिराविशत्॥
(महा० वन० अ० ५९।३)

* उच्छिष्टं नैव भुञ्जीयां न कुर्यां पादधावनम्।
न चाहं पुरुषानन्यान् प्रभाषेयं कथंचन॥
(महा० वन० अ० ६५।६८)

पास चली गयी, इससे माता-पिता बड़े प्रसन्न हुए। दमयन्ती भी माता-पिता और पुत्र-पुत्रीसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। किंतु उसे नलके वियोगका बड़ा भारी दुःख था, अतः उसने मातासे प्रार्थना की—'मैं अपने पतिके बिना प्राण धारण नहीं कर सकती, अतः मेरे पतिका पता लगानेका आप प्रयत्न करें। वे पहलेसे ही नलकी खोजमें प्रयत्नशील थे। दमयन्तीके कहनेपर उन्होंने विशेष रूपसे खोज करायी। बहुत-से ब्राह्मण इधर-उधर भेजे गये।

तदनन्तर ब्राह्मणोंके द्वारा बाहुक नामधारी नलका समाचार पाकर दमयन्तीने सुदेवको राजा ऋतुपर्णके यहाँ संदेश देकर भेजा कि 'भीमकुमारी दमयन्ती पुनः स्वयंवर करेगी। कल ही वह स्वयंवर होगा।' यह सुनकर राजा ऋतुपर्ण दमयन्तीको प्राप्त करनेके लिये अपने अश्वाध्यक्ष बाहुक नामधारी नलकी सहायतासे कुण्डिनपुर पहुँचे।

राजा नलके कुण्डिनपुर पहुँचनेपर दमयन्ती अपनी दासी केशिनीके द्वारा उनकी परीक्षा करके इस निर्णयपर पहुँच गयी कि ये राजा नल ही हैं। तब उसने उनको अपने महलमें बुलाकर उनसे भेंट की। उस समय राजा नलने दमयन्तीसे कहा—'कोई भी स्त्री अपने अनुरक्त पतिको त्यागकर दूसरे पुरुषका वरण कैसे कर सकती है, जैसा कि तुम करने जा रही हो?' इसपर दमयन्तीने उनसे क्षमा-प्रार्थना की कि मैंने यह पुनः स्वयंवरकी बात आपकी प्राप्तिके लिये ही कहलायी थी, इसलिये आप मुझे क्षमा करें।

तत्पश्चात् राजा नलने अपने श्वशुर भीमकी सहायतासे अपने देशमें जाकर पुष्करके साथ पुनः जूआ खेला और उसे हराकर अपना राज्य वापस प्राप्त कर लिया (महा० वन० अ० ५२ से ७८)।

दमयन्तीके इस चरित्रसे प्रत्येक स्त्रीको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि भारी-से-भारी संकट पड़नेपर भी पतिका सङ्ग न छोड़े, आपत्तिकाल पड़नेपर भी बिना बुलाये माता-पिताके भी घरपर न जाय, अपने आरामकी लालसासे स्वजनोंको भी अपना परिचय न देकर दुःख ही सहती रहे एवं पतिके वियोगमें जीना भी पसंद न करे।

इसी प्रकार देवी गान्धारी भी बड़ी ही पतिव्रतपरायणा थीं। उन्होंने जब सुना कि मेरे पति धृतराष्ट्र अंधे हैं और माता-पिता मेरा विवाह उन्हींके साथ करना चाहते हैं, तब उन्होंने एक रेशमी वस्त्र लेकर उसके कई तह करके उसीसे अपनी आँखें बाँध लीं। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं सदा पतिके अनुकूल रहूँगी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पतिपरायणा गान्धारीने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार और सद्व्यवहारोंसे समस्त कौरवों और गुरुजनोंको प्रसन्न कर लिया। वे ऐसी उच्च कोटिकी पतिव्रता थीं कि उन्होंने कभी दूसरे पुरुषोंका नामतक नहीं लिया (महा० आदि० अ० १०९)।

पतिव्रता गान्धारीके पातिव्रत्यके प्रभावकी अनेक घटनाएँ महाभारतमें मिलती हैं। जब राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी अपने जामाता, कुटुम्बीजनों और पुत्रोंके शोकमें व्याकुल हुए उनके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये हस्तिनापुरसे गङ्गातटपर चले गये, तब राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों और श्रीकृष्णके साथ उनके दर्शनके लिये उनके पास गये। महाराज धृतराष्ट्रसे मिलकर जब युधिष्ठिर देवी गान्धारीके चरणोंमें सिर झुकाने लगे, उस समय धर्मको जाननेवाली दूरदर्शिनी देवी गान्धारीने पट्टीके भीतरसे ही राजा युधिष्ठिरके पैरोंकी अङ्गुलियोंके अग्रभाग देख लिये, इससे युधिष्ठिरके नख काले पड़ गये। यह देख अर्जुन भयभीत हो भगवान् श्रीकृष्णके पीछे जाकर छिप गये (महा० स्त्री० अ० १५)।

इतना ही नहीं, देवी गान्धारीने श्रीकृष्णको उपालम्भ देते हुए कहा कि 'श्रीकृष्ण! तुम शक्तिशाली थे। तुममें दोनों पक्षोंसे अपनी बात मनवा लेनेकी सामर्थ्य थी। फिर भी तुमने स्वेच्छासे कुरुकुलके नाशकी उपेक्षा कर दी—यह तुम्हारा महान् दोष है। अतः मैं अपने पति-सेवाके दुर्लभ तपोबलसे तुम्हें शाप देती हूँ कि आजसे छत्तीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर तुम्हारे कुटुम्बी, मन्त्री और पुत्र—सभी आपसमें लड़कर मर जायँगे।' भगवान् श्रीकृष्णने मुस्कराते हुए स्वीकार किया कि मैं

जानता हूँ, यह बात इसी तरह होनेवाली है। (महा० स्त्री० अ० २५ । ३७—५०)

पातिव्रत्यका कैसा अद्भुत प्रभाव है! उसके प्रभावसे गान्धारी भगवान् श्रीकृष्णको भी शाप देनेमें समर्थ हो गयीं।

ऊपर कुछ चुनी हुई पतिव्रताओंके चरित्रोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया है। इनके सिवा और भी बहुत-सी पतिव्रताओंके चरित्र महाभारतमें मिलते हैं। स्त्रियोंको इनके आदर्श चरित्रोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वनपर्वके २३३ और २३४ वें अध्यायोंमें देवी द्रौपदीने सत्यभामाके प्रति और अनुशासनपर्वके १२३ वें अध्यायमें सर्वज्ञा शाण्डिलीने केकयराजपुत्री सुमनासे पतिव्रता स्त्रीके कर्तव्यकी बहुत ही सुन्दर शिक्षाएँ दी हैं, उनको पढ़कर उनके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

इसी प्रकार महाभारतमें मनुष्यके लिये शारीरिक, ऐन्द्रियिक, मानसिक, बौद्धिक, भौतिक, नैतिक, व्यावहारिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदि उन्नतिके सम्बन्धमें भी अनेक उपदेश, संवाद और आख्यान भरे हुए हैं। हमलोगोंको उनपर ध्यान देकर उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

शारीरिक उन्नतिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने जो सात्त्विक आहार * और शारीरिक तप † बतलाया है, उसके अनुसार हमें अपना जीवन बनाना चाहिये।

ऐन्द्रियिक उन्नतिके लिये हमें भगवान् श्रीकृष्णके बतलाये हुए वाणीके तपको आचरणमें लाना चाहिये* जब मनुष्यमें वाणीके तपकी सिद्धि हो जाती है, तब उसकी वाणी सफल हो जाती है। वह जो कुछ कह देता है, वह बात वैसी ही हो जाती है। एक समयकी बात है, राजा परीक्षित् शिकार खेलते हुए एक गहन वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने बाणसे एक हिंसक पशुको बींध डाला और उसके भागनेपर बहुत दूरतक उसका पीछा किया। इससे उन्हें बड़ी थकावट आ गयी, तब वे शमीक मुनिके पास आये। मुनि मौन-व्रत धारण किये हुए थे। अतः उन्होंने पशुके विषयमें राजाके पूछनेपर भी कोई उत्तर नहीं दिया। तब राजाने कुपित होकर धनुषकी नोकसे एक मरे हुए साँपको उठाया और मुनिके कंधेपर डाल दिया, किंतु मुनिने तब भी उनकी उपेक्षा कर दी। इधर मुनिपुत्र शृङ्गी आचार्यकी आज्ञा प्राप्तकर घर लौट रहे थे; उनको जब अपने मित्र कृशसे राजा परीक्षित्के इस व्यवहारका पता लगा, तब वे बड़े रोषमें भर गये और उन्होंने आचमन करके हाथमें जल लेकर परीक्षित्को इस प्रकार शाप दिया—'जिस पापात्मा नरेशने मेरे बूढ़े पिताके कंधेपर मरा साँप रख दिया है, उस परीक्षित्को आजसे सात रातके बाद प्रचण्ड तेजस्वी पन्नगेश्वर तक्षक नामक विषैला नाग अत्यन्त कोपमें भरकर मेरे वाक्य-बलसे प्रेरित हो† यमलोक पहुँचा देगा (महा० आदि० अ० ४१)।' शृङ्गी ऋषिके इसी कठोर शापके फलस्वरूप राजा

---

* सात्त्विक आहारका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥
(महा० भीष्म० अ० ४१ । ८)

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय लगनेवाले ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।'

† शारीरिक तपके लक्षण भगवान्ने यों बतलाये हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥
(महा० भीष्म० अ० ४१ । १४)

'देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

* वाणीका तप इस प्रकार बताया गया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
(महा० भीष्म० अ० ४१ । १५)

'जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेदशास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वह वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

† तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः ।
आशीविषस्तिग्मतेजा मद्वाक्यबलचोदितः ॥
सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति ।
(महा० आदि० अ० ४१ । १३-१४)

परीक्षित्को तक्षक नागने डँसा, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। यह है एक सत्यवादी तपस्वी मुनिकुमारकी वाणीका प्रभाव।

मानसिक उन्नतिके लिये हमें भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए मानसिक तपका* अनुष्ठान करना चाहिये।

बौद्धिक उन्नतिके लिये हमलोगोंको भगवान् श्रीकृष्णकथित सात्त्विक ज्ञान† और सात्त्विक बुद्धिके ‡ लक्षणोंको अपनाना चाहिये।

भौतिक उन्नतिके लिये हमें महाभारत-कालके भौतिक विज्ञानके प्रभावकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये। उस समय भौतिक उन्नति आजकलके वैज्ञानिक आविष्कारोंसे बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी।

मार्तिकावत देशके राजा शाल्वके पास एक ऐसा नगराकार विशाल आकाशचारी विमान था, जो चालकके इच्छानुसार चलता था। राजा शाल्वने उसी 'सौभ' नामक विमानपर बैठकर द्वारकापुरीपर आक्रमण किया था। वह उसमें व्यूहरचनापूर्वक विराजमान था और उसीमें बैठा हुआ युद्ध कर रहा था। फिर भगवान् श्रीकृष्णने मार्तिकावतक देशमें जाकर समुद्रतटपर युद्धमें उस विमानके साथ ही राजा शाल्वको नष्ट कर दिया (महा० वन० अ० १४ से २२)।

अश्वत्थामाको नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि अनेक दिव्य अस्त्रोंका ज्ञान था। जब द्रोणाचार्यके वधका वृत्तान्त सुनकर वे अत्यन्त कुपित हो गये, तब उन्होंने नारायणास्त्रका प्रयोग करके सारी पाण्डवसेनामें हलचल मचा दी। सब भयभीत हो गये। उस समय उसका निवारण कोई भी नहीं कर सका। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'योद्धाओ! अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर और सवारियोंसे उतरकर उसके शरण हो जाओ। भगवान् नारायणने इस अस्त्रके निवारणका यही उपाय निश्चित किया है। भूमिपर निहत्थे खड़े हुए तुमलोगोंको यह अस्त्र नहीं मारेगा।' योद्धाओंने ऐसा ही किया। जब सब रथसे उतर गये और शस्त्रास्त्र भूमिपर रख दिये गये, तब वह अस्त्र शान्त हो गया। इस प्रकार श्रीकृष्णके उपाय बतलानेपर उन सबका उस अस्त्रसे परित्राण हो गया (महा० द्रोण० अ० १९९-२००)।

इसी प्रकार अश्वत्थामाने गङ्गातटपर भीमके द्वारा ललकारे जानेपर पाण्डवोंके वधके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उसका निवारण करनेके लिये अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया। उससे सारा आकाश आगकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याप्त हो गया। पृथ्वी हिलने लगी। सब प्राणी भयभीत हो गये। अन्तमें श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे अर्जुनने अपने ब्रह्मास्त्रका उपसंहार कर लिया और अश्वत्थामाने उत्तराके गर्भस्थ वंशजपर उस ब्रह्मास्त्रको छोड़ दिया (महा० सौप्तिक० अ० १३, १४, १५)।

अर्जुनके सम्मोहनास्त्रका भी बड़ा भारी प्रभाव था, जिसके द्वारा उन्होंने सभी कौरव महारथियोंको मोहित कर दिया था (महा० विराट० अ० ६६)। वीर अर्जुनको अद्भुत बाण-विद्या प्राप्त थी, उन्होंने भीष्मजीके आदेशसे बाणशय्यापर सोये हुए उनको तीन बाण मारकर उसीका तकिया दिया और फिर दिव्यास्त्रके द्वारा उनके मुखमें दिव्य गन्ध और दिव्य रससे युक्त

---

* मानसिक तपका स्वरूप यह है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते॥
(महा० भीष्म० अ० ४१। १६)

'मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

†-‡ भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥
(महा० भीष्म० अ० ४२। २०)

'जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित—समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान।'

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥
(महा० भीष्म० अ० ४२। ३०)

'हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।'

शीतल जलकी धारा गिराकर उन्हें तृप्त कर दिया। (महा० भीष्म० अ० १२०-१२१)। इतना ही नहीं, जयद्रथवधके दिन भयंकर संग्राममें जब अर्जुनके घोड़े थक गये, तब अर्जुनने युद्ध करते हुए शत्रुओंके बीच बाणोंके द्वारा पृथ्वीपर आघात करके एक सरोवर उत्पन्न कर दिया तथा वहाँ एक बाणोंका ही घर बना दिया। अर्जुनका यह अपूर्व कार्य देखकर सब साधुवाद देने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ रथके घोड़ोंको खोलकर नहलाया, पानी पिलाया और घास-दाने खिलाये। जब उनकी थकावट दूर हो गयी, तब उनको रथमें जोतकर वे अर्जुनसहित उसपर आरूढ़ हो आगे बढ़े (महा० द्रोण० अ० ९९-१००)।

जयद्रथवधके समय अर्जुनने जयद्रथका सिर काटकर उसे बाणद्वारा सायंकालीन संध्योपासना करते हुए उसके पिता वृद्धक्षत्रकी गोदमें डाल दिया (महा० द्रोण० अ० १४६)।

उस समय मन्त्रविद्याका बल भी बड़ा ही विचित्र था। जब तक्षक नाग राजा परीक्षित्को डसनेके लिये जा रहा था, तब मार्गमें उसकी काश्यप नामक ब्राह्मणसे भेंट हुई, जो अपने मन्त्रबलसे परीक्षित्को सर्पविषसे रहित करके जीवित करनेके लिये जा रहे थे। तक्षकको जब यह ज्ञात हुआ, तब उसने उसकी परीक्षा लेनेके लिये एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर दिया और काश्यपसे कहा—'तुम्हारे पास मन्त्रबल है तो तुम उससे इस वृक्षको सजीव कर दो।' तब उन सौभाग्यशाली विद्वान् द्विजश्रेष्ठ काश्यपने भस्मराशिके रूपमें विद्यमान उस वृक्षको मन्त्र-विद्याके बलसे जीवित कर दिया।* इसपर तक्षकने उन्हें धन देकर लौटा दिया (महा० आदि० अ० ४३)।

श्रीवेदव्यासजी महाराजमें तो यह वैज्ञानिक शक्ति बहुत ही अधिक विकसित थी। वे चाहे जिसे दिव्य दृष्टि दे देते थे, जिससे उसकी इन्द्रियाँ दिव्य हो जाती थीं। उन्होंने राजा द्रुपदको दिव्यदृष्टि प्रदान करके पाण्डवोंके दिव्य रूपोंके दर्शन करा दिये (महा० आदि० अ० १९६)। इसी प्रकार संजयको भी उन्होंने दिव्यदृष्टि दे दी थी। उस दिव्यदृष्टिके प्रभावसे संजयने महाभारत-युद्धका सारा वृत्तान्त जानकर राजा धृतराष्ट्रको सुना दिया। प्रकट-अप्रकट, दिनमें होनेवाली या रातमें होनेवाली अथवा मनमें सोची गयी सारी बातें संजयने प्रत्यक्ष जान लीं। उन्हें सर्वज्ञता प्राप्त हो गयी। एवं संजयको कोई हथियार नहीं काट सका। उन्हें परिश्रम या थकावट भी नहीं हुई और वे युद्धसे जीवित बच गये, क्योंकि श्रीवेदव्यासजीने उनको ऐसा ही वरदान दिया था। (महा० भीष्म० अ० २)।

इतना ही नहीं, जब मृत पुत्रों और बान्धवोंके शोकसे दुःखी हुई गान्धारी आदि स्त्रियोंने व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रों आदिके दर्शन करानेका अनुरोध किया, तब वेदव्यासजीने गङ्गातटपर जाकर कुरुक्षेत्रके युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाके मरे हुए सैनिकोंका आवाहन किया, जिससे वे सब योद्धागण जलसे प्रकट हो गये। जिस वीरका युद्धके समय जैसा वेश, जैसी ध्वजा और जैसा वाहन था, वह उसीसे युक्त देखा गया। वे सभी दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे। सबके कानोंमें चमकीले कुण्डल थे। उस समय वे वैर, अहंकार, क्रोध और मात्सर्यको छोड़ चुके थे।* उन परलोकसे आये हुए अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे मिलकर वहाँ एकत्र हुई सब स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उनका दुःख दूर हो गया। फिर श्रीवेदव्यासजीके विसर्जन कर देनेपर वे सब गङ्गाजीमें गोता लगाकर अदृश्य हो गये। श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे जो स्त्रियाँ अपने पतिलोकको जाना चाहती थीं, वे भी गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने पतियोंके साथ चली गयीं। इस रोमाञ्चकारी दृश्यको वहाँ उपस्थित सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा (महा० आश्रम० अ० ३२-३३)।

---

* ततः स भगवान् विद्वान् काश्यपो द्विजसत्तमः।
भस्मराशिकृतं वृक्षं विद्यया समजीवयत्॥
(महा० आदि० अ० ४३।९)

* यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनम्।
तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः।
निर्वैरा निरहंकारा विगतक्रोधमत्सराः॥
(महा० आश्रम० अ० ३२। १४-१५। ९

यही नहीं, जब श्रीवैशम्पायनजी जनमेजयसे यह आख्यान कह रहे थे, तब जनमेजयने प्रार्थना की कि यदि श्रीवेदव्यासजी मेरे मृत पिताका मुझे दर्शन करा दें तो मैं आपकी बातपर श्रद्धा कर सकता हूँ। इसपर श्रीवेदव्यासजीने उसी रूप और अवस्थामें राजा परीक्षित्‌को बुलाकर जनमेजयको उनका दर्शन करा दिया (महा० आश्रम० अ० ३५)। उस समय ऐसी विलक्षण भौतिक उन्नति थी ।

नैतिक उन्नतिके लिये श्रीविदुरजीने धृतराष्ट्रके प्रति जो नीतिका उपदेश उद्योगपर्वके ३३ वें अध्यायसे ४० वें अध्यायतक दिया है, उसका अध्ययन करके उसके अनुसार हमें अपना जीवन बनाकर सबके साथ यथोचित न्यायपूर्ण बर्ताव करना चाहिये ।

श्रीविदुरजीने द्रौपदीके चीरहरणके समय भक्त प्रह्लादके न्यायका एक बड़ा ही सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया था । भक्त प्रह्लादका वह न्याय हम सब लोगोंके लिये अनुकरणीय है । एक समयकी बात है, केशिनी नामकी एक कन्याको लेकर अङ्गिरापुत्र सुधन्वा और प्रह्लादपुत्र विरोचनमें परस्पर विवाद हो गया । वे दोनों ही उसको पानेकी इच्छासे 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं श्रेष्ठ हूँ' यों कहने लगे । अन्तमें उन दोनोंने अपनी बात सत्य करनेके लिये प्राणोंकी बाजी लगा दी और उन्होंने श्रेष्ठताके प्रश्नको लेकर दैत्यराज प्रह्लादके पास जाकर पूछा—'हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ? आप इस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दें, झूठ न बोलें ।' यह सुनकर प्रह्लाद इस विषयमें कुछ पूछनेके लिये महातेजस्वी कश्यपजीके पास गये और पूछा कि जो प्रश्नका उत्तर ही न दे अथवा असत्य उत्तर दे तो उसे परलोकमें क्या गति प्राप्त होती है ?' इसपर कश्यपजीने कहा—'प्रह्लाद ! जो जानते हुए भी काम, क्रोध या भयसे प्रश्नोंका उत्तर नहीं देता, वह अपने ऊपर वरुणदेवताके सहस्रों पाश डाल लेता है । एवं जो लोग धर्मविषयक प्रश्न पूछनेवालेको झूठा उत्तर देते हैं, वे अपने इष्टापूर्त धर्मका तो नाश करते ही हैं, आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंके पुण्योंको भी नष्ट कर डालते हैं ।' कश्यपजीकी बात सुनकर प्रह्लादजीने अपने पुत्रसे कहा—'विरोचन ! सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, उसके पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं और सुधन्वाकी माता तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ हैं । अब यह सुधन्वा ही तुम्हारे प्राणोंका स्वामी है ।' *

ऐसा न्यायपूर्ण निर्णय सुनते ही सुधन्वाने यह आशीर्वाद दिया—'दैत्यराज ! तुम पुत्रस्नेहकी परवा न करके जो धर्मपर डटे रहे, इससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे पुत्रको वर देता हूँ कि यह सौ वर्षोंतक जीवित रहे ।' कितना सुन्दर न्याय है !

व्यावहारिक उन्नतिके लिये हमें तुलाधार वैश्यकी व्यापार-नीतिका अनुसरण करना चाहिये । वे बड़ी सत्यता और समतापूर्वक वैश्य-धर्मका पालन करते थे । उनको इस सत्यव्यवहारके कारण ही तीनों कालोंका ज्ञान हो गया था । प्राचीन कालकी बात है, जाजलि नामके एक महान् तपस्वी ब्राह्मण थे । उन्होंने समुद्रके तटपर जाकर बड़ी भारी तपस्या की । उनकी जटाओंमें एक पक्षीके जोड़ेने घोंसला बना लिया और विश्वस्त होनेके कारण उन्होंने उसीमें अंडे दे दिये । जब उनसे बच्चे पैदा होकर उनके पंख निकल आये, तब वे बाहर जाने-आने लगे । यह देख जाजलि ऋषिको बहुत प्रसन्नता हुई । जब पक्षी उड़कर चले गये और एक मासतक वापस नहीं लौटे, तब जाजलिने घोंसलेको सिरसे नीचे गिरा दिया । उस समय वे अपनेको महान् धर्मात्मा समझने लगे और ताल ठोंककर कहने लगे—मैंने धर्मको प्राप्त कर लिया । इतनेमें ही आकाशवाणी हुई—'जाजले ! तुम धर्ममें काशीपुरीके तुलाधार वैश्यके समान नहीं हो ।' यह सुनकर जाजलि काशीपुरीमें तुलाधारके पास आये तो उनको सौदा बेचते देखा । तुलाधार जाजलि ऋषिको आते देख तुरंत उठकर खड़े हो गये और उन्होंने उनका आदर-सत्कार करके कहा—'ब्रह्मन् ! आप मेरे पास आ रहे हैं—यह मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था । आपके सिरपर पक्षियोंके अंडे देने, उनसे बच्चा पैदा होने, उनका आपके द्वारा पालन किये जाने और उससे आपके अपनेको बहुत बड़ा माननेपर आकाशवाणी

* श्रेयान् सुधन्वा त्वत्तो वै मत्तः श्रेयांस्तथाङ्गिराः ।
माता सुधन्वनश्चापि मातृतः श्रेयसी तव ।
विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव ॥
(महा० सभा० अ० ६८ । ८९)

होनेकी बात भी मुझे ज्ञात है ।' तब जाजलि बोले—'वैश्यपुत्र ! तुम तो सब प्रकारके रस, गन्ध, वनस्पति, ओषधि, मूल और फल आदि बेचा करते हो; तुम्हें यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ?' तुलाधारने उत्तरमें कहा—'जाजले ! जिसमें किसी भी प्राणीके साथ द्रोह (हिंसा) न करना पड़े अथवा कम-से-कम द्रोह (हिंसा) करनेसे काम चल जाय,ऐसी जीवन-वृत्ति ही परम धर्म है । मैं उसीसे जीवननिर्वाह करता हूँ । विप्रर्षे ! मेरे यहाँ मदिरा नहीं बेची जाती । उसे छोड़कर बहुत-से पीनेयोग्य रसोंको दूसरोंसे खरीदकर बेचता हूँ । मैं छल-कपट और असत्यसे रहित होकर माल खरीदता-बेचता हूँ । मैं न किसीसे अनुरोध करता हूँ, न विरोध ही करता हूँ । न कहीं मेरा द्वेष है और न किसीसे मैं कुछ कामना करता हूँ । समस्त प्राणियोंके प्रति मेरा समभाव है । जाजले ! यही मेरा व्रत और नियम है, इसपर दृष्टिपात करो । मुने ! मेरी तराजू सब मनुष्योंके लिये सम है—सबके लिये बराबर तौलती है ।' * तदनन्तर तुलाधारने महर्षि जाजलिको धर्मकी बहुत-सी गूढ़ बातें बतलायीं और कहा—'ब्रह्मन् ! मैंने धर्मके जिस मार्गका दर्शन कराया है, उसपर सज्जन पुरुष चलते हैं या दुर्जन—इस बातको अच्छी तरह जाँचकर प्रत्यक्ष कर लें । तब आपको इसकी यथार्थता-का ज्ञान होगा । देखिये, आकाशमें ये आपके सिरपर उत्पन्न हुए पक्षी उड़ रहे हैं; इनको बुलाकर इनसे प्रश्न कीजिये ।' तब जाजलिने उन पक्षियोंको बुलाया । उनका धर्मयुक्त वचन सुनकर वे पक्षी वहाँ आये और मनुष्यके समान स्पष्ट वाणीमें बोलने लगे । उन्होंने जाजलिसे श्रद्धाकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—'अश्रद्धा सबसे बड़ा पाप है और श्रद्धा पापसे छुटकारा दिलाने-वाली है । जैसे साँप अपने पुराने केंचुलको छोड़ देता है, उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष पापका परित्याग कर देता है । श्रद्धा होनेके साथ-ही-साथ पापोंसे निवृत्त हो जाना समस्त पवित्रताओंसे बढ़कर है । जिसके शीलसम्बन्धी दोष दूर हो गये हैं, वह श्रद्धालु पुरुष सदा पवित्र ही है । उसे तपस्यासे क्या लेना है । आचार-व्यवहार अथवा आत्मचिन्तनद्वारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना है । यह पुरुष श्रद्धामय है; जिसकी जैसी—सात्त्विकी, राजसी या तामसी—श्रद्धा होती है, वह पुरुष वैसा ही—सात्त्विक, राजस या तामस है । अतः महाप्राज्ञ जाजले ! आप इसपर श्रद्धा करें । तत्पश्चात् इसके अनुसार आचरण करनेसे आपको परम गतिकी प्राप्ति होगी । श्रद्धा करनेवाला श्रद्धालु पुरुष साक्षात् धर्मका स्वरूप है । जाजले ! जो श्रद्धापूर्वक अपने धर्मपर स्थित है, वही सबसे श्रेष्ठ माना गया है ।*

तदनन्तर थोड़े ही समयमें न्याययुक्त सत्य व्यवहार करनेवाले तुलाधार वैश्य और महातपस्वी जाजलि ऋषि दोनों ही परम धाममें चले गये ।

धार्मिक उन्नतिके लिये हमें भगवान् श्रीकृष्णके कहे हुए दैवी सम्पदा†के लक्षणोंको धारण करना चाहिये ।

---

* अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले ॥
रसांश्च तांस्तान् विप्रर्षे मद्यवर्ज्यान् बहूनहम् ।
क्रीत्वा वै प्रतिविक्रीणे परहस्तादमायया ॥
नानुरुद्धये निरुद्धये वा न द्वेष्मि न च कामये ।
समोऽहं सर्वभूतेषु पश्य मे जाजले व्रतम् ।
तुला मे सर्वभूतेषु समा तिष्ठति जाजले ॥
(महा० शान्ति० अ० २६२ । ६, ८, १०)

* अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचिनी ।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णामिव त्वचम् ॥
ज्यायसी या पवित्राणां निवृत्तिः श्रद्धया सह ।
निवृत्तशीलदोषो यः श्रद्धावान् पूत एव सः ॥
किं तस्य तपसा कार्यं किं वृत्तेन किमात्मना ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥
श्रद्धां कुरु महाप्राज्ञ ततः प्राप्स्यसि यत् परम् ।
श्रद्धावाञ्श्रद्दधानश्च धर्मश्चैव हि जाजले ॥
स्ववर्त्मनि स्थितश्चैव गरीयानेव जाजले ।
(महा० शान्ति० अ० २६४ । १५, १६, १७, १९)

† दैवी सम्पदाके लक्षणोंका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
(महा० भीष्म० अ० ४० । १–३)
भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता,

महाराज युधिष्ठिर परम धर्मात्मा थे । उनमें धर्मके सारे लक्षण थे । इसीलिये वे धर्मराजके नामसे प्रसिद्ध थे । उनके जीवनमें धर्मपालनकी अनेक आदर्श घटनाएँ हैं, उनमेंसे कुछका दिग्दर्शन इस 'महाभारत' मासिकपत्रके १० वें अङ्कमें कराया जा चुका है । हमलोगोंको उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । इसके सिवा महाराज युधिष्ठिरने यक्षके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए वनपर्वके ३१३ वें अध्यायमें धर्मका बहुत सुन्दर उपदेश दिया है, उसके अनुसार अपना जीवन धर्ममय बनाना चाहिये ।

पूर्वकालमें भारतमें धार्मिक उन्नति यहाँतक पहुँच गयी थी कि धर्मके लिये लोग अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करते थे । इस सम्बन्धमें महर्षि दधीचकी कथा ध्यान देनेयोग्य है । जब वृत्रासुरने देवताओंपर आक्रमण किया, तब इन्द्र आदि समस्त देवता ब्रह्माजीके पास गये । ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'आपलोग दधीच ऋषिके पास जाकर उनसे उनके शरीरकी अस्थियाँ माँगकर उससे वज्र निर्माण करें, उस वज्रसे आपलोग वृत्रासुरको मार सकेंगे ।' तब वे सब देवता दधीच ऋषिके पास गये और उनको प्रणाम करके उनसे उन्होंने उनके शरीरकी अस्थियाँ माँगीं । महर्षि दधीचने कहा—'देवगण ! जिससे आपलोगोंका हित

तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको किंचिन्मात्र भी कभी कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब हे अर्जुन ! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं ।'

हो, मैं वही करूँगा । अपने इस शरीरको मैं स्वयं ही त्यागे देता हूँ ।' यों कहकर महर्षि दधीचने अपने शरीरका त्याग कर दिया । तब देवताओंने महर्षिके निर्जीव शरीरसे हड्डियाँ ले लीं और उनसे अत्यन्त भयंकर वज्रका निर्माण किया । (महा० वन० अ० १००) । फिर इन्द्रने वृत्रासुरसे युद्ध करके उस वज्रके द्वारा उसका वध कर डाला ।

शिबिदेशके प्रतापी राजा उशीनर बड़े धर्मात्मा पुरुष हो गये हैं । एक समयकी बात है, उशीनरका महत्त्व जाननेके लिये अग्नि कबूतरका और इन्द्र बाज पक्षीका रूप धारण करके उनकी राजसभामें गये । कबूतर बाजसे भयभीत हो राजा उशीनरकी गोदमें चला गया और बोला कि राजन् ! मुझ शरणागतकी रक्षा करो । इतनेमें ही बाज पक्षीने आकर कहा—'महाराज ! यह कबूतर मेरा भक्ष्य है । इसे मुझको दे दें ।' उशीनर बोले—'इसे मैं कैसे दे सकता हूँ ? यह भयभीत है और मेरी शरणमें आया है; शरणागतकी रक्षा करना मेरा परमधर्म है ।' इसपर बाजने कहा—'आप मुझे अपना भक्ष्य न देंगे तो मैं और मेरे स्त्री-बच्चे सब भूखसे मर जायँगे । इस तरह आप इस एक कबूतरकी तो रक्षा कर रहे हैं, पर दूसरे बहुत-से भूखे प्राणियोंकी रक्षा नहीं कर रहे हैं ।' राजाने कहा—'मैं शिबिदेशका राज्य तथा और भी जिस वस्तुकी तुम्हें इच्छा हो, वह सब दे सकता हूँ, किंतु शरणकी इच्छासे मेरे पास आये हुए इस पक्षीको नहीं त्याग सकता ।' तब बाजने कहा—'महाराज ! यदि आप कबूतरकी रक्षा करना ही चाहते हैं तो इस कबूतरके बराबरका अपने शरीरका मांस तौलकर मुझे दे दीजिये, उसीसे मेरी तृप्ति हो जायगी ।' इसपर उशीनरने कहा—'बाज ! तुम जो मेरा मांस माँग रहे हो, यह मैं अपने ऊपर तुम्हारी बड़ी कृपा मानता हूँ ।' यह कहकर उन्होंने तराजू मँगाया । वे उसके एक पलड़ेमें कबूतरको बैठाकर दूसरेमें अपना मांस काट-काटकर रखने लगे; किंतु सारा मांस काट-काटकर रख देनेपर भी जब वह कबूतरवाला पलड़ा नहीं उठा, तब राजा स्वयं ही मांसवाले पलड़ेमें बैठ गये और वह पलड़ा झुक गया ।

राजाकी विजय हो गयी । यह देख कबूतर और बाज क्रमशः अग्नि और इन्द्रके रूपमें प्रकट हो गये एवं राजा उशीनरको वर देकर देवलोकमें चले गये । तत्पश्चात् राजा उशीनर भी धर्मपालनके प्रभावसे स्वर्गमें चले गये (महा० वन० अ० १३१ तथा अनुशासन० अ० ३२)। लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा राजा उशीनरके पुत्र शिबिकी भी मिलती है (महा० वन० अ० १९७) ।

महर्षि दधीच और राजा उशीनरका धर्मपालन बहुत ही उच्चकोटिका है । इनसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि मनुष्य अपना प्राण त्यागकर भी दूसरोंका हित करे ।

प्राचीन कालमें भारतमें धर्मके पालनमें इतनी तत्परता थी कि किसीसे अपराध हो जाता तो वह स्वयं राजाके पास जाकर दण्ड ले लिया करता था । इस विषयमें महाभारत, शान्तिपर्वके २३ वें अध्यायमें एक कथा है । शङ्ख और लिखित दो भाई थे । इनमें शङ्ख बड़े थे और लिखित छोटे । बाहुदा नदीके तटपर उन दोनोंके अलग-अलग बगीचे थे । एक दिन लिखित बड़े भाई शङ्खके बगीचेमें गये । उस समय शङ्ख बाहर गये हुए थे । लिखित शङ्खकी अनुपस्थितिमें शङ्खके बगीचेसे फल तोड़कर खाने लगे । इतनेमें ही शङ्ख वहाँ आ गये । उनके पूछनेपर लिखितने बता दिया कि मैंने ये फल यहींसे तोड़कर लिये हैं । तब शङ्खने कहा—'तुमने मुझसे बिना पूछे स्वयं ही फल ले लिये, यह चोरी है । अतः राजाके पास जाकर उनसे इसका दण्ड लो ।' बड़े भाईकी आज्ञा पाकर लिखित राजा सुद्युम्नके पास गये और उन्होंने इस चोरीका दण्ड देनेके लिये उनसे कहा । इसपर राजा सुद्युम्न बोले—'विप्रवर ! यदि आप दण्ड देनेमें राजाको प्रमाण मानते हैं तो उसका क्षमा करनेका भी अधिकार है । आप पवित्र कार्य करनेवाले और महान् व्रतधारी हैं, मैं आपके इस अपराधको क्षमा करके आपको जानेकी आज्ञा देता हूँ ।' लिखितने राजासे दण्ड देनेके लिये ही पुनः कहा । तब राजाने लिखितके दोनों हाथ कटवा दिये । उस समय दण्ड देनेकी यही प्रथा थी कि जिस अङ्गसे अपराध किया गया हो, उसी अङ्गका छेदन कर दिया जाय । दण्ड पाकर लिखित बड़े भाई शङ्खके पास आये । उनके दुःखको देखकर शङ्खने कहा—'अब तुम बाहुदा नदीमें जाकर देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करो । भविष्यमें कभी अधर्ममें मन न लगाना ।' लिखितने बाहुदा नदीमें जाकर स्नान किया और वे तर्पण करनेकी चेष्टा करने लगे । इतनेमें ही उनके दो नये सुन्दर हाथ आ गये । बड़े भाई शङ्खका यह अद्भुत प्रभाव देखकर वे उनके पास आये और उन्होंने दोनों हाथ दिखाकर प्रार्थना की—'जब आपका ऐसा प्रभाव है, तब आपने पहले ही मुझे दण्ड देकर पवित्र क्यों नहीं कर दिया ?' शङ्खने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मण हूँ । मेरा दण्ड देनेका अधिकार नहीं है । दुखीपर दया करना मनुष्यका कर्तव्य है ।'

विचार करना चाहिये, धर्मकी कितनी सूक्ष्म गति है । उन्होंने धर्मकी मर्यादाका पालन करनेके लिये कितना आश्चर्यजनक कार्य किया ! इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि भाईके बगीचेसे भी बिना अनुमतिके कोई वस्तु लेना चोरी है; अतः प्रथम तो चोरी करे ही नहीं और यदि चोरी हो जाय तो राजासे उसका दण्ड ले ले या प्रायश्चित्त कर ले । इसी प्रकार अन्य किसी पापके बन जानेपर स्वयं उसका प्रायश्चित्त कर ले ।

इन सब आदर्श चरित्रोंपर ध्यान देकर हमलोगोंको धर्मपालनमें तत्पर रहना चाहिये । जो जिस आश्रम या वर्णमें है, उसके लिये उसी आश्रम या वर्णके धर्मोंका शास्त्र-विधिके अनुसार निष्कामभावसे पालन करना उचित है । महाभारतमें आश्रमों और वर्णोंके धर्मोंका बड़े विस्तारके साथ जगह-जगह वर्णन आया है (महा० वन० अ० १५०, शान्ति० अ० ६०, ६३, १८९, १९१, १९२, २४२ से २४५, २९६; अनुशासन० अ० ९३, १०४, १४१; आश्वमेधिक० ४५, ४६, ९२ इत्यादि) । यहाँ तो इस विषयमें संक्षेपसे कुछ दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है ।

आश्रमधर्म

द्विजके बालकको चाहिये कि ब्रह्मचर्यका पालन

करते हुए गुरु या गुरुपुत्रकी सेवामें अपनी आयुके चौथाई भाग अर्थात् पचीस वर्षोंतक रहे । वहाँ रहते हुए किसीके दोष न देखे । ऐसा करनेवाला ब्रह्मचारी धर्म और अर्थके ज्ञानमें कुशल होता है । वह गुरुके सोनेके पश्चात् नीचे आसनपर सोये और उनके जागनेसे पहले ही उठ जाय । गुरुके घरमें एक शिष्य या दासके करनेयोग्य जो कुछ भी कार्य हो, उसे वह करे । अपनी उन्नति चाहनेवाले ब्रह्मचारीको गुरुकी सेवाका सारा कार्य समाप्त करके उनके पास बैठकर अध्ययन करना चाहिये । वह सबके प्रति सदा उदार रहे और किसीपर कोई दोष न लगाये । गुरुके बुलानेपर झट उनकी सेवामें उपस्थित हो जाय । (महा० शान्ति० अ० २४२) ।

ब्रह्मचारीको बाहर-भीतरकी शुद्धि, वैदिक संस्कार तथा व्रत-नियमोंका पालन करते हुए अपने मन-इन्द्रियोंको वशमें रखना चाहिये । सुबह और शाम दोनों संध्याओंके समय संध्योपासना और सूर्योपस्थान करके अग्निहोत्र करना चाहिये । तन्द्रा और आलस्यका त्याग करे । प्रतिदिन गुरुको प्रणाम करे और वेदोंके अभ्यास और श्रवणसे अपनी अन्तरात्माको पवित्र करे । सबेरे-शाम और दोपहर—तीनों समय स्नान करे । ब्रह्मचर्यका पालन, अग्निकी उपासना और गुरुकी सेवा करे । प्रतिदिन भिक्षा माँगकर लाये । भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, वह सब गुरुको अर्पण कर दे । अपनी अन्तरात्माको भी गुरुके चरणोंमें निछावर कर दे । गुरुजी जो कुछ कहें, जिसके लिये संकेत करें और जिस कार्यके निमित्त स्पष्ट शब्दोंमें आज्ञा दें, उसीके अनुकूल आचरण करे । गुरुकृपासे प्राप्त स्वाध्यायमें तत्पर रहे ।*

जब वेदसम्बन्धी व्रत और उपवास करते हुए आयुका एक चौथाई भाग व्यतीत हो जाय, तब गुरुको दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावर्तन-संस्कार सम्पन्न करे । फिर गुरुजनोंकी अनुमतिसे धर्मपूर्वक सुयोग्य पत्नीका पाणिग्रहण करके उसके साथ अग्निकी स्थापना करके अग्निहोत्रादिका अनुष्ठान करता हुआ आयुके द्वितीय भाग अर्थात् पचास वर्षकी अवस्थातक गृहस्थधर्मका पालन करे । गृहस्थको उचित है कि सबेरे और शाम—दो ही समय भोजन करे, बीचमें न खाय । ऋतुकालके सिवा अन्य समयमें स्त्रीको अपनी शय्यापर न बुलाये । उसके घरपर आया हुआ कोई ब्राह्मण अतिथि आदर-सत्कार और भोजन पाये बिना न रह जाय । गृहस्थको सदा विघस और अमृत अन्नका भोजन करना चाहिये । यज्ञसे बचा हुआ भोजन हविष्यके समान अमृत माना गया है । कुटुम्बमें भरण-पोषणके योग्य जितने लोग हैं, उनको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नका जो भोजन करता है, उसे विघसाशी (विघस अन्न भोजन करनेवाला) कहते हैं । क्योंकि पोष्यवर्गसे बचे हुए अन्नको विघस तथा पञ्चमहायज्ञ एवं बलिवैश्वदेवसे बचे हुए अन्नको अमृत कहते हैं ।* गृहस्थ पुरुष सदा अपनी ही स्त्रीसे प्रेम करे । इन्द्रियोंका संयम करके जितेन्द्रिय बने । किसीके गुणोंमें दोष न देखे । वह ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, जाति-भाई, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, माता-पिता, कुटुम्बकी स्त्री, भाई, पुत्र, पत्नी, पुत्री तथा सेवकसमूहके साथ कभी विवाद न करे । जो इन सबके साथ वाद-विवाद त्याग देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (महा० शान्ति० अ० २४२-२४३) ।

* सम्यग् यत्र शौचसंस्कारनियमव्रतविनियतात्मा उभे संध्ये भास्कराग्निदैवतान्युपस्थाय विहाय तन्द्र्यालस्ये गुरोरभिवादनवेदाभ्यासश्रवणपवित्रीकृतान्तरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्याग्निपरिचरणगुरुशुश्रूषानित्यभिक्षाभैक्ष्यादिसर्वनिवेदितान्तरात्मा गुरुवचननिर्देशानुष्ठानाप्रतिकूलो गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यायतत्परः स्यात् (महा० शान्ति० अ० १९१ । ८) ।

* न भुञ्जीतान्तरा काले नानृतावाह्वयेत् स्त्रियम् ।
नास्यानश्नन् गृहे विप्रो वसेत् कश्चिदपूजितः ॥
विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ।
अमृतं यज्ञशेषं स्याद् भोजनं हविषा समम् ॥
भृत्यशेषं तु योऽश्नाति तमाहुर्विघसाशिनम् ।
विघसं भृत्यशेषं तु यज्ञशेषमथामृतम् ॥
(महा० शान्ति० अ० २४३ । ७, १२, १३)

गृहस्थ-आश्रम अन्य तीनों आश्रमोंका मूल है। * क्योंकि उसीसे सबका भरण-पोषण होता है।

गृहस्थ सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे, स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम व्रतका पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य-अहिंसा आदि यमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति दान करता रहे तथा सदा शिष्टपुरुषोंके साथ निवास करे। †

गृहस्थके लिये अतिथि-सेवा सबसे बढ़कर कर्तव्य है। धर्मराज युधिष्ठिरने अतिथि-सत्कारके सम्बन्धमें बतलाया है कि कम-से-कम आसनके लिये तृण (कुश), बैठनेके लिये स्थान, तीसरा जल और चौथी मधुर वाणी—सत्पुरुषोंके घरोंमें इन चार वस्तुओंका अभाव कभी नहीं होता। वास्तवमें तो रोग आदिसे पीड़ित मनुष्यको सोनेके लिये शय्या, थके हुएको बैठनेके लिये आसन, प्यासेको पानी और भूखेको भोजन तो देना ही चाहिये। जो अपने घरपर आ जाय, उसे प्रेमभरी दृष्टिसे देखे, मनसे उसके प्रति उत्तम भाव रखे, उससे मीठे वचन बोले और उठकर उसके लिये आसन दे। यह गृहस्थका सनातन धर्म है। अतिथिको आते देख उठकर उसकी अगवानी और यथोचित रीतिसे आदर-सत्कार करे। ‡

अतिथि-सेवाका माहात्म्य अश्वमेध-यज्ञसे भी अधिक बतलाया गया है। महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों और दीन-दरिद्रों आदिके तृप्त होनेपर जब युधिष्ठिरके यज्ञ और दानकी भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी, उस समय एक नेवला वहाँ आया और वह मनुष्यकी बोलीमें कहने लगा—'राजाओ! आपका यह यज्ञ कुरुक्षेत्रनिवासी उञ्छवृत्तिधारी उदारचेता ब्राह्मणके सेरभर सत्तूदानके बराबर भी नहीं हुआ है।' नेवलेकी बात सुनकर ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर ब्राह्मणोंके पूछनेपर नेवलेने बतलाया—"कुरुक्षेत्रमें एक उञ्छवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण रहते थे। वे कबूतरके समान अन्नके दाने चुनकर लाते और उससे कुटुम्बका पालन करते थे। एक समय वहाँ भयंकर अकाल पड़ा। अतः खेतोंमें कहीं भूमिपर पड़े दाने न मिलनेके कारण वे कई दिनोंतक भूखे ही रहे। फिर कुछ दिनोंके बाद उन्हें सेरभर जौ मिले। उन्होंने उसका सत्तू बनाकर चार भागोंमें विभक्त कर लिया। एक पाव स्त्रीके लिये, एक पाव पुत्रके लिये, एक पाव पुत्रवधूके लिये और एक पाव अपने लिये रखकर वे भोजन करनेको तैयार हुए। उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि आ गये। वे चारों अतिथिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अतिथिको प्रणाम करके उनसे कुशल-मङ्गल पूछा और वे उन्हें कुटीपर ले आये। वहाँ उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणने उनसे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपके लिये ये अर्घ्य, पाद्य और आसन प्रस्तुत हैं तथा न्यायपूर्वक उपार्जन किया हुआ यह परम पवित्र सत्तू आपकी सेवामें निवेदित है। मैंने प्रसन्नतापूर्वक इसे आपको समर्पण किया है, आप इसे स्वीकार करें।' ब्राह्मणके यों कहनेपर अतिथिने उनके हिस्सेका एक पाव सत्तू लेकर खा लिया; किंतु उनकी तृप्ति नहीं हुई। तब ब्राह्मणकी पत्नीने आग्रह करके पतिके द्वारा अपने हिस्सेका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको दिलवा दिया। फिर भी उनकी तृप्ति न होनेपर उनके पुत्रने भी अपने हिस्सेका सत्तू पिताके न चाहनेपर भी पिताके द्वारा अतिथिको दिलवा दिया। इससे भी तृप्ति न होनेपर पुत्रवधूने भी आग्रहपूर्वक अपने हिस्सेका सत्तू श्वशुरके द्वारा अतिथिको दिलवा दिया। इससे वे अतिथि ब्राह्मण उन उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणपर बहुत संतुष्ट हुए। वे अतिथि साक्षात् धर्मराज ही थे। वे

---

* गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः॥
(महा० आश्व० ४५। १३)

† नित्यं यज्ञोपवीती स्याच्छुक्लवासाः शुचिव्रतः।
नियतो यमदानाभ्यां सदा शिष्टैश्च संविशेत्॥
(महा० आश्व० ४५। १९)

‡ तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥
देयमार्तस्य शयनं स्थितश्रान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्॥
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्यात् सुभाषिताम्।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः।
प्रत्युत्थायाभिगमनं कुर्यान्न्यायेन चार्चनम्॥
(महा० वन० २। ५४—५६)

अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये और उन सबको विमानमें बैठाकर दिव्य-लोकको ले गये ।

"उन अतिथि ब्राह्मणके भोजन कर चुकनेपर वहाँ जूठे हाथ धोनेसे गिरे हुए जलके कीचड़में मैं लोटा, जिससे मेरा सिर और आधा शरीर सुवर्णमय हो गया । मैंने जब राजा युधिष्ठिरके यज्ञकी प्रशंसा सुनी, तब शेष आधे शरीरको भी सोनेका बनानेकी इच्छासे यहाँ आकर कीचड़में लोटा; पर कुछ नहीं हुआ । इसीलिये मैंने कहा था कि यह यज्ञ उस अतिथिसेवाव्रती ब्राह्मणके सेरभर सत्तू-दानके समान भी नहीं है ।" इतना कहकर वह नेवला अन्तर्धान हो गया (महा० आश्व० अ० ९०) ।

इन सत्तू-दान करनेवाले ब्राह्मणके इस अतिथि-सेवा-कार्यसे यह शिक्षा मिलती है कि धर्म चाहनेवाले गृहस्थ मनुष्यको स्वयं भूखा रहकर भी अतिथि-सेवा करनी चाहिये ।

गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि जब उसके सिरके बाल सफेद दिखायी दें, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ और पुत्रको भी पुत्रकी प्राप्ति हो जाय, तब अपनी आयुका तीसरा भाग अर्थात् इक्यावनवेंसे पचहत्तरवें वर्षतक व्यतीत करनेके लिये वनमें जाय और वानप्रस्थाश्रममें रहे । वानप्रस्थी पुरुष नियमके साथ रहे, नियमानुकूल भोजन करे । दिनके छठे भाग अर्थात् तीसरे पहरमें एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमादसे बचा रहे । एवं गृहस्थाश्रमकी ही भाँति अग्निहोत्र, वैसी ही गो-सेवा और उसी प्रकार यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंका सम्पादन करना वानप्रस्थका धर्म है । वनवासी मुनि बिना जोती हुई पृथ्वीसे पैदा हुआ धान, जौ, नीवार (तिन्नीके चावल) तथा विघस (अतिथियोंको देनेसे बचे हुए)अन्नसे जीवन-निर्वाह करे । वानप्रस्थी भी पञ्चमहायज्ञोंमें हविष्य वितरण करे । वानप्रस्थी पुरुष वर्षाके समय खुले आकाशके नीचे और सर्दीमें पानीके भीतर खड़े रहें, गर्मीमें पञ्चाग्निसे शरीरको तपायें और सदा स्वल्प भोजन करें ।*

यदि कोई अतिथि आ जाय तो फल-मूलकी भिक्षा देकर उसका सत्कार करे । कभी आलस्य न करे । जो कुछ भोजन अपने पास हो, उसीमेंसे अतिथिको भिक्षा दे । इन्द्रियोंका संयम करे, सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे, क्षमाशील बने और दाढ़ी-मूँछ एवं सिरके बालोंको धारण किये रहे । समयपर अग्निहोत्र और वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सत्यधर्मका पालन करे ।*

इस प्रकार वानप्रस्थकी अवधि पूरी कर लेनेके बाद जब आयुका चौथा भाग शेष रह जाय, तब संन्यास-आश्रम ग्रहण करे । जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देकर संन्यासी हो जाता है, वह मरनेके पश्चात् तेजोमय लोकोंमें जाता है और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।†

संन्यासीको चाहिये कि वह सिद्धि प्राप्त करनेके लिये किसीको साथ न लेकर अकेला ही विचरता रहे । जो सर्वत्र परमात्माका अनुभव करता हुआ एकाकी विचरता रहता है, वह न तो स्वयं किसीका त्याग करता है और न दूसरे ही उसका त्याग करते हैं । संन्यासी कभी न तो अग्निकी स्थापना करे और न घर ही बनाकर रहे, केवल भिक्षा लेनेके लिये ही गाँवमें जाय ।‡

---

* गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदा श्रयेत् ॥
तृतीयमायुषो भागं वानप्रस्थाश्रमे वसेत् ।
नियतो नियताहारः षष्ठभुक्तोऽप्रमत्तवान् ।
तदग्निहोत्रं ता गावो यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ॥
अफालकृष्टं व्रीहियवं नीवारं विघसानि च ।
हवींषि सम्प्रयच्छेत मखेष्वत्रापि पञ्चसु ॥
अभ्रावकाशा वर्षासु हेमन्ते जलसंश्रयाः ।
ग्रीष्मे च पञ्चतपसः शश्वच्च मितभोजनाः ॥
(महा० शान्ति० २४४ । ४–७, १०)

* समूलफलभिक्षाभिरर्चेदतिथिमागतम् ।
यद् भक्ष्यं स्यात् ततो दद्याद् भिक्षां नित्यमतन्द्रितः ॥
दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः केशाञ्श्मश्रु च धारयन् ।
जुह्वन् स्वाध्यायशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ॥
(महा० आश्व० ४६ । १३, १५)

† चतुर्थे चायुषः शेषे वानप्रस्थाश्रमं त्यजेत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यः प्रव्रजेद् द्विजः ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥
(महा० शान्ति० २४४ । २३, २८)

‡ एक एव चरेद् धर्मं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥
एकश्चरति यः पश्यन् न जहाति न हीयते ।
अनग्निरनिकेतश्च ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥
(महा० शान्ति० २४५ । ४-५)

संन्यासीके लिये भिक्षाकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—बिना याचना किये, बिना संकल्पके दैवात् जो अन्न प्राप्त हो जाय, उसीसे जीवननिर्वाह करे। प्रातःकालका नित्य कर्म करनेके बाद जब गृहस्थोंके यहाँ रसोई-घरसे धुआँ निकलना बंद हो जाय, घरके सब लोग खा-पी चुकें और बर्तन धो-माँजकर रख दिये गये हों, उस समय मोक्षधर्मके ज्ञाता संन्यासीको भिक्षा माँगनी चाहिये। भिक्षा मिल जानेपर हर्ष और न मिलनेपर विषाद न करे। अधिक भिक्षाका संग्रह न करे। जितनेसे प्राणयात्राका निर्वाह हो, उतनी ही भिक्षा लेनी चाहिये।* वह दूसरे दिनके लिये अन्नका संग्रह न करे। चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करके मौन भावसे रहे। हल्का और नियमानुकूल भोजन करे तथा दिन-रातमें केवल एक ही बार भोजन करे।†

संन्यासी भिक्षा-पात्र और कमण्डलु रखे। वृक्षकी जड़में सोये या निवास करे। जो देखनेमें सुन्दर न हो, ऐसा वस्त्र धारण करे। किसीको साथ न रखे और सभी प्राणियोंकी उपेक्षा कर दे। ये सब भिक्षुकके लक्षण हैं। जिसे सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय प्राप्त है और जिसकी ओरसे किसी भी प्राणीको कोई भय नहीं है, उस मोह-मुक्त पुरुषको किसीसे भी भय नहीं होता। ऐसे संन्यासी-को रोष और मोह छू नहीं सकते। वह मिट्टीके ढेले और सोनेको समान समझता है; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय—इन पाँचों कोशोंका अभिमान त्याग देता है और संधि-विग्रह तथा निन्दा-स्तुतिसे रहित हो जाता है। उसकी दृष्टिमें न कोई प्रिय होता है न अप्रिय। वह संन्यासी उदासीनकी भाँति सर्वत्र विचरता रहता है।*

अपने पास किसी वस्तुका संग्रह न करना, कर्मोंके आरम्भ या आयोजनसे दूर रहना, सब ओरसे पवित्रता और सरलता रखना, सर्वत्र भिक्षासे निर्वाह करना, सब स्थानोंमें सबसे अलग रहना, सदा ध्यानमें तत्पर रहना, दोषोंसे शुद्ध होना, सबपर क्षमा और दयाभाव रखना, एवं बुद्धिको तात्त्विक चिन्तनमें लगाये रखना—ये सब संन्यासीके लिये धर्मकार्य हैं।†

वर्ण-धर्म

वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ और दान ब्राह्मणका धर्म है, यह शास्त्रका निर्णय है। वेदोंको पढ़ाना, यजमानका यज्ञ कराना और दान लेना—ये उसकी जीविकाके कर्म हैं। सत्य, मनोनिग्रह, तप और शौचाचारका पालन—यह उसका सनातन धर्म है। उपर्युक्त यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना—इन छः कर्मोंका आश्रय लेनेवाला ब्राह्मण धर्म-का भागी होता है। इनमें भी सदा स्वाध्यायशील होना ब्राह्मणका मुख्य धर्म है, यज्ञ करना सनातन धर्म है और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दान देना उसके लिये प्रशंसनीय धर्म है।‡

---

* अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया।
कृत्वा प्राह्णे चरेद् भैक्ष्यं विधूमे भुक्तवज्जने॥
वृत्ते शरावसम्पाते भैक्ष्यं लिप्सेत मोक्षवित्।
लाभेन न च हृष्येत नालाभे विमना भवेत्।
न चातिभिक्षां भिक्षेत केवलं प्राणयात्रिकः॥
(महा० आश्व० ४६। १९-२०)

† अश्वस्तनविधाता स्यान्मुनिर्भावसमाहितः।
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्ननिषेविता॥
(महा० शान्ति० २४५। ६)

* कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद् भिक्षुलक्षणम्॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं ततः।
तस्य मोहाद् विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन॥
अरोषमोहः समलोष्टकाञ्चनः प्रहीणकोशो गतसंधिविग्रहः।
अपेतनिन्दास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः॥
(महा० शान्ति० २४५। ७, १७, ३६)

† आकिंचन्यमनारम्भः सर्वतः शौचमार्जवम्।
सर्वत्र भैक्षचर्या च सर्वत्रैव विवासनम्॥
सदा ध्यानपरत्वं च दोषशुद्धिः क्षमा दया।
तत्त्वानुगतबुद्धित्वं तस्य धर्मविधिर्भवेत्॥
(महा० अनुशासन० १४१। दा० पा०)

‡ स्वाध्यायो यजनं दानं तस्य धर्म इति स्थितिः।
कर्माण्यध्यापनं चैव याजनं च प्रतिग्रहः॥
सत्यं शान्तिः तपः शौचं तस्य धर्मः सनातनः॥
(महा० अनुशासन० १४१। दा० पा०)

क्षत्रियका सबसे पहला धर्म है प्रजाका पालन करना । प्रजाकी आयके छठे भागका उपभोग करनेवाला राजा धर्मका फल पाता है । एवं इन्द्रियसंयम, स्वाध्याय, अग्निहोत्रकर्म, दान, अध्ययन, यज्ञोपवीत-धारण, यज्ञानुष्ठान, धार्मिक कार्यका सम्पादन, सेवकोंका भरण-पोषण, आरम्भ किये हुए कर्मको सफल बनाना, अपराधके अनुसार उचित दण्ड देना, वैदिक यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान करना, व्यवहारमें न्यायकी रक्षा करना और सत्यभाषणमें अनुरक्ति—ये सब कर्म राजाके लिये परम धर्म हैं । *

पशुओंका पालन, खेती, व्यापार, अग्निहोत्रकर्म, दान, अध्ययन, सन्मार्गका आश्रय लेकर सदाचारका पालन, अतिथि-सत्कार, शम, दम, ब्राह्मणोंका स्वागत-सत्कार और त्याग—ये सब वैश्योंके सनातन धर्म हैं । †

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन द्विजातियोंका मुख्य धर्म है सत्य (सत्य-भाषण, सत्यव्यवहार, सद्भाव) । यह धर्मका एक प्रधान लक्षण है । यज्ञ, स्वाध्याय और दान—ये तीन द्विजमात्रके लिये सामान्य धर्म हैं । ‡

शूद्रका परम धर्म है—नित्य तीनों वर्णोंकी सेवा करना । जो शूद्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय और घरपर आये हुए अतिथिकी सेवा करनेवाला है, वह महान् तपका संचय कर लेता है; उसका सेवारूप धर्म उसके लिये कठोर तप है । *

ये सब वर्णोंके पृथक्-पृथक् विशेष धर्म बतलाये गये हैं । इनके सिवा सभी वर्णोंके लिये साधारण धर्म इस प्रकार बतलाये गये हैं—

क्रूरताका अभाव (दया), अहिंसा, अप्रमाद (कर्तव्यपरायणता), देवता, पितर, मनुष्य आदिको उनके भाग समर्पित करना, श्राद्धकर्म, अतिथि-सत्कार, सत्य, अक्रोध, अपनी ही पत्नीमें संतुष्ट रहना, पवित्रता रखना, कभी किसीके दोष न देखना, आत्म-ज्ञान तथा सहनशीलता—ये सभी वर्णोंके सामान्य धर्म हैं ।†

इसी प्रकार गो-रक्षा सर्वसाधारणका परम धर्म है; क्योंकि गौ धार्मिक और आर्थिक—सभी दृष्टियोंसे इहलोक और परलोकमें सब प्रकारसे सबके लिये परम हितकारी और सर्वश्रेष्ठ पशु है । गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हैं । वे सबको सुख देनेवाली हैं । जो अपने अभ्युदय-की इच्छा रखता हो, उसे गौओंको सदा दाहिने करके चलना चाहिये । ‡ गौमें सब देवता विराजमान हैं (महा० आश्वमेधिक० अ० ९२) । गौके दूध, दही, घीसे मनुष्य, देवता, पितर, ऋषि—सबकी तृप्ति होती है । इनके बिना यज्ञ तो किसी तरह भी नहीं हो सकता ।

यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ।
अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग् द्विजः ॥
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो धर्मो यज्ञः सनातनः ।
दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥
(महा० अनुशासन० १४१ । ६८-६९)

* क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥
तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥
यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा ।
भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ॥
सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः ।
व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥
(महा० अनुशासन० १४१ । ४७, ४९, ५१)

† वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः ।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः ॥
(महा० अनुशासन० १४१ । ५४-५५)

‡ द्विजातीनामृतं धर्मो ह्येकस्त्वेवैकलक्षणः ।
यज्ञाध्ययनदानानि त्रयः साधारणाः स्मृताः ॥
(महा० वन० १५० । ३४)

* शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ।
स शूद्रः संशिततपाः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
शुश्रूषुरतिथिं प्राप्तं तपः संचिनुते महत् ॥
(महा० अनुशासन० १४१ । ५७-५८)

† आनृशंस्यमहिंसा चाप्रमादः संविभागिता ।
श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च ॥
स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं नित्यानसूयता ।
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्माः साधारणा नृप ॥
(महा० शान्ति० २९६ । २३-२४)

‡ मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।
वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ॥
(महा० अनु० ६९ । ७)

गौके ये सब पदार्थ मानव-जीवन-रक्षाके लिये परमोपयोगी हैं। दूध, दही, घीकी तो बात ही क्या, गौके गोबर, गोमूत्र भी स्वास्थ्यके लिये परम हितकर और पवित्र हैं। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे। सूखे हुए गोबरपर बैठे। उसपर थूक न फेंके, मल-मूत्र न छोड़े तथा गौके तिरस्कारसे बचता रहे।* यही नहीं, गोबर-गोमूत्रमें तो लक्ष्मीका निवास बतलाया गया है (महा० अनुशासन० अ० ८२। २४)। एवं गोबर-गोमूत्रको खेतीके लिये सबसे बढ़कर खाद माना गया है। गौका बछड़ा (बैल) खेतीके लिये जितना उपयोगी है, उतना दूसरा कोई पशु नहीं है तथा दानोंमें भी गोदानकी सबसे बढ़कर महिमा कही गयी है। गोदानसे बढ़कर कोई पवित्र दान नहीं है। गोदानके फलसे श्रेष्ठ दूसरा कोई फल नहीं है तथा संसारमें गौसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट प्राणी नहीं है।† अतः गौ हमलोगोंके लिये सब प्रकारसे परम हितकारक प्राणी है। गौ शुद्ध, सरल, निरामिषभोजी तथा उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण पशुओंमें सात्त्विक है। सभी दृष्टियोंसे गौकी बड़ी भारी महिमा है। (गोमहिमाका वर्णन महाभारतके अनुशासनपर्वके ६९ वें से ८३ वें अध्यायतक बहुत विस्तारसे किया गया है, वहाँ देखना चाहिये।)

इसलिये हमलोगोंको तन-मन-धनसे सब प्रकारसे गौओंकी रक्षा करनी चाहिये।

पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। अर्जुनने जब ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी, तब वे भाइयोंके साथ की हुई शर्तका उल्लङ्घन करके भी चुपचाप युधिष्ठिरके कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये और लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ लौटा लाये। इस प्रकार अर्जुनने गोधनकी रक्षा करके युधिष्ठिरके मना करनेपर भी शर्त-भङ्ग करनेके प्रायश्चित्तरूपमें बारह वर्ष-का वनवास स्वीकार किया (महा० आदि० अ० २१२)।

राजा नहुष एक बार बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये। उन्होंने च्यवन ऋषिके बदलेमें मल्लाहोंको राज्यतक देना स्वीकार कर लिया, तब भी च्यवन ऋषिने कहा कि मेरा मूल्य नहीं आया। इसपर राजाने वहाँ पधारे हुए मुनि गविजके निर्णयानुसार ब्राह्मण और गौको समान समझकर गौसे ऋषिका मूल्य आँक दिया। तब च्यवन ऋषि उठ गये और बोले—अब तुमने यथार्थमें मुझको मोल ले लिया। इस प्रकार उन्होंने गौका इतना आदर किया कि राज्यसे भी बढ़कर गौका मूल्य ऋषिके बराबर बतलाकर मछली पकड़नेवाले मल्लाहोंको ऋषिके मूल्यमें एक गौ दी गयी (महा० अनुशासन० अ० ५१)।

महाभारतमें तीर्थोंकी महिमा भी जगह-जगह आयी है (महा० वन० अ० ८२ से ९०, १२५, १२९, १३०, १३५, १४५; अनुशासन० अ० २५-२६)। तीर्थोंमें श्रीगङ्गा सबसे बढ़कर हैं। गङ्गा परम पवित्र और इहलोक तथा परलोकमें कल्याण करनेवाली हैं। गङ्गा-जलमें ऐसी शक्ति है कि इसके बहुत वर्षोंतक पड़े रहने-पर भी इसमें कीड़े नहीं पड़ते। अतएव यह स्वास्थ्यके लिये भी परम हितकर है। इसके पान करनेसे अनेक रोग दूर होते हैं। शास्त्रोंमें गङ्गाजलको अमृतके तुल्य बताया गया है। गङ्गाजल सदा ही पवित्र करनेवाला है, पर अन्तकालमें तो यह पापीको भी मुक्त कर देता है।

महर्षि पुलस्त्यने भीष्मजीसे गङ्गाकी महिमा बतलाते हुए कहा है कि गङ्गाका नाम लिया जाय तो वह सारे पापोंको धो-बहाकर पवित्र कर देती है, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती है तथा स्नान और जलपान करनेपर वह मनुष्यकी सात पीढ़ियोंको पावन बना देती है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं, भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं और ब्राह्मणों-से उत्तम कोई वर्ण नहीं है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है।*

* गोमयेन सदा स्नायात् करीषे चापि संविशेत्।
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत्॥
(महा० अनु० ७८। १९)

† नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम्।
नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति॥
(महा० अनु० ८०। १३)

* पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात् परः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥
(महा० वन० ८५। ९३, ९६)

इसी प्रकार एक शिलवृत्तिवाले ब्राह्मणसे किसी सिद्ध पुरुषने बतलाया कि 'ब्रह्मन्! वे ही देश, जनपद, आश्रम और पर्वत पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके बीचसे होकर सरिताओंमें उत्तम भागीरथी गङ्गा बहती हैं। द्विजश्रेष्ठ! जैसे आगमें डाली हुई रूई तुरंत जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार गङ्गामें गोता लगानेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंको सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये गङ्गाजल ही पूर्ण तृप्तिका साधन है। जो पुरुष गङ्गाका माहात्म्य सुनता, उनके तटपर जानेकी अभिलाषा रखता, उनका दर्शन करता, जल पीता, स्पर्श करता तथा उनके भीतर गोते लगाता है, उसके दोनों कुलोंका भगवती गङ्गा विशेषरूपसे उद्धार कर देती हैं। गङ्गा अपने दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा अपने गङ्गा नामके कीर्तनसे सैकड़ों और हजारों पापियोंको तार देती हैं। जो श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा सम्मानित तथा संयतचित्त मनुष्य प्राण निकलते समय मन-ही-मन गङ्गाका स्मरण करता है, वह परम उत्तम गतिको प्राप्त कर लेता है।*

इस प्रकार श्रीगङ्गाकी बड़ी भारी महिमा बतायी गयी है (महा० वन० अ० ८५, अनुशासन० अ० २६)।

ये सब धार्मिक उन्नतिके अन्तर्गत हैं।

आध्यात्मिक उन्नतिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मपर्वके ३७ वें अध्यायके ७ वेंसे ११ वें श्लोकतक 'ज्ञान' के नामसे जो उपदेश दिया है, उसे विशेषरूपसे अपनाना चाहिये।† इसके सिवा उद्योगपर्वमें ४१ वेंसे ४६ वें अध्यायतक श्रीसनत्सुजात ऋषिने राजा धृतराष्ट्रके प्रति बड़ा ही सुन्दर अध्यात्मज्ञानका उपदेश किया है। शान्तिपर्व और अनुशासनपर्वमें तो अध्यात्म-ज्ञानका विषय जगह-जगह आया है, उसमें भी शान्तिपर्वके अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्वमें उसका विशेषरूपसे वर्णन है; उसका अध्ययन और मनन करना चाहिये।

माता-पिता-गुरुजनोंकी सेवा, पातिव्रत्यधर्म, यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, अध्ययनाध्यापन, स्वाध्याय, प्रजापालन, वाणिज्य, गोरक्षा, सेवा, परोपकार आदि जितने भी शास्त्रविहित कर्म हैं, उनको अपने अधिकारके अनुसार फल और आसक्तिको त्यागकर निष्कामभावसे ईश्वरकी पूजा समझकर करनेसे वे मनुष्यको पवित्र करके उसके आत्माका उद्धार कर देते हैं। श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
(महा० भीष्म० ४२।५)

'यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं; बल्कि वह तो अवश्यकर्तव्य है। क्योंकि

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

'श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी कभी किंचिन्मात्र भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदिकी सरलता, श्रद्धा-भक्ति-सहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता और मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह, इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना; पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें आसक्तिका अभाव; ममताका न होना तथा प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना, मुझ परमेश्वरमें अनन्ययोगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना, अध्यात्मज्ञान-में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—यह सब 'ज्ञान' है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है—ऐसी बात कही गयी है।'

---

* ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः।
येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा॥
अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम।
तथा गङ्गावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते॥
यथा सुराणाममृतं पितॄणां च यथा स्वधा।
सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम्॥
श्रुताभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता॥
गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः।
दर्शनात् स्पर्शनात् पानात् तथा गङ्गेति कीर्तनात्॥
पुनात्यपुण्यान् पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः प्रयतः शिष्टसम्मतः।
चिन्तयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत्॥
(महा० अनु० २६।२६,४२,४९,६३,६४,७०)

† अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥

सात्त्विक यज्ञ*, सात्त्विक दान† और सात्त्विक तप‡— ये तीनों ही कर्म विवेकी पुरुषोंको भी पवित्र करनेवाले हैं।'

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(महा० भीष्म० ४२। ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

सम्पादकका निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

जिन सर्वशक्तिमान्, सर्वलोकमहेश्वर, अचिन्त्यानन्तगुणगणसम्पन्न, निखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्दघन वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा प्रेरणासे इस महाभारतका महान् कार्य प्रारम्भ हुआ था, उन्हीं अनन्तप्रेमाधार भगवान्की कृपासे आज यह सुसम्पन्न हो रहा है। यह तीसरे वर्षका बारहवाँ अङ्क इस महाभारतका अन्तिम अङ्क है।

महाभारतमें बहुत पाठभेद मिलते हैं। दक्षिण और उत्तरकी प्रतियोंमें सहस्रों श्लोकोंका तथा कथाओंका अन्तर है। इन सारे पाठभेदोंको देखकर एक सुनिश्चित पाठ प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसी महान् कार्यके लिये पूना भांडारकर संस्थानकी ओरसे वर्षोंसे महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हो रहा है; परंतु यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनके द्वारा निर्णीत पाठ सर्वसम्मत पाठ होगा। अवश्य ही उनका सद्भावयुक्त प्रयास अत्यन्त आदरणीय है और उस पाठनिर्णयसे हमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है; इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

महर्षि वेदव्यासरचित महाभारत लाख श्लोकोंका ग्रन्थ था, यह बात अब प्रायः अधिकांश विद्वान् मान गये हैं। भारतसरकारकी ओरसे Inscriptionum Indicarum नामक एक पुस्तकमाला प्रकाशित हो रही है, इसमें प्राचीन ताम्रपट और शिलालेख आदि छप रहे हैं। इसकी तीसरी पुस्तकमें उच्चकल्पके महाराज सर्वनाथका संवत् १४७ का एक लेख है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि 'व्यासकृत महाभारतकी श्लोकसंख्या एक लाख है।' इससे भी यही सिद्ध है कि प्राचीन कालसे ही एक लाख श्लोकोंका महाभारत प्रचलित रहा है। दक्षिणमें एक लाख श्लोकोंकी एक 'लक्षालंकार' नामक महाभारतकी अति प्राचीन टीका भी थी। उसके कुछ अंश मिले हैं। पूरी टीका उपलब्ध नहीं है। नीलकण्ठजीने भी अपनी टीकामें दाक्षिणात्य पाठके नालायनीय प्रसङ्गका उल्लेख किया है।

गीताप्रेसके इस महाभारतमें मुख्यतः श्रीनीलकण्ठके अनुसार पाठ लेनेपर भी दाक्षिणात्य पाठके उपयोगी समझे गये अंशोंको सम्मिलित किया गया है और इसीके अनुसार यथास्थान उसके श्लोक अर्थसहित दिये गये हैं। परंतु उन श्लोकोंमें वहाँ न तो मूलमें श्लोकसंख्या दी गयी है, न अर्थमें ही। अध्यायके अन्तमें दाक्षिणात्य पाठके श्लोकोंकी संख्या अलग लिखकर उस अध्यायकी पूरी श्लोकसंख्या बता दी गयी है और इसी प्रकार पर्वके अन्तमें दाक्षिणात्य अधिक पाठके श्लोकोंकी संख्या बताकर उस पर्वकी पूरी श्लोकसंख्या दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त महाभारतके पूर्व-प्रकाशित अन्यान्य संस्करणोंसे भी पाठनिर्णयमें सहायता ली गयी है तथा अच्छा प्रतीत होनेपर उनके मूलपाठ या पाठान्तरको भी ग्रहण किया गया है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि यह पाठ पूर्णतया नीलकण्ठी टीकाका ही पाठ है।

---

* अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते। यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥
(महा० भीष्म० ४१। ११)

'जो शास्त्रविधिसे नियत है तथा यज्ञ करना ही कर्तव्य है—इस प्रकार मनका समाधान करके फलको न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह यज्ञ सात्त्विक है।'

† दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥
(महा० भीष्म० ४१। २०)

'दान देना ही कर्तव्य है—इस भावसे जो दान देश तथा काल और पात्रके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।'

‡ श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः। अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥
(महा० भीष्म० ४१। १७)

'फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस कायिक, वाचिक और मानसिक—तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं।'

गीताप्रेसके इस महाभारतमें अनुष्टुप् छन्दके हिसाबसे तथा 'उवाच' जोड़कर कुल श्लोकसंख्या १००२१७ है। इसमें उत्तरभारतीय पाठकी ८६६००, दाक्षिणात्य पाठकी ६५८४ और 'उवाच' की ७०३३ है।

इस विशाल ग्रन्थके हिंदी-भाषान्तरका प्रायः सारा कार्य गीताप्रेसके प्रसिद्ध तथा सिद्धहस्त भाषान्तरकार संस्कृत-हिंदी दोनों भाषाओंके सफल लेखक तथा कवि परम विद्वान् पण्डितप्रवर श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री महोदयने किया है। इसीसे अनुवादकी भाषा सरल होनेके साथ ही परम मधुर बन सकी है। भारतके बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानोंने इस अनुवादकी बड़ी प्रशंसा की है।

आदिपर्व तथा कुछ अन्य पर्वोंके कुछ अनुवादको हमारे आदरणीय प्रेमी विद्वान् स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजने भी कृपापूर्वक देखा है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इसके अतिरिक्त पाठनिर्णय तथा अनुवाद देखनेका प्रायः सारा कार्य हमारे परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने समय-समयपर गीताके महान् विद्वान् और वक्ता स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज और भाई श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका, स्व० श्रीघनश्यामदासजी जालान, भाई श्रीवासुदेवजी काबरा आदिको साथ रखकर किया है। पूज्य श्रीगोयन्दकाजी तथा इन महानुभावोंने इतनी लगनसे अधिक-से-अधिक समय देकर नियमितरूपसे कार्य न किया होता तो इस विशाल ग्रन्थका इस रूपमें प्रकाशित होना सम्भव नहीं था। सत्य तथ्य तो यह है कि मेरा नाम तो सम्पादकके स्थानपर केवल नाममात्रके लिये ही है। सम्पादनका समस्त कार्य तो वस्तुतः पूज्य श्रीजयदयालजीने ही किया है।

इसमें प्रकाशित चित्रोंमें कुछ पुराने चित्रोंके अतिरिक्त शेष सभी चित्र हमारे कलाकार श्रीजगन्नाथ चित्रकारके बनाये हुए हैं।

महाभारत ग्रन्थ तो वस्तुतः तृतीय वर्षकी नवम संख्याके पृष्ठ ६५०९ में समाप्त हो गया था। इसके बाद पाठकोंके विशेष आग्रहसे महाभारत-श्रवण-विधि, महाभारत-माहात्म्य तथा सब पर्वोंकी पूरी विषय-सूची उसी अङ्कमें दी गयी।

साथ ही संक्षिप्त परिचयसहित 'महाभारतकी नामानुक्रमणिका'का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। यह नामानुक्रमणिका ५१ फार्म अर्थात् ४०९ पृष्ठमें समाप्त हुई है। पहले सोचा गया था कि लगभग ४५ फार्ममें यह पूरी हो जायगी; परंतु ४५ में नहीं हो सकी, इसीसे इस द्वादश संख्यामें नियमित २५ फार्मके स्थानपर ३० फार्म जा रहे हैं। यह नामानुक्रमणिका यद्यपि सबके कामकी नहीं है, फिर भी विद्वानों तथा महाभारतके अन्वेषकोंके लिये बड़े ही कामकी चीज है। एक बड़े विद्वान् महानुभावने तो लिखा है कि "यह 'अनुक्रमणिका' कल्पवृक्षका काम देगी।" हिंदीमें इतनी विशद कोई अनुक्रमणिका नहीं थी, इसके निर्माणमें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा है और हमारे विद्वान् पं० रामनारायणदत्तजी शास्त्री, पं० रामाधारजी शुक्ल तथा अन्य विद्वानोंने इस परिश्रमको स्वीकारकर बड़ा ही उपकार किया है। हम इनके कृतज्ञ हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे बहुत-से मान्य महानुभावोंके अनुरोधके अनुसार संख्या १०-११-१२ में महाभारत-सम्बन्धी कुछ बड़े ही उपयोगी लेख प्रकाशित किये गये हैं। बड़ी भूमिका किन्हीं विद्वान्से लिखवानेका विचार था, पर वह नहीं लिखायी जा सकी—इसका हमें खेद है। पर साथ ही यह हर्ष है कि इन लेखोंमें बहुतसे ज्ञातव्य ऐसे विषय आ गये हैं, जो बृहद् भूमिकामें आते। उन लेखोंको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये, यह विनीत प्रार्थना है। महाभारत-कालीन मानचित्र नहीं दिये जा सके—इसका भी हमें खेद है।

इस महान् ग्रन्थके सम्पादन, संशोधन, मुद्रण, प्रूफ-संशोधन आदिमें प्रमाद तथा भ्रमवश बहुत-सी भूलें रही होंगी। उनके लिये हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी भूलोंको कृपया बतायें। पाठ-निर्णय तो हमारी धारणाके अनुसार किया गया है; परंतु मुद्रणादिकी भूलें तो, दूसरा संस्करण हुआ तो उसमें अवश्य ही सुधारी जा सकती हैं। जो महानुभाव ऐसी भूल बतायेंगे उनके हम कृतज्ञ होंगे।

इस कार्यमें हमें अन्यान्य जिन महानुभावोंसे जो कुछ भी सहायता मिली है, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। वास्तवमें भगवान्का कार्य भगवान्की कृपाशक्तिसे ही पूर्ण हुआ है। हम तो इसमें केवल निमित्तमात्र हैं।

तीन वर्षोंमें प्रकाशित इस सम्पूर्ण ग्रन्थकी कुल पृष्ठ-संख्या ७४४६, चित्र-संख्या बहुरंगे ८५ तथा सादे २४३, लाइन ५६४ कुल ८९२ हैं। इनके अतिरिक्त ३६ मुखपृष्ठोंके तिरंगे चित्र एवं पृष्ठ अलग हैं।

सर्वनियन्ता सर्व-उत्प्रेरक भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरणोंमें अनन्त कोटि नमस्कार।

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार
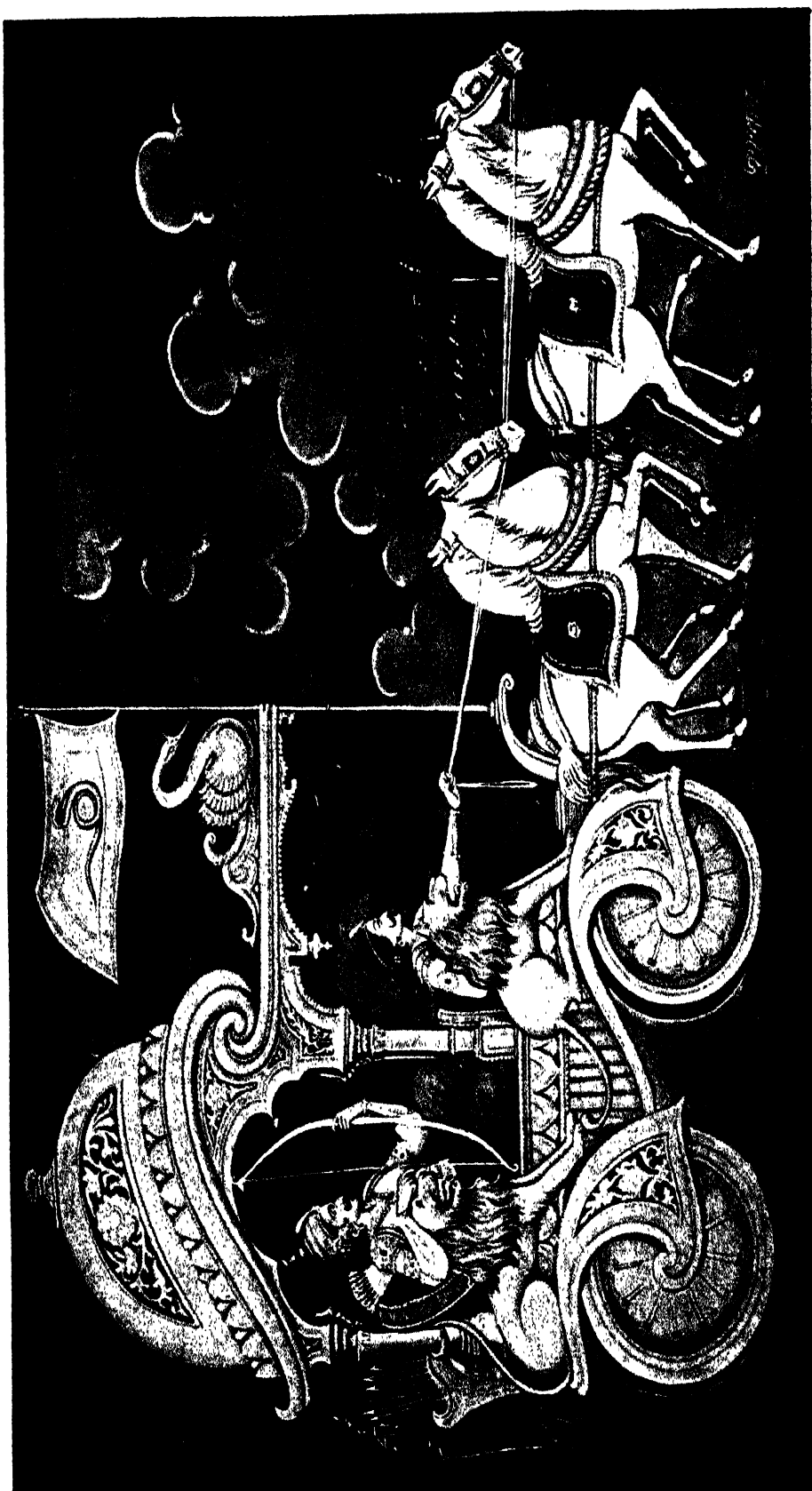
सेनापति कर्ण

बाह्लिक (बाह्लीक)—(१) एक राजा, जो शत्रुपक्षविनाशक महातेजस्वी 'अहर' के अंशसे प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । २५) । (२) एक प्राचीन राजा, जो क्रोधवश-संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६०) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १४) । यह कौरवपक्षका योद्धा था । इसे 'बाह्लीकराज' कहा गया है । इसका द्रौपदीपुत्रोंके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । १२-१३) । (३) भरतवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके तृतीय पुत्र (आदि० ९४ । ५६) । (४) कुरुवंशी महाराज प्रतीपके पुत्र, देवापि और शान्तनुके भाई । ये महारथी वीर थे । इनकी माताका नाम सुनन्दा था, जो शिबिदेशकी राजकुमारी थी (आदि० ९४ । ६१-६२; आदि० ९५ । ४४) । (श्रीमद्भागवत ९ । २२ । १८ के अनुसार बाह्लीकके पुत्रका नाम सोमदत्त था ।) इन्होंने कौरव-सभामें जूएका विरोध किया था (सभा० ७४ । २५-२६) । संजयद्वारा लाये हुए युधिष्ठिरके संदेशको सुननेके लिये ये भी सभामें उपस्थित हुए थे (उद्योग० ४७ । ६-७) । ये कौरवोंका पाण्डवोंके साथ युद्ध होना नहीं चाहते थे (उद्योग० ५८ । ६-७) । कुटुम्बमें फूट न हो, इस डरसे इन्होंने पाण्डवोंको राज्य-भाग दे दिया था (उद्योग० १२९ । ४१) । दुर्योधनकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंके जो सेनापति चुने गये थे, उनमें एक ये भी थे (उद्योग० १५५ । ३३) । प्रथम दिनके युद्धमें धृष्टकेतुके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ३८—४१) । भीमसेनद्वारा पराजित होना (भीष्म० १०४ । २६-२७) । द्रुपदके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १८-१९) । शिखण्डीके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ७—१०) । भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १५७ । १५) । भीष्मके पूछनेपर कन्या-विवाहके विषयमें इनका अपना निर्णय देना (अनु० ४४ । ४३—५६) । (५) युधिष्ठिरके सारथिका नाम (सभा० ५८ । २०) । (६) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४७, ५४) ।

बिन्दुसर—एक प्राचीन सरोवर, जो कैलास पर्वतसे उत्तर दिशामें विद्यमान है (सभा० ३ । २-३) । यहाँ मयासुरका आगमन (सभा० ३ । ९-१०) । गङ्गावतरणके लिये यहाँ राजा भगीरथने बहुत वर्षोंतक उग्र तपस्या की थी (सभा० ३ । १०-११) । प्रजापतिने यहाँ सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया और इन्द्रने भी यहीं यज्ञ करके सिद्धि प्राप्त की (सभा० ३ । ११) । यहाँ भगवान् शङ्करने भी यज्ञ किये । वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने भी यहाँ धर्म-सम्पादनके लिये बहुत वर्षोंतक श्रद्धापूर्वक यज्ञ किया था (सभा० ३ । ११—१६) । (यहींसे मयनामक दानवने देवदत्त शङ्ख और वृषपर्वाकी गदाको ले जाकर अर्जुन तथा भीमसेनको समर्पित किया था ।)

बिल्वक—कश्यपद्वारा कद्रूसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १२) ।

बिल्वकतीर्थ—हरद्वारके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है (अनु० २५ । १३) ।

बिल्वतेजा—तक्षककुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो सर्प-सत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ९) ।

बिल्वपत्र—कश्यपवंशी एक नाग (उद्योग० १०३ । १४) ।

बिल्वपाण्डुर—कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १२) ।

बीभत्सु—अर्जुनका एक नाम (विराट० ४४ । ९) । 'बीभत्सु' नामकी निरुक्ति (विराट० ४४ । १८) ।

बुद्धि—ये दक्षप्रजापतिकी कन्या और धर्मकी पत्नी हैं । ये अपनी नौ बहिनोंके साथ, जो धर्मकी ही पत्नियाँ हैं, ब्रह्माजीद्वारा धर्मका द्वार निश्चित की गयी हैं (आदि० ६६ । १३—१५) ।

बुद्धिकामा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

बुद्बुदा—एक अप्सरा, जो वर्गाकी सखी थी (आदि० २१५ । २०) । इसे ग्राह होकर जलमें रहनेके लिये ब्राह्मणका शाप (आदि० २१५ । २३) । अर्जुनद्वारा इसका ग्राहयोनिसे उद्धार (आदि० २१६ । २१-२२) । यह कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करती है (सभा० १० । ११) ।

बुध—(१) एक ग्रह, जो ब्रह्माजीकी सभामें उनकी उपासनाके लिये पधारते हैं (सभा० ११ । २९) । ये चन्द्रमाके पुत्र और पुरूरवाके पिता हैं (द्रोण० १४४ । ४) । इन्होंने व्रतचर्या की और उसकी समाप्ति होनेपर ये अदितिदेवीके यहाँ भिक्षाके लिये गये और बोले, 'मुझे भिक्षा दीजिये' भिक्षा न मिलनेपर इनके द्वारा अदितिको शाप (शान्ति० ३४२ । ५६) । मनुकन्या इलाका बुधके साथ समागम हुआ, जिससे पुरूरवाका जन्म हुआ था (अनु० १४७ । २६-२७) । (२) एक वानप्रस्थी ऋषि, जिन्होंने वानप्रस्थ-धर्मका पालन एवं प्रसार करके स्वर्गलोक प्राप्त किया (शान्ति० २४४ । १७) ।

बृंहता–शिशु (स्कन्द) की सप्तमातृकाओंमेंसे एक (वन० १२८ । १०)।

बृहक–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५७)।

बृहज्ज्योति–महर्षि अङ्गिराके द्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहत्–(१) यह शब्द विवस्वान्का बोधक है (आदि० १ । ४२-४३)। (२) कालेयोंमें जो आठवाँ था, उसके अंशसे उत्पन्न हुआ एक राजा (आदि० ६७ । ५५)। (३) एक साम, जो पाञ्चजन्य ऋषिके मूर्धा-स्थानसे प्रकट हुआ। उन्हीं ऋषिके मुखसे प्रकट हुए सामको 'रथन्तर' कहते हैं। ये दोनों वेगपूर्वक आयु आदि को हर लेते हैं, इसलिये 'तरसाहर' कहलाते हैं (वन० २२० । ७)।

बृहत्कीर्ति–महर्षि अङ्गिराके द्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहत्केतु–प्राचीन कालके एक नरेश (आदि० १ । २३७)।

बृहत्क्षत्र–(१) भगीरथवंशी एक राजा, जो द्रौपदीके स्वयंवर-में गये थे (आदि० १८५ । २३)। (२) केकय-नरेश, प्रथम दिनके युद्धमें कृपाचार्यके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ५२–५४)। इनके घोड़ोंका वर्णन, जो इनके रथको लेकर युद्ध-मैदानमें गये थे (द्रोण० २३ । २३-२४)। इनका क्षेमधूर्तिके साथ द्वन्द्वयुद्ध करना (द्रोण० १०६ । ७-८)। क्षेमधूर्तिके साथ इनका घोर युद्ध तथा इनके द्वारा उसका वध (द्रोण० १०७ । १–६)। बृहत्क्षत्रका द्रोणके साथ युद्ध और द्रोणाचार्यद्वारा इनका मारा जाना (द्रोण० १२५ । २२)। (३) निषधदेशका राजा । कौरवपक्षका योद्धा । धृष्टद्युम्नद्वारा इसका वध हुआ (द्रोण० ३२ । ६५-६६)।

बृहत्त्वा–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५७)।

बृहत्सेन–क्रोधवशसंज्ञक एक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए एक राजा (आदि० ६७ । ६४)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । २१)।

बृहत्सेना–यह दमयन्तीकी धाय थी और अत्यन्त यशस्विनी, परिचर्याके काममें निपुण, समस्त कार्यसाधनमें कुशल, हितैषिणी, अनुरागिणी और मधुरभाषिणी थी। जूएमें राजा नलको हारते जान दमयन्तीने इसे मन्त्रियोंको बुलाने-के लिये भेजा था (वन० ६० । ४–५)। दमयन्ती-के आदेशसे बृहत्सेनाने विश्वसनीय पुरुषोंद्वारा वार्ष्णेय सूत-को बुलवाया था (वन० ६० । ११)।

बृहदम्बालिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ४)।

बृहदश्व–(१) एक प्राचीन महर्षि । ये युधिष्ठिरका अधिक सम्मान करते थे (वन० २६ । २४-२५)। इनका काम्यकवनमें युधिष्ठिरके पास आगमन (वन० ५२ । ४०)। युधिष्ठिरद्वारा इनका सत्कार तथा इनके प्रति अपने दुःख-दैन्यका वर्णन करना (वन० ५२ । ४१–५०)। युधिष्ठिरको समझाते हुए इनका नलोपा-ख्यान सुनाना (वन० ५२ । ५४ से ७९ अध्याय-तक)। इनके द्वारा युधिष्ठिरको आश्वासन तथा उन्हें अक्षहृदय और अश्वशिरका उपदेश देकर स्नान आदिके लिये प्रस्थान (वन० ७९ । ११–२१)। (२) ये इक्ष्वाकुवंशी राजा श्रावस्तके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम कुवलाश्व था (वन० २०२ । ४-५)। ये यथासमय अपने पुत्र कुवलाश्वको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं तपस्याके लिये तपोवनमें चले गये (वन० २०२ । ७-८)।

बृहदुक्थ–ये तप (पाञ्चजन्य) के पुत्र हैं। इस पृथ्वीपर जब अग्निहोत्र होने लगता है, उस समय इस भूतलपर स्थित श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा इन्हींकी पूजा होती है (वन० २२० । १८)।

बृहद्गर्भ–राजा शिबिका पुत्र, जिसे एक ब्राह्मणके आतिथ्यके लिये उन ब्राह्मणदेवके कहनेसे राजाने स्वयं मार डाला और उसका दाह-संस्कार कर दिया। फिर विधिपूर्वक रसोई तैयार करके उसे बटलोईमें डालकर सिरपर रख लिया और वे उस ब्राह्मणकी खोज करने लगे (वन० १९८ । १८)।

बृहद्गुरु–प्राचीन कालके एक नरेश (आदि० १ । २३३)।

बृहद्द्युम्न–एक महान् सौभाग्यशाली एवं प्रतापी नरेश, जिन्होंने अपने यज्ञमें रैभ्यपुत्र अर्वावसु और परावसुको सहयोगी बनाया था (वन० १३८ । १-२)।

बृहद्ध्वनि–एक प्रधान नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३२)।

बृहद्बल–(१) प्राचीन कालके एक नरेश (आदि० १ । २३७)। (२) गान्धारराज सुबलके पुत्र। ये अपने भाई शकुनि और वृषकके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें आये थे (आदि० १८५ । ५)। (३) ये कोसल-

देशके राजा हैं। इन्हें पूर्वदिग्विजयके समय भीमसेनने परास्त किया था (सभा० ३० । १)। इनके द्वारा राजसूययज्ञमें युधिष्ठिरको चौदह हजार उत्तम अश्वोंकी भेंट दी गयी थी (सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग०४ । २२)। ये कौरवपक्षसे लड़ने आये थे। दुर्योधनने सैन्यसमुद्रमें इनकी उपमा ज्वारसे दी है (उद्योग० १६१ । ३९)। प्रथम दिनके युद्धमें अभिमन्युके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । १४-१८)। घटोत्कचद्वारा इनकी पराजय (भीष्म० ९२ । ४१)। अभिमन्युके साथ इनका घोर युद्ध (भीष्म० ११६ । ३१-३६; द्रोण० ३७ । ५-६)। अभिमन्युके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (द्रोण० ४७ । २०-२२)। इनकी स्त्रियोंका इन्हें सब ओरसे घेरकर रोदन (स्त्री० २५ । १०)।

महाभारतमें आये हुए बृहद्बलके नाम—कौसल्य, कोसलेन्द्र, कोसलक, कोसलाधिपति, कोसलभर्ता, कोसलराज आदि।

बृहद्ब्रह्मा—महर्षि अङ्गिराके द्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहद्भानु—वेदोंके पारगामी विद्वान् भानुनामक अग्निको ही बृहद्भानु कहते हैं (वन० २२१ । ८)।

बृहद्भास—महर्षि अङ्गिराके द्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहद्भासा—ये सूर्यकी कन्या तथा भानु (मनु) नामक अग्निकी भार्या हैं (वन० २२१ । ९)।

बृहद्रथ—(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३५)। ये यमकी सभामें विराजमान हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १०)। ये अङ्गदेशके राजा थे। श्रीकृष्णद्वारा इनके दानका वर्णन (शान्ति० २९ । ३१-३८)। ये परशुरामजीके क्षत्रियसंहारसे बच गये थे। इन्हें गृध्रकूट पर्वतपर लंगूरोंने बचाया था (शान्ति० ४९ । ८१-८२)। इन्हें पौरव भी कहा जाता था। पौरव नामसे इनके यज्ञ, दान आदिकी प्रशंसा (द्रोण० ५७ अध्याय)। इन्हें मान्धाताने जीता था (द्रोण० ६२ । १०)। (२) चेदिराज सम्राट् उपरिचरके पुत्र, जिसे पिताने मगधदेशके राज्यपर अभिषिक्त किया था (आदि० ६३ । ३०)। ये मगध देशके बलवान् राजा, तीन अक्षौहिणी सेनाके स्वामी और समराङ्गणमें अभिमानपूर्वक लड़नेवाले थे (सभा० १७ । १३)। इनके पराक्रम आदि गुणोंका वर्णन (सभा० १७ । १४-१६)। काशिराजकी दो कन्याओंके साथ इनका विवाह हुआ था। इन्होंने एकान्तमें अपनी दोनों पत्नियोंके साथ प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम दोनोंके साथ कभी विषम व्यवहार नहीं करूँगा। विषयोंमें डूबे हुए ही इनकी जवानी बीत चली; पर इनके कोई पुत्र नहीं हुआ (सभा० १७ । १७-२१)। तब ये पत्नियोंसहित चण्डकौशिक मुनिके पास गये और उन्हें सब प्रकारके रत्नोंसे संतुष्ट किया। मुनिके अपने पास आनेका कारण पूछनेपर इन्होंने अपना पुत्राभावजनित कष्ट बताया और वनमें तपस्या करनेका विचार प्रकट किया। मुनिने इन्हें आमका एक फल दिया और इससे पुत्र होनेका विश्वास दिलाकर पुत्रको राज्यपदपर अभिषिक्त करनेके पश्चात् वनमें तपस्याके लिये जानेका आदेश दिया। मुनिने इनके भावी पुत्रके लिये आठ वरदान दिये थे। इसके बाद राजा मुनिको प्रणाम करके अपने घर गये (सभा० १७ । २२—३१)। राजाने वह फल दो भागोंमें विभक्त करके एक-एक भाग पत्नियोंको खिला दिया। दोनोंके गर्भ रहा। प्रसवकाल आनेपर दोनोंके गर्भसे शरीरका आधा-आधा भाग उत्पन्न हुआ। उन निर्जीव टुकड़ोंको रानियोंने बाहर फेंकवा दिया। जरा नामक राक्षसीने उन दोनों टुकड़ोंको जोड़ दिया। उससे बलवान् कुमार सजीव हो उठा। राक्षसीने वह बालक राजाको अर्पित कर दिया। तब राजाने उससे परिचय पूछा। राक्षसी परिचय देकर अन्तर्हित हो गयी। राजा कुमारको लेकर महलमें आये। बालकका जातकर्म आदि किया और उसका नाम जरासंध रखा और मगधदेशमें राक्षसीपूजनका महान् उत्सव मनानेकी आज्ञा दी (सभा० १७ । ३२ से १८ अध्यायतक)। इनका जरासंधको अपने राज्यपर अभिषिक्त करके दोनों पत्नियोंके साथ तपोवनको जाना (सभा० १९ । १७-१८)। इन्होंने ऋषभ नामक राक्षसका वध करके उसकी खालसे तीन नगाड़े बनवाये थे, जिनपर चोट करनेसे महीनेभर आवाज होती रहती थी (सभा० २१ । १६)। (३) एक राजा, जो 'सूक्ष्म' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १९)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २१)। (४) एक अग्नि, जो वसिष्ठपुत्र होनेके कारण वासिष्ठ भी कहलाते हैं (वन० २२० । १)। इनके प्रणिधि नामक पुत्र हुआ (वन० २२० । ९)।

बृहद्वती—एक प्रधान नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३०)।

बृहद्दन्त—(१) उलूक देशके राजा। इनका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा पराजय, सब प्रकारके रत्नोंकी भेंट लेकर इनका अर्जुनकी सेवामें उपस्थित होना (सभा० २७ । ५-९)। ये द्रौपदीके स्वयंवरमें भी गये थे (आदि०

१८५ । ७)। पाण्डवोंकी ओरसे इनको रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय हुआ था (उद्योग० ४ । १३)। ये युधिष्ठिरके प्रति भक्तिभावके कारण उनके पक्षमें चले आये थे। इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ७६-७७)। इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । १२-१३)। (२) क्षेमधूर्तिका भाई। कौरवपक्षका योद्धा। सात्यकिके साथ इसका युद्ध (द्रोण० २५ । ४७-४८)। इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । ४२)।

बृहन्नला–विराटनगरमें अज्ञातवासके समय रखा हुआ अर्जुनका नाम (विराट० २ । २७)। (विशेष देखिये अर्जुन)

बृहन्मना–महर्षि अङ्गिराद्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहन्मन्त्र–महर्षि अङ्गिराद्वारा सुभाके गर्भसे उत्पन्न सात पुत्रोंमेंसे एक (वन० २१८ । २)।

बृहस्पति–(१) महर्षि अङ्गिराके पुत्र। उतथ्य और संवर्तके भाई (आदि० ६६ । ५)। बृहस्पतिजीकी ब्रह्मवादिनी बहिन योगपरायण हो अनासक्त भावसे सम्पूर्ण जगत्‌में विचरती है। वह प्रभास नामक वसुकी पत्नी हुई (आदि० ६६ । २६-२७)। इनके अंशसे द्रोणाचार्यकी उत्पत्ति हुई थी (आदि० ६७ । ६९)। देवताओंद्वारा इनका पुरोहितके पदपर वरण (आदि० ७६ । ६)। शुक्राचार्यके साथ इनकी स्पर्धा (आदि० ७६ । ७)। इनके पुत्रका नाम 'कच' था (आदि० ७६ । ११)। इन्होंने भरद्वाज मुनिको आग्नेयास्त्र प्रदान किया था (आदि० १६९ । २९)। ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । २८)। ब्रह्माजीकी सभामें भी उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । २९)। इनके द्वारा चान्द्रमसी (तारा) नामक पत्नीसे छः अग्निस्वरूप पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें शंयु सबसे बड़ा था। इनके सिवा, एक कन्या भी हुई थी (वन० २१९ अध्याय)। नहुषके भयसे भीत शचीको इनका आश्वासन देना (उद्योग० ११ । २३–२५)। नहुषसे अवधि माँगनेके लिये शचीको सलाह देना (उद्योग० १२ । २५)। अग्निके साथ संवाद (उद्योग० १५ । २८–३४)। इनके द्वारा अग्निका स्तवन (उद्योग० १६ । १—८)। इनका इन्द्रकी स्तुति करना (उद्योग० १६ । १४–१८)। इन्द्रके प्रति नहुषके बलका वर्णन (उद्योग० १६ । २३-२४)। पृथ्वीदोहनके समय ये दोग्धा बने थे (द्रोण० ६९ । २३)। इनके द्वारा स्कन्दको दण्डका दान (शल्य० ४६ । ५०)। कोसलनरेश वसुमनासे राजाकी आवश्यकताका प्रतिपादन (शान्ति० ६८ । ८—६०)। इन्द्रको सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन बोलनेका उपदेश (शान्ति० ८४ अध्याय)। इनका इन्द्रको विजय-प्राप्तिके उपाय और दुष्टोंका लक्षण बताना (शान्ति० १०३ । ७—५२)। इन्द्रको शुक्राचार्यके पास श्रेयःप्राप्तिके लिये भेजना (शान्ति० १२४ । २४)। मनुसे ज्ञानविषयक विविध प्रश्न करना (शान्ति० २०१ अध्यायसे २०६ अध्यायतक)। उपरिचरके यज्ञमें भगवान्‌पर कुपित होना (शान्ति० ३३६ । १४)। मुनियोंके समझानेसे क्रोध शान्त करके यज्ञको पूर्ण करना (शान्ति० ३३६ । ६०-६१)। इनके द्वारा जलाभिमानी देवताको शाप (शान्ति० ३४२ । २७)। इनके द्वारा इन्द्रसे भूमिदानके महत्त्वका वर्णन (अनु० ६२ । ५५—९२)। राजा मान्धाताके पूछनेपर उनको गोदानके विषयमें उपदेश (अनु० ७६ । ५—२३)। युधिष्ठिरके प्रति इनका प्राणियोंके जन्म-मृत्युका और नानाविध पापोंके फलस्वरूप नाना योनियोंमें जन्म लेनेका वर्णन (अनु० १११ अध्याय)। युधिष्ठिरको अन्नदानकी महिमा बताना (अनु० ११२ अध्याय)। युधिष्ठिरको अहिंसा एवं धर्मकी महिमाका उपदेश देकर इनका स्वर्गगमन (अनु० ११३ अध्याय)। इनके द्वारा इन्द्रको धर्मोपदेश (अनु० १२५ । ६०–६८)। इन्द्रके कहनेसे मनुष्यका यज्ञ न करानेकी प्रतिज्ञा करना (आश्व० ५ । २५–२७)। मरुत्तसे उनका यज्ञ करानेसे इनकार करना (आश्व० ६ । ८-९)। मरुत्तको धन प्राप्त होनेसे इनका चिन्तित होना (आश्व० ८ । ३६-३७)। इन्द्रके पूछनेपर उनसे अपनी चिन्ताका कारण बताते हुए मरुत्त और संवर्तको कैद करनेके लिये कहना (आश्व० ९ । ७)। ये और सोम ब्राह्मणोंके राजा बताये गये हैं (आश्व० ९ । ८–१०)।

बोध–(१) एक राजा जो जरासंधके भयसे अपने भाइयों और सेवकोंसहित दक्षिण दिशामें भाग गये थे (सभा० १४ । २६)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ३९)।

बोध्य–एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने राजा ययातिके शान्तिविषयक प्रश्न करनेपर उन्हें उपदेश दिया था, इनका वह उपदेश बोध्यगीताके नामसे प्रसिद्ध हुआ (शान्ति० १७८ अध्याय)।

ब्रध्नश्व–एक राजा, इनके पास महाराज श्रुतर्वाको साथ लिये हुए अगस्त्यजीका आगमन और राजाद्वारा उन दोनोंका स्वागत-सत्कार करके आनेका प्रयोजन पूछा जाना (वन० ९८ । ७-८)। अगस्त्यजीके धन माँगनेपर उनके सामने इनके द्वारा अपने आय-व्ययका विवरण रखा जाना (वन० ९८ । १०)। अगस्त्यजीके साथ धनकी याचनाके लिये जाना (वन० ९८ । १२)। महर्षि अगस्त्यजीकी

आज्ञासे पुनः अपनी राजधानीको लौटना (वन० ९९ । १८) ।

ब्रह्मचारी–कश्यपद्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न एक देव-गन्धर्व (आदि० ६५ । ४७) । ये अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५८) ।

ब्रह्मतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, यहाँ स्नान-करनेसे ब्राह्मणेतर मानव ब्राह्मणत्व लाभ करता है और ब्राह्मण शुद्धचित्त होकर परम गति प्राप्त करता है (वन० ८३ । ११३) ।

ब्रह्मतुङ्ग–एक पर्वत, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिला था (द्रोण० ८० । ३१) ।

ब्रह्मदत्त–पाञ्चालदेशीय काम्पिल्य नगरके एक प्राचीन राजा (शान्ति० १३९ । ५) । इनका पूजनीनामक चिड़िया के साथ संवाद (शान्ति० १३९ । २४–१११) । इन पाञ्चालराजने ब्राह्मणोंको शङ्खनिधि देकर ब्रह्मलोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४ । २५; अनु० १३७ । १७) । ये कण्डरीक कुलमें उत्पन्न हुए थे, इन्होंने सात जन्मोंके जन्म-मृत्युसम्बन्धी दुःखोंका बारंबार स्मरण करके योगजनित ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था (शान्ति० ३४२ । १०५-१०६) । ये अब यमसभामें रहकर सूर्य-पुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २०) ।

ब्रह्मदेव–पाण्डवपक्षके एक वीर योद्धा, जो सेनाकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे क्षत्रदेवके साथ चल रहे थे (उद्योग० १९६ । २५) ।

ब्रह्ममेध्या–भारतवर्षकी एक प्रधान नदी, जिसका जल यहाँ-के निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३२) ।

ब्रह्मयोनि–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता और अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है (वन० ८३ । १४०) । इसकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग (शल्य० ४७ । २२–२४) ।

ब्रह्मवेध्या–भारतवर्षकी एक प्रधान नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३०) ।

ब्रह्मशाला–एक उत्तम तीर्थ, जहाँ गङ्गाजी सरोवरमें स्थित थीं । इसका दर्शनमात्र पुण्यमय बताया गया है (वन० ८७ । २३) ।

ब्रह्मशिर–ब्रह्मास्त्र, यह अस्त्र द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर अर्जुनको दिया था (आदि० १३२ । १८) । इसके प्रयोगका नियम (आदि० १३२ । १९–२१) । महर्षि अगस्त्यसे अग्निवेशको, अग्निवेशसे द्रोणको और द्रोणसे अर्जुनको इस अस्त्रकी प्राप्ति हुई थी (आदि० १३८ । ९–१२) ।

ब्रह्मसर–(१) धर्मारण्यसे सुशोभित एक तीर्थ, जहाँ एक रात निवास करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है । यहाँ ब्रह्माद्वारा स्थापित यूपकी परिक्रमा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ८५) । इसके जलमें अवगाहन करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ५८) । (२) गयाके अन्तर्गत एक कल्याणमय तीर्थ, जिसका देवर्षिगण सेवन करते हैं (वन० ८७।८)। यहाँ भगवान् अगस्त्य वैवस्वत यमसे मिलनेके लिये पधारे थे (वन० ९५ । ११) । (३) यहाँकी यात्रा करके भागीरथीमें स्नान, तर्पण आदि करने और एक मासतक निराहार रहनेसे मनुष्यको चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है (अनु० २५ । ३९–४०) ।

ब्रह्मस्थान–यहाँ ब्रह्माजीके समीप जानेसे मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । १०३) । यहाँ तीन रात उपवाससे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८५ । ३५; उद्योग० १८६ । २६) । यहाँ कमल उखाड़नेपर अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होना (अनु० ९४ । ८) ।

ब्रह्मा–सृष्टिके प्रारम्भमें जब सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार था, किसी भी वस्तु या नाम-रूपका भान नहीं होता था, उस समय एक विशाल अण्ड प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण प्रजाओंका अविनाशी बीज था, उस दिव्य एवं महान् अण्डमें सत्यस्वरूप ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुआ । उस अण्डसे ही प्रथम देहधारी प्रजापालक देवगुरु पितामह ब्रह्माका आविर्भाव हुआ (आदि० १ । २९–३२) । महाभारतका निर्माण करके उसके अध्ययन और प्रचारके विषयमें विचार करते हुए कृष्णद्वैपायन व्यासके आश्रमपर इनका आगमन (आदि० १ । ५५–५७) । व्यासजीसे सत्कृत होकर इनका आसनपर विराजमान होना (आदि० १ । ५८-५९) । व्यासजीका अपने ग्रन्थका परिचय देते हुए उसका कोई योग्य लेखक न होनेके विषयमें चिन्ता प्रकट करना (आदि० १ । ६१–६७) । इनका महाभारतको 'काव्य'की संज्ञा देना और उसकी प्रशंसा करके उसके लेखनके लिये गणेशजीका स्मरण करनेकी सलाह देना (आदि० १ । ७१–७४) । इन्होंने वरुणके यज्ञमें महर्षि भृगुको अग्निसे उत्पन्न किया (आदि० ५ । ८) । भृगुद्वारा प्राप्त अग्निके शापको संकुचित करके उन्हें प्रसन्न करना (आदि० ७ । १८–२५) । इनके द्वारा प्रजाके हितकी कामनासे सर्पोंको दिये गये कद्रूके शापका अनुमोदन (आदि० २० । १०) । इनसे मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु—इन छः मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई (आदि० ६५ । १०; आदि० ६६ । ४) । ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे दक्षका और बायेंसे दक्ष-पत्नीका

प्रादुर्भाव (आदि० ६६ । १०-११) । इनके दाहिने स्तनका भेदन करके मनुष्यरूपमें भगवान् धर्मका प्राकट्य (आदि० ६६ । ३१) । इनके हृदयका भेदन करके भृगुका प्रकट होना (आदि० ६६ । ४१) । इनकी प्रेरणासे शुक्राचार्य समस्त लोकोंका चक्कर लगाते रहते हैं (आदि० ६६ । ४२) । इनके दो पुत्र और हैं, जो मनुके साथ रहते हैं; उनके नाम हैं—धाता और विधाता (आदि० ६६ । ५०) । मनुष्योंकी मृत्यु रुक जानेसे चिन्तित हुए देवताओंको इनका आश्वासन (आदि० १९६ । ७) । इनके द्वारा सुन्द और उपसुन्दको वरदान (आदि० २०८ । १७–२५) । सुन्द और उपसुन्दके अत्याचारसे दुखी हुए महर्षियोंका इनके प्रति उनके अत्याचारोंका वर्णन (आदि० २१० । ४–८) । तिलोत्तमाका निर्माण करनेके लिये इनका विश्वकर्माको आदेश (आदि० २१० । ९–११) । तिलोत्तमाको इनका वरदान (आदि० २११ । २३-२४) । अपने अजीर्ण रोगको मिटानेके लिये अग्निकी इनसे प्रार्थना (आदि० २२२ । ६९–७१) । अग्निकी ग्लानिका कारण बताते हुए खाण्डववनको जलानेके लिये इनका उन्हें आदेश (आदि० २२२ । ७२–७७) । खाण्डववनको जलानेके कार्यमें श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे सहायताकी प्रार्थना करनेके लिये इनकी अग्निको प्रेरणा (आदि० २२३ । ५–११) । इनके द्वारा पूर्वकालमें गाण्डीव धनुषका निर्माण (आदि० २२४ । १९) । एक सहस्र युग बीतनेपर ये हिरण्यशृङ्ग पर्वतपर बिन्दुसरके समीप यज्ञ करते हैं (सभा० ३ । १५) । नारदजीद्वारा इनकी दिव्य सभाका वर्णन (सभा० ११ अध्याय) । इनके द्वारा हिरण्यकशिपुको शाप या किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे न मरनेका वरदान (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८५-७८६) । प्रजापति ब्रह्माने इन्द्रके लिये एक दिव्य शङ्ख धारण किया था (सभा० ५३ । १४-१५) । इनके द्वारा धर्मारण्यमें ब्रह्मसरके समीप एक यूपकी स्थापना (वन० ८४ । ८६) । ब्रह्माने प्रयागमें यज्ञ किया था (वन० ८७ । १९) । प्रजापति ब्रह्माजीने पुष्कर तीर्थके लिये एक गाथा गायी है (वन० ८९ । १७-१८) । इनका देवताओंको दधीचिके पास उनकी हड्डियोंकी याचनाके लिये भेजना (वन० १०० । ८) । प्रजापति ब्रह्माजीने कुरुक्षेत्रमें इष्टीकृत नामक सत्रका एक सहस्र वर्षोंतक अनुष्ठान किया था (वन० १२९ । १) । वाराहरूपधारी विष्णुद्वारा पृथ्वीको ऊपर उठाये जानेसे क्षुब्ध हुए देवताओंको इनके द्वारा सान्त्वना-प्रदान (वन० १४२ । ५४–५७) । ब्रह्माजीके द्वारा कालकेयोंके लिये हिरण्यपुर नामक नगरका निर्माण और मनुष्यके हाथसे उनके विनाशका निर्देश (वन० १७३ । ११—१५) । भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे इनकी उत्पत्तिका वर्णन (वन० २०३ । १०—१५) । इनके द्वारा धुन्धुको वरदान (वन० २०४ । २–४) । इन्द्रके प्रति देवसेना-के पतिका निर्धारण (वन० २२४ । २४) । ये पुलस्त्य-के पिता और रावणके पितामह थे (वन० २७४ । ११-१२) । इनका देवताओंको वानर और रीछ-योनियोंमें अपने अंशसे संतान उत्पन्न करनेके लिये आदेश (वन० २७६ । ६-७) । इनके द्वारा सीताजीकी शुद्धिका समर्थन (वन० २९१ । ३५) । ययातिसे अभिमानको अधः-पतनका हेतु बताना (उद्योग० १२३ । १४-१५) । इनके द्वारा भगवत्स्तुति (भीष्म० ६५ । ४७—७४)। देवताओंको नर-नारायणका परिचय देना (भीष्म० ६६ । ६ —२३) । प्राणियोंके संहारके विषयमें उपाय सोचते समय इनका कोप (द्रोण० ५२ । ४०) । रुद्रसे अपने क्रोधका कारण बताना (द्रोण० ५३ । ३–५) । इनके शरीरसे मृत्युकी उत्पत्ति (द्रोण० ५३ । १७-१८) । मृत्युको जगत्‌के संहारका कार्य सौंपना (द्रोण० ५३ । २१-२२) । मृत्युकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उसे वर देना (द्रोण० ५४ । ३३–३६) । मृत्युको आदेश (द्रोण० ५४ । ३९—४३) । वृत्रासुरके भयसे भीत देवताओंको साथ लेकर शिवजीके पास जाना (द्रोण० ९४ । ५३—५८) । त्रिपुरोंके संहारके समय ये भगवान् रुद्रके सारथि बने थे (द्रोण० २०२ । ७६) । इन्द्र आदि देवताओंसहित त्रिपुर-वधके लिये शिवजीके पास जाकर उनको प्रसन्न करना (कर्ण० ३३ । ४१—६२) । शिवजीसे त्रिपुरवधके लिये याचना करना (कर्ण० ३४ । २–५) । देवताओंकी प्रार्थनासे त्रिपुरवधके समय शिवजीका सारथि बनना (कर्ण० ३४ । ७५—७९) । कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ-युद्धमें इन्द्रके पूछनेपर इनके द्वारा अर्जुनकी विजय-घोषणा (कर्ण० ८७ । ६९–८५) । इनके द्वारा स्कन्दको पार्षद-प्रदान (शल्य० ४५ । २४-२५) । स्कन्दके लिये काले मृगचर्मका दान (शल्य० ४६ । ५२) । इनकी सृष्टि-रचनाका वर्णन (सौप्तिक० १७ । १०—२०) । इनका चार्वाकको वर-प्रदान (शान्ति० ३९ । ५) । चार्वाककी मृत्युका उपाय बताना (शान्ति० ३९ । ८—१०) । इनके नीतिशास्त्रका वर्णन (शान्ति० ५९ । २९—८६) । इनका खड्ग उत्पन्न करके रुद्रदेवको देना (शान्ति० १६६ । ४५-४६) । देवताओंको आश्वासन (शान्ति० २०० । ३०-३१; शान्ति० २०९ । ३१—३६) । इन्द्रको बलिका पता बताना और वध करनेसे

रोकना (शान्ति० २२३ । ८—११) । प्रजाकी वृद्धि-पर इनका कोप (शान्ति० २५६ । १६) । शिवजीकी प्रार्थनासे क्रोधका त्याग (शान्ति० २५७ । १३) । मृत्युको संहारके लिये आदेश (शान्ति० २५८ । २८—३६) । वृत्रासुरके वधसे इन्द्रको लगी हुई ब्रह्महत्याका विभाजन (शान्ति० २८२ । ३१–५५) । दक्षयज्ञके समय कुपित हुए शिवजीका कोप शान्त करना (शान्ति० २८३ । ४५—४८) । हंसरूपसे साध्यगणोंको उपदेश (शान्ति० २९९ अध्याय) । देवताओंके साथ भगवान्‌की शरणमें जाना (शान्ति० ३४० । ४२—४८) । इनके द्वारा नारायण-रुद्र-युद्धकी शान्ति (शान्ति० ३४२ । १२४—१२९) । भगवान् हयग्रीवकी स्तुति (शान्ति० ३४७ । ३८—४५) । वैजयन्तपर्वतपर शिवजीके साथ वार्तालापमें इनके द्वारा नारायणकी महिमाका वर्णन (शान्ति० ३५० । २५ से ३५१ अध्यायतक) । देवताओंसे गरुड़-कश्यप-संवादका प्रसंग सुनाना (अनु० १३ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५४६७—५४७९) । इनके द्वारा ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन (अनु० ३५ । ५—११के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । यज्ञके लिये देवताओंको भूमि देना (अनु० ६६ । २१-२२) । इन्द्रसे गोलोक और गोदानकी महिमाका वर्णन (अनु० ७३ अध्याय) । गोदानके विषयमें इनका इन्द्रके प्रश्नका उत्तर देना (अनु० ७४ । २—१०) । इन्द्रको गोलोक और गौओंकी महिमा बताना (अनु० ८३ । १५—४५) । सुरभीको वरदान देना (अनु० ८३ । ३६—३९) । इनके द्वारा देवताओंको आश्वासन (अनु० ८५ । ८—१८) । वरुणरूपधारी महादेवजीके यज्ञमें इनका अपने वीर्यकी आहुति देना और उससे प्रजापतियोंका जन्म होना (अनु० ८५ । ९९—१०२) । पितरों और देवोंके अजीर्ण-निवारणके लिये अग्निको उपाय बताना (अनु० ९२ । ९) । नहुषके पतनके बाद शतक्रतुको इन्द्र बनानेके लिये देवोंको आदेश (अनु० १०० । ३४—३६) । राजा भगीरथको ब्रह्मलोकमें आया देख उनसे वहाँ पहुँचनेका साधन पूछना (अनु० १०३ । ६-७) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२६ । ४६—५०) । कप नामक दानवोंसे पराजित देवताओंको ब्राह्मणकी शरण लेनेका आदेश (अनु० १५७ । ५) । देवता, ऋषि, नाग और असुरोंको एकाक्षर 'ॐ' का उपदेश (आश्व० २६ । ८) । इनके द्वारा महर्षियोंको विविध ज्ञानका उपदेश (आश्व० ३५ । ३२ से आश्व० ५१ । ४० तक) ।

ब्रह्मावर्त—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेवाला मानव ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है (वन० ८३ । ५३) । यहाँ ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है (वन० ८४ । ४३) ।

ब्रह्मोदुम्बर—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ । यह ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है (वन० ८३ । ७१) ।

ब्राह्म—एक प्रकारका विवाह । कन्याको वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत करके सजातीय योग्य वरके हाथमें देना 'ब्राह्म' विवाह कहलाता है । यह सभी वर्णोंके लिये विहित है (आदि० ७३ । ८–१४) ।

ब्राह्मणी—(१) एक तीर्थ, यहाँ जानेसे मानव कमलके समान कान्तिमान् विमानद्वारा ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८४ । ५८) । (२) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३३) ।

(भ)

भग—(१) बारह आदित्योंमेंसे एक । इनकी माताका नाम अदिति और पिताका कश्यप है (आदि० ६५ । १५) । ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ६६) । खाण्डववनदाहके समय घटित हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ युद्धमें इन्द्रकी ओरसे इनका आगमन तथा तलवार और धनुष लेकर शत्रुपर टूट पड़ना (आदि० २२६ । ३६) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । २२) । इन्होंने स्कन्दके अभिषेकमें भाग लिया (शल्य० ४५ । ५) । रुद्रने इनकी आँखें नष्ट कर दी थीं (सौप्तिक० १८ । २२) । (२) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ये भी अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ६९) ।

भगदत्त—प्राग्ज्योतिषपुरका अधिपति, बाष्कल नामक असुरके अंशसे उत्पन्न (आदि० ६७ । ९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १२) । यह राजा पाण्डुका मित्र था । जरासंधसे मिला होनेपर भी युधिष्ठिरके प्रति पिताकी भाँति स्नेह रखता था । इसे यवनाधिप कहा गया है (सभा० १४ । १४–१६) । राजसूय-दिग्विजयके समय अर्जुनके साथ इसका घोर युद्ध हुआ और अर्जुनकी वीरतासे प्रसन्न होकर इसने उनकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा की । यह इन्द्रका मित्र था और इन्द्रके समान ही पराक्रमी था । अर्जुनके पिता पाण्डुसे भी इसकी मैत्री थी । इसने अर्जुनके प्रति वात्सल्य दिखाया । यह किरात, चीन आदि समुद्रतटवर्ती सैनिकोंके साथ युद्धमें गया था (सभा० २६ ।७-१६) ।

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें यह यवनोंके साथ गया था और अच्छी जातिके वेगशाली अश्व एवं बहुत-सी भेंट-सामग्री लेकर खड़ा था। बहुत-से हीरे और पद्मरागमणिके आभूषण एवं विशुद्ध हाथी-दाँतकी बनी मूठवाले खड्ग देकर यह राजसभामें गया था (सभा० ५१ । १४–१६) । दिग्विजयके समय कर्णद्वारा इसकी पराजय (वन० २५४ । ५) । पाण्डवोंकी ओरसे इसके पास रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । ११)। दुर्योधनकी सहायतामें सेनासहित इसका आना (उद्योग० १९ । १५) । प्रथम दिनके संग्राममें विराटके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ४९–५१) । घटोत्कचके साथ युद्ध और पराजय (भीष्म० ६४ । ५९-६२) । भीमसेनको मूर्च्छित करना (भीष्म० ६४ । ५३–५४) । इसके द्वारा घटोत्कचकी पराजय (भीष्म० ८३ । ४०)। इसका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ९५ अध्याय) । इसके द्वारा दशार्णराजकी पराजय (भीष्म० ९५ । ४८-४९) । इसके द्वारा क्षत्रदेवकी दाहिनी भुजाका विदारण (भीष्म० ९५ । ७३) । भीमसेनके सारथि विशोककी मूर्च्छा (भीष्म० ९५ । ७६) । सात्यकिके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० १११ । ७–१३) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० अध्याय ११३ से ११४) । अर्जुनके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ५६–६०) । द्रुपदके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४०–४२) । हाथीसहित अद्भुत पराक्रम करके इसके द्वारा दशार्णराजका वध (द्रोण० २६ । ३८ ३९) । रुचिपर्वाका वध (द्रोण० २६ । ५२-५३) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० २८ । १४ से २९ अध्यायतक) । अर्जुनपर वैष्णवास्त्रका प्रयोग (द्रोण० २९ । १७) । अर्जुनद्वारा इसका वध (द्रोण० २९ । ४८–५०) । भगदत्तके बाद इसका पुत्र वज्रदत्त राजा हुआ, जो अर्जुनद्वारा जीता गया था (आश्व० ७६ । १–२०) । इसके पितामह शैलालय तपोबलसे इन्द्रलोकमें गये थे (आश्रम० २० । १०) ।

भगदा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २६) ।

भगनन्दा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

भगवद्गीतापर्व–भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २५ से ४२ तक) ।

भगवद्यानपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ७२ से १५० तक) ।

भगीरथ–एक राजा, जो दिलीपके पुत्र थे (वन० २५ । १२) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १२) । इनका राज्याभिषेक (वन० १०७ । ६९) । इनका हिमालयपर तपस्या करके भगवान् शिव तथा गङ्गाजीको प्रसन्न करना एवं गङ्गाजीद्वारा वरदान पाना (वन० १०८ अध्याय) । इन्हें भगवान् शिवका वरदान (वन० १०९ । १–२) । इनका गङ्गाजीको ले जाकर पितरोंका उद्धार करना (वन० १०९ । १८–१९) । सृंजयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके चरित्रका वर्णन (द्रोण० ६० अध्याय) । श्रीकृष्णद्वारा इनके दान, यज्ञ आदिका वर्णन (शान्ति० २९ । ६३–७०) । गोदान-महिमाके विषयमें इनका नामनिर्देश (अनु० ७६ । २५) । ब्रह्माके पूछनेपर अपने पुण्यकर्मोंका वर्णन करते हुए इनका अनशन-व्रतको ही ब्रह्मलोकमें पहुँचनेका साधन बताना (अनु० १०३ । ८–४२) । इनके द्वारा अपनी कन्याका कौत्सको दान (अनु० १३७ । २६) । कोहल ऋषिको एक लाख सवत्सा गौओंका दान करनेके कारण इन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति (अनु० १३७ । २७) ।

भङ्ग–तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जलमरा था (आदि० ५७ । ९) ।

भङ्गकार– (१) ये सोमवंशीय महाराज कुरुके पौत्र तथा अविक्षित्के पुत्र थे (आदि० ९४ । ५३) । (२) एक यदुवंशी क्षत्रिय, जो रैवतक पर्वतके महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे (आदि० २१८ । ११) ।

भङ्गास्वन–एक प्राचीन राजर्षि, जिनका इन्द्रके साथ वैर हो गया था (अनु० १२ । २) । इन्द्रकी प्रेरणासे इनका स्त्रीभावको प्राप्त होना (अनु० १२ । १०) । वनमें जानेपर एक तापसद्वारा इन्होंने सौ पुत्र उत्पन्न किया (अनु० १२ । २४) । इन्द्रसे पूछनेपर उनसे अपना वृत्तान्त सुनाना (अनु० १२ । ३४–४०) । इनका विषयसुखकी इच्छासे स्त्रीभावकी ही प्रशंसा करना (अनु० १२ । ५२–५३) ।

भद्र–(१) एक गणराज्य । यहाँके क्षत्रियराजकुमारोंने राजसूययज्ञके अवसरपर युधिष्ठिरको बहुत-सा धन अर्पित किया था (सभा० ५२ । १४–१७) । दिग्विजयके समय कर्णने इस देशको जीता था (वन० २५४ । २०) । (२) चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जिसका कर्णद्वारा वध हुआ था (कर्ण० ५६ । ४८-४९) ।

भद्रकर्णेश्वर–इसके समीप जाकर विधिपूर्वक पूजा करनेवाला मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता (वन० ८४ । ३९) ।

भद्रकार–एक राजा, जो जरासंधके भयसे अपने भाइयों और सेवकोंसहित दक्षिण दिशामें भाग गया था (**सभा० १४ । २६**) ।

भद्रकाली–(१) दुर्गाजीका एक नाम । अर्जुनने इस नामसे दुर्गाजीका स्तवन किया था (**भीष्म० २३ । ५**) । दक्षयज्ञविध्वंसके समय ये पार्वतीजीके कोपसे प्रकट हुई थीं (**शान्ति० २८४ । ५३-५४**) । (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ११**) ।

भद्रतुङ्ग–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके सुशील पुरुष ब्रह्मलोकमें जाता और वहाँ उत्तम गति पाता है (**वन० ८२ । ८०**) ।

भद्रमना–यह क्रोधवशाकी नौ कन्याओंमेंसे एक है । इसने देवताओंके हाथी महान् गजराज ऐरावतको जन्म दिया (**आदि० ६६ । ६०–६३**) ।

भद्रवट–यह उमावल्लभ महादेवजीका निवासस्थान है । यहाँ भगवान् शिवका दर्शन करनेवाला यात्री एक हजार गोदानका फल पाता है और महादेवजीकी कृपासे गणोंका आधिपत्य प्राप्त करता है (**वन० ८२ । ५०-५१**) ।

भद्रशाख–बकरेके समान मुख धारण करनेवाले स्कन्ददेवका एक नाम (**वन० २२८ । ४**) ।

भद्रशाल–मेरुके पूर्वभागमें स्थित भद्राश्ववर्षके शिखरपर अवस्थित एक वन, जिसमें कालाम्र नामक महान् वृक्ष है (**भीष्म० ७ । १४**) ।

भद्रा–(१) ये कक्षीवान्की पुत्री और पूरुवंशी राजा व्युषिताश्वकी पत्नी थीं । इनके रूपकी समानता करनेवाली उस समय दूसरी कोई स्त्री न थी (**आदि० १२० । १७**) । पतिके परलोकवासी हो जानेपर इनका विलाप करना (**आदि० १२० । २१ –३१**) । इनको आकाशवाणीद्वारा पतिका आश्वासन और पतिके शवद्वारा इनके गर्भसे सात पुत्रोंकी उत्पत्ति (**आदि० १२० । ३३—३६**) । (२) ये कुबेरकी अनुरक्ता पत्नी थीं । कुन्तीने द्रौपदीसे दृष्टान्तरूपमें इनका वर्णन किया था (**आदि० १९८ । ६**) । (३) भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राका एक नाम (**आदि० २१८ । १४**) । (विशेष देखिये सुभद्रा) (४) विशालानरेशकी कन्या, जो करूषराजकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली थी; परंतु शिशुपालने करूषराजका वेष धारण करके मायासे इसका अपहरण कर लिया था (**सभा० ४५ । ११**) । (५) सोमकी पुत्री, जो अपने समयकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानी जाती थी । इन्होंने उतथ्यको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तीव्र तपस्या की । तब सोमके पिता महर्षि अत्रिने उतथ्यको बुलाकर इन्हें उनके हाथमें दे दिया और उतथ्यने विधिपूर्वक इनका पाणिग्रहण किया (**अनु० १५४ । १०–१२**) । वरुणद्वारा इनका अपहरण (**अनु० १५४ । १३**) । जब कुपित होकर उतथ्यने सारा जल पी लिया, तब वरुण उनकी शरणमें आये और उनकी भार्या भद्राको उन्हें लौटा दिया (**अनु० १५४ । २८**) । (६) वसुदेवजीकी चार पत्नियोंमेंसे एक (**मौसल० ७ । १८**) । ये वसुदेवजीके साथ ही चितारोहण कीं (**मौसल० ७ । २४**) ।

भद्राश्व–मेरुपर्वतके समीपका एक द्वीप (**भीष्म० ६ । १३**) । धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका विशेष वर्णन (**भीष्म० ७ । १३—१८**) । इस भद्राश्ववर्षपर युधिष्ठिरने शासन किया था (**शान्ति० १४ । २४**) ।

भय–अधर्मद्वारा निर्ऋतिके गर्भसे उत्पन्न तीन भयंकर राक्षसोंमेंसे एक । अन्य दोका नाम महाभय और मृत्यु था । ये राक्षस सदा पापकर्ममें लगे रहनेवाले हैं (**आदि० ६६ । ५४-५५**) ।

भयङ्कर–(१) सौवीरदेशका एक राजकुमार, जो जयद्रथके रथके पीछे हाथमें ध्वजा लेकर चलता था । यह द्रौपदीहरणके समय जयद्रथके साथ गया था (**वन० २६५ । १०-११**) । अर्जुनद्वारा इसका वध (**वन० २७१ । २७**) । (२) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३१**) ।

भयङ्करी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ४**) ।

भरणी–(सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक) जो भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिलमयी धेनुका दान करता है, वह इस लोकमें बहुत-सी गौओंको तथा परलोकमें महान् यशको प्राप्त करता है (**अनु० ६४ । ३५**) । इस नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे उत्तम आयुकी प्राप्ति होती है (**अनु० ८९ । १४**) । चन्द्र-व्रतमें भरणी नक्षत्रको चन्द्रमाका सिर मानकर पूजा आदि करनेका विधान है (**अनु० ११० । ९**) ।

भरत–(१) दुष्यन्तके द्वारा शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा । इन्हींसे भरतवंशकी प्रवृत्ति हुई तथा इन्हींसे शासित होनेके कारण इस देशका नाम भारत हुआ (**आदि० २ । ९५-९६; आदि० ७४ । १३१**) । इनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त (**आदि० ७३ । १५ से आदि० ७४ । २ तक**) । बचपनमें बड़े-बड़े दानवों, राक्षसों, सिंहों आदिका दमन करनेके कारण ऋषियोंने इनका नाम 'सर्वदमन' रखा था (**आदि० ७४ । ८**) । (२) ये शंयु नामक अग्निके द्वितीय पुत्र हैं । समस्त पौर्णमासयागोंमें स्रुवासे हविष्यके साथ घी उठाकर इन्हींको प्रथम आघार अर्पित किया जाता है । इनका नामान्तर ऊर्ज है (**वन० २१९ । ६**) । (३) ये भरत नामक अग्निके पुत्र हैं (**वन० २१९ । ७**) । ये संतुष्ट होनेपर पुष्टि प्रदान करते हैं; इसलिये इनका एक नाम पुष्टिमति है (**वन० २२१ । १**) । (४) ये अद्भुत नामक अग्निके पुत्र हैं, जो मरे हुए प्राणियोंके शवका दाह करते हैं । इनका अग्निष्टोममें नित्य निवास है; अतः इन्हें 'नियत' भी कहते हैं (**वन० २२२ । ६**) । (५) महाराज दशरथके पुत्र, जो कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, श्रीराम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इनके भाई थे (**वन० २७४ । ७-८**) । श्रीरामके वनमें चले जानेपर

कैकेयीका इन्हें ननिहालसे बुलवाना और अकण्टक राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना (वन० २७७ । ३१-३२)। इनका अपनी माताको फटकारना और उसके कुकृत्यपर फूट-फूटकर रोना (वन० २७७ । ३३-३४)। इनकी चित्रकूट-यात्रा (वन० २७७ । ३५-३८)। श्रीरामके लौटनेपर उन्हें राज्य समर्पण करना (वन० २९१ । ६५)।

भरती–भरत नामक अग्निकी पुत्री (वन० २१९ । ७)।

भरद्वाज–(१) एक प्राचीन ऋषि । सप्तर्षियोंमेंसे एक । ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५१)। इन्हींकी कृपासे भरतको भुमन्यु नामक पुत्र प्राप्त हुआ (आदि० ९४ । २२)। ये भगवान् भरद्वाज किसी समय गङ्गाद्वारमें रहकर कठोर व्रतका पालन करते थे । एक दिन उन्हें एक विशेष प्रकारके यज्ञका अनुष्ठान करना था । इसलिये वे महर्षियोंको साथ लेकर गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये गये । वहाँ पहलेसे नहाकर वस्त्र बदलती हुई घृताची अप्सराको देखकर महर्षिका वीर्य स्खलित हो गया । महर्षिने उसे उठाकर द्रोण (कलश) में रख दिया । उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम द्रोण रखा गया (किन्हीं-किन्हींके मतमें सप्तर्षि भरद्वाजसे द्रोणपिता भरद्वाज भिन्न हैं ।) (आदि० १२९ । ३३—३८)। इन्होंने अग्निवेशको आग्नेयास्त्रकी शिक्षा दी (आदि० १२९ । ३९)। ये ब्रह्माजीकी सभामें बैठकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २२)। इनका अपने पुत्र यवक्रीतको अभिमान न करनेका उपदेश देना (वन० १३५ । ४४)। इनका पुत्रशोकके कारण विलाप करना (वन० १३७ । १०–१८)। इनके द्वारा अपने मित्र रैभ्यमुनिको शाप (वन० १३७ । १५)। इनका पुत्रशोकसे अग्निमें प्रवेश (वन० १३७ । १९)। रैभ्यपुत्र अर्वावसुके प्रयत्नसे इनका पुनरुज्जीवन (वन० १३८ । २२)। इनका द्रोणाचार्यके पास आकर युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५–४०)। भृगुजीसे सृष्टि आदिके सम्बन्धमें पूछना और उनका उत्तर प्राप्त करना (शान्ति० अध्याय १८२ से १९२ तक)। इनका भगवान् विष्णुकी छातीमें जलसहित हाथसे प्रहार करना (शान्ति० ३४२ । ५४)। राजा दिवोदासको शरण देकर पुत्रेष्टिद्वारा उन्हें पुत्र प्रदान करना (अनु० ३० । ३०)। वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४१)। अरुन्धतीसे अपने शरीरकी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६६)। यातुधानीको अपने नामकी व्याख्या सुनाना (अनु० ९३ । ८८)। मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । ११८–११९)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । ३५)। (२) ये शंयु नामक अग्निके प्रथम पुत्र हैं । यज्ञमें प्रथम आज्यभागके द्वारा इन भरद्वाजनामक अग्निकी ही पूजा की जाती है (वन० २१९ । ५)। (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६८)।

मरुकक्ष–एक भारतीय जनपद । यहाँके निवासी शूद्र युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१ । ९-१०)।

भर्ग–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५१)।

भर्तृस्थान–यहाँ जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है । यहाँ महासेन कार्तिकेयका निवास-स्थान है । यहाँ यात्रीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है (वन० ८४ । ७६; वन० ८५ । ६०)।

भल्लाट–एक भारतीय जनपद, जिसे पूर्वदिग्विजयके समय भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । ५)।

भव–(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ये ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र थे (आदि० ६६ । १–३)। (२) एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५)।

भवदा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६।१३)।

भागीरथी–यहाँ जाकर तर्पण करना चाहिये (वन० ८५ । १४)।

भाङ्गासुरि–एक राजा, जो यमराजकी सभामें विराजमान होकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १५)।

भाण्डायनि–एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें उपस्थित हो वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १२)।

भाण्डीर–व्रजभूमिमें स्थित एक वन और वहाँका एक वट-वृक्ष, जिसकी छायामें भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ बछड़े चराते तथा भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाएँ किया करते थे । भाण्डीरवनमें निवास करनेवाले बहुत-से ग्वाले वहाँ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णको विविध प्रकारके खिलौनोंद्वारा प्रसन्न रखते थे (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८००)। (वृन्दावनमें केशीघाटके सामने यमुनाजीके उस पार उत्तर दिशामें यह वन पड़ता है । पुराणोंमें ऐसी कथा आती है कि यहाँ ब्रह्माजीने श्रीराधा-कृष्णका विवाह कराया था)।

भाद्रपद (प्रौष्ठपद)—(बारह महीनोंमेंसे एक, जिस मासकी पूर्णिमाको पूर्वभाद्रपद अथवा उत्तरभाद्रपद नामक नक्षत्रका योग हो, उसे 'भाद्रपद' कहते हैं । यह श्रावणके बाद और आश्विनके पहले आता है ।) भाद्रपद मासमें प्रतिदिन एक समय भोजन करनेवाला मनुष्य गोधनसे सम्पन्न, समृद्धिशील तथा अविचल ऐश्वर्यका भागी होता है (अनु० १०६ । २८)। भाद्रपदकी द्वादशी तिथिको

उपवासपूर्वक हृषीकेश नामसे भगवान्‌की पूजा करनेवाला मनुष्य सौत्रामणि यज्ञका फल पाता और पवित्रात्मा होता है (अनु० १०९ । १२)।

भानु–(१) एक देव, जो विवस्वान्‌के बोधक माने गये हैं (आदि० १ । ४२)। (२) 'प्राधा' नामवाली कश्यपकी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न एक देवगन्धर्व (आदि० ६५ । ४७)। (३) ये श्रीकृष्णके पुत्र थे (सभा० २ । ३५)। मृत्युके पश्चात् ये विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट हो गये (स्वर्गा० ५ । १६–१८)। (४) ये पाञ्चजन्य-नामक अग्निके पुत्र हैं, जो आङ्गिरस च्यवनके अंशसे उत्पन्न हुए थे (वन० २२० । ९)। इन्हींको मनु तथा बृहद्भानु भी कहते हैं (वन० २२१। ८)। (५) एक प्राचीन राजा, जो कृपाचार्यके साथ होनेवाले अर्जुनके युद्धको देखनेके लिये इन्द्रके विमानमें बैठकर पधारे थे (विराट० ५६ । ९-१०)।

भानुदत्त–यह शकुनिका भाई था, जो भीमसेनके साथ युद्ध-में उनके द्वारा मारा गया था (द्रोण० १५७।२४–२६)।

भानुदेव–एक पाञ्चाल योद्धा, जो कर्णद्वारा मारा गया (कर्ण० ४८ । १५)।

भानुमती–(१) यह कृतवीर्यकी पुत्री तथा पूरुवंशी राजा अहंयातिकी पत्नी थी। इसके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (आदि० ९५ । १५)। (२) महर्षि अङ्गिराकी प्रथम पुत्री, जो बड़ी रूपवती थी (वन० २१८ । ३)।

भानुमान्–कलिङ्गदेशका राजकुमार। यह कौरवपक्षकी ओरसे युद्ध करते हुए भीमसेनद्वारा मारा गया (भीष्म० ५४ । ३३-३९)।

भानुसेन–यह कर्णका पुत्र था। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ४८ । २७)।

भारत–भरतके वंशमें उत्पन्न होनेवाले लोग 'भारत' नामसे कहे जाते हैं (आदि० १७२ । ५० के बाद दा० पाठ)।

भारतवर्ष–जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमेंसे एक (भीष्म० ६ । ७)। इसका विशेष वर्णन (भीष्म० अध्याय ९से १०तक)।

भारतसंहिता–व्यासजीद्वारा रचित चौबीस हजार श्लोकोंकी संहिता, जिसे विद्वान् पुरुष भारत भी कहते हैं (आदि० १ । १०२)।

भारती–एक नदी, जिसकी गणना अग्नियोंको उत्पन्न करने-वाली नदियोंमें है (वन० २२२ । २५-२६)।

भारद्वाज–एक ऋषि, जिन्होंने सत्यवान्‌के जीवित होनेका विश्वास दिलाकर राजा द्युमत्सेनको आश्वासन दिया था (वन० २९८ । १६)

भारद्वाजतीर्थ–यह पाँच नारीतीर्थोंमेंसे एक है। यहाँ अर्जुन तीर्थयात्राके समय गये थे (आदि० २१५ । ४)।

भारद्वाजी–भारतवर्षकी एक प्रधान नदी, जिसका जल यहाँ-के निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २९)।

भारुण्ड–उत्तरकुरुवर्षमें रहनेवाले महाबली पक्षियोंकी एक जाति। इनकी चोंच बड़ी तीखी होती है और ये वहाँके मरे हुए लोगोंकी लाशोंको उठाकर कन्दराओंमें फेंक आते हैं (भीष्म० ७ । १२; शान्ति० १६९ । ९)।

भार्गव–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५०)।

भालुकि–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १५)।

भावन–द्वारकाके समीपवर्ती वेणुमन्त पर्वतके निकट स्थित एक सुन्दर वन (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३)।

भाविनि–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ११)।

भास–एक पर्वत, जिसकी गणना पर्वतोंके अधिपतियोंमें है (आश्व० ४३ । ५)।

भासी–(१) कश्यपकी प्राधा नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई आठ कन्याओंमेंसे एक (आदि० ६५ । ४६)। (२) यह ताम्राकी पुत्री है। इसने मुर्गों तथा गीधोंको जन्म दिया (आदि० ६६ । ५६-५७)।

भास्कर–कश्यपद्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न बारह आदित्योंमेंसे एक (अनु० १५०। १४-१५)।

भास्करि–एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये आये थे (शान्ति० ४७ । १२)।

भास्वर–सूर्यद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक। दूसरेका नाम सुभ्राज था (शल्य० ४५ । ३१)।

भीम–(१) कश्यपद्वारा मुनिके गर्भसे उत्पन्न एक देवगन्धर्व (आदि० ६५ । ४३)।(२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८)। यह भीमसेनद्वारा मारा गया (भीष्म० ६४ । ३६-३७)। (३) ये महाराज ईलिनके द्वारा रथन्तरीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनके चार भाई और थे—दुष्यन्त, शूर, प्रवसु और वसु(आदि० ९४ । १७-१८) (४) ये विदर्भदेशके राजा थे (वन० ५३ । ५)। दशार्णनरेश सुदामाकी पुत्री इनकी पत्नी थी (वन० ६९ । १४–१५)। महर्षि दमनकी कृपासे इन्हें दम, दान्त और दमन नामक तीन पुत्र तथा दमयन्ती नाम्नी कन्याकी प्राप्ति (वन० ५३ । ६–९)। इनके द्वारा दमयन्तीके स्वयंवरका आयोजन (वन०

५४ । ८–९)। इनके द्वारा नलके साथ दमयन्तीका विवाह किया जाना (वन० ५७ । ४०-४१) । सारथि वार्ष्णेयके द्वारा लाये गये राजा नलके बच्चोंको अपने आश्रयमें रखना (वन० ६० । २३–२४) । दमयन्ती-द्वारा इनके गुणोंका वर्णन (वन० ६४ । ४४–४७) । इनका नल-दमयन्तीकी खोजके लिये ब्राह्मणोंको पुरस्कार-की घोषणा करके चारों ओर भेजना (वन० ६८ । २–५) । महारानीकी प्रेरणासे राजा नलकी खोजके लिये ब्राह्मणोंको आज्ञा देकर भेजना (वन० ६९ । ३४) । इनके द्वारा अपने यहाँ आये हुए अयोध्यानरेश ऋतुपर्ण-का स्वागत (वन० ७३ । २०) । प्रकट हुए राजा नलको पुत्रकी भाँति अपनाना और आदर-सत्कारके साथ आश्वासन देना (वन० ७७ । ३–५) । एक महीनेके पश्चात् सेना, रथ आदिके साथ राजा नलको विदा करना (वन० ७८ । १-२) । इनके द्वारा आदर-सत्कारके साथ राजा नलसहित दमयन्तीकी विदाई (वन० ७९ । १-२) । (५) ये देवताओंके यज्ञका विनाश करनेवाले पाञ्चजन्यद्वारा उत्पन्न पाँच विनायकोंमें हैं (वन० २२१ । ११) । (६) अंशद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच अनुचरोंमेंसे एक । शेष चारोंके नाम—परिघ, वट, दहति और दहन (शल्य० ४५ । ३४-३५) । (७) एक प्राचीन नरेश । ये यमकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं, इस सभामें भीम नामके सौ राजा हैं (सभा० ८ । २४) । इन्होंने तपस्याद्वारा प्रजाओंका कष्टसे उद्धार किया था (वन० ३ । ११) ये प्राचीनकालमें पृथ्वीके शासक थे; किंतु कालसे पीड़ित हो इसे छोड़कर चले गये (शान्ति० २२७ । ४९) ।

भीमजानु–एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१) ।

भीमबल (**भूरिबल**)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ७) । भीमसेन-द्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १४-१५) । (२) ये देवताओंके यज्ञका विनाश करनेवाले पाञ्चजन्यद्वारा उत्पन्न पाँच विनायकोंमें हैं (वन० २२१ । ११) ।

भीमरथ–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३; आदि० ११६ । १२) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ६४ । ३६-३७) । (२) कौरवपक्षीय योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहके हृदय-स्थानमें खड़ा हुआ था (द्रोण० २० । १२) । इसने पाण्डवपक्षीय म्लेच्छराज शाल्वका वध किया था (द्रोण० २५ । २६) । पहले जब युधिष्ठिर राजा थे, उस समय यह उनके सभाभवनमें बैठा करता था (सभा० ४ । २६) ।

भीमरथी (**भीमा**)–दक्षिणभारतमें स्थित एक नदी, जो समस्त पापभयका नाश करनेवाली है (वन० ८८ । ३) । (इसीके तटपर सुप्रसिद्ध तीर्थ पण्ढरपुर है ।) यह भारतवर्षकी मुख्य नदियोंमें है। इसके जलको यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २०) । इसीको 'भीमा' भी कहते हैं (भीष्म० ९ । २२) ।

भीमवेग–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ७) ।

भीमशर–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९९)।

भीमसेन–(१) ये महाराज परीक्षित्के पुत्र तथा जनमेजय-के भाई थे । इन्होंने कुरुक्षेत्रके यज्ञमें देवताओंकी कुतिया सरमाके बेटेको पीटा था (आदि० ३ । १-२) । (२) कश्यपपत्नी मुनिके गर्भसे उत्पन्न एक देवगन्धर्व (आदि० ६५ । ४२) । ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५५) । (३) ये सोमवंशीय महाराज अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के पुत्र थे । इनकी माताका नाम सुयशा था । इनके द्वारा केकय देशकी राजकुमारी 'कुमारी'के गर्भसे प्रतिश्रवाका जन्म हुआ (आदि० ९४ । ५२–५५; आदि० ९५ । ४२-४३) । (४) ये महाराज पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र हैं । वायुदेवके द्वारा कुन्तीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था । इनके जन्म-कालमें आकाशवाणी हुई कि यह कुमार समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ है (आदि० १२२ । १४-१५) । जन्मके दसवें दिन ये माताकी गोदसे एक शिलाखण्डपर गिर पड़े और इनके शरीरकी चोटसे वह शिला चूर-चूर हो गयी (आदि० १२२ । १५ के बाद दाक्षिणात्य पाठसे १८ तक)। इनके जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थिति (आदि० १२२ । १८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनका नामकरण-संस्कार (आदि० १२३ । १९-२०) । वसुदेवके पुरोहित काश्यपके द्वारा इनके उपनयनादि-संस्कार सम्पन्न हुए तथा इन्होंने राजर्षि शुकसे गदायुद्धकी शिक्षा प्राप्त की (आदि० १२३।३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ३६९)। कृपाचार्यका इन (पाण्डवों) को अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा देना (आदि० १२९ । २३)। द्रोणाचार्यने इन (पाण्डवों)को नाना प्रकारकी मानव एवं दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा दी (आदि० १३१ । ४, ९) । इनके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे सुतसोमका जन्म (आदि० ९५ । ७५) । इनके द्वारा काशिराजकी पुत्री बलन्धराके गर्भसे 'सर्वग' की उत्पत्ति (आदि० ९५ । ७७) । इनके द्वारा बाल-क्रीडाओंमें धृतराष्ट्रपुत्रोंकी पराजय (आदि० १२७ । १६–२४) । दुर्योधनका इन्हें विष मिला हुआ भोजन कराना और मूर्च्छित होनेपर लताओंसे बाँधकर गङ्गाजलमें फेंकना (आदि० १२७ । ४५–५४) । मूर्च्छितावस्थामें इनका

घटोत्कच

नागलोकमें पहुँचना और वहाँ सर्पोंके डँसनेसे खाये हुए विषके दूर होनेपर अपना पराक्रम प्रकट करना (आदि० १२७ । ५५-५९) । नागलोकमें इनका आर्यक नागद्वारा आलिङ्गन और आर्यककी प्रेरणासे प्रसन्न हुए नागराज वासुकिकी आज्ञासे इनके द्वारा आठ कुण्डोंका दिव्य रसपान, जिससे इन्हें एक हजार हाथियोंके बलकी प्राप्ति हुई (आदि० १२७ । ६३-७१) । आठवें दिन रसके पच जानेपर इनका जागना और नागोंद्वारा इनका मङ्गलाचारपूर्वक स्वागत-सत्कार तथा दस हजार हाथियोंके समान बलशाली होनेका वरदान देकर इन्हें पुनः ऊपर पहुँचा देना (आदि० १२८ । २०-२८) । इनका नागलोकसे लौटकर माताको प्रणाम करना तथा भाइयोंसे मिलना (आदि० १२८ । २९-३०) । गदायुद्धमें इनका प्रवीण होना (आदि० १३१ । ६१) । हस्तिनापुरकी रङ्गभूमिमें परीक्षाके समय दुर्योधनके साथ गदायुद्ध एवं अश्वत्थामाद्वारा उस युद्धका निवारण (आदि० १३४ । १-५) । इनके द्वारा कर्णका तिरस्कार (आदि० १३६ । ६-७) । कर्णका पक्ष लेकर दुर्योधनका इनपर आक्षेप करना (आदि० १३६ । १०-१६) । इनके द्वारा द्रुपदकी गजसेनाका संहार (आदि० १३७ । ३१-३५) । बलरामजीसे इनकी गदायुद्धविषयक शिक्षा (आदि० १३८ । ४) । इनके द्वारा लाक्षागृहका जलाया जाना (आदि० १४७ । १०) । सुरंगसे निकल भागते समय इनके द्वारा मार्गमें थके हुए भाइयों एवं माताका परिवहन (आदि० १४७ । २०-२१) । धरतीपर सोये हुए भाइयों एवं माताको देखकर इनका विषाद करना (आदि० १५० । २१-४१) । हिडिम्बवनमें इनका जागरण करना (आदि० १५० । ४४-४५) । हिडिम्बाके साथ वार्तालाप करना (आदि० १५१ । २३-३६) । हिडिम्बासुरके साथ इनका युद्ध (आदि० १५२ । ३८-४५) । इनके द्वारा हिडिम्बका वध (आदि० १५३ । ३२) । हिडिम्बाको मारनेके लिये इनका उद्यत होना तथा युधिष्ठिरका इन्हें रोकना (आदि० १५४ । १-२) । हिडिम्बाको पुत्र दान करनेके लिये इन्हें माताका आदेश प्राप्त होना (आदि० १५४ । १८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । हिडिम्बाके साथ इनकी शर्त (आदि० १५४ । २०) । हिडिम्बाके साथ इनका विहार (आदि० १५४ । २१-३०) । इनके द्वारा हिडिम्बाके गर्भसे घटोत्कचका जन्म (आदि० १५४ । ३१) । एकचक्रामें निवास करते समय पूरी भिक्षाका आधा भाग इनके उपभोगमें आता था (आदि० १५६ । ६) । ब्राह्मणका उपकार करनेके लिये इन्हें माता कुन्तीकी आज्ञा (आदि० १६० । २०) । इनका भोजन-सामग्री लेकर बकासुरके पास जाना और स्वयं ही भोजन करते हुए उसे पुकारना (आदि० १६२ । ४-५) । बकासुरका आना और कुपित होकर इनके साथ युद्ध छेड़ना (आदि० १६२ । ६-२८) । इनके द्वारा बकासुरका वध (आदि० १६३ । १) । इनके द्वारा मनुष्योंकी हिंसा न करनेकी शर्तपर बकके परिवारको जीवनदान देना (आदि० १६३ । २-४) । द्रौपदीके स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके साथ ब्राह्मणवेशमें युद्ध करते समय इनका श्रीकृष्णद्वारा बलरामजीको परिचय देना (आदि० १८८ । १४-२१) । स्वयंवरके अवसरपर शल्यके साथ इनका युद्ध और इनके द्वारा शल्यकी पराजय (आदि० १८९ । २३-२९) । द्रौपदीके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० १९७ । १३) । मयासुरद्वारा इनको गदाकी भेंट (सभा० ३ । १८-२१) । जरासंधवधके विषयमें इनकी युधिष्ठिर और श्रीकृष्णके साथ बातचीत (सभा० १५ । ११-१३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । जरासंधवधके लिये युधिष्ठिर और अर्जुनके साथ इनकी मगधयात्रा (सभा० २० अध्याय) । जरासंधके साथ इनका मल्लयुद्ध एवं श्रीकृष्णका जरासंधको चीरनेके लिये इन्हें संकेत करना (सभा० २३ । १० से २४ । ६ तक) । इनका जरासंधको चीर डालना (सभा० २४ । ७) । जरासंधके पुनः जीवित हो जानेपर श्रीकृष्णद्वारा इन्हें पुनः संकेतकी प्राप्ति और उस संकेतके अनुसार इनका जरासंधको चीरकर दो दिशाओंमें फेंक देना (सभा० २४ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनका पूर्वदिशाके प्रदेशोंको जीतनेके लिये प्रस्थान और विभिन्न देशोंपर विजय पाना (सभा० २९ अध्याय) । भीमका पूर्व दिशाके अनेक देशों और राजाओंको जीतकर भारी धन-सम्पत्तिके साथ इन्द्रप्रस्थ लौटना (सभा० ३० अध्याय) । प्रथम पूजाके अवसरपर भीष्म तथा श्रीकृष्णकी निन्दा करनेपर शिशुपालको मारनेके लिये इनका उद्यत होना और भीष्मजीका इन्हें शान्त करना (सभा० ४२ अध्याय) । राजसूय-यज्ञकी समाप्तिपर ये भीष्म तथा धृतराष्ट्रको पहुँचाने गये थे (सभा० ४५ । ४८) । दुष्ट कौरवोंद्वारा भरी सभामें द्रौपदीके अपमान किये जानेपर इनका कुपित होकर युधिष्ठिरकी भुजाओंको जलानेके लिये कहना (आदि० ६८ । ६) । इनके द्वारा दुःशासनकी छाती फाड़कर उसके रक्त पीनेकी भीषण प्रतिज्ञा (सभा० ६८ । ५२-५३) । इनके रोषपूर्ण उद्गार (सभा० ७० । १२-१७) । दुर्योधनकी जाँघ तोड़ देनेके लिये इनकी प्रतिज्ञा (सभा० ७१ । १४) । इनका द्यूतसभामें समस्त शत्रुओंको

मारनेके लिये उद्यत होना (सभा० ७२ । १०-११) । दुःशासनके उपहास करनेपर उसे मारनेके लिये इनकी प्रतिज्ञा (सभा० ७७ । १६-१८) । दुःशासनका रक्त पीने तथा धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका वध करनेके लिये इनकी प्रतिज्ञा (सभा० ७७ । २०-२२) । दुर्योधनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना (सभा० ७७ । २६-२८) । इनका अपनी भुजाओंकी ओर देखते हुए वन-गमन करना (सभा० ८० । ४) । किर्मीरके साथ इनका युद्ध तथा इनके द्वारा उसका वध (वन० ११ । २८—६७) । इनका पुरुषार्थकी प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिरसे युद्ध छेड़नेके लिये अनुरोध (वन० ३३ अध्याय) । इनका युधिष्ठिरको युद्ध करनेके लिये उत्साहित करना (वन० ३५ अध्याय) । इनकी अर्जुनके लिये चिन्ता (वन० ८० । १७—२१) । इनका गन्धमादन पर्वतपर चढ़नेका उत्साह प्रकट करना (वन० १४० । ९—१७) । गन्धमादनकी यात्रामें इनके द्वारा घटोत्कचका स्मरण किया जाना (वन० १४४ । २५) । इनका सौगन्धिक पुष्पके लानेके लिये प्रस्थान करना (वन० १४६ । ९) । कदलीवनमें इनकी हनुमान्‌जीसे भेंट (वन० १४६ । ८६) । इनका हनुमान्‌जीके साथ संवाद (वन० अध्याय १४७ से १५० तक) । इन्हें हनुमान्‌जीका आश्वासन (वन० १५१ । १६—१९) । भीमसेनका सौगन्धिक वनमें पहुँचना (वन० १५२ अध्याय) । इनका सौगन्धिक सरोवरके पास पहुँचना (वन० १५३ । १०) । इनका क्रोधवश नामक राक्षसोंके साथ युद्ध और उन्हें पराजित करके सौगन्धिक पुष्प तोड़ना (वन० १५४ । १८—२३) । जटासुरके साथ इनका युद्ध तथा इनके द्वारा उसका वध (वन० १५७ । ५६—७०) । हिमालयके शिखरपर यक्षों और राक्षसोंके साथ इनका युद्ध तथा इनके द्वारा राक्षसराज मणिमान्‌का वध (वन० १६० । ४९—७७) । इनका गन्धमादनसे प्रस्थान करनेके लिये युधिष्ठिरसे वार्तालाप (वन० १७६ । ७—१६) । अजगरद्वारा इनका पकड़ा जाना (वन० १७८ । २८) । अजगरद्वारा पकड़े जानेपर उससे संवाद-रूपमें इनका विलाप करना (वन० १७९ । २५—३८) । अजगररूपधारी नहुषके चंगुलसे इनका छुटकारा पाना (वन० १८१ । ४३) । चित्रसेनद्वारा दुर्योधनके पकड़े जानेपर इनकी कटु-उक्ति (वन० २४२ । १५—२१) । इनके द्वारा कोटिकास्यका वध (वन० २७१ । २६) । जयद्रथको पकड़ उसके बाल काटकर पाँच चोटियाँ रखना और महाराज युधिष्ठिरका दास घोषित करना (वन० २७२ । ३—११) । द्वैतवनमें जल लानेके लिये जाना और सरोवरपर मूर्च्छित होना (वन० ३१२ । ३३—४०) । अज्ञातवासके लिये चिन्तित हुए युधिष्ठिरको उत्साहित करना (वन० ३१५ । २४-२६) । विराटनगरमें बल्लव नामसे रहनेकी बात बताना (विराट० २ । १) । राजा विराटसे अपने यहाँ रखनेके लिये प्रार्थना करना (विराट० ८ । ७) । जीमूत नामक मल्लके साथ कुश्ती लड़ना और उसका वध करना (विराट० १३ । २४—३६) । द्रौपदीसे रातमें पाकशालामें आनेका कारण पूछना (विराट० १७ । १७—२१) । प्राचीन पतिव्रताओंके उदाहरणद्वारा द्रौपदीको समझाना (विराट० २१ । १—१७ के बादतक) । कीचकको मारनेके लिये द्रौपदीको विश्वास दिलाकर नृत्यशालामें प्रवेश करना (विराट० २२ । ३८) । कीचकके साथ इनका युद्ध और उसका वध करना (विराट० २२ । ५२—८२) । इनके द्वारा एक सौ पाँच उपकीचकोंका वध और द्रौपदी-को बन्धनमुक्त करना (विराट० २३ । २७-२८) । युधिष्ठिरके आदेशसे सुशर्माको जीते-जी पकड़ लेना (विराट० ३३ । ४८) । युधिष्ठिरके आदेशसे सुशर्माको छोड़ना और उसे विराटका दास घोषित करना (विराट० ३३ । ५९) । संजयद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (उद्योग० ५० । १९—२५) । श्रीकृष्णसे इनका शान्तिविषयक प्रस्ताव करना (उद्योग० ७४ अध्याय) । अपने बलका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णको उत्तर देना (उद्योग० ७६ अध्याय) । शिखण्डीको प्रधान सेनापति बनानेका प्रस्ताव करना (उद्योग० १५१ । २९-३२) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (उद्योग० १६२ । २०-२९) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (उद्योग० १६३ । ३२—३६) । कवच उतार-कर पैदल ही कौरव-सेनाकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरसे उसका कारण पूछना (भीष्म० ४३ । १७) । इनकी विकट गर्जनाका भयंकर रूप (भीष्म० ४४ । ८-१३) । प्रथम दिनके युद्धारम्भमें दुर्योधनके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । १९-२०) । कलिंगोंके साथ युद्ध करते समय इनके द्वारा शक्रदेवका वध (भीष्म० ५४ । २५) । इनके द्वारा भानुमान्‌का वध (भीष्म० ५४ । ३९) । कलिंगराज श्रुतायुके चक्ररक्षक सत्यदेव और सत्यका इनके द्वारा वध (भीष्म० ५४ । ७६) । इनके द्वारा केतुमान्‌का वध (भीष्म० ५४ । ७७) । गज-सेनाका संहार करके रक्तनदीका निर्माण करना (भीष्म० ५४ । १०३) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (भीष्म० ५८ । १६—१९) । इनके द्वारा दुर्योधनकी गजसेनाका संहार (भीष्म० ६२ । ४९—६५) । इनका अद्‌भुत पराक्रम और भीष्मके साथ युद्ध (भीष्म० ६३ । १—२६) । धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ इनका युद्ध

और इनके द्वारा सेनापति, जलसंध, सुषेण, उग्र, वीरबाहु, भीम, भीमरथ और सुलोचन—इन आठ धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध (भीष्म० ६४ । ३२—३८) । इनका घमासान युद्ध (भीष्म० ७० अध्याय) । भीष्मके साथ इनका घोर युद्ध (भीष्म० ७२ । २१—२५) । दुर्योधनके साथ इनका युद्ध (भीष्म० ७३ । १७—२३) । धृतराष्ट्र-पुत्रोंपर आक्रमण करके घोर पराक्रम प्रकट करना (भीष्म० ७७ । ६—३६) । इनका दुर्योधनको पराजित करना (भीष्म० ७९ । ११–१६) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (भीष्म० ८२ । ६०-६१) । इनका अद्भुत पुरुषार्थ (भीष्म० ८५ । ३२—४०) । भीष्मके सारथिको मारकर उन्हें युद्ध-मैदानसे विलग कर देना (भीष्म० ८८ । १२) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध (भीष्म० ८८ । १३—२९) । इनके द्वारा गजसेनाका संहार (भीष्म० ८९ । २६—३१) । इनके प्रहारसे द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना (भीष्म० ९४ । १८-१९) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रके नौ पुत्रोंका वध (भीष्म० ९६ । २३–२७) । इनके द्वारा गजसेनाका संहार (भीष्म० १०२ । ३१–३९) । इनके द्वारा बाह्लीककी पराजय (भीष्म० १०४ । १८–२७) । भूरिश्रवाके साथ द्वन्द्वयुद्ध करना (भीष्म० ११० । १०-११; भीष्म० १११ । ४४—४९) । इनका दस प्रमुख महारथियोंके साथ युद्ध करना और अद्भुत पराक्रम दिखाना (भीष्म० अध्याय ११३ से ११४ तक) । इनके द्वारा गजसेनाका संहार (भीष्म० ११६ । ३७–३९) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । १३-१४) । विविंशतिके साथ इनका युद्ध (द्रोण० १४ । २७—३०) । शल्यके साथ गदायुद्धमें उनको पराजित करना (द्रोण० १५ । ८—३२) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३) । दुर्मर्षणके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ५–७) । इनके द्वारा म्लेच्छ-जातीय राजा अङ्गका वध (द्रोण० २६ । १७) । भगदत्त और उनके गजराजके साथ युद्धमें पराजित होकर भागना (द्रोण० २६ । १९—२९) । इनके द्वारा कर्णपर धावा करना और उसके पंद्रह योद्धाओंका एक साथ वध कर देना (द्रोण० ३२ । ६३-६४) । चक्रव्यूहमें साथ चलनेके लिये अभिमन्युको आश्वासन (द्रोण० ३५ । २२-२३) । अर्जुनद्वारा की गयी जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाका अनुमोदन करना (द्रोण० ७३ । ५३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । चित्रसेन, विविंशति और विकर्णके साथ इनका युद्ध (द्रोण० ९६ । ३१) । अलम्बुषके साथ इनका युद्ध (द्रोण० १०६ । १६-१७) । इनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय (द्रोण० १०८ । ४२) । सात्यकिके साथ अर्जुनका समाचार लानेके लिये जाते समय सात्यकिके कहनेसे युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौट आना (द्रोण० ११२ । ७०—७६) । कृतवर्माके साथ इनका युद्ध (द्रोण० ११४ । ६७–८०) । घबराये हुए युधिष्ठिरको सान्त्वना देना (द्रोण० १२६ । ३२–३४) । धृष्टद्युम्नको युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपना (द्रोण० १२७ । ४—९) । युधिष्ठिरकी आज्ञासे अर्जुनके पास जानेके लिये प्रस्थान करना (द्रोण० १२७ । २९) । इनके द्वारा द्रोणाचार्यकी पराजय (द्रोण० १२७ । ४२—५४) । इनके द्वारा कुण्डभेदी, सुषेण, दीर्घलोचन, वृन्दारक, अभय, रौद्रकर्मा, दुर्विमोचन, विन्द, अनुविन्द, सुवर्मा और सुदर्शनका वध (द्रोण० १२७ । ६०—६७) । इनके द्वारा रथसहित द्रोणाचार्यका आठ बार फेंका जाना (द्रोण० १२८ । १८–२१) । श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास पहुँचकर युधिष्ठिरको सूचना देनेके लिये सिंहनाद करना (द्रोण० १२८ । ३२) । कर्णके साथ इनका युद्ध और उसे पराजित करना (द्रोण० १२९ अध्याय) । इनके द्वारा दुःशलका वध (द्रोण० १२९ । ३९ के बाद) । कर्णके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (द्रोण० १३१ अध्याय) । कर्णके साथ घोर युद्ध (द्रोण० अध्याय १३२ से १३३ तक) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध (द्रोण० १३३ । ४१-४२) । कर्णके साथ युद्ध और इनको परास्त करना (द्रोण० १३४ अध्याय) । इनके द्वारा धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्मुखका वध (द्रोण० १३४ । २०–२९) । इनके द्वारा दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर (दुराधार) और जयका वध (द्रोण० १३५ । ३०–३६) । इनके द्वारा कर्णकी पराजय (द्रोण० १३६ । १७) । इनके द्वारा चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्माका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) । कर्णके साथ इनका घोर युद्ध (द्रोण० १३७ अध्याय) । इनके द्वारा शत्रुंजय, शत्रुसह, चित्र (चित्रबाण), चित्रायुध (अग्रायुध), दृढ़ (दृढ़वर्मा), चित्रसेन (उग्रसेन) और विकर्णका वध (द्रोण० १३७ । २९-३०) । कर्णके साथ इनका भयंकर युद्ध (द्रोण० १३८ अध्याय) । कर्णके साथ इनका भयंकर युद्ध और उसे परास्त करना (द्रोण० १३९ । ९) । इनके द्वारा कर्णके बहुत-से धनुषोंका काटा जाना (द्रोण० १३९ । १९–२२) । अस्त्रहीन होनेपर कर्णको पकड़नेके लिये इनका उसके रथपर चढ़ जाना (द्रोण० १३९ । ७४-७५) । कर्णके प्रहारसे इनका मूर्च्छित होना (द्रोण० १३९ । ९१) । अर्जुनसे कर्णको मारनेके लिये

कहना (द्रोण० १४८ । ३–६) । इनके द्वारा घूँसे और थप्पड़से कलिंगराजकुमारका वध (द्रोण० १५५ । २४) । इनके द्वारा घूँसे और थप्पड़से ध्रुवका वध (द्रोण० १५५ । २७) । इनके द्वारा घूँसे और थप्पड़से जयरातका वध (द्रोण० १५५ । २८) । इनके द्वारा घूँसे और थप्पड़से दुर्मद (दुर्धर्ष) और दुष्कर्णका वध (द्रोण० १५५ । ४०) । इनके परिघके प्रहारसे सोमदत्तका मूर्च्छित होना (द्रोण० १५७ । १०-११) । इनके द्वारा बाह्लीकका वध (द्रोण० १५७ । ११–१५) । इनके द्वारा नागदत्त, दृढरथ (दृढाश्व), महाबाहु, अयोभुज (अयोबाहु), दृढ (दृढक्षत्र), सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र (उग्रश्रवा) और अनुयायी (अग्रयायी) का वध (द्रोण० १५७ । १६—१९) । इनके द्वारा शतचन्द्रका वध (द्रोण० १५७ । २२) । इनके द्वारा शकुनिके भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्तका वध (द्रोण० १५७ । २३–२६) । इनका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय कौरवसेनाको खदेड़ना (द्रोण० १६१ अध्याय) । दुर्योधनके साथ इनका युद्ध और उसे पराजित करना (द्रोण० १६६ । ४३–५८) । अलायुधके साथ इनका घोर संग्राम (द्रोण० १७७ अध्याय) । इनके द्वारा अर्जुनको प्रोत्साहन-प्रदान (द्रोण० १८६ । ९–११) । धृष्टद्युम्नको उपालम्भ देना (द्रोण० १८६ । ५१–५४) । कर्णके साथ युद्धमें उससे पराजित होना (द्रोण० १८८ । १०—२२) । कर्णके साथ इनका युद्ध (द्रोण० १८९ । ५०—५५) । अश्वत्थामा नामक हाथीको मारकर द्रोणाचार्यको अश्वत्थामाके मारे जानेकी झूठी खबर सुनाना (द्रोण० १९० । १५-१६) । द्रोणाचार्यको उपालम्भ देते हुए अश्वत्थामाकी मृत्यु बताना (द्रोण० १९२ । ३७–४२) । अर्जुनसे अपना वीरोचित उद्‌गार प्रकट करना (द्रोण० १९७ । ३–२२) । धृष्टद्युम्नसे वाग्बाणोंद्वारा लड़ते हुए सात्यकिको पकड़कर शान्त करना (द्रोण० १९८ । ५०–५२) । इनका वीरोचित उद्‌गार और नारायणास्त्रके विरुद्ध संग्राम करना (द्रोण० १९९ । ४५–६३) । अश्वत्थामाके साथ इनका घोर युद्ध और सारथिके मारे जानेपर युद्धसे हट जाना (द्रोण० २०० । ८७–१२८) । इनके द्वारा कुलूतनरेश क्षेमधूर्तिका वध (कर्ण० १२ । २५–४४) । अश्वत्थामाके साथ इनका घोर युद्ध और उसके प्रहारसे मूर्च्छित होना (कर्ण० १५ अध्याय) । इनके द्वारा कर्ण-पुत्र भानुसेनका वध (कर्ण० ४८ । २७) । कर्णको पराजित करके उसकी जीभ काटनेको उद्यत होना (कर्ण० ५० । ४७ के बादतक) । कर्णके साथ इनका घोर युद्ध और गजसेना, रथसेना तथा घुड़सवारोंका वध (कर्ण० ५१ अध्याय) । इनके द्वारा विवित्सु, विकट, सम, क्राथ (क्रथन), नन्द और उपनन्दका वध (कर्ण० ५१ । १२–१९) । इनके द्वारा कौरवसेनाका महान् संहार (कर्ण० ५६ । ७०–८१) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय और गजसेनाका संहार (कर्ण० ६१ । ५३, ६२–७४) । युद्धका सारा भार अपने ऊपर लेकर अर्जुनको युधिष्ठिरके पास भेजना (कर्ण० ६५ । १०) । अपने सारथि विशोकके साथ इनका वार्तालाप (कर्ण० ७६ अध्याय) । इनके द्वारा कौरवसेनाका भीषण संहार और शकुनिकी पराजय (कर्ण० ७७ । २४–७०; कर्ण० ८१ । २४–३५) । दुःशासनके साथ इनका घोर युद्ध (कर्ण० ८२ । ३३ से कर्ण० ८३ । १० तक) । दुःशासनका वध करके उसका रक्त पान करना (कर्ण० ८३ । २८-२९) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रके दस पुत्रों (निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, अलोलुप, शल, संध (सत्यसंध), वातवेग और सुवर्चा) का वध (कर्ण० ८४ । २–६) । कर्णवधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन देना (कर्ण० ८९ । ३७–४२) । इनके द्वारा पचीस हजार पैदल सेनाका वध (कर्ण० ९३ । २८) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (शल्य० ११ । ४५–४७) । इनका शल्यको पराजित करना (शल्य० ११ । ६१-६२) । शल्यके साथ इनका गदायुद्ध (शल्य० १२ । १२–२७) । शल्यके साथ इनका घोर युद्ध (शल्य० १३ अध्याय; शल्य० १५ । १६–२७) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (शल्य० १६ । ४२–४४) । इनके द्वारा शल्यके सारथि और घोड़ोंका वध (शल्य० १७ । २७) । इनके द्वारा इक्कीस हजार पैदल सेनाका वध (शल्य० १९ । ४९-५०) । इनके द्वारा गजसेनाका संहार (शल्य० २५ । ३०–३६) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रों (दुर्मर्षण, श्रुतान्त (चित्राङ्ग), जैत्र, भूरिबल (भीमबल), रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह (दुर्विषाह), दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रधर्षण), श्रुतर्वा) का वध (शल्य० २६ । ४–३२) । धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका इनके द्वारा वध (शल्य० २७ । ४९-५०) । गदायुद्धके प्रारम्भमें दुर्योधनको चेतावनी देना (शल्य० ३३ । ४३–५१) । इनका युधिष्ठिरसे अपना उत्साह प्रकट करना (शल्य० ५६ । १६–२७) । दुर्योधनको चेतावनी देना (शल्य० ५६ । २९–३६) । दुर्योधनके साथ भयंकर गदायुद्ध (शल्य० ५७ अध्याय) । गदाप्रहारसे दुर्योधनकी जाँघ तोड़ देना (शल्य० ५८ । ४७) । इनके द्वारा दुर्योधनका तिरस्कार करके उसके मस्तकको पैरसे ठुकराना

(शल्य० ५९ । ४–१२) । युधिष्ठिरके साथ विजयसूचक वार्तालाप करना (शल्य० ६० । ४३–४६) । दुर्योधन-को गिरानेके पश्चात् पाण्डवसैनिकोंद्वारा इनकी प्रशंसा (शल्य० ६१ । ७–१६) । अश्वत्थामाको मारनेके लिये इनका प्रस्थान करना (सौप्तिक० ११ । २८–३८)। गङ्गातटपर व्यासजीके पास बैठे हुए अश्वत्थामाको ललकारना (सौप्तिक० १३ । १६-१७) । अश्वत्थामाकी मणि द्रौपदीको देकर उसे शान्त करना (सौप्तिक० १६ । २६–३३)। अपनी सफाई देते हुए गान्धारीसे क्षमा माँगना (स्त्री० १५ । २–११; १५–२०) । संन्यासका विरोध करके कर्तव्यपालनपर जोर देते हुए युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० १० अध्याय) । भीमसेनका भुक्त दुःखोंकी स्मृति कराते हुए मोह छोड़कर मनको काबूमें करके राज्यशासन और यज्ञके लिये युधिष्ठिरको प्रेरित करना (शान्ति० १६ अध्याय)। युधिष्ठिरद्वारा युवराजपदपर इनकी नियुक्ति (शान्ति० ४१ । ९) । युधिष्ठिरद्वारा इन्हें दुर्योधनका महल रहनेके लिये दिया गया (शान्ति० ४४ । ६-७) । युधिष्ठिरके पूछनेपर भीमसेनका त्रिवर्गमें कामकी प्रधानता बताना (शान्ति० १६७ । २९-४०)। युधिष्ठिरके पूछनेपर शंकरजीकी आराधनाद्वारा मरुत्तके छोड़े हुए धनको लानेकी ही सलाह देना (आश्व० ६३ । ११–१५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । व्यासजीकी आज्ञासे राज्य और नगरकी रक्षाके लिये नकुलसहित भीम-सेनकी नियुक्ति (आश्व० ७२ । १९) । युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनका ब्राह्मणोंके साथ जाकर यज्ञभूमिको नपवाना और वहाँ यज्ञमण्डप, सैकड़ों निवासस्थान तथा ब्राह्मणोंके ठहरनेके लिये उत्तम भवनोंका शिल्पशास्त्रके अनुसार निर्माण कराना, साथ ही राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिये दूत भेजना (आश्व० ८५ । ७–१७) । युधिष्ठिरका भीमसेनको समागत राजाओंकी पूजा करनेका आदेश (आश्व० ८६ । १–३) । बभ्रुवाहनका इनके चरणोंमें प्रणाम करना और भीमसेनका उसे सत्कारपूर्वक प्रचुर धन देना (आश्व० ८८ । ६–११) । भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका जाते समय भीमसेनका उनके रथपर चढ़कर उनके ऊपर छत्र लगाना (आश्व० ९२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६३८२) । भीमसेनका राजा धृतराष्ट्रके प्रति अमर्ष और दुर्भाव, अपने कृतज्ञ पुरुषों-द्वारा धृतराष्ट्रकी आज्ञाको भंग कराना, उन्हें सुनाकर दुर्योधन और दुःशासन आदिका दमन करनेवाली अपनी चन्दनचर्चित भुजाओंके बलकी प्रशंसा करना तथा धृत-राष्ट्र और गान्धारीके मनमें उद्वेग पैदा करना (आश्रम० ३ । ३–११) । धृतराष्ट्रके द्वारा श्राद्धके लिये धन माँगे जानेपर भीमसेनद्वारा विरोध (आश्रम० ११ । ७–२४)। अर्जुनका भीमसेनको समझाना (आश्रम० १२ । १–२)। वनमें जाते समय कुन्तीका युधिष्ठिरको भीमसेन आदिके साथ संतोषजनक बर्ताव करनेका आदेश देना (आश्रम० १६ । १५) । भीमसेनका गजराजोंकी सेनाके साथ गजा-रूढ़ हो धृतराष्ट्र और कुन्ती आदिसे मिलनेके लिये भाइयों-सहित वनको जाना (आश्रम० २३ । ९) । भीमसेन आदिको आया देख कुन्तीका उतावलीके साथ आगे बढ़ना (आश्रम० २४ । ११) । संजयका ऋषियोंसे भीमसेन और उनकी पत्नीका परिचय देना (आश्रम० २५ । ६, १२)। भीमसेनका अपने भाइयोंसे महाप्रस्थानका निश्चय करके जानेके लिये अपने आभूषण उतारना और उनके साथ महाप्रस्थान करना (महाप्रस्थान० १ । २०—२५) । मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल और अर्जुनके क्रमशः गिरनेपर इनका युधिष्ठिरसे कारण पूछना; फिर इनका स्वयं भी गिरना और युधिष्ठिरसे अपने पतनका कारण पूछना (महाप्रस्थान० २ अध्याय) । स्वर्गमें इनका मरुद्गणोंसे घिरकर वायुदेवके पास विराजमान दिखायी देना (स्वर्गा० ४ । ७-८) ।

महाभारतमें आये हुए भीमसेनके नाम—अच्युतानुज, अनिलात्मज, अर्जुनाग्रज, अर्जुनपूर्वज, बल्लव, भीमधन्वा, जय, कौन्तेय, कौरव, कुरुशार्दूल, मारुतात्मज, मारुति, पाण्डव, पार्थ, पवनात्मज, प्रभञ्जनसुत, राक्षसकण्टक, समीरणसुत, वायुपुत्र, वायुसुत, वृकोदर आदि ।

(५) ये काशीके राजा दिवोदासके पिता थे (उद्योग० ११७ । १) ।

भीष्म-ये शान्तनुद्वारा गङ्गाके गर्भसे आठवें वसुके अंशसे उत्पन्न हुए थे । इनका नाम देवव्रत था (आदि० ६३ । ९१; आदि० ९५ । ४७; आदि० १०० । २१) । इनके द्वारा बचपनमें ही गङ्गाकी धाराका अवरोध करके अस्त्रविद्याका अभ्यास करना (आदि० १०० । २६) । गङ्गाद्वारा शान्तनुको इनका परिचय देना एवं प्रशंसा करना (आदि० १०० । ३३—४०) । इनका युवराजपदपर अभिषेक (आदि० १०० । ४३) । पिताको दुखी देख-कर उनके लिये दाशराजसे सत्यवतीकी याचना करना (आदि० १०० । ७५) । पिताके मनोरथकी पूर्तिके लिये 'सत्यवतीकुमार ही राजा होगा' इस प्रकारकी इनकी दुष्कर प्रतिज्ञा (आदि० १०० । ८७) । समस्त देवताओं तथा ऋषियोंकी साक्षी देते हुए इनकी आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रहनेकी भीषण प्रतिज्ञा (आदि० १०० । ९४–९६) । इनके ऊपर देवताओंद्वारा पुष्प-वर्षा और इनका 'भीष्म' नाम रखा जाना (आदि० १०० । ९८) । पिताद्वारा इनको स्वच्छन्द-मृत्युका वरदान (आदि० १०० । १०२) । इनके द्वारा

चित्राङ्गदका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना (आदि० १०१ । ११) । स्वयंवरमें आये हुए शाल्व आदि विभिन्न राजाओंको जीतकर इनका काशिराजकी कन्याओंका विचित्रवीर्यके लिये अपहरण करना (आदि० १०२ । ११—१८) । इनके द्वारा अष्टविध विवाहोंके स्वरूपका वर्णन (आदि० १०२ । १२–१५) । विचित्रवीर्यका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना (आदि० १०२ । ७३) । सत्यवतीका इनसे राज्यासनपर आरूढ़ होने, वंशरक्षाके लिये अम्बिका आदिके गर्भसे पुत्रोत्पादन करने एवं विवाहके लिये अनुरोध करना (आदि० १०३ । १०-११) । किसी भी परिस्थितिमें किसी भी मूल्यपर सत्यको न छोड़ने तथा स्त्री-सहवास न करनेकी इनकी घोषणा (आदि० १०३ । १२—१८) । विचित्रवीर्यके क्षेत्र (पत्नियों) से ब्राह्मणद्वारा संतानोत्पत्तिके लिये सत्यवतीको परामर्श देना (आदि० १०४ । १२) । इनके प्रति सत्यवतीकी (व्यास-जन्मसम्बन्धी) आत्मकथा (आदि० १०४ । ५–१६) । विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंसे व्यासद्वारा संतानोत्पत्तिके लिये इनको सत्यवतीकी सलाह (आदि० १०४ । १८-१९) । इनके द्वारा सत्यवतीके इस प्रस्तावका अनुमोदन (आदि० १०४ । २२-२३) । धृतराष्ट्रके प्रति गान्धारीको समर्पित करनेके लिये इनका सुबलके पास दूत भेजना (आदि० १०९ । ११) । मद्रराजके नगरमें जाकर इनका शल्यसे पाण्डुके लिये माद्रीकी याचना करना (आदि० ११२ । २—७) । मद्रराजद्वारा इनसे शुल्क लेकर माद्रीको पाण्डुके लिये समर्पण करना (आदि० ११२ । १४–१६) । इनके द्वारा राजा देवककी कन्याको लाकर विदुरका विवाह सम्पन्न कराना (आदि० ११३ । १२-१३) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनको पाण्डुके परलोकवासी तथा माद्रीके सती होनेका समाचार बताकर पाण्डवोंके जन्मका वृत्तान्त सुनाना (आदि० १२५ । २२—३३) । पाण्डुके निधनपर इनका शोक प्रकट करना तथा उन्हें जलाञ्जलि देना (आदि० १२६ । २७-२८) । इनके द्वारा पाण्डुका श्राद्ध सम्पन्न होना (आदि० १२७ । १) । राजकुमारोंकी शिक्षाके लिये सुयोग्य आचार्यकी खोज करना (आदि० १२९ । २४–२६) । राजकुमारोंकी शिक्षाके लिये इनका द्रोणाचार्यको अपने यहाँ सम्मानपूर्वक रखना (आदि० १३० । ७०–७९) । पाण्डवोंके जतुगृहमें जलनेका समाचार सुनकर इनका विलाप करना और पाण्डवोंको जलाञ्जलि देनेके लिये उद्यत हुए भीष्मको विदुरका उनके जीवित रहनेका रहस्य बतलाकर आश्वासन देना तथा जलाञ्जलिका निषेध करना (आदि० १४९ । १८ के बाद दा० पाठ) । भीष्मकी दुर्योधनसे पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सलाह (आदि० २०२ अध्याय) । इनका युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें पधारना (सभा० ३४ । ५) । कौन काम हुआ और कौन नहीं हुआ—इसकी देख-रेखके लिये युधिष्ठिरद्वारा इनकी नियुक्ति (सभा० ३५ । ६) । राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णकी अग्रपूजाके लिये इनका युधिष्ठिरको आदेश देना (सभा० ३६ । २८-२९) । इनके द्वारा शिशुपालके आक्षेपोंका खण्डन करते हुए श्रीकृष्णकी महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन (सभा० ३८ अध्याय) । शिशुपालके द्वारा उपद्रव मचानेपर चिन्तित हुए युधिष्ठिरको इनका आश्वासन (सभा० ४० अध्याय) । शिशुपालद्वारा इनकी निन्दा (सभा० ४१ अध्याय) । इनका शिशुपालको मारनेसे भीमसेनको रोकना (सभा० ४२ । १३) । इनके द्वारा शिशुपालके जन्मका वृत्तान्त सुनाना (सभा० ४३ अध्याय) । इन्हें शिशुपालकी फटकार (सभा० ४४ । ६—३२) । शिशुपालके वचनोंका उत्तर देना (सभा० ४४ । ३४) । श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये समस्त नरेशोंको इनकी चुनौती (सभा० ४४ । ४१-४२) । इनके द्वारा द्रौपदीके वचनोंका उत्तर दिया जाना (सभा० ६९ । १४—२१) । इनका पुलस्त्यजीसे तीर्थयात्राके विषयमें प्रश्न करना (वन० ८२ । ४—७) । दुर्योधनको समझाते हुए पाण्डवोंसे संधि करनेके लिये कहना (वन० २५३ । ४—१०) । युधिष्ठिरकी महिमा बताते हुए पाण्डवोंके अन्वेषणके लिये इनकी सम्मति (विराट० २८ अध्याय) । कर्णकी बातोंसे कुपित हुई सेनामें शान्ति और एकता बनाये रखनेकी चेष्टा करना (विराट० ५१ । १—१३) । पाण्डवोंके वनवास-कालकी पूर्तिके विषयमें इनका निर्णय (विराट० ५२ । १–४) । दुर्योधनको हस्तिनापुरकी ओर भेजकर सेनाको व्यूहबद्ध करना (विराट० ५२ । १६—२३) । अर्जुनके साथ इनका अद्भुत युद्ध और मूर्च्छित होनेपर सारथिद्वारा रणभूमिसे हटाया जाना (विराट० ६४ अध्याय) । दुर्योधनको सेनासहित हस्तिनापुर लौट चलनेकी सलाह देना (विराट० ६६ । २१-२२) । इनके द्वारा द्रुपदके पुरोहितकी बातोंका समर्थन (उद्योग० २१ । २—७) । इनका कर्णको फटकारते हुए अर्जुनकी प्रशंसा करना (उद्योग० २१ । १६-१७) । दुर्योधनको समझाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना (उद्योग० ४९ । २—२८) । इनके द्वारा कर्णका उपहास किया जाना (उद्योग० ४९ । ३४–४२) । इनका कर्णपर आक्षेप करना (उद्योग० ६२ । ७—११) । श्रीकृष्णको कैद करनेके सम्बन्धमें दुर्योधनकी बात सुनकर कुपित हो सभासे उठ जाना (उद्योग० ८८ । १९—२३) । दुर्योधनको पाण्डवोंसे संधि कर

लेनेके लिये समझाना (उद्योग० १२५ । २–८) । दुर्योधनको पुनः समझाना (उद्योग० १२६ अध्याय) । सभासे उठकर जाते समय दुर्योधनकी उद्दण्डताका वर्णन करना (उद्योग० १२८ । ३०–३२) । दुर्योधनको युद्ध न करनेके लिये समझाना (उद्योग० १३८ अध्याय) । भीष्मकी पाण्डवोंको न मारने और उनके दस हजार योद्धाओंको प्रतिदिन मारनेकी प्रतिज्ञा करके कर्णको साथ लेकर युद्ध न करनेकी शर्त करना (उद्योग० १५६ । २१—२४) । दुर्योधनके पूछनेपर कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका परिचय देना (उद्योग० अध्याय १६५ से १६८ तक) । इनका कर्णको फटकारना (उद्योग० १६८ । ३०—३८) । दुर्योधनको पाण्डवपक्षके अतिरथी आदिका परिचय देना (उद्योग० अध्याय १६९ से १७२ तक) । दुर्योधनसे शिखण्डी और पाण्डवोंका वध न करनेको कहना (उद्योग० १७२ । २०-२१) । दुर्योधनको अम्बोपाख्यान सुनाना (उद्योग० १७३ अध्याय) । इनके द्वारा काशिराजकी तीनों कन्याओंका अपहरण (उद्योग० १७३ । १३) । इनके द्वारा परशुरामजीका पूजन (उद्योग० १७८ । २७) । अम्बाको ग्रहण करनेके विषयमें परशुरामजीकी आज्ञा न मानना (उद्योग० १७८ । ३२–३४) । मारनेकी धमकी देनेपर परशुरामजीको रोषपूर्ण उत्तर देना (उद्योग० १७८ । ४३—६४) । परशुरामजीके साथ युद्ध करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें जाना (उद्योग० १७८ । ८०) । युद्धके अवसरपर परशुरामजीसे युद्धकी आज्ञा माँगना (उद्योग० १७९ । १४) । परशुरामजीके साथ इनका युद्ध (उद्योग० १७९ । २७ से १८५ अध्यायतक) । वसुओं-द्वारा इन्हें प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्ति (उद्योग० १८३ । ११–१३) । देवताओं और नारदजीके मना करनेपर प्रस्वापनास्त्रका प्रयोग न करना (उद्योग० १८५ । ७) । देवता, पितर तथा गङ्गाके आग्रहसे युद्ध बंद करके परशुरामजीके चरणोंमें प्रणाम करना (उद्योग० १८५ । ३५) । दुर्योधनको शिखण्डीके जन्मका वृत्तान्त सुनाना (उद्योग० अध्याय १८८ से १९२ तक) । दुर्योधनसे एक मासमें पाण्डव-सेनाका नाश करनेकी अपनी शक्तिका कथन (उद्योग० १९३ । १४) । युधिष्ठिरको युद्धकी आज्ञा देकर उनकी मङ्गल-कामना करना (भीष्म० ४३ । ४४–४८) । प्रथम दिनके युद्धमें अर्जुनके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ८–११) । युद्धमें इनके द्वारा विराट-पुत्र श्वेतका वध (भीष्म० ४८ । ३–११५) । प्रथम दिनके युद्धमें इनका प्रचण्ड पराक्रम (भीष्म० ४९ । ४१—५१) । अर्जुनके साथ इनका घोर युद्ध (भीष्म० ५२ अध्याय) । सात्यकिद्वारा सारथिके मारे जानेपर घोड़ोंद्वारा रणक्षेत्रसे बाहर ले जाया जाना (भीष्म० ५४ । ११४-११५) । अर्जुनकी मारसे भागती हुई सेनाको देखकर दूसरे दिनका युद्ध बंद करनेका आदेश देना (भीष्म० ५५ । ४२) । दुर्योधनके उलाहना देनेपर सेनासहित पाण्डवोंको रोक देनेकी प्रतिज्ञा करना (भीष्म० ५८ । ४२—४४) । भीष्मका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ५९ । ५१—७४) । मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णका इनके द्वारा आह्वान (भीष्म० ५९ । ९६—९८) । अर्जुनके साथ इनका द्वैरथ-युद्ध (भीष्म० ६० । २५—२९) । भगदत्तको संकटमें पड़ा हुआ देखकर द्रोणा-चार्य और दुर्योधनको उसकी रक्षाके लिये आदेश देना (भीष्म० ६४ । ६४—६९) । पाण्डवोंके पराक्रमके विषयमें पूछनेपर उत्तरके प्रसंगमें दुर्योधनको नारायणा-वतार श्रीकृष्ण और नरावतार अर्जुनकी महिमा बताना (भीष्म० ६५ । ३५ से ६८ अध्यायतक) । इनके द्वारा ब्रह्मभूतस्तोत्रका कथन (भीष्म० ६८ । २—११) । शिखण्डीका सामना पड़नेपर युद्ध बंद कर देना (भीष्म० ६९ । २९) । भीमसेनके साथ इनका घमासान युद्ध (भीष्म० ७० अध्याय) । अर्जुन आदि योद्धाओंके साथ इनका घमासान युद्ध (भीष्म० ७१ अध्याय) । भीमसेनको घायल करके सात्यकिको परा-जित करना (भीष्म० ७२ । २१—२८) । विराटको घायल करना (भीष्म० ७३ । २) । भीमसेनके परा-क्रमसे भयभीत दुर्योधनको आश्वासन देना (भीष्म० ८० । ८—१२) । युधिष्ठिरको रथहीन कर देना (भीष्म० ८६ । ११) । भीमसेनद्वारा सारथिके मारे जानेपर घोड़ोंका इनका रथ लेकर भागना (भीष्म० ८८ । १२) । भगदत्तको घटोत्कचसे युद्ध करनेके लिये आज्ञा देना (भीष्म० ९५ । १७—२०) । दुर्योधनसे अर्जुनके पराक्रमका वर्णन करके शिखण्डीको छोड़कर शेष सोमकों और पाञ्चालोंके वधकी प्रतिज्ञा करना (भीष्म० ९८ । ४—२३) । इनका सात्यकिके साथ युद्ध (भीष्म० १०४ । २९—३६) । इनके द्वारा चेदि, काशि और करूष देशके चौदह हजार महारथियोंका एक साथ वध (भीष्म० १०६ । १८—२०) । मारनेके लिये आते हुए श्रीकृष्णका इनके द्वारा स्वागत (भीष्म० १०६ । ६४—६७) । युधिष्ठिरको अपने वधका उपाय बताना (भीष्म० १०७ । ७६—८८) । शिखण्डीसे उसके साथ युद्ध न करनेके लिये कहना (भीष्म० १०८ । ४३) । दुर्योधनको उत्तर देना तथा पाण्डवसेनाका संहार करना (भीष्म० १०९ । २४–३९) । युधिष्ठिरको अपने ऊपर

आक्रमण करनेके लिये आदेश देना (भीष्म० ११५ । १३–१५) । इनका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ११६ । ६२–७८) । अर्जुनके प्रहारसे मूर्च्छित होना (भीष्म० ११७ । ६४) । इनके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध (भीष्म० ११८ । २७) । इनके द्वारा पाण्डवसेना-का भीषण संहार (भीष्म० अध्याय ११८ से ११९ । १–५४ तक) । जीवनसे उदास होकर मृत्युका चिन्तन करना (भीष्म० ११९ । ३४-३५) । अर्जुनके बाणोंसे घायल होनेपर दुःशासनसे अर्जुनके पराक्रमका वर्णन करना (भीष्म० ११९ । ५६–६७) । अर्जुनके द्वारा रथसे गिराया जाना (भीष्म० ११९ । ८७) । हंसोंको सूर्यके उत्तरायण होनेतक प्राण धारण करनेकी बात बताना (भीष्म० ११९ । १०४–१०८) । संजयद्वारा धृतराष्ट्रके प्रति इनकी महत्ताका वर्णन (भीष्म० १२० । १०–१५) । बाणशय्यापर सोते समय राजाओं-से तकिया माँगना (भीष्म० १२० । ३४) । राजाओंसे अपने अनुरूप तकिया न मिलनेपर अर्जुनसे माँगना (भीष्म० १२० । ३८) । राजाओंको समझाते हुए युद्ध बंद कर देनेके लिये अनुरोध करना (भीष्म० १२० । ५१–५५) । इनका अर्जुनसे पानी माँगना (भीष्म० १२१ । १८-१९) । इनके द्वारा अर्जुनकी प्रशंसाका कथन (भीष्म० १२१ । ३०–३७) । दुर्योधनको युद्ध बंद करनेके लिये समझाना (भीष्म० १२१ । ३८–५५) । कर्णसे रहस्यपूर्वक वार्तालाप करना (भीष्म० १२२ । ८–२२) । कर्णको स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे युद्ध करनेके लिये अनुमति देना (भीष्म० १२२ । ३४–३८) । कर्णको प्रोत्साहन देकर युद्धके लिये भेजना (द्रोण० ४ । २–१४) । धर्मका रहस्य जाननेके निमित्त युधिष्ठिरको भीष्मके पास जानेके लिये व्यासजीकी प्रेरणा (शान्ति० ३७ । ५–७) । इनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति (भीष्मस्तवराज) (शान्ति० ४७ । १६–१००; शान्ति० ५१ । २–९) । धर्मोपदेश करनेके लिये श्रीकृष्णके सम्मुख अपनी असमर्थता प्रकट करना (शान्ति० ५२ । २–१३) । अपनेको कष्टरहित बताते हुए 'आप स्वयं उपदेश क्यों नहीं देते' ऐसा भगवान् श्रीकृष्णसे पूछना (शान्ति० ५४ । १७–२४) । युधिष्ठिरके गुण-कथनपूर्वक उनको प्रश्न करनेके लिये आदेश देना (शान्ति० ५५ । २–१०) । भयभीत और लज्जित युधिष्ठिरको आश्वासन देना (शान्ति० ५४ । १९) । युधिष्ठिरको नाना प्रकारके दृष्टान्तों और उपाख्यानोंद्वारा राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्मका उपदेश देना (शान्ति० ५६ । १२ से अनु० १६५ अध्यायतक) । श्रीकृष्णसे भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन करनेके लिये कहना (अनु० १४ । १८–२१) । युधिष्ठिरको हस्तिना-पुर जानेके लिये आदेश और उपदेश देना (अनु० १६६ । ९–१४) । धृतराष्ट्रको कर्तव्यका उपदेश देना (अनु० १६७ । ३०–३५) । श्रीकृष्णसे देहत्यागकी अनुमति माँगना (अनु० १६७ । ३७–४५) । इनका प्राणत्याग करना (अनु० १६८ । २–७) । कौरवोंद्वारा इनका दाहसंस्कार और इन्हें जलाञ्जलिदान (अनु० १६८ । १०–२०) । रोती हुई गङ्गादेवीका इनके लिये शोक, इनकी वीरताकी प्रशंसा तथा इनके शिखण्डीके हाथसे मारे जानेके कारण दुःख प्रकट करना (अनु० १६८ । २१–२९) । 'भीष्मका अर्जुनके द्वारा वध हुआ है' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण और व्यासजीका गङ्गाको आश्वासन देना (अनु० १६८ । ३०–३५) । व्यासजीके आवाहन करनेपर इनका गङ्गाके जलसे प्रकट होना (आश्रम० ३२ । ७) । स्वर्गमें जाकर भीष्मका वसुओंके स्वरूपमें मिलना (स्वर्गा० ५ । ११-१२) ।

महाभारतमें आये हुए भीष्मके नाम–आपगासुत, आपगेय, भागीरथीपुत्र, भागीरथीसुत, भारत, भरतश्रेष्ठ, पितामह, भरतर्षभ, भरतसत्तम, भीष्मक, शान्तनव, शान्तनुपुत्र, शान्तनुसुत, शान्तनूज, शान्तनुनन्दन, देवव्रत, गङ्गासुत, गाङ्गेय, जाह्नवीपुत्र, जाह्नवीसुत, कौरव, कौरवधुरंधर, कौरवनन्दन, कौरव्य, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलोद्वह, कुरुमुख्य, कुरुनन्दन, कुरुपति, कुरुपितामह, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गव, कुरुराजर्षिसत्तम, कुरुसत्तम, कुरूत्तम, कुरुवंशकेतु, कुरुवर-श्रेष्ठ, कुरुवृद्ध, महाव्रत, नदीज, प्रपितामह, सागरगासुत, सत्यसंध, तालध्वज, वसु आदि ।

भीष्मक–विदर्भदेशके अधिपति एक भोजवंशी नरेश, जो पृथ्वीके एक चौथाई भागके स्वामी, इन्द्रके सखा और बलवान् थे । इन्होंने अस्त्र-विद्याके बलसे पाण्ड्य, क्रथ और कैशिक देशोंपर विजय पायी थी । इनके भाई आकृति परशुरामजीके समान शौर्यसम्पन्न थे । राजा भीष्मक रुक्मिणीके पिता एवं भगवान् श्रीकृष्णके श्वशुर थे । ये मगधराज जरासंधके प्रति भक्ति रखते थे (सभा० १४ । २१-२२) । राजसूय-यज्ञके अवसरपर सहदेवके भोजकट नगरमें पहुँचनेपर ये दो दिनोंतक युद्ध करके उनसे पराजित हुए थे (सभा० ३१ । ११-१२) । महामना भीष्मकका दूसरा नाम हिरण्यरोमा था, ये साक्षात् इन्द्रके मित्र थे । समूचे दाक्षिणात्य प्रदेशपर इनका प्रभुत्व था । इनके पुत्रका नाम रुक्मी था, जो सम्पूर्ण दिशाओं-में विख्यात था (उद्योग० १५८ । १-२) । ये कलिङ्ग-राज चित्राङ्गदकी पुत्रीके स्वयंवरके अवसरपर राजपुर नगरमें गये थे (शान्ति० ४ । २–६) ।

भीष्मपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व ।

भीष्मवधपर्व–भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ४३ से १२२ तक**) ।

भीष्मस्वर्गारोहणपर्व–अनुशासनपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १६७ से १६८ तक**) ।

भुमन्यु–(१) ये महाराज दुष्यन्तके पौत्र एवं भरतके पुत्र थे, जो महर्षि भरद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ९४ । १९–२२**) । इनकी माताका नाम सुनन्दा था; जो काशीनरेश सर्वसेनकी पुत्री थी (**आदि० ९५ । ३२**) । पिताद्वारा इनका युवराजपदपर अभिषेक (**आदि० ९४ । २३**) । इनके द्वारा पुष्करिणीके गर्भसे दिविरथ, सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, सुयजु और ऋचीक नामक पुत्र उत्पन्न हुए (**आदि० ९४ । २४-२५**) । इनके द्वारा दशार्हकन्या विजयाके गर्भसे सुहोत्रका जन्म (**आदि० ९५ । ३३**) । (२) ये सोमवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके पुत्र थे (**आदि० ९४ । ५९**) । (३) एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवके अवसरपर पधारे थे (**आदि० १२२ । ५८**) ।

भुवन–(१) एक दिव्य महर्षि, जो प्रयाणकालमें भीष्मजीको देखनेके लिये वहाँ पधारे थे (**अनु० २६ । ८**) । (२) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३५**) ।

भूतकर्मा–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो नकुल-पुत्र शतानीकके साथ युद्धमें उनके द्वारा मारा गया (**द्रोण० २५ । २२-२३**) ।

भूतधामा–जिन इन्द्रोंके अंशसे पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई थी, उन्हीं पाँचोंमेंसे दूसरे इन्द्रका नाम भूतधामा था (**आदि० १९६ । २८-२९**) ।

भूतमथन–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६९**) ।

भूतलय–एक गाँवका नाम । यहाँ चोरों और डाकुओंका अड्डा था । यहाँ एक नदी थी, जिसमें मुर्दे बहाये जाते थे । ऐसी नदीमें स्नान करना शास्त्रनिषिद्ध है (**वन० १२९ । ९**) ।

भूतशर्मा–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो द्रोणाचार्यद्वारा निर्मित गरुड़व्यूहके ग्रीवास्थानमें खड़ा था (**द्रोण० २० । ६-७**) ।

भूतितीर्था–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २७**) ।

भूपति–एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३२**) ।

भूमि–(१) भूदेवी; ये ब्रह्माजीकी पुत्री और भगवान् नारायणकी पत्नी हैं, भगवान् वाराहके साथ समागम होनेपर इनके गर्भसे एक पुत्र हुआ, जो इस भूतलपर भौम अथवा नरकके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा भौमासुरके मारे जानेपर इन्होंने स्वयं प्रकट हो अदितिके दोनों कुण्डल लौटाये और नरकासुरकी संतानकी रक्षाके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना की (**सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०८**) । इनका अपना भार उतारनेके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करना (**वन० १४२ । ४१-४२**) । वाराहरूपधारी विष्णुद्वारा इनका उद्धार (**वन० १४२ । ४५–४७**) । संजयका धृतराष्ट्रसे इनकी महिमाका वर्णन करना (**भीष्म० ४ । १० से भीष्म० ५ । १२ तक**) । श्रीकृष्णसे वैष्णवास्त्र माँगनेकी कथाकी चर्चा (**द्रोण० २९ । ३०-३१**) । पृथुसे अपनेको अपनी कन्या माननेके लिये प्रार्थना करना (**द्रोण० ६९ । १५**) । परशुरामजीद्वारा क्षत्रियसंहार हो जानेके बाद कश्यपजीसे भूपालकी याचना करना और बचे हुए राजकुमारोंका पता बताना (**शान्ति० ४९ । ७४–८६**) । श्रीकृष्णके पूछनेपर ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन करना (**अनु० ३४ । २२—२९**) । इनका भगवान् श्रीकृष्णको गृहस्थ-धर्म सुनाना (**अनु० ९७ । ५—२३**) । राजा अङ्गके साथ स्पर्धा होनेके कारण अदृश्य हो जाना (**अनु० १५३ । २**) । इनका काश्यपी नाम पड़नेका कारण (**अनु० १५४ । ७**) । (२) प्राचीन नरेश भूमिपतिकी भार्या (**उद्योग० ११७ । १४**) ।

भूमिञ्जय–एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो द्रोणाचार्यद्वारा निर्मित गरुडव्यूहके हृदयस्थानपर खड़ा था (**द्रोण० २० । १३-१४**) ।

भूमिपति–एक प्राचीन राजा (**उद्योग० ११७ । १४**) ।

भूमिपर्व–भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ११ से १२ तक**) ।

भूमिपाल–एक प्राचीन क्षत्रिय नरेश, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७ । ६१—६६**) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । १६**) ।

भूमिशय–एक प्राचीन नरेश, जिन्हें राजा अमूर्तरयासे खड्गकी प्राप्ति हुई थी और इन्होंने उस खड्गको दुष्यन्त-कुमार भरतको दिया था (**शान्ति० १६६ । ७५**) ।

भूरि–ये कुरुवंशी सोमदत्तके पुत्र थे । इनके दो छोटे भाइयोंका नाम भूरिश्रवा और शल था । ये अपने पिता तथा भाइयोंके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें गये थे (**आदि० १८५ । १४-१५**) । पिता और भाइयोंके सहित युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी पधारे थे (**सभा० ३४ । ८**) । इनका सात्यकिके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (**द्रोण० १६६ । १—१२**) । मृत्युके पश्चात् ये विश्वेदेवोंमें मिल गये (**स्वर्गा० ५ । १६-१७**) ।

भूरितेजा-एक प्राचीन नरेश, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६३—६६) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १७) ।

भूरिद्युम्न-(१) एक प्राचीन नरेश, जो यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १९, २१) । इन्होंने गोदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया (अनु० ७६ । २५) । (२) एक महर्षि, जिन्होंने शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । (३) यह राजा वीरद्युम्नका एकलौता पुत्र था, जो वनमें खो गया था (शान्ति० १२७ । १४) ।

भूरिबल (भीमबल)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । । ९८; आदि० ११६ । ७) । भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १४-१५) ।

भूरिश्रवा-ये कुरुवंशीय सोमदत्तके पुत्र थे । इनके दो भाइयोंका नाम भूरि और शल था । ये पिता और भाइयोंके साथ द्रौपदी-स्वयवरमें गये थे (आदि० १८५ । १४-१५) । इनके द्वारा पाण्डवोंके पराक्रमका वर्णन और उनसे युद्ध न करके उनके साथ संधि करनेके लिये इनकी द्रुपदनगरमें दुर्योधनको सलाह (आदि० १९९ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । अपने पिता और भाइयोंके साथ ये युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आये थे (सभा० ३४ । ८) । इनका एक अक्षौहिणी सेनासहित दुर्योधनकी सहायतामें आना (उद्योग० १९ । १६) । रथियोंके यूथपतियोंके यूथपतिरूपमें इनकी भीष्मद्वारा गणना (उद्योग० १६५ । २९) । प्रथम दिनके युद्धमें इनका शङ्खके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ३५—३७) । इनकी सात्यकिपर चढ़ाई और उनके साथ युद्ध (भीष्म० ६३ । ३३ से ६४ । ४ तक) । इनका सात्यकिके साथ घोर युद्ध (भीष्म० ७४ अध्याय) । इनके द्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध (भीष्म० ७४ । २५) । धृष्टकेतुके साथ इनका युद्ध तथा इनके द्वारा धृष्टकेतुकी पराजय (भीष्म० ८४ । ३५—३९) । भीमसेनके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११० । १०-११; भीष्म० १११ । ४४—४९) । शिखण्डीके साथ इनका-युद्ध (द्रोण० १४ । ४३—४५) । मणिमान्‌के साथ युद्ध करके उसका वध करना (द्रोण० २५ । ५३—५५) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । २२—२४) । सात्यकिके साथ युद्ध करके उनकी चुटिया पकड़कर घसीटना (द्रोण० १४२ । ५९—६१) । अर्जुनद्वारा इनकी दाहिनी भुजाका काटा जाना (द्रोण० १४२ । ७२) । इनके द्वारा अर्जुनको उपालम्भ दिया जाना (द्रोण० १४३ । ४—१५) । इनका आमरण अनशनके लिये बैठना (द्रोण० १४३ । ३३—३५) । सात्यकिद्वारा इनका वध (द्रोण० १४३ । ५४) । मृत्युके पश्चात् इनका विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट होना (स्वर्गा० ५ । १६) ।

महाभारतमें आये हुए भूरिश्रवाके नाम-भूरिदक्षिण, शलाग्रज, कौरव, कौरवदायाद, कौरवेय, कौरव्य, कौरव्यमुख्य, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुपुङ्गव, यूपकेतन, यूपकेतु आदि ।

भूरिहा-एक राक्षस, जो प्राचीन कालमें पृथ्वीका शासक था; परंतु कालके वशीभूत हो इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५१—५६) ।

भूलिङ्ग-हिमालयके दूसरे भागमें रहनेवाली एक चिड़िया, जो सदा यही बोला करती थी—'मा साहसम्' अर्थात् 'साहस न करो'; परंतु स्वयं साहसका काम करती हुई सिंहके दाँतोंमें लगे हुए मांसके टुकड़ेको अपनी चोंचसे चुगती रहती है (सभा० ४४ । २८—३०) ।

भूषिक-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५८) ।

भृगु-एक महर्षि, जो ब्रह्माजीके द्वारा वरुणके यज्ञमें अग्निसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ५ । ८) । इनकी प्यारी पत्नीका नाम पुलोमा था (आदि० ५ । १३) । पुलोमा राक्षसके हरण करते समय इनकी पत्नी पुलोमाका गर्भ चू पड़ा, जिससे च्यवन नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई (आदि० ६ । १—२४; आदि० ६६ । ४४-४५) । पत्नी पुलोमाद्वारा अपने हरणका रहस्य बतलानेपर इनका अग्निदेवको सर्वभक्षी होनेका शाप देना (आदि० ६ । १४) । इनके दूसरे पुत्रका नाम 'कवि' था (आदि० ६६ । ४२) । च्यवनके अतिरिक्त इनके छः पुत्र और हुए, जो व्यापक तथा इन्हींके समान गुणवान् थे; जिनके नाम इस प्रकार हैं—वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, शुक्र, वरेण्य तथा सवन। सभी भृगुवंशी सामान्य रूपसे वारुण कहलाते हैं (अनु० ८५ । १२८-१२९) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६) । इन्द्रकी सभामें रहकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं (सभा० ७ । २९) । ब्रह्माकी सभामें उपस्थित रहकर ब्रह्माजीकी सेवा करते हैं (सभा० ११ । १९) । इनका अपनी पुत्रवधूको संतानके लिये वरदान देना (वन० ११५ । ३५—३७) । शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी इनके द्वारा दक्षिणावर्त परिक्रमा (उद्योग० ८३ । २७) । इनका द्रोणाचार्यके पास आकर युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३४—४०) । इनका भरद्वाजके प्रति

जगत्की उत्पत्ति और विभिन्न तत्त्वोंका वर्णन करना (शान्ति० १८२ अध्याय)। आकाशसे अन्य चार स्थूल भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन (शान्ति० १८३ अध्याय)। पञ्चमहाभूतोंके गुणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन (शान्ति० १८४ अध्याय)। शरीरके भीतर जठरानल तथा प्राण-अपान आदि वायुओंकी स्थिति आदिका वर्णन (शान्ति० १८५ अध्याय)। जीवकी सत्ता तथा नित्यताको नाना प्रकारकी युक्तियोंसे सिद्ध करना (शान्ति० १८७ अध्याय) । वर्णविभाग-पूर्वक मनुष्यकी तथा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन (शान्ति० १८८ अध्याय) । चारों वर्णोंके अलग-अलग कर्मोंका और सदाचारका वर्णन तथा वैराग्यसे परब्रह्मकी प्राप्तिका निरूपण (शान्ति० १८९ अध्याय) । सत्यकी महिमा, असत्यके दोष तथा लोक और परलोकके सुख-दुःखका विवेचन (शान्ति० १९० अध्याय) । ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य आश्रमके धर्मोंका वर्णन (शान्ति० १९१ अध्याय) । वानप्रस्थ और संन्यास धर्मोंका वर्णन तथा हिमालयके उत्तरपार्श्वमें स्थित उत्कृष्ट लोककी विलक्षणता एवं महत्ताका प्रतिपादन (शान्ति० १९२ अध्याय) । इनका हिमवान्को रत्नोंका भण्डार न होनेका शाप देना (शान्ति० ३४२ । ६२) । इनके द्वारा राजा वीतहव्यको शरण देकर ब्राह्मणत्व प्रदान करना (अनु०३० । ५७-५८) । ये अग्निकी ज्वालासे उत्पन्न हुए थे; अतः इनका नाम 'भृगु' पड़ा (अनु० ८५ । १०५-१०६)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ करना (अनु० ९४ । १६) । अगस्त्यजीसे नहुषको गिरानेका उपाय पूछना (अनु० ९९ । १५) । इनका अगस्त्यजी-को नहुषके पतनका उपाय बताना (अनु० ९९ । २२–२८) । इनके द्वारा नहुषको शाप (अनु० १०० । २४-२५) । नहुषके प्रार्थना करनेपर उनके शापका उद्धार बताना (अनु० १०० । ३०) ।

भृगुतीर्थ–महर्षियोंद्वारा सेवित एक तीर्थ । यहाँ स्नान करके परशुरामजीने श्रीरामजीद्वारा अपहृत अपने तेजको पुनः प्राप्त कर लिया था । राजा युधिष्ठिरने भी अपने भाइयों-सहित यहाँ स्नान-तर्पण किया; जिससे उनका रूप अत्यन्त तेजस्वी हो गया और वे शत्रुओंके लिये परम दुर्धर्ष हो गये (वन० ९९ । ३४–३८) ।

भृगुतुङ्ग–एक प्राचीन पर्वत, जहाँ राजा ययातिने अपनी पत्नियोंके साथ तपस्या की थी (आदि० ७५ । ५७) । तीर्थयात्राके अवसरपर अर्जुनका यहाँ आगमन हुआ था (आदि० २१४ । २) । यहाँ शाकाहारी होकर एक मास निवास करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ५०) । यहाँ उपवास करनेसे मनुष्य अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है (वन० ८५ । ९१-९२) । इस महान् पर्वतकी भृगुतुङ्ग-आश्रमके नामसे भी प्रसिद्धि है । यहाँ भृगुजीने तपस्या की थी (वन० ९० । २३) । भृगुतुङ्गमें एक 'महाह्रद' नामक तीर्थ या सरोवर है । जो लोभका त्याग करके यहाँ स्नान करता और तीन राततक निराहार रहता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है (अनु० २५ । १८-१९) ।

भेडी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६।१३) ।

भेरीस्वना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका(शल्य० ४६।२६)।

भैरव–धृतराष्ट्रवंशी एक नाग, जो सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (आदि० ५७ । १७) ।

भोगवती–(१) नागलोक (आदि० २०६ । ५१;सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । (२) पाताल-लोकमें स्थित गङ्गा (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षि-णात्य पाठ, पृष्ठ ८१४) । प्रयागमें वासुकि नागका तीर्थ-विशेष, जो गङ्गामें ही है, इसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञ-का फल मिलता है (वन० ८५।८६;उद्योग० १८६ ।२७)। (३) सरस्वती नदीका नामान्तर (वन० २४ । २०) । (४) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६।८) ।

भोगवान्–एक पर्वत, जिसे भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १२) ।

भोज–(१) एक वंश, जो यदुकुलके अन्तर्गत है (आदि० २१७ । १८) । (२) मार्तिकावत देशके एक राजा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । ६) । ये युधिष्ठिरकी सभाके सभासद् थे (सभा० ४ । २६) । कौरव-पक्षसे युद्ध करते हुए अभिमन्युद्वारा मारे गये (द्रोण० ४८ । ८) । इन्होंने कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें भी पदार्पण किया था (शान्ति० ४ । ७) । (३) एक यदुवंशी नरेश, जिन्हें महाराज उशीनरसे खड्गकी प्राप्ति हुई थी (शान्ति० १६६ । ७९) । (इन्हींसे यादवोंमें भोज-वंशकी परम्परा प्रचलित हुई थी ।)

भोजकट–विदर्भदेशकी राजधानी, जिसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ११-१२) । रुक्मिणी-हरणके समय श्रीकृष्णके साथ युद्ध करके जहाँ रुक्मी पराजित हुआ था, वहीं उसने इस नये नगरको बसाया था (उद्योग० १५८ । १४-१५) । (इसके पहले इस राज्यकी राज-धानी कुण्डिनपुरमें थी ।)

भोजा–सौवीरराजकी सर्वाङ्गसुन्दरी कमनीया कन्या, जिसे सात्यकिने अपनी रानी बनानेके लिये हर लिया था (द्रोण० १० । ३३) ।

भौम–एक असुर (देखिये नरकासुर) (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४—८०७) ।

भ्रमर–सौवीरदेशका एक राजकुमार, जो जयद्रथके रथके पीछे हाथमें ध्वजा लेकर चलता था । द्रौपदीहरणके समय जयद्रथके साथ गया था (वन० २६५ । १०-११) । अर्जुनद्वारा इसका वध हुआ (वन० २७१ । २७) ।

(म)

मकरी–भारतवर्षकी एक प्रधान नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २३) ।

मगध–एक प्राचीन देश । बिहार प्रान्तका दक्षिणी भाग; इसकी राजधानी गिरिव्रज (आधुनिक राजगृह) थी (सभा० २१ । २-३) । किसी समय बृहद्रथ मगध देशके राजा थे (आदि० ६३ । ३०) । कालेयोंमें जो महान् श्रेष्ठ असुर था, वही मगध देशमें जयत्सेन नामका राजा हुआ था (आदि० ६७ । ४८) । इस देशपर पाण्डुने आक्रमण करके वहाँके राजा 'दीर्घ' का वध किया था (आदि० ११२ । २६-२७) । इस देशमें राजा बृहद्रथने जरा राक्षसी (गृहदेवी) के लिये महान् उत्सव मनानेकी आज्ञा जारी की थी (सभा० १८ । १०) । महाभारतकालमें जरासंध मगध देशका राजा था, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने युक्तिपूर्वक भीमसेनद्वारा मरवा डाला (सभा० २४ । ७ के बाद दा० पाठ) । जरासंधके मरनेके बाद उसके पुत्र सहदेवको भगवान् श्रीकृष्णने मगध देशके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया (सभा० २४ । ४३) । इस देशको पूर्व दिग्विजयके समय भीमसेनने अपने वशमें कर लिया था (सभा० ३० । १६—१८) । यहाँके राजा भी युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १८) । यहाँके राजा तथा निवासी महाभारत-युद्धमें युधिष्ठिरके पक्षमें आये थे (उद्योग० ५३ । २) । इस देशकी गणना भारतके प्रमुख जनपदोंमें है (भीष्म० ९ । ५०) ।

मघा–(१) एक तीर्थ, यहाँ जानेसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल मिलता है (वन० ८४ । ५१) । (२) सत्ताईस नक्षत्रोंमें एक नक्षत्रका नाम । जब मङ्गलग्रह वक्र होकर मघा नक्षत्रपर आता है, तब अमङ्गलका सूचक होता है (भीष्म० ३ । १४) । मघा नक्षत्रपर चन्द्रमाकी स्थिति होनेसे अपशकुन समझना चाहिये (भीष्म० १७ । २) । जो मनुष्य मघा नक्षत्रमें तिलसे भरे हुए वर्धमान पात्रोंका दान करता है, वह इस लोकमें पुत्रों और पशुओंसे सम्पन्न हो परलोकमें आनन्दका भागी होता है (अनु० ६४ । १२) । आश्विन मासके कृष्णपक्षमें मघा और त्रयोदशीका संयोग होनेपर घृतमिश्रित खीरका दान करनेसे पितरोंकी तृप्ति होती है (अनु० ८८ । ७; अनु० १२६ । ३५–३७) । मघा नक्षत्रमें हाथीके शरीरकी छायामें बैठकर उसके कानसे हवा लेते हुए चावलकी खीर या लौहशाकका पितरोंके लिये दान करनेसे पितर संतुष्ट होते हैं (अनु० ८८ । ८) । मघामें श्राद्ध एवं पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने कुटुम्बीजनोंमें श्रेष्ठ होता है (अनु० ८९ । ५) । चान्द्रव्रतके समय मघाकी चन्द्रमाके नासिका-स्थानपर भावना करनी चाहिये (अनु० ११० । ८) ।

मङ्कणक–एक प्राचीन ऋषि, जो वायुदेवद्वारा सुकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (शल्य० ३८ । ५९) । सप्तसारस्वत-तीर्थमें इन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी । एक बार इनके हाथमें कुश गड़ जानेसे घाव हो गया, जिससे शाकका रस चूने लगा । उसे देखकर हर्षके मारे ये नृत्य करने लगे (वन० ८३ । ११५–११७) । महादेवजीका इनके पास आगमन तथा नृत्यका कारण पूछना (वन० ८३ । १२०-१२१) । इनका महादेवजीसे अपने हर्षका कारण बताना (वन० ८३ । १२२-१२३) । महादेवजीके हाथसे झरती हुई भस्मको देखकर इनका लज्जित होकर उनके चरणोंमें गिरना और महादेवजीकी स्तुति करना (वन० ८३ । १२४—१३१) । इन्हें शिवजीसे वरदान प्राप्त होना (वन० ८३ । १३२–१३४) । इनके वीर्यसे सात पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई थी, जो सब-के-सब ऋषि हुए । उनके नाम हैं—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और वायुचक्र (शल्य० ३८ । ३४–३८) । इनके चरित्रका विशेषरूपसे वर्णन (शल्य० ३८ । ३८—५८) ।

मङ्कि–एक प्राचीन मुनि (शान्ति० १७७ । ४) । ऊँट-द्वारा इनके बछड़ोंका अपहरण हो जानेपर इन्होंने तृष्णा और कामनाकी गहरी आलोचना की, जो मङ्कि-गीताके नामसे प्रसिद्ध है (शान्ति० १७७ । ९—५२) । अन्तमें ये धन-भोगोंसे विरक्त होकर परमानन्दस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त हो गये (शान्ति० १७७ । ५३-५४) ।

मङ्ग–शाकद्वीपका एक जनपद, जिसमें अधिकतर कर्तव्य-पालनमें तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण निवास करते हैं (भीष्म० ११ । ३६) ।

मचक्रुक–समन्तपञ्चक एवं कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्धारण करनेवाला एक स्थान, जहाँ मचक्रुक नामके यक्ष द्वारपाल-रूपमें निवास करते हैं । इन यक्षको नमस्कार करनेमात्रसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ९; शल्य० ५३ । २४) ।

मज्ञान–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) ।

मञ्जुला–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । ३४**) ।

मणि–(१) धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (**आदि० ५७ । १९**) । (२) एक ऋषि, जो ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (**सभा० ११ । २४**) । (३) चन्द्रमाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम सुमणि था (**शल्य० ४५ । ३२**) ।

मणिकाञ्चन–श्यामगिरिके पास स्थित शाकद्वीपका एक वर्ष (**भीष्म० ११ । २६**) ।

मणिकुट्टिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २०**) ।

मणिजला–शाकद्वीपकी एक प्रमुख नदी (**भीष्म० ११ । ३२**) ।

मणिनाग–(१) कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (**आदि० ३५ । ६**) । गिरिव्रजके निकट इसका निवासस्थान था (**सभा० २१ । ९**) । (२) एक तीर्थ, जहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और इस तीर्थका प्रसाद भक्षण करनेसे सर्पके काटनेपर उसके विषका प्रभाव नहीं पड़ता (**वन० ८४ । १०६**) ।

मणिपर्वत–एक पर्वत, जहाँ दुष्ट भौमासुरने सोलह हजार एक सौ अपहृत कन्याओंके रहनेके अन्तःपुरका निर्माण कराया था (**सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०५**) ।

मणिपूर–यह धर्मज्ञ राजा चित्रवाहनकी राजधानी थी । यहाँ तीर्थयात्राके अवसरपर अर्जुनका आगमन हुआ था और चित्राङ्गदाके साथ विवाह करके वे तीन वर्षतक यहाँ निवास किये थे । अर्जुनद्वारा चित्राङ्गदाके गर्भसे यहीं बभ्रुवाहनका जन्म हुआ था (**सभा० २१४ । १३–२७**) । अश्वमेधीय अश्वके पीछे जाते हुए अर्जुनका मणिपूरमें पुनः आगमन तथा पिता-पुत्रका घोर संग्राम (**आश्व० ७९ अध्याय**) ।

मणिपुष्पक–सहदेवके शङ्खका नाम (**भीष्म० २५ । १६**) ।

मणिभद्र–एक यक्षविशेष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करते हैं (**सभा० १० । १५**) । ये यात्रियों तथा व्यापारियोंके उपास्यदेव हैं (**वन० ६४ । १३०; वन० ६५ । २२**) । कुण्डधार मेघकी प्रार्थनासे इनका ब्राह्मणको वरदान देना (**शान्ति० २७१ । २१-२२**) । इनके द्वारा अष्टावक्र मुनिका स्वागत (**अनु० १९ । ३३**) । मरुत्तका धन लानेके लिये जाते समय युधिष्ठिरने इन्हें खिचड़ी, फलके गूदे तथा जलकी अञ्जलि निवेदन करके इनकी पूजा की थी (**आश्व० ६५ । ७**) ।

मणिमतीपुरी–यह इल्वल दैत्यकी नगरी थी (**वन० ९६ । ४**) ।

मणिमन्थ–एक पर्वत, जहाँ श्रीकृष्णने लाखों-करोड़ों वर्षोंतक शिवकी आराधना की थी (**अनु० १८ । ३३**) ।

मणिमान्–(१) एक राजा, जो दनायुके पुत्र वृत्त नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७ । ४४**) । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (**आदि० १८५ । २२**) । भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय इन्हें पराजित किया था (**सभा० ३० । ११**) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । २०**) । इनका भूरिश्रवाके साथ युद्ध और उसके द्वारा इनका वध (**द्रोण० २५ । ५३–५५**) । द्रोणाचार्यद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (**कर्ण० ६ । १३-१४**) । (२) एक नाग, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (**सभा० ९ । ९**) । (३) एक तीर्थ, जहाँ एक रात निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है (**वन० ८२ । १०१**) । (४) एक यक्ष या राक्षस, जो कुबेरका सखा था । इसका भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (**वन० १६० । ५९-७७**) । अगस्त्यजीका अपमान करनेके कारण उनके द्वारा इसे शाप मिलनेकी चर्चा (**वन० १६१ । ६०–६२**) । (५) एक पर्वत, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णके साथ शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिला था (**द्रोण० ८० । २४**) ।

मण्डक–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४३**) ।

मण्डलक–तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (**आदि० ५७ । ८**) ।

मण्डूक–अश्वकी एक जाति; इस जातिके बहुत-से अश्व अर्जुनने दिग्विजयके समय गन्धर्वनगरसे करके रूपमें प्राप्त किये (**सभा० २८ । ६**) ।

मतङ्ग–(१) एक प्राचीन राजर्षि, जो शापवश व्याध हो गये थे और जिन्होंने दुर्भिक्षके समय विश्वामित्रकी पत्नीका भरण-पोषण किया था (**आदि० ७१ । ३१**) । महर्षि विश्वामित्रने पुरोहित बनकर इनके यज्ञका सम्पादन किया था, जिसमें इन्द्र स्वयं सोमपान करनेके लिये पधारे थे (**आदि० ७१ । ३३**) । (२) एक महर्षि, जिनका आश्रम तीर्थरूपमें माना जाता है (**वन० ८४ । १०१**) । (३) ये ब्राह्मणीके गर्भसे

ब्राह्मणेतरद्वारा उत्पन्न हुए थे (अनु० २७ । ८)। इनका गर्दभीके साथ संवाद (अनु०२७ । ११-१९)। ब्राह्मणत्व-प्राप्तिके लिये इनकी तपस्या (अनु० २७ । २२-२३)। वर देनेके लिये आये हुए इन्द्रके साथ इनका संवाद (अनु० २७ । २४ से २९ । १२ तक)। इनका इन्द्रसे वर माँगना और इन्द्रका इन्हें वर देना (अनु० २९ । २२—२५)। इन्हें प्राणत्यागके पश्चात् उत्तम स्थानकी प्राप्ति (अनु० २९ । २६)।

मतङ्गकेदार–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । १७-१८; वन० ८७ । २५)।

मतङ्गाश्रम–श्रम और शोकका विनाश करनेवाले इस आश्रममें प्रवेश करनेसे मनुष्य गवायन यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । १०१)।

मति–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री एवं धर्मराजकी पत्नी (आदि० ६६ । १५)।

मतिनार–एक पूरुवंशी नरेश, जो पूरु-पौत्र अनाधृष्टि (ऋचेयु) के पुत्र थे। ये महान् धार्मिक तथा अश्व-मेध आदि बड़े-बड़े यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे। इनके तंसु, महान्, अतिरथ एवं द्रुह्यु नामके चार पुत्र थे (आदि० ९४ । १३-१४)। (यहाँ आदिपर्वके ९४ अध्यायमें वर्णित परम्पराके अनुसार राजा मतिनार पूरुसे चौथी पीढ़ीमें आ रहे हैं; परंतु आदिपर्वके ९५ अध्यायके ११ से २६ तकके श्लोकोंमें पूरुवंशकी जिस परम्पराका वर्णन किया गया है, उसमें राजा मतिनार पूरुसे १६ वीं पीढ़ीमें आते हैं।)

मत्कुलिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १९)।

मत्तमयूर–एक क्षत्रिय-समुदाय, जिसे पश्चिम-दिग्विजयके समय नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ५)।

मत्स्य–(१) एक राजा, जो उपरिचर वसुके वीर्यद्वारा मत्स्यके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६३ । ५०—६३)। यह यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । १०)। (२) एक देश और यहाँके निवासी। वनमें भटकते हुए पाण्डव मत्स्यदेशमें आये थे (आदि० १५५ । २)। यहाँके निवासी जरासन्धके भयसे उत्तर दिशाको छोड़कर दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २८)। पूर्व-दिग्विजयके समय भीम-सेनने इस देशपर विजय पायी थी (सभा० ३० । ८)। सहदेवने भी दक्षिणदिग्विजयके समय इसे जीता था (सभा० ३१ । ४)। अर्जुनद्वारा अज्ञातवासके लिये चुने हुए देशोंमें यह मत्स्यदेश भी था (विराट० १ । १२-१३)। महाभारतकालमें विराट यहाँके राजा थे (विराट० १ । १७)। मत्स्यनरेश विराटके यहाँ ही पाण्डवोंने अपना अज्ञातवासका समय बिताया (विराट० ७ अध्याय)। मत्स्यदेशके राजा विराट एक अक्षौ-हिणी सेना लेकर युधिष्ठिरकी सहायतामें आये थे (उद्योग० १९ । १२)। इसकी गणना भारतके प्रमुख जनपदोंमें है (भीष्म० ९ । ४०)। कुछ मत्स्यदेशीय सैनिक भीष्मद्वारा मारे गये थे (भीष्म० ४९ । ४२)। द्रोणाचार्यद्वारा पाँच सौ मत्स्यदेशीय वीरोंका वध एक साथ हुआ था (द्रोण० १९० । ३१)। कर्णने पहले कभी इस देशको जीता था (कर्ण० ८ । १८)। यहाँके निवासी धर्मके जाननेवाले और सत्यवादी होते थे (कर्ण० ४५ । २८, ३०)। युद्धसे बचे हुए मत्स्यदेशीय वीरोंका अश्वत्थामाद्वारा संहार (सौप्तिक० ८ । १५८-१५९)।

मत्स्यगन्धा–दाशराजकी पोष्य कन्या (आदि० ६३ । ६९, ८६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। (विशेष देखिये—सत्यवती)

मथुरा–(पुराणानुसार सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक पुरीका नाम। यह व्रजमें यमुनाके दाहिने किनारेपर है। रामायण (उत्तरकाण्ड) के अनुसार इसे मधु नामक दैत्यने बसाया था, जिसके पुत्र लवणासुरको पराजित करके शत्रुघ्नने इसको विजय किया था। पाली-भाषाके ग्रन्थोंमें इसे मधुरा लिखा है। महाभारतकालमें यहाँ शूरसेन-वंशियोंका राज्य था और इसी वंशकी एक शाखामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यहाँ जन्म हुआ था। शूर-सेनवंशियोंके राज्यके अनन्तर अशोकके समयमें उनके आचार्य उपगुप्तने इसे बौद्धधर्मका केन्द्र बनाया था। यह जैनोंका भी तीर्थस्थान है। उनके उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथका यह जन्मस्थान है। मौर्यसाम्राज्यके अनन्तर यह स्थान अनेक यूनानी, पारसी और शक क्षत्रियोंके अधिकारमें रहा। महमूद गजनवीने सन् १०१७ ई० में आक्रमण करके इस नगरको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। अन्य मुसल्मान बादशाहोंने भी समय-समयपर आक्रमण करके इसे तहस-नहस किया था। यहाँ हिंदुओंके अनेक मन्दिर हैं और अनेक कृष्णो-पासक वैष्णव-सम्प्रदायके आचार्योंका यह केन्द्र है। मथुराका दूसरा नाम शूरसेनपुर है (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०४, कालम २)। यहीं भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ और नवजात बालक श्रीहरिको वसुदेवजीने कंसके भयसे मथुरासे ले जाकर नन्दगोपके घरमें छिपा दिया (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८)। मथुरामें ही श्री-

कृष्णने अंध्रदेशीय मल्ल चाणूरका वध किया था। वहीं बलदेवने मुष्टिकको मारा था। उसी नगरमें श्रीकृष्णने कंसके भाई और सेनापति सुनामाका संहार किया। ऐरावत-कुलमें उत्पन्न कुवलयापीडको नष्ट किया। कंसको मारा, उग्रसेनको मथुराके राज्यपर अभिषिक्त किया और माता-पिताके चरणोंमें वन्दना की (सभा० ३८। पृष्ठ ८०१)। श्रीकृष्ण शूरसेनपुरी मथुराको छोड़कर द्वारका चले गये थे (सभा० ३८। पृष्ठ ८०४)। कंसके मारे जानेपर उसकी पत्नीकी प्रेरणासे जरासंधने जब मथुरापर आक्रमण किया, तब अपने मन्त्री हंस और डिम्भकके आत्मघात कर लेनेपर उत्साहशून्य होकर वह लौट गया। इससे मथुरावासी यादव आनन्दपूर्वक वहाँ रहने लगे। तदनन्तर अपनी पुत्रियोंकी प्रेरणासे जब जरासंधने पुनः आक्रमण किया, तब यादव वहाँसे भाग खड़े हुए और रैवतक पर्वतसे सुशोभित कुशस्थलीमें जाकर रहने लगे (सभा० १४। ३५—५०)। जरासंधने गिरिव्रजसे एक गदा फेंकी थी, जो मथुरामें आकर एक स्थानपर गिरी, वह स्थान गदावसानके नामसे प्रसिद्ध हुआ (सभा० १९। २३-२४)। मथुराके योद्धा मल्लयुद्धमें निपुण होते हैं (शान्ति० १०१। ५)। साक्षात् नारायणने ही कंसका वध करनेके लिये मथुरामें श्रीकृष्णरूपसे अवतार लिया था (शान्ति० ३३९। ८९-९०)।

मदधार—एक पर्वत, जिसे पूर्व-दिग्विजयके समय भीमसेनने जीता था (सभा० ३०। ९)।

मदयन्ती—राजा मित्रसह (कल्माषपाद अथवा सौदास) की पत्नी, जिनके गर्भसे वसिष्ठद्वारा अश्मककी उत्पत्ति हुई थी (आदि० १७६। ४३—४६; आदि० १८१। २६; शान्ति० २३४। ३०)। कुण्डलकी याचनाके लिये गये हुए उत्तङ्क मुनिके साथ इनका संवाद (आश्व० ५७। २१-२८)। उत्तङ्कको कुण्डल देना (आश्व० ५८। ३)।

मदासुर—च्यवनद्वारा प्रकट की हुई कृत्याके रूपमें एक विशालकाय असुर (वन० १२४। १९)।

मदिरा—वसुदेवजीकी अनेक पत्नियोंमेंसे एक। ये देवकी, भद्रा तथा रोहिणीके साथ पतिदेवकी चितापर आरूढ़ हो भस्म हो गयी थीं (मौसल० ७। १८)।

मदिराक्ष (मदिराश्व)—मत्स्यनरेश विराटके भाई, त्रिगर्तोंद्वारा गोहरणके समय इनका कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थान करना (विराट० ३१। १२-१३)। गोहरणके समय त्रिगर्तोंसे इनका युद्ध (विराट० ३२। १९—२१)। ये राजा विराटके चक्र-रक्षक भी थे (विराट० ३३। ४०)। ये एक उदार रथी, सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और मनस्वी वीर थे (उद्योग० १७१। १५)। द्रोणाचार्यद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६। ३४)।

मदिराश्व—एक राजर्षि, जो इक्ष्वाकुकुमार दशाश्वके पुत्र थे। ये परम धर्मात्मा, सत्यवादी, तपस्वी, दानी तथा वेद एवं धनुर्वेदके अभ्यासमें तत्पर रहनेवाले थे (अनु० २। ७-८)। हिरण्यहस्तको कन्यादान करके देववन्दित लोकोंमें गये थे (शान्ति० २३४। ३५; अनु० १३७। २४)।

मद्र—एक प्राचीन भारतीय जनपद (जो आधुनिक मतके अनुसार रावी और चिनाब अथवा रावी और झेलमके मध्यवर्ती भू-भागमें स्थित था)। भीष्मजीका बूढ़े मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा सेनाके साथ इस देशमें जाना और मद्रराज शल्यसे पाण्डुके लिये माद्रीका वरण करना (आदि० ११२। २—७)। अर्जुनके जन्मकालमें आकाशवाणी हुई थी कि यह बालक आगे चलकर मद्र आदि देशोंपर विजय पायेगा (आदि० १२२। ४०)। पाण्डुपुत्र नकुलने इस देशपर प्रेमसे ही विजय पायी थी (सभा० ३२। १४-१५)। मद्र या मद्रदेशके लोग युधिष्ठिरके लिये भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२। १४)। सती सावित्रीके पिता अश्वपति मद्रदेशके ही नरेश थे (वन० २९३। १३)। कर्णने मद्र और वाहीक आदि देशोंको आचारभ्रष्ट बताकर उनकी निन्दा की थी (कर्ण० अध्याय ४४ से ४५ तक)।

मद्रक—(१) एक प्राचीन क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ५९-६०)। (२) मद्रदेशीय योद्धा, जो कौरवसेनामें उपस्थित थे (भीष्म० ५१। ७)।

मद्रकलिङ्ग—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४२)।

मधु—(१) एक महान् दैत्य, जो कैटभका भाई था। यह भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे उत्पन्न हुआ था और उन्होंने ही मिट्टीसे उसकी आकृति बनायी थी। इसकी त्वचा मृदु होनेसे इसका नाम मधु रखा गया (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८३-७८४)। कैटभसहित यह असुर ब्रह्माजीको मारनेके लिये उद्यत हुआ था (वन० १२। ३९)। इसके द्वारा विष्णुको अपनी मृत्युका वर देना (वन० २०३। ३०)। इसकी भगवान् विष्णुसे वर-याचना (वन० २०३। ३१-३२)। यह तमोगुणसे प्रकट हुआ था। यह असुरोंका पूर्वज था। इसका स्वभाव बड़ा ही उग्र था। यह सदा ही भयानक कर्म करनेवाला था। इस असुरको भगवान्

विष्णुने ब्रह्माजीके हितके लिये मारा था। इसीलिये वे मधुसूदन कहलाते हैं (शान्ति० २०७ । १४-१६) । इसकी उत्पत्तिका वर्णन (शान्ति० ३४७ । २५-२६) । इसका भगवान् हयग्रीव (विष्णु) द्वारा वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८४; वन० २०३ । ३५; शान्ति० ३४७ । ६९-७०) । (२) यमकी सभामें रहनेवाला एक राजा (सभा० ८ । १६) ।

मधुकुम्भा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १९) ।

मधुच्छन्दा—एक वानप्रस्थी ऋषि, जिन्होंने उस (वानप्रस्थ) धर्मके पालनसे उत्तम लोक प्राप्त किया (शान्ति० २४४ । १६) । ये विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक थे (अनु० ४ । ५०) ।

मधुपर्क—(१) देवताओं तथा अतिथियोंके पूजनका एक उपचार, जो विशेष विधिसे अर्पित किया जाता है (वन० ५२ । ४१) । (प्रायः दधि, मधु और घृत ही मधुपर्कके उपयोगमें लाये जाते हैं । कुछ लोग मधुके स्थानमें शर्करा डालते हैं ।) (२) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १४) ।

मधुमान्—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५३) ।

मधुर—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१) ।

मधुरस्वरा—स्वर्गलोककी एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके स्वागतमें नृत्य किया था (वन० ४३ । ३०) ।

मधुलिका—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १९) ।

मधुवटी—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ । यहाँ जाकर देवीतीर्थमें स्नान करके मानव देवता-पितरोंकी पूजा करे तो देवीकी आज्ञाके अनुसार सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८३ । ९४) ।

मधुवन—वानरराज सुग्रीवके अधिकारमें सुरक्षित एक वन, जिसके भीतर बलपूर्वक घुसकर हनुमान्, अङ्गद आदिने वहाँका मधु पी लिया था (वन० २८२ । २७-२८) ।

मधुवर्ण—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७२) ।

मधुविला—कर्दमिल क्षेत्रके निकट बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी, जिसका दूसरा नाम समंगा है (वन० १३५ । १) । वृत्रासुरका वध करके श्रीहीन हुए इन्द्र समंगा या मधुविलामें ही नहाकर पापमुक्त हो सके थे (वन० १३५ । २) । अपने पिता कहोडकी आज्ञासे समंगामें स्नान करनेसे अष्टावक्रके सारे अङ्ग सीधे हो गये थे । इसीसे वह पुण्यमयी हो गयी । इसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (वन० १३४ । ३९-४०) ।

मधुसूदन—श्रीकृष्णका एक नाम । मधु नामक असुरको मारनेके कारण ये मधुसूदन कहलाते हैं (वन० २०७ । १६) ।

मधुस्रव—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जो पृथूदकके पास है । इसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । १५०) ।

मनस्यु—महाराज पूरुके पौत्र तथा प्रवीरके पुत्र । इनकी माताका नाम 'शूरसेनी' था । ये चक्रवर्ती सम्राट् थे । इनके द्वारा अपनी पत्नी सौवीरीके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—शक्त, संहनन और वाग्मी (आदि० ९४ । ६-७) ।

मनस्विनी—प्रजापति दक्षकी पुत्री, धर्मराजकी पत्नी और चन्द्रमाकी माता (आदि० ६६ । १९) ।

मनु—(१) मानव-सृष्टिके प्रवर्तक आदि मनु, जो विराट् अण्डसे प्रकट हुए (आदि० १ । ३२) । इनकी पुत्री आरुषी महर्षि च्यवनकी पत्नी थी (आदि० ६६ । ४६) । इन्हें ही स्वयम्भूका पुत्र मानकर 'स्वायम्भुव' कहा गया है । इन्होंने धर्मसम्मत विवाहके विषयमें अपना निर्णय दिया है (आदि० ७३ । ९) । इन्होंने सोमको चाक्षुषी विद्या प्रदान की थी (आदि० १६९ । ४३) । मगध देशको मेघोंके लिये अपरिहार्य कर दिया था, जिससे मेघ सदा समयपर वहाँ जल बरसाते थे (सभा० २१ । १०) । ये इन्द्रके विमानपर बैठकर कौरवोंके साथ अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये आये थे (विराट० ५६ । १०) । इनकी पत्नीका नाम सरस्वती था (उद्योग० ११७ । १४) । (पुराणान्तरोंमें शतरूपा नाम आता है ।) विन्दुसरोवरके तटपर ये सदा स्थित रहते हैं (भीष्म० ७ । ४६) । ये पृथ्वी-दोहनके समय बछड़ा बने थे (द्रोण० ६९ । २१) । ये स्कन्दके जन्म-समयमें भी पधारे थे (शल्य० ४५ । १०) । इनका सिद्धोंके साथ संवाद, इनके कथनानुसार धर्मका स्वरूप, पापसे शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त, अभक्ष्य वस्तुओंका वर्णन तथा दानके अधिकारी एवं अनधिकारीका विवेचन (शान्ति० ३६ अध्याय) । ये मनुष्योंके आदि राजा थे (शान्ति० ६७ । २१-२२) । इन्हें प्रजापति मनु भी कहते हैं, इन्होंने बृहस्पतिके प्रश्नोंके उत्तरमें ज्ञान और त्यागकी प्रशंसा करते हुए उन्हें परमात्मतत्त्वका उपदेश दिया तथा उनके अन्य प्रश्नोंका भी विवेचन किया (शान्ति० अध्याय २०१ से २०६ तक) । पाञ्चरात्र आगमके अनुसार ही स्वायम्भुव मनुने धर्म-

शास्त्रका निर्माण एवं धर्मोपदेश किया (शान्ति० ३३५ । ४४-४५) । जिस समय उपमन्यु सर्वालङ्कार तथा परिवारगणोंसे घिरे हुए महादेवजीका दर्शन कर रहे थे, उस समय उन्होंने देखा कि स्वायम्भुव मनु वहाँ पधारे हुए हैं (अनु० १४ । २८०) । पुष्प, धूप, दीप और उपहारके दानके माहात्म्य-प्रसङ्गमें तपस्वी सुवर्ण और मनुका संवाद (अनु० ९८ अध्याय) । (२) कश्यपकी 'प्राधा' नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई पुत्री (आदि० ६५ । ४५-४६) । (३) विवस्वान्के पुत्र, जो वैवस्वत मनुके नामसे प्रसिद्ध हुए (आदि० ७५ । १२) । इनके वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, इला, पृषध्र, नाभागारिष्ट—ये दस पुत्र थे (आदि० ७५ । १५-१६) । वैवस्वत मनुका चरित्र तथा मत्स्यावतारकी कथा (वन० १८७ अध्याय) । इन्हें विवस्वान्से योगकी प्राप्ति हुई और इन्होंने वही योग इक्ष्वाकुको प्रदान किया (भीष्म० १२२ । ३८—४२) । त्रेतायुगके आरम्भमें सूर्यने मनुको और मनुने सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये अपने पुत्र इक्ष्वाकुको सात्वत धर्मका उपदेश किया (शान्ति० ३४८ । ५१) । महर्षि गौतमसे इन्हें शिवसहस्रनामकी प्राप्ति हुई और इन्होंने समाधिनिष्ठ एवं ज्ञानी नारायण नामक किसी साध्य देवताको यह स्तोत्र प्रदान किया (अनु० १७ । १७७-१७८) । (४) ये तपनामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र थे । इनका एक नाम भानु भी था । इनके तीन पत्नियाँ थीं—सुप्रजा, बृहद्भासा और निशा । प्रथम दोसे छः पुत्र और तीसरीसे एक कन्या तथा सात पुत्र उत्पन्न हुए (वन० २२१ । ४—१५) । (५) प्राचेतस नामसे प्रसिद्ध मनु, जिन्होंने छः व्यक्तियोंको त्याज्य बताया है (शान्ति० ५७ । ४३—४५) । (६) स्वारोचिष नामसे प्रसिद्ध एक मनु, जिन्हें ब्रह्माजीने सात्वत धर्मका उपदेश दिया था । फिर स्वारोचिषने अपने पुत्र शङ्खपदको इसका उपदेश दिया (शान्ति० ३४८ । ३६-३७) । (७) चाक्षुष नामक मनु, जिनके पुत्र भगवान् वसिष्ठके नामसे प्रसिद्ध हैं (अनु० १८ । २०) । (८) सौवर्ण नामक मनु, जिनके समयमें वेदव्यास सप्तर्षि पदपर प्रतिष्ठित होंगे (अनु० १८ । ४३) ।

मनोजव—(१)अनिल नामक वसुके प्रथम पुत्र । इनकी माताका नाम शिवा है (आदि० ६६ । २५) । (२) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक पवित्र तीर्थ, जो व्यासवनमें स्थित है । इसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ९३) ।

मनोजवा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य०४६।११)।

मनोनुग—क्रौञ्चद्वीपवर्ती वामन पर्वतके पासका एक देश (भीष्म० १२ । २१) ।

मनोरमा—(१) एक अप्सरा, जो कश्यपकी प्राधा नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ५०) । इसने अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें आकर नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२) । (२) उद्दालक मुनिके आवाहन करनेपर उनके यज्ञमें प्रकट हुई सरस्वती नदीका नाम (शल्य० ३८ । २५) ।

मनोहरा—(१) सोम नामक वसुकी पत्नी, जिसके गर्भसे पहले वर्चाका जन्म हुआ; फिर शिशिर, प्राण तथा रमण नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए (आदि० ६६ । २२) । (२) अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागतके लिये कुबेरसभामें नृत्य किया था (अनु०१९ । ४५) ।

मन्थरा—दुन्दुभी नामक गन्धर्वीके अंशसे उत्पन्न हुई एक कुबड़ी दासी, जो कैकेयीकी सेवामें रहती थी (वन० २७६ । १०) । इसका कैकेयीके मनमें भेद उत्पन्न करना (वन० २७७ । १७-१८) ।

मन्थिनी—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २८) ।

मन्दग—शाकद्वीपका एक जनपद, जिसमें धर्मात्मा शूद्रोंका निवास है (भीष्म० ११ । ३८) ।

मन्दगा—भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३३) ।

मन्दपाल—एक विद्वान् महर्षि, जो धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ और कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे । ये ऊर्ध्वरेता मुनियोंके मार्गका आश्रय ले सदा वेदोंके स्वाध्याय, धर्मपालन और तपस्यामें संलग्न रहते थे । अपनी तपस्या पूर्ण करके शरीरको त्यागकर जब ये पितृलोकमें गये, तब वहाँ इन्हें अपने तप एवं सत्कर्मोंका फल नहीं मिला । इन्होंने देवताओंसे इसका कारण पूछा । देवताओंने बताया कि आपने पितृ-ऋणको नहीं उतारा है; अतः संतान उत्पन्न करके अपनी वंशपरम्पराको अविच्छिन्न बनानेका प्रयत्न कीजिये । यह सुनकर शीघ्र संतान उत्पन्न करनेके लिये इन्होंने शार्ङ्गिक पक्षी होकर जरिता नामवाली शार्ङ्गिकासे सम्बन्ध स्थापित किया । उसके गर्भसे चार ब्रह्मवादी पुत्रोंको जन्म देकर ये मुनि लपिता नामवाली पक्षिणीके पास चले गये । बच्चे अपनी माँके साथ खाण्डववनमें ही रहे । जब अग्निदेवने उस वनको जलाना आरम्भ किया, उस समय इन्होंने उनकी स्तुति की और अपने पुत्रोंकी जीवन-रक्षाके लिये वर माँगा । तब अग्निदेवने 'तथास्तु' कहकर इनकी प्रार्थना

स्वीकार कर ली (आदि० २२८ अध्याय) । मन्दपालका लपितासे अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये चिन्ता प्रकट करना । लपिताके ईर्ष्यायुक्त वचन सुनकर मन्दपालका उससे अपने कथनकी यथार्थता बताना और अपने बच्चोंके पास जाना । बच्चोंद्वारा अभिनन्दित न होनेपर इनका जरितासे ज्येष्ठ आदि पुत्रोंका परिचय पूछना । जरिताका उन्हें फटकारना । मन्दपालका स्त्रियोंके सौतिया-डाहरूपी दोषका वर्णन करके उनकी अविश्वसनीयता बताना । तत्पश्चात् अपने पास आये हुए पुत्रोंको इनका आश्वासन देना और उनको तथा जरिताको साथ लेकर देशान्तरको प्रस्थान करना (आदि० २३२ । २ से आदि० २३३ । ४ तक) ।

मन्दराचल–एक पर्वत, जिसकी ऊँचाई ग्यारह हजार योजन थी । वह पृथ्वीके भीतर भी उतनी ही गहराई तक धँसा हुआ था । इसका विशेष वर्णन (आदि० १८ । १–३) । भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे शेषनागके द्वारा समुद्रमन्थनके लिये इसका उत्पाटन (आदि० १८ । ६–८) । समुद्रमन्थनके लिये इसे मथानी बनाया गया था (आदि० १८ । १३) । समुद्रमन्थनके समय इसके द्वारा जल-जन्तुओं एवं पातालवासी प्राणियोंका संहार (आदि० १८ । १६–२१) । यह कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३१) । कैलासके पास मन्दराचलकी स्थिति है, जिसके ऊपर माणिवर यक्ष और यक्षराज कुबेर निवास करते हैं । वहाँ अट्ठासी हजार गन्धर्व और उनसे चौगुने किन्नर एव यक्ष रहते हैं (वन० १३९ । ५-६) । स्वप्नावस्थामें श्रीकृष्णके साथ कैलास जाते हुए अर्जुनने मार्गमें महामन्दराचलपर पदार्पण किया था, जो अप्सराओंसे व्याप्त और किन्नरोंसे सुशोभित था (द्रोण० ८० । ३३) । भगवान् शंकरने त्रिपुरदाहके समय मन्दराचलको अपना धनुष एवं रथका धुरा बनाया था (द्रोण० २०२ । ७६; कर्ण० ३४ । २०) । उत्तरदिशाकी यात्रा करते समय अष्टावक्र मुनि इस पर्वतपर गये थे (अनु० १९ । ५४) ।

मन्दवाहिनी–एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३३) ।

मन्दाकिनी–(१) गिरिवर चित्रकूटके पास बहनेवाली एक सर्वपापनाशिनी नदी, जिसमें स्नानपूर्वक देवता-पितरोंकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । ५८-५९) । इसकी गणना भारतकी उन प्रमुख नदियोंमें है, जिनका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १६) । चित्रकूटमें मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके उपवास करनेसे मनुष्य राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९) । (२) (उत्तराखण्डमें गढ़वालकी केदार-पर्वतमालासे निकलनेवाली 'मन्दाग्नि' या 'कालीगङ्गा' नामवाली नदी) जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३४) । (३) यक्षराज कुबेरकी कमल-पुष्पोंसे सुशोभित एक बावड़ी, जो गङ्गाजलसे पूर्ण होनेके कारण 'मन्दाकिनी' कहलाती है (अनु० १९ । ३२) ।

मन्दार–हिरण्यकशिपुका ज्येष्ठ पुत्र, जो शिवजीके वरसे एक अर्बुद वर्षोंतक इन्द्रसे युद्ध करता रहा । उसके अङ्गोंपर भगवान् विष्णुका वह भयंकर चक्र तथा इन्द्रका वज्र भी पुराने तिनकेके समान जीर्ण-शीर्ण-सा हो गया था (अनु० १४ । ७४-७५) ।

मन्दोदरी–(१) रावणकी पत्नी (वन० २८१ । १६) । (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

मन्मथकर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७२) ।

मन्युमान्–भानु (मनु) नामक अग्निके द्वितीय पुत्र (वन० २२१ । ११) ।

मय–एक दानव, जिसने कुछ कालतक खाण्डववनमें निवास किया था । अर्जुनने इसे वहाँ जलनेसे बचाया था; अतः इसने उनके लिये एक दिव्य सभाभवनका निर्माण किया, जिसे दुर्योधन ले लेना चाहता था (आदि० ६१ । ४८-४९) । यह खाण्डवदाहके समय तक्षकके निवासस्थानसे निकलकर भागा । श्रीकृष्णने इसे भागते देखा । अग्निदेव मूर्तिमान् होकर गर्जने और इस राक्षसको माँगने लगे । श्रीकृष्णने इसे मारनेके लिये चक्र उठाया । तब यह अर्जुनकी शरणमें गया और उन्होंने इसे अभय दे दिया । यह देख न तो श्रीकृष्णने इसे मारा और न अग्निदेवने जलाया ही (आदि० २२७ । ३९–४५) । यह दानवोंका श्रेष्ठ शिल्पी तथा नमुचिका भाई था (आदि० २२७ । ४१ —४५) । मयासुरका श्रीकृष्ण और अग्निसे अपनी रक्षा हो जानेपर अर्जुनको इस उपकारके बदलेमें अपनी ओरसे कुछ सेवा अर्पित करनेकी इच्छा प्रकट करना । अर्जुनका बदलेमें कोई सेवा लेनेसे इनकार करनेपर मयासुरका अपनेको दानवोंका विश्वकर्मा बताना और उनके लिये प्रसन्नतापूर्वक किसी वस्तुका निर्माण करनेकी इच्छा प्रकट करना (सभा० १ । ३–६) । अर्जुनका मयासुरसे श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार कोई कार्य करनेके लिये कहना और श्रीकृष्णका इसे धर्मराज युधिष्ठिरके लिये एक दिव्यसभाभवनका निर्माण करनेके लिये आदेश देना (सभा० १ । ७–१३) । मयासुरका प्रसन्नतापूर्वक उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करना, युधिष्ठिर-द्वारा इसका सत्कार, इसका पाण्डवोंको दैत्योंके

अद्भुत चरित्र सुनाना और उनके लिये दिव्य सभा बनानेके लिये भूमिको नपवाना (सभा० १ । १४–२१) । मयासुरका भीमसेन और अर्जुनको गदा एवं शङ्ख लाकर देना और पाण्डवोंके लिये अद्भुत सभाका निर्माण करना (सभा० ३ अध्याय) । सभाका निर्माण करके मयका अर्जुनको उसे दिखाना और एक मायामय ध्वजका निर्माण करके देना (सभा० ४। दा० पाठ, पृष्ठ ६७२) । दक्षिणसमुद्रके निकट सह्य, मलय और दुर्दुर नामक पर्वतोंके आसपास एक विशाल गुफाके भीतर बने हुए दिव्य भवनमें त्रेतायुगमें मयासुर निवास करता था । वहीं प्रभावती नामवाली एक तपस्विनी तपस्या करती थी, जिसने हनुमान् आदि वानरोंको नाना प्रकारके भोज्य पदार्थ और भाँति भाँतिके पीने योग्य रस दिये थे (वन० २८२ । ४०–४३) । इसके द्वारा त्रिपुरसंज्ञक तीन पुरोंका निर्माण (कर्ण० ३३ । १७)।

मयदर्शनपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २२७ से २३३ तक) ।

मयूर–एक विख्यात महान् असुर, जो इस भूतलपर विश्व नामक राजाके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । ३५-३६) ।

मरीचि–(१) ब्रह्माजीके मानस पुत्र । कश्यपके पिता (आदि० ६५ । १०-११; आदि० ७५ । १०) । इनकी उत्पत्तिका वर्णन (अनु० ८५ । १०७) । ये अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२। ५२)। ये इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १७) । ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १८) । स्कन्दके जन्मकालमें उनके पास गये थे (शल्य० ४५ । १०) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । १०)। इन्हें अङ्गिरासे दण्डकी प्राप्ति हुई । इन्होंने उसे भृगुको दिया था (शान्ति० १२२ । ३७) । ये ब्रह्माजीके प्रथम पुत्र हैं, इन्हें विष्णुने खड्ग दिया और इन्होंने उसे अन्य महर्षियोंको दिया (शान्ति० १६६ ।६६) । ये इक्कीस प्रजापतियोंमेंसे एक हैं (शान्ति०३३४ । ३५) । 'चित्रशिखण्डी' कहे जाननेवाले ऋषियोंमें इनकी भी गणना है (शान्ति० ३३५ । २९) । ये आठ प्रकृतियोंमें गिने गये हैं (शान्ति० ३४० । ३४) । अग्निकी मरीचियों (किरणों) से मरीचिका प्रादुर्भाव हुआ (अनु० ८५ । १०७) । (२) एक स्वर्गीय अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें आकर गान-नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२) ।

मरुत्त–(१) एक सुप्रसिद्ध सम्राट्, जो प्राचीनकालमें इस पृथ्वीके शासक थे (आदि० १ । २२७) । ये यमराजकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १६) । पाँच सम्राटोंमेंसे एक हैं (सभा० १५ । १६) । ये महाराज अविक्षित्के पुत्र थे । बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण इनके भाई संवर्तने इनका यज्ञ कराया था । साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रचुर धन-राशिके रूपमें इन्हें हिमालयका एक सुवर्णमय शिखर प्रदान किया था । प्रतिदिन यज्ञकार्यके अन्तमें इनकी सभामें इन्द्र आदि देवता और बृहस्पति आदि समस्त प्रजापतिगण सभासद्के रूपमें बैठा करते थे । इनके यज्ञमण्डपकी सारी सामग्रियाँ सोनेकी बनी हुई थीं । इनके घरमें मरुद्गण रसोई परोसनेका काम किया करते थे । विश्वेदेव इनकी राजसभाके सभासद् थे । इन्होंने अपनी समस्त प्रजाको नीरोग बना दिया था । इन्होंने देवताओं, ऋषियों और पितरोंको संतुष्ट किया था । ब्राह्मणोंको शय्या, आसन, सवारी और दुस्त्यज स्वर्णराशि-प्रदान की थी । इन्द्र सदा इनका शुभचिन्तन करते थे । इन्होंने युवावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्मपत्नी, पुत्र और भाइयोंके साथ एक हजार वर्षोंतक राज्यशासन किया था (द्रोण० ५५ । ३७–४९) । श्रीकृष्णद्वारा नारद-सृंजय-संवादके रूपमें इनके प्रभाव एवं यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । १९–२४) । इनका दण्डविषयक विधान (शान्ति० ५७ । ७) । इन्हें महाराज मुचुकुन्दसे खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने रैवतको खड्ग प्रदान किया (शान्ति० १६६ । ७७) । इनके द्वारा अङ्गिराको कन्यादान और स्वर्गकी प्राप्ति (शान्ति० २३४ । २८; अनु० १३७ । १६) । ये करन्धमके पौत्र थे । बृहस्पतिजीसे अपना यज्ञ करानेके लिये इनकी प्रार्थना और उनके अस्वीकार करनेपर लज्जित एवं दुखी होकर इनका लौटना (आश्व० ६ । ४––१०) । लौटते समय मार्गमें नारदजीसे भेंट और उन्हें अपने शोकका कारण बताना (आश्व० ६ । १५-१६) । नारदजीके बताये अनुसार संवर्तसे इनकी भेंट और उनके पीछे-पीछे जाना (आश्व० ६ । ३०–३३) । संवर्तके साथ वार्तालाप और उनका साथ न छोड़नेके लिये इनका शपथ खाना (आश्व० ७ । ३––२३) । शिवजीकी कृपासे इन्हें धनकी प्राप्ति (आश्व० ८ । ३२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनका धृतराष्ट्रद्वारा लाये हुए इन्द्रके संदेशका उत्तर देना (आश्व० १० । ६-७) । इन्द्रके भयसे भीत होना (आश्व० १० । १६) । यज्ञ समाप्त करके राजधानीको लौटना (आश्व० १० । ३४-३५) । (२) एक महर्षि, जिन्होंने शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णको मार्गमें परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । ये इन्द्रसभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १७) ।

मरुद्गण–देवताओंका एक गण (शल्य० ४५ । ६)।

मरुद्गणतीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ पवित्रभावसे स्नान करनेवाला मनुष्य तीर्थरूप हो जाता है (अनु० २५ । १८)।

मरुभूमि (मरुधन्व)–मारवाड़ प्रदेश (वर्तमान राजस्थान प्रान्त), जिसे नकुलने पश्चिम-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३२ । ५)। मरुभूमिके शीर्षस्थानमें काम्यकवन है, जहाँ तृणविन्दु सरोवर है (वन० २५८ । १३)। कौरवोंकी सेनाका पड़ाव मरुभूमिमें भी पड़ा था (उद्योग० १९ । ३०)। मरुधन्व या मारवाड़में ही उत्तङ्क मुनि रहते थे, जिनके साथ द्वारका जाते समय श्रीकृष्णकी भेंट हुई थी। श्रीकृष्णने इन्हें विश्वरूपका दर्शन कराया था। उनकी प्यास बुझानेके लिये मरुदेशमें उत्तङ्कमेघ प्रकट होनेका वर प्रदान किया था (आश्व० अध्याय ५३से ५५ तक)।

मर्यादा–(१) एक विदर्भराजकुमारी, जो पूरुवंशी राजा अवाचीनकी पत्नी थी। इसके पुत्रका नाम 'अरिह' था। यह देवातिथिकी पत्नी मर्यादासे भिन्न थी (आदि० ९५ । १८)। (२) विदेहराजकी पुत्री, जो पूरुवंशी महाराज देवातिथिकी पत्नी और अरिहकी माता थी (आदि० ९५ । २३)।

मलज–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५)।

मलद–पूर्व भारतका एक जनपद, जिसे भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । ८)। इस जनपदके योद्धा कौरवपक्षमें थे और दुर्योधनको आगे करके युद्धक्षेत्रमें चल रहे थे (द्रोण० ७ । १५-१६)।

मलय–दक्षिण भारतका एक पर्वत, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३२)। पाण्ड्य और चोल देशोंके राजा मलय तथा दुर्दुर पर्वतोंसे सुवर्णमय घटोंमें रखे हुए चन्दनरस एवं चन्दन लेकर युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (सभा० ५२ । ३३-३४)। सीताकी खोजके लिये दक्षिण जानेवाले वानरोंने मलयपर्वतको पार किया था (वन० २८२ । ४४)। भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमें मलयकी भी गणना है (भीष्म० ९ । ११)। यहाँ मृत्युने तपस्या की थी (द्रोण० ५४ । २६)। त्रिपुरदाहके समय शङ्करजीने मलयको अपने रथका यूप बनाया (द्रोण० २०२ । ७३)। शुकदेवजीकी ऊर्ध्वगतिके समय उनके आकाशमार्गमें एक मलय नामक पर्वत आया था, जहाँ उर्वशी और विप्रचित्ति–ये दो अप्सराएँ नित्य निवास करती हैं। कैलाससे ऊपर उड़नेपर उन्हें यह पर्वत मिला था; अतः इसे दक्षिणके मलयपर्वतसे भिन्न समझना चाहिये (शान्ति० ३३३ । २१)।

मलयध्वज (पाण्ड्य)–पाण्ड्य देशके एक राजा, जो अश्वत्थामाके साथ युद्ध करके मारे गये थे (कर्ण० २० । १९—४७)।

मल्लराष्ट्र–एक प्राचीन गणतन्त्र राज्य; यहाँके अधिपति 'पार्थिव' को भीमसेनने परास्त किया था (वर्तमान कुशीनारा या कुशीनगर (कसया) ही मल्लराष्ट्रकी राजधानी था। बौद्धग्रन्थोंमें इसका विशेष वर्णन मिलता है।) (सभा० ३० । ३; भीष्म० ९ । ४४)। अर्जुनने अज्ञातवासके लिये जिन देशोंको उपयुक्त समझकर चुना था, उनमें मल्लराष्ट्रकी भी गणना है (विराट० १ । १२)।

मशक–शाकद्वीपका एक जनपद, जिसमें सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले क्षत्रिय निवास करते हैं (भीष्म० ११ । ३७-३८)।

मसीर–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५३)।

महत्तर–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पाँच पुत्रोंमेंसे एक, जो काश्यपके अंशसे उत्पन्न हुए थे (वन० २२० । ९)।

महाकर्णि–मगधराज अम्बुवीचका दुष्ट मन्त्री (आदि० २०३ । १९)।

महाकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य०४६।२६)।

महाकाया–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका(शल्य०४६।२४)।

महाकाल–(१) भगवान् शिवके पार्षद, जो कुबेरकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० १० । ३४)। (२) उज्जयिनीमें शिप्राके तटपर स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ 'महाकाल' नामक ज्योतिर्लिङ्ग स्थित है। वहाँ नियमसे रहकर नियमित भोजन करना चाहिये। वहाँके कोटितीर्थमें स्नान-आचमन करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ४९)।

महाकाश–शाकद्वीपका एक वर्ष (भीष्म० ११ । २५)।

महाक्रौञ्च–क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । ७)।

महागङ्गा–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है (अनु० २५ । २२)।

महागौरी–भारतकी एक मुख्य नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३३)।

महाचूडा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य०४६।५)।

महाजय–नागराज वासुकिद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक। दूसरेका नाम 'जय' था (शल्य० ४५ । ५२)।

महाजवा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य०४६।२२)।

महाजानु–एक श्रेष्ठ द्विज, जो प्रमद्वराके सर्पदंशनके समय दयासे द्रवित हो उसे देखनेके लिये आये थे (आदि० ८ । २४)।

धृष्टद्युम्न

महातेजा–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७०)** ।

महादेव–भगवान् शिवका एक नाम (**उद्योग० १८८ । ४)** । (देखिये शिव)

महाद्युति–एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २३२)** ।

महान्–(१) पूरुवंशी राजा मतिनारके पुत्र (**आदि० ९४ । १४)** । (२) प्रजापति भरत नामक अग्निके पुत्र पावक, जो अत्यन्त महनीय (पूज्य) होनेके कारण महान् कहलाते हैं (**वन० २१९ । ८)** ।

महानदी–(१) उत्कल प्रदेश (उड़ीसा) में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी, जहाँ अर्जुन गये थे (**आदि० २१४ । ७)** । महानदीमें स्नान करके जो देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, वह अक्षय लोकोंको प्राप्त होता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (**वन० ८४ । ८४)** । (२) शाकद्वीपकी एक नदी (**भीष्म० ११ । ३२)** ।

महानन्दा–एक तीर्थ, जिसका सेवन करनेवाले पुरुषकी स्वर्गस्थ नन्दनवनमें अप्सराएँ सेवा करती हैं (**अनु० २५ । ४५)** ।

महापगा–भारतकी एक मुख्य नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २८)** ।

महापद्म–घटोत्कचके साथी राक्षसकी सवारीमें आया हुआ गजराज (**भीष्म० ६४ । ५७)** । यह एक दिग्गज है (**द्रोण० १२१ । २५-२६)** ।

महापद्मपुर–गङ्गाके दक्षिण तटपर स्थित एक नगर (**शान्ति० ३५३ । १)** ।

महापारिषदेश्वर–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६६)** ।

महापार्श्व–कैलासपर्वतपर महादेवजीके पूर्वोत्तर भागमें स्थित एक पर्वत (**अनु० १९ । २१)** ।

महापुमान्–मोदाकी वर्षसे आगे एक पर्वत (**भीष्म० ११ । २६)** ।

महापुर–एक तीर्थ, जहाँ स्नानकर तीन राततक पवित्रता-पूर्वक उपवास करनेसे मनुष्य चराचर प्राणियों तथा मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाले भयको त्याग देता है (**अनु० २५ । २६)** ।

महाप्रस्थानिकपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व ।

महाबल–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७१)** ।

महाबला (प्रथम)–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ९)** ।

महाबला (द्वितीय)–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २६)** ।

महाबाहु–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९८)** । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १५७ । १९)** । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें एक (**आदि० ६७ । १०५)** ।

महाभय–अधर्मकी स्त्री निर्ऋतिके गर्भसे उत्पन्न तीन नैर्ऋत नामवाले राक्षसोंमेंसे एक । शेष दोके नाम भय और मृत्यु हैं (**आदि० ६६ । ५४-५५)** ।

महाभिष–इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न एक प्राचीन राजा, जो सत्यवादी और सत्यपराक्रमी थे (**आदि० ९६ । १)** । इन्होंने सहस्र अश्वमेध एवं सौ राजसूय यज्ञोंद्वारा इन्द्रको संतुष्ट करके स्वर्गलोक प्राप्त किया था (**आदि० ९६ । २)** । ब्रह्माजीकी सभामें बैठे हुए महाभिषको गङ्गाके अनावृत शरीरकी ओर देखनेके कारण ब्रह्माजीका शाप प्राप्त हुआ (**आदि० ९६ । ४—७)** । इन्होंने मर्त्य-लोकमें राजा प्रतीपको ही अपना पिता बनानेके योग्य चुना (**आदि० ९६ । ९)** । ये ही प्रतीपके यहाँ 'शान्तनु' रूपमें उत्पन्न हुए (**आदि० ९७ । १७ के बाद दा० पाठ और १९ श्लोकतक)** ।

महाभौम–पूरुवंशी महाराज अरिहके पुत्र । इनके द्वारा सुयज्ञाके गर्भसे अयुतनायीका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । १९-२०)** ।

महामती–महर्षि अङ्गिराकी सातवीं पुत्री (प्रतिपद्युक्त अमावास्या) (**वन० २१८ । ७)** ।

महामुख–जयद्रथकी सेनाका एक योद्धा, जो द्रौपदीहरणके समय युद्धमें नकुलके द्वारा मारा गया (**वन० २७१ । १६-१७)** ।

महायशा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २८)** ।

महारव–एक यदुवंशी क्षत्रिय, जो रैवतक पर्वतपर होनेवाले उत्सवमें सम्मिलित था (**आदि० २१८ । ११)** ।

महारौद्र–घटोत्कचका साथी एक राक्षस, जो दुर्योधनद्वारा मारा गया था (**भीष्म० ९१ । २०-२१)** ।

महालय–एक तीर्थ, जहाँ छठे समयतक उपवासपूर्वक एक मासतक निवास करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो सुवर्ण-राशि पाता तथा आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है (**वन० ८४ । ५४-५५)** ।

महावीर–एक प्राचीन क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६६)** ।

महावेगा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । १६)** ।

महाशिरा–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । १०)** ।

महाशोण–शोणभद्र नामक नद, जिसे पार करके श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन मगधमें पहुँचे थे (सभा० २० । २७) ।

महाश्रम–एक तीर्थ, जो सब पापोंसे छुड़ानेवाला है । जो वहाँ एक समय उपवास करके एक रात निवास करता है, उसे शुभ लोकोंकी प्राप्ति होती है (वन० ८४ । ५३-५४) । यहाँ एक मासतक उपवास करनेपर मनुष्य उतने ही समयमें सिद्ध हो जाता है (अनु० २५ । १७-१८) ।

महाश्व–एक प्राचीन राजा, जो यमकी सभामें रहकर सूर्य-पुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । १९) ।

महासेन–स्कन्दका दूसरा नाम (वन० २२५ । २७; शल्य० ४६ । ६०) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ५२) ।

महास्वना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २६) ।

महाहनु–तक्षककुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १०) ।

महाह्रद–एक उत्तम तीर्थ, जिसमें स्नान करनेवाला मानव कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और प्रचुर सुवर्णराशि प्राप्त कर लेता है (वन० ८४ । १४४-१४५) । जो महाह्रदमें स्नान करके शुद्धचित्त हो एक मासतक निराहार रहता है, उसे जमदग्निके समान सद्गति प्राप्त होती है (अनु० २५ । ४८) ।

महिष या महिषासुर–एक असुर, जिसने देवताओंको परास्त करके रुद्रके रथपर आक्रमण किया था (वन० २३१ । ८८) । स्कन्दद्वारा इसका वध (वन० २३१ । ९६; शल्य० ४६ । ७४) । इसे भगवान् महेश्वरद्वारा वर प्राप्त होनेकी चर्चा (अनु० १४ । २१४) ।

महिषक (माहिषक)–(१) एक दक्षिण भारतीय जनपद (वर्तमान मैसूर राज्य) (भीष्म० ९ । ५९) । माहिषक आदि देशोंके धर्म—आचार-व्यवहार दूषित हैं (कर्ण० ४४ । ४३) । (२) एक जाति, जो पहले क्षत्रिय थी, किंतु ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टि प्राप्त न होनेसे शूद्र हो गयी (अनु० ३३ । २२-२३) । अर्जुनने अश्वमेधीय अश्वकी रक्षा करते समय इन सबको जीता था (आश्व० ८३ । ११) ।

महिषदा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २८) ।

महिषानना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

महिष्मती–महर्षि अङ्गिराकी छठी पुत्री । इसका दूसरा नाम 'अनुमति' भी है (वन० २१८ । ६) ।

मही–एक नदी, जो अग्निकी उत्पत्ति-स्थान बतायी गयी है (वन० २२२ । २३—२६) ।

महेन्द्र–एक पर्वत, यहाँ परशुरामजीका निवास था । क्षत्रिय-संहार करके उन्होंने यहाँ तपस्या की थी (आदि० ६४ । ४; आदि० १२९ । ५३) । पाण्डुपुत्र अर्जुन यहाँ गये थे (आदि० २१४ । १३) । यह कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३०) । इस पर्वतपर जाकर रामतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । १६) । यहाँ पूर्वकालमें ब्रह्माजीने यज्ञ किया था । यह पूर्व दिशामें स्थित है (वन० ८७ । २२—२८) । युधिष्ठिर तीर्थयात्रा करते हुए इस पर्वतपर गये थे (वन० ११४ । ३०) । चतुर्दशी तिथिको परशुरामजीने महेन्द्रपर्वतपर पधारकर युधिष्ठिर आदिको दर्शन दिया था (वन० ११७ । १६) । भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमेंसे एक महेन्द्र पर्वत है (भीष्म० ९ । ११) । सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यपजीको देकर उनकी आज्ञासे परशुरामजी महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे (द्रोण० ७० । २२-२३; वन० ११७ । १४) ।

महेन्द्रा–भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २२) ।

महेश्वर–भगवान् शिवका एक नाम (उद्योग० १११ । ९) ।

महोत्थ–एक पश्चिम भारतीय जनपद, जिसके अधिपति राजर्षि आक्रोशको नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ६) ।

महोदर–(१) कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १६) । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । १९) । (३) एक प्राचीन ऋषि, जिनकी जाँघमें श्रीरामजीद्वारा मारे गये एक राक्षसका मस्तक चिपक गया था, जो औशनस तीर्थमें छूटा । इसी कारण उस तीर्थका नाम 'कपालमोचन' हुआ (शल्य० ३९ । ११—२२) ।

महोदर्य–सायं-प्रातः स्मरण करनेयोग्य एक नरेश (अनु० १६५ । ५२) ।

महौजा–(१) एक क्षत्रिय-नरेश, जो पाँचवें कालेयके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ५२) । इनको पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । २२) । (२) एक क्षत्रियकुल, जिसमें 'वरयु' नामक कुलाङ्गार राजा उत्पन्न हुआ था (उद्योग० ७४ । १५) ।

माकन्दी–राजा द्रुपदका गङ्गातटवर्ती नगर (आदि० १३७ । ७३) ।

मागध–कौरव-पक्षके मगधदेशीय योद्धा (भीष्म० ५१ । १२) ।

माघ–(बारह महीनोंमेंसे एक, जिस मासकी पूर्णिमाको 'मघा' नक्षत्रका योग हो; उसे 'माघ' कहते हैं । यह पौषके बाद और फाल्गुनके पहले आता है ।) माघ मासकी अमावास्याको प्रयागराजमें तीन करोड़ दस हजार अन्य तीर्थोंका समागम होता है । जो माघके महीनेमें प्रयागमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गमें जाता है (अनु० २५ । ३६–३८) । जो माघ मासमें ब्राह्मणको तिल दान करता है, वह कभी नरक नहीं देखता है (अनु० ६६ । ८) । जो माघ मासको नियमपूर्वक एक समय भोजन करके बिताता है, वह धनवान् कुलमें जन्म लेकर अपने कुटुम्बीजनोंमें महत्त्वको प्राप्त होता है (अनु० १०६ । ३१) । माघ मासकी द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके भगवान् माधवकी पूजा करनेसे उपासकको राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है और वह अपने कुलका उद्धार कर देता है (अनु० १०९ । ५) । माघ मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको भीष्मजीने देह-त्यागके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे आज्ञा माँगी (अनु० १६७ । २८—४५) ।

[मा]ठरवन–दक्षिणका एक तीर्थ, जहाँ सूर्यके पार्श्ववर्ती देवता माठरका विजयस्तम्भ सुशोभित होता है (वन० ८८ । १०) ।

[मा]णिवर–एक यक्ष, जो मन्दराचलमें निवास करते हैं (वन० १३९ । ५)

[मा]ण्डव्य–एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि, जो धैर्यवान्, सब धर्मोंके ज्ञाता, सत्यनिष्ठ और तपस्वी थे (आदि० १०६ । २-३) । (विशेष देखिये अणीमाण्डव्य)

[मा]ण्डव्याश्रम–तीर्थस्वरूप एक आश्रम, जहाँ काशिराजकी कन्याने कठोर व्रतका आश्रय लेकर स्नान किया था (उद्योग० १८६ । २८-२९) ।

[मा]तङ्ग–एक मुनि, जिनके वचन प्रमाणरूपमें ग्रहण किये जाते हैं । वे वचन ये हैं—'वीर पुरुषको चाहिये कि वह [स]दा उद्योग ही करे । किसीके सामने नतमस्तक न हो; [क्]योंकि उद्योग करना ही पुरुषका कर्तव्य—पुरुषार्थ है । [व]ीर पुरुष असमयमें नष्ट भले ही हो जाय, परंतु कभी [श]त्रुके सामने सिर न झुकाये !' (उद्योग० १२७ । [१]९-२०) ।

[मात]ङ्गी–क्रोधवशाकी क्रोधजनित कन्या । इसने हाथियोंको [ज]न्म दिया था (आदि० ६६ । ६१, ६६) ।

मातरिश्वा–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १४) ।

मातलि–इन्द्रका सारथि । इसका अर्जुनको स्वर्गलोकमें चलनेके लिये इन्द्रका संदेश सुनाना (वन० ४२ । ११—१४) । इसका अर्जुनको इन्द्रके दिव्य रथपर बिठाकर गन्धमादनपर ले आना और पाण्डवोंको कर्तव्यकी शिक्षा देना (वन० १६५ । १—९) । इन्द्रका रथ लेकर श्रीरामकी सेवामें उपस्थित होना (वन० २९० । १३-१४) । इसका अपनी पुत्री गुणकेशीके निमित्त वर खोजनेके लिये निकलना (उद्योग० ९७ । २०-२१) । मार्गमें नारदजीसे भेंट और उनके साथ पृथ्वीके नीचेके लोकमें जाकर वर खोजना। (उद्योग० अध्याय ९८ से १०३ तक) । नागकुमार सुमुखके साथ अपनी कन्याको ब्याहनेका निश्चय करना (उद्योग० १०३ । २५-२६) । आर्यकसे सुमुखको जामाता बनानेकी बात कहकर इन्द्रके पास चलनेके लिये प्रस्ताव करना (उद्योग० १०४ । १८–२१) । सबके वन्दनीय पुरुषके विषयमें इसका इन्द्रके समक्ष प्रश्न उपस्थित करना (अनु० ९६ । २२ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५७८७) ।

मातृतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे संतति बढ़ती है और वह पुरुष कभी क्षीण न होनेवाली सम्पत्तिका उपभोग करता है (वन० ८३ । ५८) ।

माद्रवती–अभिमन्युपुत्र राजा परीक्षित्की धर्मपत्नी तथा जनमेजयकी माता (आदि० ९५ । ८५) । पाण्डुकी द्वितीय पत्नी तथा नकुल-सहदेवकी माता माद्रीको भी 'माद्रवती' कहा जाता था (आश्व० ५२ । ५६) ।

माद्री–मद्रदेशके राजाकी पुत्री, मद्रराज शल्यकी बहिन, पाण्डुकी द्वितीय पत्नी तथा नकुल-सहदेवकी माता । ये 'धृति' नामक देवीके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७ । १६०) । साध्वी यशस्विनी माद्रीकी प्रशंसा सुनकर भीष्मका शल्यके यहाँ जाकर पाण्डुके लिये इनका वरण करना, शल्यके कुलधर्मके अनुसार कन्याके शुल्करूपमें इन्हें बहुत धन देना, शल्यका अपनी बहिनको अलंकृत करके भीष्मजीके हाथमें सौंप देना और भीष्मजीका माद्रीको साथ लेकर हस्तिनापुरमें आना (आदि० ११२ । १—१७) । शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें पाण्डुद्वारा माद्रीका विधिपूर्वक पाणिग्रहण (आदि० ११२ । १८) । माद्रीका अपने पतिके साथ वनमें निवास (आदि० ११३ । ६) । शापग्रस्त होनेपर संन्यास लेनेका निश्चय करके पाण्डुका कुन्तीसहित माद्रीको हस्तिनापुरमें जानेकी आज्ञा देना । इनका पतिके साथ रहकर वानप्रस्थ-धर्मके

पालनकी इच्छा प्रकट करना, अन्यथा प्राणत्यागका निश्चय बताना (आदि० ११८ । १—३०) । पुत्र-प्राप्तिके हेतु मुझपर भी कुन्तीदेवी अनुग्रह करें—इस प्रकार इनकी पाण्डुसे प्रार्थना (आदि० १२३ । १—६) । अश्विनी-कुमारोंद्वारा इनके गर्भसे नकुल तथा सहदेवका जन्म (आदि० १२३ । १६) । पाण्डुके निधनपर इनका विलाप (आदि० १२४ । १७ के बाद दा० पाठ) । पाण्डुके साथ सती होनेके लिये अपनेको आज्ञा प्रदानके निमित्त इनकी कुन्तीसे प्रार्थना (आदि० १२४ । २५–२८ दा० पाठसहित) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनको आश्वासन तथा सती न होनेके लिये अनुरोध (आदि० १२४ । २८ के बाद) । अपने अन्तिम समय-में इनके द्वारा पाण्डवोंको शिक्षा (आदि० १२४ । २८ के बाद दा० पाठ) । कुन्तीसे आज्ञा लेकर इनका चितारोहण (आदि० १२४ । ३१) । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर आदिद्वारा पाण्डु और माद्रीकी अस्थियोंका राजो-चित ढंगसे दाह-संस्कार तथा भाई-बन्धुओंद्वारा इनके लिये जलाञ्जलि-दान (आदि० १२६ अध्याय) । माद्रीका अपने पतिके साथ महेन्द्रभवनमें निवास (स्वर्गा० ४ । २०; स्वर्गा० ५ । १५) ।

माद्रेयजाङ्गल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ३९) ।

माधव–मौन, ध्यान और योगसे श्रीकृष्णका बोध अथवा साक्षात्कार होता है, इसलिये उन्हें 'माधव' कहते हैं (उद्योग० ७० । ४) ।

माधवी–(१) राजा ययातिकी पुत्री, जो तपस्विनी और मृगचर्मसमावृत होकर मृगव्रतका पालन कर रही थी । इसका अष्टक आदि पुत्रोंको ययातिका परिचय देना, अपने पुण्योंद्वारा स्वर्ग जानेके लिये इसका ययातिको आश्वासन (आदि० ९३ । १३ के बाद, पृष्ठ २८२) । ययातिका गालवको अपनी कन्या माधवी सौंपना (उद्योग० ११५ । १२) । माधवीका गालवसे अपने मनकी बात कहना (उद्योग० ११६ । १०–१३) । इसके गर्भसे अयोध्यानरेश हर्यश्वद्वारा वसुमान् (वसुमना) की उत्पत्ति (उद्योग० ११६ । १६) । काशिराज दिवोदासके द्वारा इसके गर्भसे प्रतर्दनका जन्म (उद्योग० ११७ । १८) । उशीनरके द्वारा शिबि नामक पुत्रकी उत्पत्ति (उद्योग० ११८ । २०) । विश्वामित्रके द्वारा इसके गर्भसे अष्टकका जन्म (उद्योग० ११९ । १८) । इसके स्वयंवरका वर्णन (उद्योग० १२० । १—५) । इसका स्वयंवरमें तपो-वनका वरण करके मृगीरूपसे तप करना (उद्योग० १२० । ५—११) । स्वर्गलोकसे गिरे हुए पिता ययातिके लिये इसका अपने तपके आधे पुण्यको देनेके लिये उद्यत होना (उद्योग० १२० । २५) । (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

मानवर्जक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५०) ।

मानवी–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३२) ।

मानस–(१) वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (आदि० ५७ । ५) । (२) धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें भस्म हो गया (आदि० ५७ । १६) । (३) हिमालयपर स्थित एक प्राचीन सरोवर, जहाँ उत्तर-दिग्विजयके अवसरपर अर्जुन पधारे थे (सभा० २८ । ४) । मानससरोवरके आस-पास निवास करनेवाले साधकको युगके अन्तमें पार्षदों तथा पार्वतीसहित इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भगवान् शङ्करका प्रत्यक्ष दर्शन होता है । इस सरोवरके तटपर चैत्र मासमें कल्याण-कामी याजक अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा परिवारसहित पिनाकधारी भगवान् शिवकी आराधना करते हैं । इस सरोवरमें श्रद्धापूर्वक स्नान और आचमन करके पाप-मुक्त हुआ जितेन्द्रिय पुरुष शुभ लोकोंमें जाता है । इस सरोवरका दूसरा नाम उज्जानक है । यहाँ भगवान् स्कन्द तथा अरुन्धतीसहित महर्षि वसिष्ठने साधना करके सिद्धि और शान्ति प्राप्त की है (वन० १३० । १४–१७) । यहाँके हंसरूपधारी महर्षि शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजी-को देखनेके लिये आये थे (भीष्म० ११९ । ९८-९९) । यह सरोवर एक पवित्र तीर्थ है (शान्ति० १५२ । १२-१३) । उपश्रुति देवीने शचीको इसी सरोवरपर कमलनालमें छिपे हुए इन्द्रका दर्शन कराया था । देवताओंने वसिष्ठजीकी शरण ले इस सरोवरके तटपर किसी समय यज्ञ आरम्भ किया था (अनु० १५५ । १६) ।

मानसद्वार–मानसरोवरके पासका एक पर्वत, जो उसका द्वार माना जाता है । इसके मध्यभागमें परशुरामजीने अपना आश्रम बनाया था (वन० १३० । १२) ।

मानुषतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ व्याधोंके बाणोंसे घायल हुए मृग उस सरोवरमें गोते लगाकर मानव-शरीर पा गये थे; इसीलिये उसका नाम मानुषतीर्थ हुआ । वहाँ ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एकाग्र-चित्त हो स्नान करनेवाला मानव पापमुक्त हो स्वर्ग-लोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । ६५-६६) ।

मान्धाता–इक्ष्वाकुवंशीय महाराज युवनाश्वके पुत्र (वन० ९२ । ४१) । युवनाश्वके पेटसे इनका जन्म (वन० १२६ । २७-२८) । 'मान्धाता' नाम पड़नेका कारण

(वन० १२६ । ३०-३१) । इनके चरित्रका वर्णन (वन० १२६ । ३५—४४) । ये उन राजाओंमेंसे थे, जिन्होंने वैष्णव-यज्ञ करके उत्तम लोक प्राप्त कर लिये थे (वन० २५७।५-६) । सृञ्जयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनकी महत्ताका वर्णन (द्रोण० ६२ अध्याय) । श्रीकृष्ण-द्वारा इनके यज्ञ और प्रभावका वर्णन (शान्ति० २९ । ८१—९३) । राजधर्मके विषयमें इन्द्ररूपधारी विष्णुके साथ संवाद (शान्ति० ६४ । १६—३०; शान्ति० ६५ अध्याय) । अङ्गिरापुत्र उतथ्यका इन्हें राजधर्मके विषयमें उपदेश (शान्ति० अध्याय ९० से ९१ तक) । इनका अङ्गनरेश वसुहोमसे दण्डकी उत्पत्ति आदिका प्रसंग पूछना (शान्ति० १२२ । ११-१३) । इन्होंने एक ही दिनमें सारी पृथ्वी जीत ली थी (शान्ति० १२४ । १६) । इनके द्वारा इन्द्रका अतिक्रमण (शान्ति० ३५५ । ३) । बृह-स्पतिजीसे गोदानके विषयमें प्रश्न करना (अनु० ७६ । ४) । ये सदा लाखों गोदान करते थे (अनु० ८१ । ५-६) । इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६१) ।

मारिष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०) ।

मारिषा–(१) दस प्रचेताओंकी पत्नी, प्राचेतस दक्षकी माता (आदि० ७५ । ५) । (२) भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३६) ।

मारीच–एक राक्षस (जो ताटका राक्षसीका पुत्र और सुबाहुका भाई था) । विश्वामित्रके यज्ञमें विघ्न डालनेके कारण इसका भाई सुबाहु श्रीरामके हाथों मारा गया और मारीचको भी गहरी चोट खानी पड़ी (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९४) । यह कपट-मृग बनकर सीताजीका हरण करानेमें कारण हुआ (वन० १४७ । ३४) । इसका रावणको समझाना (वन० २७८ । ६-७) । रावणकी सहायता करना स्वीकार करके अपना श्राद्ध-तर्पण करनेके पश्चात् मृगरूप धारण करके इसका सीताको लुभाना (वन० २७८ । १०) । श्रीरामके अमोघ बाणसे इसकी मृत्यु, मरते समय इसका रामके समान स्वरमें आर्तनाद करके प्राण त्यागना (वन० २७८ । ११—२३) ।

मारुत–एक दक्षिण भारतीय जनपद, धृष्टद्युम्नद्वारा निर्मित क्रौञ्चारुणव्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर यहाँके योद्धा खड़े थे (भीष्म० ५० । ५१) ।

मारुतन्तव्य–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

मारुतस्कन्ध–देवताओंका एक व्यूह, जिसकी रक्षाका भार स्कन्दने लिया था (वन० २३१ । ५५) ।

मारुताशन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२) ।

मारुध–एक राजधानी अथवा राजा, जिसे दक्षिण-दिग्विजय-के समय सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । १४) ।

मार्कण्डेय–(१) एक सुप्रसिद्ध महामुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १५) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २२) । इनके द्वारा पाण्डवोंको धर्मका आदेश (वन० २५ । ८—१८) । इन्होंने पयोष्णीके तटपर उसकी महिमा तथा राजा नृगकी महत्ताके विषयमें गाथा गायी थी (वन० ८८ । ५-७) । इनके द्वारा कर्मफल-भोगका विवेचन (वन० १८३ । ६१—९५) । इनका युधिष्ठिरके प्रश्नोंके अनुसार महर्षियों तथा राजर्षियोंके जीवन-सम्बन्धी विविध उपदेशपूर्ण कथाएँ सुनाना (वन० अध्याय १८६ से २३२ तक) । मार्कण्डेयजीने हजार-हजार युगोंके अन्तमें होनेवाले अनेक महाप्रलयोंके दृश्य देखे हैं । संसारमें इनके समान बड़ी आयुवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है । महात्मा ब्रह्माजीको छोड़कर दूसरा कोई इनके समान दीर्घायु नहीं है । जब यह संसार देवता, दानव तथा अन्तरिक्ष आदिसे शून्य हो जाता है, उस प्रलय-कालमें केवल ये ही ब्रह्माजीके पास रहकर उनकी उपासना करते हैं । प्रलयकाल व्यतीत होनेपर ब्रह्माजीके द्वारा रची गयी जीव-सृष्टिको सबसे पहले ये ही अच्छी तरह देख पाते हैं । इन्होंने तत्परतापूर्वक चित्तवृत्तियोंका निरोध करके सर्व-लोकपितामह साक्षात् लोकगुरु ब्रह्माजीकी आराधना की है और घोर तपस्याद्वारा मरीचि आदि प्रजापतियोंको भी जीत लिया है । ये भगवान् नारायणके समीप रहनेवाले भक्तोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं । परलोकमें इनकी महिमाका सर्वत्र गान होता है । इन्होंने सर्वव्यापक परब्रह्मकी उपलब्धिके स्थानभूत हृदयकमलकी कर्णिकाका यौगिक कलासे अलौकिक उद्घाटन-कर वैराग्य और अभ्याससे प्राप्त हुई दिव्य दृष्टिद्वारा विश्व-रचयिता भगवान्‌का अनेक बार साक्षात्कार किया है । इस-लिये सबको मारनेवाली मृत्यु तथा शरीरको जर्जर बना देने-वाली जरा इनका स्पर्श नहीं करती (वन० १८८ । २—११) । इनके द्वारा बालमुकुन्दका दर्शन (वन० १८८ । ९२) । इनका बालमुकुन्दके उदरमें प्रवेश और उसमें ब्रह्माण्ड-दर्शन (वन० १८८ । १००—१२५) । उदरसे बाहर निकलनेपर बालमुकुन्दके साथ इनका वार्तालाप (वन० १८८ । १३० से १८९ । ४९ तक) । इनके द्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका प्रतिपादन (वन० १८९ । ५३-५७) । इनके द्वारा कलियुगके समयके बर्तावका

वर्णन (वन० १९० । ७—९२) । कल्कि-अवतारका वर्णन (वन० १९० । ९३—९७) । इनका युधिष्ठिरको धर्मोपदेश (वन० १९१ । २३—३०) । इनके द्वारा युधिष्ठिरको विविध धार्मिक विषयोंका उपदेश (वन० २०० अध्याय) । स्कन्दके नामोंका वर्णन तथा स्तवन (वन० २३२ अध्याय) । इनका युधिष्ठिर आदिको श्रीरामका उपाख्यान तथा सती सावित्रीका चरित्र सुनाना (वन० अध्याय २७३ से २९९ तक) । इन्होंने धृतराष्ट्रको त्रिपुर-वधकी कथा सुनायी थी (कर्ण० ३३ । २) । शरशय्या-पर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये अन्य ऋषियोंके साथ ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ११) । इन्हें नाचिकेतसे शिवसहस्रनामका उपदेश मिला और इन्होंने उपमन्युको इसका उपदेश दिया (अनु० १७ । ७९) । इनका नारदजीसे नाना प्रकारके प्रश्न करना (अनु० २२ । दाक्षिणात्य पाठ) । प्रयाणकालके समय भीष्मजीके पास गये हुए ऋषियोंमें ये भी थे (अनु० २६ । ६) । इन्होंने मांस-भक्षणके दोष बताये हैं (अनु० ११५ । ३७—३९) । इनकी धर्मपत्नीका नाम धूमोर्णा था (अनु० १४६ । ४) । युधिष्ठिरने महाप्रस्थानसे पूर्व अन्य ऋषियों-के साथ मार्कण्डेयजीका भी भगवद्बुद्धिसे पूजन किया था (महाप्रस्थान० १ । १२) ।

महाभारतमें आये हुए मार्कण्डेयजीके नाम—भार्गव, भार्गवसत्तम, भृगुकुलशार्दूल, भृगुनन्दन, ब्रह्मर्षि, विप्रर्षि आदि।

(२) एक प्रसिद्ध तीर्थ, जो गङ्गा और गोमतीके संगमपर है (यह स्थान वाराणसीसे लगभग सोलह मील उत्तर है ।) इसमें जाकर मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । ८०-८१) ।

मार्कण्डेयसमास्यापर्व—वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १८२ से २३२ तक) ।

मार्गणप्रिया—कश्यपकी प्राधा नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई पुत्री (आदि० ६५ । ४५) ।

मार्गशीर्ष—(बारह महीनोंमेंसे एक, जिस मासकी पूर्णिमा तिथिको मृगशिरा नक्षत्रका योग हो, उसे मार्गशीर्ष कहते हैं । यह कार्तिकके बाद और पौषके पहले आता है ।) जो मार्गशीर्षमासमें एक समय भोजन करके बिताता है और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह रोग और पापोंसे मुक्त हो जाता है (अनु० १०६ । १७-१८) । मार्गशीर्ष मासमें द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके भगवान् केशवकी पूजा-अर्चा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पा लेता है और उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है (अनु० १०९ । ३) ।

मार्तिकावत—एक देश, जहाँका राजा शाल्व था (वन० १४ । १६; वन० २० । १५) । परशुरामजीने इस देशके क्षत्रियोंका संहार किया था (द्रोण० ७० । १२) । अर्जुनने कृतवर्माके पुत्रको मार्तिकावत नगरका राजा बनाया था (मौसल० ७ । ६९) ।

मार्दमर्षि—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५७) ।

माल—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ३९) ।

मालतिका—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ४) ।

मालय—गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १४) ।

मालव—(१) पश्चिम भारतका एक जनपद, जिसे नकुलने पराजित किया था (सभा० ३२ । ७) । यहाँके राजा तथा निवासी युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । ११) । मालवदेशके शस्त्रधारी क्षत्रियराजकुमारोंने अजातशत्रु युधिष्ठिरको बहुत धन भेंट किया था (सभा० ५२ । १५) । कर्णने इस देशपर विजय पायी थी (वन० २५४ । २०) । यह भारतवर्षका एक प्रमुख जनपद है (भीष्म० ९ । ६०, ६२) । मालवगणोंने भीष्मकी आज्ञाके अनुसार किरीटधारी अर्जुनका सामना किया था (भीष्म० ५९ । ७६) । भगवान् श्रीकृष्णने इस देशके योद्धाओंको जीता था (द्रोण० ११ । १७) । अर्जुनने मालवयोद्धाओंको अपने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी थी (द्रोण० १९ । १६) । परशुरामजीने मालव देशके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया था (द्रोण० ७० । ११-१३) । राजा युधिष्ठिरने युद्धमें क्रुद्ध हो मालवसैनिकोंको यमलोक भेज दिया (द्रोण० १५७ । २८) । (२) राजा अश्वपतिद्वारा मालवीके गर्भसे उत्पन्न एक क्षत्रिय जाति (वन० २९७ । ५९-६०) ।

मालवा—एक नदी, जो नित्य स्मरणीय है (अनु० १६५ । २५) ।

मालवी—मद्रनरेश महाराज अश्वपतिकी बड़ी रानी और सावित्रीकी माता; जिनके गर्भसे सौ 'मालव' संज्ञक पुत्रोंके उत्पन्न होनेका वरदान प्राप्त हुआ था (वन० २९७ । ५९-६०) । मद्रपतिकी रानी मालवीसे सावित्रीके सौ बलवान् भाई उत्पन्न हुए (वन० २९९ । १३) ।

मालिनी—(१) कण्व मुनिके आश्रमके समीप बहनेवाली एक नदी (किसी-किसीके मतमें सहारनपुर जिलेकी चूका नदी ही प्राचीन मालिनी है, कुछ विद्वान् हिमालय-पर इसकी स्थिति मानते हैं), इसके दोनों तटोंपर कण्व

मुनिका आश्रम फैला हुआ था और यह बीचमें बहती थी (आदि० ७० । २१) । इसीके तटपर शकुन्तलाका जन्म हुआ था (आदि० ७२ । १०) । (२) शिशु-की माता, सप्त शिशुमातृकाओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) । (३) एक राक्षस-कन्या, जो कुबेरकी आज्ञासे महर्षि विश्रवाकी परिचर्यामें तत्पर रहती थी । विश्रवाने इसके गर्भसे विभीषण नामक पुत्रको जन्म दिया था (वन० २७५ । ३—८) । (४) अङ्गदेशकी एक समृद्धिशालिनी नगरी, जो जरासंधद्वारा कर्णको दी गयी थी (शान्ति० ५ । ६) ।

माल्यपिण्डक—एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १३) ।

माल्यवान्—(१) एक पर्वत, जो इलावृतवर्षमें मेरु और मन्दराचलके बीच शैलोदा नदीके दोनों तटोंके निवासियों-को जीतकर आगे बढ़नेपर अर्जुनको मिला था (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४८) । नीलगिरिके दक्षिण और निषधके उत्तर सुदर्शन नामक एक जामुनका वृक्ष है । जिसके कारण समूचे द्वीपको जम्बूद्वीप कहा जाता है, वहीं माल्यवान् पर्वत है । जम्बूफलके रससे जम्बू नदी बहती है । वह माल्यवान्के शिखरपर पूर्वकी ओर प्रवाहित होती है । माल्यवान् पर्वतपर संवर्तक और कालाग्नि नामक अग्निदेव सदा प्रज्वलित रहते हैं । इस पर्वतका विस्तार पाँच-छः हजार योजन है । वहाँ सुवर्णके समान कान्तिमान् मानव उत्पन्न होते हैं (भीष्म० ७ । २७—२९) । (२) हिमाचल प्रदेशका एक पर्वत, आर्ष्टिषेणके आश्रमसे गन्धमादनकी ओर आगे बढ़नेसे मार्गमें पाण्डवों-को माल्यवान् पर्वत मिला था, जहाँसे गन्धमादन दिखायी देता था (वन० १५८ । ३६-३७) । (३) किष्किन्धा-क्षेत्रके अन्तर्गत एक पर्वत, जिसके समीप सुग्रीव और वालीका युद्ध हुआ था (वन० २८० । २६) । (यह तुङ्गभद्राके तटपर स्थित है ।) इसके सुन्दर शिखरपर श्रीरामचन्द्रजीने वर्षाके चार मासतक निवास किया (वन० २८० । ४०) ।

मावेल्ल-सम्राट् उपरिचर वसुके चतुर्थ पुत्र (आदि० ६३ । ३०-३१) । महाबली मावेल्ल युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १३-१४) ।

मावेल्लक—एक जनपद, जहाँके योद्धाओंको साथ लेकर त्रिगर्तराज सुशर्मा अर्जुनसे लड़नेके लिये चला था (द्रोण० १७ । २०) । अर्जुनद्वारा मावेल्लक योद्धाओं-का संहार (द्रोण० १९ । १६—३६) । द्रोणाचार्यको आगे करके मावेल्लकोंका अर्जुनपर आक्रमण (द्रोण० ९१ । ३८—४४) । अर्जुनद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । ४८-४९) ।

मासव्रतोपवास-फल—जो आश्विन मासको एक समय भोजन करके बिताता है, वह पवित्र, नाना प्रकारके वाहनोंसे सम्पन्न तथा अनेक पुत्रोंसे युक्त होता है (अनु० १०६ । २९) । आश्विन मासकी द्वादशी तिथि-को दिन-रात उपवास करके पद्मनाभ नामसे भगवान्की पूजा करनेवाला पुरुष सहस्र गोदानका पुण्यफल पाता है (अनु० १०९ । १३) । जो मनुष्य कार्तिक मासमें एक समय भोजन करता है, वह शूरवीर, अनेक भार्याओंसे संयुक्त और कीर्तिमान् होता है (अनु० १०६ । ३०) । कार्तिक मासकी द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके भगवान् दामोदरकी पूजा करनेसे स्त्री हो या पुरुष, गो-यज्ञका फल पाता है (अनु० १०९ । १४) । जो नियमपूर्वक रहकर चैत्र मासको एक समय भोजन करके बिताता है, वह सुवर्ण, मणि और मोतियोंसे सम्पन्न महान् कुलमें जन्म पाता है (अनु० १०६ । २३) । जो चैत्र मासकी द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके विष्णु नामसे भगवान्की पूजा करता है, वह मनुष्य पुण्डरीक-यज्ञका फल पाता और देवलोकमें जाता है (अनु० १०९ । ७) । जो ज्येष्ठ मासमें एक ही समय भोजन करता है, वह अनुपम श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्राप्त करता है (अनु० १०६ । २५) । जो मानव ज्येष्ठ मासकी द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके भगवान् त्रिविक्रमकी पूजा करता है, वह गोमेधयज्ञका फल पाता और अप्सराओंके साथ आनन्द भोगता है (अनु० १०९ । ९) । (शेष महीनोंके फल उन-उनके नामके प्रकरणमें देखें ।)

माहिक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४६) ।

माहिष्मती—एक प्राचीन नगरी, जो राजा नीलकी राजधानी थी । दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने इस नगरीपर आक्रमण करके राजा नीलको परास्त किया और उनपर कर लगाया (सभा० ३१ । २१—६०) । यह नगरी इक्ष्वाकुके दसवें पुत्र दशाश्वकी भी राजधानी रह चुकी है (अनु० २ । ६) । माहिष्मती नगरीमें सहस्र भुजधारी परम कान्तिमान् कार्तवीर्य अर्जुन नामवाला एक हैहयवंशी राजा समस्त भूमण्डलका शासन करता था (अनु० १५२ । ३) ।

माहेय—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९) ।

माहेश्वरपद—यह सोमपद नामक तीर्थका एक अवान्तर तीर्थ है । इसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ११९) ।

माहेश्वरपुर—एक तीर्थ, जिसमें जाकर भगवान् शङ्करकी पूजा और उपवास करनेसे मानव सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है (वन० ८४ । १२९) ।

माहेश्वरीधारा–एक तीर्थ, इसकी यात्रा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और कुलका उद्धार हो जाता है (वन० ८४ । ११७) ।

मित्र–बारह आदित्योंमेंसे एक । इनकी माताका नाम अदिति और पिताका कश्यप था (आदि० ६५ । १५) । ये अन्य आदित्योंके साथ पाण्डुनन्दन अर्जुनके जन्म-कालमें उनका महत्त्व बढ़ाते हुए आकाशमें खड़े थे (आदि० १२२ । ६६-६७) । खाण्डववन-दाहके समय इन्द्रकी ओरसे श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये ये भी पधारे थे और जिसके किनारोंपर छुरे लगे हुए थे, ऐसा चक्र लेकर खड़े थे (आदि० २२६ । ३६) । मित्र देवता देवराज इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । २१) । इन्होंने स्कन्दको सुव्रत और सत्यसंध नामक दो पार्षद प्रदान किये (शल्य० ४५ । ४१-४२) ।

मित्रज्ञ–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र । पाँच देवविनायकोंमेंसे एक (वन० २२० । १२) ।

मित्रदेव–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (कर्ण० २७ । ३—२५) ।

मित्रधर्मा–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र । पाँच देवविनायकोंमेंसे एक (वन० २२० । १२) ।

मित्रवर्धन–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र । पाँच देवविनायकोंमेंसे एक (वन० २२० । १२) ।

मित्रवर्मा–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (कर्ण० २७ । ३—२३) ।

मित्रवान्–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र । पाँच देवविनायकोंमेंसे एक (वन० २२० । १२) ।

मित्रविन्द–एक देवता; रथन्तर नामक अग्निको दी हुई हवि इनका ही भाग है (वन० २२० । १९) ।

मित्रविन्दा–(अवन्ती-नरेशकी पुत्री तथा विन्द-अनुविन्दकी बहिन) भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियोंमेंसे एक । द्वारकामें इनका महल वैदूर्यमणिके समान कान्तिमान् एवं हरे रंगका था । उसे देखकर यही अनुभव होता था कि ये साक्षात् श्रीहरि ही सुशोभित होते हैं । उस प्रासादकी देवगण भी सराहना करते थे । श्रीकृष्णमहिषी मित्रविन्दाका वह महल अन्य सब महलोंका आभूषण-सा जान पड़ता था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५) ।

मित्रसह–(देखिये कल्मापपाद) ।

मित्रा–उमादेवीकी अनुगामिनी सखी (वन० २३१ । ४८) ।

मित्रावरुण–सदा साथ रहनेवाले मित्र और वरुण देवता (शल्य० ५४ । १४) । (महर्षि अगस्त्य और ये दोनों मित्रावरुणके पुत्र हैं ।)

मिथिला–पूर्वोत्तर भारतका एक प्राचीन जनपद, जहाँ विदेहवंशी क्षत्रियोंका राज्य था । राजा पाण्डुने इस देशपर आक्रमण करके यहाँके क्षत्रिय वीरोंको परास्त किया था (आदि० ११२ । २८) । (आधुनिक तिरहुतका ही प्राचीन नाम मिथिला एवं विदेह है । मिथिला शब्द उस जनपदकी राजधानीके लिये भी प्रयुक्त हुआ है; वेदोंके ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंमें भी मिथिला एवं विदेहका सादर उल्लेख हुआ है ।) श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन––इन्द्रप्रस्थसे मगधको जाते समय मिथिलामें भी गये थे (सभा० २० । २८) । मिथिलामें ही सुविख्यात, माता-पिताके भक्त धर्मव्याध रहते थे; जिनके पास कौशिक ब्राह्मणको कर्तव्यकी शिक्षा लेनेके लिये एक सतीने भेजा था (वन० २०६ । ४४ से वन० २१६ । ३२ तक) । कर्णने दिग्विजयके समय मिथिलाको जीता था (वन० २५४ । ८) । जगज्जननी सीता मिथिला या विदेह देशके राजा जनककी पुत्री थीं । उन्हें विधाताने भगवान् श्रीरामकी प्यारी पत्नी होनेके लिये रचा था (वन० २७४ । ९) । मिथिलाकी कन्या होनेके कारण ही यशस्विनी सीता 'मैथिली' कहलाती थीं (वन० २७७ । २) । प्राचीन कालमें मिथिलापुरीके एक राजा धर्मध्वज नामसे प्रसिद्ध थे । उनके ब्रह्मज्ञानकी चर्चा सुनकर संन्यासिनी सुलभाके मनमें उनके दर्शनकी इच्छा हुई । उसने प्रचुर जन-समुदायसे भरी हुई रमणीय मिथिलामें पहुँचकर भिक्षा लेनेके बहाने मिथिला-नरेशका दर्शन किया था (शान्ति० ३२० । ४—१२) । पिताकी आज्ञासे शुकदेवजी मिथिलाके राजा जनकसे धर्मकी निष्ठा और मोक्षका परम आश्रय पूछनेके लिये मिथिलापुरीको गये थे (शान्ति० ३२५ । ६-७) ।

मिञ्जिकामिञ्जिक–शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न एक जोड़ा (वन० २३१ । १०) ।

मिश्रक–(१) अश्वोंका एक दल (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०३) । (२) द्वारकापुरीकी शोभा बढ़ानेवाला एक दिव्य वन (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१२, कालम २) । (३) कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक उत्तम तीर्थ, जिसमें किया हुआ स्नान सभी तीर्थोंमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला है (वन० ८३ । ९१-९२) ।

मिश्रकेशी–एक अप्सरा, जो कश्यपकी प्राधा नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ४९) । इसके गर्भसे पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा अन्वग्भानु आदि दस महाधनुर्धरोंकी उत्पत्ति हुई थी (आदि० ९४ । ८) । इसने अर्जुनके स्वागतमें नृत्य किया था (वन० ४३ । २९) ।

मिश्री—एक नाग, जो बलरामजीके परमधामगमनके समय उनके स्वागतार्थ प्रभासक्षेत्रमें आया था (मौसल० ४ । १५-१६) ।

मुकुट—एक क्षत्रिय-वंश, जिसमें 'विगाहन' नामक कुलाङ्गार नरेश हुआ था (उद्योग० ७४ । १६) ।

मुकुटा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

मुखकर्णी—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २९) ।

मुखमण्डिका—शिशुग्रहस्वरूपा दितिका नाम (वन० २३० । ३०) ।

मुखर—एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १६) ।

मुखसेचक—धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १६) ।

मुचुकुन्द—एक प्राचीन राजर्षि, जो यमकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१) । पूर्वकालमें धनाध्यक्ष कुबेर राजर्षि मुचुकुन्दपर प्रसन्न होकर उन्हें सारी पृथ्वी दे रहे थे; परंतु इन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया । वे बोले—'मेरी इच्छा है कि मैं अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करूँ ।' इससे कुबेर बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए । तदनन्तर क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले मुचुकुन्दने अपने बाहुबलसे प्राप्त की हुई इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया (उद्योग० १३२ । ९–११) । एक बार मुचुकुन्दने अपने बलको जाननेके लिये अलकापति कुबेरपर आक्रमण किया । कुबेरके भेजे हुए राक्षसोंने इनकी सेनाको कुचलना आरम्भ किया । तब इन्होंने पुरोहितका ध्यान आकृष्ट किया । वसिष्ठजीने तपोबलसे राक्षसोंका संहार कर डाला । इसपर कुबेरके साथ इनका वाद-विवाद हुआ । कुबेरने इन्हें राज्य देना चाहा, पर इन्होंने नहीं लिया । अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका ही उपभोग किया (शान्ति० ७४ । ४—२०) । परशुरामजीसे शरणागत-रक्षाके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० १४३ । ७) । राजा काम्बोजसे इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने मरुत्तको दिया (शान्ति० १६६ । ७७) । गोदान-महिमाके विषयमें इनका नाम-निर्देश (अनु० ७६ । २५) । इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६१) । सायं-प्रातःस्मरणीय राजाओंमें भी इनका नाम आया है (अनु० १६५ । ५४—६०) ।

मुञ्ज—एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरका विशेष आदर करते थे (वन० २६ । २१) ।

मुञ्जकेतु—एक नरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठते थे (सभा० ४ । २१) ।

मुञ्जकेश—एक क्षत्रिय राजा, जो निचन्द्र नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २५-२६) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १४) ।

मुञ्जपृष्ठ—हिमालयके शिखरपर एक रुद्रसेवित स्थान (शान्ति० १२२ । ४) ।

मुञ्जवट—(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक स्थाणुतीर्थ, जहाँ एक रात रहनेसे मानव गणपति-पद प्राप्त करता है (वन० ८३ । २२) । (२) गङ्गातटवर्ती महादेवजीका एक परम उत्तम तीर्थ, जहाँ महादेवजीको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा करनेसे गणपति-पदकी प्राप्ति होती है; वहाँ गङ्गाजीमें स्नान करनेसे समस्त पापोंसे छुटकारा मिल जाता है (वन० ८५ । ६७-६८) ।

मुञ्जवान्—हिमालयके पृष्ठभागमें स्थित एक पर्वत, जहाँ उमावल्लभ भगवान् शङ्कर सदा तपस्या किया करते हैं । इसका विशेष वर्णन (आश्व० ८ । १—१२) ।

मुञ्जावट—हिमालयके शिखरका एक स्थान, जहाँ परशुरामजीने ऋषियोंको अपनी जटा बाँधनेका आदेश दिया था (शान्ति० १२२ । ३) ।

मुण्ड—कौरवदलके मुण्डदेशीय योद्धा (भीष्म० ५६ । ९) ।

मुण्डवेदाङ्ग—धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (आदि० ५७ । १७) ।

मुण्डी—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

मुदावर्त—हैहयवंशमें उत्पन्न एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १३) ।

मुदिता—सह नामक अग्निकी भार्या (वन० २२२ । १) ।

मुद्गर—तक्षककुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (आदि० ५७ । १०) ।

मुद्गरपर्णक—एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १३) ।

मुद्गरपिण्डक—कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ९) ।

मुद्गल (मौद्गल्य)—(१) वेद-विद्याके पारङ्गत एक ब्राह्मण मुनि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य बनाये गये थे (आदि० ५३ । ९) । ये कुरुक्षेत्रमें शिलोञ्छ-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते थे (वन० २६० । ३) । इनके द्वारा दुर्वासाका स्वागत (वन० २६० । १४—२२) । इनका देवदूतोंसे संवाद तथा स्वर्गमें जानेसे इनकार करना (वन० २६० । ३२ से वन० २६१ ।

४४ तक)। इनका दूसरा नाम मौद्गल्य भी था (वन० २६१ । २४)। ये मौद्गल्य मुनि शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखने गये थे (शान्ति० ४७ । ९)। इन्हें शतद्युम्नसे सुवर्णमय भवनकी प्राप्ति (शान्ति० २३४ । ३२; अनु० १३७ । २१)। (२) एक देश, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १६–१८)।

मुनि–(१) दक्ष प्रजापतिकी कन्या एवं कश्यपकी पत्नी (आदि० ६५ । १२) । इनके देवगन्धर्व जातिवाले भीमसेन आदि सोलह पुत्र थे (आदि० ६५ । ४२—४४)। (२) अहर (अहः) नामक वसुके एक पुत्र (आदि० ६६ । २३)। (३) पूरुवंशी महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमेंसे एक। शेष चार अश्ववान्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ और जनमेजय थे। (आदि० ९४ । ५०)।

मुनिदेश–क्रौञ्चद्वीपवर्ती अन्धकारकके बादका एक देश (भीष्म० १२ । २२)।

मुनिवीर्य–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१)।

मुमुचु–दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले एक ऋषि (अनु० १६५ । ३९)।

मुर (मुरु)–(१) एक प्राचीन देश, जिसपर राजा भगदत्तका शासन था (सभा० १४ । १४)। (२) एक महान् असुर, जो प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भौमासुरके राज्यकी सीमाका पालन करनेवाले चार प्रधान असुरोंमेंसे एक था। इसके एक हजार पुत्र थे; जिनमें दस पुत्र भौमासुरके अन्तःपुरके रक्षक थे। इस असुरने तपस्या करके इच्छानुसार वरदान प्राप्त किया था। इसने भौमासुरके राज्यकी सीमापर छः हजार पाश लगा रखे थे, जो मौरवपाशके नामसे विख्यात थे। उनके किनारेके भागोंमें छुरे लगे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णने उन पाशोंको सुदर्शनचक्रद्वारा काटकर मुरुको उसके वंशजोंसहित मार डाला (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०५–८०७)।

मुर्मुरा–एक नदी, जो अग्निकी उत्पत्तिका स्थान बतायी गयी है (वन० २२२ । २५)।

मुष्टिक–एक असुर, जो कंसका भृत्य था। बलरामजीद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०१)।

मुसल–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५३)।

मूक–(१) तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा (आदि० ५७ । ९)। (२) एक दानव, जो सूअरका रूप धारण करके अर्जुनको मारनेकी घातमें लगा था (वन० ३८ । ७)। अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० ३९ । १६)।

मूल–(सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक) जो मूल नक्षत्रमें एकाग्रचित्त हो ब्राह्मणोंको मूल-फलका दान करता है, उसके पितर तृप्त होते हैं और वह अभीष्ट गति पाता है (अनु० ६४ । २४) । मूल नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे आरोग्यकी प्राप्ति होती है (अनु० ८९ । १०)। मार्गशीर्षमासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको मूल नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग होनेपर चन्द्रसम्बन्धी व्रत आरम्भ करे। देवतासहित मूल नक्षत्रके द्वारा उनके दोनों चरणोंकी भावना करे (अनु० ११० । ३)।

मूषक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६, ६३)।

मूषकाद (मूषिकाद)–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १२)। यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १०)। नारदजीका मातलिको इसका परिचय देना (उद्योग० १०३ । १४)।

मृगधूम–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक पुण्य तीर्थ, जहाँ महादेवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । १०१)।

मृगमन्दा–क्रोधवशाकी क्रोधजनित कन्याओंमेंसे एक। इसीसे रीछोंकी उत्पत्ति हुई (आदि० ६६ । ६०—६२)।

मृगव्याध–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। ब्रह्माजीके आत्मज, स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । २)।

मृगशिरा–(सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक) मृगशिरा नक्षत्रमें दूध देनेवाली गौका बछड़ेसहित दान करके दाता मृत्युके पश्चात् इस लोकसे सर्वोत्तम स्वर्गलोकमें जाते हैं (अनु० ६४ । ७)। इस नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे तेजकी प्राप्ति होती है (अनु० ८९ । ३)। मार्गशीर्षमासमें चन्द्रव्रतमें मृगशिराको चन्द्रमाके नेत्र समझकर पूजा करनेका विधान है (अनु० ११० । ८)।

मृगस्वप्नोद्भवपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २५८)।

मृगी–क्रोधवशाकी क्रोधजनित कन्याओंमेंसे एक। संसारके समस्त मृग इसीकी संतानें हैं (आदि० ६६ । ६०–६२)।

मृगतपा–दानवोंके सुविख्यात दस कुलोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २८-२९)।

मृत्तिकावती–एक जनपद, जिसे कर्णने जीता था (**वन० २५४ । १०**) ।

मृत्यु–(१) (**पुरुष**) अधर्मकी स्त्री निर्ऋतिके गर्भसे उत्पन्न तीन पुत्रोंमेंसे एक । यह सब प्राणियोंका नाशक है । इसके पत्नी या पुत्र कोई नहीं है; क्योंकि यह सबका अन्तक है (**आदि० ६६ । ५४-५५**) । जापक ब्राह्मणके पास इसका आना (**शान्ति० १९९ । ३२**) । अर्जुनक नामक व्याध और सर्पके साथ इसका संवाद (**अनु० १ । ५०—६८**) । सुदर्शनद्वारा मृत्युपर विजयका वर्णन (**अनु० २ । ४८–६७**) । (२) (**स्त्री**) ब्रह्माजीके शरीरसे नारीरूपमें इसकी उत्पत्ति (**द्रोण० ५३ । १७-१८; शान्ति० २५७ । १५**) । ब्रह्माद्वारा संहारकार्यके सौंपे जानेपर इसका रोदन (**द्रोण० ५३ । २२-२३; शान्ति० २५७ । २१**) । इसकी घोर तपस्या (**द्रोण० ५४ । १७–२६; शान्ति० २५८ । १५–२४**) । ब्रह्मासे वरकी याचना (**द्रोण० ५४ । ३०–३२**) । इसका संहारकार्य स्वीकार करना (**द्रोण० ५४ । ४४; शान्ति० २५८ । ३७**) । इसकी प्रबलताका वर्णन (**शान्ति० ३१९ अध्याय**) ।

मेकल–एक भारतीय जनपद और वहाँके निवासी जाति-विशेष (**भीष्म० ९ । ४१**) । इस देशके योद्धा भीष्मकी रक्षामें तत्पर थे (**भीष्म० ५१ । १३-१४**) । कोसल-नरेश बृहद्बलके साथ मेकल आदि देशोंके सैनिक थे (**भीष्म० ८७ । ९**) । कर्णने इस देशको जीता था (**द्रोण० ४ । ८**) । मेकल पहले क्षत्रिय थे; परंतु ब्राह्मणोंके साथ ईर्ष्या करनेसे नीच हो गये (**अनु० ३५ । १७-१८**) ।

मेघकर्णा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ३०**) ।

मेघनाद–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६२**) ।

मेघपुष्प–भगवान् श्रीकृष्णके रथका एक दिव्य अश्व (**विराट० ४५ । २१; उद्योग० ८३ । १९; द्रोण० ७९ । ३८; द्रोण० १४७ । ४७; सौप्तिक० १३ । ३; शान्ति० ५३ । ५१**) ।

मेघमाला–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ३०**) ।

मेघमाली–मेरुद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम काञ्चन था (**शल्य० ४५ । ४७**) ।

मेघवासा–एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (**सभा० ९ । १४**) ।

मेघवाहन–एक राजा, जो जरासंधको मस्तककी मणि मान-कर सदा उसके समक्ष नतमस्तक रहता था (**सभा० १४ । १३**) ।

मेघवाहिनी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । १७**) ।

मेघवेग–कौरवपक्षका एक वीर, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (**द्रोण० ४८ । १५-१६**) ।

मेघसन्धि–मगध देशका राजकुमार, जो सहदेवका पुत्र था और उन्हींके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ८**) । अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके प्रसङ्गमें अर्जुनके साथ इसका युद्ध और पराजय (**आश्व० ८२ अध्याय**) ।

मेघस्वना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६।८**)।

मेद–ऐरावतकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्प-सत्रमें जलकर भस्म हो गया (**आदि० ५७ । ११**) ।

मेदिनी–पृथ्वीका एक नाम । भगवान् विष्णुद्वारा मधु और कैटभ दोनों दैत्योंके मारे जानेपर उनकी लाशें जलमें डूबकर एक हो गयीं । जलकी लहरोंसे मथित होकर उन दोनों दैत्योंने मेद छोड़ा, उससे आच्छादित होकर वहाँका जल अदृश्य हो गया । उसीपर भगवान् नारायणने नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि की । उन दैत्योंके मेदसे सारी वसुधा आच्छादित हो गयी; इसलिये मेदिनीके नामसे प्रसिद्ध हुई (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८४**) ।

मेधा–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री एवं धर्मराजकी पत्नी (**आदि० ६६ । १४**) ।

मेधातिथि–(१) एक प्राचीन महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ७ । १७**) । इनके पुत्र कण्वमुनि पूर्वदिशाके ऋषि हैं (**शान्ति० २०८ । २७**) । इन्होंने वानप्रस्थका पालन करके स्वर्ग प्राप्त किया है (**शान्ति० २४४ । १७**) । ये उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्य बने थे (**शान्ति० ३३६ । ७**) । ये दिव्य महर्षि माने गये हैं । प्रयाणके समय भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे और युधिष्ठिरद्वारा पूजित हुए थे (**अनु० २६ । ३—९**) । (२) एक नदी, जो अग्निकी उत्पत्तिका स्थान बतायी गयी है (**वन० २२२ । २३**) ।

मेधाविक–एक तीर्थ, जहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता तथा मेधा प्राप्त कर लेता है (**वन० ८५ । ५५**) ।

मेधावी–(१) बालधि मुनिका पुत्र, जिसका जन्म पिताकी तपस्यासे हुआ था । पर्वत इसकी आयुके निमित्त थे । मेधायुक्त होनेके कारण इसका नाम मेधावी था । यह बड़ा उद्दण्ड था (**वन० १३५ । ४५—४९**) । धनुषाक्ष मुनिके द्वारा इसकी आयुके निमित्तभूत पर्वतोंको भैंसोंसे

विदीर्ण करा दिया गया; अतः उसकी मृत्यु हो गयी (**वन० १३५ । ५३**) । (२) एक ब्राह्मण-बालक, जिसने पिताको ज्ञानका उपदेश दिया (**शान्ति० १७५ । ९—३८**) । इसके द्वारा पिताको शरीर और संसारकी अनित्यताका उपदेश (**शान्ति० ३७७ अध्याय**) ।

मेध्या—पश्चिम दिशाका एक पुण्यमय तीर्थ (**वन० ८९ । १५**) । यह नदी अग्निकी उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है (**वन० २२२ । २३**) । सायं प्रातःस्मरणीय नदियोंमें इसका भी नाम आया है (**अनु० १६५ । २६**) ।

मेनका—स्वर्गलोककी एक श्रेष्ठ अप्सरा, जिसने गन्धर्वराज विश्वावसुसे गर्भ धारण किया और स्थूलकेश ऋषिके पास अपनी पुत्री प्रमद्वराको जन्म देकर वहीं त्याग दिया (**आदि० ८ । ६-७**) । इसके गर्भसे विश्वामित्रद्वारा शकुन्तलाकी उत्पत्ति हुई (**आदि० ७२ । २—९**) । यह छः प्रधान अप्सराओंमें गिनी गयी है (**आदि० ७४ । ६८-६९**) । अर्जुनके जन्मोत्सवमें इसने गान किया था (**आदि० १२२ । ६४**) । यह कुबेरकी सभामें उपस्थित होती है (**सभा० १० । १०**) । इसने अर्जुनके स्वागतके लिये इन्द्रसभामें नृत्य किया था (**वन० ४३ । २९**) ।

मेना—भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २३**) ।

मेरु—सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित एक दिव्य पर्वत, जो ऊपरसे नीचेतक सोनेका ही माना जाता है, यह तेजका महान् पुञ्ज है और अपने शिखरोंसे सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत किये देता है । इसपर देवता और गन्धर्व निवास करते हैं । इसका कोई माप नहीं है । मेरुपर सब ओर भयंकर सर्प भरे पड़े हुए हैं । दिव्य ओषधियाँ इसे प्रकाशित करती रहती हैं । यह महान् पर्वत अपनी ऊँचाईसे स्वर्गलोकको घेरकर खड़ा है । वहाँ किसी समय देवताओंने अमृत-प्राप्तिके लिये परामर्श किया था, इस पर्वतपर भगवान् नारायणने ब्रह्माजीसे कहा था कि देवता और असुर मिलकर महासागरका मन्थन करें, इससे अमृत प्रकट होगा (**आदि० १७ । ५—१३**) । इसी मेरु पर्वतके पार्श्वभागमें वसिष्ठजीका आश्रम है (**आदि० ९९ । ६**) । यह दिव्य पर्वत अपने चिन्मय स्वरूपसे कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करता है (**सभा० १० । ३३**) । यह पर्वत इलावृतखण्डके मध्यभागमें स्थित है । मेरुके चारों ओर मण्डलाकार इलावृतवर्ष बसा हुआ है । दिव्य सुवर्णमय महामेरु गिरिमें चार प्रकारके रंग दिखायी पड़ते हैं । यहाँतक पहुँचना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है । इसकी लंबाई एक लाख योजन है । इसके दक्षिण भागमें विशाल जम्बूवृक्ष है; जिसके कारण इस विशाल द्वीपको जम्बूद्वीप कहते हैं (**सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४७**) । अत्यन्त प्रकाशमान महामेरु पर्वत उत्तर दिशाको उद्भासित करता हुआ खड़ा है । इसपर ब्रह्मवेत्ताओंकी ही पहुँच हो सकती है । इसी पर्वतपर ब्रह्माजीकी सभा है, जहाँ समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करते हुए ब्रह्माजी निवास करते हैं । ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंका निवासस्थान भी मेरु पर्वत ही है । वसिष्ठ आदि सप्तर्षि भी यहीं उदित और प्रतिष्ठित होते हैं । मेरुका उत्तम शिखर रजोगुणसे रहित है । इसपर आत्मतृप्त देवताओंके साथ पितामह ब्रह्मा रहते हैं । यहाँ ब्रह्मलोकसे भी ऊपर भगवान् नारायणका उत्तम स्थान प्रकाशित होता है । परमात्मा विष्णुका यह धाम सूर्य और अग्निसे भी अधिक तेजस्वी है तथा अपनी ही प्रभासे प्रकाशित होता है । पूर्व दिशामें मेरु पर्वतपर ही भगवान् नारायणका स्थान सुशोभित होता है । यहाँ यत्नशील ज्ञानी महात्माओंकी ही पहुँच हो सकती है । उस नारायणधाममें ब्रह्मर्षियोंकी भी गति नहीं है, फिर महर्षियोंकी तो बात ही क्या है । भक्तिके प्रभावसे ही यत्नशील महात्मा यहाँ भगवान् नारायणको प्राप्त होते हैं । यहाँ जाकर मनुष्य फिर इस लोकमें नहीं लौटते हैं । यह परमेश्वरका नित्य अविनाशी और अविकारी स्थान है । नक्षत्रोंसहित सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन निश्चल मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं । अस्ताचलको पहुँचकर संध्याकालकी सीमाको लाँघकर भगवान् सूर्य उत्तर दिशाका आश्रय लेते हैं; फिर मेरुपर्वतका अनुसरण करके उत्तर दिशाकी सीमातक पहुँचकर समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले सूर्य पुनः पूर्वाभिमुख होकर चलते हैं (**वन० १६३ । १२—४२**) । माल्यवान् और गन्धमादन—इन दोनों पर्वतोंके बीचमें मण्डलाकार सुवर्णमय मेरुपर्वत है । इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । नीचे भी चौरासी हजार योजनतक पृथ्वीके भीतर घुसा हुआ है । इसके पार्श्व भागमें चार द्वीप हैं—भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप और उत्तरकुरु । इस पर्वतके शिखरपर ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र एकत्र हो नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं । उस समय तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु आदि गन्धर्व यहाँ आकर इसकी स्तुति करते हैं । महात्मा सप्तर्षिगण तथा प्रजापति कश्यप प्रत्येक पर्वके दिन इस पर्वतपर पधारते हैं । दैत्योंसहित शुक्राचार्य मेरु पर्वतके ही शिखरपर निवास करते हैं । यहाँके सब रत्न और रत्नमय पर्वत उन्हींके अधिकारमें है । भगवान् कुबेर उन्हींसे धनका चतुर्थ भाग प्राप्त करके उसका सदुपयोग करते हैं । सुमेरु पर्वतके उत्तर भागमें दिव्य एवं

रमणीय कर्णिकारवन है। वहाँ भगवान् शंकर कनेरकी दिव्य माला धारण करके भगवती उमाके साथ विहार करते हैं। इस पर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत धारवाली पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा बड़े वेगसे चन्द्रह्रदमें गिरती हैं। मेरुके पश्चिम भागमें केतुमाल वर्ष है, जहाँ जम्बूखण्ड नामक प्रदेश है। वहाँके निवासियोंकी आयु दस हजार वर्षोंकी होती है। वहाँके पुरुष सुवर्णके समान कान्तिमान् और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं। उन्हें कभी रोग-शोक नहीं होते। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है (भीष्म० ६। १०–३३)। पर्वतों-द्वारा पृथ्वीदोहनके समय यह मेरु पर्वत दोग्धा (दुहने-वाला) बना था (द्रोण० ६९। १८)। त्रिपुर-दाहके लिये जाते हुए भगवान् शिवने मेरु पर्वतको अपने रथकी ध्वजाका दण्ड बनाया था (द्रोण० २०२। ७८)। मेरुने स्कन्दको काञ्चन और मेघमाली नामक दो पार्षद प्रदान किये (शल्य० ४५। ४८-४९)। इसने पृथुको सुवर्णराशि दी थी (शान्ति० ५९। १–९)। यह पर्वतों-का राजा बनाया गया था (शान्ति० २२२। २८)। व्यासजी अपने शिष्योंके साथ मेरु पर्वतपर निवास करते थे (शान्ति० ३४१। २२-२३)। स्थूलशिरा और बड़वा-मुखने यहाँ तपस्या की थी (शान्ति० ३४२। ५९-६०)।

[मेरु]प्रभ–द्वारकापुरीके दक्षिणवर्ती लतावेष्ट पर्वतको घेरकर सुशोभित होनेवाले तीन वनोंमेंसे एक। शेष दो तालवन और पुष्पकवन थे। यह महान् वन बड़ी शोभा पाता था (सभा० ३८। २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८१३, कालम १)।

[मेरु]भूत–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४८)।

[मेरु]व्रज–एक नगरी, जो राक्षसराज विरूपाक्षकी राजधानी थी (शान्ति० १७०। १९)।

[मेरु]सावर्णि (मेरुसावर्ण)–एक ऋषि, जिन्होंने हिमालय पर्वतपर युधिष्ठिरको धर्म और ज्ञानका उपदेश दिया था (सभा० ७८। १४)। ये अत्यन्त तपस्वी, जितेन्द्रिय और तीनों लोकोंमें विख्यात हैं (अनु० १५०। ४४-४५)।

[...]–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ६४)।

[...]बल–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१। १२)।

[...]–(१) एक प्रकारके राक्षस, जिनका सामना करनेको तैयार रहनेके लिये युधिष्ठिरके प्रति लोमश मुनिकी प्रेरणा हुई। (२) एक मुहूर्त, जिसमें श्रीकृष्णने हस्तिनापुरकी यात्रा आरम्भ की (उद्योग० ८३। ६)। (३) अनुराधा नक्षत्र, जिसमें कृतवर्माने दुर्योधनका पक्ष ग्रहण किया (शल्य० ३५। १४)। (४) कनक या सुवर्ण (अनु० ८५। ११३)।

मैत्रेय–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराज-मान होते थे (सभा० ४। १०)। इनका धृतराष्ट्र तथा दुर्योधनसे पाण्डवोंके प्रति सद्भाव रखनेका अनुरोध (वन० १०। ११–२७)। इनके द्वारा दुर्योधनको शाप (वन० १०। ३४)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३। ६७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास ये भी गये थे (शान्ति० ४७। ६)। व्यासजीके साथ इनके धर्मविषयक प्रश्नोत्तर (अनु० अध्याय १२० से १२२ तक)।

मैनसिल–एक पर्वतीय धातु, जो लाल रंगकी होती है (वन० १५८। ९४)।

मैनाक–(१) कैलास पर्वतसे उत्तर दिशामें स्थित एक पर्वत। इसके समीप ही बिन्दुसरोवर है, जहाँ राजा भगीरथने गङ्गावतरणके लिये बहुत वर्षोंतक तपस्या की थी (सभा० ३। ९—११)। पाण्डवोंने उत्तराखण्डकी यात्राके समय इस पर्वतको लाँघकर आगे पदार्पण किया था (वन० १३९। १)। बिन्दुसरोवरके समीपवर्ती मैनाक पर्वत सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित है (वन० १४५। ४४)। पाण्डवोंद्वारा मैनाक आदिका दर्शन (वन० १५८। १७)। कैलाससे उत्तर इसकी स्थितिका वर्णन (भीष्म० ६। ४२)। (२) पश्चिम दिशाका एक तीर्थभूत पर्वत, जो वैदूर्यशिखरके पास नर्मदाके तटप्रान्तमें है (वन० ८९। ११)। यहाँका तीर्थफल (अनु० २५। ५९)। (३) क्रौञ्चद्वीपमें अन्धकारके बादका एक पर्वत (भीष्म० १२। १८)।

मैन्द–एक वानरराज, जो किष्किन्धा नामक गुफामें रहता था। जिसे दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेव सात दिनों-तक युद्ध करनेपर भी परास्त न कर सके थे, तब मैन्दने स्वयं ही प्रसन्न होकर सब प्रकारके रत्नोंकी भेंट दी और कहा–'जाओ, बुद्धिमान् युधिष्ठिरके कार्यमें कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिये' (सभा० ३१। १८)। यह वानर-राज सुग्रीवका मन्त्री था और महामनस्वी, बुद्धिमान् तथा बली था (वन० २८०। २३)। श्रीरामचन्द्रजीका कार्य करनेके लिये जाती हुई विशाल वानर-सेनाके रक्षकोंमें एक यह भी था (वन० २८३। १९)। मायासे अदृश्य हुए प्राणियोंको भी प्रत्यक्ष दिखा देनेकी शक्तिवाले कुबेर-के भेजे हुए जलसे इसने भी अपने नेत्र धोये थे (वन० २८९। १०–१३)।

मोक्षधर्मपर्व–शान्तिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १७४ से ३६५ तक)।

मोदाकी–केसर पर्वतके पास स्थित शाकद्वीपका एक वर्ष (भीष्म० ११ । २६) ।

मोदागिरि–एक देश, जहाँके राजाको भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय मार गिराया था (सभा० ३० । ३१) ।

मोदापुर–एक नगर, जहाँके राजाको उत्तर-दिग्विजयके अवसरपर अर्जुनने परास्त किया था (सभा० २७ । ११) ।

मोहन–एक जनपद, जिसे कर्णने जीता था (वन० २५४ । १०) ।

मौञ्जायन–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १३) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद) ।

मौर्वी–तृणविशेष, जिसकी मेखला बनायी जाती है (द्रोण० १७ । २३) ।

मौसलपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व ।

म्लेच्छ–एक जाति और जनपद, नन्दिनी गौके फेनसे म्लेच्छ जातिकी सृष्टि हुई । उन म्लेच्छ सैनिकोंने विश्वामित्रकी सेनाको तितर-बितर कर दिया (आदि० १७४ । ३८–४०) । भीमसेनने समुद्रतटवर्ती म्लेच्छों और उनके अधिपतियोंको जीतकर उनसे 'कर' के रूपमें भाँति-भाँतिके रत्न प्राप्त किये थे (सभा० ३० । २५—२७) । समुद्रके द्वीपोंमें निवास करनेवाले म्लेच्छजातीय राजाओंको माद्रीकुमार सहदेवने परास्त किया था (सभा० ३१ । ६६) । नकुलने भी उनपर विजय पायी थी (सभा० ३२ । १६) । समुद्रके टापुओंमें रहनेवाले म्लेच्छोंके साथ राजा भगदत्त युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १०) । म्लेच्छोंके स्वामी भगदत्त भेंट लेकर युधिष्ठिरके यहाँ आये थे (सभा० ५१ । १४) । जब प्रलयका पूर्वरूप आरम्भ हो जाता है, उस समय इस पृथ्वीपर बहुत-से म्लेच्छ राजा राज्य करने लगते हैं (वन० १८८ । ३४) । विष्णुयशा कल्कि भूमण्डलमें सर्वत्र फैले हुए म्लेच्छोंका संहार करेंगे (वन० १९० । ९७) । कर्णने अपनी दिग्विजयमें म्लेच्छ राज्योंको जीत लिया था (वन० २५४ । १९–२१) । एक भारतीय जनपदका नाम म्लेच्छ है (भीष्म० ९ । ५७) । म्लेच्छजातीय अङ्ग भीमसेनद्वारा युद्धमें मारा गया (द्रोण० २६ । १७) । नन्दिनी गौसे उत्पन्न हुए म्लेच्छ अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करते थे; परंतु अर्जुनने दाढ़ीभरे मुखवाले उन सभी म्लेच्छोंका संहार कर डाला (द्रोण० ९३ । ४३—४९) । वीर सात्यकिके द्वारा रणभूमिमें आहत होकर सैकड़ों म्लेच्छ प्राणोंसे हाथ धो बैठे थे (द्रोण० ११९ । ४३) । म्लेच्छोंने पाण्डवसेनापर अत्यन्त क्रोधी गजराज बढ़ाये थे (कर्ण० २२ । १०) । म्लेच्छजातीय अङ्गराज पाण्डुकुमार नकुलद्वारा मारा गया (कर्ण० २२ । १८) । म्लेच्छ सैनिक दुर्योधनकी सहायताके लिये बड़े रोषपूर्वक लड़ रहे थे । अर्जुनके सिवा और किसीके लिये उन्हें जीतना असम्भव था (कर्ण० ७३ । १९—२२) । अर्जुनको अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके समय बहुत-से म्लेच्छ सैनिकोंका सामना करना पड़ा (आश्व० ७३ । २५) । युधिष्ठिरकी यज्ञशालामें ब्राह्मणोंके लेनेके बाद जो धन पड़ा रह गया, उसे म्लेच्छजातिके लोग उठा ले गये (आश्व० ८९ । २६) ।

(य)

यकृल्लोमा–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४६) ।

यक्ष–देवयोनि-विशेष या उपदेवता, जो विराट्अण्डसे ब्रह्मा आदि देवताओंकी उत्पत्तिके बाद प्रकट हुए बताये जाते हैं (आदि० १ । ३५) । शुकदेवजीने यक्षोंको महाभारतकी कथा सुनायी थी (आदि० १ । १०८) । यक्षलोग पुलस्त्य मुनिकी संतानें हैं (आदि० ६६ । ७) । कुबेरकी सभामें उपस्थित हो लाखों यक्ष उनकी उपासना करते हैं (सभा० १० । १८) । ब्रह्माजीकी सभामें इनकी उपस्थिति बतायी गयी है (सभा० ११ । ५६) । कुबेरका यक्षोंके राजपदपर अभिषेक किया गया था (वन० १११ । १०-११) । भीमसेनने यक्षों और राक्षसोंको मार भगाया था (वन० १६० । ५७-५८) । सुन्द-उपसुन्दने इन्हें पराजित और पीड़ित किया था (वन० २०८ । ७) ।

यक्ष-ग्रह–एक यक्षसम्बन्धी ग्रह, जिसके बाधा करनेपर मनुष्य पागल हो जाता है (वन० २३० । ५३) ।

यक्षयुद्धपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५८ से १६४ तक) ।

यक्षिणी–एक देवी, जिनके प्रसादरूप नैवेद्यके भक्षणसे ब्रह्महत्यासे मुक्ति हो जाती है (वन० ८४ । १०५) ।

यक्षिणीतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ जानेसे और स्नान करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति होती है । यह कुरुक्षेत्रका विख्यात द्वार है, उसकी परिक्रमा करके तीर्थयात्री मनुष्य एकाग्रचित्त हो पुष्करतीर्थके तुल्य उस तीर्थमें स्नान करके देवताओं और पितरोंकी पूजा करे । इससे वह कृतकृत्य होता और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है । उत्तम श्रेणीके

महात्मा जमदग्निनन्दन परशुरामने उस तीर्थका निर्माण किया है (वन० ८३ । २३–२५) ।

क्ष्मा—एक रोग, जिसे क्षय या तपेदिक कहते हैं । चन्द्रमा-पर कुपित होकर प्रजापति दक्षने उन्हींके लिये इस रोगकी सृष्टि की थी (शल्य० ३५ । ६१-६२) ।

वाह—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) ।

सेन—पाञ्चाल-नरेश पृषतके पुत्र (आदि० १३० । ४२) । (देखिये द्रुपद) ।

ति—(१) नहुषके प्रथम पुत्र, ययातिके बड़े भाई (आदि० ७५ । ३०) । ये योगका आश्रय लेकर ब्रह्म-भूत मुनि हो गये थे (आदि० ७५ । ३१) । (२) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

ावास—एक वानप्रस्थी ऋषि, जो वानप्रस्थ-धर्मका पालन एवं प्रसार करके स्वर्गलोकमें गये थे (शान्ति० २४४ । १७) ।

दु—(१) राजा ययातिके प्रथम पुत्र, जो देवयानीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ७५ । ३५; आदि० ८३ । ९) । इनका अपने पिताको युवावस्था देनेसे अस्वीकार करना (आदि० ७५ । ४३; आदि० ८४ । ५) । ययातिका इनकी संतानको राज्याधिकारसे वञ्चित होनेका शाप देना (आदि० ८४ । ९) । यदुकी ही संतानें यादव कहलायीं (आदि० ९५ । १०) । भगवान् नारायणने अपने मस्तकसे दो केश निकाले, जिनमेंसे एक श्वेत था, एक श्याम । वे दोनों केश यदुकुलकी दो स्त्रियों रोहिणी तथा देवकीके भीतर प्रविष्ट हुए । रोहिणीसे बलदेवजी प्रकट हुए, जो भगवान् नारायणके श्वेत केश-रूप थे और देवकीके गर्भसे श्याम केशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ (आदि० १९६ । ३२-३३) । यदु देवयानीके पुत्र और शुक्राचार्यके दौहित्र थे, ये बलवान्, उत्तम पराक्रमसे सम्पन्न एवं यादववंशके प्रवर्तक थे । इनकी बुद्धि बड़ी मन्द थी । इन्होंने घमंडमें आकर समस्त क्षत्रियोंका अपमान किया था । ये पिताके आदेशपर नहीं चलते थे । भाइयों और पिताका अपमान करते थे । उन दिनों भूमण्डलमें यदु ही सबसे अधिक बलवान् थे और समस्त राजाओंको वशमें करके हस्तिना-पुरमें निवास करते थे । इनके पिता ययातिने अत्यन्त कुपित हो इन्हें शाप दे दिया और राज्यसे भी उतार दिया । जिन भाइयोंने इनका अनुसरण किया, उनको भी पिताका शाप प्राप्त हुआ (उद्योग० १४९ । ६—११) । इन्हीं यदुके वंशमें देवमीढ़ नामसे विख्यात एक यादव हो गये हैं, जिनके पुत्रका नाम शूर था (द्रोण० १४४ । ६-७) । यदुके पुत्रका नाम क्रोष्टा था (अनु० १४७ । २८) । (२) एक राजकुमार, जो उपरिचर वसुका पुत्र था, वह युद्धमें किसीसे पराजित नहीं होता था (आदि० ६३ । ३१) ।

यम—(१) समस्त प्राणियोंका नियमन करनेवाले यमराज, जो भगवान् सूर्यके पुत्र तथा सबके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी हैं (आदि० ७४ । ३०; आदि० ७५ । २२) । इन्हें शूद्र-योनिमें जन्म लेनेके लिये माण्डव्य ऋषिका शाप (आदि० १०७ । १४–१६) । द्रौपदीके स्वयंवरको देखनेके लिये इनका आगमन (आदि० १८६ । ६) । नैमिषारण्यमें इनके द्वारा देवताओंके यज्ञमें शामित्र-कर्म-सम्पादन (आदि० १९६ । १) । खाण्डवदाहके समय श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये इन्द्रकी ओरसे ये भी कालदण्ड लेकर आये थे (आदि० २२६ । ३२) । ये एक हजार युग बीतनेपर बिन्दुसरोवरपर यज्ञका अनुष्ठान करते हैं (सभा० ३ । १५) । नारदजीके द्वारा इनकी दिव्य सभाका वर्णन (सभा० ८ अध्याय) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराज-मान होते हैं (सभा० ११ । ५१) । इनके द्वारा अर्जुनको दण्डास्त्रका दान (वन० ४१ । २५) । दमयन्ती-स्वयंवरमें इनके द्वारा राजा नलको वर-प्रदान (वन० ५७ । ३७) । सावित्रीको अनेक वर देनेके पश्चात् इनका सत्यवान्को जीवित करना (वन० २९७ । ११—६०) । इन्द्रने इन्हें पितरोंका राजा बनाया था (उद्योग० १६ । १४) । पितरोंद्वारा पृथ्वी-दोहनके समय ये बछड़ा बने थे (द्रोण० ६९ । २६) । त्रिपुर-दाहके समय ये भगवान् शिवके बाणके पुङ्खभागमें प्रतिष्ठित हुए थे (द्रोण० २०२ । ७७) । इनके द्वारा स्कन्दको उन्माथ और प्रमाथ नामक दो पार्षदोंका दान (शल्य० ४५ । ३०) । महर्षि गौतमके साथ इनका धर्मविषयक संवाद (शान्ति० १२९ अध्याय) । इनके द्वारा जापक ब्राह्मणको वरदान (शान्ति० १९९ । ३०) । इनको नारायणसे शिवसहस्रनामका उपदेश मिला और इन्होंने नाचिकेतको इसका उपदेश किया (अनु० १७ । १७८-१७९) । इनका अपने दूतोंको शर्मी नामक ब्राह्मणको लानेका आदेश (अनु० ६८ । ६—९) । ब्राह्मणको तिल, जल और अन्नके दानकी महिमा बतलाना (अनु० ६८ । १६—२२) । नाचिकेतके साथ संवादमें गोदानकी महिमा बताना (अनु० ७१ । १८—५६) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १३० । १४—३३) । इनके लोकका वर्णन (अनु० १४५ । दा० पाठ, पृष्ठ ५९८० से ५९८५ तक) । ये मुञ्जवान् पर्वतपर शिवजीकी उपासना करते हैं (आश्व० ८ । ४–६) । (२) वरुणद्वारा

स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम था अतियम (शल्य० ४५ । ४५)।

यमक-एक देश और जातिके लोग-यहाँके राजा, राजकुमार और निवासी भी युधिष्ठिरके यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १३-१७)।

यमदूत-महर्षि विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५१)।

यमुना-(सूर्यपुत्री यमुना, जो परम पावन नदीके रूपमें विराज रही हैं, कलिन्द पर्वतसे प्रकट होनेके कारण इन्हें कालिन्दी कहते हैं। ये यमुनोत्तरीसे निकलकर प्रयागमें आयी हैं, वहाँ गङ्गाजीके साथ इनका संगम हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णकी परम पावन लीलास्थली इन्हींके तटपर है; ये आधिदैविकरूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी थीं।) यमुनाजीके द्वीपमें पराशरजीने सत्यवतीके गर्भसे व्यासजीको उत्पन्न किया था (आदि०६० । २)। ये गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक हैं, जो इनका जल पीते हैं, वे पापमुक्त हो जाते हैं (आदि० १६९ । १९-२१)। जरासंधके मन्त्री और सेनापति हंस तथा डिम्भक यमुनाजीमें कूदकर मर गये थे (सभा० १४। ४३-४४)। वनगमनके समय पाण्डव लोग यमुनाके जलका सेवन करके आगे बढ़े थे (वन० ५ । २)। सृंजयपुत्र सहदेवने यमुनातटपर लाख स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देकर अग्निकी उपासना की थी (वन० ९० । ७) राजा भरतने यमुनाजीके तटपर पैंतीस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया था (वन० ९० । ८)। ये आर्चीक पर्वतके पास बहती हैं। ब्रह्मर्षिसेवित पुण्यमयी नदी हैं और पापके भयको दूर भगाती हैं। इनके तटपर मान्धाता और दानिशिरोमणि सहदेवकुमार सोमकने यज्ञ किया था (वन० १२५ । २१-२६)। इनके तटपर नाभागपुत्र राजा अम्बरीषने यज्ञ किया था (वन० १२९ । २)। अगस्त्यजीने यमुना-तटपर घोर तपस्या की थी (वन० १६१ । ५६)। राजा शान्तनुने यमुनातटपर सात बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था (वन० १६२ । २५)। ये भारतकी उन प्रमुख नदियोंमेंसे हैं, जिनका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १५)। भरतने यमुनातटपर एक बार सौ अश्वमेध यज्ञ किये (द्रोण० ६८ । ८)। इन्होंने ही इसी नदीके तटपर तीन सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये थे (शान्ति० २९ । ४६)।

यमुनातीर्थ-सरस्वती-तटवर्ती पुण्य तीर्थ, जहाँ अदितिनन्दन वरुणने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था (शल्य० ४९ । ११-१५)।

यमुनाद्वीप-यमुनाजीके बीचका एक द्वीप, जहाँ सत्यवतीने पराशरजीके द्वारा व्यासको उत्पन्न किया था (आदि० ६० । २)।

यमुनाप्रभव-एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । ४४)।

ययाति-एक प्राचीन राजर्षि (आदि० १ । २२९)। महाराज नहुषके द्वितीय पुत्र। इनके बड़े भाई यति योगका आश्रय ले ब्रह्मभूत मुनि हो गये; अतः ये ही भूमण्डलके सम्राट् हुए। इन्होंने इस पृथ्वीका पालन और बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया (आदि० ७५ । ३०-३२)। ये अपराजित, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले और भक्तिभावसे देवताओं तथा पितरोंका पूजन करनेवाले थे (आदि० ७५ । ३३)। देवयानी और शर्मिष्ठासे इनके पाँच पुत्रोंकी उत्पत्ति, पुत्रोंसे इनकी यौवन-याचना, कनिष्ठ पुत्रकी युवावस्थासे दोनों पत्नियों और विश्वाची अप्सराके साथ इनके विहार तथा कामभोगसे तृप्त न होनेपर इनके द्वारा वैराग्यपूर्ण गाथा-गान आदिकी संक्षिप्त कथा (आदि० ७५ । ३४-५८)। कुएँमें गिरी हुई देवयानीका इनके द्वारा हाथ पकड़कर उद्धार (आदि० ७८ । १४-२३)। देवयानीद्वारा इनसे विवाहके लिये प्रार्थना (आदि० ७८ । २३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। ब्राह्मणकन्या होनेके कारण इनका देवयानीकी प्रार्थनाको अस्वीकार करना और उसकी अनुमति ले अपने नगरको जाना (आदि० ७८ । २३ के बाद दाक्षिणात्य पाठसहित २४ तक)। सखियोंके साथ विचरण करती हुई देवयानीसे इनकी वनमें भेंट (आदि० ८१ । १-७)। ययाति और देवयानीका संवाद-दोनोंका एक दूसरेसे परिचय पूछना और अपना परिचय देना, देवयानीका इनके साथ विवाहका प्रस्ताव, ययातिका शुक्राचार्यके शापसे भय बताना, देवयानीका धायको भेजकर अपने पिताको बुलवाना और उनसे अपनेको राजा नहुषके हाथमें देनेका अनुरोध करना, शुक्राचार्यका अपनी पुत्रीको राजाके हाथमें देना और उन्हें वर्णसङ्करजनित अधर्मके भयसे मुक्त करना, साथ ही शर्मिष्ठाको अपनी शय्यापर न बुलानेके लिये सावधान करना। ययातिका देवयानीके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे विवाह तथा दो हजार सखियों-सहित शर्मिष्ठा एवं देवयानीको साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक इनका अपने नगरको जाना (आदि० ८१ । ८-३८)। ययातिसे देवयानीको पुत्रकी प्राप्ति (आदि० ८२ । ४-५)। ययातिको एकान्तमें देखकर शर्मिष्ठाका

इनके पास जाना और अपने ऋतुकालको सफल बनानेके लिये प्रार्थना करना; इस विषयमें ययाति और शर्मिष्ठाका संवाद । शर्मिष्ठाके कथनकी यथार्थताको स्वीकार करके ययातिका धर्मानुसार उसे अपनी भार्या बनाना और इनके साथ सहवास करके शर्मिष्ठाका एक देवोपम पुत्रको जन्म देना (आदि० ८२ । ११—२७) । ययातिको देवयानीसे यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको तथा शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु तथा पूरु नामक तीन पुत्रोंको जन्म देना (आदि० ८३ । ९-१०) । वनमें शर्मिष्ठाके पुत्रोंको खेलते देख देवयानीका ययातिसे उनके विषयमें पूछना । ये ययातिके ही पुत्र हैं— यह पता लगनेपर देवयानीका इनसे रूठकर पिताके पास जाना और ययातिका भी उसे मनानेके लिये उसके पीछे पीछे जाना (आदि० ८३ । ११—२७) । पुत्रीके मुखसे ययातिका अपराध सुनकर शुक्राचार्यद्वारा इनको जराग्रस्त होनेका अभिशाप (आदि० ८३ । २८–३१) । ययातिका अपनी सफाई देना और शुक्राचार्यसे जरावस्थाकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना करना (आदि० ८३ । ३२–३८) । शुक्राचार्यका ययातिको दूसरेसे जवानी लेकर इस बुढ़ापाको उसके शरीरमें डाल देनेकी सुविधा देना और जो पुत्र अपनी युवावस्था दे, उसीके लिये राजा होनेका वर प्रदान करना (आदि० ८३ । ३९–४२) । इनका यदुसे उनकी युवावस्था माँगना और उनके अस्वीकार करनेपर इनका उन्हें उनकी संतानको राज्याधिकारसे वञ्चित होनेका शाप देना (आदि० ८४ । १–९) । इनका तुर्वसुसे युवावस्था माँगना और उनके द्वारा स्वीकार न करनेपर उनको म्लेच्छोंमें राजा होनेका शाप देना (आदि० ८४ । १०–१५) । इनका द्रुह्युसे यौवन माँगना और न देनेपर उन्हें कभी भी उनके मनोरथ सिद्ध न होने, अति दुर्गम देशोंमें रहने तथा राज्याधिकारसे वञ्चित होकर 'भोज' कहलानेका शाप देना (आदि० ८४ । १६–२२) । इनका अनुसे उनकी जवानी माँगना और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें जराग्रस्त होने, युवा होते ही उनकी संतानोंको मरने तथा अग्निहोत्रत्यागी बननेका शाप देना (आदि० ८४ । २३—२६) । इनका पूरुसे उनकी युवावस्था माँगना, पूरुका इनकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार करना तथा उनके आज्ञापालनसे संतुष्ट हो इनका पूरुको वरदान देना (आदि० ८४ । २७-३४) । इनका सहस्र वर्षोंतक विषयसेवन करनेसे भी उससे तृप्त न होनेपर वैराग्यपूर्ण उद्गार, पूरुको उनकी जवानी लौटाकर वृद्धावस्था ग्रहण करना और पूरुके राज्याभिषेकका विरोध करनेवाली प्रजाओंको इनका ज्येष्ठ पुत्रोंको राज्य न देनेका कारण बताकर पूरुके राज्याभिषेकके लिये उनसे अनुमति लेना । प्रजावर्गकी अनुमति मिल जानेपर पूरुका राज्याभिषेक करके इनका वनमें जाना (आदि० ८५ । १—३३) । इनके पुत्रोंमें यदुसे यादव, तुर्वसुसे यवन (तुर्क), द्रुह्युसे भोज, अनुसे म्लेच्छ जातिके लोग और पूरुसे पौरव हुए (आदि० ८५ । ३४-३५) । तपस्या करके इनके स्वर्गमें जाने, वहाँसे गिरने, आकाशमें ही ठहरने, वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिबिसे मिलकर सत्संगके प्रभावसे पुनः स्वर्गलोक जानेकी संक्षिप्त कथा (आदि० ८६ । १—६) । एक हजार वर्षोंतक इनकी घोर तपस्या और स्वर्गगमन (आदि० ८६ । १२—१७) । इन्द्रके पूछनेपर इनका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना (आदि० ८७ अध्याय) । आत्मप्रशंसा और अन्य सत्पुरुषोंकी निन्दारूप दोषके कारण पुण्य क्षीण होनेसे इन्द्रकी प्रेरणासे इनका स्वर्गसे नीचे गिरना और सत्पुरुषोंके समीप ही गिरनेके लिये इन्द्रसे वर प्राप्त करना (आदि० ८८ । १—५) । इन्हें आकाशसे गिरते देख राजर्षि अष्टकका इनको आश्वासन देते हुए इनका परिचय पूछना (आदि० ८८ । ६—१२) । ययातिका अष्टकको अपना परिचय देना तथा ययाति और अष्टकका संवाद (आदि० अध्याय ८९ से ९० तक)।ययाति और अष्टकका आश्रम-धर्मसम्बन्धी संवाद (आदि० ९१ अध्याय) । अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना (आदि० ९२ अध्याय) । इनका वसुमान् और शिबिके पुण्यदानको भी अस्वीकार करना, इनकी पुत्री माधवीका आकर इन्हें प्रणाम करना और अपने अष्टक आदि चारों पुत्रोंको इनका परिचय देना तथा दौहित्रोंके पुण्यको अपना ही पुण्य बताकर ययातिसे उसको ग्रहण करनेके लिये कहना तथा पुत्री और दौहित्रोंने मेरा उद्धार कर दिया—ऐसा कहकर ययातिका उस पुण्यको ग्रहण करना और अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना, इनके द्वारा शिबिकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन और सत्यकी महिमाका वर्णन (आदि० ९३ अध्याय) । इनके दो पत्नियाँ थीं - शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा । इनके वंशका परिचय देनेवाले एक श्लोकका भाव इस प्रकार है—देवयानीने यदु और तुर्वसु नामवाले दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये (आदि० ९५ । ७–९) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ८) । इनके द्वारा गुरुदक्षिणा देनेके लिये एक ब्राह्मणको हजार गौओंका दान (वन० १९५ अध्याय) । ये

अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रके साथ उन्हींके विमानमें बैठकर आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) । गरुड और गालवका राजा ययातिके यहाँ जाकर गुरुको देनेके लिये आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ोंकी याचना करना (उद्योग० ११४ अध्याय) । ये सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, दाता, दानपति, प्रभावशाली, राजोचित तेजसे प्रकाशित होनेवाले तथा सम्पूर्ण नरेशोंके स्वामी (सम्राट्) थे (उद्योग० ११५ । २) । इनका गालवको गुरुदक्षिणाके हेतु धनकी प्राप्तिके लिये अपनी कन्या माधवीको समर्पित करना (उद्योग० ११५ । ५—१४) । इनके द्वारा अभिमानवश स्वर्गमें देवताओं, मनुष्यों और महर्षियोंकी अवहेलना (उद्योग० १२० । १५-१६) । इनका स्वर्गलोकसे पतन (उद्योग० १२१ । ११) । दौहित्रोंके पुण्यदानसे इनका पुनः स्वर्गारोहण (उद्योग० १२२ । १५) । इनका ब्रह्मासे अपने अधः-पतनका कारण पूछना (उद्योग० १२३ । १२-१३) । सृञ्जयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके दान-यज्ञ आदि सत्कर्मोंका वर्णन (द्रोण० ६३ अध्याय) । इनके यज्ञ-वैभवका वर्णन (शल्य० ४१ । ३३—३९) । श्रीकृष्णद्वारा नारद-सृञ्जय-संवादके रूपमें इनके यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । ९४—९९) । इन्हें नहुषसे खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने पूरुको वह खड्ग प्रदान किया (शान्ति० १६६ । ७४) । बोध्य ऋषिसे शान्तिके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० १७८ । ५) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (अनु० ९४ । २७) । इनके द्वारा मांस-भक्षणका निषेध (अनु० ११५ । ५८—६१) ।

ययातिपतन—एक तीर्थ, जहाँ जानेसे तीर्थयात्रीको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ४८) ।

यवक्रीत—(१) भरद्वाजके पुत्र । वेदोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इनकी घोर तपस्या (वन० १३५ । १६) । इन्द्रद्वारा इनका तपस्यासे निवारण (वन० १३५ । ३८) । रैभ्य मुनिके प्रकट किये हुए राक्षसद्वारा इनकी मृत्यु (वन० १३६ । १९) । अर्वावसुके प्रयत्नसे इनका पुनरुज्जीवन (वन० १३८ । १२) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म-जीको देखनेके लिये गये थे (अनु० २६ । ६) । (२) ये अङ्गिराके पुत्र हैं और पूर्व दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं (शान्ति० २०८ । २६) ।

यवक्षा—भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३०) ।

यवन—भारतवर्षकी एक जाति और जनपद—तुर्वसुकी संतान 'यवन' (या तुर्क) कहलायी (आदि० ८५ । ३४) । नन्दिनीने योनि-देशसे यवनोंको प्रकट किया तथा उसके पार्श्वभागसे भी यवन जातिकी उत्पत्ति हुई (आदि० १७४ । ३६-३७) । सहदेवने दिग्विजयके समय इनके नगरको जीता था (सभा० ३१ । ७३) । नकुलने भी यवनोंको परास्त किया था (सभा० ३२ । १७) । कलियुगमें इनके इस देशके राजा होनेकी भविष्यवाणी (वन० १८८ । ३५) । कर्णने दिग्विजयके समय पश्चिममें यवनोंको जीता था (वन० २५४ । १८) । काम्बोजराज सुदक्षिण यवनोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लिये दुर्योधनके पास आया (उद्योग० १९ । २१-२२) । यवन एक भारतीय जनपद है (भीष्म० ९ । ६५) । यवन पहले क्षत्रिय थे; परंतु ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेके कारण शूद्रभावको प्राप्त हो गये (अनु० ३५ । १८) ।

यशस्विनी—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १०) ।

यशोदा—नन्द गोपकी पत्नी, जिनकी गोदमें बालकृष्ण पल रहे थे । एक दिन मैया यशोदा शिशु श्रीकृष्णको एक छकड़ेके नीचे सुलाकर यमुनाजीके तटपर चली गयीं । उसी समय श्रीकृष्णके पैरोंसे छू जानेके कारण छकड़ा उलट गया (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ७९८) ।

यशोधर—(१) पाण्डव-पक्षीय दुर्मुखका पुत्र (द्रोण० १८४ । ५) । (२) श्रीकृष्णके रुक्मिणी देवीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (अनु० १४ । ३३) ।

यशोधरा—त्रिगर्तराजकी पुत्री, जो पूरुवंशी महाराज हस्तीकी पत्नी और विकुण्ठनकी माता थीं (आदि० ९५ । ३५) ।

याज—काश्यप गोत्रोत्पन्न एक ब्रह्मर्षि, जो यमुना-तटपर निवास करते थे । इनके छोटे भाईका नाम उपयाज था । ये वैदिक-संहिताके अध्ययनमें सदा संलग्न रहनेवाले, सूर्यभक्त, सुयोग्य और श्रेष्ठ ऋषि थे (आदि० १६६ । ८) । उपयाजके द्वारा इनकी हीन मनोवृत्तिका वर्णन (आदि० १६६ । १६) । द्रोणनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये इनसे द्रुपदकी प्रार्थना (आदि० १६६ । २२—३१) । द्रोण-विनाशक पुत्रेष्टि यज्ञमें सहयोग देनेके लिये इनकी 'उपयाज' को प्रेरणा (आदि० १६६ । ३२) । द्रुपदके अभीष्ट पुत्रके लिये यज्ञमें इनका आहुति देना (आदि० १६६ । ३९) । इनकी आहुतिद्वारा यज्ञ-कुण्डसे धृष्टद्युम्न एवं द्रौपदीका प्राकट्य (आदि० १६६ । ३९—४४) ।

याज्ञवल्क्य—एक श्रेष्ठ ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराज-मान होते थे (सभा० ४ । १२) । ये इन्द्रकी सभामें भी बैठा करते हैं (सभा० ७ । १२) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अध्वर्यु थे (सभा० ३३ । ३५) ।

इनका विदेहराज जनकके पूछनेपर विविध ज्ञानविषयक उपदेश देना (शान्ति० अध्याय ३१० से ३१८ तक)। गन्धर्वराज विश्वावसुके चौबीस प्रश्नोंका इनके द्वारा समाधान (शान्ति० ३१८ । २६—८४) । इन्हें सूर्यदेवसे वेदज्ञानकी प्राप्ति (शान्ति० ३१८ । ६—१२) । इनके सम्मुख सरस्वतीका प्राकट्य (शान्ति० ३१८ । १४) । इन्हें विश्वामित्रका ब्रह्मवादी पुत्र कहा गया है (अनु० ४ । ५१) ।

यातुधानी–राजा वृषादर्भिद्वारा यज्ञसे प्रकट की हुई एक कृत्या (अनु० ९३ । ५३) । तालाबपर गये हुए सप्तर्षियोंसे इसका उनके नामका निर्वचन पूछना (अनु० ९३ । ८०) । शुनःसख-रूपधारी इन्द्रद्वारा इसका वध (अनु० ९३ । १०५) ।

यानसन्धिपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४७ से ७१ तक) ।

यामुन–(१) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५१) । (२) गङ्गा-यमुनाके मध्यभागमें स्थित एक प्राचीन पर्वत (अनु० ६८ । ३) ।

यायात–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ राजा ययातिने यज्ञ किया था । इसकी विशेष महिमाका वर्णन (शल्य० ४१ । ३२–३९) ।

यायावर–मुनिवृत्तिसे कठोर व्रतका पालन करते हुए सदा इधर-उधर घूमते रहनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंके एक समूह-विशेषका नाम ! जरत्कारु मुनि यायावर ही थे (आदि० १३ । ११, १८) । यायावरोंके धर्मका वर्णन (अनु० १४२ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५९३२) ।

यास्क–एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने अनेक यज्ञोंमें नारायणका शिपिविष्ट नामसे गान किया है (शान्ति० ३४२ । ७२) ।

युगन्धर–(१) एक पर्वत या प्रदेश (यहाँके लोग ऊँटनी और गदहीतकके दूधका दही बना लेते हैं; जो शास्त्र-निषिद्ध है ।) (वन० १२९ । ९) । (२) एक पाण्डवपक्षीय योद्धा, जिसने द्रोणाचार्यपर धावा किया और अन्तमें यह द्रोणद्वारा मारा गया (द्रोण० १६ । ३०-३१) ।

युगप–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५६)

युधामन्यु-पाण्डव-पक्षका एक श्रेष्ठ रथी, जो पाञ्चालदेशका राजकुमार था (उद्योग० १७० । ५) । यह अर्जुनका चक्ररक्षक था (भीष्म० १५ । १९) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३) । कृतवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । २७-३२) । दुर्योधनके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १३० । ३०–४३) । कृपाचार्यद्वारा इसका पराजित होना (कर्ण० ६१ । ५५-५६) । इसके द्वारा कर्णके भाई चित्रसेनका वध (कर्ण० ८३ । ३९) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८ । ३८) ।

युधिष्ठिर–महाराज पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र (आदि० १ । ११४; आदि० ६३ । ११५-११६) । धर्मराजके द्वारा कुन्तीके गर्भसे इनकी उत्पत्ति तथा इनके उत्पत्तिकालीन ग्रहोंकी स्थिति (आदि० १२२ । ६-७) । इनके जन्मकालमें आकाशवाणी हुई । उसने बताया कि यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओंमें अग्रगण्य, पराक्रमी एवं सत्यवादी राजा होगा । पाण्डुका यह प्रथम पुत्र 'युधिष्ठिर' नामसे विख्यात हो तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि प्राप्त करेगा । यह यशस्वी, तेजस्वी और सदाचारी होगा (आदि० १२२ । ७–१०) । शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनका नामकरण-संस्कार (आदि० १२३ । १९-२०) । वसुदेवके पुरोहित काश्यपके द्वारा इनके उपनयन दि संस्कार (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । राजर्षि शुकसे शिक्षा लेकर इनका तोमर चलानेकी कलामें पारंगत होना (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ३६९) । पाण्डुकी चितापर आरोहण करनेसे पूर्व माद्रीने अपने पुत्रोंके मस्तक सूँघे और युधिष्ठिरका हाथ पकड़कर कहा–'पुत्रो ! अब बड़े भैया युधिष्ठिर ही तुम चारों भाइयोंके पिता हैं' (आदि० १२४ । २८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ३०३) । शतशृङ्गनिवासी मुनि पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें ले जाकर भीष्मजीसे युधिष्ठिरका परिचय कराते हुए बोले–'महाराज पाण्डुको साक्षात् धर्मराजद्वारा यह पुत्र प्राप्त हुआ है । इसका नाम युधिष्ठिर है (आदि० १२५ । २२-२३) । दुर्योधनद्वारा जलविहारका प्रस्ताव और युधिष्ठिरका उसे स्वीकार करना (आदि० १२७ । ३५–३७) । धर्मात्मा युधिष्ठिरका भीमसेनको न देखकर माता कुन्तीके पास जाकर भीमसेनके विषयमें पूछना और उनके लिये चिन्ता प्रकट करना । भीमसेनके खो जानेके समाचारसे कुन्तीका चिन्तित होकर युधिष्ठिरको उनकी खोजके लिये आदेश देना (आदि० १२८ । ४–१२) । भीमसेनका नागलोकसे आकर अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको प्रणाम करना और दुर्योधनकी कुचेष्टाको बताना । युधिष्ठिरका भीमसेनको सर्वथा चुप रहनेकी सलाह देना तथा सतत सावधान हो जाना (आदि० १२८ । ३०–३५) । इनका द्रोणाचार्यसे कृपाचार्यकी अनुमति ले सदा हस्तिनापुरमें ही रहकर भिक्षा-ग्रहण (जीवननिर्वाह) करनेके लिये कहना (आदि० १३० । २६) । रथपर बैठकर युद्ध करनेमें इनकी कुशलता (आदि० १३१ ।

६३)। द्रोणाचार्यके द्वारा इनके लक्ष्यवेधकी परीक्षा (आदि० १३१ । ७१-७७)। अर्जुनका युधिष्ठिरको द्रुपदके साथ युद्ध करनेसे रोकना (आदि० १३७ । २६)। धृतराष्ट्रद्वारा इनका युवराज-पदपर अभिषेक (आदि० १३८ । २)। युधिष्ठिरने अपने शील, सदाचार तथा मनोयोगपूर्वक प्रजापालनकी प्रवृत्तिके द्वारा अपने पिता महाराज पाण्डुकी कीर्तिको भी ढक दिया (आदि० १३८ । ३)। प्रजावर्गका युधिष्ठिरको ही राज्य पानेके योग्य बताना (आदि० १४० । २३—२८)। भाइयों-सहित वारणावत जानेके लिये उद्यत हो युधिष्ठिरका माननीय कौरवोंसे अनुमति एवं आशीर्वाद माँगना (आदि० १४२ । ११–१६)। हस्तिनापुरके ब्राह्मणोंका धृतराष्ट्रके विषम बर्तावकी निन्दा करते हुए जहाँ युधिष्ठिर जायँ वहीं घर-बार छोड़कर जानेका निश्चय करना, युधिष्ठिरका पुरवासियोंको समझाना और धृतराष्ट्रकी ही आज्ञामें रहनेके लिये अनुरोध करना (आदि० १४४ । ६—१७)। लाक्षागृहमें कौरवोंके कुचक्रसे बचनेके लिये इनको विदुरका संकेत (आदि० १४४ । १९–२६)। 'मैंने आपकी बात समझ ली' यह युधिष्ठिरका उत्तर तथा कुन्तीके पूछनेपर युधिष्ठिरका विदुरके कथनका उन्हें तात्पर्य बताना (आदि० १४४ । २७–३३)। वारणावतवासियोंसे घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिर देवमण्डलीके बीच साक्षात् इन्द्रके समान सुशोभित हुए (आदि० १४५ । ४)। युधिष्ठिरका भीमसेनसे लाक्षागृहको अग्नि-दीपक पदार्थोंसे बना हुआ बताकर उसमें सावधानीसे किसी गुप्त स्थानमें रहने और पापी पुरोचन एवं दुर्योधनको चकमा देकर वहाँसे भाग निकलनेके लिये परामर्श देना (आदि० १४५ । १३–३१)। विदुरके भेजे हुए खनकसे युधिष्ठिरकी बातचीत तथा भाइयोंसहित अपनेको संकट-मुक्त करनेके लिये उससे कोई उपाय करनेका अनुरोध (आदि० १४६ । १–१५)। जतुगृहको जलानेके लिये इनका अपने भाइयोंको परामर्श (आदि० १४७ । २–४)। विदुरके भेजे हुए नाविकका युधिष्ठिरको विदुरका संदेश सुनाना और माता एवं भाइयोंसहित इन्हें गङ्गाजीके पार उतारना (आदि० १४८ अध्याय)। भीष्म, कौरव तथा पुत्रोंसहित धृतराष्ट्रका युधिष्ठिर आदि-को जलाञ्जलि देना, पुरवासियों तथा भीष्मजीका उनके लिये शोक एवं विलाप करना और विदुरका भीष्मजीसे एकान्तमें युधिष्ठिर आदिके जीवित होनेकी बात बताना (आदि० १४९ । १५–१८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ-सहित)। धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रेरणासे महाबली भीम-सेनका भाइयों और कुन्तीको लेकर शीघ्रताके साथ चलना (आदि० १४९ । २३–२६)। भीमसेनका माता तथा युधिष्ठिर आदिकी दयनीय दशापर विषाद एवं रोष (आदि० १५० । २१–४३)। भीमसेनका हिडिम्बाको अपने ज्येष्ठ भ्राताका परिचय देना (आदि० १५१ । ३१)। हिडिम्बाके मुखसे भीमसेन और हिडिम्बके युद्धकी बात सुनकर युधिष्ठिरका उछलकर खड़ा हो जाना (आदि० १५३ । १३)। हिडिम्बाको मारनेके लिये उद्यत हुए भीमसेनको इनका निषेध (आदि० १५४ । २-३)। कुन्तीसहित युधिष्ठिरसे हिडिम्बाकी भीमसेनके लिये प्रार्थना, कुन्तीका युधिष्ठिरसे इसके लिये सम्मति माँगना और युधिष्ठिरका कुछ शर्तोंके साथ हिडिम्बाके लिये भीमसेनको अपने साथ ले जानेका आदेश (आदि० १५४ । ४–१८ के बाद दाक्षिणात्य पाठसहित)। भीमसेनको बक नामक राक्षसके पास भेजनेके विषयमें युधिष्ठिर और कुन्तीकी बातचीत (आदि० १६१ अध्याय)। पाञ्चालदेश चलनेके लिये युधिष्ठिरको माताकी प्रेरणा और इनकी स्वीकृति (आदि० १६७ । ३–८)। चित्ररथ गन्धर्वकी प्राणरक्षाके लिये इनका अर्जुनको आदेश (आदि० १६९ । ३६-३७)। पाञ्चालयात्राके समय मार्गमें ब्राह्मणोंसे युधिष्ठिरकी बातचीत (आदि० १८३ अध्याय)। श्रीकृष्णका पाण्डवोंको पहचानकर बलरामजी-से युधिष्ठिर आदिका परिचय देना (आदि० १८६ । ९-१०)। कुन्तीका युधिष्ठिरसे अपने कथनकी सत्यतापूर्वक द्रौपदीकी अधर्मसे रक्षाके लिये उपाय पूछना (आदि० १९० । ३–५)। इनका माता कुन्तीको आश्वासन देकर अर्जुनसे द्रौपदीके विषयमें वार्तालाप और द्रौपदी हम सभी भाइयोंकी पत्नी होगी, ऐसा निश्चय (आदि० १९० । ६–१६)। श्रीकृष्ण और बलभद्रजीका कुम्हारके घर जाकर युधिष्ठिरको प्रणाम करना और युधिष्ठिरका उनसे कुशल पूछकर यह जिज्ञासा करना कि आपने कैसे हमें पहचान लिया (आदि० १९० । १८–२२)। द्रुपदके पुरोहितका युधिष्ठिरसे उन लोगोंका परिचय पूछना और द्रुपदकी कामना बताना, युधिष्ठिरका भीमसेनसे पुरोहितका पूजन कराकर उनसे सामयिक वार्तालाप करना और द्रुपदकी कामनाको सफल बताना (आदि० १९२ अध्याय)। पुरोहितके मुँहसे युधिष्ठिरका कथन सुनकर द्रुपदका पाण्डवों-के शील-स्वभावकी परीक्षा करना तथा उन सबको भोजन कराना (आदि० १९३ अध्याय)। इनके द्वारा अपने सभी भाइयोंका परिचय देकर द्रुपदको आश्वासन (आदि० १९४ । ८–१२)। द्रुपदका युधिष्ठिरसे लाक्षागृहसे सकुशल बचकर निकल आनेका समाचार पूछना और युधिष्ठिरका उन्हें सब कुछ बताना (आदि० १९४ । १५–१७)। द्रौपदी-का विवाह किसके साथ हो, द्रुपदके यह पूछनेपर—द्रौपदी हम सभी भाइयोंकी महारानी होगी—ऐसा उन्हें उत्तर

देना और इस कार्यको धर्मसंगत बताना। द्रुपदका इनके इस निश्चयको लोकवेदविरुद्ध बताना और पुनः कुन्ती आदिके साथ बैठकर इसपर विचार करनेके लिये प्रेरित करना (आदि० १९४ । २०–३२)। व्यासजीके पूछनेपर द्रौपदीके विवाहके सम्बन्धमें इनका निर्णय (आदि० १९५ । १३–१७)। द्रौपदीके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० १९७ । ११-१२)। युधिष्ठिरका आधा राज्य पाकर भाइयोंसहित खाण्डवप्रस्थमें प्रवेश (आदि० २०६ । २३–२७)। श्रीकृष्णका विश्वकर्माद्वारा युधिष्ठिरके लिये खाण्डवप्रस्थमें एक दिव्य नगरका निर्माण कराना, युधिष्ठिरका उस नगर एवं भवनमें प्रवेश तथा द्वारकाको जाते हुए श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरकी पाण्डवोंपर कृपा बनाये रखने और कर्तव्यकी अनुमति देनेके लिये प्रार्थना (आदि० २०६ । २८–५१ के बाद दाक्षिणात्य पाठसहित)। भाइयोंसहित युधिष्ठिरद्वारा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन (आदि० २०७ । ५–८)। इनके पास देवर्षि नारदका शुभागमन (आदि० २०७ । ९ के बाद दाक्षिणात्य पाठसहित)। राजा युधिष्ठिरद्वारा देवर्षि नारदका सत्कार तथा नारदजीका युधिष्ठिर आदिसे द्रौपदीके विषयमें कुछ नियम बनानेके लिये कहकर उन्हें सुन्द और उपसुन्दकी कथा सुनाना (आदि० २०७ । १८ से आदि० २११ अध्यायतक)। नियमभङ्गका प्रायश्चित्त करनेके लिये आज्ञा माँगनेवाले धनंजयको युधिष्ठिरका वनमें जानेसे रोकना (आदि० २१२ । २७–३३)। सुभद्राहरणके लिये इनकी अर्जुनको अनुमति (आदि० २१८ । २५)। सुभद्राके लिये दहेज लेकर आये हुए श्रीकृष्ण-बलराम आदिका युधिष्ठिरसे मिलना तथा युधिष्ठिरद्वारा उन सबका सत्कार (आदि० २२० । ३८–४३)। अभिमन्युके जन्मपर युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंको दस हजार गौओंका दान करना (आदि० २२० । ६९)। द्रौपदीका युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्यनामक पुत्र प्राप्त करना (आदि० ६३ । १२१-१२३; आदि० ९५ । ७५; आदि० २२० । ७९)। इनके द्वारा शिबिराजकुमारी देविकाके गर्भसे यौधेयकी उत्पत्ति (आदि० ९५ । ७६)। युधिष्ठिर और उनके राज्यकी विशेषता (आदि० २२१ । २–१६)। श्रीकृष्णका मयासुरको धर्मराज युधिष्ठिरके लिये एक दिव्य सभाभवन बनानेके लिये आदेश देना (सभा० १ । १०–१३)। श्रीकृष्णके द्वारका जाते समय उनके रथपर दारुकको हटाकर राजा युधिष्ठिरका स्वयं बैठना और घोड़ोंकी बागडोर सँभालना (सभा० २ । १६-१७)। मयासुरका धर्मराज युधिष्ठिरको उनके लिये दिव्य सभाभवन तैयार हो जानेकी सूचना देना (सभा० ३ । ३७)। मयनिर्मित सभाभवनमें इनका प्रवेश (सभा० ४ । १–८)। नारदद्वारा इनको विविध मङ्गलमय उपदेश (सभा० ५ अध्याय)। इनकी दिव्य सभाओंके विषयमें जिज्ञासा और नारदद्वारा उनका वर्णन (सभा० अध्याय ६ से ११ तक)। राजसूय-यज्ञ करनेके लिये इनको नारदद्वारा पाण्डुका संदेश (सभा० १२ अध्याय)। इनका राजसूय-यज्ञविषयक संकल्प और उसके विषयमें भाइयों, मन्त्रियों, मुनियों और श्रीकृष्णसे सलाह लेना (सभा० १३ अध्याय)। श्रीकृष्णकी युधिष्ठिरको राजसूय-यज्ञके लिये सम्मति (सभा० १४ अध्याय)। राजसूय-यज्ञसे पहले जरासंधको मारनेके लिये इनको श्रीकृष्णकी सलाह (सभा० १५ अध्याय)। जरासंधको जीतनेके विषयमें इनके उत्साहहीन होनेपर अर्जुनका इनके प्रति उत्साहपूर्ण उद्गार (सभा० १६ । ३)। श्रीकृष्णका इनके प्रति अर्जुनकी बातका अनुमोदन करते हुए इनके पूछनेपर उन्हें जरासंधकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनाना (सभा० १७ । १९)। इनके अनुमोदन करनेपर श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुनकी मगध-यात्रा (सभा० २० अध्याय)। अर्जुनका युधिष्ठिरसे उत्तर-दिशाकी विजयके लिये जानेकी आज्ञा माँगना और युधिष्ठिरका स्वस्तिवाचन कराकर जानेकी आज्ञा देना (सभा० २५ । १–७)। अन्य भाइयोंका भी धर्मराजसे सम्मानित होकर दिग्विजयके लिये यात्रा करना और केवल धर्मराजका खाण्डवप्रस्थमें रह जाना (सभा० २५ । ८–११)। युधिष्ठिरके शासनकी विशेषता, श्रीकृष्णकी आज्ञासे इनका राजसूय-यज्ञकी दीक्षा लेना तथा राजाओं, ब्राह्मणों तथा सगे-सम्बन्धियोंको बुलानेके लिये निमन्त्रण भेजना (सभा० ३३ अध्याय)। इनके यज्ञमें सब देशके राजाओं, कौरवों तथा यादवोंका आगमन और उन सबके भोजन, विश्राम आदिकी सुव्यवस्था (सभा० ३४ अध्याय)। इनके राजसूय-यज्ञका वर्णन (सभा० ३५ अध्याय)। युधिष्ठिरकी यज्ञशालाकी विशेषता और इनके उस धन-वैभव और यज्ञ-विधिको देखकर देवर्षि नारदको संतोष (सभा० ३६ । ९-१०)। भीष्मका युधिष्ठिरको राजाओंके लिये अर्घ्य-प्रदान करनेका आदेश तथा भीष्मसे पूछकर युधिष्ठिरका सबसे पहले श्रीकृष्णको सहदेवद्वारा अर्घ्य-प्रदान कराना (सभा० ३६ । २२–३१)। शिशुपालके विरोध करनेपर इनका उसे समझाना (सभा० ३८ । १–५)। युधिष्ठिरका भीष्मजीसे भगवान् श्रीकृष्णके सम्पूर्ण चरित्रोंको सुननेकी इच्छा प्रकट करना और भीष्मजीका भगवान्के अतीत, वर्तमान और भावी अवतारोंका वर्णन करना (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८१–८२६तक)। शिशुपालके द्वारा राजसूय यज्ञमें उपद्रव खड़ा करनेपर इनकी चिन्ता और भीष्मद्वारा इनको आश्वासन (सभा० ४० अध्याय)। युधिष्ठिरका अपने भाइयोंको

शिशुपालका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेकी आज्ञा देना और उसके पुत्रको चेदिदेशके राज्यपर अभिषिक्त करना (सभा० ४५ । ३४–३६) । इनके राजसूय यज्ञका विस्तृत वर्णन और उसकी समाप्ति (सभा० ४५ । ३७–३९ तथा दा० पाठ, पृष्ठ ८४१–८४३) । धर्मात्मा युधिष्ठिरका अवभृथ स्नान, राजाओंका उन्हें बधाई देकर स्वदेश जानेके लिये अनुमति माँगना तथा युधिष्ठिरका उन सबको अपने राज्यकी सीमातक पहुँचा आनेके लिये भाइयोंको आदेश देना (सभा० ४५ । ४०–४५) । श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विदा माँगना और इनका गद्‌गद-कण्ठसे उन्हें जानेकी अनुमति देना । उनके जाते समय भाइयोंसहित युधिष्ठिरका पैदल ही उनके पीछे पीछे जाना, श्रीकृष्णका अपने रथको रोककर युधिष्ठिरको कर्तव्यका उपदेश दे उन्हें लौटाना और स्वयं भी आज्ञा लेकर जाना (सभा०४५।५१–६७)।राजसूय यज्ञके अन्तमें व्यास-जीकी भविष्यवाणीसे इनको चिन्ता और समत्वपूर्ण वर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा (सभा० ४६ अध्याय) । इनके द्वारा प्रतिदिन दस हजार ब्राह्मणोंको सोनेकी थालियोंमें भोजन कराना (सभा० ४९ । १८) । राजसूय यज्ञमें इनको समुद्रद्वारा मधुकी भेंट (सभा० ४९ । २६) । इनके राजसूय यज्ञमें लाख ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर शङ्खध्वनि (सभा० ४९ । ३१) । युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधनद्वारा वर्णन (सभा० अध्याय ५१ से ५३ तक) । धृतराष्ट्रकी प्रेरणासे इनके पास विदुरका आना और इनका उनसे वार्तालाप (सभा० ५८ । १६) । इनका पुरोहित और सेवकोंके साथ सपरिवार हस्तिनापुरको जाना (सभा० ५८ । २० के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । जूएके अनौचित्यके सम्बन्धमें इनका शकुनिके साथ संवाद (सभा० ५९ अध्याय) । युधिष्ठिरद्वारा द्यूत-क्रीडाका आरम्भ (सभा० ६० । ६–९) । शकुनिके छलसे इनका जूएमें प्रत्येक दाँवपर हारना (सभा० ६१ अध्याय) । धन, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदीसहित इनका अपनेको भी हारना (सभा० ६५ अध्याय) । शत्रुओंको मारनेके लिये उद्यत हुए भीमसेनको युधिष्ठिरका शान्त करना (सभा० ७२ अध्याय) । इन्हें धृतराष्ट्रका आश्वासन एवं सारा धन लौटाकर इन्द्रप्रस्थ जानेकी आज्ञा देना (सभा० ७१ । २—१६) । इनका इन्द्रप्रस्थ लौटना (सभा० ७३ । १७-१८) । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पुनः जूएके लिये इनका मार्गमेंसे ही लौटना (सभा० ७६ । ६) । सबके मना करनेपर भी इनका शकुनिके साथ पुनः जूआ खेलना और हारना (सभा० ७६ । २१–२४) । इनका धृतराष्ट्र आदिसे वनगमनके लिये विदा लेना (सभा० ७८ । १–३) । विदुरका युधिष्ठिरसे कुन्तीको अपने ही घरमें सत्कारपूर्वक रखनेकी इच्छा प्रकट करना और उन सभी भाइयोंको सान्त्वना एवं आशीर्वाद प्रदान करना (सभा० ७८ । ५—२३) । कुन्तीका युधिष्ठिरादि पुत्रोंको वनकी ओर जाते देख आर्त-स्वरसे विलाप करना और युधिष्ठिर आदिका उन्हें प्रणाम करके चल देना (सभा० ७९ । १३—३०) । युधिष्ठिरका वस्त्रसे मुख ढककर वनको जाना (सभा० ८० । ४) । इनका अपने साथ आते हुए पुरवासियोंसे लौट जानेका अनुरोध (वन० १ । ३७) । साथ चलने-वाले ब्राह्मणोंसे लौट जानेके लिये इनका अनुरोध (वन० २ । २–४) । इनके द्वारा सूर्यका स्तवन (वन० ३ । ३६—६९) । सूर्यसे इन्हें अक्षयपात्रकी प्राप्ति (वन० ३ । ७२) । इनका किर्मीरको अपना परिचय देना (वन० ११ । २६-२७) । श्रीकृष्णके मुखसे इनका शाल्वोपाख्यान-श्रवण (वन० अध्याय १५ से २२ तक) । इन्हें मार्कण्डेयजीका धर्मविषयक आदेश (वन० २५ । ८—१८) । इनके द्वारा क्रोधकी निन्दा और क्षमाकी प्रशंसा (वन० २९ अध्याय) । द्रौपदीके आक्षेपका समाधान (वन० ३१ अध्याय) । इनका भीमसेनको समझाते हुए धर्मपर ही डटे रहना (वन० ३४ अध्याय) । भीमसेनको समझाना (वन० ३६ । २—२०) । इन्हें व्यासजीसे प्रतिस्मृति विद्याकी प्राप्ति (वन० ३६ । ३८) । इनका व्यासजीकी आज्ञासे भाइयों तथा विप्रोंसहित द्वैतवनसे काम्यकवनमें जाना (वन० ३६ । ४१) । इनके द्वारा अर्जुनको प्रतिस्मृति विद्याका उपदेश (वन० ३७ । १६) । इन्द्रका लोमश-को युधिष्ठिरके लिये संदेश देकर उनके पास भेजना और इनकी रक्षाके लिये उन्हें नियुक्त करना (वन० ४७ । २४—३३) । इनका तेरह वर्षोंतक शान्त रहनेके लिये भीमसेनको उपदेश (वन० ५२ । ३७–३९) । बृहदश्वसे वार्तालाप तथा नलोपाख्यान सुननेकी इच्छा प्रकट करना (वन० ५२ । ४२—५९) । बृहदश्वका इन्हें नलोपाख्यान सुनाना और इनको महर्षि बृहदश्वसे अक्षहृदय तथा अश्वविद्याकी प्राप्ति (वन० अध्याय ५३ से ७९ तक) । द्रौपदीका युधिष्ठिरसे अर्जुनके लिये चिन्ता प्रकट करना (वन० ८० । ११ –१५) । युधिष्ठिरके पास देवर्षि नारदका आगमन, इनका नारदजीसे तीर्थयात्रा-फलविषयक प्रश्न, नारदजीद्वारा भीष्म-पुलस्त्य-संवादको प्रस्तुत करना और इन्हें ऋषियोंके साथ तीर्थयात्रा करनेके लिये आदेश देना (वन० अध्याय ८१ से ८५ तक) । इनका धौम्यसे पुण्य तपोवन आश्रम एवं नदी आदिके विषयमें प्रश्न तथा धौम्यद्वारा इनके समक्ष चारों दिशाओंके तीर्थोंका वर्णन (वन०अध्याय ८६ से ९० तक) । युधिष्ठिरके

पास महर्षि लोमशका आगमन और इनसे अर्जुनको पाशुपत आदि दिव्यास्त्र प्राप्त होनेकी बात बताकर इन्द्रका संदेश सुनाना (वन० ९१ अध्याय) । महर्षि लोमशके मुखसे इन्द्र और अर्जुनका संदेश सुनकर युधिष्ठिरका प्रसन्न होना और इनका तीर्थयात्राके लिये उद्यत हो अपने अधिक साथियोंको विदा कर देना (वन० ९२ अध्याय) । ऋषियोंका युधिष्ठिरके पास आकर अपनेको भी तीर्थयात्राके लिये साथ ले चलनेका अनुरोध करना तथा इनका उनकी बात मानकर ऋषियोंको नमस्कार करके तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान (वन० ९३ अध्याय) । महर्षि लोमशका देवताओं और धर्मात्मा राजाओंका उदाहरण देकर युधिष्ठिरको अधर्मसे हानि बताना और तीर्थयात्राजनित पुण्यकी महिमा वर्णन करते हुए आश्वासन देना (वन० ९४ अध्याय) । शमठका युधिष्ठिरसे अमूर्तरयाके पुत्र राजर्षि गयके यज्ञका वर्णन करना (वन० ९५ । १८—२९) । इनका अगस्त्याश्रममें पहुँचकर वातापिके विनाशके विषयमें लोमशजीसे पूछना और लोमशजीका इनसे अगस्त्यका चरित्र सुनाना (वन० अध्याय ९६ से ९९ । ३० तक) । युधिष्ठिरका पुनः अगस्त्यका चरित्र सुननेकी इच्छा प्रकट करना और लोमशका इनसे उनका चरित्र सुनाना (वन० अध्याय १०० से १०५ तक) । युधिष्ठिरके पूछनेपर लोमशजीका भगीरथके आश्रयसे किस प्रकार समुद्रकी पूर्ति हुई—यह प्रसंग सुनाना (वन० अध्याय १०६ से १०९ तक) । युधिष्ठिरके पूछनेपर लोमशजीका हेमकूटपर घटित होनेवाली अद्भुत बातोंका रहस्य बताना और ऋष्यशृङ्गका चरित्र सुनाना (वन० अध्याय ११० से ११३ तक) । इनका कौशिकी, गङ्गासागर एवं वैतरणी नदी होते हुए महेन्द्र पर्वतपर गमन (वन० ११४ अध्याय) । अकृतव्रणका युधिष्ठिरसे जमदग्निकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनाते हुए परशुरामजीके उपाख्यानका वर्णन करना (वन० अध्याय ११५ से ११७ । १५ तक) । महेन्द्र पर्वतपर इन्हें परशुरामका दर्शन तथा इनके द्वारा उनका पूजन (वन० ११७ । १६–१८) । इनका विभिन्न तीर्थोंमें होते हुए प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर तपस्यामें प्रवृत्त होना और यादवोंका भाइयोंसहित इनसे मिलना (वन० ११८ अध्याय) । बलदेवजीका इनके प्रति सहानुभूति-सूचक उद्गार (वन० ११९ अध्याय) । इनके द्वारा श्रीकृष्णके कथनका अनुमोदन (वन० १२० । २७) । लोमशद्वारा युधिष्ठिरसे राजा गयके यज्ञकी प्रशंसा, च्यवन-सुकन्याके चरित्रका वर्णन (वन० अध्याय १२१ से १२५ तक) । युधिष्ठिरके पूछनेपर लोमशद्वारा मान्धाताके चरित्रका वर्णन और सोमक तथा जन्तुके उपाख्यानका कथन (वन० अध्याय १२६ से १२७ तक) । लोमशका युधिष्ठिरको विभिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन करते हुए अनेकानेक उपाख्यान सुनाना (वन० अध्याय १२८ से १३८ तक) । भाइयोंसहित युधिष्ठिरकी उत्तराखण्ड-यात्रा, लोमशजीद्वारा उसकी दुर्गमताका कथन, गङ्गाजीसे युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये प्रार्थना तथा युधिष्ठिरका भीमसेनको द्रौपदीकी रक्षाके लिये सावधान रहनेके लिये आदेश देना और नकुल-सहदेवके शरीरपर हाथ फेरकर उन्हें सान्त्वना देना (वन० १३९ अध्याय) । युधिष्ठिरका सहदेव एवं द्रौपदीसहित भीमसेनको धौम्य, सारथि, सेवक, रथ, घोड़े तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंके साथ लौट जानेकी आज्ञा देना और अपने लौटनेतक गङ्गाद्वारमें प्रतीक्षा करनेको कहना (वन० १४० । १ —७) । इनका अर्जुनको न देखनेके कारण भीमसेनसे अपनी मानसिक चिन्ता प्रकट करना एवं गन्धमादन पर्वतपर जानेका दृढ़ निश्चय करना (वन० १४१ अध्याय) । गन्धमादनकी यात्रामें द्रौपदीके मूर्छित होनेपर इनका विलाप (वन० १४४ । १०-१४) । युधिष्ठिरका द्रौपदीको आश्वासन देकर भीमसेनसे यह पूछना कि इस दुर्गम मार्गमें द्रौपदी कैसे चल सकेगी (वन० १४४ । २१-२२) । इनकी आज्ञासे भीमसेनद्वारा घटोत्कचका स्मरण और उसकी सहायतासे द्रौपदीसहित इन सब लोगोंका गन्धमादन पर्वत एवं बदरिकाश्रममें प्रवेश (वन० १४४ । २५ से १४५ अध्यायतक) । भीमसेनके सौगन्धिक पुष्प लानेके लिये चले जानेपर भयंकर उत्पात देखकर इनकी चिन्ता और घटोत्कचके सहारे सभीके साथ इनका सौगन्धिक वनमें पहुँचना (वन० १५५ अध्याय) । इनको आकाशवाणीद्वारा सौगन्धिक वनसे नर-नारायणाश्रममें लौट जानेका आदेश (वन० १५६ । १३–१६) । अपहरण करते समय जटासुरको इनकी फटकार (वन० १५७ । १२—३०) । इनके द्वारा भीमसेनसे गन्धमादनकी रमणीयताका वर्णन (वन० १५८ । ७७—१०१) । प्रश्नके रूपमें आर्ष्टिषेणका युधिष्ठिरको उपदेश (वन० १५९ अध्याय) । गन्धमादन पर्वतपर राक्षसोंके वध करनेपर इनके द्वारा भीमसेनकी भर्त्सना (वन० १६१ । १०–१२) । इनकी कुबेरसे भेंट तथा उनके द्वारा इन्हें सान्त्वना (वन० १६१ । ४३–४६) । धौम्यका युधिष्ठिरको मेरु पर्वत तथा उसके शिखरोंपर स्थित ब्रह्मा, विष्णु आदिके स्थानोंका लक्ष्य कराना और सूर्य-चन्द्रमाकी गति एवं प्रभाका वर्णन करना (वन० १६३ अध्याय) । युधिष्ठिर आदिका अर्जुनके लिये उत्कण्ठित होना और इनके समीप अर्जुनका आगमन (वन० १६४ अध्याय) । अर्जुनका युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम करके सब भाइयों और द्रौपदीसे मिलना और युधिष्ठिरके पास विनीतभावसे खड़ा होना (वन० १६५ । ४-५) । इनके द्वारा गन्धमादनपर इन्द्रका स्वागत-सत्कार तथा उनको सान्त्वना देकर इन्द्रका लौटना

(वन० १६६ अध्याय) । अर्जुनद्वारा इनके समक्ष अपनी तपस्या, यात्रा तथा स्वर्ग-यात्राके वृत्तान्तका वर्णन (वन० अध्याय १६७ से १७३ तक) । अर्जुनद्वारा यात्राका वृत्तान्त सुनकर इनके द्वारा उनका अभिनन्दन तथा दिव्यास्त्र-दर्शनकी इच्छा (वन० १७४ । ११-१५) । युधिष्ठिर और भीमसेनका वार्तालाप (वन० १७६ । ७--१७) । भाइयोंसहित युधिष्ठिरका गन्धमादनसे बदरिकाश्रम आदि स्थानोंमें होते हुए द्वैतवनमें प्रवेश (वन० १७७ अध्याय) । युधिष्ठिरको अनिष्ट-दर्शनसे चिन्ता तथा उनके द्वारा भीमसेनकी खोज करते हुए उनके पास पहुँचकर उन्हें अजगरके वशमें पड़ा हुआ देखना (वन० १७९ अध्याय) । इनकी अजगर-रूपधारी नहुषसे बातचीत तथा इनके द्वारा अपने प्रश्नोंका उचित उत्तर पाकर संतुष्ट हुए सर्परूपधारी नहुषका भीमसेनको छोड़ देना और युधिष्ठिरके साथ वार्तालाप करनेके प्रभावसे सर्पयोनिसे मुक्त हो स्वर्गको जाना (वन० अध्याय १८० से १८१ तक) । युधिष्ठिर आदिका पुनः द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश (वन० १८२ । १७-१८) । सत्यभामासहित श्रीकृष्णका युधिष्ठिरके पास आना और इनको तथा भीमसेनको प्रणाम करना (वन० १८३ । ७-८) । इनके द्वारा श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर उनका अनुमोदन करना (वन० १८३ । १६–४०) । इनके पास मार्कण्डेयजीका शुभागमन तथा इनके पूछनेपर मार्कण्डेयजीद्वारा कर्मफलका विवेचन (वन० १८३ । ४१—९५) । इनका मार्कण्डेयजीसे सर्वकारण काल-विषयक जिज्ञासा (वन० १८८ । २–१६) । मार्कण्डेयजीसे कलियुगके प्रभावका वर्णन करनेके लिये प्रश्न (वन० १९० । २–६) । युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीका इनके लिये धर्मका उपदेश (वन० १९१ । २१—३०) । युधिष्ठिरका उनके बताये धर्मके पालनकी प्रतिज्ञा करना (वन० १९१ । ३१-३२) । पतिव्रता और धर्मव्याधकी कथा सुनकर युधिष्ठिरका संतोष प्रकट करना (वन० २१६ । ३६) । युधिष्ठिरकी अग्निके विषयमें जिज्ञासा और मार्कण्डेयजीद्वारा अग्निवंशका वर्णन (वन० अध्याय २१७ से २२२ तक) । युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीका इन्हें कार्तिकेयके जन्म-कर्मका वृत्तान्त सुनाना (वन० अध्याय २२३ से २३१ तक) । इनका कार्तिकेयके त्रिलोक-विख्यात नामोंको सुननेकी इच्छा प्रकट करना और मार्कण्डेयजीका इन्हें उन नामोंको सुनाना (वन० २३२ अध्याय) । युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका खेद और चिन्तापूर्ण उद्गार (वन० २३६ अध्याय) । इनका भीमसेनको गन्धर्वोंके हाथसे कौरवोंको छुड़ानेका आदेश (वन० २४३ । १—१९) । चित्रसेनका युधिष्ठिरके पास आना, दुर्योधनकी कुचेष्टाको बताना, युधिष्ठिरका कौरवोंको बन्धनसे छुड़ाना, गन्धर्वोंकी प्रशंसा करना और दुर्योधनको प्रेमपूर्वक दुःसाहससे निवृत्त होनेकी सलाह देना (वन० २४६ । १२—२३) । दुःशासनका युधिष्ठिरके पास दूत भेजकर उन्हें दुर्योधनके वैष्णव-यज्ञमें आनेके लिये संदेश कहलाना तथा युधिष्ठिरका दुर्योधनके यज्ञकर्मकी प्रशंसा करके समय-पालनसे पहले आनेमें असमर्थता प्रकट करना (वन० २५६ । ७—१४) । कर्णद्वारा अर्जुन-वधकी प्रतिज्ञा सुनकर इनकी चिन्ता (वन० २५७ । २३-२४) । स्वप्नमें मृगोंसे प्रेरित होकर भाइयोंसहित युधिष्ठिरका काम्यकवनमें गमन (वन० २५८ अध्याय) । युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका आगमन, युधिष्ठिरद्वारा उनका सत्कार, उनका युधिष्ठिरसे तप और दानकी महिमा बताना और उनके पूछनेपर तपसे भी दानको ही श्रेष्ठ बताना (वन० २५९ अध्याय) । दुर्योधनका दुर्वासाको संतुष्ट करके उनसे युधिष्ठिरका अतिथि होनेके लिये कहना (वन० २६२ । ७—२२) । इनके द्वारा दुर्वासाका अतिथि-सत्कार (वन० २६३ । २–४) । द्रौपदीहरणके अवसरपर इनका त्रिगर्तराजके साथ युद्ध और इनके द्वारा उसका वध, भीमद्वारा बंदी होकर जयद्रथका युधिष्ठिरके सामने उपस्थित होना, उसकी दशा देखकर युधिष्ठिरका हँसना और उसे दासभावसे मुक्त करके छोड़ देनेका आदेश देना तथा जयद्रथको उसके दुष्कर्मके लिये धिक्कारकर जानेके लिये आज्ञा देना (वन० २७२ । १४--२३) । अपनी दुरवस्थासे दुखी हुए युधिष्ठिरका मार्कण्डेय मुनिसे प्रश्न करना और उनका उन्हें श्रीरामोपाख्यान सुनाना, अन्तमें राजा युधिष्ठिरको आश्वासन देना (वन० अध्याय २७३ से २९२ तक) । युधिष्ठिरकी मार्कण्डेयजीसे द्रौपदी-जैसी दूसरी किसी पतिव्रता नारीके विषयमें जिज्ञासा और मार्कण्डेयजीका उनके प्रश्नके उत्तरमें सावित्रीका उपाख्यान सुनाना (वन० अध्याय २९३ से २९९ तक) । युधिष्ठिरका नकुलको वृक्षपर चढ़कर पानीका पता लगानेके लिये कहना (वन० ३१२ । ५-६) । नकुलके पानीका पता लगानेपर युधिष्ठिरका उनको तरकसोंमें पानी भर लानेका आदेश (वन० ३१२ । ९) । नकुलके लौटनेमें देर होनेपर युधिष्ठिरका सहदेवको भेजना (वन० ३१२ । १४-१५) । उनके लौटनेमें भी विलम्ब होनेपर इनका अर्जुनको पहलेके गये हुए दोनों भाइयोंको बुलाने और पानी लानेके लिये आदेश देना (वन० ३१२ । २०-२१) । उनके लौटनेमें भी देर होनेपर युधिष्ठिरका भीमसेनको भेजना (वन० ३१२ । ३३–३५) । अन्तमें युधिष्ठिरका जलाशयके तटपर जाना (वन० ३१२ । ४१—४५) । द्वैतवनमें जलके लिये गये हुए चारों

अभिमन्यु

भाइयोंको सरोवरपर पड़ा देखकर विलाप करना (वन० ३१२ । ४—२७) । युधिष्ठिरका सरोवरके जलमें प्रवेश और यक्षका उन्हें अपने प्रश्नोंका उत्तर देकर ही पानी पीने और ले जानेका आदेश देना (वन० ३१३ । २८—३०) । 'तुम कौन हो ?' युधिष्ठिरके यह पूछनेपर यक्षका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देना और युधिष्ठिरका अपनी बुद्धिके अनुसार उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी प्रतिज्ञा करना (वन० ३१३ । ३१—३४) । इनका यक्षके प्रश्नोंका उत्तर देना (वन० ३१३ । ४५—१२१) । 'तुम अपने भाइयोंमेंसे जिस एकको चाहो, वह अकेला ही जीवित हो सकता है' यक्षके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरका नकुलके जीवित होनेकी इच्छा प्रकट करना—इस विषयमें यक्ष और युधिष्ठिरका संवाद । इनकी बातसे संतुष्ट हुए यक्षका इनके सभी भाइयोंके जीवित होनेका वर देना (वन० ३१३ । १२२—१३३) यक्षका चारों भाइयों-को जिलाकर धर्मके रूपमें प्रकट हो युधिष्ठिरको वरदान देना (वन० ३१४ अध्याय) । अज्ञातवासके विषयमें अनुमति लेते समय युधिष्ठिरको महर्षि धौम्यका समझाना और भीमसेनका उत्साह देना (वन० ३१५ । १—२६) । युधिष्ठिरका ब्राह्मणको अरणीसहित मन्थनकाष्ठ सौंपना और अपने भाइयोंको एकत्र करके अर्जुनसे कोई उत्तम निवासस्थान चुननेके लिये कहना (विराट० १ । ६—९) । इनका विराटनगरमें अज्ञातवासका एक वर्ष बितानेका निश्चय प्रकट करना और अर्जुनके पूछनेपर विराटनगरमें अपने द्वारा किये जानेवाले भावी कार्यक्रमको बताना (विराट० १ । १५—२८) । इनका भीमसेनसे उनके भावी कार्यक्रमको पूछना (विराट० १ । दाक्षिणात्य पाठसहित २८) । अर्जुनके भावी कार्यक्रमके विषयमें पूछना (विराट० २ । ११—२४) । नकुलके कार्यके विषयमें जिज्ञासा करना (विराट० ३ । २) । सहदेवसे उनका भावी कार्यक्रम पूछना (विराट० ३ । ७) । द्रौपदीके कार्यक्रमके विषयमें पूछना (विराट० ३ । १४—१७) । इनका द्रौपदीको प्रोत्साहन देना (विराट० ३ । २२-२३) । इनका पुरोहित और द्रौपदी की सेविकाओंको रसोइयोंसहित पाञ्चालदेशमें जानेका आदेश देना तथा इन्द्रसेन आदिको केवल रथ लेकर द्वारका भेजना (विराट० ४ । १-५) । धौम्यका इन्हें राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना (विराट० ४ । ७—५१) इनका धौम्यके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना (विराट० ४ । ५२-५३) । इनका द्रौपदीको कंधेपर बिठाकर ले चलनेके लिये अर्जुनको आदेश देना (विराट० ५ । ७)। राजधानीके समीप पहुँचकर इनका अर्जुनको अपने-अपने अस्त्र उतारकर कहीं रख देनेकी आज्ञा देना (विराट० ५ । ९—१२) । इनका नकुलको शमी वृक्षपर चढ़कर सबके धनुष रखनेकी आज्ञा देना और पाँचों भाइयोंके गुप्त नाम निश्चित करना (विराट० ५ । २८—३५) । इनके द्वारा दुर्गादेवीका स्तवन और देवीका प्रत्यक्ष प्रकट होकर इन्हें वर देना (विराट० ६ अध्याय) । युधिष्ठिर-का राजा विराटसे मिलना और उनके यहाँ आदरपूर्वक निवास पाना (विराट० ७ अध्याय) । कीचकद्वारा मारी जानेपर द्रौपदीको इनका संकेतसे आश्वासन देना (विराट० १६ । ४०—४४) । सुशर्माके हाथसे विराटको छुड़ानेके लिये भीमसेनको आदेश (विराट० ३३ । ११—१३) । इनका एक हजार त्रिगर्तोको युद्धमें मार गिराना (विराट० ३३ । ३३) । सुशर्माको दासभावसे मुक्त करना (विराट० ३३ । ६१) । इनके द्वारा राजा विराटका अभिनन्दन (विराट० ३४ । १४) । इनके द्वारा की गयी बार-बार बृहन्नलाकी प्रशंसासे रुष्ट हुए विराटका युधिष्ठिरके मुखपर पासेसे प्रहार करना और इनकी नाकसे रक्त गिरना (विराट० ६८ । ३७—४७) । उत्तरके कहनेसे विराटका युधिष्ठिरसे क्षमा माँगना और इनका पहलेसे ही किये हुए क्षमादानको सूचित करना (विराट० ६८ । ६१—६५) । अर्जुनका राजा विराटको महाराज युधिष्ठिरका परिचय देना (विराट० ७० अध्याय) । विराटका युधिष्ठिरको राज्य समर्पण करके अर्जुनके साथ उत्तराके विवाहका प्रस्ताव करना (विराट० ७१ । २८—३५) । इनका मत्स्यनरेशकी कन्या और पार्थपुत्र अभिमन्युके सम्बन्धका अनुमोदन करना और मित्रोंके यहाँ निमन्त्रण भेजना (विराट० ७२ । १२-१३) । अभिमन्यु और उत्तराका विवाह हो जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरद्वारा ब्राह्मणोंको धन, सहस्रों गौ, नाना प्रकारके रत्न, भाँति-भाँतिके वस्त्र, आभूषण, वाहन और शय्या आदिका दान (विराट० ७२ । ३८—४०) । विराट-सभामें युधिष्ठिर आदिके समक्ष भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि और द्रुपदके भाषण (उद्योग० अध्याय १ से ४ तक) । अर्जुनके साथ युद्ध होनेके समय कर्णका सारथि बननेपर उनके उत्साहको नष्ट करनेके लिये इनकी शल्यसे प्रार्थना (उद्योग० ८ । ४५; उद्योग० १८ । २३) । युधिष्ठिरकी सहायताके लिये आयी हुई सेनाओंका संक्षिप्त विवरण (उद्योग० १९ । १—१५) । संजयसे कौरवपक्ष-का कुशल पूछते हुए इनका सारगर्भित प्रश्न करना (उद्योग० २३ । ६—२८) । इन्द्रप्रस्थ लौटानेपर ही शान्ति सम्भव होगी—संजयसे ऐसा कथन (उद्योग० २६ । २९) । संजयकी बातोंका उत्तर देना (उद्योग० २८ अध्याय) । संजयके विदा होते समय प्रधान-प्रधान कुरुवंशियोंको इनका संदेश (उद्योग० ३० । ३—४९) ।

दुर्योधनसे पाँच गाँवकी माँगका संदेश (**उद्योग० ३१ । १९**) । इनके रथका वर्णन (**उद्योग० ५६ । १४**) । इनका श्रीकृष्णसे धृतराष्ट्रके लोभकी चर्चा करते और धनकी महत्ता बताते हुए अपना अभिप्राय निवेदन करना (**उद्योग० ७२ । ६–७८**) । माता कुन्ती और कौरवोंसे कहनेके लिये श्रीकृष्णको संदेश देना (**उद्योग० ८३ । ३७–४८**) । कुन्तीका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिर आदिके कुशल-समाचार पूछना और अपने दुःखोंको याद करके रोना (**उद्योग० ९० । ४—८९**) । कुन्तीके द्वारा युधिष्ठिरको संदेश (**उद्योग० अध्याय १३२ से १३६ तक**) । इनका श्रीकृष्णसे कौरवसभाका समाचार पूछना और श्रीकृष्णका इन्हें उत्तर देना (**उद्योग० अध्याय १४७ से १५० तक**) । प्रधान सेनापति चुननेके लिये इनका प्रस्ताव (**उद्योग० १५१ । ८**) । कुरुक्षेत्रमें अपनी सेनाका पड़ाव डालना (**उद्योग० १५२ । १**) । श्रीकृष्णसे अपने कर्तव्यके विषयमें पूछना (**उद्योग० १५४ । ५**) । अपने सेनापतिका अभिषेक करना (**उद्योग० १५७ । ११–१४**) । उलूकको दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (**उद्योग० १६२ । ५१–५६; उद्योग० १६३ । २५–३०**) । इनका अर्जुनसे उनकी शक्ति जाननेके लिये प्रश्न करना (**उद्योग० १९४ । ७**) । अपनी सेनाको कुरुक्षेत्रके मैदानमें ले जाना (**उद्योग० १९६ अध्याय**) । अर्जुनको अपनी सेनाकी व्यूहरचना करनेका आदेश देना (**भीष्म० १९ । ६**) । कौरव-सेनाको देखकर इनका विषाद करना (**भीष्म० २१ । ३–५**) । अपना अनन्तविजय नामक शङ्ख बजाना (**भीष्म० २५ । १६**) । भीष्मसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना (**भीष्म० ४३ । ३७**) । द्रोणाचार्यको प्रणाम करके उनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना (**भीष्म० ४३ । ५२**) । कृपाचार्यका सम्मान करके उनसे भी युद्धके लिये आज्ञा माँगना (**भीष्म० ४३ । ६९**) । शल्यसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना (**भीष्म० ४३ । ७८**) । युधिष्ठिरका कौरव-वीरोंको अपने पक्षमें आनेके लिये निमन्त्रित करना और आये हुए युयुत्सुको अपने पक्षमें ले लेना (**भीष्म० ४३ । ९४–१०१**) । प्रथम दिनके युद्धमें शल्यके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ४५ । २८–३०**) । भीष्म-का पराक्रम देखकर इनकी चिन्ता (**भीष्म० ५० । ४–२४**) । इनका शल्यके साथ युद्ध (**भीष्म० ७१ । १८–२१**) । इनके द्वारा अपनी सेनाके वज्रव्यूहका निर्माण (**भीष्म० ८१ । २२-२३**) । इनका भयंकर कोप और इनके द्वारा श्रुतायुकी पराजय (**भीष्म० ८४ । ८–१७**) । शिखण्डीको उपालम्भ देना (**भीष्म० ८५ । २०–२५**) । भीष्मसे भयभीत होकर इनका धनुष-बाण फेंक देना (**भीष्म० ८५ । ३१**) । भीष्मके साथ युद्ध और इनकी पराजय (**भीष्म० ८६ । २–११**) । इनपर भगदत्तका आक्रमण (**भीष्म० ९५ । ८४**) । भीष्मका इन्हें सब ओरसे घेर लेना (**भीष्म० १०२ । २७-२८**) । इनका शकुनिके साथ युद्ध (**भीष्म० १०५ । ११–२३**) । शल्यके साथ युद्ध (**भीष्म० १०५ । ३०–३३**) । इनका करुणापूर्ण शब्दोंमें भीष्मवधके लिये श्रीकृष्णसे सलाह पूछना (**भीष्म० १०७ । १३–२४**) । भीष्मवधका उपाय उन्हींसे पूछनेके लिये श्रीकृष्णसे कहना (**भीष्म० १०७ । ४१–५१**) । भीष्मके पास जाकर उनसे उनके वधका उपाय पूछना (**भीष्म० १०७ । ६२–७४**) । द्रोणाचार्यके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११० । १७; भीष्म० १११ । ५०–५२**) । भीष्मके आदेशसे अपनी सेनाको उनपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देना (**भीष्म० ११५ । १७–२०**) । शल्यके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११६ । ४०-४१**) । श्रीकृष्णसे वार्तालाप (**भीष्म० १२० । ६९–७०**) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**द्रोण० १० । ७–१२**) । द्रोणाचार्यकी अपनेको पकड़नेकी प्रतिज्ञा सुनकर अर्जुनको अपने पास ही रहनेके लिये कहना (**द्रोण० १३ । ३–६**) । द्रोणाचार्यसे अपनी रक्षाके लिये इनका अर्जुनको आदेश देना (**द्रोण० १७ । ४२-४३**) । द्रोणाचार्यद्वारा निर्मित गरुडव्यूहको देखकर इनका भयभीत होना (**द्रोण० २० । २०-२१**) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । १०**) । शल्यके साथ युद्ध (**द्रोण० २५ । १५–१७**) । भगदत्तको विशाल रथ-सेनाके द्वारा इनका घेरना (**द्रोण० २६ । ३१–३९**) । अभिमन्युको व्यूह-भेदनके लिये कहना (**द्रोण० ३५ । १४–१७**) । जयद्रथका इन्हें व्यूहमें घुसनेसे रोक देना (**द्रोण० ४२ । ३–८**) । अभिमन्युकी मृत्युके पश्चात् इनका अपने सैनिकोंको सान्त्वना देना (**द्रोण० ४९ । ३५**) । अभिमन्युकी मृत्युपर इनका करुण-विलाप (**द्रोण० ५१ अध्याय**) । व्यासजीसे मृत्युकी उत्पत्ति आदिके विषयमें प्रश्न करना (**द्रोण० ५२ । १८-१९**) । व्यासजीके समझानेसे अभिमन्यु-वधजनित शोकसे रहित होना (**द्रोण० ७१ । २५-२६**) । अर्जुनसे अभिमन्यु-वधका वृत्तान्त कहना (**द्रोण० ७३ । १—१६**) । इनकी युद्धकालमें भी दान-पूजन आदिकी नित्य-चर्या (**द्रोण० ८२ अध्याय**) । जयद्रथ-वधके लिये की गयी अर्जुनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना करना (**द्रोण० ८३ । १०—१९**) । अर्जुनको विजय-का आशीर्वाद देना (**द्रोण० ८४ । ४**) । इनका शल्यके साथ युद्ध (**द्रोण० ९६ । २९-३०**) । कृतवर्मा-पर इनका आक्रमण (**द्रोण० ९७ । २**) । द्रोणाचार्यके

साथ युद्ध और उनके द्वारा इनकी पराजय (द्रोण० १०६ । १८—४७) । सात्यकिकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश देना (द्रोण० ११० । १४—१९) । इनका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अर्जुनकी सहायताके लिये जानेका आदेश (द्रोण० ११० । ४२—१०३) । अपनी रक्षाका समुचित प्रबन्ध बताकर इनका सात्यकिको अर्जुनकी सहायताके लिये जानेका ही आग्रहपूर्ण आदेश (द्रोण० १११ । ४०—५१) । दुर्योधनके साथ युद्ध (द्रोण० १२४ । १५—४७) । इनकी अर्जुन और सात्यकिके लिये चिन्ता तथा भीमसेनको उनका पता लगानेके लिये भेजना (द्रोण० १२६ अध्याय) । भीमसेन और अर्जुनका सिंहनाद सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हींके विषयमें विचार करना (द्रोण० १२८ । ३९—५५) । जयद्रथ-वधके बाद श्रीकृष्णकी स्तुति करना (द्रोण० १४९ । ५—३४) । इनके द्वारा भीमसेन और सात्यकिका अभिनन्दन (द्रोण० १४९ । ५४—६०) । दुर्योधनके साथ युद्ध और उसे मूर्च्छित करना (द्रोण० १५३ । २९—३९) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें पराजित करना (द्रोण० १५७ । २७—४३) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें मूर्छित करना (द्रोण० १६२ । ३६—४२) । इनका पैदल सैनिकोंको दीप जलानेका आदेश देना (द्रोण० १६३ । २७) । कृतवर्माके साथ युद्ध और उसके द्वारा परास्त होना (द्रोण० १६५ । २४—४०) । कर्णके पराक्रमसे इनकी घबराहट (द्रोण० १७३ । २५—२८) । घटोत्कच-वधसे शोक-विह्वल होना (द्रोण० १८३ । २७—५०) । धृष्टद्युम्न आदि महारथियोंको द्रोणाचार्यपर आक्रमण करनेका आदेश (द्रोण० १८४ । ३—८) । द्रोणाचार्यसे छलपूर्वक अश्वत्थामाके मरनेकी बात कहना (द्रोण० १९० । ५५) । अर्जुनसे कौरव-सेनाके सिंहनादका कारण पूछना (द्रोण० १९६ । १०—२५) । नारायणास्त्रके प्रभाव-को देखकर इनका खेद प्रकट करना (द्रोण० १९९ । २६—३६) । कर्णसे युद्धके लिये अर्जुनको व्यूह बनाने-का आदेश देना (कर्ण० ११ । २३—२७) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (कर्ण० २८ । ७-८; कर्ण० २९ । ३२) । अपने पक्षके वीरोंको उनके योग्य प्रतिपक्षियोंके साथ लड़नेका आदेश (कर्ण० ४६ । ३४—३६) । कर्णके साथ युद्धमें उसे मूर्च्छित करना (कर्ण० ४९ । २१) । कर्णसे पराजित होकर इनका युद्धस्थलसे हट जाना (कर्ण० ४९ । ४९) । अश्वत्थामासे पराजित होकर इनका युद्धस्थलसे हट जाना (कर्ण० ५५ । ३८) । इनपर कौरव-सैनिकोंका आक्रमण और कर्णके प्रहारसे व्याकुल होकर युद्धस्थलसे हट जाना (कर्ण० ६२ । ३१) । कर्णद्वारा घायल हो भागकर छावनीमें चला जाना (कर्ण० ६३ । ३३-३४) । अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना (कर्ण० ६६ अध्याय) । अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन बोलना (कर्ण० ६८ अध्याय) । अर्जुनके अपमानसे दुखी होकर वन जानेके लिये उद्यत होना (कर्ण० ७० । ४३—४७) । अर्जुनके साथ प्रेमपूर्वक मिलना और उन्हें आशीर्वाद देना (कर्ण० ७१ । ३०—३४, ४०) । कर्णकी मृत्युसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करना (कर्ण० ९६ । ४१—४५) । इनके द्वारा शल्यके चक्ररक्षक चन्द्रसेन और द्रुमसेनका वध (शल्य० १२ । ५२-५३) । शल्यके साथ युद्ध (शल्य० १३ अध्याय; १५ अध्याय) । इनके द्वारा शल्यकी पराजय (शल्य० १६ । ६२—६६) । शल्यका वध (शल्य० १७ । ५१) । इनके द्वारा शल्यके छोटे भाईका वध (शल्य० १७ । ६४-६५) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (शल्य० १७ । ८६-८७) । इनका सेनासहित द्वैपायनसरोवरपर जाना (शल्य० ३० । ५३-५४) । जलमें छिपे हुए दुर्योधनको युद्धके लिये ललकारना (शल्य० ३१ । १८—७३) । हममेंसे किसी एकका वध कर देनेपर राज्य तुम्हारा होगा—ऐसा दुर्योधनको वर देना (शल्य० ३२ । २६-२७; शल्य० ३२ । ६१-६२) । भीमसेनको समझाकर अन्यायसे रोकना (शल्य० ५९ । १५—२०) । दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए खेद प्रकट करना (शल्य० ५९ । २२—३०) । श्रीकृष्णसे वार्तालाप (शल्य० ६० । ३५—३८) । भीमसेनकी प्रशंसा (शल्य० ६० । ४७-४८) । श्रीकृष्णके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना (शल्य० ६२ । २८—३२) । श्रीकृष्णको गान्धारीको समझानेके लिये हस्तिनापुर भेजना (शल्य० ६२ । ४०—४२) । धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे पाञ्चालों और द्रौपदी-पुत्रोंकी मृत्युका समाचार सुनकर विलाप करना (सौप्तिक० १० । ९—२६) । द्रौपदीको बुलानेके लिये नकुलको भेजना (सौप्तिक० १० । २७) । युद्धस्थलमें जाकर पुत्रोंकी दशा देखकर मूर्च्छित होना (सौप्तिक० १० । २९—३१) । अश्वत्थामासे भीमसेनकी रक्षाके लिये श्रीकृष्णके साथ जाना (सौप्तिक० १३ । ६) । द्रौपदीके आग्रहसे अश्वत्थामाकी मणिको धारण करना (सौप्तिक० १६ । ३५) । अश्वत्थामाद्वारा अपने पुत्रोंके मारे जानेके विषयमें श्रीकृष्णसे प्रश्न (सौप्तिक० १७ । २—५) । भाइयोंसहित इनका धृतराष्ट्रसे मिलना (स्त्री० १२ । ११) । गान्धारीसे क्षमा-याचना करना (स्त्री० १५ । २५—२८) । गान्धारीकी दृष्टि पड़नेसे इनके नखका

काला पड़ना (स्त्री० १५ । ३०) । धृतराष्ट्रसे युद्धमें मारे गये लोगोंकी संख्या और गतिका वर्णन करना (स्त्री० २६ । ९-१०, १२—१७) । मरे हुए लोगोंके दाह-संस्कारके लिये आज्ञा देना (स्त्री० २६ । २४-२६) । कुन्तीके मुखसे कर्णको अपना भाई सुनकर उसके लिये विलाप करना (स्त्री० २७ । १५—२५) । स्त्रियोंके मनमें रहस्यकी बात न छिपनेका शाप देना (स्त्री० २७ । २९) । नारदजीसे कर्णके विषयमें शोक प्रकट करते हुए उसे शाप मिलनेका वृत्तान्त पूछना (शान्ति० १ । १३—४४) । इनका चिन्तित होना (शान्ति० ६ । २) । स्त्रियोंको मनमें गुप्त बात न छिपा सकनेका शाप देना (शान्ति० ६ । ११) । अपना आन्तरिक खेद प्रकट करते हुए राज्य छोड़कर वनवासके लिये अर्जुनसे कहना (शान्ति० ७ अध्याय) । राज्य छोड़कर वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण करनेका निश्चय बताना (शान्ति० ९ अध्याय) । भीमसेनकी बातका विरोध करते हुए इनका मुनिवृत्तिकी प्रशंसा करना (शान्ति० १७ अध्याय) । इनके द्वारा अपने मतकी यथार्थताका ही प्रतिपादन (शान्ति० १९ अध्याय) । व्यासजीसे राजर्षि सुद्युम्नके चरित्रके विषयमें जिज्ञासा (शान्ति० २३ । १७) । व्यासजीसे अपने शोककी प्रबलता प्रकट करना (शान्ति० २५ । २-३) । धनके त्यागकी महिमाका प्रतिपादन करना (शान्ति० २६ अध्याय) । शोकका कारण बताते हुए शरीर त्यागनेके लिये उद्यत होना (शान्ति० २७ । १—२६) । श्रीकृष्णसे सृञ्जयपुत्र सुवर्णष्ठीवीके विषयमें पूछना (शान्ति० ३० । १-३) । नारदजीसे सृञ्जयपुत्र सुवर्णष्ठीवीका वृत्तान्त पूछना (शान्ति० ३१ । १) । व्यासजीसे अपने पापका प्रायश्चित्त पूछना (शान्ति० ३३ । १—१२) । व्यासजी और श्रीकृष्णके समझानेसे इनका हस्तिनापुरको प्रस्थान और नगर-प्रवेश (शान्ति० ३७ । ३०—४९) । नगर-प्रवेशके समय पुरवासियों और ब्राह्मणोंद्वारा इनका सत्कार (शान्ति० ३८ । १—२१) । इनका राज्याभिषेक (शान्ति० ४० । १२—१६) । स्वयं धृतराष्ट्रके अधीन रहकर इनके द्वारा भाइयों आदिकी पृथक्-पृथक् कार्योंपर नियुक्ति (शान्ति० ४१ अध्याय) । इनके द्वारा सुहृदों और सगे-सम्बन्धियोंका श्राद्ध (शान्ति० ४२ । ३—८) । इनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति (शान्ति० ४३ । २—१६) । इनके द्वारा भाइयोंके लिये महलोंका विभाजन (शान्ति० ४४ अध्याय) । ब्राह्मणों और आश्रितोंको सत्कारपूर्वक दान देना (शान्ति० ४५ । ४—११) । श्रीकृष्णके पास जाकर इनका कृतज्ञता-प्रकाशन (शान्ति० ४५ । १७—१९) । श्रीकृष्णको ध्यानमग्न देखकर उनके ध्यानका कारण पूछना (शान्ति० ४६ । १—१०) । श्रीकृष्णके आज्ञानुसार भीष्मजीके पास चलनेको उद्यत होना (शान्ति० ४६ । २५—३०) । परशुरामजीद्वारा किये गये क्षत्रिय-संहारके विषयमें इनकी जिज्ञासा (शान्ति० ४८ । १०—१५) । सात्यकिद्वारा श्रीकृष्णका संदेश पाकर अर्जुनको रथ तैयार करनेका आदेश देना (शान्ति० ५३ । १४—१७) । भाइयों और श्रीकृष्ण आदिके साथ भीष्मके पास जाना (शान्ति० ५३ । १४—२८) । श्रीकृष्णको ही प्रथमतः भीष्मजीसे वार्तालाप करनेको कहना (शान्ति० ५४ । १२—१४) । भीष्मजीसे आश्वासन पाकर उनके निकट जाना (शान्ति० ५५ । २०-२१) । इनके प्रश्न और उन प्रश्नोंके अनुसार भीष्मजीका इनके समक्ष राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्मके रहस्यका विविध दृष्टान्तोंद्वारा विशद विवेचन करना (शान्तिपर्व अध्याय ५७ से ३६५ तक) । भीष्मद्वारा युधिष्ठिरको इनके प्रश्नोंके अनुसार विविध उपदेश देना (अनु० अध्याय १ से १६५ तक) । भीष्मजीकी आज्ञासे परिवारसहित हस्तिनापुरको प्रस्थान (अनु० १६६ । १५—१७) । भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारकी सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदिका उनके पास जाना (अनु० १६७ । ६—२३) । भीष्मका इनको कर्तव्यका उपदेश देना (अनु० १६७ । ४९—५२) । भीष्मजीको जलाञ्जलि देनेके बाद शोकसे व्याकुल होकर इनका गङ्गाजीके तटपर गिरना (आश्व० १ । ३) । इनको इस दशामें देखकर श्रीकृष्णका इनसे अधीर न होनेके लिये कहना और धृतराष्ट्रका इन्हें समझाना (आश्व० १ अध्याय) । श्रीकृष्णका इन्हें समझाना (आश्व० २ । २—८) । शोकसे व्यथित होकर वनमें जानेके लिये श्रीकृष्णसे आज्ञा माँगना (आश्व० २ । ११-१२) । व्यासजीका इन्हें समझाना (आश्व० २ । १५—२०) । व्यासजीका इन्हें समझाते हुए अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये आज्ञा देना और युधिष्ठिरके धनाभावके कारण असमर्थता प्रकट करनेपर इन्हें हिमालयसे राजा मरुत्तके रखे हुए धनको लानेका सलाह देना (आश्व० ३ । १—२१) । युधिष्ठिरके पूछनेपर व्यासजीका इन्हें राजा मरुत्तका उपाख्यान सुनाना (आश्व० ३ । २२ से १० । ३६ तक) । श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको उपदेश देकर इन्हें यज्ञके लिये प्रेरित करना (आश्व० अध्याय ११ से १३ तक) । इनके राज्य-शासनकी श्रेष्ठताका वर्णन (आश्व० १४ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६१२९—६१३१) । श्रीकृष्णको द्वारका जानेके लिये आज्ञा देना (आश्व० ५२ । ४४—५०) । मरुत्तके छोड़े हुए धनके लानेके विषयमें भाइयोंसे सलाह करना (आश्व० ६३ । ४—९) । भाइयोंसहित धन

लानेके लिये इनका प्रस्थान (आश्व० ६३ । २०—२४) । हिमालयपर पहुँचकर पड़ाव डालना और ब्राह्मणोंके कहनेसे भाइयोंसहित उस रात उपवास करना (आश्व० ६४ । ७—१५) । पार्षदोंसहित भगवान् शंकरकी पूजा करना (आश्व० ६५ । २—१३) । धन खुदवाकर वाहनोंपर लादकर इनका हस्तिनापुर लौटना (आश्व० ६५ । २०-२१) । व्यासजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको यज्ञके लिये आज्ञा देना (आश्व० ७१ । १५—२६) । अश्वमेध-सम्बन्धी अश्वकी रक्षा कौन करे—इसके विषयमें इनका व्यासजीसे पूछना और उनकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनको अश्वकी रक्षाके लिये जानेका आदेश देना (आश्व० ७२ । १२—२४) । इनका भीमसेनको राजाओंकी पूजा करनेका आदेश और श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना (आश्व० ८६ अध्याय) । अर्जुनको क्यों अधिकतर कष्ट उठाना पड़ता है—इसके विषयमें युधिष्ठिरकी जिज्ञासा और श्रीकृष्णका इसमें अर्जुनकी मोटी पिण्डलियोंको ही कारण बताना (आश्व० ८७ । १—१०) । बभ्रुवाहनका इन्हें प्रणाम करना और इनका उसे सत्कारपूर्वक धन देना (आश्व० ८८ । ६, १०-११) । व्यासजीकी आज्ञाके अनुसार युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा लेना (आश्व० ८८ । १२—१७) । इनके यज्ञवैभवका वर्णन (आश्व० ८८ । १८—४०) । युधिष्ठिरका यज्ञके धूमकी गन्ध सूँघना और यज्ञ पूर्ण होनेपर भगवान् व्यासका इन्हें बधाई देना (आश्व० ८९ । ५—७) । इनका ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना और राजाओंको भेंट देकर विदा करना (आश्व० ८९ । ७—३८) । यज्ञ पूर्ण करके इनका अपने नगरमें प्रवेश (आश्व० ८९ । ३९—४४) । इनके यज्ञमें एक नेवलेका उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके द्वारा किये गये सेरभर सत्तूदानकी महिमाको उस अश्वमेध यज्ञसे भी बढ़कर बतलाना (आश्व० ९० अध्याय) । युधिष्ठिरके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्णका इन्हें धर्मकी महत्ता और दान आदिका माहात्म्य विस्तार-पूर्वक बताना (आश्व० ९२ दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ ६३०७—६३८१) । श्रीकृष्णके द्वारका जाते समय इनका उनके रथपर बैठकर कुछ देरके लिये सारथिका कार्य हाथमें लेना और उन्हें विदा करके उन्हींके भजन-चिन्तनमें लग जाना (आश्व० ९२ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६३८१-६३८२) । भाइयोंसहित युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा करना (आश्रम० १ । ६-७) । इनका अपने भाइयों और मन्त्रियोंको राजा धृतराष्ट्रकी सेवाके लिये प्रेरित करना और उनकी सेवासे मुँह मोड़नेवालेको अपना शत्रु बताना (आश्रम० २ । ३—५) । युधिष्ठिरके द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा (आश्रम० २ । १७—२०) । धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे वनमें जानेके लिये अनुमति माँगना और युधिष्ठिरका दुखी होकर उन्हींको राज्य अर्पित करके स्वयं उनकी सेवामें रहनेकी इच्छा प्रकट करना (आश्रम० ३ । ३०—५५) । मूर्छित हुए धृतराष्ट्रके शरीरपर इनका हाथ फेरना और धृतराष्ट्रका इन्हें हृदयसे लगाकर इनका मस्तक सूँघना (आश्रम० ३ । ६७—७५) । इनका धृतराष्ट्रसे आहार ग्रहण करनेके लिये आग्रह करना (आश्रम० ३ । ८४-८५) । व्यासजीके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना (आश्रम० ४ अध्याय) । धृतराष्ट्रद्वारा इनको राजनीतिका उपदेश (आश्रम० अध्याय ५ से ७ तक) । धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा श्राद्धके लिये इनसे धन माँगना और इनका प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना (आश्रम० ११ । १—७) । भीमसेनके विरोध करनेपर युधिष्ठिरका उन्हें चुप रहनेके लिये कहना (आश्रम० ११ । २५) । इनका धृतराष्ट्र-को यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना (आश्रम० १२ । ७—१३) । धृतराष्ट्रके वनको प्रस्थान करते समय युधिष्ठिरका फूट-फूटकर रोना और मूर्च्छित होकर गिर जाना (आश्रम० १५ । ६) । इनका कुन्तीको घर लौटनेके लिये कहना और कुन्तीका इन्हें सब भाइयों तथा द्रौपदीपर स्नेह रखनेके लिये कहकर स्वयं वनको ही जानेका निश्चय प्रकट करना (आश्रम० १६ । ७—१७) । इनका कुन्तीसे उनके वनगमनको अनुचित बताकर बार-बार घर लौटनेके लिये ही अनुरोध करना (आश्रम० १६ । १९—२८) । कुन्तीका युधिष्ठिरको उनके अनुरोध-का उत्तर देना (आश्रम० १७ अध्याय) । युधिष्ठिरकी मातासे मिलनेके लिये वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका इनके साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेनासहित इनका वनको प्रस्थान (आश्रम० २२ अध्याय) । सेनासहित इनकी यात्रा और कुरुक्षेत्रमें पहुँचना (आश्रम० २३ अध्याय) । इनके द्वारा वनमें कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रका दर्शन (आश्रम० २४ अध्याय) । संजयका ऋषियोंको इनका परिचय देना (आश्रम० २५ । ५) । धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरका युधिष्ठिर-के शरीरमें प्रवेश (आश्रम० २६ अध्याय) । युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना (आश्रम० २७ । ५—१५) । महर्षि व्यासद्वारा विदुर और युधिष्ठिरकी धर्म-रूपताका प्रतिपादन (आश्रम० २८ । ११—२२) । धृतराष्ट्र और मातासे विदा लेकर युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरमें आगमन (आश्रम० ३६ अध्याय) । नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक (आश्रम० ३७ अध्याय) । नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदि-

के लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप करना (आश्रम० ३८ अध्याय) । राजा युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी अस्थियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना और उनके श्राद्धकर्म करना (आश्रम० ३९ अध्याय) । युधिष्ठिरका अपशकुन देखना और यादवोंके विनाशका समाचार सुनकर भाइयोंसहित दुःखशोकमें मग्न हो जाना (मौसल० १ । १–११) । युधिष्ठिरका भाइयोंसहित कालपाशको स्वीकार करनेका निश्चय करके युयुत्सुको राज्यकी देख-भालका भार सौंपना और परीक्षित्‌को अपने राज्यपर अभिषिक्त करके सुभद्रासे हस्तिनापुरमें परीक्षित्‌को और इन्द्रप्रस्थमें वज्रको रखकर इनकी रक्षाके लिये कहना (महाप्रस्थान० १ । ३–९) । इनके द्वारा वसुदेव, भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम आदिके लिये जलाञ्जलि-दान एवं श्राद्ध-सम्पादन (महाप्रस्थान० १ । १०–१३) । कृपाचार्यकी पूजा करके उनके शिष्यत्वमें परीक्षित्‌को सौंपना (महाप्रस्थान० १ । १४-१५) । प्रजा, मन्त्री आदिको बुलाकर उनके सामने अपने महाप्रस्थानविषयक विचारको प्रकट करना और उनके मना करनेपर भी उनकी अनुमति ले भाइयोंसहित महाप्रस्थानका ही निश्चय करना (महाप्रस्थान० १ । १६–१९) । भाइयोंसहित अपने आभूषण उतारकर इनका उत्सर्गकालिक इष्टि करवाना और अग्नियोंका जलमें विसर्जन करके महायात्राके लिये प्रस्थित होना (महाप्रस्थान० १ । १९–२२) । युधिष्ठिरकी इच्छाके अनुसार पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदी और एक कुत्ता—इन सबका एक साथ हस्तिनापुरसे निकलना (महाप्रस्थान० १ । २४-२५) । इन सबका पूर्व दिशाकी ओर प्रस्थान, युधिष्ठिरका सबसे आगे होकर चलना (महाप्रस्थान० १ । २९–३१) । अग्निदेवका लालसागरके तटपर अर्जुनसे गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर त्याग देनेके लिये कहना और भाइयोंकी प्रेरणासे अर्जुनका वह सब कुछ जलमें फेंक देना (महाप्रस्थान० १ । ३३–४२) । इनका पूर्वसे दक्षिण और पश्चिम दिशाकी ओर जाना (महाप्रस्थान० १ । ४३–४६) । मार्गमें द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीमसेनका गिरना तथा युधिष्ठिरद्वारा प्रत्येकके गिरनेका कारण बताया जाना (महाप्रस्थान० २ अध्याय) । इनके पास इन्द्रका रथ लेकर आना और इन्हें उसपर बैठनेके लिये कहना (महाप्रस्थान० ३ । १) । इनका इन्द्रके मुखसे भाइयों और द्रौपदीके स्वर्गमें पहुँचनेका वृत्तान्त सुनकर अपने साथ आये हुए कुत्तेको भी लेकर स्वर्गमें चलनेका निश्चय प्रकट करना (महाप्रस्थान० ३ । २–७) । इन्द्रका कुत्तेके लिये स्वर्गमें स्थान न बताकर इनसे अकेले ही चलनेके लिये कहना; परंतु इनका शरणागत कुत्तेको न त्यागनेका ही अपना निश्चय बताना (महाप्रस्थान० ३ । ८–१६)। कुत्तेके रूपमें आये हुए धर्मके द्वारा युधिष्ठिरका अभिनन्दन तथा इन्द्र और धर्मके साथ इनका सदेह स्वर्गमें जाना (महाप्रस्थान० ३ । १७–२५) । देवर्षि नारदद्वारा इनकी प्रशंसा, इन्द्रके द्वारा उत्तम लोकमें रहनेके लिये प्रेरित होनेपर भी इनका अपने भाइयोंके बिना वहाँ रहनेसे इनकार करना और उनके साथ शुभ या अशुभ किसी भी लोकमें रहनेकी इच्छा प्रकट करना (महाप्रस्थान० ३ । २६–३८) । स्वर्गमें दुर्योधनको श्रीसम्पन्न देख अमर्षमें भरे हुए युधिष्ठिरका सहसा पीछे लौटना और उसके साथ रहनेसे अनिच्छा प्रकट करके अपने भाइयोंके स्थानमें जानेकी उत्सुकता दिखाना (स्वर्गा० १ । ३–१०) । हँसते हुए नारदजीका युधिष्ठिरको स्वर्गमें दुर्योधनकी सम्मानपूर्ण स्थितिका परिचय देना और इन्हें उससे मिलनेके लिये कहना (स्वर्गा० १ । ११–१८) । इनका अपने भाइयों तथा सगे-सम्बन्धियोंको मिले हुए लोकोंके विषयमें जिज्ञासा प्रकट करना और उन सबसे मिलनेकी अभिलाषा व्यक्त करना (स्वर्गा० १ । २०–२६) । देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुण-क्रन्दन सुनकर इनका वहीं रहनेका निश्चय करना (स्वर्गा० २ अध्याय) । इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा इनका मन्दाकिनीमें स्नान करके मानवशरीरका त्याग कर दिव्यलोकमें जाना (स्वर्गा० ३ अध्याय) । युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण-अर्जुन आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंका दर्शन करना (स्वर्गा० ४ अध्याय) । इनका धर्मके स्वरूपमें प्रवेश (स्वर्गा० ५ । २२) ।

महाभारतमें आये हुए युधिष्ठिरके नाम—आजमीढ, अजातशत्रु, भारत, भरतशार्दूल, भरतप्रवर्ह, भरतर्षभ, भरतसत्तम, भरतसिंह, भीमपूर्वज, धर्म, धर्मज, धर्मनन्दन, धर्मप्रभव, धर्मपुत्र, धर्मराट्, धर्मराज, धर्मसूनु, धर्मसुत, धर्मतनय, धर्मात्मज, कौन्तेय, कौरव, कौरवश्रेष्ठ, कौरवाग्र्य, कौरवनन्दन, कौरवनाथ, कौरवर्षभ, कौरवसत्तम, कौरववंशवर्धन, कौरवेन्द्र, कौरव्य, कुन्तीनन्दन, कुन्तीपुत्र, कुन्तीसुत, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरुश्रेष्ठतम, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलोद्वह, कुरुमुख्य, कुरुनन्दन, कुरुपाण्डवाग्र्य, कुरुपति, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गव, कुरुराज, कुरुसत्तम, कुरूत्तम, कुरुवर्धन, कुरुवीर, कुरुवृषभ, मृदंगकेतु, पाण्डव, पाण्डवश्रेष्ठ, पाण्डवाग्र्य, पाण्डवमुख्य, पाण्डवनन्दन, पाण्डवर्षभ, पाण्डवेय, पाण्डुनन्दन, पाण्डुनृपात्मज, पाण्डुपुत्र, पाण्डुसूनु, पाण्डुसुत, पाण्डुवीर, पार्थ, यादवीमातः, यादवीपुत्र आदि ।

युयुत्सु—(१) धृतराष्ट्रद्वारा वैश्यजातीय भार्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र। इसकी 'करण' संज्ञा थी (आदि० ६३। ११८)। इसकी उत्पत्ति (आदि० ११४। ४३)। दुर्योधनकी प्रेरणासे भीमसेनके भोजनमें दिये हुए विषकी इसके द्वारा भीमसेनको सूचना (आदि० १२८। ३७-३८)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५। २)। कुरुक्षेत्रके मैदानमें पाण्डवोंके पक्षमें आना (भीष्म० ४३। १००)। यह योद्धाओंमें श्रेष्ठ, धनुर्धरोंमें उत्तम, शौर्यसम्पन्न, सत्यप्रतिज्ञ और महाबली था। वारणावतनगरमें बहुत-से राजा क्रोधमें भरकर युयुत्सुपर चढ़ आये और उसे मार डालना चाहते थे; किंतु इसे परास्त न कर सके (द्रोण० १०। ५८-५९)। इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३। ३४-३५)। सुबाहुके साथ युद्ध करके उसकी दोनों भुजाएँ काटना (द्रोण० २५। १३१४)। भगदत्तके हाथीद्वारा इसके रथके घोड़ोंका मारा जाना (द्रोण० २६। ५६)। अभिमन्युवधसे हर्षोन्मत्त हुए कौरवोंको इसका उपालम्भ देना (द्रोण० ७२। ६०-६३)। उलूकके साथ युद्धमें इसका पराजित होना (कर्ण० २५। ११)। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर इसका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुर लौटना (शल्य० २९। ८६-८८)। विदुरजीके पूछनेपर उन्हें सब समाचार बताना (शल्य० २९। ९१-९५)। युधिष्ठिरद्वारा इसे धृतराष्ट्रकी सेवाका भार सौंपा जाना (शान्ति० ४१। १७-१८)। भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये चिता-निर्माण करनेमें पाण्डवोंके साथ यह भी था (अनु० १६८। ११)। मरुत्तका धन लानेके लिये पाण्डवोंके हिमालय जानेपर यह हस्तिनापुरकी रक्षामें नियुक्त था (आश्व० ६३। २४)। पाण्डवलोग जब वनमें धृतराष्ट्रसे मिलने गये थे, उस समय भी नगर-रक्षाका भार इसीपर था (आश्रम० २३। १५)। युयुत्सुको आगे करके पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके लिये जलाञ्जलि दी (आश्रम० ३९। १२)। महाप्रस्थानके समय बालक परीक्षित्को राज्यपर अभिषिक्त करके जब युधिष्ठिर जाने लगे, उस समय उन्होंने युयुत्सुको ही राज्यकी रक्षाका भार सौंपा था (महाप्रस्थान० १। ६)।

महाभारतमें आये हुए युयुत्सुके नाम—धार्तराष्ट्र, धृतराष्ट्रज, धृतराष्ट्रसुत, करण, कौरव्य, कौरव, वैश्यापुत्र आदि।

(२) धृतराष्ट्रका गान्धारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र (शान्ति० ६७। ९३)।

युयुधान—ये सत्यकके पुत्र हैं, इन्हींको सात्यकि कहते हैं (सभा० ४। ३५)। (विशेष देखिये सात्यकि)

युवनाश्व—इक्ष्वाकुवंशके एक सुप्रसिद्ध नरेश, जिन्होंने प्रचुर दक्षिणा देकर बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जिन्होंने एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये थे (वन० १२६। ५-६)। ये राजा सुद्युम्नके पुत्र थे (वन० १२६। १०)। तृषित हुए इनके द्वारा अभिमन्त्रित जलका पान (वन० १२६। १५)। इनकी बायीं कुक्षिसे मान्धाताका जन्म (वन० १२६। २७)। इन्हें महाराज रैवतसे खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने रघुको वह खड्ग प्रदान किया (शान्ति० १६६। ७८)। इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध और उससे इन्हें परावर-तत्त्वका ज्ञान (अनु० ११५। ६१)। (२) विष्वगश्वकुमार अद्रिके पुत्र, जो श्रावके पिता थे (वन० २०२। ३)। (३) वृषादर्भके पुत्र, जिन्होंने सब प्रकारके रत्न, अभीष्ट स्त्रियाँ और सुरम्य गृह दान करके स्वर्गका निवास पाया (शान्ति० २३४। १५)।

यूपकेतु—भूरिश्रवाका नामान्तर (सभा० ४४। १९)। (विशेष देखिये भूरिश्रवा)

योग—एक ऋषि, जो तपस्वी, जितेन्द्रिय और तीनों लोकोंमें विख्यात हैं (अनु० १५०। ४५)।

योजनगन्धा—व्यास जननी, सत्यवतीका दूसरा नाम (आदि० ६३। ८२-८३)। (देखिये सत्यवती)

योतिमत्सक—एक राजा, जिनके पास पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४। २०)।

योध्य—एक देश, जिसे दिग्विजयके समय कर्णने जीता था (वन० २५४। ८-९)।

योनितीर्थ—भीमाके उत्तम स्थानमें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य देवीका पुत्र होता है, उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए 'सुवर्ण-कुण्डल' के समान होती है, उस तीर्थके सेवनसे मनुष्यको सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८२। ८४)।

योनिद्वार—उदयगिरिपर स्थित एक तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य योनि-संकटसे मुक्त हो जाता है (वन० ८४। ९१)।

यौधेय—(१) युधिष्ठिरके पुत्र, जो युधिष्ठिरके द्वारा शिबि देशके राजा गोवासनकी पुत्री देविकाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ९५। ७६)। (२) एक देश तथा जातिके लोग। यहाँके राजा, राजकुमार और निवासी भी युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२। १४-१७)।

यौन—एक जाति, इस जातिके लोग पापाचारी तथा चाण्डाल कौवे और गीधकी भाँति आचार-विचारवाले होते हैं (शान्ति० २०७। ४३-४५)।

यौवनाश्व–युवनाश्वके पुत्र मान्धाता (सभा० ५३ । २१) । (विशेष देखिये मान्धाता)

(र)

रक्ताङ्ग–धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १८) ।

रक्षिता–एक अप्सरा, जो प्राधाके गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ५०) ।

रक्षोवाह–एक देश । परशुरामजीने यहाँके निवासी क्षत्रियोंका संहार किया था (द्रोण० ७० । १२) ।

रघु–एक प्राचीन नरेश, संजयद्वारा की गयी प्राचीन राजाओंकी गणनामें इनका नाम है (आदि० १ । २३२) । विराटके गोग्रहणके समय कौरवोंके साथ होनेवाले अर्जुनके युद्धको देखनेके लिये इन्द्रके विमानमें बैठकर ये भी आये थे (विराट० ५६ । १०) । महाराज युवनाश्वद्वारा इक्ष्वाकुवंशी रघुको खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने उसे हरिणाश्वको प्रदान किया (शान्ति० १६६ । ७८) । इन्होंने मांसभक्षणका निषेध किया था, जिससे इन्हें परावर-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो गया था (अनु० ११५ । ५९–६१) । राजा रघुको प्रणाम करनेवाला क्षत्रिय संग्रामविजयी होता है (अनु० १५० । ८१) । जो सायं-प्रातः इनके नामका कीर्तन करता है, वह धर्मफलका भागी होता है (अनु० १६५ । ५१—६०) ।

रज–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

रजि–ये आयुद्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके चार भाई और थे, जिनके नाम हैं—नहुष, वृद्धशर्मा, गय तथा अनेना (आदि० ७५ । २५-२६) ।

रणोत्कट–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८) ।

रता–दक्षकी पुत्री, जो धर्मकी पत्नी हैं । इनके गर्भसे अहः नामक वसुका जन्म हुआ है (आदि० ६६ । १७–२०) ।

रति–(१) ये धर्मपुत्र कामदेवकी पत्नी हैं (आदि० ६६ । ३२-३३) । ब्रह्माजीकी सभामें रहकर ये उनकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४३) । (२) अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागतके अवसरपर कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५) ।

रतिगुण–एक देवगन्धर्व, जो कश्यपके द्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । ४७) ।

रथचित्रा–भारतवर्षकी प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६) ।

रथध्वान–शंयु-पुत्र वीर नामक अग्निका नामान्तर (वन० २१९ । ९-१०) । (देखिये वीर)

रथन्तर–(१) 'रथन्तर' नामक साम, जो मूर्तिमान् होकर ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होता है (सभा० ११ । ३०) । वसिष्ठ मुनिने 'रथन्तर' सामके द्वारा इन्द्रका मोह दूर करके उन्हें प्रबुद्ध किया था (शान्ति० २८१ । २१–२६; आश्व० ११ । १८-१९) । (२) पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जिनका दूसरा नाम 'तरसाहर' है । ये पाञ्चजन्यके मुखसे प्रकट हुए थे (वन० २२० । ७) ।

रथन्तर्या (रथन्तरी)–सम्राट् दुष्यन्तकी माता । शकुन्तलाकी सास । इनके द्वारा शकुन्तलाको आशीर्वाद (आदि० ७४ । १२५ के बाद दा० पाठ) । ('रथन्तर्या' यह नाम दाक्षिणात्य पाठके अनुसार है । नीलकण्ठीके अनुसार) इनका नाम 'रथन्तरी' था (आदि ९४ । १७) । ये महाराज ईलिनकी पत्नी थीं । इनके पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु तथा वसु (आदि० ९४ । १६–१८; आदि० ९५ । २८) ।

रथप्रभु–शंयु-पुत्र वीर नामक अग्निका नामान्तर (वन० २१९ । ९-१०) । (देखिये वीर)

रथवाहन–विराटके भाई, जो पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध कर रहे थे (द्रोण० १५८ । ४२) ।

रथसेन–पाण्डवपक्षके एक योद्धा, जिनके रथमें मटरके फूलके समान रंगवाले घोड़े जुते हुए थे । उन घोड़ोंकी रोमराजि श्वेत-लोहित वर्णकी थी (द्रोण० २३ । ६२) ।

रथस्था–गङ्गाजीकी सात धाराओंमेंसे एक, जिसका जल पीनेसे मनुष्यके सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१) ।

रथाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६३) ।

रथातिरथसंख्यानपर्व–शान्तिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १६५ से १७२ तक) ।

रथावर्त–शाकम्भरी देवीके दक्षिणार्ध भागमें स्थित एक तीर्थ । यहाँकी यात्रा करनेवाला श्रद्धालु पुरुष महादेवजीकी कृपासे परमगति प्राप्त कर लेता है (वन० ८४ । २३) ।

रन्तिदेव–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २२६) । ये राजा संकृतिके पुत्र थे । संजयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके अतिथि-सत्कार और दान आदिका वर्णन (द्रोण० ६७ अध्याय) । श्रीकृष्णद्वारा इनके दान और अतिथि-सत्कार आदिका वर्णन (शान्ति० २९ । १२०–१२९) । वसिष्ठको शीतोष्ण जलका दान करके इनका स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होना (शान्ति० २३४ । १७) ।

फल-मूल और पत्तोंद्वारा ऋषियोंका पूजन करके इनका अभिलषित सिद्धि प्राप्त करना (शान्ति० २९२। ७)। इन्होंने कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५। ६३)। वसिष्ठ मुनिको विधिवत् अर्घ्यदान करनेसे इन्हें श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति (अनु० १३७। ६)। ये सायं-प्रातः स्मरण करनेयोग्य नरेशोंमें गिने गये हैं (अनु० १५०। ५१)।

रम्भेणक–तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्प-सत्रमें जल मरा था (आदि० ५७। ८)।

रमठ–एक म्लेच्छ जाति, जो मान्धाताके शासनकालमें उनके राज्यमें निवास करती थी (शान्ति० ६५। १४-१५)।

रमण–(१) ये सोम नामक वसुके द्वारा मनोहराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६६। २२)। (२) द्वारकाके समीपवर्ती एक दिव्य वन (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३, कालम १)।

रमणक–एक वर्ष, जो श्वेतपर्वतके दक्षिण और निषधपर्वतके उत्तर स्थित है। वहाँ जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे उत्तम कुलसे युक्त और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं। वहाँके सब मनुष्य शत्रुओंसे रहित होते हैं। रमणकवर्षके मनुष्य सदा प्रसन्नचित्त होकर साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं (भीष्म० ८। २–४)।

रमणचीन–दक्षिण भारतका एक जनपद (भीष्म० ९। ६६)।

रम्भा–एक अप्सरा, जो प्राधाके गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५। ५०)। यह अर्जुनके जन्मोत्सवमें नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२। ६२)। कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा १०। १०)। इसने इन्द्रसभामें अर्जुनके स्वागतार्थ नृत्य किया था (वन० ४३। २९)। यह नलकूबरकी पत्नी होकर रहती थी, इसीका तिरस्कार करनेके कारण रावणको नलकूबरने यह शाप दे दिया था कि 'तू न चाहनेवाली किसी स्त्रीके साथ बलात्कार नहीं कर सकता; यदि करेगा तो तुझे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा'(वन० २८०। ६०)। विश्वामित्रके शापसे इसको पत्थर होना पड़ा था (अनु० ३। ११)। कुबेरकी सभामें अष्टावक्रके स्वागतमें इसने नृत्य किया था (अनु० १९। ४४)।

रम्यक–नीलगिरिको लाँघनेपर रम्यकवर्ष मिलता है। अपनी उत्तर-दिग्विजयके समय अर्जुनने इस वर्षको जीतकर वहाँके निवासियोंपर कर लगाया था (सभा० २८। ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४९, कालम १)।

रम्यग्राम–एक राजधानी अथवा राजा,जिसे दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० ३१। १४)।

रवि–(१) ये विवस्वान्के बोधक माने गये हैं (आदि० १। ४२)। (२) सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथके रथके पीछे हाथमें ध्वजा लेकर चलता था, (वन० २६५। १०)। अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१। २७)। (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जो भीमसेनद्वारा मारा गया (शल्य० २६। १४-१५)।

रश्मिवान्–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१। ३६)।

रसातल–पृथ्वीके नीचेका एक लोक। प्रलयके समय संवर्तक नामक अग्नि पृथ्वीका भेदन करके रसातलतक पहुँच जाती है (वन० १८८। ६९-७०)। दैत्योंद्वारा उत्पन्न की हुई कृत्या दुर्योधनको साथ ले रसातलमें प्रविष्ट हुई थी (वन० २५१। २९)। रसातल पृथ्वीका सातवाँ तल है। यहा अमृतसे उत्पन्न हुई गोमाता सुरभि निवास करती हैं (उद्योग० १०२। १)। रसातल-निवासियोंने पूर्वकालमें एक गाथा गायी थी, जो इस प्रकार है—नागलोक, स्वर्गलोक तथा वहाँके विमानमें निवास करना भी वैसा सुखदायक नहीं होता जैसा कि रसातलमें रहनेसे सुख प्राप्त होता है (उद्योग० १०२। १४-१५)। भगवान् वराहने रसातलमें जाकर देवद्रोही असुरोंको अपने खुरोंसे विदीर्ण कर दिया (शान्ति० २०६। २६)। हयग्रीवरूपधारी भगवान् श्रीहरिने रसातलमें प्रवेश करके मधु और कैटभके अधिकारमें हुए वेदोंका उद्धार किया (शान्ति० ३४७। ५४–५८)। राजा वसु केवल एक बार मिथ्याभाषण करनेके दोषसे रसातलको प्राप्त हुए (अनु० ६। ३४; आश्व० ९१। २३)। रसातल भगवान् अनन्तका सनातन धाम है। बलदेवजी प्रभासक्षेत्रमें अपने मानव-शरीरका परित्याग करके रसातलमें प्रविष्ट हुए थे (स्वर्गा० ५। २३)।

रहस्या–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९। १९)।

राका–(१) पूर्णिमा तिथिकी अधिष्ठात्री देवी, जो मूर्तिमती होकर स्कन्दके जन्म-समयमें वहाँ पधारी थी (शल्य० ४५। १४)। (२) एक राक्षस-कन्या, जो कुबेरकी आज्ञासे महर्षि विश्रवाकी परिचर्यामें रहती थी। विश्रवाने इसके गर्भसे 'खर' नामक पुत्र तथा शूर्पणखा नामकी कन्याको जन्म दिया था (वन० २७५। ३—८)।

राक्षस–एक प्रकारका विवाह (आदि० ७३। ९)। (युद्ध करके मार-काट मचाकर रोती हुई कन्याको उसके रोते हुए भाई-बन्धुओंसे छीन लाना 'राक्षस' विवाह माना गया है।) यह विवाह क्षत्रियोंके लिये, उनमें भी राजाओंके लिये ही विहित है (आदि० ७३। ११–१३)।

राक्षस-ग्रह—एक राक्षस-सम्बन्धी ग्रह, जिसकी बाधा होनेसे मनुष्य विभिन्न प्रकारके रसोंका आस्वादन करने और सुगन्धोंके सूँघनेसे तुरंत उन्मत्त हो जाता है (**वन० २३० । ५०**) ।

राक्षस-सत्र—पराशरजीने राक्षसोंपर कुपित होकर राक्षस-सत्रका अनुष्ठान करके उसमें राक्षसोंको जलाना आरम्भ किया (**आदि० १८० । २-३**) । पुलस्त्य आदि महर्षियोंके समझानेसे पराशरद्वारा इस सत्रकी समाप्ति (**आदि० १८० । २१**) ।

राग-खाण्डव—महाराज दिलीपके यज्ञमें बना हुआ एक प्रकारका मोदक (**द्रोण० ६१ । ८**) ।

रागा—महर्षि अङ्गिराकी द्वितीय कन्या । इसपर समस्त प्राणियोंका अनुराग प्रकट था, इसीलिये इसका नाम 'रागा' हुआ (**वन० २१८ । ४**) ।

राजगृह (**गिरिव्रज**)—एक प्राचीन नगरी, जो मगधकी राजधानी थी । जहाँका राजा दीर्घ, जो बलाभिमानी था, पाण्डुद्वारा मारा गया था (**आदि० ११२ । २७**) । यह नगरी राजा अम्बुवीचिकी भी राजधानी रह चुकी है (**आदि० २०३ । १७**) । यहाँका राजा जरासंध था (**सभा० २१ अध्याय**) । यह एक तीर्थ भी है, यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कक्षीवान्‌के समान प्रसन्न होता है (**वन० ८४ । १०४-१०५**) । सहदेवकुमार मेघसंधि भी यहींपर निवास करता था (**आश्व० ८२ । २**) ।

राजधर्मा—एक बकराज । इसका दूसरा नाम नाडीजङ्घ था । यह कश्यपका पुत्र और ब्रह्माका मित्र था (**शान्ति० १६९ । १९-२०**) । इसके द्वारा कृतघ्न गौतमका स्वागत (**शान्ति० १६९ । २३-२४**) । कृतघ्न गौतमका आतिथ्य-सत्कार (**शान्ति० १७० । ३—९**) । इसका धनके लिये गौतमको अपने मित्र राक्षसराज विरूपाक्षके पास भेजना (**शान्ति० १७० । १४—१६**) । धन लेकर लौटे हुए गौतमका सत्कार करना (**शान्ति० १७१ । २९-३०**) । गौतमद्वारा इसका वध (**शान्ति० १७२ । ३**) । सुरभिके फेनसे राजधर्माका जीवित होना और विरूपाक्षसे मिलना (**शान्ति० १७३ । ३—५**) । गौतमको जिलानेके लिये इसका इन्द्रसे अनुरोध (**शान्ति० १७३ । ११-१२**) । इन्द्रद्वारा अमृतके छिड़के जानेपर गौतमका जीवित होना और राजधर्माका धन आदिसहित गौतमको विदा करके अपने घरमें प्रवेश करना (**शान्ति० १७३ । १३—१५**) ।

राजधर्मानुशासनपर्व—शान्तिपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १ से १३० तक**) ।

राजनी—भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । २१**) ।

राजपुर—(१) काम्बोज देशका प्रसिद्ध नगर, जहाँ कर्णने काम्बोजोंपर विजय पायी थी (**द्रोण० ४ । ५**) । (२) कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी राजधानी, जहाँ राज-कन्याके स्वयंवरमें बहुत-से राजा एकत्र हुए थे (**शान्ति० ४ । ३**) ।

राजसूयपर्व—सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ३३ से ३५ तक**) ।

राजसूय—एक महायज्ञ, राजा हरिश्चन्द्रद्वारा इसका अनुष्ठान (**सभा० १२ । २३**) । राजसूयपर्वमें इसका विशेष वर्णन (**सभा० अध्याय ३३ से ३५ तक**) । युधिष्ठिर-द्वारा इसका अनुष्ठान (**सभा० ४५ अध्याय**) । युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी विशेषता (**सभा० ४५ । ३८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८४१—८४३**) ।

राजसूयारम्भपर्व—सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १३ से १९ तक**) ।

रात्रिदेवी—रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी । शचीने अपनी मनो-कामना-पूर्तिके लिये इनकी आराधना की थी (**उद्योग० १३ । २५—२७**) । ये मूर्तिमती होकर स्कन्दके अभिषेक-समारोहमें पधारी थीं (**शल्य० ४५ । १५**) ।

राधा—अधिरथ सूतकी पत्नी, जिसकी गोदमें अधिरथने बालक कर्णको दिया था (**आदि० ६७ । १४०; आदि० ११० । २३**) । इसके द्वारा कर्णका नामकरण (**आदि० ११० । २४; वन० ३०९ । १०; उद्योग० १४१ । ५-६**) ।

राम (**रामचन्द्र**)—अविनाशी महाबाहु भगवान् विष्णुके अवतारस्वरूप दशरथनन्दन श्रीराम । जगत्‌की प्रसन्नता बढ़ाने और धर्मकी स्थापनाके लिये श्रीहरिने अपने-आपको चार रूपोंमें विभक्त करके चैत्र शुक्ला नवमीको इस भूतलपर अवतार लिया था, श्रीरामको साक्षात् भूतनाथ श्रीहरिका स्वरूप बताया जाता है । इनका विश्वामित्रके यज्ञमें विघ्न डालनेके कारण सुबाहुका वध करना और मारीचको भी चोट पहुँचाना । विश्वामित्रद्वारा इन्हें देवताओंके लिये दुर्जय दिव्यास्त्रोंका दान । जनकके धनुर्यज्ञमें इनके द्वारा शिवजीके धनुषका भञ्जन । सीता-जीके साथ इनका विवाह । पिताकी आज्ञासे इनका चौदह वर्षके लिये वनवास । इनके द्वारा जनस्थानमें रहकर देवताओंके कार्योंका साधन और वहीं जनहितके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध । राक्षसोंके षड्यन्त्रसे इनकी पत्नी सीताका अपहरण । सुग्रीवके साथ इनकी मित्रता । इनके द्वारा वानरराज वालीका वध और सुग्रीवका राज्याभिषेक । इनका समुद्रपर सेतु बाँधकर लङ्कामें प्रवेश और इनके द्वारा रावणका वध । विभीषणका लङ्काके राज-

पदपर अभिषेक और उन्हें अमरत्व-प्रदान। पुनः दल-बलसहित पुष्पकविमानद्वारा अयोध्यामें आकर धर्मपूर्वक राज्यका पालन। इनकी आज्ञासे शत्रुघ्नद्वारा मथुरानिवासी मधुपुत्र लवणासुरका वध। इनके द्वारा दस अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान। इनके राज्यकी विशेषता (सभा० ३८। २९ के बाद, पृष्ठ ७९४ से ७९५ तक)। सरयूके गोप्रतार तीर्थमें सेवकों-वाहनोंके साथ स्नानकर श्रीराम अपने नित्यधामको पधारे थे (वन० ८४। ७०-७१)। लोमशजीका युधिष्ठिरको इनका चरित्र सुनाना (वन० ९९। ४१—७१)। हनुमान्‌जीद्वारा भीमसेनके प्रति इनके संक्षिप्त चरित्रका वर्णन (वन० १४८ अध्याय)। इनके पिताका नाम दशरथ, माताका नाम कौसल्या तथा पत्नीका नाम सीता था (वन० २७४। ६—९)। ये अपने चार भाइयोंमें ज्येष्ठ थे और बुद्धिमान् थे। अपने मनोहर रूप एवं सुन्दर स्वभावसे समस्त प्रजाको आनन्दित करते थे। सबका मन इन्हींमें रमता था। इसके सिवा ये पिताके मनमें भी आनन्द बढ़ानेवाले थे। पिताके मनमें इन्हें युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी इच्छा हुई; अतः इस विषयमें उन्होंने मन्त्रियों और धर्मज्ञ पुरोहितोंसे सलाह ली। सबने एक स्वरसे उनके इस समयोचित प्रस्तावका अनुमोदन किया (वन० २७७। ६–८)। श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र सुन्दर और कुछ-कुछ लाल थे। भुजाएँ बड़ी एवं घुटनोंतक लम्बी थीं। ये मतवाले हाथीके समान मस्तानी चालसे चलते थे। इनकी ग्रीवा शङ्खके समान सुन्दर, छाती चौड़ी और सिरपर काले-काले घुँघराले बाल थे। इनकी देह दिव्य दीप्तिसे दमकती रहती थी। युद्धमें इनका पराक्रम देवराज इन्द्रसे कम नहीं था। ये समस्त धर्मोंके पारंगत विद्वान् और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। सम्पूर्ण प्रजाका इनमें अनुराग था। ये सभी विद्याओंमें प्रवीण तथा जितेन्द्रिय थे। इनका अद्भुत रूप देखकर शत्रुओंके भी नेत्र और मन लुभा जाते थे। ये दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ, धर्मात्माओंके संरक्षक, धैर्यवान्, दुर्धर्ष, विजयी तथा अपराजित थे। कौसल्यानन्दन श्रीरामको देखकर पिता दशरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता होती थी (वन० २७७। ९—११)। मन्थराके बहकानेसे कैकेयीका राजा दशरथसे भरतके राज्याभिषेक और श्रीरामके वनवासका वर माँगना (वन० २७७। १६—२६)। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये इनका लक्ष्मण और सीताके साथ वन-गमन (वन० २७७। २८-२९)। इनके वियोगमें राजा दशरथका देहत्याग (वन० २७७। ३०)। श्रीराम-लक्ष्मणके वनमें चले जानेसे कैकेयीका अयोध्याके राज्यको निष्कण्टक मानकर उसे भरतके हाथोंमें सौंपना। भरतका कैकेयीको फटकारकर भाई श्रीरामका अनुसरण करना और उन्हें लौटा लानेकी इच्छासे ऋषियों, ब्राह्मणों तथा नगर और जनपदके लोगोंके साथ चित्रकूट जाकर श्रीरामका दर्शन करना (वन० २७७। ३१—३८)। श्रीरामकी आज्ञासे भरतका वहाँसे लौटना और इनकी चरण-पादुकाओंको आगे रखकर नन्दिग्राममें रहते हुए राज्यकी देख-भाल करना (वन० २७७। ३९)। नगर और जनपदके लोगोंके पुनरागमनकी आशङ्कासे इनका घोर वनमें प्रवेश करके शरभंग मुनिके आश्रमपर जाना, वहाँ इनकी शरभंग मुनिसे भेंट और उनका सत्कार करके इनका दण्डकारण्यमे गोदावरीके तटपर जाकर रहना (वन० २७७। ४०-४१)। इनका शूर्पणखाके कारण जनस्थाननिवासी खरके साथ महान् वैर ठन जाना (वन० २७७। ४२)। वहाँ इनके द्वारा तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये खर-दूषण आदि चौदह सहस्र राक्षसोंका वध (वन० २७७। ४४)। श्रीरामके भयसे ही गोकर्णतीर्थमें मारीचकी तपस्या (वन० २७७। ५६)। मारीचका रावणको श्रीरामसे भिड़नेका निषेध करना और श्रीरामको ही अपने संन्यासीपनका कारण बताना (वन० २७८। ६—८)। मारीचका मृगरूप धारण करके सीताके सामने जाना, सीताका उसे मार लानेके लिये श्रीरामको प्रेरित करना और सीताका प्रिय करनेके लिये लक्ष्मणको उनकी रक्षामें नियुक्त करके श्रीरामका धनुष-बाण ले उस मृगके पीछे जाना (वन० २७८। १७—२०)। श्रीरामद्वारा मृगरूपधारी मारीचको पहचानकर उसका वध (वन० २७८। २१-२२)। रावणद्वारा इनकी पत्नी सीताका अपहरण (वन० २७८। ४२–४४)। श्रीरामका सीताको अकेली छोड़कर चले आनेके कारण लक्ष्मणको कोसना और आश्रमकी ओर शीघ्रतापूर्वक जाना। मार्गमें पर्वताकार जटायुको गिरा देख उन्हें राक्षस समझकर लक्ष्मणसहित श्रीरामका धनुष खींचकर उनपर धावा करना और उनके द्वारा अपना परिचय देनेपर उनके निकट जा उनकी दुर्दशाको प्रत्यक्ष देखना, 'श्रीसीताको छुड़ानेके लिये युद्ध करते समय मैं रावणके हाथसे मारा गया हूँ और वह दक्षिण दिशाको गया है'—यह संकेतसे बताकर जटायुका श्रीरामके सामने ही प्राण-त्याग करना। इनके द्वारा जटायुका अन्त्येष्टि-संस्कार (वन० २७९। १४—२४)। इनके द्वारा कबन्धकी बायीं भुजाका छेदन (वन० २७९। ३६-३७)। कबन्धका विश्वावसु गन्धर्वके रूपमें परिणत हो श्रीरामको अपना परिचय देना और पंपा सरोवरके निकट ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करनेवाले सुग्रीवके साथ मैत्री स्थापित करनेकी सलाह देकर उसका वहाँसे अन्त-

धान हो जाना (वन० २७९। ४०-४८)। पंपा-सरोवरपर जाकर श्रीरामका सीताके लिये विलाप और लक्ष्मणका उन्हें सान्त्वना देना (वन० २८० । १-६)। इनका पंपा-सरोवरमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करना और ऋष्यमूकके पास जा उसके शिखरपर बैठे हुए पाँच वानरोंको देखना (वन० २८० । ८-९)। हनुमान्‌जीसे भेंट और वार्तालापके पश्चात् इनकी सुग्रीवके साथ मित्रता और उनसे अपना कार्य निवेदन करना। सुग्रीवका सीताके गिराये हुए वस्त्रको इन्हें दिखाना (वन० २८० । १०-१२)। श्रीरामका सुग्रीवको वानरराजके पदपर अभिषिक्त करना तथा वालीको मार गिरानेकी प्रतिज्ञा करना। सुग्रीवका भी सीताको ढूँढ़ लानेका विश्वास दिलाना (वन० २८० । १३-१४)। इनके द्वारा वालीका वध (वन० २८० । ३५-३८)। इनका वर्षाके चार मासतक माल्यवान्‌के सुन्दर पृष्ठ-भागपर निवास करना (वन० २८० । ४०)। इनका सुग्रीवपर कोप (वन० २८२ । ५-११)। लक्ष्मणका सुग्रीवको साथ लेकर माल्यवान् पर्वतके शिखरपर श्रीरामके पास आना और उनके द्वारा किये जानेवाले सीताके अनुसंधान-कार्यकी सूचना देना (वन० २८२ । २२)। श्रीहनुमान्‌जीका लंकासे लौटकर श्रीरामको वहाँका वृत्तान्त एवं सीताका कुशल-समाचार सुनाना (वन० २८२ । ३७—७१)। श्रीरामके पास विभिन्न देशोंसे विशाल वानर-सेनाओंसहित वानर-यूथपतियोंका आगमन (वन० २८३ । १—१३)। शुभ-मुहूर्तमें सेनासहित श्रीरामका लंकाको प्रस्थान (वन० २८३ । १४-१५)। श्रीरामका समुद्रसे पार होनेके लिये वानरोंसे उपाय पूछना और समुद्रकी आराधनाका निश्चय करके उसके तटपर धरना देना (वन० २८३ । २३—३२)। स्वप्नमें समुद्रका श्रीरामचन्द्रजीको दर्शन देकर उन्हें नलके द्वारा सेतु बाँधकर उसीसे सेनासहित पार जानेका परामर्श देना (वन० २८३ । ३३—४२)। श्रीरामका नलको आदेश देकर समुद्रपर सौ योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा पुल तैयार कराना (वन० २८३ । ४३-४५)। इनके पास सचिवोंसहित विभीषण-का आगमन तथा श्रीरामका चरित्र और चेष्टाओंद्वारा उन्हें शुद्ध पाकर उनपर संतुष्ट होना, उन्हें राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त करना, सलाहकार बनाना और उन्हींकी रायसे महासागरको पार करना (वन० २८३ । ४६-५०)। इनका लंकाकी सीमामें पहुँचकर वहाँके उद्यानोंको नष्ट-भ्रष्ट करना, विभीषणकी कैदमें पड़े हुए शुक और सारणको अपनी सेनाका दर्शन कराकर छोड़ना और अङ्गदको रावणके दरबारमें दूत बनाकर भेजना (वन० २८३ । ५१—५४)। अङ्गदका रावणके पास जाकर श्रीरामका संदेश सुनाना और वहाँसे लौटकर श्रीरामको वहाँकी सारी बातें बताकर इनके द्वारा प्रशंसित होना (वन० २८४ । १—२२)। इनके द्वारा निशाचरोंका संहार (वन० २८४ । ३९)। श्रीराम और रावणकी सेनाओंका द्वन्द्वयुद्ध (वन० २८५ अध्याय)। इन्द्रजित्-द्वारा किये गये मायामय युद्धमें लक्ष्मणसहित श्रीरामकी मूर्च्छा (वन० २८८ अध्याय)। इनका सचेत होकर कुबेरके भेजे हुए अभिमन्त्रित जलसे प्रमुख वानरोंसहित अपने नेत्र धोना (वन० २८९ । १—१४)। श्रीराम और रावणका युद्ध तथा इनके द्वारा रावणका वध (वन० २९० अध्याय)। सीताके प्रति श्रीरामका संदेह; इनके पास ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर, सप्तर्षिगण तथा स्वर्गीय महाराज दशरथका आगमन, सीताका इनके समक्ष आत्मशुद्धिके लिये शपथ खाना, वायु-अग्नि आदि देवताओंका इनके सामने सीताकी शुद्धिका समर्थन करना, दशरथका इन्हें अयोध्या जाकर राज्य-शासन करनेकी आज्ञा देना, श्रीरामका देवताओंको नमस्कार करके अपनी पत्नी सीतासे मिलना, अविन्ध्यको वरदान और त्रिजटाको धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट करना (वन० २९१ । १—४१)। ब्रह्माजीके दिये हुए वरसे श्रीरामका मरे हुए वानरोंको जिलाना, मातलिका इन्हें वर देना और श्रीरामका पुष्पकविमानद्वारा दलबलसहित किष्किन्धामें पधारकर सुग्रीवका राज्याभिषेक करके अङ्गदको युवराज-पदपर प्रतिष्ठित करना तथा अयोध्यामें लौट-कर भरतसे मिलना एवं राज्यपर अभिषिक्त होना (वन० २९१ । ४२-६६)। राज्याभिषेकके बाद श्रीरामका सुग्रीव और विभीषणको सादर विदा करना, पुष्पकविमानको कुबेरके पास लौटा देना और गोमतीके तटपर (नैमिषारण्यमें) दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करना (वन० २९१ । ६७-७०)। सृंजयको समझाते हुए नारदजीका इनके चरित्रका वर्णन करना (द्रोण० ५९ अध्याय)। श्रीकृष्णद्वारा इनके राज्य आदिका वर्णन (शान्ति० २९।५१-६२)। गोदान-महिमाके प्रसंगमें इनका नाम-निर्देश (अनु० ७६ । २६)। इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६४)। इनके यज्ञमें धन-दानका वर्णन (अनु० १३७ । १४)।

महाभारतमें आये हुए रामके नाम—अयोध्याधिपति, दशरथपुत्र, दशरथात्मज, दाशरथि, इक्ष्वाकुनन्दन, काकुत्स्थ, कौसल्यानन्दिवर्धन, कौसल्यामातः, कोसलेन्द्र, लक्ष्मणाग्रज, राघव आदि।

रामक—एक पर्वत, जिसे दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० ३१ । ६८)

रामठ–पश्चिम दिशामें निवास करनेवाली एक म्लेच्छ जाति, जिसे नकुलने पश्चिम-दिग्विजयके समय आज्ञामात्रसे ही अपने अधीन कर लिया था (सभा० ३२ । १२) । इस जातिके लोग युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें बुलाये गये थे— इसकी चर्चा (वन० ५१ । २५) ।

रामणीयक–एक द्वीप, जो नागोंका निवासस्थान है (आदि० २६ । ८) । इसके वन आदिका विशेष वर्णन (आदि० २७ । १—९) ।

रामतीर्थ–(१) गोमती नदीका एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलको पवित्र कर देता है (वन० ८४ । ७३) । (२) परशुराम-सेवित महेन्द्रपर्वतपर स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । १७) । (३) सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ; इसका विशेष वर्णन (शल्य० ४९ । ७–११) ।

रामह्रद–कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्धारण करनेवाला एक ह्रद (शल्य० ५३ । २४) । इसमें काशिराजकी कन्या अम्बाने स्नान किया था (उद्योग० १८६ । २८) ।

रामोपाख्यानपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २७३ से २९२ तक) ।

रावण–एक राक्षसराज, जो अत्यन्त दुरात्मा था और सीताजीको हर ले गया था (वन० १४७ । ३३-३४) । यह विश्रवाका पुत्र था । इसकी माताका नाम पुष्पोत्कटा था । इसीका छोटा भाई कुम्भकर्ण था (वन० २७५ । ७) । इसकी अद्भुत तपस्या और ब्रह्माजीसे इसका वर माँगना (वन० २७५ । १६—२५) ; इसे कुबेरका शाप (वन० २७५ । ३४-३५) । मारीचके पास जाकर उसे कपटमृग बननेके लिये बाध्य करना (वन० २७८ । ९) । इसके द्वारा सीताजीका अपहरण (वन० २७८ । ४३) । इसके द्वारा जटायुके पंखोंका काटा जाना (वन० २७९ । ६) । इसे नलकूबरके शापकी चर्चा (वन० २८० । ५७–६१) । इसका सीताजीको अपने अनुकूल होनेके लिये समझाना (वन० २८१ अध्याय) । अङ्गदका रावणको श्रीरामके संदेश सुनाना (वन० २८४ । १०–१६) । इसका कुम्भकर्णको युद्धके लिये जगाना (वन० २८६ । २०) । इन्द्रजित्को युद्धके लिये भेजना (वन० २८८ । २) । सीताजीको मार डालनेके लिये उद्यत होना (वन० २८९ । २७) । श्रीरामद्वारा इसका वध (वन० २९० । ३०) ।

महाभारतमें आये हुए रावणके नाम–दशग्रीव, दशकन्धर, दशानन, दशास्य, पौलस्त्य, पौलस्त्यतनय, रक्षःपति, रक्षः, राक्षस, राक्षसाधिप, राक्षसाधिपति, राक्षसश्रेष्ठ, राक्षसमहेश्वर, राक्षसपति, राक्षसपुङ्गव, राक्षसराज, राक्षसेश्वर, राक्षसेन्द्र आदि ।

राहु–कश्यपद्वारा सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६५ । ३१) । इसके द्वारा कपटपूर्वक अमृतका पान और भगवान् विष्णुके द्वारा इसका शिरश्छेदन (आदि० १९ । ४–६) । चन्द्रमा तथा सूर्यके साथ इसका वैर (आदि० १९ । ९) । ब्रह्माजीकी सभामें बैठनेवाले ग्रहोंके साथ इसका भी नाम आया है (सभा० ११ । २९) । धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका विशेष वर्णन (भीष्म० १२ । ४०–४३)।

रुक्मरथ–(१)मद्रराज शल्यका पुत्र, जो अपने पिता और भाई रुक्माङ्गदके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १४) । इसका श्वेतके साथ युद्ध और उसके बाणोंसे मूर्च्छित होना (भीष्म० ४७ । ४८—५९) । अभिमन्युके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० ४५ । ९–१३) । सहदेवके हाथसे इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । २६) । (२) सुवर्णमय रथपर चलनेके कारण द्रोणाचार्यका एक नाम रुक्मरथ भी था (विराट० ५८ । २) । (३) कौरवपक्षके त्रिगर्तदेशीय राजकुमारोंके एक दलका नाम, जिसने कर्णकी आज्ञासे अर्जुनपर आक्रमण किया था (द्रोण० ११२ । १९—२५) ।

रुक्माङ्गद–मद्रराज शल्यका पुत्र, जो अपने पिता और भाई रुक्मरथके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १४) ।

रुक्मिणी–नारायण-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेके लिये भूतलपर विदर्भराज भीष्मकके कुलमें उत्पन्न हुई लक्ष्मी (आदि०६७ । १५६) । शिशुपाल इन्हें चाहता था, परंतु न पा सका (सभा० ४५ । १५) । इनका लक्ष्मीसे उनके निवासयोग्य स्थान पूछना (अनु० ११ । ४) । इनके पुत्रोंके नाम—चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न, शम्भु (अनु० १४ । ३३-३४) । महर्षि दुर्वासाद्वारा इनका रथमें जोता जाना (अनु० १५९ । २८–३५) । प्रसन्न हुए दुर्वासाद्वारा इन्हें वर-प्राप्ति (अनु० १५९ । ४५–४७) । श्रीकृष्णरहित द्वारका और श्रीकृष्णपत्नियोंको देखकर फूट फूटकर रोते हुए अर्जुन जब मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, तब रुक्मिणी आदि रानियाँ वहाँ दौड़ी आयीं और अर्जुनको घेरकर उच्चस्वरसे विलाप करने लगीं। उन्होंने अर्जुनको उठाकर उन्हें सोनेकी चौकीपर बिठाया। उन्हें घेरकर वे चुपचाप बैठ गयीं (मौसल० ५ । १२–१४) । रुक्मिणीने पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें प्रवेश किया था (मौसल० ७ । ७३) । महाबाहु विश्वकर्माने इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् पद्मनाभके लिये जिस

मनोहर प्रासादका निर्माण किया है, उसका विस्तार सब ओरसे एक-एक योजनका है, उसके ऊँचे शिखरपर सुवर्ण मढ़ा गया है, जिससे वह मेरु पर्वतके उत्तुङ्ग शृङ्गकी शोभा धारण कर रहा है। वह प्रासाद महात्मा विश्वकर्माने महारानी रुक्मिणीके रहनेके लिये बनाया है। यह इनका सर्वोत्तम निवास है (सभा० ३८ । २८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१४, कालम २)।

रुक्मी–एक श्रेष्ठ नरेश, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६२)। (यह विदर्भदेशीय भोजकट नगरका राजा, भीष्मकका पुत्र और रुक्मिणीका भाई था।) यह भोजकटका निवासी था, सहदेवके दिग्विजयके समय इसने प्रेमपूर्वक उनका शासन स्वीकार किया था (सभा० ३१ । ६२-६३)। कर्णकी दिग्विजय के समय इसका उसे कर देना (वन० २५४ । १४)। पाण्डवोंकी ओरसे इसको रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १६)। इसके पिता दाक्षिणात्य देशके अधिपति और साक्षात् इन्द्रके सखा महामना भीष्मक थे, जिन्हें हिरण्यरोमा भी कहते हैं। रुक्मी सम्पूर्ण दिशाओंमें विख्यात था। इसने गन्धमादननिवासी किंपुरुषप्रवर द्रुमका शिष्य होकर चारों पादोंसे युक्त सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इसे इन्द्रदेवताका तेजस्वी विजय नामक धनुष प्राप्त हुआ था, जो गाण्डीव और शार्ङ्गधनुषके समान ही तेजस्वी था। यह धनुष उसे अपने गुरुदेव द्रुमसे ही प्राप्त हुआ था। इसने पूर्वकालमें श्रीकृष्णद्वारा किये गये अपनी बहन रुक्मिणीके अपहरणको सहन न कर सकनेके कारण यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं श्रीकृष्णको मारे बिना अपने नगरको नहीं लौटूँगा। परंतु भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचकर यह उनसे पराजित हो गया, अतः लज्जावश पुनः कुण्डिनपुरको नहीं लौटा। जहाँ उसकी पराजय हुई, वहीं उसने भोजकट नामक नगर बसाया और उसीमें वह समस्त परिवारके साथ रहने लगा (उद्योग० १५८ । १—१६)। यह एक अक्षौहिणी सेनासे घिरा हुआ पाण्डवोंके पास आया। इसके मनमें श्रीकृष्णका प्रिय करनेकी इच्छा थी। पाण्डवोंको इसकी सूचना मिली और युधिष्ठिरने आगे बढ़कर इसकी अगवानी की। आदर-सत्कारके पश्चात् इसने विश्राम किया। तदनन्तर इसने अर्जुनसे कहा—'यदि तुम डरे हुए हो तो मैं तुम्हारी सहायताके लिये आ पहुँचा हूँ।' अर्जुनने हँसकर इसकी सहायता लेनेसे इनकार कर दिया। तब इसने दुर्योधनके पास जाकर वहाँ भी यही बात कही। वीर मानी दुर्योधनने इसकी सहायताको ठुकरा दिया और यह सकुशल अपने घरको लौट गया (उद्योग० १५८ । १७—३९)। यह कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गया था (शान्ति० ४ । ७)।

रुचि–(१) अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागतके अवसरपर कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४४)। (२) महर्षि देवशर्माकी पत्नी, जो अनुपम सुन्दरी थी। इन्द्र इसपर आसक्त हो गये थे। (अनु० ४० । १७-१८)। इसकी रक्षाका भार अपने शिष्य विपुलको सौंपकर देवशर्माका यज्ञके लिये बाहर जाना (अनु० ४० । २१—४१)। विपुलका योगद्वारा रुचिके शरीरमें प्रवेश करना (अनु० ४० । ५८–६०)। कामासक्त इन्द्रका रुचिके पास आना और अपना परिचय देना (अनु० ४१ । २—८)। विपुलद्वारा इन्द्रसे रुचिकी रक्षा और देवशर्माके लौटनेपर रुचिको उन्हें सौंपना (अनु० ४१ । २७–२९)। उसका अपनी बहिन प्रभावतीके यहाँ, जो अङ्गराजकी पत्नी थी, जाते समय मार्गमें किसी देवसुन्दरीकी वेणीसे गिरे हुए सुगन्धित पुष्पको अपनी वेणीमें गूँथकर जाना और उस पुष्पको देखकर प्रभावतीका वैसे ही पुष्प मँगवा देनेके लिये इससे अनुरोध करना (अनु० ४२ । ५–१०)। इसका आश्रमपर लौटकर देवशर्मासे वैसे ही पुष्प मँगा देनेके लिये आग्रह करना (अनु० ४२ । ११)। पतिके साथ इसका स्वर्गलोकमें जाना (अनु० ४३ । १७)।

रुचिपर्वा–राजा आकृतिका पुत्र, जिसने भीमसेनकी रक्षाके लिये भगदत्तके हाथीपर आक्रमण किया और भगदत्तद्वारा मारा गया (द्रोण० २६ । ५१–५३)।

रुचिप्रभ–एक राक्षस, जो प्राचीनकालमें इस पृथ्वीका शासक था, परंतु कालके वश होकर इसे छोड़ परलोकवासी हो गया था (शान्ति० २२७ । ५२)।

रुद्र–महादेवजीका एक नाम (उद्योग० ११७ । १०)। (विशेष देखिये शिव)

रुद्रकोटि–यह वह स्थान है, जहाँ शिवजीके दर्शनकी अभिलाषासे करोड़ों मुनि एकत्र हुए थे और उनपर प्रसन्न होकर शिवजीने करोड़ों शिवलिङ्गोंके रूपमें उन्हें दर्शन दिया था। यहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और कुलका उद्धार हो जाता है (वन० ८२ । ११८—१२४; वन० ८३ । ७७)।

रुद्रपद–एक तीर्थ, जहाँ जाकर शिवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८२ । १००)।

रुद्रमार्ग–एक तीर्थ, यहाँ जाकर एक दिन-रात उपवास

करनेसे यात्री इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १८१-१८२) ।

रुद्ररोमा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

रुद्रसूनु–कार्तिकेयका एक नाम और इस नामकी निरुक्ति (वन० २२९ । २७) ।

रुद्रसेन–युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक एक राजा (द्रोण० १५८ । ३९) ।

रुद्राणी–पार्वतीजीका एक नाम (उद्योग० ११७ । १०)। (विशेष देखिये पार्वती)

रुद्राणीरुद्र–एक तीर्थ, जहाँ उत्तर दिशाको जाते हुए अष्टावक्र मुनि पधारे थे (अनु० १९ । ३१) ।

रुद्रावर्त–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है (वन० ८४ । ३७) ।

रुमण्वान्–जमदग्निद्वारा रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र, इनके चार भाई और थे । जिनके नाम हैं—सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम । इन्हें माताका वध करनेके लिये पिताने आज्ञा दी; परंतु इन्होंने उसका पालन नहीं किया, जिससे कुपित होकर महर्षि जमदग्निने इन्हें शाप दे दिया । शापवश ये मृग-पक्षियोंकी भाँति जड-बुद्धि हो गये (वन० ११६ । १०-१२) । परशुरामजीने पिताको प्रसन्न करके इन्हें शापमुक्त कराया (वन० ११६ । १७-१८) ।

रुरु–एक ऋषिकुमार, जो महर्षि च्यवनके पौत्र तथा प्रमतिके पुत्र थे । घृताची नामकी अप्सराके गर्भसे इनका जन्म हुआ था (आदि० ५ । ९; अनु० ३० । ६४) । सर्पदंशनसे मरी हुई अपनी प्रेयसी प्रमद्वराके लिये इनका विलाप करना । उसे अपनी आधी आयु देकर जीवित करना तथा उसके साथ इनका विवाह होना (आदि० ८ । २६ से ९ । १८तक) । इनका सर्पजातिसे द्वेष, डुण्डुभके साथ संवाद एवं इनके प्रति डुण्डुभके द्वारा अहिंसा एवं वर्णधर्मोंका संक्षिप्त उपदेश (आदि० ९ । १९ से ११ अध्यायके अन्ततक) । सर्पसत्रके विषयमें इनकी जिज्ञासा तथा पिताद्वारा उसका समाधान (आदि० १२ अध्याय) ।

रुषंगु–एक ऋषि, जिनके आश्रमपर आर्ष्टिषेण मुनिने घोर तपस्या की थी और विश्वामित्रको यहीं ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई थी । अन्त समयमें ये अपने पुत्रोंद्वारा पृथूदक तीर्थमें आये और वहाँ इन्होंने ऐसी गाथा गायी कि जो सरस्वती-के उत्तर तटपर पृथूदक तीर्थमें जप करते शरीरका परि-त्याग करता है, उसे फिर मृत्युका कष्ट नहीं भोगना पड़ता (शल्य० ३९ । २४—३४) ।

रुषद्रु–एक प्राचीन राजा, जो यमराजकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १३) ।

रुषर्द्धिक–सुराष्ट्र-वंशी एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १४) ।

रुहा–नागमाता सुरसाकी पुत्री, इसकी दो बहिनें और हैं, जिनके नाम हैं—अनला और वीरुधा । जो वृक्ष फूलसे फल ग्रहण करते हैं, वे सभी इसकी संतान हैं (आदि० ६६ । ७० के बाद दा० पाठ) ।

रूपवाहिक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४३) ।

रूपिण–ये सम्राट् अजमीढके द्वारा केशिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके दो भाई और थे, जिनके नाम हैं—जह्नु और व्रजन (आदि० ९४ । ३२) ।

रेणुक–एक रसातल-निवासी अत्यन्त शक्तिशाली और सत्त्व एवं पराक्रमसे युक्त नाग, जिसने देवताओंके भेजने-से दिग्गजोंके पास जाकर धर्मके विषयमें प्रश्न किया (अनु० १३२ । २–६) ।

रेणुका–(१) मुनिवर जमदग्निकी पत्नी एवं परशुरामजीकी माता (वन० ९९ । ४२) । इनके गर्भसे रुमण्वान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुरामका जन्म (वन० ११६ । ४) । इनपर कुपित हुए पिताकी आज्ञासे परशुराम-द्वारा इनका वध (वन० ११६ । १४) । जमदग्निके वरसे इनका पुनरुज्जीवन (वन० ११६ । १७-१८) । महर्षि जमदग्निके चलाये हुए बाणोंको इनका उठा-उठाकर लाना (अनु० ९५ । ७—१५) । एक बार लौटनेमें विलम्ब होनेपर इनका पतिको इसका कारण बताना (अनु० ९५ । १६-१७) । **रेणुका**–(२) एक सिद्धसेवित तीर्थ, जिसमें स्नान करके ब्राह्मण चन्द्रमाके समान निर्मल होता है (वन० ८२ । ८२) । (३) कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान आदि करनेसे तीर्थयात्री सब पापोंसे मुक्त हो अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है (वन० ८३ । १५९-१६०) ।

रेवती–(१) बलरामजीकी पत्नी (आदि० २१८ । ७) । (२) अदिति देवीका एक नाम (वन० २३० । २९) । (३) सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक (भीष्म० ११ । १८) । कार्तिक मासके रेवती नक्षत्रमें मैत्र नामक मुहूर्त उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णने यात्रा आरम्भ की (उद्योग० ८३ । ६-७) । जो रेवती नक्षत्रमें कांस्यके दुग्धपात्रसे युक्त धेनुका दान करता है, वह धेनु परलोकमें सम्पूर्ण भोगोंको लेकर उस दाताकी सेवामें उपस्थित होती है (अनु० ६४ । ३३) । रेवतीमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष

सोने चाँदीके सिवा अन्य नाना प्रकारके धन पाता है (अनु० ८१ । १४) । चान्द्रव्रतमें रेवतीको चन्द्रमाका नेत्र मानकर उनके उस अङ्गकी पूजाका विधान है (अनु० ११० । ५) ।

रैभ्य–(१) एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १६) । ये भरद्वाज मुनिके सखा थे। इनके दो पुत्र थे–अर्वावसु और परावसु। पुत्रोंसहित रैभ्य बड़े विद्वान् थे—(वन० १३५ । १२–१४) । भरद्वाजका यवक्रीतको रैभ्य मुनिके पास जानेसे रोकना (वन० १३५ । ५७-५८) । इनका यवक्रीतपर कुपित हो अपनी जटाकी आहुतिद्वारा एक कृत्या और एक राक्षस उत्पन्न करना तथा उन्हें यवक्रीतको मार डालनेका आदेश देना (वन० १३६ । ८–१२) । भरद्वाज मुनिका इन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्रके हाथसे मारे जानेका शाप देना (वन० १३७ । १५) । अपने पुत्र परावसुद्वारा हिंसक पशुके धोखेमें इनकी मृत्यु (वन० १३८ । ६) । अपने दूसरे पुत्र अर्वावसुके प्रयत्नसे इनका पुनरुज्जीवन (वन० १३८ । २०—२३) । ये अङ्गिराके पुत्र थे (शान्ति० २०८ । २६-२७) । इनका उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्य होना (शान्ति० ३३६ । ७) । प्रयाणके समय भीष्मजीको देखने आये थे (अनु० २६ । ६) । (२) एक मुनि, जिन्हें वीरणसे सात्वत धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ था और जिन्होंने अपने पुत्र दिक्पाल कुक्षिको इस धर्मकी शिक्षा दी थी (शान्ति० ३४८ । ४२-४३) ।

रैवत–(१) रेवतीके ग्रहका नाम (वन० २३० । २९) । (२) एक प्राचीन राजा, जो दक्षिण दिशामें स्थित मन्दराचलके कुञ्जोंमें गन्धर्वोंद्वारा गायी जानेवाली गाथाओंके रूपमें सामगान सुनते-सुनते इतने तन्मय हो गये कि अपनी स्त्री, मन्त्री तथा राज्यसे भी वियुक्त हो वनमें जानेको विवश हुए (उद्योग० १०९ । ९-१०) । इन्हें मरुत्तसे और इनसे युवनाश्वको खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६ । ७७-७८) । इनके द्वारा मांस-भक्षणका निषेध (अनु० ११५ । ६३) । ये सायं-प्रातः कीर्तन करनेयोग्य नरेश हैं (अनु० १६५ । ५३) । (३) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । १९) ।

रैवतक–(१) (गुजरातका एक पर्वत, जो आधुनिक जूनागढ़के पास है और 'गिरनार' कहा जाता है। इसीको महाभारतमें 'उज्जयन्त गिरि' कहा गया है । यह प्रभासक्षेत्रसे अधिक दूर नहीं हैं ।) श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रभास क्षेत्रमें घूम-फिरकर इसी पर्वतपर चले आये थे (आदि० २१७ । ८) । यहाँ यदुवंशियोंका महान् उत्सव हुआ था (आदि० २१८ । १—१२) । सुभद्राने इसकी परिक्रमा की । इसी उत्सवके अवसरपर यहाँसे अर्जुनद्वारा सुभद्राका अपहरण हुआ (आदि० २१९ । ६-७) । (२) शाकद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० ११ । १८) ।

रोचनामुख–एक दैत्य, जो गरुडद्वारा मारा गया था (उद्योग० १०५ । १२) ।

रोचमान–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो अश्वग्रीव नामक महान् असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । १८) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इनका शुभागमन हुआ था (आदि० १८५ । १०) । (यह भी सम्भव है कि कोई दूसरे रोचमान वहाँ पधारे हों ।) ये अश्वमेध देशके राजा थे, इन्हें भीमसेनने अपनी दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० २९ । ८) । इन्हें ही पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १२) । ये पाण्डवपक्षके महारथी वीर थे (उद्योग० १७२ । १) । इन्हें ताराओंसे चित्रित अन्तरिक्षके समान चितकबरे घोड़ोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया था (द्रोण० २० । ४७) । इनका कर्णके साथ युद्ध और उसके द्वारा घायल होना (कर्ण० ५६ । ४५—४७) । (प्रकरण देखनेसे ये पाञ्चालदेशीय, चेदिदेशीय अथवा किसी अन्य देशके निवासी भी सिद्ध होते हैं।) इनका कर्णद्वारा वध (कर्ण० ५६ । ४९) । (२) एक उरगावासी नरेश, जिन्हें अर्जुनने दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० २७ । १९) । (३) ये रोचमान नामके ही दो भाई थे; द्रोणाचार्यद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । २०–२१) ।

रोचमाना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २९) ।

रोमक–एक भारतीय जनपद और वहाँके निवासी, ये युधिष्ठिरके लिये भेंट-सामग्री लेकर आये थे (सभा० ५१ । १७) ।

रोहिणी–(१) क्रोधवशा-कुमारी सुरभिकी पुत्री (गौ) । इसकी विमला और अनला नामकी दो कन्याएँ थीं। इससे गाय-बैलोंकी उत्पत्ति हुई (सभा० ६६ । ६०—६८) । (२) चन्द्रमाकी पत्नी (आदि० १९८ । ५) । प्रजापति दक्षकी नक्षत्रसंज्ञक सत्ताईस कन्याओंमें यह प्रमुख थी और अपने रूप-वैभवसे अन्य सब बहिनोंकी अपेक्षा विशेष बढ़ी-चढ़ी थी; इसीलिये पतिकी हृदयवल्लभा हो गयी थी (शल्य० ३५ । ४५–४८) । इसे असि (खड्ग) का गोत्र कहा गया है (शान्ति० १६६ । ८२) । रोहिणी नक्षत्रमें पके हुए फलके गूदे, अन्न, घी, दूध, पीने योग्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करनेसे दाताको ऋणसे छुटकारा मिलता है (अनु० ६४ । ६) । संतानकी

कामनावाले पुरुषको रोहिणी नक्षत्रमें पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये (अनु० ८९ । ३)। चान्द्रव्रतमें चन्द्रमाके नक्षत्रमय स्वरूपका चिन्तन करते समय रोहिणीको उनकी पिण्डलियोंमें स्थित मानकर तत्सम्बन्धी मन्त्रसे उक्त अङ्गकी पूजा करे (आदि० ११० । ३) । (३) वसुदेवजीकी भार्या तथा बलरामजीकी माता (आदि० १९६ । ३३; सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। ये वसुदेवजीकी मृत्युके पश्चात् उनके शवके साथ ही चितापर दग्ध हो गयीं (मौसल० ७ । १८, २४) । (४) मनु (भानु) नामक अग्निकी तीसरी भार्या निशाके गर्भसे उत्पन्न एक कन्या, जो 'स्विष्टकृत्' मानी गयी है । इसका नाम रोहिणी है । यह किसी अशुभ कर्मके कारण हिरण्यकशिपुकी पत्नी हो गयी थी (वन० २२१ । १५, १८-१९) ।

रोही–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पाते हैं (भीष्म० ९ । ३०) ।

रोहीतक(एवं रोहितकारण्य)–एक पर्वत तथा उसके समीपका देश । पश्चिम-दिग्विजयके समय नकुल यहाँ होकर आगे गये थे (सभा० ३२ । ४-५) । इसके निकटवर्ती वनको 'रोहितकारण्य' कहते हैं; जो कौरवोंकी विशाल सेनासे घिर गया था (उद्योग० १९ । ३०-३१)। (इसीको आजकल रोहतक (पंजाब) कहते हैं ।)

रौद्र–कैलास एवं मन्दराचलपर रहनेवाले एक प्रकारके राक्षस। उत्तराखण्डकी यात्राके समय लोमशजीने युधिष्ठिरको इनसे सावधान रहनेके लिये कहा था (वन० १३९ । १०)।

रौद्रकर्मा धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०४; आदि० ११६ । १२) । यह भीमसेनद्वारा मारा गया (द्रोण० १२७ । ६२) ।

रौद्राश्व–ये राजा पूरुके द्वारा पौष्टीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके दो भाई और थे, जिनके नाम हैं—प्रवीर और ईश्वर (आदि० ९४ । ५) । इनके द्वारा मिश्रकेशी नामक अप्सराके गर्भसे अन्वग्भानु आदि दस महाधनुर्धर पुत्र उत्पन्न हुए (आदि० ९४ । ८) ।

रौप्या–एक नदी, जिसके समीप ऋचीकनन्दन जमदग्निका प्रसर्पण नामक तीर्थ है (वन० १२९ । ७) ।

रौम्य–गणेश्वरोंका एक दल, जिसे वीरभद्रने अपने रोमकूपोंसे उत्पन्न किया था (शान्ति० २८४ । ३५)।

(ल)

लक्षणा–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवमें नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२) ।

लक्ष्मण–(१) महाराज दशरथके चार पुत्रोंमेंसे एक, सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्र तथा शत्रुघ्नके सहोदर भाई (वन० २७४ । ७-८) । श्रीरामके साथ इनका वन-गमन (वन० २७७ । २९) । सीताके कठोर वचन सुनकर उन्हें अकेली छोड़कर इनका रामके पास जाना (वन० २७८ । ३०-३१) । सीताको छोड़कर आनेके कारण श्रीरामद्वारा इनकी भर्त्सना (वन० २७९ । १३-१४) । इनका श्रीरामके साथ जटायुके पास जाना (वन० २७९ । २०) । श्रीरामके साथ वनमें घूमते हुए इनका कबन्धद्वारा पकड़ा जाना और दुखी होकर विलाप करना (वन० २७९ । ३०–३४) । श्रीरामका आश्वासन पाकर इनका कबन्धकी दाहिनी बाँह काटना और उसके पसलीपर प्रहार करके उसे मार डालना (वन० २७९ । ३६–३९) । श्रीरामके कहनेसे किष्किन्धामें सुग्रीवसे उनका संदेश कहना (वन० २८२ । १४) । श्रीरामने विभीषणको इनका मित्र बनाया (वन० २८३ । ४९)। इनका लंकामें राक्षसोंको चुन-चुनकर मार गिराना (वन० २८४ । ४०) । इनके द्वारा कुम्भकर्णका वध (वन० २८७ । १७–१९) । इनका प्रमाथी और वज्रवेगके साथ युद्ध (वन० २८७ । २५) । मेघनादके बाणोंसे लक्ष्मण और श्रीराम दोनों भाइयोंका मूर्च्छित होना (वन० २८८ अध्याय) । इनके द्वारा मेघनादका वध (वन० २८९ । २३) ।

महाभारतमें आये हुए लक्ष्मणके नाम–इक्ष्वाकुनन्दन, काकुत्स्थ, राघव, रामानुज, सौमित्रि ।

(२) दुर्योधनका महारथी पुत्र । अभिमन्युके साथ इसका युद्ध (भीष्म० ५५ । ८–१३) । अभिमन्युके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ७३ । ३२–३७) । क्षत्रदेवके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४९) । समुद्री प्रान्तोंके अधिपतिके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ३४-३५) । अभिमन्युद्वारा वध (द्रोण० ४६ । १७) । इसके द्वारा अम्बष्ठपुत्रके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । १०-११) । इसके द्वारा शिखण्डीके पुत्र क्षत्रदेवके वधकी चर्चा (कर्ण० ६ । २६-२७) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजीके जलसे प्रकट हुए कौरव-पाण्डव पक्षके लोगोंमें यह भी था (आश्रम० ३२ । ११) ।

लक्ष्मणा–भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानियोंमेंसे एक (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ) ।

लक्ष्मी–(१) समुद्रसे प्रकट हुई देवी (आदि० १८ । ३५) । भगवान् विष्णुकी पत्नी (आदि० १९८ । ६)। (इनके दो स्वरूप हैं—विष्णुप्रिया लक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी । विष्णुकी प्रेयसी लक्ष्मी सतियोंकी शिरोमणि हैं ।

ये पतिका आश्रय छोड़कर कहीं नहीं जातीं; किंतु राज्य-लक्ष्मी अनेक स्वरूप धारण करके अनेक लोकोंमें और अनेक राजाओंके पास रहती हैं। ये अस्थिर और चञ्चल हैं। जहाँ सद्गुण है, सद्धर्म है, वहाँ इनका वास है और जहाँ इन गुणोंका अभाव है, वहाँसे ये हट जाती हैं। नीचे राज्यलक्ष्मीके विषयमें ही कुछ बातें लिखी जाती हैं–) ये कुबेरकी सभामें विराजमान होती हैं (सभा० १० । १९)। ब्रह्माजीकी सभामें भी इनकी उपस्थिति होती है (सभा० ११ । ४१)। द्रौपदीकी अर्जुनके लिये इनसे मङ्गल-कामना (वन० ३७ । ३३)। इनका प्रह्लाद-को छोड़कर जाना और पूछनेपर उन्हें इसका कारण बताना (शान्ति० १२४ । ५८–६२)। बलिको त्याग-कर इन्द्रके पास आना और उनके साथ इनका संवाद (शान्ति० २२५ । ५—२९)। इन्द्र और नारदको इनका दर्शन देना (शान्ति० २२८ । १६)। इन्द्रके पूछनेपर असुरोंके सद्गुण और दुर्गुणोंका वर्णन (वन० २२८ । २९–८४)। रुक्मिणीके पूछनेपर भृगुपुत्री नारायणप्रिया लक्ष्मीद्वारा अपने निवासयोग्य स्थानोंका वर्णन (अनु० ११ । ६–२१)। गौओंके साथ राज्य-लक्ष्मीका संवाद और इनका गोबरमें अपना निवास बनाना (अनु० ८२ अध्याय)। इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२७ । ६-७)। (२) दक्ष प्रजापति-की पुत्री एवं धर्मकी पत्नी (आदि० ६६ । १४)।

लङ्का–राक्षसोंकी राजधानी। राजसूय यज्ञके समय सहदेवने लङ्कापतिसे कर लेनेके लिये वहाँ घटोत्कचको भेजा था (सभा० ३१ । ७२ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७६० से ७६४ तक)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें लङ्कावासी रसोई परोसनेका काम करते थे (वन० ५१ । २३–२६)। यहाँ राक्षसराज रावणकी राजधानी थी; जिसे हनुमान्‌जीने जलाया था (वन० १४८ । ९)। ब्रह्माजीने लङ्कापुरी कुबेरको रहनेके लिये दी थी (वन० २७४ । १६-१७)। रावणने इसे कुबेरसे छीन लिया था (वन० २६५ । ३२-३३)। सीताका अपहरण करके रावणने उन्हें लङ्काकी ही अशोकवाटिकाके निकट रमणीय भवनमें रखा था (वन० २८० । ४१-४२)। महापुरी लङ्का त्रिकूटपर्वत-की कन्दरामें बसी है (वन० २८२ । ५६)। श्रीरामने वानर-सैनिकोंद्वारा लङ्काके बगीचोंको नष्ट कराया था (वन० २८३ । ५१)। लङ्कापुरीकी सुरक्षाके लिये सुदृढ़ व्यवस्थाका वर्णन (वन० २८४ । २–६)। अङ्गद लङ्कामें श्रीरामके दूत बनकर गये थे (वन० २८४ । ७)। श्रीरामद्वारा लङ्कापर चढ़ाई (वन० २८४ । २३)। रावणके मारे जानेपर लङ्काका राज्य विभीषणके अधिकारमें दिया गया (वन० २९१ । ५)।

लङ्गती–एक नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । २३)।

लज्जा–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री तथा धर्मकी पत्नी। ब्रह्माजीने धर्मकी पत्नियोंको धर्मका द्वार निश्चित किया है (आदि० ६६ । १४-१५)।

लता–एक अप्सरा, जो वर्गाकी सखी थी (आदि० २१५ । २०)। ब्राह्मणके शापसे इसका ग्राहयोनिमें जन्म (आदि० २१५ । २३)। अर्जुनद्वारा इसका ग्राह-योनि-से उद्धार (आदि० २१६ । २१)। यह कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवामें उपस्थित होती है (सभा० १० । १०-११)।

लतावेष्ट–द्वारकाके दक्षिणभागमें विद्यमान एक पर्वत, जो पाँच रंगका होनेके कारण इन्द्र-ध्वज-सा प्रतीत होता था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३, कालम १)।

लपिता–मन्दपाल ऋषिकी दूसरी भार्या एक शार्ङ्गी, जो जरिताकी सौत थी (आदि० २२ । १७)। मन्दपाल ऋषिका लपितासे जरिताके गर्भसे उत्पन्न हुए अपने बच्चों-के विषयमें उत्पन्न हुई चिन्ताका कथन (आदि० २३२ । २–६)। लपिताका मन्दपालको फटकारते हुए उनकी उपेक्षा करना (आदि० २३२ । ७–१३)।

लपेटिका–एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेसे तीर्थयात्री वाजपेय यज्ञका फल पाता है और देवताओंद्वारा पूजित होता है (वन० ८५ । १५)।

लम्पाक–एक देश, यहाँके निवासियोंने कौरवोंकी सेनामें आकर सात्यकिपर धावा किया था, परंतु सात्यकिने इन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला था (द्रोण० १२१ । ४२-४३)।

लम्बपयोधरा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २१)।

लम्बनी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १८)।

लम्बा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १८)।

लय–एक प्राचीन नरेश, जो यमकी सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१)।

ललाटाक्ष–एक देश, यहाँके राजा भेंट लेकर युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये थे (सभा० ५१ । १७)।

ललाम घोड़ोंका एक भेद (जिस घोड़ेके ललाटके मध्य-भागमें ताराके समान श्वेत चिह्न हो, उसके उस चिह्नका नाम ललाम है और उस चिह्नसे युक्त अश्वको ललाम कहते हैं।) (द्रोण० २३ । १३)।

ललितक–शान्तनुका उत्तम तीर्थ, यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता (**वन० ८४ । ३४**) ।

ललित्थ–एक देश तथा वहाँके निवासी । यहाँके सैनिकोंने सुशर्माके साथ अर्जुनका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी (**द्रोण० १७ । २०**) । ये अर्जुनद्वारा पीडित किये गये थे (**द्रोण० १९ । १६**) । यहाँके राजाने अभिमन्युपर बाण-वर्षा की थी (**द्रोण० ३७ । २६**) । पूर्वकालमें कर्णने इस देशपर विजय पायी थी (**द्रोण० ९१ । ४०**) । अर्जुनद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (**कर्ण० ५ । ४७**) ।

लवण–(१) रामणीयक द्वीपमें निवास करनेवाला एक असुर, जिसे नागोंने पहले-पहल इस द्वीपमें आनेपर देखा था (**आदि० २७ । २**) । (२) मधु नामक राक्षसका पुत्र । श्रीरामकी आज्ञासे शत्रुघ्नद्वारा इसका वध (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९५**) । चक्रवर्ती राजा मान्धाता लवणासुरके द्वारा प्रयुक्त हुए शिवजीके त्रिशूलसे सेनासहित नष्ट हो गये । अभी वह शूल असुरके हाथमें ही था कि राजाका सर्वनाश हो गया (**अनु० १४ । २६७-२६८**) ।

लवणाश्व–एक ब्रह्मर्षि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका विशेष सम्मान करते थे (**वन० २६ । २३**) ।

लाक्षा-गृह–दुष्ट दुर्योधनकी प्रेरणासे महात्मा पाण्डवोंके विनाशके लिये वारणावतनगरमें लाह आदि आग भड़कानेवाले पदार्थोंद्वारा निर्मित गृह (**आदि० १४३ । ८—१०**) । पुरोचनद्वारा इस लाक्षागृहकी पाण्डवोंसे चर्चा । पाण्डवोंका इसमें प्रवेश । इसके निर्माणके सम्बन्धमें युधिष्ठिरका भीमसेनसे रहस्य-कथन (**आदि० १४५ । ११—१९**) । विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा इसमें सुरंगका निर्माण (**आदि० १४६ । १६**) । भीमसेनद्वारा इसका दाह (**आदि० १४७ । १०**) ।

लाङ्गली–एक श्रेष्ठ नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० ९ । २२**) ।

लाट–एक क्षत्रिय जाति, इस जातिके लोग ब्राह्मणोंके साथ ईर्ष्या रखनेके कारण नीच हो गये (**अनु० ३५ । १७-१८**) ।

लिखित–एक प्राचीन मुनि, जो इन्द्रके सभासद् हैं (**सभा० ७ । ११**) । ये शङ्खके भाई थे, इन्होंने भाईकी आज्ञासे राजा सुद्युम्नके पास जाकर उनसे चोरीके अपराधका दण्ड माँगा और अपने दोनों हाथ कटवा दिये (**शान्ति० २३ । १८—३६**) । भाई शङ्खके तपोबलसे पुनः इनके नये हाथ निकल आये (**शान्ति० २३ । ४१-४२**) ।

लीलाढ्य–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५३**) ।

लोकपाल–इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण—इन्हें लोकपाल कहा गया है । इनकी दमयन्ती-स्वयंवरमें आते समय मार्गमें राजा नलसे भेंट और उनसे दूत बननेके लिये कहना (**वन० ५४ । २८ से ५५ । ५ तक**) । इनके द्वारा नलको वर-प्रदान (**वन० ५७ । ३५—३८**) ।

लोकपालसभाख्यानपर्व–सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय ५ से १२ तक**) ।

लोकोद्धार–एक लोकविख्यात प्राचीन तीर्थ, जहाँ भगवान् विष्णुने कितने ही लोकोंका उद्धार किया था । यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य आत्मीय जनोंका उद्धार करता है (**वन० ८३ । ४४-४५**) ।

लोपामुद्रा–महर्षि अगस्त्यने अपनी पत्नी बनानेके लिये एक सुन्दरी कन्याका निर्माण किया और पुत्रके लिये तपस्या करनेवाले विदर्भराजके हाथमें उसे दे दिया । उस कन्याका उस राजभवनमें बिजलीके समान प्रादुर्भाव हुआ । उसे पाकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने ब्राह्मणोंको यह शुभ संवाद सुनाया । ब्राह्मणोंने उस कन्याका नाम 'लोपामुद्रा' रख दिया । धीरे-धीरे वह युवावस्थामें प्रविष्ट हुई । सौ दासियाँ और सौ कन्याएँ उसकी सेवामें रहने लगीं । महात्मा अगस्त्यके भयसे किसी राजकुमारने उसका वरण नहीं किया । वह अपने शील-सदाचारसे पिता तथा स्वजनोंको संतुष्ट रखती थी । उसे युवती हुई देख पिता उसके विवाहके लिये चिन्तित हुए (**वन० ९६ । १९–३०**) । एक दिन महर्षि अगस्त्यने आकर विदर्भराजसे लोपामुद्राको माँगा । राजा अपनी पुत्रीका विवाह उनके साथ नहीं करना चाहते थे, परंतु महर्षिके शापके डरसे वे उन्हें कन्या देनेसे इनकार भी न कर सके । माता-पिताको संकटमें पड़ा देख लोपामुद्रा उनसे इस प्रकार बोली—'आप मुझे महर्षिकी सेवामें दे दें और अपनी रक्षा करें ।' तब उन राजदम्पतिने अपनी उस कन्याका ब्याह अगस्त्य मुनिके साथ कर दिया । लोपामुद्राने पतिकी आज्ञासे बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण उतारकर वल्कल एवं मृगचर्म धारण कर लिये । वह पतिके समान ही व्रत और आचारका पालन करने लगी । महर्षि उसे लेकर गङ्गाद्वारमें आये और घोर तपस्यामें संलग्न हो गये । लोपामुद्रा बड़ी प्रसन्नता और विशेष आदरके साथ पतिकी सेवा करने लगी । दीर्घकालके पश्चात् प्रसन्न हो महर्षिने उसे समागमके लिये अपने समीप बुलाया, लोपामुद्राने पिताके घरके समान राजमहलमें उनके साथ समागमकी इच्छा प्रकट की । तब महर्षिने लोपा-

मुद्राकी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त धन-संग्रहके लिये प्रस्थान किया (वन० ९७ अध्याय) । लोपामुद्रा जो कुछ चाहती थी, महर्षि अगस्त्यने उसे पूर्ण किया, तब लोपामुद्राने उनसे एक अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र माँगा । महर्षिने पूछा—'क्या तुम्हारे गर्भसे एक हजार या एक सौ पुत्र उत्पन्न हों, जो दसके ही बराबर हों ? अथवा एक ही पुत्र हो, जो हजारोंको जीतनेवाला हो ?' लोपामुद्राने सहस्रोंकी समानता करनेवाला एक ही श्रेष्ठ पुत्र माँगा । महर्षि गर्भाधान करके वनमें चले गये । वह गर्भ सात वर्षोंतक माताके पेटमें पलता रहा । सात वर्ष बीतनेपर वह अपने तेज और प्रभावसे प्रज्वलित होता हुआ उदरसे बाहर निकला । वही महाविद्वान् 'दृढस्यु' के नामसे विख्यात हुआ (वन० ९९ । १८—२५) । इनके पातिव्रत्यकी प्रशंसा (विराट० २१ । १४) ।

लोमपाद–अङ्गदेशके एक राजा (जो राजा दशरथके मित्र थे)। इनके द्वारा राज्यमें वर्षा होनेके निमित्त ऋष्यशृङ्गको लानेके लिये वेश्याओंकी नियुक्ति (वन० ११० । ५३) । इनके द्वारा 'नाव्याश्रम' का निर्माण (वन० ११३ । ९) । इनका अपनी पुत्री शान्ताको ऋष्यशृङ्ग मुनिके साथ ब्याह देना (वन० ११३ । ११) । इनपर महर्षि विभाण्डककी कृपा (वन० ११३ । २०) । राजर्षि लोमपाद अपनी कन्या शान्ताका ऋष्यशृङ्ग मुनिको दान करके सब प्रकारके प्रचुर भोगोंसे सम्पन्न हो गये (शान्ति० २३४ । ३४) ।

लोमश–(१) एक प्राचीन दीर्घजीवी महर्षि, जो धर्मपालनसे शुद्ध हृदयवाले हुए थे (वन० ३१ । १२) । इनका स्वर्गमें जाकर इन्द्रसे मिलना और वहाँ इन्द्रके अर्धसिंहासनपर अर्जुनको बैठा देख इनके मनमें उनके पुण्यकर्म क्या हैं—यह प्रश्न उठना (वन० ४७ । १–५) । इन्द्रके द्वारा इनसे मानसिक प्रश्नका समाधान (वन० ४७ । ७–३१) । इनका इन्द्र और अर्जुनका संदेश लेकर काम्यकवनमें युधिष्ठिरके पास आना (वन० ४७ । ३३–३५) । इनका युधिष्ठिरको अर्जुनकी दिव्यास्त्र-प्राप्तिकी सूचना देना (वन० ९१ । १०— १४) । इनका युधिष्ठिरसे इन्द्रका संदेश कहना (वन० ९१ । १७–२५) । इनका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना (वन० ९२ । १—७) । इनका युधिष्ठिरको आश्वासन (वन० ९४ । १७–२२) । इनका युधिष्ठिरको अगस्त्यकी कथा सुनाना (वन० अध्याय ९६ से ९९ तक) । इनके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति राम और परशुरामके चरित्रका वर्णन (वन० ९९ । ४०–७१) । वृत्रासुरसे त्रस्त देवताओंको महर्षि दधीचके अस्थि-दान एवं वज्रनिर्माणका वर्णन (वन० १०० अध्याय) । इनके द्वारा वृत्रासुरके वध और असुरोंकी भयंकर मन्त्रणाका कथन (वन० १०१ अध्याय) । महर्षि लोमशके द्वारा कालेयोंद्वारा तपस्वियों, मुनियों और ब्रह्मचारियों आदिके संहारका वर्णन और देवताओंद्वारा भगवान्‌की स्तुतिका कथन (वन० १०२ अध्याय) । लोमशजीने युधिष्ठिरको जो प्रमुख विषय सुनाये हैं, उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—भगवान्‌के आदेशसे देवताओंका महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर जाकर उनकी स्तुति करना । अगस्त्यजीका विन्ध्य पर्वतको बढ़नेसे रोकना और देवताओंके साथ सागर-तटपर जाना । अगस्त्यजीद्वारा समुद्र-पान और देवताओंका कालेय दैत्योंका वध करके ब्रह्माजीसे समुद्रको पुनः भरनेका उपाय पूछना । राजा सगरका संतानके लिये तपस्या करना और शिवजी द्वारा वर पाना । सगरके पुत्रोंकी उत्पत्ति, कपिलकी क्रोधाग्निसे उनका भस्म होना, असमंजसका परित्याग, अंशुमान्‌के प्रयत्नसे सगरके यज्ञकी पूर्ति, अंशुमान्‌से दिलीपको और दिलीपसे भगीरथको राज्यकी प्राप्ति । भगीरथका हिमालयपर तपस्याद्वारा गङ्गा और महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे वर प्राप्त करना । पृथ्वीपर गङ्गाजीके उतरने और समुद्रको जलसे भरनेका विवरण तथ सगरपुत्रोंका उद्धार । नन्दा और कौशिकीका माहात्म्य, ऋष्यशृङ्ग मुनिका उपाख्यान तथा उनको अपने राज्यमें लानेके लिये राजा लोमपादका प्रयत्न । वेश्याका ऋष्यशृङ्गको लुभाना और विभाण्डक मुनिका आश्रमपर आकर अपने पुत्रकी चिन्ताका कारण पूछना । ऋष्यशृङ्गका पिताको अपनी चिन्ताका कारण बताते हुए ब्रह्मचारी रूपधारी वेश्याके स्वरूप और आचरणका वर्णन । ऋष्यशृङ्गका अङ्गराज लोमपादके यहाँ जाना, राजाका उन्हें अपनी कन्या देना, राजाद्वारा विभाण्डक मुनिका सत्कार तथा उनपर मुनिका प्रसन्न होना (वन० अध्याय १०३से११३तक)। लोमशद्वारा राजा गयके यज्ञकी प्रशंसा, पयोष्णी, वैदूर्य पर्वत और नर्मदाके माहात्म्य तथा च्यवन-सुकन्याके चरित्रका वर्णन (वन० १२१ अध्याय) । महर्षि लोमशद्वारा च्यवनको सुकन्याकी प्राप्तिके प्रसंगका वर्णन (वन० १२२ अध्याय) । अश्विनीकुमारोंकी कृपासे महर्षि च्यवनको सुन्दर रूप और युवावस्थाकी प्राप्तिका वर्णन (वन० १२३

अध्याय)। शर्यातिके यज्ञमें च्यवनका इन्द्रपर कोप करके वज्रको स्तम्भित करना और उन्हें मारनेके लिये मदासुरको उत्पन्न करना (वन० १२४ अध्याय)। अश्विनीकुमारोंका यज्ञमें भाग स्वीकार कर लेनेपर इन्द्रका संकटमुक्त होना आदि प्रसंगों और अन्यान्य तीर्थोंके महत्त्वका लोमशद्वारा वर्णन (वन० १२५ अध्याय)। राजा मान्धाताकी उत्पत्ति और उनके संक्षिप्त चरित्रका इनके द्वारा वर्णन (वन० १२६ अध्याय)। लोमशजीका युधिष्ठिरको सोमक और जन्तुका उपाख्यान सुनाना—सोमकको सौ पुत्रोंकी प्राप्ति तथा सोमक और पुरोहितका समानरूपसे नरक और पुण्यलोकोंका उपभोग करना (वन० १२७—१२८ अध्याय)। कुरुक्षेत्रके द्वारभूत प्लक्षप्रस्रवण नामक यमुनातीर्थ एवं सरस्वतीतीर्थकी महिमाका इनके द्वारा वर्णन (वन० १२९ अध्याय)। लोमशजीद्वारा विभिन्न तीर्थोंकी महिमा और राजा उशीनरकी कथाका आरम्भ—राजा उशीनरद्वारा बाजको अपने शरीरका मांस देकर शरणमें आये हुए कबूतरके प्राणोंकी रक्षा करना (वन० १३०—१३१ अध्याय)। महर्षि लोमशका अष्टावक्रके जन्मका वृत्तान्त और उनके राजा जनकके दरबारमें जानेका वर्णन करना (वन० १३२ अध्याय)। अष्टावक्रका द्वारपाल तथा राजा जनकसे वार्तालाप, बन्दी और अष्टावक्रका शास्त्रार्थ, बन्दीकी पराजय तथा समङ्गामें स्नानसे अष्टावक्रके अङ्गोंका सीधा होना—इन प्रसंगोंका इनके द्वारा कथन (वन० १३३—१३४ अध्याय)। लोमशजीद्वारा कर्दमिलक्षेत्र आदि तीर्थोंकी महिमा, रैभ्य एवं भरद्वाजपुत्र यवक्रीत मुनिकी कथा तथा ऋषियोंका अनिष्ट करनेके कारण मेधावीकी मृत्युका वर्णन (वन० १३५ अध्याय)। यवक्रीतका रैभ्यमुनिकी पुत्रवधूके साथ व्यभिचार और रैभ्यमुनिके क्रोधसे उत्पन्न राक्षसके द्वारा उसकी मृत्युके प्रसंगोंका लोमशद्वारा कथन (वन० १३६ अध्याय)। भरद्वाजका पुत्रशोकसे विलाप करना, रैभ्यमुनिको शाप देना एवं स्वयं अग्निमें प्रवेश करना, अर्वावसुकी तपस्याके प्रभावसे परावसुका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना और रैभ्य, भरद्वाज तथा यवक्रीत आदिका पुनर्जीवित होना—इन प्रसंगोंको लोमशजीने सुनाया था (वन० १३७—१३८ अध्याय)। पाण्डवोंकी उत्तराखण्ड-यात्राके समय लोमशजीद्वारा उसकी दुर्गमताका कथन (वन० १३९ अध्याय)। लोमशजीका नरकासुरके वध और भगवान् वाराहद्वारा वसुधाके उद्धारकी कथा कहना (वन० १४२ अध्याय)। लोमशजीका युधिष्ठिरको विविध उपदेश देकर देवताओंके परम पवित्र स्थानको पधारना (वन० १७६। २२)। ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने गये थे (शान्ति० ४७। ७)। इनके द्वारा अन्नदानकी महिमाका कथन (अनु० ६७। १०)। इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२९ अध्याय)। ये उत्तर दिशाके ऋषि हैं (वन० १६५। ४६)। (२) बिडालोपाख्यानमें आया हुआ बिलाव (शान्ति० १३८। २२)। इसका पलित नामक चूहेके साथ संवाद (शान्ति० १३८। ३४—१९८)।

लोमहर्षण-एक मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४। १२)।

लोह एक प्राचीन देश, जिसे उत्तर-दिग्विजयके समय अर्जुनने जीत लिया था (सभा० २७। २५)।

लोहितारणी-भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९। १८)।

लोहमेखला-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। १८, २१)।

लोहवक्त्र-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ७५)।

लोहित-(१) एक राजा, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय अपने अधीन कर लिया था (सभा० २७।१७)। (२) एक नाग, जो वरुणकी सभामें बैठकर वहाँकी शोभा बढ़ाता है (सभा० ९। ८)।

लोहितगङ्गा-एक स्थानविशेष, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने 'विरूपाक्ष' का तथा 'पञ्चजन' नामसे प्रसिद्ध पाँच राक्षसोंका संहार किया था (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०७)।

लोहिताक्ष-ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे एक। तीनके नाम थे—नन्दिसेन, घण्टाकर्ण और कुमुदमाली (शल्य० ४५। २४–२५)।

लोहिताक्षी-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। २२, २४)।

लोहितायनि-लालसागरकी कन्या, जो स्कन्दकी धाय है, इसकी कदम्बके वृक्षोंपर पूजा होती है (वन० २३०। ४०–४१)।

लोहित्या–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३५) ।

लौहित्य–(१) एक प्राचीन देश, भीमसेनने पूर्व दिग्विजयके समय इस देशमें जाकर यहाँके बहुत-से म्लेच्छ राजाओंको जीता और उनसे भाँति-भाँतिके रत्न करके रूपमें वसूल किया (सभा० ३० । २६–२७) । (२) श्रीरामके प्रभावसे प्रकट हुआ एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको बहुत-सी सुवर्ण-राशि प्राप्त होती है (वन० ८५ । २) । कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग होनेपर जो लौहित्य तीर्थमें स्नान करता है, उसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ४६) । (३) एक महानद, जो वरुण-सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (आधुनिक 'ब्रह्मपुत्र' को लौहित्य या 'लोहित्य' कहते हैं) (सभा० ९ । २२) ।

(व)

वंक्षु–एक नदी, इसके तटपर उत्पन्न हुए रासभ बड़े सुन्दर और बल आदि गुणोंमें विख्यात होते हैं । बहुत-से म्लेच्छ देशके राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ऐसे रासभों-को भेंट देनेके लिये लाये थे (सभा० ५१ । १७–२०)।

वंशगुल्म–एक तीर्थ, जो शोण और नर्मदाका उत्पत्ति-स्थान है । यहाँ स्नान करनेसे यात्री अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है (वन० ८५ । ९) ।

वंशमूलक–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अपने वंशका उद्धार कर देता है (वन० ८३ । ४१–४२) ।

वंशा–कश्यपकी 'प्राधा' नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई पुत्री (आदि० ६५ । ४५–४६) ।

वक (बक)–एकचक्रासे दो कोसकी दूरीपर यमुनाके किनारे घने जंगलमें एक गुफाके भीतर रहनेवाला एक बलवान् नरभक्षी राक्षस, जिसका एकचक्रा नगरी और वहाँके जनपदपर शासन चलता था (आदि० १५९ । ३–४) । इसके द्वारा नगरकी रक्षा तथा करके रूपमें इसे दिया जानेवाला दैनिक भोजन (आदि० १५९ । ५–७) । भीमसेनका इसके साथ युद्ध और इसका वध (आदि० १६२ । ५ से १६३ । १ तक) ।

वक दाल्भ्य (बक दाल्भ्य)–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । इनका युधिष्ठिरको ब्राह्मणोंका महत्त्व बताना (वन० २६ । ६—२०) । इनके द्वारा इन्द्रके प्रति चिरजीवियोंके दुःख-सुखका वर्णन (वन० १९३ अध्याय) । हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे इनका मार्गमें मिलना (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रके राज्यकी अग्निमें आहुति देनेका प्रसंग (शल्य० ४१ । ५—२७) ।

वकनख–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

वकवधपर्व (बकवधपर्व)–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय० १५९ से १६३ तक) ।

वक्र–एक राजा, जिसका दूसरा नाम दन्तवक्र है । इसने द्रौपदीके स्वयंवरमें लक्ष्यवेधके लिये अपना असफल पराक्रम प्रकट किया था (आदि० १८६ । १५) । यह भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया था (उद्योग० १३० । ४८) । यह कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें भी उपस्थित हुआ था (शान्ति० ४ । ६) । (विशेष देखिये—दन्तवक्र) ।

वक्षोग्रीव–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५३) ।

वङ्ग–पूर्व भारतका एक प्रसिद्ध जनपद (आधुनिक बङ्गाल) (आदि० २१४ । ९; भीष्म० ९ । ४६) । तीर्थयात्रा-के अवसरपर अर्जुनका यहाँ आगमन (आदि० २१४।९)। भीमसेनके द्वारा इस देशके राजापर आक्रमण (सभा० ३० । २३) । बंगदेशीय नरेश युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर गये थे (सभा० ५२ । १८) । कर्णने दिग्विजय-के समय इस देशको जीता था (वन० २५४ । ८) । बंगनरेशका घटोत्कचके साथ युद्ध और पराजय (भीष्म० ९२ । ६—१२) । किसी समय श्रीकृष्णने वंगदेशको जीता था (द्रोण० ११ । १५) । परशुरामजीने इस देशके क्षत्रियोंका संहार किया था (द्रोण० ७० । १२) । कर्णद्वारा इस देशके जीते जाने और 'करद' बनाये जानेकी चर्चा (कर्ण० ८ । १९) । अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये गये हुए अर्जुनने वंगदेशकी म्लेच्छ सेनाको परास्त किया था (आश्व० ८२ । २९-३०) ।

वज्र–(१) इन्द्रका अस्त्र, जो विश्वकर्माके हाथसे महर्षि दधीचकी हड्डियोंद्वारा निर्मित हुआ था (वन० १०० । २४) । इसने इन्द्रकी प्रेरणासे व्याघ्र बनकर

सुवर्णष्ठीवीको मार डाला था (शान्ति० ३१ । २५—३३)। धाताने दधीचकी हड्डियोंका संग्रह करके उनके द्वारा वज्रका निर्माण किया था (शान्ति० ३४२ । ४०—४१)। (२) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५२)। (३) श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्धका पुत्र, जो यादवोंका मौसल युद्धमें संहार हो जानेपर अर्जुनद्वारा इन्द्रप्रस्थमें शेष यदुवंशियोंका राजा बनाया गया था (मौसल० ७ । ७२)। महाप्रस्थानके समय युधिष्ठिरका सुभद्रासे राजा वज्रकी रक्षाके लिये कहना (महाप्र० १ । ८-९)।

वज्रदत्त–प्राग्ज्योतिषपुरका राजा, जो भगदत्तका पुत्र और युद्धमें बड़ा ही कठोर था (आश्व० ७५ । १)। इसका अर्जुनके साथ युद्धके लिये उद्यत होकर नगरसे निकलना और अश्वमेधीय अश्वको पकड़कर नगरकी ओर चल देना (आश्व० ७५ । २-३)। इसका अर्जुनके साथ युद्ध और पराजय (आश्व० ७५ । ५ से ७६ । २० तक)।

वज्रनाभ-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६३)।

वज्रबाहु–एक वानर, जो कुम्भकर्णके मुखका ग्रास बन गया था (वन० २८७ । ६)।

वज्रविष्कम्भ–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १०)।

वज्रवेग–दूषणका छोटा भाई, जो रावणकी प्रेरणासे विशाल सेनाके साथ कुम्भकर्णका अनुगामी हुआ था। इसके एक भाईका नाम प्रमाथी था (वन० २८६ । २७)। हनुमान्‌द्वारा इसका वध (वन० २८७ । २६)।

वज्रशीर्ष–प्रजापति भृगुके सात व्यापक पुत्रोंमेंसे एक। इनके छः भाइयोंके नाम हैं—च्यवन, शुचि, और्व, शुक्र, वरेण्य और सवन। ये सभी भृगुके समान गुणवान् थे (अनु० ८५ । १२७-१२९)।

वज्री–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३३)।

वट-अंशद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच अनुचरोंमेंसे एक। उन चारके नाम हैं—परिघ, भीम, दहति और दहन (शल्य० ४५ । ३४)।

वडवा–एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ एवं नदी, जहाँ सायं-संध्याके समय विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके अग्निदेवको चरु निवेदन करनेका विधान है। वहाँ पितरोंको दिया हुआ दान अक्षय होता है। इसका 'सप्तचरु' नाम पड़नेका कारण (वन० ८२ । ९२—९९)। वहाँ अग्निके लिये दिया हुआ चरु एक लाख गोदान, सौ राजसूय और एक हजार अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक कल्याणकारी है (वन० ८२ । ९९-१००)। वडवा नदीको अग्निका उत्पत्ति-स्थान कहा गया है (वन० २२२ । २४-२५)।

वडवाग्नि–समुद्रके भीतर रहनेवाली एक अग्नि, जिसे वडवामुख भी कहते हैं, इस अग्निके मुखमें समुद्र अपने जल-रूपी हविष्यकी आहुति देता रहता है (आदि० २१ । १६)। जब महर्षि और्वने रोषपूर्वक समस्त लोकोंके विनाशका संकल्प कर लिया, तब उनके पितरोंने आकर उन्हें समझाया और उन्हें अपनी क्रोधाग्निको समुद्रमें डाल देनेके लिये कहा। पितरोंके आदेशसे उन्होंने अपनी क्रोधाग्निको समुद्रमें डाल दिया। वही आज भी घोड़ीके मुखकी-सी आकृति बनाकर महासागरका जल पीती रहती है। वडवा (घोड़ी) के समान मुखाकृति होनेके कारण ही इसे वडवाग्नि कहते हैं (आदि० १७९ । २१-२२)। वडवानल और उदानकी एकता (वन० २१९ । २०)। भगवान् शिवका क्रोध ही वडवानल बनकर समुद्रके जलको सोखता रहता है (सौप्तिक० १८ । २१)।

वडवामुख—नारायणके अवतारभूत एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने समुद्रके जलको खारा कर दिया था (शान्ति० ३४२ । ६०)।

वत्स (वत्सभूमि)–(१) एक भारतीय जनपद, जिसे भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १०)। कर्णने भी इसपर विजय पायी थी (वन० २५४ । ९-१०)। वत्सदेशीय पराक्रमी भूमिपाल पाण्डवोंके सहायक थे और उनकी विजय चाहते थे (उद्योग० ५३ । १-२)। वत्सभूमि सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित है। वहाँ पुण्यात्माओंके आश्रम हैं, उनमें काशिराजकी कन्या अम्बाने विचरण किया था (उद्योग० १८६ । २४)। अम्बा वत्सदेशकी भूमिमें 'अम्बा' नामकी नदी बनकर प्रवाहित हुई, जो केवल बरसातमें ही जलसे भरी रहती है (उद्योग० १८६ । ४०)। वत्सदेशीय योद्धा धृष्टद्युम्नद्वारा निर्मित क्रौञ्चारुण-व्यूहके वामपक्षमें खड़े हुए थे (भीष्म० ५० । ५३)। कर्णद्वारा इस देशके जीते जानेकी चर्चा (कर्ण० ८ । २०)। (२) काशिराज प्रतर्दनका पुत्र, जिसे गोशालामें वत्सों (बछड़ों) ने पाला था। इसीलिये इसका नाम वत्स हुआ (शान्ति० ४९ । ७९)। (३) शर्यातिवंशी नरेश। हैहय और तालजंघके पिता (अनु० ३० । ७)।

वत्सनाभ–एक बुद्धिमान् महर्षि, इनकी कठोर तपस्या और भैंसेका रूप धारण करके धर्मद्वारा वर्षासे इनकी रक्षा (अनु० १२ अध्याय दा० पाठ) । अपनेमें कृतघ्नताका दोष देखकर इनका शरीरको त्याग देनेका विचार करना और धर्मका इन्हें समझा-बुझाकर रोकना तथा इनकी आयुको कई सौ वर्षोंकी बताना (अनु० १२ अध्याय दा० पाठ, पृष्ठ ५४६२-५४६३) ।

वत्सल–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७२) ।

वदान्य–एक प्राचीन ऋषि, जिनसे अष्टावक्रने उनकी कन्या माँगी थी । इनका अष्टावक्रको अपनी कन्याके विवाहकी शर्त बताना और उन्हें उत्तर दिशामें भेजना (अनु० १९ । २४-२५) । लौटनेपर अष्टावक्रकी यात्राके विषयमें इनका पूछना (अनु० २१ । १३-१४) । अष्टावक्रको अपनी कन्या ब्याहना (अनु० २१ । १७-१८) ।

वधूसरा–च्यवन मुनिके आश्रमके समीप बहनेवाली एक नदी, जो भृगुपत्नी पुलोमाके अश्रुबिन्दुओंसे प्रकट हुई थी । यह वधू (पुलोमा) का अनुसरण करती थी, इसलिये ब्रह्माजीने इसका नाम 'वधूसरा' रख दिया (आदि० १२५ । ६–८) । यह एक पुण्यमयी नदी है । इसमें स्नान करनेसे परशुरामजीको तेजोमय शरीरकी प्राप्ति हुई (वन० ९९ । ६८) ।

वध्र–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५५) ।

वध्यश्व–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करता है (सभा० ८ । १२) ।

वनपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

वनवासिक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५८) ।

वनायु–(१) कश्यपपत्नी दनुका एक पुत्र, यह दनुके दस प्रधान पुत्रोंमें है (आदि० ६५ । ३०) । (२) उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाद्वारा उत्पन्न छः पुत्रोंमेंसे एक । शेष पाँचके नाम हैं—आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु और शतायु (आदि० ७५ । २५-२६) । (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६) ।

वनेयु–पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न । इनके नौ भाई और थे, जिनके नाम हैं—ऋचेयु, कक्षेयु, कृकणयु, स्थण्डिलेयु, जलेयु, तेजेयु, सत्येयु, धर्मेयु और संततेयु (आदि० ९४ । ८—११) ।

वन्दना–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १८) ।

वन्दी (बन्दी)–राजा जनकके दरबारका शास्त्रार्थी पण्डित (वन० १३२ । ४) । इसके द्वारा कहोडका जलमें डुबाया जाना (वन० १३२ । १५) । इसके साथ अष्टावक्रका शास्त्रार्थ (वन० १३४ । ३—२०) । इसकी अष्टावक्रसे शास्त्रार्थमें पराजय (वन० १३४ । २१) । इसका राजा जनकको वरुण-पुत्रके रूपमें अपना परिचय देना (वन० १३४ । २४) । समुद्रमें प्रवेश करना (वन० १३४ । ३७) ।

वपु–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्म-समयमें नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६३) ।

वपुष्टमा–काशिराज सुवर्णवर्माकी पुत्री, जो परीक्षित्कुमार जनमेजयकी पतिव्रता पत्नी थी (आदि० ४४ । ८—११) । इसके गर्भसे शतानीक और शङ्कुकर्ण नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे (आदि० ९५ । ८६) ।

वपुष्मती–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

वरद–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) ।

वरदान–द्वारकाके निकटका एक तीर्थ, जहाँ मुनिवर दुर्वासाने भगवान् श्रीकृष्णको वरदान दिया था । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८२ । ६३-६४) ।

वरदासङ्गम–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ३५) ।

वरयु महौजा-वंशका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १५) ।

वरा–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६) ।

वराङ्गी–ये सोमवंशीय राजा संयातिकी पत्नी थीं । इनके पिताका नाम दृषद्वान् था । इनके गर्भसे संयातिद्वारा अहंयातिका जन्म हुआ था (आदि० ९५ । १४) ।

वराह–(१) एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १७) । (२) मगधकी राजधानी गिरिव्रजके समीपका एक पर्वत (सभा० २१ । २) । (३) भगवान् विष्णुका एक अवतार । इनके द्वारा एकार्णवके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार । वराह-अवतारके संक्षिप्त चरित्रका वर्णन, इनके द्वारा हिरण्याक्षका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८४-७८५) ।

वराहक–धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल गया था (आदि० ५७ । १८) ।

वराहकर्ण–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १६) ।

वराहाश्व–एक दैत्य, दानव या राक्षस (शान्ति० २२७ । ५२) ।

वरिष्ठ–चाक्षुष मनुके पुत्र (अनु० १८ । २०) । इनके द्वारा गृत्समद ऋषिको शाप (अनु० १८ । २३–२५) ।

वरी–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३३) ।

वरीताक्ष–एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था, कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२) ।

वरुण–(१) कश्यपद्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न द्वादश आदित्योंमेंसे एक (आदि० ६५ । १५) । इनकी ज्येष्ठ पत्नी देवीने इनके वीर्यसे बल नामक एक पुत्रको और सुरा नामवाली कन्याको जन्म दिया था (आदि० ६६ । ५२) । महर्षि वसिष्ठ इनके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ९९ । ५) । ये अर्जुनके जन्म-समय-में वहाँ उपस्थित हुए थे (आदि० १२२ । ६६) । ये चौथे लोकपाल हैं, अदितिके पुत्र, जलके स्वामी तथा जलमें ही निवास करनेवाले हैं । अग्निदेवने इनका स्मरण किया और इन्होंने उन्हें दर्शन दिया । अग्निने इनसे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और कपिध्वज रथ माँगे और वरुणने वे सब वस्तुएँ उन्हें दे दीं (आदि० २२४ । १—६) । इन्होंने पाश और अशनि लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा किया था (२२६ । ३२—३७) । नारदजीद्वारा इनकी दिव्यसभाका वर्णन (सभा० ९ अध्याय) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ५१) । इनके द्वारा अर्जुनको पाशनामक अस्त्रका दान (वन० ४१ । २७—३२) । इनका राजा नलको दमयन्तीके स्वयंवरके अवसरपर वर देना (वन० ५७ । ३८) । इन्होंने अन्य देवताओंके साथ 'विशाखयूप' में तपस्या की थी; अतः वह स्थान परम पवित्र माना गया है (वन० ९० । १६) । ऋचीक मुनिको वरुणदेवने एक हजार श्यामकर्ण घोड़े प्रदान किये थे (वन० ११५ । २७) । राजा जनकके दरबारका शास्त्रार्थी पण्डित वन्दी इन्हींका पुत्र था (वन० १३४ । २४) । इनके द्वारा सीताजीकी शुद्धिका समर्थन (वन० २९१ । २९) । इन्होंने सौ वर्षोंतक गाण्डीव धनुष धारण किया था (विराट० ४३ । ६) । इनकी पत्नीका नाम गौरी था (उद्योग० ११७ । ९) । कभी श्रीकृष्णने इन्हें जीत लिया था (उद्योग० १३० । ४९) । इनके द्वारा श्रुतायुधकी माता पर्णाशाको वरदान (द्रोण० ९२ । ४७–४९) । श्रुतायुधको गदा प्रदान कर उसके प्रयोगका नियम बताना (द्रोण० ९२ । ५०-५१) । इनके द्वारा स्कन्दको यम और अतियम नामक दो पार्षद प्रदान (शल्य० ४५ । ४५-४६) । इनका स्कन्दको एक नाग (हाथी) भेंट करना (शल्य० ४६ । ५२, अनु० ८६ । २५) । इनका देवताओंद्वारा जलेश्वर-पदपर अभिषेक (शल्य० ४७ । ९-१०) । इन्होंने सरस्वती नदीके यमुनातीर्थ-में राजसूय यज्ञ किया था (शल्य० ४९ । ११-१२) । इनके द्वारा उतथ्यकी भार्या भद्राका अपहरण (अनु० १५४ । १३) । उतथ्यद्वारा समुद्रका सारा जल पी जानेपर इनका उनकी पत्नी वापस देना (अनु० १५४ । २८) । ये परमधामगमनके समय बलरामजीके स्वागतके लिये आये थे (मौसल० ४ । १६) । अग्निने वरुणको वापस देनेके लिये अर्जुनसे गाण्डीव धनुष और दिव्य तरकस जलमें डलवा दिये थे (महाप्र० १ । ४१-४२) ।

महाभारतमें आये हुए वरुणके नाम–अदितिपुत्र, आदित्य, अम्बुप, अम्बुपति, अम्बुराट्, अम्ब्वीश, अपाम्पति, देवदेव, गोपति, जलाधिप, जलेश्वर, लोक-पाल, सलिलराज, सलिलेश, सलिलेश्वर, उदक्पति, वारिप, यादसाम्भर्ता, यादसाम्पति आदि ।

(२) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपकी पत्नी मुनिके पुत्र थे (आदि० ६५ । ४२) । (३) सागर और सिन्धु नदीके सङ्गममें स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके शुद्धचित्त हो देव-ताओं, ऋषियों तथा पितरोंके तर्पण करनेका विधान है । ऐसा करनेसे मनुष्य दिव्य द्युतिसे देदीप्यमान हो वरुण-लोकको प्राप्त होता है (वन० ८२ । ६८-६९) ।

वरुणद्वीप–एक द्वीपका नाम (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ) ।

वरुणस्रोतस–दक्षिण दिशामें माठरवनके भीतर सुशोभित होनेवाला माठर (सूर्यके पार्श्ववर्ती देवता) का विजय-स्तम्भ, जो प्रवेणी नदीके उत्तरवर्ती मार्गमें कण्वके पुण्य-मय आश्रममें स्थित है (वन० ८८ । १०-११) ।

वरूथिनी–एक अप्सरा, जिसने इन्द्रकी सभामें अर्जुनके स्वागतार्थ नृत्य किया था (वन० ४३ । २९) ।

वरेण्य–प्रजापति भृगुके सात व्यापक पुत्रोंमेंसे एक । इनके छः भाइयोंके नाम हैं—च्यवन, शुचि, और्व, शुक्र, वज्रशीर्ष और सवन । ये सभी भृगुके समान गुणवान् थे (अनु० ८५ । १२६–१२९) ।

वर्गा–एक अप्सरा, जो कुबेरकी प्रेयसी थी; परंतु किसी ब्राह्मणके शापसे सौभद्र नामक तीर्थमें ग्राह बनकर रहने लगी थी । सखियोंसहित इसके ग्राह होनेका कारण (आदि० २१५ । १५–२१) । अर्जुनद्वारा इसका ग्राह-योनिसे उद्धार (आदि० २१५ । १२) । (इसकी सौरभेयी, समीची, बुदबुदा तथा लता नामकी चार सखियाँ थीं । वे सभी ब्राह्मणके शापसे विभिन्न तीर्थोंमें ग्राह

हो गयी थीं । इसकी प्रार्थनासे अर्जुनने उनका भी उद्धार कर दिया ।) नारदजीद्वारा इसे तथा इसकी सखियोंको दक्षिण समुद्रके समीपवर्ती तीर्थोंमें जानेका आदेश और अर्जुनद्वारा इन सबके उद्धार होनेका आश्वासन (आदि० २१६ । १७) । यह कुबेरकी सभामें धनाध्यक्षकी सेवाके लिये उपस्थित होती है (सभा० १० । १२) ।

वर्चा–(१) सोम नामक वसुके प्रथम पुत्र । इनकी माताका नाम मनोहरा था (आदि० ६६ । २२) । ये ही अभिमन्युके रूपमें प्रकट हुए थे (आदि० ६७ । ११२-११३; स्वर्गा० ५ । १८-१९) । (२) गृत्समदवंशी सुचेता नामक ब्राह्मणके पुत्र, जो विहव्यके पिता थे (अनु० ३० । ६१) ।

वर्णसंकर–अन्य वर्णकी माता और अन्य वर्णके पितासे उत्पन्न संतान । इसके भेदोंका विस्तृत वर्णन (अनु० ४८ अध्याय) ।

वर्धन–अश्विनीकुमारोंद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम नन्दन था (शल्य० ४५ । ३८) ।

वर्धमान–हस्तिनापुर नगरका एक प्रधान द्वार (आदि० १२५ । ९) ।

वर्मक–एक देश, जहाँके निवासियोंको पूर्व-दिग्विजयके समय भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । १३) ।

वल्कल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६२) ।

वल्गुजङ्घ–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५२) ।

वल्लभ–बलाकाश्वका पुत्र, जो साक्षात् धर्मके समान था । इसके पुत्रका नाम कुशिक था (अनु० ४ । ५) ।

वशातल–एक देश तथा वहाँके निवासी क्षत्रिय राजकुमार, जो राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १५–१७) ।

वस्रा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३१) ।

वसाति (१)–ये सोमवंशी महाराज कुरुके वंशज राजा जनमेजयके अष्टम पुत्र थे (आदि० ९४ । ५७) । (२) एक भारतीय जनपद । यहाँके वीर क्षत्रिय दुर्योधनकी आज्ञासे भीष्मकी रक्षामें नियुक्त हो तत्परतासे उनकी रक्षा करने लगे (भीष्म० ५१ । १४) ।

वसातीय–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो अभिमन्युके साथ युद्ध करके उसके द्वारा मारा गया (द्रोण० ४४ । ८—११) ।

वसिष्ठ (वशिष्ठ)–एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि, जो ब्रह्माजीके मानस पुत्र माने गये हैं । एक समय जब राजा संवरण शत्रुओंसे पराजित हो सिन्धुनामक महानदके तटवर्ती निकुञ्जमें एक सहस्र वर्षोंतक छिपे रहे, उन्हीं दिनों भगवान् वसिष्ठ मुनि उनके पास आये । राजाने उन्हें उत्तम आसनपर बिठाकर कहा—'भगवन् ! हम पुनः राज्यके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, आप हमारे पुरोहित हो जाइये ।' तब वसिष्ठजीने 'बहुत अच्छा' कहकर भरतवंशियोंको अपनाया और पूरुवंशी संवरणको समस्त क्षत्रियोंके सम्राट्-पदपर अभिषिक्त कर दिया (आदि० ९४ । ४०–४५) । वसिष्ठजीका एक नाम आपव भी है (आदि० ९८ । २३) । पूर्वकालमें वरुणने इनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था (आदि० ९९ । ५) । गिरिराज मेरुके पार्श्वभागमें इनका पवित्र आश्रम था, जो मृग और पक्षियोंसे भरा रहता था । सभी ऋतुओंमें विकसित होनेवाले फूल उस आश्रमकी शोभा बढ़ाते थे । उस आश्रमके निकटवर्ती वनमें स्वादिष्ट फल-मूल और जलकी सुविधा थी । पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ वरुणनन्दन महर्षि वसिष्ठ वहीं तपस्या करते थे (आदि० ९९ । ६-७) । दक्षकन्या सुरभिकी पुत्री नन्दिनी नामक गौ इन्हें होमधेनुके रूपमें प्राप्त हुई थी (आदि० ९९ । ८-९) । एक दिन द्यौ नामक वसुने अपनी पत्नीके बहकानेसे इनकी होमधेनुका अपहरण कर लिया (आदि० ९९ । २८) । वसिष्ठजी फल-मूल लेकर जब आश्रमपर लौटे, तब बछड़े-सहित उस गौको न देखकर वनमें उसकी खोज करने लगे । दिव्य दृष्टिसे यथार्थ बातको जानकर इन्होंने रुष्ट हो वसुओंको मनुष्य-योनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया (आदि० ९९ । २९–३३) । वसुओंके प्रार्थना करनेपर इनका सात वसुओंको एक-एक वर्षमें ही शापमुक्त होनेका आशीर्वाद और द्यौ नामक वसुके दीर्घकालतक मनुष्य-योनिमें रहने, संतान न उत्पन्न करने तथा धर्मात्मा, सर्वशास्त्रविशारद, पितृहितैषी एवं स्त्री-भोग-परित्यागी होनेका कथन (आदि० ९९ । ३५–४१) । भीष्मने महर्षि वसिष्ठसे छहों अङ्गोंसहित समस्त वेदोंका अध्ययन किया था (आदि० १०० । ३५) । अर्जुनके जन्म-समयमें सप्तर्षिमण्डलके साथ ये भी पधारे थे (आदि० १२२।५१) । राजा संवरणके द्वारा इनका चिन्तन और इनका बारहवें दिन राजाको दर्शन देना (आदि० १७२ । ११-१४) । सूर्यकन्या तपतीने राजाका चित्त चुरा लिया है—यह जानकर इनका ऊर्ध्वलोकमें गमन और इनके द्वारा सूर्य भगवान्का स्तवन ! सूर्यद्वारा इनका स्वागत और इन्हें अभीष्ट वस्तु देनेका आश्वासन (आदि० १७२ । १५—२०) । इनका संवरणके

लिये तपतीका वरण, सूर्यदेवका इन्हें संवरणके लिये अपनी कन्याका दान और तपतीको साथ लेकर इनका राजाके समीप आगमन (आदि० १७२ । २०-२८) । इनकी आज्ञासे राजाका तपतीके साथ विधिवत् विवाह करके उसके साथ पर्वतपर विहार करना (आदि० १७२ । ३२—३४) । अर्जुनके पूछनेपर गन्धर्वका उन्हें वसिष्ठजीका परिचय देना—ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं, अरुन्धतीदेवीके पति हैं । देवदुर्जय काम और क्रोध नामक दोनों शत्रु इनकी तपस्यासे सदाके लिये पराभूत हो इनके चरण दबाते रहे हैं । इन्द्रियोंको वशमें कर लेनेके कारण ये 'वशिष्ठ' कहलाते हैं (आदि० १७३ । १—६) । विश्वामित्रके अपराधसे मनमें क्रोध धारण करते हुए भी इन उदारबुद्धि महर्षिने कुशिक-वंशका मूलोच्छेद नहीं किया । सौ पुत्रोंके मारे जानेसे संतप्त हो बदला लेनेकी शक्ति रखते हुए भी इन्होंने असमर्थकी भाँति सब कुछ सह लिया, किंतु विश्वामित्रका विनाश करनेके लिये कोई क्रूरतापूर्ण कर्म नहीं किया । ये अपने मरे हुए पुत्रोंको यमलोकसे भी वापस ला सकते थे, फिर भी यमराजकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेको उद्यत नहीं हुए (आदि० १७३ । ७–९) । इन्हींको पुरोहित-रूपमें पाकर इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंने इस पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त किया था (आदि० १७३ । १०) । इनके आश्रमपर राजा विश्वामित्रका आगमन और नन्दिनीके प्रभावसे इनके द्वारा सेना तथा मन्त्रियोंसहित उनका आतिथ्यसत्कार (आदि० १७४ । ६—११) । विश्वामित्रका इनसे नन्दिनीको माँगना और इनका उन्हें उनका सारा राज्य लेकर भी नन्दिनीको देनेसे इन्कार करना (आदि० १७४ । १६—१८) । विश्वामित्र-द्वारा बलपूर्वक नन्दिनीका अपहरण होता देखकर भी इनका मौन रहना । नन्दिनीकी इनसे कातर प्रार्थना, इनका नन्दिनीको अपनी ही शक्तिसे आश्रमपर रहनेकी आज्ञा देना और इनकी आज्ञा पाते ही नन्दिनीका म्लेच्छोंकी सृष्टि करके उनके द्वारा विश्वामित्रकी सेनाको मार भगाना (आदि० १७४ । २१—४३) । विश्वामित्रका इनके ऊपर नाना प्रकार अस्त्र-शस्त्र और दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करना तथा इनका अपनी बाँसकी छड़ीसे ही उनके सारे अस्त्र-शस्त्रोंको भस्मीभूत कर देना (आदि० १७४ । ४३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५१५) । शक्तिके शापसे राक्षसभावको प्राप्त हुए कल्माषपादद्वारा विश्वामित्रकी प्रेरणा पाकर इनके पुत्रोंका भक्षण और इनका शोक (आदि० १७५ । १—४३) । महर्षिने विश्वामित्रका विनाश न करके स्वयं ही शरीर त्याग देनेका विचार कर लिया । ये मेरुपर्वतके शिखरसे कूद पड़े; किंतु पत्थरकी शिला भी इनके लिये रूईके ढेरके समान हो गयी । ये धधकते हुए दावानलमें घुस गये; परंतु वह आग इनके लिये शीतल हो गयी । ये गलेमें भारी पत्थर बाँधकर समुद्रके जलमें कूद पड़े; परंतु समुद्रने अपनी लहरोंसे ढकेलकर इन्हें किनारे डाल दिया (आदि० १७५ । ४४-४९) । इन्होंने देखा, वर्षाका समय है । एक नदी नूतन जलसे लबालब भरी है और तटवर्ती वृक्षोंको बहाये लिये जाती है । सोचा इसीके जलमें डूब जाऊँ । अपने शरीरको पाशोंद्वारा अच्छी तरह बाँधकर ये उस महानदीके जलमें कूद पड़े, परंतु उस नदीने इनके बन्धन काटकर इन्हें स्थलमें पहुँचा दिया । उसके द्वारा विपाश (बन्धनरहित) होनेके कारण इन्होंने उसका नाम विपाशा रख दिया । इसके बाद हिमालयसे निकली हुई एक दूसरी भयंकर नदीकी प्रखर धारामें इन्होंने अपने-आपको डाल दिया; परंतु इनके गिरते ही वह शत-शत धाराओंमें फूटकर द्रुत-गतिसे इधर-उधर भाग चली । इसलिये 'शतद्रु' नामसे विख्यात हुई (आदि० १७६ । १—९) । इनका अपनी पुत्रवधू अदृश्यन्तीके गर्भस्थ बालकके मुखसे वेदाध्ययनकी ध्वनि सुनकर और शक्तिके गर्भस्थ बालककी सूचना पाकर अपनी वंशपरम्परा सुरक्षित जान मृत्युके संकल्पसे विरत होना (आदि० १७६ । १२–१६) । राक्षसके भयसे डरी हुई अदृश्यन्तीको आश्वासन दे इनका कल्माषपाद-का शापसे उद्धार करना तथा राजाकी प्रार्थनासे इनका रानी मदयन्तीके गर्भसे अश्मक नामक पुत्रको उत्पन्न करना (आदि० १७६ । १७–४७) । भृगुवंशी और्वकी कथा सुनाकर इनके द्वारा पराशरके जगद्विनाशक संकल्पका निवारण तथा पराशरके राक्षससत्रकी समाप्ति (आदि० १७७ । ११ से आदि० १८० । २१ तक) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ११ । १९) । इनके द्वारा श्रीरामका राज्याभिषेक (वन० २९१ । ६६) । शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी मार्गमें इनके द्वारा परिक्रमा करना (उद्योग० ८३ । २७) । इनका द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३३—४०) । कुरुक्षेत्रमें वसिष्ठजीके आवाहन करनेपर सरस्वती नदी 'ओघवती' के नामसे प्रकट हुई थी (शल्य० ३८ । २७–२९) । वसिष्ठापवाह तीर्थके प्रसंगमें विश्वामित्रका क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता (शल्य० ४२ अध्याय) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये गये थे (शान्ति० ४७ । ७) । वसिष्ठजी मुचुकुन्दके पुरोहित थे और कुबेर एवं यक्षोंके साथ युद्ध छिड़ जानेपर इन्होंने तपस्यासे मुचुकुन्दके

लिये विजयका मार्ग प्रशस्त किया था (शान्ति० ७४ । ५-६) । इनके द्वारा प्रजाको जीवनदान (शान्ति० २३४ । २७; अनु० १३७ । १३) । वृत्रासुरसे भयभीत इन्द्रको रथन्तर सामद्वारा सचेत करना (शान्ति० २९१ । २१—२६) । ये मूल गोत्रप्रवर्तक चार ऋषियोंमेंसे एक हैं (शान्ति० २९६ । १७) । विदेहराज कराल जनकको विविध ज्ञानोपदेश (शान्ति० अध्याय ३०२ से ३०८ तक) । इक्कीस प्रजापतियोंमें इनकी भी गणना है (शान्ति० ३३४ । ३६) । ये 'चित्रशिखण्डी' नामवाले ऋषियोंमेंसे एक हैं (शान्ति० ३३५ । २८-२९) । इनके द्वारा हिरण्यकशिपुको शाप (शान्ति० ३४२ । ३१) । पुरुषार्थकी श्रेष्ठताके विषयमें इनका ब्रह्माजीके साथ संवाद (अनु० ६ अध्याय) । इनका राजा सौदासको गोदानकी विधि और गौओंका महत्त्व बताना (अनु० ७८ । ५ से ८० अध्यायतक) । परशुरामजीको शुद्धिके उपायके लिये सुवर्णके दान और उसकी उत्पत्तिका प्रसंग बताना (अनु० ८४ । ४४ से ८५ अध्यायतक) । वृषादर्भिसे प्रतिग्रहका दोष बताना (अनु० ९३ । ३९) । अरुन्धतीसे अपनी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६१) । यातुधानीसे अपने नामकी निरुक्ति बताना (अनु० ९३ । ८४) । मृणालकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९३ । ११४-११५) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । १७) । ब्रह्माजीसे यज्ञके विषयमें प्रश्न करना (अनु० १२६ । ४४-४५) । वायुदेवद्वारा इनके प्रभावका वर्णन (अनु० १५५ । १६—२५) । कुम्भमें देवताओंका वीर्य स्थापित हुआ था; जिससे इनकी उत्पत्ति हुई (अनु० १५८ । १९) । वृत्रासुरसे गृहीत एवं मोहित हुए इन्द्रको सचेत करना (आश्व० ११ । १८-१९) ।

महाभारतमें आये हुए वसिष्ठके नाम—आपव, अरुन्धतीपति, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, हैरण्यगर्भ, मैत्रावरुणि, वारुणि इत्यादि ।

वसिष्ठ पर्वत—यहाँ तीर्थयात्राके अवसरपर अर्जुनका आगमन हुआ था (आदि० २१४ । २) ।

वसिष्ठापवाह—सरस्वतीतटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ । इसकी उत्पत्तिका वर्णन (शल्य० ४२ अध्याय) ।

वसिष्ठाश्रम—निश्चीरा सङ्गमके समीपका एक तीर्थभूत आश्रम, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है । यहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । १४०-१४१) ।

वसु—(१) चेदिदेशके राजा उपरिचर वसु (आदि० ६३ । १-२) । (देखिये उपरिचर वसु) (२) धर्मदेवद्वारा दक्षकन्याके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसुगण कहलाते हैं (आदि० ६६ । १७-१८) । (देखिये अष्टवसु) । (३) महाराज ईलिनके द्वारा रथन्तरीके गर्भमें उत्पन्न । इनके चार भाई और थे, जिनके नाम हैं दुष्यन्त, शूर, भीम और प्रवसु (आदि० ९४ । १७-१८) । (४) एक विद्वान् ब्राह्मण मुनि, जिनके पुत्रका नाम पैल था (सम्भव है ये जमदग्निपुत्र वसु ही हों) (सभा० ३३ । ३५) । (५) जमदग्निके एक पुत्र, इनकी माता रेणुका थीं । इनके भाई रुमण्वान्, सुषेण, विश्वावसु तथा परशुराम थे । पिताकी मातृवधसम्बन्धी आज्ञा न माननेसे इन्हें पिताद्वारा शाप प्राप्त हुआ (वन० ११६ । १०—१२) । परशुरामद्वारा इनका शापसे उद्धार हुआ (वन० ११६ । १७) । (६) कृमिकुलका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १३) । (७) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । १४०) । (८) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २५) ।

वसुचन्द्र—युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक एक राजा, जो इन्द्रके समान पराक्रमी था (द्रोण० १५८ । ४०) ।

वसुदान—(१) एक क्षत्रिय नरेश, जो पांशुराष्ट्रके अधिपति थे और युधिष्ठिरकी सभामें बैठा करते थे (सभा० ४ । २७) । इन्होंने पांशुदेशसे छब्बीस हाथी, दो हजार घोड़े और सब प्रकारकी भेंट-सामग्री लाकर पाण्डवोंको अर्पित की थी (सभा० ५२ । २७-२८) । इन्होंने युधिष्ठिरके साथ-साथ कुरुक्षेत्रको प्रस्थान किया था (उद्योग० १५१ । ६३) । ये अतिरथी वीर थे (उद्योग० १७१ । २७) । युद्धस्थलमें पाण्डवसेनापति धृष्टद्युम्नके पीछे-पीछे गये थे (द्रोण० २३ । ४१) । द्रोणाचार्यके भल्लद्वारा इनका वध हुआ (द्रोण० १९० । ३०) । ये युद्धमें घोर संहार मचाते थे, द्रोणद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३८) । (२) पाण्डवपक्षीय पाञ्चाल राजकुमार, जो द्रोणाचार्यद्वारा मारा गया (द्रोण० २१ । ५५) ।

वसुदामा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ५) ।

वसुदेव—शूरसेनके पुत्र । देवकीके पति । श्रीकृष्णके पिता । कुन्तीके भ्राता । उग्रसेनके मन्त्री । पाण्डवोंके चूडाकरण आदि संस्कारके लिये इनको वृष्णिवंशियोंकी प्रेरणा, इनका पाण्डुपुत्रोंके संस्कार करवानेके लिये काश्यप नामक पुरोहितको शतशृङ्गपर्वतपर भेजना (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ३६९) । उग्रसेनके भाई

देवककी पुत्री देवकीके साथ इनका विवाह । देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुए कंसको इनके द्वारा आश्वासन (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१) । इनका नवजात शिशु श्रीकृष्णको रातमें व्रज पहुँचाना और वहाँसे नन्द-कन्याको ले आना (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३२; ७९८) । इनका श्रीकृष्णसे महाभारत-युद्धका वृत्तान्त पूछना (आश्व० ६० । १—४) । सुभद्राको मूर्छित हुई देखकर स्वयं भी मूर्छित होना और पुनः श्रीकृष्णसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त पूछना (आश्व० ६१ । ५–१५) । अभिमन्युका श्राद्ध करना (आश्व० ६२ । १) । मौसलकाण्डमें यादवोंका संहार हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकामें अपने पिता वसुदेवके पास आना, इनसे अर्जुनकी प्रतीक्षा करते हुए स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये कहना और इनके चरणोंपर मस्तक रखकर बलरामजीके साथ तप करनेके विचारसे तुरंत वहाँसे चल देना (मौसल० ४ । ८–१०) । इनका अर्जुनसे वृष्णिवंशियोंके दुःखद संहारकी बात बताना और श्रीकृष्णका संदेश सुनाना (मौसल० ६ अध्याय) । अर्जुनका इनसे अपना श्रीकृष्णविरहजनित दुःख बताना और वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको इन्द्रप्रस्थ ले जानेका विचार प्रकट करना (मौसल० ७ । १–६) । इनके द्वारा परमात्मचिन्तनपूर्वक अपने शरीरका त्याग (मौसल० ७ । १५) । अर्जुनद्वारा इनका अन्त्येष्टि-संस्कार तथा इनकी चार पत्नियोंका इनके शवके साथ चितारोहण (मौसल० ७ । १९-२०) । ये स्वर्गमें जाकर विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये (स्वर्गा० ५ । १७) ।

महाभारतमें आये हुए वसुदेवके नाम—आनकदुन्दुभि, शौरि, शूरपुत्र, शूरसूनु, शूरसुत, शूरात्मज, यदूद्वह आदि ।

वसुधारा—एक तीर्थ, जो सबके द्वारा प्रशंसित है । वहाँ जानेमात्रसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । वहाँ स्नान करके शुद्ध और समाहित चित्त हो देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । वहाँ वसुओंका पवित्र सरोवर है । उसमें स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य वसु देवताओंका प्रिय होता है (वन० ८२ । ७६–७८) ।

वसुप्रभ—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६३) ।

वसुमना (वसुमान्)—(१) एक प्राचीन नरेश, जो अयोध्यानरेश हर्यश्वद्वारा ययातिकन्या माधवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके पास ही स्वर्गसे गिरे हुए राजा ययाति इनसे मिलकर सत्सङ्गके प्रभावसे स्वर्गलोकमें चले गये (आदि० ८६ । ५-६) । स्वर्गसे गिरते समय राजा ययातिसे इनकी भेंट (आदि० ९३ । १) । इनके द्वारा ययातिको पुण्यदानका आश्वासन (आदि० ९३ । ३–५) । अपनी माता माधवीसे इनका ययातिका परिचय पूछना (आदि० ९३ । १३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । अष्टक आदि राजाओंके साथ इनका स्वर्गाभिगमन (आदि० ९३ । १६) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १३) । इन्होंने तीर्थयात्रा करके पावन यश और प्रचुर धन प्राप्त किया था (वन० ९४ । १७–९०) । विश्वामित्रके पुत्र अष्टकके अश्वमेध यज्ञमें ये पधारे थे (वन० १९८ । १-२) । नारदजीका इनको अपने और शिबिसे भी पहले स्वर्गलोकसे नीचे उतरनेका अधिकारी बताना (वन० १९८ । ११—१५) । ये इन्द्रके रथपर आरूढ़ हो विराटनगरके आकाशमें अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) । नैमिषारण्यमें वाजपेय यज्ञद्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए वसुमना आदिके पास ययातिका स्वर्गसे नीचे गिरना (उद्योग० १२१ । १०-११) । ये दानपतिके नामसे विख्यात थे । इन्होंने ययातिको अपना पुण्यफल प्रदान किया (उद्योग० १२२ । ३–५) । ये कोसलदेशके राजा थे । बृहस्पतिजीसे राज्यकी वृद्धि और ह्रासके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० ६८ । ६-७) । वामदेवजीसे राजधर्मके विषयमें इनका पूछना (शान्ति० ९२ । ४) । (२) एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ३२) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । २१) । (३) एक अग्नि । यदि अग्निहोत्रसम्बन्धी अग्निको कोई रजस्वला स्त्री छू दे तो इन (वसुमान् अग्नि) के लिये अष्टकपाल चरुद्वारा आहुति देनेकी विधि है (वन० २२१ । २७) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ११ । ३०) । (४) एक जनकवंशी राजकुमार, जिन्हें एक ऋषिद्वारा धर्मविषयक उपदेश प्राप्त हुआ था (शान्ति० ३०९ अध्याय) ।

वसुमित्र—एक क्षत्रिय राजा, जो दनायुके पुत्र विक्षर नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ४१) ।

वसुश्री—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

वसुषेण—कर्णका एक नाम; जो अधिरथ और राधाद्वारा बाल्यावस्थामें रखा गया था (आदि० ६७ । १४१, १४७; वन० ३०९ । १४) । (विशेष देखिये कर्ण) ।

वसुहोम—अङ्गदेशके एक राजा, जिन्होंने मान्धाताको दण्डकी उत्पत्ति आदिका उपदेश दिया था (शान्ति० १२२ । १—५४) ।

वत्सप–क्षत्रियोंकी एक जाति। इस जातिके राजकुमार युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १५–१७)।

वत्सा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २५)।

वस्वोकसारा–गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक (भीष्म० ६ । ४८)।

वहि–विपाशामें रहनेवाला एक पिशाच, जो हीकका साथी है—इन्हीं दोनोंकी संतानें 'वाहीक' कही गयी हैं। ये प्रजापतिकी सृष्टि नहीं हैं (कर्ण० ४४ । ४१-४२)।

वहीनर–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १५)।

वह्नि–एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था; परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२)।

वागिन्द्र–गृत्समदवंशी प्रकाशके पुत्र। इनके पुत्रका नाम प्रमिति था (अनु० ३० । ६३)।

वाग्मी–राजा पूरुके पौत्र मनस्युके द्वारा सौवीरीके गर्भसे उत्पन्न तीन पुत्रोंमेंसे एक। शेष दोके नाम शक्त और संहनन हैं (आदि० २४ । ५–७)।

वाजपेय–एक यज्ञविशेष (सभा० ५ । १००)।

वाटधान–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६३)। इसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । २३) । (२) एक देश तथा वहाँके निवासी। पश्चिम-दिग्विजयके समय नकुलने वाटधान-देशीय क्षत्रियोंको हराया था (सभा० ३२ । ८)। धन-धान्यसे सम्पन्न यह देश कौरवोंकी सेनासे घिर गया था (उद्योग० १९ । ३१)। भारतके प्रमुख जनपदोंमें इसकी भी गणना है (भीष्म० ९ । ४७)। यहाँके सैनिक भीष्मनिर्मित गरुडव्यूहके शिरोभागमें अश्वत्थामाके साथ खड़े किये गये थे (भीष्म० ५६ । ४)। भगवान् श्रीकृष्णने भी पहले कभी इस देशको जीता था (द्रोण० ११ । १७)। यहाँके सैनिक अर्जुनद्वारा मारे गये थे (कर्ण० ७३ । १७)।

वाणी–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २०)।

वातघ्न–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४)।

वातज–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५४)।

वातवेग (वायुवेग)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०२; आदि० ११६ । १०)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २)। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । २—६)। (२) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १०)।

वातस्कन्ध–एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें उपस्थित होकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १४)।

वाताधिप–एक राजा, जिसे दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर सहदेवने अपने वशमें कर लिया था (सभा० ३१ । १५)।

वातापि–दुर्जय मणिमती नगरीके निवासी इल्वल नामक दैत्यका छोटा भाई (वन० ९६ । १—४)। इल्वल मायासे अपने भाई वातापिको बकरा या भेड़ा बना देता था। वातापि भी इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ था; अतः वह क्षणभरमें भेड़ा या बकरा बन जाता था। इल्वल उस भेड़े या बकरेको मारकर राँधता और वह मांस किसी ब्राह्मणको खिला दिया करता था। इल्वलमें यह शक्ति थी कि वह जिस मरे हुए प्राणीको पुकारे, वह जीवित दिखायी देने लगे। वह वातापिको भी पुकारता और वह बलवान् दैत्य उस ब्राह्मणका पेट फाड़कर हँसता हुआ निकल आता था (वन० ९६ । ७—१३)। उसने अगस्त्य-जीके साथ भी यही बर्ताव किया; परंतु अगस्त्यजीने उसे पेटमें ही पचा लिया, वह पुनः निकल नहीं पाया (वन० ९९ । ३९)।

वातापी–दनुका पुत्र, प्रसिद्ध दस दानव-कुलोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २८–३०)।

वातिक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

वात्स्य-(१) एक वेदविद्याके पारंगत ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ९-१०)। शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ५)। (२) एक देश, जिसे श्री-कृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १५)(देखिये वत्स)।

वानव–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५४)।

वाभ्रवायणि (बाभ्रधायणि)–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५७)।

वामदेव–(१) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १७)। इनका राजा शलको अपने वाम्य अश्व देना (वन० १९२ । ४३)। अश्वोंके न लौटानेपर इनका राजासे वार्तालाप और अन्तमें कृत्याजन्य राक्षसोंद्वारा राजाको नष्ट करना (वन० १९२ । ४८—५९)। इनकी शलके छोटे भाई राजा दलसे बातचीत और अश्वों-को पुनः प्राप्त करना (वन० १९२ । ६०—७२)। इनके द्वारा शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्री-

कृष्णकी परिक्रमा (उद्योग० ८३ । २७-२८) । इनका महाराज वसुमनाको राजधर्मका उपदेश (शान्ति० अध्याय ९२ से ९४ तक) । (२) एक नरेश, जिन्हें उत्तर-दिग्विजयके अवसरपर अर्जुनने अपने अधीन कर लिया था (सभा० २७ । ११) ।

वामन–(१) कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ६; उद्योग० १०३ । १०) । (२) भगवान् विष्णुके अवतार । देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् नारायणका वामनरूपमें माता अदितिके गर्भसे प्रादुर्भाव, ब्रह्मचारी वामनके द्वारा बलिसे तीन पग भूमिकी याचना (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८९) । त्रिभुवनको नापते समय इनका अद्भुत रूप धारण करना । इनके चरणके आघातसे गङ्गाका प्राकट्य । इनके द्वारा दानवोंका भीषण संहार (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९०) । इनके द्वारा राजा बलिका बन्धन, बलिको सुतललोकमें भेजकर इनके द्वारा इन्द्रको त्रिभुवनके राज्यका दान (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९०-७९१) । (३) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ, जहाँ विष्णुपदमें स्नान और वामन देवताका पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है (वन० ८३ । १०३) । (४) एक सर्वपापविनाशक तीर्थ, जहाँकी यात्रा करके भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता (वन० ८४ । १३०-१३१) । (५) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १०) । (६) क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १८) । (७) चार दिग्गजोंमेंसे एक, शेष तीनोंके नाम हैं—ऐरावत, सुप्रतीक और अञ्जन (भीष्म० १२ । ३३) । यह घटोत्कचके साथी एक राक्षसका वाहन था (भीष्म० ६४ । ५७) ।

वामनिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

वामा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १२, १७) ।

वाम्य–महर्षि वामदेवके अश्वोंका नाम (वन० १९२।४१) ।

वायु–वायुतत्त्वके अभिमानी देवता, जिन्हें मेनकाने विश्वामित्रको लुभाते समय अपनी आवश्यक सहायताके लिये चुना था । इन्द्रने इन्हें उसके साथ भेजा और इन्होंने मेनकाका वस्त्र उड़ाया (आदि० ७२ । १—४) । इनके द्वारा कुन्तीके गर्भसे भीमसेनका जन्म (आदि० १२२ । ११–१४) । ये ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २०) । इनका शाल्वको मारनेके लिये उद्यत हुए प्रद्युम्नके पास आकर देवताओंका संदेश सुनाना (वन० १९ । २२–२४) । इनके द्वारा दमयन्तीकी शुद्धिका समर्थन (वन० ७६ । ३६–३९) । इनके द्वारा सीताजीकी शुद्धिका समर्थन (वन० २९१ । २७) । त्रिपुरदाहके समय भगवान् शङ्करके बाणके पंख बने थे (द्रोण० २०२ । ७६-७७) । इनके द्वारा स्कन्दको बल और अतिबल नामक दो पार्षद प्रदान (शल्य० ४५ । ४४-४५) । महाराज पुरूरवाके पूछनेपर उन्हें पुरोहितकी आवश्यकता बताना (शान्ति० ७२ । १०–२५) । नारदजीके मुखसे सेमलकी उद्दण्डताकी बात सुनकर इनका उस वृक्षको धमकाना (शान्ति० १५६ । ६–९) । सेमल वृक्षको चेतावनी देना (शान्ति० १५७ । ५-६) । इन्होंने सुपर्णसे सात्वत धर्मकी शिक्षा प्राप्त की और स्वयं भी विघसाशी ऋषियोंको उसका उपदेश दिया (शान्ति० ३४८ । २२–२४) । इनके द्वारा धर्माधर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२८ अध्याय) । इनका कार्तवीर्य अर्जुनके प्रति ब्राह्मणकी महत्ताका प्रतिपादन (अनु० १५२ । २४ से अनु० १५७ अध्याय तक) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने आये थे (शान्ति० ४७ । ९) ।

वायुचक्र–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वायुज्वाल–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वायुबल–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२-३७) ।

वायुभक्ष–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १३) । हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद) ।

वायुमण्डल–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वायुरेता–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वायुवेग–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६३) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १७) । (२) मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वायुहा–मङ्कणक मुनिके कलशमें रखे हुए वीर्यसे उत्पन्न एक ऋषि (शल्य० ३८ । ३२—३७) ।

वारण–एक प्रदेश, जो कौरवसेनासे घिर गया था (उद्योग० १९ । ३१) ।

वारणावत–एक प्राचीन नगर, जहाँ दुर्योधनने पाण्डवोंको मरवानेके लिये पुरोचनकी सहायतासे लाक्षागृहका निर्माण करवाया था (आदि० ६१ । १७) । (आधुनिक मतके अनुसार 'वर्नवा' जो मेरठसे उत्तर-पश्चिम उन्नीस मील दूर है ।) पाण्डवोंने यहाँ एक वर्षतक निवास किया था (आदि० ६१ । २१-२२) । धृतराष्ट्रके मन्त्रियों-द्वारा इस नगरकी प्रशंसा तथा वहाँके मेलेकी चर्चा (आदि० १४२ । ३-४) । पाण्डवोंने संधिके समय जिन पाँच गाँवोंको माँगा था, उसमें वारणावत भी था (उद्योग० ३१ । १९-२०) । धृतराष्ट्रपुत्र युयुत्सुने यहाँ बहुत-से राजाओंके साथ छः मासतक अपराजित रहकर युद्ध किया था (द्रोण० १० । ५८-५९) ।

वारवत्या–एक नदी, जो वरुणसभामें रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २२) ।

वारवास्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) ।

वाराणसी–भीष्मजी माताकी आज्ञासे काशिराजकी कन्याओं-के स्वयंवरमें वाराणसीपुरीको गये और वहाँ आये हुए समस्त राजाओंको चुनौती देकर उन्हें युद्धमें परास्त करके काशिराजकी तीनों कन्याओंको हर लाये (आदि० १०२ । ३—५३) । यह एक प्रमुख तीर्थ है । यहाँ जाकर कपिलाह्रदमें स्नान करके भगवान् शङ्करकी पूजा करनेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४।७८) । वाराणसीका मध्यभाग अविमुक्तक्षेत्र कहलाता है, यहाँ प्राणोत्सर्ग करनेवालेको मोक्ष प्राप्त होता है (वन० ८४ । ७९) । (यह सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है।) इसे भगवान् श्रीकृष्णने जलाया था (उद्योग० ४८ । ७६)। काशीपुरीमें काशिराजके पुत्रको धृष्टद्युम्नने मारा था (द्रोण० १० । ६०–६२) । इसी पुरीमें महाज्ञानी तुलाधार वैश्य रहते थे (शान्ति० २६१ । ४२-४३)। पूर्वकालमें भगवान् शिवने वाराणसीपुरीमें मुनिवर जैगीषव्यको उनकी सबल साधनासे संतुष्ट हो अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्रदान की थीं (अनु० १८ । ३७)। तेजस्वी राजा दिवोदासने इन्द्रकी आज्ञासे वाराणसी नामवाली नगरीका निर्माण किया था । यह पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंसे भरी हुई थी । नाना प्रकारके द्रव्योंसे सम्पन्न थी । उसके बाजार-हाट और दूकानें धन-वैभवसे भरपूर थीं । इस नगरीके घेरेका एक छोर गङ्गाजीके उत्तर तटतक और दूसरा छोर गोमतीके दक्षिण किनारेतक फैला हुआ था। यह इन्द्रके अमरावतीपुरीके समान जान पड़ती थी (अनु० ३० । १६—१८) । पूर्वकालमें यहाँ भगवान् शङ्करके दर्शनके लिये संवर्त मुनि प्रतिदिन आया करते थे । यहीं राजा मरुत्तने नारदजीके बताये अनुसार संवर्तको पहचानकर उन्हें अपने पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित किया था (आश्व० ६ । २२ से आश्व० ७ । १८ तक) ।

वाराह–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक उत्तम तीर्थ, जहाँ भगवान् विष्णु पहले वाराहरूपसे स्थित हुए थे। वहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । १८-१९) ।

वारिसेन–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २०) ।

वारुणतीर्थ–दक्षिण भारतमें पाण्डयदेशके अन्तर्गत एक तीर्थ (वन० ८८ । १३) ।

वारुणह्रद–वरुणदेवताका एक सरोवर, जिसमें महातेजस्वी अग्निदेव प्रकाशित होते हैं (उद्योग० ९८ । १८) ।

वारुणी–जो क्षीरसागरके मन्थन करनेपर उत्पन्न हुई थी (उद्योग० १०२ । १२) ।

वार्क्षी–कण्डु मुनिकी पुत्री, जो दस प्रचेताओंकी पत्नी हुई थी (आदि० १९५ । १५) ।

वार्त–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १०) ।

वार्धक्षेमि–पाण्डवपक्षके एक महारथी योद्धा, जो वृष्णि-वंशी क्षत्रिय थे (उद्योग० १७१ । १७) । इन्होंने द्रौपदीके स्वयंवरमें पदार्पण किया था (आदि० १८५ । ९) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३५) । कृपाचार्यके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ५१-५२) । युद्धमें इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । २८-२९) ।

वार्षगण्य–एक प्राचीन ऋषि, जिनसे गन्धर्वराज विश्वा-वसुने कभी जीवात्म-परमात्मतत्त्वका विवेचन सुना था (शान्ति० ३१८ । ५९) ।

वार्ष्णेय–(१) एक प्राचीन देश, जहाँके राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१ । २४)। (२) राजा नलका सारथि (वन० ६० । १०) । इसका राजा नलके कुमार-कुमारी इन्द्रसेन और इन्द्र-सेनाको कुण्डिनपुर छोड़कर अयोध्या जाना (वन० ६० । २१—२४) । ऋतुपर्णका सारथि होना (वन० ६० । २५) । ऋतुपर्णका इसे बाहुककी सेवामें नियुक्त करना (वन० ६७ । ७) । ऋतुपर्णके साथ विदर्भ

जाते समय मार्गमें इसके भीतर बाहुकके नल होनेका संदेह होना (वन० ७१ । २६–३४) । (३) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (भीष्म० २७ । ३६) ।

वालखिल्य (बालखिल्य)–ब्रह्माजीके शक्तिशाली पुत्र महर्षि क्रतुसे उत्पन्न हुए ऋषि, जिनकी संख्या साठ हजार है । ये क्रतुके समान ही पवित्र, तीनों लोकोंमें विख्यात, सत्यवादी, व्रतपरायण तथा भगवान् सूर्यके आगे चलनेवाले हैं (आदि० ६६ । ४–९) । कश्यपकी प्रार्थनासे गरुडद्वारा तोड़ी हुई वटशाखाको छोड़कर इन लोगोंका तपके लिये प्रस्थान (आदि० ३० । १८) । देवराज इन्द्रके अपराध और प्रमादसे तथा महात्मा वालखिल्य महर्षियोंके तपके प्रभावसे पक्षिराज गरुडके उत्पन्न होनेकी बृहस्पतिद्वारा चर्चा (आदि० ३० । ४०) । पुत्रकी कामनासे किये जानेवाले महर्षि कश्यपके यज्ञमें सहायताके लिये एक छोटी-सी पलाशकी टहनी लेकर आते हुए अङ्गुष्ठके मध्यभागके बराबर शरीरवाले वालखिल्य ऋषियोंका बलोन्मत्त इन्द्रद्वारा उपहास, अपमान और लङ्घन (आदि० ३१ । ५–१०) । रोषमें भरे हुए वालखिल्योंका देवराजके लिये भयदायक दूसरे इन्द्रकी उत्पत्तिके निमित्त अग्निमें विधिवत् होम करना (आदि० ३१ । ११–१४) । महर्षि कश्यपका अनुनयपूर्वक वालखिल्योंको समझाना, इनके संकल्पके अनुसार होनेवाले पुत्रको पक्षियोंका इन्द्र बनानेके लिये इनकी सम्मति लेना और याचक बनकर आये हुए देवराज इन्द्रपर अनुग्रह करनेके लिये अनुरोध करना । वालखिल्योंका इनके अनुरोधको स्वीकार करना (आदि० ३१ । १६–२३) । ये सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले ऋषि हैं और ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ११ । २०) । इन्होंने सरस्वतीके तटपर यज्ञ किया था (वन० ९० । १०) । द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३३–४०) । ये राजा पृथुके मन्त्री बने थे (शान्ति० ५९ । ११०) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (अनु० ९४ । ३९) । वालखिल्यगण तपस्यासे सिद्ध हुए मुनि हैं । ये सब धर्मोंके ज्ञाता हैं और सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं । वहाँ ये उञ्छवृत्तिका आश्रय ले पक्षियोंकी भाँति एक-एक दाना बीनकर उसीसे जीवन-निर्वाह करते हैं । मृगछाला, चीर और वल्कल—ये ही इनके वस्त्र हैं । ये वालखिल्य शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित, सन्मार्गपर चलनेवाले और तपस्याके धनी हैं । इनमेंसे प्रत्येकका शरीर अङ्गूठेके सिरेके बराबर है । इतने लघुकाय होनेपर भी ये अपने-अपने कर्तव्यमें स्थित हो सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं । इनके धर्मका फल महान् है । ये देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उनके समान रूप धारण करते हैं । ये तपस्यासे सम्पूर्ण पापोंको दग्ध करके अपने तेजसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हैं (अनु० १४१ । ९९–१०२) । ये प्रतिदिन नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा निरन्तर उगते हुए सूर्यकी स्तुति करते हुए सहसा आगे बढ़ते जाते हैं और अपनी सूर्यतुल्य किरणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते रहते हैं । ये सब-के-सब धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं । इन्हींमें लोकरक्षाके लिये निर्मल सत्य प्रतिष्ठित है । इन वालखिल्योंके ही तपोबलसे यह सारा जगत् टिका हुआ है । इन्हीं महात्माओंकी तपस्या, सत्य और क्षमाके प्रभावसे सम्पूर्ण भूतोंकी स्थिति बनी हुई है—ऐसा मनीषी पुरुष मानते हैं (अनु० १४२ । ३३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५९३३) ।

वालिशिख–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ८) ।

वाली–(१) वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करनेवाला एक दैत्य (सभा० ९ । १४) । (२) एक वानरराज, जो सुग्रीवका भाई और इन्द्रका पुत्र था । भगवान् रामद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९५, कालम १; वन० १४७ । २८) । इसकी पत्नीका नाम तारा था (वन० २८० । १८) । वालीका सुग्रीवके साथ युद्ध और श्रीरामद्वारा वध (वन० २८० । ३०—३६) । इसके अङ्गद नामक एक पुत्र था (वन० २८८ । १४) ।

वाल्मीकि–(१) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं) सभा० ७ । १६) । शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी इनके द्वारा मार्गमें परिक्रमा (उद्योग० ८३ । २७) । सात्यकिने भूरिश्रवाके वधके पश्चात् महर्षि वाल्मीकिके एक श्लोकका गान किया था (द्रोण० १४३ । ६७-६८) । युधिष्ठिरसे शिवभक्तिके विषयमें अपना अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ८–१०) । (२) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११) ।

वाष्कल–हिरण्यकशिपुका पाँचवाँ पुत्र (आदि० ६५ । १८) ।

वासवी–उपरिचर वसुके वीर्यसे अद्रिकाके गर्भसे उत्पन्न । दाशराजद्वारा पालित (आदि० ६३ । ५१–७१) । (देखिये सत्यवती)

वासिष्ठ–(१) वसिष्ठसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तु (आख्यान) (आदि० १७४ । २) । (२) वसिष्ठ-पुत्र शक्ति एवं वसिष्ठके वंशज (आदि० १८० । २०; वन० २६ । ७) । (३) एक तीर्थ, इसमें स्नान करके वासिष्ठी

नदीको लाँघकर जानेवाले क्षत्रिय आदि सभी वर्णोंके लोग द्विजाति (ब्राह्मण) हो जाते हैं (वन० ८४ । ४८)। (४) एक अग्नि (वन० २२० । १)।

वासिष्ठी–एक नदी (वन० ८४ । ४८)।

वासुकि–एक नागराज, जो आस्तीकके मामा तथा कश्यप और कद्रूके पुत्र थे (आदि० ३५ । ५)। नागोंकी रक्षाके लिये इनके द्वारा अपनी बहिन जरत्कारुको जरत्कारु ऋषिकी सेवामें उनकी पत्नीरूपसे समर्पण (आदि० १४ । ६-७; आदि० ४६ । २०—२३)। समुद्र-मन्थनके समय इनका मन्थनदण्डकी डोरी होना (आदि० १८ । १३)। नागोंद्वारा इनका नागराज-पदपर अभिषेक (आदि० ३६ । २५ के बाद दा० पाठ)। माताके शापसे इनका चिन्तित होना (आदि० ३७ । ३—९; आदि० ४८ । ३—८)। माताके शापसे अपनी रक्षा करनेके उपायपर इनका नागोंके साथ परामर्श (आदि० ३७ । १०—३४)। एलापत्र नागका इनको अपनी बहिनका जरत्कारु ऋषिके साथ विवाह करनेकी सलाह देना (आदि० ३८ । १८-१९)। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वासुकिका जरत्कारु मुनिके साथ अपनी बहिनको ब्याहनेके लिये प्रयत्नशील होना (आदि० ३९ अध्याय)। सर्प-यज्ञमें जलते हुए नागोंको देखकर उनकी रक्षाके लिये भयभीत हुए इनका अपनी बहिन जरत्कारुको आस्तीकसे कहनेके लिये प्रेरित करना (आदि० ५३ । २०—२६)। इनके वंशके जले हुए नागोंकी गणना (आदि० ५७ । ५-६)। ये अर्जुनके जन्मसमयमें वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ७१)। आर्यकके प्रार्थना करनेपर भीमसेनको दिव्य-रसका पान करानेके लिये इनका नागोंको आदेश देना (आदि० १२७ । ६९)। ये वरुण-सभामें उपस्थित होकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ९ । ८)। अर्जुनने कभी इनकी बहिनका चित्त चुराया था (विराट० २ । १४)। ये त्रिपुरदाहके समय भगवान् शङ्करके धनुषकी प्रत्यञ्चा बने थे (द्रोण० २०२ । ७६)। साथ ही उनके रथका कूबर भी बने हुए थे (कर्ण० ३४ । २२)। कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ युद्धके समय ये अर्जुन-की ही विजयके समर्थक थे (कर्ण० ८७ । ४३)। इनका नागधन्वातीर्थ निवासस्थान है; वहीं देवताओंने इनका नागराजके पदपर अभिषेक किया था (शल्य० ३७ । ३०—३२)। इनके द्वारा स्कन्दको जय और महाजय नामक दो पार्षद प्रदान (शल्य० ४५ । ५२-५३)। ये सात धरणीधरोंमेंसे एक हैं (अनु० १५० । ४१)। बलरामजीके परमधामगमनके समय ये उनके स्वागतमें आये थे (मौसल० ४ । १५)।

महाभारतमें आये हुए वासुकिके नाम—नागराट्, नागराज, नागेन्द्र, पन्नग, पन्नगराट्, पन्नगराज, पन्नगेश्वर, पन्नगेन्द्र, सर्पराट्, सर्पराज आदि।

वासुकितीर्थ–प्रयागमें (दारागंजके पास गङ्गातटपर) भोगवती नामक उत्तम तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे अश्व-मेध यज्ञका उत्तम फल मिलता है (वन० ८५ । ८६)।

वासुदेव–(१) वसुदेवजीके पुत्र श्रीकृष्ण (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०५, कालम २)। (देखिये कृष्ण) (२) (पौण्ड्रक) पुण्ड्रदेशका राजा वासुदेव, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित हुआ था (आदि० १८५ । १२)। (विशेष देखिये पौण्ड्रक)

वाहिनी–(१) सेनाविशेष । तीन गुल्मका एक गण और तीन गणकी एक वाहिनी होती है (आदि० २ । २१)। (२) ये सोमवंशीय राजा कुरुकी पत्नी थीं। इनके गर्भसे कुरुद्वारा अश्ववान् आदि पाँच पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । ५०-५१)। (३) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३४)।

विंश–सूर्यवंशी इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्र, जो धनुर्धर वीरोंके आदर्श थे। इनके पुत्रका नाम था विविंश (आश्व० ४ । ४-५)।

विकट (**विकटानन**)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९६; आदि० ११६ । ५)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ३)। भीमसेनको घायल करनेवाले धृतराष्ट्रके चौदह पुत्रोंमें एक यह भी था (कर्ण० ५१ । ७—९)। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १६)।

विकर्ण–(१) धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र । ग्यारह महा-रथियोंमेंसे एक (आदि० ६३ । ११९)। धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९४; आदि० ११६ । ४)। द्रुपदपर चढ़ाई करनेवाले दुर्योधन आदि द्रोण-शिष्योंमें यह भी था (आदि० १३७ । १९—२१)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें भी गया था (आदि० १८५ । १)। द्रुपदनगरसे आते हुए पाण्डवोंकी अगवानीके लिये इसका जाना (आदि० २०१ । १३)। भरी सभामें द्रौपदीके प्रश्नपर मौन हुए राजाओंके बीच इसका न्याय-पूर्ण निर्णय (सभा० ६८ । ११)। कर्णद्वारा इसे फट-कार (सभा० ६८ । ३०)। विराटकी गौओंके हरणके समय अर्जुनपर आक्रमण (विराट० ५४ । ९)। अर्जुनसे पराजित होकर भागना (विराट० ५४ । १०)। अर्जुनसे युद्ध और घायल होकर रथसे नीचे गिरना (विराट० ६१ । ४२)। गजराजद्वारा अर्जुनपर आक्रमण और हारकर भागना (विराट० ६५ । ६—१०)।

प्रथम दिनके संग्राममें सुतसोमके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ५८-५९) । सहदेवके साथ संग्राम (भीष्म० ७१ । २१-२२) । अभिमन्युद्वारा पराजय (भीष्म० ७८ । २१-२२; भीष्म० ८४ । ४०-४२)। घटोत्कचद्वारा पराजय (भीष्म० ९२ । ३६) । नकुलके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११० । ११-१२; भीष्म० १११ । ३४-३६) । भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३ अध्याय) । शिखण्डीके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ३६-३७) । भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ३१) । नकुलके साथ युद्ध (द्रोण० १०६ । १२) । नकुलद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १०७ । ३०) । भीमसेनद्वारा इसका वध और इसके लिये उनका शोक प्रकट करना (द्रोण० १३७ । २९-३५) । इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । ८-९) ।

महाभारतमें आये हुए विकर्णके नाम—भरतर्षभ, भरतसत्तम, धार्तराष्ट्र, धृतराष्ट्रज, दुर्योधनावर, कुरुप्रवीर, कुरुवर्धन आदि ।

(२) एक भारतीय जनपद । यहाँके सैनिक दुर्योधनके साथ रहकर शकुनिकी सेनाका संरक्षण कर रहे थे (भीष्म० ५१ । १५) । (३) एक ऐश्वर्यशाली शिवभक्त ऋषि, जिन्होंने शिवजीको प्रसन्न करके मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त की थी (अनु० १४ । ९९) ।

विकल्प—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९) ।

विकाथिनी—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १८) ।

विकुञ्ज—एक भारतीय जनपद । यहाँके सैनिक भीष्मद्वारा निर्मित गरुडव्यूहके बायें पंखके स्थानपर राजा बृहद्बलके साथ खड़े थे (भीष्म० ५६ । ९) ।

विकुण्ठन—ये सोमवंशीय महाराज हस्तीके द्वारा त्रिगर्तराजकी पुत्री यशोधराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनकी पत्नी दशार्णकुलकी कन्या सुदेवा थी, जिसके गर्भसे अजमीढ़ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (आदि० ९५ । ३५-३६) ।

विकृत—अन्य नाम और रूप धारण करके आया हुआ काम, जिसका राजा इक्ष्वाकुके साथ संवाद हुआ था (शान्ति० १९९ । ८८—११७) ।

विक्रम (बलवर्धन)—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ७) ।

विक्षर—कश्यपपत्नी दनायुके गर्भसे उत्पन्न असुरोंमें श्रेष्ठ चार पुत्रोंमेंसे एक । शेष तीनके नाम हैं—बल, वीर और वृत्र (आदि० ६५ । ३३) । यही पृथ्वीपर राजा वसुमित्रके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४१) ।

विगाहन—मुकुटवंशका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १६) ।

विग्रह—समुद्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम संग्रह था (शल्य० ४५ । ५०) ।

विचख्नु—एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने हिंसाकी निन्दा और अहिंसाधर्मकी प्रशंसा की थी । इन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि सुरा, आसव, मधु, मांस और मछली तथा तिल एवं चावलकी खिचड़ी—इन सब वस्तुओंको धूर्तोंने यज्ञमें प्रचलित कर दिया है । वेदोंमें इनके उपयोगका विधान नहीं है । उन धूर्तोंने अभिमान, मोह और लोभके वशीभूत होकर उन वस्तुओंके प्रति अपनी यह लोलुपता ही प्रकट की है । ब्राह्मण तो सम्पूर्ण यज्ञोंमें भगवान् विष्णुका ही आदरभाव मानते हैं और खीर तथा फूल आदिसे ही उनकी पूजाका विधान है (शान्ति० २६५ । ३—१२) ।

विचित्र—एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६१) ।

विचित्रवीर्य—शान्तनुद्वारा सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, जो चित्राङ्गदके छोटे भाई थे (आदि० ९५ । ४९-५०; आदि० १०१ । ३) । धृतराष्ट्र तथा पाण्डु इनके क्षेत्रज पुत्र थे (आदि० १ । ९४-९५) । भीष्मद्वारा इनका राज्याभिषेक (आदि० १०१ । १२) । भीष्मकी आज्ञाके अनुसार इनका राज्यशासन (आदि० १०१ । १३) । काशिराजपुत्री अम्बिका तथा अम्बालिकासे इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० ९५ । ५१; आदि० १०२ । ६५) । असंयमपूर्ण जीवन होनेके कारण राजयक्ष्माके द्वारा इनकी असामयिक मृत्यु (आदि० १०२ । ७०-७१) । भीष्मद्वारा इनका अन्त्येष्टि-संस्कार (आदि० १०२ । ७३) । इनकी पत्नी अम्बिकाके गर्भसे व्यासद्वारा धृतराष्ट्रका जन्म (आदि० १०५ । १३—१५) । इनकी द्वितीय पत्नी अम्बालिकाके गर्भसे व्यासद्वारा पाण्डुकी उत्पत्ति (आदि० १०५ । १७—२१) । इनकी पत्नीकी दासीसे व्यासद्वारा विदुरका जन्म (आदि० १०५ । २४—२८) ।

विजय—(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३३) । (२) भगवान् शङ्करके त्रिशूलका नाम । यह विजय नामक त्रिशूल स्कन्दकी भद्रवट-यात्राके समय यमराजके पीछे-पीछे गया था । यह तीन शिखरोंसे सुशोभित और सिन्दूर आदिसे सुसज्जित था (वन० २३१ । ३७-३८) । (३) अज्ञातवासके समय युधिष्ठिरद्वारा नियत किया गया अर्जुनका एक गुप्त नाम (विराट० ५ । ३५) । (४) अर्जुनके प्रसिद्ध दस नामोंमेंसे एक । इस नामकी व्याख्या

(विराट० ४४ । ९, १४)। (५) देवराज इन्द्रका एक दिव्य धनुष, जो गाण्डीवके समान तेजस्वी था और श्रीकृष्णके शार्ङ्गधनुषकी समानता करता था। देवताओंके तीन ही धनुष दिव्य माने गये हैं—विजय, गाण्डीव और शार्ङ्ग। ये क्रमशः इन्द्र, वरुण और भगवान् विष्णुके धनुष हैं। गन्धमादननिवासी किम्पुरुषप्रवर द्रुमको इन्द्रसे यह दिव्य धनुष प्राप्त हुआ था। फिर इसे इन्हींके शिष्य महातेजस्वी रुक्मीने उन्हींसे प्राप्त किया (उद्योग० १५८। ३—९)। (६) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४५)। (७) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जिसने जय और दुर्जयके साथ मिलकर नील, काश्य तथा जयत्सेन—इन तीनोंसे युद्ध किया था (द्रोण० २५। ४५)। इसका सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ११६। ६-७)। शकुनिके अर्जुनपर धावा करनेके समय यह भी उसके साथ था (द्रोण० १५६। १२०-१२३)। (८) कर्णके दिव्य धनुषका नाम, जो समस्त आयुधोंमें श्रेष्ठ था। इसे इन्द्रका प्रिय चाहनेवाले विश्वकर्माने उन्हींके लिये बनाया था। देवेन्द्रने इसी धनुषसे कितने ही दैत्यसमूहोंपर विजय पायी थी। इसकी टङ्कार सुनकर दैत्योंको दसों दिशाओंको पहचाननेमें भ्रम हो जाता था। इसी अपने परम प्रिय धनुषको इन्द्रने परशुरामजीको दिया था और परशुरामजीने यह दिव्य उत्तम धनुष कर्णको दे दिया था। यह घोर धनुष गाण्डीवसे श्रेष्ठ था। इसीके द्वारा परशुरामजीने इस पृथ्वीपर इक्कीस बार विजय पायी थी (कर्ण० ३१। ४२-४६)। (९) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७। ५१)। (१०) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९। २९)।

विजया—(१) ये दशार्हराजकी पुत्री तथा सम्राट् भुमन्युकी पत्नी थीं। इनके गर्भसे सुहोत्रका जन्म हुआ था (आदि० ९५। ३३)। (२) यह मद्रदेशके राजा द्युतिमान्‌की पुत्री थी। इसने स्वयंवरमें पाण्डुपुत्र सहदेवको वरण किया। सहदेवके द्वारा इसके गर्भसे सुहोत्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (आदि० ९५। ८०)। (३) दुर्गा देवीका एक नाम (विराट० ६। १६)।

विटभूत—एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९। १५)।

वितण्डा—वाद-विशेष (जिस बहस या वादविवादका उद्देश्य अपने पक्षकी स्थापना या परपक्षका खण्डन न होकर व्यर्थकी बकवादमात्र हो, उसका नाम वितण्डा है।) (सभा० ३६। ४)।

वितत्य—गृत्समदवंशी विहव्यके पुत्र, जो सत्यके पिता थे (अनु० ३०। ६२)।

वितर्क—ये महाराज कुरुके वंशज धृतराष्ट्रके पुत्र थे (आदि० ९४। ५८)।

वितद्रु—एक यादव, जिसकी गणना यदुवंशियोंके सात प्रधान मन्त्रियोंमें है (सभा० १४। ६० के बाद)।

वितस्ता—काश्मीर एवं पञ्चनद प्रदेशकी झेलम नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९। १९)। इसमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। काश्मीरमें नागराज तक्षकका वितस्ता नामसे प्रसिद्ध भवन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वाजपेय यज्ञके फल और उत्तम गतिका भागी होता है (वन० ८२। ८९—९१)। इसके प्रवाहमें ब्राह्मणोंके चार सौ श्यामकर्ण घोड़े बह गये थे (उद्योग० ११९। ८)। इसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९। १६)। मनुष्य उपवास करके तरङ्गमालिनी वितस्तामें सात दिनोंतक स्नान करे तो वह मुनिके समान निर्मल हो जाता है (अनु० २५। ७)। पार्वतीजीने जिन नदियोंसे सलाह लेकर भगवान् शङ्करके प्रति स्त्री-धर्मका वर्णन किया था, उनमें वितस्ता भी थी (अनु० १४६। १८)।

वित्तदा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। २८)।

विदण्ड—एक राजा, जो अपने पुत्र दण्डके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५। १२)।

विदभ—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ६४)।

विदर्भ—(१) एक प्राचीन देश, जिसे सहदेवने अपनी दक्षिण-दिग्विजयके समय विदर्भदेशीय भोजकट नगरमें जाकर वहाँके राजा भीष्मकको परास्त किया था (सभा० ३१। ११-१२)। यहाँके राजा भीष्मकको महर्षि दमनकी कृपासे दम, दान्त और दमन नामक पुत्र तथा दमयन्ती नाम्नी कन्याकी प्राप्ति हुई थी (वन० ५३। ५—९)। विदर्भराजकी कन्या दमयन्तीके स्वयंवरका समाचार सुनकर उसमें सम्मिलित होनेके लिये इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम—ये चार देवता अपने सेवकों और वाहनके साथ विदर्भ देशमें पधारे (वन० ५४। २०-२६)। विदर्भ देशमें उत्पन्न होनेके कारण ही दमयन्ती वैदर्भी कहलाती थी (वन० ५५। १२, २२; वन० ५६। ५; वन० ६८। ३२)। नल-सारथि वार्ष्णेयने राजकुमार इन्द्रसेन तथा कुमारी इन्द्रसेनाको रथपर बिठाकर विदर्भ देशको प्रस्थान किया (वन० ६०। २१-२२)। राजा नलका दमयन्तीको विदर्भका मार्ग बताना

(वन० ६१ । २३) । दमयन्तीके पिता विदर्भराज भीम महारथी, पृथ्वीपालक तथा चारों वर्णोंके रक्षक थे, वे विदर्भ देशकी जनताका अच्छी तरह पालन करते थे (वन० ६४ । ४४-४७) । दमयन्ती अपनी मौसीसे विदा ले चेदिदेशसे विदर्भ देशमें अपने पिताके यहाँ जा पहुँची (वन० ६९ । २१—२४) । राजा ऋतुपर्ण बाहुकरूपधारी नलके साथ विदर्भ देशको गये (वन० ७१ । २; वन० ७२ । १९, ४२; वन० ७३ । १) । नलके प्रकट होनेपर विदर्भ देशमें महान् उत्सव मनाया गया (वन० ७७ । ५-८) । रुक्मिणी विदर्भनरेशकी पुत्री थीं, भगवान् श्रीकृष्णने उनका अपहरण किया । बहिनका वह अपहरण रुक्मीके लिये असह्य हो उठा, उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि कृष्णको मारे बिना विदर्भ देशकी राजधानीमें नहीं लौटूँगा, परंतु श्रीकृष्णका सामना होनेपर वह विशाल चतुरङ्गिणी सेनासहित पराजित हो गया । अतः अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करता हुआ वह पुनः कुण्डिनपुरकी ओर नहीं लौटा । जहाँ उसकी पराजय हुई, वहीं भोजकट नामक श्रेष्ठ नगर बसाकर उसीमें रहने लगा । उन दिनों भोजकट ही विदर्भकी राजधानीके रूपमें प्रख्यात हुआ (उद्योग० १५८ । १०—१६)।

(२) एक प्राचीन राजा, जिनके पुत्र राजा निमि अगस्त्य मुनिको अपनी कन्या और राज्यका दान करके पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित स्वर्गमें चले गये (अनु० १३७ । ११) ।

विदिशा—एक नदी, जो वरुणसभामें उपस्थित होकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । १८)। इसकी गणना भारतकी प्रमुख नदियोंमें है (भीष्म० ९ । २८) ।

विदुर—व्यासके द्वारा अम्बिकाकी दासीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० १ । ९४-९६) । अणीमाण्डव्यके शापसे धर्मराजने ही शूद्रयोनिमें विदुर होकर जन्म लिया था (आदि० ६३ । ९३—९७; आदि० १०५ । २९) । ये राजा धृतराष्ट्र तथा पाण्डुके भाई थे (आदि० १०५। २८)। भीष्मद्वारा इनका संवर्धन एवं पालन-पोषण (आदि० १०८ । १७-१८) । इनकी धर्मनिष्ठा तथा अध्ययन (आदि० १०८ । १९—२२) । शूद्राके गर्भसे ब्राह्मणद्वारा उत्पन्न होनेके कारण इनको राज्यकी प्राप्ति नहीं हुई (आदि० १०८ । २५) । इनको पाण्डुद्वारा धनकी भेंट (आदि० ११३ । २) । राजा देवकके घरमें स्थित तथा ब्राह्मणद्वारा शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्याके साथ भीष्मद्वारा इनका विवाह (आदि० ११३ । १२-१३) । दुर्योधनके जन्मकालमें होनेवाले अमङ्गलोंको देखकर उसे त्याग देनेके लिये इनकी धृतराष्ट्रको सलाह (आदि० ११५ । ३४—४०) । इनके द्वारा आत्माके कल्याणके लिये सम्पूर्ण जगत्‌को त्याग देनेका उपदेश (आदि० ११४ । ३९) । पाण्डुका राजोचित ढंगसे अस्थि-संस्कार करनेके लिये इनको धृतराष्ट्रका आदेश (आदि० १२६ । १-३) । इनके द्वारा पाण्डुका अस्थिदाह तथा उनके लिये जलाञ्जलि-दान (आदि० १२६ । २७-२८) । भीमसेनके नागलोकमें जानेपर चिन्तित हुई कुन्तीको इनका आश्वासन (आदि० १२८ । १७-१८) । इनके द्वारा राजकुमारोंके अस्त्रकौशल-प्रदर्शनके समय धृतराष्ट्रसे कुमारोंकी कलाओंका वर्णन (आदि० १३३ । ३५) । पाण्डवोंको लाक्षागृहमें सावधान रहने एवं कौरवोंके कुचक्रसे बचनेके लिये इनका सांकेतिक भाषामें युधिष्ठिरको संकेत (आदि० १४४ । १९—२६) । इनका लाक्षागृहमें सुरंग बनानेके लिये पाण्डवोंके पास खनकका भेजना (आदि० १४६ । १) । पाण्डवोंको गङ्गा पार उतारनेके लिये नाविक भेजना (आदि० १४८ । २) । लाक्षागृहमें पाण्डवोंकी मृत्युके समाचारसे दुखी हुए भीष्मका इनके द्वारा उनके जीवित रहनेका रहस्य बतलाकर आश्वासन (आदि० १४९ । १८ के बाद) । द्रुपद-नगरसे पाण्डवोंको बुलाने एवं उनका आधा राज्य दे देनेके सम्बन्धमें धृतराष्ट्रके प्रति कहे हुए द्रोण तथा भीष्मके वचनोंका इनके द्वारा समर्थन (आदि० २०४ । १—३०) । धृतराष्ट्रके आदेशसे द्रुपद-नगरमें जाकर इनका पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें ले आना (आदि० २०५ । ४ से २०६ । ११ तक) । द्रुपद-नगरमें इनका कुन्तीको आश्वासन देना (आदि० २०६ । ९ के बाद)। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें गये थे (सभा० ३३ । ५)। वहाँ इन्हें धनके व्यय करनेका कार्य सौंपा गया था (सभा० ३५ । ९) । इनके द्वारा कौरवोंकी पाण्डवोंके साथ द्यूतक्रीड़ाका विरोध (सभा० ४९ । ५४) । इनकी धृतराष्ट्रसे बातचीत (सभा० ५७ अध्याय) । इनका युधिष्ठिरके साथ वार्तालाप (सभा० ५८ । ५—१६) । द्यूतक्रीड़ाके अवसरपर धृतराष्ट्रको इनकी चेतावनी (सभा० ६२ अध्याय) । इनका आत्माके उद्धारके लिये समस्त भूमण्डलको त्याग देनेका उपदेश (सभा० ६२ । ११) । इनके द्वारा द्यूतक्रीड़ाके प्रस्तावका घोर विरोध (सभा० ६३ अध्याय) । जूएके अवसरपर दुर्योधनको इनकी फटकार और इनका उसे चेतावनी देना (सभा० ६४ अध्याय) । द्रौपदीको सभाभवनमें पकड़कर लानेके सम्बन्धमें दुर्योधनके आदेश देनेपर इनका पुनः दुर्योधनको फटकारना और कटु वचनकी तीव्र निन्दा (सभा० ६६ अध्याय) । इनका प्रह्लादका उदाहरण देकर सभासदोंको द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये प्रेरित करना (सभा० ६८ । ५९—८८) । इनकी

धृतराष्ट्र-पुत्रोंको चेतावनी (सभा० ७१ । १६—१९) । इनका युधिष्ठिरसे कुन्तीको अपने यहाँ रखनेका प्रस्ताव (सभा० ७८ । ५-६) । पाण्डवोंको धर्मपूर्वक रहनेके लिये इनका उपदेश (सभा० ७८ । ९—२३) । प्रजाजनोंके शोकके विषयमें इनके द्वारा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर (सभा० ८० । ३५ के बाद दा० पाठ) । इनका धृतराष्ट्रको हितकी सलाह देना (वन० ४ । ४-१७) । धृतराष्ट्रद्वारा इनका त्याग (वन० ४ । ३१) । इनका काम्यकवनमें जाकर पाण्डवोंसे मिलना और उन्हें धर्मयुक्त सलाह देना (वन० ५ । १२-२१) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको क्षमादान (वन० ६ । २१-२४) । इनका धृतराष्ट्रको किर्मीरवधकी कथा सुनाना (वन० ११ अध्याय) । धृतराष्ट्रको नीतिपूर्ण उपदेश (विदुरनीति) (उद्योग० ३३ । १३ से ४० अध्याय तक) । कुमार सनत्सुजातसे धृतराष्ट्रको उपदेश देनेके लिये इनकी प्रार्थना (उद्योग० ४१ । १०-१२) । इनके द्वारा दमकी महिमाका वर्णन (उद्योग० ६३ । ९-२४) । कौटुम्बिक कलह और लोभसे हानि बताते हुए धृतराष्ट्रको संधिके लिये समझाना (उद्योग० ६४ अध्याय) । धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी बात माननेके लिये समझाना (उद्योग० ८७ अध्याय) । इनके द्वारा अपने घरपर श्रीकृष्णका आतिथ्य-सत्कार (उद्योग० ८९ । २३-२४) । श्रीकृष्णका पूजन करके उन्हें भोजन कराना (उद्योग० ९१ । ३८-३९) । धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी दुर्भावना बताकर श्रीकृष्णको उनके कौरवसभामें जानेका अनौचित्य बतलाना (उद्योग० ९२ अध्याय) । दुर्योधनको समझाना (उद्योग० १२५ । १९-२१) । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे गान्धारीको उनके पास लाना (उद्योग० १२९ । ६) । धृतराष्ट्र और गान्धारीकी आज्ञासे दुर्योधनको बुला लाना (उद्योग० १२९ । १६) । दुर्योधन आदिकी श्रीकृष्णको कैद करनेके दुःसाहसकी बात बताकर इनका धृतराष्ट्रको चेतावनी (उद्योग० १३० । १८ से २२ के बाद तक) । दुर्योधनको समझाना (उद्योग० १३० । ४१-५३) । युद्धके भावी परिणामपर विचार करके इनका कुन्तीसे अपना दुःख प्रकट करना (उद्योग० १४४ । २-९) । शोकाकुल धृतराष्ट्रको आश्वासन देना (शल्य० १ । ५५) । इनके द्वारा राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुर लौटे हुए युयुत्सुकी प्रशंसा (शल्य० २९ । ९७-१००) । कालकी प्रबलता बताकर धृतराष्ट्रको समझाना (स्त्री० २ अध्याय) । शरीरकी अनित्यता बताकर धृतराष्ट्रका शोक निवारण करना (स्त्री० ३ अध्याय) । दुःखमय संसारके गहन स्वरूपका वर्णन करना एवं उससे छूटनेका उपाय बताना (स्त्री० ४ अध्याय) । गहन वनके दृष्टान्तसे संसारके भयंकर स्वरूपका वर्णन करना (स्त्री० ५ अध्याय) । संसाररूपी वनके रूपकका इनके द्वारा स्पष्टीकरण (स्त्री० ६ अध्याय) । संसारचक्रका वर्णन करना तथा रथके रूपकसे संयम और ज्ञान आदिको मुक्तिका उपाय बताना (स्त्री० ७ अध्याय) । शोक-निवारणके लिये धृतराष्ट्रको उपदेश देना (स्त्री० ९ । १०) । युधिष्ठिरद्वारा मन्त्रणा आदि कार्योंपर इनकी नियुक्ति (शान्ति० ४१ । १०) । युधिष्ठिरके प्रश्नके उत्तरमें इनका त्रिवर्गमें धर्मकी प्रधानता बताना (शान्ति० १६७ । ५-९) । भीष्मके दाहसंस्कारके लिये इनका युधिष्ठिरके साथ जाना (अनु० १६७ । ९-१०) । इन्होंने भीष्मजीकी चिताके निर्माणमें योग दिया और रेशमी वस्त्रों तथा मालाओंसे आच्छादित करके उनके शवको चितापर सुलाया (अनु० १६८ । ११-१२) । श्रीकृष्ण और अर्जुनका इन्द्रप्रस्थसे हस्तिनापुरमें आकर इनसे मिलना (आश्व० ५२ । ३१) । बन्धु-बान्धवोंसहित कौरवराज दुर्योधनके मारे जानेपर विदुर और संजय धर्मराज युधिष्ठिरके आश्रयमें आ गये (आश्व० ६० । ३४) । बलराम और श्रीकृष्णके हस्तिनापुरमें आनेपर राजा धृतराष्ट्र तथा महामना विदुरजीने खड़े हो आगे बढ़कर उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया (आश्व० ६६ । ६) । जब पाण्डवलोग हिमालयसे धन लेकर हस्तिनापुरके समीप आ गये, उस समय विदुरजीने पाण्डवोंका प्रिय करनेकी इच्छासे देवमन्दिरोंमें विविध प्रकारसे पूजा करनेकी आज्ञा दी (आश्व० ७० । १४—१७) । पाण्डवोंने नगरमें आकर धृतराष्ट्र और गन्धारीसे मिलनेके बाद विदुरजीका भी समादर किया (आश्व० ७१ । ५-७) । विदुरजी सदा राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें लगे रहते थे (आश्रम० १ । १२) । अजातशत्रु युधिष्ठिरके धैर्य और शुद्ध व्यवहारसे राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर बहुत प्रसन्न रहते थे (आश्रम० २ । २८-२९) । धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरके मिलनका करुण-दृश्य देखकर विदुर आदि रो पड़े थे (आश्रम० ३ । ७६) । युधिष्ठिरने विदुर आदिकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेका निश्चय किया (आश्रम० ४ । २०-२१) । युधिष्ठिरको विदुरने सभी आवश्यक बातोंका उपदेश कर दिया था (आश्रम० ७ । २१) । विदुरजीके वनमें चले जानेपर मुझे कौन कर्तव्यका उपदेश देगा—यह युधिष्ठिरकी चिन्ता (आश्रम० ८ । २) । धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा युधिष्ठिरसे श्राद्धके लिये धन माँगना (आश्रम० ११ । १-५) । राजा युधिष्ठिरका विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति कहलाना (आश्रम० १२ । ४-५; ७—१३) । विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिर-

का उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना (**आश्रम० १३ अध्याय**)। इनका धृतराष्ट्रके साथ वनको प्रस्थान (**आश्रम० १५ । ८**) । वनके मार्गमें धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटपर निवास और विदुरका उनके लिये कुशकी शय्या बिछाना (**आश्रम० १८ । १६–२०**) । विदुरकी सम्मतिसे धृतराष्ट्रका भागीरथीके पावन तटपर निवास (**आश्रम० १९ । १**) । कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर धर्म और अर्थके ज्ञाता, उत्तम बुद्धिवाले विदुरजी वल्कल और चीर वस्त्र धारण किये गन्धारी तथा धृतराष्ट्रकी सेवा करने लगे । वे मनको वशमें करके अपने दुर्बल शरीरसे घोर तपस्यामें संलग्न रहते थे (**आश्रम० १९ । १८**) । वनमें युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रसे विदुरजीका पता पूछा (**आश्रम० २६ । १५**) । धृतराष्ट्रने उत्तर दिया—विदुर सकुशल हैं । वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं । निरन्तर उपवास करते और वायु पीकर रहते हैं; इसलिये अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । उनके सारे शरीरमें व्याप्त हुई नस-नाडियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं । इस सूने वनमें ब्राह्मणोंको कभी-कभी कहीं उनके दर्शन हो जाया करते हैं (**आश्रम० २६ । १६-१७**) । इसी समय मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी कृशकाय विदुरजी दूरसे आते दिखायी दिये । उनके सारे शरीरमें मैल जमी हुई थी । वे दिगम्बर थे । वनमें उड़ती हुई धूलोंसे नहा गये थे । उस आश्रमकी ओर देखकर वे सहसा पीछेकी ओर लौट पड़े (**आश्रम० २६। १८-१९**) । राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े । वे कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे । जब वे घोर वनमें प्रवेश करने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने अपना परिचय देकर उन्हें पुकारा, विदुरजी वनके भीतर एकान्त प्रदेशमें किसी वृक्षका सहारा लेकर खड़े हो गये । उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था । इतनेहीसे उनके जीवित रहनेकी सूचना मिलती थी । युधिष्ठिर उन्हें पहचानकर अपना नाम बताकर उनके आगे खड़े हो गये । महात्मा विदुर युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे । वे अपनी दृष्टिको उनकी दृष्टिसे जोड़कर एकाग्र हो गये । अपने प्राणोंको उनके प्राणोंमें और इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें स्थापित करके उनके भीतर समा गये । तेजसे प्रज्वलित होते हुए विदुरने योगबलका आश्रय लेकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया । उनका शरीर पूर्ववत् वृक्षके सहारे खड़ा था । आँखें अब भी उसी तरह निर्निमेष थीं, परंतु अब उनके शरीरमें चेतना नहीं रह गयी थी, युधिष्ठिरने विदुरके शरीरका दाह-संस्कार करनेका विचार किया; परंतु आकाशवाणीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया । साथ ही यह बताया कि विदुरजीको सांतानिक नामक लोकोंकी प्राप्ति होगी (**आश्रम० २६ । २०–३३**) । व्यासजीद्वारा धर्म, विदुर और युधिष्ठिरकी एकताका प्रतिपादन (**आश्रम० २८ । १६–२२**) । विदुरने स्वर्गमें जाकर धर्मके स्वरूपमें प्रवेश किया (**स्वर्गा० ५ । २२**) ।

महाभारतमें आये हुए विदुरके नाम—आजमीढ, भारत, भरतर्षभ, कौरव, क्षत्ता, कुरुनन्दन आदि ।

विदुरागमनराज्यलम्भपर्व—आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १९९ से २१७ तक**) ।

विदुला—एक प्राचीन क्षत्रिय महिला, जिसने रणभूमिसे भागकर आये हुए अपने पुत्रको कड़ी फटकार दी थी (**उद्योग० १३३ अध्याय**) । इसका अपने पुत्रको युद्धके लिये उत्साहित करना (**उद्योग० १३४ अध्याय**) । इसके द्वारा पुत्रके प्रति शत्रुवशीकरणके उपायोंका निर्देश (**उद्योग० १३५ । २५–४०**) । इसका पुत्रको आश्वासनगर्भित उपदेश देना (**उद्योग० १३६ । १–१२**) ।

विदूर—ये महाराज कुरुके द्वारा दशार्हकुलकी कन्या शुभाङ्गीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इन्होंने मधुवंशकी कन्या सम्प्रियाके साथ विवाह किया, जिसके गर्भसे अनश्वा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (**आदि० ९५ । ३९-४०**) ।

विदूरथ—(१) एक वृष्णिवंशी क्षत्रिय, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गये थे (**आदि० १८५ । १९**) । ये रैवतक पर्वतपर होनेवाले उत्सवमें सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे (**आदि० २१८ । १०**) । इनकी गणना यदुवंशियोंके सात प्रधान मन्त्रियोंमें है (**सभा० १४ । ६० के बाद**) । मृत्युके पश्चात् ये विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये थे (**स्वर्गा० ५ । १६**) । (२) एक पूरुवंशी नरेश, जिसके पुत्रको ऋक्षवान् पर्वतपर रीछोंने पालकर बड़ा किया था (यह परशुरामके क्षत्रिय-संहारसे बच गया था) (**शान्ति० ४९ । ७५**) ।

विदेह—(१) राजा निमि, जो देह गिर जाने या देहाभिमानसे रहित होनेके कारण 'विदेह' कहलाते थे, इनके वंशमें होनेवाले सभी राजा विदेह कहलाये । इन्हींके नामपर मिथिलाको 'विदेह' कहा जाता है । राजा पाण्डुने अपनी दिग्विजय-यात्राके समय मिथिलापर चढ़ाई की और विदेहवंशी क्षत्रियोंको युद्धमें परास्त किया (**आदि० ११२ । २८**) । इस वंशमें हयग्रीव नामका कुलाङ्गार राजा उत्पन्न हुआ था (**उद्योग० ७४ । १५–१७**) । (२) पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (मिथिला), जहाँ विदेहवंशी क्षत्रियोंका राज्य था । भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय इस देशको जीता था (**सभा० २९ ।**

४-५)। परशुरामजीके आश्रमका द्वार विदेह देशसे उत्तर था (वन० १३० । १३)। सीता विदेहराज जनककी पुत्री थीं (वन० २७४ । ९)। इस देशके सैनिकोंने अर्जुनपर आक्रमण किया था (भीष्म० ११७ । ३२–३४)। कर्णने इस देशके क्षत्रिय वीरोंको परास्त किया था (द्रोण० ४ । ६)। परशुरामजीने इस देशके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया था (द्रोण० ७० । ११–१३)। कर्णने विदेहोंका महान् संहार किया था (कर्ण० ३ । १९)। कर्णने विदेह देशको जीतकर इसे 'कर' देनेवाला बना दिया (कर्ण० ८ । १८–२०; कर्ण० ९ । ३३)। विदेह देशके राजा जनकने महर्षि पञ्चशिखसे जरा और मृत्युको लाँघनेका उपाय पूछा और उन्होंने इनको उपदेश दिया (शान्ति० ३१९ अध्याय)। शुकदेवजीने विदेहराज जनकसे प्रवृत्ति-निवृत्ति धर्मके विषयमें प्रश्न किया और उन्होंने इसका उत्तर दिया (शान्ति० ३२६ । १०–५१)। विदेहराज जनककी पुत्रीने एक श्लोकका गान इस प्रकार किया है—'स्त्रीके लिये कोई यज्ञ आदि कर्म, श्राद्ध एवं उपवास करना आवश्यक नहीं है, उसका धर्म है अपने पतिकी सेवा। उसीसे स्त्रियाँ स्वर्गलोकपर विजय पा लेती हैं' (अनु० ४६ । १२-१३)।

विद्या–उमादेवीकी अनुगामिनी एक सहचरी (वन० २३१। ४८)।

विद्यातीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य जहाँ-कहीं भी विद्या प्राप्त कर लेता है (वन० ८४। ५२)।

विद्याधर–एक देवयोनिविशेष या उपदेवता, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें मन्त्राकृष्ट हुए देवराज इन्द्रके पीछे-पीछे आ रहे थे (आदि० ५६ । ८-९)।

विद्युज्जिह्व–घटोत्कचका साथी एक राक्षस, जिसका दुर्योधनद्वारा वध हुआ था (भीष्म० ९१ । २०-२१)।

विद्युज्जिह्वा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ८)।

विद्युता–अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र मुनिके स्वागतके अवसरपर कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५)।

विद्युताक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२)।

विद्युत्पर्णा–एक अप्सरा, जो कश्यपकी 'प्राधा' नामवाली पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५। ४९)। इसने अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२)।

विद्युत्प्रभ–(१) एक दानव, जिसे रुद्रदेवकी कृपासे एक लाख वर्षोंतक तीनों लोकोंका आधिपत्य, नित्य-पार्षद-पद, एक करोड़ पुत्र और कुशद्वीपका राज्य—ये सब वरदान रूपमें मिले थे (अनु० १४ । ८२–८४)। (२) एक तपस्वी महर्षि, जिन्होंने पापसे छूटनेके विषयमें इन्द्रसे प्रश्न किया (अनु० १२५ । ४५-४६)। इन्द्रके उत्तर दे चुकनेपर इनका स्वयं इन्द्रको सूक्ष्म धर्मका उपदेश देना (अनु० १२५ । ५१—५७)।

विद्युत्प्रभा–उत्तर दिशाकी दस अप्सराएँ (उद्योग० १११ । २१)।

विद्युद्वर्चा–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३३)।

विद्युन्माली–तारकासुरके तीन पुत्रोंमेंसे एक, जो लोहमय पुरका अधिपति था। इसके दो भाइयोंका नाम ताराक्ष और कमलाक्ष था (द्रोण० २०२ । ६४-६५; कर्ण० ३३ । ४-५)। भाइयोंसहित इसकी तपस्या और ब्रह्माद्वारा वरदान-प्राप्ति (कर्ण० ३३ । ६—१६)। शिवजीके अस्त्रसे इनका पुरसहित दग्ध होना (कर्ण० ३४ । ११४-११५)।

विद्योता–अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र मुनिके स्वागतके अवसरपर कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५)।

विधाता–(१) विधाता और धाताने उत्तङ्कको नागलोकमें दो स्त्रियोंके रूपमें दर्शन दिया था (आदि० ३ । १६६)। ये ब्रह्माजीके पुत्र हैं, इनके दूसरे भाईका नाम धाता है। ये दोनों भाई मनुके साथ रहते हैं (आदि० ६६ । ५०)। कमलोंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी देवी इन दोनोंकी बहिन हैं (आदि० ६६ । ५१)। धाता-विधाता विराटनगरके आकाशमें गोग्रहणके समय कृपाचार्य और अर्जुनका युद्ध देखने आये थे (विराट० ५६ । ११-१२)। इनके द्वारा स्कन्दको सुव्रत और सुकर्मा नामक दो पार्षदोंका दान (शल्य० ४५ । ४२-४३)। (२) एक ऋषि, जो इन्द्रसभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १४)। विधाता—ब्रह्मा, इन्होंने ब्राह्मण-वेशमें आकर राजर्षि शिबिकी परीक्षा ली (वन० १९८ । १७—२५)। (विशेष देखिये ब्रह्मा)

विनता–दक्षकी पुत्री, कश्यपकी पत्नी तथा गरुड और अरुणकी माता। पतिके वर माँगनेके लिये कहनेपर इनके द्वारा उनसे कद्रू-पुत्रोंकी अपेक्षा अधिक बलशाली दो पुत्रोंकी याचना (आदि० १६ । ५—९)। कद्रूके पुत्रोंको उत्पन्न हुआ देख इनका लज्जित होना एवं अपने एक अण्डेको फोड़ना (आदि० १६ । १६-१७)। अपना शरीर अधूरा रह जानेके कारण अरुणका इनको

पाँच सौ वर्षोंतक सौतकी दासी होनेका शाप देना एवं उससे छूटनेका उपाय बतलाना (आदि० १६ । १८—२२) । सौत कद्रूद्वारा इनका छला जाना तथा पाँच सौ वर्षोंतक उसकी दासी होना (आदि० २० । २ से आदि० २३ । ४ तक) । इनका गरुडको अमृत लानेका आदेश (आदि० २७ । १३—१५) । इनकी गरुडको ब्राह्मण-की हिंसासे बचनेके लिये चेतावनी (आदि० २८ । २—१४) । स्वर्गसे अमृत लाकर गरुडका इन्हें दासीपनसे छुटकारा दिलाना (आदि० ३४ । ८—२०) । तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड, अरुण तथा वारुणि—ये विनताके पुत्र हैं (आदि० ६५ । ३९-४०) । इन्होंने स्कन्दको अपना पिण्डदाता पुत्र माना और सदा उनके साथ रहनेकी इच्छा प्रकट की (वन० २३० । १२) ।

विनदी—भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २७) ।

विनशन—(१) एक तीर्थ, जहाँ सरस्वती अदृश्य भावसे बहती है (वन० ८२ । १११) । इसकी विशेष महिमा (शल्य० ३७ । १) । (२) समस्त पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला एक तीर्थ, जिसके सेवनसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है (वन० ८४ । ११२) ।

विनायक—एक प्रकारके गण देवता, जिनके नामका शुद्ध भावसे कीर्तन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है (अनु० १५० । २५—२९) ।

विनाशन—काला नामक कश्यप-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न एक दानव । कालाके पुत्र अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारमें कुशल तथा साक्षात् कालके समान भयंकर थे (आदि० ६५ । ३४-३५) ।

विन्द—(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि ६७ । ९४; आदि० ११६ । ३) । इसका भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० १२७ । ३४—६६) । (२) अवन्तीका राजकुमार, जो अनुविन्दका भाई था । दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर सहदेवने इसे परास्त किया था (सभा० ३१ । १०) । इसका एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनकी सहायताके लिये आना (उद्योग० १९ । २४-२५) । भीष्मद्वारा इसकी श्रेष्ठ रथियोंमें गणना (उद्योग० १६६ । ६) । दुर्योधनकी सेनाके दस प्रधान अधिनायकोंमेंसे एक यह भी था (भीष्म० १६ । १५—१७) । यह भगदत्तके समान तेजस्वी था और हाथीकी पीठपर बैठकर केतुमान्के पीछे चल रहा था (भीष्म० १७ । ३७) । प्रथम दिनके युद्धमें कुन्तिभोजके साथ इसका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ७२—७६) । विराटकुमार श्वेतके चंगुलमें फँसे हुए मद्रराज शल्यकी इसने सहायता की (भीष्म० ४७ । ४८-४९) । अपने भाई अनुविन्दके साथ इसका इरावान्-पर आक्रमण करना (भीष्म० ८१ । २७) । इसका इरावान्के साथ युद्ध तथा उनके द्वारा पराजित होना (भीष्म० ८३ । १२—२२) । इसका धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरके साथ युद्ध (भीष्म० ८६ । ३३-३६) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध(भीष्म० अध्याय ११३ से ११४ तक) । विराटके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २०-२१) । भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० ९५ । ३५-३६) । विराटपर इसका धावा (द्रोण० ९५ । ४३) । विराटके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ४—६) । अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (द्रोण० ९९ । १७—२५) । इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । १०) । (३) एक केकय-राजकुमार, जो कौरवपक्षका योद्धा था । इसका सात्यकिके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (कर्ण० १३ । ६—३५) ।

विन्ध्य—मध्यभारतका एक प्रसिद्ध पर्वत, जहाँ सुन्द और उपसुन्दने तपस्या की थी (आदि० २०८ । ७) । सुन्दकी उग्र तपस्यासे संतप्त होनेके कारण इस पर्वतसे धुआँ निकलने लगा था (आदि० २०८ । १०) । यह कुबेर-सभामें उपस्थित हो धनाध्यक्षकी उपासना करता है (सभा० १० । ३१) । इसका सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ना (वन० १०४ । ६) । अगस्त्यजीद्वारा इसकी वृद्धिका निवारण (वन० १०४ । १३-१४) । इस उत्तम पर्वतपर दुर्गा देवीका सनातन निवास-स्थान है (विराट० ६ । १७) । यह सात कुलपर्वतोंमेंसे एक है (भीष्म० ९ । ११) । त्रिपुरदाहके समय यह शिव-जीके रथका पार्श्ववर्ती ध्वज बनाया गया था (द्रोण० २०२ । ७१) । इसने उनके रथमें आधार-काष्ठका स्थान ग्रहण किया था (कर्ण० ३४ । २२) । इसके द्वारा स्कन्दको उच्छृङ्ग और अतिश्रृङ्ग नामक दो पार्षदोंका दान (शल्य० ४५ । ४९-५०) । जो हिंसाका त्याग करके सत्यप्रतिज्ञ होकर विन्ध्याचलमें अपने शरीरको कष्ट दे विनीत भावसे तपस्याका आश्रय लेकर रहता है, उसे एक महीनेमें सिद्धि प्राप्त हो जाती है (अनु० २५ । ४९) ।

विन्ध्यचुलिक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६२) ।

विपाट—कर्णका एक भाई, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (द्रोण० ३२ । ६२-६३) ।

विपाठ—बाणविशेष (इसकी आकृति खनतीकी भाँति होती है । यह दूसरे बाणोंसे बड़ा होता है) (आदि० १३८ । १) ।

विपापा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १५) ।

विपाप्मा–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३०) ।

विपाशा–पञ्चनद प्रदेशकी एक नदी, जो वसिष्ठजीको पाशमुक्त करनेके कारण 'विपाशा' नामसे प्रसिद्ध हुई (आदि० १७६ । २–६) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । १९) । इसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १५) । 'बहि' और 'हीक' नामक पिशाच इसमें निवास करते हैं (कर्ण० ४४ । ४१-४२) । जो विपाशा नदीमें पितरोंका तर्पण करता है और क्रोधको जीतकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तीन रात वहाँ निवास करता है, वह जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है (अनु० २५ । २४) ।

विपुल–(१) सौवीर देशका राजा, जो संग्राम-भूमिमें अर्जुनके हाथसे मारा गया था (आदि० १३८ । २२) । (२) मगधराजधानी गिरिव्रजके समीपका एक पर्वत (सभा० २१ । २) । (३) एक भृगुवंशी ऋषि, जो महर्षि देवशर्माके शिष्य थे (अनु० ४० । २१-२२) । इनका अपने गुरुसे इन्द्रका रूप एवं लक्षण पूछना (अनु० ४० । २६) । इन्द्रसे रक्षा करनेके लिये गुरुपत्नीके शरीरमें इनका प्रवेश (अनु० ४० । ५७-५८) । इन्द्रको फटकारना (अनु० ४१ । २०–२६) । गुरुसे इनको वरकी प्राप्ति (अनु० ४१ । ३५) । गुरुकी आज्ञासे दिव्य पुष्प लाना (अनु० ४२ । १६) । मार्गमें अपनी दुर्गतिकी बात सुनकर दुखी होना (अनु० ४२ । २९) । गुरुसे स्त्री-पुरुषके जोड़े और छः पुरुषोंके विषयमें प्रश्न (अनु० ४३ । ३) ।

विपृथु–(१) एक वृष्णिवंशी क्षत्रिय, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १८) । यह रैवतक पर्वतपर होनेवाले महोत्सवमें सम्मिलित हुआ था (आदि० २१८ । १०) । सुभद्रा और अर्जुनके विवाहोपलक्ष्यमें दहेज लेकर जानेवाले लोगोंमें यह भी था (आदि० २२० । ३२) । यह युधिष्ठिरकी सभामें रहकर उनकी सेवामें उपस्थित होता था (सभा० ४ । ३०) । (२) एक प्राचीन नरेश, जो सप्तर्षियोंके बाद भूमण्डलके सम्राट् हुए थे (शान्ति० २९४ । २०) ।

विप्रचित्ति–दनुके सर्वत्र विख्यात चौंतीस पुत्रोंमेंसे एक, जो महायशस्वी राजा था; यह अपने भाइयोंमें सबसे बड़ा था (आदि० ६५ । २२) । यही इस भूतलपर 'जरासंध'के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १२) । जब वामनरूपधारी श्रीहरि त्रिलोकीको नापने लगे, उस समय विप्रचित्ति आदि दानव अपने-अपने आयुध लेकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९०) । पूर्वकालमें इसे भगवान् श्रीहरिने (इन्द्ररूपसे) क्रियात्मक उपायोंद्वारा मारा था (शल्य० ३१ । १२-१३) । इसको तथा अन्य प्रमुख दैत्य-दानवोंको मारकर इन्द्र देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए थे (शान्ति० ९८ । ५०) ।

विभाण्ड–एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने आये थे (शान्ति० ४७ । ११) ।

विभाण्डक–कश्यप-कुलमें उत्पन्न एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १८ दा० पाठ) । ये ऋष्यशृङ्गके पिता थे (वन० ११० । २३) । इनका अन्तःकरण तपस्यासे पवित्र हो गया था । ये प्रजापतिके समान तपस्वी और अमोघवीर्य महात्मा थे । इनका रूप-सौन्दर्य महात्माओंके समान था । ये बहुत बड़े सरोवरमें प्रविष्ट होकर तपस्या करते रहे । इन्होंने दीर्घकालतक महान् क्लेश सहन किया था (वन० ११० । ३२–३४) । एक दिन जलमें स्नान करते समय उर्वशी अप्सराको देखकर इनका वीर्य स्खलित हो गया । उसी समय प्याससे व्याकुल होकर एक मृगी वहाँ आयी और पानीके साथ उस वीर्यको भी पी गयी । इससे उसके गर्भ रह गया । उसीके पेटसे महर्षि ऋष्यशृङ्गका जन्म हुआ (वन० ११० । ३५–३९) । विभाण्डक मुनिके नेत्र हरे-पीले रंगके थे । सिरसे लेकर पैरोंके नखोंतक रोमावलियोंसे भरे हुए थे । ये स्वाध्यायशील, सदाचारी और समाधिनिष्ठ महर्षि थे । एक दिन जब ये बाहरसे आश्रमपर आये तो अपने पुत्रको चिन्तामग्न देखकर उससे पूछने लगे–'बेटा ! बताओ, आज यहाँ कौन आया था (वन० १११। २०–३०) । ऋष्यशृङ्गने पिताको अपनी चिन्ताका कारण बताते हुए ब्रह्मचारी-रूपधारी वेश्याके स्वरूप और आचरणका वर्णन किया (वन० ११२ अध्याय) । विभाण्डकने अपने पुत्रको बताया कि इस प्रकार अद्भुत रूप धारण करके राक्षस ही इस वनमें विचरा करते हैं तथा ऋषि-मुनियोंकी तपस्यामें सदा विघ्न डालनेकी चेष्टा करते रहते हैं । अतः तपस्वीको चाहिये कि वह उनकी ओर आँख उठाकर देखे ही नहीं । इस प्रकार पुत्रको उससे मिलने-जुलनेके लिये मना करके मुनि स्वयं उस वेश्याकी खोज करने लगे । तीन दिनोंतक खोजनेपर भी जब वे उसका पता न पा सके, तब आश्रमपर लौट आये (वन० ११३ । १–५) । तदनन्तर जब वे फल लानेके लिये वनमें गये,

तब वह वेश्या उनके पुत्रको लुभाकर अपने साथ ले गयी और राजा लोमपादने उन्हें अपने अन्तःपुरमें ठहराया। आश्रमपर लौटनेपर अपने पुत्रको न देखकर विभाण्डक मुनि अत्यन्त कुपित हो उठे। इन्हें राजा लोमपादपर संदेह हुआ। तब वे चम्पा नगरीकी ओर चल दिये। मार्गमें इनका बड़ा सत्कार हुआ। अङ्गदेशका सारा वैभव इनके पुत्र ऋष्यशृङ्गका ही बताया गया। राजाके यहाँ पहुँचकर इन्होंने वहाँ अपने पुत्र और पुत्रवधूको देखा। इससे इनका क्रोध शान्त हो गया और इन्होंने राजा लोमपादपर बड़ी कृपा की। शान्ताके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो जानेके बाद ऋष्यशृङ्गको वनमें ही आ जानेकी आज्ञा देकर ये आश्रमको लौट गये (वन० ११३। ६–२१)। अदृश्य देवतासे इनका प्रश्न करना (शान्ति० २२२अ० दा० पाठ, पृष्ठ ४९९९, कालम १)। सनत्कुमारजीसे प्रश्न (शान्ति० २२२ दा० पाठ, पृष्ठ ४९९९ कालम २)।

विभावसु–(१) विवस्वान् अथवा सूर्य (आदि० १। ४२)। (२) एक क्रोधी महर्षि, जो अपने भाई सुप्रतीक मुनिके शापसे कछुआ हो गये थे (आदि० २९। १५–२३)। (३) एक ऋषि, जो युधिष्ठिरका विशेष आदर करते थे (वन० २६। २४)।

विभीषण–(१) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित होकर उनकी सेवा करते हैं (सभा० १०। १७)। (२) राक्षसराज लङ्कापति विभीषण, जो कुबेरकी सभामें रहकर अपने भाई धनाध्यक्ष कुबेरकी उपासना करते हैं (सभा० १०। ३१)। ये विश्रवा मुनिके पुत्र, रावण और कुम्भकर्णके भाई थे। इनकी माताका नाम मालिनी था। इनके द्वारा युधिष्ठिरको अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट(सभा० ३१। ७२ के बाद दा० पाठ)। सहदेवने इनके पास घटोत्कचको अपना दूत बनाकर भेजा था (सभा० ३१। ७२ के बाद दा० पाठ और ७३ वाँ श्लोक, पृष्ठ ७५९)। इनकी आज्ञासे घटोत्कचका इनके दरबारमें उपस्थित होना (सभा० ३१। ७३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७६०)। राक्षसराज विभीषणका महल अपनी उज्ज्वल आभासे कैलासके समान जान पड़ता था। उसका फाटक तपाये हुए सोनेसे तैयार किया गया था। चहारदीवारीसे घिरा हुआ वह राजमन्दिर अनेक गोपुरोंसे सुशोभित था। उसमें बहुत-सी अट्टालिकाएँ तथा महल बने हुए थे। भाँति-भाँतिके रत्न उस भवनकी शोभा बढ़ाते थे। सोने, चाँदी और स्फटिक मणिके खम्भे नेत्र और मनको बरबस अपनी ओर खींच लेते थे। उन खम्भोंमें हीरे और वैदूर्य जड़े हुए थे। सुनहले रंगकी विविध ध्वजा-पताकाओंसे उस भव्य भवनकी विचित्र शोभा होती थी। विचित्र मालाओंसे अलंकृत तथा विशुद्ध स्वर्णमय वेदिकाओंसे विभूषित वह राजभवन बड़ा रमणीय दिखायी देता था। वहाँ कानोंमें मृदङ्गकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती थी। वीणाके तार झंकृत हो रहे थे और उसकी लयपर गीत गाया जा रहा था। सैकड़ों वाद्योंके साथ दिव्य दुन्दुभियोंका मधुर घोष गूँज रहा था। महात्मा विभीषण सोनेके सिंहासनपर बैठे थे। वह सिंहासन सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। उसमें मोती तथा मणि आदि रत्न जड़े हुए थे। दिव्य आभूषणोंसे राक्षसराज विभीषणकी विचित्र शोभा हो रही थी। उनका रूप दिव्य था। वे दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्धसे विभूषित थे। उनके समीप अनेक सचिव बैठे थे। बहुत-से सुन्दर यक्ष अपनी स्त्रियोंके साथ मङ्गलयुक्त वाणीद्वारा राजा विभीषणका विधिपूर्वक पूजन करते थे। दो सुन्दरी नारियाँ उन्हें चँवर और व्यजन डुला रही थीं। राक्षसराज विभीषण कुबेर और वरुणके समान राजलक्ष्मीसे सम्पन्न एवं अद्भुत दिखायी देते थे। इनके अङ्गोंसे दिव्य प्रभा छिटक रही थी। वे धर्मनिष्ठ थे और मन-ही-मन इक्ष्वाकुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रका स्मरण करते थे। घटोत्कचने दोनों हाथ जोड़कर इन्हें प्रणाम किया (सभा० ३१। ७३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७६१)। घटोत्कचके मुखसे युधिष्ठिर आदिका पूर्ण परिचय सुनकर विभीषणने प्रसन्नतापूर्वक सहदेवके लिये हाथीकी पीठपर बिछाने योग्य विचित्र कालीन, हाथीदाँत और सुवर्णके बने हुए पलंग, बहुमूल्य आभूषण, सुन्दर मूँगे, भाँति-भाँतिके मणि, रत्न, सोनेके बर्तन, कलश, घड़े, विचित्र कड़ाहे, हजारों जलपात्र, चाँदीके बर्तन, चौदह सुवर्णमय ताड़, सुवर्णमय कमलपुष्प, मणिजटित शिबिकाएँ, बहुमूल्य मुकुट, सुनहले कुण्डल, सोनेके बने हुए पुष्प, हार, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शतावर्त शङ्ख, श्रेष्ठ चन्दन तथा और भी भाँति-भाँतिके बहुमूल्य पदार्थ भेंट किये (सभा० ३१। ७३ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७६२––७६४)। ये राक्षसराज रावणके छोटे भाई थे (वन० १४८। १३)। इनके पिता महर्षि विश्रवा थे और माताका नाम मालिनी था (वन० २७५। ८)। इनका श्रीरामकी शरणमें जाना (वन० २८३। ४६)। श्रीरामने इन्हें लङ्काका राजा, लक्ष्मणका सखा और अपना सचिव बनाया (वन० २८३। ४९)। इनका प्रहस्तके साथ युद्ध (वन० २८५। १४)। इनके द्वारा प्रहस्तका वध (वन० २८६। ४)। इनका कुबेरका भेजा हुआ जल श्रीरामको देना (वन० २८९। ९–११)। श्रीरामद्वारा लङ्काका राज्य पाना (वन० २९१। ५)। अयोध्याके राज्यपर अभिषिक्त होनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने

पुलस्त्यकुलनन्दन विभीषणको अपने घर लौटनेकी आज्ञा दी और कर्तव्यकी शिक्षा दे इन्हें बड़े दुःखसे बिदा किया (वन० २९१ । ६७-६८)।

विभीषणा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २२)।

विभु–शकुनिका भाई। अपने चार भाइयोंके साथ इसका भीमसेनपर आक्रमण और उनके द्वारा वध (द्रोण० १५७ । २३-२६)।

विभूति–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५७)।

विभूरसि–अद्भुत नामक अग्निके पुत्र (वन० २२२ । २६)।

विमल तीर्थ–एक उत्तम तीर्थ, जिसमें सोने और चाँदीके रंगकी मछलियाँ दिखायी देती हैं। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र ही इन्द्रलोकको प्राप्त होता है और सब पापोंसे शुद्ध हो परमगतिको प्राप्त कर लेता है (वन० ८२ । ८७-८८)।

विमलपिण्डक–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ८)।

विमला–सुरभिपुत्री रोहिणीकी दो कन्याओंमेंसे एक। दूसरी-का नाम अनला था (आदि० ६६ । ६७-६८)।

विमलाशोकतीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ जाकर ब्रह्मचर्य-पालन-पूर्वक एक रात निवास करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रति-ष्ठित होता है (वन० ८४ । ६९-७०)।

विमलोदका–हिमालयपर ब्रह्माके यज्ञमें प्रकट हुई सरस्वती-का नाम (शल्य० ३८ । २९)।

विमुख–एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १७ के बाद दा० पाठ)।

विमुच–दक्षिणदिशानिवासी एक प्राचीन ऋषि (शान्ति० २०८ । २८)।

विमोचन–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान और आचमन करके क्रोध और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला मनुष्य प्रतिग्रहजनित पापसे मुक्त हो जाता है (वन० ८३ । १६१)।

वियम–राक्षस शतशृङ्गके तीन पुत्रोंमेंसे एक। इसका अम्ब-रीषके सेनापति सुदेवके साथ युद्ध करके उसे मारना और स्वयं भी उसके द्वारा मारा जाना (शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ)।

विरज–द्वारकाका एक प्रासाद, जो निर्मल एवं रजोगुणके प्रभावसे शून्य था। यह भवन श्रीकृष्णका उपस्थानगृह (खास रहनेका स्थान) था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५, कालम २)।

विरजा–(१) कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १३; उद्योग० १०३ । १६)। (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । १४)। भाइयोंसहित इसका भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० १५७ । १७–१९)। (३) भगवान् नारायणके तेजसे उत्पन्न एक मानस पुत्र, जिन्होंने पृथ्वीपर राज्य करनेकी इच्छा न करके संन्यास लेनेका ही निश्चय किया। इनके पुत्रका नाम कीर्तिमान् था (शान्ति० ५९ । ८८–९०)। (४) कविके आठ पुत्रोंमेंसे एक। इनके सात भाइयोंके नाम हैं—कवि, काव्य, धिष्णु, शुक्राचार्य, भृगु, काशी और उग्र। ये आठों प्रजापति हैं (अनु० ८५ । १३२–१३४)।

विरस–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १६)।

विराज–ये भरतवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं अविक्षित्के पुत्र थे (आदि० ९४ । ५२)।

विराट–मत्स्यदेशके शत्रुदमन नरेश, जो मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ८२)। ये अपने पुत्र उत्तर एवं शङ्खके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । ८)। राजसूय-दिग्विजयके समय सहदेवद्वारा इनकी पराजय (सभा० ३१ । २)। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ४४ । २०)। इन्होंने राजा युधिष्ठिरको सुवर्ण-मालाओंसे विभूषित दो हजार मतवाले हाथी उपहारके रूपमें दिये (सभा० ५२ । २६)। युधिष्ठिरको विशेष अधिकार देकर अपने यहाँ ससम्मान रहनेकी व्यवस्था करना (विराट० ७ । १६-१७)। इनका भीमसेनको अपने यहाँ पाकशालाध्यक्ष बनाना (विराट० ८ । ११-१२)। इनकी प्यारी रानी-का नाम सुदेष्णा था (विराट० ९ । ६)। सहदेवको अपने यहाँ गोशालाध्यक्षके पदपर रखना (विराट० १० । १५)। बृहन्नला नामधारी अर्जुनके नपुंसकत्वकी परीक्षा कराकर उन्हें अन्तःपुरमें स्थापित करना (विराट० ११ । १०-११)। इनकी पुत्रीका नाम उत्तरा था, जिसे अर्जुनने गीत, वाद्य एवं नृत्यकलाकी शिक्षा दी थी (विराट० ११ । १२-१३)। नकुलको अश्वशालाध्यक्षके पदपर नियुक्त करना (विराट० १२ । ९)। द्रौपदीके उलाहना देने और फटकारनेपर उसे उत्तर देना (विराट० १६ । ३५)। विराटकी पहली रानी कोशल-देशकी राजकुमारी सुरथा थीं। वे श्वेतकी माता थीं। उनके मरनेपर राजाने सूतपुत्री केकयकुमारी सुदेष्णासे विवाह किया। सुदेष्णाके ज्येष्ठ पुत्रका नाम शङ्ख था और

छोटेका उत्तर । इन दोनोंसे छोटी एक उत्तरा नामकी कन्या थी (विराट० १६ । ५१ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ १८९३) । कहीं-कहीं इनके दस भाइयोंका उल्लेख मिलता है (विराट० १६ । ५१ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ १८९४) । उपकीचकोंको द्रौपदीको जलानेकी अनुमति दे देना (विराट० २३ । ८) । कीचक तथा उपकीचकोंके दाह-संस्कारके लिये आदेश देना (विराट० २४ । ६-७) । सुदेष्णाद्वारा द्रौपदीको राजमहलसे निकल जानेके लिये संदेश कहलाना (विराट० २४ । ९-१०) । इनके भाइयोंके नाम शतानीक और मदिराक्ष थे । शतानीकका दूसरा नाम सूर्यदत्त था । ये सेनापति थे । मदिराक्षको 'विशालाक्ष' भी कहा जाता था । ये दोनों महारथी थे (विराट० ३१ । ११-१२, १५, २०, २४; विराट० ३२ । १९) । इनके सुदेष्णासे उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्रका नाम शङ्ख था (विराट० ३१ । १६) । गोहरणके समय पाण्डवों तथा अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान (विराट० ३१ । ३२) । गोहरणके समय सुशर्माके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (विराट० ३२ । २३--३०) । सुशर्माद्वारा इनका जीते-जी पकड़ा जाना (विराट० ३३ । ७-८) । सुशर्माके रथसे कूदकर उसकी गदा ले उसीकी ओर इनका दौड़ना (विराट० ३३ । ४२) । युद्धसे छुटकारा पानेपर पाण्डवोंका इनके द्वारा सम्मान (विराट० ३४ । ४—१३) । नगरमें विजय-घोषणाके लिये दूत भेजना (विराट० ३४ । १७) । इनकी उत्तरके लिये चिन्ता (विराट० ६८ । १०—१४) । इनके द्वारा युधिष्ठिरका तिरस्कार (विराट० ६८ । ४६) । युधिष्ठिरसे इनकी क्षमा-प्रार्थना (विराट० ६८ । ६२) । उत्तरसे युद्धका समाचार पूछना (विराट० ६८ । ६८—७६) । पाण्डवोंका सत्कार तथा अर्जुनके साथ उत्तराका विवाह करनेके लिये युधिष्ठिरके सामने इनका प्रस्ताव (विराट० ७१ । ३२–३४) । ये अपनी सेनाके साथ युधिष्ठिरकी सहायताके लिये आये (उद्योग० १९ । १२) । युधिष्ठिरकी सेनाके सात प्रमुख सेनापतियोंमें एक ये भी थे (उद्योग० १५७ । ११—१४) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (उद्योग० १६३ । ४१) । प्रथम दिनके संग्राममें भगदत्तके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ४९–५१) । भीष्मपर आक्रमण (भीष्म० ७३ । १) द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और शङ्खके मारे जानेपर इनका पलायन (भीष्म० ८२ । १४—२४) । अश्वत्थामाके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १६; भीष्म० १११ । २२—२७) । जयद्रथके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११६ । ४२–४४) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ७१) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । १४) । विन्द-अनुविन्दके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २०-२१; द्रोण० ९४ । ४–६) । शल्यके साथ युद्धमें मूर्च्छित होना (द्रोण० १६७ । ३४) । द्रोणाचार्यद्वारा इनका वध (द्रोण० १८६ । ४३) । इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ६) । इनके शवका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३३) । युधिष्ठिरद्वारा इनका श्राद्ध सम्पन्न होना (शान्ति० ४२ । ४) । स्वर्गमें जाकर ये मरुद्गणोंमें मिल गये (स्वर्गा० ५ । १५) ।

महाभारतमें आये हुए विराटके नाम—मत्स्य, मत्स्यपति, मत्स्यराट्, मत्स्यराज आदि ।

विराटनगर—मत्स्यदेशकी राजधानी, इसपर त्रिगर्तों तथा कौरवोंने चढ़ाई की थी (विराट० ३० । २३) ।

विराटपर्व—महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

विराध—एक क्रूरकर्मा राक्षस, जो शापग्रस्त गन्धर्व था । भगवान् श्रीरामद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४) ।

विराव—इल्वलद्वारा अगस्त्यजीको दिये गये रथमें जुते हुए एक घोड़ेका नाम । दूसरेका नाम सुराव था (वन० ९९ । १७) ।

विरावी—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०४; आदि० ११६ । १३) ।

विरूप—(१) एक असुर, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८२५, कालम १) । (२) अन्य नाम और रूप धारण करके आया हुआ क्रोध, जिसका राजा इक्ष्वाकुके साथ संवाद हुआ था (शान्ति० १९९ । ८८—११७) । (३) अङ्गिराके आठ पुत्रोंमेंसे एक । इनके सात भाइयोंके नाम हैं—बृहस्पति, उतथ्य, पयस्य, शान्ति, घोर, संवर्त और सुधन्वा । ये सभी वारुण तथा आग्नेय कहलाते हैं (अनु० ८५ । १३०-१३१) ।

विरूपक—एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो प्राचीनकालमें पृथ्वीका शासक था, परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५१) ।

विरूपाक्ष—(१) दनुके सुविख्यात चौंतीस पुत्रोंमेंसे एक । इसके पिताका नाम कश्यप था (आदि० ६५ । २१—२६) । यही राजा चित्रवर्मा होकर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २२-२३) । (२) नरकासुरका अनुयायी एक असुर, जो औदकाके अन्तर्गत लोहितगङ्गाके बीच श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०७, कालम २) । (३) एक राक्षस, जिसके साथ वानरराज सुग्रीवने युद्ध किया था

(वन० २८५ । ९) । (४) एक राक्षस, जो घटोत्कचका सारथि था (द्रोण० १७५ । १५) । (५) एक राक्षस राज, जो राजधर्मा बकका मित्र था (शान्ति० १७० । १५) । इसके द्वारा गौतम ब्राह्मणका स्वागत (शान्ति० १७० । २१) । इसका गौतमके साथ वार्तालाप और उसे धन देना (शान्ति० १७१ । २—२२) । राजधर्माके विषयमें चिन्तित होकर अपने पुत्रको उसका पता लगानेके लिये भेजना (शान्ति० १७२ । ५—११) । गौतमको मार डालनेका आदेश (शान्ति० १७२ । १७–१९) । राजधर्माके लिये चिता तैयार करना (शान्ति० १७३ । १-२) । (६) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । १९) ।

विरूपाश्व–एक राजा, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५) ।

विरोचन–(१) प्रह्लादजीके तीन पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र । ये बलिके पिता थे (आदि० ६५ । १९-२०; सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८९) । केशिनीके निमित्त सुधन्वासे इनका संवाद (उद्योग० ३५ । १४–२१) । दैत्योंद्वारा पृथ्वीदोहनके समय ये बछड़ा बने थे (द्रोण० ६९ । २०) । इन्द्रद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (शान्ति० ९८ । ४९–५०) । भूतलके प्राचीन शासकोंमें इनका भी नाम लिया जाता है (शान्ति० २२७ । ५०) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जो द्रौपदी-स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २) । (इसे दुर्विरोचन भी कहते हैं । विशेष देखिये —दुर्विरोचन)

विरोचना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ३०) ।

विरोहण–तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा (आदि० ५७ । ९) ।

विवर्धन–एक नरेश, जो धर्मराज युधिष्ठिरकी सभामें उपस्थित होकर उनकी उपासना करते थे (सभा० ४ । २१) ।

विवस्वान्–(१) बारह आदित्योंमेंसे एक लोकेश्वर सूर्य (आदि० ६५ । १५) । ये कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं (आदि० ७५ । ११) । वैवस्वत यमके पिता हैं (आदि० ७५ । १२) । विवस्वान्के पुत्र मनु हैं (आदि० ९५ । ७) । ये कर्णके पिता हैं (आदि० ११० । १७–२०) । इनकी पुत्रीका नाम तपती था (आदि० १७१ । २६) । इनके एक सौ आठ नामोंका वर्णन (वन० ३ । १६–२८) । इन्होंने पृथ्वीपर निवास करके अपने समस्त शत्रुओंको दग्ध कर दिया था (वन० ३१५ । १९) । इन्होंने वेदोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करके आचार्य कश्यपको दक्षिणारूपसे एक दिशाका दान कर दिया था, इसीलिये उसे दक्षिण दिशा कहते हैं (उद्योग० १०९ । १) । भगवान् श्रीहरिने इन्हें पूर्वकालमें अविनाशी कर्मयोगका उपदेश दिया था । फिर इन्होंने अपने पुत्र वैवस्वत मनुको इसकी शिक्षा दी (भीष्म० २८ । १) । ये इक्कीस प्रजापतियोंमेंसे एक हैं (शान्ति० ३३४ । ३६) । इन्होंने अदितिके सवितासे भी बड़े पुत्रसे नारायणके मुखसे प्रकट हुए सात्वत धर्मका उपदेश ग्रहण किया और त्रेतायुगके आरम्भमें वैवस्वत मनुको इसकी शिक्षा दी (शान्ति० ३४८ । ५०-५१) । नासत्य और दस्र— ये दोनों अश्विनीकुमार इनके औरस पुत्र हैं और अश्वरूप-धारिणी इनकी पत्नी संज्ञादेवीकी नाकसे प्रकट हुए हैं (अनु० १५० । १७-१८) । (२) एक दैत्य, जिसका गरुडद्वारा वध हुआ (उद्योग० १०५ । १२) । (३) एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१) ।

विवह–एक अत्यन्त वेगशाली वायु, जो रुक्षभावसे वेगपूर्वक महान् शब्दके साथ बहकर बड़े-बड़े वृक्षोंको तोड़ देता और उखाड़ फेंकता है । इसके द्वारा संगठित हुए प्रलय-कालीन मेघ बलाहक संज्ञा धारण करते हैं । इस वायुका संचरण भयानक उत्पात लानेवाला होता है । यह आकाशमें अपने साथ मेघोंकी घटाएँ लिये चलता है (शान्ति० ३२८ । ४४-४५) ।

विविंश–सूर्यवंशी विंशके पुत्र, जिनके खनीनेत्र आदि पंद्रह पुत्र थे (आश्व० ४ । ५–७) ।

विविंशति–धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (आदि० ६३ । ११९-१२०;आदि० ६७ । ९४; आदि० ११६ । ४) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १) । द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा बंदी होना (वन० २४२ । ८) । विराटनगरमें अर्जुनसे पराजित होकर इसका भागना (विराट० ६१ । ४३–४५) । भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । २७–३०) । सुतसोमके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २४-२५) । भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ३१) । इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । ७) ।

विवित्सु–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९६; आदि० ११६ । ५) । भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ६४ । २८–३९) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १२) ।

विविन्ध्य–एक दानव, जो शाल्वका अनुयायी था । इसका रुक्मिणीनन्दन चारुदेष्णके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (वन० १६ । २२–२६) ।

विशल्या-(१) एक नदी, जो वरुणसभामें रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २०) । लोकविख्यात विशल्या नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है और स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८४ । ११४) । (२) शरीरमें चुभे हुए बाणोंको निकालनेकी एक ओषधि (वन० २८९ । ६) ।

विशाख-(१) कुमार कार्तिकेयके तीन छोटे भाइयोंमेंसे एक, शेष दोके नाम शाख और नैगमेय हैं (आदि० ६६ । २४) । जब कुमार कार्तिकेय पिताका गौरव प्रदान करनेके लिये भगवान् शिवकी ओर चले, उस समय शिव, पार्वती, अग्नि और गङ्गा—ये चारों एक ही समय सोचने लगे—क्या यह मेरा पुत्र मेरे पास आयेगा ? उनके मनोभावको समझकर कुमारने योगबलसे अपने चार स्वरूप बना लिये । एक तो कुमार स्कन्द स्वयं ही थे । दूसरे शाख, तीसरे विशाख और चौथे नैगमेय हुए । स्कन्द शिवके, शाख अग्निके, विशाख पार्वतीके और नैगमेय गङ्गाजीके समीप गये । इस तरह इनके द्वारा इन सबको पिता-माताका गौरव प्राप्त हुआ । इन चारोंके रूप एक-से हैं । ये सब एक ही माता-पितासे सम्बन्ध रखनेके कारण परस्पर भाई हैं और एक ही स्वरूपसे प्रकट होनेके कारण परस्पर अभिन्न भी हैं (शल्य० ४४ । ३४—४१) । (२) कुमारका दूसरा रूप । एक समय इन्द्रने कुमार स्कन्दपर वज्रका प्रहार किया, उस वज्रने उनकी दायीं पसलीपर गहरी चोट पहुँचायी, इस चोटसे उनके शरीरसे एक नूतन रूप प्रकट हुआ, जिसकी युवावस्था थी । उसने सुवर्णमय कवच धारण कर रखा था । उसके एक हाथमें शक्ति थी और कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे । वज्रके प्रविष्ट होनेसे उसकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये वह विशाख नामसे प्रसिद्ध हुआ (वन० २२७ । १५—१७) । (३) एक ऋषि, जो इन्द्रसभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १४) ।

विशाखयूप-एक पुण्यप्रद स्थान । यहाँ इन्द्र, वरुण आदि बहुत-से देवताओंने तप किया था (वन० ९० । १५) ।

विशाखा-सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक । जो इस नक्षत्रमें गाड़ी ढोनेवाले बैल, दूध देनेवाली गाय, धान्य, वस्त्र और प्रासङ्गसहित शकट दान करता है, वह देवताओं और पितरोंको तृप्त कर देता है तथा मृत्युके पश्चात् अक्षय सुखका भागी होता है । वह जीते-जी कभी संकटमें नहीं पड़ता और मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकमें जाता है (अनु० ६४ । २०) । विशाखामें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य यदि पुत्र चाहता हो तो वह बहुसंख्यक पुत्रोंसे सम्पन्न होता है (अनु० ८९ । ८) । चान्द्रव्रतमें विशाखाका दोनों भुजाओंमें स्थापन करके पूजन करनेका विधान है (अनु० ११० । ६) ।

विशालक-एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १६) ।

विशाला-(१) ये सोमवंशी महाराज अजमीढकी पत्नी थीं (आदि० ९५ । ३७) । (२) गय देशमें राजा गयके यज्ञमें प्रकट हुई सरस्वतीका नाम (शल्य० ३८ । २०-२१) ।

विशालापुरी-श्रीहरिकी पुण्यमयी पुरी, जो बदरीवनके निकट स्थित है । यह नर-नारायणका आश्रम है । इसे बदरिकाश्रम कहते हैं (वन० ९० । २४-२५) । विशालामें तर्पण करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है (अनु० २५ । ४४) । (विशेष देखिये बदरिका या बदरी)

विशालाक्ष-(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०१; आदि० ११६ । १०) । भीमसेनके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (भीष्म ८८ । १५—२६) । (२) विराटका छोटा भाई, जिसे मदिराक्ष भी कहते हैं (विराट० ३२ । १९) । (३) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) ।

विशालाक्षी-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ३) ।

विशिरा-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २९) ।

विशुण्डी-एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १६) ।

विशोक-(१) भीमसेनका सारथि (सभा० ३३ । ३०) । भीमसेनद्वारा युद्धमें दृढ़ रहनेका इसे आदेश (भीष्म० ६४ । १४) । धृष्टद्युम्नके पूछनेपर युद्धस्थलमें भीमसेनका पता बताना (भीष्म० ७७ । २१—२५) । भगदत्तके प्रहारसे मूर्च्छित होना (भीष्म० ९५ । ७६) । भीमसेनके साथ वार्तालाप (कर्ण० ७६ अध्याय) । (२) एक केकय-राजकुमार, जो कर्णद्वारा मारा गया था (द्रोण० ८२ । ३) ।

विशोका-(१) श्रीकृष्णकी एक पत्नी (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२०, कालम १) । (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ५) ।

विश्रवा-एक मुनि, जो कुबेरके पिता हैं (सभा० १० । २) । कुबेरसे रुष्ट हुए पुलस्त्यने स्वयं अपने आपको दूसरे रूपमें प्रकट किया । पुलस्त्यके आधे शरीरसे जो

दूसरा द्विज प्रकट हुआ, उसका नाम 'विश्रवा' हुआ (वन० २७४ । १३-१४) । कुबेरने पिता विश्रवाकी सेवाके लिये तीन सुन्दरी राक्षस—कन्याओंको नियुक्त किया था; जिनके नाम थे—पुष्पोत्कटा, राका तथा मालिनी (वन० २७५ । ३–५) । इनके द्वारा पुष्पोत्कटासे रावण और कुम्भकर्णका, राकासे खर और शूर्पणखाका तथा मालिनीसे विभीषणका जन्म हुआ (वन० २७५ । ७-८) ।

विश्रवा-आश्रम—आनर्तदेशकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, यहाँ नरवाहन कुबेरका जन्म हुआ था (वन० ८९ । ५) ।

विश्व—एक क्षत्रिय राजा, जो मयूर नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ३६) ।

विश्वकर्मा (त्वष्टा)—देवताओंके शिल्पी । आठवें वसु प्रभासके पुत्र । बृहस्पतिकी ब्रह्मवादिनी बहिन, जो योगमें तत्पर हो सम्पूर्ण जगत्में अनासक्तभावसे विचरती रहीं, इनकी माता थीं (आदि० ६६ । २६–२८) । इन्द्रप्रस्थ नगरके निर्माणके लिये इनको इन्द्रका आदेश तथा इनके द्वारा उस नगरका निर्माण (आदि० २०६ । २५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५९३-५९४) । ब्रह्माजीके आदेशसे इनके द्वारा तिलोत्तमाका निर्माण (आदि० २१० ११–१८) । ये एक महर्षिके रूपमें इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १४) । इन्होंने यमसभाका निर्माण किया है (सभा० ८ । ३४) । इन्होंने वरुणसभाको जलके भीतर रहकर बनाया है (सभा० ९ । २) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी सेवा करते हैं (सभा० ११ । ३१) । इन्होंने ब्रह्माजीके वनमें यज्ञ किया था (वन० ११४ । १७) । इनके द्वारा ही पुष्पक विमानका निर्माण हुआ है (वन० १६१ । ३७) । नल नामक वानर इनका पुत्र था (वन० २८३ । ४१) । अर्जुनके रथका ध्वज क्या था, विश्वकर्माकी बनायी हुई दिव्य माया थी (विराट० ४६ । ३-४) । इन्द्रके प्रति द्रोहबुद्धि होनेसे इन्होंने तीन शिरवाले एक पुत्रको उत्पन्न किया, जिसका नाम था विश्वरूप (उद्योग० ९ । ३-४) । विश्वरूपके मारे जानेपर इन्द्रसे बदला लेनेके लिये इन्होंने वृत्रासुरको उत्पन्न किया (उद्योग० ९ । ४५–४८) । इन्होंने इन्द्रके लिये विजयनामक धनुष बनाया था (कर्ण० ३१ । ४२) । त्रिपुरदाहके समय भगवान् शिवके लिये दिव्य रथका निर्माण इन्होंने ही किया था (कर्ण० ३४ । १६-१७) । (विशेष देखिये त्वष्टा)

विश्वकृत्—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६) ।

विश्वजित्—(१) बृहस्पतिके तृतीय पुत्र । ये समस्त विश्वको बुद्धिको अपने वशमें करके स्थित हैं; इसीलिये अध्यात्मशास्त्रके विद्वानोंने इन्हें विश्वजित् कहा है (वन० २१९ । १६) । (२) एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था, परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५३) ।

विश्वदंष्ट्र—एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था, परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२) ।

विश्वपति—मनु नामक अग्निके द्वितीय पुत्र । ये वेदोंमें सम्पूर्ण विश्वके पति कहे गये हैं । इनके प्रभावसे हविष्यकी आहुतिक्रिया सम्पन्न होती है; अतः ये स्विष्टकृत (उत्तम अभीष्टकी पूर्ति करनेवाले) कहे जाते हैं (वन० २२१ । १७-१८) ।

विश्वभुक्—(१) पाण्डवोंके रूपमें उत्पन्न होनेवाले पाँच इन्द्रोंमेंसे एक, शेष चारके नाम भूतधामा, शिबि, शान्ति और तेजस्वी था (आदि० १९६ । २९) । (२) बृहस्पतिके चौथे पुत्र । ये समस्त प्राणियोंके उदरमें स्थित हो उनके खाये हुए पदार्थोंको पचाते हैं । पाकयज्ञोंमें इन्हींकी पूजा होती है । इनकी पत्नी गोमती नदी है (वन० २१९ । १७–१९) ।

विश्वरुचि—एक गन्धर्वराज, जो पृथ्वीदोहनके समय दोग्धा बने थे (द्रोण० ६९ । २५) ।

विश्वरूप—(१) एक राक्षस, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १४) । (२) त्रिशिरा, जो त्वष्टाके पुत्र तथा देवताओंके पुरोहित थे । ये असुरोंके भानजे लगते थे; अतः देवताओंको प्रत्यक्ष और असुरोंको परोक्षरूपसे यज्ञोंका भाग दिया करते थे (उद्योग० ९ । ३-४; शान्ति० ३४२ । २८) । इनको लुभानेके लिये अप्सराओंका आना, इनका उनके प्रति आसक्त होना और अप्सराको इन्द्रमें अनुरक्त जान इन्द्र आदि देवताओंके अभावके लिये संकल्प करके मन्त्रोंका जप करना (शान्ति० ३४२ । ३२–३४) । ये अपने एक मुखसे संसारके सारे क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञोंमें होमे गये सोमरसको पी लेते थे, दूसरेसे अन्न खाते और तीसरेसे इन्द्रादि देवताओंके तेजको पी लेते थे (शान्ति० ३४२ । ३४) । इन्द्रद्वारा इनका वध (शान्ति० ३४२ । ४१) । (विशेष देखिये त्रिशिरा)

विश्वा—दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री (आदि० ३५ । १२) ।

विश्वाची—एक अप्सरा, जिसकी गणना छः प्रधान अप्सराओंमें है (आदि० ७४ । ६८) । इसके साथ राजा ययातिका विहार (आदि० ७५ । ४८; आदि० ८५ । ९) । इसने अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें गान किया था

आचार्यपुत्र अश्वत्थामा

(आदि० १२२ । ६५) । यह कुबेरकी सभामें आकर उनकी सेवामें उपस्थित रहती है (सभा० १० । ११) ।

विश्वामित्र–(१) एक तपस्वी महर्षि, जिन्होंने अपनी तपस्यासे इन्द्रको संतप्त कर दिया था (आदि० ७१ । २०) । इन्होंने मतङ्ग ऋषिका यज्ञ कराया तथा महर्षि वसिष्ठका उनके प्यारे पुत्रोंसे सदाके लिये वियोग करा दिया और क्षत्रिय होकर भी ये तपोबलसे ब्राह्मणभावको प्राप्त हो गये । अपने शौच-स्नानकी सुविधाके लिये इनके द्वारा कौशिकी नदीका निर्माण किया गया और इन्हींके द्वारा त्रिशङ्कुको स्वर्गलाभ हुआ (आदि० ७१ । २७—३९) । इन्होंने मेनकाके गर्भसे शकुन्तलाको जन्म दिया (आदि० ७२ । १—९) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५१) । ये कान्यकुब्ज देशके अधिपति कुशिककुमार महाराज गाधिके पुत्र थे (आदि० १७४ । ३-४) । वसिष्ठके आश्रमपर इनका आगमन (आदि० १७४ । ६) । नन्दिनी (धेनु) के प्रतापसे मुनिवर वसिष्ठद्वारा इनका भव्य स्वागत (आदि० १७४ । ८—१२) । नन्दिनीके लिये इनकी वसिष्ठसे याचना (आदि० १७४ । १६) । इनके द्वारा वसिष्ठकी कामधेनुका अपहरण (आदि० १७४ । २२) । नन्दिनीद्वारा इनकी समस्त सेनाओंकी पराजय (आदि० १७४ । ३२-४३) । इनके द्वारा वसिष्ठपर विभिन्न अस्त्रोंका प्रहार (आदि० १७४ । ४३ के बाद दा० पाठ) । वसिष्ठके ब्रह्मतेजसे पराजित होकर इनके द्वारा क्षात्रबलको धिक्कार (आदि० १७४ । ४४-४५) । उग्र तपस्याके बलसे इनको ब्राह्मणत्वका लाभ (आदि० १७४ । ४८) । इनकी प्रेरणासे शापग्रस्त कल्माषपादके शरीरमें किङ्कर नामक राक्षसका आवेश (आदि० १७५ । २१) । इनकी प्रेरणासे राक्षसभावापन्न कल्माषपादद्वारा वसिष्ठके समस्त पुत्रोंका संहार (आदि० १७५ । ४१) । ये कौशिकीके तटपर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए (वन० ८७ । १३) । इन्होंने उत्पलावनमें अपने पुत्रके साथ यज्ञ किया (वन० ८७ । १५) । कान्यकुब्ज देशमें इन्द्रके साथ सोमपान किया । वहीं ये क्षत्रियत्वसे ऊपर उठ गये और अपनेको ब्राह्मण घोषित किया (वन० ८७ । १७) । इन्होंने कौशिकीके तटपर तपस्या की थी (वन० ११० । २०) । इनके द्वारा स्कन्दके तेरह संस्कार सम्पन्न हुए (वन० २२६ । १३) । इनका ऋषि-पत्नियोंको निरपराध घोषित करना (वन० २२६ । १६) । ये वसिष्ठरूपधारी धर्मका भोजन सिरपर रखकर सौ वर्षोंतक उनकी प्रतीक्षामें खड़े रहे (उद्योग० १०६ । ८—२१) । इन्होंने गालवके हठसे गुरु-दक्षिणामें उनसे आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे (उद्योग० १०६ । २७) । गालवसे गुरु-दक्षिणाके लिये तकाजा किया (उद्योग० ११३ । २०-२१) । गालवसे छः सौ घोड़े और माधवीको गुरुदक्षिणारूपमें ग्रहण करना (उद्योग० ११९ । १७) । माधवीके गर्भसे अष्टक नामक पुत्रकी प्राप्ति (उद्योग० ११९ । १८) । इनका द्रोणाचार्यके पास आकर युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५—४०) । इनकी ब्राह्मणत्व-प्राप्तिकी कथाका वर्णन (शल्य० ४० । १२—३०) । इनके द्वारा सरस्वती नदीको शाप (शल्य० ४२ । ३८-३९) । इनके जन्मका प्रसङ्ग (शान्ति० ४९ । ३०) । भूखसे व्याकुल होकर इनका एक चाण्डालके घरमें कुत्तेकी जाँघकी चोरीके लिये घुसना (शान्ति० १४१ । ४३) । चाण्डालके साथ संवाद (शान्ति० १४१ । ४५—९१) । मांस पकाकर देवताओं और पितरोंको संतुष्ट करनेपर उन्हींकी कृपासे इन्हें पवित्र भोजनकी प्राप्ति (शान्ति० १४१ । ९९) । ये उत्तर दिशाके ऋषि हैं (शान्ति० २०८ । ३३-३४) । युधिष्ठिरद्वारा इनके प्रभावका वर्णन (अनु० ३ अध्याय) । इनके जन्मकी कथा तथा इनके पुत्रोंके नाम (अनु० ४ अध्याय) । शिव-महिमाके विषयमें इनका युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । १६) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये गये थे (अनु० २६ । ५) । वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४३) । अरुन्धतीसे अपनी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६३) । यातुधानीसे अपने नामका अभिप्राय बताना (अनु० ९३ । ९२) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२४—१२६) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । ३३) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२६ । ३५-३७) । साम्बके पेटसे वृष्णि-अन्धकवंशविनाशक मूसल पैदा होनेका शाप देनेवाले ऋषियोंमें ये भी थे (मौसल० १ । १५—२१) । (२) कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १३९) ।

विश्वामित्रा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६) ।

विश्वामित्राश्रम–कौशिकी नदीके पटपर अवस्थित विश्वामित्र मुनिका आश्रम (वन० ११० । २२) ।

विश्वायु–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

विश्वावसु–(१) गन्धर्वराज । इनके द्वारा मेनकाके गर्भसे प्रमद्वराकी उत्पत्तिकी कथा (आदि० ८ । ६–१३) । ये

देवगन्धर्व हैं। इनके पिताका नाम कश्यप और माताका प्राधा है (आदि० ६५ । ४७) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५२) । इन्होंने सोमसे चाक्षुषी विद्या सीखी और स्वयं चित्ररथको सिखायी (आदि० १६९ । ४३) । ये द्रौपदीका स्वयंवर देखने आये थे (आदि० १८६ । ७) । ये इन्द्रसभामें रहकर देवराजकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । २२) । कुबेरसभामें उपस्थित हो धनाध्यक्ष कुबेरकी सेवा करते हैं (सभा० १० । २५) । इनका जमदग्निकी यज्ञ-दीक्षामें श्लोक-गान (वन० ९० । १८) । ये शापवश कबन्ध नामक राक्षस हो गये थे और भगवान् श्रीरामद्वारा इनका उद्धार हुआ था (वन० २७९ । ३१—४३) । राजा दिलीपके यज्ञमें ये वीणा बजाया करते थे (द्रोण० ६१ । ७; शान्ति० २९ । ७५-७६) । महर्षि याज्ञवल्क्यसे चौबीस प्रश्न करना और उनका समाधान हो जानेपर स्वर्ग लौट जाना (शान्ति० ३१८ । २६—८४) ।

महाभारतमें आये हुए विश्वावसुके नाम—गन्धर्व, गन्धर्वराज, गन्धर्वेन्द्र, काश्यप आदि ।

(२) जमदग्निके पाँच पुत्रोंमेंसे एक । इनकी माता रेणुका थीं । शेष चार भाइयोंके नाम हैं—रुमण्वान्, सुषेण, वसु और परशुराम । पिताकी मातृवधसम्बन्धी आज्ञा न माननेसे इन्हें पिताद्वारा शाप प्राप्त हुआ (वन० ११६ । १०—१२) । परशुराम-द्वारा इनका शापसे उद्धार हुआ (वन० ११६ । १७) ।

विश्वेदेव—(१) देवताओंका एक गण, जो इसी नामसे प्रसिद्ध है । सनातन विश्वेदेवोंके नाम (अनु० ९१ । ३०—३७) । (२) एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३३) ।

विष्कर—एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५३) ।

विष्णु—(१) ये वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुए (आदि० ६३ । ९९—१०४) । बारह आदित्योंमें सबसे कनिष्ठ, किंतु गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ (आदि० ६५ । १६) । इन्होंने वरदानतीर्थमें दुर्वासाको दर्शन दिया (वन० ८२ । ७५) । देवताओंद्वारा इनका स्तवन (वन० १०२ । २०—२६) । इनका समुद्र सोखनेके लिये अगस्त्यके पास देवताओंको भेजना (वन० १०३ । ११) । ये कृतयुगमें श्वेत, त्रेतामें लाल, द्वापरमें पीत तथा कलियुगमें कृष्ण वर्णके हो जाते हैं (वन० १४९ । १७—३४) । उत्तङ्कद्वारा इनकी स्तुति (वन० २०१ । १४—२४) । इन्होंने पृथ्वीके उद्धारके लिये जो यज्ञ-वाराह रूप धारण किया था, वह सौ योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा था (वन० २७२ । ५१—५५) । इनके नृसिंह-अवतारका वर्णन (वन० २७२ । ५६—६१) । इनके वामन अवतारका वर्णन (वन० २७२ । ६२—७०) । ये ही यदुकुलमें श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुए, इनकी महिमाका वर्णन (वन० २७२ । ७१—७७) । देवताओंद्वारा इनकी स्तुति (उद्योग० १० । ६-८) । सुमुख नागकी रक्षाके लिये गरुडका गर्व नाश करना (उद्योग० १०५ । १९—३१) । क्षीरसागरके उत्तर तटपर इनके निवास-स्थान, स्वरूप और महिमा आदिका वर्णन (भीष्म० ८ । १५-१८) । ब्रह्माद्वारा इनका स्तवन (भीष्म० ६५ । ४७—७५) । त्रिपुर-दाहके समय भगवान् शिवने इन्हें अपना बाण बनाया (द्रोण० २०२ । ७७; कर्ण० ३४ । ४९) । इनके द्वारा स्कन्दको चक्र, विक्रम और संक्रम नामक तीन पार्षदोंका दान (शल्य० ४५ । ३७) । इनके द्वारा स्कन्दको वैजयन्ती माला और दो निर्मल वस्त्रका दान (शल्य० ४६ । ४९) । इनका पृथ्वीको आश्वासन (स्त्री० ८ । २५—२९) । इन्होंने एक मानस पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विरजा था (शान्ति० ५९ । ८७-८८) । इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाताका संवाद (शान्ति० ६५ अध्याय) । भगवान् शिवने इन्हें दण्ड नामक अस्त्र समर्पित किया और इन्होंने उसे अङ्गिराको दिया (शान्ति० १२२ । ३६-३७) । भगवान् रुद्रद्वारा इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने उसे मरीचिको प्रदान किया (शान्ति० १६६ । ६६) । इनका वाराह अवतार धारण करके देवताओंके दुःखका नाश करना (शान्ति० २०९ । १६—३०) । नारदको आश्वासन देना (शान्ति० २०९ । ३६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ४९५७) । वामनरूपसे इन्होंने तीन पगोंमें ही पृथ्वीको नाप लिया था (शान्ति० २२७ । ७-८) । प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुकी पूजाका विशेष माहात्म्य (अनु० १०९ अध्याय) । इन्द्रको धर्मोपदेश (अनु० १२६ । ११—१६) । इनके द्वारा धर्मके माहात्म्यका वर्णन (अनु० १३४ । ८—१४) । इनके सहस्र नामोंका वर्णन (अनु० १४९ अध्याय) । (विशेष देखिये नारायण) (२) भानु (मनु) अग्निके तीसरे पुत्र । इनका दूसरा नाम 'धृतिमान्' है । ये अङ्गिरागोत्रिय माने गये हैं । दर्श-पौर्णमास नामक यज्ञोंमें इन्हींमें हविष्यका समर्पण होता है (वन० २२१ । १२) ।

विष्णुधर्मा—गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) ।

विष्णुपदतीर्थ—एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके वामन भगवान्‌की पूजा करनेवाला मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है (वन० ८३ । १०३-१०४) । यह प्रभासतीर्थके बाद

पड़ता है और विपाशा नदीके तटपर स्थित है (वन० १३० । ८-९) । स्वप्नमें शिवजीके पास श्रीकृष्णसहित जाते हुए अर्जुनको विष्णुपदतीर्थ मिला था (द्रोण० ८० । ३५-३६) ।

विष्णुयशा–युगान्तके समय कालकी प्रेरणासे सम्भल नामक ग्राममें किसी ब्राह्मणके यहाँ एक महान् शक्तिशाली बालक प्रकट होगा, जिसका नाम होगा 'विष्णुयशा' कल्की । वह महान् बुद्धि एवं पराक्रमसे सम्पन्न, महात्मा, सदाचारी तथा प्रजावर्गका हितैषी होगा (वह बालक ही भगवान्का कल्की अवतार कहलायेगा) । मनके द्वारा चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे । वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा । वह उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण दुःखसे व्याप्त हुए इस जगत्को आनन्द प्रदान करेगा । कलियुगका अन्त करनेके लिये ही उसका प्रादुर्भाव होगा । वही सम्पूर्ण कलियुगका संहार करके नूतन सत्ययुगका प्रवर्तक होगा । वह ब्राह्मणोंसे घिरा हुआ सर्वत्र विचरेगा और भूमण्डलमें सर्वत्र फैले हुए नीच स्वभाववाले सम्पूर्ण म्लेच्छोंका संहार कर डालेगा (वन० १९० । ९३—९७) । उस समय चोर, डाकुओं एवं म्लेच्छोंका विनाश करके भगवान् कल्की अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे और उसमें यह सारी पृथ्वी विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको दे डालेंगे । उनका यश तथा कर्म सभी परम पावन है । ये ब्रह्माजीकी चलायी हुई मङ्गलमयी मर्यादाओंकी स्थापना करके (तपस्याके लिये) रमणीय वनमें प्रवेश करेंगे । फिर इस जगत्के निवासी मनुष्य उनके शील-स्वभावका अनुकरण करेंगे । द्विजश्रेष्ठ कल्की सदा दस्युवधमें तत्पर रहकर समस्त भूतलपर विचरते रहेंगे और अपने द्वारा जीते हुए देशोंमें काले मृगचर्म, शक्ति, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी स्थापना करते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा अपनी स्तुति सुनेंगे और स्वयं भी उन ब्राह्मण-शिरोमणियोंको यथोचित सम्मान देंगे । दस्युओंके नष्ट हो जानेपर अधर्मका भी नाश हो जायगा और धर्मकी वृद्धि होने लगेगी । इस प्रकार सत्ययुग आ जानेपर सब मनुष्य सत्यधर्मपरायण होंगे (वन० १९१ । १—७) ।

विष्वक्सेन–एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दा० पाठ) ।

विष्वगश्व–(१) एक प्राचीन नरेश, ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज पृथुके पुत्र थे । इनके पुत्रका नाम अद्रि था (आदि० १ । २३२; वन० २०२ । ३) । गोदान-महिमाके विषयमें इनकी ख्याति (अनु० ७६ । २५-२७) । मांस-भक्षणका निषेध करनेसे इन्हें परावर-तत्त्वका ज्ञान हो गया था (अनु० ११५ । ५८–६०) । (२) एक पुरुवंशीय राजा, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० २७ । १४) ।

विहङ्ग–ऐरावत-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १२) ।

विहव्य–गृत्समदवंशी वर्चाके पुत्र, जो वितत्यके पिता थे (अनु० ३० । ६१) ।

वीटा–जौके आकारकी बनी हुई काठकी मोटी गुल्ली, जो डंडेके सहारे खेलनेके काममें आती है । पाण्डवों और कौरवोंके खेलते समय वह वीटा कुएँमें गिर पड़ी थी, जिसे द्रोणाचार्यने सींकके बाणोंद्वारा निकाल दिया था (आदि० १३० । १७—२४) ।

वीतहव्य–शर्यातिवंशी वत्सके पुत्र, जिनका दूसरा नाम हैहय था (अनु० ३० । ५–७) । इनके पुत्रोंद्वारा काशी-नरेश हर्यश्वका वध (अनु० ३० । १०-११) । इनके उन पुत्रोंने सुदेवको भी मार डाला (अनु० ३० । १३-१४) । उन्हीं पुत्रोंद्वारा दिवोदासकी भी पराजय हुई (अनु० ३० । २१-२२) । काशीनरेश प्रतर्दनद्वारा इनके पुत्रोंका वध (अनु० ३० । ३८—४३) । इनका भागकर भृगुकी शरणमें जाना (अनु० ३० । ४५) । भृगुद्वारा इन्हें ब्राह्मणत्व प्रदान (अनु० ३० । ५७-५८) ।

वीति–एक अग्नि । जब दक्षिणाग्निका गार्हपत्य और आहवनीय—इन दो अग्नियोंसे संसर्ग हो जाय, तब मिट्टीके आठ पुरवोंमें संस्कारपूर्वक तैयार किये हुए पुरोडाशद्वारा इस अग्निमें आहुति देनी चाहिये (वन० २२१ । २५) ।

वीतिहोत्र–(१) एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३३) । (२) एक देश, जहाँके निवासी क्षत्रियोंका परशुरामजीने संहार किया था (द्रोण० ७० । १२-१३) ।

वीर–(१) कश्यपपत्नी दनायुके गर्भसे उत्पन्न एक असुर (आदि० ६५ । ३३) । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३) । (३) भरद्वाज नामक अग्निके द्वारा वीराके गर्भसे उत्पन्न । इन्हींको रथप्रभु, रथध्वान और कुम्भरेता भी कहते हैं । सोम देवताके साथ द्वितीय आज्यभाग इन्हींको प्राप्त होता है । इनके द्वारा सरयू नामक पत्नीके गर्भसे सिद्धि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (वन० २१९ । ९-११) । (४) पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, इनकी गणना विनायकोंमें है (वन० २२० । १३-१४) । (५) एक राजा जो कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें उपस्थित हुआ था (शान्ति० ४ । ७) ।

वीरक–एक देश, जिसके धर्म और आचार-विचार दूषित हैं। अतः यह त्याग देने योग्य है (कर्ण० ४४ । ४३)।

वीरकरा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारत वासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६)।

वीरकेतु–पाञ्चालराज द्रुपदका एक पुत्र। इसका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० १२२ । ३३—४१)।

वीरण–एक प्रजापति, जिन्हें सनत्कुमारजीद्वारा सात्वतधर्मकी प्राप्ति हुई थी और इन्होंने रैभ्यमुनिको इस धर्मका उपदेश दिया था (शान्ति० ३४८ । ४१-४२)।

वीरणक–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल गया था (आदि० ५७ । १८)।

वीरद्युम्न–एक प्राचीन नरेश, जिनके पुत्रका नाम भूरिद्युम्न था। जो वनमें खो गया था, जिनका अपने पुत्रकी खोजमें महर्षि तनुके पास जाकर आशाके विषयमें पूछना (शान्ति० १२७ । १४—२०)। आशाके विषयमें इन्हें तनु मुनिका उपदेश (शान्ति० १२८ अध्याय)।

वीरधन्वा–कौरवपक्षका एक त्रिगर्तदेशीय योद्धा, जो धृष्टकेतुका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा था (द्रोण० १०६ । १०)। इसका धृष्टकेतुके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० १०७ । ९—१८)।

वीरधर्मा–एक राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १६)।

वीरप्रमोक्ष–एक तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है (वन० ८४ । ५१)।

वीरबाहु–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३; आदि० ११६ । १२)। प्रथम दिनके युद्धमें उत्तरके साथ इसका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ७७-७८)। भीमसेनके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (भीष्म० ६४ । ३५-३६)। (२) चेदिदेशके राजा, जिनका विवाह दशार्णराज सुदामाकी पुत्रीसे हुआ था, जो दमयन्तीकी मौसी थी। वनमें राजा नल जब दमयन्तीको अकेली छोड़कर चले गये, उस समय दमयन्तीको उन्हींके राजमहलमें आश्रय मिला था। (वन० ६९ । १३—१५)।

वीरभद्र–एक शिवपार्षद, जो शंकरजीका मूर्तिमान् क्रोध ही था (शान्ति० २८४ । २९—३४)। इसका अपने रोमकूपोंसे रौम्यनामवाले गणेश्वरोंको प्रकट करना (शान्ति० २८४ । ३५)। इसके द्वारा दक्षयज्ञ-विध्वंस (शान्ति० २८४ । ३६–५०)। इसका दक्ष आदिके पूछनेपर अपना परिचय देना (शान्ति० २८४ । ५१–५५)।

वीरमती–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २५)।

वीरसेन–निषधदेशके राजा जो नलके पिता थे। ये धर्म और अर्थके तत्त्वज्ञ थे (वन० ५२ । ५५)। दमयन्तीद्वारा इनका परिचय दिया जाना (वन० ६४ । ४८)। इन्होंने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५)।

वीरा–(१) शंयुके पुत्र भरद्वाज नामक अग्निकी भार्या। इनके गर्भसे वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (वन० २१९ । ९)। (२) भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २२)।

वीराश्रम–वीराश्रमनिवासी कुमार कार्तिकेयके निकट जाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । १४५)।

वीरिणी–ये प्राचेतस दक्षकी पत्नी थीं। इनके गर्भसे एक हजार पुत्र तथा पचास कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं (आदि० ७५ । ६–८)।

वीरुधा–नागमाता सुरसाकी तीन पुत्रियोंमेंसे एक। इसकी दो बहिनोंका नाम था अनला और रुहा। यह लता, गुल्म, वल्ली आदिकी जननी हुई (आदि० ६६ । ७० के बाद, दा० पाठ)।

वीर्यवती–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ८)।

वीर्यवान्–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१)।

वृक–(१) एक राजा, जो द्रौपदीस्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८५ । १०)। यह कौरवोंकी ओरसे लड़ रहा था और किसी पर्वतीय नरेशद्वारा मारा गया था (कर्ण० २५ । १६-१७)। (२) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जिसका द्रोणाचार्यद्वारा वध हुआ था (द्रोण० २१ । १६)। (३) एक प्राचीन नरेश, जिसने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६३)।

वृक्षवासी-एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (सभा० १० । १८)।

वृजिनीवान्–ये मनुवंशी क्रोष्टाके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम उषङ्गु था (अनु० १४७ । २८-२९)।

वृत्त–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १०; उद्योग० १०३ । १४)।

वृत्र (वृत्रासुर)-कश्यपपत्नी दनायुके गर्भसे उत्पन्न एक असुर (आदि० ६५ । ३३) । यह राजा मणिमान्-के रूपमें इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४४) । इस महान् असुरके मस्तकपर प्रहार करनेमें वज्रके दस बड़े और सौ छोटे टुकड़े हो गये थे (आदि० १६९ । ५०) । वृत्रासुरको देवताओंपर चढ़ाई (वन० १०० । ४) । त्वष्टाकी अभिचाराग्निसे इसकी उत्पत्ति (उद्योग० ९ । ४८) । इसका इन्द्रको अपना ग्रास बना लेना (उद्योग० ९ । ५२) । महर्षियोंके समझानेसे इन्द्रके साथ शर्तपूर्वक संधि करना (उद्योग० १० । २७—३१) । इसका शुक्राचार्यके प्रश्नोंका उत्तर देना (शान्ति० २७९ । १३—३१) । सनत्कुमारजीके उप-देशका समर्थन करते हुए इसका परमधामको प्राप्त करना (शान्ति० २८० । ५७—५९) । इन्द्रके साथ इसका युद्ध (शान्ति० २८१ । १३—२१) । इन्द्रके वज्र-प्रहारसे इसके मारे जानेका वर्णन, जब वृत्रासुर ज्वरसे पीड़ित होकर जँभाई लेने लगा, उसी समय इन्द्रने वज्रका प्रहार किया और वह प्राण त्यागकर विष्णुलोकको चला गया (वन० १०१ । १५; उद्योग० १० । ३०; शान्ति० २८२ । ९; शान्ति० २८३ । ५९-६०) । इसके पञ्च-भूतोंको ग्रस्त करते हुए इन्द्रके शरीरमें प्रवेश करने और इन्द्रद्वारा मारे जानेका वर्णन (आश्व० ११ । ७—१९) ।

महाभारतमें आये हुए वृत्रासुरके नाम—असुर, असुर-श्रेष्ठ, असुरेन्द्र, दैत्य, दैत्यपति, दैत्येन्द्र, दानव, दानवेन्द्र, दितिज, सुरारि, त्वाष्ट्र, विश्वात्मा आदि ।

वृद्धकन्या—महर्षि कुणिगर्गकी पुत्री, जो बालब्रह्मचारिणी थी । इसकी घोर तपस्या (शल्य० ५२ । ५—१०) । नारदजीके कहनेसे इसका शृङ्गवान्‌के साथ आधा पुण्य प्रदान करनेकी प्रतिज्ञापूर्वक अपना विवाह करना (शल्य० ५२ । १२—१७) । महर्षि शृङ्गवान्‌के साथ एक रात रहकर और उन्हें अपनी तपस्याका आधा पुण्य प्रदान करके इसका स्वर्गगमन (शल्य० ५२ । १८—२१) । जाते समय उसने अपने स्थानको तीर्थ घोषित किया और उसका फल इस प्रकार बताया—'जो अपने चित्तको एकाग्र कर इस तीर्थमें स्नान और देवतर्पण करके एक रात निवास करेगा, उसे अट्ठावन वर्षोंतक विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करनेका फल प्राप्त होगा' (शल्य० ५२ । २१-२२) ।

वृद्धक्षत्र-(१) ये सिन्धुराज जयद्रथके पिता थे (वन० २६४ । ६) । जयद्रथके जन्म-समयमें आकाशवाणीद्वारा उसकी मृत्युका समाचार सुनकर इनका चिन्तित होना और अपने जाति-भाइयोंको बुलाकर उनके सामने 'मेरे पुत्रका सिर जो पृथ्वीपर गिरायेगा, उसके मस्तकके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे ।' यों जयद्रथको वरदान देना । पुनः अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बैठाकर स्वयं तपके लिये प्रस्थान करना (द्रोण० १४६ । १०६-११३) । अर्जुनके बाणद्वारा जयद्रथके मस्तकका इनकी गोदमें गिरना और मस्तकका इनकी गोदसे पृथ्वीपर गिरनेसे इनकी मृत्यु (द्रोण० १४६ । १२२—१३०) । (२) एक पूरुवंशी राजा, जो पाण्डवपक्षका योद्धा था । इसका अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उसके द्वारा वध (द्रोण० २०० । ७३-८४) ।

वृद्धक्षेम-त्रिगर्तदेशके राजा, जो सुशर्माके पिता थे (आदि० १८५ । ९) ।

वृद्धगार्ग्य-एक तपस्वी महर्षि; जिन्होंने पितरोंसे नीलवृषभ छोड़ने, वर्षा-ऋतुमें दीपदान करने और अमावास्याको तिलमिश्रित जलद्वारा तर्पण करनेसे प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें प्रश्न किया और पितरोंने इन्हें उसका वर्णन सुनाया (अनु० १२५ । ७७—८३) ।

वृद्धशर्मा-आयुके द्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमेंसे एक, शेष चारके नाम हैं—नहुष, रजि, गय और अनेना (आदि० ७५ । २५-२६) ।

वृद्धिका-वृक्षोंपर गिरे हुए शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न हुई नारियाँ, जो मनुष्यका मांस भक्षण करनेवाली हैं । संतान-की इच्छा रखनेवाले लोगोंको इनके सामने मस्तक झुकाना चाहिये (वन० २३१ । १६) ।

वृन्दारक-(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ८) । भाइयोंके साथ इसका भीमसेनपर आक्र-मण और उनके द्वारा वध (द्रोण० १२७ । ३३—६१) । (२) कौरवपक्षका एक योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया (द्रोण० ४७ । १२) ।

वृष-(१) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) । (२) एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो पूर्वकालमें पृथ्वीका शासक था; परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५१) ।

वृषक-(१) गान्धारराज सुबलका पुत्र, जो द्रौपदी-स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ५-६) । यह युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी उपस्थित था (सभा० ३४ । ७) । दुर्योधनकी सेनामें भीष्मद्वारा यह दुर्धर्ष रथी बताया गया है (उद्योग० १६८ । १) । अर्जुनके साथ युद्ध करते समय यह उनके हाथसे मारा गया (द्रोण० ३० । २—११) । व्यासजीके आह्वान करने-पर गङ्गाजलसे इसका प्रकट होना (आश्रम० ३२ । १२) । (२) एक राजकुमार, जो कलिङ्ग (कलिङ्गराजकुमार)

का भाई था । इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ५ । ३३) ।

वृषका-भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३५) ।

वृषक्राथ-कौरवपक्षका एक योद्धा, जो द्रोणाचार्यद्वारा निर्मित गरुडव्यूहके हृदयस्थानमें स्थित था (द्रोण० २० । १३) ।

वृषदंश-मन्दराचलके निकटका एक पर्वत, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिला था (द्रोण० ८० । ३३) ।

वृषदर्भ-(१) एक प्राचीन राजर्षि, जो यम-सभामें रहकर विवस्वान्-पुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २६) । अपने राज्यकालमें इनका अपना एक गुप्त नियम था कि 'ब्राह्मणको सोने और चाँदीका ही दान दिया जाय' (वन० १९६ । ३) । राजा सेन्दुकके कहनेसे एक ब्राह्मणका इनके पास आकर एक हजार घोड़े माँगना और इनका उस ब्राह्मणको कोड़ोंसे पीटना (वन० १९६ । ४-८) । ब्राह्मणके इस मारका रहस्य पूछनेपर उसे बताना और अपने राज्यकी एक दिनकी आयका उसके लिये दान करना (वन० १९६ । ९-१३) । (२) काशि या काशी जनपदके राजा उशीनर, जिन्होंने शरणागत कपोतकी रक्षा की थी (अनु० ३२ अध्याय) ।

वृषध्वज-प्रवीरवंशका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १६) ।

वृषपर्वा-(१) एक दानव, जो कश्यपद्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २४) । यह दीर्घप्रज्ञ नामक राजाके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १५-१६) । दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्य इसीके नगरमें रहते थे (आदि० ७६ । १३-१४) । इसकी कन्याका नाम शर्मिष्ठा था (आदि० ७८ । ६) । शुक्राचार्यसे अपने नगरमें रहनेके लिये इसकी करुण प्रार्थना (आदि० ८० । ७-८) । इसके प्रति इसकी पुत्री शर्मिष्ठाको आजीवन अपनी दासी बनानेके लिये देवयानीका अनुरोध (आदि० ८० । १६) । शर्मिष्ठाको बुलानेके लिये इसका धात्रीको भेजना (आदि० ८० । १७ के बाद, दा० पाठ) । (२) एक प्राचीन राजर्षि, जिनके आश्रमपर जानेके लिये आकाशवाणीद्वारा पाण्डवोंको आदेश मिला था (वन० १५६ । १५) । इनके द्वारा पाण्डवोंका स्वागत (वन० १५८ । २०-२३) । इनका पाण्डवोंको उपदेश देना (वन० १५८ । २४-२७) । पाण्डवोंके प्रस्थान करते समय इन्होंने उन्हें ब्राह्मणोंको सौंप दिया और स्वयं पाण्डवोंको आशीर्वाद दे मार्ग बताकर लौट आये (वन० १५८ । २८-२९) । पाण्डवोंका पुनः लौटकर वृषपर्वाके आश्रमपर आना और सत्कृत होना (वन० १७७ । ६-८) ।

वृषप्रस्थगिरि-एक तीर्थ, जहाँ तीर्थयात्राके समय पाण्डवोंने निवास किया था (वन० ९५ । ३) ।

वृषभ-(१) मगध-राजधानी गिरिव्रजके समीपका एक पर्वत (सभा० २१ । २) । (२) गान्धारराज सुबलका पुत्र, जो शकुनिका छोटा भाई था । इसने अपने अन्य पाँच भाइयोंके साथ इरावान्पर धावा किया था, जिसमें पाँच तो इरावान्द्वारा मारे गये; केवल यही बचा था (भीष्म० ९० । ३३-४७) ।

वृषभा-भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३२) ।

वृषभेक्षण-भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । इस नामकी निरुक्ति (उद्योग० ७० । ७) ।

वृषसेन-(१) एक प्राचीन राजा, जो यमसभामें रहकर वैवस्वत यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १३) । (२) युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आया हुआ एक अभिमानी नरेश (सभा० ४४ । २१-२२) । (३) कर्णका एक पुत्र, जो दुर्योधनकी सेनाका एक श्रेष्ठ रथी था (उद्योग० १६७ । २३) । शतानीक आदि द्रौपदीपुत्रोंके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १६ । १—१०) । इसका पाण्ड्यके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ५७) । अभिमन्युद्वारा इसका पराजित होना (द्रोण० ४४ । ५-७) । इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १६-१८) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १४५ । ४२-५८) । द्रुपदके साथ इसका संग्राम (द्रोण० १६५ । १३) । इसके द्वारा द्रुपदकी पराजय (द्रोण० १६८ । १९-२६) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १७० । ३७-३९) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर इसका युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १६) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० २०० । ५१-५३; कर्ण० ४८ । ४३-४५) । इसका नकुलके साथ युद्ध (कर्ण० ६१ । ३६-३९) । शतानीकके साथ इसकी मुठभेड़ (कर्ण० ७५ । ९-१०) । इसका नकुलके साथ घोर संग्राम और इसके द्वारा नकुलकी पराजय (कर्ण० ८४ । १९-३५) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (कर्ण० ८५ । ३५-३८) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजलसे निकलनेवाले वीरोंमें यह भी था (आश्रम० ३२ । १०) ।

वृषा-भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३५) ।

वृषाकपि-(१) भगवान् विष्णुका एक नाम। इस नामकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२। ८९)। (२) एक ऋषि, जो अन्य ऋषियोंके साथ देवताओंके यज्ञमें उपस्थित हुए थे (अनु० ६६। २३)। (३) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (अनु० १५०। १२-१३)।

वृषाण्ड-एक दैत्य, दानव या राक्षस, जो इस पृथ्वीका प्राचीन शासक था; किंतु कालसे पीड़ित हो इसे छोड़कर चल दिया (शान्ति० २२७। ५३)।

वृषादर्भि-(१) काशिराज वृषदर्भके पुत्र युवनाश्व, जो सब प्रकारके रत्न, अभीष्ट स्त्री और सुरम्य गृह दान करके स्वर्गलोकमें निवास करते हैं (शान्ति० २३४। २५; अनु० १३७। १०)। (२) वृषदर्भ (प्रथम) के पुत्र राजा वृषादर्भि; इनका सप्तर्षियोंको दान देनेके लिये उद्यत होना (अनु० ९३। २७—३०)। सप्तर्षियोंपर कुपित होकर इनके द्वारा कृत्या प्रकट करना (अनु० ९३। ५२-५३)। सप्तर्षियोंको मारनेके लिये कृत्याको भेजना (अनु० ९३। ५५-५६)।

वृषामित्र-एक ऋषि, जो युधिष्ठिरका विशेष आदर करते थे (वन० २६। २४)।

वृष्णि-एक यदुवंशी क्षत्रिय, इनके वंशज वृष्णि कहलाये (आदि० २१७। १८)। (इसी वंशमें भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए थे।)

वेगवान्-(१) धृतराष्ट्र-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७। १७)। (२) एक दानव, जो दनुका विख्यात पुत्र था (आदि० ६५। २४)। यह इस पृथ्वीपर केकयराजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। १०-११)। (३) एक दैत्य, जो शाल्वका अनुयायी था। जाम्बवतीपुत्र साम्बके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (वन० १६। १७-२०)।

वेगवाहिनी-एक नदी, जो वरुण-सभामें रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९। १८)।

वेणा-एक नदी, जो वरुणसभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९। १८)। दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर सहदेवने वेणातटवर्ती प्रदेशके स्वामीको पराजित किया था (सभा० ३१। ११)। वेणानदीके तटपर जाकर तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य मोर और हंसोंसे जुता हुआ विमान प्राप्त करता है। यह समस्त पापोंका नाश करनेवाली है (वन० ८५। ३२; वन० ८८। ३)। अग्निको उत्पन्न करनेवाली नदियोंमें इसकी भी गणना है (वन० २२२। २४-२६)। यह भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी है, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९। २०, २७)। इसका नाम सायं-प्रातः स्मरण करनेयोग्य है (अनु० १६५। २०)।

वेणासङ्गम-एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८५। ३४)।

वेणिका-शाकद्वीपकी एक पवित्र जलवाली नदी (भीष्म० ११। ३२)।

वेणी-कौरव्य-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७। १२-१३)।

वेणीस्कन्द-कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७। १२-१३)।

वेणुजङ्घ-एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४। १८)।

वेणुदारि-एक यादव, जिसने बभ्रु (अक्रूरजी) की भार्याका अपहरण किया था (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२५, कालम १)।

वेणुदारिसुत-एक यादव, जिसे दिग्विजयके अवसरपर कर्णने परास्त किया था (वन० २५४। १५-१६)।

वेणुप-एक भारतीय जनपद (उद्योग० १४०। २६)।

वेणुमण्डल-कुशद्वीपके सात वर्षोंमेंसे दूसरा वर्ष। इन सातों वर्षोंमें देवता, गन्धर्व और मनुष्य आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। इनमें किसीकी भी मृत्यु नहीं होती तथा यहाँ लुटेरे और म्लेच्छ जातिके लोग नहीं हैं (भीष्म० १२। १२—१५)।

वेणुमन्त-एक श्वेतवर्णका पर्वत, जो उत्तर भागमें मन्दराचलके सदृश विद्यमान था (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३, कालम १)।

वेणुवीणाधरा-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। २१)।

वेतसवन-एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ मृत्युने तपस्या की थी (द्रोण० ५४। २३)।

वेतसिका-ब्रह्माजीद्वारा सेवित एक तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और शुक्राचार्यके लोकमें जाता है (वन० ८४। ५६)।

वेतालजननी-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। १३)।

वेत्रकीयगृह–एकचक्रा नगरीके समीपवर्ती एक स्थानविशेष, जहाँ उस प्रदेशका राजा निवास करता था (आदि० १५९ । ९) ।

वेत्रकीयवन–एक वन, जहाँ भीमसेनने बकासुरको मारा था (वन० ११ । ३०-३१) ।

वेत्रवती–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १६, १९) ।

वेत्रिक–एक भारतीय जनपद । दुर्योधनने यहाँके सैनिकोंको भीष्मकी रक्षाके लिये भेजा था (भीष्म० ५१ । ७) ।

वेद–(१) ये आयोदधौम्य मुनिके एक शिष्य थे (आदि० ३ । ७८) । इनकी गुरुभक्तिका वर्णन (आदि० ३ । ७९) । इनको गुरुका आशीर्वाद प्राप्त होना (आदि० ३ । ८०) । इनके गार्हस्थ्यधर्मका वर्णन (आदि० ३ । ८१) । इनका जनमेजयका उपाध्याय होना (आदि० ३ । ८२) । परदेश जाते समय अपने शिष्य उत्तङ्कको घरकी सँभाल रखनेके लिये इनका आदेश (आदि० ३ । ८४) । इनका परदेशसे लौटनेपर उत्तङ्कके कार्य-विधानपर प्रसन्न होना और उन्हें आशीर्वाद देकर घर जानेके लिये आज्ञा देना (आदि० ३ । ८८-८९) । गुरु-दक्षिणाके लिये उत्तङ्कके आग्रह करनेपर उन्हें गुरुपत्नीके पास गुरुदक्षिणाकी वस्तु पूछनेके लिये भेजना (आदि० ३ । ९०—९४) । (२) भारतीय आर्योंके सर्वप्रधान और सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ, जो अप्रतिम ज्ञानके भंडार हैं । इनकी संख्या चार है—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद । ये सभी मूर्तिमान् हो ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित रहते हैं (सभा० ११ । ३२) ।

वेदवती–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १७) ।

वेदशिरा–एक प्राचीन ऋषि, जो उपरिचरवसुके यज्ञमें सदस्य बने थे (शान्ति० ३३६ । ८) ।

वेदस्मृता–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १७) ।

वेदाश्वा–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २८) ।

वेदी–ब्रह्माकी भार्या (उद्योग० ११७ । १०) ।

वेदीतीर्थ–(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८३ । ९९) । (२) एक परम दुर्गम तीर्थ, (जो सम्भवतः सिन्धुके उद्गमस्थानके निकट है ।) यहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८४ । ४७) ।

वेन–(१) वैवस्वत मनुके प्रथम दस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ७५ । १५-१७) । (२) मृत्युकी मानसी कन्या सुनीथाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा (शान्ति० ५९ । ९३) । ऋषियोंके शापसे इनकी मृत्यु (शान्ति० ५९ । ९४) । ऋषियोंद्वारा इनकी दाहिनी जाँघके मन्थनसे निषादों एवं विन्ध्यगिरिनिवासी लाखों म्लेच्छोंकी उत्पत्ति हुई (शान्ति० ५९ । ९५–९७) । दाहिने हाथके मन्थनसे पृथु उत्पन्न हुए (शान्ति० ५९ । ९८) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १५) ।

वेहत–एक पुष्टिकरी ओषधि (वन० १९७ । १७) ।

वैकर्तन–अपने शरीरसे कवचके कतर डालनेके कारण कर्णका नाम वैकर्तन हो गया (आदि० ११० । ३१) । (विशेष देखिये कर्ण)

वैकुण्ठ–पाँचों भूतोंको मिलानेमें जिसकी शक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती, वे भगवान् वैकुण्ठ कहलाते हैं (शान्ति० ३४२ । ८०) ।

वैजयन्त–(१) इन्द्रके ध्वजका नाम (वन० ४२ । ८) । (२) क्षीरसागरके मध्यभागमें स्थित एक पर्वत, जहाँ अध्यात्मगतिका चिन्तन करनेके लिये ब्रह्माजी प्रतिदिन आते हैं (शान्ति० ३५० । ९-१०) ।

वैजयन्ती–(१) ऐरावतके दो घण्टोंका नाम, जिन्हें इन्द्रने स्कन्दको अर्पण किया था । उनमेंसे एक विशाखने ले लिया और दूसरा स्कन्दके पास रहा (वन० २३१ । १८-१९) ।

वैदूर्यपर्वत–शूर्पारक क्षेत्रमें गोकर्णतीर्थके पास स्थित एक पर्वत, जो शिवस्वरूप माना जाता है । इसीपर अगस्त्यजीका आश्रम है । वैदूर्यपर्वतका दर्शन करके नर्मदामें उतरनेसे मनुष्य देवताओं तथा पुण्यात्मा राजाओंके समान पवित्र लोकोंको प्राप्त करता है । यह पर्वत त्रेता और द्वापरकी संधिमें प्रकट हुआ था (वन० ८८ । १८; वन० १२१ । १९-२०) ।

वैतरणी–(१) भागीरथी गङ्गा ही जब पितृलोकमें बहती हैं, तब उनका नाम वैतरणी होता है । वहाँ पापियोंके लिये इनके पार जाना अत्यन्त कठिन होता है (आदि० १६९ । २२) । (२) एक नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । २०) । यह सब पापोंको छुड़ानेवाली है, इसमें विरजतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है (वन० ८५ । ६) । यह भारतकी उन प्रसिद्ध नदियोंमेंसे है, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । ३४) ।

वैताली–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७) ।

वैदर्भी–राजा सगरकी एक पत्नी, जिनसे साठ हजार पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई थी (वन० १०६ । १७–२३) ।

वैदेह–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५७) । (विशेष देखिये विदेह) ।

वैनतेय–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १०) ।

वैमानिक–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके दिव्य लोकमें जाता है और इच्छानुसार विचरता है (अनु० २५ । २३) ।

वैमित्रा–सात शिशुमाताओंमेंसे एक । शेष छःके नाम हैं— काकी, हलिमा, मालिनी, बृहता, आर्या और पलाला (वन० २२८ । १०) ।

वैराज–सात पितरोंमेंसे एक । शेष छःके नाम हैं— अग्निष्वात्त, सोमपा, गार्हपत्य, एकशृङ्ग, चतुर्वेद और कल । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४६) ।

वैराट–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, जो भीमसेनद्वारा मारा गया था (भीष्म० ९६ । २६) ।

वैराम–एक प्राचीन जातिका नाम, इस जातिके लोग नाना प्रकारके रत्न और भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री लेकर युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये थे (सभा० ५१ । १२) ।

वैवस्वत तीर्थ–एक पुण्यमय तीर्थ, यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वयं तीर्थरूप हो जाता है (अनु० २५ । ३९) ।

वैवस्वत मनु–चौदह मनुओंमें ये सातवें मनु हैं (आदि० ७५ । १) । (विशेष देखिये मनु) ।

वैवाहिकपर्व–(१) आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १९२ से १९८ तक) । (२) विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ७० से ७२ तक) ।

वैशम्पायन–महर्षि वेदव्यासके शिष्य, जिन्होंने महाराज जनमेजयको महाभारतकी कथा सुनायी थी (आदि० १ । २०-२१, ९८) । जनमेजयको महाभारतकी कथा सुनानेके लिये इनको गुरुदेव व्यासकी प्रेरणा प्राप्त होना (आदि० ६० । २२) । इनके द्वारा महाभारत ग्रन्थकी महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन (आदि० ६२ । १२—५३) । ये अज्ञानवश किसी समय ब्राह्मणका वध करनेके कारण बालवधके पापसे लिप्त हो गये थे तो भी स्वर्ग चले गये (अनु० ६ । ३७) ।

वैशाख–(बारह महीनोंमेंसे एक, जिस मासकी पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्रका योग होता है, उसे वैशाख कहते हैं । यह चैत्रके बाद और ज्येष्ठके पहले आता है ।) जो स्त्री या पुरुष इन्द्रिय-संयमपूर्वक एक समय भोजन करके वैशाख मासको बिताता है, वह सजातीय बन्धु-बान्धवोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त होता है (अनु० १०६ । २४) । वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको उपवासपूर्वक भगवान् मधुसूदनका पूजन करनेवाला पुरुष अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और सोमलोकमें जाता है (अनु० १०९ । ८) ।

वैशालाक्ष–ब्रह्माका नीति-शास्त्र, जो विशालाक्ष भगवान् शिवद्वारा संक्षिप्त किये जानेके कारण वैशालाक्ष कहलाता है (शान्ति० ५९ । ८२) ।

वैश्रवण–कुबेरका एक नाम (आदि० १९८ । ६) । (देखिये कुबेर)

वैश्वानर–(१) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८) । (२) भानु (मनु) नामक अग्निके प्रथम पुत्र । चातुर्मास्य यज्ञोंमें हविष्यद्वारा पर्जन्यसहित इनकी पूजा की जाती है (वन० २२१ । १६) ।

वैष्णवधर्मपर्व–आश्वमेधिकपर्वका एक अवान्तर पर्व, जो दाक्षिणात्य पाठसे लिया गया है (अध्याय ९२ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६३०७ से ६३७८ तक) ।

वैहायस–नर-नारायणाश्रमके समीपवर्ती एक कुण्ड (शान्ति० १२७ । ३) ।

व्यश्व–एक राजा, जो यम-सभामें रहकर वैवस्वत यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १२) ।

व्याघ्रकेतु–पाण्डवपक्षका एक पाञ्चाल योद्धा, जो कर्णद्वारा घायल किया गया था (कर्ण० ५६ । ४४–४८) ।

व्याघ्रदत्त–(१) पाण्डवपक्षका एक राजा, जिसकी गणना श्रेष्ठ रथियोंमें की गयी थी (उद्योग० १७१ । १९) । द्रोणाचार्यके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (द्रोण० १६ । ३२–३७) । इसके घोड़ोंकी चर्चा– गदहेके समान मलिन और अरुण वर्णवाले तथा पृष्ठ भागमें चूहेके समान श्याम-मलिन कान्तिवाले विनीत घोड़े व्याघ्रदत्तको युद्ध-मैदानमें ले गये थे (द्रोण० २३ । ५४) । विकर्णद्वारा इसके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । १६-१७) । (२) मगध देशका एक राजकुमार, जो कौरवपक्षका योद्धा था । इसका सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० १०६ । १४) । सात्यकिके साथ संग्राम करते हुए इसका उनके द्वारा वध (द्रोण० १०७ । ३१–३३) ।

व्याघ्रपाद–एक प्राचीन ऋषि, जो उपमन्युके पिता थे (अनु० १४ । ४५) ।

व्याघ्राक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५९) ।

व्यास—एक महर्षि, जिनको नमस्कार कर लेनेके पश्चात् जय (महाभारत एवं इतिहास-पुराण आदि) के पाठका विधान है। इन्हें कृष्णद्वैपायन कहते हैं (आदि० १। मङ्गलाचरण)। राजर्षि जनमेजयके सर्पसत्रमें वैशम्पायनद्वारा श्रीकृष्णद्वैपायनकथित महाभारतकी विचित्र, विविध एवं पुण्यमयी कथाएँ सुनायी गयी थीं (आदि० १। ९-११)। इनकी बनायी हुई महाभारतसंहिता सब शास्त्रोंके अभिप्रायके अनुकूल वेदार्थोंसे भूषित तथा चारों वेदोंके भावोंसे संयुक्त है (आदि० १। १७-२१)। हिमालयकी पवित्र तलहटीमें पर्वतीय गुफाके भीतर स्नान आदिसे पवित्र हो कुशासनपर बैठकर ध्यानयोगमें स्थित हो इन्होंने धर्मपूर्वक महाभारत इतिहासके स्वरूपका विचार करते हुए ज्ञानदृष्टिद्वारा आदिसे अन्ततक सब कुछ प्रत्यक्षकी भाँति देखा (आदि० १। २८ के बाद दा० पाठ; २९—४९)। इन्होंने तपस्या एवं ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे सनातन वेदका विस्तार करके लोकपावन पवित्र इतिहासकी रचना की (आदि० १। ५४)। ये पराशरमुनिके पुत्र और द्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतधारी, निग्रहानुग्रहसमर्थ एवं सर्वज्ञ हैं। इन्होंने महाभारतकी रचना करके यह विचार किया कि अब मैं शिष्योंको इस ग्रन्थका अध्ययन कैसे कराऊँ। इनके इस विचारको जानकर लोकगुरु भगवान् ब्रह्मा लोककल्याणकी कामनासे स्वयं इनके आश्रमपर पधारे। इन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके उन्हें श्रेष्ठ आसनपर बैठाया। उनकी परिक्रमा की और उनके आसनके पास ही ये हाथ जोड़कर खड़े हो गये; फिर ब्रह्माजीकी आज्ञासे बैठकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—'भगवन्! मैंने एक महाकाव्यकी रचना की है। इसमें सम्पूर्ण वेदोंका गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार संकलित हुआ है; परंतु इसके लिये कोई लेखक नहीं मिलता।' ब्रह्माजीने इनके काव्यकी प्रशंसा करके इन्हें गणेश-स्मरणकी आज्ञा दी और स्वयं अपने धामको चले गये (आदि० १। ५५-७४)। इन्होंने गणेशजीका स्मरण किया और वे आ गये। व्यासजीने उनसे लेखक बननेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा, 'यदि लिखते समय मेरी लेखनी क्षणभर भी न रुके तो मैं लेखक हो सकता हूँ।' व्यासजीने कहा—'ऐसा ही होगा; किंतु आप भी बिना समझे एक अक्षर भी न लिखें।' कहते हैं, इन्होंने महाभारतमें आठ हजार आठ सौ श्लोक ऐसे रचे हैं, जिनका अर्थ ये तथा शुकदेवजी ही ठीक-ठीक समझते हैं। गणेशजी सर्वज्ञ होनेपर भी जब क्षणभर ऐसे श्लोकोंपर विचार करने लगते तबतक व्यासजी और भी बहुत-से श्लोकोंकी रचना कर डालते थे (आदि० १। ७५-८३)। इन्होंने माता सत्यवती तथा परम ज्ञानी गङ्गापुत्र भीष्मकी आज्ञासे विचित्रवीर्यकी पत्नियोंके गर्भसे तीन अग्नियोंके समान तीन तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम थे—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। इन सबके परलोकवासी हो जानेके बाद व्यासजीने मनुष्यलोकमें महाभारतका प्रवचन किया। जनमेजय तथा सहस्रों ब्राह्मणोंके प्रश्न करनेपर उन्होंने अपने शिष्य वैशम्पायनको आज्ञा दी थी कि तुम इन्हें महाभारतकी कथा सुनाओ (आदि० १। ८४-९९)। इन्होंने उपाख्यानोंसहित जो आद्यभारत या महाभारत बनाया था, वह एक लाख श्लोकोंका है। फिर इन्होंने उपाख्यानभागको छोड़कर चौबीस हजार श्लोकोंकी एक संहिता बनायी, जिसे विद्वान् पुरुष 'भारत' कहते हैं। इन्होंने सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेवको महाभारत ग्रन्थका अध्ययन कराया। फिर दूसरे-दूसरे सुयोग्य शिष्योंको इसका उपदेश दिया। तत्पश्चात् भगवान् व्यासने साठ लाख श्लोकोंकी दूसरी संहिता बनायी। उसके तीस लाख श्लोक देवलोकमें समादृत हो रहे हैं। पितृलोकमें पंद्रह लाख तथा गन्धर्वलोकमें चौदह लाख श्लोकोंका पाठ होता है। शेष रहे एक लाख श्लोक। उन्हींको आद्य भारत या महाभारत कहते हैं। मनुष्यलोकमें ये ही प्रतिष्ठित हैं। देवताओंको देवर्षि नारदने, पितरोंको असित देवलने, गन्धर्वोंको शुकदेवजीने और मनुष्योंको वैशम्पायनजीने महाभारत-संहिता सुनायी थी (आदि० १। १०१-१०९)। पुत्र और शिष्योंसहित भगवान् वेदव्यास जनमेजयके सर्पयज्ञमें सदस्य बने थे (आदि० ५३। ७-१०)। आस्तीकने जनमेजयके यज्ञको सत्यवतीनन्दन व्यासके यज्ञके समान बताया (आदि० ५५। ७)। यज्ञकर्मसे अवकाश मिलनेपर व्यासदेवजी अति विचित्र महाभारतकी कथा सुनाया करते थे (आदि० ५९। ५)। इन्हें 'सत्यवती' अथवा 'काली'ने कन्यावस्थामें ही पराशर मुनिसे यमुनाजीके द्वीपमें उत्पन्न किया था। ये पाण्डवोंके पितामह थे। इन्होंने जन्म लेते ही अपनी इच्छासे शरीरको बढ़ा लिया था। इनको स्वतः ही अङ्गों और इतिहासोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका तथा परमात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो गया था। ये वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इन्होंने एक ही वेदको चार भागोंमें विभक्त किया है। ब्रह्मर्षि व्यासजी परब्रह्म और अपरब्रह्मके ज्ञाता, कवि (त्रिकालदर्शी), सत्यव्रतपरायण तथा परम पवित्र हैं। इन्होंने ही शान्तनुकी संतानपरम्पराका विस्तार करनेके लिये धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुरको जन्म दिया था। ये जनमेजयके यज्ञमण्डपमें पधारे। राजा जनमेजयने सेवकोंसहित उठकर इनकी अगवानी की। इन्हें सोनेके सिंहासनपर बिठाकर इनका पूजन किया और कुशलप्रश्नके पश्चात् इनसे महाभारत-युद्धका वृत्तान्त पूछा। तब इन्होंने अपने पास बैठे हुए शिष्य वैशम्पायनको वह सारा प्रसंग सुनानेकी आज्ञा दी (आदि० ६०। १—२२)। वैशम्पायनने गुरुदेव व्यासको नमस्कार करके कथा प्रारम्भ की

(आदि० ६१ । १-२) । व्यासजीके कहे हुए इस पञ्चम वेदरूप महाभारतको 'कार्ष्णवेद' कहते हैं । जो इसका श्रवण कराता है, उसे अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है । यह जय नामक इतिहास है । इसकी महिमाका विस्तृत वर्णन (आदि० ६२ । १८–४१) । मुनिवर व्यास प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नान-संध्या आदिसे शुद्ध हो महाभारतकी रचना करते थे । इन्होंने तपस्या और नियमका आश्रय ले तीन वर्षोंमें इस ग्रन्थको पूरा किया था (आदि० ६२ । ४१-४२) । माता सत्यवतीने पराशरजीके संयोगसे तत्काल ही यमुनाके द्वीपमें इनको जन्म दिया था; इसीलिये ये पाराशर्य और द्वैपायन कहलाये । इन्होंने मातासे आज्ञा लेकर तपस्यामें ही मन लगाया और मातासे कहा, आवश्यकता पड़नेपर तुम मेरा स्मरण करना, मैं अवश्य दर्शन दूँगा (आदि० ६३ । ८४-८५) । वेदोंका व्यास (विस्तार) करनेके कारण ये वेदव्यास नामसे विख्यात हुए (आदि० ६३ । ८८) । इन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पञ्चम वेद महाभारतका अध्ययन सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुकदेव तथा वैशम्पायनको कराया (आदि० ६३ । ८९-९०) । इनके द्वारा अम्बिका और अम्बालिकाके गर्भसे राजा धृतराष्ट्र और महाबली पाण्डुका जन्म हुआ और इन्हींसे ही शूद्रजातीय स्त्रीके गर्भसे विदुरजी उत्पन्न हुए; जो धर्म-अर्थके ज्ञानमें निपुण, बुद्धिमान्, मेधावी और निष्पाप थे (आदि० ६३ । ११३-११४) । सत्यवतीद्वारा व्यासका आवाहन और व्यासजीका माताकी आज्ञासे विचित्रवीर्यकी पत्नियोंके गर्भसे संतानोत्पादन करनेकी स्वीकृति देना (आदि० १०४ । २४–४९) । इनके द्वारा विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति तथा माताके पूछनेपर इनका उन पुत्रोंके भावी गुणों और लक्षणोंका वर्णन (आदि० १०५ अध्याय) । इनका गान्धारीको सौ पुत्र होनेका वरदान देना (आदि० ११४ । ८) । इनके द्वारा गान्धारीके लिये उसके गर्भसे गिरे हुए मांसपिण्डसे सौ पुत्र होनेकी व्यवस्था (आदि० ११४ । १७–२४) । इनका मांसपिण्डके एक सौ एकवें भागसे गान्धारीके लिये एक पुत्री होनेका आश्वासन देना और उसे भी घृतपूर्ण घटमें स्थापित करना (आदि० ११५ । १६–१८) । वनमें व्यासजीका कुन्तीसहित पाण्डवोंको दर्शन और आश्वासन देना (आदि० १५५ । ५—१९) । इनका पाण्डवोंको पुनः दर्शन देकर द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाना और उसके इन सबकी पत्नी होनेकी बात बताकर इन्हें पाञ्चालकी राजधानीमें जानेके लिये आदेश देना (आदि० १६८ अध्याय) । जिसे देवलोकमें अलकनन्दा कहते हैं, वही इस लोकमें आकर गङ्गा नाम धारण करती है—यह कृष्णद्वैपायनका मत है (आदि० १६९ । २२) । द्रुपदकी राजधानीकी ओर जाते हुए पाण्डवोंसे मार्गमें इनकी भेंट और परस्पर स्वागत-सत्कारके बाद वार्तालाप (आदि० १८४ । २-३) । व्यासजीके समक्ष द्रौपदीका पाँच पुरुषोंसे विवाह होनेके विषयमें द्रुपद, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरका अपने-अपने विचार व्यक्त करना तथा असत्यसे डरी हुई कुन्तीको इनका आश्वासन देना (आदि० १९५ अध्याय) । इनका द्रुपदको पाण्डवों तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर उन्हें दिव्य दृष्टि देना (आदि० १९६ । १–३८) । द्रौपदी स्वर्गकी लक्ष्मी है और पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी नियत की गयी है—इस बातका द्रुपदको निश्चय कराना (आदि० १९६ । ५१–५३) । श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । इनका अर्जुनको उत्तर, भीमसेनको पूर्व, सहदेवको दक्षिण और नकुलको पश्चिम दिशामें दिग्विजयके लिये जानेका आदेश (सभा० २५ । ४ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४२) । इनका युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ब्रह्माका कार्य सँभालना (सभा० ३३ । ३४) । राजसूय यज्ञके अन्तमें युधिष्ठिरके प्रति भविष्यवाणी सुनाना (सभा० ४६ । १–१७) । इन्होंने राजसूय यज्ञके अन्तमें युधिष्ठिरका अभिषेक किया (सभा० ५३ । १०) । इनका धृतराष्ट्रसे दुर्योधनके अन्यायको रोकनेके लिये अनुरोध (वन० ७ । २३ से वन० ८ अध्यायतक) । इनके द्वारा सुरभि और इन्द्रके उपाख्यानका वर्णन तथा पाण्डवोंके प्रति दया दिखाना (वन० ९ अध्याय) । धृतराष्ट्रको मैत्रेयके आगमनकी सूचना देकर इनका प्रस्थान (वन० १० । ४–६) । इनका द्वैतवनमें पाण्डवोंके पास जाना और युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति विद्याका दान करना (वन० ३६ । २४–३८) । कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक मिश्रकतीर्थ है, जहाँ महात्मा व्यासने द्विजोंके लिये सभी तीर्थोंका सम्मिश्रण किया है । आगे चलकर व्यासवन है और इससे भी आगे व्यासस्थली नामक एक स्थान है, जहाँ बुद्धिमान् व्यासने पुत्रशोकसे संतप्त हो शरीर त्याग देनेका विचार किया था (वन० ८३ । ९१–९७) । पाण्डवोंसे दान-धर्मके प्रतिपादनके प्रसंगमें मुद्गल ऋषिकी कथा सुनाना (वन० अध्याय २६० से २६१ तक) । धृतराष्ट्रसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बतानेके लिये संजयको आदेश (उद्योग० ६७ । १०) । इनका धृतराष्ट्रको समझाना(उद्योग०६९।११–१५) । इनके द्वारा संजयको दिव्य-दृष्टि-दान (भीष्म० २। १०) । धृतराष्ट्रसे भयंकर उत्पातोंका वर्णन करना (भीष्म० २ । १६ से भीष्म० ३ ।

४५ तक)। विजयसूचक लक्षणोंका वर्णन करना (भीष्म० ३। ६५-८५)। इनका युधिष्ठिरको मृत्युकी अनिवार्यता बताना (द्रोण० ५२। ११)। युधिष्ठिरको नारद-अकम्पन-संवाद सुनाना (द्रोण० ५२। १० से ५४ अध्यायतक)। षोडशराजकीयोपाख्यान प्रारम्भ करना (द्रोण० अध्याय ५५ से द्रोण० ७१। २२ तक)। युधिष्ठिरका शोक-निवारण करके अन्तर्धान होना (द्रोण० ७१। २३)। घटोत्कच-वधसे दुखी युधिष्ठिरको समझाना (द्रोण० १८३। ५८—६७)। अश्वत्थामासे शिव और श्रीकृष्णकी महिमा बताना (द्रोण० २०१। ५६-९६)। अर्जुनसे भगवान् शिवकी महिमा बताना (द्रोण० २०२ अध्याय)। वधके लिये उद्यत सात्यकिके हाथसे संजयको मुक्त कराना (शल्य० २९। ३९)। इनके द्वारा धृतराष्ट्रको सान्त्वना (शल्य० ६३। ७७)। अर्जुन और अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रको शान्त करनेके लिये इनका प्रकट होना (सौप्तिक० १४। ११)। अश्वत्थामासे अपनी मणि देकर शान्त हो जानेके लिये कहना (सौप्तिक० १५। १९—२७)। श्रीकृष्णद्वारा अश्वत्थामाको दिये गये शापका समर्थन करना (सौप्तिक० १६। १७-१८)। शोकसे मूर्च्छित धृतराष्ट्रको समझाना (स्त्री० ८। १३—४९)। पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत गान्धारीको समझाना (स्त्री० १४। ७—१३)। युद्धके पश्चात् युधिष्ठिरके पास आना (शान्ति० १। ४)। युधिष्ठिरसे शङ्ख और लिखितका चरित्र सुनाते हुए सुद्युम्नके राजदण्डकी महत्ताका प्रतिपादन करना (शान्ति० २३ अध्याय)। राजा हयग्रीवका चरित्र सुनाते हुए युधिष्ठिरको राजोचित कर्तव्य-पालनके लिये समझाना (शान्ति० २४ अध्याय)। राजा सेनजित्के उद्गारोंका उल्लेख करते हुए युधिष्ठिरको आश्वासन देना (शान्ति० २५ अध्याय)। शरीर त्यागनेके लिये उद्यत युधिष्ठिरको रोककर समझाना (शान्ति० २७। २८—३३)। अश्मा मुनि और जनकके संवादरूपमें प्रारब्धकी प्रबलता बतलाकर युधिष्ठिरको समझाना-बुझाना (शान्ति० २८ अध्याय)। अनेक युक्तियोंद्वारा युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ३२ अध्याय)। कालकी प्रबलता बताकर देवासुर-संग्रामके उदाहरणसे युधिष्ठिरको प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता बताना (शान्ति० ३३। १४—४८)। युधिष्ठिरसे प्रायश्चित्तका वर्णन करना (शान्ति० अध्याय ३४ से ३५ तक)। स्वायम्भुव मनुद्वारा कथित धर्मका उपदेश करना (शान्ति० ३६ अध्याय)। युधिष्ठिरको भीष्मके पास चलनेके लिये कहना (शान्ति० ३७। ६—१६)। शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये इनका पदार्पण करना (शान्ति० ४५। ५)। व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको कालका स्वरूप बताना (शान्ति० २३१। ११—३२)। शुकदेवको सृष्टिक्रम तथा युगधर्मका उपदेश देना (शान्ति० २३२ अध्याय)। इनका ब्राह्मप्रलय और महाप्रलयका वर्णन करना (शान्ति० २३३ अध्याय)। ब्राह्मणोंके कर्तव्य और दानकी प्रशंसा करना (शान्ति० २३४ अध्याय)। सर्ग, काल, धारणा, वेद, कर्ता, कार्य और क्रियाफलके विषयमें इनका शुकदेवको उपदेश करना (शान्ति० अध्याय २३५ से ३३९ तक)। शुकदेवको मोक्ष-धर्मविषयक विभिन्न प्रश्नोंका उत्तर देना (शान्ति० अध्याय २४० से २५५ तक)। अपने पुत्र शुकदेवको वैराग्य और धर्मपूर्ण उपदेश देते हुए चेतावनी देना (शान्ति० ३२१। ४—९३)। इनकी पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या और शङ्करजीसे वर-प्राप्ति (शान्ति० ३२३। १२—२९)। घृताची अप्सराके दर्शनसे मोहित होनेके कारण अरणी-काष्ठपर इनके वीर्यका पतन और उससे शुकदेवजीकी उत्पत्ति (शान्ति० ३२४। ४—१०)। शुकदेवको जनकके पास भेजना (शान्ति० ३२५। ६—११)। शिष्योंको वरदान देना (शान्ति० ३२७। ३७—५२)। नारदजीके पूछनेपर अपनी उदासीका कारण बताना (शान्ति० ३२८। १६-१९)। शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए प्रवह आदि सात वायुओंका परिचय देना (शान्ति० ३२८। २८—५७)। पुत्र-मोहवश शुकदेवजीको जानेसे रोकना (शान्ति० ३३१। ६३)। पुत्र-विरहजनित शोकसे व्यासजीकी व्याकुलता (शान्ति० ३३३। १९—३१)। व्यासजीका अपने शिष्योंको ब्रह्मादि देवताओंको दिये गये नारायणके उपदेशको सुनाना (शान्ति० ३४०। ९०—११०)। नारदके मुखसे इन्हें सात्वतधर्मकी उपलब्धि और इनके द्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको इस धर्मका उपदेश (शान्ति० ३४८। ६४-६५)। सरस्वतीपुत्र अपान्तरतमाके रूपमें इनकी उत्पत्ति और महिमा (शान्ति० ३४९। ३९—५८)। युधिष्ठिरसे शिवमहिमाके विषयमें इनका अपना अनुभव बताना (अनु० १८। १-३)। भीष्मजीके समक्ष इनके द्वारा ब्रह्महत्याके समान पापोंका निरूपण (अनु० २४। ५—१२)। व्यासजीका शुकदेवसे गौओंकी, गोलोककी और गोदानकी महिमाका वर्णन (अनु० ८१। १२—४६)। एक कीटको क्रमशः ब्राह्मणत्व प्राप्त कराकर उसका उद्धार करना (अनु० अध्याय ११७ से ११९ तक)। मैत्रेयके प्रश्नोंके उत्तरमें उनके साथ व्यासजीका संवाद (अनु० अध्याय १२० से १२२ तक)। भीष्मसे युधिष्ठिरको हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा देनेको कहना (अनु० १६६। ६-७)। इनका शोकाकुल युधिष्ठिरको समझाना (आश्व०

२ । १५-२०) । युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी सलाह देना (आश्व० ३ । ८-१०) । व्यासजीका युधिष्ठिरको धन-प्राप्तिका उपाय बताना (आश्व० ३ । २०-२१) । युधिष्ठिरको मरुत्तका वृत्तान्त सुनाना (आश्व० अध्याय ४ से १० तक) । पतिशोकसे दुखी उत्तराको आश्वासन देना (आश्व० ६२ । ११-१२) । पुत्रशोकसे दुखी अर्जुनको समझाना (आश्व० ६२ । १४-१७) । युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञकी आज्ञा देकर अन्तर्धान होना (आश्व० ६२ । २०) । इनका अर्जुनको अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये, भीमसेन और नकुलको राज्य-पालनके लिये तथा सहदेवको कुटुम्बसम्बन्धी कार्योंकी देख-रेखके लिये नियुक्त करना (आश्व० ७२ । १४-२०) । इनके द्वारा शास्त्रीय विधिके अनुसार अश्वमेधीय अश्वका उत्सर्ग (आश्व० ७३ । ३) । युधिष्ठिरद्वारा इनको समस्त पृथ्वीका दान तथा इनके द्वारा पृथ्वीको उन्हें लौटाकर उसके निष्क्रयरूपसे ब्राह्मणोंके लिये सुवर्ण देनेका आदेश (आश्व० ८९ । ८—१८) । इनके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना (आश्रम० ४ अध्याय) । इनका वनमें धृतराष्ट्रके पास आना और उनका कुशल-समाचार पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करके उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना (आश्रम० २८ अध्याय) । इनका अपना तपोबल दिखानेके लिये कहकर धृतराष्ट्रको मनोवाञ्छित वर माँगनेके लिये आज्ञा देना तथा गान्धारी और कुन्तीका इनसे अपने मरे हुए पुत्रों एवं सम्बन्धियोंके दर्शन करानेका अनुरोध करना (आश्रम० २९ अध्याय) । कुन्तीका इन्हें कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना (आश्रम० ३० अध्याय) । इनके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा इनकी आज्ञासे सबका गङ्गातटपर जाना (आश्रम० ३१ अध्याय) । इनके प्रभावसे कुरुक्षेत्रमें मारे गये कौरव-पाण्डव वीरोंका गङ्गाके जलसे प्रकट होना (आश्रम० ३२ अध्याय) । इनकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना (आश्रम० ३३ । १८-२२) । इनकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना (आश्रम० ३५ । ४—११) । इनका धृतराष्ट्रको पाण्डवोंको विदा करनेके लिये आदेश देना (आश्रम० ३६ । ५—१२) । यदुकुल-संहारके पश्चात् अर्जुनका इनके आश्रमपर आना और उनके साथ इनका वार्तालाप (मौसल० ८ अध्याय) । व्यासनिर्मित महाभारतके श्रवण एवं पठनकी महिमा (स्वर्गा० ५ । ३५-६८) ।

महाभारतमें आये हुए व्यासजीके नाम—कृष्ण, कृष्णद्वैपायन, द्वैपायन, सत्यवतीसुत, सत्यवत्यात्मज, पाराशर्य, पराशरात्मज, बादरायण, वेदव्यास आदि ।

व्यासवन—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक वन, जहाँ मनोजव तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८३ । ९३) ।

व्यासस्थली—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ व्यासने पुत्रशोकसे संतप्त हो शरीर त्याग देनेका विचार कर लिया था । उस समय उन्हें देवताओंने पुनः उठाया था । इस स्थलमें जानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ९६-९८) ।

व्युषिताश्व—एक पूरुवंशी धर्मात्मा नरेश (आदि० १२० । ७) । इनके द्वारा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान (आदि० १२० । ८—१६) । राजा कक्षीवान्की पुत्री भद्रा इनकी प्यारी पत्नी थी, जो अपने समयकी अप्रतिम सुन्दरी थी । उसके प्रति अत्यधिक कामासक्त हो जानेके कारण यक्ष्मासे इनकी असामयिक मृत्यु हो गयी (आदि० १२० । १८-१९) । भद्राके विलाप करनेपर आकाशवाणीद्वारा इनका उसे आश्वासन देना तथा इनके शवद्वारा उसके गर्भसे सात पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० १२० । ३३-३६) ।

व्यूक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

व्यूढोरु (**व्यूढोरस्क**)—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०५; आदि० ११६ । १४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २३) ।

व्यूह—युद्धके समय चतुरङ्गिणी सेनाके विभिन्न अङ्गोंको संगठित करके विशेष प्रकारसे खड़ी करनेकी रीतिको व्यूह कहते हैं । दूसरे शब्दमें यही मोर्चाबंदी है । महाभारतकालमें अनेक प्रकारकी व्यूह रचना होती थी । महाभारतमें वर्णित कुछ व्यूहोंके नाम इस प्रकार हैं—अर्द्धचन्द्र व्यूह (भीष्म० अध्याय ५६) । क्रौञ्चव्यूह (भीष्म० अध्याय ५०) । गरुडव्यूह (भीष्म० अध्याय ५६) । चक्रव्यूह (द्रोण० अध्याय ३४) । मकरव्यूह (भीष्म० अध्याय ६९) । मण्डलव्यूह (भीष्म० अध्याय ८१) । मण्डलार्द्धव्यूह (द्रोण० अध्याय २०) । वज्रव्यूह (भीष्म० अध्याय ८१) । शकटव्यूह (द्रोण० अध्याय ७) । श्येनव्यूह (भीष्म० अध्याय ६९) । सर्वतोभद्र (भीष्म० अध्याय ९९) । सुपर्णव्यूह (द्रोण अध्याय २०) । सूचीमुखव्यूह (भीष्म० अध्याय ७७) ।

व्योमारि—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

व्रजन—सम्राट् अजमीढ़के द्वारा केशिनीके गर्भसे उत्पन्न तीन पुत्रोंमेंसे एक । शेष दोके नाम हैं—जह्नु और रूपिण (आदि० ९४ । ३१-३२) ।

व्रीहिद्रौणिकपर्व-वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २५९ से २६१ तक) ।

(श)

शंयु-ये बृहस्पतिके प्रथम पुत्र हैं । इनके लिये प्रधान आहुतियोंके देते समय सर्वप्रथम घीकी आहुति दी जाती है । चातुर्मास्यसम्बन्धी यज्ञोंमें तथा अश्वमेध यज्ञमें इनका पूजन होता है । ये सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाले और सर्वसमर्थ हैं तथा अनेक वर्णकी ज्वालाओंसे प्रज्वलित होते हैं । इनकी पत्नीका नाम सत्या था । वह धर्मकी पुत्री थी । उसके गर्भसे इनके द्वारा एक अग्निस्वरूप पुत्र तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली तीन कन्याएँ हुईं (वन० २१९ । २-४) ।

शक-एक भारतीय जनपद और जाति । शक जातिके लोग वसिष्ठकी नन्दिनी गायके थनसे प्रकट हुए (आदि० १७४ । ३६) । भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय शकोंको परास्त किया था (सभा० ३० । १४) । नकुलने भी इनपर विजय पायी थी (सभा० ३२ । १७) । शक देश और जातिके राजा राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५१ । ३२) । कलियुगमें शक आदि जातियोंके लोगोंके राजा होनेका उल्लेख (वन० १८८ । ३५) । शक देशके राजाके पास पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (उद्योग० ४ । १५) । ये काम्बोजराज सुदक्षिणके साथ दुर्योधनकी सेनामें सम्मिलित हुए थे (उद्योग० १९ । २१) । शक एक भारतीय जनपदका नाम है (भीष्म० ९ । ५१) । भगवान् श्रीकृष्णने शक देशपर विजय पायी थी (द्रोण० ११ । १८) । सात्यकिने बहुतसे शक सैनिकोंका संहार किया था (द्रोण० ११९ । ४५, ५३) । कर्णने भी शक देशको जीता था (कर्ण० ८ । १८) । शक पहले क्षत्रिय थे, परंतु ब्राह्मणोंके दर्शनसे वञ्चित होनेके कारण (अपने धर्म-कर्मसे भ्रष्ट हो) शूद्र भावको प्राप्त हो गये (अनु० ३३ । २१) ।

शकुनि-(१) धृतराष्ट्र-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १३) । (२) गान्धारराज सुबलका पुत्र, दुर्योधनका मामा, इसीकी सहायतासे दुर्योधनने युधिष्ठिरको जूएमें ठग लिया था (आदि० ६१ । ५०) । देवताओंके कोपसे यह धर्मविरोधी हुआ (आदि० ६३ । १११-११२) । यह द्वापरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ७८; आश्रम० ३१ । १०) । इसके द्वारा गान्धारीके विवाह-कार्यका सम्पादन (आदि० १०९ । १५-१६) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २) । पाण्डवोंको जड़-मूलसहित नष्ट कर देनेके लिये इसका द्रुपदनगरमें कौरवोंको परामर्श देना (आदि० १९९ । ७ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५७३-५७४) । युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें इसका पदार्पण (सभा० ३४ । ६) । यह सबके विदा होनेपर भी उस दिव्य सभाभवनमें दुर्योधनके साथ ठहरा रहा (सभा० ४५ । ६८) । पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके सम्बन्धमें इसकी दुर्योधनसे बातचीत (सभा० ४८ अध्याय) । युधिष्ठिरकी सम्पत्ति (ऐश्वर्य) को हड़पनेके लिये इसके द्वारा धृतराष्ट्रको द्यूतक्रीड़ाका परामर्श देना (सभा० ४९ अध्याय) । जूएके अनौचित्यके सम्बन्धमें इसके साथ युधिष्ठिरका संवाद (सभा० ५९ अध्याय) । जूएमें छल करके इसका युधिष्ठिरको हराना (सभा० अध्याय ६० से ६१ तक) । इसके साथ जूआ खेलकर युधिष्ठिरका अपना सब कुछ हार जाना (सभा० अध्याय ६५) । पुनर्द्यूतमें इसका युधिष्ठिरको जूएकी शर्त सुनाना और एक ही दाँवमें अपनी विजय घोषित करना (सभा० ७६ । ९-२४) । पाण्डव प्रतिज्ञा तोड़कर वनसे नहीं लौटेंगे, यह कहकर इसका दुर्योधनकी आशंकाको दूर करना (वन० ७ । ७-१०) । द्वैतवनमें पाण्डवोंके पास चलनेके लिये इसका घोषयात्राके प्रस्तावका समर्थन करना (वन० २३८ । २१, २३) । धृतराष्ट्रको घोषयात्राकी अनुमतिके लिये समझाना (वन० २३९ । १८-२१) । इसका घोषयात्रामें दुर्योधनके साथ जाना और गन्धर्वोंसे युद्ध करके घायल होना (वन० २४१ । १७—२७) । दुर्योधनको पाण्डवोंका राज्य लौटा देनेके लिये समझाना (वन० २५१ । १-८) । प्रथम दिनके संग्राममें प्रतिविन्ध्यके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ६३-६५) । इसके पाँच भाइयोंका इरावान्द्वारा वध (भीष्म० ९० । २५-४७) । इसका युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवपर आक्रमण और उनके द्वारा इसकी पराजय (भीष्म० १०५ । ८-२३) । सहदेवके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । २२-२५) । इसके द्वारा मायाओंका प्रयोग तथा अर्जुनद्वारा उन मायाओंका नाश होनेपर इसका पलायन (द्रोण० ३० । १५—२८) । अभिमन्युके साथ युद्ध (द्रोण० ३७ । ५) । नकुल-सहदेवके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । २१-२५) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० १२० । ११) । भीमसेनद्वारा इसके सात रथियों और पाँच भाइयोंका संहार (द्रोण० १५७ । २२-२६) । नकुलद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १६९ । १६) । इसका दुर्योधनकी आज्ञासे पाण्डव-सेनापर आक्रमण (द्रोण० १७० । ६६) । अर्जुनद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १७१ । २५-३९) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर इसका युद्ध-

स्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । ९) । इसके द्वारा सुतसोमकी पराजय (कर्ण० २५ । ४०-४१) । सात्यकिद्वारा इसका पराजित होना (कर्ण० ६१ । ४८-४९)। भीमसेनद्वारा पृथ्वीपर गिराया जाना (कर्ण० ७७ । ६९-७०) । इसके द्वारा भाईसहित कुलिन्द-राजकुमारका वध (कर्ण० ८५ । ७–१९) । पाण्डव घुड़सवारोंका इसके ऊपर आक्रमण, इसका भागना, पुनः धृष्टद्युम्नकी सेनापर आक्रमण करना तथा पाण्डव सैनिकोंसे घिरकर घायल होना (शल्य० २३ । ४१–८७) । सहदेवद्वारा इसका वध (शल्य० २८ । ६१) । व्यासजीके प्रभावसे यह भी गङ्गाजीके जलसे प्रकट हो अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मिला था (आश्रम० ३२ । ९) । मृत्युके पश्चात् यह द्वापरमें मिल गया (स्वर्गा० ५ । २१) ।

महाभारतमें आये हुए शकुनिके नाम–गान्धार, गान्धारपति, गान्धारराज, गान्धारराजपुत्र, गान्धारराजसुत, कितव, पर्वतीय, सौबल, सौबलक, सौबलेय, सुबलज, सुबलपुत्र, सुबलसुत, सुबलात्मज आदि ।

शकुनिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १५) ।

शकुनिग्रह–रौद्ररूपधारिणी विनता (वन० २३० । २६) ।

शकुन्त–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५०) ।

शकुन्तला–महर्षि कण्वकी पोषित पुत्री, जो सम्राट् दुष्यन्तकी धर्मपत्नी और भरतकी माता हुईं । इनके यहाँ राजा दुष्यन्तका आगमन । इनके द्वारा उनका स्वागत तथा अपने जन्म-प्रसंगका वर्णन (आदि० ७१ अध्याय)। ये विश्वामित्रके द्वारा मेनका नामक अप्सराके गर्भसे हिमालयके शिखरपर मालिनी नदीके किनारे उत्पन्न हुई थीं । कण्व इनके पालक पिता थे। इनकी उत्पत्तिकी कथा (आदि० ७२ । १—१०) । शकुन्तों (पक्षियों) द्वारा रक्षित होनेके कारण इनका नाम 'शकुन्तला' हुआ (आदि० ७२ । ११–१६) । दुष्यन्तके प्रार्थना करनेपर इनके द्वारा स्त्री-स्वातन्त्र्यका निषेध, अपनी पितृभक्ति एवं ब्राह्मणके प्रभावका वर्णन (आदि० ७३ । ५ से ६ के पूर्वतक) । दुष्यन्तके द्वारा विवाहोंके आठ भेद बतलाकर इनके प्रति गान्धर्व-विवाहका समर्थन (आदि० ७३ । ८–१४)। दुष्यन्तके साथ इनके विवाहकी शर्त (आदि० ७३ । १५–१७) । दुष्यन्तके साथ इनका गान्धर्व विवाह (आदि० ७३ । १९-२०) । कण्वके प्रति इनके द्वारा अपने गुप्त विवाहके वृत्तान्तका निवेदन (आदि० ७३ । २४ के बाद) । कण्वद्वारा इनके विवाहका समर्थन तथा आशीर्वाद (आदि० ७३ । ३२ के बाद) । इनके गर्भसे दुष्यन्तद्वारा भरतका जन्म (आदि० ७४ । २) । कण्वद्वारा इनके प्रति पातिव्रत्य धर्मका उपदेश और उसकी महिमाका वर्णन (आदि० ७४ । ९-१०) । पिताकी आज्ञा पाकर इनका पति-गृह-गमन (आदि० ७४ । १०–१४) । इनका राजा दुष्यन्तसे अपने पुत्रको ग्रहण करने और युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेके लिये कहना तथा अपने साथ उनके सम्बन्ध और प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाना (आदि० ७४ । १६-१८)। दुष्यन्तके अस्वीकार करनेपर इनका लज्जा एवं रोषपूर्ण उपालम्भ, धर्मकी श्रेष्ठता और परमात्मा एवं सूर्य आदि देवताओंको पुण्य-पापका साक्षी बतलाकर दुष्यन्तसे अपने साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करनेके लिये अनुरोध, पतिव्रता पत्नी और पुत्र-पौत्रोंकी महिमा बतलाकर दुष्यन्तको उनके साथ अपने पूर्व सम्बन्धका स्मरण दिलाना (आदि० ७४ । २१–६७) । दुष्यन्तके प्रति इनके द्वारा अपने जन्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (आदि० ७४। ६९-७०) । इनके द्वारा दुष्यन्तके प्रति पुनः अपने जन्म-कर्मकी महत्ता बतलाते हुए सत्यधर्मकी श्रेष्ठताका कथन तथा निराश होकर जानेका उपक्रम (आदि० ७४ । ८४ से १०८ के बाद तक) । आकाशवाणीद्वारा इनके कथनकी सत्यता घोषित होनेपर दुष्यन्तद्वारा अङ्गीकार (आदि० ७४ । १०९—१२५) । दुष्यन्तद्वारा इनका पटरानीके पदपर अभिषेक (आदि० ७४ । १२५ के बाद) ।

शक्त–राजा पूरुके प्रपौत्र एवं मनस्युके पुत्र, जो 'सौवीरी'के गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इनके दो भाई और थे, जिनके नाम हैं—संहनन और वाग्मी । ये सभी शूरवीर और महारथी थे (आदि० ९४ । ७) ।

शक्ति–महर्षि वसिष्ठके कुलकी वृद्धि करनेवाले महामनस्वी पुत्र, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ मुनि थे (इनकी माता अरुन्धती थीं) (आदि० १७५ । ६) । कल्माषपादद्वारा इनपर प्रहार और इनके द्वारा कल्माषपादको राक्षस होनेका शाप (आदि० १७५ । ११–१३) । राक्षसभावापन्न कल्माषपादद्वारा इनका भक्षण (आदि० १७५ । ४०) । इनके द्वारा स्थापित अदृश्यन्तीके गर्भसे पराशरका जन्म (आदि० १७७ । १) । ये वसिष्ठके पुत्र थे, इनके पुत्र पराशर थे और पराशरके पुत्र व्यास इनके पौत्र लगते थे (शान्ति० ३४९ । ६-७) । ये उत्तर दिशाके ऋषि थे, इनका नामान्तर वासिष्ठ (अनु० १६५ । ४४) ।

शक्र (इन्द्र)–बारह आदित्योंमेंसे एक (आदि० ६५ । १५) ।

शङ्खकुमारिका—एक सिद्धसेवित प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे शीघ्र स्वर्गकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । ८१) ।

शङ्खदेव—एक कलिङ्गराजकुमार, जो कौरवपक्षीय योद्धा था, भीमसेनके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (भीष्म० ५४ । २४–२५) ।

शङ्खवापी—गिरिव्रजके समीपस्थ गौतमके आश्रमके निकटवर्ती वनमें रहनेवाला एक नाग (सभा० २१ । ९) ।

शङ्खावर्त—एक तीर्थ, जिसमें देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेवाला मनुष्य पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । २९) ।

शङ्कर—एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

शङ्कु—एक यदुवंशी क्षत्रिय, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८५ । १९) । सुभद्रा और अर्जुनके विवाहके उपलक्ष्यमें अन्य बहुत-से वृष्णिवंशियोंके साथ यह भी दहेज लेकर खाण्डवप्रस्थमें आया था (आदि० २२० । ३१–३३) । यह एक महारथी वीर था (सभा० १४ । ५९) ।

शङ्कुकर्ण—(१) धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १५) । (२) भगवान् शिवका एक दिव्य पार्षद, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित होता है (सभा० १० । ३४–३५) । (३) पार्वतीद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम पुष्पदन्त था (शल्य० ४५ । ५१) । (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५६) ।

शङ्कुकर्णेश्वर—भगवान् शिवकी एक मूर्ति, जिसकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञसे दसगुने फलकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । ७०) ।

शङ्ख—(१) कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ८) । नारदजीने मातलिको इनका परिचय दिया था (उद्योग० १०३ । १२) । बलरामजीके परमधाम पधारते समय उनके स्वागतार्थ ये भी आये थे (मौसल० ४ । १७) । (२) राजा विराटके पुत्र, जो अपने पिता और भाईके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें पधारे थे (उत्तर एवं उत्तराके भ्राता) (आदि० १८५ । ८) । त्रैगर्तोंद्वारा गोहरणके समय उनके साथ युद्धके लिये इनका जाना (विराट० ३१ । १६) प्रथम दिनके संग्राममें भूरिश्रवाके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ३५–३७) । शल्यके साथ युद्ध (भीष्म० ४९ । २६–४०) द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (भीष्म० ८२ । २१–२३) । इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३७) । मृत्युके पश्चात् ये विश्वेदेवोंमें मिल गये थे (स्वर्गा० ५ । १७–१८) । (३) एक ऋषि, जो महर्षि लिखितके भ्राता थे । ये इन्द्रकी सभामें रहकर देवराज इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । ११) । बिना पूछे अपने आश्रमका फल तोड़नेके कारण इनका अपने भाई लिखितको दण्ड ग्रहण करनेके लिये राजा सुद्युम्नके पास भेजना (शान्ति० २३ । २०–२७) । अपने भाई लिखितपर इनकी कृपा (शान्ति० २३ । ३८–४२) । इनके द्वारा लिखितकी शंकाका समाधान (शान्ति० २३ । ४३–४४) । ये तिलका दान करके दिव्यलोकको प्राप्त हुए हैं (अनु० ६६ । १२) । (४) एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १३) । (५) श्रेष्ठ निधियोंमें प्रमुख शङ्ख, जो कुबेर-सभामें रहकर धनाध्यक्ष कुबेरकी उपासना करता है (सभा० १० । ३९) । पाञ्चालराज ब्रह्मदत्तने उत्तम ब्राह्मणोंको शङ्ख निधिका दान किया था, इससे उन्हें उत्तम गति प्राप्त हुई थी (शान्ति० २३४ । २९; अनु० १३७ । १७) । (६) पाँच भाई केकयराजकुमारोंमेंसे एक, ये पाण्डवपक्षके उदार रथी थे (उद्योग० १७१ । १५) ।

शङ्खतीर्थ—सरस्वती-तटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ । इसका विशेष वर्णन (शल्य० ३७ । १९–२६) ।

शङ्खनख—एक नाग, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । ८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

शङ्खपद—स्वारोचिष मनुके पुत्र, जिन्हें पिताद्वारा नारायण-प्रतिपादित सात्वत धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ था । इन्होंने अपने पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभको इस धर्मकी शिक्षा दी थी (शान्ति० ३४८ । ३७-३८) ।

शङ्खपिण्ड—कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १३) ।

शङ्खमुख—कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ११) ।

शङ्खमेखल—एक ऋषि, जो सर्पदंशनसे मरी हुई प्रमद्वराको देखनेके लिये स्थूलकेशके आश्रमके निकटवर्ती वनमें पधारे थे (आदि० ८ । २४) ।

शङ्खलिका—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १५) ।

शङ्खशिरा—कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १२) । इसीका शङ्खशीर्ष नामसे भी वर्णन आया है (उद्योग० १०३ । १५) ।

शङ्खश्रवा—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २६)

शाङ्खिनी–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ देवी-तीर्थमें स्नान करनेसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । ५१) ।

शची–देवराज इन्द्रकी पत्नी, जिनके अंशसे द्रौपदीका प्राकट्य हुआ था (आदि० ६७ । १५७) । ये इन्द्र-सभामें देवराज इन्द्रके साथ उत्तम सिंहासनपर समासीन होती हैं (सभा० ७ । ४) । ब्रह्मसभामें भी उपस्थित हो देवेश्वर ब्रह्माजीकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४२) । ये देवेन्द्रकी महारानी हैं, इन्होंने इन्द्र-भवनमें आयी हुई सत्यभामाको देवमाता अदितिकी सेवामें पहुँचाया था (सभा० ३८ । २९के बाद दा०पाठ,पृष्ठ८११)। (इन्हें पुलोमा नामक असुरकी पुत्री कहा गया है) । इनका नहुषके भयसे बृहस्पतिकी शरणमें जाना (उद्योग० ११ । २०–२३) । नहुषको पति बनानेसे इन्कार करना (उद्योग० १२ । १५) । नहुषसे कुछ कालकी अवधि माँगना (उद्योग० १३ । ४–६) । इनके द्वारा उप-श्रुतिकी उपासना (उद्योग० १३ । २६-२७) । उपश्रुतिकी सहायतासे इनकी इन्द्रसे भेंट (उद्योग० १४ । ११-१२) । नहुषसे सप्तर्षियोंद्वारा ढोयी जानेवाली शिबिकापर आनेकी माँग करना (उद्योग० १५ । ९–१४) । ये स्कन्दके जन्म-समयमें उनके पास गयी थीं (शल्य० ४५ । १३) । इनके नहुषके भयसे मुक्त होनेकी कथा (शान्ति० ३४२ । ४७–५०) ।

शठ–एक दानव, जो कश्यपपत्नी दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २९) ।

शतकुम्भा–एक तीर्थभूत नदी, जहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । १०-११) । यह अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है (वन० २२२ । २२–२६) । यह उन भारतीय नदियोंमेंसे एक है, जिनका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १९) ।

शतघण्टा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

शतचन्द्र–कौरवपक्षका एक महारथी योद्धा, शकुनिका भाई । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । २३) ।

शतज्योति–सुभ्राट्के तीन पुत्रोंमेंसे एक, जिनके एक लाख पुत्र हुए थे (आदि० १ । ४४-४५) ।

शतद्युम्न–एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने मुद्गल (मौद्गल्य) ब्राह्मणको सोनेका गृह प्रदान किया और उसके पुण्यसे स्वर्ग प्राप्त कर लिया (शान्ति० २३४ । ३२; अनु० १३७ । २१) ।

शतद्रु (शतद्रू)–हिमालय पर्वतसे निकली हुई एक नदी, जिसका आधुनिक नाम सतलज है । एक समय पुत्रोंके शोकसे व्याकुल होकर वसिष्ठजी आत्महत्याके लिये इस नदीमें कूद पड़े थे, उस समय उन्हें अग्निके समान तेजस्वी जान यह नदी सैकड़ों धाराओंमें फूटकर इधर-उधर भाग चली । शतधा विद्रुत होनेसे इसका नाम 'शतद्रु' हुआ (आदि० १७६ । ८-९) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । १९) । यह भारतकी एक प्रमुख नदी है, इसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १५) । महादेवजीके पूछनेपर स्त्रीधर्मका वर्णन करते समय पार्वती-जीने इसके विषयमें जिन पुण्यमयी प्रमुख नदियोंसे सलाह ली थी, उनमें शतद्रू भी थीं (अनु० १४६ । १८) । यह सायं-प्रातःस्मरणीय नदी है (अनु० १६५ । १८) ।

शतधन्वा–एक क्षत्रिय, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने परास्त किया था (वन० १२ । ३०) । यह कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गया था (शान्ति० ४ । ७) ।

शतपत्रवन–द्वारकाके पश्चिम भागमें स्थित सुकक्ष पर्वतको सब ओरसे घेरकर सुशोभित होनेवाला एक वन (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१३) ।

शतपर्वा–शुक्रकी भार्या (उद्योग० ११७ । १३) ।

शतबला–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २०) ।

शतभिषा–एक नक्षत्र, जिसके योगमें अगुरु और चन्दन-सहित सुगन्धित पदार्थोंका दान करनेवाला पुरुष परलोकमें अप्सराओंके समुदाय तथा अक्षयलोकको पाता है (अनु० ६४ । ३०) । चन्द्रव्रतमें शतभिषाको चन्द्रदेवका 'हास' मानकर उसी भावसे उसकी पूजा करनी चाहिये (अनु० ११० । ८) ।

शतमुख–एक महान् असुर, जिसने सौसे अधिक वर्षोंतक अपने मांसकी आहुति दी थी (अनु० १४ । ८४-८५) । इससे संतुष्ट हो भगवान् शङ्करका इसे वर देना (अनु० १४ । ८५–८७) ।

शतयूप–केकयदेशके एक मनीषी राजर्षि, जो पुत्रको राज्य देकर कुरुक्षेत्रके वनमें तपस्या करनेके लिये आये थे । इनके आश्रमपर ही धृतराष्ट्र आदि ठहरे थे । इन्होंने धृतराष्ट्रसे वनवासकी विधि बतायी थी (आश्रम० १९ । ८—१३) । इनके पितामहका नाम सहस्रचित्य था (आश्रम० २० । ६) । इन्होंने नारदजीसे धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गति पूछी थी (आश्रम० २० । २३–२८) ।

शतरथ–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३३) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २६) ।

शतरुद्र–वेदका शतरुद्रिय-प्रकरण, जिसमें रुद्रदेवके सौ नामोंका उल्लेख है (अनु० १५० । ११) ।

शतलोचन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०) ।

शतशीर्षा–नागराज वासुकिकी पत्नी (उद्योग० ११७ । १७) ।

शतश्रृङ्ग–(१) एक पर्वत, जहाँ गन्धमादन, इन्द्रद्युम्न और हंसकूटको लाँघकर राजा पाण्डुने पदार्पण किया था, वहाँ वे तपस्वी-जीवन बिताते हुए भारी तपस्यामें संलग्न हो गये (आदि० ११८ । ५०) । यहीं पाँचों पाण्डवोंका जन्म हुआ था । शतश्रृङ्गनिवासी ऋषि-मुनि अर्जुनके जन्मसे बहुत प्रसन्न हुए थे । इन सब भाइयोंका नामकरण-संस्कार भी यहीं हुआ था (आदि० १२२, १२३ अध्याय) । राजा पाण्डुकी मृत्यु और उनके साथ माद्रीके चितारोहणकी घटना भी यहीं घटित हुई थी (आदि० १२४ अध्याय) । स्वप्नावस्थामें श्रीकृष्णके साथ कैलास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें शतश्रृङ्ग पर्वत मिला था (द्रोण० ८० । ३२) । सुलभाके पूर्वजोंके यज्ञमें देवराज इन्द्रके सहयोगसे द्रोण, शतश्रृङ्ग और चक्रद्वार नामक पर्वत ईंटोंकी जगह चुने गये थे (शान्ति० ३२० । १८५) । (२) एक राक्षस, जिसके 'संयम,' 'वियम' और महाबली 'सुयम' नामक तीन पुत्र थे (शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा०पाठ, पृष्ठ ४६४७) ।

शतसहस्र–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है । वहाँ किये गये दान और उपवासका महत्त्व अन्यत्रसे सहस्रगुना अधिक है (वन० ८३ । १५७–१५९) ।

शतसाहस्रक–गोमतीके रामतीर्थके अन्तर्गत एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके नियम-पालनपूर्वक नियमित भोजन करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८४ । ७४-७५) ।

शतानन्द–एक दिव्य महर्षि, जो भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे (अनु० २६ । ८) ।

शतानन्दा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

शतानीक–(१) नकुलद्वारा द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६३ । १२३; आदि० ९५ । ७५) । यह विश्वेदेवके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १२७-१२८) । कौरवकुलके महामना राजर्षि शतानीकके नामपर नकुलने अपने इस पुत्रका नाम (शतानीक) रखा था (आदि० २२० । ८४) । इसके द्वारा जयत्सेनकी पराजय (भीष्म० ७९ । ४२–४५) । दुष्कर्णकी पराजय (भीष्म० ७९ । ४६—५२) । इसका वृषसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १६ । ७-८) । इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३०) । इसके द्वारा भूतकर्माका वध (द्रोण० २५ । २३) । चित्रसेनकी पराजय (द्रोण० १६८ । १२) । धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माके साथ इसका घोर युद्ध (कर्ण० २५ । १३–१६) । अश्वत्थामाके साथ इसका युद्ध (कर्ण० ५५ । १४–१७) । इसके द्वारा कलिङ्गराजकुमारका वध (कर्ण० ८५ । २१) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८ । ५७-५८) ।

महाभारतमें आये हुए शतानीकके नाम–नकुलदायाद, नकुलसुत, नकुलात्मज और नाकुलि आदि ।

(२) परीक्षित् पुत्र जनमेजयकी पत्नी वपुष्टमाके गर्भसे उत्पन्न राजकुमार । इसकी पत्नी विदेहराजकुमारी थी और इसके पुत्रका नाम था अश्वमेधदत्त (आदि० ९५ । ८६) । (३) कुरुकुलके एक प्राचीन राजर्षि, जिनके नामपर नकुलने अपने पुत्रका नाम रखा था (वन० २२० । ८४) । (४) (सूर्यदत्त) मत्स्यनरेश विराटके भाई और सेनापति, जिन्होंने गोहरणके समय सोनेका कवच धारण करके त्रिगर्तोंके साथ युद्धके लिये प्रस्थान किया (विराट० ३१ । ११-१२) । इनका दूसरा नाम सूर्यदत्त था (विराट० ३१ । १५) । त्रिगर्तोंके साथ इनका घोर संग्राम (विराट० ३३ । १९–२१) । इन्हें भीष्मने धराशायी एवं घायल किया था (भीष्म० ११८ । २७) । ये पाण्डवोंके प्रमुख सहायक थे (द्रोण० १५८ । ४१) । शल्यद्वारा इनका वध (द्रोण० १६७ । ३०) । (५) विराटका छोटा भाई । द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० २१ । २८) ।

शतायु–(१) पुरूरवाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न छः पुत्रोंमेंसे एक । शेष पाँचके नाम हैं–आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु और वनायु (आदि० ७५ । २४-२५) । (२) एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो भीष्मनिर्मित क्रौञ्चव्यूहके जघन प्रदेशमें स्थित था (भीष्म० ७५ । २२) । इसके मारे जानेकी चर्चा (शल्य० २ । १९) ।

शतोदरी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १५) ।

शतोलूखलमेखला–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १०) ।

शत्रुघ्न–महाराज दशरथके पुत्र, श्रीरामके भ्राता । इनकी माताका नाम सुमित्रा था (वन० २७४ । ७-८) । इन्होंने श्रीरामकी आज्ञासे मधुके पुत्र लवण नामक राक्षसका वध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद, दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९५) । वनसे लौटनेपर बड़े भाई श्रीरामसे इनका मिलन (वन० २९१ । ६३) ।

शत्रुञ्जय–(१) सौवीरदेशका एक राजकुमार, जो जयद्रथके रथके पीछे हाथमें ध्वजा लेकर चलता था (वन० २६५ । १०) । द्रौपदी-हरणके समय अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २७) । (२) धृतराष्ट्रका पुत्र, इसे दुर्योधनने भीष्मजीकी रक्षाका कार्य सौंपा था (भीष्म० ५१ । ८) । भाइयोंसहित इसने पाँच केकयराजकुमारोंपर आक्रमण किया था (भीष्म० ७९ । ५६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३७ । २९-३०) । (३) कौरवपक्षका योद्धा, कर्णका भाई, जिसका अर्जुनने वध किया था (द्रोण० ३२ । ६१) । (४) कौरवपक्षका योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (द्रोण० ४८ । १५-१६) । (५) द्रुपदका एक पुत्र, जिसे अश्वत्थामाने मार गिराया था (द्रोण० १५६ । १८१) । (६) सौवीरदेशके नरेश, जिन्हें भारद्वाज कणिकने राजधर्म एवं कूटनीतिका उपदेश किया था (शान्ति० १४० अध्याय) ।

शत्रुञ्जया–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६।६) ।

शत्रुतपन–शत्रुसंतापी एक दानव, जो कश्यपपत्नी दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २९) ।

शत्रुन्तप–दुर्योधनकी सेनाका एक राजा, कौरवोंद्वारा विराटकी गौओंके अपहरणके समय अर्जुनद्वारा इसका वध (विराट० ५४ । ११–१३) ।

शत्रुसह–धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जो अर्जुनसे कर्णकी रक्षाके लिये युद्धमें उनके सम्मुख गया था (विराट० ५४ । ७) । भाइयोंसहित इसने पाँच केकयराजकुमारोंपर आक्रमण किया था (भीष्म० ७९ । ५६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३७ । २९-३०) ।

शनैश्चर–एक ग्रह, जो ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २९) । ये महातेजस्वी और तीक्ष्ण स्वभाववाले ग्रह हैं । ये जब रोहिणी नक्षत्रको पीड़ित करते हैं, तब जगत्के लिये पीड़ादायक होते हैं (उद्योग० १४३ । ८) । ऐसा योग आनेपर संसारके लिये महान् भयकी प्राप्ति सूचित होती है (भीष्म० २ । ३२) । ये भावी युगमें मनुके पदपर प्रतिष्ठित होनेवाले हैं (शान्ति० ३४९ । ५५) । नित्य स्मरणीय देवताओंमें शनैश्चर ग्रहका भी नाम है (अनु० १६५ । १७) ।

शबर–एक म्लेच्छ जाति, जो वसिष्ठजीकी नन्दिनी नामक गायके गोबर और मूत्रसे उत्पन्न हुई थी (आदि० १७४ । ३६-३७) । शबर दक्षिण भारतका एक जनपद है (भीष्म० ५० । ५३) । सात्यकिने कौरव-सेनाका संहार करते समय सहस्रों शबरोंकी लाशोंसे धरतीको पाट दिया था (द्रोण० ११९ । ४६) । वसिष्ठजीकी आज्ञासे नन्दिनीने शबरोंकी सृष्टि की (शल्य० ४० । २१) । ये मान्धाताके राज्यमें निवास करते थे और चोरी-डकैतीसे जीविका चलाते थे (शान्ति० ६५ । १३–१५) । दक्षिण भारतमें जन्म लेनेवाले शबर आदि म्लेच्छ माने गये हैं (शान्ति० २०७ । ४२) । भगवान् शंकर किरातों और शबरोंका भी रूप ग्रहण कर लेते हैं (अनु० १४ । १४१-१४२) । शबर पहले क्षत्रिय थे, परंतु ब्राह्मणोंके अमर्षसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये (अनु० ३५ । १७-१८) । बहुत-से क्षत्रिय परशुरामजीके भयसे गुफाओंमें छिपे रहकर स्वधर्मको भी छोड़ बैठे । ब्राह्मणोंका उन्हें दर्शन नहीं हुआ, जिससे वे पुनः अपने धर्मको न जान सके और शबर आदिके सहवाससे वैसे ही बन गये (आश्व० २९ । १५-१६) ।

शबल–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । ७) ।

शबलाक्ष–एक दिव्य महर्षि, जो भीष्मको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ७) ।

शबलाश्व–ये महाराज कुरुके पौत्र तथा (अश्ववान्) अविक्षित्के पुत्र थे । इनके सात भाई और थे, जिनके नाम हैं—परीक्षित्, आदिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भङ्गकार और जितारि (आदि० ९४ । ५२-५३) ।

शम–(१) 'अहः' नामक वसुके चार पुत्रोंमेंसे एक, शेष तीनके नाम हैं—ज्योति, शान्त और मुनि (आदि० ६६ । २३) । (२) धर्मके तीन श्रेष्ठ पुत्रोंमेंसे एक, शेष दोके नाम हैं—काम और हर्ष, इनकी भार्याका नाम 'प्राप्ति' है (आदि० ६६ । ३२-३३) ।

शमठ–एक विद्वान् ब्राह्मण, जिन्होंने युधिष्ठिरको अमूर्तरयाके पुत्र राजा गयके यज्ञका वृत्तान्त सुनाया था (वन० ९५ । १७—२९) ।

शमीक–(१) एक ऋषि, जो गौओंके रहनेके स्थानमें बैठते थे और गौओंका दूध पीते समय बछड़ोंके मुखसे जो फेन निकलता था, उसीको खा-पीकर तपस्या करते थे । ये मौनव्रतका पालन करनेवाले थे । इनके पास भूखे-प्यासे परीक्षित्का आगमन और उनके द्वारा इनके कंधेपर मरे हुए सर्पके रखे जानेका वृत्तान्त (आदि० ४० । १७–२१) । इनके पुत्रका नाम 'शृङ्गी' ऋषि था (आदि० ४० । २५) । इनका अपने पुत्रको फटकारना और राजाकी महत्ता एवं आवश्यकता बतलाना (आदि० ४१ । २०—३३) । क्रोधकी निन्दा एवं क्षमाकी प्रशंसा करते हुए इनका अपने पुत्रको संयममें रहकर क्रोधको मिटानेके लिये आदेश देना (आदि० ४२ । ३—१२) । इनका गौरमुख नामक शीलवान् शिष्यको संदेश देकर राजा परीक्षित्के पास भेजना (आदि०

४२ । १३-१४)। ये इन्द्रकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १६) । व्यासजीने जनमेजयको स्वर्गीय राजा परीक्षित्‌का दर्शन कराते समय पुत्रसहित शमीक मुनिको भी वहाँ उपस्थित किया था (आश्व० ३५ । ८) । (२) (समीक) एक वृष्णि-वंशी वीर, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १९) । यह द्वारकाके सात महारथियोंमेंसे एक था (सभा० १४ । ५८) । धृतराष्ट्रका इसके बल-पराक्रमसे शंकित होना (द्रोण० ११ । २८) ।

शम्पाक-एक परम शान्त, जीवन्मुक्त, त्यागी ब्राह्मण (शान्ति० १७६ । २-३) । त्यागकी महिमाके विषयमें इनके द्वारा भीष्मको उपदेश (शान्ति० १७६।४–२२)।

शम्बर-(१) एक दानव, कश्यप और दनुके विख्यात चौंतीस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २२) । इन्द्र-द्वारा इसकी पराजय (आदि० १३७ । ४३; वन० १६८ । ८१) । साम्बने बाल्यावस्थामें ही इसकी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था (वन० १२० । १३) । इन्द्र-द्वारा इसके वधकी चर्चा (उद्योग० १६ । १४; शान्ति० ९८ । ५०) । इन्द्रके पूछनेपर इसके द्वारा ब्राह्मणकी महिमाका वर्णन (अनु० ३६ । ४-१८) । (२) एक असुर, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने (अपनी विभूति-स्वरूप प्रद्युम्नके द्वारा) मरवा डाला था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ· पृष्ठ ८२५) । स्वयं श्रीकृष्णने भी शम्बर नामक असुरको परास्त किया था (उद्योग० ४८ । ४) । यह भूतलके प्राचीन शासकोंमेंसे था (शान्ति० २२७ । ४९) । रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके द्वारा इसका वध हुआ था (अनु० १४ । २८) ।

शम्बूक-(१) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५।७६) । (२) स्वधर्मको छोड़कर परधर्मको अपनानेवाला एक शूद्र । सुना जाता है कि सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा परधर्मापहारी शम्बूक नामक शूद्रके मारे जानेपर उस धर्मके प्रभावसे एक मरा हुआ ब्राह्मण बालक जी उठा था (शान्ति० १५३ । ६७) ।

शम्भु-(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३४) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६६) । (२) एक अग्नि, जिन्हें वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण अत्यन्त देदीप्यमान तथा तेजःपुञ्जसे सम्पन्न बताते हैं (वन० २२१ । ५) । (३) श्रीकृष्णके पुत्र, जो रुक्मिणी देवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (अनु० १४ । ३३) । (४) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (अनु० १५० । १२-१३) ।

शम्यानिपात-भूमि या दूरीका माप, शम्या कहते हैं डंडेको । एक बलवान् पुरुष डंडेको खूब जोर लगाकर फेंके तो वह जहाँ गिरे उतनी दूरीके स्थानको एक शम्यानिपात कहते हैं (वन० ८४ । ९) ।

शम्यापात-भूमि या दूरीका माप (शान्ति० २९।९५) । (देखिये शम्यानिपात)

शरण-वासुकि-वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें भस्म हो गया था (आदि० ५७ । ६) ।

शरद्वान्-एक गौतमगोत्रीय महर्षि (आदि० ६३ । १०७) । ये महर्षि गौतमके पुत्र थे और शरकण्डोंके साथ उत्पन्न हुए थे । ये स्वयं भी गौतम कहलाते थे । इनकी बुद्धि जितनी धनुर्वेदमें लगती थी, उतनी वेदोंके अध्ययनमें नहीं लगती थी (आदि० १२९ । २-३) । जैसे अन्य ब्रह्मचारी तपस्यापूर्वक वेदोंका ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार इन्होंने तपस्यामें संलग्न होकर सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये । ये धनुर्वेदमें पारङ्गत तो थे ही, इनकी तपस्या भी बड़ी भारी थी । इससे इन्होंने देवराज इन्द्रको चिन्ता-में डाल दिया था, तब देवराजने जानपदी नामवाली एक देवकन्याको इनके पास भेजा और यह आदेश दिया कि तुम शरद्वान्‌की तपस्यामें विघ्न डालो । जानपदी शरद्वान्‌के रमणीय आश्रमपर जाकर इन्हें लुभाने लगी । उस अप्रतिम सुन्दरी अप्सराको देखकर इनके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और हाथोंसे धनुष एवं बाण छूट-कर पृथ्वीपर गिर पड़े । उसकी ओर देखनेसे इनके शरीरमें कम्प हो आया । शरद्वान् ज्ञानमें बहुत बढ़े-चढ़े थे और इनमें तपस्याकी भी प्रबल शक्ति थी, अतः ये महाप्राज्ञ मुनि अत्यन्त धीरतापूर्वक अपनी मर्यादामें स्थित रहे । किंतु इनके मनमें सहसा जो विकार आ गया था, इससे इनका वीर्य स्खलित हो गया; परंतु इस बातका इन्हें भान नहीं हुआ । ये धनुष-बाण, काला मृगचर्म, वह आश्रम और वह अप्सरा—सबको वहीं छोड़कर वहाँसे चल दिये । इनका वह वीर्य शरकण्डेके समुदायपर गिरकर दो भागोंमें विभक्त हो गया । उससे एक पुत्र और एक कन्याकी उत्पत्ति हुई, जिन्हें राजा शान्तनुने कृपापूर्वक पाला और उनका नाम कृप एवं कृपी रख दिया । शरद्वान्‌को तपोबलसे ये बातें ज्ञात हो गयीं और इन्होंने गुप्तरूपसे आकर पुत्रको गोत्र आदिका परिचय दे, उसे चार प्रकार-के धनुर्वेद, नाना प्रकारके शास्त्र तथा उन सबके गूढ़ रहस्यका भी पूर्णरूपसे उपदेश दिया (आदि० १२९ । ४—२२) ।

शरभ-(१) तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय-के सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ९) । (२) ऐरावत-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय-के सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ११) ।

(३) कश्यप और दनुके विख्यात चौंतीस पुत्रोंमेंसे एक दानव (आदि० ६५ । २६) । (४) एक ऋषि, जो यमराजकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १४) । (५) चेदिराज धृष्टकेतुका अनुज, जो पाण्डवोंकी सहायतामें आया था (उद्योग० ५० । ४७) । अश्वमेधीय अश्वकी रक्षामें गये हुए अर्जुनके साथ इसने पहले युद्ध किया; परंतु पीछे उस अश्वका विधिपूर्वक पूजन किया (आश्व० ८३ । ३) । (६) शकुनिका भाई । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । २४—२६) । (७) प्राचीन कालका एक बलवान्, वनवासी और समस्त प्राणियोंका हिंसक पशु, जिसके आठ पैर और ऊपरकी ओर नेत्र होते थे । वह रक्त पीनेवाला जानवर माना गया है । इससे सिंह भी डरते थे (शान्ति० ११७ । १२-१३ तथा दा० पाठ) ।

शरभङ्ग–एक प्राचीन ऋषि, जिनका उत्तराखण्डमें विख्यात आश्रम था (वन० ९० । ९) । दक्षिणमें दण्डकारण्यके आस-पास भी इनका एक आश्रम था । श्रीरामने इनके आश्रमपर पहुँचकर इनका सत्कार किया था (वन० २७७ । ४०-४१) ।

शरभङ्ग-आश्रम–एक तीर्थ, जहाँ जानेवाला मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अपने कुलको पवित्र कर देता है (वन० ८५ । ४२) ।

शरस्तम्ब–एक प्राचीन तीर्थ, जिसके झरनेमें स्नान करनेवाला स्वर्गमें अप्सराओंद्वारा सेवित होता है (अनु० २५ । २८) ।

शरावती–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २०) ।

शरासन–(देखिये चित्रशरासन) ।

शरु–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें उपस्थित था (आदि० १२२ । ५८) ।

शर्मक–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद, जो 'वर्मक' प्रदेशके आस-पास था । इसे भीमसेनने दिग्विजयके समय यहाँके शासकोंको समझा-बुझाकर ही जीत लिया था (सभा० ३० । १३) ।

शर्मिष्ठा–दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री, जिसने अनजानमें सरोवरके तटपर देवयानीका वस्त्र पहन लिया था (आदि० ७८ । ६) । देवयानीका इसको फटकारना (आदि० ७८ । ८) । इसके द्वारा देवयानीका तिरस्कार तथा कुएँमें गिराया जाना (आदि० ७८ । ९—१३) । पिताकी आज्ञासे जाति भाइयोंकी रक्षाके लिये इसका अपनी एक हजार दासियोंके साथ देवयानीकी आजीवन दासी बनकर रहनेके लिये प्रतिज्ञा करना (आदि० ८० ।१७—२२)। इसके प्रति देवयानीका कटाक्ष और इसके द्वारा उसको समुचित उत्तर (आदि० ८० । २३-२४) । एक सहस्र दासियोंसहित शर्मिष्ठाका देवयानीकी सेवामें उपस्थित होकर उसके साथ वन-विहारके लिये जाना और वहाँ आमोद-प्रमोदमें मग्न होना (आदि० ८१ । २—४) । राजा ययातिका उस स्थानपर जल पीनेकी इच्छासे आना और शर्मिष्ठाद्वारा सेवित देवयानीसे उन दोनोंका परिचय पूछना । देवयानीका दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको अपनी दासी बताना (आदि० ८१ । ५—१०) । शुक्राचार्यका ययातिको अपनी पुत्रीका समर्पण करते समय कुमारी शर्मिष्ठाको भी समर्पित करना और उसे अपनी शय्यापर बुलानेसे मना करना (आदि० ८१ । ३४-३५) । एक दिन अपनेको रजस्वलावस्थामें पाकर शर्मिष्ठा चिन्तामग्न हो गयी । स्नान करके शुद्ध हो समस्त आभूषणोंसे विभूषित हुई शर्मिष्ठा सुन्दर पुष्पोंके गुच्छोंसे भरी अशोकशाखाका आश्रय लिये खड़ी थी । उसने दर्पणमें अपना मुँह देखा और इसके मनमें पतिके दर्शनकी लालसा जाग उठी । इसने अशोकवृक्षसे प्रार्थना की कि तुम मुझे भी प्रियतमका दर्शन कराकर अपने ही समान अशोक (शोकरहित) कर दो । फिर इसने राजा ययातिको ही पति बनानेका निश्चय किया, राजाको एकान्तमें पाकर इसने नम्रतापूर्वक उनके सामने अपना मनोभाव प्रकट किया । इस विषयको लेकर इन दोनोंमें कुछ देरतक संवाद हुआ, अन्तमें राजाने इसके साथ समागम किया । शर्मिष्ठाके गर्भ रह गया और इसने समय आनेपर एक देवोपम कुमारको जन्म दिया (आदि० ८२ । ५—२७) । इसके पुत्र होनेकी बात सुनकर देवयानीका इससे उस विषयमें पूछ-ताछ करना और शर्मिष्ठाका एक श्रेष्ठ ऋषिसे अपनेको संतान-प्राप्त होनेकी बात बताकर उसे संतुष्ट कर देना (आदि० ८३ । १—८) । इसके गर्भसे ययातिके द्वारा क्रमशः द्रुह्यु, अनु तथा पूरु–इन तीन कुमारोंकी उत्पत्ति (आदि० ८३ । १०; आदि० ७५ । ३५) । शर्मिष्ठाके पुत्रोंसे उनके पिता-माताका यथार्थ परिचय जानकर देवयानीका शर्मिष्ठाको फटकारना और शर्मिष्ठाका उसे मुँहतोड़ उत्तर देना (आदि० ८३ । १८–२२ दा० पाठसहित) ।

शार्मी–यामुन पर्वतकी तलहटीमें बसे हुए 'पर्णशाला' नामक गाँवका एक अगस्त्यगोत्रीय, शमपरायण, अध्यापक ब्राह्मण, जिसे बुलानेके लिये यमराजने दूत भेजा था (अनु० ६८ । ३—७) । इसी नाम और गुणवाला एक दूसरा ब्राह्मण भी उस गाँवमें था, जिसे लानेका

यमराजने निषेध कर दिया था (अनु० ६८ । ७-८)। यमदूत उसी ब्राह्मणको ले गये, जिसे यमराजने मना किया था। यमराजने उसकी पूजा करके उसे घर जानेकी आज्ञा दी; साथ ही उसके पूछनेपर महान् पुण्यदायक कर्मके प्रसंगमें तिलदान, अन्नदान और जलदानकी विशेष महिमा बतायी (अनु० ६८ । १०-२२)। यमदूतने पहले लाये हुएको उसके घर पहुँचा दिया और दूसरेको साथ लाकर यमराजको इसकी सूचना दी। यमराजने उसकी भी पूजा करके उसे विदा किया और उसके लिये भी पूर्वोक्त सारा उपदेश दिया, वहाँसे लौटनेपर शर्मीने यमराजके बताये अनुसार सारा कार्य किया (अनु० ६८। २४-२६)।

शर्याति–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २२६)। ये वैवस्वत मनुके पुत्र थे (आदि० ७५ । १६; अनु० ३० । ६)। राजा शर्याति यमसभामें रहकर वैवस्वत यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १४)। इनके द्वारा च्यवन ऋषिको अपनी कन्या सुकन्याका दान (वन० १२२ । २६)। महर्षि च्यवनद्वारा इनके यज्ञका सम्पादन और उसमें अश्विनीकुमारोंका सोमपान (वन० १२४, १२५ अध्याय) । इनके वंशमें दो विख्यात राजा हुए थे—हैहय और तालजङ्घ (अनु० ३०। ६-७)।

शर्यातिवन–एक पवित्र वनस्थली, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिली थी (द्रोण० ८० । ३२)।

शल–(१) वासुकि-वंशमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पयज्ञमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ५)। (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ४)। इसका भीमसेनपर आक्रमण करना (द्रोण० १२७ । ३४; कर्ण० ५१ । ८-९)। इसका भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (कर्ण० ८४ । ३—६)। (३) कुरुवंशी राजा सोमदत्तके पुत्र और भूरिश्रवाके भ्राता, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गये थे (आदि० १८५ । १५)। ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें गये थे (सभा० ३४ । ८)। दुर्योधनकी सेनाके एक विशिष्ट योद्धा थे (उद्योग० ५५ । ६३)। भीष्मद्वारा निर्मित महान् व्यूहमें वाम भागमें स्थित हो ये सारी सेनाकी रक्षा करते हुए चल रहे थे (भीष्म० ५१ । ५७)। इन्होंने अभिमन्युपर धावा किया था (द्रोण० ३७ । ५—२४)। इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । २४-२५)। द्रौपदीकुमारोंके साथ इनका युद्ध (द्रोण० १०६ । १५)। श्रुतकर्माद्वारा इनका वध (द्रोण० १०८ । १०)। व्यासजीके आवाहन करनेपर मरे हुए अन्य कौरव वीरोंके साथ ये भी गङ्गाजीसे प्रकट हुए थे (आश्रम० ३२ । १०)। मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गये (स्वर्गा० ५ । १६-१८)। (४) इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्के पुत्र, इनकी माता मण्डूकराजकी कन्या सुशोभना थी। इनके दो भाई और थे, जिनका नाम था दल और बल। पिताद्वारा इनका राज्याभिषेक (वन० १९२ । ३८)। इनका महर्षि वामदेवसे वाम्य अश्वोंकी याचना करना और पुनः लौटा देनेके शर्तपर इन्हें उन अश्वोंकी प्राप्ति (वन० १९२ । ४३)। अश्वोंको लौटानेके विषयमें इनका महर्षि वामदेवसे संवाद (वन० १९२ । ४८-५६)। अश्वोंके न लौटानेपर महर्षि वामदेवद्वारा उत्पन्न किये गये राक्षसोंके प्रहारसे इनका वध (वन० १९२।५७-५९)।

शलकर–तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ९)।

शलभ–(१) दनुके विख्यात चौंतीस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २६)। यह बाह्लीकराज प्रह्लादके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७।३०-३१)। (२) पाण्डवपक्षका एक महारथी योद्धा, जो कर्णद्वारा मारा गया (कर्ण० ५६ । ४९-५०)।

शलभी-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २६)।

शल्य–बाह्लीक (एवं मद्र) देशके श्रेष्ठ राजा, जिनके रूपमें हिरण्यकशिपुका पुत्र एवं प्रह्लादका अनुज संह्लाद ही इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६)। इनके द्वारा भीष्मका सत्कार और पाण्डुके लिये उनको माद्रीका समर्पण (आदि० ११२ । ३—१६)। मद्रराज शल्य अपने पुत्र वीर रुक्माङ्गद तथा रुक्मरथके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १३-१४)। द्रौपदीके स्वयंवरमें मत्स्यवेधके लिये धनुषको चढ़ा न सके (आदि० १८६ । २८)। द्रौपदीके स्वयंवरमें भीमसेनद्वारा इनकी पराजय (आदि० १८९ । २३—२९)। नकुलने पश्चिम-दिग्विजयके समय मामा शल्यको प्रेमसे ही वशमें कर लिया। इन्होंने राजधानीमें आनेपर नकुलका विशेष सत्कार किया (सभा० ३२ । १४-१६)। ये युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । ७)। शिशुपालने इन्हें श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ बताया (सभा० ३७ । १४)। इन्होंने अभिषेकके समय युधिष्ठिरको अच्छी मूँठवाली तलवार दी तथा छींकेपर रखा हुआ सुवर्णभूषित कलश प्रदान किया (सभा० ५३ । ९)। द्यूतके लिये हस्तिनापुरमें आनेपर राजा युधिष्ठिर वहाँ पहलेसे ही पधारे

हुए राजा शल्यसे मिले थे (सभा० ५८ । २४-२५) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया (उद्योग० ४ । ८) । मार्गमें दुर्योधनके सत्कारसे प्रसन्न होकर उसके पक्षमें रहनेके लिये इनका उसे वर देना (उद्योग० ८ । १८ के बाद दा० पाठ) । युधिष्ठिरके पास जाना, पाण्डवोंसे मिलना, वहाँका सत्कार ग्रहण करके युधिष्ठिरसे बातचीत करना और उन्हें कर्णका उत्साह नष्ट करनेके लिये वर देना (उद्योग० ८ । २४—४८) । इनका युधिष्ठिरको इन्द्रविजय नामक उपाख्यान सुनाना (उद्योग० अध्याय ९ से १८ । २० तक) । कुन्तीकुमारोंसे विदा लेकर दुर्योधनके पास लौटना (उद्योग० १८ । २५) । इनका एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास आना (उद्योग० १९ । १६-१७) । दुर्योधनका धृतराष्ट्रके समक्ष इनके पराक्रमका वर्णन करना (उद्योग० ५५ । ४३) । दुर्योधनका इनको एक अक्षौहिणी सेनाका नायक नियत करके इनका विधिवत् अभिषेक करना (उद्योग० १५५ । ३२-३३) । युधिष्ठिरको युद्धकी आज्ञा देकर उनकी शुभ कामना करना (भीष्म० ४३ । ७९—८७) । प्रथम दिनके संग्राममें युधिष्ठिरके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । २८-३०) । इनके द्वारा विराटकुमार उत्तरका वध (भीष्म० ४७ । ३५—३९) । इनके द्वारा विराटकुमार शङ्खकी पराजय (भीष्म० ४९ । ३९) । इनका धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (भीष्म० ६२ । ८—१४) । भीमसेनद्वारा इनकी पराजय (भीष्म० ६४ । २७) । इनका युधिष्ठिरके साथ युद्ध (भीष्म० ७१ । २०-२१) । नकुल और सहदेवका इनपर आक्रमण (भीष्म० ८१ । २६) । सहदेवद्वारा इनकी पराजय (भीष्म० ८३ । ५१-५३) । शिखण्डीपर इनका आक्रमण (भीष्म० ८५ । २७) । इनका पाण्डवोंके साथ युद्धमें युधिष्ठिरको घायल करना (भीष्म० १०५ । ३०-३३) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३, ११४ अध्याय) । युधिष्ठिरके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ४०-४१) । नकुलके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३१-३२) । अभिमन्युके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ७८—८२) । भीमसेनके साथ गदायुद्ध और इनकी पराजय (द्रोण० १५ । ८—३२) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १५-१७) । अभिमन्युके साथ युद्ध और उसके प्रहारसे मूर्च्छित होना (द्रोण० ३७ । २४—३४; द्रोण० ३८ । ३) । अभिमन्युद्वारा पराजित होना (द्रोण० ४८ । १४-१५) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । २९-३०) । अर्जुनको बाण मारना (द्रोण० १०४ । २७-२८) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १८-२०) । ये जयद्रथके संरक्षकोंमें थे । इनका अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ । ९, ५४) । अर्जुनका इन्हें बाण मारना (द्रोण० १४६ । ५४) । इनके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय (द्रोण० १६७ । ३०—३४) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । ११) । इनपर श्रुतकीर्तिका आक्रमण (कर्ण० १३ । १०) । कर्णका दुर्योधनसे इनके बल-पराक्रम एवं अश्वविज्ञानकी प्रशंसा करके इनको अपना सारथि बनानेके लिये प्रस्ताव करना (कर्ण० ३१ । ५८—६९) । कर्णका सारथ्य करनेके लिये दुर्योधनके कहनेपर इनका कुपित होकर उसे रोषपूर्ण उत्तर देना और रूठकर चल देना; फिर श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसके प्रस्तावको स्वीकार कर लेना (कर्ण० ३२ अध्याय) । दुर्योधनका इन्हें त्रिपुर-विजयकी कथा सुनाना (कर्ण० ३३, ३४ अध्याय) । इनका दुर्योधनके साथ वार्तालाप और कर्णका सारथि बननेके लिये अपनी स्वीकृति देना (कर्ण० ३५ अध्याय) । कर्णसे पाण्डवोंकी प्रशंसा करना (कर्ण० ३६ । २७—३२) । कर्णको फटकारकर अर्जुनकी प्रशंसा करना (कर्ण० ३७ । ३३—४०) । कर्णके प्रति आक्षेपपूर्ण वचन (कर्ण० ३९ अध्याय) । कर्णका शल्यको फटकारना और मारनेकी धमकी देना (कर्ण० ४० अध्याय) । कर्णको कौवे और हंसका उपाख्यान सुनाकर फटकारना (कर्ण० ४१ अध्याय) । इनका कर्णको उत्तर देना (कर्ण० ४५ । ४०—४६) । इनके द्वारा कर्णसे अर्जुनकी प्रशंसा तथा पाण्डव-पक्षके प्रमुख वीरोंका वर्णन (कर्ण० ४६ । ४१—८६) । भीमसेनको अर्जुनकी प्रतिज्ञाका स्मरण कराकर कर्णको जीभ काटनेसे रोकना (कर्ण० ५० । ४७ के बाद दा० पाठ) । कर्णको नकुल, सहदेव तथा युधिष्ठिरके वधसे रोकना (कर्ण० ६३ । २१—२९) । कर्णसे अर्जुनके पराक्रमका वर्णन करके उन्हें मारनेके लिये कहना (कर्ण० ७९ । १९—४८) । भीमसेनके भयसे डरे हुए कर्णको समझाना (कर्ण० ८४ । ८—१७) । कर्णकी बातका उत्तर देना (कर्ण० ८७ । १०३) । कर्णवधसे दुःखित हुए दुर्योधनको सान्त्वना देना (कर्ण० ९२ । १०—१४) । दुर्योधनसे रणभूमिका संक्षिप्त वर्णन करना (कर्ण० ९४ । २—२३) । दुर्योधनकी प्रार्थनासे सेनापति-पद स्वीकार करना (शल्य० ६ । २८) । इनके वीरोचित उद्गार (शल्य० ७ । १३—२०) । इनका अद्भुत पराक्रम (शल्य० ११ । २०—३२) । भीमसेनद्वारा इनकी पराजय (शल्य० ११ । ६०—६२) । भीमसेनके साथ गदायुद्ध (शल्य० १२ । १२—२७) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध (शल्य० १२ । ४७—

६३)। इनका अद्भुत पराक्रम (शल्य० १३ अध्याय)। इनका पाण्डववीरोंके साथ युद्ध (शल्य० १५। १०—४३)। युधिष्ठिरद्वारा इनकी पराजय (शल्य० १६। ६३–६६)। युधिष्ठिरद्वारा इनका वध (शल्य० १७। ५२)। व्यासजीके आवाहन करनेपर युद्धमें मरे हुए कौरव-पाण्डववीरोंके साथ ये भी गङ्गाजीके जलसे प्रकट हुए थे (आश्रम० ३२। १०)।

महाभारतमें आये हुए शल्यके नाम–आर्तायनि, बाह्लीक-पुङ्गव, मद्राधिप, मद्राधिपति, मद्रज, मद्रजनाधिप, मद्र-जनेश्वर, मद्रक, मद्रकाधम, मद्रकाधिप, मद्रकेश्वर, मद्रप, मद्रपति, मद्रराट्, मद्रराज, मद्रेश, मद्रेश्वर, सौवीर आदि।

शल्यपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व।

शशक–एक जाति, इस जातिके राजाको कर्णने दिग्विजयके समय परास्त किया था (वन० २५४। २१)।

शशबिन्दु–एक प्राचीन राजा (आदि० १। २२८)। ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८। १७)। ये चित्ररथके पुत्र थे। सृंजयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके चरित्र एवं दान आदिका वर्णन (द्रोण० ६५ अध्याय)। श्रीकृष्णद्वारा इनके प्रभावका वर्णन (शान्ति० २९। १०५–११०)। इनके दस हजार स्त्रियाँ थीं और इसमेंसे प्रत्येकके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र हुए थे। इस प्रकार इनके कुल एक करोड़ पुत्र थे (शान्ति० २०८। ११-१२)। यमने इन्हें श्राद्धकर्मोंका उपदेश दिया था (अनु० ८९। १—१५)। इनके द्वारा मांसभक्षणका निषेध (अनु० ११५। ६०)। ये सायं-प्रातःस्मरणीय नरेश हैं (अनु० १६५। ५१)।

शशयान–एक दुर्लभ तीर्थ, जहाँ सरस्वतीके जलमें प्रति-वर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको शशके रूपमें छिपे हुए पुष्करका दर्शन होता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता और सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८२। ११४–११६)।

शशलोमा–एक राजा, जिसने कुरुक्षेत्रके तपोवनमें तप करके स्वर्ग प्राप्त किया था (आश्रम० २०। १४-१५)।

शशाद–महाराज इक्ष्वाकुके परम धर्मात्मा पुत्र, जो पिताके बाद अयोध्याके राजा हुए थे (वन० २०२। १)। इनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था (वन० २०२। २)।

शशिक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४६)।

शशोलूकमुखी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। २२)।

शाक–शाकद्वीपका एक वृक्ष, जिसके नामपर उस द्वीपका नाम प्रसिद्ध हुआ है (भीष्म० ११। २८)।

शाकद्वीप–भूमण्डलके सात महाद्वीपोंमेंसे एक। धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका वर्णन (भीष्म० ११ अध्याय)।

शाकम्भरी–एक देवीसम्बन्धी तीर्थ यहाँ शाकम्भरीके समीप जाकर मनुष्य ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एकाग्र और पवित्र हो तीन राततक केवल शाक खाकर रहे तो बारह वर्षोंतक शाकाहार करनेका पुण्य प्राप्त होता है (वन० ८४। १३–१७)।

शाकल–एक नगरी, जो मद्रदेशकी राजधानी थी (आधुनिक मतके अनुसार वर्तमान स्यालकोट ही शाकल है।) (सभा० ३२। १४)।

शाकलद्वीप–एक देश, जहाँके राजा प्रतिविन्ध्यको अर्जुनने जीता था (सभा० २६। ६)।

शाकल्य–एक शिवभक्त ऋषि, जिन्होंने नौ सौ वर्षोंतक मनोमय यज्ञ (ध्यानद्वारा भगवान् शिवका आराधन) किया था (अनु० १४। १००)।

शाकवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ७६)।

शाख–अनल नामक वसुके पुत्र। कुमार कार्तिकेयके छोटे भाई। इनके दो छोटे भाई और थे, जिनके नाम थे–विशाख और नैगमेय। (किसी-किसीके मतमें ये तीनों कुमार कार्तिकेयके ही नाम हैं तथा किन्हींके मतमें कुमार कार्तिकेयके पुत्रोंके ये तीनों नाम हैं। कल्पभेदसे सभी ठीक हो सकते हैं।) वास्तवमें शाख, विशाख और नैगमेय—कुमार कार्तिकेयके ही रूपान्तर हैं; स्वयं कुमार ही इनके रूपमें प्रकट हुए हैं (शल्य० ४४। ३७)।

शाण्डिली–(१) दक्षकी पुत्री तथा धर्मकी पत्नी। इनके गर्भसे अनल नामक वसुका जन्म हुआ था (आदि० ६६। १७–२०)। (२) ऋषभ पर्वतपर रहनेवाली एक तपस्विनी, जिनकी निन्दासे गरुड़के पंख गिर गये थे। पुनः इनके द्वारा गरुड़को वरदान प्राप्त हुआ था (उद्योग० ११३। १२—१७)। (३) देवलोकमें रहनेवाली एक पतिव्रता देवी, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंको जानने-वाली और मनस्विनी थीं। इनके द्वारा केकयराजकुमारी सुमनाको पातिव्रत्यका उपदेश (अनु० १२३। ८—२०)।

शाण्डिल्य–एक महातपस्वी प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४। १७)। इनकी पुत्रीकी तपस्याका वर्णन (शल्य० ५४। ५–८)। ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने गये थे (शान्ति० ४७। ६)। इन्होंने

बैलगाड़ीके दानको सुवर्ण-जल आदि सभी श्रेष्ठ वस्तुओंके दानके समान बताया है (अनु० ६५ । १९) । राजा सुमन्युने भक्ष्य-भोज्य-पदार्थोंके पर्वतों-जैसे कितने ही ढेर लगाकर उन्हें शाण्डिल्यको दान कर दिया था। इससे स्वर्ग-लोकमें स्थान प्राप्त कर लिया (अनु० १३७ । २२) ।

शान्त–'अहः' नामक वसुके चार पुत्रोंमेंसे एक । शेष तीनके नाम हैं--शम, ज्योति और मुनि (आदि० ६६ । २३) ।

शान्तनु–महाराज प्रतीपके द्वितीय पुत्र । देवापिके अनुज तथा बाह्लीकके अग्रज । इनकी माताका नाम सुनन्दा था (आदि० ९४ । ६१; आदि० ९५ । ४४) । इनके बड़े भाई देवापिके बाल्यावस्थामें ही राज्य छोड़कर वन चले जानेके कारण ये ही राजा हुए थे (आदि० ९४ । ६२; आदि० ९५ । ४५) । ये जिसे अपने दोनों हाथोंसे छू देते, वह सुख-शान्तिका अनुभव करता और बूढ़ेसे जवान हो जाता था; इसीलिये इनका नाम शान्तनु हुआ (आदि० ९५ । ४६) । ये पूर्वजन्ममें राजा महाभिष थे । इनके स्वर्गसे मर्त्यलोकमें आनेका इतिहास (आदि० ९६ । १–९) । गङ्गाको पत्नी रूपमें स्वीकार करनेके लिये इनको पिताका आदेश (आदि० ९७ । २१–२३) । गङ्गाके अनुपम रूपसे आकृष्ट हो उनसे अपनी पत्नी होनेके लिये इनकी याचना (आदि० ९७ । ३१-३२) । गङ्गाके साथ इनके विवाहकी शर्त (आदि० ९८ । ३) । इनके द्वारा गङ्गाको फटकार (आदि० ९८ । १६) । इनको वसिष्ठद्वारा वसुओंको प्राप्त हुए शापका वृत्तान्त बतलाकर गङ्गाका अन्तर्धान होना (आदि० ९९ । ५–४६) । इनका सम्राट्‌पदपर अभिषेक (आदि० १०० । ७) । इनके राज्यकी विशेषता (आदि० १०० । ८—२०) । गङ्गाजीका इनको बालक भीष्मका परिचय देना (आदि० १०० । ३३) । सत्यवतीके रूपसे मोहित होकर उसकी प्राप्तिके लिये निषादराजसे इनकी याचना (आदि० १०० । ५०-५१) । सत्यवतीके पुत्रको ही सम्राट्‌के पदपर अभिषिक्त करनेके लिये निषादराजका इनके प्रति प्रस्ताव (आदि० १०० । ५४–५६) । इनका निषादके प्रस्तावको अस्वीकार करना (आदि० १०० । ५७-५८) । इनका इकलौते पुत्रको नहींके समान बतलाकर संतानकी महिमाका वर्णन करना (आदि० १०० । ६६–७०) । इनकी वंशोच्छेदकी चिन्ता (आदि० १०० । ७०-७१) । इनको भीष्मद्वारा सत्यवतीका समर्पण (आदि० १०० । १००) । इनके द्वारा भीष्मको स्वच्छन्द-मृत्युका वरदान (आदि० १०० । १०२) । सत्यवतीके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० १०१ । १) । इनके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद एवं विचित्रवीर्यका जन्म (आदि० १०१ । २-३) । इनका स्वर्गवास (आदि० १०१ । ४) । इनका अपने जीवनकालमें वनमें अनाथकी तरह पड़े हुए बालक कृप एवं कृपीको घर लाकर उनका पालन-पोषण एवं समस्त संस्कार कराना (आदि० १२९ । १८) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २५) । ये आर्चीकपर्वतपर तपस्या करके नित्यधामको प्राप्त हुए थे (वन० १२५ । १९) । इन्होंने भीष्मसे पिण्ड लेनेके लिये अपना हाथ बढ़ाया था (अनु० ८४ । १५) । ये सायं-प्रातः स्मरण करने योग्य राजाओंमें गिने गये हैं (अनु० १६५ । ५८) ।

महाभारतमें आये हुए शान्तनुके नाम–भारत, भारत-गोप्ता, भरतसत्तम, कौरव्य, कुरुसत्तम, प्रातीप आदि ।

शान्तमय–एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३६) ।

शान्ता–राजा लोमपादकी गोद ली हुई पुत्री, जिसे राजाने महर्षि ऋष्यशृङ्गके साथ ब्याह दिया था (वन० ११० । २६; वन० ११३ । ११) । अपने पति ऋष्यशृङ्गके साथ आश्रमपर आना और उनकी सेवामें संलग्न होना (वन० ११३ । २२–२४) । महर्षि ऋष्यशृङ्गको शान्ताका दान करनेसे राजा लोमपाद सभी प्रकारके प्रचुर भोगोंसे सम्पन्न हो गये (शान्ति० २३४ । ३४) ।

शान्ति–(१) भूतपूर्व चौथे इन्द्रका नाम (आदि० १९६ । २९) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो राजा उपरिचरके यज्ञके सदस्य बने थे (शान्ति० ३३६ । ८) । इनके पिताका नाम अङ्गिरा था । ये अग्निवंशमें उत्पन्न होनेसे आग्नेय कहलाये (अनु० ८५ । १३०–१३१) ।

शान्तिपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

शामित्र–यज्ञके अन्तर्गत एक कर्मविशेष (आदि० १९६ । १) ।

शारद्वती–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्म-कालिक महोत्सवमें गान किया था (आदि० १२२ । ६४) ।

शार्ङ्ग–भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य धनुष (सभा० २ । १४; सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२१; वन० २० । १९) । कौरव-सभामें विश्वरूप धारण किये हुए श्रीकृष्णकी एक भुजामें यह देदीप्यमान होता था (उद्योग० १३१ । १०) । इन्द्रके विजय नामक धनुषकी इसके साथ तुलना (उद्योग० १५८ । ४) । यह तीन दिव्य धनुषोंमेंसे एक है । इसे भगवान् विष्णुका तेजस्वी धनुष बताया गया है (उद्योग० १५८ । ५) । लोकपितामह ब्रह्माने इसका निर्माण करके इसे श्रीहरिको

समर्पित किया था (अनु० १४१ । ८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५९१५) ।

शार्ङ्गकोपाख्यान–शार्ङ्गक पक्षियोंकी कथा (आदि० अध्याय २२८ से २३२ तक) ।

शार्ङ्गरव–एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें अध्वर्यु बने थे (आदि० ५३ । ६) ।

शार्दूली–क्रोधवशाकी पुत्री, जिसने सिंहों, बाघों और चीतोंको जन्म दिया (आदि० ६६ । ६१, ६५) ।

शालकटङ्कट–राक्षस अलम्बुषका नामान्तर (द्रोण० १०९ । २२—३१) । (देखिये अलम्बुष)

शालिक–एक दिव्य महर्षि, जो हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे मिले थे (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

शालिपिण्ड·कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५ । १४) ।

शालिशिरा–एक देवगन्धर्व, जो कश्यपपत्नी मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६५ । ४४) । ये अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें उपस्थित हुए थे (आदि० १२२ । ५६) ।

शालिसूर्य–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, जो शालिहोत्रका स्थान है। यहाँ स्नानसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । १०७) ।

शालिहोत्र–एक मुनि, जिनके आश्रममें व्यासजी ठहरे थे । इनके आश्रमके पास एक सरोवर तथा पवित्र वृक्ष था। वह वृक्ष सर्दी, गर्मी तथा वर्षाको अच्छी तरह सहनेवाला था । वहाँ केवल जल पी लेनेसे भूख-प्यास दूर हो जाती थी । उस सरोवर और वृक्षका निर्माण शालिहोत्र मुनिने अपनी तपस्याद्वारा किया था (आदि० १५४ । १५ के दा० बाद दा० पाठ, पृष्ठ ४६३) । इनके आश्रममें हिडिम्बाके साथ पाण्डवोंका आगमन । इनके द्वारा भूखसे पीड़ित हुए पाण्डवोंको भोजन-दान (आदि० १५४ । १८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ४६४) । ये अश्वविद्याके आचार्य थे और घोड़ोंकी जाति तथा उनके विषयकी तात्त्विक बातें जानते थे (वन० ७१ । २७) । इनका शालिसूर्य नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । १०७) ।

शालूकिनी–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ, जहाँ जाकर दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है (वन० ८३ । १३) ।

शाल्मलि–सोमवंशी महाराज कुरुके पौत्र तथा (अश्ववान्) अविक्षित्के पुत्र । इनके अन्य सात भाइयोंके नाम हैं–परीक्षित्, आदिराज, विराज, शबलाश्व, उच्चैःश्रवा, भङ्गकार और जितारि (आदि० ९४ । ५२-५३) ।

शाल्मलिद्वीप–सुप्रसिद्ध जम्बू आदि सात द्वीपोंमेंसे एक (भीष्म० ११ । ३) । इस द्वीपमें उस शाल्मलि (सेमल) वृक्षकी पूजा की जाती है, जिसके नामपर इसका नामकरण हुआ है (भीष्म० १२ । ६) ।

शाल्व–(१) एक क्षत्रियनरेश, जो वृषपर्वाके छोटे भाई अजकके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १६-१७) । काशिराजकी पुत्री अम्बाके स्वयंवरमें भीष्मद्वारा इसकी पराजय (आदि० १०२ । ३४—४९) । यह सौभ नामक विमानका अधिपति था और अम्बाने मन-ही-मन इसे अपना पति चुन लिया था (आदि० १०२ । ६१-६२) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८६ । १५) । युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भी आया था (सभा० ३४ । ९) । श्रीकृष्णद्वारा इसके मारे जानेकी चर्चा (वन० १२ । ३२) । इसके वधकी संक्षिप्त कथा (वन० १४ अध्याय) । इसका द्वारकापर आक्रमण, साम्ब, प्रद्युम्न आदिके साथ युद्ध तथा श्रीकृष्णद्वारा वध होनेकी विस्तृत कथा (वन० अध्याय १५ से २२ तक) । भीष्मसे आज्ञा लेकर आयी हुई अम्बाका इसके द्वारा परित्याग (उद्योग० १७५ । २४) । (२) व्युषिताश्वपत्नी भद्राने अपने मृत पतिके शवके साथ शयन करके तीन 'शाल्व' और चार 'मद्र' उत्पन्न किये थे (यहाँ 'शाल्व' और 'मद्र' का अर्थ है उन-उन देशोंके शासक) (आदि० १२० । ३२—३६) । शाल्वदेशके लोग जरासंधके डरसे दक्षिण दिशाको भाग गये थे । (सभा० १४ । २६) । प्राचीनकालमें शाल्वदेशपर द्युमत्सेन नामक एक धर्मात्मा क्षत्रिय नरेश शासन करते थे (जिनके पुत्र सत्यवान्का सावित्रीके साथ विवाह हुआ था) (वन० २९४ । ७) । कौरवसेनाके संरक्षकोंमें शाल्वदेशके योद्धाओंका भी नाम आया है (उद्योग० १६० । १०२-१०३) । शाल्व एक भारतीय जनपद है (भीष्म० ९ । ३९) । शाल्व योद्धाओंने अर्जुनपर आक्रमण किया था (भीष्म० ११७ । ३४-३५) । पाण्डवपक्षीय शाल्वदेशीय योद्धाओंने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था (द्रोण० १५४ । १०-११) । शाल्व आदि देशोंके बड़भागी मनुष्य सनातन धर्मको जानते हैं (कर्ण० ४५ । १४-१५) । (३) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जिसे कौरवपक्षीय भीमरथने मारा था (यह भीमरथ धृतराष्ट्रपुत्रसे भिन्न था) (द्रोण० २५ । २६) । (४) एक म्लेच्छगणोंका राजा, जिसने पाण्डवोंकी विशाल सेनाका सामना

करनेके लिये उसपर आक्रमण किया था (शल्य० २० । १) । इसका हाथी पर्वतके समान विशालकाय, मदकी धारा बहानेवाला, मदोन्मत्त तथा ऐरावतके समान शक्तिशाली था । वह महाभद्र नामक गजराजके कुलमें उत्पन्न हुआ था । धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने सदा ही उसका आदर किया था । गजशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंने उसे अच्छी तरह सजाया था । वह युद्धके अवसरोंपर सदा ही सवारीके उपयोगमें लाया जाता था (शल्य० २० । २-३) । उस हाथीपर आरूढ़ हुए राजा शाल्वका पाण्डवोंपर आक्रमण और अपने पराक्रमसे पाण्डवसेनाको खदेड़ना । इसके हाथीका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण करके उनके रथको घोड़ों और सारथिसहित कुचल डालना तथा धृष्टद्युम्नद्वारा उस गजराजका वध और सात्यकिद्वारा शाल्वके सिरका उच्छेद (शल्य० २० । ४—२६) ।

शाल्वसेनि–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

शाल्वायन–एक प्राचीन राजा, जो जरासंधके भयसे अपने भाइयों तथा सेवकोंके साथ दक्षिण दिशाको भाग गया था (सभा० १४ । २७) ।

शाल्वेय (शाल्वेयक)–शाल्वदेश तथा वहाँके निवासी (वन० २६४ । ६; विराट० ३० । २; उद्योग० ५४ । १८; उद्योग० १६३ । १०) ।

शिशुमा–गान्धारराजकी पुत्री, इसका दूसरा नाम सुकेशी भी था । भगवान् श्रीकृष्णकी रानी (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२०) । (विशेष देखिये सुकेशी)

शिक्षक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६) ।

शिखण्ड–छत्रक (भुइँफोड़), जो वृत्रासुरके रक्तसे उत्पन्न हुआ है । यह ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके लिये अभक्ष्य है (शान्ति० २८२ । ६०) ।

शिखण्डिनी–राजा द्रुपदकी कन्या, जो आगे चलकर पुरुषरूपमें परिणत हो गयी थी । पुरुषरूपमें इसका नाम 'शिखण्डी' था (उद्योग० १८८ । ४—१४; उद्योग० १९१ । १) । (विशेष देखिये शिखण्डी)

शिखण्डी–राजा द्रुपदका पुत्र, जो पहले शिखण्डिनी नामवाली कन्याके रूपमें उत्पन्न होकर पीछे पुत्ररूपमें परिणत हो गया था । स्थूणाकर्ण नामक यक्षने इसका प्रिय करनेकी इच्छासे इसे पुरुष बना दिया था (आदि० ६३ । १२५) । यह राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १२६) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुआ था (विराट० ७२ । १७) । इसने उलूकको दुर्योधनके संदेशका उत्तर दिया था (उद्योग० १६३ । ४३–४५) । इसका द्रुपदके यहाँ उनकी मनस्विनी रानीके गर्भसे पुत्रीरूपमें जन्म । माता-पिता द्वारा इसके पुत्रीभावको छिपाकर पुत्र होनेकी घोषणा तथा इसके पुत्रोचित संस्कारोंका सम्पादन (उद्योग० १८८ । ९—१९) । इसे लेखन और शिल्पकलाकी शिक्षाका प्राप्त होना । माता-पिताका परस्पर सलाह करके इसका दशार्णराजकी कन्याके साथ विवाह कर देना (उद्योग० १८९ । १—१३) । दशार्णराजकी कन्याका शिखण्डीके स्त्रीत्वका पता लगनेपर अपनी धायों और सखियोंको इसकी सूचना देना और धायोंका दशार्णराजतक यह समाचार पहुँचाना । दशार्णराजका कुपित होना । शिखण्डीका राजकुलमें पुरुषकी भाँति घूमना-फिरना तथा दशार्णराजका दूत भेजकर कन्याको पुत्र बताकर धोखा देनेके अपराधमें द्रुपदको जड़मूलसहित उखाड़ फेंकनेकी धमकी देना (उद्योग० १८९ । १३–२३) । हिरण्यवर्माके भयसे घबराये हुए द्रुपदका अपनी महारानीसे संकटसे बचनेका उपाय पूछना । द्रुपदपत्नीका कन्याको पुत्र घोषित करनेका उद्देश्य बताना । राजाके द्वारा नगरकी रक्षाकी व्यवस्था और देवाराधन । शिखण्डीका वनमें प्राण त्याग देनेकी इच्छासे वनमें जाना, स्थूणाकर्ण यक्षके भवनमें तपस्या करना, यक्षका इसे वर माँगनेके लिये प्रेरित करना तथा शिखण्डिनीका अपने माता-पितापर आये हुए संकटके निवारणके लिये पुरुषरूपमें परिणत हो जानेके लिये इच्छा प्रकट करना (उद्योग० १९१ अध्याय) । स्थूणाकर्णका पुनः लौटानेकी शर्तपर कुछ कालके लिये इसे अपना पुरुषत्व प्रदान करना । शिखण्डीका नगरमें आकर पिता तथा राजा हिरण्यवर्माको अपने पुरुषत्वका विश्वास दिलाकर संतुष्ट करना (उद्योग० १९२ । १—३२) । शिखण्डीका पुरुषत्व लौटानेके लिये यक्षके पास जाना और यक्षका अपनेको स्त्रीरूपमें ही रहनेका शाप प्राप्त हुआ बताकर इसे लौटा देना (उद्योग० १९२ । ५३–५७) । द्रोणाचार्यसे अस्त्रशिक्षाकी प्राप्ति (उद्योग० १९२ । ६०–६१) । प्रथम दिनके संग्राममें अश्वत्थामाके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ४६–४८) । द्रोणाचार्यके भयसे इसका युद्धसे हट जाना (भीष्म० ६९ । ३१) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उनसे पराजित होना (भीष्म० ८२ । २६–३८) । शल्यके अस्त्रको दिव्यास्त्रद्वारा विदीर्ण करना (भीष्म० ८५ । २९–३०) । भीष्मको उत्तर देना और उनको मारनेके लिये प्रयत्न करना (भीष्म० १०८ । ४५–५०) । अर्जुनके प्रोत्साहनसे इसका भीष्मपर आक्रमण (भीष्म० ११० । १—३) । भीष्मपर धावा (भीष्म० ११४ । ४०) । अर्जुनके प्रोत्साहनसे भीष्मपर आक्रमण (भीष्म०

११७ । १–७) । अर्जुनसे सुरक्षित होकर भीष्मपर धावा करना (भीष्म० ११८ । ४३) । भीष्मपर प्रहार (भीष्म० ११९ । ४३-४४) । धृतराष्ट्रद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४५-४६) । भूरिश्रवाके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १४ । ४३–४५) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । १९-२०) । विकर्णके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ३६-३७) । बाह्लीकके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ७—१०) । कृतवर्माके साथ युद्ध और उसके द्वारा इसकी पराजय (द्रोण० ११४ । ८२–९७) । कृपाचार्यद्वारा पराजय (द्रोण० १६९ । २२–३२) । कृतवर्माके साथ युद्धमें इसका मूर्च्छित होना (कर्ण० २६ । २६–३७) । कृपाचार्यसे पराजित होकर भागना (कर्ण०५४।१—२३)। कर्णद्वारा इसकी पराजय (कर्ण० ६१ । ७–२३) । प्रभद्रकोंकी सेना साथ लेकर इसका कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्यके साथ युद्ध (शल्य०१५।७) । द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आगे बढ़नेसे रोकना (शल्य० १६ । ६) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८ । ६५) ।

महाभारतमें आये हुए शिखण्डीके नाम–भीष्महन्ता, भीष्मनिहन्ता, शिखण्डिनी, द्रौपदेय, द्रुपदात्मज, पाञ्चाल्य, याज्ञसेनि आदि ।

शिखावर्त–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें आकर उनकी सेवामें उपस्थित होता है (सभा० १० । १७) ।

शिखावान्–एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १४) ।

शिखी–कश्यपकुलमें उत्पन्न एक नाग (उद्योग० १०३।१२)।

शितिकण्ठ–एक नाग, जो बलरामजीके परमधाम-गमनके समय उनके स्वागतमें आया था (मौसल० ४ । १६) ।

शितिकेश–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) ।

शिनि–देवमीढके वंशज एक प्रधान यादव । इन्होंने अकेले ही समस्त राजाओंको परास्त करके वसुदेवके लिये देवकीको जीता था (द्रोण० १४४ । ६–१०) । इनका सोमदत्तके साथ युद्ध । उन्हें पटककर लात मारना तथा उनकी चुटिया पकड़ना (द्रोण० १४४ । १२-१३) ।

शिपिविष्ट–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । इसकी व्याख्या (शान्ति० ३४२ । ७१) ।

शिबि–(१) एक दैत्य, जो हिरण्यकशिपुका पुत्र था (आदि० ६५ । १८) । यह द्रुम नामक राजाके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८) । (२) एक प्राचीन राजर्षि, जिनका संग प्राप्त करके ययाति स्वर्गको गये थे (आदि० ८६ । ६) । इनका ययातिसे अपनेको मिलनेवाले पुण्यलोकोंके विषयमें पूछना, ययातिका उत्तर देना । इनका ययातिको अपने पुण्यलोक देना और उनका अस्वीकार करना (आदि० ९३ । ६–९) । अष्टक आदि राजर्षियोंके साथ इनका स्वर्गलोकको गमन (आदि० ९३।१६ के बाद दा०पाठ)। स्वर्गके मार्गमें अष्टकके पूछनेपर ययातिद्वारा इनकी श्रेष्ठता तथा इनके दानकी महिमाका वर्णन (आदि० ९३ । १८-१९) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १०) । नारदजीद्वारा सुहोत्रके मार्ग रोकनेपर इनकी श्रेष्ठताका वर्णन (वन० १९४ । ५) । इनकी श्रेष्ठताकी परीक्षाके लिये देवताओंकी मन्त्रणा (वन० १९७ । १) । इनकी शरणागतरक्षाके विषयमें बाजरूपधारी इन्द्रसे वार्ता (वन० १९७ । ११—१९) । इनका अपने शरीरका मांस काटकर बाजके लिये तराजूके पलड़ेपर रखना और पूरा न पड़नेपर स्वयं भी उसपर चढ़ जाना (वन० १९७ । २१–२३) । कपोतरूपधारी अग्निद्वारा इन्हें वर-प्रदान (वन०१९७ । २६–२८) । देवर्षि नारदद्वारा इनकी महत्ताका प्रतिपादन । ब्राह्मणके लिये इनके द्वारा अपने पुत्रके वधका वृत्तान्त (वन० १९८ अध्याय) । विराटनगरमें गोहरणके समय कृपाचार्य और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रके साथ विमानपर बैठकर आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) । ये ययातिकी पुत्री माधवीके गर्भसे उशीनरनरेशद्वारा उत्पन्न हुए थे (उद्योग० ११८ । १—२०) । इनका ययातिको अपना पुण्यफल देना (उद्योग० १२२ । ८–११) । इन्हें भारतवर्ष बहुत ही प्रिय रहा है (भीष्म० ९ । ७–९) । सृंजयको समझाते समय नारदजीद्वारा इनके यज्ञ और दानकी महत्ताका वर्णन (द्रोण० ५८ अध्याय) । श्रीकृष्णद्वारा नारद-सृंजय-संवादके उल्लेखपूर्वक इनके दान-यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । ३९–४४) । यदुवंशियोंसे इन्हें खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ८०) । इनका ब्राह्मणके लिये अपने औरस पुत्रका दान तथा उससे इन्हें स्वर्गकी प्राप्ति (शान्ति० २३४ । १९; अनु० १३७ । ४) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । २६) । इनके द्वारा मांसभक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६१) । (३) एक देश तथा वहाँके निवासी । महाराज शान्तनुकी माता सुनन्दा यहींकी राजकुमारी थीं (आदि० ९५ । ४४) । युधिष्ठिरके श्वशुर गोवासन यहींके राजा थे (आदि० ९५ । ७६) । इस देशको पश्चिम-दिग्विजयके अवसरपर नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ७) । यहाँके निवासी राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १४) । इस देशके राजा उशीनर थे (वन० १३१ । २१) ।

यह देश किसी समय जयद्रथके अधिकारमें था (वन० २६७ । ११) । अर्जुनने जयद्रथके साथ आये हुए शिबिदेशके सैनिकोंका संहार कर डाला (वन० २७१ । २८) । इस देशके महारथी अपनी सेनाके साथ दुर्योधन-की सहायतामें थे (उद्योग० १९५ । ७-८) । शिबि-देशको कभी कर्णने जीता था (द्रोण० ९१ । ३८–४०) । इस देशके लोग पहले कम समझवाले होते थे (कर्ण० ४५ । ३४-३५) । (४) उशीनर देश या कुलमें उत्पन्न एक राजा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १६) । यह पाण्डवपक्षका एक योद्धा था और द्रोणाचार्यके साथ लड़ा था (द्रोण० ८ । २५) । द्रोणा-चार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । १९) । (५) भूतपूर्व पाँच इन्द्रोंमेंसे एक, जो पर्वतकी कन्दरामें अवरुद्ध थे; इन सबको मानवलोकमें जन्म लेनेके लिये भगवान् शिवका आदेश (आदि० १९६ । १९–३०) ।

शिरीषक–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १४)।

शिरीषी–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९) ।

शिलायूप–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

शिली–तक्षक-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके यज्ञमें जल मरा था (आदि० ५७ । ९) ।

शिव–(१) सच्चिदानन्दघन परमात्मा, जो 'ईशान' कहे गये हैं । ये ही त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं (आदि० १ । २२) । ब्राह्मकल्पके आदिमें जो महान् दिव्य अण्ड प्रकट हुआ था, जिसमें सत्यस्वरूप, ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुआ है, उससे ब्रह्मा तथा स्थाणु नामवाले शिवका भी प्रादुर्भाव हुआ है (आदि० १ । ३०–३२) । इन्होंने ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे त्रिलोकी-की रक्षाके लिये कालकूट नामक विषको कण्ठमें धारण कर लिया, तभीसे ये कण्ठमें नील चिह्नके कारण 'नीलकण्ठ' कहलाने लगे (आदि० १८ । ४१–४३) । स्थाणु नामसे ये ही परम तेजस्वी ग्यारह रुद्रोंके पिता हैं (आदि० ६६ । १) । अश्वत्थामा इनके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ७२-७३) । इन्होंने गान्धारीको सौ पुत्र होनेका वरदान दिया था (आदि० १०९ । १०) । इन्होंने एक तपस्विनी ऋषिकन्याको पाँच पति प्राप्त होने-का वर दिया था, जो दूसरे जन्ममें द्रौपदी हुई थी (आदि० १६८ । ६—१५) । इनके द्वारा पाँच इन्द्रोंका हिमालयकी गुफामें अवरोध और उन्हें मनुष्य-लोकमें पाण्डवोंके रूपमें जन्म लेनेके लिये आदेश (आदि० १९६ । १६—३०) । तिलोत्तमाके रूपको देखनेके लिये इनके चतुर्मुख होनेकी उत्प्रेक्षा (आदि० २१० । २२–२८) । इनके द्वारा प्रभञ्जनको उसके कुलमें एक-एक संतान होनेका वरदान (आदि० २१४ । २०-२१) । बारह वर्षोंतक निरन्तर अग्निमें आहुति देनेके लिये इनका श्वेतकिको आदेश (आदि० २२२ । ४१–४८) । इनकी ब्राह्मणसे यज्ञ करानेके लिये राजा श्वेतकिको सामग्री जुटानेकी आज्ञा (आदि० २२२ । ५१–५३) । उनके यज्ञका सम्पादन करनेके लिये इनका दुर्वासाको आदेश (आदि० २२२ । ५७-५८) । एक हजार युग बीतनेपर बिन्दुसरपर यज्ञ करते हैं (सभा० ३ । १५) । ये पार्वतीदेवी तथा अपने गणोंके साथ कुबेरकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० १० । २१–२४) । जरासंधने उग्र तपस्याके द्वारा इनकी आराधना करके एक विशेष प्रकारकी शक्ति प्राप्त कर ली थी, इसीसे सब राजा उसमें परास्त हो गये थे (सभा० १४ । ६४-६५) । बाणासुरको इनका वरदान । इनके द्वारा बाणासुरकी राजधानी-की रक्षा तथा बाणासुरकी रक्षाके लिये इनका श्रीकृष्णके साथ भयानक युद्ध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२१–८२३) । ये भगवान् श्रीहरिके ललाटसे प्रकट हुए थे (वन० १२ । ४०) । अर्जुनकी उग्र तपस्याके विषयमें महर्षियोंका पिनाकपाणि महादेवजीके साथ वार्तालाप और इनका उन्हें आश्वासन देकर विदा करना (वन० ३८ । २८–३५) । इनका किरातवेष धारण करके धनुष-बाण ले नाना वेषधारी भूतों, सहस्रों स्त्रियों और भगवती उमाके साथ वनमें अर्जुनके समीप जाना और उन्हें मारनेकी घातमें लगे हुए मूक नामक वाराहरूपधारी दानवको अर्जुनके साथ ही बाण मारना । फिर अर्जुनके साथ इनका विवाद और युद्ध । इनपर अर्जुनके बाणोंका विफल होना । इनके साथ उनका मल्लयुद्ध । पराजित हुए अर्जुनका भगवान् शिवकी शरणमें जाकर इनकी पार्थिव मूर्तिका पूजन करना और अपनी चढ़ायी हुई मालाको किरातके सिरपर विद्यमान देख इन्हें पहचानकर अर्जुनका इनके चरणोंमें पड़ जाना । भगवान् शिवका संतुष्ट होकर उन्हें पाशुपतास्त्र देनेके लिये कहना । अर्जुनद्वारा इनका स्तवन । इनका अर्जुनको हृदयसे लगाना और उन्हें वरदान देकर पाशुपतास्त्रके धारण और प्रयोगका नियम बताते हुए उन्हें उस अस्त्रका उपदेश देना । उस प्रज्वलित अस्त्रका अर्जुनके पार्श्वभागमें स्थित दिखायी देना । इनके स्पर्शसे अर्जुनके अशुभका नष्ट होना तथा अर्जुनको स्वर्गलोकमें जानेकी आज्ञा दे उन्हें उनके अस्त्र गाण्डीव आदिको लौटाकर उमासहित भगवान् शिवका आकाशमार्गसे प्रस्थान (वन० अध्याय ३९ से ४० तक) । इनका मङ्कणक मुनिका नृत्य रोकनेके लिये

अपनी अँगुलीसे भस्म प्रकट करना (वन० ८३ । ११७—१२५) । इनके द्वारा मङ्कणकको वरदान (वन० ८३ । १३२–१३४) । इनके द्वारा राजा सगरको संतान-प्राप्तिके लिये वरदान (वन० १०६ । १५-१६)। इनका राजा भगीरथको वर देना (वन० १०९ । १-२) । गङ्गाको सिरपर धारण करना (वन० १०९ । ९) । इनके वीर्यसे मिञ्जिकामिञ्जिक नामक जोड़ेकी उत्पत्ति (वन० २३१ । १०) । इनकी भद्रवट यात्रा (वन० २३१ । ३८—५४) । देवासुरसंग्राममें महिषासुरके वधके लिये इनका स्कन्दको याद करना (वन० २३१ । ९०) । इनके द्वारा जयद्रथको वरप्रदान (वन० २७२ । २८) । इनके द्वारा नरसखा नारायणकी महिमाका वर्णन (वन० २७२ । ३१–७७) । इनका भीष्मके वधके लिये अम्बाको वरदान देना (उद्योग० १८७ । १२–१५)। इनका द्रुपदको एक कन्या उत्पन्न होनेका वर देना (उद्योग० १८८ । ४-५) । भगवान् शिव मेरुपर्वतपर उमाके साथ रहते हैं । ये एक लाख वर्षोंतक गङ्गाजीको अपने सिरपर ही धारण किये रहे (भीष्म० ६ । २५–३१)। शाकद्वीपमें इनकी आराधना की जाती है (भीष्म० ११ । २८) । कुपित ब्रह्माको शान्त करनेके लिये इनका उनके पास जाना (द्रोण० ५२ । ४३) । क्रोध शान्त करनेके लिये ब्रह्मासे इनकी प्रार्थना और इन दोनोंका परस्पर वार्तालाप (द्रोण० ५३ । १—१४) । पुण्यजनोंद्वारा पृथ्वी-दोहनके समय ये बछड़ा बने थे (द्रोण० ६९ । २४) । इनका नर-नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण और अर्जुनका स्वागत करना और उनको अभीष्ट वर देनेको कहना (अर्जुनका स्वप्न) (द्रोण० ८० । ५१-५२) । अर्जुनको पाशुपतास्त्रका दान (अर्जुनका स्वप्न) (द्रोण० ८१ । २१-२२) । ब्रह्मासहित देवताओंकी प्रार्थनापर प्रसन्न होकर इन्द्रको कवच प्रदान करना (द्रोण० ९४ । ६१–६३) । सोमदत्तको पुत्र होनेका वर देना और अपनेको श्रीकृष्णसे भिन्न बताना (द्रोण० १४४ । १६–१८) । नारायणद्वारा भगवान् शिवकी आराधना, स्तुति और इनसे वर-प्राप्तिकी कथा (द्रोण० २०१ । ५६—९६) । व्यासजीका अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताना और त्रिपुर-वधके समय उनके रथ आदि सामग्रीका उल्लेख करना (द्रोण० २०२ अध्याय) । त्रिपुरोंसे भयभीत देवताओंको अभयदान देना (कर्ण० ३३ । ६३) । देवताओंका आधा बल लेकर त्रिपुर-वधके लिये उद्यत होना (कर्ण० ३४ । १४) । इनके विचित्र रथ आदिका वर्णन (कर्ण० ३४ । १६—५७) । इनके द्वारा वृषभके खुरोंका चीरा जाना और घोड़ोंका स्तन काटना (कर्ण० ३४ । १०५) । इनके द्वारा त्रिपुरोंका वध (कर्ण० ३४ । ११४) । इनका परशुरामको वरदान देना (कर्ण० ३४ । १४३-१४७) । कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ युद्धमें इन्द्रके पूछनेपर अर्जुनकी विजय बतलाना (कर्ण० ८७ । ६९—८५) । मङ्कणक मुनिपर कृपा (शल्य० ३८ । ५२—५८) । स्कन्दको पार्षदरूपमें एक महान् असुर प्रदान करना (शल्य० ४५ । २६) । स्कन्दको पताका और असुर-सेना देना (शल्य० ४६ । ४६–४८) । अरुन्धतीकी परीक्षा लेना और उन्हें वर देना (शल्य० ४८ । ३८—५४) । रातमें आक्रमण करते हुए अश्वत्थामाके अस्त्रोंको निगल जाना (सौप्तिक० ६ । ११—१७) । अश्वत्थामाके आत्मसमर्पणसे प्रसन्न होकर उसके शरीरमें प्रवेश करना और उसे एक खड्ग प्रदान करना (सौप्तिक० ७ । ६६) । इनका कुपित होकर अपने लिङ्गको काट डालना (सौप्तिक० १७ । २१) । इनके कोपसे देवता, यज्ञ और जगत्की दुरवस्था (सौप्तिक० १८ । ४—१९) । इनकी कृपासे सबका स्वस्थ होना (सौप्तिक० १८ । २०—२३) । ये गजासुरके चर्मको वस्त्रकी भाँति धारण करते हैं । सर्वस्व-समर्पण नामक यज्ञमें अपने-आपको भी होमकर देवताओंके भी देवता हो गये हैं (शान्ति० २० । १२) । परशुरामजीने इनसे अनेक प्रकारके अस्त्र और अत्यन्त तेजस्वी कुठार प्राप्त किये थे (शान्ति० ४९ । ३३) । इन्होंने ब्रह्माजीके दण्डनीति-शास्त्रको सबसे पहले स्वयं ही ग्रहण करके संक्षिप्त किया । इनसे इन्द्रने उसको ग्रहण किया (शान्ति० ५९ । ८०–८२) । एक मरे हुए ब्राह्मण-बालकको जीवन तथा गीध एवं गीदड़को भी भूख मिटनेका वर देना (शान्ति० १५३ । ११४-११५) । ब्रह्मासे खड्ग प्राप्त करके दानवोंको परास्त करना (शान्ति० १६६ । ५४–६३) । फिर भगवान् शिवका उसे भगवान् विष्णुके हाथमें देना (शान्ति० १६६ । ६६) । कुपित हुए ब्रह्माजीके क्रोधको शान्त करना (शान्ति० २५७ । ६—१२) । वृत्रासुरको मारनेके लिये इन्द्रको प्रोत्साहन और अपने अंशसे उनमें प्रवेश करना (शान्ति० २८१ । ३४—३८) । दक्ष-यज्ञके विषयमें पार्वतीजीसे वार्तालाप और दक्ष-यज्ञका नाश (शान्ति० २८३ । २३—४४) । पार्वतीको सान्त्वना देना (शान्ति० २८४ । २४—२८) । अपने शरीरसे वीरभद्रको प्रकट करना (शान्ति० २८४ । २९) । दक्षके शरणागत होनेपर हवनकुण्डसे प्रकट हो उनपर कृपा करना (शान्ति० २८४ । ५८–६०) । सहस्रनामद्वारा दक्षके स्तुति करनेपर उनको वरदान देकर अन्तर्धान होना (शान्ति० २८४ । १८२—१९१) ।

उशनापर इनका कोप करना और उन्हें शिश्नद्वारसे बाहर निकालना (शान्ति० २८९ । १४—३४) । शुक्राचार्यको अभयदान देना (शान्ति० २८९ । ३६) । आसुरभावको नष्ट करना (शान्ति० २९४ । १६-१७) । व्यासजीको पुत्र-प्राप्तिके लिये वर देना (शान्ति० ३२३ । २७—२९) । व्यासपुत्र शुकदेवका उपनयन-संस्कार करना (शान्ति० ३२४ । १९) । पुत्रशोकमें व्याकुल व्यासजीको समझाना (शान्ति० ३३३ । ३४—३८) । नारायणके साथ युद्ध करना (शान्ति० ३४२ । ११०—११६) । वैजयन्त पर्वतपर ब्रह्मासे परमपुरुषके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० ३५० । २३-२४) । शिवके माहात्म्यका विशेष वर्णन (अनु० १४ अध्याय) । तण्डि मुनिको वर प्रदान करना (अनु० १६ । ६९—७१) । इनके सहस्रनामका वर्णन (अनु० १७ अध्याय) । दक्षने इनको एक वृषभ प्रदान किया, जो इनका वाहन और ध्वज हुआ (अनु० ७७ । २७-२८) । वरुण-रूपसे इनके यशका वर्णन (अनु० ८५ । ८८—११६) । इनके धर्मसम्बन्धी रहस्यका वर्णन (अनु० १३३ अध्याय) । तीसरा नेत्र प्रकट करके हिमालयको दग्ध करके पुनः उसे प्रकृतिस्थ करना (अनु० १४० । ३३—३८) । पार्वतीजीके साथ संवाद (अनु० १४० । ४२ के बादसे अनु० १४५ अध्यायतक) । पार्वतीजीसे स्त्री-धर्मका वर्णन करनेके लिये कहना (अनु० १४६ । २—१२) । इनके द्वारा श्रीकृष्णकी वंशपरम्परा तथा माहात्म्यका कथन (अनु० १४७ अध्याय) । इनके द्वारा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस (अनु० १६० । ११—२४) । इनका त्रिपुरोंको दग्ध करना (अनु० १६० । २५—३१) । पाँच शिखावाले बालकका रूप धारण करके इनका पार्वतीकी गोदमें आना (अनु० १६० । ३२) । ये मुञ्जवान् नामक पर्वतपर सदा तपस्या करते हैं (आश्व० ८ । १) । इनकी नाममयी स्तुति (आश्व० ८ । १२—३२) ।

महाभारतमें आये हुए शिवके नाम–अज, अम्बिकाभर्ता, अनङ्गाङ्गहर, अनन्त, अन्धकघाती, अन्धकनिपाती, अथर्वा, बहुरूप, भगघ्न, भव, भवघ्न, भीम, शङ्कर, शर्व, शिपिविष्ट, श्मशानवासी, श्रीकण्ठ, शुक्र, शूलभृत्, शूलधर, शूलधृक्, शूलहस्त, शूलाङ्क, शूलपाणि, शूली, दक्षक्रतुहर, धन्वी, ध्रुव, धूर्जटि, दिग्वासा, दिव्यगोवृषभ-ध्वज, एकाक्ष, गणाध्यक्ष, गणेश, गौरीश, गौरीहृदय-वल्लभ, गिरीश, गिरिश, गोवृषाङ्क, गोवृषध्वज, गोवृषो-त्तमवाहन, हर, हर्यक्ष, जटाधर, जटिल, जटी, कामाङ्ग-नाश, कपाली, कापालि, कपर्दी, खट्वाङ्गधारी, कृत्तिवासा, कुमारपिता, ललाटाक्ष, लेलिहान, महादेव, महागणपति, महायोगी, महेश, महेश्वर, मखविघ्न, मखघ्न, मीढ्वा, मृगव्याध, मुनीन्द्र, नन्दीश्वर, निशाचरपति, नीलग्रीव, नीलकण्ठ, नीललोहित, पशुभर्ता, पशुपति, पिनाकधृक्, पिनाकगोप्ता, पिनाकहस्त, पिनाकपाणि, पिनाकी, पिङ्गल, प्रजापतिमखघ्न, रुद्र, ऋषभकेतु, सर्व, सर्वयोगेश्वरेश्वर, स्थाणु, त्रिशूलहस्त, त्रिशूलपाणि, त्रिलोचन, त्रिनयन, त्रिनेत्र, त्रिपुरघाती, त्रिपुरघ्न, त्रिपुरहर्ता, त्रिपुरमर्दन, त्रिपुरनाशन, त्रिपुरान्तक, त्रिपुरान्तकर, त्रिपुरार्दन, त्रिपुरविघ्न, त्र्यक्ष, त्र्यम्बक, उग्र, उग्रेश, उमापति, विशालाक्ष, विलोहित, विरूपाक्ष, वृषभध्वज, वृषभाङ्क, वृषभवाहन, वृषध्वज, वृषकेतन, वृषाङ्क, वृषवाहन, याम्य, यति, योगेश्वर आदि । (२) एक अग्नि, जो शक्तिकी आराधनामें लगे रहते हैं । ये समस्त दुःखातुर मनुष्योंका शिव (कल्याण) करते हैं; इसीसे इन्हें शिव कहते हैं (वन० २२१ । २) ।

शिवा–(१) अनिल नामक वसुकी भार्या । इनके दो पुत्र थे—मनोजव तथा अविज्ञातगति (आदि० ६६ । २५) । (२) अङ्गिराकी भार्या, जो शील, रूप और सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं (वन० २२५ । १) । (३) भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २५) ।

शिवोद्भेद–एक तीर्थ, जहाँ सरस्वतीका दर्शन होता है । उसमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८२ । ११२-११३) ।

शिशिर–सोमनामक वसुद्वारा मनोहराके गर्भसे उत्पन्न चार पुत्रोंमेंसे एक । शेष तीनके नाम हैं—वर्चा, प्राण और रमण (आदि० ६६ । २२) ।

शिशु–भगवान् स्कन्दकी कृपासे सप्तमातृकाओंके पुत्र, जो अद्भुत पराक्रमी, अत्यन्त दारुण और भयङ्कर थे । इनकी आँखें रक्तवर्णकी थीं । मातृकाओंसहित इन्हें 'वीराष्टक' कहा जाता है (वन० २२८ । ११-१२) ।

शिशुपाल–चेदिदेशका एक प्रसिद्ध राजा, जिसके रूपमें हिरण्यकशिपु दैत्य ही इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका आगमन (आदि० १८५ । २१) । यह दमघोषका पुत्र था । द्रौपदी-स्वयंवरमें धनुषपर हाथ लगाते ही यह घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ा था (आदि० १८६ । २५) । यह कलिङ्गराजकी कन्याके स्वयंवरमें भी गया था (शान्ति० ४ । ६) । युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभाभवनमें यह भी विराजमान होता था (सभा० ४ । २९) । यह जरासंधका आश्रय लेकर उसका प्रधान सेनापति हो गया था (सभा० १४ । १०-११) । भीमसेन अपनी

दिग्विजययात्रामें इसके द्वारा सम्मानित हुए थे (सभा० २९ । ११-१२) । यह युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आया था (सभा० ३४ । १४) । राजसूय यज्ञमें अग्रपूजाके समय श्रीकृष्णके प्रति इसके आक्षेपपूर्ण वचन (सभा० ३७ अध्याय) । युधिष्ठिरका इसे समझाना और भीष्मका इसके आक्षेपोंका उत्तर देना (सभा० ३८ । १—२९) । श्रीकृष्णकी अग्रपूजाके कारण राजसूय यज्ञमें उपद्रव मचानेके लिये इसका प्रयत्न (सभा० ३९ । ११-१२) । इसके द्वारा भीष्मकी निन्दा (सभा० ४१ अध्याय) । इसकी बातोंसे भीमसेनका कुपित होना (सभा० ४२ । १—१२) । भीष्मजीके द्वारा इसके जन्मकालिक वृत्तान्तका वर्णन । इसके जन्म-समयकी आकाशवाणी, इसकी मृत्युके निमित्तका उद्घोष तथा श्रीकृष्णकी गोदमें आनेपर इसकी दो भुजाओं तथा एक आँखका विलीन होना आदि (सभा० ४३ अध्याय) । इसका भीष्मको फटकारना (सभा० ४४ । ६—३२) । श्रीकृष्णकी अनुपस्थितिमें इसके द्वारा द्वारकाका दाह (सभा० ४५ । ७) । इसके द्वारा वसुदेवजीके यज्ञीय अश्वका अपहरण (सभा० ४५ । ९) । इसका बभ्रुकी पत्नीका हरण करना (सभा० ४५ । १०) । विशाला-नरेश (अपने मामा) की पुत्रीका अपहरण (सभा० ४५ । ११) । श्रीकृष्णद्वारा इसका शिरश्छेदन (वध) (सभा० ४५ । २५) । परमात्मा श्रीकृष्णमें इसके तेजका समावेश (सभा० ४५ । २६-२७) । श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति इसके वधका कारण बताना (द्रोण० १८१ । २१-२२) ।

महाभारतमें आये हुए शिशुपालके नाम-चैद्य, चेदिप, चेदिपति, चेदिपुङ्गव, चेदिराट्, चेदिराज, चेदिनृप, श्रौतश्रवस, दमघोषसुत, दमघोषात्मज आदि ।

शिशुपालवधपर्व-सभापर्वके अन्तर्गत एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४० से ४५ तक) ।

शिशुमारमुखी-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २२) ।

शिशुरोमा-तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल गया (आदि० ५७ । १०) ।

शीघ्रा-भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २९) ।

शीतपूतना-भयङ्कर आकारवाली एक पिशाची, जो मानवी स्त्रियोंके गर्भका हरण करनेवाली है (वन० २३० । २८) ।

शीताशी-शाकद्वीपकी एक पवित्र जलवाली नदी (भीष्म० ११ । ३२) ।

शीलवान्-एक दिव्य महर्षि, जो हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे मिले थे (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

शुक-(१) शर्यातिवंशज पृषतके पुत्र, जो अपने पराक्रमसे शत्रुओंको संतप्त करनेवाले थे । इन्होंने सारी पृथ्वीको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया था और अश्वमेध-जैसे सौ बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, देवता तथा पितरोंकी आराधना की थी । तदनन्तर राज्य त्यागकर ये शतशृङ्ग पर्वतपर आ गये और शाक एवं फल-मूलका आहार करते हुए तपस्या करने लगे । इन्होंने ही श्रेष्ठ उपकरणों तथा शिक्षाके द्वारा पाण्डवोंकी योग्यता बढ़ायी, इनके कृपाप्रसादसे सभी पाण्डव धनुर्वेदमें पारंगत हो गये थे । इन्होंने अर्जुनको नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये थे (आदि० १२३ । ३१ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ३६९) । (२) रावणका मन्त्री, जो वानरका रूप धारण करके श्रीरामकी सेनामें आनेपर विभीषणद्वारा बंदी बना लिया गया था (वन० २८३ । ५२) । राक्षसरूपमें प्रकट होनेपर श्रीरामने अपनी सेनाका दर्शन कराकर इसे मुक्त कर दिया था (वन० २८३ । ५३) । (३) गान्धारराज सुबलका एक पुत्र, शकुनिका भाई, इरावान्द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । २६-३२) ।

शुकदेव-व्यासजीके पुत्र तथा शिष्य । व्यासजीने पहले इन्हींको महाभारत ग्रन्थका अध्ययन कराया था (आदि० १ । १०४) । शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षसोंको चौदह लाख श्लोकोंसे युक्त महाभारतकी कथा सुनायी थी (आदि० १ । १०६-१०८; स्वर्गा० ५ । ५५-५६) । इन्होंने सम्पूर्ण वेदों तथा महाभारतकी भी इन्हें शिक्षा दी थी (आदि० ६३ । ८९) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । धर्मपालनसे ही इनका हृदय शुद्ध हुआ है (वन० ३१ । १२) । व्यासजीसे इनके अनेक प्रश्न (शान्ति० २३१ । ९) । शुकदेवजीके प्रश्नके अनुसार व्यासजीके द्वारा ज्ञानके साधन और उसकी महिमा, योगसे परमात्माकी प्राप्ति, कर्म और ज्ञानके अन्तर, ब्रह्मप्राप्तिके उपाय, ब्रह्मचर्य-आश्रम, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम, संन्यासके आचरण, परमात्माकी श्रेष्ठता, उसके दर्शनके उपाय, ज्ञानोपदेशके पात्रके निर्णय, महाभूतादि तत्त्वोंके विवेचन, बुद्धिकी श्रेष्ठता, प्रकृति-पुरुष-विवेक, ज्ञानके साधन, ज्ञानीके लक्षण, परमात्म-प्राप्तिके साधन, संसारनदी, ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति, ब्रह्मवेत्ताके लक्षण, शरीरमें पञ्चभूतोंके कार्य और गुणोंकी पहचान, परमात्म-साक्षात्कारके प्रकार, कामवृक्ष, उसे काटकर मोक्षप्राप्ति, शरीरनगर तथा पञ्चभूत, मन और बुद्धिके गुण आदिका वर्णन (शान्ति० २३९ । १ से २५५ अध्यायतक) ।

पिताके आदेशसे मोक्षतत्त्वके उपदेशके लिये इनका गुरुके पास जाना (शान्ति० ३२१ । ९४) । अरणिकाष्ठसे व्यासजीके वीर्यद्वारा इनकी उत्पत्तिकी चर्चा (शान्ति० ३२४ । ९–१०) । शिवजीद्वारा इनका उपनयन संस्कार (शान्ति० ३२४ । १९) । पिताकी आज्ञासे मिथिलामें जाना और वहाँ स्वागत-सत्कारके बाद इनका ध्यानस्थित होना (शान्ति० ३२५ अध्याय) । राजा जनकद्वारा इनका पूजन (शान्ति० ३२६ । ३–५) । इनका राजाको अपने आगमनका कारण बताना (शान्ति० ३२६ । १०–१३) । राजा जनकसे ज्ञान-विज्ञानविषयक प्रश्न (शान्ति० ३२६ । २०–२१) । मिथिलासे लौटकर इनका पिताके पास आना (शान्ति० ३२७ । ३१) । व्यासजीका इन्हें अनध्यायका कारण बताते हुए प्रवह आदि सात वायुओंका परिचय देना (शान्ति० ३२८ । २८—५६) । इनका नारदजीसे कल्याण-प्राप्तिका उपाय पूछना (शान्ति० ३२९ । ४) । सूर्यलोकमें जानेका निश्चय करके नारदजी और व्यासजीसे आज्ञा माँगना (शान्ति० ३३१ । ४९–६२) । इनकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन (शान्ति० ३३२ अध्याय) । इनकी परम पदप्राप्ति (शान्ति० ३३३ । १–१८) । अपने पिता व्याससे इनका विविध प्रश्न करना (अनु० ८१ । ८–११) ।

महाभारतमें आये हुए शुकदेवजीके नाम–आरणेय, अरणीसुत, द्वैपायनात्मज, वैयासकि, व्यासात्मज आदि ।

शुकी–ताम्राकी पुत्री । इसने शुकों (तोतों) को उत्पन्न किया (आदि० ६६ । ५६, ५९) ।

शुक्तिमती–(१) एक नदी, जो राजा उपरिचरवसुकी राजधानीके समीप बहती थी । कोलाहलपर्वतने कामवश इस दिव्यरूपधारिणी नदीका अवरोध कर लिया था; परंतु राजा उपरिचरवसुके पादप्रहारसे पर्वतमें दरार पड़ गयी और उसी मार्गसे यह नदी पुनः बहने लगी । इसके गर्भसे कोलाहलपर्वतद्वारा जुड़वाँ संतान उत्पन्न हुई, जिन्हें शुक्तिमतीने राजा उपरिचरवसुको समर्पित कर दिया । राजाने पुत्रको अपना सेनापति बनाया और पुत्रीको, जिसका नाम गिरिका था, अपनी पत्नी बना लिया (आदि० ६३ । ३४–४१) । इसकी गणना भारतकी प्रमुख नदियोंमें है (भीष्म० ९ । ३५) । (२) एक नगरी, जो चेदिनरेश धृष्टकेतुकी राजधानी थी (वन० २२ । ५०) ।

शुक्तिमान्–एक पर्वत, जिसे पूर्व-दिग्विजयके अवसरपर भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । ५) । यह भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमेंसे एक है (भीष्म० ९ । ११) ।

शुक्र–एक राक्षस (अनु० १४ । २१४) ।

शुक्राचार्य–महर्षि भृगुके पुत्र, जो असुरोंके उपाध्याय थे, इनका दूसरा नाम उशना था । इनके चार पुत्र हुए, जो दैत्योंके पुरोहित थे (आदि० ६५ । ३६) । (कहीं-कहीं इन्हें भृगुका पौत्र भी कहा गया है ।) ये महर्षि भृगुके पौत्र और कविके पुत्र थे । ये ही ग्रह होकर तीनों लोकोंके जीवनकी रक्षाके लिये वृष्टि, अनावृष्टि, भय एवं अभय उत्पन्न करते हैं । ब्रह्माजीकी प्रेरणासे समस्त लोकोंका चक्कर लगाते रहते हैं । महाबुद्धिमान् शुक्र ही योगके आचार्य तथा दैत्योंके गुरु हुए । ये ही बृहस्पतिके रूपमें प्रकट हो देवताओंके भी गुरु हुए (आदि० ६६ । ४२-४३) । दैत्योंके द्वारा इनका पुरोहितके पदपर वरण तथा बृहस्पतिके साथ इनकी स्पर्धा (आदि० ७६ । ६-७) । इनके द्वारा मृतसंजीवनी विद्याके बलसे मरे हुए दानवोंका जीवित होना (आदि० ७६ । ८) । इनकी पुत्रीका नाम देवयानी था (आदि० ७६ । ११) । कचका दानवराज वृषपर्वाके नगरमें जाकर शुक्राचार्यसे अपनेको शिष्यरूपसे ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना करना और इनकी सेवामें रहकर एक सहस्र वर्षतक ब्रह्मचर्यपालनके लिये अनुमति माँगना तथा इनका कचको स्वागतपूर्वक ग्रहण करना (आदि० ७६ । १८-१९) । इनका कचके लिये चिन्तित हुई देवयानीको आश्वासन देकर संजीवनीविद्याका प्रयोग करके कचको पुकारना और उस विद्याके बलसे कचका कुत्तोंके शरीरको विदीर्ण करके निकल आना (आदि० ७६ । ३१—३४) । इनके द्वारा कचको दोबारा जीवनदान (आदि० ७६ । ४१-४२) । तीसरी बार दानवोंने कचको मारकर आगमें जलाया और उनकी जली हुई लाशका चूर्ण बनाकर मदिरामें मिला दिया, फिर वही मदिरा उन्होंने ब्राह्मण शुक्राचार्यको पिला दी (आदि० ७६ । ४३) । देवयानीका पुनः कचको जीवित करनेके लिये इनसे अनुरोध, शुक्राचार्यका कचको जिलानेसे विरत होना तथा देवयानीके प्राणत्याग करनेके लिये उद्यत होनेपर इनका असुरोंपर क्रोध करके संजीवनी विद्याके द्वारा कचको पुकारना, कचका अपनेको इनके उदरमें स्थित बताना और इनके पूछनेपर मदिराके साथ इनके पेटमें पहुँचनेका वृत्तान्त निवेदन करना । इनका कचको जीवित करनेसे अपने वधकी आशंका बताना । देवयानीका पिता और कच दोनोंमेंसे किसीके भी नाशसे अपनी मृत्यु बताना । तब इनका कचको सिद्ध बताकर उन्हें संजीवनी विद्याका उपदेश करना । कचका इनके पेटसे निकलकर विद्याके बलसे पुनः इन्हें जीवित कर देना

और प्रणाम करके इन्हें अपना पिता तथा माता मानना तथा कभी भी इनसे द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा करना (आदि० ७६ । ४४—६४) । इनका मदिरा-पानको ब्रह्महत्याके समान बतलाकर उसे ब्राह्मणोंके लिये सर्वथा निषिद्ध घोषित करना (आदि० ७६ । ६७-६८) । देवयानीके प्रति इनके द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन (आदि० ७८ । ३७—४०) । शर्मिष्ठाद्वारा पीड़ित हुई देवयानीको इनका आश्वासन देना, सहनशीलताकी प्रशंसा करते हुए क्रोधका वेग रोकनेवालोंको परम श्रेष्ठ बतलाना (आदि० ७९ । १—७) । अधर्मका फल अवश्य प्राप्त होता है—इसे दृष्टान्तपूर्वक वृषपर्वाको समझाना (आदि० ८० । १—६) । इनके द्वारा देवयानीको प्रसन्न करनेके लिये वृषपर्वाको आदेश (आदि० ८० । ९—१२) । ययातिके साथ अपने विवाहके लिये इनसे देवयानीकी प्रार्थना (आदि० ८१ । ३०) । ययातिसे अपनी पुत्रीको ग्रहण करनेके लिये कहना (आदि० ८१ । ३१) । धर्म-लोपके भयसे भीत हुए ययातिको इनका आश्वासन देना (आदि० ८१ । ३३) । देवयानीके साथ विवाह करने एवं शर्मिष्ठाके साथ दारोचित व्यवहार न करनेके लिये ययातिको इनकी आज्ञा (आदि० ८१ । ३४-३५) । इनके द्वारा ययातिको जराग्रस्त होनेका शाप (आदि० ८३ । ३१) । फिर उनके प्रार्थना करनेपर इनका ययातिको अपनी वृद्धावस्था दूसरेसे बदल सकनेकी सुविधा देना (आदि० ८३ । ३९) । ये देवराज इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । २२) । ग्रहरूपसे ब्रह्माजीकी सभामें भी उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । २९) । ये मेरुपर्वतके शिखरपर दैत्योंके साथ निवास करते हैं । सारे रत्न और रत्नमय पर्वत इन्हींके अधिकारमें हैं । भगवान् कुबेर इन्हींसे धनका चतुर्थ भाग प्राप्त करके उसे उपयोगमें लाते हैं (भीष्म० ६ । २२-२३) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये गये थे (शान्ति० ४७ । ८) । महाराज पृथुके पुरोहित बने थे (शान्ति० ५९ । ११०) । इन्द्रको श्रेयःप्राप्तिके लिये प्रह्लादके पास भेजना (शान्ति० १२४ । २७) । ये वानप्रस्थ-धर्मका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुए हैं (शान्ति० २४४ । १७-१८) । वृत्रासुरसे देवताओंद्वारा पराजित होनेपर भी दुखी न होनेका कारण पूछना (शान्ति० २७९ । १५) । सनत्कुमारजीसे वृत्रासुरको भगवान् विष्णुका माहात्म्य बतानेके लिये कहना (शान्ति० २८० । ५) । योगबलसे कुबेरके धनका अपहरण करना (शान्ति० २८९ । ९) । भयके कारण सूर्यके उदरमें लीन होना (शान्ति० २८९ । १९-२०) । शिवजीके लिंगसे निर्गत होनेके कारण इनका शुक्र नाम पड़ना और पार्वतीजीका इन्हें अपना पुत्र स्वीकार करना (शान्ति० २८९ । ३२—३५) । इनके द्वारा महादेवजीको शाप (शान्ति० ३४२ । २६) । इन्हें तण्डिसे शिवसहस्रनामका उपदेश प्राप्त हुआ था और इन्होंने गौतमको उसका उपदेश दिया (अनु० १७ । १७७) । ये भृगुके सात पुत्रोंमेंसे एक हैं (अनु० ८५ । १२९) । बलिके पूछनेपर उन्हें पुष्पादि-दानका महत्त्व बताना (अनु० ९८ । १६—६४) ।

महाभारतमें आये हुए शुक्राचार्यके नाम—भार्गव, भार्गवदायाद, भृगुश्रेष्ठ, भृगूद्वह, भृगुकुलोद्वह, भृगुनन्दन, भृगुसूनु, कविपुत्र, कविसुत, काव्य, उशना आदि ।

शुक्र—पाण्डवपक्षका एक पाञ्चालदेशीय योद्धा (द्रोण० २३ । ५९) । कर्णद्वारा इसका घायल होना (कर्ण० ५६ । ४५) ।

शुचि—(१) एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १४) । (२) एक वणिक्, व्यापारीदलका स्वामी, इसकी वनमें दमयन्तीसे भेंट और बातचीत (वन० ६४ । १२७—१३१) । (३) एक अग्नि, जिनमें हवाके चलनेसे अग्नियोंके परस्पर सम्पर्क हो जानेपर अष्टाकपाल पुरोडाशद्वारा आहुति डाली जाती है (वन० २२१ । २४) । (४) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) । (५) महर्षि भृगुके पुत्र (अनु० ८५ । १२८) ।

शुचिका—एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२) ।

शुचिव्रत—एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३६) ।

शुचिश्रवा—भगवान् श्रीकृष्णका नाम । इस नामकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२ । ९१) ।

शुचिस्मिता—एक अप्सरा, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करती है (सभा० १० । १०) ।

शुण्डिक—पूर्व-भारतका एक जनपद, जिसे कर्णने जीता था (वन० २५४ । ८) ।

शुनःशेप—ऋचीक (अजीगर्त) का एक महातपस्वी पुत्र, जिसे राजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें यज्ञपशु बनाकर लाया गया था । विश्वामित्रने देवताओंको संतुष्ट करके इसे छुड़ा लिया था; इसलिये यह विश्वामित्रके पुत्रभावको प्राप्त हो गया । देवताओंके देनेसे इसका नाम 'देवरात' हुआ और यह विश्वामित्रका ज्येष्ठ पुत्र माना गया (अनु० ३ । ६—८) ।

शुनःसख—संन्यासीके वेषमें कुत्तेके साथ विचरनेवाले

इन्द्रका नाम। इनका सप्तर्षियोंके पास जाना (अनु० ९३। ५९)। कृत्याका वध करके सप्तर्षियोंकी रक्षा करना (अनु० ९३। १०५)। सप्तर्षियोंके मृणाल चुराना (अनु० ९३। १०९)। सप्तर्षियोंके सामने शपथ खाना (अनु० ९३। १३२)। सप्तर्षियोंको अपना परिचय देना (अनु० ९३। १३४–१३९)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४। ४०)।

शुनक-(१) एक महर्षि, जो रुरुके पुत्र थे। इनका जन्म प्रमद्वराके गर्भसे हुआ था। शुनक वेदोंके पारङ्गत विद्वान् और धर्मात्मा थे। इन्हें शौनकका पितामह कहा गया है (आदि० ५। १०)। ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४। १०)। श्रीकृष्णके दूत बनकर हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें इन्होंने उनका अभिनन्दन किया था (उद्योग० ८३। ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। कहीं-कहीं शौनकको शुनकका पुत्र बताया गया है (अनु० ३०। ६५)। (२) एक राजर्षि, जो चन्द्रहन्तानामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७। ३८)। चन्द्रतीर्थमें इन्हें परमधामकी प्राप्ति हुई थी (वन० १२५। १८–१९)। महाराज हरिणाश्वसे इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई और इन्होंने वह खड्ग उशीनरको प्रदान किया था (शान्ति० १६६। ७९)।

शुभवक्त्रा-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। ७)।

शुभाङ्गद-एक राजा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५। २२)।

शुभाङ्गी-एक दशार्हकुलकी कन्या, जो सोमवंशी महाराज कुरुकी पत्नी थी। इसके गर्भसे विदूर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (आदि० ९५। ३९)।

शूकर-एक देश, जहाँके राजा कृतिने युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञमें सैकड़ों गजरत्न भेंट किये थे (सभा० ५२। २५)।

शूद्र-चौथे वर्ण या जातिके लोग, इन्हें नकुलने दिग्विजयके समय जीतकर अपने अधीन कर लिया था (सभा० ३२। १०)। एक दक्षिण भारतीय जनपदका भी यह नाम है (भीष्म० ९। ६७)। भगवान्‌की शरणमें जानेसे पापयोनिके जीव तथा शूद्र भी परमगतिको प्राप्त होते हैं (भीष्म० ३३। ३२)। शूद्र जनपदके लोग दुर्योधनको आगे करके कर्णके पृष्ठभागमें रहकर धृतराष्ट्र-पुत्रोंके साथ-साथ युद्धक्षेत्रमें गये थे (द्रोण० ७। १५–१६)।

शून्यपाल-दिक्पालोंकके एक ऋषि, जो पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुरको जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें मिले थे (उद्योग० ८३। ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। ये एक वानप्रस्थी ऋषि थे और वानप्रस्थधर्मका पालन करनेसे स्वर्गको प्राप्त हो गये (शान्ति० २४४। १८)।

शूर-(१) एक प्राचीन नरेश (आदि० १। २३२)। (२) महाराज ईलिनके द्वारा रथन्तरीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमेंसे एक। शेष चारके नाम हैं—दुष्यन्त, भीम, प्रवसु और वसु (आदि० ९४। १७-१८)। (३) सौवीरदेशका एक राजकुमार (वन० २६५। १०)। द्रौपदीहरणके समय अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१। २७)।

शूरसेन (शूर)-(१) वसुदेवजीके पिता। यदुवंशके एक श्रेष्ठ पुरुष। इनकी पुत्रीका नाम था पृथा (आदि० ६७। १२९; आदि० १०९। १)। इनके द्वारा अपनी पुत्री पृथाका अपने मित्र राजा कुन्तिभोजको गोद देना (आदि० ६७। १३१; आदि० १०९। २; आदि० ११०। ३)। ये यदुवंशी देवमीढके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम वसुदेव हुआ (द्रोण० १४४। ६-७)। कहीं-कहीं इन्हें चित्ररथका पुत्र कहा गया है। सम्भव है, देवमीढका ही दूसरा नाम 'चित्ररथ' हो (अनु० १४७। २९–३२)। (२) एक जनपद और वहाँके निवासी (आधुनिक मथुरामण्डल या व्रजमण्डल)। इस देशके लोग जरासंधके भयसे अपने भाइयों और सेवकोंके साथ दक्षिण दिशामें भाग गये थे (सभा० १४। २६–२८)। सहदेवने दक्षिणदिग्विजयके समय इन्द्रप्रस्थसे चलकर सबसे पहले शूरसेननिवासियोंपर ही पूर्णरूपसे विजय पायी थी (सभा० ३१। १-२)। इस देशके लोग राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२। १३)। पाण्डवलोग पाञ्चालसे दक्षिण यकृल्लोम तथा शूरसेन देशोंके बीचसे होकर मत्स्य देशको गये थे (विराट० ५। ४)। यह एक भारतीय जनपद है (भीष्म० ९। २९, ५२)। इस देशके शूरवीर सैनिक अपना शरीर निछावर करनेको उद्यत हो विशाल रथसमुदायके द्वारा पितामह भीष्मकी रक्षा करते थे (भीष्म० १८। १२–१४)। इस देशके सैनिकोंने कृतवर्मा और काम्बोज-नरेशके साथ आकर अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोका था (द्रोण० ९१। ३७-३८)। शूरसेनदेशीय योद्धाओंने अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा की (द्रोण० ९३। २)। सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोका था (द्रोण० १४१। ९)। युधिष्ठिरने शूरसेनोंका संहार करके भूतलपर रक्तोंकी कीच मचा दी (द्रोण० १५७। २९)। भीमसेनने शूरसेन देशके रणदुर्मद क्षत्रियोंको काट-काटकर वहाँकी रणभूमि-को पाट दिया, जिससे वहाँ खूनकी कीच मच गयी (द्रोण० १६१। ४-५)। शूरसेननिवासी यज्ञ करते हैं (कर्ण० ४५। २८)। पाण्डवपक्षके शूरसेनदेशीय

वीरोंके साथ कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनिने युद्ध किया था (कर्ण० ४७ । १६–१८) । (३) एक राजा, जो कौरवपक्षका सहायक था । यह भीष्मनिर्मित क्रौञ्चव्यूहके ग्रीवाभागमें दुर्योधनके साथ खड़ा था (भीष्म० ७५ । १८) ।

शूरसेनपुर–इसीको ही मथुरा कहते हैं (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ) । (विशेष देखिये—मथुरा)

शूरसेनी–राजा पूरुके पुत्र प्रवीरकी पत्नी, जिसके गर्भसे मनस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (आदि० ९४ । ६) ।

शूर्पणखा–रावणकी बहिन, श्रीरामने लक्ष्मणके द्वारा इसकी नाक कटवा दी थी (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४, कालम २) । यह विश्रवाके द्वारा राका-के गर्भसे उत्पन्न हुई थी । इसका सहोदर भाई खर था (वन० २७५ । ८) । खर और शूर्पणखा—ये दोनों भाई-बहन तपस्यामें लगे हुए रावण आदि भाइयोंकी प्रसन्न मनसे परिचर्या एवं रक्षा करते थे (वन० २७५ । १९) । इसकी नाक कटवानेके कारण जनस्थाननिवासी खरका श्रीरामसे वैर हो गया था (वन० २७७ । ४२) । खर आदि राक्षसोंके मारे जानेपर यह लंकामें अपने भाई राजा रावणके पास गयी और उसके चरणोंमें गिर पड़ी (वन० २७७ । ४५-४६) । इसने रावणसे राक्षस संहारका सारा वृत्तान्त कहा (वन० २७७ । ५२) ।

शूर्पारक–एक पश्चिमभारतीय जनपद, जिसे दक्षिण-दिग्विजय-के अवसरपर सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६५) । यहाँ परशुरामसेवित शूर्पारक तीर्थ है, उसमें जाकर राम-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको प्रचुर सुवर्ण-राशिकी प्राप्ति होती है (वन० ८५ । ४३) । इस शूर्पारक-क्षेत्रमें महात्मा जमदग्निकी वेदी है, वहीं रमणीय पाषाणतीर्थ और पुनश्चन्द्रा नामक तीर्थविशेष हैं (वन० ८८ । १२) । युधिष्ठिरने इस पुण्यमय तीर्थका दर्शन किया (वन० ११८ । ८) । समुद्रने परशुरामजीके लिये जगह खाली करके शूर्पारक देशका निर्माण किया था, जिसे अपरान्त-भूमि भी कहते हैं (शान्ति० ४९ । ६६-६७) । शूर्पारक-क्षेत्रके जलमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें राजकुमार होता है (अनु० २५ । ५०) ।

शृगाल–स्त्रीराज्यके स्वामी, जो कलिंगराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें पधारे थे (शान्ति० ४ । ७) ।

शृङ्ग–शंकरजीका वाद्यविशेष (वन० ८८ । ८) ।

शृङ्गवान्–(१) हिरण्यकवर्षका एक पर्वत, यहाँ उत्तर-दिग्विजयके समय अर्जुन गये थे और इसे लाँघकर उत्तर-कुरुवर्षमें चले गये थे (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७५०) । इसकी गणना छः वर्षपर्वतोंमें है । यह सब धातुओंसे सम्पन्न एवं विचित्र शोभा धारण करनेवाला है । यहाँ सिद्ध और चारण निवास करते हैं (भीष्म० ६ । ५) । धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका विशेष वर्णन (भीष्म० ८ । ८-९) । सायं-प्रातःस्मरणीय पर्वतोंमें भी इसका नाम है (अनु० १६५ । ३२) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो गालवके पुत्र थे । इन्होंने शर्तके साथ वृद्धकन्याका पाणिग्रहण किया था (शल्य० ५२ । १५—१७) । एक रात इनके साथ निवास करके वृद्धकन्याके चले जानेपर ये उसके रूपका चिन्तन करते हुए अत्यन्त दुखी हो गये और शरीर त्यागकर इन्होंने भी उसीके पथका अनुसरण किया (शल्य० ५२ । १९–२४) ।

शृङ्गवेर–कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें भस्म हो गया (आदि० ५७ । १३) ।

शृङ्गवेरपुर–एक तीर्थ, जहाँ पूर्वकालमें वनवासके समय दशरथनन्दन श्रीरामने गङ्गाजीको पार किया था । उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (वन० ८५ । ६५-६६) । (यहीं निषादराज गुहकी राजधानी थी । सम्भवतः प्रतापगढ़ जिलेका सिंगरौरा नामक गाँव ही प्राचीन शृङ्गवेरपुर है ।)

शृङ्गी–शमीक ऋषिका तरुण पुत्र, जो महान् तपस्वी, दुःसह तेजसे सम्पन्न और महान् व्रतधारी था । उसमें क्रोधकी मात्रा बहुत थी (आदि० ४० । २५-२६) । आचार्य-की सेवासे लौटते समय अपने मित्र कृशके द्वारा राजा परीक्षित्के अपराधका समाचार सुनकर इसके द्वारा उन्हें तक्षकके डसनेसे मरनेका शाप (आदि० ४० । २९ से आदि० ४१ । १४ तक; आदि० ५० । ४–११) । परीक्षित्को शाप देनेके कारण पिताद्वारा इसकी भर्त्सना तथा राजाकी महत्ता एवं आवश्यकताका प्रतिपादन (आदि० ४१ । २०—३३) । व्यासजीके आवाहन करनेपर स्वर्गसे परीक्षित्के साथ शृङ्गी और इसके पिता शमीक भी जनमेजयके यज्ञमें आये थे (आश्रम० ३५ । ८) ।

शेषनाग–नागराज अनन्त, (ये साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं और उनके लिये शय्यारूप होकर उन्हें धारण करते हैं ।) इनके द्वारा मन्दराचलका उखाड़ा जाना (आदि० १८ । ८) । नागोंमें सर्वप्रथम ये ही प्रकट हुए थे (आदि० ३५ । २–५) । नागोंके पारस्परिक द्वेषसे ऊबकर इनका पुष्कर आदि क्षेत्रोंमें तपस्या करना (आदि० ३६ । ३–५) । धर्ममें अटल निष्ठा रहनेके लिये ब्रह्माजीसे इनकी वर-याचना (आदि० ३६ । १७) । ब्रह्माजीके द्वारा इनको वरदान एवं पृथ्वी धारण करनेकी आज्ञा (आदि० ३६ । १८-१९) । पृथ्वीको स्थिरभावसे

धारण करनेके लिये ब्रह्माजीका आश्वासन (आदि० ३६ । २०)। इनकी माता कद्रू और पिता कश्यप हैं (आदि० ६५ । ४१) । इनके अंशसे बलरामजी अवतीर्ण हुए थे (आदि ६७ । १५२) । भगवान् नारायण शेषको शय्या बनाकर इनपर शयन करते हैं (वन०२७२ । ३८–४०) । त्रिपुरदाहके समय ये शिवजीके रथके अक्ष बने थे (द्रोण० २०२ । ७२) ।

शैखावत्य–एक महातपस्वी प्राचीन ऋषि, जिन्होंने शाल्वसे परित्यक्त हो आश्रममें आकर रोती हुई अम्बासे बातचीत की थी । ये कठोर व्रतका पालन करनेवाले तपोवृद्ध ब्रह्मर्षि थे । शास्त्र और आरण्यक आदि ग्रन्थोंकी शिक्षा देनेवाले सद्गुरु थे (उद्योग० १७५ । ३८–४०) ।

शैब्य–(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २२५) । इनके पुत्रका नाम सृञ्जय था, जिसकी पर्वत और नारद-जीसे मित्रता थी (द्रोण० ५५ । ५) । (२) शिबि देशके नरेश, जो युधिष्ठिरके श्वशुर थे । इनका नाम गोवासन था (आदि० ९५ । ७६) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । २५) । ये तथा काशिराज दोनों युधिष्ठिरके बड़े प्रेमी थे और उपप्लव्य नगरमें एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आकर अभिमन्युके विवाहमें सम्मिलित हुए थे (विराट० ७२ । १६) । इनको कृतवर्माके साथ युद्ध करनेका काम दिया गया था (उद्योग० १६४ । ६) । दुर्योधनने नरश्रेष्ठ शैब्यकी पाण्डव-सेनाके महान् धनुर्धरोंमें गणना की थी (भीष्म० २५ । ५) । ये काशिराजके साथ रहकर तीस हजार रथियोंके द्वारा धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहकी रक्षा करते थे (भीष्म० ५० । ५६-५७) । ये उशीनरके पौत्र कहे गये हैं । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ६४—७०) । नीलकमलके समान रंगवाले, सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, विचित्र मालाओंवाले अश्व, विचित्र रथसे युक्त राजा शैब्यको युद्धस्थलमें ले गये थे (द्रोण० २३ । ६१) । (३) भगवान् श्रीकृष्णके रथका एक अश्व (आदि० अध्याय २१९; वन० अध्याय २०, २२, १८३; विराट० अध्याय ४५; उद्योग० अध्याय ८, १३१; द्रोण० अध्याय ७९, १४७ । ५७; सौप्तिक० अध्याय १३; शान्ति० अध्याय ३६, ४६, ५३) । (४) एक वृष्णिवंशीय क्षत्रिय वीर, जिसने अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी । यह युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा० ४ । ३४-३५) । (५) एक क्षत्रिय नरेश, जिन्हें श्रीकृष्णने पराजित किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२४) । (६) एक कौरवपक्षीय प्रमुख योद्धा, जो भीष्मनिर्मित सर्वतोभद्र नामक व्यूहके मुहानेपर खड़ा था (भीष्म० ९९ । २) ।

शैब्या–(१) राजा सगरकी एक पत्नी, जिनसे वंश प्रवर्तक एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था । उस पुत्रका नाम असमंजस् था (वन० १०६ । २०; वन० १०७ । ३९) । (२) शाल्व देशके प्राचीन राजा द्युमत्सेनकी रानी, जिन्होंने अपने पुत्र सत्यवान् और वधू सावित्रीके रातको आश्रममें न लौटनेपर पतिके साथ विभिन्न आश्रमोंमें जाकर उनका पता लगाया था (वन० २९८ । २) । (३) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २४) । (४) भगवान् श्रीकृष्णकी एक पटरानी, जिन्होंने श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेपर पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें प्रवेश किया था (मौसल० ७ । ७३) ।

शैरीषक–एक देश, जिसे पश्चिम-दिग्विजयके समय नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ६) ।

शैलकम्पी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६३) ।

शैलाभ–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३२) ।

शैलालय–एक राजा, जो भगदत्तके पितामह थे और कुरु-क्षेत्रके तपोवनमें तपस्या करके इन्द्रलोकमें गये थे (आश्रम० २० । १०) ।

शैलूष–एक गन्धर्व, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । २६) ।

शैलोदा–मेरु और मन्दराचलकी मध्यवर्तिनी एक नदी, इसके तटपर बसे हुए म्लेच्छ जातियोंको अर्जुनने जीता था (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४८) । इसके दोनों तटोंपर बाँसोंकी छायामें रहनेवाले खस आदि म्लेच्छोंने राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरको पिपीलक नामक सुवर्ण भेंट किया था (सभा० ५२ । २–४) ।

शैवाल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५४) ।

शैशव–एक देश, जहाँके क्षत्रिय नरेश भेंट लेकर आये और युधिष्ठिरके राजद्वारपर खड़े थे (सभा० ५२ । १८) ।

शोण–एक नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । २१) । भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रप्रस्थसे राजगृह जाते समय मार्गमें इसे पार किया था (सभा० २० । २७) । शोण और ज्योतिरथ्यके संगममें स्नान करके पवित्र और जितेन्द्रिय पुरुष पितरोंका तर्पण करे तो उसे अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होता है । इसका उत्पत्तिस्थान वंशगुल्मतीर्थ है । वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८५ । ८-९) । यह अग्निकी उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है (वन० २२२ । २५) । इसकी गणना भारतवर्षकी प्रमुख नदियोंमें है (भीष्म० ९ । २९) ।

शोणितपुर–बाणासुरकी राजधानी। शिव, कार्तिकेय, भद्रकाली देवी और अग्नि आदि देवता इस नगरीकी रक्षा करते थे। भगवान् श्रीकृष्णने इन सबको जीतकर उत्तर द्वारमें प्रवेश किया। वहाँ शङ्करजीको भी युद्धके द्वारा परास्त करके वे उस श्रेष्ठ नगरमें गये। वहाँ उन्होंने बाणासुरकी भुजाओंको काटकर उसे पराजित किया तथा अनिरुद्ध और ऊषाको बन्धनमुक्त किया (सभा० ३८। २९के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२१)।

शोणितोद–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवामें उपस्थित होता है (सभा० १०। १७)।

शोभना–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। ६)।

शौण्डिक–एक जाति, इस जातिके लोग पहले क्षत्रिय थे; किंतु ब्राह्मणोंके अमर्षसे नीच हो गये (अनु० ३५। १७–१८)।

शौनक–(१) भृगुवंशमें उत्पन्न एक महर्षि, जो नैमिषारण्यवासी तथा वहाँके आश्रमके कुलपति थे। इनके द्वादशवार्षिक यज्ञमें उग्रश्रवाका आना और महाभारतकी कथा सुनाना (आदि० १। १९)। ये भृगुवंशी शुनकके पुत्र हैं (अनु० ३०। ६५)।

महाभारतमें आये हुए शौनकके नाम-भार्गव, भार्गवोत्तम, भृगुशार्दूल, भृगूद्वह, भृगुकुलोद्वह, भृगुनन्दन आदि। (२) युधिष्ठिरके वनगमनके समय उनके साथ चलनेवाले एक विप्र। इनके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति विवेकी-अविवेकीकी गतिका वर्णन (वन० २। ६४–८१)। इनके द्वारा युधिष्ठिरको तप करनेका आदेश (वन० २। ८२-८४)

शौरि–शूरके पुत्र वसुदेव (द्रोण० १४४। ७)। (देखिये वसुदेव)

श्याम–शाकद्वीपका एक महान् पर्वत, जो मेघके समान श्याम तथा बहुत ऊँचा है। वहाँ रहनेसे वहाँकी प्रजा श्यामताको प्राप्त हुई है (भीष्म० ११। १९-२०)।

श्यामायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४। ५५)।

श्यामाश्रम-एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान, निवास और एक पक्षतक उपवास करनेसे अन्तर्धानरूप फलकी प्राप्ति होती है (अनु० २५। ३०)।

श्येन–(१) पक्षियोंकी एक जाति, जो ताम्राकुमारी श्येनीकी संतान है (आदि० ६६। ५६–५७)। (२) एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७। ११)।

श्येनचित्र–एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५। ६३)।

श्येनजित्–(१) इक्ष्वाकुवंशीय राजा दलका पुत्र, जो पिताका अत्यन्त प्यारा था (वन० १९२। ६३)। (२) एक महारथी राजा, जो भीमसेनके मामा थे (उद्योग० १४१। २७)।

श्येनी–ताम्राकी पुत्री, इसने बाज-पक्षियोंको जन्म दिया था (आदि० ६६। ५६– ५७)। यह गरुड़के बड़े भाई अरुणकी भार्या थी। इसके गर्भसे दो महाबली पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम था सम्पाती और जटायु (आदि० ६६। ६९–७०)।

श्रद्धा–(१) दक्षप्रजापतिकी पुत्री और धर्मकी पत्नी। ब्रह्माजीने धर्मकी दसों पत्नियोंको धर्मका द्वार निश्चित किया है (आदि० ६६। १३–१५)। (२) यह सूर्यकी पुत्री है, अतः इसे वैवस्वती, सावित्री तथा प्रसवित्री कहते हैं (शान्ति० २६४। ८)। (विशेष देखिये सावित्री)

श्रवण–सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक। श्रवण नक्षत्र आनेपर जो मनुष्य वस्त्रवेष्टित कम्बल दान करता है, वह श्वेत विमानके द्वारा खुले हुए स्वर्गमें जाता है (अनु० ६४। २८)। श्रवण नक्षत्रमें श्राद्धका दान करनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् सद्गतिको प्राप्त होता है (अनु० ८९। ११)। चन्द्रव्रत करनेवाले साधकको श्रवण-नक्षत्रमें चन्द्रमाके कानकी भावना करके उसकी पूजा करनी चाहिये (अनु० ११०। ७)।

श्रवा–गृत्समदवंशी महर्षि संतके पुत्र, जो तमके पिता हैं (अनु० ३०। ६३)।

श्राद्धपर्व-स्त्रीपर्वके अन्तर्गत एक अवान्तर पर्व (अध्याय २६ से २७ तक)।

श्राव–ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज युवनाश्वके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम श्रावस्त था (वन० २०२। ३–४)।

श्रावण-(बारह महीनोंमेंसे एक। जिस मासकी पूर्णिमाको श्रवण नक्षत्रका योग होता है, उसे श्रावण कहते हैं। यह आषाढ़के बाद और भाद्रपदके पहले आता है।) जो मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रावण मासको प्रतिदिन एक समय भोजन करके बिताता है, वह विभिन्न तीर्थोंमें स्नान करनेके पुण्य-फलको पाता और अपने कुटुम्बीजनोंकी वृद्धि करता है (अनु० १०६। २७)। श्रावणमासकी द्वादशी तिथिको दिन-रात उपवास करके जो भगवान् श्रीधरकी आराधना करता है, वह पाँच महायज्ञोंका फल पाता है और विमानपर बैठकर सुख भोगता है (अनु० १०९। ११)।

श्रावस्त–ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज श्रावके पुत्र थे। इनके

पुत्रका नाम बृहदश्व था। राजा श्रावस्तने श्रावस्तीपुरी बसायी थी (वन० २०२। ४)।

श्रावस्तीपुरी–यह इक्ष्वाकुवंशी राजा श्रावस्तकी राजधानी थी, जिसे राजाने स्वयं बसाया था (वन० २०२। ४)।

श्री–(१) भगवान् विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी। (देखिये लक्ष्मी) (२) धर्मकी एक पत्नीका नाम (आदि० ६६। १४)।

श्रीकण्ठ–महादेव, भगवान् शंकरके कण्ठमें श्रीनारायणके हाथसे अङ्कित चिह्न होनेके कारण वे श्रीकण्ठ कहलाते हैं (शान्ति० ३४२। १३४)।

श्रीकुञ्ज–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत सरस्वतीका एक तीर्थ, इसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल मिलता है (वन० ८३। १०८)।

श्रीकुण्ड–एक त्रिभुवनविख्यात कुण्ड। यहाँ जाकर ब्रह्माजीको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८२। ८६)।

श्रीतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, जहाँ जाकर स्नान एवं देवता-पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य उत्तम सम्पत्ति पाता है (वन० ८३। ४६)।

श्रीपर्वत–एक तीर्थभूत पर्वत। वहाँ जाकर नदीके तटपर स्नान करनेके पश्चात् भगवान् शंकरकी पूजा करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पाता है (वन० ८५। १८)।

श्रीमती–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६। ३)।

श्रीमद्भगवद्गीतापर्व–भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १३ से ४२ तक)।

श्रीमान्–दत्तात्रेयकुमार निमिके कान्तिमान् पुत्र, जिन्होंने एक सहस्र वर्षोंतक कठोर तपस्या करके अन्तकालमें कालधर्मके अधीन हो अपने प्राण त्याग दिये थे (अनु० ९१। ५-६)।

श्रीवत्स–भगवान् नारायणके वक्षःस्थलमें भगवान् शंकरके त्रिशूलसे बना हुआ चिह्न (शान्ति० ३४२। १३४)।

श्रीवह–कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५। १३)।

श्रुतकर्मा (श्रुतसेन)-(१) सहदेवके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९५। ७५)। प्रथम दिनके संग्राममें सुदर्शनके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५। ६६–६८)। दुर्मुखद्वारा इसकी पराजय (भीष्म० ७९। ३५–३८)। इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३। ३१)। चित्रसेनपुत्रके साथ इसका युद्ध (द्रोण० २५। २७-२८)। इसके द्वारा महामनस्वी शलका वध (द्रोण० १०८। १०)। इसके द्वारा अभिसारनरेश चित्रसेनका वध (कर्ण० १४। १–१४)। इसके द्वारा अश्वत्थामापर प्रहार (कर्ण० ५५। १३–१९)। देवावृधकुमारका वध (कर्ण० ८८। १८)। अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८। ६०)। (२) (श्रुतकीर्ति)–अर्जुनका द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र। इसके श्रुतकर्मा नाम पड़नेका कारण (आदि० २२०। ८३; वन० २३५। १०)। (विशेष देखिये–श्रुतकीर्ति।) (३) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। इसका शतानीकके साथ युद्ध (कर्ण० २५। १३–१६)।

श्रुतकीर्ति-द्रौपदीके गर्भसे अर्जुनद्वारा उत्पन्न (आदि० ६३। १२३; आदि० ९५। ७५)। विश्वेदेवके अंशसे इसका जन्म हुआ था (आदि० ६७। १२७-१२८)। इसका जयत्सेनके साथ युद्ध (भीष्म० ७९। ४१)। इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३। ३२)। दुःशासन-पुत्रके साथ युद्ध (द्रोण० २५। ३२-३३)। अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८। ६१-६२)।

श्रुतञ्जय–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई। अर्जुनद्वारा इसका वध (कर्ण० २७। १२)।

श्रुतध्वज–विराटके भाई। जो पाण्डवोंके रक्षक और सहायक थे (द्रोण० १५८। ४१)।

श्रुतर्वा–(१) एक प्राचीन नरेश। इनके पास अगस्त्यजी धन माँगने गये थे (वन० ९८। १)। इनका अगस्त्यजीके धन माँगनेपर उनके सामने अपने आय-व्ययका विवरण रखना (वन० ९८। ५)। इनका अगस्त्यजीके साथ अन्य राजाओंके पास जाना (वन० ९८। ७)। अगस्त्यजीकी आज्ञा लेकर इनका अपनी राजधानीको लौटना (वन० ९९। १८)। (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। इसका अपने दस भाइयोंके साथ भीमसेनपर आक्रमण और उनके द्वारा वध (शल्य० २६। ६–३२)।

श्रुतश्रवा–(१) एक ऋषि। इनके पुत्रका नाम सोमश्रवा था। सोमश्रवाको अपना पुरोहित बनानेके लिये जनमेजयकी इनसे प्रार्थना (आदि० ३। १३–१५)। इनका अपने पुत्रके जन्म-प्रसंग तथा उदारतापूर्ण स्वभाव आदिका वर्णन करते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार करना (आदि० ३। १६–१९)। ये जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्य बने थे (आदि० ५३। ९-१०)। तपस्या करके सिद्धि प्राप्त करनेवाले ऋषियोंमें इनका भी नाम है (शान्ति० २९२। १६-१७)। (२) एक राजर्षि,

जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ९) । (३) चेदिराज दमघोषकी भार्या । श्रीकृष्णकी पितृष्वसा (बुआ) और शिशुपालकी माता । इनके द्वारा अपने पुत्र (शिशुपाल) की जीवन-रक्षाके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना (सभा० ४३ । १—२०) । शिशुपालके सौ अपराध क्षमा कर दूँगा—ऐसा कहकर श्रीकृष्णद्वारा इनको आश्वासन (सभा० ४३ । २४) ।

श्रुतश्री—एक दैत्य, जिसका गरुड़द्वारा वध हुआ था (उद्योग० १०५ । १२) ।

श्रुतसेन—(१) महाराज जनमेजयके भ्राता, जिन्होंने अपने अन्य भाइयोंके साथ देवताओंकी कुतिया सरमाके पुत्र सारमेयको पीटा था (आदि० ३ । १) । (२) तक्षक नागके छोटे भाई (आदि० ३ । १४१-१४२) । (३) (श्रुतकर्मा) द्रौपदीके गर्भसे सहदेवद्वारा उत्पन्न (आदि० ६३ । १२४) । यह विश्वेदेवके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १२७) । इसके श्रुतसेन नाम पड़नेका कारण (आदि० २२० । ८५) । (विशेष देखिये—श्रुतकर्मा ।) (४) एक दैत्य । जिसका गरुड़-द्वारा वध हुआ था (उद्योग० १०५ । १२) । (५) कौरवरक्षका एक योद्धा, जिसे अर्जुनने बाण मारा था (कर्ण० २७ । १०-११) ।

श्रुतानीक—विराटके भाई, जो पाण्डवोंके रक्षक और सहायक थे (द्रोण० १५८ । ४१) ।

श्रुतान्त (चित्राङ्ग)—धृतराष्ट्रका पुत्र । इसने अन्य भाइयोंके साथ रहकर भीमसेनपर धावा किया और उन्हींके हाथसे मारा गया (शल्य० २६ । ४—११) ।

श्रुतायु (श्रुतायुध)—(१) कलिङ्ग देशके राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । २६) । इन्होंने राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरको मणि-रत्न भेंट किये थे (सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ) । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १३) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय हुआ था (उद्योग० ४ । २४) । ये कलिङ्गराज कौरवपक्षकी एक अक्षौहिणी सेनाके अधिनायक थे (भीष्म० १६ । १६) । भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा घायल होना (भीष्म० ५४ । ६७—७५) । इनके दो चक्ररक्षक—सत्यदेव और सत्य—भीमसेनद्वारा मारे गये (भीष्म० ५४ । ७६) । इनका अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । ३६—४४) । ये पर्णाशाके गर्भसे वरुणद्वारा उत्पन्न हुए थे । इन्हें वरुणद्वारा गदाकी प्राप्ति हुई थी (द्रोण० ९२ । ४५—५१) । इनका अपनी ही गदाद्वारा वध (द्रोण० ९२ । ५४) । (२) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६४) । यह महारथी वीर था और द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । २१) । महाबली श्रुतायु राजा युधिष्ठिरकी सभाका भी एक सदस्य था (सभा० ४ । २८) । पाण्डवोंकी ओरसे इसको रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । २३) । प्रथम दिनके संग्राममें इरावान्के साथ इसका युद्ध (भीष्म० ४५ । ६९—७१) । यह अम्बष्ठ देशका राजा था और भीष्मकी रक्षा करते हुए इसने अर्जुनका सामना किया था (भीष्म० ५९ । ७५-७६) । यह भीष्म-निर्मित क्रौञ्चव्यूहके जघनभागमें खड़ा था (भीष्म० ७५ । २२) । यह युद्धमें युधिष्ठिरद्वारा पराजित हुआ था (भीष्म० ८४ । १—१७) । इसका अर्जुनपर आक्रमण और उनके द्वारा वध (द्रोण० ९३ । ६०—६९) । (३) एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो अच्युतायुका भाई था । इसने अपने भाई अच्युतायुके साथ रहकर कौरव सेनाके दक्षिण भागकी रक्षा की थी (भीष्म० ५१ । १८) । इन दोनों भाइयोंका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (द्रोण० ९३ । ७—२४) ।

श्रुतावती—एक तपस्विनी कन्या, जो घृताची अप्सराको देखकर भरद्वाजजीके स्खलित हुए वीर्यसे उत्पन्न हुई थी । इसने घोर तपस्या करके इन्द्रको पतिरूपमें प्राप्त किया था (शल्य० ४८ अध्याय) ।

श्रुताह्व—पाण्डवपक्षका राजा, अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (द्रोण० १५६ । १८२) ।

श्रुति—एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८) ।

श्रेणिमान्—एक राजर्षिप्रवर, जो कालेयसंज्ञक दैत्योंमें चौथे दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ५१) । ये द्रौपदीस्वयंवरमें भी पधारे थे (आदि० १८५ । ११) । ये कुमारदेशके राजा थे । इन्हें पूर्व-दिग्विजयके अवसरपर भीमसेनने परास्त किया था (सभा० ३० । १) । दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने भी इन्हें जीता था (सभा० ३१ । ५) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । २१) । सेनाके प्रयाण करते समय ये युधिष्ठिरको घेरकर उनके पीछे चल रहे थे (उद्योग० १५१ । ६३-६४) । पाण्डवसेनामें इनकी गणना अतिरथी वीरोंमें थी

(उद्योग० १७१ । २७)। इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ३७)। इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३५)।

श्वाविल्लोमापह–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक तीर्थ (वन० ८३ । ६१)।

श्वासा–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और धर्मकी पत्नी । इनके गर्भसे अनिलनामक वसुका जन्म हुआ था (आदि० ६६ । १७—१९)।

श्वेत–(१) एक प्राचीन धर्मनिष्ठ राजर्षि (आदि० १ । २३३)। इन्होंने अपने मरे हुए पुत्रको पुनः जीवित कर दिया था (शान्ति० १५३ । ६८)। इन्होंने कभी मांस नहीं खाया (अनु० ११५ । ६६)। ये सायं-प्रातः स्मरणीय राजर्षि हैं (अनु० १५० । ५२)। (२) एक राजा, जिसकी गणना भगवान् श्रीकृष्णने भारत-वर्षके प्रमुख वीरोंमें की है (सभा० १४ । ६१ के बाद दा० पाठ)। (३) उत्तराखण्डका एक पर्वत, जिसे लाँघकर पाण्डवलोग आगे गये थे (वन० १३९ । १)। (४) विराटके पुत्र, जो उनकी बड़ी रानी कोसलराजकुमारी सुरथाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (विराट० १६ । ५१ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ १८९३, कालम २)। ये राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये थे और शिशुपालने इनके नामका उल्लेख किया था (सभा० ४४ । २०)। इनका विचित्र पराक्रम (भीष्म० ४७ । ४४—६२)। भीष्मके साथ इनका अद्भुत युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (भीष्म० ४८ अध्याय)। (५) एक वर्षका नाम । नीलपर्वतसे उत्तर श्वेत वर्ष है और उससे उत्तर हिरण्यक वर्ष है (भीष्म० ६ । ३७)। (६) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४)।

श्वेतकि–सदा यज्ञमें निरत रहनेवाले एक भूपाल (आदि० २२२ । १७)। इनके द्वारा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान (आदि० २२२ । १९)। दीर्घकालतक इनके यज्ञमें आहुति देनेके कारण खिन्न हुए ऋत्विजोंद्वारा इनका परित्याग एवं दूसरे ऋत्विजोंको बुलाकर अपने चालू किये गये यज्ञको पूरा करना (आदि० २२२ । २१–२३)। यज्ञ-सम्पादनके लिये इनके द्वारा घोर तपस्या और भगवान् शिवकी आराधना (आदि० २२२ । ३६–३९)। बारह वर्षोंतक अग्निमें निरन्तर आहुति देनेके लिये इनको शिव-का आदेश (आदि० २२२ । ४७)। भगवान् शिवका प्रसन्न होकर अपने ही अंशभूत दुर्वासाको इनका यज्ञ सम्पादित करनेके लिये आदेश (आदि० २२२ । ५८)। दुर्वासाद्वारा इनके शतवर्षीय यज्ञका सम्पादन (आदि० २२२ । ५९)। इनके यज्ञमें बारह वर्षोंतक निरन्तर घृतपान करनेसे अग्निदेवको अजीर्णताका कष्ट होना (आदि० २२२ । ६३–६७)।

श्वेतकेतु–एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ७)। ये गौतमकुलमें उत्पन्न महर्षि उद्दालकके पुत्र हैं। इन्द्रकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १२)। ये अष्टावक्रके मामा थे। इनका अष्टावक्रको अपने पिताकी गोदसे खींचना (वन० १३२ । १८)। अष्टावक्रके साथ राजा जनकके यज्ञमें जाना (वन० १३२ । २३)। हस्तिनापुर जाते समय श्रीकृष्णसे मार्गमें इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)। कपटव्यवहारके कारण पिताद्वारा इनका परित्याग (शान्ति० ५७ । १०)। महर्षि देवलके पास उनकी कन्याके लिये जाना, सुवर्चलाके साथ इनका विवाह, पत्नीके साथ इनके विभिन्न आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर, गृहस्थधर्मका पालन करते हुए इन्हें परमगतिकी प्राप्ति (शान्ति० २२० । दाक्षिणात्य पाठ)। ये उत्तर दिशाके ऋषि हैं (अनु० १६५ । ४५)।

श्वेतद्वीप–भगवान् नारायणका अनिर्वचनीय धाम–क्षीर सागरके उत्तर भागका श्वेत नामसे विख्यात विशाल द्वीप, जिसकी ऊँचाई मेरुपर्वतसे बत्तीस हजार योजन है। वहाँके निवासी इन्द्रियोंसे रहित, निराहार तथा ज्ञानसम्पन्न होते हैं। उनके अङ्गोंसे उत्तम सुगन्ध निकलती रहती है। वे निष्पाप एवं श्वेतवर्णके होते हैं। उनका शरीर और उसकी हड्डियाँ वज्रके समान सुदृढ़ होती हैं। वे मान अपमानसे परे तथा दिव्यरूप और बलसे सम्पन्न होते हैं। मस्तक छत्रकी भाँति एवं स्वर मेघगर्जन-जैसा गम्भीर होता है। उनके बराबर-बराबर चार भुजाएँ, मुँहमें साठ सफेद दाँत और आठ दाढ़ें होती हैं। वे दिव्यकान्तिमान् होते हैं तथा कालको भी चाट जाते हैं। वे अनन्त गुणोंके भंडार परमेश्वरको अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं (शान्ति० ३३५ । ८—१२ दा० पाठसहित)। श्वेतद्वीपके प्रभावका विशेष वर्णन (शान्ति० ३३६ । २७–५९)।

श्वेतभद्र–एक गुह्यक, जो कुबेरकी सभामें आकर उनकी सेवामें उपस्थित होता है (सभा० १० । १५)।

श्वेतवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक(शल्य० ४५ । ७३)।

श्वेतवाहन–अर्जुनका एक नाम (आदि० १९९ । १०)। (विशेष देखिये—अर्जुन)।

श्वेतसिद्ध–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८)।

श्वेता–(१) क्रोधवशाकी पुत्री, इसने शीघ्रगामी दिग्गज

श्वेतको उत्पन्न किया था (आदि० ६६ । ६१, ६६)। (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १२)।

श्वैत्य–प्राचीन राजा सृंजयका नाम (द्रोण० ५५ । ५०)। (विशेष देखिये—सृञ्जय)।

(ष)

षष्टिह्रद–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेपर अन्नदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ३६)।

षष्ठी देवी–ब्रह्माजीकी सभामें उनकी उपासनाके लिये बैठनेवाली एक देवी (सभा० ११ । ४१)।

(स)

संकोच–एक राक्षस, जो प्राचीन कालमें इस पृथ्वीका शासक था; किंतु कालके अधीन हो इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२)।

संकृति–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३४)। ये राजा रन्तिदेवके पिता थे (वन० २९४ । १७; द्रोण० ६७ । १)।

संक्रम–भगवान् विष्णुद्वारा स्कन्दको दिये गये तीन पार्षदोंमेंसे एक। शेष दोके नाम थे—चक्र और विक्रम (शल्य० ४५ । ३७)।

संग्रह–समुद्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक। दूसरेका नाम था विग्रह (शल्य० ४५ । ५०)।

संग्रामजित्–कर्णका एक भाई। विराटकी गौओंके अपहरणके समय युद्धमें अर्जुनद्वारा इसका वध हुआ था (विराट० ५४ । १८)।

संचारक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४)।

संज्ञा–त्वष्टाकी पुत्री और भगवान् सूर्यकी धर्मपत्नी। ये परम सौभाग्यवती हैं। इन्होंने अश्विनीका रूप धारण करके दोनों अश्विनीकुमारोंको अन्तरिक्षमें जन्म दिया था (आदि० ६६ । ३५)। नासत्य और दस्र दोनों अश्विनीकुमार अश्वरूपधारिणी संज्ञाकी नासिकासे उत्पन्न हुए थे। इनका प्रादुर्भाव भगवान् सूर्यके वीर्यसे हुआ था (अनु० १५० । १७-१८)।

संतर्जन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८)।

संतानिका–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ९)।

संध्या–(१) एक नदी, जो वरुण-सभामें रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २३)। (२) सायंकालिक संध्याकी अधिष्ठात्री। ये महर्षि पुलस्त्यकी पत्नी थीं (उद्योग० ११७ । १६)। (मूलगत नाम 'प्रतीच्या')।

संनतेयु–पूरुके तीसरे पुत्र महामनस्वी रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न महाधनुर्धर पुत्र। इनके अन्य भाइयोंके नाम—ऋचेयु, पक्षेयु, कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, जलेयु, तेजेयु, सत्येयु तथा धर्मेयु थे (आदि० ९४ । ८–११)।

संन्यस्तपाद–एक देश, जहाँके राजा और राजकुमार जरासंधके भयसे पीड़ित हो उत्तर दिशाको छोड़कर दक्षिण दिशाका आश्रय ले चुके थे (सभा० १४ । २८)।

संयम–राक्षस शतशृङ्गका प्रथम पुत्र, जो अम्बरीषके सेनापति सुदेवद्वारा मारा गया था (शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ)।

संयमन–(१) यमकी राजधानी संयमनीपुरी, जो दक्षिण-दिशामें स्थित है (वन० १६३ । ८-९)। (२) सोमदत्तका दूसरा नाम (भीष्म० ६१ । ३३)।

संयमनीपुरी–यमकी राजधानी या पुरी, इसका दूसरा नाम 'संयमन' भी है (वन० १६३ । ८९; द्रोण० ७२ । ४४; द्रोण० ११९ । २४; द्रोण० १४२ । १०)। जहाँ कोई भी झूठ नहीं बोलता, सदा सत्य ही बोला जाता है, जहाँ निर्बल मनुष्य भी बलवान्से अपने प्रति किये गये अन्यायका बदला लेते हैं; मनुष्योंको संयममें रखनेवाली यमराजकी वही पुरी 'संयमनी' नामसे प्रसिद्ध है (अनु० १०२ । १६)।

संयाति–(१) राजा नहुषके तीसरे पुत्र। ययातिके छोटे भाई। इनके अन्य भाइयोंके नाम थे—यति, ययाति, आयाति, अयति और ध्रुव (आदि० ७५ । ३०-३१)। (२) ये महाराज पूरुके प्रपौत्र एवं प्राचिन्वान्के पुत्र थे। यदुकुलकी कन्या अश्मकी इनकी माता थी (आदि० ९५ । १३)। इनके द्वारा दृषद्वान्की पुत्री वराङ्गीके गर्भसे 'अहंयाति' नामक पुत्रका जन्म हुआ था (आदि० ९५ । १४)।

संवरण–सोमवंशी अजमीढके पौत्र तथा ऋक्षके पुत्र (आदि० ९४ । ३१–३४)। पाञ्चाल-नरेशके द्वारा इनपर आक्रमण और इनकी पराजय (आदि० ९४ । ३७-३८)। शत्रुके भयसे राज्य छोड़कर इनका सिन्धु-तटपर निवास (आदि० ९४ । ३९-४०)। इनके द्वारा राज्य-प्राप्तिके लिये पुरोहितके रूपमें वसिष्ठका वरण (आदि० ९४ । ४२–४४)। वसिष्ठकी सहायतासे इनको अपने राज्यकी प्राप्ति तथा इनके द्वारा विविध यज्ञोंका सम्पादन (आदि० ९४ । ४५–४७)। इनके द्वारा सूर्यकन्या तपतीके गर्भसे 'कुरु'का जन्म (आदि० ९४ । ४८)। इनकी सूर्यदेवके प्रति भक्ति एवं आराधना (आदि० १७० । १२–१४)। राजा संवरणके गुण—रूपमें इस पृथ्वीपर इनके समान कोई नहीं था। ये

कृतज्ञ और धर्मज्ञ थे। अपनी दिव्य कान्तिसे सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते थे। प्रजा इनकी उपासना करती थी। उत्तम गुणसम्पन्न और श्रेष्ठ आचार-विचारसे युक्त थे (आदि० १७०। १५—१९)। इनके साथ तपतीके विवाहके लिये सूर्यदेवका संकल्प (आदि० १७० । २०)। एक दिन ये पर्वतके समीपवर्ती उपवनमें शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ थकावटके कारण इनके घोड़ेकी मृत्यु हो गयी। फिर ये अकेले पैदल ही घूमने लगे। घूमते-घूमते उपवनमें इन्हें एक विशाललोचना दिव्य कन्या दिखायी दी (वह सूर्यकन्या तपती थी) (आदि० १७० । २१–२३)। तपतीके रूप-सौन्दर्यको देखकर इनका मोह (आदि० १७० । २४–३४)। इनका उस कन्यासे परिचय पूछना। उसका अदृश्य होना तथा उसके वियोगसे इनकी मूर्च्छा (आदि० १७० । ३६–४४)। तपतीद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १७१ । ४-५)। गान्धर्व विवाहद्वारा अपनी पत्नी बननेके लिये इनकी तपतीसे प्रार्थना (आदि० १७१ । ७–१९)। तपतीकी प्राप्तिके लिये इनके द्वारा सूर्यकी आराधना और वसिष्ठजीका स्मरण (आदि० १७२ । १२-१३)। वसिष्ठकी कृपा एवं प्रयत्नसे इनको तपतीकी प्राप्ति (आदि० १७२ । १४–३२)। तपतीके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० १७२ । ३३)। तपतीके साथ इनका विहार (आदि० १७२ । ३७)। इनके राज्यमें बारह वर्षतक अनावृष्टि (आदि० १७२ । ३८)। ये सायं-प्रातःस्मरणीय नरेश हैं (अनु० १६५ । ५४)।

महाभारतमें आये हुए संवरणके नाम–आजमीढ, आर्क्ष, पौरव, पौरवनन्दन, ऋक्षपुत्र आदि।

संवर्त–महर्षि अङ्गिराके तृतीय पुत्र। शेष दोके नाम बृहस्पति और उतथ्य हैं (आदि० ६६ । ५)। ये इन्द्र-सभामें रहकर देवराजकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १९)। ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १२)। इन्होंने प्लक्षावतरणतीर्थमें राजा मरुत्तका यज्ञ कराया था (वन० १२९ । १३–१७)। बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण इन्होंने महाराज मरुत्तका यज्ञ कराया था (द्रोण० ५५ । ३८)। बृहस्पतिजीके इनकार करनेपर इन्होंने मरुत्तका यज्ञ कराया (शान्ति० २९ । २०-२१)। ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये गये थे (शान्ति० ४७ । ९)। महाप्रयाणके समय भीष्मजीके पास गये थे (अनु० २६ । ५)। ये अङ्गिराके आठ पुत्रोंमेंसे एक थे, शेषके नाम थे–बृहस्पति, उतथ्य, पयस्य, शान्ति, घोर, विरूप और सुधन्वा (अनु० ८५ । ३०–३१)। इनका मरुत्तको अपना साथ छोड़ देनेके लिये बाध्य करना (आश्व० ६ । ३१–३३)। मरुत्तसे अपने पक्षमें रहनेकी प्रतिज्ञा कराकर उन्हें उनका यज्ञ करानेकी स्वीकृति देना (आश्व० ७ । २४–२७)। मरुत्तको सुवर्णकी प्राप्तिके लिये शिवजीकी नाममयी स्तुतिका उपदेश करना (आश्व० ८ । १३–३२ तक दाक्षिणात्य पाठसहित)। अग्निदेवको जला डालनेकी धमकी देना (आश्व० ९ । १९)। इन्द्रके वज्रका स्तम्भन करना (आश्व० १० । १७)। इन्द्रको मरुत्तकी यज्ञशालामें बुलाना (आश्व० १० । २०)। इन्द्रको हाँ आवश्यक कार्यका उपदेश देने तथा देवोंका भाग निश्चित करनेके लिये कहना (आश्व० १० । २५)।

संवर्तक–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०)। (२) माल्यवान् पर्वतपर सदा प्रज्वलित रहनेवाले अग्निदेवका नाम (भीष्म० ७ । २७-२८)।

संवर्तवापी–एक दुर्लभ तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सुन्दर रूपका भागी होता है (वन० ८५ । ३१)।

संवह–जो देवताओंके आकाशमार्गसे जानेवाले विमानोंको स्वयं ही वहन करती है, वह पर्वतोंका मान मर्दन करनेवाली चतुर्थ वायु संवह नामसे प्रसिद्ध है। इसका विशेष वर्णन (शान्ति० ३२८ । ४१–४३)।

संवृत्त–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १४)।

संवृत्ति–ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करनेवाली एक देवी (सभा० ११ । ४३)।

संवेद्य–एक तीर्थ, जहाँ प्रातःसंध्याके समय स्नान करनेसे विद्या प्राप्त होती है (वन० ८५ । १)।

संशप्तकवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (द्रोण० अध्याय १७ से ३२ तक)।

संश्रुत्य–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५)।

संस्थान–एक देश, जहाँके सैनिकोंको भीष्मकी रक्षाका आदेश दिया गया था (भीष्म० ५१ । ७)।

संहतापन–ऐरावतकुलका एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ११-१२)।

संहनन–राजा पूरुके प्रपौत्र एवं मनस्युके पुत्र। माताका नाम सौवीरी। ये शूरवीर एवं महारथी थे (आदि० ९४ । ५–७)।

संह्राद (संह्लाद)–हिरण्यकशिपुका द्वितीय पुत्र, प्रह्लादका छोटा भाई। इनके शेष भाइयोंके नाम—प्रह्लाद, अनुह्लाद, शिबि तथा बाष्कलि थे (आदि० ६५ । १७-१८)।

बाह्लीकदेशके सुप्रसिद्ध राजा शल्य इसीके अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ६) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता था (सभा० ९ । १२) ।

सकृद्ग्रह–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६६) ।

सगर–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३४) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं । (सभा० ८ । १९) । ये इक्ष्वाकुवंशके प्रतापी राजा थे । इनकी दो रानियाँ थीं वैदर्भी और शैव्या । इनकी संतान-प्राप्तिके लिये तपस्या और इन्हें एक पत्नीसे साठ हजार तथा दूसरीसे एक ही वंशधर पुत्र होनेका वरदान (वन० ४७ । १९; वन० १०६ । ७—१६) । इनकी एक रानी वैदर्भीके गर्भसे एक तुम्बी उत्पन्न हुई । राजा उसे फेंकना चाहते थे, किंतु आकाशवाणीके मना करनेपर रुक गये तथा उसके निर्देशके अनुसार इन्होंने उस तुम्बीके एक-एक बीजको निकालकर साठ हजार घृतपूर्ण कलशोंमें रक्खा और उनकी रक्षाके लिये धायें नियुक्त कर दीं । तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् इनके साठ हजार पुत्र उन घड़ोंमेंसे निकल आये (वन० १०६ । १८ से वन० १०७ । ४ तक) । इनकी अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा (वन० १०७ । ११) । इनके साठ हजार पुत्रोंका कपिलकी क्रोधाग्निमें भस्म होना (वन० १०७ । ३३) । इनके द्वारा अपने पुत्र असमंजसका त्याग (वन० १०७। ३९-४३; शान्ति० ५७ । ८) । इनका अंशुमान्को राज्य देकर स्वर्ग-गमन (वन० १०७ । ६४) । ये अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रके विमानपर बैठकर विराटनगरके पास आये थे (विराट० ५६ । १०) । श्रीकृष्णद्वारा इनके दान, यज्ञ आदिका वर्णन (शान्ति० २९ । १३०–१३६) । महर्षि अरिष्टनेमिसे इनका मोक्षविषयक प्रश्न (शान्ति० २८८। ३) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६६) । ये सायं-प्रातःस्मरणीय राजर्षि हैं (अनु० १६५ । ४९) ।

सङ्कर–एक मिश्रित जाति । भिन्न-भिन्न वर्णके माता-पितासे उत्पन्न होनेवाली संतानें 'संकरजातिके' अन्तर्गत मानी गयी हैं । भारतवर्षमें इस जातिके लोग भी रहते हैं (भीष्म० ९ । १३-१४) ।

सङ्कर्षण–बलदेव (सभा० २२ । ३६ के बाद दा० पाठ) । (देखिये बलराम) । इनकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन (शान्ति० २०७ । १—१२) ।

सञ्जय–(१) गवल्गण नामक सूतके पुत्र, जो मुनियोंके समान ज्ञानी और धर्मात्मा थे । ये धृतराष्ट्रके मन्त्री थे (आदि० ६३ । ९७) । धृतराष्ट्रके द्वारा इनको अपनी विजय-विषयक निराशाका अनुभव सुनाना (आदि० १ । १५०–२१८) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको आश्वासन (आदि० १ । २२२–२५१) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें गये थे । इन्हें राजाओंकी सेवा और सत्कारके कार्यमें नियुक्त किया गया था (सभा० ३५ । ६) । इनका धृतराष्ट्रको फटकारना (सभा० ८१ । ५–१८) । इनका धृतराष्ट्रके आदेशसे विदुरको बुलानेके लिये काम्यकवनमें जाना और विदुरसे संदेश कहना (वन० ६ । ५-१७) । इनके द्वारा संताप करते हुए धृतराष्ट्रकी बातोंका समर्थन (वन० ४९ । १–१३) । इनका धृतराष्ट्रसे दुर्योधनके वधके लिये श्रीकृष्णादिके द्वारा काम्यकवनमें की हुई प्रतिज्ञाका वर्णन करना (वन० ५१ । १५—४४) । धृतराष्ट्रके भेजनेसे युधिष्ठिरके पास जाकर उनकी कुशल पूछना (उद्योग० २३ । १–५) । युधिष्ठिरके प्रश्नोंका उत्तर देना (उद्योग० २४ अध्याय) । पाण्डवोंकी सभामें धृतराष्ट्रका संदेश सुनाना (उद्योग० २५ अध्याय) । युधिष्ठिरको युद्धमें दोषकी सम्भावना दिखाकर शान्त रहनेके लिये कहना (उद्योग० २७ अध्याय) । युधिष्ठिरके पाससे हस्तिनापुर लौटकर धृतराष्ट्रसे उनका कुशल-समाचार कहना और धृतराष्ट्रके कार्योंकी निन्दा करना (उद्योग० ३२ । ११–३०) । कौरव-सभामें आगमन (उद्योग० ४७ । १४) । कौरवसभामें अर्जुनका संदेश सुनाना (उद्योग० ४८ अध्याय) । धृतराष्ट्रसे युधिष्ठिरके प्रधान सहायकोंका वर्णन करना (उद्योग० ५० अध्याय) । धृतराष्ट्रको उनके दोष बताते हुए दुर्योधनपर शासन करनेकी सलाह देना (उद्योग० ५४ अध्याय) । दुर्योधनसे पाण्डवोंके रथ और अश्वोंका वर्णन करना (उद्योग० ५६ । ७—१७) । पाण्डवोंकी युद्धके लिये तैयारीका वर्णन (उद्योग० ५७ । २—२५) । धृष्टद्युम्नकी शक्ति एवं संदेशका कथन (उद्योग० ५७ । ४७—६२) । धृतराष्ट्रके पूछनेपर अन्तःपुरमें कहे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके संदेश सुनाना (उद्योग० ५९ अध्याय) । धृतराष्ट्रको अर्जुनका संदेश सुनाना (उद्योग० ६६ । ३—१५) । धृतराष्ट्रसे श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन करना (उद्योग० अध्याय ६८ से ७० तक) । धृतराष्ट्रसे कर्ण और श्रीकृष्णके वार्तालापका वृत्तान्त बताना (उद्योग० १४३ अध्याय) । धृतराष्ट्रको कुरुक्षेत्रमें सेनाका पड़ाव पड़नेके बादका समाचार सुनाना आरम्भ करना (उद्योग० १५९ । ८) । व्यासजीकी कृपासे इन्हें दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति (भीष्म० २ । १०) । धृतराष्ट्रके पूछनेपर भूमिके गुणोंका वर्णन करना (भीष्म० ४ । १० से भीष्म० ५ । १२ तक) । सुदर्शन द्वीपका वर्णन

करना (भीष्म० ५ । १३) । धृतराष्ट्रसे भीष्मजीकी मृत्युका समाचार सुनाना (भीष्म० १३ अध्याय) । (यहाँसे सौप्तिकपर्वके ९ वें अध्यायतक संजयने धृतराष्ट्र-से युद्धका समाचार सुनाया है ।) धृतराष्ट्र-को उपालम्भ देना (द्रोण० ८६ अध्याय) । धृतराष्ट्रसे कर्णद्वारा अर्जुनके ऊपर शक्ति न छोड़े जानेका कारण बताना (द्रोण० १८२ अध्याय) । कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना (कर्ण० ५ अध्याय) । पाण्डवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना (कर्ण० ६ अध्याय) । कौरवपक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन (कर्ण० ७ अध्याय) । सात्यकिद्वारा जीते-जी इनका बंदी बनाया जाना (शल्य० २५ । ५७-५८) । व्यासजी-के अनुग्रहसे सात्यकिकी कैदसे छुटकारा पाना (शल्य० २९ । ३९) । इनकी दिव्यदृष्टिका चला जाना (सौप्तिक० ९ । ६२) । धृतराष्ट्रको सान्त्वना देना (स्त्री० १ । २३–४३) । धृतराष्ट्रसे स्वजनोंका मृतक कर्म करनेको कहना (स्त्री० ९ । ५–७) । युधिष्ठिरद्वारा इन्हें कृताकृत कार्योंकी जाँच तथा आय-व्ययके निरीक्षणका कार्य सौंपा जाना (शान्ति० ४१ । ११) । धृतराष्ट्र और गान्धारी-के साथ इनका वनगमन (आश्रम० १५ । ८) । यात्रा-के प्रथम दिन गङ्गातटपर धृतराष्ट्रके लिये शय्या बिछाना (आश्रम० १८ । १९) । वनवासी महर्षियोंसे पाण्डवों तथा उनकी पत्नियोंका परिचय देना (आश्रम० २५ अध्याय) । ये वनमें छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके तीसरे दिन आहार ग्रहण करते थे (आश्रम० ३७ । १३) । ये सदा धृतराष्ट्रके पीछे चलते और ऊँची-नीची भूमिमें उन्हें सहारा देकर ले चलते थे (आश्रम० ३७ । १६-१७) । वनमें दावानल प्रज्वलित हो जानेपर धृतराष्ट्रने सञ्जयको दूर भाग जानेके लिये कहा । सञ्जयने इस तरह दावानलमें जलकर होनेवाली मृत्युको राजाके लिये अनिष्ट बतायी, किंतु उससे बचानेका कोई उपाय न देखकर अपना कर्तव्य पूछा । राजाने कहा कि गृहत्यागियों-के लिये यह मृत्यु अनिष्टकारक नहीं, उत्तम है, तुम भाग जाओ । तब सञ्जयने राजाकी परिक्रमा की और उन्हें ध्यान लगानेके लिये कहा । राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती तीनों दग्ध हो गये, किंतु ये दावा-नलसे मुक्त हो गये । फिर गङ्गातटपर तपस्वी जनोंको राजाके दग्ध होनेका समाचार बताकर ये हिमालयको चले गये (आश्रम० ३७ । १९—३४) । (२) सौवीर देशका एक राजकुमार, जो हाथमें ध्वज लेकर जयद्रथके पीछे चलता था (वन० २६५ । १०) । द्रौपदी-हरणके समय अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २७) । (३) सौवीर देशका एक राजकुमार, जिसकी माता विदुला थी । एक दिन रणभूमिसे भागकर आनेपर माताने इसे कड़ी फटकार दी और युद्धके लिये प्रोत्साहन दिया (उद्योग० अध्याय १३३ से १३६ । १२ तक) । माताके उपदेशसे युद्धके लिये उद्यत हो उसकी आज्ञाका यथावत् रूपसे पालन किया (उद्योग० १३६ । १३—१६) ।

सञ्जयन्ती–दक्षिण भारतकी एक नगरी, जिसे सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके समय दूतोंद्वारा संदेश देकर ही अपने अधिकारमें करके वहाँसे कर वसूल किया था (सभा० ३१ । ७०) ।

सञ्जययानपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २० से ३२ तक) ।

सञ्जीवनमणि–एक प्रकारकी मणि, जो नागोंके जीवनकी आधारभूत है । बभ्रुवाहनद्वारा आहत अर्जुनके अचेत हो जानेपर उलूपीने इसका स्मरण करके हस्तगत किया था । यह मणि सदा मरे हुए नागराजोंको जीवित किया करती थी । उलूपीकी आज्ञासे बभ्रुवाहनने इसे लेकर अर्जुनकी छातीपर रखा, जिससे अर्जुन जीवित हो उठे (आश्व० ८० । ४२—५२) ।

सञ्जीवनी–एक विद्या, जिसके द्वारा मृत व्यक्तिको भी जीवन-दान दिया जा सकता है । शुक्राचार्यने इसी विद्याके बलसे देवासुर-संग्राममें मारे गये दानवोंको जिलाया था (आदि० ७६ । ८) । इसीके बलसे उन्होंने दानवोंद्वारा मारे गये कचको तीन बार जिला दिया था । शुक्राचार्यने कचको भी इस विद्याका उपदेश दिया था (आदि० ७६ । २८—६१) ।

सणु–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४३) ।

सतत–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक विष्णु-सम्बन्धी तीर्थ, जहाँ श्रीहरि सदा निवास करते हैं (वन० ८३ । १०) । वहाँ स्नान और भगवान् श्रीहरिको नमस्कार करनेसे मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल पाता तथा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है (वन० ८३ । १०-११) ।

सत्य–(१) एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १०) । (२) एक अग्नि, जो निश्च्यवन नामक अग्निके पुत्र हैं । वे निष्पाप तथा काल-धर्मके प्रवर्तक हैं । वेदनासे पीड़ित प्राणियोंको कष्टसे निष्कृति (छुटकारा) दिलानेके कारण इनका दूसरा नाम निष्कृति है । ये ही प्राणियोंद्वारा सेवित गृह और उद्यान आदिमें शोभाकी सृष्टि करते हैं । इनके पुत्रका नाम स्वन है (वन० २१९ । १३–१५) । (३) कलिङ्ग-सेनाका एक योद्धा, जो कलिङ्गराज श्रुतायुका चक्ररक्षक था । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ५४ । ७६) । (४) विदर्भनिवासी एक धर्मात्मा तपस्वी ब्राह्मण

(शान्ति० २७२ । ६) । इनके अहिंसापूर्ण यज्ञका वर्णन (शान्ति० २७२ । १०—२०) । (५) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम और इसकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२ । ७५-७६) । (६) वीतहव्यवंशी वितत्यके पुत्र । इनके पुत्रका नाम संत था (अनु० ३० । ६२) ।

सत्यक–एक यदुवंशी क्षत्रिय, जो सात्यकिके पिता थे (आदि० ६३ । १०५) । ये रैवतक पर्वतपर होनेवाले उत्सवमें सम्मिलित थे (आदि० २१८ । ११) । इनके द्वारा अभिमन्युका श्राद्ध किया गया (आश्व० ६२ । ६) ।

सत्यकर्मा–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जिसने अर्जुनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा की थी । यह एक संशप्तक योद्धा था (द्रोण० १७ । १७-१८) । अर्जुनद्वारा इसका वध (शल्य० २७ । ३९-४०) ।

सत्यजित्–राजा द्रुपदके भाई, जिसे साथ ले द्रुपदने अर्जुनपर धावा किया था (आदि० १३७ । ४२) । अर्जुनके साथ इनका युद्ध (आदि० १३ । ४६) । अर्जुनसे पराजित होकर इनके द्वारा युद्ध-भूमिका त्याग (आदि० १३७ । ५३) । अर्जुनद्वारा इन्हें युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपा जाना (द्रोण० १७ । ४४-४५) । द्रोणाचार्यद्वारा इनका वध (द्रोण० २१ । २१) । इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ४) ।

सत्यदेव–कलिङ्गसेनाका एक योद्धा, जो कलिङ्गराज श्रुतायुका चक्ररक्षक था । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ५४ । ७६) ।

सत्यधर्मा–एक सोमकवंशी राजकुमार, जो युधिष्ठिरके सहायक थे (उद्योग० १४१ । २५) ।

सत्यधृति–(१) पाण्डवपक्षके महारथी योद्धा, जिन्हें भीष्मजीने रथियोंमें श्रेष्ठ माना था (उद्योग० १७१ । १८) । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें भी पधारे थे (आदि० १८५ । १०) । ये सुचित्तके पुत्र थे । इन्होंने युद्धमें हिडिम्बाकुमार घटोत्कचकी सहायता की थी (भीष्म० ९३ । १३) । इनके घोड़ोंका रंग लाल था, परंतु उनके पैर काले रंगके थे । ये सभी सुवर्णमय विचित्र कवचोंसे सुसज्जित थे । कुमार सत्यधृति अस्त्रोंके ज्ञान, धनुर्वेद तथा ब्राह्मवेदमें भी पारंगत थे (द्रोण० २३ । ३६, ३९) । द्रोणाचार्यद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३४) । (२) राजा क्षेमका पुत्र पाण्डव-पक्षका योद्धा, इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५८) ।

सत्यपाल–एक ऋषि, जो राजा युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १४) ।

सत्यभामा–भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानी, भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुरको मारकर इनके साथ नरकासुरके घरका निरीक्षण किया । फिर वे इन्हें साथ लेकर इन्द्रलोकमें गये । वहाँ शचीदेवीने इन्हें देवमाता अदितिसे मिलाया था । माता अदितिने इन्हें यह वर दिया था कि 'जबतक श्रीकृष्ण मानवशरीरमें रहेंगे तबतक तू भी वृद्धावस्थाको प्राप्त न होगी, दिव्य सुगन्ध एवं उत्तम गुणोंसे सुशोभित होगी ।' सत्यभामा शचीके साथ स्वर्गमें घूम-फिरकर उनकी अनुमति ले भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुनः द्वारका आ गयीं । द्वारकामें इन्हें रहनेके लिये श्वेत रंगका प्रासाद (महल) प्राप्त हुआ था, उसमें विचित्र मणियोंके सोपान लगे थे, उसमें प्रवेश करनेपर ग्रीष्म ऋतुमें भी शीतलताका अनुभव होता था । यह महल एक सुन्दर उद्यानमें बनाया गया था । इसमें चारों ओर ऊँची ध्वजाएँ फहराती थीं, ये सभाभवनमें भगवान्का वैभव एवं नवागता रानियोंको देखने गयी थीं (सभा० ३८ । २९ के बाद, दा० पाठ, पृष्ठ ८०८, ८११, ८१२, ८१५, ८२०) । इनका काम्यकवनमें श्रीकृष्णके साथ आकर द्रौपदीसे मिलना (वन० १८३ । ११) । इनका द्रौपदीसे पतिको अपने अनुकूल बनाये रखनेका उपाय पूछना (वन० २३३ । ४–८) । इनका द्रौपदीको आश्वासन देकर द्वारकाको प्रस्थान करना (वन० २३५ । ४–१८) । ये सत्राजित्की पुत्री थीं, भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम-गमनके पश्चात् जब अर्जुन द्वारकामें आये थे, उस समय उनके पास आकर रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ इन्होंने विलाप किया था (मौसल० ५ । १३) । श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयी थीं (मौसल० ७ । ७४) ।

सत्ययुग–चारों युगोंमें प्रथम युग (विशेष देखिये कृतयुग) ।

सत्यरथ–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जो अपने पाँच रथी बन्धुओंमें प्रधान था (उद्योग० १६६ । ११) । इसने अर्जुनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा की थी (द्रोण० १७ । १७-१८) । (यह एक संशप्तक योद्धा था ।)

सत्यवती–(१) उपरिचर वसुके वीर्यद्वारा ब्रह्माजीके शापसे मत्स्यभावको प्राप्त हुई 'अद्रिका' नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न एक राजकन्या । मल्लाहोंने मछलीका पेट चीरकर एक कन्या और पुरुष निकाला, जब राजाको इसकी सूचना दी गयी, तब राजाने उन दोनों बालकोंमेंसे पुत्रको स्वयं ग्रहण कर लिया, वही 'मत्स्य' नामक धर्मात्मा राजा हुआ, उनमें जो कन्या थी, उसके शरीरसे मछलीकी गन्ध आती थी, अतः राजाने उसे मल्लाहको सौंप दिया और कहा—'यह तेरी पुत्री होकर रहे । सत्य,'

सत्य एवं सद्गुणसे सम्पन्न होनेके कारण वह 'सत्यवती' नामसे प्रसिद्ध हुई, मछेरोंके आश्रयमें रहने और मछलीकी सी गन्ध होनेके कारण वह कुछ काल 'मत्स्यगन्धा' कहलायी। यह पिताकी सेवाके लिये यमुनाजीमें नाव चलाया करती थी (**आदि० ६३ । ५०–६९**) । यह अतिशय रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित थी। एक दिन पराशर मुनिने इसे देखा और इसके साथ समागमकी इच्छा प्रकट की। इसकी इच्छाके अनुसार अन्धकारके लिये उन्होंने कुहरेकी सृष्टि कर दी। इसके कन्यात्वके अक्षुण्ण रहने और शरीरमें उत्तम सुगन्ध प्रकट होनेका भी महर्षिने इसे वर दे दिया। फिर इसने महर्षिके साथ समागम किया। शरीरमें उत्तम गन्ध निकलनेसे इसका 'गन्धवती' नाम प्रसिद्ध हुआ। इस पृथ्वीपर एक योजन दूरके मनुष्य भी इसकी सुगन्धका अनुभव करते थे, इस कारण इसका दूसरा नाम 'योजनगन्धा' हो गया (**आदि० ६३ । ७०–८३**) । सत्यवतीने पराशरजीके सम्पर्कसे तत्काल ही एक शिशुको जन्म दिया। यमुनाजीके द्वीपमें अत्यन्त शक्तिशाली पराशरनन्दन व्यास प्रकट हुए। उन्होंने मातासे कहा—'आवश्यकता पड़नेपर तुम मेरा स्मरण करना, मैं अवश्य दर्शन दूँगा।' इतना कहकर उन्होंने माताकी आज्ञासे तपस्यामें ही मन लगाया (**आदि० ६३ । ८४-८५**) । पिताके पूछनेपर इसका अपने शरीरकी उत्तम गन्धमें महर्षि पराशरकी कृपाको कारण बताना (**आदि० ६३ । ८६ के बाद दा० पाठ**)। इसका एक नाम 'गन्धकाली' भी था। इसका शान्तनुके साथ विवाह और उनके द्वारा इसके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्यका जन्म हुआ (**आदि० ९५। ४८–५०; आदि० १०१ । ३**) । वंशकी रक्षाके लिये विवाह करने तथा अम्बिका आदिके गर्भसे पुत्रोत्पादनके लिये इसका भीष्मसे अनुरोध (**आदि० १०३ । १०–११**) । भीष्मके प्रति इसका अपने गर्भसे व्यासजीके जन्मका वृत्तान्त सुनाना (**आदि० १०४ । ५–१४**) । विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंसे संतानोत्पादनके हेतु व्यासजीको बुलानेके सम्बन्धमें इसका भीष्मसे परामर्श (**आदि० १०४ । १८-१९**)। भीष्मकी अनुमति प्राप्त होनेपर कुरुवंशकी रक्षाके लिये इसके द्वारा व्यासजीका स्मरण (**आदि० १०४ । २३-२४**)। विचित्रवीर्यकी पत्नियोंमें पुत्रोत्पादनके लिये इसके द्वारा व्यासको आदेश (**आदि० १०४ । ३५–३८**) । इसका रानी अम्बिकाको समझा-बुझाकर अनुकूल करके पुत्रोत्पादनके निमित्त व्यासकी प्रतीक्षा करनेके लिये आज्ञा देना (**आदि० १०४ । ४९ से आदि० १०५ । २ तक**) । इसका अम्बालिकाको तैयार करना और उसके गर्भसे पुत्रोत्पादनके लिये व्यासजीको बुलाना (**आदि० १०५ । १३-१४**) । व्यासजीका पाण्डुके शोकसे व्याकुल हुई माता सत्यवतीको आश्वासन देना तथा आनेवाले भयंकर समयका परिणाम बतलाकर तपोवनमें तपस्याके लिये जानेकी सम्मति प्रदान करना (**आदि० १२७ । ५–८**) । अपने दोनों पुत्रवधुओं (अम्बिका एवं अम्बालिका) के साथ इसका तपोवनमें जाना और तपस्याद्वारा परमपद प्राप्त करना (**आदि० १२७ । १३**)।

महाभारतमें आये हुए सत्यवतीके नाम—दाशेयी, गन्धकाली, गन्धवती, काली, सत्या, वासवी तथा योजनगन्धा आदि।

(२) केकयकुलकी कन्या, इक्ष्वाकुवंशी महाराज त्रिशङ्कुकी पत्नी और राजा हरिश्चन्द्रकी माता (**सभा० १२ । १० के बाद दा० पाठ**) । (३) महाराज गाधिकी पुत्री, जिसका विवाह राजाने एक हजार श्यामकर्ण घोड़े लेकर ऋचीक मुनिके साथ किया था (**वन० ११५ । २६–२९**) । (४) नारदजीकी भार्या (**उद्योग० ११७ । १५**) ।

सत्यवर्मा—त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई (संशप्तकयोद्धा), जिसने अर्जुनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा की थी (**द्रोण० १७ । १७-१८**) ।

सत्यवाक्—एक देवगन्धर्व, जो कश्यपकी पत्नी 'मुनि'का पुत्र था (**आदि० ६५ । ४३**) ।

सत्यवान्—(१) शाल्वनरेश द्युमत्सेनके पुत्र, जो नगरमें जन्म लेकर भी तपोवनमें पालित, पोषित और संवर्धित हुए थे (**वन० २९४ । १०**) । मद्रराज अश्वपतिकी कन्या सावित्रीके साथ इनका विवाह (**वन० २९५ । १५**)। इनका समिधाके लिये वनमें जानेको उद्यत होना। सावित्रीका इनसे अपनेको भी साथ ले चलनेका अनुरोध। इनका उसे माता-पिताकी आज्ञा लेकर चलनेके लिये स्वीकृति देना (**वन० २९६ । १८–२३**) । इनका वनमें फल चुनकर टोकरीमें रखना, फिर लकड़ी चीरना, श्रमसे इनके सिरमें दर्द होना, सावित्रीसे अपनी अस्वस्थता और असमर्थताका वर्णन करना, यमराजका सावित्रीसे सत्यवान्की आयुके समाप्त होने और इन्हें बाँधकर ले जानेके लिये अपने आगमनकी बात बताना तथा सत्यवान्के शरीरमें पाशमें बँधे हुए अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाले जीवको बलपूर्वक खींचकर निकालना (**वन० २९६ । १–१७**) । इनका पुनः जीवित होना और सावित्रीसे वार्तालाप करना, माता-पिताके दर्शनके लिये इनकी चिन्ता (**वन० २९७ । ६४–१०२**) । सावित्रीके साथ इनका आश्रमकी ओर प्रस्थान (**वन० २९७ । १०७–११**) । इनका पत्नीके साथ आश्रममें पहुँचना (**वन० २९८ । २१**) ।

इनका ऋषियोंके पूछनेपर विलम्बसे आश्रममें आनेका कारण बताना (**वन० २९८ । ३०–३२**) । इनका युवराजपदपर अभिषेक (**वन० २९९ । ११**) । पिताके साथ राज्यपालनके विषयमें वार्तालाप (**शान्ति० २६७ अध्याय**) । लोगोंके पूछनेपर कन्यादानके विषयमें इनका निर्णय देना (**अनु० ४४ । ५१–५६**) । (२) कौरव-पक्षके एक सेनापति, जो महारथी वीर थे (**उद्योग० १६७ । ३०**) ।

सत्यव्रत–(१) एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २३६**) । (२) (सत्यसेन, सत्यसंध, संध) धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (**आदि० ६३ । ११९-१२०**) । (विशेष देखिये– सत्यसंध) (३) त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई (एक संशप्तक योद्धा) । इसका अर्जुनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना (**द्रोण० १७ । १७-१८**) ।

सत्यश्रवा–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (**द्रोण० ४५ । ३**) ।

सत्यसंध (सत्यव्रत, सत्यसेन अथवा संध)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक । यह ग्यारह महारथियोंमेंसे एक था (**आदि० ६३ । ११९-१२०, आदि० ६७ । १००; आदि० ११६ । ९**) । यह अपने भाइयोंके साथ शल्यकी रक्षामें तत्पर था (**भीष्म० ६२ । १७**) । अभिमन्युने इसे बाण मारकर घायल कर दिया था (**भीष्म० ६२ । २८–२९**) । अभिमन्युके साथ इसका युद्ध (**भीष्म० ७३ । २४–२६**) । सात्यकिने इसे बाण मारे थे (**द्रोण० ११६ । ७-८**) । इसका एक नाम सत्यसेन भी है । यह और सुषेण युद्धमें चित्रसेनके साथ खड़े थे । (**कर्ण० ७ । १७**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**कर्ण० ८४ । २–६**) । (२) मित्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम 'सुव्रत' था (**शल्य० ४५ । ४१**) । (३) एक महान् व्रतधारी प्राचीन नरेश । जिन्होंने अपने प्राणोंद्वारा एक ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा की थी और ऐसा करके वे स्वर्गमें गये थे (**शान्ति० २३४ । १६**) ।

सत्यसेन (सत्यसंध या संध)–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (**आदि० ६७ । १००; आदि० ११६ । ९**) (विशेष देखिये–सत्यसंध) । (२) त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जिसका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध हुआ था (**कर्ण० २७ । ३–२२**) । (३) कर्णका पुत्र, जो अपने पिताका चक्ररक्षक था (**कर्ण० ४८ । १८**) ।

सत्या–(१) भगवान् श्रीकृष्णकी एक पटरानी । ये श्रीजीके साथ श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये सभाभवनमें गयी थीं (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२०**) । (२) शंयु नामक अग्निकी पत्नी । जिसके रूप और गुणोंकी कहीं तुलना नहीं थी । इसके गर्भसे एक भरद्वाज नामक पुत्र और तीन कन्याएँ हुई थीं (**वन० २१९ । ४-५**) ।

सत्येयु–पूरुके तीसरे पुत्र । रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न एक महा धनुर्धर पुत्र (**आदि० ९४ । ८–१२**) ।

सत्येषु–(१) त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई (एक संशप्तक योद्धा) । इसका अर्जुनको मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना और अर्जुनके द्वारा इसका वध (**द्रोण० १७ । १७-१८; शल्य० २७ । ४०-४१**) । (२) एक राक्षस, जो प्राचीन कालमें इस पृथ्वीका शासक था; किंतु कालसे पीड़ित हो पृथ्वीको छोड़कर चला गया (**शान्ति० २२७ । ५१**) ।

सत्राजित्–एक प्रमुख यादव । प्रसेनजित्के भाई । सत्राजित और प्रसेनजित्–ये दोनों जुड़वें बन्धु थे । इनके पास स्यमन्तकमणि थी, जिससे प्रचुर मात्रामें सुवर्ण झरता रहता था (**सभा० १४ । ६० के बाद दा० पाठ**) । कृतवर्माने मणिके लोभसे सत्राजित्का वध करवाया था–इसका सात्यकिने श्रीकृष्णको स्मरण दिलाया था (**मौसल० ३ । २३**) । इनकी पुत्रीका नाम सत्यभामा था (**मौसल० ५ । १३**) ।

सदश्व–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १२**) ।

सदःसुवाक् (**सहस्रवाक्**)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १००; आदि० ११६ । ९**) ।

सदस्योर्मि–एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । ११**) ।

सदाकान्ता–एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २५**) ।

सदानीरा–एक पवित्र नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० १० । २७**) । इसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २४**) । (कुछ लोगोंका मत है कि करतोया नदीका ही नाम 'सदानीरा' या 'सदानीरवहा' है । करतोया जलपाईगुड़ीके जंगलोंसे निकलकर रंगपुर होती हुई बोगड़ा जिलेके दक्षिण हलहलिया नदीमें मिलती है । दूसरे मतके अनुसार सरयूकी सहायक नदी 'राप्ती' ही सदानीरा है । ग्रन्थान्तरोंमें इसके अचिरवती तथा इरावती नाम भी मिलते हैं ।)

सनत्कुमार–एक ऋषि, जो भूतलपर प्रद्युम्नके रूपमें अवतीर्ण हुए थे (**आदि० ६७ । १५२**) । इन्होंने

ब्रह्मलोकमें आकर राजा पुरूरवाको समझाया था (आदि० ७५ । २१-२२) । महातपस्वी योगाचार्य भगवान् सनत्कुमार ब्रह्मसभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २३) । कनखलके पास महानदी गङ्गाके तटपर इन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी (वन० १३५ । ५) । इनके द्वारा गौतम और अत्रिके विवादका निर्णय (वन० १८५ । २७-३१) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास उन्हें देखनेके लिये आये थे (शान्ति० ४७ । ८) । विभाण्डक आदि ऋषियोंको इनका उपदेश (शान्ति० २२२ अ० दा० पाठ)। वृत्रासुरको आध्यात्मिक उपदेश (शान्ति० २८० । ७—५६) । इन्होंने गन्धर्वराज विश्वावसुको किसी समय उपदेश किया था (शान्ति० ३१८ । ६१) । इनका ऋषियोंको उपदेश(शान्ति० ३२९ । ५—७) । ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं । इन्हें स्वयं विज्ञान प्राप्त है और ये निवृत्ति-धर्ममें स्थित हैं । ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं (शान्ति० ३४ । ७२—७४) । इन्होंने ब्रह्माजीसे सात्वतधर्मका उपदेश ग्रहण किया और इनसे वीरण प्रजापतिको इस धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ (शान्ति० ३४८ । ४०-४१)। प्रद्युम्न स्वर्गमें जानेपर इन्हींके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये थे (स्वर्गा० ५ । १३) ।

सनत्सुजात (या सनत्कुमार)–एक सनातन ऋषि, जो विदुरजीके स्मरण करनेसे प्रकट हुए थे (उद्योग० ४१ । ८) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको उपदेश (उद्योग० अध्याय ४२ से ४६ तक) ।

सनत्सुजातपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४१ से ४६ तक) ।

सनातन–(१) एक महर्षि, जो राजा युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६) । (२) ब्रह्माजीके एक मानसपुत्र (शान्ति० ३४० । ७२) ।

सनीय–दक्षिण भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

सन्त–वीतहव्यवंशी सत्यके पुत्र । इनके पुत्रका नाम श्रवा था (अनु० ३० । ६२-६३) ।

सन्नतेयु–पूरुके तीसरे पुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न एक महाधनुर्धर पुत्र (आदि० ९४ । ८—११)।

सन्निहती तीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ । जहाँ ब्रह्मा आदि देवता और तपोधन ब्रह्मर्षि प्रतिमास महान् पुण्यसे सम्पन्न होकर जाते हैं । सूर्यग्रहणके समय इसमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । इसमें पृथ्वी और आकाशके सम्पूर्ण तीर्थ अमावास्याको आते हैं । तीर्थसंघातसे युक्त होनेके कारण इसे सन्निहती कहते हैं । यहाँ श्राद्ध करनेकी विशेष महिमा है (वन० ८३ । १९०—१९९) ।

सन्निहित–एक अग्नि, जो देहधारियोंके प्राणोंका आश्रय लेकर उनके शरीरको कार्यमें प्रवृत्त करते हैं । ये मनुके तीसरे पुत्र हैं । इनके द्वारा शब्द और रूपको ग्रहण करनेमें सफलता मिलती है (वन० २२१ । १९) ।

सप्तकृत्–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६) ।

सप्तगङ्ग–एक प्राचीन तीर्थ । इसमें विधिपूर्वक देवता-पितरोंका तर्पण करनेवाला मनुष्य पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । २९) । इस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करने-वाला मनुष्य यदि जन्म लेता है तो अमृतभोजी देवता होता है (अनु० २५ । १६) ।

सप्तगोदावर–शूर्पारक क्षेत्रके समीपवर्ती एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान करके नियमपूर्वक नियमित भोजन करनेवाला पुरुष महान् पुण्य लाभ करता और देवलोकमें जाता है (वन० ८५ । ४४) ।

सप्तचरु–यहाँ सभी देवताओं तथा प्राणियोंने भगवान् केशवको प्रसन्न करनेके लिये ऋग्वेदकी सात-सात ऋचाओंसे सात-सात आहुतियाँ दी थीं, इसीसे इसका नाम सप्तचरु पड़ा । वहाँ अग्निके लिये दिया हुआ चरु एक लाख गोदान, सौ राजसूय यज्ञ और सहस्र अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक कल्याणकारी है (वन० ८२ । ९६—९९) ।

सप्तराव–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११) ।

सप्तर्षिकुण्ड–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत ब्रह्मोदुम्बर तीर्थमें स्थित एक कुण्ड । जिसमें स्नान करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । ७२) ।

सप्तसारस्वत–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ मंकणक मुनिको सिद्धि प्राप्त हुई थी (वन० ८३ । ११५-११६) । यह सरस्वती तीर्थमें सबसे श्रेष्ठ है । यहाँ बलरामजी अपनी तीर्थयात्राके अवसरपर पधारे थे (शल्य० ३७ । ६१) । इस तीर्थकी उत्पत्ति और महिमाका विशेषरूपसे वर्णन (शल्य० ३८ । ३—३२) ।

सभापति–कौरवपक्षका एक राजकुमार, जिसका अर्जुनद्वारा वध हुआ था (कर्ण० ८९ । ६४)

सभापर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

सम–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९६; आदि० ११६ । ९) । इसका भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ६४ । २९) । इसका भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (कर्ण० ५१ । ७—१६) ।

समङ्ग–(१) दुर्योधनका एक ग्वाला, जिसने धृतराष्ट्रको उनकी गौओंके समीप आनेकी सूचना दी थी (**वन० २३९ । २**) । (२) एक दक्षिणभारतका जनपद (**भीष्म० ९ । ६०**) । (३) एक प्राचीन ऋषि । नारदजीके पूछनेपर इनका अपनी शोकरहित स्थितिका वर्णन करना (**शान्ति० २८६ । ५–२१**) ।

समङ्गा–एक नदी, जिसमें पिताकी आज्ञासे स्नान करनेके कारण अष्टावक्रके अङ्ग सीधे हो गये थे। तभीसे यह नदी पुण्यमयी हो गयी । इसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (**वन० १३४ । ३९-४०**) । इसका दूसरा नाम मधुविला भी है (**वन० १३५ । १-२**) ।

समन्तपञ्चक–एक क्षेत्र । यहाँ परशुरामजीने रक्तके पाँच सरोवर बना दिये थे और उन्हींमें रक्ताञ्जलिद्वारा अपने पितरोंका तर्पण किया था (**आदि० २ । ४-५; वन० ११७ । ९-१०**) । परशुरामजीके पितरोंके वरदानसे यह प्रसिद्ध तीर्थ हो गया (**आदि० २ । ८–११**) । द्वापर और कलियुगकी संधिमें कौरवों और पाण्डवोंका महाभारतयुद्ध यहीं हुआ था । इसी कारण, '**समेतानाम् अन्तो यस्मिन् तत् समन्तम्**' इस व्युत्पत्तिके अनुसार इसका नाम समन्तपञ्चक पड़ गया (**आदि० २ । १३–१५**) । बलरामजीकी सलाहसे पाण्डव तथा दुर्योधनका इस क्षेत्रमें युद्धके लिये जाना (**शल्य० ५५ । ५–१८**) । इसी क्षेत्रमें दुर्योधनका निधन (**शल्य० ३९ । ४०**) ।

समन्तर–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५०**) ।

समयपालनपर्व–विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १३**) ।

समरथ–राजा विराटके भाई, जो पाण्डवोंके प्रधान सहायक थे (**द्रोण० १५८ । ४२**) ।

समवेगवश–एक दक्षिणभारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६१**) ।

समसौरभ–एक वेदविद्याके पारङ्गत ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (**आदि० ५३ । ९**) ।

समा–पुष्करद्वीपके आगे बसी हुई लोगोंकी एक चौकोर बस्ती या आबादी, जिसमें तैंतीस मण्डल हैं । यहाँ वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और अञ्जन—ये चार दिग्गज रहते हैं । इनके मुखसे मुक्त होकर बहनेवाली वायुद्वारा वहाँकी प्रजा जीवन धारण करती है (**भीष्म० १२ । ३२–३८**) ।

समितिञ्जय–द्वारकावासी यादवोंके अन्तर्गत सात महारथियोंमेंसे एक (**सभा० १४ । ५८**) ।

समीक–द्वारकावासी यादवोंके अन्तर्गत सात महारथियोंमेंसे एक (**सभा० १४ । ५८**) ।

समीची–एक अप्सरा, जो वर्गाकी सखी थी (**आदि० २१५ । २०**) । ब्राह्मणके शापसे इसका ग्राह-योनिमें जन्म (**आदि० २१५ । २३**) । अर्जुनद्वारा इसका ग्राहयोनिसे उद्धार (**आदि० २१६ । २१**) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० १० । ११**) ।

समुद्रवेग–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६३**) ।

समुद्रसेन–एक क्षत्रियनरेश, जो सातवें कालेयसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे । ये धर्म और अर्थतत्त्वके ज्ञाता थे । समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीपर इनकी ख्याति थी (**आदि० ६७ । ५४**) । भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय चन्द्रसेनसहित इन्हें जीता था (**सभा० ३० । २४**) । ये पराक्रमी थे । पाण्डवोंकी ओरसे पुत्रसहित इन्हें रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । २२**) । इनके द्वारा चित्रसेनके वधकी चर्चा (**कर्ण० ६ । १५-१६**) ।

समुद्रोन्मादन–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६८**) ।

समूह–एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३०**) ।

समृद्ध–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें भस्म हो गया (**आदि० ५७ । १८**) ।

समेडी–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । १३**) ।

सम्पाति–(१) विनतानन्दन अरुणके प्रथम पुत्र । इनकी माताका नाम श्येनी और इनके छोटे भाईका नाम जटायु था (**आदि० ६६ । ७०-७१**) । इन्होंने हनुमान्जी आदि वानरोंको सीताके सम्बन्धमें यह समाचार दिया था कि वे रावणपुरी लङ्कामें विद्यमान हैं (**वन० १४८ । ५**) । इनका आमरण अनशनके लिये बैठकर बातचीतके प्रसङ्गमें जटायुकी चर्चा करनेवाले वानरोंसे जटायुका समाचार पूछना, अपनेको उनका भाई बताना तथा जटायुके साथ सूर्यमण्डलके समीपतक उड़कर जानेसे अपने पङ्खोंके जलने और पर्वतशिखरपर गिरनेका वृत्तान्त सुनाना, फिर वानरोंके मुखसे सीता-हरण एवं जटायु-मरणका समाचार सुनकर भाईके लिये दुखी होना तथा लङ्कामें सीताजीके होनेकी निश्चित सम्भावना बताकर वानरोंको वहाँ जानेके लिये प्रेरित करना (**वन० २८२ । ४६–५७**) । (२) कौरवपक्षीय योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहके हृदय-स्थानमें विशाल सेनाके साथ खड़े थे (**द्रोण० २० । १२**) ।

सम्प्रिया–मधुवंशकी कन्या तथा महाराज विदूरकी पत्नी । इसके गर्भसे अनश्वाका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । ४०**) ।

सम्भल–एक ग्राम, जहाँ युगान्तके समय कालकी प्रेरणासे किसी ब्राह्मणके घरमें भगवान्‌के अवतार विष्णुयशा कल्किका प्रादुर्भाव होगा (**वन० १९० । ९४**) । (कुछ लोगोंकी धारणाके अनुसार मुरादाबाद जिलेका सम्भल नामक कसबा ही वह ग्राम है, जहाँ कल्किका अवतार होगा ।)

सम्भवपर्व–आदिपर्वके एक अवान्तर पर्वका नाम (**अध्याय ६५ से १३९ तक**) ।

सरकतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको भगवान् शङ्करका दर्शन करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता और स्वर्गलोकमें जाता है । वहाँ रुद्रकोटि, कूप और कुण्डोंमें कुल मिलाकर तीन करोड़ तीर्थ हैं । इसके पूर्वभागमें महात्मा नारदका अम्बाजन नामक विख्यात तीर्थ है (**वन० ८३ । ७५–८१**) ।

सरमा–देवलोककी कुतिया, जो सारमेयोंकी जननी थी (**आदि० ३ । १**) । यह पीटे गये पुत्रके दुःखसे दुखी हो सर्पसत्रमें आयी थी (**आदि० ३ । ७**) । इसके द्वारा जनमेजयको शाप (**आदि० ३ । ९**) । देवताओंकी कुतियाके शापसे जनमेजयको बड़ी घबराहट हुई (**आदि० ३ । १०**) । यह ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० ११ । ४०**) । देवताओंकी कुतिया देवजातीय सरमा स्कन्दका एक ग्रह है; अतः यह भी नारियोंके गर्भस्थ बालकोंका अपहरण करती है (**वन० २३० । ३४**) ।

सरयू–(१) हिमालयके स्वर्णशिखरसे निकली हुई गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक । जो इसका जल पीते हैं, उनके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (**आदि० १६९ । २०-२१**) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० ८ । २२**) । इन्द्रप्रस्थसे गिरिव्रजको जाते हुए श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने मार्गमें इसे पार किया था (**सभा० २० । २८**) । गोप्रतार नामक तीर्थ सरयूके ही जलमें है, जहाँ गोता लगाकर भगवान् श्रीरामने दलबलसहित परमधामको प्रस्थान किया था (**वन० ८४ । ७०-७१**) । यह नदी अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है (**वन० २२२ । २२**) । यह उन पवित्र नदियोंमेंसे है, जिनका जल भारतवर्षकी प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । १९**) । वसिष्ठजी कैलासकी ओर जाती हुई गङ्गाको मानसरोवरमें ले आये, वहाँ आते ही गङ्गाजीने उस सरोवरका बाँध तोड़ दिया । गङ्गासे सरोवरका भेदन होनेपर जो स्रोत निकला, वही सरयूके नामसे प्रसिद्ध हुआ (**अनु० १५५ । २३–२४**) । यह सायं-प्रातःस्मरणीय नदियोंमेंसे है (**अनु० १६५ । २१**) । (२) वीर नामक अग्निकी पत्नी, जिससे उन्होंने सिद्धि नामक पुत्रको जन्म दिया था (**वन० २१९ । ११**) ।

सरस्वती–(१) एक देवी, जिनकी प्रत्येक पर्वके आरम्भमें वन्दना की गयी है (**आदि० १ । मङ्गलाचरण**) । ये इन्द्रसभामें विराजमान होती हैं (**सभा० ७ । १९**) । इनके द्वारा तार्क्ष्यमुनिको उनके प्रश्नके अनुसार गोदान, अग्निहोत्र आदि विविध विषयोंका उपदेश किया गया (**वन० १८५ अध्याय**) । ये त्रिपुरदाहके समय शिवजीके रथके आगे बढ़नेका मार्ग थीं (**कर्ण० ३४ । ३४**) । दण्डनीतिस्वरूपा सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्या हैं (**शान्ति० १२१ । २४**) । महर्षि याज्ञवल्क्यके चिन्तन करनेपर स्वर और व्यञ्जन वर्णोंसे विभूषित वाग्देवी सरस्वती ॐकारको आगे करके उनके सामने प्रकट हुई थीं (**शान्ति० ३१८ । १४**) । (२) एक नदी, जिसके तटपर राजा मतिनारने यज्ञ किया था । यज्ञ समाप्त होनेपर नदीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीने उनके पास आकर उन्हें पतिरूपमें वरण किया । मतिनारने इसके गर्भसे तंसु नामक पुत्रको उत्पन्न किया (**आदि० ९५ । २६-२७**) । यह गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक है और प्लक्षकी जड़से प्रकट हुई है । इसका जल पीनेसे सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (**आदि० १६ । १९–२१**) । यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (**सभा० ९ । १९**) । पाण्डवोंका वनयात्राके समय इसे पार करना (**वन० ५ । २**) । श्रीकृष्णद्वारा सरस्वतीतटपर किये गये यज्ञानुष्ठानकी चर्चा (**वन० १२ । १४**) । काम्यकवनका भूभाग सरस्वतीके तटपर है (**वन० ३६ । ४१**)। यह नदी तीर्थस्वरूपा है । उसमें जाकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे यात्री सारस्वत लोकोंमें जाता और आनन्दका भागी होता है (**वन० ८४ । ६६**) । तीर्थोंकी पंक्तिसे सुशोभित यह नदी बड़ी पुण्यदायिनी है (**वन० ९० । ३**) । दधीचका आश्रम सरस्वती नदीके उस पार था (**वन० १०० । १३**) । लोमशद्वारा इसके माहात्म्यका वर्णन (**वन० १२९ । २०-२१**) । यह विनशनतीर्थमें लुप्त होकर चमसोद्भेदमें पुनः प्रकट हुई (**वन० १३० । ३–५**) । अग्निकी उत्पत्तिकी स्थानभूता नदियोंमें इसकी गणना है (**वन० २२२ । २२**) । ये गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक हैं (**भीष्म० ६ । ४८**) । सरस्वती उन पवित्र नदियोंमें है, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । १४**) । सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंकी महिमाका विशेष वर्णन (**शल्य० अध्याय ३५ से ५४ तक**) । यह ब्रह्मसरसे प्रकट हुई है । इसके द्वारा वसिष्ठका बहाया जाना (**शल्य० ४२ । २९**) ।

विश्वामित्रद्वारा इसे शापकी प्राप्ति (**शल्य० ४२ । ३८-३९**) । ऋषियोंके प्रयत्नसे शाप-मुक्ति (**शल्य० ४३ । १६**) । महर्षि दधीचके वीर्यको धारण करके पुत्र पैदा होनेपर उन्हें सौंपना (**शल्य० ५१ । १३-१४**) । महर्षिद्वारा इसे वरदान-प्राप्ति (**शल्य० ५१ । १७–२४**) । बलराम-जीद्वारा इसकी महिमाका वर्णन (**शल्य० ५४ । ३८-३९**) । अर्जुनने सात्यकिके पुत्रको इसके तटवर्ती प्रदेश-का अधिकारी बनाया (**मौसल० ८ । ७१**) । श्रीकृष्णकी सोलह हजार पत्नियोंने सरस्वती नदीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये (**स्वर्गा० ५ । २५**) । (३) मनुकी पत्नीका नाम (**उद्योग० ११७ । १४**) ।

सरस्वती-अरुणा-सङ्गम—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक लोकविख्यात पवित्र तीर्थ, जहाँ स्नान करके तीन रात उपवास करनेपर ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है । वह अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंसे मिलनेवाले फलको भी पा लेता और अपने कुलकी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है (**वन० ८३ । १५१–१५३**) ।

सरस्वतीसङ्गम—एक परम पुण्यमय लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन महर्षि भगवान् केशवकी उपासना करते हैं । वहाँ चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको विशेष यात्रा होती है । वहाँ स्नानसे प्रचुर सुवर्णकी प्राप्ति होती है और पापरहित शुद्धचित्त हुआ मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है (**वन० ८२ । १२५–१२७**) ।

सरस्वती-सागरसङ्गम—पश्चिम समुद्रके तटपर जहाँ सरस्वती और समुद्रका संगम हुआ है, वह तीर्थ; वहाँ जाकर स्नान करके देवेश्वर महादेवजीकी आराधना करनेसे चन्द्रमाको अपनी खोयी हुई कान्ति पुनः प्राप्त हुई थी (**शल्य० ३५ । ७७**) । (यहीं सोमनाथ एवं प्रभास- ।)

सरिद्द्वीप—गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । ११**) ।

सर्प—ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र (**आदि० ६६ । २**) ।

सर्पदेवी—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ जाकर उत्तम नागतीर्थका सेवन करनेसे मनुष्य अग्निष्टोमका फल पाता और नागलोकमें जाता है (**वन० ८३ । १४-१५**) ।

सर्पमाली— एक दिव्य महर्षि, जो हस्तिनापुर जाते समय श्रीकृष्णसे मार्गमें मिले थे (**उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) ।

सर्पान्त—गरुड़की प्रमुख संतानोंकी परम्परामें उत्पन्न एक पक्षी (**उद्योग० १०१ । १२**) ।

सर्पिर्माली—एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । १०**) ।

सर्व—भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम और उसकी निरुक्ति (**उद्योग० ७० । १२**) ।

सर्वकर्मा—सौदासका एक पुत्र, जो परशुरामजीद्वारा किये गये क्षत्रिय संहारके समय पराशरमुनिद्वारा रक्षित हुआ था । पृथ्वी-द्वारा कश्यपजीको इसका पता दिया गया (**शान्ति० ४९ । ७६-७७**) ।

सर्वकामदुघा—सुरभिकी धेनुस्वरूपा कन्या, जो उत्तरको धारण करनेवाली है (**उद्योग० १०२ । १०**) ।

सर्वग—भीमसेनके द्वारा बलन्धराके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र (**आदि० ९५ । ७७**) ।

सर्वतोभद्र—जलेश्वर वरुण देवताका समृद्धिशाली निवास-स्थान (**उद्योग० ९८ । १०**) ।

सर्वदमन—शकुन्तलाका वीर पुत्र भरत (**आदि० ७४ । ८**) । (विशेष देखिये—भरत)

सर्वदेवतीर्थ—कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे मानव सहस्र गोदानका फल पाता है (**वन० ८३ । ८८-८९**) ।

सर्वदेवह्रद—एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदान-का फल मिलता है (**वन० ८५ । ३९**) ।

सर्वपापप्रमोचन कूप—समस्त पापोंको दूर करनेवाला एक कूप, जो नारायणस्थानमें है । उसमें सदा चारों समुद्र निवास करते हैं । उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता (**वन० ८४ । १२६-१२७**) ।

सर्वर्तुक—रैवतक पर्वतके समीप शोभा पानेवाला एक वन (**सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८१३**) ।

सर्वसारङ्ग—धृतराष्ट्र-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय-के सर्पसत्रमें जल मरा था (**आदि० ५७ । १८**) ।

सर्वसेन—काशीके एक राजा, जिनकी पुत्री सुनन्दाके साथ सम्राट् भरतने विवाह किया था । सुनन्दाके गर्भसे जो इनका दौहित्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम भुमन्यु था (**आदि० ९५ । ३२**) ।

सर्वा—एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । ३६**) ।

सलिलह्रद—एक तीर्थ, जिसमें ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक गोता लगाने-से अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है (**अनु० २५ । १४**) ।

सवन—महर्षि भृगुके सात पुत्रोंमेंसे एक (इनकी 'वारुण' संज्ञा है ।) (**अनु० ८५ । १२९**) ।

सविता—बारह आदित्योंमेंसे एक। इनकी माता अदिति और पिता कश्यप हैं (**आदि० ६५। १५**)।

सव्यसाची—अर्जुनका एक नाम और इसकी निरुक्ति (**विराट० ४४। १९**)।

सह—(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ११६। २**)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५। १**)। इसके द्वारा भीमसेनपर आक्रमण (**कर्ण० ५१। ८**)। (२) एक प्रभावशाली अग्नि, जो समुद्रमें छिप गये थे (**वन० २२२। ७**)। देवताओंके खोज करनेपर इनका अथर्वाको अग्निके पदपर प्रतिष्ठित करके अन्यत्र गमन (**वन० २२२। ८—१०**)। इनके द्वारा मछलियोंको शाप और अपने शरीरका त्याग (**वन० २२२। १०—१२**)। इनके शरीरके अवयवोंसे विविध धातुओंकी उत्पत्ति (**वन० २२२। १४—१६**)। समुद्रमें छिपे हुए इनका अग्निद्वारा पुनः प्राकट्य (**वन० २२२। २०**)।

सहज—चेदि तथा मत्स्यदेशका एक कुलाङ्गार नरेश (**उद्योग० ७४। १६**)।

सहजन्या—छः श्रेष्ठ अप्सराओंमेंसे एक (**आदि० ७४। ६८**)। यह दस विख्यात अप्सराओंमेंसे एक है। इसने अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें पधारकर वहाँ गान किया था (**आदि० १२२। ६४**)। यह कुबेरकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होती है (**सभा० १०। ११**)। इसने अर्जुनके स्वागतार्थ इन्द्र-भवनकी सभामें नृत्य किया था (**वन० ४३। ३०**)।

सहदेव—(१) पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र, अश्विनीकुमारोंके द्वारा माद्रीके गर्भसे उत्पन्न दो पुत्रोंमेंसे एक। ये दोनों भाई जुड़वें उत्पन्न हुए थे। दोनों ही सुन्दर तथा गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले थे। (**आदि० १। ११४; आदि० ६३। ११७; आदि० ९५। ६३**)। अनुपम रूपशाली तथा परम मनोहर नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७। १११-११२**)। इनकी उत्पत्ति तथा शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनका नामकरणसंस्कार (**आदि० १२३। १७—२१**)। वसुदेवके पुरोहित काश्यपद्वारा इनके उपनयन आदि संस्कार तथा राजर्षि शुकद्वारा इनका अस्त्रविद्याका अध्ययन और ढाल-तलवार चलानेकी कलामें निपुणता प्राप्त करना (**आदि० १२३। ३१ के बाद दा० पाठ**)। पाण्डुकी मृत्युके पश्चात् माद्रीका अपने पुत्रों (नकुल-सहदेव) को कुन्तीके हाथोंमें सौंपकर पतिके साथ चितापर आरूढ़ होना (**आदि० १२४ अध्याय**)। शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंका सहदेव आदि पाँचों पाण्डवोंको कुन्तीसहित हस्तिनापुर ले जाना और उन्हें भीष्म आदिके हाथोंमें सौंपना। द्रोणाचार्यका पाण्डवोंको नाना प्रकारके दिव्य एवं मानव अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा देना (**आदि० १३१। ९**)। द्रुपदपर आक्रमण करते समय अर्जुनका माद्रीकुमार नकुल और सहदेवको अपना चक्ररक्षक बनाना (**आदि० १३७। २७**)। द्रोणद्वारा सुशिक्षित किये गये सहदेव अपने भाइयोंके अधीन (अनुकूल) रहते थे (**आदि० १३८। १८**)। धृतराष्ट्रके आदेशसे कुन्तीसहित पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा, वहाँ उनका स्वागत और लाक्षागृहमें निवास (**आदि० अध्याय १४२ से १४५ तक**)। लाक्षागृहका दाह और पाण्डवोंका सुरंगके रास्ते निकलना, भीमसेनका नकुल-सहदेवको गोदमें लेकर चलना (**आदि० १४७ अध्याय**)। पाण्डवोंको व्यासजीका दर्शन और उनका एकचक्रानगरीमें प्रवेश (**आदि० १५५ अध्याय**)। पाण्डवोंकी पाञ्चाल-यात्रा (**आदि० १६९ अध्याय**)। इनका द्रुपदकी राजधानीमें जाकर कुम्हारके यहाँ रहना (**आदि० १८४ अध्याय**)। पाँचों पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ विवाहका विचार (**आदि० १९० अध्याय**)। पाँचों पाण्डवोंका कुन्तीसहित द्रुपदके घरमें जाकर सम्मानित होना (**आदि० १९३ अध्याय**)। द्रौपदीके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (**आदि० १९७। १३**)। विदुरके साथ पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आना और आधा राज्य पाकर **'इन्द्रप्रस्थ'** नगरका निर्माण करना। पाँचों भाइयोंका द्रौपदीके विषयमें नियम-निर्धारण (**आदि० २११ अध्याय**)। सहदेवद्वारा द्रौपदीके गर्भसे श्रुतसेन (श्रुतकर्मा) का जन्म (**आदि० २२०। ८०; आदि० ९५। ७५**)। इनका मद्रराज द्युतिमान्‌की पुत्री विजयासे विवाह तथा इनके द्वारा उसके गर्भसे सुहोत्रका जन्म (**आदि० ९५। ८०**)। इनके द्वारा दक्षिण दिशाके नरेशोंपर विजय (**सभा० ३१ अध्याय**)। इनके द्वारा मत्स्यनरेश विराट्‌की पराजय (**सभा० ३१। २**)। दन्तवक्त्रकी पराजय (**सभा० ३१। ३**)। माहिष्मतीनरेश नीलके साथ इनका घोर युद्ध (**सभा० ३१। २१**)। इनके द्वारा अग्निकी स्तुति (**सभा० ३१। ४१**)। अग्निकी कृपासे इनको राजा नीलद्वारा करकी प्राप्ति (**सभा० ३१। ५९**)। लङ्कासे कर लानेके लिये इनका घटोत्कचको दूत बनाकर राक्षसराज विभीषणके पास भेजना। घटोत्कचसे विभीषणकी बातचीत। विभीषणका बहुत-से सुवर्ण, मणि, रत्न आदि उपहार देकर दूतको विदा करना। उन भेंट-सामग्रियोंको पहुँचानेके लिये अठासी हजार राक्षस आये थे (**सभा० ३१। ७२ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७५९ से ७६४ तक**)। अन्य मन्त्रियोंसहित सहदेवको यज्ञका आवश्यक उपकरण

एवं खाद्यान्न जुटानेके लिये राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा (**सभा० ३३ । २७–३१**) । राजसूययज्ञके समय ये युधिष्ठिरके मन्त्री थे (**सभा० ३३ । ४०**) । इनके द्वारा राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णकी अग्रपूजा (**सभा० ३६ । ३०**) । श्रीकृष्णकी अग्रपूजाके अवसरपर इनकी विरोधी राजाओंको चुनौती (**सभा० ३९ । १–५**) । राजसूय-यज्ञके बाद ये आचार्य द्रोण और अश्वत्थामाको पहुँचानेके लिये उनके साथ गये थे (**सभा० ४५ । ४८**) । युधिष्ठिरके द्वारा ये जुएके दाँवपर रखे और हारे गये थे (**सभा० ६५ । १५**) । इनकी शकुनिको मारनेकी प्रतिज्ञा (**सभा० ७७ । २९–४२**) । इस दुर्दिनमें कोई मुझे पहचान न ले—यही सोचकर सहदेव अपने मुँहमें मिट्टी लपेटकर वनकी ओर गये थे (**सभा० ८० । १७**) । इनकी अर्जुनके लिये चिन्ता (**वन० ८० । २७–३०**) । इनका जटासुरकी पकड़से छूटकर भीमसेनको पुकारना (**वन० १५७ । ११**) । इनका शिष्योंसहित दुर्वासाको बुलानेके लिये नदीतटपर जाना और खोजना (**वन० २६३ । ३७-३८**) । द्रौपदीद्वारा जयद्रथसे इनके पराक्रम और ज्ञान आदि सद्गुणोंका वर्णन (**वन० २७० । १५–१९**) । द्रौपदी-हरणके समय अपने घोड़ोंके मारे जानेपर युधिष्ठिरका सहदेवके रथपर आना तथा धौम्य एवं द्रौपदीको भी सहदेवद्वारा उसी रथपर चढ़वाना (**वन० २७१ । १५–३४**) । द्वैतवनमें जल लानेके लिये जाना और सरोवरपर गिरना (**वन० ३१२ । १९**) । इनका विराटनगरमें तन्तिपाल नामसे रहनेकी बात बताना (**विराट० ३ । ९**) । राजा विराटके यहाँ अरिष्टनेमि नामक वैश्यके रूपमें अपना परिचय देकर उनसे अपनेको रखनेके लिये प्रार्थना करना और उनके द्वारा गोशालाध्यक्षके पदपर नियुक्त होना (**विराट० १० । ५–१६**) । ये ग्वालेका वेष धारण करके पाण्डवोंको दूध, दही, घी दिया करते थे (**विराट० १३ । ९**) । द्रौपदीका भीमसेनसे सहदेवकी वर्तमान दुःखमयी परिस्थिति बताकर उनके लिये शोक प्रकट करना (**विराट० १९ । ३३–४१**) । विराटकी गौओंके अपहरणके समय इनका त्रिगर्तोंके साथ युद्ध (**विराट० ३३ । ३४**) । संजयद्वारा धृतराष्ट्रसे इनकी वीरताका वर्णन (**उद्योग० ५० । ३१–३३**) । शान्ति-दूत बनकर जानेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णसे युद्धकी ही योजना बनानेकी सम्मति देना (**उद्योग० ८१ । १–४**) । इनका विराटको सेनापति बनानेका प्रस्ताव (**उद्योग० १५१ । १०**) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देते हुए पुत्रसहित शकुनिको मार डालनेकी घोषणा करना (**उद्योग० १६२ । ३१–३६**) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर देना (**उद्योग० १६३ । ३९-४०**) । कवच उतारकर पैदल ही कौरवसेनाकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरसे प्रश्न करना (**भीष्म० ४३ । १९**) । प्रथम दिनके संग्राममें दुर्मुखके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ४५ । २५–२७**) । विकर्णके साथ युद्ध (**भीष्म० ७१ । २१**) । इनके द्वारा शल्यकी पराजय (**भीष्म० ८३ । ५३**) । कौरवोंकी अश्वसेनाका संहार (**भीष्म० ८९ । ३२–३४**) । इनके द्वारा घुड़सवारोंकी सेनाका संहार एवं पलायन (**भीष्म० १०५ । १६–२३**) । इनका कृपाचार्यके साथ द्वन्द्व-युद्ध (**भीष्म० ११० । १२-१३; भीष्म० १११ । २८–३३**) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**द्रोण० १० । ३१-३२**) । शकुनिके साथ इनका युद्ध (**द्रोण० १४ । २२–२५**) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । ९**) । शकुनिके साथ युद्ध (**द्रोण० ९६ । २१–२५**) । दुर्मुखके साथ युद्ध (**द्रोण० १०६ । १३**) । इनके द्वारा दुर्मुखकी पराजय (**द्रोण० १०७ । २१–२४**) । त्रिगर्त-राजकुमार निरमित्रका वध (**द्रोण० १०७ । २५–२६**) । कर्णके साथ युद्धमें इनकी पराजय (**द्रोण० १६७ । १५**) । दुःशासनके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (**द्रोण० १८८ । २–९**) । इनका धृष्टद्युम्नकी रक्षामें जाना (**द्रोण० १८९ । ७**) । धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये झपटते हुए सात्यकिको अनुनय-विनयसे शान्त करना (**द्रोण० १९८ । ५३–५९**) । इनके द्वारा पुण्ड्रराजकी पराजय (**कर्ण० २२ । १४-१५**) । दुःशासनकी पराजय (**कर्ण० २३ अध्याय**) । दुर्योधनके साथ युद्धमें इनका घायल होना (**कर्ण० ५६ । ७–१८**) । इनके द्वारा उलूककी पराजय (**कर्ण० ६१ । ४४**) । कर्णद्वारा इनकी पराजय (**कर्ण० ६३ । ३३**) । इनके द्वारा शल्यके पुत्रका वध (**शल्य० ११ । ४३**) । शल्यके साथ युद्ध (**शल्य० १३ अध्याय; शल्य० १५ अध्याय**) । इनके द्वारा शकुनिपुत्र उलूकका वध (**शल्य० २८ । ३२–३३**) । इनके द्वारा शकुनिका वध (**शल्य० २८ । ४६–६१**) । युधिष्ठिरको ममता और आसक्तिसे रहित होकर राज्य करनेकी सलाह देना (**शान्ति० १३ अध्याय**) युधिष्ठिरद्वारा इन्हें सभी अवस्थाओंमें अपनी रक्षाका कार्य सौंपना (**शान्ति० ४१ । १५**) । युधिष्ठिरद्वारा इनके लिये दिये गये दुर्मुखके महलमें इनका प्रवेश (**शान्ति० ४४ । १२-१३**) । युधिष्ठिरके पूछनेपर इनका त्रिवर्गमें अर्थकी प्रधानता बताना (**शान्ति० १६७ । २२–२७**) । इनके द्वारा शकुनिके मारे जानेकी श्रीकृष्णद्वारा चर्चा (**आश्व० ६० । २५**) । अभिमन्युके बालककी रक्षासे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके भी जीवनकी रक्षा होगी—ऐसा कुन्तीका श्रीकृष्णके प्रति कथन (**आश्व०

६६ । १९) । अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर व्यासजी और युधिष्ठिरके द्वारा इन्हें कुटुम्ब-पालन-सम्बन्धी समस्त कार्यों-की देखभालका काम सौंपा जाना । (आश्व० ७२ । २०–२६) । वनको जाती हुई कुन्तीका इन्हें युधिष्ठिरको सौंपना और इनपर सदा प्रसन्न रहनेके लिये आदेश देना (आश्रम० १६ । १०) । नकुल और सहदेव गुरुजनोंकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेवाले थे, इन्हें भूखका कष्ट न उठाना पड़े, इसके लिये कुन्तीने युधिष्ठिरको युद्धके निमित्त उत्साह दिलाया था (आश्रम० १७ । ८) । माताके दर्शनके लिये युधिष्ठिरके वन-गमन-विषयक विचारको जानकर इनका हर्ष प्रकट करना और स्वयं भी उनके साथ जानेकी उत्सुकता दिखाना (आश्रम० २२ । ९–१३) । वनमें माताको दूरसे ही देखकर इनका दौड़ना और पास पहुँचकर उनके दोनों चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोना, नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई कुन्तीका भी इन्हें हाथोंसे उठाकर छातीसे लगा लेना और गान्धारीको इनके आगमनकी सूचना देना (आश्रम० २४ । ८–१०) । संजयका ऋषियोंसे सहदेव तथा इनकी पत्नीका परिचय देना (आश्रम० २५ । ८–१३) । इनका अपने नेत्रोंमें आँसू भर-कर युधिष्ठिरके समक्ष वनमें रहनेकी इच्छा प्रकट करना, माताको छोड़कर घर जानेसे अरुचि दिखाना और माता-पिताकी सेवा करते हुए तपस्यासे शरीरको सुखा डालनेका विचार व्यक्त करना । इनकी बात सुनकर कुन्तीका इन्हें छातीसे लगा लेना और अपनी बात माननेके लिये कहकर घर जानेकी आज्ञा देना (आश्रम० ३६ । ३६–४३) । माद्रीकुमार सहदेव भी जो माता कुन्तीको विशेष प्रिय रहे हैं, उन्हें आगमें जलनेसे बचा न सके —ऐसा कहकर युधिष्ठिरका विलाप (आश्रम० ३८ । १८-१९) । युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी—ये छः व्यक्ति एक ही हृदय रखते थे (मौसल० १७ । ३) । इनका युधिष्ठिरके महा-प्रस्थानविषयक निश्चयका अनुमोदन (महाप्र० १ । ५) । इनकी भाइयोंके साथ महाप्रस्थान-यात्रा (महाप्र० १ । २२–२५) । उस यात्रामें ये नकुलके पीछे और द्रौपदीके आगे चलते थे (महाप्र० १ । ३१-३२) । महागिरि मेरुके पास द्रौपदीके पतनके पश्चात् मार्गमें सहदेवका भी धराशायी होना और भीमसेनके पूछनेपर युधिष्ठिरका इनके पतनका कारण बताना (महाप्र० २ । २–११) ।

महाभारतमें आये हुए सहदेवके नाम—आश्विनेय, अश्विनीसुत, अश्विसुत, भरतशार्दूल, भरतश्रेष्ठ, भरतर्षभ, भरतसत्तम, कौरव्य, कुरुनन्दन, माद्रीपुत्र, माद्रवतीसुत, माद्रेय, माद्रीनन्दन, माद्रीनन्दनक, माद्रीनन्दकर, माद्रीतनुज, नकुलानुज, पाण्डव, पाण्डुनन्दन, पाण्डुपुत्र, पाण्डुसुत, तन्तिपाल, यम, यमज, माद्रीसुत आदि । (२) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते थे (सभा० ७ । १६) । (३) एक प्राचीन राजा, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १७) । आचार्य नीलकण्ठके मतानुसार ये सुप्रसिद्ध राजा सृञ्जयके पुत्र थे । इन्होंने यमुनाके अग्निशिर नामक तीर्थमें एक लाख स्वर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणा देकर विशाल यज्ञका अनुष्ठान किया था (वन० ९० । ५–७) । (४) जरासंधका पुत्र । इसके दो छोटी बहिनें थीं, जो कंसको ब्याही गयी थीं । उनके नाम थे—अस्ति और प्राप्ति (सभा० १४ । ३१) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । ८) । जरासंधका इसके राज्याभिषेककी आज्ञा देना (सभा० २२ । ३१) । पिताके मारे जानेपर इसका भेंट लेकर भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाना । श्रीकृष्णका इसे अभयदान देकर पिताके राज्यपर अभिषिक्त करना और इसको अपना अभिन्न सुहृद् बना लेना । भीम और अर्जुनद्वारा भी इसका सत्कार होना (सभा० २४ । ४२-४३ दाक्षिणात्य पाठसहित) । एक अक्षौहिणी सेनाके साथ इसका युधिष्ठिरकी सहायताके लिये आना (उद्योग० १९ । ८) । संजयद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (उद्योग० ५० । ४८) । युधिष्ठिरकी सेनाके सात सेनापतियोंमेंसे एक मगधराज सहदेव भी था, जिसका युधिष्ठिरने उक्त पदपर अभिषेक किया था (उद्योग० १५७ । ११–१४) । इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४८) । द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १२५ । ४५) ।

महाभारतमें आये हुए सहदेवके नाम—जरासंधसुत, जरासंधात्मज, जारसंधि और मागध ।

सहभोजन—गरुडकी प्रमुख संतानोंकी परम्परामें उत्पन्न एक पक्षी (उद्योग० १०१ । १२) ।

सहस्रचित्य—एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने एक ब्राह्मणके लिये अपने प्राणोंका बलिदान करके स्वर्ग प्राप्त किया था (अनु० १३७ । २०) । ये तेजस्वी नरेश केकयदेशकी प्रजाका पालन करते थे तथा राजर्षि शतयूपके पितामह थे । ये अपने परम धर्मात्मा ज्येष्ठ पुत्रको राज्यका भार सौंपकर वनमें तपस्याके लिये चले गये और अपनी उद्दीप्त तपस्या पूरी करके इन्द्रलोकको प्राप्त हुए । तपस्यासे इनके सारे पाप भस्म हो गये थे (आश्रम० २० । ६–९) ।

सहस्राजित्—एक महायशस्वी राजर्षि, जिन्होंने ब्राह्मणके लिये अपने प्यारे प्राणोंका त्याग करके उत्तम लोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४ । ३१) ।

सहस्रज्योति—सुभ्राट्के तीन पुत्रोंमेंसे एक। इनके दस लाख पुत्र थे (**आदि० १ । ४६**)।

सहस्रपाद्—एक प्राचीन ऋषि, जो शापवश डुण्डुभ नामक सर्प हो गये थे। इनका रुरुसे अपना परिचय देना (**आदि० १० । ७**)। इनकी आत्मकथा तथा इनके द्वारा रुरुको अहिंसाका उपदेश (**आदि० ११ अध्याय**)। रुरुद्वारा सर्पसत्रके विषयमें जिज्ञासा करनेपर 'तुम ब्राह्मणोंके मुखसे आस्तीकका चरित्र सुनोगे।' ऐसा रुरुसे कहकर इनका अन्तर्धान होना (**आदि० १२ । ३**)। ये युधिष्ठिरका विशेष सम्मान करते थे (**वन० २६ । २२**)।

सहस्रबाहु—स्कन्धका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५९**)।

सहस्रवाक् (सदःसुवाक्)—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १००; आदि० ११६ । ९**)।

सहा—एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके स्वागतमें इन्द्रभवनमें नृत्य किया था (**वन० ४३ । ३०**)।

सहोढ—एक प्रकारके पुत्र, जो अबन्धुदायाद कहलाते हैं (**आदि० ११९ । ३४**)। (जो कन्यावस्थामें ही गर्भवती होकर ब्याही गयी हो, उसके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र सहोढ कहलाता है।)

सह्य—लवणसमुद्र-तटवर्ती एक पर्वत, जो सीताकी खोजमें गये हुए हनुमान् आदि वानरोंके मार्गमें दिखायी दिया था (**वन० २८२ । ४३**)। इस पर्वतपर देवराज नहुषने अप्सराओं तथा देवकन्याओंके साथ विहार किया था (**उद्योग० ११ । १२-१३**)। यह भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमें है (**भीष्म० ९ । ११**)।

सांयमनि—सोमदत्तपुत्र शलका नामान्तर (**भीष्म० ६१ । ११**)।

सागरक—'सागर' जनपदके निवासी क्षत्रिय नरेश, जो युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भेंट लेकर आये थे (**सभा० ५२ । १८**)।

सागरोदक—समुद्रका तीर्थस्वरूप जल, जिसमें स्नान करके मनुष्य विमानपर बैठकर स्वर्गमें जाता है (**अनु० २५ । ९**)।

साङ्काश्य—एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १०**)।

साङ्कृति—(१) एक राजा, जो यमसभामें रहकर सूर्य-पुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १०**)। (२) अत्रिवंशमें उत्पन्न एक ऋषि, जिन्होंने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देकर उत्तम लोकोंको प्राप्त किया था (**शान्ति० २३४ । २२**)। ये वानप्रस्थ धर्मका पालन एवं प्रसार करके स्वर्गको प्राप्त हुए (**शान्ति० २४४ । १७**)।

सात्यकि—वृष्णिवंशी शिनिकुमार सत्यकके पुत्र (**आदि० ६३ । १०५**)। ये वृष्णिकुलभूषण, सत्यप्रतिज्ञ और शत्रुमर्दन वीर थे तथा मरुत् देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६७ । ७९**)। ये द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (**आदि० १८५ । १८**)। अर्जुन और सुभद्राके लिये दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थमें आये थे (**आदि० २२० । ३१**)। सात्यकिका मुख्य नाम युयुधान था। ये युधिष्ठिरकी सभामें बैठते थे और इन्होंने वहीं अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी (**सभा० ४ । ३४-३६**)। वृष्णिवंशी यादवोंके सात अतिरथी वीरोंमें इनकी गणना की गयी है (**सभा० १४ । ५७-५८**)। युधिष्ठिरके अभिषेकके समय इन्होंने उनके ऊपर छत्र लगा रखा था (**सभा० ५३ । १३**)। प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंका दुःख देखकर इनके शौर्यपूर्ण उद्गार (**वन० १२० । १-२२**)। ये उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुए थे (**विराट० ७२ । २१**)। बलरामजीके कथनकी आलोचना करते हुए इनके वीरोचित उद्गार (**उद्योग० ३ अध्याय**)। इनका विशाल चतुरङ्गिणी सेनाके साथ युधिष्ठिरके पास आना (**उद्योग० १९ । १**)। संजयद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**उद्योग० ५० । ३९**)। शान्तिदूत बनकर कौरवोंके यहाँ जानेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णसे इनका युद्धके लिये ही अपनी सम्मति प्रकट करना (**उद्योग० ८१ । ५-७**)। श्रीकृष्णका सात्यकिको अपने रथपर अस्त्र-शस्त्र आदि रखनेको कहना तथा इन्हें रथपर बिठाकर साथ ले जाना (**उद्योग० ८३ । १२-२२**)। दुर्योधनके षड्यन्त्रका भंडाफोड़ करना (**उद्योग० १३० । १४-१७**)। प्रथम दिनके संग्राममें कृतवर्माके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । १२-१३**)। कलिङ्गसेनाको परास्त करनेके बाद भीमसेनका अभिनन्दन करना (**भीष्म० ५४ । १२१-१२२**)। भीष्मके बाणोंसे आच्छादित हुए अर्जुनकी सहायतामें पहुँचना (**भीष्म० ५९ । ७८**)। भूरिश्रवाके साथ इनका युद्ध (**भीष्म० ६४ । १-२**)। भीष्मद्वारा सारथिके मारे जानेपर इनके घोड़ोंका रथ लेकर भागना (**भीष्म० ७३ । २८-२९**)। भूरिश्रवाके साथ इनका युद्ध और उसके द्वारा इनके दस पुत्रोंका वध (**भीष्म० ७४ । १-२७**)। इनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय (**भीष्म० ८२ । ४५**)। अश्वत्थामाको मूर्छित कर देना (**भीष्म० १०१ । ४७**)। भीष्मके साथ इनका युद्ध (**भीष्म० १०४ । २९-३६**)। दुर्योधनके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११० । १४; भीष्म० १११ । १४-१८**)। अलम्बुषके साथ युद्ध (**भीष्म० १११ । १-६**)। इनका भगदत्तके साथ युद्ध (**भीष्म० १११ । ७-१३**)। अश्वत्थामाके साथ द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११६ । ९-१२**)। धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (**द्रोण० १० । ३३-३९**)। कृतवर्माके साथ युद्ध (**द्रोण०**

वीरवर सात्यकि

१४ । ३५-३६; द्रोण० २५ । ८-९) । क्षेमधूर्ति और बृहन्तके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४७-४८) । भगदत्त-के हाथीद्वारा इनके रथका फेंका जाना (द्रोण० २६ । ४३-४४) । कर्णके साथ युद्ध (द्रोण० ३२ । ६७–७०) । श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ इनकी रणयात्रा (द्रोण० ८४ । २१) । अर्जुनके आदेशसे युधिष्ठिरकी रक्षामें जाना (द्रोण० ८४ । ३५) । दुःशासनके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । १४–१७) । इनके द्वारा द्रोणाचार्यके प्रहारसे धृष्टद्युम्नकी रक्षा (द्रोण० ९७ । ३२) । द्रोणाचार्यके साथ अद्भुत संग्राम और उनके लगातार सौ धनुषोंको काटना (द्रोण० ९८ अध्याय) । इनका व्याघ्रदत्तके साथ युद्ध (द्रोण० १०६ । १४) । इनके द्वारा व्याघ्रदत्तका वध (द्रोण० १०७ । ३२) । द्रोणाचार्यद्वारा इनका घायल होना (द्रोण० ११० । २–१३) । युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुन-की सहायताके लिये जानेका आदेश मिलनेपर उनको उत्तर देना (द्रोण० १११ । ३–३९) । अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और प्रस्थान (द्रोण० ११२ । ४–५३) । भीमसेनको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटाना (द्रोण० ११२ । ७१–७६) । इनके द्वारा कौरवसेनाका संहार (द्रोण० ११३ । ६–२०) । द्रोणाचार्यसे युद्ध करके उन्हें छोड़कर आगे बढ़ना (द्रोण० ११३ । २१–३४) । कृतवर्माके साथ युद्ध और उसे घायल करके आगे बढ़ना (द्रोण० ११३ । ४६–६०) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (द्रोण० ११५ । १०-११) । जलसंधका वध (द्रोण० ११५ । ५२-५३) । दुर्योधनकी पराजय (द्रोण० ११६ । २४-२५) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (द्रोण० ११६ । ४१) । द्रोणाचार्यकी पराजय (द्रोण० ११७ । ३०) । सुदर्शनका वध (द्रोण० ११८ । १५) । सारथिके साथ संवाद और कौरवसेनाको खदेड़ना (द्रोण० ११९ अध्याय) । भाइयोंसहित दुर्योधनको परास्त करना (द्रोण० १२० । ४२–४४) । इनके द्वारा म्लेच्छसेनासहित दुःशासनकी पराजय (द्रोण० १२१ । २९–४६) । दुःशासनकी पराजय (द्रोण० १२३ । ३१–३४) । राजा अलम्बुषका वध (द्रोण० १४० । १८) । अद्भुत पराक्रम प्रकट करते हुए अर्जुनके पास इनका पहुँचना (द्रोण० १४१ । ११) । भूरिश्रवाके साथ युद्धमें पराजित होकर उसके द्वारा इनकी चुटिया-का पकड़ा जाना (द्रोण० १४२ । ५१–६३) । इनके द्वारा आमरण अनशन करके बैठे हुए भूरिश्रवाका वध (द्रोण० १४३ । ५४) । इनका कौरवोंको उनके आक्षेपका उत्तर देना (द्रोण० १४३ । ६०–६८) । कर्णके साथ युद्धमें उसे पराजित करना (द्रोण० १४७ । ६४-६५) । इनका सोमदत्तके साथ युद्ध और सोमदत्त की पराजय (द्रोण० १५६ । २९; द्रोण० १५७ । १०-११) । इनके द्वारा सोमदत्तका वध (द्रोण० १६२ । ३३) । भूरिका वध (द्रोण० १६६ । १२) । कर्ण और वृषसेनके साथ युद्ध और वृषसेनको परास्त करना (द्रोण० १७० । ३०–४३) । इनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय (द्रोण० १७१ । २३) । श्रीकृष्ण-से कर्णके अर्जुनपर शक्ति न छोड़नेका कारण पूछना (द्रोण० १८२ । ३४) । दुर्योधनके साथ संवाद और युद्ध (द्रोण० १८९ । २२–४८) । अर्जुनद्वारा इनकी शूरवीरताकी प्रशंसा (द्रोण० १९१ । ४५–५३) । द्रोणाचार्यके वधरूपी धृष्टद्युम्नके कुकृत्यकी इनके द्वारा निन्दा (द्रोण० १९८ । ८–२४) । धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये गदा लेकर कूद पड़ना तथा भीमसेन और सहदेव-द्वारा इनका ऐसा करनेसे रोका जाना (द्रोण० १९८ । ४६–५९) । कौरवपक्षीय छः महारथियोंको एक साथ भगाना (द्रोण० २०० । ५३) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और मूर्छित होना (द्रोण० २०० । ५६–६९) । इनके द्वारा केकयराजकुमार अनुविन्दका वध (कर्ण० १३ । ११) । विन्दका वध (कर्ण० १३ । ३५) । वंगराजका वध (कर्ण० २२ । १३) । कर्णके साथ युद्ध (कर्ण० ३० अध्याय) । वृषसेनके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (कर्ण० ४८ । ४० के बादसे दा० पा० ४५ श्लोकतक) । शकुनिको पराजित करना (कर्ण० ६१ । ४८-४९) । इनके द्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध (कर्ण० ८२ । ६) । इनका शल्यके साथ युद्ध (शल्य० १३ अध्याय; शल्य० १५ अध्याय) । इनके द्वारा कृतवर्माकी पराजय (शल्य० १७ । ७७-७८) । म्लेच्छराज शाल्वका वध (शल्य० २० । २६) । क्षेमधूर्तिका वध (शल्य० २१ । ८) । कृतवर्माकी पराजय (शल्य० २१ । २९-३०) । संजयका जीवित पकड़ा जाना (शल्य० २५ । ५७-५८) । इनका संजयको मारनेके लिये उद्यत होना और व्यासजीकी आज्ञासे उसे छोड़ देना (शल्य० २९ । ३८-३९) । श्रीकृष्णकी आज्ञासे युधिष्ठिरके पास जाना और उनका संदेश सुनाना (शान्ति० ५३ । १२-१३) । श्रीकृष्णके साथ हस्तिना-पुरसे द्वारकाको प्रस्थान (आश्व० ५२ । ५७-५८) । श्रीकृष्णके साथ रैवतक पर्वतपर होनेवाले महोत्सवमें सम्मिलित होना (आश्व० ५९ । ३-४) । महोत्सवसे लौटकर अपने भवनमें जाना (आश्व० ५९ । १७) । इनके द्वारा अभिमन्युका श्राद्ध (आश्व० ६२ । ६) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें हस्तिनापुर आना (आश्व० ६६ । ३) । इनके द्वारा सुरापान करके मदमत्त होकर कृतवर्मा-का सोते हुए बालकोंके वधकी चर्चा करते हुए उपहास

(**मौसल० ३ । १६-१८**) । प्रद्युम्नद्वारा इनके कथनका अनुमोदन तथा कृतवर्माद्वारा भूरिश्रवाके वधकी बात कहकर इनका तिरस्कार (**मौसल० ३ । १९-२१**) । इनका भगवान् श्रीकृष्णको कृतवर्माद्वारा स्यमन्तकमणिके अपहरण और सत्राजित्के वधका स्मरण दिलाना और सत्यभामाको रोती देख क्रोधपूर्वक उठकर तलवारसे कृतवर्माका सिर काट लेना (**मौसल० ३ । २२-२८**) । इन्हें दूसरे लोगोंका भी वध करते देख श्रीकृष्णका इन्हें रोकनेके लिये दौड़ना, भोजों और अन्धकोंका एक मत होकर इन्हें चारों ओरसे घेरकर जूठे बर्तनोंसे मारना । इन्हें बचानेके लिये प्रद्युम्नका बीचमें कूद पड़ना । प्रद्युम्न-सहित सात्यकिका भोजों और अन्धकोंके साथ जूझना और श्रीकृष्णके देखते-देखते बहुसंख्यक विपक्षियोंद्वारा मारा जाना (**मौसल० ३ । २९-३३**) । अर्जुनने इनके प्रिय पुत्र यौयुधानिको सरस्वतीके तटवर्ती देशका अधिकारी एवं निवासी बनाया तथा वृद्धों और बालकोंको उसके साथ कर दिया (**मौसल० ७ । ७१**) । स्वर्गमें पहुँचकर इनका मरुद्गणोंमें प्रवेश (**स्वर्गा० ४ । १७-१८**) ।

महाभारतमें आये हुए सात्यकिके नाम-आनर्त, शैनेय, शैनेयनन्दन, शौरि, शिनिपौत्र, शिनिपुत्र, शिनिसुत, शिनिनप्ता, शिनिप्रवर, शिनिप्रवीर, शिनिपुङ्गव, शिनिवीर, शिनिवृषभ, दाशार्ह, माधव, माधवाग्र्य, माधवसिंह, माधवोत्तम, मधूद्वह, सात्वत, सात्वतश्रेष्ठ, सात्वताग्र्य, सात्वतमुख्य, सात्वतप्रवर, सात्वतर्षभ, सात्यक, वार्ष्णेय, वृष्णि, वृष्णिशार्दूल, वृष्णिकुलोद्वह, वृष्णिप्रवीर, वृष्णि-पुङ्गव, वृष्णिसिंह, वृष्णिवर, वृष्णिवीर, वृष्ण्यन्धकप्रवीर, वृष्ण्यन्धकव्याघ्र, यादव, यदूद्वह, यदूत्तम, यदुवीर, यदुव्याघ्र और युयुधान आदि ।

सात्वत-(१) यदुकुलमें उत्पन्न एक श्रेष्ठ महापुरुष, जिनके वंशमें उत्पन्न मनुष्य सात्वत कहे गये हैं । सात्यकि भी सात्वतकुलके ही एक रत्न थे (**सभा० २ । ३०**) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम तथा इसकी निरुक्ति (**शान्ति० ३४२ । ७७-७८**) ।

साद्यस्क-एक प्रकारका राजर्षि-यज्ञ, जो एक ही दिनमें समाप्त होनेवाला होता है (**वन० २४० । १६**) ।

साध्य-एक गणदेवता, विराट-अण्डसे इनके प्रकट होनेका कथन (**आदि० १ । ३५**) । अमृतके लिये गरुड और देवताओंमें युद्ध होते समय ये लोग पक्षि-राजसे पराजित हो भाग गये थे (**आदि० ३२ । १६**) । *विश्वामित्रके प्रभावसे इनके भयभीत रहनेकी चर्चा* (*आदि० ७१ । ३९*) । अर्जुनके जन्म-समयमें साध्यगण वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ७०) । द्रौपदीका स्वयंवर देखनेके लिये ये लोग विमानोंद्वारा द्रुपदनगरके आकाशमें स्थित थे (**आदि० १८६ । ६**) । नैमिषा-रण्यक्षेत्रमें देवताओंद्वारा आयोजित यज्ञमें ये सब लोग पधारे थे (**आदि० १९६ । ३**) । खाण्डवदाहके समय श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ युद्धके लिये ये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर आये थे (**आदि० २२६ । ३८**) । साध्यगण इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (**सभा० ७ । २२**) । ये ब्रह्माजीकी सभामें भी उनकी आराधनाके लिये उपस्थित होते हैं (**सभा० ११।४४**) । स्कन्द और तारकासुरके युद्धके समय इन्होंने भी दानवोंके साथ युद्ध किया था (**वन० २३१ । ७३**) । दत्तात्रेयजी-से उनकी उदार वाणी सुननेके लिये इनकी प्रार्थना (**उद्योग० ३६ । ३**) । कर्ण और अर्जुनके युद्धमें इन्होंने अर्जुनकी ही विजयका समर्थन किया था (**कर्ण० ८७ । ४६**) । स्कन्दके जन्मकालमें ये लोग उन्हें देखनेके लिये आये थे (**शल्य० ४४ । २९**) । स्कन्दके अभिषेकके समय भी इनकी उपस्थिति थी (**शल्य० ४५ । ६**) । इन्होंने स्कन्दको सेनापति अर्पित किये थे (**शल्य० ४५ । ५३**) । ये लोग राजा मरुत्तके यज्ञमें रसोई परोसनेका काम करते थे (**शान्ति० २९ । २२**) । साध्यगण धर्मके पुत्र कहे गये हैं (**शान्ति० २०७ । २३**) । हंसरूपधारी ब्रह्मासे मोक्षविषयक इनका प्रश्न करना (**शान्ति० २९९ अध्याय**) । ये लोग मुञ्जवान् पर्वतपर भगवान् शिवकी आराधना करते हैं (**आश्व० ८ । १-४**) ।

सान्दीपनि-भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके विद्यागुरु, जिनके यहाँ वे दोनों भाई अध्ययनके लिये गये थे । इन्होंने उन्हें छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, चित्रकला, गणित, गान्धर्ववेद तथा वैद्यक भी पढ़ाये थे । गजशिक्षा तथा अश्वशिक्षाका भी ज्ञान कराया था । ये धनुर्वेदके श्रेष्ठ आचार्य थे । इन्होंने श्रीकृष्ण-बलरामको दस अङ्गों-सहित सुप्रतिष्ठित एवं रहस्यसहित सम्पूर्ण धनुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कराया । इसके बाद सान्दीपनिजीने गुरु-दक्षिणाके रूपमें इन दोनों भाइयोंसे अपने मरे हुए पुत्रको माँगा और उसे जीवित करके ला देनेकी आज्ञा दी । तब उन दोनों भाइयोंने गुरुदक्षिणाके रूपमें इन्हें बहुत-सा धन-ऐश्वर्य देकर इनके मरे हुए पुत्रको भी जीवित करके दे दिया (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०२**) ।

सामुद्रकतीर्थ-एक पवित्र तीर्थ, जो अरुन्धतीवटके समीप है । इसमें स्नान करके ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक एकाग्रचित्त हो तीन रात उपवास करनेसे अश्वमेधयज्ञ तथा सहस्र

गोदानका फल मिलता है और मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । ४१-४२) ।

सामुद्रनिष्कुट-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९) ।

साम्ब-(१) भगवान् श्रीकृष्णद्वारा जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न एक यादव वीर । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १७) । अर्जुन और सुभद्राके लिये दहेज लेकर आये थे (आदि० २२० । ३१) । इन्होंने अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी और ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । ३४-३५) । द्वारकाके सात अतिरथी वीरोंमें एक ये भी थे (सभा० १४ । ५७) । युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भी उपस्थित थे (सभा० ३४ । १६) । इनका शाल्वके सेनापति एवं मन्त्री क्षेमवृद्धिके साथ युद्ध और इनके द्वारा उसकी पराजय (वन० १६ । ९-१६) । वेगवान् नामक दैत्यके साथ युद्ध और इनके द्वारा उसका वध (वन० १६ । १७-२०) । प्रभासक्षेत्रमें इकट्ठे हुए वृष्णिवंशियों तथा पाण्डवोंके बीच सात्यकिद्वारा बलरामके प्रति इनके पराक्रमका वर्णन (वन० १२० । १३-१४) । ये उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहोत्सवमें आये थे (विराट० ७२ । २२) । इनका युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञके अवसरपर श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आगमन (आश्व० ६६ । ३) । सारण आदि वीरोंका साम्बको स्त्रीवेषमें विभूषित करके ऋषियोंके पास ले जाना और उनसे पूछना कि यह बभ्रुकी पत्नी है, आपलोग बताइये कि इसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा ? (मौसल० १ । १६-१७) । ऋषियोंने कहा—भगवान् श्रीकृष्णका यह पुत्र साम्ब एक भयंकर लोहेका मूसल उत्पन्न करेगा, जो वृष्णि और अन्धकवंशके विनाशका कारण होगा (मौसल० १ । १९) । दूसरे दिन सबेरा होते ही इनके पेटसे मूसलकी उत्पत्ति (मौसल० १ । २५) । मौसल-युद्धमें इनका मारा जाना (मौसल० ३ । ४४) । मृत्युके पश्चात् ये विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट हो गये (स्वर्गा० ५ । १६—१८) । (२) एक सदाचारी तथा अर्थज्ञानमें निपुण ब्राह्मण, जिन्होंने धृतराष्ट्रके वनगमनके लिये आज्ञा माँगनेपर प्रजाकी ओरसे उन्हें सान्त्वनापूर्ण उत्तर दिया था (आश्रम० १० । १३—५०) ।

सारण-(१) एक यदुवंशी क्षत्रिय, जो वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । भगवान् श्रीकृष्ण और सुभद्राके भ्राता थे (आदि० २१८ । १७) । ये अर्जुन और सुभद्राके लिये दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थमें आये थे (आदि० २२० । ३२) । युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । ३०) । ये राजसूययज्ञमें सम्मिलित हुए थे (सभा० ३४ । १५) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ आये थे (आश्व० ६६ । ४) । साम्बको स्त्री बनाकर ऋषियोंके सम्मुख ले जानेवाले यदुकुमारोंमें ये प्रधान थे (मौसल० १ । १५) । (२) रावणका मन्त्री, जो वानररूपमें श्रीरामकी सेनामें घुस आनेपर विभीषणद्वारा बन्दी बना लिया गया था । श्रीरामद्वारा इसका छुटकारा (वन० २८३ । ५२-५३) ।

सारमेय-कश्यपपत्नी सरमाका पुत्र सारमेय (कुत्ता) (आदि० ३ । १) । जनमेजयके भाइयोंके पीटनेपर माताके आगे इसका रोना (आदि० ३ । ४) ।

सारस-गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११) ।

सारस्वत-(१) एक प्राचीन ऋषि, जो अलम्बुषा अप्सराको देखकर स्खलित हुए दधीचके वीर्य और सरस्वती नदीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (शल्य० ५१ । ७—११) । इनका स्थान सारस्वततीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ । कहीं-कहीं इनके स्थानका 'तुङ्गकारण्य' नामसे उल्लेख मिलता है (वन० ८५ । ४६) । बारह वर्षके अवर्षणके बाद इन्होंने ऋषियोंको शिष्य बनाकर वेद पढ़ाया था (शल्य० ५१ । ३) । (२) एक महर्षि, जो अत्रिके पुत्र हैं और पश्चिम दिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । ३१) ।

सारिक-युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १३) ।

सारिमेजय-एक राजा, जो द्रौपदी-स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १९) ।

सारिसृक्क-एक शार्ङ्गक, जो पक्षिरूपधारी मन्दपाल ऋषिके द्वारा जरिताके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० २२८ । १७) । अपने बड़े भाई जारितारिसे अपनी रक्षाके लिये कहना (आदि० २३१ । ३) । इसके द्वारा अग्निकी स्तुति (आदि० २३१ । ९—११) । अग्निदेवकी कृपासे खाण्डववनमें अग्निदाहसे इसकी रक्षा (आदि० २३१ । २१) ।

सार्थ-व्यापारियोंका एक दल (वन० ६४ । १११) । जंगली हाथियोंद्वारा इसका विनाश (वन० ६५ । १५) ।

सार्वभौम-(१) सोमवंशी राजा अहंयातिके द्वारा कृतवीर्यकुमारी भानुमतीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९५ । १५) । इनकी भार्याका नाम सुनन्दा था, जो केकयदेशकी कन्या

थी। उसके गर्भसे जयत्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (आदि० ९५ । १६) । (२) दिग्गजकुलमें उत्पन्न एक हाथी (द्रोण० १२१ । २६) ।

सालकटङ्कटी–राक्षसी हिडिम्बाका नामान्तर (आदि० १५४ । १० के बाद दा० पाठ) । (विशेष देखिये हिडिम्बा)

सालङ्कायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५२) ।

सावर्ण–(१) एक महर्षि, जो राजा युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १५) । (२) एक भावी मनु, जिनके मन्वन्तरकालमें पराशरपुत्र व्यासजी सप्तर्षिके पदपर प्रतिष्ठित होंगे (अनु० १८ । ४२-४३) ।

सावर्णि–(१) एक ऋषि, जो इन्द्रसभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १०–१२) । सत्ययुगमें इन्होंने छः हजार वर्षोंतक तपस्या की थी, तब भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें विख्यात ग्रन्थकार और अजर-अमर होनेका वर दिया (अनु० १४ । १०३-१०४) । (२) एक भावी मनु, जिनके द्वारा बाँधी गयी मर्यादाका भगवान् सूर्य उल्लङ्घन नहीं करते हैं (उद्योग० १०९ । ११) ।

सावित्र–(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । २०) । (२) सुमेरुपर्वतका एक शिखर, जिसका दूसरा नाम ज्योतिष्क था। यह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, अप्रमेय, समस्त लोकोंके लिये अगम्य और तीनों लोकोंद्वारा पूजित था। यहाँ पहले भगवान् शंकर और देवी उमा विराजमान होती थीं, बहुत-से देवता और ऋषि उनकी उपासना करते थे। गङ्गाजी दिव्यरूप धारण करके यहाँ महादेवजीकी आराधना करती थीं (शान्ति० २८३ । ५–१८) । (३) आठ वसुओंमेंसे एक (अनु० १५० । १६-१७) ।

सावित्री–(१) सूर्यदेवताकी पुत्री एवं ब्रह्माजीकी पत्नी। ये तपतीकी बड़ी बहिन हैं (आदि० १७० । ७) । ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती हैं (सभा० ११ । ३४) । ये गायत्री-मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्होंने अग्निहोत्रसे प्रकट होकर अपने आराधक राजा अश्वपतिको प्रत्यक्ष दर्शन एवं वर दिया था (वन० २९३ । ८–१८) । त्रिपुरदाहके लिये यात्रा करते हुए भगवान् शंकरने इन्हें अपने रथके घोड़ोंकी बागडोर बनाया था (द्रोण० २०२ । ७५) । उनके संवत्सरमय धनुषकी प्रत्यञ्चा भी ये ही बनी थीं (कर्ण० ३४ । ३६) । एक जापक ब्राह्मणद्वारा किये गये गायत्री-जपसे संतुष्ट होकर इन्होंने उसे प्रत्यक्ष दर्शन एवं इच्छानुसार वर दिया (शान्ति० १९९ । ५—१६) । विदर्भनिवासी धर्मात्मा तपस्वी सत्यनामक ब्राह्मणके यज्ञमें इनका पदार्पण और पुनः यज्ञाग्निमें प्रवेश (शान्ति० २७२ । ११-१२) । इनके द्वारा अन्नदानकी महिमाका कथन (अनु० ६७ । ८-९) । (२) उमादेवीकी अनुगामिनी एक सहचरी (वन० २३१ । ४९) । (३) मद्रनरेश अश्वपतिकी कन्या, जो सावित्री देवीके दिये हुए वरदानके अनुसार उन्हें प्राप्त हुई थी (वन० २९३ । २३-२४) । इसके अद्भुत रूप-सौन्दर्य और तेज आदिका वर्णन (वन० २९३ । २५—२७) । इसका पिताकी आज्ञासे स्वयं ही अपना पति चुननेके लिये प्रस्थान (वन० २९३ । ३२—३८) । इसका पिताके घर लौटना और उनके पूछनेपर शाल्वनरेशके वनवासी पुत्र सत्यवान्‌को पतिरूपमें वरण करनेकी बात बताना। नारदजीद्वारा उसके अल्पायु होनेकी बात सुनकर भी इसका सत्यवान्‌के साथ ही विवाह करनेका दृढ निश्चय (वन० २९४ । २–२७) । सावित्रीका सत्यवान्‌के साथ विवाह तथा इसका अपनी सेवाओंद्वारा सबको संतुष्ट करना (वन० २९५ अध्याय) । सावित्रीकी व्रतचर्या तथा सत्यवान्‌के साथ इसका वनमें जाना (वन० २९६ अध्याय) । यमराजके साथ इसका वार्तालाप और उनसे इसको वर एवं मरे हुए पतिको पुनर्जीवनकी प्राप्ति (वन० २९७ । ११–६०) । सत्यवान्‌के साथ इसका वार्तालाप (वन० २९७ । ६५—१०२) । पतिको साथ लेकर इसका आश्रमकी ओर प्रस्थान (वन० २९७ । १०७) । आश्रममें पहुँचकर इसका ऋषियोंके समक्ष वनका सारा वृत्तान्त बतलाना (वन० २९८ । ३७–४२) । इसके श्वशुरको राज्यकी प्राप्ति तथा पतिका युवराजपदपर अभिषेक। इसको सौ पुत्रों तथा सौ भाइयोंकी प्राप्ति (वन० २९९ अध्याय) । इसके पातिव्रत्यकी प्रशंसा (विराट० २१ । १५) । (४) एक धर्मपरायणा राजपत्नी, जिसने दो दिव्य कुण्डलोंका दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४ । २४) । (सम्भव है यह सत्यवान्‌की पत्नी रही हो ।)

साश्व–एक प्राचीन नरेश, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १७) ।

साहस्रक–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक लोकविख्यात तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है और वहाँ किये हुए दान तथा उपवासका महत्त्व अन्यत्रसे सहस्रगुना अधिक होता है (वन० ८३ । १५८-१५९) ।

सिंहकेतु–पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जो कर्णद्वारा मारा गया (कर्ण० ५६ । ४९) ।

सिंहचन्द्र–युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक राजा (द्रोण० १५८ । ४०)।

सिंहपुर–उत्तरभारतका एक प्राचीन पर्वतीय नगर, जो राजा चित्रायुधके द्वारा सुरक्षित एवं सुरम्य था। इसे अर्जुनने उत्तरदिग्विजयके समय जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० २७ । २०)।

सिंहल–एक देश और जाति । नन्दिनीके पार्श्वभागसे सिंहलनामक म्लेच्छ जातियोंकी सृष्टि हुई थी (आदि० १७४ । ३७)। सिंहलदेशके नरेश युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १२) । इस देशके क्षत्रियोंने राजा युधिष्ठिरको समुद्रका सारभूत वैदूर्य, मोतियोंके ढेर तथा हाथियोंके सैकड़ों झूल अर्पित किये । सिंहलदेशीय वीर मणियुक्त वस्त्र पहने हुए थे। इनके शरीरका रंग काला और आँखोंके कोने लाल दिखायी देते थे (सभा० ५२ । ३५-३६) । सिंहलदेशके सैनिक द्रोणद्वारा निर्मित गरुडव्यूहके भीतर उसके ग्रीवाभागमें खड़े थे (द्रोण० २० । ६)।

सिंहसेन–(१) एक पाञ्चालदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, इसका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा मारा जाना (द्रोण० १६ । ३२–३७)। (२) एक पाण्डवपक्षीय पाञ्चाल योद्धा । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५०)। इसका कर्णके साथ युद्ध और उसके द्वारा घायल होना (कर्ण० ५६ । ४४–४८)।

सिंहिका–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और कश्यप ऋषिकी पत्नी (आदि० ६५ । १२)। इसके गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके नाम हैं–राहु, चन्द्र, चन्द्रहर्ता और चन्द्रप्रमर्दन (आदि० ६५ । ३१)।

सिकत–एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहा था (द्रोण० १९० । ३४–४०)। इन्हें स्वाध्यायद्वारा स्वर्गकी प्राप्ति हुई थी (शान्ति० २६ । ७)।

सिकताक्ष–एक तीर्थ, जिसका दर्शन युधिष्ठिरने किया था (वन० १२५ । १२)।

सित–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९)।

सिद्ध–(१) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपके द्वारा 'प्राधा'से उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । ४६)। (२) एक प्रकारके देवगण, जो हिमालय पर्वतपर कण्वके आश्रमके निकटवर्ती तपोवनमें विचरते थे (आदि० ७० । १५)। ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २९)। (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५७)।

सिद्धग्रह–सिद्धरूपी ग्रह, तिरस्कृत किये हुए सिद्ध पुरुषोंके शापसे यदि पागलपन आदि दोष प्राप्त हों तो उन्हें 'सिद्धरूपी ग्रहकी बाधा' समझना चाहिये (वन० २३० । ४९)।

सिद्धपात्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६६)।

सिद्धार्थ–(१) एक राजा, जो 'क्रोधवश' संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६०)। (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४)।

सिद्धि–(१) एक देवी, जो कुन्तीके रूपमें इस भूतलपर प्रकट हुई थीं (आदि० ६७ । १६०)। ये दैत्योंके साथ युद्धके लिये जाते हुए स्कन्दके सैनिकोंके आगे-आगे चलती थीं (शल्य० ४६ । ६४)। (२) वीर नामक अग्निके पुत्र, इनकी माताका नाम सरयू था। इन्होंने अपनी प्रभासे सूर्यको भी आच्छादित कर लिया। सूर्यके आच्छादित हो जानेपर इन्होंने अग्निदेवतासम्बन्धी यज्ञका अनुष्ठान किया था। आह्वान-मन्त्रमें इन्हींकी स्तुति की जाती है (वन० २१८ । ११)।

सिनीवाक्–एक महर्षि, जो राजा युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १४)।

सिनीवाली–महर्षि अङ्गिराकी तृतीय पुत्री (चतुर्दशीयुक्ता अमावस्या), इनका दूसरा नाम है–'दृश्यादृश्या'; क्योंकि ये अत्यन्त कृश होनेके कारण कभी दिखायी देती हैं, कभी नहीं। भगवान् रुद्र इन्हें अपने ललाटपर धारण करते हैं। अतः इनको रुद्रसुता भी कहते हैं (वन० २१८ । ५) । त्रिपुरदाहके समय भगवान् शंकरने इन्हें अपने रथके घोड़ोंके लिये जोता बनाया था (कर्ण० ३४ । ३२-३३)। ये स्कन्दके जन्म-समयमें उन्हें देखनेके लिये आयी थीं (शल्य० ४५ । १३)।

सिन्धु–(१) एक महानद, जिसके तटवर्ती निकुञ्जमें शत्रुओंसे पराजित राजा संवरणने आश्रय लिया था (आदि० ९४ । ४०)। (यह पंजाबके पश्चिम भागमें है।) यह वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १९)। इसे मार्कण्डेयजीने भगवान् बालमुकुन्दके उदरमें देखा था (वन० १८८ । १०३)। यह अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है (वन० २२२ । २२)। गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक है (भीष्म० ६ । ४८)। इस पवित्र नदका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २१)। इस महानदमें स्नान करके शीलवान् पुरुष मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें जाता है (अनु० २५ । ८)। स्त्रीधर्मका वर्णन करते समय अन्य नदियोंके साथ इसका भी शिव-पार्वतीके समीप आगमन हुआ था (अनु० १४६ । १८)। यह सायं-प्रातः स्मरणीय नद है (अनु० १६५ । १९)। (२) एक जनपद, जिसका स्वामी जयद्रथ

था, यह द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । २१) । एक बार सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ शाल्व देशमें विवाहकी इच्छासे जाते समय काम्यक वनमें पाण्डवोंके आश्रमके पास जा पहुँचा था (वन०२६४ । ६-७; वन० २६७ । १७–१९) ।

सिन्धुद्वीप एक प्राचीन राजर्षि, जिन्होंने पृथूदक तीर्थमें तपस्या करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (शल्य० ३९ । ३७) । ये राजा जह्नुके पुत्र थे, इनके पुत्रका नाम वलाकाश्व था (अनु० ४ । ४) ।

सिन्धुपुलिंद–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०) ।

सिन्धुप्रभव–एक तीर्थ, जो सिन्धुनदका उद्गमस्थान है । यह सिद्धों और गन्धर्वोंद्वारा सेवित है । यहाँ जाकर पाँच रात उपवास करनेसे प्रचुर सुवर्णराशिकी प्राप्ति होती है (वन० ८४ । ४६) ।

सिन्धुसौवीर–पश्चिमोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ५३) । सिन्धुसौवीरदेशके लोग धर्मको नहीं जानते हैं (कर्ण० ४० । ४२-४३) ।

सिन्धूतम–वसुधारामें एक प्रसिद्ध तीर्थ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । इसमें स्नान करनेसे प्रचुर सुवर्णराशि-की प्राप्ति होती है (वन० ८२ । ७९) ।

सीतवन–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक वन, जहाँ महान् तीर्थ है । एक बार वहाँ जाने या उसका दर्शन करनेमात्रसे ही वह तीर्थ पवित्र कर देता है । वहाँ केशोंको धो लेनेमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है (वन० ८३ । ५९-६०) ।

सीता–(१) महाराज जनककी पुत्री । राजा जनकके यहाँ धनुषयज्ञमें शिवजीके धनुषको तोड़नेपर श्रीरामजीके साथ श्रीसीताका विवाह हुआ । इनको साथ लेकर श्रीराम अयोध्यापुरीमें गये और वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे । श्रीरामके वनवासके समय परम रूपवती धर्मपत्नी सीता भी उनके साथ गयी थीं । अवतारके पूर्व विष्णुरूपमें रहते समय उनके साथ जो लक्ष्मी रहा करती हैं, वे ही अवतारकालमें सीताके रूपमें अवतीर्ण हो पतिदेवका अनुसरण करती थीं । रावणद्वारा इनका हरण होनेपर श्रीरामने रावणको मारकर इन्हें प्राप्त किया और इनके साथ अयोध्यामें आकर धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४-७९५) । (वनपर्वमें पुनः इनकी कथा आयी है यथा–) जनकनन्दिनी सीताका श्रीरामके साथ वनगमन (वन० २७७ । २९) । इनका श्रीरामको कपटमृग वधके लिये कहना (वन० २७८ । १८) । इनका लक्ष्मणके प्रति संदेहपूर्ण कठोर वचन (वन० २७८ । २७–२९) । रावणद्वारा अपहरण (वन० २७८ । ४३) । अशोक-वाटिकामें त्रिजटाद्वारा इन्हें आश्वासन (वन० २८० । ५५–७२) । इनका रावणके साथ संवाद (वन० २८१ अध्याय) । इनका हनुमान्‌जीको पहिचानके लिये चूड़ामणि देना (वन० २८२ । ६८-६९) । रावण-वधके पश्चात् अविन्ध्य और विभीषणने सीताजीको श्रीरामके पास ले आकर समर्पित किया । श्रीरामने इनके चरित्र-पर संदेह करके इन्हें त्याग दिया । सीताको इससे बड़ी व्यथा हुई । इन्होंने अपनी शुद्धिके लिये शपथ खायी और देवताओंद्वारा भी इनकी शुद्धिका समर्थन किया गया है । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताजीसे मिले । सीताको आगे करके पुष्पक-विमानपर आरूढ़ हो ऊपर-ही-ऊपर समुद्रके पार गये । सीताको वनकी शोभा दिखाते और किष्किन्धा होते हुए अयोध्यापुरीमें गये । इनका दर्शन करके भरत-शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ (वन० २९१ । ३९–६५) । इनके पातिव्रत्यकी प्रशंसा (विराट० २१ । १२-१३) । (२) एक नदी, जिसे मार्कण्डेयजीने भगवान् बालमुकुन्दके उदरमें देखा था (वन० १८८ । १०२) । यह गङ्गा-की सात धाराओंमेंसे एक है (भीष्म० ६ । ४७-४८) । इसमें प्रायः नाव भी डूब जाती है (शान्ति० ८२ । ४५) ।

सुकक्ष–द्वारकाके पश्चिम भागमें विद्यमान एक रजतमय पर्वत (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ पृष्ठ, ८१३, कालम १) ।

सुकन्दक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५३) ।

सुकन्या–(१) राजा शर्यातिकी सुन्दरी पुत्री (वन० १२२ । ६) । इसका वनमें एकान्तभ्रमण । च्यवनको इसके दर्शनसे प्रसन्नता । इसके द्वारा बाँबीके ढेरमें छिपे हुए मुनिवर च्यवनकी आँखोंका फोड़ा जाना (वन० १२२ । ६–१४) । मुनिके कोपसे सेना और पिताको पीड़ित देख इसका अपनेद्वारा दो चमकीली वस्तुओंके बेधे जानेकी बात बताना (वन० १२२ । २०-२१) । मुनिके माँगनेपर पिताद्वारा इसका उन्हें समर्पण (वन० १२२ । २४–२६) । इसके द्वारा पतिकी परिचर्या एवं आराधना (वन० १२२ । २८-२९) । मोहित अश्विनीकुमारोंकी बातोंका इसके द्वारा विरोध (वन० १२३ । २–१४) । इसका पतिसे सलाह लेकर अश्विनी-कुमारोंसे उन्हें रूपयौवनसम्पन्न बनानेकी प्रार्थना करना (वन० १२३ । १४–१६) । इसका अश्विनीकुमारोंके बीच अपने पतिको पहचानकर इन्हें ही स्वीकर करना (वन० १२३ । २१) । इसके पातिव्रत्यकी प्रशंसा (विराट० २१ । १०) । (२) मातरिश्वाकी पत्नी,

जिसके गर्भसे मङ्कणक मुनिका जन्म हुआ था (शल्य० ३८ । ५९) ।

सुकर्मा–विधाताद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम सुव्रत था (शल्य० ४५ । ४२) ।

सुकुट्ट–एक भारतीय जनपद तथा वहाँके निवासी (सभा० १४ । १६) ।

सुकुण्डल–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८) ।

सुकुमार–(१) तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ९) । (२) पुलिन्दोंके महान् नगर (या राजधानी) के शासक एक राजकुमार या नरेश, जो सम्भवतः राजा सुमित्रके पुत्र थे । सुकुमार और सुमित्र दोनोंको भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय जीत लिया था (सभा० २९ । १०) । द्रौपदीस्वयंवरमें भी पुलिन्दराज सुकुमार अपने पिता सुमित्र (या सुचित्र) के साथ पधारे थे (आदि० १८५ । १०) । पुलिन्द नगरके राजा सुकुमार और सुमित्रको सहदेवने भी दक्षिण-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ४) । ये युधिष्ठिरकी सेनाके एक उदार रथी थे (उद्योग० १७१ । १५) । (३) शाकद्वीपके जलधारगिरिके पासका एक वर्ष (भीष्म० ११ । २५) ।

सुकुमारी–(१) शाकद्वीपकी एक पवित्र जलवाली नदी (भीष्म० ११ । ३२) । (२) राजा सृञ्जयकी पुत्री और नारदकी पत्नी (द्रोण० ५५ । ७–१३; शान्ति० ३० । १४–३०) ।

सुकुसुमा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २४) ।

सुकेतु–(१) एक राजा, जो अपने पुत्र सुनामा एवं सुवर्चाके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें आये थे (आदि० १८५ । ९) । (२) शिशुपालका एक पुत्र, जो द्रोणाचार्यके हाथसे मारा गया था, इसकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३३) । (३) पाण्डवपक्षका एक महाबली राजा, जो चित्रकेतुका पुत्र था। इसका कृपाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध हुआ था (कर्ण० ५४ । २१–२९) ।

सुकेशी–(१) गान्धारराजकी कुलीन कन्या, जो भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी थीं । भगवान्ने उन्हें द्वारकाके उस महलमें ठहराया था, जिसका दरवाजा जाम्बूनद सुवर्णके समान उद्दीप्त होता था, जो देखनेमें प्रज्वलित अग्नि-सा जान पड़ता था, विशालतामें जिसकी उपमा समुद्रसे दी जाती थी और जो मेरु नामसे विख्यात था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५) । (२) अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागत-समारोहमें कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४५) ।

सुक्रतु–एक प्राचीन नरेश, जिनके नामका उल्लेख संजयने प्राचीन राजाओंकी गणनामें किया है (आदि० १ । २३५)।

सुक्षत्र–पाण्डवपक्षके एक योद्धा, जो कोसलनरेशके पुत्र थे । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५७) ।

सुखदा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २८)।

सुगणा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २७)।

सुगन्धा–(१) एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६३) । (२) एक तीर्थ, जहाँ जाकर मानव स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है और सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें पूजित होता है (वन० ८४ । १०; ८४ । ३६) ।

सुगोप्ता–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३७) ।

सुग्रीव–(१) वानरोंके एक राजा, जो भगवान् सूर्यके पुत्र थे । पूर्वकालमें सभी वानरयूथपति इनकी सेवामें रहते थे (वन० १४७ । २८-२९) । श्रीरामकी इनके साथ मित्रता और इनके भाई वालीके वधका संक्षिप्त वृत्तान्त (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४) । भगवान् श्रीरामका इनके पास जाना, इनके साथ उनकी मैत्री । इनका श्रीरामको सीताजीके वस्त्र दिखाना, श्रीरामका इन्हें वानरसम्राट्के पदपर अभिषिक्त करना तथा सुग्रीवका सीताजीकी खोजके लिये प्रतिज्ञा करना (वन० २८० । ९–१४) । इनका अपने भाई वालीके साथ युद्ध (वन० २८० । ३०–३६) । श्रीरामसे सीताकी खोजके विषयमें इनका अपना कार्य बताना (वन० २८२ । २२) । कुम्भकर्णद्वारा इनका अपहरण (वन० २८७ । ११) । श्रीरामके साथ पुष्पक विमानद्वारा इनका अयोध्याको आना (वन० २९१ । ६०) । राज्याभिषेकके बाद श्रीरामका इन्हें कर्तव्यकी शिक्षा दे बड़े दुःखसे विदा करना (वन० २९२ । ६७-६८) । (२) भगवान् श्रीकृष्णके रथके एक अश्वका नाम (द्रोण० १४७ । ४७)।

सुघोष–नकुलके शङ्खका नाम (भीष्म० २५ । १६) ।

सुचक्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५९) ।

सुचन्द्र–(१) एक असुर, जो सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । ३१) । (२) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपद्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६६ । ४६–४८) । यह अर्जुनके जन्मकालिक महोत्सवमें सम्मिलित हुआ था (आदि० १२२ । ५८)।

सुचारु–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र । इसने अन्य सात

भाइयोंके साथ होकर अभिमन्युपर आक्रमण किया था (भीष्म० ७९ । २२-२३) । (विशेष देखिये चारु, चारुचित्र) । (२) श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीदेवीके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्र (अनु० १४ । ३३) ।

सुचित्र–(१) धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १८) । (२) द्रौपदी-स्वयंवरमें गया हुआ एक राजा, इसके साथ सुकुमारका भी नाम आया है । अतः यह पुलिन्दराज सुकुमारका पिता सुमित्र जान पड़ता है (सम्भव है सुमित्रकी जगह सुचित्र पाठ हो गया हो । अथवा सुमित्रका ही दूसरा नाम सुचित्र हो) (आदि० १८५ । १०) । (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जिसने अपने भाइयों-के साथ रहकर अभिमन्युपर आक्रमण किया था (भीष्म० ७९ । २२-२३) (विशेष देखिये चित्र) । (४) पाण्डवपक्षका एक महावीर महारथी, जो चित्रवर्माका पिता था । रणभूमिमें विचरते हुए इन दोनों वीरोंको द्रोणाचार्यने मारा था, इसकी चर्चा (कर्ण० ६ । २७-२८) ।

सुचेता–वीतहव्यवंशी गृत्समदके पुत्र, इनके पुत्रका नाम वर्चा था (अनु० ३० । ६१) ।

सुजात–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक, जिसने भाइयोंके साथ भीमसेनपर आक्रमण किया और उनके द्वारा युद्धमें मारा गया (शल्य० २६ । ५–१८) ।

सुजाता–महर्षि उद्दालककी पुत्री, जिसका कहोड ऋषिके साथ विवाह हुआ था (वन० १३२ । ९) । इसका पतिसे धनके लिये आग्रह करना (वन० १३२ । १४) । अपने पुत्र अष्टावक्रसे पतिकी मृत्युका वृत्तान्त बताना (वन० १३२ । २०) ।

सुजानु–एक दिव्य महर्षि, जो हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे मिले थे (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ) ।

सुतनु–आहुक (उग्रसेन) की पुत्री । इसका विवाह भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरके साथ कराया था (सभा० १४ । ३३) ।

सुतसोम–द्रौपदीके गर्भसे भीमसेनद्वारा उत्पन्न पुत्र (आदि० ६३ । १२३; आदि० ९५ । ७५) । इसकी उत्पत्ति विश्वेदेवोंके अंशसे हुई थी (आदि० ६७ । १२७-१२८) । इसका सुतसोम नाम पड़नेका कारण (आदि० २२० । ७९, ८१; द्रोण० २३ । २८-२९) । प्रथम दिनके संग्राममें विकर्णके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ५८-५९) । दुर्मुखसे श्रुतकर्माकी रक्षा करना (भीष्म० ७९ । ३९) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । २८) । विविंशतिके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २४-२५) । शकुनिके साथ युद्ध और पराजय (कर्ण० २५ । १८–४०) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध (कर्ण० ५५ । १४–१६) । रातमें अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (सौप्तिक० ८ । ५५-५६) ।

सुतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ देवतालोग पितरोंके साथ सदा विद्यमान रहते हैं । वहाँ देवता-पितरोंके पूजनमें तत्पर हो स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और यात्री पितृलोकमें जाता है (वन० ८३ । ५४-५५) ।

सुतेजन–युधिष्ठिरका एक सम्बन्धी और सहायक राजा (द्रोण० १५८ । ४०) ।

सुदक्षिण–(१) काम्बोज देश (काबुल) के राजा या राजकुमार, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १५) । ये एक अक्षौहिणी सेनाके साथ दुर्योधनकी सहायताके लिये आये थे (उद्योग० १९ । २१) । इन्हें दुर्योधनके पक्षका एक रथी वीर माना गया था (उद्योग० १६६ । १) । प्रथम दिनके संग्राममें श्रुतकर्माके साथ इनका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ६६–६८) । अभिमन्युके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १५; भीष्म० १११ । १८–२१) । अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इनका वध (द्रोण० ९२ । ६१–७१) । इनके छोटे भाईने भी अर्जुनपर धावा किया और यह उनके हाथसे मारा गया (कर्ण० ५६ । ११०-१११) । (२) पाण्डवपक्षका योद्धा, जिसे द्रोणाचार्यने आहत करके रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया था (द्रोण० २१ । ५६) ।

सुदत्ता–भगवान् श्रीकृष्णकी एक पटरानी, द्वारकामें इन्हें रहनेके लिये केतुमान् नामक प्रासाद प्राप्त हुआ था । उसका विशेष वर्णन (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५) ।

सुदर्शन (चक्र)—(१) भगवान् नारायण एवं श्रीकृष्णके चक्रका नाम, इसके तेजस्वी एवं प्रभावशाली दिव्य रूपका वर्णन (आदि० १९ । २०–२९) । अग्निदेव-ने भगवान् श्रीकृष्णको यह चक्र प्रदान किया और इसके प्रभावका स्वयं वर्णन किया (आदि० २२४ । २३–२७) । श्रीकृष्णने इस अस्त्रसे शिशुपालका मस्तक काटा था (सभा० ४५ । २१–२५) । इसके द्वारा सौभ विमानका विध्वंस और शाल्वका संहार (वन० २२ । २९–३७) । श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने दिये हुए चक्रसे शत्रुका मस्तक काटनेके लिये प्रेरित करना (कर्ण० ८९ । ४५-४६) । (२) देवराज इन्द्रके रथका नाम (या विशेषण) (विराट० ५६ । ३) । (३) देवताओंके लिये आदरणीय

एक नरेश, जो राजा नग्नजित्‌द्वारा बन्दी बनाये गये थे। भगवान् श्रीकृष्णने नग्नजित्‌के समस्त पुत्रोंको पराजित करके इन्हें बन्धनमुक्त किया था (**उद्योग० ४८ । ७५**) । (**४**) एक द्वीप; (जो जम्बूद्वीपका ही नामान्तर है) संजयद्वारा धृतराष्ट्रसे इसका वर्णन (**भीष्म० ५ । १३ से ६ अध्यायतक**) । (**५**) जम्बूद्वीपके जामुन वृक्षका नाम, इस वृक्षकी ऊँचाई ग्यारह हजार योजन है । इसके फलोंकी लम्बाई ढाई हजार अरत्नि मानी गयी है (**भीष्म० ७ । १९–२२**) । (**६**) कौरवपक्षका एक राजा, जो सात्यकिद्वारा मारा गया था (**द्रोण० ११८ । १४-१५**) । (**७**) मालवनरेश, पाण्डवपक्षका एक योद्धा, अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (**द्रोण० २०० । ७३–८३**) । (**८**) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जिसने भीमसेनपर आक्रमण किया और फिर उन्हींके द्वारा मारा गया (**शल्य० २७ । ३१–५०**) । (**९**) अग्निदेवके पुत्र, इनकी माता इक्ष्वाकुवंशी दुर्योधनकी पुत्री सुदर्शना थी (**अनु० २ । ३५-३६**) । महाराज ओघवान्‌की पुत्री ओघवतीके साथ इनका विवाह (**अनु० २ । ३८-३९**) । अतिथि-सत्कारद्वारा मृत्यु आदिपर इनकी विजय (**अनु० २ । ४०–९८**) ।

सुदर्शना–माहिष्मती-नरेश नील (या दुर्योधन) की अनुपम सुन्दरी पुत्री, जो प्रतिदिन पिताके अग्निहोत्र-गृहमें अग्निको प्रज्वलित करनेके लिये उपस्थित होती थी (**सभा० ३१ । २८**) । इसके ऊपर अग्निदेवकी आसक्ति (**सभा० ३१ । ३०-३१**) । पिताद्वारा इसका अग्निदेवकी सेवामें समर्पण (**सभा० ३१ । ३३**) । यह राजा दुर्योधन (नील) द्वारा नर्मदा नदीके गर्भमें उत्पन्न हुई थी । इसका अग्निदेवके साथ विवाह (**अनु० २ । ३४**) । अग्निके द्वारा इसे सुदर्शन नामक पुत्रकी प्राप्ति (**अनु० २ । ३६**) ।

सुदामा–(**१**) दशार्णके एक महामना नरेश, जिनके दो पुत्रियाँ थीं, एकका विवाह विदर्भ-नरेश भीमसे और दूसरीका चेदिराज वीरबाहुके साथ हुआ था (**वन० ९६ । १४-१५**) । (**२**) उत्तरभारतका एक जनपद (**भीष्म० ९ । ५५**) । इसे और यहाँके राजाको अर्जुनने जीता था (**सभा० २७ । ११**) । (**३**) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । ४९**) । (**४**) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । १०**) ।

सुदास–कोसलदेशके एक राजा, जो सायं-प्रातः स्मरण-कीर्तन करनेके योग्य हैं (**अनु० १६५ । ५७**) ।

सुदिन–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक लोकविख्यात तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य सूर्यलोकमें जाता है (**वन० ८३ । १००**) ।

सुदिवा–एक वानप्रस्थी ऋषि, जो वानप्रस्थ-धर्मका पालन करते हुए स्वर्गलोकको प्राप्त हुए (**शान्ति० २४४ । १७-१८**) ।

सुदृष्ट–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५१**) ।

सुदेव–(**१**) विदर्भनरेशद्वारा दमयन्तीकी खोजमें नियुक्त किये गये ब्राह्मणोंमेंसे एक, जिन्होंने चेदिराजके महलमें दमयन्तीको पहचानकर उससे वार्तालाप किया (**वन० ६८ । २–३०**) । इनका चेदिनरेशकी माताको दमयन्तीका परिचय देना (**वन० ६९ । १–९**) । दमयन्तीको देखकर प्रसन्न हुए राजा भीमद्वारा इन्हें पुरस्कार-प्राप्ति (**वन० ६९ । २७**) । दमयन्तीका इन्हें अयोध्यानरेश ऋतुपर्णके पास स्वयंवरका संदेश देकर भेजना और इनका अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्णसे स्वयंवरके लिये दमयन्तीका संदेश कहना (**वन० ७० । २२–२७**) । (**२**) महाराज अम्बरीषका एक शान्त स्वभाववाला सेनापति, जिसे राजासे पूर्व ही स्वर्गलोककी प्राप्ति हो चुकी थी । उसे इन्द्रके पास देखकर राजाका चकित होकर उसके विषयमें इन्द्रसे पूछना (**शान्ति० ९८ । ३–११**) । राजाकी आज्ञासे राक्षसोंसे लड़नेके लिये इसका प्रस्थान (**शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ**) । शत्रुको प्रबल देखकर इसका शिवजीकी शरणमें जाना और उन्हें प्रसन्न करना (**शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ**) । शिवजीद्वारा इसे वरदान-प्राप्ति (**शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ**) । इसके द्वारा राक्षसोंका संहार और स्वयं भी विघसद्वारा मारा जाना तथा मरते-मरते विघसको भी मार डालना (**शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ**) । (**३**) काशिराज हर्यश्वके पुत्र, जो देवताके समान तेजस्वी और दूसरे धर्मराजके समान न्यायप्रिय थे । पिताके पश्चात् ये काशिराजके पदपर अभिषिक्त हुए । इसी बीच वीतहव्यके पुत्रोंने इनपर आक्रमण करके इन्हें धराशायी कर दिया । तत्पश्चात् इनके पुत्र दिवोदास पिताके राज्यपर अभिषिक्त हुए (**अनु० ३० । १३–१५**) ।

सुदेवा–(**१**) अङ्गराजकी पुत्री, जो महाराज अरिहकी पत्नी थीं । इसके गर्भसे ऋक्षनामक पुत्रका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । २४**) । (**२**) दशार्हकुलकी कन्या, जो पूरुवंशी महाराज विकुण्ठनकी पत्नी थी । इसके गर्भसे अजमीढका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । ३६**) ।

सुदेष्ण–(**१**) देवराज इन्द्र द्वारकामें आकर जिन प्रधान-प्रधान यादवोंसे मिले थे, उनमेंसे एक ये भी थे (**सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०६**) । (**२**) एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४६**) ।

सुदेष्णा–मत्स्यराज विराटकी भार्या, केकयराजकी कन्या । इनका दूसरा नाम चित्रा भी था (**विराट० ९ । ६**) । इनके पास अज्ञातवासके लिये सैरन्ध्रीवेशमें द्रौपदीका आना और बातचीत करनेके बाद इनका द्रौपदीकी शर्तोंको स्वीकार करते हुए उसे अपने यहाँ आश्रय देना (**विराट० ९ । ८–३६**) । सैरन्ध्रीके विषयमें इनसे कामासक्त कीचककी बातचीत और उसके प्रार्थना करनेपर इनका उसे अपनी सम्मति देना (**विराट० १४ । ६–१०**) । द्रौपदीको कीचकके घर भेजना (**विराट० १५ अध्याय**) । कीचक-

के मारनेपर रोती हुई द्रौपदीका इनके पास आना और इनका उसके रोनेका कारण पूछना तथा आश्वासन देना (**विराट० १६ । ४८–५०**) । विराटका इनके द्वारा द्रौपदीको चली जानेके लिये कहलवाना (**विराट० २४ । ८–१०**) । द्रौपदीको राजमहलसे चली जानेके लिये इनके द्वारा राजाका संदेश सुनाया जाना (**विराट० २४ । २७-२८**) । द्रौपदीके तेरह दिन और रहनेके लिये प्रार्थना करनेपर सुदेष्णाका उसे इच्छानुसार रहनेकी आज्ञा देना और अपने पति पुत्रकी रक्षाके लिये उसकी शरणमें जाना (**विराट० २४ । २९-३० दा० पाठसहित**) । उत्तराके विवाहोत्सवमें उपप्लव्यनगरमें इनका द्रौपदीके पास जाना (**विराट० ७२ । ३०**) ।

सुद्युम्न–एक प्राचीन राजर्षि, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १६**) । अपने भाई महर्षि शङ्खके भेजनेसे न्यायके लिये लिखितका इनके पास आना और इनके द्वारा चोरीके दण्डरूपमें लिखितका हाथ कटवाया जाना (**शान्ति० २३ । २९–३६**) । दण्डरूप धर्मके पालनसे इन्हें परम सिद्धिकी प्राप्ति (**शान्ति० २३ । ४५**) । महर्षि लिखितको धर्मतः दण्ड देनेसे इन्हें परम उत्तम लोकोंकी प्राप्ति (**अनु० १३७ । १९**) ।

सुधन्वा–(१) महर्षि अङ्गिराके पुत्र । केशिनीके लिये प्रह्लाद-पुत्र विरोचनके साथ इनका संवाद होनेपर प्रह्लादके पास निर्णयके लिये जाना तथा उनका निर्णय देना (**सभा० ६८ । ६५–८७; उद्योग० ३५ । १४–३६**) । इनका विरोचनको जीवनदान देना (**उद्योग० ३५ । ३७-३८**) । शर शय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये जाना (**अनु० २६ । ७**) । ये महर्षि अङ्गिराके आठवें पुत्र थे (**अनु० ८५ । ३०-३१**) । इन्होंने स्कन्दको एक शकट और विशाल कूबरसे युक्त रथ प्रदान किया था (**अनु० ८६ । २४**) । (२) एक संशप्तक योद्धा, जो अर्जुनद्वारा मारा गया (**द्रोण० १८ । ४२**) । (३) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चाल योद्धा, जो द्रुपदका पुत्र था, इसके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३ । ५५**) । यह वीरकेतुका भाई था । वीरकेतुके मारे जानेपर दुखी हो भाइयोंसहित इसने आचार्य द्रोणपर आक्रमण किया था (**द्रोण० १२२ । ४४**) । द्रोणाचार्यने इसे रथहीन करके मार गिराया (**द्रोण० १२२ । ४५–४९**) । (४) एक प्राचीन नरेश, जिन्हें मान्धाताने जीत लिया था (**द्रोण० ६२ । १०-११**) ।

सुधर्मा–(१) एक यादवोंकी सभा, जहाँ जाकर सैनिकोंने सुभद्राहरणका समाचार सुनाया था (**आदि० २१९ । १०**) । इस सभाको दाशार्ही कहते थे । इसकी लंबाई-चौड़ाई एक-एक योजन थी । इसमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके पास देवराज इन्द्र आये और भौमासुरको मारकर अदितिके कुण्डल लानेके लिये उनसे प्रार्थना की । इस कार्यको सम्पन्न करके भगवान् जब स्वर्गसे लौटे, तब उनको और उनकी नवागत रानियोंको देखनेके लिये यशोदा, देवकी, रोहिणी आदि श्रीकृष्णकी आठों पटरानियाँ और एकानङ्गा नामवाली यशोदापुत्री—ये सब उस सभामें आयीं (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०६–८२०**) । अर्जुनका इस सभामें प्रवेश (**मौसल० ७ । ७**) । (२) एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठता था । इसने अर्जुनसे धनुर्वेद-की शिक्षा ली थी (**सभा० ४ । २८–३५**) । (३) दशार्णदेशके एक राजा, जिनके पराक्रमसे संतुष्ट हो महाबली भीमसेनने उन्हें अपना सेनापति बना लिया था (**सभा० २९ । ५-६**) । (४) इन्द्रसारथि मातलिकी पत्नी (**उद्योग० ९७ । १९**) । (५) एक संशप्तक योद्धा, जिसका अर्जुनके साथ युद्ध हुआ था (**द्रोण० १८ । २०**) ।

सुधामा–कुशद्वीपका एक सुवर्णमय पर्वत, जो मूँगोंसे भरा हुआ और दुर्गम है (**भीष्म० १२ । १०**) ।

सुनक्षत्रा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । ९**) ।

सुनन्दा–(१) केकयराजकुमारी, जो कुरुवंशी राजा सार्वभौमकी पत्नी थीं । इनके गर्भसे जयत्सेनका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । १६**) । (२) काशिराज सर्वसेनकी पुत्री, जो दुष्यन्तपुत्र सम्राट् भरतकी पत्नी थीं । इनके गर्भसे भुमन्यु नामक पुत्रका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । ३२**) । (३) शिबिदेशकी राजकन्या, जो महाराज प्रतीपकी पत्नी थीं । इनके गर्भसे देवापि, शान्तनु तथा बाह्लीकका जन्म हुआ था (**आदि० ९५ । ४४**) । (४) चेदिनरेश सुबाहुकी बहिन । राजमाताने दमयन्तीको इसीके साथ रहनेके लिये आज्ञा दी थी (**वन० ६५ । ७३–७६**) । विदर्भ-निवासी सुदेव ब्राह्मणके साथ एकान्तमें दमयन्तीको बात करते देखकर इसका राजमाताको इसकी सूचना देना (**वन० ६८ । ३३-३४**) । ब्राह्मण सुदेवके कहनेसे इसके द्वारा दमयन्तीके ललाटमें स्थित प्राकृतिक टीकेकी मैलका धोया जाना और पहचाननेके बाद रोना तथा दमयन्तीको हृदयसे लगाना (**वन० ६९ । १०–१२**) । इसके पिताका नाम वीरबाहु था और यह दमयन्तीकी मौसेरी बहिन थी (**वन० ६९ । १४-१५**) ।

सुनय–एक दक्षिण भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६४**) ।

सुनसा–एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । ३१**) ।

सुनाभ–(**पद्मनाभ**)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ११६ । ५**) । भीमसेनके साथ इसका युद्ध और उनके द्वारा वध (**भीष्म० ८८ । १२ के बाद दा० पाठसहित १३**) । (२) वरुणका मन्त्री, जो अपने पुत्रों और पौत्रोंसहित गौ और पुष्कर नामक तीर्थोंके साथ वरुणदेवकी उपासना करता है (**सभा० ९ । २८-२९**) । (३) एक दिव्य पर्वत, जो धनाधीश कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है (**सभा० १० । ३२-३३**) ।

सुनामा–(१) राजा सुकेतुका एक पुत्र, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें अपने पिता और भाईके साथ आया था (**आदि० १८५ । ९**) । (२) उग्रसेनका पुत्र, कंसका भाई । इसे श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने मारा था (**सभा० १४ । ३४**) । यह कंसका सेनापति भी था, कंसके समान ही बलवान् था और उसके घुड़सवारोंकी सेनाका सरदार बनाया गया था (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०१–८०३**) । (३) अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (**उद्योग० १०१ । २**)।(४) स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ५९**) ।

सुनीथ–(१) एक मन्त्र, जिसका दिन अथवा रातमें स्मरण करनेपर सर्पोंसे भय नहीं होता (**आदि० ५८ । २३–२६**) । (२) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (**सभा० ७ । १६**) । (३) दो भिन्न-भिन्न प्राचीन राजा, जो यमकी सभामें रहकर सूर्य-पुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । ११, १५**) । (४) शिशुपालका दूसरा नाम (**सभा० ३९ । ११**) । (विशेष देखिये **शिशुपाल**) । (५) एक जनपद और वहाँके नरेश, जो यह चाहते थे कि युधिष्ठिरके अभिषेक और श्रीकृष्णकी अग्रपूजाके कार्यमें बाधा पड़ जाय (**सभा० ३९ । १४-१५**) । (६) एक वृष्णिवंशी कुमार, जिसे प्रद्युम्नद्वारा धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त हुई थी (**वन० १८३ । २८**) ।

सुनीथा–मृत्युकी मानसी कन्या, जो अपने रूप और गुणके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात थी । इसीने (राजर्षि अङ्गके द्वारा) वेनको जन्म दिया था (**शान्ति० ५९ । ९३**) ।

सुनेत्र–(१) सोमवंशी महाराज कुरुके वंशज धृतराष्ट्रके बारह पुत्रोंमेंसे एक, जो लोकविख्यात था (**आदि० ९४।५९-६०**)।(२) अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (**उद्योग० १०१ । २**)।

सुन्द–निकुम्भ दैत्यका पुत्र और उपसुन्दका भाई । ये दोनों भाई भयङ्कर और क्रूर हृदयके थे (**आदि० २०८ । २-३**)। इन दोनों भाइयोंके पारस्परिक प्रेमका वर्णन (**आदि० २०८। ४–६**) । त्रिभुवनपर विजय पानेके लिये विन्ध्यपर्वतपर इन दोनोंकी उग्र तपस्या (**आदि० २०८ । ७**) । इनकी तपस्यामें देवताका विघ्न डालना (**आदि० २०८।११**)। इन दोनोंको अपने भाईके अतिरिक्त किसी दूसरेसे न मरनेका ब्रह्माजीद्वारा वरदान (**आदि० २०८ । २४-२५**) । त्रिभुवनमें इन दोनोंके अत्याचार (**आदि० २०९ अध्याय**) । तिलोत्तमाके कारण इन दोनों भाइयोंकी एक दूसरेके हाथसे गदा-युद्धमें मृत्यु (**आदि० २११।१९**) ।

सुन्दरिका–एक तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य सुन्दर रूपका भागी होता है । सुन्दरिकाकुण्डमें स्नान करनेसे रूप और तेजकी प्राप्ति होती है (**वन० ८४ । ५६; अनु० २५ । २१**) ।

सुपर्ण–(१) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपकी पत्नी मुनिका पुत्र था (**आदि० ६५ । ४२**) । (२) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपद्वारा प्राधाके गर्भमें उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६५ । ४७**) । (३) मयूर नामक असुरका छोटा भाई, जो राजा कालकीर्तिके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ३६-३७**) । (४) गरुड़का एक नाम (**उद्योग० १०१ । १**) । (विशेष देखिये **गरुड़**)। (५) एक ऋषि, जिन्होंने इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहपूर्वक भलीभाँति तपस्या करके भगवान् पुरुषोत्तमसे सात्वतधर्मको प्राप्त किया और इनसे वायुदेवने इस धर्मका उपदेश ग्रहण किया (**शान्ति० ३४८ । २०–२२**) । (६) भगवान् विष्णुका एक नाम (**अनु० १४९ ।३४**) ।

सुपर्वा–राजा भगदत्तका नामान्तर (**द्रोण० २६ । ५२-५३**) (विशेष देखिये भगदत्त) ।

सुपार्श्व–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो कुपट नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । २८-२९**) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय हुआ था (**उद्योग० ४ । १४**) । (२) एक देश, जिसके राजा क्रथको भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जीता था (**सभा० ३० । ७-८**) ।

सुपुण्या–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । ३६**) ।

सुप्रजा–भानु नामक अग्निकी दो पत्नियोंमेंसे एक । दूसरीका नाम बृहद्भासा था । इन दोनोंने छः पुत्रोंको जन्म दिया था (**वन० २२१ । ९**) ।

सुप्रतर्दन–एक प्राचीन नरेश, जो अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रके विमानमें बैठकर आये थे (**विराट० ५६ । ९-१०**) ।

सुप्रतिम–एक प्राचीन नरेश, जिनकी गणना संजयने प्राचीन नरेशोंमें की है (**आदि० १ । २३५**) ।

सुप्रतिष्ठा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २९**) ।

सुप्रतीक–(१) एक प्राचीन नरेश (**आदि० १।२३५**) । (२) एक महर्षि, जो विभावसुके भाई और बड़े तपस्वी थे । ये भाईसे धन बाँटनेका आग्रह करते थे । इन्हें भाईसे हाथीकी योनिमें जन्म लेनेका शाप प्राप्त होना तथा इनका भी भाईको कछुआ होनेका शाप देना (**आदि० २९।१६–२४**)।(३) एक दिग्गज, जिसके वंशमें नागराज ऐरावत, वामन, कुमुद और अञ्जनकी उत्पत्ति हुई है (**उद्योग० ९९ । १५**) । इसके अप्रमेय रूपका विशेष वर्णन (**भीष्म० १२।३३–३५**)।(४) भगदत्तके गजराजका नाम । इसका अद्भुत पराक्रम (**भीष्म०९५ । २४–८६, द्रोण० २६ । १९–६८**) । अर्जुनद्वारा इसका वध (**द्रोण० २९ । ४३**) ।

सुप्रभा–(१) भगवान् श्रीकृष्णकी एक पटरानी । द्वारकामें इनके रहनेके लिये पद्मकूट नामक प्रासाद प्राप्त हुआ था । इसका विशेष वर्णन (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८१५**) । (२) पुष्करमें बहनेवाली

सरस्वतीका नाम, जो ब्रह्माजीके आवाहन करनेसे प्रकट हुई थी (शल्य० ३८ । १३-१४) । (३) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १०) । (४) वदान्य ऋषिकी कन्या (अनु० १९ । १२) । इसका अष्टावक्रके साथ विवाह (अनु० २१ । १८) ।

सुप्रयोगा–एक पवित्र नदी, जो अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है (वन० २२२ । २५) । इसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २१) ।

सुप्रवृद्ध–सौवीरदेशका एक राजकुमार, जो हाथमें ध्वज लेकर जयद्रथके पीछे चलता था (वन० २६५ । १०) । अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २७) ।

सुप्रसाद–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१) ।

सुप्रसादा–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १३) ।

सुप्रिया–एक अप्सरा, जो दक्ष-कन्या प्राधाके गर्भसे महर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ५१) । इसने अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें जाकर नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६३) ।

सुबल–(१) एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३६) । (२) गान्धार देशके एक राजा, जो प्रह्लादशिष्य नग्नजित्‌के अंशसे उत्पन्न हुए थे । इनकी संतति देवताओंके धर्मका नाश करनेवाली हुई । इनका पुत्र शकुनि 'सौबल' नामसे विख्यात हुआ । इनकी पुत्री गान्धारी नामसे प्रसिद्ध थी, जो दुर्योधनकी माता थी । ये दोनों भाई-बहन अर्थशास्त्र-के ज्ञानमें निपुण थे (आदि० ६३ । १११-११२) । भीष्मने जब धृतराष्ट्रके लिये गान्धारीका वरण करनेके निमित्त गान्धारराजके पास अपना दूत भेजा था, तब 'धृतराष्ट्र अंधे हैं' इस बातको लेकर राजा सुबलके मनमें बड़ा विचार हुआ था, परंतु उनके कुलप्रसिद्धि तथा आचार-विचारके विषयमें बुद्धिपूर्वक सोच-समझकर इन्होंने अपनी कन्या गान्धारीका वाग्दान कर दिया (आदि० १०९ । ११-१२) । युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें गान्धार-राज सुबल अपने महाबली पुत्र शकुनि, अचल और वृषकके साथ पधारे थे (सभा० ३४ । ६-७) । राजसूय-यज्ञकी समाप्तिके बाद जब पुत्रोंसहित सुबल अपने राज्यको पधारने लगे, तब नकुलने साथ जाकर इन्हें अपने राज्यकी सीमातक पहुँचाया था (सभा० ४५ । ४९) । (३) एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, जिनका पुत्र जयद्रथका साथी था (वन० २६५ । ८-९) । (४) अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (उद्योग० १०१ । ३) ।

सुबाहु–(१) कश्यप और कद्रूकी परम्परामें उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १४; उद्योग० १०३ । १६) । (२) एक अप्सरा, जो दक्षकन्या प्राधाके गर्भसे महर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ५०) । यह अर्जुनके जन्मकालमें नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२ । ६३) । (३) एक क्षत्रिय राजा, जो हर नामक दानवके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २३-२४) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय हुआ था (उद्योग० ४ । १४) । (४) एक राजा, जो क्रोधवश संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६०) । (५) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९४; आदि० ११६ । ३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २६-२७) । (६) काशीके एक राजा, जो युद्धमें पीठ दिखानेवाले नहीं थे । भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय इन्हें बलपूर्वक परास्त कर दिया (सभा० ३० । ६-७) । 'सुचित्र' नामसे इनके द्रौपदीके स्वयंवरमें जानेका भी उल्लेख हुआ है। वहाँ इनके साथ इनका पुत्र सुकुमार भी था (आदि० १८५ । १०) । (७) एक राक्षस, जो ताटका नामक राक्षसीका पुत्र तथा मारीचका भाई था । भगवान् श्रीरामद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९४) । (८) चेदिदेशके एक राजा, जो वीरबाहुके पुत्र और सुनन्दाके भाई थे (ये दमयन्तीके मौसेरे भाई थे) (वन० ६५ । ४५) । (९) कुलिन्दोंका एक राजा, इसका राज्य और नगर हिमालयके बहुत निकट था । वहाँ अनेक प्रकारकी आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखायी देती थीं । वहाँ हाथी-घोड़ोंकी बहुतायत थी । किरात, तङ्गण एवं कुलिन्द आदि जातियोंके लोग वहाँ निवास करते थे । वह प्रदेश देवताओंसे भी सेवित था । सुबाहुने राज्यकी सीमापर जाकर पाण्डवोंको बड़े आदर-सत्कारके साथ अपनाया, इससे पूजित हो वे सब लोग वहाँ सुखसे रहे । दूसरे दिन पाण्डवोंने इसके यहाँ अपने सेवकों तथा द्रौपदीके सामानोंको सौंपकर आगेको प्रस्थान किया था (वन० १४० । २४–२८) । यह महाभारतयुद्धमें पाण्डवपक्षकी ओरसे आया था । जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरने जब प्रार्थना की थी, उस दिन उनके शिबिरमें सुबाहु भी उपस्थित था (द्रोण० ८३ । ४–६) । (१०) एक संशप्तक योद्धा । अर्जुनके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १८ । १७–२०) । युयुत्सुके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसकी दोनों भुजाओंका काटा जाना (द्रोण० २५ । १३-१४) । (११) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) । (१२) एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६६) ।

सुबेल–लङ्कापुरीके पासका एक पर्वत (वन० २८४ । २१)

सुभग–शकुनिका भाई, जो भीमसेनद्वारा मारा गया (द्रोण० १५७ । २६) ।

सुभगा–(१) 'प्राधा' नामवाली कश्यपकी पत्नीसे उत्पन्न एक कन्या (आदि० ६५ । ४६) । (२) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । १८) ।

सुभद्रा–(१) वसुदेवजीकी पुत्री (आदि० २१८ । १४–१८) । भगवान् श्रीकृष्ण और सारणकी सगी बहन

(आदि० २१८ । १७-१८) । ये अपने पिताकी बड़ी लाड़ली थीं (आदि० २१८ । १७) । अर्जुनका इनके प्रति अनुराग और श्रीकृष्णके समक्ष इन्हें अपनी रानी बनानेका मनोभाव प्रकट करना (आदि० २१८ । १९) । श्रीकृष्णकी सलाहसे रैवतक पर्वतके उत्सवपर परिक्रमाके समय अर्जुनद्वारा इनका अपहरण (आदि० २१९ । ६–८) । अर्जुनके साथ इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० २२० । १३) । अर्जुनकी प्रेरणासे गोपीवेशमें इनका द्रौपदीके पास आगमन तथा इनके लिये द्वारकासे दहेजका आना (आदि० २२० अध्याय) । इनके गर्भसे अभिमन्युका जन्म (आदि० २२० । ६५-६६; आदि० ९५ । ७८) । पाण्डवोंके वनवास होनेपर वनसे अभिमन्युसहित ये श्रीकृष्णके साथ द्वारका चली गयी थीं (वन० २२ । ३-४) । उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहोत्सवमें इनका आना (विराट० ७२ । २२) । पुत्रशोकसे दुखी होनेपर इन्हें श्रीकृष्णद्वारा आश्वासन (द्रोण० ७७ । १२–२६) । श्रीकृष्णके समक्ष अभिमन्युके लिये इनका विलाप (द्रोण० ७८ । २–३५) । श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरसे द्वारकाको प्रस्थान (आश्व० ५२ । ५५) । वसुदेवजीके सामने श्रीकृष्णसे अभिमन्यु-वधका वृत्तान्त कहनेके लिये कहकर मूर्छित होना (आश्व० ६१ । ४) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये द्वारकासे हस्तिनापुर आना (आश्व० ६६ । ४) । उत्तराके मृत पुत्रको जिलानेके लिये इनकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना (आश्व० ६७ अध्याय) । परीक्षित्के जीवित होनेसे इनकी प्रसन्नता (आश्व० ७० । ६-७) । इनका उलूपी और चित्राङ्गदासे मिलना तथा उन दोनोंको उपहार देना (आश्व० ८८ । ३-४) । ये कुन्ती और गान्धारी दोनों सासुओंकी समान भावसे सेवा करती थीं (आश्रम० १ । ९) । ये अभिमन्युके लिये चिन्तित रहनेके कारण सदा अप्रसन्न एवं हर्षशून्य रहा करती थीं । केवल परीक्षित्को देखकर जीवन धारण करती थीं (आश्रम० २१ । १५-१६) । संजयका ऋषियोंके समक्ष इनका परिचय देना (आश्रम० २५ । १०) । गान्धारीका व्यासजीके समक्ष इन्हें पुत्रशोकसे संतप्त बताना (आश्रम० २९ । ४२) । युधिष्ठिरका दुःखसे आर्त होकर सुभद्राको परीक्षित् एवं वज्रका पालन करनेके लिये कहना (महाप्रस्था० १ । ७–९) । (२) सुरभिकी एक धेनुरूपा पुत्री, जो पश्चिमदिशाको धारण करनेवाली है (उद्योग० १०२ । ९) ।

सुभद्राहरणपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (आदि० अध्याय २१८ से २१९ तक) ।

सुभा–महर्षि अङ्गिराकी पत्नी । इनके गर्भसे बृहत्कीर्ति आदि सात पुत्र हुए थे (वन० २१८ । १-२) ।

सुभीम–तप नामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तर देवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (वन० २२० । ११) ।

सुभूमिक–सरस्वती-तटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ, इसका विशेष वर्णन (शल्य० ३७ । २–८) ।

सुभ्राज–सूर्यद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम भास्वर था (शल्य० ४५ । ३१) ।

सुभ्रु–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । ८) ।

सुमङ्गला–स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका(शल्य०४६ । १२) ।

सुमणि–चन्द्रमाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम मणि था (शल्य० ४५ । ३२) ।

सुमण्डल–एक राजा, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय सेनासहित जीत लिया था (सभा० २६ । ४) ।

सुमति– (१) एक राक्षस, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १३) । (२) एक दिव्य महर्षि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ४) ।

सुमन–इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक देवता (सभा० ७ । २२) ।

सुमना–(१) एक किरातोंका राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठा करता था (सभा० ४ । २५) । (२) एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १२) । (३) एक असुर, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९ । १३) । (४) । देवलोक-निवासिनी केकयराजकी पुत्री, जिसने शाण्डिलीदेवीसे उनकी साधनाके विषयमें प्रश्न किया था (अनु० १२३ । ३–६) ।

सुमनाख्य–कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ८) ।

सुमनोमुख–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १२) ।

सुमन्तु–एक ऋषि, जो महर्षि व्यासके शिष्य थे । व्यासजीने इन्हें सम्पूर्ण वेदों तथा महाभारतका अध्ययन कराया था (आदि० ६३ । ८९) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । ११) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये गये थे । (शान्ति० ४७ । ५) ।

सुमन्त्र–अयोध्यानरेश महाराज दशरथके सारथि (विराट० १२ । ८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

सुमन्यु–एक प्राचीन नरेश, जिन्होंने मुनिवर शाण्डिल्यको भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंकी कितनी ही पर्वतोपम राशियाँ दानमें दी थीं (अनु० १३७ । २२) (किसी-किसी प्रतिके अनुसार ये राजा भुमन्यु थे) ।

सुमल्लिक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५५) ।

सुमह–परशुरामजीके सारथि (विराट० १२ । ८ के बाद दा० पाठ) ।

सुमित्र–(१) एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २३६**) । (२) एक राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६३**) । यह सौवीर देशका राजा था । इसे लोग दत्तामित्रके नामसे भी जानते थे । अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा इसका दमन किया था । (**आदि० १३८ । २३**) । यह युधिष्ठिरकी सभामें विराजता था (**सभा० ४ । २५**) । (३) एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (**सभा० ४ । १०**) । (४) कुलिन्दनगरके शासक राजा सुमित्र, जिसका पुत्र सुकुमार था । इसे भीमसेनने पूर्व-दिग्विजयके समय जीता था (**सभा० २९ । १०**) । सहदेवने भी सुमित्र और सुकुमारपर विजय पायी (**सभा० ३१ । ४**) । (५) तप नामधारी पाञ्चजन्यनामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (**वन० २२० । १२**) । (६) अभिमन्युका सारथि (**द्रोण० ३५ । ३१**) । इसकी अभिमन्युके साथ युद्धसम्बन्धी कर्तव्यपर विचार करनेकी प्रार्थना (**द्रोण० ३६ । ३-४**) । अभिमन्युके आदेशसे इसने द्रोणाचार्यकी ओर (चक्रव्यूहके लिये) रथ बढ़ाया था (**द्रोण० ३६ । ९-१०**) । (७) एक हैहयवंशी नरेश, इनका एक मृगके पीछे दौड़ना (**शान्ति० १२५ । ९–१९**) । मृगको खोजते हुए इनका ऋषियोंके आश्रमपर पहुँचना और उनसे आशाके विषयमें प्रश्न करना (**शान्ति० १२६ । ८–१९**) । ऋषभका इन्हें वीरद्युम्न और तनु नामक मुनिका वृत्तान्त सुनाना (**शान्ति० १२७ अध्याय**) । ऋषभ ऋषिके उपदेशसे इनके द्वारा आशाका परित्याग (**शान्ति० १२८ । २५**) ।

सुमित्रा–(१) भगवान् श्रीकृष्णकी एक रानी (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२०**) । (२) महाराज दशरथकी एक पटरानी । लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता (**वन० २७४ । ८**) । ये भरतजीके साथ श्रीरामको लौटा लानेके लिये चित्रकूट गयी थीं (**वन० २७७ । ३६**) ।

सुमीढ–महाराज सुहोत्रद्वारा ऐक्ष्वाकीके गर्भसे उत्पन्न तीन पुत्रोंमेंसे एक । इनके शेष दो भाई अजमीढ और पुरुमीढ थे (**आदि० ९४ । ३०**) ।

सुमुख–(१) कश्यप और कद्रूकी परम्परामें उत्पन्न एक प्रमुख नाग (**आदि० ३५ । १४**) । यह ऐरावतकुलमें उत्पन्न आर्यकका पौत्र, वामनका दौहित्र और चिकुरका पुत्र था (**उद्योग० १०३ । २४-२५**) । मातलिकन्या गुणकेशीके साथ इसके विवाहका प्रस्ताव । भगवान् विष्णुके आदेशसे इन्द्रका इसे दीर्घायु बनाना । गुणकेशीसे विवाह करके इसका घरको जाना (**उद्योग० १०४ । २७–२९**) । भगवान् विष्णुने इसे पैरके अँगूठेसे उठाकर गरुड़की छातीपर रख दिया था, तभीसे गरुड़ इसे सदा साथ लिये रहते हैं (**उद्योग० १०५ । ३१**) । (२) एक राजा, जिसने राजा युधिष्ठिरके पास भेंटकी प्रमुख वस्तुएँ भेजी थीं (**सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ**) । (३) अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (**उद्योग० १०१ । २**) । (४) गरुड़की प्रमुख संतानोंकी परम्परामें उत्पन्न एक पक्षी (**उद्योग० १०१ । १२**) ।

सुमुखी–(१) कर्णके सर्पमुख बाणमें प्रविष्ट अश्वसेन नामक नागकी माता । मुखसे पुत्रकी रक्षा करनेके कारण इसे सुमुखी कहते हैं (**कर्ण० ९० । ४२**) । (२) अलकापुरीकी अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके स्वागत-समारोहमें कुबेर-भवनमें नृत्य किया था (**अनु० १९ । ४५**) ।

सुमेरु–एक पर्वत (देखिये मेरु) ।

सुयजु–सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र, इनकी माताका नाम 'पुष्करिणी' था (**आदि० ९४ । २४**) ।

सुयज्ञा—प्रसेनजित्की पुत्री, पुरुवंशीय महाराज महाभौमकी पत्नी तथा अयुतनायीकी माता (**आदि० ९५ । २०**) ।

सुयशा—बाहुदराजकी पुत्री, जिसके साथ अनश्वाके पुत्र परीक्षित्ने विवाह किया था । इसके गर्भसे भीमसेनका जन्म हुआ (**आदि० ९५ । ४१-४२**) ।

सुयम—राक्षस शतशृङ्गका तीसरा पुत्र, जो अम्बरीषके सेनापति सुदेवद्वारा मारा गया था (**शान्ति० ९८ । ११ के बाद दा० पाठ**) ।

सुरकृत्—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५७**) ।

सुरजा—एक अप्सरा, जो दक्षकन्या 'प्राधा' के गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (**आदि० ६५ । ५०**) । यह अर्जुनके जन्मकालमें नृत्य करने आयी थी (**आदि० १२२ । ६३**) ।

सुरता—एक अप्सरा, जो दक्षकन्या 'प्राधा' के गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई थी (**आदि० ६५ । ५०**) । यह अर्जुनके जन्मकालमें नृत्य करने आयी थी (**आदि० १२२ । ६३**) ।

सुरथ—(१) एक राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६२**) । (२) एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । ११**) । (३) एक राजा, जो शिबिदेशके राजकुमार कोटिकास्यके पिता थे (**वन० २६५ । ६**) । (४) त्रिगर्तदेशका एक राजा, जो जयद्रथका अनुगामी था । द्रौपदीहरणके समय इसका नकुलके साथ युद्ध और उनके द्वारा वध (**वन० २७१ । १८–२२**) । (५) एक संशप्तक योद्धा, जिसका अर्जुनके साथ युद्ध हुआ था (**द्रोण० १८ । २०–२३**) । (६) द्रुपदका पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा निहत हुआ था (**द्रोण० १५६ । १८०**) । (७) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चाल महारथी, जो अश्वत्थामाके साथ युद्ध करते समय उसके हाथों मारा गया (**शल्य० १४ । ३७–४३**) । (८) जयद्रथका पुत्र, जो दुःशलाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । इसने अश्वमेधीय अश्वके साथ अर्जुनके सिन्धुदेशमें पहुँचने-

का समाचार सुनकर पिताकी मृत्युका स्मरण करके भयभीत हो प्राण त्याग दिया (आश्व० ७८ । २८–३०) ।

सुरथा—राजा शिबिकी माता (**वन० १९७ । २५**) ।

सुरथाकार—कुशद्वीपका तीसरा वर्ष (**भीष्म० १२ । १३**) ।

सुरप्रवीर—तपनामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (**वन० २२० । १३**) ।

सुरभि (सुरभी)—(१) कामधेनु नामक गौ । इनका समुद्रसे प्राकट्य हुआ (**आदि० १८ । ३६ के बाद दा० पाठ**) । इन्हें दक्षकी कन्या माना गया है । देवी सुरभिने कश्यपजीके सहवाससे एक गौको जन्म दिया, जिसका नाम नन्दिनी था । महर्षि वसिष्ठने नन्दिनीको अपनी होमधेनुके रूपमें प्राप्त किया था (**आदि० ९८ । ८-९**) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (**सभा० ११ । ४०**) । इनका अपने पुत्र बैलके लिये इन्द्रसे दुःख प्रकट करना (**वन० ९ । ९–१४**) । नारदजीद्वारा मातलिसे इनकी तथा इनकी संतानोंका वर्णन (**उद्योग० १०२ अध्याय**) । इनके फेनसे बकराज राजधर्माको जीवनकी प्राप्ति (**शान्ति० १७२ । ३–५**) । प्रजापतिके सुरभि-गन्धयुक्त श्वाससे इनकी उत्पत्तिका वर्णन (**अनु० ७७ । १७**) । इनकी तपस्या और ब्रह्माजीसे इन्हें अमरत्व एवं गोलोकमें निवासकी प्राप्ति (**अनु० ८३ । २९–३९**) । इनके निवासभूत गोलोककी दिव्यताका वर्णन (**अनु० ८३ । ३७–४४**) । इनका कार्तिकेयको एक लाख गौओंकी भेंट देना (**अनु० ८६ । २३**) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ खाना (**अनु० ९४ । ४१**) । (२) क्रोधवशाकी क्रोधजनित कन्या, इसने दो कन्याओंको उत्पन्न किया । जिनके नाम थे—रोहिणी तथा गन्धर्वी (**आदि० ६६ । ६१, ६७**) ।

सुरभिमान्—एक अग्नि, जिनके लिये मृत्युसूचक विलाप सुनायी देने अथवा कुक्कुर आदिके द्वारा अग्निहोत्रकी अग्निका स्पर्श हो जानेपर 'अष्टाकपाल' पुरोडाश देनेका विधान है (**वन० २२१ । २८**) ।

सुरभीपत्तन—एक दक्षिणभारतीय जनपद, जिसे सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर दूतोंद्वारा ही अपने अधीन कर लिया (**सभा० ३१ । ६८**) ।

सुरवीथी—इन्द्रलोकमें प्रसिद्ध नक्षत्रमार्ग (**वन० ४३ । १२**) ।

सुरस—एक कश्यपवंशी नाग (**उद्योग० १०३ । १६**) ।

सुरसा—(१) क्रोधवशाकी क्रोधजनित कन्या, नाग तथा पन्नग जातिके सर्पोंकी माता । इनकी तीन पुत्रियाँ थीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—अनला, रुहा एवं वीरुधा (**आदि० ६६ । ६१, ७०**) । ये ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित होकर उनकी उपासना करती हैं (**सभा० ११ । ३९**) । (२) एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें नृत्य किया था (**आदि० १२२ । ६३**) ।

सुरहन्ता—तप नामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (**वन० २२० । १३**) ।

सुरा—एक देवी, जो समुद्र (वरुणालय) से प्रकट हुई (**आदि० १८ । ३५**) । ये वरुणके द्वारा उनकी ज्येष्ठ पत्नी 'देवी' के गर्भसे उत्पन्न हुई थीं और देवताओंको आनन्दित करनेवाली थीं (इनको वारुणी भी कहते हैं) (**आदि० ६६ । ५२**) । ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (**सभा० ११ । ४२**) ।

सुरारि—एक राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका विचार किया गया था (**उद्योग० ४ । १५**) ।

सुराव—इल्वलद्वारा अगस्त्यजीको दिये गये रथके एक घोड़ेका नाम (**वन० ९९ । १७**) ।

सुराष्ट्र—(१) दक्षिण-पश्चिम भारतका एक जनपद, जहाँके राजा कौशिकाचार्य आकृतिको माद्रीकुमार सहदेवने पराजित किया था (**सभा० ३१ । ६१**) । दक्षिण दिशाके तीर्थोंके वर्णन-प्रसंगमें सुराष्ट्र देशके अन्तर्गत चमसोद्भेद, प्रभासक्षेत्र, पिण्डारक एवं उज्जयन्त (रैवतक) पर्वत आदि पुण्य-स्थानोंका उल्लेख हुआ है (**वन० ८८ । १९–२१**) । (२) एक क्षत्रियवंश, जिसमें रुषर्धिक नामक कुलाङ्गार राजा प्रकट हुआ था (**उद्योग० ७४ । १४**) ।

सुरुच—अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (**उद्योग० १०१ । ३**) ।

सुरूपा—सुरभिकी एक धेनुस्वरूपा पुत्री, जो पूर्वदिशाको धारण करनेवाली है (**उद्योग० १०२ । ८**) ।

सुरेणु—ऋषभद्वीपमें बहनेवाली सरस्वती नदीका नाम (**शल्य० ३८ । २६**) ।

सुरेश—(१) तप नामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (**वन० २२० । १३**) । (२) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३५**) ।

सुरेश्वर—ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (**शान्ति० २०८ । १९**) ।

सुरोचना—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६ । २९**) ।

सुरोद—सुराका समुद्र, जो दधिमण्डोदसागरके बाद पड़ता है (**भीष्म० १२ । २**) ।

सुरोमा—तक्षककुलोत्पन्न एक सर्प, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (**आदि० ५७ । १०**) ।

सुलभा—एक संन्यासिनी कुमारी, जो योगधर्मके अनुष्ठानद्वारा सिद्धि प्राप्त करके अकेली ही इस पृथ्वीपर विचरण करती थी (**शान्ति० ३२० । ७**) । इसने त्रिदण्डी संन्यासियोंके मुखसे मोक्ष-तत्त्वकी जानकारीके विषयमें मिथिलापति राजा जनककी प्रशंसा सुनी । सुनकर इसके मनमें उनके दर्शनका संकल्प हुआ । इसने योग-शक्तिसे अपना पहला शरीर छोड़कर दूसरा परम सुन्दर

रूप धारण कर लिया । फिर यह पलभरमें विदेह देशकी राजधानी मिथिलामें जा पहुँची । वहाँ इसने भिक्षा लेनेके बहाने मिथिलेश्वरका दर्शन किया । राजाने इसका स्वागत-पूजन करके अन्न देकर संतुष्ट किया । तदनन्तर यह योग-शक्तिसे उनकी बुद्धिमें प्रविष्ट हो गयी और उनके मनको बाँध लिया । फिर एक ही शरीरमें रहकर राजा और सुलभाका परस्पर संवाद आरम्भ हुआ । राजाद्वारा अयोग्य एवं असङ्गत वचनोंद्वारा इसका तिरस्कार (**शान्ति० ३२० ८–७५**) । राजाके वचनोंसे विचलित न होकर इसने विद्वत्तापूर्ण भाषणद्वारा उन्हें उत्तर दिया और अपना परिचय देते हुए कहा—मैं राजर्षिप्रधानके कुलमें उत्पन्न हुई हूँ । क्षत्रियकन्या हूँ । मैंने अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया है । मेरा नाम सुलभा है । मैं सदा स्वधर्ममें स्थित रहती हूँ (**शान्ति० ३२० । ७६–१९२**) ।

सुलोचन–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९४; आदि० ११६ । ४**) । इसने दुर्योधनके साथ रहकर राजा द्रुपदपर आक्रमण किया था (**आदि० १३७ । ६**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**भीष्म० ६४ । ३७-३८**) ।

सुवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७३**) ।

सुवर्चला–(१) महर्षि देवलकी पुत्री । इसका पितासे अपने लिये वरका लक्षण कहना । स्वयंवरमें इसके द्वारा ऋषिकुमारोंका प्रत्याख्यान । श्वेतकेतु और इसकी बात-चीत तथा इसके द्वारा श्वेतकेतुका वरण । श्वेतकेतुके साथ इसका विवाह । पतिके साथ इसके अध्यात्मसम्बन्धी प्रश्नोत्तर । गृहस्थ-धर्मका पालन करते हुए इसे परमगतिकी प्राप्ति (**शान्ति० २२० । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ४९८८ से ४९९५ तक**) । (२) सूर्यकी पत्नी (**अनु० १४६ । ५**) ।

सुवर्चा–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १०२; आदि० ११६ । १०**) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ३**) । भीमसेन-द्वारा इसका वध (**कर्ण० ८४ । ५-६**) । (२) राजा सुकेतुका एक पुत्र, जो अपने पिता तथा भाई सुनामाके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ९**) । (३) तप नामधारी पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र, जो यज्ञमें विघ्न डालनेवाले पंद्रह उत्तरदेवों (विनायकों) मेंसे एक हैं (**वन० २२० । १३**) । (३) एक सत्यवादी ब्राह्मण ऋषि, जिन्होंने रातके समय सत्यवान् और सावित्रीके न लौटनेसे चिन्तित हुए महाराज द्युमत्सेनको आश्वासन दिया था (**वन० २९८ । १०**) । (४) अपने वंशका विस्तार करनेवाला गरुड़का एक पुत्र (**उद्योग० १०१ । २**) । (५) कौरवपक्षका एक योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (**द्रोण० ४८ । १५-१६**) । (६) हिमवान्‌द्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम अतिवर्चा था (**शल्य० ४५ । ४६**) । (७) सूर्यवंशी राजा खनीनेत्रके पुत्र । प्रजाओंद्वारा इनके पिता खनीनेत्रको हटाकर इनका राजपदपर अभिषेक (**आश्व० ४ । ९**) । इनका करन्धम नाम पड़नेका कारण (**आश्व० ४ । १५-१६**) । इनके त्रेतायुगके आरम्भमें एक कान्तिमान् पुत्र हुआ, जो 'कारन्धम' कहलाया । इसीका नाम अविक्षित् था (**आश्व० ४ । १८**) ।

सुवर्ण–(१) एक ब्रह्मचारी तथा विख्यात गुणवान् देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आया था (**आदि० १२२ । ५८**) । (२) एक तपस्वी ब्राह्मण, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान थी । इन्होंने मनुसे पुष्पादि-दानके विषयमें प्रश्न किया था (**अनु० ९८ । ३–९**) ।

सुवर्णचूड–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (**उद्योग० १०१ । ९**) ।

सुवर्णतीर्थ–एक पुण्यमय तीर्थ, जहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने रुद्रदेवकी प्रसन्नताके लिये उनकी आराधना की और उनसे अनेक देवदुर्लभ उत्तम वर प्राप्त किये । इस तीर्थमें जाकर भगवान् शङ्करकी पूजा करनेसे अश्वमेधयज्ञके फल और गणपतिपदकी प्राप्ति होती है (**वन० ८४ । १८—२२**) ।

सुवर्णवर्मा–काशीके राजा, जो वपुष्टमाके पिता थे । जनमेजयके मन्त्रियोंने इनके पास जाकर उनके लिये राजकुमारी वपुष्टमाका वरण किया था (**आदि० ४४ । ८**) । इनके द्वारा अपनी पुत्रीका राजा जनमेजयके साथ विवाह (**आदि० ४४ । ९**) ।

सुवर्णशिरा–पश्चिम-दिशामें रहकर सामगान करनेवाले एक महर्षि । इनके केश पिङ्गलवर्णके हैं । इनका प्रभाव अप्रमेय और मूर्ति अदृश्य है (**उद्योग० ११० । १२**) ।

सुवर्णष्ठीवी–राजा सृंजयका पुत्र । इसका सुवर्णष्ठीवी नाम पड़नेका कारण (**द्रोण० ५५ । २३ के बाद दा० पाठ-सहित २४**) । लुटेरोंद्वारा इसका हरण और वध (**द्रोण० ५५ । ३०-३१**) । नारदजीके वरदानसे पुनरुज्जीवन (**द्रोण० ७१ । ८-९**) । इनके जन्म, मरण और पुनरु-ज्जीवनके वृत्तान्तका पुनर्वर्णन (**शान्ति० ३१ अध्याय**) ।

सुवर्णा–इक्ष्वाकुकुलकी कन्या । पूरुवंशीय महाराज सुहोत्रकी पत्नी । हस्ती नामक राजाकी माता (**आदि० ९५ । ३४**) ।

सुवर्णाभ–स्वारोचिष मनुके पौत्र एवं शङ्खपदके पुत्र, जो दिक्पाल थे । इन्हें पिताने सात्वतधर्मका उपदेश दिया (**शान्ति० ३४८ । ३८**) ।

सुवर्मा–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ६**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १२७ । ६६**) ।

सुवस्त्रा–एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २५**) ।

सुवाक्–एक ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका बहुत आदर करते थे (**वन० २६ । २४**) ।

सुवामा–एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । २८**) ।

सुवास्तुक—एक राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । १३**) ।

सुवाह—स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६६**) ।

सुविशाला—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (**शल्य० ४६।२८**)।

सुवीर—(१) एक राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ६०**) । (२) एक क्षत्रियकुल, जिसमें अजविन्दु नामक कुलाङ्गार राजा उत्पन्न हुआ था (**उद्योग० ७४ । १४**) । (३) राजा द्युतिमान्के धर्मात्मा पुत्र, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात थे । ये इन्द्रके समान पराक्रमी थे । इनके पुत्रका नाम दुर्जय था (**अनु० २ । १०–१२**) ।

सुवेणा—एक नदी, जिसे मार्कण्डेयजीने बालमुकुन्दके उदरमें देखा था (**वन० १८८ । १०४**) ।

सुव्रत—(१) एक अनन्तकीर्ति अमित तेजस्वी महात्मा, जिनका पवित्र आश्रम उत्तराखण्डमें है (**वन० ९० । १२–१३**) । (२) मित्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम सत्यसंध था (**शल्य० ४५ । ४१**) । (३) विधाताद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम सुकर्मा था (**शल्य० ४५ । ४२**) ।

सुशर्मा—(१) वृद्धक्षेमका पुत्र एवं त्रिगर्तदेशका राजा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (**आदि० १८५ । ९**) । इसका दुर्योधनको मत्स्यदेशपर आक्रमण करनेकी सलाह देना (**विराट० ३० । १–१३**) । इसके द्वारा विराट-नगरपर चढ़ाई (**विराट० ३० । २६**) । गोहरणके समय इसका युद्धमें राजा विराटको बंदी बनाना (**विराट० ३३ । ७–९**) । भीमसेनद्वारा जीते-जी इसका पकड़ा जाना (**विराट० ३३ । २५–४८**) । युधिष्ठिरकी कृपासे इसका (दासभावसे) छुटकारा (**विराट० ३३ । ५८–६१**) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । २०**) । प्रथम दिनके संग्राममें चेकितानके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ४५ । ६०–६२**) । अर्जुनद्वारा पराजित होकर युद्धसे हट जाना (**भीष्म० ८२ । १**) । अर्जुनके साथ युद्ध (**भीष्म० ८४ । ५३; भीष्म० १०२ । १०–१८**) । अर्जुन और भीमसेनके साथ युद्ध (**भीष्म० ११४ अध्याय**) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (**द्रोण० १४ । ३७–३९**) । अर्जुनको मारनेके लिये भाइयोंसहित इसकी प्रतिज्ञा (**द्रोण० १७ । ११–१८**) । भाइयों और संशप्तक-सेनासहित इसका शपथ खाना (**द्रोण० १७ । २९–३६**) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (**द्रोण० १९३ । १८**) । अर्जुनके साथ युद्ध करते समय संशप्तकों-द्वारा इसका अर्जुनको रथ और सारथिसहित पकड़वा लेना (**कर्ण० ५३ । १३–१६**) । अर्जुनद्वारा इसका मारा जाना (**शल्य० २७ । ४६**) ।

महाभारतमें आये हुए सुशर्माके नाम—प्रस्थलाधिप, प्रस्थलाधिपति, रुक्मरथ, त्रैगर्त, त्रिगर्त, त्रिगर्ताधिपति, त्रिगर्तराट् और त्रिगर्तराज आदि ।

(२) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चालयोद्धा । चित्रसेनके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (**भीष्म० ११६ । २७–२९**) । इसका भीष्मद्वारा पीड़ित होना तथा अर्जुनद्वारा इसकी रक्षा (**भीष्म० ११८ । ४१-४२**) । कर्णके साथ इसका युद्ध और उसके द्वारा वध (**कर्ण० ५६ । ४४–४८**) ।

सुशोभना—मण्डूकराजकी कन्या । इसका इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्के साथ मिलन और विवाह (**शल्य० १९२ । ९–१२**) । इसका अपनी शर्तके अनुसार बावलीमें लुप्त होना (**शल्य० १९२ । २२**) । पुनः इसकी राजासे भेंट (**शल्य० १९२ । ३५**) । इसके गर्भसे शल, दल, बल नामक तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति (**शल्य० १९२ । ३८**) ।

सुश्रवा—विदर्भराजकुमारी, पूरुवंशीय राजा जयत्सेनकी पत्नी, अवाचीनकी माता (**आदि० ९५ । १७**) ।

सुश्रुत—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (**अनु० ४ । ५५**) ।

सुषेण—(१) धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्प-सत्रमें दग्ध हो गया था (**आदि० ५७ । १६**) । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ७**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**भीष्म० ६४ । ३४; द्रोण० १२७ । ६०**) । (धृतराष्ट्रपुत्र 'सुषेण' का वध दो स्थलोंमें आया है; अतः अनुमान होता है कि उनके दो पुत्र इस एक ही नामसे प्रसिद्ध थे । उनका पृथक्-पृथक् और भी नाम रहा होगा, पर उस नामसे उनकी प्रसिद्धि नहीं थी ।) (३) पूरुवंशीय महाराज अविक्षित्के पौत्र एवं परीक्षित्-के पुत्र (**आदि० ९४ । ५२–५५**) । (४) जमदग्नि-पुत्र । माता रेणुका । मातृ-वधकी आज्ञा न माननेसे इन्हें पिताका शाप (**वन० ११६ । १२**) । परशुराम-द्वारा शापसे इनका उद्धार (**वन० ११६ । १७**) । (५) वानरराज वालीके श्वसुर । ताराके पिता । इनका सहस्र कोटि (दस अरब) वानर-सेनाके साथ श्रीरामके पास उपस्थित होना (**वन० २८३ । २**) । (६) कर्ण-का पुत्र तथा चक्ररक्षक । नकुलके साथ इसका युद्ध (**कर्ण० ४८ । १८, ३४–४०**) । उत्तमौजाद्वारा इसका वध (**कर्ण० ७५ । १३**) । (७) कर्णका पुत्र । नकुलद्वारा इसका वध (**शल्य० १० । ४९–५०**) । (कर्णपुत्र 'सुषेण'का वध दो स्थानों-पर आया है; अतः यह अनुमान होता है कि कर्णके दो पुत्र इसी नामसे प्रसिद्ध थे ।)

सुसंकुल—उत्तरभारतका एक जनपद; इसे और यहाँके राजा-को अर्जुनने जीता था (**सभा० २७ । ११**) ।

सुसामा—धनञ्जयगोत्रीय एक श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सामगान करते थे (**सभा० ३३ । ३४**) ।

सुस्थल–एक भारतीय जनपद और वहाँके निवासी (**सभा० १४ । १६**) ।

सुस्वर–गरुड़की प्रमुख संतानोंकी परम्परामें उत्पन्न एक पक्षी (**उद्योग० १०१ । १४**) ।

सुहनु–एक दानव, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (**सभा० ९ । १३**) ।

सुहवि–सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र । इनकी माताका नाम 'पुष्करिणी' था (**आदि० ९४ । २४**) ।

सुहस्त–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । १०२; आदि० ११६ । १०**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**द्रोण० १५७ । १९**) ।

सुहोत्र–(१) एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २२६**) । ये सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके ज्येष्ठ पुत्र थे । इनकी माताका नाम 'पुष्करिणी' था (**आदि० ९४ । २४**) । इन्हें ही भूमण्डलका राज्य प्राप्त हुआ और इन्होंने राजसूय तथा अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये थे । इनके राज्यकी विशेषता (**आदि० ९४ । २५–२९**) । इनके द्वारा इक्ष्वाकुकुलनन्दिनी सुवर्णाके गर्भसे अजमीढ, सुमीढ तथा पुरुमीढ़की उत्पत्ति (**आदि० ९४ । ३०**) । इनकी दानशीलता और पराक्रम आदि गुणोंका विशेष वर्णन (**द्रोण० ५६ अध्याय**) । ये अतिथि-सत्कारके प्रेमी थे । इनके राज्यमें इन्द्रने एक वर्षतक सुवर्णकी वर्षा की थी । नदियाँ अपने जलके साथ सुवर्ण बहाया करती थीं । इन्द्रने बहुत-से सोनेके कछुए, केकड़े, नाकें, मगर और सूँस आदि उन नदियोंमें गिराये थे । राजाने सारी सुवर्ण-राशि ब्राह्मणोंमें बाँट दी थी (**शान्ति० २९ । २५–२९**) । (२) मद्रराज द्युतिमान्की पुत्री विजयाके गर्भसे पाण्डुकुमार सहदेवद्वारा उत्पन्न (**आदि० ९५ । ८०**) । (३) एक ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करते थे (**वन० २६ । २४**) । (४) एक कुरुवंशी नरेश, इनका राजा उशीनरवंशी शिविके मार्गको रोकना । नारदजीके कहनेपर इनका शिविको मार्ग देना (**वन० १९४ । २, ७**) । (५) एक राक्षस, जो प्राचीनकालमें इस भूतलका शासक था, परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (**शान्ति० २२७ । ५१**) ।

सुहोता–सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र । इनकी माताका नाम 'पुष्करिणी' था (**आदि० ९४ । २४**) ।

सुह्म–(१) पूर्व-भारतका एक प्राचीन जनपद, जिसपर महाराज पाण्डुने विजय पायी थी (**आदि० ११२ । २९**) । भीमसेनने भी पूर्व-दिग्विजयके समय इस जनपदको जीता था (**सभा० ३० । १६**) । (२) उत्तरभारतका एक पर्वतीय प्रदेश, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय जीता था (**सभा० २७ । २१**) ।

सूक्ष्म–एक विख्यात दानव, जो कश्यपद्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६५ । २५**) । यही इस भूतलपर राजा बृहद्रथके रूपमें उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । १८-१९**) ।

सूचीवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७२**) ।

सूत–एक ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (**शान्ति० ४७ । १२**) । ये विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्र हैं (**अनु० ४ । ५७**) ।

सूपकर्ता–भाँति-भाँतिके व्यञ्जन बनानेवाला रसोइया (**विराट० २ । ९**) ।

सूर्य–(१) भगवान् सूर्य या सविता । दिवःपुत्र आदि बारह नाम विवस्वान् (सूर्य) के ही बोधक माने गये हैं । इनमें अन्तिम नाम रवि है । रविको 'मह्य' कहा गया है । उनके पुत्र देवभ्राट् हैं (**आदि० १ । ४२-४३**) । छलसे अमृतपान करते हुए राहुके गुप्त भेदका इनके द्वारा उद्घाटन हुआ (**आदि० १९ । ५**) । इसीसे इनके प्रति राहुकी शत्रुता हो गयी (**आदि० १९ । ९**) । राहुसे पीड़ित हो इनका जगत्के विनाशके लिये संकल्प हुआ (**आदि० २४ । १०**) । फिर देवताओंकी प्रेरणासे अरुणने इनका सारथ्य ग्रहण किया (**आदि० २४ । २०**) । कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे प्रकट बारह आदित्य इन्हींके स्वरूप हैं (**आदि० ६५ । १४-१५**) । इनकी भार्या त्वष्टाकी परम सौभाग्यवती पुत्री 'संज्ञा' देवी हैं (**आदि० ६६ । ३५**) । इनके द्वारा कुन्तीके गर्भसे कर्णका जन्म (**आदि० ११० । १८**) । वसिष्ठजीद्वारा इनकी स्तुति (**आदि० १७२ । १८ के बाद दा० पाठ**) । वसिष्ठकी प्रार्थनापर इनके द्वारा अपनी पुत्री तपतीका संवरणके लिये समर्पण (**आदि० १७२ । २६**) । धौम्यद्वारा युधिष्ठिरको सूर्यदेवके एक सौ आठ नामोंका उपदेश, युधिष्ठिरद्वारा इनकी पूजा, उपासना और पूर्वोक्त नामोंका जप एवं स्तुति, इससे संतुष्ट होकर इनका उन्हें दर्शन एवं अन्नपात्र देना तथा चौदहवें वर्षमें राज्य प्राप्त होनेका आशीर्वाद प्रदान करना (**वन० ३ । १५—७४**) । धौम्यद्वारा इनकी गतिका वर्णन (**वन० १६३ । २८—४२**) । कर्णको स्वप्नमें दर्शन देकर इनका इन्द्रको कवच-कुण्डल न देनेका आदेश देना (**वन० ३०० । १०—२०; वन० ३०१ अध्याय**) । कर्णसे इन्द्रकी शक्ति लेकर ही कवच-कुण्डल देनेकी सम्मति देना (**वन० ३०२ । ११—१७**) । कुन्तीके आवाहनपर प्रकट होना और उनके साथ वार्तालाप करना (**वन० ३०६ । ८–२८**) । कुन्तीके उदरमें इनके द्वारा गर्भस्थापन (**वन० ३०७ । २८**) । द्रौपदीद्वारा भगवान् सूर्यकी उपासना और इनका द्रौपदीकी रक्षाके लिये अदृश्यरूपसे एक राक्षसको नियुक्त कर देना (**विराट०**

१५ । १९-२०) । जिधर सूर्यका उदय हो वही पूर्व दिशा है । पूर्व दिशा ही सूर्यमार्गका द्वार है (**उद्योग० १०८ । ३–५**) । ये दूसरोंका अहित करनेवाले कृतघ्न असुरोंका क्रोधपूर्वक विनाश करते हैं (**उद्योग० १०८ । १६**) । पूर्वकालमें भगवान् सूर्यने वेदोक्त विधिसे यज्ञ करके आचार्य कश्यपको दक्षिणारूपमें जिस दिशाका दान किया था, उसे दक्षिण दिशा कहते हैं (**उद्योग० १०९ । १**) । जिसमें दिनके पश्चात् सूर्यदेव अपनी किरणोंका विसर्जन करते हैं, वही पश्चिम दिशा है (**उद्योग० ११० । २**) । कर्णके प्रति कुन्तीके कथनका सूर्यद्वारा समर्थन (**उद्योग० १४६ । १-२**) । इनके विस्तार आदिका वर्णन (**भीष्म० १२ । ४४-४५**) । कर्ण और अर्जुनके द्वैरथयुद्धमें कर्णकी विजयके लिये इन्द्रसे इनका विवाद (**कर्ण० ८७।५७–५९**)। इनके द्वारा स्कन्दको पार्षद प्रदान (**शल्य० ४५।३१**)। महादेवजीने इन्हें तेजस्वी ग्रहोंका अधिपति बनाया (**शान्ति० ११२ । ३१**) । इन्होंने याज्ञवल्क्यको वेद-ज्ञानका वरदान दिया (**शान्ति० ३१८ । ६–१२**) । महापद्मनामक नागसे इनका उञ्छ एवं शिलवृत्तिकी महिमाका वर्णन करना (**शान्ति० ३६३ अध्याय**) । कार्तिकेयको सुन्दर कान्तिकी भेंट देना (**अनु० ८६ । २३**) । महर्षि जमदग्निसे क्षमा-प्रार्थना करके उनकी शरणमें आना (**अनु० ९५ । २० से ९६ । ७ तक**) । जमदग्नि ऋषिको छाता और जूता देना (**अनु० ९६ । १४-१५**) । देवासुर-संग्राममें राहुद्वारा सूर्य और चन्द्रमाके घायल होनेसे सब ओर अन्धकार छा गया । देवतालोग असुरोंद्वारा मारे जाने लगे । उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे अत्रिमुनिने चन्द्रमाका स्वरूप धारण किया और सूर्यदेवको तेजस्वी बनाया था (**अनु० १५६ । २–१०**)। कुन्तीने व्यासजीके समक्ष अपने गर्भसे सूर्यदेवताद्वारा कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाया था (**आश्रम० ३० अध्याय**)। (२) एक विख्यात दानव, जो कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६५ । २६**) । यह राजा दरदके रूपमें पृथ्वीपर पैदा हुआ था (**आदि० ६७ । ५८**) ।

सूर्यतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान और देवता-पितरोंका अर्चन करके उपवास करनेवाला पुरुष अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और सूर्यलोकमें जाता है (**वन० ८३ । ४८-४९**) ।

सूर्यदत्त–विराटके भाई (**उद्योग० ५७ । ६**) । इनका एक नाम शतानीक भी था (**विराट० ३१ । ११-१२**) । इन्होंने गोहरणके समय कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थान किया था (**विराट० ३१ । १५**) । इन्होंने त्रिगर्तोंकी सेनापर आगेसे आक्रमण किया था और सौ त्रिगर्तोंको मारकर ये उनकी सेनामें घुस गये थे । (**विराट० ३२ । १९–२१**) । ये उदार रथी थे (**उद्योग० १७१ । १५-१६**) । द्रोणद्वारा इनके मारे जानेकी चर्चा (**कर्ण० ६ । ३४**) ।

सूर्यध्वज–एक राजा, जो द्रौपदी-स्वयंवरमें उपस्थित था (**आदि० १८५ । १०**) ।

सूर्यनेत्र–गरुड़की प्रमुख संतानोंकी परम्परामें उत्पन्न एक पक्षी (**उद्योग० १०१ । १३**) ।

सूर्यभास–कौरवपक्षका योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (**द्रोण० ४८ । १५-१६**) ।

सूर्यवर्चा–एक देवगन्धर्व, जो कश्यपद्वारा मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६५ । ४२**) । यह अर्जुनके जन्मोत्सव-में आया था (**आदि० १२२ । ५५**) ।

सूर्यवर्मा–त्रिगर्तदेशका राजा, जो अश्वमेधीय अश्वके पीछे गये हुए अर्जुनके साथ युद्धमें परास्त हुआ था (**आश्व० ७४ । ९–१३**) । इसके भाईका नाम केतुवर्मा था, जो अर्जुनद्वारा मारा गया था (**आश्व० ७४ । १४-१५**) ।

सूर्यश्री–एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३३**) ।

सूर्यसावित्र–एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३४**) ।

सूर्याक्ष–एक राजा, जो क्रथननामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (**आदि० ६७ । ५७**) ।

सृंजय–(१) एक प्राचीन नरेश (**आदि० १ । २२५**) । ये यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (**सभा० ८ । १५**) । श्वित्तिके पुत्र, जिनके पर्वत और नारद ये दोनों ऋषि मित्र थे (**द्रोण० ५५ । ५**) । इनका नारदको अपनी कन्या देना स्वीकार करना (**द्रोण० ५५ । १३**) । पुत्रकी कामनासे ब्राह्मणोंकी आराधना करना (**द्रोण० ५५ । १८-१९**) । नारदजीसे पुत्रप्राप्तिका वर माँगना (**द्रोण० ५५ । २२-२३**) । इन्हें सुवर्णष्ठीवी नामक पुत्रकी प्राप्ति (**द्रोण० ५५ । २४**) । लुटेरोंद्वारा मारे जानेपर इनका पुत्रके शोकसे विलाप करना (**द्रोण० ५५ । ३३-३४**) । इन्हें नारदजीका षोडशराजकीयोपाख्यान सुनाकर समझाना (**द्रोण० ५५ । ३६ से द्रोण० ७१ । ३ तक**) । नारदजीके समझानेसे इनका शोकरहित होना (**द्रोण० ७१ । ४-५**) । नारदजीके प्रभावसे इनके पुत्रका जीवित प्रकट होना (**द्रोण० ७१ । ८**) । भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको समझानेके लिये नारद-सृंजय-संवादको प्रस्तुत करके षोडशराजकीयोपाख्यान सुनाना (**शान्ति० २९ अध्याय**) । सृंजयका पर्वत मुनिसे पुत्र-प्राप्तिके लिये वर माँगना (**शान्ति० ३१ । १५**) ।

इन्हें सुवर्णष्ठीवी नामक पुत्रकी प्राप्ति (शान्ति० ३१ । २३)। पुत्रकी मृत्युपर इनका विलाप (शान्ति० ३१ । ३७) । नारदजीकी कृपासे पुनः इनके पुत्रका जीवित होना (शान्ति० ३१ । ४२) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६३) । (२) एक दक्षिणभारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

सृष्टि–एक देवी, जो ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४७) ।

सेक–एक देश, जिसे दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ९) ।

सेदुक–एक प्राचीन नरेश, जो नीतिके मार्गपर चलनेवाले तथा अस्त्र और उपास्त्रोंकी विद्यामें निपुण थे (वन० १९६ । २) । इन्होंने अपने पास आये हुए गुरुदक्षिणा-याचक ब्राह्मणको राजा वृषदर्भके पास भेज दिया था (वन० १९६ । ४–६) ।

सेनजित्–(१) एक राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १३) । (२) एक प्राचीन राजा । व्यासजीद्वारा इनके शोकयुक्त उद्गारोंका वर्णन (शान्ति० २५ । १४–२८) । पुत्रशोकसे दुखी हुए सेनजित्‌का एक ब्राह्मणके साथ संवाद (शान्ति० १७४ अध्याय) ।

सेनानी (सेनापति)–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (देखिये सेनापति) ।

सेनापति (सेनानी)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ९) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ६४ । ३२) ।

सेनामुख–सेनाविशेष । पत्तिकी तिगुनी संख्याको सेनामुख कहते हैं (आदि० २ । २०) ।

सेनाविन्दु–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो 'तुहुण्ड' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १९-२०)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ९)। अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके अवसरपर उलूकराजके साथ इसपर आक्रमण करके इसे राज्यच्युत किया था (सभा० २७ । १०) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (उद्योग० ४ । १३) । इसका दूसरा नाम क्रोधहन्ता था । यह श्रीकृष्ण एवं भीमसेनके समान पराक्रमी माना जाता था (उद्योग० १७१ । २०-२१) । इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । २५-२६) । इसके मरनेकी चर्चा (कर्ण० ६ । ३२) । (२) पाण्डवदलका एक पाञ्चाल योद्धा । कर्णद्वारा इसका वध (कर्ण० ४८ । १५) ।

सेनोद्योगपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १९ तक) ।

सेयन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

सैन्धव–सिन्धदेशके निवासी या स्वामी (वन० ५१ । २५) ।

सैन्धवायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५१) ।

सैन्धवारण्य–एक प्राचीन तीर्थ (वन० ८९ । १५) ।

सैन्यनिर्याणपर्व–उद्योगपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५१ से १५९ तक) ।

सैरन्ध्री–विराटनगरमें अज्ञातवासके समय द्रौपदीका गुप्त नाम तथा सैरन्ध्रीके कार्य एवं स्वरूपका वर्णन (विराट० ३ । १८-१९) (विशेष देखिये द्रौपदी) ।

सैसिरिन्ध्र–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५७) ।

सौदर्यवान्–जरासंधका ध्वजा-पताकासे मण्डित दिव्य रथ, जिसे इन्द्रने उसके मारे जानेके बाद जोतकर अपने अधिकारमें कर लिया था । उसमें दो महारथी योद्धा एक साथ बैठकर युद्ध कर सकते थे । इसमें बारंबार शत्रुओंपर आघात करनेकी सुविधा थी । यह दर्शनीय तथा दुर्जय था । इसी रथपर आरूढ़ होकर इन्द्रने निन्यानबे दानवोंका वध किया था । इसके ध्वज आदिकी विशेषता-का वर्णन (सभा० २४ । १२–२२) । यह रथ इन्द्रसे उपरिचर वसुको, वसुसे राजा बृहद्रथको और बृहद्रथसे जरासंधको प्राप्त हुआ था (सभा० २४ । ४८) ।

सोम–(१) चन्द्रमा । इनके सत्ताईस स्त्रियाँ थीं (आदि० ६६ । १६) । सप्तर्षियोंद्वारा पृथ्वी-दोहनके समय ये बछड़ा बने थे (द्रोण० ६९ । २३) । (विशेष देखिये चन्द्रमा ।) (२) भानु नामक अग्निकी तीसरी पत्नी निशाके गर्भसे उत्पन्न दो पुत्रोंमेंसे एक । इनके दूसरे भाईका नाम अग्नि है । इनकी बहिनका नाम रोहिणी है । इनके वैश्वानर आदि पाँच भाई और हैं (वन० २२१ । १५) ।

सोमक–(१) सोमकवंशी क्षत्रियोंका समुदाय (आदि० १२२ । ४०) । (२) एक प्राचीन राजा, जो यम-सभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ८) । ये पाञ्चालदेशके प्रसिद्ध दानी राजा थे । इनके पिताका नाम सहदेव था (वन० १२५ । २६) । सौ पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये, अपने इकलौते पुत्रकी बलि देकर, इनके द्वारा यज्ञका सम्पादन और पुत्रोंकी प्राप्ति (वन० १२८ । २–७) । इनका अपने पुरोहितके साथ समान रूपसे नरक और पुण्य लोकोंका भोग भोगकर

छूटना (**वन० १२८ । ११–१८**)। इन्होंने गोदान करके स्वर्ग प्राप्त किया था (**अनु० ७६ । २५–२७**)। इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (**अनु० ११५ । ६३**)।

सोमकीर्ति–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (**आदि० ६७ । ९९; आदि० ११६ । ८**)।

सोमगिरि–एक पर्वत, जो सायं-प्रातः स्मरण करने योग्य है (**अनु० १६५ । ३३**)।

सोमतीर्थ–(१) कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ, जो जयन्तीमें है । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है (**वन० ८३ । १९**)। (२) कुरुक्षेत्रकी सीमाके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सोमलोककी प्राप्ति होती है (**वन० ८३ । ११४-११५, १८५**)।

सोमदत्त–कुरुवंशी महाराज प्रतीपके पौत्र एवं वाह्लीकके पुत्र । इनके भूरि, भूरिश्रवा तथा शल नामके तीन पुत्र थे । ये अपने तीनों पुत्रोंके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें पधारे थे (**आदि० १८५ । १४-१५**)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी इनका शुभागमन हुआ था (**सभा० ३४ । ८**)। देवकीके स्वयंवरके समय शिनिके साथ इनका बाहुयुद्ध तथा शिनिका इन्हें पटककर लात मारना एवं इनकी चुटिया पकड़ना (**द्रोण० १४४ । ११–१३**)। शिनिके छोड़ देनेपर इनकी तपस्या और बदला लेनेके लिये वर एवं पुत्रकी प्राप्ति (**द्रोण० १४४ । १५–१९**)। सात्यकिके साथ युद्धमें इनका पराजित होना (**द्रोण० १५६ । २१-२९**)। सात्यकि एवं भीमसेनके प्रहारसे मूर्छित होना (**द्रोण० १५७ । १०-११**)। सात्यकिद्वारा इनका वध (**द्रोण० १६२ । ३३**)। इनके शरीरका दाह-संस्कार (**स्त्री० २६ । ३३**)। धृतराष्ट्रद्वारा इनका श्राद्ध (**आश्रम० ११ । १७**)। व्यासजीके आवाहन करनेपर कुरुक्षेत्रमें मरे हुए कौरव वीरोंके साथ ये भी गङ्गाजलसे प्रकट हुए थे (**आश्रम० ३२ । १२**)।

महाभारतमें आये हुए सोमदत्तके नाम–बाह्लीक, बाह्लीकात्मज, कौरव, कौरवेय, कौरव्य, कुरुपुङ्गव आदि।

सोमधेय–एक पूर्वभारतीय जनपद, जहाँके निवासियोंको भीमसेनने पराजित किया था (**सभा० ३० । १०**)।

सोमप–(१) स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ७०**)। (२) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३४**)।

सोमपद–एक तीर्थ, जहाँ माहेश्वर पदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (**वन० ८४ । ११९**)।

सोमपा–सात पितरोंमेंसे एक । इनकी चार मूर्त पितरोंमें गणना है । इनके तृप्त होनेसे सोम देवताकी तृप्ति होती है (**सभा० ११ । ४७-४८**)। ये सभी पितर ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हो प्रसन्नतापूर्वक उनकी उपासना करते हैं (**सभा० ११ । ४९**)।

सोमवर्चा–(१) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३३**)। (२) एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१ । ३६**)।

सोमश्रवा–एक तपस्यापरायण ऋषि, जो श्रुतश्रवाके पुत्र थे । इनको पुरोहित बनानेके लिये जनमेजयकी इनके पितासे प्रार्थना (**आदि० ३ । १३–१५**)। ये सर्पिणीके गर्भसे उत्पन्न, तपस्वी और स्वाध्यायशील थे । ब्राह्मणको अभीष्ट वस्तु देनेका इनका गुप्त नियम था । जनमेजय इनके नियमको स्वीकार करके इन्हें अपने साथ ले गये (**आदि० ३ । १६–२०**)।

सोमा–एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवमें आकर नृत्य किया था (**आदि० १२२ । ६१**)।

सोमाश्रम–एक तीर्थ, जिसकी यात्रा करनेसे मनुष्य इस भूतलपर पूजित होता है (**वन० ८४ । १५७**)।

सोमाश्रयायण–गङ्गातटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ। एकचक्रासे पाञ्चाल जाते समय यहाँ पाण्डवोंका आगमन हुआ था । यहाँ स्त्रियोंके साथ चित्ररथ (गन्धर्व) जलक्रीड़ा करता था, जो अर्जुनसे पराजित हुआ (**आदि० १६९ । ३–३३**)।

सौगन्धिक–कुबेरका एक कानन, जिसकी सुगन्धका भार लेकर समीरण कुबेरसभामें धनाध्यक्षकी सेवा करता है (**सभा० १० । ७**)।

सौगन्धिकवन–एक तीर्थभूत वन, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े नाग निवास करते हैं । वहाँ प्रवेश करते ही मानव सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (**वन० ८४ । ४–६**)।

सौति–रोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा, जिन्होंने नैमिषारण्यवासी शौनक आदि ऋषियोंको महाभारत श्रवण कराया था (**आदि० १ । ५**)।

सौदास–एक इक्ष्वाकुवंशी राजा (देखिये कल्माषपाद)।

सौप्तिक–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

सौभ–राजा शाल्वका आकाशचारी विमान, जिसे सौभनगर भी कहा जाता था । भगवान् श्रीकृष्णने चक्रद्वारा इसका विध्वंस किया था (**वन० २२ । ३३-३४**)।

सौभद्र–दक्षिण समुद्रके निकटका एक तीर्थ । पाँच नारीतीर्थोंमेंसे एक (**आदि० २१५ । १–३**)। वहाँ तीर्थयात्राके लिये अर्जुनका आगमन और शापवश ग्राह बनकर रहनेवाली वर्गा (अप्सरा) का उनके द्वारा उद्धार (**आदि०**

२१५ । ८–१४) । युधिष्ठिरका यहाँ आगमन और अर्जुनके पराक्रमको सुनकर प्रसन्नताका अनुभव करना (**वन० ११८ । ४–७**) ।

सौभपति–शाल्वराज (**आदि० १०२ । ६१**) । (देखिये शाल्व)

सौभर–पाञ्चजन्य नामक पितरोंके लिये उत्पन्न किये हुए पाँच पुत्रोंमेंसे एक । इनकी उत्पत्ति वर्चाके अंशसे हुई थी (**वन० २२० । ६–९**) ।

सौमदत्ति–सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा (**विशेष देखिये भूरिश्रवा**) ।

सौम्याक्षद्वीप–एक द्वीपका नाम (**सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ**) ।

सौरभेयी–एक अप्सरा, जो वर्गाकी सखी है (**आदि० २१५ । २०**) । यह ब्राह्मणके शापसे 'ग्राह' भावको प्राप्त हुई थी (**आदि० २१५ । २३**) । अर्जुनद्वारा इसका ग्राह-योनिसे उद्धार हुआ (**आदि० २१६ । २१**)। यह कुबेरकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होती है (**सभा० १० । ११**) ।

सौवीर–सिन्धु अथवा उससे लगा हुआ देश, जहाँका राजा विपुल अर्जुनके हाथसे मारा गया था (**आदि० १३८ । २०–२२**) ।

सौवीरी–राजा पूरुके पौत्र एवं प्रवीरके पुत्र मनस्युकी पत्नी (**आदि० ९४ । ५–७**) ।

सौशल्य–एक भारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ४०**) ।

सौश्रुति–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई, जिसका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (**कर्ण० २७ । ३–२२**) ।

सौहृद–एक दक्षिणभारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ५९**) ।

स्कन्द–देव-सेनापति कुमार कार्तिकेय, जो खाण्डव-वनके युद्धमें शक्ति लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये आये थे (**आदि० २२६ । ३३**) । इनका प्राकट्य और स्कन्द नाम पड़नेका कारण (**वन० २२५ । १६–१८**) । इनका क्रौञ्च-पर्वतको विदीर्ण करना (**वन० २२५ । ३३**) । इनका मातृकाओंको माता स्वीकार करना (**वन० २२६ । २४**) । इनके शरीरसे विशाखकी उत्पत्ति (**वन० २२७ । १६-१७**) । पराजित हुए देवताओंसहित इन्द्रको इनका अभयदान देना (**वन० २२७ । १८**) । इनके पार्षदोंका वर्णन (**वन० २२८ अध्याय**) । इनका इन्द्रके साथ वार्तालाप, इन्द्रद्वारा देव-सेनापति-पदपर अभिषेक; देव-सेनाके साथ इनका विवाह (**वन० २२९ अध्याय**) । कृत्तिकाओंको माता स्वीकार करना (**वन० २३० । ६**) । मातृगणोंको माता स्वीकार करना (**वन० २३० । १५**) । माताओंको पीडाकारक ग्रह बननेका आदेश (**वन० २३० । २२**) । इनके द्वारा स्वाहा देवीका सत्कार (**वन० २३१ । ५-६**) । रुद्रदेवके साथ इनकी भद्रवट-यात्रा (**वन० २३१ । ५४**) । मारुतका स्कन्दकी रक्षाका भार स्वीकार करना (**वन० २३१ । ५६**) । इनके द्वारा महिषासुरका वध (**वन० २३१ । ९६**) । इनके प्रसिद्ध नामोंका वर्णन (**वन० २३२ । ३–९**) । इनकी उत्पत्तिकी कथा (**शल्य० ४४ अध्याय**) । इनका अभिषेक और इनके महापार्षदोंके नाम-रूप आदिका वर्णन (**शल्य० ४५ अध्याय**) । इनके द्वारा तारकासुर, महिषासुर, त्रिपाद और ह्रदोदरका वध (**शल्य० ४६ । ७३–७५**) । इनके द्वारा बाणासुरकी पराजय और क्रौञ्च-पर्वतका विदारण (**शल्य० ४६ । ८३-८४**) । इनके द्वारा तारकके पुत्र और उसके छोटे भाईका वध (**शल्य० ४६ । ९०-९१**) । भगवान् शंकरने इन्हें भूतोंका श्रेष्ठ राजा बनाया (**शान्ति० १२२ । ३२**) । हिमालयपर शक्ति गाड़ना और उसे उखाड़नेकी घोषणा करना (**शान्ति० ३२७ । ९–११**) । इनकी उत्पत्तिका वर्णन तथा इनके विभिन्न नामोंका कारण (**अनु० ८५ । ६८–८२**) । इनके द्वारा तारकासुरके वधका पुनर्वर्णन (**अनु० ८५ । १६४**) । इनकी उत्पत्तिके प्रसङ्गका पुनः उल्लेख (**अनु० ८६ । ५–१४**) । इनके देव-सेनापति-पदपर अभिषेकका दुबारा वर्णन (**अनु० ८६ । २८**) । इनके द्वारा तारकासुरके वधकी पुनः चर्चा (**अनु० ८६ । २९**) । इनका धर्म-सम्बन्धी रहस्य (**अनु० १३४ । १–७**) ।

स्कन्दग्रह–मातृकागण और पुरुषग्रहोंका समुदाय (**वन० २३० । ४३-४४**) ।

स्कन्दापस्मार–स्कन्दके शरीरसे उत्पन्न हुआ प्रमव-ग्रह (**वन० २३० । २६**) ।

स्कन्ध–धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया (**आदि० ५७ । १८**) ।

स्कन्धाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६०**) ।

स्तनकुण्ड–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे वाजपेययज्ञका फल मिलता है (**वन० ८४ । १५२**) ।

स्तनपोषिक–एक दक्षिणभारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६८**) ।

स्तनबाल–एक दक्षिणभारतीय जनपद (**भीष्म० ९ । ६३**) ।

स्तम्बमित्र–एक शार्ङ्गक, जो मन्दपाल ऋषिके द्वारा जरिता (पक्षिणी) के गर्भसे उत्पन्न हुआ था (**आदि०**

२२८ । १७) । अपने बड़े भाई जरितारिसे अपनी रक्षाके लिये कहना (आदि० २३१ । ४) । इसके द्वारा अग्निकी स्तुति (आदि० २३१ । १२–१४) । अग्निदेवकी कृपासे खाण्डववनदाहके समय इसकी रक्षा (आदि० २३१ । २१) ।

स्तुभ–भानु नामक अग्निके छः पुत्रोंमेंसे एक (वन० २२१ । १४) ।

स्त्रीपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व ।

स्त्रीराज्य–प्राचीन कालका एक राज्य, जहाँके नरेश युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे (वन० ५१ । २५) ।

स्त्रीविलापपर्व–स्त्रीपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १६ से २५ तक) ।

स्थण्डिलेयु–पूरुके तीसरे पुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न एक महाधनुर्धर पुत्र (आदि० ९४ । ८–१०) ।

स्थाणु–(१) ब्रह्माजीके मानसपुत्र, जो मरीचि आदि छः पुत्रोंसे भिन्न थे । ग्यारहों रुद्र इन्हींके पुत्र थे (आदि० ६६ । १–३) । (२) ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र, जो ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक हैं (आदि० ६६ । ३) । (३) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते थे (सभा० ७ । १७) ।

स्थाणुवट–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, वहाँ स्नान करके रातभर निवास करनेवाला मनुष्य रुद्रलोकमें जाता है (वन० ८३ । १७८-१७९) ।

स्थाणुस्थान–महात्मा स्थाणुका मुञ्जवट नामक स्थान, जहाँ एक रात रहनेसे गणपति-पदकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । २२) । सरस्वतीके पूर्वतटपर जो वसिष्ठजीका आश्रम है, यहीं भगवान् स्थाणुने तप, सरस्वतीका पूजन और यज्ञ करके तीर्थकी स्थापना की थी, इसलिये यह स्थान स्थाणुतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ । यहीं देवताओंने स्कन्दका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था (शल्य० ४२ । ४–७) ।

स्थिर–मेरुद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम अतिस्थिर था (शल्य० ४५ । ४८) ।

स्थूण–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५१) ।

स्थूणकर्ण–एक ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करते थे (वन० २६ । २३) ।

स्थूणाकर्ण–एक यक्ष, जिसने शिखण्डीको अपना पुरुषत्व दिया था । इसका शिखण्डिनीका मनोरथ पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा करना (उद्योग० १९१ । २४-२५) । इसके द्वारा शिखण्डिनीको पुरुषत्वका दान (उद्योग० १९२ । ९) । इसके लिये स्त्री ही बने रहनेके निमित्त कुबेरका शाप (उद्योग० १९२ । ४५-४७) । कुबेरद्वारा शापका अन्त बतलाया जाना (उद्योग० १९२ । ५०) ।

स्थूलकेश–एक प्राचीन ऋषि, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहते थे (आदि० ८ । ५) । इनके द्वारा जंगलमें अनाथ पड़ी हुई 'प्रमद्वरा' का पालन-पोषण, नामकरण एवं महर्षि रुरुको वाग्दान (आदि० ८ । ९—१६) ।

स्थूलवालुका–एक पवित्र नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । १५) ।

स्थूलशिरा–एक ऋषि, जो राजा युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । ११) । राजा युधिष्ठिरका इनके रमणीय आश्रमपर जाना (वन० १३५ । ८) । इनका हस्तिनापुरमें दूत बनकर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें भेंट करना (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ) । ये पूर्वकालमें मेरुके पूर्वोत्तर भागमें तपस्या करते थे । इनकी वायुपर प्रसन्नता और वृक्षोंपर रुष्ट होकर उन्हें शाप देना (शान्ति० ३४२ । ५९) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ५) ।

स्थूलाक्ष–एक दिव्य महर्षि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ७) ।

स्मृति–स्मरणकी अधिष्ठात्री देवी, जो कुमार महासेनकी सेनाके आगे-आगे चलती थीं (शल्य० ४६ । ६४) ।

स्यमन्तक–एक दिव्य मणि, जो भगवान् सूर्यने सत्राजित्को दी थी । सत्राजित् और प्रसेनजित्के यहाँ जो स्यमन्तकमणि थी, उससे प्रचुरमात्रामें सुवर्ण झरता रहता था (सभा० १४ । ६० के बाद दा० पाठ) । (कृतवर्माके षड्यन्त्रसे यह मणि चुरायी गयी और सत्राजित् मार डाले गये) सात्यकिने इस घटनाका भगवान् श्रीकृष्णको स्मरण कराया था (मौसल० ३ । २३) ।

स्यूमरश्मि–एक प्राचीन ऋषि, जो गायके भीतर प्रविष्ट हुए थे । इनका कपिलके साथ संवाद तथा इनके द्वारा यज्ञकी अवश्यकर्तव्यताका निरूपण (शान्ति० २६८ अध्याय) । प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गके विषयमें स्यूमरश्मि और कपिलका संवाद (शान्ति० २६९ अध्याय) । इनके संवादमें–चारों आश्रमोंमें उत्तम साधनोंके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिका कथन (शान्ति० २७० अध्याय) ।

स्रज–एक सनातन विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३३) ।

स्वक्ष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) ।

स्वन–सत्यके पुत्र । ये रोगकारक अग्नि हैं । इनसे पीड़ित

होकर लोग वेदनासे स्वयं कराह उठते हैं। स्वन (चीत्कार) करनेमें कारण होनेसे इनका नाम 'स्वन' हुआ (वन० २१९। १५)।

स्वयंजात—विवाहिता पत्नीसे अपने द्वारा उत्पन्न पुत्र (बन्धु-दायाद) (आदि० ११९। ३३)।

स्वयंप्रभा—एक अप्सरा, जिन्होंने अर्जुनके स्वागतमें इन्द्र-भवनमें नृत्य किया था (वन० ४३। २९)।

स्वयंवर—(१) आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १८३ से १९१ तक)। (२) राजाओंकी एक सभा, जिसमें राजकन्याएँ स्वयं अपने लिये वरका वरण करती हैं (वन० ५४। ८)।

स्वराष्ट्र—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४८)।

स्वरूप—एक दैत्य, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९। १४)।

स्वर्ग—पुण्य कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला देवलोक, जिसमें इन्द्रलोक प्रधान है। राजा ययाति स्वर्गलोकमें जाकर देवभवनमें निवास करते थे। वहाँ देवताओं, साध्यगणों, मरुद्गणों तथा वसुओंने उनका बड़ा सत्कार किया था। वहाँ इन्द्रके साथ बातचीत करनेका उन्हें अवसर मिला था (आदि० ८७। १–३)। स्वर्गलोकमें जो रमणीय इन्द्रपुरी है, वह सौ योजन विस्तृत और एक हजार दरवाजोंसे सुशोभित है। वहाँ ययातिने एक हजार वर्षोंतक निवास किया था। वहीं नन्दनवन है, जहाँ इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओंके साथ विहार करते हुए वे दस लाख वर्षोंतक रहे (आदि० ८९। १६, १९)। साधु पुरुष स्वर्गलोकके सात बड़े दरवाजे बतलाते हैं, जिनके द्वारा प्राणी इसमें प्रवेश करते हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और समस्त प्राणियोंके प्रति दया (आदि० ९०। २२)। स्वर्गमें जो इन्द्रकी सभा है, उसकी लंबाई डेढ़ सौ और चौड़ाई सौ योजनकी है। वह आकाशमें विचरनेवाली और इच्छाके अनुसार मन्द या तीव्र गतिसे चलनेवाली है। उसकी ऊँचाई भी पाँच योजन है। उसमें बुढ़ापा, शोक और थकावटका प्रवेश नहीं है। वहाँ भय नहीं है। वह मङ्गलमयी और दिव्य शोभासे सम्पन्न है। उसमें ठहरनेके लिये सुन्दर-सुन्दर महल और बैठनेके लिये उत्तमोत्तम सिंहासन बने हुए हैं। वह रमणीय सभा दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित है। वहाँ इन्द्राणी शची और स्वर्गलोककी लक्ष्मीके साथ देवराज इन्द्र सर्वश्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान होते हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ नृत्य, वाद्य एवं गीतोंद्वारा उनका मनो-रञ्जन करती हैं (सभा० ७ अध्याय)। स्वर्गमें राजसूय यज्ञके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्रको सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। उसे देखकर राजा पाण्डु चकित हो गये थे और उन्होंने नारदजीके द्वारा युधिष्ठिरके पास राजसूय यज्ञ करनेके लिये संदेश भेजा था (सभा० १२। २३–२६)। सत्यभामाने श्रीकृष्णके साथ स्वर्गमें जाकर वहाँका वैभव देखा था और वहाँ उन्हें देवमाता अदिति-का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था (सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८११-८१२)। अर्जुनने स्वर्गलोक-को जाते समय ऊपर जाकर सहस्रों अद्भुत विमान देखे। वहाँ न सूर्य प्रकाशित होते हैं न चन्द्रमा। अग्निकी प्रभा भी वहाँ काम नहीं देती है। स्वर्गके निवासी अपने पुण्य कर्मोंसे प्राप्त हुई अपनी ही प्रभासे प्रकाशित होते हैं। स्वर्गद्वारपर अर्जुनको सुन्दर विजयी गजराज ऐरावत खड़ा दिखायी दिया, जिसके चार दाँत बाहर निकले थे (वन० ४२। ४०)। सिद्धों और चारणोंसे सेवित रमणीय अमरावतीपुरी सभी ऋतुओंके फूलों और पुण्यमय वृक्षोंसे सुशोभित है। अप्सराओंसे सेवित नन्दनवनकी शोभा अद्भुत है, जो तपस्या और अग्निहोत्रसे दूर रहे हैं, जिन्होंने युद्धमें पीठ दिखा दी है, वैसे लोग पुण्यात्माओंके उस लोकका दर्शन नहीं कर सकते हैं। जो यज्ञ, व्रत, वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और दान आदि सत्कर्मोंसे वञ्चित हैं, शराबी, गुरुपत्नीगामी, मांसाहारी तथा दुरात्मा हैं, वे भी उस दिव्यलोकका दर्शन नहीं पा सकते। देवताओं, सिद्धों और महर्षियोंने वहाँ अर्जुनका स्वागत-सत्कार किया। अप्सराओंने नृत्य और गीतोंद्वारा उनका मनोरञ्जन किया (वन० ४३ अध्याय)। जिसे स्वर्लोक कहते हैं, वह यहाँसे बहुत ऊपर है। वहाँ पहुँचनेके लिये ऊपरको जाया जाता है; इसलिये उसका एक नाम ऊर्ध्वग भी है। वहाँ जानेके लिये जो मार्ग है, वह बहुत उत्तम है। वहाँके लोग सदा विमानोंपर विचरा करते हैं। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा यजन नहीं किया है तथा जो असत्यवादी एवं नास्तिक हैं, वे उस लोकमें नहीं जा पाते हैं। धर्मात्मा, मनको वशमें रखनेवाले, शम-दमसे सम्पन्न, ईर्ष्यारहित, दान-धर्मपरायण तथा युद्धकलामें प्रसिद्ध शूरवीर मनुष्य ही वहाँ सब धर्मोंमें श्रेष्ठ इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहरूपी योगको अपनाकर सत्पुरुषोंद्वारा सेवित पुण्यवानोंके लोकोंमें जाते हैं। वहाँ देवता, साध्य, विश्वेदेव, महर्षिगण, याम, धाम, गन्धर्व तथा अप्सरा—इन सब देवसमूहोंके अलग-अलग अनेक प्रकाशमान लोक हैं, जो इच्छानुसार प्राप्त होनेवाले भोगोंसे सम्पन्न, तेजस्वी तथा मङ्गलकारी हैं। स्वर्गमें तैंतीस हजार योजनका सुवर्णमय एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो मेरुगिरिके नामसे विख्यात है। वहीं देवताओंके

नन्दन आदि पवित्र उद्यान तथा पुण्यात्मा पुरुषोंके विहारस्थल हैं। वहाँ किसीको भूख-प्यास नहीं लगती, मनमें कभी ग्लानि नहीं होती, गर्मी और जाड़ेका कष्ट भी नहीं होता और न कोई भय ही होता है। वहाँ कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो घृणा करनेयोग्य एवं अशुभ हो। वहाँ सब ओर मनोरम सुगन्ध, सुखदायक स्पर्श तथा कानों और मनको प्रिय लगनेवाले मधुर शब्द सुननेमें आते हैं। स्वर्गलोकमें न शोक होता है, न बुढ़ापा। वहाँ थकावट तथा करुणाजनक विलाप भी श्रवणगोचर नहीं होते। स्वर्गलोक ऐसा ही है। अपने सत्कर्मोंके फलरूप ही उसकी प्राप्ति होती है। मनुष्य वहाँ अपने किये हुए पुण्यकर्मोंसे ही रह पाते हैं। स्वर्गवासियोंके शरीरमें तैजस तत्त्वकी प्रधानता होती है। वे शरीर पुण्यकर्मोंसे ही उपलब्ध होते हैं। माता-पिताके रजोवीर्यसे उनकी उत्पत्ति नहीं होती है। उन शरीरोंमें कभी पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती तथा मल-मूत्रका भी अभाव होता है। उनके कपड़ोंमें कभी मैल नहीं बैठती है। स्वर्गवासियोंकी जो दिव्य (दिव्य कुसुमोंकी) मालाएँ होती हैं, वे कभी कुम्हलाती नहीं हैं। उनसे निरन्तर दिव्य सुगन्ध फैलती रहती है तथा वे देखनेमें भी बड़ी मनोरम होती हैं। स्वर्गके सभी निवासी ऐसे ही विमानोंसे सम्पन्न होते हैं। जो अपने सत्कर्मोंद्वारा स्वर्गलोकपर विजय पा चुके हैं, वे वहाँ बड़े सुखसे जीवन बिताते हैं। उनमें किसीके प्रति ईर्ष्या नहीं होती, वे कभी शोक तथा थकावटका अनुभव नहीं करते एवं मोह तथा मात्सर्य (द्वेषभाव) से सदा दूर रहते हैं। अपने किये हुए सत्कर्मोंका जो फल होता है, वही स्वर्गमें भोगा जाता है। वहाँ कोई नवीन कर्म नहीं किया जाता। अपना पुण्यरूप मूलधन गँवानेसे ही वहाँके भोग प्राप्त होते हैं (वन० २६१। २—१६, २८)। युधिष्ठिरके द्वारा स्वर्गलोकका दर्शन (स्वर्गा० ४ अध्याय)।

स्वर्गतीर्थ—एक तीर्थ, जो नैमिषारण्यमें है। यहाँ एक मासतक पितरोंको जलाञ्जलि देनेसे पुरुषमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (अनु० २५। ३३)।

स्वर्गद्वार—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जिसके सेवनसे मनुष्य स्वर्गलोक पाता और ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८३। १६७)।

स्वर्गमार्गतीर्थ—एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है (अनु० २५। ६१)।

स्वर्गारोहणपर्व—महाभारतका एक प्रमुख पर्व।

स्वर्णग्रीव—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ७५)।

स्वर्णबिन्दु—एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाता है (अनु० २५। ९)।

स्वर्भानवी—स्वर्भानुकी पुत्री, पुरूरवाके पुत्र आयुकी पत्नी। नहुष आदि पाँच पुत्रोंकी माता (आदि० ७५। २६)।

स्वर्भानु—एक विख्यात दानव, जो दनुके गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५। २४)। यह महान् असुर उग्रसेनके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। १२-१३)। यह प्राचीनकालमें पृथ्वीका शासक था; परंतु कालवश इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७। ५०)।

स्वस्तिक—(१) गिरिव्रजनिवासी एक नाग (सभा० २१। ९)। यह वरुणसभामें रहकर उनकी उपासना करता है (सभा० ९। ९)। (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ६५)।

स्वस्तिपुरतीर्थ—कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जिसकी परिक्रमा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३। १७४)।

स्वस्तिमती—स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका(शल्य०४६। १२)।

स्वस्त्यात्रेय—एक प्राचीन महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७। १० के बाद दा० पाठ)। ये दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले ऋषि हैं (शान्ति० २०८। २८)।

स्वाती—सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे एक, जो इस नक्षत्रमें अपनी अधिक-से-अधिक प्रिय वस्तुका दान करता है, वह मनुष्य शुभलोकोंमें जाता है तथा महान् यशका भागी होता है (अनु० ६४। १८)। इस नक्षत्रके योगमें पितरोंकी पूजा करनेवाला वाणिज्यसे जीवन निर्वाह करता है (अनु० ८९। ७)। चान्द्रव्रतमें स्वाती नक्षत्रमें चन्द्रमाके दाँतोंकी भावना करके उनकी पूजा करनेका विधान है (अनु० ११०। ७)।

स्वायम्भुवमनु—इनके द्वारा ऋषियोंको धर्मका उपदेश (शान्ति० ३६ अध्याय)। प्रजाओंका इन्हें राजा स्वीकार करना (शान्ति० ६८। २३—२९)। इनका राजा होकर शत्रुओंका दमन करना (शान्ति० ६८। ३१-३२)।

स्वारोचिष—एक मनु, जिन्हें ब्रह्माजीने सात्वत-धर्मका उपदेश दिया था। इन्होंने अपने पुत्र शङ्खपदको इस धर्मकी शिक्षा दी थी (शान्ति० ३४८। ३६-३७)।

स्वाहा—(१) अग्निकी पत्नी (आदि० १९८। ५)। ये ब्रह्माजीकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होती हैं (सभा० ११। ४२)। इनका मुनि-पत्नियोंके रूपमें अग्निके साथ समागम (वन० २२५। ७)। गरुडी-रूप धारण करना (वन० २२५। ९)। इनका छः बार समागम करके अग्निके वीर्यको सरकंडोंमें गिराना (वन० २२५। १५)। इनका अग्निदेवके साथ सदा रहनेके लिये स्कन्दके सम्मुख अपना अभिप्राय प्रकट करना (वन० २३१। ३-४)। स्कन्दके अभिषेकके समय स्वाहा देवी भी उपस्थित थीं (शल्य० ४५। १३)। (२) बृहस्पतिकी पुत्री, जो अधिक क्रोधवाली है। यह सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करती है। इसका पुत्र 'काम' नामक अग्नि है (वन० २१९। २२-२३)।

स्विष्टकृत्—(१) प्रत्येक गृह्य कर्ममें अग्निके लिये सदा घीकी ऐसी धारा दी जाती है, जिसका प्रवाह उत्तराभि-

मुख हो; इसीलिये वह अभीष्ट-साधक होती है, अतएव इस उत्कृष्ट अग्निका नाम 'स्विष्टकृत्' है। इसे बृहस्पतिका छठा पुत्र समझना चाहिये (वन० २१९ । २१)। (२) मनुके द्वितीय पुत्र विश्वपति नामक अग्नि, मनुकी कन्या रोहिणी भी स्विष्टकृत् मानी गयी है। इन्हींके प्रभावसे हविष्यकी सुन्दरतासे आहुति-क्रिया सम्पन्न होती है; अतः वे 'स्विष्टकृत्' कहलाते हैं (वन० २२१ । १७-१८)।

(ह)

हंस–(१) एक श्रेष्ठ पक्षी, कश्यपपत्नी ताम्रा देवीकी पुत्री धृतराष्ट्रीसे हंस उत्पन्न हुए थे (आदि० ६६ । ५६–५८)। सुवर्णमय पंखसे भूषित एक हंसने नल और दमयन्तीके पास एक दूसरेके संदेशको पहुँचाकर उनमें अनुराग उत्पन्न किया था (वन० ५३ । १९–३२)। महर्षियोंने हंसरूप धारण करके भीष्मके निकट आकर उन्हें दक्षिणायनमें प्राणत्याग करनेसे रोका था (भीष्म० ११९ । १०२)। एक हंस और काकका उपाख्यान (कर्ण० ४१ । १४—७०)। (२) जरासंधका एक मन्त्री, जो डिम्भकका भाई था। इसे किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे मारे न जानेका देवताओंद्वारा वर प्राप्त था (सभा० १४ । ३७)। यह अपने भाई डिम्भककी मृत्युका समाचार सुनकर यमुनाजीमें कूद पड़ा और मर गया (सभा० १४ । ४२)। जरासंधको सलाह देनेके लिये ये ही दोनों भाई नीतिनिपुण मन्त्री थे (सभा० १९ । २६)। भीमसेनके साथ युद्धका निश्चय हो जानेपर इसने अपने इन दोनों स्वर्गीय मन्त्रियों—कौशिक और चित्रसेनका—हंस और डिम्भकका स्मरण किया था (सभा० २२ । ३२)। (३) जरासंधकी सेनाका एक राजा, जो सत्रहवीं बारके युद्धमें बलरामजीद्वारा मारा गया था (सभा० १४ । ४०)।

हंसकायन–क्षत्रियोंकी एक जाति, इस जातिके उत्तम कुलोत्पन्न क्षत्रिय भेंट लेकर युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आये थे (सभा० ५२ । १४)।

हंसकूट–एक पर्वत, यहाँ पत्नियोंसहित पाण्डुका आगमन हुआ था। इसे लाँघकर वे शतशृङ्ग पर्वतपर पहुँचे थे (आदि० ११८ । ५०)। इस पर्वतका शिखर श्रीकृष्णने द्वारकापुरमें स्थापित किया था, जो साठ ताड़के बराबर ऊँचा और आधा योजन चौड़ा था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पा०, पृष्ठ ८१६)।

हंसचूड़–एक यक्ष, जो कुबेरकी सेवाके लिये उनकी सभामें उपस्थित रहता है (सभा० १० । १७)।

हंसज–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६८)।

हंसपथ–एक देश, जहाँके निवासी सैनिक द्रोणनिर्मित गरुड़-व्यूहके ग्रीवाभागमें खड़े थे (द्रोण० २० । ७)।

हंसप्रपतनतीर्थ–प्रयागमें स्थित एक त्रिलोकविख्यात तीर्थ, जो गङ्गाके तटपर अवस्थित है (वन० ८५ । ८७)।

हंसवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

हंसिका–सुरभिकी पुत्री, जो दक्षिण दिशाको धारण करनेवाली है (उद्योग० १०२ । ७-८)।

हंसी–राजर्षि भगीरथकी एक यशस्विनी कन्या, जिसका हाथ उन्होंने कौत्स ऋषिके हाथमें दिया था (अनु० १३७ । २६)।

हनुमान्–(केसरीकी पत्नी अञ्जना देवीके गर्भमें वायुद्वारा उत्पन्न महावीर मारुति) इनका कदलीवनमें भीमसेनका मार्ग रोककर लेटना (वन० १४६ । ६६-६७)। इनका भीमसेनके साथ संवाद (वन० अध्याय १४७ से १५० तक)। इनका भीमसेनको संक्षिप्तमें श्रीरामचरित्र सुनाना (वन० १४८ अध्याय)। इनके द्वारा चारों युगोंके धर्मोंका वर्णन (वन० १४९ अध्याय)। इनका भीमसेनको अपना विशाल रूप दिखाना (वन० १५० । ३-४)। इनके द्वारा चारों वर्णोंके धर्मका प्रतिपादन (वन० १५० । ३०–३६)। इनके द्वारा राजधर्मका वर्णन (वन० १५० । ३७–४९)। इनका भीमसेनके सिंहनादको अपनी गर्जनासे बढ़ाने तथा अर्जुनकी ध्वजापर स्थित होकर अपनी भीषण गर्जनाद्वारा शत्रुओंको डरानेकी बात कहकर भीमसेनको आश्वासन दे अन्तर्धान होना (वन० १५१ । १६–१९)। इनका लंकासे लौटकर श्रीरामसे सीताका समाचार बताना (वन० २८२ । १७–५७)। इनके द्वारा धूम्राक्षका वध (वन० २८६ । १४)। इनके द्वारा वज्रवेगका वध (वन० २८७ । २६)। इनका दूत बनकर भरतके पास जाना और लौटकर श्रीरामको इसकी सूचना देना (वन० २९१ । ६१-६२)।

हन्यमान–एक दक्षिणभारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६९)।

हयग्रीव–(१) नरकासुरके राज्यकी रक्षा करनेवाले चार असुरोंमेंसे एक, श्रीकृष्णद्वारा ही इसका वध होनेवाला था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०५)। श्रीकृष्णद्वारा हयग्रीवके मारे जानेकी चर्चा (उद्योग० १३० । ५०)। (२) विदेह-वंशका एक कुलाङ्गार राजा (उद्योग० ७४ । १५)। (३) एक प्राचीन राजर्षि, जो शत्रुओंपर विजय पा चुके थे, किंतु पीछे असहाय होनेके कारण मारे गये। इन्होंने युद्धसे उत्तम कीर्ति पायी और अब स्वर्गमें आनन्द भोगते हैं। इनका विशेष वर्णन (शान्ति० २४ । २३–३४)।

हयज्ञान–अश्वसंचालनकी एक विद्या, जिससे घोड़ोंकी गति बहुत अधिक बढ़ जाती है तथा उनके गुण-दोष भी जाने जाते हैं (वन० ७७ । १७)।

हयशिरा (हयग्रीव)—भगवान्का एक अवतार। इनका विशेष वर्णन (शान्ति० ३४७ अध्याय)।

हर–(१) एक विख्यात दानव, जो दनुके गर्भसे कश्यपद्वारा उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २५)। यह राजा सुबाहुके रूपमें पृथ्वीपर पैदा हुआ था (आदि० ६७ । २३-२४)। (२) महादेवजी, ये स्कन्दके अभिषेकमें पधारे थे (शल्य० ४५ । १०)। 'हर'

ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक हैं (शान्ति० २०८ । १९) ।

हरणाहरणपर्व-आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २२०) ।

हरि-(१) रावणकी सेवामें रहनेवाले पिशाच तथा अधम राक्षसोंका एक दल, जिसने वानरोंकी सेनापर धावा किया था (वन० २८५ । १-२) । (२) गरुड़के महाबली तथा यशस्वी वंशजोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) । (३) घोड़ोंका एक भेद, जिसके गर्दनके बड़े-बड़े बाल और शरीरके रोयें सुनहरे रंगके हों, जो रंगमें रेशमी पीताम्बरके समान जान पड़ता हो, वह घोड़ा हरि कहलाता है (द्रोण० २३ । १३) । (४) राजा अकम्पनका पुत्र, जो बलमें भगवान् नारायणके समान, अस्त्रविद्यामें पारङ्गत, मेधावी, श्रीसम्पन्न तथा युद्धमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी था । यह युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंके हाथ मारा गया था (द्रोण० ५२ । २७–२९) । इसकी मृत्युका वर्णन (शान्ति० २५६ । ८) । (५) एक असुर, जो तारकाक्षका महाबली वीर पुत्र था । इसने तपस्याद्वारा ब्रह्माको प्रसन्न करके उनसे वरदान पाकर तीनों पुरोंमें मृत-संजीवनी बावलीका निर्माण किया था (कर्ण० ३३ । २७–३०) । (६) पाण्डवपक्षका एक योद्धा, जो कर्णद्वारा मारा गया था (कर्ण० ५६ । ४९-५०) । (७) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) । (८) श्रीकृष्णका एक नाम तथा इस नामकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२ । ६८) ।

हरिण-(१) ऐरावतकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ११-१२) । (२) बिडालोपाख्यानमें आये हुए नेवलेका नाम (शान्ति० १३८ । ३१) ।

हरिणाश्व-एक प्राचीन नरेश, जिन्हें महाराज रघुसे खड्गकी प्राप्ति हुई थी और उन्होंने वह खड्ग शुनकको प्रदान किया था (शान्ति० १६६ । ७८-७९) ।

हरिताल-एक पर्वतीय धातु, जो संध्याकालीन बादलोंके समान लाल रंगकी होती है (वन० १५८ । ९४) ।

हरिद्रक-कश्यपवंशमें उत्पन्न एक प्रमुख नागराज (आदि० ३५ । १२) ।

हरिपिण्डा-स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका (शल्य० ४६ । २४) ।

हरिमेधा-एक प्राचीन राजर्षि, जिनके यज्ञके समान जनमेजयका यज्ञ बताया गया है (आदि० ५५ । ३) । इनकी कन्याका नाम ध्वजवन्ती था, जो पश्चिम दिशामें निवास करती थी (उद्योग० ११० १३) ।

हरिबभ्रु-एक जितात्मा एवं जितेन्द्रिय मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६) ।

हरिवर्ष-हेमकूटपर्वतके उत्तरमें विद्यमान एक वर्ष, जहाँ उत्तरदिग्विजयके अवसरपर अर्जुन गये थे और उसे अपने अधीन करके बहुत-सा रत्न प्राप्त किये थे (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ) ।

हरिश्चन्द्र-इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशङ्कुके पुत्र । इनकी माताका नाम सत्यवती था (सभा० १२ । १० के बाद दा० पाठ) । ये इन्द्रसभामें सम्मानपूर्वक विराजते हैं (सभा० ७ । १३) । ये बड़े बलवान् और समस्त भूपालोंके सम्राट् थे । भूमण्डलके सभी नरेश इनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सिर झुकाये खड़े रहते थे । इन्होंने अपने एकमात्र जैत्र नामक रथपर चढ़कर अपने शस्त्रोंके प्रतापसे सातों द्वीपोंपर विजय प्राप्त कर ली थी । इन्होंने राजसूय नामक यज्ञका अनुष्ठान किया था । इन्होंने याचकोंके माँगनेपर उनकी माँगसे पाँचगुना अधिक धन दान किया था । ब्राह्मणोंको धन-रत्न देकर संतुष्ट किया था । इसीलिये ये अन्य राजाओंकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी और यशस्वी हुए हैं तथा अधिक सम्मानपूर्वक इन्द्रसभामें विराजमान होते हैं (सभा० १२ । ११–१८) । इनकी सम्पत्तिको देखकर चकित हो स्वर्गीय राजा पाण्डुने नारदजीद्वारा युधिष्ठिरके पास राजसूययज्ञ करनेका संदेश भेजा था (सभा० १२ । २३–२६) । इनके द्वारा मांस-भक्षणका निषेध (अनु० ११५ । ६१) । ये सायं-प्रातःस्मरणीय नरेश हैं (अनु० १६५ । ५२) ।

हरिश्रावा-भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २८) ।

हरी-क्रोधवशाकी पुत्री, जिसने वेगवान् घोड़ों एवं वानरोंको जन्म दिया तथा गायके समान पूँछवाले लंगूर भी इसी-के पुत्र कहे गये हैं (आदि० ६६ । ६०, ६४) ।

हर्यश्व-(१) अयोध्याके राजा, जो महापराक्रमी, चतुरङ्गिणी सेनासे सम्पन्न, कोप-धन-धान्य तथा सैनिक शक्तिसे समृद्ध थे । प्रजा इन्हें बहुत प्रिय थी । ब्राह्मणोंपर इनका प्रेम था । ये प्रजावर्गके हित एवं संतानकी कामना रखते थे और शान्तभावसे तपस्यामें संलग्न रहते थे (उद्योग० ११५ । १८-१९) । इनके पास ययातिकन्यासहित गालवका आगमन (उद्योग० ११५ । २०-२१) । गालवको शुल्करूपमें दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर इनका ययातिकन्या माधवीको एक संतान पैदा करनेके लिये पत्नी बनाना तथा माधवीके गर्भसे वसुमना नामक पुत्रकी प्राप्ति (उद्योग० ११६ । १६-१७) । पुत्रोत्पत्तिके बाद पुनः माधवीको गालव मुनिको वापस देना (उद्योग० ११६ । २०) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६७) । (२) काशिराज सुदेवके पिता, जो वीतहव्यके पुत्रोंद्वारा मारे गये थे (अनु० ३० । १०-११) ।

हर्ष-धर्मके तीन श्रेष्ठ पुत्रोंमेंसे एक, शेष दोके नाम शम और काम हैं । हर्षकी पत्नीका नाम नन्दा है (आदि० ६६ । ३२-३३) ।

हलधर-बलरामजीका एक नाम (देखिये बलदेव) ।

हलिक-कश्यपवंशमें उत्पन्न एक प्रमुख नागराज (आदि० ३५ । १५) ।

हलिमा–शिशुकी सप्त मातृकाओंमेंसे एक (**वन०** २२८ । १०) ।

हलीमक–वासुकिकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (**आदि० ५७ । ५**) ।

हवन–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (**अनु० १५० । १३**) ।

हविघ्न–एक प्राचीन नरेश, जिनका नाम सायं-प्रातः स्मरणीय है (**अनु० १६५ । ५८**) ।

हविर्धामा–मनुवंशी अन्तर्धामाके पुत्र । इनका पुत्र प्राचीनबर्हिके नामसे उत्पन्न होगा (**अनु० १४७ । २४**) ।

हविःश्रवा–सोमवंशीय महाराज कुरुके वंशज धृतराष्ट्रके पुत्र (**आदि० ९४ । ५९**) ।

हविष्मती–महर्षि अङ्गिराकी पाँचवीं कन्या, जिसके सान्निध्यमें हविष्यद्वारा देवताओंका यजन किया जाता है (**वन०** २१८ । ६) ।

हविष्मान्–एक प्राचीन महर्षि, जो इन्द्रसभामें रहकर इन्द्रकी उपासना करते हैं (**सभा० ७ । १३**) ।

हसन–स्कन्दका एक सैनिक (**शल्य० ४५ । ६७**) ।

हस्तिकश्यप–एक प्राचीन ऋषि, जो पर्वतपर तप करते समय श्रीकृष्णके पास गये थे (**अनु० १३९ । ११**) । ये उत्तर दिशाके निवासी हैं (**अनु० १६५ । ४६**) ।

हस्तिपद–कश्यपवंशमें उत्पन्न एक प्रमुख नागराज (**आदि० ३५ । ९**) ।

हस्तिपिण्ड–कश्यपवंशमें उत्पन्न एक प्रमुख नागराज (**आदि० ३५ । १४**) ।

हस्तिभद्र–कश्यपवंशमें उत्पन्न एक नाग (**उद्योग०** १०३ । १३) ।

हस्तिसोमा–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (**भीष्म० ९ । १९**) ।

हस्ती–(१) सोमवंशीय महाराज कुरुके वंशज धृतराष्ट्रके पुत्र (**आदि० ९४ । ५८**) । (२) चन्द्रवंशी राजा सुहोत्रके पुत्र । इनकी माता इक्ष्वाकुकुलकी कन्या सुवर्णा थी । इनकी भार्या त्रिगर्तराजकी पुत्री यशोधरा थी, जिसके गर्भसे विकुण्ठन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । हस्तिनापुर नगर इन्होंने ही बसाया था (**आदि०** ९५ । ३४-३५) ।

हाटक–हिमालयके उत्तरभागवर्ती एक देश, जो गुह्यकोंका निवासस्थान है । उत्तरदिग्विजयके अवसरपर अर्जुन यहाँ गये और गुह्यकोंको समझा-बुझाकर अपने अधीन कर लिया (**सभा० २८ । ३-४**) ।

हार–एक देश, यहाँके नरेशको नकुलने पश्चिम-दिग्विजयके समय आज्ञामात्रसे ही अपने अधीन कर लिया था (**सभा०** ३२ । १२-१३) । इस देशके नरेश युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भेंट लेकर आये थे (**सभा० ५१ । ५४**) ।

हारीत–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरका विशेष सम्मान करते थे (**वन० २६ । २३**) । ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये आये थे (**शान्ति० ४७ । ७**) । इनके द्वारा संन्यास-आश्रमका वर्णन (**शान्ति० २७८ अध्याय**) ।

हार्दिक्य–(१) अश्वपति नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक क्षत्रिय नरेश (**आदि० ६७ । १५**) । इसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजनेका निश्चय किया गया था (**उद्योग० ४ । १२**) । (२) यदुकुलमें उत्पन्न हृदिकका पुत्र कृतवर्मा, जो रैवतक पर्वतपर होनेवाले उत्सवमें विद्यमान था (**आदि० २१८ । ११-१२**) ।

हासिनी–अलकापुरीकी एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र ऋषिके स्वागतके अवसरपर कुबेरभवनमें नृत्य किया था (**अनु० १९ । ४५**) ।

हास्तिनपुर(हस्तिनापुर)–गङ्गातटपर बसी हुई एक नगरी, जिसे सुहोत्रके पुत्र राजा हस्तीने बसाया था; इसीलिये इसका नाम 'हास्तिनपुर' हुआ (**आदि०** ९५ । ३४) । यह कौरवोंकी रमणीय राजधानी थी । यहाँ किसी समय राजा शान्तनु राज्य करते थे (**आदि० १०० । १२**) । अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित्को यहींका राजा बनाया गया था (**महाप्र० १ । ८**) । (आधुनिक मतके अनुसार मेरठसे २२ मील उत्तर-पूर्व और बिजनौरसे दक्षिण-पश्चिम गङ्गाके दाहिने तटपर इसकी स्थिति मानी गयी है ।)

हाहा–एक श्रेष्ठ गन्धर्व, जो महर्षि कश्यपद्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (**आदि० ६५ । ५१; वन० ४३ । १४**) । ये अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें पधारे थे (**आदि० १२२ ।** ५९) । ये कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (**सभा० १० । २५–२७**) । इन्होंने इन्द्रलोककी सभामें अर्जुनका स्वागत किया था (**वन० ४३ ।** १४) ।

हिंगुल–एक पर्वतीय धातु, जो संध्याकालीन बादलोंके समान लाल रंगकी होती है (**वन० १५८ । ९४**) ।

हिडिम्ब–शालके वृक्षपर रहनेवाला एक क्रूर नर-मांसभक्षी राक्षस, जिसका मुख बड़ा विकराल था (**आदि० १५१ ।** १–३) । सोये हुए पाण्डवोंको देखकर इसका हर्ष तथा अपनी बहिन हिडिम्बाको उनका पता लगाने और उन्हें मार लानेके लिये इसका आदेश (**आदि० १५१ । ७–** १४) । हिडिम्बापर इसका क्रोध (**आदि० १५२ । १६–** १९) । वधकी इच्छासे इसका पाण्डवों तथा हिडिम्बापर आक्रमण (**आदि० १५२ । २०**) । भीमसेनके साथ इसका विवाद और युद्ध (**आदि० १५२ । २२–४२**) । भीमसेनद्वारा इसका वध (**आदि० १५३ । ३०–३२**) ।

हिडिम्बवधपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय १५१ से १५५ तक**) ।

हिडिम्बवन–एक वन, जिसमें हिडिम्ब नामक राक्षस निवास करता था (**वन० १२ । ९३**) ।

हिडिम्बा—राक्षसराज हिडिम्बकी बहिन, भीमसेनकी पत्नी तथा घटोत्कचकी माता (आदि० ६१ । २५) । सोये हुए पाण्डवोंको मारकर लानेके लिये इसको हिडिम्बका आदेश (आदि० १५१ । ७–१४) । भीमसेनके रूपसे मोहित होकर उनसे अपना पति होनेके लिये इसकी प्रार्थना (आदि० १५१ । १७–२९) । इसपर हिडिम्बका क्रोध तथा इसका भय (आदि० १५२ । १६–१९) । वधकी इच्छासे इसपर हिडिम्बका आक्रमण (आदि० १५२ । २०) । इसका कुन्ती आदिसे अपना मनोभाव प्रकट करना (आदि० १५३ । ५–१२) । भीमसेनको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये इसकी कुन्तीसे प्रार्थना (आदि० १५४ । ४–१५ के बादतक) । युधिष्ठिरका शर्तके साथ हिडिम्बाको भीमसेनकी सेवामें रहनेके लिये आदेश देना (आदि० १५४ । १६–१८ के बादतक) । भीमसेनका एक शर्तके साथ उसके साथ जानेके लिये उद्यत होना (आदि० १५४ । १९-२०) । इसका भीमसेनको साथ लेकर आकाशमें उड़ जाना और परम सुन्दर रूप धारणकर रमणीय प्रदेशोंमें उनके साथ विहार करना (आदि० १५४ । २१–३०) । इसके गर्भसे भीमसेनद्वारा घटोत्कचका जन्म (आदि० १५४ । ३१) । इसका पाण्डवोंसे मिलकर अपने अभीष्ट स्थानको जाना (आदि० १५४ । ४०) ।

हिमवान्—भारतकी उत्तर-सीमापर स्थित एक विशाल पर्वतराज, जो शरीरसे पर्वत होते हुए भी 'आत्मा' से देवता है । यहाँ हिमवान्का अर्थ हिमालय पर्वत और उसके अधिष्ठाता देवता समझना चाहिये । वालखिल्य मुनि यहाँ तपस्या करनेके लिये आये थे (आदि० ३० । १८) । शेषनाग संयम-नियम तथा एकान्तवासके लिये हिमालय पर्वतपर आये थे (आदि० ३६ । ३-४) । व्यासजी गान्धारीके बालकोंकी रक्षाको व्यवस्था करके हिमालयपर तपस्याके लिये चले गये थे (आदि० ११४ । २४) । राजा पाण्डु कालकूट और हिमालयपर्वतको लाँघते हुए गन्धमादनपर्वतपर चले गये थे (आदि० ११८ । ४८) । क्षत्रियलोग भृगुवंशी ब्राह्मणोंके गर्भस्थ बालकोंकी भी हत्या करते हुए सारी पृथ्वीपर विचरने लगे । यह देख भयके मारे भृगुवंशियोंकी पत्नियोंने दुर्गम हिमालयपर्वतका आश्रय लिया (आदि० १७७ । २०-२१) । पराशरने समस्त राक्षसोंके विनाशके उद्देश्यसे किये जानेवाले सत्रके लिये जो अग्नि संचित की थी, उसे उत्तर-दिशामें हिमालयके आसपास एक विशाल वनमें छोड़ दिया (आदि० १८० । २२) । इन्द्रपुत्र अर्जुनने भी हिमालयकी यात्रा की थी (आदि० २१४ । १) । हिमवान् कुबेर-सभामें रहकर धनके स्वामी महामना भगवान् कुबेरकी उपासना करते हैं (सभा० १० । ३१–३४) । देवर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभाका दर्शन पानेके उद्देश्यसे सूर्यके बताये अनुसार हिमालयके शिखरपर एक हजार वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले महान् व्रतका अनुष्ठान किया था (सभा० ११ । ८-९) । अर्जुनने संग्राममें हिमवान्को जीतकर धवलगिरिपर आकर वहीं अपनी सेनाका पड़ाव डाला (सभा० २७ । २९) । भीमसेनने हिमालयके पास जाकर सारे जलोद्भव देशपर थोड़े ही समयमें अधिकार प्राप्त कर लिया । (सभा० ३० । ४) । हिमालयपर्वतपर मेरु-सावर्णिने युधिष्ठिरको धर्म और ज्ञानका उपदेश किया था (सभा० ७८ । १४) । राजा भगीरथने तपस्याके लिये हिमालयपर्वतको प्रस्थान किया । गिरिराज हिमालय विविध वस्तुओंसे विभूषित तथा नाना प्रकारके शिखरोंसे अलंकृत है । इसकी रमणीय शोभाका विस्तृत वर्णन (वन० १०८ । ३–११) । कुलिन्दराज सुबाहुका विशाल राज्य हिमालयपर्वतके निकट था । पाण्डवोंने रातमें वहाँ रहकर दूसरे दिन सबेरे हिमालयकी ओर प्रस्थान किया (वन० १४० । २४–२७) । पाण्डवलोग सत्रहवें दिन हिमालयके एक पावन पृष्ठभागपर जा पहुँचे । हिमालयके उस पावन प्रदेशमें वृषपर्वाका पवित्र आश्रम था । वहाँ जाकर उन्होंने वृषपर्वाको प्रणाम किया (वन० १५८ । १८–२१) । भीमसेन हिमालयपर्वतके सुन्दर प्रदेशोंका अवलोकन करते हुए वनमें शिकार खेलने लगे । इसी अवस्थामें उन्हें एक अजगरने पकड़ लिया (वन० १७८ अध्याय) । मार्कण्डेयजीने भगवान बालमुकुन्दके उदरमें हिमवान तथा हेमकूट आदि पर्वतोंको देखा था (वन० १८८ । ११२) । हिमवान् पर्वतपर प्रावारकर्ण नामसे प्रसिद्ध एक उल्लू निवास करता है, जो मार्कण्डेयजीसे भी पहलेका उत्पन्न हुआ है (वन० १९९ । ४) । कर्णने हिमालयपर्वतपर आरूढ़ हो हिमवत्प्रदेशके समस्त भूपालोंको जीतकर उन सबसे कर वसूल किया (वन० २५४ । ४–६) । उत्तरमें हिमवान्के शिखरपर भगवान् महेश्वर भगवती उमाके साथ नित्य निवास करते हैं (उद्योग० १११ । ५) । हिमवान् पूर्वसे पश्चिम दिशाकी ओर फैले हुए छः वर्षपर्वतोंमेंसे एक है (भीष्म० ६ । ३–५) । अर्जुनने स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ कैलासकी यात्रा करते समय पवित्र हिमवान् पर्वतका शिखर देखा था (द्रोण० ८० । २३-२४) । त्रिपुरदाहके समय हिमवान् और विन्ध्य भगवान् रुद्रके रथमें आधारकाष्ठ बने थे (कर्ण० ३४ । २२) । गङ्गाने अपने गर्भको देवपूजित हिमवान् पर्वतके सुरम्य शिखरपर छोड़ दिया था, जिससे स्कन्द प्रकट हुए थे (कर्ण० ४४ । ९) । कुमारकार्तिकेयका अभिषेक करनेके लिये गिरिराज हिमालयके अधिष्ठाता देवता हिमवान् भी पधारे थे (शल्य० ४५ । १४–१८) । इन्होंने कुमारको सुवर्चा और अतिवर्चा नामक दो पार्षद प्रदान किये थे (शल्य० ४५ । ४६-४७) । भगवान् श्रीकृष्णने हिमालयकी घाटीमें रहकर बड़ी भारी तपस्याके द्वारा रुक्मिणीदेवीके गर्भसे प्रद्युम्नको जन्म दिया (सौप्तिक० १२ । ३०-३१) । पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमवान्ने राजा पृथुको अक्षय धन समर्पित किया था (शान्ति० [illegible] । ११८) ।

हिमालयके सुरम्य शिखरपर, जिसका विस्तार सौ योजनका है, भगवान् ब्रह्माजीने एक यज्ञ किया था (शान्ति० १६६ । ३२–३७) । पूर्वकालमें प्रजापति दक्षने हिमालयके पार्श्ववर्ती गङ्गाद्वारके शुभ प्रदेशमें एक यज्ञका आयोजन किया था (शान्ति० २८४ । ३) । राजा जनकका उपदेश सुनकर शुकदेवजीने हिमालयपर्वतको प्रस्थान किया । इस पर्वतपर सिद्ध और चारण निवास करते हैं । एक समय देवर्षि नारदजी इसका दर्शन करनेके लिये वहाँ पधारे थे । वहाँ सब ओर अप्सराएँ विचरती हैं । विविध प्राणियोंकी शान्त मधुर ध्वनिसे वहाँका सारा प्रान्त व्याप्त रहता है । सहस्रों किन्नर, भ्रमर, खञ्जरीट, चकोर, मोर और कोकिल अपना कलरव फैलाते रहते हैं । पक्षिराज गरुड़ हिमवान्पर नित्य निवास करते हैं । चारों लोकपाल, देवता और ऋषि जगत्के हितकी कामनासे वहाँ सदा आते रहते हैं । भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रके लिये यहीं तप किया था । यहीं कुमारकार्तिकेयने बाल्यावस्थामें देवताओंपर आक्षेप किया और तीनों लोकोंका अपमान करके अपनी शक्ति गाड़ दी और यह बात कही—जो मुझसे भी अधिक बलवान्, ब्राह्मणभक्त और पराक्रमी हो, वह इस शक्तिको उखाड़ दे अथवा हिला दे । भगवान् विष्णुने कुमारके सम्मानकी रक्षाके लिये उस शक्तिको केवल हिला दिया, उखाड़ा नहीं । हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने उसे उखाड़नेकी चेष्टा की; किंतु वे चीत्कार करके मूर्च्छित हो हिमालयके शिखरपर गिर पड़े । गिरिराज हिमालयके पार्श्वभागमें उत्तर दिशाकी ओर भगवान् शिवने दुर्धर्ष तपस्या की है । भगवान् शङ्करके उस आश्रमको प्रज्वलित अग्निने चारों ओरसे घेर रक्खा है । उस पर्वतशिखरका नाम आदित्यगिरि है । उसपर अजितात्मा पुरुष नहीं चढ़ सकते । उसका विस्तार दस योजन है । वह आगकी लपटोंसे घिरा हुआ है । शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव वहाँ स्वयं विराजमान हैं । गिरिराज हिमवान्की पूर्वदिशाका आश्रय लेकर पर्वतके एकान्त तटप्रान्तमें किसी समय महर्षि व्यास अपने शिष्य महाभाग सुमन्तु, जैमिनि, पैल तथा वैशम्पायनको वेद पढ़ाया करते थे (शान्ति० ३२७ । २—२७) । शुकदेवजीके ऊर्ध्वलोकमें गमन करते समय गिरिराज हिमालय विदीर्ण-होता-सा प्रतीत होता था । उन्होंने अपने मार्गमें पर्वतके दो दिव्य शिखर देखे, जो एक दूसरेसे सटे हुए थे । उनमेंसे एक हिमालयका शिखर था और दूसरा मेरुका । शुकदेवजी उन्हें देखकर भी रुके नहीं । उनके निकट आते ही वे दोनों पर्वतशिखर सहसा विदीर्ण होकर दो भागोंमें बँट गये (शान्ति० ३३३ । ५—१०) हिमवान्की पुत्रीका नाम उमा है । उसे रुद्रदेवने पत्नीरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की । इसी बीचमें महर्षि भृगुने आकर हिमवान्से उस कन्याको अपने लिये माँगा । हिमवान्ने कहा, 'इसके लिये देख-सुनकर रुद्रदेवको वर निश्चित कर लिया गया है ।' यह सुनकर भृगुने हिमवान्को शाप दे दिया कि तुम रत्नोंके भण्डार नहीं रहोगे (शान्ति० ३४२ । ६२) । भगवान् नारायण और शङ्करके युद्धसे हिमालयपर्वत विदीर्ण होने लगा था (शान्ति० ३४२ । १२२) । हिमवान् पर्वतपर देवर्षि नारदका अपना आश्रम है (शान्ति० ३४६ । ३) । भगवान् श्रीकृष्णने हिमालयपर्वतपर पहुँचकर महात्मा उपमन्युका दिव्य आश्रम देखा था (अनु० १४ । ४३–४५) । हिमालयपर्वतपर महात्मा राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणोंने बहुत-सा धन वहीं छोड़ दिया था (आश्व० ३ । २०-२१) । धृतराष्ट्र और गान्धारीके दावानलमें दग्ध हो जानेके पश्चात् संजय हिमालयपर चले गये (आश्रम० ३७ । ३३-३४) । महाप्रस्थानके समय योगयुक्त पाण्डवोंने मार्गमें महापर्वत हिमालयका दर्शन किया और उसे लाँघकर जब वे आगे बढ़े, तब उन्हें बालूका समुद्र दिखायी दिया (महाप्र० २ । १-२) ।

हिरण्मय–(१) एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रसभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १८) । (२) सुदर्शन या जम्बूद्वीपका एक वर्ष, जो नीलपर्वतसे दक्षिण और निषधपर्वतसे उत्तर है (भीष्म० ८ । ५—८) ।

हिरण्यकवर्ष–जम्बूद्वीपका एक खण्ड, जो श्वेतपर्वतसे आगे है (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७४९) ।

हिरण्यकशिपु–(१) दितिका एक विख्यात पुत्र, जो महामनस्वी था । इसके पाँच पुत्र थे (आदि० ६५ । १७-१८) । यही इस भूतलपर राजा शिशुपालके रूपमें प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । ५) । यह देवताओंका शत्रु तथा समस्त दैत्योंका राजा था । इसे अपने बलका बड़ा घमंड था । यह तीनों लोकोंके लिये कण्टकरूपमें था । दैत्यकुलका आदि पुरुष यही था । इसने वनमें जाकर बड़ी तपस्या की, इससे ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए (आदि० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८५) । इसके माँगनेपर ब्रह्माजीका इसे अस्त्र-शस्त्रादिसे अवध्य होनेका वरदान देना । त्रिभुवनमें इसके उत्पात तथा भगवान् नृसिंहद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७८५ से ७८९ तक) । प्राचीन कालमें यह समस्त भूतलका शासक था (शान्ति० २२७ । ५३) । (२) एक दानव, जिसने पूर्वकालमें मेरुपर्वतको हिला दिया था । भगवान् शङ्करसे एक अर्बुद वर्षोंके लिये सम्पूर्ण देवताओंका ऐश्वर्य प्राप्त किया । इसके पुत्रका नाम मन्दार था (अनु० १४ । ७३-७४) ।

हिरण्यगर्भ–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम और इसकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२ । ९६) ।

हिरण्यधनु–एक निषादराज, जो एकलव्यका पिता था (आदि० १३१ । ३१)।

हिरण्यनाभ–संजयपुत्र सुवर्णष्ठीवी जब मृत्युके पश्चात् नारदजीकी कृपासे जीवित हुआ, तब उसका यही नाम रक्खा गया था । इसकी आयु एक हजार वर्षोंकी थी (शान्ति० १२९ । १४९)।

हिरण्यपुर–पुलोमा और कालकाकी प्रार्थनासे उनके पुत्रोंके लिये ब्रह्माजीद्वारा निर्मित एक विमानोपम आकाशचारी दिव्य नगर, जो पौलोम और कालकेय नामक दानवोंका निवासस्थान था एवं उन्हींके द्वारा सुरक्षित था (वन० १७३ । ९–१३)। अर्जुनद्वारा इसका संहार (वन० १७३ । ३०)। नारदजीद्वारा मातलिको इस नगरका परिचय (उद्योग० १०० अध्याय)।

हिरण्यबाहु–वासुकि-वंशोद्भव एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ६)।

हिरण्यबिन्दु–हिमालयके निकटका एक तीर्थ, जहाँ तीर्थ-यात्राके अवसरपर अर्जुनका आगमन हुआ था (आदि० २१४ । ४)। जो मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए हिरण्यबिन्दुतीर्थमें स्नान करके वहाँके प्रमुख देवता भगवान् कुशेशयको प्रणाम करता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं (अनु० २५ । १०-११)। कालिञ्जर पर्वतपर स्थित एक महान् तीर्थ (वन० ८७ । २१)।

हिरण्यरेता–अग्निका नाम (आदि० ५५ । १०)।

हिरण्यरोमा–दाक्षिणात्य देशोंके अधिपति विदर्भराज भीष्मकका दूसरा नाम (उद्योग० १५८ । १)।

हिरण्यवर्मा–दशार्णदेशके राजा, जिन्होंने अपनी कन्याका विवाह शिखण्डीके साथ किया था (उद्योग० १८९ । १०)। शिखण्डीके स्त्रीत्वकी जानकारीसे कुपित होकर इनका द्रुपदको संदेश (उद्योग० १८९ । २१–२३)। मित्र राजाओंकी मन्त्रणासे इनका द्रुपदपर चढ़ाई करनेका निश्चय एवं संदेश (उद्योग० १९० । ९-१०)। राजा द्रुपदकी राजधानीके पास आकर इनका पुरोहितद्वारा संदेश देना (उद्योग० १९२ । २०-२१)। युवतियों-द्वारा शिखण्डीकी परीक्षा कराकर प्रसन्न होना और द्रुपद तथा शिखण्डीका सम्मान करके घर लौटना (उद्योग० १९२ । २८–३२)।

हिरण्यशृंग–कैलासपर्वतसे उत्तर मैनाकपर्वतके समीपस्थ एक मणिमय विशाल पर्वत (सभा० ३ । १०; भीष्म० ६ । ४२)।

हिरण्यसर–पश्चिमदिशाका एक प्राचीन तीर्थ, यहाँ चन्द्रमाने स्नान करके पापसे छुटकारा पाया था, तभीसे इसका नाम 'प्रभास' हुआ (शान्ति० ३४२ । ५७)।

हिरण्यहस्त–एक प्राचीन ऋषि, जिन्हें राजा मदिराश्वसे उनकी सुन्दरी कन्याका दान प्राप्त हुआ था (शान्ति० २३४ । ३५)।

हिरण्याक्ष–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५७)।

हिरण्वती–कुरुक्षेत्रमें बहनेवाली एक पवित्र नदी, जो स्वच्छ एवं विशुद्ध जलसे भरी रहती है, इसमें कंकड़-पत्थर और कीचड़का नामतक नहीं है । इसीके तटपर भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डव सेनाका पड़ाव डाला था (उद्योग० १५२ । ७-८)। यह भारतवर्षकी प्रमुख नदियोंमें है । जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २५)।

हीक–विपाशामें रहनेवाला एक राक्षस, जो वहि नामक निशाचरका साथी था । इन्हीं दोनोंकी संतानें वाहीक कहलाती हैं (कर्ण० ४४ । ४१-४२)।

हुण्ड–एक जनपद, जहाँके सैनिकोंके साथ नकुल-सहदेव क्रौञ्चारुणव्यूहके बायें पंखके स्थानमें स्थित थे (भीष्म० ५० । ५२-५३)।

हुतहव्यवह–'धर' नामक वसुके दो पुत्रोंमेंसे एक, दूसरेका नाम द्रविण था (आदि० ६६ । २१)।

हूण–एक जाति, जिसकी उत्पत्ति 'नन्दिनी गौ' के फेनसे हुई (आदि० १७४ । ३८)। हूणोंका जहाँ निवास है, उस भूभागको हूण देश कहा गया है । इस देश और जातिके जो पश्चिमदेशीय राजा थे, उन सबको नकुलने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया था (सभा० ३२ । १२)। हूण देश और जातिके भूपाल युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१ । २४)।

हूहू–एक श्रेष्ठ गन्धर्व, जो महर्षि कश्यपद्वारा प्राधाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६५ । ५१; वन० ४३ । १४)। ये अर्जुनके जन्म महोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५९)। ये कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० १० । २५–२७)। इन्होंने इन्द्रलोककी सभामें अर्जुनका स्वागत किया था (वन० ४३ । १४)।

हृदिक–एक भोजवंशी यादव, जो कृतवर्माके पिता थे (आदि० ६३ । १०५)।

हृद्य–एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रसभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १३)।

हृषीकेश–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम और इसकी निरुक्ति (शान्ति० ३४२ । ६७)।

हेमकूट–(१) उत्तर दिशाका एक पर्वत, जहाँ अर्जुनने अपनी सेनाका पड़ाव डाला था और वहाँसे वे हरिवर्षमें गये थे (सभा० २८ । ६ के बाद दा० पाठ)। (२) नन्दाके तटपर दुर्गम पर्वत, जहाँ राजा युधिष्ठिर

भी आये थे, इसे ऋषभकूट भी कहते हैं। उन्होंने वहाँ बहुत-सी अद्भुत बातें देखीं। यहाँ बिना वायुके ही बादल उत्पन्न होते और ओले बरसाते थे। वेदोंके स्वाध्यायकी ध्वनि सुनायी देती, पर कोई दिखायी नहीं देता था इत्यादि। इसके कारणका वर्णन (**वन० ११०। २–१८**)।

हेमगुह–कश्यपवंशमें उत्पन्न एक प्रमुख नागराज (**आदि० ३५। ९**)।

हेमनेत्र–एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी उपासना करता है (**सभा० १०। १७**)।

हेममाली–द्रुपदका एक पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा मारा गया था (**द्रोण० १५६। १८२**)।

हेमवर्ण–राजा रोचमानके पुत्र, जो पाण्डवपक्षके योद्धा थे। इनके घोड़ोंका वर्णन (**द्रोण० २३। ६७**)।

हेमा–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँके निवासी पीते हैं (**भीष्म० ९। २३**)।

हेरम्बक–एक दक्षिणभारतीय जनपद तथा वहाँके निवासी, इनको सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके अवसरपर परास्त किया था (**सभा० ३१। १३**)।

हैमवत–एक वर्षका नाम, जो हिमवान् (हिमालय) से उत्तर है (**भीष्म० ६। ७**)। मेरुसे मिथिला जाते समय श्रीशुकदेवजीने इस वर्षको पार किया था और फिर वे भारतवर्षमें आये थे (**शान्ति० ३२५। १४**)।

हैमवती–(१) हिमालयसे निकली हुई एक नदी। 'शतद्रु'के लिये 'हैमवती' शब्दका प्रयोग हुआ है (**आदि० १७६। ८-९**)। (२) विश्वामित्रकी प्यारी पत्नी (**उद्योग० ११७। १३**)। (३) भगवान् श्रीकृष्णकी एक पत्नी, जिन्होंने पतिके दाह-संस्कारके समय चितारोहण किया था (**मौसल० ७। ७३**)।

हैरण्यवती–हिरण्मय वर्षकी एक नदी (**भीष्म० ८। ५**)।

हैहय–(१) क्षत्रियोंका एक कुल, जिसका संहार परशुरामजीने किया था। कार्तवीर्य अर्जुन हैहयवंशी क्षत्रियोंका अधिपति था, जो परशुरामजीके हाथमें मारा गया (**सभा० ३८। २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९२**)। राजा सगरने इस वंशके क्षत्रियोंको जीता था (**वन० १०६। ८**)। राजा परपुरञ्जय हैहयवंशी क्षत्रियोंकी वंश-परम्पराको बढ़ानेवाला था; इसने अनजानमें एक मुनिको बाण मार दिया। फिर कुछ हैहय उसे साथ ले मुनिवर कश्यपनन्दन अरिष्टनेमाके पास गये। उन्होंने उस मुनिको जीवित दिखाकर यह बताया कि सद्धर्माचरणके प्रभावसे हमलोगोंपर मृत्युका वश नहीं चलता (**वन० १८४। ३–२२**)। इस वंशमें मुदावर्त नामका एक कुलाङ्गार नरेश हुआ था (**उद्योग० ७४। १३**)। ब्राह्मणोंने अपनी कुशमयी ध्वजा फहराते हुए किसी समय हैहयवंशी क्षत्रियोंपर आक्रमण किया था (**उद्योग० १५६। ४**)। गुणावतीसे उत्तर और खाण्डव-वनसे दक्षिण पर्वतके निकटवर्ती प्रदेशमें लाखों हैहयवंशी क्षत्रिय वीर परशुरामजीके द्वारा रणभूमिमें मारे गये थे (**द्रोण० ७०। ८-९**)। कृतवीर्यका बलवान् पुत्र अर्जुन हैहयवंशका राजा हुआ (**शान्ति० ४९। ३५**)। राजा सुमित्र हैहयवंशी नरेश था (**शान्ति० १२६। ८**)। (२) शर्यातिके वंशमें उत्पन्न एक राजा, जिसके नामपर हैहयवंशकी परम्परा प्रचलित हुई। हैहय वत्सके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम वीतहव्य था। इनके दस स्त्रियाँ थीं। उनसे सौ वीर पुत्र उत्पन्न हुए थे (**अनु० ३०। ७-८**)। (विशेष देखिये वीतहव्य)।

होत्रवाहन–एक प्राचीन राजर्षि, जो युधिष्ठिरका विशेष सम्मान करते थे (**वन० २६। २४-२५**)। ये काशिराजकी पुत्री अम्बाके नाना थे, इनका अम्बाको परशुरामजीके पास जानेकी सम्मति देना (**उद्योग० १७६। २८–३४**)। इन्होंने अकृतव्रणसे अम्बाका परिचय दिया था (**उद्योग० १७६। ४४–५६**)।

ह्रदप्रवेशपर्व–शल्यपर्वका एक अवान्तर पर्व (**अध्याय २९**)।

ह्रदोदर–एक राक्षस, जिसका स्कन्दद्वारा वध हुआ था (**शल्य० ४६। ७५**)।

ह्राद–एक नाग, जो बलरामजीके परमधामगमनके समय स्वागतमें आये थे (**मौसल० ४। १६**)।

ह्री–एक देवी, जो ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती हैं (**सभा० ११। ४२**)। अर्जुनके इन्द्रलोक जाते समय उनकी मङ्गल-कामनाके लिये द्रौपदीने ह्री देवीका स्मरण किया था (**वन० ३७। ३३**)। स्कन्दके अभिषेकमें ये भी पधारी थीं (**शल्य० ४५। १३**)।

ह्रीनिषेव–एक दैत्य या राजर्षि, जो प्राचीन कालमें पृथिवीका शासक था; परंतु कालवश उसे छोड़कर चल बसा (**शान्ति० २२७। ५१**)।

ह्रीमान्–एक सनातन विश्वेदेव (**अनु० ९१। ३१**)।

रजि० सं० ए० ८५४

॥ श्रीहरि: ॥

प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंसे सादर निवेदन

१—'महाभारत' का यह तीसरे वर्षका बारहवाँ अर्थात् अन्तिम अङ्क है। इसके पश्चात् चौथा वर्ष प्रारम्भ होगा जिसमें हरिवंशपुराण तथा जैमिनीय अश्वमेधपर्व देनेका विचार है।

२—विविध प्रकारकी उलझनोंमें पड़े हुए आजके व्यग्र जगत्को—आसक्ति-कामना, द्वेष-द्रोह, असंतोष-अशान्ति आदिकी भीषण आगमें झुलसते हुए मानव-प्राणीको 'महाभारत'में प्रकाशित छोटी-बड़ी सच्ची प्रेरणाप्रद घटनाओंके द्वारा वह यथार्थ समाधान प्राप्त होता है, जिससे उसकी सारी उलझनें सुलझ जाती हैं और त्याग-वैराग्य, समता-संतोष तथा आत्मीयता-अनुरागका वह मधुर शीतल सुधा-सलिल-रस-प्रवाह मिलता है, जिससे कामना-वासना तथा असंतोष-अशान्तिकी प्रचण्ड अग्नि सदाके लिये सहज ही शान्त हो जाती है। इसमें एक-एक कथा ऐसी प्रेरणाप्रद है कि ध्यानपूर्वक पढ़नेपर जीवनमें सहज ही सुन्दर परिवर्तन हो सकता है।

३—चौथे वर्षमें प्रतिमास कम-से-कम १४४ पृष्ठ तथा १ बहुरंगा और ४ सादे चित्र होंगे।

४—चौथे वर्षका वार्षिक मूल्य डाकखर्चसहित १५) है। यदि किसी कारणवश डाकखर्च बढ़ गया तो वार्षिक मूल्य कुछ बढ़ाया जा सकता है।

५—जिन ग्राहकोंके चंदेके रुपये अङ्क निकलनेतक नहीं मिलेंगे, उनको वी० पी० द्वारा प्रथम अङ्क भेज दिया जायगा।

६—सभी पुराने ग्राहकोंको चौथे वर्ष भी ग्राहक रहना चाहिये, अन्यथा बिना हरिवंशके उनका महाभारत अधूरा रहेगा। यदि किसी विशेष कारणवश किसीको ग्राहक न रहना हो तो कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें ताकि डाकखर्चकी हानि न सहनी पड़े।

७—जिन नये ग्राहकोंको अबतकके पुराने महाभारतके तीनों वर्षोंके अङ्क लेने हों, वे तीन सालका चंदा ६०) अधिक भेजनेकी कृपा करेंगे।

८—महाभारतका नया वर्ष नवम्बरसे आरम्भ होता है; परंतु नामानुक्रमणिकाके जटिल कार्यमें बहुत समय लग गया, इससे १२ वीं संख्याके प्रकाशनमें बड़ी देर हो गयी तथा इस कार्यमें लगे रहनेके कारण हरिवंशपुराणके अनुवादका कार्य नहीं हो सका। अतएव चतुर्थ वर्षके महाभारतका वर्षारम्भ 'जनवरी'से करना निश्चय किया गया। तदनुसार चतुर्थ वर्षका प्रथम अङ्क जनवरीमें प्रकाशित होगा। जिन पाठकोंने चंदा भेज दिया है और हरिवंशपुराण शीघ्र पढ़नेके लिये समुत्सुक हैं, उनको इससे कुछ खेद अवश्य होगा, पर हमारी विवशताको देखकर वे सभी महानुभाव हमें क्षमा करेंगे और धैर्य रक्खेंगे। यह हमारी उनसे विनीत प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—'मासिक महाभारत', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)